ॐ

कल्याण



अङ्क १

कल्याण-प्रेमियों तथा ग्राहकोंसे नम्र निवेदन

(१) साधनाङ्ककी भाँति 'भागवताङ्क' भी ठीक समयपर निकल रहा है। 'कल्याण' के अबतकके विशेषाङ्कोंमें गीता-तत्त्वाङ्क सबसे बड़ा था। 'भागवताङ्क' भी उतना ही बड़ा निकल रहा है। बल्कि पृष्ठ-संख्या समान होनेपर भी इसमें पढ़नेकी सामग्री गीता-तत्त्वाङ्कसे भी अधिक है; क्योंकि इसका अधिकांश छोटे टाइपोंमें छपा है। सुनहरी और बहुरंगे चित्रोंकी संख्या भी लगभग गीता-तत्त्वाङ्क-जितनी ही है और लाइन-चित्र तो इसमें गीता-तत्त्वाङ्ककी अपेक्षा चौगुनेसे भी अधिक—लगभग ४०० हैं। पठनीय सामग्रीकी दृष्टिसे भी यह अङ्क बहुत ही रोचक और सर्वोपयोगी सिद्ध होगा। दूसरे अङ्कमें छोटे टाइपमें पूरा मूल-भागवत रहेगा, जो सबके लिये संग्रहणीय एवं पूजाकी सामग्री होगा। तीसरे अङ्कमें भी भागवत-सम्बन्धी लेख ही रहेंगे। कागज, छपाई, टाइप, स्याही, ब्लाक बनवाई, बँधाई आदि सभीकी कीमत बढ़ जानेके कारण इस बार यह भागवताङ्क बहुत भारी घाटा देकर प्रकाशित हो रहा है। मूल्यमें १) बढ़ा दिये जानेपर भी साठ हजार रुपयेसे अधिक ही घाटा रहनेका अनुमान है, जैसा कि पिछले वर्षके ग्यारहवें अङ्कमें निवेदन किया जा चुका है। साथ ही चेष्टा करनेपर भी मीलवालोंसे आवश्यकतानुसार कागज मिलनेमें कठिनाई होनेके कारण तथा अङ्क समयपर प्रकाशित हो सके, इसलिये पूर्वविचारके अनुसार साठ हजार न छापकर एक बार भागवताङ्क केवल चालीस हजार ही छापा जा रहा है। शेष २०००० भी यथासम्भव शीघ्र छापनेका विचार है, परन्तु ऐसी दशामें उसके दुबारा छपनेकी सम्भावना तो प्रायः कम ही समझनी चाहिये। अतएव जिनको ग्राहक बनना हो, उन्हें बहुत शीघ्र रुपये भेजकर ग्राहक बन जाना चाहिये; यह संस्करण बिक जानेके बाद इस अङ्कका मिलना प्रायः कठिन ही हो जायगा।

(२) 'भागवताङ्क' प्रथम खण्डका मूल्य ४॥) है। शेष ग्यारह आनेमें वर्षभर-के ग्यारह अङ्क और मिल जायँगे—जिनमें पूरा मूलभागवत भी शामिल रहेगा। इसलिये 'भागवताङ्क' अलग न लेकर पूरे वर्षके ग्राहक बननेमें ही सुभीता है। 'कल्याण' के प्रेमी पाठक-पाठिकागण जैसे प्रतिवर्ष चेष्टा करके ग्राहक बनाते हैं, वैसे ही इस वर्ष भी विशेष उत्साहसे ग्राहक बनायें। प्रत्येक ग्राहक महोदय चेष्टा करके एक-दो नये ग्राहक अवश्य बना दें।

(३) अङ्कका कलेवर बड़ा होने तथा चित्रोंकी संख्या बढ़ जानेके कारण छपाईका काम बहुत बढ़ गया है। ज्यों-ज्यों अङ्क छपते जाते हैं, त्यों-ही-त्यों ग्राहकोंको भेजे जा रहे हैं। ग्राहकोंकी प्रायः शिकायत रहती है कि हमें अङ्क

मिलते हैं। शिकायत ठीक है। परन्तु हम इसके लिये लाचार हैं। अपनी ओरसे बहुत जल्दी करनेपर भी सब अङ्कोंकी पूरी रवानगीमें लगभग डेढ़ महीना तो लग ही जायगा। ग्राहकगण हमारी इस विवशतापर क्षमा करेंगे।

(४) जिन महानुभावोंने अगले सालका मूल्य ५≤) नहीं भेजा है, उनकी सेवामें जल्दी ही 'भागवताङ्क' वी. पी. से भेजनेकी व्यवस्था की जायगी। परन्तु इस बार 'भागवताङ्क' अभी केवल चालीस हजार ही छप रहा है और इसकी माँग भी ग्राहकोंकी रुचि देखते हुए कदाचित् अधिक ही होगी। ऐसी दशामें जिनका मूल्य पहले प्राप्त हो जायगा, उनको अङ्क भिजवा देनेके बाद यदि अङ्क बच रहेंगे, तभी शेष ग्राहकोंके नाम वी. पी. भेजी जा सकेगी। ऐसी हालतमें इस सूचनाको पढ़ते ही जो ५≤) मनीआर्डर-से तुरंत भेज देंगे, उन्हें 'भागवताङ्क' जल्दी मिल सकेगा।

(५) जिन सज्जनोंके नाम वी॰पी॰ जायगी, हो सकता है उनमेंसे कुछ सज्जन इधरसे वी॰पी॰ जानेके समय ही उधरसे रुपये मनीआर्डरसे भेज दें। ऐसी हालतमें उन सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे वी॰पी॰ लौटायें नहीं, वहीं रोक रक्खें और हमें तुरंत कार्ड लिखकर सूचना दें। रुपये आ गये होंगे, तो हम उन्हें फ्री-डिलीवरी देनेके लिये वहाँके पोस्टमास्टरको लिख देंगे। यदि 'भागवताङ्क' रजिस्ट्रीसे मिल गया हो और वी॰पी॰से भी अङ्क पहुँचे, तो भी कृपया वी॰पी॰ लौटायें नहीं। चेष्टा करके दूसरा नया ग्राहक बनाकर वी॰ पी॰ छुड़ानेकी कृपा करें और नये ग्राहकका नाम-पता साफ-साफ लिख भेजनेकी कृपा करें। कई महानुभाव ऐसा ही करते हैं। हम हृदयसे उनके कृतज्ञ हैं।

(६) सजिल्द अङ्क भेजनेमें देर होगी, ग्राहक महोदय क्षमा करें।

(७) जिनको ग्राहक न रहना हो वे सज्जन कृपा करके तुरंत तीन पैसेका कार्ड लिखकर डाल दें, जिसमें कल्याण-कार्यालयको वी॰पी॰ भेजकर व्यर्थ करीब आठ आने डाकखर्चका नुकसान न उठाना पड़े। व्यवस्थापक—'कल्याण', गोरखपुर

गीता और रामायणकी परीक्षा

'कल्याण'के पाठकोंको श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस (रामायण) का महत्त्व समझाना नहीं होगा। हर्षकी बात है, इनके प्रचारके लिये कई वर्षोंसे दो परीक्षासमितियाँ अपना कार्य कर रही हैं। प्रतिवर्ष हजारों परीक्षार्थी परीक्षामें बैठते हैं। अतएव सब सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे अपने-अपने स्थानोंकी हिन्दी संस्कृत पाठशालाओंमें तथा स्कूल-कालेजोंमें गीता और रामायणकी पढ़ाईकी व्यवस्था करायें और यथासाध्य अधिक से-अधिक विद्यार्थियोंको परीक्षामें बैठनेके लिये उत्साहित करें। आशा है कि सभी बुद्धिमान् सज्जन इस कार्यमें हमारी सहायता करेंगे। नियमावलीके लिये नीचे लिखे पतेपर पत्र लिखनेकी कृपा करें।

संयोजक—
श्रीगीतापरीक्षासमिति, श्रीरामायणप्रसारसमिति
पो॰ बरहज (गोरखपुर)

श्रीहरिः

लेख और माहात्म्यसहित श्रीमद्भागवतके भावानुवादकी विषयसूची

२५ श्रीमद्भागवत-माहात्म्य (पद्मपुराणसे)

२६ श्रीमद्भागवत

प्रथम स्कन्ध

द्वितीय स्कन्ध

तृतीय स्कन्ध

चतुर्थ स्कन्ध

पञ्चम स्कन्ध

दशम स्कन्ध (उत्तरार्द्ध)

एकादश स्कन्ध

द्वादश स्कन्ध

सङ्कलित लेख-सूची

पद्य-सूची



चित्र-सूची

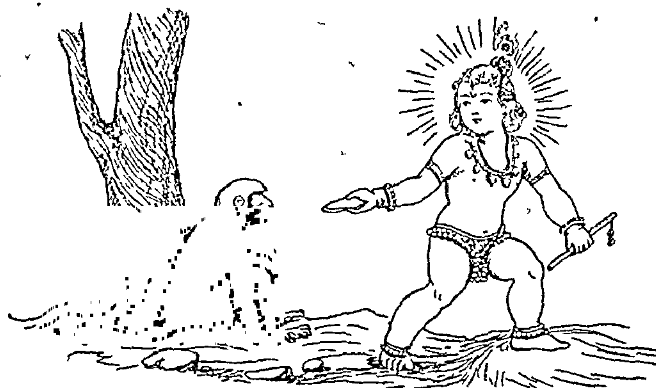
इकरंगे

इकरंगे (लाइन)

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या



गीताप्रेस, गोरखपुरकी सुन्दर, सस्ती, धार्मिक पुस्तकें

३८–विनय-पत्रिका–गो० तुलसीदासकृत सरल हिन्दी-भावार्थसहित, अनु०–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, ६ चित्र, मू० १) स० १।)
३९–गीतावली– ,, सरल हिन्दी-अनुवादसहित, अनु०–श्रीमुनिलालजी, ८ चित्र, पृष्ठ ४६४, मूल्य १) सजिल्द १।)
४०–श्रीकृष्ण-विज्ञान–गीताका मूलसहित हिन्दी-पद्यानुवाद, सचित्र, पृष्ठ २७२, मूल्य ॥।) सजिल्द ... १)
४१–श्रीश्रीचैतन्यचरितावली–(खं० १)–लेखक–श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, ६ चित्र, पृष्ठ २९६, मूल्य ॥।=) सजिल्द १=)
४२– ,, ,, (खं० २)–९ चित्र, ४६४ पृष्ठ, पहले खण्डके आगेकी लीलाएँ, मूल्य १=) सजिल्द १।=)
४३– ,, ,, (खं० ३)–११ चित्र, ३८४ पृष्ठ, मूल्य १) सजिल्द ... १।)
४४– ,, ,, (खं० ४)–१४ चित्र, २२४ पृष्ठ, मूल्य ॥=) सजिल्द ... ॥।=)
४५– ,, ,, (खं० ५)–१० चित्र, पृष्ठ २८०, मूल्य ॥।) सजिल्द ... १)
श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली–पाँचों भाग–पूरी पुस्तक सजिल्द (दो जिल्दोंमें) लेनेसे ॥=) कम लगता है। अलग-अलग अजिल्द ४।=) सजिल्द ५॥=) पाँचों भाग दो जिल्दोंमें ... ... ५)
४६–मुमुक्षुसर्वस्वसार–भाषाटीकासहित, अनुवादक–श्रीमुनिलालजी, पृष्ठ ४१६, मूल्य ॥।–) सजिल्द ... १–)
४७–तत्त्व-चिन्तामणि भाग १–सचित्र, लेखक–श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ३६०, एण्टिक कागज, मूल्य ॥=) स० ॥।–)
४८– ,, ,, ,, (गुटका) ,, ,, ,, ४४८, सचित्र, प्रचारार्थ मूल्य ।–) स० ।=)
४९– ,, भाग २– ,, ,, ,, ६३२, मूल्य ॥।=) सजिल्द १=)
५०– ,, ,, ,, (गुटका) ,, ,, ,, ७५०, सचित्र, प्रचारार्थ मूल्य ।=) स० ॥)
५१– ,, भाग ३– ,, ,, ,, ४६०, मूल्य ॥≥) सजिल्द ॥।=)
५२– ,, ,, ,, (गुटका) ,, ,, ,, ५६०, सचित्र, मूल्य ।–) सजिल्द ।=)
५३– ,, भाग ४– ,, ,, ,, ५७०, सचित्र, मूल्य ॥।–) सजिल्द १)

५४–पूजाके फूल–सचित्र, पृष्ठ ४२०, मूल्य ॥।–)
५५–एकादश स्कन्ध–सटीक, पृष्ठ ३९२, मू० ॥।) स० १)
५६–देवर्षि नारद–५ चित्र, पृष्ठ २४०, मूल्य ॥।) स० १)
५७–शरणागतिरहस्य–सचित्र, पृष्ठ ३६०, मूल्य ॥≥)
५८–श्रीभगवन्नामकौमुदी–सानुवाद, पृष्ठ ३२६ सचित्र, ॥=)
५९–श्रीविष्णुसहस्रनाम–शांकरभाष्य, हिन्दी-अनुवादसहित, सचित्र, पृष्ठ २८६, मूल्य ॥=)
६०–शतपञ्च चौपाई–सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ ३४०, मू० ॥=)
६१–सूक्ति-सुधाकर–सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ २७६, मू० ॥=)
६२–ढाई हजार अनमोल बोल (संतवाणी) पृष्ठ ३५२, ॥=)
६३–आनन्दमार्ग–सचित्र, पृष्ठ ३२४, मूल्य ॥–)
६४–कवितावली–गो० तुलसीदासजीकृत, सटीक, ४ चित्र, ॥–)
*६५–दोहावली–(सानुवाद) अनु०–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, दो रंगीन चित्र, पृष्ठ २२४, मूल्य ॥)
६६–श्रुतिरत्नावली–सचित्र, सम्पा०–श्रीभोलेबाबाजी, मू० ॥)
६७–स्तोत्ररत्नावली–अनुवादसहित, ४ चित्र (नये संस्करणमें ७४ पृष्ठ बढ़े हैं) मूल्य ॥)
६८–दिनचर्या–सचित्र, पृष्ठ २४०, मूल्य ॥)
६९–तुलसीदल–सचित्र, पृष्ठ २९८, मूल्य ॥) सजिल्द ॥≥)
७०–श्रीएकनाथ-चरित्र–सचित्र, पृष्ठ २४४, मूल्य ॥)
७१–नैवेद्य–लेखक–श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृष्ठ २७६, मूल्य ॥) सजिल्द ॥≥)
७२–सुखी जीवन–पृ० २२८, मूल्य ॥)
*७३–श्रीरामकृष्ण परमहंस–५ चित्र, पृष्ठ २५६, मूल्य ।≥)
७४–भक्त-भारती–(सचित्र) कवितामें सात भक्तोंके चरित्र ।≥)
७५–तत्त्व-विचार–सचित्र, पृष्ठ २०८, मूल्य ।=)
७६–उपनिषदोंके चौदह रत्न–पृष्ठ १०४, चित्र १४, मू० ।=)
७७–लघुसिद्धान्तकौमुदी–सटिप्पण, पृष्ठ ३६८, मूल्य ।=)
७८–भक्त नरसिंह मेहता–सचित्र, पृष्ठ १८०, मूल्य ।=)
७९–श्रीउड़ियास्वामीजीके उपदेश–सचित्र, पृष्ठ २१८, ।=)
८०–विवेक-चूडामणि–सचित्र, सटीक, पृष्ठ १९२ ।–) स० ॥)
*८१–गीतामें भक्तियोग–सचित्र, ले०–श्रीवियोगी हरिजी ।–)
८२–प्रेमदर्शन–(नारदरचित भक्तिसूत्रकी विस्तृत टीका) ।–)
८३–गृह्याग्निकर्मप्रयोगमाला–कर्मकाण्ड, पृष्ठ १९२, मू० ।–)
८४–भक्त बालक–५ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ ८०, मूल्य ।–)
८५–भक्त नारी–६ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ ८०, मूल्य ।–)
८६–भक्त-पञ्चरत्न–६ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ १००, मू० ।–)
८७–आदर्श भक्त–७ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ १००, मू० ।–)
८८–भक्त-सप्तरत्न–७ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ १००, मू० ।–)
८९–भक्त-चन्द्रिका–७ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ ९६, मू० ।–)
९०–भक्त-कुसुम–६ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ ९४, मूल्य ।–)
९१–प्रेमी भक्त–९ चित्रोंसे सुशोभित, पृष्ठ १०८, मूल्य ।–)
९२–प्राचीन भक्त–चित्र बहुरंगे १२, सादा १, पृष्ठ १५२, मू० ॥)
९३–भक्त-सौरभ–चित्र बहुरंगे ५, पृष्ठ ११६, मूल्य ।–)
९४–भक्त-सरोज–चित्र बहुरंगे ९, पृष्ठ ११६, मूल्य ।=)
९५–भक्त-सुमन–चित्र बहुरंगे ७, सादे २, पृष्ठ १२०, मू० ।=)
९६–भक्तराज हनुमान्–सचित्र, पृष्ठ ८०, मूल्य ।–)
९७–सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र–सचित्र, पृष्ठ ५६, मूल्य ।–)

* पुस्तक समाप्त हो गयी है, पुनर्मुद्रण होनेपर मिल सकेगी।

९८-प्रेमी भक्त उद्धव-३ रंगीन चित्र, पृष्ठ ६८, मूल्य ≈)
९९-महात्मा विदुर-१ रंगीन चित्र, पृष्ठ ६४, मूल्य =)॥
१००-भक्तराज ध्रुव-चित्र४ रंगीन, १ सादा, पृष्ठ ५२, मू० ≈)
१०१-व्रजकी झाँकी-वर्णनसहित लगभग ५६ चित्र, मूल्य ।)
१०२-श्रीबदरी-केदारकी झाँकी-सचित्र, पृष्ठ १२०, मू० ।)
१०३-परमार्थ-पत्रावली [भाग १]-पृष्ठ १५२, मूल्य ।)
१०४-परमार्थ-पत्रावली [भाग २]-पृष्ठ २०८, मूल्य ।)
*१०५-ज्ञानयोग-पृष्ठ १२८, मूल्य ।)
१०६-कल्याणकुञ्ज-सचित्र, पृष्ठ १७७, मूल्य ।)
१०७-प्रबोध-सुधाकर-सचित्र, सटीक, पृष्ठ ८०, मूल्य ≈)॥
१०८-आदर्श भ्रातृ-प्रेम-ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका ≈)
१०९-मानवधर्म-ले० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, पृ० ११६ ≈)
११०-प्रयागमाहात्म्य-१६ चित्र, पृष्ठ ६४, मूल्य =)॥
१११-माघमकरप्रयागस्नानमाहात्म्य-सचित्र, पृष्ठ १६, =)॥
११२-गीता-निबन्धावली-ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका =)॥
११३-साधन-पथ-ले० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार मूल्य =)॥
११४-अपरोक्षानुभूति-मूलश्लोक और अर्थसहित, पृष्ठ ४८, =)॥
११५-मनन-माला-सचित्र, भक्तोंके कामकी पुस्तक है =)॥
११६-नवधा भक्ति-ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका, मू० =)
११७-बाल-शिक्षा-ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका, मू० =)
११८-शतश्लोकी-हिन्दी-अनुवादसहित, मूल्य =)
११९-भजन-संग्रह-प्रथम भाग सं०-श्रीवियोगी हरिजी =)
१२०- ,, दूसरा भाग ,, =)
१२१- ,, तीसरा भाग ,, =)
१२२- ,, चौथा भाग ,, =)
१२३- ,, पाँचवाँ भाग (पत्र पुष्प) लेखक—
श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, मूल्य =)
१२४-चित्रकूटकी झाँकी-२२ चित्र, मूल्य -)॥
१२५-स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी-(सचित्र), पृष्ठ ५६, मूल्य -)॥
१२६-नारी-धर्म-ले० श्रीजयदयालजी गोयन्दका, मूल्य -)॥
१२७-गोपी-प्रेम-(सचित्र) पृष्ठ ६०, मूल्य -)॥
१२८-मनुस्मृति द्वितीय अध्याय-अर्थसहित मूल्य -)॥
१२९-हनुमानबाहुक-सचित्र, सटीक, मूल्य -)॥
१३०-ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप-लेखक—
[illegible] -)॥
[illegible]
[illegible]
श्रीजयदयालजी गोयन्दका, मूल्य -)।
१३३-गीताका सूक्ष्म विषय-पाकेट-साइज, पृष्ठ ७२, -)।
१३४-ईश्वर-लेखक-पं० श्रीमदनमोहनजी मालवीय, मू० -)।
१३५-मूल गोसाईं-चरित-मूल्य -)।
१३६-मूलरामायण-१ चित्र, मूल्य -)।
१३७-आनन्दकी लहरें-(सचित्र), मूल्य -)

१३८-गोविन्द-दामोदर-स्तोत्र-(सार्थ)-पृष्ठ ३२, मूल्य -)
१३९-श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश-सचित्र, मूल्य -)
१४०-ब्रह्मचर्य-ले० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, मूल्य -)
१४१-समाज-सुधार-मूल्य -)
१४२-एक संतका अनुभव-मूल्य -)
१४३-आचार्यके सदुपदेश-मूल्य -)
१४४-सप्त-महाव्रत-ले० श्रीगांधीजी, मूल्य -)
१४५-वर्तमान शिक्षा-पृष्ठ ४८, मूल्य -)
१४६-सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय-मू० -)
१४७-श्रीरामगीता-मूल, अर्थसहित (पाकेट-साइज), मू०)॥।
१४८-विष्णुसहस्रनाम-मूल, मोटा टाइप)॥। स० -)॥
१४९-हरेरामभजन- २ माला, मूल्य)॥।
१५०- ,, -१४ माला, मूल्य ।-)
१५१- ,, -६४ माला, मूल्य १)
१५२-शारीरकमीमांसादर्शन-मूल, पृष्ठ ५२, मूल्य)॥।
१५३-सन्ध्या-(हिन्दी विधिसहित), मूल्य)॥
१५४-भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय-पृष्ठ ३६, मूल्य)॥
१५५-बलिवैश्वदेवविधि-मूल्य)॥
१५६-सत्यकी शरणसे मुक्ति-पृष्ठ ३२, गुटका, मूल्य)॥
१५७-गीतोक्त सांख्ययोग और निष्कामकर्मयोग)॥
१५८-व्यापारसुधारकी आवश्यकता और व्यापारसे
मुक्ति-पृष्ठ २८, गुटका, मूल्य)॥
१५९-भगवान् क्या है ?-मूल्य)॥
१६०-सीतारामभजन-(पाकेट-साइज) मूल्य)॥
१६१-सेवाके मन्त्र-(पाकेट-साइज) मूल्य)॥
१६२-प्रश्नोत्तरी-श्रीशंकराचार्यकृत (टीकासहित), मू०)॥
१६३-गीताके श्लोकोंकी वर्णानुक्रमसूची-मूल्य)॥
१६४-त्यागसे भगवत्प्राप्ति-पृष्ठ २८, मूल्य)।
१६५-पातञ्जलयोगदर्शन-(मूल), गुटका, मूल्य)।
१६६-धर्म क्या है ?-मूल्य)।
१६७-दिव्य सन्देश-मूल्य)।
१६८-श्रीहरिसंकीर्तनधुन-मूल्य)।
१६९-नारद-भक्ति-सूत्र-(सार्थ गुटका), मूल्य)।
१७०-ईश्वर दयालु और न्यायकारी है-पृष्ठ २०, गुटका)।
१७१-प्रेमका सच्चा स्वरूप-पृष्ठ २४, गुटका, मूल्य)।
१७२-महात्मा किसे कहते हैं ?-पृष्ठ २०, गुटका मू०)।
१७३-हमारा कर्तव्य-पृष्ठ २२, गुटका, मूल्य)।
१७४-ईश्वरसाक्षात्कारके लिये नामजप सर्वोपरि
साधन है-पृष्ठ २४, गुटका, मूल्य)।
१७५-चेतावनी-मूल्य)।
१७६-लोभमें पाप-(गुटका), मूल्य आधा पैसा
१७७-गजलगीता-(गुटका), मूल्य आधा पैसा
१७८-सप्तश्लोकी गीता-(गुटका), मूल्य आधा पैसा

* पुस्तक समाप्त हो गयी है, पुनर्मुद्रण होनेपर मिल सकेगी।

Our English Publications.

1. The Philosophy of Love. (By Hanumanprasad Poddar) 1-0-0
2. The Story of Mira Bai. (By Bankey Behari) 0-13-0
3. Mysticism in the Upanishads. (By Bankey Behari) 0-10-0
4. At the Touch of the Philosopher's Stone. (A Drama in five acts) 0-9-0
5. Songs from Bhartrihari. (By Lal Gopal Mukerji and Bankey Behari) 0-8-0
6. Mind: Its Mysteries & Control. (By Swami Sivananda) Part I 0-8-0
7. ,, ,, Part II 1-0-0
8. Way to God-Realization (By Hanumanprasad Poddar) 0-4-0
9. Gopis' Love for Sri Krishna. (By Hanumanprasad Poddar) 0-4-0
10. The Divine Name and Its Practice. (By Hanumanprasad Poddar) 0-3-0
11. Our Present-day Education. (By Hanumanprasad Poddar) 0-3-0
12. The Immanence of God. (By Malaviyaji) 0-2-0
13. Wavelets of Bliss. (By Hanumanprasad Poddar) 0-2-0
14. The Divine Message. (By Hanumanprasad Poddar) 0-0-9

MANAGER—THE GITA PRESS, GORAKHPUR.

पुस्तकें मँगानेवालोंके लिये कुछ ध्यान देने योग्य बातें—

(१) हर एक पत्रमें नाम, पता, डाकघर, जिला बहुत साफ देवनागरी अक्षरोंमें लिखें। नहीं तो जवाब देने या माल भेजनेमें बहुत दिक्कत होगी। साथ ही उत्तरके लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिये।

(२) अगर ज्यादा किताबें मालगाड़ी या पार्सलसे मँगानी हों तो रेलवे स्टेशनका नाम जरूर लिखना चाहिये। आर्डरके साथ कुछ दाम पेशगी भेजने चाहिये।

(३) थोड़ी पुस्तकोंपर डाकखर्च अधिक पड़ जानेके कारण एक रुपयेसे कमकी वी० पी० प्रायः नहीं भेजी जाती, इससे कमकी किताबोंकी कीमत, डाकमहसूल और रजिस्ट्रीखर्च जोड़कर टिकट भेजें।

(४) एक रुपयेसे कमकी पुस्तकें बुकपोस्टसे मँगवानेवाले सज्जन ।) तथा रजिस्ट्रीसे मँगवानेवाले ।=) (पुस्तकोंके मूल्यसे) अधिक भेजें। बुकपोस्टका पैकेट प्रायः गुम हो जाया करता है; अतः इस प्रकार खोयी हुई पुस्तकोंके लिये हम जिम्मेवार नहीं हैं।

(५) 'कल्याण' रजिस्टर्ड होनेसे उसका महसूल कम लगता है और वह कल्याणके ग्राहकोंको नहीं देना पड़ता, कल्याण-कार्यालय स्वयं बरदास्त करता है। पर प्रेसकी पुस्तकों और चित्रोंपर ।।) सेर डाकमहसूल और ≶) फी पार्सल रजिस्ट्रीखर्च लगता है, जो कि ग्राहकोंके जिम्मे होता है। इसलिये 'कल्याण' के साथ किताबें और चित्र नहीं भेजे जा सकते, अतः गीताप्रेसकी पुस्तक आदिके लिये अलग आर्डर देना चाहिये।

कमीशन-नियम

ग्राहकोंको कमीशन एक चौथाई दिया जायगा। ३०) की पुस्तकें लेनेसे ग्राहकोंके रेलवे स्टेशनपर मालगाड़ीसे फ्री डिलीवरी दी जायगी। ३०) की पुस्तकें लेनेवाले सज्जनोंमेंसे यदि कोई जल्दीके कारण रेलपार्सलसे पुस्तकें मँगावेंगे तो उनको केवल आधा महसूल बाद दिया जायगा। फ्री डिलीवरीमें बिल्टीपर लगनेवाला डाकखर्च, रजिस्ट्रीखर्च, मनीआर्डरकी फीस या बैंकचार्ज शामिल नहीं होंगे, ग्राहकोंको अलग देने होंगे। ३०) से कमकी पुस्तकोंके साथ चित्रोंकी फ्री डिलीवरी नहीं दी जायगी। पुस्तकोंके साथ चित्र मँगानेवालोंको चित्रोंके कारण जो विशेष भाड़ा लगेगा वह देना होगा। पुस्तक-विक्रेताओंको विशेष कमीशनके लिये पत्र देकर पूछना चाहिये। व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

नोट—जहाँ हमारी पुस्तकें बुकसेलरोंके पास मिलती हों वहाँ उन्हींसे खरीदनेमें थोड़ी पुस्तकें यहाँसे मँगवानेपर जो खर्च पड़ता है उससे कममें या उतनेमें ही मिल जाती हैं। अतः थोड़ी पुस्तकें बुकसेलरोंसे ही लेनेमें सुविधा होनेकी सम्भावना है।

श्रीहरिः

चित्र-सूची

गीताप्रेस, गोरखपुरके सुन्दर, सस्ते, धार्मिक दर्शनीय चित्र

कागज साइज १५×२० इञ्चके बड़े चित्र

सभी चित्र बढ़िया आर्ट पेपरपर सुन्दर छपे हुए हैं।

सुनहरी-नेट दाम प्रत्येकका -)॥।

१ युगलछवि
२ राम-सभा
३ अवधकी गलियोंमें आनन्दकन्द
४ आनन्दकन्दका आँगनमें खेल
५ आनन्दकन्द पालनेमें
६ कौसल्याका आनन्द
७ सखियोंमें श्याम
८ दशरथके भाग्य
९ भगवान् श्रीराम
१० रामदरबारकी झाँकी

रंगीन-नेट दाम प्रत्येकका -)।

११ श्रीराधेश्याम
१२ श्रीनन्दनन्दन
१३ गोपियोंकी योगधारणा
१४ श्याममयी संसार
१५ वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण
१६ विश्वविमोहन श्रीकृष्ण
१७ श्रीमदनमोहन
१८ भगवान् श्रीकृष्णरूपमें
१९ श्रीव्रजराज
२० श्रीकृष्णार्जुन
२१ चारों भैया
२२ भुवनमोहन राम
२३ राम रावण-युद्ध
२४ रामदरबार
२५ श्रीरामचतुष्टय
२६ श्रीलक्ष्मीनारायण
२७ भगवान् विष्णु
२८ श्रीश्रीमहालक्ष्मीजी
२९ कमला
३० सावित्री ब्रह्मा
३१ भगवान् विश्वनाथ
३२ श्रीशिवपरिवार
३३ शिवजीकी विचित्र बरात
३४ शिव-परिछन
३५ शिव विवाह
३६ प्रदोषनृत्य
३७ श्रीजगज्जननी उमा
३८ श्रीध्रुव-नारायण
३९ श्रीमहावीरजी
४० श्रीचैतन्यका हरिनामसंकीर्तन
४१ महासंकीर्तन
४२ नवधा भक्ति
४३ जड़योग
४४ भगवान् शक्तिरूपमें
४५ कौसल्याकी गोदमें ब्रह्म
४६ सच्चिदानन्दके ज्योतिषी
४७ भगवान् नारायण
४८ ब्रह्मकृत भगवत्स्तुति
४९ मुरलीका असर
५० लक्ष्मी माता
५१ श्रीकृष्ण-यशोदा
५२ भगवान् शंकर
५३ बालरूप श्रीरामजी
५४ दूल्हा राम
५५ कालिय-उद्धार
५६ जटायुकी स्तुति
५७ पुष्पकविमानपर
५८ मुरलीमनोहर

कागज-साइज ७॥×१० इञ्च

सुनहरी चित्र, नेट दाम)॥ प्रतिचित्र

२०१ श्रीरामपञ्चायतन
२०२ क्रीडाविपिनमें श्रीरामसीता
२०३ युगलछवि
२०४ कंसका कोप
२०५ बँधे नटवर
२०६ वेणुधर
२०७ बाबा भोलेनाथ
२०८ मातङ्गी
२०९ दुर्गा
२१० आनन्दकंदका आँगनमें खेल
२११ भगवान् श्रीराम
२१२ जुगल सरकार
२१३ दशरथके भाग्य
२१४ शिशु-लीला-१
२१५ श्रीरामकी झाँकी
२१६ श्रीभरतजी
२१७ श्रीभगवान्

बहुरंगे चित्र, नेट दाम)।ँ प्रतिचित्र

२५१ सदाप्रसन्न राम
२५२ कमललोचन राम
२५३ त्रिभुवनमोहन राम
२५४ भगवान् श्रीरामचन्द्र
२५५ श्रीरामावतार
२५६ कौसल्याकी गोदमें ब्रह्म
२५७ भगवान् श्रीरामकी बाललीला
२५८ भगवान् श्रीराम और काकभुशुण्डि
२५९ अहल्योद्धार
२६० गुरुसेवा
२६१ पुष्पवाटिकामें श्रीसीताराम
२६२ स्वयंवरमें लक्ष्मणका कोप

२६३ परशुराम-राम
२६४ श्रीसीताराम [वन-गमनाभिलाषिणी सीता]
२६५ श्रीराम और कौसल्या
२६६ रामवनगमन
२६७ कौसल्या-भरत
२६८ भरतगुहमिलाप
२६९ श्रीरामके चरणोंमें भरत
२७० पादुका-पूजन
२७१ ध्यानमग्न भरत
२७२ अनसूया-सीता
२७३ श्रीराम-प्रतिज्ञा
२७४ राम-शबरी
२७५ देवताओंके द्वारा भगवान् श्रीरामकी स्तुति
२७६ बालिवध और ताराविलाप
२७७ श्रीराम-जटायु
२७८ विभीषणहनुमान्मिलन
२७९ ध्यानमग्ना सीता
२८० लङ्का-दहन
२८१ भगवान् श्रीरामका रामेश्वरपूजन
२८२ सुबेल-पर्वतपर श्रीरामकी झाँकी
२८३ राम-रावण-युद्ध
२८४ नन्दिग्राममें भरत-हनुमान्-भेंट
२८५ पुष्पकारूढ़ श्रीराम
२८६ मारुति-प्रभाव
२८७ श्रीरामदरबार
२८८ श्रीरामचतुष्टय
२८९ श्रीसीताराम (शक्ति-अंक)
२९० श्रीसीताराम (मर्यादायोग)
२९१ श्रीशिवकृत राम-स्तुति
२९२ श्रीसीताजीकी गोदमें लव-कुश
२९३ सच्चिदानन्दके ज्योतिषी
२९४ वात्सल्य (माँका प्यार)
२९५ परब्रह्म प्रेमके बन्धनमें
२९६ भगवान् श्रीकृष्णरूपमें
२९७ श्रीकृष्णार्जुन
२९८ भगवान् और उनकी ह्लादिनी शक्ति राधाजी
२९९ राधाकृष्ण
३०० श्रीराधेश्याम
३०१ मदनमोहन
३०२ व्रजराज
३०३ वृन्दावनविहारी
३०४ विश्वविमोहन मोहन
३०५ बाँकेविहारी
३०६ श्रीश्यामसुन्दर
३०७ मुरलीमनोहर
३०९ श्रीनन्दनन्दन
३१० आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र
३११ गोपीकुमार
३१२ व्रज-नव-युवराज
३१३ भक्त-भावन भगवान् श्रीकृष्ण
३१४ देवताओंद्वारा गर्भस्तुति
३१५ साधु-रक्षक श्रीकृष्ण (वसुदेव-देवकीको कारागारमें दर्शन)
३१६ गोकुल-गमन
३१७ मथुरासे गोकुल
३१८ दुलारा लाल
३१९ तृणावर्त-उद्धार
३२० वात्सल्य
३२१ गोपियोंकी योगधारणा
३२२ श्याममयी संसार
३२३ माखनप्रेमी श्रीकृष्ण
३२४ गो-प्रेमी श्रीकृष्ण
३२५ मनमोहनकी तिरछी चितवन
३२६ भवसागरसे उद्धार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण
३२७ बकासुर-उद्धार
३२८ अघासुर-उद्धार
३२९ कृष्ण-सखा-सह वन-भोजन
३३० वर्षामें राम-श्याम
३३१ राम-श्यामकी मथुरा-यात्रा
३३२ योद्धा श्रीकृष्ण
३३३ बन्धनमुक्तकारी भगवान् श्रीकृष्ण
३३४ सेवक श्रीकृष्ण
३३५ जगत्-पूज्य श्रीकृष्णकी अग्रपूजा
३३६ शिशुपाल-उद्धार
३३७ समदर्शी श्रीकृष्ण
३३८ शान्तिदूत श्रीकृष्ण
३३९ मोह-नाशक श्रीकृष्ण
३४० भक्त-प्रतिज्ञा-रक्षक श्रीकृष्ण
३४१ अश्व-परिचर्या
३४२ श्रीकृष्णका अर्जुनको पुनः ज्ञानोपदेश
३४३ जगद्गुरु श्रीकृष्ण
३४४ राजा बहुलाश्वकृत श्रीकृष्णपूजन नं० २
३४५ नृग-उद्धार
३४६ मुरलीका असर
३४७ व्याधकी क्षमा-प्रार्थना
३४८ योगेश्वरका योगधारणासे परम प्रयाण
३४९ शिव
३५० ध्यानमग्न शिव
३५१ सदाशिव
३५२ योगीश्वर श्रीशिव
३५३ पञ्चमुख परमेश्वर
३५४ योगाग्नि
३५५ मदन-दहन
३५६ शिवविवाह
३५७ उमा-महेश्वर
३५८ गौरीशंकर
३५९ जगज्जननी उमा
३६० शिव-परिवार
३६१ प्रदोष-नृत्य
३६२ शिव-ताण्डव
३६३ लोककल्याणार्थ हलाहलपान
३६४ पाशुपतास्त्रदान
३६५ श्रीहरि-हरकी जल-क्रीडा
३६६ श्रीविष्णुरूप और श्रीब्रह्मारूपके द्वारा श्रीशिवरूपकी स्तुति
३६७ भगवान् विष्णुको चक्रदान
३६८ श्रीकृष्णरूपसे श्रीशिवरूपकी स्तुति और वरदानलाभ
३६९ शिव-राम-संवाद
३७० काशी-मुक्ति
३७१ भक्त व्याघ्रपाद
३७२ श्रीविष्णु
३७३ विष्णुभगवान्
३७४ कमलापति-स्वागत
३७५ भगवान् शेषशायी
३७६ लक्ष्मीनारायण
३७७ भगवान् नारायण
३७८ द्वैतसम्प्रदायके आद्याचार्य श्रीब्रह्माजी
३७९ ब्रह्माकृत भगवत्स्तुति
३८० ब्रह्म-स्तुति
३८१ भगवान् मत्स्यरूपमें
३८२ मत्स्यावतार
३८३ भगवान् कूर्मरूपमें
३८४ भगवान् वराहरूपमें
३८५ भगवान् श्रीनृसिंहदेवकी गोदमें भक्त प्रह्लाद
३८६ भगवान् वामनरूपमें
३८७ भगवान् परशुरामरूपमें
३८८ भगवान् बुद्धरूपमें
३८९ भगवान् कल्किरूपमें
३९० भगवान् ब्रह्मारूपमें
३९१ श्रीसावित्री-ब्रह्मा
३९२ भगवान् दत्तात्रेयरूपमें
३९३ भगवान् सूर्यरूपमें
३९४ भगवान् गणपतिरूपमें
३९५ भगवान् अग्निरूपमें
३९६ भगवान् शक्तिरूपमें
३९७ महागौरी
३९८ महाकाली
३९९ महासरस्वती
४०० श्रीलक्ष्मीजी (चतुर्भुजी)
४०१ श्रीमहालक्ष्मी (अष्टादशभुजी)
४०२ सावित्रीकी यमराजपर विजय
४०३ देवी कात्यायनी
४०४ देवी कालिका
४०५ देवी कूष्माण्डा
४०६ देवी चन्द्रघण्टा
४०७ देवी सिद्धिदात्री
४०८ राजा सुरथ और समाधि वैश्यको देवीका दर्शन
४०९ श्रीबहुचराम्बिकामन्दिर मोरवीसे प्राप्त (षोडशमाता)

श्रीहरिः

प्रकाशित हो गया ! *प्रकाशित हो गया !!*

श्रीमद्भागवत महापुराण (मूल गुटका)

(सचित्र)

श्रीमद्भागवत साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप है, इस ग्रन्थके श्रद्धापूर्वक श्रवणमात्रसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है। इसके श्लोकोंका केवल पाठमात्र भी संसार-बन्धनसे छुड़ानेवाला है। इसीलिये भगवत्प्रेमी जन इस ग्रन्थका बड़े आदरसे पाठ किया करते हैं। पाठ करनेके लिये छोटा गुटका अधिक उपयोगी होता है, इसलिये छोटे आकारमें यह मूलमात्र संस्करण प्रकाशित किया गया है।

यद्यपि अन्यत्र भी मूल भागवतके गुटके मिलते हैं, तथापि इस संस्करणमें कुछ खास विशेषताएँ हैं। यह सभी जानते हैं कि आजकल पाठ-भेदोंके कारण किसी पुस्तकके शुद्ध और प्रामाणिक पाठका पता लगाना कितना कठिन हो गया है। प्रस्तुत पुस्तकमें इस कठिनाईको हल करनेका यत्न किया गया है। अनेकों विद्वानोंने पचासों हस्तलिखित तथा मुद्रित भागवतकी प्रतियों-से मिलाकर शुद्ध एवं प्राचीन पाठका अनुसन्धान किया है। इसलिये इसका पाठ औरोंकी अपेक्षा विशेष शुद्ध और प्रामाणिक होनेकी आशा की जाती है। इसके अलावे इसमें भागवतके विनियोग, न्यास एवं ध्यानकी विधि भी दी गयी है। पुस्तकके आदिमें तो पद्मपुराणसे लिया हुआ भागवत-माहात्म्य है ही, अन्तमें भी स्कन्दपुराणसे उद्धृत श्रीमद्भागवतका माहात्म्य दिया गया है। यह माहात्म्य बहुत ही सुन्दर है और अबतककी किसी भी प्रतिमें प्रकाशित नहीं है।

साइज २२×२९—१६ पेजी, पृष्ठ-संख्या ७६८, श्रीयुगलछविका सुन्दर तिरंगा चित्र, सजिल्द मूल्य १।।) मात्र।



कल्याण



भगवान् व्रजेन्द्रनन्दन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः । कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः । द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥
(श्रीमद्भागवत १२ । ३ । ५१-५२)

वर्ष १६ } गोरखपुर, अगस्त १९४१ सौर श्रावण १९९८ { संख्या १
पूर्ण संख्या १८१

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत् सूरयः ।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

(श्रीमद्भागवत १ । १ । १)

मङ्गलाचरण

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा।
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्राताय कारुण्यत-
स्तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि॥
(१२।१३।१९)

यह श्रीमद्भागवत भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाला अतुलनीय दीपक है। इसको सबसे पहले जिन भगवान्‌ने ब्रह्माजीके लिये प्रकट किया, फिर जिन्होंने ब्रह्माजीके रूपसे देवर्षि नारदजीको उपदेश किया, तदनन्तर नारदजीके रूपसे मुनिवर कृष्णद्वैपायन श्रीव्यासजीको प्रदान किया, इसके बाद व्यासजीके रूपसे योगिराज श्रीशुकदेवजीको और शुकदेवजीके रूपसे बड़ी दया करके राजा परीक्षित्‌को उपदेश किया—उन्हीं परम शुद्ध—प्राकृत गुणोंसे रहित, सर्वथा निर्मल, शोक और मृत्युसे रहित, परम सत्यस्वरूप परमेश्वरका हम ध्यान करते हैं।

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय साक्षिणे।
य इदं कृपया कस्मै व्याचचक्षे मुमुक्षवे॥
(१२।१३।२०)

जिन्होंने बड़ी कृपा करके मोक्षाभिलाषी ब्रह्माजीको इस श्रीमद्भागवतका उपदेश किया था, उन सबके साक्षी भगवान् वासुदेवको नमस्कार है।

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः॥
(१२।१३।१)

ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण और मरुद्गण दिव्य स्तोत्रोंके द्वारा जिनकी स्तुति करते रहते हैं; सामसङ्गीतके मर्मज्ञ ऋषि-मुनि अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषदोंके सहित वेदोंके द्वारा जिनका गायन करते रहते हैं; योगीलोग ध्यानके द्वारा स्थिर किये हुए तल्लीन चित्तसे जिनका दर्शन प्राप्त करते रहते हैं और इतना सब करनेपर भी देवता, असुर तथा और कोई भी जिनका वास्तविक स्वरूप पूर्णतया नहीं जान सकते—उन स्वयंप्रकाश परमात्मदेवको नमस्कार है।

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥
(१२।१३।२३)

जिन भगवान्‌के नामोंका संकीर्तन सारे पापोंको सर्वथा नष्ट कर डालता है और जिन भगवान्‌के चरणोंमें किया हुआ प्रणाम सदाके लिये समस्त दुःखोंको शान्त कर देता है, उन परमेश्वर श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।

नमस्तस्मै भगवते व्यासायामिततेजसे।
पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम्॥
(१।४।२४)

संत पुरुष जिनके मुखकमलके मकरन्दसे झरती हुई ज्ञानमयी सुधाका पान करते रहते हैं, उन अमिततेजस्वी भगवान् श्रीव्यासदेवको बार-बार नमस्कार है।



परात्पर भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार

नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे
सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ।
गृहीतशक्तित्रितयाय देहिना-
मन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥

उन परात्पर पुरुषोत्तम भगवान्‌को मेरे कोटि-कोटि नमस्कार हैं जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करनेके लिये सत्त्व, रज तथा तमोगुणरूप तीन शक्तियोंको स्वीकार करके ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करका रूप धारण करते हैं; जो समस्त प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं; जिनका स्वरूप और उसकी उपलब्धिका मार्ग बुद्धिका विषय नहीं हैं और जो स्वयं अनन्त हैं ।

भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसता-
मसम्भवायाखिलसत्त्वमूर्तये ।
पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रमे
व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥

हम पुनः बार-बार उन्हें नमस्कार करते हैं, जो सत्पुरुषोंके दुःख मिटाकर उन्हें अपने प्रेमका दान करते हैं, दुष्टोंकी सांसारिक बढ़ती रोककर उन्हें मुक्ति देते हैं और परमहंस आश्रममें स्थित पुरुषोंको भी उनकी अभीष्ट वस्तु दान करते हैं । क्योंकि चराचर समस्त प्राणी उनकी मूर्ति हैं, इसलिये उनका किसीसे भी पक्षपात नहीं है ।

नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्वतां
विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ।
निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा
स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥

जो बड़े ही भक्तवत्सल हैं और हठपूर्वक भक्तिहीन साधन करनेवाले लोग जिनकी छाया भी नहीं छू सकते; जिनके समान भी किसीका ऐश्वर्य नहीं है, फिर उससे अधिक तो होता ही कैसे—ऐसे ऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्णको, जो निरन्तर अपने ब्रह्मस्वरूप धाममें विहार करते रहते हैं, मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ।

यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं
यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ।
लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवोंके पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है उन पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णको बार-बार नमस्कार है ।

विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्
सङ्गं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः ।
विदन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमा-
स्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

विवेकी पुरुष जिनके चरणकमलोंकी शरण लेकर अपने हृदयसे इस लोक और परलोक दोनोंकी आसक्ति निकाल डालते हैं और बिना ही परिश्रमके ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेते हैं, उन कल्याणकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णको बार-बार नमस्कार है ।

तपस्विनो दानपरा यशस्विनो
मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ।
क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं
तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥

बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मन्त्रवेत्ता अपनी साधनाओंको तथा अपने-आपको जबतक उनके समर्पण नहीं कर देते तबतक उन्हें

कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती। उन कल्याणमयी कीर्तिवाले श्रीकृष्णको बार-बार नमस्कार है।

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा
आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन और खस आदि नीची जातियाँ तथा दूसरे पापी जिनके शरणागत भक्तोंकी शरण ग्रहण करनेसे ही पवित्र हो जाते हैं उन सर्वशक्तिमान् भगवान्को बार-बार नमस्कार है।

स एष आत्माऽऽत्मवतामधीश्वर-
स्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः।
गतव्यलीकैरजशङ्करादिभि-
र्वितर्क्यलिङ्गो भगवान् प्रसीदताम्॥

वे ही भगवान् ज्ञानियोंके आत्मा हैं, भक्तोंके स्वामी हैं, कर्मकाण्डियोंके लिये वेदमूर्ति हैं, धार्मिकोंके लिये धर्ममूर्ति हैं और तपस्वियोंके लिये तपोमूर्ति हैं। ब्रह्मा, शङ्कर आदि बड़े-बड़े देवता भी अपने शुद्ध हृदयसे उनके स्वरूपका चिन्तन करते और आश्चर्यचकित होकर देखते रहते हैं। वे भगवान् मुझपर प्रसन्न हों।

श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापति-
र्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः।
पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां
प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः॥

जो समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी लक्ष्मीजीके पति हैं, समस्त यज्ञोंके भोक्ता और फलदाता स्वामी हैं, सारी प्रजाके रक्षक परमेश्वर हैं, समस्त बुद्धियोंके नियामक हैं, समस्त लोकोंके पालनकर्ता प्रभु हैं, तथा पृथ्वीदेवीके पति हैं; जिन्होंने यदुकुलमें प्रकट होकर अन्धक, वृष्णि और यदुवंशियोंकी रक्षा की है, तथा जो उन लोगोंके एकमात्र आश्रय हैं—वे संतोंके सर्वस्व, उनके परमपति भक्तवत्सल भगवान् मुझपर प्रसन्न हों।

यदङ्घ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया
धियानुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः।
वदन्ति चैतत् कवयो यथारुचं
स मे मुकुन्दो भगवान् प्रसीदताम्॥

जिनके चरणकमलोंके ध्यानरूप समाधिसे बुद्धि परम शुद्ध होकर आत्मतत्त्वका साक्षात्कार करा देती है, तथा जिनके दर्शनके अनन्तर विद्वान् पुरुष अपनी-अपनी मति और रुचिके अनुसार उनके स्वरूपका वर्णन करते रहते हैं, वे प्रेम और भक्तिको लुटानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों।

(श्रीमद्भागवत २। ४। १२—२१)



श्रीशुकदेवजीको नमस्कार

यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं
द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव।
पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदु-
स्तं सर्वभूतहृदयं मुनिमानतोऽस्मि॥
(१।२।२)

यज्ञोपवीत-संस्कार होनेसे पहले ही लौकिक-वैदिक सब प्रकारके कर्मोंको त्यागकर जो अकेले ही अपने पिताके आश्रमको छोड़कर चल पड़े थे और इस प्रकार बाल्यावस्थामें ही पुत्रको संन्यासी होते देखकर जिनके पिता व्यासजीने विरहसे कातर होकर 'बेटा! बेटा! कहाँ जा रहे हो?' पुकारा था, और उस समय जिनकी ओरसे वृक्षोंने ही उत्तर दिया था, उन वृक्ष आदि समस्त भूतोंके आत्मारूप श्रीशुकदेवजीको मैं नमस्कार करता हूँ।

यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेक-
मध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम्।
संसारिणां करुणयाऽऽह पुराणगुह्यं
तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम्॥
(१।२।३)

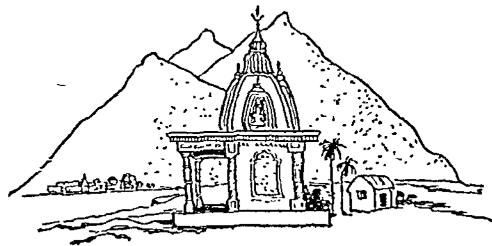
जिन्होंने अज्ञानरूप घोर अन्धकारके पार जानेकी इच्छा करनेवाले संसारमें फँसे हुए लोगोंके लिये उनपर कृपा करके आध्यात्मिक तत्त्वोंके प्रकाशक—भगवत्स्वरूप-का अनुभव करानेवाले, समस्त वेदोंके साररूप इस अद्वितीय महापुराण श्रीमद्भागवतको प्रकाशित किया। मैं समस्त मुनियोंके आचार्य उन व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीकी शरण ग्रहण करता हूँ।

स्वसुखनिभृतचेतास्तद्व्युदस्तान्यभावो-
ऽप्यजितरुचिरलीलाकृष्टसारस्तदीयम्।
व्यतनुत कृपया यस्तत्त्वदीपं पुराणं
तमखिलवृजिनघ्नं व्याससूनुं नतोऽस्मि॥
(१२।१२।६८)

आत्मानन्दमें नित्य निमग्नचित्त रहनेके कारण जिनकी भेददृष्टि सर्वथा निवृत्त हो गयी थी परन्तु मुरलीमनोहरकी मधुमयी लीलाओंने जिनकी वृत्तियोंको अपनी ओर खींच लिया, अतएव जगत्‌के लोगोंपर कृपा करके जिन्होंने भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले इस श्रीमद्भागवत महापुराणका विस्तार किया, उन सर्व-पापहारी व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीको मैं नमस्कार करता हूँ।

योगीन्द्राय नमस्तस्मै शुकाय ब्रह्मरूपिणे।
संसारसर्पदष्टं यो विष्णुरातममूमुचत्॥
(१२।१३।२१)

जिन्होंने संसार-सर्पसे डसे हुए राजर्षि परीक्षित्‌को मुक्त कर दिया, उन ब्रह्मस्वरूप योगिराज श्रीशुकदेवजी-को नमस्कार है।



आश्चर्य

जो रस ब्रह्मादिक नहिं पायौ,
सो रस गोकुल गलिन बहायौ।

इचरज एक सुनहु मेरे भाई, निर्गुन ब्रह्म सगुन होइ आई ॥टेर॥
आदि सनातन हरि अविनासी, अलख निरंजन घट-घटवासी।
पूरन ब्रह्म पुरान बखाने, सिव चतुरानन अंत न जाने,
महिमा अगम निगम जेहि गावैं, सोइ नंद के आँगन धावैं ॥ १ ॥
एक निरंतर ध्यावे ग्यानी, पुरुष पुरातन है निर्वानी।
सुक सारद को नाम अधारा, नारद सेष न पावे पारा,
जप तप संजम ध्यान न आवैं, ताहि यसोदा गोद खिलावैं ॥ २ ॥
लोचन श्रवन न रसना नासा, विनु पद पानि करे परकासा।
अरुन असित सित बरन न धारे, मुनि मनसा में कहा विचारे,
विस्वंभर निज नाम कहावे, घर घर गोरस जाय चुरावै ॥ ३ ॥
जरा मरन तें रहित अमाया, मातु पिता सुत बंधु न जाया।
आदी अंत रहे जल छाई, परमानंद सदा सुखदाई,
ग्यान रूप हिरदै में बोले, सो बछरन के पाछें डोले ॥ ४ ॥
जल थल अनल अनिल नभ छाया, पंच तत्व से जग उपजाया।
लोक रचै पाले अरु मारै, चौदह भुवन पलक में धारे,
काल डरै जाके डर भारी, सो ऊखल बाँध्यौ महतारी ॥ ५ ॥
माया प्रगट सकल जग मोहै, करन अकरन करै सोइ सोहै।
जाकी माया लखे न कोई, निर्गुन सगुन धरे वपु दोई,
सिव सनकादिक अंत न पावै, सो गोपन की गाय चरावै ॥ ६ ॥
गुन अनंत अविगतिहि जनावै, जस अपार श्रुति पार न पावै।
चरन कमल नित रमा पलोहै, चाहत नेक नयन भर जोहै,
अगम अगोचर लीलाधारी, सो राधा बस कुंजविहारी ॥ ७ ॥
जो रस ब्रह्मादिक नहीं पायौ, सो रस गोकुल गलिन बहायौ।
बड़भागी ये सब ब्रजवासी, जिन के सँग खेले अविनासी,
सूर सुजस कहि कहा बखानैं, गोविंद की गति गोविंद जानैं ॥ ८ ॥

—सूरदासजी

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

(स्वयं श्रीभगवान्‌के श्रीमुखसे ब्रह्माजीके प्रति कथित)

श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं लोकविश्रुतम्।
श्रृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो मम सन्तोषकारणम्॥१॥

लोकविख्यात श्रीमद्भागवत नामक पुराणका प्रतिदिन श्रद्धायुक्त होकर श्रवण करना चाहिये। यही मेरे सन्तोषका कारण है।

नित्यं भागवतं यस्तु पुराणं पठते नरः।
प्रत्यक्षरं भवेत्तस्य कपिलादानजं फलम्॥२॥

जो मनुष्य प्रतिदिन भागवतपुराणका पाठ करता है, उसे एक-एक अक्षरके उच्चारणके साथ कपिला गौ दान देनेका पुण्य होता है।

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम्।
पठते श्रृणुयाद् यस्तु गोसहस्रफलं लभेत्॥३॥

जो प्रतिदिन भागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकका पाठ अथवा श्रवण करता है, उसे एक हजार गोदानका फल मिलता है।

यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं सुत।
अष्टादशपुराणानां फलमाप्नोति मानवः॥४॥

पुत्र! जो प्रतिदिन पवित्रचित्त होकर भागवतके एक श्लोकका पाठ करता है, वह मनुष्य अठारह पुराणोंके पाठका फल पा लेता है।

नित्यं मम कथा यत्र तत्र तिष्ठन्ति वैष्णवाः।
कलिबाह्या नरास्ते वै येऽर्चयन्ति सदा मम॥५॥

जहाँ नित्य मेरी कथा होती है, वहाँ विष्णु-पार्षद प्रह्लाद आदि विद्यमान रहते हैं। जो मनुष्य सदा मेरे भागवत शास्त्रकी पूजा करते हैं, वे कलिके अधिकारसे अलग हैं, उनपर कलिका वश नहीं चलता।

वैष्णवानां तु शास्त्राणि येऽर्चयन्ति गृहे नराः।
सर्वपापविनिर्मुक्ता भवन्ति सुरवन्दिताः॥६॥

जो मानव अपने घरमें वैष्णव-शास्त्रोंकी पूजा करते हैं, वे सब पापोंसे मुक्त होकर देवताओंद्वारा वन्दित होते हैं।

येऽर्चयन्ति गृहे नित्यं शास्त्रं भागवतं कलौ।
आस्फोटयन्ति वल्गन्ति तेषां प्रीतो भवाम्यहम्॥७॥

जो लोग कलियुगमें अपने घरके भीतर प्रतिदिन भागवत शास्त्रकी पूजा करते हैं वे [कलिसे निडर होकर] ताल ठोंकते और उछलते-कूदते हैं, मैं उनपर बहुत प्रसन्न रहता हूँ।

यावद्दिनानि हे पुत्र शास्त्रं भागवतं गृहे।
तावत् पिबन्ति पितरः क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥८॥

पुत्र! मनुष्य जितने दिनोंतक अपने घरमें भागवत शास्त्र रखता है उतने समयतक उसके पितर दूध, घी, मधु और मीठा जल पीते हैं।

यच्छन्ति वैष्णवे भक्त्या शास्त्रं भागवतं हि ये।
कल्पकोटिसहस्राणि मम लोके वसन्ति ते॥९॥

जो लोग विष्णुभक्त पुरुषको भक्तिपूर्वक भागवत शास्त्र समर्पण करते हैं, वे हजारों करोड़ कल्पोंतक (अनन्तकालतक) मेरे वैकुण्ठ-धाममें वास करते हैं।

येऽर्चयन्ति सदा गेहे शास्त्रं भागवतं नराः।
प्रीणितास्तैश्च विबुधा यावदाभूतसंप्लवम्॥१०॥

जो लोग सदा अपने घरमें भागवत शास्त्रका पूजन करते हैं, वे मानो एक कल्पतकके लिये सम्पूर्ण देवताओं-को तृप्त कर देते हैं।

श्लोकार्धं श्लोकपादं वा वरं भागवतं गृहे।
शतशोऽथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः॥११॥

यदि अपने घरपर भागवतका आधा श्लोक या चौथाई श्लोक भी रहे, तो यह बहुत उत्तम बात है,

उसे छोड़कर सैकड़ों और हजारों तरहके अन्य ग्रन्थोंके संग्रहसे भी क्या लाभ है?

न यस्य तिष्ठते शास्त्रं गृहे भागवतं कलौ।
न तस्य पुनरावृत्तिर्याम्यपाशात् कदाचन ॥१२॥

कलियुगमें जिस मनुष्यके घरमें भागवत शास्त्र मौजूद नहीं है, उसको यमराजके पाशसे कभी छुटकारा नहीं मिलता।

कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ।
गृहे न तिष्ठते यस्य श्वपचादधिको हि सः ॥१३॥

इस कलियुगमें जिसके घर भागवत शास्त्र मौजूद नहीं है, उसे कैसे वैष्णव समझा जाय? वह तो चाण्डालसे भी बढ़कर नीच है।

सर्वस्वेनापि लोकेश कर्तव्यः शास्त्रसंग्रहः।
वैष्णवस्तु सदा भक्त्या तुष्ट्यर्थं मम पुत्रक ॥१४॥

लोकेश ब्रह्मा! पुत्र! मनुष्यको सदा मुझे भक्तिपूर्वक सन्तुष्ट करनेके लिये अपना सर्वस्व देकर भी वैष्णवशास्त्रोंका संग्रह करना चाहिये।

यत्र यत्र भवेत् पुण्यं शास्त्रं भागवतं कलौ।
तत्र तत्र सदैवाहं भवामि त्रिदशैः सह ॥१५॥

कलियुगमें जहाँ-जहाँ पवित्र भागवत शास्त्र रहता है, वहाँ-वहाँ सदा ही मैं देवताओंके साथ उपस्थित रहता हूँ।

तत्र सर्वाणि तीर्थानि नदीनदसरांसि च।
यज्ञाः सप्तपुरी नित्यं पुण्याः सर्वे शिलोच्चयाः ॥१६॥

यही नहीं—वहाँ नदी, नद और सरोवररूपमें प्रसिद्ध सभी तीर्थ वास करते हैं, सम्पूर्ण यज्ञ, सात पुरियाँ और सभी पावन पर्वत वहाँ नित्य निवास करते हैं।

श्रोतव्यं मम शास्त्रं हि यशोधर्मजयार्थिना।
पापक्षयार्थं लोकेश मोक्षार्थं धर्मबुद्धिना ॥१७॥

लोकेश! यश, धर्म और विजयके लिये तथा पापक्षय एवं मोक्षकी प्राप्तिके लिये धर्मात्मा मनुष्यको सदा ही मेरे भागवत शास्त्रका श्रवण करना चाहिये।

श्रीमद्भागवतं पुण्यमायुरारोग्यपुष्टिदम्।
पठनाच्छ्रवणाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१८॥

यह पावन पुराण श्रीमद्भागवत आयु, आरोग्य और पुष्टिको देनेवाला है, इसका पाठ अथवा श्रवण करनेसे मनुष्य सब पापोंसे मुक्त हो जाता है।

न शृण्वन्ति न हृष्यन्ति श्रीमद्भागवतं परम्।
सत्यं सत्यं हि लोकेश तेषां स्वामी सदा यमः ॥१९॥

लोकेश! जो इस परम उत्तम भागवतको न तो सुनते हैं और न सुनकर प्रसन्न ही होते हैं, उनके स्वामी सदा यमराज ही हैं—वे सदा यमराजके ही वशमें रहते हैं—यह मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ।

न गच्छति यदा मर्त्यः श्रोतुं भागवतं सुत।
एकादश्यां विशेषेण नास्ति पापरतस्ततः ॥२०॥

पुत्र! जो मनुष्य सदा ही—विशेषतः एकादशीको भागवत सुनने नहीं जाता, उससे बढ़कर पापी कोई नहीं है।

श्लोकं भागवतं वापि श्लोकार्धं पादमेव वा।
लिखितं तिष्ठते यस्य गृहे तस्य वसाम्यहम् ॥२१॥

जिसके घरमें एक श्लोक, आधा श्लोक अथवा श्लोकका एक ही चरण लिखा रहता है, उसके घरमें मैं निवास करता हूँ।

सर्वाश्रमाभिगमनं सर्वतीर्थावगाहनम्।
न तथा पावनं नृणां श्रीमद्भागवतं यथा ॥२२॥

मनुष्यके लिये सम्पूर्ण पुण्य-आश्रमोंकी यात्रा या सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करना भी वैसा पवित्रकारक नहीं है, जैसा श्रीमद्भागवत है।

यत्र यत्र चतुर्वक्त्र श्रीमद्भागवतं भवेत्।
गच्छामि तत्र तत्राहं गौर्यथा सुतवत्सला ॥२३॥

चतुर्मुख ! जहाँ-जहाँ भागवतकी कथा होती है, वहाँ-वहाँ मैं उसी प्रकार जाता हूँ जैसे पुत्रवत्सला गौ अपने बछड़ेके पीछे-पीछे जाती है।

मत्कथावाचकं नित्यं मत्कथाश्रवणे रतम्।
मत्कथाप्रीतमनसं नाहं त्यक्ष्यामि तं नरम् ॥२४॥

जो मेरी कथा कहता है, जो सदा उसे सुननेमें लगा रहता है तथा जो मेरी कथासे मन-ही-मन प्रसन्न होता है, उस मनुष्यका मैं कभी त्याग नहीं करता।

श्रीमद्भागवतं पुण्यं दृष्ट्वा नोत्तिष्ठते हि यः।
सांवत्सरं तस्य पुण्यं विलयं याति पुत्रक ॥२५॥

पुत्र ! जो परमपुण्यमय श्रीमद्भागवत शास्त्रको देखकर अपने आसनसे उठकर खड़ा नहीं हो जाता, उसका एक वर्षका पुण्य नष्ट हो जाता है।

श्रीमद्भागवतं दृष्ट्वा प्रत्युत्थानाभिवादनैः।
सम्मानयेत तं दृष्ट्वा भवेत् प्रीतिर्ममातुला ॥२६॥

जो श्रीमद्भागवतपुराणको देखकर खड़ा होने और प्रणाम करने आदिके द्वारा उसका सम्मान करता है, उस मनुष्यको देखकर मुझे अनुपम आनन्द मिलता है।

दृष्ट्वा भागवतं दूरात् प्रक्रमेत् सम्मुखं हि यः।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम् ॥२७॥

जो श्रीमद्भागवतको दूरसे ही देखकर उसके सम्मुख जाता है, वह एक-एक पगपर अश्वमेध यज्ञके पुण्यको प्राप्त करता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

उत्थाय प्रणमेद् यो वै श्रीमद्भागवतं नरः।
धनं पुत्रांस्तथा दारान् भक्तिं च प्रददाम्यहम् ॥२८॥

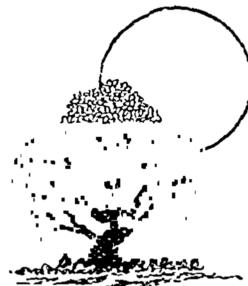
जो मानव खड़ा होकर श्रीमद्भागवतको प्रणाम करता है उसे मैं धन, स्त्री, पुत्र और अपनी भक्ति प्रदान करता हूँ।

महाराजोपचारैस्तु श्रीमद्भागवतं सुत।
शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या तेषां वश्यो भवाम्यहम् ॥२९॥

हे पुत्र ! जो लोग महाराजोचित सामग्रियोंसे युक्त होकर भक्तिपूर्वक श्रीमद्भागवतकी कथा सुनते हैं, मैं उनके वशीभूत हो जाता हूँ।

ममोत्सवेषु सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम्।
शृण्वन्ति ये नरा भक्त्या मम प्रीत्यै च सुव्रत ॥३०॥
वस्त्रालङ्करणैः पुष्पैर्धूपदीपोपहारकैः।
वशीकृतो ह्यहं तैश्च सत्स्त्रिया सत्पतिर्यथा ॥३१॥*

सुव्रत ! जो लोग मेरे पर्वोंसे सम्बन्ध रखनेवाले सभी उत्सवोंमें मेरी प्रसन्नताके लिये वस्त्र, आभूषण, पुष्प, धूप और दीप आदि उपहार अर्पण करते हुए परम उत्तम श्रीमद्भागवतपुराणका भक्तिपूर्वक श्रवण करते हैं, वे मुझे उसी प्रकार अपने वशमें कर लेते हैं जैसे पतिव्रता स्त्री अपने साधुस्वभाववाले पतिको वशमें कर लेती है।



* स्कन्दपुराण, विष्णुखण्ड, मार्गशीर्षमाहात्म्य अ० १६ श्लोक ३०—६०

श्रीमद्भागवतके साध्य और साधन

[पूज्यपाद श्रीउड़ियास्वामीजी महाराजके विचार]

प्र०—भागवतका प्रतिपाद्य विषय क्या है ?

उ०—इसका प्रधान प्रतिपाद्य तो तत्त्वज्ञान ही है। राजा परीक्षित्को सर्प डसनेवाला था और वह जीवके आत्यन्तिक निःश्रेयसका साधन जानना चाहता था। वह मुमुक्षु था। अतः श्रीशुकदेवजीने उसे तत्त्वज्ञानका ही उपदेश किया और अन्तमें द्वादश स्कन्धमें तत्त्वज्ञानका निरूपण करते हुए ही अपने वक्तव्यका उपसंहार किया है। इससे यही सिद्ध होता है कि उनका प्रधान उद्देश्य परीक्षित्को तत्त्वज्ञान कराना ही था।

प्र०—उन्होंने तत्त्वज्ञानका प्रधान साधन क्या बताया है ?

उ०—भागवतमें इसका प्रधान साधन श्रीकृष्णभक्ति ही है। श्रीकृष्णके रूप, गुण और लीलाओंका चिन्तन, उनके नामोंका कीर्तन, लीलाधामोंका दर्शन और अर्चा-विग्रहोंका पूजन ही भागवतोक्त भगवद्भक्तिके प्रधान अङ्ग हैं। इसीको भागवतधर्म भी कहा है और श्रीमद्भागवतके अनुसार यही तत्त्वज्ञानका प्रधान साधन है। भगवद्भक्तिशून्य केवल शुष्क ज्ञानकी तो उसमें कई जगह निन्दा भी की गयी है।

प्र०—भागवतके अनुसार श्रीकृष्णका क्या स्वरूप है ?

उ०—श्रीकृष्ण वाच्यार्थमें तो दिव्यदेहधारी श्रीनन्दनन्दन हैं, तथापि लक्ष्यार्थमें वे शुद्ध चेतन ही हैं—जिसका कि उपनिषदोंके 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्योंसे प्रतिपादन किया गया है। वस्तुतः इन वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थमें कोई भेद नहीं है। भगवान् भावग्राही हैं। वे अपने भक्तोंकी भावपुष्टिके लिये उनकी भावनामात्रसे मूर्तिमान् हो जाते है तथा इस लोकमें अनेकों अलौकिक लीलाएँ करते हैं।

प्र०—इन भगवल्लीलाओंका रहस्य क्या है ?

उ०—इनका प्रधान उद्देश्य यही है कि इनके चिन्तनसे भगवत्प्रीतिकी गाढ़ता हो। भगवत्प्रीतिकी गाढ़तासे प्रपञ्चकी आसक्ति घटने लगती है, यहाँतक कि अन्तमें उसका सर्वथा अभाव हो जाता है। इस प्रकार भगवान्में सुदृढ़ अनुराग होनेसे उनके ऐश्वर्यका पूर्ण बोध होता है और इससे स्वभावतः ही उनके तत्त्वका साक्षात्कार हो जाता है। भगवान् अपने भक्तको स्वयं ही बोध करा देते हैं, इसके लिये उसे कोई दूसरा साधन नहीं करना पड़ता।

प्र०—वर्तमान कालकी दृष्टिसे भागवतकी क्या विशेषता है ?

उ०—इस समय अधिकांश लोग भक्तिके ही अधिकारी हैं और भक्तिके द्वारा ही वे तत्त्वज्ञान भी प्राप्त कर सकते हैं। इस रहस्यका जैसा सुन्दर निरूपण भागवतमें हुआ है, वैसा अन्य किसी ग्रन्थमें नहीं हुआ। इसलिये कलियुगमें श्रीमद्भागवतकी ही प्रधानता है।



श्रीमद्भागवतकी महिमा

श्रीमद्भागवतकी महिमा मैं क्या लिखूँ? उसके आदिके तीन श्लोकोंमें जो महिमा कह दी गयी है, उसके बराबर कौन कह सकता है? उन तीन श्लोकोंको कितनी ही बार पढ़ चुकनेपर भी जब उनका स्मरण होता है, मनमें अद्भुत भाव उदित होते हैं। कोई अनुवाद उन श्लोकोंकी गम्भीरता और मधुरताको पा नहीं सकता। उन श्लोकोंका स्मरण करा देता हूँ—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरत-
श्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये
मुह्यन्ति यत् सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो
यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं
सत्यं परं धीमहि॥
धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो
निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं
तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते
किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः
शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥
निगमकल्पतरोर्गलितं फलं
शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्।
पिबत भागवतं रसमालयं
मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥

इन श्लोकोंसे मनको निर्मल कर भगवान्‌का ध्यान कीजिये—

ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा।
औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्यासीन्मे शनैर्हरिः॥
प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः।
आनन्दसम्प्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने॥
रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचापहम्।
अपश्यन् सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद् दुर्मना इव॥

मुझको श्रीमद्भागवतमें अत्यन्त प्रेम है। मेरा विश्वास और अनुभव है कि इसके पढ़ने और सुननेसे मनुष्यको ईश्वरका सच्चा ज्ञान प्राप्त होता है और उनके चरण-कमलोंमें अचल भक्ति होती है। इसके पढ़नेसे मनुष्यको दृढ़ निश्चय हो जाता है कि इस संसारको रचने और पालन करनेवाली कोई सर्वव्यापक शक्ति है—

एक अनंत त्रिकाल सच, चेतन शक्ति दिखात।
सिरजत, पालत, हरत जग, महिमा बरनि न जात॥

इसी एक शक्तिको लोग ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा इत्यादि अनेक नामोंसे पुकारते हैं। भागवतके पहले ही श्लोकमें वेदव्यासजीने ईश्वरके स्वरूपका वर्णन किया है कि 'जिससे इस संसारकी सृष्टि, पालन और संहार होते हैं, जो त्रिकालमें सत्य है—अर्थात् जो सदा रहा भी, है भी और रहेगा भी—और जो अपने प्रकाशसे अन्धकारको सदा दूर रखता है, उस परम सत्यका हम ध्यान करते हैं।' उसी स्थानमें श्रीमद्भागवतका स्वरूप भी इस प्रकारसे संक्षेपमें वर्णित है कि इस भागवतमें—जो दूसरोंकी बढ़ती देखकर डाह नहीं करते, ऐसे साधुजनोंका सब प्रकारके स्वार्थसे रहित परम धर्म और वह जाननेके योग्य ज्ञान वर्णित है जो वास्तवमें सब कल्याणका देनेवाला और आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक—इन तीनों प्रकारके तापको मिटानेवाला है। और ग्रन्थोंसे क्या, जिन सुकृतियोंने पुण्यके कर्म कर रक्खे हैं और जो श्रद्धासे भागवतको पढ़ते या

सुनते हैं, वे इसका सेवन करनेके समयसे ही अपनी भक्तिसे ईश्वरको अपने हृदयमें अविचलरूपसे स्थापित कर लेते हैं। ईश्वरका ज्ञान और उनमें भक्तिका परम साधन—ये दो पदार्थ जब किसी प्राणीको प्राप्त हो गये तो कौन-सा पदार्थ रह गया, जिसके लिये मनुष्य कामना करे और ये दोनों पदार्थ श्रीमद्भागवतसे पूरी मात्रामें प्राप्त होते हैं। इसीलिये यह पवित्र ग्रन्थ मनुष्यमात्रका उपकारी है। जबतक मनुष्य भागवतको पढ़े नहीं और उसकी इसमें श्रद्धा न हो, तबतक वह समझ नहीं सकता कि ज्ञान-भक्ति-वैराग्यका यह कितना विशाल समुद्र है। भागवतके पढ़नेसे उसको यह विमल ज्ञान हो जाता है कि एक ही परमात्मा प्राणी-प्राणीमें बैठा हुआ है और जब उसको यह ज्ञान हो जाता है, तब वह अधर्म करनेका मन नहीं करता; क्योंकि दूसरोंको चोट पहुँचाना अपनेको चोट पहुँचानेके समान हो जाता है। इसका ज्ञान होनेसे मनुष्य सत्य धर्ममें स्थिर हो जाता है, स्वभावहीसे दया-धर्मका पालन करने लगता है और किसी अहिंसक प्राणीके ऊपर वार करनेकी इच्छा नहीं करता। मनुष्योंमें परस्पर प्रेम और प्राणिमात्रके प्रति दयाका भाव स्थापित करनेके लिये इससे बढ़कर कोई साधन नहीं। वर्तमान समयमें, जब संसारके बहुत अधिक भागोंमें भयङ्कर युद्ध छिड़ा हुआ है, मनुष्यमात्रको इस पवित्र धर्मका उपदेश अत्यन्त कल्याणकारी होगा। जो भगवद्भक्त हैं और श्रीमद्भागवतके महत्त्वको जानते हैं, उनका यह कर्तव्य है कि मनुष्यके लोक और परलोक दोनोंके बनानेवाले इस पवित्र ग्रन्थका सब देशोंकी भाषाओंमें अनुवाद कर इसका प्रचार करें।

काशी,
आषाढ़ शु० ५,
१९९८

मदन मोहन मालवीय.

आर्तकी पुकार

अशरणके शरण स्वामि! शरण मैं तिहारी।
डूब रही भव-नदमें, हाथ मार हारी॥
कृष्ण घटा छायी नभ आयी अँधियारी।
बिजली अति कड़कड़ात गरजत घन भारी॥
नदी क्षुभित घरघरात, उछलत बहु वारी।
भीषण तरंग, ग्राह विकट देहधारी॥
सूझत नहिं साधन, जनरक्षक! गिरधारी!
अब तो बस, आश्रय तव शरणद! भयहारी!॥
धन्य धन्य जगन्नाथ श्रीपति असुरारी!
आरतकी टेर सुनत पहुँचे बनवारी॥
सकल दिशा निरमल भइँ शान्त नदी सारी।
केवट बन, ली चढ़ाय तुरत मोहि तारी॥

—सुदर्शनदासी

भगवत्प्रोक्त चतुःश्लोकी भागवत और उसकी व्याख्या

(लेखक—गोलोकवासी आचार्य श्रीबालकृष्णजी गोस्वामी)

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत्परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥१॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद् विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥२॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥३॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥४॥

(श्रीमद्भागवत २ । ९ । ३२–३५)

सृष्टिके प्रारम्भके समय ब्रह्माजीकी तपश्चर्यासे सन्तुष्ट होकर श्रीभगवान्ने उन्हें साक्षात् दर्शन देकर जब वर माँगनेकी आज्ञा दी, तब ब्रह्माजीने श्रीभगवान्से चार वर देनेकी प्रार्थना की—

१—आपके पर अर्थात् सूक्ष्म या अप्राकृत रूपका एवं अपर अर्थात् स्थूल या प्राकृत रूपका मुझे ज्ञान हो जाय।

२—मुझे ऐसी बुद्धि प्रदान कीजिये, जिससे मैं आपकी लीलाओंके रहस्यको जान सकूँ।

३—आप ऐसा अनुग्रह कीजिये, जिससे मैं आलस्य-रहित होकर आपकी आज्ञाका पालन करता रहूँ, एवं सृष्टि-कार्यके अहङ्कारमें आबद्ध न हो जाऊँ।

४—मुझे सबका सृजन, भरण-पोषण करनेके कारण स्वतन्त्र ईश्वर होनेका अभिमान न हो जाय।

श्रीभगवान्ने ब्रह्माजीको वाञ्छित वर देते हुए आज्ञा की—

'विज्ञानसे युक्त परम गुह्य जो मेरा ज्ञान है, उसे मैं रहस्य और अंगके सहित तुम्हें उपदेश करता हूँ; तुम उसे ग्रहण करो।'

किसी वस्तुको साधारण रीतिसे जाननेका नाम 'ज्ञान' है, उसको विशेषरूपसे जाननेका नाम 'विज्ञान' है। विज्ञानके बिना वस्तुज्ञानकी पूर्णता नहीं होती। जिस प्रकार जलका साधारण ज्ञान तो सभीको होता है, किन्तु उसका विशेष ज्ञान वैज्ञानिक विद्वान्को ही होता है। वैज्ञानिक जानता है कि जलका यही रूप नहीं है, जो हमको साधारण दृष्टिसे दिखायी देता है; इसका एक विशेष रूप है, जो इसके विश्लेषण करनेपर जाननेमें आता है। अर्थात् यह आक्सिजन एवं हाइड्रोजन नामक दो वायवीय पदार्थोंका सम्मिश्रण है। यही जलका यथार्थ या पूर्ण ज्ञान है। इसी प्रकार भगवद्-विषयक ज्ञान भी विज्ञानके बिना अपूर्ण रहता है। उसकी पूर्णता भी तभी होती है, जब कि वह विज्ञानसे युक्त हो।

वैसे तो भगवद्विषयक ज्ञान ही बद्ध जीवोंके लिये गुह्य है, तिसपर विज्ञानयुक्त ज्ञान तो चरम गुह्य—और भी अधिक गुप्त है; यही कारण है कि केवल व्यतिरेकचिन्ताशील निर्विशेष ब्रह्मज्ञानियोंको तो यह बिलकुल ही प्राप्त नहीं होता। इसकी प्राप्तिका एक रहस्य है। वह यह है कि भगवत्-तत्त्वका ज्ञान पूर्णरूपसे भक्तिके द्वारा ही होता है, जैसा कि श्रीभगवान्ने स्वयं श्रीमुखसे आज्ञा की है—

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।

अर्थात् भक्त भक्तिद्वारा ही मुझे तत्त्वतः जानता है कि मैं कितना हूँ और क्या हूँ।

भक्तिके द्वारा श्रीभगवान्का जो यह तत्त्वबोध होता है, वह अनुभवस्वरूप है। भगवत्-अनुभव ही परिपूर्ण अनुभव है; ब्रह्मानुभव एवं परमात्मानुभव तो भगवत्-तत्त्वका खण्डानुभवमात्र है। इस बातको भगवत्-तत्त्ववेत्ता शुद्ध भक्त ही भली प्रकारसे जानते हैं। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥
(१।२।११)

अर्थात् तत्त्ववेत्तागण जिसे अद्वय ज्ञानतत्त्व कहते हैं वह ब्रह्म, परमात्मा एवं भगवान् नामसे निर्देश किया जाता है।

ये तीन नाम पृथक्-पृथक् तत्त्वके नहीं हैं; यह एक ही परम तत्त्वकी दृष्टि-भेदके अनुसार त्रिविध अनुभूतिमात्र है। ज्ञानरश्मिके उदयकालमें भगवत्तनुका जो आलोक साधकके शुद्ध सात्त्विक हृदय-पटलपर प्रतिफलित होता है, उसे ही 'ब्रह्म' कहते हैं। यह सत्तामात्र आलोक ही ब्रह्मज्ञानियोंके द्वारा निर्गुण, निराकार, निर्विशेष, निष्क्रिय आदि विशेषणोंसे विशिष्ट होता है। यही आलोकपुञ्ज जब बिम्बरूपसे साधकके हृदयाकाशमें प्रतीत होता है, तब इसे 'परमात्मा' नामसे कहते हैं। योगीजन इसका प्रादेशमात्र अर्थात् अँगूठेके बराबर दीपकलिकाके समान दर्शन करते हैं और इसे जगत्का अन्तर्यामी मानते हैं। ये 'ब्रह्मानुभव' और 'परमात्मदर्शन'—दोनों ही भगवत्तत्त्वके खण्ड या अंशबोधमात्र हैं। इस ब्रह्मके प्रतिष्ठान एवं परमात्माके अधिष्ठानभूत परमतत्त्वका भक्तोंको जो प्रेमाञ्जनच्छुरित नेत्रोंसे अचिन्त्यगुण-स्वभावयुक्त, षडैश्वर्यपरिपूर्ण श्रीश्यामसुन्दर-स्वरूपमें दर्शन होता है, वह 'भगवान्' नामसे निर्देशित किया जाता है। इस दर्शनसे जो अनुभव होता है, वही श्रीभगवान्का विज्ञानसमन्वित परम गुह्य ज्ञान है और यह भक्ति-भावित नेत्रोंसे ही परिज्ञात होता है। यही इसका रहस्य है।*

इस परमगुह्य ज्ञानके अङ्गभूत चार 'ज्ञान' और हैं। इसको सर्वाङ्गपूर्ण बनानेके लिये उनका विषय जानना भी अत्यन्त आवश्यक है। वे इस प्रकार हैं—'स्व-स्वरूपज्ञान', 'स्वधर्मज्ञान', 'स्वधर्मफलज्ञान' एवं 'विरोधी ज्ञान'।

स्व-स्वरूपज्ञानसे तात्पर्य यह है कि हम क्या हैं—जीवका क्या स्वरूप है, इस विषयका ज्ञान होना। जीव भगवान्से भिन्नाभिन्न तत्त्व है—यह उनसे एक ही समयमें संयुक्त और वियुक्त दोनों दशाओंमें अवस्थान करता है। इस अवस्थाका सामञ्जस्य मानवयुक्तिके द्वारा

---

* श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः।
हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत् सताम्॥
नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया।
भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी॥
तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये।
चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति॥
एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः।
भगवत्तत्त्वविज्ञानं मुक्तसङ्गस्य जायते॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे॥
अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा।
वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्यात्मप्रसादिनीम्॥
(१।२।१७-२२)

'जिनका श्रवण और कीर्तन अत्यन्त पवित्र है, वे संतोंके सुहृद् भगवान् श्रीकृष्ण अपनी लीला कथा सुननेवालोंके हृदयमें विराजमान होकर उनकी तमाम अशुभ वासनाओंको समूल नष्ट कर डालते हैं। इस प्रकार भक्त या श्रीभागवतका निरन्तर सेवन करनेसे अशुभ वासनाओंके नष्टप्राय हो जानेपर उत्तमश्लोक श्रीभगवान्में नैष्ठिकी भक्ति होती है। तब काम और लोभ आदि राजस-तामस भावोंका नाश हो जाता है और सत्त्वगुणमें स्थिति हो जाती है, इससे हृदय भगवद्भावसे युक्त होकर प्रसन्न हो जाता है। इस प्रकार भगवान्के भक्तियोगसे प्रसन्नचित्त हुए साधककी विषयासक्ति सर्वथा नष्ट हो जाती है और उसे भगवत्तत्त्वका विज्ञान प्राप्त होता है। इस प्रकार भगवान्के तत्त्वका साक्षात्कार होते ही जीवकी हृदयग्रन्थि टूट जाती है, उसके समस्त संशय कट जाते हैं और सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मोंका नाश हो जाता है। इसीलिये बुद्धिमान् लोग परम आनन्दके साथ नित्य निरन्तर भगवान् वासुदेवकी आत्मप्रसादिनी भक्ति ही किया करते हैं।'

असम्भव है, अतएव इसे अचिन्त्य कहा जाता है। जीव श्रीभगवान्‌के समान सच्चिदानन्दस्वरूप, उनका सनातन अंश है। सनातन अंशसे यह अभिप्राय है कि श्रीभगवान् 'सच्चिदानन्दघन' हैं और जीव 'सच्चिदानन्द-कण' है। इसकी यह अणुता सदासे है। इस अणुताके कारण ही इसे अंश कहा गया है, भाग या खण्डके कारण नहीं। अंश सदा अंशीके या अणु सदा महत्‌के अधीन रहता है; इसीसे जीवका और भगवान्‌का 'अंश-अंशी', 'शेष-शेषी' या 'सेवक-स्वामी' का सम्बन्ध बतलाया गया है। इस सम्बन्धके कारण जीवको श्रीकृष्ण-दास होनेका जो शुद्ध अहङ्कार है, वही उसका स्वरूप है। अणु होनेके कारण यह अपने शुद्ध स्वरूपको भूलकर जडीय अहङ्कारमें आबद्ध हो जाता है। पुनः जब कभी सौभाग्यसे इसे अपने स्वरूपका स्मरण हो जाता है, तब फिर यह श्रीकृष्ण-दासरूप अपने शुद्ध अहङ्कारमें स्थित हो जाता है और देहात्मबुद्धिका परित्याग कर श्रीभगवान्‌के साथ परमसाम्यता लाभ करता है; जैसा कि भगवती श्रुति कहती है—

पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा
जुष्टस्ततस्तेन परमं साम्यमुपैति।

अर्थात् जीव जब अपने-आपको एवं अपने प्रेरक श्रीभगवान्‌को पृथक् मानकर उनकी सेवामें नियुक्त होता है, तब यह परम साम्यताको प्राप्त होता है।

स्वधर्म-ज्ञानका अर्थ है, अपने धर्मका अर्थात् जीवके धर्मका ज्ञान होना। धर्म नाम 'स्वभाव' का है। यह स्वभाव ही एक वस्तुको दूसरी वस्तुसे पृथक् करता है—जैसे कि जल अग्नि नहीं है, क्योंकि दोनोंके स्वभाव या धर्म अलग-अलग हैं। जलका स्वभाव शीतल है और अग्निका उष्ण है। यह स्वभाव ही जीवको जडसे पृथक् करता है। अपना स्वरूपगत स्वभाव ही स्वधर्म कहलाता है। ऊपर यह कहा गया है कि श्रीकृष्णदासस्वरूप अहङ्कार ही जीवका स्वरूप है। जहाँ अहंता होती है, वहाँ ममता अवश्य होती है। अर्थात् जहाँ यह ज्ञान होता है कि 'मैं हूँ', वहाँ यह विचार भी अवश्य होता है कि 'यह मेरा है'। बद्ध जीव जबतक देहात्म-बुद्धिके कारण जडीय अहङ्कारमें आबद्ध रहता है, तबतक उसकी ममता जडीय वस्तुओंमें ही होती है और जब जडीय अहङ्कारसे निकलकर इस शुद्ध अहङ्कारमें स्थित होता है कि 'मैं श्रीकृष्ण-दास हूँ', तब इसकी यह ममता होती है कि 'श्री-कृष्ण मेरे हैं'। यह श्रीकृष्णविषयिणी 'अनन्य ममता' ही इसका स्वभाव है और इस स्वभावरूप स्वधर्मसे ही शुद्धा भक्तिका उदय होता है, जिससे जीव नित्य श्रीकृष्ण-सेवा-परायण होकर प्रसन्न होता है। श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति॥

अर्थात् जीवका वही परम धर्म है, जिससे अधोक्षज भगवान्‌में अहैतुकी शुद्धा भक्ति हो। इसीसे जीवात्मा प्रसन्न होता है।

श्रीकृष्ण-प्रेम इस स्वधर्मका फल है, जो भक्तिलतामें फलित होता है। स्वधर्मकी साधनावस्थाका नाम 'भक्ति' है, एवं सिद्धावस्थाका नाम 'प्रेम' है। ये दोनों एक ही हैं अर्थात् ये दोनों ही नित्य सिद्ध हैं; इनमें साधन-साध्यप्रभेद नहीं है। जो लोग भुक्ति-मुक्तिको भक्तिलताका फल मानते हैं, वे महान् भ्रममें हैं। भुक्ति-मुक्ति तो कर्म और ज्ञानका फल है। हाँ, भुक्ति-मुक्ति-को भक्तिका गौण फल कहा जा सकता है; क्योंकि कर्म और ज्ञान बिना भक्तिकी सहायताके इन फलोंको प्रदान नहीं कर सकते। जो कर्म और ज्ञान भगवद्विषयक हैं अर्थात् सेवारूप कर्म एवं सेव्य-सेवक-सम्बन्धका ज्ञान है, वे तो भक्ति ही हैं। ये साधकमें साधनका काम देते हैं और सिद्धावस्थामें भगवद्रसका आस्वादन कराते हैं।

विरोधी ज्ञान भी चार प्रकारका है—'भगवत्स्वरूप-विरोधी ज्ञान,' 'स्वस्वरूपविरोधी ज्ञान,' 'स्वधर्मविरोधी ज्ञान' एवं 'स्वधर्मफलविरोधी ज्ञान'।

भगवत्स्वरूपविरोधी ज्ञान

भगवत्स्वरूपविरोधी ज्ञान अनेक प्रकारके है, उनमेंसे मुख्य मुख्यका ही यहाँ उल्लेख किया जाता है—

१—तत्त्वज्ञान न होनेके कारण सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, नदी, पर्वत, वृक्ष आदि वस्तुओंको ईश्वर मानना।

२—जडीय पदार्थोंको हेय जानकर जड-विपरीत भावोंको अर्थात् निर्गुण, निराकार, निर्विशेष, निरीह आदि भावोंको ईश्वर मानना।

३—निर्गुण निराकारका ध्यान नहीं हो सकता, इसलिये एक जडीय आकारवाले ईश्वरकी कल्पना करना।

४—अपनी मानसिक वृत्तियोंको शुद्ध और उन्नत करनेके लिये मनमें ईश्वरकी कोई कल्पित मूर्ति बनाना।

५—जीवको ही ईश्वर मानना—इत्यादि।

स्वस्वरूपविरोधी ज्ञान

१—ईसाई, मुसलमानोंकी भाँति जीवको उत्पन्न हुआ एक तत्त्वविशेष मानना।

२—मायावादियोंकी भाँति अविद्याग्रस्त ब्रह्मको ही जीव मानना।

३—प्रकृतिवादियोंकी भाँति जीवको जडीय उपादानोंका रासायनिक परिणाम मानना।

४—बौद्ध-जैन आदिकी भाँति जीवको केवल वासनाओंका समूहमात्र मानना।

स्वधर्मविरोधी ज्ञान

१—भगवद्भक्तिसम्बन्धशून्य कर्म, अकर्म, विकर्मको ही अपना कर्तव्य समझना।

२—शुष्क ज्ञान, अयुक्त वैराग्य, निस्सार योग और कष्टसाध्य तप आदिको ही श्रेयस्कर समझना।

३—अनेक ईश्वरोंकी उपासना करना।

स्वधर्मफलविरोधी ज्ञान

जीवोंकी रुचिकी विचित्रताके अनुसार ये कई प्रकारके होते हैं, जैसे—

१—मर्त्यलोक और स्वर्गलोकके मुख्य भोग।

२—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि, सायुज्य आदि मुक्तियाँ।

३—सत्-असत् वासनाओंका विनाश।

४—सविकल्प, निर्विकल्प आदि समाधियोंमें स्थिति।

५—शून्यावस्था या निर्वाणावस्थालाभ।

इन सब विरोधी ज्ञानोंसे साधकको विशेष सावधान रहना चाहिये।

श्रीभगवान्का यह परम गुह्य ज्ञान बिना उनकी कृपाके प्राप्त नहीं होता। क्योंकि यह साधन-साध्य नहीं है, स्वयं सिद्ध है, अतएव यह केवल कृपासाध्य है।

इसीसे श्रीभगवान् ब्रह्माजीसे कहते हैं—

'मैं जितना हूँ, मेरा जो भाव है और मैं जिन रूप-गुण-कर्मवाला हूँ—यह सभी तत्त्व विज्ञान मेरे अनुग्रहसे तुम्हें प्राप्त हो।'

इसका तात्पर्य यह है कि किसी तत्त्वका विज्ञान तभी होता है जब कि उसका परिमाण, उसका प्रकार, उसका रूप, उसका गुण एवं उसका कर्म भली प्रकारसे ज्ञात हो, परन्तु जब भगवान् विभु या अनन्त हैं तब उनके परिमाण आदिका ज्ञान क्षुद्र जीवको भला, कैसे हो सकता है? इसीसे यहाँ कृपाकी बात कही गयी है। भगवत्-कृपासे सभी सम्भव है। उनके परिमाण, प्रकार, रूप, गुण, कर्म आदिकी अनन्तताका अनुभव होना ही उनका ज्ञान होना है। वे अपनी अविचिन्त्य शक्तिके द्वारा अणु-से-अणु एवं महत्-से-महत् परिमाणके हैं, जैसा कि श्रुतिमें लिखा है—

'अणोरणीयान् महतो महीयान्'

अर्थात् तत्त्वोंमें जीवतत्त्व सबसे सूक्ष्म तत्त्व है।

श्रीभगवान् इसके भी अन्तर्यामी हैं, अतएव वे छोटे-से-छोटे हैं। एवं यह विश्वब्रह्माण्ड ही सबकी अपेक्षा बृहत् वस्तु है और इस प्रकारके अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड श्रीभगवान्के अन्तर्गत अवस्थित रहते हैं, अतएव वे बड़े-से-बड़े हैं। सच्चिदानन्दमयता ही उनका भाव है—यही उनका स्वरूप-लक्षण है। वे भूत, भविष्यत्, वर्तमान—इन तीनों कालोंमें अवस्थित रहनेके कारण 'सत्' हैं; ज्ञानस्वरूप ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता—ये तीनों स्वयं होनेके कारण 'चित्' हैं; एवं आत्माराम या सुखस्वरूप होनेके कारण 'आनन्द' हैं। इस आनन्दमें एक अनिर्वचनीय, अपूर्व आस्वादन है; इसीसे श्रुतिने इन्हें 'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।' कहकर 'रसस्वरूप' बतलाया है। इस आनन्दरसकी घनता इनका रूप है। 'आनन्दमात्रकरपादशिरोरुह'—इनका प्रत्येक अङ्ग आनन्दसे ही सङ्गठित है, जिसका दर्शन कर भक्तगण आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो जाते हैं। भक्तोंको आनन्द प्रदान करना ही इनका सर्व-प्रधान गुण एवं आनन्दप्रदायिनी विविध लीलाएँ करना ही इनका मुख्य कर्म है। अपनी इस अनन्तताका आदेश श्रीभगवान् स्वयं उपर्युक्त चतुःश्लोकीके प्रथम श्लोकमें इस प्रकार करते हैं—

'सबसे प्रथम मैं ही था; और कुछ न था। सत् (स्थूल)-असत् (सूक्ष्म) से परे जो प्रकृति है, वह भी नहीं थी। इसके अनन्तर जो यह सृष्ट जगत् है, वह भी मैं ही हूँ और इसके प्रलय होनेपर जो कुछ बाकी रहेगा, वह भी मैं ही हूँ।'

जिस वस्तुका आदि होता है, उसीका अन्त होता है। अर्थात् जो वस्तु उत्पन्न होती है, उसीका विनाश होता है। श्रीभगवान् आदि-अन्त या उत्पत्ति-विनाशसे रहित हैं, इसीसे वे अनन्त या अविनाशी हैं। ये ही सबके पूर्ववर्ती हैं, इनसे पूर्व कोई नहीं था। सत्-असत् अर्थात् स्थूल-सूक्ष्मसे परे जो मूल प्रकृति है, वह भी अन्तर्मुखी होनेके कारण इनसे पूर्व नहीं थी; इसके अनन्तर यह जो कुछ वर्तमानमें दिखायी देनेवाला कार्यरूप जगत् है, सो भी ये ही हैं। अर्थात् यह इन्हींकी सत्तासे सत्तावान् है और इसके लय होनेपर जो शेष रहेगा, वह भी यही हैं। अभिप्राय यह है कि श्रीभगवान् कालसे अतीत होकर भी त्रिकालमें रहनेवाले, प्रकृतिसे परे परम सत्य वस्तु हैं। इसके अनन्तर दूसरे श्लोकमें श्रीभगवान् अपनी मायाका स्वरूप निरूपण करते हैं—

'अर्थसे पृथक् जिसकी प्रतीति हो और आत्मामें जो प्रतीत हो नहीं, उसीको आत्माकी माया जानना चाहिये—जैसे कि आभास और तम होते हैं।'

यहाँ आभास और तमका दृष्टान्त देकर मायाके स्वरूपका निरूपण किया गया है। 'विद्याविद्ये मम तनू' इस भागवती श्रुतिके अनुसार मायाके दो रूप कहे गये हैं—एक विद्यारूपा माया, दूसरी अविद्यारूपा माया। विद्याका स्वरूप प्रकाश है एवं अविद्याका अन्धकार। इसीसे इनके विषयमें आभास और तमके दो दृष्टान्त दिये गये हैं। जिस प्रकार सूर्यका आभास सूर्यरूप अर्थ (अधिष्ठान) से पृथक् रहकर जलमें प्रतिबिम्बरूपसे प्रतीत होता है और वह प्रतिबिम्ब सूर्यमें प्रतीत नहीं होता, उसी प्रकार श्रीभगवान्की विद्यारूपा माया अपने अर्थ (अधिष्ठान) भगवान्से पृथक् प्रतीत होती है, उसके स्वरूपमें प्रतीत नहीं होती। और जिस प्रकार तम या अन्धकार सूर्यरूप अपने अर्थ (कारण) से पृथक् ही प्रतीत होता है, सूर्यमें प्रतीत नहीं होता—उसी प्रकार अविद्यारूपा माया भी अपने अर्थ श्रीभगवान्से पृथक् ही प्रतीत होती है, उनमें प्रतीत नहीं होती।

श्रीभगवान्के इस व्याख्यानका सारांश यह है कि जिस प्रकार आभास और तमका अस्तित्व सूर्यकी सत्तापर निर्भर होनेपर भी वे उनसे पृथक् प्रतीत होते हैं, उसके बिम्बमें प्रतीत नहीं होते—उसी प्रकार विद्या-अविद्यारूपा मायाका भी अस्तित्व श्रीभगवान्की सत्तापर ही अवलम्बित

विरोधी ज्ञान भी चार प्रकारका है—'भगवत्स्वरूप-विरोधी ज्ञान,' 'स्वस्वरूपविरोधी ज्ञान,' 'स्वधर्मविरोधी ज्ञान' एवं 'स्वधर्मफलविरोधी ज्ञान'।

भगवत्स्वरूपविरोधी ज्ञान

भगवत्स्वरूपविरोधी ज्ञान अनेक प्रकारके हैं, उनमेंसे मुख्य-मुख्यका ही यहाँ उल्लेख किया जाता है—

१—तत्त्वज्ञान न होनेके कारण सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, नदी, पर्वत, वृक्ष आदि वस्तुओंको ईश्वर मानना।

२—जडीय पदार्थोंको हेय जानकर जड-विपरीत भावोंको अर्थात् निर्गुण, निराकार, निर्विशेष, निरीह आदि भावोंको ईश्वर मानना।

३—निर्गुण निराकारका ध्यान नहीं हो सकता, इसलिये एक जडीय आकारवाले ईश्वरकी कल्पना करना।

४—अपनी मानसिक वृत्तियोंको शुद्ध और उन्नत करनेके लिये मनमें ईश्वरकी कोई कल्पित मूर्ति बनाना।

५—जीवको ही ईश्वर मानना—इत्यादि।

स्वस्वरूपविरोधी ज्ञान

१—ईसाई, मुसलमानोंकी भाँति जीवको उत्पन्न हुआ एक तत्त्वविशेष मानना।

२—मायावादियोंकी भाँति अविद्याग्रस्त ब्रह्मको ही जीव मानना।

३—प्रकृतिवादियोंकी भाँति जीवको जडीय उपादानोंका रासायनिक परिणाम मानना।

४—बौद्ध-जैन आदिकी भाँति जीवको केवल वासनाओंका समूहमात्र मानना।

स्वधर्मविरोधी ज्ञान

१—भगवद्भक्तिसम्बन्धशून्य कर्म, अकर्म, विकर्मको ही अपना कर्तव्य समझना।

२—शुष्क ज्ञान, अयुक्त वैराग्य, निस्सार योग और कष्टसाध्य तप आदिको ही श्रेयस्कर समझना।

३—अनेक ईश्वरोंकी उपासना करना।

स्वधर्मफलविरोधी ज्ञान

जीवोंकी रुचिकी विचित्रताके अनुसार ये कई प्रकारके होते हैं, जैसे—

१—मर्त्यलोक और स्वर्गलोकके मुख्य भोग।

२—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सार्ष्टि, सायुज्य आदि मुक्तियाँ।

३—सत्-असत् वासनाओंका विनाश।

४—सविकल्प, निर्विकल्प आदि समाधियोंमें स्थिति।

५—शून्यावस्था या निर्वाणावस्थालाभ।

इन सब विरोधी ज्ञानोंसे साधकको विशेष सावधान रहना चाहिये।

श्रीभगवान्‌का यह परम गुह्य ज्ञान बिना उनकी कृपाके प्राप्त नहीं होता। क्योंकि यह साधन-साध्य नहीं है, स्वयं सिद्ध है, अतएव यह केवल कृपासाध्य है।

इसीसे श्रीभगवान् ब्रह्माजीसे कहते हैं—

'मैं जितना हूँ, मेरा जो भाव है और मैं जिन रूप-गुण-कर्मवाला हूँ—यह सभी तत्त्व विज्ञान मेरे अनुग्रहसे तुम्हें प्राप्त हो।'

इसका तात्पर्य यह है कि किसी तत्त्वका विज्ञान तभी होता है जब कि उसका परिमाण, उसका प्रकार, उसका रूप, उसका गुण एवं उसका कर्म भली प्रकारसे ज्ञात हो, परन्तु जब भगवान् विभु या अनन्त हैं तब उनके परिमाण आदिका ज्ञान क्षुद्र जीवको भला, कैसे हो सकता है? इसीसे यहाँ कृपाकी बात कही गयी है। भगवत्-कृपासे सभी सम्भव है। उनके परिमाण, प्रकार, रूप, गुण, कर्म आदिकी अनन्तताका अनुभव होना ही उनका ज्ञान होना है। वे अपनी अचिन्त्य शक्तिके द्वारा अणु से-अणु एवं महत्-से-महत् परिमाणके हैं, जैसा कि श्रुतिमें लिखा है—

'अणोरणीयान् महतो महीयान्'

अर्थात् तत्त्वोंमें जीवतत्त्व सबसे सूक्ष्म तत्त्व है।

श्रीभगवान् इसके भी अन्तर्यामी हैं, अतएव वे छोटे-से-छोटे हैं। एवं यह विश्वब्रह्माण्ड ही सबकी अपेक्षा बृहत् वस्तु है और इस प्रकारके अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड श्रीभगवान्के अन्तर्गत अवस्थित रहते हैं, अतएव वे बड़े-से-बड़े हैं। सच्चिदानन्दमयता ही उनका भाव है—यही उनका स्वरूप-लक्षण है। वे भूत, भविष्यत्, वर्तमान—इन तीनों कालोंमें अवस्थित रहनेके कारण 'सत्' हैं; ज्ञानस्वरूप ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता—ये तीनों स्वयं होनेके कारण 'चित्' हैं; एवं आत्माराम या सुखस्वरूप होनेके कारण 'आनन्द' हैं। इस आनन्दमें एक अनिर्वचनीय, अपूर्व आस्वादन है; इसीसे श्रुतिने इन्हें 'रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।' कहकर 'रसस्वरूप' बतलाया है। इस आनन्दरसकी घनता इनका रूप है। 'आनन्दमात्रकरपादशिरोरुह'—इनका प्रत्येक अङ्ग आनन्दसे ही सङ्गठित है, जिसका दर्शन कर भक्तगण आनन्दसिन्धुमें निमग्न हो जाते हैं। भक्तोंको आनन्द प्रदान करना ही इनका सर्व-प्रधान गुण एवं आनन्दप्रदायिनी विविध लीलाएँ करना ही इनका मुख्य कर्म है। अपनी इस अनन्तताका आदेश श्रीभगवान् स्वयं उपर्युक्त चतुःश्लोकीके प्रथम श्लोकमें इस प्रकार करते हैं—

'सबसे प्रथम मैं ही था; और कुछ न था। सत् (स्थूल)-असत् (सूक्ष्म) से परे जो प्रकृति है, वह भी नहीं थी। इसके अनन्तर जो यह सृष्ट जगत् है, वह भी मैं ही हूँ और इसके प्रलय होनेपर जो कुछ बाकी रहेगा, वह भी मैं ही हूँ।'

जिस वस्तुका आदि होता है, उसीका अन्त होता है। अर्थात् जो वस्तु उत्पन्न होती है, उसीका विनाश होता है। श्रीभगवान् आदि-अन्त या उत्पत्ति-विनाशसे रहित हैं, इसीसे वे अनन्त या अविनाशी हैं। ये ही सबके पूर्ववर्ती हैं, इनसे पूर्व कोई नहीं था। सत्-असत् अर्थात् स्थूल-सूक्ष्मसे परे जो मूल प्रकृति है, वह भी अन्तर्मुखी होनेके कारण इनसे पूर्व नहीं थी; इसके अनन्तर यह जो कुछ वर्तमानमें दिखायी देनेवाला कार्यरूप जगत् है, सो भी ये ही हैं। अर्थात् यह इन्हीं-की सत्तासे सत्तावान् है और इसके लय होनेपर जो शेष रहेगा, वह भी यही हैं। अभिप्राय यह है कि श्रीभगवान् कालसे अतीत होकर भी त्रिकालमें रहनेवाले, प्रकृतिसे परे परम सत्य वस्तु हैं। इसके अनन्तर दूसरे श्लोकमें श्रीभगवान् अपनी मायाका स्वरूप निरूपण करते हैं—

'अर्थसे पृथक् जिसकी प्रतीति हो और आत्मामें जो प्रतीत हो नहीं, उसीको आत्माकी माया जानना चाहिये—जैसे कि आभास और तम होते हैं।'

यहाँ आभास और तमका दृष्टान्त देकर मायाके स्वरूपका निरूपण किया गया है। 'विद्याविद्ये मम तनू' इस भागवती श्रुतिके अनुसार मायाके दो रूप कहे गये हैं—एक विद्यारूपा माया, दूसरी अविद्यारूपा माया। विद्याका स्वरूप प्रकाश है एवं अविद्याका अन्धकार। इसीसे इनके विषयमें आभास और तमके दो दृष्टान्त दिये गये हैं। जिस प्रकार सूर्यका आभास सूर्यरूप अर्थ (अधिष्ठान) से पृथक् रहकर जलमें प्रतिबिम्बरूपसे प्रतीत होता है और वह प्रतिबिम्ब सूर्यमें प्रतीत नहीं होता, उसी प्रकार श्रीभगवान्की विद्यारूपा माया अपने अर्थ (अधिष्ठान) भगवान्से पृथक् प्रतीत होती है, उसके स्वरूपमें प्रतीत नहीं होती। और जिस प्रकार तम या अन्धकार सूर्यरूप अपने अर्थ (कारण) से पृथक् ही प्रतीत होता है, सूर्यमें प्रतीत नहीं होता—उसी प्रकार अविद्यारूपा माया भी अपने अर्थ श्रीभगवान्से पृथक् ही प्रतीत होती है, उनमें प्रतीत नहीं होती।

श्रीभगवान्के इस व्याख्यानका सारांश यह है कि जिस प्रकार आभास और तमका अस्तित्व सूर्यकी सत्तापर निर्भर होनेपर भी वे उनसे पृथक् प्रतीत होते हैं, उसके बिम्बमें प्रतीत नहीं होते—उसी प्रकार विद्या-अविद्यारूपा मायाका भी अस्तित्व श्रीभगवान्की सत्तापर ही अवलम्बित

है, किन्तु इसकी प्रतीति उनके स्वरूपमें नहीं होती, उनसे पृथक् ही होती है।

यहाँ श्रीभगवान्‌ने मायाके स्वरूप-सम्बन्धमें आभास और तमके दो उदाहरण दिये हैं, ये दोनों ही विज्ञान-सम्मत हैं। प्रकाश और अन्धकार—इन दोनोंका ही आधार सूर्य है, ये दोनों ही सूर्यके शक्तिरूप हैं। प्रकाशका विषय तो स्पष्ट है, किन्तु अन्धकारका विषय वैज्ञानिक प्रक्रियासे जानना होगा कि यह सूर्यकी शक्ति किस प्रकारसे है। विज्ञानका यह एक नियम है कि जिस इन्द्रियका जो विषय होता है, उसका अभाव भी उसी इन्द्रियका विषय होता है। जैसे कि किसी प्रकारकी गन्धको घ्राणेन्द्रियसे ही जाना जाता है और उसके अभावका अर्थात् गन्ध नहीं है—इस बातका ज्ञान भी घ्राणेन्द्रियसे ही होता है, अन्य इन्द्रियसे नहीं। चक्षु इन्द्रिय तेजकी इन्द्रिय है। इसका विषय रूप है एवं इसका देवता सूर्य है। इसीके द्वारा सूर्यका प्रकाश प्रत्यक्ष होता है और इसीके द्वारा उसके अभाव अर्थात् अन्धकारका प्रत्यक्ष होता है। अतएव आभास और तम दोनोंका आधार सूर्य ही है। इसी भाँति जिस विज्ञानके द्वारा जीवको भगवन्मायाकी विद्यावृत्तिका परिज्ञान होता है, उसीके द्वारा उसकी अविद्यावृत्तिका भी ज्ञान होता है। और जिस प्रकार सूर्यका प्रतिबिम्ब एवं तम सूर्यसे पृथक् रहकर प्रत्यक्ष होता है, उसी प्रकार भगवन्मायाकी विद्या-अविद्या उभय वृत्तियाँ श्रीभगवान्‌से पृथक् ही प्रतीत होती हैं।

इस मायाके साथ श्रीभगवान्‌का किस प्रकारका सम्पर्क है, इसका भी वे स्वयं तीसरे श्लोकमें आदेश करते हैं—

'जिस प्रकार पञ्चमहाभूत भौतिक जगत्‌में अनुप्रविष्ट होकर भी अप्रविष्ट रहते हैं, उसी प्रकार मैं भी सबमें व्याप्त होकर भी पृथक् रहता हूँ।'

श्रीभगवान्‌के इस कथनका अभिप्राय यह है कि कारणकी सत्ता कार्यसे सर्वथा स्वतन्त्र होती है, किन्तु कार्य अपने कारणके परतन्त्र होता है। जिस प्रकार पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश—ये पञ्चमहाभूत स्थूल जगत्‌के कारण होनेसे उसमें विद्यमान भी हैं और उससे पूर्व अवस्थित होनेसे पृथक् भी हैं—उसी प्रकार श्रीभगवान् समस्त कारणोंके कारण होनेसे सबमें व्याप्त भी हैं, एवं सबसे नियतपूर्ववृत्ति होनेसे पृथक् भी हैं। चौथे श्लोकका अर्थ है—

'आत्मतत्त्व जाननेकी इच्छा करनेवालेको केवल इतना ही जानना चाहिये कि वह (आत्मा) अन्वय और व्यतिरेकसे सर्वत्र सदा विद्यमान है।'

इसका तात्पर्य यह है कि जीव ज्ञानस्वरूप होनेपर भी अल्पज्ञ है, बिना तत्त्वज्ञानके इस ज्ञानकी पूर्णता नहीं होती। श्रीभगवान्‌ने मनुष्यको एक जिज्ञासावृत्ति दी है। इस वृत्तिका विकास मनुष्यमें बाल्यकालसे ही पाया जाता है। बालक जब जिस वस्तुको देखता है, तभी उसके सम्बन्धमें अपने गुरुजनोंसे प्रश्न करने लगता है कि 'यह क्या है? वह क्या है?' इस जिज्ञासाका यदि यथार्थ उत्तर मिलता जाय, तो यह मनुष्यको ज्ञानकी उस सीमापर पहुँचा देती है जहाँ फिर कुछ जानना बाकी नहीं रह जाता। जैसी कि श्रीभगवान्‌ने गीतामें आज्ञा की है—

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते॥

यह ज्ञान जिज्ञासुको ही प्राप्त होता है, यह भी श्रीभगवान्‌ने आदेश किया है—

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

यह जानना चाहिये कि जो जिज्ञासु सेवा एवं प्रणिपातपूर्वक प्रश्न करता है, तत्त्वदर्शी ज्ञानीगण उसीको उपदेश करते हैं। तत्त्वज्ञानके दो प्रकार हैं—एक अन्वय, दूसरा व्यतिरेक। जिस प्रकार घटका कारण मृत्तिका है तो घट है, इस ज्ञानको 'अन्वय' कहते हैं और मृत्तिका नहीं है तो उसका कार्य घट भी नहीं है, इस

ज्ञानको 'व्यतिरेक' कहते हैं—उसी प्रकार सबके कारण श्रीभगवान्‌की सत्तामें सबकी सत्ता है, एवं उनके अभावमें सबका अभाव है। श्रीभगवान् इसी रूपसे सदा सर्वत्र विराजमान हैं—तत्त्वजिज्ञासुके लिये यही सबसे बड़ा ज्ञान है। इस ज्ञानके सम्बन्धमें श्रीभगवान् गीतामें आदेश करते हैं—

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ॥

'हे पाण्डव! जिस ज्ञानके प्राप्त होनेपर तुझे इस प्रकारका मोह फिर न होगा·······।'

यही उपदेशात्मक आशीर्वाद शेषमें श्रीभगवान् ब्रह्माजीको भी देकर अपना कथन समाप्त करते हैं—

'परमसमाधिमें स्थित होकर इस मतका अनुष्ठान करनेसे तुम्हें कल्पोंके विकल्पमें कभी भी मोह न होगा।'

मोह अज्ञानके कारण होता है। वस्तुमें अन्यथा-बुद्धिका नाम अज्ञान है; जब वस्तुका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तब मोह अपने-आप ही नष्ट हो जाता है। जब जीवको यह ज्ञान हो जाता है कि सबके कारण श्रीभगवान् ही कारण-कार्यरूपसे विराजमान हैं, तब 'को मोहः ? कः शोकः ?'

इसी भगवत्प्रोक्त श्रीमद्भागवतका उपदेश ब्रह्माजीने अपने पुत्र नारदजीको किया था, एवं नारदजीने अपने शिष्य श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीको किया था। व्यासदेवने इसीके आधारपर दशलक्षणलक्षित, अष्टादशसहस्रश्लोक-संख्यापरिमित श्रीमद्भागवत नामक परमहंससंहिताका इस प्रकार सङ्कलन किया है। 'अहमेवासमेवाग्रे' इस वाक्यके द्वारा 'आश्रयतत्त्व' कहा गया है, जो कि द्वादश स्कन्धमें वर्णित है। 'पश्चादहम्' इस वाक्यसे पुरुष-प्रधान आदि सबका वर्णन हुआ है, जो कि द्वितीय-तृतीय स्कन्धोंमें वर्णित है। 'यदेतच्च' इस वाक्यसे विसर्ग, स्थान, ऊति, मन्वन्तर और ईशानुकथा आदिका वर्णन किया गया है—जिसमें यह कहा गया है कि जो यह कार्यरूप जगत् है, वह भी भगवान् ही हैं। इसका चतुर्थ, पञ्चम, सप्तम, अष्टम एवं नवम स्कन्धोंमें सङ्केत हुआ है। 'योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्' इस वाक्यसे 'निरोध' कहा गया है, जो दशम स्कन्धमें वर्णित है। 'ऋतेऽर्थम्' इस वाक्यके द्वारा मायाका निरूपण अर्थात् मायासे जगत्‌की सृष्टि, जीवका संसारबन्धन और जीव-ईश्वरका विभाग कहा गया है—जिसे समस्त ग्रन्थके विविध उपाख्यानोंमें देखना चाहिये। विशेषतः इसका वर्णन प्रथम स्कन्धमें हुआ है। 'यथा महान्ति' इस वाक्यके द्वारा 'पोषण' कहा गया है, जो षष्ठ स्कन्धमें वर्णित है। 'एतावदेव' इस वाक्यके द्वारा साधनका वर्णन कर मुक्तिका स्वरूप दिखाया गया है, जिसका वर्णन एकादश स्कन्धमें है। इस प्रकार श्रीमद्भागवत व्यासदेव-के द्वारा विस्तारित होनेके कारण इसकी एक संज्ञा 'वैयासिकी-संहिता' भी है। ('श्रेय')

श्रीमद्भागवत

(लेखक—पु० श्रीप्रतापनारायणजी 'कविरत्न')

सत्य प्रेमकी देवनदीको झरनेवाली—
मानव-मनमें भक्ति-ज्ञानको भरनेवाली—
आधि-व्याधिको, क्लेश-भीतिको हरनेवाली—
मुक्ति-मार्गको सुगम और लघु करनेवाली—
ऐसी श्रीमद्भागवत पूरा पंचम वेद है।
मिटता जिसके मननसे जन्म-मरणका खेद है॥

श्रीमद्भागवतमें भगवन्नाम-महिमा

कलियुगमें जीवोंके उद्धार तथा कल्याणका एकमात्र परम साधन श्रीभगवन्नाम ही है। श्रीमद्भागवतमें भगवन्नामके सम्बन्धमें बहुत कुछ कहा गया है। 'कल्याण'के पाठक-पाठिकाओंकी भगवन्नाममें रुचि हो और वे परमकल्याणकारी भगवन्नामका सहारा पकड़ें, इसी हेतुसे भगवन्नामकी महिमाके कुछ श्लोक यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

शौनकादि ऋषि कहते हैं—

आपन्नः संसृतिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन्।
ततः सद्यो विमुच्येत यद् बिभेति स्वयं भयम्॥
(१।१।१४)

घोर संसार-बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य विवश होकर भी भगवान्‌के नामका उच्चारण कर ले, तो वह तुरंत ही उससे मुक्त हो जाता है; क्योंकि स्वयं भय भी भगवान्‌से भयभीत रहता है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्।
योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्॥
(२।१।११)

परीक्षित्! पापनाश और संसारसुखोंकी प्राप्तिके लिये ही नहीं; जिन लोगोंको संसारसे वैराग्य हो गया है और जो निर्भय मोक्षपदकी प्राप्ति करना चाहते हैं उन साधकोंको तथा भगवत्प्राप्त सिद्ध योगियोंको भी भगवान् श्रीहरिके नामोंका कीर्तन ही करना चाहिये। यही शास्त्रोंका निचोड़ है।

माता देवहूतिजी कहती हैं—

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥
(३।३३।७)

अहो! जिसकी जीभपर आपका (भगवान्‌का) नाम विराजता है, वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है। जो भाग्यवान् पुरुष आपका नाम उच्चारण करते हैं उन्होंने तप, यज्ञ, तीर्थस्नान, सदाचारका पालन, और वेदोंका अध्ययन—सब कुछ कर लिया। क्योंकि इन सबका परमफल 'नाम' जो उन्हें प्राप्त हो गया।

ब्रह्माजी कहते हैं—

यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि
नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति।
ते नैकजन्मशमलं सहसैव हित्वा
संयान्त्यपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये॥
(३।९।१५)

जिन भगवान्‌के अवतार, गुण और कर्मोंको सूचित करनेवाले (वासुदेव, जनार्दन और गोवर्धनधारी आदि) नामोंको जो मनुष्य मरते समय विवश होकर भी उच्चारण कर लेते हैं, वे अनेकों जन्मोंके पापोंसे उसी क्षण छूटकर माया आदि आवरणोंसे रहित ब्रह्मपदको प्राप्त करते हैं—मैं उन अजन्मा भगवान्‌की शरण लेता हूँ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

यस्य ह वाव क्षुतपतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते॥
(५।२४।२०)

जिस कर्मबन्धनको मुमुक्षुलोग योगसाधन आदि उपायोंके द्वारा बड़े कष्टसे कहीं काट पाते हैं—मनुष्यका वही कर्मबन्धन छींकने, गिरने और फिसलनेके समय विवश होकर एक बार भी भगवान्‌का नाम लेनेसे उसी क्षण कट जाता है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मा-
दार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद् वा।

हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं
कं शेषाद् भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥
(५ । २५ । ११)

कोई भी दीन या पापी मनुष्य जिन भगवान् शेषके किसी सुने-सुनाये नामका अकस्मात् अथवा हँसीमें भी उच्चारण कर लेता है वह स्वयं तो पापमुक्त हो ही जाता है, दूसरे मनुष्योंके भी सारे पापोंको वह उसी क्षण नष्ट कर देता है। ऐसे भगवान्को छोड़कर मुमुक्षु पुरुष और किसका आश्रय ले सकता है?

भगवान्के पार्षद यमदूतोंसे कहते हैं—

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि।
यद् व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥
एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम्।
यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥
अथैनं मापनयत कृताशेषाघनिष्कृतम्।
यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥
साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥
पतितः स्खलितो भग्नः सन्दष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान्नार्हति यातनाम् ॥
अज्ञानादथवा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत्।
सङ्कीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथानलः ॥
यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया।
अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोऽप्युदाहृतः ॥
(६ । २ । ७, ८, १३–१५, १८, १९)

इस अजामिलने जो विवश होकर भगवान्का परम कल्याणकारी नाम ले लिया है, इससे इसने करोड़ों जन्मोंके पापोंका प्रायश्चित्त कर डाला है। जिस समय इसने 'नारायण' इन चार अक्षरोंका उच्चारण किया, उसी समय इस पापीके सारे पापोंका प्रायश्चित्त हो गया। इसलिये यमदूतो! तुमलोग इस अजामिलको मत ले जाओ, इसने मरते समय भगवान्के नामका उच्चारण करके सारे पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है। बड़े-बड़े महात्मा पुरुष इस बातको जानते हैं कि सङ्केतमें (किसी दूसरे अभिप्रायसे), हँसी-दिल्लगीमें, तान अलापनेमें अथवा अवहेलनासे भी यदि कोई भगवान्के नामोंका उच्चारण करता है तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य गिरते समय, पैर फिसलते समय, अङ्ग-भङ्ग होते समय और साँप आदिके डसते, आगमें जलते और चोट लगते समय भी विवश हो 'हरि-हरि' कहकर भगवान्के नामका उच्चारण कर लेता है, वह यमयातनाका पात्र नहीं रहता। जैसे जान या अनजानमें ईंधनसे अग्निका स्पर्श हो जाय तो वह भस्म हो जाता है, वैसे ही जान-बूझकर या अनजानमें भी भगवान्के नामका संकीर्तन करनेसे मनुष्यके सारे पाप भस्म हो जाते हैं। जैसे कोई परमशक्तिशाली अमृतको संयोग-वश अनजानमें भी पी ले, तो वह पीनेवालेपर अपना प्रभाव दिखाता है—उसे अमर कर देता है, वैसे ही अनजानमें भी उच्चारण कर लेनेपर भगवान्का नामरूपी मन्त्र अपना फल देकर ही रहता है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

एवं स विप्लावितसर्वधर्मा
दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा।
निपात्यमानो निरये हतव्रतः
सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥
नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं
मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात्।
न यत् पुनः कर्मसु सज्जते मनो
रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥
(६ । २ । ४५-४६)

परीक्षित्! अजामिलने दासीका पति होकर अपना सारा धर्म-कर्म चौपट कर दिया था। वह अपने निन्दित कर्मोंके कारण पतित हो गया था और नियमोंसे च्युत हो जानेके कारण नरकोंमें गिराया ही जा रहा था; परन्तु भगवान्के एक नामका उच्चारण करनेमात्रसे वह तत्काल मुक्त हो गया। भगवान् ही तीर्थोंको तीर्थ बनानेवाले हैं; जो लोग इस संसार-बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिये कर्मबन्धनको काटनेवाले

उन श्रीहरिके नाम-सकीर्तनसे बढ़कर और कोई भी साधन नहीं है। क्योंकि नामका आश्रय लेनेपर मनुष्यका मन फिर कर्मोंमें आसक्त नहीं होता। भगवन्नामके अतिरिक्त और किसी प्रायश्चित्तका आश्रय लेनेपर मन रजोगुण और तमोगुणसे ग्रस्त रहता है तथा पापोंका पूरा नाश भी नहीं होता।

सुदर्शन विद्याधर कहता है—

यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतनात्मानमेव च।
सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते॥
(१०।३४।१७)

भगवान् अच्युत! मैं आपका दर्शन पाते ही ब्राह्मणोंके शापसे छूट गया, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि जो पुरुष आपके नामका उच्चारण करता है, वह न केवल अपनेको बल्कि सब सुनने-वालोंको भी तुरंत पवित्र कर देता है। फिर मुझको तो आपने अपने चरणोंसे स्पर्श किया है; तब मेरे मुक्त होनेमें कौन बड़ी बात है?

योगीश्वर करभाजन कहते हैं—

कलिं सभाजयन्त्यार्या गुणज्ञाः सारभागिनः।
यत्र सङ्कीर्तनेनैव सर्वः स्वार्थोऽभिलभ्यते॥
न ह्यतः परमो लाभो देहिनां भ्राम्यतामिह।
यतो विन्देत परमां शान्तिं नश्यति संसृतिः॥
(११।५।३६ ३७)

गुणज्ञ और सारग्राही श्रेष्ठ पुरुष कलियुगकी बड़ी प्रशंसा किया करते हैं, क्योंकि इसमें केवल भगवान्के नामसङ्कीर्तनसे ही सारे स्वार्थ और परमार्थ सध जाते हैं। ससारचक्रमें अनादि कालसे भटकनेवाले देहाभिमानी जीवोंके लिये भगवान्के इस सङ्कीर्तनसे बढ़कर और कोई भी परम लाभ नहीं है। क्योंकि इसीसे उनका ससारमें भटकना मिट जाता है और परम शान्तिकी प्राप्ति हो जाती है।

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(१२।३।५१ ५२)

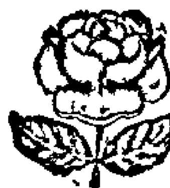
कलियुग यों तो दोषोंका खजाना है, परन्तु इसमें एक बहुत बड़ा गुण यह है कि इसमें श्रीकृष्णके नाम-सङ्कीर्तनमात्रसे सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। सत्ययुगमें ध्यानसे, त्रेतामें यज्ञोंसे और द्वापरमें पूजा-अर्चनासे जो फल मिलता है वही कलियुगमें केवल भगवन्नामके कीर्तनसे ही मिल जाता है।

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात्॥
(१२।१२।४६)

जो मनुष्य गिरते-पड़ते, फिसलते, दुःख भोगते, अथवा छींकते समय भी विवशतासे 'हरये नमः' पुकार उठता है वह सारे पापोंसे छूट जाता है।

नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥
(१२।१३।२३)

जिन भगवान्का नामसङ्कीर्तन सारे पापोंका नाश करता है और जिनको किया हुआ प्रणाम समस्त दुःखोंको शान्त कर देता है, उन परमेश्वर श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।



श्रीमद्भागवतके दो आदर्श श्लोक

(लेखक--पं० श्रीशिवदत्तजी शर्मा)

सिर्फ पचास वर्ष पहलेकी बात है कि कोई-सी भी पुस्तक लिखते समय, चाहे वह छोटी ही हो, सबसे प्रथम ईश्वर-प्रार्थना करना लेखक अपना कर्तव्य समझते थे। पर आज प्रार्थनाका कहीं नाम भी न रह गया। प्रार्थना पाठकोंको रोचक नहीं होती। प्रार्थनाका स्थान आज-कल भूमिकाने ले लिया है। ईश्वर-प्रार्थनाके प्रति ऐसी उपेक्षाके जमानेमें आपादमस्तक ईश्वरभावसे परिपूर्ण श्रीमद्भागवताङ्कका निकालना मुर्दोंपर अमृतवृष्टि करना है।

श्रीमद्भागवतको कल्पवृक्षकी उपमा देते हैं। इसके पाठसे जो कुछ इच्छा करे, पूर्ण होती है। विघ्न, विपत्ति और सङ्कटोंका निवारण होता है। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति प्राप्त होती है। मृत्युके पश्चात् क्या होता है, सो मालूम नहीं।

मुझे श्रीमद्भागवतके दो श्लोक बड़े प्रिय लगते हैं। मैं उनका अभ्यास करता रहता हूँ। वही दो पुष्प श्रीमद्भागवताङ्ककी भेंट कर रहा हूँ।

आर्य महर्षियोंने जीवन दो भागोंमें बाँटा है—एक पैदा होनेके क्षणसे मृत्युपर्यन्त; दूसरा मृत्युके पश्चात्का। इन दोनोंके सुधारका सत्पथ इन दो श्लोकोंमें बतलाया गया है।

भगवान् श्रीकृष्णने नन्द-यशोदा और अपने सखा-सखियोंको अपने कुशल-समाचार कहने और उनके समाचार लानेको अपने परम सुहृद् उद्धवजीको व्रज भेजा। कई मासतक व्रजवासियोंके साथ श्रीकृष्ण-चर्चामें जीवनके दिन सफल करके उद्धवजी जब मथुरा लौटनेको रथमें बैठ गये, तब उन्होंने सबसे पूछा—'भगवान् कृष्णसे आपका क्या सन्देश कहूँ?' 'नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः।' नेत्रोंसे जलकी धारा बह रही है, ऐसी स्थितिमें नन्दादि आकर कहने लगे—आप भगवान्को हमारी ओरसे यह कहना—

'मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः।'

हमारे मनकी वृत्तियाँ आपके चरणकमलोंमें सदा बनी रहें।

और—

'वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नाम्'

हमारी वाणी आपके नाम-स्मरणमें सदा लगी रहे।

और—

'कायस्तत्प्रह्वणादिषु'

हमारी देह आपको प्रणाम करनेमें सदा लगी रहे।

मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः।
वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु॥
(१०।४७।६६)

इस प्रकार जीवनभरकी भलाईका पथ मन, वचन और कर्मोंका सुधार माँग चुकनेपर उद्धवजीने पूछा—बस? या और भी कुछ कहना है? उन्होंने कहा, अभी और कहना बाकी है। वह यह है—

कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया।
मङ्गलाचरितैर्दानैर्मतिर्नः कृष्ण ईश्वरे॥
(१०।४७।६७)

कर्मचक्रोंसे घुमाये हुए ईश्वरेच्छावश जहाँ-जहाँ हम हों, वहाँ-वहाँ इस जन्ममें हमने जो मङ्गल आचरण किये हों अथवा दान किये हों उनके फलसे हमारी मति सदा ईश्वर श्रीकृष्णमें बनी रहे।

ये दो श्लोक अठारह हजार श्लोकोंका निचोड़ हैं।

इनका भाव समझमें आ जानेपर समस्त क्लेशोंका तत्काल विनाश हो जाता है, और वह मनुष्य मनुष्यताके पूर्ण सुखका अधिकारी हो जाता है। उसे यह संसारी जीवन—यह चराचर जगत्, जो पहले महा दुःख-दायी प्रतीत होता था, स्वर्गके समान सुखदायक भासने लगता है।

हमारे दुःखोंका कारण हम राजाको, प्रजाको, जातिको, समाजको, स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धुओंको समझते है। उन्हें दोष देते हैं। पर असली कारणका पता हम नहीं जानते। हमारे समस्त क्लेशोंके कारण हमारे अपने ही विचार हैं। यदि विचार शुद्ध कर लिये जायँ तो सारे क्लेश हवामें वैसे ही उड़ जायँगे, जैसे खुला रखनेसे कपूर उड़ जाता है।

दुःखोंका दूसरा कारण वाणी है। जितने झगड़े होते हैं, सब वाणीसे ही आरम्भ होते हैं। तुम एक शब्द भी निरर्थक मत बोलो। सदा मौन रहो। मौन अवस्थामें नाम-स्मरण करते रहो। इससे तुम्हारी शक्तियोंका वैसे ही विकास होगा, जैसे प्रातःकाल पुष्पवाटिकामें पुष्पोंका विकास होता है।

दुःखोंका तीसरा कारण शरीर है। यह कम्बख्त कभी चैन नहीं लेने देता। इसका उपाय है—तुम दूसरोंके काम आते रहो। दूसरोंकी सेवा करनेका मार्ग सदा ढूँढ़ते रहो। सुखमें नहीं, दुःखमें शरीरसे कुछ भी थोड़ी-से-थोड़ी, छोटी-से-छोटी सेवा करनेकी कोशिश करते रहो। यह ऐसा अमोघ और असन्दिग्ध उपाय है, जो त्रिकालमें भी निष्फल नहीं जा सकता। इस तरह मन, वचन और शरीरके सुधर जानेपर जो सुख तुम्हें प्रतीत होगा उसके सम्मुख धन आदिके सब सुख तुच्छ मालूम होने लगेंगे।

अब रही केवल एक बात। तुम चाहे कैसी भी गरीब स्थितिमें हो, बिना पैसे तो किसीका काम चल ही नहीं सकता। खानेको तो चाहिये ही। जैसे तंगा-तंगीसे यह खर्च चलाते हो, वैसे ही कुछ दान भी नित्य करते रहा करो।

दूसरे श्लोकमें (मङ्गलाचरितैर्दानैः) मङ्गल आचरणोंसे दानका अलग लिखना—इसका यही अभिप्राय है कि जप, तप, पूजा, पाठ एक तरफ और दान एक तरफ।

दान देना कोई सहज बात नहीं है। मनुष्य अपने अमूल्य जीवनके बदलेमें धन प्राप्त करता है। वह धन उसके जीवनका सार है। उस धनको जो दान करता है, वह मानो भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये अपना जीवन अर्पण करता है। इसलिये तुमसे और कुछ सेवा न बन सके, तो अपनी शक्तिभर नित्यप्रति कुछ दान अवश्यमेव करते रहो।



श्रीमद्भागवतमें विशुद्ध भक्ति

(लेखक—श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

श्रीमद्भागवत अलौकिक ग्रन्थ है। इसमें वर्णाश्रम-धर्म, मानवधर्म, कर्मयोग, अष्टाङ्गयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग आदि भगवत्प्राप्तिके सभी साधनोंका बड़ा विशद वर्णन है। परन्तु ध्यानसे देखा जाय तो इसमें भगवान्‌की भक्तिका ही विशेषरूपसे निरूपण किया गया है। साधन और साध्य दोनों प्रकारकी भक्तिका वर्णन है। ग्रन्थका आदि, मध्य और अन्त भक्तिसे ही ओतप्रोत है। पहले ही स्कन्धमें कहा गया है—

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा संप्रसीदति॥
(१।२।६)

'मनुष्योंका सबसे उत्तम धर्म—'परमधर्म' वही है, जिससे श्रीहरिमें निष्काम और अव्यभिचारिणी भक्ति हो। भक्तिसे ही हृदय आनन्दस्वरूप भगवान्‌को प्राप्त करके कृतकृत्य होता है।'

इसी प्रकार १२ वें स्कन्धके अन्तमें कहा गया है—

भवे भवे यथा भक्तिः पादयोस्तव जायते।
तथा कुरुष्व देवेश नाथस्त्वं नो यतः प्रभो॥२२॥
नामसङ्कीर्तनं यस्य सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥२३॥

'हे देवदेव! हे प्रभो! आप ही हमारे स्वामी हैं। ऐसी कृपा कीजिये, जिससे जन्म-जन्ममें आपके चरण-कमलोंमें हमारी भक्ति बनी रहे। जिनका नाम-सङ्कीर्तन सारे पापोंका नाश करनेवाला है और जिन्हें किया हुआ प्रणाम समस्त दुःखोंको शान्त कर देता है, उन परमेश्वर श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ।'

भक्तिकी महिमा कहते हुए स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उद्धवजीसे यहाँतक कह दिया है—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

भक्त्याहमेकया ग्राह्यः श्रद्धयाऽऽत्मा प्रियः सताम्।
भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥
धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि॥
कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना।
विनाऽऽनन्दाश्रुकलया शुध्येद् भक्त्या विनाऽऽशयः॥
वाग् गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥
यथाग्निना हेम मलं जहाति
ध्मातं पुनः स्वं भजते च रूपम्।
आत्मा च कर्मानुशयं विधूय
मद्भक्तियोगेन भजत्यथो माम्॥
(११।१४।२०–२५)

'मेरी बढ़ी हुई भक्ति जिस प्रकार मुझको सहज ही प्राप्त करा सकती है उस प्रकार न तो योग, न ज्ञान, न धर्म, न वेदोंका स्वाध्याय, न तप और न दान ही करा सकता है। मैं संतोंका प्रिय आत्मा हूँ। एकमात्र श्रद्धासम्पन्न भक्तिसे ही मेरी प्राप्ति सुलभ है। दूसरोंकी तो बात ही क्या, कुत्तेका मांस खानेवाले चाण्डालादिको भी मेरी भक्ति पवित्र कर देती है। मनुष्योंमें सत्य और दयासे युक्त धर्म हो तथा तपस्यासे युक्त विद्या भी हो परन्तु मेरी भक्ति न हो, तो वे धर्म और विद्या उनके अन्तःकरणको पूर्णरूपसे पवित्र नहीं कर सकते। मेरे प्रेमसे जबतक शरीर पुलकित नहीं हो जाता, हृदय द्रवित नहीं हो उठता, आनन्दके आँसुओंकी झड़ी नहीं लग जाती, तबतक मेरी ऐसी भक्तिके बिना अन्तःकरण कैसे शुद्ध हो सकता है। भक्तिके आवेशमें जिसकी वाणी गद्गद हो गयी है, चित्त द्रवित हो गया है, जो कभी रोता है,

कभी हँसता है, कभी सङ्कोच छोड़कर ऊँची आवाजसे गाने लगता है और कभी नाच उठता है—ऐसा मेरा भक्त स्वयं पवित्र हो, इसमें तो कहना ही क्या, वह तीनों लोकोंको पवित्र कर देता है। जिस प्रकार अग्निसे तपाये जानेपर सोना मैलको त्याग कर अपने स्वच्छ स्वरूपको प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार मेरे भक्तियोगके द्वारा आत्मा भी कर्मवासनासे मुक्त होकर मुझ भगवान्को प्राप्त हो जाता है।'

भक्तिसे भगवान् वशमें हो जाते हैं। वे कहते हैं—

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः॥
नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना।
श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् येषां गतिरहं परा॥
ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥
मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः।
वशीकुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा॥
साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम्।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥
(९।४।६३-६६, ६८)

'मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ और अस्वतन्त्रकी तरह हूँ। मेरे साधुहृदय भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर रक्खा है। मैं उन भक्तोंका सदा ही प्यारा हूँ। ब्रह्मन्! अपने भक्तोंका एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ। उनको और किसीका आश्रय है ही नहीं। इसलिये अपने उन साधुस्वभाव भक्तोंको छोड़कर न तो मैं अपने-आपको चाहता हूँ और न अपनी अर्द्धाङ्गिनी विनाशरहित लक्ष्मीको ही। जो मेरे भक्त अपने स्त्री, पुत्र, घर, कुटुम्बी, प्राण, धन, इहलोक और परलोक—सबको छोड़कर केवल मेरी शरणमें आ गये हैं भला, उन भक्तोंको मैं कैसे छोड़ सकता हूँ। जिस प्रकार सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही अपने हृदयको मुझमें प्रेम-बन्धनसे बाँध रखनेवाले वे समदर्शी साधु पुरुष भक्तिके द्वारा मुझे अपने वशमें कर लेते हैं। अधिक क्या कहूँ, वे मेरे प्रेमी साधु पुरुष मेरे हृदय हैं और मैं उन प्रेमी साधुओंका हृदय हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता।'

एक जगह तो भगवान्ने यहाँतक कह दिया है—

अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेत्यङ्घ्रिरेणुभिः॥
(११।१४।१६)

'मैं उन भक्तोंके पीछे-पीछे सदा इसलिये फिरा करता हूँ कि उनकी चरणरजसे पवित्र हो जाऊँ।'

सचमुच भक्तिकी ऐसी ही महिमा है। भक्ति ऐसी अनुपम वस्तु है कि यह जिसके पास होती है, वह जो कुछ चाहता है वही उसे मिल जाता है। भगवान्ने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप॥
(११।५४)

'परन्तु हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्तिके द्वारा इस प्रकार मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।'

भगवान्की प्रेमलक्षणा भक्ति ऐसी ही है। श्रीमद्भागवतमें इसी प्रेमलक्षणा भक्तिका तथा इसे प्राप्त करानेवाली वैधी भक्तिका बड़ा ही सुन्दर वर्णन है।

श्रीमद्भागवतका दशम स्कन्ध तो भक्तिसे भरपूर है। भगवान्की विविध लीलाओंका अत्यन्त सुमधुर वर्णन होनेसे उसके पढ़ने-सुननेमें बड़ा ही रस आता है। इस दशम स्कन्धमें भगवान्की कुछ ऐसी लीलाओंका वर्णन है, जिन्हें पढ़कर अज्ञ लोग भगवान्पर लाञ्छन लगानेसे नहीं चूकते। वे कहते हैं, भगवान्का तो प्रत्येक कार्य आदर्शरूप है, फिर उनके लिये चोरी, कपट, काम, रमण आदिके प्रसङ्ग कैसे आते हैं।

वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। झूठ-कपट और चोरी-जारी आदि दोष तो उन साधारण मनुष्योंमें ही नहीं रह सकते, जो अनन्य मनसे भगवान्‌का स्मरण करने लगते हैं। फिर साक्षात् भगवान्‌में तो ऐसे दोषोंकी कल्पना ही क्योंकर की जा सकती है। भगवान्‌का तो अवतार ही हुआ था—साधुओंका उद्धार, दुष्टोंके लिये दण्ड-विधान और धर्मकी संस्थापना करनेके लिये। वे ऐसा कोई काम करते ही कैसे, जिससे साधुओंके बदले दुष्टोंके दुराचारको प्रोत्साहन मिलता तथा धर्मकी जड़ उखड़ती? भगवान्‌ने स्वयं अपने श्रीमुखसे घोषणा की है—

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥
न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः॥
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद् विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥
(गीता ३। २१–२५)

'श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी वैसा-वैसा ही आचरण करते हैं; वह पुरुष जो प्रमाण कर देता है, समस्त मनुष्य-समुदाय उसीके अनुसार वर्तने लग जाता है। इसलिये हे अर्जुन! यद्यपि मुझे तीनों लोकोंमें कुछ भी कर्तव्य नहीं है तथा प्राप्त होने योग्य कोई भी वस्तु अप्राप्त नहीं है, तो भी मैं कर्ममें ही वर्तता हूँ। क्योंकि यदि मैं सावधान हुआ कदाचित् कर्ममें न वर्तूं, तो बड़ी हानि हो जाय। क्योंकि हे अर्जुन! मनुष्यमात्र सब प्रकारसे मेरे वर्ताव-के अनुसार ही बर्तते हैं तथा यदि मैं कर्म न करूँ, तो ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ और मैं सङ्करताका करनेवाला होऊँ तथा इस सारी प्रजाको नष्ट करनेवाला बनूँ। हे भारत! कर्ममें आसक्त हुए अज्ञानीजन जैसे कर्म करते हैं, वैसे ही अनासक्त हुआ विद्वान् भी लोक-शिक्षाको चाहता हुआ कर्म करे।'

इस प्रकार कहनेवाले स्वयं भगवान् कोई भी ऐसा काम करें, जिससे लोकशिक्षामें बाधा आती हो—यह सम्भव नहीं है। अतएव श्रीमद्भागवतमें जहाँ काम, रमण, रति आदि शब्द आते हैं वहाँ उनका कुत्सित अर्थ न करके दूसरा ही अर्थ करना चाहिये और वही है भी। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥
(१०। ९-१०)

'वे निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले, मुझमें ही अपने प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही सदा सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर 'रमण' करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक मुझे भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ कि जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।' यह साधनावस्थाका वर्णन है, यहाँ अभी साधकको भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हुई है। इन श्लोकोंमें भक्तकी उस मानसिक स्थितिका वर्णन है, जिसके फलस्वरूप उसे भगवान्‌की प्राप्ति होगी। यहाँ मानसिक इन्द्रियोंसे ही वह भगवान्‌को देखता, सुनता और रमण करता है। भक्तका यह भगवान्‌में रमण करना कदापि कुत्सित इन्द्रियोंका कार्य नहीं है। यह परम पवित्र मानसिक भाव है। इसी मानसिक भावसे वह भगवान्‌का चिन्तन करता है, उनका संस्पर्श पाता है और उनके साथ भाषण करता है। भागवतमें वर्णित रमण, काम आदि शब्दोंका भी कुछ ऐसा ही तात्पर्य समझना चाहिये।

भगवान्‌पर किसी भी कुत्सित क्रियाका आरोप करना तो अपनी कुत्सित वृत्तिका ही परिणाम है।

यह जो कहा जाता है कि भक्तिके शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य—इन पाँच भावोंमें माधुर्य ही सबसे श्रेष्ठ है, सो भावविकासकी दृष्टिसे ऐसा कहना ठीक ही है; परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सभी भक्तोंमें इन सारे भावोंका उत्तरोत्तर प्रादुर्भाव हो या भक्तका कोई-सा भाव किसी दूसरेसे ऊँचा-नीचा हो। अपने-अपने क्षेत्रमें सभी भाव उत्तम हैं और जिस भक्तको जो भाव प्रिय है, उसके लिये वही भाव सर्वोत्तम है। श्रीहनूमान्‌जीके लिये दास्य-भाव ही सर्वोत्तम है। वे किसी भी दूसरे भावके लिये क्या इस दास्यभावका कभी परित्याग कर सकते हैं? वसुदेव-देवकी या नन्द-यशोदाके लिये वात्सल्यभाव ही सर्व-प्रधान है। इसी प्रकार अन्य भावोंके लिये भी समझना चाहिये। फिर यह बात तो किसी भी हालतमें न समझनी चाहिये कि 'मधुर' भावका अर्थ लौकिक स्त्री-पुरुषोंकी तरह कामजनित अङ्ग-सङ्ग या कोई कुत्सित क्रिया हो। वह तो परम पवित्र भाव है जिसमें भक्त अपने भगवान्‌को सर्वथा आत्मनिवेदन करके उन्हींके मधुर चिन्तन, मधुर भाषण और मधुर मिलनमें डूबा रहता है।

श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। वे सारे दोषोंसे सर्वथा रहित और समस्त कल्याणमय गुण-गणोंसे सर्वदा सम्पन्न हैं। उनके नाम-गुण-लीला आदिके श्रवण, मनन और चिन्तन-कथनसे ही मनुष्य परम पवित्र होकर दुर्लभ परमपदको प्राप्त हो जाते हैं; फिर साक्षात् उनमें किसी दोषकी कल्पना ही कैसे हो सकती है। अतएव भगवान्‌की लीलाओंमें जहाँ कहीं ऐसे प्रसंग या वाक्य आये हैं वहाँ परमशुद्ध भावमें ही उनका अर्थ लेना चाहिये, कुत्सित भावमें कदापि नहीं। पूर्वापरका प्रसंग न समझमें आये, तो उसे अपनी अल्प बुद्धिके बाहरकी बात समझकर उसकी आलोचनासे हट जाना चाहिये। न तो यही मानना चाहिये कि ये प्रसङ्ग क्षेपक हैं, न उन्हें कोरे आध्यात्मिक रूपक ही समझना चाहिये और न भूलकर भी ऐसी छूट ही देनी चाहिये कि भगवान्‌में ऐसी बातें हों, तो भी क्या हर्ज है। उन्हें श्रद्धाकी दृष्टिसे सर्वथा परम पवित्र समझना चाहिये। परन्तु अपनी बुद्धि काम नहीं देती—उनके स्वरूपको नहीं खोल पाती, इसलिये उनकी आलोचना न करनी चाहिये।

गोपियोंके प्रेमकी भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं अपने श्रीमुखसे प्रशंसा की है। उद्धव आदि मनीषियोंने उसको मुक्तकण्ठसे सराहा है। यदि गोपियाँ वास्तवमें व्यभिचारदुष्टा होतीं, तो भगवान् उनकी प्रशंसा कैसे करते और क्यों उद्धवादि ही उनकी चरणरज चाहते। गोपियोंकी भक्ति सर्वथा अव्यभिचारिणी और अहैतुकी थी। उनका भाव पवित्र था और उसीके अनुसार उनकी रासलीला भी पवित्र थी। उनका चलना, बोलना, मिलना, नाचना और गाना—सभी कुछ पवित्र था, आनन्द और प्रेमसे परिपूर्ण था। उसमें किसी कुत्सित भावकी कल्पनाको भी गुंजाइश नहीं है। भक्तिके साधनसे काम-क्रोधादि दोषोंकी जड़ उखड़ जाती है। फिर गोपियों-जैसी भक्तिमती स्त्रियोंमें कामादि दोष कैसे रह सकते हैं। उनका 'रास' भगवान्‌के प्रेमका मूर्तिमान् स्वरूप था। वह ऐसा नहीं था, जैसा आजकल लोग धनके लोभसे स्वाँग बना-बनाकर करते हैं।

श्रीमद्भागवतमें कई जगह प्रसंगवश मदिरा, मांस, हिंसा, व्यभिचार, चोरी, असत्यभाषण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, अहङ्कार, असत्य, कपट आदिके प्रकरण आये हैं। उन्हें न तो सिद्धान्त समझना चाहिये और न अनुकरणीय ही। उन्हें सर्वथा हेय समझकर उनका त्याग ही करना चाहिये। असलमें श्रीमद्भागवतमें स्थान-स्थानपर जो इन दोषों-दुर्गुणों और

दुराचारोंके त्यागका आदेश दिया गया है, उसीका पालन करना चाहिये। अच्छे पुरुषोंमें कहीं किसी दोषकी बात आयी है—जैसे ब्रह्माजीके काम, मोह आदि—तो वहाँ यही समझना चाहिये कि काम, मोहकी प्रबलता दिखलाकर बड़ी सावधानीसे उनका सर्वथा त्याग कर देनेके अभिप्रायसे ही वे बातें लिखी गयी हैं। उन्हें न तो विधि मानना चाहिये और न यही मानना चाहिये कि ब्रह्मादि देवताओं, महात्माओं और साधकोंमें ये दोष रहते हैं। कहीं अपवाद या छूटके रूपमें भी उन्हें स्वीकार न करना चाहिये।

श्रीमद्भागवतमें जहाँ-तहाँ काम-व्यभिचारकी निन्दा है, क्रोध और असत्यका विरोध है, चोरी-बरजोरी, हत्या, शिकार और मांससेवन आदिका निषेध है—यहाँतक कि यज्ञकी हिंसा और श्राद्धमें मांसके प्रयोगको भी निषिद्ध बतलाया है। कुछ थोड़े-से उदाहरण देखिये—

यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या।

(५। २६। २०)

'इस लोकमें यदि कोई पुरुष परस्त्रीसे अथवा कोई स्त्री परपुरुषसे व्यभिचार करती है, तो यमदूत उसे 'तप्तसूर्मि' नामक नरकमें ले जाकर कोड़ोंसे पीटते हैं तथा पुरुषको तपाये हुए लोहेकी स्त्रीमूर्तिसे और स्त्रीको तपायी हुई पुरुषमूर्तिसे आलिङ्गन कराते हैं।'

स्वायम्भुव मनु ध्रुवजीसे कहते हैं—

अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना।
येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः॥

(४। ११। ७)

'बेटा! जिसके वशमें होकर तुमने इतने निर्दोष यक्षोंका वध किया है, उस बढ़े हुए क्रोधको अब छोड़ो। क्रोध बड़ा पापी है और साक्षात् नरकका द्वार है।'

बलि राजाने कहा है—

'न ह्यसत्यात्परोऽधर्मः'

'असत्यसे बढ़कर कोई अधर्म नहीं है।'

यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद् वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वापहरत्यन्यस्य वानापदि पुरुषस्तममुत्र राजन् यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिण्डैः संदंशैस्त्वचि निष्कुषन्ति।

(५। २६। १९)

'यहाँ जो व्यक्ति चोरी या बरजोरीसे ब्राह्मणके या आपत्तिकालके बिना ही किसी दूसरे पुरुषके सुवर्ण-रत्नादि पदार्थोंका हरण करता है, उसे मरनेपर यमदूत 'सन्दंश' नामक नरकमें ले जाकर तपाये हुए लोहेके गोलोंसे दागते हैं और संडासीसे उसकी खाल नोचते हैं।'

स्वयं भगवान्‌ने राजा मुचुकुन्दसे कहा है—

क्षात्रधर्मस्थितो जन्तून् न्यवधीर्मृगयादिभिः।
समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः॥

(१०। ५१। ६३)

'तुमने क्षत्रियवर्णमें शिकार आदिके द्वारा बहुत-से पशुओंकी हत्या की थी; अब एकाग्र चित्तसे मेरी उपासना करते हुए तपस्याके द्वारा उस पापको धो डालो।'

कपिलदेवजी कहते हैं—

अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्ततश्च तान्।
पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुग् यात्यधः स्वयम्॥

(३। ३०। १०)

'मनुष्य जहाँ-तहाँसे भयङ्कर हिंसा आदिके द्वारा धन बटोरकर स्त्री-पुत्रादिके पालन-पोषणमें लगा रहता है और उनके पेटसे बचे हुए भागको खाकर पापका फल भोगनेके लिये स्वयं नरकमें जाता है।'

ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान् निरयपतयो यातयित्वा विशसन्ति। (५। २६। २५)

'जो पाखण्डीलोग पाखण्डपूर्ण यज्ञोंमें पशुओंका वध

करते हैं, उन्हें परलोकमें 'वैशस' नरकमें डालकर वहाँके अधिकारी बहुत पीड़ा देकर काटते हैं।'

देवर्षि नारदजीने मरे पशुओंको आकाशमें दिखलाकर राजा प्राचीनबर्हिसे कहा है—

भो भोः प्रजापते राजन् पशून् पश्य त्वयाध्वरे।
संज्ञापिताञ्जीवसंघान् निर्घृणेन सहस्रशः॥
एते त्वां सम्प्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव।
संपरेतमयःकूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः॥
(४।२५।७-८)

'प्रजापालक नरेश! देखो-देखो, तुमने यज्ञमें निर्दयताके साथ जिन हजारों पशुओंकी बलि दी है, उन्हें आकाशमें देखो। ये सब तुम्हारे द्वारा दी हुई पीड़ाओंको याद करते हुए तुमसे बदला लेनेके लिये तुम्हारी बाट देख रहे हैं। जब तुम मरकर परलोकमें जाओगे, तब ये अत्यन्त क्रोधमें भरकर तुम्हें अपने लोहेके-से सींगोंसे छेद डालेंगे।'

देवर्षि नारदजी कहते हैं—

न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद् धर्मतत्त्ववित्।
मुन्यन्नैः स्यात् परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया॥
(७।१५।७)

'धर्मका मर्म जाननेवाला पुरुष श्राद्धमें मांस अर्पण न करे और न स्वयं ही मांस खाये; क्योंकि पितरोंको मुनियोंके योग्य अन्नोंसे (हविष्यान्नसे) जैसी तृप्ति होती है, वैसी पशु-हिंसासे नहीं होती।'

सभी दोषोंको भागवतमें त्याज्य और महान् अशुभ फलदायक बतलाया गया है। विस्तारभयसे यहाँ थोड़े ही उदाहरण दिये गये हैं।

मांसादिकी शास्त्रोंमें जहाँ कहीं विधि मिलती है, वह भी मांसाहारियोंके मांससेवनकी प्रवृत्तिको सीमित करके अन्तमें उसके सर्वथा मिटा देनेके लिये ही है। शास्त्रोंका ध्येय असलमें निवृत्तिकी ओर है। भोगोंसे निवृत्त करानेके उद्देश्यसे ही प्रवृत्तिको मर्यादित करके वे आदेश करते हैं। मनु महाराजने कहा है—

न मांसभक्षणेऽदोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥
(५।५६)

'मांसभक्षण, मद्यपान और मैथुन दोषरहित हों—ऐसी बात नहीं है। प्राणियोंकी यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है, परन्तु निवृत्तिमें महान् फल है।'

श्रीमद्भागवतमें ही स्वयं भगवान्‌के वचन हैं—

ते मे मतमविज्ञाय परोक्षं विषयात्मकाः।
हिंसायां यदि रागः स्याद् यज्ञ एव न चोदना॥
हिंसाविहारा ह्यालब्धैः पशुभिः स्वसुखेच्छया।
यजन्ते देवता यज्ञैः पितृभूतपतीन् खलाः॥
(११।२१।२९-३०)

'ये दुष्ट एवं हिंसाप्रेमी विषयीलोग मेरे गुप्त मतको न जानकर अपने सुखकी इच्छासे पशुओंको मारते हैं और यज्ञोंमें देवताओं, पितरों तथा भूतपतियोंको उनकी बलि चढ़ाते हैं। वेदोंमें हिंसाकी विधि नहीं है; जिन लोगोंका हिंसामें राग है, जिन लोगोंसे हिंसा किये बिना रहा नहीं जाता, वे मनमानी हिंसा न करके केवल यज्ञमें ही पशुओंको मारें। इस प्रकार उनकी उच्छृङ्खल प्रवृत्तिको मर्यादित करनेके लिये ही यज्ञमें हिंसाकी आज्ञा दी गयी है।'

दूसरी बात यह है कि इतिहासोंमें—कथाओंमें वर्णित सभी बातें आचरणीय नहीं होतीं। शास्त्रोंके विधिवाक्य ही आचरणीय होते हैं। निषेधवाक्य उनसे भी अधिक बलवान् होते हैं। शास्त्रोंमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, व्यभिचारादिके लिये कहीं भी विधि नहीं है—निषेध ही है। कहीं प्रासङ्गिक कोई बात हो, तो भी उसे किसी भी अंशमें—किञ्चिन्मात्र भी, कभी, किसी प्रकार भी उपादेय या अवलम्बन करने योग्य न मानना चाहिये।

असलमें जहाँ भगवान्‌की भक्ति होती है, वहाँ तो काम-क्रोधादि दोष रह ही नहीं पाते। श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे।
विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः॥
(६। १२। २२)

'जो मोक्षके स्वामी भगवान् श्रीहरिको भक्ति करता है, वह तो अमृतके समुद्रमें खेलता है। क्षुद्र गढ़ैयामें भरे हुए मामूली गंदे जलके सदृश किसी भी भोगमें या स्वर्गादिमें उसका मन कभी चलायमान नहीं होता।' जब किसी भी भोगकी आसक्ति और कामना ही नहीं होती तब निषिद्ध कर्म, दुर्गुण, दुराचार तो हो ही कैसे सकते हैं। गोसाईंजीने कहा है—

बसइ भगति मनि जेहि उर माहीं।
खल कामादि निकट नहिं जाहीं॥

अतएव यह निश्चय कर लेना चाहिये कि जो यथार्थमें भक्त, साधु या महापुरुष हैं उनका हृदय, उनकी प्रत्येक क्रिया और चेष्टा, उनके उपदेश या भाव, उनके दर्शन और भाषण—सभी पवित्र होते हैं, पवित्र करनेवाले होते हैं। उनके सारे आचरण आदर्श और सब लोगोंके लिये कल्याणकारी होते हैं। यह सोचना चाहिये कि भक्त, संत और महापुरुषोंसे ही यदि जगत्को सदाचार और सद्गुणोंकी समुचित शिक्षा न मिलेगी तो फिर संसारमें सदाचारका आदर्श कौन होगा। अतएव श्रीमद्भागवतमें आये हुए प्रासङ्गिक काम, रमण, रति आदि शब्दोंका और वैसे प्रकरणोंका कोई पुरुष लौकिक गंदे काम, रमण आदि अर्थ करे तो उसे किसी भी अंशमें न मानना चाहिये। समय बड़ा विकट है। आजकल भक्त या साधुका वेष बनाकर न जाने कितने कपटी लोग अपनी दुराकाङ्क्षाओंकी पूर्तिके लिये लोगोंको ठग रहे हैं। ऐसे ही लोग प्रायः सद्ग्रन्थोंके इस प्रकारके प्रकरणोंका और शब्दोंका आश्रय लेकर—उन्हें महापुरुषोंमें अपवाद बतलाकर लोगोंको अपने चंगुलमें फँसाते हैं। संसारके भोलेभाले नर-नारी जो महापुरुषोंके लक्षण और आचरणोंसे पूरे परिचित नहीं हैं, जिन्हें शास्त्रोंमें आये हुए ऐसे प्रकरणों या शब्दोंके अर्थका ठीक-ठीक पता नहीं है, वे लोग उन कामिनी-काञ्चन, इन्द्रियोंके नाना प्रकारके भोग और मान-बड़ाई तथा पूजा-प्रतिष्ठा चाहनेवाले वाचाल दम्भियोंकी बातोंमें फँस जाते हैं। अतएव सभी भाई-बहिनोंसे निवेदन है कि वे सावधान हो जायँ और जिनके आचरणमें ये बुरी बातें दिखलायी दें अथवा जो शास्त्रोंके प्रमाण दे-देकर दुर्गुण, दुराचार, व्यभिचार, चोरी, कपट और असत्य आदिका समर्थन करें उनको महात्मा कभी न मानें। यथार्थ श्रेष्ठ पुरुषमें दुर्गुण-दुराचार होते ही नहीं। वे पर-स्त्री-परद्रव्यकी तो बात ही क्या, शास्त्रानुकूल मान-बड़ाईको स्वीकार करनेमें भी सकुचाते ही हैं।

इसपर यदि कोई कहे कि इतिहासोंमें ज्ञानी पुरुषोंमें भी काम-क्रोध आदिके उदाहरण मिलते हैं, तो इसका उत्तर यह है कि ज्ञानी पुरुषोंमें काम-क्रोध आदि नहीं होते। वे लोकसंग्रहार्थ नाट्य करते हों, तो दूसरी बात है। और यदि वास्तवमें काम-क्रोध हों तो शास्त्रके अनुसार उन्हें भगवत्प्राप्त सिद्ध, महात्मा या यथार्थ ज्ञानवान् न मानना चाहिये।

हाँ, पापी और दुराचारी भी भगवान्की भक्ति अवश्य कर सकते हैं और भक्तिमें लग जानेपर वे भी परम पवित्र बन सकते हैं। श्रीभगवान्ने स्वयं कहा है—

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥
(गीता ९। ३०-३१)

'यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको निरन्तर भजता है, तो वह साधु ही मानने योग्य है। क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चय-पूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।'

भगवान्‌की भक्तिके सभी अधिकारी हैं। कोई किसी भी जातिका हो, उसके अबतक कितने ही नीच आचरण हों, भगवान्‌के शरण होकर उनकी भक्ति करनेसे वह शीघ्र ही पवित्र हो जाता है और अन्तमें पापोंसे सर्वथा मुक्त होकर भगवान्‌को प्राप्त कर लेता है।

इन सब बातोंपर ध्यान देकर प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह अपने जीवनको भजनमय बनानेकी चेष्टा करे। भगवान्‌में अनन्य प्रेम हो—इसके लिये भगवान्‌के नामका जप, उनके गुण-प्रभाव-रहस्य-तत्त्वके ज्ञानसहित उनके स्वरूपका ध्यान और उनकी लीलाओंका श्रवण-कथन-मनन करे। यही मनुष्यका परम कर्तव्य है। जो ऐसा करता है, वह भगवान्‌की भक्तिके प्रभावसे पूर्णमनोरथ हो जाता है। और यदि वह कुछ भी नहीं चाहता, तो भगवान् अपने-आपको ही उसके अर्पण कर देते हैं।

जीवन थोड़ा है, नाना प्रकारके विघ्नोंसे भरा है। जो समय बीत गया, वह तो गया ही। अब शेष बचे हुए जीवनके प्रत्येक क्षणको भगवान्‌की सेवामें—उनके भजनमें लगा देना चाहिये। इसीमें मनुष्य-जीवनकी सार्थकता है। भगवत्प्राप्तिरूप परम कल्याणकी प्राप्ति मनुष्य-जीवनमें ही सम्भव है। उसीको प्राप्त करना चाहिये। दूसरे भोग तो और योनियोंमें भी मिल सकते हैं, परन्तु भगवान्‌की प्राप्ति तो इसी मनुष्यजन्ममें हो सकती है।

श्रीभगवान् कहते हैं—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥
(११।२०।१७)

'यह मनुष्यशरीर समस्त शुभ फलोंकी प्राप्तिका मूल है, यह सत्कर्म करनेवालोंके लिये सुलभ है और दुष्कर्म करनेवालोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। संसार-सागरसे पार जानेके लिये यह सुदृढ़ नौका है। शरण-मात्रसे ही गुरुदेव इसके कर्णधार बन जाते हैं और स्मरणमात्रसे ही मैं अनुकूल वायुके रूपमें इसे लक्ष्यकी ओर बढ़ाने लगता हूँ। इतनी सुविधा होनेपर भी जो इस शरीरके द्वारा संसार-सागरसे पार नहीं हो जाता, वह तो अपने ही हाथों आत्महत्या कर रहा है।'

यही बात भगवान् श्रीरघुनाथजीने अपनी प्रजासे कही है—

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥
नरतनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

कलियुगमें भगवत्प्राप्तिके साधन बहुत सुलभ हैं—भगवान्‌के नाम-सङ्कीर्तनसे ही सारा काम बन सकता है। सत्सङ्ग मिल जाय, फिर तो कहना ही क्या है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥
(१।१८।१३)

'भगवत्-प्रेमी महात्माओंके निमेषमात्रके सङ्गकी तुलना स्वर्गादिकी तो बात ही क्या, पुनर्जन्मका नाश कर देनेवाली मुक्तिके साथ भी नहीं की जा सकती; फिर मर्त्यलोककी राज्यादि सम्पत्ति तो है ही किस गिनतीमें!'

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति ह्येको महान् गुणः।
कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्॥
कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥
(१२।३।५१-५२)

'हे राजन्! कलियुग दोषोंका खजाना है; परन्तु इसमें एक बहुत बड़ा गुण है। वह यह कि कलियुगमें भगवान् श्रीकृष्णके कीर्तनसे ही सारी आसक्तियाँ छूट जाती हैं और परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। सत्ययुगमें समाधिरूप ध्यानयोगसे, त्रेतामें बड़े-बड़े यज्ञोंसे और द्वापरमें विधिपूर्वक पूजा-अर्चाके द्वारा भगवान्की आराधना करनेवालेको जो फल मिलता है वही कलियुगमें केवल श्रीहरिके नामसङ्कीर्तनसे ही मिल जाता है।'

अतएव भक्ति-श्रद्धापूर्वक श्रीभगवान्के नाम-गुणोंका जप-कीर्तन, महापुरुषोंका संग और श्रीमद्भागवत एवं गीता-जैसे ग्रन्थोंका स्वाध्याय करके मनुष्य-जीवनको सफल बनानेकी चेष्टा प्राणपणसे करनी चाहिये।

श्रीकृष्णचन्द्रोदय

(रचयिता—साकेतवासी श्रीबिन्दुजी ब्रह्मचारी)

दिन चार तू, दुर्दैव! और भी दाह ले।
दिलकी हमारे आह और उगाह ले॥
काल तू कर ले, जो हो मनमें तेरे।
कुछ कसर मत तू सतानेमें करे॥ १॥

चूसते जितना बने, तू चूस ले—
हम अनाथोंका हृदय-शोणित भले॥
हे दुःख-जलधर घोर तुम भी गर्ज लो।
खूब छा-छाकर उमड़कर तर्ज लो॥ २॥

नैराश्यरूपी हे निबिडतम अन्धकार!
कर ले, हाँ, भरपूर तू भी स्वाधिकार॥
हे झंझ, विघ्नोंके झकोरो! झोड़ लो।
प्रति अङ्ग औ रग-रग हमारी तोड़ लो॥ ३॥

हे नृशंस कुकंस! तू भी ले सता।
अपना बल-पौरुष सब हमपर ले जता॥
तप ले कुछ दिन और भी अधिकार पा।
कर ले, जो कुछ और मनमें हो छिपा॥ ४॥

हथकड़ी औ बेड़ियाँ भी डाल दे।
क्रूर! कारागारमें तू घाल दे॥
सामने ही हा! हमारे लालको—
कुटिल! तड़पा करके दे दे कालको॥ ५॥

अन्याय-अत्याचारको विस्तार ले।
स्वार्थकी दुर्वृत्तिको तू धार ले॥
आ गया वह दिन है अतिशय ही निकट।
आ गया तव काल है अति ही विकट॥ ६॥

भाद्रपदका घोर तम मिट जायगा।
पापमय कलि-राज्य यह हट जायगा॥
विपद-दल बादल तथा फट जायगा।
यह कराल दुकाल भी कट जायगा॥ ७॥

उज्ज्वल अमल सुन्दर समय आ जायगा।
शुभ शरद-साहित्य सब दिखलायगा॥
स्वच्छ नभपथ मरकती छहरायगा।
दादुरोंका दादरा दह जायगा॥ ८॥

सन्मानसों-सा स्वच्छ जल लहरायगा।
हंसकुल-यश केतु कल फहरायगा॥
वह श्यामसुन्दर चन्द्रमा उग जायगा।
प्रेम-अमृत विश्वमें बरसायगा॥ ९॥

यह कुमुदिनी मेदिनी खिल जायगी।
गन्ध औ मकरन्दसे मिल जायगी॥
हरिजन चकोर सुखी सकल हो जायँगे।
प्रिय-विरहके दुःख सब खो जायँगे॥ १०॥

बंशरीकी ध्वनिसे दिन भर जायँगे।
नव्य जीवन पा सभी तर जायँगे॥
सार गीता विशद रस-आलापमें।
मनसेन्द्रियोंको लय करेगा आपमें॥ ११॥

श्रीमद्भागवत महापुराणमें भक्ति-रसायन

(लेखक—डा० श्रीदुर्गाशङ्करजी नागर)

श्रीमद्भागवत महापुराणद्वारा भारतीय जनताका जो महान् उपकार हुआ है, वह सबपर विदित ही है। इस परमपवित्र ग्रन्थमें अध्यात्म, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, विश्वोत्पत्ति, कालतत्त्व एवं आर्यजातिका इतिहास ऐसी सुन्दर, सरल संस्कृत भाषामें वर्णन किया गया है कि उससे पाठकोंके हृदयमें अनायास ही पवित्र भावोंका अप्रतिहत संस्कार और प्रभाव होता है। कितनी ही कथाओंकी आलङ्कारिक भाषामें रचना हुई है, जिनको समझनेके लिये अध्यात्मज्ञानकी आवश्यकता होती है।

एक महान् विद्वान् हिब्रू डाक्टर राबीन मौनेडिस कहते हैं कि 'पुराणका पाठ करते समय तुम्हें कोई कथा अशक्य—असम्भावित जान पड़े और साधारण बुद्धि जिसे स्वीकार न करे, ऐसी मालूम हो तो निश्चयपूर्वक जानो कि उसमें अत्यन्त गुप्त मर्म भरा हुआ है। इस नियमको लक्ष्यमें रखकर पुराणका अध्ययन और मनन करना चाहिये।'

एक सुप्रसिद्ध आर्य भद्रपुरुष चालीस वर्षतक समाजके कट्टर सदस्य रहकर श्रीमद्भागवत महापुराणके रासलीला पञ्चाध्यायीका नित्य श्रद्धासे पाठ करते हैं और अपना अनुभव इस प्रकार कहते है कि उनका हृद्रोग, हृदयकी तीव्र धड़कन (Palpitation of heart) की व्यथा दूर हो गयी है, और हृद्बलकी वृद्धि होकर मानस एवं शारीरिक स्वास्थ्यमें अतीव लाभ हुआ है, तथा उन्होंने अपनी आयु बीस वर्ष अधिक बढ़ा ली है।

केवल शुष्कज्ञानसे आत्मसन्तृप्ति नहीं होती। ज्ञानको आग्रहसे ठूँस-ठूँसकर दिमागमें भर लेनेसे जीवन सुखी नहीं होता। केवल मस्तिष्क उन्नत कर लेनेसे जीवनकी इतिश्री नहीं होती। आज पाश्चात्त्य जगत्में मानसिक और वैज्ञानिक उन्नतिके द्वारा मानवजातिका कैसा घोर अहित हो रहा है, ज्ञानकी कैसी विडम्बना हो रही है, रजोगुणका कैसा ताण्डवनृत्य हो रहा है—यह किसीसे छिपा नहीं है।

श्रीमद्भागवत महापुराणद्वारा प्रतिपादित भागवत-धर्मके प्रचारकी मानवजातिके कल्याणके लिये इस समय नितान्त आवश्यकता है। विश्वव्यापी प्रेम (Universal Love) की भावना सकल विश्वमें व्याप्त होनेके लिये भक्तिमार्गके अनुसरण करनेकी आवश्यकता है। इसी भक्ति-तत्त्वको हृदयङ्गम करनेसे सबमें एकता, सबमें समानता और अभिन्नताका भाव फैल सकता है। प्रेम और भक्तिके पवित्र जलमें स्नान किये बिना हमारा जीवन सुख शान्तिमय नहीं बन सकता।

प्रेम क्या है? इसका स्रोत कहाँ है? प्रेमका अटूट झरना परमात्मामें है। परमात्मा कहाँ है? परमात्मा तुम्हारे भीतर है, बाहर है, चारों ओर है। परमात्मप्रेमके लिये सब कुछ त्याग कर दो, आत्मसमर्पण कर दो, फिर तुम्हे प्रेम अथवा भक्तितत्त्वका रहस्य समझमें आयगा।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
(श्रीमद्भागवत ७। ५। २३)

श्रीमद्भागवतमें नौ प्रकारकी भक्ति बतलायी गयी है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन। दसवीं प्रेमलक्षणा और ग्यारहवीं परा भक्ति।

भक्ति और उपासनाका विषय इतना व्यापक है कि इस छोटे-से लेखमें उसका विवेचन नहीं हो सकता। भक्तिकी प्रथम सीढ़ी बाह्योपासना है और दूसरा सोपान आन्तरोपासना है।

पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य और सख्य भक्तिमार्ग-

के बहिरंग साधन हैं । स्मरण, आत्मनिवेदन आदि अन्तरंग साधन हैं । श्रवण और कीर्तन बाह्यान्तरमिश्र साधन हैं । इन साधनोंसे बहिर्मुख वृत्तिको अन्तर्मुख किया जाय । भक्तिका मुख्य लक्षण यही है कि भक्तकी बहिर्मुख वृत्तियाँ लौकिक पदार्थोंकी ओरसे हटकर—अन्तर्मुख होकर इष्टस्वरूपमें लीन हों । इस प्रकार वृत्तियाँ अन्तर्मुख होकर संयमके द्वारा अपने कारणमें लय हो जाती हैं । प्रधान अहं-वृत्तिको मूल स्वरूपमें शमन कर देना ही भक्तिकी पराकाष्ठा है । इस प्रकार अहं-वृत्तिको अपने मूल कारणरूप परमात्मामें लीन करना ही आन्तरोपासना है ।

सा परानुरक्तिरीश्वरे । (शाण्डिल्य)

सच्ची भक्ति उसे कहते हैं जिसमें परमात्मा अथवा इष्टदेवके प्रति निरतिशय प्रेम हो । जगत्के पदार्थोंके प्रति जो प्रेम होता है, उसे राग कहते हैं । धनादि विषयोंके प्रति जो प्रेम है, उसे आसक्ति कहते हैं । परमात्मप्रेमको ही 'भक्ति' कहते हैं ।

आजकल तो 'भक्त' शब्दका ही दुरुपयोग हो रहा है । यह वेचारा वड़ा भक्त है, अर्थात् पुरुषत्वहीन है या पाखण्डी है । इस प्रकार लोग भक्तिका मजाक उड़ाते हैं । यथार्थ भक्तिको समझनेवाले वहुत थोड़े हैं । यान्त्रिक भक्तिके करनेवाले असंख्य हैं ।

साधना-भक्तिसे मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? शुद्ध भक्ति और परमात्मप्रेमसे मनुष्यमें दैवी ऐश्वर्य प्रकट होता है ।

जो केवल परमात्माको ही अपना सर्वेसर्वा मान लेता है, वह तो असम्भव-से-असम्भव कार्यको सम्भव कर देता है । ध्रुव-जैसा छोटा-सा वालक वीहड़ जंगलमें अकेला वैठकर परमात्माकी भक्तिमें तन्मय हो जाता है ।

आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् ।
ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकम्पिरे ॥
(श्रीमद्भागवत ४ । ८ । ७८)

उसकी साधना-भक्तिसे तीनों लोक कम्पायमान हो गये । यह है भगवद्भक्तिका पराक्रम !

संसारमें लोग क्या चाहते हैं ? दु:ख-क्लेशकी निवृत्ति । आज असंख्य मनुष्य शारीरिक कष्टसे विकल हो रहे हैं; अनेक चिन्ता, भय आदि मानस क्लेशोंसे सन्तप्त हो रहे हैं और व्यर्थमें परेशान होकर महादु:खी हो रहे हैं ।

कोई-कोई दु:ख और क्लेशको थोड़ी देर भूलनेके लिये मादक पदार्थोंका सेवन करते हैं, किन्तु नशेकी खुमारी उतरते ही वेचारे अधिक दुखी हो जाते हैं । उनका शरीर जर्जर हो जाता है, मन और बुद्धि शिथिल हो जाती है । कुछ लोग हारमोनियम या अन्य वाद्य-यन्त्र, संगीत आदि वाह्य साधनोंसे दु:खको विस्मरण करना चाहते हैं, किन्तु अल्पकालके लिये ही दु:खका अभाव होता है । जिनका अन्त:करण निरन्तर सन्तप्त और व्याकुल होता है, उनको तो ये वाह्योपचार एक क्षण भी शान्ति नहीं दे सकते ।

मादक पदार्थके सेवनसे कुछ देरके लिये दुखी मनुष्य दु:ख भूल जाता है, किन्तु दु:ख फिर भूतके समान सवार हो जाता है ।

दुखी स्त्री-पुरुषो ! यदि तुम जीवनकी समस्त चिन्ताओंसे, समस्त क्लेशोंसे और विपत्तियोंसे पीछा छुड़ाना चाहते हो तो भक्ति-रसायनका सेवन करो; इसके समान सस्ती, सुलभ दूसरी महौषध मृत्युलोकमें नहीं है ।

'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'
(श्रीमद्भागवत)

यह स्मरण-भक्ति ही तुम्हारे सव क्लेशोंको, विपदाओंको नाश कर देगी ।

'ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः'
(श्रीमद्भागवत १२ । १३ । १)

जव तुम्हारा मन जगत्में रमण नहीं करेगा और

श्रीमद्भागवत महापुराणमें भक्ति-रसायन

(लेखक—डा० श्रीदुर्गाशङ्करजी नागर)

श्रीमद्भागवत महापुराणद्वारा भारतीय जनताका जो महान् उपकार हुआ है, वह सबपर विदित ही है। इस परमपवित्र ग्रन्थमें अध्यात्म, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, सृष्टि-उत्पत्ति, कालतत्त्व एवं आर्यजातिका इतिहास ऐसी सुन्दर, सरल संस्कृत भाषामें वर्णन किया गया है कि उससे पाठकोंके हृदयमें अनायास ही पवित्र भावोंका अप्रतिहत सञ्चार और प्रभाव होता है। कितनी ही कथाओंकी आलङ्कारिक भाषामें रचना हुई है, जिनको समझनेके लिये अध्यात्मज्ञानकी आवश्यकता होती है।

एक महान् विद्वान् हिब्रू डाक्टर रार्बीन मानेडिस कहते हैं कि 'पुराणका पाठ करते समय तुम्हें कोई कथा अशक्य–असम्भावित जान पड़े और साधारण बुद्धि जिसे स्वीकार न करे, ऐसी मालूम हो तो निश्चयपूर्वक जानो कि उसमें अत्यन्त गुप्त मर्म भरा हुआ है। इस नियमको लक्ष्यमें रखकर पुराणका अध्ययन और मनन करना चाहिये।'

एक सुप्रसिद्ध आर्य भद्रपुरुष चालीस वर्षतक समाजके सदस्य रहकर श्रीमद्भागवत महापुराणके रासलीला पञ्चाध्यायीका नित्य श्रद्धासे पाठ करते हैं और अपना अनुभव इस प्रकार कहते हैं कि उनका हृद्रोग, हृदयकी तीव्र धड़कन (Palpitation of heart) की व्यथा दूर हो गयी है, और हृद्बलकी वृद्धि होकर मानस एवं शारीरिक स्वास्थ्यमें अपार लाभ हुआ है, तथा उन्होंने अपनी आयु बीस वर्ष अधिक बढ़ा ली है।

केवल शुष्कज्ञानसे आत्मतृप्ति नहीं होती। ज्ञानको बाहरसे ठूँस-ठूँसकर दिमागमें भर लेनेसे जीवन सुखी नहीं होता। केवल मस्तिष्क उन्नत कर लेनेसे जीवनकी इतिश्री नहीं होती। आज पाश्चात्त्य जगत्में मानसिक और वैज्ञानिक उन्नतिके द्वारा मानवजातिका कैसा घोर अहित हो रहा है, ज्ञानकी कैसी विडम्बना हो रही है, रजोगुणका कैसा ताण्डवनृत्य हो रहा है—यह किसीसे छिपा नहीं है।

श्रीमद्भागवत महापुराणद्वारा प्रतिपादित भागवत धर्मके प्रचारकी मानवजातिके कल्याणके लिये इस समय नितान्त आवश्यकता है। विश्वव्यापी प्रेम (Universal Love) की भावना सकल विश्वमें व्याप्त होनेके लिये भक्तिमार्गके अनुसरण करनेकी आवश्यकता है। इसी भक्ति-तत्त्वको हृदयङ्गम करनेसे सबमें एकता, सबमें समता और अभिन्नताका भाव फैल सकता है। प्रेम और भक्तिके पवित्र जलमें स्नान किये बिना हमारा जीवन सुख शान्तिमय नहीं बन सकता।

प्रेम क्या है? इसका स्रोत कहाँ है? प्रेमका अटूट झरना परमात्मामें है। परमात्मा कहाँ है? परमात्मा तुम्हारे भीतर है, बाहर है, चारों ओर है। परम प्रेमीके लिये सब कुछ त्याग कर दो, आत्मसमर्पण कर दो, फिर तुम्हें प्रेम अथवा भक्तितत्त्वका रहस्य समझमें आयगा।

> श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
> अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
> (श्रीमद्भागवत ७।५।२३)

श्रीमद्भागवतमें नौ प्रकारकी भक्ति बतलायी गयी है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन। दसवीं प्रेमलक्षणा और ग्यारहवीं परा भक्ति।

भक्ति और उपासनाका विषय इतना व्यापक है कि इस छोटे-से लेखमें उसका विवेचन नहीं हो सकता। भक्तिकी प्रथम सीढ़ी बाह्योपासना है और दूसरा सोपान आन्तरोपासना है।

पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य और सख्य भक्तिमार्ग-

के बहिरंग साधन हैं। स्मरण, आत्मनिवेदन आदि अन्तरंग साधन हैं। श्रवण और कीर्तन बाह्यान्तरमिश्र साधन हैं। इन साधनोंसे बहिर्मुख वृत्तिको अन्तर्मुख किया जाय। भक्तिका मुख्य लक्षण यही है कि भक्तकी बहिर्मुख वृत्तियाँ लौकिक पदार्थोंकी ओरसे हटकर—अन्तर्मुख होकर इष्टस्वरूपमें लीन हों। इस प्रकार वृत्तियाँ अन्तर्मुख होकर संयमके द्वारा अपने कारणमें लय हो जाती हैं। प्रधान अहं-वृत्तिको मूल स्वरूपमें शमन कर देना ही भक्तिकी पराकाष्ठा है। इस प्रकार अहं-वृत्तिको अपने मूल कारणरूप परमात्मामें लीन करना ही आन्तरोपासना है।

सा परानुरक्तिरीश्वरे। (शाण्डिल्य)

सच्ची भक्ति उसे कहते हैं जिसमें परमात्मा अथवा इष्टदेवके प्रति निरतिशय प्रेम हो। जगत्‌के पदार्थोंके प्रति जो प्रेम होता है, उसे राग कहते हैं। धनादि विषयोंके प्रति जो प्रेम है, उसे आसक्ति कहते हैं। परमात्मप्रेमको ही 'भक्ति' कहते हैं।

आजकल तो 'भक्त' शब्दका ही दुरुपयोग हो रहा है। यह बेचारा बड़ा भक्त है, अर्थात् पुरुषत्वहीन है या पाखण्डी है। इस प्रकार लोग भक्तिका मज़ाक उड़ाते हैं। यथार्थ भक्तिको समझनेवाले बहुत थोड़े हैं। यान्त्रिक भक्तिके करनेवाले असंख्य हैं।

साधना-भक्तिसे मनुष्य क्या नहीं कर सकता? शुद्ध भक्ति और परमात्मप्रेमसे मनुष्यमें दैवी ऐश्वर्य प्रकट होता है।

जो केवल परमात्माको ही अपना सर्वेसर्वा मान लेता है, वह तो असम्भव-से-असम्भव कार्यको सम्भव कर देता है। ध्रुव-जैसा छोटा-सा बालक बीहड़ जंगलमें अकेला बैठकर परमात्माकी भक्तिमें तन्मय हो जाता है।

आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम्।
ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकम्पिरे॥
(श्रीमद्भागवत ४। ८। ७८)

उसकी साधना-भक्तिसे तीनों लोक कम्पायमान हो गये। यह है भगवद्भक्तिका पराक्रम!

संसारमें लोग क्या चाहते हैं? दुःख-क्लेशकी निवृत्ति। आज असंख्य मनुष्य शारीरिक कष्टसे विकल हो रहे हैं; अनेक चिन्ता, भय आदि मानस क्लेशोंसे सन्तप्त हो रहे हैं और व्यर्थमें परेशान होकर महादुःखी हो रहे हैं।

कोई-कोई दुःख और क्लेशको थोड़ी देर भूलनेके लिये मादक पदार्थोंका सेवन करते हैं, किन्तु नशेकी खुमारी उतरते ही बेचारे अधिक दुखी हो जाते हैं। उनका शरीर जर्जर हो जाता है, मन और बुद्धि शिथिल हो जाती है। कुछ लोग हारमोनियम या अन्य वाद्य-यन्त्र, संगीत आदि बाह्य साधनोंसे दुःखको विस्मरण करना चाहते हैं, किन्तु अल्पकालके लिये ही दुःखका अभाव होता है। जिनका अन्तःकरण निरन्तर सन्तप्त और व्याकुल होता है, उनको तो ये बाह्योपचार एक क्षण भी शान्ति नहीं दे सकते।

मादक पदार्थके सेवनसे कुछ देरके लिये दुखी मनुष्य दुःख भूल जाता है, किन्तु दुःख फिर भूतके समान सवार हो जाता है।

दुखी स्त्री-पुरुषो! यदि तुम जीवनकी समस्त चिन्ताओंसे, समस्त क्लेशोंसे और विपत्तियोंसे पीछा छुड़ाना चाहते हो तो भक्ति-रसायनका सेवन करो; इसके समान सस्ती, सुलभ दूसरी महौषध मृत्युलोकमें नहीं है।

'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'
(श्रीमद्भागवत)

यह स्मरण-भक्ति ही तुम्हारे सब क्लेशोंको, विपदाओंको नाश कर देगी।

'ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः'
(श्रीमद्भागवत १२। १३। १)

जब तुम्हारा मन जगत्‌में रमण नहीं करेगा और

भगवान्‌में तद्‌गत हो जायगा, तो तुम योगी हो जाओगे। तुम्हें जगत्‌का और जगत्‌के क्लेशोंका अभाव हो जायगा। इस प्रकार अपने इष्टदेवमें लय कर देनेसे तुम्हें देह-गेहकी सुध न रहेगी। तुम उस अवस्थामें पहुँच जाओगे जहाँ शान्ति, सुख और आनन्दकी निरन्तर वर्षा होती है।

संसारके पदार्थोंके लिये, प्रसिद्धिके लिये तुम रात-दिन रोते रहते हो, हाय-हाय करते हो, आकाश-पाताल एक करते हो। क्या तुमने परमात्मप्रेमके लिये कभी दो आँसू टपकाये हैं? महात्मा रामकृष्ण परमहंसको जिस दिन परमात्माका प्रेमसे स्मरण नहीं होता था, दीवालसे सिर फोड़ लेते थे कि आज मेरा दिन व्यर्थ गया, प्रभुका स्मरण नहीं हुआ और नेत्रोंसे प्रेमाश्रु नहीं निकले।

श्रीमद्भागवतमें गोपियोंके प्रेमका कैसा सरस वर्णन है—

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः॥

गोपियाँ रातभर जङ्गलमें भगवान् श्रीकृष्णजीको ढूँढ़ती फिरीं, और सब प्रयत्न करके थक गयीं। भगवान्‌का कहीं पता न लगा तो घबड़ाकर भगवान्‌के प्रेममें फूट-फूटकर रोने लगीं।

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
(श्रीमद्भागवत)

भगवान् ही परम प्रेमी हैं। उनको प्रेमसे रोते देखकर भगवान्‌से न रहा गया और अन्धकारमें छिपे हुए भगवान् तुरत मुसकराते हुए प्रसन्नवदनसे उनके सम्मुख आ खड़े हुए।

स्मरण रक्खो! पुनः स्मरण रक्खो! जब तुम मरने लगोगे उस समय तुम्हारे कोई काम न आयेगा। धन, धरा, धाम, पुत्र, कलत्र—सभी यहीं रह जानेवाले हैं। तुमको उस समय घोर पश्चात्ताप होगा कि तुमने व्यर्थमें अमूल्य जीवन गँवा दिया।

श्रीमद्भागवतमें क्या ही उत्तम उपदेश है—

जब अन्त समय आ जाय, उस समय शरीर और शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले सम्बन्धियोंसे ममता छोड़ दो और असङ्गशस्त्रसे सब बन्धन काट दो और *भगवद्भजनमें निमग्न होकर निष्पाप हो जाओ।*

किन्तु क्या मरते समय यह उपाय हो सकता है? मृत्यु किस समय हमें उठा ले जायगी, यह किसको पता है? इसलिये वर्तमानमें ही परमात्मासे नाता जोड़ो, मृत्यु मनुष्यजीवनका अमूल्य समय है। ईश्वर है या नहीं, इस तर्क-वितर्कमें पड़कर दुःख-सागरमें गोते मत खाते रहो।

यदि तुम दुःखोंको, क्लेशोंको भगाना चाहते हो तो परमात्मासे प्रेम करो। जगत्‌के सब पदार्थ उसीके हैं, उसकी कृपासे सब कुछ स्वतः प्राप्त हो जायगा।

श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें भक्तिकी कितनी सुन्दर महिमा कथन की है—

निखिलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका।
हरिरपि निजलोकं सर्वथातो विहाय
प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः॥

सारे संसारमें वास्तवमें वह व्यक्ति—चाहे वह महा-भिखारी ही हो—महाभाग्यशाली है कि जिसके हृदयमें परमात्मप्रेम, भगवान्‌की भक्ति निवास करती है। भगवान् उस भक्तके हृदयमें अपना लोक छोड़कर भक्तिरूपी प्रेमके तारसे बँधे हुए भक्तके हृदयमें आ विराजते हैं। कैसा निर्मल प्रेम है, जो हृदयको नवनीतके समान कोमल बना देता है!

ऐ दुखी आत्मा! यदि तू संसारसे सब प्रकारसे निराश हो चुका है, सब तरफसे क्लेशोंसे घिरा हुआ है और तुझे कहीं भी संसारमें विश्राम नहीं मिल रहा है तो प्रातःकाल, सायङ्काल नियमितरूपसे नियत समयपर एकान्तमें साष्टाङ्ग दण्डवत् कर घंटे-आध-घंटेके लिये अपने-आपको भगवान्‌के समर्पण कर दे। परमात्माके

प्रेममें अपनेको भूल जा। ध्यानावस्थित होकर परमात्मामें लीन हो जा।

मन्दिर, मसजिद, गिरजाघरमें प्रार्थना करनेको, भक्ति करनेको न जा सके तो परवा नहीं; किन्तु अपने हृदय-मन्दिरमें श्रद्धा-भक्तिद्वारा नित्य प्रवेश करके अपने परमप्रेमी परमात्मा प्रियतमका साक्षात्कार कर और परमपावन भक्तिके प्रवाहको, तेरे अन्तरात्माके प्रत्येक प्रदेशमें, रोम-रोममें प्रेमको, पवित्रताको, शान्तिको प्रवाहित होने दे।

इस साधनरूपा प्रेमभक्तिसे तू उस दिव्य अवस्थामें पहुँच जायगा, जहाँ तेरे अहंका पता न लगेगा। तू अपना भान भूल जायगा। राग और द्वेषके सब कारण नष्ट हो जायँगे। तू शोकरहित हो जायगा और निरतिशय आनन्दमें मग्न हो जायगा।

इस प्रकार शुद्ध भक्तिद्वारा जब तू भगवान्‌के चरणोंमें लिपट जायगा, प्रेमाश्रुद्वारा भगवान्‌के चरणोंको पखार देगा, परमात्मप्रेममें अपनेको—अपने देह-गेहको सर्वथा भुला देगा, अपने स्वार्थका नाश कर देगा, जब एक क्षण भी तुझे परमात्माके बिना चैन नहीं पड़ेगा, तब परमात्मासे तेरे प्रेमका रोना देखा नहीं जायगा। वे दौड़कर आयँगे, तुझे गोदमें उठा लेंगे, छातीसे लगा लेंगे और प्रेम करेंगे; और उनका वरदहस्त तेरे सिरपर होगा।

ऐसी भक्तिसे क्या नहीं होता? पवित्र भक्ति, निर्मल भक्ति और विशुद्ध प्रेमका दिव्य स्पर्श तेरी आत्माको होगा और तेरे समस्त मनस्ताप और क्लेश भस्मीभूत होकर जीवन परम शान्त और सुखी होगा। क्लेशों और दु:खोंसे मुक्त होनेका भक्ति-रसायन ही सबसे सुलभ और सुगम उपाय है।

श्रीमद्भागवतमें सत्संग-महिमा

सत्संगसे किसीकी तुलना नहीं

भगवत्प्रेमी पुरुषोंके एक क्षण भरके संगके साथ हम न तो स्वर्गकी तुलना करते हैं; न मोक्षकी ही; फिर मर्त्यलोकके धन-वैभवादिकी तो बात ही क्या है।

(शौनकादि ऋषि—१।१८।१३)

सत्संगसे निश्चल प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है

भागवत या भक्तोंका निरन्तर संग करनेसे अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं और उत्तमश्लोक भगवान्‌में अचला प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है।

(सूतजी—१।२।१८)

महापुरुषोंके स्मरणसे ही पवित्रता आती है

जिनके स्मरणमात्रसे ही मनुष्योंके घर पवित्र हो जाते है उनके दर्शन, स्पर्श, चरणप्रक्षालन और आसनादिका सौभाग्य मिलनेपर तो कहना ही क्या है।

(परीक्षित्—१।१९।३३)

सत्संग मोक्षका खुला दरवाजा है

विद्वानोंने संगको ही आत्माका कठिन बन्धन बतलाया है; परन्तु वही संग यदि साधुओंका हो, तो वह मोक्षका खुला द्वार हो जाता है।

(भगवान् कपिलदेव—३।२५।२०)

सत्संगसे विषयोंका स्मरण छूट जाता है

भगवन्! आपके चरणकमलमकरन्दकी सुगन्धमें जिनका मन लुभाया हुआ है, उन महापुरुषोंका जो लोग संग करते हैं वे उस संगमें इतने मग्न हो जाते हैं कि उन्हें अपने इस अत्यन्त प्रिय शरीर और इसके सम्बन्धी पुत्र, मित्र, स्त्री, धन और घरकी कुछ भी सुधि नहीं रह जाती।

(ध्रुव—४।९।१२)

महापुरुषोंका चरणस्पर्श तीर्थोंको भी पवित्र करता है

संतपुरुष तीर्थोंको पवित्र करनेके लिये ही पृथ्वीपर पैदल विचरा करते हैं; उन आपके भक्तोंका संग संसार-भयसे डरे हुए लोगोंको कैसे रुचिकर न होगा?

(प्रचेतागण—४।३०।३७)

महापुरुषकी चरणरजके सेवनके बिना बुद्धि भगवच्चरणोंमें नहीं लगती

वेदोंका अध्ययन करनेवाले लोग भी जबतक परम-त्यागी महापुरुषोंकी पवित्र चरणरजसे अपने मस्तकको नहीं नहलाते, तबतक उनकी बुद्धि भगवान्के चरणोंका स्पर्श नहीं कर सकती; भगवच्चरणोंमें बुद्धि लगनेसे ही जन्म-मृत्युमय अनर्थरूप संसारसे छुटकारा मिलता है।

(प्रह्लाद–७ । ५ । ३२)

महापुरुषकी चरणरजका सेवन किये बिना तत्त्वज्ञान और प्रेम नहीं मिलता

राजा रहूगण! भगवत्तत्त्वका ज्ञान और भगवत्प्रेम तप, यज्ञ, दान, गृहस्थोचित धर्मपालन, वेदाध्ययन, तीर्थ-स्नान, अग्नि और सूर्यकी उपासना आदि किसी भी साधन-से नहीं मिलता, वह तो महापुरुषोंकी चरणरजमें स्नान करनेसे ही मिलता है।

(जडभरत–५ । १२ । १२)

सत्संगसे ही भगवान्में प्रेम उत्पन्न होता है

भगवन्! जब इस संसार-चक्रमें भटकते हुए प्राणीके जन्म-मरणरूप चक्करका अन्त निकट आता है, तब उसे सत्संगकी प्राप्ति होती है। और सत्संग मिलते ही सत्पुरुषोंके आश्रय और कार्य-कारणके नियन्ता आप भगवान्के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

(मुचुकुन्द–१० । ५१ । ५४)

भक्त महापुरुषोंके दर्शन बहुत कठिन हैं

जीवको पहले तो इस क्षणभङ्गुर मनुष्य-शरीरका ही मिलना कठिन है और उसमें भी भगवान्के प्यारे भक्तोंका दर्शन मैं और भी दुर्लभ समझता हूँ।

(विदेह–११ । २ । २९)

सत्संग सारे अनर्थोंको हर लेता है

जिस प्रकार अग्निदेवका आश्रय लेनेवाले पुरुषके शीत, भय और अन्धकार—तीनोंकी निवृत्ति हो जाती है उसी प्रकार साधुओंका सेवन करनेसे पापरूपी शीत, जन्म-मरणरूप भय और अज्ञानरूप घोर अन्धकार—तीनों मिट जाते हैं।

(श्रीभगवान्–११ । २६ । ३१)

संतपुरुष ही संसारसे तारनेवाली नौका हैं

इस संसार-सागरमें डूबने-उतरानेवाले (नीची-ऊँची योनियोंमें भटकनेवाले) पुरुषोंके लिये ब्रह्मको जाननेवाले शान्तचित्त साधु पुरुष वैसे ही परम अवलम्बन हैं, जैसे जलमें डूबते हुओंके लिये नौका।

(श्रीभगवान्–११ । २६ । ३२)

संतपुरुष ही परम आश्रय हैं

जैसे अन्न ही प्राणियोंका प्राण है, दुखियों और पीड़ितोंका मैं ही सहारा हूँ; और परलोकमें काम आने-वाला धर्म ही जैसे मनुष्यका परम धन है, वैसे ही जो भवभयसे व्याकुल हैं उनके लिये सन्तपुरुष ही परम आश्रय हैं।

(श्रीभगवान्–११ । २६ । ३३)

भगवान् सत्संगसे ही सहजमें वशमें होते हैं

सारी भोगासक्तियोंका नाश करनेवाले सत्संगसे मैं जैसा वशमें होता हूँ वैसा योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, इष्ट, पूर्त, दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, यम और नियम—किसीसे भी नहीं होता।

(श्रीभगवान्–११ । १२ । १-२)

भगवान् साधु भक्तोंके पराधीन हैं

हे दुर्वासाजी! मैं भक्तके पराधीन हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। उन साधु भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर लिया है और मैं भी उन भक्तोंका सदा प्रिय हूँ। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने साधु पतिको वशमें कर लेती है, उसी प्रकार समदर्शी साधु पुरुष मुझे अपने अधीन कर लेते हैं। साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय

हूँ; वे मुझको छोड़कर और किसीको नहीं जानते और मैं उनको छोड़कर और किसीको नहीं जानता ।

(श्रीभगवान्–९ । ४ । ६३–६६, ६८)

साधु कौन हैं ?

जो सुख-दु:ख, हानि-लाभको आनन्दसे सहते हैं, दयालु स्वभाव हैं, बिना ही कारण प्राणीमात्रका हित चाहते हैं, जिनके मन कोई शत्रु पैदा ही नहीं हुआ, जिनकी वृत्तियाँ भगवान्‌में शान्त हो गयी हैं, जिनमें साधुता भरी है, जो अनन्यभावसे मेरी (भगवान्‌की) सुदृढ़ भक्ति करते हैं, जो मेरे (भगवान्‌के) लिये समस्त स्वजन-बान्धवोंको तथा कर्म एवं कर्मफलोंका त्याग कर देते हैं, जो मेरी ही चर्चा करते हैं तथा मेरी लीला-कथाओंको परस्पर कहते-सुनते रहते हैं, जो मेरे ही आश्रित हैं, उन भक्तोंको संसारके त्रिविध ताप कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचा सकते । जिनकी मुझको छोड़कर भीतर-बाहर, लोक-परलोक—कहीं भी किसी भी वस्तुमें तनिक भी आसक्ति नहीं है—ऐसे महापुरुष ही साधु होते हैं, इन्हींका संग करना चाहिये । क्योंकि इनका संग विषयासक्तिके समस्त दोषोंका नाश कर देता है ।

(श्रीकपिलभगवान्–३ । २५ । २१–२४)

श्रेष्ठ साधुमें ये लक्षण होते हैं

जो किसी भी प्राणीके दु:खको देख नहीं सकता, द्रवित हो जाता है और उसको दु:खसे छुड़ाना चाहता है, किसीसे भी द्रोह नहीं करता, सब कुछ सहता है और अपराध करनेवालेका भी कल्याण चाहता है, सत्य-परायण है, निर्मलचित्त है, समदर्शी है, सबका भला करता है, जिसकी बुद्धि विषय-कामनाओंसे मारी नहीं गयी है, जिसकी इन्द्रियाँ पूर्णतया वशमें हैं, जिसका स्वभाव कोमल है, जो सदाचारी है, सर्वस्व-त्यागी है, किसी भी वस्तुकी जिसे इच्छा नहीं है, जो जीवन-धारणके लिये ही सात्त्विक आहार परिमित मात्रामें करता है—स्वादके वश कुछ नहीं खाता, जिसका अन्त:करण शान्त है, जिसकी बुद्धि मुझ (भगवान्) में स्थिर है, जो मुझ (भगवान्) को ही अपना एकमात्र आश्रय समझता है, जो सदा-सर्वदा भगवत्स्वरूपका मनन करता है, जो किसी प्रकारका भी प्रमाद (न करने योग्य कार्य) नहीं करता, जिसका आशय बड़ा गम्भीर है—जो किसी बातसे भी उखड़ता नहीं, जो विपत्तिमें भी धीरज रखता है, जो भूख, प्यास, शोक, मोह, जन्म, मृत्यु—देहके इन छ: धर्मोंको जीत चुका है, जो स्वयं जरा भी मान नहीं चाहता और दूसरोंका सम्मान करता है, जो अपनी साधनाके संरक्षणमें समर्थ है, जो सबके साथ मित्रताका बर्ताव करता है, करुणाभावसे युक्त है और जिसको परमात्माके तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो चुकी है, वही साधु है ।

(श्रीभगवान्–११ । ११ । २९–३१)

महात्मा भगवान्‌को सबसे बढ़कर प्रिय हैं

हे उद्धवजी ! आप-सरीखे भक्त मुझको जैसे प्यारे हैं, वैसे प्यारे न तो मेरी नाभिसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा हैं और न मेरे स्वरूपभूत शङ्करजी, बलदेवजी, लक्ष्मीजी और मेरी आत्मा ही । ऐसे निरपेक्ष, मननशील, शान्त-चित्त, वैररहित, समदर्शी महात्माओंके पीछे-पीछे तो मैं इस दृष्टिसे फिरा करता हूँ कि कहीं इनकी चरणरज मिल जाय तो मैं पवित्र हो जाऊँ ।

(श्रीभगवान्–११ । १४ । १५-१६)

महापुरुषकी सेवा ही मुक्तिका द्वार है

महापुरुषोंकी सेवा मुक्तिका द्वार है और स्त्रीसङ्गियोंका सङ्ग नरकका । महापुरुष वे ही हैं जो समचित्त, अत्यन्त शान्तस्वभाव, क्रोधहीन, सबके सुहृद् और साधुताके गुणोंसे सम्पन्न हैं ।

(ऋषभदेव–५ । ५ । २)

असाधु मनुष्योंका संग कभी न करना चाहिये

जो मनुष्य शिश्नोदरपरायण (जो जननेन्द्रियके तथा

महापुरुषकी चरणरजके सेवनके बिना बुद्धि भगवच्चरणोंमें नहीं लगती

वेदोंका अध्ययन करनेवाले लोग भी जबतक परम-त्यागी महापुरुषोंकी पवित्र चरणरजसे अपने मस्तकको नहीं नहलाते, तबतक उनकी बुद्धि भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श नहीं कर सकती; भगवच्चरणोंमें बुद्धि लगनेसे ही जन्म-मृत्युमय अनर्थरूप संसारसे छुटकारा मिलता है।

(प्रह्लाद–७ । ५ । ३२)

महापुरुषकी चरणरजका सेवन किये बिना तत्त्वज्ञान और प्रेम नहीं मिलता

राजा रहूगण ! भगवत्तत्त्वका ज्ञान और भगवत्प्रेम तप, यज्ञ, दान, गृहस्थोचित धर्मपालन, वेदाध्ययन, तीर्थ-स्नान, अग्नि और सूर्यकी उपासना आदि किसी भी साधन-से नहीं मिलता, वह तो महापुरुषोंकी चरणरजमें स्नान करनेसे ही मिलता है।

(जडभरत–५ । १२ । १२)

सत्संगसे ही भगवान्‌में प्रेम उत्पन्न होता है

भगवन् ! जब इस संसार-चक्रमें भटकते हुए प्राणीके जन्म-मरणरूप चक्करका अन्त निकट आता है, तब उसे सत्संगकी प्राप्ति होती है । और सत्संग मिलते ही सत्पुरुषोंके आश्रय और कार्य-कारणके नियन्ता आप भगवान्‌के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

(मुचुकुन्द–१० । ५१ । ५४)

भक्त महापुरुषोंके दर्शन बहुत कठिन हैं

जीवको पहले तो इस क्षणभङ्गुर मनुष्य-शरीरका ही मिलना कठिन है और उसमें भी भगवान्‌के प्यारे भक्तोंका दर्शन मैं और भी दुर्लभ समझता हूँ।

(विदेह–११ । २ । २९)

सत्संग सारे अनर्थोंको हर लेता है

जिस प्रकार अग्निदेवका आश्रय लेनेवाले पुरुषके शीत, भय और अन्धकार—तीनोंकी निवृत्ति हो जाती है उसी प्रकार साधुओंका सेवन करनेसे पापरूपी शीत, जन्म-मरणरूप भय और अज्ञानरूप घोर अन्धकार—तीनों मिट जाते हैं।

(श्रीभगवान्–११ । २६ । ३१)

संतपुरुष ही संसारसे तारनेवाली नौका हैं

इस संसार-सागरमें डूबने-उतरानेवाले (नीची-ऊँची योनियोंमें भटकनेवाले) पुरुषोंके लिये ब्रह्मको जाननेवाले शान्तचित्त साधु पुरुष वैसे ही परम अवलम्बन हैं, जैसे जलमें डूबते हुओंके लिये नौका।

(श्रीभगवान्–११ । २६ । ३२)

संतपुरुष ही परम आश्रय हैं

जैसे अन्न ही प्राणियोंका प्राण है, दुखियों और पीड़ितोंका मैं ही सहारा हूँ; और परलोकमें काम आने-वाला धर्म ही जैसे मनुष्यका परम धन है, वैसे ही जो भवभयसे व्याकुल हैं उनके लिये संतपुरुष ही परम आश्रय हैं।

(श्रीभगवान्–११ । २६ । ३३)

भगवान् सत्संगसे ही सहजमें वशमें होते हैं

सारी भोगासक्तियोंका नाश करनेवाले सत्संगसे मैं जैसा वशमें होता हूँ वैसा योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, इष्ट, पूर्त, दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, यम और नियम—किसीसे भी नहीं होता।

(श्रीभगवान्–११ । १२ । १-२)

भगवान् साधु भक्तोंके पराधीन हैं

हे दुर्वासाजी ! मैं भक्तके पराधीन हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। उन साधु भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर लिया है और मैं भी उन भक्तोंका सदा प्रिय हूँ। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने साधु पतिको वशमें कर लेती है, उसी प्रकार समदर्शी साधु पुरुष मुझे अपने अधीन कर लेते हैं। साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय

हूँ; वे मुझको छोड़कर और किसीको नहीं जानते और मैं उनको छोड़कर और किसीको नहीं जानता।

(श्रीभगवान्–९ । ४ । ६३–६६, ६८)

साधु कौन हैं ?

जो सुख-दुःख, हानि-लाभको आनन्दसे सहते हैं, दयालु स्वभाव हैं, बिना ही कारण प्राणीमात्रका हित चाहते हैं, जिनके मन कोई शत्रु पैदा ही नहीं हुआ, जिनकी वृत्तियाँ भगवान्‌में शान्त हो गयी हैं, जिनमें साधुता भरी है, जो अनन्यभावसे मेरी (भगवान्‌की) सुदृढ़ भक्ति करते हैं, जो मेरे (भगवान्‌के) लिये समस्त स्वजन-बान्धवोंको तथा कर्म एवं कर्मफलोंका त्याग कर देते हैं, जो मेरी ही चर्चा करते हैं तथा मेरी लीला-कथाओंको परस्पर कहते-सुनते रहते हैं, जो मेरे ही आश्रित हैं, उन भक्तोंको संसारके त्रिविध ताप कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। जिनकी मुझको छोड़कर भीतर-बाहर, लोक-परलोक—कहीं भी किसी भी वस्तुमें तनिक भी आसक्ति नहीं है—ऐसे महापुरुष ही साधु होते हैं, इन्हींका संग करना चाहिये। क्योंकि इनका संग विषयासक्तिके समस्त दोषोंका नाश कर देता है।

(श्रीकपिलभगवान्–३ । २५ । २१–२४)

श्रेष्ठ साधुमें ये लक्षण होते हैं

जो किसी भी प्राणीके दुःखको देख नहीं सकता, द्रवित हो जाता है और उसको दुःखसे छुड़ाना चाहता है, किसीसे भी द्रोह नहीं करता, सब कुछ सहता है और अपराध करनेवालेका भी कल्याण चाहता है, सत्य-परायण है, निर्मलचित्त है, समदर्शी है, सबका भला करता है, जिसकी बुद्धि विषय-कामनाओंसे मारी नहीं गयी है, जिसकी इन्द्रियाँ पूर्णतया वशमें हैं, जिसका स्वभाव कोमल है, जो सदाचारी है, सर्वस्व-त्यागी है, किसी भी वस्तुकी जिसे इच्छा नहीं है, जो जीवन-धारणके लिये ही सात्त्विक आहार परिमित मात्रामें करता है—स्वादके वश कुछ नहीं खाता, जिसका अन्तःकरण शान्त है, जिसकी बुद्धि मुझ (भगवान्) में स्थिर है, जो मुझ (भगवान्) को ही अपना एकमात्र आश्रय समझता है, जो सदा-सर्वदा भगवत्स्वरूपका मनन करता है, जो किसी प्रकारका भी प्रमाद (न करने योग्य कार्य) नहीं करता, जिसका आशय बड़ा गम्भीर है—जो किसी बातसे भी उखड़ता नहीं, जो विपत्तिमें भी धीरज रखता है, जो भूख, प्यास, शोक, मोह, जन्म, मृत्यु—देहके इन छः धर्मोंको जीत चुका है, जो स्वयं जरा भी मान नहीं चाहता और दूसरोंका सम्मान करता है, जो अपनी साधनाके संरक्षणमें समर्थ है, जो सबके साथ मित्रताका वर्ताव करता है, करुणाभावसे युक्त है और जिसको परमात्माके तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो चुकी है, वही साधु है।

(श्रीभगवान्–११ । ११ । २९–३१)

महात्मा भगवान्‌को सबसे बढ़कर प्रिय हैं

हे उद्धवजी ! आप-सरीखे भक्त मुझको जैसे प्यारे हैं, वैसे प्यारे न तो मेरी नाभिसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा हैं और न मेरे स्वरूपभूत शङ्करजी, बलदेवजी, लक्ष्मीजी और मेरी आत्मा ही। ऐसे निरपेक्ष, मननशील, शान्त-चित्त, वैररहित, समदर्शी महात्माओंके पीछे-पीछे तो मैं इस दृष्टिसे फिरा करता हूँ कि कहीं इनकी चरणरज मिल जाय तो मैं पवित्र हो जाऊँ।

(श्रीभगवान्–११ । १४ । १५-१६)

महापुरुषकी सेवा ही मुक्तिका द्वार है

महापुरुषोंकी सेवा मुक्तिका द्वार है और स्त्रीसङ्गियों-का सङ्ग नरकका। महापुरुष वे ही हैं जो समचित्त, अत्यन्त शान्तस्वभाव, क्रोधहीन, सबके सुहृद् और साधुताके गुणोंसे सम्पन्न हैं।

(ऋषभदेव–५ । ५ । २)

असाधु मनुष्योंका संग कभी न करना चाहिये

जो मनुष्य शिश्नोदरपरायण (जो जननेन्द्रियके तथा

महापुरुषकी चरणरजके सेवनके बिना बुद्धि भगवच्चरणोंमें नहीं लगती

वेदोंका अध्ययन करनेवाले लोग भी जबतक परम-त्यागी महापुरुषोंकी पवित्र चरणरजसे अपने मस्तकको नहीं नहलाते, तबतक उनकी बुद्धि भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श नहीं कर सकती, भगवच्चरणोंमें बुद्धि लगनेसे ही जन्म मृत्युमय अनर्थरूप संसारसे छुटकारा मिलता है।

(प्रह्लाद–७ । ५ । ३२)

महापुरुषकी चरणरजका सेवन किये बिना तत्त्वज्ञान और प्रेम नहीं मिलता

राजा रहूगण ! भगवत्तत्त्वका ज्ञान और भगवत्प्रेम तप, यज्ञ, दान, गृहस्थोचित धर्मपालन, वेदाध्ययन, तीर्थ-स्नान, अग्नि और सूर्यकी उपासना आदि किसी भी साधन-से नहीं मिलता, वह तो महापुरुषोंकी चरणरजमें स्नान करनेसे ही मिलता है।

(जडभरत–५ । १२ । १२)

सत्संगसे ही भगवान्‌में प्रेम उत्पन्न होता है

भगवन् ! जब इस संसार चक्रमें भटकते हुए प्राणीके जन्म-मरणरूप चक्करका अन्त निकट आता है, तब उसे सत्संगकी प्राप्ति होती है। और सत्संग मिलते ही सत्पुरुषोंके आश्रय और कार्य कारणके नियन्ता आप भगवान्‌के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

(मुचुकुन्द–१० । ५१ । ५४)

भक्त महापुरुषोंके दर्शन बहुत कठिन हैं

जीवको पहले तो इस क्षणभङ्गुर मनुष्य शरीरका ही मिलना कठिन है और उसमे भी भगवान्‌के प्यारे भक्तोंका दर्शन मैं और भी दुर्लभ समझता हूँ।

(विदेह–११ । २ । २९)

सत्संग सारे अनर्थोंको हर लेता है

जिस प्रकार अग्निदेवका आश्रय लेनेवाले पुरुषके शीत, भय और अन्धकार—तीनोंकी निवृत्ति हो जाती है उसी प्रकार साधुओंका सेवन करनेसे पापरूपी शीत, जन्म-मरणरूप भय और अज्ञानरूप घोर अन्धकार—तीनों मिट जाते हैं।

(श्रीभगवान्–११ । २६ । ३१)

संतपुरुष ही संसारसे तारनेवाली नौका हैं

इस संसार सागरमें डूबने उतरानेवाले (नीची-ऊँची योनियोंमें भटकनेवाले) पुरुषोंके लिये ब्रह्मको जाननेवाले शान्तचित्त साधु पुरुष वैसे ही परम अवलम्बन हैं, जैसे जलमें डूबते हुओंके लिये नौका।

(श्रीभगवान्–११ । २६ । ३२)

संतपुरुष ही परम आश्रय हैं

जैसे अन्न ही प्राणियोंका प्राण है, दुखियों और पीडितोंका मैं ही सहारा हूँ, और परलोकमें काम आने-वाला धर्म ही जैसे मनुष्यका परम धन है, वैसे ही जो भवभयसे व्याकुल हैं उनके लिये सत्पुरुष ही परम आश्रय हैं।

(श्रीभगवान्–११ । २६ । ३३)

भगवान् सत्संगसे ही सहजमें वशमें होते हैं

सारी भोगासक्तियोंका नाश करनेवाले सत्संगसे मैं जैसा वशमें होता हूँ वैसा योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तप, त्याग, इष्ट, पूर्त, दक्षिणा, व्रत, यज्ञ, वेद, तीर्थ, यम और नियम—किसीसे भी नहीं होता।

(श्रीभगवान्–११ । १२ । १२)

भगवान् साधु भक्तोंके पराधीन हैं

हे दुर्वासाजी ! मैं भक्तके पराधीन हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। उन साधु भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर लिया है और मैं भी उन भक्तोंका सदा प्रिय हूँ। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने साधु पतिको वशमें कर लेती है, उसी प्रकार समदर्शी साधु पुरुष मुझे अपने अधीन कर लेते हैं। साधु मेरे हृदय हैं और मैं उनका हृदय

हूँ; वे मुझको छोड़कर और किसीको नहीं जानते और मैं उनको छोड़कर और किसीको नहीं जानता।

(श्रीभगवान्–९ । ४ । ६३–६६, ६८)

साधु कौन हैं?

जो सुख-दुःख, हानि-लाभको आनन्दसे सहते हैं, दयालु स्वभाव हैं, विना ही कारण प्राणीमात्रका हित चाहते हैं, जिनके मन कोई शत्रु पैदा ही नहीं हुआ, जिनकी वृत्तियाँ भगवान्‌में शान्त हो गयी हैं, जिनमें साधुता भरी है, जो अनन्यभावसे मेरी (भगवान्‌की) सुदृढ़ भक्ति करते हैं, जो मेरे (भगवान्‌के) लिये समस्त स्वजन-बान्धवोंको तथा कर्म एवं कर्मफलोंका त्याग कर देते हैं, जो मेरी ही चर्चा करते हैं तथा मेरी लीला-कथाओंको परस्पर कहते-सुनते रहते हैं, जो मेरे ही आश्रित हैं, उन भक्तोंको संसारके त्रिविध ताप कुछ भी पीड़ा नहीं पहुँचा सकते। जिनकी मुझको छोड़कर भीतर-बाहर, लोक-परलोक—कहीं भी किसी भी वस्तुमें तनिक भी आसक्ति नहीं है—ऐसे महापुरुष ही साधु होते हैं, इन्हींका संग करना चाहिये। क्योंकि इनका संग विषयासक्तिके समस्त दोषोंका नाश कर देता है।

(श्रीकपिलभगवान्–३ । २५ । २१–२४)

श्रेष्ठ साधुमें ये लक्षण होते हैं

जो किसी भी प्राणीके दुःखको देख नहीं सकता, द्रवित हो जाता है और उसको दुःखसे छुड़ाना चाहता है, किसीसे भी द्रोह नहीं करता, सब कुछ सहता है और अपराध करनेवालेका भी कल्याण चाहता है, सत्य-परायण है, निर्मलचित्त है, समदर्शी है, सबका भला करता है, जिसकी बुद्धि विषय-कामनाओंसे मारी नहीं गयी है, जिसकी इन्द्रियाँ पूर्णतया वशमें हैं, जिसका स्वभाव कोमल है, जो सदाचारी है, सर्वस्व-त्यागी है, किसी भी वस्तुकी जिसे इच्छा नहीं है, जो जीवन-धारणके लिये ही सात्त्विक आहार परिमित मात्रामें करता है—स्वादके वश कुछ नहीं खाता, जिसका अन्तःकरण शान्त है, जिसकी बुद्धि मुझ (भगवान्) में स्थिर है, जो मुझ (भगवान्) को ही अपना एकमात्र आश्रय समझता है, जो सदा-सर्वदा भगवत्स्वरूपका मनन करता है, जो किसी प्रकारका भी प्रमाद (न करने योग्य कार्य) नहीं करता, जिसका आशय बड़ा गम्भीर है—जो किसी बातसे भी उखड़ता नहीं, जो विपत्तिमें भी धीरज रखता है, जो भूख, प्यास, शोक, मोह, जन्म, मृत्यु—देहके इन छः धर्मोंको जीत चुका है, जो स्वयं जरा भी मान नहीं चाहता और दूसरोंका सम्मान करता है, जो अपनी साधनाके संरक्षणमें समर्थ है, जो सबके साथ मित्रताका वर्ताव करता है, करुणाभावसे युक्त है और जिसको परमात्माके तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो चुकी है, वही साधु है।

(श्रीभगवान्–११ । ११ । २९–३१)

महात्मा भगवान्‌को सबसे बढ़कर प्रिय हैं

हे उद्धवजी ! आप-सरीखे भक्त मुझको जैसे प्यारे हैं, वैसे प्यारे न तो मेरी नाभिसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा हैं और न मेरे स्वरूपभूत शङ्करजी, बलदेवजी, लक्ष्मीजी और मेरी आत्मा ही। ऐसे निरपेक्ष, मननशील, शान्त-चित्त, वैररहित, समदर्शी महात्माओंके पीछे-पीछे तो मैं इस दृष्टिसे फिरा करता हूँ कि कहीं इनकी चरणरज मिल जाय तो मैं पवित्र हो जाऊँ।

(श्रीभगवान्–११ । १४ । १५-१६)

महापुरुषकी सेवा ही मुक्तिका द्वार है

महापुरुषोंकी सेवा मुक्तिका द्वार है और स्त्रीसङ्गियों-का सङ्ग नरकका। महापुरुष वे ही हैं जो समचित्त, अत्यन्त शान्तस्वभाव, क्रोधहीन, सबके सुहृद् और साधुताके गुणोंसे सम्पन्न हैं।

(ऋषभदेव–५ । ५ । २)

असाधु मनुष्योंका संग कभी न करना चाहिये

जो मनुष्य शिश्नोदरपरायण (जो जननेन्द्रियके तथा

पेटके लिये अर्थात् कामवासनाकी पूर्तिके लिये परस्पर मनोऽनुकूल स्त्री-पुरुषकी प्राप्ति और भाँति-भाँतिके आराम तथा भोगोंके लिये धन आदिकी प्राप्तिके उद्योग तथा प्राप्त होनेपर उनके भोगमें लगे रहते हैं) नीच पुरुषोंका सङ्ग करके उनका अनुकरण करके वैसे ही बरतने लगता है, वह उन्हींकी भाँति अन्धकारमय नरकोंमें ही जाता है। क्योंकि उन दुष्टोंके सङ्गसे सत्य, पवित्रता, दया, मननशीलता, बुद्धि, लज्जा, श्री, कीर्ति, क्षमा, मनका वशमें रहना, इन्द्रियोंका वशमें रहना और ऐश्वर्य आदि सारे सद्गुण नष्ट हो जाते हैं। इसलिये उन अशान्तचित्त, मूर्ख, नष्टबुद्धि और स्त्रियोंके हाथके खिलौने बने हुए अर्थात् अत्यन्त कामासक्त, शोचनीय असाधु मनुष्योंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये।

(भगवान् कपिल—३। ३१। ३२-३४)

भागवतका वास्तविक दिग्दर्शन

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा 'सौरभ')

हमारी संस्कृत भाषाके एक-एक श्लोक, सूत्र, वाक्य, शब्द, अक्षर, धातु, व्यञ्जन, स्वर, उपसर्ग और प्रत्ययमें अनन्त अर्थ, ज्ञान-विज्ञान और दर्शन-तत्त्व भरा पड़ा है। साथ ही संस्कृतके बृहद् ग्रन्थ तो एक-एक और विविध विषयोंके विश्व-कोष हैं। अनेक ग्रन्थ ऐसे भी हैं जो अनन्त, विचित्र और विभिन्न विषयोंके समन्वय-सामञ्जस्यपूर्ण सुन्दर व्याख्यान और भाष्य हैं। हमारे पुराण-ग्रन्थ भी ऐसी ही वस्तु हैं। उनमें भी श्रीमद्भागवत तो एक विश्ववन्द्य महाग्रन्थ और महाकाव्य है कि जिसका काव्य-सौन्दर्य, तात्त्विक रहस्य और विषय-बाहुल्यता विद्वन्मान्य ही नहीं अपितु विद्वत्ताकी जाँचकी कसौटी है। प्राचीन कालमें विद्वानोंकी परीक्षाकी सर्वोत्तम वस्तु वस्तुतः भागवत ही थी। यही कारण है कि संस्कृत-साहित्य और विशेषतः पुराण-साहित्यमें श्रीमद्भागवतका निराला स्थान है। वह ज्ञान, कर्म और उपासनाका एक ही अद्भुत ग्रन्थ है। वह वैदिक साहित्य और संस्कृत-साहित्यके गहन विषयोंका खुला रहस्य है। यही नहीं, अपितु उसकी ज्ञेयता अनन्त है। उसमें भूगोल, खगोल, इतिहास, नीति, दर्शन, विज्ञान, कला और अन्यान्य गणनातीत विषयोंका मनोरंजक वर्णन है। साथ ही वह ईश्वरीय ज्ञान—वेदोंकी कुंजी, प्रकृतिके रहस्योंका उद्घाटन और अभ्युदय—निःश्रेयसका सर्वोत्तम सोपान है। उसमें आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विज्ञानत्रयका बड़ा ही मनोरंजक वर्णन है। सर्वाधिक विलक्षण बात यह है कि उसमें भारतके इतिहासके बहाने वेदोंका रहस्य खोला गया है। भागवतका निम्नलिखित श्लोकार्द्ध इसका प्रमाण है—

भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः।*

इसीको महाभारतमें व्यासदेवने इस तरह स्पष्ट किया है—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्॥

इस विषयमें ब्रह्माण्डपुराणकी तो उच्च घोषणा है कि पुराण वेदोंसे भी पहले प्रकट हुए हैं। उसमें इसका उल्लेख इस प्रकार हुआ है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

ऐसी दशामें भागवतके विषयमें अधिक कहना सूर्यको दीपकसे देखना है। फिर भी जी तो यही चाहता है कि बार-बार इस पवित्र नामकी आवृत्तिसे जिह्वा और कर्ण-कुहरको पवित्र होनेका अवसर मिले।

* श्रीमद्भागवत १। ४। २८

श्रीमद्भागवतकी धर्मविषयक प्रामाणिकता

श्रीमद्भागवतको महापुराण मान लेनेपर उसकी धर्मविषयक प्रामाणिकतामें कोई मतभेद नहीं रह जाता। मनुस्मृतिमें श्राद्धके समय पुराणश्रवणका विधान किया गया है। आपस्तम्ब-सूत्रोंमें पुराणके उद्धरण पाये जाते हैं। उपनिषदोंमें पुराणोंको पञ्चम वेद अर्थात् नित्य इतिहासके रूपमें स्वीकार किया गया है। भारतीय सनातन धर्मके प्रधान संरक्षक और मीमांसकशिरोमणि कुमारिल भट्टने धर्मनिर्णयमें पुराणोंको प्रामाणिक माना है। ब्रह्मसूत्रके शारीरक भाष्यमें भगवान् शंकराचार्यने इतिहास और पुराणोंके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है, वह विचार करने योग्य है।

'इतिहासपुराणमपि व्याख्यातेन मार्गेण सम्भवन्मन्त्रार्थवादमूलकत्वात् प्रभवति देवताविग्रहादि साधयितुम्; प्रत्यक्षादिमूलमपि सम्भवति। भवति ह्यस्माकमप्रत्यक्षमपि चिरन्तनानां प्रत्यक्षम्; तथा च व्यासादयो देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवहरन्तीति स्मर्यते। यस्तु ब्रूयात्—इदानीन्तनानामिव पूर्वेषामपि नास्ति देवादिभिर्व्यवहर्तुं सामर्थ्यमिति, स जगद्वैचित्र्यं प्रतिषेधेत; इदानीमिव च नान्यदापि सार्वभौमः क्षत्रियोऽस्तीति ब्रूयात्, ततश्च राजसूयादिचोदना उपरुन्ध्यात्; इदानीमिव च कालान्तरेऽप्यव्यवस्थितप्रायान् वर्णाश्रमधर्मान् प्रतिजानीत, ततश्च व्यवस्थाविधायि शास्त्रमनर्थकं कुर्यात्; तस्माद् धर्मोत्कर्षवशाच्चिरन्तना देवादिभिः प्रत्यक्षं व्यवजह्रुरिति श्लिष्यते। अपि च स्मरन्ति—'स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः' इत्यादि; योगोऽप्यणिमाद्यैश्वर्यप्राप्तिफलकः स्मर्यमाणो न शक्यते साहसमात्रेण प्रत्याख्यातुम्; श्रुतिश्च योगमाहात्म्यं प्रख्यापयति—'पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते। न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्' इति। ऋषीणामपि मन्त्रब्राह्मणदर्शिनां सामर्थ्यं नास्मदीयेन सामर्थ्येनोपमातुं युक्तम्। तस्मात् समूलमितिहासपुराणम्।' (शारीरकभाष्य)

'मन्त्रार्थवादमूलक होनेके कारण उक्त मार्गसे इतिहास और पुराण भी देवताओंके विग्रहादि सिद्ध करनेमें समर्थ हैं। वे प्रत्यक्षमूलक भी हो सकते हैं; क्योंकि जो हमलोगोंको प्रत्यक्ष नहीं है, वह भी प्राचीन लोगोंको प्रत्यक्ष था—जैसा कि प्रमाण मिलता है कि व्यास आदि ऋषिगण देवताओंके साथ प्रत्यक्ष व्यवहार करते थे। जो कहता है कि आजकलके लोगोंकी भाँति ही पहलेके लोगोंमें भी देवताओंसे प्रत्यक्ष व्यवहार करनेकी शक्ति नहीं थी, वह जगत्की विचित्रताका अपलाप करता है। आजकलकी ही भाँति पहले भी कोई सार्वभौम क्षत्रिय नहीं था, ऐसी बात कहनेसे राजसूयादि यज्ञोंके विधान ही व्यर्थ हो जाते हैं; आजकलकी ही भाँति दूसरे समय भी यदि वर्णाश्रमधर्मको अव्यवस्थित माना जाय तो व्यवस्थाविधायक शास्त्र ही अनर्थक हो जाते हैं। इसलिये धर्मका अत्यन्त उत्कर्ष होनेके कारण पहलेके लोग देवताओंसे प्रत्यक्ष व्यवहार करते थे, यह निश्चित है। योगदर्शनमें स्वाध्यायसे इष्टदेवताका सम्प्रयोग होता है, इत्यादि वर्णन मिलता है। अणिमा आदि ऐश्वर्योंको प्राप्त करानेवाले योगका स्मृतियोंमें वर्णन है। केवल साहसके बलपर उनका प्रत्याख्यान नहीं किया जा सकता। श्रुति भी योगकी महिमा गाती है। योगसिद्ध हो जानेपर रोग, जरा, मृत्यु आदि नहीं होते। मन्त्रसंहिता और ब्राह्मणोंके द्रष्टा ऋषियोंकी शक्तिकी तुलना हमलोगोंकी शक्ति नहीं कर सकती, इसलिये इतिहास और पुराण प्रामाणिक हैं।'

शङ्कराचार्यके अतिरिक्त और भी बहुत-से आचार्योंने पुराणोंको धर्मनिर्णयके लिये उद्धृत किया है। इस समय जितने भी निबन्ध-ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, सबमें पुराण-ग्रन्थोंके उद्धरणोंकी ही प्रधानता है। याज्ञवल्क्यने विद्या और धर्मके चौदह स्थानोंकी गणना करते समय सबसे पहले पुराणोंका ही नाम लिया है। इसलिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चार प्रकारके पुरुषार्थोंमें उपयोगी होनेके कारण पुराणोंको अवश्य-अवश्य प्रमाण मानना चाहिये।

श्रीमद्भागवतमें भगवान्‌की आदर्श प्रातश्चर्या

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, उनकी लीलाएँ अलौकिक हैं। उनकी सब लीलाओंका कोई अनुकरण भी नहीं कर सकता। परन्तु गृहस्थाश्रममें रहकर उन्होंने जो आदर्श लीलाएँ की हैं, वे अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार सबके लिये अनुकरण करने योग्य हैं। उन्हींमेंसे भगवान् श्रीकृष्णकी प्रातश्चर्या है। वे सवेरे बिछौनेसे उठकर राजदरबारमें जानेतक क्या-क्या किया करते थे, इसका श्रीमद्भागवत (१० । ७०) में बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। इसमें वैदिक-लौकिक मर्यादाका पूरा पालन करके भगवान्‌ने सबके लिये बड़ा ही सुन्दर आदर्श उपस्थित किया है। श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

ब्राह्मे मुहूर्त उत्थाय वार्युपस्पृश्य माधवः।
दध्यौ प्रसन्नकरण आत्मानं तमसः परम्॥
एकं स्वयंज्योतिरनन्यमव्ययं
स्वसंस्थया नित्यनिरस्तकल्मषम्।
ब्रह्माख्यमस्योद्भवनाशहेतुभिः
स्वशक्तिभिर्लक्षितभावनिर्वृतिम्॥
(१० । ७० । ४५)

'भगवान् माधव ब्राह्ममुहूर्तमें (सूर्योदयसे ढाई घड़ी पूर्व) उठे, उन्होंने पवित्र जलसे हाथ-मुँह धोये, फिर अत्यन्त प्रसन्नहृदय होकर मायातीत, सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदसे रहित एक, अखण्ड, स्वयप्रकाश, अद्वितीय, अविनाशी, नित्यस्वरूपस्थित, अविद्यासे सर्वथा रहित, जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और नाशमें कारणभूता ब्रह्मशक्ति, विष्णुशक्ति और रुद्रशक्तिके द्वारा लक्षित होनेवाले, आनन्दमय, ब्रह्मनामसे प्रसिद्ध अपने आत्मस्वरूपका ध्यान करने लगे।' इससे यह उपदेश मिलता है कि गृहस्थको, चाहे वह कितने ही बड़े परिवारकी जिम्मेवारी क्यों न रखता हो तथा उसे कितना ही काम क्यों न करना पड़ता हो, प्रातःकाल सूर्योदयसे पहले ही उठ जाना चाहिये। उस समय आलस्यवश चारपाईपर पड़े-पड़े ऊँघनेसे बड़ी हानि होती है, स्वास्थ्य और धर्म दोनोंका नाश होता है। उठते ही सबसे पहले हाथ, पैर तथा मुँह धोकर प्रसन्न चित्तसे श्रीभगवान्‌का ध्यान करना चाहिये। प्रतिदिन सबसे पहले करनेयोग्य आवश्यक कर्त्तव्य है—भगवान्‌का ध्यान, और ध्यानके लिये सर्वोत्तम समय है—ब्राह्ममुहूर्त्त। अमित शक्तिशाली भगवान् और आत्माके नित्य ध्यानसे तेज, ओज, शक्ति, निर्मलता, नीरोगता, पुण्यसञ्चय आदि बढ़ते हैं। अन्तःकरण निर्मल होता है। अविद्याकी गाँठें ढीली पड़ती हैं और जीव परमात्माकी प्राप्तिकी ओर अग्रसर होता है।

इसके बाद—

अथाप्लुतोऽम्भस्यमले यथाविधि
क्रियाकलापं परिधाय वाससी।
चकार सन्ध्योपगमादि सत्तमो
हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः॥
(१० । ७० । ६)

'भगवान्‌ने विधिपूर्वक निर्मल और पवित्र जलमें डुबकी लगाकर स्नान किया, फिर स्वच्छ धोती पहनकर दुपट्टा ओढ़कर बड़ी श्रद्धा और कुशलताके साथ सन्ध्योपासनादि नित्यकर्म किया, तदनन्तर वे हवन करके मौन होकर गायत्रीका जप करने लगे।' इतने काम तो वे सूर्योदयसे पहले ही कर लेते। फिर—

उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्पयित्वाऽऽत्मनः कलाः।
देवानृषीन् पितॄन् वृद्धान् विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान्॥
(१० । ७० । ७)

'उदय होते हुए सूर्यका उपस्थान किया एवं अपने कलास्वरूप देवता, ऋषि और पितरोंका तर्पण और पूजन किया और तदनन्तर घरके बड़े-बूढ़ोंकी तथा ब्राह्मणोंकी विधिपूर्वक पूजा की।'

इससे यह सीखना चाहिये कि शरीरपर जल

ढालकर नहीं, किन्तु जलमें प्रवेश करके सूर्योदयसे पूर्व ही स्नान कर लेना चाहिये। स्नानसे शरीरमलका नाश होकर पवित्रता आती है। स्नानके समय ऐसी भावना करनी चाहिये कि शरीरमलके साथ ही मेरा मनोमल भी धुल रहा है। डुबकी लगाकर स्नान करनेसे शरीरकी गरमी शान्त होती है, कान्ति बढ़ती है और शक्ति तथा स्फूर्ति प्राप्त होती है। नित्य सूर्योदयसे पूर्व नदी या तालाब आदिमें स्नान करनेवालोंको सर्दी-जुकाम बहुत ही कम होता है। स्नानके बाद धोयी हुई स्वच्छ धोती पहननी चाहिये। मैले-कुचैले तथा वासी वस्त्रोंसे शरीरमें तमोगुण बढ़ता है। स्वच्छ धौत वस्त्रोंसे सात्त्विकताकी वृद्धि होती है। सन्ध्याके द्वारा भगवान्की उपासना की जाती है और उससे आत्मशुद्धि होती है। सन्ध्या भी सूर्योदयसे पूर्व ही कर लेनी चाहिये। नित्य हवनसे देवताओंकी पूजा होती है, उनकी प्रसन्नतासे धन-धान्य—सुख-समृद्धिकी अभिवृद्धि होती है। निष्काम-भावसे करनेपर भगवान्की प्रसन्नता प्राप्त होती है और घरकी वायु विशुद्ध होती है, रोगोंके परमाणुओंका नाश होता है। देव, ऋषि एवं पितरोंके तर्पणसे तीनोंकी तृप्ति होती है और उनके आशीर्वाद प्राप्त होते हैं। माता-पिता, दादी-दादा, ताई-ताऊ, चाची-चाचा, बड़े भाई, गुरु, स्वामी आदि गुरुजन, ज्ञान और अवस्थामें वृद्ध अन्य स्त्री-पुरुष तथा ब्राह्मणादिके पूजनसे उनका स्नेहपूर्ण आशीर्वाद प्राप्त होता है, जिससे सर्वार्थकी सिद्धि होती है। इन प्रातःकालके नित्यकर्मोंको प्रमाद छोड़कर करनेसे मनुष्यको लोक-परलोक दोनोंमें सुख-शान्तिकी प्राप्ति होती है और भगवान्की प्रसन्नताका लाभ होता है। तदनन्तर—

धेनूनां रुक्मशृङ्गीणां साध्वीनां मौक्तिकस्रजाम्।
पयस्विनीनां गृष्टीनां सवत्सानां सुवाससाम्॥
ददौ रूप्यखुराग्राणां क्षौमाजिनतिलैः सह।
अलङ्कृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्वं बद्वं दिने दिने॥
(१०।७०।८-९)

'भगवान् सुन्दर वस्त्र और मोतियोंकी मालासे सजायी हुई, खूब दूध देनेवाली, पहली बारकी ब्यायी हुई, बछड़ोंवाली और सीधे स्वभावकी तेरह हजार चौरासी ऐसी गौएँ, जिनके दोनों सींग सोनेसे तथा चारों खुर चाँदीसे मँढ़े होते थे, वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित किये हुए ब्राह्मणोंको प्रतिदिन रेशमी वस्त्र, मृगचर्म और तिलके साथ दान करते थे।'

इससे यह सीखना है कि गोदानका बड़ा माहात्म्य है और गौ भी ऐसी दान करनी चाहिये, जो सब तरहसे सुन्दर, स्वस्थ और दूध देनेवाली हो। गौके साथ ही अन्यान्य वस्तुओंका भी दान करना चाहिये। असलमें प्रतिदिन अपनी स्थितिके अनुसार श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक शुभ और आवश्यक वस्तुओंका दान अवश्य करना चाहिये। ऐसी वस्तु नहीं देनी चाहिये जो व्यर्थ हो, जिससे अपना झंझट छूटे और जो लेनेवालेके लिये भार तथा दुःखप्रद हो जाय। दान तो मनुष्यका धर्म है। जो अपनी शक्तिभर योग्य पात्रको दान करता है, उस गृहस्थके पाप कट जाते हैं और वह भगवान्की प्रसन्नताको प्राप्त करता है। मनु महाराजने पापनाशके साधन बतलाते हुए कहा है—

ख्यापनेनानुतापेन तपसाध्ययनेन च।
पापकृन्मुच्यते पापात् तथा दानेन चापदि॥
(मनुसंहिता ११।२२७)

'प्रकट कर देनेसे, पश्चात्तापसे, तपसे, स्वाध्यायसे और आपत्तिकालमें दान करनेसे पापी मनुष्य पापोंसे छूट जाता है।'

दान-पुण्यके बाद भगवान्—

गोविप्रदेवतावृद्धगुरून् भूतानि सर्वशः।
नमस्कृत्यात्मसम्भूतीर्मङ्गलानि समस्पृशत् ॥
(१० । ७० । १०)

'अपने विभूतिरूप गौ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरुजन तथा समस्त प्राणियोंको प्रणाम करके माङ्गलिक वस्तुओं-का स्पर्श करते थे।'

इसके बाद भगवान् दिव्य वस्त्राभूषण पहनकर, घृत तथा दर्पणमें मुख देखकर, गौ-बैल, ब्राह्मण और देवताओंके दर्शन करते तथा महलोंके सब लोगोंको इच्छित पदार्थ देकर राजदरबारमें जाते थे।

गौ-ब्राह्मण तथा देवता एवं माता-पिता, आचार्य आदि गुरुजन सदा ही पूजनीय हैं। इनको प्रणाम करनेसे इनका पवित्र आशीर्वाद मिलता है, जिससे सारे संकट टलते हैं और महान् लाभ होता है, मनु महाराज कहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम् ॥
(मनु० २ । १२१)

'जो मनुष्य प्रतिदिन बड़े-बूढ़ोंको प्रणाम तथा उनकी सेवा करता है उसके आयु, विद्या, बल और यश—ये चार बढ़ते हैं।'

इस प्रकार भगवान् स्वयं पूर्णकाम तथा समस्त जगत्के पूज्यतम एवं एकमात्र वन्दनीय होनेपर भी स्वयं आचरण करके हमलोगोंको नम्र और विनयी बनकर सबके साथ सम्मानपूर्ण बर्ताव करनेका उपदेश करते हैं। केवल बड़े-बूढ़ोंको ही नहीं, भगवान् तो अपने आचरणद्वारा प्राणीमात्रको प्रणाम करनेका उपदेश करते हैं—'भूतानि सर्वशः'। जब सबमें भगवान् स्थित हैं, तब प्राणीमात्रको प्रणाम करना ही चाहिये। श्रीमद्-भागवतमें ही योगीश्वर कविके वचन हैं—

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च
ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं
यत्किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ॥
(११ । २ । ४१)

'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, ग्रह-नक्षत्र, समस्त प्राणी, दिशाएँ, वृक्ष-वनस्पति, नदी, समुद्र—सभी भगवान्के शरीर हैं। सबमें स्वयं भगवान् प्रकट हैं। ऐसा समझकर सबको अनन्य भावसे—भगवद्भावसे प्रणाम करना चाहिये।'

भगवान्ने इन सब आचरणोंको स्वयं करके लोगोंके सामने आदर्श उपस्थित किया और गीताकी अपनी इस वाणीको चरितार्थ कर दिया—

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥
न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥
(३ । २१-२२)

'श्रेष्ठ पुरुष जो-जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उस-उसके अनुसार ही करते हैं। वह श्रेष्ठ पुरुष स्वयं आचरण करके जो कुछ प्रमाण कर देता है, सब लोग उसीका अनुकरण करते हैं। इसीलिये हे अर्जुन! मुझे तीनों लोकोंमें कुछ भी कर्तव्य नहीं है तथा न कोई प्राप्त होनेयोग्य वस्तु ही मुझे अप्राप्त है; फिर भी मैं कर्ममें ही बर्तता हूँ।'

हमलोगोंको भी जगद्गुरु भगवान्के इस आदर्शके अनुसार ही व्यवहार करना चाहिये।



श्रीमद्भागवतसे शिक्षा

(लेखक—श्रीताराचन्द्रजी पांड्या)

वेद और वेदान्ततक तो पहुँच बहुत थोड़े-से मनुष्योंकी है, साधारण लोगोंके लिये तो वे बड़े गूढ़ बने हुए हैं या बना दिये गये हैं। वे उस नरपतिकी तरह हैं जिसके नाममें सब शासन चलते हुए भी और जो सब शासनका सूत्रधार और सब अधिकारियोंकी शक्ति माने जाते रहनेपर भी जिसका दर्शन दुर्लभ है, जो सर्वसाधारणके लिये एक रहस्यकी ही वस्तु बना रहता है। महाभारत, रामायण और भागवत—ये तीन ही हैं जो साधारण जनताके लिये हिन्दू-धर्मका ज्ञान सुलभ बनाते हैं, जो हिन्दू-संस्कृतिकी रक्षा करते आ रहे हैं और जिन्होंने करोड़ों हिन्दुओंके हृदयोंमें हिन्दू-धर्मसम्बन्धी ज्ञान और अनुरागका प्रदीप निरन्तर प्रज्वलित कर रक्खा है। इन तीनोंमेंसे प्रत्येकका विषय इतना सर्वाङ्गीण है कि किसका क्या प्रधान विषय है, यह कहना खतरेसे खाली नहीं है। फिर भी स्थूल दृष्टिसे हम यह कहनेका साहस कर सकते हैं कि महाभारत ज्ञानप्रधान है, रामायण कर्म (सामाजिक आचार)-प्रधान है और भागवत भक्तिप्रधान है। इसीलिये सर्वसाधारणके लिये जहाँ महाभारत श्रद्धाकी वस्तु है और रामायण आदरकी, वहाँ भागवत प्रेमकी वस्तु है। अगर महाभारत मस्तिष्क है तो रामायण आँख है,और भागवत हृदय है।

यों तो भागवतमें सभी नारायणों (अवतारों) और नाना नरों एवं नारियों और कर्मों-विकर्मोंकी कथाएँ हैं; परन्तु जिस तरह रत्नजटित अँगूठीमें स्वर्ण होनेपर भी उसका सारभूत पदार्थ रत्न है और जिस तरह सभी नदियोंका लक्ष्य सागर है, उसी तरह उन सब कथाओंका सार और लक्ष्य श्रीकृष्णचरित ही है।

महाभारतके श्रीकृष्ण तो महान् राजनीतिज्ञ और ज्ञान-गम्भीर गुरु हैं। परन्तु भागवतके श्रीकृष्ण ही जन-साधारणके श्रीकृष्ण हैं—जिन्हें जनता आत्मीय (घरकी चीज) समझती है, जिन्हें जनता प्रेम करती है और समझ सकती है। यहाँ वे बाल हैं, गोपाल हैं, मल्ल हैं, माखनचोर हैं। श्रीकृष्णका यह रूप किसी भी कालमें और किसी भी स्थानमें लुप्त या गूढ़ नहीं होता। अतः जनताके लिये तो यही निरन्तर सत्य तत्त्व है।

भले ही प्रत्येक बालक श्रीकृष्ण-जैसा शक्तिशाली होकर न आता हो, किन्तु श्रीकृष्णकी-जैसी बाल-लीलाएँ किस बालकोंवाले घरमें सदा नहीं होती रहतीं? क्या प्रत्येक बालकमें श्रीकृष्णकी यह झाँकी—जगत्का यह तत्त्व नहीं दिखायी देता? परमात्मा करे हम किसी भी बालकमें श्रीकृष्णकी इस झाँकीकी ओर अपनी आँखें बंद न होने दें, प्रत्येक बालकसे उसी तरह प्रेम करें जैसे कि श्रीकृष्णको सारा गोकुल, और उसे लीलामयी और क्रीडामयी बनने दें। यह है भागवतका बाल-तत्त्व।

दूसरा तत्त्व है—गोपाल या ग्रामीण-तत्त्व। गोधनके दुग्ध आदिका और ग्राम्य जीवनका, शुद्ध आब-हवा और सुन्दर प्राकृतिक दृश्योंका बालकों, अतः सभी मनुष्योंके स्वास्थ्य और पुष्टिसे कितना सम्बन्ध है—यह शिक्षा तो भागवतमें प्रतिपादित श्रीकृष्णके जीवनसे मिलती ही है; परन्तु दूसरी शिक्षा यह भी मिलती है कि जनताका, और खासकर भारतीय जनताका नेतृत्व कौन कर सकता है। श्रीकृष्ण खुद ग्रामीण थे, गाँववालोंसे हिले-मिले रहते थे, ग्रामीणोंको बन्धु और आत्मवत् मानते थे, ग्वालियेका (ग्रामीणका) धंधा करते थे, और ग्रामीण ही उनके प्रथम सहायक और प्रथम तथा प्रधान सेना थी। आज भी गाँवोंसे भरे इस भारतका सच्चा नेता वही हो सकता है जो श्रीकृष्णकी तरह ग्रामीण हो। वही लक्ष-लक्ष ग्रामों और कोटि-कोटि ग्रामीणोंका श्रद्धा-भाजन तथा प्रेम-भाजन हो सकता है।

अगर हम केवल इन दो तत्त्वोंको ही समझ लें और आचरणमें ले आयें, तो भी भारतकी वर्तमान-कालीन सामाजिक और राजनैतिक उलझनोंकी भी सुलझन आसानीसे हो जाय। यह है भागवतके राजनीति और समाजनीतिसम्बन्धी रूपकी एक झाँकी।

श्रीमद्भागवतका वर्तमान रूप ही प्राचीन है

श्रीमद्भागवत इस समय जिस रूपमें उपलब्ध होता है, वही इसका प्राचीन स्वरूप है—यह बात इन सभी टीकाओंसे तथा अन्य अनेक प्रमाणोंसे सिद्ध होती है। श्रीनारदीय पुराणमें श्रीमद्भागवतकी जो सूची मिलती है और प्रत्येक स्कन्धमें जिन कथाओंका निर्देश मिलता है, वे सब ज्यों-की-त्यों श्रीमद्भागवतमें मिलती हैं। वह वर्णन इस प्रकार है—

तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षीणां समागमः।
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च॥
पारीक्षितमुपाख्यानमितीदं समुदाहृतम्।
परीक्षिच्छुकसंवादे सृतिद्वयनिरूपणम्॥
ब्रह्मनारदसंवादेऽवतारचरितामृतम्।
पुराणलक्षणं चैव सृष्टिकारणसम्भवः॥
द्वितीयोऽयं समुदितः स्कन्धो व्यासेन धीमता।
चरितं विदुरस्याथ मैत्रेयेणास्य सङ्गमः॥
सृष्टिप्रकरणं पश्चाद् ब्रह्मणः परमात्मनः।
कापिलं साङ्ख्यमप्यत्र तृतीयोऽयमुदाहृतः॥
सत्याश्चरितमादौ तु ध्रुवस्य चरितं ततः।
पृथोः पुण्यतमाख्यानं ततः प्राचीनबर्हिषः॥
इत्येष तुर्यो गदितो विसर्गे स्कन्ध उत्तमः।
प्रियव्रतस्य चरितं तद्वंश्यानां च पुण्यदम्॥
ब्रह्माण्डान्तर्गतानां च लोकानां वर्णनं ततः।
नरकस्थितिरित्येष संस्थाने पञ्चमो मतः॥
अजामिलस्य चरितं दक्षसृष्टिनिरूपणम्।
वृत्राख्यानं ततः पश्चान्मरुतां जन्म पुण्यदम्॥
षष्ठोऽयमुदितः स्कन्धो व्यासेन परिपोषणे।
प्रह्लादचरितं पुण्यं वर्णाश्रमनिरूपणम्॥
सप्तमो गदितो वत्स वासनाकर्मकीर्त्तने।
गजेन्द्रमोक्षणाख्यानं मन्वन्तरनिरूपणम्॥
समुद्रमन्थनं चैव बलिवैभवबन्धनम्।
मत्स्यावतारचरितमष्टमोऽयं प्रकीर्तितः॥
सूर्यवंशसमाख्यानं सोमवंशनिरूपणम्।
वंशानुचरिते प्रोक्तो नवमोऽयं महामते॥
कृष्णस्य बालचरितं कौमारं च व्रजस्थितिः।
कैशोरं मथुरास्थानं यौवनं द्वारकास्थितिः॥
भूभारहरणं चात्र निरोधे दशमः स्मृतः।
नारदेन तु संवादो वसुदेवस्य कीर्तितः॥
यदोश्च दत्तात्रेयेण श्रीकृष्णेनोद्धवस्य च।
यादवानां मिथोऽन्तश्च मुक्तावेकादशः स्मृतः॥
भविष्यकलिनिर्देशो मोक्षो राज्ञः परीक्षितः।
वेदशाखाप्रणयनं मार्कण्डेयतपः स्मृतम्॥
सौरी विभूतिरुदिता सात्वती च ततः परम्।
पुराणसंख्याकथनमाश्रये द्वादशो ह्ययम्॥
इत्येवं कथितं वत्स श्रीमद्भागवतं तव।

श्रीमद्भागवतमें बारह स्कन्ध हैं, इसमें तो किसीका विवाद ही नहीं है। पद्मपुराणमें श्रीमद्भागवतके बारह स्कन्धोंका भगवान्‌के बारह अङ्गोंके रूपमें वर्णन किया गया है, जिससे लोग श्रीमद्भागवतके रूपमें भगवान्‌का ध्यान कर सकें। उसमें पहले और दूसरे स्कन्धको दोनों चरण-कमल, तीसरे और चौथेको जाँघ, पाँचवेंको नाभि, छठेको वक्षःस्थल, सातवें और आठवेंको बाहुयुगल, नवेंको कण्ठ, दसवेंको मुखारविन्द, ग्यारहवेंको ललाट और बारहवेंको मूर्धा कहा गया है।* कौशिकसंहितान्तर्गत श्रीमद्भागवतमाहात्म्यमें यही बात कुछ दूसरे ढंगसे कही गयी है। उसमें पैरसे लेकर जानुपर्यन्त

---

* पादौ यदीयौ प्रथमद्वितीयौ तृतीयतुर्यौ कथितौ यदूरू।
नाभिस्तथा पञ्चम एव षष्ठो भुजान्तरं दोर्युगलं तथान्यौ॥
कण्ठस्तु राजन् नवमो यदीयो मुखारविन्दं दशमं प्रफुल्लम्।
एकादशो यस्य ललाटपट्टं शिरोऽपि यद् द्वादश एव भाति॥
नमामि देवं करुणानिधानं तमालवर्णं सुहितावतारम्।
अपारसंसारसमुद्रसेतुं भजामहे भागवतस्वरूपम्॥

पहला स्कन्ध, जानुसे कटिपर्यन्त दूसरा स्कन्ध, तीसरा स्कन्ध नाभि, चौथा स्कन्ध उदर, पाँचवाँ स्कन्ध हृदय, छठा स्कन्ध बाहुसहित कण्ठ, सातवाँ स्कन्ध मुख, आठवाँ स्कन्ध नेत्र, नवाँ स्कन्ध कपोल एवं भ्रुकुटि, दसवाँ स्कन्ध ब्रह्मरन्ध्र, ग्यारहवाँ स्कन्ध मन और बारहवाँ स्कन्ध आत्मा कहा गया है।

पादादिजानुपर्यन्तं प्रथमस्कन्ध ईरितः।
तदूर्ध्वं कटिपर्यन्तं द्वितीयस्कन्ध उच्यते॥
तृतीयो नाभिरित्युक्तश्चतुर्थ उदरं मतम्।
पञ्चमो हृदयं प्रोक्तं षष्ठः कण्ठं सबाहुकम्॥
सर्वलक्षणसंयुक्तं सप्तमो मुखमुच्यते।
अष्टमश्चक्षुषी विष्णोः कपोलौ भ्रुकुटिः परः॥
दशमो ब्रह्मरन्ध्रं च मन एकादशः स्मृतः।
आत्मा तु द्वादशस्कन्धः श्रीकृष्णस्य प्रकीर्तितः॥

इस प्रकार स्कन्धोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद न होनेपर भी अध्यायोंके सम्बन्धमें थोड़ा मतभेद प्राप्त होता है। पद्मपुराणमें ऐसा कहा गया है कि 'द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः' और चित्सुखाचार्यने एक पद्यांश उद्धृत किया है—'द्वात्रिंशत्त्रिशतं पूर्णमध्यायाः।' इन वचनोंके अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमद्भागवतमें तीन सौ बत्तीस ही अध्याय होने चाहिये। इसी आधारपर एक आचार्यने श्रीमद्भागवतके तीन अध्यायोंको प्रक्षिप्त माना है। उनकी दृष्टिमें श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धमें बारहवाँ, तेरहवाँ और चौदहवाँ तीन अध्याय प्रक्षिप्त हैं। ऐसा मानते हुए भी उन्होंने इन तीन अध्यायोंकी व्याख्या की है और सङ्गति बैठायी है। उनके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतके प्रायः सभी टीकाकार श्रीमद्भागवतमें तीन सौ पैंतीस अध्याय मानते हैं और सबकी व्याख्या भी करते हैं। श्रीजीव गोस्वामीने बारहवें अध्यायकी टीकाके प्रारम्भमें लिखा है—"जो इन तीन अध्यायोंको प्रक्षिप्त मानते हैं, उनके वैसा माननेका कोई कारण नहीं है। क्योंकि सब देशोंमें वे प्रचलित हैं और वासनाभाष्य, सम्बन्धोक्ति, विद्वत्कामधेनु, शुकमनोहरा, परमहंसप्रिया आदि प्राचीन एवं आधुनिक टीकाओंमें इनकी व्याख्या की गयी है। यदि अपने सम्प्रदायमें अस्वीकृत होनेके कारण ही वे इन्हें अप्रामाणिक मानते हैं, तो दूसरे सम्प्रदायोंमें स्वीकृत होनेके कारण प्रामाणिक ही क्यों नहीं मानते?........" इसलिये 'द्वात्रिंशत् त्रिशतञ्च' इस पदका अर्थ यदि तीन सौ बत्तीस ही हो तब भी चाहे जहाँसे तीन अध्याय नहीं निकाल देने चाहिये। वास्तवमें तो 'द्वात्रिंशत् च त्रयश्च शतानि च' इस प्रकारका द्वन्द्वैक्य स्वीकार करके उन पदोंका भी तीन सौ पैंतीस ही अर्थ समझना चाहिये।' श्रीमद्भागवतके प्रथम श्लोककी श्रीधरी व्याख्याकी टिप्पणी 'दीपनी' एवं श्रीराधामोहन तर्कवाचस्पतिकी टीकामें इस विषयपर बड़ा विचार किया गया है और अनेक प्रमाणोंके आधारपर इस पदका अर्थ तीन सौ पैंतीस ही माना गया है। गौरीतन्त्रमें इस बातका स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि श्रीमद्भागवतमें तीन सौ पैंतीस अध्याय हैं—

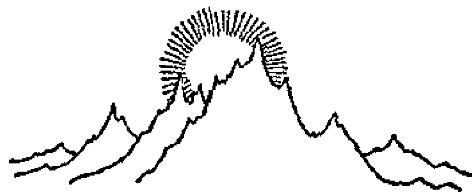
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः।
पञ्चत्रिंशोत्तराध्यायस्त्रिशतीयुक्त ईश्वरि॥

इतना ही नहीं, कौशिकसंहितान्तर्गत भागवतमाहात्म्यमें तो पूरे ग्रन्थकी अध्याय-संख्या तीन सौ पैंतीस लिखकर प्रत्येक स्कन्धकी अध्याय-संख्या पृथक्-पृथक् भी गिनायी है—प्रथम स्कन्धमें उन्नीस, द्वितीय स्कन्धमें दस, तृतीयमें तैंतीस, चतुर्थ स्कन्धमें इकतीस, पञ्चम स्कन्धमें छब्बीस, षष्ठमें उन्नीस, सप्तममें पंद्रह, अष्टममें चौबीस, नवममें चौबीस, दशममें नब्बे, एकादशमें इकतीस

और द्वादशमें तेरह—सब मिलाकर तीन सौ पैंतीस* । इसी प्रकार इक्कीस दिनके पाठमें कितने कितने अध्याय प्रतिदिन पढने चाहिये, यह वर्णन करते समय भी अध्याय संख्या दी गयी है । श्लोकोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद नहीं है । पुराणोंसे लेकर आधुनिक टीकाकार-पर्यन्त श्रीमद्भागवतमें श्लोकोंकी संख्या अठारह हजार मानते हैं । श्रीमद्भागवत मन्त्रात्मक ग्रन्थ है । इसके एक एक श्लोक, एक एक पद और शब्दका मन्त्रकी भाँति *प्रयोग करके लोग अपनी अभीष्ट सिद्धि करते हैं, इसलिये* परम्परासे ही पाठ ग्रन्थ होनेके कारण श्रीमद्भागवतमें कुछ घटती-बढती नहीं हुई है । वह ज्यों-का-त्यों चला आता है । स्थूल दृष्टिसे देखनेपर वर्तमान श्रीमद्भागवतमें अठारह हजार श्लोक नहीं मिलते । इसका कारण यह है कि इस समय प्रेस आदिके कारण ग्रन्थोंके सुलभ हो जानेसे, प्राचीन कालमें जिस प्रकारसे श्लोक गिननेकी प्रथा थी वह अब नहीं रही । प्राचीन कालमें बत्तीस अक्षरोंका एक श्लोक माना जाता था और उसी गणनाके अनुसार लिखनेवालोंको पुरस्कार आदि दिये जाते थे । इस प्रकार गणना करनेसे सोलह हजारके लगभग श्लोक श्रीमद्भागवतमें होते हैं । प्रत्येक उवाचको एक श्लोक एवं अध्यायकी पुष्पिकाको डेढ श्लोक मान लेनेपर श्लोक संख्या अठारह हजार हो जाती है । इसीसे श्रीमद्भागवतके पाठमें 'इति' 'अथ' आदिको भी छोडा नहीं जाता, क्योंकि श्रीमद्भागवत रसरूप फल है, इसमें त्याग करनेयोग्य छिलका आदि कुछ नहीं है । श्रीमद्भागवतकी अन्वितार्थ-प्रकाशिका टीकाके रचयिता स्वनामधन्य श्रीगङ्गासहायजी जरठ महोदयने लिखा है कि मैंने तीन बार श्रीमद्भागवतका अक्षर-अक्षर गिना है । उनके कथनानुसार सत्रह हजार, नौ सौ, साढे अट्ठानवे श्लोक होते हैं ।

इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रीमद्भागवतमें डेढ श्लोक कम अठारह हजार श्लोक हैं । यह कमी भी उवाच आदिके पाठभेदके कारण ही है । अबतक जितनी प्राचीन प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनमें सबसे प्राचीनतम सरस्वतीभवन काशीकी पुस्तक है । परन्तु वही पाठ ठीक है, यह बलपूर्वक नहीं कहा जा सकता । यद्यपि वर्तमान प्रचलित प्रतियोंसे कहीं-कहीं पाठभेदके अतिरिक्त उसका और कोई भेद नहीं है, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि श्रीश्रीधरस्वामी एवं श्रीवल्लभाचार्य आदिको उससे भी कोई प्राचीन प्रति न मिली होगी । सम्भव है उनकी टीकाओंमें आदृत पाठ उस प्रतिसे भी प्राचीन हों और यही ठीक जँचता है । इस श्लोक गणनासे यह बात भलीभाँति सिद्ध हो जाती है कि श्रीमद्भागवतका प्रचलित रूप बहुत ही प्राचीन है ।

—शान्तनुविहारी द्विवेदी



* स्कन्धेषु सर्वेषु गता श्रुतेऽद्यमध्यायसंख्या शृणुत द्विजेन्द्रा । एकोनविंशा दश रामरामास्त्रैकत्रिंशद्रसनेत्रसंख्या ॥
नन्देन्दुसंख्या शरचन्द्रसमिताश्चतुर्द्वयं चाग्निमके तथैव । स्वनन्दसंख्या विधुवह्निसंख्या अध्यायसंख्या क्रमतस्त्रिरूपा ॥

श्रीमद्भागवत प्रामाणिक महापुराण है और भगवान् व्यासकृत है

श्रीमद्भागवत संस्कृत वाङ्मयकी सर्वोत्कृष्ट परिणति है। उसके लक्ष्य, साधन और शैली महान् तथा विलक्षण हैं; एवं उसका स्वरूप भी अत्यन्त गम्भीर, मधुर तथा प्रसादपूर्ण है। उसका अध्यात्म, उसका काव्य और उसकी समाज-संगठन-प्रणाली सम्पूर्ण संसारके लिये गौरवकी वस्तु है। जीवोंके परम कल्याणके लिये ही इस ग्रन्थरत्नका आविर्भाव हुआ है। यह भगवान्का साक्षात् स्वरूप है, प्रसाद है। उद्धवकी प्रार्थनासे भगवान्ने भागवतमें प्रवेश किया है। इसमें उन्होंने अपना विशेष तेज स्थापित किया है। वाङ्मयी मूर्ति धारण करके वे ही भागवतके रूपमें प्रकट हुए हैं। आज भी श्रद्धा-भक्ति और भावकी दृष्टिसे देखनेपर श्रीमद्भागवतके रूपमें साक्षात् भगवान्के दर्शन प्राप्त हो सकते हैं। भगवान् और श्रीमद्भागवतका आश्रयाश्रयिभाव-सम्बन्ध है।

'भागवत' शब्दका अर्थ है—जो भगवान्का हो। श्रीमद्भागवतके अनेक प्रसङ्गोंमें भक्तके अर्थमें 'भागवत' शब्दका प्रयोग हुआ है। भक्तके हृदयमें, दृष्टिमें, रोम-रोममें भगवान्का निवास है; भक्त केवल भगवान्के लिये है। उसके साध्य, साधन, जीवन एवं सब कुछ भगवान्के हैं। ठीक वैसे ही श्रीमद्भागवतमें जो कुछ है, वह स्वयं जो कुछ है, सब भगवान्का ही है; सब भगवान् ही है। यह सब सत्य, परम सत्य होनेपर भी आधुनिक मनोवृत्ति इसको भावुकता कहती है। इसलिये भागवतकी रक्षाके लिये नहीं—क्योंकि वह तो स्वयं सुरक्षित है; तार्किकोंके समाधानके लिये नहीं—क्योंकि तर्कोंका अन्त नहीं है; भक्तजनोंके सन्तोषार्थ, भागवतके सम्बन्धमें यहाँ कुछ बातें लिखी जाती हैं।

आर्यजातिमें सब प्रकारकी उन्नतिके लिये प्रायः दो प्रकारके शास्त्र स्वीकार किये गये हैं—श्रुति और स्मृति। इनके अतिरिक्त ब्रह्माण्डपुस्तक, पिण्डपुस्तक आदि भी शास्त्रोंके भेद हैं, जिनका वर्णन वेदके 'पञ्चनद्यः सरस्वती' मन्त्रमें आया है। श्रुतिके शब्द नित्य होते हैं। सब युग, सब मन्वन्तर और सब कल्पोंमें उनकी आनुपूर्वी एक-सी ही रहती है। सृष्टिके प्रारम्भमें प्रणव, गायत्री और मन्त्रसंहिताके रूपमें उनका अनाहत नाद होता है। विशुद्ध अन्तःकरणवाले ऋषिगण उसका श्रवण करते हैं और पीछे अपनी शिष्य-परम्परामें उन्हीं शब्दोंमें उनका विस्तार करते हैं। वेद शब्दशः एक ही होते हैं, देश और कालके व्यवधानसे उनमें अन्तर नहीं पड़ता। वे परमात्माके शब्द हैं।

दूसरे प्रकारके शास्त्र 'स्मृति' कहलाते हैं। मन्वादि स्मृति, महाभारतादि इतिहास, श्रीमद्भागवतादि महापुराण स्मृति-शास्त्रके अन्तर्गत हैं। महान् तपस्वी त्रिकालज्ञ ऋषियोंके परम पवित्र अन्तःकरणमें भगवान्की प्रेरणासे इन भावोंका आविर्भाव हुआ करता है। ये शास्त्र भाव-रूपसे तो सर्वदा एक ही रहते हैं, परन्तु इनके शब्दोंकी आनुपूर्वी परिवर्तित होती रहती है। सृष्टिके प्रारम्भमें प्राचीन भावोंकी स्मृति होती है और स्मृतिके आधारपर रचे जानेके कारण वे स्मृति-शास्त्र कहलाते हैं। यद्यपि पुराणोंमें ऐसे वचन भी मिलते हैं जिनमें श्रुतियोंके समान ही पुराणोंको शब्दरूपमें भी नित्य कहा गया है, तथापि पुराणोंके निर्माणका समय निर्दिष्ट होनेके कारण उन वचनोंको पुराणोंका महत्त्व वर्णन करके उनकी वेदसमकक्ष प्रामाणिकताके समर्थक समझना चाहिये। जगत्के इतिहासमें उथल-पुथल और उलट-पलट होनेपर भी ये एक-सरीखे ही रहते हैं। इसीसे वेद, उपनिषद् और मनुसंहिता आदिमें स्पष्ट बतलाया गया है कि जैसे भगवान्के निःश्वाससे ऋग्वेद-यजुर्वेद आदि प्रकट हुए हैं, वैसे ही इतिहास-पुराण भी प्रकट हुए हैं।

अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहास पुराणम्। (वाजसनेयिब्राह्मणोपनिषद् ४। ११। ५)

इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्।
(छान्दोग्योपनिषद् ७। १।२)

इनके अतिरिक्त संहिताभागमें भी अनेक स्थानोंपर पुराणोंका उल्लेख मिलता है। गोपथब्राह्मणमें और अथर्ववेदमें ब्राह्मणग्रन्थोंके साथ ही पुराणोंका वर्णन आता है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वेदोंमें आये हुए 'पुराण' शब्दका अर्थ ब्राह्मणग्रन्थ नहीं है। वेदोंकी ही भाँति पुराण भी भगवान्‌के निःश्वास हैं और वे इन्हीं भावोंको लेकर प्रत्येक कल्पके प्रारम्भमें प्रकट हुआ करते हैं।

उच्चज्ञानसम्पन्न ऋषि-मुनियोंके लिये वेदोंका अर्थ अत्यन्त स्पष्ट है। परन्तु साधारण लोगोंके लिये वह अत्यन्त दुरूह है और उसकी भाषा भी साधारण भाषासे विलक्षण ही है। इसलिये सर्वसाधारणको वेदोंका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये वेदोंके एक ऐसे भाष्यकी आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा सर्वसाधारण अपने लक्ष्य-लक्षण आदिको पहचान सकें। वेदोंके उपबृंहणके लिये इतिहास और पुराण साधन माने गये हैं—

'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।'

तीन गुण, तीन भाव और त्रिविध अधिकारियोंके भेदसे वेदोंके अर्थ भी तीन प्रकारके होते हैं। अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत भावोंको प्रकट करनेके लिये एक ही मन्त्रमें तीन प्रकारके अर्थ भरे रहते हैं। न केवल वेद ही, संसारकी समस्त वस्तुएँ त्रिविध भावसे व्याप्त हैं। 'नेत्र' शब्दके उच्चारणसे अधिभूत भावमें नेत्रगोलक, अधिदैव भावमें सूर्य और अध्यात्म भावमें रूपतन्मात्राका ग्रहण होता है। साधकके भूमि भेदके अनुसार उसे 'नेत्र' शब्दके उच्चारणसे भिन्न भिन्न भावोंकी अनुभूति होती है। ठीक इसी सिद्धान्तके अनुसार पुराणोंमें भी वेदमन्त्रोंसे तीनों प्रकारके भाव ग्रहण किये गये हैं और तीनों प्रकारकी शैलीमें वर्णन भी किया गया है। पुराणसंहितामें कहा गया है कि शास्त्रोंमें तीन प्रकारकी भाषा होती है—समाधिभाषा, परकीया भाषा और लौकिकी भाषा। समाधिभाषा उसको कहते हैं, जिसमें समाधिगम्य विषयोंको बिना रूपक आदिकी सहायताके स्पष्टरूपमें वर्णन किया गया हो—जैसे जीव, ईश्वर, प्रकृति आदिके स्वरूपका वर्णन। समाधिगम्य विषयोंका ही जब रूपक अथवा लौकिक विषयोंके समान वर्णन किया जाता है, तब उसको लौकिकी भाषा कहते हैं—जैसे ब्रह्माका अपनी कन्यापर मुग्ध होना, ब्रह्मा और विष्णुका शिवलिङ्गका ओर-छोर नहीं पाना आदि। परकीया भाषा उसको कहते हैं, जिसके द्वारा धर्मसंस्थापनके लिये किसी भी लोक, कल्प अथवा व्यक्तिकी यथार्थ कथा कही गयी हो। इन्हीं तीनों भाषाओंके द्वारा पुराण वेदगत अर्थोंका वर्णन करते हैं।

उपर्युक्त विवरणसे यह सिद्ध होता है कि वेद और उनके भाष्यस्वरूप पुराण अनादि और नित्य हैं। ये सृष्टि एवं प्रलयके पूर्व और पश्चात् भी विद्यमान रहते हैं। इसलिये इनके निर्माणकालके सम्बन्धमें जो अनुसन्धान होता है, वह यदि ब्रह्माण्डके विस्तार और दैवी राज्यपर दृष्टि रखकर नहीं किया गया तो सर्वथा अपूर्ण रहेगा और उसके द्वारा भ्रमकी ही विशेष वृद्धि होगी। शास्त्रोंकी अनादिता और नित्यता स्वीकार करते हुए भी वेदोंके अतिरिक्त जिनकी आनुपूर्वी नित्य नहीं है, उन स्मृतिरूप शास्त्रोंके प्रकट होनेका समय अनुसन्धान करनेमें कोई आपत्ति नहीं है। फिर भी दो बातोंका स्मरण तो निरन्तर रखना ही चाहिये—एक तो दिव्य शरीरवाले सिद्ध ऋषियोंकी असाधारण आयुका और दूसरे उन शास्त्रोंकी प्रामाणिकताका। यदि ऋषियोंकी आयु भी सामान्य पुरुषोंकी भाँति

सौ-पचास वर्षकी मान ली जायगी, तो भी ठीक-ठीक ग्रन्थनिर्माणका समय नहीं माल्रम हो सकेगा और यदि उन ग्रन्थोंमें लिखे हुए समयको अप्रामाणिक मानेंगे, तो भी उनके समय-निर्णयसे विशेष लाभ न हो सकेगा। जिसपर झूठा होनेका सन्देह है, उसकी प्राचीनता जानकर भी उसके अनुसार आचरण करनेमें हिचकिचाहट होगी।

प्रत्येक द्वापरयुगके अन्तमें भगवान् विष्णु व्यास-रूपसे अवतीर्ण होते हैं और मनुष्योंको अल्पबुद्धि, अल्पशक्ति और अल्पायु जानकर वेदोंके चार भाग कर देते हैं। व्यासका 'व्यास' नाम ही इसलिये पड़ा है कि वे वेदोंका विभाजन करते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर और प्रत्येक द्वापरमें भिन्न-भिन्न व्यास हुआ करते हैं। वैवस्वत मन्वन्तर-के अट्ठाईसवें द्वापरमें महर्षि पराशरके द्वारा सत्यवतीके गर्भमें उत्पन्न होनेवाले भगवान् कृष्णद्वैपायन ही व्यास हुए हैं (वि० पु० ३। ३)। वर्तमान समयमें वेदोंका जो स्वरूप उपलब्ध है, वह इन्हीं वेदव्यासके द्वारा संगृहीत है। महाभारत और अठारह पुराणोंके कर्त्ता भी यही वेदव्यास हैं। अठारह पुराणोंके नाम प्रायः प्रत्येक पुराणमें आते हैं। वे निम्नलिखित हैं—ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, नारदीयपुराण, मार्कण्डेयपुराण, आग्नेयपुराण, भविष्य-पुराण, ब्रह्मवैवर्तपुराण, लिङ्गपुराण, वराहपुराण, स्कन्द-पुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुड़पुराण और ब्रह्माण्डपुराण। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से पुराण और उपपुराण प्राप्त होते हैं। कई पुराण तो दो-दो प्राप्त होते हैं। स्कन्दपुराण एक संहितात्मक है और दूसरा खण्डात्मक है। दोनों ही व्यासकृत हैं। एक पुराण है और एक उपपुराण। वैसे ही श्रीमद्भागवत भी दो प्रकारके प्राप्त होते हैं—एक भागवत और दूसरा देवीभागवत। इनमेंसे महापुराणान्तर्गत कौन-सा भागवत है, यह विचारणीय प्रश्न है। देवीभागवतके पक्षमें पाँच बातें कही जाती हैं—

१—महाभारत-निर्माणके पूर्व ही अष्टादश पुराणोंकी रचना हो चुकी थी, ऐसा वर्णन मिलता है*। भागवतकी रचना महाभारतके पश्चात् हुई, जैसा कि भागवतमें लिखा है। तब भागवत व्यासरचित होनेपर भी महापुराण कैसे हो सकता है?

२—श्रीमद्भागवतके टीकाकारोंने भागवतके स्वरूपका निर्णय करनेके लिये प्रथम श्लोककी व्याख्यामें जो वचन उद्धृत किये हैं, वे देवीभागवतपर पूर्णतः घट जाते हैं और श्रीमद्भागवतपर नहीं घटते। इसलिये देवीभागवत ही 'भागवत' शब्दका वाच्यार्थ है।

३—मत्स्यपुराणमें जहाँ पुराणोंके दानका प्रसङ्ग आया है, वहाँ भागवतके साथ हेमसिंहके दानकी भी आज्ञा है। सिंहके साथ देवीभागवतका ही साक्षात् सम्बन्ध है, श्रीमद्भागवतका नहीं। इसलिये भी देवीभागवत ही भागवत है।

४—वेदव्यासरचित महाभारत, विष्णुपुराण, स्कन्द-पुराण आदि ग्रन्थोंमें जैसे द्राक्षापाक, कैशिकी वृत्ति और सरल भाषाका प्रयोग हुआ है वैसा देवीभागवतमें तो है; परन्तु श्रीमद्भागवतमें ठीक उसके विपरीत नारिकेलपाक, आरभटी आदि वृत्ति और कठोर भाषाका प्रयोग हुआ है। इसलिये श्रीमद्भागवत किसी अन्यकी रचना है और देवीभागवत वेदव्यासकी।

५—ईसाकी तेरहवीं सदीमें वैद्यवर केशवके पुत्र, श्रीधनेश मिश्रजीके शिष्य, देवगिरिनरेश महाराज महादेवके सभापण्डित पण्डितराज श्रीवोपदेवने राजमन्त्री श्रीहेमाद्रिको सन्तुष्ट करनेके लिये श्रीमद्भागवतकी रचना की। यह

---

* अष्टादशपुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्॥
(स्कं० पु०)

अष्टादशपुराणानि अष्टौ व्याकरणानि च।
ज्ञात्वा सत्यवतीसूनुश्चक्रे भारतसंहिताम्॥
(म० पु०)

सर्वथा स्वतन्त्र उनकी रचना है, इसे महापुराणोंमें स्थान नहीं मिलना चाहिये। इसका खण्डन हो जानेपर देवी-भागवत स्वतः ही महापुराण सिद्ध हो जाता है।

अब इन आपत्तियोंपर क्रमशः विचार किया जाता है।

१—वर्तमान कालमें जो अष्टादश पर्वका महाभारत उपलब्ध होता है, यह भगवान् व्यासके बनाये हुए महाभारतका संक्षिप्त रूप है। भगवान् व्यासने पहले सौ पर्वोंका महाभारत बनाया था। पूर्ण हो जानेपर उन्होंने ऐसा सोचा कि वेद और ब्रह्मसूत्रोंमें द्विजेतरोंका अधिकार नहीं है—ऐसा विचार करके मैंने इस सौ पर्व-वाली संहिताका निर्माण स्त्री, शूद्र और ब्राह्मणबन्धुओंके लिये किया था। परन्तु यह इतनी बृहत् और गम्भीर हो गयी कि सम्भव है उनके लिये उपयोगी न हो। इसलिये व्यासदेवने अपने दो शिष्य जैमिनि और वैशम्पायनको बुलाकर कहा कि तुम इस सौ पर्वके महाभारतका अठारह पर्वके महाभारतके रूपमें सक्षेप कर दो।

'एतत् पर्वशतं पूर्णं व्यासेनोक्तं महात्मना।
ततस्तु सूतपुत्रेण रोमहर्षणिना पुरा॥
कथितं नैमिषारण्ये पर्वाण्यष्टादशैव तु।'

जैमिनिकृत महाभारतका केवल जैमिनीयाश्वमेध ही प्रचलित है। शेष भाग सुलभ नहीं है। वैशम्पायनकृत महाभारत ही आजकल उपलब्ध होता है। 'समासो भारतस्यायम्' इस उक्तिसे तो यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जाती है। अष्टादश पर्ववाले महाभारतके पूर्व अष्टादश पुराणोंका निर्माण हो चुका था, परन्तु सौ पर्ववाले महाभारतके पूर्व नहीं। इसलिये जहाँ पुराणोंके महाभारत-से पूर्व निर्माणका वर्णन आता है वहाँ अष्टादश पर्व-वाले महाभारतसे, और जहाँ पश्चात्का वर्णन आता है वहाँ सौ पर्ववालेसे—ऐसा समझना चाहिये। सच्ची बात तो यह है कि महाभारत और पुराण एक ही व्यक्तिके बनाये हुए हैं, इसलिये उनमें पूर्वापरभावकी कल्पना ही ठीक नहीं है। गीतामें ब्रह्मसूत्रोंका उल्लेख और ब्रह्मसूत्रोंमें गीताका, पुराणोंमें महाभारतका और महाभारत-में पुराणोंका उल्लेख इस बातका अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण है कि ये सब एक काल और एक व्यक्तिके लिखे हुए हैं। पहलेके बने होनेपर भी मार्कण्डेय, अग्नि आदि पुराणोंमें महाभारतकी चर्चा है। जनमेजयके यज्ञमें महाभारतका सुनाया जाना और महाभारतमें जनमेजयकी कथा आना, ये दोनों ही इस बातके सूचक हैं कि यज्ञके पहले ही परीक्षित्को श्रीमद्भागवत सुनाया जा चुका था। जनमेजयके यज्ञका वर्णन करनेवाला महाभारत श्रीमद्भागवत-के पहले बना था, यह कल्पना किसी प्रकार सुसङ्गत नहीं है। इसलिये ऐसा मानना चाहिये कि भगवान् व्यासने पहले सौ पर्ववाले महाभारतकी रचना की, उसके बाद सत्रह पुराणोंकी। परन्तु उनके निर्माणसे जब सन्तोष न हुआ, तब नारदके उपदेशसे श्रीमद्भागवतकी रचना की। प्रत्येक पुराणमें अठारहों पुराणोंके नाम आये हैं। यह बात ध्यानमें रख लेनेपर फिर यह प्रश्न ही नहीं रह जाता कि पहले किस ग्रन्थका निर्माण हुआ है। संशोधन, परिवर्तन, परिवर्द्धन, एक दूसरेका मिलान बहुत दिनोंतक स्वयं व्यास ही करते रहे हैं। इसलिये श्रीमद्भागवतमें जो यह वर्णन आया है कि यह महाभारतके पीछे बना है—यह सत्य है; परन्तु इस महाभारतके पूर्व बननेके कारण वह अष्टादश महापुराणों-के अन्तर्गत ही है। यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि 'भागवत' शब्दकी व्युत्पत्ति दोनों ही प्रकारसे हो सकती है—'भगवत्या इदम्' और 'भगवत इदम्'। इससे ठीक-ठीक अर्थ निकल जानेपर भी भागवत शब्दके पूर्व 'देवी' शब्द लगानेका कोई प्रयोजन नहीं मालूम पड़ता। विशेषण लगानेसे उलटे यह बात सिद्ध होती है कि पुराण-प्रसिद्ध भागवत-शब्दार्थ श्रीमद्भागवत है और देवीभागवत उससे पृथक् और पीछेका है।

२—श्रीमद्भागवतके निम्नलिखित लक्षण पुराणोंमें मिलते हैं—

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं तद् भागवतमिष्यते॥
(मत्स्यपुराण)

ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसम्मितः।
हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा॥
गायत्र्या च समारम्भस्तद् वै भागवतं विदुः।
(स्कन्दपुराण)

अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु।
पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम्॥
(पद्मपुराण)

अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः।
गायत्रीभाष्यरूपोऽसौ वेदार्थपरिबृंहितः॥
पुराणानां साररूपः साक्षाद् भागवतोदितः।
द्वादशस्कन्धसंयुक्तः शतविच्छेदसंयुतः॥
ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः॥
(गरुड़पुराण)

'जिस पुराणमें गायत्रीके* द्वारा धर्मके विस्तार और वृत्रासुरके वधका वर्णन हो, उसका नाम भागवत है।'

'बारह स्कन्ध, अठारह हजार श्लोकवाला ग्रन्थ—जिसमें हयग्रीवचरित्र, ब्रह्मविद्या, वृत्रासुरवधका वर्णन है और गायत्रीसे जिसका प्रारम्भ हुआ है—उसका नाम भागवत है।'

'हे अम्बरीष! यदि तुम्हारी इच्छा है कि मैं संसारसे मुक्त हो जाऊँ, तो तुम प्रतिदिन शुकोक्त भागवतका श्रवण करो अथवा अपने-आप ही पठन करो।'

'यह ब्रह्मसूत्रोंका अर्थ है, महाभारतका तात्पर्य-निर्णय है, गायत्रीका भाष्य है और समस्त वेदोंके अर्थको धारण करनेवाला है। समस्त पुराणोंका सार रूप है, साक्षात् श्रीशुकदेवजीके द्वारा कहा हुआ है, इसमें सौ विश्राम हैं, अठारह हजार श्लोकोंका यह श्रीमद्भागवत नामक ग्रन्थ है।'

ये सब-के-सब लक्षण श्रीमद्भागवतमें घट जाते हैं। श्रीमद्भागवतके पहले और अन्तिम श्लोकमें गायत्रीका सार आ गया है। केवल इतने ही प्रमाण नहीं; नारदीय महापुराणमें जहाँ सभी पुराणोंकी अनुक्रमणिका लिखी गयी है, वहाँ श्रीमद्भागवतकी अनुक्रमणिका पूर्ण रूपसे प्राप्त होती है। यथा—

विरिञ्चे शृणु वक्ष्यामि वेदव्यासेन यत् कृतम्।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं वेदसम्मितम्॥
तदष्टादशसाहस्रं कीर्तितं पापनाशनम्।
सुरपादपरूपोऽयं स्कन्धैर्द्वादशभिर्युतः॥
भगवानेव विप्रेन्द्र विश्वरूपी समाहितः।
तत्र तु प्रथमे स्कन्धे सूतर्षीणां समागमे।
व्यासस्य चरितं पुण्यं पाण्डवानां तथैव च॥
—इत्यादि

न केवल नारदीय पुराणमें बल्कि अन्यान्य पुराणोंमें भी बहुत स्पष्ट वर्णन आया है—

दशसप्त पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
नाप्तवान्मनसस्तोषं भारतेनापि भामिनि॥
चकार संहितामेतां श्रीमद्भागवतीं पराम्।
(पद्मपुराण)

'सत्यवतीनन्दन व्यासने महाभारत और सत्रह पुराणोंकी रचना की, फिर भी उन्हें शान्ति न मिली; तब उन्होंने श्रीमद्भागवतकी रचना की।'

पद्मपुराणमें श्रीमद्भागवतमाहात्म्यके प्रसङ्गमें ऐसा वर्णन आता है कि जब भागवतकी कथा होने लगी तब वेद, वेदान्त, मन्त्र, तन्त्र, संहिता, सत्रहों पुराण और हजारों ग्रन्थ उपस्थित हुए। जैसा कि निम्न-श्लोकसे प्रकट होता है—

वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राणि संहिताः।
दशसप्तपुराणानि सहस्राणि तदाऽऽययुः॥

यदि श्रीमद्भागवत अठारहवाँ पुराण न होता, तो यहाँ सत्रह ही पुराणोंके आनेकी बात नहीं लिखी

* श्रीमद्भागवतके प्रथम पद्यमें ही गायत्रीका पूरा वर्णन है। सवितुः=जन्माद्यस्य यतः। देवस्य=स्वराट्। वरेण्यं भर्गः=धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकम्। धियो यो नः इत्यादि=तेने ब्रह्म हृदा आदि। धीमहि=धीमहि। अन्तमें भी है।

जाती। अठारहवेंकी अनुपस्थितिसे यह निश्चित होता है कि वह श्रीमद्भागवत ही है, जिसकी कथा हो रही है। इसलिये पद्मपुराणके—

पुराणेषु च सर्वेषु श्रीमद्भागवतं परम्।
यत्र प्रतिपदं विष्णुर्गीयते बहुधर्षिभिः॥
इति संकल्प्य मनसा श्रीमद्भागवतं परम्।
जन्माद्यस्य यतश्चेति धीमह्यन्तमुपावदत्॥

इन वचनोंके अनुसार तो और किसी पुराणकी शङ्का ही नहीं उठती; और वास्तवमें यही महापुराण है, यह बात सिद्ध हो जाती है।

३—श्रीमद्भागवतके प्रसङ्गमें कहा गया है—

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमसिंहसमन्वितम्।
प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां स याति परमं पदम्॥
(मत्स्यपुराण)

इसका भाव है कि सोनेके सिंहासनपर स्थापित करके श्रीमद्भागवतका दान करनेसे परमपदकी प्राप्ति होती है। मूलमें 'हेमसिंह' शब्द है, 'सिंहासन' शब्द नहीं है। इससे कई लोग सोचते हैं कि देवीका वाहन सिंह है, इसलिये यहाँ सिंहके सम्बन्धसे देवीभागवतका ही ग्रहण होना चाहिये। परन्तु 'सिंह' शब्दसे यहाँ सिंहासन लेना ही उपयुक्त है, क्योंकि किसी भी पुराणके पीठको सिंहासन कहा जाता है। यदि यह बात न मानी जाय, तो शास्त्रोंमें भगवान्के सिंहवाहनका भी वर्णन आया है। अत्रिप्रोक्त कारिकाग्रन्थ एवं वैशम्पायनप्रोक्त कारिकाग्रन्थमें भगवान्के दस अर्चावतारोंके लिये दस प्रकारके वाहनोंका वर्णन आया है, जिनमें दूसरा वाहन सिंह है। पञ्चरात्रागम एवं भृगुप्रोक्त वैखानस दैविक यज्ञाधिकारके उत्सवपटलमें विष्णुभगवान्के हंस, सिंह, हनुमान्, शेष, गरुड, दन्तावल, रथ, अश्व, शिबिका और पुष्पक—इन दस वाहनोंका वर्णन प्राप्त होता है।* इसलिये 'हेमसिंह' शब्द देखकर ऐसी कल्पना नहीं करनी चाहिये कि यह लक्षण श्रीमद्भागवतका नहीं, देवीभागवतका है। इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतके बारहवें स्कन्धके अन्तिम अध्यायमें भी हेमसिंहपर स्थापित करके श्रीमद्भागवतके दानका वर्णन आता है।

४—भाषातत्त्वकोविद आचार्योंने पाक, वृत्ति, शय्या, रीति आदिके अनेकों लक्षण बतलाये हैं—जिनका विस्तार-भयसे यहाँ वर्णन नहीं किया जाता। सङ्क्षेपसे इतना ही समझ लेना चाहिये कि जहाँ शृङ्गार एवं करुण-रसका अत्यन्त कोमल सन्दर्भके द्वारा वर्णन किया जाय वहाँ कैशिकी वृत्ति होती है; जहाँ रौद्र और बीभत्स-रस अत्यन्त प्रौढ सन्दर्भके द्वारा प्रतिपादित हों, वहाँ आरभटी वृत्ति होती है; जहाँ अत्यन्त कोमलता अथवा अत्यन्त प्रौढताका आश्रय न लेकर किञ्चित् सुकुमार सन्दर्भके द्वारा हास्य, शान्त और अद्भुत रसोंका वर्णन होता है वहाँ भारती वृत्ति होती है और जहाँ किञ्चित् प्रौढताको लेकर साधारणतः वीर और भयानक रसका वर्णन होता है, वहाँ भी भारती वृत्ति होती है। इसके अतिरिक्त सर्वसाधारण वर्णनमें मध्यम कैशिकी और मध्यम आरभटीका प्रयोग होता है। ये वृत्तियाँ अर्थ और शब्द दोनोंकी अपेक्षासे होती हैं; परन्तु वैदर्भी, गौडी, पाञ्चाली आदि रीतियाँ केवल शब्दगुणाश्रित होती हैं। उन्हें अर्थ-विशेषकी अपेक्षा नहीं होती, केवल सन्दर्भकी सुकुमारता और प्रौढतासे उनके भेद होते हैं। पदोंकी अन्योन्य-मैत्रीका नाम 'शय्या' है। पाक दो प्रकारके होते हैं—एक द्राक्षापाक और दूसरा नारिकेलपाक। जिसमें बाहर और भीतर सर्वत्र रसकी परिस्फूर्ति होती हो, उसका नाम द्राक्षापाक है और जिसके भीतर रस अत्यन्त गूढ रूपसे रहता हो, उसको नारिकेलपाक कहते हैं।

वेदव्यास साक्षात् भगवान् हैं। जो लोग शास्त्र और भावुकताकी दृष्टिसे न देखकर केवल तर्कबुद्धिसे विचार करते हैं, वे लोग भी व्यासदेवको लोकोत्तर कवि तो

* अथ विष्णोर्वाहनानि व्याख्यास्यामः—प्रथमे हंसो द्वितीये सिंहस्तृतीये ह्याञ्जनेयश्चतुर्थे फणीन्द्रः पञ्चमे वैनतेयष्षष्ठे दन्तावलस्सप्तमे रथोऽष्टमे तुरङ्गमो नवमे शिबिका दशमे पुष्पकमिति।

मानते ही हैं। जिन्होंने निखिल वेदोंका विभाजन किया, इतिहास और पुराणोंका निर्माण किया, वेदार्थशिक्षा और वेदार्थनिर्णयके लिये शिक्षा-शास्त्र और ब्रह्मसूत्रोंका प्रणयन किया, जिन्होंने सारे जगत्के सामने शब्दब्रह्म और परब्रह्मका स्वरूप रख दिया—वे ही भगवान् व्यास यदि अनेकविध भाषाओंमें, अनेक ग्रन्थोंमें, अनेक प्रकारकी वृत्ति, रीति और कलाका प्रयोग करें तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है ? एक ओर उपाख्यानोंके द्वारा गूढ़-से-गूढ़ तत्त्वको प्रकाशित कर देना और दूसरी ओर बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी दुरूह ब्रह्मसूत्रोंका निर्माण कर देना, यह उन्हींकी प्रतिभाका काम है। व्यासशिक्षामें सरल शब्दोंद्वारा अपना भाव प्रकट कर देना और महाभारतके कूट श्लोकोंमें गणेशके लिये भी दुर्गम बना देना, ऐसा परस्परविरुद्ध कार्य भगवान् व्यासके अतिरिक्त और कौन कर सकता है ? अन्य पुराणों और भागवतकी भाषामें जो भेद है, वह उनकी और भी महिमा प्रकट करता है। वास्तवमें तो ब्रह्मसूत्र और भागवतकी भाषामें इतना साम्य है कि कई स्थानपर तो अनेकों सूत्र ज्यों-के-त्यों भागवतमें मिलते हैं। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने श्रीमद्भागवतको ब्रह्मसूत्रोंका भाष्य मानकर, जैसा कि गरुड़पुराणमें लिखा है, और किसी भाष्यकी रचना नहीं की। इसलिये केवल भाषाकी भिन्नतासे भागवतको अन्यकर्तृक मानना उचित नहीं है।

केवल वेदव्यासके ही ग्रन्थोंमें भाषाकी भिन्नता हो, ऐसी बात नहीं; अबतक जितने भी संस्कृतसाहित्यमें विलक्षण प्रतिभासम्पन्न पुरुष हुए हैं, सबने समय-समयपर भिन्न-भिन्न प्रकारकी भाषाओंमें अपने भाव प्रकट किये हैं। तत्त्वबोध, आत्मबोध, विवेकचूड़ामणि, अपरोक्षानुभूति, प्रबोधसुधाकर आदि सरल ग्रन्थोंके लिखनेवाले आचार्य शङ्कर ब्रह्मसूत्रोंके भाष्यमें ऐसी कठिन भाषा लिख सकते हैं—साधारण लोग इसका अनुमान भी नहीं लगा सकते। परन्तु यही उनकी विशेषता है कि सरल-से-सरल और कठिन-से-कठिन भाषापर उनका एक-सा आधिपत्य है। उदाहरणके लिये—

'जन्मजरामरणशोकाद्यनेकानर्थात्मकः प्रतिक्षणमन्यथास्वभावो मायामरीच्युदकगन्धर्वनगरादिवद् दृष्टनष्टस्वरूपत्वादवसाने च वृक्षवदभावात्मकः कदलीस्तम्भवन्निःसारोऽनेकशतपाखण्डबुद्धिविकल्पास्पदस्तत्त्वविजिज्ञासुभिः अनिर्धारितेदंतत्त्वो वेदान्तनिर्धारितपरब्रह्ममूलसारोऽविद्याकामकर्माव्यक्तबीजप्रभवोऽपरब्रह्मविज्ञानक्रियाशक्तिद्वयात्मकहिरण्यगर्भाङ्कुरः सर्वप्राणिलिङ्गभेदस्कन्धस्तृष्णाजलावसेकोद्भूतदर्पो बुद्धीन्द्रियविषयप्रवालाङ्कुरः श्रुतिस्मृतिन्यायविद्योपदेशपलाशो यज्ञदानतपआद्यनेकक्रियासुपुष्पः' इत्यादि

(क० उ० २। ३। १ शाङ्करभाष्य)

इसके विपरीत—

दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

(विवेकचूडामणि)

इन दोनों उद्धरणोंकी भाषा देखकर कोई भी विद्वान् नहीं कह सकता कि ये एक ही व्यक्तिकी कृति हैं। परन्तु वास्तवमें बात ऐसी ही है, ये दोनों भगवान् शंकराचार्यकी कृति हैं। ऐसे ही मधुसूदन सरस्वती, विद्यारण्य स्वामी, हर्षमिश्र, वाचस्पतिमिश्र आदिके ग्रन्थोंमें भी भाषाभेद देखा जाता है। आचार्योंकी तो बात ही क्या, महाकवि कालिदासकी कृति रघुवंश और मेघदूतमें भाषाका ऐसा विलक्षण भेद है कि देखकर चकित रह जाना पड़ता है—'क्व सूर्यप्रभवो वंशः' और 'कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्तः' में जो भाषावैचित्र्य है, उसको केवल काव्य-कला-कुशल ही समझ सकते हैं। कालिदासकी ही कृति नलोदयमें 'रसारसारसारसा' 'पिकोपिकोपिको-

पिको' आदि उक्तियाँ अपनी विचित्र वैदग्धीसे पाठकके चित्तको चमत्कृत कर देती हैं। यह कविका भूषण है। भगवान् व्यासकी कृतियोंमें केवल वृत्ति भेद, पाक भेद आदि देखकर कर्तृ भेदकी कल्पना किसी भी प्रकार न्यायोचित नहीं है।

५—श्रीमद्भागवतका रचनाकाल बोपदेवसे बहुत पहले है और इसके रचयिता स्वयं भगवान् वेदव्यासजी हैं। इस बातको हमने दूसरे स्वतन्त्र लेखमें भलीभाँति सिद्ध किया है। पाठक इसी अङ्कमें उस लेखको पढ़ लें।

श्रीमद्भागवत व्यासकृत महापुराण है—इसी बातको सिद्ध करनेके लिये उपर्युक्त बातें लिखी गयी हैं, न कि देवीभागवतके खण्डनके लिये। क्योंकि देवीभागवत भी एक बहुत सम्मान्य पुराण है और वह भी प्रामाणिक ही है।

—शान्तनुविहारी द्विवेदी

श्रीमद्भागवतका रचनाकाल

श्रीमद्भागवतके निर्माता और निर्माणकालके सम्बन्धमें बहुत सी शङ्काएँ उठायी जाती हैं। ये सब पाश्चात्त्य विद्वानों तथा उनके अनुयायी आधुनिक भारतीयोंके मस्तिष्ककी उपज हैं, जो प्रत्येक वस्तुको शास्त्रीय दृष्टिसे न देखकर केवल बाहरी प्रमाणोंके आधारपर ही देखना चाहते है। ऐसे ही लोगोंमें कुछ सज्जनोंने श्रीमद्भागवतको तेरहवीं शताब्दीकी रचना बतलाया है और इसका रचयिता बोपदेवको माना है। कुछने इसे और भी आधुनिक बतलाया है। एक सज्जनने तो यहाँतक कहा है कि श्रीमद्भागवतके रासलीलादि प्रसङ्ग तो सोलहवीं शताब्दीकी रचना हैं। परन्तु विचार करनेपर पता लगता है कि ये सब मत भ्रमपूर्ण हैं। श्रीमद्भागवत महापुराण भगवान् व्यासकी रचना है और इसका रचनाकाल पाँच हजार वर्षसे पहलेका है। श्रीमद्भागवत व्यासकृत है, यह तो हम अन्यत्र दूसरे लेखमें प्रमाणित कर चुके हैं। इस लेखमें उसके रचना-कालके सम्बन्धमें कुछ प्रमाण उद्धृत किये जाते हैं। आशा है, इससे पाठकोंको सन्तोष होगा।

यह निश्चित हो चुका है कि बोपदेवका समय ईसाकी तेरहवीं शताब्दी है। क्योंकि देवगिरिके यादव राजा महादेवका राजत्वकाल सन् १२६० ई० से सन् १२७१ ई० तक माना गया है और सन् १२७१ ई० से सन् १३०९ ई० तक रामचन्द्र नामक राजा वहाँ रहे हैं। उनके समस्त करणाधिपति और मन्त्री थे हेमाद्रि, और हेमाद्रिकी प्रसन्नताके लिये ही कविराज श्रीबोपदेवने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी। बोपदेवने कुल छब्बीस ग्रन्थोंकी रचना की थी। व्याकरणके दस, वैद्यकके नौ, तिथिनिर्णयका एक, साहित्यके तीन और भागवत तत्त्वके तीन। भागवततत्त्वका वर्णन करनेके लिये उन्होंने जिन तीन ग्रन्थोंका निर्माण किया था, उनके नाम हैं—'परमहंसप्रिया', 'हरिलीलामृत' और 'मुक्ताफल'। इनमेंसे 'हरिलीलामृत' और 'मुक्ताफल' छपे हुए हैं। 'मुक्ताफल' की टीकामें, जो कि हेमाद्रिके द्वारा ही रचित है, लिखा है कि बोपदेवने इन इन ग्रन्थोंका निर्माण किया है *। 'हरिलीलामृत' का ही दूसरा नाम 'भागवतानुक्रमणिका' है। यदि बोपदेवने भागवतकी रचना की होती, तो हेमाद्रि बोपदेवकृत ग्रन्थोंके प्रसङ्गमे उसकी चर्चा अवश्य करते। वास्तविक बात तो यह है कि जैसे श्रीधरस्वामीने प्रत्येक अध्यायका संग्रह एक-एक श्लोकमें किया है और जैसे 'भागवत

* यस्य व्याकरणे वरेण्यघटनाः स्फीताः प्रबन्धा दश
प्रख्याता नव वैद्यकेऽपि तिथिनिर्धारार्थमेकोऽद्भुतः।
साहित्ये त्रय एव भागवततत्त्वोक्तौ त्रयस्तस्य च
भूगीर्वाणशिरोमणेरिह गुणाः के के न लोकोत्तराः॥

कष्ट मिटानेवाले और जन्म-मृत्युके बन्धनसे छुड़ानेवाले प्रभो! बड़े-बड़े योगिराज और देवराज भी आपके स्वरूपको नहीं जान सकते। परन्तु हमें आपका साक्षात् दर्शन हो गया, यह कितने सौभाग्यकी बात है! प्रभो! हम स्त्री, पुत्र, धन, स्वजन, गेह और देह आदिके मोहकी रस्सीसे बँधे हुए हैं। अवश्य ही यह आपकी मायाका खेल है। आप कृपा करके इस गाढ़े बन्धनको शीघ्र काट दीजिये ॥ १७–२७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार भक्त अक्रूरजीने भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा और स्तुति की। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने मुसकराकर अपनी मधुर वाणीसे उन्हें मानो मोहित करते हुए कहा ॥ २८ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'तात! आप हमारे गुरु—हितोपदेशक और चाचा हैं। हमारे वंशमें अत्यन्त प्रशंसनीय तथा हमारे सदाके हितैषी हैं। हम तो आपके बालक हैं और सदा ही आपकी रक्षा, पालन और कृपाके पात्र हैं। अपना परम कल्याण चाहनेवाले मनुष्योंको आप-जैसे परम पूजनीय और महाभाग्यवान् संतोंकी सर्वदा सेवा करनी चाहिये। आप-जैसे संत देवताओंसे भी बढ़कर हैं। क्योंकि देवताओंमें तो स्वार्थ रहता है, परन्तु संतोंमें नहीं। केवल जलके तीर्थ (नदी, सरोवर आदि) ही तीर्थ नहीं हैं; केवल मृत्तिका और शिला आदिकी बनी हुई मूर्तियाँ ही देवता नहीं हैं। चाचाजी! उनकी तो बहुत दिनोंतक श्रद्धासे सेवा की जाय, तब वे पवित्र करते हैं। परन्तु संत पुरुष तो अपने दर्शनमात्रसे पवित्र कर देते हैं। चाचाजी! आप हमारे हितैषी सुहृदोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। इसलिये आप पाण्डवोंका हित करनेके लिये तथा उनका कुशल-मङ्गल जाननेके लिये हस्तिनापुर जाइये। हमने ऐसा सुना है कि राजा पाण्डुके मर जानेपर अपनी माता कुन्तीके साथ युधिष्ठिर आदि पाण्डव बड़े दुःखमें पड़ गये थे। अब राजा धृतराष्ट्र उन्हें अपनी राजधानी हस्तिनापुरमें ले आये हैं और वे वहीं रहते हैं। आप जानते ही हैं कि राजा धृतराष्ट्र एक तो अंधे हैं और दूसरे उनमें मनोबलकी भी कमी है। उनका पुत्र दुर्योधन बहुत दुष्ट है और उसके अधीन होनेके कारण वे पाण्डवोंके साथ अपने पुत्रों-जैसा—समान व्यवहार नहीं कर पाते। इसलिये आप वहाँ जाइये और मालूम कीजिये कि उनकी स्थिति अच्छी है या बुरी। आपके द्वारा उनका समाचार जानकर मैं ऐसा उपाय करूँगा, जिससे उन सुहृदोंको सुख मिले।' सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूरजीको इस प्रकार आदेश देकर बलरामजी और उद्धवजीके साथ वहाँसे अपने घर लौट आये ॥ २९–३६ ॥

उनचासवाँ अध्याय

अक्रूरजीका हस्तिनापुर जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌के आज्ञानुसार अक्रूरजी हस्तिनापुर गये। उन्होंने देखा कि वहाँ एक-एक वस्तु पुरुवंशी नरपतियोंकी अमरकीर्तिका गायन कर रही है। वे पहले धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, कुन्ती, बाह्लीक और उनके पुत्र सोमदत्त, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, दुर्योधन, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, युधिष्ठिर आदि पाँचों पाण्डव तथा अन्यान्य इष्ट-मित्रोंसे मिले। जब गान्दिनीनन्दन अक्रूरजी सब इष्ट-मित्रों और सम्बन्धियोंसे भलीभाँति मिल चुके, तब उनसे उन लोगोंने अपने मथुरावासी स्वजन-सम्बन्धियोंकी कुशल-क्षेम पूछी। उनका उत्तर देकर अक्रूरजीने भी हस्तिनापुरवासियोंके कुशल-मङ्गलके सम्बन्धमें पूछताछ की। परीक्षित्! अक्रूरजी यह जाननेके लिये कि, धृतराष्ट्र पाण्डवोंके साथ कैसा व्यवहार करते हैं, कुछ महीनोंतक वहीं रहे। सच पूछो, तो धृतराष्ट्रमें अपने दुष्ट पुत्रोंकी इच्छाके विपरीत कुछ भी करनेका साहस न था। वे शकुनि आदि दुष्टोंकी सलाहके अनुसार ही काम करते थे। अक्रूरजीको कुन्ती और विदुरने यह बतलाया कि धृतराष्ट्रके लड़के दुर्योधन आदि पाण्डवोंके प्रभाव, शस्त्रकौशल, बल, वीरता तथा विनय आदि सद्गुण देख-देखकर उनसे जलते रहते हैं। जब वे यह देखते हैं कि प्रजा पाण्डवोंसे ही विशेष प्रेम रखती है, तब तो वे और भी चिढ़ जाते हैं और पाण्डवोंका अनिष्ट करनेपर उतारू हो जाते हैं। अबतक दुर्योधन आदि धृतराष्ट्रके पुत्रोंने पाण्डवोंपर कई बार विषदान आदि बहुत-से अत्याचार किये हैं और आगे भी बहुत कुछ करना चाहते हैं। इस प्रकार सब बातें उन लोगोंने बतायीं ॥ १–६ ॥

जब अक्रूरजी कुन्तीके घर आये, तब वह अपने भाईके पास जा बैठीं। अक्रूरजीको देखकर कुन्तीके मनमें गाँव-घरकी स्मृति जग गयी और नेत्रोंमें आँसू भर आये। उन्होंने कहा—'प्यारे भाई! क्या कभी मेरे माँ-बाप, भाई-बहिन,

बहुत-से श्वेत घोड़े भेज दिये, जिनका एक-एक कान श्याम-वर्णका था, और जिनकी चाल मनके समान तेज थी। धनपति कुबेरजीने अपनी आठों निधियाँ भेज दीं और दूसरे लोकपालोंने भी अपनी-अपनी विभूतियाँ भगवान्‌के पास भेज दीं। परीक्षित्! सभी लोकपालोंको भगवान् श्रीकृष्णने ही उनके अधिकारके निर्वाहके लिये शक्तियाँ और सिद्धियाँ दी हैं। जब भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीपर अवतीर्ण होकर लीला करने लगे, तब सभी सिद्धियाँ उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दीं। भगवान् श्रीकृष्णने अपने समस्त स्वजन-सम्बन्धियोंको अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके द्वारा द्वारकामें पहुँचा दिया। शेष प्रजाकी रक्षाके लिये बलरामजीको मथुरापुरीमें रख दिया और उनसे सलाह लेकर गलेमें कमलोंकी माला पहने, बिना कोई अस्त्र-शस्त्र लिये स्वयं नगरके बड़े दरवाजेसे बाहर निकल आये ॥४६–५८॥

इक्यावनवाँ अध्याय

कालयवनका भस्म होना, मुचुकुन्दकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! जिस *समय भगवान् श्रीकृष्ण मथुरा नगरके मुख्य द्वारसे निकले*, उस समय ऐसा मालूम पड़ा मानो पूर्व दिशासे चन्द्रोदय हो रहा हो। उनका श्यामल शरीर अत्यन्त ही दर्शनीय था, उसपर रेशमी पीताम्बरकी छटा निराली ही थी; वक्षःस्थलपर स्वर्णरेखाके रूपमें श्रीवत्स-चिह्न शोभा पा रहा था और गलेमें कौस्तुभमणि जगमगा रही थी। चार भुजाएँ थीं, जो लंबी-लंबी और कुछ मोटी-मोटी थीं। हालके खिले हुए कमलके समान कोमल और रतनारे नेत्र थे। मुखकमलपर राशि-राशि आनन्द खेल रहा था। कपोलोंकी छटा निराली ही थी। मन्द-मन्द मुसकान देखनेवालोंका मन चुराये लेती थी। कानोंमें मकराकृत कुण्डल झिलमिल-झिलमिल झलक रहे थे। उन्हें देखकर कालयवनने निश्चय किया कि 'यही पुरुष वासुदेव है। क्योंकि नारदजीने जो-जो लक्षण बतलाये थे—वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, चार भुजाएँ, कमलके-से नेत्र, गलेमें वनमाला और सुन्दरताकी सीमा; वे सब इसमें मिल रहे हैं। इसलिये यह कोई दूसरा नहीं हो सकता। इस समय यह बिना किसी अस्त्र-शस्त्रके पैदल ही इस ओर चला आ रहा है, इसलिये मैं भी इसके साथ बिना अस्त्र-शस्त्रके ही लड़ूँगा' ॥ १–५ ॥

ऐसा निश्चय करके जब कालयवन भगवान् श्रीकृष्णकी ओर दौड़ा, तब वे दूसरी ओर मुँह करके रणभूमिसे भाग चले और उनको पकड़नेके लिये कालयवन उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। परीक्षित्! तुम तो जानते ही हो कि योगियोंका विशुद्ध मन भी दौड़ते-दौड़ते थक जाता है, किन्तु भगवान्‌को नहीं पकड़ पाता; तब कालयवनकी क्या बिसात थी, जो वह उन्हें पकड़ पाता? रणछोड़ भगवान् लीला करते हुए भग रहे थे; कालयवन पग-पगपर यही समझता था कि अब पकड़ा, तब पकड़ा! इस प्रकार भगवान् उसे



बहुत दूर एक पहाड़की गुफामें ले गये। कालयवन पीछेसे बार-बार आक्षेप करता कि 'अरे भाई! तुम परम यशस्वी यदुवंशमें पैदा हुए हो, तुम्हारा इस प्रकार युद्ध छोड़कर भागना उचित नहीं है।' परन्तु परीक्षित्! अभी उसके अशुभ निःशेष नहीं हुए थे, इसलिये वह भगवान्‌को पानेमें समर्थ न हो सका। उसके आक्षेप करते रहनेपर भी भगवान् उस पर्वतकी गुफामें घुस गये। उनके पीछे-पीछे कालयवन भी घुसा। वहाँ एक दूसरा ही मनुष्य सो रहा था। उसे देखकर कालयवनने सोचा 'देखो तो सही, यह मुझे इस प्रकार इतनी दूर ले आया और अब इस तरह—मानो इसे कुछ पता ही न हो—साधुबाबा बनकर सो रहा है।' यह सोचकर उसने उसे कसकर एक लात

भतीजे, कुलकी स्त्रियाँ और सखी सहेलियाँ मेरी याद करती हैं? मैंने सुना है कि हमारे भतीजे भगवान् श्रीकृष्ण



और कमलनयन बलराम बड़े ही भक्तवत्सल और शरणागत रक्षक हैं। क्या वे कभी अपने फुफेरे भाई मेरे लड़कोंको याद करते हैं? मैं शत्रुओंके बीच घिरकर शोकाकुल हो रही हूँ। मेरी वही दशा है, जैसे कोई हरिनी भेड़ियोंके बीचमें पड़ गयी हो। मेरे बच्चे बिना बापके हो गये हैं। क्या हमारे श्रीकृष्ण कभी यहाँ आकर मुझको और इन अनाथ बालकोंको सान्त्वना देंगे, ढाढस बँधायेंगे?' परीक्षित्! श्रीकृष्णको अपने सामने समझकर कुन्ती कहने लगीं—'सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण! तुम महायोगी हो। हमारे उद्धारके अनेकों उपाय जानते हो। तुम विश्वात्मा हो। हमारा कष्ट तुमसे छिपा नहीं है। तुम सारे विश्वके जीवनदाता हो। इसलिये हमें भी जीवनदान कर सकते हो। गोविन्द! तुमने गायोंके लिये गोवर्द्धन धारण किया था। मैं गायके समान ही अपने बच्चोंके साथ सतायी जा रही हूँ। दुःख पर दुःख भोग रही हूँ। मैं तुम्हारी शरण हूँ। मेरी रक्षा करो। मेरे बच्चोंको बचाओ। मेरे श्रीकृष्ण! यह संसार मृत्युमय है और तुम्हारे चरण मोक्ष देनेवाले हैं। मैं देखती हूँ कि जो लोग इस संसारसे डरे हुए हैं, उनके लिये तुम्हारे चरणकमलोंके अतिरिक्त और कोई शरण, और कोई सहारा नहीं है। श्रीकृष्ण! तुम मायाके लेशसे रहित, परम शुद्ध हो। तुम स्वयं परब्रह्म परमात्मा हो। तुम समस्त साधनों, योगों और उपायोंके स्वामी हो तथा स्वयं योग भी हो। श्रीकृष्ण! मैं तुम्हारी शरणमें आयी हूँ। तुम मेरी रक्षा करो' ॥७-१३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! तुम्हारी परदादी कुन्ती इस प्रकार अपने सगे सम्बन्धियों और अन्तमें जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णको स्मरण करके अत्यन्त दुःखित हो गयी और फफक-फफककर रोने लगी। अक्रूरजी और विदुरजी दोनों ही सुख और दुःखको समान दृष्टिसे देखते थे। फिर भी कुन्तीका दुःख देखकर उन लोगोंकी भी छाती भर आयी। दोनों यशस्वी महात्माओंने कुन्तीको उसके पुत्रोंके जन्मदाता धर्म, वायु आदि देवताओंकी याद दिलायी और यह कहकर कि, तुम्हारे पुत्र अधर्मका नाश करनेके लिये ही पैदा हुए हैं, बहुत कुछ समझाया बुझाया और सान्त्वना दी। अक्रूरजी जब मथुरा जाने लगे, तब राजा धृतराष्ट्रके पास आये। अबतक यह स्पष्ट हो गया था कि राजा अपने पुत्रोंका पक्षपात करते हैं और भतीजोंके साथ अपने पुत्रोंका-सा बर्ताव नहीं करते। अब अक्रूरजीने कौरवोंकी भरी सभामें श्रीकृष्ण और बलरामजी आदिका हितैषितासे भरा सन्देश कह सुनाया ॥१४-१६॥

अक्रूरजीने कहा—महाराज धृतराष्ट्रजी! आप कुरुवंशियोंकी उज्ज्वल कीर्तिको और भी बढ़ाइये। आपको यह काम विशेषरूपसे इसलिये भी करना चाहिये कि अपने भाई पाण्डुके परलोक सिधार जानेपर अब आप राज्य सिंहासनके अधिकारी हुए हैं। वह भी तभीतक, जबतक पाण्डव अपना काम सम्हाल नहीं लेते। आप धर्मसे पृथ्वीका पालन कीजिये। अपने सद्व्यवहारसे प्रजाको प्रसन्न रखिये और अपने स्वजनोंके साथ समान बर्ताव कीजिये। ऐसा करनेसे ही आपको लोकमें यश और परलोकमें सद्गति प्राप्त होगी। यदि आप इसके विपरीत आचरण करेंगे तो इस लोकमें आपकी निन्दा होगी और मरनेके बाद आपको नरकमें जाना पड़ेगा। इसलिये मैं आपसे कहे देता हूँ कि अपने पुत्रों और पाण्डवोंके साथ समानताका बर्ताव कीजिये। आप जानते ही हैं कि इस संसारमें कभी कहीं कोई किसीके साथ सदा नहीं रह सकता। जिनसे जुड़े हुए हैं, उनसे एक दिन बिछुड़ना पड़ेगा ही। राजन्! यह बात अपने शरीरके लिये भी सोलहों आने सत्य है। फिर स्त्री, पुत्र, धन आदि छोड़कर जाना पड़ेगा, इसके विषयमें तो कहना ही क्या है। जीव अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरकर जाता है। अपनी करनी धरनीका, पाप पुण्यका फल

मारी। परीक्षित्! उसने मूर्खताकी हद कर दी, तभी तो उस सोये हुए मनुष्यको श्रीकृष्ण समझ लिया। वह पुरुष वहाँ बहुत दिनोंसे सोया हुआ था। पैरकी ठोकर लगनेसे वह उठ पड़ा और धीरे धीरे उसने अपनी आँखें खोलीं। इधर उधर देखनेपर पास ही कालयवन खड़ा हुआ दिखायी दिया। वह पुरुष इस प्रकार ठोकर मारकर जगाये जानेसे कुछ रुष्ट हो गया था। उसकी दृष्टि पड़ते ही कालयवनके



शरीरमें आग पैदा हो गयी और वह क्षणभरमें जलकर राखका ढेर हो गया॥ ६–१२॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! जिसके दृष्टिपात मात्रसे कालयवन जलकर भस्म हो गया, वह पुरुष कौन था? किस वंशका था? उसमें कैसी शक्ति थी और वह किसका पुत्र था? आप कृपा करके यह भी बतलाइये कि वह पर्वतकी गुफामें जाकर क्यों सो रहा था?॥ १३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! वे इक्ष्वाकु वंशी महाराजा मान्धाताके पुत्र राजा मुचुकुन्द थे। वे ब्राह्मणोंके परम भक्त, सत्यप्रतिज्ञ और महापुरुष थे। एक बार इन्द्रादि देवता असुरोंसे अत्यन्त भयभीत हो गये थे। उन्होंने अपनी रक्षाके लिये राजा मुचुकुन्दसे प्रार्थना की और उन्होंने बहुत दिनोंतक उनकी रक्षा की। जब बहुत दिनोंके बाद देवताओंको सेनापतिके रूपमें स्वामि कार्तिक मिल गये, तब उन लोगोंने राजा मुचुकुन्दसे कहा—'राजन्! आपने हम लोगोंकी रक्षाके लिये बहुत श्रम और कष्ट उठाया है। अब आप विश्राम कीजिये। वीर शिरोमणे! आपने हमारी रक्षाके लिये मनुष्यलोकका अपना अकण्टक राज्य छोड़ दिया और जीवनकी अभिलाषाएँ तथा भोगोंका भी परित्याग कर दिया। अब आपके पुत्र, रानियाँ, बन्धु-बान्धव और अमात्य मन्त्री तथा आपके समयकी प्रजामें से कोई नहीं रहा है। सब-के-सब कालके गालमें चले गये। काल समस्त बलवानोंसे भी बलवान् है। वह स्वयं परम समर्थ, अविनाशी और भगवत्स्वरूप है। जैसे ग्वाले पशुओं को अपने वशमें रखते हैं, वैसे ही वह खेल-खेलमें सारी प्रजाको अपने अधीन रखता है। राजन्! आपका कल्याण हो। आपकी जो इच्छा हो हमसे माँग लीजिये। हम कैवल्य मोक्षके अतिरिक्त आपको सब कुछ दे सकते हैं। क्योंकि कैवल्य मोक्ष देनेकी सामर्थ्य तो केवल अविनाशी भगवान् विष्णुमें ही है।' परम यशस्वी राजा मुचुकुन्दने देवताओंके इस प्रकार कहनेपर उनकी वन्दना की और बहुत थके होनेके कारण निद्राका ही वर माँगा, तथा उनसे वर पाकर वे नींदसे भरकर पर्वतकी गुफामें जा सोये। उस समय देवताओंने कह दिया था कि 'राजन्! सोते समय यदि आपको कोई मूर्ख बीचमें ही जगा देगा, तो वह आपकी दृष्टि पड़ते ही उसी क्षण भस्म हो जायगा'॥ १४–२२॥

परीक्षित्! जब कालयवन भस्म हो गया, तब यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने परम बुद्धिमान् राजा मुचुकुन्द को दर्शन दिया। भगवान् श्रीकृष्णका श्रीविग्रह वर्षाकालीन मेघके समान साँवला था। रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे। वक्षःस्थलपर श्रीवत्स और गलेमें कौस्तुभमणि अपनी दिव्य ज्योति बिखेर रहे थे। चार भुजाएँ थीं। वैजयन्ती माला अलग ही घुटनोंतक लटक रही थी। मुखकमल अत्यन्त सुन्दर और प्रसन्नतासे खिला हुआ था। कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे। होठोंपर प्रेमभरी मुसकराहट थी और नेत्रोंकी चितवन अनुरागकी वर्षा कर रही थी। अत्यन्त दर्शनीय तरुण अवस्था और मतवाले सिंहके समान निर्भीक चाल! राजा मुचुकुन्द यद्यपि बड़े बुद्धिमान् और धीर पुरुष थे, फिर भी भगवान्‌की यह दिव्य ज्योतिर्मयी मूर्ति देखकर कुछ चकित हो गये, सकपका गये! उन्होंने तनिक शङ्कित होकर भगवान्‌से पूछा॥ २३–२७॥

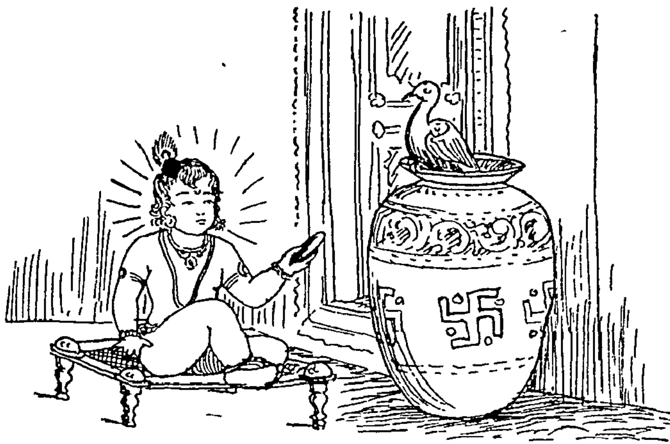
राजा मुचुकुन्दने कहा—'आप कौन हैं? इस काँटोंसे भरे हुए घोर जंगलमें आप कमलके समान कोमल चरणोंसे क्यों विचर रहे हैं? और इस पर्वतकी गुफामें ही पधारनेका क्या प्रयोजन था? क्या आप समस्त तेजस्वियोंके

भी अकेला ही भुगतता है। जिन स्त्री-पुत्रोंको हम अपना समझते हैं, वे तो 'हम तुम्हारे अपने हैं, हमारा भरण-पोषण करना तुम्हारा धर्म है'—इस प्रकारकी बातें बनाकर मूर्ख प्राणीके अधर्मसे इकट्ठे किये हुए धनको लूट लेते हैं, जैसे जलमें रहनेवाले जन्तुओंके सर्वस्व जलको उन्हींके सम्बन्धी चाट जाते हैं। यह मूर्ख जीव जिन्हें अपना समझकर अधर्म करके भी पालता-पोसता है वे ही प्राण, धन और पुत्र आदि इस जीवको असन्तुष्ट छोड़कर ही चले जाते हैं। जो अपने धर्मसे विमुख है—सच पूछिये, तो वह अपना लौकिक स्वार्थ भी नहीं जानता। जिनके लिये वह अधर्म करता है, वे तो उसे छोड़ ही देंगे; उसे कभी सन्तोषका अनुभव न होगा और वह अपने पापोंकी गठरी सिरपर लादकर स्वयं घोर नरकमें जायगा। इसलिये महाराज! यह बात समझ लीजिये कि यह दुनिया चार दिनकी चाँदनी है, सपनेका खिलवाड़ है, जादूका तमाशा है और है मनका बनाया हुआ शेखचिल्लीका महल! आप अपने प्रयत्नसे, अपनी शक्तिसे चित्तको रोकिये; ममतावश पक्षपात न कीजिये। आप समर्थ हैं, समत्वमें स्थित हो जाइये। और इस संसारकी ओरसे उपराम—शान्त हो जाइये ॥१७-२५॥

राजा धृतराष्ट्रने कहा—दानपते अक्रूरजी! आप मेरे कल्याणकी, भलेकी बात कह रहे हैं। जैसे मरनेवालेको अमृत मिल जाय तो वह उससे तृप्त नहीं हो सकता, वैसे ही मैं भी आपकी इन बातोंसे तृप्त नहीं हो रहा हूँ। फिर भी हमारे हितैषी अक्रूरजी! मेरे चञ्चल चित्तमें आपकी यह प्रिय शिक्षा तनिक भी नहीं ठहर रही है। क्योंकि मेरा हृदय पुत्रोंकी ममताके कारण अत्यन्त विषम हो गया है। जैसे स्फटिक पर्वतके शिखरपर एक बार बिजली कौंधती है और दूसरे ही क्षण अन्तर्धान हो जाती है, वही दशा आपके उपदेशोंकी है। अक्रूरजी! अब जो होना हो, सो हो। सुना है कि सर्वशक्तिमान् भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुकुलमें अवतीर्ण हुए हैं। ऐसा कौन पुरुष है, जो उनके विधानमें उलट-फेर कर सके? उनकी जो इच्छा होगी, होगा। भगवान्‌की मायाका मार्ग अचिन्त्य है। वे उसके द्वारा कब क्या करना चाहते हैं, किसीको पता नहीं चलता। उसी मायाके द्वारा इस संसारकी सृष्टि करके वे इसमें प्रवेश करते हैं और कर्म तथा कर्मफलोंका विभाजन कर देते हैं। इस संसार-चक्रकी बेरोक-टोक चालमें उनकी अचिन्त्य लीलाशक्तिके अतिरिक्त और कोई कारण नहीं है। मैं उन्हीं परमैश्वर्यशाली प्रभुको नमस्कार करता हूँ ॥२६-२९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार अक्रूरजी महाराज धृतराष्ट्रका अभिप्राय जानकर और कुरुवंशी स्वजन-सम्बन्धियोंसे प्रेमपूर्वक अनुमति लेकर मथुरा लौट आये। उन्होंने वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके सामने धृतराष्ट्रका वह सारा व्यवहार-बर्ताव, जो वे पाण्डवोंके साथ करते थे, कह सुनाया। क्योंकि उनको हस्तिनापुर भेजनेका वास्तवमें उद्देश्य भी यही था ॥३०-३१॥

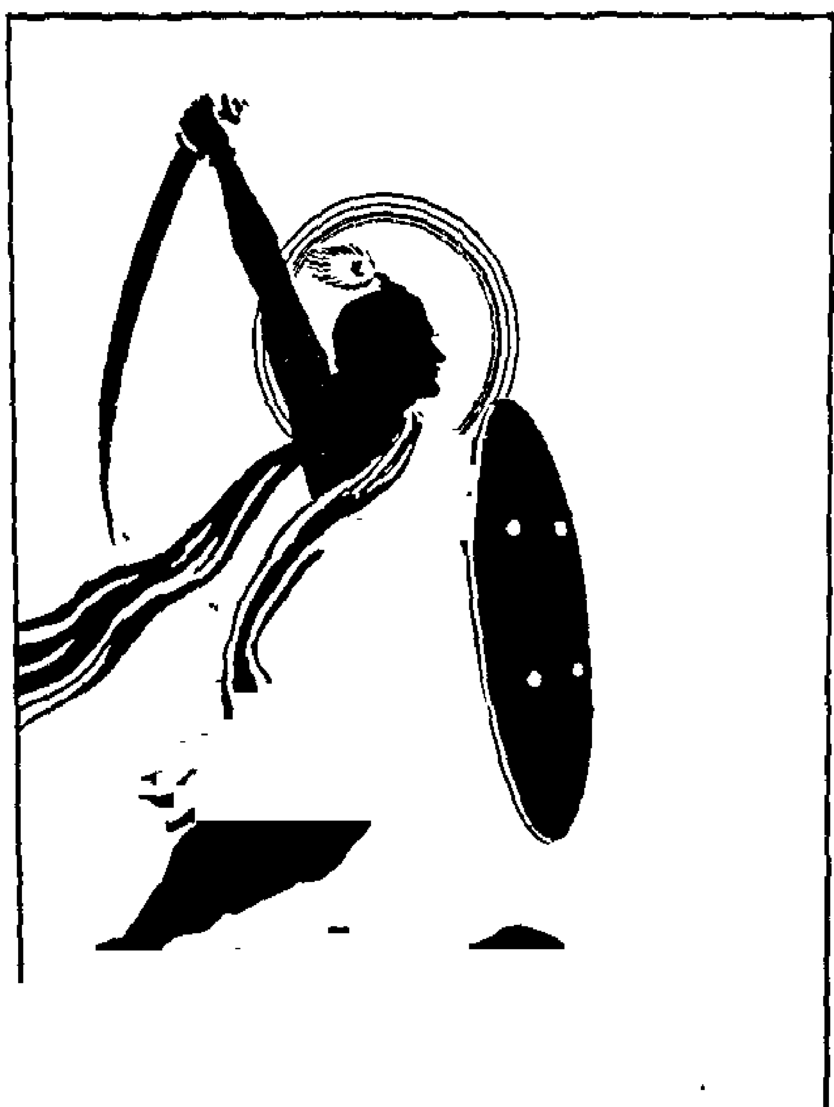
दशम स्कन्ध पूर्वार्ध समाप्त



कालयवनका उद्धार



मुचुकुन्दकी क्रोधभरी दृष्टि पड़ते ही कालयवन अपने ही शरीरसे उत्पन्न अग्निसे जलकर भस्म हो गया ।



मूर्तिमान् तेज अथवा भगवान् अग्निदेव तो नहीं हैं ? सम्भव है आप सूर्य, चन्द्रमा, देवराज इन्द्र या कोई दूसरे लोकपाल हों ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आप देवताओंके आराध्य-देव ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर—इन तीनोंमेंसे पुरुषोत्तम भगवान् नारायण ही हैं। क्योंकि जैसे श्रेष्ठ दीपक अँधेरेको दूर कर देता है, वैसे ही आप अपनी अङ्गकान्तिसे इस गुफाका अँधेरा भगा रहे हैं। पुरुषश्रेष्ठ ! यदि आपको रुचे तो हमें अपना जन्म, कर्म और गोत्र बतलाइये; क्योंकि हम सच्चे हृदयसे उसे सुननेके इच्छुक हैं। और पुरुषोत्तम ! यदि आप हमारे बारेमें पूछें तो हम इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय हैं, मेरा नाम है मुचुकुन्द और मैं युवनाश्वनन्दन महाराज मान्धाताका पुत्र हूँ। भगवन् ! बहुत दिनोंतक जागते रहनेके कारण मैं थक गया था। निद्राने मेरी समस्त इन्द्रियोंकी शक्ति छीन ली थी, उन्हें बेकाम कर दिया था, इसीसे मैं इस निर्जन स्थानमें निर्द्वन्द्व सो रहा था। अभी-अभी न जाने किसने मुझे जगा दिया ! अवश्य उसके पापोंने ही उसे जलाकर खाक कर दिया है। इसके बाद शत्रुओंके नाश करनेवाले परम सुन्दर आपने मुझे दर्शन दिया। महाभाग ! आप समस्त प्राणियोंके माननीय हैं। आपके परम दिव्य और असह्य तेजसे मेरी शक्ति खो गयी है। मैं आपको बहुत देरतक देख भी नहीं सकता।' जब राजा मुचुकुन्दने इस प्रकार कहा, तब समस्त प्राणियोंके जीवनदाता भगवान् श्रीकृष्णने हँसते हुए मेघध्वनिके समान गम्भीर वाणीसे कहा—॥ २८–३६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय मुचुकुन्द ! मेरे हजारों जन्म, कर्म और नाम हैं। वे अनन्त हैं, इसलिये मैं भी उनकी गिनती करके नहीं बतला सकता। यह सम्भव है कि कोई पुरुष अपने अनेक जन्मोंमें पृथ्वीके छोटे-छोटे धूल-कणोंकी गिनती कर डाले; परन्तु मेरे जन्म, गुण, कर्म और नामोंको कोई कभी किसी प्रकार नहीं गिन सकता। राजन् ! सनक-सनन्दन आदि परमर्षिगण मेरे त्रिकालसिद्ध जन्म और कर्मोंका वर्णन करते रहते हैं, परन्तु कभी उनका पार नहीं पाते। ऐसा होनेपर भी मैं अपने वर्तमान जन्म, कर्म और नामोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। प्रिय मुचुकुन्द ! पहले ब्रह्माजीने मुझसे धर्मकी रक्षा और पृथ्वीके भार बने हुए असुरोंका संहार करनेके लिये प्रार्थना की थी। उन्हींकी प्रार्थनासे मैंने यदुवंशमें वसुदेवजीके यहाँ अवतार ग्रहण किया है। अब मैं वसुदेवजीका पुत्र हूँ, इसलिये लोग मुझे 'वासुदेव' कहते हैं। अबतक मैं कालनेमि असुरका, जो कंसके रूपमें पैदा हुआ था, तथा प्रलम्ब आदि अनेकों संतद्रोही असुरोंका संहार कर चुका हूँ। राजन् ! यह कालयवन था, जो मेरी ही प्रेरणासे तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि पड़ते ही भस्म हो गया। वही मैं तुमपर कृपा करनेके लिये ही इस गुफामें आया हूँ। तुमने पहले मेरी बहुत आराधना की है और मैं हूँ भक्त-वत्सल। इसलिये राजर्षे ! तुम्हारी जो अभिलाषा हो, मुझसे माँग लो। मैं तुम्हारी सारी लालसा, अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा। जो पुरुष मेरी शरणमें आ जाता है उसके लिये फिर ऐसी कोई वस्तु नहीं रह जाती जिसके लिये वह शोक करे ॥ ३७–४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा, तब राजा मुचुकुन्दको वृद्ध गर्गका यह कथन याद आ गया कि यदुवंशमें भगवान् अवतीर्ण होनेवाले हैं। वे जान गये कि ये स्वयं भगवान् नारायण हैं। आनन्दसे भरकर उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की ॥ ४५ ॥

मुचुकुन्दने कहा—प्रभो ! जगत्‌के समस्त नर-नारी, सभी प्राणी आपकी मायासे अत्यन्त मोहित हो रहे हैं। उनकी दृष्टि अपने असली स्वार्थ—नहीं-नहीं, परमार्थरूप आप-पर नहीं जमती। वे आपसे विमुख करनेवाले अनर्थरूप संसारको ही देखते रहते हैं। यही कारण है कि वे आपका भजन तो करते नहीं, सुखके लिये घर-गृहस्थीके उन झंझटोंमें फँस जाते हैं, जो असलमें सारे दुःखोंके मूल स्रोत हैं, जहाँसे जीवनके सारे दुःख पैदा होते हैं। इस तरह सब ठगे जा रहे हैं। इस पापरूप संसारसे सर्वथा रहित प्रभो ! यह भूमि अत्यन्त पवित्र कर्मभूमि है, इसमें मनुष्यका जन्म होना अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य-जीवन इतना पूर्ण है कि उसमें भजनके लिये कोई भी असुविधा नहीं है। अपने परम सौभाग्य और भगवान्‌की अहैतुक कृपासे उसे अनायास ही प्राप्त करके भी जो अपनी मति, गति असत् संसारमें ही लगा देते हैं और तुच्छ विषयसुखके लिये ही सारा प्रयत्न करते हुए घर-गृहस्थीके अँधेरे कूएँमें पड़े रहते हैं—भगवान्‌के चरणकमलोंकी उपासना नहीं करते, भजन नहीं करते; वे तो ठीक उस पशुके समान हैं, जो तुच्छ तृणके लोभसे अँधेरे कूएँमें गिर जाता है। भगवन् ! मैं राजा था, राज्य-लक्ष्मीके मदसे मैं मतवाला हो रहा था। इस मरनेवाले शरीरको ही तो मैं आत्मा—अपना स्वरूप समझ रहा था और



शूरशिरोमणि श्रीकृष्ण

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत

दशम स्कन्ध

(उत्तरार्ध)

पचासवाँ अध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

जरासन्धसे युद्ध और द्वारकापुरीका निर्माण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! कंसकी दो रानियाँ थीं—अस्ति और प्राप्ति। पतिकी मृत्युसे उन्हें बड़ा दुःख हुआ और वे अपने पिताकी राजधानीमें चली गयीं। उन दोनोंका पिता था मगधराज जरासन्ध। उससे उन्होंने अपनी सारी कष्ट-कहानी सुनायी और विधवा होनेके कारणोंका वर्णन किया। परीक्षित्! यह अप्रिय समाचार सुनकर पहले तो जरासन्धको बड़ा शोक हुआ, परन्तु पीछे वह क्रोधसे तिलमिला उठा। उसने यह निश्चय करके कि, मैं पृथ्वीपर एक भी यदुवंशी नहीं रहने दूँगा, युद्धकी बहुत बड़ी तैयारी की और तेईस अक्षौहिणी सेनाके साथ यदुवंशियोंकी राजधानी मथुराको चारों ओरसे घेर लिया॥ १–४॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा—जरासन्धकी सेना क्या है, उमड़ता हुआ समुद्र है। उन्होंने यह भी देखा कि उसने चारों ओरसे हमारी राजधानी घेर ली है और हमारे स्वजन तथा पुरवासी भयभीत हो रहे हैं। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही मनुष्यका-सा वेष धारण किये हुए हैं। अब उन्होंने विचार किया कि मेरे अवतारका क्या प्रयोजन है और इस समय इस स्थानपर मुझे क्या करना चाहिये। उन्होंने सोचा यह बड़ा अच्छा हुआ कि मगधराज जरासन्धने अपने अधीनस्थ नरपतियोंकी पैदल, घुड़सवार, रथी और हाथियोंसे युक्त कई अक्षौहिणी सेना इकट्ठी कर ली है। यह सब तो पृथ्वीका भार ही जुटकर मेरे पास आ पहुँचा है। मैं इसका नाश करूँगा। परन्तु अभी मगधराज जरासन्धको नहीं मारना चाहिये। क्योंकि वह जीवित रहेगा तो फिरसे असुरोंकी बहुत-सी सेना इकट्ठी कर लायेगा। मेरे अवतारका यही प्रयोजन है कि मैं पृथ्वीका बोझ हल्का कर दूँ, साधु-सज्जनोंकी रक्षा करूँ और दुष्ट-दुर्जनोंका संहार। समय-समयपर धर्म-रक्षाके लिये और बढ़ते हुए अधर्मको रोकनेके लिये मैं और भी अनेकों शरीर ग्रहण करता हूँ॥ ५–१०॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि आकाशसे सूर्यके समान चमकते हुए दो रथ



आ पहुँचे। उनमें युद्धकी सारी सामग्रियाँ सुसज्जित थीं और दो सारथी उन्हें हाँक रहे थे। इसी समय भगवान्‌के दिव्य और सनातन आयुध भी अपने-आप वहाँ आकर उपस्थित हो गये। उन्हें देखकर भगवान् श्रीकृष्णने अपने बड़े भाई बलरामजीसे कहा—'भाईजी! आप बड़े शक्तिशाली हैं। इस समय जो यदुवंशी आपको ही अपना स्वामी और रक्षक मानते हैं, जो आपसे ही सनाथ हैं, उनपर बहुत

मूर्तिमान् तेज अथवा भगवान् अग्निदेव तो नहीं हैं ? सम्भव है आप सूर्य, चन्द्रमा, देवराज इन्द्र या कोई दूसरे लोकपाल हों ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आप देवताओंके आराध्य-देव ब्रह्मा, विष्णु तथा शङ्कर—इन तीनोंमेंसे पुरुषोत्तम भगवान् नारायण ही हैं। क्योंकि जैसे श्रेष्ठ दीपक अँधेरेको दूर कर देता है, वैसे ही आप अपनी अङ्गकान्तिसे इस गुफाका अँधेरा भगा रहे हैं। पुरुषश्रेष्ठ ! यदि आपको रुचे तो हमें अपना जन्म, कर्म और गोत्र बतलाइये; क्योंकि हम सच्चे हृदयसे उसे सुननेके इच्छुक हैं। और पुरुषोत्तम ! यदि आप हमारे बारेमें पूछें तो हम इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय हैं, मेरा नाम है मुचुकुन्द और मैं युवनाश्वनन्दन महाराज मान्धाताका पुत्र हूँ। भगवन् ! बहुत दिनोंतक जागते रहनेके कारण मैं थक गया था। निद्राने मेरी समस्त इन्द्रियोंकी शक्ति छीन ली थी, उन्हें बेकाम कर दिया था, इसीसे मैं इस निर्जन स्थानमें निर्द्वन्द्व सो रहा था। अभी-अभी न जाने किसने मुझे जगा दिया ! अवश्य उसके पापोंने ही उसे जलाकर खाक कर दिया है। इसके बाद शत्रुओंके नाश करनेवाले परम सुन्दर आपने मुझे दर्शन दिया। महाभाग ! आप समस्त प्राणियोंके माननीय हैं। आपके परम दिव्य और असह्य तेजसे मेरी शक्ति खो गयी है। मैं आपको बहुत देरतक देख भी नहीं सकता।' जब राजा मुचुकुन्दने इस प्रकार कहा, तब समस्त प्राणियोंके जीवनदाता भगवान् श्रीकृष्णने हँसते हुए मेघध्वनिके समान गम्भीर वाणीसे कहा—॥ २८–३६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—प्रिय मुचुकुन्द ! मेरे हजारों जन्म, कर्म और नाम हैं। वे अनन्त हैं, इसलिये मैं भी उनकी गिनती करके नहीं बतला सकता। यह सम्भव है कि कोई पुरुष अपने अनेक जन्मोंमें पृथ्वीके छोटे-छोटे धूल-कणोंकी गिनती कर डाले; परन्तु मेरे जन्म, गुण, कर्म और नामोंको कोई कभी किसी प्रकार नहीं गिन सकता। राजन् ! सनक-सनन्दन आदि परमर्षिगण मेरे त्रिकालसिद्ध जन्म और कर्मोंका वर्णन करते रहते हैं, परन्तु कभी उनका पार नहीं पाते। ऐसा होनेपर भी मैं अपने वर्तमान जन्म, कर्म और नामोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। प्रिय मुचुकुन्द ! पहले ब्रह्माजीने मुझसे धर्मकी रक्षा और पृथ्वीके भार बने हुए असुरोंका संहार करनेके लिये प्रार्थना की थी। उन्हींकी प्रार्थनासे मैंने यदुवंशमें वसुदेवजीके यहाँ अवतार ग्रहण किया है। अब मैं वसुदेवजीका पुत्र हूँ, इसलिये लोग मुझे 'वासुदेव' कहते हैं। अबतक मैं कालनेमि असुरका, जो कंसके रूपमें पैदा हुआ था, तथा प्रलम्ब आदि अनेकों संतद्रोही असुरोंका संहार कर चुका हूँ। राजन् ! यह कालयवन था, जो मेरी ही प्रेरणासे तुम्हारी तीक्ष्ण दृष्टि पड़ते ही भस्म हो गया। वही मैं तुमपर कृपा करनेके लिये ही इस गुफामें आया हूँ। तुमने पहले मेरी बहुत आराधना की है और मैं हूँ भक्त-वत्सल। इसलिये राजर्षे ! तुम्हारी जो अभिलाषा हो, मुझसे माँग लो। मैं तुम्हारी सारी लालसा, अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा। जो पुरुष मेरी शरणमें आ जाता है उसके लिये फिर ऐसी कोई वस्तु नहीं रह जाती जिसके लिये वह शोक करे॥ ३७–४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कहा, तब राजा मुचुकुन्दको वृद्ध गर्गका यह कथन याद आ गया कि यदुवंशमें भगवान् अवतीर्ण होनेवाले हैं। वे जान गये कि ये स्वयं भगवान् नारायण हैं। आनन्दसे भरकर उन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और इस प्रकार स्तुति की॥ ४५ ॥

मुचुकुन्दने कहा—प्रभो ! जगत्‌के समस्त नर-नारी, सभी प्राणी आपकी मायासे अत्यन्त मोहित हो रहे हैं। उनकी दृष्टि अपने असली स्वार्थ—नहीं-नहीं, परमार्थरूप आप-पर नहीं जमती। वे आपसे विमुख करनेवाले अनर्थरूप संसारको ही देखते रहते हैं। यही कारण है कि वे आपका भजन तो करते नहीं, सुखके लिये घर-गृहस्थीके उन झंझटोंमें फँस जाते हैं, जो असलमें सारे दुःखोंके मूल स्रोत हैं, जहाँसे जीवनके सारे दुःख पैदा होते हैं। इस तरह सब ठगे जा रहे हैं। इस पापरूप संसारसे सर्वथा रहित प्रभो ! यह भूमि अत्यन्त पवित्र कर्मभूमि है, इसमें मनुष्यका जन्म होना अत्यन्त दुर्लभ है। मनुष्य-जीवन इतना पूर्ण है कि उसमें भजनके लिये कोई भी असुविधा नहीं है। अपने परम सौभाग्य और भगवान्‌की अहैतुक कृपासे उसे अनायास ही प्राप्त करके भी जो अपनी मति, गति असत् संसारमें ही लगा देते हैं और तुच्छ विषयसुखके लिये ही सारा प्रयत्न करते हुए घर-गृहस्थीके अँधेरे कूएँमें पड़े रहते हैं—भगवान्‌के चरणकमलोंकी उपासना नहीं करते, भजन नहीं करते; वे तो ठीक उस पशुके समान हैं, जो तुच्छ तृणके लोभसे अँधेरे कूएँमें गिर जाता है। भगवन् ! मैं राजा था, राज्य-लक्ष्मीके मदसे मैं मतवाला हो रहा था। इस मरनेवाले शरीरको ही तो मैं आत्मा—अपना स्वरूप समझ रहा था और

बड़ी विपत्ति आ पड़ी है। देखिये, यह आपका रथ है और आपके प्यारे आयुध हल-मूसल भी आ पहुँचे हैं। अब आप इसपर सवार होकर शत्रु सेनाका संहार कीजिये और अपने स्वजनोंको इस विपत्तिसे बचाइये। भगवन्! साधुओंका कल्याण करनेके लिये ही हम दोनोंने अवतार ग्रहण किया है। अतः अब आप यह तेईस अक्षौहिणी सेना, पृथ्वीका यह विपुल भार नष्ट कीजिये।' भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने यह सलाह करके कवच धारण किये और रथपर सवार होकर वे मथुरासे निकले। उस समय दोनों भाई अपने अपने आयुध लिये हुए थे और छोटी सी सेना उनके साथ साथ चल रही थी। उनका रथ हाँक रहा था दारुक। पुरीसे बाहर निकलकर उन्होंने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया। उनके शङ्खकी भयङ्कर ध्वनि सुनकर शत्रु पक्षकी सेनाके वीरोंका हृदय डरके मारे थर्रा उठा। उन्हें देखकर मगधराज जरासन्धने कहा—'पुरुषाधम कृष्ण! तू तो अभी निरा बच्चा है। अकेले तेरे साथ लड़नेमें मुझे लाज लग रही है। इतने दिनोंतक तू न जाने कहाँ कहाँ छिपा फिरता था। और मन्द! तू तो अपने मामाका हत्यारा है। इसलिये मैं तेरे साथ नहीं लड़ सकता। जा, मेरे सामनेसे भाग जा। बलराम! यदि तेरे चित्तमें यह श्रद्धा हो कि युद्धमें मरनेपर स्वर्ग मिलता है तो तू आ, हिम्मत बाँधकर मुझसे लड़। मेरे बाणोंसे छिन्न भिन्न हुए शरीरको यहाँ छोड़कर स्वर्गमें जा, अथवा यदि तुझमे शक्ति हो तो मुझे ही मार डाल'॥ ११–१९॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—मगधराज! जो शूरवीर होते हैं, वे तुम्हारी तरह डींग नहीं हाँकते, बहक-बहककर बातें नहीं करते, वे अपना बल-पौरुष दिखलाते हैं। देखो, अब तुम्हारी मृत्यु तुम्हारे सिरपर नाच रही है। तुम वैसे ही अकबक कर रहे हो, जैसे मरनेके समय कोई सन्निपातका रोगी करे। बक लो, मैं तुम्हारी बातपर ध्यान नहीं देता॥२०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जैसे वायु बादलोंसे सूर्यको और धूएँसे आगको ढक लेती है, किन्तु वास्तवमें वे ढकते नहीं, उनका प्रकाश फिर फैलता ही है, वैसे ही मगधराज जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके सामने आकर अपनी बहुत बड़ी, बलवान् और अपार सेनाके द्वारा उन्हें चारों ओरसे घेर लिया—यहाँतक कि उनकी सेना, रथ, ध्वजा, घोड़ों और सारथियोंका दीखना भी बंद हो गया। मथुरापुरीकी स्त्रियाँ अपने महलोंकी अटारियों और छज्जोंपर चढ़कर युद्धका कौतुक देख रही थीं। जब उन्होंने देखा कि युद्धभूमिमें भगवान् श्रीकृष्णकी गरुडचिह्नसे चिह्नित और बलरामजीकी ताल-चिह्नसे चिह्नित ध्वजावाले रथ नहीं दीख रहे हैं तब वे शोकके आवेगसे मूर्छित हो गयीं। जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि शत्रु-सेनाके वीर हमारी सेनापर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा कर रहे हैं, मानो बादल पानीकी अनगनित बूँदें बरसा रहे हों, और हमारी सेना उससे अत्यन्त पीड़ित, व्यथित हो रही है, तब उन्होंने अपने देवता और असुर-दोनोंसे



सम्मानित शार्ङ्गधनुषका टङ्कार किया। इसके बाद वे तरकसमेंसे बाण निकालने, उन्हें धनुषपर चढ़ाने और धनुषकी डोरी खींचकर झुड-के झुड बाण छोड़ने लगे। उस समय उनका वह धनुष इतनी फुर्तीसे घूम रहा था, मानो कोई बड़े वेगसे अलातचक्र (लुकारी) घुमा रहा हो। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्धकी चतुरङ्गिणी—हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेनाका संहार करने लगे। इससे बहुत से हाथियोंके सिर फट गये और वे मर मरकर गिरने लगे। बाणोंकी बौछारसे अनेकों घोड़ोंके सिर धड़से अलग हो गये। घोड़े, ध्वजा, सारथि और रथियोंके नष्ट हो जानेसे बहुत-से रथ बेकाम हो गये। पैदल सेनाकी बाँहें, जाँघ और सिर आदि अङ्ग प्रत्यङ्ग कट कटकर गिर पड़े। उस युद्धमें अपार तेजस्वी भगवान् बलरामजीने अपने मूसलकी चोटसे बहुत से मतवाले शत्रुओंको मार मारकर उनके अङ्ग

राजकुमार, रानी, खजाना तथा पृथ्वीके लोभ मोहमें ही फँसा हुआ था। उन वस्तुओंकी चिन्ता दिन रात मेरे गले लगी रहती थी। इस प्रकार मैंने अपने जीवनका यह अमूल्य समय बिल्कुल बेकार—व्यर्थ खो दिया। जो शरीर प्रत्यक्ष ही घड़े और भीतके समान मिट्टीका है और दृश्य होनेके कारण उन्हींके समान अपनेसे अलग भी है, उसीको मैंने अपना स्वरूप मान लिया था और फिर अपनेको मान बैठा था 'नरदेव'। इस प्रकार मैंने मदान्ध होकर आपको तो कुछ समझा ही नहीं, रथ, हाथी, घोड़े और पैदलकी चतुरङ्गिणी सेना तथा सेनापतियोंसे घिरकर मैं पृथ्वीमें इधर-उधर घूमता रहता। मुझे यह करना चाहिये और यह नहीं करना चाहिये, इस प्रकार विविध कर्तव्य और अकर्तव्योंकी चिन्तामें पड़कर मनुष्य अपने एकमात्र कर्तव्य भगवत्प्राप्तिसे विमुख होकर प्रमत्त हो जाता है, असावधान हो जाता है। संसारमें बाँध रखनेवाले विषयोंके लिये उसकी लालसा दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जाती है और उन विषयोंके मिलनेपर भी उसकी तृष्णाका अन्त नहीं होता, लखपती करोड़पति और करोड़पति अरबपति बनना चाहता है। परन्तु जैसे भूखके कारण जीभ लपलपाता हुआ साँप असावधान चूहेको दबोच लेता है, वैसे ही कालरूपसे सदा सर्वदा सावधान रहनेवाले आप एकाएक उस प्रमादग्रस्त प्राणीपर टूट पड़ते हैं और उसे ले बीतते हैं। अब क्या गति होती है? जो पहले सोनेके रथोंपर अथवा बड़े-बड़े गजराजोंपर चढ़कर चलता था और नरदेव कहलाता था, वही शरीर आपके अबाध कालका ग्रास बनकर बाहर फेंक देनेपर पक्षियोंकी विष्ठा, धरतीमें गाड़ देनेपर सड़कर कीड़ा और आगमें जला देनेपर राखका ढेर बन जाता है। प्रभो! आपसे संसारकी व्यवस्था क्या कहूँ? जिसने सारी दिशाओंपर विजय प्राप्त कर ली है और जिससे लड़नेवाला संसारमें कोई रह नहीं गया है, जो श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठता है और बड़े बड़े नरपति, जो पहले उसके समान थे, अब जिसके चरणोंमें सिर झुकाते हैं, वही पुरुष जब विषय सुख भोगनेके लिये, जो घर गृहस्थीकी एक विशेष वस्तु है, स्त्रियोंके पास जाता है तब उनके हाथका खिलौना, उनका पालतू पशु बन जाता है। बहुत-से लोग विषय भोग छोड़ देते हैं, बहुत-सा दान पुण्य करते हैं और बड़ी बड़ी तपस्या साधते हैं, परन्तु किसलिये? उनका प्रयोजन केवल यही होता है कि मुझे और भी भोग मिलें, मैं फिर जन्म लेकर सबसे बड़ा परम स्वतन्त्र सम्राट् होऊँ। परन्तु भगवन्! जब वे इस प्रकार स्वयं ही तृष्णाकी आग धधका रहे हैं, तब क्या उन्हें कभी एक क्षणके लिये भी चैन मिल सकता है? अपने स्वरूपमें एकरस स्थित रहनेवाले भगवन्! जीव अनादिकालसे जन्म मृत्युरूप संसारके चक्करमें भटक रहा है। जब उस चक्करसे छूटनेका समय आता है तब सत् पुरुषके प्रति प्रेम होता है, उसका समागम होता है। यह निश्चय है कि जिस क्षण सत्संग प्राप्त होता है उसी क्षण संतोंके आश्रय कार्य कारणरूप जगत्‌के एकमात्र स्वामी आपमें जीवकी बुद्धि अत्यन्त दृढ़तासे लग जाती है। भगवन्! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आपने मेरे ऊपर परम अनुग्रहकी वर्षा की, क्योंकि बिना किसी परिश्रमके—अनायास ही मेरे राज्यका बन्धन टूट गया। साधु स्वभावके चक्रवर्ती राजा भी जब अपना राज्य छोड़कर एकान्तमें भजन साधन करनेके उद्देश्यसे वनमें जाना चाहते हैं तब उसके ममता बन्धनसे मुक्त होनेके लिये बड़े प्रेमसे आपसे प्रार्थना किया करते हैं। अन्तर्यामी प्रभो! आपसे क्या छिपा है? मैं आपके चरणोंकी सेवाके अतिरिक्त और कोई भी वर नहीं चाहता। क्योंकि जिनके पास किसी प्रकारका संग्रह परिग्रह नहीं है अथवा जो उसके अभिमानसे रहित हैं, वे लोग केवल आपके चरणकमलोंकी सेवाके लिये ही प्रार्थना करते रहते हैं। भगवन्! भला, बतलाइये तो सही—मोक्ष देनेवाले आपकी आराधना करके ऐसा कौन श्रेष्ठ पुरुष होगा, जो अपनेको बाँधनेवाले सांसारिक विषयोंका वर माँगे? इसलिये प्रभो! मैं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणसे सम्बन्ध रखनेवाली समस्त कामनाओंको छोड़कर केवल मायाके लेशमात्र सम्बन्धसे रहित, गुणातीत, एक—अद्वितीय, चित्स्वरूप परमपुरुष आपकी शरण ग्रहण करता हूँ। भगवन्! मैं अनादिकालसे अपने कर्मफलोंको भोगते भोगते अत्यन्त आर्त हो रहा था, उनकी दुःखद ज्वाला रात दिन मुझे जलाती रहती थी। मेरे छः शत्रु (पाँच इन्द्रिय और एक मन) कभी शान्त न होते थे, उनकी विषयोंकी प्यास बढ़ती ही जा रही थी। भगवन्! कभी किसी प्रकार एक क्षणके लिये भी मुझे शान्ति न मिली। शरणागतवत्सल भगवन्! अब मैं आपके भय, मृत्यु और शोकसे रहित चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। सारे जगत्‌के एकमात्र स्वामी! मेरे जीवनाधार! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये॥ ४६—५८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—सार्वभौम महाराज! तुम्हारी मति, तुम्हारा निश्चय बड़ा ही पवित्र और ऊँची

प्रत्यङ्गसे निकले हुए खूनकी सैकड़ों नदियाँ बहा दीं। कहीं मनुष्य कट रहे हैं तो कहीं हाथी और घोड़े छटपटा रहे हैं। उन नदियोंमें मनुष्योंकी भुजाएँ साँपके समान जान पड़तीं और सिर इस प्रकार मालूम पड़ते, मानो कछुओंकी भीड़ लग गयी हो। मरे हुए हाथी द्वीप-जैसे और घोड़े ग्राहोंके समान जान पड़ते। हाथ और जाँघें मछलियोंकी तरह, मनुष्योंके केश सेवारके समान, धनुष तरंगोंकी भाँति और अस्त्र-शस्त्र लता एवं तिनकोंके समान जान पड़ते। ढालें ऐसी मालूम पड़तीं, मानो भयानक भँवर हों। बहुमूल्य मणियाँ और आभूषण पत्थरके रोड़ों तथा कंकड़ोंके समान बहे जा रहे थे। उन नदियोंको देखकर कायर पुरुष डर रहे थे और वीरोंका आपसमें खूब उत्साह बढ़ रहा था। परीक्षित्! जरासन्धकी वह सेना समुद्रके समान दुर्गम, भयावह और बड़ी कठिनाईसे जीतने योग्य थी। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने थोड़े ही समयमें उसे नष्ट कर डाला। वे सारे जगत्के स्वामी हैं। उनके लिये एक सेनाका नाश कर देना केवल खिलवाड़ ही तो है! परीक्षित्! भगवान्के गुण अनन्त हैं। वे खेल-खेलमें ही तीनों लोकोंकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है कि वे शत्रुओंकी सेनाका इस प्रकार बात-की-बातमें सत्तानाश कर दें। तथापि जब वे मनुष्यका-सा वेष धारण करके मनुष्यकी-सी लीला करते हैं, तब उसका भी वर्णन किया ही जाता है॥ २१—३०॥

इस प्रकार जरासन्धकी सारी सेना मारी गयी। रथ भी टूट गया। शरीरमें केवल प्राण बाकी रहे। तब भगवान् श्रीबलरामजीने जैसे एक सिंह दूसरे सिंहको पकड़ लेता है, वैसे ही बलपूर्वक महाबली जरासन्धको पकड़ लिया। जरासन्धने पहले बहुतसे विपक्षी नरपतियोंका वध किया था, परन्तु आज उसे बलरामजी वरुणकी फाँसी और मनुष्योंके फंदेसे बाँध रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने यह सोचकर कि यह छोड़ दिया जायगा तो और भी सेना इकट्ठी करके लायेगा तथा हम सहज ही पृथ्वीका भार उतार सकेंगे, बलरामजीको रोक दिया। बड़े-बड़े शूरवीर जरासन्धका सम्मान करते थे। इसलिये उसे इस बातपर बड़ी लज्जा मालूम हुई कि मुझे श्रीकृष्ण और बलरामने दया करके दीनकी भाँति छोड़ दिया है। अब उसने तपस्या करनेका निश्चय किया। परन्तु



रास्तेमें उसके साथी नरपतियोंने बहुत समझाया कि 'राजन्! यदुवंशियोंमें क्या रक्खा है? वे आपको बिल्कुल ही पराजित नहीं कर सकते थे। आपको प्रारब्धवश ही नीचा देखना पड़ा है।' उन लोगोंने भगवान्की इच्छा, फिर विजय प्राप्त करनेकी आशा आदि बतलाकर तथा लौकिक दृष्टान्त एवं युक्तियाँ दे-देकर यह बात समझा दी कि आपको तपस्या नहीं करनी चाहिये। परीक्षित्! उस समय मगधराज जरासन्धकी सारी सेना मर चुकी थी। भगवान् बलरामजीने उपेक्षापूर्वक उसे छोड़ दिया था। इससे वह बहुत उदास होकर अपने देश मगधको चला गया॥ ३१—३५॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी सेनामें किसीका बाल भी बाँका न हुआ और उन्होंने जरासन्धकी तेईस अक्षौहिणी सेनापर, जो समुद्रके समान थी, सहज ही विजय प्राप्त कर ली। उस समय बड़े-बड़े देवता उनपर नन्दनवनके पुष्पोंकी वर्षा और उनके इस महान् कार्यका अनुमोदन—प्रशंसा कर रहे थे। जरासन्धकी सेनाके पराजयसे मथुरावासी भयरहित हो गये थे और भगवान् श्रीकृष्णकी विजयसे उनका हृदय आनन्दसे भर रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण आकर उनमें मिल गये। सूत, मागध और वंदीजन उनकी विजयके गीत गा रहे थे। जिस समय भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया उस समय वहाँ शङ्ख, नगारे, भेरी, तुरही, वीणा, बाँसुरी

कोटिका है। यद्यपि मैंने तुम्हें बार-बार वर देनेका प्रलोभन दिया, फिर भी तुम्हारी बुद्धि कामनाओंके अधीन न हुई। मैंने तुम्हें जो वर देनेका प्रलोभन दिया, इसका यह अर्थ नहीं कि मैं वर माँगना अच्छा समझता हूँ। वह तो तुम्हारी सावधानीकी परीक्षाके लिये ही था, और इसलिये भी कि दूसरे लोग मेरे भक्तकी सावधानी—उसकी निष्कामता देख सकें। मेरे जो अनन्य भक्त होते हैं, उनकी बुद्धि कभी कामनाओंसे इधर-उधर नहीं भटकती। जो लोग मेरे भक्त नहीं होते वे चाहे प्राणायाम आदिके द्वारा अपने मनको वशमें करनेका कितना ही प्रयत्न क्यों न करें, उनकी वासनाएँ क्षीण नहीं होतीं, और राजन्! उनका मन फिरसे विषयोंके लिये मचल पड़ता है। तुम अपने मन और सारे मनोभावोंको मुझे समर्पित कर दो, मुझमें लगा दो, और फिर स्वच्छन्दरूपसे पृथ्वीपर विचरण करो। मुझमें तुम्हारी विषयवासनाशून्य निर्मल भक्ति सदा बनी रहेगी। तुमने क्षत्रियधर्मका आचरण करते समय शिकार आदिके अवसरोंपर बहुत-से पशुओंका वध किया है। अब एकाग्रचित्तसे मेरी उपासना करते हुए तपस्याके द्वारा उस पापको धो डालो। राजन्! अगले जन्ममें तुम ब्राह्मण बनोगे और समस्त प्राणियोंके सच्चे हितैषी, परम सुहृद् होओगे तथा फिर मुझ विशुद्ध विज्ञानघन परमात्माको प्राप्त करोगे॥ ५९—६४॥

बावनवाँ अध्याय

द्वारकागमन, श्रीबलरामजीका विवाह तथा श्रीकृष्णके पास रुक्मिणीजीका सन्देशा लेकर ब्राह्मणका आना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार कालयवनका संहार करवाया और राजा मुचुकुन्दपर अनुग्रह किया। अब मुचुकुन्दजीने भगवान्‌की परिक्रमा की, उन्हें नमस्कार किया और इसके बाद वे गुफासे बाहर निकले। उन्होंने बाहर आकर देखा कि सब-के-सब मनुष्य, पशु, लता और वृक्ष-वनस्पति पहलेकी अपेक्षा बहुत छोटे-छोटे आकारके हो गये हैं। इससे यह जानकर कि कलियुग आ गया, वे उत्तर दिशाकी ओर चल दिये। महाराज मुचुकुन्द तपस्या, श्रद्धा, धैर्य तथा अनासक्तिसे युक्त एवं संशय-सन्देहसे मुक्त थे। वे अपना चित्त भगवान् श्रीकृष्णमें लगाकर गन्धमादन पर्वतपर जा पहुँचे और भगवान् नर-नारायणके नित्य निवासस्थान बदरिकाश्रममें जाकर बड़े शान्तभावसे गर्मी-सर्दी आदि द्वन्द्व सहते हुए तपस्याके द्वारा भगवान्‌की आराधना करने लगे॥ १—४॥

इधर भगवान् श्रीकृष्ण मथुरापुरीमें लौट आये। अबतक कालयवनकी सेनाने उसे घेर रक्खा था। अब उन्होंने म्लेच्छोंकी सेनाका संहार किया और उसका सारा धन छीनकर द्वारकाको ले चले। जिस समय भगवान् श्रीकृष्णके आज्ञानुसार मनुष्यों और बैलोंपर वह धन ले जाया जाने लगा, उसी समय मगधराज जरासन्ध फिर (अठारहवीं बार) तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर आ धमका। परीक्षित्! शत्रु-सेनाका प्रबल वेग देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम उसके सामनेसे बड़ी फुर्तीके साथ भाग निकले। वे उस समय मनुष्योंकी-सी लीला कर रहे थे। इसमें सन्देह नहीं कि उनके मनमें तनिक भी भय न था। फिर भी मानो अत्यन्त भयभीत हो गये हों—इस प्रकारका नाट्य करते हुए, वह सब-का-सब धन वहीं छोड़कर अनेक योजनोंतक वे अपने कमलदलके समान सुकोमल चरणोंसे ही—पैदल भागते चले गये। जब महाबली मगधराज जरासन्धने देखा

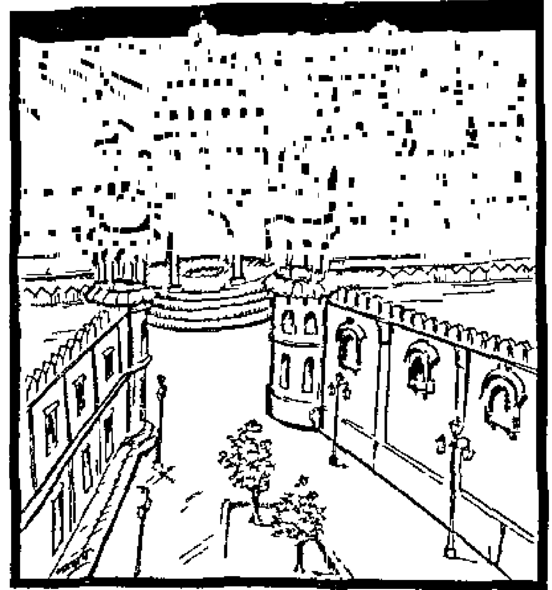


कि श्रीकृष्ण और बलराम तो भाग रहे हैं, तब वह हँसने लगा और अपनी रथ-सेनाके साथ उनका पीछा करने

और मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे थे। मथुराकी एक-एक सड़क और गलीमें छिड़काव कर दिया गया था। चारों ओर हँसते-खेलते नागरिकोंकी चहल-पहल थी। सारा नगर छोटी-छोटी झंडियों और बड़ी-बड़ी विजय-पताकाओंसे सजा दिया गया था। ब्राह्मणोंकी वेदध्वनि गूँज रही थी और सब ओर आनन्दोत्सवके सूचक बंदनवार बाँध दिये गये थे। जिस समय श्रीकृष्ण नगरमें प्रवेश कर रहे थे, उस समय नगरकी नारियाँ प्रेम और उत्कण्ठासे भरे हुए नेत्रोंसे उन्हें स्नेहपूर्वक निहार रही थीं और फूलोंके हार, दही, अक्षत और जौ आदिके अङ्कुरोंकी उनके ऊपर वर्षा कर रही थीं। भगवान् श्रीकृष्ण रणभूमिसे अपार धन और वीरोंके आभूषण ले आये थे। वह सब उन्होंने यदुवंशियोंके राजा उग्रसेनके पास भेज दिया ॥ ३६-४१ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार सत्रह बार तेईस-तेईस अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करके मगधराज जरासन्धने भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित यदुवंशियोंसे युद्ध किया। किन्तु यादवोंने भगवान् श्रीकृष्णकी शक्तिसे हर बार उसकी सारी सेना नष्ट कर दी। जब सारी सेना नष्ट हो जाती, तब यदुवंशियोंके उपेक्षापूर्वक छोड़ देनेपर जरासन्ध अपनी राजधानीमें लौट जाता। जिस समय अठारहवाँ संग्राम छिड़नेहीवाला था, उसी समय नारदजीका भेजा हुआ कालयवन दिखायी पड़ा। युद्धमें कालयवनके सामने खड़ा होनेवाला वीर संसारमें दूसरा कोई न था। उसने जब यह सुना कि यदुवंशी हमारे ही जैसे बलवान् हैं और हमारा सामना कर सकते हैं, तब तीन करोड़ म्लेच्छोंकी सेना लेकर उसने मथुराको घेर लिया ॥ ४२-४५ ॥

कालयवनकी यह असमय चढ़ाई देखकर भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ मिलकर विचार किया—'अहो, इस समय तो यदुवंशियोंपर जरासन्ध और कालयवन—ये दो दो विपत्तियाँ एक साथ ही मँडरा रही हैं। आज इस परम बलशाली यवनने हमें आकर घेर लिया है। और जरासन्ध भी आज, कल या परसोंमें आना ही चाहता है। यदि हम दोनों भाई इसके साथ लड़नेमें लग गये और उसी समय जरासन्ध आ पहुँचा, तो वह हमारे बन्धुओंको मार डालेगा या तो कैद करके अपने नगरमें ले जायगा। सचमुच वह बहुत बलवान् है। इसलिये आज हमलोग एक ऐसा दुर्ग—ऐसा किला बनायेंगे, जिसमें किसी भी मनुष्यका प्रवेश करना अत्यन्त कठिन होगा। अपने स्वजन-सम्बन्धियोंको उसी किलेमें पहुँचाकर फिर इस यवनका वध करायेंगे।' बलरामजीसे इस प्रकार सलाह करके भगवान् श्रीकृष्णने समुद्रके भीतर एक ऐसा दुर्गम नगर बनवाया, जिसमें सभी वस्तुएँ अद्भुत थीं और उस नगरकी लंबाई-चौड़ाई अड़तालीस कोसकी थी। उस नगरकी एक-एक वस्तुमें विश्वकर्माका विज्ञान (वास्तुविज्ञान) और शिल्पकलाकी निपुणता प्रकट होती थी। उसमें वास्तुशास्त्रके अनुसार बड़ी-बड़ी सड़कों, चौराहों,



और गलियोंका यथास्थान ठीक-ठीक विभाजन किया गया था। वह नगर ऐसे सुन्दर-सुन्दर उद्यानों और विचित्र-विचित्र उपवनोंसे युक्त था, जिनमें देवताओंके वृक्ष और लताएँ लहलहाती रहती थीं। सोनेके इतने ऊँचे-ऊँचे शिखर थे, जो आकाशसे बातें करते थे। स्फटिकमणिकी अटारियाँ और ऊँचे-ऊँचे दरवाजे बड़े ही सुन्दर लगते थे। अन्न रखनेके लिये चाँदी और पीतलके बहुत-से कोठे बने हुए थे। वहाँके महल सोनेके बने हुए थे और उनपर कामदार सोनेके कलश सजे हुए थे। उनके शिखर रत्नोंके थे तथा गच पन्नेकी बनी हुई बहुत भली मालूम होती थी। इसके अतिरिक्त उस नगरमें वास्तुदेवताके मन्दिर और छज्जे भी बहुत सुन्दर-सुन्दर बने हुए थे। उसमें चारों वर्णके लोग निवास करते थे और सबके बीचमें यदुवंशियोंके प्रधान उग्रसेनजी, वसुदेवजी, बलरामजी तथा भगवान् श्रीकृष्णके महल जगमगा रहे थे। परीक्षित्! उस समय देवराज इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णके लिये पारिजात वृक्ष और सुधर्मा सभाको भेज दिया। वह सभा ऐसी दिव्य थी कि उसमें बैठे हुए मनुष्यको भूख-प्यास आदि मर्त्यलोकके धर्म नहीं छू पाते थे। वरुणजीने ऐसे

अधिकांश शमीके समान छोटे और कँटीले वृक्ष ही रह जायँगे। बादलोंमें बिजली तो बहुत चमकेगी, परन्तु वर्षा कम होगी। गृहस्थोंके घर अतिथि सत्कार या वेदध्वनिसे रहित होनेके कारण अथवा जनसंख्या घट जानेके कारण सूने सूने हो जायँगे। परीक्षित्! अधिक क्या कहें—कलियुगका अन्त होते होते मनुष्योंका स्वभाव गधों-जैसा दुःसह बन जायगा, लोग प्रायः गृहस्थीका भार ढोनेवाले और विषयी हो जायँगे। ऐसी स्थितिमें धर्मकी रक्षा करनेके लिये सत्त्वगुण स्वीकार करके स्वयं भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे ॥ १२–१६ ॥

प्रिय परीक्षित्! सर्वव्यापक भगवान् विष्णु सर्वशक्तिमान् हैं। वे सर्वस्वरूप होनेपर भी चराचर जगत्के सच्चे शिक्षक—सद्गुरु हैं। वे साधु—सज्जन पुरुषोंके धर्मकी रक्षाके लिये, उनके कर्मका बन्धन काटकर उन्हें जन्म मृत्युके चक्रसे छुड़ानेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं। उन दिनों शम्भल ग्राममें विष्णुयश नामके एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होंगे। उनका हृदय बड़ा उदार एवं भगवद्भक्तिसे पूर्ण होगा। उन्हींके घर कल्किभगवान् अवतार ग्रहण करेंगे। श्रीभगवान् ही अष्टसिद्धियोंके और समस्त सद्गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। समस्त चराचर जगत्के वे ही रक्षक और स्वामी हैं। वे देवदत्त नामक शीघ्रगामी घोड़ेपर सवार होकर दुष्टोंको तलवारके घाट उतारकर ठीक करेंगे। उनके रोम रोमसे अतुलनीय तेजकी किरणें छिटकती होंगी। वे अपने शीघ्रगामी घोड़ेसे पृथ्वीपर सर्वत्र विचरण करेंगे और राजाके वेषमें छिपकर रहनेवाले कोटि कोटि डाकुओंका संहार करेंगे ॥ १७–२० ॥

प्रिय परीक्षित्! जब सब डाकुओंका संहार हो चुकेगा, तब नगरकी और देशकी सारी प्रजाका हृदय पवित्रतासे भर जायगा, क्योंकि भगवान् कल्किके शरीरमें लगे हुए अंगरागका स्पर्श पाकर अत्यन्त पवित्र हुई वायु उनका स्पर्श करेगी और इस प्रकार वे भगवान्के श्रीविग्रहकी दिव्य गन्ध प्राप्त कर सकेंगे। उनके पवित्र हृदयोंमें सत्त्वमूर्ति भगवान् वासुदेव विराजमान होंगे और फिर उनकी सन्तान पहलेकी भाँति हृष्ट पुष्ट और बलवान् होने लगेगी। प्रिय परीक्षित्! प्रजाके नयन मनोहारी हरि ही धर्मके रक्षक और स्वामी हैं। वे ही भगवान् जब कल्किके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे, उसी समय सत्ययुगका प्रारम्भ हो जायगा। उस समय प्रजाकी सन्तान परम्परा स्वयं ही सत्त्वगुणसे युक्त हो जायगी। जिस समय चन्द्रमा, सूर्य और बृहस्पति एक ही समय एक ही साथ पुष्य नक्षत्रके प्रथम पलमें प्रवेश करते हैं, एक राशिपर आते हैं, उसी समय सत्ययुगका प्रारम्भ होता है ॥ २१–२४ ॥

परीक्षित्! चन्द्रवंश और सूर्यवंशमें जितने राजा हो गये हैं या होंगे, उन सबका मैंने संक्षेपसे वर्णन कर दिया। तुम्हारे जन्मसे लेकर राजा नन्दके अभिषेकतक एक हजार, एक सौ पंद्रह वर्षोंका समय लगेगा। जिस समय आकाशमें सप्तर्षियोंका उदय होता है, उस समय पहले उनमेंसे दो ही तारे दिखायी पड़ते हैं। उनके बीचमें दक्षिणोत्तर रेखापर समभागमें अश्विनी आदि नक्षत्रोंमेंसे एक नक्षत्र दिखायी पड़ता है। उस नक्षत्रके साथ सप्तर्षिगण मनुष्योंकी गणनासे सौ वर्षतक रहते हैं। वे तुम्हारे जन्मके समय और इस समय भी मघा नक्षत्रपर स्थित हैं ॥२५–२८॥

स्वयं सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान् भगवान् ही श्रीकृष्णके रूपमें प्रकट हुए थे। वे जिस समय अपनी लीला संवरण करके परमधामको पधार गये, उसी समय कलियुगने संसारमें प्रवेश किया। कलियुगके कारण ही मनुष्योंकी मति गति पापकी ओर ढुलक गयी। जबतक लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणकमलोंसे पृथ्वीका स्पर्श करते रहे, तबतक कलियुग पृथ्वीपर अपना पैर न जमा सका। परीक्षित्! जिस समय सप्तर्षि मघा नक्षत्रपर विचरण करते रहते हैं, उसी समय कलियुगका प्रारम्भ होता है। कलियुगकी आयु देवताओंकी वर्षगणनासे बारह सौ वर्षोंकी अर्थात् मनुष्योंकी गणनाके अनुसार चार लाख, बत्तीस हजार वर्षोंकी है। जिस समय सप्तर्षि मघासे चलकर पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रमें जा चुके होंगे, उस समय राजा नन्दका राज्य रहेगा। तभीसे कलियुगकी वृद्धि शुरू होगी। पुरातत्त्ववेत्ता ऐतिहासिक विद्वानोंका कहना है कि जिस दिन भगवान् श्रीकृष्णने अपने परमधामको प्रयाण किया, उसी दिन कलियुगका प्रारम्भ हो गया। परीक्षित्! जब देवताओंकी वर्षगणनाके अनुसार एक हजार वर्ष बीत चुकेंगे, तब कलियुगके अन्तिम दिनोंमें फिरसे कल्किभगवान्की कृपासे मनुष्योंके मनमें सात्त्विकताका संचार होगा, लोग अपने वास्तविक स्वरूपको जान सकेंगे, और तभीसे सत्ययुगका प्रारम्भ भी होगा ॥ २९–३४ ॥

परीक्षित्! मैंने तो तुमसे केवल मनुवंशका, सो भी संक्षेपसे वर्णन किया है। जैसे मनुवंशकी गणना होती है, वैसे ही प्रत्येक युगमें ब्राह्मण, वैश्य और शूद्रोंकी भी वंश परम्परा समझनी चाहिये। राजन्! जिन पुरुषों और

मञ्जरी' नामक ग्रन्थमें सङ्क्षेपमें सारे भागवतका सारांश दे दिया गया है, वैसे ही बोपदेवने 'हरिलीलामृत' में सम्पूर्ण भागवतका सारांश दे दिया है। उसीके दो-चार स्फुट श्लोकोंको पढ़कर कुछ लोगोंने धारणा बना ली कि श्रीमद्भागवत बोपदेवकी रचना है, जो कि उस ग्रन्थ और उसपर लिखी गयी हेमाद्रिकृत कैवल्य-दीपिका टीकाको न देखनेसे ही हुई है। दूसरी बात यह है कि हेमाद्रिने 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' में तथा 'दानखण्ड' में भी भागवतके वचन उद्धृत किये हैं। यदि भागवत बोपदेवकृत होता, तो धर्मनिर्णयके प्रसङ्गमें हेमाद्रि उसका उद्धरण नहीं देते। यह तो हुई बोपदेवके सम्बन्धकी बात। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से ऐसे प्रमाण हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि श्रीमद्भागवत बहुत ही प्राचीन ग्रन्थ है। उनमेंसे कुछ थोड़े-से यहाँ लिखे जाते हैं—

१—द्वैतवाद अथवा स्वतन्त्रास्वतन्त्रवादके प्रसिद्ध आचार्य पूर्णप्रज्ञ अथवा आनन्दतीर्थ जो मध्वाचार्यके नामसे प्रसिद्ध हैं, उनका जन्म ईसाकी बारहवीं शताब्दी-के अन्तमें अर्थात् सन् ११९९ में हुआ था। बोपदेवका समय तेरहवीं शताब्दीका अन्तिम भाग है और मध्वाचार्यका प्रथम। मध्वाचार्यने श्रीमद्भागवतपर एक टीका लिखी है, जिसका नाम है—'भागवततात्पर्यनिर्णय'। यदि मध्वाचार्यसे पूर्व श्रीमद्भागवत विद्यमान न होता और प्रामाणिक ग्रन्थ न माना जाता, तो वे उसपर टीका क्यों लिखते? उन्होंने भागवतपर पहले-पहल टीका लिखी हो, ऐसी बात नहीं है। उनकी टीकामें अनेक प्राचीन टीकाकारोंके नाम हैं—जिनमें विद्वद्वर श्रीहनुमान्, आचार्य शङ्कर और चित्सुखाचार्यका भी निर्देश है। उन्होंने गीताकी टीकामें भी नारायणाष्टकाक्षर-कल्पसे एक उद्धरण दिया है, जिसमें श्रीमद्भागवतको पञ्चम वेद कहा गया है।

२—विशिष्टाद्वैत एवं श्रीसम्प्रदायके प्रधान आचार्य श्रीरामानुजाचार्यने अपने वेदान्ततत्त्वसारमें श्रीमद्भागवतका नाम लेकर कई वचन उद्धृत किये हैं। इनका समय श्रीमध्वाचार्यजीसे भी बहुत पूर्व है। इनका जन्म सन् १०१७ ई० में हुआ था। ग्यारहवीं शताब्दी ही इनका मुख्य कार्य-काल है। 'वेदस्तुति' (दशम स्कन्धका ८७ वाँ अध्याय) और 'एकादश स्कन्ध'के नामसे भी इन्होंने भागवतके वचन उद्धृत किये हैं। अपने 'वेदार्थसंग्रह' नामक निबन्धमें रामानुजाचार्यने सात्त्विक पुराणोंमें श्रीमद्भागवतकी गणना की है और अठारह हजार श्लोक-संख्याका भी उल्लेख किया है।

३—बोपदेवके समकालीन हेमाद्रिने भागवतके टीकाकारके रूपमें श्रीश्रीधरस्वामीका नामोल्लेख किया है। श्रीधरस्वामीने विष्णुपुराणकी टीकामें चित्सुखाचार्यकी चर्चा की है। इस प्रकार बोपदेवसे प्राचीन श्रीधर और श्रीधरसे भी प्राचीन चित्सुखाचार्य सिद्ध होते हैं। शङ्कराचार्यके सम्प्रदायमें श्रीचित्सुखाचार्यजी तीसरे आचार्य माने जाते हैं। इनकी बनायी हुई 'चित्सुखी' अथवा 'तत्त्वप्रदीपिका' बहुत ही विख्यात है। इनके समयका निर्णय शङ्कराचार्यके समयपर निर्भर करता है। शाङ्करसम्प्रदाय और मठोंकी आचार्यपरम्पराकी दृष्टिसे ईसासे चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व शङ्कराचार्यका आविर्भाव हुआ है। इस दृष्टिसे चित्सुखाचार्यका समय ईसासे पूर्व ही सिद्ध होता है। यदि आधुनिक अन्वेषकोंकी भाँति शङ्कराचार्यका समय पाँचवीं-छठी अथवा सातवीं-आठवीं शताब्दी माना जाय, तो भी चित्सुखाचार्यका समय नवीं शताब्दी सिद्ध होता है। उन्होंने भागवतपर टीका लिखी थी, जिसकी चर्चा मध्वाचार्य, श्रीधरस्वामी एवं विजयतीर्थ—सभी करते हैं। इससे भागवतका उस समय होना स्वयं ही सिद्ध है।

४—बनारसके क्विन्सकालेजसे सम्बद्ध सरस्वतीभवन-पुस्तकालयमें श्रीमद्भागवतकी एक प्राचीन प्रति सुरक्षित

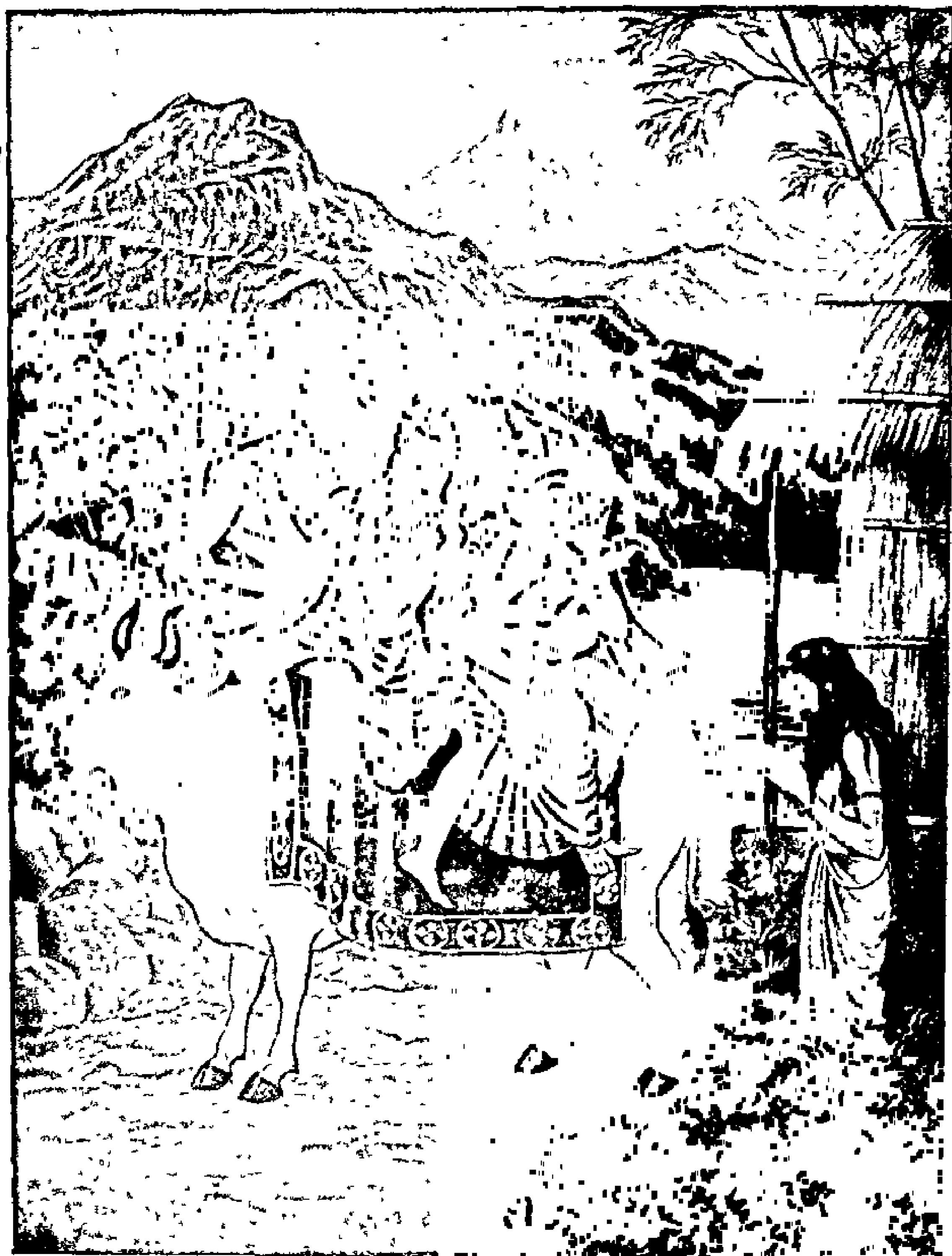


भगवान् कल्कि

देते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे सूर्य अन्धकारको और आँधी बादलोंको तितर-बितर कर देती है। जिस वाणीके द्वारा घट-घटवासी अविनाशी भगवान्‌के नाम, लीला, गुण आदिका उच्चारण नहीं होता वह वाणी भावपूर्ण होनेपर भी निरर्थक है—सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है और उत्तमोत्तम विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली होनेपर भी असत्कथा है। जो वाणी और वचन भगवान्‌के गुणोंसे परिपूर्ण रहते हैं वे ही परम पवित्र हैं, वे ही मङ्गलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं। जिस वचनके द्वारा भगवान्‌के परम पवित्र यशका गायन होता है वही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नया-नया जान पड़ता है। उससे अनन्त कालतक मनको परमानन्दकी अनुभूति होती रहती है। मनुष्योंका सारा शोक, चाहे वह समुद्रके समान लंबा और गहरा क्यों न हो, उस वचनके प्रभावसे सदाके लिये सूख जाता है। जिस वाणीसे—चाहे वह रस, भाव, अलङ्कार आदिसे युक्त ही क्यों न हो—जगत्‌को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके यशका कभी गायन नहीं होता, वह तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अत्यन्त अपवित्र है। मानस-सरोवरनिवासी हंस अथवा ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त उसका कभी सेवन नहीं करते। निर्मल हृदयवाले साधुजन तो वहीं निवास करते हैं, जहाँ भगवान् रहते हैं। इसके विपरीत जिसमें सुन्दर रचना भी नहीं है और जो व्याकरण आदिकी दृष्टिसे दूषित शब्दोंसे युक्त भी है, परन्तु जिसके प्रत्येक श्लोकमें भगवान्‌के सुयशसूचक नाम जड़े हुए हैं, वह वाणी लोगोंके सारे पापोंका नाश कर देती है। क्योंकि सत्पुरुष ऐसी ही वाणीका श्रवण, गायन और कीर्तन किया करते हैं। वह निर्मल ज्ञान भी, जो मोक्षकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है, यदि भगवान्‌की भक्तिसे रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती। फिर जो कर्म भगवान्‌को अर्पण नहीं किया गया है—वह चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न हो—सर्वदा अमङ्गल-रूप, दुःख देनेवाला ही है; वह तो शोभन—वरणीय हो ही कैसे सकता है। वर्णाश्रमके अनुकूल आचरण, तपस्या और अध्ययन आदिके लिये जो बहुत बड़ा परिश्रम किया जाता है उसका फल है—केवल यश अथवा लक्ष्मीकी प्राप्ति। परन्तु भगवान्‌के गुण, लीला, नाम आदिका श्रवण, कीर्तन आदि तो उनके श्रीचरणकमलोंकी अविचल स्मृति प्रदान करता है। भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंका निरन्तर चिन्तन सारे पाप-ताप और अमङ्गलोंको नष्ट कर देता और परम शान्तिका विस्तार करता है। उसीके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, भगवान्‌की भक्ति प्राप्त होती है एवं परवैराग्यसे युक्त भगवान्‌के स्वरूपका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है। भगवान् ही समस्त प्राणियोंके वास्तविक स्वरूप—आत्मा हैं। वे ही सर्वान्तर्यामी, सबके आराध्यदेव एवं सब देवोंसे अतीत हैं। उनका शासन अखण्ड है। शौनकादि ऋषियो! सचमुच आपलोग बड़े ही भाग्यवान् हैं कि सदा-सर्वदा उन्हें अपने हृदयमें रखते हैं और प्रेममयी अनन्य भक्तिके द्वारा उनकी आराधना करते हैं। जिस समय राजर्षि परीक्षित् अनशन करके बड़े-बड़े ऋषियोंकी भरी सभामें सबके सामने श्रीशुकदेवजी महाराजसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुन रहे थे, उस समय वहीं बैठकर मैंने भी उन्हीं परमर्षिके मुखसे इस आत्मतत्त्वका श्रवण किया था। आपलोगोंने उसका स्मरण कराकर मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। मैं इसके लिये आपलोगोंका बड़ा ऋणी हूँ॥४६—५६॥

शौनकादि ऋषियो! भगवान् वासुदेवकी एक-एक लीला सर्वदा श्रवण-कीर्तन करनेयोग्य है। मैंने इस प्रसङ्गमें उन्हींकी महिमाका वर्णन किया है, जो सारे अशुभ संस्कारोंको धो बहाती है। जो मनुष्य एकाग्र चित्तसे एक पहर अथवा एक क्षण ही प्रतिदिन इसका कीर्तन करता है और जो श्रद्धाके साथ इसका श्रवण करता है, वह अवश्य ही शरीरसहित अपने अन्तःकरणको पवित्र बना लेता है। जो पुरुष द्वादशी अथवा एकादशीके दिन इसका श्रवण करता है, उसकी आयु लंबी हो जाती है और जो संयमपूर्वक निराहार रहकर पाठ करता है उसके पहलेके पाप तो नष्ट हो ही जाते हैं, पापकी प्रवृत्ति भी नष्ट हो जाती है। जो मनुष्य इन्द्रियों और अन्तःकरणको अपने वशमें करके उपवासपूर्वक पुष्कर, मथुरा अथवा द्वारकामें इस पुराणसंहिताका पाठ करता है वह सारे भयोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य इसका श्रवण या उच्चारण करता है उसके कीर्तनसे देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनु और नरपति सन्तुष्ट होते हैं और उसकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके पाठसे ब्राह्मण-को मधुकुल्या, घृतकुल्या और पयःकुल्या (मधु, घी एवं दूधकी नदियाँ अर्थात् सब प्रकारकी सुख-समृद्धि) की प्राप्ति होती है। वही फल श्रीमद्भागवतके पाठसे भी मिलता है। शौनकादि ऋषियो! जो पुरुष संयमपूर्वक इस पुराणसंहिताका अध्ययन करता है, उसे उसी परमपदकी प्राप्ति होती है जिसका वर्णन स्वयं भगवान्‌ने किया है। इसके अध्ययनसे ब्राह्मणको ऋतम्भरा प्रज्ञा (तत्त्वज्ञानको प्राप्त करानेवाली बुद्धि) की प्राप्ति होती है और क्षत्रियको समुद्र-

मार्कण्डेयजीपर शङ्करकी कृपा



मार्कण्डेयजीने देखा भगवान् शङ्कर श्रीपार्वतीजी तथा अपने गणोंके साथ पधारे हैं।

सर्वपापापहारी चरित्रका वर्णन भी इसी स्कन्धमें है। तदनन्तर निमिका देह-त्याग, जनककी उत्पत्ति, भृगुवंशशिरोमणि परशुरामजीका क्षत्रियसंहार, चन्द्रवंशी नरपति पुरूरवा, ययाति, नहुष, दुष्यन्तनन्दन भरत, शन्तनु और उनके पुत्र भीष्म आदिकी संक्षिप्त कथाएँ भी नवम स्कन्धमें ही हैं। सबके अन्तमें ययातिके बड़े लड़के यदुका वंशविस्तार कहा गया है ॥ १९–२६ ॥

शौनकादि ऋषियो! इसी यदुवंशमें जगत्पति भगवान् श्रीकृष्णने अवतार ग्रहण किया था। उन्होंने अनेक असुरोंका संहार किया। उनकी लीलाएँ इतनी हैं कि कोई पार नहीं पा सकता। फिर भी दशम स्कन्धमें उनका कुछ कीर्तन किया गया है। वसुदेवकी पत्नी देवकीके गर्भसे उनका जन्म हुआ। गोकुलमें नन्दबाबाके घर जाकर बढ़े। पूतनाके प्राणोंको दूधके साथ पी लिया। बचपनमें ही छकड़ेको उलट दिया। तृणावर्त, बकासुर एवं वत्सासुरको पीस डाला। सपरिवार धेनुकासुर और प्रलम्बासुरको सद्‌गति दी। दावानलसे घिरे गोपोंकी रक्षा की। कालिय नागका दमन किया। अजगरसे नन्दबाबाको छुड़ाया। इसके बाद गोपियोंने भगवान्‌को पतिरूपसे प्राप्त करनेके लिये व्रत किया और भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर उन्हें अभिमत वर दिया। भगवान्‌ने यज्ञपत्नियोंपर कृपा की। उनके पतियों—ब्राह्मणोंको बड़ा पश्चात्ताप हुआ। गोवर्द्धनधारणकी लीला करनेपर इन्द्र और कामधेनुने आकर भगवान्‌का अभिषेक किया। शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें व्रजसुन्दरियोंके साथ रासक्रीड़ा की। दुष्ट शङ्खचूड, अरिष्ट और केशीके वधकी लीला हुई। तदनन्तर अक्रूरजी मथुरासे वृन्दावन आये और उनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीने मथुराके लिये प्रस्थान किया। उस प्रसंगपर व्रज-सुन्दरियोंके विलापकी कथा तो अवर्णनीय है। राम और श्यामने मथुरामें जाकर वहाँकी सजावट देखी और कुवलयापीड़ हाथी, मुष्टिक, चाणूर एवं कंस आदिका संहार किया। सान्दीपनि गुरुके यहाँ विद्याध्ययन करके उनके मृत पुत्रको लौटा लाये। शौनकादि ऋषियो! जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण मथुरामें निवास कर रहे थे, उस समय उन्होंने उद्धव और बलरामजीके साथ यदुवंशियोंका सब प्रकारसे प्रिय और हित किया। जरासन्ध कई बार बड़ी-बड़ी सेनाएँ लेकर आया और भगवान्‌ने उनका उद्धार करके पृथ्वीका भार हल्का किया। कालयवनको मुचुकुन्दसे भस्म करा दिया। द्वारकापुरी बसाकर रातों-रात सबको वहाँ पहुँचा दिया और स्वर्गसे कल्पवृक्ष एवं सुधर्मा सभा ले आये। भगवान्‌ने दल-के-दल शत्रुओंको युद्धमें पराजित करके रुक्मिणीका हरण किया। बाणासुरके साथ युद्धके प्रसङ्गमें महादेवजीपर ऐसा बाण छोड़ा कि वे जँभाई लेने लगे और इधर बाणासुरकी भुजाएँ काट डालीं। प्राग्ज्योतिषपुरके स्वामी भौमासुरको मारकर सोलह हजार कन्याएँ ग्रहण कीं। शिशुपाल, पौण्ड्रक, शाल्व, दुष्ट दन्तवक्त्र, शम्बरासुर, द्विविद, पीठ, मुर, पञ्चजन आदि दैत्योंके बल-पौरुषका वर्णन करके यह बात बतलायी गयी कि भगवान्‌ने उन्हें कैसे-कैसे मारा। भगवान्‌के चक्रने काशीको जला दिया और फिर उन्होंने भारतीय युद्धमें पाण्डवोंको निमित्त बनाकर पृथ्वीका बहुत बड़ा भार उतार दिया ॥ २७–४० ॥

शौनकादि ऋषियो! ग्यारहवें स्कन्धमें इस बातका वर्णन हुआ है कि भगवान्‌ने ब्राह्मणोंके शापके बहाने किस प्रकार यदुवंशका संहार किया। इस स्कन्धमें भगवान् श्रीकृष्ण और उद्धवका संवाद बड़ा ही अद्भुत है। उसमें सम्पूर्ण आत्मज्ञान और धर्म-निर्णयका निरूपण हुआ है। और अन्तमें यह बात बतायी गयी है कि भगवान् श्रीकृष्णने अपने आत्मयोगके प्रभावसे किस प्रकार मर्त्यलोकका परित्याग किया। बारहवें स्कन्धमें विभिन्न युगोंके लक्षण और उनमें रहनेवाले लोगोंके व्यवहारका वर्णन किया गया है तथा यह भी बतलाया गया है कि कलियुगमें मनुष्योंकी गति विपरीत होती है। चार प्रकारके प्रलय और तीन प्रकारकी उत्पत्तिका वर्णन भी इसी स्कन्धमें है। इसके बाद परमज्ञानी राजर्षि परीक्षित्‌के शरीरत्यागकी बात कही गयी है। तदनन्तर वेदोंके शाखा-विभाजनका प्रसङ्ग आया है। मार्कण्डेयजीकी सुन्दर कथा, भगवान्‌के अङ्ग-उपाङ्गोंका स्वरूपकथन और सबके अन्तमें विश्वात्मा भगवान् सूर्यके गणोंका वर्णन है। शौनकादि ऋषियो! आपलोगोंने इस सत्संगके अवसरपर मुझसे जो कुछ पूछा था, उसका वर्णन मैंने कर दिया। इसमें सन्देह नहीं कि इस अवसरपर मैंने हर तरहसे भगवान्‌की लीला और उनके अवतार-चरित्रोंका ही कीर्तन किया है ॥ ४१–४५ ॥

जो मनुष्य गिरते-पड़ते, फिसलते, दुःख भोगते अथवा छींकते समय विवशतासे भी ऊँचे स्वरसे बोल उठता है—'हरये नमः', वह सब पापोंसे छूट जाता है। यदि देश, काल एवं वस्तुसे अपरिच्छिन्न भगवान् श्रीकृष्णके नाम, लीला, गुण आदिका सङ्कीर्तन किया जाय अथवा उनके प्रभाव, महिमा आदिका श्रवण किया जाय तो वे स्वयं ही हृदयमें आ विराजते हैं और श्रवण तथा कीर्तन करनेवाले पुरुषके सारे दुःख मिटा

समान तेजस्वी है। शरीरपर बाघंबर धारण किये हुए हैं और हाथोंमें शूल, खट्वांग, ढाल, रुद्राक्षमाला, डमरू, खप्पर, तलवार और धनुष लिये हैं। मार्कण्डेय मुनि अपने हृदयमें अकस्मात् भगवान् शङ्करका यह रूप देखकर विस्मित हो गये। 'यह क्या है? कहाँसे आया?' इस प्रकारकी वृत्तियोंका उदय हो जानेसे उन्होंने अपनी समाधि खोल दी। जब उन्होंने आँखें खोलीं, तब देखा कि तीनों लोकोंके एकमात्र गुरु भगवान् शङ्कर श्रीपार्वतीजी तथा अपने गणोंके साथ पधारे हुए हैं। उन्होंने उनके चरणोंमें माथा टेककर प्रणाम किया। तदनन्तर मार्कण्डेय मुनिने स्वागत, आसन, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, पुष्पमाला, धूप और दीप आदि उपचारोंसे भगवान् शङ्कर, भगवती पार्वती और उनके गणोंकी पूजा की। इसके पश्चात् मार्कण्डेय मुनि उनसे कहने लगे—'सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् प्रभो! आप अपनी आत्मानुभूति और महिमासे ही पूर्णकाम हैं। आपकी शान्ति और सुखसे ही सारे जगत्में सुख-शान्तिका विस्तार हो रहा है, ऐसी अवस्थामें मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मैं आपके त्रिगुणातीत सदाशिव स्वरूपको और सत्त्वगुणसे युक्त शान्तस्वरूपको नमस्कार करता हूँ। मैं आपके रजोगुणयुक्त सर्वप्रवर्तक स्वरूप एवं तमोगुणयुक्त अघोर स्वरूपको नमस्कार करता हूँ।' ॥ ८–१७ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी! जब मार्कण्डेय मुनिने संतोंके परम आश्रय देवाधिदेव भगवान् शङ्करकी इस प्रकार स्तुति की, तब वे उनपर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और बड़े प्रसन्न चित्तसे हँसते हुए कहने लगे॥ १८ ॥

भगवान् शङ्करने कहा—मार्कण्डेयजी! ब्रह्मा, विष्णु तथा मैं—हम तीनों ही वरदाताओंके स्वामी हैं, हमलोगोंका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता। हमलोगोंसे ही मरणशील मनुष्य भी अमृतत्वकी प्राप्ति कर लेता है। इसलिये तुम्हारी जो इच्छा हो, वही वर मुझसे माँग लो। ब्राह्मण स्वभावसे ही परोपकारी, शान्तचित्त एवं अनासक्त होते हैं। वे किसीके साथ वैरभाव नहीं रखते और समदर्शी होनेपर भी प्राणियोंका कष्ट देखकर उसके निवारणके लिये पूरे हृदयसे जुट जाते हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता तो यह होती है कि वे हमारे अनन्य प्रेमी एवं भक्त होते हैं। सारे लोक और लोकपाल ऐसे ब्राह्मणोंकी वन्दना, पूजा और उपासना किया करते हैं। केवल वे ही क्यों; मैं, ब्रह्मा तथा स्वयं सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णु भी उनकी सेवामें संलग्न रहते हैं। ऐसे शान्त महापुरुष मुझमें, विष्णुभगवान्में, ब्रह्मामें, अपनेमें और सब जीवोंमें किसी प्रकारका भेद नहीं देखते। सदा-सर्वदा, सर्वत्र और सर्वथा एकरस आत्माका ही दर्शन करते हैं। इसलिये हम तुम्हारे-जैसे महात्माओंकी स्तुति और सेवा करते हैं। मार्कण्डेयजी! केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं होते, तथा केवल जड मूर्तियाँ ही देवता नहीं होतीं। सबसे बड़े तीर्थ और देवता तो तुम्हारे-जैसे संत हैं। क्योंकि वे तीर्थ और देवता बहुत दिनोंमें पवित्र करते हैं, परन्तु तुमलोग दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देते हो। हमलोग तो ब्राह्मणोंको ही नमस्कार करते हैं। क्योंकि वे चित्तकी एकाग्रता, तपस्या, स्वाध्याय, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा हमारे वेदमय शरीरको धारण करते हैं। मार्कण्डेयजी! बड़े-बड़े महापापी और अन्त्यज भी तुम्हारे-जैसे महापुरुषोंके चरित्रश्रवण और दर्शनसे ही शुद्ध हो जाते हैं। फिर वे तुमलोगोंके सम्भाषण और सहवास आदिसे शुद्ध हो जायँ, इसमें तो कहना ही क्या है॥ १९–२५ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! चन्द्रभूषण भगवान् शङ्करकी एक-एक बात धर्मके गुप्ततम रहस्यसे परिपूर्ण थी। उसके एक-एक अक्षरमें अमृतका समुद्र भरा हुआ था। मार्कण्डेय मुनि अपने कानोंके द्वारा पूरी तन्मयताके साथ उसका पान करते रहे, परन्तु उन्हें तृप्ति न हुई। वे चिरकालतक विष्णुभगवान्की मायासे भटक चुके थे और बहुत थके हुए भी थे। भगवान् शिवकी कल्याणी वाणीका अमृतपान करनेसे उनके सारे क्लेश नष्ट हो गये। उन्होंने भगवान् शङ्करसे इस प्रकार कहा॥ २६–२७॥

मार्कण्डेयजीने कहा—सचमुच सर्वशक्तिमान् भगवान्की यह लीला सभी प्राणियोंकी समझके परे है। भला, देखो तो सही—ये सारे जगत्के स्वामी होकर भी अपने अधीन रहनेवाले मेरे-जैसे जीवोंकी वन्दना और स्तुति करते हैं! धर्मके प्रवचनकार प्रायः प्राणियोंको धर्मका रहस्य और स्वरूप समझानेके लिये उसका आचरण और अनुमोदन करते हैं तथा कोई धर्मका आचरण करता है, तो उसकी प्रशंसा भी करते हैं। जैसे जादूगर अनेकों खेल दिखलाता है और उन खेलोंसे उसके प्रभावमें कोई अन्तर नहीं पड़ता, वैसे ही आप अपनी स्वजनमोहिनी मायाकी वृत्तियोंको स्वीकार करके किसीकी वन्दना-स्तुति आदि करते हैं तो केवल इस कामके द्वारा आपकी महिमामें कोई त्रुटि नहीं आती। आपने स्वप्नद्रष्टाके समान अपने मनसे ही सम्पूर्ण विश्वकी

देते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे सूर्य अन्धकारको और आँधी बादलोंको तितर-बितर कर देती है। जिस वाणीके द्वारा घट-घटवासी अविनाशी भगवान्के नाम, लीला, गुण आदिका उच्चारण नहीं होता वह वाणी भावपूर्ण होनेपर भी निरर्थक है—सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है और उत्तमोत्तम विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली होनेपर भी असत्कथा है। जो वाणी और वचन भगवान्के गुणोंसे परिपूर्ण रहते हैं वे ही परम पवित्र हैं, वे ही मङ्गलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं। जिस वचनके द्वारा भगवान्के परम पवित्र यशका गायन होता है वही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नया-नया जान पड़ता है। उससे अनन्त कालतक मनको परमानन्दकी अनुभूति होती रहती है। मनुष्योंका सारा शोक, चाहे वह समुद्रके समान लंबा और गहरा क्यों न हो, उस वचनके प्रभावसे सदाके लिये सूख जाता है। जिस वाणीसे—चाहे वह रस, भाव, अलङ्कार आदिसे युक्त ही क्यों न हो—जगत्‌को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके यशका कभी गायन नहीं होता, वह तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अत्यन्त अपवित्र है। मानस-सरोवरनिवासी हंस अथवा ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त उसका कभी सेवन नहीं करते। निर्मल हृदयवाले साधुजन तो वहीं निवास करते हैं, जहाँ भगवान् रहते हैं। इसके विपरीत जिसमें सुन्दर रचना भी नहीं है और जो व्याकरण आदिकी दृष्टिसे दूषित शब्दोंसे युक्त भी है, परन्तु जिसके प्रत्येक श्लोकमें भगवान्के सुयशसूचक नाम जड़े हुए हैं, वह वाणी लोगोंके सारे पापोंका नाश कर देती है। क्योंकि सत्पुरुष ऐसी ही वाणीका श्रवण, गायन और कीर्तन किया करते हैं। वह निर्मल ज्ञान भी, जो मोक्षकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है, यदि भगवान्की भक्तिसे रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती। फिर जो कर्म भगवान्को अर्पण नहीं किया गया है—वह चाहे कितना ही ऊँचा क्यों न हो—सर्वदा अमङ्गल-रूप, दुःख देनेवाला ही है; वह तो शोभन—वरणीय हो ही कैसे सकता है। वर्णाश्रमके अनुकूल आचरण, तपस्या और अध्ययन आदिके लिये जो बहुत बड़ा परिश्रम किया जाता है उसका फल है—केवल यश अथवा लक्ष्मीकी प्राप्ति। परन्तु भगवान्‌के गुण, लीला, नाम आदिका श्रवण, कीर्तन आदि तो उनके श्रीचरणकमलोंकी अविचल स्मृति प्रदान करता है। भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंका निरन्तर चिन्तन सारे पाप-ताप और अमङ्गलोंको नष्ट कर देता और परम शान्तिका विस्तार करता है। उसीके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है, भगवान्की भक्ति प्राप्त होती है एवं परवैराग्यसे युक्त भगवान्के स्वरूपका ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त होता है। भगवान् ही समस्त प्राणियोंके वास्तविक स्वरूप—आत्मा हैं। वे ही सर्वान्तर्यामी, सबके आराध्यदेव एवं सब देवोंसे अतीत हैं। उनका शासन अखण्ड है। शौनकादि ऋषियो! सचमुच आपलोग बड़े ही भाग्यवान् हैं कि सदा-सर्वदा उन्हें अपने हृदयमें रखते हैं और प्रेममयी अनन्य भक्तिके द्वारा उनकी आराधना करते हैं। जिस समय राजर्षि परीक्षित् अनशन करके बड़े-बड़े ऋषियोंकी भरी सभामें सबके सामने श्रीशुकदेवजी महाराजसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुन रहे थे, उस समय वहीं बैठकर मैंने भी उन्हीं परमर्षिके मुखसे इस आत्मतत्त्वका श्रवण किया था। आपलोगोंने उसका स्मरण कराकर मुझपर बड़ा अनुग्रह किया। मैं इसके लिये आपलोगोंका बड़ा ऋणी हूँ॥४६—५६॥

शौनकादि ऋषियो! भगवान् वासुदेवकी एक-एक लीला सर्वदा श्रवण-कीर्तन करनेयोग्य है। मैंने इस प्रसङ्गमें उन्हींकी महिमाका वर्णन किया है, जो सारे अशुभ संस्कारोंको धो बहाती है। जो मनुष्य एकाग्र चित्तसे एक पहर अथवा एक क्षण ही प्रतिदिन इसका कीर्तन करता है और जो श्रद्धाके साथ इसका श्रवण करता है, वह अवश्य ही शरीरसहित अपने अन्तःकरणको पवित्र बना लेता है। जो पुरुष द्वादशी अथवा एकादशीके दिन इसका श्रवण करता है, उसकी आयु लंबी हो जाती है और जो संयमपूर्वक निराहार रहकर पाठ करता है उसके पहलेके पाप तो नष्ट हो ही जाते हैं, पापकी प्रवृत्ति भी नष्ट हो जाती है। जो मनुष्य इन्द्रियों और अन्तःकरणको अपने वशमें करके उपवासपूर्वक पुष्कर, मथुरा अथवा द्वारकामें इस पुराणसंहिताका पाठ करता है वह सारे भयोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य इसका श्रवण या उच्चारण करता है उसके कीर्तनसे देवता, मुनि, सिद्ध, पितर, मनु और नरपति सन्तुष्ट होते हैं और उसकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके पाठसे ब्राह्मण-को मधुकुल्या, घृतकुल्या और पयःकुल्या (मधु, घी एवं दूधकी नदियाँ अर्थात् सब प्रकारकी सुख-समृद्धि) की प्राप्ति होती है। वही फल श्रीमद्भागवतके पाठसे भी मिलता है। शौनकादि ऋषियो! जो पुरुष संयमपूर्वक इस पुराणसंहिताका अध्ययन करता है, उसे उसी परमपदकी प्राप्ति होती है जिसका वर्णन स्वयं भगवान्ने किया है। इसके अध्ययनसे ब्राह्मणको ऋतम्भरा प्रज्ञा (तत्त्वज्ञानको प्राप्त करानेवाली बुद्धि) की प्राप्ति होती है और क्षत्रियको समुद्र-

सृष्टि की है और इसमें स्वयं प्रवेश करके कर्त्ता न होनेपर भी कर्म करनेवाले गुणोंके द्वारा कर्त्ताके समान प्रतीत होते हैं। भगवन्! आप निर्गुणस्वरूप होनेपर भी उनके परे उनकी आत्माके रूपमें स्थित हैं। आप ही समस्त ज्ञानके मूल, केवल, अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। अनन्त! आपके श्रेष्ठ दर्शनसे बढ़कर ऐसी और कौन सी वस्तु है, जिसे मैं वरदानके रूपमें माँगूँ? मनुष्य आपके दर्शनसे ही पूर्णकाम और सत्यसङ्कल्प हो जाता है। आप स्वयं तो पूर्ण हैं ही, अपने भक्तोंकी भी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। इसलिये मैं आपका दर्शन प्राप्त कर लेनेपर भी एक वर और माँगता हूँ। वह यह कि भगवान्‌में, उनके शरणागत भक्तोंमें और आपमें मेरी अविचल भक्ति सदा सर्वदा बनी रहे ॥२८-३४॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी! जब मार्कण्डेय मुनिने सुमधुर वाणीसे इस प्रकार भगवान् शङ्करकी स्तुति और पूजा की, तब उन्होंने भगवती पार्वतीकी प्रसाद प्रेरणासे यह बात कही—'महर्षे! तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण हों। इन्द्रियातीत परमात्मामें तुम्हारी अनन्य भक्ति सदा-सर्वदा बनी रहे। कल्पपर्यन्त तुम्हारा पवित्र यश फैले और तुम अजर एवं अमर हो जाओ। ब्रह्मन्! तुम्हारा ब्रह्मतेज तो सर्वदा अक्षुण्ण रहेगा ही। तुम्हें भूत, भविष्य और वर्तमानके समस्त विशेष ज्ञानोंका एक अधिष्ठानरूप ज्ञान, स्वरूप स्थिति और वैराग्यकी प्राप्ति हो जाय। तुम्हें पुराणका आचार्यत्व भी प्राप्त हो ॥३५-३७॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी! इस प्रकार त्रिलोचन भगवान् शङ्कर मार्कण्डेय मुनिको वर देकर भगवती पार्वतीसे मार्कण्डेय मुनिकी तपस्या और उनके प्रलयसम्बन्धी अनुभवोंका वर्णन करते हुए वहाँसे चले गये। भृगुवंश शिरोमणि मार्कण्डेय मुनिको उनके महायोगका परम फल प्राप्त हो गया। वे भगवान्‌के अनन्यप्रेमी हो गये। वे अब भी भक्तिभावभरित हृदयसे पृथ्वीपर विचरण किया करते हैं। परमज्ञानसम्पन्न मार्कण्डेय मुनिने भगवान्‌की योगमायासे जिस अद्भुत लीलाका अनुभव किया था, वह मैंने आपलोगोंको सुना दिया। शौनकजी! यह भगवान्‌की आकस्मिक माया थी। सर्गक्रममें जो कालका विभाग है, उससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीसे वटपत्रशायी भगवान्‌के श्वास प्रश्वासद्वारा सात बार उनके उदरमें जाने और प्रलयका अनुभव करनेसे मार्कण्डेयजीकी आयु सात कल्पकी बतलायी जाती है। किन्तु जिन लोगोंको इस रहस्यका पता नहीं है, वे भगवान्‌की इस मायिक लीलाको सर्वसाधारण सृष्टिमें अनियत कालतक क्रमशः सात बार हुआ प्रलय ही बतलाते हैं। इसलिये आपको यह शङ्का नहीं करनी चाहिये कि इसी कल्पके हमारे पूर्वज मार्कण्डेयजी की आयु इतनी लम्बी कैसे हो गयी। भृगुवंशशिरोमणे! मैंने आपको यह जो मार्कण्डेयचरित्र सुनाया है, वह भगवान्‌के प्रभाव और महिमासे भरपूर है। जो इसका श्रवण एवं कीर्तन करते हैं, वे दोनों ही कर्म-वासनाओंके कारण प्राप्त होनेवाले आवागमनके चक्करसे सर्वदाके लिये छूट जाते हैं ॥ ३८-४२ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान्‌के अङ्ग, उपाङ्ग और आयुधोंका रहस्य तथा विभिन्न सूर्यगणोंका वर्णन

शौनकजीने कहा—सूतजी! आप भगवान्‌के परम भक्त और बहुज्ञोंमें शिरोमणि हैं। हमलोग समस्त शास्त्रोंके सिद्धान्तके सम्बन्धमें आपसे एक विशेष प्रश्न पूछना चाहते हैं, क्योंकि आप उसके मर्मज्ञ हैं। हमलोग क्रियायोगका यथावत् ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। क्योंकि उसका कुशलतापूर्वक ठीक ठीक आचरण करनेसे मरणधर्मा पुरुष अमरत्व प्राप्त कर लेता है। अतः आप हमें यह बतलाइये कि पाञ्चरात्रादि तन्त्रोंकी विधि जाननेवाले लोग केवल श्रीलक्ष्मीपति भगवान्‌की आराधना करते समय किन-किन तत्त्वोंसे उनके चरणादि अङ्ग, गरुड़ादि उपाङ्ग, सुदर्शनादि आयुध और कौस्तुभादि आभूषणोंकी कल्पना करते हैं? भगवान् आपका कल्याण करें ॥ १-३ ॥

श्रीसूतजीने कहा—शौनकजी! ब्रह्मादि आचार्योंने, वेदोंने और पाञ्चरात्रादि तन्त्र ग्रन्थोंने विष्णुभगवान्‌की जिन विभूतियोंका वर्णन किया है मैं श्रीगुरुदेवके चरणोंमें नमस्कार करके आपलोगोंको वही सुनाता हूँ। भगवान्‌के जिस चेतनाधिष्ठित विराट् रूपमें यह त्रिलोकी दिखायी देती है वह प्रकृति, सूत्रात्मा महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा—इन नौ तत्त्वोंके सहित ग्यारह इन्द्रिय तथा पञ्चभूत—इन सोलह विकारोंसे बना हुआ है। यह भगवान्

पर्यन्त भूमण्डलका राज्य प्राप्त होता है । वैश्य कुबेरका पद प्राप्त करता है और शूद्र सारे पापोंसे छुटकारा पा जाता है॥५७–६४॥

भगवान् ही सबके स्वामी हैं और समूह-के-समूह कलिमलोंको ध्वंस करनेवाले हैं । यों तो उनका वर्णन करनेके लिये बहुत-से पुराण हैं, परन्तु उनमें सर्वत्र और निरन्तर भगवान्का वर्णन नहीं मिलता । श्रीमद्भागवत महापुराणमें तो प्रत्येक कथा प्रसङ्गमें पद पदपर सर्वस्वरूप भगवान्का ही वर्णन हुआ है । वे जन्म-मृत्यु आदि विकारोंसे रहित, देश-कालादिकृत परिच्छेदोंसे मुक्त एवं स्वयं आत्मतत्त्व ही हैं । जगत्की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करनेवाली शक्तियाँ भी उनकी स्वरूपभूत ही हैं, भिन्न नहीं । ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि लोकपाल भी उनकी स्तुति करना लेशमात्र भी नहीं जानते । उन्हीं एकरस सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ । जिन्होंने अपने स्वरूपमें ही प्रकृति आदि नौ शक्तियोंका सङ्कल्प करके इस चराचर जगत्की सृष्टि की है और जो इसके अधिष्ठानरूपसे स्थित हैं, तथा जिनका परम पद केवल अनुभूतिस्वरूप है, उन्हीं देवताओंके आराध्यदेव सनातन भगवान्के चरणोंमें मैं नमस्कार करता हूँ ॥६५–६७॥

श्रीशुकदेवजी महाराज अपने आत्मानन्दमें ही निमग्न थे । इस अखण्ड अद्वैत स्थितिसे उनकी भेददृष्टि सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी । फिर भी मुरलीमनोहर श्यामसुन्दरकी मधुमयी, मङ्गलमयी, मनोहारिणी लीलाओंने उनकी वृत्तियोंको अपनी ओर आकर्षित कर लिया और उन्होंने जगत्के प्राणियोंपर कृपा करके भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले इस महापुराणका विस्तार किया । मैं उन्हीं सर्वपापहारी भगवान् श्रीशुकदेवजीके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ ६८ ॥

तेरहवाँ अध्याय

विभिन्न पुराणोंकी श्लोक-संख्या और श्रीमद्भागवतकी महिमा

श्रीसूतजी कहते हैं—ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुद्गण दिव्य स्तुतियोंके द्वारा जिनकी स्तुतिमें संलग्न रहते हैं; साम सङ्गीतके मर्मज्ञ ऋषि-मुनि अङ्ग, पद, क्रम एवं उपनिषदोंके सहित वेदोंद्वारा जिनका गायन करते रहते हैं; योगीलोग ध्यानके द्वारा निश्चल एवं तल्लीन मनसे जिनका भावमय दर्शन प्राप्त करते रहते हैं; किन्तु यह सब करते रहनेपर भी देवता, दैत्य, मनुष्य—कोई भी जिनके वास्तविक स्वरूपको पूर्णतया न जान सका उन स्वयंप्रकाश परमात्माको नमस्कार है । जिस समय भगवान्ने कच्छपरूप धारण किया था और उनकी पीठपर बड़ा भारी मन्दराचल मथानीकी तरह घूम रहा था, उस समय मन्दराचलकी चट्टानोंके नोकसे खुजलानेके कारण भगवान्को तनिक सुख मिला । वे सो गये और श्वासकी गति तनिक बढ़ गयी । उस समय उस श्वासवायुसे जो समुद्रके जलको धक्का लगा था, उसका संस्कार आज भी उसमें शेष है । आज भी समुद्र उसी श्वासवायुके थपेड़ोंके फलस्वरूप ज्वार भाटोंके रूपमें दिन रात चढ़ता-उतरता रहता है, उसे अबतक विश्राम न मिला । भगवान्की वही परमप्रभावशाली श्वासवायु आपलोगोंकी रक्षा करे ॥ १-२ ॥

शौनकजी ! अब पुराणोंकी अलग अलग श्लोक संख्या तथा उनका जोड़ सुनिये । श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय और उसका प्रयोजन भी सुनाना है । इसके दानकी पद्धति, तथा दान और पाठकी महिमा भी आपलोग श्रवण कीजिये । ब्रह्मपुराणमें दस हजार श्लोक, पद्मपुराणमें पचपन हजार, श्रीविष्णुपुराणमें तेईस हजार और शिवपुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार है । श्रीमद्भागवतमें अठारह हजार, नारदपुराणमें पचीस हजार, मार्कण्डेयपुराणमें नौ हजार तथा अग्निपुराणमें पंद्रह हजार, चार सौ श्लोक हैं । भविष्यपुराणकी श्लोक संख्या चौदह हजार, पाँच सौ है और ब्रह्मवैवर्तपुराणकी अठारह हजार । लिङ्गपुराणमें ग्यारह हजार श्लोक हैं और वराहपुराणमें चौबीस हजार । स्कन्दपुराणकी श्लोक-संख्या इक्यासी हजार, एक सौ है और वामनपुराणकी दस हजार । कूर्मपुराण सत्रह हजार श्लोकोंका और मत्स्यपुराण चौदह हजार श्लोकोंका है । गरुडपुराणमें उन्नीस हजार श्लोक हैं और ब्रह्माण्डपुराणमें बारह हजार । इस प्रकार सब पुराणोंकी श्लोक-संख्या कुल मिलाकर चार लाख होती है । उनमें श्रीमद्भागवत, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अठारह हजार श्लोकोंका है ॥ ३–९ ॥

शौनकजी ! पहले-पहल भगवान् विष्णुने अपने नाभि कमलपर स्थित एवं संसारसे भयभीत ब्रह्मापर परम करुणा करके इस पुराणको प्रकाशित किया था । इसके आदि, मध्य और अन्तमें वैराग्य उत्पन्न करनेवाली बहुत-सी कथाएँ हैं ।

का ही पुरुषरूप है। पृथ्वी इसके चरण हैं, स्वर्ग मस्तक है, अन्तरिक्ष नाभि है, सूर्य नेत्र हैं, वायु नासिका है, दिशाएँ कान हैं, प्रजापति लिंग है, मृत्यु गुदा है, लोकपाल-गण भुजाएँ हैं, चन्द्रमा मन है और यमराज भौंहें हैं। लज्जा ऊपरका होठ है, लोभ नीचेका होठ है, चन्द्रमाकी चाँदनी दन्तावली है, भ्रम मुसकान है, वृक्ष रोम हैं और बादल ही विराट् पुरुषके सिरपर उगे हुए बाल हैं। शौनकजी! जिस प्रकार यह व्यष्टिपुरुष अपने परिमाणसे सात वित्तेका है, उसी प्रकार वह समष्टिपुरुष भी इस लोकसंस्थितिके साथ अपने सात वित्तेका है ॥ ४–९ ॥

स्वयं भगवान् अजन्मा हैं। वे जीव-चैतन्यरूप आत्मज्योतिको ही कौस्तुभमणिके बहाने अपने वक्षःस्थलपर धारण करते हैं। उसकी सर्वव्यापिनी प्रभा ही वहाँ श्रीवत्स-रूपसे विराजमान है। वे अपनी सत्त्व, रज आदि गुणोंवाली मायाको वनमालाके रूपसे, वेदोंको पीताम्बरके रूपसे तथा अ+उ+म्—इन तीन मात्रावाले प्रणवको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करते हैं। देवाधिदेव भगवान् सांख्य और योगरूप मकराकृत कुण्डल तथा ब्रह्मलोकको ही सब लोकोंको अभय करनेवाले मुकुटके रूपमें धारण करते हैं। मूलप्रकृति ही उनकी शेषशय्या है, जिसपर वे विराजमान रहते हैं और धर्म-ज्ञानादियुक्त सत्त्वगुण ही उनके नाभिकमलके रूपमें वर्णित हुआ है। मन, इन्द्रिय और शरीरसम्बन्धी शक्तियोंसे युक्त प्राणतत्त्वकी ही कौमोदकी गदा है। जलतत्त्वरूप पाञ्चजन्य शङ्ख, तेजस्तत्त्वरूप सुदर्शन-चक्र, आकाशके समान निर्मल आकाशस्वरूप खड्ग, तमोमय अज्ञानरूप ढाल, कालरूप शार्ङ्गधनुष और कर्मका ही तरकस धारण किये हुए हैं। इन्द्रियोंको ही भगवान्‌के बाणोंके रूपमें कहा गया है। क्रियाशक्तियुक्त मन ही रथ है। तन्मात्राएँ रथके बाहरी भाग हैं और वर-अभय आदि मुद्राओंसे उनकी वरदान, अभयदान आदिके रूपमें क्रिया-शीलता प्रकट होती है। सूर्यमण्डल अथवा अग्निमण्डल ही भगवान्‌की पूजाका स्थान है, अन्तःकरणकी शुद्धि ही मन्त्र-दीक्षा है और अपने समस्त पापोंको नष्ट कर देना ही भगवान्‌की पूजा है ॥ १०–१७ ॥

समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य—इन छः पदार्थोंका नाम ही लीला-कमल है, जिसे भगवान् अपने करकमलमें धारण करते हैं। धर्म और यशको क्रमशः चँवर एवं व्यजन (पंखे) के रूपसे तथा अपने निर्भय धाम वैकुण्ठको छत्ररूपसे धारण किये हुए हैं। तीनों वेदों-का ही गरुड नाम है। वे ही अन्तर्यामी परमात्माका वहन करते हैं। आत्मस्वरूप भगवान्‌की उनसे कभी न बिछुड़ने-वाली आत्मशक्तिका ही नाम लक्ष्मी है। भगवान्‌के पार्षदोंके नायक विश्वविश्रुत विष्वक्सेन पाञ्चरात्रादि आगमरूप हैं। भगवान्‌के स्वाभाविक गुण अणिमा, महिमा आदि अष्ट-सिद्धियोंको ही नन्द-सुनन्दादि आठ द्वारपाल कहते हैं। शौनकजी! स्वयं भगवान् ही वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार मूर्तियोंके रूपमें अवस्थित हैं; इसलिये उन्हींको चतुर्व्यूहके रूपमें कहा जाता है। वे ही जाग्रत् अवस्थाके अभिमानी 'विश्व' बनकर शब्द, स्पर्श आदि बाह्य विषयोंको ग्रहण करते और वे ही स्वप्नावस्थाके अभिमानी 'तैजस' बनकर बाह्य विषयोंके बिना ही मन-ही-मन अनेक विषयोंको देखते और ग्रहण करते हैं। वे ही सुषुप्ति अवस्थाके अभिमानी 'प्राज्ञ' बनकर विषय और मन-के संस्कारोंसे युक्त अज्ञानसे ढक जाते हैं और वही सबके साक्षी 'तुरीय' रहकर समस्त ज्ञानोंके अधिष्ठान रहते हैं। इस प्रकार अङ्ग, उपाङ्ग, आयुध और आभूषणोंसे युक्त तथा वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—इन चार मूर्तियोंके रूपमें प्रकट सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि ही क्रमशः विश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं तुरीयरूपसे प्रकाशित होते हैं ॥ १८–२३ ॥

शौनकजी! वही सर्वस्वरूप भगवान् वेदोंके मूल कारण हैं, वे स्वयंप्रकाश एवं अपनी महिमासे परिपूर्ण हैं। वे अपनी मायासे ब्रह्मा आदि रूपों एवं नामोंसे इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार सम्पन्न करते हैं। इन सब कर्मों और नामोंसे उनका ज्ञान कभी आवृत नहीं होता। यद्यपि शास्त्रोंमें भिन्नके समान उनका वर्णन हुआ है अवश्य, परन्तु वे अपने भक्तोंको आत्मस्वरूपसे ही प्राप्त होते हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! आप अर्जुनके सखा हैं। आपने यदुवंशशिरोमणि-के रूपमें अवतार ग्रहण करके भूमिके भारभूत भूपालोंको भस्म कर दिया है। आपका पराक्रम सदा एकरस रहता है। व्रजकी गोपबालाएँ और आपके नारदादि प्रेमी निरन्तर आपके पवित्र यशका गायन करते रहते हैं। गोविन्द! आपके नाम, गुण और लीलादिका श्रवण करनेसे ही जीवका मङ्गल हो जाता है। हम सब आपके सेवक हैं। आप कृपा करके हमारी रक्षा कीजिये ॥ २४–२५ ॥

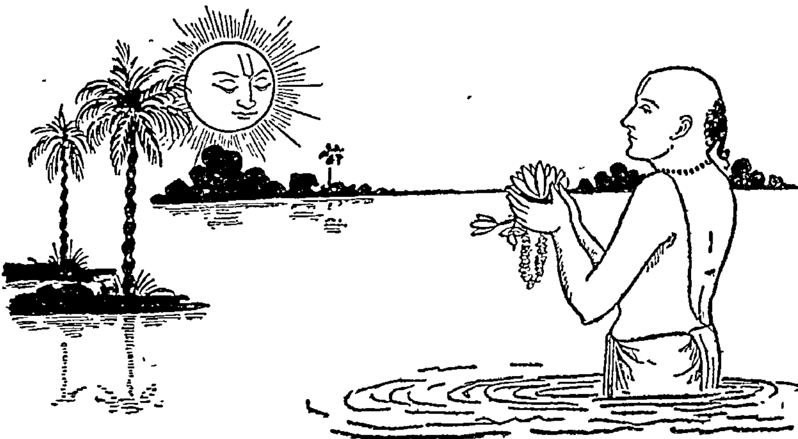
पुरुषोत्तम भगवान्‌के चिह्नभूत अङ्ग, उपाङ्ग और आयुध आदिके इस वर्णनका जो मनुष्य भगवान्‌में ही चित्त

इस महापुराणमें जो भगवान् श्रीहरिकी लीला-कथाएँ हैं, वे तो अमृतस्वरूप हैं ही; उनके सेवनसे सत्पुरुष और देवताओंको बड़ा ही सुख मिलता है। आपलोग जानते हैं कि समस्त उपनिषदोंका सार है ब्रह्म और आत्माका एकत्वरूप अद्वितीय सद्वस्तु परब्रह्म। वही श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य विषय है। इसके निर्माणका प्रयोजन है एकमात्र कैवल्य-मोक्ष ॥१०–१२॥

जो पुरुष भाद्रपद मासकी पूर्णिमाके दिन श्रीमद्भागवतको सोनेके सिंहासनपर रखकर उसका दान करता है, उसे परमगति प्राप्त होती है। संतोंकी सभामें तभीतक दूसरे पुराणोंकी शोभा होती है, जबतक सर्वश्रेष्ठ स्वयं श्रीमद्भागवत महापुराणके दर्शन नहीं होते। यह श्रीमद्भागवत समस्त उपनिषदोंका सार है। जो इस रस-सुधाका पान करके छक चुका है, वह किसी और पुराण-शास्त्रमें रम नहीं सकता। जैसे नदियोंमें गङ्गा, देवताओंमें विष्णु और वैष्णवोंमें श्रीशङ्करजी सर्वश्रेष्ठ हैं वैसे ही पुराणोंमें श्रीमद्भागवत है। शौनकादि ऋषियो! जैसे सम्पूर्ण क्षेत्रोंमें काशी सर्वश्रेष्ठ है, वैसे ही पुराणोंमें श्रीमद्भागवतका स्थान सबसे ऊँचा है। यह श्रीमद्भागवतपुराण सर्वथा निर्दोष है। भगवान्‌के प्यारे भक्त वैष्णव इससे बड़ा प्रेम करते हैं। इस पुराणमें जीवन्मुक्त परमहंसोंके सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय एवं मायाके लेशसे रहित ज्ञानका गायन किया गया है। इस ग्रन्थकी सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि इसका नैष्कर्म्य अर्थात् कर्मोंकी आत्यन्तिक निवृत्ति भी ज्ञान-वैराग्य एवं भक्तिसे युक्त है। जो इसका श्रवण, पठन और मनन करने लगता है उसे भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो जाती है और वह मुक्त हो जाता है ॥१३–१८॥

यह श्रीमद्भागवत भगवत्तत्त्वज्ञानका एक श्रेष्ठ प्रकाशक है। इसकी तुलनामें और कोई भी पुराण नहीं है। इसे पहले-पहल स्वयं भगवान्‌ने ब्रह्माजीके लिये प्रकट किया था। फिर उन्होंने ही ब्रह्माजीके रूपसे देवर्षि नारदको उपदेश किया और नारदजीके रूपमें भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासको। तदनन्तर उन्होंने ही व्यासरूपसे योगेन्द्र शुकदेवजीको और श्रीशुकदेवजीके रूपसे अत्यन्त करुणावश राजर्षि परीक्षित्‌को उपदेश किया। वे भगवान् परम शुद्ध एवं मायामलसे रहित हैं। शोक और मृत्यु उनके पासतक नहीं फटक सकते। हम सब उन्हीं परम सत्यस्वरूप परमेश्वरका ध्यान करते हैं। हम उन सर्वसाक्षी भगवान् वासुदेवको नमस्कार करते हैं, जिन्होंने कृपा करके मोक्षाभिलाषी ब्रह्माजीको इस श्रीमद्भागवत महापुराणका उपदेश किया! साथ ही हम उन योगिराज ब्रह्मस्वरूप श्रीशुकदेवजीको भी नमस्कार करते हैं, जिन्होंने श्रीमद्भागवत महापुराण सुनाकर संसार-सर्पसे डसे हुए राजर्षि परीक्षित्‌को मुक्त किया। देवताओंके आराध्यदेव सर्वेश्वर! आप ही हमारे एकमात्र स्वामी एवं सर्वस्व हैं। अब आप ऐसी कृपा कीजिये कि बार-बार जन्म ग्रहण करते रहनेपर भी आपके चरणकमलोंमें हमारी अविचल भक्ति बनी रहे। जिन भगवान्‌के नामोंका सङ्कीर्तन सारे पापोंको सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान्‌के चरणोंमें आत्मसमर्पण, उनके चरणोंमें प्रणति सर्वदाके लिये सब प्रकारके दुःखोंको शान्त कर देती है उन्हीं परमतत्त्वस्वरूप श्रीहरिको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१९–२३॥

द्वादश स्कन्ध समाप्त



सृष्टि की है और इसमें स्वय प्रवेश करके कर्ता न होनेपर भी कर्म करनेवाले गुणोंके द्वारा कर्त्ताके समान प्रतीत होते हैं। भगवन्! आप त्रिगुणस्वरूप होनेपर भी उनके परे उनकी आत्माके रूपमें स्थित हैं। आप ही समस्त ज्ञानके मूल, केवल, अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। अनन्त! आपके श्रेष्ठ दर्शनसे बढकर ऐसी और कौन सी वस्तु है, जिसे मै वरदानके रूपमें माँगूँ? मनुष्य आपके दर्शनसे ही पूर्णकाम और सत्यसङ्कल्प हो जाता है। आप स्वय तो पूर्ण हैं ही, अपने भक्तोंकी भी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। इसलिये मैं आपका दर्शन प्राप्त कर लेनेपर भी एक वर और माँगता हूँ। वह यह कि भगवान्‌में, उनके शरणागत भक्तोंमें और आपमें मेरी अविचल भक्ति सदा सर्वदा बनी रहे ॥२८-३४॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी! जब मार्कण्डेय मुनिने सुमधुर वाणीसे इस प्रकार भगवान् शङ्करकी स्तुति और पूजा की, तब उन्होंने भगवती पार्वतीकी प्रसाद प्रेरणासे यह बात कही—'महर्षे! तुम्हारी सारी कामनाएँ पूर्ण हों। इन्द्रियातीत परमात्मामें तुम्हारी अनन्य भक्ति सदा-सर्वदा बनी रहे। कल्पपर्यन्त तुम्हारा पवित्र यश फैले और तुम अजर एव अमर हो जाओ। ब्रह्मन्! तुम्हारा ब्रह्मतेज तो सर्वदा अक्षुण्ण रहेगा ही। तुम्हे भूत, भविष्य और वर्तमानके समस्त विशेष ज्ञानोंका एक अधिष्ठानरूप ज्ञान, स्वरूप स्थिति और वैराग्यकी प्राप्ति हो जाय। तुम्हें पुराणका आचार्यत्व भी प्राप्त हो ॥३५-३७॥

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी! इस प्रकार त्रिलोचन भगवान् शङ्कर मार्कण्डेय मुनिको वर देकर भगवती पार्वतीसे मार्कण्डेय मुनिकी तपस्या और उनके प्रलयसम्बन्धी अनुभवोंका वर्णन करते हुए वहाँसे चले गये। भृगुवश शिरोमणि मार्कण्डेय मुनिको उनके महायोगका परम फल प्राप्त हो गया। वे भगवान्‌के अनन्यप्रेमी हो गये। वे अब भी भक्तिभावभरित हृदयसे पृथ्वीपर विचरण किया करते हैं। परमज्ञानसम्पन्न मार्कण्डेय मुनिने भगवान्‌की योगमायासे जिस अद्भुत लीलाका अनुभव किया था, वह मैंने आपलोगोंको सुना दिया। शौनकजी! यह भगवान्‌ की आकस्मिक माया थी। सर्गक्रममें जो कालका विभाग है, उससे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीसे वटपत्रशायी भगवान्‌के श्वास प्रश्वासद्वारा सात बार उनके उदरमें जाने और प्रलयका अनुभव करनेसे मार्कण्डेयजीकी आयु सात कल्पकी बतलायी जाती है। किन्तु जिन लोगोंको इस रहस्यका पता नहीं है, वे भगवान्‌की इस मायिक लीलाको सर्वसाधारण सृष्टिमें अनियत कालतक क्रमश सात बार हुआ प्रलय ही बतलाते हैं। इसलिये आपको यह शङ्का नहीं करनी चाहिये कि इसी कल्पके हमारे पूर्वज मार्कण्डेयजी की आयु इतनी लबी कैसे हो गयी। भृगुवशशिरोमणे! मैंने आपको यह जो मार्कण्डेयचरित्र सुनाया है, वह भगवान्‌के प्रभाव और महिमासे भरपूर है। जो इसका श्रवण एव कीर्तन करते हैं, वे दोनों ही कर्म-वासनाओंके कारण प्राप्त होनेवाले आवागमनके चक्करसे सर्वदाके लिये छूट जाते हैं ॥ ३८-४२ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान्‌के अङ्ग, उपाङ्ग और आयुधोंका रहस्य तथा विभिन्न सूर्यगणोंका वर्णन

शौनकजीने कहा—सूतजी! आप भगवान्‌के परम भक्त और बहुज्ञोंमें शिरोमणि हैं। हमलोग समस्त शास्त्रोंके सिद्धान्तके सम्बन्धमें आपसे एक विशेष प्रश्न पूछना चाहते हैं, क्योंकि आप उसके मर्मज्ञ हैं। हमलोग क्रियायोगका यथावत् ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। क्योंकि उसका कुशलतापूर्वक ठीक ठीक आचरण करनेसे मरणधर्मा पुरुष अमरत्व प्राप्त कर लेता है। अत आप हमें यह बतलाइये कि पाञ्चरात्रादि तन्त्रोंकी विधि जाननेवाले लोग केवल श्रीलक्ष्मीपति भगवान्‌की आराधना करते समय किन किन तत्त्वोंसे उनके चरणादि अङ्ग, गरुड़ादि उपाङ्ग, सुदर्शनादि आयुध और कौस्तुभादि आभूषणोंकी कल्पना करते हैं! भगवान् आपका कल्याण करें ॥ १-३ ॥

श्रीसूतजीने कहा—शौनकजी! ब्रह्मादि आचार्योंने, वेदोंने और पाञ्चरात्रादि तन्त्र ग्रन्थोंने विष्णुभगवान्‌की जिन विभूतियोंका वर्णन किया है मैं श्रीगुरुदेवके चरणोंमें नमस्कार करके आपलोगोंको वही सुनाता हूँ। भगवान्‌के जिस चेतनाधिष्ठित विराट् रूपमें यह त्रिलोकी दिखायी देती है वह प्रकृति, सूत्रात्मा महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा—इन नौ तत्त्वोंके सहित ग्यारह इन्द्रिय तथा पञ्चभूत—इन सोलह विकारोंसे बना हुआ है। यह भगवान्

इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं
सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जं विलोक्य ।
जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किञ्चित्
पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम् ॥

(पद्मपुराण)

'शौनकजी ! मैंने सब शास्त्रोंको देखकर आपको यह परम गुह्य रहस्य सुनाया है। सब शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका यही निचोड़ है। संसारमें इस शुकशास्त्रसे अधिक पवित्र और कोई वस्तु नहीं है; अतः आपलोग परमानन्दकी प्राप्तिके लिये इस द्वादशस्कन्धरूप रसका पान करें।'

का ही पुरुषरूप है। पृथ्वी इसके चरण हैं, स्वर्ग मस्तक है, अन्तरिक्ष नाभि है, सूर्य नेत्र हैं, वायु नासिका है, दिशाएँ कान हैं, प्रजापति लिंग है, मृत्यु गुदा है, लोकपालगण भुजाएँ हैं, चन्द्रमा मन है और यमराज भौंहें हैं। लज्जा ऊपरका होठ है, लोभ नीचेका होठ है, चन्द्रमाकी चाँदनी दन्तावली है, भ्रम मुसकान है, वृक्ष रोम हैं और बादल ही विराट् पुरुषके सिरपर उगे हुए बाल हैं। शौनकजी ! जिस प्रकार यह व्यष्टिपुरुष अपने परिमाणसे सात वित्तेका है, उसी प्रकार वह समष्टिपुरुष भी इस लोकसंस्थितिके साथ अपने सात वित्तेका है ॥ ४–९ ॥

स्वयं भगवान् अजन्मा हैं। वे जीव-चैतन्यरूप आत्मज्योतिको ही कौस्तुभमणिके बहाने अपने वक्षःस्थलपर धारण करते हैं। उसकी सर्वव्यापिनी प्रभा ही वहाँ श्रीवत्सरूपसे विराजमान है। वे अपनी सत्त्व, रज आदि गुणोंवाली मायाको वनमालाके रूपसे, वेदोंको पीताम्बरके रूपसे तथा अ+उ+म्—इन तीन मात्रावाले प्रणवको यज्ञोपवीतके रूपमें धारण करते हैं। देवाधिदेव भगवान् सांख्य और योगरूप मकराकृत कुण्डल तथा ब्रह्मलोकको ही सब लोकोंको अभय करनेवाले मुकुटके रूपमें धारण करते हैं। मूलप्रकृति ही उनकी शेषशय्या है, जिसपर वे विराजमान रहते हैं और धर्म-ज्ञानादियुक्त सत्त्वगुण ही उनके नाभिकमलके रूपमें वर्णित हुआ है। मन, इन्द्रिय और शरीरसम्बन्धी शक्तियोंसे युक्त प्राणतत्त्वकी ही कौमोदकी गदा है। जलतत्त्वरूप पाञ्चजन्य शङ्ख, तेजस्तत्त्वरूप सुदर्शनचक्र, आकाशके समान निर्मल आकाशस्वरूप खड्ग, तमोमय अज्ञानरूप ढाल, कालरूप शार्ङ्गधनुष और कर्मका ही तरकस धारण किये हुए हैं। इन्द्रियोंको ही भगवान्के बाणोंके रूपमें कहा गया है। क्रियाशक्तियुक्त मन ही रथ है। तन्मात्राएँ रथके बाहरी भाग हैं और वर-अभय आदि मुद्राओंसे उनकी वरदान, अभयदान आदिके रूपमें क्रियाशीलता प्रकट होती है। सूर्यमण्डल अथवा अग्निमण्डल ही भगवान्की पूजाका स्थान है, अन्तःकरणकी शुद्धि ही मन्त्रदीक्षा है और अपने समस्त पापोंको नष्ट कर देना ही भगवान्की पूजा है ॥ १०–१७ ॥

समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य—इन छः पदार्थोंका नाम ही लीला-कमल है, जिसे भगवान् अपने करकमलमें धारण करते हैं। धर्म और यशको क्रमशः चँवर एवं व्यजन (पंखे) के रूपसे तथा अपने निर्भय धाम वैकुण्ठको छत्ररूपसे धारण किये हुए हैं। तीनों वेदोंका ही गरुड नाम है। वे ही अन्तर्यामी परमात्माका वहन करते हैं। आत्मस्वरूप भगवान्की उनसे कभी न बिछुड़नेवाली आत्मशक्तिका ही नाम लक्ष्मी है। भगवान्के पार्षदोंके नायक विश्वविश्रुत विष्वक्सेन पाञ्चरात्रादि आगमरूप हैं। भगवान्के स्वाभाविक गुण अणिमा, महिमा आदि अष्टसिद्धियोंको ही नन्द-सुनन्दादि आठ द्वारपाल कहते हैं। शौनकजी ! स्वयं भगवान् ही वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार मूर्तियोंके रूपमें अवस्थित हैं; इसलिये उन्हींको चतुर्व्यूहके रूपमें कहा जाता है। वे ही जाग्रत् अवस्थाके अभिमानी 'विश्व' बनकर शब्द, स्पर्श आदि बाह्य विषयोंको ग्रहण करते और वे ही स्वप्नावस्थाके अभिमानी 'तैजस' बनकर बाह्य विषयोंके बिना ही मन-ही-मन अनेक विषयोंको देखते और ग्रहण करते हैं। वे ही सुषुप्ति अवस्थाके अभिमानी 'प्राज्ञ' बनकर विषय और मनके संस्कारोंसे युक्त अज्ञानसे ढक जाते हैं और वही सबके साक्षी 'तुरीय' रहकर समस्त ज्ञानोंके अधिष्ठान रहते हैं। इस प्रकार अङ्ग, उपाङ्ग, आयुध और आभूषणोंसे युक्त तथा वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—इन चार मूर्तियोंके रूपमें प्रकट सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि ही क्रमशः विश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं तुरीयरूपसे प्रकाशित होते हैं ॥ १८–२३ ॥

शौनकजी ! वही सर्वस्वरूप भगवान् वेदोंके मूल कारण हैं, वे स्वयंप्रकाश एवं अपनी महिमासे परिपूर्ण हैं। वे अपनी मायासे ब्रह्मा आदि रूपों एवं नामोंसे इस विश्वकी सृष्टि, स्थिति और संहार सम्पन्न करते हैं। इन सब कर्मों और नामोंसे उनका ज्ञान कभी आवृत नहीं होता। यद्यपि शास्त्रोंमें भिन्नके समान उनका वर्णन हुआ है अवश्य, परन्तु वे अपने भक्तोंको आत्मस्वरूपसे ही प्राप्त होते हैं। सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण ! आप अर्जुनके सखा हैं। आपने यदुवंशशिरोमणिके रूपमें अवतार ग्रहण करके भूमिके भारभूत भूपालोंको भस्म कर दिया है। आपका पराक्रम सदा एकरस रहता है। व्रजकी गोपबालाएँ और आपके नारदादि प्रेमी निरन्तर आपके पवित्र यशका गायन करते रहते हैं। गोविन्द ! आपके नाम, गुण और लीलादिका श्रवण करनेसे ही जीवका मङ्गल हो जाता है। हम सब आपके सेवक हैं। आप कृपा करके हमारी रक्षा कीजिये ॥ २४–२५ ॥

पुरुषोत्तम भगवान्के चिह्नभूत अङ्ग, उपाङ्ग और आयुध आदिके इस वर्णनका जो मनुष्य भगवान्में ही चित्त

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत-माहात्म्य

पहला अध्याय

परीक्षित् और वज्रनाभका समागम, शाण्डिल्यमुनिके मुखसे भगवान्‌की लीलाके रहस्य और व्रजभूमिके महत्त्वका वर्णन

महर्षि व्यास कहते हैं—जिनका स्वरूप है सच्चिदानन्दघन, जो अपने सौन्दर्य और माधुर्यादि गुणोंसे सबका मन अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं और सदा-सर्वदा अनन्त सुखकी वर्षा करते रहते हैं, जिनकी ही शक्तिसे इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं—उन भगवान् श्रीकृष्णको हम भक्तिरसका आस्वादन करनेके लिये नित्य-निरन्तर प्रणाम करते हैं ॥ १ ॥

नैमिषारण्यक्षेत्रकी बात है, श्रीसूतजी स्वस्थ चित्तसे अपने आसनपर बैठे हुए थे। उस समय भगवान्‌की अमृतमयी लीलाकथाके रसिक, उसके रसास्वादनमें अत्यन्त कुशल शौनकादि ऋषियोंने सूतजीको प्रणाम करके उनसे यह प्रश्न किया ॥ २ ॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! धर्मराज युधिष्ठिर जब मथुरामण्डलमें अनिरुद्धनन्दन वज्रका और हस्तिनापुरमें अपने पौत्र परीक्षित्‌का राज्याभिषेक करके हिमालयपर चले गये, तब राजा वज्र और परीक्षित्‌ने कैसे-कैसे कौन-कौन-सा कार्य किया? ॥ ३ ॥

सूतजी बोले—भगवान् नारायण, नरोत्तम नर, देवी सरस्वती और महर्षि व्यासको नमस्कार करके शुद्ध-चित्त होकर भगवत्तत्त्वको प्रकाशित करनेवाले इतिहास-पुराणरूप 'जय'का उच्चारण करना चाहिये। शौनकादि ब्रह्मर्षियो! जब धर्मराज युधिष्ठिर आदि पाण्डवगण स्वर्गारोहणके लिये हिमालय चले गये, तब सम्राट् परीक्षित् एक दिन मथुरा गये। उनकी इस यात्राका उद्देश्य इतना ही था कि वहाँ चलकर वज्रनाभसे मिल-जुल आयें। जब वज्रनाभको यह समाचार मालूम हुआ कि मेरे पितातुल्य परीक्षित् मुझसे मिलनेके लिये आ रहे हैं, तब उनका हृदय प्रेमसे भर गया। उन्होंने नगरसे आगे बढ़कर उनकी अगवानी की, चरणोंमें प्रणाम किया और बड़े प्रेमसे उन्हें अपने महलमें ले आये। वीर परीक्षित् भगवान् श्रीकृष्णके परमप्रेमी भक्त थे। उनका मन नित्य-निरन्तर आनन्दघन श्रीकृष्णचन्द्रमें ही रमता रहता था। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभका बड़े प्रेमसे आलिङ्गन किया। इसके बाद अन्तःपुरमें जाकर भगवान् श्रीकृष्णकी रोहिणी आदि



पत्नियोंको नमस्कार किया। रोहिणी आदि श्रीकृष्ण-पत्नियोंने भी सम्राट् परीक्षित्‌का अत्यन्त सम्मान किया। वे विश्राम करके जब आरामसे बैठ गये, तब उन्होंने वज्रनाभसे यह बात कही ॥ ४–८ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा—तुम्हारे पिता और पितामहोंने मेरे पिता-पितामहको बड़े-बड़े सङ्कटोंसे बचाया है। मेरी रक्षा भी उन्होंने ही की है। प्रिय वज्रनाभ! यदि मैं उनके उपकारोंका बदला चुकाना चाहूँ तो किसी प्रकार नहीं चुका सकता। इसलिये मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि तुम सुख-पूर्वक अपने राजकाजमें लगे रहो। तुम्हें अपने खजानेकी, सेनाकी तथा शत्रुओंको दबाने आदिकी तनिक भी चिन्ता न करनी चाहिये। तुम्हारे लिये कोई कर्तव्य है तो केवल एक ही; वह यह कि तुम्हें अपनी इन माताओंकी खूब प्रेमसे भलीभाँति सेवा करते रहना चाहिये। यदि कभी तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति-विपत्ति आये अथवा किसी कारणवश तुम्हारे

लगाकर पवित्र होकर प्रातःकाल पाठ करेगा, उसे सबके हृदयमें रहनेवाले ब्रह्मस्वरूप परमात्माका ज्ञान हो जायगा ।२६।

शौनकजीने कहा—सूतजी! भगवान् श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवत कथा सुनाते समय राजर्षि परीक्षित्से (पञ्चम स्कन्धमें) कहा था कि ऋषि, गन्धर्व, नाग, अप्सरा, यक्ष, राक्षस और देवताओंका एक सौरगण होता है और ये सातों प्रत्येक महीनेमे बदलते रहते हैं। ये बारह गण अपने स्वामी द्वादश आदित्योंके साथ रहकर क्या काम करते हैं और उनके अन्तर्गत व्यक्तियोंके नाम क्या हैं? सूर्यके रूपमे भी स्वय भगवान् ही हैं, इसलिये उनके विभागको हम बड़ी श्रद्धाके साथ सुनना चाहते हैं, आप कृपा करके कहिये ॥ २७ २८ ॥

श्रीसूतजीने कहा—समस्त प्राणियोंके आत्मा भगवान् विष्णु ही हैं। अनादि अविद्यासे अर्थात् उनके वास्तविक स्वरूपके अज्ञानसे ही समस्त लोकोंके व्यवहार और उनके प्रवर्तक सूर्यका निर्माण हुआ है। वही लोक लोकान्तरोंमें भ्रमण किया करते हैं। असलमें समस्त लोकोंके आत्मा एव आदिकर्त्ता एकमात्र श्रीहरि ही सूर्य बने हुए हैं। वे यद्यपि एक ही हैं, तथापि ऋषियोंने उनका बहुत रूपोंमें वर्णन किया है। वे ही समस्त वैदिक क्रियाओंके मूल हैं। शौनकजी! एक भगवान् ही मायाके द्वारा काल, देश, यज्ञादि क्रिया, कर्त्ता, स्रुवा आदि करण, यागादि कर्म, वेदमन्त्र, शाकल्य आदि द्रव्य और फलरूपसे नौ प्रकारके कहे जाते हैं। कालरूपधारी भगवान् सूर्य लोगोंका व्यवहार ठीक ठीक चलानेके लिये चैत्रादि बारह महीनोंमें अपने भिन्न भिन्न बारह गणोंके साथ चक्कर लगाया करते हैं ॥२९–३२॥

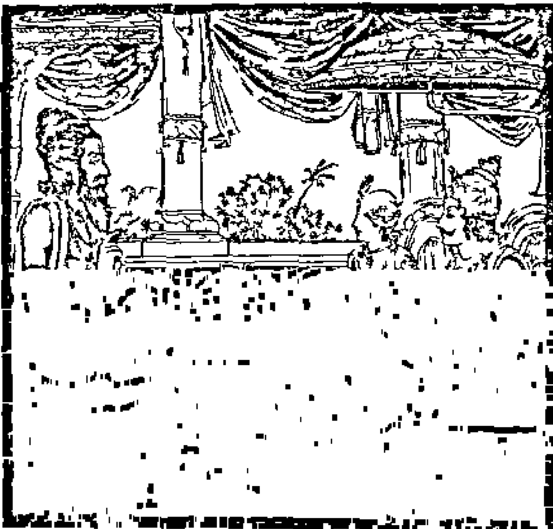
शौनकजी! चैत्र मासमें धाता नामक सूर्य, कृतस्थली अप्सरा, हेति राक्षस, वासुकि सर्प, रथकृत यक्ष, पुलस्त्य ऋषि और तुम्बुरु गन्धर्व अपना-अपना कार्य सम्पन्न करते हैं। वैशाख मासके सूर्य होते हैं अर्यमा। उस समय पुलह ऋषि, अथौजा यक्ष, प्रहेति राक्षस, पुञ्जिकस्थली अप्सरा, नारद गन्धर्व और कच्छनीर सर्प रहते हैं। ज्येष्ठ मासके सूर्यका नाम होता है मित्र। उनके साथ अत्रि ऋषि, पौरुषेय राक्षस, तक्षक सर्प, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथस्वन यक्ष रहते हैं। आषाढमें वरुण नामक सूर्यके साथ वसिष्ठ ऋषि, रम्भा अप्सरा, सहजन्य यक्ष, हूहू गन्धर्व, शुक्र नाग और चित्रस्वन राक्षस अपने-अपने कार्यका निर्वाह करते हैं। श्रावण मास इन्द्र नामक सूर्यका कार्यकाल है। उनके साथ विश्वावसु गन्धर्व, श्रोता यक्ष, एलापत्र नाग, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा एव वर्य नामक राक्षस रहते हैं। भाद्रपदके सूर्यका नाम है विवस्वान्। उनके साथ उग्रसेन गन्धर्व, व्याघ्र राक्षस, आसारण यक्ष, भृगु ऋषि, अनुम्लोचा अप्सरा और शङ्खपाल नाग रहते हैं ॥३३–३८॥

शौनकजी! माघ मासमें पूषा नामके सूर्य रहते हैं। उनके साथ धनञ्जय नाग, वात राक्षस, सुषेण गन्धर्व, सुरुचि यक्ष, घृताची अप्सरा और गौतम ऋषि रहते हैं। फाल्गुन मासका कार्यकाल पर्जन्य नामक सूर्यका है। उनके साथ क्रतु यक्ष, वर्चा राक्षस, भरद्वाज ऋषि, सेनजित् अप्सरा, विश्व गन्धर्व और ऐरावत सर्प रहते हैं। मार्गशीर्ष मासमें सूर्यका नाम होता है अंशु। उनके साथ कश्यप ऋषि, तार्क्ष्य यक्ष, ऋतसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, विद्युच्छत्रु राक्षस और महाशङ्ख नाग रहते हैं। पौष मासमें भग नामक सूर्यके साथ स्फूर्ज राक्षस, अरिष्टनेमि गन्धर्व, ऊर्ण यक्ष, आयु ऋषि, पूर्वचित्ति अप्सरा और कर्कोटक नाग रहते हैं। आश्विन मासमें त्वष्टा सूर्य, जमदग्नि ऋषि, कम्बल नाग, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मापेत राक्षस, शतजित् यक्ष और धृतराष्ट्र गन्धर्वका कार्यकाल है। तथा कार्तिकमें विष्णु नामक सूर्यके साथ अश्वतर नाग, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् यक्ष, विश्वामित्र ऋषि और मखापेत राक्षस अपना अपना कार्य सम्पन्न करते हैं।३९–४४।

शौनकजी! ये सब भगवान् सूर्यकी विभूतियाँ हैं। जो लोग इनका प्रतिदिन प्रातःकाल और सायकाल स्मरण करते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। ये सूर्यदेव अपने छः गणोंके साथ बारहों महीने सर्वत्र विचरते रहते हैं और इस लोक तथा परलोकमें विवेकबुद्धिका विस्तार करते हैं। सूर्यभगवान्के गणोंमें ऋषिलोग तो सूर्यसम्बन्धी ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंद्वारा उनकी स्तुति करते हैं और गन्धर्व उनके सुयशका गायन करते रहते हैं। अप्सराएँ आगे-आगे नृत्य करती चलती हैं और नागगण रस्सीकी तरह उनके रथको कसे रहते हैं। यक्षगण रथका साज सजाते हैं और बलवान् राक्षस उसे पीछेसे ढकेलते हैं। इनके सिवा वालखिल्य नामके साठ हजार निर्मलस्वभाव ब्रह्मर्षि सूर्यकी ओर मुँह करके उनके आगे आगे स्तुति पाठ करते चलते हैं। इस प्रकार अनादि, अनन्त, अजन्मा भगवान् श्रीहरि ही कल्प कल्पमें अपने स्वरूपका विभाग करके लोकोंका पालन-पोषण करते रहते हैं ॥ ४५–५० ॥

हृदयमें अधिक क्लेशका अनुभव हो, तो मुझसे बताकर निश्चिन्त हो जाना, मैं तुम्हारी सारी चिन्ताएँ दूर कर दूँगा। सम्राट् परीक्षित्‌की यह बात सुनकर वज्रनाभको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने राजा परीक्षित्से कहा ॥ ९-१२ ॥

वज्रनाभ बोले—महाराज! आप मुझसे जो कुछ कह रहे हैं, वह सर्वथा आपके अनुरूप है। आपके पिताने भी मुझे धनुर्वेदकी शिक्षा देकर मेरा महान् उपकार किया है। इसलिये मुझे किसी बातकी तनिक भी चिन्ता नहीं है। क्योंकि उनकी कृपासे मैं क्षत्रियोचित शूरवीरतासे भली भाँति सम्पन्न हूँ। मुझे चिन्ता है, तो केवल एक बातकी। सचमुच वह बहुत बड़ी चिन्ता है, आप उसके सम्बन्धमें कुछ विचार कीजिये। वह चिन्ता यह है कि यद्यपि मैं मथुरा मण्डलके राज्यपर अभिषिक्त हूँ, तथापि मैं यहाँ निर्जन वनमें ही रहता हूँ। इस बातका मुझे कुछ भी पता नहीं है कि यहाँकी प्रजा कहाँ चली गयी। क्योंकि राज्यका सुख तो तभी है, जब प्रजा रहे। जब वज्रनाभने परीक्षित्से यह बात कही, तब उन्होंने वज्रनाभका सन्देह मिटानेके लिये महर्षि शाण्डिल्यको बुलवाया। ये ही महर्षि शाण्डिल्य पहले नन्द आदि गोपोंके पुरोहित थे। परीक्षित्‌का सन्देश पाते ही महर्षि शाण्डिल्य अपनी कुटी छोड़कर वहाँ आ पहुँचे। वज्रनाभने विधिपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार किया और वे एक ऊँचे आसनपर विराजमान हुए। राजा परीक्षित्ने वज्रनाभकी बात उन्हें कह सुनायी। इसके बाद महर्षि शाण्डिल्य बड़ी प्रसन्नतासे उनको सान्त्वना देते हुए कहने लगे—॥१३-१८॥



शाण्डिल्यजीने कहा—प्रिय परीक्षित् और वज्रनाभ! मैं तुमलोगोंसे व्रजभूमिका रहस्य बतलाता हूँ। तुम एकाग्र होकर सुनो। 'व्रज' शब्दका अर्थ है व्याप्ति। व्यापक होनेके कारण ही इस भूमिका नाम 'व्रज' पड़ा है। सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंसे अतीत जो परब्रह्म है, वही व्यापक है। इसलिये उसे 'व्रज' कहते हैं। वह सदानन्दस्वरूप, परम ज्योतिर्मय और अविनाशी है। जीवन्मुक्त पुरुष उसीमें स्थित रहते हैं। इस परब्रह्मस्वरूप व्रजधाममें नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका निवास है। उनका एक-एक अंग सच्चिदानन्दस्वरूप है। वे आत्माराम और आप्तकाम हैं। प्रेमरसमें डूबे हुए रसिकजन ही उनका अनुभव करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा हैं—राधिका, उनसे रमण करनेके कारण ही रहस्य रसके मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष उन्हें 'आत्माराम' कहते हैं। 'काम' शब्दका अर्थ है, कामना—अभिलाषा, व्रजमें भगवान् श्रीकृष्णके वाञ्छित पदार्थ हैं—गौएँ, ग्वालबाल, गोपियाँ और उनके साथ लीला विहार आदि, वे सब-के सब यहाँ नित्य प्राप्त हैं। इसीसे श्रीकृष्णको 'आप्तकाम' कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्णकी यह रहस्य लीला प्रकृतिसे परे है। वे जिस समय प्रकृतिके साथ खेलने लगते हैं उस समय दूसरे लोग भी उनकी लीलाका अनुभव करते हैं। प्रकृतिके साथ होनेवाली लीलामें ही रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी प्रतीति होती है। इस प्रकार यह निश्चय होता है कि भगवान्‌की लीला दो प्रकारकी है—एक वास्तवी और दूसरी व्यावहारिकी। वास्तवी लीला स्वसंवेद्य है—उसे स्वयं भगवान् और उनके रसिक भक्तजन ही जानते हैं। जीवोंके सामने जो लीला होती है, वह व्यावहारिकी लीला है। *वास्तवी लीलाके बिना व्यावहारिकी लीला नहीं हो सकती,* परन्तु व्यावहारिकी लीलाका वास्तविक लीलाके राज्यमें कभी प्रवेश नहीं हो सकता। तुम दोनों भगवान्‌की जिस लीलाको देख रहे हो, यह व्यावहारिकी लीला है। यह पृथ्वी और स्वर्ग आदि लोक इसी लीलाके अन्तर्गत हैं। इसी पृथ्वीपर यह मथुरामण्डल है। यहीं वह व्रजभूमि है, जिसमें भगवान्‌की वह वास्तवी रहस्य लीला गुप्तरूपसे होती रहती है। वह कभी-कभी प्रेमपूर्ण हृदयवाले रसिक भक्तोंको सब ओर दीखने लगती है। कभी अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें जब भगवान्‌की रहस्य लीलाके अधिकारी भक्तजन यहाँ एकत्र होते हैं, जैसा कि इस समय भी कुछ काल पहले हुए थे, उस समय भगवान् अपने अन्तरङ्ग प्रेमियोंके साथ अवतार लेते हैं। उनके अवतारका यह प्रयोजन होता है कि रहस्य

बारहवाँ अध्याय

श्रीमद्भागवतकी संक्षिप्त विषय-सूची

श्रीसूतजी कहते हैं—भगवद्भक्तिरूप महान् धर्मको नमस्कार है। विश्वविधाता भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। अब मैं ब्राह्मणोंको नमस्कार करके श्रीमद्भागवतोक्त सनातनधर्मोंका संक्षिप्त विवरण सुनाता हूँ। शौनकादि ऋषियो! आपलोगोंने मुझसे जो प्रश्न किया था, उसके अनुसार मैंने भगवान् विष्णुका यह अद्भुत चरित्र सुनाया। यह सभी मनुष्योंके श्रवण करने योग्य है। इस श्रीमद्भागवत-पुराणमें सर्वपापापहारी स्वयं भगवान् श्रीहरिका ही संकीर्तन हुआ है। वे ही सबके हृदयमें विराजमान, सबकी इन्द्रियोंके स्वामी और प्रेमी भक्तोंके जीवनधन हैं। इस श्रीमद्भागवत-पुराणमें परम रहस्यमय—अत्यन्त गोपनीय ब्रह्मतत्त्वका वर्णन हुआ है। उस ब्रह्ममें ही इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी प्रतीति होती है। इस पुराणमें उसी परमतत्त्वका अनुभवात्मक ज्ञान और उसकी प्राप्तिके साधनोंका स्पष्ट निर्देश है॥ १-४॥

शौनकजी! इस महापुराणके प्रथम स्कन्धमें भक्तियोगका भलीभाँति निरूपण हुआ है, और साथ ही भक्तियोगसे उत्पन्न एवं उसको स्थिर रखनेवाले वैराग्यका भी वर्णन किया गया है। परीक्षित्की कथा, और व्यास-नारद-संवादके प्रसङ्गसे नारदचरित्र भी कहा गया है। राजर्षि परीक्षित् ब्राह्मणका शाप हो जानेपर किस प्रकार गङ्गातटपर अनशन-व्रत लेकर बैठ गये और ऋषिप्रवर श्रीशुकदेवजीके साथ किस प्रकार उनका संवाद प्रारम्भ हुआ, यह कथा भी प्रथम स्कन्धमें ही है॥ ५-६॥

योगधारणाके द्वारा शरीरत्यागकी विधि, ब्रह्मा और नारदका संवाद, अवतारोंकी संक्षिप्त चर्चा तथा महत्तत्त्व आदिके क्रमसे प्राकृतिक सृष्टिकी उत्पत्ति आदि विषयोंका वर्णन द्वितीय स्कन्धमें हुआ है॥ ७॥

तीसरे स्कन्धमें पहले-पहल विदुरजी और उद्धवजीके और तदनन्तर विदुर तथा मैत्रेयजीके समागम और संवादका प्रसङ्ग है। इसके पश्चात् पुराणसंहिताके विषयमें प्रश्न है और फिर प्रलयकालमें परमात्मा किस प्रकार स्थित रहते हैं, इसका निरूपण है। गुणोंके क्षोभसे प्राकृतिक सृष्टि और महत्तत्त्व आदि सात प्रकृति-विकृतियोंके द्वारा कार्य-सृष्टिका वर्णन है। इसके बाद ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति और उसमें विराट पुरुषकी स्थितिका स्वरूप समझाया गया है। तदनन्तर स्थूल और सूक्ष्म कालका स्वरूप, लोक-पद्मकी उत्पत्ति, प्रलय-समुद्रसे पृथ्वीका उद्धार करते समय वराहभगवान्के द्वारा हिरण्याक्षका वध; देवता, पशु, पक्षी और मनुष्योंकी सृष्टि एवं रुद्रोंकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग है। इसके पश्चात् उस अर्द्ध-नारी-नरके स्वरूपका विवेचन है, जिससे स्वायम्भुव मनु और स्त्रियोंकी अत्यन्त उत्तम आद्या प्रकृति शतरूपाका जन्म हुआ था। कर्दम प्रजापतिका चरित्र, उनसे मुनि-पत्नियोंका जन्म, मरीचि आदि नौ प्रजापतियोंकी उत्पत्ति, महात्मा भगवान् कपिलका अवतार और फिर कपिलदेव तथा उनकी माता देवहूतिके संवादका प्रसङ्ग आता है॥८-१३॥

चौथे स्कन्धमें दक्षयज्ञका विध्वंस, राजर्षि ध्रुव एवं पृथुका चरित्र तथा प्राचीनबर्हि और नारदजीके संवादका वर्णन है। पाँचवें स्कन्धमें प्रियव्रतका उपाख्यान; नाभि, ऋषभ और भरतके चरित्र; द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत और नदियोंका वर्णन; ज्योतिश्चक्रके विस्तार एवं पाताल तथा नरकोंकी स्थितिका निरूपण हुआ है॥ १४-१६॥

शौनकादि ऋषियो! छठे स्कन्धमें ये विषय आये हैं—प्रचेताओंसे दक्षकी उत्पत्ति; दक्ष-पुत्रियोंकी सन्तान देवता, असुर, मनुष्य, पशु, पर्वत और पक्षियोंका जन्म-कर्म; वृत्रासुरकी उत्पत्ति और उसकी परम गति। अब सातवें स्कन्धके विषय बतलाये जाते हैं। इस स्कन्धमें मुख्यतः दैत्यराज हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षके जन्म-कर्म एवं दैत्यशिरोमणि महात्मा प्रह्लादके उत्कृष्ट चरित्रका निरूपण है॥१७-१८॥

आठवें स्कन्धमें मन्वन्तरोंकी कथा, गजेन्द्रमोक्ष, विभिन्न मन्वन्तरोंके भगवदवतार—कूर्म, मत्स्य, वामन, धन्वन्तरि, हयग्रीव आदि; अमृत-प्राप्तिके लिये देवताओं और दैत्योंका समुद्र-मन्थन और देवासुर-संग्राम आदि विषयोंका वर्णन है। नवें स्कन्धमें मुख्यतः राजवंशोंका वर्णन है। इक्ष्वाकुके जन्म-कर्म, वंश-विस्तार; महात्मा सुद्युम्न, इला एवं ताराके उपाख्यान—इन सबका वर्णन किया गया है। सूर्यवंशका वृत्तान्त, शशाद और नृग आदि राजाओंका वर्णन, सुकन्याका चरित्र; शर्याति, खट्वाङ्ग, मान्धाता, सौभरि, सगर, बुद्धिमान् ककुत्स्थ और कोसलेन्द्र भगवान् रामके

लीलाके अधिकारी भक्तजन भी अन्तरङ्ग परिकरोंके साथ सम्मिलित होकर लीला-रसका आस्वादन कर सकें । इस प्रकार जब भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं, उस समय भगवान्‌के अभिमत प्रेमी देवता और ऋषि आदि भी सब ओर अवतार लेते हैं ॥ १९–३० ॥

अभी-अभी जो अवतार हुआ था, उसमें भगवान् अपने सभी प्रेमियोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण करके अब अन्तर्धान हो चुके हैं । इससे यह निश्चय हुआ कि यहाँ पहले तीन प्रकारके भक्तजन उपस्थित थे; ऐसा माननेमें तनिक भी सन्देहके लिये गुंजाइश नहीं है । उन तीनोंमें प्रथम तो उनकी श्रेणी है, जो भगवान्‌के नित्य 'अन्तरंग' पार्षद हैं—जिनका भगवान्‌से कभी वियोग होता ही नहीं । दूसरे वे हैं, जो एकमात्र भगवान्‌को पानेकी इच्छा रखते हैं—उनकी अन्तरंग लीलामें अपना प्रवेश चाहते हैं । तीसरी श्रेणीमें देवता आदि हैं । इनमेंसे जो देवता आदिके अंशसे अवतीर्ण हुए थे, उन्हें भगवान्‌ने व्रजभूमिसे हटाकर पहले ही द्वारका पहुँचा दिया था; फिर जब ब्राह्मणोंके शापसे यदुवंशका संहार करनेके लिये साम्बके पेटसे मूसल प्रकट हुआ, और उस मूसलके चूरेसे प्रभासक्षेत्रमें एरका नामकी घास उत्पन्न हो गयी, उस समय परस्पर कलह होनेपर सभी यदुवंशी उन एरकाओंसे एक-दूसरेको मारकर मर गये । इस प्रकार भगवान्‌ने उस मूसलके मार्गसे यदुकुलमें उत्पन्न हुए देवताओंको स्वर्गमें भेजकर पुनः अपने-अपने अधिकारपर स्थापित कर दिया । तथा जिन्हें एकमात्र भगवान्‌को ही पानेकी इच्छा थी, उन्हें प्रेमानन्द-स्वरूप बनाकर श्रीकृष्णने सदाके लिये अपने नित्य अन्तरंग पार्षदोंमें सम्मिलित कर लिया । जो नित्य पार्षद हैं, वे यद्यपि यहाँ गुप्तरूपसे होनेवाली नित्यलीलामें सदा ही रहते हैं, परन्तु जो उनके दर्शनके अधिकारी नहीं हैं, ऐसे पुरुषोंके लिये वे भी अदृश्य हो गये हैं । जो लोग व्यावहारिक लीलामें स्थित हैं, वे नित्यलीलाका दर्शन पानेके अधिकारी नहीं हैं; इसीलिये यहाँ आनेवालोंको सब ओर निर्जन वन—सूना-ही-सूना दिखायी देता है, क्योंकि वे वास्तविक लीलामें स्थित भक्तजनोंको देख नहीं सकते ॥ ३१–३५ ॥

इसलिये वज्रनाभ ! तुम्हें तनिक भी चिन्ता न करनी चाहिये । तुम मेरी आज्ञासे यहाँ बहुत-से गाँव बसाओ; इससे निश्चय ही तुम्हारे मनोरथोंकी सिद्धि होगी । भगवान् श्रीकृष्णने जहाँ जैसी लीला की है, उसके अनुसार उस स्थानका नाम रखकर तुम अनेकों गाँव बसाओ और इस प्रकार परम उत्तम व्रजभूमिका सम्यक् प्रकारसे सेवन करते रहो । गोवर्धन, दीर्घपुर (डीग), मथुरा, महावन (गोकुल), नन्दिग्राम (नन्दगाँव) और बृहत्सानु (बरसाना) आदिमें तुम्हें अपने लिये छावनी बनवानी चाहिये और उन-उन स्थानोंमें रहकर भगवान्‌की लीलाके स्थल नदी, पर्वत, कन्दरा, सरोवर और कुण्ड तथा कुञ्ज-वन आदिका सेवन करते रहना चाहिये । ऐसा करनेसे तुम्हारे राज्यमें प्रजा बहुत ही सम्पन्न होगी और तुम भी अत्यन्त प्रसन्न रहोगे । यह व्रजभूमि सच्चिदानन्दमयी है—इसके कण-कणमें भगवान् श्रीकृष्ण रम रहे हैं; अतः तुम्हें हर तरहसे प्रयत्नपूर्वक इस भूमिका सेवन करना चाहिये । मैं आशीर्वाद देता हूँ; मेरी कृपासे भगवान्‌की लीलाके जितने भी स्थल हैं, सबकी तुम्हें ठीक-ठीक पहचान हो जायगी । वज्रनाभ ! एक और बड़े महत्त्वकी बात बतलाता हूँ । इस व्रजभूमिका सेवन करते रहनेसे तुम्हें किसी दिन उद्धवजी मिल जायँगे । फिर तो अपनी माताओं-सहित तुम उन्हींसे इस भूमिका तथा भगवान्‌की लीलाका रहस्य भी जान लोगे ॥ ३६–४१ ॥

मुनिवर शाण्डिल्यजी उन दोनोंको इस प्रकार समझा-बुझाकर भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए अपने आश्रम-पर चले गये । उनकी बातें सुनकर राजा परीक्षित् और वज्रनाभ दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४२ ॥

दूसरा अध्याय

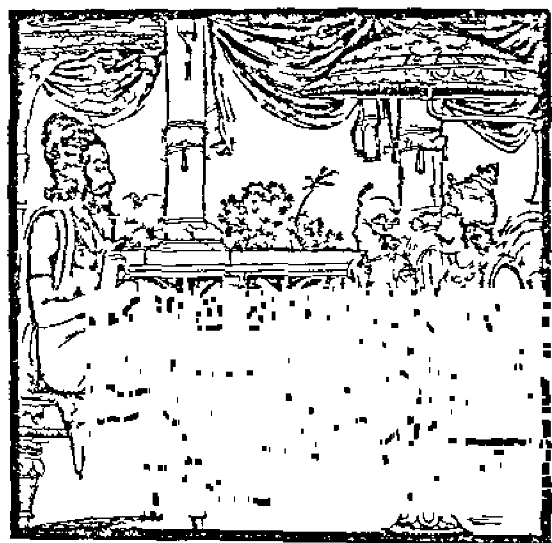
यमुना और श्रीकृष्णपत्नियोंका संवाद, कीर्तनोत्सवमें उद्धवजीका प्रकट होना

ऋषियोंने पूछा—सूतजी ! अब यह बतलाइये कि परीक्षित् और वज्रनाभको इस प्रकार आदेश देकर जब शाण्डिल्य मुनि अपने आश्रमको लौट गये, तब उन दोनों राजाओंने कैसे-कैसे और कौन-कौन-सा काम किया ? ॥ १ ॥

सूतजी कहने लगे—महाराज परीक्षित्‌को भगवान् श्रीकृष्णने ही जीवन-दान दिया था; अतः वे उनके पौत्र वज्रनाभके लिये क्या नहीं कर सकते थे ? अखिल भूमण्डलके सम्राट् तो थे ही, उनकी आज्ञा कौन नहीं मानता ?

हृदयमें अधिक क्लेशका अनुभव हो, तो मुझसे बताकर निश्चिन्त हो जाना, मैं तुम्हारी सारी चिन्ताएँ दूर कर दूँगा। सम्राट् परीक्षित्की यह बात सुनकर वज्रनाभको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने राजा परीक्षित्से कहा ॥ ९-१२ ॥

वज्रनाभ बोले—महाराज! आप मुझसे जो कुछ कह रहे हैं, वह सर्वथा आपके अनुरूप है। आपके पिताने भी मुझे धनुर्वेदकी शिक्षा देकर मेरा महान् उपकार किया है। इसलिये मुझे किसी बातकी तनिक भी चिन्ता नहीं है। क्योंकि उनकी कृपासे मैं क्षत्रियोचित शूरवीरतासे भली भाँति सम्पन्न हूँ। मुझे चिन्ता है, तो केवल एक बातकी। सचमुच वह बहुत बड़ी चिन्ता है, आप उसके सम्बन्धमें कुछ विचार कीजिये। वह चिन्ता यह है कि यद्यपि मैं मथुरा मण्डलके राज्यपर अभिषिक्त हूँ, तथापि मैं यहाँ निर्जन वनमें ही रहता हूँ। इस बातका मुझे कुछ भी पता नहीं है कि यहाँकी प्रजा कहाँ चली गयी। क्योंकि राज्यका सुख तो तभी है, जब प्रजा रहे। जब वज्रनाभने परीक्षित्से यह बात कही, तब उन्होंने वज्रनाभका सन्देह मिटानेके लिये महर्षि शाण्डिल्यको बुलवाया। ये ही महर्षि शाण्डिल्य पहले नन्द आदि गोपोंके पुरोहित थे। परीक्षित्का सन्देश पाते ही महर्षि शाण्डिल्य अपनी कुटी छोड़कर वहाँ आ पहुँचे। वज्रनाभने विधिपूर्वक उनका स्वागत-सत्कार किया और वे एक ऊँचे आसनपर विराजमान हुए। राजा परीक्षित्ने वज्रनाभकी बात उन्हें कह सुनायी। इसके बाद महर्षि शाण्डिल्य बड़ी प्रसन्नतासे उनको सान्त्वना देते हुए कहने लगे—॥ १३-१८ ॥



शाण्डिल्यजीने कहा—प्रिय परीक्षित् और वज्रनाभ! मैं तुमलोगोंसे व्रजभूमिका रहस्य बतलाता हूँ। तुम एकाग्र होकर सुनो। 'व्रज' शब्दका अर्थ है व्याप्ति। व्यापक होनेके कारण ही इस भूमिका नाम 'व्रज' पड़ा है। सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंसे अतीत जो परब्रह्म है, वही व्यापक है। इसलिये उसे 'व्रज' कहते हैं। वह सदानन्दस्वरूप, परम ज्योतिर्मय और अविनाशी है। जीवन्मुक्त पुरुष उसीमें स्थित रहते हैं। इस परब्रह्मस्वरूप व्रजधाममें नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका निवास है। उनका एक-एक अंग सच्चिदानन्दस्वरूप है। वे आत्माराम और आप्तकाम हैं। प्रेमरसमें डूबे हुए रसिकजन ही उनका अनुभव करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी आत्मा हैं—राधिका, उनसे रमण करनेके कारण ही रहस्य-रसके मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष उन्हें 'आत्माराम' कहते हैं। 'काम' शब्दका अर्थ है, कामना—अभिलाषा, व्रजमें भगवान् श्रीकृष्णके वाञ्छित पदार्थ हैं—गौएँ, ग्वालबाल, गोपियाँ और उनके साथ लीला विहार आदि, वे सब-के-सब यहाँ नित्य प्राप्त हैं। इसीसे श्रीकृष्णको 'आप्तकाम' कहा गया है। भगवान् श्रीकृष्णकी यह रहस्य लीला प्रकृतिसे परे है। वे जिस समय प्रकृतिके साथ खेलने लगते हैं उस समय दूसरे लोग भी उनकी लीलाका अनुभव करते हैं। प्रकृतिके साथ होनेवाली लीलामें ही रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलयकी प्रतीति होती है। इस प्रकार यह निश्चय होता है कि भगवान्की लीला दो प्रकारकी है—एक वास्तवी और दूसरी व्यावहारिकी। वास्तवी लीला स्वसंवेद्य है—उसे स्वयं भगवान् और उनके रसिक भक्तजन ही जानते हैं। जीवोंके सामने जो लीला होती है, वह व्यावहारिकी लीला है। वास्तवी लीलाके बिना व्यावहारिकी लीला नहीं हो सकती, परन्तु व्यावहारिकी लीलाका वास्तविक लीलाके राज्यमें कभी प्रवेश नहीं हो सकता। तुम दोनों भगवान्की जिस लीलाको देख रहे हो, यह व्यावहारिकी लीला है। यह पृथ्वी और स्वर्ग आदि लोक इसी लीलाके अन्तर्गत हैं। इसी पृथ्वीपर यह मथुरामण्डल है। यहीं वह व्रजभूमि है, जिसमें भगवान्की वह वास्तवी रहस्य लीला गुप्तरूपसे होती रहती है। वह कभी-कभी प्रेमपूर्ण हृदयवाले रसिक भक्तोंको सब ओर दीखने लगती है। कभी अट्ठाईसवें द्वापरके अन्तमें जब भगवान्की रहस्य-लीलाके अधिकारी भक्तजन यहाँ एकत्र होते हैं, जैसा कि इस समय भी कुछ काल पहले हुए थे, उस समय भगवान् अपने अन्तरङ्ग प्रेमियोंके साथ अवतार लेते हैं। उनके अवतारका यह प्रयोजन होता है कि रहस्य

अनुक्रमणिकाविशेष ही है । यह ग्रन्थ हेमाद्रिको सन्तुष्ट करनेके लिये ही रचा गया था (श्रीमद्भागवतस्कन्धाध्यायार्थादि निरूप्यते । विदुषा वोपदेवेन मन्त्रिहेमाद्रितुष्टये ॥) हेमाद्रि देवगिरिके यादववंशीय राजा महादेवके 'सर्व-श्रीकरणाध्यक्ष' थे । महादेवका राज्यकाल ईस्वी सन् १२६० से १२७१ तक है । हेमाद्रि महादेवके पीछे भी जीवित रहे थे । अतः इसमे कोई सन्देह नही कि वोपदेव तेरहवी शताब्दीमे प्रादुर्भूत हुए थे ।

वर्तमान ग्रन्थकी लिपि वोपदेवके जन्मसे भी पहलेकी है । जो लोग श्रीमद्भागवतकी आपेक्षिक प्राचीनता और प्रामाण्य स्वीकार करनेमे हिचकते है, उनसे हम इस पुस्तककी पर्यालोचना करनेका अनुरोध करते है । श्रीमद्भागवतके अंशविशेषकी प्रक्षिप्तता और प्राचीन-कालके प्रचलित पाठका निर्णय करनेमे यह आलोचना बहुत सहायक होगी ।

---

* 'हरिलीला' और 'मुक्ताफल'के अन्तमे लिखा है कि वोपदेवने भागवततत्त्वके सम्बन्धमे तीन ग्रन्थ रचे थे—'भागवततत्त्वोक्तौ त्रयः ।'

पनिषद्पर उन्होंने जो कारिकाएँ लिखी है उनमें भी पूर्णरूपसे श्रीमद्भागवतका आश्रय लिया है । माण्डूक्य-कारिकाके बहुत-से भाव भागवतके ही प्रसाद हैं । जो

है । वह प्राचीन लिपिमें लिखी हुई है । महामहोपाध्याय पण्डित विन्ध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदीने एक बङ्गीय विद्वान्से लेकर उसे बहुत दिनोंतक अपने पास रक्खा । सन् १९१६ ई०में युक्तप्रान्तीय गवर्नमेण्टने उसे उनसे मोल ले लिया । उसपर जो संवत् लिखा हुआ था, वह बारहवीं शताब्दीके लगभगका था । वर्णमालाके क्रम-विकासकी दृष्टिसे उसकी लिपि ठीक बारहवीं शताब्दीकी ही जान पड़ती है । महामहोपाध्याय पण्डित श्रीगोपीनाथजी कविराज एम्० ए०, भूतपूर्व प्रिन्सिपल गवर्नमेण्ट संस्कृत-कालेजने ऐसा ही वक्तव्य दिया है—जो उसकी वर्णमालाके छायाचित्रसहित 'कल्याण'के कृष्णाङ्कमें छप चुका है और इस अङ्कमे भी पुन· छापा जाता है । गीताप्रेससे जो श्रीमद्भागवत सटीक प्रकाशित हुई है, वह उस प्राचीन प्रतिसे मिला ली गयी है और स्थान-स्थानपर उसके पाठान्तर भी दे दिये गये हैं । इसमें रासलीला आदि प्रसङ्गोंका पूरा वर्णन है । यह प्रति तबकी लिखी हुई है जब बोपदेवका जन्म भी नहीं हुआ था ।

५–विद्यारण्य स्वामी, जिनका समय तेरहवीं शताब्दी निश्चित हो चुका है, उनके गुरु आत्मपुराणके रचयिता श्रीशङ्करानन्दजी गीताकी अपनी टीका गीता-तात्पर्य-बोधिनीमें भागवतके बहुत-से—'बन्धो मोक्ष इति व्याख्या' आदि श्लोक उद्धृत करते हैं और लिखते हैं—'ये भगवान्-के वचन हैं ।' अवश्य ही वे बारहवीं शताब्दीमें विद्यमान थे । यदि श्रीमद्भागवत उस समय लोकप्रिय नहीं होता, तो वे उसका प्रमाण उद्धृत कैसे करते ? इससे सिद्ध होता है कि श्रीमद्भागवत उस समय प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता था ।

६–काश्मीरके प्रत्यभिज्ञानामक सम्प्रदायके प्रधान आचार्य अभिनवगुप्तने, जो संस्कृत-साहित्य और साम्प्रदायिकोंमें बड़े ही सम्मान और प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखे जाते हैं, अपने मतकी स्थापनाके लिये गीतापर एक संक्षिप्त टीका लिखी है । गीताके चौदहवें अध्यायके आठवें श्लोककी व्याख्या करते समय उन्होंने श्रीमद्भागवतका नाम लेकर कई श्लोक उद्धृत किये हैं—कुछ दूसरे स्कन्धके हैं और एक ग्यारहवें स्कन्धका । यह व्याख्या छपी हुई मिलती है । आचार्य अभिनवगुप्तका समय दसवीं शताब्दी निश्चित है, क्योंकि उन्होंने 'बृहत् प्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी' में स्वयं ही अपने समयका उल्लेख किया है* । यह समय काश्मीर-प्रदेशमें प्रचलित वर्ष-गणनाके अनुसार है । यह बात भी ध्यान देनेयोग्य है कि अभिनवगुप्ताचार्य शैव थे और श्रीमद्भागवत वैष्णव-ग्रन्थ है । यदि भागवतका निर्माण थोड़े दिनोंका हुआ होता, अथवा यह अप्रामाणिक ग्रन्थ होता, तो वे श्रीमद्भागवतका उद्धरण कदापि नहीं दे सकते थे । दूसरी बात यह है कि यदि श्रीमद्भागवत दशम शताब्दीसे कुछ ही पूर्वका बना होता, तो दशम शताब्दीमें उसका काश्मीर पहुँचना कठिन हो जाता । उन दिनों प्रेस तो थे नहीं और अभिनवगुप्ताचार्यका सम्प्रदाय भी भिन्न था; ऐसी अवस्थामें श्रीमद्भागवतका वहाँ पहुँचना उसकी प्राचीनता और सर्वप्रियताका उत्तम प्रमाण है ।

७–ईश्वरकृष्णविरचित सांख्यकारिकापर माठराचार्यने एक टीका लिखी थी । ईस्वी सन् ५५७ और ५६९ के बीचमें उस टीकाका अनुवाद चीनी भाषामें हुआ । अनुवादक थे परमार्थ नामके बौद्ध पण्डित । विचार करनेपर मालूम होता है कि अनुवादके समयसे सौ-डेढ़-सौ वर्ष पूर्व संस्कृतमें माठर वृत्तिकी रचना हो चुकी होगी । उस वृत्तिमें श्रीमद्भागवतके पहले स्कन्धके छठे अध्यायका पैंतीसवाँ एवं आठवें अध्यायका बावनवाँ श्लोक उद्धृत है ।

---

* इति नवतितमेऽस्मिन् वत्सरेऽन्त्ये युगांशे
तिथिशशिजलधिस्थे मार्गशीर्षावसाने ॥

लीलाके अधिकारी भक्तजन भी अन्तरङ्ग परिकरोंके साथ सम्मिलित होकर लीला-रसका आस्वादन कर सकें । इस प्रकार जब भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं, उस समय भगवान्‌के अभिमत प्रेमी देवता और ऋषि आदि भी सब ओर अवतार लेते हैं ॥ १९–३० ॥

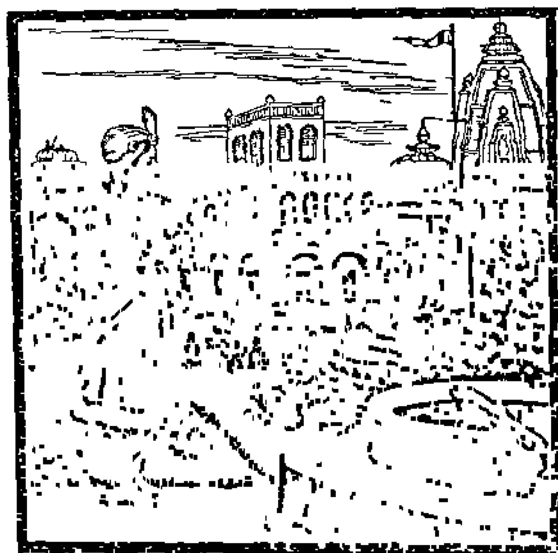
अभी-अभी जो अवतार हुआ था, उसमें भगवान् अपने सभी प्रेमियोंकी अभिलाषाएँ पूर्ण करके अब अन्तर्धान हो चुके हैं । इससे यह निश्चय हुआ कि यहाँ पहले तीन प्रकारके भक्तजन उपस्थित थे; ऐसा माननेमें तनिक भी सन्देहके लिये गुंजाइश नहीं है । उन तीनोंमें प्रथम तो उनकी श्रेणी है, जो भगवान्‌के नित्य 'अन्तरंग' पार्षद हैं—जिनका भगवान्‌से कभी वियोग होता ही नहीं । दूसरे वे हैं, जो एकमात्र भगवान्‌को पानेकी इच्छा रखते हैं—उनकी अन्तरंग लीलामें अपना प्रवेश चाहते हैं । तीसरी श्रेणीमें देवता आदि हैं । इनमेंसे जो देवता आदिके अंशसे अवतीर्ण हुए थे, उन्हें भगवान्‌ने व्रजभूमिसे हटाकर पहले ही द्वारका पहुँचा दिया था; फिर जब ब्राह्मणोंके शापसे यदुवंशका संहार करनेके लिये साम्बके पेटसे मूसल प्रकट हुआ, और उस मूसलके चूरेसे प्रभासक्षेत्रमें एरका नामकी घास उत्पन्न हो गयी, उस समय परस्पर कलह होनेपर सभी यदुवंशी उन एरकाओंसे एक-दूसरेको मारकर मर गये । इस प्रकार भगवान्‌ने उस मूसलके मार्गसे यदुकुलमें उत्पन्न हुए देवताओंको स्वर्गमें भेजकर पुनः अपने-अपने अधिकारपर स्थापित कर दिया । तथा जिन्हें एकमात्र भगवान्‌को ही पानेकी इच्छा थी, उन्हें प्रेमानन्द-स्वरूप बनाकर श्रीकृष्णने सदाके लिये अपने नित्य अन्तरंग पार्षदोंमें सम्मिलित कर लिया । जो नित्य पार्षद हैं, वे यद्यपि यहाँ गुप्तरूपसे होनेवाली नित्यलीलामें सदा ही रहते हैं, परन्तु जो उनके दर्शनके अधिकारी नहीं हैं, ऐसे पुरुषोंके लिये वे भी अदृश्य हो गये हैं । जो लोग व्यावहारिक लीलामें स्थित हैं, वे नित्यलीलाका दर्शन पानेके अधिकारी नहीं हैं; इसीलिये यहाँ आनेवालोंको सब ओर निर्जन वन—सूना-ही-सूना दिखायी देता है, क्योंकि वे वास्तविक लीलामें स्थित भक्तजनोंको देख नहीं सकते ॥ ३१–३५ ॥

इसलिये वज्रनाभ ! तुम्हें तनिक भी चिन्ता न करनी चाहिये । तुम मेरी आज्ञासे यहाँ बहुत-से गाँव बसाओ; इससे निश्चय ही तुम्हारे मनोरथोंकी सिद्धि होगी । भगवान् श्रीकृष्णने जहाँ जैसी लीला की है, उसके अनुसार उस स्थानका नाम रखकर तुम अनेकों गाँव बसाओ और इस प्रकार परम उत्तम व्रजभूमिका सम्यक् प्रकारसे सेवन करते रहो । गोवर्धन, दीर्घपुर (डीग), मथुरा, महावन (गोकुल), नन्दिग्राम (नन्दगाँव) और बृहत्सानु (बरसाना) आदिमें तुम्हें अपने लिये छावनी बनवानी चाहिये और उन-उन स्थानोंमें रहकर भगवान्‌की लीलाके स्थल नदी, पर्वत, कन्दरा, सरोवर और कुण्ड तथा कुञ्ज-वन आदिका सेवन करते रहना चाहिये । ऐसा करनेसे तुम्हारे राज्यमें प्रजा बहुत ही सम्पन्न होगी और तुम भी अत्यन्त प्रसन्न रहोगे । यह व्रजभूमि सच्चिदानन्दमयी है—इसके कण-कणमें भगवान् श्रीकृष्ण रम रहे हैं; अतः तुम्हें हर तरहसे प्रयत्नपूर्वक इस भूमिका सेवन करना चाहिये । मैं आशीर्वाद देता हूँ; मेरी कृपासे भगवान्‌की लीलाके जितने भी स्थल हैं, सबकी तुम्हें ठीक-ठीक पहचान हो जायगी । वज्रनाभ ! एक और बड़े महत्त्वकी बात बतलाता हूँ । इस व्रजभूमिका सेवन करते रहनेसे तुम्हें किसी दिन उद्धवजी मिल जायँगे । फिर तो अपनी माताओं-सहित तुम उन्हींसे इस भूमिका तथा भगवान्‌की लीलाका रहस्य भी जान लोगे ॥ ३६–४१ ॥

मुनिवर शाण्डिल्यजी उन दोनोंको इस प्रकार समझा-बुझाकर भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए अपने आश्रम-पर चले गये । उनकी बातें सुनकर राजा परीक्षित् और वज्रनाभ दोनों ही बहुत प्रसन्न हुए ॥ ४२ ॥

दूसरा अध्याय

उन्होंने इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) से हजारों बड़े-बड़े सेठोंको बुलवाकर उन्हें मथुरामें रहनेकी जगह दी । इनके अतिरिक्त मथुरामण्डलके ब्राह्मणों तथा प्राचीन वानरोंको, जो भगवान्‌के बड़े ही प्रेमी थे, बुलवाया और उन्हें आदरके योग्य समझकर मथुरा नगरीमें बसाया । इस प्रकार राजा परीक्षित्‌की सहायता और महर्षि शाण्डिल्यकी कृपासे वज्रनाभने क्रमशः उन सभी स्थानोंकी खोज की, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रेमी गोप-गोपियोंके साथ नाना प्रकारकी लीलाएँ करते थे । लीलास्थानोंका ठीक-ठीक निश्चय हो जानेपर उन्होंने वहाँ-वहाँकी लीलाके अनुसार उस-उस स्थानका नाम-करण किया, भगवान्‌के लीलाविग्रहोंकी स्थापना की तथा उन-उन स्थानोंपर अनेकों गाँव बसाये । स्थान-स्थानपर भगवान्‌के



नामसे कुण्ड और कुएँ खुदवाये। कुञ्ज और बगीचे लगवाये, शिव आदि देवताओंकी स्थापना की तथा गोविन्ददेव, हरिदेव आदि नामोंसे भगवद्विग्रह स्थापित किये । इन सब शुभ कर्मोंके द्वारा वज्रनाभने अपने राज्यमें सब ओर एकमात्र श्रीकृष्णभक्तिका प्रचार किया और ऐसा करके वे बड़े ही प्रसन्न हुए । उनके प्रजाजनोंको भी बड़ा आनन्द था, वे सदा भगवान्‌के मधुर नाम तथा लीलाओंके कीर्तनमें संलग्न हो परमानन्दके समुद्रमें डूबे रहते थे और सदा ही वज्रनाभके राज्यकी प्रशंसा किया करते थे ॥ २–७ ॥

एक दिनकी बात है, भगवान् श्रीकृष्णकी सोलह हजार रानियाँ यमुनाके तटपर स्नानके लिये गयीं । वे सभी निरन्तर भगवान्‌की विरह-वेदनासे व्याकुल रहती थीं । यमुनाजी भी भगवान्‌की ही पत्नी थीं, पर उनपर भगवान्‌के वियोगका कुछ असर न था । श्रीकृष्णकी पत्नियोंने देखा—यमुनाजी बहुत प्रसन्न हैं, उनके अंदरसे आनन्दकी लहरें उठ रही हैं। सौतकी यह प्रसन्नता देखकर भी रानियोंके मनमें डाह नहीं हुई, वे सरलभावसे पूछ बैठीं ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णकी रानियोंने कहा—बहिन कालिन्दी ! जैसे हम सब श्रीकृष्णकी धर्मपत्नी हैं, वैसे ही तुम भी तो हो । हम तो उनकी विरहाग्निमें जली जा रही हैं, उनके वियोग-दुःखसे हमारा हृदय व्यथित हो रहा है; किन्तु तुम्हारी यह स्थिति नहीं है, तुम प्रसन्न हो । इसका क्या कारण है ? कल्याणी ! कुछ बताओ तो सही ॥ ९ ॥

उनका प्रश्न सुनकर यमुनाजी हँस पड़ीं । साथ ही यह सोचकर कि मेरे प्रियतमकी पत्नी होनेके कारण ये भी मेरी ही बहिनें हैं, पिघल गयीं, उनका हृदय दयासे द्रवित हो उठा। अतः वे इस प्रकार कहने लगीं ॥ १० ॥



यमुनाजी बोलीं—अपनी आत्मामें ही रमण करनेके कारण भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं और उनकी आत्मा हैं—श्रीराधाजी । मैं दासीकी भाँति राधाजीकी सेवा करती रहती हूँ; अवश्य ही उनकी सेवाका यह फल है कि मैं प्रसन्न हूँ । उनकी दासताके प्रभावसे ही विरहशोक मुझे छू भी नहीं सकता । भगवान् श्रीकृष्णकी जितनी भी रानियाँ हैं, सब की सब श्रीराधाके ही अंशका विस्तार हैं । भगवान् श्रीकृष्ण और राधा सदा एक दूसरेके सम्मुख हैं, उनका परस्पर नित्य संयोग है, इसलिये राधाके स्वरूपमें अंशतः विद्यमान जो

लोग ऐसा मानते हैं कि गौडपादकी कारिकाओंसे पीछे भागवत बना है और कारिकाओंसे भागवतमें भाव लिये गये हैं, वे अद्वैतसम्प्रदायसे अनभिज्ञ हैं, क्योंकि सम्प्रदायमें व्यासके शिष्य शुकदेव और शुकदेवके शिष्य गौडपाद माने जाते हैं। इसलिये यही मानना सर्वथा युक्तियुक्त है कि गौडपादने कारिकामें भागवतका भाव लिया है।

१०–सन् ९५७ ई० से सन् १०३० ई०तक महमूद गजनवी भारतपर बार-बार आक्रमण करता रहा। उन दिनों एक मुसलमान अल्बेरूनीने भारतमें रहकर हिन्दू-धर्म और शास्त्रोंका अध्ययन किया और उसके आधारपर एक पुस्तक लिखी। उसके लिखनेका समय सन् १०३० ई० है। सन् १९१४ ई० में सचाऊ साहबने उसका अंग्रेजी अनुवाद किया और वह ट्रबनर ग्रन्थमाला लंडनमें प्रकाशित हुआ। अब उसका हिन्दी-अनुवाद भी हो चुका है। उससे सिद्ध होता है कि सन् १००० ई० के लगभग भारतमें विष्णुपरक श्रीमद्भागवत प्रसिद्ध था और उसकी गणना प्रामाणिक ग्रन्थोंमें थी।

११–राजशाही जिलेमें जमालगंज स्टेशनके पास तीन मीलपर पहाड़पुर नामका एक ग्राम है, जैसा कि खोजसे मालूम हुआ है, उसका नाम सोमपुर धर्मपाल विहार है। सन् १९२७ ई० की खुदाईमें वहाँ बहुत सी मूर्तियाँ, स्तूप और शासन पत्र प्राप्त हुए हैं। उनके अनुसार वहाँ जितनी चीजें मिली हैं, सब पाँचवीं सदीकी हैं। उनमें श्रीराधाकृष्णकी युगलमूर्ति भी है। आधुनिक अन्वेषकोंका मत है कि श्रीमद्भागवतके पूर्व श्रीराधाकृष्ण-की युगल उपासना प्रचलित न थी, अन्यथा श्रीमद्-भागवतमें राधाकी चर्चा भी अवश्य होती।* यदि उनकी यह बात थोड़ी देरके लिये मान ली जाय, तो भी पाँचवीं सदीमें राधाकृष्णकी मूर्तियोंका मिलना इस बातको सूचित करता है कि श्रीमद्भागवतकी रचना उससे पूर्व हो चुकी थी।

१२–दिल्लीश्वर प्रसिद्ध हिंदू नरपति महाराज पृथ्वीराज के दरबारी कवि और उनके मन्त्री चंदबरदाईने, जिनकी प्रतिभा सन् ११९१ ई० में प्रसिद्ध हो चुकी थी, अपने 'पृथ्वीराजरासो' ग्रन्थमें परीक्षित्के सर्पद्वारा डसे जानेकी, भगवान्के दसों अवतारोंकी तथा श्रीकृष्णके भागवतोक्त चरित्रकी कथा कहते हुए स्पष्ट शब्दोंमें श्रीमद्भागवतका उल्लेख किया है—

'भागवत्त सुनहि जो इक चित, तो सराप छुट्टय अकम।'
' कीर (शुकदेव) परिक्त्त (परीक्षित) सम।'
'लीला ललित मुरारकी सुख सुनि कहिय अपार।'

चंदबरदाई बोपदेवसे बहुत पहले हो चुके हैं। भागवतको बोपदेवकृत बतलानेवालोंमेंसे कुछ लोगोंने बोपदेवको गीतगोविन्दकार भक्त कवि जयदेवका भाई बतलाया है, जो सर्वथा असङ्गत बात है। क्योंकि जयदेव गौडेश्वर लक्ष्मणसेनके दरबारी कवि थे, जिन्हें सन् १११८ ई० में अधिकार मिला था और बोपदेव हुए हैं तेरहवीं शताब्दीमें। चंदबरदाईने भी अपने 'रासो'में जयदेवकविका उल्लेख किया है। इससे भी सिद्ध है, श्रीमद्भागवत बोपदेवसे बहुत पहले रचा गया है।

यहाँ जिन प्रमाणोंका उल्लेख किया गया है, वे बहुत ही थोड़े हैं। भारतके प्रायः सभी बड़े-बड़े विद्वान्, आचार्य और संतोंने श्रीमद्भागवतके प्रमाण उद्धृत करके अपनी-अपनी कृतियोंको गौरवान्वित किया है। इन प्रमाणोंसे इतनी बात तो बहुत ही स्पष्ट हो जाती है कि ईसाके पूर्व भी श्रीमद्भागवत विद्यमान था। जो लोग इसको आधुनिक ग्रन्थ कहते हैं, उनका मत कदापि ग्राह्य नहीं है।

* आधुनिक ऐतिहासिकोंकी यह मान्यता सर्वथा भ्रमपूर्ण है कि श्रीराधाकृष्णकी उपासना आधुनिक है, तथापि 'तुष्यतु दुर्जन' न्यायसे उनके लिये ही उनका मत उद्धृत कर दिया गया है।

की वशावलियोंको भूत वशावलियोंके समान ही सत्य मानना चाहिये ।

परम तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करानेके लिये और जन्म मृत्युरूप ससारसे मुक्तिका मार्ग बतानेके लिये रूपकके द्वारा भी आध्यात्मिक तत्त्वका वर्णन होता है । पहले एक कहानी सी कह दी जाती है । सरल बुद्धिके पुरुषोंको वह याद हो जाती है । पीछे उसके पात्रों और कृत्योंका स्पष्टीकरण कर दिया जाता है कि ये पात्र स्थूल जगत्के नहीं, मानसिक है और इनके द्वारा यह ज्ञान प्राप्त होता है । ऐसे रूपकोंको उपाख्यान कहते हैं । श्रीमद्भागवतके चतुर्थ स्कन्धमें पुरञ्जनोपाख्यान और पञ्चम स्कन्धमें भवाटवी-उपाख्यानका वर्णन हुआ है । उनके द्वारा जो विशेष तत्त्व लक्षित कराया गया हे, उसका वहाँ स्पष्ट निर्देश कर दिया हे । वर्तमानकालके कुछ बुद्धिमान् पुरुष पुराणोंकी सब कथाओंको ही रूपक अथवा उपन्यास सिद्ध करनेकी चेष्टा करते हैं । वे यथा कथञ्चित् आध्यात्मिक पात्रोंके रूपमें उनकी सगति भी लगा लेते है और कहते हैं कि इसका यही अर्थ ठीक हे, दूसरा नहीं । तटस्थ दृष्टिसे विचार करनेपर ऐसा निश्चय होता है कि इन कथाओंको सर्वथा रूपक अथवा उपन्यास कह देना बडे साहसकी बात है । त्रेताके राम रावण, अयोध्या-लका और द्वापरके कृष्ण-कस और कौरव-पाण्डवोंको यदि रूपक मान लिया जाय, तो भारतीय इतिहास और प्राचीन मर्यादाका लोप ही हो जायगा । इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास एव पुराणोंकी रचना शैली इतनी महान् है कि बुद्धिमान् पुरुष चाहे तो उनका दूसरा अर्थ भी कर सकता हे, परन्तु इस बातको भगवान् व्यासके काव्यकौशलकी महिमा समझनी चाहिये । उनकी दिव्यदृष्टिसे पुराणोंके आध्यात्मिक पहलू भी छिपे नहीं रहे होंगे । परन्तु ये घटनाएँ भौतिक नहीं है, यह प्रवाद तो सर्वथा असत्य है । श्रीमद्भागवतमें जहाँ उपाख्यानोंका वर्णन हुआ है, वहाँ उसका स्पष्टीकरण भी कर दिया गया है कि यह रूपक है । जहाँ रूपक नहीं है, वहाँ रूपककी चर्चा भी नहीं है । इसलिये वे इतिहास हैं ।

श्रीमद्भागवतका दूसरा महत्त्वपूर्ण भाग उपदेशात्मक है । उपदेशोंको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं—एक तो साधारण, और दूसरा विशेष । साधारण उपदेशोंमें उन अशोंको लेना चाहिये जिनमें साधु-महात्माओंने, मित्रोंने, गुरुजनोंने और सगे-सम्बन्धियोंने उपदेश किये हैं । श्रीमद्भागवतके प्रत्येक अध्याय और प्रत्येक सवादमें ऐसे उपदेश मिलते हैं, जिनके अनुसार आचरण करनेसे जीव अपना परम कल्याण प्राप्त कर सकता है । सभी उपदेशोंका सार है—विषयोंकी आसक्ति छोडकर अपने कर्तव्यकर्मका अनुष्ठान करते हुए भगवान्‌का स्मरण करते रहना । आजतक ससारमें जितने दयालु महापुरुष हुए हैं, उन्होंने एक स्वरसे यह बात कही है । श्रीमद्भागवतमें जगह-जगह तरह-तरहसे यही बात दोहरायी गयी है । ज्योतिषचक्रका वर्णन करके, भूगोलका वर्णन करके और अनेक राजा प्रजाओंका वर्णन करके यही बात चित्तमें बैठानेकी चेष्टा की गयी है कि जीव-जीवनकी पूर्णता केवल भगवान्‌को प्राप्त करनेमें ही है । चाहे इस बातको थोड़ेमें समझ लिया जाय और चाहे समस्त शास्त्रोंको कण्ठस्थ करके समझा जाय, समझना यही पडेगा, बिना समझे निस्तार नहीं है ।

विशेष उपदेशके रूपमें श्रीमद्भागवतके अनेक अशोंका नाम लिया जा सकता है । उनके भी कुछ विभाग किये जा सकते हैं—जैसे गीतारूपसे हसगीता, कपिलगीता और उद्धवके प्रति भगवान्‌के उपदेश आदि, प्रकरणरूपसे चतु श्लोकी, सप्तश्लोकी भागवत आदि, दीक्षारूपसे ध्रुवके प्रति नारदके उपदेश आदि, क्रियारूपसे युधिष्ठिरके यज्ञमें श्रीकृष्णके द्वारा अतिथियों-का पाद-प्रक्षालन आदि । और भी विशेष उपदेशके मानसिक आदि भेद हो सकते हैं । उन सबका

रसायन' में साध्य साधनरूप भक्तिकी सङ्गति अधिकारी-भेदसे लगायी है। वे कहते हैं कि साधन-भक्तिका अनुष्ठान तो सभीको करना पड़ता है। साधन-भक्तिका अनुष्ठान करनेपर अधिकारी भेद प्रकट हो जाता है। दो प्रकारके अधिकारी होते हैं—एक तो कोमल हृदयके और दूसरे कठोर हृदयके। कोमल हृदयके अधिकारी वे हैं, जो भगवान्‌की लीला, दयालुता, सुहृदता आदिका वर्णन सुनकर द्रवित हो जाते हैं, उनकी आँखोंसे आँसू गिरने लगते हैं, गला रुँध जाता है और शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। ऐसे अधिकारियोंके जीवनमें साधन-भक्तिके फलस्वरूप साध्य भक्तिका उदय होता है और भागवतके शब्दोंमें 'भक्त्या सञ्जातया भक्त्या' अर्थात् भक्तिकी साधनासे प्रेमा भक्तिका उदय होनेपर वे परमात्माको प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाते हैं और सर्वदा, सर्वत्र और सर्वरूपमे उन्हें भगवान्‌के ही दर्शन होने लगते हैं। जो कठोर हृदयके अधिकारी हैं, वे साधन भक्तिका अनुष्ठान करके धीरे-धीरे आत्मशुद्धि सम्पादन करते हैं और पश्चात् श्रवण मनन निदिध्यासनके द्वारा आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करके कृतकृत्य हो जाते हैं। उनकी दृष्टिमें शरीर और ससारका अस्तित्व नहीं रहता, वे विशुद्ध चेतनके रूपमें सर्वदाके लिये स्थित हो जाते है।

वास्तविक दृष्टिसे ज्ञान और भक्तिमें कोई अन्तर नहीं है। शास्त्रमें कहा है कि भक्तिकी पराकाष्ठा ज्ञान है और ज्ञानकी पराकाष्ठा भक्ति। जहाँ भक्तिसे ज्ञानको श्रेष्ठ बताते है, वहाँ भक्तिका अर्थ साधन भक्ति है और जहाँ ज्ञानसे भक्तिको श्रेष्ठ बताते हैं, वहाँ ज्ञानका अर्थ परोक्ष ज्ञान है। परा भक्ति और परमज्ञान दोनों एक ही वस्तु हैं। रुचिभेदके कारण नामभेद हो गया है। कोई किसी नामको पसद करता है, कोई किसी नामको। श्रीमद्भागवतमें स्थान स्थानपर भक्ति और ज्ञानके साधनोंका वर्णन हुआ है। भगवान्‌के स्वरूप, गुण, लीला, नाम आदिका श्रवण, कीर्तन एव स्मरण, उनके श्रीविग्रहको अपने सामने साक्षात् अनुभव करते हुए पादसेवन, अर्चन और वन्दन, उनके सान्निध्यका अनुभव करते हुए उनके सख्य, दास्य आदिका सम्बन्ध स्थापन और सम्पूर्ण भावसे उनके प्रति आत्मसमर्पण—यह नवधा भक्ति है। श्रीमद्भागवतमें इस नवधा भक्तिके लक्षण और उदाहरण बहुत-से स्थानोंमें पाये जाते हैं। निर्गुण भक्तियोगका लक्षण करते हुए कहा गया है कि भगवान्‌का वर्णन सुनकर चित्तकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ इस प्रकार भगवान्‌को विषय करने लगें, जैसे गङ्गाजीकी धारा अखण्डरूपसे समुद्रमें गिरती है। यह स्मरणकी अविच्छिन्नता ही निर्गुण भक्ति है। ज्ञानका लक्षण करते हुए कहा गया है कि जब अपनी अनुभूतिसे ऐसा निश्चय हो जाय कि यह भाव और अभावरूप समस्त कार्य-कारणात्मक जगत् अविद्याके कारण ही आत्मामें प्रतीत हो रहा है, वास्तवमें इसकी कोई सत्ता नहीं है, केवल आत्मा-ही-आत्मा है, तब उसको ब्रह्मदर्शन समझना चाहिये। और भी कहा है कि जो वस्तु अन्वय और व्यतिरेककी दृष्टिसे सर्वदा अबाध है, उसी का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। आत्माके अज्ञानका इतना ही रूप है कि केवल आत्मतत्त्वमें विकल्पकी सत्ता दृष्टिगोचर हो रही है। इस ज्ञानकी उपलब्धि अमानित्व आदि साधन और तत्त्वविचारके द्वारा होती है। जब ज्ञान और भक्ति दोनोंपर ही विचार करते हैं तब ऐसा जान पड़ता है कि दोनों ही दृष्टियाँ जगत्‌की आसक्ति और चिन्तन छोडकर केवल परमात्मामें लीन हो जानेके पक्षमें हैं। परमात्माका स्वरूप सगुण है कि निर्गुण, निराकार है कि साकार—यह भेद परमात्माके पास पहुँचनेपर खुल जाता है। जो लोग विषयोंकी आसक्ति और चिन्तन न छोड़कर परमात्माके चिन्तन और स्मरण की चेष्टा नहीं करते और परमात्माके स्वरूपको सगुण अथवा निर्गुण सिद्ध करनेका प्रयत्न किया करते हैं, वे

अनुक्रमणिकाविशेष ही है । यह ग्रन्थ हेमाद्रिको सन्तुष्ट करनेके लिये ही रचा गया था (श्रीमद्भागवतस्कन्धाध्यायार्थादि निरूप्यते । विदुषा वोपदेवेन मन्त्रिहेमाद्रितुष्टये ॥) हेमाद्रि देवगिरिके यादववंशीय राजा महादेवके 'सर्व-श्रीकरणाध्यक्ष' थे । महादेवका राज्यकाल ईस्वी सन् १२६० से १२७१ तक है । हेमाद्रि महादेवके पीछे भी जीवित रहे थे । अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि वोपदेव तेरहवीं शताब्दीमें प्रादुर्भूत हुए थे ।

वर्तमान ग्रन्थकी लिपि वोपदेवके जन्मसे भी पहलेकी है । जो लोग श्रीमद्भागवतकी आपेक्षिक प्राचीनता और प्रामाण्य स्वीकार करनेमें हिचकते हैं, उनसे हम इस पुस्तककी पर्यालोचना करनेका अनुरोध करते हैं। श्रीमद्भागवतके अंगविशेषकी प्रक्षिप्तता और प्राचीन-कालके प्रचलित पाठका निर्णय करनेमे यह आलोचना बहुत सहायक होगी ।

---

* 'हरिलीला' और 'मुक्ताफल'के अन्तमें लिखा है कि वोपदेवने भागवततत्त्वके सम्बन्धमे तीन ग्रन्थ रचे थे—'भागवततत्त्वोक्तौ त्रयः ।'

की स्तुति नहीं हो सकती और वास्तवमें देखा जाय, तो सभी स्तुति करनेवाले यही कहकर चुप हो जाते हैं कि 'आपकी स्तुति नहीं की जा सकती।' फिर भी स्तुति है और भक्तोंकी दृष्टिसे होती है—'नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्रिणः'।

कल्पना कीजिये कि कोई नन्हा-सा बच्चा है। उससे मनोरञ्जनके लिये कोई प्रश्न करता है—'तुम्हारे पिता कितने बड़े हैं?' इसके उत्तरमें वह अपने दोनों हाथ उठाकर थोड़ा उछल पड़ता है और कहता है—'इत्ते बले'। उससे पूछा जाता है—'समुद्रमें कितना पानी है?' वह अपने दोनों हाथोंको फैलाकर कहता है—'इत्ता पानी।' वह अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार जितना बड़ा बता सकता है, बतलाता है। उससे अधिक बड़प्पन प्रकट करनेका कोई साधन उसके पास है ही नहीं। तब क्या वास्तवमें उसके पिता उतने ही बड़े हैं और समुद्रमें उतना ही पानी है? वास्तवमें बालकने जितना बतलाया, उससे वे बहुत बड़े हैं। परन्तु बालककी इस चेष्टासे गुरुजन प्रसन्न ही होते हैं और बालकको भी प्रसन्नता होती है। ठीक ऐसी ही बात भगवान्‌के सम्बन्धमें भी है। जिसकी बुद्धि ऐश्वर्य, माधुर्य आदि सद्गुणोंकी जितनी ऊँची कल्पना कर सकती है, जितना महान् आकलन कर सकती है, जिसकी वाणी जितने अधिक गम्भीर भावोंको अभिव्यक्त कर सकती है, वह उतना ही भगवान्‌के स्वरूप एवं गुणोंको सोचता एवं वर्णन करता है। भगवान् सस्नेह अपने नन्हे-से शिशुकी उड़ान और तोतली बोली देख-सुनकर प्रसन्न होते रहते हैं और बालक भी अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार उनका चिन्तन और वर्णन करके सन्तोषकी साँस लेता है और शान्तिका अनुभव करता है। इसलिये भगवान्‌के गुणोंकी अपेक्षा न्यून होनेपर भी भक्तकी दृष्टिमें वह भगवान्‌की स्तुति है, इसमें सन्देह नहीं। साथ ही यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि भगवान्‌के सम्बन्धमें जो कुछ सोचा जाता है और जो कुछ कहा जाता है, वह भगवान्‌का ही आंशिक वर्णन होनेके कारण सर्वथा सत्य है; क्योंकि भगवान् सर्वरूप हैं। स्तुति करनेसे भगवान्‌के नाम, गुण, रूप, लीला आदिका स्मरण होता है, धीरे-धीरे स्तुति करनेवालोंके चित्तमें वह गाढ़ हो जाता है और अन्ततः उसीसे भगवत्प्राप्ति हो जाती है। इसीसे मनुष्यके जीवनमें भगवान्‌की स्तुति बहुत ही उपयोगी है और एक ऊँची साधना है।

श्रीमद्भागवतमें स्तुतियोंका बड़ा विस्तार है। प्रायः सभी स्तुतियाँ भगवान्‌की हैं। कुछ एक-दो दूसरे देवताओंकी भी हैं। श्रीमद्भागवतमें दूसरे देवताओंका तिरस्कार नहीं किया गया है। उसमें एकेश्वरवादके साथ ही बहुदेववादके लिये भी स्थान है। परन्तु अन्य देवताओंकी स्तुति उनकी प्रधानताके लिये नहीं की गयी है, बल्कि उनके द्वारा भगवान्‌की महिमा वर्णन करनेके लिये ही की गयी है। जैसे द्वितीय स्कन्धके पाँचवें अध्यायमें देवर्षि नारद ब्रह्माकी स्तुति करते हैं, परन्तु उसका प्रयोजन यह है कि ब्रह्मासे भी उत्कृष्ट तत्त्वका ज्ञान हो जाय। सातवें स्कन्धके तीसरे अध्यायमें हिरण्यकशिपुने ब्रह्माको ही ईश्वर कहकर उनकी स्तुति की है, परन्तु सम्पूर्ण सातवें स्कन्धका तात्पर्य ब्रह्मासे भी श्रेष्ठ भगवान्‌को बतानेमें है। श्रीमद्भागवतमें अमुक कामना हो तो अमुक देवताकी पूजा करनी चाहिये—ऐसा कहकर अन्तमें बतलाया है कि निष्काम, सकाम और मोक्षकाम सब प्रकारके लोगोंको भगवान्‌की ही पूजा करनी चाहिये। इसलिये और देवताओंकी स्तुतियाँ भी देवतापरक नहीं, भगवत्परक ही हैं।

भगवान्‌की स्तुतियाँ भी प्रायः दो प्रकारकी हैं—एक सकाम और दूसरी निष्काम। सकाम स्तुतियोंके भी अनेक भेद हैं—कारागारसे मुक्त होनेके लिये, क्रोध शान्त करनेके लिये, दुःखसे छूटनेके लिये—अनेकों

सिद्ध होता है कि सन् ५०० ई० के लगभग
ागवत विद्यमान था ।

:—श्रीशङ्कराचार्यके समयके सम्बन्धमें बड़ा मतभेद ईसाके पूर्व चार-पाँच सौ वर्षसे लेकर ईसाकी सातवीं-ाँ शताब्दीतक उनका समय माना जाता है । और आचार्योंकी परम्परा आदिके विचारसे अधिकांश नोंने उन्हें ईसाके पूर्वका ही माना है । उन्होंने ुराणान्तर्गत 'वासुदेवसहस्रनामावली' की टीकामें स्थानपर श्रीमद्भागवतका उल्लेख किया है । पहले ाकके पाँचवें नामपर वे लिखते हैं—'स आश्रयः ब्रह्म परमात्मा परात्परः' इति भागवते । पहले ाकके पचपनवें नामपर भी उन्होंने 'पश्यन्त्यदो रूप-ऽभ्रचक्षुषा' इत्यादि श्लोक उद्धृत करके भागवतका नाम-र्देश किया है । 'सर्वसिद्धान्तसंग्रह' एवं 'चतुर्दशमत-विवेक' ग्रन्थमें उन्होंने लिखा है—'परमहंसधर्मो भागवते ुराणे कृष्णेनोद्धवायोपदिष्टः ।' अर्थात् परमहंसोंके धर्मका भागवतपुराणमें श्रीकृष्णने उद्धवको उपदेश किया है ।

इसके अतिरिक्त श्रीशङ्कराचार्यकृत गोविन्दाष्टक नामका एक स्तोत्र है । उसके एक श्लोकमें कहा गया है कि माँ यशोदाने श्रीकृष्णको डाँटकर पूछा—'क्यों रे कन्हैया ! तूने मिट्टी खायी है ?' यशोदाकी डाँट सुनकर श्रीकृष्ण डर गये और उन्होंने मुँह बा दिया । श्रीकृष्णके मुखमें यशोदाने चौदहों लोकके दर्शन किये ।* यह कथा श्रीमद्भागवतके मृत्तिका-भक्षणके ही आधारपर लिखी गयी है । इसके अतिरिक्त 'प्रबोध-सुधाकर' नामक ग्रन्थमें श्रीशङ्कराचार्यने भगवान् श्रीकृष्ण-की बाललीलाओंका वर्णन किया है । ब्रह्माका मोहित होना, बछड़ोंका चुराना, सबके रूपमें श्रीकृष्णका हो जाना, गौओंका प्रेम देखकर बलरामका चकित होना आदि वर्णन भागवतके अनुसार ही मिलता है । गोपियोंका वर्णन करते हुए उन्होंने जो उनकी तन्मयावस्थाका वर्णन किया है, वह केवल भागवतमें ही है और उन्होंने लिखा भी है कि ये व्यासके वचन हैं । शङ्कराचार्य और भागवतके श्लोकोंकी तुलना कीजिये—

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम् ।
(भागवत)

कापि च कृष्णायन्ती कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः ।
अपिबत् स्तनमिति साक्षाद् व्यासो नारायणः प्राह ॥
(शङ्कराचार्य)

श्रीमद्भागवतके वचनको अक्षरशः लेकर आचार्यने स्पष्ट कह दिया कि यह व्यासकी उक्ति है । इससे भागवत व्यासकृत है, यह भी सिद्ध होता है और साथ ही भागवतकी शङ्कराचार्यसे प्राचीनता भी सिद्ध हो जाती है ।

९—श्रीशङ्कराचार्यके गुरु गोविन्दपाद और उनके गुरु श्रीगौड़पादाचार्य थे, यह सम्प्रदाय-परम्परा और इतिहाससे सिद्ध है । उन्होंने पञ्चीकरणकी व्याख्यामें लिखा है—'जगृहे पौरुषं रूपम्' इति भागवतमुपन्यस्तम् ।' यह श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके तीसरे अध्यायका पहला श्लोक है । गौड़पादाचार्यका दूसरा ग्रन्थ है—उत्तरगीताकी टीका । उसमें उन्होंने 'तदुक्तं भागवते' लिखकर दशम स्कन्धके चौदहवें अध्यायका चौथा श्लोक उद्धृत किया है । वह श्लोक निम्नलिखित है—

श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥

केवल उद्धृत किया हो सो बात नहीं, माण्डूक्यो-पनिषद्पर उन्होंने जो कारिकाएँ लिखी हैं उनमें भी पूर्णरूपसे श्रीमद्भागवतका आश्रय लिया है । माण्डूक्य-कारिकाके बहुत-से भाव भागवतके ही प्रसाद हैं । जो

* मृत्स्नामत्सीहेति यशोदाताडनशैशवसंत्रासं
व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालिम् ।

हाथ अपनेको बेचना, यह मेरा ही काम था। उन लोगोंने मुझे क्या दिया? वे स्वयं मृत्युके ग्रास हैं। अच्छा हुआ, भगवान्‌ने कृपा करके मुझे निर्वेद तो दिया। अब मैं समझ गयी। अब उनके चरणोंकी शरण लेकर मैं उन्हीं अनन्त प्रेमसागर भगवान्‌में विहार करूँगी।' (देखिये भाग० ११। ८)

दूसरा गीत है—एक ब्राह्मण भिक्षुका। वह सात्त्विक और सदाचारी होनेपर भी लोगोंसे अपमानित और सताया हुआ था। वह लोगोंसे अपमानित होनेके समय भी गाया करता था—

'सुख-दुःखके हेतु कोई मनुष्य, देवता अथवा ग्रह आदि नहीं हैं; केवल मन ही कारण है। वही संसार-चक्रकी धुरी है। उसीके आधारपर अच्छी-बुरी सृष्टि होती है। आत्मा तो असंग है, उसका कोई स्पर्श नहीं कर सकता। मन सचेष्ट होता है—उसे अपना स्वरूप मान लेनेपर आत्मा बद्ध-सा हो जाता है। सब कर्म-धर्म, यम-नियम, अध्ययन-दान मनोनिग्रहके लिये हैं। इसके शान्त हो जानेपर सर्वत्र शान्ति है। जिसका मन शान्त नहीं, उसकी क्रियाका कोई उपयोग नहीं; जिसका मन शान्त है, उसपर क्रियाका कोई प्रभाव नहीं। सब इन्द्रियाँ मनके वशमें हैं। मनको जीत लिया, तो सबको जीत लिया। उसको न जीतकर जगत्‌के शत्रुओंको जीतना मूर्खता है। शत्रुओंका स्रष्टा मन है। मनने ही शरीरको अपना माना; शरीरके रूपमें मन ही है, वही भटक रहा है। भौतिक पदार्थ भौतिक शरीरको ही दुःख पहुँचा सकते हैं—पहुँचावें; अपने ही दाँतसे जीभ कट जाय तो क्रोध किसपर करें? यदि देवता ही दुःख देते हों तो दे लें, वे केवल अपने विकारको ही प्रभावित कर सकते हैं। आत्माके अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं, फिर कौन किसको कैसे दुःख दे? सम्पूर्ण आत्मा ही है।' (देखिये भाग० ११। २३)

प्रेमोन्माद केवल वियोगमें ही नहीं होता, संयोगमें भी होता है। श्रीकृष्णके साथ रहनेवाली, श्रीकृष्णसे विहार करनेवाली द्वारकाकी श्रीकृष्ण-पत्नियोंका चित्त उनकी लीलामें इतना तन्मय हो जाता है कि उन्हें स्मरण ही नहीं रहता कि हम श्रीकृष्णके पास हैं। एक ही समय उन्हें कभी दिनकी प्रतीति होती है, कभी रातकी। वे न जाने क्या-क्या बोल रही हैं—

'हे पक्षी! तू इस समय इस नीरव निशीथमें क्यों जग रहा है? इस विलापका क्या अर्थ है? क्या श्रीकृष्णकी मुसकान और चितवनने तुझपर भी जादू डाल दिया है? ऐ चकवी! तू आँखें बंद करके किसको प्रणय-आमन्त्रण दे रही है? क्या तू भी हमारे समान ही श्रीकृष्णके चरणोंपर समर्पित पुष्पोंकी माला पहनना चाहती है? समुद्र! तू क्यों गर्ज रहा है? तुम्हारी इस दिग्दिगन्तको प्रतिध्वनित कर देनेवाली ध्वनिका क्या तात्पर्य है? क्या श्रीकृष्णने हमारी ही भाँति तुम्हारा भी कुछ छीन लिया है? चन्द्रमा! तेरी क्या दशा हो रही है? आज रजनीको तू अपने करोंसे रंग उँड़ेल-कर क्यों नहीं रँग देता? क्या तू भी श्रीकृष्णकी मीठी-मीठी बातोंमें आकर अपना सर्वस्व खो चुका है! हे मलयानिल! हमने तो तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया, फिर तुम हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्गका स्पर्श करके हृदयको क्यों गुदगुदा रहे हो? उसे तो यों ही श्रीकृष्णकी तिरछी चितवनने टूक-टूक कर दिया है। घनश्यामके समान श्यामल मेघ! तू तो उनका सखा है न? उनका ध्यान करते-करते ही तो तू ऐसा हो गया है। ये बूँदें नहीं, तेरे प्रेमके आँसू हैं। अब क्यों रोता है? उनसे प्रेम करनेका फल भोग रहा है क्या? पर्वत! तुम्हारे

इससे सिद्ध होता है कि सन् ५०० ई० के लगभग श्रीमद्भागवत विद्यमान था।

८—श्रीशङ्कराचार्यके समयके सम्बन्धमें बड़ा मतभेद है। ईसाके पूर्व चार-पाँच सौ वर्षसे लेकर ईसाकी सातवीं-आठवीं शताब्दीतक उनका समय माना जाता है। मठों और आचार्योंकी परम्परा आदिके विचारसे अधिकांश विद्वानोंने उन्हें ईसाके पूर्वका ही माना है। उन्होंने पद्मपुराणान्तर्गत 'वासुदेवसहस्रनामावली' की टीकामें दो स्थानपर श्रीमद्भागवतका उल्लेख किया है। पहले शतकके पाँचवें नामपर वे लिखते हैं—'स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मा परात्परः' इति भागवते। पहले शतकके पचपनवें नामपर भी उन्होंने 'पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा' इत्यादि श्लोक उद्धृत करके भागवतका नाम-निर्देश किया है। 'सर्वसिद्धान्तसंग्रह' एवं 'चतुर्दशमत-विवेक' ग्रन्थमें उन्होंने लिखा है—'परमहंसधर्मो भागवते पुराणे कृष्णेनोद्धवायोपदिष्टः।' अर्थात् परमहंसोंके धर्मका भागवतपुराणमें श्रीकृष्णने उद्धवको उपदेश किया है।

इसके अतिरिक्त श्रीशङ्कराचार्यकृत गोविन्दाष्टक नामका एक स्तोत्र है। उसके एक श्लोकमें कहा गया है कि माँ यशोदाने श्रीकृष्णको डाँटकर पूछा—'क्यों रे कन्हैया! तूने मिट्टी खायी है?' यशोदाकी डाँट सुनकर श्रीकृष्ण डर गये और उन्होंने मुँह बा दिया। श्रीकृष्णके मुखमें यशोदाने चौदहों लोकके दर्शन किये।* यह कथा श्रीमद्भागवतके मृत्तिका-भक्षणके ही आधारपर लिखी गयी है। इसके अतिरिक्त 'प्रबोध-सुधाकर' नामक ग्रन्थमें श्रीशङ्कराचार्यने भगवान् श्रीकृष्ण-की बाललीलाओंका वर्णन किया है। ब्रह्माका मोहित होना, बछड़ोंका चुराना, सबके रूपमें श्रीकृष्णका हो जाना, गौओंका प्रेम देखकर बलरामका चकित होना आदि वर्णन भागवतके अनुसार ही मिलता है। गोपियोंका वर्णन करते हुए उन्होंने जो उनकी तन्मयावस्थाका वर्णन किया है, वह केवल भागवतमें ही है और उन्होंने लिखा भी है कि ये व्यासके वचन हैं। शङ्कराचार्य और भागवतके श्लोकोंकी तुलना कीजिये—

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम्।
(भागवत)

कापि च कृष्णायन्ती कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः।
अपिबत् स्तनमिति साक्षाद् व्यासो नारायणः प्राह॥
(शङ्कराचार्य)

श्रीमद्भागवतके वचनको अक्षरशः लेकर आचार्यने स्पष्ट कह दिया कि यह व्यासकी उक्ति है। इससे भागवत व्यासकृत है, यह भी सिद्ध होता है और साथ ही भागवतकी शङ्कराचार्यसे प्राचीनता भी सिद्ध हो जाती है।

९—श्रीशङ्कराचार्यके गुरु गोविन्दपाद और उनके गुरु श्रीगौड़पादाचार्य थे, यह सम्प्रदाय-परम्परा और इतिहाससे सिद्ध है। उन्होंने पञ्चीकरणकी व्याख्यामें लिखा है—'जगृहे पौरुषं रूपम्' इति भागवतमुपन्यस्तम्।' यह श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धके तीसरे अध्यायका पहला श्लोक है। गौड़पादाचार्यका दूसरा ग्रन्थ है—उत्तरगीताकी टीका। उसमें उन्होंने 'तदुक्तं भागवते' लिखकर दशम स्कन्धके चौदहवें अध्यायका चौथा श्लोक उद्धृत किया है। वह श्लोक निम्नलिखित है—

श्रेयःसृतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

केवल उद्धृत किया हो सो बात नहीं, माण्डूक्यो-पनिषद्पर उन्होंने जो कारिकाएँ लिखी हैं उनमें भी पूर्णरूपसे श्रीमद्भागवतका आश्रय लिया है। माण्डूक्य-कारिकाके बहुत-से भाव भागवतके ही प्रसाद हैं। जो

* मृत्स्नामत्सीहेति यशोदाताडनशैशवसंत्रासं
व्यादितवक्त्रालोकितलोकालोकचतुर्दशलोकालिम्।

देखो तो सही, तुम्हारी प्रेमभरी चितवनने हमें बिना दामकी दासी बना लिया। अब उसीके कारण हम दुखी हो रही हैं, क्या यह अपराध नहीं है? तुमने तो बार-बार हमारी रक्षा की है। जगत्‌की रक्षा करनेके लिये ही तुमने अवतार भी लिया है। अपने प्रेमियोंको अभय देनेवाले प्रभो! अपने कर-कमलोंको एक बार, केवल एक बार हमारे सिरपर रख दो। तुम्हारी मधुर मुसकानसे ही प्रेमियोंका मान-मर्दन हो जाता है, हम तो तुम्हारी सेविका हैं। आओ, हमारे पास आओ; एक बार अपना सुन्दर मुखड़ा दिखा दो। हमारा हृदय तुम्हारी प्राप्तिकी अभिलाषासे विकल हो रहा है, उसपर अपने चरण-कमल रखकर शान्त कर दो। तुम्हारी मीठी-मीठी बातें सुनकर हम मोहित हो गयी हैं, अपने अधरामृतसे हमें सराबोर कर दो। अबतक तुम्हारी चर्चाके बलपर ही हमने जीवन धारण किया है, परन्तु अब रहा नहीं जाता। तुम्हारी मधुर मुसकान, प्रेमभरी चितवन और विचित्र विहार बार-बार मनमें आते हैं। वे एकान्तकी हृदयस्पर्शी बातें बार-बार मनको क्षुब्ध कर रही हैं। तुम्हारी एक-एक चेष्टाने हमारे मनको विवश कर दिया है। अब हमारे वक्षःस्थलपर अपने चरण रक्खो, अपने अधरामृतका दान करो। दिनमें तुम्हें एक पलक भी न देख सकनेपर अनेकों युगका समय जान पड़ता है, देखते समय पलकका गिरना भी अखरता है। हम तुम्हारे सङ्गीतसे मोहित होकर जङ्गलमें आयीं और अब तुम हमें छोड़कर चले गये। यह कहाँका न्याय है? हमारा मन मोहित है और तुम्हारा अवतार संसारके कल्याणके लिये हुआ है। क्या हमारी व्यथा मिटानेके लिये तुम थोड़ा-सा त्याग भी न करोगे? हमारा चित्त घूम रहा है। हम तो अपने कठोर वक्षःस्थलपर तुम्हारे चरणोंको रखते हुए भी डरती हैं, और तुम रातके समय जङ्गलमें घूम रहे हो; कहीं कंकड़-पत्थर गड़ जाय तो! सखे! तुम नेक सोचते भी नहीं कि हमारा जीवन तुम्हारे हाथमें है।' (भाग० १०।३१)

गोपियोंके गीतमें जो रस है, वह अनुवादमें कभी आ नहीं सकता और जब सङ्कोचसे अनुवाद किया जाय, तबका तो कहना ही क्या है। इसलिये उनके गीतोंका आनन्द, उनके प्रेमकी अनुभूति मूलमें ही प्राप्त करनेयोग्य है। यहाँ तो केवल नाममात्रका उद्धरण दे दिया गया है।

श्रीमद्भागवत घटना, उपदेश, स्तुति और गीत—चारों ही रूपोंमें चारों वेदोंके समान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह वेद-शास्त्रोंका साररूप है और रसमय फल है, इसका आस्वादन ही इसकी महिमाको यत्किञ्चित् व्यक्त कर सकता है। वास्तवमें इसकी महिमा अनिर्वचनीय है।

—शान्तनुविहारी द्विवेदी



इतना सिद्ध हो जानेपर कि श्रीमद्भागवत महापुराण है और वह ईसासे बहुत पहले विद्यमान था, यह प्रश्न होता है कि अन्ततः इसकी रचना कब हुई। पद्मपुराणान्तर्गत भागवतमाहात्म्यमें श्रीमद्भागवतके तीन सप्ताहोंका वर्णन आता है—

१—भगवान् श्रीकृष्णके परमधामगमनके पश्चात् तीस वर्ष कलियुग बीत जानेपर भाद्रपद मासमें नवमी तिथिसे श्रीशुकदेवने परीक्षित्को कथा सुनाना प्रारम्भ किया था।

२—उसके पश्चात् दो सौ वर्ष और व्यतीत हो जानेपर अर्थात् कलियुग संवत् २३० आषाढ़ शुक्ल नवमीसे गोकर्णने धुन्धुकारीको कथा सुनायी थी।

३—उसके पश्चात् तीस वर्ष और बीत जानेपर अर्थात् कलियुग संवत् २६० में सनत्कुमारादिने यह कथा सुनायी थी। (देखिये भागवत-माहात्म्यका अध्याय ६)

इन प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि भगवान् श्रीकृष्णके परमधामगमनकी लीलाके पश्चात् तीस वर्षके भीतर ही भगवान् व्यासने महाभारत और श्रीमद्भागवतका निर्माण करके अपने शिष्योंको पढ़ा दिया था।†

—शान्तनुविहारी द्विवेदी

श्रीमद्भागवतकी अनिर्वचनीय महिमा

वर्णनकी दृष्टिसे श्रीमद्भागवतका चार प्रकारसे विभाजन किया जा सकता है—घटनात्मक, उपदेशात्मक, स्तुत्यात्मक और गीतात्मक। घटनात्मक भागमें एक तो भगवान्की लीला है और दूसरा साधारण चरित्र। साधारण चरित्र तीन भागोंमें विभक्त हैं—इतिहास, भविष्य और उपाख्यान। इतिहासके दो प्रयोजन हैं—एक तो किसी उपदेश, स्तुति अथवा गीतका उपक्रम या उपसंहार करना और दूसरा कोई विशेष शिक्षा देना। श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें सूत-शौनक, व्यास-नारद, परीक्षित्-शुकदेव; दूसरे स्कन्धमें ब्रह्मा-नारद और इसी प्रकार प्रायः सभी स्कन्धोंमें कथा-विशेषका उपक्रम करनेके लिये अनेक व्यक्तियोंका वर्णन है। प्रथम स्कन्धमें भीष्मकी कथा केवल उनकी स्तुतिका उल्लेख करनेके लिये आयी है। ऐसे ही गीतोंके प्रसंगमें भी देख सकते हैं। मनु, उनके वंश और वंशानुचरितका वर्णन सद्धर्मकी शिक्षा देनेके लिये ही आता है—ऐसा श्रीमद्भागवतका सिद्धान्त है—'मन्वन्तराणि सद्धर्मः'। इसके अन्तर्गत देव-दानव, मनुष्य, पशु-पक्षी, सबके चरित्र आ जाते हैं। भागवतके बारहवें स्कन्धमें वेद-विभाजनके प्रसंगमें उनके अध्ययन करनेवाले अनेक ऋषियोंका वर्णन ग्रन्थके उपसंहारके लिये हुआ है। भगवान्की लीला और साधारण चरित्र दोनों ही सत्य हैं—इतिहास हैं।

श्रीमद्भागवतमें भविष्यका भी वर्णन आता है। साधारण योगी और ज्योतिषी भी भविष्यकी बातें जान लिया करते हैं। पुराणोंके निर्माता महर्षि व्यास तो विशिष्ट पुरुष हैं। उन्हें प्रकृतिकी तहमें छिपे हुए संस्कारोंका प्रत्यक्षवत् ज्ञान है। कुछ लोग पुराणोंमें भविष्य परिस्थिति और वंशोंका वर्णन पढ़कर ऐसा समझने लगते हैं कि इसमें जिन-जिन घटनाओं और व्यक्तियोंका वर्णन हुआ है, उनके पश्चात् इस ग्रन्थका निर्माण हुआ है। परन्तु उनकी यह समझ ऋषि-प्रतिभाकी महत्ता न जाननेके कारण ही है। पुराणोंमें वर्तमानकालके गुरुण्ड आदि राजाओं और भविष्यमें होनेवाली वंशपरम्परा तथा कल्कि-अवतार आदिका उल्लेख है। यदि आगेके लोग ऐसा मानने लगें कि इन व्यक्तियोंके होनेके पश्चात् पुराणोंका निर्माण हुआ है, तो उनका निर्णय कितना भ्रमपूर्ण तथा उपहासास्पद होगा? इसलिये उन भविष्य-

† यह लेख लिखनेमें सा० आ० पं० श्रीरघुवर मिट्ठूलालजी शास्त्रीके लेखसे सहायता ली गयी है।

श्रीशुकदेवजीका अनुपम दान

भगवान् भगवान् ही हैं। जब उनकी दयालुता, भक्तवत्सलता और कोमल स्वभावकी स्मृति होती है तब चित्त गद्‌गद हो जाता है, हृदय लोकोत्तर आनन्दसे भर जाता है। इच्छा होती है कि मैं अपने प्रभुकी दयामें समा जाऊँ, उनकी गोदमें बैठे-बैठे ही अस्तित्वहीन हो जाऊँ। अखिल जगत्‌के रचयिता, सञ्चालक और आधार प्रभु जीवोंकी इतनी सुरत करते हैं, उनकी एक-एक चेष्टा ध्यानमें रखते हैं और प्रतिक्षण उनके कल्याणके लिये, आनन्दके लिये नये-नये निमित्त उपस्थित किया करते हैं। दिन-रात प्राणोंमें प्रेरणा भरते रहते हैं और चाहते रहते हैं कि जीव विषयोंकी ओर न जाकर मेरी ओर आवे और मेरे पास ही रहे। भगवान्‌के इतना चाहनेपर भी जीव उनसे विमुख होकर दौड़ता है, यह उसका दुर्भाग्य है—अपराध है। फिर भी अकारण कृपालु उसे केवल क्षमा ही नहीं कर देते, बल्कि तबतक सचेत करते रहते हैं जबतक वह उनका होकर उनसे एक नहीं हो जाता। क्षमा करनेकी बात भी केवल जीव-दृष्टिसे ही है। वास्तवमें तो परमात्मा अपने नन्हे-नन्हे शिशुओंकी क्रीड़ासे प्रसन्न ही होते हैं और अनेकों प्रकारके इङ्गितसे उन्हें अपनी ओर बुलाते रहते हैं।

जब समष्टि-तमोगुणके प्रभावसे सारे जीव प्रलयकी घोर निद्रामें सो जाते हैं, उनकी चेतना लुप्त हो जाती है, वे पुरुषार्थ-साधनमें समर्थ नहीं रहते, तब भगवान् उन्हें अज्ञाननिद्रासे जगाकर इस योग्य बनाते हैं कि वे धीरे-धीरे उन्नति करते हुए अपने स्वार्थ और परमार्थके सम्पादनमें प्रयत्न-शील हो सकें। चिरकालतक तमोगुणमें शयन करनेके कारण जगनेपर भी जीवोंका नैसर्गिक प्रवाह अज्ञान और अज्ञानजनित पदार्थोंकी ओर ही रहता है। इसलिये भगवान् समय-समयपर वेद, शास्त्र, अवतार, कारक, संत, सद्‌गुरु और साधुजनोंके द्वारा ऐसी प्रेरणा देते रहते हैं कि जीव अज्ञानसे ज्ञानकी ओर, अनात्मासे आत्माकी ओर, मोहसे प्रेमकी ओर, बहिर्मुखतासे अन्तर्मुखताकी ओर अग्रसर हो। फिर भी काल-क्रमसे जीव असावधान हो जाता है, उसका ज्ञान जर्जरित और जीवन चिन्ताग्रस्त हो जाता है—जिसके कारण वह निरुद्देश्य होकर पथ-विपथका विचार किये बिना ही इतस्ततः भटकने लगता है। जीवोंकी अल्प शक्ति, अल्प बुद्धि और अल्पायु देखकर भगवान्‌के चित्तमें बड़ी दया आती है, और वे स्वयं ही अवतीर्ण होकर भटकते हुए जीवोंको मार्ग दिखाते हैं, अपने पास पहुँचनेका साधन उन्हें दे देते हैं।

वैवस्वत मन्वन्तरके इसी अट्ठाईसवें द्वापर और कलियुगकी सन्धिमें बड़ी विषम अवस्था उत्पन्न हो गयी थी। वेद और शास्त्रोंका ह्रास हो चला था और उनका प्रचार-प्रसार सर्वथा शिथिल होने लगा था। शास्त्रोंकी रक्षाके बिना धर्म-कर्म, उपासना-भक्ति और ज्ञान-विज्ञानकी रक्षा नहीं हो सकती। इसलिये स्वयं भगवान्‌ने श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासके रूपमें अवतीर्ण होकर वेदोंका चार भागोंमें विभाजन किया और इतिहास, पुराण, ब्रह्मसूत्रादि-का निर्माण करके वेदार्थका निर्णय एवं विस्तार किया। इतना सब करनेपर भी जीवोंकी स्थितिमें कुछ विशेष परिवर्तन न हुआ। जिस अभावके कारण जगत्‌के जीव छटपटा रहे थे, जिस कमीके कारण उन्हें सन्तोष नहीं प्राप्त हो रहा था, वह अभाव—वह कमी अभीतक दूर नहीं हुई थी। व्यासदेव उसके लिये चिन्तित हो गये।

भगवान्‌की लीलाका रहस्य स्वयं भगवान् ही जानते हैं अथवा उनके कृपापात्र भक्त। अपने सङ्कल्पमात्रसे सारे जगत्‌का कल्याण कर देनेकी शक्ति रखनेवाले स्वयं व्यासदेव भी चिन्तित हो गये, यह उनकी परम दयालुता ही है। जबतक

श्रीमद्भागवतमें वर्णन है। श्रीमद्भागवत वैष्णवोंकी परम सम्पत्ति है और परमहंसोंके सर्वोच्च ज्ञानका इसमें प्रकाश हुआ है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है कि इसके सुननेकी इच्छामात्रसे तत्क्षण हृदयमें आकर भगवान् बैठ जाते हैं। श्रीमद्भागवतकी सबसे बड़ी विशेषता है—'यस्मिन् ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतम्' अर्थात् जिसमें ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे युक्त नैष्कर्म्य-का आविष्कार किया गया है। और ग्रन्थोंमें जिस नैष्कर्म्यका वर्णन है वह ज्ञान, वैराग्य और भक्तिसे रहित है; परन्तु इसका नैष्कर्म्य उनके सहित है। यही इसकी सबकी अपेक्षा अपूर्वता है। श्रीमद्भागवतने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया है—'नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाव-वर्जितं न शोभते।' 'भगवद्भक्तिरहित ज्ञानकी सर्वोच्च स्थिति नैष्कर्म्य भी शोभायमान नहीं होती।' अर्थात् ज्ञानकी शोभा इसीमें है कि वह भक्तियुक्त हो। जो लोग भक्तिरहित ज्ञान सम्पादन करते हैं, उनकी निन्दा भी स्थान-स्थानपर मिलती है।

श्रीमद्भागवतमें जहाँ कहीं ज्ञानका प्रसंग आया है—तीसरे, चौथे, सातवें, ग्यारहवें और बारहवें स्कन्धोंमें—वहाँ बड़ी युक्ति और अनुभवकी भाषामें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओंके अभिमानियोंसे विलक्षण, समस्त वृत्तियोंसे परे निर्गुण ब्रह्मतत्त्वका, आत्मतत्त्वका विवेचन हुआ है। रज्जु-सर्प, स्वप्न, गन्धर्वनगर आदिकी उपमाओंसे जगत्की असत्यताका भी निरूपण हुआ है और अहंग्रह-उपासनाको भी बड़ा ऊँचा स्थान दिया गया है। ज्ञानके अन्तरङ्ग साधनोंमें श्रवण, मनन, निदिध्यासनको विशेष स्थान देनेपर भी 'तत्रोपायसहस्राणाम्' कहकर भक्तिको ही मुख्य माना गया है। इसका कारण यह है कि ज्ञानका आविर्भाव होनेके लिये शुद्ध अन्तःकरणकी आवश्यकता होती है। विना शुद्ध अन्तःकरण हुए, श्रवण किये हुए तत्त्व हृदयमें प्रवेश नहीं करते और उनका मनन भी नहीं होता। अन्तः-करणकी शुद्धिका अर्थ है—समस्त कामनाओंका अभाव अर्थात् पूर्ण निष्कामता। यह तभी सम्भव है जब सारे कर्म भगवदर्थ होने लगें, आत्मोपलब्धि अथवा भगवत्-प्राप्तिकी कामनामें सारी कामनाएँ समा जायँ। इसलिये भगवत्-कामरूप भक्ति अन्य समस्त कामनाओंको नष्ट करनेवाली होनेके कारण अन्तःकरणशुद्धिका प्रधान साधन है, ऐसा समझना चाहिये। निरवलम्ब निष्कामता टिकाऊ नहीं हो सकती। निष्काम होनेके लिये एक महान् उद्देश्य और बलिष्ठ आधारकी आवश्यकता है, जो कि भगवान्के अतिरिक्त और कोई हो नहीं सकता। इसलिये ज्ञानके प्रकरणोंमें ऐसा उपदेश प्राप्त होता है कि भगवान्का आश्रय लेकर, आत्मशुद्धि करते हुए आत्मतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करो।

श्रीमद्भागवतमें भक्तिका केवल साधनके रूपमें ही वर्णन किया गया हो, ऐसी बात नहीं है। कई स्थानोंपर तो ज्ञान और मुक्तिसे भी बढ़कर भक्तिको बतलाया गया है। पञ्चम स्कन्धमें आया है—'मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न तु भक्तियोगम्।' अर्थात् भगवान् मुक्ति तो देते हैं परन्तु भक्ति नहीं देते। तात्पर्य यह कि भक्ति मुक्तिसे भी बड़ी है। भगवान्के सेवाप्रिय भक्तोंका वर्णन करते हुए कहा गया है कि सार्ष्टि, सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्यमुक्ति भगवान्के देनेपर भी भक्त-लोग नहीं लेते; वे केवल भगवान्की सेवा ही करना चाहते हैं। तीसरे स्कन्धमें भगवान् कपिलने अपनी माता देवहूतिसे कहा है कि 'ऊँची श्रेणीके संत मुझसे एक होना नहीं चाहते; वे मेरी सेवा करते हैं, मेरी आज्ञाओंका पालन करते हैं और आपसमें मेरी लीला कहा-सुना करते हैं। ऐसे प्रेमी भक्तोंको मैं दर्शन देता हूँ, उनसे बातें करता हूँ और उनका सेवक बन जाता हूँ।' इन वचनोंसे यह सिद्ध होता है कि भक्ति स्वयं साध्य और फलरूप भी है।

अद्वैतसिद्धिकार श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीने 'भक्ति-

श्रीमद्भागवतके संस्कार विद्यमान हैं। क्योंकि पूर्वजन्ममें जब ये तोतेके गले हुए अण्डेके रूपमें कैलास-पर्वतपर पड़े हुए थे, तब भगवान् शंकरके मुखसे श्रीमद्भागवतकी कथा सुनकर ये जीवित हो गये थे और पार्वतीके सो जानेपर भी 'ओम्-ओम्' बोलते हुए स्वीकृति-वचन देते रहे थे। इससे यदि मैं इन्हें श्रीमद्भागवतके श्लोक सुनाऊँ, तो उन्हें सुनकर ये अवश्य आकृष्ट हो जायँगे। ऐसा विचारकर जहाँ शुकदेवजी समाधि लगाते थे, वहीं जाकर व्यासदेव भगवान्‌की लीलाके और दयालुताके श्लोक* सुनाने लगे। उन श्लोकोंको सुनकर श्रीशुकदेवजीका चित्त गद्गद हो गया, वे सहज समाधि और आत्मानन्दको छोड़कर भगवत्प्रेमकी अनन्त धारामें बह गये। भगवान्‌की लीला, भगवान्‌के गुण इतने अद्भुत, इतने लोकोत्तर हैं कि उन्हें सुनकर कोई भी सहृदय पुरुष आनन्दित हुए बिना नहीं रह सकता। श्रीशुकदेवजी महाराजने महर्षि व्यासके आश्रममें आकर सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका अध्ययन किया।

भगवान् श्रीकृष्ण अपने परमधाममें पधारे। उन्होंने अपनी प्रकट लीलाका संवरण कर लिया। उनके अन्तर्धान होनेके पश्चात् पाण्डव भी इस लोकमें न रह सके, अपने-अपने कर्मके अनुसार गतिको प्राप्त हुए। परीक्षित्‌का राजत्वकाल भी पाण्डवोंके समान ही प्रजाके लिये बड़ा सुखद था। परन्तु कलियुग आ गया था, इसलिये वे बहुत दिनोंतक पाण्डवोंके समान राजशासनका निर्वाह न कर सके। एक दिन उन्होंने देखा कि एक बूढ़ी गौ और बैलको एक राजाओं-सरीखे चिह्न धारण करनेवाला शूद्र मार रहा है। दोनों भूखके मारे सूख-से रहे थे। महाराजा परीक्षित्‌ने उन्हें पहचानकर शूद्रवेषधारी कलियुगको डाँटा—'तुम धर्मरूपी वृषभ और पृथ्वीरूपी गौको क्यों मार रहे हो?' कलियुगने देखा कि ये मुझे मार डालेंगे, इसलिये वह राजाओंके चिह्न छोड़कर परीक्षित्‌के चरणोंपर गिर पड़ा। धर्मिष्ठ परीक्षित्‌ने उसे शरणमें आया हुआ देख तथा उसकी अनुनय-विनय सुनकर उसको जानसे तो नहीं मारा, परन्तु अपने राज्यसे बाहर निकल जानेका आदेश दे दिया। जब उसने यह प्रार्थना की कि 'आपके राज्यसे तो बाहर रहनेका कहीं स्थान ही नहीं है।' तब उन्होंने जुआ, शराब, स्त्री और हिंसाके स्थान उसे रहनेके लिये दे दिये। पुनः प्रार्थना करनेपर सोना और तिबारा प्रार्थना करनेपर झूठ, मद, काम, रज और वैर—ये पाँच स्थान और दे दिये। कलियुग इन्हीं स्थानोंमें रहने लगा।

महात्मा और दुष्टमें यही भेद है कि महात्मा तो अपराधीको भी क्षमा कर देता है, परन्तु दुष्ट क्षमा करनेवालेसे भी विश्वासघात करता है। कलियुगने महाराज परीक्षित्‌के मुकुट, मृगया और राजापनेके मानका आश्रय लेकर चुपकेसे उनपर आक्रमण कर दिया और उन्होंने उसके प्रभावमें आकर एक ब्राह्मणका तिरस्कार कर दिया। यही तिरस्कार उनकी मृत्युका कारण हुआ।

साधारण लोग मृत्युका नाम सुनकर घबड़ा जाते हैं, परन्तु महापुरुषोंकी यही विशेषता होती है कि वे जीवनके समान ही मृत्युका भी आलिङ्गन और सदुपयोग करते हैं। परीक्षित्‌ने अपनी मृत्युकी उपस्थितिसे बड़ा लाभ उठाया और जगत्‌से ममता तोड़कर, राज-काज छोड़कर वे गङ्गाकिनारे जा बैठे और सात दिनके अनशनका निश्चय करके महात्माओंका सत्सङ्ग करने लगे। बाह्यदृष्टिसे देखा जाय तो परीक्षित्‌के लिये यह बड़ा विषम समय आ गया था। परन्तु अन्तर्दृष्टिसे विचार करनेपर पता चलता है कि यह घटना उनपर और सारे संसारपर भगवान्‌की महान् कृपा थी, क्योंकि इसी घटनाके कारण श्रीमद्भागवत-जैसा महापुराण संसारको प्राप्त हो गया। क्या करनेके लिये भगवान् क्या करते हैं—इस प्रश्नका उत्तर

* तीसरे स्कन्धके दूसरे अध्यायका तेईसवाँ श्लोक और दसवें स्कन्धके इक्कीसवें अध्यायका पाँचवाँ श्लोक।

केवल कल्पना-लोकमें बुद्धिकी सीमाके भीतर ही चक्कर काट रहे हैं। परमात्माका स्मरण करते रहनेसे स्वयं उसके स्वरूपकी उपलब्धि हो जाती है, चाहे वह स्वरूप सगुण हो अथवा निर्गुण।

ज्ञान और भक्ति दोनों ही अन्तरंग भाव हैं। इसलिये वे अन्तरंगमें रहनेवाले परमात्माका साक्षात् स्पर्श करते हैं। इन्द्रियोंसे परे मन, मनसे परे बुद्धि और बुद्धिसे परे परमात्मा है—ऐसा शास्त्रोंका निर्णय है। जो साधन जितना अन्तरंग होगा, वह उतना ही भगवान्‌के निकट होगा—इस दृष्टिसे इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाले कर्म ज्ञान अथवा भक्तिके सहायक होकर ही परमात्माकी प्राप्तिके साधन होते हैं। वे स्वयं साक्षात् परमात्माकी प्राप्तिके साधन नहीं हैं। चाहे स्वाध्याय, आचार्यसेवन आदि कर्मोंके द्वारा ज्ञानकी साधना की जाय अथवा कर्तव्यपालन, पूजा, पाठ आदिके द्वारा भक्तियोगकी साधना की जाय—कर्म इन्हींका साधन होगा। जहाँ निष्काम कर्मयोगका निष्ठाके रूपमें वर्णन आया है, वहाँ निष्कामताकी ही प्रधानता है। इसलिये वह निष्कामता भक्तियोगके ही अन्तर्गत है, क्योंकि भगवदर्थ कर्म ही निष्काम कर्म है। कर्म प्राय: तीन प्रकारके होते हैं—निष्काम, सकाम और निरर्थक। निरर्थक कर्म निरर्थक ही हैं, उनका कहीं भी उपयोग नहीं है। सकाम कर्म दो प्रकारके होते हैं—शास्त्रानुकूल और शास्त्रप्रतिकूल। शास्त्रप्रतिकूल कर्म कुछ दिनोंके लिये इस लोकमें सफल हो सकते हैं, परन्तु आगे चलकर उनके फल-स्वरूप आसुरी योनि और नरकका प्राप्त होना निश्चित है। शास्त्रके अनुकूल जो सकाम कर्म होते हैं उनसे इस लोक और परलोकमें सुखकी प्राप्ति होती है, परन्तु भगवत्प्राप्ति नहीं होती। भगवत्प्राप्ति होती है निष्काम कर्मसे, जो कि सर्वदा सात्त्विक और शास्त्रानुकूल ही होते हैं। श्रीमद्भागवतमें भगवदर्थ कर्मको ही निष्काम कर्म माना गया है। भगवान्‌से रहित कर्म किसी कामके नहीं। श्रीमद्भागवतमें तो भगवान्‌के लिये होनेवाले कर्मोंको कर्म ही नहीं माना गया है, उन्हें निर्गुण कहा गया है। वे भक्तिके ही अन्तर्गत हैं, स्वयं भक्ति ही हैं। इसके अतिरिक्त ज्ञानयोग और भक्तियोगमें सहायक नाना प्रकारके योग और उनके फलोंका वर्णन हुआ है, जो श्रीमद्भागवतके मूलमें ही देखने योग्य है। इन सब साधनोंमें सर्वसाधारणके लिये अधिकारभेदसे रहित, सर्वकालोपयोगी भगवान्‌के नामका जितना सुन्दर वर्णन हुआ है, वह श्रीमद्भागवतके छठे और ग्यारहवें स्कन्धमें देखना चाहिये और उसका विशेषरूपसे आश्रय लेना चाहिये। क्योंकि कलियुगमें यही एक ऐसी क्रिया है, जिसके द्वारा सब लोग भगवान्‌का प्रेम-प्रसाद और साक्षात्कार प्राप्त कर सकते हैं।

श्रीमद्भागवतका तीसरा महत्त्वपूर्ण अंश स्तुत्यात्मक है। स्तुतिका साधारण अर्थ है—प्रशंसा। ऐसा कहा जाता है कि स्तुतियोंमें अर्थवादका होना अनिवार्य है; परन्तु यह बात उन्हीं स्तुतियोंके बारेमें लागू है, जो परमात्माके अतिरिक्त और किसी देवता और मनुष्य आदिकी हैं। देवता एवं मनुष्य आदिकोंके गुण, प्रभाव, शक्ति, कर्म आदि सीमित होते हैं; इसलिये उन्हें प्रसन्न करनेके लिये जब उनका वर्णन आता है, तब बढ़ा-चढ़ाकर उनकी स्तुति की जाती है। और तो क्या, उन्हें ईश्वर कह दिया जाता है। वे अपनी अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होते हैं और स्तुति करनेवालोंको वरदान, पुरस्कार आदि देते हैं। परन्तु भगवान्‌के गुणोंकी सीमा नहीं है। उनके ऐश्वर्य, माधुर्य, चरित्र आदि सभी अनन्त हैं। उनका पूरा-पूरा वर्णन तो कोई करेगा ही क्या, अंशमात्र भी वर्णन नहीं कर सकता। जब भगवान्‌की शक्ति, क्रिया और स्वरूपका अंशमात्र भी वर्णन नहीं हो सकता तब उनका अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन तो भला, कोई कर ही कैसे सकता है। इसलिये भगवान्‌के गुणोंकी दृष्टिसे भगवान्-

श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य—आश्रयतत्त्व

श्रीमद्भागवतके प्रतिपाद्य स्वयं परमात्मा हैं। परमात्माके नामके सम्बन्धमें कोई विशेष आग्रह नहीं है, चाहे कोई ब्रह्म कह लें और चाहे भगवान् कह लें। भगवान्‌का स्वरूप क्या है? भागवतके अनुसार इसका उत्तर देना थोड़ा कठिन है। श्रीमद्भागवत पूर्ण ग्रन्थ है, उसमें भगवान्‌के विविध स्वरूपोंका वर्णन हुआ है। निर्विशेष सविशेष, निराकार साकार—जो जैसा अधिकारी हो, वह भगवान्‌का वैसा ही रूप भागवतमें प्राप्त कर सकता है। वास्तवमें भगवान् सर्वस्वरूप हैं, उन्हें सब रूपोंमें प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा होनेपर भी श्रीमद्भागवतमें एक विशेष वर्णनशैली है। उसके अनुसार विचार करनेपर और ग्रन्थोंकी अपेक्षा श्रीमद्भागवतकी असाधारण विशेषता प्रकट होती है।

आश्रयतत्त्व

श्रीमद्भागवतमें दस विषयोंका वर्णन आता है। अन्य सब बातें उन्हींके अन्तर्गत आ जाती हैं। सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय—यही दस विषय श्रीमद्भागवतमें वर्णित हुए हैं। इनमें प्रधान है—आश्रय। 'आश्रय' शब्दका अर्थ जीवोंके शरण लेने योग्य भगवान् अथवा व्यक्त-अव्यक्त, आभास और निरोधका अधिष्ठान निरपेक्ष साक्षी ब्रह्म है। इसी आश्रय-तत्त्वकी उपलब्धिके लिये अन्य नौ विषयोंका वर्णन हुआ है। सर्ग विसर्ग आदिके वर्णनद्वारा भगवान्‌की अनन्त महिमा और ब्रह्मकी साक्षिताका बोध कराकर उसके स्वरूपमें स्थित कर देना ही श्रीमद्भागवतका उद्देश्य है।

यों तो श्रीमद्भागवतके प्रत्येक स्कन्धमें ही आश्रयका निरूपण किया गया है, तथापि सगुण साकाररूप आश्रयका दशम स्कन्धमें और निर्गुण निराकाररूप आश्रयका बारहवें स्कन्धमें विशेष वर्णन हुआ है। श्रीमद्भागवतके अनुसार आश्रयका स्वरूप क्या है, यह विवेचन करनेके पूर्व भारतीय सनातन धर्मानुगत सम्प्रदायाचार्योंके द्वारा निर्णीत आश्रय-स्वरूपका विचार कर लेना आवश्यक है।

अद्वैतसम्प्रदायके प्रधान आचार्य भगवान् शङ्कर ब्रह्मको निर्विशेष सिद्ध करते हैं। वे कहते हैं—केवल ब्रह्म ही सत्य है, उसके अतिरिक्त दृश्य एवं जडके रूपमें जो कुछ प्रतीत होता है वह मायाका कार्य, मिथ्या अथवा भ्रममात्र है। दृश्यका निषेध हो जानेपर निषेधकी सीमामें जो अनुच्छिष्ट, अवशिष्ट तत्त्व रह जाता है वही अखण्ड, चिन्मात्र, एकरस, अद्वितीय ब्रह्म है। उसका निरूपण विधानात्मक शब्दोंसे नहीं हो सकता। केवल वह स्थूल नहीं है, अणु नहीं है, दीर्घ नहीं है, शब्द स्पर्श आदिवाला नहीं है, अदृश्य है, अग्राह्य है, अलक्षण है, अचिन्त्य है—इन्हीं शब्दोंके द्वारा उसका सङ्केत किया जा सकता है। परमार्थ दृष्टिसे वे ब्रह्मकी सगुणता नहीं स्वीकार करते, वे कहते हैं कि श्रुतियोंमें जहाँ-जहाँ सगुण ब्रह्मका वर्णन आया है, वह केवल व्यावहारिक दृष्टिसे उपासनाकी सिद्धिके लिये है। अतः ब्रह्मका वास्तविक स्वरूप निर्गुण ही है।

अन्यतरलिङ्गपरिग्रहेऽपि समस्तविशेषरहितं निर्विकल्पकमेव ब्रह्म प्रतिपत्तव्यं न तद्विपरीतम्। सर्वत्र हि ब्रह्मस्वरूपप्रतिपादनपरेषु वाक्येषु 'अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्' इत्येवमादिषु अपास्तसमस्तविशेषमेव ब्रह्म उपदिश्यते।

(शारीरकभाष्य ३।२।११)

'सगुण और निर्गुण दोनों प्रकारके वर्णन मिलनेपर भी समस्त विशेषण और विकल्पोंसे रहित निर्गुण स्वरूप ही स्वीकार करना चाहिये, सगुण नहीं। क्योंकि उपनिषदोंमें जहाँ कहीं ब्रह्मका स्वरूप बतलाया गया

प्रकारकी स्तुतियाँ हैं। निष्काम स्तुतियोंके भी दो भेद हैं—एक तो वह जिनमें तत्त्वज्ञानकी प्रधानता है और दूसरी वह जिनमें साधनाकी प्रधानता। वेदस्तुति आदिके प्रसङ्ग तत्त्ववर्णनप्रधान हैं और पृथु, प्रह्लाद, ध्रुव, अम्बरीष, ब्रह्मा आदिकी स्तुतियाँ साधनप्रधान हैं। तत्त्ववर्णनप्रधान स्तुतियाँ सारे जगत्‌का, वाणीका, विचारोंका, स्तुति करनेवालोंका भगवान्‌में पर्यवसान करके स्वयं भी उसीमें पर्यवसित हो जाती हैं (देखिये वेदस्तुतिका अन्तिम श्लोक)। साधनप्रधान स्तुतियोंमें आत्मसाक्षात्कार और मुक्तिका भी निषेध करके कहते हैं—हमें सत्सङ्ग, लीलाके श्रवण-कीर्तन और भक्त-चरित्रमें इतना आनन्द आता है कि उतना स्वरूपस्थितिमें भी नहीं आता (ध्रुवस्तुति)। हमें दस हजार कान दे दो कि हम तुम्हारी कथा सुना करें (पृथुस्तुति)। इन सभी स्तुतियोंसे आत्मशुद्धि होती है, भगवत्तत्त्वका ज्ञान होता है, साधनमें और भगवान्‌के स्वरूपमें निष्ठा होती है। श्रीमद्भागवतोक्त स्तुतियोंकी महिमा उनके भाव और विचारपूर्वक स्वाध्यायसे ही अनुभवमें आ सकती है*।

श्रीमद्भागवतका चौथा भाग गीतात्मक है। यहाँ गीतात्मक शब्दसे मेरा तात्पर्य गीतासे नहीं, गीतसे है। गीता मुख्यतः भगवान् श्रीकृष्ण और गौणतः उनके भिन्न-भिन्न अवतारोंद्वारा जगत्‌के कल्याणके लिये अर्जुन, उद्धव आदि अन्तरङ्ग भक्तोंको दिये गये उपदेश हैं और वे श्रीमद्भागवतके उपदेशात्मक भागके अन्तर्गत हैं—जैसे कपिलगीता, हंसगीता आदि। 'गीत' शब्दका अर्थ है—गायन। जब अन्तरात्मा अपनी व्यथा, अन्तर्वेदना और अनुभूतिको अपने अंदर संवरण नहीं कर पाती, धैर्यका बाँध टूट जाता है, तब अपने-आप ही—किसीको सुनानेके लिये नहीं—जो उद्गार निकलते हैं, उनका नाम गीत है। वह संसारकी कटुताके अनुभवसे, ज्ञानसे, विरहसे, प्रेमसे, प्रेम करनेकी इच्छासे, विरहकी सम्भावनासे अथवा अन्य कारणोंसे भी हृदयसे निकल पड़ता है—एकान्तमें भी और लोगोंके सामने भी, किसीकी अपेक्षा न करके भी और किसीको सम्बोधित करके भी; परन्तु ऐसे प्रसङ्ग बहुत थोड़े होते हैं। श्रीमद्भागवतमें ऐसे प्रसङ्ग बहुत थोड़े हैं; और जितने हैं, उनमें अधिकांश गोपियोंके ही हैं और वे प्रेमके, विरहके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। उन्हें पढ़कर एक बार पत्थरका हृदय भी पिघल सकता है। गोपियोंके गीत पाँच हैं, द्वारकाकी श्रीकृष्णपत्नियोंका एक है, पिङ्गलाका एक है और भिक्षु ब्राह्मणका एक है। पहले छः दशम स्कन्धमें हैं और शेष दो ग्यारहवें स्कन्धमें हैं। और भी दो-एक हैं—जैसे ऐलगीत आदि।

पिङ्गलाका गीत निर्वेद-गीत है। संसारकी कटुताके अनुभवसे उसके हृदयमें जो व्यथा हुई थी, वह उसमें फूटी पड़ती है—

'मेरे मनने मुझे जीत लिया। मैं ऐसे पुरुषोंसे प्रेम करना चाहती थी जो प्रेम कर नहीं सकते, स्वयं अस्तित्वहीन हैं। धन्य है मेरे मोहका विस्तार! मेरी मूर्खताकी हद है। मेरे प्रियतम परमात्मा निरन्तर मेरे पास रहते हैं और मेरी अभिलाषाओंको पूर्ण करना चाहते हैं, परन्तु मैं मूर्खतावश तुच्छ पुरुषोंकी सेवा करती रही। मैं निन्दित वृत्तिसे जीवन बिताकर अपने-आपको दुष्ट पुरुषोंके हाथ बेचती रही। इस दुष्ट शरीरके प्रति इतना मोह? इस मल-मूत्रपूर्ण अपवित्र शरीरके साथ इतनी आसक्ति? मैं ही इस गाँवमें सबसे गयी-बीती हूँ। अपने-आपको अपने प्रेमीपर निछावर कर देनेवाले भगवान्‌के अतिरिक्त दूसरेसे प्रेम! इससे बढ़कर और मूढ़ता क्या होगी? भगवान् ही मेरे प्रियतम हैं—मेरी आत्मा हैं। उन्हें छोड़कर औरोंके

* भागवतस्तुतिसंग्रह नामकी पुस्तक भाषानुवाद, कथाप्रसङ्ग और शब्दकोषसहित छप चुकी है। दाम २।) मिलनेका पता—गीताप्रेस, गोरखपुर।

भी निर्धर्मक हैं, निराकार होनेपर भी साकार हैं, आत्माराम होनेपर भी रमण हैं, उनमें माया भी नहीं है और सब कुछ है भी। उनमें कभी परिणाम नहीं होता और होता भी है। वे अविकृत हैं, उनका परिणाम भी अविकृत है। वे शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। वे नित्य साकार हैं।

इस प्रकार भिन्न भिन्न आचार्योंने आश्रयतत्त्वके सम्बन्धमें विभिन्न प्रकारके मत प्रकट किये हैं। इन सम्प्रदायोंके समान ही विभिन्न दर्शनोंमें भी आश्रयतत्त्वके विभिन्न स्वरूप स्वीकृत हुए हैं। न्याय और वैशेषिक जगत्के कर्ताके रूपमें ईश्वरको स्वीकार करते हैं। योग अथवा सेश्वर साङ्ख्य पुरुषविशेषके रूपमें आश्रयतत्त्वको स्वीकार करता है। और वेदान्तदर्शनमें आश्रयतत्त्व किस रूपमें स्वीकार किया गया है, इसपर विभिन्न मत हैं—जो पाँचों आचार्योंके नामसे उद्धृत किये गये हैं। ब्रह्मसूत्र और श्रीमद्भागवत दोनों ही व्यासकर्तृक हैं। इसलिये ब्रह्मसूत्रमें आश्रयतत्त्वका जैसा स्वरूप स्वीकृत किया गया है, वैसा ही श्रीमद्भागवतमें भी है। भगवान् सर्वस्वरूप हैं, उनके सम्बन्धमें जो कहा जाय, जो सोचा जाय, सब ठीक ही है। किसीका भी विरोध करना उचित नहीं है। श्रीमद्भागवतमें आश्रयतत्त्वका जो स्वरूप वर्णित हुआ है, उसका उल्लेख किया जाता है।

श्रीमद्भागवतमें यों तो सभी बातें आश्रयतत्त्वके निरूपणके लिये ही हैं, फिर भी दो स्थानोंपर अर्थात् द्वितीय स्कन्धके दसवें अध्यायमें और बारहवें स्कन्धके सातवें अध्यायमें आश्रयतत्त्वका साक्षात् लक्षण लिखा गया है—

आभासश्च निरोधश्च यतश्चाध्यवसीयते।
स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते॥
योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः।
यस्तत्रोभयविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः॥
एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे।
त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः॥
(२।१०।७-९)

व्यतिरेकान्वयो यस्य जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
मायामयेषु तद्ब्रह्म जीववृत्तिष्वपाश्रयः॥
(१२।७।१९)

'सृष्टि और प्रलय अथवा प्रतीति एवं प्रतीतिका अभाव—दोनों ही जिसके द्वारा प्रकाशित होते हैं, वह परमब्रह्म ही आश्रय अर्थात् अधिष्ठान है, उसीको परमात्मा कहते हैं। जो आध्यात्मिक पुरुष है, वही आधिदैविक है, जो उन दोनोंको पृथक् पृथक् करनेवाला है, वह आधिभौतिक पुरुष है। एकके न होनेपर दूसरेकी उपलब्धि नहीं होती। ये तीनों सापेक्ष हैं। इन तीनोंके भाव और अभावको जो जानता है, वह अपेक्षाहीन साक्षी आश्रय है। जीवकी जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाओंके अभिमानी विश्व, तैजस और प्राज्ञके मायामय रूपोंमें जिसका व्यतिरेक और अन्वय होता है वह संसारकी प्रतीति और बाधका अधिष्ठान ब्रह्म ही आश्रय है।'

श्रीमद्भागवतकी चतुःश्लोकीमें जिस परम तत्त्वका वर्णन किया गया है, वह आश्रयतत्त्व ही है (देखिये २।९)। और भी अनेकों स्थानोंमें कारणात्मक और कार्यात्मक, पर और अपर, द्रष्टा एवं दृश्यका निषेध करके जिस तत्त्वका वर्णन किया गया है, वह ब्रह्मतत्त्व ही है। बारहवें स्कन्धमें चार प्रकारके प्रलयोंका वर्णन करनेके पश्चात् आत्मतत्त्वका बड़ा ही सुन्दर वर्णन आया है। ग्यारहवें स्कन्धमें स्थान-स्थानपर मुक्ति और बन्धनसे परे जिस तत्त्वका उपदेश किया गया है, वह आश्रय ही है। गीतामें परा-अपरा प्रकृति, क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ, क्षर-अक्षर और प्रकृति पुरुषसे परे जिस तत्त्वका वर्णन हुआ है वही 'पुरुषोत्तम' श्रीमद्भागवतका आश्रयतत्त्व है। वह ब्रह्म भी है, भगवान् भी है और जीवकी बुद्धिमें आनेवाले ब्रह्म

इस गम्भीर, मौन और अचञ्चल स्थिरताका यही अर्थ है न कि तुम हमारी ही भाँति अपने शिखरोंपर उनके चरणोंका स्पर्श चाहते हो ? नदियो ! क्या तुम वियोगिनी हो ? अवश्य, अवश्य, तभी तो तुम हमारी ही भाँति कृश हो रही हो। हंस ! आओ, आओ, तुम्हारा स्वागत है। इस आसनपर बैठो। दूध पियो, कहो उनका कुशल-मंगल—अच्छे तो हैं ? वे क्या कभी हमारा स्मरण करते हैं ? हम वहाँ नहीं जायँगी। क्या वे हमारे पास नहीं आयेंगे ?' (भाग० १० । ९०)

देवियो ! धन्य है तुम्हारी तन्मयता ! तभी तो तुम्हें श्रीकृष्ण-पत्नी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

गोपियोंका हृदय अनिर्वचनीय है। वह प्रेममय है, श्रीकृष्णमय है, अमृतमय है। उनका हृदय, उनका प्रेम, उनके भावका अमृतमय स्रोत कभी-कभी स्वयं वाणीके द्वारा बाहर निकल आता है। वे जब बोलना चाहती हैं तब बोला नहीं जाता, जब मौन रहना चाहती हैं तब बोल जाती हैं। उनके दिव्य भावोंका तनिक दर्शन तो करें—

'हे सखी ! जब सायङ्काल होता है, गौएँ व्रजमें आने लगती हैं, उनके पीछे-पीछे ग्वालबालोंके साथ बाँसुरी बजाते हुए श्रीकृष्ण और बलराम वृन्दावनमें प्रवेश करते हैं, तब उनकी प्रेमभरी चितवनका रस जो लेता है उसीका जीवन सफल है, उसीकी आँखें धन्य हैं। कितना विचित्र वेष रहता है उनका—आमके बौर, कोमल-कोमल पत्ते, पुष्पोंके गुच्छे और उसपर कमलकी माला ! ग्वालबालोंके बीचमें गायन करते हुए वे श्रेष्ठ नटके समान मालूम पड़ते हैं। गोपियो ! जिस वंशीकी ध्वनि सुनकर बावलियोंको रोमाञ्च हो आता है—उनमें कमल खिल जाते हैं, वृक्षोंसे आँसू बहने लगते हैं—उनसे मदकी धारा बहने लगती है, उस बाँसुरीने कौन-सी तपस्या की है ? उलटे वह तो गोपियोंका हक—श्रीकृष्णके अधरोंकी सुधा पी जाती है, परन्तु हो-न-हो उसका कोई महान् पुण्य अवश्य है। जब श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते हैं तब उसीके स्वरमें ताल मिलाकर मोर नाचने लगते हैं, जंगली जीव अपना स्वभाव छोड़कर प्रेम-मुग्ध हो जाते हैं, उनके चरण-चिह्नोंसे चर्चित वृन्दावन समस्त पृथ्वीका यशोविस्तार कर रहा है। जब श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाते हैं तब हरिनियाँ अपने पतियोंके साथ प्रेमभरी चितवनसे उनका विचित्र वेष देखकर सम्मान करती हैं, वे पशु होनेपर भी धन्य हैं। उनका मधुमय सङ्गीत और अनूप रूपराशि देख-सुनकर स्वर्गीय देवियाँ सुध-बुध खो बैठती हैं, मूर्च्छित हो जाती हैं। गौएँ कान खड़ा करके उस अमृतका पान करती हैं। बछड़े मुँहमें लिये हुए दूधको न उगल पाते हैं और न निगल ही सकते हैं; उनके हृदयमें होते हैं श्रीकृष्ण और आँखोंमें आँसू। वनके पक्षी लतावेष्टित तरुओंकी रुचिर शाखाओंपर बैठे-बैठे आँखें बंद करके मूक होकर श्रीकृष्णकी बाँसुरी सुना करते हैं, नदियाँ कमलोंके उपहारके साथ उनके चरणोंका स्पर्श करती हैं, मेघ बिन्दुओंसे पुष्प-वर्षा करता हुआ उनका छत्र बन जाता है, गोवर्द्धन आनन्दोद्रेकसे फूलकर उनकी सेवा करता है, चर अचर हो जाते हैं और अचर चर हो जाते हैं। धन्य है श्रीकृष्णकी लीला ! चलो हम भी देखें।' (भाग० १० । २१)

'नन्दनन्दन ! तुम्हारे जन्मसे व्रजकी बड़ी उन्नति हुई। लक्ष्मी इसकी सेवा करती है; परन्तु हम—जिनका जीवन, प्राण, सब कुछ तुम्हारे लिये है—तुम्हें इधर-उधर ढूँढ़ती हुई भटक रही हैं। प्रियतम ! तनिक

विसर्ग आदिका वर्णन किया जाता है।* अब इस बातपर विचार किया जायगा कि सर्ग, विसर्ग आदिका स्वरूप क्या है और इनके द्वारा आश्रयतत्त्वका ज्ञान और उपलब्धि कैसे होती है।

सर्ग

'सर्ग' का अर्थ है सृष्टि। सृष्टिके सम्बन्धमे नाना प्रकारके मत उपलब्ध होते हैं। यह जगत् क्या है, और पहले पहल इसकी उत्पत्ति कैसे हुई—इसके सम्बन्धमे वेदोंमें, उपनिषदोंमें, दर्शनोंमे और पुराणोंमे अनेकों प्रकारकी प्रक्रिया मिलती है। श्रीमद्भागवतमे भी कई प्रकारसे सृष्टिका वर्णन आया है। आस्तिक सिद्धान्तके ग्रन्थोमे आश्रय एव आधाररूपसे परमात्माको तो सभीने स्वीकार किया है, परन्तु सृष्टि क्रममें कुछ-न-कुछ मतभेद सभी रखते हैं। यहाँ उन मतभेदोंकी गणना भी कठिन है, सबका वर्णन तो दूर रहा।

इस विषयके तीन मतवाद बहुत प्रसिद्ध हैं—आरम्भवाद, परिणामवाद और विवर्तवाद। न्याय और वैशेषिक दर्शनोंमें परमाणुके रूपमे चार भूत—आकाश, काल, दिशा, आत्मा ओर मन—ये नित्य द्रव्य माने गये है। इनके अतिरिक्त गुण, कर्म, सामान्य, विशेष आदि पदार्थ भी हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें अनेक जीवात्माओंसे विलक्षण परमात्मा निमित्त बनकर बिखरे हुए परमाणुओंको सयुक्त करने लगता है। परमाणुओंके सयोगसे ही नाना प्रकारके पदार्थोंकी सृष्टि होने लगती है। परमाणुओंके सयोगका आरम्भ होनेपर ही सृष्टि होती है, इसलिये इस मतका नाम 'आरम्भवाद' है। जो लोग परमाणुओंके सयोगमें ईश्वरको निमित्त मानते हैं, वे सेश्वर हैं और जो नहीं मानते, वे निरीश्वर। सनातनधर्मके शास्त्रोंमें सेश्वर न्याय और वैशेषिक ही स्वीकृत हुए हैं और वही युक्तियुक्त भी हैं।

सेश्वर साख्य अथवा योगदर्शन विभिन्न परमाणुओंको सृष्टिका कारण न मानकर त्रिगुणात्मिका प्रकृतिको मानता है और भगवान्‌के द्वारा प्रकृतिके क्षुब्ध किये जाने पर त्रिगुणका विकास मानता है। त्रिगुणके परिणामसे ही सृष्टि होती है, ऐसी इसकी मान्यता है। कोई कोई परिणाममें ईश्वरको निमित्त मानते हैं और कोई परिणत होना प्रकृतिका स्वभाव ही मानते हैं। जो परिणामको प्रकृतिका स्वभाव मानते है, वे पुरुषविशेषके रूपमें ईश्वरको उदासीन और असङ्ग मानते हैं अथवा नहीं मानते। श्रीमध्वाचार्य परमात्मासे प्रकृतिको सर्वथा भिन्न मानते हैं, इसलिये वे भी प्रकृतिको ही जगत्‌का कारण मानते हैं। श्रीरामानुजाचार्य प्रकृति, जीव और ईश्वर—इन तीन तत्त्वोंको मानते हुए भी सबको ब्रह्म ही कहते है, इसलिये उनके मतमें ब्रह्म ही अशविशेषमें प्रकृतिरूपसे परिणत होता है और वही जगत् बनता है। इसलिये परिणामवादके दो रूप हुए—एक तो गुण परिणामवाद और दूसरा ब्रह्म परिणामवाद। ब्रह्ममें परिणाम होनेसे वह विकारी हो जायगा, इस आपत्तिका निराकरण करनेके लिये श्रीवल्लभाचार्यने अविकृत परिणामवाद माना है।

बहुत से आचार्य—जिनमे श्रीशकराचार्य प्रधान हैं—ब्रह्मसे पृथक् परमाणु, प्रकृति और उनके कार्यकी सत्ता नहीं स्वीकार करते। वे न आरम्भवाद मानते हैं और न तो परिणामवाद ही। उनके मतमें सृष्टिकी व्यवस्था केवल विवर्तवादसे लगती है। सत्य वस्तुमें वास्तविक परिवर्तनको 'परिणाम' कहते हैं और अवास्तविक होनेपर भी भ्रमसे दीख पड़नेवाले परिणामको 'विवर्त' कहते हैं। उनके मतमें इस सृष्टिका दीखना विवर्त है। उस विवर्तको 'माया' कहते हैं। यह माया वास्तवमें कोई तत्त्व नहीं है। जिनकी दृष्टिमें सृष्टि सत्य है, उनको क्रमशः जगत्‌की उत्पत्तिका तत्त्व बतलाते हुए वे प्रकृति-तक ले जाते हैं और एक अद्वितीय चित्स्वरूपमें प्रकृति-

---

* दशमस्य विशुद्धयर्थं नवानामिह लक्षणम्।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा॥

श्रीनन्दनन्दन-नाममाला*

[निर्मात्रिक]

(१)

सरस-सरद-ससधरन-सहस-सम,
सजल[1] सफल सत सतपथ[2] सरबद ।
सरब सरबगत सकल सकलनत,
सबल सहसकर[3] सतजन-सरमद[4] ॥
सहचर-सरब-सहन[5] स्रय[6] सरबग,
सयन-सहसफन सभयन-सरनद ।
सकट-समन समदरसन सबलय[7],
सदय समर्द सम समद-समरप्रद[9] ॥

(२)

अजर अमर अज अछर अपटतर[10],
अजगत[11] अगद[12] अदरसन अगहन[13] ।
अकथ अनथ[14] अथ[15] अकल[16] अनवगत,
अनल[17] अनवरत अनत्र अनरचन ॥
अचयन[18] अछय अजय अचरजमय,
अप्रकट अपरस[19] अबचन अनसन[20] ।
अतरक अबरन अकरन[21] अचरन,
अकरन[22] अनयन[23] अकरन[24] अनयन[25] ॥

(३)

असरन-सरन अधन-धन अघहन,
अमर-अमरकर अजकर[26] अमदन ।
अभयद अमद अबध अपबरगद,
अटल अबल-बल अचल अमलमन ॥
जगतकरन जगभरन जगतहर,
जगमगप्रभ जन-मनहर जन-धन ।
जनक जनम-जमहरन जनम-फल,
जलजनयन जलसयन जलदतन ॥

(४)

नरतक-रतन नरकहर नगधर,
नयनरमन नवबरन नवलतन ।
नर-तनधर नटखट नटवरतन,
नवरसमय नव-नव-रसबरसन ॥
बनजबदन बन-तन[27] बन-स्रजधर,
बनचर-बतसल बनचर बन-घन ।
बचनसरस बकबधन बरदबर,
ब्रज-ससधर ब्रजबस ब्रजबरधन ॥

—शिवकुमार केडिया 'कुमार'

---

* अप्रकाशित 'श्रीभगवन्नामकोष' के आधारपर निर्मित ।

१. आबदार । २. सन्मार्गरूप; जिसकी प्राप्तिके सैकड़ों मार्ग हैं । ३. सहस्रभुजाधारी; सहस्रांशु=जिनके चारों ओर हजारों किरणें छिटक रही हैं । ४. सज्जनोंको सुख एवं कल्याण प्रदान करनेवाले । ५. अपने सखाओंकी सब कुछ सहन करनेवाले । ६. आश्रयरूप । ७. समस्त संसार जिनमें लयको प्राप्त होता है; कङ्कणधारी । ८. शान्तिदाता । ९. मदान्धोंके युद्धदाता (नाश करनेवाले) ।

१०. अनुपमेय । ११. जगदतीत । १२. निरामय । १३. जो पकड़नेमें न आये; मार्गशीर्षरूप—'मासानां मार्गशीर्षोऽहम्' । १४. अनादि । १५. आदिस्वरूप । १६. कलारहित, मायारहित, कल्पनातीत, जिनसे मधुर और कोई नहीं (मधुरातिमधुर) । १७. अग्निरूप; जिनकी शक्ति और सम्पत्तिका अलं (समाप्ति) नहीं । १८. असंग्रही । १९. जो स्पर्श करनेमें न आ सके । २०. अशन (भोजन)-रहित । २१. अपाणि । २२. श्रवणशून्य । २३. चक्षुरहित । २४. अक्रिय । २५. अनिकेतन ।

२६. ब्रह्माजीको भी उत्पन्न करनेवाले ।

२७. वृन्दावनादि जिनके विग्रहरूप हैं ।

प्रेम, आनन्द एवं रसस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण इतने कोमल एव मधुर हैं कि वे अपने प्रेमीके हृदयमें किसी लालसाकी स्फूर्ति होनेके पहले ही उसको पूर्ण कर दिया करते हैं। वे इस बातके लिये निरन्तर सजग रहते हैं और अपने प्रेमीके हृदय-मन्दिरमें ही ज्योतिके रूपमें जगमगाते हैं कि कहीं उसे किसी वस्तुका अभाव न खटक जाय, उसे अपनेमें और मुझमें अपूर्णताका भान न हो जाय। यही कारण है कि वे चौबीसों घंटे अपने प्रेमीके हृदयमें, प्राणोंमें और नेत्रोंमें निवास करते हैं, एक क्षणके लिये भी उसे छोड़कर कहीं नहीं जाते। यही उनका नियम है और यही सत्य है। फिर भी जब हम देखते हैं कि श्रीकृष्ण उन गोपियोंको—जिनका जीवन श्रीकृष्णके लिये था और वे इस बातको जानते थे, स्वीकार भी करते थे—छोड़कर मथुरा चले गये और फिर कभी नहीं लौटे, तो यकायक चित्तमें एक प्रश्न उठता है कि क्या वास्तवमें भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंका परित्याग ही कर दिया। और यदि यह बात सत्य है, तो क्या श्रीकृष्ण-जैसे परम प्रेमी पुरुषोत्तमके चरित्रमें यह बात उपालम्भके योग्य नहीं है? है, और अवश्य है। यही बात असह्य होनेके कारण अनेक वैष्णवाचार्योंने ऐसी मान्यता कर ली कि श्रीकृष्ण वृन्दावनको छोड़कर एक पग भी कहीं बाहर नहीं गये, अक्रूरके साथ उन्होंने केवल अपना एक प्रकाश-विशेष भेज दिया। कुछ लोगोंकी ऐसी मान्यता है—और वे श्रीमद्भागवतके श्लोकोंसे ऐसा अर्थ भी निकालते हैं—कि श्रीकृष्ण गये तो सही, परन्तु न दबावके साथ ही लौट आये और मथुरामें अपना एक प्रकाश विशेष छोड़ आये। किसी किसी पुराणमें श्रीकृष्णके पुन वृन्दावन आनेका वर्णन भी मिलता है। भगवान्के परम उदार स्वभावको देखते हुए ये सभी बातें ठीक जँचती हैं और ठीक हैं भी।

विचारणीय प्रश्न यह है कि भगवान्की नित्य लीलामें विहार करनेवाली गोपियाँ क्या जगत्में इसीलिये अवतीर्ण हुई थीं कि भगवान् नित्य उनके साथ सयोगकी लीला किया करें और केवल इतनेमें ही उनके अवतारका प्रयोजन पूर्ण हो जाय। भगवान्की लीला, धाम और उनकी सहचरी शक्तियाँ इसीलिये अवतीर्ण हुई थीं कि संसारमें भूले हुए जीव यह बात सीखें कि भगवान्के साथ कैसे प्रेम किया जाता है, उनसे मिलनेके लिये कैसी उत्कण्ठा होती है और उनसे मिलन होनेपर कैसे लोकोत्तर रसका अनुभव होता है। व्रजकी लीलासे जगत्के जीवोंके सामने यह आदर्श रक्खा गया कि भगवान्के सयोगमें प्रेमका कैसा अनिर्वचनीय प्रकाश होता है, परन्तु जगत्में ऐसे कितने जीव हैं, जो भगवान्के मिलनका अनुभव करते हों? ऐसे भगवत्कृपा-प्राप्त महान् आत्माओंका अभाव नहीं है, परन्तु उनकी सख्या अँगुलियोंपर गिनी जा सकती है—वे बहुत थोड़े हैं। जगत्में ऐसे लोग बहुत अधिक हैं, जो भगवान्से वियुक्त हैं और उनके वियोगमें ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें अपना जीवन किस प्रकार बिताना चाहिये, इस बातकी शिक्षा भी गोपियोंके जीवनसे ही मिलनी चाहिये। और यही कारण है कि भगवान्के वियोगमें भी जीवन धारण करके वे जगत्का हित करती रहती हैं। श्रीमद्भागवतमें ऐसा वर्णन आता है कि श्रीकृष्णके बिना गोपियोंके लिये एक क्षण भी सैकड़ों युगके समान हो जाता था—पलक गिरनेका व्यवधान भी उन्हें असह्य था और गिरनेपर वे पलक बनानेवाले ब्रह्माको उपालम्भ भी देती थीं। फिर भी वे विरहमें जीवित रहीं, इसका कारण प्रेमकी पूर्णता ही है। प्रेमका यह स्वभाव है कि वह प्रेमीमें इस भावको भर देता है कि मुझे चाहे जितना दु ख हो, परन्तु मेरे प्रियतमको दु खका लेश भी स्पर्श न कर सके। गोपियाँ सोचती थीं—'श्रीकृष्ण हमसे अलग रहनेमें ही जगत्का कल्याण सोच रहे हैं, वे हमारे वियोगी जीवनसे जीवोंका हित करना चाहते

जगत्‌के जीव दुखी हैं, उन्हें उस दुःखसे त्राण पानेका सरल-से-सरल मार्ग नहीं प्राप्त हुआ है, तबतक जगत्‌का हित चाहनेवाले कैसे सुखी हो सकते हैं। सबके अतृप्त रहनेपर वे कैसे तृप्त हो सकते हैं। इसीसे परमदयालु व्यासदेव सरस्वती-तटपर बैठकर इस बातपर विचार करने लगे कि मैंने अपने शरीर, मन और वाणीसे जगत्‌का जितना हित हो सकता था, उसमें कोई कोर-कसर नहीं रक्खी; फिर भी मेरा हृदय सन्तुष्ट नहीं, इसका कुछ-न-कुछ कारण अवश्य होना चाहिये। मैंने आश्रमोचित नियमोंका उल्लङ्घन नहीं किया, निष्कपट-भावसे वेदोंका स्वाध्याय, गुरुजनोंकी सेवा और अग्निहोत्र किये और उनकी आज्ञाका पालन भी किया। वेद-उपनिषद् आदिके स्वाध्यायमें स्त्री, शूद्र और ब्राह्मणबन्धुओंका अधिकार नहीं है—ऐसा देखकर मैंने महाभारतके बहाने उन लोगोंके लिये वेद-उपनिषदोंका वास्तविक अर्थ प्रकट कर दिया। इतना सब होनेपर भी मेरा अन्तःकरण सन्तुष्ट नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि मैं अपना कर्तव्य पालन करनेमें—अपना काम पूरा करनेमें समर्थ नहीं हुआ हूँ। क्या इसका यही कारण तो नहीं है कि अबतक मैंने भगवान्‌को प्राप्त करानेवाले उपायोंका, भागवतधर्मका प्रायः वर्णन नहीं किया है? क्योंकि भागवतधर्म परमात्मा और उनके प्रेमी परमहंस दोनोंके ही प्यारे हैं।

भगवान् व्यासदेव एकान्तमें बैठकर इसी प्रकार चिन्ता कर रहे थे कि देवर्षि नारद वहाँ आ गये। महर्षि वेदव्यासने उनका स्वागत किया और अपने चित्तकी अशान्तिका कारण पूछा। देवर्षि नारदने कहा, 'महर्षे! आपने अबतक भगवान्‌के निर्मल यशका प्रायः निरूपण नहीं किया है। जिस क्रिया, सङ्कल्प और जीवनके द्वारा आत्मतुष्टि न प्राप्त हो वह अपूर्ण है। अभी उसकी पूर्णतामें कुछ त्रुटि है। आपने धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका जैसा वर्णन किया वैसा श्रीकृष्णका नहीं किया। संतोंकी वाणी निरन्तर भगवत्-गुणानुवादोंका गायन करती रहती है। इसीमें उसकी सफलता भी है। ज्ञानकी ऊँची-से-ऊँची अनुभूति भी भगवद्भावके बिना चमकती नहीं। आप श्रीकृष्णकी लीलाका स्मरण करें, बिना उसके आपकी आत्मग्लानि मिट नहीं सकती। केवल धर्म-कर्मके निर्णय और विधि-निषेधमें ही जीवनकी पूर्णता नहीं है। यह जीवन भगवान्‌की लीलाओंसे ही कृतकृत्य होता है। आप स्वयं भगवान्‌के अवतार हैं, आपसे ये बातें छिपी नहीं हैं; फिर भी आपके प्रश्नका सम्मान करनेके लिये मैंने ये बातें कही हैं। मुझे तो भगवान्‌के लीला-गायनसे ही आत्मतुष्टि प्राप्त हुई है।'

देवर्षि नारदने वेदव्यासको संक्षेपसे बताया कि 'मैंने अपने पिता ब्रह्मासे वह ज्ञान प्राप्त किया है, जो कि उन्होंने स्वयं भगवान् विष्णुसे प्राप्त किया था। इस प्रकार मैं तुम्हें जिस ज्ञानका उपदेश कर रहा हूँ वह विष्णुसे ब्रह्माको, ब्रह्मासे मुझको और मुझसे तुमको प्राप्त हो रहा है। तुम संसारमें इसका विस्तार करो। इसे सेवन करनेवाले जीवोंको शान्ति मिलेगी और तुम्हें भी आत्मतुष्टि प्राप्त होगी।' यों कहकर देवर्षि नारद भगवन्नामका दिव्य संगीत गाते हुए विदा हुए और भगवान् व्यासने श्रीमद्भागवतसंहिताकी रचना की।

श्रीमद्भागवत-शास्त्रका प्रणयन तो हो गया; परन्तु अब इसका अध्यापन किसको किया जाय, यह प्रश्न उठा। महर्षि वेदव्यासने योगदृष्टिसे देखा तो उन्हें अपने पुत्र श्रीशुकदेवका ध्यान आया। शुकदेव निवृत्तिपरायण एवं ब्रह्मनिष्ठ थे। वे अध्ययन और अध्यापनसे अलग रहकर समाधिमें ही स्थित रहते थे। व्यासदेवके मनमें कई बार ऐसा संकल्प उठा करता था कि शुकदेव अध्ययनाध्यापनमें लगें, परन्तु उनकी रुचि इस ओर न थी। वेदव्यासने जब ध्यान-बलसे देखा तो उन्हें मालूम हुआ कि श्रीशुकदेवके अन्तस्तलमें पहलेसे ही

तथा देवताओंकी मानसिक प्रेरणासे कुन्तीके द्वारा पाण्डवोंकी उत्पत्ति हुई थी।

५—यज्ञावशिष्ट हविष्य अथवा अभिमन्त्रित चरुके द्वारा सृष्टि।

६—काल-क्रमसे उपर्युक्त शक्तियोंका ह्रास हो जानेसे केवल स्त्री-पुरुष-संयोगसे होनेवाली सृष्टि।

७—ब्रह्मचर्य, सदाचार, संयम आदिके अभावसे पुरुष एवं स्त्रियोंका शक्तिहीन होना तथा उनके संयोगके फलस्वरूप अवाञ्छित सृष्टिकी वृद्धि।

इस प्रकारसे ह्रास होते-होते मानसी सृष्टिसे बैजी सृष्टिकी श्रेणी आती है और आगे चलकर नपुंसकता और वन्ध्यात्व ही शेष रह जाता है। पुराणोंमें और श्रीमद्भागवतमे भी जो नाना प्रकारकी सृष्टियोंका वर्णन आता है, उनके प्रति अविश्वास न करके विचारदृष्टिसे देखना चाहिये और एक-एक व्यक्तिके जो बहुत-बहुत पुत्रोंका वर्णन आता है, उसकी भी संगति लगानी चाहिये।

श्रीमद्भागवतमें विसर्गका बड़ा ही सुन्दर, बड़ा ही विस्तृत और विज्ञानानुमोदित वर्णन हुआ है। विसर्गका लक्षण वर्णन करते हुए कहा गया है—

विसर्गः पौरुषः स्मृतः। (२।१०।३)

पुरुषानुगृहीतानामेतेषां वासनामयः।
विसर्गोऽयं समाहारो बीजाद् बीजं चराचरम्॥
(१२।७।१२)

'ब्रह्माकी सृष्टिका नाम 'विसर्ग' है। ब्रह्माके द्वारा जीवोंकी वासनाके अनुसार जो एक बीजसे दूसरे बीजका होना—चराचरकी सृष्टि है, वही विसर्ग है। वासनाविशिष्ट सृष्टिका नाम विसर्ग है।'

यह विसर्ग भगवान्के सर्वोत्कृष्ट ज्ञान, सर्वोत्कृष्ट शक्ति और सर्वोत्कृष्ट क्रियाका बोधक है। जगत्की प्रत्येक विचित्रता भगवान्के कौशलका स्मरण कराती है और उनकी क्रीडा देख-देखकर भक्त मुग्ध होता रहता है। श्रीमद्भागवतमें विसर्गतत्त्वका वर्णन इसीलिये हुआ है कि लोग विसर्गके द्वारा आश्रयभूत भगवान्को ढूँढ़ निकालें और प्राप्त करें।

स्थान

आश्रयस्वरूप परमात्मामें विवर्त अथवा परिणामके द्वारा महत्तत्त्वादिकी विराट् सृष्टि और विराट्के अन्तर्गत एक ब्रह्माण्डकी सृष्टि किस प्रकार होती है—इन दोनों बातोंका वर्णन सर्ग और विसर्गके द्वारा किया जाता है। सर्ग सामान्य सृष्टि है और विसर्ग विशेष। जैसे एक ब्रह्माण्डकी सृष्टि होती है, वैसे ही असंख्यकोटि ब्रह्माण्डोंकी भी सृष्टि होती है। सृष्टिवर्णनके पश्चात् उसकी स्थितिका वर्णन होना चाहिये। 'स्थिति' शब्दका तात्पर्य है कि किन मर्यादाओंके पालनसे ब्रह्माण्ड स्थिर है, एक ब्रह्माण्डमें कितने लोक हैं और उनमें कौन-कौन-सी मर्यादाएँ हैं, लोकोंका विस्तार कितना है और उनका धारण किस प्रकार होता है—इन सब बातोंका विचार। इस विचारसे भगवान्की सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है। वे ही समस्त लोकोंके धारक, मर्यादा-प्रवर्त्तक और संरक्षक हैं—केवल एकब्रह्माण्डान्तर्गत लोकोंके ही नहीं, असंख्यब्रह्माण्डान्तर्गत लोकोंके। इसीसे श्रीमद्भागवतमें स्थितिका लक्षण करते हुए कहा गया है—'स्थितिर्वैकुण्ठविजयः।' अर्थात् भगवान्की सर्वश्रेष्ठताका ख्यापन ही स्थिति है।

मनुष्यकी दृष्टि अत्यन्त स्थूल है। वह अपने आस-पासके कुछ स्थूल स्थानोंको ही देख पाता है। सूक्ष्म जगत्के सम्बन्धमें साधारण मनुष्योंको कुछ पता नहीं। परन्तु मनुष्यकी जिज्ञासा बहुत बड़ी है। वह बहुत दूर-से-दूर स्थानों और सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुओंको जाननेकी इच्छा करता है। इसी इच्छाके वश होकर आधुनिक मनुष्योंने पृथ्वीके कुछ अंशोंकी खोज की है। अभीतक स्थूल पृथ्वीकी भी खोज पूरी नहीं हुई है। अनेकों जङ्गल, रेगिस्तान, पर्वतोंकी चोटी और समुद्रके तल ऐसे पड़े

तो केवल भगवान् ही जानते हैं; हमें तो केवल फल देखकर आनन्दित होते रहना चाहिये।

'संसार'का अर्थ है सरकनेवाला। संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जो परिवर्तित न होती हो। 'मृत्यु' शब्दका अर्थ भी ठीक वैसा ही—दृश्यसे अदृश्य हो जाना है। संसारकी यही स्थिति—गति है कि वह दृश्यसे अदृश्य और अदृश्यसे दृश्य हो रहा है। संसारके सारे पदार्थ मृत्युकी ओर जा रहे हैं—इतना ही नहीं, वे मृत्युरूप ही हैं। जो बुद्धिमान् हैं, जिनका अन्तःकरण शुद्ध है, वे परीक्षित्‌की ही भाँति आनेवाली मृत्युको देखकर संसारकी ओरसे मुँह मोड़ लेते हैं और परमात्माकी ओर अग्रसर होते हैं। श्रीमद्भागवतके श्रवणका अधिकारी कौन है? इसका उत्तर है—परीक्षित्! वे संसारको छोड़कर परमात्माकी ओर जाना चाहते हैं। इसी प्रकार शुकदेवजी भी ब्रह्मानन्दका परित्याग करके भगवान्‌की लीलामें, कथामें रमे हुए आत्माराम पुरुष हैं। श्रीमद्भागवतके प्रवचनका अधिकारी कौन है? इसका यही उत्तर है कि जो ब्रह्मानन्दकी अनुभूति प्राप्त करके श्रीकृष्ण-लीलारसके समास्वादन-में संलग्न है। ऐसे श्रोता-वक्ताकी उपस्थितिमें जो उज्ज्वल रसका महान् समुद्र उद्वेलित होगा, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

परीक्षित् भगवान्‌के अत्यन्त प्यारे भक्त हैं। भगवान्‌ने परीक्षित्‌की माताके गर्भमें प्रवेश करके उन्हें जीवन-दान किया था। परीक्षित् भगवान्‌के थे, कृतकृत्य थे; उन्हें कुछ प्राप्त करना अवशेष न था। फिर भी उन्होंने भगवान्‌की प्रेरणासे जगत्‌के हितके लिये समस्त मृत्युग्रस्त प्राणियोंके उद्धारकी दृष्टिसे अनेकों प्रश्न किये और भगवान् श्रीशुकदेवके मुखसे भागवतधर्म, पराभक्ति और परमज्ञान एवं भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाका वर्णन सुनकर परमानन्दका अनुभव किया। परीक्षित्‌के प्रश्नोंके उत्तरमें श्रीशुकदेवजीने वेदोंके सारको अपने अनुभवके रससे युक्त करके सारे जगत्‌को वितरण किया। श्रीशुकदेवजीका वही अनुपम दान श्रीमद्भागवतके नामसे विख्यात है, जो कि भगवान्‌की दयालुताका प्रत्यक्ष प्रमाण है, जिसके दर्शन, स्पर्श, स्मरण, अध्ययन, श्रवण आदिसे अन्तःकरण शुद्ध होता है और भगवान् एवं उनकी दयाका साक्षात् अनुभव प्राप्त होता है।

—शान्तनुविहारी द्विवेदी

भागवतसे धर्मरसकी उत्पत्ति

(महात्मा गाँधीजी)

आज मैं देख सकता हूँ कि भागवत ऐसा ग्रन्थ है, जिसे पढ़कर धर्मरस उत्पन्न किया जा सकता है। मैंने गुजरातीमें उसको बड़े रससे पढ़ा है। परन्तु मेरे इक्कीस दिनके उपवासमें जब मैंने भारतभूषण पण्डित मदनमोहन मालवीयजीके शुभ मुखसे भागवतके कुछ अंश सुने, तब मुझे ऐसा लगा कि, बचपनमें इनके-जैसे भागवत-भक्तके मुखसे मैं सुनता तो भागवतपर मेरी प्रीति बचपनमें ही अच्छी हो जाती। उस उम्रमें पड़े हुए शुभ-अशुभ संस्कार बहुत गहरी जड़ जमाते हैं, इसका मैं खूब अनुभव करता हूँ और इससे उस उम्रमें मुझे जो कितने ही उत्तम ग्रन्थ सुननेका अवसर न मिला, इसका मुझे खेद है।

बीचमें जम्बूद्वीप स्थित है। आजकल जितनी पृथ्वी स्थूल दृष्टिसे उपलब्ध होती है वह जम्बूद्वीपके ही अन्तर्गत है। इसका प्रमाण यह है कि समस्त पृथ्वी क्षार समुद्रसे ही परिवेष्टित है। बल्कि यह सम्पूर्ण पृथ्वी जम्बूद्वीपका एक अंश है। जम्बूद्वीपमें नौ खण्ड अर्थात् नौ वर्ष हैं, उनमेसे एक भारतवर्ष है और बाकी देवलोकके ही भेद हैं।

तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्ट वर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति।

(श्रीमद्भा० ५। १७। ११)

'अर्थात् जम्बूद्वीपमें भी भारतवर्ष ही कर्मक्षेत्र है, दूसरे आठ वर्ष स्वर्गसे लौटे हुए लोगोंके लिये शेष पुण्यका उपभोग करनेके स्थान हैं। उनका नाम भौमस्वर्ग है।' पाँचवें स्कन्धके उन्नीसवें अध्यायमें वर्णन हुआ है कि केवल इस भारतवर्षमें ही पाप-पुण्यादिके भेद हैं, और यहीं उनका फल भी मिलता है।

इन विचारोंसे यह सिद्ध हुआ कि एक ब्रह्माण्डमें चौदह लोक हैं, उनमें भूर्लोक एक लोक है। भूर्लोकमें सात द्वीप हैं, और उनमें जम्बूद्वीप एक है। जम्बूद्वीपके एक वर्षका नाम भारतवर्ष है। मनुष्योंके रहनेयोग्य केवल भारतवर्ष ही है। दूसरे वर्षोंका वर्णन देवलोकोंके समान प्राप्त होता है।

यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम्॥
स्वस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्वदुःखविवर्जिताः।
दश द्वादश वर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः॥
न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै।
कृतत्रेतादिकं नैव तेषु स्थानेषु कल्पना॥

(विष्णुपुराण २। २। ५३-५५)

'जम्बूद्वीपके किम्पुरुषादि आठ वर्षोंमें शोक, श्रम, उद्वेग और क्षुधाका भय आदि नहीं है। वहाँकी प्रजा स्वस्थ, निरातङ्क और सुखी है। उनकी आयु दस-बारह हजार वर्षकी होती है। उनमें वर्षा कभी नहीं होती, पार्थिव जलसे काम चलता है। उनमें युगभेद भी नहीं है।'

इससे सिद्ध होता है कि भारतवर्षके अतिरिक्त पृथ्वीके दूसरे भाग स्थूल नहीं हैं। जितने देश अथवा द्वीप उपलब्ध होते हैं, वे सब भारतवर्षके ही अन्तर्गत हैं। वर्तमान कालमें एशिया, अमेरिका, यूरोप, अफ्रीका आदि उनका नाम हो गया है सही, परन्तु हैं वे सब भारतवर्षके ही प्रदेशविशेष। उनके नाम विष्णुपुराणमें गिनाये हैं—

भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान् निशामय।
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वारुणः।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः॥

(विष्णुपुराण २। ३। ६७)

'भारतवर्षके नौ भाग हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व और वारुण—इन आठोंके अतिरिक्त नवाँ यह भारतद्वीप है। यह चारों ओरसे समुद्रसे घिरा हुआ है।'

मत्स्यपुराणमें भी ठीक इसी आशयका श्लोक मिलता है—

भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदान् निबोधत।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः॥
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः।

(अध्याय ११४)

'इस भारतवर्षके नौ भेद हैं। उनमें हिमालयसे लेकर कन्याकुमारीतक फैला हुआ, समुद्रसे घिरा हुआ यह भारतद्वीप है।'

इन वचनोंका तात्पर्य यह है कि आजकल जितनी पृथ्वी उपलब्ध होती है, उसका नाम भारतवर्ष है और आजकल जिसको हिन्दुस्थान कहा जाता है, वह भारत-

है वहाँ अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अव्यय आदि निर्विशेष ही बतलाया गया है।'

विशिष्टाद्वैतके प्रधान आचार्य श्रीरामानुजाचार्य शङ्कराचार्यके ठीक विपरीत ब्रह्मको निर्गुण न मानकर सगुण ही मानते हैं। उनके शब्दोंमें ब्रह्म 'अशेष-कल्याणगुणगणाकर' और 'निखिलहेयप्रत्यनीक' है। वह सर्वेश्वर, सर्वाधार, सर्वशक्तिमान्, निखिलकारणकारण, अन्तर्यामी, चिदचिद्विशिष्ट, निराकार, साकार, विभव-व्यूह-अर्चा आदिके रूपमें अवतार ग्रहण करनेवाले हैं। जहाँ भगवान्‌को 'निर्गुण' कहा गया है, वहाँ उसका यह तात्पर्य समझना चाहिये कि ब्रह्ममें प्राकृत गुण नहीं हैं और जहाँ उसको 'सगुण' कहा गया है, वहाँ उसको दिव्य अप्राकृत गुणोंसे युक्त समझना चाहिये। जीव और जगत् उसके शरीर हैं, और उन दोनोंसे नित्य युक्त ब्रह्म है।

अत्रेदं तत्त्वं चिदचिद्वस्तुशरीरतया तत्प्रकारं ब्रह्मैव सर्वदा सर्वशब्दाभिधेयम्। तत् कदाचित् स्वस्मात् स्वशरीरतयापि पृथग् व्यपदेशानर्हसूक्ष्म-दशापन्नचिदचिद्वस्तुशरीरं तत्कारणावस्थं ब्रह्म। कदाचिच्च विभक्तनामरूपव्यवहारार्हस्थूलदशापन्न-चिदचिद्वस्तुशरीरं तच्च कार्यावस्थमिति कारणात् परस्मात् ब्रह्मणः कार्यरूपं जगदनन्यत्।

(श्रीभाष्य २। १। १५)

"इस विषयमें तत्त्व इस प्रकार है। ब्रह्म ही सदा 'सर्व' शब्दका वाच्य है, क्योंकि चित् और जड उसीके शरीर या प्रकारमात्र हैं। उसकी कभी कारणावस्था होती है और कभी कार्यावस्था। कारण अवस्थामें वह सूक्ष्मदशापन्न होता है, नामरूपरहित जीव और जड उसका शरीर होता है। और कार्यावस्थामें वह (ब्रह्म) स्थूलदशापन्न होता है, नाम-रूपके भेदके साथ विभिन्न जीव और जड उसके शरीर होते हैं। क्योंकि परब्रह्मसे उसका कार्य जगत् भिन्न नहीं है।"

द्वैतसम्प्रदायाचार्य मध्वाचार्यने दो प्रकारके तत्त्व माने हैं—एक स्वतन्त्र और दूसरा अस्वतन्त्र। अशेषगुण-सम्पन्न भगवान् विष्णु स्वतन्त्र तत्त्व हैं और जीव एवं जगत् अस्वतन्त्र तत्त्व हैं। स्वतन्त्र तत्त्व भाव और अभाव दोनोंसे ही विलक्षण है। जीव और जगत् भगवान्‌के अधीन हैं। रामानुजके मतमें ईश्वर ही जगत्‌के रूपमें परिणत हुआ है परन्तु मध्वाचार्यके मतमें जगत् और भगवान्‌का पार्थक्य नित्य है। भगवान् नियामक हैं और जगत् नियम्य। रामानुजके मतमें जीव और जगत्‌में विजातीय और सजातीय भेद तो नहीं हैं पर स्वगतभेद है। दोनों ही चेतन हैं। मध्वमतमें जीव और ब्रह्म सर्वथा पृथक् हैं। दोनोंका सेव्य-सेवक-सम्बन्ध है।

द्वैताद्वैतसम्प्रदायके आचार्य निम्बार्काचार्य ब्रह्म, जीव और जडको अर्थात् चेतन और अचेतनको अत्यन्त भिन्न और अत्यन्त अभिन्न मानते हैं। जीव और जगत् दोनों ही ब्रह्मके परिणाम हैं। ब्रह्म ही जगत्‌का उपादान और निमित्त कारण है। वही जगत्‌का स्रष्टा और संहारक है, वही जगत्‌से परे है। इस दृष्टिसे जगत् और ब्रह्मका भेद है। जगत् ब्रह्ममें ही प्रतिष्ठित है, ब्रह्मसे भिन्न जगत् कोई वस्तु नहीं है; इसलिये ब्रह्म और जगत् अभिन्न हैं। जगत् गुण है और ब्रह्म गुणी। गुणी और गुणमें कोई भेद नहीं होता, और गुणी गुणसे परे होता है। ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों ही है। इन दोनोंका विरोध केवल शाब्दिक है, वास्तविक नहीं। गुणी कहनेपर भी गुणातीतका बोध हो जाता है। ब्रह्मका स्वरूप अचिन्त्य, अनन्त, निरतिशय, आश्रय, सर्वज्ञ, सर्वशक्ति, सर्वेश्वर है। श्रीकृष्णका ही नामान्तर ब्रह्म है।

विशुद्धाद्वैतसम्प्रदायके आचार्य श्रीवल्लभाचार्यने भगवान्‌को समस्त विरुद्ध धर्मोंका आश्रय माना है। वे निर्गुण होनेपर भी सगुण हैं, कारण होनेपर भी कारण नहीं हैं, अगम्य होनेपर भी सुगम हैं, सधर्मक होनेपर

समुद्र, नदी, पर्वत आदि किसी रूपमें क्यों न हो।* वास्तवमें बात यह है कि पञ्चीकरण-प्रक्रियाके अनुसार पृथ्वी-तत्त्व-प्रधान वायुमण्डलको पृथ्वी कहते है और जल-तत्त्व-प्रधान वायुमण्डलको समुद्र कहते हैं। इसी दृष्टिसे पृथ्वीकी लबाई-चौड़ाई पचास करोड़ योजनकी कही गयी है। और सात प्रकारके विभिन्न समुद्रोंका वर्णन भी इसी दृष्टिसे आया है। वर्तमान पृथ्वीकी मध्यरेखा अर्थात् व्यास आठ हजार मील अर्थात् एक हजार योजन है। गोल पदार्थके घनफल निकालनेकी रीतिसे यदि पृथ्वीका परिमाण निकाला जाय, तो वह पचास कोटि योजन होगा। यह एक दूसरी ही पद्धति है। पृथ्वी, सूर्य आदि ग्रहोंका सम्बन्ध प्राचीन और अर्वाचीन शास्त्रोंका प्राय. एक-सा ही है और वैज्ञानिकों-ने अबतक इस दिशामें कोई निश्चित मार्ग निकाला भी नहीं है। इसलिये इस विषयमें उनके अनिश्चित मतके साथ शास्त्रीय मतकी तुलना न करके शास्त्रीय वर्णनको ही प्रामाणिक मानना चाहिये।

प्राकृत सृष्टि (सर्ग) और ब्रह्माण्डान्तर्गत विविध सृष्टि (विसर्ग) जिस प्रकार भगवान्की महिमाको प्रकट करनेवाली है वैसे ही एक ब्रह्माण्ड और असख्य ब्रह्माण्डोंकी स्थिति भी भगवान्की अद्भुत धारण-शक्ति अथवा आधार-शक्तिकी महिमाको प्रकट करती है। प्रत्येक लोकमें कर्तव्य-अकर्तव्य, उनके सुफल-कुफल और महान् नियन्त्रणको देखकर सहृदय पुरुष नियन्त्रण करनेवाले भगवान्के चरणोंपर निछावर हो जाता है। इस नियन्त्रण और न्यायके साथ ही भगवान्की दया भी पूर्णतः रहती है। इसीलिये स्थिति अथवा मर्यादाका वर्णन करके पोषण अर्थात् भगवान्के अनुग्रहका वर्णन करना प्रासङ्गिक हो जाता है। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—'पोषणं तदनुग्रहः।' पोषण अर्थात् भगवान्की अहैतुकी और सर्वतोमुखी दया।

पोषण

श्रीमद्भागवतके छठे स्कन्धमें मनुष्य, देवता और दैत्य—तीनोंपर ही भगवान्के अहैतुक अनुग्रहका दिग्दर्शन कराया गया है। मनुष्योंमें अजामिल महान् दुराचारी और पापिष्ठ था। उसने जान-बूझकर भगवान्-का नाम भी नहीं लिया, मरते समय अपने पुत्रको पुकारा; फिर भी भगवान्ने उसपर महान् अनुग्रह किया और उसको सद्गति प्रदान की। देवताओंमें इन्द्रके द्वारा गुरुका अपमान और विश्वरूप ब्राह्मण-का वध भी हो गया था, परन्तु भगवान्ने उनको अपना लिया। दैत्योंमें वृत्रासुर बड़ा ही भयङ्कर था, वह हाथीसमेत इन्द्रको निगल गया; फिर भी भगवान्ने उसे अपना लिया। इन आख्यानोंसे यह सिद्ध होता है कि भगवान् जाति-पाँति, धर्म-कर्म और आचार-विचारपर दृष्टि न डालकर सारे जगत्को एक-समान अपनानेके लिये उद्यत हैं। उद्यत ही क्यों, सबको अपनाये हुए है। यह सारा जगत् भगवान्की गोदमें है और उनकी दयाके अनन्त समुद्रमें डूब-उतरा रहा है। सर्वत्र दया-ही-दयाका साम्राज्य है। चाहे कोई भी हो, कैसा भी क्यों न हो, वह भगवान्की अनन्त दयाका स्मरण करके सर्वदाके लिये आनन्दमें निमग्न हो सकता है। परमात्माकी इस दयाके स्मरण करानेवाले अनेकों चरित्र श्रीमद्भागवतमें है। उन्हें पढ़-सुनकर आश्रयस्वरूप भगवान्की दयामें निमग्न होकर सभी अपने जीवनको कृतार्थ कर सकते हैं।

ऊति

प्रश्न यह होता है कि भगवान्की इतनी दया है और जगत्के जीव क्षुद्र सुखोंके लिये विषयोंमें भटक रहे हैं—इसका कारण क्या है। भगवान् अपनी दयासे इन जीवोंकी रक्षा क्यों नहीं करते? इस प्रश्नका उत्तर

* रविचन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभास्यते।
ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता॥
(विष्णुपुराण २।७।३)

तथा भगवान्‌से अत्यन्त परे, सर्वथा अचिन्त्य और अनिर्वचनीय भी।

आश्रयतत्त्वका लक्षण बतलानेके लिये ऊपर जिन श्लोकोंका उल्लेख किया गया है, उनमें तीन बातोंकी प्रधानता है—अधिष्ठानता, साक्षिता, निरपेक्षता। सृष्टि और प्रलय, भाव और अभाव दोनोंसे वह परे है और दोनोंमें है। उसीसे इन दोनोंकी सत्ता है। उसके बिना ये नहीं रह सकते और इनके बिना भी वह रहता है। आध्यात्मिक पुरुषका अर्थ है—नेत्रादि इन्द्रियोंका अभिमानी जीव; आधिदैविक पुरुषका अर्थ है—नेत्रादि इन्द्रियोंके अधिष्ठातृदेवता; आधिभौतिक पुरुषका अर्थ है—नेत्रगोलक आदिवाला स्थूलशरीर। ये तीनों सापेक्ष हैं। यदि इनमेंसे एक भी न रहे, तो शेष दो व्यर्थ हो जायँगे। दृश्यके बिना दर्शन और द्रष्टा अपना काम नहीं कर सकते, दर्शनके बिना दृश्यकी दृश्यता और द्रष्टाका द्रष्टृत्व दोनों ही लुप्त हो जाते हैं। यदि द्रष्टा ही न हो, तब तो दर्शन और दृश्यकी कल्पना ही नहीं हो सकती। इसलिये ये सब सापेक्ष और बाधित हैं। इन तीनोंके भाव और अभावको देखनेवाला आत्मा इनका निरपेक्ष साक्षी है। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें विश्व, तैजस, प्राज्ञके रूपमें उनका अनुभव करनेवाला और समाधि अवस्थामें उनसे परे रहनेवाला एवं मूर्च्छादि अवस्थाओंमें उनके अभावका अनुभव करनेवाला आत्मा ही आश्रय है।

इससे यह नहीं समझना चाहिये कि आश्रयतत्त्वकी इस व्याख्यासे ब्रह्म ही आश्रयतत्त्व सिद्ध होता है, भगवान् श्रीकृष्ण नहीं। श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण और ब्रह्म दो नहीं, एक ही हैं। ब्रह्मसूत्रके ब्रह्म, गीताके पुरुषोत्तम और श्रीमद्भागवतके श्रीकृष्ण एक ही परम वस्तु हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

वदन्ति तत्तत्त्वविदः तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते॥

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम्।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया॥

भाव यह कि तत्त्ववेत्ता लोग एक ही अद्वितीय ज्ञान-स्वरूप तत्त्वको ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् कहते हैं। श्रीकृष्ण ही जगत्के असंख्य जीवोंके एकमात्र आत्मा हैं। जगत्के कल्याणके लिये वे भी आत्ममायासे शरीरधारीकी भाँति प्रतीत होते हैं।

वास्तवमें भगवान्‌में शरीर और शरीरीका भेद नहीं होता। जीव अपने शरीरसे पृथक् होता है; शरीर उसका ग्रहण किया हुआ है और वह उसे छोड़ सकता है। परन्तु भगवान्‌का शरीर जड नहीं, चिन्मय होता है। उसमें हेय-उपादेयका भेद नहीं होता, वह सम्पूर्णतः आत्मा ही है। शरीरकी ही भाँति भगवान्‌के जो गुण होते हैं, वे भी आत्मस्वरूप ही होते हैं। इसका कारण यह है कि जीवोंमें जो गुण होते हैं, वे प्राकृत होते हैं; वे उनका त्याग कर सकते हैं। भगवान्‌के गुण निजस्वरूपभूत और अप्राकृत हैं, इसलिये वे उनका त्याग नहीं कर सकते। एक बात बड़ी विलक्षण है कि भगवान्‌के शरीर और गुण जीवोंकी ही दृष्टिमें होते हैं, भगवान्‌की दृष्टिमें नहीं। भगवान् तो निजस्वरूपमें, समत्वमें ही स्थित रहते हैं। क्योंकि वहाँ तो गुण-गुणीका भेद है ही नहीं। भगवान्‌के इसी स्वरूपकी ओर सभी आचार्योंका लक्ष्य है। उनकी वर्णनशैली विभिन्न होनेके कारण कहीं-कहीं परस्पर विरोध प्रतीत होता है, परन्तु विचार-दृष्टिसे देखनेपर आश्रयस्वरूप परब्रह्म श्रीकृष्णमें सबका समन्वय हो जाता है। भगवान्‌के ये स्वरूपभूत अचिन्त्य गुण उनकी नित्य शक्ति ह्लादिनीके ही प्रकाश हैं। ह्लादिनी शक्ति ही श्रीराधिकाजी हैं, जो भगवान्‌से सर्वथा अभिन्न हैं। इस दृष्टिसे श्रीराधाकृष्णको भी आश्रयतत्त्व कहना ठीक ही है। इसी दशम तत्त्व आश्रयतत्त्वको विशुद्ध रूपमें जानने और प्राप्त करनेके लिये शेष नौ तत्त्वों—सर्ग,

करते हैं। इन सबका वर्णन श्रीमद्भागवतमें स्थान-स्थानपर आता है। वैवस्वत मन्वन्तरमें भगवान्‌का वामनावतार मन्वन्तरावतार है। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज सप्तर्षि हैं। आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और ऋभुगण देवता हैं। पुरन्दर नामके इन्द्र हैं। वैवस्वत मनुके दस पुत्र हैं—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि। इसी प्रकार पृथक्-पृथक् प्रत्येक मनु अपने शासनकालमें सद्धर्मकी रक्षा और प्रचार करते हैं और इनके पुत्र, ऋषि, देवता आदि स्थान-स्थानपर गुप्तरूपसे रहकर धार्मिकोंकी सहायता करते हैं, अधिकारी पुरुषोंके सामने प्रकट होते हैं और उनके उद्धारका साधन भी बतलाते हैं। इसीसे श्रीमद्भागवतमें मन्वन्तरकी व्याख्या 'सद्धर्म' शब्दसे की गयी है।

समयकी गणना करनेकी इस महान् पद्धतिको देखकर बहुत-से लोग चकरा जाते हैं। और वे ऐसा मान बैठते हैं कि इतना समय हुआ नहीं है, परन्तु समयके सम्बन्धमें इतनी विशाल कल्पना कर ली गयी है। उन्हें समझना चाहिये कि मन्वन्तरोंकी गणनाके अनुसार इस कल्पकी पृथ्वीकी जितनी आयु है, उतनी ही आयु वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे भी है। इस कल्पके चौदह मन्वन्तरोंमेंसे सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है, जो कि पृथ्वीकी तहों और परतोंकी जाँचसे भी ठीक सिद्ध होता है। भारतीय शास्त्रोंकी परम्परा जबसे प्राप्त होती है, तबसे मन्वन्तरकी गणनाका यही क्रम है। ब्रह्माके एक दिनका जो हिसाब गीतामें लिखा हुआ है वही हिसाब और वही श्लोक शाकल्यसंहिता, निरुक्त, महाभारत, समस्त पुराण और ज्योतिषके ग्रन्थोंमें भी पाया जाता है। मनुका जैसा चरित्र भारतीय ग्रन्थोंमें वर्णित हुआ है, दूसरे देशोंमें वैसे ही चरित्रवाले दूसरे व्यक्तियोंका वर्णन मिलता है। जैसे वैवस्वत मनु प्रलयके समय वनस्पतियोंके समस्त बीज और सप्तर्षियोंको लेकर एक नावपर बैठ जाते हैं (देखिये अष्टम स्कन्धके अन्तिम दो अध्याय) और वह नाव हिमालयकी चोटीसे बाँध दी जाती है। शतपथब्राह्मणमें इसका वर्णन मिलता है। बाइबिलमें भी ठीक वैसी ही कथाका उल्लेख है। नोआ नामके एक व्यक्ति प्रलयके समय पृथ्वीके समस्त बीजोंको लेकर नावपर सवार हो जाते हैं और उनकी नाव पहाड़की चोटीसे बाँध दी जाती है। प्रलयका जल घट जानेपर फिर उन्हींके द्वारा सृष्टि होती है और वे बहुत दिनोंतक जीवित रहते हैं। न केवल बाइबिलमें, विभिन्न जातियोंके अन्यान्य धर्मग्रन्थोंमें भी इस प्रकारकी कथाएँ प्राप्त होती हैं।

ईशानुकथा

एक मन्वन्तरके बाद दूसरा मन्वन्तर और एक कल्पके बाद दूसरा कल्प, इस प्रकार सृष्टिकी परम्परा चलती रहती है। सृष्टिके बाद प्रलय और प्रलयके बाद सृष्टि, यह क्रम अनादिकालसे चल रहा है और प्रवाहरूपसे नित्य है। यदि जीव भगवान्‌का आश्रय लेकर इस प्रवाह-परम्परासे ऊपर न उठ जाय, तो उसे भटकते ही रहना पड़ेगा। इसीसे श्रीमद्भागवतमें ईशानुकथाका वर्णन आता है। भगवान् और भगवान्‌के भक्तोंके अनेक आख्यानोंसे युक्त चरित्रको 'ईशानुकथा' कहते हैं। हिंदू-धर्मग्रन्थोंमें यह बात एक स्वरसे स्वीकार की गयी है कि जगत्‌की रक्षा करनेके लिये स्वयं भगवान् समय-समयपर अवतार ग्रहण किया करते हैं। श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें कुन्तीकी स्तुतिमें और दशम स्कन्धकी गर्भस्तुतिमें भगवान्‌के अवतारके अनेकों कारण और उनके समर्थनमें अनेकों युक्तियाँ दी गयी हैं। श्रीमद्भागवतमें स्थान-स्थानपर अवतारोंकी सूची, उनके चरित्र और महिमाका वर्णन किया गया है। यह बात सर्वथा बुद्धिग्राह्य जान पड़ती है कि अपने भक्तोंके आग्रहसे परमदयालु, सर्वशक्तिमान् परमात्मा अवतार ग्रहण करें और ऐसी लीला करें जिसको गाकर, स्मरण करके

को असत् बतलाकर एकमात्र सद्वस्तुकी प्रतिष्ठा करते हैं। उनके सिद्धान्तमें सृष्टि आदिका वर्णन केवल अध्यारोपदृष्टिसे अपवादके द्वारा परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त करके उसी स्वरूपमें स्थित होनेके लिये है। एक बार जगत्का अध्यारोप हो जानेके पश्चात् चाहे उसका परिणाम जिस प्रकारसे माना जाय, विवर्तवादियोंको कोई आपत्ति नहीं है; केवल इन सबका अपवाद होकर स्वरूपकी उपलब्धि होनी चाहिये। उनका तात्पर्य सृष्टि-वर्णनमें नहीं है। श्रीनिम्बार्काचार्यने दृष्टिभेदसे सभी प्रकार-के सिद्धान्तोंको सम्भव माना है।

इन मतोंके अतिरिक्त और भी बहुत-से मत हैं, जिनके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपमें सृष्टितत्त्वका निरूपण होता है। पूर्वमीमांसक और व्यावहारिक दृष्टिसे वेदान्ती भी जीवोंके अदृष्टको ही सृष्टिका हेतु स्वीकार करते हैं। कालकी क्रीड़ा, दैवकी इच्छा, ईश्वरका रमण और बहुत-से कारण बतलाये जाते हैं। पाश्चात्त्य वैज्ञानिक-जगत्में सृष्टिके सम्बन्धमें और विशेषकर अतीन्द्रिय पदार्थोंके सम्बन्धमें अबतक कोई सिद्धान्त निश्चित नहीं हुआ है। पहले वे भी अनेक पदार्थोंके संयोगसे सृष्टि मानते थे, पीछे एक पदार्थके विकाससे स्वीकार करने लगे हैं। अभी यन्त्र-प्रत्यक्ष न होनेके कारण वे यह निर्णय देनेमें असमर्थ हैं कि जगत्के मूलमें रहनेवाला एक तत्त्व चेतन है या जड। परन्तु भारतीय ऋषि-मुनियोंने अपनी योगदृष्टिसे, अनुभवसे इस बातको निश्चित-रूपसे जान लिया है कि सृष्टिके मूलमें केवल चित् है और चित् वस्तुके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

श्रीमद्भागवतमें सृष्टितत्त्वका वर्णन विभिन्न प्रकारसे आया है। सर्गका लक्षण करते हुए कहा गया है—

भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः।
ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्..................॥
(२।१०।३)

अव्याकृतगुणक्षोभान्महतस्त्रिवृतोऽहमः।
भूतमात्रेन्द्रियार्थानां सम्भवः सर्ग उच्यते॥
(१२।७।११)

'अर्थात् परमात्माके द्वारा साम्यावस्था प्रकृतिमें क्षोभ होनेपर गुणोंकी विषमतासे महत्तत्त्व, त्रिविध अहङ्कार, तन्मात्रा, इन्द्रिय और पञ्चभूतोंकी सृष्टि होना सर्ग है।'

अव्यक्तसे व्यक्त होना, एकसे अनेक होना, निराकार-से साकार होना, सूक्ष्मका स्थूल होना सृष्टि है। यह परिणाम प्रकृतिका है। श्रीमद्भागवतके अनेक स्थानोंमें माया और प्रकृतिको एकार्थक बतलाया है, अनेक स्थानोंमें भगवान्की इच्छाको ही प्रकृति कहा है। प्रकृति, जीव और विविध कार्योंके रूपमें स्वयं भगवान् ही प्रकट होते हैं। इनमें वे प्रविष्ट न होनेपर भी प्रविष्ट-की भाँति प्रतीत होते हैं, वे स्वयं ही अपने-आपकी अपने-आपमें अपने-आपसे ही सृष्टि करते हैं। वे ही स्रष्टा, सृज्य और सृष्टि हैं। उनके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। दीख पड़नेवाली विभिन्नता मायिक एवं असत् है। जैसे स्वप्नमें कुछ न होनेपर भी बहुत कुछ दीखता है, वैसे ही दृश्य न होनेपर भी दर्शन हो रहा है। इस प्रकारके अनेकों वचन श्रीमद्भागवतमें मिलते हैं, जिनसे सभी प्रकारके सृष्टि-क्रम श्रीमद्भागवत-को अभिमत मालूम पड़ते हैं। तीसरे स्कन्धके ग्यारहवें अध्यायमें परमाणुओंके संयोगसे भी सृष्टिका वर्णन मिलता है।

इन विभिन्नताओंका तात्पर्य क्या है—सृष्टि-वर्णन अथवा सृष्टिके मूलमें स्थित तत्त्वका दर्शन? इस विषय-पर जब हम विचार करते हैं तो बहुत ही स्पष्ट मालूम होता है कि बुद्धि जिन पहलुओंको लेकर सृष्टिपर विचार कर सकती है, सृष्टिके सम्बन्धमें जितनी दृष्टियाँ सम्भव हैं, उन सबके आधारपर विचार करके ऋषि-मुनियोंने सबकी अन्तिम गति भगवान्को ही बतलाया है। सृष्टि-क्रमको अनादि माना जाता है। सृष्टिके बाद

पृथ्वीपर अधिकार जमा लिया। जब वे आपसमें बाँटने लगे, तब देवता भी वामन विष्णुको आगे करके गये और बोले—'हमें भी पृथ्वीका हिस्सा दो।' दैत्योंने विष्णुको वामन देखकर उनकी हँसी उड़ाते हुए कहा—'ये विष्णु जितनी दूरमें सो जायँ, उतनी पृथ्वी हम तुम्हें देंगे।' इसके बाद देवताओंने विष्णुको वेद-मन्त्रोंसे सुरक्षित किया और विष्णुके द्वारा समस्त पृथ्वीपर अधिकार कर लिया।' (शतपथब्राह्मण १।२।५।७)

तैत्तिरीय आरण्यक (१।२३।१) और शतपथ-ब्राह्मण (७।३।३।५) में कूर्मावतारका वर्णन है। शतपथब्राह्मण (१।८१।२।१०) में मत्स्यावतारका वर्णन है। तैत्तिरीय संहिता (७।१।५।१), तैत्तिरीय ब्राह्मण (१।१।३।५) और शतपथब्राह्मणमें भी वराह-अवतारका सुन्दर वर्णन है। ऐतरेय ब्राह्मणमें परशुरामावतारकी, छान्दोग्योपनिषद् (३।१७) तथा तैत्तिरीय आरण्यक (१०।१।६) में देवकीनन्दन वासुदेव श्रीकृष्णकी कथा है। इन अवतारोंके अतिरिक्त विष्णु, रुद्र, सूर्य, शक्ति आदि देवताओंका भी वेदोंमें बहुत ही विस्तृत वर्णन है। जो लोग वेदोंमें अवतार और देवताओंका वर्णन स्वीकार नहीं करते, वे अनभिज्ञता और पक्षपातके कारण ही वैसा करते हैं। महाभारत और वाल्मीकीय रामायणमें भी अवतारोंके पुष्कल प्रसङ्ग हैं। हिंदू-शास्त्रोंको मान्यता देकर किसी भी प्रकार अवतारोंका अपलाप नहीं किया जा सकता। जैन और बौद्धधर्मके ग्रन्थोंमें भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव और अवतारोंके उपासकोंका वर्णन आता है। ईसाके तीन सौ वर्ष पूर्व रचित 'ललित-विस्तर' में तथा उससे भी पूर्व रचित पाली भाषाके ग्रन्थोंमें इन साम्प्रदायिक उपासकोंकी चर्चा है। महात्मा बुद्ध और पारसनाथसे भी इनकी भेंट हुई है। आनाम और कंबोडियासे जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उनसे भी सिद्ध होता है कि ईसासे बहुत पूर्व उन उपद्वीपोंमें ब्रह्मा, शिव आदिकी उपासना पूर्णरूपसे प्रचलित थी।

इन अवतारोंके द्वारा क्या-क्या शिक्षा प्राप्त होती है, यह विवेचन करनेका अवसर नहीं है। एक-एक अवतारके नामसे जिन पुराणोंकी रचना हुई है, उनमें उस शिक्षाका विशेष विवरण है। मत्स्यपुराणमें मत्स्य-भगवान्ने वैवस्वत मनुको, कूर्मपुराणमें कूर्मभगवान्ने देवताओंको, वराहपुराणमें वराहभगवान्ने पृथ्वीको, नृसिंहपुराणमें नृसिंहभगवान्ने प्रह्लादको, वामन-पुराणमें वामनभगवान्ने बलिको और इसी प्रकार अन्यान्य अवतारोंमें भी भगवान्ने अपने विभिन्न भक्तोंको उपदेश किया है। इन योनियोंमें, जिन्हें निम्न कहा जाता है, अवतार ग्रहण करके भगवान्ने इस बातकी शिक्षा दी है कि 'किसी भी योनिको हीन नहीं समझना चाहिये, मेरे लिये सब समान हैं।' जल, स्थल और आकाशमें रहनेवाले सभी प्राणी भगवान्के सजातीय और उनकी अभिव्यक्तिके स्थान हैं, ऐसा समझकर प्रत्येक प्राणीका आदर-सम्मान करना चाहिये और सबके रूपमें परमात्माका दर्शन करके आश्रयस्वरूप भगवान्की दयाका स्मरण करके मुग्ध होते रहना चाहिये।

निरोध

परमात्माके अतिरिक्त जो कुछ स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् दीख रहा है, उसकी अन्तिम गति प्रलय है। अवतार ले-लेकर भगवान् उसकी विपरीत गतिका निरोध तो करते ही रहते हैं; परन्तु जब तमोगुण अधिक बढ़ जाता है, तब भगवान् नवीन रूपसे सात्त्विक सृष्टि करनेके लिये इस जगत्का प्रलय कर दिया करते हैं। भगवान् अवतार ग्रहण करके दुष्ट दैत्योंका नाश करते हैं; कंस आदिको साक्षात् और कर्ण, जरासन्ध आदिको अपनी शक्ति अर्जुन, भीम आदिके द्वारा नष्ट करते हैं। इसका नाम भी निरोध है। श्रीमद्भागवतमें निरोध और संस्थाके नामसे प्रलयका भी वर्णन हुआ है। उसका

कश्यपसे देव-दैत्य, पशु-पक्षी, स्थावर-जङ्गम—सब प्रकारकी सृष्टि होती है। निरुक्तके अनुसार 'कश्यप' का अर्थ है 'पश्यक'—देखनेवाला, देखनेमात्रसे सृष्टि करनेवाला। श्रुतियोंमें मानसिक सृष्टिका वर्णन प्राप्त होता है—

'मनसा साधु पश्यति।' 'मानसाः प्रजा असृजन्त।'

'मनसे परोक्ष कर्मोंको भी देख लेता है।' 'मनसे ही प्रजाकी सृष्टि होती है।'

महाभारतमें भी कहा गया है—

प्रजापतिरिदं सर्वं मनसैवासृजत् प्रभुः।
तथैव देवानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे॥
आदिदेवसमुद्भूता ब्रह्ममूलाक्षयाव्यया।
सा सृष्टिर्मानसी नाम धर्मतन्त्रपरायणा॥

'सर्वसमर्थ भगवान् ब्रह्माने मनसे ही यह सारी सृष्टि की। ऋषियोंने भी तपस्याके बलसे पहले मानसी ही सृष्टि की थी। आदिदेव ब्रह्माके द्वारा जो वेदमूलक अक्षय, अव्यय और धर्मानुकूल सृष्टि हुई उसका नाम मानसी सृष्टि हुआ।'

विष्णुपुराणमें सृष्टिके कई स्तर बतलाये गये हैं। एक तो अज्ञानयुक्त प्रकाशहीन स्थावर सृष्टि है, जिसमें केवल अन्नमय कोषका विशेष विकास है और दूसरे कोष अविकसित हैं। दूसरी सृष्टि स्वेदज, अण्डज तथा जरायुज पशुओंकी है—जिनमें क्रमशः प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोशका यत्किञ्चित् विकास हुआ है। उनके अन्तःकरणमें ज्ञानका लक्ष्य नहीं है। उनके लिये धर्माधर्मका बन्धन नहीं है, इसलिये वे प्राकृतिक रूपसे ही अभिमानी हैं। तीसरी सृष्टि देवताओंकी है, जो भोग-विलासमें ही विशेष प्रीति रखते हैं। यह सब-की-सब असाधक सृष्टि है। इसके बाद मनुष्योंकी सृष्टि हुई, जो कि साधक और कर्मप्रवण हैं। यह सब ब्रह्माकी मानसी सृष्टि है।

श्रीमद्भागवतमें श्रीब्रह्माकी मानसी सृष्टिका वर्णन है, यथा—

भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यांस्ततोऽसृजत्।

और भी—

अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे।

—इत्यादि।

मनुस्मृतिमें वर्णन आता है कि ब्रह्माके पुत्रोंने और भी मानसी सृष्टि की जिससे देवता, दैत्य, महर्षि आदिकी उत्पत्ति हुई। काल-क्रमसे, युगपरिवर्तनसे तपःशक्ति क्षीण हो जानेके कारण आगे चलकर मानसी सृष्टिका होना बंद हो गया, केवल मैथुनी सृष्टि रह गयी। फिर भी समय-समयपर ऐसे तपःसिद्ध योगी पुरुष होते रहे जिनके द्वारा मानसी, चाक्षुषी आदि सृष्टि होती रही। समष्टि तमोगुणके उद्रेकसे अब ऐसा समय आ गया है कि लोग इस बातपर विश्वास करनेमें हिचकिचाने लगे हैं कि बिना स्त्री-पुरुषके संयोगके भी सृष्टि हो सकती है। यह सृष्टितत्त्वपर संयम न करनेका फल है।

आर्य-शास्त्रोंके अनुसार सृष्टिके सात स्तर निश्चित होते हैं—

१—मानसी सृष्टि, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

२—ऐसी सृष्टि, जिसमें स्त्री-पुरुष आदिके लिङ्ग-भेद न हों।

३—एक ही शरीरमें स्त्री-पुरुष दोनोंकी सृष्टि।

४—स्त्री-पुरुष पृथक्-पृथक् रहकर भी अपनी मानसिक शक्तिके द्वारा सन्तान उत्पन्न करें। आजके विज्ञानशास्त्रके अनुसार भी चिन्तनशक्तिकी महिमा छिपी नहीं है। केवल मानसिक शक्तिसे मेज हिलायी जा सकती है, दूसरोंकी आँखें बंद की जा सकती हैं, पक्षी उड़ते हुए दिखाये जा सकते हैं। मानसिक शक्तिके बलसे गर्भाधान भी कराया जा सकता है, यह बात पाश्चात्य वैज्ञानिक भी विज्ञानकी दृष्टिसे असम्भव नहीं मानते। भगवान् व्यासकी मानसिक प्रेरणा और दृष्टिपातसे धृतराष्ट्र, पाण्डु एवं विदुरकी उत्पत्ति हुई थी

मुक्ति

आत्यन्तिक प्रलयका अर्थ है—मुक्ति। जैसे प्रलय और महाप्रलय प्रकृतिमें स्वभावसे ही होते रहते हैं, वैसे आत्यन्तिक प्रलय नहीं होता। यह भगवत्-तत्त्वज्ञानसे अभिन्न भगवत्प्रेम प्राप्त होनेपर अथवा भगवत्प्रेमसे अभिन्न भगवत्-तत्त्वज्ञान प्राप्त होनेपर ही मिल सकता है। भगवान् विज्ञानानन्दघन हैं। उनके प्राप्त होनेपर ही जीवके पुरुषार्थकी समाप्ति होती है। सभी जीव एक साथ मुक्त नहीं हो सकते, परन्तु मुक्त होनेमें समयका व्यवधान भी नहीं है। जो जिस देशमें है, जिस अवस्थामें है, जिस समयमें है, जिस रूपमें है वह वहीं, वैसे ही सदाके लिये संसारसे मुक्त हो सकता है। उसके लिये संसारका आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है और उसे फिर पुनर्जन्मके चक्रमें नहीं भटकना पड़ता। वेदान्तकी दृष्टिसे मुक्ति केवल एक प्रकारकी है—कैवल्य-मुक्ति। इसके प्राप्त होनेका उपाय है—अनेक प्रकारके नाम और रूपोंको उत्पन्न करके उनकी कामनासे भटकानेवाली अविद्याका नाश। कैवल्य-मुक्ति केवल अविद्याके नाशसे ही प्राप्त होती है। अथवा अविद्याका नाश ही मुक्ति है। अविद्याका नाश होता है पराविद्या अथवा परम ज्ञानसे; ज्ञानका उदय होता है अन्तःकरणकी शुद्धिसे; अन्तःकरणकी शुद्धि निष्कामकर्म, उपासना आदिसे प्राप्त होती है। ज्ञानका उदय चाहे भगवत्कृपासे हो, चाहे श्रवण-मननादि अन्तरङ्ग साधनोंके अनुष्ठानसे, कैवल्य-मुक्तिके लिये ज्ञान सम्पादन करना ही पड़ेगा। श्रीमद्भागवतमें मुक्तिका लक्षण है—'मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः।' 'अपने अज्ञानकल्पित असत्य रूपको छोड़कर अपने वास्तविक स्वरूपमें स्थिति ही मुक्ति है।' इस लक्षणका निर्वाह कैवल्य-मुक्तिमें ठीक-ठीक हो जाता है।

जगत्में 'यह मैं हूँ' और 'यह भिन्न है'—इस प्रकारका व्यवहार अनादि कालसे चल रहा है; परन्तु 'मैं' क्या है और 'यह' क्या है, इसका यथार्थ बोध बहुत ही थोड़े लोगोंको होता है। अधिकांश लोग 'यह' (बुद्धि, मन, इन्द्रिय आदि) को ही 'मैं' समझते हैं और उसी समझ अथवा अज्ञानके अनुसार अपनेको मूर्ख, बुद्धिमान्, सुखी-दुःखी और छोटा-बड़ा मानते हैं। इसी भ्रान्तिके कारण वे सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीरके साथ बँधे रहते हैं और उनकी समस्त वासनाएँ इन्हींको लेकर होती हैं। उनका प्रलय होता है, तब वे अपना प्रलय मानने लगते हैं और जब उनकी सृष्टि होने लगती है, तब अपनी सृष्टि। इसी भ्रान्तिके कारण वे अनादि कालसे भटक रहे हैं और जबतक इस 'यह' अर्थात् इदं-पदवाच्य अन्यथारूपको छोड़ेंगे नहीं—इससे अत्यन्त पृथक् स्थित अपने वास्तविक स्वरूप आत्मामें स्थित नहीं होंगे, तबतक भटकते रहेंगे। यह बड़ी विलक्षण बात है कि जब 'यह' से 'मैं' को पृथक् कर लिया जाता है और उसके वास्तविक स्वरूपकी अनुभूति हो जाती है, तब 'यह' के लिये स्थान नहीं रहता अर्थात् संसारका आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है। इसीका नाम कैवल्य-मुक्ति है। यह कैवल्य-मुक्ति किसी भी शारीरिक या मानसिक क्रियाका फल नहीं है; यह उनसे उत्पन्न विकृत, संस्कृत, प्राप्त और नष्ट नहीं की जा सकती। यह वास्तवमें नित्य प्राप्त है, इसलिये नित्य प्राप्तिके ज्ञानमात्रसे मुक्ति सिद्ध हो जाती है।

श्रीमद्भागवतमें पाँच प्रकारकी मुक्ति स्वीकार की गयी है। उनके नाम ये हैं—सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य। भगवान्के नित्य चिन्मय धाममें रहना सालोक्य मुक्ति है, भगवान्के समान ऐश्वर्य प्राप्त कर लेना सार्ष्टि मुक्ति है, भगवान्के समीप रहना सामीप्य मुक्ति है, भगवान्के समान रूप प्राप्त कर लेना सारूप्य मुक्ति है और भगवान्में मिल जाना, उनके चरणोंमें समा जाना सायुज्य मुक्ति है। श्रीमद्भागवतमें इन पाँचों प्रकारकी मुक्तियोंके अनेकों उदाहरण हैं।

हैं जिनकी खोज न अबतक हो सकी है और न आगे निकट भविष्यमें होनेकी कुछ सम्भावना ही दीखती है। ऐसी अधूरी दृष्टिवाले लोग जब हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंके द्वारा वर्णित लोक-लोकान्तर और अनेकविध समुद्र एवं पृथ्वीके स्तरोंका वर्णन सुनते हैं, तब उनकी बुद्धि चकित हो जाती है और वे सहसा उनके अस्तित्वपर विश्वास करनेको तैयार नहीं होते। अनेकों वर्षतक योगसाधना करके विशिष्टशक्तिसम्पन्न होकर ऋषि-मुनियोंने जिन सूक्ष्मतत्त्वों और स्थानोंका अनुभव प्राप्त किया था, वह केवल कुछ वर्षोंतक ग्रन्थ पढ़नेवालों और जड यन्त्रोंपर सर्वथा विश्वास करनेवालोंको कैसे प्राप्त हो सकता है।

योगदर्शनमें चतुर्दश लोकोंके ज्ञानकी प्रक्रिया बतलाते हुए कहा गया है कि सूर्यमें संयम करनेसे चतुर्दश भुवनोंका ज्ञान होता है। चतुर्दश लोकोंकी संख्या करते हुए भाष्यकार भगवान् व्यासने भूर्लोक, भुवर्लोक, पाँच प्रकारके स्वर्लोक, माहेन्द्र स्वर्ग, प्राजापत्य स्वर्ग और तीन प्रकारके ब्राह्म स्वर्गका वर्णन किया है। पृथ्वीसे नीचे तल, अतल, वितल, सुतल, तलातल, रसातल, पाताल—इन सात लोकोंका वर्णन आया है। ये ही ब्रह्माण्डके चौदह भुवन हैं। इन नीचेके लोकोंको 'बिलस्वर्ग' कहते हैं। इनमें ऊपरके लोकोंसे भी अधिक विषय-भोग करनेका अवसर है। इनमें दैत्य, दानव और सर्प—जो कि आसुरी प्रकृतिके हैं—अपनी इच्छाके अनुसार भोग भोगते हैं। श्रीमद्भागवतमें पाँचवें स्कन्धके चौबीसवें अध्यायमें इनका वर्णन है। ऊपरके लोकोंमें पृथ्वी, जिसमें हमलोग रहते हैं, और अन्तरिक्षलोक, जिसको भुवर्लोक भी कहते हैं—ये दोनों 'भौमस्वर्ग' कहलाते हैं। इसके ऊपर पाँच लोक दिव्य स्वर्ग हैं, जिनका वर्णन अभी किया गया है। स्वर्लोक माहेन्द्र स्वर्ग है, महर्लोक प्राजापत्य स्वर्ग है और जनलोक, तपोलोक एवं सत्यलोक ब्राह्म स्वर्ग हैं। इन लोकोंमें क्रमशः सात्त्विक भोग और सात्त्विकताका उत्कर्ष होता जाता है। भूर्लोक और भुवर्लोकके अन्तर्गत सूर्य, चन्द्र, ध्रुव, नक्षत्र, पृथ्वी आदि सब स्थूल लोक हैं। (देखिये पाँचवें स्कन्धका बीसवाँ अध्याय)

भूर्लोकके सात विभाग हैं। उन्हें अलग-अलग द्वीपके नामसे कहा गया है। भूर्लोकका अर्थ केवल पृथ्वी ही नहीं है, उसके अन्तर्गत बहुत-से सूक्ष्म और अदृश्य लोक भी हैं। इसलिये उन द्वीपोंको और उनके चारों ओर रहनेवाले समुद्रोंको स्थूल जलमय समुद्र नहीं मानना चाहिये। वे सब वातावरण हैं। एक द्वीपके ऊपर समुद्र, फिर द्वीप, फिर समुद्र इस क्रमसे सात द्वीप, और सात समुद्र स्थित हैं। उन सात द्वीपोंके नाम ये हैं—जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाकद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाल्मलिद्वीप और पुष्करद्वीप। इन द्वीपोंको क्रमशः लवणसमुद्र, इक्षुसमुद्र, सुरासमुद्र, घृतसमुद्र, दधिसमुद्र, दुग्धसमुद्र और उदकसमुद्र घेरे हुए हैं। एककी अपेक्षा दूसरेका परिमाण बड़ा होता गया है। यह सब द्वीप और समुद्र सुमेरुके आधारपर स्थित हैं। सुमेरु पर्वत स्थूल नहीं, दिव्य है—इस बातका वर्णन मत्स्यपुराणके एक सौ तेरहवें अध्यायमें आता है।* उसीकी शक्ति-रज्जुमें बँधकर यह सब-के-सब सूक्ष्म लोक स्थित रहते हैं।

सुमेरुकी दिव्यतासे ही उसके आश्रयसे रहनेवाले लोक और समुद्रोंकी भी दिव्यता सिद्ध हो जाती है। आकाशमें अनेकों प्रकारके वायुमण्डल हुआ करते हैं। इस पृथ्वीके ऊपर उड़नेपर थोड़ी ही दूर बाद ऐसा वायुमण्डल प्राप्त होता है, जिसमें हवाई जहाज नहीं चल सकता। यह तो पृथ्वी-तत्त्व-प्रधान लोकका वायुमण्डल है। जो लोक केवल जल-तत्त्व-प्रधान अथवा अग्नि-तत्त्व-प्रधान है, उसके वायुमण्डलमें बहुत अन्तर होना निश्चित ही है। ऋषियोंने समाहित बुद्धिसे उन सब स्तरोंका अनुभव करके उनका नामकरण किया है। उन सबके

* मेरुस्तु शुशुभे दिव्यो राजवत् स तु वेष्टितः।

माखनचोरी और चीरहरण

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः॥

सच्चिदानन्दघन भगवान्‌की दिव्य मधुर रसमयी लीलाओंका रहस्य जाननेका सौभाग्य बहुत थोड़े लोगोंको होता है। जिस प्रकार भगवान् चिन्मय हैं, उसी प्रकार उनकी लीला भी चिन्मयी ही होती है। सच्चिदानन्द-रसमय साम्राज्यके जिस परमोन्नत स्तरमें यह लीला हुआ करती है, उसकी ऐसी विलक्षणता है कि कई बार तो ज्ञान विज्ञानस्वरूप विशुद्ध चेतन परम ब्रह्ममें भी उसका प्राकट्य नहीं होता और इसीलिये ब्रह्म-साक्षात्कारको प्राप्त महात्मालोग भी इस लीलारसका समास्वादन नहीं कर पाते। भगवान्‌की इस परमोज्ज्वल दिव्य रस-लीलाका यथार्थ प्रकाश तो भगवान्‌की स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजी और तदङ्गभूता प्रेममयी गोपियोंके ही हृदयमें होता है और वे ही निरावरण होकर भगवान्‌की इस परम अन्तरङ्ग रसमयी लीलाका समास्वादन करती हैं।

भगवान्‌की लीलापर विचार करते समय यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भगवान्‌का लीलाधाम, भगवान्‌के लीलापात्र और भगवान्‌का लीलाशरीर प्राकृत नहीं होता। भगवान्‌में देह देहीका भेद नहीं है। महाभारतमें आया है—

न भूतसंघसंस्थानो देवस्य परमात्मनः।
यो वेत्ति भौतिकं देहं कृष्णस्य परमात्मनः॥
स सर्वस्माद् बहिष्कार्यः श्रौतस्मार्तविधानतः।
मुखं तस्यावलोक्यापि सचैलः स्नानमाचरेत्॥

'परमात्माका शरीर भूतसमुदायसे बना हुआ नहीं होता। जो मनुष्य श्रीकृष्ण परमात्माके शरीरको भौतिक जानता-मानता है, उसका समस्त श्रौत-स्मार्त कर्मोंसे बहिष्कार कर देना चाहिये अर्थात् उसका किसी भी शास्त्रीय कर्ममें अधिकार नहीं है। यहाँतक कि उसका मुँह देखनेपर भी सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करना चाहिये।'

श्रीमद्भागवतमें ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए कहा है—

अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य
स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि॥

'आपने मुझपर कृपा करनेके लिये ही यह स्वेच्छामय सच्चिदानन्दस्वरूप प्रकट किया है, यह पाञ्चभौतिक कदापि नहीं है।'

इससे यह स्पष्ट है कि भगवान्‌का सभी कुछ अप्राकृत होता है, उनकी जन्म-कर्मकी सभी लीलाएँ दिव्य होती हैं, परन्तु यह व्रजकी लीला, व्रजमें निकुञ्जलीला और निकुञ्जमें भी केवल रसमयी गोपियोंके साथ होनेवाली मधुर लीला तो दिव्यातिदिव्य और सर्वगुह्यतम है। यह लीला सर्वसाधारणके सम्मुख प्रकट नहीं है, अन्तरङ्ग लीला है और इसमें प्रवेशका अधिकार केवल श्रीगोपीजनोंको ही है।

यदि भगवान्‌के नित्य परमधाममें अभिन्नरूपसे नित्य निवास करनेवाली नित्यसिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे न देखकर केवल साधनसिद्धा गोपियोंकी दृष्टिसे देखा जाय तो भी उनकी तपस्या इतनी कठोर थी, उनकी लालसा इतनी अनन्य थी, उनका प्रेम इतना व्यापक था और उनकी लगन इतनी सच्ची थी कि भक्तवाञ्छा-कल्पतरु प्रेमरसमय भगवान् उनके इच्छानुसार उन्हें सुख पहुँचानेके लिये माखनचोरीकी लीला करके उनकी इच्छित पूजा ग्रहण करें, चीरहरण करके उनका रहा-सहा व्यवधानका परदा उठा दें और रासलीला करके उनको दिव्य सुख पहुँचायें तो कोई बड़ी बात नहीं है।

वर्षका एक द्वीपमात्र है। काल-क्रमसे दूसरे द्वीपोंके वे नाम जो शास्त्रोंमें लिखे हुए हैं बदल गये, वहाँकी भाषा परिवर्तित हो गयी, ब्राह्मण-वेद आदिका प्रचार न होनेसे वे हमसे दूर पड़ गये और शास्त्रोंमें जो उनके इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रपर्ण आदि नाम लिखे हैं वे नाम भी आज आश्चर्यजनक हो गये हैं। भारतवर्षके नौ खण्डोंमें यही खण्ड सर्वप्रधान है। इसलिये इसका दूसरा नाम न रखकर भारतवर्षके हृदयभूत इस द्वीपको भी भारत ही कहा गया है। जैसे भूर्लोकका विस्तार बहुत बड़ा होनेपर भी कहीं-कहीं इस पृथ्वीको ही भूर्लोक कह देते हैं, वैसे ही समस्त मृत्युलोकका नाम भारतवर्ष होनेपर भी इस प्रधान द्वीपको ही कहीं-कहीं भारतवर्ष कह देते हैं। यह इस भूमिकी महान् महिमाका द्योतक है।

इन द्वीपोंके अतिरिक्त आठ उपद्वीप भी हैं—स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दहरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल और लङ्का। इनमेंसे सिंहल और लङ्का दोके नाम वही हैं, परन्तु शेष नाम बदल गये हैं। श्रीमद्भागवत महापुराणमें इन सबका वर्णन है; भारतवर्ष और भारतद्वीपकी नदियों, पर्वतों और भौगोलिक स्थितिका सम्पूर्ण चित्रण है। भूगोल और इतिहासके प्रेमियोंको उनका अन्वेषण करके प्राचीन शास्त्रोंकी सत्यताका अनुभव करना चाहिये। साथ ही यह भी स्मरण रखना चाहिये कि भौगोलिक स्थितिमें निरन्तर परिवर्तन हुआ करता है। हजारों वर्ष पूर्व जहाँ बड़े-बड़े पर्वत थे, वहाँ आज समुद्र हो गया है; जहाँ समुद्र था, वहाँ बड़े-बड़े पर्वत हो गये हैं। पुरातत्त्वके अनुसन्धानकर्त्ताओंने पर्वतके ऊँचे टीलोंपर जल-जन्तुओंकी हड्डियाँ प्राप्त करके ऐसा अनुमान किया है कि पहले यहाँ समुद्र था। लोगोंके देखते-देखते बहुत-से द्वीप समुद्रमें विलीन हो गये और बहुत-से जलमय प्रदेश लोगोंके रहने योग्य स्थान हो गये। इन परिवर्तनोंको देखते हुए यदि पौराणिक भूगोल और वर्तमान भूगोलमें कुछ अन्तर भी मिले तो पुराणोंको कपोलकल्पना नहीं समझना चाहिये, बल्कि उनकी प्रामाणिकता स्वीकार करनी चाहिये।

श्रीमद्भागवतमें तीन प्रकारकी स्थितियोंका वर्णन आया है—पृथ्वीलोककी स्थिति, ऊर्ध्वलोककी स्थिति और अधोलोककी स्थिति। पृथ्वीलोकमें चार प्रकारके स्थान हैं—मनुष्यलोक, नरकलोक, प्रेतलोक और पितृलोक। मनुष्यलोकमें चार प्रकारके शरीर होते हैं—उद्भिज्ज शरीर (वनस्पति), स्वेदज शरीर (खटमल आदि), अण्डज शरीर (चींटी, पक्षी आदि) और जरायुज शरीर (पशु-मनुष्य)। ये सब मनुष्यलोकमें रहते हैं। इस लोककी मर्यादा शास्त्रोंमें निश्चित की गयी है। सब अपनी-अपनी मर्यादाका पालन करते हुए स्थित रहते हैं। लवणसमुद्रके तटपर भारतवर्षके आग्नेय कोणपर निम्न स्तरमें नरकका स्थान है, जो कि इन आँखोंसे नहीं देखा जा सकता। वे एक प्रकारके जेल हैं। पापोंका फल भोगनेके लिये वहाँ जीव जाते हैं। उनका शरीर 'यातना-शरीर' कहा जाता है। पृथ्वीसे ऊपर अन्तरिक्षमें थोड़ी दूरतक प्रेतलोक है, जिसमें मृत्युके अनन्तर अनेक प्रकारकी वासनाओंसे जकड़े हुए जीव वासना-शरीर ग्रहण करके निवास करते हैं। पितृलोक पुण्यात्माओंका स्थान है; उसमें कुछ नित्य पितर भी रहते हैं। इन सबकी मर्यादा भी शास्त्रद्वारा सुनिश्चित है। ऊर्ध्वलोकोंमें ज्योतिश्चक्रसे लेकर ब्रह्मलोकपर्यन्तकी मर्यादा सुनिश्चित है और अधोलोकोंमें तलसे लेकर पातालतककी। ये सब मर्यादाएँ भगवदिच्छासे ही निर्मित हुई हैं। श्रीमद्भागवतमें वर्णन आया है कि पृथ्वीके जितने विभाग हैं, वे सब सूर्यके द्वारा ही विभक्त होते हैं (५। २०। ४५)। सूर्यकी किरणोंका जहाँतक विस्तार है और चन्द्रमाकी किरणें जहाँतक पहुँच सकती हैं, उस प्रदेशका नाम पृथ्वी है—वह चाहे

और मेरी बुद्धि भी उसी आनन्दसे परितृप्त है। परन्तु श्रीकृष्णका प्रेम मुझे अभी प्राप्त नहीं हुआ, इसलिये मैं अपनेको शून्य देखती हूँ।' ब्रह्मज्ञानी जाबालिने उसके चरणोंपर गिरकर दीक्षा ली और फिर व्रजवीथियोंमें विहरनेवाले भगवान्‌का ध्यान करते हुए वे एक पैरसे खड़े होकर बड़ी कठोर तपस्या करते रहे। नौ कल्पोंके बाद प्रचण्डनामक गोपके घर वे 'चित्रगन्धा'के रूपमें प्रकट हुए।

५ कुशध्वजनामक ब्रह्मर्षिके पुत्र शुचिश्रवा और सुवर्ण वेदतत्त्वज्ञ थे। उन्होंने शीर्षासन करके 'ह्रीं' हंस-मन्त्रका जाप करते और सुन्दर कन्दर्प-तुल्य गोकुलवासी दस वर्षकी उम्रके भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए घोर तपस्या की। कल्पके बाद वे व्रजमें सुधीरनामक गोपके घर उत्पन्न हुए।

इसी प्रकार और भी बहुत-सी गोपियोंके पूर्वजन्म की कथाएँ प्राप्त होती हैं, विस्तारभयसे उन सबका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया। भगवान्‌के लिये इतनी तपस्या करके इतनी लगनके साथ कल्पोंतक साधना करके जिन त्यागी भगवत्प्रेमियोंने गोपियोंका तन मन प्राप्त किया था उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये, उन्हें आनन्द-दान देनेके लिये यदि भगवान् उनकी मनचाही लीला करते हैं तो इसमें आश्चर्य और अनाचार की कौन-सी बात है? रासलीलाके प्रसङ्गमें स्वयं भगवान्‌ने श्रीगोपियोंसे कहा है—

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥
(१०।३२।२२)

'गोपियो! तुमने लोक और परलोकके सारे बन्धनों को काटकर मुझसे निष्कपट प्रेम किया है, यदि मैं तुममेंसे प्रत्येकके लिये अलग-अलग अनन्त कालतक जीवन धारण करके तुम्हारे प्रेमका बदला चुकाना चाहूँ तो भी नहीं चुका सकता। मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और ऋणी ही रहूँगा। तुम मुझे अपने साधुस्वभावसे ऋणरहित मानकर और भी ऋणी बना दो। यही उत्तम है।' सर्वलोकमहेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं जिन महाभागा गोपियोंके ऋणी रहना चाहते हैं उनकी इच्छा, इच्छा होनेसे पूर्व ही भगवान् पूर्ण कर दें—यह तो स्वाभाविक ही है।

भला विचारिये तो सही श्रीकृष्णगतप्राणा, श्रीकृष्ण रसभावितमति गोपियोंके मनकी क्या स्थिति थी। गोपियोंका तन, मन, धन—सभी कुछ प्राणप्रियतम श्रीकृष्णका था। वे संसारमें जीती थीं श्रीकृष्णके लिये, घरमें रहती थीं श्रीकृष्णके लिये और घरके सारे काम करती थीं श्रीकृष्णके लिये। उनकी निर्मल और योगीन्द्र दुर्लभ पवित्र बुद्धिमें श्रीकृष्णके सिवा अपना कुछ था ही नहीं। श्रीकृष्णके लिये ही, श्रीकृष्णको सुख पहुँचानेके लिये ही, श्रीकृष्णकी निज सामग्रीसे ही श्रीकृष्णको पूजकर—श्रीकृष्णको सुखी देखकर वे सुखी होती थीं। प्रातःकाल निद्रा टूटनेके समयसे लेकर रातको सोने तक वे जो कुछ भी करती थीं, सब श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये ही करती थीं। यहाँतक कि उनकी निद्रा भी श्रीकृष्णमें ही होती थी। स्वप्न और सुषुप्ति दोनोंमें ही वे श्रीकृष्णकी मधुर और शान्त लीला देखती और अनुभव करती थीं। रातको दही जमाते समय श्याम सुन्दरकी माधुरी छविका ध्यान करती हुई प्रेममयी प्रत्येक गोपी यह अभिलाषा करती थी कि मेरा दही सुन्दर जमे, श्रीकृष्णके लिये उसे बिलोकर मैं बढ़िया सा और बहुत-सा माखन निकालूँ और उसे उतने ही ऊँचे छींकेपर रक्खूँ, जितनेपर श्रीकृष्णके हाथ आसानीसे पहुँच सकें, फिर मेरे प्राणधन श्रीकृष्ण अपने सखाओं को साथ लेकर हँसते और क्रीडा करते हुए घरमें पदार्पण करें, माखन लूटें और अपने सखाओं और

देनेके लिये श्रीमद्भागवतमें ऊतिका वर्णन आया है। 'ऊति' शब्दका अर्थ है—कर्मवासना। 'ऊतयः कर्म-वासनाः।' (२।१०।४) अर्थात् कर्म-बन्धनके कारण ही जीव भगवान्‌को भूल गया है और एक शरीरसे दूसरे शरीरमें, एक लोकसे दूसरे लोकमें, एक कर्मसे दूसरे कर्ममें और एक सङ्कल्पसे दूसरे सङ्कल्पमें भटकता रहता है। उसका विश्वास हो गया है कि मैं अमुक कर्म करके सुखी हो सकूँगा। इसी विश्वासके कारण वह अपने अंदर, बाहर और चारों ओर रहनेवाली परमनिधि भगवान्‌की दयाको भूल रहा है। वासनाओं-के कारण प्रिय-अप्रिय, राग-द्वेष और शुभ-अशुभमें जकड़कर यह नाना प्रकारकी वाञ्छित-अवाञ्छित गतियोंमें आ-जा रहा है। यह सत्य है कि इन वासनाओं-के कारण ही जीव दुखी हो रहा है। फिर भी इन वासनाओंका वर्णन इसलिये किया जाता है कि जीव इनकी दुःखरूपताको पहचाने और इन्हें छोड़कर परमात्माकी अनन्त दयाका स्मरण करके उन्हें प्राप्त करे।

वासना दो प्रकारकी होती है—एक शुभ और दूसरी अशुभ। महापुरुषोंकी कृपासे शुभ वासना होती है और उनके द्वेषसे अशुभ। वैकुण्ठके द्वारपाल जय-विजयको सनकादिकोंके द्वेषसे अशुभ वासना हुई और बहुत जन्मोंतक उन्हें भगवान्‌की दयासे वञ्चित रहना पड़ा। यद्यपि उनपर भी भगवान्‌का अनुग्रह था और भगवान् बार-बार अवतार लेकर उन्हें वासनाओंसे मुक्त करते रहे, परन्तु उनका जीवन बहुत दिनोंतक नीरस ही रहा और उन्हें बहुत विलम्बसे भगवत्कृपाकी अनुभूति प्राप्त हुई। इसके विपरीत प्रह्लादको गर्भमें ही सत्सङ्ग और भगवान्‌के परम भक्त नारदकी कृपा प्राप्त हुई। तत्क्षण ही भगवत्कृपाका अनुभव प्राप्त करके वे कृतकृत्य हो गये। इसलिये कर्म-वासनाओंका त्याग करके सद्‌गुण और सदाचारके अनुसार अपने जीवनका निर्माण करते हुए भगवत्कृपाका अनुभव करते रहना चाहिये। जिन सद्‌गुण और सदाचारोंके द्वारा कर्म-वासनाओंका त्याग और सद्‌वासनाओंका ग्रहण होता है, उनका वर्णन सातवें स्कन्धके अन्तिम पाँच अध्यायोंमें हुआ है।

मन्वन्तर

यदि शीघ्र-से-शीघ्र महापुरुषोंकी कृपा प्राप्त करके भगवान्‌की अनन्त दयाका अनुभव न कर लिया जायगा तो एक-दो जन्म नहीं, एक-दो युग नहीं, इतने समयतक संसारमें भटकना पड़ेगा कि वर्षोंके द्वारा उसका हिसाब नहीं बताया जा सकता, मन्वन्तर भी उसके सामने बहुत थोड़े हैं। भटकनेके समयका हिसाब लगानेके लिये मन्वन्तर एक साधन है और साथ ही प्रत्येक समय अपने सहायकोंके साथ सद्धर्मका पालन और विस्तार करनेके लिये कुछ आधिकारिक पुरुष नियुक्त रहते हैं। अतः किसी भी समय धर्मपालनकी प्रेरणा प्राप्त हो सकती है, यह सूचित करनेके लिये मन्वन्तरोंका वर्णन आता है। कितने वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है? मनुष्य-वर्षोंके हिसाबसे ४३२०००० वर्षोंकी एक चतुर्युगी होती है। ७१ चतुर्युगीका एक मन्वन्तर होता है। १४ मन्वन्तरका एक कल्प होता है। यह कल्प ब्रह्माका एक दिन है। इतनी ही बड़ी उनकी एक रात्रि होती है। इस हिसाबसे जब ब्रह्मा सौ वर्षके हो जाते हैं, तब उनकी आयु पूरी हो जाती है। ब्रह्माके एक दिनमें १४ मनु बदल जाते हैं। इस श्वेत-वाराहकल्पमें स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष नामके छः मनु व्यतीत हो चुके हैं; सातवें वैवस्वत मनु वर्तमान हैं। आगे सात मनु और होनेवाले हैं; उनके नाम हैं—सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्म-सावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि। प्रत्येक मनुके समयमें विशेष-विशेष देवता, उनके पुत्र, इन्द्र, सप्तर्षि और भगवान्‌के अवतार हुआ

है ! मेरे घर तो वे कृपा करके ही आते हैं ! इन्हीं विचारोंमें आँसू बहाती हुई गोपी क्षण क्षणमें दौड़कर दरवाजेपर जाती, लाज छोड़कर रास्तेकी ओर देखती। सखियोंसे पूछती। एक-एक निमेष उसके लिये युगके समान हो जाता ! ऐसी भाग्यवती गोपियोंकी मनोकामना भगवान् उनके घर पधारकर पूर्ण करते।

सूरदासजीने गाया है—

प्रथम करी हरि माखन-चोरी।
ग्वालिनि मन इच्छा करि पूरन, आपु भजे ब्रज खोरी॥
मन में यहै बिचार करत हरि, ब्रज घर घर सब जाउँ।
गोकुल जनम लियौ सुख कारन, सब कैं माखन खाउँ॥
बालरूप जसुमति मोहि जानै, गोपिनि मिलि सुख भोग।
सूरदास प्रभु कहत प्रेम सौं ये मेरे ब्रज लोग॥

अपने निजजन व्रजवासियोंको सुखी करनेके लिये तो भगवान् गोकुलमें पधारे थे। माखन तो नन्दबाबाके घरपर कम न था, लाख-लाख गौएँ थीं। वे चाहे जितना खाते-लुटाते। परन्तु वे तो केवल नन्दबाबाके ही नहीं, सभी व्रजवासियोंके अपने थे, सभीको सुख देना चाहते थे। गोपियोंकी लालसा पूरी करनेके लिये ही वे उनके घर जाते और चुरा चुराकर माखन खाते। यह वास्तवमें चोरी नहीं, यह तो गोपियोंकी पूजा-पद्धतिका भगवान्‌के द्वारा स्वीकार था। भक्तवत्सल भगवान् भक्तकी पूजाका स्वीकार कैसे न करें?

भगवान्‌की इस दिव्यलीला—माखनचोरीका रहस्य न जाननेके कारण ही कुछ लोग इसे आदर्शके विपरीत बतलाते हैं। उन्हें पहले समझना चाहिये चोरी क्या वस्तु है, वह किसकी होती है और कौन करता है। चोरी उसे कहते हैं जब किसी दूसरेकी कोई चीज, उसकी इच्छाके बिना, उसके अनजानमें और आगे भी वह जान न पाये—ऐसी इच्छा रखकर ले ली जाती है। भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंके घरसे माखन लेते थे उनकी इच्छासे, गोपियोंके अनजानमें नहीं—उनकी जानमें, उनके देखते देखते और आगे जनानेकी कोई बात ही नहीं—उनके सामने ही दौड़ते हुए निकल जाते थे। दूसरी बात महत्त्वकी यह है कि संसारमें या संसारके बाहर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो श्रीभगवान्‌की नहीं है और वे उसकी चोरी करते हैं। गोपियोंका तो सर्वस्व श्रीभगवान्‌का था ही, सारा जगत् ही उनका है। वे भला, किसकी चोरी कर सकते हैं? हाँ, चोर तो वास्तवमें वे लोग हैं जो भगवान्‌की वस्तुको अपनी मानकर ममता-आसक्तिमें फँसे रहते हैं और दण्डके पात्र बनते हैं। उपर्युक्त सभी दृष्टियोंसे यही सिद्ध होता है कि माखनचोरी चोरी न थी, भगवान्‌की दिव्य लीला थी। असलमें गोपियोंने प्रेमकी अधिकतासे ही भगवान्‌का प्रेमका नाम 'चोर' रख दिया था, क्योंकि वे उनके चित्तचोर तो थे ही।

जो लोग भगवान् श्रीकृष्णको भगवान् नहीं मानते, यद्यपि उन्हें श्रीमद्भागवतमें वर्णित भगवान्‌की लीलापर विचार करनेका कोई अधिकार नहीं है, परन्तु उनकी दृष्टिसे भी इस प्रसङ्गमें कोई आपत्तिजनक बात नहीं है। क्योंकि श्रीकृष्ण उस समय लगभग दो-तीन वर्षके बच्चे थे और गोपियाँ अत्यधिक स्नेहके कारण उनके ऐसे ऐसे मधुर खेल देखना चाहती थीं।

इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी चीरहरणलीलापर शङ्काएँ की जाती हैं। दशम स्कन्धके इक्कीसवें अध्यायमें ऐसा वर्णन आया है कि भगवान्‌की रूपमाधुरी, वंशीध्वनि और प्रेममयी लीलाएँ देख-सुनकर गोपियाँ मुग्ध हो गयीं। बाईसवें अध्यायमें उसी प्रेमकी पूर्णता प्राप्त करनेके लिये वे साधनमें लग गयी हैं। इसी अध्यायमें भगवान्‌ने आकर उनकी साधना पूर्ण की है, यही चीरहरणका प्रसङ्ग है।

गोपियाँ क्या चाहती थीं, यह बात उनकी साधनासे स्पष्ट है। वे चाहती थीं—श्रीकृष्णके प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण, श्रीकृष्णके साथ इस प्रकार घुल मिल जाना कि उनका रोम-रोम, मन प्राण, सम्पूर्ण आत्मा

संसारके नाना प्रपञ्चोंमें उलझे हुए जीव मुक्तिका मार्ग प्राप्त कर सकें। अवतारके अनेकों भेद बतलाये गये हैं—जैसे अंशावतार, गुणावतार, व्यूहावतार, अर्चावतार, आवेशावतार, स्फूर्ति-अवतार आदि। इनमें श्रीकृष्ण स्वयं भगवान्, अवतारी पुरुष हैं। इनके चरित्रश्रवणसे किस प्रकार अन्तःकरण शुद्ध होता है; ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी किस प्रकार प्राप्ति होती है—इसका वर्णन श्रीमद्भागवतके प्रायः सभी स्कन्धोंमें है।

जो प्रेमी भक्त अपने सम्पूर्ण हृदयसे भगवान्का चिन्तन करते हैं उनका हृदय, जीवन और प्रत्येक क्रिया भगवन्मय हो जाती है; उनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रत्येक वस्तु भगवान्का स्मरण करानेवाली होती है। इसीसे नारद-भक्तिसूत्रमें कहा गया है, 'भगवान् और भगवान्के भक्तमें भेद नहीं होता। क्योंकि वे तन्मय होते हैं।' योगदर्शनमें चित्तनिरोध करनेके लिये राग-द्वेषरहित पुरुषोंके ध्यानका विधान है। महापुरुषोंके चरित्रसे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि संसारमें रहकर किस प्रकार संसारसे ऊपर उठना चाहिये और भगवान्को प्राप्त करना चाहिये। इसलिये श्रीमद्भागवतमें ध्रुव, प्रह्लाद, अम्बरीष आदि भक्तोंके चरित्रका वर्णन हुआ है।

अवतार भगवान् और उनके नित्य पार्षद दोनोंके ही होते हैं। सर्वव्यापक, निराकार एकरस परमात्माके लिये कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ वह पहलेसे ही विद्यमान न हो। इसलिये 'अवतार' शब्दका यह अर्थ नहीं है कि परमात्मा कहीं-से-कहीं आता-जाता है अथवा ऊपरसे नीचे उतरता है। यह तो एक विनोदकी भाषा है। 'अवतार' शब्दका अर्थ है—अव्यक्त रूपसे विराजमान परमात्माका व्यक्त हो जाना, यहीं छिपे हुए परमात्माका प्रकट हो जाना। जगत्में जो कुछ है और जो कुछ जगत् है, वह परमात्माका ही रूप है; इसलिये परमात्मा व्यक्त होनेपर भी अव्यक्त है और प्रकट होनेपर भी गुप्त है। जब जगत्के जीव इस रूपमें परमात्माको न पहचानकर अत्याचार-अनाचार आदि करने लगते हैं, तब जगत्की सुव्यवस्था करनेके लिये एक महान् शक्तिकी आवश्यकता होती है और उस शक्तिके रूपमें स्वयं परमात्मा ही अवतीर्ण होते हैं।

यह जगत् परमात्माकी शक्ति-विशेषका ही प्रकाश-मात्र है। शास्त्रोंके अनुसार परमात्मामें सोलह कलाएँ हैं। उनमेंसे एक कलाका प्रकाश उद्भिज्ज योनिमें है, वे अन्नमयकोषप्रधान हैं। दो कलाओंका प्रकाश स्वेदज योनिमें है, वे प्राणमयकोषप्रधान हैं। तीन कलाओंका प्रकाश अण्डज योनिमें है, वे मनोमयकोषप्रधान हैं। चार कलाओंका प्रकाश जरायुज पशुओंमें है, वे विज्ञानमय-कोषप्रधान हैं। पाँच कलाओंका प्रकाश जरायुज मनुष्योंमें है, वे आनन्दमयकोषप्रधान हैं। छःसे आठ कलाओंतक-का प्रकाश उन महात्माओंमें होता है, जो कोषसम्बन्धी संवेदनोंसे ऊपर उठे हुए हैं। मानव-शरीरमें आठ कलाओंसे अधिक शक्ति धारण करनेकी क्षमता नहीं है। इससे अधिक शक्तिकी स्फूर्ति जहाँ होती है, वहाँ शरीर भी दिव्य उपादानोंसे ही बनता है और उसका नाम अवतार होता है। नौसे पंद्रह कलातकका प्रकाश अंशावतारके नामसे अभिहित होता है और सोलह कलाका अवतार पूर्णावतार कहा जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णावतार हैं। भगवान्की दयालुता और सर्व-शक्तिमत्ताको दृष्टिमें रखते हुए यही बात युक्तियुक्त जँचती है कि भगवान् अपने भक्तोंकी रक्षा और आवश्यकतापूर्तिके लिये अवश्य ही अवतार धारण करते हैं।

ऋक्संहिता (१।२२।१७) में वामनावतारका स्पष्ट वर्णन मिलता है—'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्' इत्यादि। इसके बादवाले मन्त्रमें भी 'त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुः' का उल्लेख है। शतपथब्राह्मणमें इसकी पूरी आख्यायिका ही दी गयी है। वहाँ लिखा है—'देवता और दैत्योंने आपसमें विवाद किया और दैत्योंने सारी

निछावर कर रक्खा है, जिनसे निरावरण मिलनकी ही एकमात्र अभिलाषा है, उन्हीं निरावरण रसमय भगवान् श्रीकृष्णके सामने वे निरावरण भावसे न जा सकें—क्या यह उनकी साधनाकी अपूर्णता नहीं है? है, अवश्य है। और यह समझकर ही गोपियाँ निरावरणरूपसे उनके सामने गयीं।

श्रीकृष्ण चराचर प्रकृतिके एकमात्र अधीश्वर हैं; समस्त क्रियाओंके कर्ता, भोक्ता और साक्षी भी वही हैं। ऐसा एक भी व्यक्त या अव्यक्त पदार्थ नहीं है, जो बिना किसी परदेके उनके सामने न हो। वही सर्वव्यापक, अन्तर्यामी हैं। गोपियोंके, गोपोंके और निखिल विश्वके वही आत्मा हैं। उन्हें स्वामी, गुरु, पिता, माता, सखा, पति आदिके रूपमें मानकर लोग उन्हींकी उपासना करते हैं। गोपियाँ उन्हीं भगवान्‌को जान-बूझकर कि यही भगवान् है—यही योगेश्वरेश्वर, क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम हैं—पतिके रूपमें प्राप्त करना चाहती थीं। श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका श्रद्धाभावसे पाठ कर जानेपर यह बात बहुत ही स्पष्ट हो जाती है कि गोपियाँ श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको जानती थीं, पहचानती थीं। वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत और श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेपर गोपियोंके अन्वेषणमें यह बात कोई भी देख-सुन-समझ सकता है। जो लोग भगवान्‌को भगवान् मानते हैं, उनसे सम्बन्ध रखते हैं, स्वामी-सुहृद् आदिके रूपमें उन्हें मानते हैं, उनके हृदयमें गोपियोंके इस लोकोत्तर माधुर्यसम्बन्ध और उसकी साधनाके प्रति शङ्का ही कैसे हो सकती है।

गोपियोंकी इस दिव्य लीलाका जीवन उच्च श्रेणीके साधकके लिये आदर्श जीवन है। श्रीकृष्ण जीवके एकमात्र प्राप्तव्य साक्षात् परमात्मा हैं। हमारी बुद्धि, हमारी दृष्टि देहतक ही सीमित है। इसलिये हम श्रीकृष्ण और गोपियोंके प्रेमको भी केवल दैहिक तथा कामनाकलुषित समझ बैठते हैं। उस अपार्थिव और अप्राकृत लीलाको इस प्रकृतिके राज्यमें घसीट लाना हमारी स्थूल वासनाओंका हानिकर परिणाम है। जीवका मन भोगाभिमुख वासनाओंसे और तमोगुणी प्रवृत्तियोंसे अभिभूत रहता है। वह विषयोंमें ही इधर-से-उधर भटकता रहता है और अनेकों प्रकारके रोग-शोकसे आक्रान्त रहता है। जब कभी पुण्यकर्मोंके फल उदय होनेपर भगवान्‌की अचिन्त्य अहैतुकी कृपासे विचारका उदय होता है, तब जीव दुःखज्वालासे त्राण पानेके लिये और अपने प्राणोंको शान्तिमय धाममें पहुँचानेके लिये उत्सुक हो उठता है। वह भगवान्‌के लीलाधामोंकी यात्रा करता है, सत्सङ्ग प्राप्त करता है और उसके हृदयकी छटपटी उस आकाङ्क्षाको लेकर, जो अबतक सुप्त थी, जगकर बड़े वेगसे परमात्माकी ओर चल पड़ती है। चिरकालसे विषयोंका ही अभ्यास होनेके कारण बीच-बीचमें विषयोंके संस्कार उसे सताते हैं और बार-बार विक्षेपोंका सामना करना पड़ता है। परन्तु भगवान्‌की प्रार्थना, कीर्तन, स्मरण, चिन्तन करते-करते चित्त सरस होने लगता है और धीरे-धीरे उसे भगवान्‌की सन्निधिका अनुभव भी होने लगता है। थोड़ा-सा रसका अनुभव होते ही चित्त बड़े वेगसे अन्तर्देशमें प्रवेश कर जाता है और भगवान् मार्गदर्शकके रूपमें संसार-सागरसे पार ले जानेवाली नावपर केवटके रूपमें अथवा यों कहें कि साक्षात् चित्स्वरूप गुरुदेवके रूपमें प्रकट हो जाते हैं। ठीक उसी क्षण अभाव, अपूर्णता और सीमाका बन्धन नष्ट हो जाता है, विशुद्ध आनन्द—विशुद्ध ज्ञानकी अनुभूति होने लगती है।

गोपियाँ, जो अभी-अभी साधनसिद्ध होकर भगवान्‌की अन्तरङ्ग लीलामें प्रविष्ट होनेवाली हैं, चिरकालसे श्रीकृष्णके प्राणोंमें अपने प्राण मिला देनेके लिये उत्कण्ठित हैं, सिद्धिलाभके समीप पहुँच चुकी हैं। अथवा जो नित्यसिद्धा होनेपर भी भगवान्‌की इच्छाके

लक्षण किया गया है कि परमात्मा जब अपनी शक्तियोंके साथ सो जाता है, तब सारे जगत्का निरोध अर्थात् प्रलय हो जाता है।

प्रलय चार प्रकारके होते हैं— नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृत प्रलय और आत्यन्तिक प्रलय। नित्य प्रलयके दो अर्थ हैं—एक तो जगत्में जो निरन्तर क्षय हो रहा है, उसका नाम नित्य प्रलय है; और दूसरा नित्य निद्राके समय जब सारी सृष्टि अज्ञानमें विलीन हो जाती है, किसी भी विशेष भावका अनुभव नहीं होता, उसको नित्य प्रलय कहते हैं। नैमित्तिक प्रलय भी दो प्रकारका होता है—एक आंशिक प्रलय और दूसरा पूर्ण नैमित्तिक प्रलय। एक मन्वन्तर समाप्त होनेपर अथवा कभी-कभी भगवान्की इच्छासे मन्वन्तरके बीचमें ही जब समस्त पृथ्वी जलमग्न हो जाती है और भुवर्लोक, स्वर्लोक आदि भी विच्छिन्न हो जाते हैं परन्तु महर्लोक आदि ज्यों-के-त्यों रहते हैं, तब आंशिक प्रलय होता है और जब एक कल्पके अन्तमें ब्रह्माका दिन पूरा होनेपर वे अपनी की हुई सृष्टिको लेकर घोर निद्रामें सो जाते हैं, तब पूर्ण नैमित्तिक प्रलय होता है। प्राकृत प्रलय उसको कहते हैं, जिसमें ब्रह्माकी आयु (उनके मानसे सौ वर्ष) पूरी हो जाती है और यह ब्रह्माण्ड सर्वथा प्रकृतिमें विलीन हो जाता है। आत्यन्तिक प्रलयका कोई समय नहीं है। साधनचतुष्टयसम्पन्न होकर श्रवण-मनन-निदिध्यासनरूप अन्तरङ्ग साधन करके जीव जब अपने वास्तविक स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करता है, तब इस संसारका आत्यन्तिक प्रलय हो जाता है। इन सब प्रलयोंका वर्णन श्रीमद्भागवतके बारहवें स्कन्धमें विशदरूपसे हुआ है। इन सब विविध प्रकारके प्रलयोंके चिन्तनसे जगत्के नाना नाम और रूपोंका अभाव ध्यानमें आ जाता है, फिर भाव और अभाव दोनोंके आश्रयस्वरूप भगवान्की उपलब्धि हो जाती है।

प्रायः सभी पुराणोंमें प्रलयका वर्णन हुआ है और उनमें स्थूल दृष्टिसे कुछ थोड़ा-थोड़ा भेद भी प्रतीत होता है; परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे देखनेपर सबकी एकता सिद्ध हो जाती है। दर्शनोंमें भी प्रलयका अस्तित्व स्वीकार किया गया है। प्राचीन नैयायिकोंने खण्डप्रलय और महाप्रलय दो प्रकारके प्रलय माने हैं। वे जन्य-द्रव्यके अधिकरणमात्रके अभावको खण्डप्रलय कहते हैं और जन्यभावके अधिकरणमात्रके अभावको महाप्रलय कहते हैं। नव्य नैयायिकोंने केवल खण्डप्रलयका ही अस्तित्व स्वीकार किया है। उनके मतमें जन्यभावके अधिकरणका अभाव सम्भव नहीं है। सांख्यदर्शनकी दृष्टिसे भी प्रलय होता है। सांख्यवादी प्रकृतिमें दो प्रकारके परिणाम मानते हैं—एक स्वरूपपरिणाम और दूसरा विरूपपरिणाम। सत्त्व, रज, तम—ये तीनों गुण जब स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं—सत्त्व सत्त्वमें, रज रजमें, तम तममें—तब प्रलय हो जाता है; और जब वे विकृत होते हैं, उनमें वैषम्य होता है, तब विरूपपरिणामके कारण सृष्टि होती है। इन मतवादोंके अनुसार यद्यपि सृष्टि और प्रलयका ठीक-ठीक समय निर्णय नहीं किया जा सकता, तथापि ये प्रलयका अस्तित्व स्वीकार करते हैं—इसमें कोई मतभेद नहीं है। इन्होंने केवल भौतिक दृष्टिसे ही जगत्के सृष्टि-प्रलयपर विचार किया है। जब इस स्थूल जगत्से तटस्थ होकर आध्यात्मिक और आधिदैविक दृष्टिसे विचार करते हैं, तब भौतिक जगत्की पोल खुल जाती है और इसकी एक-एक क्रिया और प्रतिक्रियाका पता चल जाता है। इसीसे प्रकृति और परमाणुके आधारपर विचार करनेवाले वैज्ञानिकों और दार्शनिकोंको प्रलय होगा—इतना तो मालूम हो जाता है, परन्तु कब होगा—यह ठीक-ठीक मालूम नहीं होता। पौराणिकोंकी योगदृष्टिसे प्रतिक्षण होनेवाला नित्य प्रलय और आगे होनेवाले प्रलय एवं महाप्रलय ओझल नहीं रहते। इसलिये वे उनके निश्चित समयका निर्देश करते हैं।

सदा निष्कलङ्क हो, तुम्हें इसका भी त्याग, त्यागके भावका भी त्याग—त्यागकी स्मृतिका भी त्याग करना होगा।' गोपियोंकी दृष्टि श्रीकृष्णके मुखकमलपर पड़ी। दोनों हाथ अपने-आप जुड़ गये और सूर्यमण्डलमें विराजमान अपने प्रियतम श्रीकृष्णसे ही उन्होंने प्रेमकी भिक्षा माँगी। गोपियोंके इसी सर्वस्वत्यागने, इसी पूर्ण समर्पणने, इसी उच्चतम आत्मविस्मृतिने उन्हें भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमसे भर दिया। वे दिव्य रसके अलौकिक अप्राकृत मधुके अनन्त समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं। वे सब कुछ भूल गयीं, भूलनेवालेको भी भूल गयीं। उनकी दृष्टिमें अब श्यामसुन्दर थे। बस, केवल श्यामसुन्दर थे।

जब प्रेमी भक्त आत्मविस्मृत हो जाता है, तब उसका दायित्व प्रियतम भगवान्पर होता है। अब मर्यादारक्षाके लिये गोपियोंको तो वस्त्रकी आवश्यकता नहीं थी। क्योंकि उन्हें जिस वस्तुकी आवश्यकता थी, वह मिल चुकी थी। परन्तु श्रीकृष्ण अपने प्रेमीको मर्यादाच्युत नहीं होने देते। वे स्वयं वस्त्र देते हैं और अपनी अमृतमयी वाणीके द्वारा उन्हें विस्मृतिसे जगाकर फिर जगत्में लाते हैं। श्रीकृष्णने कहा—'गोपियो! तुम सती साध्वी हो। तुम्हारा प्रेम और तुम्हारी साधना मुझसे छिपी नहीं है। तुम्हारा सङ्कल्प सत्य होगा। तुम्हारा यह सङ्कल्प—तुम्हारी यह कामना तुम्हें उस पदपर स्थित करती है, जो निस्सङ्कल्पता और निष्कामता का है। तुम्हारा उद्देश्य पूर्ण, तुम्हारा समर्पण पूर्ण और अब आगे आनेवाली शारदीय रात्रियोंमें हमारा रमण पूर्ण होगा। भगवान्ने साधना सफल होनेकी अवधि निर्धारित कर दी। इससे भी स्पष्ट है कि भगवान् श्रीकृष्णमें किसी भी कामविकारकी कल्पना नहीं थी। कामी पुरुषका चित्त वस्त्रहीन स्त्रियोंको देखकर एक क्षणके लिये भी कब वशमें रह सकता है।

एक बात बड़ी विलक्षण है। भगवान्के सम्मुख जानेके पहले जो वस्त्र समर्पणकी पूर्णतामें बाधक हो रहे थे—विक्षेपका काम कर रहे थे—वही भगवान्की कृपा, प्रेम, सान्निध्य और वरदान प्राप्त होनेके पश्चात् 'प्रसाद'-स्वरूप हो गये। इसका कारण क्या है? इसका कारण है, भगवान्का सम्बन्ध। भगवान्ने अपने हाथसे उन वस्त्रोंको उठाया था और फिर उन्हें अपने उत्तम अंग कंधेपर रख लिया था। नीचेके शरीरमें पहननेकी साड़ियाँ भगवान्के कंधेपर चढ़कर—उनका संस्पर्श पाकर कितनी अप्राकृत रसात्मक हो गयीं, कितनी पवित्र—कृष्णमय हो गयीं, इसका अनुमान कौन लगा सकता है। असलमें यह संसार तभीतक बाधक और विक्षेपजनक है, जबतक यह भगवान्से सम्बद्ध और भगवान्का प्रसाद नहीं हो जाता। उनके द्वारा प्राप्त होनेपर तो यह बन्धन ही मुक्तिस्वरूप हो जाता है। उनके सम्पर्कमें जाकर माया शुद्ध विद्या बन जाती है। संसार और उसके समस्त कर्म अमृतमय आनन्दरससे परिपूर्ण हो जाते हैं। तब बन्धनका भय नहीं रहता। कोई भी आवरण भगवान्के दर्शनसे वञ्चित नहीं रख सकता। नरक नरक नहीं रहता, भगवान्का दर्शन होते रहनेके कारण वह वैकुण्ठ बन जाता है। इसी स्थितिमें पहुँचकर बड़े-बड़े साधक प्राकृत पुरुषके समान आचरण करते हुए-से दीखते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी अपनी होकर गोपियाँ पुनः वे ही वस्त्र धारण करती हैं अथवा श्रीकृष्ण वे ही वस्त्र धारण कराते हैं, परन्तु गोपियोंकी दृष्टिमें अब ये वस्त्र वे वस्त्र नहीं हैं, वस्तुतः वे हैं भी नहीं—अब तो ये दूसरी ही वस्तु हो गये हैं। अब तो ये भगवान्के पावन प्रसाद हैं, पल-पलपर भगवान्का स्मरण करानेवाले भगवान्के परम सुन्दर प्रतीक हैं। इसीसे उन्होंने स्वीकार भी किया। उनकी प्रेममयी स्थिति मर्यादाके ऊपर थी, फिर भी उन्होंने भगवान्की इच्छासे मर्यादा स्वीकार की। इस दृष्टिसे विचार करनेपर ऐसा जान पड़ता है

भगवान्‌से जिसका सम्बन्ध हो गया, चाहे किसी भी भावसे क्यों न हुआ हो, उसको कोई-न-कोई मुक्ति प्राप्त हो ही जाती है। परन्तु जो भगवान्‌के सच्चे और ऊँचे प्रेमी होते हैं, वे इन पाँच प्रकारकी मुक्तियोंमेंसे कोई नहीं चाहते; वे केवल भगवान्‌की सेवा करना चाहते हैं। यहाँतक कि भगवान् उन्हें मुक्ति देते हैं, तब भी वे उसे स्वीकार नहीं करते। मुक्तिसे भी ऊँचा भगवान्‌का प्रेम है, यह बात श्रीमद्भागवतमें अनेक स्थानोंमें कही गयी है।

न्याय और वैशेषिक दर्शनोंमें प्रमाण, प्रमेयादि षोडश द्रव्य अथवा सप्त पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे एकविंशति प्रकारके दुःखोंका ध्वंस होकर मुक्ति सिद्ध होती है—ऐसा स्वीकार किया गया है। सांख्यदर्शनमें प्रकृति और पुरुषके विवेकसे पुरुषका अपने असङ्ग रूपमें स्थित हो जाना ही मुक्ति है, ऐसा कहा गया है। योगदर्शनमें विवेकके साथ ही मुक्तिके लिये समाधिकी आवश्यकता स्वीकृत हुई है। भक्तिदर्शनोंमें भगवत्कृपाको ही मुक्तिका हेतु माना गया है। पूर्वमीमांसादर्शन स्वर्गके अतिरिक्त और किसी प्रकारकी मुक्ति स्वीकार नहीं करता। वेदान्त-दर्शनकी व्याख्या भक्ति और ज्ञान दोनोंके ही पक्षमें हुई है; परन्तु कैवल्य-मुक्तिके सम्बन्धमें दोनोंका ही यह निश्चित मत है कि वह तत्त्वज्ञानसे ही प्राप्त होती है, चाहे तत्त्वज्ञान भगवत्कृपासे प्राप्त हो अथवा श्रवण आदि साधनोंसे।

मुक्तिके सम्बन्धमें श्रीमद्भागवत एक विशेषता रखता है। इसमें पूर्वमीमांसाके मतके अतिरिक्त और सब दर्शनोंके सिद्धान्त एवं साधनोंका निर्देश हुआ है। उन सबका सामञ्जस्य भी है, समन्वय भी है और उसके परे भी एक स्थिति बतलायी गयी है। साधकको इस विचार-में नहीं पड़ना चाहिये कि कौन-सी मुक्ति वाञ्छनीय है। इस झगड़ेमें भी नहीं पड़ना चाहिये कि मुक्तिका क्या स्वरूप है। उसे तो केवल अपना साधन करते ही जाना चाहिये। सर्वश्रेष्ठ मुक्तिका यही स्वरूप है कि कुछ चाह न जाय, कोई कामना न रहे—'नैरपेक्ष्यं परं प्राहुर्निःश्रेयसमनल्पकम्।'—परम निरपेक्षता ही सर्वश्रेष्ठ निःश्रेयस है। जो मुक्ति चाहता है, उसकी मुक्तिमें उसका चाहना ही आवरण है; उस चाहनाको छोड़ देनेपर मुक्ति स्वतःसिद्ध है। यही मुक्ति वास्तविक मुक्ति है।

सर्गसे लेकर प्रलयपर्यन्त संसारका विस्तार है। उसके बीचमें अनेकों प्रकारके बाधक और साधक कर्म हैं, समय है, देश है और वस्तु है; इनके भाव और अभाव भी उसीमें सम्मिलित हैं। इनकी विरोधिनी मुक्ति है। परन्तु चाहे कहने ही भरकी क्यों न हो, मुक्ति उनकी विरोधिनी है सही। बन्धन और मुक्ति, ये द्वन्द्व न होनेपर भी एक द्वन्द्व हैं; इनके आश्रय हैं साक्षात् भगवान् पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण; उन्हें चाहे ब्रह्म कहिये चाहे परमात्मा। इसी दशम तत्त्वका निरूपण करनेके लिये उपर्युक्त सर्ग, विसर्ग आदिका लक्षण किया गया है।

प्रतिपाद्य तत्त्व

दूसरे पुराणोंकी अपेक्षा श्रीमद्भागवतकी यह महान् विशेषता है कि इसके प्रतिपाद्य आश्रयस्वरूप परमात्मा या भगवान् ही हैं। कोषोक्त लक्षणके अनुसार पुराणके जो सर्ग, विसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—पाँच लक्षण हैं वे केवल उन्हीं पुराणोंपर लागू होते हैं जिनके प्रतिपाद्य वे ही पाँच विषय हैं। श्रीमद्भागवतमें पाँच या दस विषयोंका प्रतिपादन नहीं, वे तो लक्षण-मात्र हैं; केवल एकमात्र आश्रयस्वरूप भगवान्‌का ही प्रतिपादन है। भगवान्‌के साथ श्रीमद्भागवत ग्रन्थका प्रतिपादक-प्रतिपाद्यभाव-सम्बन्ध है। श्रीमद्भागवतके प्रत्येक पदके प्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं।

—शान्तनुविहारी द्विवेदी



सकता है; इसलिये श्रीकृष्णने अलौकिक ढंगसे इसका निषेध कर दिया।

गाँवोंकी ग्वालिनोंको इस प्रथाकी बुराई किस प्रकार समझायी जाय, इसके लिये भी श्रीकृष्णने एक मौलिक उपाय सोचा। यदि वे गोपियोंके पास जाकर उन्हें देवतावादकी फिलासफी समझाते, तो वे सरलतासे नहीं समझ सकती थीं। उन्हें तो इस प्रथाके कारण होनेवाली विपत्तिका प्रत्यक्ष अनुभव करा देना था। और विपत्तिका अनुभव करानेके पश्चात् उन्होंने देवताओंके अपमानकी बात भी बता दी तथा अञ्जलि बाँधकर क्षमा-प्रार्थनारूप प्रायश्चित्त भी करवाया। महापुरुषोंमें उनकी बाल्यावस्थामें भी ऐसी प्रतिमा देखी जाती है।

श्रीकृष्ण आठ-नौ वर्षके थे, उनमें कामोत्तेजना नहीं हो सकती और नग्नस्नानकी कुप्रथाको नष्ट करनेके लिये उन्होंने चीरहरण किया—यह उत्तर सम्भव होनेपर भी मूलमें आये हुए 'काम' और 'रमण' शब्दोंसे कई लोग भड़क उठते हैं। यह केवल शब्दकी पकड़ है, जिसपर महात्मालोग ध्यान नहीं देते। श्रुतियोंमें और गीतामें भी अनेकों बार 'काम', 'रमण' और 'रति' आदि शब्दोंका प्रयोग हुआ है; परन्तु वहाँ उनका अश्लील अर्थ नहीं होता। गीतामें तो 'धर्माविरुद्ध काम' को परमात्माका स्वरूप बतलाया गया है। महापुरुषोंका आत्मरमण, आत्ममिथुन और आत्मरति प्रसिद्ध ही है। ऐसी स्थितिमें केवल कुछ शब्दोंको देखकर भड़कना विचारशील पुरुषोंका काम नहीं है। जो श्रीकृष्णको केवल मनुष्य समझते हैं उन्हें रमण और रति शब्दका अर्थ केवल क्रीडा अथवा खिलवाड़ समझना चाहिये, जैसा कि व्याकरणके अनुसार ठीक है—'रमु क्रीडायाम्'।

दृष्टिभेदसे श्रीकृष्णकी लीला भिन्न-भिन्न रूपमें दीख पड़ती है। अध्यात्मवादी श्रीकृष्णको आत्माके रूपमें देखते हैं और गोपियोंको वृत्तियोंके रूपमें। वृत्तियोंका आवरण नष्ट हो जाना ही 'चीरहरण-लीला' है और उनका आत्मामें रम जाना ही 'रास' है। इस दृष्टिसे भी समस्त लीलाओंकी संगति बैठ जाती है। भक्तोंकी दृष्टिसे गोलोकाधिपति पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका यह सब नित्यलीला-विलास है और अनादि कालसे अनन्त कालतक यह नित्य चलता रहता है। कभी-कभी भक्तोंपर कृपा करके वे अपने नित्य धाम और नित्य सखा-सहचरियोंके साथ लीला-धाममें प्रकट होकर लीला करते हैं और भक्तोंके स्मरण-चिन्तन तथा आनन्द-मङ्गलकी सामग्री प्रकट करके पुनः अन्तर्धान हो जाते हैं। साधकोंके लिये किस प्रकार कृपा करके भगवान् अन्तर्मलको और अनादि कालसे सञ्चित संस्कारपटको विशुद्ध कर देते हैं, यह बात भी इस चीरहरण-लीलासे प्रकट होती है। भगवान्‌की लीला रहस्यमयी है, उसका तत्त्व केवल भगवान् ही जानते हैं और उनकी कृपासे उनकी लीलामें प्रविष्ट भाग्यवान् भक्त कुछ-कुछ जानते हैं। यहाँ तो शास्त्रों और संतोंकी वाणीके आधारपर कुछ लिखनेकी धृष्टता की गयी है।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार



भगवान्‌की नित्यसिद्धा चिदानन्दमयी गोपियोंके अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी गोपियाँ और थीं, जो अपनी महान् साधनाके फलस्वरूप भगवान्‌की मुक्तजन-वाञ्छित सेवा करनेके लिये गोपियोंके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं। उनमेंसे कुछ पूर्वजन्मकी देवकन्याएँ थीं, कुछ श्रुतियाँ थीं, कुछ तपस्वी ऋषि थे और कुछ अन्य भक्तजन। इनकी कथाएँ विभिन्न पुराणोंमें मिलती हैं। श्रुतिरूप गोपियाँ, जो 'नेति-नेति'के द्वारा निरन्तर परमात्माका वर्णन करते रहनेपर भी उन्हें साक्षात्‌रूपसे प्राप्त नहीं कर सकतीं, गोपियोंके साथ भगवान्‌के दिव्य रसमय विहारकी बात जानकर गोपियोंकी उपासना करती हैं और अन्तमें स्वयं गोपीरूपमें परिणत होकर भगवान् श्रीकृष्णको साक्षात् अपने प्रियतमरूपसे प्राप्त करती हैं। इनमें मुख्य श्रुतियोंके नाम ये हैं—उद्गीता, सुगीता, कलगीता, कलकण्ठिका और विपञ्ची आदि।

भगवान्‌के श्रीरामावतारमें उन्हें देखकर मुग्ध होनेवाले—अपने-आपको उनके स्वरूप-सौन्दर्यपर न्यौछावर कर देनेवाले ऋषिगण, जिनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें गोपी होकर प्राप्त करनेका वर दिया था, व्रजमें गोपीरूपसे अवतीर्ण हुए थे। इसके अतिरिक्त मिथिलाकी गोपी, कोसलकी गोपी, अयोध्याकी गोपी—पुलिन्दगोपी, रमावैकुण्ठ श्वेतद्वीप आदिकी गोपियाँ और जालन्धरी गोपी आदि गोपियोंके अनेकों यूथ थे, जिनको बड़ी तपस्या करके भगवान्‌से वरदान पाकर गोपीरूपमें अवतीर्ण होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। पद्मपुराणके पातालखण्डमें बहुत-से ऐसे ऋषियोंका वर्णन है, जिन्होंने बड़ी कठिन तपस्या आदि करके अनेकों कल्पोंके बाद गोपीस्वरूपको प्राप्त किया था। उनमेंसे कुछके नाम निम्नलिखित हैं—

१—एक उग्रतपा नामके ऋषि थे। वे अग्निहोत्री और बड़े दृढ़व्रती थे। उनकी तपस्या अद्भुत थी। उन्होंने पञ्चदशाक्षरमन्त्रका जाप और रासोन्मत्त नवकिशोर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णका ध्यान किया था। सौ कल्पोंके बाद वे सुनन्दनामक गोपकी कन्या 'सुनन्दा' हुए।

२—एक सत्यतपा नामके मुनि थे। वे सूखे पत्तोंपर रहकर दशाक्षरमन्त्रका जाप और श्रीराधाजीके दोनों हाथ पकड़कर नाचते हुए श्रीकृष्णका ध्यान करते थे। दस कल्पके बाद वे सुभद्रनामक गोपकी कन्या 'सुभद्रा' हुए।

३—हरिधामा नामके एक ऋषि थे। वे निराहार रहकर 'क्लीं' कामबीजसे युक्त विंशाक्षरी मन्त्रका जाप करते थे और माधवीमण्डपमें कोमल-कोमल पत्तोंकी शय्यापर लेटे हुए युगल-सरकारका ध्यान करते थे। तीन कल्पके पश्चात् वे सारङ्गनामक गोपके घर 'रङ्गवेणी' नामसे अवतीर्ण हुए।

४—जाबालि नामके एक ब्रह्मज्ञानी ऋषि थे, उन्होंने एक बार विशाल वनमें विचरते-विचरते एक जगह बहुत बड़ी बावली देखी। उस बावलीके पश्चिम तटपर बड़के नीचे एक युवती स्त्री कठोर तपस्या कर रही थी। वह बड़ी सुन्दर थी। चन्द्रमाकी शुभ्र किरणोंके समान उसकी चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी। उसका बायाँ हाथ अपनी कमरपर था और दाहिने हाथसे वह ज्ञानमुद्रा धारण किये हुए थी। जाबालिके बड़ी नम्रताके साथ पूछनेपर उस तापसीने बतलाया—

ब्रह्मविद्याहमतुला योगीन्द्रैर्या च मृग्यते।
साहं हरिपदाम्भोजकाम्यया सुचिरं तपः॥
चराम्यस्मिन् वने घोरे ध्यायन्ती पुरुषोत्तमम्।
ब्रह्मानन्देन पूर्णाहं तेनानन्देन तृप्तधीः॥
तथापि शून्यमात्मानं मन्ये कृष्णरतिं विना॥

'मैं वह ब्रह्मविद्या हूँ, जिसे बड़े-बड़े योगी सदा ढूँढ़ा करते हैं। मैं श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी प्राप्तिके लिये इस घोर वनमें उन पुरुषोत्तमका ध्यान करती हुई दीर्घ कालसे तपस्या कर रही हूँ। मैं ब्रह्मानन्दसे परिपूर्ण हूँ



आत्मारामकी आत्मक्रीड़ा—भगवान्ने हँसकर गोपियोंके साथ क्रीड़ा आरम्भ की ।

वंदरोंको लुटायें, आनन्दमें मत्त होकर मेरे आँगनमें नाचें और मैं किसी कोनेमें छिपकर इस लीलाको अपनी आँखोंसे देखकर जीवनको सफल करूँ। और फिर अचानक ही पकड़कर हृदयसे लगा लूँ। सूरदासजीने गाया है—

मैया री, मोहि माखन भावै।
जो मेवा पकवान कहति तू, मोहि नहीं रुचि आवै॥
ब्रज-जुवती इक पाछैं ठाढ़ी, सुनत स्याम की बात।
मन-मन कहति कबहुँ अपनैं घर, देखौं माखन खात॥
बैठैं जाइ मथनियाँ कैं ढिग, मैं तब रहौं छपानी।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, ग्वालिनि-मन की जानी॥

एक दिन श्यामसुन्दर कह रहे थे, 'मैया! मुझे माखन भाता है; तू मेवा-पकवानके लिये कहती है, परन्तु मुझे तो वे रुचते ही नहीं।' वहीं पीछे एक गोपी खड़ी श्यामसुन्दरकी बात सुन रही थी। उसने मन-ही-मन कामना की—'मैं कब इन्हें अपने घर माखन खाते देखूँगी; ये मथानीके पास जाकर बैठेंगे, तब मैं छिप रहूँगी?' प्रभु तो अन्तर्यामी हैं, गोपीके मनकी जान गये और उसके घर पहुँचे तथा उसके घरका माखन खाकर उसे सुख दिया—'गये स्याम तिहिं ग्वालिनि कैं घर।'

उसे इतना आनन्द हुआ कि वह फूली न समायी। सूरदासजी गाते हैं—

फूली फिरति ग्वालि मन में री।
पूछति सखी परस्पर बातैं पायो परयौ कछू कहुँ तैं री?
पुलकित रोम रोम, गदगद मुख बानी कहत न आवै।
ऐसौ कहा आहि सो सखि री, हम कौं क्यौं न सुनावै॥
तन न्यारौ, जिय एक हमारौ, हम तुम एकै रूप।
सूरदास कहै ग्वालि सखिनि सौं, देख्यौ रूप अनूप॥

वह खुशीसे छककर फूली-फूली फिरने लगी। आनन्द उसके हृदयमें समा नहीं रहा था। सहेलियोंने पूछा—अरी, तुझे कहीं कुछ पड़ा धन मिल गया क्या? वह तो यह सुनकर और भी प्रेमविह्वल हो गयी। उसका रोम-रोम खिल उठा, वह गद्गद हो गयी, मुँहसे बोली नहीं निकली। सखियोंने कहा—'सखि! ऐसी क्या बात है, हमें सुनाती क्यों नहीं? हमारे तो शरीर ही दो हैं, हमारा जी तो एक ही है—हम-तुम दोनों एक ही रूप हैं। भला, हमसे छिपानेकी कौन-सी बात है? तब उसके मुँहसे इतना ही निकला—'मैंने आज अनूप रूप देखा है।' बस, फिर वाणी रुक गयी और प्रेमके आँसू बहने लगे! सभी गोपियोंकी यही दशा थी।

ब्रज घर-घर प्रगटी यह बात।
दधि माखन चोरी करि लै हरि, ग्वाल सखा सँग खात॥
ब्रज-बनिता यह सुनि मन हरषित, सदन हमारैं आवैं।
माखन खात अचानक पावैं, भुज भरि उरहिं छुपावैं॥
मनहीं मन अभिलाष करति सब हृदय धरति यह ध्यान।
सूरदास प्रभु कौं घर में लै, दैहौं माखन खान॥

चली ब्रज घर-घरनि यह बात।
नंद-सुत, सँग सखा लीन्हें, चोरि माखन खात॥
कोउ कहति, मेरे भवन भीतर, अबहिं पैठे धाइ।
कोउ कहति मोहिं देखि द्वारैं, उतहिं गए पराइ॥
कोउ कहति, किहिं भाँति हरि कौं, देखौं अपने धाम।
हेरि माखन देउँ आछौ, खाइ जितनौ स्याम॥
कोउ कहति, मैं देखि पाऊँ, भरि धरौं अँकवार।
कोउ कहति, मैं बाँधि राखौं, को सकै निरवार॥
सूर प्रभु के मिलन कारन, करति बिबिध बिचार।
जोरि कर बिधिकौं मनावति पुरुष नंदकुमार॥

रातों गोपियाँ जाग-जागकर प्रातःकाल होनेकी बाट देखतीं। उनका मन श्रीकृष्णमें लगा रहता। प्रातःकाल जल्दी-जल्दी दही मथकर, माखन निकालकर छीकेपर रखतीं। कहीं प्राणधन आकर लौट न जायँ, इसलिये सब काम छोड़कर वे सबसे पहले यही काम करतीं और श्यामसुन्दरकी प्रतीक्षामें व्याकुल होती हुई मन-ही-मन सोचतीं—हा! आज प्राणप्रियतम क्यों नहीं आये? इतनी देर क्यों हो गयी? क्या आज इस दासीका घर पवित्र न करेंगे? क्या आज मेरे समर्पण किये हुए इस तुच्छ माखनका भोग लगाकर स्वयं सुखी होकर मुझे सुख न देंगे? कहीं यशोदा मैयाने तो उन्हें नहीं रोक लिया? उनके घर तो नौ लाख गौएँ हैं। माखनकी क्या कमी

इस परम दिव्य उज्ज्वल रसका लेशाभास नहीं देखा जाता। इस परम रसकी स्फूर्ति तो परम भावमयी श्रीकृष्णप्रेमस्वरूपा गोपीजनोंके मधुर हृदयमें ही होती है। इस रासलीलाके यथार्थ स्वरूप और परम माधुर्यका आस्वाद उन्हींको मिलता है, दूसरे लोग तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते।

भगवान्‌के समान ही गोपियाँ भी परमरसमयी और सच्चिदानन्दमयी ही हैं। साधनाकी दृष्टिसे भी उन्होंने न केवल जड शरीरका ही त्याग कर दिया है, बल्कि सूक्ष्म शरीरसे प्राप्त होनेवाले स्वर्ग, कैवल्यसे अनुभव होनेवाले मोक्ष—और तो क्या, जडताकी दृष्टिका ही त्याग कर दिया है। उनकी दृष्टिमें केवल चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण हैं, उनके हृदयमें श्रीकृष्णको तृप्त करनेवाला प्रेमामृत है। उनकी इस अलौकिक स्थितिमें स्थूलशरीर, उसकी स्मृति और उसके सम्बन्धसे होनेवाले अङ्ग-सङ्गकी कल्पना किसी भी प्रकार नहीं की जा सकती। ऐसी कल्पना तो केवल देहात्मबुद्धिसे जकड़े हुए जीवोंकी ही होती है। जिन्होंने गोपियोंको पहचाना है, उन्होंने गोपियोंकी चरणधूलिका स्पर्श प्राप्त करके अपनी कृतकृत्यता चाही है। ब्रह्मा, शङ्कर, उद्धव और अर्जुनने गोपियोकी उपासना करके भगवान्‌के चरणोंमें वैसे प्रेमका वरदान प्राप्त किया है या प्राप्त करनेकी अभिलाषा की है। उन गोपियोंके दिव्य भावको साधारण स्त्री-पुरुषके भाव-जैसा मानना गोपियोंके प्रति, भगवान्‌के प्रति और वास्तवमें सत्यके प्रति महान् अन्याय एवं अपराध है। इस अपराधसे बचनेके लिये भगवान्‌की दिव्य लीलाओं-पर विचार करते समय उनकी अप्राकृत दिव्यताका स्मरण रखना परमावश्यक है।

भगवान्‌का चिदानन्दघन शरीर दिव्य है। वह अजन्मा और अविनाशी है, हानोपादानरहित है। वह नित्य सनातन शुद्ध भगवत्स्वरूप ही है। इसी प्रकार गोपियाँ दिव्य जगत्‌की भगवान्‌की स्वरूपभूता अन्तरङ्ग-शक्तियाँ हैं। इन दोनोंका सम्बन्ध भी दिव्य ही है। यह उच्चतम भावराज्यकी लीला स्थूल शरीर और स्थूल मनसे परे है। आवरण-भङ्गके अनन्तर अर्थात् चीर-हरण करके जब भगवान् स्वीकृति देते हैं, तब इसमें प्रवेश होता है।

प्राकृत देहका निर्माण होता है स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन देहोंके संयोगसे। जबतक 'कारण शरीर' रहता है, तबतक इस प्राकृत देहसे जीवको छुटकारा नहीं मिलता। 'कारण शरीर' कहते हैं पूर्वकृत कर्मोंके उन संस्कारोंको, जो देह-निर्माणमें कारण होते हैं। इस 'कारण शरीर' के आधारपर जीवको बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें पड़ना होता है और यह चक्र जीवकी मुक्ति न होनेतक अथवा 'कारण' का सर्वथा अभाव न होनेतक चलता ही रहता है। इसी कर्मबन्धनके कारण पाञ्चभौतिक स्थूलशरीर मिलता है—जो रक्त, मांस, अस्थि आदिसे भरा और चमड़ेसे ढका होता है। प्रकृतिके राज्यमें जितने शरीर होते हैं, सभी वस्तुतः योनि और बिन्दुके संयोगसे ही बनते हैं; फिर चाहे कोई कामजनित निकृष्ट मैथुनसे उत्पन्न हो या ऊर्ध्वरेता महापुरुषके सङ्कल्पसे बिन्दुके अधोगामी होनेपर कर्तव्यरूप श्रेष्ठ मैथुनसे हो, अथवा बिना ही मैथुनके नाभि, हृदय, कण्ठ, कर्ण, नेत्र, सिर, मस्तक आदिके स्पर्शसे, बिना ही स्पर्शके केवल दृष्टिमात्रसे अथवा बिना देखे केवल सङ्कल्पसे ही उत्पन्न हो। ये मैथुनी-अमैथुनी (अथवा कभी-कभी स्त्री या पुरुष-शरीरके बिना भी उत्पन्न होनेवाले) सभी शरीर हैं योनि और बिन्दुके सयोगजनित ही। ये सभी प्राकृत शरीर हैं। इसी प्रकार योगियोंके द्वारा निर्मित 'निर्माणकाय' यद्यपि अपेक्षाकृत शुद्ध हैं, परन्तु वे भी हैं प्राकृत ही। पितर या देवोंके दिव्य कहलानेवाले शरीर भी प्राकृत ही हैं। अप्राकृत शरीर इन सबसे विलक्षण हैं, जो महाप्रलयमें भी नष्ट नहीं होते। और भगवद्देह तो साक्षात्

केवल श्रीकृष्णमय हो जाय। शरत्-कालमें उन्होंने श्रीकृष्णकी वंशीध्वनिकी चर्चा आपसमें की थी, हेमन्तके पहले ही महीनेमें अर्थात् भगवान्‌के विभूति-स्वरूप मार्गशीर्षमें उनकी साधना प्रारम्भ हो गयी। विलम्ब उनके लिये असह्य था। जाड़ेके दिनमें वे प्रातःकाल ही यमुना-स्नानके लिये जातीं, उन्हें शरीरकी परवा नहीं थी। बहुत-सी कुमारी ग्वालिनें एक साथ ही जातीं, उनमें ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। वे ऊँचे स्वरसे श्रीकृष्णका नामकीर्तन करती हुई जातीं, उन्हें गाँव और जातिवालोंका भय नहीं था। वे घरमें भी हविष्यान्नका ही भोजन करतीं, वे श्रीकृष्णके लिये इतनी व्याकुल हो गयी थीं कि उन्हें माता-पितातकका सङ्कोच नहीं था। वे विधिपूर्वक देवीकी बालुकामयी मूर्ति बनाकर पूजा और मन्त्र-जप करती थीं। अपने इस कार्यको सर्वथा उचित और प्रशस्त मानती थीं। एक वाक्यमें—उन्होंने अपना कुल, परिवार, धर्म, सङ्कोच और व्यक्तित्व भगवान्‌के चरणोंमें सर्वथा समर्पण कर दिया था। वे यही जपती रहती थीं कि एकमात्र नन्दनन्दन ही हमारे प्राणोंके स्वामी हों। श्रीकृष्ण तो वस्तुतः उनके स्वामी थे ही। परन्तु लीलाकी दृष्टिसे उनके समर्पणमें थोड़ी कमी थी। वे निरावरणरूपसे श्रीकृष्णके सामने नहीं जा रही थीं, उनमें थोड़ी झिझक थी; उनकी यही झिझक दूर करनेके लिये—उनकी साधना, उनका समर्पण पूर्ण करनेके लिये उनका आवरण भङ्ग कर देनेकी आवश्यकता थी, उनका यह आवरणरूप चीर हर लेना जरूरी था और यही काम भगवान् श्रीकृष्णने किया। इसीके लिये वे योगेश्वरोंके ईश्वर भगवान् अपने मित्र ग्वालबालोंके साथ यमुनातटपर पधारे थे।

साधक अपनी शक्तिसे, अपने बल और सङ्कल्पसे केवल अपने निश्चयसे पूर्ण समर्पण नहीं कर सकता। समर्पण भी एक क्रिया है और उसका करनेवाला असमर्पित ही रह जाता है। ऐसी स्थितिमें अन्तरात्माका पूर्ण समर्पण तब होता है, जब भगवान् स्वयं आकर वह सङ्कल्प स्वीकार करते हैं और सङ्कल्प करनेवालेको स्वीकार करते हैं। यहीं जाकर समर्पण पूर्ण होता है। साधकका कर्तव्य है, पूर्ण समर्पणकी तैयारी। उसे पूर्ण तो भगवान् ही करते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण यों तो लीलापुरुषोत्तम हैं; फिर भी जब अपनी लीला प्रकट करते हैं तो मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं करते, स्थापना ही करते हैं। विधिका अतिक्रमण करके कोई साधनाके मार्गमें अग्रसर नहीं हो सकता। परन्तु हृदयकी निष्कपटता, सचाई और सच्चा प्रेम विधिके अतिक्रमणको भी शिथिल कर देता है। गोपियाँ श्रीकृष्णको प्राप्त करनेके लिये जो साधना कर रही थीं, उसमें एक त्रुटि थी। वे शास्त्र-मर्यादा और परम्परागत सनातन मर्यादाका उल्लङ्घन करके नग्न स्नान करती थीं। यद्यपि उनकी यह क्रिया अज्ञानपूर्वक ही थी, तथापि भगवान्‌के द्वारा इसका मार्जन होना आवश्यक था। भगवान्‌ने गोपियोंसे इसका प्रायश्चित्त भी करवाया। जो लोग भगवान्‌के प्रेमके नामपर विधिका उल्लङ्घन करते हैं, उन्हें यह प्रसङ्ग ध्यानसे पढ़ना चाहिये और भगवान् शास्त्रविधिका कितना आदर करते हैं, यह देखना चाहिये।

वैधी भक्तिका पर्यवसान रागात्मिका भक्तिमें है और रागात्मिका भक्ति पूर्ण समर्पणके रूपमें परिणत हो जाती है। गोपियोंने वैधी भक्तिका अनुष्ठान किया, उनका हृदय तो रागात्मिका भक्तिसे भरा हुआ था ही। अब पूर्ण समर्पण होना चाहिये। चीरहरणके द्वारा वही कार्य सम्पन्न होता है।

गोपियोंने जिनके लिये लोक-परलोक, स्वार्थ-परमार्थ, जाति-कुल, पुरजन-परिजन और गुरुजनोंकी परवा नहीं की, जिनकी प्राप्तिके लिये ही उनका यह महान् अनुष्ठान है, जिनके चरणोंमें उन्होंने अपना सर्वस्व

कल्याण हो जाता है। यह भगवान्‌के श्रीविग्रहकी विशेषता है। भावके द्वारा तो एक प्रस्तरमूर्ति भी परम कल्याणका दान कर सकती है, बिना भावके ही कल्याणदान भगवद्विग्रहका सहज दान है।

भगवान् हैं बड़े लीलामय। जहाँ वे अखिल विश्वके विधाता ब्रह्मा शिव आदिके भी वन्दनीय, निखिल जीवोंके प्रत्यगात्मा हैं, वहीं वे लीलानटवर गोपियोंके इशारेपर नाचनेवाले भी हैं। उन्हींकी इच्छासे, उन्हींके प्रेमाह्वानसे, उन्हींके वंशी निमन्त्रणसे प्रेरित होकर गोपियाँ उनके पास आयीं, परन्तु उन्होंने ऐसी भावभङ्गी प्रकट की, ऐसा स्वाँग बनाया, मानो उन्हें गोपियोंके आनेका कुछ पता ही न हो। शायद गोपियोंके मुँहसे वे उनके हृदयकी बात, प्रेमकी बात सुनना चाहते हों। सम्भव है, वे विप्रलम्भके द्वारा उनके मिलन भावको परिपुष्ट करना चाहते हों। बहुत करके तो ऐसा मालूम होता है कि कहीं लोग इसे साधारण बात न समझ लें, इसलिये साधारण लोगोंके लिये उपदेश और गोपियोंका अधिकार भी उन्होंने सबके सामने रख दिया। उन्होंने बतलाया—'गोपियो! व्रजमें कोई विपत्ति तो नहीं आयी, घोर रात्रिमें यहाँ आनेका कारण क्या है? घरवाले ढूँढते होंगे, अब यहाँ ठहरना नहीं चाहिये। वनकी शोभा देख ली, अब बच्चों और बछड़ोंका भी ध्यान करो। धर्मके अनुकूल मोक्षके खुले हुए द्वार अपने सगे-सम्बन्धियोंकी सेवा छोड़कर वनमें दर-दर भटकना स्त्रियोंके लिये अनुचित है। स्त्रीको अपने पतिकी ही सेवा करनी चाहिये, वह कैसा भी क्यों न हो। यही सनातन धर्म है। इसीके अनुसार तुम्हें चलना चाहिये। मैं जानता हूँ कि तुम सब मुझसे प्रेम करती हो। परन्तु प्रेममें शारीरिक सन्निधि आवश्यक नहीं है। श्रवण, स्मरण, दर्शन और ध्यानसे सान्निध्यकी अपेक्षा अधिक प्रेम बढ़ता है। जाओ, तुम सनातन सदाचारका पालन करो। इधर-उधर मनको मत भटकने दो।'

श्रीकृष्णकी यह शिक्षा गोपियोंके लिये नहीं, सामान्य नारी-जातिके लिये है। गोपियोंका अधिकार विशेष था और उसको प्रकट करनेके लिये ही भगवान् श्रीकृष्णने ऐसे वचन कहे थे। इन्हें सुनकर गोपियोंकी क्या दशा हुई और इसके उत्तरमें उन्होंने श्रीकृष्णसे क्या प्रार्थना की, वे श्रीकृष्णको मनुष्य नहीं मानतीं, उनके पूर्णब्रह्म सनातन स्वरूपको भलीभाँति जानती हैं और यह जान कर ही उनसे प्रेम करती हैं—इस बातका कितना सुन्दर परिचय दिया, यह सब विषय मूलमें ही पाठ करनेयोग्य है। सचमुच जिनके हृदयमें भगवान्‌के परमतत्त्वका वैसा अनुपम ज्ञान और भगवान्‌के प्रति वैसा महान् अनन्य अनुराग है और सचाईके साथ जिनकी वाणीमें वैसे उद्‌गार हैं, वे ही विशेष अधिकारवान् हैं।

गोपियोंकी प्रार्थनासे यह बात स्पष्ट है कि वे श्रीकृष्णको अन्तर्यामी, योगेश्वरेश्वर परमात्माके रूपमें पहचानती थीं और जैसे दूसरे लोग गुरु, सखा या माता पिताके रूपमें श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं वैसे ही वे पतिके रूपमें श्रीकृष्णसे प्रेम करती थीं, जो कि शास्त्रोंमें मधुर भावके—उज्ज्वल परम रसके नामसे कहा गया है। जब प्रेमके सभी भाव पूर्ण होते हैं और साधकोंको स्वामि सखादिके रूपमें भगवान् मिलते हैं, तब गोपियोंने क्या अपराध किया था कि उनका यह उच्चतम भाव—जिसमें शान्त, दास्य, सख्य और वात्सल्य सब-के-सब अन्तर्भूत हैं और जो सबसे उन्नत एवं सबका अन्तिम रूप है—क्यों न पूर्ण हो? भगवान्‌ने उनका भाव पूर्ण किया और अपनेको असंख्य रूपोंमें प्रकट करके गोपियोंके साथ क्रीडा की। उनकी क्रीडाका स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है—'रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः'। जैसे नन्हा-सा शिशु दर्पण अथवा जलमें पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बके साथ खेलता है, वैसे ही रमेश भगवान् और व्रजसुन्दरियोंने रमण किया। अर्थात् सच्चिदानन्दघन सर्वान्तर्यामी

अनुसार उनकी दिव्य लीलामें सहयोग प्रदान कर रही हैं, उनके हृदयके समस्त भावोंके एकान्त ज्ञाता श्रीकृष्ण बाँसुरी बजाकर उन्हें आकृष्ट करते हैं और जो कुछ उनके हृदयमें बचे-खुचे पुराने संस्कार हैं, मानो उन्हें धो डालनेके लिये साधनामें लगाते हैं। उनकी कितनी दया है, वे अपने प्रेमियोंसे कितना प्रेम करते हैं—यह सोचकर चित्त मुग्ध हो जाता है, गद्गद हो जाता है।

श्रीकृष्ण गोपियोंके वस्त्रोंके रूपमें उनके समस्त संस्कारोंके आवरण अपने हाथमें लेकर पास ही कदम्बके वृक्षपर चढ़कर बैठ गये। गोपियाँ जलमें थीं, वे जलमें सर्वव्यापक सर्वदर्शी भगवान् श्रीकृष्णसे मानो अपनेको गुप्त समझ रही थीं—वे मानो इस तत्त्वको भूल गयी थीं कि श्रीकृष्ण जलमें ही नहीं हैं स्वयं जलस्वरूप भी वही हैं। उनके पुराने संस्कार श्रीकृष्णके सम्मुख जानेमें बाधक हो रहे थे; वे श्रीकृष्णके लिये सब कुछ भूल गयी थीं परन्तु अबतक अपनेको नहीं भूली थीं। वे चाहती थीं केवल श्रीकृष्णको, परन्तु उनके संस्कार बीचमें एक परदा रखना चाहते थे। प्रेम प्रेमी और प्रियतमके बीचमें एक पुष्पका भी परदा नहीं रखना चाहता। प्रेमकी प्रकृति है सर्वथा व्यवधानरहित, अबाध और अनन्त मिलन। जहाँतक अपना सर्वस्व—इसका विस्तार चाहे जितना हो—प्रेमकी ज्वालामें भस्म नहीं कर दिया जाता, वहाँतक प्रेम और समर्पण दोनों ही अपूर्ण रहते हैं। इसी अपूर्णताको दूर करते हुए, 'शुद्ध भावसे प्रसन्न हुए' (शुद्धभावप्रसादितः) श्रीकृष्णने कहा कि 'मुझसे अनन्य प्रेम करनेवाली गोपियो! एक बार, केवल एक बार अपने सर्वस्वको और अपनेको भी भूलकर मेरे पास आओ तो सही। तुम्हारे हृदयमें जो अव्यक्त त्याग है, उसे एक क्षणके लिये व्यक्त तो करो। क्या तुम मेरे लिये इतना भी नहीं कर सकती हो?' गोपियोंने मानो कहा—'श्रीकृष्ण! हम अपनेको कैसे भूलें? हमारी जन्म-जन्मकी धारणाएँ भूलने दें, तब न। हम संसारके अगाध जलमें आकण्ठ मग्न हैं। जाड़ेका कष्ट भी है। हम आना चाहनेपर भी नहीं आ पाती हैं। श्यामसुन्दर! प्राणोंके प्राण! हमारा हृदय तुम्हारे सामने उन्मुक्त है। हम तुम्हारी दासी हैं। तुम्हारी आज्ञाओंका पालन करेंगी। परन्तु हमें निरावरण करके अपने सामने मत बुलाओ।' साधककी यह दशा—भगवान्‌को चाहना और साथ ही संसारको भी न छोड़ना, संस्कारोंमें ही उलझे रहना—मायाके परदेको बनाये रखना बड़ी द्विविधाकी दशा है। भगवान् यही सिखाते हैं कि 'संस्कारशून्य होकर, निरावरण होकर, मायाका परदा हटाकर आओ; मेरे पास आओ। अरे, तुम्हारा यह मोहका परदा तो मैंने ही छीन लिया है; तुम अब इस परदेके मोहमें क्यों पड़ी हो? यह परदा ही तो परमात्मा और जीवके बीचमें बड़ा व्यवधान है; यह हट गया, बड़ा कल्याण हुआ। अब तुम मेरे पास आओ, तभी तुम्हारी चिरसञ्चित आकाङ्क्षाएँ पूरी हो सकेंगी।' परमात्मा श्रीकृष्णका यह आह्वान, आत्माके आत्मा परम प्रियतमके मिलनका यह मधुर आमन्त्रण भगवत्कृपासे जिसके अन्तर्देशमें प्रकट हो जाता है, वह प्रेममें निमग्न होकर सब कुछ छोड़कर, छोड़ना भी भूलकर प्रियतम श्रीकृष्णके चरणोंमें दौड़ आता है। फिर न उसे अपने वस्त्रोंकी सुधि रहती है और न लोगोंका ध्यान! न वह जगत्‌को देखता है न अपनेको। यह भगवत्प्रेमका रहस्य है। विशुद्ध और अनन्य भगवत्प्रेममें ऐसा होता ही है।

गोपियाँ आयीं, श्रीकृष्णके चरणोंके पास मूकभावसे खड़ी हो गयीं। उनका मुख लज्जावनत था। यत्किञ्चित् संस्कारशेष श्रीकृष्णके पूर्ण आभिमुख्यमें प्रतिबन्ध हो रहा था। श्रीकृष्ण मुसकराये। उन्होंने इशारेसे कहा—'इतने बड़े त्यागमें यह सङ्कोच, कलङ्क है। तुम तो

पराये नहीं हैं, सबके अपने हैं, सब उनके हैं। श्रीकृष्णकी दृष्टिसे, जो कि वास्तविक दृष्टि है, कोई परकीया है ही नहीं, सब स्वकीया हैं, सब केवल अपना ही लीलाविलास हैं, सभी स्वरूपभूता अन्तरङ्गा शक्ति हैं। गोपियाँ इस बातको जानती थीं और स्थान स्थानपर उन्होंने ऐसा कहा है।

ऐसी स्थितिमें 'जारभाव' और 'औपपत्य' का कोई लौकिक अर्थ नहीं रह जाता। जहाँ काम नहीं है, अङ्ग-सङ्ग नहीं है, वहाँ 'औपपत्य' और 'जारभाव' की कल्पना ही कैसे हो सकती है? गोपियाँ परकीया नहीं थीं, स्वकीया थीं, परन्तु उनमें परकीयाभाव था। परकीया होनेमें और परकीयाभाव होनेमें आकाश-पातालका अन्तर है। परकीयाभावमें तीन बातें बड़े महत्त्वकी होती हैं—अपने प्रियतमका निरन्तर चिन्तन, मिलनकी उत्कट उत्कण्ठा और दोषदृष्टिका सर्वथा अभाव। स्वकीयाभावमें निरन्तर एक साथ रहनेके कारण ये तीनों बातें गौण हो जाती हैं, परन्तु परकीयाभावमें ये तीनों भाव बने रहते हैं। कुछ गोपियाँ जारभावसे श्रीकृष्णको चाहती थीं। इसका इतना ही अर्थ है कि वे श्रीकृष्णका निरन्तर चिन्तन करती थीं, मिलनके लिये उत्कण्ठित रहती थीं और श्रीकृष्णके प्रत्येक व्यवहारको प्रेमकी आँखोंसे ही देखती थीं। चौथा भाव विशेष महत्त्वका और है—वह यह कि स्वकीया अपने घरका, अपना और अपने पुत्र-कन्याओंका पालन पोषण, रक्षणावेक्षण पतिसे चाहती है। वह समझती है कि इनकी देखरेख करना पतिका कर्तव्य है क्योंकि ये सब उसीके आश्रित हैं, और वह पतिसे ऐसी आशा भी रखती है। कितनी ही पतिपरायणा क्यों न हो, स्वकीयामें यह सकामभाव छिपा रहता ही है। परन्तु परकीया अपने प्रियतमसे कुछ नहीं चाहती, कुछ भी आशा नहीं रखती, वह तो केवल अपनेको देकर ही उसे सुखी करना चाहती है। श्रीगोपियोंमें यह भाव भी भलीभाँति प्रस्फुटित था। इसी विशेषताके कारण संस्कृत साहित्यके कई ग्रन्थोंमें निरन्तर चिन्तनके उदाहरणस्वरूप परकीयाभावका वर्णन आता है।

गोपियोंके इस भावके एक नहीं, अनेकों दृष्टान्त श्रीमद्भागवतमें मिलते हैं, इसलिये गोपियोंपर परकीयापनका आरोप उनके भावको न समझनेके कारण है। जिसके जीवनमें साधारण धर्मकी एक हल्की-सी प्रकाश रेखा आ जाती है, उसीका जीवन परम पवित्र और दूसरोंके लिये आदर्श-स्वरूप बन जाता है। फिर वे गोपियाँ, जिनका जीवन साधनाकी चरम सीमापर पहुँच चुका है, अथवा जो नित्यसिद्धा एवं भगवान्‌की स्वरूपभूता हैं, या जिन्होंने कल्पोंतक साधना करके श्रीकृष्णकी कृपासे उनका सेवाधिकार प्राप्त कर लिया है, सदाचारका उल्लङ्घन कैसे कर सकती हैं। और समस्त धर्म मर्यादाओंके संस्थापक श्रीकृष्णपर धर्मोल्लङ्घनका लाञ्छन कैसे लगाया जा सकता है? श्रीकृष्ण और गोपियोंके सम्बन्धमें इस प्रकारकी कुकल्पनाएँ उनके दिव्य स्वरूप और दिव्य लीलाके विषयमें अनभिज्ञता ही प्रकट करती हैं।

श्रीमद्भागवतपर, दशम स्कन्धपर और रासपञ्चाध्यायीपर अबतक अनेकों भाष्य और टीकाएँ लिखी जा चुकी हैं—जिनके लेखकोंमें जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य, श्रीश्रीधरस्वामी, श्रीजीवगोस्वामी आदि हैं। उन लोगोंने बड़े विस्तारसे रासलीलाकी महिमा समझायी है। किसीने इसे कामपर विजय बतलाया है, किसीने भगवान्‌का दिव्य विहार बतलाया है और किसीने इसका आध्यात्मिक अर्थ किया है। भगवान् श्रीकृष्ण आत्मा हैं, आत्माकार वृत्ति श्रीराधा हैं और शेष आत्माभिमुख वृत्तियाँ गोपियाँ हैं। उनका धाराप्रवाहरूपसे निरन्तर आत्मरमण ही रास है। किसी भी दृष्टिसे देखें, रासलीलाकी महिमा अधिकाधिक प्रकट होती है।

कि भगवान्‌की यह चीरहरण-लीला भी अन्य लीलाओं-की भाँति उच्चतम मर्यादासे परिपूर्ण है।

भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके सम्बन्धमें केवल वे ही प्राचीन आर्षग्रन्थ प्रमाण हैं, जिनमें उनकी लीला-का वर्णन हुआ है। उनमेंसे एक भी ऐसा ग्रन्थ नहीं है, जिसमें श्रीकृष्णकी भगवत्ताका वर्णन न हो। श्रीकृष्ण 'स्वयं भगवान्' हैं, यही बात सर्वत्र मिलती है। जो श्रीकृष्णको भगवान् नहीं मानते, यह स्पष्ट है कि वे उन ग्रन्थोंको भी नहीं मानते। और जो उन ग्रन्थोंको ही प्रमाण नहीं मानते, वे उनमें वर्णित लीलाओं-के आधारपर श्रीकृष्ण-चरित्रकी समीक्षा करनेका अधिकार भी नहीं रखते। भगवान्‌की लीलाओंको मानवीय चरित्र-के समकक्ष रखना शास्त्र-दृष्टिसे एक महान् अपराध है और उसके अनुकरणका तो सर्वथा ही निषेध है। मानवबुद्धि—जो स्थूलताओंसे ही परिवेष्टित है—केवल जडके सम्बन्धमें ही सोच सकती है, भगवान्‌की दिव्य चिन्मयी लीलाके सम्बन्धमें कोई कल्पना ही नहीं कर सकती। वह बुद्धि स्वयं ही अपना उपहास करती है, जो समस्त बुद्धियोंके प्रेरक और बुद्धियोंसे अत्यन्त परे रहनेवाले परमात्माकी दिव्य लीलाको अपनी कसौटीपर कसती है।

हृदय और बुद्धिके सर्वथा विपरीत होनेपर भी यदि थोड़ी देरके लिये मान लें कि श्रीकृष्ण भगवान् नहीं थे, या उनकी यह लीला मानवी थी, तो भी तर्क और युक्तिके सामने ऐसी कोई बात नहीं टिक पाती जो श्रीकृष्णके चरित्रमें लाञ्छन हो। श्रीमद्भागवतका पारायण करनेवाले जानते हैं कि व्रजमें श्रीकृष्णने केवल ग्यारह वर्षकी अवस्थातक ही निवास किया था। यदि रासलीला-का समय दसवाँ वर्ष मानें, तो नवें वर्षमें ही चीरहरण-लीला हुई थी। इस बातकी कल्पना भी नहीं हो सकती कि आठ-नौ वर्षके बालकमें कामोत्तेजना हो सकती है। गाँवकी गँवारिन ग्वालिनें, जहाँ वर्तमानकालकी नागरिक मनोवृत्ति नहीं पहुँच पायी है, एक आठ-नौ वर्षके बालकसे अवैध सम्बन्ध करना चाहें और उसके लिये साधना करें—यह कदापि सम्भव नहीं दीखता। उन कुमारी गोपियोंके मनमें कलुषित वृत्ति थी, यह वर्तमान कलुषित मनोवृत्तिकी उड़ान है। आजकल जैसे गाँव-की छोटी-छोटी लड़कियाँ 'राम'-सा वर और 'लक्ष्मण'-सा देवर पानेके लिये देवी-देवताओंकी पूजा करती हैं, वैसे ही उन कुमारियोंने भी परमसुन्दर परममधुर श्रीकृष्णको पानेके लिये देवी-पूजन और व्रत किये थे। इसमें दोषकी कौन-सी बात है?

आजकी बात निराली है। भोगप्रधान देशोंमें तो नग्नसम्प्रदाय और नग्नस्नानके क्लब भी बने हुए हैं। उनकी दृष्टि इन्द्रिय-तृप्तितक ही सीमित है। भारतीय मनोवृत्ति इस उत्तेजक एवं मलिन व्यापारके विरुद्ध है। नग्नस्नान एक दोष है, जो कि पशुत्वको बढ़ानेवाला है। शास्त्रोंमें इसका निषेध है, 'न नग्नः स्नायात्'—यह शास्त्रकी आज्ञा है। श्रीकृष्ण नहीं चाहते थे कि गोपियाँ शास्त्रके विरुद्ध आचरण करें। केवल लौकिक अनर्थ ही नहीं—भारतीय ऋषियोंका वह सिद्धान्त, जो प्रत्येक वस्तुमें पृथक्-पृथक् देवताओंका अस्तित्व मानता है इस नग्नस्नानको देवताओंके विपरीत बतलाता है। श्रीकृष्ण जानते थे कि इससे वरुण देवताका अपमान होता है। गोपियाँ अपनी अभीष्ट-सिद्धिके लिये जो तपस्या कर रही थीं, उसमें उनका नग्नस्नान अनिष्ट फल देनेवाला था और इस प्रथाके प्रभातमें ही यदि इसका विरोध न कर दिया जाय तो आगे चलकर इसका विस्तार हो

ही नहीं रहता। लड़के-लड़की एक साथ खेलते हैं, नाचते हैं, गाते हैं, त्योहार मनाते हैं, गुड्डे-गुड्डियोंकी शादी करते हैं, बारात ले जाते हैं और आपसमें भोज-भात भी करते हैं। गाँवके बड़े-बूढ़े लोग बच्चोंका यह मनोरञ्जन देखकर प्रसन्न ही होते हैं, उनके मनमें किसी प्रकारका दुर्भाव नहीं आता। ऐसे बच्चोंको युवती स्त्रियाँ भी बड़े प्रेमसे देखती हैं, आदर करती हैं, नहलाती हैं, खिलाती हैं। यह तो साधारण बच्चोंकी बात है। श्रीकृष्ण-जैसे असाधारण धी-शक्तिसम्पन्न बालक जिनके अनेकों सद्गुण बाल्यकालमें ही प्रकट हो चुके थे; जिनकी सम्मति, चातुर्य्य और शक्तिसे बड़ी-बड़ी विपत्तियोंसे व्रजवासियोंने त्राण पाया था; उनके प्रति वहाँकी स्त्रियों, बालिकाओं और बालकोंका कितना आदर रहा होगा—इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उनके सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यसे आकृष्ट होकर गाँवकी बालक-बालिकाएँ उनके साथ ही रहती थीं और श्रीकृष्ण भी अपनी मौलिक प्रतिभासे राग, ताल आदि नये-नये ढंगसे उनका मनोरञ्जन करते थे और उन्हें शिक्षा देते थे। ऐसे ही मनोरञ्जनोंमेंसे रासलीला भी एक थी, ऐसा समझना चाहिये। जो श्रीकृष्णको केवल मनुष्य समझते हैं, उनकी दृष्टिमें भी यह दोषकी बात नहीं होनी चाहिये। वे उदारता और बुद्धिमानीके साथ भागवतमें आये हुए काम-रति आदि शब्दोंका ठीक वैसा ही अर्थ समझें, जैसा कि उपनिषद् और गीतामें इन शब्दोंका अर्थ होता है। वास्तवमें गोपियोंके निष्कपट प्रेमका ही नामान्तर काम है और भगवान् श्रीकृष्णका आत्मरमण अथवा उनकी दिव्य क्रीड़ा ही रति है। इसीलिये स्थान-स्थानपर उनके लिये विभु, परमेश्वर, लक्ष्मीपति, भगवान्, योगेश्वरेश्वर, आत्माराम, मन्मथमन्मथ आदि शब्द आये हैं—जिससे किसीको कोई भ्रम न हो जाय।

जब गोपियाँ श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुनकर वनमें जाने लगी थीं, तब उनके सगे-सम्बन्धियोंने उन्हें जानेसे रोका था। रातमें अपनी बालिकाओंको भला, कौन बाहर जाने देता। फिर भी वे चली गयीं और इससे घरवालोंको किसी प्रकारकी अप्रसन्नता नहीं हुई। और न तो उन्होंने श्रीकृष्णपर या गोपियोंपर किसी प्रकारका लाञ्छन ही लगाया। उनका श्रीकृष्णपर, गोपियोंपर विश्वास था और वे उनके बचपन और खेलोंसे परिचित थे। उन्हें तो ऐसा माळूम हुआ मानो गोपियाँ हमारे पास ही हैं। इसको दो प्रकारसे समझ सकते हैं। एक तो यह कि श्रीकृष्णके प्रति उनका इतना विश्वास था कि श्रीकृष्णके पास गोपियोंका रहना भी अपने ही पास रहना है। यह तो मानवीय दृष्टि है। दूसरी दृष्टि यह कि श्रीकृष्णकी योगमायाने ऐसी व्यवस्था कर रक्खी थी, गोपोंको वे घरमें ही दीखती थीं। किसी भी दृष्टिसे रासलीला दूषित प्रसङ्ग नहीं है, बल्कि अधिकारी पुरुषोंके लिये तो यह सम्पूर्ण मनोमलको नष्ट करनेवाला है। रासलीलाके अन्तमें कहा गया है कि जो पुरुष श्रद्धा-भक्तिपूर्वक रासलीलाका श्रवण और वर्णन करता है, उसके हृदयका रोग काम बहुत ही शीघ्र नष्ट हो जाता है और उसे भगवान्का प्रेम प्राप्त होता है। भागवतमें अनेकों स्थानपर ऐसा वर्णन आता है कि जो भगवान्की मायाका वर्णन करता है, वह मायासे पार हो जाता है। जो भगवान्के कामजयका वर्णन करता है, वह कामपर विजय प्राप्त करता है। राजा परीक्षित्ने अपने प्रश्नोंमें जो शङ्काएँ की हैं, उनका उत्तर प्रश्नोंके अनुरूप ही अध्याय २९ के श्लोक १३ से १६ तक और अध्याय ३३ के श्लोक ३० से ३७ तक श्रीशुकदेवजीने दिया है।

उस उत्तरसे वे शङ्काएँ तो हट गयी हैं, परन्तु भगवान्की दिव्यलीलाका रहस्य नहीं खुलने पाया; सम्भवतः उस रहस्यको गुप्त रखनेके लिये ही ३३वें अध्यायमें रासलीलाप्रसङ्ग समाप्त कर दिया गया। वस्तुतः इस लीलाके गूढ़ रहस्यकी प्राकृत-जगत्में व्याख्या की भी

रहा है, और उपासनाकी दृष्टिसे वे सर्वथा पूर्ण हुए हैं तथा दूसरोंको पूर्ण बनानेके लिये हुए हैं। आधिभौतिक दृष्टिसे श्रीकृष्णका शरीर सर्वथा परिपूर्ण है। यद्यपि भगवान्का शरीर पञ्चभूतनिर्मित नहीं होता, तथापि यदि भौतिक दृष्टिसे विचार करना ही हो तो कहा जा सकता है कि उतना सुन्दर, उतना बलिष्ठ, उतना सुगठित शरीर सृष्टिके प्रारम्भसे आजतक न किसीका हुआ और न आगे होनेकी सम्भावना है। श्रीमद्भागवतमें कंसकी रंगशालामें जानेपर श्रीकृष्णका जो वर्णन हुआ है, वह श्रीकृष्णके शरीरकी पूर्णताका द्योतक है। वहाँ ऐसा वर्णन आता है कि श्रीकृष्ण पहलवानोंको वज्रके समान दीख रहे थे और स्त्रियोंको कामदेवके समान; बड़े-बड़े लोग उन्हें श्रेष्ठ पुरुषकी भाँति देख रहे थे और पिता-माताकी दृष्टिमें वे नन्हे-से शिशु मालूम पड़ रहे थे। ग्वालोंकी दृष्टिमें वे अपने आत्मीय थे और दुष्टोंकी दृष्टिमें शासक, कंस उन्हें मृत्युके रूपमें देख रहा था और योगी लोग परम तत्त्वके रूपमें; अज्ञानी लोग उनके विराट् शरीरको देखकर भयभीत हो रहे थे और प्रेमी भक्त अपने प्रभुके रूपमें देखकर कृतार्थ हो रहे थे। इस प्रकार उनके शरीरकी पूर्णताके कारण सब लोग उनका दर्शन विभिन्न रूपमें करते थे। केवल शारीरिक पूर्णता ही नहीं, उनके जीवनमें कर्मकी पूर्णता भी प्रत्यक्षरूपसे दृष्टिगोचर होती है। साधु-परित्राण, दैत्योंका संहार, धर्मकी स्थापना, अधर्मका नाश—इतना ही क्यों, समष्टिके हितके लिये जिन कर्मोंकी आवश्यकता थी, श्रीकृष्णके जीवनमें उन सबकी पूर्णता पायी जाती है।

अंशावतार और पूर्णावतारके कर्ममें थोड़ा अन्तर होता है। अंशावतारका कर्म एक देश, एक काल, एक परिस्थिति और कभी-कभी तो एक व्यक्तिके लिये हितकर होता है; परन्तु पूर्णावतारका कर्म सब देश, सब काल, सब परिस्थिति और सब व्यक्तियोंके लिये हितकर होता है। उदाहरणके लिये परशुराम और बुद्धके चरित्र ले सकते हैं। क्षत्रियोंका संहार उस समय आवश्यक था, परन्तु वह सर्वदा आवश्यक नहीं हो सकता। बुद्धके समय ईश्वरकी भी उपेक्षा करके अहिंसाका प्रचार करना अनिवार्य हो गया था, परन्तु वह सर्वदाके लिये उपयुक्त नहीं हो सकता। परन्तु मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम एवं श्रीकृष्णके कार्यकलाप सब देश और सब समयके लिये एक-सरीखे उपयोगी हैं। उनका कार्य समष्टिके सार्वकालिक हितको ध्यानमें रखकर होता है।

भगवान्में सांसारिक जीवोंके समान कोई इच्छा नहीं होती। वे सर्वदा अपने स्वरूपमें रमण किया करते हैं; उनकी दृष्टिमें कोई दूसरा है ही नहीं, सब कुछ अपना ही पसारा है—अपनी ही लीला है। उनमें इच्छा उत्पन्न करती है भक्तोंकी इच्छा। जब भक्तलोग जगत्‌की रक्षाके लिये उन्हें पुकारते हैं, जब बहुत-से भक्त भगवान्‌को, उनकी लीलाको प्रकटरूपसे देखना चाहते हैं और स्वयं उनकी लीलामें सम्मिलित होकर उसका आनन्द लेना चाहते हैं, और भगवान्‌की प्रत्यक्ष सेवा करके अपने जीवनको सफल करना चाहते हैं, तब भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तोंकी अभिलाषाके अनुसार उनके बीचमें आते हैं और उनकी एक-एक लालसा पूर्ण करते हैं। जगत्‌का कल्याण ही भगवान्‌का अवतार है। भक्तोंकी लालसा ही भगवान्‌की लीला है। भक्त भगवान्‌से चाहे जो काम करा ले—हँसा ले, नचा ले, माखन-चोरी करवा ले, चीर-हरण करवा ले, रास-लीला करवा ले, रथ हँकवा ले, पैर धुलवा ले—सब कुछ करनेको वे निरन्तर प्रस्तुत रहते हैं। वे स्वयं इच्छाहीन हैं, भक्तकी इच्छा ही उनकी इच्छा है।

भगवान् श्रीकृष्ण एक भी हैं, अनेक भी हैं। वे ही गोलोकमें रहकर गोपियोंके साथ विहार करते हैं, वे ही वैकुण्ठमें रहकर सारे जगत्‌की रक्षा करते हैं, वे

रासलीलाकी महिमा

भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥

श्रीमद्भागवतमें रासलीलाके पाँच अध्याय उसके पाँच प्राण माने जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी परम अन्तरङ्ग-लीला, निजस्वरूपभूता गोपिकाओं और ह्लादिनी शक्ति श्रीराधाजीके साथ होनेवाली भगवान्की दिव्यातिदिव्य क्रीडा, इन अध्यायोंमें कही गयी है। 'रास' शब्दका मूल रस है और रस स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं—'रसो वै सः'। जिस दिव्य क्रीडामें एक ही रस अनेक रसोंके रूपमें होकर अनन्त-अनन्त रसका समास्वादन करे; एक रस ही रस-समूहके रूपमें प्रकट होकर स्वयं ही आस्वाद्य-आस्वादक, लीला, धाम और विभिन्न आलम्बन एवं उद्दीपनके रूपमें क्रीडा करे—उसका नाम रास है। भगवान्की यह दिव्य लीला भगवान्के दिव्य धाममें दिव्यरूपसे निरन्तर हुआ करती है। यह भगवान्की विशेष कृपासे प्रेमी साधकोंके हितार्थ कभी-कभी अपने दिव्य धामके साथ ही भूमण्डलपर भी अवतीर्ण हुआ करती है, जिसको देख-सुन एवं गाकर तथा स्मरण-चिन्तन करके अधिकारी पुरुष रसस्वरूप भगवान्की इस परम रसमयी लीलाका आनन्द ले सकें और स्वयं भी भगवान्की लीलामें सम्मिलित होकर अपनेको कृतकृत्य कर सकें। इस पञ्चाध्यायीमें वंशीध्वनि, गोपियोंके अभिसार, श्रीकृष्णके साथ उनकी बातचीत, रमण, श्रीराधाजीके साथ अन्तर्धान, पुनः प्राकट्य, गोपियोंके द्वारा दिये हुए वसनासनपर विराजना, गोपियोंके कूट प्रश्नका उत्तर, रासनृत्य, क्रीडा, जलकेलि और वनविहार-का वर्णन है—जो मानवी भाषामें होनेपर भी वस्तुतः परम दिव्य है।

समयके साथ ही मानव-मस्तिष्क भी पलटता रहता है। कभी अन्तर्दृष्टिकी प्रधानता हो जाती है और कभी बहिर्दृष्टिकी। आजका युग ही ऐसा है जिसमें भगवान्-की दिव्य-लीलाओंकी तो बात ही क्या, स्वयं भगवान्के अस्तित्वपर ही अविश्वास प्रकट किया जा रहा है। ऐसी स्थितिमें इस दिव्य लीलाका रहस्य न समझकर लोग तरह-तरहकी आशङ्का प्रकट करें, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। यह लीला अन्तर्दृष्टिसे और मुख्यतः भगवत्कृपासे ही समझमें आती है। जिन भाग्यवान् और भगवत्कृपाप्राप्त महात्माओंने इसका अनुभव किया है वे धन्य हैं और उनकी चरण-धूलिके प्रतापसे ही त्रिलोकी धन्य है। उन्हींकी उक्तियोंका आश्रय लेकर यहाँ रासलीलाके सम्बन्धमें यत्किञ्चित् लिखनेकी धृष्टता की जाती है।

यह बात पहले ही समझ लेनी चाहिये कि भगवान्-का शरीर जीव-शरीरकी भाँति जड नहीं होता। जडकी सत्ता केवल जीवकी दृष्टिमें होती है, भगवान्की दृष्टिमें नहीं। यह देह है और यह देही है, इस प्रकारका भेदभाव केवल प्रकृतिके राज्यमें होता है। अप्राकृत लोकमें—जहाँकी प्रकृति भी चिन्मय है—सब कुछ चिन्मय ही होता है; वहाँ अचित्की प्रतीति तो केवल चिद्विलास अथवा भगवान्की लीलाकी सिद्धिके लिये होती है। इसलिये स्थूलतामें—या यों कहिये कि जडराज्यमें रहनेवाला मस्तिष्क जब भगवान्की अप्राकृत लीलाओंके सम्बन्धमें विचार करने लगता है तब वह अपनी पूर्व वासनाओंके अनुसार जडराज्यकी धारणाओं, कल्पनाओं और क्रियाओंका ही आरोप उस दिव्य राज्यके विषयमें भी करता है, इसलिये दिव्यलीलाके रहस्यको समझनेमें असमर्थ हो जाता है। यह रास वस्तुतः परम उज्ज्वल रसका एक दिव्य प्रकाश है। जड जगत्की बात तो दूर रही, ज्ञानरूप या विज्ञानरूप जगत्में भी यह प्रकट नहीं होता। अधिक क्या, साक्षात् चिन्मय तत्त्वमें भी

तथा कंसो महातेजा जरासन्धेन पालितः।
विक्रमेणैव कृष्णेन सगणः पातितो रणे॥
सुनामा नरविक्रान्तः समग्राक्षौहिणीपतिः।
भोजराजस्य मध्यस्थो भ्राता कंसस्य वीर्यवान्॥
बलदेवद्वितीयेन कृष्णेनामित्रघातिना।
तरस्वी समरे दग्धः ससैन्यः शूरसेनराट्॥
चेदिराजं च विक्रान्तं राजसेनापतिं बली।
अर्घ्ये विवदमानं च जघान पशुवत्तदा॥
यच्च तन्महदाश्चर्यं सभायां मम सञ्जय।
कृतवान् पुण्डरीकाक्षः कस्तदन्य इहार्हति॥

इन श्लोकोंका अर्थ बहुत स्पष्ट है। इनमें गोकुल, मथुरा और हस्तिनापुरकी लीलाओंका स्पष्ट उल्लेख है। महाभारतके अतिरिक्त अग्निपुराण, विष्णुपुराण, पद्म-पुराण आदि समस्त पुराणग्रन्थोंमें जहाँ-जहाँ भगवान्‌की लीलाका वर्णन हुआ है, सर्वत्र एक ही कृष्णका वर्णन है।

श्रीमद्भागवतके कृष्ण दूसरे हैं और महाभारतके दूसरे—यह कहनेवालोंके चित्तमें ऐसी बात बैठी हुई है, अथवा वे यह कहना चाहते हैं कि श्रीकृष्ण ऐतिहासिक पुरुष नहीं हैं। श्रीमद्भागवतके कविने अपनी भावनाके अनुरूप श्रीकृष्णका चित्रण किया है और महाभारतके कविने अपनी भावनाके। वे काव्य, नाटक और उपन्यासके पात्रोंके समान इन पौराणिक व्यक्तियोंको भी कल्पित मानते हैं और कल्पनाके आदर्शके भेदसे श्रीकृष्णको दो व्यक्ति मान लेते हैं। बहुत जोर देनेपर और प्रमाणित करनेपर वे इतना तो मान लेते हैं कि इतिहासमें श्रीकृष्ण-अर्जुन आदि नामके व्यक्ति हुए हैं, परन्तु उनके चरित्रको सर्वथा अपनी-अपनी भावनाके अनुरूप कल्पित मानते हैं। उनकी यह धारणा भारतीय ऐतिहासिक पद्धतिके सर्वथा विपरीत होनेके कारण कदापि आदरणीय नहीं है। अभी भारतवर्षमें आज भी ऐसे लोग हैं जो अपनेको श्रीकृष्ण और युधिष्ठिरका वंशज कहकर गौरवान्वित अनुभव करते हैं। गोकुल, वृन्दावन, गोवर्द्धन, नन्दगाँव, मथुरा, द्वारका, कुरुक्षेत्र आदि ऐसे अनेकों स्थान हैं जहाँ परम्परासे श्रीकृष्ण आदिके अनेकों कर्मोंके स्थल-विशेष सुनिश्चित हैं। पाँच हजार वर्षके भीतरके जितने भी प्रामाणिक ग्रन्थ हैं, उनमें उन स्थानोंकी और उनमें होनेवाले व्यक्तियोंकी ऐतिहासिकता एक स्वरसे स्वीकार की गयी है। क्या संसारके इतिहासमें केवल काव्य अथवा उपन्यासके बल-पर किसी भी स्थान अथवा व्यक्तिकी इतनी पूजा हुई है? भारतीय पुराणोंमें जिन-जिन स्थानोंकी कथा है, वे आज भी प्रायः ज्यों-के-त्यों मिलते हैं; और अनेक शिलालेखों, स्तूपों और ताम्रशासनोंद्वारा उनकी प्राचीनता सिद्ध होती है। यदि महाभारत-युद्ध ही ऐतिहासिक नहीं है, तो श्रीकृष्णका सारथ्य और उनका गीतोपदेश क्या महत्त्व रखता है? एक बात बड़ी स्पष्टताके साथ कही जा सकती है। वह यह कि महाभारत और श्रीमद्भागवतमें जब बहुत ही स्पष्ट रूपसे लिखा है कि यह ऐतिहासिक घटना है, तब उनकी इस उक्तिको न मानकर उनके एक अंशके बलपर किसीको मनमानी कल्पना करनेका क्या अधिकार है? यदि उन्हें मानते हैं तो पूर्णरूपसे मानें और जैसे उनमें श्रीकृष्णको ऐतिहासिक, उनके चरित्रको सत्य एवं गोकुल तथा कुरुक्षेत्रके श्रीकृष्णको एक बतलाया गया है, वैसा ही स्वीकार करें; अपनी बुद्धिके भ्रमको शास्त्र-ग्रन्थोंपर न डालकर अपने ही पास रक्खें, शास्त्र-मर्यादाको अक्षुण्ण चलने दें, उसपर अनुचित आघात न करें। शास्त्रग्रन्थोंके आधारपर इस कल्पनाके लिये तनिक भी अवसर नहीं है कि ये सब ऐतिहासिक घटनाएँ नहीं हैं।

श्रीकृष्णके भक्तोंकी अनेक श्रेणियाँ होती हैं। वे अपनी भूमिका, स्थिति और भावनाके अनुसार श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओंसे प्रेम करते हैं और विशेष करके अपनी रुचिके अनुकूल लीलाओंका ही श्रवण-कीर्तन करते हैं। इनके अनेक भेद होनेपर भी मुख्यत

भगवत्स्वरूप ही है। देव-शरीर प्रायः रक्त-मांस-मेद-अस्थिवाले नहीं होते। अप्राकृत शरीर भी नहीं होते। फिर भगवान् श्रीकृष्णका भगवत्स्वरूप शरीर तो रक्त-मांस-अस्थिमय होता ही कैसे। वह तो सर्वथा चिदानन्दमय है। उसमें देह-देही, गुण-गुणी, रूप-रूपी, नाम-नामी और लीला तथा लीलापुरुषोत्तमका भेद नहीं है। श्रीकृष्णका एक-एक अङ्ग पूर्ण श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णका मुखमण्डल जैसे पूर्ण श्रीकृष्ण है, वैसे ही श्रीकृष्णका पदनख भी पूर्ण श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्णकी सभी इन्द्रियोंसे सभी काम हो सकते हैं। उनके कान देख सकते हैं, उनकी आँखें सुन सकती हैं, उनकी नाक स्पर्श कर सकती है, उनकी रसना सूँघ सकती है, उनकी त्वचा स्वाद ले सकती है। वे हाथोंसे देख सकते हैं, आँखोंसे चल सकते हैं। श्रीकृष्णका सब कुछ श्रीकृष्ण होनेके कारण वह सर्वथा पूर्णतम है। इसीसे उनकी रूपमाधुरी नित्यवर्द्धनशील, नित्य नवीन सौन्दर्यमयी है। उसमें ऐसा चमत्कार है कि वह स्वयं अपनेको ही आकर्षित कर लेती है। फिर उनके सौन्दर्य-माधुर्यसे गौ-हरिन और वृक्ष-वेल पुलकित हो जायँ, इसमें तो कहना ही क्या है। भगवान्के ऐसे स्वरूपभूत शरीरसे गंदा मैथुनकर्म सम्भव नहीं। मनुष्य जो कुछ खाता है उससे क्रमशः रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा और अस्थि बनकर अन्तमें शुक्र बनता है; इसी शुक्रके आधारपर शरीर रहता है और मैथुनक्रियामें इसी शुक्रका क्षरण हुआ करता है। भगवान्का शरीर न तो कर्मजन्य है, न मैथुनी सृष्टिका है और न दैवी ही है। वह तो इन सबसे परे सर्वथा विशुद्ध भगवत्स्वरूप है। उसमें रक्त, मांस, अस्थि आदि नहीं हैं; अतएव उसमें शुक्र भी नहीं है। इसलिये उससे प्राकृत पाञ्चभौतिक शरीरोंवाले स्त्री-पुरुषोंके रमण या मैथुनकी कल्पना भी नहीं हो सकती। इसीलिये भगवान्को उपनिषद्में 'अखण्ड ब्रह्मचारी' बतलाया गया है और इसीसे भागवतमें उनके लिये 'अवरुद्धसौरत' आदि शब्द आये हैं। फिर कोई शङ्का करे कि उनके सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके इतने पुत्र कैसे हुए तो इसका सीधा उत्तर यही है कि यह सारी भागवती सृष्टि थी, भगवान्के सङ्कल्पसे हुई थी। भगवान्के शरीरमें जो रक्त-मांस आदि दिखलायी पड़ते हैं, वह तो भगवान्की योगमाया-का चमत्कार है। इस विवेचनसे भी यही सिद्ध होता है कि गोपियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका जो रमण हुआ वह सर्वथा दिव्य भगवत्-राज्यकी लीला है, लौकिक काम-क्रीडा नहीं।

× × ×

इन गोपियोंकी साधना पूर्ण हो चुकी है। भगवान्ने अगली रात्रियोंमें उनके साथ विहार करनेका प्रेमसङ्कल्प कर लिया है। इसीके साथ उन गोपियोंको भी जो नित्य-सिद्धा हैं, जो लोकदृष्टिमें विवाहिता भी हैं, इन्हीं रात्रियोंमें दिव्य-लीलामें सम्मिलित करना है। वे अगली रात्रियाँ कौन-सी हैं, यह बात भगवान्की दृष्टिके सामने है। उन्होंने शारदीय रात्रियोंको देखा। 'भगवान्ने देखा'—इसका अर्थ सामान्य नहीं, विशेष है। जैसे सृष्टिके प्रारम्भमें 'स ऐक्षत एकोऽहं बहु स्याम्।'—भगवान्के इस ईक्षणसे जगत्की उत्पत्ति होती है, वैसे ही रासके प्रारम्भमें भगवान्के प्रेम-वीक्षणसे शरत्कालकी दिव्य रात्रियोंकी सृष्टि होती है। मल्लिका-पुष्प, चन्द्रिका आदि समस्त उद्दीपनसामग्री भगवान्के द्वारा वीक्षित है अर्थात् लौकिक नहीं, अलौकिक—अप्राकृत है। गोपियोंने अपना मन श्रीकृष्णके मनमें मिला दिया था। उनके पास स्वयं मन न था। अब प्रेम-दान करनेवाले श्रीकृष्णने विहारके लिये नवीन मनकी, दिव्य मनकी सृष्टि की। योगेश्वरेश्वर भगवान् श्रीकृष्णकी यही योगमाया है जो रासलीलाके लिये दिव्य स्थल, दिव्य सामग्री एवं दिव्य मनका निर्माण किया करती है। इतना होनेपर भगवान्की बाँसुरी बजती है।

भगवान्की बाँसुरी जड़को चेतन, चेतनको जड़,

प्रेम, आनन्द एवं रसस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण इतने कोमल एवं मधुर हैं कि वे अपने प्रेमीके हृदयमें किसी लालसाकी स्फूर्ति होनेके पहले ही उसको पूर्ण कर दिया करते हैं। वे इस बातके लिये निरन्तर सजग रहते हैं और अपने प्रेमीके हृदय-मन्दिरमें ही ज्योतिके रूपमें जगमगाते हैं कि कहीं उसे किसी वस्तुका अभाव न खटक जाय, उसे अपनेमें और मुझमें अपूर्णताका भान न हो जाय। यही कारण है कि वे चौबीसों घंटे अपने प्रेमीके हृदयमें, प्राणोंमें और नेत्रोंमें निवास करते हैं; एक क्षणके लिये भी उसे छोड़कर कहीं नहीं जाते। यही उनका नियम है और यही सत्य है। फिर भी जब हम देखते हैं कि श्रीकृष्ण उन गोपियोंको—जिनका जीवन श्रीकृष्णके लिये था और वे इस बातको जानते थे, स्वीकार भी करते थे—छोड़कर मथुरा चले गये और फिर कभी नहीं लौटे, तो यकायक चित्तमें एक प्रश्न उठता है कि क्या वास्तवमें भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंका परित्याग ही कर दिया। और यदि यह बात सत्य है, तो क्या श्रीकृष्ण-जैसे परम प्रेमी पुरुषोत्तमके चरित्रमें यह बात उपालम्भके योग्य नहीं है? है, और अवश्य है। यही बात असह्य होनेके कारण अनेक वैष्णवाचार्योंने ऐसी मान्यता कर ली कि श्रीकृष्ण वृन्दावनको छोड़कर एक पग भी कहीं बाहर नहीं गये, अक्रूरके साथ उन्होंने केवल अपना एक प्रकाश-विशेष भेज दिया। कुछ लोगोंकी ऐसी मान्यता है—और वे श्रीमद्भागवतके श्लोकोंसे ऐसा अर्थ भी निकालते हैं—कि श्रीकृष्ण गये तो सही, परन्तु नन्दबाबाके साथ ही लौट आये और मथुरामें अपना एक प्रकाश-विशेष छोड़ आये। किसी-किसी पुराणमें श्रीकृष्णके पुनः वृन्दावन आनेका वर्णन भी मिलता है। भगवान्के परम उदार स्वभावको देखते हुए ये सभी बातें ठीक जँचती हैं और ठीक हैं भी।

विचारणीय प्रश्न यह है कि भगवान्की नित्य लीलामें विहार करनेवाली गोपियाँ क्या जगत्में इसीलिये अवतीर्ण हुई थीं कि भगवान् नित्य उनके साथ संयोगकी लीला किया करें और केवल इतनेमें ही उनके अवतारका प्रयोजन पूर्ण हो जाय। भगवान्की लीला, धाम और उनकी सहचरी शक्तियाँ इसीलिये अवतीर्ण हुई थीं कि संसारमें भूले हुए जीव यह बात सीखें कि भगवान्के साथ कैसे प्रेम किया जाता है, उनसे मिलनेके लिये कैसी उत्कण्ठा होती है और उनसे मिलन होनेपर कैसे लोकोत्तर रसका अनुभव होता है। व्रजकी लीलासे जगत्के जीवोंके सामने यह आदर्श रक्खा गया कि भगवान्के संयोगमें प्रेमका कैसा अनिर्वचनीय प्रकाश होता है; परन्तु जगत्में ऐसे कितने जीव हैं, जो भगवान्के मिलनका अनुभव करते हों? ऐसे भगवत्कृपा-प्राप्त महान् आत्माओंका अभाव नहीं है; परन्तु उनकी संख्या अँगुलियोंपर गिनी जा सकती है—वे बहुत थोड़े हैं। जगत्में ऐसे लोग बहुत अधिक हैं, जो भगवान्से वियुक्त हैं और उनके वियोगमें ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उन्हें अपना जीवन किस प्रकार बिताना चाहिये, इस बातकी शिक्षा भी गोपियोंके जीवनसे ही मिलनी चाहिये। और यही कारण है कि भगवान्के वियोगमें भी जीवन धारण करके वे जगत्का हित करती रहती हैं। श्रीमद्भागवतमें ऐसा वर्णन आता है कि श्रीकृष्णके बिना गोपियोंके लिये एक क्षण भी सैकड़ों युगके समान हो जाता था—पलक गिरनेका व्यवधान भी उन्हें असह्य था और गिरनेपर वे पलक बनानेवाले ब्रह्माको उपालम्भ भी देती थीं। फिर भी वे विरहमें जीवित रहीं, इसका कारण प्रेमकी पूर्णता ही है। प्रेमका यह स्वभाव है कि वह प्रेमीमें इस भावको भर देता है कि मुझे चाहे जितना दुःख हो, परन्तु मेरे प्रियतमको दुःखका लेश भी स्पर्श न कर सके। गोपियाँ सोचती थीं—'श्रीकृष्ण हमसे अलग रहनेमें ही जगत्का कल्याण सोच रहे हैं, वे हमारे वियोगी जीवनसे जीवोंका हित करना चाहते

प्रेमरस-स्वरूप, लीलारसमय परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने अपनी ह्लादिनी-शक्तिरूपा आनन्द-चिन्मयरस-प्रतिभाविता अपनी ही प्रतिमूर्तिसे उत्पन्न अपनी प्रतिबिम्ब-स्वरूपा गोपियोंसे आत्मक्रीड़ा की। पूर्णब्रह्म सनातन रसस्वरूप रसराज रसिक-शेखर रसपरब्रह्म अखिलरसामृतविग्रह भगवान् श्रीकृष्णकी इस चिदानन्द-रसमयी दिव्य क्रीड़ाका नाम ही रास है। इसमें न कोई जड शरीर था न प्राकृत अङ्ग-सङ्ग था, और न इसके सम्बन्धकी प्राकृत और स्थूल कल्पनाएँ ही थीं। यह था चिदानन्दमय भगवान्का दिव्य विहार, जो दिव्य लीलाधाममें सर्वदा होते रहनेपर भी कभी-कभी प्रकट होता है।

वियोग ही संयोगका पोषक है, मान और मद ही भगवान्की लीलामें बाधक हैं। भगवान्की दिव्य लीलामें मान और मद भी, जो कि दिव्य हैं, इसीलिये होते हैं कि उनसे लीलामें रसकी और भी पुष्टि हो। भगवान्की इच्छासे ही गोपियोंमें लीलानुरूप मान और मदका सञ्चार हुआ और भगवान् अन्तर्धान हो गये। जिनके हृदयमें लेशमात्र भी मद अवशेष है, नाममात्र भी मानका संस्कार शेष है, वे भगवान्के सम्मुख रहनेके अधिकारी नहीं। अथवा वे भगवान्का, पास रहनेपर भी, दर्शन नहीं कर सकते। परन्तु गोपियाँ गोपियाँ थीं, उनसे जगत्के किसी प्राणीकी तिलमात्र भी तुलना नहीं है। भगवान्के वियोगमें गोपियोंकी क्या दशा हुई, इस बातको रासलीलाका प्रत्येक पाठक जानता है। गोपियोंके शरीर-मन-प्राण, वे जो कुछ थीं—सब श्रीकृष्णमें एकतान हो गये। उनके प्रेमोन्मादका वह गीत, जो उनके प्राणोंका प्रत्यक्ष प्रतीक है, आज भी भावुक भक्तोंको भावमग्न करके भगवान्के लीलालोकमें पहुँचा देता है। एक बार सरस हृदयसे, हृदयहीन होकर नहीं, पाठ करनेमात्रसे ही वह गोपियोंकी महत्ता सम्पूर्ण हृदयमें भर देता है। गोपियोंके उस 'महाभाव'—उस 'अलौकिक प्रेमोन्माद'को देखकर श्रीकृष्ण भी अन्तर्हित न रह सके, उनके सामने 'साक्षात् मन्मथमन्मथ'रूपसे प्रकट हुए और उन्होंने मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया कि 'गोपियो, मैं तुम्हारे प्रेमभावका चिर-ऋणी हूँ। यदि मैं अनन्त कालतक तुम्हारी सेवा करता रहूँ, तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता। मेरे अन्तर्धान होनेका प्रयोजन तुम्हारे चित्तको दुखाना नहीं था, बल्कि तुम्हारे प्रेमको और भी उज्ज्वल एवं समृद्ध करना था।' इसके बाद रासक्रीड़ा प्रारम्भ हुई।

जिन्होंने अध्यात्मशास्त्रका स्वाध्याय किया है, वे जानते हैं कि योगसिद्धिप्राप्त साधारण योगी भी कायव्यूहके द्वारा एक साथ अनेक शरीरोंका निर्माण कर सकते हैं और अनेक स्थानोंपर उपस्थित रहकर पृथक्-पृथक् कार्य कर सकते हैं। इन्द्रादि देवगण एक ही समय अनेक स्थानोंपर उपस्थित होकर अनेक यज्ञोंमें युगपत् आहुति स्वीकार कर सकते हैं। निखिल योगियों और योगेश्वरोंके ईश्वर सर्वसमर्थ भगवान् श्रीकृष्ण यदि एक ही साथ अनेक गोपियोंके साथ क्रीड़ा करें, तो इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है? जो लोग भगवान्को भगवान् नहीं स्वीकार करते, वही अनेकों प्रकारकी शङ्का-कुशङ्काएँ करते हैं। भगवान्की निज लीलामें इन तर्कोंका सर्वथा प्रवेश नहीं है।

गोपियाँ श्रीकृष्णकी स्वकीया थीं या परकीया, यह प्रश्न भी श्रीकृष्णके स्वरूपको भुलाकर ही उठाया जाता है। श्रीकृष्ण जीव नहीं हैं कि जगत्की वस्तुओंमें उनका हिस्सेदार दूसरा जीव भी हो। जो कुछ भी था, है और आगे होगा—उसके एकमात्र पति श्रीकृष्ण ही हैं। अपनी प्रार्थनामें गोपियोंने और परीक्षित्के प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकदेवजीने यही बात कही है कि गोपी, गोपियोंके पति, उनके पुत्र, सगे-सम्बन्धी और जगत्के समस्त प्राणियोंके हृदयमें आत्मारूपसे, परमात्मारूपसे जो प्रभु स्थित हैं—वही श्रीकृष्ण हैं। कोई भ्रमसे, अज्ञानसे, भले ही श्रीकृष्णको पराया समझे; वे किसीके

हैं, सन्तोष कर लेती हैं। श्रीमद्भागवतके वेणु-गीत (१०। २१) में इनकी बड़ी प्रशंसा है। इन तीनों श्रेणीकी देवियोंकी प्रशंसा सहस्र-सहस्र मुखसे गायी जाय, तो भी समाप्त नहीं हो सकती। इन तीनोंके अतिरिक्त चौथी श्रेणीकी एक स्त्री है, जो तामसिक है और जिसकी निन्दा भी श्रीमद्भागवतमें मिलती है; वह चौथी स्त्री है कुब्जा, जिसकी चर्चा श्रीमद्भागवतमें दो स्थानोंपर है।

कुब्जा अथवा कंसकी सैरन्ध्री मथुराके बीच सड़कपर भगवान्‌को मिलती है, भगवान्‌को चन्दन लगाती है—जिसके फलस्वरूप भगवान् उसका कूबड़ ठीक कर देते हैं, और वह एक सुन्दर स्त्रीके रूपमें हो जाती है। उसमें तामसिकता अधिक है और वह लज्जा-सङ्कोच छोड़कर वहीं भगवान्‌का पल्ला पकड़ लेती है, और भक्त-वाञ्छा-कल्पतरु भगवान् श्रीकृष्ण उसकी कामना पूर्ण करनेका वचन दे देते हैं और मथुरामें शान्ति स्थापन हो जानेके पश्चात् उसे पूर्ण भी करते हैं। भगवान्‌का धर्म है भक्तकी इच्छा पूर्ण करना, और भक्त सब प्रकारके होते ही हैं। इसलिये भगवान्‌के सामने कदाचित् कोई ऐसा भक्त आ जाय, तो भगवान् उसकी भी इच्छा पूर्ण करते हैं—इस बातका यह ज्वलन्त दृष्टान्त है। अनादि कालसे कामनाओंके कीचड़में फँसा हुआ जीव भगवान्‌के सामने जाकर भी अपनी कामनाओंको ही पूर्ण करना चाहता है, और भगवान् उसके लिये छोटे-से-छोटा काम कर दें—यह भी उनके अनुरूप ही है।

कुब्जाके पूर्वजन्मके प्रसंगमें तीन प्रकारकी कथाओं-का उल्लेख मिलता है। एक तो माथुर हरिवंशकी कथा, जिसका उद्धरण श्रीजीवगोस्वामीजीने अपनी टीकामें दिया है; वह इस प्रकार है। पूर्वजन्ममें यह एक राजकुमारी थी। देवर्षि नारद इसके पिताके पास आकर भगवान्‌के गुण सुनाया करते थे। जब यह विवाहके योग्य हुई और इसके पिताने देवर्षि नारदसे वरके सम्बन्धमें पूछा, तब उन्होंने इस विषयमें राजकुमारीका ही अभिप्राय जानना ठीक समझा। राजकुमारीने कहा—'आप जिसके गुणोंका गायन करते हैं, उसीको मैं वरण करूँगी।' नारदके बहुत मना करनेपर भी उसने अपना हठ नहीं छोड़ा, तब उन्होंने तपस्या करनेका उपदेश किया। तपस्या पूर्ण होनेपर आकाशवाणी हुई कि दूसरे जन्ममें जिसके स्पर्शसे तुम्हारा कूबड़ अच्छा हो जाय, उसीको वह पुरुष समझ लेना और उसीको वरण करना। वही कुब्जा हुई। दूसरी कथा गर्गसंहितान्तर्गत मथुराखण्डके ग्यारहवें अध्यायमें मिलती है। वहाँ कहा गया है कि अपने नाक-कान काटनेकी बात रावणको सुनाकर शूर्पणखा पुष्करतीर्थमें चली गयी और वहाँ बहुत दिनों-तक तपस्या करती रही। उसकी तपस्यासे प्रसन्न होकर शिवजीने वर दिया कि 'द्वापरमें भगवान् श्रीकृष्ण, तुम्हें अपनायेंगे।' वही मथुरामें कुब्जारूपसे रहती थी। तीसरी कथा श्रीमद्भागवतकी टीकामें श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीने लिखी है—'कुब्जा भू-शक्ति सत्यभामाकी अंशावतार थी। कंसके अत्याचारके कारण ही वह कुब्जा हो गयी थी। लक्ष्मीकी ही भाँति पृथ्वी भी भगवान्‌की अर्द्धाङ्गिनी है, इसलिये उसे अपनाकर भगवान्‌ने उसका दुःख दूर किया।' कल्प-भेदसे ये सभी कथाएँ ठीक हैं।

भगवान् जिस समय कुब्जाके घर पधारे, उसके एक-ही-दो दिन पहले उद्धव वृन्दावनसे लौटे थे। उनके मनमें यह शङ्का थी कि भगवान् अपने भक्तोंको भी छोड़ देते हैं और उनकी इच्छा भी अपूर्ण रख देते हैं। उनकी इसी शङ्काको दूर करनेके लिये भगवान् उद्धवको लेकर कुब्जाके घर गये और यह दिखाया कि 'मैं जब कुब्जाका भी परित्याग नहीं कर सकता, तब गोपियोंका कैसे कर सकता हूँ!* गोपियाँ तो मुझसे नित्य-युक्त हैं, मैं उनके रोम-रोममें हूँ और वे मेरे रोम-रोममें हैं। एक क्षणके लिये भी हमारा-उनका वियोग नहीं है। इस लीलासे

* सैरन्ध्रीमपि सन्त्यक्तुमहं शक्तोऽस्मि नोद्धव।
किमुत व्रजलोकांस्तानिति व्यञ्जयितुमागात्॥

परन्तु इससे ऐसा नहीं मानना चाहिये कि श्रीमद्भागवतमें वर्णित रास या रमण-प्रसङ्ग केवल रूपक या कल्पनामात्र है। वह सर्वथा सत्य है और जैसा वर्णन है, वैसा ही मिलन-विलासादिरूप शृंगारका रसास्वादन भी हुआ था। भेद इतना ही है कि वह लौकिक स्त्री-पुरुषोंका मिलन न था। उसके नायक थे सच्चिदानन्दविग्रह, परात्परतत्त्व, पूर्णतम स्वाधीन और निरङ्कुश स्वेच्छाविहारी गोपीनाथ भगवान् नन्दनन्दन; और नायिका थीं स्वयं ह्लादिनीशक्ति श्रीराधाजी और उनकी कायव्यूहरूपा, उनकी घनीभूत मूर्तियाँ श्रीगोपीजन। अतएव इनकी यह लीला अप्राकृत थी। सर्वथा मीठी मिश्रीकी अत्यन्त कड़ुए इन्द्रायण (तूँबे)-जैसी कोई आकृति बना ली जाय जो देखनेमें ठीक तूँबे-जैसी ही मालूम हो; परन्तु इससे असलमें क्या वह मिश्रीका तूँबा कड़ुआ थोड़े ही हो जाता है? क्या तूँबेके आकारकी होनेसे ही मिश्रीके स्वाभाविक गुण मधुरताका अभाव हो जाता है? नहीं-नहीं, वह किसी भी आकारमें हो—सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा केवल मिश्री-ही-मिश्री है। बल्कि इसमें लीला-चमत्कारकी बात जरूर है। लोग समझते हैं कड़ुआ तूँबा, और होती है वह मधुर मिश्री। इसी प्रकार अखिलरसामृतसिन्धु सच्चिदानन्द-विग्रह भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी अन्तरङ्गा अभिन्न-स्वरूपा गोपियोंकी लीला भी देखनेमें कैसी ही क्यों न हो, वस्तुतः वह सच्चिदानन्दमयी ही है। उसमें सांसारिक गंदे कामका कड़ुआ स्वाद है ही नहीं। हाँ, यह अवश्य है कि इस लीलाकी नकल किसीको नहीं करनी चाहिये, करना सम्भव भी नहीं है। मायिक पदार्थोंके द्वारा मायातीत भगवान्का अनुकरण कोई कैसे कर सकता है? कड़ुए तूँबेको चाहे जैसी सुन्दर मिठाईकी आकृति दे दी जाय, उसका कड़ुआपन कभी मिट नहीं सकता। इसीलिये जिन मोहग्रस्त मनुष्योंने श्रीकृष्णकी रास आदि अन्तरङ्ग-लीलाओंका अनुकरण करके नायक-नायिकाका रसास्वादन करना चाहा या चाहते हैं, उनका घोर पतन हुआ है और होगा। श्रीकृष्णकी इन लीलाओंका अनुकरण तो केवल श्रीकृष्ण ही कर सकते हैं। इसीलिये शुकदेवजीने रासपञ्चाध्यायीके अन्तमें सबको सावधान करते हुए कह दिया है कि भगवान्के उपदेश तो सब मानने चाहिये, परन्तु उनके सभी आचरणोंका अनुकरण न करना चाहिये।

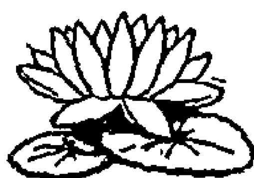
जो लोग भगवान् श्रीकृष्णको केवल मनुष्य मानते हैं और केवल मानवीय भाव एवं आदर्शकी कसौटीपर उनके चरित्रको कसना चाहते हैं वे पहले ही शास्त्रसे विमुख हो जाते हैं, उनके चित्तमें धर्मकी कोई धारणा ही नहीं रहती और वे भगवान्को भी अपनी बुद्धिके पीछे चलाना चाहते हैं। इसलिये साधकोंके सामने उनकी उक्ति-युक्तियोंका कोई महत्त्व ही नहीं रहता। जो शास्त्रके 'श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं' इस वचनको नहीं मानता, वह उनकी लीलाओंको किस आधारपर सत्य मानकर उनकी आलोचना करता है—यह समझमें नहीं आता। जैसे मानवधर्म, देवधर्म और पशुधर्म पृथक्-पृथक् होते हैं, वैसे ही भगवद्धर्म भी पृथक् होता है और भगवान्के चरित्रका परीक्षण उसकी ही कसौटीपर होना चाहिये। भगवान्का एकमात्र धर्म है—प्रेमपरवशता, दयापरवशता और भक्तोंकी अभिलाषाकी पूर्ति। यशोदाके हाथोंसे ऊखलमें बँध जानेवाले श्रीकृष्ण अपने निज-जन गोपियोंके प्रेमके कारण उनके साथ नाचें, यह उनका सहज धर्म है।

यदि यह हठ ही हो कि श्रीकृष्णका चरित्र मानवीय धारणाओं और आदर्शोंके अनुकूल ही होना चाहिये, तो इसमें भी कोई आपत्तिकी बात नहीं है। श्रीकृष्णकी अवस्था उस समय दस वर्षके लगभग थी, जैसा कि भागवतमें स्पष्ट वर्णन मिलता है। गाँवोंमें रहनेवाले बहुत-से दस वर्षके बच्चे तो नंगे ही रहते हैं। उन्हें कामवृत्ति और स्त्री-पुरुष-सम्बन्धका कुछ ज्ञान

भगवान् जिन स्थानोंमें लीला करते हैं, वे नित्य और चिन्मय हुआ करते हैं। श्रीवृन्दावन, मथुरा और द्वारका भगवान्‌के नित्य लीला-धाम हैं। ये देश और कालसे परिच्छिन्न होनेपर भी परिच्छिन्न नहीं होते, भगवान्‌की इच्छासे इनमें सङ्कोच और विकास हुआ करता है। छोटे-से वृन्दावनमें जितनी गोपियों, ग्वालों और गौओंके होनेका वर्णन आता है, वह स्थूल दृष्टिसे देखनेसे सम्भव नहीं प्रतीत होता; फिर भी भगवद्धामकी महिमासे वह सब सत्य ही है। वृन्दावनकी एक झाड़ीमें ही ब्रह्माको सहस्र-सहस्र ब्रह्माण्ड और उनके अधिवासी दीख गये थे। श्रीयोगवासिष्ठके मण्डपोपाख्यानमें एक-एक अणुके अंदर सृष्टिके महान् विस्तारका प्रत्यक्ष अनुभव कराया गया है। देशका बन्धन केवल स्थूल वस्तुओंमें ही रहता है, सूक्ष्मतम दिव्य वस्तुओंमें नहीं। इसीसे द्वारका धामका भी भगवान्‌की इच्छासे उनके स्थितिकालमें विकास हो जाता है और उसमें कोटि-कोटि यदुवंशी रह सकते हैं। स्थान-सङ्कोचका अनुमान करके जो लोग यदुवंशियोंकी संख्या घटानेकी चेष्टा करते हैं, उन्हें समझना चाहिये कि द्वारका भगवान्‌का चिन्मय धाम है। वह देश-कालके परिच्छेदसे रहित, वास्तवमें भगवत्स्वरूप एवं अनन्त है; उसमें सारी सृष्टिके जीव निवास कर सकते हैं, यदुवंशियोंकी तो कथा ही क्या है।

श्रीमद्भागवतका पूर्ण पाठ कर लेनेपर यह निश्चय हो जाता है कि भगवान् श्रीकृष्णका जीवन पूर्ण जीवन है। उनका ऐश्वर्य और साथ ही मर्यादा-पालन दोनों ही पूर्ण हैं। ऐश्वर्य और धर्मका अपूर्व सामञ्जस्य उनके जीवनमें देखा जाता है। सौन्दर्य, माधुर्य, कोमलता, सम्पत्ति आदिके साथ ही उनकी कीर्ति भी परिपूर्ण है एवं उनके रहते हुए भी वे ज्ञान-वैराग्यसे परिपूर्ण हैं। श्रीकृष्णके ज्ञानकी पूर्णता सभी मानते हैं। श्रीमद्भागवतके अध्ययन करनेवालोंसे उनके वैराग्यकी पूर्णता भी अविदित नहीं है। मथुरा और द्वारकामें स्वयं राजा न बनकर उन्होंने उग्रसेनको राजा बनाया और वे गोपियोंसे इतना प्रेम होनेपर भी उनसे अलग ही रहे। महाभारतकी सम्पूर्ण विजय इनके ही कारण हुई, परन्तु इन्होंने उससे तनिक भी लाभ नहीं उठाया, उलटे युधिष्ठिरको ही समय-समयपर बहुत-सा धन देते रहे। उनके वैराग्यकी पूर्णताका सबसे ज्वलंत प्रमाण यह है कि उनकी आँखोंके सामने सारे यदुवंशकी समाप्ति हो गयी, और बचे हुए लोगोंकी कोई व्यवस्था न करके मुसकराते हुए वे अपने धामको चले गये। वे चले गये, परन्तु हमलोगोंके लिये बहुत कुछ छोड़ गये। वे अपना ज्ञान, अपना वैराग्य और अपने 'लोकाभिराम', 'धारणा-ध्यान-मङ्गल' दिव्य शरीरकी वह स्मृति, जिसके द्वारा आज भी जीव उन्हें उसी प्रकार प्राप्त कर सकता है, कहीं ले थोड़े ही गये हैं! उनका स्मरण करके, अनुभव करके जीव अपना कल्याण सम्पादन करे—यही उनके अवतारका मुख्य प्रयोजन है।

—शान्तनुविहारी द्विवेदी



नहीं जा सकती। क्योंकि यह इस जगत्‌की क्रीड़ा ही नहीं है। यह तो उस दिव्य आनन्दमय—रसमय राज्यकी चमत्कारमयी लीला है, जिसके श्रवण और दर्शनके लिये परमहंस मुनिगण भी सदा उत्कण्ठित रहते हैं। कुछ लोग इस लीलाप्रसंगको भागवतमें क्षेपक मानते हैं; वे वास्तवमें दुराग्रह करते हैं। क्योंकि प्राचीन-से-प्राचीन प्रतियोंमें भी यह प्रसंग मिलता है और जरा विचार करके देखनेसे यह सर्वथा सुसंगत और निर्दोष प्रतीत होता है। भगवान् श्रीकृष्ण कृपा करके ऐसी विमल बुद्धि दें, जिससे हमलोग इसका कुछ रहस्य समझनेमें समर्थ हों।

भगवान्‌की इस दिव्यलीलाके वर्णनका यही प्रयोजन है कि जीव गोपियोंके उस अहैतुक प्रेमका, जो कि श्रीकृष्णको ही सुख पहुँचानेके लिये था, स्मरण करे और उसके द्वारा भगवान्‌के रसमय दिव्यलीलालोकमें भगवान्‌के अनन्त प्रेमका अनुभव करे। हमें रासलीलाका अध्ययन करते समय किसी प्रकारकी भी शङ्का न करके इस भावको जगाये रखना चाहिये।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके अवतारका प्रयोजन

श्रीमद्भागवतमें इस बातकी स्पष्ट घोषणा की गयी है कि 'अन्ये चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।' अर्थात् दूसरे अवतार अंशावतार एवं कलावतार हैं, परन्तु श्रीकृष्ण स्वयं साक्षात् भगवान् हैं। तात्पर्य यह है कि और जितने अवतार होते हैं, वे भगवान्‌के अंशमात्र या कलामात्र होते हैं; परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं परिपूर्णतम हैं। चाहे जिस दृष्टिसे विचार किया जाय, भगवान् श्रीकृष्ण पूर्ण ही सिद्ध होंगे; क्योंकि वे वास्तवमें पूर्ण हैं। पूर्णताका अर्थ क्या है, किन उपपत्तियोंसे पूर्णताका निश्चय करना चाहिये—यह विचारणीय प्रश्न है। जगत्में जितनी वस्तुएँ हैं, उनकी एक सीमा निर्धारित है। जिसका अंश हो सकता है, उसकी सीमाका भी अनुमान लगाया जा सकता है। एक कण हमें प्राप्त है, यह कण किसी विशेष वस्तुका करोड़वाँ हिस्सा है। अब वह वस्तु कितनी बड़ी है, यह जानना हो तो इस कणको करोड़गुना कर सकते हैं; यही उस वस्तुका परिमाण है। परन्तु जो वस्तु अनन्त है, उसका न तो कोई अंश होता है और न कोई परिमाण ही होता है। भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त हैं, उनकी सत्ता अनन्त है, उनका ज्ञान अनन्त है, उनका आनन्द अनन्त है, वे परिपूर्ण एकरस सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। जगत्‌के समस्त ज्ञान, सत्ता और आनन्दका परिच्छेद है; परन्तु उनकी सत्ता, ज्ञान और आनन्दका परिच्छेद नहीं है। वे पूर्ण हैं।

जगत्‌के सभी पदार्थ शक्ति, क्रिया आदिके सम्बन्धसे एक-एक विशेषता रखते हैं। उन सब विशेषताओंको यदि एकत्र कर लिया जाय, तो वह विशेषताका एक समुद्र बन जायगा। वह विशेषताओंका समुद्र अपने आश्रय भगवान् श्रीकृष्णके सामने एक बिन्दुके समान भी नहीं है। जगत्‌की समग्र शक्ति, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्र लक्ष्मी (सौन्दर्य, माधुर्य एवं सम्पत्ति), समग्र ज्ञान और समग्र वैराग्य भगवान् श्रीकृष्णमें ही निवास करते हैं। इनकी पूर्णता केवल भगवान् श्रीकृष्णमें ही है।

भगवान् श्रीकृष्णमें तीनों प्रकारकी पूर्णता प्रत्यक्ष रूपमें पायी जाती है। वे आध्यात्मिकतामें परिपूर्ण हैं। उनका ज्ञान अनन्त है। स्थान-स्थानपर उन्होंने अर्जुन-उद्धव आदि भक्तोंको जो उपदेश किया है और जगत्में वे जिस प्रकार निर्द्वन्द्व वीरभावसे रहे हैं, वह सर्वत्रादि-सम्मत है। भगवान्‌में आधिदैविक शक्ति भी पूर्णरूपसे प्रकट है। बाललीलासे लेकर परमधामगमनपर्यन्त जितने कार्य किये हैं सबमें आधिदैव जगत्‌का सम्बन्ध

श्रीमद्भागवतमें शरणागति

(लेखक—पाण्डेय प० श्रीरामनारायणदत्तजी व्याकरण साहित्य शास्त्री 'राम')

आजकलके सभ्य कहलानेवाले ससारमें असत्यकी पूजा और सत्यकी अवहेलना प्रचलित हो गयी है । जो जितना ही सुशिक्षित, जितनी ही अधिक मस्तिष्क शक्तिसे सम्पन्न है, वह उतना ही असत्यके आश्रित है, उसके जीवनमें उतना ही अधिक असत्यका आदर है । उदाहरणके लिये यह बात स्पष्ट देखनेमें आती है कि आजकी नवीन शिक्षासे प्रभावित जगत् विज्ञानका अधिक उपासक है, परमात्माका कम अथवा नहीं । विज्ञान क्या है ? स्थूल प्राकृत तत्त्वोंका ज्ञान और विशेष प्रणालीसे उन स्थूल तत्त्वोंद्वारा ऐसी ऐसी वस्तुओंका आविष्कार, जिनसे कुछ हदतक दैहिक आवश्यकताओंकी पूर्ति हो सके । शास्त्रीय विज्ञानका स्वरूप दूसरा है, उसमें और इस विज्ञानमें दिन-रातका अन्तर है ।

हम भौतिक पदार्थोंका नाश प्रतिदिन देखते हैं, फिर भी इनके ही सञ्चय और आविष्कारमें दिन-रात लगे रहते हैं । जिसका आधार अथवा कारण ही असत्य—नाशवान् है, वह स्वय सत्य या स्थायी कैसे हो सकता है । ये बड़ी-बडी मशीनें, ये शस्त्रास्त्र और हवाईजहाज आदि—जिनसे आज भीषण नरसहार हो रहा है—खुद भी तो नष्ट होते हैं । स्थूल भूतोंकी उत्पत्तिका क्रम सभी स्वीकार करते हैं, अत वे सादि हुए । जिसका आदि है, उसका अन्त भी निश्चित ही है । इसलिये इन स्थूल भूतोंकी अनित्यता सर्वसम्मत है । आज इसी अनित्य या असत्यकी उपासना हो रही है ।

यह अनुभवसिद्ध बात है कि उपासकके अदर उपास्यदेवके गुणोंका विकास होता है । आज हम जिसकी उपासनामें तल्लीन हैं वह असत्य है, जड है ओर अज्ञानमय है । इसलिये हममें भी स्वभावत उन गुणोंका प्राबल्य होगा, जो हमारे उपास्यमें है । इस असत्योपासनासे हमें सत्यके अस्तित्वपर सन्देह होने लगा है, जडकी आराधनासे हम अपनी सहज चेतनता खो बैठे हैं और जब हम अज्ञानको ही विज्ञान मान बैठे हैं, तो सच्चे ज्ञानसे वञ्चित रहें—इसमें आश्चर्य ही क्या है।

आज हम इतने स्वार्थान्ध, इतने निर्दय और इतने सङ्कीर्ण विचारवाले क्यों है ? इस प्रश्नका यही उत्तर है कि हममें ये गुण अपने जड देवतासे प्राप्त हुए हैं। सत्पुरुषोंका लक्षण है—सबको समदृष्टिसे देखना, सबके सुख दु खको समान समझना और जो बात अपने प्रतिकूल हो, वह दूसरोंके लिये न करना । पर हम तो असत्के पुजारी हैं । सत्पुरुष कैसे बनें ? इसलिये यदि हम निर्दयतापूर्वक करोडों नर-नारियोंके रक्तसे अपनी प्यास बुझाते हैं, यदि हम केवल अपना ही स्वार्थ चाहते हैं, तो दूसरे लोग हमें कोसते क्यों हैं ? यही तो हमारी साधनाका फल है ।

ऐसे लोग भी ससारमें सुख चाहते हैं, शान्ति चाहते हैं और चाहते हैं कलहका अत्यन्ताभाव । प्रत्येक आक्रमणकारी यही कहता है—हम देशमें, ससारमें शान्तिकी स्थापना करेंगे । किन्तु इनका भाव इतना अशुद्ध है, मनोवृत्ति इतनी दूषित है और मार्ग या साधन इतना विपरीत है कि इनका उक्त उद्देश्य जो केवल वाणी द्वारा अभिव्यक्त होता है, कथनमात्र ही सिद्ध होगा ।

हम सुख या शान्ति उसके लिये चाहते हैं जो अपना हो, जिसके प्रति हमारा आत्मीयभाव हो । अत सर्वत्र सुख-शान्तिकी इच्छा रखनेवालेको सबके प्रति आत्मीयताका भाव जाग्रत् करनेकी आवश्यकता है, सर्वत्र ऐक्य-दर्शनकी जरूरत है । हमारी हालत उन पागलोंकी सी है जो अपनी दृष्टिसे समझदारीकी ही बात और समझदारीका ही काम करते हैं, परन्तु होता है विपरीत ।

ही नर-नारायणके रूपमें रहकर अपनी तपस्याके बलसे संसारको धारण करते हैं, वे ही महाविष्णुके रूपमें भी हैं और उनके श्वेत-कृष्ण केशोंके रूपमें अवतीर्ण भी होते हैं; वे एक हैं, फिर भी भक्तोंकी भावनासे अनेक हो जाते हैं। वे अपनी दृष्टिमें एक हैं, भक्तोंकी दृष्टिमें अनेक। श्रीमद्भागवतमें जिन श्रीकृष्णका वर्णन हुआ है, वे परिपूर्णतम श्रीकृष्ण हैं; इसलिये उनमें सबका समावेश है। इसलिये अमुक श्रीकृष्ण मेरे हैं और अमुक श्रीकृष्ण मेरे नहीं हैं—इस प्रकारकी भेद-बुद्धि करनेवाले भगवान्‌के वास्तविक स्वरूपसे अनभिज्ञ हैं; क्योंकि जो भगवान्‌के सच्चे प्रेमी हैं, उन्हें तो सभी रूपोंमें अपने प्रियतम श्रीकृष्णका ही दर्शन होता है, उनकी दृष्टिमें तो दूसरेकी सत्ता ही नहीं है।

श्रीकृष्णके सम्बन्धमें एक प्रकारकी भ्रान्त धारणा और भी सुनी जाती है। कुछ लोग श्रीकृष्णकी केवल कर्मलीलाको ही प्रधानता देते हैं और उनकी उपासना-लीला अथवा प्रेमलीलाको गौण कर देते हैं अथवा अस्वीकार कर देते हैं। उनकी बुद्धिमें कर्मकी वासना इतनी बलवती हो गयी है कि उसके सामने वे प्रेमकी लीलाओंको भूल ही जाते हैं अथवा उड़ा देनेकी चेष्टा करते हैं। ऐसे लोगोंने श्रीकृष्णकी दिव्य प्रेममयी वृन्दावनकी चिन्मयी लीलाओंका रहस्य न समझकर उसको अद्भुतकर्मा श्रीकृष्णके जीवनमें उचित नहीं समझा और ऐसी कल्पना कर ली कि जिन ग्रन्थोंमें ऐसी लीलाओंका वर्णन है, उन ग्रन्थोंके श्रीकृष्ण दूसरे हैं और महाभारतके वीर श्रीकृष्ण दूसरे। उन्होंने यहाँतक धृष्टता की कि वृन्दावनवाले श्रीकृष्णके महाभारतके श्रीकृष्णसे सर्वथा पृथक् होनेकी घोषणा कर दी। यह महाभारतके अध्ययन और अनुशीलनके अभावका ही परिणाम है। महाभारतके अनेक स्थानोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी वृन्दावनकी लीलाओंका उल्लेख है।

महाभारतके सभापर्वमें जहाँ द्रौपदीके वस्त्राकर्षणका उल्लेख किया गया है, वहाँ बड़े स्पष्ट शब्दोंमें द्रौपदीकी प्रार्थना मिलती है—'गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्णगोपीजनप्रिय।' अर्थात् 'हे गोविन्द! हे द्वारकामें रहनेवाले श्रीकृष्ण! हे गोपीजनोंके प्रियतम! आओ, हमारी रक्षा करो।' यहाँ यह बात स्मरण रखने योग्य है कि द्रौपदी भगवान् श्रीकृष्णकी अन्तरङ्ग भक्त थी और उनकी अन्तरङ्ग लीलाओंसे परिचित थी। गोपियोंके साथ भगवान्‌का जो सम्बन्ध है, उसके द्वारा भगवान्‌को पुकारना इस बातका सूचक है कि भगवान् इस नामसे शीघ्र प्रसन्न होते हैं। 'गोपीजनप्रिय' सम्बोधन मथुरावासी अथवा द्वारकावासी भगवान्‌के लिये तभी प्रयुक्त हो सकता है, जब वे पहले गोकुल और वृन्दावनमें रहे हों एवं गोपियोंके साथ उनका विशेष प्रेम-सम्बन्ध रहा हो। इस एक सम्बोधनसे ही भगवान्‌की व्रजमें की हुई समस्त लीलाओंकी प्रामाणिकता स्वतः सिद्ध हो जाती है।

महाभारतके अन्यान्य स्थलोंमें भी श्रीकृष्णकी बाललीलाका वर्णन है। शिशुपालने श्रीकृष्णकी निन्दा करते समय और भीष्मपितामहने दुर्योधनके प्रति श्रीकृष्णकी महिमा वर्णन करते समय उनकी बाललीलाओंकी चर्चा की है। यहाँ उन सबका उद्धरण न देकर केवल द्रोणपर्वके कुछ श्लोक उद्धृत किये जाते हैं, जो कि सञ्जयसे धृतराष्ट्रने कहे हैं—

शृणु दिव्यानि कर्माणि वासुदेवस्य सञ्जय।
कृतवान् यानि गोविन्दो यथा नान्यः पुमान् क्वचित्॥
गोकुले वर्द्धमानेन बालेनैव महात्मना।
विख्यापितं बलं बाह्वोस्त्रिषु लोकेषु सञ्जय॥
उच्चैःश्रवस्तुल्यबलं वायुवेगसमं जवे।
जघान हयराजं तं यमुनावनवासिनम्॥
दानवं घोरकर्माणं गवां मृत्युमिवोत्थितम्।
वृषरूपधरं बाल्ये भुजाभ्यां निजघान ह॥
प्रलम्बं नरकं जम्भं पीठं चापि महासुरम्।
मुरं चामरसङ्काशमवधीत् पुष्करेक्षणः॥

कहा जाता है कि बहुतेरे नास्तिक भी तो बड़े उदार, बड़े दयालु और अत्यन्त परोपकारी होते हैं। यह सत्य है। पर वे स्वीकार करें या न करें, उनका वह दिव्य भाव उनके अन्तःकरणमें सदा विराजमान रहनेवाले परमेश्वरकी ही देन है, उन्हींकी ओरसे वह प्रवाहित होता है। वे सच्चे अर्थमें नास्तिक तो वहाँ होते हैं जहाँ अपने दैहिक स्वार्थके लिये दूसरोंका गला काटते हैं। सर्वत्र भगवान्‌को देखनेवाला स्वयं भूखा रहना पसंद करेगा, पर दूसरेका ग्रास छीनना कभी न चाहेगा। क्योंकि उसके लिये सारा जगत् भगवान्‌का रूप है। वह भगवान्‌से छीनकर खाये? भगवान्‌का अपमान करे? नहीं, उससे यह नहीं हो सकता। 'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध।' वे तो स्वयं ही दूसरेका दुःख भोगना चाहते हैं और सबको दुःखसे मुक्त कर देनेके लिये छटपटाते रहते हैं। वे पुकारकर कहते हैं—

आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः।

इस प्रकार भागवतमें भगवान्‌का आश्रय ग्रहण करनेपर बहुत अधिक जोर दिया गया है। रामायण और गीतामें भी शरणागतिका ही महत्त्व अधिक बताया गया है। वास्तवमें भगवान्‌की शरण हुए बिना जीवका वास्तविक कल्याण असम्भव है। श्रीमद्भागवतका प्रधान प्रतिपाद्य तो आश्रयतत्त्व ही है। आश्रयकी शुद्धिसे ही सब कुछ सुधरता है। श्रीमद्भागवतके दस लक्षणोंमें आश्रय ही अन्तिम लक्षण है। इनमें आश्रयको अङ्गी तथा शेष नौको इसका अङ्ग बताया गया है। उनका प्रतिपादन आश्रयतत्त्वकी शुद्धिके लिये ही हुआ है—

दशमस्य विशुद्ध्यर्थं नवानामिह लक्षणम्।
वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनार्थेन चाञ्जसा॥

आश्रय कहते हैं सहारे या अवलम्बनको। परमात्मा ही सारे जगत्‌का वास्तविक आधार है। इसीलिये श्रीमद्भागवतमें 'आश्रय' की व्याख्या करते हुए कहा गया है—'स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते।' वह परब्रह्म परमात्मा ही वास्तविक आश्रय है। परमात्माको आश्रय मानना—यह केवल भावनाकी वस्तु नहीं है, हमें भगवान्‌को अपना आश्रय आरोपके द्वारा नहीं मानना है, वास्तवमें है ही ऐसी बात। आरोपित भावना कभी दृढ़ नहीं हो सकती। अतः आश्रयतत्त्व बोधका विषय है, बोधस्वरूप है। सच्चा शरणागत वही है, जो कभी भूलसे भी अपनेको अशरणागत नहीं समझता। भगवान् ही हमारे आश्रय हैं—इस तत्त्वको समझे बिना जो भावना होती है, वह टिक नहीं सकती। इसलिये इस बातको भलीभाँति समझ लेना चाहिये। हम ऊपर बता चुके हैं कि आश्रय कहते हैं सहारेको। वास्तविक सहारा वही है, जो स्वयं दूसरोंके सहारे न रहता हो और दूसरे सब उसीके सहारे रहते हों। ऐसा सहारा परमात्माके सिवा और कौन हो सकता है? परमात्मा ही अपने सहारे प्रतिष्ठित है। श्रुति भी कहती है—

'स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वे महिम्नि।'

जो जिससे उत्पन्न होता है, वह उसीपर रहता है और उसीमें लीन होता है। पार्थिव जगत्‌में हम यही बात देखते हैं। पृथ्वीसे उत्पन्न वृक्ष आदि पृथ्वीपर ही रहते हैं और वहीं लीन हो जाते हैं, अतः पार्थिव जगत्‌का आधार पृथ्वी ही है। इसी प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड परमात्मासे ही प्रकट है, उसीमें स्थित है और उसीमें लीन होता है, अतः इस ब्रह्माण्डका चरम आधार परमात्मा ही है। इसीलिये श्रुति कहती है—

'तज्जलानिति शान्त उपासीत।'

भागवतमें भी कहा है—

'विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यः।'

यह बात यों भी समझी जा सकती है कि कार्यका आधार उसका कारण है। घटका आधार पृथ्वी है। इस न्यायसे पार्थिव जगत्‌का आधार पृथ्वी है, पृथ्वीका आधार जल, जलका तेज, तेजका वायु और वायुका आधार

इनकी पाँच प्रकारकी आसक्तियाँ देखी जाती हैं—शान्तासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति और कान्तासक्ति। व्रजमें विशेष करके तीन आसक्तियोंका प्रकाश हुआ है—ग्वालबालोंमें सख्यासक्ति, नन्द-यशोदा आदिमें वात्सल्यासक्ति और गोपियोंमें कान्तासक्ति। वात्सल्यासक्तिकी लीला गृह-लीला है। माता-पिता घर-पर रहकर अपने बच्चेसे प्यार करते हैं, उसकी देख-भाल करते हैं और बाहर जानेपर उसके लिये चिन्तित रहते हैं। उसे ही सुख पहुँचानेके लिये अनेकों प्रकार-की तैयारी करते रहते हैं। सखाओंके साथ होनेवाली लीला वनकी लीला है और प्रातःकालसे लेकर सायंकाल-तक ग्वालबाल श्रीकृष्णके साथ रहते हैं, उनके साथ हँसते हैं, खाते हैं, खेलते-कूदते हैं, समानताका व्यवहार करते हैं और सब कुछ भूलकर उन्हींके प्रेममें मग्न रहते हैं। कान्तासक्तिमती गोपियोंके साथ होनेवाली लीला कुञ्जलीला है और यह बड़ी ही गोपनीय है। औरोंकी तो बात ही क्या, वात्सल्यासक्ति रखनेवाले माता-पिताको भी इस रहस्य-लीलाका पता नहीं चलता और कुछ अन्तरङ्ग सखाओंको छोड़कर दूसरे ग्वालबाल भी इस अन्तरङ्ग लीलाको नहीं जानते। श्रीमद्भागवतमें इन त्रिविध लीलाओंका वर्णन है और इन तीनों प्रकारके भाव रखनेवाले उनका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करके उन भावोंमें लीन हो जाते हैं और अपने जीवनको सफल एवं कृतकृत्य अनुभव करते हैं।

जिनके जीवनका उद्देश्य केवल भौतिक उन्नति है, जो शारीरिक जीवन और सुखभोगको ही सब कुछ समझते हैं, जिन्होंने सहृदयताके साथ मानव-हृदयका अध्ययन नहीं किया है, जिन्होंने आध्यात्मिक शान्तिके मूलमन्त्र इस प्रेम-रहस्यका ज्ञान नहीं प्राप्त किया है—दूसरे शब्दोंमें जो साधक नहीं हैं, जिन्हें जगत्‌के भोगों-से वैराग्य नहीं है, जो अभी भगवत्कृपाके अनुभवसे वञ्चित हैं, वे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति होनेवाले सख्य, वात्सल्य एवं मधुर भावके रसकी न कल्पना ही कर सकते हैं और न तो अनुभव ही। श्रीमद्भागवत भागवतोंका, परमहंसोंका, सिद्ध साधकोंका ग्रन्थ है। इसकी मधुर और प्रेमपूर्ण लीलाओंको केवल वे ही समझ सकते हैं और केवल वे ही समझ सकते हैं।

श्रीमद्भागवतमें मुख्यतः सख्य, वात्सल्य और माधुर्य-रसकी लीलाओंका वर्णन हुआ है। समस्त ब्रह्माण्डोंके एकमात्र अधिपति, समस्त यज्ञोंके एकमात्र भोक्ता भगवान् श्रीकृष्ण प्रेम-परवश होकर किस प्रकार ग्वालोंके साथ खेलते हैं, उनके साथ गौएँ चराते हैं, खेलमें उनसे हार जाते हैं और उन्हें पीठपर ढोते हैं—इन सब बातोंका बड़ा ही मधुर और हृदयको मुग्ध कर देनेवाला वर्णन हुआ है। वे ही परात्पर ब्रह्म, अखिल-लोक-महेश्वर, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण किस प्रकार अपनी माताकी गोदमें बालोचित क्रीडा करते हैं, भूखे होकर दूध पीना चाहते हैं, डाँटनेपर डरते हैं, रोते हैं और ऊखलमें बँध जाते हैं—इन सब बातोंका इतना सुन्दर, इतना मोहक वर्णन हुआ है कि पढ़-सुनकर भगवान्‌की परम दयालुता और परम प्रेमिल स्वभावके अनन्त समुद्रमें हृदय डूबने-उतराने लगता है। इन लीलाओंके बीच-बीचमें पूतना, तृणावर्त, बकासुर, अघासुर आदि असुरोंके वधसे रसकी अभिवृद्धि ही होती है, न्यूनता नहीं। भगवान्‌की ये लीलाएँ भी ऐश्वर्यसूचक नहीं, भगवान्‌की दयालुताकी ही सूचक हैं। क्योंकि सङ्कल्प-मात्रसे निखिल जगत्‌की सृष्टि और संहार कर सकनेवाले प्रभुके लिये किसी दैत्यको मार देना ऐश्वर्यका कार्य नहीं हो सकता; इसके विपरीत उनका कल्याण करनेके लिये उन्हें अपने हाथोंसे मारना प्रभुके दयामय स्वभावका ही परिचायक है। जो लोग भगवान्‌को भगवान् नहीं मानते, वे भी उनकी सख्य-वात्सल्यमयी लीलाओंको पढ़कर स्तम्भित हो जाते हैं और उनका हृदय द्रवित हुए बिना नहीं रहता।

भगवान्पर हर तरहसे भरोसा करना, उनपर पूर्ण निर्भर हो जाना—यही श्रीमद्भागवतका सन्देश है। 'क्षेम विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशः।' शरणागत भक्तोंको भगवान् निर्भय कर देते हैं, उन्हें अपने लिये स्वयं कुछ भी नहीं करना पड़ता। सारी चिन्ता भगवान्के सिर रहती है। भक्तोंकी सँभाल करनेमें, उनकी चिन्ता अपने ऊपर लेनेमें भगवान्को सुख मिलता है—ठीक उसी तरह, जैसे माताको बच्चेकी सेवामें सहज सन्तोष मिलता है। इसीलिये भगवान् अपनी शरणमें आनेके लिये सदा प्रेरणा करते रहते हैं—

मामेकमेव शरणमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
याहि सर्वात्मभावेन मया स्या ह्यकुतोभयः॥

फिर भी हम उनका आवाहन नहीं सुनते। नटखट बच्चे माताकी सँभालसे रुष्ट रहते हैं, आँख बचाकर उससे दूर भागनेकी कोशिश करते हैं। पर माता उन्हें कभी नहीं बिसारती, बराबर उनकी सँभाल करती ही रहती है। इसी प्रकार भगवान् भी शरणागत भक्तोंको कभी नहीं भूलते, कभी नहीं त्यागते। वे भागवतमें स्वयं कहते हैं—

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्।
हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे॥

भगवान्के शरण होकर उनका भजन करना—यही सुगम मार्ग है। यह वह राजमार्ग है, जहाँ आँख मूँदकर दौड़नेवाला भी नहीं गिरता—'धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह।' भक्तिके इस कल्याणकारी मार्गको त्याग कर जो केवल ज्ञानके लिये यत्न करते हैं, उन्हें सिर्फ परिश्रम ही हाथ लगता है, वे क्लेश ही भोग कर रह जाते हैं, कोई लाभ नहीं उठा पाते। भला, थोथी भूसी कूटनेवालोंको क्या मिलता है?—

श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो
क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये।
तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते
नान्यद् यथा स्थूलतुषावघातिनाम्॥

हमलोगोंके मनमें तरह-तरहकी चिन्ताएँ डेरा डाले रहती हैं। लोककी चिन्ता छोड़कर परमार्थ-साधनमें आये, पर यहाँ भी चिन्ता लिये सिर खपा रहे हैं। किस मार्गपर जायँ, क्या करें? कोई भक्तिके लिये चिन्तित हैं, तो कोई ज्ञानके लिये। कोई वैराग्यके ही उपाय पूछते फिरते हैं। पर भागवत शास्त्र इन व्यर्थकी चिन्तामें पड़े हुए लोगोंसे कहता है—'तुम कुछ न करो, केवल भगवान्के शरण हो जाओ। इस एकके ही साधे सब सध जायगा। भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—सब एक साथ चाहते हो, तो भगवान्की शरणमें आओ।' जैसे भोजन करते समय प्रत्येक ग्रासमें सन्तोष या तृप्ति बढ़ती है, शरीरका पोषण—उसमें शक्तिका प्रसार होता है और भूख भी मिटती जाती है, एक एक कौरमें ये सारी बातें होती रहती हैं, उसी प्रकार जो भगवान्की शरणमें आते हैं, उनकी भगवान्में भक्ति होती है, भगवान्के तत्त्वका उन्हें अनुभव होने लगता है और भगवान्से अतिरिक्त जो सांसारिक विषय हैं उनकी ओरसे विरक्ति होने लगती है। एक ओरका प्रेम दूसरी ओरसे वैराग्यका कारण होता ही है—

भक्तिः परेशानुभवो विरक्ति-
रन्यत्र चैष त्रिक एककालः।
प्रपद्यमानस्य यथाश्नतः स्यु-
स्तुष्टिः पुष्टिः क्षुदपायोऽनुघासम्॥
इत्यच्युताङ्घ्रिं भजतोऽनुवृत्त्या
भक्तिर्विरक्तिर्भगवत्प्रबोधः।
भवन्ति वै भागवतस्य राजन्
ततः परां शान्तिमुपैति साक्षात्॥

इस प्रकार शरणागत होकर भगवान्का भजन करनेसे भक्ति, ज्ञान, वैराग्य—सबकी सिद्धि होती है और अन्तमें मनुष्य परम शान्तिको प्राप्त होता है। इसी परम शान्तिको पानेसे संसारका दुःख दूर होगा। यही शान्ति पानेके लिये श्रीमद्भागवतका स्वाध्याय करना और उसके अनुकूल जीवन बनाना नितान्त आवश्यक है।

हैं। वे एक-न-एक दिन हमारे पास आयेंगे ही। यदि हम उनकी इच्छाके अनुकूल अपना वियोगी जीवन न बितायें, शरीर त्याग दें, तो यह समाचार उन्हें किसी-न-किसी तरह मिल ही जायगा। वे हमारी मृत्युका समाचार सुनकर कितने दुखी होंगे, उनके कोमल हृदय-पर कैसी निष्ठुर ठेस लगेगी—कल्पना करके ही हृदय हहर उठता है। इसलिये जीवनमें चाहे जितनी व्यथा सहनी पड़े, उसे सहकर उनकी इच्छा पूर्ण करनी चाहिये और उन्हें एक क्षणके लिये भी कभी कष्ट न हो, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। गोपियोंका सङ्कल्प दृढ़ था, गोपियोंने इस व्रतका जीवनभर निर्वाह किया। उनमें जितनी कोमलता थी, उससे भी अधिक तितिक्षा और त्याग था—यह स्पष्ट है।

श्रीकृष्णमें जैसे समग्र माधुर्य और समग्र सौन्दर्य है, वैसे ही समग्र वैराग्य भी है। श्रीकृष्ण चाहे जिस रूपमें हों, जिस क्रियामें संलग्न हों, असङ्ग हैं—इतना निश्चित है। संसारमें और मानव-बुद्धिमें जितने विरुद्ध भावोंकी कल्पना की जा सकती है, सब श्रीकृष्णमें हैं; क्योंकि सबके आश्रय वे ही हैं। वे शिशु होते हुए भी पुरातन हैं, निर्गुण होते हुए भी सगुण हैं, एक देशमें होते हुए भी सर्व देशमें हैं। वे गोपियोंके पास न होते हुए भी हैं, और होते हुए भी नहीं हैं। केवल शारीरिक सान्निध्य ही सान्निध्य नहीं है; मुख्य सान्निध्य तो मनका है, आत्माका है। जहाँ प्रेम है, वहाँ सन्निधि भी है–चाहे वह आँखोंसे नहीं दीखे। प्रेम न होनेपर शारीरिक सन्निधि भी किसी कामकी नहीं। गोपियोंके हृदयमें सच्चा प्रेम था, और सच्चा सान्निध्य भी था। उसे दूसरे लोग नहीं देख सकते थे, गोपियाँ देखती थीं। श्रीकृष्ण जानते थे कि ऐसा सान्निध्य संयोगकी अपेक्षा वियोगमें अधिक होता है। संयोगमें प्रियतमका दर्शन, मिलन सीमित होता है और वियोगमें अनन्त। जहाँ देखिये, प्रियतम-ही-प्रियतम हैं। उन्हींका दर्शन, उन्हींका स्मरण। किसीकी पदध्वनि उन्हींके आनेकी आहट है। कोई भी रूप उसी नटवरकी लीला है। श्रीकृष्णने अपनेको गोपियोंसे अलग करके उन्हें कोटि-कोटि रूपमें अपने-आपका दान किया था, यह गोपियोंकी दिनचर्यासे प्रकट है और उद्धव यही अनुभव करके उनके चरणोंकी धूलपर लोटते थे।

भगवान् दयामय हैं, वे दयाके ही कारण अवतीर्ण होते हैं और दयाके ही कारण अनेकों प्रकारकी लीला करते हैं। उनका प्रत्येक कार्य दयासे पूर्ण ही होता है। जो उन्हें चाहता है, उसे वे मिलते हैं अवश्य—चाहे वह किसी भी रूपमें क्यों न चाहता हो। जो शत्रुके रूपमें चाहते हैं, उन्हें शत्रुके रूपमें भी मिलते हैं और उनका कल्याण भी करते हैं। अनेक अवतारोंमें अनेकों व्यक्ति भगवान्‌की ओर आकर्षित हुए थे और उनमेंसे जिन्होंने पतिके रूपमें भगवान्‌को चाहा था, उनके लिये श्रीकृष्णावतार ही उद्धारका समय निश्चित किया गया था। भगवान् श्रीकृष्णके व्रज और मथुराके जीवनमें चार प्रकारकी स्त्रियाँ सम्पर्कमें आती हैं। एक तो यशोदा-राधा आदि गुणातीत श्रेणीकी स्त्रियाँ, जो भगवान्‌के नित्य धाममें उनके साथ रहती हैं, और कुछ गोपियाँ, जो साधन-सिद्ध होकर गुणातीत हो गयी हैं। दूसरी श्रेणी-की सात्त्विक स्त्रियाँ मथुराकी रहनेवाली यज्ञपत्नियाँ हैं—जो बड़े ऊँचे भावसे श्रीकृष्णके पास आती हैं, प्रेम करती हैं, रहना चाहती हैं परन्तु गोपियों-जैसा अधिकार न होनेके कारण रह नहीं पातीं। उनके चित्तमें कुल-परिवारके प्रति कुछ आसक्ति भी है, जो कि उनके वचनोंसे ही प्रकट हो जाती है। तीसरी श्रेणीकी राजसिक स्त्रियाँ वे हैं जो व्रजके वनोंमें रहती हैं, जातिकी पुलिन्द-कन्या—भीलिनें हैं, परन्तु श्रीकृष्णके प्रति वे विशेष आकृष्ट हैं और चाहती हैं कि श्रीकृष्ण हमें मिलें। परन्तु सङ्कोच, भय और अपनी हीनताके बोधके कारण वे श्रीकृष्णसे अपनी कामना प्रकट नहीं कर सकतीं; केवल भगवान्‌के चरणोंकी धूल लेकर अपनी व्यथा मिटा लेती

आपने भगवान्‌के परम कल्याणमय श्रेष्ठ स्वरूपका अनुभव करा दिया।

इसके बाद ही वे 'ब्रह्मभूतो महायोगी निस्सङ्गश्छिन्नसंशय' हो जाते हैं और आगे चलकर 'ब्रह्मभूतस्य राजर्षे' कहकर उनका वर्णन आता है। यदि श्रीकृष्ण और ब्रह्ममें कोई भेद होता तो इस प्रकारका वर्णन कदापि सम्भव नहीं था। वास्तवमें ब्रह्म, श्रीकृष्ण आदि एक ही परमतत्त्वके विभिन्न नाम हैं। अद्वितीय परतत्त्वस्वरूप एक ही परम वस्तुको विभिन्न नाम और रूपोंके द्वारा साधकोंके हितार्थ विभिन्न रूपमें वर्णन किया जाता है। जो जिस भूमिके अधिकारी होते हैं, वे वैसा भाव ग्रहण कर लेते हैं। इस विवेचनसे सिद्ध हुआ कि श्रीमद्भागवत श्रौत अर्थका प्रतिपादन करनेवाला एक पूर्ण ग्रन्थ है। जैसे श्रुतियोंके अर्थ त्रिगुण और त्रिभावके अनुसार तीन प्रकारके (याज्ञ, दैवत और अध्यात्म) होते हैं, वैसे ही श्रीमद्भागवतके भी तीन प्रकारके अर्थ होते हैं। श्रुतियोंके तीन प्रकारके अर्थके सम्बन्धमें निरुक्तके वृत्तिकार श्रीदुर्गाचार्य कहते हैं—

'यज्ञपरिज्ञानं याज्ञम्, देवतापरिज्ञानं दैवतम्, आत्मन्यधि यद् वर्तते तदध्यात्मम्। स एष सर्वोऽपि मन्त्रब्राह्मणराशिरेवं त्रिधा विभक्त। तत्रैवं सति यदाभ्युदयलक्षणो धर्मोऽभिप्रेयते, तदा याज्ञं पुष्पम्, दैवतं फलम्। यदा पुनर्निःश्रेयसलक्षणो धर्मोऽभिप्रेयते तदेमे अपि याज्ञदैवते पुष्पत्वमेव बिभृत। दैवतं हि याज्ञमन्तर्भूतमेव तदर्थत्वादतो न पृथगुच्यते। .... तत्रैवं सति, अध्यात्मार्थत्वादधिदैवतस्य, अध्यात्मस्य च पुरुषार्थस्य निष्पन्नत्वाद् दैवतं पुष्पम्, अध्यात्मं फलमित्येवमुक्तम्।'

'अर्थात् सम्पूर्ण वेद कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्डके रूपमें तीन प्रकारसे विभक्त हैं। जब लोकपरलोकहितकारी अभ्युदयार्थक धर्मका ग्रहण होता है, तब कर्मकाण्डका ज्ञान पुष्प है और देवतासम्बन्धी ज्ञान फल। जब मुक्तिप्रापक निःश्रेयसार्थक धर्मका ग्रहण होता है, तब कर्मकाण्ड और उपासनाकाण्ड दोनों ही पुष्प हो जाते हैं। कर्मकाण्ड उपासनाके अन्तर्गत है, क्योंकि उसका वही प्रयोजन है। इसलिये पृथक्‌रूपसे उसका वर्णन नहीं होता। ऐसी स्थितिमें जब कि उपासनाकाण्ड ज्ञानकाण्डके लिये है, पुरुषार्थरूपसे अध्यात्मके ही सिद्ध होनेके कारण दैवत पुष्प है और अध्यात्म फल।'

इस प्रकार श्रुतिके प्रत्येक मन्त्रका त्रिविध अर्थ होता है। श्रुतिसार होनेके कारण श्रीमद्भागवतके भी त्रिविध अर्थ हैं, परमहंसोंके लिये तो विशेषरूपसे अध्यात्मपरक अर्थका ही विधान है—ऐसा श्रीश्रीधरस्वामी, श्रीवल्लभाचार्य और श्रीधनपतिसूरिने स्पष्टरूपसे लिखा है। ऐसा होनेपर भी उसमें वर्णित आधिभौतिक और आधिदैवत पक्ष भी सत्य ही हैं, इसमें सन्देह नहीं। यही कारण है कि भारतीय सनातन-सम्प्रदायके अनुयायियोंने श्रीमद्भागवतमें अपने-अपने सिद्धान्तका होना बतलाया है। वास्तवमें ऐसा है भी, क्योंकि श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका सुस्वादु रसरूप फल है। इसलिये अपनी-अपनी दृष्टिसे सभी उसमें अपना सिद्धान्त प्राप्त करते हैं।

अद्वैतसम्प्रदायके प्रधान आचार्य श्रीशङ्कराचार्यकी तीसरी पीढ़ीमें होनेवाले श्रीचित्सुखाचार्यने श्रीमद्भागवतपर टीका की थी, ऐसा वर्णन श्रीमध्वाचार्य और विजयध्वजकी टीकामें मिलता है। यद्यपि अब उनकी टीका प्राप्त नहीं होती, तथापि उसके अस्तित्वमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है। वर्तमान समयकी टीकाओंमें श्रीधरस्वामीकी टीका सर्वश्रेष्ठ और सबसे प्राचीन मालूम पड़ती है। ये श्रीशङ्कराचार्यजीके अनुयायी थे और इन्होंने विष्णुपुराणकी अपनी टीकामें श्रीचित्सुखाचार्यकी चर्चा की है। इसलिये उनके बाद ये हुए थे, ऐसा निश्चय होता है। श्रीधरस्वामीका समय ईस्वी ग्यारहवीं शताब्दी

भगवान्‌की परम कृपालुता प्रकट होती है, जैसा कि श्रीजीवगोस्वामीने कहा है—'सैरन्ध्याः स्वीकृतिः सेयं व्यनक्ति स्म परां कृपाम् ।' इतना होनेपर भी इसका चरित्र भक्तोंके लिये आदर्श नहीं माना गया है। स्वयं श्रीशुकदेव-जीने कहा है—

दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।
यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ॥

'बड़ी कठिनतासे प्रसन्न होनेवाले सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णुको प्रसन्न करके जो जीव विषय-भोगका ही वरण करता है, वह बड़ा दुर्बुद्धि है; क्योंकि विषय असत् हैं ।' इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि गोपियाँ श्रीकृष्णको सुख पहुँचाना चाहती थीं, उनमें विषय-लिप्साकी गन्ध भी न थी; और कुब्जामें विषय-लिप्सा थी। इसीसे श्रीशुकदेवजीने उसकी निन्दा की है। यह प्रसंग भी गोपियोंके प्रेमकी महिमा ही सूचित करता है।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है कि श्रीकृष्णावतारके समय अनेक युगोंके लोग अपनी-अपनी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये, पूर्वजन्ममें प्राप्त वरदानोंके अनुसार पृथ्वीमें जन्म ग्रहण करते हैं और उन सबका सम्बन्ध भगवान् श्रीकृष्णसे होता है; क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्णतम हैं। जिनका कल्याण अंशावतार-कलावतारसे नहीं हो सकता था, उनका कल्याण भी इस अवतारमें हो जाता है। इसी न्यायसे श्रीमद्भागवतमें भगवान् श्रीकृष्णकी बहुत-सी पत्नियों और पुत्रोंका होना मिलता है। यह ध्यान देनेकी बात है कि जबतक रुक्मिणी आदि स्त्रियोंने स्वयं अथवा उनके अभिभावकोंने श्रीकृष्णको बुलाया नहीं और उन्हींसे विवाह करनेकी इच्छा नहीं की, तबतक भगवान् श्रीकृष्णने किसीको ग्रहण नहीं किया। भगवान् श्रीकृष्णका ग्रहण भक्तोंके भावके अनुसार ही होता है और वे अपने चाहने-वालेको अस्वीकार नहीं कर सकते। श्रीमद्भागवत (१०। ६९) में वर्णन आया है—भगवान्‌के अनेक विवाहकी बात सुनकर देवर्षि नारदके मनमें बड़ा सन्देह हुआ कि वे अकेले ही इतनी स्त्रियोंको कैसे प्रसन्न रखते होंगे। उन्होंने द्वारकामें जाकर प्रत्येक पत्नीके महलमें भगवान्‌का दर्शन किया और उनकी विचित्र लीला देखकर आश्चर्यका अनुभव किया। भगवान् अपनी प्रत्येक पत्नीके साथ पृथक्-पृथक् रहते थे, यह उनके लिये कोई कठिन बात न थी; क्योंकि वे सङ्कल्प-मात्रसे ही जितने रूप चाहें, धारण कर सकते हैं। प्रत्येक पत्नीकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने बहुत-से पुत्र और पुत्रियाँ भी उत्पन्न की थीं, जिनकी संख्या सुनकर बहुत-से लोग चकित रह जाते हैं। उन्हें सृष्टि-तत्त्वपर विचार करना चाहिये (देखिये विसर्गका वर्णन)। सृष्टि केवल अंग-संगसे ही नहीं होती। स्त्री-पुरुषके संयोगसे होनेवाली सृष्टि तो बहुत निम्न स्तरकी है; मानसी, चाक्षुषी आदि कई प्रकारकी सृष्टि होती है और ब्रह्मा, प्रजापति एवं ऊँचे अधिकारके ऋषिगण इसी श्रेणीकी सृष्टि किया करते हैं। भगवान् श्रीकृष्णका शरीर पाञ्चभौतिक था और वे भी साधारण पुरुषोंकी भाँति अंग-संगसे ही सन्तानोत्पादन करते थे, ऐसी कल्पना नहीं करनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णके दिव्य शरीरमें हेय वस्तु रहती ही नहीं। विष्ठा, मूत्र, नख, नेत्रमल, कर्णमल आदि वस्तुएँ केवल पाञ्चभौतिक शरीरमें ही होती हैं; दिव्य शरीरमें नहीं। वे मनुष्यरूप धारण करनेके कारण शौच-स्नानादिकी लीला करते हैं, यह दूसरी बात है। भगवान् श्रीकृष्णको भागवतमें 'अवरुद्धसौरत' कहा गया है और श्रुतियोंमें उनका नैष्ठिक ब्रह्मचर्य प्रसिद्ध है। इसलिये उनके वीर्यत्याग-द्वारा सन्तानोत्पत्तिकी धारणा उनका स्वरूप न समझनेके कारण होती है। अतः उनके सब पुत्र और पुत्रियाँ मानसिक ही थीं, उनके सङ्कल्पमात्रसे ही उनकी उत्पत्ति हो गयी थी—ऐसा समझना चाहिये।

माना था। इसलिये उन्होंने किसी नये भाष्यकी रचना नहीं की। ब्रह्मसूत्रके भाष्योंमें वे श्रीमध्वाचार्यके भाष्यको श्रीमद्भागवतसे मिलता जुलता मानते थे। इसीसे वे मध्वाचार्यके सम्प्रदायकी एक शाखाके अन्तर्भुक्त समझे जाते हैं। उन्होंने श्रीमद्भागवतपर कोई टीका नहीं की, श्रीधरस्वामीकी टीकाको ही प्रमाणरूपसे स्वीकार किया। परन्तु उनके अनुयायियोंने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। श्रीरूप गोस्वामीके श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु आदि सभी ग्रन्थ प्राय श्रीमद्भागवतके आधारपर लिखे हुए हैं। श्रीरूप गोस्वामीके भाई श्रीसनातन गोस्वामीने श्रीमद्भागवत-के दशम स्कन्धपर एक 'बृहद्वैष्णवतोषिणी' नामकी टीका लिखी है। उसे कुछ लोग 'दशम टिप्पणी' भी कहते है। श्रीरूप-सनातनके भतीजे श्रीजीव गोस्वामीने तो श्रीमद्भागवतपर कई निबन्ध, टीकाएँ एव टिप्पणियाँ लिखी हैं। उनके षट्सन्दर्भ, क्रमसन्दर्भ और वैष्णव तोषिणी आदि ग्रन्थ बहुत ही प्रसिद्ध हैं। इनकी व्याख्या बहुत ही तात्त्विक एव विद्वत्तापूर्ण है। इनके विरोधी भी मुक्तकण्ठसे इनकी विद्वत्ता स्वीकार करते हैं। इस मतके सबसे मधुर टीकाकार हैं श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती। वे प्रेमपूर्ण भावोंके प्रकट करनेमें इतने पटु हैं कि उनकी व्याख्या पढ़कर एक बार कठोर से-कठोर हृदय भी द्रवित हो जाता है। उनकी टीका पढ़ने ही योग्य है। उनकी टीकाका नाम 'सारार्थदर्शिनी' है।

पुष्टिमार्गके आचार्य जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्य पूरे श्रीमद्भागवतपर व्याख्या नहीं लिख सके, फिर भी उन्होंने प्रारम्भके कुछ स्कन्धोंपर और दशम स्कन्धपर बहुत ही गम्भीर, विचारपूर्ण व्याख्या लिखी है। वे आध्यात्मिक, आधिभौतिक एव राजस, तामस आदि भेदसे श्रीमद्भागवतका कई रूपमें विभाजन करते हैं और उनके प्रकरण बाँधकर नये-नये अर्थ करते हैं। उनका स्थितिकाल सोलहवीं शताब्दी है। उनकी टीकाका नाम 'सुबोधिनी' है। उन्होंने अपनी टीकाके प्रारम्भमें श्रीमद्भागवतका वर्णन करते हुए कहा है कि 'वाक्पति भगवान् वैश्वानरके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतके अर्थनिर्णयकी शक्ति और किसीमें नहीं है। भगवान् विष्णुने शरीर धारण करके व्यासके समान ही कृपा करके मुझे भी आज्ञा दी है। इसलिये व्यास और भगवान्के प्रिय अनेकों प्रकारके गूढार्थ मैं प्रकट कर रहा हूँ।'* श्रीवल्लभाचार्यके अतिरिक्त उनके वशजोंने भी श्रीमद्भागवतपर टीकाएँ की हैं। उनमें श्रीगिरिधरका नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने अपनी टीकामें श्रीमद्भागवतके सब स्कन्धोंका विभाजन कर दिया है—जैसे पहले स्कन्धमें एकसे तीन अध्यायतक हीनाधिकार, चारसे छ तक मध्यमाधिकार, सातसे उन्नीसतक उत्तमाधिकार, दूसरे स्कन्धमें एकसे दोतक तत्त्वध्यानका निरूपण, तीनसे चारतक हार्दिक प्रसादका निरूपण, पाँचसे दसतक मननका निरूपण। इसी प्रकार सब स्कन्धोंको विभक्त करके उन्होंने आध्यात्मिक अर्थ समझनेवालोंको बडी सुविधा कर दी है। और भी कुछ टीकाएँ जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यके वशजोंने की हैं।

श्रीनिम्बार्कसम्प्रदायके लोग स्वभावसे ही सक्षेपमें लिखते हैं। स्वय श्रीनिम्बार्काचार्यने बहुत कम लिखा है। उनके अनुयायी श्रीशुकदेवाचार्यने श्रीमद्भागवतपर 'सिद्धान्तप्रदीप' नामकी व्याख्या लिखी है। वह अत्यन्त सक्षेपमें होनेपर भी अपने सम्प्रदायके सिद्धान्तको अच्छी तरह प्रकट करती है। उन्होंने अपनी टीकाके प्रारम्भमें भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आश्रय लेकर अपने आचार्योंको नमस्कार किया है। उन्होंने अपने आचार्योंमें श्रीहसभगवान्, सनत्कुमार, देवर्षि नारद और श्रीनिम्बार्का-चार्यका नाम लिया है। इनके अतिरिक्त श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय और उसके अवान्तर सम्प्रदायोंके कई

* अर्थे तस्य विवेचितु न हि विभुर्वैश्वानराद् वाक्पते-
रन्यस्तत्र विधाय मानुषतनु मा व्यासवद्दीपति ।
दत्त्वाऽऽज्ञा च कृपावलोकनपटुर्यस्मादतोऽह मुदा
गूढार्थं प्रकटीकरोमि बहुधा व्यासस्य विष्णो प्रियम् ॥

मेरा परम प्रिय श्लोक

(लेखक—पं० श्रीभुवनेश्वरनाथजी मिश्र 'माधव' एम्० ए०)

जिस ग्रन्थरत्नमेंसे स्वयं श्रीकृष्णकी आभा विकीर्ण हो रही है, जिसके भीतर उस परम सुहृद्का रुचिर निवास है, वह किसे न मोह लेगा ? श्रीकृष्णके जिस अङ्गपर जिसकी दृष्टि गयी, वह वहीं लुट गया; जिसने उनके कोमल चरणोंके लाल-लाल प्यारे-प्यारे तलवे देखे, वह उन्हें ही देखता रह गया; जिसने फहराता हुआ रेशमी पीताम्बर देखा, उसके मन-प्राण सदाके लिये उसीमें फहराते रह गये; जिसने घुटनोंतक लटकती हुई वनमाला देखी, वह उसीमें गुँथ गया; जिसने उनके मनोरम नाभिदेश तथा ललित त्रिवलीको देखा, वह वहीं किलोल करने लगा; जिसने उनके वक्षःस्थलपरका श्रीवत्सचिह्न देखा, वह उसीमें रम गया; जिसने कपोलोंको चूमते हुए, हिलते हुए, झूम खाते हुए कुण्डलोंको देखा वह वहीं झूलने लगा; जिसने उनकी मदभरी रतनारी—अमृत और हलाहलसे भरी हुई आँखोंमें अपनी आँखें डुबाकर, उन्हें भुजाओंमें भरकर उनका आलिङ्गन किया वह उस आलिङ्गनपाशसे कभी मुक्त हुआ ही नहीं—उसका लोक-परलोक सब कुछ बिसर गया और इसपर नूपुर, करधनी, वंशी आदिकी सम्मोहक ध्वनि ! ठीक इसी प्रकार किसीको भागवतकी कोई बात प्यारी लगती है, किसीको कोई। कोई उसके परम मधुर काव्यपर मुग्ध है, तो कोई उसके चूड़ान्त अध्यात्मपर; किसीको प्राकृतिक छवि मोहे हुए है, किसीको उसकी रसमयी स्तुतियाँ। रूप और रस—दोनोंहीका महासागर हिलोरें ले रहा है।

भागवतके (ग्रन्थ और भक्त दोनों ही अर्थोंमें) हृदयमें श्रीकृष्ण, श्रीकृष्णके हृदयमें भागवत। यह है परस्परका सम्बन्ध। इस सम्बन्धका रहस्य जान लेनेपर भागवतमें भगवान्‌का और भगवान्‌में भागवतका प्रत्यक्ष दर्शन होने लगता है। विश्वसाहित्यमें काव्यके भीतर अध्यात्मका इतना दिव्य उन्मेष कहीं हुआ है—मुझे सन्देह है।

कई स्थल हृदयको बहुत प्रिय हैं; वेणुगीत, गोपी-गीत, भ्रमरगीत—ये तो हृदयमें बसे हुए हैं—हृदयवीणाके तार-तार उनसे झङ्कृत हैं—जैसे स्वयं श्रीकृष्णकी ही कोमल-कोमल अँगुलियाँ इन तारोंको छू रही हों। इस आनन्द-सौन्दर्य-माधुर्यका शब्दोंमें कोई क्या आकलन करे !

परन्तु जीवनमें जब कभी चारों ओरसे अन्धकार और आँधीसे घिर जाता हूँ, जब सिरपर चिन्ता और दुःखके काले-काले बादल गरजने लगते हैं, उस गर्जन और उस अन्धकारमें जब कहीं कोई प्रकाशकी किरण नहीं दीखती, किसी 'अपने'का स्वर सुनायी नहीं पड़ता और इस प्रकार निराशा और अवसादमें डूबने लगता हूँ तो स्वतः—अपने-आप हृदयकी कातर वाणीमें एक श्लोक फूट पड़ता है—अनायास, बिना प्रयास। इधर गुन-गुनाना शुरू होता है, उधर देखता हूँ आकाश साफ है; चारों ओर भीतर-बाहर प्रकाश जगमगा रहा है और मैं सब प्रकार अपने सर्वस्वकी गोदमें, अपनी स्नेहमयी, दयामयी माँ श्रीकृष्णकी गोदमें सर्वथा सुरक्षित हूँ। वह श्लोक यह है—

अजातपक्षा इव मातरं खगाः
स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

जैसे पक्षियोंके पंखहीन बच्चे अपनी माँकी बाट जोहते रहते हैं, जैसे भूखे-भूखे बछड़े अपनी माँका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं और जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित रहती है—वैसे ही हे कमलनयन ! आपके दर्शनके लिये मेरा हृदय छटपटा रहा है।

अपने रसायनके उपक्रममें कहा है कि "मैंने भगवान्‌से प्रार्थना की—'हे देव! जब सहस्रमुखवाले शेषनाग भी तुम्हारे गुणोंके वर्णनमें समर्थ नहीं हैं, सहस्र आँखोंवाले इन्द्र एक क्षण भी तुम्हारे सौन्दर्यका विवेचन नहीं कर सकते, कार्तवीर्य अर्जुन अपनी हजार भुजाओंसे सेवामें लगे रहनेपर भी असमर्थ ही हैं, तब हे जगदीश्वर! मैं तो एक मुख, दो आँख और दो हाथोंवाला मनुष्य हूँ, मैं आपके वर्णन, सौन्दर्यविवेचन और सेवामें कैसे समर्थ हो सकता हूँ।' इस प्रकार बारंबार प्रार्थना करनेपर भी भगवान्‌ने मुझे प्रोत्साहित किया। उन्होंने कहा—'बेटा! जब जिस रहस्यको हृदयमें रखकर मैंने उस समय जो लीला की थी, वह सब बिना प्रयासके ही तुम्हारी बुद्धिमें प्रकट कर दूँगा, इसलिये तुम निश्शङ्क होकर लिखो।' तब इस कार्यमें मेरी प्रवृत्ति हुई।"* इसमें शङ्का नहीं कि श्रीहरिसूरिकी यह कृति सचमुच भगवत्प्रसाद है।

इन टीकाओंके द्वारा श्रीमद्भागवतका भाव समझनेमें बड़ी सहायता मिलती है। इनसे ही संस्कृतके बड़े-बड़े विद्वान् भी भागवतका भाव समझनेमें समर्थ होते हैं। इसलिये जबतक श्रीमद्भागवत रहेगा, तबतक इन टीकाओंकी उपयोगिता भी रहेगी।

—शान्तनुविहारी द्विवेदी

श्रीमद्भागवतकी पूजन-विधि तथा विनियोग, न्यास एवं ध्यान

प्रातःकाल स्नानके पश्चात् अपना नित्य नियम समाप्त करके पहले भगवत्सम्बन्धी स्तोत्रों एवं पदोंके द्वारा मङ्गलाचरण और वन्दना करे। इसके बाद आचमन और प्राणायाम करके—

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥†

—इत्यादि मन्त्रोंसे शान्तिपाठ करे। इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीव्यासजी, शुकदेवजी तथा श्रीमद्भागवत ग्रन्थकी षोडशोपचारसे पूजा करनी चाहिये। यहाँ श्रीमद्भागवत पुस्तकके षोडशोपचार पूजनकी मन्त्रसहित विधि दी जा रही है, इसीके अनुसार श्रीकृष्ण आदिकी भी पूजा करनी चाहिये। निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर पूजनके लिये संकल्प करना चाहिये। संकल्पके समय दाहिने हाथकी अनामिका अङ्गुलिमें कुशाकी पवित्री पहने और हाथमें जल लिये रहे। संकल्पवाक्य इस प्रकार है—

ॐ तत्सत्। ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः। ओमद्यैतस्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यस्थाने कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकयोगवाराशकलग्नमुहूर्तकरणान्वितायां शुभपुण्यतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नस्य अमुकशर्मणः (वर्मणः गुप्तस्य वा) मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य श्रीगोवर्धनधरणचरणारविन्दप्रसादात् सर्वसमृद्धिप्राप्त्यर्थं भगवद्

---

* देव त्वद्गुणवर्णने किल सहस्रास्योऽपि नेशो भृशं त्वत्सौन्दर्यविवेचनेऽपि च सहस्राक्षः क्षणं न क्षमः।
सेवायां न सहस्रबाहुभिरलं युक्तोऽपि शक्तोऽर्जुनस्तन्नाहं जगदीश्वरैकवदनो द्व्यक्षो द्विबाहुः कियान्॥
इत्थं भूरिसमर्थितं स भगवान् प्रोत्साहनं मे ददाद् यद् यद् बीजमहं निधाय हृदये क्रीडामकार्षं तदा।
तत् सर्वं तव बुद्धिगोचरमनायासं करिष्ये लिख त्वं निश्शङ्कमिहार्भकेति समभूदत्र प्रवृत्तिर्मम॥

† देवताओ! हमें अपने कानोंसे ऐसे ही वचन सुननेको मिलें, जो परिणाममें कल्याणकारी हों। हम यज्ञ-कर्ममें समर्थ होकर अपनी इन आँखोंसे सदा शुभ ही शुभ देखें—अशुभका कभी दर्शन न हो। हमारा शरीर और उसके अवयव स्थिर हों—पुष्ट हों और उनसे परमात्माकी स्तुति—भगवान्‌की सेवा करते हुए हम ऐसी आयुका उपभोग करें, ऐसी जिंदगी बिताय जो देवताओंके लिये हितकर हो, जिसका देवकार्यमें उपयोग हो सके।

कारण कि उनका दिमाग किसी विपरीत प्रेरणाके वशीभूत होता है। आज हम भी जगत्की भलाईके लिये ही युद्धकी ज्वाला जगाये हुए हैं; अपनी बुद्धिसे ठीक ही करते हैं, पर हो रहा है जगत्का विध्वंस। इसका एकमात्र कारण यही है कि हम जिस शक्तिका आश्रय लिये बैठे हैं, उसका स्वरूप ही विध्वंसमय है।

इसीलिये भारतीय ऋषि-महर्षियोंने सर्वत्र आत्मदर्शन या परमात्मदर्शनपर जोर दिया है। सब जगह एक ही आत्मा या परात्माको देखनेका उपदेश किया है, असत् और जडका आश्रय त्याग कर सत् और चेतनका अवलम्बन लेना सिखाया है। यह केवल मौकेपर काम लेनेके लिये कल्पित उपायमात्र नहीं है; यही चिरन्तन सत्य है। इस तत्त्वको समझनेके लिये श्रीमद्भागवतकी शरण लेनेकी आवश्यकता है। चित्त शुद्ध हुए बिना यह तत्त्व समझमें नहीं आता; परन्तु चित्तशुद्धिका भी सर्वोत्तम उपाय श्रीमद्भागवतका स्वाध्याय ही है— 'एतस्मादपरं किञ्चिन्मनःशुद्ध्यै न विद्यते।' अनुभवी लोगोंका विश्वास है कि भागवतधर्मका आश्रय लिये बिना संसारमें सच्ची शान्तिकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती।

आज सर्वत्र सङ्घर्षकी ज्वाला धधक उठी है। कालरूपी व्याल हमें निगल जानेके लिये मुँह फैलाये बैठा है। यह आतङ्क आज सबको सता रहा है, पर इससे छुटकारा पानेके लिये भी श्रीमद्भागवत ही अमोघ साधन है। श्रीमद्भागवतका प्रादुर्भाव ही इसलिये हुआ है कि वह संसारके भयको नष्ट कर सच्चा सुख, सच्ची शान्ति प्रदान करे—

कालव्यालमुखग्रासत्रासनिर्णाशहेतवे।
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम्॥

हमने बचपनसे ही किसीके आश्रित रहना, किसीपर भरोसा रखना सीखा है। बचपनमें माँ-बापके सहारे रहे हैं और उनके सहारे रहकर पूर्ण निश्चिन्तताका अनुभव किया है। बड़े होनेपर हमने वह आश्रय छोड़कर दूसरे-दूसरे साधनों और सहायकोंका भरोसा किया है; पर अभीतक ऐसा आश्रय—ऐसा सहारा नहीं ढूँढ़ा, जो निर्भय हो, निश्चिन्त हो और निश्चल हो। जो स्वयं भय और चिन्ताका शिकार है, वह दूसरेको क्या निर्भय बना सकता है। जो खुद चञ्चल है, उससे हमें कबतक धैर्य मिलेगा। इसलिये यदि हम भय और चिन्तासे बचना चाहते हैं, तो किसकी शरण जायँ? इसका उत्तर भागवतमें मिलता है। अभय चाहनेवालेको सर्वदा भगवान्का श्रवण, भगवान्का कीर्तन और भगवान्का स्मरण करना चाहिये—

तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्॥

सर्वत्र भगवद्दृष्टि हुए बिना सब जगह भगवान्का स्मरण होना कठिन है और यह दृष्टि तब प्राप्त हो, जब हम भगवान्का आश्रय लें—अन्य सभी सहारोंको त्याग कर केवल परमात्माकी शरण हो जायँ। जो भगवान्को मानते ही नहीं, वे यदि उनपर भरोसा न रक्खें तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। जो पारस पत्थरके अस्तित्वपर विश्वास ही नहीं करते, वे उससे लाभ न उठा सकें—यह स्वाभाविक ही है। पर हमें आश्चर्य तो तब होता है जब पारस सामने देखकर, समझकर भी एक दरिद्र उसकी उपेक्षा करता है और दीनताके दुःखसे सदा हाय-हाय करता रहता है। हममेंसे अधिकांश मनुष्य ऐसे हैं, जो भगवान्का अस्तित्व तो स्वीकार करते हैं पर उनपर भरोसा नहीं रखते, उनको एक निकम्मी चीज समझते हैं। ऐसे लोग अपने तो हानि उठाते ही हैं, दूसरोंके लिये सच्चे नास्तिकोंसे भी बढ़कर भयङ्कर सिद्ध होते हैं। भगवान्को माननेवालोंका भी जीवन यदि उतना ही निर्दय, निर्मम, स्वार्थान्ध और सङ्कीर्ण रहा जितना कि नास्तिकोंका है, तो उनके आस्तिक होनेसे क्या लाभ हुआ? जगत्को भी उन्होंने धोखेमें डाला, अपने तो रसातलमें गये ही।

ॐ त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥४॥

श्रीमगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। अर्घ्यं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे अर्घ्य निवेदन करे।

ॐ तस्माद् विराडजायत विराजो अधि पूरुषः।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः॥५॥

श्रीमगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। आचमनीयं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे आचमनके लिये जल या गङ्गाजल अर्पण करे।

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥६॥

श्रीमगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। स्नानीयं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे स्नानके लिये जल अर्पण करे।

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥७॥

श्रीमगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। वस्त्रं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे वस्त्र समर्पण करे।

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशूंस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये॥८॥

श्रीमगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे यज्ञोपवीत अर्पण करे।

४—वह त्रिपाद पुरुष ऊपर उठा हुआ है अर्थात् वह परमात्मा अज्ञानके कार्यभूत इस संसारसे पृथक् तथा यहाँके गुण दोषोंसे अछूता रहकर ऊँची स्थितिमें विराजमान है। उसका एक अंशमात्र मायाके सम्पर्कमें आकर यहाँ जगत्‌के रूपमें उत्पन्न हुआ, फिर वह मायावश जडचेतनमयी नाना प्रकारकी सृष्टिके रूपमें स्वयं ही फैलकर सब ओर व्याप्त हो गया।

५—उस आदिपुरुष परमात्मासे विराट्‌की उत्पत्ति हुई—यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। इस ब्रह्माण्डके ऊपर इसका अभिमानी एक पुरुष प्रकट हुआ। तात्पर्य यह कि परमात्माने अपनी मायासे विराट् ब्रह्माण्डकी रचना कर स्वयं ही उसमें जीवरूपसे प्रवेश किया। वही जीव ब्रह्माण्डका अभिमानी देवता (हिरण्यगर्भ) हुआ। इस प्रकार उत्पन्न होकर वह विराट् पुरुष पुनः देवता, तिर्यक् और मनुष्य आदि अनेकों रूपोंमें प्रकट हुआ। इसके बाद उसने भूमिको उत्पन्न किया, फिर जीवोंके शरीरोंकी रचना की।

६—उस समय देवताओंने यज्ञ करना चाहा, परन्तु यज्ञकी कोई सामग्री उपलब्ध न हुई, तब उन्होंने पुरुषके स्वरूपमें ही हविष्यकी भावना की। जब पुरुषरूप हविष्यसे ही देवताओंने यज्ञका विस्तार किया, उस समय उनके सङ्कल्पानुसार वसन्तऋतु घी हुई, ग्रीष्मऋतुने समिधाका काम दिया और शरद्ऋतुसे विशेष प्रकारके चरु पुरोडाशादि हविष्यकी आवश्यकता पूर्ण हुई।

७—सबसे पहले उत्पन्न हुआ वह पुरुष ही उस समय यज्ञका साधन था, देवताओंने उसे सङ्कल्पद्वारा यूपमें बँधा हुआ पशु माना और उस मानसिक यज्ञमें उस सङ्कल्पित पशुका भावनाद्वारा ही प्रोक्षण आदि संस्कार भी किया। इस प्रकार संस्कार किये हुए उस पुरुषरूपी पशुके द्वारा देवताओं, साध्यों और ऋषियोंने उस मानसिक यज्ञको पूर्ण किया।

८—जिसमें सब कुछ हवन किया गया, उस पुरुषरूप यज्ञसे दही घी आदि सामग्री सम्पन्न हुई। पुरुषने वनमें उत्पन्न होनेवाले हिरन आदि और गाँवोंमें होनेवाले गाय, घोड़े आदि वायुदेवतासम्बन्धी प्रसिद्ध पशुओंको भी उत्पन्न किया।

आकाश है; पर इस आकाशका भी परम आधार महाकाश है—जो जड नहीं चेतन है, नीरस नहीं आनन्दमय है, अनित्य नहीं सत् है। 'आनन्दमयोऽभ्यासात्' इस सूत्रके द्वारा भगवान् व्यासने इसी अभिप्रायकी पुष्टि की है। वही आकाश सबको जीवन और आनन्द देनेवाला है, उसके बिना यह जगत् क्षण-भर भी नहीं रह सकता। श्रुति भी यही कहती है—

'को ह्येवान्यात् कः प्राण्याद् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्।'

इस प्रकार जब दृढ़ विश्वास हो जाय कि वास्तवमें सबका परम आश्रय परमात्मा ही है, तभी शरणागति सुदृढ़ होती है; इसके विपरीत शरणागतिकी भावना बन ही नहीं सकती। हम कहें या न कहें, मानें या न मानें—इस बातको समझनेमें कभी भूल नहीं करते कि हमारा आधार यह पृथ्वी है। हम इसीपर चलते-फिरते और बैठते-सोते हैं। अपना पैर कुर्सीपर रक्खें या चौकीपर; वह पृथ्वीपर ही रक्खा कहलायगा। क्योंकि चौकी और कुर्सी पृथ्वीके ही आधारपर टिके हैं। इसी प्रकार हम सबका चरम आधार परमात्मा ही है, क्योंकि वह सभी आधारोंका आधार है। जैसे मृत्तिकासे प्रकट हुआ उसका विकार उससे पृथक् नहीं रह सकता, उसी तरह यह जगत् परमात्मासे पृथक् कभी हो ही नहीं सकता। जब प्रयत्न करनेपर—चाहनेपर भी हम भगवान्‌के आश्रयसे अलग नहीं हो सकते, नित्य-निरन्तर उनकी शरणमें ही रहते हैं, तो बुद्धिमानी इसीमें है कि इसपर विश्वास करें, इस सत्यपर परदा न डालें। स्वभावतः प्राप्त हुए सुख-सौभाग्यको हाथसे न जाने दें। ऋषि-मुनियोंकी भाँति हम भी अपना मन, वाणी, शरीर सबको सभी सत्कर्मोंसहित परमात्माके अर्पण कर दें—

बृहदुपलब्धमेतदवयन्त्यवशेषतया
यत उदयास्तमयौ विकृतेर्मृदिवाविकृतात्।
अत ऋषयो दधुस्त्वयि मनोवचनाचरितं
कथमयथा भवन्ति भुवि दत्तपदानि नृणाम्॥

यह सत्य है कि हम स्वभावतः समर्पित हैं, समर्पण करना नहीं है; तथापि भ्रम या अविद्यावश हम सत्यको भूले हुए हैं और समर्पणके सुखसे, परमात्माके संस्पर्शके आनन्दसे वञ्चित हैं। पानीमें रहकर प्याससे मरना आश्चर्य नहीं तो क्या है? आनन्दमय परमात्माकी गोदमें रहकर दुःख और चिन्ताओंके बोझसे लदे रहना कितने दुर्भाग्यकी बात है!

हमें अपने क्षेमकी बड़ी चिन्ता है, मानो हम अपने पुरुषार्थ और उद्योगसे ही सकुशल रह सकते हैं, हमपर किसीका—नियन्ताका हाथ नहीं है। पुरुषार्थका अभिमान लेकर जिंदगी खपा डालते हैं, पर वही हाय-हाय—रोना-धोना लगा रहता है। कभी चैन नहीं मिलता। पुरुषार्थ बुरा नहीं है, बुरा है अभिमान। बुरा है अकड़ना। हम तो भगवान्‌के हाथके यन्त्र हैं, उनकी आज्ञाके अनुसार काम करते चलना है। यही है सच्चा पुरुषार्थ। योग-क्षेमकी चिन्ता हम स्वयं क्यों लें, लेकर निभा भी तो नहीं सकते। यह सब भगवान्‌का काम है, विश्वका पालन विश्वम्भर करता है। हमें योग-क्षेमके लिये सिर खपानेसे कोई लाभ नहीं—

'क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीश-
स्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः।'

कितने ही समझदार विद्वान् धनियोंके पीछे पड़े रहते हैं—शायद ये हमारा लोक सुधार दें, हमारे आड़े समयपर काम आ जायँ। ऐसे लोगोंके प्रति श्रीमद्भागवत-की कितनी कड़ी फटकार है—

'रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्माद् भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान्।'

क्या रहनेके लिये घर नहीं हैं, पर्वतोंकी कन्दराओंका द्वार बंद हो गया? क्या भगवान्‌ने शरणागतोंकी रक्षा करनी छोड़ दी? अब वे भक्तवत्सल अपने शरणागत भक्तोंकी सुधि नहीं लेते? फिर क्या कारण है जो ये समझदार लोग भी उन लोगोंके पीछे-पीछे फिरते हैं, जो धनके घमंडमें अंधे हो रहे हैं।

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। दक्षिणा समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे दक्षिणा समर्पण करे।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसस्तु पारे।
सर्वाणि रूपाणि विचित्य धीरो
नामानि कृत्वाभिवदन् यदास्ते॥१६॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। नमस्करोमि।

—इस मन्त्रसे नमस्कार करे।

धाता पुरस्ताद्यमुदाजहार
शक्रः प्रविद्वान् प्रदिशश्चतस्रः।
तमेवं विद्वानमृत इह भवति
नान्यः पन्था अयनाय विद्यते॥१७॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। प्रदक्षिणा समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे प्रदक्षिणा करे।

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा-
स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त
यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥१८॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। मन्त्रपुष्पं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे मन्त्रपाठपूर्वक पुष्पाञ्जलि अर्पण करे।

प्रार्थना

वन्दे श्रीकृष्णदेवं मुरनरकभिदं वेदवेदान्तवेद्यं
लोके भक्तिप्रसिद्धं यदुकुलजलधौ प्रादुरासीदपारे।
यस्यासीद् रूपमेवं त्रिभुवनतरणे भक्तिवच्च स्वतन्त्रं
शास्त्रं रूपं च लोके प्रकटयति मुदा यः स नो भूतिहेतुः॥

जो इस जगत्में भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं, जिनका तत्त्व वेद और वेदान्तके द्वारा ही जानने योग्य है, जो अपार यादवरूपी समुद्रमें प्रकट हुए थे, मुर और नरकासुरको मारनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं सादर सप्रेम प्रणाम करता हूँ। जो इस संसारमें अपने स्वरूप तथा शास्त्रको प्रसन्नतापूर्वक प्रकट किया करते हैं तथा सचमुच ही जिनका स्वरूप इस त्रिभुवनको तारनेके लिये भक्तिके समान स्वतन्त्र नौकारूप है, वे भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंका कल्याण करें।

नमः कृष्णपदाब्जाय भक्ताभीष्टप्रदायिने।
आरक्तं रोचयेच्छश्वन्मामके हृदयाम्बुजे॥

कुछ-कुछ लालिमा लिये हुए श्रीकृष्णका जो चरण-कमल मेरे हृदयकमलमें सदा दिव्य प्रकाश फैलाता रहता है और भक्तजनोंकी मनोवाञ्छित कामनाएँ पूर्ण किया करता है, उसे मैं बारबार नमस्कार करता हूँ।

१६–धीर पुरुष समग्र रूपोंको परमात्माके ही स्वरूप विचार कर, उनके भिन्न भिन्न नाम रखकर जिस एक तत्त्वका ही उच्चारण और अभिवन्दन करता रहता है, उसको ज्ञानी पुरुष इस प्रकार जानते हैं—अविद्यारूपी अन्धकारसे परे आदित्यके समान स्वप्रकाश इस महान् पुरुषको मैं अपने 'आत्मा' रूपसे जानता हूँ।

१७–ब्रह्माजीने पूर्वकालमें जिसका स्तवन किया था, इन्द्रने सब दिशा विदिशाओंमें जिसे व्याप्त जाना था, उस परमात्माको जो इस प्रकार जानता है, वह इस जीवनमें ही अमृत (मुक्त) हो जाता है। मोक्ष अथवा भगवत्प्राप्तिके लिये इसके सिवा दूसरा मार्ग नहीं है।

१८–देवताओंने पूर्वोक्त मानसिक यज्ञके द्वारा यज्ञस्वरूप पुरुष—प्रजापतिकी आराधना की। इस आराधनासे समस्त जगत्को धारण करनेवाले वे पृथ्वी आदि मुख्य भूत प्रकट हुए। इस यज्ञकी उपासना करनेवाले महात्मालोग उस स्वर्गलोकको प्राप्त होते हैं, जहाँ प्राचीन साध्यदेवता निवास करते हैं।

श्रुतिसार श्रीमद्भागवतकी टीकाएँ

श्रीमद्भागवत महापुराण समस्त श्रुतियोंका सार है, महाभारतका तात्पर्यनिर्णायक है और ब्रह्मसूत्रोंका भाष्य है; इसलिये प्रस्थानत्रयीमें जो कुछ है, वह सब श्रीमद्भागवतमें है और श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण तो इसको चौथे प्रस्थानके रूपमें ही स्वीकार करते हैं। वास्तवमें श्रीमद्भागवतका श्रुतियोंके साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, कुछ शब्दोंके हेर-फेरसे इसमें जितनी श्रुतियों और उनके अर्थोंका उल्लेख हुआ है, उतना और किसी भी पुराणमें नहीं है। गीताके अठारह अध्यायोंकी तो अठारह हजार श्लोकोंमें यह व्याख्या ही है। बहुत-से गीताके श्लोक इसमें ज्यों-के-त्यों आते हैं। ब्रह्मसूत्र ('जन्माद्यस्य यतः') से प्रारम्भ करके स्थान-स्थानपर ब्रह्मसूत्र और उसके भाव लिये गये हैं। इसीसे उन तीनों ग्रन्थोंमें जिस सिद्धान्तका, जिन अर्थोंका प्रतिपादन हुआ है उसी सिद्धान्तका, उन्हीं अर्थोंका श्रीमद्भागवतमें भी प्रतिपादन हुआ है। श्रीमद्भागवतके बारहवें स्कन्धके अन्तिम अध्यायमें स्वयं ही इसके स्वरूपका स्पष्टीकरण हुआ है—

आदिमध्यावसानेषु वैराग्याख्यानसंयुतम्।
हरिलीलाकथाव्रातामृतानन्दितसत्सुरम्॥११॥
सर्ववेदान्तसारं यद् ब्रह्मात्मैकत्वलक्षणम्।
वस्त्वद्वितीयं तन्निष्ठं कैवल्यैकप्रयोजनम्॥१२॥

'इस महापुराणके आदि, मध्य एवं अन्तमें वैराग्योत्पादक कथाओंका उल्लेख है। यह भगवान्की लीला-कथारूपी अमृत-समुद्रसे संत और देवताओंके लिये महान् आनन्दजनक है। समस्त वेदान्तोंका सार ब्रह्म और आत्माकी एकतारूप अद्वितीय वस्तु इसका प्रतिपाद्य है और यह उसीमें परिनिष्ठित है। कैवल्य-मुक्ति ही एकमात्र इसके निर्माणका प्रयोजन है।'

आगे कहा गया है कि जो इस वेदान्तसाररूप श्रीमद्भागवतके रससे सन्तृप्त हो जाता है, वह फिर और कहीं रम नहीं सकता। इसके पश्चात् ही, जिस प्रकार 'सत्यं परं धीमहि' कहकर श्रीमद्भागवतका प्रारम्भ किया गया है वैसे ही 'सत्यं परं धीमहि' (१२। १३। १९) कहकर समाप्ति भी की गयी है। यह परम सत्य ही श्रीमद्भागवतका प्रतिपाद्य है। वर्णनकी सुविधासे कहीं उसका नाम भगवान्, कहीं ब्रह्म, कहीं परमात्मा और कहीं श्रीकृष्ण रक्खा गया है। इसलिये उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, फल, अर्थवाद और उपपत्ति-की दृष्टिसे भी यही निर्णय होता है कि ज्ञान-वैराग्य-भक्तिसहित परब्रह्मस्वरूप नैष्कर्म्यका आविष्कार करनेके लिये ही श्रीमद्भागवतका प्रकाश हुआ है। यह बात विशेष ध्यान देनेयोग्य है कि श्रीमद्भागवतका उपदेश समाप्त करते हुए श्रीशुकदेवजीने परीक्षित्को ब्रह्मस्वरूपसे ही स्थित होनेकी आज्ञा दी—

अहं ब्रह्म परं धाम ब्रह्माहं परमं पदम्।
एवं समीक्षन्नात्मानमात्मन्याधाय निष्कले॥
दशन्तं तक्षकं पादे लेलिहानं विषाननैः।
न द्रक्ष्यसि शरीरं च विश्वं च पृथगात्मनः॥

(श्रीमद्भा० १२। ५। ११-१२)

'अपने-आपको अखण्ड आत्मामें स्थापित करके ऐसा अनुभव करो कि मैं परम ज्योतिःस्वरूप ब्रह्म हूँ, सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूँ। इस प्रकार अनुभव करते रहनेपर जीभ लपलपाते हुए विषपूर्ण मुखोंसे तक्षकके पैरमें डसते रहनेपर भी तुम अपनेसे पृथक् संसार और शरीरको नहीं देखोगे।'

उनकी यह आज्ञा सुनकर परीक्षित्ने कहा—

अज्ञानं च निरस्तं मे ज्ञानविज्ञाननिष्ठया।
भवता दर्शितं क्षेमं परं भगवतः पदम्॥

'ज्ञान-विज्ञानकी निष्ठासे मेरा अज्ञान दूर हो गया।

उच्चारण कर दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी मध्यमा अङ्गुलिका स्पर्श करे। *ॐ मो ॐ नमो दक्षिणानामिकायाम्*—यह पढकर दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी अनामिका अङ्गुलिका स्पर्श करे। *ॐ भ ॐ नमो दक्षिणकनिष्ठिकायाम्*—इससे दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी कनिष्ठिका अङ्गुलिका स्पर्श करे। *ॐ ग ॐ नमो वामकनिष्ठिकायाम्*—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी कनिष्ठिका अङ्गुलिका स्पर्श करे। *ॐ व ॐ नमो वामानामिकायाम्*—इससे बायें हाथके *अँगूठेसे बायें हाथकी अनामिका अङ्गुलिका स्पर्श* करे। *ॐ तें ॐ नमो वाममध्यमायाम्*—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी मध्यमा अङ्गुलिका स्पर्श करे। *ॐ वा ॐ नमो वामतर्जन्याम्*—इससे बायें हाथके अँगूठेसे बायें हाथकी तर्जनी अङ्गुलिका स्पर्श करे। *ॐ सु ॐ नमः ॐ दें ॐ नमो दक्षिणाङ्गुष्ठपर्वणो*—इसको पढकर दाहिने हाथकी तर्जनी अङ्गुलिसे दाहिने हाथके अँगूठेकी दोनों गाँठोंका स्पर्श करे। *ॐ वा ॐ नम॰ ॐ य ॐ नमो वामाङ्गुष्ठपर्वणोः*—इसका उच्चारण कर बायें हाथकी तर्जनी अङ्गुलिसे बायें हाथके अँगूठेकी दोनों गाँठोंका स्पर्श करे।

अङ्गन्यास

यहाँ द्वादशाक्षर मन्त्रके पदोंका हृदयादि अङ्गोंमें न्यास करना है—

ॐ नमो नमो हृदयाय नमः—इसको पढकर दाहिने हाथकी पाँचो अगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे। *ॐ भगवते नम॰ शिरसे स्वाहा*—इसका उच्चारण कर दाहिने हाथकी सभी अगुलियोंसे सिरका स्पर्श करे। *ॐ वासुदेवाय नम॰ शिखायै वषट्*—इसके द्वारा दाहिने हाथसे शिखाका स्पर्श करे। *ॐ नमो नम॰ कवचाय* हुम्—इसको पढ़कर दायें हाथकी अगुलियोंसे बायें कधेका और बायें हाथकी अगुलियोंसे दायें कधेका स्पर्श करे। *ॐ भगवते नम॰ नेत्रत्रयाय वौषट्*—इसको पढ़कर दाहिने हाथकी अगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रोंका तथा ललाटके मध्यभागमें गुप्तरूपसे स्थित तृतीय नेत्र (ज्ञानचक्षु) का स्पर्श करे। *ॐ वासुदेवाय नम॰ अस्त्राय* फट्—इसका उच्चारण कर दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे उल्टा अर्थात् बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आये और तर्जनी तथा *मध्यमा अगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये।*

अङ्गन्यासमें आये हुए 'स्वाहा', 'वषट्', 'हुम्', 'वौषट्' और 'फट्'—ये पाँच शब्द देवताओंके उद्देश्यसे किये जानेवाले हवनसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। यहाँ इनका आत्मशुद्धिके लिये ही उच्चारण किया जाता है।

ध्यान

इस प्रकार न्यास करके बाहर भीतरसे शुद्ध हो, मनको सब ओरसे हटाकर एकाग्र भावसे भगवान्‌का ध्यान करे—

किरीटकेयूरमहार्हनिष्कै-
मण्युत्तमालङ्कृतसर्वगात्रम्।
पीताम्बरं काञ्चनचित्रनद्ध-
मालाधरं केशवमभ्युपैमि॥

जिनके मस्तकपर किरीट, बाहुओंमें भुजबन्ध और गलेमें सुन्दर हार शोभा पा रहे हैं, मणियोंके सुन्दर गहनोंसे सारे अग सुशोभित हो रहे हैं और शरीरपर पीताम्बर फहरा रहा है—सोनेके तारद्वारा विचित्र रीतिसे बँधी हुई वनमाला धारण किये, उन भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका मैं मन-ही-मन चिन्तन करता हूँ।



माना जाता है । इन्होंने श्रीमद्भागवतकी टीकाके प्रारम्भमें और अनेक स्थानोंपर श्रीनृसिंहजीकी वन्दना की है । इससे प्रकट होता है कि यह श्रीनृसिंहभगवान्‌के उपासक थे । इनके सम्बन्धमें एक लोकोक्ति है—

व्यासो वेत्ति शुको वेत्ति राजा वेत्ति न वेत्ति वा ।
श्रीधरः सकलं वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः ॥

अर्थात् श्रीमद्भागवतका वास्तविक अर्थ व्यासदेव और शुकदेव ही ठीक समझते हैं; परन्तु राजा परीक्षित् ठीक समझते हैं या नहीं—इसमें सन्देह है । ऐसा गम्भीर अर्थ होनेपर भी नृसिंहभगवान्‌के प्रसादसे श्रीधर-स्वामी सब समझते हैं । वास्तवमें श्रीधरस्वामीका ज्ञान ऐसा ही था । श्रीचैतन्यचरितामृतकी अन्त्यलीलाके सातवें परिच्छेदमें लिखा है कि श्रीवल्लभाचार्य श्रीचैतन्य महाप्रभुको भागवतकी अपनी टीका सुनाना चाहते थे; परन्तु जब महाप्रभुको यह मालूम हुआ कि इन्होंने श्रीधरस्वामीका खण्डन किया है, तब उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया और कहा कि श्रीमद्भागवतपर सर्वोत्कृष्ट टीका श्रीश्रीधरस्वामीकी है, उसको न मानना अनुचित है । यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि श्रीचैतन्य महाप्रभुका सिद्धान्त श्रीशङ्कराचार्यद्वारा निर्णीत अद्वैत नहीं था, तथापि उन्होंने उसी सम्प्रदायके श्रीश्रीधर-स्वामीकी टीकाकी प्रशंसा की । इससे सिद्ध है कि श्रीधर-स्वामीकी टीका निष्पक्ष और सर्वश्रेष्ठ है ।

विशिष्टाद्वैतसम्प्रदायके आचार्य श्रीरामानुजने श्रीमद्भागवतपर एक-दो निबन्ध लिखे हैं, ऐसा सुना है । मैंने अपनी आँखोंसे उन्हें नहीं देखा है । उनके अनुयायी श्रीसुदर्शनसूरिकी शुकपक्षीया नामकी टीका उपलब्ध होती है । वे श्रीरामानुजाचार्यके भानजे एवं शिष्य श्रीवरदाचार्यके शिष्य थे । श्रीरंगनाथजीने उन्हें स्वयं ग्रन्थ-निर्माणकी आज्ञा की थी । उन्हें भगवान् रंगनाथकी ओरसे व्यासकी उपाधि मिली थी । अनेक ग्रन्थोंके निर्माणके पश्चात् उन्होंने श्रीमद्भागवतपर विशिष्टाद्वैतसिद्धान्तके अनुकूल टीका लिखी है । सन् १३६७ ई० में दिल्लीके बादशाह अलाउद्दीनके सेनापतिने मदुरापर चढ़ाई की थी, उसी यात्रामें श्रीरङ्गम्‌पर भी आक्रमण हुआ और श्रीसुदर्शनसूरि मारे गये । इनके अतिरिक्त श्रीवीरराघवाचार्यने भी श्रीमद्भागवत-पर 'भागवतचन्द्रचन्द्रिका' नामकी टीका लिखी है । यह टीका शुकपक्षीया टीकाकी अपेक्षा विस्तृत है । ये श्रीसुदर्शनसूरिके ही अनुयायी हैं । वीरराघवाचार्यका समय भी ईसाकी चौदहवीं शताब्दी ही माना जाता है । इनके अतिरिक्त श्रीवैष्णवशरण, श्रीनिवाससूरि आदि और भी कई टीकाकार इस मतके हो गये हैं, और सबने अपने सिद्धान्तके अनुसार श्रीमद्भागवतकी व्याख्या की है ।

श्रीमन्मध्वाचार्यने 'भागवततात्पर्य-निर्णय' नामका एक ग्रन्थ लिखा है । इनके अनुयायी श्रीविजय-ध्वजतीर्थकी टीका श्रीमद्भागवतपर बहुत ही प्रसिद्ध है । वे अपनी टीकाके प्रारम्भमें कहते हैं कि 'श्रेष्ठ संन्यासियोंके भी वन्दनीय श्रीआनन्दतीर्थ (मध्वाचार्य) और विजयतीर्थको नमस्कार करके उन दोनोंकी कृतिके आधारपर मैं श्रीमद्भागवत महापुराणकी व्याख्या करता हूँ ।'* श्रीविजयतीर्थ माध्वसम्प्रदायके एक महान् विद्वान् हो गये हैं । उन्होंने श्रीमद्भागवतपर क्या लिखा है, सो मालूम नहीं । सम्भव है उनके सम्प्रदायमें कोई टीका प्रचलित हो । परन्तु विजयध्वजतीर्थकी उक्तिसे यही जान पड़ता है कि उनकी कोई-न-कोई टीका अवश्य है । श्रीविजयध्वजतीर्थकी 'पदरत्नावली' टीका छपी हुई मिलती है ।

श्रीमध्वाचार्यके सम्प्रदायकी एक शाखा अथवा स्वतन्त्र सम्प्रदाय श्रीचैतन्य महाप्रभुका सम्प्रदाय है । श्रीचैतन्यमहाप्रभुने श्रीमद्भागवतको ही प्रस्थानत्रयीका भाष्य

---

* आनन्दतीर्थविजयतीर्थौ प्रणम्य मस्करिवरवन्द्यौ ।
तयोः कृतिं स्फुटमुपजीव्य प्रवच्मि भागवतं पुराणम् ॥

श्रीमद्भागवतकी अनुष्ठान-विधि

(१)

(संग्रहकर्ता—वेदरत्न प० श्रीगोपालचन्द्रजी मिश्र, वेद धर्मशास्त्र शास्त्री)

भागवत-महिमा

श्लोकार्द्धं श्लोकपादं वा नित्यं भागवतं पठेत्।
यः पुमान् सोऽपि संसारान्मुच्यते किमुताखिलात्॥

आधा श्लोक या चौथाई श्लोकका भी नित्य जो मनुष्य पाठ करता है, उसकी भी ससारसे मुक्ति हो जाती है, फिर सम्पूर्ण पाठ करनेवालेकी तो बात ही क्या है।

एषा बुद्धिमतां बुद्धिर्यद् भागवतमादरात्।
नित्यं पठेद् यथाशक्ति यतः स्यात् संसृतिक्षयः॥

बुद्धिमानोंकी बुद्धिमत्ता यही है कि समार-भयनाशक श्रीमद्भागवतका आदरपूर्वक यथाशक्ति पाठ करे।

अशक्तो नित्यपठने मासे वर्षेऽपि वैकदा।
पालयन् नियमान् भक्त्या श्रीमद्भागवतं पठेत्॥

यदि नित्य पाठ न कर सकता हो, तो महीने या वर्षमे एक बार नियमपूर्वक भक्तिसहित भागवतका पाठ अवश्य करना चाहिये।

एकाहे नैव शक्तस्तु द्व्यहेनाथ त्र्यहेण वा।
पञ्चभिर्दिवसैः षड्भिः सप्तभिर्वा पठेत् पुमान्॥
दशाहेनाथ पक्षेण मासेन ऋतुनापि वा।
पठेद् भागवतं यस्तु भुक्तिं मुक्तिं स विन्दते॥

जो एक दिनमें पाठ न कर सकता हो वह दो, तीन, पाँच, छ, सात, दस, पद्रह, तीस या साठ दिनमें श्रीमद्भागवतका पाठ करे। इससे भोग एव मोक्ष दोनोंकी प्राप्ति होती है।

एष अप्युत्तमः पक्षः सप्ताहो बहुसम्मतः।
श्रीवासुदेवप्रीत्यर्थं पठतः पुंस आदरात्॥
सर्वे पक्षाः सन्ति तुल्या विशेषो नास्ति कश्चन।
विशेषोऽस्ति सकामानां कामनाफलभेदतः॥

बहुत-से ऋषियोंने सप्ताहपारायणका भी उत्तम पक्ष माना है। केवल भगवान्की प्रीतिके लिये सम्पूर्ण पक्ष बराबर हैं। कोई न्यूनाधिक नहीं हैं। फल चाहनेवालों-के लिये फलभेदसे पारायणभेद कहा गया है।

भागवतपुरश्चरण

पारायणानां शतकं प्रोक्तमष्टोत्तरं नृप।
सामान्यतो मुनिवरैः पुरश्चरणकर्मणि॥

'सामान्य पुरश्चरणके लिये ऋषियोंने १०८ पारायणका विधान किया है।' आगे पुरश्चरणमुहूर्त लेखविस्तार-भयसे हिंदीमें ही लिखा जाता है।

मास—पौषको छोडकर सब महीने शुभ हैं।

तिथि—१, ४, ८, १४ को छोडकर सब तिथियाँ।

वार—मङ्गल, शनिको छोडकर सब वार।

ग्राह्य नक्षत्र—अश्विनी, रोहिणी, मृगशिर, पुनर्वसु, पुष्य, पूर्वा ३, हस्त, स्वाती, अनुराधा, श्रवण, अभिजित्, धनिष्ठा, शतभिषा और रेवती।

नीचे श्रीमद्भागवतके कामनाके अनुसार पृथक् पृथक् प्रयोग लिखे गये हैं। ये प्रयोग हमें प्राचीन एव प्रख्यात पौराणिक वशज, श्रीश्यामग्राम खाटू (जयपुर)-निवासी, वेद एव पुराणके प्रकाण्ड पण्डित श्रीभगवत्-प्रसादमिश्रजी वेदाचार्य, प्रोफेसर गवर्नमेन्ट सस्कृत कालेज, बनारससे परिज्ञात हुए हैं।

(१) सप्ताहपारायणके प्रयोग (सात दिनके)

बान्धवपीडानिवृति और सङ्कटनाशके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ४, पारायण-संख्या १९६

विशेष नियम—प्रतिदिन पाठके आरम्भ एव समाप्तिमें

महात्माओंने श्रीमद्भागवतके रासलीला आदि प्रसङ्ग-विशेषोंपर टीका-टिप्पणी और निबन्ध लिखे हैं, जो बड़े ही रसपूर्ण हैं। इस सम्प्रदायका प्रधान ग्रन्थ श्रीमद्भागवत ही है।

बहुत प्राचीन कालमें श्रीहनुमान् नामके एक विद्वान् हो गये हैं। उन्होंने श्रीमद्भागवतपर एक टीका लिखी थी, ऐसा प्रमाण 'श्रीभागवततात्पर्यनिर्णय'में मिलता है; परन्तु उनकी टीका अबतककी खोजसे प्राप्त नहीं हुई है। श्रीभगवद्गीतापर भी एक 'हनूमद्भाष्य' मिलता है। पता नहीं यह उन्हींकी रचना है या और किसीकी। हनुमन्नाटक आदि ग्रन्थ भी किसी हनूमान्नामक विद्वान्के ही बनाये हुए हैं। अद्वैतसिद्धान्तके महान् विद्वान् श्रीमधुसूदन सरस्वतीने भी श्रीमद्भागवतपर एक टीका लिखी थी, ऐसा सुना जाता है। उनकी लिखी हुई दो-एक श्लोककी टीका मिलती भी है। प्रथम श्लोककी टीकासे यह प्रकट होता है कि इनकी इच्छा पूरे भागवतपर टीका लिखनेकी है। वे अपनी टीकाका मङ्गलाचरण करते हुए लिखते हैं—'परम तत्त्व श्रीकृष्णको नमस्कार करके उनकी कृपासे श्रीमद्भागवतके पद्योंका कुछ भाव प्रकट किया जाता है। सर्वदा असत् वस्तुओंके सङ्गसे, जो कि अनेकों प्रकारके दुःख देनेवाली हैं, प्रतिदिन यह आयु व्यर्थ ही क्षीण हो रही है। श्रीभगवान्की लीलारूपी सुधासे सिंचकर यह एक क्षणके लिये भी सफल हो जाय, इसलिये मैं यह परिश्रम कर रहा हूँ।'* उनके इन उद्गारोंको देखते हुए ऐसा अनुमान होता है कि उन्होंने श्रीमद्भागवतपर अवश्य ही टीका लिखी होगी।

इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवतके अनेक प्रसङ्गोंपर श्रीकिशोरीलालजीकी 'विशुद्धरसदीपिका', श्रीरामनारायणजीकी 'भावभावविभाविका', श्रीधनपति सूरिकी 'भागवत-गूढार्थदीपिका', 'गणदीपिका' और श्रीरामकृष्ण, श्रीराधामोहनजी आदिकी टीकाएँ भी मिलती हैं। इनके सिवा श्रीगंगासहायजी विद्यावाचस्पतिकी 'अन्वितार्थप्रकाशिका', 'वंशीधरी', 'चूर्णिका', 'सुबोधिनी' आदि बहुत-सी टीकाएँ श्रीमद्भागवतपर हैं। सभी विद्वान् श्रीमद्भागवतके भावोंको स्पष्ट करनेकी चेष्टा करते हैं और उन्हें अपनी दृष्टिसे जो दीखता है, वही लिखते हैं। स्वान्तःसुखाय, भगवत्प्रीत्यर्थ अथवा लोककल्याणके लिये जिनकी प्रवृत्ति टीका लिखनेमें हुई है, उनका अन्तःकरण शुद्ध है और उन्होंने ठीक ही लिखा है—इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु श्रीमद्भागवतका भाष्य तो श्रीमद्भागवत ही है। वह विद्वानोंके लिये परीक्षाभूमि अवश्य है; परन्तु भक्तोंके लिये इतना सरल, इतना सुगम और इतना सुबोध है कि वे एक-एक पद पढ़कर मुग्ध होते रहते हैं। कहा भी है—'भक्त्या भागवतं ग्राह्यम्' अर्थात् भक्ति ही श्रीमद्भागवतका अर्थ समझनेमें समर्थ है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति श्रीमद्भागवतका अध्ययन करके अपने अधिकारके अनुसार अर्थ ग्रहण कर सकता है, यही श्रीमद्भागवतका अनन्यसाधारण महत्त्व है।

यहाँतक तो हुई गद्यात्मक टीकाओंकी चर्चा। श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके पूर्वार्द्धपर एक बड़ी ही विशद पद्यात्मक टीका है। उसके रचयिता हैं श्रीहरि नामके एक महाविद्वान् भक्त-कवि। वे गोदावरीतटके वासी एवं कश्यप गोत्रके सदाचारी ब्राह्मण थे। उन्होंने शालिवाहन संवत् १७५९ के लगभग उसकी रचना की थी, उसका नाम है 'श्रीहरिभक्तिरसायन'। कुल उनचास अध्याय हैं और विविध छन्दोंमें पाँच हजारके लगभग श्लोक हैं। आजकल वह पुस्तक दुष्प्राप्य हो गयी है, यद्यपि पहले कहीं एक बार वह छपी थी। श्रीहरिजीने

---

* श्रीकृष्णं परमं तत्त्वं नत्वा तस्य प्रसादतः।
श्रीभागवतपद्यानां कश्चिद् भावः प्रकाश्यते॥
अनुदिनमिदमायुः सर्वदासत्प्रसङ्गै-
र्बहुविधपरितापैः क्षीयते व्यर्थमेव।
हरिचरितसुधाभिः सिच्यमानं तदेतत्
क्षणमपि सफलं स्यादित्ययं मे श्रमोऽत्र॥

(६) पुत्र और स्त्रीप्राप्तिके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ५, पारायण-संख्या १४१

विशेष नियम—प्रतिदिन प्रत्येक अध्यायके आरम्भ एव अन्तमें पञ्चम स्कन्धके काममन्त्र (अ० १८ श्लो० १८)-का पाठ करे।

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२४	५३
२	५	३	४३
३	७	८	५०
४	१०	४	५९
५	१०	५५	५१
६	११	६	४१
७	१२	१३*	३८

(७) निष्कण्टक राज्यके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण १०, पारायण-संख्या १९८

विशेष नियम—प्रतिदिन पाठके आरम्भ एव समाप्तिमें चतुर्थ स्कन्धकी ध्रुवस्तुति (अ० ९) का पाठ करे।

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	९	७१
२	६	१३	६१
३	९	७	५२
४	१०	३४	५१
५	१०	७३	३९
६	१०	९०*	१७
७	१२	१३*	४४

(८) निष्काम पारायण

पाठकर्ता ब्राह्मण १या ५, पारायण-संख्या १००या१०८

विशेष नियम—करानेवाला फलाहार या हविष्य-भोजन करे।

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४९
२	५	२३	६७
३	७	१५*	३७
४	९	२४*	४८
५	१०	१२	१२
६	१०	८२	७०
७	१२	१३*	५२

(९) षडहपारायण (छः दिनका)

धनलाभ, दरिद्रनाश, उत्पात शान्तिके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ४, पारायण संख्या १४४

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	३२	६१
२	५	१४	४६
३	८	२४*	७०
४	१०	४९–	७३
५	११	२९	७०
६	१२	१३*	१५

(१०) पञ्चाहपारायण (पाँच दिनका)

सकलकामनाप्राप्तिके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ९, पारायण-संख्या २४२

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	७	६९
२	६	१९*	६९
३	९	२४*	६३
४	१०	६९	६९
५	१२	१३*	६५

(११) त्र्यहपारायण (तीन दिनका)

ऐश्वर्य-प्राप्ति, संसार-बन्धन-मुक्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	७	१५*	१५३
२	१०	९०*	१३८
३	१२	१३*	४४

(१२) द्व्यहपारायण (दो दिनका)

पराभक्ति-प्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	९	१३	१९०
२	१२	१३*	१४५

(१३) एकाहपारायण (एक दिनका)

हरिप्रेमप्राप्ति

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१२	१३*	३३५

ग्रहपूर्वकभगवदीयप्रेमोपलब्धये च श्रीभगवन्नामात्मक-भगवत्स्वरूपश्रीभागवतस्य पाठेऽधिकारसिद्ध्यर्थं श्रीमद्भागवतस्य प्रतिष्ठां पूजनं चाहं करिष्ये ।

इस प्रकार संकल्प करके—

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने
शंयोऽस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां
नमो दिवे बृहते सादनाय ॥*

—यह मन्त्र पढ़कर श्रीमद्भागवतकी सिंहासन या अन्य किसी आसनपर स्थापना करे । तत्पश्चात् पुरुषसूक्तके एक-एक मन्त्रद्वारा क्रमशः षोडश उपचार अर्पण करते हुए पूजन करे ।

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः । आवाहयामि ।

—इस मन्त्रसे भगवान्‌के नामस्वरूप श्रीमद्भागवतको नमस्कार करके आवाहन करे ।

ॐ पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः । आसनं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे आसन समर्पण करे ।

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः । पाद्यं समर्पयामि ।

—इस मन्त्रसे पैर पखारनेके लिये जल समर्पण करे ।

---

* परमात्मन् ! आप सबके मित्र—हितकारी होनेके कारण 'मित्र' नामसे पुकारे जाते हैं, सबसे वर—श्रेष्ठ होनेसे आप वरुण हैं, सबको ग्रहण करनेवाले होनेके कारण अग्नि हैं । हम आपको इन 'मित्र', 'वरुण' एवं 'अग्नि' नामोंसे सम्बोधित करके प्रार्थना करते हैं कि यह सूक्त (आपके सुयशसे पूर्ण यह श्रीमद्भागवतरूप सुन्दर उक्ति) अत्यन्त प्रशस्त हो—सर्वोत्तम होनेके साथ ही इसकी ख्याति एवं प्रसार हो । तथा यह सूक्त हमलोगोंके लिये ऐसा सुख, ऐसी शान्ति प्रदान करे, जिसमें दुःख या अशान्तिका मेल न हो; अर्थात् इससे नित्य सुख, नित्य शान्ति प्राप्त हो । हम चाहते हैं अविचल स्थिति, हम चाहते हैं शाश्वत प्रतिष्ठा; इसे इस सूक्तके द्वारा हम प्राप्त कर सकें । देवदेव ! यह जो आपका अत्यन्त प्रकाशमान परम महान् समस्त लोकोंका आश्रयभूत 'सूर्य' नामक स्वरूप है, इसे हम सदा ही नमस्कार करते हैं ।

१—सर्वान्तर्यामी परमात्मा इस समस्त ब्रह्माण्डकी भूमिको सब ओरसे व्याप्त करके स्थित हैं और इससे दस अंगुल ऊपर भी हैं । अर्थात् ब्रह्माण्डमें व्यापक होते हुए वे इससे परे भी हैं । उन परमात्माके मस्तक, नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रियाँ और चरण आदि कर्मेन्द्रियाँ हजारों हैं—असंख्य हैं ।

२—यह जो कुछ इस समय वर्तमान है, सब परमात्मा-का ही स्वरूप है; भूत और भविष्य जगत् भी परमात्मा ही है । इतना ही नहीं, वह परमात्मा मुक्तिका स्वामी है; तथा ये जो अन्नसे उत्पन्न होनेवाले जीव हैं, उन सबका भी शासक—सबको नियमके अंदर रखनेवाला वह परमात्मा ही है ।

३—भूत, भविष्य और वर्तमान कालसे सम्बन्ध रखने-वाला जितना भी जगत् है—यह सब इस पुरुषकी महिमा है, इस परमात्माका विभूति-विस्तार है । उसका पारमार्थिक स्वरूप इतना ही नहीं है, वह पुरुष इस ब्रह्माण्डमय विराट् स्वरूपसे भी बहुत बड़ा है । यह सारा विश्व—ये तीनों लोक तो उसके एक पादमें हैं, उसकी एक चौथाईमें समाप्त हो जाते हैं । अभी उसके तीन पाद और शेष हैं; यह त्रिपाद-स्वरूप अमृत है—अविनाशी है और परम प्रकाशमय द्युलोक अर्थात् अपने स्वरूपमें ही स्थित है ।

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय	दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
८	३	११	५	३६	९	१२	७
९	३	१६	५	३७	९	१७	५
१०	३	२०	४	३८	९	२४*	७
११	३	२४	४	३९	१०	६	६
१२	३	२८	४	४०	१०	११	५
१३	३	३३*	५	४१	१०	१७	६
१४	४	७	७	४२	१०	२३	६
१५	४	१२	५	४३	१०	२८	५
१६	४	१८	६	४४	१०	३३	५
१७	४	२४	६	४५	१०	३८	५
१८	४	३१*	७	४६	१०	४४	६
१९	५	६	६	४७	१०	४९	५
२०	५	११	५	४८	१०	५५	६
२१	५	१५	४	४९	१०	६१	६
२२	५	२०	५	५०	१०	६८	७
२३	५	२६*	६	५१	१०	७५	७
२४	६	७	७	५२	१०	८१	६
२५	६	१३	६	५३	१०	८८	७
२६	६	१९*	६	५४	११	५	७
२७	७	५	५	५५	११	११	६
२८	७	१०	५	५६	११	१८	७
२९	७	१५*	५	५७	११	२३	५
३०	८	४	४	५८	११	२९	६
३१	८	९	५	५९	१२	५	७
३२	८	१४	५	६०	१२	१३*	८
३३	८	१८	४				
३४	८	२४*	६				
३५	९	५	५				

उपर्युक्त प्रयोगोंके अनुष्ठान करते समय किसी योग्य विद्वान्‌द्वारा पुरश्चरणके नियमोंको जान लेना आवश्यक है।

(२)

(लेखक—संग्रहकर्ता श्रीरामजीवनशरणजी ब्रह्मचारी)

श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें कुछ लिखना सूर्यको दीपक दिखाना है। जो लोग इधर-उधरके अनुष्ठानोंमें अपना समय नष्ट करते हैं और भाँति भाँतिकी भूतादि-की मलिन सिद्धियोंके पीछे भटकते हुए अपना जीवन बरबाद करते हैं, उन लोगोंको शास्त्रीय मार्गपर लानेके लिये तथा विश्वासी सज्जनोंके कल्याणके लिये हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंके अनुभवसिद्ध कुछ श्रीमद्भागवतके प्रयोग लिखता हूँ। आशा है, इनसे सज्जन महानुभाव लाभ उठायेंगे।

[श्रीभागवतकी पूजा-न्यास आदिकी विधि इसी अङ्कमें अलग छपी है, उसके अनुसार विधिपूर्वक सब करके पाठ आरम्भ करना चाहिये। सं०]

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ ९ ॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। चन्दनं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे चन्दन चढ़ाये।

ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥१०॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। पुष्पं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे फूल चढ़ाये।

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। धूपमाघ्रापयामि।

—इस मन्त्रसे धूप सुँघाये।

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। दीपं दर्शयामि।

—इस मन्त्रसे घीका दीप जलाकर दिखाये और उसके बाद हाथ धोले।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥१३॥

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। नैवेद्यं निवेदयामि।

—इस मन्त्रसे नैवेद्य अर्पण करे।

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् १४

श्रीभगवन्नामात्मकस्वरूपिणे श्रीभागवताय नमः। एलालवङ्गपूगीफलकर्पूरसहितं ताम्बूलं समर्पयामि।

—इस मन्त्रसे पानका बीड़ा अर्पण करे।

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिःसप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

९–जिसमें सब कुछ हवन किया गया है, उस यज्ञपुरुषसे ऋग्वेद और सामवेद प्रकट हुए, उसीसे गायत्री आदि छन्दोंकी भी उत्पत्ति हुई तथा उसीसे यजुर्वेदका भी प्रादुर्भाव हुआ।

१०–उस यज्ञपुरुषसे ही घोड़े उत्पन्न हुए; इनके अतिरिक्त भी जो नीचे-ऊपर दोनों ओर दाँत रखनेवाले खच्चर-गदहे आदि प्राणी हैं, वे भी उत्पन्न हुए। उसीसे गौएँ उत्पन्न हुईं और उसीसे भेड़ों तथा बकरोंकी उत्पत्ति हुई।

११–जब प्राणमय देवताओंने इस यज्ञपुरुष (प्रजापति) को प्रकट किया, उस समय इसके अवयवोंके रूपमें कितने विभाग किये ? इस पुरुषका मुँह क्या था, दोनों बाँहें क्या थीं ? दोनों जाँघें और दोनों पैर कौन थे ?

१२–ब्राह्मण इसका मुख था, अर्थात् मुखसे ब्राह्मणकी उत्पत्ति हुई। दोनों भुजाएँ क्षत्रिय-जाति थीं, अर्थात् उनसे क्षत्रियोंका प्राकट्य हुआ। इस पुरुषकी दोनों जंघाएँ वैश्य हुईं—जँघाओंसे वैश्य जातिकी उत्पत्ति हुई और दोनों पैरोंसे शूद्र-जाति प्रकट हुई।

१३–इसके मनसे चन्द्रमा उत्पन्न हुए, नेत्रोंसे सूर्यकी उत्पत्ति हुई। मुखसे इन्द्र और अग्नि प्रकट हुए तथा प्राणसे वायुका प्रादुर्भाव हुआ।

१४–नाभिसे अन्तरिक्ष लोककी उत्पत्ति हुई, मस्तकसे स्वर्गलोक प्रकट हुआ, पैरोंसे पृथ्वी हुई और कानसे दिशाएँ प्रकट हुईं। इस प्रकार उन्होंने समस्त लोकोंकी कल्पना की।

१५–प्रजापतिके प्राणरूपी देवताओंने जब मानसिक यज्ञका अनुष्ठान करते समय सङ्कल्पद्वारा पुरुषरूपी पशुका बन्धन किया था, उस समय सात समुद्र इस यज्ञकी परिधि थे और इक्कीस प्रकारके छन्दोंकी समिधा हुई। (गायत्री आदि ७, अतिजगती आदि ७ और कृति आदि ७—ये ही इक्कीस छन्द हैं)।

(११) द्व्यहपारायण (दो दिनका)

मन शुद्धिके लिये (लेख नं० १ में देखिये)

(१२) द्व्यहपारायण (दो दिनका)

योगसिद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	७	१५*	१५३
२	१२	१३*	१८२

(१३) द्व्यहपारायण (दो दिनका)

चित्तनिवृत्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	८	१६	१६९
२	१२	१३*	१६६

(१४) त्र्यहपारायण (तीन दिनका)

मुक्तिप्राप्तिके लिये (लेख नं० १ में देखिये)

(१५) त्र्यहपारायण (तीन दिनका)

मोक्षप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	५	८	१०१
२	१०	१२	११२
३	१२	१३*	१२२

(१६) चतुरहपारायण (चार दिनका)

सङ्कट-निवारणके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	१८	८०
२	६	१९*	५८
३	१०	५१	११४
४	१२	१३*	८३

(१७) चतुरहपारायण (चार दिनका)

सब प्रकारकी कामनाओंकी सिद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	१८	८०
२	८	७	८०
३	१०	५२	९३
४	१२	१३*	८२

(१८) चतुरहपारायण (चार दिनका)

पापनाशके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	२६	८८
२	८	१९	८४
३	१०	५३	८२
४	१२	१३*	८१

(१९) चतुरहपारायण (चार दिनका)

सद्धर्मकी प्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	१९	८१
२	८	१४	८६
३	१०	५१	८५
४	१२	१३*	८३

(२०) पञ्चाहपारायण (पाँच दिनका)

सब प्रकारकी कामनाओंकी सिद्धिके लिये (लेख नं० १ में देखिये)

(२१) पञ्चाहपारायण (पाँच दिनका)

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	४	६६
२	६	१५	६८
३	९	२१	६४
४	१०	६४	६७
५	१२	१३*	७०

(२२) षडहपारायण (छः दिनका)

धनप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	९	७१
२	६	१३	६१
३	९	७	५२
४	१०	३४	५१
५	१०	९०*	५६
६	१२	१३*	४४

श्रीभागवतरूपं तत् पूजयेद् भक्तिपूर्वकम्।
अर्चकायाखिलान् कामान् प्रयच्छति न संशयः॥

श्रीमद्भागवत भगवान्‌का स्वरूप है, इसका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। यह पूजन करनेवालेकी सारी कामनाएँ पूर्ण करता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

विनियोग

दाहिने हाथकी अनामिकामें कुशाकी पवित्री पहन ले। फिर हाथमें जल लेकर नीचे लिखे वाक्यको पढ़कर भूमिपर गिरा दे—

ॐ अस्य श्रीमद्भागवताख्यस्तोत्रमन्त्रस्य नारद ऋषिः। बृहती छन्दः। श्रीकृष्णः परमात्मा देवता। ब्रह्म बीजम्। भक्तिः शक्तिः। ज्ञानवैराग्ये कीलकम्। मम श्रीमद्भगवत्प्रसादसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः।

'इस श्रीमद्भागवतस्तोत्र-मन्त्रके देवर्षि नारदजी ऋषि हैं, बृहती छन्द है, परमात्मा श्रीकृष्णचन्द्र देवता हैं, ब्रह्म बीज है, भक्ति शक्ति है, ज्ञान और वैराग्य कीलक हैं। अपने ऊपर भगवान्‌की प्रसन्नता हो, उनकी कृपा बराबर बनी रहे—इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये पाठ करनेमें इस भागवतका विनियोग (उपयोग) किया जाता है।'

न्यास

विनियोगमें आये हुए ऋषि आदिका तथा प्रधान देवताके मन्त्राक्षरोंका अपने शरीरके विभिन्न अङ्गोंमें जो स्थापन किया जाता है, उसे 'न्यास' कहते हैं। मन्त्रका एक-एक अक्षर चिन्मय होता है, उसे मूर्तिमान् देवताके रूपमें देखना चाहिये। इन अक्षरोंके स्थापनसे साधक स्वयं मन्त्रमय हो जाता है, उसके हृदयमें दिव्य चेतनाका प्रकाश फैलता है, मन्त्रके देवता उसके स्वरूप होकर उसकी सर्वथा रक्षा करते हैं। इस प्रकार वह 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' इस श्रुतिके अनुसार स्वयं देवस्वरूप होकर देवताओंका पूजन करता है। ऋषि आदिका न्यास सिर आदि कतिपय अङ्गोंमें होता है। मन्त्रपदों अथवा अक्षरोंका न्यास प्रायः हाथकी अँगुलियों और हृदयादि अङ्गोंमें होता है। इन्हें क्रमशः 'करन्यास' और 'अङ्गन्यास' कहते हैं। किन्हीं-किन्हीं मन्त्रोंका न्यास सर्वाङ्गमें होता है। न्याससे बाहर-भीतरकी शुद्धि, दिव्य बलकी प्राप्ति और साधनाकी निर्विघ्न पूर्ति होती है। यहाँ क्रमशः ऋष्यादिन्यास, करन्यास और अङ्गन्यास दिये जा रहे हैं—

ऋष्यादिन्यास

नारदर्षये नमः शिरसि ॥ १ ॥ बृहतीच्छन्दसे नमो मुखे ॥ २ ॥ श्रीकृष्णपरमात्मदेवतायै नमो हृदये ॥ ३ ॥ ब्रह्मबीजाय नमो गुह्ये ॥ ४ ॥ भक्तिशक्त्यै नमः पादयोः ॥ ५ ॥ ज्ञानवैराग्यकीलकाय नमो नाभौ ॥ ६ ॥ विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ॥ ७ ॥

ऊपर न्यासके सात वाक्य उद्धृत किये गये हैं। इनमें पहला वाक्य पढ़कर दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंसे सिरका स्पर्श करे, दूसरा वाक्य पढ़कर मुखका, तीसरे वाक्यसे हृदयका, चौथेसे गुदाका, पाँचवेंसे दोनों पैरोंका, छठेसे नाभिका और सातवें वाक्यसे सम्पूर्ण अङ्गोंका स्पर्श करना चाहिये।

करन्यास

इसमें 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर-मन्त्रके एक-एक अक्षरको प्रणवसे सम्पुटित करके दोनों हाथोंकी अङ्गुलियोंमें स्थापित करना है। मन्त्र नीचे दिये जा रहे हैं—

'*ॐ ॐ ॐ नमो दक्षिणतर्जन्याम्*' ऐसा उच्चारण कर दाहिने हाथके अँगूठेसे दाहिने हाथकी तर्जनीका स्पर्श करे। *ॐ नं ॐ नमो दक्षिणमध्यमायाम्*—यह

(२९) दशाहपारायण (दस दिनका)

ज्ञानप्राप्तिके लिये (लेख नं० १ में देखिये)

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	६	३५
२	४	७	३४
३	५	९	३३
४	६	१९*	३६
५	८	२४*	३९
६	१०	११	३५
७	१०	४५	३४
८	१०	७९	३४
९	११	२३	३४
१०	१२	१३*	२१

(३०) एकादशाहपारायण (ग्यारह दिनका)

मन कामनाकी सिद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१८	१८
२	३	२२	३३
३	४	२१	३२
४	५	२१	३१
५	७	८	३२
६	९	३	३४
७	१०	११	३२
८	१०	४८	३७
९	१०	८१	३३
१०	११	२३	३२
११	१२	१३*	२१

(३१) द्वादशाहपारायण (बारह दिनका)

शान्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	३	२२
२	३	२२	२९
३	४	१६	२७
४	५	९	२४
५	६	१८	३५
६	८	१७	३३
७	९	२१	२८
८	१०	२३	२६
९	१०	४८	२५
१०	१०	८०	३२
११	११	२५	३५
१२	१२	१३*	१९

(३२) त्रयोदशाहपारायण (तेरह दिनका)

ऋणसे छुटकारा पानेके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	२	२१
२	३	२०	२८
३	४	१३	२६
४	५	५	२३
५	६	१३	३४
६	८	११	३२
७	९	१४	२७
८	१०	१५	२५
९	१०	३९	२४
१०	१०	७०	३१
११	११	१४	३४
१२	१२	१	१८
१३	१२	१३*	१२

(३३) चतुर्दशाहपारायण (चौदह दिनका)

सब प्रकारकी आपत्तियोंसे छुटकारा पानेके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	६	२५
२	३	२०	२४
३	४	१२	२५
४	५	५	२४
५	६	२	२३
६	७	९	२६
७	८	१८	२४
८	९	१६	२२
९	१०	१८	२६

श्रीमद्भागवत-सप्ताह

श्रीमद्भागवतके सप्ताहकी विधि श्रीमद्भागवतमाहात्म्यमें वर्णित है। यहाँ केवल इतना ही बतलाया जाता है कि प्रतिदिन कितना पाठ करना चाहिये। कौशिक-संहितान्तर्गत भागवतमाहात्म्यमें सूतने शौनकसे कहा है—पहले दिन मनु और कर्दमके संवादपर्यन्त, दूसरे दिन ऋषभाख्यानपर्यन्त, तीसरे दिन सप्तम स्कन्धकी समाप्ति, चौथे दिन कृष्ण-जन्मपर्यन्त, पाँचवें दिन रुक्मिणी-विवाहपर्यन्त, छठे दिन हंसगीतातक और सातवें दिन श्रीमद्भागवतकी समाप्ति*। यदि अनुष्ठान अठारह दिनका हो तो प्रतिदिन एक सहस्र श्लोकका पाठ करना चाहिये, एक महीनेका अनुष्ठान हो तो प्रतिदिन ग्यारह अध्याय और अन्तिम दिन पाँच अधिक, इक्कीस दिनका अनुष्ठान हो तो बीस दिनतक सोलह-सोलह अध्याय और इक्कीसवें दिन पंद्रह और पंद्रह दिनका अनुष्ठान हो तो प्रतिदिन बाईस अध्याय और पंद्रहवें दिन सत्ताईस।

अब श्रीमद्भागवतके ऋषि, छन्द आदि लिखे जाते हैं। पाठमें इनका उपयोग करना चाहिये। पाठ प्रारम्भ करनेके पूर्व एक सौ आठ बार 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षरमन्त्रका अथवा 'ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा' इस गोपालमन्त्रका जप करना चाहिये। तत्पश्चात् इस प्रकार विनियोग करना चाहिये—'ॐ अस्य श्रीमद्भागवताख्य-स्तोत्रमन्त्रस्य नारद ऋषिः बृहती छन्दः श्रीकृष्णः परमात्मा देवता ब्रह्म बीजम् भक्तिः शक्तिः ज्ञानवैराग्ये कीलकम् मम श्रीमद्भगवत्प्रसादसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः।' इनका न्यास भी कर लेना चाहिये—सिरमें ऋषिका, मुखमें छन्दका, हृदयमें देवताका, गुह्यमें बीजका, पैरोंमें शक्तिका, नाभिमें कीलकका और सर्वाङ्गमें विनियोगका। द्वादशाक्षरमन्त्रसे करन्यास और अङ्गन्यास करना चाहिये। अथवा *'ॐ क्लां हृदयाय नमः'*, *'ॐ क्लीं शिरसे स्वाहा'*, *'ॐ क्लूं शिखायै वषट्'*, *'ॐ क्लैं कवचाय हुम्'*, *'ॐ क्लौं नेत्रत्रयाय वौषट्'*, *'ॐ क्लः अस्त्राय फट्'*। करन्यासका भी यही क्रम है। निम्नलिखित श्लोकोंके अनुसार ध्यान करना चाहिये—

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम्।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः॥
अस्ति स्वस्तरुणीकराग्रविगलत्कल्पप्रसूनाप्लुतं
वस्तु प्रस्तुतवेणुनादलहरीनिर्वाणनिर्व्याकुलम्।
स्रस्तस्रस्तनिबद्धनीविविलसद्गोपीसहस्रावृतं
हस्तन्यस्तनतापवर्गमखिलोदारं किशोराकृति॥

श्रीमद्भागवतके प्रत्येक श्लोकके साथ प्रणव अथवा द्वादशाक्षरमन्त्रका सम्पुट भी किया जाता है। सम्पुट अथवा बिना सम्पुटके—किसी भी प्रकार श्रीमद्भागवतका पाठ करना चाहिये। इस युगमें यही सर्वोच्च साधन है और भगवत्कृपासे सम्पूर्ण रूपसे उपलब्ध है।



---

* सप्ताहे पाठनियमं शृणु शौनक संयतः। मनुकर्दमसंवादपर्यन्तं प्रथमेऽहनि॥
ऋषभाख्यानपर्यन्तं द्वितीये दिवसे वदेत्। तृतीये दिवसे कुर्यात् सप्तमस्कन्धपूरणम्॥
कृष्णाविर्भावपर्यन्तं चतुर्थेऽहनि वाचयेत्। रुक्मिण्युद्वाहपर्यन्तं पञ्चमेऽह्नि वदेत् सुधीः॥
श्रीहंसाख्यानपर्यन्तं षष्ठेऽह्नि वाचयेद् ध्रुवम्। सप्तमे दिवसे कुर्याच्छ्रीभागवतपूरणम्॥

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१८	९	१६	११
१९	१०	४	१२
२०	१०	१५	११
२१	१०	२८	१३
२२	१०	४४	१६
२३	१०	५६	१२
२४	१०	६६	१०
२५	१०	७७	११
२६	११	१	१४
२७	११	१४	१३
२८	११	३०	१६
२९	१२	१३*	१४

(४९) मासपारायण (महीनेभरका)

भक्तिप्रद

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	५	५
२	१	१६	११
३	२	९	१२
४	३	१०	११
५	३	२३	१३
६	४	१	११
७	४	८	७
८	४	२२	१४
९	५	१	१०
१०	५	१२	११
११	५	२१	९
१२	६	६	११
१३	६	१८	१२
१४	७	१०	११
१५	८	८	१३
१६	८	१७	९
१७	९	५	१२
१८	९	१६	११
१९	१०	३	११
२०	१०	१५	१२
२१	१०	२८	१३
२२	१०	४४	१६
२३	१०	५६	१२
२४	१०	७०	१४
२५	१०	८१	११
२६	११	१	१०
२७	११	१४	१३
२८	११	२८	१४
२९	१२	७	१०
३०	१२	१३*	६

(५०) मासपारायण (महीनेभरका)

समस्त कामनाओंकी सिद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	११	११
२	२	२	१०
३	३	२	१०
४	३	१२	१०
५	३	२३	११
६	४	९	१९
७	४	२०	१
८	४	२२	१२
९	५	१	१०
१०	५	१०	९
११	५	२०	१०
१२	६	९	१५
१३	६	१६	७
१४	७	७	१०
१५	८	१	९
१६	८	१५	१४
१७	९	४	१३
१८	९	१०	६
१९	१०	६	२०
२०	१०	१७	११
२१	१०	३०	१३
२२	१०	४२	१२
२३	१०	५४	१२
२४	१०	६५	११
२५	१०	७८	१३
२६	१०	८७	९
२७	११	९	१२
२८	११	२१	१२
२९	१२	२	१२
३०	१२	१३	११

षष्ठ स्कन्धकी देवस्तुति (अ० ९ श्लो० ३१—४५)-का पाठ करना चाहिये। पाठविधि—

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	१०*	२९
२	४	३१*	६४
३	६	१९*	४५
४	८	२४*	३९
५	१०	४९÷	७३
६	११	३१*	७२
७	१२	१३*	१३

(२) प्रारब्ध कार्यमें विघ्ननाशके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ९, पारायण-संख्या १४०

विशेष नियम—प्रतिदिन चतुर्थ स्कन्धके उन्नीसवें अध्याय (पृथुविजय) का पाठ, पाठके आरम्भ एवं समाप्तिमें करना चाहिये।

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१९	४८
२	५	६	५१
३	७	१०	४९
४	९	२४*	५३
५	१०	४९÷	४९
६	१०	९०*	४१
७	१२	१३*	४४

(३) कैदसे छुड़ानेके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ७, पारायण-संख्या १४३

विशेष नियम—प्रतिदिन पाठके आरम्भ एवं अन्तमें दशम स्कन्धके १० । २९; १९ । ९; २५ । १३; २७ । १९; ४९ । ११ और ७० । २५—इन ६ श्लोकोंका पाठ करना चाहिये।

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	३३*	६२
२	५	२६*	५७
३	७	१५*	३४
४	९	२४*	४८
५	१०	९०*	९०
६	११	३१*	३१
७	१२	१३*	१३

(४) शत्रुपराजयके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ६, पारायण-संख्या १९४

विशेष नियम—प्रतिदिन पाठके प्रारम्भ एवं समाप्तिमें अष्टम स्कन्धके 'यज्ञेश यज्ञपुरुष' (अ० १७ श्लो० ८) आदि ३ श्लोकोंका पाठ करे।

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१९	४८
२	५	१५	६०
३	७	१५*	४५
४	१०	१२	६०
५	१०	८४	७२
६	११	३१*	३७
७	१२	१३*	१३

(५) रोगमुक्तिके लिये

पाठकर्ता ब्राह्मण ३, पारायण-संख्या १५७

विशेष नियम—प्रतिदिन प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें पञ्चम स्कन्धके नारसिंह मन्त्र (अ० १८ श्लो० ८)-का पाठ करे।

दिन	विश्रामस्थल—स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४९
२	५	६	५०
३	६	१९*	३९
४	९	२०	५९
५	१०	३५	३९
६	१०	८५	५०
७	१२	१३*	४९

---

* यह चिह्न स्कन्धकी समाप्ति और ÷ यह चिह्न दशम स्कन्धके पूर्वार्धकी समाप्तिका है।

मुनिको नमस्कार करके कहा, 'आप यह अमृत लेकर बदलेमें हमें कथामृतका दान दीजिये। यदि आपको यह सौदा स्वीकार हो, तो राजा परीक्षित् अमृत पीकर अमर हो जायँ और हम लोग श्रीमद्भागवतामृतका पान करें।' तब शुकदेवजी यह सोचकर कि 'लोकमें कहाँ अमृत और कहाँ हरिकथा! कहाँ काँच और कहाँ महामूल्य मणि!' देवताओंकी बातपर हँसने लगे तथा उन्हें भक्तिशून्य जानकर कथामृतका पान नहीं कराया। इसीसे कहते हैं कि यह श्रीमद्भागवतकी कथा देवताओंको भी दुर्लभ है॥९–१७॥

शौनकजी! केवल श्रीमद्भागवतके श्रवणसे ही राजा परीक्षित्को मुक्त हुआ देखकर पूर्वकालमें ब्रह्माजीको भी बड़ा आश्चर्य हुआ था। तब उन्होंने सत्यलोकमें तराजू बाँधकर सब साधनोंको तौला। उस समय और सब साधन तौलमें हल्के पड़ गये, अपने महत्त्वके कारण भागवत ही सबसे भारी रहा। यह देखकर सभी ऋषियोंको बड़ा विस्मय हुआ और उन्होंने कलियुगमें इस भगवद्रूप भागवत शास्त्रको ही पढ़ने सुननेसे तत्काल मोक्ष देनेवाला निश्चय किया। यदि सप्ताहपारायणकी विधिसे इसका श्रवण किया जाय, तो यह निश्चय मुक्ति प्रदान करता है। पूर्वकालमें इसे सनकादिने कृपा करके देवर्षि नारदको सुनाया था। यद्यपि नारदजी इसे पहले ही ब्रह्माजीके मुखसे सुन चुके थे, तथापि इसकी सप्ताहश्रवणविधि उन्हे सनकादिने ही बतायी थी॥१८–२२॥

शौनकजीने पूछा—सूतजी! देवर्षि नारद तो सांसारिक झंझटोंसे दूर रहते हैं तथा अधिक समयतक एक स्थानपर टिकते भी नहीं, फिर इस प्रकार सप्ताहविधिसे भागवतश्रवणमें उनका प्रेम कैसे हुआ और सनकादिके साथ उनका समागम कहाँ हुआ?॥२३॥

सूतजी बोले—अच्छा, अब मैं तुम्हें वह भक्तिपूर्ण कथानक सुनाता हूँ, जो श्रीशुकदेवजीने मुझे अपना अनन्य शिष्य जानकर एकान्तमें सुनाया था। एक बार सनकादि चारों विशुद्धचित्त मुनिगण सत्सङ्गके लिये बदरीवनके अन्तर्गत विशालापुरीमें आये। वहाँ उन्होंने नारदजीको देखा॥२४ २५॥



सनकादिने पूछा—ब्रह्मन्! आपका मुख उदास क्यों हो रहा है? आप चिन्ताग्रस्त कैसे हैं? इतनी जल्दी जल्दी आप जा कहाँ रहे हैं? और आये कहाँसे हैं? इस समय तो आप, जिसका सारा धन लुट गया हो उस पुरुषके समान, बेचैन जान पड़ते हैं, आप जैसे विरक्त पुरुषोंकी ऐसी दशा तो नहीं होनी चाहिये। कृपा करके इसका कारण बताइये॥२६ २७॥

नारदजीने कहा—मनुष्यलोक कर्मभूमि है, इसलिये उसे सर्वश्रेष्ठ समझकर मैं यहाँ आया था। यहाँ पुष्कर, प्रयाग, काशी, गोदावरी (नासिक), हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, श्रीरङ्ग और सेतुबन्ध आदि कई तीर्थोंमें मैं इधर-उधर विचरता रहा, किन्तु मुझे कहीं भी मनको सन्तोष देनेवाली शान्ति नहीं मिली। इस समय अधर्मके सहायक कलियुगने सारी पृथ्वीको पीड़ित कर रक्खा है। अब यहाँ सत्य, तप, शौच, दया, दान आदि कुछ भी नहीं है। बेचारे जीव केवल अपना पेट पालनेमें (विषयभोगमें) लगे हुए हैं, वे असत्यभाषी, आलसी, मन्दबुद्धि और भाग्यहीन हो गये हैं। उन्हें तरह तरहकी विपत्तियाँ घेरे रहती हैं। जो साधु सन्त कहे जाते हैं, वे पूरे पाखण्डी हो गये हैं, देखनेमें तो विरक्त जान पड़ते हैं, किन्तु स्त्री धन आदि सभीका परिग्रह करते हैं। घरोंमें स्त्रियोंका राज्य है, साले सलाहकार बने हुए हैं, पैसेके लोभसे बेचारी निर्दोष कन्याएँ बेची जाती हैं और स्त्री पुरुषोंमें

(१४) दशाहपारायण

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	६	३५
२	४	७	३४
३	५	९	३३
४	६	१९*	३६
५	८	२४*	३९
६	१०	११	३५
७	१०	४५	३४
८	१०	७९	३४
९	११	२३	३४
१०	१२	१३*	२१

(१५) पक्षपारायण (पंद्रह दिनका)

पक्ष, मास और ऋतुपारायण प्रतिपद् तिथिसे ही प्रारम्भ किया जाय—यह नियम नहीं है। केवल दिन-संख्याका नियम है।

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	४	२३
२	३	१९	२५
३	४	२२	३६
४	५	१६	२५
५	६	१३	२३
६	८	२	२३
७	८	२४*	२२
८	९	२३	२३
९	१०	२४	२५
१०	१०	४८	२४
११	१०	६८	२०
१२	१०	८९	२१
१३	११	६	७
१४	१२	५	३०
१५	१२	१३*	८

(१६) मासपारायण (महीनेभरका)

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	११	११
२	१	१९*	८
३	२	१०*	१०
४	३	१२	१२
५	३	२४	१२
६	३	३३*	९
७	४	१२	१२
८	४	२३	११
९	४	३१*	८
१०	५	१४	१४
११	५	२६*	१२
१२	६	१२	१२
१३	७	५	१२
१४	७	१५*	१०
१५	८	१२	१२
१६	८	२४*	१२
१७	९	१३	१३
१८	९	२४*	११
१९	१०	११	११
२०	१०	२१	१०
२१	१०	३३	१२
२२	१०	४५	१२
२३	१०	५७	१२
२४	१०	६९	१२
२५	१०	७९	१०
२६	१०	९०*	११
२७	११	१३	१३
२८	११	२६	१३
२९	१२	५	१०
३०	१२	१३*	८

(१७) ऋतुपारायण (दो महीनेका)

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	६	६
२	१	११	५
३	१	१५	४
४	१	१९*	४
५	२	६	६
६	२	१०*	४
७	३	६	६

नारदजी बोले—बाले ! तू सावधान होकर सुन । यह भयङ्कर कलिकाल है । इसीसे इस समय सदाचार, योगमार्ग और तप आदि सभी लुप्त हो गये हैं । लोगोंका स्वभाव शठता और कुकर्मोंके कारण पापी दैत्योंका सा हो गया है । संसारमें जहाँ देखो वहीं सत्पुरुष दुःखसे दबे हुए हैं और दुष्टलोग मजे उड़ा रहे हैं । इस समय जिस बुद्धिमान् पुरुषका धैर्य बना रहे, उसे ही बड़ा ज्ञानी या पण्डित समझना चाहिये । पृथ्वी क्रमशः प्रतिवर्ष शेषजीके लिये भाररूपा होती जा रही है । अब यह छूने योग्य तो क्या, देखने योग्य भी नहीं रह गयी है और न इसमें कहीं मङ्गल ही दिखायी देता है । तेरी और तेरे पुत्रोंकी ओर तो अब कोई ताकना भी नहीं चाहता । इस प्रकार विषयान्ध पुरुषोंके उपेक्षा करनेसे ही तू जर्जर हो गयी थी । किन्तु वृन्दावनका संयोग पाकर तू फिर नवीन तरुणी-सी हो गयी है । अतः यह वृन्दावनधाम धन्य है, जहाँ भक्ति सर्वत्र नृत्य कर रही है । परन्तु इन ज्ञान वैराग्यको पूछनेवाला यहाँ भी कोई नहीं है, इसीलिये इनका बुढ़ापा दूर नहीं हुआ । हाँ, इनके चित्तको कुछ चैन अवश्य मिला है, इसीसे ये सुषुप्तिका-सा सुख अनुभव कर रहे हैं ॥ ५७–६२ ॥

भक्तिने कहा—भगवन् ! महाराज परीक्षित्‌ने इस पापी कलियुगको क्यों रहने दिया ? देखिये, इसके आते ही सब वस्तुओंका सार न जाने कहाँ चला गया । करुणामय भगवान् भी इस अधर्मको कैसे देख रहे हैं ? मुने ! मेरा यह सन्देह दूर कीजिये, आपके वचनोंसे मुझे बड़ी शान्ति मिली है ॥ ६३ ६४ ॥

नारदजी बोले—बाले ! यदि तूने पूछा है, तो प्रेमपूर्वक सुन, मैं तुझे सब बातें बताये देता हूँ । इससे तेरा सब दुःख दूर हो जायगा । जिस दिन भगवान् श्रीकृष्ण इस भूलोकको छोड़कर अपने परमधामको पधारे, उसी दिनसे यहाँ सम्पूर्ण साधनोंमें बाधा डालनेवाला कलियुग आ गया था । राजा परीक्षित्‌ने जब दिग्विजयके समय इसे देखा, तो यह अत्यन्त दीन सा होकर उनकी शरणमें गया । राजा भौंरेके समान सारग्राही थे, इसलिये उन्होंने सोचा कि मुझे इसका वध नहीं करना चाहिये, क्योंकि इसमें एक गुण बड़ा अपूर्व है । वह यह कि अन्य युगोंमें जो फल तप, योग और समाधिसे भी नहीं मिलता था, वह कलियुगमें केवल श्रीहरिकीर्तनसे ही पूरा पूरा मिल जाता है । इस प्रकार सारहीन होनेपर भी इस एक ही दृष्टिसे सारयुक्त देखकर उन्होंने कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके सुखके लिये ही इसे रहने दिया था ॥ ६५–६९ ॥

इस समय कुकर्मकी प्रवृत्ति होनेके कारण सभी वस्तुओंका सार निकल गया है और भूमिमें जितने पदार्थ हैं, वे सब भूसीके समान निर्बीज हो गये हैं । ब्राह्मणलोग अन्नके लोभसे घर घर जाकर चाहे जिसको भगवान्‌की कथा सुनाने लगे हैं, अधिकारी-अनधिकारीका कोई विचार नहीं करते, इसीसे कथाका भी कुछ महत्त्व नहीं रह गया है । तीर्थोंमें बड़े भयङ्कर कर्म करनेवाले, नास्तिक और नारकी पुरुष भी रहने लगे हैं, इसलिये तीर्थोंका भी कोई प्रभाव नहीं रहा । जिनका चित्त निरन्तर काम, क्रोध, लोभ और तृष्णासे तपता रहता है, वे भी तपस्याका ढोंग करने लगे हैं, इसलिये तपका भी सार निकल गया है । मनपर संयम न होनेके कारण तथा लोभ, दम्भ और पाखण्डका आश्रय लेनेके कारण एवं शास्त्रका अभ्यास न करनेसे ध्यानयोगका कोई फल ही नहीं होता । पण्डितोंकी यह दशा है कि वे अपनी स्त्रियोंके साथ भैंसोंकी तरह रमण करते हैं, उनमें सन्तान पैदा करनेकी ही कुशलता पायी जाती है, मुक्तिसाधनमें वे सर्वथा असमर्थ हैं । सम्प्रदायपरम्परासे प्राप्त हुई वैष्णवता भी कहीं देखनेमें नहीं आती । इस प्रकार जगह जगह सभी वस्तुओंका सार लुप्त हो गया है । यह तो इस युगका स्वभाव ही है, इसमें किसीका दोष नहीं है । इसीलिये बहुत समीप होकर भी भगवान् यह सब सह रहे हैं ॥ ७०–७७ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! इस प्रकार देवर्षि नारदके वचन सुनकर भक्तिको बड़ा आश्चर्य हुआ, फिर उसने जो कुछ कहा, सो सुनिये ॥ ७८ ॥

भक्तिने कहा—देवर्षे ! आप धन्य हैं ! मेरा बड़ा सौभाग्य था, जो आप यहाँ पधारे । संसारमें साधुओंका दर्शन ही सब प्रकारके कार्योंको सिद्ध करनेवाला सर्वश्रेष्ठ साधन है । नारदजी ! एकमात्र आपके उपदेशको सुनकर ही कयाधूकुमार प्रह्लादने संसारमें मायाको जीत लिया था तथा आपकी कृपासे ही ध्रुवको अचल पद प्राप्त हुआ था । आप सर्वमङ्गलमय और साक्षात् श्रीब्रह्माजीके पुत्र हैं, मैं आपको नमस्कार करती हूँ ॥ ७९ ८० ॥

सबसे पहले यह ध्यान रखना चाहिये कि निम्न-लिखित स्कन्धोंके निम्नलिखित अध्यायोंपर विश्राम नहीं करना चाहिये। ऐसा करनेवालोंके प्रयोग सिद्ध नहीं होंगे।

स्कन्ध	अध्याय
१	१, ८, १०, ११, १६
२	३, ८
३	१, ७, १०, १८, २०, २३
४	१, ३, १०, १७, १८
५	५, १३
६	६, १०
७	१, ४, ६
८	१, २, ८, १०, २१
९	१, ४, १०, १५
१०	१,९,१०,२२,२९,३०,६२,७६,७७
११	१०, २२, ३०
१२	९

प्रयोग

(१) **सप्ताहपारायण** (सात दिनका)

निष्कामपारायण

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४९
२	५	२३	६७
३	७	१५*	३७
४	९	२४*	४८
५	१०	४२	४२
६	१०	९०*	४८
७	१२	१३*	४४

(२) **सप्ताहपारायण** (सात दिनका)

धनप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	४	९	७१
२	६	१३	६१
३	९	७	५२
४	१०	३४	५१
५	१०	७३	३९
६	१०	९०*	१७
७	१२	१३*	४४

(३) **सप्ताहपारायण** (सात दिनका)

सङ्कट कटनेके लिये (लेख नं० १ में देखिये)

(४) **सप्ताहपारायण** (सात दिनका)

विघ्ननाशके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१९	४९
२	५	१६	६१
३	७	१०	३९
४	९	२४*	५३
५	१०	४९	४९
६	१०	९०*	४१
७	१२	१३*	४४

(५) **सप्ताहपारायण** (सात दिनका)

बन्धनसे छूटनेके लिये (लेख नं० १ में देखिये)

(६) **सप्ताहपारायण** (सात दिनका)

शत्रुकी पराजयके लिये (लेख नं० १ में देखिये)

(७) **सप्ताहपारायण** (सात दिनका)

पुत्रप्राप्तिके लिये (लेख नं० १ में देखिये)

(८) **सप्ताहपारायण** (सात दिनका)

राज्यप्राप्तिके लिये (लेख नं० १ में देखिये)

(९) **सप्ताहपारायण** (सात दिनका)

मोक्षप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१८	४७
२	५	८	५४
३	८	७	५९
४	१०	३	४४
५	१०	५३	५०
६	११	९	४६
७	१२	१३*	३५

(१०) **एकाहपारायण** (एक दिनका)

हरिप्रेम या मोक्षप्राप्तिके लिये (लेख नं० १ में देखिये)



नारदजीने कहा—तू किसी प्रकारकी चिन्ता न कर, भगवान् तेरा मङ्गल करेंगे ।

(२३) अष्टाहपारायण (आठ दिनका)

दरिद्रता नष्ट करनेके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१५	४४
२	४	२१	३९
३	६	७	४३
४	८	२१	४८
५	१०	२३	५०
६	१०	५१	२८
७	११	३	४२
८	१२	१३*	४१

(२४) अष्टाहपारायण (आठ दिनका)

रोगसे छुटकारा पानेके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	२०	४९
२	५	६	५०
३	६	१९*	३९
४	९	२०	५९
५	१०	३५	३९
६	१०	८५	५०
७	११	६	११
८	१२	१३*	३८

(२५) अष्टाहपारायण (आठ दिनका)

भयनिवृत्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	९	३८
२	४	१६	४०
३	६	१	४२
४	८	१०	४३
५	१०	१	३९
६	१०	४२	४१
७	१०	९०*	४८
८	१२	१३*	४४

(२६) अष्टाहपारायण (आठ दिनका)

अकालमृत्युसे बचनेके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	८	३७
२	४	८	३३
३	५	२४	४७
४	८	९	४५
५	१०	१०	४९
६	१०	५६	४६
७	११	९	४३
८	१२	१३*	३५

(२७) नवाहपारायण (नौ दिनका)

सुयशप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	१०	३९
२	४	२	२५
३	५	२०	४९
४	७	१२	३७
५	९	८	३५
६	१०	२०	३६
७	१०	६०	४०
८	११	८	३८
९	१२	१३*	३६

(२८) नवाहपारायण (नौ दिनका)

कन्याप्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल–स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	३	६	३५
२	४	११	३८
३	५	१६	३६
४	७	११	४०
५	९	६	३४
६	१०	२१	३९
७	१०	५८	३७
८	११	९	४१
९	१२	१३*	३५

उघाड़कर देख भी नहीं सके। उनके बाल बगुलोंकी तरह सफेद हो गये थे। उनके अङ्ग प्रायः सूखे काष्ठके समान निस्तेज और कठोर हो गये थे। इस प्रकार भूख प्यासके मारे अत्यन्त दुर्बल होनेके कारण उन्हें फिर सोते देख नारदजीको बड़ी चिन्ता हुई और वे सोचने लगे, 'अब मुझे *क्या करना चाहिये ? इनकी यह नींद, और इससे भी बढ़कर* इनकी वृद्धावस्था कैसे दूर हो ?' शौनकजी ! इस प्रकार चिन्ता करते-करते वे भगवान्‌का स्मरण करने लगे। इसी समय यह आकाशवाणी हुई कि 'मुने ! खेद मत करो, तुम्हारा यह उद्योग निःसन्देह सफल होगा। देवर्षे ! इसके लिये तुम एक सत्कर्म करो, वह कर्म तुम्हें सतशिरोमणि महानुभाव बतायेंगे। उस सत्कर्मका अनुष्ठान करते ही क्षणभरमे इनकी नींद और वृद्धावस्था चली जायँगी, तथा सर्वत्र भक्तिका प्रसार होगा।' यह आकाशवाणी वहाँ सभीको साफ साफ सुनायी दी। इससे नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ और वे कहने लगे, 'मुझे तो इसका कुछ आशय समझमें नहीं आया' ॥२५—३४॥

नारदजी बोले—इस आकाशवाणीने भी परदेमेंसे ही बात कही। यह नहीं बताया कि वह कौन-सा साधन किया जाय, जिससे इनका कार्य सिद्ध हो। वे सत न जाने कहाँ मिलेंगे और किस प्रकार उस साधनको बतायेंगे ? अब जो कुछ आकाशवाणीने कहा है, उसके अनुसार मुझे क्या करना चाहिये ? ॥ ३५ ३६ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! तब ज्ञान वैराग्य दोनोंको वहीं छोड़कर नारदमुनि वहाँसे चल दिये और प्रत्येक तीर्थमें विचरण करते हुए मार्गमें मिलनेवाले मुनियोंसे वह साधन पूछने लगे। उनकी उस बातको सुनते तो सब थे, किन्तु उसके विषयमें कोई कुछ भी निश्चय करके न कह सके। किन्हींने उसे असाध्य बताया, कोई बोले—'इसका ठीक ठीक पता लगना ही कठिन है', कोई सुनकर चुप रह गये और कोई-कोई तो अपनी अवज्ञा होनेके भयसे बातको टाल टूलकर खिसक गये। तीनों लोकोंमें बड़ा विस्मयजनक हाहाकार मच गया। सब लोग आपसमें कानाफूसी करने लगे—'भाई ! जब वेदध्वनि, वेदान्तघोष और बार-बार गीतापाठ सुनानेपर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जगाये जा सके, तब और कोई उपाय नहीं है। भला, जिसका पता योगिराज नारदको भी नहीं है, उसे दूसरे ससारी लोग कैसे बता सकते हैं ?' इस प्रकार जिन जिन ऋषियोंसे इसके विषयमें पूछा गया, उन्होंने निर्णय करके यही कहा कि यह बात दुःसाध्य ही है ॥ ३७—४२ ॥

तब नारदजी बहुत चिन्तातुर हुए और यह निश्चय करके कि इसके लिये मैं तप करूँगा, बदरीवनमें जाये। वहाँ पहुँचते ही उन्हें अपने सामने करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी सनकादि मुनीश्वर दिखायी दिये। उन्हे देखकर वे मुनिश्रेष्ठ कहने लगे ॥ ४३ ४४ ॥

नारदजी बोले—महात्माओ ! इस समय बड़े सौभाग्यसे मुझे आपलोगोंका समागम हुआ है, आप मुझपर कृपा करके शीघ्र ही वह साधन बताइये। आप सभी लोग बड़े *योगी, बुद्धिमान् और विद्वान् हैं। आप देखनेमें पाँच-पाँच* वर्षके बालक-से जान पड़ते हैं, किन्तु हैं पूर्वजोंके भी पूर्वज। मरीचि आदि प्रजापति भी आपसे अवस्थामें छोटे हैं। आप लोग सदा वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं, निरन्तर हरिकीर्तनमें तत्पर रहते हैं, भगवल्लीलामृतका रसास्वादन कर सदा उन्मत्त-से रहते हैं और भगवच्चर्चा ही आपका एकमात्र जीवनाधार है। आपके मुखमें सर्वदा 'हरिः शरणम्' (भगवान् ही हमारे रक्षक हैं) यह वाक्य (मन्त्र) रहता है, इसीसे कालप्रेरित वृद्धावस्थाकी आपके आगे कोई दाल नहीं गलती। पूर्वकालमें आपके भ्रूभङ्गमात्रसे ही भगवान् विष्णुके द्वारपाल जय और विजय तुरत पृथ्वीपर गिर गये थे और फिर आपहीकी कृपासे वे पुनः वैकुण्ठलोक पहुँच गये। इस समय आपका दर्शन बड़े ही सौभाग्यसे हुआ है। मैं बहुत दीन हूँ और आपलोग स्वभावसे ही दयालु हैं, इसलिये मुझपर अवश्य कृपा करनी चाहिये। बताइये, आकाशवाणीने जिसके विषयमें कहा है वह कौन-सा साधन है, और मुझे किस प्रकार उसका अनुष्ठान करना चाहिये। आप इसका विस्तारसे वर्णन कीजिये। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको किस प्रकार सुख मिल सकता है ? और किस तरह इनका प्रेमपूर्वक सब वर्णोंमें प्रचार किया जा सकता है ? ॥ ४५—५२ ॥

सनकादिने कहा—देवर्षे ! आप चिन्ता न करें, मनमें प्रसन्न हों। देखिये, उनके उद्धारका एक सरल उपाय पहलेहीसे मौजूद है। नारदजी ! आप धन्य हैं। आप विरक्तोंके सिरमौर हैं, भगवान् श्रीकृष्णके दासोंमे सर्वदा ही अग्रगण्य हैं और योगके साक्षात् सूर्य ही हैं। आप जो भक्तिके लिये उद्योग कर रहे हैं, यह आपके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। भगवान्‌के भक्तको तो भक्तिकी स्थापना करना सदा उचित ही है। ऋषियोंने संसारमें अनेकों मार्ग प्रकट

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१०	१०	४१	२३
११	१०	६७	२६
१२	११	२	२५
१३	११	२३	२१
१४	१२	१३*	२१

(३४) पञ्चदशाहपारायण (पंद्रह दिनका)

सब प्रकारकी कामनाकी सिद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	२	२१
२	३	१५	२३
३	४	४	२२
४	४	२७	२३
५	५	१८	२२
६	६	१५	२३
७	८	५	२४
८	९	६	२५
९	१०	४	२२
१०	१०	२६	२२
११	१०	४९÷	२३
१२	१०	७०	२१
१३	११	२	२२
१४	११	२५	२३
१५	१२	१३*	१९

(३५) षोडशाहपारायण (सोलह दिनका)

बाधाओंकी शान्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१८	१८
२	३	१३	२४
३	३	२९	१६
४	४	१९	२३
५	५	५	१७
६	६	५	२६
७	७	८	२२
८	८	१८	२५

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
९	९	१४	२०
१०	१०	१७	२७
११	१०	३८	२१
१२	१०	५२	१४
१३	१०	८१	२९
१४	११	१०	१९
१५	१२	१	२२
१६	१२	१३*	१२

(३६) सप्तदशाहपारायण (सत्रह दिनका)

आनन्दवृद्धिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	२	४	२३
२	३	११	१७
३	३	२६	१५
४	४	१५	२२
५	४	३१*	१६
६	५	२५	२५
७	७	१	२१
८	८	१०	२४
९	९	५	१९
१०	१०	७	२६
११	१०	२७	२०
१२	१०	४०	१३
१३	१०	६८	२८
१४	१०	८६	१८
१५	११	१७	२१
१६	१२	२	१६
१७	१२	१३*	११

(३७) अष्टादशाहपारायण (अठारह दिनका)

भगवान्‌की प्राप्तिके लिये

दिन	विश्रामस्थल-स्कन्ध	अध्याय	योग अध्याय
१	१	१६	१६
२	३	८	२१
३	३	२१	१३

उघाड़कर देख भी नहीं सके। उनके बाल बगुलोंकी तरह सफेद हो गये थे। उनके अङ्ग प्राय सूखे काष्ठके समान निस्तेज और कठोर हो गये थे। इस प्रकार भूख प्यासके मारे अत्यन्त दुर्बल होनेके कारण उन्हें फिर सोते देख नारदजीको बड़ी चिन्ता हुई और वे सोचने लगे, 'अब मुझे क्या करना चाहिये ? इनकी यह नींद, और इससे भी बढ़कर इनकी वृद्धावस्था कैसे दूर हो ?' शौनकजी ! इस प्रकार चिन्ता करते करते वे भगवान्का स्मरण करने लगे। इसी समय यह आकाशवाणी हुई कि 'मुने ! खेद मत करो, तुम्हारा यह उद्योग नि सन्देह सफल होगा। देवर्षे ! इसके लिये तुम एक सत्कर्म करो, वह कर्म तुम्हें सन्तशिरोमणि महानुभाव बतायेंगे। उस सत्कर्मका अनुष्ठान करते ही क्षणभरमे इनकी नींद और वृद्धावस्था चली जायँगी, तथा सर्वत्र भक्तिका प्रसार होगा।' यह आकाशवाणी वहाँ सभीको साफ साफ सुनायी दी। इससे नारदजीको बड़ा विस्मय हुआ और वे कहने लगे, 'मुझे तो इसका कुछ आशय समझमें नहीं आया' ॥२५—३४॥

नारदजी बोले—इस आकाशवाणीने भी परदेमेंसे ही बात कही। यह नहीं बताया कि यह कौन-सा साधन किया जाय, जिससे इनका कार्य सिद्ध हो। वे सत न जाने कहाँ मिलेंगे और किस प्रकार उस साधनको बतायेंगे ? अब जो कुछ आकाशवाणीने कहा है, उसके अनुसार मुझे क्या करना चाहिये ? ॥ ३५ ३६ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! तब ज्ञान वैराग्य दोनोंको वहीं छोड़कर नारदमुनि वहाँसे चल दिये और प्रत्येक तीर्थमें विचरण करते हुए मार्गमें मिलनेवाले मुनियोंसे यह साधन पूछने लगे। उनकी उस बातको सुनते तो सब थे, किन्तु उसके विषयमें कोई कुछ भी निश्चय करके नह न सके। किन्हींने उसे असाध्य बताया, कोई बोले—'इसका ठीक ठीक पता लगना ही कठिन है', कोई सुनकर चुप रह गये और कोई कोई तो अपनी अवज्ञा होनेके भयसे बातको टाल टूलकर खिसक गये। तीनों लोकोंमें बड़ा विस्मयजनक हाहाकार मच गया। सब लोग आपसमें कानाफूसी करने लगे—'भाई ! जब वेदध्वनि, वेदान्तघोष और बार-बार गीतापाठ सुनानेपर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जगाये जा सके, तब और कोई उपाय नहीं है। भला, जिसका पता योगिराज नारदको भी नहीं है, उसे दूसरे ससारी लोग कैसे बता सकते हैं ?' इस प्रकार जिन जिन ऋषियोंसे इसके विषयमें पूछा गया, उन्होंने निर्णय करके यही कहा कि यह बात दु साध्य ही है ॥ ३७—४२ ॥

तब नारदजी बहुत चिन्तातुर हुए और यह निश्चय करके कि इसके लिये मैं तप करूँगा, बदरीवनमे आये। वहाँ पहुँचते ही उन्हें अपने सामने करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी सनकादि मुनीश्वर दिखायी दिये। उन्हे देखकर वे मुनिश्रेष्ठ कहने लगे ॥ ४३ ४४ ॥

नारदजी बोले—महात्माओ ! इस समय बड़े सौभाग्यसे मुझे आपलोगोंका समागम हुआ है, आप मुझपर कृपा करके शीघ्र ही वह साधन बताइये। आप सभी लोग बड़े योगी, बुद्धिमान् और विद्वान् हैं। आप देखनेमें पाँच-पाँच वर्षके बालक से जान पड़ते हैं, किन्तु हैं पूर्वजोंके भी पूर्वज। मरीचि आदि प्रजापति भी आपसे अवस्थामें छोटे हैं। आप लोग सदा वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं, निरन्तर हरि कीर्तनमे तत्पर रहते हैं, भगवल्लीलामृतका रसास्वादन कर सदा उन्मत्त-से रहते हैं और भगवच्चर्चा ही आपका एकमात्र जीवनाधार है। आपके मुखमें सर्वदा 'हरि शरणम्' (भगवान् ही हमारे रक्षक हैं) यह वाक्य (मन्त्र) रहता है, इसीसे कालप्रेरित वृद्धावस्थाकी आपके आगे कोइ दाल नहीं गलती। पूर्वकालमे आपके भ्रूभङ्गमात्रसे ही भगवान् विष्णुके द्वारपाल जय और विजय तुरत पृथ्वीपर गिर गये थे और फिर आपहीकी कृपासे वे पुन वैकुण्ठलोक पहुँच गये। इस समय आपका दर्शन बड़े ही सौभाग्यसे हुआ है। मैं बहुत दीन हूँ और आपलोग स्वभावसे ही दयालु हैं, इसलिये मुझपर अवश्य कृपा करनी चाहिये। बताइये, आकाशवाणीने जिसके विषयमें कहा है वह कौन-सा साधन है, और मुझे किस प्रकार उसका अनुष्ठान करना चाहिये। आप इसका विस्तार से वर्णन कीजिये। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको किस प्रकार सुख मिल सकता है ? और किस तरह इनका प्रेमपूर्वक सब वर्णोंमें प्रचार किया जा सकता है ? ॥ ४५—५२ ॥

सनकादिने कहा—देवर्षे ! आप चिन्ता न करें, मनमें प्रसन्न हों। देखिये, उनके उद्धारका एक सरल उपाय पहलेहीसे मौजूद है। नारदजी ! आप धन्य हैं। आप विरक्तोंके सिरमौर हैं, भगवान् श्रीकृष्णके दासोंमे सर्वदा ही अग्रगण्य है और योगके साक्षात् सूर्य ही हैं। आप जो भक्तिके लिये उद्योग कर रहे हैं, यह आपके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। भगवान्के भक्तको तो भक्तिकी स्थापना करना सदा उचित ही है। ऋषियोंने संसारमें अनेकों मार्ग प्रकट

करते रहते हैं। तरह तरहके वृक्ष और लताओंके कारण वह बड़ा सघन है और वहाँ बड़ी कोमल नवीन बालू बिछी हुई है। वह घाट बड़े ही सुरम्य और एकान्त प्रदेशमें है, वहाँ हर समय सुनहले कमलोंकी सुगन्ध आया करती है। उसके आसपास रहनेवाले सिंह, हरिण आदि विरोधी जीवोंके चित्तोंमें भी वैरभाव नहीं है। वहाँ बिना विशेष तैयारी किये ही आपको ज्ञानयज्ञ आरम्भ कर देना चाहिये। वहाँ जो कथा होगी, उसमें बड़ा अपूर्व रस आवेगा। भक्ति भी अपनी आँखोंके ही सामने निर्बल और जराजीर्ण अवस्थामें पड़े हुए ज्ञान और वैराग्यको साथ लेकर वहाँ आ जायगी, क्योंकि जहाँ भी श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वहाँ ये भक्ति आदि अपने आप पहुँच जाते हैं। वहाँ कानोंमें कथाके शब्द पड़नेसे ये तीनों तरुण हो जायँगे ॥ ४–९ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार कहकर नारदजीके साथ सनकादि भी श्रीभागवतकथामृतका पान करनेके लिये वहाँसे तुरत गङ्गातटपर चले आये। जिस समय वे तटपर पहुँचे, भूलोक, देवलोक और ब्रह्मलोक–सभी जगह इस कथाका शोर मच गया और जो-जो भगवत्कथाके रसिक विष्णुभक्त थे, वे सभी श्रीमद्भागवतामृतका पान करनेके लिये सबसे आगे दौड़ दौड़कर आने लगे। भृगु, वसिष्ठ, च्यवन, गौतम, मेधातिथि, देवल, देवरात, परशुराम, विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, पिप्पलाद, योगेश्वर व्यास और पराशर, छायाशुक, जाजलि और जह्नु आदि सभी प्रधान प्रधान मुनिगण अपने अपने पुत्र, शिष्य और स्त्रियोंसमेत बड़े प्रेमसे वहाँ आये। इनके सिवा वेद, वेदान्त (उपनिषद्), मन्त्र, तन्त्र, सत्रह पुराण और छहों शास्त्र भी मूर्तिमान् होकर वहाँ उपस्थित हुए तथा गङ्गा आदि नदियाँ, पुष्कर आदि सरोवर, कुरुक्षेत्र आदि समस्त क्षेत्र, सारी दिशाएँ, दण्डक आदि वन, हिमालय आदि पर्वत तथा देव, गन्धर्व और दानव आदि सभी कथा सुनने चले आये। जो लोग अपनेको बड़ा माननेके कारण वहाँ आनेसे हिचकते थे, उन्हें भृगुजी समझा बुझाकर ले आये ॥ १०–१७ ॥

तब कथा सुनानेके लिये दीक्षित होकर श्रीकृष्णपरायण सनकादि नारदजीके दिये हुए सुन्दर आसनपर विराजमान हुए। उस समय सभी श्रोताओंने उनकी वन्दना की। श्रोताओंमें वैष्णव, विरक्त, संन्यासी और ब्रह्मचारी लोग आगे बैठे और उन सबके आगे नारदजी विराजमान हुए। एक ओर ऋषिगण, एक ओर देवता, एक ओर वेद और उपनिषदादि तथा एक ओर तीर्थ बैठे, और दूसरी ओर स्त्रियाँ बैठीं। उस समय सब ओर जय-जयकार, नमस्कार और शङ्खोंका शब्द होने लगा, और अबीर-गुलाल, खील एवं फूलोंकी खूब वर्षा होने लगी। कोई-कोई देवगण तो विमानोंपर चढ़कर, वहाँ बैठे हुए सब लोगोंपर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी वर्षा करने लगे ॥ १८–२२ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार जब पूजा समाप्त होने पर सब लोग एकाग्रचित्त हो गये, तब सनकादि मुनिवर नारदको श्रीमद्भागवतका माहात्म्य स्पष्ट करके सुनाने लगे ॥ २३ ॥

सनकादिने कहा—अब हम आपको इस भागवत शास्त्रकी महिमा सुनाते हैं। इसके श्रवणमात्रसे ही मुक्ति हाथ लग जाती है। श्रीमद्भागवतकी कथाका तो सदा ही सेवन करना चाहिये। इसके श्रवणमात्रसे ही श्रीहरि हृदयमें आ विराजते हैं। इस ग्रन्थमें अठारह हजार श्लोक और बारह स्कन्ध हैं तथा श्रीशुकदेव और राजा परीक्षित्का संवाद है। हम यह भागवतशास्त्र आपको सुनाते हैं, ध्यान देकर सुनिये। यह जीव तभीतक अज्ञानवश इस संसार चक्रमें भटकता है, जबतक क्षणभरके लिये भी कानोंमें इस शुकशास्त्रकी कथा नहीं पड़ती। बहुत-से शास्त्र और पुराणोंको सुननेसे क्या लाभ है, इससे तो व्यर्थका भ्रम बढ़ता है। मुक्ति देनेके लिये तो एकमात्र भागवतशास्त्र ही गरज रहा है। जिस घरमें नित्यप्रति श्रीमद्भागवतकी कथा होती है, वह तीर्थरूप हो जाता है और जो लोग उसमें रहते हैं, उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ इस शुकशास्त्रकी कथाका सोलहवाँ अंश भी नहीं हो सकते। तपोधनो! जबतक लोग अच्छी तरह श्रीमद्भागवतका श्रवण नहीं करते, तभीतक उनके शरीरमें पाप टिक सकते हैं। फलकी दृष्टिसे इस शुकशास्त्रकथाकी बराबरी गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर या प्रयाग आदि कोई तीर्थ भी नहीं कर सकता ॥ २४–३२ ॥

यदि आपको परम गतिकी इच्छा है, तो अपने मुखसे ही श्रीमद्भागवतके आधे अथवा चौथाई श्लोकका भी नित्य नियमपूर्वक पाठ कीजिये। ॐकार, गायत्री, पुरुषसूक्त, तीनों वेद, श्रीमद्भागवत, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—यह द्वादशाक्षर मन्त्र, बारह मूर्तियोंवाले सूर्य भगवान्, प्रयाग, संवत्सररूप काल, ब्राह्मण, अग्निहोत्र, गौ, द्वादशी तिथि,

नित्य कलह मचा रहता है। महात्माओंके आश्रम, तीर्थ और नदियोंपर विधर्मियोंका अधिकार हो गया है; उन दुष्टोंने बहुत-से देवालय भी नष्ट कर दिये हैं। इस समय यहाँ न कोई योगी है, न सिद्ध है, न ज्ञानी है और न सत्कर्म करनेवाला ही है। सारे साधन इस समय कलिरूप दावानलसे जल कर भस्म हो गये हैं। इस कलियुगमें सभी देशवासी बाजारोंमें अन्न बेचने लगे हैं, ब्राह्मणलोग पैसा लेकर वेद पढ़ाते हैं और स्त्रियाँ वेश्यावृत्तिसे निर्वाह करने लगी हैं ॥२८–३६॥

इस तरह कलियुगके दोष देखता हुआ मैं पृथ्वीपर विचरता-विचरता यमुनाजीके तटपर पहुँचा, जहाँ भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों लीलाएँ हो चुकी हैं। मुनिवरो! सुनिये, वहाँ मैंने एक बड़ा आश्चर्य देखा। उस जगह एक युवती बड़ी खिन्नचित्त हुई बैठी थी। उसके पास दो वृद्ध पुरुष अचेत अवस्थामें पड़े जोर-जोरसे साँस ले रहे थे। वह तरुणी उनकी सेवा करती जाती थी, कभी उन्हें होशमें लानेका प्रयत्न करती थी और कभी उनके आगे रोने लगती थी। बीच-बीचमें वह दसों दिशाओंमें अपने शरीरकी रक्षा करनेवाले किसी पुरुषको देखती जाती थी। उसके चारों ओर सैकड़ों स्त्रियाँ उसे पंखा झल रही थीं और बार-बार समझाती जाती थीं। दूरसे यह सब चरित देखकर मैं कुतूहलवश उसके पास चला गया। मुझे देखकर वह युवती खड़ी हो गयी और बड़ी व्याकुल होकर कहने लगी ॥३७–४१॥



युवतीने कहा—महात्माजी! क्षणभर ठहरकर मेरी चिन्ताको भी नष्ट कीजिये। आपका दर्शन तो संसारके सभी पापोंको सर्वथा नष्ट कर देनेवाला है। आपके वचनोंसे मेरे दुःखकी भी बहुत कुछ शान्ति हो जायगी। मनुष्यका जब बड़ा भाग्य होता है, तभी आपका दर्शन हुआ करता है ॥४२–४३॥

नारदजी कहते हैं—तब मैंने उस स्त्रीसे पूछा—देवि! तुम कौन हो? ये दोनों पुरुष तुम्हारे क्या होते हैं? और तुम्हारे पास ये कमलनयनी देवियाँ कौन हैं? तुम हमें विस्तारसे अपने दुःखका कारण बताओ ॥ ४४ ॥

युवतीने कहा—मेरा नाम भक्ति है; ये ज्ञान और वैराग्य नामक मेरे पुत्र हैं। समयके फेरसे ही ये ऐसे जर्जर हो गये हैं। ये देवियाँ गङ्गाजी आदि नदियाँ हैं। ये सब मेरी सेवा करनेके लिये ही आयी हैं। इस प्रकार साक्षात् देवियोंके सेवा करनेपर भी मुझे चैन नहीं है। तपोधन! अब तनिक मन लगाकर मेरा वृत्तान्त सुनिये। मेरी कथा कुछ लंबी-चौड़ी है, उसे सुनकर आप मुझे शान्ति प्रदान करें ॥४५–४७॥

मैं द्रविड़ देशमें उत्पन्न होकर कर्णाटकमें बड़ी हुई। कहीं-कहीं महाराष्ट्रमें भी मेरा अच्छा मान हुआ, किन्तु गुजरातमें मुझको बुढ़ापेने घेर लिया। वहाँ घोर कलियुगके प्रभावसे पाखण्डियोंने मुझे अङ्ग-भङ्ग कर डाला। तबसे अपने पुत्रोंके सहित बहुत दिनोंतक दुर्बल अवस्थामें रहनेके कारण मैं निस्तेज हो गयी। अब, जब मैं वृन्दावनमें आयी तो फिर अत्यन्त प्रिय रूपवाली सुन्दरी नवयुवती-सी हो गयी हूँ। किन्तु मेरे पास पड़े हुए मेरे ये पुत्र अब भी थके-माँदे क्लेश भोग रहे हैं। मैं यह स्थान छोड़कर विदेश जाना चाहती हूँ। ये दोनों बूढ़े हो गये हैं—इसीका मुझे दुःख है। मुने! हम तीनों साथ-साथ ही रहते थे; फिर पुत्र तो बूढ़े ही रहे और मैं तरुणी हो गयी—यह उल्टी बात कैसे हुई? उचित तो यही है कि माता बूढ़ी हो और पुत्र तरुण हों। इसीसे मैं चकितचित्त होकर चिन्ता करती रहती हूँ। आप बुद्धिमान् एवं योगनिधि हैं; बतलाइये इसमें क्या कारण हो सकता है? ॥ ४८–५४ ॥

नारदजी बोले—साध्वि! मैं अपने हृदयमें ज्ञानदृष्टिसे अभी तेरे दुःखका कारण देखता हूँ; तू किसी प्रकारकी चिन्ता न कर, भगवान् तेरा मङ्गल करेंगे ॥ ५५ ॥

सूतजी कहते हैं—तब मुनिवर नारदजीने एक क्षणमें ही उसका कारण जानकर कहा ॥ ५६ ॥

भक्तजन संसारमें कैसे रह सकेंगे ? निर्गुणोपासनामें तो बहुत कठिनता है, वह तो उनसे होगी नहीं । इसलिये मेरे कथनपर कुछ तो विचार कीजिये ॥ ५५-५९ ॥

प्रभासक्षेत्रमें उद्धवजीके ये वचन सुनकर भगवान् सोचने लगे कि भक्तोंके सहारेके लिये मुझे क्या व्यवस्था करनी चाहिये । शौनकजी ! तब भगवान्ने अपनी सारी शक्ति भागवतमें रख दी, वे अन्तर्धान होकर इस भागवत समुद्रमें ही प्रवेश कर गये । इसलिये यह भगवान्की साक्षात् शब्दमयी मूर्ति है । इसके सेवन, श्रवण, पाठ अथवा दर्शनसे ही मनुष्यके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं । इसीसे इसका सप्ताहश्रवण सबसे बढ़कर माना गया है और कलियुगमें अन्य सब साधनोंको छोड़कर यही प्रधान धर्म बताया गया है । कलिकालमें यही ऐसा धर्म है जो दुःख, दरिद्रता, दुर्भाग्य और पापोंकी सफाई कर देता है तथा काम-क्रोधादि शत्रुओंपर विजय दिलाता है । नहीं तो, भगवान्की इस मायासे पीछा छुड़ाना तो देवताओंके लिये भी कठिन है, मनुष्य तो इसे छोड़ ही कैसे सकते हैं । अतः इससे छूटनेके लिये भी सप्ताहश्रवणका विधान किया गया है ॥ ६०-६५ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! जिस समय सनकादि मुनीश्वर इस प्रकार सप्ताहश्रवणकी महिमाका बखान कर रहे थे, उस सभामें एक बड़ा आश्चर्य हुआ, उसे मैं तुम्हें बतलाता हूँ, सुनो । वहाँ अकस्मात् अपने तरुणावस्थाको प्राप्त हुए दोनों पुत्रोंको साथ लिये विशुद्ध प्रेमरूपा भक्ति बार-बार 'श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे ! हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !' आदि भगवन्नामोंका उच्चारण करती हुई प्रकट हो गयी । उस समाजके सभी लोग भागवतके परम तत्त्व श्रीभगवान्के गलेकी हार और सुन्दर वेषवाली भक्ति महारानीको आयी देख बड़े आश्चर्यमें पड़ गये और सोचने लगे कि यहाँ मुनियोंकी सभामें यह कैसे चली आयी ! यहाँ इसका कैसे प्रवेश हुआ ? तब सनकादिने कहा—'ये भक्तिदेवी कथाके प्रभावसे ही यहाँ प्रकट हुई हैं ।' उनके ये वचन सुनकर भक्तिने अपने पुत्रोंसमेत अत्यन्त विनम्र होकर सनत्कुमारजीसे कहा ॥ ६६-६९ ॥



भक्ति बोली—मैं कलियुगमें नष्टप्राय हो गयी थी, अब आपने कथामृतसे सींचकर मुझे फिर पुष्ट कर दिया है । अब आप यह बताइये कि मैं कहाँ रहूँ ? यह सुनकर सनकादिने उससे कहा—'तुम भक्तोंको भगवान्का स्वरूप प्रदान करनेवाली, अनन्य प्रेमका सम्पादन करनेवाली और संसार-रोगको निर्मूल करनेवाली हो, अतः तुम धैर्य धारण करके नित्य-निरन्तर विष्णुभक्तोंके हृदयोंमें ही निवास करो । ये कलियुगके दोष भले ही सारे संसारपर अपना प्रभाव डालें, किन्तु वहाँ तुमपर इनकी दृष्टि भी नहीं पड़ सकेगी ।' इस प्रकार उनकी आज्ञा पाते ही भक्ति तुरंत भगवद्भक्तोंके हृदयोंमें जा विराजी ॥ ७०-७२ ॥

शौनकजी ! जिनके हृदयमें एकमात्र श्रीहरिकी भक्तिका निवास है, वे त्रिलोकीमें अत्यन्त निर्धन होनेपर भी परम धन्य हैं, क्योंकि इस भक्तिकी डोरीसे बँधकर तो साक्षात् भगवान् भी अपना परमधाम छोड़कर उनके हृदयमें आकर बस जाते हैं । भूलोकमें यह भागवत साक्षात् परब्रह्मका विग्रह है । हम इसकी महिमा कहाँतक बखान करें । इसका आश्रय लेकर इसे सुनानेसे तो सुनने और सुनानेवाले दोनोंको ही भगवान् श्रीकृष्णकी समता प्राप्त हो जाती है । अतः इसे छोड़कर अन्य धर्मोंसे क्या प्रयोजन है ? ॥ ७३-७४ ॥

हिलमिलकर रहते थे। उनके यहाँ पैसे और आरामकी चीजोंकी कमी नहीं थी, किन्तु कोई सन्तान न होनेके कारण इन घर आदिमें उन्हें कुछ सुख नहीं जान पड़ता था। जब अवस्था बहुत ढल गयी, तब उन्होंने सन्तानके लिये तरह तरहके पुण्यकर्म आरम्भ किये और वे दीन दुखियोंको गौ, पृथ्वी, सुवर्ण और वस्त्रादि दान करने लगे। इस प्रकार धर्ममार्गमें उन्होंने अपना आधा धन समाप्त कर दिया, तो भी उन्हें पुत्र या पुत्री किसीका भी सुख देखनेको न मिला। इसलिये अब वह ब्राह्मण बहुत ही चिन्तातुर रहने लगा ॥१५–२२॥

एक दिन वह ब्राह्मणदेवता बहुत दुखी होकर घरसे निकलकर वनको चल दिया। दोपहरके समय उसे प्यास लगी, इसलिये वह एक तालाबपर आया। सन्तानके दुःखने उसके शरीरको बहुत सुखा दिया था, इसलिये थक जानेके कारण जल पीकर वहीं बैठ गया। दो घड़ी बीतनेपर वहाँ एक सन्यासी महात्मा आये। जब ब्राह्मणदेवताने देखा कि वे जल पी चुके हैं, तो वह उनके पास गया और चरणोंमें नमस्कार कर सामने खड़े होकर लबी लबी साँसें लेने लगा ॥ २३–२५ ॥

सन्यासीने पूछा—कहो, ब्राह्मणदेवता ! रोते क्यों हो ? ऐसी तुम्हें क्या भारी चिन्ता है ? तुम जल्दी ही मुझे अपने दुःखका कारण बताओ ?॥ २६ ॥

ब्राह्मणने कहा—मुने ! मैं अपना दुःख क्या बताऊँ, यह सब मेरे पूर्वपापोंका फल है। मेरे कोई सन्तान नहीं है, इसलिये मैं अपने पितरोंको जो जलाञ्जलि देता हूँ, वह उनकी चिन्ताजनित साँसोंसे गर्म हो जाती है। देवता और ब्राह्मणोंको भी जो कुछ देता हूँ, उसे वे प्रसन्न मनसे नहीं लेते। सन्तानके दुःखने मेरे लिये सारा ससार सूना कर दिया है, अतएव अब यहाँ प्राण देनेके लिये आया हूँ। बिना सन्तानका जीवन धिक्कारयोग्य है, जिस घरमें बाल बच्चे नहीं हैं उसे धिक्कार है ! जिसे कोई सँभालनेवाला उत्तराधिकारी नहीं है, उस धनको धिक्कार है ! और जो कुल सन्तानसे शून्य है, उसे भी धिक्कार है ! मैं जिस गायको पालता हूँ, वह भी सर्वथा बाँझ हो जाती है, जो पेड़ लगाता हूँ, उसपर भी फल फूल नहीं लगते, यहाँतक कि मेरे घरमें जो फल आता है, वह भी बहुत जल्दी बिगड़ जाता है। कहिये, जब मैं ऐसा अभागा और पुत्रहीन हूँ तो फिर, इस जीवनको ही रखकर मुझे क्या करना है ? ॥ २७–३१ ॥

ऐसा कहकर वह ब्राह्मण दुःखसे व्याकुल हो उन सन्यासी महात्माके पास फूट फूटकर रोने लगा, तब उन यतिवरके हृदयमें बड़ी करुणा उत्पन्न हुई। वे योगनिष्ठ थे, उन्होंने उसके ललाटकी रेखाएँ देखकर सारा वृत्तान्त जान लिया और फिर उसे विस्तारपूर्वक कहने लगे ॥ ३२ ३३ ॥

संन्यासीने कहा—ब्राह्मणदेवता ! यह सन्तानका भ्रम छोड़ दो। देखो, कर्मकी गति बड़ी बलवान् होती है। तुम्हें विवेकका आश्रय लेकर ससारकी वासना छोड़ देनी चाहिये। विप्रवर ! सुनो, मैंने इस समय तुम्हारा प्रारब्ध देखकर निश्चय किया है कि सात जन्मतक तुम्हारे कोई सन्तान किसी प्रकार नहीं हो सकती। इसलिये तुम यह कुटुम्बकी ममता छोड़ दो, त्यागमें तो सब प्रकार सुख ही सुख है। इस सन्तानकी मायामें फँसकर क्या सुख पाओगे ? देखो, पूर्वकालमें राजा सगर और अङ्गको सन्तानके ही पीछे कितना कष्ट झेलना पड़ा था ? ॥ ३४–३६ ॥

ब्राह्मणने कहा—महात्माजी ! विवेकसे मुझे क्या होगा है, आप जैसे हो वैसे, मुझे तो पुत्र ही दीजिये, नहीं तो इस शोकमें पागल होकर मैं आपके सामने ही अपने प्राण त्याग दूँगा। जिसमें पुत्र-कलत्रादिका सुख नहीं है, ऐसा यह सन्यास तो सर्वथा नीरस ही है। लोकमें सरस तो पुत्र पौत्रादिसे भरा पूरा गृहस्थाश्रम ही है ॥ ३७ ३८ ॥

ब्राह्मणका ऐसा आग्रह देखकर उन तपोधनने कहा, देखो, विधाताके लेखको मिटानेका हठ करनेसे राजा चित्रकेतुको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था। इसलिये दैव जिसके उद्योगको कुचल देता है, उस पुरुषके समान तुम्हें भी पुत्रसे सुख नहीं मिल सकेगा। किन्तु क्या कहूँ ? तुमने तो बड़ा हठ पकड़ रक्खा है और बेतरह पुत्रकी माँगपर अड़े हुए हो ! ॥ ३९ ४० ॥

दूसरा अध्याय

भक्तिका दुःख दूर करनेके लिये श्रीनारदजीका उद्योग ।

नारदजीने कहा—बाले ! तू वृथा खेद करती है । अरी! इतनी चिन्तातुर क्यों है ? भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका चिन्तन कर, उनकी कृपासे तेरा सारा दुःख दूर हो जायगा । जिन्होंने कौरवोंके अत्याचारसे द्रौपदीकी रक्षा की थी और गोपसुन्दरियोंको सनाथ किया था, वे श्रीकृष्ण कहीं चले थोड़े ही गये हैं ? फिर तू भक्ति तो उन्हें सदा ही प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है; तेरे बुलानेपर तो भगवान् नीच पुरुषोंके घरोंमें भी चले जाते हैं । सत्य, त्रेता और द्वापर— इन तीन युगोंमें तो ज्ञान और वैराग्य मुक्तिके साधन थे; किन्तु इस कलियुगमें तो केवल तू भक्ति ही ब्रह्मसायुज्य (मोक्ष) की प्राप्ति करानेवाली है । ऐसा सोचकर ही परमानन्द-चिन्मूर्ति ज्ञानस्वरूप श्रीहरिने अपने सत्स्वरूपसे तुझे रचा है; तू साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रिया और परम सुन्दरी है । एक बार जब तूने हाथ जोड़कर पूछा था कि 'मैं क्या करूँ ?' तो भगवान्ने तुझे यही आज्ञा दी थी कि 'मेरे भक्तोंका पोषण कर ।' तूने भगवान्की वह आज्ञा स्वीकार कर ली; इससे तुझपर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए और तेरी सेवा करनेके लिये मुक्तिको तुझे दासीरूपमें दिया और इन ज्ञान-वैराग्यको पुत्ररूपमें । तू अपने साक्षात् स्वरूपसे तो वैकुण्ठधाममें ही भक्तोंका पोषण करती है; भूलोकमें तो तूने उनकी पुष्टिके लिये केवल छायारूप धारण कर रक्खा है ॥ १–८ ॥

तब तू मुक्ति, ज्ञान और वैराग्यको साथ लिये पृथ्वीतल-पर आयी और सत्ययुगसे द्वापरपर्यन्त बड़े आनन्दमें रही । कलियुगमें तेरी दासी मुक्ति पाखण्डरूप रोगसे पीड़ित होकर क्षीण होने लगी थी; इसलिये वह तो तुरंत ही तेरी आज्ञासे वैकुण्ठलोकको चली गयी । इस लोकमें भी तेरे स्मरण करनेसे ही वह आती है और फिर चली जाती है । किन्तु इन ज्ञान-वैराग्यको तूने पुत्र मानकर अपने पास ही रख छोड़ा था; फिर भी कलियुगमें इनकी उपेक्षा होनेके कारण तेरे ये पुत्र उत्साहहीन और वृद्ध हो गये हैं । तो भी तू चिन्ता न कर, मैं इनके उद्धारका उपाय सोचता हूँ । सुमुखि ! कलिके समान तो कोई भी युग नहीं है; इस युगमें मैं तुझे घर-घरमें प्रत्येक पुरुषके हृदयमें स्थापित कर दूँगा । देख, अन्य सारे धर्मोंको दबाकर यदि धड़ल्लेके साथ मैंने तेरा प्रचार न किया तो मैं श्रीहरिका दास ही नहीं । कलियुगमें जिन जीवोंपर तेरी कृपा होगी, वे यदि पापी भी होंगे तो भी बेधड़क भगवान् श्रीकृष्णके अभय धाममें चले जायँगे । जिनके हृदयमें निरन्तर प्रेमरूपिणी भक्ति निवास करती है, वे पवित्रमूर्ति स्वप्नमें भी यमराजका मुँह नहीं देखते । जिनके हृदयमें भक्ति-महारानीका निवास है, उन्हें प्रेत, पिशाच, राक्षस या दैत्य आदिकी तो स्पर्श करनेकी भी हिम्मत नहीं हो सकती । भगवान् तप, वेदाध्ययन, ज्ञान और कर्म आदि किसी भी साधनसे वशमें नहीं किये जा सकते; वे केवल भक्तिसे ही वशीभूत होते हैं । इसमें श्रीगोपीजन प्रमाण हैं । मनुष्योंका सहस्रों जन्मोंके पुण्यसे भक्तिमें अनुराग होता है । कलियुगमें तो भक्ति ही सार है, भक्ति ही सार है ! भक्तिसे तो साक्षात् श्रीकृष्णचन्द्र सामने उपस्थित हो जाते हैं । जो लोग भक्तिसे द्रोह करते हैं, उन्हें तो तीनों लोकोंमें कहीं शान्ति नहीं मिल सकती । देखो, पूर्वकालमें भक्तका तिरस्कार करनेवाले दुर्वासा ऋषिको कितना कष्ट उठाना पड़ा था । व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ और ज्ञानचर्चा आदि बहुत-से साधनोंकी क्या आवश्यकता है ? मुक्ति तो केवल भक्तिसे ही मिल जाती है ॥ ९—२१ ॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार नारदजीके निर्णय किये हुए अपने माहात्म्यको सुनकर भक्तिके सारे अङ्ग पुष्ट हो गये, उनमें बल आ गया और वह उनसे कहने लगी ॥२२॥

भक्तिने कहा—नारदजी ! आप धन्य हैं । आपकी मुझमें निश्चल प्रीति है । मैं सदा आपके हृदयमें रहूँगी, कभी आपको छोड़कर नहीं जाऊँगी । साधो ! आप बड़े कृपालु हैं । आपने एक क्षणमें ही मेरा सारा दुःख दूर कर दिया । किन्तु अभी मेरे पुत्रोंमें चेतना नहीं आयी है; आप कृपा करके इन्हें भी शीघ्र ही सचेत कर दीजिये ॥ २३-२४ ॥

सूतजी कहते हैं—भक्तिके ये वचन सुनकर नारदजीको बड़ी करुणा आयी और वे उन्हें हाथसे हिला-डुलाकर जगाने लगे । फिर उनके कानके पास मुँह लगाकर जोरसे कहा, 'ओ ज्ञान ! जल्दी जग पड़ो; ओ वैराग्य ! जल्दी जग पड़ो ।' फिर उन्होंने वेदध्वनि, वेदान्तघोष और बार-बार गीतापाठ करके उन्हें जगाया । इससे वे जैसे-तैसे बहुत जोर लगाकर उठे । किन्तु आलस्यके कारण वे दोनों जँभाई लेते रहे, नेत्र

बालक हुआ था, वह मर गया है; उसे बुलाकर अपने यहाँ रख लें तो वह आपके इस बच्चेका पालन पोषण कर सकती है।' तब पुत्रकी रक्षाके लिये आत्मदेवने वैसा ही किया तथा माता धुन्धुलीने उस बालकका नाम धुन्धुकारी रखा ॥५६–६१॥



तीन महीने बीत जानेपर उस गौके भी एक मनुष्याकार बच्चा हुआ। वह सर्वाङ्गसुन्दर, दिव्य, निर्मल तथा सुवर्णकी-सी कान्तिवाला था। उसे देखकर ब्राह्मणदेवताको बड़ा आनन्द हुआ और उसने स्वयं ही उसके सब संस्कार किये। इस समाचारसे और सब लोगोंको भी बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बालकको देखनेके लिये आये तथा आपसमें कहने लगे, 'देखो भाई! अब आत्मदेवका कैसा भाग्य उदय हुआ है! कैसे आश्चर्यकी बात है कि गौके भी ऐसा दिव्यरूप बालक उत्पन्न हुआ है।' दैवयोगसे इस गुप्त रहस्यका किसीको भी पता न लगा। आत्मदेवने उस बालकके गौके से कान देखकर उसका नाम 'गोकर्ण' रखा ॥ ६२–६५ ॥

कुछ काल बीतनेपर वे दोनों बालक जवान हो गये। उनमें गोकर्ण तो बड़ा पण्डित और ज्ञानी हुआ, किन्तु धुन्धुकारी बड़ा ही दुष्ट निकला। स्नान शौचादि ब्राह्मणोचित आचारोंका उसमें नाम भी न था, और न खान-पानका ही कोई परहेज था। क्रोध उसमें बहुत बढ़ा-चढ़ा था। वह बुरी बुरी वस्तुओंका संग्रह किया करता था। मुर्देके हाथसे छुआया हुआ भी अन्न खा लेता था। दूसरोंकी चोरी करना और सब लोगोंसे द्वेष बढ़ाना उसका स्वभाव बन गया था। छिपे छिपे वह दूसरोंके घरोंमें आग लगा देता था। दूसरोंके बालकोंको खेलानेके लिये गोदमें लेता और उन्हें चट कुएँमें डाल देता। हिंसाका उसे व्यसन-सा हो गया था। हर समय वह अस्त्र शस्त्र धारण किये रहता और बेचारे अन्धे और दीन दुखियोंको व्यर्थ तंग करता। चाण्डालोंसे उसका विशेष प्रेम था; बस, हाथमें फन्दा लिये कुत्तोंकी टोलीके साथ शिकारकी टोहमें घूमता रहता। वेश्याओंके जालमें फँसकर उसने अपने पिताकी सारी सम्पत्ति बर्बाद कर दी। एक दिन माता पिताको मार-पीटकर घरके सब बर्तन भाँडे उठा ले गया ॥ ६६–७० ॥

इस प्रकार जब सारी सम्पत्ति स्वाहा हो गयी, तो बेचारा बाप फूट फूटकर रोने लगा और बोला—'इससे तो इसकी माँका बाँझ रहना ही अच्छा था, कुपुत्र तो बड़ा ही दुःखदायी होता है। अब मैं कहाँ रहूँ? कहाँ जाऊँ? मेरे इस सङ्कटको कौन काटेगा? हाय! मेरे ऊपर तो बड़ी विपत्ति है, इसके कारण अवश्य मुझे एक दिन प्राण छोड़ने पड़ेंगे।' इसी



समय परम ज्ञानी गोकर्णजी वहाँ आये और उन्होंने पिताको वैराग्यका उपदेश करते हुए बहुत समझाया। वे बोले, 'पिताजी! सच मानिये, इस संसारमें कुछ भी सार नहीं है।

किये हैं; किन्तु वे सभी कष्टसाध्य हैं और परिणाममें प्रायः स्वर्गकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं। अभीतक भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला मार्ग तो गुप्त ही रहा है। उसका उपदेश करनेवाला पुरुष तो प्रायः भाग्यसे ही मिलता है। आपको आकाशवाणीने जिस सत्कर्मका संकेत किया है, उसे हम बतलाते हैं; आप प्रसन्न और समाहितचित्त होकर सुनिये ॥५३—५८॥

नारदजी! द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ और स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ—ये सब तो स्वर्गादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्मकी ही ओर संकेत करते हैं। पण्डितोंने ज्ञानयज्ञको ही सत्कर्म (मुक्तिदायक कर्म) का सूचक माना है। वह श्रीमद्भागवतका पारायण है, जिसका निरूपण शुकादि महानुभावोंने किया है। उसके शब्द सुननेसे ही भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बड़ा बल मिलेगा। इससे ज्ञान-वैराग्यका कष्ट मिट जायगा और भक्तिको आनन्द मिलेगा। देखिये, सिंहकी गर्जना सुनकर जैसे भेड़िये भाग जाते हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी ध्वनिसे ही कलियुगके सारे दोष दूर हो जायँगे। तब प्रेमरसको बहानेवाली भक्ति ज्ञान और वैराग्यसमेत प्रत्येक घर और प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें क्रीड़ा करेगी—सभी जगह इसका खूब प्रचार हो जायगा ॥ ५९—६३ ॥

नारदजी बोले—मैंने वेद-वेदान्तकी ध्वनि और गीता-पाठ करके उन्हें बहुत जगाया, किन्तु फिर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जग सके। ऐसी स्थितिमें श्रीमद्भागवत सुनानेसे वे कैसे सचेत हो सकेंगे? क्योंकि उस कथाके प्रत्येक श्लोक और प्रत्येक पदमें भी वेदोंका ही तो सारांश है। आपलोग शरणागतवत्सल हैं तथा आपका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं होता; इसलिये मेरा यह सन्देह दूर कर दीजिये, इस कार्यमें विलम्ब न कीजिये ॥ ६४—६६ ॥

सनकादिने कहा—श्रीमद्भागवतकी कथा वेद और उपनिषदोंके सारसे बनी है। इसलिये उनसे अलग उनकी फलरूपा होनेके कारण यह बड़ी उत्तम जान पड़ती है। जिस प्रकार रस वृक्षकी जड़से लेकर शाखाग्र पर्यन्त रहता है, किन्तु इस स्थितिमें उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता; वही जब अलग होकर फलके रूपमें आ जाता है, तो संसारमें सभीको प्रिय लगने लगता है। दूधमें घी रहता ही है, किन्तु उस समय उसका अलग स्वाद नहीं मिलता; वही जब उससे अलग हो जाता है, तो देवताओंके लिये भी स्वादवर्धक हो जाता है। खाँड ईखके ओर-छोर और बीचमें भी व्याप्त है ही, तथापि अलग होनेपर उसकी कुछ और ही मिठास होती है। ऐसी ही यह भागवतकी कथा है। यह भागवत-पुराण वेदोंके समान माना गया है। श्रीव्यासदेवने इसे भक्ति और ज्ञान-वैराग्यकी स्थापनाके लिये ही प्रकाशित किया है। पूर्वकालमें जिस समय वेद-वेदान्तके पारगामी और गीताकी भी रचना करनेवाले भगवान् व्यासदेव खिन्न होकर अज्ञान-समुद्रमें गोते खा रहे थे, उस समय आपहीने उन्हें चार श्लोकोंमें इसका उपदेश किया था। उसे सुनते ही उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी थी। फिर इसमें आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है, जो आप हमसे प्रश्न कर रहे हैं? आपको उन्हें शोक और दुःखकी निवृत्ति करनेवाला श्रीमद्भागवतपुराण ही सुनाना चाहिये ॥ ६७–७४ ॥

श्रीनारदजी बोले—महानुभावो! आपका दर्शन जीवके सम्पूर्ण पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है और जो संसार-दुःखरूप दावानलसे तपे हुए हैं, उनपर शीघ्र ही शान्तिकी वर्षा करता है। आप निरन्तर शेषजीके सहस्रमुखोंसे भगवत्कथामृतका पान करते रहते हैं। मैं प्रेमलक्षणा भक्तिका प्रकाश करनेके उद्देश्यसे आपकी शरण लेता हूँ। जब अनेकों जन्मोंके सञ्चित पुण्य-पुञ्जका उदय होनेसे मनुष्यको सत्सङ्ग मिलता है, तभी उसके अज्ञानजनित मोह और मदरूप अन्धकारका नाश करके विवेक उदय होता है ॥ ७५-७६ ॥

तीसरा अध्याय

भक्तिके कष्टकी निवृत्ति

नारदजी कहते हैं—अच्छा, तो अब मैं भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको स्थापित करनेके लिये प्रयत्नपूर्वक श्रीशुकदेवजीके कहे हुए भागवतशास्त्रकी कथाद्वारा उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ करूँगा। यह यज्ञ मुझे कहाँ करना चाहिये, आप इसके लिये कोई स्थान बता दीजिये। आप लोग वेदके पारगामी हैं, इसलिये मुझे इस शुकशास्त्रकी कुछ महिमा भी सुनाइये। इसके सिवा यह भी बताइये कि इसकी कथा कितने दिनोंमें सुनानी चाहिये और उसके सुननेकी विधि क्या है ॥ १–३ ॥

सनकादि बोले—नारदजी! आप बड़े विनीत और विवेकी हैं। सुनिये, हम आपको ये सब बातें बताते हैं। हरिद्वारके पास आनन्द नामका एक घाट है। वहाँ अनेकों ऋषि रहते हैं तथा देवता और सिद्धलोग भी उसका सेवन

करना चाहिये। जो मूर्ख इनका विश्वास करता है, उसे अवश्य आपत्तियोंके पंजेमें फँसना पड़ता है। इनकी वाणी तो अमृतके समान कामियोंके हृदयमें रसका सञ्चार करती है, किन्तु हृदय छुरेकी धारके समान तीखा होता है। भला, इन स्त्रियोंका कौन प्रिय है ? ॥ ४–१५ ॥

इसके बाद वे वेश्याएँ धुन्धुकारीका सारा माल मता लेकर वहाँसे चपत हो गयीं, उनके ऐसे न जाने कितने पति थे। और धुन्धुकारी अपने कुकर्मोंके कारण भयङ्कर प्रेत हुआ। वह बवंडरके रूपमें सर्वदा दसों दिशाओंमें भटकता रहता था तथा शीत घामसे सन्तप्त और भूख प्याससे व्याकुल होनेके कारण 'हा दैव ! हा दैव !' चिल्लाता रहता था। परन्तु उसे कहीं भी कोई आश्रय न मिला। कुछ काल बीतनेपर गोकर्णने भी लोगोंके मुखसे धुन्धुकारीके मारे जानेका समाचार सुना। तब उसे अनाथ समझकर उन्होंने उसका गयाजीमें श्राद्ध किया, और भी जहाँ जहाँ वे जाते थे उसका श्राद्ध अवश्य करते थे ॥ १६–१९ ॥

इस प्रकार घूमते घूमते गोकर्णजी अपने नगरमें आये और रात्रिके समय दूसरोंकी दृष्टिसे बचकर सीधे अपने घरके आँगनमें सोनेके लिये पहुँचे। वहाँ अपने भाईको सोया देख आधी रातके समय धुन्धुकारीने अपना बड़ा विकट रूप दिखाया। वह कभी मेंढा, कभी हाथी, कभी भैंसा, कभी इन्द्र और कभी अग्निका रूप धारण करता। अन्तमें वह मनुष्यके आकारमें प्रकट हुआ। ये विपरीत अवस्थाएँ देखकर गोकर्ण समझ गये कि यह कोई दुर्गतिको प्राप्त हुआ जीव है। ऐसा निश्चय कर उन्होंने उससे धैर्यपूर्वक पूछा ॥ २०–२३ ॥

गोकर्ण बोले—क्यों भाई, तू कौन है ? रात्रिके समय ऐसे भयानक रूप क्यों दिखा रहा है ? तेरी यह दशा कैसे हुई ? हमें बता तो सही, तू प्रेत है, पिशाच है अथवा कोई राक्षस है ? ॥ २४ ॥

सूतजी कहते हैं—गोकर्णके इस प्रकार पूछनेपर वह बार-बार जोर जोरसे रोने लगा। उसमें बोलनेकी शक्ति नहीं थी, इसलिये उसने केवल संकेतमात्र किया। तब गोकर्णने अञ्जलिमें जल लेकर उसे अभिमन्त्रित करके उसपर छिड़का। इससे उसके पापोंका कुछ शमन हुआ और वह इस प्रकार कहने लगा ॥ २५ २६ ॥

प्रेत बोला—मैं तुम्हारा भाई धुन्धुकारी हूँ। मैंने अपने ही दोषसे अपना ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया। मेरे कुकर्मोंकी गिनती नहीं की जा सकती। मैं तो महान् अज्ञानमें चक्कर काट रहा था। इसीसे मैंने लोगोंकी बड़ी हिंसा की। अन्तमें कुलटा स्त्रियोंने मुझे तड़पा-तड़पाकर मार डाला। इसीसे अब प्रेत-योनिमें पड़कर यह दुर्दशा भोग रहा हूँ। अब दैवाधीन कर्मफलका उदय होनेसे मैं केवल वायुभक्षण करके जी रहा हूँ। भाई ! तुम दयाके समुद्र हो, अब किसी प्रकार जल्दी ही मुझे इस योनिसे छुड़ाओ। तब गोकर्णने धुन्धुकारीकी सारी बातें सुनकर उससे कहा ॥ २७–३० ॥

गोकर्ण बोले—भाई ! बड़े आश्चर्यकी बात है, मैंने तुम्हारे लिये विधिपूर्वक गयाजीमें पिण्डदान किया था, फिर भी तुम प्रेतयोनिसे मुक्त कैसे नहीं हुए ? यदि गया श्राद्धसे भी तुम्हारी मुक्ति नहीं हुई, तब इसका और कोई उपाय नहीं है। अच्छा, तुम सब बात खोलकर कहो, मुझे अब क्या करना चाहिये ? ॥ ३१ ३२ ॥

प्रेतने कहा—भाई ! मेरी मुक्ति सैकड़ों गया श्राद्ध करनेसे भी नहीं हो सकती। अब तो तुम इसका कोई और उपाय सोचो ॥ ३३ ॥

प्रेतकी यह बात सुनकर गोकर्णको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कहने लगे—'यदि सैकड़ों गया श्राद्धोंसे भी तुम्हारी मुक्ति नहीं हो सकती, तब तो तुम्हारी मुक्ति असम्भव ही है। अच्छा, अभी तो तुम निर्भय होकर अपने स्थानपर रहो, मैं विचार करके तुम्हारी मुक्तिके लिये कोई दूसरा उपाय करूँगा' ॥ ३४ ३५ ॥

गोकर्णकी आज्ञा पाकर धुन्धुकारी वहाँसे अपने स्थानपर चला आया। इधर गोकर्णने रातभर विचार किया, तब भी उन्हें कोई उपाय न सूझा। प्रातःकाल होनेपर जब लोगोंको उनके आनेकी खबर मिली, तो वे प्रेमवश उनसे मिलने आये। तब गोकर्णने रातमें जो कुछ हुआ था, वह सब उन्हें सुना दिया। उनमें जो लोग विद्वान्, योगनिष्ठ, ज्ञानी और वेदज्ञ थे, उन्होंने भी अनेकों शास्त्रोंको उलट-पलटकर देखा, तो भी उसकी मुक्तिका कोई उपाय न मिला। तब सबने यही निश्चय किया कि इस विषयमें सूर्यनारायण जो आज्ञा करें वही करना चाहिये। अतः गोकर्णने अपने तपोबलसे सूर्यकी गतिको रोककर प्रार्थना की—'भगवन् ! आप सारे संसारके साक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मुझे कृपा करके धुन्धुकारीकी मुक्तिका साधन बताइये।' यह सुनकर

किये हैं; किन्तु वे सभी कष्टसाध्य हैं और परिणाममें प्रायः स्वर्गकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं। अभीतक भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला मार्ग तो गुप्त ही रहा है। उसका उपदेश करनेवाला पुरुष तो प्रायः भाग्यसे ही मिलता है। आपको आकाशवाणीने जिस सत्कर्मका संकेत किया है, उसे हम बतलाते हैं; आप प्रसन्न और समाहितचित्त होकर सुनिये ॥५३—५८॥

नारदजी! द्रव्ययज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ और स्वाध्यायरूप ज्ञानयज्ञ—ये सब तो स्वर्गादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्मकी ही ओर संकेत करते हैं। पण्डितोंने ज्ञानयज्ञको ही सत्कर्म (मुक्तिदायक कर्म) का सूचक माना है। वह श्रीमद्भागवतका पारायण है, जिसका निरूपण शुकादि महानुभावोंने किया है। उसके शब्द सुननेसे ही भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको बड़ा बल मिलेगा। इससे ज्ञान-वैराग्यका कष्ट मिट जायगा और भक्तिको आनन्द मिलेगा। देखिये, सिंहकी गर्जना सुनकर जैसे भेड़िये भाग जाते हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवतकी ध्वनिसे ही कलियुगके सारे दोष दूर हो जायँगे। तब प्रेमरसको बहानेवाली भक्ति ज्ञान और वैराग्यसमेत प्रत्येक घर और प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें क्रीड़ा करेगी—सभी जगह इसका खूब प्रचार हो जायगा ॥ ५९—६३ ॥

नारदजी बोले—मैंने वेद-वेदान्तकी ध्वनि और गीता-पाठ करके उन्हें बहुत जगाया, किन्तु फिर भी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य—ये तीनों नहीं जग सके। ऐसी स्थितिमें श्रीमद्भागवत सुनानेसे वे कैसे सचेत हो सकेंगे? क्योंकि उस कथाके प्रत्येक श्लोक और प्रत्येक पदमें भी वेदोंका ही तो सारांश है। आपलोग शरणागतवत्सल हैं तथा आपका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं होता; इसलिये मेरा यह सन्देह दूर कर दीजिये, इस कार्यमें विलम्ब न कीजिये ॥ ६४—६६ ॥

सनकादिने कहा—श्रीमद्भागवतकी कथा वेद और उपनिषदोंके सारसे बनी है। इसलिये उनसे अलग उनकी फलरूपा होनेके कारण यह बड़ी उत्तम जान पड़ती है। जिस प्रकार रस वृक्षकी जड़से लेकर शाखाग्र पर्यन्त रहता है, किन्तु इस स्थितिमें उसका आस्वादन नहीं किया जा सकता; वही जब अलग होकर फलके रूपमें आ जाता है, तो संसारमें सभीको प्रिय लगने लगता है। दूधमें घी रहता ही है, किन्तु उस समय उसका अलग स्वाद नहीं मिलता; वही जब उससे अलग हो जाता है, तो देवताओंके लिये भी स्वादवर्धक हो जाता है। खाँड ईखके ओर-छोर और बीचमें भी व्याप्त है ही, तथापि अलग होनेपर उसकी कुछ और ही मिठास होती है। ऐसी ही यह भागवतकी कथा है। यह भागवत-पुराण वेदोंके समान माना गया है। श्रीव्यासदेवने इसे भक्ति और ज्ञान-वैराग्यकी स्थापनाके लिये ही प्रकाशित किया है। पूर्वकालमें जिस समय वेद-वेदान्तके पारगामी और गीताकी भी रचना करनेवाले भगवान् व्यासदेव खिन्न होकर अज्ञान-समुद्रमें गोते खा रहे थे, उस समय आपहीने उन्हें चार श्लोकोंमें इसका उपदेश किया था। उसे सुनते ही उनकी सारी चिन्ता दूर हो गयी थी। फिर इसमें आपको आश्चर्य क्यों हो रहा है, जो आप हमसे प्रश्न कर रहे हैं? आपको उन्हें शोक और दुःखकी निवृत्ति करनेवाला श्रीमद्भागवतपुराण ही सुनाना चाहिये ॥ ६७—७४ ॥

श्रीनारदजी बोले—महानुभावो! आपका दर्शन जीवके सम्पूर्ण पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है और जो संसार-दुःखरूप दावानलसे तपे हुए हैं, उनपर शीघ्र ही शान्तिकी वर्षा करता है। आप निरन्तर शेषजीके सहस्रमुखोंसे भगवत्कथामृतका पान करते रहते हैं। मैं प्रेमलक्षणा भक्तिका प्रकाश करनेके उद्देश्यसे आपकी शरण लेता हूँ। जब अनेकों जन्मोंके सञ्चित पुण्य-पुञ्जका उदय होनेसे मनुष्यको सत्सङ्ग मिलता है, तभी उसके अज्ञानजनित मोह और मदरूप अन्धकारका नाश करके विवेक उदय होता है ॥ ७५-७६ ॥

तीसरा अध्याय

भक्तिके कष्टकी निवृत्ति

नारदजी कहते हैं—अच्छा, तो अब मैं भक्ति, ज्ञान और वैराग्यको स्थापित करनेके लिये प्रयत्नपूर्वक श्रीशुकदेवजीके कहे हुए भागवतशास्त्रकी कथाद्वारा उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ करूँगा। यह यज्ञ मुझे कहाँ करना चाहिये, आप इसके लिये कोई स्थान बता दीजिये। आप लोग वेदके पारगामी हैं, इसलिये मुझे इस शुकशास्त्रकी कुछ महिमा भी सुनाइये। इसके सिवा यह भी बताइये कि इसकी कथा कितने दिनोंमें सुनानी चाहिये और उसके सुननेकी विधि क्या है ॥ १—३ ॥

सनकादि बोले—नारदजी! आप बड़े विनीत और विवेकी हैं। सुनिये, हम आपको ये सब बातें बताते हैं। हरिद्वारके पास आनन्द नामका एक घाट है। वहाँ अनेकों ऋषि रहते हैं तथा देवता और सिद्धलोग भी उसका सेवन

धुन्धुकारीका उद्धार



धुन्धुकारी प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया और दिव्यरूप धारण करके प्रकट हुआ ।

तुलसी, वसन्त ऋतु और भगवान् पुरुषोत्तम—इन सबमें बुद्धिमान् लोग वस्तुतः कोई अन्तर नहीं मानते। जो पुरुष अहर्निश अर्थसहित श्रीमद्भागवतका पाठ करता है, उसके करोड़ों जन्मोंका पाप नष्ट हो जाता है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो पुरुष नित्यप्रति भागवतका आधा या चौथाई श्लोक भी पढ़ता है, उसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंका फल मिलता है। नित्य भागवतका पाठ करना, भगवान्‌का चिन्तन करना, तुलसीको सींचना और गौकी सेवा करना—ये चारों समान हैं। जो पुरुष अन्तसमयमें श्रीमद्भागवतका वाक्य सुन लेता है, उसपर प्रसन्न होकर भगवान् उसे वैकुण्ठधामतक दे डालते हैं। जो पुरुष इसे सोनेके सिंहासनपर रखकर विष्णुभक्तको दान करता है, वह अवश्य ही भगवान्‌का सायुज्य प्राप्त करता है ॥३३—४१॥

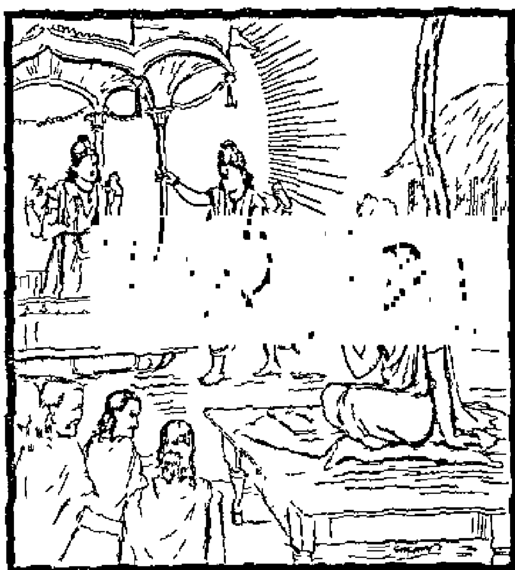
जिस दुष्टने अपनी सारी आयुमें चित्तको एकाग्र करके श्रीमद्भागवतामृतका थोड़ा-सा भी रसास्वादन नहीं किया, उसने तो अपना सारा जन्म चाण्डाल और गधेके समान व्यर्थ ही गँवा दिया, वह तो अपनी माताको प्रसव-पीड़ा पहुँचानेके लिये ही उत्पन्न हुआ। 'जिसने इस शुकशास्त्रके थोड़े-से भी वचन नहीं सुने, वह पापात्मा तो जीता हुआ ही मुर्देके समान है। पृथ्वीके भारस्वरूप उस पशुतुल्य मनुष्यको धिक्कार है' —ऐसा स्वर्गलोकमें देवताओंमें प्रधान इन्द्रादि कहा करते हैं ॥ ४२-४३ ॥

संसारमें श्रीमद्भागवतकी कथाका मिलना अवश्य ही कठिन है; जब करोड़ों जन्मोंका पुण्य होता है, तभी इसकी प्राप्ति होती है। इसलिये योगनिधि बुद्धिमान् नारदजी! इस भागवत-कथाका प्रयत्नपूर्वक श्रवण करना चाहिये। इसे सुननेके लिये दिनोंका कोई नियम नहीं है, इसे तो सर्वदा ही सुनना अच्छा है। इसे सत्यभाषण और ब्रह्मचर्यपालनपूर्वक सर्वदा ही सुनना श्रेष्ठ माना गया है। किन्तु कलियुगमें ऐसा होना कठिन है; इसलिये इसकी शुकदेवजीने जो विशेष विधि बतायी है, वह जान लेनी चाहिये। कलियुगमें बहुत दिनोंतक चित्तकी वृत्तियोंको काबूमें रखना, नियमोंमें बँधे रहना और किसी पुण्यकार्यके लिये दीक्षित रहना कठिन है; इसलिये इस समय सप्ताहश्रवणकी विधि है। श्रद्धापूर्वक कभी भी श्रवण करनेसे अथवा माघमासमें श्रवण करनेसे जो फल होता है, वही फल श्रीशुकदेवजीने सप्ताह-श्रवणमें बताया है। मनके असंयम, रोगोंकी बहुलता और आयुकी अल्पताके कारण तथा कलियुगमें अनेकों दोषोंकी सम्भावनासे ही सप्ताहश्रवणका विधान किया गया है। जो फल तप, योग और समाधिसे भी प्राप्त नहीं हो सकता, वह सर्वाङ्गरूपमें सप्ताहश्रवणसे सहजहीमें मिल जाता है। सप्ताहश्रवण यज्ञसे बढ़कर है, व्रतसे बढ़कर है, तपसे कहीं बढ़कर है, तीर्थसेवनसे तो सदा ही बड़ा है, योगसे बढ़कर है—यहाँतक कि ध्यान और ज्ञानसे भी बढ़कर है, अजी! इसकी विशेषताका कहाँतक वर्णन करें, यह तो सभीसे बढ़-चढ़कर है ॥ ४४—५२ ॥

शौनकजीने पूछा—सूतजी! यह तो आपने बड़े आश्चर्यकी बात कही। अवश्य ही यह भागवतपुराण योगवेत्ता ब्रह्माजीके भी आदिकारण श्रीनारायणका निरूपण करता है; परन्तु यह मोक्षकी प्राप्तिमें ज्ञानादि सभी साधनोंका तिरस्कार करके इस युगमें उनसे भी कैसे बढ़ गया? ॥ ५३ ॥

सूतजीने कहा—शौनकजी! जब भगवान् श्रीकृष्ण इस धराधामको छोड़कर अपने नित्यधामको जाने लगे, तब उनके मुखारविन्दसे एकादश स्कन्धका ज्ञानोपदेश सुनकर भी उद्धवजीने पूछा ॥ ५४ ॥

उद्धवजी बोले—गोविन्द! अब आप तो अपने भक्तोंका कार्य करके परमधामको पधारना चाहते हैं; किन्तु मेरे मनमें एक बड़ी चिन्ता है। उसे सुनकर आप मुझे शान्त कीजिये। देखिये, अब घोर कलिकाल आया ही चाहता है, इसलिये संसारमें फिर अनेकों दुष्ट प्रकट हो जायँगे, उनके संसर्गसे जब अनेकों सत्पुरुष भी उग्र प्रकृतिके हो जायँगे, तब उनके भारसे दबकर यह गोरूपिणी पृथ्वी किसकी शरणमें जायगी? कमलनयन! मुझे तो आपको छोड़कर इसकी रक्षा करनेवाला कोई दिखायी नहीं देता। इसलिये भक्तवत्सल! आप साधुओंपर कृपा करके यहाँसे मत जाइये। भगवन्! आपने निराकार और चिन्मात्र होकर भी भक्तोंके लिये ही तो यह सगुण रूप धारण किया है। फिर भला, आपका वियोग होनेपर वे



जिस समय धुन्धुकारी ये सब बातें कह रहा था, उसके लिये वैकुण्ठवासी पार्षदोंके सहित एक विमान उतरा, उससे सब ओर मण्डलाकार प्रकाश फैल रहा था। वहाँ सब लोगोंके सामने ही धुन्धुकारी उस विमानपर चढ गया। तब उस विमानपर आये हुए पार्षदोंको देखकर उनसे गोकर्णने पूछा ॥ ६७-६८ ॥

गोकर्ण बोले—भगवान्‌के प्रिय पार्षदो! यहाँ तो हमारे अनेकों शुद्धहृदय श्रोतागण हैं, उन सबके लिये आप लोग एक साथ बहुत-से विमान क्यों नहीं लाये? हम देखते हैं कि यहाँ सभीने समानरूपसे कथा सुनी है, फिर फलमें इस प्रकारका भेद क्यों हुआ? ॥ ६९-७० ॥

भगवान्‌के सेवकोंने कहा—हे मानद! इस फल-भेदका कारण इनके श्रवणका भेद ही है। यह ठीक है कि श्रवण तो सबने समानरूपसे ही किया है, किन्तु इसके जैसा मनन नहीं किया। इसीसे एक साथ भजन करनेपर भी उसके फलमें भेद रहा। इस प्रेतने सात दिनोंतक निराहार रहकर श्रवण किया था, तथा उसका स्थिरचित्तसे यह खूब मनन-निदिध्यासन भी करता रहता था। देखो, जो ज्ञान दृढ नहीं होता, वह व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार ध्यान न देनेसे श्रवणका, सन्देहसे मन्त्रका और चित्तके इधर-उधर भटकते रहनेसे जपका भी कोई फल नहीं होता। जहाँ कोई विष्णुभक्त नहीं होता, वह देश नष्ट हो जाता है, कुपात्र ब्राह्मणसे कराया हुआ श्राद्ध व्यर्थ हो जाता है, अश्रोत्रियको दिये हुए दानका कोई फल नहीं होता और अनाचारसे कुलका नाश हो जाता है। यदि गुरुके वचनोंमें विश्वास रखा जाय, अपनेमें दीनताकी भावना हो, मनके दोषोंपर काबू रखा जाय और कथामें दृढ निष्ठा हो, तभी इस कथाके श्रवण करनेसे पूरा फल मिल सकता है। फिर तो श्रवण समाप्त होनेपर निश्चय ही सबको वैकुण्ठका वास मिलेगा। और गोकर्णजी! आपको तो भगवान् स्वयं आकर गोलोकधाममें ले जायँगे। ऐसा कहकर वे सब पार्षद हरिकीर्तन करते वैकुण्ठलोकको चले गये ॥ ७१-७७ ॥

श्रावण मासमें गोकर्णजीने फिर उसी प्रकार सप्ताहक्रमसे कथा कही और उन श्रोताओंने उसे फिर सुना। नारदजी! इस कथाकी समाप्तिपर जो कुछ हुआ सो सुनिये। वहाँ अनेकों विमान और भक्तोंके सहित भगवान् प्रकट हो गये। तब सब ओरसे खूब जय-जयकार और नमस्कारकी ध्वनियाँ होने लगीं। भगवान् स्वयं हर्षित होकर अपने पाञ्चजन्य शङ्खकी ध्वनि करने लगे और उन्होंने गोकर्णको हृदयसे लगाकर अपने ही समान बना लिया। इसके पश्चात् उन्होंने क्षणभरमें ही अन्य सब श्रोताओंको भी मेघके समान श्यामवर्ण, रेशमी पीताम्बरधारी तथा किरीट और कुण्डलादिसे विभूषित कर दिया। उस गाँवमें कुत्ते और चाण्डालपर्यन्त जितने भी जीव थे, वे सभी गोकर्णजीकी कृपासे विमानोंपर चढा लिये गये और जहाँ योगिजन जाते हैं, उस भगवद्धाममें भेज दिये गये। इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उनके कथाश्रवणसे प्रसन्न होकर गोकर्णजीको साथ ले अपने ग्वालबालोंके प्रिय गोलोकधामको चले गये। पूर्वकालमें जैसे अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामके साथ साकेतधाम सिधारे थे, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण उन सबको गोलोकधाममें ले गये, जो बड़े-बड़े योगियोंको भी दुर्लभ है। जिस लोकमें सूर्य, चन्द्रमा और सिद्धोंकी भी कभी गति नहीं हो सकती, उसमें वे श्रीमद्भागवत श्रवण करनेसे चले गये ॥ ७८-८६ ॥

नारदजी! सप्ताहयज्ञके द्वारा कथा श्रवण करनेसे जैसा उज्ज्वल फल सञ्चित होता है, उसके विषयमें हम आपसे क्या कहें? अजी! जिन्होंने अपने कर्णपुटसे गोकर्णजीकी कथाके एक अक्षरका भी पान किया था, वे फिर माताके गर्भमें नहीं आये। लोग जो गति वायु, जल या पत्ते खाकर शरीर सुखानेसे, बहुत कालतक घोर तपस्या करनेसे और योगाभ्याससे भी नहीं पा सकते, उसे वे सप्ताहश्रवणसे सहज हीमें प्राप्त कर लेते हैं। इस परम पवित्र इतिहासको चित्रकूट

चौथा अध्याय

कथामें भगवान्‌का प्रादुर्भाव तथा गोकर्णोपाख्यानका प्रारम्भ

सूतजी बोले—मुनिवर ! इस समय अपने भक्तोंके चित्तोंमें अलौकिकी भक्तिका प्रादुर्भाव हुआ देख भक्तवत्सल श्रीभगवान् अपना धाम छोड़कर वहाँ पधारे । उनके गलेमें वनमाला लटक रही थी, श्रीअङ्ग सजल जलधरके समान श्यामवर्ण था, उसपर मनोहर पीताम्बर सुशोभित था, कटिप्रदेश करधनीकी लड़ियोंसे सुसज्जित था, सिरपर मुकुटकी लटक और कानोंमें कुण्डलोंकी झलक देखते ही बनती थी। वे बाँकी अदासे खड़े हुए चित्तको चुराये लेते थे। वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि दमक रही थी, सारा श्रीअङ्ग हरिचन्दनसे चर्चित था। उस रूपकी शोभा क्या कहें, उसने तो मानो करोड़ों कामदेवोंकी रूपमाधुरी छीन ली थी। वे परमानन्दचिन्मूर्ति मधुरातिमधुर मुरलीधर ऐसी अनुपम छविसे अपने भक्तोंके निर्मल चित्तोंमें आविर्भूत हुए। भगवान्‌के नित्यलोकनिवासी लीलापरिकर उद्धवादि वहाँ गुप्तरूपसे कथा सुननेके लिये आये हुए थे। प्रभुके प्रकट होते ही चारों ओर जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी। उस समय भक्तिरसका अद्भुत प्रवाह चला, बार-बार अबीर-गुलाल और पुष्पोंकी वर्षा तथा शंखध्वनि होने लगी। उस सभामें जो लोग बैठे थे, उन्हें अपने देह, गेह और आत्माकी भी कोई सुधि न रही। उनकी ऐसी तन्मयता देखकर नारदजी कहने लगे ॥ १–७ ॥

मुनीश्वरगण ! आज सप्ताहश्रवणकी मैंने यह बड़ी ही अलौकिक महिमा देखी। यहाँ तो जो बड़े मूर्ख, दुष्ट और पशु-पक्षी भी हैं, वे सभी अत्यन्त निष्पाप हो गये हैं। अतः इसमें सन्देह नहीं कि इस कलिकालमें चित्तकी शुद्धिके लिये पापपुञ्जका नाश करनेवाला इस भागवतकथाके समान मर्त्यलोकमें कोई दूसरा पवित्र साधन नहीं है। मुनिवर ! आपलोग बड़े कृपालु हैं, आपने संसारके कल्याणका विचार करके यह बिल्कुल निराला ही मार्ग निकाला है। आप कृपया यह तो बताइये कि इस कथारूप सप्ताहयज्ञके द्वारा संसारमें कौन-कौन लोग पवित्र हो जाते हैं ॥ ८–१० ॥

सनकादिने कहा—जो लोग सदा तरह-तरहके पाप किया करते हैं, निरन्तर दुराचारमें ही तत्पर रहते हैं और उल्टे मार्गोंसे चलते हैं तथा जो क्रोधाग्निसे जलते रहनेवाले कुटिल और कामपरायण हैं, वे सभी इस कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। जो सत्यसे च्युत, माता-पिताकी निन्दा करनेवाले, तृष्णाके मारे व्याकुल, आश्रमधर्मसे रहित, दम्भी, दूसरोंकी उन्नति देखकर कुढ़नेवाले और दूसरोंको दुःख देनेवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। जो मदिरापान, ब्रह्महत्या, सुवर्णकी चोरी, गुरुस्त्रीगमन और विश्वासघात—ये पाँच महापाप करनेवाले, छल-छद्मपरायण, क्रूर, पिशाचोंके समान निर्दयी, ब्राह्मणोंके धनसे पुष्ट होनेवाले और व्यभिचारी हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं। जो दुष्ट आग्रहपूर्वक सर्वदा मन, वाणी या शरीरसे पाप करते रहते हैं, दूसरेके धनसे ही पुष्ट होते हैं तथा मलिन मन और दुष्ट हृदयवाले हैं, वे भी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र हो जाते हैं ॥ ११–१४ ॥

नारदजी ! अब हम तुम्हें इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास सुनाते हैं, उसे सुननेसे ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं। पूर्वकालमें तुङ्गभद्रा नदीके तटपर एक सुन्दर नगर बसा हुआ था। वहाँ सभी वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्मोंका आचरण करते हुए सत्य और सत्कर्मोंमें तत्पर रहते थे। उस नगरमें समस्त वेदोंका विशेषज्ञ और श्रौत-स्मार्त कर्मोंमें निपुण एक आत्मदेव नामक ब्राह्मण रहता था; वह साक्षात् दूसरे सूर्यके समान ही तेजस्वी था। वह था तो भिक्षाजीवी; तो भी लोकमें कुछ पैसेवाला समझा जाता था। उसकी पत्नीका नाम था धुन्धुली। वह बड़ी हठीली थी—सदा अपनी ही टेक रखती थी; यों उसका जन्म अच्छे कुलमें हुआ था और थी भी सुन्दरी। उसका स्वभाव कुछ क्रूर था, सदा इधर-उधरकी बातें बनाती रहती थी और बकवास भी बहुत करती थी। घरके कामोंमें वह बड़ी पक्की थी, पैसेको सदा दाँतोंसे दबाये रखती थी और कलहका तो उसके चित्तमें कुछ चाव-सा था। यह सब होनेपर भी उन पति-पत्नियोंमें आपसमें अच्छी पट जाती थी और दोनों आनन्दसे

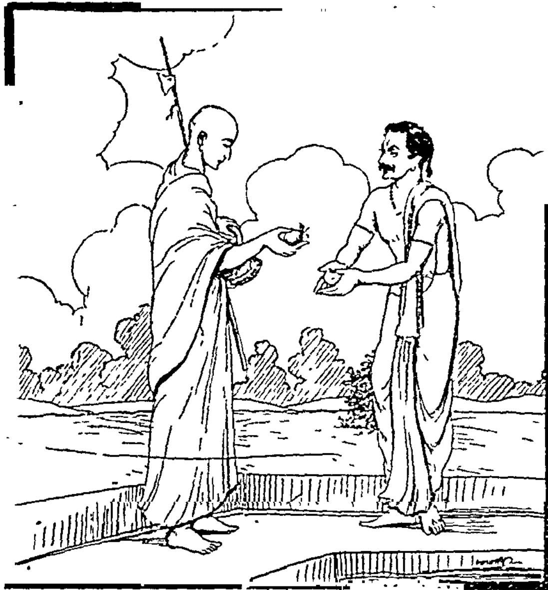
तर्पण कर पूर्व पापोंकी शुद्धिके लिये प्रायश्चित्त करे और एक मण्डल बनाकर उसमें श्रीहरिको स्थापित करे। फिर भगवान् श्रीकृष्णको लक्ष्य करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक क्रमशः षोडशोपचार विधिसे पूजन करे और उसके पश्चात् प्रदक्षिणा तथा नमस्कारादि कर इस प्रकार स्तुति करे—'करुणानिधान! मैं संसार-सागरमें डूबा हुआ और बड़ा दीन हूँ। कर्मोंके मोहरूपी ग्राहने मुझे पकड़ रक्खा है। आप इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये।' इसके पश्चात् धूप-दीप आदि सामग्रियोंसे श्रीमद्भागवतकी भी बड़े उत्साह और प्रीतिपूर्वक विधि विधानसे पूजा करनी चाहिये। फिर पुस्तकके आगे नारियल रखकर नमस्कार करे और प्रसन्नचित्तसे इस प्रकार स्तुति करे—'श्रीमद्भागवतके रूपमें आप साक्षात् श्रीकृष्ण चन्द्र ही विराजमान हैं। नाथ! मैंने भवसागरसे छुटकारा पानेके लिये आपकी शरण ली है। मेरा यह मनोरथ आप बिना किसी विघ्न-बाधाके साङ्गोपाङ्ग पूरा करें। केशव! मैं आपका दास हूँ'॥ २३–३१॥

इस प्रकार दीन वचन कहकर फिर वक्ताका पूजन करे। उसे सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित करे और फिर पूजाके पश्चात् उसकी इस प्रकार स्तुति करे—'शुकस्वरूप भगवन्! आप ज्ञानदानमें प्रवीण और सब शास्त्रोंमें पारङ्गत हैं, कृपया इस कथाको प्रकाशित करके आप मेरा अज्ञान निवारण करें।' फिर अपने कल्याणके लिये प्रसन्नतापूर्वक उसके सामने नियम ग्रहण करे और सात दिनतक यथाशक्ति उसका पालन करे। कथामें विघ्न न हो, इसके लिये पाँच ब्राह्मणोंको और वरण करे तथा उनसे द्वादशाक्षर मन्त्रद्वारा भगवान्के नामोंका जप करावे। फिर ब्राह्मण, विष्णुभक्त और कीर्तन करनेवालोंको नमस्कार कर उनकी पूजा करे और उनकी आज्ञा पाकर स्वयं भी आसनपर बैठ जाय। जो पुरुष लोक, सम्पत्ति, धन, घर और पुत्रादिकी चिन्ता छोड़कर शुद्धचित्तसे केवल कथामें ही ध्यान रखता है, उसे इसके श्रवणका ऊँचे-से-ऊँचा फल मिलता है॥३२–३७॥

बुद्धिमान् वक्ताको चाहिये कि सूर्योदयसे कथा आरम्भ करके साढ़े तीन पहरतक मध्यम स्वरसे अच्छी तरह कथा बाँचे। दोपहरके समय दो घड़ीतक कथा बंद रक्खे। उस समय कथाके प्रसङ्गके अनुसार वैष्णवोंको भगवान्के गुणोंका कीर्तन करना चाहिये—व्यर्थ बातें नहीं करनी चाहिये। कथाके समय मल-मूत्रके वेगको काबूमें रखनेके लिये अल्पाहार अच्छा रहता है इसलिये श्रोताओंको चाहिये कि वे केवल एक ही समय हविष्यान्न भोजन करें। यदि शक्ति हो तो सात दिनतक निराहार रहकर कथा सुने अथवा केवल घी या दूध पीकर सुखपूर्वक श्रवण करे। अथवा फलाहार या एक समय भोजन करे। तात्पर्य यह है कि जिससे जैसा नियम सुभीतेसे सध सके, उसीको कथाश्रवणके लिये ग्रहण करे। मैं तो उपवासकी अपेक्षा भोजन करना अच्छा समझता हूँ, यदि वह कथाश्रवणमें सहायक हो। यदि उपवाससे श्रवणमें बाधा पहुँचती हो, तो वह किसी कामका नहीं॥३८—४३॥

नारदजी! नियमसे सप्ताह सुननेवालोंको जिन नियमोंका पालन करना चाहिये अब उन्हें सुनिये। जिन्होंने विष्णुमन्त्रकी दीक्षा नहीं ली है अथवा जिनके हृदयमें भगवान्की भक्ति नहीं है, उन्हें इस कथाको सुननेका अधिकार नहीं है। जो पुरुष नियमसे कथा सुने, उसे ब्रह्मचर्यसे रहना, भूमिपर सोना और नित्यप्रति कथा समाप्त होनेपर पत्तलमें भोजन करना चाहिये। दाल, मधु, तेल, गरिष्ठ अन्न, भावदूषित पदार्थ और बासी अन्न—इनका उसे सर्वदा ही त्याग करना चाहिये तथा काम, क्रोध, मद, मान, मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह, द्वेषको तो अपने पास भी नहीं फटकने देना चाहिये। उसे वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गोसेवक तथा स्त्री, राजा और महापुरुषोंकी निन्दासे भी बचते रहना चाहिये। नियमसे कथा सुननेवाले पुरुषको रजस्वला स्त्री, अन्त्यज (चाण्डाल आदि), म्लेच्छ (गोमक्षक), पतित, गायत्रीहीन द्विज, ब्राह्मणोंसे द्वेष करनेवाले तथा वेदको न माननेवाले पुरुषोंसे बात नहीं करनी चाहिये तथा सर्वदा सत्य, शौच, दया, मौन, सरलता, विनय और उदारताका बर्ताव करना चाहिये। धनहीन, क्षयरोगी, किसी अन्य रोगसे पीड़ित, भाग्यहीन, पापी, पुत्रहीन और मुमुक्षु इस कथाको सुननेके विशेष अधिकारी हैं। जिस स्त्रीका रजोदर्शन रुक गया हो, जिसके एक ही सन्तान होकर रह गयी हो, जो बाँझ हो, जिसकी सन्तान होकर मर जाती हो अथवा जिसका गर्भ गिर जाता हो, वह अवश्य इस कथाको सुने। ये सब यदि विधिवत् कथा सुनें, तो इन्हें अक्षय फलकी प्राप्ति हो सकती है। यह अत्युत्तम कथा करोड़ों यज्ञोंका फल देनेवाली है॥४४–५३॥

इस प्रकार इस व्रतकी विधियोंका पालन करके फिर उद्यापन करे। जिन्हें इसके विशेष फलकी इच्छा हो, वे जन्माष्टमी व्रतके समान ही इस कथाव्रतका उद्यापन करें। किन्तु जो भगवान्के अकिञ्चन भक्त हैं, उनके लिये उद्यापनका कोई आग्रह नहीं है। वे तो श्रवणसे ही पवित्र



जब महात्माजीने देखा कि यह किसी प्रकार अपना आग्रह नहीं छोड़ता, तो उन्होंने उसे एक फल देकर कहा—'इसे तुम अपनी पत्नीको खिला देना, इससे उसके एक पुत्र होगा। तुम्हारी स्त्रीको एक सालतक सत्य, शौच, दया, दान और एक ही समय एक अन्न खानेका नियम रखना चाहिये। यदि वह ऐसा करेगी, तो बालक बहुत शुद्ध स्वभाववाला होगा' ॥ ४१-४२ ॥

ऐसा कहकर वे योगिराज चले गये और ब्राह्मण अपने घर लौट आया। वहाँ आकर उसने वह फल अपनी स्त्रीके हाथमें दे दिया और स्वयं कहीं चला गया। उसकी स्त्री तो टेढ़े स्वभावकी थी ही, वह रो-रोकर अपनी एक सखीसे कहने लगी—'सखी! मुझे तो बड़ी चिन्ता हो गयी, मैं तो यह फल नहीं खाऊँगी। देख, फल खानेसे गर्भ रहेगा और गर्भसे पेट बढ़ जायगा। फिर कुछ खाया-पीया जायगा नहीं, इससे मेरी शक्ति क्षीण हो जायगी; तब बता, घरका धंधा कैसे होगा? और—भगवान् न करे—यदि कहीं गाँवमें लूट मच गयी, तो गर्भिणी स्त्री भागेगी भी कैसे? इसके सिवा यदि शुकदेवजीकी तरह यह गर्भ भी (बारह वर्षतक) पेटमें ही रह गया, तो इसे बाहर कैसे निकाला जायगा? और कहीं प्रसवकालके समय टेढ़ा हो गया तो फिर प्राणोंसे ही हाथ धोना पड़ेगा। यों भी प्रसवके समय बड़ी भयङ्कर पीड़ा होती है; मैं सुकुमारी भला, यह सब कैसे सह सकूँगी? उस समय मेरे तो सब अंजर-पंजर ढीले हो जायँगे—न कुछ देखा जायगा, न किया जायगा; इसलिये घरमें जो कुछ माल-मता है उसे ननदरानी ले जायँगी। और मुझसे तो सत्य-शौचादि नियमोंका पालन होना भी कठिन ही जान पड़ता है। जिस स्त्रीके सन्तान होती है, उसके सिरपर उसके लालन-पालनका दुःख भी हर घड़ी सवार रहता है। मेरे विचारसे तो वन्ध्या या विधवा स्त्रियाँ ही सुखी हैं' ॥ ४३-४९ ॥

नारदजी! मनमें ऐसे ही तरह-तरहके कुतर्क उठनेसे उसने वह फल नहीं खाया और जब उसके पतिने पूछा—'फल खा लिया?' तो उससे कह दिया—'हाँ, खा लिया।' एक दिन अपने-आप ही उसके घर उसकी बहिन आयी। तब उसने उसे सारा वृत्तान्त सुनाकर कहा, 'बहिन! मुझे इसकी बड़ी चिन्ता है कि सन्तान न होनेपर मैं ब्राह्मणदेवतासे क्या कहूँगी? मैं तो इस दुःखके कारण दिनोंदिन दुबली हुई चली जाती हूँ, घुली जाती हूँ; बता, बहिन क्या करूँ?' तब उसने कहा, 'मेरे पेटमें बच्चा है; प्रसव होनेपर वह बालक मैं तुझे दे दूँगी। तबतक तू गर्भवतीके समान घरमें गुप्तरूपसे मौजमें रह। तू मेरे पतिको कुछ धन दे देगी, तो वे तुझे अपना बालक दे देंगे। हम ऐसी युक्ति करेंगे कि जिसमें सबलोग यही कहें कि 'इसका बालक छः महीनेका होकर मर गया' और मैं नित्यप्रति तेरे घर आकर उस बालकका पालन-पोषण करती रहूँगी। तू इस समय इसकी जाँच करनेके लिये यह फल गौको खिला दे।' तब ब्राह्मणीने स्त्रीस्वभाववश जो-जो उसकी बहिनने कहा था, वैसे ही किया ॥ ५०-५५ ॥

इसके पश्चात् जब समयानुसार उस स्त्रीके पुत्र हुआ, तो उसके पिताने चुपचाप लाकर उसे धुन्धुलीको दे दिया। उसने आत्मदेवको सूचना दे दी कि मेरे सुखपूर्वक बालक हो गया है। इस प्रकार आत्मदेवके पुत्र हुआ सुनकर सब लोगोंको बड़ा आनन्द हुआ। तब ब्राह्मणने उसका जातकर्म-संस्कार करके ब्राह्मणोंको दान दिया और उसके द्वारपर गाना-बजाना तथा अनेक प्रकारके माङ्गलिक कृत्य होने लगे। तब धुन्धुलीने अपने पतिसे कहा, 'मेरे स्तनोंमें तो दूध ही नहीं है; फिर गौ आदि किसी अन्य जीवके दूधसे मैं इस बालकका किस प्रकार पालन करूँगी? मेरी बहिनके अभी

जबतक संसारका प्रलय न हो जाय, तबतक इस दिव्य भगवद् रसका निरन्तर बार बार पान करते रहिये। इसके लिये स्वर्गमें जानेकी आवश्यकता नहीं, यह तो यहीं पृथ्वीपर ही सुलभ है। यह श्रीमद्भागवत महापुराण मेरे पिता महामुनि भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजीके द्वारा रचित है। इसमें उस निष्कपट एवं परम धर्मका निरूपण हुआ है, जिसमें मोक्ष पर्यन्त किसी भी वस्तुकी कामनाकी गन्ध भी नहीं है। यह परम धर्म अनन्य और विशुद्ध भगवत् प्रेम है। जिनका हृदय शुद्ध है, मत्सरहीन है, उन सत्पुरुषोंके लिये उनके जाननेयोग्य उस वस्तु (परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण) का निरूपण हुआ है, जो आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक—तीनों तापों का जड़से नाश करनेवाली और परम कल्याणको देनेवाली है। जो लोग इसका आश्रय लेते हैं, उन्हें विलम्बसे फल देनेवाले अन्य किसी साधनकी अथवा शास्त्रकी आवश्यकता नहीं है। जो सत्पुरुष अपने अनेक जन्मोंके सुकृतोंके फलस्वरूप इस महापुराणके श्रवणकी इच्छा करते हैं, उनके हृदयमें स्वयं भगवान् उसी क्षण आकर विराजमान हो जाते हैं और वहाँसे फिर हटते ही नहीं। यह भागवत पुराणोंका तिलक और वैष्णवोंका धन है। इसमें परमहंसोंके प्राप्य विशुद्ध ज्ञानका ही वर्णन किया गया है तथा ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके सहित निवृत्तिमार्गको प्रकाशित किया गया है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक इसके श्रवण, पाठ और मननमें तत्पर रहता है, वह मुक्त हो जाता है। यह रस स्वर्गलोक, सत्यलोक, कैलास और वैकुण्ठमें भी नहीं है। इसलिये भाग्यवान् श्रोताओ! तुम इसका खूब पान करो, इसे किसी भी प्रकार छोड़ो मत, छोड़ो मत ॥८०–८३॥

सूतजी कहते हैं—श्रीशुकदेवजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि उस सभाके बीचोंबीच प्रह्लाद, बलि, उद्धव और अर्जुन आदि पार्षदोंके सहित साक्षात् श्रीहरि प्रकट हो गये। तब देवर्षि नारदने भगवान् और उनके भक्तोंकी यथोचित पूजा की। भगवान्‌को प्रसन्न देखकर देवर्षिने उन्हें एक विशाल सिंहासनपर बैठा दिया और उनके सामने संकीर्तन करने लगे। उस कीर्तनको देखनेके लिये श्रीपार्वतीजीके सहित महादेवजी और ब्रह्माजी भी आ गये। जब कीर्तन आरम्भ हुआ। प्रह्लादजी तो चञ्चलगति (फुर्तीले) होनेके कारण कर ताल बजाने लगे, उद्धवजीने मँजीरे उठा लिये, देवर्षि नारद वीणाकी ध्वनि करने लगे, स्वर विज्ञान (गानविद्या) में कुशल होनेके कारण अर्जुन राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदङ्ग बजाना आरम्भ किया, सनकादि बीच बीचमें जयघोष करने लगे और इन सबके आगे शुकदेवजी तरह-तरहकी सरस अङ्गभङ्गी करके भाव बताने लगे। इन सबके बीचमें परमतेजस्वी भक्ति, ज्ञान और वैराग्य नटोंके समान नाचने लगे। ऐसा अलौकिक कीर्तन देखकर भगवान् प्रसन्न हो गये और इस प्रकार कहने लगे, 'मैं तुम्हारी इस कथा और कीर्तनसे बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारे भक्तिभावने मुझे अपने वशमें कर लिया है। अतः तुम लोग मुझसे वर माँगो।' भगवान्‌के ये वचन सुनकर सब लोग बड़े प्रसन्न हुए और प्रेमार्द्रचित्तसे भगवान्‌से कहने लगे—'भगवन्! हमारी यह अभिलाषा है कि भविष्यमें भी जहाँ कहीं सप्ताह कथा हो, वहाँ आप इन पार्षदोंके सहित अवश्य पधारें। हमारी यह इच्छा पूरी होनी चाहिये।' तब भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये ॥८४–८९॥

इसके पश्चात् नारदजीने भगवान् तथा उनके पार्षदोंके चरणोंको लक्ष्य करके प्रणाम किया और फिर शुकदेवजी आदि तपस्वियोंको भी नमस्कार किया। कथामृतका पान करनेसे सब लोगोंको बड़ा ही आनन्द हुआ, उनका सारा मोह नष्ट हो गया। फिर वे सबलोग अपने-अपने स्थानोंको चले गये। उस समय शुकदेवजीने भक्तिको उसके पुत्रोंसहित अपने शास्त्रमें स्थापित कर दिया। इसीसे भागवतका सेवन करनेसे श्रीहरि वैष्णवोंके हृदयमें आ विराजते हैं। जो लोग दरिद्रता (नाना प्रकारके अभाव) और दुःखरूप ज्वरसे पीड़ित हैं, मायापिशाचीने जिनपर काबू कर रखा है और जो संसार समुद्रमें पड़े हुए हैं, उनके कल्याणके लिये श्रीमद्भागवत गरज रहा है ॥९०–९२॥

तब शौनकजीने पूछा—सूतजी! हमें एक संदेह है, कृपया उसे दूर कीजिये। यह तो बताइये कि शुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌को, गोकर्णने धुन्धुकारीको और सनकादिने नारदजीको किस किस समय यह ग्रन्थ सुनाया था? ॥९३॥

सूतजी बोले—भगवान् श्रीकृष्णके स्वधाम पधार जानेके बाद कलियुगके तीस वर्षसे कुछ अधिक बीत जानेपर भाद्रपद मासकी शुक्ला नवमीको शुकदेवजीने कथा आरम्भ की थी। राजा परीक्षित्‌के कथा सुननेके बाद कलियुगके दो सौ वर्ष बीत जानेपर आषाढ मासकी शुक्ला नवमीको गोकर्णजीने यह कथा सुनायी थी। इसके पीछे कलियुगके तीस वर्ष और निकल जानेपर कार्तिक शुक्ला नवमीसे सनकादिने कथा आरम्भ की थी। निष्पाप शौनकजी! आपने जो कुछ पूछा

यह अत्यन्त दुःखरूप और मोहमें डालनेवाला है। भला, पुत्र या धन कब किसके हुए हैं? जो इनकी ममता-मायामें फँसता है, उसे रात-दिन जलना ही पड़ता है। इन्द्र अथवा चक्रवर्ती राजाको भी कोई सुख नहीं है; सुख तो बस, एकान्तवासी विरक्त मुनिको ही है। आप यह पुत्रस्नेहका अज्ञान छोड़ दीजिये, इस मोहमें फँसनेसे तो नरकमें ही जाना पड़ता है। अन्तमें यह शरीर तो नष्ट होनेवाला ही है, इसलिये अभीसे सब कुछ छोड़कर वनको चले जाइये ॥ ७१–७६ ॥

गोकर्णके वचन सुनकर आत्मदेव वनको जानेके लिये तैयार हो गया और उनसे कहने लगा, 'बेटा! वनमें रहकर मुझे क्या करना चाहिये, यह मुझे विस्तारपूर्वक बताओ। मैं बड़ा मूर्ख हूँ, अबतक कर्मवश स्नेह-पाशमें बँधा हुआ अपंगकी भाँति इस घररूप अँधेरे कुएँमें ही पड़ा रहा हूँ। तुम बड़े दयालु हो, इससे मेरा उद्धार करो' ॥ ७७-७८ ॥

गोकर्णने कहा—पिताजी! यह शरीर हड्डी, मांस और रुधिरका पिण्ड है; इसे आप 'मैं' मानना छोड़ दें और स्त्री-पुत्रादिको 'अपना' न मानें। इस संसारको रात-दिन क्षणभङ्गुर देखें, इसकी किसी भी वस्तुको स्थायी समझकर उसमें राग न करें। बस, एकमात्र वैराग्य-रसके रसिक होकर भगवान्‌की भक्तिमें लगे रहें। भगवद्भजन ही सबसे बड़ा धर्म है, निरन्तर उसीका आश्रय लिये रहें। अन्य सब प्रकार-के लौकिक धर्मोंसे मुख मोड़ लें। सदा साधुजनोंकी सेवा करें। भोगोंकी लालसाको पास न फटकने दें तथा जल्दी-से-जल्दी दूसरोंके गुण-दोषोंका विचार करना छोड़कर एकमात्र भगवत्सेवा और भगवान्‌की कथाओंके रसका ही पान करें ॥ ७९-८० ॥

इस प्रकार पुत्रके कहनेसे आत्मदेव अपनी आयुके साठ वर्ष बीत जानेपर भी स्थिर चित्तसे घर छोड़कर वनको चला गया। वहाँ रात-दिन भगवान्‌की सेवा-पूजा करनेसे और नियमपूर्वक भागवतके दशमस्कन्धका पाठ करनेसे उसने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको प्राप्त कर लिया ॥ ८१ ॥

पाँचवाँ अध्याय

धुन्धुकारीको प्रेतयोनिकी प्राप्ति और उससे उसका उद्धार

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! पिताके वन चले जानेपर एक दिन धुन्धुकारीने अपनी माताको बहुत पीटा और कहा—'बता, धन कहाँ रक्खा है? नहीं तो अभी तेरी लातोंसे खबर लूँगा।' उसकी इस धमकीसे डरकर और पुत्रके उपद्रवोंसे दुखी होकर वह रात्रिके समय कुएँमें जा गिरी और इसीसे उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार माता-पिताके न रहनेसे गोकर्णजी तीर्थयात्राके लिये निकल गये। वे योगनिष्ठ थे, उन्हें इन घटनाओंसे कोई सुख या दुःख नहीं होता था; क्योंकि उनका न कोई मित्र था, न शत्रु ॥ १—३ ॥

अब, धुन्धुकारी पाँच वेश्याओंके साथ घरमें रहने लगा। उनके लिये भोग-सामग्री जुटानेकी चिन्ताने उसकी बुद्धि नष्ट कर दी और वह तरह-तरहके क्रूर कर्म करने लगा। एक दिन उन कुलटाओंने उससे बहुत-से गहने माँगे। वह तो कामसे अन्धा हो रहा था, मौतकी उसे कभी याद नहीं आती थी। बस, उन्हें जुटानेके लिये वह घरसे निकल पड़ा और जहाँ-तहाँसे बहुत-सा धन चुराकर घर लौट आया तथा उन्हें कुछ सुन्दर वस्त्र और आभूषण लाकर दिये। घरमें चोरीका बहुत माल देखकर रात्रिके समय स्त्रियोंने विचार किया कि 'यह नित्य ही चोरी करता है इसलिये किसी दिन अवश्य पकड़ा जायगा, तब राजा यह सारा धन छीनकर इसे निश्चय ही प्राणदण्ड देगा। इस प्रकार जब एक दिन इसे मरना ही है, तो हम ही गुप्तरूपसे इसका काम तमाम क्यों न कर दें; इससे धन तो बच जायगा। इसे मारकर हम इसका माल-मता लेकर कहीं चली जायँगी।' ऐसा निश्चय कर उन्होंने सोये हुए धुन्धुकारीको रस्सियोंसे कस दिया और उसके गलेमें फाँसी लगाकर उसे मारनेका प्रयत्न किया। इससे जब वह जल्दी न मरा, तो उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। तब उन्होंने उसके मुखपर बहुत-से दहकते अँगारे डाले; इससे वह अग्निकी लपटोंसे बहुत छटपटाकर मर गया। फिर उन्होंने उसके शरीरको एक गड्ढेमें डालकर गाड़ दिया। सच है, ऐसी स्त्रियाँ प्रायः बड़ी दुःसाहसवाली होती हैं। उनकी इस करतूतका किसीको भी पता न चला। जब लोगोंने पूछा तो कह दिया कि 'हमारे प्रियतम पैसेके लोभसे अबकी बार कहीं लंबे चले गये हैं, शायद इसी वर्षके अंदर लौट आवें।' बुद्धिमान् पुरुषको दुष्टा स्त्रियोंका कभी विश्वास न

यैर्न श्रुतं भागवतं पुराण-

मारधितो नो पुरुषः पुराणः ।

मुखे हुतं नैव धरामराणां

तेषां वृथा जन्म गतं नराणाम् ॥

चित्तं न यस्य तु नरस्य हरेः कथायां

सम्प्रीयते दुरितदुष्टमसत्प्रसङ्गात् ।
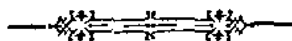
धिक् तं नरं पशुसमं भुवि भारभूत-

मेवं वदन्ति मुनयः किल पूर्वसिद्धाः ॥

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड)

'जिन्होंने भागवतपुराण नहीं सुना, भगवान् पुराणपुरुषोत्तमकी आराधना नहीं की, तथा ब्राह्मणोंके मुखोंमें भोजनरूपी आहुति नहीं डाली, उन मनुष्योंका जन्म व्यर्थ ही गया ।'

'जिसका चित्त पापोंसे मलिन होनेके कारण तथा दुःसङ्गके प्रभावसे भगवान्‌की लीला-कथामें विशेषरूपसे नहीं रमता, उस नर-पशुको धिक्कार है ! वह तो पृथ्वीके लिये भाररूप ही है—ऐसा पूर्वकालके सिद्ध महात्मा एवं मुनिगण कह गये हैं ।'





सूतजीकी कथा

सूर्यदेवने दूरहीसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा,—'श्रीमद्भागवतसे मुक्ति हो सकती है, इसलिये तुम उसका सप्ताह-पारायण करो।' सूर्यका यह धर्ममय वचन वहाँ सभीने सुना। तब सबने यही कहा कि 'प्रयत्नपूर्वक यही करो, है भी यह साधन बहुत सरल।' अतः गोकर्णजी भी निश्चय करके कथा सुनानेके लिये तैयार हो गये ॥ ३६—४२ ॥

कथाका समाचार पाकर आस-पासके देश और गाँवोंसे अनेकों लोग सुननेके लिये आने लगे। बहुत-से लँगड़े-लूले, अंधे, बूढ़े और मन्दबुद्धि पुरुष भी अपने पापोंकी निवृत्तिके उद्देश्यसे वहाँ आ पहुँचे। इस प्रकार वहाँ इतनी भीड़ हो गयी कि उसे देखकर देवताओंको भी आश्चर्य होता था। जब गोकर्णजी व्यासगद्दीपर बैठकर कथा कहने लगे, तो वह प्रेत भी वहाँ आ पहुँचा और इधर-उधर बैठनेके लिये स्थान ढूँढ़ने लगा। इतनेहीमें उसकी दृष्टि एक सीधे रक्खे हुए सात गाँठके बाँसपर पड़ी। उसीके नीचेके छिद्रमें घुसकर वह कथा सुननेके लिये बैठ गया। वायुरूप होनेके कारण वह बाहर कहीं बैठ नहीं सकता था, इसलिये बाँसमें घुस गया ॥ ४३—४६ ॥

गोकर्णजीने एक वैष्णव-ब्राह्मणको मुख्य श्रोता बनाया और प्रथमस्कन्धसे ही स्पष्ट स्वरमें कथा सुनानी आरम्भ कर दी। सायङ्कालमें जब कथाको विश्राम दिया गया, तो एक बड़ी विचित्र बात हुई। वहाँ सभासदोंके देखते-देखते उस बाँसकी एक गाँठ तड़-तड़ शब्द करती फट गयी। इसी प्रकार दूसरे दिन सायङ्कालमें दूसरी गाँठ फटी और तीसरे दिन उसी समय तीसरी। इस प्रकार सात दिनमें सातों गाँठोंको फोड़कर धुन्धुकारी बारहों स्कन्धोंको सुननेसे पवित्र होकर प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया और दिव्यरूप धारण करके सबके सामने प्रकट हुआ। उसका मेघके समान श्याम शरीर पीताम्बर और तुलसीकी मालाओंसे सुशोभित था, तथा सिरपर मनोहर मुकुट और कानोंमें कमनीय कुण्डल झिलमिला रहे थे। उसने तुरंत अपने भाई गोकर्णको प्रणाम करके कहा,—'भाई, तुमने कृपा करके मुझे प्रेतयोनिकी यातनाओंसे मुक्त कर दिया। यह प्रेतपीडाका नाश करनेवाली श्रीमद्भागवतकी कथा धन्य है! तथा श्रीकृष्णचन्द्रके धामकी प्राप्ति करानेवाला इसका सप्ताहपारायण भी धन्य है! जब सप्ताहश्रवणका योग लगता है, तो सब पाप थर्रा उठते हैं कि अब यह भागवतकथा जल्दी ही हमारा अन्त कर देगी। जिस प्रकार आग गीली-सूखी, छोटी-बड़ी सब तरहकी लकड़ियोंको जला डालती है, उसी प्रकार यह सप्ताहश्रवण मन, वचन और कर्मद्वारा किये हुए नये-पुराने, छोटे-बड़े सभी प्रकारके पापोंको भस्म कर देता है ॥ ४७—५५ ॥

विद्वानोंने देवताओंकी सभामें कहा है कि जो पुरुष इस भारतवर्षमें श्रीमद्भागवतकी कथा नहीं सुनते, उनका जन्म वृथा ही है।' भला, मोहपूर्वक लालन-पालन करके यदि इस अनित्य शरीरको हृष्ट-पुष्ट और बलवान् भी बना लिया, तो भी श्रीमद्भागवतकी कथा सुने बिना इससे क्या लाभ हुआ? इस शरीरकी अस्थियाँ ही आधारस्तम्भ हैं, नस-नाडीरूप रस्सियोंसे यह बँधा हुआ है, ऊपरसे इसपर मांस और रक्त थोपकर इसे चर्मसे मँढ़ दिया गया है। इसके प्रत्येक अङ्गमें दुर्गन्ध आती है, क्योंकि है तो यह मल-मूत्रका भाँड ही। वृद्धावस्था और शोकके कारण यह परिणाममें दुःखमय ही है, रोगोंका तो घर ही ठहरा। यह निरन्तर किसी-न-किसी कामनासे पीड़ित रहता है, कभी इसकी तृप्ति नहीं होती। इसे धारण किये रहना भी एक भार ही है; इसके रोम-रोममें दोष भरे हुए हैं और नष्ट होनेमें इसे एक क्षण भी नहीं लगता। अन्तमें यदि इसे गाड़ दिया जाता है, तो इसके कीड़े बन जाते हैं; कोई पशु खा जाता है, तो यह विष्ठा हो जाता है और अग्निमें जला दिया जाता है, तो भस्मकी ढेरी हो जाता है। ये तीन ही इसकी गति बतायी गयी हैं। ऐसे अस्थिर शरीरसे मनुष्य अविनाशी फल देनेवाला काम क्यों नहीं बना लेता? जो अन्न प्रातःकाल पकाया जाता है, वह सायङ्कालतक बिगड़ जाता है; फिर उसीके रससे पुष्ट हुए शरीरकी नित्यता कैसी? ॥ ५६—६१ ॥

इस लोकमें सप्ताहश्रवण करनेसे भगवान्‌की शीघ्र ही प्राप्ति हो सकती है। अतः सब प्रकारके दोषोंकी निवृत्तिके लिये एकमात्र यही साधन है। जो लोग भागवतकी कथासे वञ्चित हैं, वे तो जलमें बुद्बुदे और जीवोंमें मच्छरोंके समान केवल मरनेके लिये ही पैदा हुए हैं। भला, जिसके प्रभावसे जड और सूखे हुए बाँसकी गाँठें फट सकती हैं, उस भागवतकथाका श्रवण करनेसे चित्तकी गाँठोंका खुल जाना कौन बड़ी बात है? सप्ताह श्रवण करनेसे मनुष्यके हृदयकी गाँठ खुल जाती है, अर्थात् उसकी देहात्मबुद्धि सदाके लिये दूर हो जाती है, उसके सब संशय छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और सारे कर्म क्षीण हो जाते हैं। यह भागवतकथारूप तीर्थ संसारके कीचड़को धोनेमें बड़ा ही पटु है। विद्वानोंका कथन है कि जब यह हृदयमें स्थित हो जाता है, तो मनुष्यकी मुक्ति निश्चित ही समझनी चाहिये ॥ ६२—६६ ॥

ऋषियोंने कहा—'सूतजी ! आप निष्पाप हैं। आपने समस्त इतिहास, पुराण और धर्मशास्त्रोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया है तथा उनकी भलीभाँति व्याख्या भी की है। भगवान् वेदव्यास वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। उन्होंने तथा भगवान्के सगुण और निर्गुण स्वरूपके तत्त्वको जाननेवाले दूसरे मुनियोंने भी जो कुछ जाना है, उन्हें जिन विषयोंका ज्ञान है, वह सब आप वास्तविक रूपमें जानते हैं, आपका हृदय बड़ा ही सरल और शुद्ध है, इसीसे आप उनकी कृपा और अनुग्रहके पात्र हुए हैं। यह तो सभी जानते हैं कि गुरुजन अपने प्रेमी शिष्यको गुप्त से गुप्त बात भी बता दिया करते हैं। सूतजी ! आपकी आयु लम्बी हो। आप कृपा करके यह बतलाइये कि उन सब शास्त्रों, पुराणों और गुरुजनोंके उपदेशोंमें कलियुगी जीवोंके परम कल्याणका सहज साधन आपने क्या निश्चय किया है। आप संत समाजके भूषण हैं। आपसे यह बात छिपी नहीं है कि इस कलियुगमें प्राय लोगोंकी आयु कम हो गयी है। साधन करनेमें लोगोंकी रुचि और प्रवृत्ति भी नहीं है। लोग आलसी हो गये हैं। उनका भाग्य तो मन्द है ही, समझ भी थोड़ी है, इसके साथ ही वे नाना प्रकारके विघ्न बाधाओंसे घिरे हुए भी रहते हैं। शास्त्र भी बहुत से हैं। परन्तु उनमें एक निश्चित साधनका नहीं, अनेक प्रकारके कर्मोंका वर्णन है। साथ ही वे इतने बड़े है कि उनका एक अंश सुनना भी कठिन है। आप परोपकारी हैं। अपनी बुद्धिसे उनका सार निकालकर प्राणियोंके परम कल्याणके लिये हमें सुनाइये। हमारी इसके सुननेकी बड़ी श्रद्धा है। जिससे हमें अन्त करणकी शुद्धि, भगवान्की कृपा और आत्माकी उपलब्धि हो, उसीका आप वर्णन कीजिये ॥ ६–११ ॥

सूतजी ! आप तो जानते ही हैं कि यदुवंशियोंके रक्षक भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेवकी धर्मपत्नी देवकीके गर्भसे क्या करनेकी इच्छासे अवतीर्ण हुए थे। हम उसे सुनना चाहते हैं। सूतजी ! आपका कल्याण हो ! आप कृपा करके हमारे लिये उसका वर्णन कीजिये। क्योंकि भगवान्का अवतार जीवोंके परम कल्याण (संसारबन्धनके नाश) और उनकी भगवत्प्रेममयी समृद्धिके लिये ही होता है। जन्म-मृत्युके घोर चक्रमें यह जीव पड़ा हुआ है—विवश हो रहा है। इस विवशताकी स्थितिमें भी यदि वह कभी भगवान्के मङ्गलमय नामका उच्चारण कर ले तो उसी क्षण उससे मुक्त हो जाय, क्योंकि स्वय भय भी भगवान्से भयभीत रहता है। परम विरक्त और परम शान्त मुनिजन भगवान्के श्रीचरणोंकी शरणमें ही रहते हैं, और यही कारण है कि उनके स्पर्शमात्रसे संसारके जीव तुरंत पवित्र हो जाते हैं। गङ्गाजीके जलका तो बहुत दिनोंतक सेवन किया जाय तब कहीं पवित्रता प्राप्त होती है। ऐसे पुण्यात्मा भक्त जिनकी लीलाओंका गायन करते रहते हैं, उन भगवान्का कलिमल हारी पवित्र यश भला, आत्मशुद्धिकी इच्छावाला ऐसा कौन मनुष्य होगा जो श्रवण न करे ? वे प्रभु साधारण जीवोंकी भाँति, कर्मपरवश होकर नहीं, लीलासे ही नाना प्रकारके अवतार धारण करते हैं। उनकी एक एक लीला, उनका एक एक चरित्र अत्यन्त दिव्य, मङ्गलमय और उनकी कृपासे परिपूर्ण होता है। इसीसे नारद आदि महात्मागण नित्य निरन्तर उनका गायन करते रहते हैं। हम बड़ी श्रद्धा, रुचि और प्रेमके साथ उनको सुनना चाहते हैं। आप हमारे लिये उनका अवश्य वर्णन कीजिये ॥ १२–१७ ॥

सूतजी ! आपकी बुद्धि बड़ी प्रखर है। आपको भगवान्की वास्तविक धारणा प्राप्त हुई है। अब आप भगवान्की उन मङ्गलमयी लीलाओंका वर्णन कीजिये, जिन्हें अपनी आत्म स्वरूपिणी योगमायासे अवतार ग्रहण करके वे सर्वशक्तिमान् प्रभु स्वच्छन्दरूपसे करते है। भगवान् श्रीकृष्णकी लीला सुननेसे हमें कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती, क्योंकि जो रस रहस्यके मर्मज्ञ हैं, उन्हें पद-पदपर भगवान्की लीलाओंमें नये नये रसका अनुभव होता है। भगवान् श्रीकृष्ण अपनेको छिपाये हुए थे, लोगोंके सामने ऐसी चेष्टा करते थे मानो कोई मनुष्य हो। परन्तु उन्होने बलरामजीके साथ ऐसी लीलाएँ भी की हैं, ऐसा पराक्रम भी प्रकट किया है, जो मनुष्य नहीं कर सकते। इस भगवान् विष्णुके क्षेत्र नैमिषारण्यमें हम लोग बहुत बड़े एव दीर्घकालीन यज्ञमें दीक्षित होकर बैठे हैं। यह इसलिये कि अब घोर कलियुग आ गया है। इस युगमें भगवान्की लीला कथाका कीर्तन ही परम साधन है। सो भगवान्की कथाके लिये हमें यह शुभ अवसर प्राप्त हो गया है। इस कलियुगके प्रभावसे बचना बड़ा ही कठिन है, क्योंकि यह लोगोंकी सात्त्विकता, धैर्य और उत्साहशक्तिको नष्ट करनेवाला है। हमलोग चाहते है कि इसके प्रभावसे बच जायँ, हमारी प्रार्थनापर इस कार्यके लिये ब्रह्माजीने आपको ही भेजा है। आप हमें ठीक उसी प्रकार प्राप्त हो गये हैं, जैसे

पर विराजमान शाण्डिल्य मुनि भी ब्रह्मानन्दमें मग्न होकर पढ़ा करते हैं। यह कथा बड़ी ही पवित्र है। एक बार सुननेसे ही सारे पापोंकी ढेरीको भस्म कर देती है। यदि इसका श्राद्धके समय पाठ किया जाय, तो इससे पितृगणको बड़ी तृप्ति होती है और नित्य पाठ करनेसे तो जन्म-मरणका चक्कर ही कट जाता है ॥ ८७—९० ॥

छठा अध्याय

सप्ताहपारायणकी विधि

श्रीसनकादि कहते हैं—नारदजी! अब हम आपको सप्ताहश्रवणकी विधि बताते हैं। यह विधि प्रायः लोगोंकी सहायता और धनसे साध्य मानी गयी है। पहले ज्योतिषीको बुलाकर मुहूर्त्त पूछना चाहिये तथा विवाहके लिये जितने धनका प्रबन्ध किया जाता है, उतने ही धनका इसके लिये भी जुगाड़ कर लेना चाहिये। कथा आरम्भ करनेमें भादों, कुआर, कातिक, मगसिर, आषाढ़ और सावन—ये छः महीने श्रोताओंके लिये मोक्षकी प्राप्तिके कारण माने गये हैं। देवर्षे! इन महीनोंमें भी भद्रा-व्यतीपात आदि जो काल त्याज्य माने गये हैं, उनको सब प्रकार बचानेका प्रयत्न करना चाहिये। तथा दूसरेलोग जो उत्साही हों, उन्हें अपना सहायक बना लेना चाहिये। फिर प्रयत्न करके देश-देशान्तरोंमें यह सूचना कर देनी चाहिये कि यहाँ कथा होगी, सब लोगोंको सपरिवार पधारना चाहिये। कोई-कोई लोग भगवत्कथा और कीर्तनादिसे दूर रहा करते हैं; अतः इस समाचारको इस प्रकार फैलावे कि स्त्री-शूद्रादिको भी इसका पता लग जाय। देश-देशमें जो विरक्त वैष्णव और हरिकीर्तनके प्रेमी हों, उनके पास निमन्त्रणपत्र भेजे। उसे लिखनेकी विधि इस प्रकार बतायी गयी है—'महानुभावो! यहाँ सात दिनतक सत्पुरुषोंका बड़ा दुर्लभ समागम रहेगा और अपूर्व रसमयी श्रीमद्भागवतकी कथा होगी। आपलोग श्रीभागवतामृतका पान करनेके बड़े रसिक हैं, इसलिये प्रेमपूर्वक शीघ्र ही पधारनेकी कृपा करें। यदि किसी कारणवश आपको विशेष अवकाश न हो, तो भी एक दिनके लिये तो कृपा करनी ही चाहिये; क्योंकि यहाँका तो एक क्षण भी दुर्लभ है।' इस प्रकार विनयपूर्वक उन्हें निमन्त्रित करे और जो लोग आवें, उनके लिये यथोचित निवासस्थानका प्रबन्ध करे ॥ १—११ ॥

कथाका श्रवण किसी तीर्थमें, वनमें अथवा अपने घरपर भी अच्छा माना गया है। जहाँ अच्छा लंबा-चौड़ा मैदान हो, वहीं कथास्थल रखना चाहिये। जमीनको झाड़-बुहारकर, जलसे धोकर और लीप-पोतकर साफ करे और उसपर गेरू आदिसे चौक पुरावे। यदि वहाँ कोई घरका सामान पड़ा हो, तो उसे उठाकर एक कोनेमें रखवा दे। पाँच दिन पहलेसे ही बहुत-से आसन एकत्रित कर ले तथा केलेके खंभोंसे सुशोभित एक ऊँचा मण्डप तैयार करावे। उसे पत्र, पुष्प, फल और चँदोवेसे अलङ्कृत करे तथा चारों ओर झंडियाँ लगाकर तरह-तरहके सामानोंसे सजा दे। उस मण्डपके ऊपरी भागमें सात लोकोंकी कल्पना करे और उनमें विरक्त ब्राह्मणोंको बुला-बुलाकर बैठावे; किन्तु इससे पहले उनके लिये वहाँ यथोचित आसन तैयार रक्खे। इनसे अलग वक्ताके लिये एक बढ़िया व्यासगद्दी तैयार करानी चाहिये। यदि वक्ताका मुख उत्तरकी ओर रहे, तो श्रोता पूर्वाभिमुख होकर बैठें और यदि वक्ता पूर्वाभिमुख रहे तो श्रोताको उत्तरकी ओर मुख करके बैठना चाहिये। अथवा वक्ता और श्रोताके बीचमें पूर्व दिशा आ जानी चाहिये। देश-कालकी गतिको जाननेवाले महानुभावोंने श्रोताके लिये ऐसा ही नियम बताया है। जो वेद-शास्त्रकी स्पष्ट व्याख्या करनेमें समर्थ हो, तरह-तरहके दृष्टान्त दे सकता हो तथा विवेकी और अत्यन्त निःस्पृह हो, ऐसे विरक्त और विष्णुभक्त ब्राह्मणको वक्ता बनाना चाहिये। जो अनेक प्रकारके मत-मतान्तरोंके चक्करमें पड़े हों, स्त्री-लम्पट हों और नास्तिकवादके समर्थक हों, वे यदि पण्डित भी हों तो भी उन्हें श्रीमद्भागवतका वक्ता न बनावे। वक्ताके पास ही उसकी सहायताके लिये एक वैसा ही विद्वान् और रक्खे। वह भी सब प्रकारके संशयोंकी निवृत्ति करनेमें समर्थ और लोगोंको समझानेमें कुशल होना चाहिये ॥ १२—२२ ॥

वक्ताको चाहिये कि जिस दिन कथा आरम्भ करनी हो, उससे एक दिन पहले क्षौर करा ले, जिससे कि व्रत पूरी तरहसे निभ सके। तथा श्रोता अरुणोदयके समय अर्थात् सूर्योदयसे दो घड़ी पूर्व शौचसे निवृत्त होकर अच्छी तरह स्नान करे और सन्ध्यादि अपने नित्यकर्मोंको संक्षेपसे समाप्त करके कथाके विघ्नोंकी निवृत्तिके लिये गणेशजीका पूजन करे। तदनन्तर पितृगणका

यह लाभ नहीं है कि भरपेट इन्द्रियोंको तृप्त किया जाय, जितनेसे अपने जीवनका निर्वाह हो जाय, उतने ही भोग पर्याप्त हैं। तथा जीवन निर्वाहका, जीवित रहनेका यह फल नहीं है कि अनेक प्रकारके कर्मोंके पचड़ेमें पड़कर इस लोक या परलोकका सांसारिक सुख प्राप्त किया जाय। उसका परम लाभ तो यह है कि वास्तविक तत्त्वको, भगवत्तत्त्वको जाननेकी शुद्ध इच्छा हो, जबतक जीवन रहे तबतक सत्यकी शोध चलती रहे। वह सत्य तत्त्व क्या है? तत्त्ववेत्तालोग ज्ञाता और ज्ञेयके भेदसे रहित अखण्ड अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप ज्ञानको ही तत्त्व कहते हैं। उनमें तत्त्वकी दृष्टिसे कोई मतभेद नहीं है, ज्ञानी उसे ब्रह्म कहते हैं, योगी परमात्मा और भक्त भगवान्! श्रद्धाके साथ श्रीमद्भागवतके श्रवणसे ज्ञान और वैराग्यसे युक्त भक्तिकी प्राप्ति होती है और इस भक्तिसे ही महात्मागण अपने हृदयमें उस परमतत्त्वरूप परमात्माका साक्षात्कार करते हैं। शौनकादि ऋषियो! यही कारण है कि अपने अपने वर्ण तथा आश्रमोंके अनुसार मनुष्य जो धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसकी पूर्ण सिद्धि इसीमें है कि भगवान् प्रसन्न हों। इसलिये एकाग्र मनसे भक्तवत्सल भगवान्‌का ही नित्य निरन्तर श्रवण, कीर्तन, ध्यान और आराधन करना चाहिये। कर्मोंकी गाँठ बड़ी कड़ी है। विचारवान् पुरुष भगवान्‌के चिन्तनकी तलवारसे उस गाँठको काट डालते हैं। तब भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जो भगवान्‌के चिन्तनको जगानेवाली लीलाकथामें प्रेम न करे॥५—१५॥

शौनकादि ऋषियो! यदि मनुष्य श्रद्धापूर्वक सुननेकी इच्छासे पवित्र तीर्थ और आश्रमोंका सेवन करे और महापुरुषोंकी सेवा करे तो भगवान् श्रीकृष्णकी कथामें रुचि और प्रीति हो जाती है। भगवान्‌के स्वरूप, गुण, लीला, नाम और धामका श्रवण-कीर्तन अत्यन्त पवित्र है। जो उनकी कथाका श्रवण करता है, उसके हृदयमें वे आकर बैठ जाते हैं। वे संतोंके नित्य सुहृद हैं, उनके हृदयमें आते ही सारे पाप, सारे अशुभ झड़ जाते हैं। जब श्रीमद्भागवत अथवा भगवद्भक्तोंके सेवनसे अशुभ वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब उत्तमश्लोक भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अकृत्रिम—सहज प्रेमकी प्राप्ति होती है। उस समय रजोगुण और तमोगुणके भाव—काम और लोभादि शान्त हो जाते हैं। हृदय इनसे अछूता हो जाता है। और हृदयके सत्त्वगुणमें स्थित होनेपर अत्यन्त पवित्रता तथा आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार भगवान्‌की प्रेममयी भक्तिसे जब संसारकी समस्त आसक्तियाँ मिट जाती हैं, हृदय आनन्दसे भर जाता है, तब भगवान्‌के तत्त्वका अनुभव अपने-आप हो जाता है। हृदयमें आत्मस्वरूप भगवान्‌का साक्षात्कार होते ही हृदयकी गाँठ टूट जाती है, सारे सन्देह मिट जाते हैं और कर्मबन्धन क्षीण हो जाता है। इसीसे बुद्धिमान् लोग नित्य निरन्तर बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रेम भक्ति करते हैं, जिससे आत्मप्रसादकी प्राप्ति होती है॥१६—२२॥

प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। इनको स्वीकार करके संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके लिये एक अद्वितीय परमात्मा ही विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र—ये तीन नाम ग्रहण करते हैं। फिर भी, मनुष्योंका परम कल्याण तो सत्त्वगुण स्वीकार करनेवाले श्रीहरिसे ही होता है। जैसे पृथ्वीके विकार लकड़ीकी अपेक्षा धूआँ श्रेष्ठ है और उससे भी श्रेष्ठ है अग्नि—क्योंकि वेदोक्त यज्ञ-यागादिके द्वारा अग्नि सद्गति देनेवाला है—वैसे ही तमोगुणसे रजोगुण श्रेष्ठ है और रजोगुणसे भी सत्त्वगुण श्रेष्ठ है, क्योंकि वह भगवान्‌का दर्शन करानेवाला है। प्राचीन युगमें महात्मालोग विशुद्ध सत्त्वमय भगवान् विष्णुकी ही आराधना किया करते थे। अब भी जो लोग उनका अनुसरण करते हैं, वे उन्हींके समान कल्याणभाजन होते हैं। जो लोग इस संसारसागरसे पार जाना चाहते हैं, वे यद्यपि किसीकी निन्दा तो नहीं करते, न किसीमें दोष ही देखते हैं, फिर भी घोररूपवाले तमोगुणी, रजोगुणी भैरवादि भूतपतियोंकी उपासना न करके विष्णु भगवान् और उनके अंश-कलास्वरूपोंका ही भजन करते हैं। परन्तु जिनका स्वभाव रजोगुणी अथवा तमोगुणी है, वे धन, ऐश्वर्य और सन्तानकी कामनासे भूत, पितर और प्रजापतियोंकी उपासना करते हैं, क्योंकि इनका स्वभाव उनसे मिलता जुलता है। सारे वेद भगवान् श्रीकृष्णका ही प्रतिपादन करते हैं। यज्ञ भी भगवान् श्रीकृष्णकी आराधनाके लिये ही हैं। योगोंके द्वारा भी वे ही प्राप्त होते हैं, कर्मोंके द्वारा भी उन्हींकी सिद्धि होती है, ज्ञानसे वे ही जाने जाते हैं, तपस्याएँ उन्हींकी प्राप्तिमें कारण हैं, धर्म भी उन्हींके लिये है और सम्पूर्ण गतियोंके लक्ष्य भी वे ही भगवान् श्रीकृष्ण हैं। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत हैं, सर्वव्यापक हैं—फिर भी अपनी गुणमयी मायासे, जो प्रपञ्चकी दृष्टिसे है और तत्त्वकी दृष्टिसे नहीं है—उन्होंने ही सर्गके आदिमें इस संसारकी रचना की थी। ये सत्त्व, रज और तम—तीनों गुण उसी मायाके विलास हैं, इनके

हो जाते हैं; क्योंकि वे तो विष्णुके परायण हैं, उन्हें किसी फलकी इच्छा तो होती नहीं ॥५४-५५॥

इस प्रकार जब सप्ताहयज्ञ समाप्त हो जाय, तो श्रोताओंको अत्यन्त भक्तिपूर्वक पुस्तक और वक्ताकी पूजा करनी चाहिये। फिर वक्ता श्रोताओंको प्रसाद, तुलसी और प्रसादी मालाएँ दे तथा सब लोग मृदङ्ग और झाँझकी मनोहर ध्वनिसे सुन्दर कीर्तन करें। फिर जय-जयकार, नमस्कार और शङ्ख-ध्वनिका घोष करावे तथा ब्राह्मण और याचकोंको धन और अन्न दे। इसके दूसरे दिन यदि श्रोता विरक्त हो, तो कर्मकी शान्तिके लिये गीतापाठ करे और यदि गृहस्थ हो तो हवन करे। उस हवनमें दशमस्कन्धका एक-एक श्लोक पढ़कर विधिपूर्वक खीर, मधु, घृत, तिल और अन्नादि सामग्रियोंसे आहुति दे। अथवा एकाग्र चित्तसे गायत्री मन्त्रद्वारा हवन करावे, क्योंकि तत्त्वतः यह महापुराण गायत्रीस्वरूप ही है। यदि होम करानेकी शक्ति न हो तो उसका फल प्राप्त करनेके लिये ब्राह्मणोंको कुछ हवनसामग्री दान कर देनी चाहिये। फिर अनेक प्रकारके विघ्नोंकी निवृत्ति और विधिमें जो न्यूनाधिकता रह गयी हो, उसके दोषोंकी शान्तिके लिये विष्णुसहस्रनामका पाठ करे। उससे सभी कर्म सफल हो जाते हैं, क्योंकि कोई भी कर्म इससे बढ़कर नहीं है ॥५६—६३॥

इसके पश्चात् बारह ब्राह्मणोंको खीर और मधु आदि उत्तम-उत्तम पदार्थोंका भोजन करावे तथा व्रतकी पूर्तिके लिये गौ और सुवर्णका दान करे। यदि सामर्थ्य हो तो तीन तोले सोनेका एक सिंहासन बनवावे, उसपर सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई श्रीमद्भागवतकी पोथी रखकर उसकी आवाहनादि विविध उपचारोंसे पूजा करे और फिर जितेन्द्रिय आचार्यको—उसका वस्त्र, आभूषण एवं गन्धादिसे पूजन कर—दक्षिणाके सहित समर्पण कर दे। ऐसा करनेसे वह बुद्धिमान् दाता जन्म-मरणके बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। यह सप्ताहपारायणकी विधि सब पापोंकी निवृत्ति करनेवाली है। इसका इस प्रकार ठीक-ठीक पालन करनेसे यह मङ्गलमय भागवतपुराण अभीष्ट फल प्रदान करता है तथा अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारोंहीकी प्राप्तिका साधन हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं ॥६४—६८॥

सनकादि कहते हैं—नारदजी! इस प्रकार तुम्हें यह सप्ताहश्रवणकी विधि तो पूरी-पूरी सुना दी, अब और क्या सुनना चाहते हो? इस श्रीमद्भागवतसे तो भोग और मोक्ष दोनों ही हाथ लग जाते हैं ॥६९॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! ऐसा कहकर महामुनि सनकादिने एक सप्ताहतक विधिपूर्वक यह सर्वपापनाशिनी, परमपवित्र तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली भागवत-कथा सुनायी और सब प्राणियोंने नियमपूर्वक इसे श्रवण किया। इसके पश्चात् उन्होंने विधिपूर्वक भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति की। इससे ज्ञान, वैराग्य और भक्तिको बड़ी पुष्टि मिली और वे तीनों एकदम तरुण होकर सब जीवोंका चित्त अपनी ओर आकर्षित करने लगे। अपना मनोरथ पूरा होनेसे नारदजीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई, उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे परमानन्दसे पूर्ण हो गये। इस प्रकार कथा श्रवण कर भगवान्‌के प्यारे नारदजी हाथ जोड़कर प्रेमगद्गद-वाणीसे सनकादिसे कहने लगे ॥७०—७४॥

नारदजी बोले—मैं परम धन्य हूँ, आपलोगोंने करुणा करके मुझे बड़ा ही अनुगृहीत किया है, आज तो मुझे समस्त पापोंका निवारण करनेवाले श्रीहरिकी ही प्राप्ति हो गयी। तपोधन मुनीश्वरगण! मेरे विचारसे तो सब धर्मोंमें श्रीमद्भागवतश्रवण ही श्रेष्ठ है, क्योंकि इससे तो साक्षात् वैकुण्ठविहारी श्रीकृष्ण ही मिल जाते हैं ॥७५-७६॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! वैष्णवश्रेष्ठ नारदजी ऐसा कह ही रहे थे कि वहाँ घूमते-घूमते योगेश्वर शुकदेवजी चले आये। व्यासनन्दन भगवान् शुकदेवजीकी आयु प्रायः सोलह वर्षकी-सी ही जान पड़ती है; वे आत्मलाभसे ही तृप्त रहते हैं—उन्हें किसी भी लौकिक या अलौकिक पदार्थकी इच्छा नहीं है; ज्ञानरूप महासागरके लिये तो वे साक्षात् पूर्णचन्द्र ही हैं। वे ठीक कथासमाप्तिके समय वहाँ पधारे; उस समय भी वे धीरे-धीरे प्रेमपूर्वक श्रीमद्भागवतका ही पाठ कर रहे थे। परम तेजस्वी शुकदेवजीको देखकर सारे सभासद् झटपट खड़े हो गये और उन्हें एक ऊँचे आसनपर बैठाया। फिर देवर्षि नारदजीने उनका प्रेमपूर्वक पूजन किया। इस प्रकार जब वे शान्तिसे विराज गये तो 'मेरी स्पष्ट बात सुनो' ऐसा कहते हुए बोले ॥७७—७९॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—रसके मर्मज्ञ एवं भक्तिभावसे छलकते हुए हृदयवाले भक्तजन! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका पका हुआ फल है। शुकदेवरूप तोतेके मुखके सम्बन्धसे यह परमानन्दमयी सुधासे परिपूर्ण हो गया है। यह मूर्तिमान् रस है। इस फलमें छिलका, गुठली आदि त्याज्य अंश तनिक भी नहीं है। जबतक शरीरमें चेतना रहे तथा

अत्यन्त बलवान् हिरण्यकशिपुकी छाती अपने नखोंसे इस प्रकार फाड़ डाली, जैसे चटाई बनानेवाला सींकको चीर डालता है। पन्द्रहवीं बार वामन (बौने) का रूप धारण करके भगवान् दैत्यराज बलिके यज्ञमें गये। वे चाहते तो थे स्वर्गका राज्य, परन्तु माँगी उन्होंने केवल तीन पग पृथ्वी। सोलहवें परशुराम अवतारमें जब उन्होंने देखा कि राजालोग वेदभगवान् या ब्राह्मणोंसे द्रोह करनेवाले हो गये हैं, तब क्रोधित होकर उन्होंने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे शून्य कर दिया। इसके बाद सतरहवें अवतारमें सत्यवतीके गर्भसे पराशरजीके द्वारा वे व्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए। उस समय लोगोंकी समझ और धारणाशक्ति कम देखकर आपने वेदरूप वृक्षकी कई शाखाएँ बना दीं। अठारहवीं बार देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेकी इच्छासे उन्होंने राजाके रूपमें रामावतार ग्रहण किया और सेतु बन्धन, रावण वध आदि वीरतापूर्ण बहुत-सी लीलाएँ कीं। उन्नीसवें और बीसवें अवतारोंमें उन्होंने यदुवंशमें बलराम और श्रीकृष्णके नामसे प्रकट होकर पृथ्वीका भार उतारा। उसके बाद कलियुग आ जानेपर मगधदेश (बिहार) में देवताओंके द्वेषी दैत्योंको मोहित करनेके लिये अजनके पुत्ररूपमें आपका बुद्धावतार होगा। इसके भी बहुत बाद जब कलियुगका अन्त समीप होगा और राजालोग प्रायः लुटेरे हो जायँगे, तब जगत्के रक्षक भगवान् विष्णुयश नामक ब्राह्मणके घर कल्किरूपमें अवतीर्ण होंगे ॥ ६–२५ ॥

शौनकादि ऋषियो! जैसे अगाध सरोवरसे हजारों छोटे-छोटे सोते निकलते हैं, वैसे ही सत्त्वनिधि भगवान् श्रीहरिके असंख्य अवतार हुआ करते हैं। ऋषि, मनु, देवता, प्रजापति, मनुपुत्र और जितने भी शक्तिशाली हैं, वे सब-के-सब भगवान्के ही अंश हैं। ये सब-के-सब अवतार तो भगवान्के अंशावतार अथवा कलावतार हैं, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् ही हैं। जब संसारमें दैत्योंकी वृद्धि होती है, उनके अत्याचारोंसे जब संसारके लोग अत्यन्त पीड़ित हो जाते हैं, तब चाहे कोई भी युग हो, ये भगवान्के अवतार शरीर उनको सुखी किया करते हैं। भगवान्के दिव्य जन्मोंकी यह कथा अत्यन्त गोपनीय रहस्यमयी है, जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे नियमपूर्वक सायङ्काल और प्रातःकाल प्रेमसे इसका पाठ करता है, वह सब दुःखोंसे छूट जाता है ॥ २६–२९ ॥

प्राकृत-रूपरहित चिन्मय भगवान्का जो यह स्थूल जगदाकार रूप है, यह उनकी मायाके महत्तत्त्वादि गुणोंसे भगवान्में ही कल्पित है। जैसे बादल वायुके आश्रय रहते हैं और धूसरपना धूलिमें होता है, परन्तु अल्पबुद्धि मनुष्य बादलोंका आकाशमें और धूसरपनेका वायुमें आरोप करते हैं—वैसे ही अविवेकी पुरुष सबके साक्षी आत्मामें स्थूल दृश्यरूप जगत्का आरोप करते हैं। इस स्थूल रूपसे परे भगवान्का एक सूक्ष्म अव्यक्त रूप है—जो न तो स्थूलकी तरह आकारादि गुणोंवाला है और न देखने, सुननेमें ही आ सकता है; वही सूक्ष्म शरीर है। आत्माका आरोप या प्रवेश होनेसे यही जीव कहलाता है और इसीका बार-बार जन्म होता है। उपर्युक्त सूक्ष्म और स्थूल शरीर अविद्यासे ही आत्मामें आरोपित हैं। जिस अवस्थामें आत्मस्वरूपके ज्ञानसे यह आरोप दूर हो जाता है, उसी समय ब्रह्मका साक्षात्कार होता है। तत्त्वज्ञानी लोग जानते हैं कि जिस समय यह बुद्धिरूपा परमेश्वरकी माया निवृत्त हो जाती है, उस समय जीव परमानन्दमय हो जाता है और अपनी स्वरूप महिमामें स्थित होता है। वास्तवमें जिनके जन्म नहीं हैं और कर्म भी नहीं हैं, उन हृदयेश्वर भगवान्के अप्राकृत जन्म और कर्मोंका तत्त्वज्ञानी लोग इसी प्रकार वर्णन करते हैं, क्योंकि उनके जन्म और कर्म वेदोंके अत्यन्त गोपनीय रहस्य हैं ॥ ३०–३५ ॥

भगवान्की लीला अमोघ है। वे लीलासे ही इस संसारकी रचना, पालन और संहार करते हैं, किन्तु इसमें आसक्त नहीं होते। प्राणियोंके अन्तःकरणमें छिपे रूपसे रहकर ज्ञानेन्द्रिय और मनके नियन्ताके रूपमें उनके विषयोंको ग्रहण भी करते हैं, परन्तु उनसे अलग रहते हैं। वे परम स्वतन्त्र हैं। ये विषय कभी उनसे लिप्त नहीं हो सकते। जैसे अनजान मनुष्य जादूगर अथवा नटके सङ्कल्प और वचनोंसे की हुई करामातको नहीं समझ पाते, वैसे ही अपने सङ्कल्प और वेदवाणीके द्वारा भगवान्के प्रकट किये हुए इन नाना नाम और रूपोंको तथा उनकी लीलाको कुबुद्धि जीव बहुत सी तर्क युक्तियोंके द्वारा नहीं पहचान सकता। चक्रपाणि भगवान्की शक्ति और पराक्रम अनन्त हैं, उनकी कोई थाह नहीं पा सकता। वे सारे जगत्के निर्माता होनेपर भी उससे सर्वथा परे हैं। उनके स्वरूपको अथवा उनकी लीलाके रहस्यको वही जान सकता है, जो नित्य निरन्तर निष्कपट भावसे उनके चरणकमलोंकी दिव्य गन्धका सेवन करता है, सेवा भावसे उनके चरणोंका चिन्तन करता रहता है।

था, उसका उत्तर मैंने आपको दे दिया। इस कलियुगमें भागवतकी कथा संसार-रोगको नष्ट कर देती है ॥९४—९७॥

संतजन! आपलोग आदरपूर्वक इस कथामृतका पान कीजिये। यह श्रीकृष्णको अत्यन्त प्रिय, सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली, मुक्तिकी एकमात्र कारण और भक्तिको बढ़ानेवाली है। लोकमें अन्य कल्याणकारी साधनोंका विचार करने और तीर्थोंका सेवन करनेसे क्या होगा? अपने दूतको हाथमें पाश लिये देखकर यमराज उसके कानमें कहते हैं—'देखो, जो भगवान्‌की कथा-वार्तामें मस्त हो रहे हों, उनसे दूर रहना; मैं औरोंको ही दण्ड देनेकी शक्ति रखता हूँ, वैष्णवोंको नहीं।' इस असार संसारमें विषयरूप विषके कारण व्याकुल हुए लोगो! आधे क्षणके लिये ही इस भागवतकथारूप अनुपम सुधाका पान करो, इससे तुम्हें पूरी शान्ति मिलेगी। तुम अन्य कुत्सित कथाओंसे युक्त कुमार्गोंमें व्यर्थ ही क्यों भटक रहे हो? इस कथाके कानमें पड़ते ही मुक्ति हो जाती है—इस विषयमें परीक्षित् प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। श्रीशुकदेवजीने प्रेमरसके प्रवाहमें स्थित होकर इस कथाको कहा था। इसका जिसके कण्ठसे सम्बन्ध हो जाता है, वह वैकुण्ठका स्वामी बन जाता है। शौनकजी! मैंने सब शास्त्रोंको देखकर आपको यह परम गुह्य रहस्य सुनाया है। सब शास्त्रोंके सिद्धान्तोंका यही निचोड़ है। संसारमें इस शुकशास्त्रसे अधिक पवित्र और कोई वस्तु नहीं है; अतः आपलोग परमानन्दकी प्राप्तिके लिये इस द्वादश स्कन्धरूप रसका पान करें। जो पुरुष नियमपूर्वक इसे भक्ति-भावसे सुनता है और जो विशुद्ध वैष्णवोंके आगे इसे सुनाता है, वे दोनों ही विधिका पूरा-पूरा पालन करनेके कारण इसका यथार्थ फल पाते हैं—उनके लिये त्रिलोकीमें कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता ॥९८—१०३॥

॥ माहात्म्य समाप्त ॥

भागवतकी जय हो

नमो नमो श्रीभागवतपुरान।
महातिमिर अज्ञान बढ्यो जब प्रकट भये जग अद्भुत भान॥
उदित सुभग श्रीशुक उदयाचल छिपे ग्रन्थ उडुगणनि समान।
जागे जीव अविद्या निशि सों कियो प्रकाश विमल विज्ञान॥
फूले अम्बुज वक्ता श्रोता हिमकर मंद मदन अभिमान।
छूटि गये कर्मनिके बन्धन मिट्यो मोह सूझे सुस्थान॥
दरस्यो भक्तिपंथ अनुरागी सूझे शब्द स्वरूप निदान।
देखत नहीं उलूक सकामी यद्यपि दिनकर हैं विद्यमान॥
राजत एक महा सर्वोपरि बढ्यो प्रताप न और समान।
दामोदर हित सुरमुनि वंदित जय जय जय श्रीकृपानिधान॥

हुई होगी, जिसमें यह भागवतसंहिता कही गयी ? महाभाग श्रीशुकदेवजी तो गृहस्थोंके घरोंको तीर्थस्वरूप बना देनेके लिये उतनी ही देर उनके दरवाजेपर रहते हैं, जितनी देरमें एक गाय दुही जाती है। सूतजी! हमने सुना है कि अभिमन्युनन्दन परीक्षित् भगवान्‌के बड़े प्रेमी भक्त थे। उनके अत्यन्त आश्चर्यमय जन्म और कर्मोंका भी वर्णन कीजिये। वे तो पाण्डववंशके गौरव बढ़ानेवाले सम्राट् थे। उन्होंने भला, किस कारणसे साम्राज्यलक्ष्मीका परित्याग करके गङ्गातटपर मृत्युपर्यन्त अनशन किया था ? उनके राज्यमें तो किसी प्रकारकी आपत्ति भी नहीं थी। उनके शत्रु भी अपने भलेके लिये बहुत सा धन लाकर उनके चरण रखनेकी चौकीको हाथ जोड़कर नमस्कार करते थे। जो स्वयं बड़े वीर थे और अभी युवावस्थामें ही थे, उन्होंने उस दुस्त्यज लक्ष्मीको, अपने प्राणोंके साथ भला, क्यों छोड़ना चाहा ? जिन लोगोंका जीवन भगवान्‌के आश्रित है, वे तो संसारके परम कल्याण, अभ्युदय और समृद्धिके लिये ही जीवन धारण करते हैं, उसमें उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं होता। उनका शरीर तो दूसरोंके हितके लिये था, उन्होंने विरक्त होकर उसका परित्याग क्यों किया ? हम ऐसा मानते हैं कि वेदवाणीको छोड़कर अन्य समस्त शास्त्रोंके आप पारदर्शी विद्वान् हैं। सूतजी! इसलिये इस समय जो कुछ हमने आपसे पूछा है, वह सब कृपा करके हमें कहिये॥ २—१३॥

सूतजीने कहा—इस वर्तमान चतुर्युगीके तीसरे युग द्वापरमें महर्षि पराशरके द्वारा सत्यवतीके गर्भसे भगवान्‌के कलावतार योगिराज व्यासजीका जन्म हुआ। एक दिन वे सूर्योदयके समय सरस्वतीके पवित्र जलमें स्नानादि करके एकान्त पवित्र स्थानपर बैठे हुए थे। वे भूत और भविष्यको जानते थे। उनकी दृष्टि अचूक थी। उन्होंने देखा कि जिसको लोग जान नहीं पाते, ऐसे समयके फेरसे प्रत्येक युगमें धर्मसङ्करता और उसके प्रभावसे भौतिक वस्तुओं तथा भावोंका भी शक्ति-ह्रास होता रहता है। संसारके लोग श्रद्धाहीन और शक्तिरहित हो जाते हैं। उनकी बुद्धि कर्तव्यका ठीक ठीक निर्णय नहीं कर पाती और आयु भी कम हो जाती है। लोगोंकी इस भाग्यहीनताको देखकर उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टिसे समस्त वर्णों और आश्रमोंका हित कैसे हो, इसपर विचार किया। उन्होंने सोचा कि वेदोक्त चातुर्होत्र कर्म लोगोंका हृदय शुद्ध करनेवाला है। इस दृष्टिसे यज्ञोंका विस्तार करनेके लिये उन्होंने एक ही वेदके चार विभाग कर दिये। वे विभाग ऋक्, यजु, साम और अथर्वके नामसे प्रसिद्ध हैं। इतिहास और पुराणोंको पाँचवाँ वेद कहा जाता है। उनमेंसे ऋग्वेद पैलको, सामवेद जैमिनिको और यजुर्वेद एकमात्र वैशम्पायनको उन्होंने पढ़ाया। ये तीन इन वेदोंके स्नातक हुए और अथर्ववेदका अध्ययन दारुण स्वभाववाले सुमन्तु मुनिने किया। इतिहास और पुराणोंके स्नातक मेरे पिता रोमहर्षण थे। इन ऋषियोंने अपनी-अपनी शाखाओंको और भी अनेक भागोंमें विभक्त कर दिया। शिष्य, प्रशिष्य और उनके शिष्योंके द्वारा वेदोंकी बहुत सी शाखाएँ बन गयीं। कम समझवाले पुरुषोंपर कृपा करके भगवान् वेदव्यासने इसलिये ऐसा विभाग कर दिया कि जिन्हें स्मरणशक्ति नहीं है या कम है, वे भी वेदोंको धारण कर सकें॥ १४—२४॥

स्त्री, शूद्र और पतित द्विजाति भी तीनों वेदोंके श्रवणके अधिकारी नहीं हैं। इससे वे वेदोक्त कर्मका आचरण करके अपना कल्याण करना नहीं जानते। इस प्रकारसे उन लोगोंका भी कल्याण हो सकेगा, ऐसा सोचकर व्यासजीने बड़ी कृपा करके महाभारत इतिहासकी रचना की। शौनकादि ऋषियो! यद्यपि व्यासजी इस प्रकार अपनी पूरी शक्तिसे सदा-सर्वदा प्राणियोंके कल्याणमें ही लगे रहे, तथापि उनके हृदयको सन्तोष नहीं हुआ। उनका मन कुछ खिन्न सा हो गया। सरस्वती नदीके पवित्र तटपर एकान्तमें बैठकर धर्मवेत्ता व्यासजी मन ही मन विचार करते हुए इस प्रकार कहने लगे—'मैंने निष्कपट भावसे ब्रह्मचर्यादि व्रतोंका पालन करते हुए वेद, गुरुजन और अग्नियोंका सम्मान किया है और उनकी आज्ञाका पालन किया है। महाभारतके बहाने मैंने वेदोंका अर्थ भी सबके लिये सुगम कर दिया है। उसके द्वारा स्त्री, शूद्र आदि भी अपने-अपने धर्म कर्मका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इतना सब कर चुकनेपर भी मेरा हृदय स्वस्थ नहीं है। मालूम होता है कि अभी कुछ करना शेष रह गया है। यद्यपि मेरा ब्रह्मतेज पूर्ण है, फिर भी यह अभाव क्यों खटक रहा है ? अवश्य ही अबतक मैंने भगवान्‌को प्राप्त करानेवाले धर्मोंका निरूपण नहीं किया है। वे ही धर्म परमहंसोंको प्रिय हैं और वे ही भगवान्‌को भी प्रिय हैं। हो न हो, मेरी अपूर्णताका यही कारण है।' व्यासदेव इस प्रकार अपनेको अपूर्ण मानकर जब खिन्न हो रहे थे, उसी समय पूर्वोक्त आश्रमपर देवर्षि नारदजी आ पहुँचे। नारदजीको आया देख व्यासजी तुरत खड़े हो गये। उन्होंने देवताओंके द्वारा सम्मानित देवर्षि नारदकी विधिपूर्वक पूजा की॥ २५—३३॥

पारमार्थिक बुद्धिसे रहित हैं और गुणोंके द्वारा नचाये जा रहे हैं, उनके कल्याणके लिये ही आप भगवान्‌की लीलाओंका सर्वसाधारणके हितकी दृष्टिसे वर्णन कीजिये। इन लीलाओंके श्रवण और कीर्तनसे वे भी अन्तर्मुख होकर भगवद्रसका अनुभव करने लगेंगे। जो लोग अपने धर्मका परित्याग करके भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंका भजन सेवन करते हैं—भजन परिपक्व हो जानेपर तो बात ही क्या है—यदि भजन परिपक्व होनेके पहले ही, वे भजन छोड़ दें या मर जायँ तो क्या कहीं भी उनका कोई अमङ्गल हो सकता है? उस थोड़े-से भजनसे भी उनका कल्याण हो जाना निश्चित है। परन्तु जो भगवान्‌का भजन नहीं करते और केवल स्वधर्मका पालन करते हैं, उन्हें क्या लाभ है? बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह उसी वस्तुकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करे, जो तिनकेसे लेकर ब्रह्मापर्यन्त समस्त ऊँची नीची योनियोंमे कर्मोंके फलस्वरूप आने-जानेपर भी स्वय प्राप्त नहीं होती। ससारके विषय सुख तो, जैसे विना चेष्टाके दु:ख मिलते हैं वैसे ही, कर्मके फलरूपमे अथवा समयके फेरसे सबको सर्वत्र स्वभावसे ही मिल जाते है। व्यासजी! जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दका सेवक है, वह भजन न करनेवाले कर्मी मनुष्योंके समान दैवात् कभी बुरा भाव हो जानेपर भी जन्म-मृत्युमय ससारमें नहीं आता। वह भगवान्‌के चरण कमलोंके आलिङ्गनका स्मरण करके उसके रसास्वादनमें डूबा रहता है, उसे छोड़ना नहीं चाहता। इसीलिये उसे पुन ससारकी प्राप्ति नहीं होती। जिनसे जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं, वे भगवान् ही इस विश्वके रूपमें भी हैं। ऐसा होनेपर भी वे इससे विलक्षण हैं। इस बातको आप स्वय जानते है, फिर भी याद दिलानेके लिये मैंने आपको सकेतमात्र कर दिया है। व्यासजी! आपकी दृष्टि अमोघ है, आप इस बातको जानिये कि आप पुरुषोत्तम भगवान्‌के कलावतार हैं। आपने अजन्मा होकर भी जगत्‌के कल्याणके लिये जन्म ग्रहण किया है, इसलिये आप विशेषरूपसे भगवान्‌की लीलाओंका कीर्तन कीजिये। विद्वानोंने इस बातका निरूपण किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है—उनकी सफलता इसीमें है कि भगवान् श्रीकृष्णके गुणों और लीलाओंका वर्णन किया जाय॥८-२२॥

व्यासजी! पिछले कल्पमें अपने पूर्वजीवनमें मैं वेदवादी ब्राह्मणोंकी एक दासीका लड़का था। वे योगी वर्षा ऋतुमें एक स्थानपर चातुर्मास्य कर रहे थे। बचपनमें ही मैं उनकी सेवामे नियुक्त कर दिया गया था। मैं यद्यपि बालक था, फिर भी किसी प्रकारकी चञ्चलता नहीं करता था, जितेन्द्रिय था, खेल कूदसे दूर रहता था और आज्ञानुसार उनकी सेवा करता था। मैं बोलता भी बहुत कम था। मेरे इस शील स्वभावको देखकर और मेरी सेवासे प्रसन्न होकर समदर्शी होनेपर भी उन मुनियोंने मेरे ऊपर अत्यन्त अनुग्रह किया। उनकी अनुमति प्राप्त करके बरतनोंमें लगा हुआ जूँठन मैं एक बार खा लिया करता था। इससे मेरे सारे पाप धुल गये। इस प्रकार उनकी सेवा करते करते मेरा हृदय शुद्ध हो गया और वे लोग जैसा भजन पूजन करते थे, उसीमें मेरी भी रुचि हो गयी। उन्हींके पास रहकर मैं प्रतिदिन उनकी कृपासे भगवान्‌की मधुर मनोहर लीला-कथाएँ सुना करता। वे बड़े प्रेमसे प्रतिदिन भगवान्‌की लीला गाया करते थे। मैं बड़ी श्रद्धासे ध्यानपूर्वक उस गायनका एक एक पद श्रवण करता। इससे, जिनकी कीर्ति और जिनकी लीला बड़ी ही प्रेममयी है, उन भगवान्‌में मेरी रुचि हो गयी। व्यासजी! जब भगवान्‌में मेरी रुचि हो गयी, तब उन प्रेममयी कीर्तिवाले प्रभुमें मेरी बुद्धि भी निश्चल हो गयी। उस बुद्धिसे मैं इस सम्पूर्ण सत् और असत्‌रूप जगत्‌को अपने परब्रह्म स्वरूप आत्मामें मायासे कल्पित देखने लगा। इस प्रकार भगवान्‌के जिस निर्मल यशका सकीर्तन वे महात्मा लोग करते थे, उसका नित्य निरन्तर श्रवण करते करते वर्षा और शरद्—ये दो ऋतुएँ बीत गयीं। इतने ही दिनोंमें रजोगुण और तमोगुणको नाश करनेवाली भक्तिका मेरे हृदयमें प्रादुर्भाव हो गया। मैं उनका बड़ा ही अनुरागी था, विनयी था, उन लोगोंकी सेवासे मेरे पाप नष्ट हो चुके थे, मेरे हृदयमे श्रद्धा थी, इन्द्रियोंमें सयम था एव शरीर, वाणी और मनसे मैं उनका आज्ञाकारी था। उन दीनदयालु ऋषियोंको मुझ बालकपर बड़ी दया आयी। वहाँसे जाते समय उन्होंने मुझे भगवत् शरणागतिरूप उस गुह्यतम ज्ञानका उपदेश किया, जिसे साक्षात् भगवान्‌ने ही गीतादिमें अपनी

ॐ तत्सत्

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत

प्रथम स्कन्ध

पहला अध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीसूतजीसे शौनकादि ऋषियोंका प्रश्न

मङ्गलाचरण

जिससे इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं; जिसकी सत्तासे ही जगत्की सत्ता है, और जगत्के न रहनेपर भी जिसका अस्तित्व अक्षुण्ण रहता है; इन्द्रियों और वृत्तियोंके द्वारा जिन-जिन विषयोंका ज्ञान होता है, उनमें रहकर जो उन्हें जानता रहता है—सर्वज्ञ है; ज्ञानवान् होनेके कारण जो प्रकृतिसे तो भिन्न है ही, साथ ही अखण्ड अबाध ज्ञान-सम्पन्न होनेके कारण स्वयंप्रकाश भी है;—यहाँतक कि सर्गके आरम्भमें ब्रह्माजीको भी अपने सङ्कल्पसे उन वेदोंका ज्ञान-दान उसीने किया है, जिनके सम्बन्धमें बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी मोहित हो जाते हैं; जिसके सत्यस्वरूपमें यह त्रिगुणमयी सृष्टि उसकी सत्ताकी दृष्टिसे तो सत्य है, परन्तु भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंकी दृष्टिसे उसी प्रकार असत्य भी है, जैसे तेजोमय सूर्यकी किरणों (मृगतृष्णा) तथा काँच आदि मृत्तिकाके विकारोंमें जलकी, तथा जलमें स्थल आदिकी भ्रान्ति हो जाया करती है; जिसके अपने ज्ञानमय प्रकाशसे माया, छल, कपट आदि नित्य-निरन्तर दूरसे ही निरस्त रहते हैं—उस परम सत्यस्वरूप परमेश्वरका हम प्रेम और एकाग्रतासे चिन्तन करते हैं ॥ १ ॥

ग्रन्थ-प्रशस्ति

यह श्रीमद्भागवत महापुराण महामुनि भगवान् श्रीकृष्ण-द्वैपायन व्यासके द्वारा रचित है । इसमें उस निष्कपट एवं परमधर्मका निरूपण हुआ है, जिसमें मोक्षपर्यन्त किसी भी वस्तुकी कामनाकी गन्ध भी नहीं है । वह परम धर्म अनन्य और विशुद्ध भगवत्प्रेम है । जिनका हृदय शुद्ध है, मत्सरहीन है, उन सत्पुरुषोंके लिये उनके जाननेयोग्य उस वस्तु (परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण) का निरूपण हुआ है, जो आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक तीनों तापोंका जड़से नाश करनेवाली और परमकल्याणको देनेवाली है । जो लोग इसका आश्रय लेते हैं, उन्हें विलम्बसे फल देनेवाले अन्य किसी भी साधनकी अथवा शास्त्रकी आवश्यकता नहीं है । जो सत्पुरुष अपने अनेक जन्मोंके सुकृतोंके फलस्वरूप इस महापुराणके श्रवणकी इच्छा करते हैं, उनके हृदयमें स्वयं भगवान् उसी क्षण आकर विराजमान हो जाते हैं और वहाँसे फिर हटते ही नहीं । रसके मर्मज्ञ एवं भक्तिभावसे छलकते हुए हृदयवाले भक्तजन ! यह श्रीमद्भागवत वेदरूप कल्पवृक्षका पका हुआ फल है । श्रीशुकदेवरूप तोतेके* मुखका सम्बन्ध होनेसे यह परमानन्दमयी सुधासे परिपूर्ण हो गया है । इस फलमें छिलका, गुठली आदि त्याज्य अंश तनिक भी नहीं है । यह मूर्तिमान् रस है । जबतक शरीरमें चेतना रहे तथा जबतक संसारका प्रलय न हो जाय तबतक इस दिव्य भगवद्-रसका निरन्तर बार-बार पान करते रहो । इसके लिये स्वर्गमें जानेकी आवश्यकता नहीं, यह तो यहीं पृथ्वीपर ही सुलभ है ॥ २-३ ॥

कथा-प्रारम्भ

नैमिषारण्य बड़ी पवित्र भूमि है, वह देवताओंका और स्वयं भगवान् विष्णुका परम पुण्यमय क्षेत्र है । एक बार शौनकादि ऋषियोंने भगवत्-प्राप्तिकी इच्छासे सहस्र वर्षोंमें पूरे होनेवाले एक महान् यज्ञका प्रारम्भ किया । एक दिन उन लोगोंने प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि नित्यकृत्योंसे निवृत्त होकर सूतजीका पूजन किया और उन्हें ऊँचे आसनपर बैठाकर बड़े आदरसे यह प्रश्न किया ॥ ४-५ ॥

* यह प्रसिद्ध है कि तोतेका खाया हुआ फल अधिक मीठा होता है।

बहुत करती थी, परन्तु पराधीन होनेके कारण कुछ कर नहीं पाती थी। इस विषयमें किसीका कुछ भी वश नहीं है। जैसे कठपुतली नटकी इच्छाके अनुसार ही नाचती है, वैसे ही यह सारा संसार ईश्वरके अधीन है। मैं अपनी माँके स्नेह बन्धनमें बँधकर उस ब्राह्मणोंकी बस्तीमें ही रहा। मेरी अवस्था केवल पाँच वर्षकी थी, मुझे दिशा, देश और कालके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञात नहीं था। एक दिनकी बात है, मेरी माँ गौ दुहनेके लिये रातके समय घरसे बाहर निकली। रास्तेमें उसके पैरसे साँप छू गया, उसने उस बेचारीको डस लिया। उस साँपका क्या दोष, कालकी ऐसी ही प्रेरणा थी। उस समय मुझे कोई दुःख नहीं हुआ। मैंने समझा भक्तोंका मङ्गल चाहनेवाले भगवान्‌का यह भी एक अनुग्रह ही है। इसके बाद मैं उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा॥ ५-१०॥

वहाँसे चलनेपर मार्गमें मुझे अनेकों धन धान्यसे सम्पन्न देश, शहर, गाँव और अहीरोंकी चलती फिरती बस्तियाँ, खाने, खेड़े, नदी और पर्वतोंके तटके पड़ाव, वाटिकाएँ, वन उपवन और रंग बिरंगी धातुओंसे युक्त विचित्र पर्वत दिखायी पड़े। कहीं-कहीं बड़े सुन्दर सुन्दर जंगली वृक्ष थे, जिनकी बड़ी बड़ी शाखाएँ हाथियोंने तोड़ डाली थीं। शीतल जलसे भरे हुए जलाशय, जिनमें देवताओंके काममें आनेवाले कमल थे, उनपर तरह तरहके पक्षी चहक रहे थे और भौंरे गुंजार कर रहे थे, यह सब देखता हुआ मैं आगे बढ़ा। मैं अकेला ही था। इतना बड़ा मार्ग तै करनेपर मैंने एक घोर गहन जंगल देखा। उसमें नल, बाँस, सेंठा, कुश, कीचक आदि लगे हुए थे। उसकी लंबाई चौड़ाई भी बहुत थी और वह साँप, उल्लू, स्यार आदि भयङ्कर जीवोंका घर हो रहा था। देखनेमें बड़ा भयावना लगता था। चलते चलते मेरा शरीर और इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं। मुझे बड़े जोरकी प्यास लगी, भूखा तो था ही। वहाँ एक नदी मिली। उसके कुण्डमें मैंने स्नान, जलपान और आचमन किया। इससे मेरी थकावट मिट गयी। वह घोर जंगल बिल्कुल सूना था। उसमें एक पीपलके नीचे आसन लगाकर मैं बैठ गया। उन महात्माओंसे जैसा मैंने सुना था, हृदयमें रहनेवाले परमात्माके उसी स्वरूपका मैं मन ही मन ध्यान करने लगा। मेरा हृदय पहलेसे ही प्रेमभावसे विवश था। भगवान्‌के चरणकमलोंका ध्यान करते ही भगवत् प्राप्तिकी उत्कट लालसासे मेरे नेत्रोंमें आँसू भर आये और मेरे हृदयमें धीरे धीरे भगवान् प्रकट हो गये। व्यासजी! उस समय प्रेमभावके अत्यन्त उद्रेकसे मेरा रोम-रोम पुलकित हो उठा। हृदय अत्यन्त शान्त और शीतल हो गया। उस आनन्दकी बाढ़में मैं ऐसा डूब गया कि मुझे अपना और उनका तनिक भी भान न रहा। इसके बाद श्री भगवान् अन्तर्धान हो गये। भगवान्‌का वह अनिर्वचनीय रूप समस्त शोकोंका नाश करनेवाला और मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाला था। सहसा उसे न देख मैं बहुत ही विकल हो गया और अनमना सा होकर आसनसे उठ खड़ा हुआ॥ ११-१९॥

मैंने उस स्वरूपका दर्शन फिर करना चाहा, किन्तु मनको हृदयमें समाहित करके बार-बार दर्शनकी चेष्टा करनेपर भी मैं उसे नहीं देख सका। मैं अतृप्तके समान आतुर हो उठा, परन्तु प्रयत्न करता ही रहा। इस प्रकार एकान्त जंगलमें मुझे प्रयत्न करते देख स्वयं भगवान्‌ने, जो वाणीके विषय नहीं हैं, बड़ी गम्भीर और मधुर वाणीसे मेरे शोकको शान्त करते हुए-से कहा—'खेद है कि इस जन्ममें तुम मेरा दर्शन नहीं कर सकते। जिनकी वासनाएँ पूर्णतया शान्त नहीं हो गयी हैं, जिनका हृदय विशुद्ध नहीं हुआ है, उन अधकचरे योगियोंको मेरा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। तुम निष्पाप हो, इसलिये तुम्हें एक बार दर्शन दे दिया गया है-जिससे मुझे प्राप्त करनेकी अभिलाषा तुम्हारे हृदयमें विशेषरूपसे जाग्रत् हो। जिस साधकके हृदयमें मुझे प्राप्त करनेकी लालसा जग जाती है, वह क्रमशः दूसरे विषयोंकी समस्त कामनाओंको त्याग देता है। तुमने थोड़े ही दिनोंतक महात्माओंकी सेवा की है। इसीके प्रभावसे तुम्हारे हृदयमें मुझे प्राप्त करनेका दृढ निश्चय हुआ है। अब इस निन्दनीय प्राकृत शरीरको छोड़कर तुम मेरे निज जनोंमें—दिव्य शरीरवाले पार्षदोंमें आ जाओगे। यह जो मुझे प्राप्त करनेका तुम्हारा दृढ निश्चय है, यह कभी किसी भी प्रकारसे टूटेगा नहीं। यहाँतक कि समस्त सृष्टिका प्रलय हो जानेपर भी मेरी कृपासे तुम्हें इस शरीरकी सारी स्मृति बनी रहेगी—' इतना कहकर वे महान् परमात्मा चुप हो गये। उस समय उन सर्वनियामक परमात्माको मैं अपनी आँखोंसे देख न सका। केवल उनकी आकाशवाणी ही सुनी। उनकी इस कृपाका अनुभव कर मैंने उन महान्‌से भी महत्तम भगवान्‌को सिर झुकाकर प्रणाम किया। तभीसे मैं लज्जा संकोच छोड़कर भगवान्‌के अत्यन्त रहस्यमय और मङ्गलमय मधुर नामों

समुद्रके पार जानेकी इच्छावालोंको कोई कर्णधार मिल जाय। सूतजी! योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने तो अब अपनी प्रकट-लीला संवरण कर ली है, वे अपने धामको पधार गये हैं। वेद और वैदिक ब्राह्मणोंके वे ही रक्षक हैं, वे ही धर्मके कवच हैं; अब बताइये उनके चले जानेपर धर्म किसकी शरणमें है, धर्मकी रक्षा करनेवाला कौन है? ॥ १८–२३ ॥

दूसरा अध्याय

भगवत्कथा और भगवद्भक्तिका माहात्म्य



श्रीव्यासजी कहते हैं—शौनकादि ब्रह्मवादी ऋषियोंके ये प्रश्न सुनकर रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने ऋषियोंके इस मङ्गलमय प्रश्नका अभिनन्दन करके कहना आरम्भ किया ॥ १ ॥

सूतजी बोले—जिस समय श्रीशुकदेवजीका यज्ञोपवीत-संस्कार भी नहीं हुआ था, लौकिक-वैदिक कर्मोंके अनुष्ठानका अवसर भी नहीं आया था कि वे अकेले ही संन्यास लेनेके उद्देश्यसे अपने पिताके आश्रमसे चल पड़े थे। ऐसे परम भागवत पुत्रको बाल्यावस्थामें ही संन्यासी होते देखकर उनके पिता व्यासजीको बड़ी व्यथा हुई, वे विरहसे कातर होकर पुकारने लगे—'बेटा! बेटा! तुम कहाँ जा रहे हो?' उस समय श्रीशुकदेवजीकी ओरसे वृक्षोंने प्रत्युत्तर दिया था। इससे सिद्ध होता है कि वे समस्त प्राणियोंके हृदयमें आत्माके रूपसे विराजमान हैं, उन्होंने सबके साथ अपनेको एक कर दिया है। ऐसे सर्वात्मा श्रीशुकदेव मुनिको मैं नमस्कार करता हूँ। यह श्रीमद्भागवत, जिसे मैं कहने जा रहा हूँ, अत्यन्त गोपनीय रहस्यात्मक पुराण है। यह भगवत्स्वरूपका अनुभव करानेवाला और समस्त वेदोंका सार है। संसारमें फँसे हुए जो लोग इस घोर अज्ञानान्धकारसे पार जाना चाहते हैं, उनके लिये आध्यात्मिक तत्त्वोंको प्रकाशित करनेवाला यह एक अद्वितीय दीपक है। वास्तवमें उन्हींपर करुणा करके उन्हींके उद्धारके लिये व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने इसका वर्णन किया है। वे बड़े-बड़े मुनियोंके आचार्य हैं। मैं उनकी शरण ग्रहण करता हूँ। मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान्‌के अवतार नर-नारायण ऋषिको, सरस्वती देवीको और श्रीव्यासदेवजीको नमस्कार करके तब संसार और अन्तःकरणके समस्त विकारोंपर विजय प्राप्त करानेवाले इस श्रीमद्भागवत महापुराणका पाठ करना चाहिये ॥ २–४ ॥

ऋषियो! आपने सम्पूर्ण विश्वके कल्याणके लिये यह बहुत सुन्दर प्रश्न किया है, क्योंकि यह प्रश्न श्रीकृष्णके सम्बन्धमें है और इस प्रश्नसे ही हृदय आनन्दसे भर जाता है। मनुष्योंके लिये सबसे बढ़कर परम धर्म वही है, जिससे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति हो; भक्ति भी ऐसी, जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो और जो नित्य-निरन्तर बनी रहे, जिसकी धारा कहीं भी टूटे नहीं। ऐसी भक्तिसे हृदय आनन्दस्वरूप परमात्माकी उपलब्धि करके कृतकृत्य हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति होते ही, अनन्य प्रेमसे उनमें चित्त जोड़ते ही विशुद्ध ज्ञान और वैराग्यका आविर्भाव हो जाता है। धर्मका ठीक-ठीक अनुष्ठान करनेपर भी यदि मनुष्यके हृदयमें भगवान्‌की लीला-कथाओंके प्रति अनुरागका उदय न हो तो ऐसा समझना चाहिये कि वह केवल श्रम-ही-श्रम है। धर्मका फल है संसारके बन्धनोंसे मुक्ति, भगवान्‌की प्राप्ति। उससे यदि कुछ सांसारिक सम्पत्ति उपार्जन कर ली, तो यह उसकी कोई सफलता नहीं है। इसी प्रकार धनका फल है—एकमात्र धर्मका अनुष्ठान; वह न करके यदि कुछ भोगकी सामग्रियाँ एकत्र कर लीं तो यह कोई लाभकी बात नहीं है। भोगकी सामग्रियोंका भी

जिससे जीवके शोक, मोह और भय नष्ट हो जाते हैं। उन्होंने इस भागवत-संहिताका निर्माण और पुनरावृत्ति करके इसे अपने निवृत्तिपरायण पुत्र श्रीशुकदेवजीको पढ़ाया ॥२—८॥



शौनकजीने पूछा—श्रीशुकदेवजी तो अत्यन्त निवृत्तिपरायण हैं। उन्हें किसी भी वस्तुकी अपेक्षा नहीं है। वे सदा आत्मामें ही रमण करते हैं। फिर उन्होंने किसलिये इस विशाल ग्रन्थका अध्ययन किया ॥ ९ ॥

सूतजीने कहा—जो लोग ज्ञानी हैं, जिनकी अविद्याकी गाँठ खुल गयी है और जो सदा आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं, वे भी भगवान्‌की हेतुरहित भक्ति किया करते हैं। भगवान्‌के गुण ही ऐसे मधुर हैं, जो सबको अपनी ओर खींच लेते हैं। फिर श्रीशुकदेवजी तो भगवान्‌के भक्तोंके अत्यन्त प्रिय और स्वयं भगवान् वेदव्यासके पुत्र हैं। उनमें जन्मसे ही भगवद्भक्तिका निवास है। भगवान्‌के गुणोंने उनके हृदयको अपनी ओर खींच लिया और उन्होंने उससे विवश होकर ही इस विशाल ग्रन्थका अध्ययन किया ॥ १०-११ ॥

शौनकजी! अब मैं राजर्षि परीक्षित्‌के जन्म, कर्म और मोक्षकी तथा पाण्डवोंके स्वर्गारोहणकी कथा कहता हूँ, क्योंकि इन्हींसे भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों कथाओंका उदय होता है। जिस समय महाभारत-युद्धमें कौरव और पाण्डव दोनों पक्षोंके बहुत-से वीर वीरगतिको प्राप्त हो चुके थे और भीमसेनकी गदाके प्रहारसे दुर्योधनकी जाँघ टूट चुकी थी, तब अश्वत्थामाने अपने स्वामी दुर्योधनका प्रिय कार्य समझकर द्रौपदीके सोते हुए पुत्रोंके सिर काट डाले, यद्यपि दुर्योधनके लिये भी यह घटना अप्रिय ही सिद्ध हुई; ऐसे नीच कर्मकी सभी निन्दा करते हैं। जब उन बच्चोंकी माता द्रौपदीको यह बात मालूम हुई तो उसको असह्य पीड़ा हुई, और वह आँखोंसे आँसू बहाती हुई विलाप करने लगी। उसको सान्त्वना देते हुए अर्जुनने कहा—कल्याणि! तुम धैर्य धारण करो। मैं तुम्हारा शोक उस समय दूर करूँगा, जब उस आततायी* ब्राह्मणाधमका सिर गाण्डीव धनुषके बाणोंसे काटकर तुम्हें ला दूँगा और पुत्रोंकी अन्त्येष्टि-क्रिया होनेके बाद तुम उसपर पैर रखकर स्नान करोगी। अर्जुनने इन मीठी और विचित्र बातोंसे द्रौपदीको सान्त्वना दी और अपने मित्र भगवान् श्रीकृष्णकी सलाहसे उन्हें सारथि बनाकर, कवच धारण कर और गाण्डीव धनुषको लेकर वे रथपर सवार हुए तथा गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पीछे दौड़ पड़े। बच्चोंकी हत्यासे अश्वत्थामाका मन भी उद्विग्न हो गया था। जब उसने दूरसे ही देखा कि अर्जुन मेरी ओर झपटे हुए आ रहे हैं, तब वह अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये पृथ्वीपर जहाँतक भाग सकता था, रुद्रसे भयभीत सूर्यकी† भाँति भागता रहा। जब उसने देखा कि मेरे रथके घोड़े थक गये हैं और मैं बिल्कुल अकेला हूँ, तब उसने अपनेको बचानेके लिये एकमात्र ब्रह्मास्त्रके प्रयोगको ही ठीक समझा। यद्यपि उसे ब्रह्मास्त्रको लौटानेकी विधि मालूम न थी, फिर भी प्राण सङ्कट देखकर उसने आचमन किया और ध्यानस्थ होकर ब्रह्मास्त्रका प्रयोग कर ही तो दिया। उस अस्त्रसे सब दिशाओंमें एक बड़ा प्रचण्ड तेज फैल गया। अर्जुनने देखा कि अब तो मेरे प्राणोंपर ही आ बनी है, तब उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की ॥ १२—२१ ॥

अर्जुनने कहा—श्रीकृष्ण! तुम सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा हो। तुम्हारी शक्ति अनन्त है। तुम्हीं भक्तोंको अभय देनेवाले हो। जो संसारकी धधकती हुई आगमें जल रहे हैं, उन जीवोंको उससे उबारनेवाले एकमात्र तुम्हीं

---

* आग लगानेवाला, जहर देनेवाला, बुरी नीयतसे हाथमें शस्त्र ग्रहण करनेवाला, धन लूटनेवाला, खेत और स्त्रीको छीननेवाला—ये छः 'आततायी' कहलाते हैं।

† शिवभक्त विद्युन्माली दैत्यको जब सूर्यने हरा दिया, तब सूर्यपर क्रोधित होकर भगवान् रुद्र त्रिशूल हाथमें लेकर उनकी ओर दौड़े। उस समय सूर्य भागते भागते पृथ्वीपर काशीमें आकर गिरे, इसीसे वहाँ उनका 'लोलार्क' नाम पड़ा।

भीतर रहकर ये इनसे युक्त-से मालूम पड़ते हैं। वास्तवमें तो वे परिपूर्ण विज्ञानानन्दघन हैं। अग्नि तो वस्तुतः एक ही है परन्तु जब वह अनेक प्रकारकी लकड़ियोंमें प्रकट होती है तो अनेक-सी मालूम पड़ती है। वैसे ही भगवान् तो एक ही हैं, परन्तु प्राणियोंकी अनेकतासे अनेक-से जान पड़ते हैं। भगवान् ही भूत-तन्मात्रा, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण आदि गुणमय भावोंके द्वारा नाना प्रकारकी योनियोंका निर्माण करते हैं और उनमें भिन्न-भिन्न जीवोंके रूपमें प्रवेश करके उन-उन योनियोंके अनुरूप विषयोंका उपभोग करते-कराते हैं। वही सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करते हैं और देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य आदि योनियोंमें लीलावतार ग्रहण करके सत्त्वगुणके द्वारा जीवोंका पालन-पोषण करते हैं॥२३—३४॥

तीसरा अध्याय

भगवान्‌के अवतारोंका वर्णन

श्रीसूतजीने कहा—सृष्टिके आदिमें भगवान्‌ने लोकोंके निर्माणकी इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत्तत्त्व आदिसे युक्त पुरुषरूप ग्रहण किया। उसमें दस इन्द्रियाँ, एक मन और पाँच भूत—ये सोलह कलाएँ थीं। उन्होंने जब कारण-जलमें शयन करते हुए योगनिद्राका विस्तार किया, तो उनके नाभि-सरोवरमेंसे एक कमल प्रकट हुआ और उस कमलसे प्रजापतियोंके अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। भगवान्‌के उस विराट्‌रूपके अङ्ग-प्रत्यङ्गमें ही समस्त लोकोंकी कल्पना की गयी है, वह भगवान्‌का विशुद्ध सत्त्वमय श्रेष्ठ रूप है। योगीलोग दिव्यदृष्टिसे भगवान्‌के उस रूपका दर्शन करते हैं। भगवान्‌का वह रूप हजारों पैर, जाँघें, भुजाएँ और मुखोंके कारण अत्यन्त विलक्षण है; उसमें हजारों सिर, हजारों कान, हजारों आँखें और हजारों नासिकाएँ हैं। हजारों मुकुट, वस्त्र और कुण्डल आदि आभूषणोंसे वह उल्लसित होता रहता है। भगवान्‌का यही पुरुषरूप, जिसे नारायण कहते हैं, अनेक अवतारोंका अक्षय खजाना है; इसीसे सब अवतार प्रकट होते हैं। इस रूपके छोटे-से-छोटे अंशसे देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि योनियोंकी सृष्टि होती है॥१—५॥

उन्हीं प्रभुने पहले कौमारसर्गमें सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमारके रूपमें अवतार ग्रहण करके अत्यन्त दुष्कर अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन किया। दूसरी बार इस संसारके कल्याणके लिये समस्त यज्ञोंके स्वामी उन भगवान्‌ने ही रसातलमें गयी हुई पृथ्वीको निकाल लानेके विचारसे सूकररूप ग्रहण किया। ऋषियोंकी सृष्टिमें उन्होंने देवर्षि नारदके रूपमें तीसरा अवतार ग्रहण किया और सात्वत तन्त्रका, जिसे 'नारद-पाञ्चरात्र' कहते हैं, उपदेश किया; उसमें कर्म किस प्रकार कर्म-बन्धनसे मुक्त करनेवाले होते हैं, इसका वर्णन है। धर्मपत्नी मूर्तिके गर्भसे उन्होंने नर-नारायणके रूपमें चौथा अवतार ग्रहण किया। इस अवतारमें उन्होंने ऋषि बनकर मन और इन्द्रियोंका अत्यन्त संयम करके अत्यन्त कठिन तपस्या की। पाँचवें अवतारमें वे सिद्धोंके स्वामी कपिलके रूपमें प्रकट हुए और तत्त्वोंका निर्णय करनेवाले सांख्य-शास्त्रका, जो कि समयके फेरसे लुप्त हो गया था, आसुरि नामक ब्राह्मणको उपदेश किया। अनसूयाके वर माँगनेपर छठे अवतारमें वे अत्रिकी सन्तान दत्तात्रेय हुए। इस अवतारमें उन्होंने अलर्क एवं प्रह्लाद आदिको ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया। सातवीं बार रुचि प्रजापतिकी आकूति नामकी पत्नीसे यज्ञके रूपमें उन्होंने अवतार ग्रहण किया और अपने पुत्र याम आदि देवताओंके साथ स्वायम्भुव मन्वन्तरकी रक्षा की। राजा नाभिकी पत्नी मेरुदेवीके गर्भसे ऋषभदेवके रूपमें भगवान्‌ने आठवाँ अवतार ग्रहण किया। इस रूपमें उन्होंने परमहंसों-का वह मार्ग, जो सभी आश्रमियोंके लिये वन्दनीय है, दिखाया। ऋषियोंकी प्रार्थनासे नवीं बार वे राजा पृथुके रूपमें अवतीर्ण हुए। शौनकादि ऋषियो! इस अवतारमें उन्होंने पृथ्वीसे समस्त ओषधियोंका दोहन किया था, इससे यह अवतार सबके लिये बड़ा ही कल्याणकारी माना गया। चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें जब सारी पृथ्वी समुद्रमें डूब रही थी, तब उन्होंने मत्स्यके रूपमें दसवाँ अवतार ग्रहण किया और पृथ्वीरूपी नौकापर बैठाकर अगले मन्वन्तरमें होनेवाले वैवस्वत मनुकी रक्षा की। जिस समय देवता और दैत्य समुद्र-मन्थन कर रहे थे, तब ग्यारहवाँ अवतार धारण करके कच्छपरूपसे भगवान्‌ने मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया। बारहवीं बार धन्वन्तरिके रूपमें अमृत लेकर समुद्रसे प्रकट हुए और तेरहवीं बार मोहिनीरूप धारण करके दैत्योंको मोहित करते हुए देवताओंको अमृत पिलाया। चौदहवें अवतारमें उन्होंने नरसिंहरूप धारण किया और

शौनकादि ऋषियो! आप लोग बड़े ही सौभाग्यशाली तथा धन्य हैं। जो इस जीवनमें और विघ्न-बाधाओंसे भरे इस संसारमें समस्त लोकोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे वह सर्वात्मक आत्मभाव, वह अनिर्वचनीय अनन्य प्रेम करते हैं, जिससे फिर इस संसारके भयङ्कर चक्रमें नहीं पड़ना होता॥ ३६–३९॥

इस श्रीमद्भागवत-नामक पुराणकी संसारके परम कल्याण-के लिये भगवान् वेदव्यासजीने रचना की। यह वेदोंके समान ही है, क्योंकि इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन हुआ है। उन्होंने इस महान् मङ्गलमय और परम पवित्र पुराणका आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ अपने पुत्र श्रीशुकदेव-जीको अध्ययन कराया। सारे वेद और इतिहासोंका सार-सार इसमें संग्रह कर लिया गया है। जब राजा परीक्षित् गङ्गाके तटपर मृत्युपर्यन्त निराहार रहनेका नियम लेकर बड़े-बड़े ऋषियोंसे घिरे बैठे थे, तब श्रीशुकदेवजीने उनको यह सुनाया था। जब भगवान् श्रीकृष्ण धर्म, ज्ञान आदिके साथ अपने परमधामको पधार गये, तब इस कलियुगमें जो लोग अज्ञानरूपी अन्धकारसे अंधे हो रहे हैं, उनके लिये यह पुराणरूपी सूर्य इस समय प्रकट हुआ है। शौनकादि ऋषियो! जब महातेजस्वी श्रीशुकदेवजी महाराज वहाँ इस पुराणकी कथा कह रहे थे, तब मैं भी वहाँ बैठा था। वहीं मैंने उनकी कृपापूर्ण अनुमतिसे इसका अध्ययन किया। मेरा जैसा अध्ययन है और मेरी बुद्धिने जितना जिस प्रकार इसको ग्रहण किया है, उसीके अनुसार इसे मैं आपलोगोंको सुनाता हूँ॥ ४०–४५॥

चौथा अध्याय

महर्षि व्यासका असन्तोष

व्यासजी कहते हैं—नैमिषारण्यके उस लंबे कालके यज्ञमें जितने ऋषि-मुनि सम्मिलित हुए थे, उनमें सबसे वयोवृद्ध और ऋग्वेदी विद्वान् शौनक ऋषि थे, वे ही उनके कुलपति थे। सूतजीकी यह बात सुनकर उन्होंने सबकी ओरसे उनकी प्रशंसा की और कहा॥ १॥

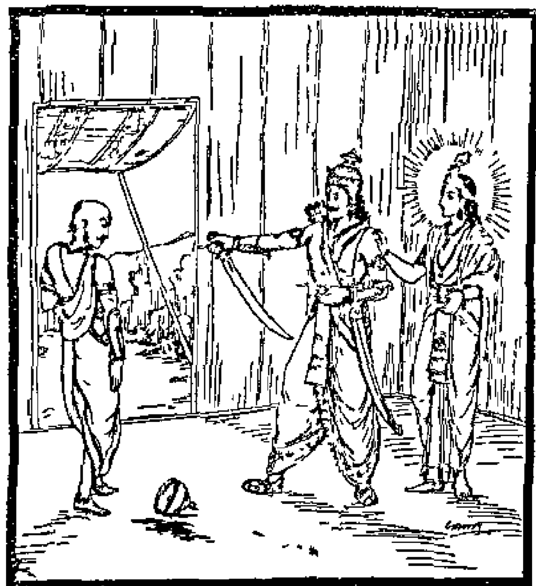


शौनकजी बोले—सूतजी! आप वक्ताओंमें श्रेष्ठ हैं तथा बड़े भाग्यशाली हैं। जो कथा भगवान् श्रीशुकदेवजीने कही थी, वही भगवान्की पुण्यमयी कथा कृपा करके आप हमें सुनाइये। वह कथा किस युगमें, किस स्थानपर और किस कारणसे हुई थी? वेदव्यास श्रीकृष्णद्वैपायनने किसकी प्रेरणासे इस परमहंसोंकी संहिताका निर्माण किया था? उनके पुत्र शुकदेवजी तो बड़े भारी योगी और समदर्शी हैं, उनके हृदयमें किसी प्रकारका भेद-भाव नहीं है। वे संसार-निद्रासे जगकर निरन्तर एकमात्र परमात्मामें ही स्थित रहते हैं। वे इतने छिपे रहते हैं कि साधारण लोगोंको तो वे मूढ़-से ही जान पड़ते हैं। उनकी महिमा तो उनके पिता व्यासजीसे भी अधिक है। क्योंकि व्यासजी जब संन्यासके लिये जाते हुए अपने पुत्रका पीछा कर रहे थे, उस समय जलमें स्नान करनेवाली स्त्रियोंने नंगे शुकदेवको देखकर तो वस्त्र धारण नहीं किया, परन्तु वस्त्र पहने हुए व्यासजीको देखकर लज्जासे कपड़े पहन लिये थे। इस विलक्षण घटनाको देख-कर जब व्यासजीने उन स्त्रियोंसे इसका कारण पूछा, तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'तुम्हारी दृष्टिमें तो अभी स्त्री-पुरुषका भेद बना हुआ है। परन्तु तुम्हारे पुत्रकी शुद्ध दृष्टिमें यह भेद नहीं है।' ऐसे महात्मा श्रीशुकदेवजी कुरुजाङ्गल देशमें पागल, गूँगे और मूर्खकी तरह विचरते रहे होंगे। ऐसी दशामें हस्तिनापुरमें पहुँचनेपर नागरिकोंने उन्हें किस प्रकार पहचाना होगा? पाण्डवनन्दन राजर्षि परीक्षित्की इन मौनी शुकदेवजीके साथ बातचीत ही कैसे

सूतजीने कहा—शौनकादि ऋषियो ! द्रौपदीकी बात धर्म और न्यायके अनुकूल थी। उसमें कपट नहीं था, करुणा और समता थी। अतएव राजा युधिष्ठिरने रानीके इन हितभरे श्रेष्ठ वचनोंका अभिनन्दन किया। साथ ही नकुल, सहदेव, सात्यकि, अर्जुन, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और वहाँपर उपस्थित सभी नर-नारियोंने भी द्रौपदीकी बातका समर्थन किया। उस समय क्रोधित होकर भीमसेनने कहा—जिसने सोते हुए बच्चोंको न अपने लिये और न अपने स्वामीके लिये, बल्कि व्यर्थ ही मार डाला, उसका तो वध ही उत्तम है। भगवान् श्रीकृष्णने द्रौपदी और भीमसेनकी बात सुनकर और अर्जुनकी ओर देखकर कुछ हँसते हुए से कहा ॥ ४९–५२ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'पतित ब्राह्मणका भी वध नहीं करना चाहिये' और 'आततायीको मारना ही चाहिये'—शास्त्रोंमें मैंने ही ये दोनों बातें कही हैं। इसलिये मेरी दोनों आज्ञाओंका पालन करो। तुमने द्रौपदीको सान्त्वना देते समय जो प्रतिज्ञा की थी, उसे भी सत्य करो; साथ ही भीमसेनकी, द्रौपदीकी और मेरी इच्छा भी पूर्ण करो ॥ ५३-५४ ॥

सूतजीने कहा—अर्जुन भगवान्के हृदयकी बात तुरंत ताड़ गये और उन्होंने अपनी तलवारसे अश्वत्थामाके सिरकी मणि उसके बालोंके साथ उतार ली। बालकोंकी हत्या करनेसे वह श्रीहीन तो पहले ही हो गया था, अब मणि और



ब्रह्मतेजसे भी रहित हो गया। इसके बाद उन्होंने रस्सीका बन्धन खोलकर उसे शिविरसे निकाल दिया। पतित ब्राह्मणोंको भी मारा नहीं जाता। उनके लिये तो यही फाँसीकी सजा है कि उनका सिर मूँड़ दिया जाय, धन छीन लिया जाय और उन्हें उनके घरसे निकाल दिया जाय। पुत्रोंकी मृत्युसे द्रौपदी और पाण्डव सभी शोकातुर हो रहे थे अब उन्होंने अपने मरे हुए भाई-बन्धुओंकी दाहादि अन्त्येष्टि क्रिया की ॥ ५५–५८ ॥

आठवाँ अध्याय

गर्भमें परीक्षित्की रक्षा, कुन्तीके द्वारा भगवान्की स्तुति और युधिष्ठिरका शोक

सूतजीने कहा—इसके बाद पाण्डव जलाञ्जलिके इच्छुक मरे हुए स्वजनोंका तर्पण करनेके लिये स्त्रियोंको आगे करके भगवान् श्रीकृष्णके साथ गङ्गातटपर गये। वहाँ उन लोगोंने सबको जलदान दिया और उनके गुणोंका स्मरण करके बहुत विलाप किया। तदनन्तर भगवान्के चरण-कमलोंकी धूलिसे पवित्र गङ्गाजलमें पुनः स्नान किया। वहाँ अपने भाइयोंके साथ कुरुपति महाराज युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, पुत्रशोकसे व्याकुल गान्धारी, कुन्ती और द्रौपदी—सब बैठकर मरे हुए स्वजनोंके लिये शोक करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने धौम्यादि मुनियोंके साथ उनको सान्त्वना दी और नाना प्रकारकी युक्तियों तथा दृष्टान्तोंके द्वारा समझाया कि संसारके सभी प्राणी कालके अधीन हैं, मौतसे किसीको कोई बचा नहीं सकता—आदि ॥ १–४ ॥

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरको उनका वह राज्य, जो धूर्तोंने छलसे छीन लिया था, वापिस दिलाया, द्रौपदीके केशोंका स्पर्श किये जानेसे जिनकी आयु क्षीण हो गयी थी, उन दुष्ट राजाओंका वध कराया और साथ ही युधिष्ठिरके द्वारा उत्तम सामग्रियोंसे तथा पुरोहितोंसे तीन अश्वमेध यज्ञ कराये। इस प्रकार युधिष्ठिरके पवित्र यशको सौ यज्ञ करनेवाले इन्द्रके यशकी तरह सब ओर फैला दिया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने वहाँसे जानेका विचार किया। उन्होंने इसके लिये पाण्डवोंसे

पाँचवाँ अध्याय

भगवान्‌के यशकीर्तनकी महिमा और देवर्षि नारदजीका पूर्वचरित्र

सूतजी कहते हैं--इसके बाद हाथमें वीणा धारण किये हुए महान् यशस्वी देवर्षि नारदने आरामसे बैठकर अपने पास ही बैठे हुए व्यासजीसे मुसकराते हुए कहा—॥१॥

नारदजीने कहा--व्यासजी ! आप तो बड़े भाग्यवान् हैं। आपका शरीर एवं मन दोनों ही अपने कर्म एवं चिन्तनसे सन्तुष्ट हैं न ? अवश्य ही आपकी जिज्ञासा तो भलीभाँति पूर्ण हो गयी है; क्योंकि आपने जो यह महाभारतकी रचना की है, वह बड़ी ही अद्भुत है। अरे, इसमें तो सभी कुछ है। सनातन ब्रह्मतत्त्वको भी (वेदान्तसूत्रोंकी रचनाके द्वारा) आपने खूब विचारा है और जान भी लिया है। इस प्रकार आप कृतकृत्य होनेपर भी कुछ ऐसे दिखलायी पड़ते हैं कि अभी आपको कुछ करना बाकी है और आप मायामुग्ध जीवके समान चिन्तित हो रहे हैं ! ॥ २–४ ॥

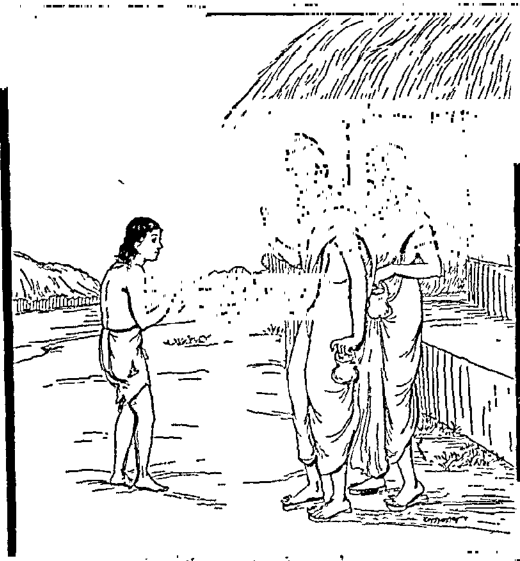
व्यासजीने कहा--आपने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, वह सब ठीक है। वैसा होनेपर भी मेरा हृदय सन्तुष्ट नहीं है। कुछ कमी खटक रही है। पता नहीं, इसका क्या कारण है। आपका ज्ञान अगाध है। आप साक्षात् ब्रह्माजीके मानस-पुत्र हैं। इसलिये मैं आपसे ही यह बात पूछता हूँ। आपने तो पुराणपुरुष भगवान्‌की उपासना की है। आपसे भला, क्या छिपा है। आप तो सब गुप्त भेदोंको जानते हैं। आपने उन परमात्माकी उपासना की है, जो प्रकृति और पुरुष दोनोंके स्वामी हैं और असङ्ग रहते हुए ही अपने सङ्कल्पमात्रसे गुणोंके द्वारा संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं। आप सूर्यके समान तीनों लोकोंमें भ्रमण करते रहते हैं और योगबलसे प्राणवायुके समान सबके भीतर रहकर अन्तःकरणोंके साक्षी भी हैं। मैं ब्रह्मज्ञानी और वेदज्ञ होनेपर भी, योगानुष्ठान और नियमोंके द्वारा परब्रह्म और शब्दब्रह्म दोनोंकी पूर्ण प्राप्ति कर लेनेपर भी अशान्त क्यों हूँ ? मुझमें क्या कमी है ? आप कृपा करके बतलाइये ॥ ५–७ ॥

नारदजीने कहा—व्यासजी ! आपने सब कुछ किया, परन्तु भगवान्‌के निर्मल यशका गायन बहुत ही कम किया। मैं ऐसा समझता हूँ कि जिस ज्ञानसे भगवान् प्रसन्न न हों, वह ज्ञान अधूरा है। आपने धर्म आदि पुरुषार्थोंका जैसा निरूपण किया है, भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वैसा निरूपण नहीं किया। जिस वाणीसे—चाहे वह रस-भाव-अलङ्कारादिसे युक्त ही क्यों न हो—जगत्‌को पवित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके यशका कभी गायन नहीं होता, वह तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अपवित्र है। मानसरोवरमें रहनेवाले हंस अथवा ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त कभी उसमें रमण नहीं करते। इसके विपरीत, जिसमें सुन्दर रचना भी नहीं है और जो दूषित शब्दोंसे युक्त भी है, परन्तु जिसका प्रत्येक श्लोक भगवान्‌के सुयश-सूचक नामोंसे युक्त है, वह वाणी लोगोंके सारे पापोंका नाश कर देनेवाली है; क्योंकि सत्पुरुष ऐसी ही वाणीका श्रवण, गायन और कीर्तन किया करते हैं। वह निर्मल ज्ञान भी जो मोक्षकी प्राप्तिका साक्षात् साधन है, यदि भगवान्‌की भक्तिसे रहित हो तो उसकी उतनी शोभा नहीं होती। फिर जो साधन और सिद्धि—दोनों ही दशाओंमें सदा ही अमङ्गलरूप है, वह काम्य कर्म, और जो भगवान्‌को अर्पण नहीं किया गया है, ऐसा अहैतुक (निष्काम) कर्म भी कैसे सुशोभित हो सकता है ? महाभाग्यवान् व्यासजी ! आपकी दृष्टि अमोघ है। आपकी कीर्ति पवित्र है। आप सत्यपरायण एवं दृढ़व्रती हैं। इसलिये अब आप सम्पूर्ण जीवोंको बन्धनसे मुक्त करनेके लिये समाधिके द्वारा अचिन्त्यशक्ति भगवान्‌की लीलाओंका स्मरण करके प्रेमसे उनका कीर्तन कीजिये। जो मनुष्य भगवान्‌की लीलाके अतिरिक्त और कुछ कहनेकी इच्छा करता है, वह उस इच्छासे ही निर्मित अनेक नाम और रूपोंके चक्करमें पड़ जाता है। उसकी बुद्धि भेदभावसे भर जाती है। जैसे हवाके झकोरोंसे डगमगाती हुई डोंगीको कहीं भी ठहरनेकी ठौर नहीं मिलती, वैसे ही उसकी चञ्चल बुद्धि कहीं भी स्थिर नहीं हो पाती। संसारी लोग तो स्वभावसे ही विषयोंमें फँसे हुए हैं। धर्मके नामपर आपने उन्हें निन्दित (पशुहिंसायुक्त) सकाम कर्म करनेकी भी आज्ञा दे दी है। यह बहुत ही उल्टी बात हुई; क्योंकि मूर्खलोग आपके वचनोंसे ही पूर्वोक्त निन्दित कर्मको ही धर्म मानकर-'यही मुख्य धर्म है'-ऐसा निश्चय करके उसका निषेध करनेवाले वचनोंको ठीक नहीं मानते। भगवान् अनन्त हैं। कोई विचारवान् ज्ञानी पुरुष ही संसारकी ओरसे निवृत्त होकर उनके स्वरूपभूत परमानन्दका अनुभव कर सकता है। अतः जो लोग

विपत्तियोंसे और अनेक बारके युद्धोंमें अनेक महारथियोंके शस्त्रास्त्रोंसे, और अभी-अभी इस अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे भी आपने ही हमारी रक्षा की है। आप ही जगत्‌के सच्चे शिक्षक हैं। ये विपत्तियाँ तो हमें शिक्षा देनेके लिये ही प्राप्त हुई हैं। अतः मैं तो आपसे यही वर माँगती हूँ कि हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें, क्योंकि विपत्तियोंमें ही निश्चितरूपसे आपके दर्शन हुआ करते हैं और आपके दर्शन हो जानेपर फिर जन्म-मृत्युके चक्करमें नहीं आना पड़ता। ऊँचे कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और सम्पत्तिके कारण जिसका घमंड बढ़ रहा है, वह मनुष्य तो आपका नाम भी नहीं ले सकता। क्योंकि आप तो उन लोगोंको दर्शन देते हैं, जो किसी भी वस्तुको अपनी नहीं मानते। आप निर्धनोंके परम धन हैं। मायाका प्रपञ्च आपका स्पर्श भी नहीं कर सकता। आप अपने आपमें ही विहार करनेवाले परम शान्तस्वरूप हैं। आप ही कैवल्य मोक्षके अधिपति हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करती हूँ॥ १८-२७॥

मैं आपको अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक, सबके नियन्ता, कालरूप परमेश्वर समझती हूँ। संसारके समस्त पदार्थ और प्राणी आपसमें टकराकर विषमताके कारण परस्पर विरुद्ध हो रहे हैं, परन्तु आप सबमें समानरूपसे विचर रहे हैं। आपका न कोई प्यारा है और न कभी कहीं कोई शत्रु ही है। फिर भी आपके विषयमें लोगोंकी बुद्धि समान नहीं होती, विषम ही रहा करती है। आप मनुष्योंकी सी लीला करते हुए क्या करना चाहते हैं, इस बातको कोई नहीं जानता। आप विश्वके आत्मा हैं, विश्वरूप हैं। न आप जन्म लेते हैं और न कर्म ही करते हैं। फिर भी पशु-पक्षी, मनुष्य, ऋषि, जलचर आदिमें आप जन्म लेते हैं और उन योनियोंके अनुरूप दिव्य कर्म भी करते हैं। यह आपकी लीला ही तो है। मुझे वह बात याद आती है—जब बचपनमें आपने दूधकी मटकी फोड़कर यशोदा मैयाको खिझा दिया था, और उन्होंने आपको बाँधनेके लिये हाथमें रस्सी ली थी, तब आपकी आँखोंमें आँसू छलक रहे थे, काजल कपोलोंपर बह रहा था, नेत्र चञ्चल हो रहे थे और भयकी भावनासे आपने अपने मुखको नीचेकी ओर झुका लिया था! आपकी उस दशाका—लीला-छविका स्मरण करके मैं मोहित हो जाती हूँ। भला, जिससे भय भी भय मानता है, उसकी यह दशा! आपने अजन्मा होकर भी जन्म क्यों लिया है, इसका कारण बतलाते हुए कोई-कोई महापुरुष यों कहते हैं कि जैसे मलयाचलकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये उसमें चन्दन प्रकट होता है, वैसे ही अपने प्रिय भक्त राजा यदुकी कीर्तिका विस्तार करनेके लिये ही आपने उनके वंशमें अवतार ग्रहण किया है। कोई ऐसा कहते हैं कि वसुदेव और देवकीने पूर्वजन्ममें (सुतपा और पृश्निके रूपमें) आपसे यही वरदान प्राप्त किया था, इसीलिये आप जगत्‌के कल्याण और दैत्योंके नाशके लिये उनके बालक बनकर अवतीर्ण हुए हैं। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि यह पृथ्वी दैत्योंके अत्यन्त भारसे समुद्रमें डूबते हुए जहाजकी तरह डगमगा रही थी—पीड़ित हो रही थी, तब ब्रह्माकी प्रार्थनासे उसका भार उतारनेके लिये ही आप प्रकट हुए। कोई महापुरुष ऐसा कहते हैं कि जो लोग इस संसारमें अज्ञान, कामना और कर्मोंके बन्धनमें जकड़े हुए पीड़ित हो रहे हैं, उन लोगोंके लिये श्रवण और स्मरण करनेयोग्य लीला करनेके विचारसे ही आपने अवतार ग्रहण किया है। जो लोग आपकी लीलाओंका बार-बार श्रवण, गायन और स्मरण करते हैं तथा आनन्दमें मग्न होते रहते हैं, वे ही अति शीघ्र आपके उन चरणकमलोंका दर्शन प्राप्त करते हैं, जिनकी प्राप्तिसे इस जन्म-मृत्युमय संसारके चक्रसे छुटकारा मिल जाता है॥ २८-३६॥

भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभो! क्या अब आप अपने आश्रित और सुहृद् हमलोगोंको छोड़कर जाना चाहते हैं? आप जानते हैं कि आपके चरणकमलोंके अतिरिक्त हमें और किसीका सहारा नहीं है। पृथ्वीके राजाओंके तो हम यों ही विरोधी हो गये हैं। जैसे जीवके बिना इन्द्रियाँ शक्तिहीन हो जाती हैं, वैसे ही आपके दर्शन बिना यदुवंशियोंके और हमारे नाम तथा रूपका अस्तित्व ही क्या रह जाता है? आपके विलक्षण चरणचिह्नोंसे चिह्नित यह भूमि आज जैसी शोभायमान हो रही है, वैसी आपके चले जानेके बाद न रहेगी। आपकी दृष्टिके प्रभावसे ही यह देश पके अन्न और लता-वृक्षोंसे समृद्ध हो रहा है। इसकी सारी समृद्धि आपके ही कारण है। यहाँतक कि ये वन, पर्वत, नदी और समुद्र भी आपकी अनुग्रहपूर्ण दृष्टिसे ही वृद्धिको प्राप्त हो रहे हैं। आप विश्वके स्वामी हैं, विश्वके आत्मा हैं और विश्वरूप हैं। यदुवंशियों और पाण्डवोंमें मेरी बड़ी ममता हो गयी है। आप कृपा करके इस स्नेहकी फाँसीको काट डालिये। श्रीकृष्ण! जैसे गङ्गाकी अखण्ड धारा निरन्तर



प्राप्तिका मुख्य उपाय बतलाया है। उस उपदेशसे ही जगत्‌के निर्माता भगवान् श्रीकृष्णकी मायाके प्रभावको मैं जान सका, जिसके जान लेनेपर उनके परमपदकी प्राप्ति हो जाती है ॥ २३–३१ ॥

व्यासजी! पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति समस्त कर्मोंको समर्पित कर देना ही संसारके तीनों तापोंकी एकमात्र ओषधि है, यह बात मैंने आपको बतला दी। व्रतधारियोंमें श्रेष्ठ व्यासजी! प्राणियोंको जिन पदार्थोंके सेवनसे जो रोग हो जाते हैं, साधारणतया उन पदार्थोंके सेवनसे उन रोगोंकी निवृत्ति नहीं होती। परन्तु यदि उन्हींका उपयोग चिकित्साविधिके अनुसार किया जाय तो क्या वे ही उन रोगोंको दूर नहीं कर सकते? इसी प्रकार यद्यपि सभी कर्म मनुष्योंको जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें डालनेवाले हैं, तथापि जब वे भगवान्‌को समर्पित कर दिये जाते हैं तो उनका कर्मपना ही नष्ट हो जाता है। वे बन्धनके कारण नहीं होते। इस लोकमें जो शास्त्रविहित कर्म भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये किये जाते हैं, उन्हींसे पराभक्तियुक्त ज्ञानकी प्राप्ति होती है, जिस अवस्थामें कि भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार कर्म करते हुए लोग बार-बार भगवान् श्रीकृष्णके गुण और नामोंका कीर्तन तथा स्मरण करते हैं। 'भगवान् श्रीवासुदेवको नमस्कार है। हम उनका ध्यान करते हैं। प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षणको भी नमस्कार है'—इस प्रकार जो पुरुष चतुर्व्यूहरूपी भगवन्मूर्तियोंके नामद्वारा प्राकृत-मूर्तिरहित अप्राकृत मन्त्रमूर्ति भगवान् यज्ञपुरुषका पूजन करता है, उसीका ज्ञान पूर्ण एवं यथार्थ है। व्यासजी! जब मैंने भगवान्‌की आज्ञाका इस प्रकार पालन किया, तब इस बातको जानकर भगवान् श्रीकृष्णने मुझे आत्मज्ञान, ऐश्वर्य और अपनी भावरूपा प्रेमाभक्तिका दान किया। व्यासजी! आपका ज्ञान पूर्ण है; आप भगवान्‌की ही कीर्तिका, उनकी प्रेममयी लीलाका वर्णन कीजिये। उसीसे बड़े-बड़े ज्ञानियोंकी भी जिज्ञासा पूर्ण होती है। जो लोग दुःखोंके द्वारा रौंदे जा रहे हैं, उनके दुःखकी शान्ति इसीसे हो सकती है, और कोई उपाय नहीं है ॥ ३२–४० ॥

छठा अध्याय

नारदजीके पूर्वचरित्रका शेष भाग

श्रीसूतजीने कहा—शौनकजी! देवर्षि नारदने जब इस प्रकार अपने जन्म और साधनाकी बात सुनायी, तब सत्यवतीनन्दन भगवान् श्रीव्यासजीने उनसे फिर यह प्रश्न किया ॥ १ ॥

श्रीव्यासजीने पूछा—नारदजी! जब आपको ज्ञानोपदेश करनेवाले महात्मागण चले गये, तब आपने क्या किया? उस समय तो आपकी अवस्था बहुत छोटी थी। नारदजी! आपकी शेष आयु किस प्रकार व्यतीत हुई और मृत्युके समय आपने किस विधिसे अपने शरीरका परित्याग किया? देवर्षे! काल तो सभी वस्तुओंको नष्ट कर देता है; उसने आपकी इस पूर्वकल्पकी स्मृतिका कैसे नाश नहीं किया? ॥ २–४ ॥

श्रीनारदजीने कहा—मुझे ज्ञानोपदेश करनेवाले महात्मागण जब चले गये, तब मैंने इस प्रकार अपना जीवन व्यतीत किया—यद्यपि उस समय मेरी अवस्था बहुत छोटी थी। मैं अपनी माँका इकलौता लड़का था। एक तो वह स्त्री थी, दूसरे गवाँर और तीसरे दासी थी। वह और तो कुछ कर नहीं सकती थी, परन्तु मेरे प्रति उसकी बड़ी ममता थी, वह मेरे प्रति स्नेहके बन्धनसे बँधी हुई थी। मेरे भी उसके सिवा कोई सहारा नहीं था। वह मेरे योग-क्षेमकी चिन्ता तो

प्रभाव भी जानते थे। अतः उन्होंने अपनी लीलासे मनुष्यका वेष धारण करके वहाँ बैठे हुए तथा जगदीश्वरके रूपमें हृदयमें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णकी बाहर तथा भीतर दोनों ही जगह पूजा की ॥ १–१० ॥

पाण्डव बड़े विनय और प्रेमके साथ भीष्मपितामहके पास बैठ गये। उन्हें देखकर भीष्मपितामहकी आँखें प्रेमके आँसुओंसे भर गयीं। उन्होंने उनसे कहा—'धर्मपुत्रो! यह बड़े कष्टकी बात है, सचमुच यह बड़ा अन्याय है कि तुम लोगोंको ब्राह्मण, धर्म और भगवान् अच्युतके आश्रित रहनेपर भी इतने कष्ट उठाने पड़े। तुम लोग इसके योग्य तो नहीं थे। अतिरथी पाण्डुकी मृत्युके समय तुम्हारी अवस्था बहुत छोटी थी। उन दिनों तुमलोगोंके लिये कुन्ती रानीको बार-बार बहुत से कष्ट झेलने पड़े। जिस प्रकार बादल वायुके वशमें रहते हैं, वैसे ही लोकपालोंके सहित सारा संसार कालभगवान्के अधीन है। मैं ऐसा समझता हूँ कि तुम लोगोंके जीवनमें ये जो अप्रिय घटनाएँ घटित हुई हैं, वे सब उन्हींकी लीला हैं। नहीं तो जहाँ साक्षात् धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर हों, गदाधारी भीमसेन और अर्जुन अस्त्र धारण करके रक्षाका काम कर रहे हों, गाण्डीव धनुष हो और स्वयं श्रीकृष्ण मित्र हों—, भला वहाँ भी विपत्तिकी सम्भावना है? ये कालरूप श्रीकृष्ण कब क्या करना चाहते हैं, इस बातको कभी कोई नहीं जानता। बड़े-बड़े ज्ञानी भी इसके जाननेकी इच्छा करके मोहित हो जाते हैं। युधिष्ठिर! संसारकी ये सब घटनाएँ ईश्वरेच्छाके अधीन हैं। उसीका अनुसरण करके तुम इस अनाथ प्रजाका पालन करो। क्योंकि अब तुम्हीं इसके स्वामी और इसे पालन करनेमें समर्थ हो ॥ ११–१७ ॥

ये श्रीकृष्ण साक्षात् भगवान् हैं। ये सबके आदि कारण और परम पुरुष नारायण हैं। अपनी मायासे लोगोंको मोहित करते हुए ये यदुवंशियोंमें छिपकर लीला कर रहे हैं। इनका प्रभाव अत्यन्त गूढ एवं रहस्यमय है। युधिष्ठिर! उसे भगवान् शङ्कर, देवर्षि नारद और स्वयं भगवान् कपिल ही जानते हैं। जिन्हें तुम अपने मामाका पुत्र, प्रिय मित्र और सर्वश्रेष्ठ सुहृद् मानते हो तथा जिन्हें तुमने प्रेमवश अपना मन्त्री, दूत और सारथितक बनानेमें संकोच नहीं किया है, वे स्वयं परमात्मा हैं। इन सर्वात्मा, समदर्शी, अद्वितीय, अहङ्काररहित और निष्पाप परमात्मामें उन ऊँचे-नीचे कार्योंके कारण कभी किसी प्रकारकी विषमता नहीं होती। युधिष्ठिर! इस प्रकार सर्वत्र सम होनेपर भी, देखो तो सही, ये अपने प्रेमी भक्तोंपर कितनी कृपा करते हैं। यही कारण है कि ऐसे समयमें, जब कि मैं अपने प्राणोंका त्याग करने जा रहा हूँ, इन भगवान् श्रीकृष्णने मुझे साक्षात् दर्शन दिया है। भगवत्परायण योगी पुरुष भक्तिभावसे इनमें अपना मन लगाकर और वाणीसे इनके नामका कीर्तन करते हुए शरीरका त्याग करते हैं और कामनाओंसे तथा कर्मके बन्धनसे छूट जाते हैं। वे ही देवदेव भगवान् अपने प्रसन्न हास्य और रक्तकमलके समान अरुण नेत्रोंसे उल्लसित मुखवाले चतुर्भुज रूपसे, जिसका केवल ध्यानमें दर्शन होता है, *तबतक यहीं स्थित रहें, जबतक कि मैं इस शरीरका त्याग* न कर दूँ' ॥ १८–२४ ॥

सूतजीने कहा—युधिष्ठिरने उनकी यह बात सुनकर शरशय्यापर सोये हुए भीष्मपितामहसे बहुत-से ऋषियोंके सामने ही नाना प्रकारके धर्मोंके सम्बन्धमें अनेकों रहस्य पूछे। तब तत्त्ववेत्ता भीष्मपितामहने वर्ण और आश्रमके अनुसार पुरुषके स्वाभाविक धर्म और वैराग्य तथा रागके कारण विभिन्नरूपसे बतलाये हुए निवृत्ति और प्रवृत्तिरूप द्विविध धर्म, दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म और भगवद्धर्म—इन सबका अलग-अलग संक्षेप और विस्तारसे वर्णन किया। शौनकजी! इनके साथ ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंका तथा इनकी प्राप्तिके साधनोंका अनेकों उपाख्यान और इतिहास सुनाते हुए विभागशः वर्णन किया। भीष्मपितामह इस प्रकार धर्मका प्रवचन कर रहे थे, तबतक वह उत्तरायणका समय आ पहुँचा, जिसे अपनी मृत्युको वशमें रखनेवाले भगवत्परायण योगीलोग चाहा करते हैं। उस समय हजारों रथियोंके नेता भीष्मपितामहने वाणीका संयम करके मनको सब ओरसे हटाकर अपने सामने स्थित आदिपुरुष भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया। भगवान् श्रीकृष्णके सुन्दर चतुर्भुज विग्रहपर उस समय पीताम्बर फहरा रहा था। भीष्मजीकी आँखें उसीपर एकटक लग गयीं। उनको शस्त्रोंकी चोटसे जो पीड़ा हो रही थी, वह तो भगवान्के दर्शनमात्रसे ही दूर हो गयी तथा भगवान्की विशुद्ध धारणासे उनके जो कुछ अशुभ शेष थे, वे सभी नष्ट हो गये। अब शरीर छोड़नेके समय उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियोंके वृत्ति विलासको रोक दिया और बड़े प्रेमसे भगवान्की स्तुति की ॥ २५—३१ ॥

भीष्मजीने कहा—अब मृत्युके समय मैं अपनी यह बुद्धि, जो अनेक प्रकारके साधनोंका अनुष्ठान करनेसे अत्यन्त

और लीलाओंका कीर्तन और स्मरण करने लगा । स्पृहा और मद-मत्सर मेरे हृदयसे पहले ही निवृत्त हो चुके थे, अब मैं आनन्दसे कालकी प्रतीक्षा करता हुआ पृथ्वीपर विचरने लगा ॥ २०—२७ ॥

व्यासजी ! इस प्रकार भगवान्‌की कृपासे मेरा हृदय शुद्ध हो गया, आसक्ति मिट गयी और मैं श्रीकृष्णपरायण हो गया । कुछ समय बाद, जैसे एकाएक बिजली कौंध जाती है, वैसे ही अपने समयपर मेरी मृत्यु आयी । प्रारब्ध-कर्मके समाप्त हो जानेसे मेरा पाञ्चभौतिक शरीर मुझसे अलग हो गया और भगवान्‌की इच्छासे मुझे अत्यन्त दिव्य भागवत (भगवान्‌के पार्षदका) शरीर प्राप्त करनेका अवसर मिल गया । कल्पके अन्तमें जिस समय भगवान् नारायण एकार्णव (प्रलयके जल) में शयन करते हैं, उस समय उनके हृदयमें शयन करनेकी इच्छासे इस सारी सृष्टिको समेटकर ब्रह्माजी जब प्रवेश करने लगे, तब उनके श्वासके साथ मैं भी उनके हृदयमें प्रवेश कर गया । एक हजार चतुर्युगी बीत जानेपर जब ब्रह्मा जगे और उन्होंने सृष्टि करनेकी इच्छा की, तब उनकी इन्द्रियोंसे मरीचि आदि ऋषियोंके साथ मैं भी प्रकट हो गया । तभीसे मैं भगवान्‌की कृपासे वैकुण्ठादिमें और तीनों लोकोंमें बाहर और भीतर विचरण किया करता हूँ, कहीं भी मुझे रुकावट नहीं है । भगवान्‌का भजन, जो मेरे जीवनका व्रत है, अखण्डरूपसे चलता रहता है । मेरी यह वीणा भगवान्‌की दी हुई है । यह स्वररूप ब्रह्मसे विभूषित है । इसपर भगवान्‌की लीलाओं-की तान छेड़कर मैं उनका गायन करता रहता हूँ और संसारमें सर्वत्र विचरता हूँ । जब मैं उनकी लीलाओंका गायन करने लगता हूँ तब वे प्रभु, जिनके चरणकमल समस्त तीर्थोंके उद्गमस्थान हैं और जिनका यशोगायन मुझे बहुत ही प्रिय लगता है, बुलाये हुएकी तरह तुरंत मेरे हृदयमें आकर दर्शन दे देते हैं । जिन लोगोंका चित्त बार-बार विषय-भोगोंकी कामनासे आतुर हो रहा है, उनके लिये भगवान्‌की लीलाओंका यह कीर्तन संसार-सागरसे पार जानेका जहाज है, यह मेरा अपना अनुभव है । जो हृदय कामना और लोभसे बार-बार विंधता रहता है, वह यम-नियमादि अष्टाङ्ग योगमार्गसे वैसी शान्ति नहीं प्राप्त कर सकता, जैसी भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके श्रवण-कीर्तनरूप भजनसे प्राप्त होती है । व्यासजी ! आप निष्पाप हैं । आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, वह सब अपने जन्म और साधनाका रहस्य तथा आपकी आत्मतुष्टिका उपाय मैंने बतला दिया ॥ २८–३७ ॥

श्रीसूतजीने कहा—शौनकादि ऋषियो ! देवर्षि नारदने व्यासजीसे इस प्रकार कहकर जानेकी अनुमति ली और वीणा बजाते हुए स्वच्छन्द विचरण करनेके लिये वे चल पड़े । ये देवर्षि नारद धन्य हैं । इनका जीवन एक आश्चर्य है । क्योंकि वीणाकी तानके साथ भगवान्‌की कीर्तिका गायन करते हुए ये मस्त रहते हैं और इस त्रिताप-तप्त संसारको सदा शान्ति-दान करते रहते हैं ॥३८-३९ ॥

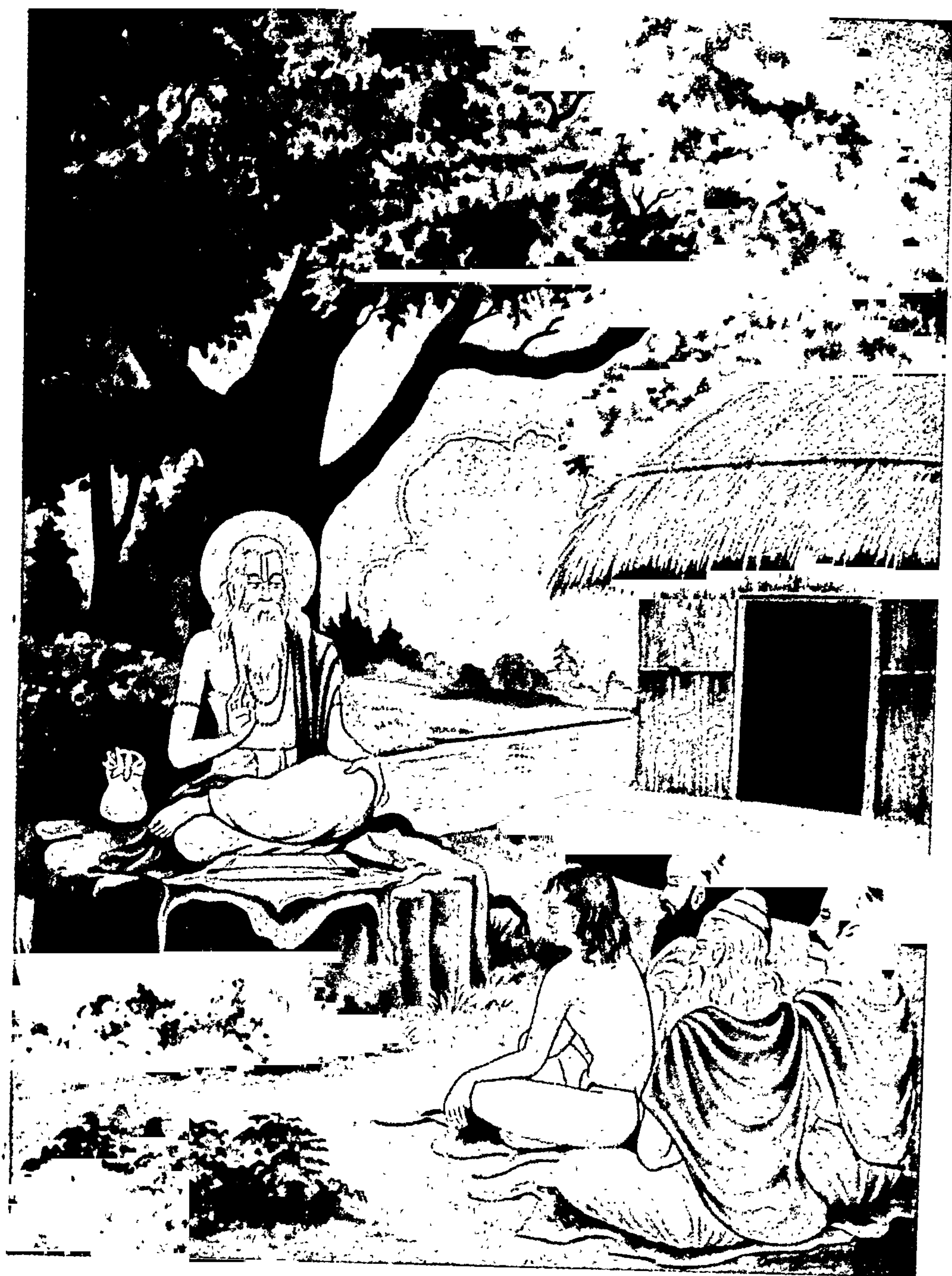
सातवाँ अध्याय

अश्वत्थामाके द्वारा द्रौपदीके पुत्रोंका मारा जाना और अर्जुनके द्वारा अश्वत्थामाका मान-मर्दन

शौनकजीने पूछा—सूतजी ! नारदजीके चले जानेपर भगवान् वेदव्यासने क्या किया ? वे एक तो स्वयं पूर्णज्ञानी थे और दूसरे उन्होंने देवर्षि नारदका अभिप्राय भी सुन लिया था ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—ब्रह्मनदी सरस्वतीके पश्चिम तटपर शम्याप्रास नामका एक आश्रम है । वहाँ ऋषियोंके यज्ञ चलते ही रहते हैं । वहीं व्यासजीका अपना आश्रम है । उसके चारों ओर बेरका सुन्दर वन है । उस आश्रममें बैठकर उन्होंने आचमन किया और स्वयं अपने मनको समाहित किया । उनका मन निर्मल तो था ही । भक्तियोगके द्वारा वह पूर्णतया अन्तर्मुख और एकाग्र हो गया । इस अवस्थामें उन्होंने आदिपुरुष परमात्मा और उनके आश्रयसे रहनेवाली मायाको देखा । इसी मायासे मोहित होकर यह जीव तीनों गुणोंसे अतीत होनेपर भी अपनेको त्रिगुणात्मक मान लेता है और इस मान्यताके कारण होनेवाले अनर्थोंको भोगता है । इन अनर्थोंकी शान्तिका साक्षात् साधन है—केवल भगवान्‌का भक्तियोग । परन्तु संसारके लोग इस बातको नहीं जानते । यही समझकर उन्होंने इस परमहंसोंकी संहिता श्रीमद्भागवतकी रचना की । इसके श्रवणमात्रसे पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके प्रति परम प्रेममयी भक्ति हो जाती है,

व्यास-शुकदेव



श्रीशुकदेव मुनि भगवान् व्यासदेवसे भागवत पढ़ रहे हैं ।

दसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका द्वारका जाना

शौनकजीने पूछा—धार्मिकशिरोमणि महाराज युधिष्ठिरने अपनी पैतृक सम्पत्तिको हड़प जानेवाले आततायियोंका नाश करके अपने भाइयोंके साथ किस प्रकारसे राज्य शासन किया और कौन कौनसे काम किये? क्योंकि भोगोंमें तो उनकी प्रवृत्ति थी ही नहीं ॥ १ ॥

सूतजीने कहा—जैसे बाँसोंमें आपसकी रगड़से आग पैदा हो जाती है जो उन्हें जलाकर खाक कर देती है, वैसे ही कौरवोंके गृह कलहसे उनका वंश नष्टप्राय हो चुका था। परन्तु सारी सृष्टिके रचनेवाले भगवान्‌ने उत्तराके गर्भकी रक्षा करके उसे बचा लिया। भगवान्‌की प्रेरणासे युधिष्ठिर अपनी राजगद्दीपर बैठ गये। इस प्रकार अधर्मका उच्छेद और धर्मराज्यकी स्थापना करके तथा पृथ्वीका भार उतार कर भगवान् बहुत प्रसन्न हुए। भीष्मपितामह और भगवान् श्रीकृष्णके उपदेशोंके श्रवण करनेसे महाराज युधिष्ठिरकी भ्रान्ति मिट गयी, उन्हें ज्ञान हो गया। भगवान्‌के आश्रयमें रहकर वे समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका इन्द्रके समान शासन करने लगे। भीमसेन आदि उनके भाई पूर्णरूपसे उनकी आज्ञाओंका पालन करते थे। युधिष्ठिरके राज्यमें आवश्यकताके अनुसार यथेष्ट वर्षा होती थी, पृथ्वीमें समस्त इच्छित वस्तुएँ पैदा होती थीं, बड़े बड़े थनोंवाली बहुत-सी गौएँ प्रसन्न रहकर अपने रहनेके स्थानोंको दूधसे सींचती रहती थीं। नदी, समुद्र, पर्वत, वनस्पति, लताएँ और ओषधियाँ प्रत्येक ऋतुमें यथेष्टरूपसे अपनी-अपनी वस्तुएँ प्रजाको देती थीं। अजातशत्रु महाराज युधिष्ठिरके राज्यमें किसी प्राणीको कभी भी दैविक, भौतिक और आत्मिक क्लेश एवं आधि-व्याधियाँ नहीं होती थीं ॥ २–६ ॥

अपने मित्रोंका शोक मिटानेके लिये और अपनी बहिन सुभद्राकी प्रसन्नताके लिये भगवान् श्रीकृष्ण कई महीनोंतक हस्तिनापुरमें ही रहे। फिर जब उन्होंने राजा युधिष्ठिरसे द्वारका जानेकी अनुमति माँगी, तब उन्होंने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर स्वीकृति दे दी। भगवान् उनको प्रणाम करके रथपर सवार हुए। कुछ लोगोंने (समान उम्रवालोंने) उनका आलिङ्गन किया और कुछने (छोटी उम्रवालोंने) प्रणाम। उस समय कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, युयुत्सु, भीमसेन, नकुल, सहदेव, धौम्य आदि पुरोहित और व्यासजीकी माता सत्यवती आदि नर-नारियोंको भगवान् श्रीकृष्णके विरहसे बड़ी वेदना हुई, वे मोहित हो गये, भगवान्‌के वियोगको न सह सके। *भगवद्भक्त सत्पुरुषोंके सगसे जिसका दु सङ्ग छूट गया है,* वह विचारशील पुरुष जिन भगवान्‌के मधुर मनोहर सुयशको एक बार भी सुन लेता है तो फिर उसके त्यागकी कल्पना भी नहीं करता—उन्हीं भगवान्‌के दर्शन तथा स्पर्शसे, उनके साथ आलाप करनेसे तथा साथ ही साथ सोने, उठने बैठने और भोजन करनेसे जिनका सम्पूर्ण हृदय उन्हें समर्पित हो चुका था, वे पाण्डव भला उनका विरह कैसे सह सकते थे? उनका चित्त द्रवित हो रहा था, वे सब निर्निमेष नेत्रोंसे भगवान्‌को देखते हुए स्नेह बन्धनसे बँधकर जहाँ तहाँ उनके जानेकी तैयारी करनेमें लगे हुए थे। भगवान् श्रीकृष्णकी *यात्राके समय स्वजनोंकी स्त्रियोंके नेत्र उत्कण्ठावश उमड़ते* हुए आँसुओंसे भर आये, परन्तु इस भयसे कि कहीं मङ्गलके समय अशकुन न हो जाय, उन्होंने बड़ी कठिनाईसे उन्हें रोक लिया ॥ ७–१४ ॥

भगवान्‌के प्रस्थानके समय मृदङ्ग, शङ्ख, भेरी, वीणा, पणव, नरसिंगे, धुन्धुरी, नगाड़े, घण्टे और दुन्दुभियाँ आदि



बाजे बजने लगे। भगवान्‌के दर्शनकी लालसासे कुरुवशकी स्त्रियाँ अटारियोंपर चढ़ गयीं और प्रेम, लज्जा एवं मुसकानसे

हो। तुम प्रकृतिसे परे रहनेवाले आदिपुरुष साक्षात् परमेश्वर हो। अपनी चित्-शक्ति (स्वरूप-शक्ति) से बहिरङ्ग एवं त्रिगुणमयी मायाको दूर भगाकर अपने अद्वितीय स्वरूपमें स्थित हो। वही तुम अपनी कृपाशक्तिसे माया-मोहित जीवोंके लिये धर्मादिरूप परम कल्याणका विधान करते रहते हो। तुम्हारा यह अवतार पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये और तुम्हारे अनन्य-प्रेमी भक्तजनोंके निरन्तर स्मरण-ध्यान करनेके लिये है। स्वयम्प्रकाशस्वरूप श्रीकृष्ण ! यह भयङ्कर तेज सब ओरसे मेरी ओर आ रहा है। यह क्या है, कहाँसे क्यों आ रहा है—इसका मुझे बिल्कुल पता नहीं है ! ॥ २२—२६ ॥

भगवान्ने कहा—अर्जुन ! यह अश्वत्थामाका चलाया हुआ ब्रह्मास्त्र है। यह बात समझ लो कि प्राण-सङ्कट उपस्थित होनेसे उसने इसका प्रयोग तो कर दिया है, परन्तु वह इस अस्त्रको लौटाना नहीं जानता। किसी भी दूसरे अस्त्रमें इसको दबा देनेकी शक्ति नहीं है। तुम तो शस्त्रास्त्र-विद्याको भली-भाँति जानते ही हो, ब्रह्मास्त्रके तेजसे ही इस ब्रह्मास्त्रकी प्रचण्ड आगको बुझा दो ॥ २७-२८ ॥

सूतजीने कहा—अर्जुन विपक्षी वीरोंको मारनेमें बड़े प्रवीण थे। भगवान्की बात सुनकर उन्होंने आचमन किया और भगवान्की परिक्रमा करके ब्रह्मास्त्रके निवारणके लिये ब्रह्मास्त्रका ही प्रयोग किया। उन दोनों ब्रह्मास्त्रोंके तेज सूर्य और अग्निके समान आपसमें टकराकर सारे आकाश और दिशाओंमें फैल गये और बढ़ने लगे। तीनों लोकोंको जलानेवाली उन दोनों अस्त्रोंकी बढ़ी हुई लपटोंसे प्रजा जलने लगी और उसे देखकर सबने यही समझा कि यह प्रलय-कालकी सांवर्तक आग है। उस आगसे प्रजाका और लोकोंका नाश होते देखकर भगवान्की अनुमतिसे अर्जुनने उन दोनोंको ही लौटा लिया। अर्जुनकी आँखें क्रोधसे लाल-लाल हो रही थीं। उन्होंने झपटकर उस क्रूर अश्वत्थामाको पकड़ लिया और जैसे कोई रस्सीसे पशुको बाँध ले, वैसे ही बाँध लिया। अश्वत्थामाको बलपूर्वक बाँधकर अर्जुनने जब शिविर-की ओर ले जाना चाहा, तब उनसे कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने कुपित होकर कहा—'अर्जुन ! इस ब्राह्मणाधमको छोड़ना ठीक नहीं है, इसको तो मार ही डालो। इसने रातमें सोये हुए निरपराध बालकोंकी हत्या की है। यद्यपि नियम तो यह है कि धर्मवेत्ता पुरुष असावधान, मतवाले, पागल, सोये हुए, बालक, स्त्री, मूर्ख, शरणागत, रथहीन और भयभीत शत्रुको कभी नहीं मारते। परन्तु जो दुष्ट और क्रूर पुरुष दूसरोंको मारकर अपने प्राणोंका पोषण करता है, उसका तो वध ही उसके लिये कल्याणकारी है। क्योंकि वैसी आदतको लेकर यदि वह जीता है तो और भी पाप करता है और उन पापोंके कारण नरकगामी होता है। फिर मेरे सामने ही तुमने द्रौपदीसे प्रतिज्ञा की थी कि 'मानवती ! जिसने तुम्हारे पुत्रोंका वध किया है, उसका सिर मैं उतार लाऊँगा।' इस पापी कुलाङ्गार आततायीने अपने स्वजनोंका वध किया है और अपने स्वामी दुर्योधनको भी दुःख पहुँचाया है। इसलिये अर्जुन ! इसे मार ही डालो।' भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके धर्मकी परीक्षा लेनेके लिये इस प्रकार प्रेरणा की, परन्तु अर्जुनका हृदय महान् था। यद्यपि अश्वत्थामाने उनके पुत्रोंकी हत्या की थी, फिर भी अर्जुनके मनमें गुरुपुत्रको मारनेकी इच्छा नहीं हुई ॥ २९—४० ॥

इसके बाद अपने मित्र और सारथि श्रीकृष्णके साथ वे अपने युद्ध-शिविरमें पहुँचे। वहाँ अपने मृत पुत्रोंके लिये शोक करती हुई द्रौपदीको उसे सौंप दिया। द्रौपदीने देखा कि अश्वत्थामा पशुकी तरह बाँधकर लाया गया है। निन्दित कर्म करनेके कारण उसका मुख नीचेकी ओर झुका हुआ है। अपना अनिष्ट करनेवाले गुरुपुत्र अश्वत्थामाको इस प्रकार अपमानित देखकर द्रौपदीका कोमल हृदय कृपासे भर आया और उसने अश्वत्थामाको नमस्कार किया। गुरुपुत्रका इस प्रकार बाँधकर लाया जाना सती द्रौपदीको सहन नहीं हुआ। उसने कहा—'छोड़ दो, इन्हें छोड़ दो। ये ब्राह्मण हैं। हम लोगोंके अत्यन्त पूजनीय हैं। जिनकी कृपासे आपने रहस्यके साथ सारे धनुर्वेद और प्रयोग तथा उपसंहारके साथ सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया है, वे आपके आचार्य द्रोण ही पुत्रके रूपमें आपके सामने खड़े हैं। उनकी अर्धाङ्गिनी कृपी अपने वीर पुत्रकी ममतासे ही अपने पतिका अनुगमन नहीं कर सकीं, वे अभी जीवित हैं। महाभाग्यवान् आर्यपुत्र ! आप तो बड़े धर्मज्ञ हैं। जिस गुरुवंशकी नित्य पूजा और वन्दना करनी चाहिये, उसीको व्यथा पहुँचाना आपके योग्य कार्य नहीं है। जैसे अपने बच्चोंके मर जानेसे मैं दुखी होकर रो रही हूँ और मेरी आँखोंसे बार-बार आँसू निकल रहे हैं, वैसे ही इनकी माता पतिव्रता गौतमी न रोवें ! जो उच्छृङ्खल राजा अपने कुकृत्योंसे ब्राह्मणकुलको कुपित कर देते हैं, वे अपने परिवारके साथ उस शोकग्रस्त ब्राह्मण-कुलकी क्रोधाग्निमें भस्म हो जाते हैं' ॥ ४१–४८ ॥

मरुधन्व देशको पार करके सौवीर और आभीर देशके पश्चिम आनर्त्त देशमें आये। उस समय भगवान्‌के रथके घोड़े कुछ थक-से गये थे। मार्गमें स्थान स्थानपर लोग उपहारादिके द्वारा भगवान्‌का सम्मान करते, सायङ्काल होनेपर वे रथपरसे भूमिपर उतर आते और जलाशयपर जाकर सन्ध्या-वन्दन करते। यह उनकी नित्यचर्या थी ॥ ३१—३६ ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

द्वारकामें भगवान्‌का स्वागत

सूतजीने कहा—आनर्त्तदेश बहुत ही सम्पन्न था और वहीं उनकी द्वारकापुरी थी। वहाँ पहुँचकर भगवान्‌ने वहाँके लोगोंकी विरह-वेदना शान्त करते हुए अपना श्रेष्ठ पाञ्चजन्य नामक शङ्ख बजाया। भगवान्‌के लाल-लाल होठोंकी लालीसे वह श्वेत वर्णका शङ्ख बजते समय उनके कर-कमलोंमें ऐसा शोभायमान हुआ, जैसे लाल रंगके कमलोंपर बैठकर कोई राजहंस उच्चस्वरसे मधुर गायन कर रहा हो। भगवान्‌के शङ्खकी वह ध्वनि संसारके भयको भयभीत करनेवाली है। उसे सुनकर सारी प्रजा अपने स्वामी श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे शहरके बाहर निकल आयी। भगवान् श्रीकृष्ण आत्माराम हैं; वे अपने आत्मलाभसे ही सदा-सर्वदा पूर्णकाम हैं, उन्हें किसी भी प्रकारकी कामना नहीं है। फिर भी जैसे लोग बड़े आदरसे भगवान् सूर्यको भी दीपदान करते हैं, वैसे ही अनेक प्रकारकी भेंटोंसे प्रजाने श्रीकृष्णका स्वागत किया। सबके मुख-कमल प्रेमसे खिल उठे। वे हर्षगद्‌गद वाणीसे सबके सुहृद् और संरक्षक भगवान् श्रीकृष्णकी ठीक वैसे ही स्तुति करने लगे, जैसे बालक अपने पितासे अपनी तोतली बोलीमें बातें करते हैं—'स्वामिन्! आपके जिन चरण-कमलोंकी वन्दना ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र करते हैं, जो इस संसारमें कल्याण चाहनेवालोंके लिये परम आश्रय हैं, जिनकी शरण ले लेनेपर परम समर्थ काल भी एक बालतक बाँका नहीं कर सकता, आपके उन्हीं चरण-कमलोंको हम सदा सर्वदा प्रणाम करते हैं। आप विश्वका कल्याण करनेवाले हैं। आप ही हमारे माता, सुहृद्, स्वामी और पिता हैं; आप ही हमारे सद्गुरु और परम आराध्यदेव हैं। आपके चरणोंकी सेवासे हम कृतार्थ हो रहे हैं। आप ही हमारा कल्याण करें। आपके दर्शन देवताओंको भी दुर्लभ हैं; परन्तु हम इतने भाग्यवान् और आपके अपने हैं कि आपका वही समस्त सौन्दर्योंका आश्रयस्वरूप मुखकमल, जो प्रेमपूर्ण मुसकान एवं स्नेहमयी चितवनसे युक्त है, सर्वदा देखते रहते हैं। कमलनयन श्रीकृष्ण! जब आप अपने बन्धु-बान्धवोंसे मिलनेके लिये हस्तिनापुर अथवा मथुरा चले जाते हैं, तब आपके बिना हमारा एक एक क्षण कोटि-कोटि वर्षोंके समान लंबा हो जाता है। आपके बिना हमारी दशा वैसी ही हो जाती है, जैसी सूर्यके बिना आँखोंकी।' भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने प्रजाके मुखसे ऐसे वचन सुनते हुए और अपनी कृपामयी दृष्टिसे उनपर अनुग्रहकी वृष्टि करते हुए द्वारकामें प्रवेश किया ॥ १—१० ॥

जैसे नाग अपनी नगरी भोगवती (पातालपुरी) की रक्षा करते हैं, वैसे ही भगवान्‌की वह द्वारकापुरी भी मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंसे, जिनके पराक्रमकी तुलना और किसीसे भी नहीं की जा सकती—सुरक्षित थी। वह पुरी समस्त ऋतुओंकी फल-पुष्पादि समस्त सम्पत्तियोंसे सम्पन्न थी। उसमें स्थान स्थानपर पवित्र वृक्ष और लताएँ एवं उनके कुञ्ज थे। फलवाले वृक्षोंके बगीचे, पुष्पवाटिकाएँ और टहलनेके लिये सुन्दर-सुन्दर क्रीड़ावन वहाँ बने हुए थे। उनके बीच-बीचमें सुन्दर-सुन्दर सरोवर सुशोभित थे, जिनमें खिले हुए कमलोंकी छटा निराली ही थी। नगरके फाटकों, महलके दरवाजों और सड़कोंपर भगवान्‌के स्वागतार्थ बन्दनवारें लगायी गयी थीं और सुन्दर-सुन्दर चित्र बनाये गये थे। चारों ओर चित्र विचित्र ध्वजा-पताकाएँ फहरा रही थीं, जिनसे उन स्थानोंपर घामका कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। उसके चौराहे, बड़ी-बड़ी सड़कें, बाजार और चबूतरे झाड़-बुहारकर सुगन्धित जलसे सींच दिये गये थे। और भगवान्‌के स्वागतके लिये बरसाये हुए फल फूल, अक्षत अङ्कुर चारों ओर बिखरे हुए थे। घरोंके प्रत्येक द्वारपर दही, अक्षत, फल, ईख, जलसे भरे हुए कलश, उपहारकी वस्तुएँ और धूप दीप आदि सजा दिये गये थे ॥ ११—१५ ॥

उदारशिरोमणि वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, अद्भुत कर्म करनेवाले बलराम, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण और जाम्बवतीनन्दन साम्बको जब यह मालूम हुआ कि हमारे प्रियतम भगवान् श्रीकृष्ण आ रहे हैं, तब उनके मनमें इतना आनन्द उमड़ा कि उन लोगोंने अपने सभी आवश्यक कार्य—शयन, आसन

विदा ली और व्यास आदि ब्राह्मणोंका सत्कार किया। उन लोगोंने भी भगवान्‌का बड़ा ही सम्मान किया। तदनन्तर सात्यकि और उद्धवके साथ द्वारका जानेके लिये वे रथपर सवार हुए। उसी समय उन्होंने देखा कि उत्तरा भयसे विह्वल होकर सामनेसे दौड़ी चली आ रही है ॥ ५–८ ॥

उत्तराने कहा—आप महायोगी हैं। नहीं नहीं, आप देवताओंके भी आराध्य देव हैं। आप ही जगत्‌की रक्षा करनेवाले हैं। मुझे बचाइये। मेरी रक्षा कीजिये। आपके अतिरिक्त इस लोकमें मुझे अभय देनेवाला और कोई



नहीं है। क्योंकि यहाँ सभी परस्पर एक दूसरेकी मृत्युके निमित्त बन रहे हैं। प्रभो! आप सर्वशक्तिमान् हैं। यह दहकते हुए लोहेका बाण मेरी ओर दौड़ा आ रहा है। स्वामिन्! यह मुझे भले ही जला डाले, परन्तु मेरे गर्भको नष्ट न करे—ऐसी कृपा कीजिये ॥ ९-१० ॥

सूतजीने कहा—भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उसकी बात सुनते ही जान गये कि अश्वत्थामाने पाण्डवोंके वंशको निर्बीज करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया है। शौनकजी! उसी समय पाण्डवोंने भी देखा कि जलते हुए पाँच बाण हमारी तरफ आ रहे हैं। इसलिये उन्होंने भी अपने-अपने अस्त्र उठा लिये। सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने अपने अनन्य प्रेमियोंपर—शरणागत भक्तोंपर बहुत बड़ी विपत्ति आयी जानकर अपने निज अस्त्र सुदर्शन-चक्रसे उन निज जनोंकी रक्षा की। भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान आत्मा हैं। उन योगेश्वरने उत्तराके गर्भको पाण्डवोंकी वंशपरम्परा चलानेके लिये अपनी मायाके कवचसे ढक दिया। शौनकजी! यद्यपि ब्रह्मास्त्र अमोघ है और इसके निवारणका कोई उपाय भी नहीं है, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णके तेजके सामने आकर वह शान्त हो गया। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये; क्योंकि भगवान् तो सर्वाश्चर्यमय हैं, वे सब कुछ कर सकते हैं। वे ही अपनी विचित्र शक्तिवाली मायासे स्वयं अजन्मा होकर भी इस संसारकी सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं। इससे बढ़कर आश्चर्य क्या होगा! इस प्रकार इन लोगोंकी रक्षा करके जब भगवान् श्रीकृष्ण जाने लगे, तब ब्रह्मास्त्रकी ज्वालासे मुक्त अपने पुत्रोंके और द्रौपदीके साथ सती कुन्तीने भगवान् श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की ॥ ११–१७ ॥

कुन्ती बोली—आप समस्त पदार्थोंके बाहर और भीतर एकरस स्थित हैं, फिर भी इन्द्रियों और वृत्तियोंसे देखे नहीं जाते। क्योंकि आप प्रकृतिसे परे रहनेवाले परमेश्वर हैं। इन्द्रियोंसे जो कुछ जाना जाता है, उसकी तहमें आप विद्यमान रहते हैं और अपनी ही मायाके परदेसे अपनेको ढके रहते हैं। मैं अबोध नारी आप अविनाशी पुरुषोत्तमको भला, कैसे जान सकती हूँ! मैं तो आपको नमस्कार ही करती हूँ। जैसे साधारण लोग दूसरा वेष धारण किये हुए नटको प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं पहचान सकते, वैसे ही मूढ़ोंकी दृष्टिसे आप दीखते हुए भी नहीं दीखते। आप शुद्ध हृदयवाले विचारशील जीवन्मुक्त परमहंसोंके हृदयमें अपनी प्रेममयी भक्तिका सृजन करनेके लिये अवतीर्ण हुए हैं। फिर हम अल्पबुद्धि स्त्रियाँ आपको कैसे पहचान सकती हैं! आप श्रीकृष्ण, वासुदेव, देवकीनन्दन, नन्द गोपके लाड़ले लाल, गोविन्दको हमारा बारंबार प्रणाम है। जिनकी नाभिसे ब्रह्माका जन्मस्थान कमल प्रकट हुआ है, जो सुन्दर कमलोंकी माला धारण करते हैं, जिनके नेत्र कमलके समान विशाल और कोमल हैं, जिनके चरण-कमलोंमें कमलका चिह्न है—श्रीकृष्ण! ऐसे आपको मेरा बार-बार नमस्कार है। हृषीकेश! जैसे आपने कंसके द्वारा कैद की हुई और चिरकालसे शोकग्रस्त देवकीकी रक्षा की थी, वैसे ही पुत्रोंके साथ मेरी भी आपने बार-बार विपत्तियोंसे रक्षा की है। आप ही हमारे स्वामी हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं। श्रीकृष्ण! कहाँतक गिनाऊँ! विषसे, लाक्षागृहकी भयानक आगसे, हिडिम्ब आदि राक्षसोंकी दृष्टिसे, दुष्टोंकी सभासे, वनवासकी

हुए थे और सहस्रों रमणी-रत्नोंमें रहकर उन्होंने साधारण मनुष्यकी तरह क्रीड़ा की । जिनकी निर्मल और मधुर हँसी उनके हृदयके उन्मुक्त भावोंको सूचित करनेवाली थी, जिनकी लजीली चितवनकी चोटसे बेसुध होकर विश्वविजयी कामदेवने भी अपने धनुषका परित्याग कर दिया था—वे कमनीय कामिनियाँ अपने काम विलासोंसे जिनकी इन्द्रियोंमें तनिक भी क्षोभ नहीं पैदा कर सकीं, उन असङ्ग भगवान् श्रीकृष्णको संसारके लोग अपने ही समान कर्म करते देखकर आसक्त समझते हैं—यह उनकी मूर्खता है । वे भगवान्‌के स्वरूपको नहीं जानते । यही तो भगवान्‌की भगवत्ता है कि वे प्रकृतिमें स्थित होकर भी उसके गुणोंसे लिप्त नहीं होते, जैसे भगवान्‌की शरणागत बुद्धि अपनेमें रहनेवाले प्राकृत गुणोंसे लिप्त नहीं होती । भगवान्‌की योगमायासे मोहित उन स्त्रियोंने भी भगवान्‌के मधुर व्यवहारसे मुग्ध होकर ऐसा समझा कि ये हमारे वशमें हैं और हमारे एकान्तसेवी हैं । जैसे अहङ्कारकी वृत्तियाँ अन्तर्यामी ईश्वरको अपने धर्मोंसे युक्त समझती हैं, वैसे ही अपने स्वामी श्रीकृष्णका ऐश्वर्यमय रूप न जाननेके कारण वे ऐसा समझती थीं ॥ ३४-३९ ॥

बारहवाँ अध्याय

परीक्षित्‌का जन्म

शौनकजीने कहा—*अश्वत्थामाने जो अत्यन्त तेजस्वी* ब्रह्मास्त्र चलाया था, उससे उत्तराका गर्भ नष्ट हो गया था, परन्तु भगवान्‌ने उसे पुनः जीवित कर दिया । उस गर्भसे पैदा हुए महाज्ञानी महात्मा परीक्षित्‌के, जिन्हें शुकदेवजीने ज्ञानोपदेश किया था, जन्म, मृत्यु और उसके बाद उन्हें जो गति प्राप्त हुई, वह सब यदि आप ठीक समझें तो कहें, हमलोग बड़ी श्रद्धाके साथ सुनना चाहते हैं ॥ १-३ ॥

सूतजीने कहा—धर्मराज युधिष्ठिर अपनी प्रजाको प्रसन्न रखते हुए पिताके समान उनका पालन करने लगे । भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके सेवनसे वे समस्त भोगोंसे निःस्पृह हो गये थे । शौनकादि ऋषियो! उनके पास अतुल सम्पत्ति थी, उन्होंने बड़े-बड़े यज्ञ किये थे, तथा उनके फलस्वरूप श्रेष्ठ लोकोंका अधिकार प्राप्त किया था । उनकी रानियाँ और भाई अनुकूल थे, सारी पृथ्वी उनकी थी, वे जम्बूद्वीपके स्वामी थे और उनकी कीर्ति स्वर्गतक फैली हुई थी । उनके पास भोगकी ऐसी सामग्री थी, जिसके लिये देवतालोग भी लालायित रहते हैं । परन्तु क्या इन भोगोंसे महाराज युधिष्ठिरको सुख मिलता था ? नहीं, नहीं, उनका मन तो भगवान्‌में लगा हुआ था । जैसे भूखा मनुष्य सुगन्ध, नृत्य आदिसे सन्तुष्ट नहीं हो सकता, उसकी तृप्ति तो भोजनसे ही होती है, वही स्थिति युधिष्ठिरकी थी ॥ ४-६ ॥

शौनकजी ! उत्तराके गर्भमें स्थित वह वीर शिशु परीक्षित् जब अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजसे जलने लगा, तब उसने देखा *कि उसकी आँखोंके सामने* एक ज्योतिर्मय पुरुष है । वह देखनेमें तो अँगूठे भरका ही है, परन्तु उसका स्वरूप बहुत ही निर्मल है ! अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर है, बिजलीके समान चमकता हुआ पीताम्बर धारण किये हुए है, सिरपर सोनेका मुकुट झिलमिला रहा है । उस निर्विकार पुरुषके बड़ी ही सुन्दर चार भुजाएँ हैं । कानोंमें तपाये हुए स्वर्णके सुन्दर कुण्डल हैं, आँखोंमें लालिमा है, हाथमें गदा लेकर उसके चारों ओर घूम रहा है और लूकेके समान जलती हुई गदाको घुमाता जा रहा है । जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे कुहरेको हटा देते हैं, वैसे ही वह गदा ब्रह्मास्त्रके तेजको शान्त करती जा रही थी । उन्हें देखकर वह गर्भस्थ शिशु सोचने लगा, यह कौन है । इस प्रकार उस दस मासके गर्भगत शिशुके सामने ही धर्मरक्षक अप्रमेय भगवान् श्रीकृष्ण *ब्रह्मास्त्रके तेजको शान्त करके वहीं अन्तर्धान हो गये* ॥ ७-११ ॥

तदनन्तर अनुकूल ग्रहोंके उदयसे युक्त समस्त सद्गुणोंको विकसित करनेवाले शुभ समयमें कौरव, पाण्डव दोनोंके वंशधर परीक्षित्‌का जन्म हुआ । जन्मके समय ही वह बालक इतना तेजस्वी दीख पड़ता था, मानो स्वयं पाण्डुने ही फिरसे जन्म लिया हो । जब युधिष्ठिरको बालकके जन्मकी बात मालूम हुई, तब वे बहुत ही आनन्दित हुए । उन्होंने धौम्य, कृपाचार्य आदि ब्राह्मणोंसे मङ्गलवाचन और जातकर्म संस्कार करवाये । महाराज युधिष्ठिर दानके योग्य समयको जानते थे । उन्होंने प्रजातीर्थ नामक कालमें अर्थात् नाल काटनेके पहले ही ब्राह्मणोंको सुवर्ण, गौ, पृथ्वी, गाँव, उत्तम जातिके हाथी घोड़े और उत्तम अन्न दान किये । ब्राह्मणोंने सन्तुष्ट होकर अत्यन्त विनयी युधिष्ठिरसे कहा—'पुरुवंश शिरोमणे ! कालकी दुर्निवार गतिसे यह उज्ज्वल वंश मिटना ही चाहता था, परन्तु तुम लोगोंपर कृपा करके

समुद्रमें गिरती रहती है, वैसे ही मेरी बुद्धि, मेरी मति किसी ओर न जाकर आपके प्रेमके समुद्रमें ही विलीन हो जाय। श्रीकृष्ण! अर्जुनके प्यारे सखा! यदुवंशशिरोमणे! आप पृथ्वीके भाररूप राजवेशधारी दैत्योंको जलानेके लिये अग्निस्वरूप हैं। आपकी शक्ति अनन्त है। गोविन्द! आपका यह अवतार गौ, ब्राह्मण और देवताओंका दुःख मिटानेके लिये ही है। योगेश्वर! चराचरके गुरुदेव भगवन्! मैं आपको नमस्कार करती हूँ॥ ३७—४३॥

सूतजीने कहा—इस प्रकार कुन्तीने बड़े मधुर शब्दोंमें भगवान्की अधिकांश लीलाओंका वर्णन किया। यह सब सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी मायासे उसे मोहित करते हुए-से मन्द-मन्द मुसकराने लगे। उन्होंने कुन्तीसे कह दिया—'अच्छा ठीक है' और रथके स्थानसे वे फिर हस्तिनापुर लौट आये। वहाँ सुभद्रा आदिसे पूछकर जब फिर उन्होंने द्वारका जानेकी इच्छा की, तब राजा युधिष्ठिरने बड़े प्रेमसे उन्हें रोक लिया। राजा युधिष्ठिरको अपने भाई-बन्धुओंके मारे जानेका बड़ा शोक हो रहा था। भगवान्की लीलाका मर्म जाननेवाले व्यास आदि महर्षियोंने और स्वयं अद्भुत चरित्र करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने भी अनेकों इतिहास कहकर उन्हें समझानेकी बहुत चेष्टा की; परन्तु उन्हें सान्त्वना न मिली, उनका शोक न मिटा। शौनकादि ऋषियो! धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरको अपने सुहृद् स्वजनोंके वधसे बड़ी चिन्ता हुई। वे साधारण चित्तसे स्नेह और मोहके वशमें होकर कहने लगे—भला, मुझ दुरात्माके हृदयपर छाये हुए इस दृढ़ अज्ञानको तो देखो; मैंने सियार-कुत्तोंके आहार इस अनात्मा शरीरके लिये अनेक अक्षौहिणी* सेनाका नाश कर डाला! मैंने बालक, ब्राह्मण, सुहृद्, मित्र, चाचा, भाई और गुरुजनोंसे द्रोह किया है। लाखों बरसोंमें भी नरकसे मेरा छुटकारा नहीं हो सकता। यद्यपि शास्त्रका वचन है कि राजा यदि प्रजाका पालन करनेके लिये धर्मयुद्धमें शत्रुओंको मारे, तो उसे पाप नहीं लगता; परन्तु इससे मुझे सन्तोष नहीं होता। जिन स्त्रियोंके पति और भाई-बन्धुओंको हमने मारा है, उनके द्रोहका प्रायश्चित्त ये गृहस्थोचित यज्ञादि कर्म नहीं हो सकते। इन यज्ञोंके द्वारा मैं उनके अपराधका परिमार्जन करनेमें असमर्थ हूँ। जैसे कीचड़से कीचड़ नहीं धोया जा सकता, मदिरासे मदिराकी अपवित्रता नहीं मिटायी जा सकती, वैसे ही बहुत-से हिंसाबहुल यज्ञोंके द्वारा एक भी प्राणीकी हत्याका प्रायश्चित्त नहीं किया जा सकता॥ ४४—५२॥

नवाँ अध्याय

युधिष्ठिरादिका भीष्मजीके पास जाना और भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए भीष्मजीका प्राणत्याग करना।

सूतजीने कहा—इस प्रकार राजा युधिष्ठिर प्रजाद्रोहसे भयभीत हो गये। फिर सब धर्मोंका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे उन्होंने कुरुक्षेत्रकी यात्रा की, जहाँ भीष्मपितामह शरशय्यापर पड़े हुए थे। शौनकादि ऋषियो! उस समय उन सब भाइयोंने स्वर्णजटित रथोंपर, जिनमें अच्छे-अच्छे घोड़े जुते हुए थे, सवार होकर अपने भाई युधिष्ठिरका अनुगमन किया। उनके साथ व्यास, धौम्य आदि ब्राह्मण भी थे। शौनकजी! अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्ण भी रथपर चढ़कर उनके साथ-साथ चले। उन सब भाइयोंके साथ युधिष्ठिरकी ऐसी शोभा हुई, मानो यक्षोंसे घिरे हुए स्वयं कुबेर ही जा रहे हों। अपने अनुचरों और भगवान् श्रीकृष्णके साथ वहाँ जाकर पाण्डवोंने देखा कि भीष्मपितामह स्वर्गसे गिरे हुए देवताके समान पृथ्वीपर पड़े हुए हैं। उन लोगोंने उन्हें प्रणाम किया। शौनकजी! उसी समय भरतवंशियोंके गौरवरूप भीष्मपितामहको देखनेके लिये सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि और राजर्षि वहाँ आये। पर्वत मुनि, नारदजी, महर्षि धौम्य, भगवान् व्यास, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्योंके साथ परशुरामजी, वसिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, विश्वामित्र, सुदर्शन तथा और भी शुकदेव आदि शुद्धहृदय महात्मागण एवं शिष्योंके सहित कश्यप, अङ्गिरा आदि मुनिगण भी उसी समय वहाँ पधारे। भीष्मपितामह धर्मको और देश-कालके विभागको जाननेवाले थे। उन्होंने उन बड़भागी ऋषियोंको आया हुआ देखकर उनका यथायोग्य सत्कार किया। वे भगवान् श्रीकृष्णका

* २१८७० रथ, २१८७० हाथी, १०९३५० पैदल और ६५६१० घुड़सवार—इतनी सेनाको अक्षौहिणी कहते हैं। (महाभारत)

उत्तरा, अश्वत्थामाकी माता और कृपाचार्यकी बहिन कृपी तथा पाण्डव-परिवारके अन्य सभी नर नारी और अपने पुत्रोंसहित दूसरी स्त्रियाँ—सब-के-सब बड़ी प्रसन्नतासे, मानो मृत शरीरमें प्राण आ गया हो—ऐसा अनुभव करते हुए उनसे मिलने गये । सबने यथायोग्य आलिङ्गन और प्रणामादि क्रिया और उनसे मिलकर उनके विरहके समयकी उत्कण्ठाका स्मरण करते हुए प्रेमके आँसू बहाये । युधिष्ठिरने आसनपर बैठाकर उनका यथोचित सत्कार किया । जब वे भोजनादिसे निवृत्त होकर आरामसे आसनपर बैठकर विश्राम करने लगे, तब युधिष्ठिरने विनयसे झुककर सबके सामने ही उनसे कहा ॥ १–७ ॥

युधिष्ठिरने कहा—चाचाजी ! जैसे पक्षी अपने अडोंको पखोंकी छायाके नीचे रखकर उन्हें सेते और बढ़ाते हैं, वैसे ही आपने अत्यन्त वात्सल्यसे अपने कर-कमलोंकी छत्रछायामें हमलोगोंको पाला पोसा है । बार बार आपने हमें और हमारी माताको विषदान और लाक्षागृहके दाह आदि विपत्तियोंसे बचाया है । क्या आप कभी हमलोगोंकी भी याद करते रहे हैं ? आपने पृथ्वीपर विचरण करते समय किस प्रकारसे अपनी जीविकाका निर्वाह किया ? पृथ्वीतलपर बहुत-से तीर्थ और प्रधान प्रधान क्षेत्र हैं, उनमेंसे आपने किन किनका सेवन किया ? चाचाजी ! आप-जैसे भगवान्के प्यारे भक्त स्वय ही तीर्थस्वरूप हैं । आपलोग अपने हृदयमें विराजमान भगवान्के द्वारा तीर्थोंको भी महातीर्थ बनाते हुए विचरण करते हैं । चाचाजी ! आप तीर्थयात्रा करते हुए द्वारका भी अवश्य ही गये होंगे । वहाँ हमारे सुहृद् भाई-बन्धु जिनके एकमात्र आराध्यदेव श्रीकृष्ण ही हैं, अपनी नगरीमें सुखसे तो हैं न ? आपने यदि जाकर देखा नहीं होगा तो सुना तो अवश्य ही होगा ॥ ८–११ ॥

युधिष्ठिरके पूछनेपर विदुरजीने तीर्थों और यदुवंशियोंके सम्बन्धमें जो कुछ देखा, सुना और अनुभव किया था, सब क्रमसे बतला दिया, परन्तु यदुवंशके विनाशका हाल नहीं कहा । मनुष्योंको अप्रिय बातें सहन नहीं होतीं, परन्तु अब तो यदुवंशियोंके नाशकी घटना घट चुकी थी और एक-न एक दिन वह समाचार भी सबको मिलने ही वाला था । वह छिपानेसे छिपनेकी वस्तु नहीं थी । फिर भी विदुरजीने पाण्डवोंसे वह हाल इसलिये नहीं कहा कि उनका हृदय बड़ा करुणापूर्ण था, वे पाण्डवोंको दुखी नहीं देख सकते थे ॥ १२ १३ ॥

पाण्डव विदुरजीका देवताके समान सत्कार करते थे । वे कुछ दिनोंतक अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रकी कल्याण कामनासे सब लोगोंको प्रसन्न करते हुए सुखपूर्वक हस्तिनापुरमें ही रहे । विदुरजी तो साक्षात् धर्मराज थे, माण्डव्य ऋषिके शापसे ये सौ वर्षके लिये शूद्र बन गये थे ।* इतने दिनोंतक यमराजके पदपर अर्यमा थे और वही पापियोंको दण्ड देते थे । इधर युधिष्ठिरको राज्य मिल ही गया था, उनके अपार सम्पत्ति थी और वशपरम्पराकी रक्षा करनेवाला पौत्र (परीक्षित्) था । लोकपालोंके समान श्रेष्ठ भाई थे, इन सबके बीचमें बड़े आनन्दके साथ वे अपना समय बिता रहे थे । इस प्रकार पाण्डव गृहस्थके काम धन्धोंमें रम गये और उन्हींके पीछे एक प्रकारसे यह बात भूल गये कि अनजानमें ही हमारा जीवन मृत्युकी ओर जा रहा है, अब वह समय आ रहा है, जिसे कोई टाल नहीं सकता ॥ १४—१७ ॥

परन्तु विदुरजी इस विषयमें सावधान थे । कालकी गति देखकर उन्होंने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रसे कहा—'महाराज ! देखिये, अब बड़ा भयङ्कर समय आ गया है, झटपट यहाँसे निकल चलिये । अब हम लोगोंके सिरपर वह सर्वसमर्थ काल मँडराने लगा है, जिसके टालनेका कहीं भी कोई उपाय नहीं है । ये काल भगवान् जीवको उसके अत्यन्त प्रिय प्राणोंसे भी बात-की-बातमें अलग कर देते हैं, फिर धन, जन आदि दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या है । आपके पिता, भाई, मित्र और पुत्र सभी मर गये, आपकी उम्र भी ढल चुकी, शरीर बुढापेका शिकार हो गया, फिर भी आप पराये घर पड़े हुए हैं । ओह ! इस प्राणीको जीते रहनेकी कितनी प्रबल इच्छा है, तभी तो आप भीमका

* एक समय किसी राजाके अनुचरोंने कुछ चोरोंको माण्डव्य ऋषिके आश्रमपर पकड़ा । उन्होंने समझा कि ऋषि भी चोरी-में शामिल होंगे । अब वे भी पकड़ लिये गये और राजाज्ञासे सबके साथ उनको भी सूलीपर चढ़ा दिया गया । राजाको यह पता लगते ही कि ये महात्मा हैं—ऋषिको सूलीसे उतरवा दिया और हाथ जोड़कर उनसे अपना अपराध क्षमा कराया । माण्डव्यजीने यमराजके पास जाकर पूछा—'मुझे किस पापसे यह दण्ड मिला ?' यमराजने बताया कि 'आपने लड़कपनमें एक टिड्डीको कुशकी नोकसे छेद दिया था इसलिये ऐसा हुआ ।' इसपर मुनिने कहा—'मैंने अज्ञानवश ऐसा किया होगा, तुमने बड़ा कठोर दण्ड दिया । इसलिये तुम सौ वर्षतक शूद्रयोनिमें रहोगे ।' माण्डव्यजीके इस शापसे ही यमराजने विदुरके रूपमें अवतार लिया था ।

भीष्मपितामहपर कृपा



शरीर छोड़नेके समय भीष्मजी बड़े प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं ।



भाइयोंके साथ उठकर उन्हें प्रणाम किया और उनका सम्मान करते हुए कहा—॥३७ ३८॥

युधिष्ठिरने कहा—*भगवन्! मैं नहीं जानता कि* मेरे दोनों चाचा और पुत्रोंकी मृत्युके शोकसे व्याकुल तपस्विनी माता गान्धारी यहाँसे कहाँ चले गये? जैसे समुद्रमें भटकते हुए जहाजके लिये कर्णधार मार्गदर्शक होता है, उसी प्रकार आप ही हमारी इस उलझी हुई समस्याको सुलझा सकते हैं। तब भगवान्‌के परमभक्त भगवन्मय देवर्षि नारदने कहा—'धर्मराज! तुम किसीके लिये शोक मत करो, क्योंकि यह सारा जगत् ईश्वरके वशमें है। सारे लोक और लोकपाल विवश होकर ईश्वरकी ही आज्ञाका पालन कर रहे हैं। वही एक प्राणीको दूसरेसे मिलाता है और वही उन्हें अलग करता है। जैसे बैल बड़ी रस्सीमें बँधे और छोटी रस्सीसे नथे रहकर अपने स्वामीका भार ढोते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी वर्णाश्रमादि अनेक प्रकारके नामोंसे वेदरूप रस्सीमें बँधकर ईश्वरकी ही आज्ञाका अनुसरण करते हैं। जैसे संसारमें खिलाड़ीकी इच्छासे ही खिलौनोंका संयोग और वियोग होता है, वैसे ही भगवान्‌की इच्छासे ही मनुष्योंका मिलना बिछुड़ना होता है। तुम संसारको चाहे नित्य मानो या अनित्य अथवा दोनोंसे परे मानो, किसी भी अवस्थामें उन लोगोंके लिये शोक करना उचित नहीं है। तुम्हारे शोकका कारण अज्ञानसे उत्पन्न यह स्नेह ही है। इसलिये धर्मराज! वे दीन-दुखी चाचा-चाची असहाय अवस्थामें मेरे बिना कैसे रहेंगे, इस अज्ञानजन्य विकलताको छोड़ दो। यह पाञ्चभौतिक शरीर काल, कर्म और गुणोंके वशमें है। यह पराधीन शरीर दूसरोंकी रक्षा ही क्या कर सकता है? जो स्वयं ही अजगरके मुँहमें पड़ा हुआ है, वह दूसरोंकी रक्षा क्या करेगा? संसारमें एक जीव दूसरे जीवके जीवनका कारण हो रहा है। हाथवालोंके बिना हाथवाले, चार पैरवाले पशुओंके बिना पैरवाले (तृणादि) और बड़े जीवोंके छोटे जीव आहार हैं। परन्तु तुम तो इन जीवोंको जीव-बुद्धिसे देखो ही मत। इन समस्त रूपोंमें जीवोंके बाहर और भीतर वही एक स्वयम्प्रकाश भगवान्, जो सम्पूर्ण आत्माओंके आत्मा हैं, मायाके द्वारा अनेकों प्रकारसे प्रकट हो रहे हैं। तुम केवल उन्हींको देखो। महाराज! वही समस्त प्राणियोंको जीवनदान करनेवाले भगवान् इस समय इस पृथ्वीतलपर देवद्रोहियोंका नाश करनेके लिये कालरूपसे अवतीर्ण हुए हैं। अब वे देवताओंका काम पूरा कर चुके हैं। थोड़ा सा काम और बाकी है, उसीके लिये वे रुके हुए हैं। जबतक वे यहाँ हैं, तबतक तुमलोग भी उनकी प्रतीक्षा करते रहो॥ ३९—५०॥

धर्मराज! हिमालयके दक्षिण भागमें, जहाँ सप्तर्षियोंकी प्रसन्नताके लिये गङ्गाजीने सात धाराओंके रूपमें अपनेको सात भागोंमें विभक्त कर दिया है, जिसे 'सप्तस्रोत' कहते हैं, वहीं ऋषियोंके आश्रमपर धृतराष्ट्र अपनी पत्नी गान्धारी और विदुरके साथ गये हैं। वहाँ वे त्रिकाल स्नान और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते हैं। अब उनके चित्तमें किसी प्रकारकी कामना नहीं है, वे केवल जल पीकर शान्तचित्तसे निवास करते हैं। आसन जीतकर प्राणोंको वशमें करके उन्होंने अपनी छहों इन्द्रियोंको बाहरसे अपने-अपने गोलकमें लौटा लिया है। भगवान्‌की धारणासे उनके तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणके मल नष्ट हो चुके हैं, उन्होंने अहङ्कारको बुद्धिके साथ जोड़कर और उसे क्षेत्रज्ञ साक्षी चेतनमें लीन करके उसे भी सर्वाधिष्ठान ब्रह्मके साथ वैसे ही एक कर दिया है, जैसे घटरूप उपाधिको नष्ट करके घटाकाश महाकाशसे एक कर दिया जाता है। उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों और मनको रोककर समस्त विषयोंको बाहरसे ही लौटा दिया है और मायाके गुणोंसे होनेवाले परिणामोंको सर्वथा मिटा दिया है। समस्त कर्मोंका संन्यास करके वे इस समय ठूँठकी तरह स्थिर होकर बैठे हुए हैं, अतः लौटानेके विचारसे वहाँ जाकर तुम उनके मार्गमें

शुद्ध एवं कामनारहित हो गयी है, यदुवंशशिरोमणि अनन्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित करता हूँ। जो सदा-सर्वदा अपने आनन्दमय स्वरूपमें स्थित रहते हुए ही कभी विहार करनेकी, लीला करनेकी इच्छासे प्रकृतिको स्वीकार कर लेते हैं, जिससे यह सृष्टि-परम्परा चलती है; जिनका शरीर तमालके समान श्यामवर्ण है; सूर्यकी किरणोंके समान जो सुनहला पीताम्बर धारण किये हुए हैं; जिनके मुख-कमलपर घुँघराली अलकें लहराती रहती हैं—उन त्रिभुवनसुन्दर, अर्जुनके सखा भगवान् श्रीकृष्णमें मेरी हेतुरहित प्रीति हो। मुझे युद्धके समयकी उनकी वह विलक्षण छवि याद आती है। उनके मुखपर लहराते हुए घुँघराले बाल घोड़ोंकी टापकी धूलसे मटमैले हो गये थे और पसीनेकी छोटी-छोटी बूँदें शोभायमान हो रही थीं। मैं अपने तीखे बाणोंसे उनकी त्वचाको बींध रहा था। उन सुन्दर कवचवाले भगवान् श्रीकृष्णके प्रति मेरा शरीर, अन्तःकरण और मेरी आत्मा समर्पित हो जायँ। अपने मित्र अर्जुनकी बात सुनकर, जो तुरंत ही पाण्डव और कौरव-सेनाओंके बीचमें अपना रथ ले आये और वहाँ स्थित होकर जिन्होंने अपनी दृष्टिसे ही कौरवोंके सैनिकोंकी आयु छीन ली, उन पार्थसखा भगवान् श्रीकृष्णमें मेरी परम प्रीति हो। अर्जुनने जब दूरसे कौरवोंकी सेनाके मुखिया हम लोगोंको देखा, तब दोष या पाप समझकर वह अपने स्वजनोंके वधसे विमुख हो गया। उस समय जिन्होंने गीताके रूपमें आत्मविद्याका उपदेश करके उसके सामयिक अज्ञानका नाश कर दिया, उन परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें मेरी प्रीति बनी रहे। मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं श्रीकृष्णको शस्त्र ग्रहण कराकर छोड़ूँगा, इसे सत्य करनेके लिये उन्होंने अपनी शस्त्र ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा तोड़ दी; उस समय वे रथसे नीचे कूद पड़े और सिंह जैसे हाथीको मारनेके लिये उसपर टूट पड़ता है, वैसे ही रथका पहिया लेकर मुझपर झपट पड़े। उस समय वे इतने वेगसे दौड़े कि उनके कन्धेका दुपट्टा गिर गया और पृथ्वी काँपने लगी; मुझ आततायीने तीखे बाण मार-मारकर उनके शरीरका कवच तोड़ डाला था, सारा शरीर लोहूलुहान हो रहा था, अर्जुनके रोकनेपर भी वे बलपूर्वक मुझे मारनेके लिये मेरी ओर दौड़े आ रहे थे। वे ही भगवान् श्रीकृष्ण, जो ऐसा करते हुए भी मेरे प्रति अनुग्रह और भक्तवत्सलतासे परिपूर्ण थे, मेरे एकमात्र गति हों—आश्रय हों। अर्जुनके रथपर विराजमान जिन श्रीकृष्णके बायें हाथमें घोड़ोंकी रास थी और दाहिने हाथमें चाबुक, इन दोनोंकी शोभासे उस समय उनकी अपूर्व छबि बन गयी थी, महाभारत-युद्धमें मरनेवाले वीर जिनकी इस छबिका दर्शन करते रहनेके कारण सारूप्य मोक्षको प्राप्त हो गये, उन्हीं पार्थसारथि भगवान् श्रीकृष्णमें मुझ मरणासन्नकी परम प्रीति हो। जिनकी लटकीली सुन्दर चाल, अनोखी चेष्टाएँ, मधुर मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे अत्यन्त सम्मानित गोपियाँ रासलीलामें उनके अन्तर्धान हो जानेपर प्रेमोन्मादसे मतवाली होकर जिनकी लीलाओंका अनुकरण करके तन्मय हो गयी थीं, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णमें मेरा परम प्रेम हो। जिस समय युधिष्ठिरका राजसूय-यज्ञ हो रहा था, मुनियों और बड़े-बड़े राजाओंसे भरी हुई सभामें सबसे पहले सबकी ओरसे इन्हीं दर्शनीय भगवान् श्रीकृष्णकी मेरी आँखोंके सामने पूजा हुई थी; वे ही सबके आत्मा प्रभु आज इस मृत्युके समय मेरे सामने खड़े हैं! जैसे एक ही सूर्य अनेक आँखोंसे अनेक रूपोंमें दीखते हैं, वैसे ही अजन्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपने ही रचित अनेक शरीरधारियोंके हृदयमें अनेक रूप-से जान पड़ते हैं; वास्तवमें तो एक और सबके हृदयमें विराजमान हैं ही। उन्हीं इन भगवान् श्रीकृष्णको मैं भेद-भ्रमसे रहित होकर प्राप्त हो गया हूँ॥ ३२—४२॥

सूतजीने कहा—इस प्रकार भीष्मपितामहने मन, वाणी, दृष्टि और वृत्तियोंसे आत्मस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णमें अपने आपको लीन कर दिया। उनके प्राण वहीं विलीन हो गये और वे शान्त हो गये। उन्हें अनन्त ब्रह्ममें लीन जानकर सब लोग वैसे ही चुप हो गये, जैसे दिनके बीत जानेपर पक्षियोंकी चहचहाट बंद हो जाती है। उस समय देवता और मनुष्य नगाड़े बजाने लगे। साधुस्वभावके राजा उनकी प्रशंसा करने लगे और आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। शौनकजी! युधिष्ठिरने उनके मृत शरीरकी अन्त्येष्टि-क्रिया करायी और कुछ समयके लिये वे शोकमग्न हो गये। उस समय मुनियोंने बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णकी उनके रहस्यमय नाम ले-लेकर स्तुति की। इसके पश्चात् अपने हृदयोंको श्रीकृष्णमय बनाकर वे अपने-अपने आश्रमोंको लौट गये। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णके साथ युधिष्ठिर हस्तिनापुर चले आये और उन्होंने वहाँ अपने चाचा धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारीको ढाढस बँधाया। फिर धृतराष्ट्रकी आज्ञासे और भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे समर्थ राजा युधिष्ठिर अपने वंशपरम्परागत साम्राज्यका धर्मपूर्वक शासन करने लगे॥ ४३—४९॥



भाइयोंके साथ उठकर उन्हें प्रणाम किया और उनका सम्मान करते हुए कहा—॥३७ ३८॥

युधिष्ठिरने कहा—भगवन्! मैं नहीं जानता कि मेरे दोनों चाचा और पुत्रोंकी मृत्युके शोकसे व्याकुल तपस्विनी माता गान्धारी यहाँसे कहाँ चले गये? जैसे समुद्रमें भटकते हुए जहाजके लिये कर्णधार मार्गदर्शक होता है, उसी प्रकार आप ही हमारी इस उलझी हुई समस्याको सुलझा सकते हैं। *तब भगवान्‌के परमभक्त भगवन्मय* देवर्षि नारदने कहा—'धर्मराज! तुम किसीके लिये शोक मत करो, क्योंकि यह सारा जगत् ईश्वरके वशमें है। सारे लोक और लोकपाल विवश होकर ईश्वरकी ही आज्ञाका पालन कर रहे हैं। वही एक प्राणीको दूसरेसे मिलाता है और वही उन्हें अलग करता है। जैसे बैल बड़ी रस्सीमें बँधे और छोटी रस्सीसे नथे रहकर अपने स्वामीका भार ढोते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी वर्णाश्रमादि अनेक प्रकारके नामोंसे वेदरूप रस्सीमें बँधकर ईश्वरकी ही आज्ञाका अनुसरण करते हैं। जैसे संसारमें खिलाड़ीकी इच्छासे ही खिलौनोंका संयोग और वियोग होता है, वैसे ही भगवान्‌की इच्छासे ही मनुष्योंका मिलना बिछुड़ना होता है। तुम संसारको चाहे नित्य मानो या अनित्य अथवा दोनोंसे परे मानो, किसी भी अवस्थामें उन लोगोंके लिये शोक करना उचित नहीं है। तुम्हारे शोकका कारण अज्ञानसे उत्पन्न यह स्नेह ही है। इसलिये धर्मराज! वे दीन दुखी चाचा-चाची असहाय अवस्थामें मेरे बिना कैसे रहेंगे, इस अज्ञानजन्य विकलताको छोड़ दो। यह पाञ्चभौतिक शरीर काल, कर्म और गुणोंके वशमें है। यह पराधीन शरीर दूसरोंकी रक्षा ही क्या कर सकता है? जो स्वयं ही अजगरके मुँहमें पड़ा हुआ है, वह दूसरोंकी रक्षा क्या करेगा? संसारमें एक जीव दूसरे जीवके जीवनका कारण हो रहा है। हाथवालों के बिना हाथवाले, चार पैरवाले पशुओंके बिना पैरवाले (तृणादि) और बड़े जीवोंके छोटे जीव आहार हैं। परन्तु तुम तो इन जीवोंको जीव बुद्धिसे देखो ही मत। इन समस्त रूपोंमें जीवोंके बाहर और भीतर वही एक स्वयम्प्रकाश भगवान्, जो सम्पूर्ण आत्माओंके आत्मा हैं, मायाके द्वारा अनेकों प्रकारसे प्रकट हो रहे हैं। तुम केवल उन्हींको देखो। महाराज! वही समस्त प्राणियोंको जीवनदान करनेवाले भगवान् इस समय इस पृथ्वीतलपर देवद्रोहियोंका नाश करनेके लिये कालरूपसे अवतीर्ण हुए हैं। अब वे देवताओंका काम पूरा कर चुके हैं। थोड़ा सा काम और बाकी है, उसीके लिये वे रुके हुए हैं। जबतक वे यहाँ हैं, तबतक तुमलोग भी उनकी प्रतीक्षा करते रहो॥ ३९—५०॥

धर्मराज! हिमालयके दक्षिण भागमें, जहाँ सप्तर्षियोंकी प्रसन्नताके लिये गङ्गाजीने सात धाराओंके रूपमें अपनेको सात भागोंमें विभक्त कर दिया है, जिसे 'सप्तस्रोत' कहते हैं, वहीं ऋषियोंके आश्रमपर धृतराष्ट्र अपनी पत्नी गान्धारी और विदुरके साथ गये हैं। वहाँ वे त्रिकाल स्नान और विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते हैं। अब उनके चित्तमें किसी प्रकारकी कामना नहीं है, वे केवल जल पीकर शान्तचित्तसे निवास करते हैं। आसन जीतकर प्राणोंको वशमें करके उन्होंने अपनी छहों इन्द्रियोंको बाहरसे अपने-अपने गोलकमें लौटा लिया है। भगवान्‌की धारणासे उनके तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुणके मल नष्ट हो चुके हैं, उन्होंने अहङ्कारको बुद्धिके साथ जोड़कर और उसे क्षेत्रज्ञ साक्षी चेतनमें लीन करके उसे भी सर्वाधिष्ठान ब्रह्मके साथ वैसे ही एक कर दिया है, जैसे घटरूप उपाधिको नष्ट करके घटाकाश महाकाशसे एक कर दिया जाता है। उन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियों और मनको रोककर समस्त विषयोंको *बाहरसे ही लौटा दिया है और मायाके गुणोंसे* होनेवाले परिणामोंको सर्वथा मिटा दिया है। समस्त कर्मोंका संन्यास करके वे इस समय ठूँठकी तरह स्थिर होकर बैठे हुए हैं, अतः लौटानेके विचारसे वहाँ जाकर तुम उनके मार्गमें

युक्त चितवनसे भगवान्‌को देखती हुई उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं। उस समय भगवान्‌के प्यारे सखा अर्जुनने अपने प्रियतम श्रीकृष्णका वह श्वेत छत्र, जिसमें मोतियोंकी झालर लटक रही थी और जिसका डंडा रत्नोंका बना हुआ था, अपने हाथमें ले लिया। उद्धव और सात्यकि बड़े विचित्र चँवर डुलाने लगे। मार्गमें भगवान् श्रीकृष्णपर चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी। बड़ी ही मधुर झाँकी थी। जहाँ-तहाँ ब्राह्मणलोग ऊँचे स्वरसे उन्हें आशीर्वाद दे रहे थे। उनके वे आशीर्वाद सत्य ही थे, क्योंकि भगवान्‌में सब कुछ है। यद्यपि ऐश्वर्यकी दृष्टिसे वे आशीर्वाद भगवान्‌के अनुरूप नहीं थे, फिर भी माधुर्यकी दृष्टिसे मनुष्यकी लीलामें वे आशीर्वाद भी उनके अनुरूप ही थे। हस्तिनापुरकी कुलीन रमणियाँ, जिनका चित्त भगवान् श्रीकृष्णमें रम गया था, आपसमें ऐसी बातें कर रही थीं जो सबके लिये बड़ी ही मधुर हैं—यहाँतक कि श्रुतियोंके मनको भी चुरानेवाली हैं॥ १५—२०॥

वे आपसमें कह रही थीं—'सखियो! ये वे ही सनातन परम पुरुष हैं, जो प्रलयके समय भी अपने अद्वितीय निर्विशेष स्वरूपमें स्थित रहते हैं। उस समय सृष्टिके मूल ये तीनों गुण भी नहीं थे। जगदात्मा ईश्वरमें जीव भी लीन हो गये थे अर्थात् महत्तत्त्वादिमूलक उनकी समस्त शक्तियाँ अपने कारणमें सो गयी थीं। उन्होंने ही फिर अपने नाम-रूप-रहित स्वरूपमें नाम-रूपके निर्माणकी इच्छा की, तब अपनी काल-शक्तिसे प्रेरित प्रकृतिका, जो कि उनके अंशभूत जीवोंको मोहित कर लेती है और सृष्टिकी रचनामें प्रवृत्त रहती है, अनुसरण किया और व्यवहारके लिये वेदादि शास्त्रोंकी रचना की। इस जगत्‌में जिनके चरणोंका दर्शन जितेन्द्रिय योगी अपने प्राणोंको वशमें करके भक्तिसे प्रफुल्लित एवं निर्मल हृदयमें किया करते हैं, ये श्रीकृष्ण वही साक्षात् परब्रह्म हैं। वास्तवमें इन्हींकी भक्तिसे अन्तःकरणकी पूर्ण शुद्धि हो सकती है, योगादिके द्वारा नहीं। सखी! वास्तवमें ये वही हैं, जिनकी सुन्दर लीलाओंका गायन वेदोंमें और दूसरे गोपनीय शास्त्रोंमें व्यासादि रहस्यवादी ऋषियोंने किया है—जो एक अद्वितीय ईश्वर हैं और अपनी लीलासे जगत्‌की सृष्टि, स्थिति तथा संहार करते हैं परन्तु उसमें आसक्त नहीं होते। जब तामसी बुद्धिवाले राजा अधर्मसे अपना पेट पालने लगते हैं तब यही सत्त्वगुणको स्वीकार कर ऐश्वर्य, सत्य, ऋत, दया और यश धारण करते और संसारके कल्याणके लिये युग-युगमें अनेकों अवतार ग्रहण करते हैं। अहो! यह यदुवंश परम प्रशंसनीय है, क्योंकि लक्ष्मीपति पुरुषोत्तम श्रीकृष्णने जन्म ग्रहण करके इस वंशको सम्मानित किया है। वह पवित्र मधुपुरी भी अत्यन्त धन्य है, जिसे इन्होंने अपनी लीलासे सुशोभित किया है। बड़े हर्षकी बात है कि द्वारकाने स्वर्गके यशका तिरस्कार करके पृथ्वीके पवित्र यशको बढ़ाया है। क्यों न हो, वहाँकी प्रजा अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको, जो बड़े प्रेमसे मन्द-मन्द मुसकराते हुए उन्हें कृपादृष्टिसे देखते हैं, निरन्तर निहारती रहती हैं। सखी! जिनका इन्होंने पाणिग्रहण किया है, उन स्त्रियोंने अवश्य ही व्रत, स्नान, हवन आदिके द्वारा इन परमात्माकी आराधना की होगी। क्योंकि वे बार-बार इनकी उस अधर-सुधाका पान करती हैं, जिसके स्मरणमात्रसे ही व्रजबालाएँ आनन्दसे मूर्छित हो जाया करती थीं। ये स्वयंवरमें शिशुपाल आदि मतवाले राजाओंका मान मर्दन करके जिन पत्नियोंको अपने बाहुबलसे हर लाये थे तथा जिनके पुत्र प्रद्युम्न, साम्ब, आम्ब आदि हैं, वे रुक्मिणी आदि आठों पटरानियाँ और भौमासुरको मारकर लायी हुई जो अनेकों स्त्रियाँ हैं, वे वास्तवमें धन्य हैं। क्योंकि इन सभीने स्वतन्त्रता और पवित्रतासे रहित स्त्रीजीवनको पवित्र और उज्ज्वल बना दिया है। इनकी महिमाका वर्णन कोई क्या करे? इनके स्वामी साक्षात् कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण हैं जो नाना प्रकारकी प्रिय चेष्टाओं तथा पारिजातादि प्रिय वस्तुओंकी भेंटसे इनके हृदयमें प्रेमकी अभिवृद्धि करते हुए कभी एक क्षणके लिये भी इन्हें छोड़कर दूसरी जगह नहीं जाते'॥ २१—३०॥

हस्तिनापुरकी स्त्रियाँ इस प्रकार बातचीत कर रही थीं कि भगवान् श्रीकृष्ण मन्द मुसकान और प्रेमपूर्ण चितवनसे उनका अभिनन्दन करते हुए वहाँसे विदा हो गये। अजातशत्रु युधिष्ठिरने भगवान् श्रीकृष्णकी रक्षाके लिये हाथी, घोड़े, रथ और पैदलोंकी सेना उनके साथ कर दी; उन्हें स्नेहवश यह शङ्का हो आयी थी कि कहीं रास्तेमें हमारे शत्रु इनपर आक्रमण न कर दें। सुदृढ़ प्रेमके कारण कुरुवंशी पाण्डव भगवान्‌के साथ बहुत दूरतक चले गये। वे लोग उस समय भावी विरहसे व्याकुल हो रहे थे; भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें बहुत आग्रह करके विदा किया और सात्यकि, उद्धव आदि प्रेमी मित्रोंके साथ द्वारकाकी यात्रा की। शौनकजी! वे कुरुजाङ्गल, पाञ्चाल, शूरसेन, यमुनाके तटवर्ती प्रदेश, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, सारस्वत और

रो रही हैं। बैल भी उदास हो रहे हैं। देवताओंकी मूर्तियाँ रो-सी रही हैं, उनमेंसे पसीना चूने लगता है और वे हिलती-डोलती भी हैं। भाई! ये देश, गाँव, शहर, बगीचे, खानें और आश्रम श्रीहीन और आनन्दरहित हो गये हैं। पता नहीं ये हमारे किस दुःखकी सूचना दे रहे हैं। इन बड़े-बड़े उत्पातोंको देखकर मैं तो ऐसा समझता हूँ कि यह भाग्यहीना भूमि भगवान्‌के उन चरणकमलोंसे, जिनका सौन्दर्य तथा जिनके ध्वजा, वज्र, अंकुशादि विलक्षण चिह्न और किसीमें भी कहीं भी नहीं हैं, रहित हो गयी है। जिस समय महाराज युधिष्ठिर इन भयङ्कर उत्पातोंको देखकर इस प्रकार मन ही मन चिन्तित हो रहे थे, उसी समय द्वारकासे लौटकर अर्जुन आये। युधिष्ठिरने देखा कि अर्जुन इतने आतुर हो रहे हैं कि जितनी आतुरता उनमें कभी नहीं देखी गयी थी। मुँह नीचे झुका हुआ है, आँखोंसे



आँसू बह रहे हैं और शरीरमें बिल्कुल कान्ति नहीं है। उनको अपने चरणोंमें पड़ा देखकर युधिष्ठिर घबड़ा गये। देवर्षि नारदकी बातें याद करके उन्होंने सुहृदोंके सामने ही अर्जुनसे पूछा ॥ ६—२४ ॥

युधिष्ठिरने कहा—'भाई! द्वारकापुरीमें हमारे स्वजन सम्बन्धी मधु, भोज, दशार्ह, आर्ह, सात्वत, अन्धक और वृष्णिवंशी यादव कुशलसे तो हैं? हमारे माननीय नाना शूरसेनजी प्रसन्न हैं? अपने छोटे भाईसहित मामा वसुदेवजी तो कुशलपूर्वक हैं? उनकी पत्नियाँ हमारी मामी देवकी आदि सातों बहिनें अपने पुत्रों और बहुओंके साथ आनन्दसे तो हैं? जिनका पुत्र कंस बड़ा ही दुष्ट था, वे राजा उग्रसेन अपने छोटे भाई देवकके साथ जीवित तो हैं न? हृदीक, उनके पुत्र कृतवर्मा, अक्रूर, जयन्त, गद, सारण तथा शत्रुजित् आदि यादव वीर सकुशल हैं न? यादवोंके प्रभु बलरामजी तो आनन्दसे हैं? वृष्णिवंशके सर्वश्रेष्ठ महारथी प्रद्युम्न सुखसे तो हैं? युद्धमें बड़ी फुर्ती दिखलानेवाले भगवान् अनिरुद्ध वृद्धिको प्राप्त हो रहे हैं न? इनके सिवा सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवन्तीनन्दन साम्ब और अपने पुत्रोंके सहित ऋषभ आदि भगवान् श्रीकृष्णके अन्य सब पुत्र भी प्रसन्न हैं न? भगवान् श्रीकृष्णके सेवक श्रुतदेव, उद्धव आदि और दूसरे सुनन्द नन्द आदि प्रधान यदुवंशी, जो भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामके बाहुबलसे सुरक्षित हैं, सब-के-सब सकुशल हैं न? हमसे अत्यन्त प्रेम करनेवाले वे लोग कभी हमारा कुशल मङ्गल भी पूछते हैं? ॥ २५—३३ ॥

भक्तवत्सल ब्राह्मणभक्त भगवान् श्रीकृष्ण अपने सुहृदोंके साथ द्वारकाकी सुधर्मा-सभामें सुखपूर्वक विराजमान हैं न? वे आदिपुरुष, बलरामजीके साथ संसारके परम मङ्गल, परम कल्याण और उन्नतिके लिये यदुवंशरूप क्षीरसागरमें विराजमान हैं। उन्हींके बाहुबलसे सुरक्षित द्वारकापुरीमें यदुवंशीलोग सारे संसारके द्वारा सम्मानित होकर बड़े आनन्दसे विष्णु भगवान्‌के पार्षदोंके समान विहार कर रहे हैं। सत्यभामा आदि सोलह हजार रानियाँ प्रधानरूपसे उनके चरणकमलोंकी सेवामें ही रत रहकर उनके द्वारा युद्धमें इन्द्रादि देवताओंको भी पराजित करवाकर इन्द्राणीके भोग-योग्य पारिजातादि वस्तुओंका उपभोग करती हैं। जिनके बाहुबलसे सुरक्षित होकर यदुवंशी वीर देवताओंके बैठने योग्य सुधर्मा सभामें, जिसे वे बलपूर्वक ले आये हैं, सदा ही निर्भय होकर अपने पैर रखते हैं ॥ ३४—३८ ॥

भाई अर्जुन! यह भी बताओ कि तुम तो कुशलसे हो न? मुझे तुम श्रीहीन-से कैसे दीख रहे हो? वहाँ बहुत दिनोंतक रहे, कहीं तुम्हारे सम्मानमें तो किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई? किसीने तुम्हारा अपमान तो नहीं कर दिया? कहीं किसीने दुर्भावपूर्ण अनुचित शब्द कहकर तुम्हारा चित्त तो नहीं दुखाया? अथवा किसीको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके भी, जब वह आशासे तुम्हारे पास आया तब उसे वह वस्तु तुम नहीं दे सके हो? तुम सदा शरणमें आये हुएकी रक्षा करते आये हो; कहीं किसी भी ब्राह्मण, बालक, गौ, बूढ़े,

और भोजनादि छोड़ दिये। प्रेमके आवेगसे उनका हृदय उछलने लगा, वे मङ्गल शकुनके लिये एक श्रेष्ठ गंजराजको आगे करके स्वस्त्ययन पाठ करते हुए और माङ्गलिक सामग्रियोंसे सुसज्जित ब्राह्मणोंको साथ लेकर चले। शङ्ख और तुरही आदि बाजे बजने लगे और वेदध्वनि होने लगी। वे सब अत्यन्त हर्षित होकर बड़े-बड़े रथोंपर सवार हुए और बड़ी आदरबुद्धिसे भगवान्‌की अगवानी करने चले। साथ ही भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये उत्सुक सैकड़ों श्रेष्ठ वाराङ्गनाएँ, जिनके मुख कपोलोंपर कुण्डलोंकी कान्ति पड़नेसे बड़े सुन्दर दीखते थे, पालकियोंपर चढ़कर भगवान्‌की अगवानीके लिये चलीं। बहुत-से नट, नाचनेवाले, गानेवाले, विरद बखाननेवाले सूत, मागध और बन्दीजन भगवान् श्रीकृष्णके अद्भुत चरित्रोंका गायन करते हुए चले ॥ १६–२० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने बन्धु-बान्धवों, नागरिकों और सेवकोंसे उनकी योग्यताके अनुसार अलग-अलग मिलकर सबका सम्मान किया। किसीको सिर झुकाकर प्रणाम किया, किसीको वाणीसे अभिवादन किया, किसीको हृदयसे लगाया, किसीसे हाथ मिलाया, किसीकी ओर देखकर मुसकरा भर दिया और किसीको केवल प्रेमभरी दृष्टिसे देख लिया। जिसकी जो इच्छा थी, उसे वही वरदान दिया। इस प्रकार चाण्डालपर्यन्त सबका सत्कार करके गुरुजन, सपत्नीक ब्राह्मण और वृद्धोंका आशीर्वाद ग्रहण करते एवं बन्दीजनोंसे विरुदावली सुनते सबके साथ भगवान् श्रीकृष्णने नगरमें प्रवेश किया ॥ २१–२३ ॥

शौनकजी! जिस समय भगवान् राजमार्गसे जा रहे थे, उस समय द्वारकाकी कुलकामिनियाँ भगवान्‌के दर्शनका परमानन्द लूटनेके लिये अपनी-अपनी अटारियोंपर चढ़ गयीं। भगवान्‌का वक्षःस्थल मूर्त्तिमान् सौन्दर्यलक्ष्मीका निवासस्थान है। उनका मुखारविन्द नेत्रोंके द्वारा पान करनेके लिये सौन्दर्य-सुधासे भरा हुआ पात्र है। उनकी भुजाएँ लोक-पालोंको भी शक्ति देनेवाली हैं। उनके चरणकमल भक्त परमहंसोंके आश्रय हैं। भगवान्‌की इस छबिको द्वारकावासी नित्य-निरन्तर ही निहारते रहते हैं, फिर भी शोभाधाम भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे उनकी आँखें एक क्षणके लिये भी तृप्त नहीं होतीं। उनकी दर्शन-लालसा पल-पलपर बढ़ती ही जाती है। द्वारकाके राजपथपर भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी अद्भुत झाँकी थी। ऊपर श्वेतवर्णका छत्र तना हुआ था, श्वेतवर्णके चँवर डुलाये जा रहे थे, चारों ओरसे पुष्पोंकी वर्षा हो रही थी, वे शरीरपर पीताम्बर और गलेमें वनमाला धारण किये हुए थे। इन सब वस्तुओंसे घनश्याम श्रीकृष्ण ऐसे शोभायमान हुए मानो श्याम मेघ एक ही साथ सूर्य, चन्द्रमा, इन्द्रधनुष और बिजलीसे शोभायमान हो रहा हो ॥ २४–२७ ॥

भगवान् सबसे पहले अपने माता-पिताके महलमें गये। वहाँ उन्होंने बड़े आनन्दसे देवकी आदि सातों माताओंको चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया। माताओंने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर गोदमें बैठा लिया, उस समय स्नेहके कारण उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगी, उनका हृदय हर्षसे विह्वल हो उठा और वे आनन्दके आँसुओंसे उनका अभिषेक करने लगीं। माताओंसे आज्ञा लेकर वे अपने भवनमें गये, जो भोगकी समस्त सामग्रियोंसे युक्त और अतुलनीय था। उसमें सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियोंके अलग-अलग महल थे। अपने प्राणनाथ भगवान् श्रीकृष्णको बहुत दिनोंके बाद घर आया देखकर रानियोंके हृदयमें बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें अपने निकट देखकर वे एकाएक ध्यान छोड़कर उठ खड़ी हुईं; केवल आसनको ही नहीं, बल्कि उस व्रतको भी उन्होंने त्याग दिया, जिसे उन्होंने भगवान्‌के प्रवासी होनेपर ग्रहण किया था। उस समय उनके मुख और नेत्रोंमें लज्जा छा गयी। भगवान्‌के प्रति उनका भाव बड़ा ही गम्भीर था। उन्होंने पहले मन-ही-मन, फिर नेत्रोंके द्वारा और तत्पश्चात् पुत्रोंके बहाने शरीरसे उनका आलिङ्गन किया। शौनकजी! उस समय उनके नेत्रोंमें जो प्रेमके आँसू छलक आये थे, उन्हें सङ्कोचके कारण उन्होंने बहुत रोका। फिर भी विवशताके कारण ढलक ही गये। यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण एकान्तमें सर्वदा ही उनके पास रहते हैं, तथापि उनके चरण-कमल पद-पदपर नये-नये जान पड़ते हैं। भला, स्वभावसे ही चञ्चल लक्ष्मी जिन्हें एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़तीं, उनसे किस स्त्रीको तृप्ति हो सकती है? ॥ २८–३२ ॥

जैसे वायु बाँसोंके सङ्घर्षसे दावानल पैदा करके उन्हें जला देता है, वैसे ही पृथ्वीके भारभूत और शक्तिशाली राजाओंमें परस्पर फूट डालकर बिना शस्त्र ग्रहण किये ही भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें कई अक्षौहिणी सेनासहित एक दूसरेसे मरवा डाला। और उसके बाद आप उपराम हो गये। साक्षात् परमेश्वर ही अपनी लीलासे इस मनुष्य-लोकमें अवतीर्ण

उनकी कृपासे मैं इसी शरीरसे स्वर्गमे गया और देवराज इन्द्रकी सभामे उनके बराबर आधे आसनपर बैठनेका सम्मान मैंने प्राप्त किया। उनके आग्रहसे जब मैं स्वर्गमें ही कुछ दिनों तक रह गया, तब इन्द्रके साथ समस्त देवताओंने मेरी इन्हीं गाण्डीव धारण करनेवाली भुजाओंका निवातकवच आदि दैत्योंको मारनेके लिये आश्रय लिया। महाराज! यह सब जिनकी महती कृपाका फल था, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णने मुझे आज ठग लिया। वे मुझे असहाय छोड़कर चले गये ॥ ५–१३ ॥

महाराज! कौरवोंकी सेना भीष्म द्रोणादि अजेय महामत्स्योंसे पूर्ण अपार समुद्रके समान दुस्तर थी, परन्तु उनका आश्रय ग्रहण कर अकेले ही रथपर सवार होकर मैं उसे पार कर गया। उन्हींकी सहायतासे, आपको याद होगा, मैंने शत्रुओंसे राजा विराटका सारा गोधन तो वापिस ले ही लिया, साथ ही उनके सिरोंपरसे चमकते हुए मणिमय मुकुट तथा अङ्गोंके अलङ्कारतक छीन लिये थे। भाईजी! कौरवोंकी सेना भीष्म, कर्ण, द्रोण, शल्य, बड़े बड़े राजाओं और क्षत्रिय वीरोंके रथोंसे शोभायमान थी। उसके सामने मेरे आगे-आगे चलकर वे अपनी दृष्टिसे ही उन महारथी यूथपतियोंकी आयु, मन, उत्साह और बलको छीन लिया करते थे। द्रोणाचार्य, भीष्म, कर्ण, अश्वत्थामा, सुशर्मा, शल्य, जयद्रथ और बाह्लीक आदि वीरोंने मुझपर अपने कभी न चूकनेवाले अस्त्र चलाये थे, परन्तु जैसे हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंके अस्त्र शस्त्र भगवद्भक्त प्रह्लादका स्पर्श नहीं करते थे, वैसे ही उनके शस्त्रास्त्र मुझे छूतक नहीं सके। यह श्रीकृष्णके भुजदण्डोंकी छत्रछायामें रहनेका ही प्रभाव था। महात्माजन संसारसे मुक्त होनेके लिये जिनके चरणकमलोंका सेवन करते है, अपने आपतकको दे डालनेवाले उन भगवान्‌को मुझ दुर्बुद्धिने सारथि बनाया। जिस समय मेरे घोड़े थक गये थे और मैं रथसे उतरकर जमीनपर खड़ा था, उस समय बड़े बड़े महारथी शत्रु भी मुझपर प्रहार न कर सके, क्योंकि श्रीकृष्णके प्रभावसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी। महाराज! उनकी उन्मुक्त और मधुर मुसकानसे युक्त विनोदभरे वचन तथा वे हृदयस्पर्शी बातें जब वे मुझे 'पार्थ, अर्जुन, सखा, कुरुनन्दन' आदि कहकर पुकारते थे, याद आती हैं तो मेरा हृदय बेकाबू हो जाता है। आप जानते हैं सोने, बैठने, टहलने और अपने सम्बन्धमें बड़ी-बड़ी बातें करने तथा भोजन आ[illegible] प्राय एक साथ ही रहा करते थे। किसी किसी दिन मैं व्यंग्यसे उन्हें कह बैठता 'मित्र! तुम तो बड़े सत्यवादी हो' उस समय भी वे महापुरुष अपनी महानुभावताके कारण, जैसे मित्र अपने मित्रका और पिता अपने पुत्रका अपराध सह लेता है उसी प्रकार, मुझ दुर्बुद्धिके अपराधोंको सह लिया करते थे। महाराज! जो मेरे सखा थे, प्रिय मित्र थे और परम सुहृद् थे, उन्हीं पुरुषोत्तम भगवान्‌से मैं रहित हो गया हूँ। मेरा हृदय उनके बिना सूना हो गया है। और तो क्या कहूँ, कहते लज्जा आती है, मैं भगवान्‌की पत्नियोंको द्वारकासे अपने साथ ला रहा था, परन्तु मार्गमें दुष्ट गोपोंने मुझे एक अबलाकी भाँति हरा दिया और मैं उनकी रक्षा नहीं कर सका। वही मेरा गाण्डीव धनुष है, वे ही बाण हैं, वही रथ है, वही घोड़े हैं और वही मैं अर्जुन हूँ, जिसे बड़े-बड़े राजा लोग सिर झुकाया करते थे। परन्तु इन सबके रहनेसे क्या हुआ? श्रीकृष्णके बिना ये सब एक ही क्षणमें नहींके समान सारशून्य हो गये—ठीक उसी तरह जैसे भस्ममे डाली हुई आहुति, कपटभरी सेवा और ऊसरमें बोया हुआ बीज व्यर्थ जाता है ॥ १४–२१ ॥

राजन्! आपने द्वारकाके जिन सुहृद् सम्बन्धियोंके विषयमें पूछा है, उनकी बुद्धि तो ब्राह्मणोंके शापके कारण पहले ही बिगड़ गयी थी। वे वारुणी मदिराके पानसे मदोन्मत्त हो गये, फिर अपरिचितोंकी भाँति वे आपसमे ही एक-दूसरेसे भिड़ गये और घूँसोंसे मार-पीट करके सब के-सब नष्ट हो गये। उनमेंसे केवल चार-पाँच ही बचे हैं। वास्तवमें यह भगवान्‌की ही लीला है कि संसारके प्राणी परस्पर एक दूसरेका पालन-पोषण भी करते हैं और एक-दूसरेको मार भी डालते हैं। राजन्! जिस प्रकार जलचरोंमें बड़े छोटोंको, बलवान् दुर्बलोंको एव बड़े और बलवान् भी परस्पर एक-दूसरेको खा जाते हैं, उसी प्रकार बलवान् और बड़े यदुवंशियोंके द्वारा भगवान्‌ने दूसरे राजाओंका संहार कराया। तत्पश्चात् यदुवंशियोंके द्वारा ही एकसे दूसरे यदुवंशीका नाश कराके पूर्णरूपसे पृथ्वीका भार उतार दिया। भगवान् श्रीकृष्णने मुझे जो शिक्षा दी थी, वह देश, काल और प्रयोजनके अनुरूप तथा हृदयके तापको शान्त करनेवाली थी, उसकी याद आते ही मेरा चित्त उनके प्रेममें मुग्ध हो जाता है ॥ २२–२७ ॥

सूतजीने कहा—इस प्रकार अत्यन्त गाढ प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका चिन्तन करते-करते अर्जुनकी चित्तवृत्ति अत्यन्त उज्ज्वल और प्रशान्त हो गयी।

भगवान् विष्णुने यह बालक देकर इसकी रक्षा कर दी है, इसलिये इसका नाम 'विष्णुरात' होगा। यह बालक संसारमें बड़ा यशस्वी, भगवान्का परम भक्त और महापुरुष होगा—इसमें सन्देह नहीं'॥ १२–१७॥

युधिष्ठिरने पूछा—महात्माओ! यह बालक क्या अपने उज्ज्वल यशसे हमारे वंशके पवित्र कीर्त्तिवाले महात्मा राजर्षियोंका अनुसरण करेगा?॥ १८॥

ब्राह्मणोंने कहा—धर्मराज! यह मनुपुत्र इक्ष्वाकुके समान अपनी प्रजाका पालन करेगा, दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामके समान ब्राह्मणभक्त और सत्यप्रतिज्ञ होगा। यह उशीनर-नरेश शिबिके समान दाता और शरणागतवत्सल होगा, याज्ञिकोंमें दुष्यन्तके पुत्र भरतके समान अपने वंशका यश फैलावेगा। धनुर्धरोंमें यह कार्त्तवीर्य सहस्रबाहु अर्जुन और अपने दादा पार्थके समान अग्रगण्य होगा। यह अग्निके समान दुर्धर्ष होगा और समुद्रके समान दुस्तर। यह बालक सिंहके समान पराक्रमी, हिमाचलकी तरह सेवन करनेयोग्य, पृथ्वीके सदृश तितिक्षु और माता-पिताके समान सहनशील होगा। इसमें पितामह ब्रह्माके समान समता रहेगी, भगवान् शङ्करकी तरह यह कृपालु होगा और सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेमें यह लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके समान होगा। यह समस्त सद्गुणोंकी महिमा धारण करनेमें श्रीकृष्णका अनुयायी होगा, रन्तिदेवके समान उदार होगा और ययातिके समान धार्मिक होगा। धैर्यमें बलिके समान और भगवान् श्रीकृष्णके प्रति दृढ़ निष्ठामें यह प्रह्लादके समान होगा। यह बहुत-से अश्वमेध-यज्ञोंका कर्त्ता होगा और वृद्धोंका सेवक भी होगा। इसके पुत्र राजर्षि होंगे। मर्यादाका उल्लंघन करनेवालोंको यह दण्ड देगा। यह पृथ्वीमाता और धर्मकी रक्षाके लिये कलियुगका भी दमन करनेवाला होगा। ब्राह्मणकुमारके शापसे तक्षकके द्वारा अपनी मृत्यु सुनकर यह सबकी आसक्ति छोड़ देगा और भगवान्के चरणोंकी शरण लेगा। व्यासनन्दन शुकदेवजीसे यह आत्माके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करेगा और अन्तमें गङ्गातटपर अपने शरीरको त्याग कर निश्चय ही अभयपद (भगवान्के परमधाम) को प्राप्त करेगा॥ १९–२८॥

ज्योतिषके जाननेवाले विद्वान् ब्राह्मण राजा युधिष्ठिरको इस प्रकार बालकके जन्मलग्नका फल बतला कर और अपनी-अपनी दक्षिणा लेकर अपने-अपने घर चले गये। वह बालक संसारमें परीक्षित्के नामसे प्रसिद्ध हुआ; क्योंकि वह समर्थ बालक गर्भमें जिस पुरुषका दर्शन प्राप्त कर चुका था, लोगोंमें उसीकी परीक्षा करता रहता था कि देखें इनमेंसे वह कौन-सा है। जैसे शुक्लपक्षमें दिन-प्रतिदिन चन्द्रमा अपनी कलाओंसे पूर्ण होता जाता है, वैसे ही वह राजकुमार भी अपने गुरुजनोंके लालन-पालनसे दिन-दूना, रात-चौगुना बढ़ने लगा॥ २९–३१॥

इसी समय स्वजनोंके वधका प्रायश्चित्त करनेके लिये राजा युधिष्ठिरने अश्वमेध-यज्ञके द्वारा भगवान्की आराधना करनेका विचार किया, परन्तु प्रजासे वसूल किये हुए कर और जुर्मानेकी रकमके अतिरिक्त और धन न होनेके कारण वे बड़ी चिन्तामें पड़ गये। क्योंकि यह सम्पत्ति तो प्रजाके काममें लगनी चाहिये, व्यक्तिगत कार्यमें नहीं। उनका भाव समझकर भगवान् श्रीकृष्णने उनके भाइयोंको बतलाया कि उत्तर दिशामें राजा मरुत्त और ब्राह्मणोंने पृथ्वीमें धन गाड़ रक्खा है, उसे ले आओ। उनकी प्रेरणासे जाकर वे लोग बहुत-सा धन ले आये। उससे यज्ञकी सामग्री एकत्रित करके धर्मभीरु महाराज युधिष्ठिरने तीन अश्वमेध-यज्ञोंके द्वारा भगवान्की पूजा की। युधिष्ठिरके निमन्त्रणसे भगवान् भी वहाँ पधारे और ब्राह्मणोंद्वारा उनका यज्ञ सम्पन्न कराकर अपने सुहृद् पाण्डवोंकी प्रसन्नताके लिये कई महीनोंतक वहीं रहे। शौनकजी! इसके बाद भाइयों सहित राजा युधिष्ठिर और द्रौपदीसे अनुमति लेकर अर्जुनके साथ यदुवंशियोंसे घिरे हुए भगवान् श्रीकृष्णने द्वारकाके लिये प्रस्थान किया॥ ३२–३६॥

तेरहवाँ अध्याय

विदुरजीके उपदेशसे धृतराष्ट्र और गान्धारीका वनमें जाना

सूतजीने कहा—विदुरजी तीर्थयात्रामें महर्षि मैत्रेयसे आत्माका ज्ञान प्राप्त करके हस्तिनापुर लौट आये। उन्हें जो कुछ जाननेकी इच्छा थी, वह पूर्ण हो गयी थी। विदुरजीने मैत्रेय ऋषिसे प्रश्न तो बहुत-से किये थे, परन्तु उनका पूरा उत्तर सुननेके पहले ही भगवान् श्रीकृष्णमें उनकी अनन्य भक्ति हो गयी, इसलिये उन प्रश्नोंके उत्तर सुननेका उन्हें अब आग्रह न रहा। शौनकजी! हस्तिनापुरमें लोगोंको जब यह पता लगा कि सबके सुहृद् श्रीविदुरजी पधारे हैं, तब धर्मराज युधिष्ठिर, उनके चारों भाई, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, सञ्जय, कृपाचार्य, कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा,

सोलहवाँ अध्याय

परीक्षित्‌का दिग्विजय करते समय पृथ्वी और धर्मका संवाद सुनना

सूतजीने कहा—शौनकजी ! पाण्डवोंके महाप्रयाणके पश्चात् भगवान्‌के परम भक्त राजा परीक्षित् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी शिक्षाके अनुसार पृथ्वीका शासन करने लगे । उनके जन्मके समय ज्योतिषियोंने उनके सम्बन्धमें जो कुछ कहा था, वास्तवमें वे सभी महान् गुण उनमें विद्यमान थे । उन्होंने उत्तरकी पुत्री इरावतीसे विवाह किया । उससे उन्होंने जनमेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न किये, तथा कृपाचार्यको आचार्य बनाकर गङ्गाके तटपर तीन अश्वमेध यज्ञ किये, जिनमें उन्होंने ब्राह्मणोंको पुष्कल दक्षिणा दी । उन यज्ञोंमें देवताओंने प्रत्यक्षरूपमें प्रकट होकर अपना भाग ग्रहण किया था । एक बार दिग्विजय करते समय उन्होंने देखा कि शूद्रके रूपमें कलियुग राजाका वेष धारण करके एक गाय और बैलके जोड़ेको ठोकरोंसे मार रहा है । उन्होंने उसे बलपूर्वक पकड़कर दण्ड दिया ॥ १—४ ॥

शौनकजीने पूछा—महाभाग्यवान् सूतजी ! दिग्विजयके समय महाराज परीक्षित्‌ने कलियुगको दण्ड ही देकर क्यों छोड़ दिया, मार क्यों नहीं डाला ? तथा राजाका वेष धारण किये हुए वह शूद्र कौन था, जिसने गायको लातसे मारा था ? यदि यह प्रसङ्ग भगवान् श्रीकृष्णकी लीलासे अथवा उनके चरणकमलोंके मकरन्द रसका पान करनेवाले रसिक सत् पुरुषोंसे सम्बन्ध रखता हो, तो अवश्य कहिये । दूसरी व्यर्थकी बातोंसे क्या लाभ ? उनमें तो आयुको व्यर्थ खोना है । सूतजी ! जो लोग मोक्ष तो चाहते हैं परन्तु अल्पायु होनेके कारण मृत्युसे ग्रस्त हो रहे हैं, उनके कल्याणके लिये भगवान् यमका आवाहन करके उन्हें यहाँ शान्तिकर्ममें नियुक्त कर दिया गया है । जबतक यमराज यहाँ इस कर्ममें नियुक्त हैं, तबतक किसीकी मृत्यु नहीं होगी । मृत्युसे ग्रस्त मनुष्यलोकके जीव भी भगवान्‌की लीला सुधाका पान कर सकें, इसलिये महर्षियोंने भगवान् यमको यहाँ बुलाया है । इसलिये यह समय तो उत्तम-से उत्तम काममें ही बिताया जाना चाहिये । एक तो थोड़ी आयु और दूसरे कम समझ । ऐसी अवस्थामें संसारके मन्दभाग्य विषयी पुरुषोंकी आयु व्यर्थ बीती जा रही है । नींदमें रात और व्यर्थके कामोंमें दिन खोये जा रहे हैं । सूतजी ! आप कृपा करके ऐसा कीजिये, जिससे हमारे समयका सदुपयोग केवल भगवान्‌की लीला कथामें ही हो ॥ ५—९ ॥

सूतजीने कहा—जिस समय राजा परीक्षित् कुरुजाङ्गल देशमें सम्राट्‌के रूपमें निवास कर रहे थे, उस समय उन्होंने सुना कि मेरी सेनाद्वारा सुरक्षित साम्राज्यमें कलियुगका प्रवेश हो गया है । इस समाचारसे उन्हें दुःख तो अवश्य हुआ, परन्तु यह सोचकर कि युद्ध करनेका अवसर हाथ लगा, वे उतने दुखी नहीं हुए । इसके बाद युद्धवीर परीक्षित्‌ने धनुष धारण कर लिया और श्यामवर्णके घोड़ोंसे जुते हुए, सिंहकी ध्वजावाले, अस्त्र शस्त्रादिसे सुसज्जित, सुवर्णमण्डित रथपर सवार होकर दिग्विजय करनेके लिये वे नगरसे बाहर निकल पड़े । उस समय रथ, हाथी, घोड़े और पैदलोंकी चतुरंगिणी सेना उनके साथ साथ चल रही थी । उन्होंने भद्राश्व, केतुमाल, भारत, उत्तरकुरु और किम्पुरुष आदि वर्षोंको जीतकर वहाँके राजाओंसे भेंट ली । उन्हें उन देशोंमें सर्वत्र अपने पूर्वज महात्माओंका सुयश सुननेको मिला । उस यशोगायनसे पद-पदपर भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा प्रकट होती थी । इसके साथ ही यह भी सुननेको मिलता था कि भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे किस प्रकार उनकी रक्षा की थी, यदुवंशी और पाण्डवोंमें परस्पर कितना प्रेम था और उनकी भगवान् श्रीकृष्णमें कितनी भक्ति थी । जो लोग ये चरित्र सुनाते, उनपर महामना राजा परीक्षित् बहुत प्रसन्न होते, उनके नेत्र प्रेमसे खिल उठते । वे बड़ी उदारतासे उन्हें बहुमूल्य वस्त्र और मणियोंके हार दान करते । जब वे सुनते कि भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमपरवश होकर पाण्डवोंके सारथिका काम किया, उनके सभासद् बने—यहाँतक कि उनके मनके अनुसार काम करके उनकी सेवा भी की । उनके सखा तो थे ही, दूत भी बने । वे रातको शस्त्र ग्रहण करके वीरासनसे बैठ जाते और शिविरका पहरा देते, उनके पीछे पीछे चलते, स्तुति करते तथा प्रणाम करते, इतना ही नहीं, अपने प्रेमी पाण्डवोंके चरणोंमें उन्होंने सारे जगत्‌को झुका दिया । तब परीक्षित्‌की भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरण कमलोंमें और भी बढ़ जाती थी । इस प्रकार वे दिन दिन पाण्डवोंका-सा भगवत्प्रेम प्राप्त करते हुए दिग्विजय कर रहे थे । उन्हीं दिनों उनके शिविरसे थोड़ी ही दूरपर एक आश्चर्यजनक घटना घट गयी । वह मैं आपको सुनाता हूँ । धर्म बैलका रूप धारण करके एक पैरसे घूम रहा था । एक स्थानपर उसे गायके रूपमें पृथ्वी मिली । पुत्रकी मृत्युसे दुःखिनी माताके समान उसके नेत्रोंसे आँसुओंके झरने

दिया हुआ टुकड़ा खाकर कुत्तेका-सा जीवन बिता रहे हैं। जिनको आपने आगमें जलानेकी चेष्टा की, विष देकर मार डालना चाहा; भरी सभामें जिनकी विवाहिता पत्नीको अपमानित किया, जिनकी भूमि और धन छीन लिये, उन्हींके अन्नसे पले हुए प्राणोंको रखनेमें क्या गौरव है? आपके अज्ञानकी सीमा नहीं है, अब भी आप जीना चाहते हैं! परन्तु आपके चाहनेसे क्या होगा, पुराने वस्त्रकी तरह बुढ़ापेसे गला हुआ आपका शरीर आपके न चाहनेपर भी क्षीण हुआ जा रहा है। अब इस शरीरसे आपका कोई स्वार्थ सधनेवाला नहीं है। इसमें फँसिये मत, इसकी ममताका बन्धन काट डालिये। जो संसारके सम्बन्धियोंसे अलग रहकर उनके अनजानमें अपने शरीरका त्याग करता है, वही धीर है। चाहे अपनी समझसे हो या दूसरेके समझानेसे, जो इस संसारको दुःखरूप समझकर इससे विरक्त हो जाता है और अपने अन्तःकरणको वशमें करके हृदयमें भगवान्‌को धारण कर संन्यासके लिये घरसे निकल पड़ता है, वही उत्तम मनुष्य है। अब जो समय आनेवाला है, वह प्रायः मनुष्योंके गुणोंको घटानेवाला होगा; इसलिये आप अपने कुटुम्बियोंसे छिपकर उत्तराखण्डमें चले जाइये' ॥१८—२७॥

जब महात्मा विदुरने अपने बड़े भाई राजा धृतराष्ट्रको इस प्रकार समझाया, तब उनकी प्रज्ञाके नेत्र खुल गये; वे



भाई-बन्धुओंके सुदृढ़ स्नेह-पाशको काटकर अपने छोटे भाई विदुरके दिखलाये हुए मार्गसे निकल पड़े। जब परम पतिव्रता गान्धारीने देखा कि मेरे पतिदेव तो उस हिमालयकी यात्रा कर रहे हैं, जो संन्यासियोंको वैसा ही सुख देता है, जैसा कि वीर पुरुषोंको लड़ाईके मैदानमें अपने शत्रुके द्वारा किये हुए न्यायोचित प्रहारसे होता है, तब वे भी उनके पीछे-पीछे चल पड़ीं ॥ २८—३१ ॥

अजातशत्रु युधिष्ठिरने प्रातःकाल सन्ध्यावन्दन तथा अग्निहोत्र करके ब्राह्मणोंको नमस्कार किया और उन्हें तिल, गौ, भूमि और सुवर्णका दान दिया। इसके बाद जब वे गुरुजनोंकी चरणवन्दनाके लिये राजमहलमें गये तो उन्हें अपने दोनों चाचा धृतराष्ट्र और विदुर तथा चाची गान्धारीके दर्शन नहीं हुए। उन्हें न देखकर युधिष्ठिरको बड़ी चिन्ता हुई, उन्होंने वहीं बैठे हुए सञ्जयसे पूछा—'सञ्जय, मेरे वे वृद्ध और नेत्रहीन पिता धृतराष्ट्र, पुत्रशोकसे पीड़ित दुखिया माता गान्धारी और मेरे परम हितैषी चाचा विदुरजी कहाँ चले गये? वे अपने पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंके मारे जानेसे दुःखित तो थे ही; मैं भी बड़ा मन्दमति हूँ—कहीं मुझसे किसी अपराधकी आशङ्का करके उन्होंने माता गान्धारी-सहित अपनेको गङ्गाजीमें तो नहीं डुबा दिया? जब हमारे पिताजीकी मृत्यु हो गयी थी और हमलोग नन्हे-नन्हे बच्चे थे, तब इन्हीं दोनों चाचाओंने बड़े-बड़े दुःखोंसे हमें बचाया था! वे हमपर बड़ा ही प्रेम रखते थे। हाय! वे यहाँसे कहाँ चले गये?' ॥३२—३४॥

सूतजी कहते हैं—सञ्जयपर धृतराष्ट्रकी बड़ी कृपा एवं स्नेह था। इसलिये अपने स्वामीके चले जानेके कारण वे इतने शोकग्रस्त, दुखी और विरह-कातर हो रहे थे कि कष्टके मारे उनसे कुछ बोला नहीं गया। फिर धीरे-धीरे धैर्यसे उन्होंने अपने हृदयको स्थिर किया, हाथोंसे आँखोंके आँसू पोंछे और अपने स्वामी धृतराष्ट्रके चरणोंका स्मरण करते हुए युधिष्ठिरसे कहा—॥३५-३६॥

सञ्जय बोले—धर्मराज! मुझे आपके दोनों चाचा और गान्धारीके सङ्कल्पका कुछ भी पता नहीं है। महाबाहो! मैं तो इतना ही जानता हूँ कि मुझे उन महात्माओंने ठग लिया। सञ्जय इस प्रकार कह ही रहे थे कि तुम्बुरुके साथ देवर्षि नारदजी वहाँ आ पहुँचे। महाराज युधिष्ठिरने

सत्रहवाँ अध्याय

महाराज परीक्षित्‌द्वारा कलियुगका दमन

सूतजीने कहा—शौनकजी! वहाँ पहुँचकर राजा परीक्षित्‌ने देखा कि एक राजवेषधारी शूद्र हाथमें डंडा लिये हुए है और गाय बैलके एक जोड़ेको इस तरह पीटता जा रहा है जैसे उनका कोई मालिक ही न हो। वह कमल तन्तुके समान सफेद रंगका बैल एक पैरसे खड़ा काँप रहा था तथा शूद्रकी ताडनासे पीड़ित और भयभीत होकर मूत्र-त्याग कर रहा था। कामधेनुके समान वह गाय भी बार-बार शूद्रके पैरोंकी ठोकरें खाकर अत्यन्त दीन हो रही थी। एक तो वह स्वयं ही दुबली पतली थी, दूसरे उसका बछड़ा भी उसके पास नहीं था। उसे भूख लगी हुई थी और आँखोंसे आँसू बहते जा रहे थे। स्वर्णजटित रथपर चढ़े हुए राजा परीक्षित्‌ने अपना धनुष चढ़ाकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहा—'अरे! तू कौन है? तू तो बलवान् मालूम पड़ता है, फिर मेरे राज्यके इन दुर्बल प्राणियोंको क्यों मार रहा है? तूने नटकी भाँति वेष तो राजाका सा बना रक्खा है, परन्तु कर्मसे तू शूद्र मालूम पड़ता है। हमारे दादा अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेपर इस प्रकार निर्जन स्थानमें निरपराधोंको सतानेवाला तू है कौन? कोई भी हो, वास्तवमें तू है अपराधी, तेरा वध ही तेरे लिये उचित दण्ड है' ॥ १—६ ॥

कलियुगको इस प्रकार डाँटकर उन्होंने धर्मसे पूछा—'कमलनालके समान आपका श्वेतवर्ण है। तीन पैर न होनेपर भी आप एक पैरसे चलते फिरते हैं। यह देखकर मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। बतलाइये, आप क्या बैलके रूपमें कोई देवता हैं? अभी यह भूमण्डल कुरुवंशी नरपतियोंके बाहुबलसे सुरक्षित है। इसमें आपके सिवा और किसी भी प्राणीकी आँखोंसे शोकके आँसू बहते मैंने नहीं देखे। धेनुपुत्र! अब आप शोक न करें। इस शूद्रसे निर्भय हो जायँ। गोमाता! मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ। अब आप रोवें नहीं। आपका कल्याण हो। देवि! जिस राजाके राज्यमें दुष्टोंके उपद्रवसे प्रजा त्रस्त रहती है, उस मतवाले राजाकी कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य और परलोक नष्ट हो जाते हैं। राजाओंका परम धर्म यही है कि वे दुखियोंका दुःख दूर करें। यह महादुष्ट और प्राणियोंको पीड़ित करनेवाला है। मैं अभी इसे मारे डालता हूँ। सुरभिनन्दन! आप तो चार पैरवाले जीव हैं। आपके तीन पैर किसने काट डाले? भगवान् श्रीकृष्णके अनुयायी राजाओंके राज्यमें कभी कोई भी आपकी तरह दुखी न हो। आप तो दूसरोंका कार्य करनेवाले परम साधु हैं। आपने कोई अपराध भी नहीं किया है। बताइये, किस दुष्टने आपका अङ्ग भङ्ग करके पाण्डवोंकी कीर्तिमें कलङ्क लगाया है? जो निरपराध प्राणियोंको सताता है, उसको, चाहे वह कहीं भी रहे, मेरा भय अवश्य होगा। दुष्टोंका दमन करनेसे साधुओंका उपकार होता है। जो उद्दण्ड व्यक्ति निरपराध प्राणियोंको दुःख देता है, वह चाहे साक्षात् देवता ही क्यों न हो, मैं उसके बाजूबंद धारण किये हुए हाथोंको काट डालूँगा। अपने धर्ममें स्थित लोगोंका पालन करना और बिना आपत्तिकालके मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवालोंको शास्त्रानुसार दण्ड देना, यही राजाओंका परम धर्म है' ॥ ७—१६ ॥

धर्मने कहा—राजन्! आप पाण्डवोंके वंशज हैं। आपके पूर्वजोंके श्रेष्ठ गुणोंसे मुग्ध होकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उनका सारथि और दूत आदि बनना स्वीकार किया था। आपका इस प्रकार दुखियोंको अभय देना आपके योग्य ही है। नरेन्द्र! हमें इस बातका पता नहीं है कि जीवोंके क्लेशका मूल कारण कौन-सा पुरुष है? शास्त्रोंमें भी इस विषयमें अनेकों मत देखे जाते हैं। जो लोग किसी भी प्रकारके द्वैतको स्वीकार नहीं करते, वे अपने आपको ही दुःखका कारण बतलाते हैं। कोई प्रारब्धको कारण बतलाते हैं, तो कोई कर्मको। कुछ लोग स्वभावको, तो कुछ लोग ईश्वरको दुःखका कारण मानते हैं। किन्हीं किन्हींका ऐसा भी निश्चय है कि दुःखका कारण तर्कके द्वारा नहीं जाना जा सकता और वाणीके द्वारा बतलाया भी नहीं जा सकता। राजर्षे! अब इनमें कौन-सा मत ठीक है, यह आप अपनी बुद्धिसे ही विचार लीजिये ॥ १७—२० ॥

सूतजीने कहा—शौनकजी! धर्मका यह प्रवचन सुनकर सम्राट् परीक्षित् बहुत प्रसन्न हुए, उनका खेद मिट गया। उन्होंने शान्तचित्त होकर उनसे कहा ॥ २१ ॥

परीक्षित्‌ने कहा—धर्मका तत्त्व जाननेवाले वृषभदेव! आप धर्मका उपदेश कर रहे हैं। अवश्य ही आप वृषभके रूपमें स्वयं धर्म हैं। आपने अपनेको दुःख देनेवालेका नाम इसलिये नहीं बताया है कि अधर्म करनेवालेको जो

रोड़े न अटकाओ। * धर्मराज ! आजसे पाँचवें दिन वे अपने शरीरका परित्याग कर देंगे और वह जलकर भस्म हो जायगा। गार्हपत्यादि अग्नियोंके द्वारा पर्णकुटीके साथ अपने पतिके शरीरको जलते देखकर बाहर खड़ी हुई साध्वी गान्धारी भी उसी आगमें प्रवेश कर जायँगी। धर्मराज ! विदुरजी अपने भाईका आश्चर्यमय मोक्ष देखकर हर्षित और वियोग देखकर दुःखित होते हुए वहाँसे तीर्थ-सेवनके लिये चले जायँगे।' देवर्षि नारद ऐसा कहकर तुम्बुरुके साथ स्वर्गको चले गये। धर्मराज युधिष्ठिरने उनके उपदेशोंको हृदयमें धारण करके शोकका त्याग कर दिया ॥ ५१—६० ॥

चौदहवाँ अध्याय

अपशकुन देखकर महाराज युधिष्ठिरका शङ्का करना तथा अर्जुनका द्वारकासे आना

सूतजीने कहा—स्वजनोंसे मिलने और पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण अब क्या करना चाहते हैं—यह जाननेके लिये अर्जुन द्वारका गये हुए थे। कई महीने बीत जानेपर भी वे लौटे नहीं, तब युधिष्ठिरको बड़े भयङ्कर अपशकुन दीखने लगे। उन्होंने देखा कालकी गति बड़ी विकट हो गयी है। जिस समय जो ऋतु होनी चाहिये, उस समय वह नहीं होती और उनकी क्रियाएँ भी उल्टी ही होती हैं। लोग बड़े क्रोधी, लोभी और असत्यपरायण हो गये हैं। अपने जीवन-निर्वाहके लिये लोग पापपूर्ण व्यापार करने लगे हैं। सारा व्यवहार कपटसे भरा हुआ होता है, यहाँतक कि मित्रतामें भी छल मिला रहता है; पिता, माता, सुहृद्, भाई और पति-पत्नीमें भी वैर-विरोध रहने लगा है। कलिकालके आ जानेसे लोगोंका स्वभाव ही लोभ, दम्भ आदि अधर्मसे अभिभूत हो गया है और प्रकृतिमें भी अत्यन्त अरिष्टसूचक अपशकुन होने लगे हैं। यह सब देखकर युधिष्ठिरने अपने छोटे भाई भीमसेनसे कहा ॥ १—५ ॥

युधिष्ठिरने कहा—भीमसेन ! अर्जुनको हमने द्वारका इसलिये भेजा था कि वह वहाँ जाकर पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण क्या करना चाहते हैं, इसका पता लगा आवे और सम्बन्धियोंसे मिल-जुल आवे। परन्तु सात महीने बीत गये, अबतक तुम्हारे भाई लौटे नहीं। मैं बहुत सोचनेपर भी यह नहीं समझ पाता हूँ कि उनके न आनेका क्या कारण है। ऐसा मालूम होता है कि देवर्षि नारदके द्वारा बतलाया हुआ वह समय आ पहुँचा है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने लीला-विग्रहका संवरण करना चाहते हैं। उन्हीं भगवान्की कृपासे हमें यह सम्पत्ति, राज्य, स्त्रियाँ, प्राण, कुल, सन्तान, शत्रुओंपर विजय और लोक-परलोकका कल्याण प्राप्त हुआ है। भीमसेन ! तुम तो बड़े वीर हो; देखो तो सही—आकाशमें उल्कापातादि, पृथ्वीमें भूकम्पादि और शरीरोंमें रोगादि कितने बड़े-बड़े अपशकुन हो रहे हैं। इनसे इस बातकी सूचना मिलती है कि शीघ्र ही हमारी बुद्धिको मोहमें डालनेवाला कोई उत्पात होनेवाला है। प्यारे भीमसेन ! मेरी बाँयीं जाँघ, आँख और भुजा बार-बार फड़क रही हैं। हृदय जोरसे धड़क रहा है। अवश्य ही बहुत जल्दी कोई अनिष्ट होनेवाला है। देखो, यह सियारिन उदय होते हुए सूर्यकी ओर मुँह करके रो रही है। अरे ! उसके मुँहसे तो आग भी निकल रही है ! यह कुत्ता बिल्कुल निर्भय-सा होकर मेरी ओर देखकर भूँक रहा है, गौ आदि अच्छे पशु मुझे अपने बाँयें करके जाते हैं और गधे आदि बुरे पशु मुझे अपने दाहिने कर देते हैं। मेरे घोड़े आदि वाहन मुझे रोते हुए दिखायी देते हैं। यह मृत्युका दूत कबूतर, उल्लू और उसका प्रतिपक्षी कौआ रातको अपने कर्णकठोर शब्दोंसे मेरे मनको कँपाते हुए विश्वको सूना कर देना चाहते हैं। दिशाएँ धुँधली हो गयी हैं, सूर्य और चन्द्रमाके चारों ओर बार-बार मण्डल बैठते हैं। यह पृथ्वी पहाड़ोंके साथ बार-बार काँप उठती है, बादल बड़े जोर-जोरसे गरजते हैं और जहाँ-तहाँ बिजली भी गिरती ही रहती है। इतनी बड़ी-बड़ी आँधियाँ आती हैं, जो अपनी धूलसे सर्वत्र अँधेरा फैला देती हैं और शरीरको छेदे डालती हैं। बादल बड़ा डरावना दृश्य उपस्थित करके सब ओर खून बरसाते हैं। सूरजकी चमक कम हो गयी है। आकाशमें ग्रह परस्पर टकराया करते हैं। भूतोंकी भीड़से पृथ्वी और अन्तरिक्षमें आग-सी लगी हुई है। नदी, नद, तालाब और लोगोंके मन क्षुब्ध हो रहे हैं। घीसे आग नहीं जलती। यह भयङ्कर काल न जाने क्या करेगा। बछड़े दूध नहीं पीते, गौएँ दुहने नहीं देतीं। गौशालामें गौएँ आँसू बहा-बहाकर

* देवर्षि नारदजी त्रिकालदर्शी हैं। वे धृतराष्ट्रके भविष्य जीवनको वर्तमानकी भाँति प्रत्यक्ष देखते हुए उसी रूपमें वर्णन कर रहे हैं। धृतराष्ट्र पिछली रातको ही हस्तिनापुरसे गये हैं अतः यह वर्णन भविष्यका ही समझना चाहिये।

सत्रहवाँ अध्याय

महाराज परीक्षित्‌द्वारा कलियुगका दमन

सूतजीने कहा—शौनकजी! वहाँ पहुँचकर राजा परीक्षित्‌ने देखा कि एक राजवेषधारी शूद्र हाथमें डंडा लिये हुए है और गाय बैलके एक जोड़ेको इस तरह पीटता जा रहा है जैसे उनका कोई मालिक ही न हो। वह कमल तन्तुके समान सफेद रंगका बैल एक पैरसे खड़ा काँप रहा था तथा शूद्रकी ताडनासे पीड़ित और भयभीत होकर मूत्र त्याग कर रहा था। कामधेनुके समान वह गाय भी बार-बार शूद्रके पैरोंकी ठोकरें खाकर अत्यन्त दीन हो रही थी। एक तो वह स्वयं ही दुबली पतली थी, दूसरे उसका बछड़ा भी उसके पास नहीं था। उसे भूख लगी हुई थी और आँखोंसे आँसू बहते जा रहे थे। स्वर्णजटित रथपर चढ़े हुए राजा परीक्षित्‌ने अपना धनुष चढ़ाकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे कहा—'अरे! तू कौन है? तू तो बलवान् मालूम पड़ता है, फिर मेरे राज्यके इन दुर्बल प्राणियोंको क्यों मार रहा है? तूने नटकी भाँति वेष तो राजाका-सा बना रक्खा है, परन्तु कर्मसे तू शूद्र मालूम पड़ता है। हमारे दादा अर्जुनके साथ भगवान् श्रीकृष्णके परमधाम पधार जानेपर इस प्रकार निर्जन स्थानमें निरपराधोंको सतानेवाला तू है कौन? कोई भी हो, वास्तवमें तू है अपराधी, तेरा वध ही तेरे लिये उचित दण्ड है'॥ १—६ ॥

कलियुगको इस प्रकार डाँटकर उन्होंने धर्मसे पूछा—'कमलनालके समान आपका श्वेतवर्ण है। तीन पैर न होनेपर भी आप एक पैरसे चलते फिरते हैं। यह देखकर मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। बतलाइये, आप क्या बैलके रूपमें कोई देवता हैं? अभी यह भूमण्डल पुरुवंशी नरपतियोंके बाहुबलसे सुरक्षित है। इसमें आपके सिवा और किसी भी प्राणीकी आँखोंसे शोकके आँसू बहते मैंने नहीं देखे। धेनुपुत्र! अब आप शोक न करें। इस शूद्रसे निर्भय हो जायँ। गोमाता! मैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाला हूँ। अब आप रोवें नहीं। आपका कल्याण हो। देवि! जिस राजाके राज्यमें दुष्टोंके उपद्रवसे प्रजा त्रस्त रहती है, उस मतवाले राजाकी कीर्ति, आयु, ऐश्वर्य और परलोक नष्ट हो जाते हैं। राजाओंका परम धर्म यही है कि वे दुखियोंका दुःख दूर करें। यह महादुष्ट और प्राणियोंको पीड़ित करनेवाला है। मैं अभी इसे मारे डालता हूँ। सुरभिनन्दन! आप तो चार पैरवाले जीव हैं। आपके तीन पैर किसने काट डाले? भगवान् श्रीकृष्णके अनुयायी राजाओंके राज्यमें कभी कोई भी आपकी तरह दुखी न हो। आप तो दूसरोंका कार्य करनेवाले परम साधु हैं। आपने कोई अपराध भी नहीं किया है। बताइये, किस दुष्टने आपका अङ्ग भङ्ग करके पाण्डवोंकी कीर्तिमें कलङ्क लगाया है? जो निरपराध प्राणियोंको सताता है, उसको, चाहे वह कहीं भी रहे, मेरा भय अवश्य होगा। दुष्टोंका दमन करनेसे साधुओंका उपकार होता है। जो उद्दण्ड व्यक्ति निरपराध प्राणियोंको दुःख देता है, वह चाहे साक्षात् देवता ही क्यों न हो, मैं उसके बाजूबंद धारण किये हुए हाथोंको काट डालूँगा। अपने धर्ममें स्थित लोगोंका पालन करना और बिना आपत्तिकालके मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवालोंको शास्त्रानुसार दण्ड देना, यही राजाओंका परम धर्म है'॥ ७–१६ ॥

धर्मने कहा—राजन्! आप पाण्डवोंके वंशज हैं। आपके पूर्वजोंके श्रेष्ठ गुणोंसे मुग्ध होकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने उनका सारथि और दूत आदि बनना स्वीकार किया था। आपका इस प्रकार दुखियोंको अभय देना आपके योग्य ही है। नरेन्द्र! हमें इस बातका पता नहीं है कि जीवोंके क्लेशका मूल कारण कौन-सा पुरुष है? शास्त्रोंमें भी इस विषयमें अनेकों मत देखे जाते हैं। जो लोग किसी भी प्रकारके द्वैतको स्वीकार नहीं करते, वे अपने आपको ही दुःखका कारण बतलाते हैं। कोई प्रारब्धको कारण बतलाते हैं, तो कोई कर्मको। कुछ लोग स्वभावको, तो कुछ लोग ईश्वरको दुःखका कारण मानते हैं। किन्हीं किन्हींका ऐसा भी निश्चय है कि दुःखका कारण तर्कके द्वारा नहीं जाना जा सकता और वाणीके द्वारा बतलाया भी नहीं जा सकता। राजर्षे! अब इनमें कौन-सा मत ठीक है, यह आप अपनी बुद्धिसे ही विचार लीजिये ॥१७–२०॥

सूतजीने कहा—शौनकजी! धर्मका यह प्रवचन सुनकर सम्राट् परीक्षित् बहुत प्रसन्न हुए, उनका खेद मिट गया। उन्होंने शान्तचित्त होकर उनसे कहा ॥२१॥

परीक्षित्‌ने कहा—धर्मका तत्त्व जाननेवाले वृषभदेव! आप धर्मका उपदेश कर रहे हैं। अवश्य ही आप वृषभके रूपमें स्वयं धर्म हैं। आपने अपनेको दुःख देनेवालेका नाम इसलिये नहीं बताया है कि अधर्म करनेवालेको जो

रोड़े न अटकाओ।* धर्मराज! आजसे पाँचवें दिन वे अपने शरीरका परित्याग कर देंगे और वह जलकर भस्म हो जायगा। गार्हपत्यादि अग्नियोंके द्वारा पर्णकुटीके साथ अपने पतिके शरीरको जलते देखकर बाहर खड़ी हुई साध्वी गान्धारी भी उसी आगमें प्रवेश कर जायँगी। धर्मराज! विदुरजी अपने भाईका आश्चर्यमय मोक्ष देखकर हर्षित और वियोग देखकर दुःखित होते हुए वहाँसे तीर्थ-सेवनके लिये चले जायँगे।' देवर्षि नारद ऐसा कहकर तुम्बुरुके साथ स्वर्गको चले गये। धर्मराज युधिष्ठिरने उनके उपदेशोंको हृदयमें धारण करके शोकका त्याग कर दिया॥ ५१—६०॥

चौदहवाँ अध्याय

अपशकुन देखकर महाराज युधिष्ठिरका शङ्का करना तथा अर्जुनका द्वारकासे आना

सूतजीने कहा—स्वजनोंसे मिलने और पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण अब क्या करना चाहते हैं—यह जाननेके लिये अर्जुन द्वारका गये हुए थे। कई महीने बीत जानेपर भी वे लौटे नहीं, तब युधिष्ठिरको बड़े भयङ्कर अपशकुन दीखने लगे। उन्होंने देखा कालकी गति बड़ी विकट हो गयी है। जिस समय जो ऋतु होनी चाहिये, उस समय वह नहीं होती और उनकी क्रियाएँ भी उल्टी ही होती हैं। लोग बड़े क्रोधी, लोभी और असत्यपरायण हो गये हैं। अपने जीवन-निर्वाहके लिये लोग पापपूर्ण व्यापार करने लगे हैं। सारा व्यवहार कपटसे भरा हुआ होता है, यहाँतक कि मित्रतामें भी छल मिला रहता है; पिता, माता, सुहृद्, भाई और पति-पत्नीमें भी वैर-विरोध रहने लगा है। कलिकालके आ जानेसे लोगोंका स्वभाव ही लोभ, दम्भ आदि अधर्मसे अभिभूत हो गया है और प्रकृतिमें भी अत्यन्त अरिष्टसूचक अपशकुन होने लगे हैं। यह सब देखकर युधिष्ठिरने अपने छोटे भाई भीमसेनसे कहा॥ १—५॥

युधिष्ठिरने कहा—भीमसेन! अर्जुनको हमने द्वारका इसलिये भेजा था कि वह वहाँ जाकर पुण्यश्लोक भगवान् श्रीकृष्ण क्या करना चाहते हैं, इसका पता लगा आवे और सम्बन्धियोंसे मिल-जुल आवे। परन्तु सात महीने बीत गये, अबतक तुम्हारे भाई लौटे नहीं। मैं बहुत सोचनेपर भी यह नहीं समझ पाता हूँ कि उनके न आनेका क्या कारण है। ऐसा मालूम होता है कि देवर्षि नारदके द्वारा बतलाया हुआ वह समय आ पहुँचा है, जिसमें भगवान् श्रीकृष्ण अपने लीला-विग्रहका संवरण करना चाहते हैं। उन्हीं भगवान्‌की कृपासे हमें यह सम्पत्ति, राज्य, स्त्रियाँ, प्राण, कुल, सन्तान, शत्रुओंपर विजय और लोक-परलोकका कल्याण प्राप्त हुआ है। भीमसेन! तुम तो बड़े वीर हो; देखो तो सही—आकाशमें उल्कापातादि, पृथ्वीमें भूकम्पादि और शरीरोंमें रोगादि कितने बड़े-बड़े अपशकुन हो रहे हैं। इनसे इस बातकी सूचना मिलती है कि शीघ्र ही हमारी बुद्धिको मोहमें डालनेवाला कोई उत्पात होनेवाला है। प्यारे भीमसेन! मेरी बाँयीं जाँघ, आँख और भुजा बार-बार फड़क रही हैं। हृदय जोरसे धड़क रहा है। अवश्य ही बहुत जल्दी कोई अनिष्ट होनेवाला है। देखो, यह सियारिन उदय होते हुए सूर्यकी ओर मुँह करके रो रही है। अरे! उसके मुँहसे तो आग भी निकल रही है! यह कुत्ता बिल्कुल निर्भय-सा होकर मेरी ओर देखकर भूँक रहा है, गौ आदि अच्छे पशु मुझे अपने बाँयें करके जाते हैं और गधे आदि बुरे पशु मुझे अपने दाहिने कर देते हैं। मेरे घोड़े आदि वाहन मुझे रोते हुए दिखायी देते हैं। यह मृत्युका दूत कबूतर, उल्लू और उसका प्रतिपक्षी कौआ रातको अपने कर्णकठोर शब्दोंसे मेरे मनको कँपाते हुए विश्वको सूना कर देना चाहते हैं। दिशाएँ धुँधली हो गयी हैं, सूर्य और चन्द्रमाके चारों ओर बार-बार मण्डल बैठते हैं। यह पृथ्वी पहाड़ोंके साथ बार-बार काँप उठती है, बादल बड़े जोर-जोरसे गरजते हैं और जहाँ-तहाँ बिजली भी गिरती ही रहती है। इतनी बड़ी-बड़ी आँधियाँ आती हैं, जो अपनी धूलसे सर्वत्र अँधेरा फैला देती हैं और शरीरको छेदे डालती हैं। बादल बड़ा डरावना दृश्य उपस्थित करके सब ओर खून बरसाते हैं। सूरजकी चमक कम हो गयी है। आकाशमें ग्रह परस्पर टकराया करते हैं। भूतोंकी भीड़से पृथ्वी और अन्तरिक्षमें आग-सी लगी हुई है। नदी, नद, तालाब और लोगोंके मन क्षुब्ध हो रहे हैं। घीसे आग नहीं जलती। यह भयङ्कर काल न जाने क्या करेगा। बछड़े दूध नहीं पीते, गौएँ दुहने नहीं देतीं। गौशालामें गौएँ आँसू बहा-बहाकर

* देवर्षि नारदजी त्रिकालदर्शी हैं। वे धृतराष्ट्रके भविष्य जीवनको वर्तमानकी भाँति प्रत्यक्ष देखते हुए उसी रूपमें वर्णन कर रहे हैं। धृतराष्ट्र पिछली रातको ही हस्तिनापुरसे गये हैं अतः यह वर्णन भविष्यका ही समझना चाहिये।



परीक्षितसे कलियुगकी प्रार्थना

रोगी, अबला अथवा अन्य किसी प्राणीका जो तुम्हारी शरणमें आया हो; तुमने त्याग तो नहीं कर दिया ? कहीं तुमने अगम्य स्त्रीसे समागम तो नहीं किया ? कहीं गमन करनेयोग्य स्त्रीका परित्याग तो नहीं किया ? कहीं मार्गमें अपनेसे छोटे अथवा बराबरीवालेसे हार तो नहीं गये ? अथवा भोजन करानेयोग्य बालक और बूढ़ोंको छोड़कर तुमने अकेले ही तो भोजन नहीं कर लिया ? अवश्य ही तुमने ऐसा कोई निन्दित काम नहीं किया होगा, जो तुम्हारे योग्य न हो। हो-न-हो अपने परम प्रियतम अभिन्नहृदय परम सुहृद् भगवान् श्रीकृष्णसे तुम रहित हो गये हो। इसीसे अपनेको शून्य मान रहे हो। इसके सिवा ऐसा कोई कारण नहीं हो सकता, जिससे तुमको इतनी मानसिक पीड़ा हो ॥ ३९–४४ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

अर्जुनके मुखसे भगवान्‌के स्वधाम सिधारनेका समाचार पाकर पाण्डवोंका हिमालयकी ओर जाना

सूतजीने कहा—भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा अर्जुन एक तो पहले ही श्रीकृष्णके विरहसे व्याकुल हो रहे थे, दूसरे राजा युधिष्ठिरने अनेक शङ्काओंसे भरे हुए प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी। शोकसे अर्जुनका मुख और हृदय-कमल सूख गया था, चेहरा फीका पड़ गया था। वे अपने उन्हीं प्रियतम श्रीकृष्णकी यादमें ऐसे डूब रहे थे कि उनसे बोला न गया। श्रीकृष्णके आँखोंसे ओझल हो जानेके कारण वे उत्कण्ठायुक्त प्रेमके परवश हो रहे थे। रथ हाँकने, टहलने आदिके समय भगवान्‌ने उनके साथ जो मित्रता, अभिन्न-हृदयता और प्रेमसे भरे हुए व्यवहार किये थे, उनकी याद-पर-याद आ रही थी; बड़े कष्टसे उन्होंने अपने शोकका वेग रोका, हाथसे नेत्रोंके आँसू पोंछे और फिर रुँधे हुए गलेसे उन्होंने अपने बड़े भाई युधिष्ठिरसे कहा ॥ १–४ ॥

अर्जुनने कहा—महाराज ! मेरे ममेरे भाई अथवा अत्यन्त घनिष्ठ मित्रका रूप धारण कर श्रीकृष्णने मुझे ठग लिया। मेरे जिस प्रबल पराक्रमसे बड़े-बड़े देवता भी अचरजमें डूब जाते थे, उसे श्रीकृष्णने मुझसे छीन लिया। प्राण निकल जानेपर मुर्देकी जो गति होती है, वही गति भगवान् श्रीकृष्णके एक क्षणके वियोगसे इस संसारकी हो गयी है। इसे देखते नहीं बनता। जिनके आश्रयसे द्रौपदी-स्वयंवरमें राजा द्रुपदके घर आये हुए कामोन्मत्त राजाओंका तेज मैंने हरण कर लिया, धनुषपर बाण चढ़ाकर मत्स्यवेध किया और इस प्रकार द्रौपदीको प्राप्त किया था। जिनकी सन्निधिमात्रसे मैंने समस्त देवताओंके साथ इन्द्रको अपने बलसे जीतकर अग्निदेवको उनकी तृप्तिके लिये खाण्डव वनका दान कर दिया और मय दानवकी निर्माण की हुई, अलौकिक कलाकौशलसे युक्त मायामयी सभा प्राप्त की और आपके यज्ञमें सब ओरसे आ-आकर राजाओंने अनेकों प्रकारकी भेंटें समर्पित कीं। दस हजार हाथियोंकी शक्ति और बलसे सम्पन्न आपके इन छोटे भाई भीमसेनने उन्हींकी शक्तिसे राजाओंके सिरपर पैर रखनेवाले अभिमानी जरासन्धका वध किया था; तदनन्तर उन्हीं भगवान्‌ने उन बहुत-से राजाओंको मुक्त किया, जिनको जरासन्धने महाभैरव-यज्ञमें बलि चढ़ानेके लिये कैदमें डाल रक्खा था। उन सब राजाओंने आपके यज्ञमें अनेकों प्रकारके उपहार दिये थे। महारानी द्रौपदी राजसूय-यज्ञके महान् अभिषेकसे पवित्र हुए अपने उन केशोंको, जिन्हें दुष्टोंने भरी सभामें छूनेका साहस किया था, बिखेरकर तथा आँखोंमें आँसू भरकर जब श्रीकृष्णके चरणोंमें गिर पड़ी, तब उन्होंने उसके सामने उसके उस घोर अपमानका बदला लेनेकी प्रतिज्ञा करके उन धूर्तोंकी स्त्रियोंकी ऐसी दशा कर दी कि वे विधवा हो गयीं और उन्हें अपने केश अपने हाथों खोल देने पड़े। दुर्योधनके छलपूर्ण अनुरोधसे, अपने क्रोधके लिये प्रसिद्ध महर्षि दुर्वासाने हम लोगोंको ऐसी आफतमें डाल दिया था कि जिससे पार पाना कठिन था। आपको याद होगा, उसी समय श्रीकृष्ण वनमें हमलोगोंके पास आये और सूर्यके दिये हुए पात्रमें जो सागका एक टुकड़ा बच रहा था, उसीको खाकर उन्होंने विश्वको तृप्त कर दिया और दुर्वासाके दारुण शापसे हमलोगोंकी रक्षा की। दुर्वासा दस हजार शिष्योंके साथ भोजन किया करते थे, परन्तु उस दिन अपने शिष्यसमूहके साथ जलमें स्नान करते समय ही उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि त्रिलोकीका पेट भर गया है और फिर वे लौटकर भोजनके लिये हमारे पास आये ही नहीं। जिनके प्रतापसे मैंने युद्धमें पार्वतीसहित भगवान् शङ्करको अचंभेमें डाल दिया था, तथा उन्होंने मुझको अपना पाशुपत नामक अस्त्र दिया; साथ ही दूसरे लोकपालोंने भी प्रसन्न होकर अपने-अपने अस्त्र मुझे दिये। और तो क्या,



परीक्षितसे कलियुगकी प्रार्थना

उनकी प्रेममयी भक्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके चिन्तनसे अत्यन्त बढ़ गयी। भक्तिके वेगने उनके हृदयको मथकर उसमेंसे सारे विकारोंको बाहर निकाल दिया। तब उन्हें युद्धके प्रारम्भमें भगवान्‌के द्वारा उपदेश किया हुआ गीता-ज्ञान पुनः स्मरण हो आया, जिसकी समयके परिवर्तन और कर्मोंके विस्तारके कारण प्रमादवश कुछ दिनोंके लिये विस्मृति हो गयी थी। उस समय वे ब्रह्मज्ञानके कारण शोक-रहित हो गये। प्रकृतिके लीन हो जानेसे निर्गुण वस्तुका साक्षात्कार हो गया, जिससे उन्हें द्वैतकी शङ्का भी न रही। लिङ्गशरीरका अभिमान और भान न रहनेके कारण वे जन्म-मृत्युके चक्रसे मुक्त हो गये॥ २८—३१॥

भगवान्‌के स्वधाम-गमन और यदुवंशके संहारका वृत्तान्त सुनकर निश्चलमति युधिष्ठिरने स्वर्गारोहणका निश्चय किया। कुन्तीने भी अर्जुनके मुखसे यदुवंशियोंके नाश और भगवान्‌के स्वधाम-गमनकी बात सुनकर अनन्य भक्तिसे अपने हृदयको भगवान् श्रीकृष्णमें लगा दिया और सर्वदाके लिये इस जन्म-मृत्युरूप संसारकी ओरसे अपना मुँह मोड़ लिया। भगवान् श्रीकृष्णने लोक-दृष्टिमें जिस यादवशरीरसे पृथ्वीका भार उतारा था, उसका वैसे ही परित्याग कर दिया, जैसे कोई काँटेसे काँटा निकालकर फिर दोनोंको फेंक दे। भगवान्‌की दृष्टिमें दोनों ही समान हैं। जैसे वे नटके समान मत्स्यादि रूप धारण करते हैं और उनका त्याग कर देते हैं, वैसे ही उन्होंने जिस यादवशरीरसे पृथ्वीका भार दूर किया था उसीका त्याग कर दिया। जिनकी मधुर लीलाएँ श्रवण करनेयोग्य हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णने जब अपने मनुष्यके-से शरीरसे इस पृथ्वी-का परित्याग कर दिया, वे यहाँसे अन्तर्धान हो गये, उसी दिनसे विचारहीन लोगोंको अधर्ममें फँसानेवाला कलियुग आ धमका। महाराज युधिष्ठिरसे कलियुगका फैलना छिपा न रहा। उन्होंने देखा—देशमें, शहरमें, घरोंमें और प्राणियोंमें लोभ, असत्य, छल, हिंसा आदि अधर्मोंकी बढ़ती हो गयी है। तब उन्होंने महाप्रस्थानका निश्चय किया। उन्होंने अपने विनयी पौत्र परीक्षित्‌को, जो गुणोंमें उन्हींके समान थे, समुद्रसे घिरी हुई पृथ्वीके सम्राट्-पदपर हस्तिनापुरमें अभिषिक्त किया और मथुरामें शूरसेन देशके राजाके रूपमें अनिरुद्धके पुत्र वज्रका अभिषेक किया। इसके बाद समर्थ युधिष्ठिरने प्राजापत्य यज्ञ करके आहवनीय आदि अग्नियोंको अपनेमें लीन कर दिया अर्थात् गृहस्थाश्रमके धर्मसे मुक्त होकर उन्होंने संन्यास ग्रहण किया। युधिष्ठिरने अपने सब वस्त्रा-भूषण आदि वहीं छोड़ दिये, एवं ममता और अहङ्कारसे रहित होकर समस्त बन्धन काट डाले। उन्होंने दृढ़ भावनासे वाणीको मनमें, मनको प्राणमें, प्राणको अपानमें और अपान-को उसकी क्रियाके साथ मृत्युमें, तथा मृत्युको पञ्चभूतमय शरीरमें लीन कर लिया। इस प्रकार शरीरको मृत्युरूप अनुभव करके उन्होंने उसे त्रिगुणमें मिला दिया, त्रिगुणको मूल प्रकृतिमें, प्रकृतिको आत्मामें और आत्माको आत्माओंके आत्मा अविनाशी ब्रह्ममें विलीन कर दिया। उन्हें यह अनुभव होने लगा कि यह सम्पूर्ण दृश्यप्रपञ्च ब्रह्मस्वरूप है। इसके पश्चात् उन्होंने शरीरपर चीर-वस्त्र धारण कर लिया, अन्न-जलका त्याग कर दिया, मौन ले लिया और केश खोलकर बिखेर लिये। वे लोगोंको ऐसे दिखलायी दिये मानो कोई मूर्ख, पागल या पिशाच हो। फिर वे बिना किसीकी ओर देखे तथा बहरेकी तरह बिना किसीकी बात सुने, घरसे निकल पड़े। जिस उत्तरदिशामें अबतक बहुत-से महात्मा जा चुके हैं और जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं होता, उसी ओर वे हृदयमें परम ब्रह्म परमात्माका ध्यान करते हुए चल दिये॥ ३२—४४॥

भीमसेन, अर्जुन आदि युधिष्ठिरके छोटे भाइयोंने भी देखा कि अब पृथ्वीमें सभी लोगोंको अधर्मके सहायक कलियुगने प्रभावित कर डाला है; इसलिये वे भी श्रीकृष्ण-चरणोंकी प्राप्तिका दृढ़ निश्चय करके अपने बड़े भाईके पीछे-पीछे चल पड़े। उन्होंने जीवनके सभी लाभ भलीभाँति प्राप्त कर लिये थे; इसलिये यह निश्चय करके कि, भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमल ही हमारे परम पुरुषार्थ हैं, उन्होंने हृदयमें उन्हें धारण किया। निष्पाप पाण्डवोंके हृदयमें भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंके ध्यानसे भक्ति-भाव उमड़ आया, उनकी बुद्धि पूर्णतः शुद्ध होकर भगवान् श्रीकृष्णके स्वरूपमें अनन्य भावसे स्थिर हो गयी। उन्होंने विशुद्ध आत्मस्वरूपसे वह गति प्राप्त की, जो विषयासक्त दुष्ट मनुष्योंको कभी प्राप्त नहीं हो सकती। श्रीकृष्णके प्रेमावेशमें मुग्ध होकर भगवन्मय विदुरजीने भी अपने शरीरको प्रभास-क्षेत्रमें त्याग दिया। अपने अन्तःकरणको सदा वशमें रखनेवाले विदुर उस समय उन्हें लेनेके लिये आये हुए पितरोंके साथ अपने लोक (यमलोक) को चले गये। द्रौपदीने देखा कि अब पाण्डवलोग निरपेक्ष हो गये हैं, तब वे अनन्य प्रेमसे भगवान् श्रीकृष्णका ही चिन्तन करके उन्हें प्राप्त हो गयीं॥ ४५—५०॥

भगवान्‌के प्यारे भक्त पाण्डवोंके महाप्रयाणकी यह परम पवित्र और मङ्गलमयी कथा जो पुरुष श्रद्धासे सुनता है, वह शीघ्र ही भगवान्‌की भक्ति और मोक्ष प्राप्त करता है॥५१॥

परम यशस्वी सौभाग्यभाजन चक्रवर्ती सम्राट् राजर्षि परीक्षित् इस समय कौरव कुलकी राज्यलक्ष्मीसे शोभायमान होकर हस्तिनापुरमें विराजमान हैं। अभिमन्युनन्दन राजा परीक्षित् वास्तवमें ऐसे ही प्रभावशाली हैं, जिनके शासन कालमें आप लोग इस दीर्घकालीन यज्ञके लिये दीक्षित हुए हैं *॥ ३८–४५॥

अठारहवाँ अध्याय

राजा परीक्षित्‌को शृङ्गी ऋषिका शाप

सूतजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णके कर्म बड़े ही आश्चर्यमय होते हैं। उन्हींकी कृपासे राजा परीक्षित् अपनी माताकी कोखमे अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जल जानेपर भी मरे नहीं। जिस समय ब्राह्मणके शापसे उन्हें डसनेके लिये तक्षक आया, उस समय भी वे प्राणनाशके भयसे भयभीत नहीं हुए, क्योंकि उन्होंने अपना चित्त भगवान् श्रीकृष्ण के चरणोंमें समर्पित कर रक्खा था। उन्होंने सबकी आसक्ति छोड दी, गङ्गातटपर जाकर श्रीशुकदेवजीसे उपदेश ग्रहण किया और इस प्रकार भगवान्‌के स्वरूपको जानकर अपने शरीरका त्याग किया। जो लोग भगवान् श्रीकृष्णकी लीला कथा कहते रहते हैं, उस कथामृतका पान करते रहते हैं और इन दोनों ही साधनोंके द्वारा उनके चरणकमलोंका स्मरण करते रहते हे, उन्हें अन्तकालमें भी मोह नहीं होता। यद्यपि कलियुग चारों ओर फैल गया था—क्योंकि जिस दिन जिस समय भगवान्‌ने पृथ्वीका परित्याग किया था, उसी समय ससारमें अधर्मका मूल कारण कलियुग आ गया था। फिर भी जबतक पृथ्वीपर परीक्षित्‌का एकछत्र साम्राज्य रहा तबतक ससारमे उसका प्रभाव नहीं फैला। भ्रमरके समान सारग्राही सम्राट् परीक्षित् कलियुगसे कोई द्वेष नहीं रखते थे, क्योंकि इसमें यह एक बहुत बड़ा गुण है कि पुण्यकर्म तो सङ्कल्पमात्रसे ही फल देनेवाले हो जाते है, परन्तु पापकर्म सङ्कल्पमात्रसे फल देनेवाले नहीं होते, उनका फल (नरकादि) शरीरसे करनेपर ही मिलता है। उन्होंने सोचा कि यह कलियुग तो मूर्खोंपर ही रोब गाँठता है और उन्हींपर अपना प्रभाव डालता है। धीर पुरुषों से तो यह सदा ही डरता रहता है। जैसे भेड़िया बच्चोंको ही पकड़ता है, वैसे यह प्रमादी लोगोंको तो झटपट अपने वशमें कर लेता है परन्तु सावधान व्यक्तिपर इसकी एक भी नहीं चलती। इसलिये यदि यह रहे भी तो क्या हानि है। यही सोचकर उन्होंने इसे रहने दिया। शौनकादि ऋषियो! आपलोगोंको मैंने भगवान्‌की कथासे युक्त राजा परीक्षित्‌का पवित्र चरित्र सुनाया। आप लोगोंने यही पूछा था। भगवान् श्रीकृष्ण कीर्तन करनेयोग्य बहुत-सी लीलाएँ करते हैं। इसलिये उनके गुण और लीलाओंसे सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी कथाएँ हैं, कल्याणकामी पुरुषको उन्हींका सेवन करना चाहिये॥ १–१०॥

ऋषियोंने कहा—सौम्य स्वभाववाले सूतजी! आपकी आयु बहुत बड़ी हो, क्योंकि मृत्युके प्रवाहमें पड़े हुए हमलोगोंको आप भगवान् श्रीकृष्णकी अमृतमयी उज्ज्वल कीर्तिका श्रवण कराते हैं। यज्ञ करते-करते उसके धूएँसे हमलोगोंका शरीर धूमिल हो गया है। फिर भी इस कर्मका कोई विश्वास नहीं है। पता नहीं यह साङ्गोपाङ्ग समाप्त होकर अपना फल देगा या नहीं। परन्तु आप तो वर्तमानमें ही भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके

* ४३से ४५तकके श्लोकोंमें महाराज परीक्षित्‌का वर्तमानके समान वर्णन किया गया है। संस्कृत व्याकरणके नियमानुसार अत्यन्त सन्निहित भूतके लिये भी वर्तमानका प्रयोग किया जा सकता है। जगद्गुरु श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजने अपनी टीकामें लिखा है कि यद्यपि परीक्षित्‌की मृत्यु हो गयी थी, फिर भी उनकी कीर्ति और प्रभाव वर्तमानके समान ही विद्यमान थे। उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा उत्पन्न करनेके लिये उनकी दूरी यहाँ मिटा दी गयी है। उन्हें भगवान्‌का सायुज्य प्राप्त हो गया था, इसलिये भी सूतजीको वे अपने सम्मुख ही दीख रहे हैं। न केवल उन्हींको, बल्कि सबको इस बातकी प्रतीति हो रही है। 'आत्मा वै जायते पुत्र' इस श्रुतिके अनुसार जनमेजयके रूपमें भी वही राजसिंहासनपर बैठे हुए हैं। इन सब कारणोंसे वर्तमानके रूपमें उनका वर्णन भी कथाके रसको परिपुष्ट ही करता है।

झर रहे थे। उसका शरीर श्रीहीन हो गया था। धर्म पृथ्वीसे पूछने लगा ॥ १०–१८ ॥

धर्मने कहा—कल्याणि! कुशलसे तो हो न? तुम्हारा मुख कुछ-कुछ मलिन हो रहा है। तुम श्रीहीन हो रही हो। मालूम होता है तुम्हारे हृदयमें कुछ-न-कुछ दुःख अवश्य है। क्या तुम्हारा कोई सम्बन्धी दूर देशमें चला गया है, जिसके लिये इतनी चिन्ता कर रही हो? क्या तुम मेरी चिन्ता तो नहीं कर रही हो कि अब इसके तीन पैर टूट गये, एक ही पैर रह गया है? सम्भव है, तुम इसलिये शोक कर रही हो कि अब शूद्र तुम्हारे ऊपर शासन करेंगे। तुम्हें इन देवताओंके लिये भी खेद हो सकता है जिन्हें अब यज्ञोंमें आहुति नहीं दी जाती, अथवा उस प्रजाके लिये भी जो वर्षा न होनेके कारण अकाल एवं दुर्भिक्षसे पीड़ित हो रही है। देवि! मनुष्य तो राक्षसोंके समान हो रहे हैं; वे स्त्रियों और बच्चोंतकको बड़ा कष्ट पहुँचाते हैं, उनकी रक्षा नहीं करते। क्या तुम उनसे सताये हुए बच्चों या स्त्रियोंके लिये शोक कर रही हो? सम्भव है, अब विद्या कुकर्मी ब्राह्मणोंके चंगुलमें पड़ गयी है और ब्राह्मण विप्रद्रोही राजाओंकी सेवा करने लगे हैं, इसका तुम्हें दुःख हो? आजके नाममात्रके राजा तो सोलहों आने कलियुगी हो गये हैं, उन्होंने बड़े-बड़े देशोंको भी उजाड़ डाला है। तुम उन राजाओं या देशोंके लिये शोक कर रही हो? आजकी जनता खान-पान, वस्त्र, स्नान और स्त्री-सहवास आदिमें शास्त्रीय नियमोंका पालन न करके स्वेच्छाचार कर रही है; क्या इसके लिये तुम दुखी हो? माँ पृथ्वी! अब समझमें आया, हो-न-हो तुम्हें भगवान् श्रीकृष्णकी याद आ रही होगी; क्योंकि उन्होंने तुम्हारा भार उतारनेके लिये ही अवतार लिया था और ऐसी लीलाएँ की थीं, जो मोक्षकी भी अवलम्बन हैं। अब उनके अपनी लीला संवरण कर लेनेपर तुम दुखी हो रही हो। देवि! तुम तो धन-रत्नोंकी खान हो। तुम अपने क्लेशका कारण, जिससे तुम इतनी दुर्बल हो गयी हो, मुझे बतलाओ। मालूम होता है, बड़े-बड़े बलवानोंको भी हरा देनेवाले कालने देवताओंके द्वारा वन्दनीय तुम्हारे सौभाग्यको छीन लिया है ॥ १९–२४ ॥

पृथ्वीने कहा—धर्म! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे हो, वह सब स्वयं जानते हो। जिन भगवान्के सहारे तुम सारे संसारको सुख पहुँचानेवाले अपने चारों चरणोंसे युक्त थे; जिनमें सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा, त्याग, सन्तोष, सरलता, शम, दम, तप, समता, तितिक्षा, उपरति, शास्त्र-विचार, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, शौर्य, तेज, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, कौशल, कान्ति, धैर्य, कोमलता, निर्भीकता, विनय, शील, साहस, उत्साह, बल, सौभाग्य, गम्भीरता, स्थिरता, आस्तिकता, कीर्त्ति, गौरव और निरहङ्कारता—ये उन्तालीस अप्राकृत गुण तथा बड़े-बड़े महापुरुषोंके द्वारा वाञ्छनीय (शरणागतवत्सलता आदि) और भी बहुतसे महान् गुण उनकी सेवा करनेके लिये नित्य-निरन्तर निवास करते हैं, एक क्षणके लिये भी उनसे अलग नहीं होते—उन्हीं समस्त गुणोंके आश्रय, सौन्दर्यधाम भगवान् श्रीकृष्णने इस समय इस लोकसे अपनी लीला संवरण कर ली और यह संसार पापमय कलियुगकी कुदृष्टिका शिकार हो गया। यही देखकर मुझे बड़ा शोक होता है। अपने लिये, देवताओंमें श्रेष्ठ तुम्हारे लिये, देवता, पितर, ऋषि, साधु और समस्त वर्णोंके तथा आश्रमोंके मनुष्योंके लिये मैं शोकग्रस्त हो रही हूँ। जिनका कृपाकटाक्ष प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मा आदि देवता भगवान्के शरणागत होकर बहुत दिनोंतक तपस्या करते रहे, वही लक्ष्मीजी अपने निवासस्थान कमलवनका परित्याग करके बड़े प्रेमसे जिनके चरणकमलोंकी सुभग छत्रछायाका सेवन करती हैं, उन्हीं भगवान्के कमल, वज्र, अङ्कुश, ध्वजा आदि चिह्नोंसे युक्त श्रीचरणोंसे विभूषित होनेके कारण मुझे महान् वैभव प्राप्त हुआ था और मैं तीनों लोकोंसे बढ़कर शोभायमान हुई थी; परन्तु मेरे सौभाग्यका अब अन्त हो गया। भगवान्ने मुझ अभागिनीको छोड़ दिया! मालूम होता है मुझे अपने सौभाग्यपर गर्व हो गया था, इसीलिये उन्होंने मुझे यह दण्ड दिया है ॥ २५–३३ ॥

वे परम स्वतन्त्र थे। अत्यन्त रमणीय श्यामसुन्दर श्रीविग्रहसे वे यदुवंशमें प्रकट हुए और मेरे बड़े भारी भारको, जो असुरवंशी राजाओंकी सैकड़ों अक्षौहिणियोंके रूपमें था, नष्ट कर डाला। तुम अपने तीन चरणोंके कम हो जानेसे मन-ही-मन कुढ़ रहे थे, अतः उन्होंने अपने पुरुषार्थसे तुम्हें पुनः सब अङ्गोंसे पूर्ण एवं स्वस्थ कर दिया था। उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका विरह भला, कौन सह सकती है? उनकी प्रेमभरी चितवन, मनोहर मुसकान और मीठी बातोंसे मुग्ध होकर सत्यभामा आदि मधुमयी मानिनियोंने अपने मानके साथ धीरज भी खो दिया था और उनके चरणकमलोंके स्पर्शसे मैं निरन्तर आनन्दसे पुलकित रहती थी ॥ ३४-३५ ॥

धर्म और पृथ्वी इस प्रकार आपसमें बातचीत कर रहे थे, उसी समय राजर्षि परीक्षित् पूर्ववाहिनी सरस्वतीके तटपर आ पहुँचे ॥ ३६ ॥

क्रोधवश धनुषकी नोकसे एक मरा साँप उठाकर ऋषिके गलेमें डाल दिया और वहाँसे वे अपनी राजधानीमें चले आये। उनके



मनमें यह बात आयी कि इन्होंने जो अपने नेत्र बंद कर रक्खे हैं, तो क्या वास्तवमें इन्होंने अपनी सारी इन्द्रियाँ समेट रक्खी हैं—इन्हे समाधि लग गयी है। अथवा इन राजा लोगोंसे हमारा क्या मतलब है, ऐसा सोचकर इन्होंने झूठ-मूठ समाधिका ढोंग रच रक्खा है और इस प्रकार जान बूझकर हमारी उपेक्षा की है। इसी सन्देहमे पड़कर परीक्षित्‌ने उनके गलेमें साँप डाल दिया ॥२४–३१॥

उन शमीक मुनिके पुत्र बड़े तेजस्वी थे। वे दूसरे ऋषि कुमारोंके साथ पास ही खेल रहे थे। जब उन्होंने सुना कि राजाने मेरे पिताके साथ छेड़खानी की है, तब वे इस प्रकार कहने लगे—'देखो तो सही, ये नरपति कहलानेवाले लोग उच्छिष्ट भोजी कौओंके समान सड-मुसड होकर कितना अन्याय करने लगे हैं! ब्राह्मणोंके दास होकर भी ये दरवाजेपर पहरा देनेवाले कुत्तेके समान अपने स्वामीका ही तिरस्कार करते हैं। ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंको अपना द्वारपाल बनाया है। उसे द्वारपर रहकर रक्षा करनी चाहिये, घरमे घुसकर उनके बर्तनोंमें खानेका उसे अधिकार नहीं है। जबतक भगवान् श्रीकृष्ण थे, वे मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवालोंको दण्ड दिया करते थे, अब उनके परमधाम पधार जानेपर इन मर्यादा तोड़नेवालोंको मैं दण्ड दूँगा। तनिक देखो तो सही, मुझमें कितना बल है!' अपने साथी बालकोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधसे लाल लाल

आँखोंवाले उस ऋषिकुमारने कौशिकी नदीके जलसे आचमन करके अपने वाणीरूपी वज्रका प्रयोग किया—'कुलाङ्गार



परीक्षित्‌ने मेरे पिताका अपमान करके मर्यादाका उल्लङ्घन किया है, इसलिये मेरी प्रेरणासे आजके सातवें दिन उसे तक्षक सर्प डसे' ॥३२–३७॥

इसके बाद वह बालक अपने आश्रमपर आया और अपने पिताके गलेमें साँप देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ तथा वह ढाढ मारकर रोने लगा। शमीक मुनिने अपने पुत्रका रोना चिल्लाना सुनकर धीरे धीरे अपनी आँखें खोलीं और देखा कि उनके गलेमे एक मरा साँप पड़ा है। उसे फेंककर उन्होंने अपने पुत्रसे पूछा—'बेटा! तुम क्यों रो रहे हो? किसने तुम्हारा अपराध किया है?' उनके इस प्रकार पूछनेपर बालकने सारा हाल कह दिया। ब्रह्मर्षि शमीकने सारा वृत्तान्त सुनकर अपने पुत्रका अभिनन्दन नहीं किया। उनकी दृष्टिमे परीक्षित्‌को शाप देना उचित नहीं था। उन्होंने कहा—'ओह, मूर्ख बालक! तूने बड़ा पाप किया! खेद है कि उनकी थोड़ी-सी गलतीके लिये तूने उनको इतना बड़ा शाप दे डाला। तेरी बुद्धि अभी कच्ची है। तुझे भगवत्स्वरूप राजाको साधारण मनुष्योंके समान नहीं समझना चाहिये, क्योंकि राजाके ही असह्य तेजसे सुरक्षित और निर्भय रहकर प्रजा अपना कल्याण सम्पादन करती है। जिस समय राजाका रूप धारण करके भगवान् पृथ्वीपर नहीं रहेंगे, उस समय चोर बढ जायँगे और

क्रोधवश धनुषकी नोकसे एक मरा साँप उठाकर ऋषिके गलेमें डाल दिया और वहाँसे वे अपनी राजधानीमें चले आये। उनके



मनमें यह बात आयी कि इन्होंने जो अपने नेत्र बंद कर रक्खे हैं, तो क्या वास्तवमें इन्होंने अपनी सारी इन्द्रियाँ समेट रक्खी हैं—इन्हें समाधि लग गयी है। अथवा इन राजा लोगोंसे हमारा क्या मतलब है, ऐसा सोचकर इन्होंने झूठ-मूठ समाधिका ढोंग रच रक्खा है और इस प्रकार जान-बूझकर हमारी उपेक्षा की है। इसी सन्देहमें पड़कर परीक्षित्ने उनके गलेमें साँप डाल दिया ॥२४–३१॥

उन शमीक मुनिके पुत्र बड़े तेजस्वी थे। वे दूसरे ऋषिकुमारोंके साथ पास ही खेल रहे थे। जब उन्होंने सुना कि राजाने मेरे पिताके साथ छेड़खानी की है, तब वे इस प्रकार कहने लगे—'देखो तो सही, ये नरपति कहलानेवाले लोग उच्छिष्टभोजी कौओंके समान संड-मुसंड होकर कितना अन्याय करने लगे हैं! ब्राह्मणोंके दास होकर भी ये दरवाजेपर पहरा देनेवाले कुत्तेके समान अपने स्वामीका ही तिरस्कार करते हैं। ब्राह्मणोंने क्षत्रियोंको अपना द्वारपाल बनाया है। उसे द्वारपर रहकर रक्षा करनी चाहिये, घरमें घुसकर उनके बर्तनोंमें खानेका उसे अधिकार नहीं है। जबतक भगवान् श्रीकृष्ण थे, वे मर्यादाका उल्लङ्घन करनेवालोंको दण्ड दिया करते थे; अब उनके परमधाम पधार जानेपर इन मर्यादा तोड़नेवालोंको मैं दण्ड दूँगा। तनिक देखो तो सही, मुझमें कितना बल है!' अपने साथी बालकोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधसे लाल-लाल आँखोंवाले उस ऋषिकुमारने कौशिकी नदीके जलसे आचमन करके अपने वाणीरूपी वज्रका प्रयोग किया—'कुलाङ्गार



परीक्षित्ने मेरे पिताका अपमान करके मर्यादाका उल्लङ्घन किया है, इसलिये मेरी प्रेरणासे आजके सातवें दिन उसे तक्षक सर्प डसे' ॥३२–३७॥

इसके बाद वह बालक अपने आश्रमपर आया और अपने पिताके गलेमें साँप देखकर उसे बड़ा दुःख हुआ तथा वह ढाढ़ मारकर रोने लगा। शमीक मुनिने अपने पुत्रका रोना-चिल्लाना सुनकर धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलीं और देखा कि उनके गलेमें एक मरा साँप पड़ा है। उसे फेंककर उन्होंने अपने पुत्रसे पूछा—'बेटा! तुम क्यों रो रहे हो! किसने तुम्हारा अपराध किया है?' उनके इस प्रकार पूछनेपर बालकने सारा हाल कह दिया। ब्रह्मर्षि शमीकने सारा वृत्तान्त सुनकर अपने पुत्रका अभिनन्दन नहीं किया। उनकी दृष्टिमें परीक्षित्को शाप देना उचित नहीं था। उन्होंने कहा—'ओह, मूर्ख बालक! तूने बड़ा पाप किया! खेद है कि उनकी थोड़ी-सी गलतीके लिये तूने उनको इतना बड़ा शाप दे डाला। तेरी बुद्धि अभी कच्ची है। तुझे भगवत्स्वरूप राजाको साधारण मनुष्योंके समान नहीं समझना चाहिये, क्योंकि राजाके ही असह्य तेजसे सुरक्षित और निर्भय रहकर प्रजा अपना कल्याण सम्पादन करती है। जिस समय राजाका रूप धारण करके भगवान् पृथ्वीपर नहीं रहेंगे, उस समय चोर बढ़ जायँगे और

देखकर राजाने सबका यथायोग्य सत्कार किया और उनके चरणोंपर सिर रखकर वन्दना की। जब सब लोग आरामसे अपने अपने आसनोंपर बैठ गये, तब महाराज परीक्षित्‌ने उन्हें फिरसे प्रणाम किया और उनके सामने खड़े होकर शुद्ध हृदयसे अञ्जलि बाँधकर वे जो कुछ करना चाहते थे, उसे सुनाने लगे ॥ ७–१२ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा—अहा! संसारके समस्त राजाओंमें हम ही सबसे बड़े सौभाग्यशाली हैं, धन्यतम हैं। क्योंकि आप महापुरुषोंने हमपर अनुग्रह करके हमें कृतार्थ कर दिया। राजवंशके लोग प्रायः ही निन्दित कर्म कर बैठते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे ब्राह्मणोंके चरण धोवनसे दूर पड़ जाते हैं। यह कितने खेदकी बात है। मैं भी राजा ही हूँ। निरन्तर देह गेहमें आसक्त रहनेके कारण मैं भी पापरूप ही हो गया हूँ। जान पड़ता है इसीसे स्वयं भगवान् ही ब्राह्मणके शापके रूपमें मुझपर कृपा करनेके लिये पधारे हैं। यह शाप वैराग्य उत्पन्न करनेवाला है। क्योंकि इस प्रकारके शापसे संसारासक्त पुरुष भयभीत होकर विरक्त हो जाया करते हैं। अब मैंने अपने चित्तको भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दिया है। आपलोग और माँ गङ्गाजी शरणागत जानकर मुझपर अनुग्रह करें, मुझे सहारा दें। ब्राह्मणकुमारके शापसे प्रेरित चाहे कोई भी तक्षकका स्वाँग बनाकर आवे या स्वयं तक्षक ही आकर मुझे डस ले, उसकी मुझे तनिक भी परवा नहीं है। आपलोग कृपा करके भगवान्‌की रसमयी लीलाओंका गायन करें। मैं आप लोगोंके चरणोंमें पुनः प्रणाम करके यही प्रार्थना करता हूँ कि मुझे कर्मवश चाहे जिस योनिमें जन्म लेना पड़े, भगवान् श्रीकृष्णमें दिनोंदिन मेरा अनुराग बढ़ता जाय, उनके चरणाश्रित महात्माओंका सत्सङ्ग मिलता रहे और जगत्‌के समस्त प्राणियोंके प्रति मेरी एक सी मैत्री रहे। ऐसा आप आशीर्वाद दीजिये ॥ १३–१६ ॥

महाराज परीक्षित् परम धीर थे। वे ऐसा दृढ निश्चय करके गङ्गाजीके दक्षिण तटपर पूर्वाग्र कुशोंके आसनपर उत्तर मुखसे बैठ गये। राज काजका भार तो उन्होंने पहले ही अपने पुत्र जनमेजयको सौंप दिया था। पृथ्वीके एकछत्र सम्राट् परीक्षित् जब इस प्रकार आमरण अनशनका निश्चय करके बैठ गये, तब स्वर्गमें देवता लोग बड़े आनन्दसे उनकी प्रशंसा करते हुए उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। उनके बाजे, नगाड़े आदि बार-बार बजने लगे। सभी उपस्थित महर्षियोंने परीक्षित्‌के निश्चयकी प्रशंसा की और 'साधु, साधु' कहकर उनका अनुमोदन किया। ऋषिलोग तो स्वभावसे ही लोगोंपर अनुग्रहकी वर्षा करते रहते हैं। उन लोगोंने भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंसे प्रभावित परीक्षित्‌के प्रति उनके अनुरूप वचन कहे। 'राजर्षिशिरोमणे! भगवान् श्रीकृष्णके सेवक और अनुयायी पाण्डववंशियोंके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि आपके पूर्वजोंने भगवान्‌की संनिधि प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षासे उस राजसिंहासनका एक क्षणमें ही परित्याग कर दिया, जिसकी सेवा बड़े बड़े राजा अपने मुकुटोंसे करते थे।' इसके बाद ऋषियोंने आपसमें कहा कि राजा परीक्षित् भगवान्‌के परम भक्त हैं। इन्हें शोकरहित एवं अत्यन्त निर्मल भगवल्लोककी प्राप्ति होगी। जबतक ये अपना शरीर छोड़कर यहाँ नहीं चले जाते, तबतक हमलोग यहीं रहें ॥१७–२१॥

ऋषियोंके ये वचन बड़े ही मधुर, गम्भीर, युक्तियुक्त, सत्य और समतासे युक्त थे। उन्हें सुनकर राजा परीक्षित्‌ने उनका अभिनन्दन किया और भगवान्‌के मनोहर चरित्र सुननेकी इच्छासे उन्होंने ऋषियोंसे प्रार्थना की—'महात्माओ! आपलोग बहुत दूर-दूरसे यहाँ पधारे हैं। आप सबसे ऊपरके सत्यलोकमें रहनेवाले मूर्तिमान् वेदोंके समान हैं। लौकिक या पारलौकिक कोई भी स्वार्थ आपमें नहीं है। आपलोग अपने स्वभावसे विवश होकर दूसरोंपर अनुग्रह करते रहते हैं। आपलोगोंका मुझे पूर्ण विश्वास है, इसलिये मैं अपने कर्तव्यके सम्बन्धमें आपसे यह पूछनेयोग्य प्रश्न करता हूँ। आप सब परस्पर विचार करके बतलाइये कि सबके लिये सब अवस्थाओंमें, और विशेष करके थोड़े ही समयमें मरनेवाले पुरुषोंके लिये अन्तःकरण और शरीरसे करनेयोग्य विशुद्ध कर्म कौन-सा है' ॥ २२–२४ ॥

परीक्षित् यह पूछ ही रहे थे कि उसी समय पृथ्वीपर स्वेच्छासे विचरण करते हुए, किसीकी कोई अपेक्षा न रखनेवाले व्यासनन्दन भगवान् श्रीशुकदेवजी महाराज वहाँ आ पहुँचे। उनके शरीरपर वर्ण अथवा आश्रमका कोई चिह्न नहीं था। वे आत्मानुभूतिमें सन्तुष्ट थे। बहुत-से बच्चों और स्त्रियोंने उन्हें घेर रक्खा था। उनका वेष अवधूतका था।

नरकादि प्राप्त होते हैं, वे ही चुगली करनेवालेको भी मिलते हैं। अथवा यही सिद्धान्त निश्चित है कि प्राणियोंके मन और वाणीसे परमेश्वरकी मायाका स्वरूप निरूपण नहीं किया जा सकता। धर्मदेव! सत्ययुगमें आपके चार चरण थे—तप, पवित्रता, दया और सत्य। इस समय अधर्मके अंश गर्व, आसक्ति और मदसे तीन चरण नष्ट हो चुके हैं। अब आपका चौथा चरण केवल 'सत्य' ही बच रहा है। उसीके बलपर आप जी रहे हैं। यह अधर्मरूप कलियुग असत्यके द्वारा उसे भी नष्ट करना चाहता है। यह गौ माता साक्षात् पृथ्वी हैं। भगवान्‌ने इनका भार उतार दिया था और ये उनके राशि-राशि सौन्दर्य बिखेरनेवाले चरण-चिह्नोंसे सर्वत्र उत्सवमयी हो गयी थीं। अब ये उनसे बिछुड़ गयी हैं। ये साध्वी अभागिनीके समान नेत्रोंमें जल भरकर यह चिन्ता कर रही हैं कि अब राजाका स्वाँग बनाकर ब्राह्मण-द्रोही शूद्र मुझे भोगेंगे ॥२२–२७॥

महारथी परीक्षित्‌ने इस प्रकार धर्म और पृथ्वीको सान्त्वना दी। फिर उन्होंने अधर्मके कारणरूप कलियुगको मारनेके लिये तीखी तलवार उठायी। कलियुगने देखा कि ये तो अब मुझे मार ही डालना चाहते हैं तो झटपट उसने अपने राजचिह्न उतार डाले और भयसे व्याकुल होकर उनके चरणोंपर सिर रख दिया। परीक्षित् बड़े यशस्वी और दीनवत्सल थे। उन्होंने जब कलियुगको अपने पैरोंपर पड़े देखा, तब शरणागतरक्षाके स्वभावसे उनका हृदय कृपासे भर आया। उन्होंने उसको मारा नहीं। हँसते हुए-से उससे कहा ॥ २८–३० ॥

परीक्षित्‌ने कहा—जब तू हाथ जोड़कर शरण आ गया, तब अर्जुनके वंशमें उत्पन्न हुए किसी भी वीरसे तुझे कोई भय नहीं है। परन्तु तू अधर्मका सहायक है, इसलिये तुझे मेरे राज्यमें बिल्कुल नहीं रहना चाहिये। तेरे ही कारण राजाओंके शरीरमें लोभ, झूठ, चोरी, लूट, स्वधर्मत्याग, दरिद्रता, कपट, कलह, दम्भ और दूसरे पापोंकी बढ़ती हो रही है। अधर्मके साथी! इस ब्रह्मावर्तमें तू एक क्षणके लिये भी न ठहरना। क्योंकि यह धर्म और सत्यका निवास-स्थान है। इस क्षेत्रमें यज्ञोंके विधि-विधान जाननेवाले महात्मा यज्ञोंके द्वारा यज्ञपुरुष भगवान्‌की आराधना करते रहते हैं। इस देशमें भगवान् श्रीहरि यज्ञोंके रूपमें निवास करते हैं, यज्ञोंके द्वारा उनकी पूजा होती है और वे यज्ञ करनेवालोंका कल्याण करते हैं। जिस प्रकार वायु सर्वत्र व्याप्त है, उसी प्रकार सर्वात्मा भगवान् भी समस्त चराचर जीवोंके भीतर और बाहर एकरस स्थित रहते हुए उनकी कामनाओंको पूर्ण करते रहते हैं ॥ ३१–३४ ॥

सूतजीने कहा—परीक्षित्‌की यह आज्ञा सुनकर कलियुगके सारे शरीरमें कँपकँपी छूट गयी। हाथमें तलवार लिये हुए परीक्षित् उसके सिरपर सवार यमराजकी तरह जान पड़ते थे। उसने बड़ी विनयसे कहा ॥ ३५ ॥

कलिने कहा—सारी पृथ्वीपर आपका राज्य है। आपकी आज्ञासे जहाँ कहीं भी मैं रहनेका विचार करता हूँ, वहीं देखता हूँ कि आप धनुषपर बाण चढ़ाये खड़े हैं। धार्मिकशिरोमणे! आप मुझे वह स्थान बतलाइये, जहाँ मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ स्थिर होकर रह सकूँ ॥ ३६-३७ ॥

सूतजी कहते हैं—कलियुगकी प्रार्थना स्वीकार करके राजा परीक्षित्‌ने उसे चार स्थान दिये—द्यूत, मद्यपान, स्त्री-सङ्ग और हिंसा। इन स्थानोंमें क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता—ये चार प्रकारके अधर्म निवास करते हैं। उसने और भी स्थान माँगे। तब समर्थ परीक्षित्‌ने उसे रहनेके लिये एक और स्थान—'सुवर्ण'—दिया। इस प्रकार कलियुगके पाँच स्थान हो गये—झूठ, मद, काम, वैर और रजोगुण। परीक्षित्‌के दिये हुए इन्हीं स्थानोंमें अधर्मका मूल कारण कलि उनकी आज्ञाओंका पालन करता हुआ निवास करने लगा। इसलिये आत्मकल्याणकामी पुरुषको इन पाँचों स्थानोंका सेवन कभी नहीं करना चाहिये। धार्मिक राजा, प्रजावर्गके लौकिक नेता और धर्मोपदेष्टा गुरुओंको तो बड़ी सावधानीसे इन स्थानोंसे बचना चाहिये। राजा परीक्षित्‌ने इसके बाद वृषभरूप धर्मके तीनों चरण—तपस्या, शौच और दया जोड़ दिये और आश्वासन देकर पृथ्वीको भी बढ़ाया। वे ही महाराजा परीक्षित् इस समय अपने राजसिंहासनपर, जिसे उनके पितामह महाराज युधिष्ठिरने वनमें जाते समय दिया था, विराजमान हैं। वे

शुकदेव-परीक्षित्



श्रीशुकदेवजी श्रीमद्भागवतकी कथा सुना रहे हैं।

नरकादि प्राप्त होते हैं, वे ही चुगली करनेवालेको भी मिलते हैं। अथवा यही सिद्धान्त निश्चित है कि प्राणियोंके मन और वाणीसे परमेश्वरकी मायाका स्वरूप निरूपण नहीं किया जा सकता। धर्मदेव! सत्ययुगमें आपके चार चरण थे—तप, पवित्रता, दया और सत्य। इस समय अधर्मके अंश गर्व, आसक्ति और मदसे तीन चरण नष्ट हो चुके हैं। अब आपका चौथा चरण केवल 'सत्य' ही बच रहा है। उसीके बलपर आप जी रहे हैं। यह अधर्मरूप कलियुग असत्यके द्वारा उसे भी नष्ट करना चाहता है। यह गौ माता साक्षात् पृथ्वी हैं। भगवान्‌ने इनका भार उतार दिया था और ये उनके राशि-राशि सौन्दर्य बिखेरनेवाले चरण-चिह्नोंसे सर्वत्र उत्सवमयी हो गयी थीं। अब ये उनसे बिछुड़ गयी हैं। ये साध्वी अभागिनीके समान नेत्रोंमें जल भरकर यह चिन्ता कर रही हैं कि अब राजाका स्वाँग बनाकर ब्राह्मण-द्रोही शूद्र मुझे भोगेंगे ॥२२–२७॥

महारथी परीक्षित्‌ने इस प्रकार धर्म और पृथ्वीको सान्त्वना दी। फिर उन्होंने अधर्मके कारणरूप कलियुगको मारनेके लिये तीखी तलवार उठायी। कलियुगने देखा कि ये तो अब मुझे मार ही डालना चाहते हैं तो झटपट उसने अपने राजचिह्न उतार डाले और भयसे व्याकुल होकर उनके चरणोंपर सिर रख दिया। परीक्षित् बड़े यशस्वी और दीनवत्सल थे। उन्होंने जब कलियुगको अपने पैरोंपर पड़े देखा, तब शरणागतरक्षाके स्वभावसे उनका हृदय कृपासे भर आया। उन्होंने उसको मारा नहीं। हँसते हुए-से उससे कहा ॥ २८–३० ॥

परीक्षित्‌ने कहा-जब तू हाथ जोड़कर शरण आ गया, तब अर्जुनके वंशमें उत्पन्न हुए किसी भी वीरसे तुझे कोई भय नहीं है। परन्तु तू अधर्मका सहायक है, इसलिये तुझे मेरे राज्यमें बिल्कुल नहीं रहना चाहिये। तेरे ही कारण राजाओंके शरीरमें लोभ, झूठ, चोरी, दुष्टता, स्वधर्मत्याग, दरिद्रता, कपट, कलह, दम्भ और दूसरे पापोंकी बढ़ती हो रही है। अधर्मके साथी! इस ब्रह्मावर्तमें तू एक क्षणके लिये भी न ठहरना। क्योंकि यह धर्म और सत्यका निवास-स्थान है। इस क्षेत्रमें यज्ञोंके विधि-विधान जाननेवाले महात्मा यज्ञोंके द्वारा यज्ञपुरुष भगवान्‌की आराधना करते रहते हैं। इस देशमें भगवान् श्रीहरि यज्ञोंके रूपमें निवास करते हैं, यज्ञोंके द्वारा उनकी पूजा होती है और वे यज्ञ करनेवालोंका कल्याण करते हैं। जिस प्रकार वायु सर्वत्र व्याप्त है, उसी प्रकार सर्वात्मा भगवान् भी समस्त चराचर जीवोंके भीतर और बाहर एकरस स्थित रहते हुए उनकी कामनाओंको पूर्ण करते रहते हैं ॥ ३१–३४ ॥

सूतजीने कहा—परीक्षित्‌की यह आज्ञा सुनकर कलियुगके सारे शरीरमें कँपकँपी छूट गयी। हाथमें तलवार लिये हुए परीक्षित् उसके सिरपर सवार यमराजकी तरह जान पड़ते थे। उसने बड़ी विनयसे कहा ॥ ३५ ॥

कलिने कहा—सारी पृथ्वीपर आपका राज्य है। आपकी आज्ञासे जहाँ कहीं भी मैं रहनेका विचार करता हूँ, वहीं देखता हूँ कि आप धनुषपर बाण चढ़ाये खड़े हैं। धार्मिकशिरोमणे! आप मुझे वह स्थान बतलाइये, जहाँ मैं आपकी आज्ञाका पालन करता हुआ स्थिर होकर रह सकूँ ॥ ३६-३७ ॥

सूतजी कहते हैं—कलियुगकी प्रार्थना स्वीकार करके राजा परीक्षित्‌ने उसे चार स्थान दिये—द्यूत, मद्यपान, स्त्री-सङ्ग और हिंसा। इन स्थानोंमें क्रमशः असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता—ये चार प्रकारके अधर्म निवास करते हैं। उसने और भी स्थान माँगे। तब समर्थ परीक्षित्‌ने उसे रहनेके लिये एक और स्थान—'सुवर्ण'—दिया। इस प्रकार कलियुगके पाँच स्थान हो गये—झूठ, मद, काम, वैर और रजोगुण। परीक्षित्‌के दिये हुए इन्हीं स्थानोंमें अधर्मका मूल कारण कलि उनकी आज्ञाओंका पालन करता हुआ निवास करने लगा। इसलिये आत्मकल्याणकामी

अन्याभिः किमु तत्पुराणतरणिश्रेणीभिरारोहणं
यातो यासु न धीवरोऽपि लभते पारं भ्रमन्मानसः ।
शक्ता यच्छ्रुतिरेव दुस्तरभवाकूपारपारङ्गतौ
तां श्रीभागवताभिधां न तरणिं कः सन्तितीर्षुः श्रयेत् ॥

यों तो दूसरे भी बहुत-से पुराण हैं परन्तु उनसे क्या काम, जिनका आश्रय लेकर बडे-बडे बुद्धिमानोंका भी चित्त भ्रममें पड जाता है, वे भी जिनकी उलझनोंमें फँस जाते हैं, पार नहीं पाते। भला, उन नावोंपर चढनेसे क्या लाभ, जो पुरानी हों और जिनपर चढ़कर केवट भी घबडा जाय, पार न जा सके। श्रीमद्भागवत एक ऐसी दृढ नौका है, जिसके सुननेमात्रसे ही इस अपार संसारसागरका पार मिल जाता है, उसका आश्रय लेनेपर उसके अनुसार आचरण करने-पर तो बात ही क्या है? ऐसी स्थितिमें ऐसा कौन बुद्धिमान् मुमुक्षु है जो श्रीमद्भागवत-महापुराणरूप दृढ नौकाका आश्रय न ले?

चरणकमलोंका मादक और मधुर मधु पिलाकर हमें तृप्त कर रहे हैं। भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंके लवमात्रके सत्सङ्गसे स्वर्ग अथवा मोक्षकी भी तुलना नहीं की जा सकती; फिर संसारके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है! ऐसा कौन रस-मर्मज्ञ होगा, जो महापुरुषोंके एकमात्र जीवन-सर्वस्व भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंसे तृप्त हो जाय? समस्त प्राकृत गुणोंसे अतीत भगवान्‌के अचिन्त्य अनन्त कल्याणमय गुण-गणोंका पार तो ब्रह्मा, शङ्कर आदि बड़े-बड़े योगेश्वर भी नहीं पा सके। सूतजी! आप तो भगवान्‌को ही अपने जीवनका ध्रुवतारा मानते हैं। आपने जो कुछ जानना था, उसे जान लिया है। इसलिये आप सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय भगवान्‌के उदार और विशुद्ध चरित्रोंका हम श्रद्धालु श्रोताओंके लिये विस्तारसे वर्णन कीजिये। भगवान्‌के परमप्रेमी विशुद्धबुद्धिवाले परीक्षित्‌ने श्रीशुकदेवजीके उपदेश किये हुए जिस ज्ञानसे मोक्षस्वरूप भगवान्‌के चरणकमलोंको प्राप्त किया, आप कृपा करके उसी ज्ञान और परीक्षित्‌के परम पवित्र उपाख्यानका वर्णन कीजिये। क्योंकि उसमें कोई बात छिपाकर नहीं कही गयी है और भगवत्प्रेमकी अद्भुत योगनिष्ठाका निरूपण किया गया है। उसमें पद-पदपर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका वर्णन हुआ है और भगवान्‌के प्यारे भक्तोंको उसमें बड़ा रस मिलता है ॥११-१७॥

सूतजी कहते हैं—अहो! विलोम जातिमें उत्पन्न होनेपर भी महात्माओंकी सेवा करनेके कारण आज हमारा जन्म सफल हो गया। क्योंकि महापुरुषोंके साथ बातचीत करने-मात्रसे ही नीच कुलमें उत्पन्न होनेकी मनोव्यथा मिट जाती है। फिर उन लोगोंकी तो बात ही क्या है, जो सत्पुरुषोंके एकमात्र आश्रय भगवान्‌का नाम लेते हैं, उनकी तो सारी ही व्यथाएँ मिट चुकी हैं। भगवान्‌की शक्ति अनन्त है, वे स्वयं अनन्त हैं। वास्तवमें उनके गुणोंकी अनन्तताके कारण ही उन्हें अनन्त कहा गया है। भगवान्‌के गुणोंकी समता भी जब कोई नहीं कर सकता, तब उनसे बढ़कर तो कोई हो ही कैसे सकता है? उनके गुणोंकी यह विशेषता समझानेके लिये इतना कह देना ही पर्याप्त है कि लक्ष्मीजी अपनेको प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रार्थना करनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको छोड़कर भगवान्‌के न चाहनेपर भी उनके चरणकमलोंकी रजका ही सेवन करती हैं। ब्रह्माजीने भगवान्‌के चरणोंका प्रक्षालन करनेके लिये जो जल समर्पित किया था, वही उनके चरण-नखोंसे निकलकर गङ्गाजीके रूपमें प्रवाहित हुआ। यह जल महादेवजीसहित सारे जगत्‌को पवित्र करनेवाला है। ऐसी अवस्थामें भगवान् श्रीकृष्णके अतिरिक्त 'भगवान्' शब्दका दूसरा और क्या अर्थ हो सकता है?—जिनके प्रेमको प्राप्त करके धीर पुरुष बिना किसी हिचकिचाहटके देह-गेह आदिकी दृढ़ आसक्तिको छोड़ देते हैं और उस अन्तिम परमहंस-आश्रमको स्वीकार करते हैं, जिसमें किसीको कष्ट न पहुँचाना और सब ओरसे उपशान्त हो जाना ही स्वधर्म होता है। सूर्यके समान प्रकाशमान महात्माओ! आप लोगोंने मुझसे जो कुछ पूछा है, वह मैं अपने ज्ञानके अनुसार सुनाता हूँ। जैसे पक्षी अपनी शक्तिके अनुसार आकाशमें उड़ते हैं,उसका अन्त नहीं पाते, वैसे ही विद्वान्‌लोग भी अपनी बुद्धिके अनुसार ही श्रीकृष्णकी लीलाका वर्णन करते हैं। पूर्णरूपसे उसका वर्णन करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है; क्योंकि वह आकाशकी भाँति अनन्त है और मनुष्यकी बुद्धि सीमित है ॥१८-२३॥

एक दिन राजा परीक्षित् धनुष लेकर वनमें शिकार खेलने गये हुए थे। हरिणोंके पीछे दौड़ते-दौड़ते वे थक गये और उन्हें बड़े जोरकी भूख और प्यास लगी। जब कहीं उन्हें जलाशय नहीं मिला, तब वे पासके ही एक ऋषिके आश्रममें चले गये। उन्होंने देखा कि वहाँ आँखें बंद करके शान्तभावसे एक मुनि आसनपर बैठे हुए हैं। इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धिके निरुद्ध हो जानेसे वे संसारसे ऊपर उठ गये थे। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—तीनों अवस्थाओंसे रहित निर्विकार ब्रह्ममें वे स्थित थे। उनका शरीर बिखरी हुई जटाओंसे और कृष्ण मृगचर्मसे ढका हुआ था। राजा परीक्षित्‌ने ऐसी ही अवस्थामें उनसे जल माँगा, क्योंकि प्याससे उनका गला सूखा जा रहा था। जब राजाको वहाँ बैठनेके लिये तिनकेका आसन भी न मिला, किसीने उन्हें भूमिपर भी बैठनेको न कहा—अर्घ्य और आदरभरी मीठी बातें तो कहाँसे मिलतीं—तब अपनेको अपमानित-सा मानकर वे क्रोधके वश हो गये। शौनकजी! वे भूख-प्याससे छटपटा रहे थे, इसलिये एकाएक उन्हें ब्राह्मणके प्रति ईर्ष्या और क्रोध हो आया। उनके जीवनमें इस प्रकार-का यह पहला ही अवसर था। वहाँसे लौटते समय उन्होंने

घड़ीमें ही सब कुछ त्याग कर भगवान्‌के अभयपदको प्राप्त कर लिया। परीक्षित्! अभी तो तुम्हारे जीवनकी अवधि सात दिनकी है; इस बीचमें ही तुम अपने परम कल्याणके लिये जो कुछ करना चाहिये, सब कर लो ॥ ८—१४ ॥

मृत्युका समय आनेपर डरना अथवा घबड़ाना नहीं चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि वैराग्यके शस्त्रसे शरीर और उससे सम्बन्ध रखनेवालोंकी ममता काट डाले, धैर्यके साथ घरसे निकलकर पवित्र तीर्थके जलमें स्नान करे और पवित्र तथा एकान्त स्थानमें विधिपूर्वक आसन लगाकर बैठ जाय। तत्पश्चात् परम पवित्र 'अ उ म्' इन तीन मात्राओंसे युक्त प्रणवका मन ही मन जप करे। प्राणवायुको वशमें करके मनका दमन करे, और एक क्षणके लिये भी प्रणवको न भूले। बुद्धिकी सहायतासे मनके द्वारा इन्द्रियोंको उनके विषयोंसे हटा ले, उन्हें विषयोंकी ओर न जाने दे। मन यदि कर्मकी वासनाओंसे चञ्चल हो उठे तो उसे विचारके द्वारा रोककर भगवान्‌के रूपमें लगावे, स्थिर चित्तसे भगवान्‌के श्रीविग्रहमेंसे किसी एक अङ्गका ध्यान करे। इस प्रकार एक एक अङ्गका ध्यान करते करते विषय वासनासे रहित मनको पूर्णरूपसे भगवान्‌में ऐसा तल्लीन कर दे कि फिर और किसी विषयका चिन्तन ही न हो। भगवान् विष्णुका वही परमपद है, उसे प्राप्त करके मन भगवत्प्रेमरूप आनन्दसे भर जाता है। यदि भगवान्‌का ध्यान करते समय मन रजोगुणसे विक्षिप्त या तमोगुणसे मूढ हो जाय तो घबड़ाना नहीं चाहिये। धैर्यके साथ योगधारणाके द्वारा उसे वशमें करना चाहिये, क्योंकि धारणा उक्त दोनों गुणोंके दोषोंको मिटा देती है। धारणा स्थिर हो जानेपर ध्यानमें जब योगी अपने परम मङ्गलमय आश्रय (भगवान्) को देखता है तब उसे तुरत ही भक्तियोगकी प्राप्ति हो जाती है ॥१५—२१॥

परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! शीघ्र ही मनुष्यके मनका मैल मिटा देनेवाली धारणा कैसी होती है, किसमें की जाती है और उसकी साधना क्या है? ॥ २२ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—परीक्षित्! साधकको पहले शरीरपर नियन्त्रण रखनेके लिये आसनकी, और क्रियाशक्तिको वशमें रखनेके लिये प्राणायामकी साधना करनी चाहिये। साथ ही मनसे आसक्तिका त्याग करते हुए इन्द्रियोंको भी वशमें करना चाहिये। फिर बुद्धिके द्वारा समझा बुझाकर अपने मनको भगवान्‌के स्थूल रूपमें लगाना चाहिये। यह सम्पूर्ण विश्व जो कुछ कभी था, है या होगा—सब का-सब जिसमें दीख पड़ता है, वह विराट्-समष्टि ही भगवान्‌का स्थूल-से स्थूल और विशेष शरीर है। जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति—इन सात आवरणोंसे घिरे हुए इस ब्रह्माण्ड शरीरमें जो विराट् पुरुष भगवान् हैं, वही धारणाके आश्रय हैं, उन्हींकी धारणा की जाती है। तत्त्वज्ञ पुरुष उनका इस प्रकार वर्णन करते हैं—पाताल विराट् पुरुषके तलवे हैं, उनकी एड़ियाँ और पंजे रसातल है, दोनों गुल्फ अर्थात् एड़ीके ऊपरकी गाँठें महातल हैं, उनके पैरके पिंडे तलातल हैं, विश्वमूर्ति भगवान्‌के दोनों घुटने सुतल हैं, जाँघें वितल और अतल हैं, पेड़ू भूतल है, और परीक्षित्! उनके नाभिरूप सरोवरको ही आकाश कहते हैं। आदिपुरुष परमात्माकी छातीको स्वर्लोक, गलेको महर्लोक, मुखको जनलोक और ललाटको तपोलोक कहते हैं। उन सहस्र सिरवाले भगवान्‌का सिर ही सत्यलोक है। इन्द्रादि देवता उनकी भुजाएँ हैं। दिशाएँ कान, और शब्द श्रवणेन्द्रिय है। अश्विनीकुमार उनकी नासिकाके छिद्र हैं, गन्ध घ्राणेन्द्रिय है और धधकती हुई आग उनका मुख है। व्यापक भगवान्‌के नेत्र अन्तरिक्ष हैं, उनमें देखनेकी शक्ति सूर्य है, दोनों पलकें रात और दिन हैं, उनका भ्रूविलास ब्रह्मलोक है। तालु जल है, और जिह्वा रस। वेद भगवान्‌के मस्तक हैं और यम दाढ़ें। सब प्रकारके स्नेह दाँत हैं और उनकी जगन्मोहिनी मायाको ही उनकी मुसकान कहते हैं। यह अनन्त सृष्टि उसी मायाका कटाक्ष विक्षेप है। लज्जा ऊपरका होठ और लोभ नीचेका होठ है। धर्म स्तन और अधर्म पीठ है। प्रजापति उनके मूत्रेन्द्रिय हैं, मित्रावरुण अण्डकोश हैं, समुद्र कोख है और बड़े-बड़े पर्वत उनकी हड्डियाँ हैं। विश्वमूर्ति विराट् पुरुषकी नाड़ियाँ नदियाँ हैं। वृक्ष रोम हैं। परम प्रबल वायु श्वास है। काल उनकी चाल है और गुणोंका चक्कर चलाते रहना ही उनकी क्रीडा है। परीक्षित्! बादल उनके केश हैं। सन्ध्या उन अनन्तका वस्त्र है। महात्माओंने अव्यक्त (मूलप्रकृति) को ही उनका हृदय बतलाया है और सब विकारोंका खजाना उनका मन चन्द्रमा कहा गया है। महत्तत्त्व सर्वात्मा भगवान्‌का चित्त है और रुद्र उनके अहङ्कार हैं। घोड़े, खच्चर, ऊँट और हाथी उनके नख हैं। वनमें रहनेवाले सारे पशु उनकी कमर हैं। तरह-तरहके पक्षी उनके अद्भुत कलाकौशल हैं। स्वायम्भुव मनु उनकी बुद्धि हैं और मनुकी सन्तान मनुष्य उनके निवासस्थान हैं। गन्धर्व, विद्याधर, चारण और अप्सराएँ उनके स्वर एवं स्मृति शक्ति हैं। दैत्य उनके वीर्य हैं, ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय भुजाएँ, वैश्य जङ्घाएँ और शूद्र चरण हैं।

अरक्षित भेड़ोंके समान एक क्षणमें ही लोगोंका नाश हो जायगा। राजाके नष्ट हो जानेपर धन आदि चुरानेवाले चोरोंसे प्रजाको बड़ा कष्ट होगा और उनके साथ सम्बन्ध न होनेपर भी हमें उसका पाप लगेगा। क्योंकि राजाके न रहनेपर लुटेरे बढ़ जाते हैं और वे आपसमें मार-पीट, गाली-गलौज करते हैं, साथ ही पशु, स्त्री और धन-सम्पत्ति भी लूट लेते हैं। उस समय मनुष्योंका वर्णाश्रमाचारयुक्त वैदिक आर्यधर्म लुप्त हो जाता है, अर्थ-लोभ और काम-वासनाके विवश होकर लोग कुत्तों और बन्दरोंके समान वर्णसङ्कर हो जाते हैं। फिर सम्राट् परीक्षित् तो बड़े ही यशस्वी और धर्मधुरन्धर हैं। उन्होंने बहुत-से अश्वमेध-यज्ञ किये हैं और वे भगवान्‌के परम प्यारे भक्त हैं; वे ही राजर्षि भूख-प्याससे व्याकुल होकर हमारे आश्रमपर आये थे, वे शापके योग्य कदापि नहीं हैं। इस नासमझ बालकने हमारे निष्पाप सेवक राजाका अपराध किया है, सर्वात्मा भगवान् कृपा करके इसे क्षमा करें। भगवान्‌के भक्तोंमें भी बदला लेनेकी शक्ति होती है; परन्तु वे दूसरोंके द्वारा किये हुए अपमान, धोखेबाजी, गाली-गलौज, आक्षेप और मार-पीटका कोई बदला नहीं लेते। ब्रह्मर्षि शमीकको पुत्रके अपराधपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। राजा परीक्षित्‌ने जो उनका अपमान किया था, उसपर तो उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। महात्माओंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि जब दूसरे लोग उन्हें सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें डाल देते हैं, तब भी वे प्रायः हर्षित या व्यथित नहीं होते; क्योंकि आत्माका स्वरूप तो गुणोंसे सर्वथा परे है ॥३८–५०॥

उन्नीसवाँ अध्याय

परीक्षित्‌का अनशन-व्रत और शुकदेवजीका उनके पास पधारना

सूतजी कहते हैं—राजधानीमें पहुँचनेपर राजा परीक्षित्‌को अपने उस निन्दनीय कर्मके लिये बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे अत्यन्त उदास हो गये और सोचने लगे—'मैंने निरपराध ब्राह्मणके साथ अनार्य पुरुषोंके समान बड़ा नीच व्यवहार किया। उन्होंने अपना तेज छिपा रक्खा था, नहीं तो उनके साथ ऐसा दुर्व्यवहार करनेकी मेरी हिम्मत ही न होती। यह बड़े खेदकी बात है। अवश्य ही उन महात्माके अपमानके फलस्वरूप शीघ्र-से-शीघ्र मुझपर कोई घोर विपत्ति आवेगी। मैं भी ऐसा ही चाहता हूँ, क्योंकि उससे मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जायगा और फिर कभी मैं ऐसा काम करनेका साहस नहीं करूँगा। मैं ब्राह्मणोंका कोपभाजन बना हूँ; अतः उनके क्रोधकी आग आज ही मेरे राज्य, सेना और भरे-पूरे खजानेको जलाकर खाक कर दे—जिससे फिर कभी मुझ दुष्टकी ब्राह्मण, देवता और गौओंके प्रति ऐसी पापबुद्धि न हो।' वे इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि उन्हें मालूम हुआ—ऋषिकुमारने मुझे शाप दे दिया है और मेरी मृत्युके रूपमें तक्षक मुझे डसेगा। उन्हें वह धधकती हुई आगके समान तक्षकका डसना बहुत भला मालूम हुआ। उन्होंने सोचा कि बहुत दिनोंसे मैं संसारमें आसक्त हो रहा था, अब मुझे शीघ्र वैराग्य होनेका कारण प्राप्त हो गया। वे इस लोक और परलोकके भोगोंको तो पहलेसे ही तुच्छ और त्याज्य समझते थे। अब उनका स्वरूपतः त्याग करके भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाको ही सर्वोपरि मानकर आमरण अनशन-व्रत लेकर वे गङ्गातटपर बैठ गये। गङ्गाजीका जल भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका वह पराग लेकर प्रवाहित होता है, जो श्रीमती तुलसीकी गन्धसे मिश्रित है। यही कारण है कि वे स्वर्गलोक और मर्त्यलोक—इतना ही क्यों, लोकपालोंके सहित समस्त लोकोंको पवित्र करती हैं। कौन ऐसा मरणासन्न पुरुष होगा, जो उनका सेवन न करेगा? ॥ १–६ ॥

इस प्रकार गङ्गाजीके तटपर आमरण अनशनका निश्चय करके उन्होंने समस्त आसक्तियोंका परित्याग कर दिया और वे मुनियोंका व्रत स्वीकार करके अनन्यभावसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करने लगे। उस समय त्रिलोकीको पवित्र करनेवाले बड़े-बड़े महानुभाव ऋषि-मुनि—जो अपने शिष्योंके साथ वहाँ पधारे। संतजन प्रायः तीर्थयात्राके बहाने स्वयं उन तीर्थस्थानोंको ही पवित्र करते हुए विचरते हैं। उस समय वहाँपर अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अङ्गिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाह, मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, भगवान् व्यास, नारद तथा इनके अतिरिक्त और भी कई देवर्षि, महर्षि तथा अरुणादि राजर्षियोंका शुभागमन हुआ। इस प्रकार ऋषियोंकी अनेक मण्डलियोंको सामने एकत्रित

नूपुर और हाथोंमें कंगन आदि आभूषण धारण किये हुए हैं। उनके बालोंकी लटें बहुत चिकनी, निर्मल, घुँघराली और नीली हैं। उनका मुख-कमल मन्द मन्द मुसकानसे खिल रहा है। लीलापूर्ण उन्मुक्त हास्य और चितवनसे फड़कती हुई भौंहोंके द्वारा वे भक्तजनोंपर अनन्त अनुग्रहकी वर्षा कर रहे हैं। जबतक मन इस धारणाके द्वारा स्थिर न हो जाय, तबतक बार बार इन चिन्तनस्वरूप भगवान्‌को देखते रहनेकी चेष्टा करनी चाहिये। भगवान्‌के चरण कमलोंसे लेकर उनके मुसकानयुक्त मुख कमलपर्यन्त समस्त अङ्गोंकी एक एक करके बुद्धिके द्वारा धारणा करनी चाहिये। जैसे जैसे बुद्धि शुद्ध होती जायगी, वैसे वैसे चित्त स्थिर होता जायगा। जब एक अङ्गका ध्यान ठीक ठीक होने लगे, तब उसे छोड़कर दूसरे अङ्गका ध्यान करना चाहिये। ये विश्वेश्वर भगवान् दृश्य नहीं, द्रष्टा हैं। सगुण, निर्गुण—सब कुछ इन्हींका स्वरूप है। जबतक इनमें अनन्य प्रेममय भक्तियोग न हो जाय, तबतक साधकको नित्य नैमित्तिक कर्मोंके बाद नियमपूर्वक भगवान्‌के उपर्युक्त स्थूल रूपका ही चिन्तन करना चाहिये ॥ ८–१४ ॥

परीक्षित्! जब योगी पुरुष इस मनुष्य लोकको छोड़ना चाहे, तब मनमें देश और कालका विचार न करे। सुख-पूर्वक स्थिर आसनसे बैठकर इन्द्रियोंको अपने-अपने गोलकोंमें स्थापित करके मनसे प्राणोंका संयम करे। तदनन्तर अपनी निर्मल बुद्धिसे मनको नियमित करके मनके साथ बुद्धिको क्षेत्रज्ञमें और क्षेत्रज्ञको अन्तरात्मामें लीन कर दे। फिर अन्तरात्माको परमात्मामें लीन करके धीर पुरुष उस परम शान्तिमय अवस्थामें स्थित हो जाय। इसीमें साधककी कृतकृत्यता है। फिर उसके लिये कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता। इस अवस्थामें सत्त्वगुण भी नहीं है, फिर रजोगुण और तमोगुणकी तो बात ही क्या है। अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृतिका भी वहाँ अस्तित्व नहीं है। उस स्थितिमें जब देवताओंके नियामक कालकी भी दाल नहीं गलती, तब देवता और उनके अधीन रहनेवाले प्राणी तो रह ही कैसे सकते हैं? योगी लोग 'यह नहीं, यह नहीं'—इस प्रकारके विचारसे परमात्मासे भिन्न पदार्थोंका त्याग करना चाहते हैं और शरीर तथा उसके सम्बन्धी पदार्थोंकी आसक्तिका त्याग करके अनन्य प्रेमसे परिपूर्ण हृदयके द्वारा पद पदपर भगवान्‌के जिस परम पूज्य स्वरूपका आलिङ्गन करते रहते हैं, वही भगवान् विष्णुका परम पद है—इस विषयमें समस्त शास्त्रोंकी सम्मति है ॥ १५–१८ ॥

ज्ञानदृष्टिके बलसे जिसका चित्त शुद्ध ब्रह्मरूपमें स्थित हो गया है, उस जितेन्द्रिय योगीको इस प्रकार अपने शरीरका त्याग करना चाहिये। पहले एड़ीसे अपनी गुदाको दबाकर स्थिर हो जाय और बिना घबड़ाहटके प्राणवायुको षट्चक्र भेदनकी रीतिसे ऊपर ले जाय। नाभिचक्र मणिपूरकमें स्थित वायुको हृदयचक्र अनाहतमेंसे ले जाय। वहाँसे उदानवायुके द्वारा वक्ष स्थलके ऊपर विशुद्ध चक्रमें ले जाय। मनस्वी योगीको चाहिये कि वहाँसे उस वायुको धीरे धीरे तालुमूलमें (विशुद्ध चक्रके अग्रभागमें) चढ़ा दे। तदनन्तर दो आँख, दो कान, दो नासाछिद्र और मुख—इन सातों छिद्रोंको रोककर उस तालुमूलमें स्थित वायुको भौंहोंके बीच आज्ञाचक्रमें ले जाय। यदि किसी लोकमें जानेकी इच्छा न हो, तो आधी घड़ीतक उस वायुको वहीं रोककर स्थिर लक्ष्यके साथ उसे सहस्रारमें ले जाकर परमात्मामें स्थित हो जाय। इसके बाद ब्रह्मरन्ध्रका भेदन करके शरीर इन्द्रियादिको छोड़ दे ॥ १९–२१ ॥

परीक्षित्! यदि योगीकी इच्छा हो कि मैं ब्रह्मलोकमें जाऊँ, आठों सिद्धियाँ प्राप्त करके आकाशचारी सिद्धोंके साथ विहार करूँ अथवा त्रिगुणमय ब्रह्माण्डके किसी भी प्रदेशमें विचरण करूँ, तो उसे मन और इन्द्रियोंको साथ ही लेकर शरीरसे निकलना चाहिये। योगियोंका शरीर वायुकी भाँति सूक्ष्म होता है। विद्या, तपस्या, योग और समाधिका सेवन करनेवाले योगियोंको त्रिलोकीके बाहर और भीतर सर्वत्र स्वच्छन्द रूपसे विचरण करनेका अधिकार होता है। केवल कर्मोंके द्वारा ऐसा बेरोक टोक विचरना नहीं हो सकता। परीक्षित्! योगी ज्योतिर्मय मार्ग सुषुम्णाके द्वारा जब ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थान करता है, तब पहले वह आकाश मार्गसे अग्निलोकमें जाता है, वहाँ उसके बचे खुचे मल भी जल जाते हैं। इसके बाद वह वहाँसे ऊपर भगवान्‌के कृपापात्र ध्रुवके निवासस्थान शिशुमार नामक ज्योतिर्मय चक्रपर पहुँचता है। शिशुमार चक्र विश्वब्रह्माण्डके भ्रमणका केन्द्र है। उसका अतिक्रमण करके अत्यन्त सूक्ष्म एवं निर्मल शरीरसे वह अकेला ही महर्लोकमें जाता है। वह लोक ब्रह्मवेत्ताओंके द्वारा भी वन्दित है और उसमें कल्पपर्यन्त जीवित रहनेवाले देवता विहार करते रहते हैं। फिर जब प्रलयका समय आता है, तब नीचेके लोकोंको शेषके मुखसे निकली हुई आगके द्वारा भस्म होते देख वह ब्रह्मलोकमें चला जाता है, जिस ब्रह्मलोकमें बड़े-बड़े सिद्धेश्वर

अरक्षित भेड़ोंके समान एक क्षणमें ही लोगोंका नाश हो जायगा। राजाके नष्ट हो जानेपर धन आदि चुरानेवाले चोरोंसे प्रजाको बड़ा कष्ट होगा और उनके साथ सम्बन्ध न होनेपर भी हमें उसका पाप लगेगा। क्योंकि राजाके न रहनेपर लुटेरे बढ़ जाते हैं और वे आपसमें मार-पीट, गाली-गलौज करते हैं, साथ ही पशु, स्त्री और धन-सम्पत्ति भी लूट लेते हैं। उस समय मनुष्योंका वर्णाश्रमाचारयुक्त वैदिक आर्यधर्म लुप्त हो जाता है, अर्थ-लोभ और काम-वासनाके विवश होकर लोग कुत्तों और बन्दरोंके समान वर्णसङ्कर हो जाते हैं। फिर सम्राट् परीक्षित् तो बड़े ही यशस्वी और धर्मधुरन्धर हैं। उन्होंने बहुत-से अश्वमेध-यज्ञ किये हैं और वे भगवान्‌के परम प्यारे भक्त हैं; वे ही राजर्षि भूख-प्याससे व्याकुल होकर हमारे आश्रमपर आये थे, वे शापके योग्य कदापि नहीं हैं। इस नासमझ बालकने हमारे निष्पाप सेवक राजाका अपराध किया है, सर्वात्मा भगवान् कृपा करके इसे क्षमा करें। भगवान्‌के भक्तोंमें भी बदला लेनेकी शक्ति होती है; परन्तु वे दूसरोंके द्वारा किये हुए अपमान, धोखेबाजी, गाली-गलौज, आक्षेप और मार-पीटका कोई बदला नहीं लेते। ब्रह्मर्षि शमीकको पुत्रके अपराधपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। राजा परीक्षित्‌ने जो उनका अपमान किया था, उसपर तो उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। महात्माओंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि जब दूसरे लोग उन्हें सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें डाल देते हैं, तब भी वे प्रायः हर्षित या व्यथित नहीं होते; क्योंकि आत्माका स्वरूप तो गुणोंसे सर्वथा परे है ॥३८–५०॥

उन्नीसवाँ अध्याय

परीक्षित्‌का अनशन-व्रत और शुकदेवजीका उनके पास पधारना

सूतजी कहते हैं—राजधानीमें पहुँचनेपर राजा परीक्षित्‌को अपने उस निन्दनीय कर्मके लिये बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे अत्यन्त उदास हो गये और सोचने लगे—'मैंने निरपराध ब्राह्मणके साथ अनार्य पुरुषोंके समान बड़ा नीच व्यवहार किया। उन्होंने अपना तेज छिपा रक्खा था, नहीं तो उनके साथ ऐसा दुर्व्यवहार करनेकी मेरी हिम्मत ही न होती। यह बड़े खेदकी बात है। अवश्य ही उन महात्माके अपमानके फलस्वरूप शीघ्र-से-शीघ्र मुझपर कोई घोर विपत्ति आवेगी। मैं भी ऐसा ही चाहता हूँ, क्योंकि उससे मेरे पापका प्रायश्चित्त हो जायगा और फिर कभी मैं ऐसा काम करनेका साहस नहीं करूँगा। मैं ब्राह्मणोंका कोपभाजन बना हूँ; अतः उनके क्रोधकी आग आज ही मेरे राज्य, सेना और भरे-पूरे खजानेको जलाकर खाक कर दे—जिससे फिर कभी मुझ दुष्टकी ब्राह्मण, देवता और गौओंके प्रति ऐसी पापबुद्धि न हो।' वे इस प्रकार चिन्ता कर ही रहे थे कि उन्हें मालूम हुआ—ऋषिकुमारने मुझे शाप दे दिया है और मेरी मृत्युके रूपमें तक्षक मुझे डसेगा। उन्हें वह धधकती हुई आगके समान तक्षकका डसना बहुत भला मालूम हुआ। उन्होंने सोचा कि बहुत दिनोंसे मैं संसारमें आसक्त हो रहा था, अब मुझे शीघ्र वैराग्य होनेका कारण प्राप्त हो गया। वे इस लोक और परलोकके भोगोंको तो पहलेसे ही तुच्छ और त्याज्य समझते थे। अब उनका स्वरूपतः त्याग करके भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी सेवाको ही सर्वोपरि मानकर आमरण अनशन-व्रत लेकर वे गङ्गातटपर बैठ गये। गङ्गाजीका जल भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका वह पराग लेकर प्रवाहित होता है, जो श्रीमती तुलसीकी गन्धसे मिश्रित है। यही कारण है कि वे स्वर्गलोक और मर्त्यलोक—इतना ही क्यों, लोकपालोंके सहित समस्त लोकोंको पवित्र करती हैं। कौन ऐसा मरणासन्न पुरुष होगा, जो उनका सेवन न करेगा? ॥ १–६ ॥

इस प्रकार गङ्गाजीके तटपर आमरण अनशनका निश्चय करके उन्होंने समस्त आसक्तियोंका परित्याग कर दिया और वे मुनियोंका व्रत स्वीकार करके अनन्यभावसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करने लगे। उस समय त्रिलोकीको पवित्र करनेवाले बड़े-बड़े महानुभाव ऋषि-मुनि—जो अपने शिष्योंके साथ वहाँ पधारे। संतजन प्रायः तीर्थयात्राके बहाने स्वयं उन तीर्थस्थानोंको ही पवित्र करते हुए विचरते हैं। उस समय वहाँपर अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान्, अरिष्टनेमि, भृगु, अङ्गिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद, इध्मवाहु, मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, भगवान् व्यास, नारद तथा इनके अतिरिक्त और भी कई देवर्षि, महर्षि तथा अरुणादि राजर्षियोंका शुभागमन हुआ। इस प्रकार ऋषियोंकी अनेक मण्डलियोंको सामने एकत्रित

आराधन करना चाहिये। आयुकी इच्छासे अश्विनीकुमारोंका, पुष्टिकी इच्छासे पृथ्वीका और प्रतिष्ठाकी चाह हो तो लोकमाता पृथ्वी और द्यौ (आकाश) का सेवन करना चाहिये। सौन्दर्यकी चाहसे गन्धर्वोंकी, पत्नीकी प्राप्तिके लिये उर्वशी अप्सराकी और सबका स्वामी बननेके लिये ब्रह्माकी आराधना करनी चाहिये। जिसे यशकी इच्छा हो वह यज्ञपुरुषकी, जिसे खजानेकी लालसा हो वह वरुणकी, विद्या प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षा हो तो भगवान् शङ्करकी और पति पत्नीमें परस्पर प्रेम बनाये रखनेके लिये पार्वतीजीकी उपासना करनी चाहिये। धर्म उपार्जन करनेके लिये विष्णुभगवान्‌की, वंश परम्पराकी रक्षाके लिये पितरोंकी, बाधाओंसे बचनेके लिये यक्षोंकी और बलवान् होनेके लिये मरुद्गणोंकी आराधना करनी चाहिये। राज्यके लिये मन्वन्तरोंके अधिपतियोंको, अभिचारके लिये निर्ऋतिको, भोगोंके लिये चन्द्रमाको और निष्कामता प्राप्त करनेके लिये परम पुरुष नारायणको भजना चाहिये। और जो बुद्धिमान् पुरुष है—वह चाहे निष्काम हो, समस्त कामनाओंसे युक्त हो अथवा मोक्ष चाहता हो—उसे तो तीव्र भक्तियोगसे केवल पुरुषोत्तम भगवान्‌की ही आराधना करनी चाहिये। जितने भी उपासक हैं, उनका सबसे बड़ा हित इसीमें है कि वे भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका सङ्ग करके भगवान्‌में अविचल प्रेम प्राप्त कर लें। ऐसे पुरुषोंके सत्सङ्गमें जो भगवान्‌की लीला कथाएँ होती हैं, उनसे संसार सागरकी त्रिगुणमयी तरङ्गमालाओंके थपेड़े शान्त हो जाते हैं, हृदय शुद्ध होकर आनन्दका अनुभव होने लगता है, इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्ति नहीं रहती, कैवल्यमोक्षका सर्वसम्मत मार्ग भक्तियोग प्राप्त हो जाता है। भगवान्‌की ऐसी रसमयी कथाओंमें, जिसे उनका चस्का लग गया है, भला कौन ऐसा है जो प्रेम न करे? ॥१–१२॥

शौनकजी बोले—सूतजी! राजा परीक्षित्‌ने शुकदेवजी की यह बात सुनकर उनसे और क्या पूछा? वे तो सर्वज्ञ होनेके साथ ही साथ मधुर वर्णन करनेमें भी बड़े निपुण थे। सूतजी! आप तो सब कुछ जानते हैं। हमलोग उनकी वह बातचीत बड़े प्रेमसे सुनना चाहते हैं, आप कृपा करके अवश्य सुनाइये। क्योंकि संतोंकी सभामें ऐसी ही बातें होती हैं, जो भगवान्‌की रसमयी लीलाओंसे ओत प्रोत रहती हैं। राजा परीक्षित् स्वयं बड़े भारी भक्त थे। सुनते हैं कि वे बचपनमें जब खिलौनोंसे खेलते थे, तब भी श्रीकृष्णकी लीलाओंसे सम्बन्ध रखनेवाले खेलोंसे ही प्रेम करते थे। भगवन्मय श्रीशुकदेवजी भी जन्मसे ही भगवत्परायण हैं। इन दोनों संतोंके सत्सङ्गमें भगवान्‌के मङ्गलमय दिव्य गुणोंका गायन अवश्य ही हुआ होगा। जिसका समय भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंके गायन अथवा श्रवणमें व्यतीत हो रहा है, उसके अतिरिक्त सभीकी आयु व्यर्थ जा रही है। ये भगवान् सूर्य प्रतिदिन अपने उदय और अस्तसे उनकी आयु छीनते जा रहे हैं। जीनेके लिये तो वृक्ष भी जीते ही हैं! क्या लोहारकी धौंकनी साँस नहीं लेती? गाँवके पालतू जानवर क्या मनुष्योंकी ही तरह खाते पीते या मल मूत्र त्याग नहीं करते? तब उनमें और मनुष्योंमें अन्तर ही क्या है? जिसने भगवान् श्रीकृष्णकी लीला कथा कभी नहीं सुनी, वह नर पशु, कुत्ते, ग्रामसूकर, ऊँट और गधेसे भी गया बीता है॥ १३–१९॥

सूतजी! मनुष्यके जो कान भगवान् श्रीकृष्णकी कथा कभी नहीं सुनते, वे बिलके समान हैं। जो जीभ भगवान्‌की लीलाओंका गायन नहीं करती, वह मेढककी जीभके समान टर्र टर्र करनेवाली है, उसका तो न रहना ही अच्छा है। जो सिर कभी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें झुकता नहीं, वह रेशमी वस्त्रसे सुसज्जित और मुकुटसे युक्त होनेपर भी बोझा मात्र ही है। जो हाथ भगवान्‌की सेवा पूजा नहीं करते, वे सोनेके कंगनसे भूषित होनेपर भी मुर्देके हाथ हैं। जो आँखें भगवान्‌की याद दिलानेवाली मूर्ति, तीर्थ, नदी आदिका दर्शन नहीं करतीं, वे मोरोंकी पाँखमें बने हुए आँखोंके चिह्नके समान निरर्थक हैं। मनुष्योंके वे पैर चलनेकी शक्ति रखनेपर भी न चलनेवाले पेड़ोंसे भी गये बीते हैं, जो भगवान्‌की लीला स्थलियोंकी यात्रा नहीं करते। जिस मनुष्यने भगवत्प्रेमी संतोंके चरणोंकी धूल कभी सिरपर नहीं चढ़ायी, वह जीता हुआ भी मुर्दा है। जिस मनुष्यने भगवान्‌के चरणोंपर चढ़ी हुई तुलसीकी सुगन्ध नहीं ली, वह श्वास लेता हुआ भी श्वासरहित शव है। सूतजी! वह हृदय नहीं है, वज्र है, जो भगवान्‌के मङ्गलमय नामोंका श्रवण कीर्तन करनेपर भी पिघलकर उन्हींकी ओर बह नहीं जाता। जिस समय हृदय पिघल जाता है, उस समय नेत्रोंमें आँसू छलकने लगते हैं और शरीरका रोम रोम खिल उठता है—पुलकित हो जाता है। प्रिय सूतजी! आपकी वाणी हमारे हृदयको मधुरतासे भर देती है। इसलिये भगवान्‌के परम भक्त, आत्मविद्याविशारद श्रीशुकदेवजीने परीक्षित्‌के सुन्दर प्रश्न करनेपर जो कुछ कहा, वह सब संवाद आप कृपा करके हमलोगोंको सुनाइये॥ २०–२५॥

तथा अपने-आपको जबतक उनके चरणोंमें समर्पित नहीं कर देते, तबतक उन्हें कल्याणकी प्राप्ति नहीं होती। जिनके प्रति आत्मसमर्पणकी ऐसी महिमा है, उन कल्याणमयी कीर्त्तिवाले भगवान्‌को बार-बार नमस्कार है। किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन और खस आदि नीच जातियाँ तथा दूसरे पापी, जिनके शरणागत भक्तोंकी शरण ग्रहण करनेसे ही पवित्र हो जाते हैं, उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को बार-बार नमस्कार है। वे ही भगवान् ज्ञानियोंके आत्मा हैं, भक्तोंके स्वामी हैं, कर्मकाण्डियोंके लिये वेदमूर्त्ति हैं, धार्मिकोंके लिये धर्ममूर्त्ति हैं और तपस्वियोंके लिये तपस्वरूप हैं। ब्रह्मा, शङ्कर आदि बड़े-बड़े देवता भी अपने शुद्ध हृदयसे उनके स्वरूपका चिन्तन करते और आश्चर्यचकित होकर देखते रहते हैं। वे मुझपर अपने अनुग्रहकी—प्रसादकी वर्षा करें। जो समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी लक्ष्मीदेवीके पति हैं, समस्त यज्ञोंके भोक्ता एवं फलदाता हैं, प्रजाके रक्षक हैं, सबके अन्तर्यामी और समस्त लोकोंके पालनकर्ता हैं तथा पृथ्वीदेवीके स्वामी हैं, और जिन्होंने यदुवंशमें प्रकट होकर अन्धक, वृष्णि और यदुवंशके लोगोंकी रक्षा की है, तथा जो उन लोगोंके एकमात्र रक्षक रहे हैं—वे भक्तवत्सल, संतजनोंके सर्वस्व श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों। जिनके चरणकमलोंके चिन्तनरूप समाधिसे बुद्धि शुद्ध हो जाती है और उसके द्वारा आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होने लगता है, तथा उनके दर्शनके अनन्तर विद्वान् पुरुष अपनी अपनी मति और रुचिके अनुसार जिनके स्वरूपका वर्णन करते रहते हैं, वे प्रेम और मुक्तिके लुटानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण मुझपर प्रसन्न हों। जिन्होंने सृष्टिके समय ब्रह्माके हृदयमें पूर्व कल्पकी स्मृति जागरित करनेके लिये ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवीको प्रेरित किया और वे अपने अङ्गोंके सहित वेदके रूपमें उनके मुखसे प्रकट हुईं—वे ज्ञानके मूल कारण भगवान् मुझपर कृपा करें, मेरे हृदयमें प्रकट हों। भगवान् ही पञ्चमहाभूतोंसे इन शरीरोंका निर्माण करके इनमें जीवरूपसे शयन करते हैं और पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण और एक मन—इन सोलह कलाओंसे युक्त होकर इनके द्वारा सोलह विषयोंका भोग करते हैं। वे सर्वभूतमय भगवान् मेरी वाणीको अपने गुणोंसे अलङ्कृत कर दें। संत पुरुष जिनके मुख कमलसे मकरन्दके समान झरती हुई ज्ञानमयी सुधाका पान करते रहते हैं, उन परम तेजस्वी भगवान् व्यासके चरणोंमें मेरा बार-बार नमस्कार है ॥१२–२४॥

परीक्षित्! तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें जो कुछ मैं कहने जा रहा हूँ, उसे पहले-पहल भगवान् नारायणने ब्रह्माको उपदेश किया था। यद्यपि ब्रह्माका हृदय वेदोंके ज्ञानसे निरन्तर परिपूर्ण रहता है, फिर भी वह वेदोंका सार उनके लिये एक अपूर्व वस्तु था; इसीलिये वेदोंके बाद भी उसके उपदेशकी आवश्यकता हुई। और नारदके प्रश्न करनेपर इसीको ब्रह्माजीने उन्हें सुनाया था ॥२५॥



पाँचवाँ अध्याय

भगवान्‌के विराट्‌रूपसे जगत्‌की उत्पत्तिका वर्णन

नारदजीने पूछा—पिताजी! आप केवल मेरे ही नहीं, सबके पिता हैं। बड़े-बड़े देवता आपको अपनेसे श्रेष्ठ मानते हैं। आप मुझे ऐसा ज्ञान दीजिये, जिससे आत्मा परमात्माका तत्त्व ठीक ठीक मालूम हो जाय। पिताजी! इस संसारका क्या लक्षण है? इसका आधार क्या है? इसका निर्माण किसने किया है? इसका प्रलय किसमें होता है? यह किसके अधीन है? और वास्तवमें यह है क्या वस्तु? आप कृपा करके इसका तत्त्व बतलाइये। आप तो सब कुछ जानते हैं, क्योंकि जो कुछ हुआ है या होगा, उसके स्वामी आप ही हैं। यह सारा संसार हथेलीपर रक्खे हुए निर्मल जलके समान आपकी ज्ञानदृष्टिके अन्तर्गत ही है। पिताजी! आपको यह ज्ञान कहाँसे मिला? आप किसके आधारपर ठहरे हुए हैं! आपका स्वामी कौन है? और आपका स्वरूप क्या है? आप अकेले ही अपनी मायासे पञ्चभूतोंके द्वारा प्राणियोंकी सृष्टि कर लेते हैं, कितना अद्भुत है! जैसे मकड़ी अनायास ही अपने मुँहसे जाला निकालकर उसमें खेलने लगती है, वैसे ही आप अपनी शक्तिके आश्रयसे जीवोंको अपनेमें ही उत्पन्न करते हैं और फिर भी आपमें कोई विकार नहीं होता। जगत्‌में नाम, रूप और गुणोंसे जो कुछ जाना जाता है, उसमें ऐसी कोई सत्-असत्, उत्तम-मध्यम या अधम वस्तु नहीं दिखलायी देती, जो आपके सिवा और किसीसे उत्पन्न हुई हो। इस प्रकार सबके ईश्वर होकर भी आपने

उत्पन्न हुई। साथ ही ज्ञानशक्तिरूप बुद्धि और क्रियाशक्तिरूप प्राण भी तैजस अहङ्कारसे ही उत्पन्न हुए॥ २१-३१॥

नारद! तुम तो ब्रह्मज्ञानियोंके शिरोमणि हो। तुमसे यह बात छिपी नहीं है कि जिस समय ये पञ्चभूत, इन्द्रिय, मन और सत्त्व आदि तीनों गुण परस्पर सगठित नहीं थे, तब अपने रहनेके लिये भोगोंके साधनरूप शरीरकी रचना नहीं कर सके। जब भगवान्‌ने इन्हें अपनी शक्तिसे प्रेरित किया, तब ये तत्त्व परस्पर एक दूसरेके साथ मिल गये और उन्होंने आपसमें कार्य-कारणभाव स्वीकार करके व्यष्टि समष्टिरूप पिण्ड और ब्रह्माण्डकी रचना की। वह ब्रह्माण्डरूप अंडा एक सहस्र वर्षतक जलमें पड़ा रहा, फिर काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार करनेवाले भगवान्‌ने उसे सजीव कर दिया। उस अंडेको फोड़कर वही विराट् पुरुष निकला, जिसकी जङ्घा, चरण, भुजाएँ, नेत्र, मुख और सिर सहस्रोंकी सख्यामें हैं। विद्वान् पुरुष उपासनाके लिये उसीके अङ्गोंमें समस्त लोक और उनमें रहनेवाली वस्तुओंकी कल्पना करते हैं। उसकी कमरसे नीचेके अङ्गोंमें सातों पाताल हैं और उससे ऊपरके अङ्गोंमें सातों स्वर्ग हैं। ब्राह्मण इस विराट् पुरुषका मुख हैं, भुजाएँ क्षत्रिय हैं, ऊरुसे वैश्य और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुए हैं। पैरोंसे लेकर कटिपर्यन्त सातों पाताल और भूलोककी कल्पना की गयी है, नाभिमें भुवर्लोककी, हृदयमें स्वर्लोककी और परमात्माके वक्ष स्थलमें महर्लोककी कल्पना की गयी है। उसके गलेमें जनलोक, दोनों स्तनोंमें तपोलोक और मस्तकमें ब्रह्माका नित्य निवासस्थान सत्यलोक है। उस विराट् पुरुषकी कमरमें अतल, ऊरुओंमें वितल, घुटनोंमें सुतल और जङ्घाओंमें तलातलकी कल्पना की गयी है। एड़ीके ऊपरकी गाँठोंमें महातल, पंजे और एड़ियोंमें रसातल और तलुओंमें पाताल समझना चाहिये। इस प्रकार विराट् पुरुष सर्वलोकमय है। विराट् भगवान्‌के अङ्गोंमें इस प्रकार भी लोकोंकी कल्पना की जाती है कि उनके चरणोंमें पृथ्वी है, नाभिमें भुवर्लोक है और सिरमें स्वर्लोक है॥३२—४२॥

छठा अध्याय

विराट् स्वरूपकी विभूतियोंका वर्णन

ब्रह्माजीने कहा—उसी विराट् पुरुषके मुखसे वाणी और उसके अधिष्ठातृदेवता अग्नि उत्पन्न हुए हैं। गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, पङ्क्ति और जगती—ये सातों छन्द उसकी सात धातुओंसे निकले हैं। मनुष्यों, पितरों और देवताओंके भोजन करनेयोग्य अमृतमय अन्न, सब प्रकारके रस, रसनेन्द्रिय और उसके अधिष्ठातृ देवता वरुण विराट् पुरुषकी जिह्वासे उत्पन्न हुए हे। उनके नासाछिद्रोंसे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान—ये पाँचों प्राण और वायु तथा घ्राणेन्द्रियसे अश्विनीकुमार, समस्त ओषधियाँ एव साधारण तथा विशेष गन्ध उत्पन्न हुए हैं। उनका नेत्रेन्द्रिय रूप और तेजकी, तथा नेत्र गोलक स्वर्ग और सूर्यकी जन्मभूमि हैं। समस्त दिशाएँ और पवित्र करनेवाले तीर्थ कानोंसे तथा आकाश और शब्द श्रोत्रेन्द्रियसे निकले है। उनका शरीर ससारकी सभी वस्तुओंके सारभाग तथा सौन्दर्यका खजाना है। सारे यज्ञ, स्पर्श और वायु उनकी त्वचासे निकले हैं, उनके रोम पृथ्वीको भेदकर निकलनेवाले कुश और ओषधि आदिके जन्मस्थान है। इन्हीं वस्तुओंके द्वारा यज्ञ सम्पन्न होते हैं। उनके केश, दाढ़ी मूँछ और नखोंसे मेघ, बिजली, शिला एव लोहा आदि धातुएँ तथा भुजाओंसे ससारकी रक्षा करनेवाले लोकपाल प्रकट हुए हैं। उनका चलना फिरना भूः, भुवः, स्वः तीनों लोकोंका निर्माता है। उनके चरणकमल प्राप्तकी रक्षा करते हैं और भयोंको भगा देते हैं तथा समस्त कामनाओंकी पूर्ति उन्हींसे होती है। विराट् पुरुषका लिङ्ग जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ और प्रजापतिका आधार है, तथा उनकी जननेन्द्रिय मैथुनजनित आनन्दका उद्गम है। नारदजी! विराट् पुरुषकी पायु इन्द्रिय यम, मित्र और मलत्यागका, तथा गुदाद्वार हिंसा, निर्ऋति, मृत्यु और नरकका उत्पत्तिस्थान है। उनकी पीठसे पराजय, अधर्म और अज्ञान, नाड़ियोंसे नद नदी और हड्डियोंसे पर्वतोंका निर्माण हुआ है। उनके उदरमें विभिन्न रसोंके सातों अव्यक्त समुद्र, समस्त प्राणी और उनकी मृत्यु समायी हुई है। उनका हृदय ही मनकी जन्मभूमि है। नारद! हम, तुम, धर्म, सनकादि, शङ्कर, विज्ञान और अन्तःकरण—सब-के-सब उनके चित्तके आश्रित हैं। कहाँतक गिनावें—मैं, तुम, तुम्हारे बड़े भाई सनकादि, शङ्कर, देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग, रेंगनेवाले जन्तु, गन्धर्व, अप्सराएँ, यक्ष, राक्षस,

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत

द्वितीय स्कन्ध

पहला अध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ध्यानविधि तथा भगवान्‌के विराट्स्वरूपका वर्णन

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही उत्तम है । क्योंकि यह तुम्हारे साथ ही सब लोगोंका कल्याण करनेवाला है । मनुष्योंके लिये जितनी भी बातें सुनने, स्मरण करने या कीर्त्तन करनेकी हैं, उन सबमें यह श्रेष्ठ है । यही कारण है कि आत्मज्ञानी महापुरुष ऐसे प्रश्नका बड़ा आदर करते हैं । राजेन्द्र ! जो लोग घरके काम-धंधोंमें अत्यन्त आसक्त हो रहे हैं, वे अपने जीवनका वास्तविक लाभ नहीं जानते । इसलिये उन्हें हजारों बातें सुननेयोग्य और कहनेयोग्य रहती हैं । उनकी सारी उम्र यों ही बीत जाती है । उनकी रात तो नींद या स्त्री-प्रसङ्गसे कटती है, और दिन धनकी हाय-हाय या कुटुम्बियोंके लालन-पालनमें समाप्त हो जाता है । यद्यपि संसारमें जिन्हें अपना अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धी कहा जाता है, वे शरीर, पुत्र, स्त्री आदि कुछ नहीं हैं, असत् हैं, परन्तु जीव उनमें इतना रम जाता है; उनके मोहमें ऐसा पागल-सा हो जाता है कि रात-दिन उनको मृत्युका ग्रास होते देखकर भी चेतता नहीं । इसलिये परीक्षित् ! जो अभय-पदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी ही लीलाओंका श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण करना चाहिये । मनुष्य-जीवनका यही—इतना ही लाभ है कि चाहे जैसे हो—ज्ञानसे, भक्तिसे अथवा अपने धर्मकी निष्ठासे अपने जीवनको ऐसा बना लिया जाय कि मृत्युके समय भगवान्‌की स्मृति अवश्य बनी रहे । परीक्षित् ! साधारण पुरुषोंकी तो बात ही क्या है जो निर्गुण स्वरूपमें स्थित और गुणातीत हो चुके हैं, जो विधि-निषेधकी मर्यादाको लाँघ चुके हैं, वे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी प्रायः भगवान्‌के अनन्त कल्याणमय गुणगणोंके श्रवण-कीर्त्तनमें रमे रहते हैं ॥ १—७ ॥

परीक्षित् ! जिसे मैं तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ, यह भगवद्रूप अथवा वेदतुल्य श्रीमद्भागवत नामका महापुराण है । अपने पिता श्रीकृष्ण द्वैपायनसे द्वापरके अन्तमें मैंने इसका अध्ययन किया था । मैं निर्गुणस्वरूप परमात्मामें अत्यन्त निष्ठावान् हूँ । फिर भी भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंने बलात् मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित कर लिया । यही कारण है कि मैंने इस पुराणका अध्ययन किया । तुम भगवान्‌के परम भक्त हो, इसलिये तुम्हें मैं इसे सुनाऊँगा । जो इसके प्रति श्रद्धा रखते हैं, उनकी चित्तवृत्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रेमके साथ बहुत शीघ्र लग जाती है । जो लोग लोक या परलोककी किसी भी वस्तुकी इच्छा रखते हैं, या इसके विपरीत संसारमें दुःखका अनुभव करके जो उससे विरक्त हो गये हैं और मोक्षपदको प्राप्त करना चाहते हैं, उन साधकोंके लिये, और योगसम्पन्न सिद्ध ज्ञानियोंके लिये भी समस्त शास्त्रोंका यही निर्णय है कि वे भगवान्‌के नामोंका प्रेमसे सङ्कीर्तन करें । समस्त कर्मोंकी अपेक्षा नामसङ्कीर्तनकी यह विशेषता है कि उसमें किसी प्रकारके प्रत्यवायका भय नहीं है । जो विषयोंमें लगकर अपनी भलाईको भूल गया है, उसकी आयु चाहे बहुत लंबी ही क्यों न हो, अनजानमें व्यर्थ ही बीती जा रही है । उस आयुसे भला क्या लाभ ? अपने जीवनकी वह घड़ी-दो-घड़ी भी, जो भगवान्‌का श्रवण-कीर्त्तन आदि करते हुए बितायी जाती है, बड़े महत्त्वकी है; क्योंकि उसीसे भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है । राजर्षि खट्वाङ्गकी बात तो तुम्हें मालूम ही है उन्हें जब अपनी आयुके सम्बन्धमें मालूम हो गया कि वह तो दो ही घड़ी और बाकी है, तब उन्होंने उस दो

कि उसके बनाये हुए जगत्को भी ठीक ठीक नहीं समझ सकते, अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार ही अटकल लगाते हैं ॥३३–३६॥

हमलोग केवल भगवान्के अवतारकी लीलाओंका गायन ही करते रहते हैं, उनके तत्त्वको नहीं जानते। उन भगवान्के श्रीचरणोंमें मैं नमस्कार करता हूँ। वे अजन्मा एव पुरुषोत्तम हैं। प्रत्येक कल्पमें वे स्वय अपने-आपमें अपने-आपकी ही सृष्टि करते हैं, रक्षा करते है और सहार कर लेते हैं। वे मायाके लेशसे रहित, केवल ज्ञानस्वरूप हैं और अन्तरात्माके रूपमें एकरस स्थित हैं। वे तीनों कालमें एकरस, सत्य एव परिपूर्ण है, न उनका आदि है और न अन्त। वे तीनों गुणोंसे रहित, सनातन एव अद्वितीय हैं। नारद! महात्मालोग जिस समय अपने अन्तःकरण, इन्द्रिय और शरीरको शान्त कर लेते हैं, उस समय उनका साक्षात्कार करते हैं। परन्तु जब असत्पुरुषोंके द्वारा कुतर्कोंका जाल बिछाकर उनको ढक दिया जाता है, तब उनके दर्शन नहीं हो पाते ॥ ३७–४० ॥

मैंने तुम्हे बतलाया कि परमात्माका पहला अवतार विराट् पुरुष है; उसके सिवा काल, स्वभाव, कार्य, कारण, मन, पञ्चभूत, अहङ्कार, तीनों गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड शरीर, उसका अभिमानी, स्थावर और जङ्गम जीव—सब-के-सब उन अनन्त भगवान्के ही रूप हैं। मैं, शङ्कर, विष्णु, दक्ष आदि प्रजापति, तुम और तुम्हारे जैसे अन्य भक्तजन, स्वर्गलोकके रक्षक, पक्षियोंके राजा, मनुष्यलोकके राजा, नीचेके लोकोंके राजा; गन्धर्व, विद्याधर और चारणोंके अधिनायक, यक्ष, राक्षस, साँप और नागोंके स्वामी; महर्षि, पितृपति, दैत्येन्द्र, सिद्धेश्वर, दानवराज, और भी प्रेत पिशाच, भूत कूष्माण्ड, जलजन्तु, मृग और पक्षियोंके स्वामी, एव ससारमें और भी जितनी वस्तुएँ ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रियबल, मनोबल, शरीरबल या क्षमासे युक्त हैं, अथवा जो भी विशेष सौन्दर्य, लज्जा, वैभव तथा विभूतिसे युक्त हैं; एव जितनी भी वस्तुएँ अद्भुत वर्णवाली, रूपवान् या अरूप हैं—वे सब-के-सब परमतत्त्वमय भगवत्स्वरूप ही हैं। नारद! इनके सिवा परम पुरुष परमात्माके परम पवित्र एव प्रधान प्रधान लीलावतार भी हैं। उनका मैं क्रमशः वर्णन करता हूँ। उनके चरित्र सुननेमें बड़े मधुर एव हृदय तथा श्रवणेन्द्रियके दोषोंको दूर करनेवाले हैं। तुम सावधान होकर उनका श्रवण करो ॥ ४१–४५ ॥

सातवाँ अध्याय

भगवान्के लीलावतार

ब्रह्माजी कहते हैं—भगवान्ने प्रलयके जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये समस्त यज्ञोंका आश्रय वराह शरीर ग्रहण किया था। जब वे पृथ्वीको लेकर जलमेंसे बाहर निकल रहे थे, आदिदैत्य हिरण्याक्ष जलके अदर ही लड़नेके लिये उनके सामने आया। जैसे इन्द्रने अपने वज्रसे पर्वतोंके पख काट डाले थे, वैसे ही वराह भगवान्ने अपनी दाढ़ोंसे उसके टुकड़े टुकड़े कर दिये ॥ १ ॥

फिर उन्हीं प्रभुने रुचि नामक प्रजापतिकी पत्नी आकूतिके गर्भसे सुयज्ञके रूपमें अवतार ग्रहण किया। उस अवतारमें उन्होंने दक्षिणा नामकी पत्नीसे सुयम नामके देवताओंको उत्पन्न किया और तीनों लोकोंके बड़े बड़े सङ्कट हर लिये। सङ्कट हर लेनेके कारण ही उनके नाना स्वायम्भुव मनुने इन्हें 'हरि' के नामसे पुकारा ॥ २ ॥

कर्दम प्रजापतिके घर देवहूतिके गर्भसे नौ बहिनोंके साथ भगवान्ने कपिलके रूपमें अवतार ग्रहण किया। उन्होंने अपनी माताको उस आत्मज्ञानका उपदेश किया, जिससे वे इसी जन्ममें अपने हृदयके सम्पूर्ण मल—तीनों गुणोंकी आसक्तिका सारा कीचड़ धोकर कपिल भगवान्के वास्तविक स्वरूपको प्राप्त हो गयीं ॥ ३ ॥

महर्षि अत्रि भगवान्को पुत्ररूपमें प्राप्त करना चाहते थे। उनपर प्रसन्न होकर भगवान्ने उनसे एक दिन कहा कि 'मैंने अपने आपको तुम्हें दे दिया।' इसीसे अवतार लेनेपर भगवान्का नाम 'दत्त' (दत्तात्रेय) पड़ा। उनके चरणकमलोंकी धूलसे अपने शरीरको पवित्र करके राजा यदु और सहस्रार्जुन आदिने योगकी भोग और मोक्ष दोनों ही सिद्धियाँ प्राप्त कीं ॥ ४ ॥

विविध देवताओंके नामसे जो बड़े-बड़े द्रव्यमय यज्ञ किये जाते हैं, वे उनके कर्म हैं। परीक्षित्! विराट् भगवान्के स्थूल शरीरका यही स्वरूप है, सो मैंने तुम्हें सुना दिया। इससे भिन्न और कोई वस्तु नहीं है। बुद्धिके द्वारा मनको समझा-बुझाकर इस स्थूल रूपमें स्थिर करना चाहिये। जैसे स्वप्न देखनेवाला स्वप्नावस्थामें अपने-आपको ही विविध पदार्थोंके रूपमें देखता है, वैसे ही समस्त बुद्धि-वृत्तियोंके द्वारा अनुभवमें आनेवाला सब कुछ सबके द्रष्टा परमात्माका ही स्वरूप है। उन सत्यस्वरूप आनन्दनिधि भगवान्का ही भजन करना चाहिये और किसी भी वस्तुमें आसक्ति नहीं होनी चाहिये। क्योंकि यह आसक्ति जीवके अधःपतनका हेतु है ॥ २३—३९ ॥

दूसरा अध्याय

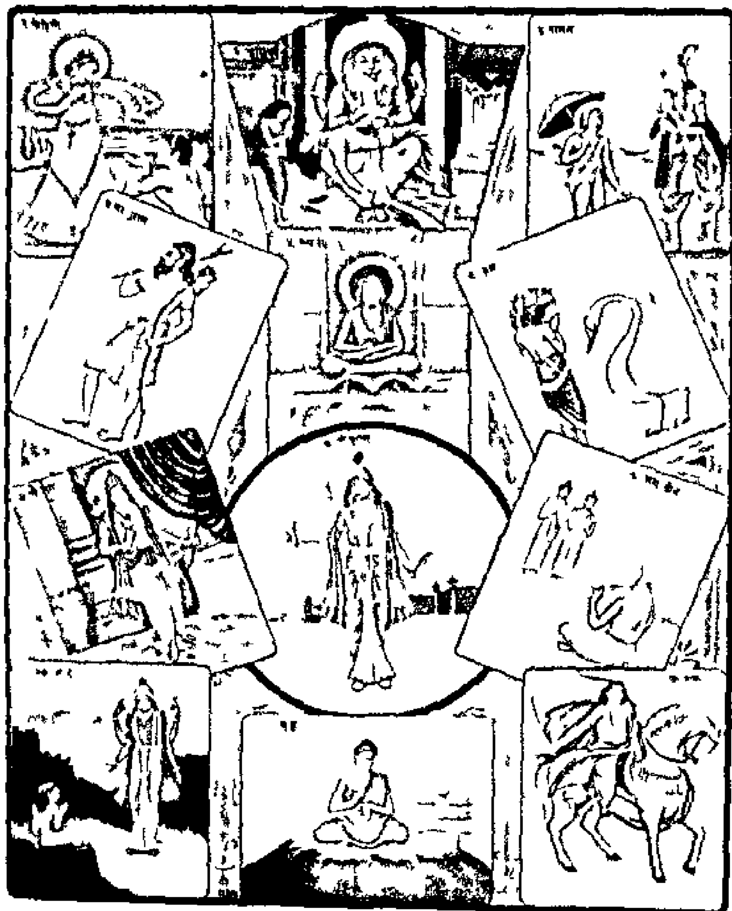
भगवान्के स्थूल और सूक्ष्म रूपोंकी धारणा तथा क्रममुक्ति और सद्योमुक्तिका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—सृष्टिके प्रारम्भमें ब्रह्माजीने भी यही धारणा की थी। इसीसे प्रसन्न होकर भगवान्ने उन्हें प्रलयके पहलेकी स्मृति, जो विलुप्त हो गयी थी, दे दी। भगवान्के स्मृति-दानसे ब्रह्माकी दृष्टि अमोघ एवं उनकी बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी। इसके बाद ब्रह्माजीने इस जगत्को वैसे ही रच डाला, जैसा कि यह प्रलयके पहले था ॥ १ ॥

वेदोंके वर्णनकी शैली बड़ी विचित्र है। उसके तात्पर्यको न समझकर साधारण लोगोंकी बुद्धि व्यर्थ ही स्वर्गादि लोकोंके नामोंके चक्करमें फँस जाती है—जीव उन लोकोंकी वासनाओंसे युक्त होकर भटकने लगता है; किन्तु उन मायामय लोकोंमें कहीं भी उसे सच्चे सुखकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिये विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह विविध नामवाले पदार्थोंसे उतना ही व्यवहार करे, जितनेकी उसे अनिवार्य आवश्यकता हो। अपनी बुद्धिको उनकी निस्सारताके निश्चयसे परिपूर्ण रक्खे और एक क्षणके लिये भी असावधान न हो। यदि संसारके पदार्थ प्रारब्धवश बिना परिश्रमके यों ही मिल जायँ, तब उनके उपार्जनका परिश्रम व्यर्थ समझकर उनके लिये कोई प्रयत्न न करे। जब जमीनपर सोनेका काम चल सकता है, तब पलँगके लिये प्रयत्न करनेसे क्या प्रयोजन? जब भुजाएँ अपनेको भगवान्की कृपासे स्वयं ही मिली हुई हैं, तो तकियोंकी क्या आवश्यकता? जब अञ्जलिसे काम चल सकता है, तब बहुतसे बर्तन क्यों बटोरें? वृक्षकी छाल पहनकर या वस्त्रहीन रहकर भी यदि जीवन धारण किया जा सकता है, तो वस्त्रोंकी क्या आवश्यकता? पहननेको क्या रास्तोंमें चिथड़े नहीं हैं? भूख लगनेपर दूसरोंके लिये ही शरीर धारण करनेवाले वृक्ष क्या फल-फूलकी भिक्षा नहीं देंगे? जल चाहनेवालोंके लिये नदियाँ क्या बिल्कुल सूख गयी हैं? रहनेके लिये क्या पहाड़ोंकी गुफाएँ खाली नहीं मिलतीं? क्या किसीने उनपर पहरा बिठा रक्खा है? अरे भाई, सब न सही, भगवान् तो अपने शरणागतोंकी रक्षा करते ही हैं न? ऐसी स्थितिमें बुद्धिमान् लोग भी धनके नशेमें चूर घमंडी धनियोंकी चापलूसी क्यों करते हैं? इस प्रकार विरक्त हो जानेपर अपने हृदयमें नित्य विराजमान, स्वतःसिद्ध, आत्मस्वरूप, परम प्रियतम, परम सत्य जो अनन्त भगवान् हैं, बड़े प्रेम और आनन्दसे दृढ़ निश्चय करके उन्हींका भजन करे; क्योंकि उनके भजनसे जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाले अज्ञानका नाश हो जाता है। पशुओंकी बात तो अलग है; परन्तु मनुष्योंमें भला ऐसा कौन है, जो लोगोंको इस संसाररूप वैतरणी नदीमें गिरकर अपने कर्मजन्य दुःखोंको भोगते हुए देखकर भी भगवान्का मङ्गलमय चिन्तन नहीं करेगा, इन विषय-भोगोंमें ही अपने चित्तको भटकने देगा? ॥ २–७ ॥

कोई-कोई साधक अपने शरीरके भीतर हृदयाकाशमें विराजमान भगवान्के प्रादेशमात्र स्वरूपकी धारणा करते हैं। वे ऐसा ध्यान करते हैं कि भगवान्की चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म हैं। वे मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं। मुखपर प्रसन्नता झलक रही है। कमलके समान विशाल और कोमल नेत्र हैं। कदम्बके पुष्पोंकी केसरके समान पीला वस्त्र धारण किये हुए हैं। भुजाओंमें हीरोंसे जड़े हुए सोनेके बाजूबंद शोभायमान हैं। सिरपर बड़ा ही सुन्दर रत्नमय मुकुट और कानोंमें कुण्डल हैं, जिनमें जड़े हुए लाल जगमगा रहे हैं। उनके चरण-कमल योगेश्वरोंके खिले हुए हृदयकमलकी कर्णिकापर विराजित हैं। उनके हृदयपर श्रीवत्सका चिह्न—एक सुनहरी रेखा है। गलेमें कौस्तुभमणि लटक रही है। वक्षःस्थलपर कभी न कुम्हलानेवाली वनमाला सुशोभित है। वे कमरमें बहुमूल्य करधनी, अँगुलियोंमें अँगूठी, चरणोंमें





भगवान्‌के चौबीस अवतार

विमानोंपर निवास करते हैं। उस ब्रह्मलोककी आयु ब्रह्माकी आयुके समान ही दो परार्द्धकी है; वहाँ न शोक है न दुःख, न बुढ़ापा है न मृत्यु। फिर वहाँ किसी प्रकारका उद्वेग या भय तो हो ही कैसे सकता है? वहाँ यदि दुःख है तो केवल एक बातका, वह यही कि इस परमपदको न जाननेवाले लोगोंके जन्म-मृत्युमय अत्यन्त घोर सङ्कटोंको देखकर दयावश वहाँके लोगोंके हृदयमें बड़ी व्यथा होती है। सत्यलोकमें पहुँचनेके पश्चात् वह योगी निर्भय होकर अपने सूक्ष्म शरीरको पृथ्वीसे मिला देता है और फिर उतावली न करते हुए सात आवरणोंका भेदन करता है। पृथ्वीरूपसे जलको और जलरूपसे अग्निमय आवरणोंको प्राप्त होकर वह ज्योतिरूपसे वायुरूप आवरणमें आ जाता है, और वहाँसे समयपर ब्रह्मकी अनन्तताका बोध करानेवाले आकाशरूप आवरणको प्राप्त करता है। इस प्रकार स्थूल आवरणोंको पार करते समय उसकी इन्द्रियाँ भी अपने सूक्ष्म अधिष्ठानमें लीन होती जाती हैं। घ्राणेन्द्रिय गन्धतन्मात्रामें, रसना रसतन्मात्रामें, नेत्र रूपतन्मात्रामें, त्वचा स्पर्शतन्मात्रामें, श्रोत्र शब्दतन्मात्रामें और कर्मेन्द्रिय अपनी-अपनी क्रियाशक्तिमें मिलकर अपने-अपने सूक्ष्म स्वरूपको प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार योगी पञ्चभूतोंके स्थूल-सूक्ष्म आवरणोंको पार करके अहङ्कारमें प्रवेश करता है। वहाँ सूक्ष्म भूतोंको तामस अहङ्कारमें, इन्द्रियोंको राजस अहङ्कारमें तथा मन और इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवताओंको सात्त्विक अहङ्कारमें लीन कर देता है। इसके बाद अहङ्कारके सहित लयरूप गतिके द्वारा महत्तत्त्वमें प्रवेश करके अन्तमें समस्त गुणोंके लयस्थान प्रकृतिरूप आवरणमें जा मिलता है। परीक्षित्! महाप्रलयके समय प्रकृतिरूप आवरणका भी लय हो जानेपर वह योगी स्वयं आनन्दस्वरूप होकर आनन्दस्वरूप शान्त परमात्माको प्राप्त हो जाता है। जिसे इस भगवन्मयी गतिकी प्राप्ति हो जाती है, उसे फिर इस संसारमें नहीं आना पड़ता। परीक्षित्! तुमने जो पूछा था, उसके उत्तरमें मैंने वेदोक्त द्विविध सनातन मार्ग—सद्योमुक्ति और क्रममुक्तिका वर्णन किया। पहले ब्रह्माजीने भगवान् वासुदेवकी आराधना करके उनसे यही प्रश्न किया था और उन्होंने उत्तरमें यही बात ब्रह्माजीको समझायी थी॥ २२—३२॥

जो लोग संसार-कारागारमें पड़े हुए हैं, उन्हें जिस साधनके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य प्रेममयी भक्ति प्राप्त हो जाय, उसके अतिरिक्त और कोई भी कल्याणकारी मार्ग नहीं है। भगवान् ब्रह्माने एकाग्र चित्तसे सारे वेदोंका तीन बार निरीक्षण करके अपनी बुद्धिसे यही निश्चय किया कि जिससे सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अनन्य प्रेम प्राप्त हो, वही सर्वश्रेष्ठ धर्म है। समस्त चर-अचर प्राणियोंमें उनके आत्माके रूपसे भगवान् श्रीकृष्ण ही विराजमान हैं। क्योंकि ये बुद्धि आदि दृश्य पदार्थ उनका अनुमान करानेवाले लक्षण हैं, वे इन सबके साक्षी एकमात्र द्रष्टा हैं। परीक्षित्! इसलिये मनुष्योंको चाहिये कि सब समय और सभी स्थितियोंमें अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे भगवान् श्रीहरिका ही श्रवण, कीर्त्तन और स्मरण करें। राजन्! संत पुरुष आत्मस्वरूप भगवान्की कथाका मधुर अमृत बाँटते ही रहते हैं; जो अपने कानके दोनोंमें भर-भरकर उसका पान करते हैं, उनके हृदयसे विषयोंका विषैला प्रभाव जाता रहता है, वह शुद्ध हो जाता है, और वे भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी सन्निधि प्राप्त कर लेते हैं॥ ३३—३७॥

तीसरा अध्याय

कामनाओंके अनुसार विभिन्न देवताओंकी उपासना तथा भगवद्भक्तिके प्राधान्यका निरूपण

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! तुमने मुझसे जो पूछा था कि मरते समय बुद्धिमान् मनुष्यको क्या करना चाहिये, उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया। अब मैं तुम्हें भिन्न-भिन्न कामनाओंकी पूर्त्तिके उपाय भी बताता हूँ। जो ब्रह्मतेजका इच्छुक हो वह बृहस्पतिकी, जिसे इन्द्रियोंकी विशेष शक्तिकी कामना हो वह इन्द्रकी और जिसे सन्तानकी लालसा हो, वह प्रजापतियोंकी उपासना करे। जिसे लक्ष्मी चाहिये वह मायादेवीकी, जिसे तेज चाहिये वह अग्निकी, जिसे धन चाहिये वह वसुओंकी और जिस प्रभावशाली पुरुषको वीरताकी चाह हो, उसे रुद्रोंकी उपासना करनी चाहिये। जिसे बहुत अन्न प्राप्त करनेकी इच्छा हो वह अदितिका, जिसे स्वर्गकी कामना हो वह अदितिके पुत्र देवताओंका, जिसे राज्यकी अभिलाषा हो वह विश्वेदेवोंका और जो प्रजाको अपने अनुकूल बनानेकी इच्छा रखता हो उसे साध्य देवताओंका

चाक्षुष मन्वन्तरके अन्तमें भावी मनु सत्यव्रतने मत्स्यरूपमें भगवान्‌को प्राप्त किया था। उस समय पृथ्वीरूप नौकाके आश्रय होनेके कारण वे ही समस्त जीवोंके आश्रय बने। प्रलयके उस भयङ्कर जलमें मेरे मुखसे गिरे हुए वेदोंको लेकर वे उसीमें विहार करते रहे ॥१२॥

जब मुख्य मुख्य देवता और दानव अमृतकी प्राप्तिके लिये क्षीरसागरको मथ रहे थे, तब भगवान्‌ने कच्छपके रूपमें अपनी पीठपर मन्दराचल धारण किया। उस समय पर्वतके घूमनेसे उसकी रगड़से उनकी पीठकी खुजलाहट थोड़ी मिट गयी, जिससे वे कुछ क्षणोंतक सुखकी नींद सो सके ॥१३॥

देवताओंका महान् भय मिटानेके लिये उन्होंने नृसिंहका रूप धारण किया। उनका वह रूप बड़ा भयङ्कर था। उड़ती हुई भौंहें और तीखी दाढ़ोंसे उनका मुख बड़ा भयावना लगता था। हिरण्यकशिपु उन्हें देखते ही हाथमें गदा लेकर उनपर टूट पड़ा। इसपर भगवान् नृसिंहने दूरसे ही उसे पकड़कर अपनी जाँघोंपर डाल लिया और उसके छटपटाते रहनेपर भी अपने नखोंसे उसकी अँतड़ियाँ फाड़ डालीं ॥१४॥

बड़े भारी सरोवरमें महाबली ग्राहने गजेन्द्रका पैर पकड़ लिया। जब बहुत थककर वह घबड़ा गया, तब उसने अपनी सूँडमें कमल लेकर भगवान्‌को पुकारा—'हे आदिपुरुष! हे समस्त लोकोंके स्वामी! हे श्रवणमात्रसे कल्याणकारी नामोंवाले!' उसकी पुकार सुनकर सर्वशक्तिमान् भगवान् चक्रपाणि गरुडपर चढ़कर वहाँ आये और अपने चक्रसे उन्होंने ग्राहका मुँह फाड़ डाला। इस प्रकार कृपापरवश भगवान्‌ने अपने शरणागत गजेन्द्रकी सूँड पकड़कर उस विपत्तिसे उसका उद्धार किया ॥१५ १६॥

यों तो भगवान् अदितिके पुत्रोंमें सब देवताओंसे छोटे थे, परन्तु गुणोंकी दृष्टिसे वे सबसे बड़े थे। क्योंकि यज्ञपुरुष भगवान्‌ने इस वामनावतारमें सब लोकोंको अपने चरणोंसे ही नाप लिया था। वामन बनकर उन्होंने तीन पग पृथ्वीके बहाने बलिसे सारी पृथ्वी ले तो ली, परन्तु इससे यह बात सिद्ध कर दी कि सन्मार्गपर चलनेवाले पुरुषोंको याचनाके सिवा और किसी उपायसे समर्थ पुरुष भी अपने स्थानसे नहीं हटा सकते, ऐश्वर्यसे च्युत नहीं कर सकते। दैत्यराज बलिने अपने सिरपर स्वयं वामनभगवान्‌का चरणधोवन धारण किया था। ऐसी स्थितिमें उन्हें जो देवताओंके राजा इन्द्रकी पदवी मिली, वह कोई उनके लिये बड़ी बात नहीं थी। कितने महान् थे वे! अपने गुरु शुक्राचार्यके मना करनेपर भी वे अपनी प्रतिज्ञासे तनिक भी विचलित न हुए। और तो क्या, भगवान्‌का तीसरा पग पूरा करनेके लिये भगवान्‌के चरणोंपर सिर रखकर उन्होंने अपने आपको समर्पित कर दिया ॥१७ १८॥



नारद! तुम्हारे अत्यन्त प्रेमभावसे प्रसन्न होकर हंसके रूपमें भगवान्‌ने तुम्हें योग, ज्ञान और आत्मतत्त्वको प्रकाशित करनेवाले भागवतधर्मका उपदेश किया। वह केवल भगवान्‌के शरणागत भक्तोंको ही सुगमतासे प्राप्त होता है। वे ही भगवान् स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरोंमें मनुके रूपमें अवतार लेकर मनुवंशकी रक्षा करते हुए दसों दिशाओंमें अपने सुदर्शनचक्रके समान तेजसे बेरोक टोक निष्कण्टक राज्य करते हैं। तीनों लोकोंके ऊपर सत्यलोकतक उनके पवित्र चरित्रकी कीर्ति फैल जाती है और उसी रूपमें वे समय समयपर पृथ्वीके भारभूत दुष्ट राजाओंका दमन भी करते रहते हैं ॥१९ २०॥

स्वनामधन्य भगवान् धन्वन्तरि अपने नामसे ही बड़े-बड़े रोगियोंके रोग नष्ट कर देते हैं। उन्होंने अमृत पिलाकर देवताओंको अमर कर दिया और दैत्योंके द्वारा हरण किये हुए उनके यज्ञभाग उन्हें फिरसे दिला दिये। उन्होंने ही अवतार लेकर संसारमें आयुर्वेदका प्रवर्तन किया ॥२१॥

जब संसारमें ब्राह्मणद्रोही, आर्यमर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले नारकीय क्षत्रिय अपने नाशके लिये ही दैववश बढ़ जाते हैं और पृथ्वीके काँटे बन जाते हैं, तब भगवान्

चौथा अध्याय

राजाका सृष्टिविषयक प्रश्न और शुकदेवजीका कथारम्भ

सूतजीने कहा—शुकदेवजीके वचन भगवत्तत्त्वका निश्चय करानेवाले थे। उत्तरानन्दन राजा परीक्षित्ने उन्हें सुनकर अपनी शुद्ध बुद्धि भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य भावसे समर्पित कर दी। उनका राज्य निष्कण्टक था। शरीर, पत्नी, पुत्र, महल, पशु, धन और भाई-बन्धुओंकी कमी नहीं थी। बहुत दिनोंके अभ्यासके कारण उनमें ममता भी हो गयी थी। परन्तु श्रीशुकदेवजीके वचन सुनकर एक क्षणमें ही इन्होंने उस ममताका त्याग कर दिया। शौनकादि ऋषियो! महामनस्वी परीक्षित्ने अपनी मृत्युका निश्चित समय जान लिया था। इसलिये उन्होंने धर्म, अर्थ और कामसे सम्बन्ध रखनेवाले जितने भी कर्म थे, उनका संन्यास कर दिया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णमें सुदृढ़ आत्मभावको प्राप्त होकर बड़ी श्रद्धासे भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा सुननेके लिये उन्होंने श्रीशुकदेवजीसे यही प्रश्न किया, जिसे आप लोग पूछ रहे हैं ॥ १–४ ॥

परीक्षित्ने पूछा—भगवत्स्वरूप मुनिवर! आप परम पवित्र और सर्वज्ञ हैं। आपने जो कुछ कहा है, वह सत्य एवं उचित है। आप ज्यों-ज्यों भगवान्की कथा कहते जा रहे हैं, त्यों-त्यों मेरे अज्ञानका परदा फटता जा रहा है। मैं आपसे फिर भी यह जानना चाहता हूँ कि भगवान् अपनी मायासे इस संसारकी सृष्टि कैसे करते हैं। इस संसारकी रचना तो इतनी रहस्यमयी है कि ब्रह्मादि समर्थ लोकपाल भी इसके सम्बन्धमें भूल कर बैठते हैं। भगवान् कैसे इस विश्वकी रक्षा और फिर संहार करते हैं? अनन्तशक्ति परमात्मा किन-किन शक्तियोंका आश्रय लेकर अपने-आपको ही खिलौने बनाकर खेलते हैं। वे बच्चोंके बनाये हुए घरौंदोंकी तरह ब्रह्माण्डोंको कैसे बनाते हैं और फिर किस प्रकार बात-की-बातमें मिटा देते हैं? भगवान् श्रीहरिकी लीलाएँ बड़ी ही अद्भुत—अचिन्त्य हैं। इसमें सन्देह नहीं कि बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी उनकी लीलाका रहस्य समझना अत्यन्त कठिन प्रतीत होता है। भगवान् तो अकेले ही हैं। वे बहुत-से कर्म करनेके लिये पुरुषरूपसे प्रकृतिके विभिन्न गुणोंको एक साथ ही धारण करते हैं अथवा अनेकों अवतार ग्रहण करके उन्हें क्रमशः धारण करते हैं? मुनिवर! आप वेद और ब्रह्मतत्त्व दोनोंके पूर्ण मर्मज्ञ हैं, इसलिये मेरे इस सन्देहका निवारण कीजिये ॥५–१०॥

सूतजी कहते हैं—जब राजा परीक्षित्ने भगवान्के गुणोंका वर्णन करनेके लिये उनसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब श्रीशुकदेवजीने भगवान् श्रीकृष्णका बार-बार स्मरण करके अपना प्रवचन प्रारम्भ किया ॥११॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—उन पुरुषोत्तम भगवान्के चरणकमलोंमें मेरे कोटि-कोटि प्रणाम हैं, जो संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करनेके लिये सत्त्व, रज तथा तमोगुणरूप तीन शक्तियोंको स्वीकार कर ब्रह्मा, विष्णु और शङ्करका रूप धारण करते हैं; जो समस्त चर, अचर प्राणियोंके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हैं; जिनका स्वरूप और उसकी उपलब्धिका मार्ग बुद्धिका विषय नहीं है; जो स्वयं अनन्त हैं, जिनकी महिमा अनन्त है। हम पुनः बार-बार उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं, जो सत्पुरुषोंका दुःख मिटाकर उन्हें अपने प्रेमका दान करते हैं, दुष्टोंकी सांसारिक बढ़ती रोककर उन्हें मुक्ति देते हैं, और जो लोग परमहंस आश्रममें स्थित हैं, उन्हें भी उनकी अभीष्ट वस्तुका दान करते हैं। क्योंकि चर-अचर समस्त प्राणी ही उनकी मूर्त्ति हैं इसलिये किसीसे भी उनका पक्षपात नहीं है। जो बड़े ही भक्तवत्सल हैं और हठपूर्वक भक्तिहीन साधन करनेवाले लोग जिनकी छाया भी नहीं छू सकते; जिनके समान किसीका भी ऐश्वर्य नहीं है, फिर उससे अधिक तो हो ही कैसे सकता है,—ऐसे ऐश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्णको, जो निरन्तर ब्रह्मस्वरूप अपने धाममें विहार करते रहते हैं, मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। जिनका कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, श्रवण और पूजन जीवोंके पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है, उन पुण्यकीर्त्ति भगवान् श्रीकृष्णको बार-बार नमस्कार है। विवेकी पुरुष जिनके चरणकमलोंकी शरण लेकर अपने हृदयसे इस लोक और परलोककी आसक्ति निकाल डालते हैं और बिना किसी परिश्रमके ही ब्रह्मपदको प्राप्त कर लेते हैं, उन मङ्गलमय कीर्त्तिवाले भगवान् श्रीकृष्णको अनेक बार नमस्कार है। बड़े-बड़े तपस्वी, दानी, यशस्वी, मनस्वी, सदाचारी और मन्त्रवेत्ता अपनी साधनाओंको

सामने आयेंगे, उन सबको वे बलराम, भीमसेन और अर्जुन आदि नामोंके बहाने मारकर अपने ही धाममें भेज देंगे ॥२६—३५॥

समयके फेरसे लोगोंकी समझ कम हो जाती है, आयु भी कम होने लगती है। उस समय जब भगवान् देखते हैं कि अब ये लोग मेरे तत्त्वको बतलानेवाली वेदवाणीको समझनेमें असमर्थ होते जा रहे हैं, तब प्रत्येक कल्पमें सत्यवतीके गर्भसे व्यासके रूपमें प्रकट होकर वे वेदरूपी वृक्षको विभिन्न शाखाओंके रूपमें बाँट देते हैं ॥ ३६ ॥

देवताओंके शत्रु दैत्यलोग भी वेदमार्गका सहारा लेकर मयदानवके बनाये हुए अदृश्य वेगवाले नगरोंमें रहकर लोगोंका सत्यानाश करने लगते हैं, तब भगवान् लोगोंकी बुद्धिमें मोह और अत्यन्त लोभ उत्पन्न करनेवाला वेष धारण करके बुद्धके रूपमें बहुत से उपधर्मोंका उपदेश करते हैं। कलियुगके अन्तमें जब सत्पुरुषोंके घर भी भगवान्की कथा होनेमें बाधा पड़ जायगी, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पाखण्डी हो जायँगे और शूद्र राजा, यहाँतक कि कहीं भी 'स्वाहा', 'स्वधा' और 'वषट्कार' की ध्वनि—देवता पितरोंके यज्ञ श्राद्धकी बाततक नहीं सुनायी पड़ेगी, तब कलियुगका शासन करनेके लिये भगवान् कल्कि अवतार ग्रहण करेंगे ॥ ३७—३८ ॥

जब संसारकी रचनाका समय होता है, तब तपस्या, नौ प्रजापति, मरीचि आदि ऋषि और मेरे रूपमें, जब सृष्टिकी रक्षाका समय होता है तब धर्म, विष्णु, मनु, देवता और राजाओंके रूपमें, तथा जब सृष्टिके प्रलयका समय होता है तब अधर्म, रुद्र और क्रोधके अधीन दैत्य आदिके रूपमें सर्वशक्तिमान् भगवान्की माया विभूतियाँ ही प्रकट होती हैं। जो पुरुष अपनी प्रतिभाके बलसे पृथ्वीके एक एक धूलि-कणको गिन चुका है, वह भी भगवान्की शक्तियोंकी गणना नहीं कर सकता। जब वे त्रिविक्रम अवतार लेकर त्रिलोकीको नाप रहे थे, उस समय उनके चरणोंके अदम्य वेगसे पातालसे लेकर सत्यलोकतक काँपने लगे थे। तब उन्होंने ही अपनी शक्तिसे उनकी रक्षा की। और कर ही कौन सकता था? समस्त सृष्टिकी रचना और संहार करनेवाली माया उनकी एक शक्ति है। ऐसी ऐसी अनन्त शक्तियोंके आश्रय उनके स्वरूपको न मैं जानता हूँ और न तुम्हारे बड़े भाई सनकादि ही। फिर दूसरोंका तो कहना ही क्या है। आदिदेव भगवान् शेष सहस्रमुखसे उनके गुणोंका गायन करते आ रहे हैं, परन्तु वे अब भी उसके अन्तकी कल्पना नहीं कर सके। जो निष्कपट भावसे अपना सर्वस्व और अपने आपको भी उनके चरणकमलोंमें निछावर कर देते हैं, उनपर वे अनन्त भगवान् स्वयं ही अपनी ओरसे दया करते हैं और उनकी दयाके पात्र ही उनकी मायाका स्वरूप जानते हैं और उसके पार जा पाते हैं। वास्तवमें ऐसे पुरुष ही कुत्ते और सियारोंके कलेवारूप इस शरीरमें 'यह मैं हूँ और यह मेरा है'—ऐसा भाव नहीं करते। प्यारे नारद! परम पुरुषकी उस योगमायाको मैं जानता हूँ। तथा तुमलोग, भगवान् शङ्कर, दैत्यकुलभूषण प्रह्लाद, शतरूपा, मनु, मनुपुत्र प्रियव्रत आदि, प्राचीनबर्हि, ऋभु और ध्रुव भी जानते हैं। इनके सिवा इक्ष्वाकु, पुरूरवा, मुचुकुन्द, जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, ययाति आदि तथा मान्धाता, अलर्क, शतधन्वा, अनु, रन्तिदेव, भीष्म, बलि, अमूर्त्तरय, दिलीप, सौभरि, उत्तङ्क, शिबि, देवल, पिप्पलाद, सारस्वत, उद्धव, पराशर, भूरिषेण, एवं विभीषण, हनुमान्, परीक्षित्, अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर और श्रुतदेव आदि महात्मा भी जानते हैं। जो भगवान्के प्रेमी भक्तोंके समान स्वभाव बनानेकी शिक्षा ग्रहण करते हैं, वे स्त्री, शूद्र, हूण, भील और पापके कारण पशु-पक्षी आदि योनियोंमें रहनेवाले भी भगवान्की मायाका रहस्य जान जाते हैं और इस संसार सागरसे सर्वदाके लिये पार हो जाते हैं। फिर जो लोग वैदिक सदाचारका पालन करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ ३९—४६ ॥

परमात्माका वास्तविक स्वरूप एकरस, शान्त, अभय एवं केवल ज्ञानस्वरूप है। न उसमें मायाका मल है और न तो उसके द्वारा रची हुई विषमताएँ ही। वह सत् और असत् दोनोंसे परे है। किसी भी वैदिक या लौकिक शब्दकी वहाँतक पहुँच नहीं है। अनेक प्रकारके साधनोंसे सम्पन्न होनेवाले कर्मोंका फल भी वहाँतक नहीं पहुँच सकता। और तो क्या, स्वयं माया भी उसके सामने नहीं जा पाती, लजाकर भाग खड़ी होती है। परमपुरुष भगवान्का वही परमपद है। महात्मालोग उसीका शोकरहित अनन्त आनन्दस्वरूप ब्रह्मके रूपमें साक्षात्कार करते हैं। संयमशील पुरुष उसीमें अपने मनको समाहित करके स्थित हो जाते हैं, उन्हें भेद दूर करनेवाले ज्ञान-साधनोंकी भी उसी प्रकार आवश्यकता नहीं रहती, जिस प्रकार मेघरूपसे स्वयं प्रकाशित इन्द्रको कुँआ खोदनेके साधन कुदाल आदिकी, वे उन्हें छोड़ देते हैं। समस्त कर्मोंके फल भी भगवान् ही देते हैं। क्योंकि मनुष्य अपने स्वभावके अनुसार जो शुभकर्म करता है, वह सब उन्हींकी प्रेरणासे होता है। इस शरीरमें रहनेवाले पञ्चभूत जब अलग अलग हो जाते हैं—यह शरीर जब नष्ट हो जाता है, तब

एकाग्र चित्तसे घोर तपस्या की, इस बातसे मुझे खेद भी हो रहा है और बहुत बड़ी शङ्का भी हो रही है कि आपसे बड़ा भी कोई है क्या। पिताजी! आप सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं। जो कुछ मैं पूछ रहा हूँ, वह सब आप कृपा करके मुझे इस ढंगसे समझाइये कि मैं ठीक-ठीक वैसा ही समझ सकूँ ॥१-८॥

ब्रह्माजीने कहा—बेटा नारद! तुम्हारी शङ्काएँ बहुत सुन्दर हैं; क्योंकि मैं जानता हूँ कि यह प्रश्न तुमने अपने लिये नहीं, संसारके जीवोंके लिये उनपर कृपा करके किया है। तुम्हारे इस प्रश्नसे मेरा भी लाभ ही हुआ है, क्योंकि इसके द्वारा मुझे भगवान्‌की लीलाओंके वर्णनका सुअवसर मिला है। तुम्हारा स्वभाव बड़ा ही सौम्य है। तुमने मेरे विषयमें जो कुछ कहा है, वह भी असत्य नहीं है। क्योंकि जबतक मुझसे परेका तत्त्व—जो स्वयं भगवान् ही हैं—जान नहीं लिया जाता, तबतक मेरा ऐसा ही प्रभाव प्रतीत होता है। जैसे सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और तारे उन्हींके प्रकाशसे प्रकाशित होकर जगत्‌में प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही मैं भी उन्हीं स्वयंप्रकाश भगवान्‌के चिन्मय प्रकाशसे प्रकाशित होकर संसारको प्रकाशित कर रहा हूँ। भगवान्‌की मायापर विजय पाना कठिन है। उसीसे मोहित होकर लोग मुझे सृष्टिकर्ता कहा करते हैं। मैं उन्हीं मायापति भगवान्‌को नमस्कार करके उनका ध्यान करता हूँ। यह माया तो उनकी आँखोंके सामने ठहरती ही नहीं, झेंपकर दूरसे ही भाग जाती है। परन्तु संसारके अज्ञानी जन उसीसे मोहित होकर 'यह मैं हूँ, यह मेरा है' इस प्रकार बलकते रहते हैं। भगवत्स्वरूप नारद! तुम तो यह जानते ही हो कि संसारके मूल कारणके रूपमें जिन वस्तुओंकी कल्पना की गयी है, उनका नाम चाहे कुछ भी क्यों न हो—द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव अथवा जीव—वास्तवमें भगवान्‌से भिन्न कुछ भी नहीं है। वेदभगवान् नारायणके परायण हैं, उन्हींकी महिमाका गायन करते हैं; उनमें वर्णित देवता भी नारायणके ही अङ्गोंमें कल्पित हुए हैं। समस्त यज्ञ भी नारायणकी प्रसन्नताके लिये ही हैं, और उनसे जिन लोकोंकी प्राप्ति होती है, वे भी नारायणमें ही कल्पित हैं। सब प्रकारके योग भी नारायणकी प्राप्तिके ही हेतु हैं। सारी तपस्याएँ नारायणकी ओर ही ले जानेवाली हैं, ज्ञानके द्वारा भी नारायण ही जाने जाते हैं। समस्त साध्य और साधनोंका पर्यवसान भगवान् नारायणमें ही है। वे द्रष्टा होनेपर भी ईश्वर हैं, स्वामी हैं; निर्विकार होनेपर भी सर्वस्वरूप हैं। उन्होंने ही मुझे बनाया और उनकी दृष्टिसे ही प्रेरित होकर मैं उनके इच्छानुसार सृष्टि-रचना करता हूँ। भगवान् मायाके गुणोंसे रहित एवं अनन्त हैं। सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिये रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुण—ये तीन गुण मायाके द्वारा उनमें स्वीकार किये गये हैं। ये ही तीनों द्रव्य, ज्ञान और क्रियाका आश्रय लेकर मायातीत नित्यमुक्त पुरुषको ही मायामें स्थित होनेपर कार्य, कारण और कर्तापनके अभिमानसे बाँध लेते हैं। नारद! इन्द्रियातीत भगवान् गुणोंके इन तीन आवरणोंसे अपने स्वरूपको ढक लेते हैं, इसलिये लोग उनको नहीं जान पाते। सारे संसारके और मेरे भी एकमात्र स्वामी वे ही हैं ॥ ९-२० ॥

मायापति भगवान्‌ने एकसे बहुत होनेकी इच्छा होनेपर अपनी मायासे अपने स्वरूपमें स्वयं प्राप्त काल, कर्म और स्वभावको स्वीकार कर लिया। भगवान्‌की शक्तिसे ही कालने तीनों गुणोंमें क्षोभ उत्पन्न कर दिया, स्वभावने उन्हें रूपान्तरित कर दिया और कर्मने महत्तत्त्वको जन्म दिया, फिर रजोगुण और तमोगुणकी वृद्धि होनेपर महत्तत्त्वका जो विकार हुआ, उससे ज्ञान, क्रिया और द्रव्यरूप तमःप्रधान अहङ्कार बना। यह अहङ्कार भी विकारको प्राप्त होकर तीन प्रकारका हो गया। उसके भेद हैं—वैकारिक, तैजस और तामस। वे क्रमशः ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और द्रव्यशक्तिप्रधान हैं। जब तामस अहङ्कारमें विकार हुआ, तब उससे आकाशकी उत्पत्ति हुई। उसकी तन्मात्रा और गुण शब्द है। इस शब्दके द्वारा ही द्रष्टा और दृश्यका बोध होता है। जब आकाशमें विकार हुआ, तब उससे वायुकी उत्पत्ति हुई; उसका गुण स्पर्श है। अपने कारणका गुण आनेसे यह शब्दवाला भी है। इन्द्रियोंमें स्फूर्ति, शरीरमें जीवनीशक्ति, ओज और बल इसीके रूप हैं। काल, कर्म और स्वभावसे वायुमें भी विकार हुआ। उससे तेजकी उत्पत्ति हुई। इसका प्रधान गुण रूप है। साथ ही इसके कारण आकाश और वायुके शब्द एवं स्पर्श गुण भी इसमें हैं। तेजके विकारसे जलकी उत्पत्ति हुई। इसका गुण है रस; कारण तत्त्वोंके गुण शब्द, स्पर्श और रूप भी इसमें हैं। जलके विकारसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई, इसका गुण है गन्ध। कारणके गुण कार्यमें आते हैं—इस न्यायसे शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चारों गुण भी इसमें विद्यमान हैं। वैकारिक अहङ्कारसे मनकी और इन्द्रियोंके दस अधिष्ठातृ देवताओंकी भी उत्पत्ति हुई। उनके नाम हैं—दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, विष्णु, मित्र और प्रजापति। तैजस अहङ्कारके विकारसे श्रोत्र, त्वचा, घ्राण, नेत्र और जिह्वा—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ एवं वाक्, हस्त, पाद, मूत्रेन्द्रिय और गुदा—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ

भूत-प्रेत, सर्प, पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष, और भी नाना प्रकारके जीव—जो आकाश, जल या स्थलमें रहते हैं—ग्रह-नक्षत्र, केतु (पुच्छल तारे), तारे, बिजली और बादल—ये सब-के-सब विराट् पुरुष ही हैं। यह सम्पूर्ण विश्व जो कुछ कभी था, है, या होगा—सबको वह घेरे हुए है और उसके अंदर यह विश्व उसके केवल दस अंगुलके परिमाणमें ही स्थित है। जैसे सूर्य अपने मण्डलको प्रकाशित करते हुए ही बाहर भी प्रकाश फैलाते हैं, वैसे ही पुराणपुरुष परमात्मा भी सम्पूर्ण विराट् विग्रहको प्रकाशित करते हुए ही उसके बाहर-भीतर—सर्वत्र एकरस प्रकाशित हो रहा है। जो कुछ मनुष्यकी क्रिया और सङ्कल्पसे बनता है, उससे वह परे है और अमृत एवं अभयपद (मोक्ष) का स्वामी है। यही कारण है कि कोई भी उसकी महिमाका पार नहीं पा सकता। विश्वका सम्पूर्ण संस्थान भगवान्‌का एक पादमात्र (अंशमात्र) है तथा उनके अंशमात्र लोकोंमें समस्त प्राणी निवास करते हैं। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकके ऊपर महर्लोक है। उसके भी ऊपर जन, तप और सत्यलोकोंमें क्रमशः अमृत, क्षेम एवं अभयका नित्य निवास है॥१-१८॥

जन, तप और सत्य—इन तीनों लोकोंमें ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं संन्यासी निवास करते हैं। दीर्घकालीन ब्रह्मचर्यसे रहित गृहस्थ भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकके भीतर ही निवास करते हैं। शास्त्रोंमें दो मार्ग बतलाये गये हैं—एक अविद्यारूप कर्म-मार्ग, जो सकाम पुरुषोंके लिये है और दूसरा उपासनारूप विद्याका मार्ग, जो निष्काम उपासकोंके लिये है। मनुष्य दोनोंमेंसे किसी एकका आश्रय लेकर भोग प्राप्त करानेवाले दक्षिणमार्गसे अथवा मोक्ष प्राप्त करानेवाले उत्तरमार्गसे यात्रा करते हैं। जैसे सूर्य अपनी किरणोंसे सबको प्रकाशित करते हुए भी सबसे अलग हैं, वैसे ही जिन परमात्मासे इस अण्डकी, और पञ्चभूत, एकादश इन्द्रिय और गुणमय विराट्‌की उत्पत्ति हुई है—वे प्रभु भी इन समस्त वस्तुओंके अंदर और उनके रूपमें रहते हुए भी उनसे सर्वथा अतीत हैं॥ १९-२१ ॥

नारद! जिस समय इस विराट् पुरुषके नाभि-कमलसे मेरा जन्म हुआ, उस समय इस पुरुषके अङ्गोंके अतिरिक्त मुझे और कोई भी यज्ञकी सामग्री नहीं मिली। तब मैंने उनके अङ्गोंमें ही यज्ञके पशु, वनस्पति, कुश, यह यज्ञभूमि और यज्ञके योग्य उत्तम कालकी कल्पना की। यज्ञके लिये आवश्यक पात्र आदि वस्तुएँ, ओषधियाँ, घृत, रस, लोहा, मिट्टी, जल, ऋक्, यजुः, साम, चातुर्होत्र, यज्ञोंके नाम, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओंके नाम, पद्धतिग्रन्थ, सङ्कल्प, तन्त्र (अनुष्ठानकी रीति), गति, मति, श्रद्धा, प्रायश्चित्त और समर्पण—यह समस्त यज्ञ-सामग्री मैंने विराट् पुरुषके अङ्गोंसे ही इकट्ठी की। इस प्रकार विराट् पुरुषके अङ्गोंसे ही सारी सामग्रीका संग्रह करके मैंने उन्हींकी सामग्रियोंसे उन यज्ञस्वरूप परमात्माका यज्ञके द्वारा यजन किया। तदनन्तर तुम्हारे बड़े भाई इन नौ प्रजापतियोंने अपने चित्तको समाहित करके विराट् एवं अन्तर्यामीरूपसे स्थित उस विराट् पुरुषकी आराधना की। इसके पश्चात् समय-समयपर मनु, ऋषि, पितर, देवता, दैत्य और मनुष्योंने यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌की आराधना की। नारद! यह सम्पूर्ण विश्व उन्हीं भगवान् नारायणमें स्थित है, जो स्वयं तो प्राकृत गुणोंसे रहित हैं, परन्तु सृष्टिके प्रारम्भमें मायाके द्वारा बहुत-से गुण ग्रहण कर लेते हैं। उन्हींकी प्रेरणासे मैं इस संसारकी रचना करता हूँ। उन्हींके अधीन होकर रुद्र इसका संहार करते हैं, और वे स्वयं ही विष्णुके रूपसे इसका पालन करते हैं। क्योंकि उन्होंने सत्त्व, रज और तमकी तीन शक्तियाँ स्वीकार कर रक्खी हैं। बेटा! जो कुछ तुमने पूछा था, उसका उत्तर मैंने दे दिया; भाव या अभाव, कार्य या कारणके रूपमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो भगवान्‌से भिन्न हो॥२२-३२॥

प्यारे नारद! मैं प्रेमपूर्ण एवं उत्कण्ठित हृदयसे भगवान्‌के स्मरणमें मग्न रहता हूँ, इसीसे मेरी वाणी कभी असत्य नहीं होती, मेरा मन कभी असत्य सङ्कल्प नहीं करता और मेरी इन्द्रियाँ भी कभी मर्यादाका उल्लङ्घन करके कुमार्गमें नहीं जातीं। मैं वेदमूर्ति हूँ, मेरा जीवन तपस्यामय है, बड़े-बड़े प्रजापति मेरी वन्दना करते हैं और मैं उनका स्वामी हूँ। पहले मैंने बड़ी निष्ठासे योगका सर्वाङ्ग अनुष्ठान किया था, परन्तु मैं अपने मूलकारण परमात्माके स्वरूपको नहीं जान सका। क्योंकि वे तो एकमात्र भक्तिसे ही प्राप्त होते हैं। मैं तो केवल भगवान्‌के परम मङ्गलमय, एवं शरण आये हुए भक्तोंको जन्म-मृत्युसे छुड़ानेवाले परम कल्याणस्वरूप भगवान्‌के चरणोंको ही नमस्कार करता हूँ। उनकी मायाकी शक्ति अपार है; जैसे आकाश अपने अन्तको नहीं जानता, वैसे ही वे भी अपनी महिमाकी सीमा नहीं जानते। क्योंकि वह असीम है। ऐसी स्थितिमें दूसरे तो उसका पार पा ही कैसे सकते हैं? मैं, तुम और शङ्करजी भी उनके सत्य स्वरूपको नहीं जानते; तब दूसरे देवता तो उन्हें जान ही कैसे सकते हैं? उन्हें जाननेकी बात तो अलग रही, हमलोग तो मायाके द्वारा इस प्रकार मोहित हो रहे हैं

राजर्षियोंके और विपत्तिमें पड़े हुए लोगोंके धर्मका भी उपदेश कीजिये। तत्त्वोंकी संख्या कितनी है, उनके स्वरूप और लक्षण क्या हैं? भगवान्‌की आराधनाकी और अध्यात्मयोगकी विधि क्या है? योगेश्वरोंको क्या क्या ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं, तथा अन्तमें उन्हें कौन-सी गति मिलती है? योगियोंका लिङ्गशरीर किस प्रकार भङ्ग होता है? वेद, उपवेद, धर्मशास्त्र, इतिहास और पुराणोंका स्वरूप एवं तात्पर्य क्या है? समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय कैसे होता है? बावली, कुआँ खुदवाना आदि स्मार्तकर्मोंकी, यज्ञ यागादि वैदिक कर्मोंकी, काम्य कर्मोंकी तथा अर्थ धर्म कामके साधनोंकी विधि क्या है? प्रलयके समय जो जीव प्रकृतिमें लीन रहते हैं, उनकी उत्पत्ति कैसे होती है? पाखण्डकी उत्पत्ति कैसे होती है? आत्माके बन्ध मोक्षका स्वरूप क्या है? और वह अपने स्वरूपमें किस प्रकार स्थित होता है? भगवान् तो परम स्वतन्त्र हैं। वे अपनी मायासे किस प्रकार क्रीडा करते हैं और उसे छोड़कर साक्षीके समान उदासीन कैसे हो जाते हैं? भगवन्! यह सब मैं क्रमशः सुनना चाहता हूँ। मैं आपकी शरणमें हूँ। आप इनका यथावत् वर्णन कीजिये। इस विषयमें आप स्वयम्भू ब्रह्माके समान परम प्रमाण हैं। दूसरे लोग तो अपनी पूर्व परम्परासे सुनी सुनायी बातोंका ही अनुष्ठान करते हैं। ब्रह्मन्! आप मेरे अनशनकी चिन्ता न करें। मेरे प्राण कुपित ब्राह्मणके शापके अतिरिक्त और किसी कारणसे निकल नहीं सकते, क्योंकि मैं आपके मुखारविन्दसे निकलनेवाली भगवान्‌की अमृतमयी लीलाका पान कर रहा हूँ न॥ १२–२६॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! जब राजा परीक्षित्‌ने सन्तोंकी सभामें भगवान्‌की लीला कथा सुनानेके लिये इस प्रकार प्रार्थना की, तब श्रीशुकदेवजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने उन्हें वही वेदतुल्य श्रीमद्भागवत महापुराण सुनाया, जो ब्राह्मकल्पके आरम्भमें स्वयं भगवान्‌ने ब्रह्माजीको सुनाया था। पाण्डुवंशशिरोमणि परीक्षित्‌ने उनसे जो-जो प्रश्न किये थे, वे उन सबका उत्तर क्रमशः देने लगे॥ २७–२९॥

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका भगवद्धामदर्शन और भगवान्‌के द्वारा उन्हें चतुःश्लोकी भागवतका उपदेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जैसे स्वप्नमें देखे जानेवाले पदार्थोंके साथ उसे देखनेवालेका कोई सम्बन्ध नहीं होता, वैसे ही अनुभवस्वरूप आत्माका भी दृश्य पदार्थोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। जो कुछ सम्बन्धकी प्रतीति होती है, वह तो केवल मायाके कारण ही होती है। वह एक रस, सम एवं अद्वितीय होनेपर भी बहुत रूपवाली मायाके कारण बहुत रूपवाला प्रतीत होता है, और जब मायाके गुणोंमें रम जाता है तब तो 'यह मैं हूँ, यह मेरा है'—इस प्रकार मानने लगता है। किन्तु जब यह गुणोंको क्षुब्ध करनेवाले काल, और मोहित करनेवाली माया—इन दोनोंसे परे अपने अनन्त स्वरूपमें मोहरहित होकर रमण करने लगता है—आत्माराम हो जाता है, तब यह 'मैं, मेरा' का भाव छोड़कर पूर्ण उदासीन—गुणातीत हो जाता है। ब्रह्माजीकी निष्कपट तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें अपने रूपका दर्शन कराया और आत्मतत्त्वके ज्ञानके लिये उन्हें परम सत्य परमार्थ वस्तुका उपदेश किया, वही बात मैं तुम्हें सुनाता हूँ॥ १–४॥

तीनों लोकोंके परम गुरु आदिदेव ब्रह्माजी अपने जन्म स्थान कमलपर बैठकर सृष्टि करनेकी इच्छासे विचार करने लगे। परन्तु जिस ज्ञानदृष्टिसे सृष्टिका निर्माण हो सकता था, वह दृष्टि उन्हें प्राप्त नहीं हुई। ऐसी अवस्थामें वे सोच विचार करने लगे। एक दिन अकस्मात् प्रलयकी उस अनन्त जल राशिमें उन्हें दो अक्षरोंका एक शब्द दो बार सुनायी पड़ा। उसका पहला अक्षर तो 'त' था और दूसरा 'प'। अर्थात् उन्होंने 'तप-तप' यानी 'तप करो, तप करो' यह आज्ञा सुनी। इसी तपसे सम्पन्न होनेके कारण ही तो सर्वत्यागी ऋषियोंको तपोधन कहा जाता है। यह सुनकर ब्रह्माजीने चाहा कि मैं आज्ञा करनेवालेको एक बार देख तो लूँ। उन्होंने चारों ओर देखा, परन्तु वहाँ दूसरा कोई दिखायी न पड़ा। वे हारकर अपने कमलपर बैठ गये और 'मुझे तप करनेकी प्रत्यक्ष आज्ञा मिली है' ऐसा मानकर और उसीमें अपना हित समझकर उन्होंने अपने मनको तपस्यामें लगा दिया। ब्रह्माजी तपस्वियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। उनका ज्ञान अमोघ है। उन्होंने उस समय एक सहस्र दिव्य वर्षपर्यन्त एकाग्र चित्तसे अपने प्राण, मन, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियोंको वशमें करके ऐसी तपस्या की, जिससे वे समस्त लोकोंको प्रकाशित करनेमें समर्थ हो सके॥ ५–८॥

भगवान् लक्ष्मीनारायण



दर्शन करते ही ब्रह्माजीका हृदय आनन्दसे भर गया ।

नारद ! सृष्टिके प्रारम्भमें मैंने विविध लोकोंको रचनेकी इच्छासे तपस्या की। मेरे उस अखण्ड तपसे प्रसन्न होकर उन्होंने 'तप' अर्थवाले 'सन' नामसे युक्त होकर सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमारके रूपमें अवतार ग्रहण किया। इस अवतारमें उन्होंने प्रलयके कारण पहले कल्पके



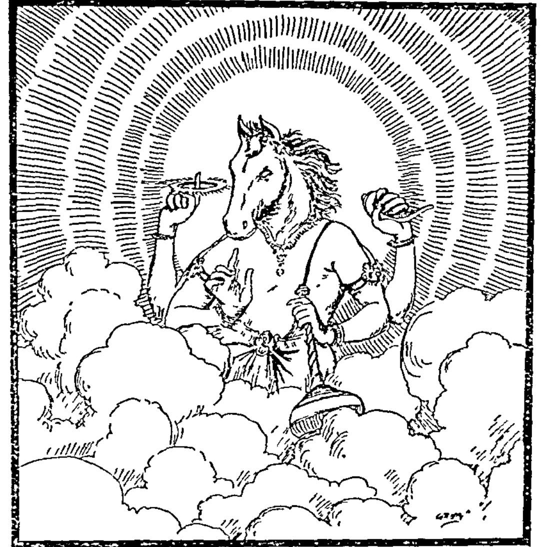
भूले हुए ज्ञानका ऋषियोंके प्रति उपदेश किया। उस सुन्दर उपदेशसे वे लोग उसी समय परम तत्त्वके अनुभवी हो गये ॥ ५ ॥

धर्मकी पत्नी दक्षकन्या मूर्तिके गर्भसे वे नर-नारायणके रूपमें प्रकट हुए। इस अवतारमें उनकी तपस्याका प्रभाव उन्हींके-जैसा है। संसारमें वैसा तपस्वी और कोई नहीं हुआ। इन्द्रकी भेजी हुई कामकी सेना अप्सराएँ उनके सामने जाते ही अपना स्वभाव खो बैठीं। वे अपने हाव-भावसे आत्मस्वरूप भगवान्‌की तपस्यामें विघ्न नहीं डाल सकीं। नारद ! शङ्कर आदि महानुभाव अपनी रोषभरी दृष्टिसे कामदेवको जला देते हैं, परन्तु अपने हृदयकी असह्य जलन क्रोधको वे नहीं जला पाते। वही क्रोध नर-नारायणके निर्मल हृदयमें प्रवेश करनेके पहले ही डरके मारे काँप जाता है। फिर भला, उनके हृदयमें कामका प्रवेश तो हो ही कैसे सकता है ? ॥ ६-७ ॥

अपने पिता-राजा उत्तानपादके पास बैठे हुए पाँच वर्षके बालक ध्रुवको उनकी सौतेली माता सुरुचिने अपने वचन-बाणसे वेध दिया था। इतनी छोटी अवस्था होनेपर भी वे उस ग्लानिसे तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। उनकी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर भगवान् प्रकट हुए और उन्होंने ध्रुवको ध्रुवपदका वरदान दिया। आज भी ध्रुवके ऊपर-नीचे प्रदक्षिणा करते हुए दिव्य महर्षिगण उनकी स्तुति करते रहते हैं ॥ ८ ॥

राजा वेन बड़ा कुमार्गगामी था। ब्राह्मणोंके हुङ्काररूपी वज्रसे उसकी सम्पत्ति और शक्ति जलकर खाक हो गयी। वह नरकगामी हुआ। ऋषियोंकी प्रार्थनासे भगवान्‌ने उसके शरीरसे पृथुके रूपमें अवतार धारण किया। उन्होंने पुत्र बनकर उसे नरकोंसे उबारा और इस प्रकार 'पुत्र'* शब्दको चरितार्थ किया। उसी अवतारमें पृथ्वीको गाय बनाकर उन्होंने उससे समस्त ओषधियोंका दोहन किया ॥ ९ ॥

राजा नाभिकी पत्नी सुदेवीके गर्भसे भगवान्‌ने ऋषभदेवके रूपमें जन्म लिया। इस अवतारमें समस्त आसक्तियोंसे रहित रहकर, अपनी इन्द्रियों और मनको अत्यन्त शान्त करके एवं अपने स्वरूपमें स्थित होकर समदर्शीके रूपमें उन्होंने मूढ़ पुरुषके वेषमें योग-साधना की। इस स्थितिको महर्षिलोग परमहंसपद अथवा अवधूतचर्या कहते हैं ॥ १० ॥



इसके बाद स्वयं उन्हीं यज्ञपुरुषने मेरे यज्ञमें स्वर्णके समान चमकते हुए हयग्रीवके रूपमें अवतार ग्रहण किया। भगवान्‌का वह विग्रह वेदमय, यज्ञमय और सर्वदेवमय है। उन्हींकी नासिकासे श्वासके रूपमें वेदवाणी प्रकट हुई है ॥ ११ ॥

---

* 'पुत्र' शब्दका अर्थ ही है 'पुत्' नामक नरकसे रक्षा करनेवाला।

तथापि मैं आपके सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपोंको जान सकूँ, ऐसी कृपा कीजिये। आप मायाके स्वामी हैं, आपका सङ्कल्प कभी व्यर्थ नहीं होता। जैसे मकड़ी अपने मुँहसे जाला निकालकर उसमें क्रीड़ा करती है और फिर उसे अपनेमें लीन कर लेती है, वैसे ही आप अपनी मायाका आश्रय लेकर इस विविध शक्तिसे युक्त जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेके लिये अपने आपको ही अनेक रूपोंमें बना देते हैं और क्रीड़ा करते हैं। इस प्रकार आप कैसे करते हैं—इस मर्मको मैं जान सकूँ, ऐसा ज्ञान आप मुझे दीजिये। आप मुझपर ऐसी कृपा कीजिये कि मैं सजग रहकर सावधानीसे आपकी आज्ञाका पालन कर सकूँ और सृष्टिकी रचना करते समय भी कर्तापन आदिके अभिमानसे बँध न जाऊँ। प्रभो! आपने एक मित्रके समान हाथ पकड़कर मुझे अपना मित्र स्वीकार किया है। अतः जब मैं आपकी इस सेवा—सृष्टि रचनामें लगूँ और सावधानीसे पूर्वसृष्टिके गुण-कर्मोंके अनुसार जीवोंका विभाजन करने लगूँ, तब कहीं अपनेको जन्म-कर्मसे स्वतन्त्र मानकर अभिमान न कर बैठूँ॥२४-२९॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—अनुभव, प्रेमाभक्ति और साधनोंसे युक्त अत्यन्त गोपनीय अपने स्वरूपका ज्ञान मैं तुम्हे उपदेश करता हूँ, तुम उसे ग्रहण करो। मेरा जितना विस्तार है, मेरा जो लक्षण है, मेरे जितने और जैसे रूप, गुण और लीलाएँ हैं—मेरी कृपासे तुम उनका तत्त्व ठीक ठीक वैसा ही अनुभव करो। सृष्टिके पूर्व केवल मैं-ही-मैं था। मेरे अतिरिक्त न भाव था न अभाव, और न तो दोनोंका कारण अज्ञान। न स्थूल जगत् था न सूक्ष्म जगत्, और न दोनोंका कारण प्रकृति। जहाँ यह सृष्टि नहीं है, वहाँ मैं ही-मैं हूँ और इस सृष्टिके रूपमें जो कुछ प्रतीत हो रहा है, वह भी मैं ही हूँ और इस सृष्टिके न रहनेपर जो कुछ बच रहेगा, वह भी मैं ही हूँ। वास्तवमें न होनेपर भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु मेरे अतिरिक्त मुझ परमात्मामें दो चन्द्रमाओंकी तरह मिथ्या ही प्रतीत हो रही है, अथवा विद्यमान होनेपर भी आकाश मण्डलके नक्षत्रोंमें राहुकी भाँति जो मेरी प्रतीति नहीं होती, यह मेरी अपनी माया है। जैसे प्राणियोंके पञ्चभूतरचित छोटे-बड़े शरीरोंमे आकाशादि पञ्चमहाभूत उन शरीरोंके कार्यरूपसे निर्मित होनेके कारण प्रवेश करते भी हैं और पहलेसे ही उन स्थानों और रूपोंमें कारणरूपसे विद्यमान रहनेके कारण प्रवेश नहीं भी करते, वैसे ही उन प्राणियोंके शरीरकी दृष्टिसे मैं उनमें आत्माके रूपसे प्रवेश किये हुए भी हूँ और आत्मदृष्टिसे अपने अतिरिक्त और कोई वस्तु न होनेके कारण उनमे प्रविष्ट नहीं भी हूँ। यह ब्रह्म नहीं, यह ब्रह्म नहीं—इस प्रकार निषेधकी पद्धतिसे, और यह ब्रह्म है, यह ब्रह्म है—इस अन्वयकी पद्धतिसे यही सिद्ध होता है कि सर्वातीत एवं सर्वस्वरूप भगवान् ही सर्वदा और सर्वत्र स्थित हैं, वही वास्तविक तत्त्व हैं। जो आत्मा अथवा परमात्माका तत्त्व जानना चाहते हैं, उन्हें केवल इतना ही जाननेकी आवश्यकता है। ब्रह्माजी! तुम अविचल समाधिके द्वारा मेरे इस सिद्धान्तमे पूर्ण निष्ठा कर लो। इससे तुम्हें महाकल्पमें और अवान्तर कल्पोंमें अथवा किसी भी प्रकारके सङ्कल्प विकल्पोंमें सृष्टिरचना करते रहनेपर भी कभी मोह नहीं होगा॥ ३०-३६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—लोकपितामह ब्रह्माजीको इस प्रकार उपदेश देकर अजन्मा भगवान्‌ने उनके देखते-ही देखते अपने उस रूपको छिपा लिया। जब सर्वभूतस्वरूप ब्रह्माजीने देखा कि भगवान् तो हमारे नेत्रोंके सामनेसे अन्तर्हित हो गये हैं, तब उन्होंने अञ्जलि बाँधकर उन्हें प्रणाम किया और पहले कल्पमें जैसी सृष्टि थी, उसी रूपमें इस विश्वकी रचना की। एक बार धर्मपति, प्रजापति ब्रह्माजीने सारी जनताका कल्याण हो, इस अभिलाषाकी पूर्तिके लिये विधिपूर्वक यम नियमोंको धारण किया। उस समय उनके पुत्रोंमें सबसे अधिक प्रिय, भगवान्‌के परम भक्त देवर्षि नारदजीने मायापति भगवान्‌की मायाका तत्त्व जाननेकी इच्छासे बड़े सयम, विनय और सौम्यतासे उनकी सेवा की। उनकी सेवासे ब्रह्माजी बहुत ही सन्तुष्ट हुए। परीक्षित्! जब देवर्षि नारदने देखा कि मेरे लोकपितामह पिताजी मुझपर प्रसन्न हैं, तब उन्होंने उनसे यही प्रश्न किया, जो तुम मुझसे कर रहे हो। उनके प्रश्नसे ब्रह्माजी और भी प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने यह दस लक्षणवाला भागवतपुराण अपने पुत्र नारदको सुनाया, जो स्वय भगवान्‌ने उन्हें उपदेश किया था। परीक्षित्! जिस समय मेरे परमतेजस्वी पिता सरस्वतीके तटपर बैठकर परमात्माके ध्यानमें मग्न थे, उस समय देवर्षि नारदजीने वही भागवत उन्हें सुनाया। तुमने मुझसे जो यह प्रश्न किया है कि विराट् पुरुषसे इस जगत्‌की उत्पत्ति कैसे हुई, तथा दूसरे भी जो बहुत-से प्रश्न किये हैं, उन सबका उत्तर मैं उसी भागवतपुराणके रूपमें देता हूँ॥ ३७-४५॥

महापराक्रमी परशुरामके रूपमें अवतीर्ण होकर अपनी तीखी धारवाले फरसेसे इक्कीस बार उनका संहार करते हैं ॥२२॥

मायापति भगवान् हमपर अनुग्रह करनेके लिये अपनी कलाओं—भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मणके साथ रामके रूपसे इक्ष्वाकुके वंशमें अवतीर्ण होते हैं। इस अवतारमें अपने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये अपनी पत्नी और भाईके साथ वे वनमें निवास करते हैं। उसी समय उनसे विरोध करके रावण उनके हाथों मरता है। त्रिपुर विमानको जलानेके लिये उद्यत शङ्करके समान, जिस समय भगवान् राम शत्रुकी नगरी लङ्काको भस्म करनेके लिये समुद्रतटपर पहुँचते हैं, उस समय सीताके वियोगके कारण जो उनका हृदय-मन्थन हो रहा है और उससे उत्पन्न क्रोधाग्निके द्वारा उनकी आँखें लाल-लाल हो गयी हैं। उस क्रोधाग्निकी लपटसे समुद्रके मगरमच्छ, साँप और ग्राह आदि जीव जलने लगते हैं। उस समय भयसे थर-थर काँपता हुआ समुद्र झटपट उन्हें मार्ग दे देता है। जब रावणकी कठोर छातीसे टकराकर इन्द्रके वाहन ऐरावतके दाँत चूर-चूर होकर चारों ओर फैल गये थे, जिससे दिशाएँ सफेद हो गयी थीं, तब दिग्विजयी रावण घमंडसे फूलकर हँसने लगा था। वही रावण जब श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी सीताजीको चुराकर ले जाता है और लड़ाईके मैदानमें उनसे लड़नेके लिये आता है, तब भगवान् रामके धनुषकी टङ्कारसे ही उसका वह घमंड प्राणोंके साथ तत्क्षण नष्ट हो जाता है ॥ २३—२५ ॥

जिस समय झुंड-के-झुंड दैत्य पृथ्वीको रौंद डालेंगे, उस समय पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान् अपने सफेद और काले केशसे बलराम और श्रीकृष्णके रूपमें कलावतार ग्रहण करेंगे।* उस समय अपनी महिमाको प्रकट करनेवाले वे इतने अद्भुत चरित्र करेंगे कि संसारके मनुष्य उनकी लीलाओंका रहस्य बिल्कुल नहीं समझ सकेंगे। उदाहरणतः बचपनमें ही पूतनाके प्राण हर लेना, तीन महीनेकी अवस्थामें पैर उछालकर बड़ा भारी छकड़ा उलट देना और घुटनोंके बल चलते-चलते आकाशको छूनेवाले यमलार्जुन वृक्षोंके बीचमें जाकर उन्हें उखाड़ डालना—ये सब ऐसे कर्म हैं, जिन्हें भगवान्के सिवा और कोई नहीं कर सकता। जब कालियनागके विषसे दूषित हुआ यमुना-जल पीकर बछड़े और गोपबालक मर जायँगे, तब वे अपनी सुधामयी कृपा दृष्टिकी वर्षासे ही उन्हें जीवित कर देंगे और यमुना-जलको शुद्ध करनेके लिये वे उसमें विहार करेंगे तथा विषकी शक्तिसे जीभ लपलपाते हुए उस कालियनागको वहाँसे निकाल देंगे। उसी दिन रातको जब सब लोग वहीं यमुना-तटपर सो जायँगे और दावाग्निसे आस-पासका मूँजका वन चारों ओरसे जलने लगेगा, तब बलरामजीके साथ वे प्राणसङ्कटमें पड़े हुए व्रजवासियोंको उनकी आँखें बंद कराकर उस अग्निसे बचावेंगे। उनकी यह लीला भी अलौकिक ही होगी। उनकी शक्ति वास्तवमें अचिन्त्य है। उनकी माता उन्हें बाँधनेके लिये जो-जो रस्सी लायेंगी, वही उनके उदरमें पूरी नहीं पड़ेगी, दो अंगुल छोटी ही रह जायगी। तथा जँभाई लेते समय श्रीकृष्णके मुखमें चौदहों भुवन देखकर पहले तो यशोदा भयभीत हो जायँगी, परन्तु फिर उनके ऐश्वर्यको समझ लेंगी। वे नन्दबाबाको अजगरके भयसे और वरुणके पाशसे छुड़ायेंगे। मय दानवका पुत्र व्योमासुर जब गोपबालोंको पहाड़की गुफाओंमें बंद कर देगा, तब वे उन्हें भी वहाँसे बचा लायेंगे। गोकुलके लोगोंको, जो दिनभर तो कामधंधोंके बखेड़ोंमें व्याकुल रहते हैं और रातको थककर सो जाते हैं, साधनाहीन होनेपर भी, वे अपने परमधाममें ले जायँगे। जब श्रीकृष्णकी सलाहसे गोपलोग इन्द्रका यज्ञ बंद कर देंगे, तब इन्द्र व्रजभूमिका नाश करनेके लिये मूसलधार वर्षा करने लगेंगे। उससे उनकी रक्षा करनेके लिये भगवान् कृपापरवश होकर सात वर्षकी अवस्थामें ही सात दिनोंतक उस महान् पर्वतको एक ही हाथसे कुकुरमुत्तेकी तरह खेल-खेलमें ही धारण किये रहेंगे। वृन्दावनमें विहार करते हुए रास करनेकी इच्छासे वे रातके समय, जब चन्द्रमाकी उज्ज्वल चाँदनी चारों ओर छिटक रही होगी, अपनी बाँसुरीपर मधुर सङ्गीतकी तान छेड़ेंगे। उससे प्रेमविवश होकर आयी हुई गोपियोंको जब कुबेरका सेवक शङ्खचूड़ हरण करेगा, तब वे उसका सिर उतार लेंगे। और भी बहुत-से दैत्य प्रलम्बासुर, धेनुकासुर, बकासुर, केशी, अरिष्टासुर आदि, चाणूर आदि पहलवान, कुवलयापीड हाथी, कंस, कालयवन, भौमासुर, मिथ्या-वासुदेव, शाल्व, द्विविद वानर, बल्वल, दन्तवक्त्र, राजा नग्नजित्के सात बैल, शम्बरासुर, विदूरथ और रुक्मी आदि तथा काम्बोज, मत्स्य, कुरु, कैकय और सृञ्जय आदि देशोंके राजालोग, एवं जो भी धनुष धारण करके युद्धके मैदानमें

* केशोंके अवतार कहनेका अभिप्राय यह है कि पृथ्वीका भार उतारनेके लिये तो भगवान्का एक केश ही काफी है। इसके अतिरिक्त श्रीबलरामजी और श्रीकृष्णके वर्णोंकी सूचना देनेके लिये भी सफेद और काले केशोंका अवतार कहा गया है। वस्तुतः श्रीकृष्ण तो पूर्णपुरुष स्वयं भगवान् हैं।—कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।

उनके शरीरमें प्रकाश नहीं था; फिर जब उन्हें अपनेको तथा दूसरी वस्तुओंको देखनेकी इच्छा हुई, तब नेत्रोंके छिद्र, उनका अधिष्ठाता सूर्य और नेत्रेन्द्रिय प्रकट हो गये। इसीसे रूपका ग्रहण होने लगा। उस समय वेद विराट् पुरुषकी स्तुति करने लगे। उन्हें सुननेकी इच्छा हुई। उसी समय कान, उनकी अधिष्ठातृ देवता दिशाएँ और श्रोत्रेन्द्रिय प्रकट हुई। इसीसे शब्द सुनायी पड़ता है। जब उन्होंने वस्तुओंकी कोमलता, कठिनता, हल्कापन, भारीपन, उष्णता और शीतलता आदि जाननी चाही तब उनके शरीरमें चर्म प्रकट हुआ। पृथ्वीमेंसे जैसे वृक्ष निकल आते हैं, उसी प्रकार उस चर्ममें रोएँ पैदा हुए और उसके भीतर-बाहर रहनेवाला वायु भी प्रकट हो गया। स्पर्श ग्रहण करनेवाली त्वचा-इन्द्रिय भी साथ-ही-साथ शरीरमें चारों ओर लिपट गयी और उससे उन्हें स्पर्शका अनुभव होने लगा। जब उन्हें अनेकों प्रकारके कर्म करनेकी इच्छा हुई, तब उनके हाथ उग आये। उन हाथोंमें ग्रहण करनेकी शक्ति हस्तेन्द्रिय तथा उनके अधिदेवता इन्द्र प्रकट हुए और दोनोंके आश्रयसे होनेवाला ग्रहणरूप कर्म भी प्रकट हो गया। जब उन्हें अभीष्ट स्थानपर जानेकी इच्छा हुई, तब उनके शरीरमें पैर उग आये। चरण-इन्द्रियके अधिष्ठातारूपमें वहाँ स्वयं यज्ञपुरुष भगवान् विष्णु स्थित हो गये और उन्हींमें चलनारूप कर्म प्रकट हुआ। मनुष्य इसी चरणेन्द्रियसे चलकर यज्ञ-सामग्री एकत्र करते हैं। सन्तान, रति और स्वर्ग-भोगकी कामना होनेपर विराट् पुरुषके शरीरमें लिङ्गकी उत्पत्ति हुई। उसमें उपस्थेन्द्रिय और प्रजापति देवता तथा इन दोनोंके आश्रय रहनेवाले काम-सुखका आविर्भाव हुआ। जब उन्हें मलत्यागकी इच्छा हुई, तब गुदाद्वार प्रकट हुआ। तत्पश्चात् उसमें पायु-इन्द्रिय और मित्र देवता उत्पन्न हुए। इन्हीं दोनोंके द्वारा मलत्यागकी क्रिया सम्पन्न होती है। एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जानेकी इच्छा होनेपर नाभिद्वार प्रकट हुआ। उससे अपान और मृत्यु-देवता प्रकट हुए। इन दोनोंके आश्रयसे ही प्राण और अपानका विछोह यानी मृत्यु होती है। जब विराट् पुरुषको अन्न-जल ग्रहण करनेकी इच्छा हुई, तब कोख, आँतें और नाड़ियाँ उत्पन्न हुईं। साथ ही कुक्षिके देवता समुद्र, नाड़ियोंके देवता नदियाँ एवं तुष्टि और पुष्टि—ये दोनों उनके आश्रित विषय उत्पन्न हुए। जब उन्होंने अपनी मायापर विचार करना चाहा, तब हृदयकी उत्पत्ति हुई। उसमें इन्द्रिय मन है और उसका देवता चन्द्रमा है तथा कामना और सङ्कल्प उसके विषय हैं। विराट् पुरुषके शरीरमें पृथ्वी, जल और तेजसे सात धातुएँ प्रकट हुईं—त्वचा, चर्म, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा और अस्थि। इसी प्रकार आकाश, जल और वायुसे प्राणोंकी उत्पत्ति हुई। श्रोत्रादि सब इन्द्रियाँ शब्दादि विषयोंको ग्रहण करनेवाली हैं। वे विषय अहङ्कारसे उत्पन्न हुए हैं। मन सब विकारोंका उत्पत्तिस्थान है और बुद्धि समस्त पदार्थोंका बोध करानेवाली है। मैंने भगवान्के इस स्थूल रूपका वर्णन तुम्हें सुनाया है। यह बाहरकी ओरसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व और प्रकृति—इन आठ आवरणोंसे घिरा हुआ है। इससे परे भगवान्का अत्यन्त सूक्ष्म रूप है। वह अव्यक्त, निर्विशेष, आदि, मध्य और अन्तसे रहित एवं नित्य है। वाणी और मनकी वहाँतक पहुँच नहीं है ॥१५–३४॥

मैंने तुम्हें भगवान्के स्थूल और सूक्ष्म—व्यक्त और अव्यक्त जिन दो रूपोंका वर्णन सुनाया है, ये दोनों ही भगवान्की मायाशक्तिके द्वारा प्रकाशित हैं। इसलिये भगवान्के वास्तविक स्वरूपको जाननेवाले ज्ञानी भक्त पुरुष इन दोनोंमेंसे किसीको भी परम इष्टरूपमें स्वीकार नहीं करते। वास्तवमें भगवान् निष्क्रिय हैं। अपनी शक्तिसे ही वे सक्रिय बनते हैं। फिर तो वे ब्रह्माका या विराट् रूप धारण करके वाच्य और वाचक, शब्द और उसके अर्थके रूपमें प्रकट होते हैं और अनेकों नाम, रूप तथा क्रियाएँ स्वीकार करते हैं। परीक्षित्! प्रजापति, मनु, देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, विद्याधर, असुर, गुह्यक, किन्नर, अप्सरा, नाग, सर्प, किम्पुरुष, उरग, मातृका, राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक, कूष्माण्ड, उन्माद, वेताल, यातुधान, ग्रह, पक्षी, मृग, पशु, वृक्ष, पर्वत, सरीसृप इत्यादि जितने भी संसारमें नाम-रूप हैं सब भगवान्के ही हैं। संसारमें चर और अचर—ये दो प्रकारके, तथा जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज—ये चार प्रकारके जितने भी जलचर, थलचर तथा आकाशमें रहनेवाले प्राणी हैं, सब-के-सब शुभ-अशुभ और दोनोंसे मिले हुए कर्मोंके फल हैं। सत्त्वकी प्रधानतासे देवता, रजोगुणकी प्रधानतासे मनुष्य और तमोगुणकी प्रधानतासे नारकीय योनियाँ मिलती हैं। इन गुणोंमें भी जब एक गुण दूसरे दो गुणोंसे अभिभूत हो जाता है, तब प्रत्येक गतिके तीन-तीन भेद और हो जाते हैं। वे भगवान् जगत्के धारण-पोषणके लिये धर्ममय विष्णुरूप स्वीकार करके देवता, मनुष्य और पशु, पक्षी आदि रूपोंमें



भगवान् बुद्ध

श्रीमद्भागवत-स्तुति

नमो नमो श्रीशुकदेव-बानी।
जा सुमिरत हरि मनमें आवत,
गावत सुधरे सब अभिमानी॥
तासौं प्रीति करत भ्रम छूटत,
कर्म आस त्रासा डर मानी।
मद मत्सर माया सुत जाया,
काया बिसरी सब सुखदानी॥
जिन सर्वोपरि वृन्दावनकी,
सहज माधुरी केलि बखानी।
निर्मल भजन अनन्य कियो जिन,
निरसे योगादिक तुछि ग्यानी॥
जिनकी विषै भागवत संतत,
भक्ति भाव भक्तनि पहिचानी।
जय जय "व्यास" उत्तरानन्दन,
आनँदकन्द शरद घन पानी॥



भी इसमें रहनेवाला अजन्मा पुरुष आकाशके समान नष्ट नहीं होता ॥ ४७–४९ ॥

बेटा नारद ! मैंने तुमसे अपने सङ्कल्पसे विश्वकी रचना करनेवाले षडैश्वर्यसम्पन्न श्रीहरिका संक्षेपसे वर्णन किया। जो कुछ कार्य-कारण अथवा भाव-अभाव है, यह सब भगवान्‌से भिन्न नहीं है। फिर भी भगवान् तो इनसे पृथक् भी हैं ही। भगवान्‌ने मुझे जो उपदेश किया था, वह यही 'भागवत' है। इसमें भगवान्‌की विभूतियोंका संक्षिप्त वर्णन है। तुम इसका विस्तार करो। जिस प्रकार सबके आश्रय और सर्वस्वरूप भगवान् श्रीहरिमें लोगोंकी प्रेममयी भक्ति हो, ऐसा निश्चय करके इसका वर्णन करो। जो पुरुष भगवान्‌की अचिन्त्य शक्ति मायाका वर्णन या अनुमोदन करते हैं अथवा श्रद्धाके साथ नित्य श्रवण करते हैं, उनका चित्त मायासे कभी मोहित नहीं होता ॥ ५०–५३ ॥

आठवाँ अध्याय

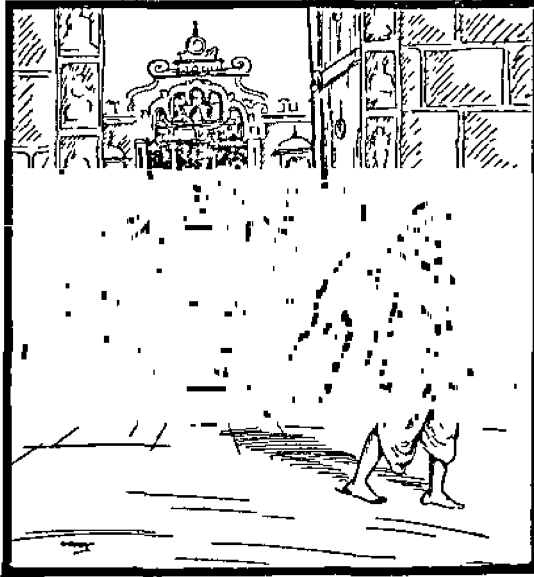
राजा परीक्षित्‌के विविध प्रश्न

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—ब्रह्मस्वरूप शुकदेवजी ! आप वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि जब ब्रह्माजीने निर्गुण भगवान्‌के गुणोंका वर्णन करनेके लिये नारदजीको आदेश दिया, तब उन्होंने किन लोगोंको किस रूपमें उपदेश किया। एक तो अचिन्त्य शक्तियोंके आश्रय भगवान्‌की कथाएँ ही लोगोंका परम मङ्गल करनेवाली हैं, दूसरे देवर्षि नारदका सबको भगवद्दर्शन करानेका स्वभाव। अवश्य ही आप उनकी बातें मुझे सुनाइये। निरन्तर भगवच्चिन्तनके रस-समुद्रमें निमग्न शुकदेवजी ! आप मुझे ऐसा उपदेश कीजिये कि मैं अपने आसक्तिरहित मनको सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णमें तन्मय करके अपना शरीर छोड़ सकूँ। जो लोग श्रद्धाके साथ नित्य उनके चरित्रका श्रवण और उनकी लीलाओंका गायन करते हैं, उनके हृदयमें थोड़े ही समयमें भगवान् प्रकट हो जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कानके छिद्रोंके द्वारा अपने भक्तोंके भावमय हृदयकमलपर जाकर बैठ जाते हैं और जैसे शरद् ऋतु जलका गँदलापन मिटा देती है, वैसे ही वे भक्तोंके मनोमलका नाश कर देते हैं। और जिसका हृदय शुद्ध हो जाता है, वह भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंको एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़ता—जैसे मार्गके समस्त क्लेशोंसे छूटकर घर आया हुआ पथिक अपने घरको ॥ १–६ ॥

शुकदेवजी ! जीवका पञ्चभूतोंके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी इसका शरीर पञ्चभूतोंसे ही बनता है। तो क्या स्वभावसे ही ऐसा होता है, अथवा किसी कारणवश—आप इस बातका मर्म पूर्णरीतिसे जानते हैं। आपने बतलाया कि भगवान्‌के नाभिकमलसे लोकोंकी रचना हुई। इससे तो परमात्मा भी जीवके समान ही परिमित अवयवोंसे परिच्छिन्न ही हुआ न ? फिर उसकी विशेषता क्या रही ? जिनकी कृपासे सर्वभूतमय ब्रह्माजी प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं, जिनके नाभिकमलसे पैदा होनेपर भी जिनकी कृपासे ही वे उनके रूपका दर्शन कर सके थे, वे संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलयके हेतु, सर्वान्तर्यामी और मायाके स्वामी परमपुरुष परमात्मा अपनी मायाका त्याग करके किसमें किस रूपसे शयन करते हैं ? पहले आपने बतलाया था कि विराट् पुरुषके अङ्गोंसे लोक और लोकपालोंकी रचना हुई और फिर यह भी बतलाया कि लोक और लोकपालोंके रूपमें उसके अङ्गोंकी कल्पना हुई। इन दोनों बातोंका तात्पर्य क्या है ? ॥ ७–११ ॥

महाकल्प और उनके अन्तर्गत अवान्तर कल्प कितने हैं ? भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालका अनुमान किस प्रकार किया जाता है ? क्या जीवोंकी आयुकी भी कोई सीमा है ? शुकदेवजी ! कालकी सूक्ष्म गति त्रुटि आदि और स्थूल गति वर्ष आदि किस प्रकारसे जानी जाती है ? विविध कर्मोंसे जीवोंकी कितनी और कैसी गतियाँ होती हैं ? देव, मनुष्य आदि योनियाँ सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंके फलस्वरूप ही प्राप्त होती हैं। उनको चाहनेवाले जीवोंमेंसे कौन-कौन किस-किस कर्मके फलस्वरूप कौन-कौन-सी योनि प्राप्त करते हैं ? पृथ्वी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप और उनमें रहनेवाले जीवोंकी उत्पत्ति कैसे होती है ? इनके सिवा ब्रह्माण्डका परिमाण भीतर और बाहर दोनों प्रकारसे बतलाइये। साथ ही महापुरुषोंके चरित्र, वर्णाश्रमके भेद और उनके धर्मका वर्णन कीजिये। भगवान्‌के विभिन्न अवतारोंके परम आश्चर्यमय चरित्र, युगोंके भेद, उनके परिमाण और उनके अलग-अलग धर्म भी बतलाइये। मनुष्योंके साधारण और विशेष धर्म कौन-कौन-से हैं ? विभिन्न श्रेणीके लोगोंके,

विदुरजीका ऐसा सुन्दर स्वभाव था कि साधुजन भी उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करते थे। किन्तु उनकी यह बात सुनते ही कर्ण, दुःशासन और शकुनिके सहित दुर्योधन क्रोधसे आगबबूला हो गया; उसके होठ फड़कने लगे और उसने उनका तिरस्कार करते हुए कहा—'अरे! इस कुटिल दासी-पुत्रको यहाँ किसने बुलाया है? यह जिनके टुकड़े खा-खाकर जीता है उन्हींके प्रतिकूल होकर शत्रुका काम बनाना चाहता है। इसके प्राण तो मत लो, परन्तु इसे हमारे नगरसे तुरंत बाहर निकाल दो।' भाईके सामने ही कानोंमें बाणोंके समान लगनेवाले इन अत्यन्त कठोर वचनोंसे मर्माहत होकर भी विदुरजीने कुछ बुरा न माना और भगवान्‌की मायाको प्रबल समझकर अपना धनुष राजद्वारपर रख वे हस्तिनापुरसे चल



दिये। कौरवोंको विदुर-जैसे महात्मा बड़े पुण्यसे प्राप्त हुए थे। वे हस्तिनापुरसे चलकर पुण्य करनेकी इच्छासे भूमण्डलमें तीर्थपाद भगवान्‌के क्षेत्रोंमें विचरने लगे, जहाँ श्रीहरि ब्रह्मा, रुद्र, अनन्त आदि अनेकों मूर्त्तियोंके रूपमें विराजमान हैं। जहाँ-जहाँ भगवान्‌की प्रतिमाओंसे सुशोभित तीर्थस्थान, नगर, पवित्र वन, पर्वत, निकुञ्ज और निर्मल जलसे भरे हुए नदी एवं सरोवर आदि थे, उन सभी स्थानोंमें वे अकेले ही विचरते रहे। वे अवधूत-वेषसे स्वच्छन्दतापूर्वक पृथ्वीपर विचरते थे, जिसमें आत्मीय जन उन्हें पहचान न सकें। वे शरीरको सजाते न थे, पवित्र और साधारण भोजन करते, शुद्धवृत्तिसे जीवन निर्वाह करते, प्रत्येक तीर्थमें स्नान करते, जमीनपर सोते और भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले व्रतोंका पालन करते रहते थे॥ १४—१९॥

इस प्रकार भारतवर्षमें ही विचरते-विचरते जबतक वे प्रभासक्षेत्रमें पहुँचे, तबतक कौरवोंकी हार हो चुकी थी और भगवान् श्रीकृष्णकी सहायतासे महाराज युधिष्ठिर पृथ्वीका एकछत्र अखण्ड राज्य करने लगे थे। वहाँ उन्होंने अपने कौरव बन्धुओंके विनाशका समाचार सुना, जो आपसकी कलहके कारण परस्पर लड़-भिड़कर उसी प्रकार नष्ट हो गये थे जैसे अपनी ही रगड़से उत्पन्न हुई आगसे बाँसोंका सारा जंगल जलकर खाक हो जाता है। यह सुनकर वे शोक करते हुए चुपचाप सरस्वतीके तीरपर आये। वहाँ उन्होंने त्रित, उशना, मनु, पृथु, अग्नि, असित, वायु, सुदास, गौ, गुह और श्राद्धदेवके नामोंसे प्रसिद्ध ग्यारह तीर्थोंमें स्नानादि किया। इनके सिवा पृथ्वीमें ब्राह्मण और देवताओंके स्थापित किये हुए जो भगवान् विष्णुके और भी मन्दिर थे, जिनके शिखरोंपर भगवान्‌के प्रधान आयुध चक्रके चिह्न थे और जिनके दर्शनमात्रसे श्रीकृष्णका स्मरण हो आता था, उन सभीमें वे गये। वहाँसे चलकर वे धन-धान्यपूर्ण सौराष्ट्र, सौवीर, मत्स्य और कुरुजाङ्गलादि देशोंमें होते हुए जब कुछ दिनोंमें यमुना-तटपर पहुँचे तो वहाँ उन्हें परमभागवत उद्धवजी मिले। उद्धवजी-की बड़ी ख्याति थी। वे भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमी भक्त और अत्यन्त शान्तस्वभाव थे। उन्होंने बृहस्पतिजीसे नीतिशास्त्रकी



शिक्षा पायी थी। विदुरजीने उन्हें देखकर प्रेमपूर्वक अपने हृदयसे लगा लिया और उनसे अपने आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण और उनके आश्रित अपने स्वजनोंका कुशल-समाचार पूछा॥ २०—२५॥

राजाओंको भी मारकर अपने शरणागतोंका दुःख दूर करना चाहते थे, जो धन, विद्या और जातिके मदसे अंधे होकर कुमार्गगामी हो रहे थे और बार बार अपनी सेनाओंसे पृथ्वीको कँपा रहे थे। उद्धवजी! भगवान् श्रीकृष्ण जन्म और कर्मसे रहित हैं; फिर भी दुष्टोंका नाश करनेके लिये, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये—उन्हें अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये उनके दिव्य जन्म कर्म हुआ करते हैं। नहीं तो, भगवान्‌की तो बात ही क्या—दूसरे जो लोग गुणोंसे पार हो गये हैं, उनमें भी ऐसा कौन है जो इस कर्माधीन देहके बन्धनमें पड़ना चाहेगा! अतः मित्र! जिन्होंने अजन्मा होकर भी अपनी शरणमें आये हुए समस्त लोकपाल और आज्ञाकारी भक्तोंका प्रिय करनेके लिये यदुकुलमें जन्म लिया है, उन पवित्रकीर्ति श्रीहरिकी बातें सुनाओ॥ ३६–४५॥

दूसरा अध्याय

उद्धवजीद्वारा भगवान्‌की लीलाओंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब विदुरजीने परम भक्त उद्धवसे इस प्रकार उनके प्रियतम श्रीकृष्णसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें पूछीं, तो उन्हें अपने स्वामीका स्मरण हो आया और वे हृदय भर आनेके कारण कुछ भी उत्तर न दे सके। जब ये पाँच वर्षके थे, तो बालकोंकी तरह खेलहीमें श्रीकृष्णकी मूर्ति बनाकर उसकी सेवा पूजामें ऐसे तन्मय हो जाते थे कि कलेवेके लिये माताके बुलानेपर भी उसे छोड़कर नहीं जाना चाहते थे। अब तो दीर्घकालसे उन्हींकी सेवामें रहते रहते ये बूढ़े हो चले थे; अतः विदुरजीके पूछनेसे उन्हें अपने प्यारे प्रभुके चरणकमलोंका स्मरण हो आया। उनका चित्त विरहसे व्याकुल हो गया। फिर वे कैसे उत्तर दे सकते थे? उनके हृदयमें प्रेमकी बाढ़ आ गयी, वे उसमें निमग्न हो गये और तन्मय होकर श्रीकृष्णके चरणारविन्द मकरन्द सुधाका पान करने लगे। इस आनन्दमें एक मुहूर्त्ततक तो उनके मुखसे कोई शब्द ही न निकला। उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया तथा मुँदे हुए नेत्रोंसे प्रेमके आँसुओंकी धारा बहने लगी। उद्धवजीको इस प्रकार प्रेम प्रवाहमें डूबे हुए देखकर विदुरजीने उन्हें कृतकृत्य माना। कुछ समय बाद जब उद्धवजी भगवान्‌के प्रेमधामसे उतरकर पुनः संसारमें आये, तब अपने नेत्रोंको पोंछकर भगवल्लीलाओंका स्मरण हो आनेसे विस्मित हो विदुरजीसे इस प्रकार कहने लगे॥ १–६॥

उद्धवजी बोले—विदुरजी! श्रीकृष्णरूप सूर्यके छिप जानेसे हमारे घरोंको कालरूप अजगरने खा डाला है, वे श्रीहीन हो गये हैं; अब मैं उनकी क्या कुशल सुनाऊँ! ओह! यह मनुष्यलोक बड़ा ही अभागा है; इसमें भी यादव तो नितान्त भाग्यहीन हैं, जिन्होंने निरन्तर अपने बीचमें रहनेपर भी श्रीकृष्णको नहीं पहचाना—जिस तरह समुद्रमें रहते समय अमृतमय चन्द्रमाको मछलियाँ नहीं पहचान सकी थीं। यादवलोग मनके भावको ताड़नेवाले, बड़े ही समझदार



और भगवान्‌के साथ एक ही स्थानमें रहकर क्रीड़ा करनेवाले थे; तो भी उन सबने समस्त विश्वके आश्रय, सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्णको एक श्रेष्ठ यादव ही समझा। किन्तु भगवान्‌की मायासे मोहित इन यादवों और इनसे व्यर्थका वैर ठाननेवाले शिशुपाल आदिके अवहेलना और निन्दासूचक वाक्योंसे भगवत्प्राण महानुभावोंकी बुद्धि भ्रममें नहीं पड़ती थी। जिन्होंने कभी तप नहीं किया, उन लोगोंको भी इतने दिनों तक दर्शन देकर अब उनकी दर्शन लालसाको तृप्त किये बिना ही वे भगवान् श्रीकृष्ण अपने त्रिभुवनमोहन श्रीविग्रहको छिपाकर अन्तर्धान हो गये हैं और इस प्रकार उन्होंने मानो उनके नेत्रोंको ही छीन लिया है। भगवान्‌ने अपनी योग-

उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उन्हें अपना वह लोक दिखाया, जो सबसे परे है और जिससे परे और कोई दूसरा लोक नहीं है। उस लोकमें किसी भी प्रकारके क्लेश, मोह और भय नहीं हैं। जिन्हें कभी एक बार भी उसके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे देवता बार-बार उसकी स्तुति करते रहते हैं। वहाँ रजोगुण, तमोगुण और इनसे मिला हुआ सत्त्वगुण नहीं है। वहाँ न तो कालकी दाल गलती है और न माया ही कदम रख सकती है। फिर मायाके बाल-बच्चे तो जा ही कैसे सकते हैं? वहाँ भगवान्‌के वे सेवक निवास करते हैं, जिनका सम्मान देवता और दैत्य दोनों ही करते हैं। भगवान्‌के पार्षद भगवान्‌के समान ही होते हैं। उनका उज्ज्वल आभासे युक्त श्याम शरीर शतदल कमलके समान कोमल नेत्र और पीले रंगके वस्त्रसे शोभायमान है। अङ्ग-अङ्गसे राशि-राशि सौन्दर्य बिखरता रहता है। वे मूर्तिमान् कोमलता हैं। सभीके चार-चार भुजाएँ हैं। वे स्वयं तो अत्यन्त तेजस्वी हैं ही, मणिजटित सुवर्णके प्रभामय आभूषण भी धारण किये रहते हैं। उनकी छवि मूँगे, वैदूर्यमणि और कमलके उज्ज्वल तन्तुके समान निर्मल है। उनके कानोंमें कुण्डल, मस्तकपर मुकुट और कण्ठमें मालाएँ शोभायमान हैं। जिस प्रकार आकाश बिजली-सहित बादलोंसे शोभायमान होता है, वैसे ही वह लोक मनोहर कामिनियोंकी कान्तिसे युक्त महात्माओंके दिव्य तेजोमय विमानोंसे स्थान-स्थानपर शोभायमान होता रहता है। उस वैकुण्ठलोकमें लक्ष्मीजी सुन्दर रूप धारण करके अपनी विविध विभूतियोंके द्वारा भगवान्‌के चरणकमलोंकी अनेकों प्रकारसे सेवा करती रहती हैं। कभी-कभी वे जब झूलेपर बैठकर अपने प्रियतम भगवान्‌की लीलाओंका गायन करने लगती हैं, तब उनके सौन्दर्य और सुरभिसे उन्मत्त होकर भौंरे भी उनके गुणोंका गान करने लगते हैं॥ ९—१३॥

ब्रह्माजीने देखा कि उस दिव्य लोकमें समस्त भक्तोंके रक्षक लक्ष्मीपति, यज्ञपति एवं विश्वपति भगवान् विराजमान हैं। सुनन्द, नन्द, प्रबल और अर्हण आदि मुख्य-मुख्य पार्षदगण उन प्रभुकी सेवा कर रहे हैं। उनका मुख-कमल प्रसाद-मधुर मुसकानसे युक्त है। आँखोंमें लाल-लाल डोरियाँ हैं। बड़ी मोहक और मधुर चितवन है। ऐसा जान पड़ता है कि अभी-अभी अपने प्रेमी भक्तको अपना सर्वस्व दे देंगे। सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और कंधेपर पीताम्बर जगमगा रहे हैं। वक्षःस्थलपर एक सुनहरी रेखाके रूपमें श्रीलक्ष्मीजी विराजमान हैं और सुन्दर चार भुजाएँ हैं। वे एक सर्वोत्तम और बहुमूल्य आसनपर विराजमान हैं। पुरुष, प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, मन, दस इन्द्रिय, शब्दादि पाँच तन्मात्राएँ और पञ्चभूत—ये पचीस शक्तियाँ मूर्तिमान् होकर उनकी सेवामें लगी हुई हैं। समग्र ऐश्वर्य, धर्म, कीर्ति, श्री, ज्ञान और वैराग्य—इन छः नित्यसिद्ध स्वरूपभूत शक्तियोंसे वे सर्वदा युक्त रहते हैं। उनके अतिरिक्त और कहीं भी ये नित्यरूपसे निवास नहीं करतीं। वे सर्वेश्वर प्रभु अपने नित्य आनन्दमय स्वरूपमें ही नित्य-निरन्तर निमग्न रहते हैं। उनका दर्शन करते ही ब्रह्माजीका हृदय आनन्दके उद्रेकसे लबालब भर गया। शरीर पुलकित हो गया, नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक आये। सृष्टिकी रचना करनेवाले ब्रह्माजीने भगवान्‌के उन चरणकमलोंमें, जो भागवतधर्मके पालनसे अथवा निवृत्तिमार्गसे प्राप्त हो सकते हैं, सिर झुकाकर प्रणाम किया। भगवान्‌ने देखा कि ये विभिन्न प्रकारकी प्रजाकी सृष्टिके लिये आज्ञा देनेयोग्य हैं तथा प्रेम और दर्शनके आनन्दमें मग्न हो रहे हैं। उस समय ब्रह्माके आराध्य-देव भगवान् बहुत प्रसन्न हुए, बड़े प्रेमसे उन्होंने ब्रह्माका हाथ पकड़ लिया और फिर मन्द-मन्द मुसकराते हुए मधुर वाणीसे कहा॥ १४—१८॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्माजी! तुम्हारे हृदयमें तो समस्त वेदोंका ज्ञान विद्यमान है। तुमने सृष्टिरचनाकी इच्छासे चिरकालतक तपस्या करके मुझे भलीभाँति सन्तुष्ट कर दिया है। मनमें कपट रखकर योगसाधन करनेवाले मुझे कभी प्रसन्न नहीं कर सकते। तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारी जो अभिलाषा हो, वही वर मुझसे माँग लो। क्योंकि मैं सब कुछ देनेमें समर्थ हूँ। ब्रह्माजी! जीवको जबतक मेरे दर्शन नहीं होते, तभीतक उसे अपने कल्याणके लिये परिश्रम करना पड़ता है। तुमने मुझे देखे बिना ही उस सूने जलमें मेरी वाणी सुनकर इतनी घोर तपस्या की है, इसीसे मेरी इच्छासे तुम्हें मेरे लोकका दर्शन हुआ है। तुम उस समय सृष्टिरचनाका कर्म करनेमें किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। इसीसे मैंने तुम्हें तपस्या करनेकी आज्ञा दी थी। क्योंकि हे अनघ! तपस्या मेरा हृदय है और मैं स्वयं तपस्याका आत्मा हूँ। तपस्या मेरी एक अखण्ड शक्ति है। मैं तपस्यासे ही इस संसारकी सृष्टि करता हूँ, तपस्यासे ही इसका धारण-पोषण करता हूँ और तपस्यासे ही इसे अपनेमें लीन कर लेता हूँ॥ १९—२३॥

ब्रह्माजीने कहा—भगवन्! आप समस्त प्राणियोंके स्वामी हैं, सबके हृदयमें आप अन्तर्यामीरूपसे विराजमान रहते हैं। आप अपने अप्रतिहत ज्ञानसे यह जानते ही हैं कि मैं क्या करना चाहता हूँ। फिर भी आपसे मैं यह याचना कर रहा हूँ। आप कृपा करके मेरी माँग पूरी कीजिये। प्रभो! आप रूपरहित हैं;

और विष मिला हुआ जल पीनेसे मरी हुई गौओंको जीवित कर उन्हें कालियदहका निर्दोष जल पीनेकी सुविधा कर दी। इसके पश्चात् जब नन्दबाबाने उत्तम ब्राह्मणोंके द्वारा धूम-धामसे इन्द्रयज्ञ कराना चाहा, तब उन्हें रोककर उसमें व्यय होनेवाले विपुल धनका सदुपयोग करनेके लिये उसी सामग्रीके द्वारा उनसे गोसवयज्ञ (गोवर्धनका पूजन) कराया। महात्मन्! इससे अपना मानभङ्ग होनेके कारण जब इन्द्रने क्रोधित होकर व्रजका विनाश करनेके लिये मूसलधार जल बरसाना आरम्भ किया, तब भगवान्‌ने करुणावश खेल ही खेलमें छत्तेके समान गोवर्धन पर्वतको उठा लिया और अत्यन्त घबड़ाये हुए व्रजवासियोंकी रक्षा की। फिर किशोरावस्थामें सन्ध्याके समय जब सारा वृन्दावन शरद्‌के चन्द्रमाकी चाँदनीसे जगमगा उठता, तब श्रीकृष्ण वंशी बजाकर मधुर गायन करते और उस सुन्दर समयको विहारके उपयुक्त समझकर गोपियोंके मण्डलकी शोभा बढ़ाते हुए उनके साथ रास-विहार करते ॥ २५–३४ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान्‌की अन्य लीलाओंका वर्णन

उद्धवजीने कहा—इसके बाद श्रीकृष्ण अपने माता-पिता देवकी वसुदेवको सुख पहुँचानेकी इच्छासे बलदेवजीके साथ मथुरा पधारे और अपने शत्रुसमुदायके स्वामी कंसको ऊँचे सिंहासनसे नीचे पटककर तथा उसके प्राण लेकर उसकी लाशको बड़े जोरसे पृथ्वीपर घसीटा। फिर विद्याभ्यासके लिये उज्जैन जाकर गुरुवर सान्दीपनिजीके एक ही बार सुनानेपर साङ्गोपाङ्ग चारों वेदोंको कण्ठस्थ एवं बुद्धिस्थ कर लिया और उन्हें गुरुदक्षिणामें पञ्चजन दैत्यका पेट फाड़कर यमपुरीसे उनका मरा हुआ पुत्र वापस ला दिया। फिर विदर्भराज भीष्मककी कन्या रुक्मिणीजीके लक्ष्मीके समान रूपने जिन राजाओंको बुला लिया था अर्थात् श्रीरुक्मिणीजीके रूपपर मुग्ध शिशुपालकी सहायताके लिये शिशुपाल और रुक्मीद्वारा जो राजा बुलाये गये थे, और जो श्रीकृष्णके आनेकी आशङ्कासे चौकन्ने रहकर इधर-उधर ताक रहे थे, उन सबके सिरपर पैर रखकर गान्धर्व-विधिसे विवाह करनेकी इच्छासे अपनी अंशभूता तथा शरणमें आयी हुई रुक्मिणीजीको वैसे ही हर लाये जैसे गरुड़जी देवताओंको हराकर अमृत छीन लाये थे। इसी प्रकार स्वयंवरमें सात बिना नथे हुए बैलोंको नाथकर नाग्नजिती (सत्या) से विवाह किया। उस अद्भुत पराक्रमसे वहाँ आये हुए राजा-लोगोंका मान मर्दन हो गया था, फिर भी वे ईर्ष्यावश उस राजकुमारीको छीन ले जाना चाहते थे। उन अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित मूर्ख राजाओंको श्रीकृष्णने अपने आयुधोंसे मार डाला और अपने ऊपर आँच भी न आने दी। एक बार भगवान् विषयी पुरुषोंकी सी लीला करते हुए अपनी प्राणप्रिया सत्यभामाको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे उनके लिये कल्पवृक्ष हर लाये। उस समय इन्द्र क्रोधसे पागल होकर अपने सैनिकों-सहित उनके पीछे दौड़ा। यह सब उसने इन्द्राणीकी प्रेरणासे ही किया था। वास्तवमें वह अपनी स्त्रियोंके हाथका खिलौना ही तो है। नहीं तो अपना ही हित करनेवाले प्रभुके पीछे क्यों दौड़ता? जब अपने विशाल डीलडौलसे आकाशको भी ढक देनेवाले अपने पुत्र भौमासुरको भगवान्‌के हाथसे मरा हुआ देखकर पृथ्वीने प्रार्थना की, तो उन्होंने भौमासुरके पुत्र भगदत्तको उसका बचा हुआ राज्य देकर उसके अन्तः-पुरमें प्रवेश किया। वहाँ भौमासुरद्वारा हर कर लायी हुई बहुत-सी राजकन्याएँ थीं। वे दीनबन्धु श्रीकृष्णचन्द्रको देखते ही खड़ी हो गयीं और सबने महान् हर्ष, लज्जा एवं प्रेमपूर्ण चितवनसे तत्काल ही भगवान्‌को पतिरूपमें वरण कर लिया ॥ १–७ ॥

तब भगवान्‌ने अपनी निजशक्ति योगमायासे उनके अनुरूप उतने ही रूप धारण कर उन सबका अलग-अलग महलोंमें एक ही मुहूर्तमें विधिवत् पाणिग्रहण किया। फिर अपनी लीलाका विस्तार करनेके लिये उन्होंने उनमेंसे प्रत्येकसे सब प्रकारसे अपने ही समान दस दस पुत्र उत्पन्न किये। जब कालयवन, जरासन्ध और शाल्वादिने अपनी सेनाओंसे मथुरा या द्वारकापुरीको घेरा था तो भगवान्‌ने मुचुकुन्द, भीम आदि निज जनोंको अपनी ही अलौकिक शक्ति देकर उन्हें स्वयं मरवाया था। शम्बर, द्विविद, बाणासुर, मुर, बल्वल तथा दन्तवक्त्र आदि अन्य योद्धाओंमेंसे भी किसीको उन्होंने स्वयं मारा था और किसीको दूसरोंसे मरवाया। इसके बाद उन्होंने आपके भाई धृतराष्ट्र और पाण्डुके पुत्रोंका पक्ष लेकर आये हुए राजाओंका भी संहार किया, जिनके सेना-सहित कुरुक्षेत्रमें पहुँचनेपर पृथ्वी डगमगाने लगी थी।

दसवाँ अध्याय

भागवतके दस लक्षण और प्राकृत सर्गका क्रम

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस भागवत-पुराणमें सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय—इन दस विषयोंका वर्णन है। इनमें जो दसवाँ आश्रयतत्त्व है, उसीका ठीक-ठीक निश्चय करनेके लिये अन्य नौ विषयोंका वर्णन किया गया है। कहीं श्रुतिसे, कहीं तात्पर्यसे और कहीं दोनोंके अनुकूल अनुभवसे महात्माओंने बड़ी सुगम रीतिसे उनका वर्णन किया है। ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होकर रूपान्तर होनेसे जो आकाशादि पञ्चभूत, शब्दादि तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, अहङ्कार और महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है, उसको 'सर्ग' कहते हैं। उस विराट् पुरुषसे उत्पन्न ब्रह्माजीके द्वारा जो विभिन्न चराचर सृष्टियोंका निर्माण होता है, उसका नाम है 'विसर्ग'। प्रतिपद नाशकी ओर बढ़नेवाली सृष्टिको एक मर्यादामें स्थित रखनेसे भगवान् विष्णुकी जो श्रेष्ठता सिद्ध होती है, उसका नाम 'स्थान' है। अपने द्वारा सुरक्षित सृष्टिमें भक्तोंके ऊपर उनकी जो कृपा है, उसका नाम है 'पोषण'। मन्वन्तरोंके अधिपति जो भगवद्भक्ति और प्रजापालनरूप शुद्ध धर्मका अनुष्ठान करते हैं, उसे 'मन्वन्तर' कहते हैं। जीवोंकी वे वासनाएँ, जो कर्मके द्वारा उन्हें बन्धनमें डाल देती हैं, 'ऊति' नामसे कही जाती हैं। भगवान्के विभिन्न अवतारोंके चरित्र और उनके प्रेमी भक्तोंकी गाथाएँ 'ईशकथा' हैं। विविध आख्यानोंसे वे और भी विस्तृत हो जाती हैं। जब भगवान् योगनिद्रा स्वीकार करके शयन करते हैं, तब जीवोंका अपनी उपाधियोंके साथ उनमें लीन हो जाना 'निरोध' है। अज्ञानकल्पित कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि अनात्मभावका परित्याग करके अपने वास्तविक स्वरूप परमात्माका साक्षात्कार कर लेना ही 'मुक्ति' कहलाता है। परीक्षित्! इस चराचर जगत्की प्रतीति और उसका बाध—उत्पत्ति और प्रलय जिस तत्त्वमें प्रकाशित होते हैं, वह परम ब्रह्म ही 'आश्रय' है। शास्त्रोंमें उसीको परमात्मा कहा गया है। जो नेत्र आदि इन्द्रियोंका अभिमानी द्रष्टा जीव है, वही इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवता सूर्य आदिके रूपमें भी है और जो नेत्र-गोलक आदिसे युक्त दृश्य देह है, वही उन दोनोंको अलग-अलग करता है। इन तीनोंमें यदि एकका भी अभाव हो जाय, तो दूसरे दोकी उपलब्धि नहीं हो सकती। अतः इन तीनोंसे अलग रहकर जो इन तीनोंको जानता है, वही सबका अधिष्ठान 'आश्रय' तत्त्व है। उसका आश्रय वह स्वयं ही है, दूसरा कोई नहीं॥ १—९॥

जब विराट् पुरुष ब्रह्माण्डको फोड़कर निकला, तब वह अपने रहनेका स्थान ढूँढ़ने लगा। उसी इच्छासे उस शुद्ध-सङ्कल्प पुरुषने अत्यन्त पवित्र जलकी सृष्टि की। विराट् पुरुषरूप 'नर'से उत्पन्न होनेके कारण ही जलका नाम 'नार' पड़ा। और उस अपने बनाये हुए नारमें वह पुरुष एक हजार वर्षतक रहा, इसीसे उसका नाम 'नारायण' हुआ। उन नारायण भगवान्की कृपासे ही द्रव्य, कर्म, काल, स्वभाव और जीव आदिकी सत्ता है। उनके उपेक्षा कर देनेपर और किसीका अस्तित्व नहीं रहता। वे भगवान् पहले अकेले ही थे। योगनिद्रासे जगकर उन्होंने अनेक होनेकी इच्छा की। तब उन्होंने अपनी मायासे अखिल ब्रह्माण्डके बीजस्वरूप अपने सुवर्णमय वीर्यको तीन भागोंमें विभक्त कर दिया—अधिदैव, अध्यात्म और अधिभूत। परीक्षित्! विराट् पुरुषका एक ही वीर्य तीन भागोंमें कैसे विभक्त हुआ, सो सुनो॥ १०—१४॥

विराट् पुरुषके हिलने-डोलनेपर उनके शरीरमें रहनेवाले आकाशसे इन्द्रियबल, मनोबल और शरीरबलकी उत्पत्ति हुई। उनसे इन सबका राजा प्राण उत्पन्न हुआ। जैसे सेवक अपने स्वामी राजाके पीछे-पीछे चलते हैं, वैसे ही सबके शरीरोंमें प्राणके प्रबल रहनेपर ही सारी इन्द्रियाँ प्रबल रहती हैं और जब वह सुस्त पड़ जाता है, तब सारी इन्द्रियाँ भी सुस्त हो जाती हैं। जब प्राण जोरसे आने-जाने लगा, तब विराट् पुरुषको भूख-प्यासका अनुभव हुआ। खाने-पीनेकी इच्छा करते ही सबसे पहले उनके शरीरमें मुख खुल गया। मुखसे तालु, और तालुसे रसनेन्द्रिय प्रकट हुई। इसके बाद अनेकों प्रकारके रस उत्पन्न हुए, जिन्हें रसना ग्रहण करती है। जब उनकी इच्छा बोलनेकी हुई, तब वाक्-इन्द्रिय, उसके अधिष्ठातृ देवता अग्नि और उनका विषय बोलना—ये तीनों प्रकट हुए। इसके बाद बहुत दिनोंतक उस जलमें ही वे रुके रहे। श्वासके वेगसे नासिका-छिद्र खुल गये। जब उन्हें सूँघनेकी इच्छा हुई, तब उसमें आकर घ्राणेन्द्रिय बैठ गयी और उसके देवता गन्धको फैलानेवाले वायुदेव प्रकट हुए। पहले

श्यामसुन्दर सरस्वतीके तटपर अकेले ही बैठे हैं। दिव्य विशुद्ध-सत्त्वमय अत्यन्त सुन्दर श्याम शरीर है, शान्तिसे भरी हुई रतनारी आँखें हैं। उनकी चार भुजाएँ और रेशमी पीताम्बर देखकर मैंने उनको दूरहीसे पहचान लिया। वे एक पीपलके छोटे से वृक्षका सहारा लिये बायीं जाँघपर दायाँ चरणकमल रक्खे बैठे थे। उन्होंने सब प्रकारके विषय-सुखोंको त्याग दिया था, तथापि वे और भी अधिक आनन्दोत्फुल्ल जान पड़ते थे। इसी समय व्यासजीके प्रिय मित्र परम भागवत सिद्धप्रवर मैत्रेयजी लोकोंमें विचरते हुए दैववश वहाँ आ पहुँचे। तब अपनेमें अनुरक्त और आनन्द एवं भक्तिभावके कारण सिर झुकाये खड़े हुए उन मुनिवरके सामने ही श्रीहरिने अपनी प्रेमपूर्ण मुसकानभरी चितवनसे मेरा श्रम दूर करते हुए कहा ॥ १-१० ॥

श्रीभगवान् कहने लगे—मैं तुम्हारी आन्तरिक अभिलाषा जानता हूँ; इसलिये मैं तुम्हें वह साधन देता हूँ, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। उद्धव! तुम पूर्व-जन्ममें वसु थे। विश्वकी रचना करनेवाले प्रजापति और वसुओंके यज्ञमें मुझे पानेकी इच्छासे ही तुमने मेरी आराधना की थी। अब मैं मर्त्यलोकको छोड़कर अपने धाममें जाना चाहता हूँ। इस समय यहाँ एकान्तमें तुमने अपनी अनन्य भक्तिके कारण ही मेरा दर्शन पाया है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। साधुस्वभाव उद्धव! संसारमें तुम्हारा यह अन्तिम जन्म है, क्योंकि इसमें तुमने मेरा अनुग्रह प्राप्त कर लिया है। पूर्वकालमें पाद्मकल्पके आरम्भमें मैंने अपने नाभि-कमलपर बैठे हुए ब्रह्माको अपनी महिमाके प्रकट करनेवाले जिस श्रेष्ठ ज्ञानका उपदेश किया था और जिसे विवेकी लोग 'भागवत' कहते हैं वही मैं तुम्हें देता हूँ ॥११-१३॥

विदुरजी! मुझपर तो प्रतिक्षण उन परम पुरुषकी कृपा बरसा करती थी। इस समय उनके इस प्रकार आदरपूर्वक कहनेसे स्नेहवश मुझे रोमाञ्च हो आया, मेरी वाणी गद्गद हो गयी और नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। उस समय मैंने हाथ जोड़कर उनसे कहा—'स्वामिन्! आपके चरण-कमलोंकी सेवा करनेवाले पुरुषोंको इस संसारमें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—इन चारोंमेंसे कौन सा पदार्थ दुर्लभ है? तथापि मुझे उनमेंसे किसीकी इच्छा नहीं है। मैं तो केवल आपके चरणकमलोंकी सेवाके लिये ही लालायित रहता हूँ। प्रभो! आप निःस्पृह होकर भी कर्म करते हैं, अजन्मा होकर भी जन्म लेते हैं, कालरूप होकर भी शत्रुके डरसे भागते हैं और द्वारकाके किलेमें जाकर छिप रहते हैं तथा स्वात्माराम होकर भी सहस्रों स्त्रियोंके साथ रमण करते हैं—इन विचित्र चरित्रोंको देखकर विद्वानोंकी बुद्धि भी चक्करमें पड़ जाती है। मेरे आराध्यदेव! आपका स्वरूपज्ञान सर्वथा अबाध और अखण्ड है। फिर भी आप सलाह लेनेके लिये मुझे बुलाकर जो भोले मनुष्योंकी तरह बड़ी सावधानीसे मेरी सम्मति पूछा करते थे। प्रभो! आपकी वह लीला मेरे मनको मोहित सा कर देती है। स्वामिन्! अपने स्वरूपका गूढ रहस्य प्रकट करनेवाला जो श्रेष्ठ एवं समग्र ज्ञान आपने ब्रह्माजीको बतलाया था, वह यदि मेरे समझने योग्य हो तो मुझे भी सुनाइये, जिससे मै भी इस संसार-दुःखको सुगमतासे पार कर जाऊँ ॥१४-१८॥

जब मैंने इस प्रकार अपने हृदयका भाव निवेदित किया, तब कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णने मुझे अपने स्वरूप-की परम स्थितिका उपदेश दिया। इस प्रकार पूज्यपाद गुरु श्रीकृष्णसे आत्मतत्त्वकी उपलब्धिका साधन सुनकर तथा उनके चरणोंकी वन्दना और प्रभुकी परिक्रमा कर मैं यहाँ आया हूँ। इस समय उनके विरहसे मेरा चित्त अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। विदुरजी! पहले तो उनके दर्शन पाकर मुझे आनन्द हुआ था, किन्तु अब तो मेरे हृदयको उनकी विरहव्यथा अत्यन्त पीड़ित कर रही है। और मैं उनके प्रिय क्षेत्र बदरिकाश्रमको जा रहा हूँ, जहाँ भगवान् श्रीनारायण और नर—ये दोनों ऋषि लोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये बड़ी लंबी, सौम्य (दूसरोंको सुख पहुँचानेवाली) एवं कठिन तपस्या कर रहे हैं ॥ १९-२२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार उद्धवजीके मुखसे अपने प्रिय बन्धुओंके विनाशका असह्य समाचार सुनकर परम-ज्ञानी विदुरजीको जो शोक उत्पन्न हुआ, उसे उन्होंने विवेकद्वारा शान्त कर दिया। फिर जब भगवान् श्रीकृष्णके परिकरोंमें प्रधान, महाभागवत उद्धवजी बदरिकाश्रमकी ओर जाने लगे, तब कुरुश्रेष्ठ विदुरजीने श्रद्धापूर्वक उनसे पूछा ॥२३-२४॥

विदुरजी बोले—उद्धवजी! योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण-ने अपने स्वरूपके गूढ रहस्यको प्रकट करनेवाला जो परमज्ञान आपसे कहा था, वह आप हमें भी सुनाइये; भगवान्‌के सेवक तो अपने सेवकोंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही विचरा करते हैं ॥२५॥

उद्धवजी बोले—उस तत्त्वज्ञानके लिये आपको मुनिवर मैत्रेयजीकी सेवा करनी चाहिये। इस मर्त्यलोकको छोड़ते समय मेरे सामने स्वयं भगवान्‌ने ही आपको उपदेश करनेके लिये उन्हें आज्ञा दी थी ॥ २६ ॥

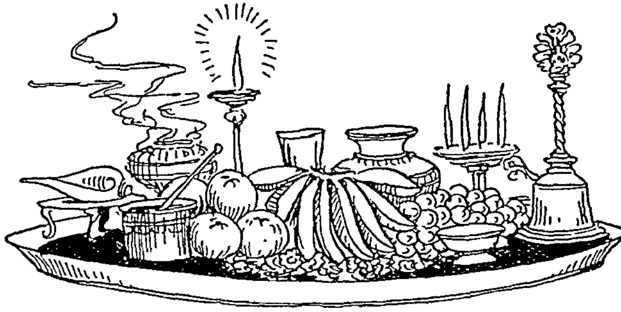
अवतार लेते हैं तथा विश्वका पालन-पोषण करते हैं। प्रलयका समय आनेपर वे ही भगवान् अपने बनाये हुए इस विश्वको कालाग्निस्वरूप रुद्रका रूप ग्रहण करके अपनेमें वैसे ही लीन कर लेते हैं, जैसे वायु मेघमालाको ॥३५–४३॥

परीक्षित् ! भगवत्परायण महात्माओंने अचिन्त्यैश्वर्य भगवान्‌का इसी प्रकार वर्णन किया है। परन्तु तत्त्वज्ञानी पुरुषोंको केवल इस सृष्टि, पालन और प्रलय करनेवाले रूपमें ही उनका दर्शन नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे तो इससे परे भी हैं। परमात्मा तो समस्त प्रकृति और प्राकृत वस्तुओंसे परे हैं। जिस समय सृष्टि-रचना आदिके कर्ताके रूपमें उनका वर्णन किया जाता है, उस समय उनके कर्तापनमें तात्पर्य नहीं होता; बल्कि इसका वर्णन तो इसलिये किया जाता है कि जिन लोगोंने अपनेको या परमात्माको कर्ता मान रक्खा है, उनकी यह कर्तापनकी भावना मिटा दी जाय। क्योंकि यह कर्तापन मायाके द्वारा आरोपित है। यह मैंने ब्रह्माजीके महाकल्पका अवान्तर कल्पोंके साथ वर्णन किया है। सब कल्पोंमें सृष्टि-क्रम एक-सा ही है। अन्तर है तो केवल इतना ही कि महाकल्पके प्रारम्भमें प्रकृतिसे क्रमशः महत्तत्त्वादिकी उत्पत्ति होती है और कल्पोंके प्रारम्भमें प्राकृत सृष्टि तो ज्यों-की-त्यों रहती ही है, चराचर प्राणियोंकी वैकृत सृष्टि नवीनरूपसे होती है। परीक्षित् ! कालका परिमाण, कल्प और उसके अन्तर्गत मन्वन्तरोंका वर्णन आगे चलकर करेंगे। अब तुम पाद्मकल्पका वर्णन सावधान होकर सुनो ॥४४–४७॥

शौनकजीने पूछा—सूतजी ! आपने हम लोगोंसे कहा था कि भगवान्‌के परम भक्त विदुरजीने अपने दुस्त्यज कुटुम्बियोंको भी छोड़कर पृथ्वीके विभिन्न तीर्थोंमें विचरण किया था। उस यात्रामें मैत्रेय ऋषिके साथ अध्यात्मके सम्बन्धमें उनकी बातचीत कहाँ हुई ? मैत्रेयजीने उनके प्रश्न करनेपर किस तत्त्वका उपदेश किया ? सूतजी ! आपका स्वभाव बड़ा सौम्य है। आप विदुरजीका वह चरित्र हमें सुनाइये। उन्होंने अपने भाई-बन्धुओंको क्यों छोड़ा और फिर उनके पास क्यों लौट आये ? ॥४८–५०॥

सूतजी बोले—शौनकादि ऋषियो ! राजा परीक्षित्‌ने भी यही बात पूछी थी। उनके प्रश्नोंके उत्तरमें श्रीशुकदेवजी महाराजने जो कुछ कहा था, वही मैं आप लोगोंसे कहता हूँ। सावधान होकर सुनिये ॥५१॥

द्वितीय स्कन्ध समाप्त



कल्पके आरम्भमें इस सृष्टिकी रचना की, जिस प्रकार इसे स्थापित कर वे जगत्के जीवोंकी जीविकाका विधान करते हैं फिर जिस प्रकार इसे अपने हृदयाकाशमें लीन कर वृत्तिशून्य हो योगमाया का आश्रय लेकर शयन करते हैं और जिस प्रकार वे योगेश्वरेश्वर प्रभु एक होनेपर भी इन अनेक भूतोंमें अनुप्रविष्ट होकर अनेक रूपोंमें प्रकट होते हैं—वह सब रहस्य आप हमें समझाइये। इसके सिवा वे ब्राह्मण, गौ और देवताओंके कल्याणके लिये जो मत्स्य-कच्छपादि अनेकों अवतार धारण करके लीलाहीसे नाना प्रकारके दिव्य कर्म करते हैं, वे भी हमें सुनाइये, क्योंकि यशस्वियोंके सिरमौर श्रीहरिके परम पवित्र अमृतमय चरित्रोंको सुनते सुनते हमारा चित्त अघाता नहीं॥ २–७॥

द्विजवर! इसके सिवा हमे यह भी सुनाइये कि उन समस्त लोकपतियोंके स्वामी श्रीहरिने इन लोकों, लोकपालों और लोकालोकपर्वतसे बाहरके भागोंको, जिनमें कि ये सब प्रकारके प्राणियोंके अधिकारानुसार भिन्न भिन्न भेद प्रतीत हो रहे हैं, किन तत्त्वोंसे रचा है तथा किस प्रकार उन विश्वकर्ता स्वयम्भू श्रीनारायणने अपनी प्रजाके स्वभाव, कर्म, रूप और नामोंके भेदकी रचना की है। भगवन्! मैंने श्रीव्यासजीके मुखसे ऊँच नीच वर्णोंके धर्म तो कई बार सुने हैं। किन्तु अब श्रीकृष्णकथामृतके प्रवाहको छोड़कर अन्य स्वल्प सुखदायक धर्मोंसे तो मेरा चित्त ऊब गया है। उन तीर्थपाद श्रीहरिके गुणानुवादसे तृप्त हो भी कौन सकता है? उनका तो नारदादि महात्मागण भी आप-जैसे साधुओंके समाजमें कीर्तन करते हैं तथा जिस समय ये मनुष्योंके कर्णरन्ध्रोंमें प्रवेश करते हैं तो उनकी संसारचक्रमें डालनेवाली घर-गृहस्थी की आसक्तिको काट डालते हैं। भगवन्! आपके सखा मुनिवर कृष्णद्वैपायनने भी भगवान्के गुणोंका वर्णन करनेकी इच्छासे ही महाभारत रचा है। उसमें भी विषय सुखोंका उल्लेख करते हुए मनुष्योंकी बुद्धिको भगवान्की कथाओंकी ओर लगानेका ही प्रयत्न किया गया है। यह भगवत्कथाकी रुचि श्रद्धालु पुरुषके हृदयमें जब बढ़ने लगती है, तो अन्य विषयोंसे उसे विरक्त कर देती है। और इस प्रकार भगवच्चरणोंके निरन्तर चिन्तनसे आनन्दमग्न हुए उस पुरुषके सभी दुःखोंका तत्काल अन्त कर डालती है। मुझे तो उन शोचनीयोंके भी शोचनीय अज्ञानी पुरुषोंके लिये निरन्तर खेद रहता है, जो अपने पिछले पापोंके कारण श्रीहरिकी कथाओंसे विमुख रहते हैं। हाय! कालभगवान् उनके अमूल्य जीवनको काट रहे हैं और वे वाणी, देह और मनसे व्यर्थ वाद विवाद, व्यर्थ चेष्टा और व्यर्थ चिन्तनमें लगे रहते हैं। मैत्रेयजी! आप दीनोंपर कृपा करनेवाले हैं, अतः भौंरा जैसे फूलोंमेंसे रस निकाल लेता है, उसी प्रकार इन लौकिक कथाओंमेंसे इनकी सारभूता परम कल्याणकारी पवित्रकीर्ति श्रीहरिकी कथाएँ छाँटकर हमारे कल्याणके लिये सुनाइये। उन सर्वेश्वरने संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहार करनेके लिये अपनी मायाशक्तिको स्वीकार कर राम-कृष्णादि अवतारों के द्वारा जो अनेकों अलौकिक लीलाएँ की हैं, वे सब मुझे सुनाइये॥ ८–१६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब विदुरजीने जीवोंके कल्याणके लिये इस प्रकार प्रश्न किया, तब तो मुनिवर मैत्रेयजीने उनकी बहुत बड़ाई करते हुए इस प्रकार कहा॥ १७॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—साधुस्वभाव विदुरजी! आपने सब जीवोंपर अत्यन्त अनुग्रह करके यह बड़ी अच्छी बात पूछी है। आपका चित्त तो सर्वदा श्रीभगवान्में ही लगा रहता है, तथापि इससे संसारमें भी आपका बहुत सुयश फैलेगा। आपने श्रीव्यासजीके वीर्यसे जन्म लिया है, इसलिये आपके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है कि आप अनन्यभावसे सर्वेश्वर श्रीहरिके ही आश्रित हो गये हैं। आप प्रजाको दण्ड देनेवाले भगवान् यम ही हैं। माण्डव्य ऋषिका शाप होनेके कारण ही आपने श्रीव्यासजीके वीर्यसे उनके भाई विचित्रवीर्यकी भोगपत्नी दासीके गर्भसे जन्म लिया है। आप सर्वदा ही श्रीभगवान्के और उनके भक्तोंको अत्यन्त प्रिय हैं, इसीलिये भगवान् निजधाम पधारते समय मुझे आपको ज्ञानो पदेश करनेकी आज्ञा दे गये हैं। इसलिये अब मैं जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये योगमायासे विकसित हुई भगवान्की विभिन्न लीलाओंका क्रमशः वर्णन करता हूँ॥ १८–२२॥

सम्पूर्ण जीवोंके अन्तरात्मा परमात्मस्वरूप श्रीभगवान् सृष्टिके पूर्व, जबतक उनकी इच्छाशक्तिरूपा माया उनमें लीन थी, अकेले ही थे। उनकी नानारूपमें प्रतीति नहीं होती थी। उस समय यह जगत् एकमात्र भगवद्रूप ही था। अकेले ही प्रकाशित होनेके कारण उस समय साक्षीस्वरूप परमात्माने अपने सिवा और कुछ नहीं देखा, इसलिये मायाशक्तिके सुप्त और ज्ञानशक्तिके जाग्रत् रहनेसे तथा अहङ्कारकी भी स्फूर्ति न होनेसे उन्होंने अपनेको असत् सा समझा। महाभाग विदुरजी! यही उन साक्षीस्वरूप परमात्माकी सदसद्रूपा मायाशक्ति है,

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत

तृतीय स्कन्ध

पहला अध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

उद्धव और विदुरकी भेंट

श्रीशुकदेवजी बोले—परीक्षित् ! जो बात तुमने पूछी है, वही पूर्वकालमें अपने सुख-समृद्धिसे पूर्ण घरको छोड़कर वनमें गये हुए विदुरजीने भगवान् मैत्रेयजीसे पूछी थी। देखो, जब सर्वेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके दूत बनकर गये थे तो वे दुर्योधनके महलोंको छोड़कर उन्हीं विदुरजीके घर, उसे अपना ही समझकर, बिना बुलाये चले गये थे ॥१-२॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—प्रभो ! यह तो बतलाइये कि भगवान् मैत्रेयके साथ विदुरजीका समागम कहाँ और किस समय हुआ था ? विदुरजी तो बड़े पवित्रात्मा थे। उन्होंने महात्मा मैत्रेयजीसे कोई साधारण बात नहीं पूछी होगी, क्योंकि उसे तो मैत्रेयजी-जैसे साधुशिरोमणिने उत्तर देकर महिमान्वित किया था ॥ ३-४ ॥

सूतजी कहते हैं—मुनिवर शुकदेवजी अनेकों विषयोंके ज्ञाता थे। परीक्षित्‌के इस प्रकार पूछनेपर उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—सुनो ॥५॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परीक्षित् ! राजा धृतराष्ट्र जन्मसे अंधे तो थे ही, अधर्मके कारण उनकी विवेक-शक्ति भी नष्ट हो गयी थी। उन्होंने अपने पापी पुत्रोंकी हाँ-में-हाँ मिलाकर अपने छोटे भाई पाण्डुके अनाथ बालकोंको लाक्षाभवनमें भेजकर आग लगवा दी। जब महाराज युधिष्ठिरकी पटरानी और उनकी पुत्रवधू द्रौपदीके केश दुःशासनने भरी सभामें खींचे, उस समय द्रौपदीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली—यहाँतक कि उस प्रवाहसे उसके वक्षःस्थलपर लगा हुआ केसर भी बह चला; किन्तु धृतराष्ट्रने अपने पुत्रको उस कुकर्मसे नहीं रोका। दुर्योधनने सत्यपरायण और भोले-भाले युधिष्ठिरका राज्य कपटपूर्ण जूआ रचकर अन्यायसे ही जीत लिया, और उन्हें वनमें निकाल दिया। किन्तु वनसे लौटनेपर प्रतिज्ञानुसार जब उन्होंने अपना न्यायोचित पैतृक भाग माँगा, तब भी मोहवश उन्होंने उन अजातशत्रु युधिष्ठिरको उनका हिस्सा नहीं दिया। महाराज युधिष्ठिरके भेजनेपर जब जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णने कौरवोंकी सभामें हितभरे सुमधुर वचन कहे, जो भीष्मादि सज्जनोंको अमृत-से लगे, पर कुरुराजने उनके कथनको कुछ भी आदर नहीं दिया। देते कैसे ? उनके तो सारे पुण्य नष्ट हो चुके थे। फिर जब सलाहके लिये विदुरजीको बुलाया गया तो मन्त्रियोंमें श्रेष्ठ विदुरजीने राज्यभवनमें जाकर बड़े भाई धृतराष्ट्रके पूछनेपर उन्हें वह सम्मति दी, जिसे नीतिज्ञ पुरुष 'विदुरनीति' कहते हैं ॥ ६—१० ॥

उन्होंने कहा—'महाराज ! आप अजातशत्रु महात्मा युधिष्ठिरको उनका हिस्सा दे दीजिये। वे आपके न सहनेयोग्य अपराधको भी सह रहे हैं। भीमरूप काले नागसे तो आप भी बहुत डरते हैं; देखिये, वह अपने छोटे भाइयोंके सहित बदला लेनेके लिये बड़े क्रोधसे फुफकारें मार रहा है। आपको पता नहीं, भगवान् श्रीकृष्णने भी पाण्डवोंको अपना लिया है। वे यदुवीरोंके आराध्यदेव इस समय अपनी राजधानी द्वारकापुरीमें विराजमान हैं। उन्होंने पृथ्वीके सब राजाओंको अपने अधीन कर लिया है, तथा ब्राह्मण और देवता भी उन्हींके पक्षमें हैं। जिसे आप पुत्र मानकर पाल रहे हैं तथा जिसकी हाँ-में-हाँ मिलाते जा रहे हैं, वह दुर्योधन तो मूर्तिमान् दोष ही आपके घरमें घुसा बैठा है। यह तो साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णसे द्वेष करनेवाला है। इसीके कारण आप भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख होकर श्रीहीन हो रहे हैं। अतएव यदि आप अपने कुलकी कुशल चाहते हैं, तो इस दुष्टको तुरंत ही त्याग दीजिये' ॥ ११—१३ ॥

अन्न ग्रहण कर सकें तथा ये सब जीव भी सब प्रकारकी विघ्न बाधाओंसे दूर रहकर हम दोनोंको भोग समर्पण करते हुए अपना अपना अन्न भक्षण कर सकें, ऐसा कोई उपाय कीजिये। आप निर्विकार पुराणपुरुष ही अन्य कार्यवर्गके सहित हम देवताओंके आदिकारण हैं। देव! पहले आपहीने सत्त्वादि गुण और जन्मादि कर्मोंकी कारणरूपा मायाशक्तिमें चिदाभासरूप वीर्य स्थापित किया था। परमात्मदेव! महत्तत्त्वादिरूप हम देवगण जिस कार्यके लिये उत्पन्न हुए हैं, उसके सम्बन्धमें हम क्या करें? देव! हमपर आप ही अनुग्रह करनेवाले हैं। इसलिये ब्रह्माण्डरचनाके लिये आप हमें क्रियाशक्तिके सहित अपनी ज्ञानशक्ति भी प्रदान कीजिये ॥ ४७-५० ॥

छठा अध्याय

विराट् शरीरकी उत्पत्ति

श्रीमैत्रेय ऋषिने कहा—भगवान्‌ने जब देखा कि आपसमें संगठित न होनेके कारण ये मेरी महत्तत्त्व आदि शक्तियाँ विश्वरचनाके कार्यमें असमर्थ हो रही हैं, तब वे कालशक्तिको स्वीकार करके एक साथ ही महत्तत्त्व, अहङ्कार, पञ्चभूत, पञ्चतन्मात्रा और मनसहित ग्यारह इन्द्रियाँ—इन तेईस तत्त्वोंके समुदायमें प्रविष्ट हो गये। उनमें प्रविष्ट होकर उन्होंने जीवोंके सोये हुए अदृष्टको जाग्रत् किया और परस्पर विलग हुए उस तत्त्वसमूहको अपनी क्रियाशक्तिके द्वारा आपसमें मिला दिया। इस प्रकार जब भगवान्‌ने अदृष्टको कार्योन्मुख किया, तब उस तेईस तत्त्वोंके समूहने भगवान्‌की प्रेरणासे अपने अंशोंद्वारा अधिपुरुष—विराट्‌को उत्पन्न किया। अर्थात् जब भगवान्‌ने अंशरूपसे उसमें प्रवेश किया, तो वह विश्वरचना करनेवाला महत्तत्त्वादिका समुदाय एक दूसरेसे मिलकर परिणामको प्राप्त हुआ। यह तत्त्वोंका परिणाम ही विराट् पुरुष है, जिसमें कि चराचर जगत् विद्यमान है। जलके भीतर जो अण्डरूप आश्रय स्थान था, उसमें वह हिरण्मय विराट् पुरुष सम्पूर्ण जीवोंको साथ लेकर एक हजार दिव्य वर्षोंतक रहा। वह विश्व रचना करनेवाले तत्त्वोंका गर्भ (कार्य) था तथा ज्ञान, क्रिया और आत्मशक्तिसे सम्पन्न था। इन शक्तियोंसे उसने स्वयं अपने क्रमशः एक, दस और तीन विभाग किये अर्थात् ज्ञानशक्तिके द्वारा हृदयावच्छिन्न चैतन्यस्वरूपमें एक प्रकारका, क्रियाशक्ति द्वारा प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनञ्जय—यों प्राणस्वरूपसे दस प्रकारका और आत्मशक्तिद्वारा भोक्तृत्वरूपसे अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतके भेदसे तीन प्रकारका हो गया। यह विराट् पुरुष ही प्रथम जीव होनेके कारण समस्त जीवोंका आत्मा, जीवरूप होनेके कारण परमात्माका अंश और प्रथम अभिव्यक्त होनेके कारण भगवान्‌का आदि-अवतार है। यह सम्पूर्ण भूतसमुदाय इसीमें प्रकाशित होता है। यह अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवरूपसे तीन प्रकारका, प्राणरूपसे दस प्रकारका और हृदयरूपसे एक प्रकारका है ॥ १-९ ॥

फिर विश्वकी रचना करनेवाले महत्तत्त्वादिके अधिपति श्रीभगवान्‌ने उनकी प्रार्थनाको स्मरण कर उनकी वृत्तियोंको जगानेके लिये अपने चेतनरूप तेजसे उस विराट् पुरुषको प्रकाशित किया, उसे जगाया। उसके जाग्रत् होते ही देवताओंके लिये कितने स्थान प्रकट हुए—यह मैं बतलाता हूँ, सुनो। विराट् पुरुषके पहले मुख प्रकट हुआ, उसमें लोकपाल अग्नि अपने अंश वागिन्द्रियके समेत प्रविष्ट हो गया, जिससे यह जीव बोलता है। फिर तालु उत्पन्न हुआ, उसमें लोकपाल वरुण अपने अंश रसनेन्द्रियके सहित स्थित हुआ, जिससे जीव रस ग्रहण करता है। इसके पश्चात् उस विराट् पुरुषके नथुने प्रकट हुए, उनमें दोनों अश्विनीकुमार अपने अंश घ्राणेन्द्रियके सहित प्रविष्ट हुए, जिससे जीव गन्ध ग्रहण करता है। इसी प्रकार जब आँखें प्रकट हुईं तो उनमें अपने अंश नेत्रेन्द्रियके सहित सूर्यने प्रवेश किया, जिस नेत्रेन्द्रियसे पुरुषको विविध रूपोंका ज्ञान होता है। फिर उस विराट् विग्रहमें त्वचा उत्पन्न हुई, उसमें अपने अंश त्वगिन्द्रियके सहित वायु स्थित हुआ, जिस त्वगिन्द्रियसे जीव स्पर्शका अनुभव करता है। जब इसके कर्णछिद्र प्रकट हुए, तब उनमें अपने अंश श्रवणेन्द्रियके सहित दिशाओंने प्रवेश किया, जिस श्रवणेन्द्रियसे जीवको शब्दका ज्ञान होता है। फिर विराट् शरीरमें चर्म उत्पन्न हुआ, उसमें अपने अंश रोमोंके सहित ओषधियाँ स्थित हुईं, जिन रोमोंसे जीव खुजली आदिका अनुभव करता है। अब उसके लिङ्ग उत्पन्न हुआ। अपने इस आश्रयमें प्रजापतिने अपने अंश वीर्यके सहित

विदुरजी कहने लगे—उद्धवजी! पुराणपुरुष बलरामजी और श्रीकृष्णने अपने ही नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे अवतार लिया है। वे दुष्टोंके दमनसे संसारमें शान्ति स्थापित कर अब श्रीवसुदेवजीके घर कुशलसे तो हैं न? प्रियवर! हम कुरुवंशियोंके परम सुहृद् और पूज्य वसुदेवजी, जो पिताके समान उदारतापूर्वक अपनी कुन्ती आदि बहिनोंको उनके स्वामियोंका सन्तोष कराते हुए उनकी सभी मनचाही वस्तुएँ देते आये हैं, आनन्दपूर्वक हैं न? प्यारे उद्धवजी! यादवोंके सेनापति वीरवर प्रद्युम्नजी तो प्रसन्न हैं न, जो पूर्व-जन्ममें कामदेव थे तथा जिन्हें देवी रुक्मिणीजीने ब्राह्मणोंकी आराधना करके भगवान्‌से प्राप्त किया है? सात्वत, वृष्णि, भोज और दाशार्हवंशी यादवोंके अधिपति महाराज उग्रसेन तो सुखसे हैं न, जिन्होंने राज्य पानेकी आशाका सर्वथा परित्याग कर दिया था किन्तु भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें फिरसे राज्य-सिंहासनपर बैठाया? उद्धवजी! आपका स्वभाव बड़ा ही मधुर है। बतलाइये, भगवान् श्रीकृष्णके पुत्र, समस्त रथियोंमें अग्रगण्य साम्ब सकुशल हैं न—जो गुण और शीलमें अपने पिताके समान हैं तथा जो स्वामिकार्त्तिकेयके अवतार हैं? इनको पहले श्रीपार्वतीजीने अपने उदरमें धारण किया था, और अब इन्होंने नाना प्रकारके व्रतोंका पालन करनेवाली जाम्बवती-के गर्भसे जन्म लिया है। जिन्होंने अर्जुनसे रहस्ययुक्त धनुर्विद्या-की शिक्षा पायी है, वे सात्यकि तो कुशलपूर्वक हैं न? वे भगवान् श्रीकृष्णकी सेवासे अनायास ही भगवज्जनोंकी उस महान् स्थितिपर पहुँच गये हैं, जो बड़े-बड़े योगियोंको भी दुर्लभ है। भगवान्‌के शरणागत भक्त परम बुद्धिमान् अक्रूरजी भी प्रसन्न हैं न, जो श्रीकृष्णके चरण-चिह्नोंसे अङ्कित व्रजरजमें प्रेमसे अधीर होकर लोटने लगे थे? भोजवंशी देवककी पुत्री देवकीजी अच्छी तरह हैं न, जो देवमाता अदितिके समान ही साक्षात् विष्णु भगवान्‌की माता हैं? जिस प्रकार वेद यज्ञ-विस्ताररूप अर्थको अपने मन्त्रोंमें धारण किये रहते हैं, उसी प्रकार उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको अपने गर्भमें धारण किया था। आप भक्तजनोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाले भगवान् अनिरुद्धजी सुखपूर्वक हैं न, जिन्हें शास्त्र वेदोंके आदिकारण और अन्तःकरणचतुष्टयके चौथे अंश मनके अधिष्ठाता बतलाते हैं।* सौम्यस्वभाव उद्धवजी! अपने आत्माके अधीश्वर भगवान् श्रीकृष्णका अनन्यभावसे अनुसरण करने-वाले जो हृदीक, सत्यभामापुत्र चारुदेष्ण और गद आदि अन्य भगवान्‌के पुत्र हैं, वे सब भी कुशलपूर्वक हैं न? ॥ २६–३५ ॥

महाराज युधिष्ठिरकी कुशल भी सुनाइये। उनकी तो अर्जुन और श्रीकृष्ण ही दो भुजाएँ हैं। इनकी सहायतासे वे धर्ममर्यादाका न्यायपूर्वक पालन करते हैं न? देखिये, मय दानवकी बनायी हुई सभामें इनके राज्यवैभव और दबदबेको देखकर दुर्योधनको कैसा डाह हुआ था? भीमसेन सर्पके समान बड़े क्रोधी हैं। जब वे गदायुद्धमें तरह-तरहके पैंतरे बदलते थे, तो उनके पैरोंकी धमकसे धरती धूज उठती थी। अब उन्होंने अपने अपराधी दुर्योधनादिके प्रति बढ़े हुए द्वेषको त्याग दिया है क्या? जिनके बाणोंके जालसे छिपकर किरातवेषधारी भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गये थे, वे रथी और यूथपतियोंका सुयश बढ़ानेवाले गाण्डीवधारी अर्जुन तो प्रसन्न हैं न? अब तो उनके सभी शत्रु शान्त हो चुके हैं न? पलक जिस प्रकार नेत्रोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार कुन्तीके पुत्र युधिष्ठिरादि जिनकी सर्वदा सँभाल रखते हैं और कुन्तीने ही जिनका लालन-पालन किया है, वे माद्रीके यमज पुत्र नकुल-सहदेव कुशलसे तो हैं न? उन्होंने युद्धमें दुर्योधनादि शत्रुओंसे अपना राज्य उसी प्रकार छीन लिया, जैसे दो गरुड़ इन्द्रके मुखसे अमृत निकाल लावें। अहो! बेचारी कुन्तीकी कुशल तो क्या पूछूँ? वह तो राजर्षिश्रेष्ठ पाण्डुके वियोगमें मृतप्राय-सी होकर भी इन बालकोंके लिये ही प्राण धारण किये हुए है। रथियोंमें श्रेष्ठ महाराज पाण्डु ऐसे वीर थे कि उन्होंने केवल एक धनुष लेकर ही अकेले चारों दिशाओंको जीत लिया था। और सौम्यस्वभाव उद्धवजी! मुझे तो अधःपतनकी ओर जाने-वाले उस धृतराष्ट्रके लिये बार-बार शोक होता है, जिसने पाण्डवोंके रूपमें अपने परलोकवासी भाई पाण्डुसे द्रोह किया, तथा अपने पुत्रोंकी हाँ-में-हाँ मिलाकर अपने हितचिन्तक मुझको भी नगरसे निकलवा दिया। किन्तु भाई! मुझे इसका कुछ भी खेद अथवा आश्चर्य नहीं है। जगद्विधाता भगवान् श्रीकृष्ण ही मनुष्योंकी-सी लीलाएँ करके लोगोंकी मनोवृत्तियों-को भ्रमित कर देते हैं। मैं तो उन्हींकी कृपासे उनकी महिमा-को देखता हुआ दूसरोंकी दृष्टिसे दूर रहकर सानन्द विचर रहा हूँ। उनकी कृपासे मेरे सारे सन्देह नष्ट हो गये हैं। यद्यपि कौरवोंने उनके बहुतसे अपराध किये, फिर भी भगवान्‌ने उन्हें इसीलिये छोड़ दिया था कि वे उनके साथ उन दुष्ट

* चित्त, अहङ्कार, बुद्धि और मन—ये अन्तःकरणके चार अंश हैं। इनके अधिष्ठाता क्रमशः वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध हैं।

सातवाँ अध्याय

विदुरजीके प्रश्न

श्रीशुकदेवजी बोले—जिस समय मैत्रेयजी इस प्रकार भाषण कर रहे थे, परम बुद्धिमान् व्यासनन्दन विदुरजी उन्हें अपनी वाणीसे प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥ १ ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! भगवान् तो शुद्ध बोध स्वरूप, निर्विकार और निर्गुण हैं, उनके साथ लीलासे भी गुण और क्रियाका सम्बन्ध कैसे हो सकता है? यदि आप कहें यह बालकोंके समान केवल उनका खेल ही है, तो बालकमें तो कामना और दूसरोंके साथ खेलनेकी इच्छा रहती है, इसीसे वह खेलनेके लिये प्रयत्न करता है, किन्तु भगवान् तो नित्यतृप्त—पूर्णकाम और सर्वदा असङ्ग हैं, वे क्रीडाके लिये भी क्यों सङ्कल्प करेंगे? भगवान्‌ने अपनी गुणमयी मायासे जगत्‌की रचना की है, उसीसे इसका पालन करते हैं और फिर उसीसे सहार भी करेंगे। किन्तु जिनके ज्ञानका देश, काल या अवस्थासे अथवा अपनेसे या किसी दूसरेसे भी कभी लोप नहीं होता, उनका मायाके साथ किस प्रकार सयोग हो सकता है? एकमात्र ये भगवान् ही समस्त क्षेत्रोंमें उनके साक्षीरूपसे स्थित हैं, फिर इन्हें दुर्भाग्य या किसी प्रकारके कर्मजनित क्लेशकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? भगवन्! इस अज्ञान सङ्कटमें पड़कर मेरा मन बड़ा खिन्न हो रहा है, आप मेरे मनके इस महान् सन्देहको कृपा करके दूर कीजिये ॥ २–७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—तत्त्वजिज्ञासु विदुरजीके इस प्रकार पूछनेपर अहङ्कारहीन श्रीमैत्रेयजी भगवान्‌का स्मरण करते हुए मुसकरा कर कहने लगे ॥ ८ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—जो आत्मा सबका स्वामी और सर्वथा मुक्तस्वरूप है, वही दीनता और बन्धनको प्राप्त हो—यह बात युक्तिविरुद्ध अवश्य है, किन्तु वस्तुत. यही तो भगवान्‌की माया है। जिस प्रकार स्वप्न देखनेवाले पुरुषको अपना सिर कटना आदि व्यापार न होनेपर भी अज्ञानके कारण सत्यवत् भासते हैं, उसी प्रकार इस जीवको बन्धनादि न होते हुए भी अज्ञानवश भास रहे हैं। यदि यह कहा जाय कि फिर ईश्वरमें इनकी प्रतीति क्यों नहीं होती, तो इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार जलमें होनेवाली कम्प आदि क्रिया जलमें दीखनेवाले चन्द्रमाके प्रतिबिम्बमें न होनेपर भी भासती है, आकाशस्थ चन्द्रमामें नहीं, उसी प्रकार देहाभिमानी जीवमें ही देहके मिथ्या धर्मोंकी प्रतीति होती है, परमात्मामें नहीं। शरीरके धर्मोंकी जीवके अदर *होनेवाली यह मिथ्या प्रतीति निष्कामभावसे* धर्मोंका आचरण करनेपर भगवत्कृपासे प्राप्त हुए भक्तियोगके द्वारा धीरे धीरे निवृत्त हो जाती है। जिस समय समस्त इन्द्रियाँ विषयोंसे हटकर *साक्षी परमात्मा श्रीहरिमें निश्चलभावसे स्थित* हो जाती हैं, उस समय गाढ निद्रामें सोये हुए मनुष्यके समान जीवके राग द्वेषादि सारे क्लेश सर्वथा नष्ट हो जाते हैं। इन सारे क्लेशोंका अन्त तो श्रीहरिकी गुणावलीके कीर्त्तन एव श्रवणसे ही हो जाता है, फिर यदि हमारे हृदयमें उनके चरणकमलकी रजके सेवनका प्रेम जग पड़े, तब तो कहना ही क्या है? ॥ ९–१४ ॥

विदुरजीने कहा—भगवन्! आपके इन युक्तियुक्त वचनोंने मेरे सशयोंको काटनेमें तलवारका काम किया है। इनसे सारे सन्देह पूरी तरह कट गये हैं। अब मेरा चित्त *भगवान्‌की स्वतन्त्रता और जीवकी परतन्त्रता*—दोनों ही विषयोंमें खूब प्रवेश कर रहा है। विद्वन्! आपने यह बात बहुत ठीक कही कि जीवको जो क्लेशादिकी प्रतीति हो रही है, उसका आधार केवल भगवान्‌की बहिरङ्गा माया ही है। स्वप्नमें दीखनेवाले अपने सिर कटने आदिके समान वह मिथ्या एव निर्मूल ही है, क्योंकि मायाके सिवा इस जगत्‌का भी तो कोई और कारण नहीं है। इस विषयमें सशयग्रस्त रहनेके कारण मैं बहुत बेचैन था, अब मेरे सन्देहोंको दूर करके आपने मुझे बड़ा ही आनन्द दिया है। इस ससारमें दो ही प्रकारके लोग सुखी हैं जो या तो अत्यन्त मूढ (अज्ञानग्रस्त) हैं, या जो बुद्धि आदिसे अतीत श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर चुके हैं। बीचकी श्रेणीके सशयापन्न लोग तो दु ख ही भोगते रहते हैं। भगवन्! आपकी कृपासे मुझे यह तो निश्चय हो गया कि ये अनात्म पदार्थ वस्तुत हैं नहीं, केवल प्रतीत ही होते हैं। अब मैं आपके चरणोंकी सेवाके प्रभावसे उस प्रतीतिको भी हटा दूँगा। आपके इन श्रीचरणोंकी सेवासे नित्यसिद्ध भगवान् श्रीमधुसूदनके चरणकमलोंमें उत्कट प्रेम और आनन्दकी वृद्धि होती है, जो आवागमनकी यन्त्रणाका नाश कर देती है। मेरा बड़ा भाग्य है जो मुझे आपका दर्शन

मायाका प्रभाव दिखानेके लिये जो मानवलीलाओंके योग्य दिव्य श्रीविग्रह प्रकट किया था, वह इतना सुन्दर था कि उसे देखकर सारा जगत् तो मोहित हो ही जाता था, वे स्वयं भी विस्मित हो जाते थे। सौभाग्य और सुन्दरताकी पराकाष्ठा थी उस रूपमें। उससे आभूषण (अङ्गोंके गहने) भी विभूषित हो जाते थे—उनकी भी शोभा बढ़ जाती थी ॥७–१२॥

जब धर्मराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें भगवान्के उस नयनाभिराम रूपपर लोगोंकी दृष्टि पड़ी थी, तो त्रिलोकीने यही माना था कि मानवसृष्टिकी रचनामें विधाताकी जितनी चतुराई है, सब इसी रूपमें पूरी हो गयी है। उनके प्रेमपूर्ण हास्य-विनोद और लीलामय चितवनसे सम्मानित होनेपर व्रज-बालाओंकी आँखें उन्हींकी ओर लग जाती थीं और उनका चित्त ऐसा तल्लीन हो जाता था कि वे घरके काम-धंधोंको अधूरा ही छोड़कर जड पुतलियोंकी तरह खड़ी रह जाती थीं। जब कार्यात्मक एवं कारणात्मक जगत्के स्वामी भगवान्ने देखा कि मेरे शान्त रूप ऋषि-मुनियोंको मेरे ही घोर रूप दानवादि सता रहे हैं, तो अजन्मा होनेपर भी वे करुणावश अपने महान् अंश श्रीबलदेवजीके सहित इस प्रकार प्रकट हो गये जैसे व्यापक अग्नि काष्ठादिसे। अजन्मा होकर भी वसुदेवजीके यहाँ जन्म लेनेकी लीला करना, सबको अभय देनेवाले होनेपर भी कंसके भयसे डरपोककी तरह व्रजमें जाकर छिप रहना और अनन्त पराक्रमी होनेपर भी कालयवनके सामने मथुरापुरीको छोड़कर भाग जाना—भगवान्की ये लीलाएँ याद आ-आकर मुझे बेचैन कर डालती हैं। कंसके मरनेके बाद उन्होंने जो माता-पिताकी चरण-वन्दना करके कहा था—'पिताजी, माताजी! कंसका बड़ा भय रहनेके कारण मुझसे आपकी कोई सेवा न बन सकी, आप मेरे इस अपराधपर ध्यान न देकर मुझपर प्रसन्न हों।' श्रीकृष्णकी ये बातें जब याद आती हैं, तब आज भी मेरा चित्त अत्यन्त व्यथित हो जाता है। जिन्होंने कालरूप अपने भ्रुकुटिविलाससे ही पृथ्वीका सारा भार उतार दिया था—भला, उनके चरणारविन्दके परागका सेवन करनेवाला ऐसा कौन पुरुष है, जो उन्हें भूल सके? बड़े-बड़े योगी जिस परम सिद्धिकी लालसासे अनेकों बड़ी-बड़ी कठिन साधनाएँ किया करते हैं—आपने देखा ही था कि राजसूय यज्ञमें श्रीकृष्णका द्वेष करनेवाले शिशुपालको वही अनायास मिल गयी थी। शिशुपाल ही क्यों, महाभारत-युद्धमें जिन सब योद्धाओंने अपनी आँखोंसे भगवान् श्रीकृष्णके नयनाभिराम मुख-कमलका मकरन्द पीते हुए, अर्जुनके बाणोंसे बिंधकर प्राणत्याग किया, वे पवित्र होकर सब-के-सब भगवान्के परमधामको प्राप्त हो गये। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, वे तीनों लोकोंके अधीश्वर हैं; उनके समान भी कोई नहीं है, तब उनसे बढ़कर तो कोई हो ही कैसे सकता है? वे अपने परमानन्दस्वरूपमें ही नित्य पूर्णकाम हैं। उनके चरण रखनेकी चौकीपर इन्द्रादि असंख्य लोकपालगण नाना प्रकारकी भेंटें ला-लाकर अपने-अपने मुकुटोंके अग्रभागको उनके चरणोंमें सदा झुकाये रखते और उनकी वन्दना किया करते हैं। विदुरजी! वे ही भगवान् श्रीकृष्ण, राजसिंहासनपर बैठे हुए उग्रसेनके सामने खड़े होकर निवेदन करते थे 'देव! हमारी प्रार्थना सुनिये।' उनके इस सेवाभावकी याद आते ही मुझ-जैसे सेवकोंका चित्त अत्यन्त व्यथित हो जाता है। कितनी विलक्षण बात है यह—पापिनी पूतनाने अपने स्तनोंमें हलाहल विष लगाकर श्रीकृष्णको मार डालनेकी बुरी नीयतसे उन्हें दूध पिलाया था; उसको भी भगवान्ने वह परम गति दी जो धायको मिलनी चाहिये! उन भगवान् श्रीकृष्णसे बढ़कर और कौन दयालु है, जिसकी शरणमें जायँ? मैं तो असुरोंको भी भगवान्का भक्त समझता हूँ; क्योंकि वैरभावजनित क्रोधके कारण उनका चित्त सदा श्रीकृष्णमें लगा रहता था और उन्हें रणभूमिमें सुदर्शन-चक्रधारी भगवान्को कंधेपर चढ़ाकर झपटते हुए गरुड़जीके दर्शन हुआ करते थे ॥ १३–२४ ॥

ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे पृथ्वीका भार उतारकर उसे सुखी करनेके लिये कंसके कारागारमें वसुदेव-देवकीके यहाँ भगवान्ने अवतार लिया था। उस समय कंसके डरसे पिता वसुदेवजीने उन्हें नन्दबाबाके व्रजमें पहुँचा दिया था। वहाँ वे बलरामजीके साथ ग्यारह वर्षतक इस प्रकार छिपकर रहे कि उनका प्रभाव व्रजके बाहर किसीपर प्रकट नहीं हुआ। व्रजमें रहते समय वे ग्वाल-बालोंके साथ बछड़े चराते यमुना-तटके निकुञ्जोंमें, जहाँ वृक्षोंपर भाँति-भाँतिके पक्षी चहकते रहते थे, खेला करते थे। उनकी चितवन भोलेभाले सिंहके बच्चेके समान थी, वे कभी रोने और कभी हँसनेकी-सी मुद्रा करके व्रजवासियोंको अनेकों दर्शनीय बाललीलाएँ दिखाते रहते थे। फिर कुछ बड़े होनेपर वे सफेद बैल और रंग-बिरंगी मूर्तिमान् शोभामयी गौओंको चराते हुए अपने साथी गोपोंको बाँसुरी बजा-बजाकर रिझाने लगे। इसी समय जब कंसने उन्हें मारनेके लिये बहुत-से मायावी और मनमाना रूप धारण करनेवाले राक्षस भेजे, तब उनको खेल-ही-खेलमें भगवान्ने मार डाला—जैसे बालक खिलौनोंको तोड़-फोड़ डालता है। इसके बाद कालियनागका दमन कर उसे वहाँसे निकाल दिया

आठवाँ अध्याय

ब्रह्माजीकी उत्पत्ति

श्रीमैत्रेयजी बोले—विदुरजी ! आप तो भगवद्भक्तोंमें प्रधान लोकपाल यमराज ही हैं, आपने पुरुवंशमें जन्म लिया है, इसलिये वह साधुपुरुषोंके सेवन करनेयोग्य हो गया है। अहो ! आप तो क्षण-क्षणमें श्रीहरिकी कीर्तिमालाको नयी नयी सी कर रहे हैं। अच्छा, तो अब मैं, क्षुद्र विषय सुखकी कामनासे महान् दु खको मोल लेनेवाले पुरुषोंकी दु खनिवृत्तिके लिये, श्रीमद्भागवतपुराण प्रारम्भ करता हूँ—जिसे स्वय श्रीसङ्कर्षणभगवान्ने सनकादि ऋषियोंको सुनाया था ॥१ २॥

एक बार पाताललोकमें विराजमान अबाध ज्ञानसम्पन्न आदिदेव भगवान् सङ्कर्षण—वेद जिनका वासुदेव कहकर वर्णन करते हैं उन, अपने ही आश्रय, श्रीनारायणदेवका बड़े आदरपूर्वक मानस पूजन कर रहे थे। वे अन्तर्मुखवृत्तिसे अपने अन्तरात्मामें लगाये हुए नयनकमलोंको सनकादि ज्ञानिजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये कुछ कुछ खोले हुए थे। उस समय सनत्कुमार आदि मुनीश्वरोंने उनसे भी श्रेष्ठ श्रीपुरुषोत्तम भगवान्का तत्त्व जाननेकी इच्छासे उनसे यही बातें पूछी थीं। भगवान्के मस्तकोंपर सुशोभित हजारों मुकुटोंमें जड़ी हुई देदीप्यमान उत्तमोत्तम मणियोंसे उनके सहस्रों फण जगमगा रहे थे। उनके चरणोंके नीचे एक दिव्य कमल था, जिसका अनेकों नागकन्याएँ मनोवाञ्छित वरकी प्राप्तिके लिये प्रेमपूर्वक तरह तरहकी सामग्रियोंसे पूजन करती हैं। सनकादिने गङ्गाजलसे भीगी हुई अपनी जटाओंसे उसका स्पर्श किया और कृतज्ञतापूर्वक प्रेमगद्गद वाणीसे उनकी लीलाओंका बार बार वर्णन करते हुए उनसे यह प्रश्न किया। उस समय भगवान् सङ्कर्षणने निवृत्तिपरायण सनत्कुमारजीको यह भागवत सुनाया था—ऐसा प्रसिद्ध है। उन्होंने फिर इसे परम व्रतशील साङ्ख्यायन मुनिको, उनके प्रश्न करनेपर, सुनाया। और परमहंसोंमें प्रधान श्रीसाङ्ख्यायनजीको जब भगवान्की विभूतियोंका वर्णन करनेकी इच्छा हुई, तब उन्होंने इसे अपने अनुगत शिष्य, हमारे गुरु श्रीपराशरजीको और बृहस्पतिजीको सुनाया। इसके पश्चात् परम दयालु पराशरजीने पुलस्त्य मुनिके कहनेसे वह आदिपुराण मुझसे कहा। हे वत्स ! श्रद्धालु और अपना अनुगत देखकर अब वही पुराण मैं तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ३–९ ॥

सृष्टिके पूर्व यह सम्पूर्ण विश्व जलमें डूबा हुआ था। उस समय एकमात्र श्रीनारायणदेव शेषशय्यापर पौढ़े हुए थे। उस समय उनमें किसी भी क्रियाका उन्मेष नहीं हुआ था। उन्होंने अपनी ज्ञानशक्तिको अक्षुण्ण रखते हुए योगनिद्राका आश्रय ले आत्मानन्दमें मग्न हो अपने नेत्र मूँद लिये। जिस प्रकार अग्नि अपनी दाहिका आदि शक्तियोंको छिपाये हुए काष्ठमें व्याप्त रहता है, उसी प्रकार श्रीभगवान्ने सम्पूर्ण प्राणियोंके सूक्ष्म शरीरोंको अपने शरीरमे लीन करके अपने आधारभूत उस जलमें शयन किया, उन्हें सृष्टिकाल आनेपर पुन जगानेके लिये केवल कालशक्तिको जाग्रत् रक्खा। इस प्रकार अपनी स्वरूपभूता चिच्छक्तिके साथ एक सहस्र चतुर्युगपर्यन्त जलमें शयन करनेके अनन्तर जब उन्हींके द्वारा नियुक्त उनकी कालशक्तिने उन्हें जीवोंके कर्मोंकी प्रवृत्तिके लिये प्रेरित किया, तब उन्होंने अपने शरीरमें लीन हुए अनन्त लोक देखे। जिस समय भगवान्की दृष्टि अपनेमें निहित लिङ्गशरीरादि सूक्ष्मतत्त्वपर पड़ी, तब वह कालाश्रित रजोगुणसे क्षुभित होकर सृष्टिरचनाके निमित्त उनके नाभिदेशसे बाहर निकला। कर्मशक्तिको जाग्रत् करनेवाले कालके द्वारा विष्णुभगवान्की नाभिसे प्रकट हुआ वह सूक्ष्मतत्त्व कमलकोशके रूपमे सहसा ऊपर उठा और उसने सूर्यके समान अपने तेजसे उस अपार जलराशिको देदीप्यमान कर दिया। सम्पूर्ण गुणोंको प्रकाशित करनेवाले उस सर्वलोकमय कमलमें वे विष्णुभगवान् ही अन्तर्यामीरूपसे प्रविष्ट हो गये। तब उसमेंसे बिना पढाये ही स्वय सम्पूर्ण वेदोंको जाननेवाले साक्षात् वेदमूर्ति श्रीब्रह्माजी प्रकट हुए, जिन्हें लोग स्वयम्भू कहते हैं। उस कमलकी कर्णिकामें बैठे हुए ब्रह्माजीको जब कोई लोक दिखायी नहीं दिया, तब वे आँखें फाड़कर आकाशमें चारों ओर गर्दन घुमाकर देखने लगे। इससे उनके चारों दिशाओंमें चार मुख हो गये। उस समय प्रलयकालीन पवनके थपेड़ोंसे उछलती हुई जलकी तरङ्गमालाओंके कारण उस जलराशिसे ऊपर उठे हुए कमलपर विराजमान आदिदेव ब्रह्माजीको अपना तथा उस लोकतत्त्वरूप कमलका कुछ भी रहस्य न जान पड़ा ॥ १०–१७ ॥

वे सोचने लगे, 'इस कमलकी कर्णिकापर बैठा हुआ मैं कौन हूँ ? यह कमल भी बिना किसी अन्य आधारके जलमें कहाँसे उत्पन्न हो गया ? इसके नीचे अवश्य कोई ऐसी वस्तु होनी चाहिये, जिसके आधारपर यह स्थित है' ॥ १८ ॥

किन्तु कर्ण, दुःशासन और शकुनिकी खोटी सलाहसे जिसकी आयु और श्री नष्ट हो चुकी थी, तथा भीमसेनकी गदासे जिसकी जाँघ टूट चुकी थी, उस दुर्योधनको अपने साथियोंके सहित पृथ्वीपर पड़ा देखकर भी उन्हें प्रसन्नता न हुई। वे सोचने लगे—यदि द्रोण, भीष्म, अर्जुन और भीमसेनके द्वारा इस अठारह अक्षौहिणी सेनाका संहार हो भी गया, तो इससे पृथ्वीका कितना भार हल्का हुआ? अभी तो मेरे अंशरूप प्रद्युम्न आदिके बलसे बढ़े हुए यादवोंका दुःसह दल बना ही हुआ है। जब मधु पीकर ये मतवाले हो जायँगे और लाल-लाल आँखें करके आपसमें लड़ने लगेंगे, तब उस परस्परके कलहसे ही इनका नाश होगा। इनके नाशका इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है। असलमें तो जब मैं इनको मरवाना चाहूँगा, तब ये स्वयं ही नष्ट हो जायँगे ॥८–१५॥

ऐसा सोचकर भगवान्‌ने महाराज युधिष्ठिरको उनकी राजगद्दीपर बैठाया और अपने सभी सगे-सम्बन्धियोंको सत्पुरुषोंका मार्ग दिखाकर आनन्दित किया। उत्तराके उदरमें जो अभिमन्युने पुरुवंशका बीज स्थापित किया था, वह भी अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे नष्ट-सा हो चुका था; किन्तु भगवान्‌ने उसे बचा लिया। उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिरसे तीन अश्वमेध-यज्ञ करवाये और वे भी श्रीकृष्णके अनुगामी होकर अपने छोटे भाइयोंकी सहायतासे पृथ्वीकी रक्षा करते हुए बड़े आनन्दसे रहने लगे। विश्वात्मा श्रीभगवान्‌ने भी द्वारकापुरीमें रहकर लोक और वेदकी मर्यादाका पालन करते हुए सब प्रकारके भोग भोगे, किन्तु सांख्ययोगमें स्थित रहनेके कारण उनमें कभी आसक्त नहीं हुए। मधुर मुसकान और स्नेहमयी चितवनसे, सुधामयी वाणीसे, निर्मल चरित्रसे तथा समस्त शोभा और सुन्दरताके निवास अपने श्रीविग्रहसे इस लोक और परलोकको, विशेषतया यादवोंको आनन्दित किया तथा रात्रिमें अपनी प्रीतिपात्री प्रियाओंके साथ क्षणिक अनुरागयुक्त होकर समयोचित विहार किया और इस प्रकार उन्हें भी सुख दिया। इस तरह बहुत वर्षोंतक विहार करते-करते उन्हें गृहस्थसम्बन्धी भोगोंसे भी वैराग्य हो गया। इस प्रकार जब लीलामय भगवान्‌को अपने अधीन रहनेवाले भोगोंमें भी वैराग्य हुआ, तो भक्ति-योगके द्वारा उन योगेश्वरका अनुगमन करनेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा जो स्वयं दैवाधीन होकर भी दैववश ही प्राप्त होनेवाले भोगोंमें आसक्त होगा? ॥ १६–२३ ॥

एक बार द्वारकापुरीमें खेलते हुए यदुवंशी और भोजवंशी बालकोंने हँसी-हँसीमें कुछ मुनीश्वरोंको चिढ़ा दिया। तब—यादवकुलका नाश ही भगवान्‌को अभीष्ट है—यह समझकर उन ऋषियोंने बालकोंको शाप दे दिया। इसके कुछ ही महीने बाद दैवमोहित वृष्णि, भोज और अन्धकवंशी यादव बड़े हर्षसे रथोंपर चढ़कर प्रभासक्षेत्रको गये। वहाँ स्नान कर उन्होंने उस तीर्थके जलसे पितर, देवता और ऋषियोंका तर्पण किया तथा ब्राह्मणोंको अच्छी-अच्छी दूधवाली गौएँ दीं। इसके सिवा उन्होंने सोना, चाँदी, शय्या, वस्त्र, मृगचर्म, कम्बल, पालकी, रथ, हाथी, कन्याएँ और जिससे जीविका चल सके, ऐसी भूमि तथा नाना प्रकारके सरस अन्न भी भगवदर्पण करके ब्राह्मणोंको दिये। इसके पश्चात् गौ और ब्राह्मणोंके लिये ही प्राण धारण करनेवाले उन वीरोंने पृथ्वीपर सिर टेककर उन्हें प्रणाम किया ॥ २४–२८ ॥

चौथा अध्याय

उद्धवजीसे विदा होकर विदुरजीका मैत्रेय ऋषिके पास जाना

उद्धवजीने कहा—फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञा पाकर यादवोंने भोजन किया और वारुणी मदिरा पीकर ऐसे मतवाले हो गये कि आपसमें गाली-गलौज करके एक-दूसरेका चित्त दुखाने लगे। मदिराके नशेसे उनकी बुद्धि बिगड़ गयी और जैसे आपसकी रगड़से बाँसोंमें आग लग जाती है, उसी प्रकार सूर्यास्त होते-होते उनमें मार-काट होने लगी। भगवान् अपनी मायाकी उस विचित्र गतिको देखकर सरस्वतीके जलसे आचमन कर एक वृक्षके नीचे बैठ गये। इससे पहले ही शरणागतोंका दुःख दूर करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने अपने कुलका संहार करनेकी इच्छा होनेपर मुझसे कह दिया था कि तुम बदरिकाश्रम चले जाओ। विदुरजी! इससे यद्यपि मैं उनका आशय समझ गया था, तो भी स्वामीके चरणोंका वियोग न सह सकनेके कारण मैं उनके पीछे-पीछे प्रभासक्षेत्रमें पहुँच गया। वहाँ अपने प्रियतम प्रभुको खोजते-खोजते मैंने देखा कि जो सबके आश्रय हैं किन्तु जिनका कोई और आश्रय नहीं है, वे शोभाधाम



शेषशायीकी झाँकी

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार विदुरजीके साथ विश्वमूर्ति भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंकी चर्चा होनेसे उस कथामृतके द्वारा उद्धवजीका वियोगजनित महान् ताप शान्त हो गया। यमुनाजीके तीरपर उनकी वह रात्रि एक क्षणके समान बीत गयी। फिर प्रातःकाल होते ही वे वहाँसे चल दिये॥ २७॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! ब्राह्मणोंके शापसे वृष्णि और भोजवंशके सभी रथी और यूथपतियोंके भी यूथपति नष्ट हो गये थे। यहाँतक कि त्रिलोकीनाथ श्रीहरिको भी अपना वह रूप छोड़ना पड़ा था। फिर उन सबके मुखिया उद्धवजी ही कैसे बच रहे?॥ २८॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—जिनकी इच्छा कभी व्यर्थ नहीं होती, उन श्रीहरिने ब्राह्मणोंके शापरूप कालके बहाने अपने कुलका संहार कर अपने श्रीविग्रहको त्यागते समय विचार किया कि 'अब इस लोकसे मेरे चले जानेपर तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ उद्धव ही मेरे आश्रित रहनेवाले ज्ञानको ग्रहण करनेमें समर्थ है। उद्धव मुझसे अणुमात्र भी कम नहीं है, वह मेरे ही समान मायासे अतीत है; क्योंकि विषय इसके चित्तको विचलित नहीं कर सकते। अतः संसारको मेरे ज्ञानका उपदेश करते हुए अभी इसे यहीं रहना चाहिये।' वेदोंके उत्पत्तिस्थान त्रिलोकगुरु भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार आज्ञा देनेपर उद्धवजी बदरिकाश्रममें आकर समाधियोगद्वारा प्रभुकी आराधना करने लगे। कुरुश्रेष्ठ परीक्षित्! परमात्मा श्रीकृष्णने लीलाहीसे श्रीविग्रह प्रकट किया था, और लीलासे ही उसे अन्तर्धान भी कर दिया। उनका वह अन्तर्धान होना भी धीर पुरुषोंका उत्साह बढ़ानेवाला तथा दूसरे पशुतुल्य अधीर पुरुषोंको अत्यन्त दुष्कर प्रतीत होनेवाला था। परम भागवत उद्धवजीके मुखसे उनके प्रशंसनीय कर्म और इस प्रकार अन्तर्धान होनेका समाचार पाकर तथा यह जानकर कि भगवान्ने परमधाम जाते समय मुझे भी स्मरण किया था, विदुरजी उनके चले जानेपर प्रेमसे विह्वल होकर रोने लगे। इसके पश्चात् वे सिद्धप्रवर यमुनातटसे चलकर कुछ दिनोंमें गङ्गाजीके किनारे जा पहुँचे, जहाँ श्रीमैत्रेयजी रहते थे॥ २९—३६॥

पाँचवाँ अध्याय

विदुरजीका प्रश्न और मैत्रेयजीका सृष्टिक्रमवर्णन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परमज्ञानी मैत्रेय मुनि



हरिद्वारक्षेत्रमें विराजमान थे। भगवद्भावभावित कुरुश्रेष्ठ विदुरजी उनके पास जा पहुँचे और उनके साधुस्वभावसे सन्तुष्ट होकर उन्होंने पूछा॥ १॥

विदुरजी बोले—भगवन्! संसारमें सब लोग सुखके लिये कर्म करते हैं; परन्तु उनसे न तो उन्हें सुख ही मिलता है और न उनका दुःख ही दूर होता है, बल्कि उससे भी उनके दुःखकी वृद्धि ही होती है। अतः इस विषयमें क्या करना उचित है, यह आप मुझे कृपा करके बतलाइये। मैं तो यह समझता हूँ कि जो लोग दुर्भाग्यवश भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख, अधर्मपरायण और अत्यन्त दुखी हैं, उनपर कृपा करनेके लिये ही आप-जैसे भाग्यशाली भगवद्भक्त संसारमें विचरा करते हैं। आप तो साधुओंमें श्रेष्ठ हैं। आप मुझे उस शान्तिप्रद साधनका उपदेश दीजिये, जिसके अनुसार आराधना करनेसे सम्पूर्ण जीवोंके अन्तःकरणमें स्थित श्रीभगवान् भक्तिसे पवित्र हुए चित्तमें अपने स्वरूपका अपरोक्ष अनुभव करानेवाला सनातन ज्ञान प्रदान करते हैं। त्रिलोकीके नियन्ता और आत्मतन्त्र श्रीहरि अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ करते हैं, जिस प्रकार अकर्ता होकर भी उन्होंने

नवाँ अध्याय

ब्रह्माजीद्वारा भगवान्‌की स्तुति

ब्रह्माजीने कहा—प्रभो ! आज बहुत समयके बाद मैं आपको जान सका हूँ । अहो ! कैसे दुर्भाग्यकी बात है कि देहधारी जीव आपकी गति, आपके स्वरूपको नहीं जान पाते । भगवन् ! आपके सिवा और कोई वस्तु नहीं है। जो वस्तु प्रतीत होती है, वह भी स्वरूपतः सत्य नहीं है, क्योंकि मायाके गुणोंके क्षुभित होनेके कारण केवल आप ही अनेकों रूपोंमें प्रतीत हो रहे हैं । देव ! आपकी चित् शक्तिके प्रकाशित रहनेके कारण अज्ञान आपसे सदा ही दूर रहता है । आपका यह रूप, जिसके नाभि कमलसे मैं प्रकट हुआ हूँ, सैकड़ों अवतारोंका मूल कारण है । इसे आपने सत्पुरुषोंपर कृपा करनेके लिये ही पहले पहल धारण किया है । परमात्मन् ! आपका जो आनन्दमात्र, निर्विकल्प (भेदरहित), अखण्ड तेजोमय स्वरूप है, उसे मैं इससे भिन्न नहीं समझता । इसलिये मैंने विश्वातीत होनेपर भी विश्वकी रचना करनेवाले आपके इस अद्वितीय रूपकी ही शरण ली है । यही सम्पूर्ण भूत और इन्द्रियोंका भी अधिष्ठान है । समस्त विश्वका कल्याण आपमें समाया हुआ है । हे विश्वकल्याणमय ! मैं आपका उपासक हूँ, आपने मेरे हितके लिये ही मुझे ध्यानमें अपना यह रूप दिखलाया है । जो नरकभागी(पापात्मा) विषयासक्त जीव हैं, वे ही इसका निरादर करते हैं । मैं तो आपको इसी रूपमें बारंबार नमस्कार करता हूँ । मेरे स्वामी ! जो लोग वेदरूप वायुसे लायी हुई आपके चरणरूप कमलकोशकी गन्धको अपने कर्णपुटोंसे ग्रहण करते हैं, उन अपने भक्तजनोंके हृदय कमलसे आप कभी दूर नहीं होते; क्योंकि वे पराभक्तिरूप डोरीसे आपके पादपद्मोंको बाँध लेते हैं । जबतक पुरुष आपके अभयप्रद चरणारविन्दोंका आश्रय नहीं लेता, तभीतक उसे धन, घर और बन्धुजनोंके कारण प्राप्त होनेवाले भय, शोक, लालसा, दीनता और अत्यन्त लोभ आदि सताते हैं और तभीतक उसे मैं-मेरेपनका असत् आग्रह रहता है, जो दुःखका एकमात्र कारण है । जो लोग सब प्रकारके अमङ्गलोंको नष्ट करनेवाले आपके श्रवण-कीर्तनादि प्रसङ्गोंसे इन्द्रियोंको हटाकर लेशमात्र विषय-सुखके लिये दीन, और मन ही मन लालायित होकर निरन्तर दुष्कर्मोंमें लगे रहते हैं, उन बेचारोंकी बुद्धि दैवने हर ली है । अच्युत ! उरुक्रम ! इस प्रजाको भूख प्याससे, वात, पित्त, कफ—इन तीन धातुओंसे, सर्दी, गर्मी, हवा और वर्षासे, आपसमें एक-दूसरेसे, तथा कामाग्नि और दुःसह क्रोधसे बार-बार कष्ट उठाते देखकर मेरा मन बड़ा खिन्न होता है । स्वामिन् ! जबतक मनुष्य इन्द्रिय और विषयरूपी मायाके प्रभावसे आपसे अपनेको भिन्न देखता है, तबतक उसके लिये इस संसारचक्रकी निवृत्ति नहीं होती । यद्यपि यह मिथ्या है, तथापि कर्मफल भोगका क्षेत्र होनेके कारण उसे नाना प्रकारके दुःखोंमें डालता रहता है ॥ १-९ ॥

देव ! औरोंकी तो बात ही क्या—जो साक्षात् मुनि हैं, वे भी यदि आपके कथा प्रसंगोंसे विमुख रहते हैं तो उन्हें संसारमें फँसना पड़ता है । वे दिनमें तो अनेक प्रकारके व्यापारोंके कारण विक्षिप्तचित्त रहते हैं, रात्रिमें निद्रामें अचेत पड़े रहते हैं; उस समय भी तरह तरहके मनोरथोंके कारण क्षण-क्षणमें उनकी नींद टूटती रहती है तथा दैववश उनकी अर्थसिद्धिके सब उद्योग भी विफल होते रहते हैं । नाथ ! आपका मार्ग केवल गुणश्रवणसे ही जाना जाता है । आप निश्चय ही मनुष्योंके भक्तियोगके द्वारा परिशुद्ध हुए हृदय कमलमें निवास करते हैं । पुण्यश्लोक प्रभो ! आपके भक्तजन जिस जिस भावनासे आपका चिन्तन करते हैं, उन साधु पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये आप वही वही रूप धारण कर लेते हैं । भगवन् ! आप एक हैं तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणोंमें स्थित उनके परम हितकारी अन्तरात्मा हैं । इसलिये यदि देवतालोग भी हृदयमें तरह-तरहकी कामनाएँ रखकर भाँति भाँतिकी विपुल सामग्रियोंसे आपका पूजन करते हैं, तो उससे आप उतने प्रसन्न नहीं होते जितने सब प्राणियोंपर दया करनेसे होते हैं । किन्तु यह सर्वभूतदया असत् पुरुषोंको अत्यन्त दुर्लभ है । इस प्रकार सकाम भावसे आपके अनुग्रहकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है; किन्तु जो कर्म आपको अर्पण कर दिया जाता है, उसका कभी नाश नहीं होता—वह अक्षय हो जाता है । अतः नाना प्रकारके कर्म—यज्ञ, दान, कठिन तपस्या और व्रतादिके द्वारा आपकी प्रसन्नता प्राप्त करना ही मनुष्यका सबसे बड़ा कर्मफल है; क्योंकि आपकी प्रसन्नता होनेपर ऐसा कौन फल है जो सुलभ नहीं हो जाता ! आप सर्वदा अपने स्वरूपके प्रकाशसे ही प्राणियोंके भेद भ्रमरूप अन्धकारका नाश करते रहते हैं तथा ज्ञानके अधिष्ठान साक्षात्

जिससे कि उन्होंने सबकी रचना की है। समयके फेरसे जब यह त्रिगुणमयी माया क्षोभको प्राप्त हुई, तब उन इन्द्रियातीत चिन्मय परमात्माने अपने अंश पुरुषरूपसे उसमें चिदाभासरूप बीज स्थापित किया। तब कालकी प्रेरणासे उस अव्यक्त मायासे महत्तत्त्व प्रकट हुआ। वह मिथ्या अज्ञानका नाशक होनेके कारण विज्ञानस्वरूप और अपनेमें सूक्ष्मरूपसे स्थित प्रपञ्चकी अभिव्यक्ति करनेवाला था। फिर चिदाभास, गुण और कालके अधीन उस महत्तत्त्वने भगवान्‌की दृष्टि पड़नेपर इस विश्वकी रचनाके लिये अपना रूपान्तर किया। महत्तत्त्वके विकृत होनेपर अहङ्कारकी उत्पत्ति हुई—जो कार्य (अधिभूत), कारण (अध्यात्म) और कर्ता (अधिदैव) रूप होनेके कारण भूत, इन्द्रिय और मनका कारण है। वह अहङ्कार वैकारिक (सात्त्विक), तैजस (राजस) और तामस भेदसे तीन प्रकारका है। अतः अहंतत्त्वमें विकार होनेपर वैकारिक अहङ्कारसे मन, और जिनसे विषयोंका ज्ञान होता है वे इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता हुए; तैजस अहङ्कारसे ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ हुईं तथा तामस अहङ्कारसे सूक्ष्म भूतोंका कारण अर्थात् शब्दतन्मात्र हुआ, और उससे दृष्टान्तरूपसे आत्माका बोध करानेवाला आकाश उत्पन्न हुआ। भगवान्‌की दृष्टि आकाशपर पड़ी तो उससे फिर काल, माया और चिदाभासके द्वारा स्पर्शतन्मात्र हुआ और उसके विकृत होनेपर उससे वायुकी उत्पत्ति हुई। महान् बलवान् वायुने आकाशके सहित विकृत होकर रूपतन्मात्रकी रचना की और उससे संसारका नेत्ररूप तेज हुआ। फिर परमात्माकी दृष्टि पड़नेपर वायुयुक्त तेजने काल, माया और चिदंशके योगसे विकृत होकर रसतन्मात्रके कार्य जलको उत्पन्न किया। तदनन्तर तेजके सहित जलने ब्रह्मके दृष्टिगोचर होनेपर काल, माया और चिदंशके द्वारा गन्धगुणमयी पृथ्वीको उत्पन्न किया। विदुरजी! इन आकाशादि भूतोंमेंसे जो-जो भूत पीछे-पीछे उत्पन्न हुए हैं, उनमें क्रमशः अपने पूर्व-पूर्व भूतोंके गुण भी अनुगत समझने चाहिये। ये महत्तत्त्वादिके अभिमानी विकार, विक्षेप और चेतनांशविशिष्ट देवगण श्रीभगवान्‌के ही अंश हैं। किन्तु भिन्न-भिन्न रहनेके कारण जब वे विश्वरचनारूप अपने कार्यमें सफल नहीं हुए, तब हाथ जोड़कर भगवान्‌से कहने लगे ॥ २३—३७ ॥

देवताओंने कहा—देव! हम आपके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं। ये अपनी शरणमें आये हुए जीवोंका ताप दूर करनेके लिये छत्रके समान हैं तथा इनका आश्रय लेनेसे यतिजन अनन्त संसार-दुःखको सुगमतासे ही पार कर जाते हैं। जगत्कर्ता जगदीश्वर! इस संसारमें तापत्रयसे व्याकुल रहनेके कारण जीवोंको जरा भी शान्ति नहीं मिलती। इसलिये भगवन्! हम आपके चरणोंकी ज्ञानमयी छायाका आश्रय लेते हैं। वेद भी आपके मुखरूप घोंसलेमें रहनेवाले पक्षी ही हैं। उनके द्वारा मुनिजन अपने आसक्तिशून्य हृदयोंमें जिन्हें निरन्तर खोजते रहते हैं तथा जो सम्पूर्ण पापनाशिनी नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीगङ्गाजीके उद्गमस्थान हैं, आपके उन परम पावन पादपद्मोंका हम आश्रय लेते हैं। जिन्हें श्रद्धा और श्रवण-कीर्तनादि भक्तिसे निर्मल हुए अपने अन्तःकरणोंमें धारण करके कितने ही लोग वैराग्यसहित ज्ञानसे सम्पन्न होकर परम बोधवान् हो जाते हैं, उन आपके चरणकमलोंकी पादुकाका हम आश्रय लेते हैं। ईश! आप संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिये ही अवतार लेते हैं; अतः हम सब आपके उन चरणकमलोंकी शरण लेते हैं, जो अपना स्मरण करनेवाले भक्तजनोंको अभय कर देते हैं। जिन पुरुषोंका देह, गेह तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य तुच्छ पदार्थोंमें अहंता-ममताका दृढ़ आग्रह है, उनके शरीरमें रहनेपर भी जो अत्यन्त दूर हैं—ऐसे आपके चरणारविन्दोंको हम भजते हैं। परम यशस्वी परमेश्वर! इन्द्रियोंके विषयाभिमुख रहनेके कारण जिनका मन सर्वदा बाहर ही भटका करता है, वे पामर-लोग आपके पादविन्यासकी शोभाके विशेषज्ञ भक्तजनोंका दर्शन नहीं कर पाते; इसीसे वे आपके चरणोंसे दूर रहते हैं। देव! आपके कथामृतका पान करनेसे उमड़ी हुई भक्तिके कारण जिनका अन्तःकरण निर्मल हो गया है, वे लोग—वैराग्य ही जिसका सार है—ऐसा आत्मज्ञान प्राप्त करके, अनायास ही आपके वैकुण्ठधामको चले जाते हैं। कोई धीर पुरुष चित्तनिरोधरूप समाधिके बलसे आपकी बलवती मायाको जीतकर आपहीमें लीन तो हो जाते हैं, पर उन्हें श्रम बहुत होता है; किन्तु आपकी सेवामें कुछ भी कष्ट नहीं है ॥ ३८—४६ ॥

आदिदेव! आपने सृष्टि-रचनाकी इच्छासे हमें त्रिगुणमय रचा है। इसलिये विभिन्न स्वभाववाले होनेके कारण हम आपसमें मिल नहीं पाते और इसीसे आपकी क्रीडाके साधनरूप ब्रह्माण्डकी रचना करके उसे आपको समर्पण करनेमें असमर्थ हो रहे हैं। अतः जन्मरहित भगवन्! जिस प्रकार हम ब्रह्माण्ड रचकर आपको सब प्रकारके भोग समर्पण कर सकें और जहाँ स्थित होकर हम भी समय-समयपर अपनी योग्यताके अनुसार

तथा मुझमें सम्पूर्ण लोक और अपने आपको देखोगे। जिस समय जीव काष्ठमें व्याप्त अग्निके समान समस्त भूतोंमें मुझे ही स्थित देखता है, उसी समय वह अपने अज्ञानरूप मलसे मुक्त हो जाता है। जब वह अपनेको भूत, इन्द्रिय, गुण और अन्तःकरणसे रहित तथा स्वरूपतः मुझसे अभिन्न देखता है, तब मोक्षपद प्राप्त कर लेता है। ब्रह्माजी! नाना प्रकारके कर्मसंस्कारोंके अनुसार अनेक प्रकारकी जीवसृष्टिको रचनेकी इच्छा होनेपर भी तुम्हारा चित्त मोहित नहीं होता, यह मेरी अतिशय कृपाका ही फल है। तुम सबसे पहले मन्त्रद्रष्टा हो। प्रजा उत्पन्न करते समय भी तुम्हारा मन मुझमें ही लगा रहता है, इसीसे पापमय रजोगुण तुमको बाँध नहीं पाता। तुम मुझे भूत, इन्द्रिय, गुण और अन्तःकरणसे रहित समझते हो; इससे जान पड़ता है कि यद्यपि देहधारी जीवोंको मेरा ज्ञान होना बहुत कठिन है, तथापि तुमने मुझे जान लिया है। 'मेरा आश्रय कोई है या नहीं' इस सन्देहसे तुम कमलनालके द्वारा जलमें उसका मूल खोज रहे थे, सो मैंने तुम्हें अपना यह स्वरूप अन्तःकरणमें ही दिखलाया है ॥ २९–३७ ॥

प्यारे ब्रह्माजी! तुमने जो मेरी कथाओंके वैभवसे युक्त मेरी स्तुति की है और तपस्यामें जो तुम्हारी रुचि हुई है, वह भी मेरी ही कृपाका फल है। लोकरचनाकी इच्छासे तुमने आपात दृष्टिसे सगुण प्रतीत होनेपर भी जो निर्गुणरूपसे मेरा वर्णन करते हुए स्तुति की है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। मैं समस्त कामनाओं और मनोरथोंको पूर्ण करनेमें समर्थ हूँ। जो पुरुष नित्यप्रति इस स्तोत्रद्वारा स्तुति करके मेरा भजन करेगा, उसपर मैं शीघ्र ही प्रसन्न हो जाऊँगा। तत्त्ववेत्ताओंका मत है कि पूर्त, तप, यज्ञ, दान, योग और समाधि आदि साधनोंसे प्राप्त होनेवाला जो परम कल्याणमय फल है, वह मेरी प्रसन्नता ही है। विधाता! मैं आत्माओंका भी आत्मा और स्त्री-पुत्रादि प्रियोंका भी प्रिय हूँ। देहादि भी मेरे ही लिये प्रिय हैं। अतः मुझसे ही प्रेम करना चाहिये। ब्रह्माजी! त्रिलोकीको तथा जो प्रजा इस समय मुझमें लीन है, उसे तुम पूर्वकल्पके समान मुझसे उत्पन्न हुए अपने सर्ववेदमय स्वरूपसे स्वयं ही रचो ॥ ३८–४३ ॥

मैत्रेयजी कहते हैं—प्रकृति और पुरुषके स्वामी कमलनाभ भगवान् सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको इस प्रकार जगत्‌की अभिव्यक्ति करवाकर अपने उस नारायणरूपसे अदृश्य हो गये ॥ ४४ ॥

दसवाँ अध्याय

दस प्रकारकी सृष्टिका वर्णन

विदुरजी बोले—मुनिवर! भगवान् नारायणके अन्तर्धान हो जानेपर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह (प्रजापतियोंके भी पिता) भगवान् ब्रह्माने अपने देह और मनसे कितने प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न की? भगवन्! इनके सिवा मैंने आपसे और जो-जो बातें पूछी हैं, उन सबका भी क्रमशः वर्णन कीजिये और मेरे सब संशयोंको दूर कीजिये, क्योंकि आप सभी बहुज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ १-२ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! विदुरजीके इस प्रकार पूछनेपर मुनिवर मैत्रेयजी बड़े प्रसन्न हुए और अपने हृदयमें स्थित उन प्रश्नोंका इस प्रकार उत्तर देने लगे ॥ ३ ॥

मैत्रेयजीने कहा—अजन्मा भगवान् श्रीहरिने जैसा कहा था, ब्रह्माजीने भी उसी प्रकार चित्तको अपने आत्मा श्रीनारायणमें लगाकर सौ दिव्य वर्षोंतक तप किया। उस बढ़ी हुई तपस्या और मनोगत विवेकशक्तिसे ब्रह्माजीका ज्ञानबल बहुत बढ़ गया। उन्होंने देखा कि कालशक्तिके प्रभावसे बढ़े हुए वायुसे उनका आश्रयस्थान कमल और जल हिल रहे हैं। यह देखकर वे जलके सहित उस वायुको पी गये। फिर जिसपर स्वयं बैठे हुए थे, उस आकाशव्यापी कमलको देखकर उन्होंने विचार किया कि 'पूर्वकल्पमें लीन हुए लोकोंको मैं इसीसे रचूँगा।' तब भगवान्‌के द्वारा सृष्टिकार्यमें नियुक्त ब्रह्माजीने उस कमलकोशमें प्रवेश किया और उस एकके ही भूः, भुवः, स्वः—ये तीन भाग किये, यद्यपि वह कमल इतना बड़ा था कि उसके चौदह भुवन या इससे भी अधिक लोकोंके रूपमें विभाग किये जा सकते थे। जीवोंके भोगस्थानके रूपमें इन्हीं तीन लोकोंका शास्त्रोंमें वर्णन हुआ है, ये सकाम कर्म करनेवालोंको प्राप्त होते हैं और कल्पपर्यन्त रहते हैं। किन्तु जो निष्काम कर्म करनेवाले हैं, उन्हें महः, तपः, जनः और सत्यलोकरूप ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है, जिनकी स्थिति ब्रह्माकी परमायु (दो परार्द्ध) पर्यन्त मानी गयी है ॥ ४–९ ॥

विदुरजीने कहा—ब्रह्मन्! आपने अद्भुतकर्मा विश्वरूप श्रीहरिकी जिस काल नामक शक्तिकी बात कही थी, प्रभो! उसका कृपया विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १० ॥

प्रवेश किया, जिससे जीव आनन्दका अनुभव करता है। फिर विराट् पुरुषके गुदा प्रकट हुई; उसमें लोकपाल मित्रने अपने अंश पायु-इन्द्रियके सहित प्रवेश किया, इससे जीव मलत्याग करता है। इसके पश्चात् उसके हाथ प्रकट हुए; उनमें अपनी ग्रहण-त्यागरूपा शक्तिके सहित देवराज इन्द्रने प्रवेश किया, इस शक्तिसे जीव अपनी जीविका प्राप्त करता है। इसी तरह जब इसके चरण उत्पन्न हुए, तब उनमें अपनी शक्ति गतिके सहित लोकेश्वर विष्णुने प्रवेश किया—इस गतिशक्तिद्वारा जीव अपने गन्तव्य स्थानपर पहुँचता है। फिर इसके बुद्धि उत्पन्न हुई; अपने इस स्थानमें अपने अंश बुद्धिशक्तिके साथ वाक्पति ब्रह्माने प्रवेश किया, इस बुद्धि-शक्तिसे जीव ज्ञातव्य विषयोंको जान सकता है। फिर इसमें हृदय प्रकट हुआ; उसमें अपने अंश मनके सहित चन्द्रमा स्थित हुआ। इस मनःशक्तिके द्वारा जीव सङ्कल्प-विकल्पादि-रूप विकारोंको प्राप्त होता है। तत्पश्चात् विराट् पुरुषमें अहङ्कार उत्पन्न हुआ; इस अपने आश्रयमें क्रियाशक्ति-सहित अभिमान (रुद्र) ने प्रवेश किया। इससे जीवमें क्रियाशीलता आती है। अब इसमें चित्त प्रकट हुआ; उसमें चित्तशक्तिके सहित महत्तत्त्व (ब्रह्मा) स्थित हुआ, इस चित्तशक्तिसे जीव विज्ञान (चेतना) को उपलब्ध करता है। इस विराट् पुरुषके सिरसे स्वर्गलोक, पैरोंसे पृथ्वी और नाभिसे अन्तरिक्ष (आकाश) उत्पन्न हुआ। इनमें क्रमशः सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके परिणामरूप देवता, मनुष्य और प्रेतादि देखे जाते हैं। इनमें देवतालोग सत्त्वगुणकी अधिकताके कारण स्वर्गलोकमें, मनुष्य और उनके उपयोगी गौ आदि जीव रजोगुणकी प्रधानताके कारण पृथ्वीमें, तथा तमोगुणी स्वभाववाले होनेसे रुद्रके पार्षदगण (भूत, प्रेत आदि) दोनोंके बीचमें स्थित भगवान्के नाभिस्थानरूप अन्तरिक्ष लोकमें रहते हैं ॥ १०—२९ ॥

विदुरजी! वेद और ब्राह्मण भगवान्के मुखसे प्रकट हुए। मुखसे प्रकट होनेके कारण ही ब्राह्मण सब वर्णोंमें श्रेष्ठ और सबका गुरु है। उनकी भुजाओंसे क्षत्रियवृत्ति और उसका अवलम्बन करनेवाला क्षत्रिय वर्ण उत्पन्न हुआ, जो विराट् भगवान्का अंश होनेके कारण जन्म लेकर सब वर्णोंकी चोर आदिके उपद्रवोंसे रक्षा करता है। भगवान्की जाँघोंसे सब लोगोंका निर्वाह करनेवाली वैश्य-वृत्ति उत्पन्न हुई और उन्हींसे वैश्य वर्णका भी प्रादुर्भाव हुआ। यह वर्ण अपनी वृत्तिसे सब जीवोंकी जीविका चलाता है। फिर सब धर्मोंकी सिद्धिके लिये भगवान्के चरणोंसे सेवावृत्ति प्रकट हुई और उन्हींसे पहले-पहले उस वृत्तिका अधिकारी शूद्रवर्ण भी प्रकट हुआ, जिसकी वृत्तिसे ही श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं।* ये चारों वर्ण अपनी-अपनी वृत्तियोंके सहित जिनसे उत्पन्न हुए हैं, उन अपने गुरु श्रीहरिका अपने-अपने धर्मोंसे चित्तशुद्धिके लिये श्रद्धापूर्वक पूजन करते हैं। विदुरजी! यह विराट् पुरुष काल, कर्म और स्वभाव-शक्तिसे युक्त भगवान्की योगमायाके प्रभावको प्रकट करनेवाला है। इसके स्वरूपका पूरा-पूरा वर्णन करनेका कौन साहस कर सकता है? फिर भी प्यारे विदुरजी! अन्य व्यावहारिक चर्चाओंसे अपवित्र हुई अपनी वाणीको पवित्र करनेके लिये, जैसी मेरी बुद्धि है और जैसा मैंने गुरुमुखसे सुना है वैसा, श्रीहरिका सुयश वर्णन करता हूँ। महापुरुषोंका मत है कि पुण्यश्लोकशिरोमणि श्रीहरिके गुणोंका गान करना ही मनुष्योंकी वाणीका, तथा विद्वानोंके मुखसे भगवत्कथामृतका पान करना ही उनके कानोंका सबसे बड़ा लाभ है। वत्स! हम ही नहीं, आदि-कवि श्रीब्रह्माजीने एक हजार दिव्य वर्षोंतक अपनी योगपरिपक्व बुद्धिसे विचार किया, तो भी क्या वे भगवान्की अमित महिमाका पार पा सके? अतः भगवान्की माया बड़े-बड़े मायावियोंको भी मोहित कर देनेवाली है। उसकी गति तो स्वयं भगवान् भी नहीं जानते, फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है। जहाँ न पहुँचकर मनके सहित वाणी भी लौट आती है तथा जिनका पार पानेमें अहङ्कारके अभिमानी रुद्र तथा अन्य इन्द्रियाधिष्ठाता देवता भी समर्थ नहीं हैं, उन श्रीभगवान्को हम नमस्कार करते हैं ॥ ३०—४० ॥

* सब धर्मोंकी सिद्धिका मूल सेवा है, सेवा किये बिना कोई भी धर्म सिद्ध नहीं होता। अतः सब धर्मोंकी मूलभूता सेवा ही जिसका धर्म है, वह शूद्र सब वर्णोंमें महान् है। ब्राह्मणका धर्म मोक्षके लिये है, क्षत्रियका धर्म भोगके लिये है, वैश्यका धर्म अर्थके लिये है और शूद्रका धर्म धर्मके लिये है। इस प्रकार प्रथम तीन वर्णोंके धर्म अन्य पुरुषार्थोंके लिये हैं, किन्तु शूद्रका धर्म स्वपुरुषार्थके लिये है; अतः इसकी वृत्तिसे ही भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं।

ग्यारहवाँ अध्याय

मन्वन्तरादि कालविभागका वर्णन

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! पृथ्वी आदि कार्य वर्गका जो सूक्ष्मतम अंश है—जिसका और विभाग नहीं हो सकता, तथा जो कार्यरूपको प्राप्त नहीं हुआ है और जिसका अन्य परमाणुओंके साथ संयोग भी नहीं हुआ है, उसे परमाणु कहते हैं। इन अनेक परमाणुओंके परस्पर मिलनेसे ही मनुष्योंको भ्रमवश उनके समुदायरूप एक अवयवीकी प्रतीति होती है। यह परमाणु जिसका सूक्ष्मतम अंश है, अपने सामान्य स्वरूपमें स्थित उस पृथ्वी आदि कार्योंकी एकता (समुदाय अथवा समग्ररूप) का नाम परम महान् है। इस समय उसमें न तो प्रलयादि अवस्थाभेदकी स्फूर्ति होती है, न नवीन प्राचीन आदि कालभेदका भान होता है और न घट पटादि वस्तुभेदकी ही कल्पना होती है। साधुश्रेष्ठ! इस प्रकार यह वस्तुके सूक्ष्मतम और महत्तम स्वरूपका विचार हुआ। इसीके सादृश्यसे परमाणु आदि अवस्थाओंमें व्याप्त होकर व्यक्त पदार्थोंको भोगनेवाले, सृष्टि आदिमें समर्थ, अव्यक्तस्वरूप भगवान् कालकी भी सूक्ष्मता और स्थूलताका अनुमान किया जा सकता है। जो काल प्रपञ्चकी परमाणु जैसी सूक्ष्म अवस्थामें व्याप्त रहता है, वह अत्यन्त सूक्ष्म है, और जो सृष्टिसे लेकर प्रलयपर्यन्त उसकी सभी अवस्थाओंका भोग करता है, वह परम महान् है ॥१–४॥

दो परमाणु मिलकर एक 'अणु' होता है और तीन अणुओंके मिलनेसे एक 'त्रसरेणु' होता है, जो झरोखेमेंसे होकर आयी हुई सूर्यकी किरणोंके प्रकाशमें आकाशमें उड़ता देखा जाता है। ऐसे तीन त्रसरेणुओंको पार करनेमें सूर्यको जितना समय लगता है, उसे 'त्रुटि' कहते हैं। इससे सौगुना काल 'वेध' कहलाता है और तीन वेधका एक 'लव' होता है। तीन लवको एक 'निमेष' और तीन निमेषको एक 'क्षण' कहते हैं। पाँच क्षणकी एक 'काष्ठा' होती है और पन्द्रह काष्ठाका एक 'लघु'। पन्द्रह लघुकी एक 'नाडिका' (दण्ड) कही जाती है, दो नाडिकाका एक 'मुहूर्त' होता है और दिनके घटने बढ़नेके अनुसार (दिन एवं रात्रिकी दोनों सन्धियोंके दो मुहूर्तोंको छोड़कर) छः या सात नाडिकाका एक 'प्रहर' होता है। यह 'याम' कहलाता है, जो मनुष्यके दिन या रातका चौथा भाग होता है। नाडिकाका मान यह है—छः पल ताँबेका एक ऐसा बरतन बनाया जाय जिसमें एक प्रस्थ जल आ सके और चार मासे सोनेकी चार अंगुल लंबी सलाई बनवाकर उसके द्वारा उस बरतनके पेंदेमें छेद करके उसे जलमें छोड़ दिया जाय। पेंदेके छेदसे जितने समयमें एक प्रस्थ जल उस बरतनमें भर जाय और वह बरतन जलमें डूब जाय, उतने समयको एक 'नाडिका' या 'दण्ड' कहते हैं। विदुरजी! चार चार पहरके मनुष्यके 'दिन' और 'रात' होते हैं और पन्द्रह दिन रातका एक 'पक्ष' होता है, जो शुक्ल और कृष्ण भेदसे दो प्रकारका माना गया है। इन दोनों पक्षोंको मिलाकर एक 'मास' होता है, जो पितरोंका एक दिन रात है। दो मासका एक 'ऋतु' और छः मासका एक 'अयन' होता है। अयन 'दक्षिणायन' और 'उत्तरायण' भेदसे दो प्रकारका है। ये दोनों अयन मिलकर देवताओंके एक दिन-रात होते हैं तथा मनुष्यलोकमें ये 'वर्ष' या बारह मास कहे जाते हैं। ऐसे सौ वर्षकी मनुष्यकी परम आयु बतायी गयी है। चन्द्रमा आदि ग्रह, अश्विनी आदि नक्षत्र और समस्त तारामण्डलके अधिष्ठाता कालस्वरूप भगवान् सूर्य परमाणुसे लेकर संवत्सरपर्यन्त कालमें द्वादश राशिरूप सम्पूर्ण भुवनकोशकी निरन्तर परिक्रमा किया करते हैं। सूर्य, बृहस्पति, सवन, चन्द्रमा और नक्षत्रसम्बन्धी महीनोंके भेदसे यह वर्ष ही संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और वत्सर कहा जाता है। विदुरजी! इन पाँच प्रकारके वर्षोंकी प्रवृत्ति करनेवाले भगवान् सूर्यकी तुम उपहारादि समर्पण करके पूजा करो। ये सूर्यदेव पञ्चभूतोंमेंसे तेजःस्वरूप हैं और अपनी कालशक्तिसे बीजादि पदार्थोंकी अङ्कुर उत्पन्न करनेकी शक्तिको अनेक प्रकारसे कार्योन्मुख करते हैं। ये पुरुषोंकी मोहनिवृत्तिके लिये उनकी आयुका क्षय करते हुए आकाशमें विचरते रहते हैं तथा ये ही सकाम पुरुषोंको यज्ञादि कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि मङ्गलमय फलोंका विस्तार करते हैं ॥५–१५॥

विदुरजी बोले—मुनिवर! आपने देवता, पितर और मनुष्योंकी परमायुका वर्णन तो किया। वह तो अपने-अपने दिनमानसे सौ-सौ वर्ष है। अब जो सनकादि ज्ञानी मुनिजन त्रिलोकीसे बाहर कल्पसे भी अधिक कालतक रहनेवाले हैं, उनकी भी आयुका वर्णन कीजिये। ज्ञानीलोग अपनी योगसिद्ध दिव्य दृष्टिसे सारे संसारको देख लेते हैं, अतः यह निश्चित है कि आप भगवान् कालकी गति अच्छी तरह जानते हैं ॥१६-१७॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि—ये चार युग अपनी सन्ध्या और सन्ध्यांशोंके

हुआ। महात्मा लोग भगवत्प्राप्तिके साक्षात् मार्ग ही होते हैं, उनके यहाँ सर्वदा देवदेव श्रीहरिके गुणोंकी चर्चा होती रहती है; जिनका थोड़ा पुण्य होता है, उन्हें उनकी सेवाका अवसर मिलना अत्यन्त कठिन है ॥ १५–२० ॥

भगवन्! आपने कहा कि सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान्ने क्रमशः महदादि तत्त्व और उनके विकारोंको रचकर फिर उनके अंशोंसे विराट्को उत्पन्न किया और इसके पश्चात् वे स्वयं उसमें प्रविष्ट हो गये। उन विराट्के हजारों पैर-जाँघें और हाथ हैं; उन्हींको वेद आदिपुरुष कहते हैं; उन्हींमें ये सब लोक विस्तृतरूपसे स्थित हैं, उन्हींमें इन्द्रिय, विषय और इन्द्रियाभिमानी देवताओंके सहित दस प्रकारका प्राण—जो इन्द्रियबल, मनोबल और शारीरिक बलरूपसे तीन प्रकारका है–स्थित हैं। तथा उन्हींसे आपने ब्राह्मणादि वर्णोंको उत्पन्न हुआ बतलाया है। सो अब आप मुझे उनकी ब्रह्मादि विभूतियोंका वर्णन सुनाइये, जिनसे कि पुत्र, पौत्र, नाती और कुटुम्बियोंके सहित तरह-तरहकी प्रजा उत्पन्न हुई और उससे यह सारा ब्रह्माण्ड भर गया। वह विराट् तो ब्रह्मादि प्रजापतियोंका भी प्रभु था। उसने किन-किन प्रजापतियोंको उत्पन्न किया तथा सर्ग, अनुसर्ग और मन्वन्तरोंके अधिपति मनुओंकी भी किस क्रमसे रचना की? इसके सिवा मैत्रेयजी! उन मनुओंके वंश और वंशधर राजाओंके चरित्रोंका, पृथ्वीके ऊपर और नीचे जो लोक हैं उनकी स्थितिका, और भूर्लोकके विस्तारका भी वर्णन कीजिये। तथा यह भी बताइये कि तिर्यक्, मनुष्य, देवता, सरीसृप (सर्पादि रेंगनेवाले जन्तु) और पक्षी तथा जरायुज, स्वेदज, अण्डज और उद्भिज—ये चार प्रकारके प्राणी किस प्रकार उत्पन्न हुए। सृष्टिके कार्यमें प्रवृत्त श्रीहरिने जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके लिये अपने गुणावतार ब्रह्मा, विष्णु और महादेवरूपसे जो-जो अलौकिक लीलाएँ कीं, उनका भी वर्णन कीजिये। इसके सिवा वेष, आचरण और स्वभावके अनुसार वर्णाश्रमका विभाग, ऋषियोंके जन्म-कर्मादि, वेदोंका विभाग, यज्ञोंके विस्तार, योगका मार्ग, ज्ञानमार्ग और उसका साधन, सांख्यमार्ग तथा भगवान्के कहे हुए नारदपाञ्चरात्र आदि तन्त्रशास्त्र, विभिन्न पाखण्डमार्गोंके प्रचारसे होनेवाली विषमता, नीचवर्णके पुरुषसे उच्चवर्णकी स्त्रीमें होनेवाली सन्तानोंके प्रकार तथा भिन्न-भिन्न गुण और कर्मोंके कारण जीवकी जो-जो गतियाँ होती हैं, वे सब हमें सुनाइये ॥ २१–३१ ॥

ब्रह्मन्! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके परस्पर अविरोधी साधनोंका, वाणिज्य, दण्डनीति और शास्त्रश्रवणकी विधियोंका, श्राद्धकी विधिका, पितृगणोंकी सृष्टिका तथा कालचक्रमें ग्रह, नक्षत्र और तारागणकी स्थितिका भी अलग-अलग वर्णन कीजिये। दान, तप तथा इष्ट और पूर्त्त कर्मोंका क्या फल है? परदेशमें अथवा आपत्तिके समय मनुष्यका क्या धर्म होता है? धर्मके मूल आधार श्रीजनार्दन किस प्रकारके आचरणसे प्रसन्न होते हैं? और उनका कैसे मनुष्योंपर अनुग्रह होता है? निष्पाप मैत्रेयजी! इन सबका रहस्य मुझे समझाइये। द्विजवर! दीनोंपर दया करनेवाले गुरुजन अपने अनुगत शिष्य और पुत्रोंको बिना पूछे भी उनके हितकी बात बतला दिया करते हैं। इसलिये मुझे बतलाने योग्य कोई बात आप मुझसे छिपाकर न रक्खें, यही प्रार्थना है। आपने जिन महदादि तत्त्वोंका निरूपण किया है, उनका प्रलय कितने प्रकारका है? तथा जब भगवान् योगनिद्रामें शयन करते हैं तब उनमेंसे कौन-कौन तत्त्व उनकी सेवा करते हैं और कौन उनमें लीन हो जाते हैं? जीवका तत्त्व, परमेश्वरका स्वरूप, उपनिषत्-प्रतिपादित ज्ञान, तथा गुरु और शिष्यका पारस्परिक प्रयोजन क्या है? पापरहित मैत्रेयजी! विद्वानोंने उस ज्ञानकी प्राप्तिके क्या-क्या उपाय बतलाये हैं, वे सब भी मुझसे कहिये; क्योंकि मनुष्योंको ज्ञान, भक्ति अथवा वैराग्यकी प्राप्ति अपने-आप तो हो नहीं सकती। ब्रह्मन्! मायासे मोहित होनेके कारण मेरा ज्ञान नष्ट हो गया है, मुझे अज्ञानने घेर लिया है, आप मेरे परमसुहृद् हैं; अतः श्रीहरिके चरित्र जाननेकी इच्छासे मैंने जो-जो प्रश्न किये हैं उन सभीका उत्तर मुझसे कहिये। पुण्यमय मैत्रेयजी! भगवत्तत्त्वके उपदेशद्वारा जीवको जन्म-मृत्युसे छुड़ाकर उसे अभय कर देनेमें जो पुण्य होता है, समस्त वेदोंके अध्ययन, यज्ञ, तपस्या और दानादिसे होनेवाला पुण्य उस पुण्यके एक अंशके बराबर भी नहीं हो सकता ॥ ३२–४१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जब कुरुश्रेष्ठ विदुरजीने मुनिवर मैत्रेयजीसे इस प्रकार पुराणविषयक प्रश्न किये, तब भगवच्चर्चाके लिये प्रेरित किये जानेके कारण वे बड़े प्रसन्न हुए और मुसकराते हुए उनसे इस प्रकार कहने लगे ॥ ४२ ॥

बारहवाँ अध्याय

सृष्टिका विस्तार

श्रीमैत्रेयजी बोले—विदुरजी ! यहाँतक मैंने आपको भगवान् कालकी महिमा सुनायी। अब जिस प्रकार ब्रह्माजीने जगत्‌की रचना की, वह सुनो। सबसे पहले उन्होंने अज्ञानकी पाँच वृत्तियाँ—तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र रचीं। किन्तु इस अत्यन्त पापमयी सृष्टिको देखकर उन्हे प्रसन्नता नहीं हुई। तब उन्होंने अपने मनको भगवान्‌के ध्यानसे पवित्र कर उससे दूसरी सृष्टि रची। इस बार उन्होंने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार—ये चार निवृत्तिपरायण ऊर्ध्वरेता मुनि उत्पन्न किये। अपने इन पुत्रोंसे ब्रह्माजीने कहा, 'पुत्रो, तुमलोग प्रजा उत्पन्न करो' किन्तु वे जन्मसे ही मोक्षमार्ग (निवृत्तिमार्ग) का अनुसरण करनेवाले और भगवान्‌के ध्यानमें तत्पर थे, इसलिये उन्होंने ऐसा करना नहीं चाहा। जब ब्रह्माजीने देखा कि मेरी आज्ञा न मानकर ये लोग मेरा तिरस्कार कर रहे हैं, तब उन्हें असह्य क्रोध उत्पन्न हुआ। उन्होंने उसे रोकनेका प्रयत्न किया। किन्तु बुद्धिद्वारा उनके बहुत रोकनेपर भी वह क्रोध तत्काल उनकी भौंहोंके बीचमेंसे एक नील-लोहित (नीले और लाल रंगके) बालकके रूपमें प्रकट हो गया। वे देवताओंके पूर्वज भगवान् भव (शिव) रो-रोकर कहने लगे 'जगत्पिता ! विधाता ! मेरे नाम और रहनेके स्थान बतलाइये' ॥ १–८ ॥

तब कमलयोनि भगवान् ब्रह्माने उस बालककी प्रार्थना पूर्ण करनेके लिये मधुर वाणीमें कहा, 'रोओ मत, मैं अभी तुम्हारी इच्छा पूरी करता हूँ। देवश्रेष्ठ ! तुम जन्म लेते ही बालकके समान फूट-फूटकर रोने लगे थे, इसलिये प्रजा तुम्हें 'रुद्र' नामसे पुकारेगी। तुम्हारे रहनेके लिये मैंने पहलेहीसे हृदय, इन्द्रिय, प्राण, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और तप—ये स्थान रच दिये हैं। तुम्हारे नाम मन्यु, मनु, महिनस, महान्, शिव, ऋतध्वज, उग्ररेता, भव, काल, वामदेव और धृतव्रत होंगे। तथा धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत्, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा और दीक्षा—ये ग्यारह रुद्राणियाँ तुम्हारी पत्नियाँ होंगी। तुम उपर्युक्त नाम, स्थान और स्त्रियोंको स्वीकार करो और इनके द्वारा बहुत-सी प्रजा उत्पन्न करो, क्योंकि तुम प्रजापति हो ॥ ९–१४ ॥

लोकपिता ब्रह्माजीसे ऐसी आज्ञा पाकर भगवान् नील-लोहित बल, आकार और स्वभावमें अपने ही-जैसी प्रजा उत्पन्न करने लगे। भगवान् रुद्रके द्वारा उत्पन्न हुए उन रुद्रोंको असंख्य यूथ बनाकर सारे संसारको भक्षण करते देख ब्रह्माजीको बड़ी शङ्का हुई। तब उन्होंने रुद्रसे कहा, 'सुरश्रेष्ठ ! तुम्हारी प्रजा तो अपनी भयङ्कर दृष्टिसे मुझे और सारी दिशाओंको भस्म किये डालती है, मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम समस्त प्राणियोंको सुख देनेके लिये तप करो। फिर उस तपके प्रभावसे ही तुम पूर्ववत् इस संसारकी रचना करना। पुरुष तपके द्वारा ही इन्द्रियातीत, सर्वान्तर्यामी, ज्योतिःस्वरूप श्रीहरिको सुगमतासे प्राप्त कर सकता है' ॥ १५–१९॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—जब ब्रह्माजीने ऐसी आज्ञा दी तब रुद्रने 'बहुत अच्छा' कहकर उसे शिरोधार्य किया और फिर उनकी अनुमति लेकर तथा उनकी परिक्रमा कर वे तपस्या करनेके लिये वनको चले गये ॥ २० ॥

इसके पश्चात् जब भगवान्‌की शक्तिसे सम्पन्न ब्रह्माजीने सृष्टिके लिये सङ्कल्प किया, तब उनके दस पुत्र और उत्पन्न हुए। उनसे लोककी बहुत वृद्धि हुई। उनके नाम मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और नारद थे। इनमें नारदजी प्रजापति ब्रह्माजीकी गोदसे, दक्ष अँगूठेसे, वसिष्ठ प्राणसे, भृगु त्वचासे, क्रतु हाथसे, पुलह नाभिसे, पुलस्त्य कानोंसे, अङ्गिरा मुखसे, अत्रि नेत्रोंसे और मरीचि मनसे उत्पन्न हुए। फिर उनके दायें स्तनसे धर्म उत्पन्न हुआ, जिसमें स्वयं श्रीनारायणदेव निवास करते हैं या नरनारायण ऋषिके रूपमें जिससे स्वयं श्रीनारायणका जन्म हुआ। तथा उनकी पीठसे अधर्मका जन्म हुआ और उससे संसारको भयभीत करनेवाला मृत्यु उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार ब्रह्माजीके हृदयसे काम, भौंहोंसे क्रोध, नीचेके होठसे लोभ, मुखसे वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, लिङ्गसे समुद्र, गुदासे पापका निवासस्थान (राक्षसोंका अधिपति) निर्ऋति और छायासे देवहूतिके पति भगवान् कर्दमजी उत्पन्न हुए। इस तरह यह सारा जगत् जगत्कर्ता ब्रह्माजीके शरीर और मनसे उत्पन्न हुआ ॥ २१–२७ ॥

विदुरजी ! भगवान् ब्रह्माकी कन्या सरस्वती बड़ी ही

हुआ। इसी प्रकार सम्पूर्ण छन्द, वर्ण और स्वर आदि भी उनके भिन्न भिन्न अङ्गोंसे प्रकट हुए। उनके रोमोंसे उष्णिक्, त्वचासे गायत्री, माससे त्रिष्टुप्, स्नायुसे अनुष्टुप्, अस्थियोंसे जगती, मज्जासे पंक्ति और प्राणोंसे बृहती छन्द उत्पन्न हुआ। ऐसे ही उनका जीव स्पर्शवर्ण (कवर्गादि पञ्चवर्ग) और देह स्वरवर्ण (अकारादि) कहलाये। उनकी इन्द्रियोंको ऊष्मवर्ण (श ष स ह) और बलको अन्तःस्थ (य र ल व) कहते हैं, तथा उनकी क्रीडासे निषाद, ऋषभ, गान्धार, षड्ज, मध्यम, धैवत और पञ्चम—ये सात स्वर हुए। हे तात! ब्रह्माजी शब्दब्रह्मस्वरूप हैं। वे वैखरीरूपसे व्यक्त और ओङ्काररूपसे अव्यक्त हैं। तथा उनसे परे जो सर्वत्र परिपूर्ण परब्रह्म है, वही अनेकों प्रकारकी शक्तियोंसे विकसित होकर इन्द्रादि रूपोंमें भास रहा है॥ ३७-४८॥

विदुरजी! ब्रह्माजीने पहला कामासक्त शरीर—जिससे कुहरा बना था—छोड़कर दूसरा शरीर धारण करके विश्वविस्तारके लिये मरीचि आदि ऋषियोंकी सृष्टि की, परन्तु जब उन्होंने देखा कि इन महान् शक्तिशाली ऋषियोंसे भी सृष्टिका विस्तार अधिक नहीं हुआ, तब वे मन ही मन सोचने लगे,—'अहो! बड़ा आश्चर्य है, मेरे निरन्तर प्रयत्न करनेपर भी प्रजाकी वृद्धि नहीं हो रही है। मालूम होता है, इसमें दैव ही कुछ विघ्न डाल रहा है।' जिस समय यथोचित क्रिया करनेवाले श्रीब्रह्माजी इस प्रकार दैवके विषयमें विचार कर रहे थे, उसी समय अकस्मात् उनके शरीरके दो भाग हो गये। 'क' ब्रह्माजीका नाम है, उन्हींसे विभक्त होनेके कारण शरीरको 'काय' कहते हैं। उन दोनों विभागोंसे एक स्त्री पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ। उनमें जो पुरुष था, वह सार्वभौम सम्राट् स्वायम्भुव मनु हुए और जो स्त्री थी, वह उनकी महारानी शतरूपा हुई। तबसे मिथुनधर्म (स्त्री पुरुष सम्भोग) से प्रजाकी वृद्धि होने लगी। महाराज स्वायम्भुव मनुने शतरूपासे पाँच सन्तानें उत्पन्न कीं। उनमें प्रियव्रत और उत्तानपाद—दो पुत्र थे तथा आकूति, देवहूति और प्रसूति—तीन कन्याएँ थीं। मनुजीने आकूतिका विवाह रुचि प्रजापतिसे किया, मँझली कन्या देवहूति कर्दमजीको दी और प्रसूति दक्षप्रजापतिको। इन तीनों कन्याओंकी सन्ततिसे सारा संसार भर गया॥४९-५६॥

तेरहवाँ अध्याय

वाराह अवतारकी कथा

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्! मुनिवर मैत्रेयजीके मुखसे ये परम पवित्र बातें सुनकर श्रीविदुरजीने भगवान्‌की कथाओंमें अत्यन्त अनुरक्त होकर फिर पूछा॥ १॥

विदुरजी बोले—मुने! स्वयम्भू ब्रह्माजीके प्रिय पुत्र महाराज स्वायम्भुव मनुने अपनी प्रिय पत्नी शतरूपाको पाकर फिर क्या किया? आप साधु हैं। आप मुझे आदिराज राजर्षि स्वायम्भुव मनुका पवित्र चरित्र सुनाइये। वे श्रीविष्णु भगवान्‌के शरणापन्न थे, इसलिये उनका चरित्र सुननेमें मेरी बहुत श्रद्धा है। विद्वानोंका मत है कि जिनके हृदयोंमें श्रीमुकुन्दके चरणारविन्द विराजते हैं, उन भक्तजनोंके गुणोंको श्रवण करना ही मनुष्योंके बहुत दिनोंतक किये हुए शास्त्राभ्यासके श्रमका मुख्य फल है॥ २-४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! विदुरजीने सहस्रशीर्षा भगवान् श्रीहरिके चरणोंका ही आश्रय ले रखा था, उन्होंने जब अत्यन्त विनयपूर्वक इस प्रकार कहा और भगवान्‌की कथाके लिये प्रेरणा की, तब मुनिवर मैत्रेयने पुलकित होकर उनसे कहा॥ ५॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—जब अपनी भार्या शतरूपाके साथ स्वायम्भुव मनुका जन्म हुआ, तब उन्होंने बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर श्रीब्रह्माजीसे कहा, 'भगवन्! एकमात्र आप ही समस्त जीवोंके जन्मदाता और जीविका प्रदान करनेवाले पिता हैं। तथापि हम आपकी सन्तान ऐसा कौन सा कर्म करें, जिससे आपकी सेवा बन सके? पूज्यपाद! हम आपको नमस्कार करते हैं। आप हमसे हो सकनेयोग्य किसी ऐसे कार्यके लिये हमें आज्ञा दीजिये, जिससे इस लोकमें हमारी सर्वत्र कीर्ति हो और परलोकमें सद्गति प्राप्त हो सके॥६-८॥

श्रीब्रह्माजीने कहा—तात! पृथ्वीपते! तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ, क्योंकि तुमने निष्कपट भावसे 'मुझे आज्ञा दीजिये' ऐसा कहकर मुझे आत्मसमर्पण किया है। वीर! पुत्रोंको अपने पिताकी इसी रूपमें पूजा करनी चाहिये। उन्हें उचित है कि दूसरोंके प्रति ईर्ष्याका भाव न रखकर जहाँतक बने, उनकी आज्ञाका आदरपूर्वक सावधानीसे पालन करें। सो, अब तुम अपनी इस भार्यासे अपने ही समान गुणवती सन्तति उत्पन्न करके धर्मपूर्वक पृथ्वीका

ऐसा सोचकर वे उस कमलकी नालके सूक्ष्म छिद्रोंमें होकर उस जलमें घुसे। किन्तु उस नालके आधारको खोजते-खोजते नाभिदेशके समीप पहुँच जानेपर भी वे उसे पा न सके। विदुरजी! उस अपार अन्धकारमें अपने उत्पत्ति-स्थानको खोजते-खोजते ब्रह्माजीको बहुत काल बीत गया। यह काल ही भगवान्‌का चक्र है, जो प्राणियोंको भयभीत करता हुआ उनकी आयुको क्षीण करता रहता है। अन्तमें विफलमनोरथ हो वे वहाँसे लौट आये और पुनः अपने आधारभूत कमलपर बैठकर धीरे-धीरे प्राणवायुको जीतकर चित्तको निःसङ्कल्प किया और समाधिमें स्थित हो गये। इस प्रकार पुरुषकी पूर्ण आयुके बराबर कालतक (अर्थात् दिव्य सौ वर्षतक) अच्छी तरह योगाभ्यास करनेपर ब्रह्माजीको ज्ञान प्राप्त हुआ; तब उन्होंने अपने उस अधिष्ठानको, जिसे वे पहले खोजनेपर भी नहीं देख पाये थे, अपने ही अन्तःकरणमें प्रकाशित होते देखा। उन्होंने देखा कि उस प्रलयकालीन जलमें शेषजीके कमलनालसदृश गौर और विशाल विग्रहकी शय्यापर एक पुरुषश्रेष्ठ लेटे हुए हैं। शेषजीके दस हजार फण छत्रके समान फैले हुए हैं। उनके मस्तकोंपर किरीट शोभाय-मान हैं; उनमें जो मणियाँ जड़ी हुई हैं, उनकी कान्तिसे चारों ओरका अन्धकार दूर हो गया है। वे पुरुषश्रेष्ठ अपने श्याम शरीरकी आभासे मरकतमणिके पर्वतकी शोभाको लज्जित कर रहे हैं। उनकी कमरका पीतपट पर्वतके प्रान्त देशमें छाये हुए सायङ्कालके पीले-पीले चमकीले मेघोंकी आभाको मलिन कर रहा है, सिरपर सुशोभित सुवर्णमुकुट सुवर्णमय शिखरोंका मान मर्दन कर रहा है। उनकी वनमाला पर्वतके रत्न, जलप्रपात, ओषधि और पुष्पोंकी शोभाको परास्त कर रही है तथा उनकी भुजाएँ बाँसोंका और चरण वृक्षोंका तिरस्कार करते हैं। उनका वह श्रीविग्रह लंबाई-चौड़ाईमें असीम है। तीनों लोक उसीमें विद्यमान हैं तथा अपनी शोभासे विचित्र एवं दिव्य वस्त्राभूषणोंकी शोभाको सुशोभित करनेवाला होनेपर भी वे पीताम्बर आदि अपना वेष धारण किये हुए हैं। जो लोग अपनी कामनाओंकी पूर्त्तिके लिये उनका वेदविहित विशुद्ध रीतिसे पूजन करते हैं, उन्हें वे कृपापूर्वक अपना सर्वकामप्रद चरणकमल दिखा रहे हैं—जिसकी अँगुलीरूप पँखुड़ियाँ नखरूप चन्द्रमाकी किरणोंसे अलग-अलग प्रतीत हो रही हैं। अपने सुन्दर नासिका और बाँकी भौंहोंवाले मनोहर मुखार-विन्दसे मानो वे भक्तजनोंका प्रत्यभिवादन कर रहे हैं। प्रभुका वह मुख भक्तोंके कष्टोंका निवारण करनेवाली मनोहर मुसकान और झिलमिलाते हुए कुण्डलोंसे सुशोभित है तथा पके हुए बिम्बफलके सदृश लाल-लाल होठोंकी आभाने उसे अरुण वर्ण कर दिया है। उनके नितम्बदेशमें कदम्बकुसुमकी केसरके समान पीतवस्त्र और सुवर्णमयी मेखला सुशोभित है तथा वक्षःस्थलमें अमूल्य हार और सुनहरी रेखावाले श्रीवत्सचिह्नकी अपूर्व शोभा हो रही है। वे एक महान् चन्दनवृक्षके समान हैं। महामूल्य केयूर और उत्तम-उत्तम मणियोंसे सुशोभित उनकी विशाल भुजाएँ ही मानो उसकी सहस्रों शाखाएँ हैं तथा अव्यक्त मूल है; और चन्दनके वृक्षोंमें जैसे बड़े-बड़े साँप लिपटे रहते हैं, उसी प्रकार उनके कंधोंको शेषजीके फणोंने लपेट रक्खा है। वे नागराज अनन्तके बन्धु श्रीनारायण ऐसे जान पड़ते हैं, मानो कोई जलसे घिरे हुए पर्वतराज ही हों। पर्वतपर जैसे अनेकों जीव रहते हैं, उसी प्रकार वे सम्पूर्ण चराचरके आश्रय हैं; शेषजीके फणोंपर जो सहस्रों मुकुट हैं वे ही मानो उस पर्वतके सुवर्णमण्डित शिखर हैं तथा वक्षःस्थलमें विराजमान कौस्तुभमणि उसके गर्भसे प्रकट हुआ रत्न है। प्रभुके गलेमें वेदरूप भौंरोंसे गुञ्जायमान अपनी कीर्त्तिमयी वनमाला विराज रही है; सूर्य, चन्द्र, वायु और अग्नि आदि देवताओंकी भी आपतक पहुँच नहीं है तथा त्रिभुवनमें बेरोक-टोक विचरण करनेवाले सुदर्शनचक्रादि आयुध भी प्रभुके आसपास ही घूमते रहते हैं, उनके लिये भी आप अत्यन्त दुर्लभ हैं॥ १९–३१॥

तब विश्वरचनाकी इच्छावाले लोकविधाता ब्रह्माजीने भगवान्‌के नाभिसरोवरसे प्रकट हुआ वह कमल, जल, आकाश, वायु और अपना शरीर—केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे, इनके सिवा और कुछ उन्हें दिखायी न दिया; रजोगुणसे व्याप्त ब्रह्माजी प्रजाकी रचना करना चाहते थे। जब उन्होंने सृष्टिके कारणरूप केवल ये पाँच ही पदार्थ देखे, तब लोकरचनाके लिये उत्सुक होनेके कारण वे अचिन्त्यगति श्रीहरिमें चित्त लगाकर उन परमपूजनीय प्रभुकी स्तुति करने लगे॥ ३२–३३॥

जोड़कर वेदवाक्योंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥३१–३३॥

ऋषि बोले–भगवान् अजित! आपकी जय हो, जय



हो! यज्ञपते! आप अपने वेदत्रयीरूप विग्रहको हिला रहे हैं, आपको नमस्कार है। आपके रोमकूपोंमें सम्पूर्ण यज्ञ लीन हैं। आपने पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये ही यह सूकर रूप धारण किया है, आपको नमस्कार है। देव! दुराचारियोंको आपके इस यज्ञमय स्वरूपका दर्शन होना अत्यन्त कठिन है। इसकी त्वचामें गायत्री आदि छन्द, रोमावलीमें कुश, नेत्रोंमें घृत तथा चारों चरणोंमें होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—इन चारों ऋत्विजोंके कर्म हैं। ईश! आपकी थूथनी (मुखके अग्रभाग) मे स्रुक् है, नासिकाछिद्रोंमें स्रुवा है, उदरमें इडा (यज्ञीय भक्षणपात्र) है, कानोंमें चमस हैं, मुखमें प्राशित्र (ब्रह्मभागपात्र) है और कण्ठछिद्रमें ग्रह (सोमपात्र) है। भगवन्! आपका जो चबाना है, वही अग्निहोत्र है, बार-बार अवतार लेना दीक्षा है, गरदन उपसद (तीन इष्टियाँ) है, दोनों दाढें प्रायणीय (दीक्षाके बादकी इष्टि) और उदयनीय (यज्ञसमाप्तिकी इष्टि) हैं, जिह्वा प्रवर्ग्य (प्रत्येक उपसदके पूर्व किया जानेवाला महावीर नामक कर्म) है, सिर सभ्य (होमरहित अग्नि) और आवसथ्य (उपासनासम्बन्धी अग्नि) है तथा प्राण चिति (इष्टकाचयन) हैं। देव! आपका वीर्य सोम है, आसन (बैठना) प्रात सवनादि तीन सवन हैं, सातों धातु अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र और आप्तोर्याम नामकी सात संस्थाएँ हैं तथा शरीरकी सन्धियाँ (जोड़) सम्पूर्ण सत्र हैं। इस प्रकार आप सम्पूर्ण यज्ञ (सोमरहित याग) और क्रतु (सोमसहित याग) रूप हैं। यज्ञानुष्ठानरूप इष्टियाँ आपके अङ्गोंको मिलाये रखनेवाली मासपेशियाँ हैं। आप समस्त मन्त्र, देवता और द्रव्यरूप हैं, सम्पूर्ण यज्ञ और कर्म आपहीमे अधिष्ठित हैं, आपको नमस्कार है। वैराग्य, भक्ति और मनकी एकाग्रतासे जिस ज्ञानका अनुभव होता है, वह आपका स्वरूप ही है तथा आप ही सबके विद्यागुरु हैं, आपको पुन पुन, प्रणाम है। पृथ्वीको धारण करनेवाले भगवन्! आपकी दाढ़ोंकी नोकपर रखी हुई यह पर्वतादि मण्डित पृथ्वी ऐसी सुशोभित हो रही है, जैसे वनमेंसे निकलकर बाहर आये हुए किसी गजराजके दाँतोंपर पत्रयुक्त कमलिनी रक्खी हो। आपके दाँतोंपर रक्खे हुए भूमण्डलके सहित आपका यह वेदमय वराहविग्रह ऐसा जान पड़ता है मानो शिखरोंपर छायी हुई मेघमालाके सहित कोई कुलपर्वत हो। नाथ! चराचर जीवोंके सुखपूर्वक रहनेके लिये आप अपनी पत्नी जगन्माता पृथ्वीको जलपर स्थापित कीजिये। आप जगत्के पिता हैं और अरणिमें अग्निस्थापनके समान आपने इसमे धारणशक्तिरूप अपना तेज स्थापित किया है। हम आपको और इस पृथ्वीमाताको प्रणाम करते हैं। प्रभो! रसातलमे डूबी हुई इस पृथ्वीको निकालनेका साहस आपके सिवा और कौन कर सकता था? किन्तु आप तो सम्पूर्ण आश्चर्योंके आश्रय हैं, आपके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आपने ही तो अपनी मायासे इस अत्याश्चर्यमय विश्वकी रचना की है। जब आप अपने वेदमय विग्रहको हिलाते हैं, तब हमारे ऊपर आपकी गरदनके बालोंसे झरती हुई शीतल जलकी बूँदें गिरती हैं। ईश! उनसे भींगकर हम जनलोक, तपलोक और सत्यलोकमें रहनेवाले मुनिजन सर्वथा पवित्र हो जाते हैं। जो पुरुष आपके कर्मोंका पार पाना चाहता है, अवश्य ही उसकी बुद्धि नष्ट हो गयी है, क्योंकि आपके कर्मोंका कोई पार ही नहीं है। आपकी ही योगमायाके सत्त्वादि गुणोंसे यह सारा जगत् मोहित हो रहा है। भगवन्! आप इसका कल्याण कीजिये ॥ ३४–४५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं–विदुरजी! उन ब्रह्मवादी मुनियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर सबकी रक्षा करनेवाले वराह भगवान्ने अपने खुरोंसे जलको स्तम्भित कर उसपर पृथ्वीको स्थापित कर दिया। इस प्रकार रसातलसे लीलापूर्वक लायी

परमपुरुष हैं; मैं आपको नमस्कार करता हूँ। संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और संहारके निमित्तसे जो मायाकी लीला होती है, वह आपका ही खेल है; अतः आप परमेश्वरको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। जो लोग प्राण त्याग करते समय आपके अवतार, गुण और कर्मोंको सूचित करनेवाले देवकी-नन्दन, जनार्दन, कंसनिकन्दन आदि नामोंको विवश होकर भी उच्चारण करते हैं, वे अनेकों जन्मोंके पापोंसे तत्काल छूटकर मायादि आवरणोंसे रहित ब्रह्मपद प्राप्त करते हैं। आप नित्य अजन्मा हैं, मैं आपकी शरण लेता हूँ। भगवन्! इस विश्ववृक्षके रूपमें आप ही विराजमान हैं। आप ही अपनी मूलप्रकृतिको स्वीकार करके जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिये मेरे, अपने और महादेवजीके रूपमें तीन प्रधान शाखाओंमें विभक्त हुए हैं और फिर प्रजापति एवं मनु आदि शाखा-प्रशाखाओंके रूपमें फैलकर बहुत विस्तृत हो गये हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। भगवन्! आपने अपनी आराधनाको ही लोकोंके लिये कल्याणकारी स्वधर्म बताया है, किन्तु वे इस ओरसे उदासीन रहकर सर्वदा विपरीत (निषिद्ध) कर्मोंमें लगे रहते हैं। ऐसी प्रमादकी अवस्थामें पड़े हुए इन जीवोंकी जीवनाशाको जो सदा सावधान रहकर बड़ी शीघ्रतासे काटता रहता है, वह बलवान् काल भी आपका ही रूप है; मैं उसे नमस्कार करता हूँ। यद्यपि मैं सत्यलोकका अधिष्ठाता हूँ, जो दो परार्द्धपर्यन्त रहनेवाला और समस्त लोकोंका वन्दनीय है, तो भी आपके उस कालरूपसे डरता रहता हूँ। उससे बचने और आपको प्राप्त करनेके लिये ही मैंने बहुत समयतक तपस्या की है। आप ही अधियज्ञरूपसे मेरी इस तपस्याके साक्षी हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप पूर्णकाम हैं, आपको किसी विषयसुखकी इच्छा नहीं है; तो भी आपने अपनी बनायी हुई धर्ममर्यादाकी रक्षाके लिये पशु-पक्षी, मनुष्य और देवता आदि जीवयोनियोंमें अपनी ही इच्छासे शरीर धारण कर अनेकों लीलाएँ की हैं। ऐसे आप पुरुषोत्तम भगवान्को मेरा नमस्कार है। प्रभो! आप प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति—इन अविद्याकी पाँच वृत्तियोंमेंसे किसीके भी अधीन नहीं हैं; तथापि इस समय जो सारे संसारको अपने उदरमें लीनकर भयङ्कर तरङ्गमालाओंसे विक्षुब्ध प्रलयकालीन जलमें अनन्तविग्रहकी कोमल शय्यापर शयन कर रहे हैं, वह पूर्वकल्पकी कर्मपरम्परासे श्रमित हुए जीवोंको विश्राम देनेके लिये ही है। आपके नाभिकमलरूप भवनसे मेरा जन्म हुआ है और आपकी कृपासे ही मैं आपके उदरमें समायी हुई त्रिलोकीकी रचनारूप उपकारमें प्रवृत्त हुआ हूँ। इस समय योग-निद्राका अन्त हो जानेके कारण आपके नेत्र-कमल विकसित हो रहे हैं, आपको मेरा नमस्कार है। आप सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र सुहृद् और आत्मा हैं तथा शरणागतोंपर कृपा करनेवाले हैं। अतः अपने जिस ज्ञान और ऐश्वर्यसे आप विश्वको आनन्दित करते हैं, उसीसे मेरी बुद्धिको भी युक्त करें—जिससे मैं पूर्वकल्पके समान इस समय भी जगत्की रचना कर सकूँ। आप शरणागतोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाले हैं। अपनी शक्ति लक्ष्मीजीके सहित अनेकों गुणावतार लेकर आप जो-जो अद्भुत कर्म करेंगे, मेरा यह जगत्की रचना करनेका उद्यम भी उन्हींमेंसे एक है। अतः इसे रचते समय आप मेरे चित्तको प्रेरित करें—शक्ति प्रदान करें, जिससे मैं सृष्टिरचनाविषयक अभिमानरूप मलसे दूर रह सकूँ। प्रभो! इस प्रलयकालीन जलमें शयन करते हुए आप अनन्त-शक्ति परमपुरुषके नाभि-कमलसे मेरा प्रादुर्भाव हुआ है और मैं हूँ भी आपकी ही विज्ञानशक्ति; अपना मेरे पास कुछ भी नहीं है। अतः इस जगत्के विचित्र रूपका विस्तार करते समय आपकी कृपासे मेरी वेदरूप वाणीका उच्चारण लुप्त न हो। आप अपार करुणामय पुराणपुरुष हैं। आप परम प्रेममयी मुसकानके सहित अपने नेत्रकमल खोलिये और शेष-शय्यासे उठकर विश्वके उद्भवके लिये अपनी सुमधुर वाणीसे मेरा विषाद दूर कीजिये॥ १०–२५॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार तप, विद्या और समाधिके द्वारा अपने उत्पत्तिस्थान श्रीभगवान्को देखकर तथा अपने मन और वाणीकी शक्तिके अनुसार उनकी स्तुति कर ब्रह्माजी थके-से होकर मौन हो गये। श्रीमधुसूदन भगवान्ने देखा कि ब्रह्माजी इस प्रलयजलराशिसे बहुत घबड़ाये हुए-हैं तथा लोकरचनाके विषयमें कोई निश्चित विचार न होनेके कारण उनका चित्त बहुत खिन्न है। तब उनके अभिप्रायको जानकर वे अपनी गम्भीर वाणीसे उनका खेद शान्त करते हुए कहने लगे॥ २६–२८॥

श्रीभगवान् बोले—वेदगर्भ! तुम विषादके वशीभूत हो, आलस्य न करो, सृष्टिरचनाके उद्यममें तत्पर हो जाओ। तुम मुझसे जो कुछ चाहते हो, उसे तो मैं पहले ही कर चुका हूँ। तुम एक बार फिर तप करो और मेरी उपासना करो। उन तप एवं उपासनाके द्वारा तुम सब लोकोंको स्पष्टतया अपने अन्तःकरणमें देखोगे। फिर भक्तियुक्त और समाहितचित्त होकर तुम सम्पूर्ण लोक और अपनेमें मुझको व्याप्त देखोगे

आश्रमोंको आश्रय देता हुआ अपने आश्रमद्वारा स्वयं भी दुःखसमुद्रके पार हो जाता है। मानिनि! स्त्रीको तो त्रिविध



पुरुषार्थकी कामनावाले पुरुषका आधा अङ्ग कहा गया है। उसपर अपनी गृहस्थीका भार डालकर पुरुष निश्चिन्त होकर विचरता है। इन्द्रियरूप शत्रु अन्य आश्रमवालोंके लिये अत्यन्त दुर्जय हैं; किन्तु जिस प्रकार किलेका स्वामी सुगमतासे ही लूटनेवाले शत्रुओंको अपने अधीन कर लेता है, उसी प्रकार हम अपनी विवाहिता पत्नीका आश्रय लेकर इन इन्द्रियरूप शत्रुओंको सहजहीमें जीत लेते हैं। गृहेश्वरि! तुम जैसी भार्याके उपकारों का बदला तो हम अथवा और कोई भी गुणग्राही पुरुष अपनी सारी उम्रमें अथवा जन्मान्तरमें भी पूर्णरूपसे नहीं चुका सकते। तो भी तुम्हारी सन्तान प्राप्तिकी इच्छाको मैं यथाशक्ति अवश्य पूर्ण करूँगा। परन्तु अभी तुम एक मुहूर्त्त ठहरो, जिससे लोग मेरी निन्दा न करें। यह घोर समय राक्षसादि घोर जीवोंका है और देखनेमें भी बड़ा भयानक है। इसमें भगवान् भूतनाथके गण भूत प्रेतादि घूमा करते हैं। साध्वि! इस सन्ध्याकालमें भूतभावन भूतपति भगवान् शङ्कर अपने गण भूत प्रेतादिको साथ लिये बैलपर चढ़कर विचरा करते हैं। तुम कह सकती हो कि वे क्या सभी जगह देख लेंगे, सो बात ऐसी ही है। जिनका जटाजूट श्मशानभूमिसे उठे हुए बवंडरकी धूलिसे धूसरित होकर देदीप्यमान हो रहा है तथा जिनके सुवर्णकान्तिमय गौर शरीरमें भस्म लगी हुई है, वे तुम्हारे देवर महादेवजी अपने सूर्य, चन्द्रमा और अग्निरूप तीन नेत्रोंसे सभीको देखते रहते हैं। संसारमें उनका कोई अपना या पराया नहीं है और न कोई अधिक आदरपात्र या निन्दनीय ही है। हमलोग तो अनेक प्रकारके व्रतोंका पालन करके उनकी मायाको ही ग्रहण करना चाहते हैं, जिसे उन्होंने भोग कर लात मार दी है। विवेकी पुरुष अविद्याके आवरणको हटानेकी इच्छासे उनके निर्मल चरित्रका गान किया करते हैं; उनसे बढ़कर तो क्या, उनके समान भी कोई नहीं है और उनतक केवल सत्पुरुषोंकी ही गति है। यह सब होनेपर भी वे पिशाचोंका सा आचरण करते हैं। यह नर शरीर तो कुत्तोंका भोजन है; जो अविवेकी पुरुष इसीको आत्मा मानकर वस्त्र, आभूषण, माला और चन्दनादिसे इसीकी टीमटाममें लगे रहते हैं—वे अभागे ही आत्माराम भगवान् शङ्करके आचरणको हँसते हैं। हमलोग तो क्या, ब्रह्मादि लोकपाल भी उन्हींकी बाँधी हुई धर्ममर्यादाका पालन करते हैं, वे ही इस विश्वके अधिष्ठान हैं तथा यह माया भी उन्हींकी आज्ञाका अनुसरण करनेवाली है। ऐसे होकर भी वे प्रेतोंका-सा आचरण करते हैं। अहो! उन जगद्व्यापक प्रभुकी यह अद्भुत लीला कुछ समझमें नहीं आती'॥ १९-२८॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—पतिके इस प्रकार समझानेपर भी कामातुरा दितिने वेश्याके समान निर्लज्ज होकर ब्रह्मर्षि कश्यपजीका वस्त्र पकड़ लिया। तब कश्यपजीने उस निन्दित कर्ममें अपनी भार्याका बहुत आग्रह देख दैवको नमस्कार किया और एकान्तमें उसके साथ समागम किया। फिर जलमें स्नान कर प्राण और वाणीका संयम करके विशुद्ध ज्योतिर्मय सनातन ब्रह्म (गायत्री) का ध्यान करते हुए उसीका जप करने लगे। विदुरजी! फिर तो दितिको भी उस निन्दित कर्मके कारण बड़ी लज्जा आयी और वह ब्रह्मर्षिके पास जा, सिर नीचा करके इस प्रकार कहने लगी॥ २९-३२॥

दितिने कहा—ब्रह्मन्! भगवान् रुद्र भूतोंके स्वामी हैं, मैंने उनका अपराध किया है; किन्तु वे भूतश्रेष्ठ मेरे इस गर्भको नष्ट न करें। मैं उन्हें नमस्कार करती हूँ। वे बड़े प्रभावशाली और उग्र स्वभावके हैं; किन्तु अपने सकाम भक्तोंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण कर उनका दुःख दूर कर देते हैं और निष्काम उपासकोंको मोक्ष प्रदान करते हैं। वे स्वभावतः तो दण्डत्यागी हैं, किन्तु दुष्टोंके लिये सर्वदा दण्ड धारण किये रहते हैं, तथा साक्षात् क्रोधकी मूर्ति हैं। इन स्त्रियोंपर तो व्याध भी दया करते हैं, फिर वे सतीपति तो मेरे बहनोई और परम कृपालु हैं, अतः वे मुझपर प्रसन्न हों॥ ३३-३५॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—सत्त्वादि गुणोंके परिणाम महत्तत्त्वादिके रूपमें व्यक्त होनेके कारण जो परिच्छिन्न-सा जान पड़ता है, किन्तु वस्तुतः निर्विशेष और आदि-अन्तशून्य है उसीका नाम काल है। भगवान् उस कालको ही निमित्त बनाकर लीलासे अपनेको ही जगत्‌रूपसे उत्पन्न करते हैं। पहले यह सारा विश्व भगवान्‌की मायासे लीन होकर ब्रह्मरूपसे स्थित था। उसीको अव्यक्तमूर्ति कालके द्वारा भगवान्‌ने पुनः पृथक्‌रूपसे प्रकट किया है। यह जगत् जैसा अब है वैसा ही पहले था और भविष्यमें भी वैसा ही रहेगा। इसकी सृष्टि नौ प्रकारकी होती है, तथा प्राकृत-वैकृत भेदसे एक दसवीं सृष्टि और भी है। और इसका प्रलय काल, द्रव्य और गुणोंके द्वारा तीन प्रकारसे होता है। अब पहले मैं दस प्रकारकी सृष्टिका वर्णन करता हूँ। पहली सृष्टि महत्तत्त्वकी है। भगवान्‌की प्रेरणासे सत्त्वादि गुणोंमें तारतम्य हो जाना ही इसका स्वरूप है। दूसरी सृष्टि अहङ्कारकी है, जिससे पृथ्वी आदि पञ्चभूत एवं ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। तीसरी सृष्टि भूतसर्ग है, जिसमें पञ्चमहाभूतोंको उत्पन्न करनेवाला तन्मात्रवर्ग रहता है। चौथी सृष्टि इन्द्रियोंकी है, यह ज्ञान और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न होती है। पाँचवीं सृष्टि सात्त्विक अहङ्कारसे उत्पन्न हुए इन्द्रियाधिष्ठाता देवताओंकी है, मन भी इसी सृष्टिके अन्तर्गत है। छठी सृष्टि अविद्याकी है। इसमें तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह और महामोह—ये पाँच गाँठें हैं। यह जीवोंकी बुद्धिका आवरण और विक्षेप करनेवाली है। ये छः प्राकृत सृष्टियाँ हैं, अब वैकृत सृष्टियोंका भी विवरण सुनो ॥११–१७॥

जो भगवान् अपना चिन्तन करनेवालोंके समस्त दुःखोंको हर लेते हैं, यह सारी लीला उन्हीं श्रीहरिकी है। वे ही ब्रह्माके रूपमें रजोगुणको स्वीकार करके जगत्‌की रचना करते हैं। छः प्रकारकी प्राकृत सृष्टियोंके बाद सातवीं प्रधान वैकृत सृष्टि इन छः प्रकारके स्थावर वृक्षोंकी होती है—वनस्पति[1], ओषधि[2], लता[3], त्वक्सार[4], वीरुध्[5] और द्रुम[6]। इनका आहार नीचे (जड़) से ऊपरकी ओर जाता है, इनमें प्रायः ज्ञानशक्ति प्रकट नहीं रहती, ये भीतर-ही-भीतर केवल स्पर्शका अनुभव करते हैं तथा इनमेंसे प्रत्येकमें कोई विशेष गुण रहता है। आठवीं सृष्टि तिर्यग्योनियों (पशु-पक्षियों) की है। वह अट्ठाईस प्रकारकी मानी जाती है। इन्हें कालका ज्ञान नहीं होता, तमोगुणकी अधिकताके कारण ये केवल खाना-पीना, मैथुन करना, सोना आदि ही जानते हैं, इन्हें सूँघनेमात्रसे वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है। इनके हृदयमें विचारशक्ति या दूरदर्शिता नहीं होती। साधुश्रेष्ठ! इन तिर्यकोंमें गौ, बकरा, भैंसा, कृष्ण-मृग, सूअर, नील-गाय, रुरु नामका मृग, भेड़ और ऊँट—ये द्विशफ (दो खुरोंवाले) पशु कहलाते हैं, तथा गधा, घोड़ा, खच्चर, गौरमृग, शरभ और चमरी—ये एकशफ (एक खुरवाले) हैं। अब पाँच नखवाले पशु-पक्षियोंके नाम सुनो—कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलाव, खरगोश, साही, सिंह, बंदर, हाथी, कछुआ, गोह और मगर आदि (पशु) हैं। कंक (बगुला), गिद्ध, बटेर, बाज, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, कौआ और उल्लू आदि उड़नेवाले जीव पक्षी कहलाते हैं। विदुरजी! नवीं सृष्टि मनुष्योंकी है। यह एक ही प्रकारकी है। इसके आहारका प्रवाह ऊपर (मुँह) से नीचेकी ओर होता है। मनुष्य रजोगुणप्रधान, कर्मपरायण और दुःखरूप विषयोंमें ही सुख माननेवाले होते हैं। स्थावर, पशु-पक्षी और मनुष्य—ये तीनों प्रकारकी सृष्टियाँ तथा आगे कहा जानेवाला देवसर्ग वैकृतसृष्टि हैं तथा जो महत्तत्त्वादिरूप वैकारिक देवसर्ग है, उसकी गणना पहले प्राकृत सृष्टिमें की जा चुकी है। इनके अतिरिक्त सनत्कुमार आदि ऋषियोंका जो कौमारसर्ग है, वह प्राकृत-वैकृत दोनों प्रकारका है। देवता, पितर, असुर, गन्धर्व-अप्सरा, यक्ष-राक्षस, सिद्ध-चारण-विद्याधर, भूत-प्रेत-पिशाच और किन्नर-किम्पुरुष-अश्वमुख आदि भेदसे देवसृष्टि आठ प्रकारकी है। विदुरजी! इस प्रकार जगत्कर्ता श्रीब्रह्माजीकी रची हुई यह दस प्रकारकी सृष्टि मैंने तुमसे कही। अब आगे मैं वंश और मन्वन्तरादिका वर्णन करूँगा। इस प्रकार सृष्टि करनेवाले सत्यसङ्कल्प भगवान् हरि ही ब्रह्माके रूपसे प्रत्येक कल्पके आदिमें रजोगुणसे व्याप्त होकर स्वयं अपनेसे जगत्‌के रूपमें अपनी ही रचना करते हैं ॥१८–२९॥



१. जो बिना मौर आये ही फलते हैं; जैसे गूलर, बड़, पीपल आदि। २. जो फलोंके पक जानेपर नष्ट हो जाते हैं, जैसे धान, गेहूँ, चना आदि। ३. जो किसीका आश्रय लेकर बढ़ते हैं, जैसे ब्राह्मी, गिलोय आदि। ४. जिनकी छाल बहुत कठोर होती है, जैसे बाँस आदि। ५. जो लता पृथ्वीपर ही फैलती है, किन्तु कठोर होनेसे ऊपरकी ओर नहीं चढ़ती—जैसे खरबूजा, तरबूज आदि। ६. जिनमें पहले फूल आकर फिर उन फूलोंके स्थानमें ही फल लगते हैं, जैसे आम, जामुन आदि।

आप जगत्‌के रचयिता और समस्त लोकपालोंके सिरमौर हैं। आप छोटे-बड़े सभी जीवोंका भाव जानते हैं। देव ! आप विज्ञानबलसम्पन्न हैं; आपने मायाहीसे यह चतुर्मुख रूप और रजोगुण स्वीकार किया है; आपकी उत्पत्तिके वास्तविक कारणको कोई नहीं जान सकता। हम आपको नमस्कार करते हैं। आपमें सम्पूर्ण भुवन स्थित हैं, कार्य-कारणरूप सारा प्रपञ्च आपका शरीर है; किन्तु वास्तवमें आप इससे परे हैं। जो समस्त जीवोंके उत्पत्तिस्थान आपका अनन्य भावसे ध्यान करते हैं, उन सिद्ध योगियोंका किसी प्रकार भी ह्रास नहीं हो सकता; क्योंकि वे आपके कृपाकटाक्षसे कृतकृत्य हो जाते हैं तथा प्राण, इन्द्रिय और मनको जीत लेनेके कारण उनका योग भी परिपक्व हो जाता है। आप सबके नियन्ता मुख्य प्राण हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं। आपकी वेदवाणीरूप रस्सीमें बँधी हुई सारी प्रजा नथे हुए बैलोंके समान नियमपूर्वक कर्मानुष्ठान करके आपको बलि समर्पण करती है। भूमन् ! इस अन्धकारके कारण दिन-रातका विभाग अस्पष्ट हो जानेसे लोकोंके सारे कर्म लुप्त होते जा रहे हैं, जिससे वे दुखी हो रहे हैं; उनका कल्याण कीजिये और हम शरणागतोंकी ओर अपनी अपार दयादृष्टिसे निहारिये। देव ! आग जिस प्रकार ईंधनमें पड़कर बढ़ती रहती है, उसी प्रकार कश्यपजीके वीर्यसे स्थापित हुआ यह दितिका गर्भ सारी दिशाओंको अन्धकारमय करता हुआ क्रमशः बढ़ रहा है ॥ ३-१० ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—महाबाहो ! देवताओंकी प्रार्थना सुनकर भगवान् ब्रह्माजी हँसे और उन्हें अपनी मधुर वाणीसे ढाढ़स बँधाते हुए कहने लगे ॥ ११ ॥

श्रीब्रह्माजी बोले—देवताओ ! तुम्हारे पूर्वज, मेरे मानसपुत्र सनकादि लोकोंकी आसक्ति त्याग कर समस्त लोकोंमें आकाशमार्गसे विचरा करते थे। एक बार वे शुद्ध-सत्त्वमय भगवान् विष्णुके वैकुण्ठधाममें जा पहुँचे। ऐसा कौन लोक है, जो उस दिव्य धामकी वन्दना नहीं करता ! वहाँ सभी लोग विष्णुरूप होकर रहते हैं और वह प्राप्त भी उन्हींको होता है, जो अन्य सब प्रकारकी कामनाएँ छोड़कर केवल भगवच्चरण-शरणकी प्राप्तिके लिये ही अपने धर्मद्वारा उनकी आराधना करते हैं। वहाँ वेदान्तप्रतिपाद्य धर्ममूर्ति श्रीआदिनारायण हम अपने भक्तोंपर कृपा करनेके लिये शुद्धसत्त्वमय स्वरूप धारण कर हर समय विराजमान रहते हैं। उस लोकमें नैःश्रेयस नामका एक वन है। वह मूर्तिमान् कैवल्य-सा ही जान पड़ता है। उसमें सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वृक्ष हैं, जो हर समय छहों ऋतुओंकी शोभासे सम्पन्न रहते हैं ॥ १२-१६ ॥

वहाँ विमानचारी गन्धर्वगण अपनी प्रियाओंके सहित अपने प्रभुकी पवित्र लीलाओंका गान करते रहते हैं, जो लोगोंकी सम्पूर्ण पापराशिको भस्म कर देनेवाली हैं। उस समय सरोवरोंमें खिली हुई मकरन्दपूर्ण वासन्तिक माधवी लताकी सुमधुर गन्ध उनके चित्तको अपनी ओर खींचना चाहती है; परन्तु वे प्रभुके गुणगानमें ऐसे तन्मय हो जाते हैं कि उसे लानेवाली हवाकी ओर ध्यान ही नहीं देते। जिस समय भ्रमरराज ऊँचे स्वरसे गुंजार करते हुए मानो हरिकथाका गान करते हैं, उस समय थोड़ी देरके लिये कबूतर, कोकिल, सारस, चक्रवाक, चातक, हंस, शुक, तीतर और मोरोंका कोलाहल बंद हो जाता है; मानो वे भी उस कीर्तनानन्दमें बेसुध हो जाते हैं। श्रीहरि तुलसीसे अपने श्रीविग्रहको सजाते हैं और तुलसीकी गन्धका ही अधिक आदर करते हैं—यह देखकर वहाँके मन्दार, कुन्द, कुरबक (तिलकवृक्ष), उत्पल (रात्रिमें खिलनेवाले कमल), चम्पक, अर्ण, पुन्नाग, नाग, बकुल (मौलसिरी), अम्बुज (दिनमें खिलनेवाले कमल) और पारिजात आदि पुष्प सुगन्धयुक्त होनेपर भी तुलसीका ही तप अधिक मानते हैं। वे भी बड़े ही गुणग्राही हैं—ईर्ष्यालु नहीं हैं। वह लोक वैदूर्य, मरकत-मणि (पन्ने) और सुवर्णके विमानोंसे भरा हुआ है। ये सब किसी कर्मफलसे नहीं, बल्कि एकमात्र श्रीहरिके पाद-पद्मोंकी वन्दना करनेसे ही प्राप्त होते हैं। उन विमानोंपर चढ़े हुए कृष्णप्राण भगवद्भक्तोंके चित्तोंमें बड़े-बड़े नितम्बोंवाली सुमुखी सुन्दरियाँ भी अपनी मन्द मुसकान एवं मनोहर हास-परिहाससे कामविकार नहीं उत्पन्न कर सकतीं ॥ १७-२० ॥

परम सौन्दर्यशालिनी लक्ष्मीजी, जिनके कृपाकटाक्षके लिये देवगण भी लालायित रहते हैं, श्रीहरिके भवनमें चञ्चलतारूप दोषको त्याग कर रहती हैं। जिस समय अपने चरण-कमलोंके नूपुरोंकी झनकार करती हुई वे अपना लीला-कमल घुमाती हैं, उस समय उस कनकभवनकी स्फटिकमय दीवारोंमें उनका प्रतिबिम्ब पड़नेसे ऐसा जान पड़ता है मानो वे उन्हें बुहार रही हों। जिस समय दासियोंको साथ लिये वे अपने क्रीडावनमें तुलसीदलद्वारा भगवान्‌का पूजन करती हैं, तो वहाँके निर्मल जलसे भरे हुए सरोवरोंमें, जिनमें मूँगेके घाट बने हुए हैं, अपना सुन्दर अलकावली और उन्नत

सहित देवताओंके बारह सहस्र वर्षतक रहते हैं, ऐसा बतलाया गया है। इन सत्यादि चारों युगोंमें क्रमशः चार, तीन, दो और एक सहस्र दिव्यवर्ष होते हैं और प्रत्येकमें जितने सहस्र वर्ष होते हैं उससे दुगुने सौ वर्ष उनकी सन्ध्या और सन्ध्यांशोंमें होते हैं।* युगके आदिमें सन्ध्या होती है और अन्तमें सन्ध्यांश। इनकी वर्ष-गणना सैकड़ोंकी संख्यामें बतलायी गयी है। इनके बीचका जो काल होता है, उसीको कालवेत्ताओंने युग कहा है। प्रत्येक युगमें एक-एक विशेष धर्मका विधान पाया जाता है। सत्ययुगके मनुष्योंमें धर्म अपने चारों चरणोंसे रहता है; फिर अन्य युगोंमें अधर्मकी वृद्धि होनेसे उसका एक-एक चरण क्षीण होता जाता है। प्यारे विदुरजी! त्रिलोकीसे बाहर महर्लोकसे ब्रह्म-लोकपर्यन्त यहाँकी एक सहस्र चतुर्युगीका एक दिन होता है और इतनी ही बड़ी रात्रि होती है, जिसमें जगत्कर्ता ब्रह्माजी शयन करते हैं। उस रात्रिका अन्त होनेपर इस लोकका कल्प आरम्भ होता है; उसका क्रम जबतक ब्रह्माजीका दिन रहता है, तबतक चलता रहता है। उस एक कल्पमें चौदह मनु हो जाते हैं। प्रत्येक मनु इकहत्तर चतुर्युगीसे कुछ अधिक काल (७१$\frac{6}{14}$ चतुर्युगी) तक अपना अधिकार भोगता है। प्रत्येक मन्वन्तरमें भिन्न-भिन्न मनु, मनुवंशी राजालोग, सप्तर्षि, देवगण, इन्द्र और उनके अनुयायी गन्धर्वादि साथ-साथ ही अपना अधिकार भोगते हैं। यह ब्रह्माजीकी एक दिनकी सृष्टि है, जिसमें तीनों लोकोंकी रचना होती है। उसमें अपने-अपने कर्मानुसार पशु-पक्षी, मनुष्य, पितर और देवताओंकी उत्पत्ति होती है। इन मन्वन्तरोंमें भगवान् सत्त्वगुणका आश्रय ले अपने मनु आदि अवतारोंके द्वारा पुरुषार्थ प्रकट करते हुए इस विश्वका पालन करते हैं। कालक्रमसे जब ब्रह्माजीका दिन बीत जाता है, तब वे तमोगुणके सम्पर्कको स्वीकार कर अपने सृष्टिरचनारूप पुरुषार्थ-को स्थगित करके निश्चेष्टभावसे स्थित हो जाते हैं। उस समय सारा विश्व उन्हींमें लीन हो जाता है। सूर्य और चन्द्रमादिसे रहित वह प्रलयरात्रि आती है, तब ये भूः, भुवः, स्वः—तीनों लोक उन्हीं ब्रह्माजीके शरीरमें छिप जाते हैं। उस अवसरपर तीनों लोक शेषजीके मुखसे निकली हुई अग्निरूप भगवान्की शक्तिसे जलने लगते हैं। इसलिये उसके तापसे व्याकुल होकर भृगु आदि मुनीश्वरगण महर्लोकसे जनलोकको चले जाते हैं। इतनेमें ही सातों समुद्र प्रलयकालके प्रचण्ड पवनसे उमड़कर अपनी उछलती हुई उत्ताल तरंगोंसे त्रिलोकीको डुबो देते हैं। तब उस जलके भीतर भगवान् शेषशायी योगनिद्रासे नेत्र मूँदकर शयन करते हैं। उस समय जनलोकनिवासी मुनिगण उनकी स्तुति किया करते हैं। इस प्रकार कालकी गतिसे एक-एक सहस्र चतुर्युगके रूपमें प्रतीत होनेवाले दिन-रातके हेर-फेरसे ब्रह्माजीकी सौ वर्षकी परमायु भी बीती हुई-सी दिखायी देती है ॥१८–३२॥

ब्रह्माजीकी आयुके आधे भागको परार्ध कहते हैं। अबतक पहला परार्ध तो बीत चुका है, दूसरा चल रहा है। पूर्व परार्धके आरम्भमें ब्राह्मनामका महान् कल्प हुआ था। उसीमें ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई थी। पण्डितजन इन्हें शब्दब्रह्म कहते हैं। उसी परार्धके अन्तमें जो कल्प हुआ था उसे पाद्म-कल्प कहते हैं। इसमें भगवान्के नाभिसरोवरसे सर्वलोकमय कमल प्रकट हुआ था। विदुरजी! इस समय जो कल्प है, वह दूसरे परार्धके आरम्भमें बतलाया जाता है। यह वाराह-कल्प नामसे विख्यात है, इसमें भगवान्ने सूकररूप धारण किया था। यह दो परार्धका काल अव्यक्त, अनन्त, अनादि, विश्वात्मा श्रीहरिका एक निमेष माना जाता है। यह परमाणु-से लेकर द्विपरार्धपर्यन्त व्यापक काल सर्वसमर्थ होनेपर भी सर्वात्मा श्रीहरिपर किसी प्रकारकी प्रभुता नहीं रखता। यह तो देहादिमें अभिमान रखनेवाले जीवोंका ही शासन करनेमें समर्थ है ॥ ३३–३८ ॥

प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्र—इस आठ प्रकृतियोंके सहित दस इन्द्रिय, मन और पञ्चभूत—इन सोलह विकारोंसे मिलकर बना हुआ यह ब्रह्माण्डकोश भीतरसे पचास करोड़ योजन विस्तारवाला है। तथा इसके बाहर चारों ओर उत्तरोत्तर दस-दस गुने सात आवरण हैं। उन सबके सहित जिसमें यह परमाणुके समान पड़ा हुआ है और जिसमें ऐसी करोड़ों ब्रह्माण्ड राशियाँ हैं, वह इन प्रधानादि समस्त कारणों-का कारण अक्षर ब्रह्म कहलाता है और यही पुराणपुरुष परमात्मा श्रीविष्णुभगवान्का श्रेष्ठ स्वरूप है ॥ ३९–४१ ॥

* अर्थात् सत्ययुगमें ४००० दिव्य वर्ष युगके और ८०० सन्ध्या एवं सन्ध्यांशके इस—प्रकार ४८०० वर्ष होते हैं। इसी प्रकार त्रेतामें ३६००, द्वापरमें २४०० और कलियुगमें १२०० दिव्य-वर्ष होते हैं। मनुष्योंका एक वर्ष देवताओंका एक दिन होता है, अतः देवताओंका एक वर्ष मनुष्योंके ३६० वर्षके बराबर हुआ। इस प्रकार मानवीय मानसे कलियुगमें ४३२००० वर्ष हुए तथा इससे दुगुने द्वापरमें, तिगुने त्रेतामें और चौगुने सत्ययुगमें होते हैं।

सनकादि और वैकुण्ठके द्वारपाल जय विजय



द्वारपालोंके रोकनेपर सनकादि उन्हें शाप देते हैं।

सुकुमारी और मनोहर थी। हमने सुना है—एक बार, यद्यपि वह स्वयं वासनाहीन थी तो भी, उसे देखकर ब्रह्माजी काम-मोहित हो गये थे। उन्हें ऐसा अधर्ममय सङ्कल्प करते देख, उनके पुत्र मरीचि आदिने उन्हें एकान्तमें ले जाकर समझाया—'पिताजी! आप समर्थ हैं, फिर भी अपने मनमें उत्पन्न हुए कामके वेगको न रोककर कन्यागमन-जैसा दुस्तर पाप करनेका सङ्कल्प कर रहे हैं! ऐसा तो आपसे पूर्ववर्ती किसी भी ब्रह्माने नहीं किया और न आगे ही कोई करेगा। जगद्गुरो! आप-जैसे तेजस्वी पुरुषोंको भी ऐसा काम शोभा नहीं देता, क्योंकि आपलोगोंके आचरणोंका अनुसरण करनेसे ही तो संसारका कल्याण होता है। जिन श्रीभगवान्‌ने अपने स्वरूपमें स्थित इस जगत्‌को अपने ही तेजसे प्रकट किया है, उन्हें नमस्कार है। इस समय वे ही धर्मकी रक्षा कर सकते हैं।' अपने पुत्र मरीचि आदि प्रजापतियोंको अपने सामने इस प्रकार कहते देख प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजी बड़े लज्जित हुए और उन्होंने उस शरीरको उसी समय छोड़ दिया। तब उस घोर शरीरको दिशाओंने ले लिया। वही कुहरा हुआ, जिसे अन्धकार भी कहते हैं॥ २८–३३॥

एक बार ब्रह्माजी यह सोच रहे थे कि 'मैं पहलेकी तरह सुव्यवस्थित रूपसे सब लोकोंकी रचना किस प्रकार करूँ?' इसी समय उनके चार मुखोंसे चार वेद प्रकट हुए। इनके सिवा उपवेद, न्यायशास्त्र, होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा—इन चार ऋत्विजोंके कर्म, यज्ञोंका विस्तार, धर्मके चार चरण और चारों आश्रम तथा उनकी वृत्तियाँ—ये सब भी ब्रह्माजीके मुखसे ही उत्पन्न हुए॥ ३४-३५॥

विदुरजीने पूछा—तपोधन! विश्वरचयिताओंके स्वामी श्रीब्रह्माजीने जो अपने मुखोंसे इन वेदादिको रचा, तो उन्होंने अपने किस मुखसे कौन वस्तु उत्पन्न की—यह आप कृपा करके मुझे बतलाइये॥ ३६॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! ब्रह्माने अपने पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर मुखसे क्रमशः ऋक्, यजुः, साम और अथर्व वेदोंको रचा तथा इसी क्रमसे शास्त्र (होताका कर्म), इज्या (अध्वर्युका कर्म) स्तुतिस्तोम (उद्गाताका कर्म) और प्रायश्चित्त (ब्रह्माका कर्म)—इन चार कर्मोंकी रचना की। इसी प्रकार आयुर्वेद (चिकित्साशास्त्र), धनुर्वेद (शस्त्रविद्या), गान्धर्ववेद (सङ्गीतशास्त्र) और स्थापत्यवेद (शिल्पविद्या)—इन चार उपवेदोंको भी क्रमशः उन पूर्वादि मुखोंसे ही उत्पन्न किया। फिर सर्वदर्शी भगवान् ब्रह्माने अपने चारों मुखोंसे इतिहास-पुराणरूप पाँचवाँ वेद बनाया। इसी क्रमसे षोडशी और उक्थ, चयन और अग्निष्टोम, आप्तोर्याम और अतिरात्र तथा वाजपेय और गोसव—ये दो-दो याग भी उनके पूर्वादि मुखोंसे ही उत्पन्न हुए तथा विद्या, दान, तप और सत्य—ये धर्मके चार पाद और वृत्तियोंके सहित चार आश्रम भी इसी क्रमसे प्रकट हुए। आश्रमोंकी वृत्तियोंका विभाग इस प्रकार समझना चाहिये। सावित्र*, प्राजापत्य[1], ब्राह्म[2] और बृहत्[3]—ये चार वृत्तियाँ ब्रह्मचारीकी हैं तथा वार्ता[4], सञ्चय[5], शालीन[6] और शिलोञ्छ[7]—ये चार वृत्तियाँ गृहस्थकी हैं। इसी प्रकार वृत्तिभेदसे वैखानस[8], वालखिल्य[9], औदुम्बर[10] और फेनप[11]—ये चार भेद वानप्रस्थोंके तथा कुटीचक[12], बहूदक[13], हंस[14] और निष्क्रिय (परमहंस)[15]—ये चार भेद संन्यासियोंके हैं। इसी क्रमसे आन्वीक्षिकी[16], त्रयी[17], वार्ता[18] और दण्डनीति[19]—ये चार विद्याएँ तथा चार व्याहृतियाँ[20] भी ब्रह्माजीके चार मुखोंसे ही उत्पन्न हुईं तथा उनके हृदयाकाशसे ॐकार प्रकट

---

*. उपनयन संस्कारके पश्चात् गायत्रीका अध्ययन करनेके लिये धारण किया जानेवाला तीन दिनका ब्रह्मचर्यव्रत।

१. एक वर्षका ब्रह्मचर्यव्रत। २. वेदाध्ययनकी समाप्तितक रहनेवाला ब्रह्मचर्यव्रत। ३. आयुपर्यन्त रहनेवाला ब्रह्मचर्यव्रत। ४. कृषि आदि शास्त्रविहित वृत्तियाँ। ५. यागादि कराना। ६. अयाचित वृत्ति। ७. खेत कट जानेपर पृथ्वीपर पड़े हुए तथा अनाजकी मंडीमें गिरे हुए दानोंको बीनकर निर्वाह करना। ८. बिना जोती-बोयी हुई भूमिसे उत्पन्न हुए पदार्थोंसे निर्वाह करनेवाले। ९. नवीन अन्न मिलनेपर पहला सञ्चय करके रखा हुआ अन्न दान कर देनेवाले। १०. प्रातःकाल उठनेपर जिस दिशाकी ओर मुख हो उसी ओरसे फलादि लाकर निर्वाह करनेवाले। ११. अपने-आप झड़े हुए फलादि खाकर रहनेवाले। १२. कुटी बनाकर एक जगह रहने और आश्रमके धर्मोंका पूरा पालन करनेवाले। १३. कर्मकी ओर गौणदृष्टि रखकर ज्ञानहीको प्रधान माननेवाले। १४. ज्ञानाभ्यासी। १५. ज्ञानी जीवन्मुक्त। १६. मोक्ष प्राप्त करानेवाली आत्मविद्या। १७. स्वर्गादिफल देनेवाली कर्मविद्या। १८. खेती-व्यापारादि सम्बन्धी विद्या १९. राजनीति। २०. भूः, भुवः, स्वः, ये तीन और चौथी इन तीनोंको मिलाकर—इस प्रकार चार व्याहृतियाँ आश्वलायनने अपने गृह्यसूत्रोंमें बतलायी हैं—'एवं व्याहृतयः प्रोक्ता व्यस्ताः समस्ताः।' अथवा भूः, भुवः स्वः और महः—ये चार व्याहृतियाँ, जैसा कि श्रुति कहती है—'भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयस्तासामु ह स्मैतां चतुर्थीमाह। वाचमस्य प्रवेदयते महः' इत्यादि।

न समझकर उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है । इससे हमें जो पाप लगा है, वह आपके दिये हुए दण्डसे सर्वथा धुल जायगा । किन्तु हमारी इस दुर्दशाका विचार करके यदि करुणावश आपको थोड़ा-सा भी अनुताप हो, तो ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे उन अधमाधम योनियोंमें जानेपर भी हमें भगवत्स्मृतिको नष्ट करनेवाला मोह न प्राप्त हो ॥ ३५-३६ ॥

इधर जब साधुजनोंके हृदयधन भगवान् कमलनाभको मालूम हुआ कि मेरे द्वारपालोंने साधु सनकादिका अनादर किया है, तब वे—परमहंस मुनिजन भी जिन्हें ढूँढते रहते हैं—सहजमें पाते नहीं, उन अपने श्रीचरणोंसे चलकर ही,



लक्ष्मीजीके सहित वहाँ पहुँचे । सनकादिने देखा कि उनकी समाधिके विषय श्रीवैकुण्ठनाथ स्वयं वहाँ पधारे हैं, उनके साथ-साथ पार्षदगण छत्र-चामरादि लिये चल रहे है तथा प्रभुके दोनों ओर राजहंसके पंखोंके समान दो श्वेत चँवर डुलाये जा रहे हैं । उनकी शीतल वायुसे उनके श्वेत छत्रमें लगी हुई मोतियोंकी झालर हिलती हुई ऐसी शोभा दे रही है मानो चन्द्रमाकी किरणोंसे अमृतकी बूँदें झर रही हों । प्रभु समस्त सद्गुणोंके आश्रय हैं, उनकी सौम्य मुखमुद्राको देखकर जान पड़ता था मानो वे सभीपर अनवरत कृपासुधाकी वर्षा कर रहे हैं । अपनी स्नेहमयी चितवनसे वे भक्तोंका हृदय स्पर्श कर रहे थे तथा उनके सुविशाल श्याम वक्षःस्थलपर जो कान्ति विराजमान थी, उससे वे समस्त दिव्यलोकोंके चूडामणि वैकुण्ठधामको सुशोभित कर रहे थे । उनके पीताम्बरमण्डित विशाल नितम्बोंपर झिलमिलाती हुई करधनी और गलेमें भ्रमरोंसे गुञ्जायमान वनमाला विराज रही थी; तथा वे कलाइयोंमें सुन्दर कंगन पहने अपना एक हाथ गरुड़जीके कंधेपर रख दूसरेसे कमलका पुष्प घुमा रहे थे । उनके अमोल कपोल बिजलीकी प्रभाको भी लजानेवाले मकराकृत कुण्डलोंकी शोभा बढ़ा रहे थे, उभरी हुई सुघड़ नासिका थी, बड़ा ही सुन्दर मुख था, सिरपर मणिमय मुकुट विराजमान था तथा चारों भुजाओंके बीच महामूल्यवान् मनोहर हारकी और गलेमें कौस्तुभमणिकी अपूर्व शोभा थी । भगवान्‌का श्रीविग्रह बड़ा ही सौन्दर्यशाली था । उसे देखकर भक्तोंके मनमें ऐसा वितर्क होता था कि इसके सामने लक्ष्मीजीका सौन्दर्याभिमान भी गलित हो गया है । ब्रह्माजी कहते हैं—देवताओ ! इस प्रकार मेरे, महादेवजीके और तुम्हारे लिये परम सुन्दर विग्रह धारण करनेवाले श्रीहरिको देखकर सनकादि मुनीश्वरोंने उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया । उस समय उनकी अद्भुत छविको निहारते निहारते उनके नेत्र तृप्त नहीं होते थे ॥ ३७–४२ ॥

सनकादि मुनीश्वर निरन्तर ब्रह्मानन्दमें निमग्न रहा करते थे । किन्तु जिस समय भगवान् कमलनयनके चरणारविन्दमकरन्दसे मिली हुई तुलसीमञ्जरीके गन्धसे सुवासित वायुने नासिकारन्ध्रोंके द्वारा उनके अन्तःकरणमें प्रवेश किया, उस समय वे अपने शरीरको सँभाल न सके और उस दिव्य गन्धने उनके मनमें भी खलबली पैदा कर दी । भगवान्‌का मुख नील कमलके समान था, अति सुन्दर अधर और कुन्दकलीके समान मनोहर हाससे उसकी शोभा और भी बढ़ गयी थी । उसकी झाँकी करके वे कृतकृत्य हो गये । और फिर पद्मरागके समान लाल लाल नखोंसे सुशोभित उनके चरणकमल देखकर वे उन्हींका ध्यान करने लगे । इसके पश्चात् वे मुनिगण अन्य साधनोंसे सिद्ध न होनेवाली, स्वाभाविक अष्टसिद्धियोंसे सम्पन्न श्रीहरिकी स्तुति करने लगे—जो योगमार्गद्वारा मोक्षपदकी खोज करनेवाले पुरुषोंके लिये, उनके ध्यानका विषय, अत्यन्त आदरणीय और नयनानन्दकी वृद्धि करनेवाला पुरुषरूप प्रकट करते हैं ॥ ४३–४५ ॥

सनकादि बोले—अनन्त ! यद्यपि आप अन्तर्यामीरूपसे दुष्टचित्त पुरुषोंके हृदयमें भी स्थित रहते हैं, तथापि उनकी दृष्टिसे ओझल ही रहते हैं । किन्तु आज हमारे नेत्रोंके सामने तो साक्षात् विराजमान हैं । प्रभो ! जिस समय आपसे उत्पन्न हुए हमारे पिता ब्रह्माजीने आपका रहस्य वर्णन किया

अपमान किया है। इसलिये मेरे अनुरोधसे आप केवल इतनी कृपा कीजिये कि इनका यह निर्वासनकाल शीघ्र ही समाप्त हो जाय, ये अपने अपराधके अनुरूप अधम गतिको भोगकर शीघ्र ही मेरे पास लौट आवें ॥२–१२॥

ब्रह्माजी कहते हैं—देवताओ! सनकादि मुनि क्रोधरूप सर्पसे डसे हुए थे, तो भी उनका चित्त भगवान्‌की मन्त्रमयी सुमधुर वाणी सुनते सुनते तृप्त नहीं हुआ। भगवान्‌की उक्ति बड़ी ही मनोहर और थोड़े अक्षरोंवाली थी। किन्तु वह इतनी अर्थपूर्ण, सारयुक्त, दुर्विज्ञेय और गम्भीर थी कि बहुत ध्यान देकर सुनने और विचार करनेपर भी वे यह न जान सके कि भगवान् क्या करना चाहते हैं। भगवान्‌की इस अद्भुत उदारताको देखकर वे बहुत आनन्दित हुए और उनका अङ्ग अङ्ग पुलकित हो गया। फिर योगमायाके प्रभावसे अपने परम ऐश्वर्यका प्रभाव प्रकट करनेवाले प्रभुसे वे हाथ जोड़कर कहने लगे ॥१३–१५॥

मुनिगण बोले—भगवन्! आप सर्वेश्वर होकर भी जो यह कह रहे हैं कि 'यह आपने मुझपर बड़ा अनुग्रह किया' सो इससे आपका क्या अभिप्राय है—यह हम नहीं जान सके हैं। प्रभो! आप ब्राह्मणोंके परम हितकारी हैं, इससे लोक-शिक्षाके लिये आप भले ही ऐसा मानें कि ब्राह्मण मेरे आराध्यदेव हैं। वस्तुत: तो ब्राह्मण तथा देवताओंके भी देवता ब्रह्मादिके भी आप ही आत्मा और आराध्यदेव हैं। सनातनधर्म आपहीसे उत्पन्न हुआ है, आपके अवतारोंद्वारा ही समय-समयपर उसकी रक्षा होती है तथा निर्विकारस्वरूप आप ही धर्मके परम गुह्य रहस्य हैं—यह शास्त्रोंका मत है। आपकी कृपासे निवृत्तिपरायण योगीजन सहजहीमें मृत्युरूप संसार सागरसे पार हो जाते हैं, फिर भला दूसरा कोई आपपर क्या कृपा कर सकता है? भगवन्! अर्थार्थी जन(धनके चाहनेवाले लोग)जिनकी चरण रजको सर्वदा अपने मस्तकपर धारण करते हैं, वे लक्ष्मीजी निरन्तर आपकी सेवामें लगी रहती हैं, सो ऐसा जान पड़ता है कि भाग्यवान् भक्तजन आपके चरणोंपर जो नूतन तुलसीकी मालाएँ अर्पण करते हैं, उनपर गुंजार करते हुए भौंरोंके समान वे भी आपके पादपद्मोंको ही अपना निवासस्थान बनाना चाहती हैं। किन्तु अपने पवित्र चरित्रोंसे निरन्तर सेवामें तत्पर रहनेवाली उन लक्ष्मीजीका भी आप विशेष आदर नहीं करते, आप तो अपने भक्तोंसे ही विशेष प्रेम रखते हैं। आप स्वयं ही सम्पूर्ण भजनीय गुणोंके आश्रय हैं, क्या जहाँ तहाँ विचरते हुए ब्राह्मणोंके चरणोंमें लगनेसे पवित्र हुई मार्गकी धूलि और श्रीवत्सका चिह्न आपको पवित्र कर सकते हैं? क्या इनसे आपकी शोभा बढ़ सकती है? फिर भी न जाने क्यों आपने इनको धारण कर रक्खा है? ॥ १६–२१ ॥

भगवन्! आप साक्षात् धर्मस्वरूप हैं। आप सत्यादि तीनों युगोंमें प्रत्यक्षरूपसे विद्यमान रहते हैं तथा ब्राह्मण और देवताओंके लिये तप, शौच और दया—अपने इन तीन चरणोंसे इस चराचर जगत्‌की रक्षा करते हैं। अब आप अपनी शुद्धसत्त्वमयी वरदायिनी मूर्तिसे हमारे धर्मविरोधी रजोगुण-तमोगुणको दूर कर दीजिये। देव! यह ब्राह्मणकुल आपके द्वारा अवश्य रक्षणीय है। यदि साक्षात् धर्मरूप होकर भी आप सुमधुर वाणी और पूजनादिके द्वारा इस उत्तम कुलकी रक्षा न करें, तो आपका निश्चित किया हुआ कल्याणमार्ग ही नष्ट हो जाय, क्योंकि लोक तो श्रेष्ठ पुरुषोंके आचरणको ही प्रमाणरूपसे ग्रहण करता है। प्रभो! आप सत्त्वगुणकी खान हैं, और सभी जीवोंका कल्याण करनेके लिये उत्सुक हैं। इसीसे आप अपनी शक्तिरूप राजा आदिके द्वारा धर्मके शत्रुओंका संहार करते हैं, क्योंकि वेदमार्गका उच्छेद आपको अभीष्ट नहीं है। आप त्रिलोकीनाथ और जगत्प्रतिपालक होकर भी ब्राह्मणोंके प्रति इतने नम्र रहते हैं, इससे आपके तेजकी कोई हानि नहीं होती, यह तो आपकी लीलामात्र है। सर्वेश्वर! इन द्वारपालोंको आप जैसा उचित समझें वैसा दण्ड दें, अथवा पुरस्काररूपमें इनकी वृत्ति बढ़ा दें—हम निष्कपट भावसे सब प्रकार आपसे सहमत हैं। अथवा हमने आपके इन निरपराध अनुचरोंको शाप दिया है, इसके लिये हमींको उचित दण्ड दें, हमें वह भी सहर्ष स्वीकार है ॥२२–२५॥

श्रीभगवान् बोले—मुनिगण! आपने इन्हें जो शाप दिया है—सच जानिये, वह मेरी ही प्रेरणासे हुआ है। अब ये शीघ्र ही दैत्ययोनिको प्राप्त होंगे और वहाँ क्रोधावेशसे बढ़ी हुई एकाग्रताके कारण सुदृढ योगसम्पन्न होकर फिर जल्दी ही मेरे पास लौट आवेंगे ॥२६॥

श्रीब्रह्माजी कहते हैं—तदनन्तर उन मुनीश्वरोंने नयनाभिराम भगवान् विष्णु और उनके स्वयंप्रकाश वैकुण्ठधामके दर्शन कर प्रभुकी परिक्रमा की और उन्हें प्रणाम कर तथा उनकी आज्ञा पा भगवान्‌के ऐश्वर्यका वर्णन करते हुए प्रमुदित हो वहाँसे लौट गये। फिर भगवान्‌ने अपने अनुचरोंसे कहा, 'जाओ, मनमें किसी प्रकारका भय मत करो, तुम्हारा कल्याण होगा। मैं सब कुछ करनेमें समर्थ होकर भी ब्रह्मतेजको

हुई पृथ्वीको जलपर रखकर वे विष्वक्सेन प्रजापति भगवान् श्रीहरि अन्तर्धान हो गये ॥ ४६-४७ ॥

विदुरजी ! भगवान्‌के लीलामय चरित्र अत्यन्त कीर्तनीय हैं और उनमें लगी हुई बुद्धि सब प्रकारके पाप-तापोंको दूर कर देती है। जो पुरुष उनकी इस मङ्गलमयी मञ्जुल कथाको भक्तिभावसे सुनता या सुनाता है, उसके प्रति भक्तवत्सल भगवान् बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् तो सभी कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ हैं, उनके प्रसन्न होनेपर संसारमें क्या दुर्लभ है ? किन्तु उन तुच्छ कामनाओंकी आवश्यकता ही क्या है ? जो लोग उनका अनन्यभावसे भजन करते हैं, उन्हें तो वे अन्तर्यामी प्रभु स्वयं अपना परमपद ही दे देते हैं। संसारमें पशुओंको छोड़कर अपने पुरुषार्थका सार जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा, जो आवागमनसे छुड़ा देनेवाली भगवान्‌की प्राचीन कथाओंमेंसे किसी भी अमृतमयी कथाका अपने कर्णपुटोंसे एक बार पान करके फिर उनकी ओरसे मन हटा लेगा ? ॥ ४८–५० ॥

चौदहवाँ अध्याय

दितिका गर्भधारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये सूकररूप धारण करनेवाले श्रीहरिकी कथाको मैत्रेयजीके मुखसे सुनकर भी भक्तिव्रतधारी विदुरजीको तृप्ति न हुई; अतः उन्होंने हाथ जोड़कर फिर पूछा ॥ १ ॥

विदुरजी बोले—मुनिवर ! हमने यह बात आपके मुखसे अभी सुनी है कि आदिदैत्य हिरण्याक्षको भी भगवान् यज्ञमूर्तिने ही मारा था। सो ब्रह्मन् ! जिस समय भगवान् लीलाहीसे अपनी दाढ़ोंपर रखकर पृथ्वीको जलमेंसे निकाल रहे थे, उस समय उनसे दैत्यराज हिरण्याक्षकी मुठभेड़ किस कारण हुई ? ॥ २-३ ॥

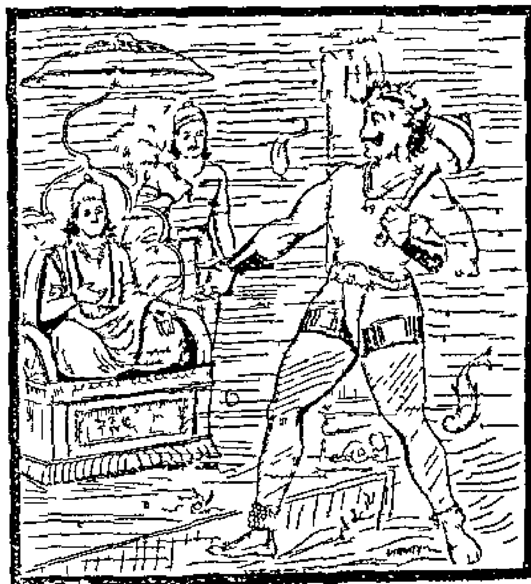
श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी ! तुम्हारा प्रश्न बड़ा ही सुन्दर है; क्योंकि तुम श्रीहरिकी अवतारकथाके विषयमें ही पूछ रहे हो, जो मनुष्योंके मृत्युपाशका छेदन करनेवाली है। देखो, उत्तानपादका पुत्र ध्रुव बालकपनमें श्रीनारदजीकी सुनायी हुई हरिकथाके प्रभावसे ही मृत्युके सिरपर पैर रखकर भगवान्‌के परमपदपर आरूढ़ हो गया था। एक बार इस वराहभगवान् और हिरण्याक्षके युद्धके विषयमें देवताओंके प्रश्न करनेपर श्रीब्रह्माजीने उन्हें यह इतिहास सुनाया था। उस समय मैंने भी इसे सुना था, सो मैं तुम्हें सुनाता हूँ। विदुरजी ! एक बार दक्षकी पुत्री दितिने पुत्रप्राप्तिकी इच्छासे कामातुर होकर सायङ्कालके समय ही अपने पति मरीचिनन्दन कश्यपजीसे रतिके लिये प्रार्थना की। उस समय कश्यपजी अग्निजिह्व भगवान् यज्ञपुरुषकी खीरकी आहुतियोंद्वारा आराधना कर सूर्यास्तका समय जान अग्निशालामें ध्यानस्थ होकर बैठे थे ॥ ४–८ ॥

दितिने कहा—विद्वन् ! मतवाला हाथी जैसे केलेके वृक्षको मसल डालता है, उसी प्रकार यह प्रसिद्ध धनुर्धर कामदेव मुझ अबलापर जोर जताकर आपके साथ रमण करनेके लिये मुझे बेचैन कर रहा है। अपनी पुत्रवती सौतोंकी सुख-समृद्धिको देखकर मैं ईर्ष्याकी आगसे जली जाती हूँ। अतः आप मुझपर कृपा कीजिये, आपका कल्याण हो। जिनके गर्भसे आप-जैसा पति पुत्ररूपसे उत्पन्न होता है, वे ही स्त्रियाँ अपने पतियोंसे सम्मानिता समझी जाती हैं। उनका सुयश संसारमें सर्वत्र फैल जाता है। हमारे पिता प्रजापति दक्षका अपनी पुत्रियोंपर बड़ा स्नेह था। एक बार उन्होंने हम सबको अलग-अलग बुलाकर पूछा कि तुम किसे अपना पति बनाना चाहती हो ? वे अपनी सन्तानकी सब प्रकारकी चिन्ता रखते थे। अतः हमारा भाव जानकर उन्होंने हम तेरहोंको, जो आपके गुण-स्वभावके अनुरूप थीं, आपके साथ व्याह दिया। अतः मङ्गलमूर्ते ! कमलनयन ! आप मेरी इच्छा पूर्ण कीजिये, क्योंकि महापुरुषोंके पास दीनजनोंका आना निष्फल नहीं होता ॥ ९–१४ ॥

विदुरजी ! दिति कामदेवके वेगसे अत्यन्त बेचैन और बेबस हो रही थी। उसने इसी प्रकार बहुत-सी बातें बनाते हुए कश्यपजीसे प्रार्थना की तो उन्होंने उसे सुमधुर वाणीसे समझाते हुए कहा,—'भीरु ! तुम्हारी इच्छाके अनुसार मैं तुम्हारा प्रिय अवश्य करूँगा। भला, जिसके द्वारा अर्थ, धर्म और काम—तीनोंकी सिद्धि होती है, उस अपनी पत्नीकी कामना कौन पूर्ण नहीं करेगा ? जिस प्रकार जहाजपर चढ़कर मनुष्य महासागरको पार कर लेता है, उसी प्रकार गृहस्थाश्रमी दूसरे

था और उनके विशाल शरीरोंसे सारी दिशाएँ आच्छादित हो जाती थीं। उनकी भुजाओंमें सोनेके बाजूबंद चमचमा रहे थे। पृथ्वीपर जो वे एक-एक कदम रखते थे, उससे भूकम्प होने लगता था और जब वे खड़े होते थे, तब उनकी जगमगाती हुई चमकीली करधनीसे सुशोभित कमर अपने प्रकाशसे सूर्यको भी मात करती थी। वे दोनों यमज थे। प्रजापति कश्यपजीने उनका नामकरण किया। उनमेंसे जो उनके वीर्यसे दितिके गर्भमें पहले स्थापित हुआ था, उसका नाम हिरण्यकशिपु रक्खा और जो दितिके उदरसे पहले निकला, वह हिरण्याक्षके नामसे विख्यात हुआ॥१६-१८॥

हिरण्यकशिपु ब्रह्माजीके वरसे मृत्युभयसे मुक्त हो जानेके कारण बड़ा उद्धत हो गया था। उसने अपनी भुजाओंके बलसे लोकपालोंके सहित तीनों लोकोंको अपने वशमें कर लिया। वह अपने छोटे भाई हिरण्याक्षको बहुत चाहता था और वह भी सदा अपने बड़े भाईका प्रियकार्य करता रहता था। एक दिन वह हाथमें गदा लिये युद्धका अवसर ढूँढ़ता हुआ स्वर्गलोकमें जा पहुँचा। उसका वेग बड़ा असह्य था। उसके पैरोंमें सोनेके नूपुरोंकी झनकार हो रही थी, गलेमें विजयसूचक माला धारण की हुई थी और कंधेपर गदा रक्खी हुई थी। उसके मनोबल, शारीरिक बल तथा ब्रह्माजीके वरने उसे मतवाला कर रक्खा था, इसलिये वह सर्वथा निरङ्कुश और निर्भय हो रहा था। उसे देखकर देवतालोग डरके मारे वैसे ही जहाँ-तहाँ छिप गये, जैसे गरुड़के डरसे साँप छिप जाते हैं। जब दैत्यराज हिरण्याक्षने देखा कि मेरे तेजके सामने बड़े-बड़े गर्वीले इन्द्रादि देवता भी छिप गये हैं, तो उन्हें अपने सामने न देखकर वह बार-बार भयङ्कर गर्जना करने लगा। फिर वह महाबली दैत्य वहाँसे लौटकर जलक्रीडा करनेके लिये मतवाले हाथीके समान गहरे समुद्रमें घुस गया, जिसमें लहरोंकी बड़ी भयङ्कर गर्जना हो रही थी। ज्यों ही उसने समुद्रमें पैर रक्खा कि डरके मारे वरुणके सैनिक जलचर जीवोंके तो होश उड़ गये और किसी प्रकारकी छेड़छाड़ न करनेपर भी वे उसकी धाकसे ही घबड़ाकर बहुत दूर भाग गये। महाबली हिरण्याक्ष अनेक वर्षोंतक समुद्रमें ही घूमता और सामने किसी प्रतिपक्षीको न पाकर बार-बार वायुवेगसे उठी हुई उसकी प्रचण्ड तरङ्गोंपर ही अपनी लोहमयी गदाको आजमाता रहा। इस प्रकार घूमते-घूमते वह वरुणकी राजधानी विभावरीपुरीमें जा पहुँचा। वहाँ पाताल लोकके स्वामी जलचरोंमें श्रेष्ठ वरुणजीको देखकर उसने उनका मखौल उड़ाते हुए नीच मनुष्यकी भाँति प्रणाम किया और कुछ मुसकराते हुए व्यङ्गसे कहा—'महाराज! मुझे युद्धकी भिक्षा



दीजिये। प्रभो! आप तो लोकपालोंके अधीश्वर और बड़े कीर्तिशाली हैं। जो लोग अपनेको बड़ा वीर समझते थे, उनके वीर्यमदको भी आप चूर्ण कर चुके हैं और पहले एक बार आपने संसारके समस्त दैत्य-दानवोंको जीतकर राजसूय-यज्ञ भी किया था'॥१९-२८॥

उस मदोन्मत्त शत्रुके इस प्रकार बहुत उपहास करनेसे भगवान् वरुणको क्रोध तो बहुत आया, किन्तु अपने बुद्धिबलसे वे उसे पी गये और बदलेमें उससे कहने लगे, 'भाई! हमें तो अब युद्धादिका कोई चाव नहीं रह गया है और भगवान् पुराणपुरुषके सिवा हमें और कोई ऐसा दीखता भी नहीं, जो तुम-जैसे रणकुशल वीरको युद्धमें संतुष्ट कर सके। दैत्यराज! तुम उन्हींके पास जाओ, वे ही तुम्हारी कामना पूरी करेंगे। तुम जैसे वीर उन्हींका गुणगान किया करते हैं, क्योंकि वे ही तुम लोगोंके रणकुतूहलको शान्त करनेमें समर्थ हैं। वे बड़े वीर हैं। उनके पास पहुँचते ही तुम्हारी सारी शेखी पूरी हो जायगी और तुम कुत्तोंसे घिरकर वीरशय्यापर शयन करोगे। वे तुम जैसे दुष्टोंको मारने और सत्पुरुषोंपर कृपा करनेके लिये अनेक प्रकारके रूप धारण किया करते हैं'॥२९-३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

धूममार्ग और अर्चिरादि मार्गसे जानेवालोंकी गतिका और भक्तिमार्गकी उत्कृष्टताका वर्णन

श्रीकपिलदेवजी कहते हैं—माताजी ! जो पुरुष घरमें रहकर सकामभावसे गृहस्थीके धर्मोंका पालन करता है और उनके फलस्वरूप अर्थ एवं कामका उपभोग करके फिर उन्हींका अनुष्ठान करता रहता है, वह तरह-तरहकी कामनाओंसे मोहित रहनेके कारण भगवद्धर्मोंसे विमुख रहता है। बस, यज्ञोंद्वारा श्रद्धापूर्वक देवता और पितरोंकी ही आराधना करता रहता है । उसकी बुद्धि उसी प्रकारकी श्रद्धासे युक्त रहती है, देवता और पितर ही उसके उपास्य रहते हैं; अतः वह चन्द्रलोकमें जाकर उनके साथ सोमपान करता है और फिर पुण्य क्षीण होनेपर इसी लोकमें लौट आता है । जिस समय शेषशायी भगवान् शेषशय्यापर शयन करते हैं, उस समय गृहस्थाश्रमियोंको प्राप्त होनेवाले ये लोक भी लीन हो जाते हैं ॥ १–४ ॥

इनके विपरीत जो विवेकी पुरुष अपने धर्मोंका काम अथवा भोगके लिये उपयोग नहीं करते बल्कि भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही उनका पालन करते हैं—वे अनासक्त, प्रशान्त, शुद्धचित्त, निवृत्तिपरायण, ममतारहित और अहङ्कार-शून्य पुरुष स्वधर्मपालनरूप सत्त्वगुणके द्वारा सर्वथा शुद्धचित्त हो जाते हैं और अन्तमें सूर्यमार्ग (अर्चिमार्ग या देवयान) के द्वारा सर्वव्यापी पूर्णपुरुष श्रीहरिको ही प्राप्त होते हैं—जो कार्य-कारणरूप जगत्‌के नियन्ता, संसारके उपादान-कारण और उसकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करनेवाले हैं। जो लोग परमात्मदृष्टिसे हिरण्यगर्भकी उपासना करते हैं, वे दो परार्द्धमें होनेवाले ब्रह्माजीके प्रलयपर्यन्त उनके सत्यलोकमें ही रहते हैं। जिस समय देवतादिसे श्रेष्ठ ब्रह्माजी अपने द्विपरार्द्धकालके अधिकारको भोगकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, इन्द्रिय, उनके विषय (शब्दादि) और अहङ्कारादिके सहित सम्पूर्ण विश्वका संहार करनेकी इच्छासे त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके साथ एकरूप होकर निर्विशेष परमात्मामें लीन हो जाते हैं, उस समय प्राण और मनको जीते हुए वे विरक्त योगिगण भी देह त्यागकर उन भगवान् ब्रह्माजीमें ही प्रवेश करते हैं और फिर उन्हींके साथ परमानन्दस्वरूप पुराणपुरुष परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। इससे पहले वे भगवान्‌में लीन नहीं हुए, क्योंकि अबतक उनमें अहङ्कार शेष था। इसलिये माताजी ! अब तुम भी अत्यन्त भक्तिभावसे उन श्रीहरिकी ही चरण-शरणमें जाओ; वे समस्त प्राणियोंके हृदय-कमलमें बसे हुए हैं और तुमने भी मुझसे उनका प्रभाव सुन ही लिया है। वेदगर्भ ब्रह्माजी भी—जो समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके आदिकारण हैं—मरीचि आदि ऋषियों, योगेश्वरों, सनकादिकों तथा योगप्रवर्तक सिद्धेश्वरोंके सहित निष्काम कर्मके द्वारा आदिपुरुष पुरुषश्रेष्ठ सगुण ब्रह्मको प्राप्त होकर भी, भेददृष्टि और कर्तृत्वाभिमानके कारण भगवदिच्छासे, जब सर्गकाल उपस्थित होता है तब, कालरूप ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होनेपर फिर पूर्ववत् प्रकट हो जाते हैं। इसी प्रकार पूर्वोक्त ऋषिगण भी अपने-अपने कर्मानुसार ब्रह्मलोकके ऐश्वर्यको भोगकर भगवदिच्छासे गुणोंमें क्षोभ होनेपर पुनः इस लोकमें आ जाते हैं ॥ ५–१५ ॥

जिनकी इस लोकमें आसक्ति है और कर्मोंमें श्रद्धा है, वे वेदमें कहे हुए काम्य और नित्य कर्मोंका साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान करनेमें ही लगे रहते हैं। उनकी बुद्धि रजोगुणकी अधिकताके कारण कुण्ठित रहती है, हृदयमें कामनाओंका जाल फैला रहता है और इन्द्रियाँ उनके वशमें नहीं होतीं; बस, अपने घरोंमें ही आसक्त होकर वे नित्यप्रति पितरोंकी पूजामें लगे रहते हैं। ये लोग अर्थ, धर्म और कामके ही परायण होते हैं; इसलिये जिनके महान् पराक्रम अत्यन्त कीर्तनीय हैं, उन भवभयहारी श्रीमधुसूदन भगवान्‌की कथा-वार्ताओंसे तो ये विमुख ही रहते हैं। हाय ! विष्ठा खानेवाले कूकर-सूकर आदि जीव जिस प्रकार अमृततुल्य उत्तमोत्तम पदार्थोंका परित्याग कर विष्ठापर ही मन चलाते हैं, उसी प्रकार जो मनुष्य भगवत्कथामृतको छोड़कर निन्दित विषय-वार्ताओंको सुनते हैं—वे तो अवश्य ही विधाताके मारे हुए हैं, उनका बड़ा ही मन्द भाग्य है। गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टितक सब संस्कारोंको विधिपूर्वक करनेवाले ये सकाम कर्मी सूर्यसे दक्षिण ओरके पितृयान या धूममार्गसे पित्रीश्वर अर्यमाके लोकमें जाते हैं और फिर अपनी ही सन्ततिके वंशमें उत्पन्न होते हैं। माताजी ! पितृलोकके भोग भोग लेनेपर जब उनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं, तो देवतालोग उन्हें वहाँके ऐश्वर्यसे च्युत कर देते हैं और फिर उन्हें विवश होकर तुरंत ही इस लोकमें लौट आना पड़ता है । इसलिये माताजी ! जिनके चरण-कमल सदा भजनेयोग्य हैं, उन

लग गयी, दोनोंहीके अङ्ग गदाओंकी चोटोंसे घायल हो गये थे, अपने अङ्गोंके घावोंसे बहनेवाले रुधिरकी गन्धसे दोनों हीका क्रोध बढ़ रहा था, और वे दोनों ही तरह-तरहके पैतरे बदल रहे थे। इस प्रकार गौके लिये आपसमें लड़नेवाले दो साँड़ोंके समान उन दोनोंमें एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। विदुरजी! जब इस प्रकार हिरण्याक्ष और मायासे वराहरूप धारण करनेवाले भगवान् यज्ञमूर्ति पृथ्वीके लिये द्वेष बाँधकर युद्ध करने लगे, तो उसे देखनेके लिये वहाँ ऋषियोंके सहित ब्रह्माजी आये। वे हजारों ऋषियोंसे घिरे हुए थे। जब उन्होंने देखा कि वह दैत्य बड़ा शूरवीर है, उसमें भयका नाम भी नहीं है, वह मुकाबला करनेमें भी समर्थ है और उसके पराक्रमको चूर्ण करना बड़ा कठिन काम है, तो वे भगवान् आदिसूकरसे इस प्रकार कहने लगे ॥ १३–२१ ॥

श्रीब्रह्माजी बोले—देव! मुझसे वर पाकर यह दुष्ट दैत्य बड़ा प्रबल हो गया है। इस समय यह आपके चरणोंकी शरणमें रहनेवाले देवताओं, ब्राह्मणों, गौओं तथा अन्य निरपराध जीवोंको बहुत ही हानि पहुँचानेवाला, दुःखदायी और भयप्रद हो रहा है। इसकी जोड़का और कोई योद्धा नहीं है, इसलिये यह महाकण्टक अपना मुकाबला करनेवाले वीरकी खोजमें समस्त लोकोंमें घूम रहा है। यह दुष्ट बड़ा ही छलिया, घमंडी और निरङ्कुश है। बच्चा जिस प्रकार क्रुद्ध हुए साँपसे खेलता है, वैसे ही आप इससे खिलवाड़ न करें। देव! अच्युत! जबतक यह दारुण दैत्य अपनी बलवृद्धिकी वेला (सायङ्काल) को पाकर प्रबल न हो, उससे पहले-पहले ही आप अपनी योगमायाको स्वीकार करके इस पापीको मार डालिये। प्रभो! देखिये, लोकोंका संहार करनेवाली सन्ध्याकी भयङ्कर वेला आना ही चाहती है। सर्वात्मन्! आप उससे पहले ही इस असुरको मारकर देवताओंको विजय प्रदान कीजिये। इस समय अभिजित् नामक मङ्गलमय मुहूर्तका भी योग आ गया है। अतः अपने सुहृद् हमलोगोंके कल्याणके लिये शीघ्र ही इस दुर्जय दैत्यसे निपट लीजिये। प्रभो! इसकी मृत्यु आपहीके हाथ बदी है। हम लोगोंके बड़े भाग्य हैं कि यह स्वयं ही अपने कालरूप आपके पास आ पहुँचा है। अब आप बलपूर्वक इसे मारकर लोकोंको शान्ति प्रदान कीजिये ॥ २२–२८ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

हिरण्याक्ष-वध

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! ब्रह्माजीके ये कपट रहित अमृतमय वचन सुनकर भगवान्‌ने उनके भोलेपनपर मुसकराकर अपने प्रेमपूर्ण कटाक्षके द्वारा उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर उन्होंने झपटकर अपने सामने निर्भय विचरते हुए शत्रुकी ठुड्डीपर गदा मारी। किन्तु हिरण्याक्षकी गदासे टकराकर वह गदा भगवान्‌के हाथसे छूट गयी और चक्कर काटती हुई जमीनपर गिर पड़ी। यह बड़ी अद्भुत-सी घटना हुई। उस समय शत्रुपर वार करनेका अच्छा अवसर पाकर भी हिरण्याक्षने उन्हें निरस्त्र देखकर युद्धधर्मका पालन करते हुए उनपर आक्रमण नहीं किया। तब भगवान्‌का क्रोध बहुत बढ़ गया। भगवान्‌की गदा गिरी देखकर वहाँ सब लोगोंमें बड़ा हाहाकार मच गया। तब प्रभुने उसकी धर्मबुद्धिकी प्रशंसा की और अपने सुदर्शन चक्रका स्मरण किया ॥ १–५ ॥

चक्र तुरंत ही उपस्थित होकर भगवान्‌के हाथमें घूमने लगा। किन्तु वे अपने प्रमुख पार्षद दैत्याधम हिरण्याक्षके साथ विशेषरूपसे क्रीड़ा करने लगे। उस समय उनके प्रभावको न जाननेवाले देवताओंके ये विचित्र वचन सुनायी देने लगे—'प्रभो! आपकी जय हो, इसे और न खेलाइये, झटपट मार डालिये।' जब हिरण्याक्षने देखा कि कमलदललोचन श्रीहरि उसके सामने चक्र लिये खड़े हैं, तो उसकी सारी इन्द्रियाँ क्रोधसे तिलमिला उठीं और वह लंबी साँसें लेकर अपने दाँतोंसे होठ चबाने लगा। उस समय वह तीखी दाढ़ोंवाला दैत्य, अपने नेत्रोंसे मानो भगवान्‌को भस्म कर देगा—इस प्रकार उनकी ओर घूरने लगा, और उसने उछलकर 'ले, अब तू नहीं बच सकता' इस प्रकार ललकारते हुए श्रीहरिपर गदासे प्रहार किया। किन्तु साधुस्वभाव विदुरजी! यज्ञमूर्ति श्रीवराहभगवान्‌ने शत्रुके देखते-देखते लीलासे ही अपने बायें पैरसे उसकी वह वायुके समान वेगवाली गदा पृथ्वीपर गिरा दी और उससे कहा, 'अरे दैत्य! तू मुझे जीतना चाहता है, इसलिये अपना शस्त्र उठा ले और एक बार फिर वार कर।' भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर उसने फिर गदा चलायी और बड़ी भीषण गर्जना करने लगा। गदाको अपनी ओर आते देखकर भगवान्‌ने, जहाँ खड़े थे

करने लगे कि 'अहो! ऐसी अलभ्य मृत्यु किसको मिल सकती है! अपनी मिथ्या उपाधिसे छूटनेके लिये जिनका योगिजन समाधियोगके द्वारा एकान्तमें ध्यान करते हैं, उन्हींके चरण प्रहारसे उनका मुख देखते देखते इस दैत्यराजने अपना शरीर त्यागा। ये हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु भगवान्‌के ही पार्षद हैं। इन्हें शापवश यह अधोगति प्राप्त हुई है। अब कुछ जन्मोंमें ये फिर अपने स्थानपर पहुँच जायँगे' ॥ २६–२९ ॥

देवतालोग कहने लगे–प्रभो! आपको नमस्कार है। आप सम्पूर्ण यज्ञोंका विस्तार करनेवाले हैं तथा संसार की स्थितिके लिये शुद्धसत्त्वमय मङ्गलविग्रह प्रकट करते हैं। बड़े आनन्दकी बात है कि संसारको कष्ट देनेवाला यह दुष्ट दैत्य मारा गया। अब आपके चरणोंकी भक्तिके प्रभावसे हमें भी सुख शान्ति मिल गयी ॥ ३० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं–विदुरजी! इस प्रकार महा पराक्रमी हिरण्याक्षका वध करके भगवान् आदिवराह अपने अखण्ड आनन्दमय धामको पधार गये। उस समय ब्रह्मादि देवता उनकी स्तुति कर रहे थे। भगवान् अवतार लेकर जैसी लीलाएँ करते हैं और जिस प्रकार उन्होंने भीषण संग्राममें खेल ही-खेलमें महापराक्रमी हिरण्याक्षका वध किया, मित्र विदुरजी! वह सब चरित जैसा मैंने गुरुमुखसे सुना था, तुम्हें सुना दिया ॥ ३१ ३२ ॥

सूतजी बोले–शौनकजी! श्रीमैत्रेयजीके मुखसे भगवान् की यह कथा सुनकर परम भागवत विदुरजीको बड़ा आनन्द हुआ। यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, जब अन्य पवित्र कीर्ति और यशस्वी महापुरुषोंका चरित्र सुननेसे ही बड़ा आनन्द होता है, तब श्रीवत्सधारी भगवान्‌की ललित ललाम लीलाओंकी तो बात ही क्या है। जिस समय ग्राहके पकड़ने पर गजराज प्रभुके चरणोंका ध्यान करने लगे और उनकी हथिनियाँ दु खसे चिग्घाड़ने लगीं, उस समय जिन्होंने उन्हें तत्काल दु खसे छुड़ाया और जो सब ओरसे निराश होकर अपनी शरणमें आये हुए सरलहृदय भक्तोंसे सहजही में प्रसन्न हो जाते हैं किन्तु दुष्ट पुरुषोंके लिये अत्यन्त दुराराध्य हैं–उनपर जल्दी प्रसन्न नहीं होते, उन प्रभुके उपकारोंको जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष है जो उनका सेवन न करेगा? शौनकादि ऋषियो! पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये वराहरूप धारण करनेवाले श्रीहरिकी इस हिरण्याक्ष-वध नामक अद्भुत लीलाको जो पुरुष सुनता, गाता अथवा अनुमोदन करता है–वह ब्रह्महत्या-जैसे घोर पापसे भी सहजहीमें छूट जाता है। यह चरित्र अत्यन्त पुण्यप्रद, परम पवित्र, धन और यशकी प्राप्ति करानेवाला, आयुवर्द्धक और कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा युद्धमें प्राण और इन्द्रियोंकी शक्ति बढानेवाला है। जो लोग इसे सुनते हैं, उन्हें अन्तमें श्रीभगवान्‌का आश्रय प्राप्त होता है ॥ ३३–३८ ॥

बीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजीकी रची हुई अनेक प्रकारकी सृष्टिका वर्णन

श्रीशौनकजी बोले–सूतजी! पृथ्वीरूप आधार पाकर स्वायम्भुव मनुने आगे होनेवाली सन्ततिको उत्पन्न करनेके लिये किन-किन उपायोंका अवलम्बन किया? विदुरजी बड़े ही भगवद्भक्त और भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य सुहृद् थे। इसीलिये उन्होंने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्रको उनके पुत्र दुर्योधनके सहित, भगवान् श्रीकृष्णका अनादर करनेके कारण अपराधी समझकर त्याग दिया था। वे महर्षि द्वैपायनके पुत्र थे और महिमामें उनसे किसी प्रकार कम नहीं थे, तथा सब प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके आश्रित और कृष्णभक्तोंके अनुगामी थे। तीर्थसेवनसे उनका अन्त करण और भी शुद्ध हो गया था। उन्होंने कुशावर्त्त क्षेत्र (हरिद्वार) में बैठे हुए तत्त्वज्ञानियोंमें श्रेष्ठ मैत्रेयजीके पास जाकर और क्या पूछा? सूतजी! उन दोनोंमें वार्तालाप होनेपर श्रीहरिके चरणोंसे सम्बन्ध रखनेवाली बड़ी पवित्र कथाएँ हुई होंगी, जो उन्हीं चरणोंसे निकले हुए गङ्गाजलके समान सम्पूर्ण पापोंका नाश करनेवाली होंगी। सूतजी! आपका मङ्गल हो, आप हमें भगवान्‌की वे पवित्र कथाएँ सुनाइये। प्रभुके उदार चरित्र तो कीर्तन करने योग्य होते हैं। भला, ऐसा कौन रसिक होगा जो श्रीहरिके लीलामृतका पान करते-करते तृप्त हो जाय? ॥ १–६ ॥

नैमिषारण्यवासी मुनियोंके इस प्रकार पूछनेपर उग्रश्रवा सूतजीने भगवान्‌में चित्त लगाकर उनसे कहा 'सुनिये' ॥ ७ ॥

सूतजीने कहा–मुनिगण! अपनी मायासे वराहरूप धारण करनेवाले श्रीहरिकी रसातलसे पृथ्वीको निकालने और खेलहीमें तिरस्कारपूर्वक हिरण्याक्षको मार डालनेकी लीला

नासिकासे सुशोभित मुखारविन्द देखकर 'यह भगवान्‌का चुम्बन किया हुआ है' ऐसा जानकर उसे बड़ा सौभाग्यशाली समझती हैं। जो लोग भगवान्‌की पापापहारिणी लीला-कथाओंको छोड़कर बुद्धिको नष्ट करनेवाली अर्थ-काम-सम्बन्धिनी अन्य निन्दित कथाएँ सुनते हैं, वे उस वैकुण्ठ-लोकमें नहीं जा सकते। हाय! जब वे अभागे लोग इन सारहीन बातोंको सुनते हैं, तो ये उनके पुण्योंको नष्टकर उन्हें आश्रयहीन घोर नरकोंमें डाल देती हैं। अहा! इस मनुष्ययोनिकी बड़ी महिमा है, हम देवतालोग भी इसकी प्रशंसा करते हैं। इसीमें तत्त्वज्ञान और धर्मकी भी प्राप्ति हो सकती है। इसे पाकर भी जो लोग भगवान्‌की आराधना नहीं करते, वे वास्तवमें उनकी सर्वत्र फैली हुई मायासे ही मोहित हैं। देवाधिदेव श्रीहरिका निरन्तर चिन्तन करते रहनेके कारण जिनसे यमराज दूर रहते हैं, जिस समय आपसमें प्रभुके सुयशकी चर्चा चलती है उस समय अनुरागवश जिनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगती है तथा शरीरमें रोमाञ्च हो जाता है और जिनके-से शील-स्वभावकी हमलोग भी इच्छा करते हैं—वे परमभागवत ही हमारे लोकोंसे ऊपर उस वैकुण्ठ-धाममें जाते हैं। जिस समय सनकादि मुनि विश्वगुरु श्रीहरिके निवासस्थान, सम्पूर्ण लोकोंके वन्दनीय और देवताओंके विचित्र विमानोंसे विभूषित उस परम दिव्य और अद्भुत वैकुण्ठधाममें अपने योगबलसे पहुँचे, तो उन्हें बड़ा ही आनन्द हुआ॥ २१—२६॥

उस दिव्यधाममें जाते हुए उन्हें बहुत-से विचित्र दृश्य मिले, किन्तु भगवान्‌के दर्शनोंकी उत्कट लालसा होनेके कारण उन्होंने किसीकी ओर ध्यान नहीं दिया। इस प्रकार छः ड्योढ़ियाँ पार करके जब वे सातवींपर पहुँचे, तब वहाँ उन्हें हाथमें गदा लिये दो समान आयुवाले देवश्रेष्ठ दिखलायी दिये—जो बाजूबंद, कुण्डल और किरीट आदि अनेकों अमूल्य आभूषणोंसे अलङ्कृत थे। उनकी चार श्यामल भुजाओंके बीचमें मतवाले मधुकरोंसे गुञ्जायमान वनमाला सुशोभित थी तथा बाँकी भौंहें, फड़कते हुए नासिकारन्ध्र और अरुण नयनोंके कारण उनके चेहरेपर कुछ क्षोभके-से चिह्न दिखायी दे रहे थे। उनके इस प्रकार देखते रहनेपर भी वे मुनिगण उनसे बिना कुछ पूछ-ताछ किये, जैसे सुवर्ण और वज्रमय किवाड़ोंसे युक्त पहली छः ड्योढ़ी लाँघकर आये थे उसी प्रकार उनके द्वारमें भी घुस गये। उनकी दृष्टि तो सर्वत्र समान थी और वे निःशङ्क होकर सर्वत्र बिना किसी रोक-टोकके विचरते थे। वे चारों कुमार पूर्ण तत्त्वज्ञ थे तथा आयुमें सबसे बड़े होनेपर भी देखनेमें पाँच वर्षके बालकोंके समान जान पड़ते थे और दिगम्बर-वृत्तिसे (नंग-धड़ंग) रहते थे। उन्हें इस प्रकार निःसङ्कोचरूपसे भीतर जाते देख उन द्वारपालोंने अवज्ञापूर्वक हँसते हुए उन्हें बेंत अड़ाकर रोक दिया। यद्यपि वे ऐसे दुर्व्यवहारके योग्य नहीं थे, किन्तु भगवान्‌से विपरीत स्वभाव होनेके कारण उन द्वारपालोंको यह कुछ न सूझा। कुमारगण सभीके परम पूजनीय थे। जब उन द्वारपालोंने वैकुण्ठवासी देवताओंके सामने उन्हें इस प्रकार रोका, तब अपने प्रियतम प्रभुके दर्शनोंमें विघ्न पड़नेके कारण उनके नेत्र सहसा क्रोधसे लाल हो उठे और वे इस प्रकार कहने लगे॥ २७—३१॥

मुनिगण बोले—अरे द्वारपालो! जो लोग भगवान्‌की महती सेवाके प्रभावसे इस लोकको प्राप्त होकर यहाँ निवास करते हैं, वे तो भगवान्‌के समान ही समदर्शी होते हैं। तुम दोनों भी उन्हींमेंसे हो, किन्तु तुम्हारे स्वभावमें यह विषमता क्यों है? भगवान् तो परम शान्तस्वभाव हैं, उनका किसीसे विरोध भी नहीं है; फिर यहाँ ऐसा कौन है, जिसपर शङ्का की जा सके? तुम स्वयं कपटी हो, इसीसे अपने ही समान दूसरोंपर शङ्का करते हो। भगवान्‌के उदरमें यह सारा ब्रह्माण्ड स्थित है; इसलिये यहाँ रहनेवाले ज्ञानिजन महाकाशसे घटाकाशकी भाँति सर्वात्मा श्रीहरिसे अपना कोई भेद नहीं देखते। तुम तो देवरूपधारी हो; फिर भी तुम्हें ऐसा क्या दिखायी देता है, जिससे तुमने भगवान्‌के साथ कुछ भेदभावके कारण होनेवाले भयकी कल्पना कर ली है? तुम हो तो इन भगवान् वैकुण्ठनाथके पार्षद, किन्तु तुम्हारी बुद्धि बहुत मन्द है। अतएव तुम्हारा कल्याण करनेके लिये हम तुम्हारे अपराधके योग्य दण्डका विचार करते हैं। तुम अपनी भेदबुद्धिके दोषसे इस वैकुण्ठलोकसे निकलकर उन पापमय योनियोंमें जाओ, जहाँ काम, क्रोध, लोभ—प्राणियोंके ये तीन शत्रु निवास करते हैं॥ ३२—३४॥

सनकादिके ये कठोर वचन सुनकर और ब्राह्मणोंके शापको किसी भी प्रकारके शस्त्रसमूहसे निवारण होनेयोग्य न जानकर श्रीहरिके वे दोनों पार्षद अत्यन्त दीनभावसे उनके चरण पकड़कर पृथ्वीपर लोट गये; वे जानते थे कि उनके स्वामी श्रीहरि भी ब्राह्मणोंसे बहुत डरते हैं। फिर उन्होंने अत्यन्त आतुर होकर कहा,—'भगवन्! हम अवश्य अपराधी हैं; अतः आपने हमें जो दण्ड दिया है, वह उचित ही और वह हमें मिलना ही चाहिये। हमने भगवान्‌का

देख रही थी। वह नीली नीली अलकावलीसे सुशोभित सुकुमारी मानो लज्जाके मारे अपने अञ्चलमें ही सिमिटी जाती थी। विदुरजी! उस सुन्दरीको देखकर सब-के सब असुर मोहित हो गये और आपसमें कहने लगे, 'अहो! इसका कैसा विचित्र रूप, कैसा अलौकिक धैर्य और कैसी नयी अवस्था है। देखो, हम कामपीड़ितोंके बीचमें यह कैसी बेपरवाह-सी विचर रही है।' ॥ २९–३२ ॥

इस प्रकार उन कुबुद्धि दैत्योंने स्त्रीरूपिणी सन्ध्याके विषयमें तरह तरहके तर्क वितर्क कर फिर उसका बहुत आदर करते हुए प्रेमपूर्वक पूछा—'सुन्दरि! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो? भामिनि! यहाँ तुम्हारे आनेका क्या प्रयोजन है? तुम अपने अनूप रूपका यह बेमोल सौदा दिखाकर हम अभागोंको क्यों तरसा रही हो? अबले! तुम कोई भी क्यों न हो, हमें तुम्हारा दर्शन हुआ—यह बड़े सौभाग्यकी बात है। तुम अपनी गेंद उछाल उछालकर तो हम दर्शकोंके मनको मथे डालती हो। सुन्दरि! जब तुम उछलती हुई गेंदपर अपनी हथेलीकी थपकी मारती हो तो तुम्हारा चरण कमल एक जगह नहीं ठहरता, तुम्हारा कटि प्रदेश स्थूल स्तनोंके भारी भारसे थक-सा जाता है और तुम्हारी निर्मल दृष्टिसे भी थकावट झलकने लगती है। अहो! तुम्हारा केशपाश कैसा सुन्दर है!' इस प्रकार स्त्रीरूपसे प्रकट हुई उस सायङ्कालीन सन्ध्याने उन्हें अत्यन्त कामासक्त कर दिया और उन मूढोंने उसे कोई रमणीरत्न समझकर ग्रहण कर लिया ॥ ३३–३७ ॥

तदनन्तर ब्रह्माजीने गम्भीर भावसे हँसकर अपनी कान्तिमयी मूर्तिसे, जो अपने सौन्दर्यका मानो आप ही आस्वादन करती थी, गन्धर्व और अप्सराओंको उत्पन्न किया। फिर उन्होंने ज्योत्स्ना (चन्द्रिका) रूप अपने उस कान्तिमय प्रिय शरीरको त्याग दिया। उसीको विश्वावसु आदि गन्धर्वोंने ग्रहण किया ॥ ३८ ३९ ॥

इसके पश्चात् भगवान् ब्रह्माने अपनी तन्द्रासे भूत पिशाच उत्पन्न किये। उन्हें दिगम्बर (वस्त्रहीन) और बाल बिखेरे देख उन्होंने आँखें मूँद लीं। ब्रह्माजीके त्यागे हुए उस जँभाईरूप शरीरको भूत पिशाचोंने ग्रहण किया। इसीको निद्रा भी कहते हैं, जिससे जीवोंकी इन्द्रियोंमें शिथिलता आती देखी जाती है। यदि कोई मनुष्य जूठे मुँह सो जाता है, तो उसपर भूत पिशाचादि आक्रमण करते हैं, उसीको उन्माद कहते हैं ॥ ४० ४१ ॥

फिर भगवान् ब्रह्माने भावना की कि मैं तेजोमय हूँ और अपने अदृश्य रूपसे पितरोंको उत्पन्न किया। पितरोंने अपनी उत्पत्तिके स्थान उस अदृश्य शरीरको ग्रहण कर लिया। इसीको लक्ष्यमें रखकर पण्डितजन श्राद्धादिके द्वारा पितर और साध्यगणको कव्य (पिण्डादि) अर्पण करते हैं। अर्थात् पितृगण इस अदृश्य शरीरके द्वारा ही श्राद्धादिमें अपना भाग लेते हैं ॥ ४२ ४३ ॥

अपनी तिरोधानशक्तिसे ब्रह्माजीने सिद्ध और विद्याधरोंकी सृष्टि की और उन्हें अपना वह अन्तर्धाननामक अद्भुत शरीर दिया। एक बार ब्रह्माजीने अपना प्रतिबिम्ब देखा। तब अपनेको बहुत सुन्दर मानकर उस प्रतिबिम्बसे किन्नर और किम्पुरुष उत्पन्न किये। उन्होंने ब्रह्माजीके त्याग देनेपर उनका वह प्रतिबिम्ब शरीर ग्रहण किया। इसीलिये ये सब उषाकालमें (सूर्योदयके समय) अपनी पत्नियोंके साथ मिलकर ब्रह्माजीके गुण-कर्मादिका गान किया करते हैं ॥ ४४–४६ ॥

एक बार ब्रह्माजी सृष्टिकी वृद्धि न होनेके कारण बहुत चिन्तित होकर हाथ पैर आदि अवयवोंको फैलाकर लेट गये और फिर क्रोधवश उस भोगमय शरीरको त्याग दिया। उससे जो बाल झड़कर गिरे, वे अहि हुए तथा उसके हाथ पाँव सिकोड़कर चलनेसे क्रूरस्वभाव सर्प और नाग हुए, जिनका शरीर फणरूपसे कंधेके पास बहुत फैला होता है ॥ ४७ ४८ ॥

एक बार ब्रह्माजीने अपनेको कृतकृत्य-सा अनुभव किया। उस समय उन्होंने अपने मनसे मनुओंकी सृष्टि की। ये सब प्रजाकी वृद्धि करनेवाले हैं। मनस्वी ब्रह्माजीने उनके लिये अपना पुरुषाकार शरीर त्याग दिया। मनुओंको देखकर उनसे पहले उत्पन्न हुए देवता गन्धर्वादि ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे। वे बोले, 'विश्वकर्ता ब्रह्माजी! आपकी यह (मनुओंकी) सृष्टि बड़ी ही सुन्दर है। इसमें अग्निहोत्र आदि सभी कर्म प्रतिष्ठित हैं। इसकी सहायतासे हम भी अपना अन्न (हविर्भाग) ग्रहण कर सकेंगे' ॥ ४९–५१ ॥

फिर आदिऋषि ब्रह्माजीने इन्द्रियसंयमपूर्वक तप, विद्या, योग और समाधिसे सम्पन्न हो अपनी प्रिय सन्तान ऋषिगणकी रचना की और उनमेंसे प्रत्येकको अपने समाधि, योग, ऐश्वर्य, तप, विद्या और वैराग्यमय शरीरका अंश दिया ॥ ५२ ५३ ॥

था, उसी समय श्रवणरन्ध्रोंद्वारा हमारी बुद्धिमें तो आप आ विराजे थे; किन्तु प्रत्यक्ष दर्शनका महान् सौभाग्य तो हमें आज ही प्राप्त हुआ है। भगवन्! हम आपको साक्षात् परमात्मतत्त्व ही जानते हैं। इस समय आप अपने विशुद्ध सत्त्वमय विग्रहसे अपने इन भक्तोंको आनन्दित कर रहे हैं। आपकी इस सगुण-साकार मूर्तिको राग और अहङ्कारसे मुक्त मुनिजन आपकी कृपादृष्टिसे प्राप्त हुए सुदृढ भक्तियोगके द्वारा अपने हृदयमें उपलब्ध करते हैं। प्रभो! आपका सुयश अत्यन्त कीर्तनीय और सांसारिक दुःखोंकी निवृत्ति करनेवाला है। आपके चरणोंकी शरणमें रहनेवाले जो महाभाग आपकी कथाओंके रसिक हैं, वे आपके आत्यन्तिक प्रसाद मोक्षपदको भी कुछ अधिक नहीं गिनते; फिर जिन्हें आपकी जरा-सी टेढ़ी भौंह ही भयभीत कर देती है, उन इन्द्रपद आदि अन्य भोगोंके विषयमें तो कहना ही क्या है? भगवन्! यदि हमारा चित्त भौंरेकी तरह आपके चरण-कमलोंमें ही रमण करता रहे, हमारी वाणी तुलसीके समान आपके चरण-सम्बन्धसे ही सुशोभित हो और हमारे कान आपकी सुयश-सुधासे परिपूर्ण रहें तो अपने पापोंके कारण भले ही हमारा जन्म नरकादि योनियोंमें हो जाय—इसकी हमें कोई चिन्ता नहीं है। विपुलकीर्ति प्रभो! आपने हमारे सामने जो यह मनोहर रूप प्रकट किया है, उससे हमारे नेत्रोंको बड़ा ही सुख मिला है; विषयासक्त अजितेन्द्रिय पुरुषोंको इसका दृष्टिगोचर होना अत्यन्त कठिन है। आप साक्षात् भगवान् हैं और इस प्रकार स्पष्टतया हमारे नेत्रोंके सामने प्रकट हुए हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं॥४६–५०॥

सोलहवाँ अध्याय

जय-विजयका वैकुण्ठसे पतन

श्रीब्रह्माजीने कहा—देवगण! जब योगनिष्ठ सनकादि मुनीश्वरोंने इस प्रकार स्तुति की, तब तो वैकुण्ठनिवास श्रीहरि उनकी प्रशंसा करते हुए इस प्रकार कहने लगे॥१॥

श्रीभगवान् बोले—मुनिगण! ये जय-विजय मेरे पार्षद हैं, इन्होंने मेरी कुछ भी परवा न करके आपका बहुत बड़ा अपराध किया है। आपलोग भी मेरे अनुगत भक्त हैं; अतः इस प्रकार मेरी ही अवज्ञा करनेके कारण आपने इन्हें जो दण्ड दिया है, वह मुझे भी अभिमत है। ब्राह्मण मेरे परम आराध्य हैं; मेरे अनुचरोंके द्वारा आप लोगोंका जो तिरस्कार हुआ है, उसे मैं अपना ही किया हुआ मानता हूँ। इसलिये मैं आपलोगोंसे प्रसन्नताकी भिक्षा माँगता हूँ, क्षमा-याचना करता हूँ। सेवकोंके अपराध करनेपर संसार उनके स्वामीका ही नाम लेता है। वह अपयश उसकी कीर्त्तिको इस प्रकार दूषित कर देता है, जैसे त्वचाको चर्मरोग। मेरी निर्मल सुयश-सुधामें गोता लगानेसे चाण्डालपर्यन्त सारा जगत् पवित्र हो जाता है, इसीलिये मैं 'विकुण्ठ' कहलाता हूँ। किन्तु यह पवित्र कीर्त्ति मुझे आप लोगोंसे ही प्राप्त हुई है। इसलिये जो कोई आपके विरुद्ध आचरण करेगा, वह मेरी भुजा ही क्यों न हो—मैं उसे तुरंत काट डालूँगा। आप लोगोंकी सेवा करनेसे ही मेरी चरण-रजको ऐसी पवित्रता प्राप्त हुई है कि वह सारे पापोंको तत्काल नष्ट कर देती है, और मुझे ऐसा सुन्दर स्वभाव मिला है कि मेरे उदासीन रहनेपर भी लक्ष्मीजी मुझे एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़तीं—यद्यपि इन्हींके लेशमात्र कृपाकटाक्षके लिये अन्य ब्रह्मादि देवता नाना प्रकारके नियमों एवं व्रतोंका पालन करते हैं। जो अपने सम्पूर्ण कर्मफल मुझे अर्पण कर सदा सन्तुष्ट रहते हैं, वे निष्काम ब्राह्मण ग्रास-ग्रासपर तृप्त होते हुए घीसे तर खीर आदि तरह-तरहके पकवानोंका भोजन करते हैं, तब उनके मुखसे मैं जैसा तृप्त होता हूँ वैसा यज्ञमें अग्निरूप मुखसे यजमानकी दी हुई आहुतियोंको ग्रहण करके नहीं होता। देखिये, योगमायाका अखण्ड और असीम ऐश्वर्य मेरे अधीन है तथा मेरी चरणोदकरूपिणी गङ्गाजी चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले भगवान् शङ्करके सहित समस्त लोकोंको पवित्र करती हैं। ऐसा परम पवित्र एवं परमेश्वर होकर भी मैं जिनकी पवित्र चरण-रजको अपने मुकुटपर धारण करता हूँ, उन ब्राह्मणोंके कर्मको कौन नहीं सहन करेगा? ब्राह्मण, दूध देनेवाली गौएँ और अनाथ प्राणी—ये मेरे ही शरीर हैं। पापोंके द्वारा विवेकदृष्टि नष्ट हो जानेके कारण जो लोग इन्हें मुझसे भिन्न समझते हैं, उन्हें मेरेद्वारा नियुक्त यमराजके गृध्र-जैसे दूत सर्पके समान क्रोधित होकर अपनी चोंचोंसे नोचते हैं। ब्राह्मण तिरस्कारपूर्वक कटुभाषण भी करे, तो भी जो उसमें मेरी भावना करके प्रसन्नचित्तसे तथा अमृतभरी मुसकानसे युक्त मुखमुद्रासे उसका आदर करते हैं तथा जैसे रूठे हुए पिताको पुत्र और आपलोगोंको मैं मनाता हूँ, उसी प्रकार जो प्रेमपूर्ण वचनोंसे प्रार्थना करते हुए उन्हें शान्त करते हैं, वे मुझे अपने वशमें कर लेते हैं। मेरे इन सेवकोंने मेरा अभिप्राय न समझकर ही आपलोगोंका

पालन करनेके लिये ही स्त्रीकी इच्छा करता हूँ ॥ १३–१६ ॥

किन्तु प्रभो! ऐसी दीन दशा तो उन्हींकी है, जो कालरूप आपसे भय मानते हैं। आपके भक्त ऐसा नहीं करते। वे तो विषयासक्त लोगों और उन्हींके मार्गका अनुसरण करनेवाले मुझ जैसे कर्मजड पशुओंको कुछ भी न गिन कर आपके चरणोंकी छत्रछायाका ही आश्रय लेते हैं तथा आपसमें आपके गुणगानरूप मादक सुधाका ही पान करके अपने क्षुधा पिपासादि देहधर्मोंको शान्त करते रहते हैं। प्रभो! यह कालचक्र बड़ा प्रबल है। साक्षात् ब्रह्म ही इसके घूमनेकी धुरी है, अधिक माससहित तेरह महीने अरे हैं, तीन सौ साठ दिन जोड़ हैं, छः ऋतुएँ नेमि (हाल) हैं, अनन्त क्षण पल आदि इसमें पत्राकार धाराएँ हैं तथा तीन चातुर्मास्य इसके आधारभूत नाभि हैं। यह अत्यन्त वेगवान् संवत्सररूप कालचक्र चराचर जगत्की आयुका छेदन करता हुआ घूमता रहता है, किन्तु आपके भक्तोंकी आयुका ह्रास नहीं कर सकता। भगवन्! जिस प्रकार मकड़ी स्वयं ही जालेको फैलाती, रक्षा करती और अन्तमें निगल जाती है—उसी प्रकार आप अकेले ही जगत्की रचना करनेके लिये अपनेसे अभिन्न अपनी योगमायाको स्वीकार कर उससे अभिव्यक्त हुई अपनी सत्त्वादि शक्तियोंद्वारा स्वयं ही इस जगत्की रचना, पालन और संहार करते हैं। प्रभो! आप हम भक्तोंको जो शब्दादि विषय सुख प्रदान करते हैं, वे मायिक होनेके कारण यद्यपि आपको इष्ट नहीं हैं, तथापि परिणाममें हमारा शुभ करनेके लिये वे हमें प्राप्त हों—जिससे हम देव, ऋषि और पितृ ऋणसे उऋण होकर मोक्षके अधिकारी बन सकें। इस समय आपने हमें अपनी तुलसीमालामण्डित, मायासे परिच्छिन्न-सी दिखायी देनेवाली सगुणमूर्तिसे दर्शन दिया है। इसलिये हमें भोग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त हों। नाथ! मैं आपके वन्दनीय चरण कमलोंकी बारंबार वन्दना करता हूँ। ये स्वरूपसे निष्क्रिय होनेपर भी मायाके द्वारा सारे संसारका व्यवहार चलानेवाले हैं तथा थोड़ी-सी उपासना करनेवालेपर भी समस्त कामनाओंकी वर्षा करते रहते हैं ॥ १७–२१ ॥

श्रीमैत्रेय मुनि बोले—भगवान्की भौंहें प्रणय-मुसकान भरी चितवनसे चञ्चल हो रही थीं, वे गरुडजीके कंधेपर विराजमान थे। जब कर्दमजीने इस प्रकार निष्कपटभावसे उनकी स्तुति की, तो वे उनसे अमृतमयी वाणीसे कहने लगे ॥ २२ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—जिसके लिये तुमने आत्म संयमादिके द्वारा मेरी आराधना की है, तुम्हारे हृदयके उस भावको जानकर मैंने पहलेहीसे उसकी व्यवस्था कर दी है। प्रजापते! मेरी आराधना तो किसी समय भी निष्फल नहीं होती, फिर जिनका चित्त निरन्तर एकान्तरूपसे मुझहीमें लगा रहता है, उन तुम-जैसे महात्माओंकी की हुई उपासनाका तो और भी अधिक फल होता है। प्रजापति ब्रह्माजीके पुत्र स्वायम्भुव मनु, जिनके सदाचारादि कल्याणमय गुण सर्वत्र विख्यात हैं, इस समय सार्वभौम सम्राट् हैं। वे ब्रह्मावर्तमें रहते हुए सात समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका शासन करते हैं। विप्रवर! वे परम धर्मज्ञ महाराज महारानी शतरूपाके सहित तुमसे मिलनेके लिये परसों यहाँ आवेंगे। उनकी एक रूप यौवन, शील और गुणोंसे सम्पन्न श्यामलोचना कन्या इस समय अपने अनुरूप पतिकी खोजमें है। तुम सर्वथा उसके योग्य हो, इसलिये वे तुम्हींको वह कन्या अर्पण करेंगे। ब्रह्मन्! गत अनेकों वर्षोंसे तुम्हारा चित्त जैसी भार्याके लिये समाहित रहा है, अब शीघ्र ही वह राजकन्या तुम्हारी वैसी ही पत्नी होकर यथेष्ट सेवा करेगी। वह तुम्हारा वीर्य अपने गर्भमें धारण कर उससे नौ कन्याएँ उत्पन्न करेगी और फिर तुम्हारी उन कन्याओंसे मरीचि आदि ऋषिगण पुत्र उत्पन्न करेंगे। तुम भी मेरी आज्ञाका अच्छी तरह पालन करनेसे शुद्धचित्त हो, फिर अपने सब कर्मोंका फल मुझे अर्पणकर मुझको ही प्राप्त होओगे। जीवोंपर दया करते हुए तुम आत्मज्ञान प्राप्त करोगे और फिर सबको अभयदान दे अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को मुझमें और मुझको अपनेमें स्थित देखोगे। महामुने! मैं भी अपने अंश-कलारूपसे तुम्हारे वीर्यद्वारा तुम्हारी पत्नी देवहूतिके गर्भमें अवतीर्ण होकर सांख्यशास्त्रकी रचना करूँगा ॥ २३–३२ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! कर्दमऋषिसे इस प्रकार सम्भाषण कर, इन्द्रियोंके अन्तर्मुख होनेपर प्रकट होनेवाले श्रीहरि सरस्वती नदीसे घिरे हुए बिन्दुसर तीर्थसे (जहाँ कर्दमऋषि तप कर रहे थे) अपने लोकको चले गये। भगवान्के सिद्धमार्ग (वैकुण्ठमार्ग) की सभी सिद्धेश्वर प्रशंसा करते हैं। वे कर्दमजीके देखते देखते अपने लोकको सिधार गये। उस समय गरुडजीके बृहत् एवं रथन्तर नामक पक्षोंसे जो सामकी आधारभूता ऋचाएँ निकल रही थीं, उन्हें वे सुनते जाते थे ॥ ३३ ३४ ॥

वीरवर विदुरजी! श्रीहरिके चले जानेपर भगवान् कर्दम उनके बताये हुए समयकी प्रतीक्षा करते हुए बिन्दु

मिटाना नहीं चाहता, क्योंकि ऐसा ही मुझे अभिमत भी है। एक बार जब मैं योगनिद्रामें स्थित हो गया था, तब तुमने द्वारमें प्रवेश करती हुई लक्ष्मीजीको रोका था। उस समय उन्होंने पहले ही तुम्हें यह शाप दे दिया था। अब दैत्ययोनिमें मेरे प्रति क्रोधाकार वृत्ति रहनेसे तुम्हें जो एकाग्रता होगी, उससे तुम इस विप्र-तिरस्कारजनित पापसे मुक्त हो जाओगे और फिर थोड़े ही समयमें मेरे पास लौट आओगे। द्वारपालोंको इस प्रकार आज्ञा दे, भगवान्ने विमानोंकी श्रेणियोंसे सुसज्जित अपने सर्वाधिक श्रीसम्पन्न धाममें प्रवेश किया। वे देवश्रेष्ठ जय-विजय तो ब्रह्मशापके कारण उस अलङ्घनीय भगवद्धाममें ही श्रीहीन हो गये तथा उनका सारा गर्व गलित हो गया। पुत्रो! फिर जब वे वैकुण्ठलोकसे गिरने लगे, तब वहाँ श्रेष्ठ विमानोंपर बैठे हुए वैकुण्ठवासियोंमें बड़ा कोलाहल मच गया। इस समय दितिके गर्भमें स्थित जो कश्यपजीका उग्र तेज है, उसमें भगवान्‌के उन पार्षद-प्रवरोंने ही प्रवेश किया है। उन दोनों असुरोंके तेजसे ही तुम सबका तेज फीका पड़ गया है। इस समय भगवान् ऐसा ही करना चाहते हैं। जो आदिपुरुष संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारण हैं, जिनकी योगमायाको योगिजन भी बड़ी कठिनतासे पार कर पाते हैं—वे सत्त्वादि तीनों गुणोंके नियन्ता श्रीहरि ही हमारा कल्याण करेंगे। अब, इस विषयमें हमारे विशेष विचार करनेसे क्या लाभ हो सकता है?॥२७—३७॥

सत्रहवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षका जन्म तथा हिरण्याक्षका दिग्विजय

श्रीमैत्रेयजी बोले—विदुरजी! ब्रह्माजीके कहनेसे अन्धकारका कारण जानकर देवताओंकी शङ्का निवृत्त हो गयी और फिर वे सब स्वर्गलोकको लौट आये॥१॥

इधर दितिको अपने पतिदेवके कथनानुसार पुत्रोंकी ओरसे उपद्रवादिकी आशङ्का बनी रहती थी। इसलिये जब पूरे सौ वर्ष बीत गये, तब उसने दो यमज पुत्र उत्पन्न किये। उनके जन्म लेते समय स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें अनेकों उत्पात होने लगे—जिनसे लोग अत्यन्त भयभीत हो गये। जहाँ-तहाँ पर्वत और पृथ्वी काँपने लगे, सब दिशाओंमें दाह होने लगा। जगह-जगह उल्कापात होने लगा, बिजलियाँ गिरने लगीं और आकाशमें अनिष्टसूचक धूमकेतु (पुच्छल तारे) दिखायी देने लगे। बार-बार सायँ-सायँ करती और वृक्षोंको उखाड़ती हुई बड़ी विकट और असह्य वायु चलने लगी। उस समय आँधी उसकी सेना, और उड़ती हुई धूलि ध्वजाके समान जान पड़ती थी। बिजली जोर-जोरसे चमककर मानो खिलखिला रही थी। घटाओंने ऐसा सघनरूप धारण किया कि सूर्य, चन्द्र आदि ग्रहोंके लुप्त हो जानेसे आकाशमें गहरा अँधेरा छा गया। उस समय कहीं कुछ भी दिखायी न देता था। समुद्र दुखी मनुष्यकी भाँति कोलाहल करने लगा, उसमें ऊँची-ऊँची तरंगें उठने लगीं और उसके भीतर रहनेवाले जीवोंमें बड़ी हलचल मच गयी। नदियों तथा अन्य जलाशयोंमें भी बड़ी खलबली मच गयी और उनके कमल सूख गये। सूर्य और चन्द्रमा बार-बार ग्रसे जाने लगे तथा उनके चारों ओर अमङ्गलसूचक मण्डल बैठने लगे। बिना बादलोंके ही गरजनेका शब्द होने लगा तथा गुफाओंमेंसे रथकी घर-घराहटका-सा शब्द निकलने लगा। गाँवोंमें गीदड़ और उल्लुओंके भयानक शब्दके साथ ही सियारियाँ मुखसे दहकती हुई आग उगलकर बड़ा अमङ्गल शब्द करने लगीं। जहाँ-तहाँ कुत्ते अपनी गरदन ऊपर उठाकर कभी गाने और कभी रोनेके समान भाँति-भाँतिके शब्द करने लगे। झुंड-के-झुंड गधे अपने कठोर खुरोंसे पृथ्वी खोदते और रेंकनेका शब्द करते मतवाले होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। पक्षी गधोंके शब्दसे डरकर रोते-चिल्लाते अपने घोंसलोंसे उड़ने लगे तथा अपनी खिरकोंमें बँधे हुए और वनमें चरते हुए गाय-बैल आदि पशु डरके मारे मल-मूत्र त्यागने लगे। गौएँ ऐसी डर गयीं कि दुहनेपर उनके थनोंसे खून निकलने लगा, बादल पीबकी वर्षा करने लगे, देवमूर्तियोंकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। और आँधीके बिना ही वृक्ष उखड़-उखड़कर गिरने लगे। शनि, राहु आदि क्रूर ग्रह प्रबल होकर चन्द्र, बृहस्पति आदि सौम्य ग्रहों तथा बहुत-से नक्षत्रोंको लाँघकर वक्रगतिसे चलने लगे तथा आपसमें युद्ध करने लगे। ऐसे ही और भी अनेकों भयङ्कर उत्पातोंको देखकर सनकादिके सिवा और सब जीव भयभीत हो गये तथा उनका मर्म न जाननेके कारण उन्होंने यही समझा कि अब संसारका प्रलय होनेवाला है॥२—१५॥

वे दोनों आदिदैत्य जन्मके अनन्तर शीघ्र ही अपने फौलादके समान कठोर शरीरोंसे बढ़कर पर्वतोंके सदृश हो गये तथा उनका पूर्व पराक्रम भी प्रकट हो गया। वे इतने ऊँचे थे कि उनके सुवर्णमय मुकुटोंका अग्रभाग स्वर्गको स्पर्श करता

पालन करनेके लिये ही स्त्रीकी इच्छा करता हूँ ॥ १३–१६ ॥

किन्तु प्रभो! ऐसी दीन दशा तो उन्हींकी है, जो कालरूप आपसे भय मानते हैं। आपके भक्त ऐसा नहीं करते। वे तो विषयासक्त लोगों और उन्हींके मार्गका अनुसरण करनेवाले मुझ जैसे कर्मजड पशुओंको कुछ भी न गिनकर आपके चरणोंकी छत्रछायाका ही आश्रय लेते हैं तथा आपसमें आपके गुणगानरूप मादक सुधाका ही पान करके अपने क्षुधा पिपासादि देहधर्मोंको शान्त करते रहते हैं। प्रभो! यह कालचक्र बड़ा प्रबल है। साक्षात् ब्रह्म ही इसके घूमनेकी धुरी है, अधिक माससहित तेरह महीने अरे हैं, तीन सौ साठ दिन जोड़ हैं, छः ऋतुएँ नेमि (हाल) हैं, अनन्त क्षण पल आदि इसमें पत्राकार धाराएँ हैं तथा तीन चातुर्मास्य इसके आधारभूत नाभि हैं। यह अत्यन्त वेगवान् संवत्सररूप कालचक्र चराचर जगत्की आयुका छेदन करता हुआ घूमता रहता है, किन्तु आपके भक्तोंकी आयुका ह्रास नहीं कर सकता। भगवन्! जिस प्रकार मकड़ी स्वयं ही जालेको फैलाती, रक्षा करती और अन्तमें निगल जाती है—उसी प्रकार आप अकेले ही जगत्की रचना करनेके लिये अपनेसे अभिन्न अपनी योगमायाको स्वीकार कर उससे अभिव्यक्त हुई अपनी सत्त्वादि शक्तियोंद्वारा स्वयं ही इस जगत्की रचना, पालन और संहार करते हैं। प्रभो! आप हम भक्तोंको जो शब्दादि विषय सुख प्रदान करते हैं, वे मायिक होनेके कारण यद्यपि आपको इष्ट नहीं हैं, तथापि परिणाममें हमारा शुभ करनेके लिये वे हमें प्राप्त हों—जिससे हम देव, ऋषि और पितृ ऋणसे उऋण होकर मोक्षके अधिकारी बन सकें। इस समय आपने हमें अपनी तुलसीमालामण्डित, मायासे परिच्छिन्न सी दिखायी देनेवाली सगुणमूर्तिसे दर्शन दिया है। इसलिये हमें भोग और मोक्ष दोनों ही प्राप्त हों। नाथ! मैं आपके वन्दनीय चरण-कमलोंकी बारंबार वन्दना करता हूँ। ये स्वरूपसे निष्क्रिय होनेपर भी मायाके द्वारा सारे संसारका व्यवहार चलानेवाले हैं तथा थोड़ी-सी उपासना करनेवालेपर भी समस्त कामनाओंकी वर्षा करते रहते हैं ॥ १७–२१ ॥

श्रीमैत्रेय मुनि बोले—भगवान्की भौंहें प्रणय मुसकान भरी चितवनसे चञ्चल हो रही थीं, वे गरुड़जीके कंधेपर विराजमान थे। जब कर्दमजीने इस प्रकार निष्कपटभावसे उनकी स्तुति की, तो वे उनसे अमृतमयी वाणीसे कहने लगे ॥ २२ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—जिसके लिये तुमने आत्मसंयमादिके द्वारा मेरी आराधना की है, तुम्हारे हृदयके उस भावको जानकर मैंने पहलेहीसे उसकी व्यवस्था कर दी है। प्रजापते! मेरी आराधना तो किसी समय भी निष्फल नहीं होती, फिर जिनका चित्त निरन्तर एकान्तरूपसे मुझहीमें लगा रहता है, उन तुम जैसे महात्माओंकी की हुई उपासनाका तो और भी अधिक फल होता है। प्रजापति ब्रह्माजीके पुत्र स्वायम्भुव मनु, जिनके सदाचारादि कल्याणमय गुण सर्वत्र विख्यात हैं, इस समय सार्वभौम सम्राट् हैं। वे ब्रह्मावर्तमें रहते हुए सात समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीका शासन करते हैं। विप्रवर! वे परम धर्मज्ञ महाराज महारानी शतरूपाके सहित तुमसे मिलनेके लिये परसों यहाँ आवेंगे। उनकी एक रूप यौवन, शील और गुणोंसे सम्पन्न श्यामलोचना कन्या इस समय अपने अनुरूप पतिकी खोजमें है। तुम सर्वथा उसके योग्य हो, इसलिये वे तुम्हींको वह कन्या अर्पण करेंगे। ब्रह्मन्! गत अनेकों वर्षोंसे तुम्हारा चित्त जैसी भार्याके लिये समाहित रहा है, अब शीघ्र ही वह राजकन्या तुम्हारी वैसी ही पत्नी होकर यथेष्ट सेवा करेगी। वह तुम्हारा वीर्य अपने गर्भमें धारण कर उससे नौ कन्याएँ उत्पन्न करेगी और फिर तुम्हारी उन कन्याओंसे मरीचि आदि ऋषिगण पुत्र उत्पन्न करेंगे। तुम भी मेरी आज्ञाका अच्छी तरह पालन करनेसे शुद्धचित्त हो, फिर अपने सब कर्मोंका फल मुझे अर्पणकर मुझको ही प्राप्त होओगे। जीवोंपर दया करते हुए तुम आत्मज्ञान प्राप्त करोगे और फिर सबको अभयदान दे अपने सहित सम्पूर्ण जगत्को मुझमें और मुझको अपनेमें स्थित देखोगे। महामुने! मैं भी अपने अंश-कलारूपसे तुम्हारे वीर्यद्वारा तुम्हारी पत्नी देवहूतिके गर्भमें अवतीर्ण होकर सांख्यशास्त्रकी रचना करूँगा ॥ २३–३२ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! कर्दमऋषिसे इस प्रकार सम्भाषण कर, इन्द्रियोंके अन्तर्मुख होनेपर प्रकट होनेवाले श्रीहरि सरस्वती नदीसे घिरे हुए बिन्दुसर तीर्थसे (जहाँ कर्दमऋषि तप कर रहे थे) अपने लोकको चले गये। भगवान्के सिद्धमार्ग (वैकुण्ठमार्ग) की सभी सिद्धेश्वर प्रशंसा करते हैं। वे कर्दमजीके देखते-देखते अपने लोकको सिधार गये। उस समय गरुड़जीके बृहत् एवं रथन्तर नामक पक्षोंसे जो सामकी आधारभूता ऋचाएँ निकल रही थीं, उन्हें वे सुनते जाते थे ॥ ३३–३४ ॥

वीरवर विदुरजी! श्रीहरिके चले जानेपर भगवान् कर्दम उनके बताये हुए समयकी प्रतीक्षा करते हुए बिन्दु

अठारहवाँ अध्याय

हिरण्याक्ष और वराहभगवान्‌का युद्ध

श्रीमैत्रेयजी बोले—तात ! वरुणजीकी बात सुनकर वह मदोन्मत्त दैत्य बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उनके इस कथनपर कि 'तू उनके हाथसे मारा जायगा' कुछ भी ध्यान नहीं दिया और चट नारदजीसे पता लगाकर रसातलमें पहुँच गया। वहाँ उसने विश्वविजयी वराहभगवान्‌को अपनी दाढ़ोंकी नोकपर पृथ्वीको रक्खे सामने आते देखा। वे अपने लाल-लाल चमकीले नेत्रोंसे उसके तेजको हरे लेते थे। उन्हें देखकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, 'अरे ! यह जंगली पशु यहाँ जलमें कहाँसे आया ?' फिर वराहजीसे कहा, 'अरे नासमझ ! इधर आ, इस पृथ्वीको छोड़ दे; इसे विश्वविधाता ब्रह्माजीने हम रसातलवासियोंके हवाले कर दिया है। रे सूकररूपधारी सुराधम ! मेरे देखते-देखते तू इसे लेकर कुशल-पूर्वक नहीं जा सकता। तू मायासे छुक-छिपकर ही दैत्योंको मार डालता है। क्या इसीसे हमारे शत्रुओंने हमारा नाश करानेके लिये तुझे पाला है ? मूढ ! तेरा बल तो योगमाया ही है; और कोई पुरुषार्थ तुझमें थोड़े ही है। आज तुझे समाप्त कर मैं अपने बन्धुओंका शोक दूर करूँगा। जब मेरे हाथसे छूटी हुई गदाके प्रहारसे सिर फट जानेके कारण तू मर जायगा, तब तेरी आराधना करनेवाले जो देवता और ऋषि हैं वे सब भी जड़ कटे हुए वृक्षोंकी भाँति स्वयं ही नष्ट हो जायँगे' ॥ १–५ ॥

शत्रुके इन वाग्बाणोंसे वराहभगवान्‌को बहुत चोट पहुँची और उन्होंने देखा कि उनके दाँतोंपर रक्खी हुई पृथ्वी भी डर रही है; पर पृथ्वीको बिना स्थापित किये उससे छेड़-छाड़ करना उचित न जान वे उसके दुर्वचनोंको सहकर ग्राहसे चोट खाये हुए हथिनीसहित गजराजके समान जलसे बाहर आये। जब उसकी चुनौतीका कोई उत्तर न देकर वे जलसे बाहर आने लगे, तो ग्राह जैसे गजका पीछा करता है उसी प्रकार पीले केश और तीखी दाढ़ोंवाले उस दैत्यने उनका पीछा किया तथा वज्रके समान कड़ककर कहने लगा, 'तुझे भागनेमें लज्जा नहीं आती ? सच है, असत् पुरुषोंके लिये कौन-सा काम न करनेयोग्य है ?' ॥ ६-७ ॥

भगवान्‌ने पृथ्वीको ले जाकर जलके ऊपर व्यवहारयोग्य स्थानमें स्थित कर दिया और उसमें अपनी आधारशक्तिका सञ्चार किया। उस समय हिरण्याक्षके सामने ही विश्व-रचयिता ब्रह्माजीने उनकी स्तुति की और देवताओंने फूल बरसाये। तब श्रीहरिने गदा लिये अपने पीछे आ रहे हिरण्याक्षसे, जो सोनेके आभूषण और कवच धारण किये था तथा अपने कटुवाक्योंसे उन्हें निरन्तर व्यथित कर रहा था, अत्यन्त क्रोधपूर्वक हँसते हुए कहा ॥ ८-९ ॥

श्रीभगवान् बोले—अरे ! सचमुच ही हम जंगली जीव हैं, जो तुझ-जैसे ग्राम-सिंहों (कुत्तों) को ढूँढ़ते फिरते हैं। दुष्ट ! वीर पुरुष तुझ-जैसे मृत्युपाशमें बँधे हुए अभागे जीवोंकी आत्मश्लाघापर ध्यान नहीं देते। हाँ, हम रसातलवासियोंकी धरोहर चुराकर और लज्जा छोड़कर तेरी गदाके भयसे यहाँ भाग आये हैं। भाई ! हममें ऐसी सामर्थ्य ही कहाँ है कि तेरे-जैसे अद्वितीय वीरके सामने युद्धमें ठहर सकें। फिर भी हम जैसे-तैसे तेरे सामने खड़े हैं; तुझ-जैसे शूरवीरोंसे वैर बाँधकर हम जा भी कहाँ सकते हैं ? तू पैदल वीरोंका सरदार है, इसलिये अब निःशङ्क होकर उधेड़-बुन छोड़कर हमारा अनिष्ट करनेका प्रयत्न कर और हमें मारकर अपने भाई-बन्धुओंके आँसू पोंछ। अब इसमें देर न कर। जो अपनी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, वह असभ्य है और भले आदमियोंमें बैठनेलायक नहीं है ॥ १०–१२ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! जब भगवान्‌ने उस दैत्यका इस प्रकार उपहास और तिरस्कार किया, तब वह पकड़कर खेलाये जाते हुए सर्पके समान क्रोधसे तिलमिला उठा। वह लंबी-लंबी साँसें लेने लगा, उसकी इन्द्रियाँ क्रोधसे क्षुब्ध हो उठीं और उस दुष्ट दैत्यने बड़े वेगसे लपककर भगवान्‌पर गदाका प्रहार किया। किन्तु भगवान्‌ने अपनी छातीपर चलायी हुई शत्रुकी गदाके प्रहारको कुछ टेढ़े होकर बचा लिया, ठीक वैसे ही, जैसे योगसिद्ध पुरुष मृत्युके आक्रमणसे अपने-को बचा लेता है। फिर जब वह क्रोधसे होठ चबाता अपनी गदा लेकर बार-बार घुमाने लगा, तब श्रीहरि कुपित होकर बड़े वेगसे उसकी ओर झपटे। सौम्यस्वभाव विदुरजी ! तब प्रभुने शत्रुकी दायीं भौंहपर गदाकी चोट की, किन्तु गदायुद्धमें कुशल हिरण्याक्षने उसे बीचहीमें अपनी गदापर ले लिया। इस प्रकार श्रीहरि और हिरण्याक्ष एक दूसरेको जीतनेकी इच्छासे अत्यन्त क्रुद्ध होकर आपसमें अपनी भारी गदाओंसे प्रहार करने लगे। उस समय उन दोनोंमें ही जीतनेकी होड़

शरीर कहलाते हैं। इस प्रकार एक ही शरीरसे सम्बद्ध होनेके कारण अपनी अपनी और एक दूसरेकी रक्षा करनेवाले उन ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी वास्तवमें श्रीहरि ही रक्षा करते हैं, जो सम्पूर्ण कार्य कारणरूप होकर भी वास्तवमें निर्विकार हैं। आपके दर्शनमात्रसे ही मेरे सारे सन्देह दूर हो गये, क्योंकि आपने मेरी प्रशसाके मिससे स्वय ही बड़े प्रेमसे प्रजापालनकी इच्छावाले राजाके धर्मोंका निरूपण किया है। आपका दर्शन अजितेन्द्रिय पुरुषोंको बहुत दुर्लभ है, मेरा बड़ा भाग्य है, जो मुझे आपका दर्शन हुआ और मैं आपके चरणोंकी मङ्गलमयी रज अपने सिरपर चढा सका। मेरे भाग्योदयसे ही आपने मुझे राजधर्मोंकी शिक्षा देकर मुझपर महान् अनुग्रह किया है और मैंने भी प्रारब्धका उदय होनेसे ही आपकी पवित्र वाणी कान खोलकर ग्रहण की है॥२–७॥

यद्यपि इस समय आपकी कृपाका मैं हृदयसे अनुभव कर रहा हूँ, तथापि इस कन्याके स्नेहवश मेरा चित्त बहुत चिन्ताग्रस्त हो रहा है, अत मुनिवर! इस विषयमें यह दीन जो कुछ प्रार्थना करे, उसे आप कृपापूर्वक ध्यान देकर सुनिये। यह मेरी कन्या—जो प्रियव्रत और उत्तानपादकी बहिन है—अवस्था, शील और गुण आदिमें अपने योग्य पतिकी खोजमें है। जबसे इसने नारदजीके मुखसे आपके शील, विद्या, रूप, आयु और गुणोंका वर्णन सुना है, तभीसे यह आपको अपना पति बनानेका निश्चय कर चुकी है। द्विजवर! मैं बड़ी श्रद्धासे आपको यह कन्या समर्पण करता हूँ, आप इसे स्वीकार कीजिये। यह गृहस्थोचित कार्योंके लिये सब प्रकार आपके योग्य है। जो भोग स्वय आकर उपस्थित हो जाय, उसका निरादर करना विरक्त पुरुषको भी उचित नहीं है, फिर विषयासक्तकी तो बात ही क्या है। जो पुरुष स्वय प्राप्त हुए भोगका निरादर कर फिर किसी कृपणके आगे हाथ पसारता है, उसका बहुत फैला हुआ यश भी नष्ट हो जाता है और दूसरोंके तिरस्कारसे मानभङ्ग भी होता है। विद्वन्! मैंने सुना है, आप विवाह करनेके लिये तैयार हैं। आपके ब्रह्मचर्यकी अवधि निश्चित है, आप नैष्ठिक ब्रह्मचारी तो हैं नहीं। इसलिये अब आप इस कन्याको स्वीकार कीजिये, मैं इसे आपको अर्पण करता हूँ॥८–१४॥

श्रीकर्दम मुनिने कहा—सच है, मैं विवाह करना चाहता हूँ और आपकी कन्याका अभी किसीके साथ वाग्दान नहीं हुआ है, इसलिये हम दोनोंका सर्वश्रेष्ठ ब्राह्म*विधिसे विवाह होना उचित ही होगा। राजन्! वेदोक्त विवाह विधिमें जो 'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्' इत्यादि प्रसिद्ध प्रार्थनामन्त्र हैं, वे आपकी इस कन्याके साथ हमारा सम्बन्ध होनेसे सफल होंगे। भला, जो अपनी अङ्गकान्तिसे आभूषणादिकी शोभाको भी लज्जित कर रही है, आपकी उस कन्याका कौन आदर न करेगा? एक बार यह अपने महलकी छतपर गेंद खेल रही थी। गेंदके पीछे इधर उधर दौड़नेके कारण इसके नेत्र चञ्चल हो रहे थे तथा पैरोंमें पड़े हुए पायजेब मधुर झनकार करते जाते थे। उस समय इसे देखकर विश्वावसु गन्धर्व अचेत होकर अपने विमानसे गिर पड़ा था। वही इस समय यहाँ स्वय आकर प्रार्थना कर रही है, ऐसी अवस्थामे कौन समझदार पुरुष इसे स्वीकार न करेगा? यह तो साक्षात् श्रीस्वायम्भुवमनुकी दुलारी कन्या और उत्तानपादकी प्यारी बहिन है तथा यह रमणियोंमें रत्नके समान है। जिन लोगोंने कभी श्रीलक्ष्मीजीके चरणोंकी उपासना नहीं की है, उन्हे तो इसका दर्शन भी नहीं हो सकता। अत मैं इसे शर्तके साथ स्वीकार करूँगा, जबतक यह मेरा वीर्य धारण करेगी अर्थात् जबतक इसके सन्तान होती रहेगी, तबतक मैं गृहस्थधर्मानुसार इसके साथ रहूँगा। उसके बाद तो मैं भगवान्के बताये हुए सन्यासप्रधान शम दमादि हिंसारहित धर्मोंको ही अधिक महत्त्व दूँगा। जिनसे इस विचित्र जगत्की उत्पत्ति हुई है, जिनमें यह लीन हो जाता है और जिनके आश्रयसे यह स्थित है—मुझे तो वे प्रजापतियोंके प्रभु श्रीअनन्त ही सबसे अधिक मान्य हैं॥१५–२०॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—प्रचण्ड धनुर्धर विदुरजी! केवल इतना कहकर कर्दमजी हृदयमें भगवान् कमलनाभका ध्यान करते हुए मौन हो गये। उस समय उनके मन्द हास्ययुक्त मुखकमलको देखकर देवहूतिका चित्त लुभाने लगा। मनुजीने देखा कि इस सम्बन्धमें महारानी शतरूपा और राजकुमारीकी स्पष्ट अनुमति है, अत उन्होंने अनेकों गुणोंसे सम्पन्न कर्दमजीको वह उन्हींके समान गुणवती कन्या प्रसन्नतापूर्वक दे दी। महारानी शतरूपाने भी बेटी और दामादको बड़े प्रेमपूर्वक बहुत-से बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण और गृहस्थोचित पात्रादि दहेजमें दिये। इस प्रकार सुयोग्य

* मनुस्मृतिमे आठ प्रकारके विवाहोंका उल्लेख पाया जाता है—(१) ब्राह्म, (२) दैव, (३) आर्ष, (४) प्राजापत्य, (५) आसुर, (६) गान्धर्व, (७) राक्षस और (८) पैशाच। इनके लक्षण वहीं तीसरे अध्यायमें देखने चाहिये। इनमें पहला सबसे श्रेष्ठ माना गया है। इसमें पिता योग्य वरको कन्याका दान करता है।

वहींसे उसे सहजहीमें इस प्रकार पकड़ लिया जैसे गरुड़ साँपिनको पकड़ लेता है ॥ ६–११ ॥

अपने उद्यमको इस प्रकार व्यर्थ हुआ देख उस महादैत्यका घमंड ठंडा पड़ गया और उसका तेज नष्ट हो गया। अबकी बार भगवान्‌के देनेपर उसने उस गदाको लेना न चाहा। किन्तु जिस प्रकार कोई ब्राह्मणके ऊपर निष्फल अभिचार (मारणादि प्रयोग) करे—मूठ आदि चलावे, वैसे ही उसने श्रीयज्ञपुरुषपर प्रहार करनेके लिये एक अग्निके समान झिलमिलाता हुआ त्रिशूल लिया। महाबली हिरण्याक्षका अत्यन्त वेगसे छोड़ा हुआ वह त्रिशूल आकाशमें बड़ी तेजीसे चमकने लगा। तब भगवान्‌ने उसे अपनी तीखी धारवाले चक्रसे इस प्रकार काट डाला, जैसे इन्द्रने गरुड़जीके छोड़े हुए तेजस्वी पंखको काट डाला था।* भगवान्‌के चक्रसे अपने त्रिशूलके बहुत-से टुकड़े हुए देखकर उसे बड़ा क्रोध हुआ। उसने पास आकर उनके विशाल वक्षःस्थलपर, जिसपर श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित है, कसकर घूँसा मारा और फिर बड़े जोरसे गरजकर अन्तर्धान हो गया॥ १२–१५॥

विदुरजी! जैसे हाथीपर पुष्पमालाकी चोटका कोई असर नहीं होता, उसी प्रकार उसके इस प्रकार घूँसा मारनेसे भगवान् आदिवराह तनिक भी टस-से-मस नहीं हुए। तब वह महामायावी दैत्य मायापति श्रीहरिपर अनेक प्रकारकी मायाओंका प्रयोग करने लगा, जिन्हें देखकर सभी प्रजा बहुत डर गयी और समझने लगी कि अब संसारका प्रलय होनेवाला है। बड़ी प्रचण्ड आँधी चलने लगी, जिसके कारण धूलसे सब ओर अन्धकार छा गया। सब ओरसे पत्थरोंकी वर्षा होने लगी, जो ऐसे जान पड़ते थे मानो किसी क्षेपणयन्त्र (गुलेल) से फेंके जा रहे हों। बिजलीकी चमचमाहट और कड़कके साथ बादलोंके घिर आनेसे आकाशमें सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह छिप गये तथा उनसे निरन्तर पीब, केश, रुधिर, विष्ठा, मूत्र और हड्डियोंकी वर्षा होने लगी। विदुरजी! ऐसे-ऐसे पहाड़ दिखायी देने लगे जो तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र बरसा रहे थे। हाथमें त्रिशूल लिये बाल खोले नंगी राक्षसियाँ दीखने लगीं। बहुत-से पैदल, घुड़सवार और हाथियोंपर चढ़े हुए सैनिकोंके साथ आततायी यक्ष-राक्षसोंका 'मारो-मारो, काटो-काटो' ऐसा अत्यन्त क्रूर और हिंसामय कोलाहल सुनायी देने लगा॥ १६–२१॥

इस प्रकार प्रकट हुई उस आसुरी मायाका नाश करनेके लिये यज्ञमूर्ति भगवान् वराहने अपना प्रिय सुदर्शनचक्र छोड़ा। उस समय अपने पतिका कथन स्मरण हो आनेसे दितिका हृदय सहसा काँप उठा और उसके स्तनोंसे रक्त बहने लगा। अपनी माया नष्ट हो जानेपर वह दैत्य फिर भगवान्‌के पास आया। उसने उन्हें दबाकर चूर-चूर करनेकी इच्छासे भुजाओंमें भर लिया, किन्तु देखा कि वे तो बाहर ही खड़े हैं। अब वह भगवान्‌को वज्रके समान कठोर मुक्कोंसे मारने लगा। तब इन्द्रने जैसे वृत्रासुरपर प्रहार किया था, उसी प्रकार उन्होंने उसकी कनपटीपर एक तमाचा मारा॥ २२–२५॥

विश्वविजयी भगवान्‌ने यद्यपि बड़ी उपेक्षासे तमाचा मारा था, तो भी उसकी चोटसे हिरण्याक्षका शरीर घूमने लगा, उसके नेत्र बाहर निकल आये, तथा हाथ-पैर और बाल छिन्न-भिन्न हो गये और वह निष्प्राण होकर आँधीसे उखड़े हुए विशाल वृक्षके समान पृथ्वीपर गिर पड़ा। हिरण्याक्ष-



का तेज अब भी मलिन नहीं हुआ था। उस कराल दाढ़ोंवाले दैत्यको दाँतोंसे होठ चबाते पृथ्वीपर पड़े देख वहाँ युद्ध देखनेके लिये आये हुए ब्रह्मादि देवता उसकी प्रशंसा

---

* एक बार गरुड़जी अपनी माता विनताको सर्पोंकी माता कद्रूके दासीपनेसे मुक्त करनेके लिये देवताओंके पाससे अमृत छीन लाये थे। तब इन्द्रने उनके ऊपर अपना वज्र छोड़ा। इन्द्रका वज्र कभी व्यर्थ नहीं जाता, इसलिये उसका मान रखनेके लिये गरुड़जीने अपना एक पर गिरा दिया। उसे उस वज्रने काट डाला।

उदारता, संयम, शुश्रूषा, प्रेम और मधुरभाषणादि गुणोंसे अपने परम तेजस्वी पतिदेवको सन्तुष्ट कर लिया। देवहूति समझती थी कि मेरे पतिदेव दैवसे भी बढकर हैं—वे विधाताके विधानको भी बदल सकते हैं; इसलिये वह उनसे बड़ी बड़ी आशाएँ रखकर उनकी सेवामें लगी रहती थी। इस प्रकार बहुत दिनोंतक अपना अनुवर्तन करनेवाली उस मनुपुत्रीको व्रतादिका पालन करनेसे दुर्बल हुई देख देवर्षि कर्दमको दयावश कुछ खेद हुआ और उन्होंने उससे प्रेमगद्गद वाणीमें पूछा ॥ १–५ ॥

कर्दमजी बोले—मनुनन्दिनि! तुमने मेरा बड़ा आदर किया है। मैं तुम्हारी उत्तम सेवा और परम भक्तिसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। सभी देहधारियोंको अपना शरीर बहुत प्रिय एवं



आदरकी वस्तु होता है, किन्तु तुमने मेरी सेवाके आगे उसके क्षीण होनेकी भी कोई परवा नहीं की। अतः अपने धर्मका पालन करते रहनेसे मैंने भगवान्‌की कृपासे तप, समाधि, उपासना और योगके द्वारा जो भय और शोकसे रहित विभूतियाँ प्राप्त की हैं, उनपर मेरी सेवाके प्रभावसे अब तुम्हारा भी अधिकार हो गया है। मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि प्रदान करता हूँ, उसके द्वारा तुम उन्हें देखो। अन्य जितने भी भोग हैं, वे तो श्रीहरिके भ्रुकुटिविलासमात्रसे नष्ट हो जाते हैं; अतः वे इनके आगे कुछ भी नहीं हैं। तुम मेरी सेवासे ही कृतार्थ हो गयी हो; अपने पातिव्रत धर्मका पालन करनेसे तुम्हें ये दिव्य भोग प्राप्त हो गये हैं, तुम इन्हें भोग सकती हो। जिनका हृदय राज्यादिके अभिमानसे दूषित है, उन्हें ये नहीं मिल सकते ॥ ६–८ ॥

कर्दमजीके इस प्रकार कहनेसे अपने पतिदेवको सम्पूर्ण योगमाया और विद्याओंमें कुशल जानकर उस अबलाकी सारी चिन्ता जाती रही। उसका मुख सकुचभरी चितवन और मधुर मुसकानसे खिल उठा और वह विनय एवं प्रेमसे गद्गद होकर इस प्रकार कहने लगी ॥ ९ ॥

देवहूति बोली—सर्वसमर्थ स्वामिन्! मैं यह जानती हूँ कि कभी निष्फल न होनेवाली योगशक्ति और त्रिगुणात्मिका मायापर आपका अधिकार है। अतः अवश्य ही आपको ये सब ऐश्वर्य प्राप्त हैं। किन्तु द्विजवर! आपने विवाहके समय जो प्रतिज्ञा की थी कि गर्भाधान होनेतक मैं तुम्हारे साथ गृहस्थ-सुखका उपभोग करूँगा, उसकी अब पूर्ति होनी चाहिये। क्योंकि श्रेष्ठ पतिके द्वारा सन्तान प्राप्त करना ही पतिव्रता स्त्रीके लिये बड़ा लाभ है। उस गृहस्थ-सुखकी इच्छासे मैं दीन और दुबली हो रही हूँ। आप मुझे शास्त्रके अनुसार उपदेश दीजिये और उबटन, गन्ध, भोजन आदि उपयोगी सामग्रियाँ भी जुटा दीजिये तथा उसीके उपयुक्त एक भवन भी तैयार करा दीजिये जिससे मैं आपके साथ उस गृहस्थ-सुखका उपभोग करने योग्य बन जाऊँ ॥ १०-११ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! कर्दम मुनिने अपनी प्रियाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसी समय योगमें स्थित होकर एक विमान रचा, जो इच्छानुसार सर्वत्र जा सकता था। यह विमान सब प्रकारके इच्छित भोग-सुख प्रदान करनेवाला, अत्यन्त सुन्दर, सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त, सर्वसम्पद्धि-सम्पन्न तथा मणिमय खंभोंसे सुशोभित था। उसमें सभी समय रहनेका सुपास था और जहाँ-तहाँ सब प्रकारकी दिव्य सामग्रियाँ रक्खी हुई थीं, तथा उसे तरह तरहकी झंडियों और पताकाओंसे खूब सजाया गया था। जिनपर भ्रमरगण मधुर गुंजार कर रहे थे, ऐसे रंग बिरंगे पुष्पोंकी मालाओंसे तथा अनेक प्रकारके सूती और रेशमी वस्त्रोंसे वह अत्यन्त शोभायमान हो रहा था। एकके ऊपर एक बनाये हुए कमरोंमें अलग अलग रक्खी हुई शय्या, पलंग, पंखे और आसनोंके कारण वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। जहाँ-तहाँ रक्खी हुई अनेक प्रकारकी शिल्पसामग्रियोंसे उसकी अपूर्व शोभा हो रही थी। उसमें पन्नेका फर्श था, बैठनेके लिये मूँगेकी चौकियाँ बनायी गयी थीं तथा मूँगेहीकी देहलियाँ थीं। उसके द्वारोंमें हीरेके किवाड़ थे तथा इन्द्रनील मणिके

सुनकर विदुरजीको बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने मुनिवर मैत्रेयजीसे कहा ॥ ८ ॥

विदुरजी बोले—ब्रह्मन्! आप अव्यक्त विषयोंको भी जाननेवाले हैं; अतः यह बतलाइये कि प्रजापतियोंके पति श्रीब्रह्माजीने मरीचि आदि प्रजापतियोंको उत्पन्न करके फिर सृष्टिको बढ़ानेके लिये क्या किया। तथा मरीचि आदि मुनीश्वरोंने और स्वायम्भुव मनुने भी ब्रह्माजीकी आज्ञासे किस प्रकार प्रजाकी वृद्धि की? उन्होंने इस जगत्‌को पत्नियोंके सहयोगसे उत्पन्न किया या अपने-अपने कार्यमें स्वतन्त्र रहकर, अथवा सबने एक साथ मिलकर इस जगत्‌की रचना की? ॥ ९–११ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! जिसकी गतिको जानना अत्यन्त कठिन है—उस जीवोंके प्रारब्ध, प्रकृतिके नियन्ता पुरुष और काल—इन तीन हेतुओंसे तथा भगवान्‌की सन्निधिसे त्रिगुणमय प्रकृतिमें क्षोभ होनेपर उससे महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ। फिर दैवकी प्रेरणासे रजःप्रधान महत्तत्त्वसे वैकारिक (सात्त्विक), राजस और तामस—तीन प्रकारका अहङ्कार उत्पन्न हुआ। उसने आकाशादि पाँच-पाँच तत्त्वोंके पाँच वर्ग प्रकट किये। अर्थात् शब्दादि पाँच तन्मात्राएँ, आकाशादि पाँच भूत, हस्तादि पाँच कर्मेन्द्रियाँ, श्रोत्रादि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और इन इन्द्रियोंके अधिष्ठाता देवता उत्पन्न किये। वे सब अलग-अलग रहकर भूतोंके कार्यरूप ब्रह्माण्डकी रचना नहीं कर सकते थे; इसलिये उन्होंने भगवान्‌की शक्तिसे परस्पर संगठित होकर एक सुवर्णवर्ण अण्डकी रचना की। वह अण्ड चेतनाशून्य अवस्थामें एक हजार वर्षसे भी अधिक समयतक कारणाब्धिके जलमें पड़ा रहा। फिर उसमें श्रीभगवान्‌ने प्रवेश किया। उसमें अधिष्ठित होनेपर उनकी नाभिसे सहस्र सूर्योंके समान देदीप्यमान एक कमल प्रकट हुआ, जो सम्पूर्ण जीवसमुदायका आश्रय था। उसीसे स्वयं ब्रह्माजीका भी आविर्भाव हुआ ॥१२–१६॥

जब ब्रह्माण्डके गर्भरूप जलमें शयन करनेवाले श्रीनारायणदेवने ब्रह्माजीके अन्तःकरणमें प्रवेश किया, तब वे पूर्वकल्पोंकी नाम-रूपमयी व्यवस्थाके अनुसार लोकोंकी रचना करने लगे। सबसे पहले उन्होंने अपनी छायासे तामिस्र, अन्धतामिस्र, तम, मोह और महामोह नामकी पाँच प्रकारकी अविद्या उत्पन्न की। ब्रह्माजीको अपना वह तमोमय शरीर अच्छा नहीं लगा, अतः उन्होंने उसे त्याग दिया। तब, जिससे भूख-प्यासकी उत्पत्ति होती है—ऐसे रात्रिरूप उस शरीरको उसीसे उत्पन्न हुए यक्ष और राक्षसोंने ग्रहण कर लिया। उस समय भूख-प्याससे व्याकुल होनेके कारण वे यक्ष-राक्षस 'इसे खा जाओ, इसकी रक्षा मत करो' ऐसा चिल्लाते हुए ब्रह्माजीकी ओर दौड़े। तब उन्होंने उनसे घबड़ाकर कहा, 'अरे यक्ष-राक्षसो! तुम मेरी सन्तान हो; इसलिये मुझे भक्षण मत करो, मेरी रक्षा करो।' उनमेंसे जिन्होंने कहा 'खा जाओ' वे यक्ष हुए और जिन्होंने कहा 'रक्षा मत करो' वे राक्षस कहलाये ॥१७–२१॥

फिर ब्रह्माजीने सात्त्विकी प्रभासे देदीप्यमान होकर मुख्य-मुख्य देवताओंकी रचना की। उन्होंने क्रीड़ा करते हुए, ब्रह्माजीके त्यागनेपर, उनका वह दिनरूप प्रकाशमय शरीर ग्रहण कर लिया। इसके पश्चात् ब्रह्माजीने अपने जघनदेश (कमरके पिछले भाग) से कामासक्त असुरोंको उत्पन्न किया। वे अत्यन्त कामलोलुप होनेके कारण उत्पन्न होते ही मैथुनके लिये ब्रह्माजीकी ओर चले। यह देखकर पहले तो वे हँसे; किन्तु फिर उन निर्लज्ज असुरोंको अपने पीछे लगा देख भयभीत और क्रोधित होकर बड़े जोरसे भागे। तब उन्होंने भक्तोंपर कृपा करनेके लिये उनकी भावनाके अनुसार दर्शन देनेवाले, शरणागतवत्सल, वरदायक श्रीहरिके पास जाकर कहा—'परमात्मन्! मेरी रक्षा कीजिये; मैंने तो आपहीकी आज्ञासे प्रजा उत्पन्न की थी, किन्तु यह तो पापमें प्रवृत्त होकर मुझको ही तंग करना चाहती है। नाथ! एकमात्र आप ही दुखी जीवोंका दुःख दूर करनेवाले हैं और जो आपकी चरण-शरणमें नहीं आते, उन्हें दुःख देनेवाले भी एकमात्र आप ही हैं' ॥ २२–२७ ॥

प्रभु तो प्रत्यक्षवत् सबके हृदयकी जाननेवाले हैं। उन्होंने ब्रह्माजीकी आतुरता देखकर कहा, 'तुम अपने इस काम-कलुषित शरीरको त्याग दो।' भगवान्‌के ऐसा कहते ही उन्होंने वह शरीर भी छोड़ दिया ॥ २८ ॥

ब्रह्माजीका छोड़ा हुआ वह शरीर एक सुन्दरी स्त्री (सन्ध्यादेवी) के रूपमें परिणत हो गया। वह जब चलती थी, तो उसके कमलसदृश कोमल चरणोंमें पड़े हुए पायजेब सुमधुर झनकार करते थे। उसकी आँखें मतवाली हो रही थीं और कमर करधनीकी लड़ोंसे सुशोभित सजीली साड़ीसे ढकी हुई थी; उसके उभरे हुए स्तन इस प्रकार एक-दूसरेसे सटे हुए थे कि उनके बीचमें कोई अन्तर ही नहीं रह गया था। उसकी नासिका और दन्तावली बड़ी ही सुघड़ थी तथा वह मधुर-मधुर मुसकराती हुई असुरोंकी ओर हाव-भावपूर्ण दृष्टिसे

कर्दमजीकी महिमा (मन और इन्द्रियोंपर प्रभुता) कम नहीं हुई। विद्याधरियाँ उनके शरीरकी सेवा कर रही थीं। खिले हुए कुमुदके फूलोंसे शृङ्गार किये हुए वे विमानपर इस प्रकार शोभा पा रहे थे, मानो आकाशमें तारागणसे घिरे हुए चन्द्रदेव विराजमान हों। उस विमानपर निवास कर उन्होंने दीर्घकालतक कुबेरजीके समान मेरुपर्वतकी घाटियोंमें विहार किया। ये घाटियाँ आठों लोकपालोंकी विहारभूमि हैं, इनमें कामदेवको बढानेवाला शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु चलती रहती है तथा श्रीगङ्गाजीके स्वर्गलोकसे गिरनेकी मङ्गलमय ध्वनि निरन्तर गूँजती रहती है। उस समय अनेक देवाङ्गनाएँ उनकी सेवामें लगी रहती थीं तथा सिद्धगण वन्दना किया करते थे ॥ ३६-३९ ॥

इसी प्रकार प्राणप्रिया देवहूतिमें अनुरक्त होकर उन्होंने उसके साथ वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन, पुष्पभद्र, मानस और चैत्ररथ आदि अनेकों देवोद्यानोंमें विहार किया। उस कान्तिमान् और इच्छानुसार सर्वत्र जानेवाले श्रेष्ठ विमानपर बैठकर वे वायुके समान सभी लोकोंमें विचरते रहते थे। यहाँतक कि विमानविहारी देवतागण भी उनसे पीछे रह जाते थे। विदुरजी! जिन्होंने भगवान्‌के भवभयहारी पवित्र पाद पद्मोंका आश्रय लिया है, उन धीर पुरुषोंके लिये कौन-सा काम दुष्कर है ॥ ४०-४२ ॥

इस प्रकार महायोगी कर्दमजी यह सारा भूमण्डल, जो द्वीप वर्षा आदिकी विचित्र रचनाके कारण बड़ा आश्चर्यमय प्रतीत होता है, अपनी प्रियाको दिखाकर अपने आश्रमको लौट आये। फिर उन्होंने अपने वीर्यके नौ विभाग कर रतिसुखके लिये अत्यन्त उत्सुक मनुकुमारी देवहूतिको आनन्दित करते हुए उसके साथ अनेकों वर्षोंतक विहार किया, किन्तु उनका इतना लम्बा समय एक मुहूर्तके समान बीत गया। उस विमानमें रतिसुखको बढानेवाली बड़ी सुन्दर शय्या थी, उसपर अपने परम रूपवान् प्रियतमके साथ देवहूतिको इतना काल कुछ भी न जान पड़ा। इस प्रकार उस कामासक्त दम्पतिको अपने योगबलसे सैकड़ों वर्षोंतक विहार करते हुए भी वह काल बहुत थोड़े समयके समान निकल गया। आत्मज्ञानी कर्दमजी सब प्रकारके सङ्कल्पोंको जानते थे, अतः देवहूतिको सन्तानप्राप्तिके लिये उत्सुक देख तथा भगवान्‌के आदेशको स्मरणकर उन्होंने अपने स्वरूपके नौ विभाग किये तथा कन्याओंकी उत्पत्तिके लिये एकाग्र चित्तसे अपनी पत्नीकी भावना करते हुए उसके गर्भमें वीर्य स्थापित किया। इससे देवहूतिके एक ही साथ नौ कन्याएँ पैदा हुईं। वे सभी सर्वाङ्गसुन्दरी थीं और उनके शरीरसे लाल कमलकी-सी सुगन्ध निकलती थी ॥ ४३-४८ ॥

इसी समय शुद्ध स्वभाववाली सती देवहूतिने देखा कि पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार उसके पतिदेव सन्यासाश्रम ग्रहण करके



वनको जाना चाहते हैं, तो उसने अपने आँसुओंको जैसे तैसे रोककर ऊपरसे मुसकराते हुए धीरे धीरे अति मधुर वाणीमें कहा। इस समय दुःखसे हृदय भर आनेके कारण वह सिर नीचा किये हुए अपने नखमणिमण्डित चरणकमलसे पृथ्वीको कुरेद रही थी ॥ ४९ ५० ॥

देवहूति बोली—भगवन्! आपने जो कुछ प्रतिज्ञा की थी, वह सब तो पूरी कर दी, तो भी मैं आपकी शरणागत हूँ, अतः आप मुझे अभयदान और दीजिये। ब्रह्मन्! इन कन्याओंके लिये योग्य वर खोजने पड़ेंगे और आपके वनको चले जानेके बाद मेरे जन्म-मरणरूप शोकको दूर करनेके लिये भी कोई होना चाहिये। प्रभो! अबतक परमात्मासे विमुख रहकर मेरा जो समय इन्द्रियसुख भोगनेमें बीता है, वह तो निरर्थक ही गया। आपके परम प्रभावको न जाननेके कारण ही मैंने इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त रहकर आपसे अनुराग किया। तथापि यह भी मेरे ससार बन्धनको दूर करनेवाला ही होना चाहिये, क्योंकि जो प्रीति अज्ञानवश असत् पुरुषोंके साथ होनेसे ससारका कारण होती है, वही

इक्कीसवाँ अध्याय

कर्दमजीकी तपस्या और भगवान्‌का वरदान

विदुरजीने पूछा—भगवन्! स्वायम्भुव मनुका वंश बड़ा आदरणीय माना गया है। इसमें मैथुनधर्मके द्वारा प्रजाकी वृद्धि हुई थी। अब आप मुझे इसीकी कथा सुनाइये। ब्रह्मन्! आपने कहा था कि स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपादने सातों द्वीप पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया था तथा उनकी पुत्री, जो देवहूति नामसे विख्यात थी, कर्दमप्रजापतिको ब्याही गयी थी। कहते हैं, देवहूति योगके लक्षण यमादिसे सम्पन्न थी, उससे महायोगी कर्दमजीने कितनी सन्तानें उत्पन्न कीं? वह सब प्रसङ्ग आप मुझे सुनाइये, मुझे उसे सुननेकी बड़ी इच्छा है। इसी प्रकार भगवान् रुचि और ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिने भी मनुजीकी कन्याओंका पाणिग्रहण करके उनसे किस प्रकार क्या-क्या सन्तान उत्पन्न की, यह सब चरित भी मुझे सुनाइये ॥ १—५ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—विदुरजी! जब ब्रह्माजीने भगवान् कर्दमको आज्ञा दी कि तुम प्रजाकी उत्पत्ति करो तो उन्होंने दस हजार वर्षतक सरस्वती नदीके तीरपर तपस्या की; फिर वे एकाग्र चित्तसे प्रेमपूर्वक पूजनोपचारद्वारा शरणागतवरदायक श्रीहरिकी आराधना करने लगे। तब सत्ययुगके आरम्भमें कमलनयन भगवान् श्रीहरिने उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर उन्हे अपने शब्दब्रह्ममय स्वरूपसे मूर्तिमान् होकर दर्शन दिये ॥ ६—८ ॥

भगवान्‌की वह भव्य मूर्ति सूर्यके समान तेजोमयी थी। उनके गलेमें श्वेत कमल और कुमुदके फूलोंकी मालाएँ पड़ी हुई थीं, मुखकमल नीली और चिकनी अलकावलीसे सुशोभित था तथा उनके कटिप्रदेशमें विमल वस्त्र, सिरपर झिलमिलाता हुआ सुवर्णमय मुकुट, कानोंमें जगमगाते हुए कुण्डल और कर-कमलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा आदि आयुध विराजमान थे। उनके एक हाथमें क्रीडाके लिये श्वेत कमल सुशोभित था। प्रभुकी मधुर मुसकानभरी चितवन चित्तको चुराये लेती थी। उनके चरणकमल गरुड़जीके कंधोंपर विराजमान थे तथा वक्षःस्थलमें श्रीलक्ष्मीजी और कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थीं। प्रभुकी इस आकाशस्थित मनोहर मूर्तिका दर्शन कर कर्दमजीको बड़ा हर्ष हुआ, मानो उनकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो गयीं। उन्होंने सानन्द हृदयसे पृथ्वीपर लोटकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और फिर



प्रेमप्रवण चित्तसे हाथ जोड़कर सुमधुर वाणीमें वे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ९—१२ ॥

कर्दमजीने कहा—स्तुति करनेयोग्य परमेश्वर! आप सम्पूर्ण सत्त्वगुणके आधार हैं। योगिजन उत्तरोत्तर शुभ योनियोंमें जन्म लेकर अन्तमें योगस्थ होनेपर आपके दर्शनोंकी इच्छा करते हैं; आज आपका वही दर्शन पाकर हमें नेत्रोंका फल मिल गया। जिन लोगोंकी बुद्धि आपकी मायासे मारी जाती है, वे ही इन तुच्छ क्षणिक विषय-सुखोंके लिये आपके चरण-कमलोंका आश्रय लेते हैं; किन्तु स्वामिन्! आप तो उन्हें वे विषय-भोग भी दे देते हैं, यद्यपि ये तो नरकमें भी मिल सकते हैं। प्रभो! उन सकाम पुरुषोंके समान मैं दुरात्मा भी अपने अनुरूप स्वभाववाली और अर्थ, धर्म, कामकी प्राप्ति करानेवाली अर्द्धाङ्गिनीको पानेकी इच्छासे आपके चरण-कमलोंकी शरणमें आया हूँ—जो कल्पवृक्षके समान सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। सर्वेश्वर! आप सम्पूर्ण लोकोंके अधिपति हैं। नाना प्रकारकी कामनाओंमें फँसा हुआ यह लोक आपकी वचनरूप डोरीमें बँधा हुआ है। धर्ममूर्ते! उसीका अनुगमन करता हुआ मैं भी कालरूप आपको पूजोपहारादि समर्पण करता हूँ। और आपकी आज्ञाका

आपकी कृपासे मेरी जन्मपरम्परा समाप्त हो चुकी है, इसीसे इस दुस्तर अज्ञानान्धकारसे पार लगानेके लिये सुन्दर नेत्ररूप आप प्राप्त हुए हैं। आप सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् आदिपुरुष हैं तथा अज्ञानान्धकारसे अंधे हुए पुरुषोंके लिये सूर्यकी भाँति प्रकाशमान नेत्रके समान हैं। देव! इन देह-गेह आदिमें जो मैं-मेरेपनका दुराग्रह होता है, वह भी आपहीका कराया हुआ है, अतः अब आप मेरे इस महामोहको दूर कीजिये। आप अपने भक्तोंके संसाररूप वृक्षके लिये कुठारके समान हैं, मैं प्रकृति और पुरुषका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे आप शरणागतवत्सलकी शरणमें आयी हूँ। आप भागवतधर्म जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, मैं आपको प्रणाम करती हूँ ॥ ७–११ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार माता देवहूतिने अपनी जो अभिलाषा प्रकट की, वह परम पवित्र और लोगोंकी मोक्षमार्गमें रति उत्पन्न करनेवाली थी, उसे सुनकर आत्मज्ञ सत्पुरुषोंकी गति श्रीकपिलजी उसकी मन-ही-मन प्रशंसा करने लगे और फिर मृदु मुसकानसे सुशोभित मुखारविन्दसे इस प्रकार कहने लगे ॥ १२ ॥

भगवान् कपिल बोले—माता! मेरे विचारसे अध्यात्मयोग ही मनुष्योंके आत्यन्तिक कल्याणका मुख्य साधन है, इसमें दुःख और सुखकी सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। साध्वि! उस योगके सभी अङ्गोंमें निपुणताकी आवश्यकता है, पहले नारदादि ऋषियोंके सामने, उनकी सुननेकी इच्छा होनेपर, मैंने उसका वर्णन किया था। वही अब मैं आपको सुनाता हूँ ॥ १३-१४ ॥

जीवके बन्धन और मोक्षका कारण मन ही माना गया है। विषयोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका हेतु होता है और परमात्मामें अनुरक्त होनेपर वही मोक्षका कारण बन जाता है। जिस समय यह मन मैं और मेरेपनके कारण होनेवाले काम-लोभ आदि विकारोंसे मुक्त हो जाता है, उस समय वह सुख-दुःखसे छूटकर शुद्ध और सम अवस्थामें आ जाता है। तब जीव अपने ज्ञान-वैराग्य और भक्तिसे युक्त हृदयसे आत्माको प्रकृतिसे परे, एकमात्र (अद्वितीय), भेदरहित, स्वयंप्रकाश, सूक्ष्म, अखण्ड और निर्लेप (सुख-दुःखशून्य) देखता है तथा प्रकृतिको शक्तिहीन अनुभव करता है। योगियोंके लिये भगवत्प्राप्तिके निमित्त सर्वात्मा श्रीहरिके प्रति की हुई भक्तिके समान और कोई मङ्गलमय मार्ग नहीं है। विवेकीजन सङ्ग या आसक्तिको ही आत्माका अच्छेद्य बन्धन मानते हैं, किन्तु वही सङ्ग या आसक्ति जब संतों—महापुरुषोंके प्रति हो जाती है, तो मोक्षका खुला द्वार बन जाती है ॥ १५–२० ॥

जो लोग सहनशील, दयालु, समस्त देहधारियोंके अकारण हितू, किसीके प्रति भी शत्रुभाव न रखनेवाले, शान्त, सरलस्वभाव और सत्पुरुषोंका मान करनेवाले होते हैं, जो मुझमें अनन्यभावसे सुदृढ़ प्रेम करते हैं, मेरे लिये सम्पूर्ण कर्म तथा अपने सगे-सम्बन्धियोंको भी त्याग देते हैं, और मेरे परायण रहकर मेरी पवित्र कथाओंका श्रवण, कीर्तन करते हैं तथा मुझहीमें चित्त लगाये रहते हैं—उन भक्तोंको संसारके तरह-तरहके ताप कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकते। साध्वि! ऐसे-ऐसे सर्वसङ्गपरित्यागी महापुरुष ही साधु होते हैं, तुम्हें उन्हींके सङ्गकी इच्छा करनी चाहिये, क्योंकि वे आसक्तिसे कारण होनेवाले सभी दोषोंको दूर कर देते हैं। सत्पुरुषोंके समागमसे मेरे पराक्रमोंका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगनेवाली कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही मोक्षमार्गमें श्रद्धा, प्रेम और भक्तिका क्रमशः विकास होता है। फिर मेरी सृष्टि आदि लीलाओंका चिन्तन करनेसे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक सुखोंमें वैराग्य हो जानेपर मनुष्य सावधानतापूर्वक योगके भक्तिप्रधान सरल उपायोंसे समाहित होकर मनोनिग्रहके लिये यत्न करता है। इस प्रकार प्रकृतिके गुणोंसे उत्पन्न हुए शब्दादि विषयोंका त्याग करनेसे, वैराग्ययुक्त ज्ञानसे, योगसे और मेरे प्रति की हुई सुदृढ भक्तिसे मनुष्य मुझ सर्वान्तर्यामीको इस देहमें ही प्राप्त कर लेता है ॥ २१–२७ ॥

देवहूति बोली—भगवन्! आपकी समुचित भक्तिका स्वरूप क्या है? और मेरी जैसी अबलाओंके लिये कैसी भक्ति ठीक है, जिससे कि मैं सहजहीमें आपके निर्वाणपदको प्राप्त कर सकूँ? निर्वाणस्वरूप प्रभो! जिसके द्वारा तत्त्वज्ञान होता है और जो लक्ष्यको बेधनेवाले बाणके समान भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाला है, वह आपका कहा हुआ योग कैसा है और उसके कितने अङ्ग हैं? हरे! यह सब आप मुझे इस प्रकार बतलाइये, जिससे कि आपकी कृपासे मैं मन्दमति स्त्रीजाति भी इस दुर्बोध विषयको सुगमतासे समझ सकूँ ॥ २८–३० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! जिसके शरीरसे उन्होंने स्वयं जन्म लिया था, उस अपनी माताका ऐसा अभिप्राय जानकर कपिलजीके हृदयमें स्नेह उमड़ आया और वे प्रकृति आदि तत्त्वोंका निरूपण करनेवाले शास्त्रको,

सरोवरपर ही ठहरे रहे। इधर मनुजी भी महारानी शतरूपाके सहित सुवर्णजटित रथपर सवार होकर तथा उसपर अपनी कन्याको भी बिठाकर पृथ्वीमें विचरते हुए, जो दिन भगवान्‌ने बताया था, उसी दिन शान्तिपरायण महर्षि कर्दमके आश्रमपर पहुँचे। सरस्वती नदीसे घिरा हुआ यह बिन्दु-सरोवर वह स्थान है, जहाँ अपने शरणागत भक्त कर्दमके प्रति दयार्द्र होनेपर भगवान्‌के नेत्रोंसे आँसुओंकी बूँदें गिरी थीं। यह तीर्थ बड़ा पवित्र है, इसका जल आरोग्यप्रद और अमृतके समान मधुर है तथा यहाँ महर्षिगण भी सर्वदा बने रहते हैं। यह स्थान सब ओरसे पवित्र वृक्ष-लताओंसे घिरा हुआ था, जिनमें तरह-तरहकी बोली बोलनेवाले पवित्र मृग और पक्षी रहते थे, तथा सभी ऋतुओंके फल-फूलोंसे लदी हुई वनावली भी उसकी शोभा बढ़ाती थी। वह पवित्र तीर्थ मतवाले पक्षियोंसे सेवित, मत्त मधुकरोंसे गुञ्जायमान, उन्मत्त मयूरोंकी नाट्यकलासे सुशोभित और मतवाली कोयलकी कुहू-कुहू-ध्वनिसे कूजित था। उसमें कदम्ब, चम्पक, अशोक, करञ्ज, बकुल, असन, कुन्द, मन्दार, कुटज और नये-नये आमके वृक्षोंकी बड़ी शोभा थी। वहाँ जलकाग, बत्तख आदि जलपर तैरनेवाले पक्षी, हंस, कुरर, जलमुर्ग, सारस, चकवा और चकोर आदि पक्षियोंका बड़ा मनोरम कोलाहल हो रहा था। इसी प्रकार हरिन, सूअर, स्याही, नीलगाय, हाथी, लंगूर, सिंह, वानर, नेवले और कस्तूरीमृग आदि पशुओंसे भी वह आश्रम भरा हुआ था ॥ ३५–४४ ॥

आदिराज महाराज मनुने उस पवित्र तीर्थमें कन्याके सहित पहुँचकर देखा कि मुनिवर कर्दम अग्निहोत्रसे निवृत्त होकर बैठे हुए हैं। बहुत दिनोंतक उग्र तपस्या करनेके कारण वे शरीरसे बड़े तेजस्वी दीख पड़ते थे तथा भगवान्‌की प्रेममयी चितवनके दर्शन और उनके उच्चारण किये हुए कर्णामृतरूप सुमधुर वचनोंको सुननेसे, इतने दिनोंतक तपस्या करनेपर भी वे विशेष दुर्बल नहीं जान पड़ते थे। उनका शरीर लंबा था, नेत्र कमलदलके समान विशाल और मनोहर थे, सिरपर जटाएँ सुशोभित थीं और कमरमें चीर-वस्त्र थे। वे निकटसे देखनेपर बिना सानपर चढ़ी हुई महामूल्य मणिके समान मलिन जान पड़ते थे। महाराज स्वायम्भुवमनुको अपनी कुटीमें आकर प्रणाम करते देख उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया और यथोचित सामग्रीसे उनका सत्कार किया ॥ ४५–४८ ॥

जब मनुजी उनकी पूजा ग्रहण कर स्वस्थ चित्तसे आसनपर बैठ गये, तब मुनिवर कर्दमने भगवान्‌की आज्ञाका स्मरण कर उन्हें मधुर वाणीसे प्रसन्न करते हुए कहा—'देव! आप भगवान्‌की पालनशक्तिरूप हैं, इसलिये आपका परिभ्रमण निःसन्देह सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंके संहारके लिये ही होता है। आप साक्षात् विष्णुस्वरूप हैं तथा भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, वायु, यम, धर्म और वरुण आदि रूप धारण करते हैं; आपको नमस्कार है। आप मणियोंसे जड़े हुए जयदायक रथपर सवार हो, अपने प्रचण्ड धनुषकी टङ्कारसे तथा उस रथकी घरघराहटसे ही दुष्टोंको भयभीत कर देते हैं और अपनी सेनाके चरणोंसे रौंदे हुए भूमण्डलको कँपाते अपनी उस विशाल सेनाको साथ लेकर पृथ्वीपर सूर्यके समान विचरते हैं। यदि आप ऐसा न करें तो चोर-डाकू भगवान्‌की बनायी हुई वर्णाश्रमधर्मकी मर्यादाको तत्काल नष्ट कर दें तथा विषयलोलुप लोग निरङ्कुश होकर सर्वत्र अधर्म फैला दें। यदि आप संसारकी ओरसे निश्चिन्त हो जायँ तो यह लोक दुराचारियोंके पंजेमें पड़कर नष्ट हो जाय। तो भी वीर! मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस समय यहाँ आपका आगमन किस प्रयोजनसे हुआ है; मैं निष्कपट चित्तसे उसे पूरा करनेकी चेष्टा करूँगा' ॥ ४९–५६ ॥

बाईसवाँ अध्याय

कर्दमप्रजापतिके साथ देवहूतिका विवाह

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार जब कर्दमजीने मनुजीके सम्पूर्ण गुणों और कर्मोंकी श्रेष्ठताका वर्णन किया, तो उन्होंने उन निवृत्तिपरायण मुनिसे कुछ सकुचाकर कहा ॥ १ ॥

मनुजी बोले—मुने! वेदमूर्ति भगवान् ब्रह्माने अपने वेदमय विग्रहकी रक्षाके लिये तप, विद्या और योगसे सम्पन्न तथा विषयोंमें अनासक्त आप ब्राह्मणोंको अपने विराट्स्वरूपके मुखसे प्रकट किया है और फिर आप लोगोंकी रक्षाके लिये ही उन्होंने अपनी सहस्रों भुजाओंसे हम क्षत्रियोंको उत्पन्न किया है। इस प्रकार ब्राह्मण उनके हृदय और क्षत्रिय

अपनी योगमायासे कपिलके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं । [फिर देवहूतिसे बोले—] राजकुमारी ! इस सुनहरे बाल, कमल-जैसे विशाल नेत्र और कमलाङ्कित चरणकमलों वाले शिशुके रूपमें कैटभासुरको मारनेवाले साक्षात् श्रीहरिने ही, ज्ञान विज्ञानद्वारा कर्मोंकी वासनाओंका मूलोच्छेदन करनेके लिये, तेरे गर्भमें प्रवेश किया था । ये अविद्याजनित मोहकी ग्रन्थियोंको काटकर पृथ्वीमें स्वच्छन्द विचरेंगे, सिद्धगणोंके स्वामी और साङ्ख्याचार्योंके भी माननीय होंगे तथा तेरी कीर्तिका विस्तार करते हुए लोकमें 'कपिल' नामसे विख्यात होंगे ॥ १२–१९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! जगत्की सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी उन दोनोंको इस प्रकार समझाकर नारद और सनकादिको साथ ले, हंसपर चढकर ब्रह्मलोकको चले गये । उन्होंने मरीचि आदि नौ पुत्रोंको विवाहके लिये वहीं छोड़ दिया । ब्रह्माजीके चले जानेपर कर्दमजीने उनके आज्ञानुसार उन प्रजापतियोंके साथ अपनी कन्याओंका विधिपूर्वक विवाह कर दिया । उन्होंने अपनी कला नामकी कन्या मरीचिको, अनसूया अत्रिको, श्रद्धा अङ्गिराको और हविर्भू पुलस्त्यको समर्पण की । पुलहको उनके अनुरूप गति नामकी कन्या दी, क्रतुके साथ परमसाध्वी क्रियाका विवाह किया, भृगुजीको ख्याति और वसिष्ठजीको अरुन्धती समर्पण की तथा अथर्वा ऋषिको शान्ति नामकी कन्या दी, जिससे यज्ञकर्मका विस्तार किया जाता है । कर्दमजीने उन विवाहित ऋषियोंका उनकी पत्नियोंके सहित खूब सत्कार किया । विदुरजी ! इस प्रकार विवाह हो जानेपर वे सब ऋषि कर्दमजीकी आज्ञा ले अति आनन्दपूर्वक अपने-अपने आश्रमोंको चले गये ॥ २०–२५ ॥

कर्दमजीने देखा कि उनके यहाँ साक्षात् देवाधिदेव श्रीहरिने ही अवतार लिया है, तो वे एकान्तमें उनके पास गये और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार कहने लगे, 'अहो ! अपने पापकर्मोंके कारण इस दुःखमय संसारमें नाना प्रकारसे पीडित होते हुए पुरुषोंपर देवगण तो बहुत काल बीतनेपर प्रसन्न होते हैं, किन्तु जिनके स्वरूपको योगिजन अनेकों जन्मोंके साधनसे सिद्ध हुई सुदृढ समाधिके द्वारा एकान्तमें देखनेका प्रयत्न करते हैं, अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाले वे ही श्रीहरि हम विषयलोलुपोंके अपराधोंका कुछ भी विचार न कर आज हमारे घर अवतीर्ण हुए हैं । आप वास्तवमें अपने भक्तोंका मान बढानेवाले हैं । आपने अपने वचनोंको सत्य करने और साङ्ख्ययोगका उपदेश करनेके लिये ही मेरे यहाँ अवतार लिया है । भगवन् ! यद्यपि आप रूपरहित हैं, तथापि आपके जो-जो अनूप रूप भक्तोंको प्रिय लगते हैं वे ही आपको भी ठीक मालूम होते हैं । अतः आप वे ही रूप धारण कर लेते हैं । आपका पाद पीठ (चरण रखनेकी चौकी) तत्त्व जिज्ञासु विद्वानोंके लिये सर्वदा वन्दनीय है तथा आप ऐश्वर्य, वैराग्य, यश, ज्ञान, वीर्य और श्री—इन छहों ऐश्वर्योंसे पूर्ण हैं । मैं आपको प्रणाम करता हूँ । भगवन् ! आप परब्रह्म हैं, सारी शक्तियाँ आपके अधीन हैं, प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, काल, ब्रह्मा, त्रिविध अहङ्कार, समस्त लोक एवं लोकपालोंके रूपमें आप ही प्रकट हैं, तथा आप ही इस सारे प्रपञ्चको चेतनशक्तिके द्वारा अपनेमें लीन कर लेते हैं । अतः इन सबसे परे भी आप ही हैं । भगवन् ! मैं आपकी शरण हूँ । प्रभो ! आपकी कृपासे मैं तीनों ऋणोंसे मुक्त हो गया हूँ और मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो चुके हैं । अब मैं सन्यास मार्गको ग्रहणकर आपका चिन्तन करते हुए निर्द्वन्द्व होकर विचरूँगा । आप समस्त प्रजाओंके स्वामी हैं, इसलिये इसके लिये मैं आपकी आज्ञा चाहता हूँ' ॥ २६–३४ ॥

श्रीभगवान् बोले—मुने ! वैदिक और लौकिक सभी कर्मोंमें संसारके लिये मेरा कथन ही प्रमाण है । इसलिये मैंने जो तुमसे कहा था कि 'मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगा', उसे सत्य करनेके लिये ही मैंने यह अवतार लिया है । इस लोकमें मेरा यह जन्म लिङ्गशरीरसे मुक्त होनेकी इच्छावाले पुरुषोंके लिये आत्मदर्शनमें उपयोगी प्रकृति आदि तत्त्वोंका विवेचन करनेके लिये ही हुआ है । आत्मज्ञानका यह सूक्ष्म मार्ग बहुत समयसे लुप्त हो गया है । इसे फिरसे प्रवर्तित करनेके लिये ही मेरा यह अवतार हुआ है—ऐसा जानो । मुने ! मैं आज्ञा देता हूँ, तुम इच्छानुसार जाओ और अपने सम्पूर्ण कर्म मुझे अर्पण करते हुए दुर्जय मृत्युको जीतकर मोक्षपद प्राप्त करनेके लिये मेरा भजन करो । मैं स्वयंप्रकाश और सम्पूर्ण जीवोंके अन्तःकरणोंमें रहनेवाला परमात्मा ही हूँ । अतः जब तुम विशुद्ध बुद्धिके द्वारा अपने अन्तःकरणमें मेरा साक्षात्कार कर लोगे, तो सब प्रकारके शोकोंसे छूटकर निर्भय पदपर स्थित हो जाओगे । माता देवहूतिको भी मैं सम्पूर्ण कर्मोंसे छुडानेवाला आत्मज्ञान प्रदान करूँगा, जिससे यह संसाररूप भयसे पार हो जायगी ॥ ३५–४० ॥

सरोवरपर ही ठहरे रहे । इधर मनुजी भी महारानी शतरूपाके सहित सुवर्णजटित रथपर सवार होकर तथा उसपर अपनी कन्याको भी बिठाकर पृथ्वीमें विचरते हुए, जो दिन भगवान्‌ने बताया था, उसी दिन शान्तिपरायण महर्षि कर्दमके आश्रमपर पहुँचे । सरस्वती नदीसे घिरा हुआ यह बिन्दु-सरोवर वह स्थान है, जहाँ अपने शरणागत भक्त कर्दमके प्रति दयार्द्र होनेपर भगवान्‌के नेत्रोंसे आँसुओंकी बूँदें गिरी थीं । यह तीर्थ बड़ा पवित्र है, इसका जल आरोग्यप्रद और अमृतके समान मधुर है तथा यहाँ महर्षिगण भी सर्वदा बने रहते हैं । यह स्थान सब ओरसे पवित्र वृक्ष-लताओंसे घिरा हुआ था, जिनमें तरह-तरहकी बोली बोलनेवाले पवित्र मृग और पक्षी रहते थे, तथा सभी ऋतुओंके फल-फूलोंसे लदी हुई वनावली भी उसकी शोभा बढ़ाती थी । वह पवित्र तीर्थ मतवाले पक्षियोंसे सेवित, मत्त मधुकरोंसे गुञ्जायमान, उन्मत्त मयूरोंकी नाटयकलासे सुशोभित और मतवाली कोयलकी कुहू-कुहू-ध्वनिसे कूजित था । उसमें कदम्ब, चम्पक, अशोक, करञ्ज, बकुल, असन, कुन्द, मन्दार, कुटज और नये-नये आमके वृक्षोंकी बड़ी शोभा थी। वहाँ जलकाग, बत्तख आदि जलपर तैरनेवाले पक्षी, हंस, कुरर, जलमुर्ग, सारस, चकवा और चकोर आदि पक्षियोंका बड़ा मनोरम कोलाहल हो रहा था । इसी प्रकार हरिन, सूअर, स्याही, नीलगाय, हाथी, लंगूर, सिंह, वानर, नेवले और कस्तूरीमृग आदि पशुओंसे भी वह आश्रम भरा हुआ था ॥ ३५–४४ ॥

आदिराज महाराज मनुने उस पवित्र तीर्थमें कन्याके सहित पहुँचकर देखा कि मुनिवर कर्दम अग्निहोत्रसे निवृत्त होकर बैठे हुए हैं । बहुत दिनोंतक उग्र तपस्या करनेके कारण वे शरीरसे बड़े तेजस्वी दीख पड़ते थे तथा भगवान्‌की प्रेममयी चितवनके दर्शन और उनके उच्चारण किये हुए कर्णामृतरूप सुमधुर वचनोंको सुननेसे, इतने दिनोंतक तपस्या करनेपर भी वे विशेष दुर्बल नहीं जान पड़ते थे । उनका शरीर लंबा था, नेत्र कमलदलके समान विशाल और मनोहर थे, सिरपर जटाएँ सुशोभित थीं और कमरमें चीर-वस्त्र थे । वे निकटसे देखनेपर बिना सानपर चढ़ी हुई महामूल्य मणिके समान मलिन जान पड़ते थे । महाराज स्वायम्भुवमनुको अपनी कुटीमें आकर प्रणाम करते देख उन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया और यथोचित सामग्रीसे उनका सत्कार किया ॥ ४५–४८ ॥

जब मनुजी उनकी पूजा ग्रहण कर स्वस्थ चित्तसे आसनपर बैठ गये, तब मुनिवर कर्दमने भगवान्‌की आज्ञाका स्मरण कर उन्हें मधुर वाणीसे प्रसन्न करते हुए कहा—'देव ! आप भगवान्‌की पालनशक्तिरूप हैं, इसलिये आपका परिभ्रमण निःसन्देह सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंके संहारके लिये ही होता है। आप साक्षात् विष्णुस्वरूप हैं तथा भिन्न-भिन्न कार्योंके लिये सूर्य, चन्द्र, अग्नि, इन्द्र, वायु, यम, धर्म और वरुण आदि रूप धारण करते हैं; आपको नमस्कार है । आप मणियोंसे जड़े हुए जयदायक रथपर सवार हो, अपने प्रचण्ड धनुषकी टङ्कारसे तथा उस रथकी घरघराहटसे ही दुष्टोंको भयभीत कर देते हैं और अपनी सेनाके चरणोंसे रौंदे हुए भूमण्डलको कँपाते अपनी उस विशाल सेनाको साथ लेकर पृथ्वीपर सूर्यके समान विचरते हैं । यदि आप ऐसा न करें तो चोर-डाकू भगवान्‌की बनायी हुई वर्णाश्रमधर्मकी मर्यादाको तत्काल नष्ट कर दें तथा विषयलोलुप लोग निरङ्कुश होकर सर्वत्र अधर्म फैला दें । यदि आप संसारकी ओरसे निश्चिन्त हो जायँ तो यह लोक दुराचारियोंके पंजेमें पड़कर नष्ट हो जाय । तो भी वीर ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस समय यहाँ आपका आगमन किस प्रयोजनसे हुआ है; मैं निष्कपट चित्तसे उसे पूरा करनेकी चेष्टा करूँगा' ॥ ४९–५६ ॥

बाईसवाँ अध्याय

कर्दमप्रजापतिके साथ देवहूतिका विवाह

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इस प्रकार जब कर्दमजीने मनुजीके सम्पूर्ण गुणों और कर्मोंकी श्रेष्ठताका वर्णन किया, तो उन्होंने उन निवृत्तिपरायण मुनिसे कुछ सकुचाकर कहा ॥ १ ॥

मनुजी बोले—मुने ! वेदमूर्ति भगवान् ब्रह्माने अपने वेदमय विग्रहकी रक्षाके लिये तप, विद्या और योगसे सम्पन्न तथा विषयोंमें अनासक्त आप ब्राह्मणोंको अपने विराट्स्वरूपके मुखसे प्रकट किया है और फिर आप लोगोंकी रक्षाके लिये ही उन्होंने अपनी सहस्रों भुजाओंसे हम क्षत्रियोंको उत्पन्न किया है । इस प्रकार ब्राह्मण उनके हृदय और क्षत्रिय

आपकी कृपासे मेरी जन्मपरम्परा समाप्त हो चुकी है, इसीसे इस दुस्तर अज्ञानान्धकारसे पार लगानेके लिये सुन्दर नेत्ररूप आप प्राप्त हुए हैं। आप सम्पूर्ण जीवोंके स्वामी भगवान् आदिपुरुष हैं तथा अज्ञानान्धकारसे अंधे हुए पुरुषोंके लिये सूर्यकी भाँति प्रकाशमान नेत्रके समान हैं। देव! इन देह-गेह आदिमें जो मैं मेरेपनका दुराग्रह होता है, वह भी आपहीका कराया हुआ है; अतः अब आप मेरे इस महामोहको दूर कीजिये। आप अपने भक्तोंके संसाररूप वृक्षके लिये कुठारके समान हैं; मैं प्रकृति और पुरुषका ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे आप शरणागतवत्सलकी शरणमें आयी हूँ। आप भागवतधर्म जाननेवालोंमें सबसे श्रेष्ठ हैं, मैं आपको प्रणाम करती हूँ ॥ ७–११ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार माता देवहूतिने अपनी जो अभिलाषा प्रकट की, वह परम पवित्र और लोगोंकी मोक्षमार्गमें रति उत्पन्न करनेवाली थी; उसे सुनकर आत्मज्ञ सत्पुरुषोंकी गति श्रीकपिलजी उसकी मन ही मन प्रशंसा करने लगे और फिर मृदु मुसकानसे सुशोभित मुखारविन्दसे इस प्रकार कहने लगे ॥ १२ ॥

भगवान् कपिल बोले—माता! मेरे विचारसे अध्यात्मयोग ही मनुष्योंके आत्यन्तिक कल्याणका मुख्य साधन है, इससे दुःख और सुखकी सर्वथा निवृत्ति हो जाती है। साध्वि! उस योगके सभी अङ्गोंमें निपुणताकी आवश्यकता है; पहले नारदादि ऋषियोंके सामने, उनकी सुननेकी इच्छा होनेपर, मैंने उसका वर्णन किया था। वही अब मैं आपको सुनाता हूँ ॥ १३-१४ ॥

जीवके बन्धन और मोक्षका कारण मन ही माना गया है। विषयोंमें आसक्त होनेपर वह बन्धनका हेतु होता है और परमात्मामें अनुरक्त होनेपर वही मोक्षका कारण बन जाता है। जिस समय यह मन मैं और मेरेपनके कारण होनेवाले काम लोभ आदि विकारोंसे मुक्त हो जाता है, उस समय वह सुख-दुःखसे छूटकर शुद्ध और सम अवस्थामें आ जाता है। तब जीव अपने ज्ञान-वैराग्य और भक्तिसे युक्त हृदयसे आत्माको प्रकृतिसे परे, एकमात्र (अद्वितीय), भेदरहित, स्वयम्प्रकाश, सूक्ष्म, अखण्ड और निर्लेप (सुख-दुःखशून्य) देखता है तथा प्रकृतिको शक्तिहीन अनुभव करता है। योगियोंके लिये भगवत्प्राप्तिके निमित्त सर्वात्मा श्रीहरिके प्रति की हुई भक्तिके समान और कोई मङ्गलमय मार्ग नहीं है। विवेकीजन सङ्ग या आसक्तिको ही आत्माका अच्छेद्य बन्धन मानते हैं; किन्तु वही सङ्ग या आसक्ति जब संतों—महापुरुषोंके प्रति हो जाती है, तो मोक्षका खुला द्वार बन जाती है ॥ १५–२० ॥

जो लोग सहनशील, दयालु, समस्त देहधारियोंके अकारण हितू, किसीके प्रति भी शत्रुभाव न रखनेवाले, शान्त, सरलस्वभाव और सत्पुरुषोंका मान करनेवाले होते हैं, जो मुझमें अनन्यभावसे सुदृढ प्रेम करते हैं, मेरे लिये सम्पूर्ण कर्म तथा अपने सगे सम्बन्धियोंको भी त्याग देते हैं, और मेरे परायण रहकर मेरी पवित्र कथाओंका श्रवण, कीर्तन करते हैं तथा मुझहीमें चित्त लगाये रहते हैं—उन भक्तोंको संसारके तरह-तरहके ताप कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकते। साध्वि! ऐसे-ऐसे सर्वसङ्गपरित्यागी महापुरुष ही साधु होते हैं, तुम्हें उन्हींके सङ्गकी इच्छा करनी चाहिये; क्योंकि वे आसक्तिके कारण होनेवाले सभी दोषोंको दूर कर देते हैं। सत्पुरुषोंके समागमसे मेरे पराक्रमोंका यथार्थ ज्ञान करानेवाली तथा हृदय और कानोंको प्रिय लगनेवाली कथाएँ होती हैं। उनका सेवन करनेसे शीघ्र ही मोक्षमार्गमें श्रद्धा, प्रेम और भक्तिका क्रमशः विकास होता है। फिर मेरी सृष्टि आदि लीलाओंका चिन्तन करनेसे प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा लौकिक एवं पारलौकिक सुखोंमें वैराग्य हो जानेपर मनुष्य सावधानतापूर्वक योगके भक्तिप्रधान सरल उपायोंसे समाहित होकर मनोनिग्रहके लिये यत्न करता है। इस प्रकार प्रकृतिके गुणोंसे उत्पन्न हुए शब्दादि विषयोंका त्याग करनेसे, वैराग्ययुक्त ज्ञानसे, योगसे और मेरे प्रति की हुई सुदृढ भक्तिसे मनुष्य मुझ सर्वान्तर्यामीको इस देहमें ही प्राप्त कर लेता है ॥ २१–२७ ॥

देवहूति बोली—भगवन्! आपकी समुचित भक्तिका स्वरूप क्या है? और मेरी जैसी अबलाओंके लिये कैसी भक्ति ठीक है, जिससे कि मैं सहजहीमें आपके निर्वाणपदको प्राप्त कर सकूँ? निर्वाणस्वरूप प्रभो! जिसके द्वारा तत्त्वज्ञान होता है और जो लक्ष्यको बेधनेवाले बाणके समान भगवान्की प्राप्ति करानेवाला है, वह आपका कहा हुआ योग कैसा है और उसके कितने अङ्ग हैं? हरे! यह सब आप मुझे इस प्रकार बतलाइये, जिससे कि आपकी कृपासे मैं मन्दमति स्त्रीजाति भी इस दुर्बोध विषयको सुगमतासे समझ सकूँ ॥ २८–३० ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! जिसके शरीरसे उन्होंने स्वयं जन्म लिया था, उस अपनी माताका ऐसा अभिप्राय जानकर कपिलजीके हृदयमें स्नेह उमड़ आया और वे प्रकृति आदि तत्त्वोंका निरूपण करनेवाले शास्त्रका,



वरको अपनी कन्या देकर महाराज मनु निश्चिन्त हो गये। चलती बार उसका वियोग न सह सकनेके कारण उन्होंने उत्कण्ठावश विह्वलचित्त होकर उसे अपनी छातीसे चिपटा लिया और 'बेटी! बेटी!' कहकर रोने लगे। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी झड़ी लग गयी और उनसे देवहूतिके सिरके सारे बाल भीग गये। फिर वे मुनिवर कर्दमसे सम्भाषण कर, उनकी आज्ञा ले रानीके सहित रथपर सवार हुए और अपने सेवकोंसहित ऋषिकुलसेवित सरस्वती नदीके दोनों तीरोंपर मुनियोंके आश्रमोंकी शोभा देखते हुए अपनी राजधानीमें चले आये ॥ २१–२७ ॥

अपने स्वामीको आते सुन मनुजीकी ब्रह्मावर्तनिवासिनी प्रजा बहुत प्रसन्न हुई और उनकी अगवानीके लिये गाने-बजानेके साथ स्तुति करती हुई नगरसे बाहर आयी। सब प्रकारकी सम्पदाओंसे युक्त बर्हिष्मती नगरी मनुजीकी राजधानी थी, जहाँ पृथ्वीको रसातलसे ले आनेके पश्चात् शरीर कँपाते समय श्रीवराह भगवान्के रोम झड़कर गिरे थे। वे रोम ही निरन्तर हरे-भरे रहनेवाले कुश और कास हुए, जिनके द्वारा मुनिजन यज्ञमें विघ्न डालनेवाले दैत्योंका तिरस्कार कर भगवान् यज्ञपुरुषकी यज्ञोंद्वारा आराधना करते हैं। महाराज मनुने भी श्रीवराहभगवान्से भूमिरूप निवासस्थान प्राप्त होनेपर इसी स्थानमें कुश और कासकी बर्हि (चटाई) बिछाकर श्रीयज्ञभगवान्की पूजा की थी। इन्हीं सब कारणोंसे वह पुरी बर्हिष्मती कहलायी ॥२८–३१ ॥

जिस बर्हिष्मती पुरीमें मनुजी निवास करते थे, उसमें पहुँचकर उन्होंने अपने त्रितापनाशक भवनमें प्रवेश किया। वहाँ अपनी भार्या और सन्ततिके सहित वे धर्म, अर्थ और मोक्षके अनुकूल भोगोंको भोगने लगे। प्रातःकाल होनेपर गन्धर्वगण अपनी स्त्रियोंके सहित उनका गुणगान करते थे; किन्तु मनुजी उसमें आसक्त न होकर प्रेमपूर्ण हृदयसे श्रीहरिकी कथाएँ ही सुना करते थे। वे इच्छानुसार भोग भोगनेमें समर्थ थे; किन्तु मननशील और भगवत्परायण होनेके कारण भोग उन्हें विचलित नहीं कर पाते थे। भगवान् विष्णुकी कथाओंका श्रवण, ध्यान, रचना और निरूपण करते रहनेके कारण उनके मन्वन्तरको व्यतीत करनेवाले क्षण जाते हुए भी नहीं जाते थे,—वे कभी व्यर्थ नहीं होते थे। इस प्रकार अपनी जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओंको भगवान् वासुदेवके कथाप्रसङ्गमें बिताते हुए उन्होंने अपने मन्वन्तरकी इकहत्तर चतुर्युगी पूरी कर दीं। व्यासनन्दन विदुरजी! जो पुरुष श्रीहरिके आश्रित रहता है उसे शारीरिक, मानसिक, दैविक, मानुषिक अथवा भौतिक दुःख किस प्रकार कष्ट पहुँचा सकते हैं। मनुजी निरन्तर समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहते थे। मुनियोंके पूछनेपर उन्होंने मनुष्योंके तथा समस्त वर्ण और आश्रमोंके अनेक प्रकारके मङ्गलमय धर्मोंका भी वर्णन किया (जो मनुसंहिताके रूपमें अब भी उपलब्ध है)। ॥ ३२–३८ ॥

जगत्के सर्वप्रथम सम्राट् महाराज मनु वास्तवमें कीर्तनके योग्य थे। यह मैंने उनके अद्भुत चरित्रका वर्णन किया, अब उनकी कन्या देवहूतिका प्रभाव सुनो ॥ ३९ ॥

तेईसवाँ अध्याय

कर्दम और देवहूतिका विहार

श्रीमैत्रेयजी बोले—विदुरजी! माता-पिताके चले जानेपर पतिके अभिप्रायको समझ लेनेमें कुशल साध्वी देवहूति कर्दमजीकी इस प्रकार प्रेमपूर्वक सेवा करने लगी, जैसे श्रीपार्वतीजी महादेवजीकी करती हैं। उसने काम-वासना, कपट, द्वेष, लोभ, पाप और मदका त्याग कर बड़ी सावधानी और लगनके साथ सेवामें तत्पर रहकर विश्वास, पवित्रता,

वास्तवमें प्रकृतिसे परे होकर भी जो प्रकृतिस्थ हो रहा है, उस पुरुषको सुख-दुःखोंके भोगनेमें कारण मानते हैं। तात्पर्य यह है कि यद्यपि भोक्तृत्व और कार्यत्वादि सभी अहङ्कारगत ही हैं, तथापि विकार जडमें ही होता है—इसलिये कार्यत्वादिमें उपाधिकी प्रधानता है, और भोक्तृत्व चेतनमें ही रह सकता है, इसलिये उसमें उपहितकी प्रधानता मानी गयी है ॥१–८॥

देवहूतिने कहा—पुरुषोत्तम! यह स्थूल-सूक्ष्म जगत् जिनका कार्य है तथा जो इसके कारण हैं, उन प्रकृति और पुरुषका लक्षण भी आप मुझसे कहिये ॥९॥

श्रीभगवान् बोले—जो त्रिगुणात्मक, अव्यक्त, नित्य और कार्य-कारणरूप है तथा स्वयं निर्विशेष होकर भी सम्पूर्ण विशेष धर्मोंका आश्रय है, उस प्रधाननामक तत्त्वको ही प्रकृति कहते हैं। पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्रा, चार अन्तःकरण और दस इन्द्रिय—इन चौबीस तत्त्वोंके समूहको विद्वान्लोग प्रकृतिका कार्यरूप ब्रह्म मानते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच महाभूत हैं, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—ये पाँच तन्मात्र माने गये हैं, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ और पायु—ये दस इन्द्रियाँ हैं तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार—इन चारके रूपमें एक ही अन्तःकरण अपनी सङ्कल्प, निश्चय, चिन्ता और अभिमानरूपा चार प्रकारकी वृत्तियोंसे लक्षित होता है। इस प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने सगुणब्रह्मके सन्निवेशस्थान इन चौबीस तत्त्वोंकी संख्या बतलायी है। इनके सिवा जो काल है, वह पचीसवाँ तत्त्व है। कुछ लोग कालको पुरुषसे भिन्न तत्त्व न मानकर पुरुषका प्रभाव अर्थात् ईश्वरकी संहारकारिणी शक्ति बताते हैं। इससे मायाके कार्यरूप देहादिमें आत्मत्वका अभिमान करके अहङ्कारसे मोहित और अपनेको कर्ता मानने वाले जीवको निरन्तर भय लगा रहता है। मनुपुत्रि! जिनकी प्रेरणासे गुणोंकी साम्यावस्थारूप निर्विशेष प्रकृतिमें गति उत्पन्न होती है, वास्तवमें वे पुरुषरूप भगवान् ही 'काल' कहे जाते हैं। इस प्रकार जो अपनी मायाके द्वारा सब प्राणियोंके भीतर जीवरूपसे और बाहर कालरूपसे व्याप्त हैं, वे भगवान् ही पचीसवाँ तत्त्व हैं ॥१०–१८॥

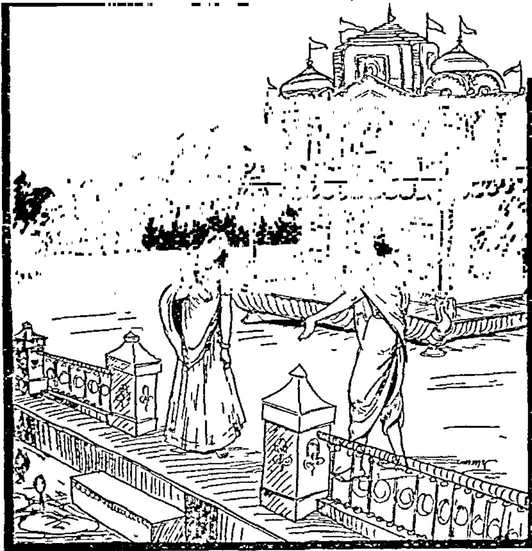
जब परमपुरुष परमात्माने जीवोंके अदृष्टवश क्षोभको प्राप्त हुई सम्पूर्ण जीवोंकी उत्पत्तिस्थानरूपा अपनी मायामें चिच्छक्तिरूप वीर्य स्थापित किया, तो उससे तेजोमय महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ। लय-विक्षेपादिसे रहित तथा जगत्के अङ्कुररूप इस महत्तत्त्वने अपनेमें स्थित विश्वको प्रकट करनेके लिये अपने स्वरूपको आच्छादित करनेवाले प्रलयकालीन अन्धकार को अपने ही तेजसे पी लिया ॥१९-२०॥

अब मैं प्रसङ्गवश तुमसे चतुर्व्यूहकी उपासनाका वर्णन करता हूँ। जो सत्त्वगुणमय, स्वच्छ, शान्त और भगवान्की उपलब्धिका स्थानरूप चित्त है, वही महत्तत्त्व है और उसीको 'वासुदेव' कहते हैं।* जिस प्रकार पृथ्वी आदि अन्य पदार्थोंके संसर्गसे पूर्व जल अपनी स्वाभाविक (फेन-तरङ्गादि रहित) अवस्थामें अत्यन्त स्वच्छ, शान्त, शीतल एवं मधुर होता है, उसी प्रकार अपनी स्वाभाविकी अवस्थाकी दृष्टिसे स्वच्छत्व, अविकारित्व और शान्तत्व ही चित्तका लक्षण कहा गया है। तदनन्तर भगवान्की वीर्यरूप चित्शक्तिसे उत्पन्न हुए महत्तत्त्वके विकृत होनेपर उससे क्रियाशक्तिप्रधान अहङ्कार उत्पन्न हुआ। वह वैकारिक, तैजस और तामस भेदसे तीन प्रकारका है। उसीसे क्रमशः मन, इन्द्रियाँ और पञ्चमहाभूत उत्पन्न हुए। इस भूत, इन्द्रिय और मनरूप अहङ्कारको ही पण्डितजन साक्षात् 'सङ्कर्षण' नामक सहस्र सिरवाले अनन्तदेव कहते हैं। इस अहङ्कारका देवतारूपसे कर्तृत्व, इन्द्रियरूपसे करणत्व और पञ्चभूतरूपसे कार्यत्व लक्षण है तथा सत्त्वादि गुणोंके सम्बन्धसे शान्तत्व, घोरत्व और मूढत्व भी इसीके लक्षण हैं। उपर्युक्त तीन प्रकारके अहङ्कार मेंसे वैकारिक अहङ्कारके विकृत होनेपर उससे मन हुआ, जिसके सङ्कल्प-विकल्पोंसे कामनाओंकी उत्पत्ति होती है। यह मनस्तत्त्व ही इन्द्रियोंके अधिष्ठाता 'अनिरुद्ध' के नामसे प्रसिद्ध है। योगिजन शरत्कालीन नीलकमलके समान श्याम वर्णवाले इन अनिरुद्धजीकी शनैः-शनैः मनको वशीभूत करके आराधना करते हैं। साध्वि! फिर तैजस अहङ्कारमें विकार होनेपर उससे बुद्धितत्त्व उत्पन्न हुआ। वस्तुका स्फुरणरूप विज्ञान और इन्द्रियोंके व्यापारमें सहायक होना—पदार्थोंका विशेष ज्ञान कराना—ये बुद्धिके कार्य हैं। वृत्तियोंके भेदसे संशय, विपर्यय (विपरीत ज्ञान), निश्चय, स्मृति और निद्रा भी बुद्धिके ही लक्षण हैं। यह बुद्धितत्त्व ही 'प्रद्युम्न' है।

* जिसे अध्यात्ममें चित्त कहते हैं, उसीको अधिभूतमें महत्तत्त्व कहा जाता है। चित्तमें अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञ और उपास्यदेव 'वासुदेव' है। इसी प्रकार अहङ्कारमें अधिष्ठाता 'रुद्र' और उपास्यदेव 'सङ्कर्षण' है, बुद्धिमें अधिष्ठाता 'ब्रह्मा' और उपास्यदेव 'प्रद्युम्न' है तथा मनमें अधिष्ठाता 'चन्द्रमा' और उपास्यदेव 'अनिरुद्ध' है।

शिखरोंपर सोनेके कलश रक्खे हुए थे। उसकी हीरेकी दीवारोंमें बढ़िया लाल जड़े हुए थे, जो ऐसे जान पड़ते थे मानो विमानकी आँखें हों, तथा उसे रंग-बिरंगे चँदोवे और बहुमूल्य सुनहरी बंदनवारोंसे सजाया गया था। उस विमानमें जहाँ-तहाँ कृत्रिम हंस और कबूतर आदि पक्षी बनाये गये थे, जो बिल्कुल सजीव-से मालूम पड़ते थे; उन्हें अपना सजातीय समझकर बहुत-से हंस और कबूतर उनके पास बैठ-बैठकर अपनी बोली बोलते थे। उसमें सुविधानुसार क्रीडा-स्थली, शयनगृह, बैठक, आँगन और चौक आदि बनाये गये थे—जिनके कारण वह विमान स्वयं कर्दमजीको भी विस्मित-सा कर रहा था ॥ १२–२१ ॥

ऐसे सुन्दर घरको भी जब देवहूतिने दासियोंके अभाव और अपने शरीरकी मलिनताके कारण बहुत प्रसन्न चित्तसे नहीं देखा, तो सबके आन्तरिक भावको परख लेनेवाले कर्दम-जीने स्वयं ही कहा—'भीरु ! तुम इस विन्दुसरोवरमें स्नान



करके विमानपर चढ़ जाओ; यह विष्णुभगवान्‌का रचा हुआ तीर्थ मनुष्योंकी सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है'॥२२-२३॥

कमललोचना देवहूतिने अपने पतिकी बात मानकर सरस्वतीके पवित्र जलसे भरे हुए उस सरोवरमें प्रवेश किया। उस समय वह बड़ी मैली-कुचैली साड़ी पहने हुए थी; उसके सिरके बाल चिपक जानेसे लटें पड़ गयी थीं, शरीरमें मैल जम गया था तथा स्तन कान्तिहीन हो गये थे। सरोवरके भीतर उसने एक महलमें एक हजार कन्याएँ देखीं। वे सभी किशोर अवस्थाकी थीं और उनके शरीरोंसे कमलकी-सी गन्ध आती थी। देवहूतिको देखते ही वे सब स्त्रियाँ सहसा खड़ी हो गयीं और हाथ जोड़कर कहने लगीं, 'हम आपकी दासियाँ हैं; हमें आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करें ?' ॥ २४–२७ ॥

विदुरजी ! तब उन विनीत रमणियोंने बहुमूल्य मसालों तथा गन्ध आदिसे मिश्रित जलसे मनस्विनी देवहूतिको स्नान कराया तथा उसे नवीन और निर्मल वस्त्र पहननेको दिये। फिर उन्होंने ये बहुत मूल्यके बड़े सुन्दर और कान्तिमान् आभूषण, सर्वगुणसम्पन्न भोजन और पीनेके लिये अमृतके समान स्वादिष्ट आसव प्रस्तुत किये। अब देवहूतिने दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब देखा तो उसे मालूम हुआ कि वह भाँति-भाँतिके सुगन्धित फूलोंके हारोंसे विभूषित है, स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुए है, उसका शरीर भी निर्मल और कान्तिमान् हो गया है तथा उन कन्याओंने बड़े आदरपूर्वक उसका माङ्गलिक श्रृङ्गार किया है। उसे सिरसे स्नान कराया गया है, अङ्ग-अङ्गमें सब प्रकारके आभूषण सजाये गये हैं तथा उसके गलेमें पदक, हाथोंमें कङ्कण और पैरोंमें छमछमाते हुए सोनेके पायजेब सुशोभित हैं। कमरमें पड़ी हुई सोनेकी रत्नजटित करधनीसे, बहुमूल्य मणियोंके हारसे और अङ्ग-अङ्गमें लगे हुए कुङ्कुमादि मङ्गलद्रव्योंसे उसकी अपूर्व शोभा हो रही है तथा उसका मुख सुन्दर दन्तावली, मनोहर भौंहें, कमलकी कलीसे स्पर्धा करनेवाले प्रेमकटाक्षमय सुन्दर नेत्र और नीली अलकावलीसे बड़ा ही सुन्दर जान पड़ता है। विदुरजी ! इस प्रकार दर्पणमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर जब देवहूतिने अपने प्रिय पतिदेवका स्मरण किया, तो अपनेको सहेलियोंके सहित वहीं पाया जहाँ प्रजापति कर्दमजी विराज-मान थे। उस समय अपनेको सहस्रों स्त्रियोंके सहित अपने प्राणनाथके सामने देख और इसे उनके योगका प्रभाव समझ-कर देवहूतिको बड़ा विस्मय हुआ ॥ २८–३५ ॥

कामरूप शत्रुको जीतनेवाले विदुरजी ! कर्दमजीने देखा कि देवहूतिका शरीर स्नान करनेसे अत्यन्त निर्मल हो गया है, और विवाहकालसे पूर्व उसका जैसा रूप था, उसी रूपको पाकर वह अपूर्व शोभासे सम्पन्न हो गयी है। उसका सुन्दर वक्षःस्थल चोलीसे ढका हुआ है, हजारों विद्याधरियाँ उसकी सेवामें लगी हुई हैं तथा उसके शरीरपर बढ़िया-बढ़िया वस्त्र शोभा पा रहे हैं। तब उन्होंने बड़े प्रेमसे उसे विमानपर चढ़ाया। उस समय अपनी प्रियाके प्रति अनुरक्त होनेपर भी

सत्पुरुषोंके साथ की जानेपर निष्काम धर्मका फल देनेवाली हो जाती है। संसारमें जिस पुरुषके कर्मोंसे न तो धर्मका सम्पादन होता है, न वैराग्य उत्पन्न होता है और न जो भगवान्‌की सेवारूप भक्तिके लिये किये जाते हैं उस पुरुषका जीवन जीते ही मुर्देके समान है। अवश्य ही मैं भगवान्‌की मायासे बहुत ठगी गयी, जो आप-जैसे मुक्तिदाता पतिदेवको पाकर भी मैंने संसारबन्धनसे छूटनेकी इच्छा नहीं की॥ ५१—५७॥

चौबीसवाँ अध्याय

कपिलदेवजीका जन्म

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—जब शीलवती मनुकुमारी देवहूतिने ऐसी वैराग्ययुक्त बातें कहीं, तो कृपालु कर्दममुनिको भगवान् विष्णुके कथनका स्मरण हो आया। तब उन्होंने उससे कहा॥ १॥

कर्दमजी बोले—दोषरहित राजकुमारी! तुम मनमें इस प्रकार दुखी मत हो, कुछ ही दिनोंमें तुम्हारे गर्भमें स्वयं श्रीविष्णुभगवान् पधारेंगे। प्रिये! तुमने अनेक प्रकारके व्रतोंका पालन किया है, अतः तुम्हारा कल्याण होगा। अब तुम संयम, नियम, तप और दानादि करती हुई श्रद्धापूर्वक भगवान्‌का भजन करो। इस प्रकार आराधना करनेसे श्रीहरि तुम्हारे गर्भसे अवतीर्ण होकर हमारा यश बढ़ावेंगे और ब्रह्मज्ञानका उपदेश करके तुम्हारे हृदयकी अहङ्कारमयी ग्रन्थिका छेदन करेंगे॥ २—४॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! प्रजापति कर्दमके इस सन्देशमें देवहूतिने आदरपूर्वक पूर्ण विश्वास किया और वह तन-मनसे निर्विकार, जगद्गुरु श्रीपुरुषोत्तम भगवान्‌की आराधना करने लगी। इस प्रकार बहुत समय बीत जानेपर भगवान् मधुसूदन कर्दमजीके वीर्यका आश्रय ले उसके गर्भसे इस प्रकार प्रकट हुए, जैसे काष्ठमेंसे अग्नि। उस समय आकाशमें मेघ जल बरसाते हुए गरज-गरजकर बाजे बजाने लगे, गन्धर्वगण गान करने लगे और अप्सराएँ आनन्दित होकर नाचने लगीं। आकाशसे देवताओंके बरसाये हुए दिव्य पुष्पोंकी वर्षा होने लगी; सब दिशाओंमें आनन्द छा गया, जलाशयोंका जल निर्मल हो गया और सभी जीवोंके मन प्रसन्न हो गये। इसी समय सरस्वती नदीसे घिरे हुए कर्दमजीके उस आश्रममें मरीचि आदि मुनियोंके सहित श्रीब्रह्माजी आये। शत्रुदमन विदुरजी! ब्रह्माजीको यह मालूम हो गया था कि साक्षात् परब्रह्म भगवान् विष्णु सांख्यशास्त्रका उपदेश करनेके लिये अपने विशुद्ध सत्त्वमय अंशसे अवतीर्ण हुए हैं। अतः उन्होंने—भगवान् जिस कार्यको करना चाहते थे, उसका विशुद्ध चित्तसे अनुमोदन किया और फिर अत्यन्त प्रीति-प्रफुल्लित हृदयसे कर्दमजीसे इस प्रकार कहा॥ ५—११॥



श्रीब्रह्माजी बोले—प्रिय कर्दम! तुम दूसरोंका मान रखनेवाले हो। तुमने मेरा सम्मान करते हुए जो मेरी आज्ञाका पालन किया है, इससे भी निष्कपटभावसे मेरी पूजा ही की है। पुत्रोंको अपने पिताकी सबसे बड़ी सेवा यही करनी चाहिये कि 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर आदरपूर्वक उनके आदेशको स्वीकार करें। बेटा! तुम्हारी ये सुन्दरी कन्याएँ अपने वंशोंद्वारा इस सृष्टिको अनेक प्रकारसे बढ़ावेंगी। अतः अब तुम इन मरीचि आदि मुनिवरोंको इनके स्वभाव और रुचिके अनुसार अपनी कन्याएँ समर्पण करो और संसारमें अपना सुयश फैलाओ। मुने! मैं जानता हूँ कि सम्पूर्ण प्राणियोंकी कामनाएँ पूर्ण करनेवाले आदिपुरुष श्रीनारायण ही

प्रकट हुआ, उससे वाक् इन्द्रिय और उसके अनन्तर वाक्का अधिष्ठाता अग्नि उत्पन्न हुआ। फिर नाकके छिद्र (नथुने) प्रकट हुए, उनसे प्राणसहित घ्राणेन्द्रिय उत्पन्न हुई तथा घ्राणके बाद उसका अधिष्ठाता वायु उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् नेत्रगोलक प्रकट हुए, उनसे चक्षु इन्द्रिय और उसके अनन्तर उसका अधिष्ठाता सूर्य उत्पन्न हुआ। फिर कानोंके छिद्र प्रकट हुए, उनसे उनकी इन्द्रिय श्रोत्र और उसके अभिमानी दिग्देवता प्रकट हुए। इसके बाद उस विराट् पुरुषके त्वचा उत्पन्न हुई। उससे रोम, मूँछ दाढ़ी तथा सिरके बाल प्रकट हुए। और उनके बाद त्वचाकी अभिमानी ओषधियाँ (अन्न आदि) उत्पन्न हुईं। इसके पश्चात् लिङ्ग प्रकट हुआ, उससे वीर्य और वीर्यके बाद लिङ्गका अभिमानी आपोदेव (जल) उत्पन्न हुआ। फिर गुदा प्रकट हुई, उससे अपानवायु और अपानके बाद उसका अभिमानी लोकोंको भयभीत करनेवाला मृत्युदेवता उत्पन्न हुआ। तदनन्तर हाथ प्रकट हुए, उनसे बल और बलके बाद हस्तेन्द्रियका अभिमानी इन्द्र उत्पन्न हुआ। फिर चरण प्रकट हुए, उनसे गति (गमनकी क्रिया) और फिर पादेन्द्रियका अभिमानी विष्णुदेवता उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार जब विराट् पुरुषके नाडियाँ प्रकट हुईं, तो उनसे रुधिर उत्पन्न हुआ और उससे नदियाँ हुईं। फिर उसके उदर (पेट) प्रकट हुआ, उससे क्षुधा पिपासाकी अभिव्यक्ति हुई और फिर उदरका अभिमानी समुद्रदेवता उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् उसके हृदय प्रकट हुआ, हृदयसे मनका प्राकट्य हुआ और मनके बाद उसका अभिमानी देवता चन्द्रमा हुआ। फिर हृदयसे ही बुद्धि और उसके बाद उसका अभिमानी ब्रह्मा, अहङ्कार और उसके अनन्तर उसका अभिमानी रुद्रदेवता तथा चित्त और उसके बाद उसका अभिमानी क्षेत्रज्ञ प्रकट हुआ ॥ ५१–६१ ॥

उपर्युक्त सब देवताओंमें क्षेत्रज्ञ ही प्रधान है, क्योंकि जब ये सारे देवता उत्पन्न होकर भी विराट् पुरुषको उठानेमें असमर्थ रहे, तो उसे उठानेके लिये क्रमशः फिर अपने अपने उत्पत्तिस्थानोंमें प्रविष्ट होने लगे। अग्निने वाणीके साथ मुखमें प्रवेश किया, परन्तु इससे विराट् पुरुष न उठा। वायुने घ्राणेन्द्रियके सहित नासाछिद्रोंमें प्रवेश किया, फिर भी विराट् पुरुष न उठा। सूर्यने चक्षुके सहित नेत्रोंमें प्रवेश किया, तब भी विराट् पुरुष न उठा। दिशाओंने श्रवणेन्द्रियके सहित कानोंमें प्रवेश किया, तो भी विराट् पुरुष न उठा। ओषधियोंने रोमोंके सहित त्वचामें प्रवेश किया, फिर भी विराट् पुरुष न उठा। जलने वीर्यके साथ लिङ्गमें प्रवेश किया, तब भी विराट् पुरुष न उठा। मृत्युने अपानके साथ गुदामें प्रवेश किया, फिर भी विराट् पुरुष न उठा। इन्द्रने बलके साथ हाथोंमें प्रवेश किया, परन्तु इससे भी विराट् पुरुष न उठा। विष्णुने गतिके सहित चरणोंमें प्रवेश किया, तो भी विराट् पुरुष न उठा। नदियोंने रुधिरके सहित नाडियोंमें प्रवेश किया, तब भी विराट् पुरुष न उठा। समुद्रने क्षुधा पिपासाके सहित उदरमें प्रवेश किया, फिर भी विराट् पुरुष न उठा। चन्द्रमाने मनके सहित हृदयमें प्रवेश किया, तो भी विराट् पुरुष न उठा। ब्रह्माने बुद्धिके सहित हृदयमें प्रवेश किया, तब भी विराट् पुरुष न उठा। रुद्रने अहङ्कारके सहित उसी हृदयमें प्रवेश किया, तो भी विराट् पुरुष न उठा। किन्तु जब चित्तके अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञने चित्तके सहित हृदयमें प्रवेश किया, तो विराट् पुरुष उसी समय जलसे उठकर खड़ा हो गया। जिस प्रकार लोकमें प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि चित्तके अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञकी सहायताके बिना सोये हुए प्राणीको अपने बलसे नहीं उठा सकते, उसी प्रकार विराट् पुरुषको भी वे क्षेत्रज्ञ परमात्माके बिना नहीं उठा सके। अतः भक्ति, वैराग्य और ज्ञानद्वारा उस अन्तरात्मस्वरूप क्षेत्रज्ञके स्वरूपका निश्चय करके उसका योगपरिशुद्ध बुद्धिसे इसी शरीरमें चिन्तन करना चाहिये ॥ ६२–७२ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

प्रकृति पुरुषके विवेकसे मोक्षप्राप्तिका वर्णन

श्रीभगवान् कहते हैं—माताजी! जिस तरह जलमें प्रतिबिम्बित सूर्यके साथ जलके शीतलता, चञ्चलता आदि गुणोंका सम्बन्ध नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृतिके कार्य शरीरमें स्थित रहनेपर भी आत्मा वास्तवमें उसके सुख दुःखादि धर्मोंसे लिप्त नहीं होता, क्योंकि वह स्वभावसे निर्विकार, अकर्ता और निर्गुण है। किन्तु अज्ञानवश जब वही प्राकृत गुणोंसे अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है, तो अहङ्कारसे मोहित होकर 'मैं कर्ता हूँ'—ऐसा मानने लगता है। उस अभिमानके कारण वह देहके संसर्गसे किये हुए पुण्य-पापरूप कर्मोंके दोषसे अपनी स्वाधीनता और शान्ति खो बैठता है

जिसे साङ्ख्य कहते हैं, तथा भक्ति-विस्तारके साधनोंका वर्णन करने लगे ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान् बोले—माता ! जिसका चित्त एकमात्र भगवान्में ही लग गया है, ऐसे मनुष्यकी वेदविहित कर्मोंमें लगी हुई तथा विषयोंका ज्ञान करानेवाली (कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय—दोनों प्रकारकी) इन्द्रियोंकी जो सत्त्वमूर्ति श्रीहरिके प्रति स्वाभाविकी प्रवृत्ति है, वही भगवान्की अहैतुकी भक्ति है । यह मुक्तिसे भी बढ़कर है; क्योंकि जठरानल जिस प्रकार खाये हुए अन्नको पचाता है, उसी प्रकार यह भी कर्मसंस्कारोंके भंडाररूप लिङ्गशरीरको तत्काल भस्म कर देती है । मेरी चरणसेवामें प्रीति रखनेवाले और मेरी ही प्रसन्नताके लिये समस्त कार्य करनेवाले कितने ही बड़भागी भक्त, जो एक-दूसरेसे मिलकर प्रेमपूर्वक मेरे ही पराक्रमोंकी चर्चा किया करते हैं, मेरे साथ एकीभाव (सायुज्यमोक्ष) की भी इच्छा नहीं करते । जननी ! वे साधुजन अरुण नयन एवं मनोहर मुखारविन्दसे युक्त मेरे परम सुन्दर और वरदायक दिव्यरूपोंकी झाँकी करते हैं, और उनके साथ सप्रेम सम्भाषण करते हैं—जिसके लिये बड़े-बड़े तपस्वी भी लालायित रहते हैं । दर्शनीय अङ्ग-प्रत्यङ्ग, उदार हास-विलास, मनोहर चितवन और सुमधुर वाणीसे युक्त मेरे उन रूपोंकी माधुरीमें मन और इन्द्रियोंके फँस जानेसे वे मुक्तिकी इच्छा तो नहीं करते, किन्तु मेरी भक्ति उन्हें उस परमपदकी प्राप्ति करा ही देती है । अविद्याकी निवृत्ति हो जानेपर यद्यपि वे मुझ मायापतिके सत्यादि लोकोंकी भोगसम्पत्ति, भक्तिकी प्रवृत्तिके पश्चात् स्वयं प्राप्त होनेवाली अष्टसिद्धि अथवा वैकुण्ठलोकके भगवदीय ऐश्वर्यकी भी इच्छा नहीं करते, तथापि मेरे धाममें पहुँचनेपर उन्हें ये सब विभूतियाँ स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं । जिनका एकमात्र मैं ही प्रिय, आत्मा, पुत्र, मित्र, गुरु, सुहृद् और इष्टदेव हूँ—वे मेरे ही आश्रयमें रहनेवाले भक्तजन शान्तिमय वैकुण्ठधाममें पहुँचकर किसी प्रकार भी इन दिव्य भोगोंसे रहित नहीं होते और न उन्हें मेरा कालचक्र ही ग्रस सकता है ॥ ३२–३८ ॥

माताजी ! जो लोग इहलोक, परलोक और इन दोनों लोकोंमें साथ जानेवाले वासनामय लिङ्गदेहको तथा शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले धन, पशु और गृह आदि सम्पूर्ण पदार्थोंको छोड़कर अनन्य भक्तिसे सब प्रकार मेरा ही भजन करते हैं—उन्हें मैं मृत्युरूप संसारसागरसे पार कर देता हूँ । मैं साक्षात् भगवान् हूँ, प्रकृति और पुरुषका भी प्रभु हूँ तथा समस्त प्राणियोंका आत्मा हूँ; मेरे सिवा और किसीकी भी सहायतासे मृत्युरूप महाभयसे छुटकारा नहीं मिल सकता । मेरे भयसे वायु चलती है, मेरे भयसे सूर्य तपता है, मेरे भयसे मेघ बरसता और अग्नि जलाती है तथा मेरे ही भयसे मृत्यु अपने कार्यमें प्रवृत्त होता है । योगिजन ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तियोगके द्वारा शान्ति प्राप्त करनेके लिये मेरे निर्भय चरणकमलोंका आश्रय लेते हैं । संसारमें मनुष्यके लिये सबसे बड़ी कल्याणप्राप्ति यही है कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा मुझमें लगकर स्थिर हो जाय ॥३९–४४॥

छब्बीसवाँ अध्याय

महदादि भिन्न-भिन्न तत्त्वोंकी उत्पत्तिका वर्णन

श्रीभगवान् बोले—माताजी ! अब मैं तुम्हें प्रकृति आदि सब तत्त्वोंके अलग-अलग लक्षण बताता हूँ; इन्हें जानकर मनुष्य प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त हो जाता है । आत्मदर्शनरूप ज्ञान ही पुरुषके मोक्षका कारण है और वही उसकी अहङ्काररूप हृदयग्रन्थिका छेदन करनेवाला है, ऐसा पण्डितजन कहते हैं । उस ज्ञानका भी मैं तुम्हारे आगे वर्णन करता हूँ । जिससे यह सारा जगत् व्याप्त है, तथा जिसकी सत्तासे यह प्रकाशित होता है, वह आत्मा ही पुरुष है । वह अनादि, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, अन्तःकरणमें स्फुरित होनेवाला और स्वयमप्रकाश है । उस सर्वव्यापक पुरुषने अपने पास स्वतः ही प्राप्त हुई अव्यक्त और त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मायाको लीलासे ही स्वीकार कर रक्खा है । इस प्रकृतिको अपने सत्त्वादि गुणोंसे उन्हींके अनुरूप तरह-तरहकी प्रजा रचते देख वह तत्काल उसकी ज्ञानको आच्छादित करनेवाली आवरणशक्तिके द्वारा उसीमें मोहित हो गया, अपने स्वरूपको भूल गया । इस प्रकार प्रकृतिमें अपनेपनका अध्यास हो जानेसे पुरुष प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जानेवाले कर्मोंमें अपना कर्तृत्व मान लेता है । इस कर्तृत्वाभिमानसे ही अकर्ता, स्वाधीन, साक्षी और आनन्दस्वरूप पुरुषको कर्मोंका बन्धन, भोगके विषयमें परतन्त्रता तथा जन्म-मृत्युरूप दुःखपरम्परा प्राप्त होती है । कार्यरूप शरीर, कारणरूप इन्द्रिय तथा कर्तारूप इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओंमें पुरुष जो अपनेपनका आरोप कर लेता है, उसमें पण्डितजन प्रकृतिको ही कारण मानते हैं तथा

अनेकों जन्मोंमें बहुत समयतक इस प्रकार आत्मचिन्तनमें ही निमग्न रहता है, तो उसे ब्रह्मलोकपर्यन्त सभी प्रकारके भोगोंसे वैराग्य हो जाता है। मेरा वह धैर्यवान् भक्त मेरी ही महती कृपासे तत्त्वज्ञान प्राप्त करके आत्मानुभवके द्वारा सारे संशयोंसे मुक्त हो जाता है और फिर लिङ्गदेहका नाश होनेपर एकमात्र मेरे ही आश्रित अपने स्वरूपभूत कैवल्य-संज्ञक मङ्गलमय पदको सहजमें ही प्राप्त कर लेता है, जहाँ पहुँचनेपर योगी फिर लौटकर नहीं आता। माताजी! यदि योगीका चित्त केवल योगसाधनसे ही प्राप्त होनेवाली माया-मयी अणिमादि सिद्धियोंमें नहीं फँसता, तो उसे मेरा अविनाशी परमपद प्राप्त होता है—जहाँ मृत्युकी कुछ भी दाल नहीं गलती ॥ २१–३० ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

अष्टाङ्गयोगकी विधि

कपिलभगवान् कहते हैं—माताजी! अब मैं तुम्हें सबीज (ध्येयस्वरूपके आलम्बनसे युक्त) योगका लक्षण बताता हूँ, जिसके द्वारा चित्त शुद्ध एवं प्रसन्न होकर परमात्माके मार्गमें प्रवृत्त हो जाता है। यथाशक्ति अपने शास्त्रविहित कर्तव्योंका पालन करना तथा शास्त्रविरुद्ध आचरणका परित्याग करना, प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहना, आत्मज्ञानियोंके चरणोंकी पूजा करना, विषयवासनाओंको बढ़ानेवाले कर्मोंसे दूर रहना, संसारबन्धनसे छुड़ानेवाले धर्मोंमें प्रेम करना, पवित्र और परिमित भोजन करना, निरन्तर एकान्त और निर्भय स्थानमें रहना, मन, वाणी और शरीरसे किसी जीवको न सताना, सत्य बोलना, चोरी न करना, आवश्यकतासे अधिक वस्तुओंका संग्रह न करना, ब्रह्मचर्यका पालन करना, तपस्या करना (धर्मपालनके लिये कष्ट सहना), बाहर-भीतरसे पवित्र रहना, शास्त्रोंका अध्ययन करना, भगवान्‌की पूजा करना, वाणीका संयम करना तथा आत्म-चिन्तन करना, उत्तम आसनोंका अभ्यास करके स्थिरतापूर्वक बैठना, धीरे-धीरे प्राणायामके द्वारा श्वासको जीतना, इन्द्रियोंको मनके द्वारा विषयोंसे हटाकर अपने हृदयमें ले जाना—अन्तर्मुखी करना, मूलाधार आदि किसी एक केन्द्रमें मनके सहित प्राणोंको स्थिर करना, निरन्तर भगवान्‌की लीलाओंका चिन्तन करना और चित्तको समाहित करना, आत्माकार बनाना—इनसे तथा व्रत-दानादि दूसरे साधनोंसे भी सावधानतापूर्वक प्राणोंको जीतकर बुद्धिके द्वारा अपने कुमार्ग-गामी दुष्ट चित्तको धीरे-धीरे एकाग्र करे, परमात्माके ध्यानमें लगावे ॥ १–७ ॥

पहले आसनको जीते (एक आसनसे बहुत देरतक बैठनेका अभ्यास करे), फिर प्राणायामके अभ्यासके लिये पवित्र देशमें कुश मृगचर्मादिसे युक्त आसन बिछावे। उसपर शरीरको सीधा और स्थिर रखते हुए सुखपूर्वक बैठकर अभ्यास करे। आरम्भमें पूरक, कुम्भक और रेचक क्रमसे अथवा इसके विपरीत रेचक, कुम्भक और पूरक करके प्राणके मार्गका शोधन करे—जिससे चित्त स्थिर और निश्चल हो जाय। जिस प्रकार वायु और अग्निसे तपाया हुआ सोना अपने मलको त्यागकर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार जो योगी प्राणवायुको जीत लेता है उसका मन बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाता है। अतः योगीको उचित है कि प्राणायामसे अपने वात पित्तादिजनित दोषोंको, धारणासे (किसी एक वस्तुपर मनको स्थिर करनेसे) पापोंको, प्रत्याहारसे विषयोंके सम्बन्धको और ध्यानसे राग द्वेषादि दुर्गुणोंको दूर करे। जब योगका अभ्यास करते-करते चित्त निर्मल और एकाग्र हो जाय, तो नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि जमाकर इस प्रकार भगवान्‌की मूर्तिका ध्यान करे ॥ ८–१२ ॥

भगवान्‌का मुखकमल खिला हुआ है, नेत्र कमलके भीतरी भागके समान कुछ-कुछ ललाई लिये हुए हैं, शरीर नीलकमल-दलके समान श्याम है; हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये हैं। रेशमी पीताम्बर कमलकी केसरके समान सुशोभित है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सचिह्न विराजमान है और गलेमें कौस्तुम-मणि पड़ी हुई है। वनमाला चरणोंतक लटकी हुई है, जिसके चारों ओर भौंरे सुगन्धसे मतवाले होकर गुंजार कर रहे हैं; अङ्ग प्रत्यङ्गोंमें महामूल्य हार, कङ्कण, किरीट, भुजबन्ध और नूपुर आदि आभूषण विराजमान हैं। कटिप्रदेश काञ्चीकलापसे विभूषित है; भक्तोंके हृदयकमलको ही भगवान्‌ने अपना आसन बना रखा है। उनका दर्शनीय श्यामसुन्दर स्वरूप अत्यन्त शान्त एवं मन और नयनोंको आनन्दित करनेवाला है; बड़ी मनोहर झाँकी है। भगवान् निरन्तर सम्पूर्ण लोकोंसे वन्दित हैं, उनकी अति सुन्दर किशोर अवस्था है, वे भक्तोंपर कृपा करनेके लिये आतुर हो रहे हैं। उनका पवित्र यश परम कीर्तनीय है और वे युधिष्ठिर आदि



श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान् कपिलके इस प्रकार कहनेपर प्रजापति कर्दमजी उनकी परिक्रमा कर प्रसन्नतापूर्वक वनको चले गये। वहाँ अहिंसामय संन्यास-धर्मका पालन करते हुए वे एकमात्र श्रीभगवान्‌की शरण हो गये तथा अग्नि और आश्रमका त्याग करके निःसङ्गभावसे पृथ्वीपर विचरने लगे। जो कार्यकारणसे अतीत है, निर्गुण होनेपर भी सगुण-सा जान पड़ता है और अनन्य भक्तिसे ही प्रत्यक्ष होता है, उस परब्रह्ममें उन्होंने अपना मन लगा दिया। वे अहङ्कार, ममता और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंसे छूटकर सर्वत्र समानभाव रखते हुए सबमें अपने आत्माको ही देखने लगे, अन्तर्मुखवृत्तिके कारण शान्त और गम्भीरचित्त हो जानेसे तरंगहीन प्रशान्त समुद्रके समान जान पड़ने लगे, परम भक्तिभावके द्वारा सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ श्रीवासुदेवमें चित्त स्थिर हो जानेसे सारे बन्धनोंसे मुक्त हो गये। तथा सम्पूर्ण भूतोंमें अपने आत्मा श्रीभगवान्‌को और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मस्वरूप श्रीहरिमें स्थित देखने लगे। इस प्रकार इच्छा और द्वेषसे रहित, सर्वत्र समबुद्धि और भगवद्भक्तिसे सम्पन्न होकर श्रीकर्दमजीने भगवान्‌का परमपद प्राप्त कर लिया ॥ ४१–४७ ॥

पचीसवाँ अध्याय

देवहूतिका प्रश्न तथा भगवान् कपिलद्वारा भक्तियोगकी महिमाका वर्णन

शौनकजीने पूछा—सूतजी! तत्त्वोंकी संख्या करनेवाले भगवान् कपिल साक्षात् अजन्मा नारायण होकर भी लोगोंको आत्मज्ञानका उपदेश करनेके लिये अपनी मायासे उत्पन्न हुए थे। मैंने भगवान्‌के बहुत-से चरित्र सुने हैं, तथापि इन योगिप्रवर पुरुषश्रेष्ठ कपिलजीकी कीर्तिको सुनते-सुनते मेरी इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होतीं। सर्वथा स्वतन्त्र श्रीहरि अपनी योगमायाद्वारा भक्तोंकी इच्छाके अनुसार शरीर धारण करके जो-जो लीलाएँ करते हैं, वे सभी कीर्तन करनेयोग्य हैं; अतः आप मुझे वे सभी सुनाइये, मुझे उन्हें सुननेमें बड़ी श्रद्धा है ॥ १–३ ॥

सूतजी बोले—मुने! आपहीकी भाँति जब विदुरने भी यह आत्मज्ञानविषयक प्रश्न किया, तो श्रीव्यासजीके सखा भगवान् मैत्रेयजी प्रसन्न होकर इस प्रकार कहने लगे ॥ ४ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! कहते हैं, पिताके वनमें चले जानेपर भगवान् कपिलजी माताका प्रिय करनेकी इच्छासे उस बिन्दुसर तीर्थमें रहने लगे। एक दिन तत्त्वमार्गके पारदर्शी भगवान् कपिल कर्मकलापसे विरत हो, आसनपर विराजमान थे। उस समय उनकी भगवत्ताके सूचक ब्रह्माजीके वचनोंका स्मरण करके देवहूतिने उनसे कहा ॥ ५-६ ॥



देवहूति बोली—ब्रह्मन्! इन दुष्ट इन्द्रियोंकी विषय-लालसासे मैं बहुत तंग आ गयी हूँ और इनकी इच्छा पूरी करते रहनेसे ही घोर अज्ञानान्धकारमें पड़ी हुई हूँ। अब

हो जाता है, उसका हृदय भक्तिसे द्रवित हो जाता है, शरीरमें आनन्दातिरेकके कारण रोमाञ्च होने लगता है, उत्कण्ठाजनित प्रेमाश्रुओंकी धारामें वह बारंबार अपने शरीरको नहलाता है और फिर मछली पकड़नेके काँटेके समान श्रीहरिको अपनी ओर आकर्षित करनेके साधनरूप अपने चित्तको भी धीरे धीरे ध्येय वस्तुसे हटा लेता है। *अर्थात् उसकी ध्यान करनेवाली वृत्ति ही नष्ट हो जाती है। ध्येयका आधार तो ध्यानाकार वृत्ति ही है।* इस प्रकार ध्येयका परित्याग हो जानेपर जब उसका मन निरालम्ब (आश्रयरहित) हो जाता है, ध्यातापनके भावसे विरत हो जाता है और ध्यानजनित परमानन्दके अनुभवसे उसको अन्य विषयोंसे वैराग्य तो पहले ही हुआ रहता है—उस समय वह (मन) तत्काल ही लयको प्राप्त हो जाता है अर्थात् वृत्तिरूपताका परित्याग कर ब्रह्माकारमें परिणत हो जाता है। ठीक जिस प्रकार तेल आदिके चुक जानेपर दीपशिखा अपने कारणरूप तेजस्-तत्त्वमें लीन हो जाती है। इस अवस्थाके प्राप्त होनेपर जीव गुणप्रवाहरूप देहादि उपाधिके निवृत्त हो जानेके कारण *ध्याता, ध्येय आदि विभागसे रहित एक अखण्ड परमात्माको ही सर्वत्र अनुगत देखता है।* *योगाभ्याससे प्राप्त हुई चित्तकी इस अविद्यारहित लयरूप निवृत्तिसे अपनी सुख दुःखरहित* ब्रह्मरूप महिमामें स्थित होकर परमात्मतत्त्वका साक्षात्कार कर लेनेपर वह योगी जिस सुख दुःखके भोक्तृत्वको पहले अज्ञानवश अपने स्वरूपमें देखता था, उसे अब अविद्याकृत अहङ्कारमें ही देखता है। जिस प्रकार मदिराके मदसे मतवाले पुरुषको अपनी कमरपर लपेटे हुए वस्त्रके रहने या गिरनेकी कुछ भी सुधि नहीं रहती; उसी प्रकार चरमावस्थाको प्राप्त हुए सिद्ध पुरुषको भी अपने देहके बैठने-उठने अथवा दैववश कहीं जाने या लौट आनेके विषयमें कुछ भी ज्ञान नहीं रहता; क्योंकि वह अपने परमानन्दमय स्वरूपमें स्थित है। उसका शरीर तो पूर्वजन्मके संस्कारोंके अधीन है, अतः वह, जबतक उसका आरम्भक प्रारब्ध शेष है तबतक, इन्द्रियोंके सहित जीवित रहता है; किन्तु जिसे समाधिपर्यन्त योगकी स्थिति प्राप्त हो गयी है और जिसने परमात्मतत्त्वको भी भलीभाँति जान लिया है, वह सिद्ध पुरुष पुत्र कलत्रादिके सहित इस शरीरको स्वप्नमें प्रतीत होनेवाले शरीरोंके समान फिर स्वीकार नहीं करता—फिर उसमें अहंता-ममता नहीं करता ॥ ३४–३८ ॥

जिस प्रकार अत्यन्त स्नेहके कारण पुत्र और धनादिमें भी साधारण जीवोंकी आत्मबुद्धि रहती है, किन्तु थोड़ा-सा विचार करनेसे ही वे उनसे स्पष्टतया अलग दिखायी देते हैं—उसी प्रकार जिन्हें यह अपना आत्मा मान बैठा है, उन देहादिसे भी उनका साक्षी पुरुष पृथक् ही है। जिस प्रकार जलती हुई लकड़ीसे निकली हुई चिनगारीसे, स्वयं अग्निसे ही प्रकट हुए धुएँसे तथा अग्निरूप मानी जानेवाली उस जलती हुई लकड़ीसे भी अग्नि वास्तवमें पृथक् ही है—उसी प्रकार भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरणसे उनका साक्षी आत्मा अलग है, तथा जीव कहलानेवाले उस आत्मासे भी ब्रह्मनामधारी भगवान् भिन्न है और प्रकृतिसे उसके सञ्चालक पुरुषोत्तम भिन्न हैं। परन्तु *भगवान्‌से भिन्न कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार देहदृष्टिसे जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—चारों प्रकारके प्राणी* पञ्चभूतमात्र हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण जीवोंमें आत्माको और आत्मामें सम्पूर्ण जीवोंको अनन्यभावसे अनुगत देखे। जिस प्रकार एक ही अग्नि अपने पृथक् पृथक् आश्रयोंमें उनकी विभिन्नताके कारण भिन्न भिन्न आकारका दिखायी देता है, उसी प्रकार देव मनुष्यादि शरीरोंमें रहनेवाला एक ही आत्मा अपने आश्रयोंके गुणभेदके कारण भिन्न भिन्न प्रकारका भासता है। अतः भगवान्‌का भक्त जीवके स्वरूपको छिपा देनेवाली कार्यकारणरूपसे परिणामको प्राप्त हुई भगवान्‌की इस अचिन्त्य शक्तिमयी मायाको भगवान्‌की कृपासे ही जीतकर अपने वास्तविक स्वरूप—ब्रह्मरूपमें स्थित होता है ॥ ३९–४४ ॥

उनतीसवाँ अध्याय

भक्तिका मर्म और कालकी महिमा

देवहूतिने पूछा—प्रभो! प्रकृति, पुरुष और महत्-तत्त्वादिका जैसा लक्षण साङ्ख्यशास्त्रमें कहा गया है तथा जिसके द्वारा उनका वास्तविक स्वरूप अलग अलग जाना जाता है—वह आपने मुझे बताया। अब आप कृपा करके उस भक्तियोगका मार्ग मुझे विस्तारपूर्वक सुनाइये, जिसे आपने इन सबके ज्ञानका मूल हेतु कहा है—अर्थात् जिसके लिये इन सबके स्वरूपका ज्ञान आवश्यक होता है अथवा जिसके द्वारा इन सबके स्वरूपका वास्तविक ज्ञान होता है। इसके सिवा जीवोंकी जन्म मरणरूपा अनेक प्रकारकी गतिका भी वर्णन कीजिये; इसीके सुननेसे जीवको सब प्रकारकी वस्तुओंसे

जिसे साङ्ख्य कहते हैं, तथा भक्ति-विस्तारके साधनोंका वर्णन करने लगे ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान् बोले—माता ! जिसका चित्त एकमात्र भगवान्में ही लग गया है, ऐसे मनुष्यकी वेदविहित कर्मोंमें लगी हुई तथा विषयोंका ज्ञान करानेवाली (कर्मेन्द्रिय एवं ज्ञानेन्द्रिय—दोनों प्रकारकी) इन्द्रियोंकी जो सत्त्वमूर्ति श्रीहरिके प्रति स्वाभाविकी प्रवृत्ति है, वही भगवान्की अहैतुकी भक्ति है । यह मुक्तिसे भी बढ़कर है; क्योंकि जठरानल जिस प्रकार खाये हुए अन्नको पचाता है, उसी प्रकार यह भी कर्मसंस्कारोंके भंडाररूप लिङ्गशरीरको तत्काल भस्म कर देती है । मेरी चरणसेवामें प्रीति रखनेवाले और मेरी ही प्रसन्नताके लिये समस्त कार्य करनेवाले कितने ही बड़भागी भक्त, जो एक-दूसरेसे मिलकर प्रेमपूर्वक मेरे ही पराक्रमोंकी चर्चा किया करते हैं, मेरे साथ एकीभाव (सायुज्यमोक्ष) की भी इच्छा नहीं करते । जननी ! वे साधुजन अरुण नयन एवं मनोहर मुखारविन्दसे युक्त मेरे परम सुन्दर और वरदायक दिव्यरूपोंकी झाँकी करते हैं, और उनके साथ सप्रेम सम्भाषण करते हैं—जिसके लिये बड़े-बड़े तपस्वी भी लालायित रहते हैं । दर्शनीय अङ्ग-प्रत्यङ्ग, उदार हास-विलास, मनोहर चितवन और सुमधुर वाणीसे युक्त मेरे उन रूपोंकी माधुरीमें मन और इन्द्रियोंके फँस जानेसे वे मुक्तिकी इच्छा तो नहीं करते, किन्तु मेरी भक्ति उन्हें उस परमपदकी प्राप्ति करा ही देती है । अविद्याकी निवृत्ति हो जानेपर यद्यपि वे मुझ मायापतिके सत्यादि लोकोंकी भोगसम्पत्ति, भक्तिकी प्रवृत्तिके पश्चात् स्वयं प्राप्त होनेवाली अष्टसिद्धि अथवा वैकुण्ठलोकके भगवदीय ऐश्वर्यकी भी इच्छा नहीं करते, तथापि मेरे धाममें पहुँचनेपर उन्हें ये सब विभूतियाँ स्वयं ही प्राप्त हो जाती हैं । जिनका एकमात्र मैं ही प्रिय, आत्मा, पुत्र, मित्र, गुरु, सुहृद् और इष्टदेव हूँ—वे मेरे ही आश्रयमें रहनेवाले भक्तजन शान्तिमय वैकुण्ठधाममें पहुँचकर किसी प्रकार भी इन दिव्य भोगोंसे रहित नहीं होते और न उन्हें मेरा कालचक्र ही ग्रस सकता है ॥ ३२–३८ ॥

माताजी ! जो लोग इहलोक, परलोक और इन दोनों लोकोंमें साथ जानेवाले वासनामय लिङ्गदेहको तथा शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले धन, पशु और गृह आदि सम्पूर्ण पदार्थोंको छोड़कर अनन्य भक्तिसे सब प्रकार मेरा ही भजन करते हैं—उन्हें मैं मृत्युरूप संसारसागरसे पार कर देता हूँ । मैं साक्षात् भगवान् हूँ, प्रकृति और पुरुषका भी प्रभु हूँ तथा समस्त प्राणियोंका आत्मा हूँ; मेरे सिवा और किसीकी भी सहायतासे मृत्युरूप महाभयसे छुटकारा नहीं मिल सकता । मेरे भयसे वायु चलती है, मेरे भयसे सूर्य तपता है, मेरे भयसे मेघ बरसता और अग्नि जलाती है तथा मेरे ही भयसे मृत्यु अपने कार्यमें प्रवृत्त होता है । योगिजन ज्ञान-वैराग्ययुक्त भक्तियोगके द्वारा शान्ति प्राप्त करनेके लिये मेरे निर्भय चरणकमलोंका आश्रय लेते हैं । संसारमें मनुष्यके लिये सबसे बड़ी कल्याणप्राप्ति यही है कि उसका चित्त तीव्र भक्तियोगके द्वारा मुझमें लगकर स्थिर हो जाय ॥ ३९–४४ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

महदादि भिन्न-भिन्न तत्त्वोंकी उत्पत्तिका वर्णन

श्रीभगवान् बोले—माताजी ! अब मैं तुम्हें प्रकृति आदि सब तत्त्वोंके अलग-अलग लक्षण बताता हूँ; इन्हें जानकर मनुष्य प्रकृतिके गुणोंसे मुक्त हो जाता है । आत्मदर्शनरूप ज्ञान ही पुरुषके मोक्षका कारण है और वही उसकी अहङ्काररूप हृदयग्रन्थिका छेदन करनेवाला है, ऐसा पण्डितजन कहते हैं । उस ज्ञानका भी मैं तुम्हारे आगे वर्णन करता हूँ । जिससे यह सारा जगत् व्याप्त है, तथा जिसकी सत्तासे यह प्रकाशित होता है, वह आत्मा ही पुरुष है । वह अनादि, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, अन्तःकरणमें स्फुरित होनेवाला और स्वयम्प्रकाश है । उस सर्वव्यापक पुरुषने अपने पास स्वतः ही प्राप्त हुई अव्यक्त और त्रिगुणात्मिका वैष्णवी मायाको लीलासे ही स्वीकार कर रक्खा है । इस प्रकृतिको अपने सत्त्वादि गुणोंसे उन्हींके अनुरूप तरह-तरहकी प्रजा रचते देख वह तत्काल उसकी ज्ञानको आच्छादित करनेवाली आवरणशक्तिके द्वारा उसीमें मोहित हो गया, अपने स्वरूपको भूल गया । इस प्रकार प्रकृतिमें अपनेपनका अध्यास हो जानेसे पुरुष प्रकृतिके गुणोंद्वारा किये जानेवाले कर्मोंमें अपना कर्तृत्व मान लेता है । इस कर्तृत्वाभिमानसे ही अकर्ता, स्वाधीन, साक्षी और आनन्दस्वरूप पुरुषको कर्मोंका बन्धन, भोगके विषयमें परतन्त्रता तथा जन्म-मृत्युरूप दुःखपरम्परा प्राप्त होती है । कार्यरूप शरीर, कारणरूप इन्द्रिय तथा कर्तारूप इन्द्रियाधिष्ठातृ देवताओंमें पुरुष जो अपनेपनका आरोप कर लेता है, उसमें पण्डितजन प्रकृतिको ही कारण मानते हैं तथा

भय उपस्थित करता हूँ। अत सम्पूर्ण भूतोंमें विराजमान मुझ अन्तर्यामीका यथायोग्य दान, मान, मित्रताके व्यवहार तथा समदृष्टिके द्वारा पूजन करना चाहिये ॥२०-२७॥

कल्याणस्वरूपा माताजी! पाषाणादि अचेतनोंकी अपेक्षा वृक्षादि जीव श्रेष्ठ हैं, उनसे श्वास लेनेवाले प्राणी श्रेष्ठ हैं, उनमें भी मनवाले प्राणी उत्तम हैं और उनसे इन्द्रियकी वृत्तियोंसे युक्त प्राणी श्रेष्ठ हैं। सेन्द्रिय प्राणियोंमें भी केवल स्पर्शका अनुभव करनेवालोंकी अपेक्षा रसका ग्रहण कर सकनेवाले मत्स्यादि उत्कृष्ट हैं, तथा रसविदोंकी अपेक्षा गन्धका अनुभव करनेवाले (भ्रमरादि) और गन्धका ग्रहण करने वालोंसे भी शब्दका ग्रहण करनेवाले (सर्पादि) श्रेष्ठ हैं। उनसे भी रूपका अनुभव करनेवाले (काकादि) उत्तम हैं और उनकी अपेक्षा जिनके ऊपर नीचे दोनों ओर दाँत होते हैं, वे जीव श्रेष्ठ हैं। उनमें भी बिना पैरवालोंसे बहुत-से चरणों वाले श्रेष्ठ हैं, तथा बहुत चरणोंवालोंसे चार चरणवाले और चार चरणवालोंसे भी दो चरणवाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्यों मे भी ब्राह्मणादि चार वर्ण श्रेष्ठ हैं, उनमें भी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणोंमें वेदको जाननेवाले उत्तम हैं और वेदज्ञोंमें भी वेदका तात्पर्य जाननेवाले श्रेष्ठ हैं। तात्पर्य जाननेवालोंसे सशय निवारण करनेवाले मीमासक, उनसे भी अपने वर्णाश्रमोचित धर्मका पालन करनेवाले तथा उनसे भी आसक्तिका त्याग और अपने धर्मका निष्कामभावसे आचरण करनेवाले श्रेष्ठ है। उनकी अपेक्षा भी जो लोग अपने सम्पूर्ण कर्म और उनका फल तथा अपने चित्तको भी मुझे ही अर्पण करके भेदभाव छोड़कर मेरी उपासना करते है, वे श्रेष्ठ है। इस प्रकार मुझे ही चित्त और कर्म समर्पण करनेवाले अकर्ता और समदर्शी पुरुषसे बढकर मुझे कोई अन्य प्राणी नहीं दीखता। अत यह मानकर कि जीवरूप अपने अशसे साक्षात् भगवान् ही सबमे अनुगत हैं, इन समस्त प्राणियोको बड़े आदरके साथ मनसे प्रणाम करे ॥ २८-३४ ॥

माताजी! इस प्रकार मैंने तुम्हारे लिये भक्तियोग और अष्टाङ्गयोगका वर्णन किया। इनमेंसे एकका भी साधन करनेसे जीव परमपुरुष भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है। भगवान् परमात्मा परब्रह्मका अद्भुत प्रभावसम्पन्न तथा जागतिक पदार्थोंके नानाविध वैचित्र्यका हेतुभूत स्वरूप विशेष ही 'काल' नामसे विख्यात है। प्रकृति और पुरुष इसीके रूप है तथा इनसे यह पृथक् भी है। नाना प्रकारके कर्मोंका मूल अदृष्ट भी यही है तथा इसीसे महत्तत्त्वादिके अभिमानी भेददर्शी प्राणियोंको सदा भय लगा रहता है। जो सबका आश्रय होनेके कारण समस्त प्राणियोंमें अनुप्रविष्ट होकर भूतोंद्वारा ही उनका सहार करता है, वह जगत्‌का शासन करनेवाले ब्रह्मादिका भी प्रभु भगवान् काल ही यज्ञोंका फल देनेवाला विष्णु है। इसका न तो कोई मित्र है न कोई शत्रु, और न तो कोई सगा-सम्बन्धी ही है। यह सर्वदा सजग रहता है और अपने स्वरूपभूत श्रीभगवान्‌को भूलकर भोगरूप प्रमादमे पड़े हुए प्राणियोंपर आक्रमण करके उनका सहार करता है। इसीके भयसे वायु चलता है, इसीके भयसे सूर्य तपता है, इसीके भयसे इन्द्र वर्षा करते हैं और इसीके भयसे तारे चमकते हैं। इसीसे भयभीत होकर ओषधियोंके सहित लताएँ और सारी वनस्पतियाँ समय-समयपर फल फूल धारण करती हैं। इसीके डरसे नदियाँ बहती हैं और समुद्र अपनी मर्यादासे बाहर नहीं जाता। इसीके भयसे अग्नि प्रज्वलित होता है और पर्वतोंके सहित पृथ्वी जलमे नहीं डूबती। इसीके शासनसे यह आकाश जीवित प्राणियोंको श्वास प्रश्वासके लिये अवकाश देता है और महत्तत्त्व अहङ्काररूप शरीरका सात आवरणोंसे युक्त ब्रह्माण्डके रूपमें विस्तार करता है। इस कालके ही भयसे सत्त्वादि गुणोंके नियामक विष्णु आदि देवगण, जिनके अधीन यह सारा चराचर जगत् है, अपने जगद् रचना आदि कार्योंमें युगक्रमसे तत्पर रहते हैं। यह अविनाशी काल स्वय अनादि किन्तु दूसरोंका आदिकर्ता (उत्पादक) है तथा स्वय अनन्त होकर भी दूसरोंका अन्त करनेवाला है। यह पितासे पुत्रकी उत्पत्ति कराता हुआ सारे जगत्‌की रचना करता है, और अपनी सहारशक्ति मृत्युके द्वारा यमराजको भी मरवाकर इसका अन्त कर देता है ॥ ३५-४५ ॥

तीसवाँ अध्याय

देह-गेहमें आसक्त पुरुषोंकी अधोगतिका वर्णन

श्रीकपिलदेवजी कहते हैं—माताजी! जिस प्रकार मेघसमूह वायुके द्वारा उड़ाये जानेपर भी उसके बलको नहा जानता, उसी प्रकार यह जीव बलवान् कालकी प्रेरणासे भिन्न भिन्न अवस्थाओं तथा योनियोंमे भ्रमण करते रहनेपर भी उसके प्रबल पराक्रमको नहीं जानता। जीव सुखकी अभिलाषासे जिस जिस वस्तुको बड़े कष्टसे प्राप्त करता है, उसी-उसीको

कपिल-देवहूति



माता देवहूतिजीको भगवान् कपिल उपदेश कर रहे हैं ।

जाने, उसे हाथियोंसे चिरवाया जाना, पर्वतशिखरोंसे गिराया जाना अथवा जल या गढ़ेमें डाल दिया जाना—ये सब यातनाएँ तथा इसी प्रकार तामिस्र, अन्धतामिस्र एवं रौरव आदि नरकोंकी और भी अनेकों यन्त्रणाएँ, स्त्री हो या पुरुष, उस जीवको पारस्परिक संसर्गसे होनेवाले पापके कारण भोगनी ही पड़ती हैं। माताजी ! कुछ लोगोंका कहना है कि स्वर्ग और नरक तो इसी लोकमें हैं, क्योंकि ये नारकी यातनाएँ यहाँ भी देखी ही जाती हैं ॥ १८–२९ ॥

इस प्रकार अनेक कष्ट भोगकर अपने कुटुम्बका ही पालन करनेवाला अथवा केवल अपना ही पेट भरनेवाला पुरुष उन कुटुम्ब और शरीर दोनोंको यहीं छोड़कर मरनेके बाद अपने किये हुए पापोंका ऐसा फल भोगता है। अपने इस शरीरको यहीं छोड़कर प्राणियोंसे द्रोह करके एकत्रित किये हुए पापरूप पाथेयको साथ लेकर वह अकेला ही नरकमें जाता है। मनुष्य अपने कुटुम्बका पेट पालनेमें जो अन्याय करता है, उसका दैवविहित कुफल वह नरकमें जाकर भोगता है। उस समय वह ऐसा व्याकुल होता है, मानो उसका सर्वस्व लुट गया हो। जो पुरुष निरी पापकी कमाईसे ही अपने परिवारका पालन करनेमें व्यस्त रहता है, वह अन्धतामिस्र नरकमें जाता है—जो नरकोंमें सबसे अन्तिम स्थान है। इस प्रकार मनुष्यजन्म मिलनेके पूर्व जितनी भी यातनाएँ हैं तथा शूकर कूकरादि योनियोंके जितने कष्ट हैं, उन सबको क्रमसे भोगकर शुद्ध हो जानेपर वह फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है ॥३०–३४॥

इकतीसवाँ अध्याय

मनुष्ययोनिको प्राप्त हुए जीवकी गतिका वर्णन

श्रीभगवान् कहते हैं—माताजी ! जब जीवको मनुष्यशरीरमें जन्म लेना होता है, तो वह भगवान्‌की प्रेरणासे अपने पूर्वकर्मानुसार देहप्राप्तिके लिये पुरुषके वीर्यकणके द्वारा स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है। वहाँ वह एक रात्रिमें स्त्रीके रजमें मिलकर एकरूप कलल बन जाता है, पाँच रात्रिमें बुद्बुदरूप (गोलाकार) हो जाता है, दस दिनमें बेरके समान कुछ कठिन हो जाता है और उसके बाद मांसपेशी (मांसकी गोली) अथवा अण्डज प्राणियोंमें अण्डेके रूपमें परिणत हो जाता है। एक महीनेमें उसके सिर निकल आता है, दोमें हाथ-पाँव आदि अङ्गोंका विभाग हो जाता है और तीन मासमें नख, रोम, अस्थि, चर्म, स्त्री पुरुषके चिह्न तथा अन्य छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं। चार मासमें उसमें मांसादि सातों धातुएँ पैदा हो जाती हैं, पाँचवें महीनेमें भूख प्यास लगने लगती है और छठे मासमें झिल्लीसे लिपटकर वह झिल्लीसे लिपटा हुआ वह जीव बाहरसे माताकी आँतोंमें घिरा रहता है, उसका सिर पेटकी ओर तथा पीठ और गर्दन कुण्डलाकार मुड़े रहते हैं। इस प्रकार वह पिंजड़ेमें बंद हुए पक्षीके समान सर्वथा पराधीन रहता है, यहाँतक कि अपने अङ्गोंको हिला डुला भी नहीं सकता ॥१–८॥

इसी समय अदृष्टकी प्रेरणासे उसे स्मरणशक्ति प्राप्त होती है। तब अपने सैकड़ों जन्मोंके सुदूरवर्ती कर्म याद आनेसे वह बेचैन हो जाता है और उसका दम घुटने लगता है। ऐसी अवस्थामें भला, उसे क्या शान्ति मिल सकती है ? सातवाँ महीना आरम्भ होनेपर उसमें ज्ञानशक्तिका भी उन्मेष हो जाता है, परन्तु प्रसूतिवायुसे चलायमान रहनेके कारण वह उसी उदरमें उत्पन्न हुए विष्ठाके कीड़ोंके समान एक स्थानपर नहीं रह सकता। तब सप्तधातुमय स्थूलशरीरसे बँधा हुआ वह देहात्मदर्शी जीव अत्यन्त भयभीत होकर

इन्द्रियाँ भी तैजस अहङ्कारकी ही कार्य हैं। कर्म और ज्ञानके विभागसे उनके कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय दो भेद हैं। इनमें कर्म प्राणकी शक्ति है और ज्ञान बुद्धिकी ॥२१–३१॥

भगवान्‌की चेतनशक्तिकी प्रेरणासे तामस अहङ्कारके विकृत होनेपर उससे शब्दतन्मात्रका प्रादुर्भाव हुआ। शब्द-तन्मात्रसे आकाश तथा शब्दका ज्ञान करानेवाली श्रोत्रेन्द्रिय उत्पन्न हुई। अर्थका प्रकाशक होना, वक्ताका ज्ञान करा देना अर्थात् ओटमें होनेपर भी यह मालूम करा देना कि उधर कोई बोलनेवाला है, और आकाशका सूक्ष्म रूप होना–विद्वानोंके मतमें यही शब्दके लक्षण हैं। भूतोंको अवकाश देना, सबके बाहर-भीतर वर्तमान रहना तथा प्राण, इन्द्रिय और मनका आश्रय होना—ये आकाशके वृत्ति (कार्य) रूप लक्षण हैं ॥३२–३४॥

फिर शब्दतन्मात्रके कार्य आकाशमें कालगतिसे विकार होनेपर स्पर्शतन्मात्र हुआ और उससे वायु तथा स्पर्शका ग्रहण करानेवाली त्वगिन्द्रिय (त्वचा) उत्पन्न हुई। कोमलता, कठोरता, शीतलता और उष्णता तथा वायुका सूक्ष्म रूप होना—ये स्पर्शके लक्षण हैं। वृक्षकी शाखा आदिको हिलाना, तृणादिको इकट्ठा कर देना, सर्वत्र गतिशील होना, गन्धादियुक्त द्रव्यको घ्राणादि इन्द्रियोंके पास तथा शब्दको श्रोत्रेन्द्रियके समीप ले जाना तथा समस्त इन्द्रियोंको कार्यशक्ति देना—ये वायुकी वृत्तियोंके लक्षण हैं ॥३५–३७॥

तदनन्तर दैवकी प्रेरणासे स्पर्शतन्मात्रविशिष्ट वायुके विकृत होनेपर उससे रूपतन्मात्र हुआ तथा उससे तेज और रूपको उपलब्ध करानेवाले नेत्रेन्द्रियका प्रादुर्भाव हुआ। साध्वि! वस्तुके आकारका बोध कराना, उसके गुणरूपसे प्रकट होना, उसकी संस्था अर्थात् परिमाणादिरूपसे प्रतीत होना तथा तेजका स्वरूपभूत होना—ये सब रूपतन्मात्रकी वृत्तियाँ हैं। तथा चमकना, पकाना, शीतको दूर करना, सुखाना, भूख-प्यास पैदा करना और उनकी निवृत्तिके लिये भोजन एवं जलपान कराना—ये तेजकी वृत्तियाँ हैं ॥३८–४०॥

फिर दैवकी प्रेरणासे रूपतन्मात्रमय तेजके विकृत होनेपर उससे रसतन्मात्र हुआ और उससे जल तथा रसको ग्रहण करानेवाली रसनेन्द्रिय (जिह्वा) उत्पन्न हुई। रस अपने शुद्ध स्वरूपमें एक ही है; किन्तु अन्य भौतिक पदार्थोंके संयोगसे वह कसैला, मीठा, तीखा, कड़वा, खट्टा और नमकीन आदि कई प्रकारका हो जाता है। गीला करना, मिट्टी आदिको पिण्डाकार बना देना, तृप्त करना, जीवित रखना, प्यास बुझाना, पदार्थोंको मृदु कर देना, तापकी निवृत्ति करना और कूपादिमेंसे निकाल लिये जानेपर उन्हें फिर भर देना—ये जलकी वृत्तियाँ हैं ॥४१–४३॥

इसके पश्चात् दैवप्रेरित रसस्वरूप जलके विकृत होनेपर उससे गन्धतन्मात्र हुआ और उससे पृथ्वी तथा गन्धको ग्रहण करानेवाली घ्राणेन्द्रिय प्रकट हुई। गन्ध एक ही है; तथापि विभिन्न पदार्थोंके संसर्गसे वह मिश्रितगन्ध, दुर्गन्ध, सुगन्ध, मृदु, तीव्र और अम्ल (खट्टा) आदि अनेक प्रकारका है। प्रतिमादिरूपसे सगुण ब्रह्मकी भावनाका आश्रय होना, दूसरे तत्त्वोंकी अपेक्षा किये बिना अपने ही आधार स्थित रहना, जल आदि अन्य पदार्थोंको धारण करना, आकाशादिका अवच्छेदक होना (घटाकाश, मठाकाश आदि भेदोंको सिद्ध करना) तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके [स्त्रीत्व, पुरुषत्व आदि] गुणोंको प्रकट करना—ये पृथ्वीके कार्यरूप लक्षण हैं ॥४४–४६॥

जिसका विषय आकाशका विशेष गुण शब्द है, वह श्रोत्रेन्द्रिय है; जिसका विषय वायुका विशेष गुण स्पर्श है, वह त्वगिन्द्रिय है; जिसका विषय तेजका विशेष गुण रूप है, वह नेत्रेन्द्रिय है; जिसका विषय जलका विशेष गुण रस है, वह रसनेन्द्रिय है और जिसका विषय पृथ्वीका विशेष गुण गन्ध है, उसे घ्राणेन्द्रिय कहते हैं। वायु आदि कार्य-तत्त्वोंमें आकाशादि कारण-तत्त्वोंके रहनेसे उनके गुण भी अनुगत देखे जाते हैं; इसलिये समस्त भूतोंके गुण शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध केवल पृथ्वीमें ही पाये जाते हैं। जब महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्चभूत—ये सात तत्त्व अलग-अलग रहनेके कारण विश्वरचनामें असमर्थ रहे, तो जगत्‌के आदि कारण श्रीनारायणने काल, अदृष्ट और सत्त्वादि गुणोंके सहित उनमें प्रवेश किया ॥४७–५०॥

फिर परमात्माके प्रवेशसे क्षुभित और आपसमें मिले हुए उन तत्त्वोंसे एक जड अण्ड उत्पन्न हुआ। उस अण्डसे इस विराट् पुरुषकी अभिव्यक्ति हुई। इस अण्डका नाम विशेष है, इसीके अन्तर्गत श्रीहरिके स्वरूपभूत चौदहों भुवनोंका विस्तार है। यह चारों ओरसे क्रमशः एक-दूसरेसे दसगुने जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार और महत्तत्त्व—इन छः आवरणोंसे घिरा हुआ है। इन सबके बाहर सातवाँ आवरण प्रकृतिका है। उस जलस्थित तेजोमय अण्डसे उठकर उस विराट् पुरुषने पुनः उसमें प्रवेश किया और फिर उसमें कई प्रकारके छिद्र किये। सबसे पहले उसमें मुख

जाने, उसे हाथियोंसे चिरवाया जाना, पर्वतशिखरोंसे गिराया जाना अथवा जल या गढेमें डाल दिया जाना—ये सब यातनाएँ तथा इसी प्रकार तामिस्र, अन्धतामिस्र एवं रौरव आदि नरकोंकी और भी अनेकों यन्त्रणाएँ, स्त्री हो या पुरुष, उस जीवको पारस्परिक संसर्गसे होनेवाले पापके कारण भोगनी ही पड़ती है। माताजी! कुछ लोगोंका कहना है कि स्वर्ग और नरक तो इसी लोकमें हैं, क्योंकि ये नारकी यातनाएँ यहाँ भी देखी ही जाती हैं॥ १८–२९॥

इस प्रकार अनेक कष्ट भोगकर अपने कुटुम्बका ही पालन करनेवाला अथवा केवल अपना ही पेट भरनेवाला पुरुष उन कुटुम्ब और शरीर दोनोंको यहीं छोड़कर मरनेके बाद अपने किये हुए पापोंका ऐसा फल भोगता है। अपने इस शरीरको यहीं छोड़कर प्राणियोंसे द्रोह करके एकत्रित किये हुए पापरूप पाथेयको साथ लेकर वह अकेला ही नरकमें जाता है। मनुष्य अपने कुटुम्बका पेट पालनेमें जो अन्याय करता है, उसका दैवविहित कुफल वह नरकमें जाकर भोगता है। उस समय वह ऐसा व्याकुल होता है, मानो उसका सर्वस्व लुट गया हो। जो पुरुष निरी पापकी कमाईसे ही अपने परिवारका पालन करनेमें व्यस्त रहता है, वह अन्धतामिस्र नरकमें जाता है—जो नरकोंमें सबसे अन्तिम स्थान है। इस प्रकार मनुष्यजन्म मिलनेके पूर्व जितनी भी यातनाएँ हैं तथा शूकर कूकरादि योनियोंके जितने कष्ट हैं, उन सबको क्रमसे भोगकर शुद्ध हो जानेपर वह फिर मनुष्ययोनिमें जन्म लेता है॥३०–३४॥

इकतीसवाँ अध्याय

मनुष्ययोनिको प्राप्त हुए जीवकी गतिका वर्णन

श्रीभगवान् कहते हैं—माताजी! जब जीवको मनुष्यशरीरमें जन्म लेना होता है, तो वह भगवान्‌की प्रेरणासे अपने पूर्वकर्मानुसार देहप्राप्तिके लिये पुरुषके वीर्यकणके द्वारा स्त्रीके उदरमें प्रवेश करता है। वहाँ वह एक रात्रिमें स्त्रीके रजमें मिलकर एकरूप कलल बन जाता है, पाँच रात्रिमें बुद्बुदरूप (गोलाकार) हो जाता है, दस दिनमें बेरके समान कुछ कठिन हो जाता है और उसके बाद मांसपेशी (मांसकी गोली) अथवा अण्डज प्राणियोंमें अंडेके रूपमें परिणत हो जाता है। एक महीनेमें उसके सिर निकल आता है, दो में हाथ-पाँव आदि अङ्गोंका विभाग हो जाता है और तीन मासमें नख, रोम, अस्थि, चर्म, स्त्री पुरुषके चिह्न तथा अन्य छिद्र उत्पन्न हो जाते हैं। चार मासमें उसमें मांसादि सातों धातुएँ पैदा हो जाती हैं, पाँचवें महीनेमें भूख प्यास लगने लगती है और छठे मासमें झिल्लीसे लिपटकर वह दाहिनी कोखमें घूमने लगता है। उस समय माताके खाये हुए अन्न जल आदिसे उसके सब धातुओंकी पुष्टि होने लगती है और वह कृमि आदि जन्तुओंके उत्पत्तिस्थान उस जघन्य मल मूत्रके गढेमें पड़ा रहता है। वह सुकुमार तो होता ही है; इसलिये जब वहाँके भूखे कीड़े उसके अङ्ग प्रत्यङ्ग नोचते हैं, तो अत्यन्त क्लेशके कारण वह क्षण क्षणमें अचेत हो जाता है। माताके खाये हुए कड़वे, तीखे, गरम, नमकीन, रूखे और खट्टे आदि उग्र पदार्थोंका स्पर्श होनेसे उसके सारे शरीरमें पीड़ा होने लगती है। माताके गर्भाशयमें झिल्लीसे लिपटा हुआ वह जीव बाहरसे माताकी आँतोंसे घिरा रहता है, उसका सिर पेटकी ओर तथा पीठ और गर्दन कुण्डलाकार मुड़े रहते हैं। इस प्रकार वह पिंजड़ेमें बंद हुए पक्षीके समान सर्वथा पराधीन रहता है, यहाँतक कि अपने अङ्गोंको हिला डुला भी नहीं सकता॥१–८॥

इसी समय अदृष्टकी प्रेरणासे उसे स्मरणशक्ति प्राप्त होती है। तब अपने सैकड़ों जन्मोंके सुदूरवर्ती कर्म याद आनेसे वह बेचैन हो जाता है और उसका दम घुटने लगता है। ऐसी अवस्थामें भला, उसे क्या शान्ति मिल सकती है? सातवाँ महीना आरम्भ होनेपर उसमें ज्ञानशक्तिका भी उन्मेष हो जाता है; परन्तु प्रसूतिवायुसे चलायमान रहनेके कारण वह उसी उदरमें उत्पन्न हुए विष्ठाके कीड़ेके समान एक स्थानपर नहीं रह सकता। तब सप्तधातुमय स्थूलशरीरसे बँधा हुआ वह देहात्मदर्शी जीव अत्यन्त भयभीत होकर दीन वाणीसे कृपा-याचना करता हुआ, हाथ जोड़कर उस प्रभुकी स्तुति करता है, जिसने उसे माताके गर्भमें डाला है॥९–११॥

जीव कहता है—मैं बड़ा अधम हूँ; भगवान्‌ने मुझे जो इस प्रकारकी गति दिखायी है, वह मेरे योग्य ही है। वे अपने शरणमें आये हुए इस नश्वर जगत्‌की रक्षाके लिये ही पृथ्वीमें अनेक प्रकारके रूप धारण करते हैं, अतः मैं भी उन्हींके निर्भय चरणोंकी शरण लेता हूँ। जो इस माताके उदरमें देह, इन्द्रिय और अन्तःकरणरूपा मायाका आश्रय कर पुण्य पापरूप कर्मोंसे आच्छादित रहनेके कारण बद्ध-से

तथा उत्तम, मध्यम और नीच योनियोंमें उत्पन्न होकर संसार-चक्रमें घूमता रहता है। जिस प्रकार स्वप्नमें भय-शोकादिका कोई कारण न होनेपर भी स्वप्नके पदार्थोंमें आस्था हो जानेके कारण दुःख उठाना पड़ता है, उसी प्रकार भय-शोक, अहं-मम एवं जन्म-मरणादिरूप संसारकी कोई सत्ता न होनेपर भी अविद्यावश विषयोंका चिन्तन करते रहनेसे जीवका संसार-चक्र कभी निवृत्त नहीं होता। इसलिये कल्याणकामीको उचित है कि असन्मार्ग (विषयचिन्तन) में फँसे हुए अपने चित्तको तीव्र भक्तियोग और वैराग्यके द्वारा अपने वशमें करके रास्तेपर लावे ॥ १–५ ॥

यमादि योगसाधनोंके द्वारा श्रद्धापूर्वक अभ्यास करनेसे, मुझमें सच्चा भाव रखनेसे, मेरी कथा श्रवण करनेसे, समस्त प्राणियोंमें समभाव रखनेसे, किसीसे वैर न करनेसे, आसक्तिके त्यागसे, ब्रह्मचर्यसे, मौन-व्रतसे और ईश्वरार्पणबुद्धिसे शास्त्रविहित अपने कर्त्तव्योंका पालन करनेसे जिसे ऐसी स्थिति प्राप्त हो गयी है कि—प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिल जाता है उसीमें सन्तुष्ट रहता है, परिमित भोजन करता है, सदा एकान्तमें रहता है, शान्तस्वभाव है, सबका बन्धु है, दयालु और धैर्यवान् है, प्रकृति और पुरुषके वास्तविक स्वरूपके अनुभवसे प्राप्त हुए तत्त्वज्ञानके कारण स्त्री-पुत्रादि सम्बन्धियोंके सहित इस देहमें मैं-मेरेपनका मिथ्या अभिनिवेश नहीं करता, बुद्धिकी जाग्रदादि अवस्थाओंसे भी अलग हो गया है तथा परमात्माके सिवा और कोई वस्तु नहीं देखता—वह आत्मदर्शी मुनि नेत्रोंसे सूर्यको देखनेकी भाँति अपने शुद्ध अन्तःकरणद्वारा परमात्माका साक्षात्कार कर उस अद्वितीय ब्रह्मपदको प्राप्त हो जाता है, जो देहादि सम्पूर्ण उपाधियोंसे पृथक्, अहङ्कारादि मिथ्या वस्तुओंमें सत्यरूपसे भासनेवाला, जगत्कारणभूता प्रकृतिका अधिष्ठान, महदादि कार्यवर्गका प्रकाशक और कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण पदार्थोंमें व्याप्त है ॥ ६–११ ॥

जिस प्रकार जलमें पड़ा हुआ सूर्यका प्रतिबिम्ब दीवालपर पड़े हुए अपने आभासके सम्बन्धसे देखा जाता है और जलमें दीखनेवाले प्रतिबिम्बसे आकाशस्थित सूर्यका ज्ञान होता है, उसी प्रकार वैकारिक आदि भेदसे तीन प्रकारका अहङ्कार भूत, इन्द्रिय और मनरूप अपने आभासोंसे जाना जाता है और फिर सत् परमात्माके आभाससे युक्त उस अहङ्कारसे शुद्ध सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्माका ज्ञान होता है—जो सुषुप्तिके समय शब्दादि भूतसूक्ष्म, इन्द्रिय और मन-बुद्धि आदिके अव्याकृतमें लीन हो जानेपर स्वयं जागता रहता है और सर्वथा अहङ्कारशून्य है। जाग्रत्-अवस्थामें यह आत्मा भूतसूक्ष्मादि दृश्यवर्गके द्रष्टारूपमें स्पष्टतया अनुभवमें आता है; किन्तु सुषुप्तिके समय अपने उपाधिभूत अहङ्कारका नाश होनेसे वह भ्रमवश अपनेको ही नष्ट हुआ मान लेता है और जिस प्रकार धनका नाश हो जानेपर मनुष्य अपनेको भी नष्ट हुआ मानकर अत्यन्त व्याकुल हो जाता है, उसी प्रकार वह भी अत्यन्त विवश होकर नष्टवत् हो जाता है। माताजी! इन सब बातोंका मनन करके विवेकी पुरुष अपने आत्माका अनुभव कर लेता है, जो अहङ्कारके सहित सम्पूर्ण तत्त्वोंका अधिष्ठान और प्रकाशक है ॥१२–१६॥

देवहूतिने पूछा—प्रभो! पुरुष और प्रकृति दोनों ही नित्य और एक-दूसरेके आश्रयसे रहनेवाले हैं, इसलिये प्रकृति तो पुरुषको कभी छोड़ ही नहीं सकती। ब्रह्मन्! जिस प्रकार गन्ध और पृथ्वी तथा रस और जलकी पृथक्-पृथक् स्थिति नहीं हो सकती, उसी प्रकार पुरुष और प्रकृति भी एक-दूसरेको छोड़कर नहीं रह सकते। अतः जिनके आश्रयसे अकर्त्ता पुरुषको यह कर्मबन्धन प्राप्त हुआ है, उन प्रकृतिके गुणोंके रहते हुए उसे कैवल्यपद कैसे प्राप्त होगा? यदि तत्त्वोंका विचार करनेसे कभी यह भयङ्कर संसारबन्धन निवृत्त हो भी जाय, तो भी बन्धनके निमित्तभूत प्राकृत गुणोंका अभाव न होनेसे वह फिर इसी चक्रमें पड़ जायगा ॥ १७–२० ॥

श्रीभगवान् बोले—माताजी! जिस प्रकार अरणि अपनेसे ही उत्पन्न अग्निसे जलकर भस्म हो जाती है, उसी प्रकार निष्कामतापूर्वक शुद्ध चित्तसे पालन किये गये अपने वर्णाश्रमधर्मोंसे, बहुत समयतक श्रवण करनेसे प्राप्त हुई मेरी तीव्र भक्तिसे, तत्त्वसाक्षात्कारपर्यन्त ज्ञानसे, प्रबल वैराग्यसे, व्रत-नियमादिके सहित किये हुए ध्यानाभ्याससे, और चित्तकी प्रगाढ़ एकाग्रतासे पुरुषकी प्रकृति (अविद्या) दिन-रात क्षीण होती हुई धीरे-धीरे लीन हो जाती है। फिर नित्यप्रति दोष दीखनेसे भोगकर त्यागी हुई वह प्रकृति अपने स्वरूपमें स्थित और स्वतन्त्र (बन्धनमुक्त) हुए उस पुरुषका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। सोये हुए पुरुषको तो निद्राके कारण स्वप्नमें कितने ही अनर्थोंका अनुभव करना पड़ता है, किन्तु जग पड़नेपर उसे उन स्वप्नके अनुभवोंसे किसी प्रकारका मोह नहीं होता। उसी प्रकार जिसे तत्त्वज्ञान हो गया है और जो निरन्तर मुझमें ही मन लगाये रहता है, उस आत्माराम मुनिका प्रकृति कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। जब मनुष्य

हो जाता है, इसलिये यह मन्दमति प्राणी पञ्चभूतोंसे रचे हुए इस देहमें मिथ्याभिनिवेशके कारण निरन्तर मैं-मेरेपनका अभिमान करने लगता है। जो शरीर इसे वृद्धावस्था आदि अनेक प्रकारके कष्ट ही देता है तथा अविद्या और कर्मके सूत्रसे बँधा रहनेके कारण सदा इसके पीछे लगा रहता है, उसीके लिये यह तरह तरहके कर्म करता रहता है—जिनमें बँध जानेके कारण इसे बार बार संसार चक्रमें पड़ना होता है। सन्मार्गमें चलते हुए यदि इसका जिन्हीं जिह्वा और उपस्थेन्द्रियके भोगोंमें लगे हुए विषयी पुरुषोंसे समागम हो जाता है और यह उनमें आस्था करके उन्हींका अनुगमन करने लगता है, तो पहलेहीके समान फिर नारकी योनियोंमें पड़ता है। उनके सङ्गसे इसके सत्य, शौच (बाहर भीतरकी पवित्रता), दया, वाणीका संयम, बुद्धि, धन-सम्पत्ति, लज्जा, यश, क्षमा, मन और इन्द्रियोंका संयम तथा ऐश्वर्य आदि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं। वे अत्यन्त शोचनीय और स्त्रियोंके क्रीडामृगके समान हैं; अतः उन अशान्त, मूढ और देहात्मदर्शी असत्पुरुषोंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये। क्योंकि इस जीवको किसी औरका सङ्ग करनेसे ऐसा मोह और बन्धन नहीं होता, जैसा स्त्री और स्त्रियोंके सङ्गियोंका सङ्ग करनेसे होता है। देखो, एक बार अपनी पुत्री सरस्वतीको देखकर ब्रह्माजी भी उसके रूप-लावण्यसे मोहित हो गये थे और उसके मृगीरूप होकर भागनेपर उसके पीछे निर्लज्जतापूर्वक मृगरूप होकर दौड़ने लगे थे। उन ब्रह्माजीने मरीचि आदि प्रजापतियोंको रचा, उन्होंने कश्यपादिको उत्पन्न किया और उनसे देव मनुष्यादि समस्त प्राणी हुए। अतः इनमें एक ऋषिप्रवर नारायणको छोड़कर ऐसा कौन पुरुष हो सकता है, जिसकी बुद्धि स्त्रीरूपिणी मायासे मोहित न हो। अहो! मेरी इस स्त्रीरूपिणी मायाका बल तो देखो, जो अपने भ्रुकुटि विलासमात्रसे बड़े-बड़े दिग्विजयी वीरोंको भी वशमें कर लेती है। जो पुरुष योगके परम पदपर आरूढ होना चाहता हो अथवा जिसे मेरी सेवाके प्रभावसे आत्मा अनात्माका विवेक हो गया हो, वह स्त्रियोंका सङ्ग कभी न करे; क्योंकि उन्हें ऐसे पुरुषके लिये नरकका खुला द्वार बताया गया है। भगवान्‌की रची हुई यह जो स्त्रीरूपिणी माया धीरे धीरे सेवा आदिके मिससे पास आती है, इसे तिनकोंसे ढके हुए कुएँके समान अपनी मृत्यु ही समझे॥२८-४०॥

जिस प्रकार पुरुषके लिये स्त्रीसङ्ग त्याज्य है, उसी प्रकार स्त्रीके लिये पुरुषका सङ्ग त्याज्य है। स्त्रीमें आसक्त रहनेके कारण तथा अन्त समयमें स्त्रीका ही ध्यान रहनेसे जीवको स्त्रीयोनि प्राप्त होती है। इस प्रकार स्त्रीयोनिको प्राप्त हुआ जीव पुरुषरूपमे प्रतीत होनेवाली मेरी मायाको ही धन, पुत्र और गृह आदि देनेवाला अपना पति मानता रहता है, सो जिस प्रकार व्याधेका गान कानोंको प्रिय लगनेपर भी बेचारे भोलेभाले पशु-पक्षियोंको फँसाकर उनके नाशका ही कारण होता है—उसी प्रकार उन पुत्र, पति और गृह आदिको विधाताकी निश्चित की हुई अपनी मृत्यु ही जाने। देवि! जीवके उपाधिभूत लिङ्गदेहके द्वारा पुरुष एक लोकसे दूसरे लोकमें जाता है और अपने प्रारब्धकर्मोंको भोगता हुआ निरन्तर अन्य देहोंकी प्राप्तिके लिये दूसरे कर्म करता रहता है। जीवका उपाधिरूप लिङ्गशरीर तो मोक्षपर्यन्त उसके साथ रहता है तथा भूत, इन्द्रिय और मनका कार्यरूप स्थूलशरीर इसका भोगाधिष्ठान है। इन दोनोंका परस्पर संगठित होकर कार्य न करना ही प्राणीकी 'मृत्यु' है और इन दोनोंका साथ-साथ प्रकट होना 'जन्म' कहलाता है। अथवा पदार्थोंकी उपलब्धिके स्थानरूप इस स्थूलशरीरमें जब उनको ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं रहती, यही उसका मरण है; और यह स्थूलशरीर ही मैं हूँ—इस अभिमानके साथ उसे देखना उसका जन्म है। नेत्रोंमें जब किसी दोषके कारण रूपादिको देखनेकी योग्यता नहीं रहती, तभी उनमे रहनेवाली चक्षु इन्द्रिय भी रूप देखनेमें असमर्थ हो जाती है। और जब नेत्र और उनमें रहनेवाली इन्द्रिय दोनों ही रूप देखनेमें असमर्थ हो जाते हैं, तभी इन दोनोंके साक्षी जीवमें भी वह योग्यता नहीं रहती। इस प्रकार स्थूलशरीरकी असमर्थता ही सूक्ष्मशरीरकी असमर्थता है और यही जीवकी मृत्यु है, स्वत. जीव कभी नहीं मरता। अत. मुमुक्षु पुरुषको मरणादिसे भय, दीनता अथवा मोह नहीं होना चाहिये। उसे जीवके स्वरूपको जानकर धैर्यपूर्वक निःसङ्गभावसे विचरना चाहिये तथा इस मायामय संसारमें योग-वैराग्ययुक्त सम्यक् ज्ञानमयी बुद्धिसे शरीरकी आस्था एव आसक्ति छोड़कर व्यवहार करना चाहिये॥ ४१-४८॥

परम यशस्वियोंके भी यशको बढ़ानेवाले हैं । इस प्रकार श्रीनारायणदेवका सम्पूर्ण अङ्गोंके सहित तबतक ध्यान करे, जबतक चित्त वहाँसे हटे नहीं । भगवान्‌की लीलाएँ बड़ी दर्शनीय हैं; अतः अपनी रुचिके अनुसार उनका खड़े हुए, चलते हुए, बैठे हुए, पौढ़े हुए अथवा अन्तर्यामीरूपमें विशुद्ध भावसे चिन्तन करे । इस प्रकार जब भगवद्विग्रहमें चित्तकी स्थिति हो जाय तो योगीको चाहिये कि उनके समस्त अङ्गोंमें लगे हुए चित्तको विशेष रूपसे एक-एक अङ्गमें लगावे ॥ १३–२० ॥

पहले भगवान्‌के चरणकमलोंका ध्यान करना चाहिये । वे वज्र, अङ्कुश, ध्वजा और कमलके मङ्गलमय चिह्नोंसे युक्त हैं तथा अपने उभरे हुए लाल-लाल शोभामय नखचन्द्रोंके प्रकाशसे ध्यान करनेवालोंके हृदयके अज्ञानरूप घोर अन्धकारको दूर कर देते हैं । इन्हींकी धोवनसे नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीगङ्गाजी प्रकट हुई थीं, जिनके पवित्र जलको मस्तकपर धारण करनेके कारण स्वयं मङ्गलरूप श्रीमहादेवजी और भी अधिक मङ्गलमय हो गये । ये अपना ध्यान करनेवालोंके पापरूप पर्वतोंपर छोड़े हुए इन्द्रके वज्रके समान हैं । प्रभुके ऐसे पादपद्मोंका चिरकालतक चिन्तन करे ॥ २१-२२ ॥

फिर भवभयहारी अजन्मा श्रीहरिकी पिंडलियोंका ध्यान करे, जिनकी सेवा विश्वविधाता ब्रह्माजीकी माता सुरगण-वन्दिता कमललोचना लक्ष्मीजी अपनी जाँघोंपर रखकर अपने ही कान्तिमान् करकमलोंसे किया करती हैं । तत्पश्चात् भगवान्‌की जाँघोंका ध्यान करे, जो अलसीके फूलके समान नीलवर्ण और बलकी निधि हैं तथा गरुडजीके कंधोंपर शोभायमान हैं । इसी प्रकार भगवान्‌के कटिप्रदेशका ध्यान करे, जिसपर एड़ीतक पीताम्बर पड़ा हुआ है और ऊपरसे सुवर्णमयी करधनीकी लड़ें सुशोभित हैं ॥ २३-२४ ॥

अब भगवान्‌के उदरदेशमें स्थित सम्पूर्ण लोकोंके आश्रयस्थान नाभिसरोवरका ध्यान करे; इसीमेंसे ब्रह्माजीका आधारभूत सर्वलोकमय कमल प्रकट हुआ है । फिर प्रभुके श्रेष्ठ मरकतमणिसदृश स्तनोंका चिन्तन करे, जो वक्षःस्थलपर पड़े हुए शुभ्र हारोंकी किरणोंसे गौरवर्ण जान पड़ते हैं । इसके पश्चात् पुरुषोत्तम भगवान्‌के वक्षःस्थलका ध्यान करे, जो महालक्ष्मीका निवासस्थान और लोगोंके मन एवं नेत्रोंको आनन्द देनेवाला है । फिर उनके गलेका चिन्तन करे, जो सम्पूर्ण लोकोंके वन्दनीय कौस्तुभमणिको भी सुशोभित कर रहा है ॥ २५-२६ ॥

फिर समस्त लोकपालोंकी आश्रयभूता भगवान्‌की चारों भुजाओंका ध्यान करे, जिनमें धारण किये हुए कङ्कणादि आभूषण समुद्रमन्थनके समय मन्दराचलकी रगड़ लगनेसे और भी उजले हो गये हैं । इसी प्रकार जिसके तेजको सहन नहीं किया जा सकता, उस हजार दाँतोंवाले सुदर्शनचक्रका तथा उनके कर-कमलमें राजहंसके समान विराजमान शङ्खका चिन्तन करे । फिर विपक्षी वीरोंके रुधिरसे सनी हुई प्रभुकी प्यारी कौमोदकी गदाका, भौंरोंके शब्दसे गुञ्जायमान वनमालाका और उनके कण्ठमें सुशोभित सम्पूर्ण जीवोंके निर्मलतत्त्व-रूप कौस्तुभमणिका ध्यान करे ॥ २७-२८ ॥

इसके पश्चात् भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही साकाररूप धारण करनेवाले श्रीहरिके मुखकमलका ध्यान करे, जो सुघड़ नासिका और झिलमिलाते हुए लोल मकराकृत कुण्डलोंकी झाँईसे प्रकाशमान स्वच्छ कपोलोंके कारण बड़ा ही मनोहर जान पड़ता है । काली-काली घुँघराली अलकावलीसे मण्डित भगवान्‌का मुखमण्डल अपनी छविके द्वारा भ्रमरोंसे विभूषित कमलकोशका भी तिरस्कार कर रहा है और उसके कमलसदृश विशाल एवं चञ्चल नेत्र उस कमलकोशपर उछलते हुए मछलियोंके जोड़ेकी शोभाको मात कर रहे हैं । उन्नत भ्रूलताओंसे सुशोभित भगवान्‌के ऐसे मनोहर मुखारविन्दकी मनमें धारणा करके सावधानीसे उसीका ध्यान करे ॥२९-३०॥

इसके पश्चात् हृदयमें अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रभुकी उस मधुर मुसकान और अतिशय कृपायुक्त चितवनका चिरकालतक चिन्तन करे, जिसे वे करुणावश भक्तोंके अति भयानक त्रिविध तापोंकी शान्तिके लिये निरन्तर छोड़ रहे हैं । फिर समस्त प्रणतजनोंके प्रबल शोकाश्रुसमुद्रका शोषण करनेवाली श्रीहरिकी मधुर मुसकानका और उनकी धनुषाकार तिरछी भौंहोंका ध्यान करे, जिन्हें उन्होंने मुनिजनपर कृपा करके साक्षात् कामदेवको भी मोहित करनेके लिये अपनी मायासे धारण किया है । और अन्तमें अत्यन्त प्रेमार्द्रभावसे अपने हृदयमें विराजमान श्रीहरिके हास्यका ध्यान करे, जो वस्तुतः ध्यानके ही योग्य है तथा जिसमें ऊपर और नीचेके दोनों होठोंकी अत्यधिक अरुण कान्तिके कारण उनके कुन्दकलीके समान शुभ्र छोटे-छोटे दाँतोंपर लालिमा-सी प्रतीत होने लगी है । इस प्रकार उनके ध्यानमें तन्मय होकर फिर उनके सिवा किसी अन्य पदार्थको देखनेकी इच्छा न करे, दूसरी ओर भूलकर भी मन न चलावे ॥ ३१–३३ ॥

इस प्रकारके ध्यानके अभ्याससे साधकका श्रीहरिमें प्रेम

भगवान्‌का तुम उन्हींके गुणोंसे बढ़नेवाली भक्तिके द्वारा सब प्रकारसे (मन, वाणी, शरीरसे) भजन करो । भगवान् वासुदेवके प्रति किया हुआ भक्तियोग तुरत ही संसारसे वैराग्य और ब्रह्मसाक्षात्काररूप ज्ञानकी प्राप्ति करा देता है । वस्तुतः सभी विषय भगवद्रूप होनेके कारण समान हैं—भगवान् ही सब रूपोंमें व्यक्त हो रहे हैं; अतः जब इन्द्रियोंकी वृत्तियोंके द्वारा भी भगवद्भक्तका चित्त उनमें प्रिय-अप्रियरूप वैषम्यका अनुभव नहीं करता—सर्वत्र एकमात्र भगवान्‌के ही दर्शन करता है—उसी समय वह सङ्गरहित, सबमें समानरूपसे स्थित, त्याग और ग्रहण करने योग्य विषयसे रहित, अपनी महिमामें आरूढ अपने आत्माका ब्रह्मरूपसे साक्षात्कार करता है । वही ज्ञानस्वरूप है, वही परब्रह्म है, वही परमात्मा है, वही ईश्वर है, वही पुरुष है; वही एक भगवान् स्वयं जीव, शरीर, विषय, इन्द्रियाँ आदि अनेक रूपोंमें प्रतीत होता है । सम्पूर्ण संसारमें असङ्गबुद्धि हो जाना—बस, यही योगियोंके योगसाधनका एकमात्र अभीष्ट फल है । सब प्रकारके योगोंद्वारा यही प्राप्त होता है । ब्रह्म एक है, ज्ञानस्वरूप और निर्गुण है, तो भी वह बाह्य वृत्तियोंवाली इन्द्रियोंके द्वारा भ्रान्तिवश शब्दादि धर्मोंवाले विभिन्न पदार्थोंके रूपमें भास रहा है । जिस प्रकार पहले एक ही परब्रह्म था—वही महत्तत्त्व बना, वही वैकारिक, राजस और तामस—तीन प्रकारका अहङ्कार बना; वही पञ्चमहाभूतरूप बना, वही ग्यारह इन्द्रियरूप बन गया, फिर वही स्वयंप्रकाश इनके संयोगसे जीव कहलाया । उसी प्रकार उस जीवका शरीररूप यह ब्रह्माण्ड भी वस्तुतः ब्रह्म ही है, क्योंकि ब्रह्मसे ही इसकी उत्पत्ति हुई है । किन्तु इसे ब्रह्मरूप वही देख सकता है, जो श्रद्धा, भक्ति और वैराग्य तथा निरन्तरके योगाभ्यासके द्वारा एकाग्रचित्त और असङ्गबुद्धि हो गया है ॥ १९–३० ॥

पूजनीय माताजी ! मैंने तुम्हें यह ब्रह्मसाक्षात्कारका साधनरूप ज्ञान सुनाया, इसके द्वारा प्रकृति और पुरुषके यथार्थ स्वरूपका बोध हो सकता है । देवि ! निर्गुणब्रह्म विषयक ज्ञानयोग और मेरे प्रति किया हुआ भक्तियोग—इन दोनोंका 'भगवान्' शब्दसे कहा जानेवाला फल एक ही है । जिस प्रकार रूप, रस एवं गन्ध आदि अनेक गुणोंका आश्रय भूत एक ही पदार्थ भिन्न भिन्न इन्द्रियोंद्वारा विभिन्नरूपसे अनुभूत होता है, वैसे ही शास्त्रके विभिन्न मार्गोंद्वारा एक ही भगवान्‌की अनेक प्रकारसे अनुभूति होती है । नाना प्रकारके कर्मकलाप, यज्ञ, दान, तप, वेदाध्ययन, वेदविचार (मीमांसा), मन और इन्द्रियोंके संयम, कर्मोंके त्याग, विविध अङ्गोंवाले योग, भक्तियोग, निवृत्ति और प्रवृत्तिरूप (सकाम और निष्काम) दोनों प्रकारके धर्म, आत्मतत्त्वके ज्ञान और दृढ वैराग्य—इन सभी साधनोंसे सगुण निर्गुणरूप स्वयंप्रकाश भगवान्‌को ही प्राप्त किया जाता है ॥३१–३६॥

माताजी ! सात्त्विक, राजस, तामस और निर्गुण भेदसे चार प्रकारके भक्तियोगका और जो प्राणियोंके जन्मादि विकारोंका हेतु है तथा जिसकी गति जानी नहीं जाती, उस कालका स्वरूप मैं तुमसे कह ही चुका हूँ । देवि ! अविद्याजनित कर्मके कारण जीवकी अनेकों गतियाँ होती हैं, उनमें जानेपर वह अपने स्वरूपको नहीं पहचान सकता । मैंने तुम्हें जो ज्ञानोपदेश दिया है—उसे दुष्ट, दुर्विनीत, घमंडी, दुराचारी और धर्मध्वजी (दम्भी) पुरुषोंको नहीं सुनाना चाहिये । जो विषयलोलुप हो, गृहासक्त हो, मेरा भक्त न हो, अथवा मेरे भक्तोंसे द्वेष करनेवाला हो, उसे भी इसका उपदेश कभी न करे । इसके विपरीत जो अत्यन्त श्रद्धालु, भक्त, विनयी, दूसरोंके प्रति दोषदृष्टि न रखनेवाला, सब प्राणियोंसे मित्रता रखनेवाला, गुरुसेवामें तत्पर, बाह्य विषयोंमें अनासक्त, शान्तचित्त, मत्सरशून्य और पवित्रचित्त हो तथा मुझे प्रियतम माननेवाला हो, उसे इसका अवश्य उपदेश करे । माँ ! जो पुरुष मुझमें चित्त लगाकर इसका श्रद्धापूर्वक एक बार भी श्रवण या कथन करेगा, वह मेरे परमपदको प्राप्त होगा ॥ ३७–४२ ॥

तैंतीसवाँ अध्याय

देवहूतिको तत्त्वज्ञान एवं मोक्षपदकी प्राप्ति

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! श्रीकपिल भगवान्‌के ये वचन सुनकर कर्दमजीकी प्रिया और उनकी माता देवहूतिका मोहरूप आवरण हट गया और वे साङ्ख्य ज्ञानके आदिप्रवर्तक श्रीकपिलजीको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगीं ॥ १ ॥

देवहूतिजी बोलीं—कपिलजी ! ब्रह्माजी आपके ही

वैराग्य होता है। जिसके भयसे लोग शुभ कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं और जो ब्रह्मादिका भी शासन करनेवाला है, उस सर्वसमर्थ कालका स्वरूप भी आप मुझसे कहिये; क्योंकि ज्ञानदृष्टिके लुप्त हो जानेके कारण देहादि मिथ्या वस्तुओंमें अभिमान करके तथा बुद्धिके कर्मासक्त रहनेके कारण अत्यन्त श्रमित होकर जो चिरकालसे अत्यन्त अन्धकारमें सोये पड़े हैं, उन्हें जगाने तथा ज्ञानरूप प्रकाशसे उनका अन्धकार दूर करनेके लिये आप योगमार्गके साक्षात् सूर्य ही प्रकट हुए हैं ॥ १—५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—कुरुश्रेष्ठ विदुरजी ! माताके ये मधुर वचन सुनकर महामुनि कपिलजीने उनकी प्रशंसा की और फिर जीवोंपर दया करके बड़ी प्रसन्नताके साथ इस प्रकार कहने लगे ॥ ६ ॥

श्रीभगवान् बोले—माताजी ! साधकोंके भावके अनुसार भक्तियोगका अनेक प्रकारसे प्रकाश होता है, क्योंकि स्वभाव और गुणोंके भेदसे मनुष्योंके भावमें भी विभिन्नता आ जाती है। जो भेददर्शी क्रोधी पुरुष हृदयमें हिंसा, दम्भ (दिखौआपन) अथवा मात्सर्यका भाव रखकर मुझसे प्रेम करता है, वह मेरा तामस भक्त है। जो पुरुष विषयोंकी कामनासे अथवा यश या ऐश्वर्यके लिये मेरा प्रतिमादिमें भेदभावसे पूजन करता है, वह राजस भक्त है। तथा जो व्यक्ति पापोंका क्षय करनेके लिये, परमात्माको अर्पण करनेके लिये अर्थात् भगवत्प्रीतिके लिये, अथवा पूजन करना कर्त्तव्य है—इस बुद्धिसे मेरा भेदभावसे पूजन करता है, वह सात्त्विक भक्त है। इनके अतिरिक्त जिस प्रकार गङ्गाका प्रवाह अखण्ड-रूपसे समुद्रकी ओर बहता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे मनकी गतिका तैलधारावत् अविच्छिन्नरूपसे मुझ सर्वान्तर्यामीके प्रति हो जाना तथा मुझ पुरुषोत्तममें निष्काम और अनन्य प्रेम होना—यह निर्गुण भक्ति-योगका लक्षण कहा गया है। अर्थात् अनन्य एवं निष्काम प्रेमसहित भगवान्‌का निरन्तर चिन्तन ही निर्गुण भक्तिका स्वरूप है। ऐसे निष्काम भक्त, दिये जानेपर भी, मेरी सेवाको छोड़कर सालोक्य[1], सार्ष्टि[2], सामीप्य[3], सारूप्य[4] और सायुज्य[5] मोक्षतक नहीं लेते—उनकी कामना करना तो दूर रहा। भगवत्-सेवाके लिये मुक्तिका तिरस्कार करनेवाला यह भक्तियोग ही परम पुरुषार्थ अथवा साध्य कहा गया है। इसके द्वारा पुरुष तीनों गुणोंको लाँघकर मेरे भावको—मेरे प्रेमरूप अप्राकृत स्वरूपको प्राप्त हो जाता है ॥ ७—१४ ॥

निष्कामभावसे श्रद्धापूर्वक अपने नित्य-नैमित्तिक कर्त्तव्यों-का पालन करनेसे, नित्यप्रति शास्त्रोक्त हिंसारहित क्रियायोगका अनुष्ठान करनेसे, मेरी प्रतिमाका दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति और वन्दना करनेसे, प्राणियोंमें मेरी भावना करनेसे, धैर्य और वैराग्यके अवलम्बनसे, महापुरुषोंका मान, दीनोंपर दया और समान स्थितिवालोंके प्रति मित्रताका व्यवहार करनेसे, यम-नियमोंका पालन, अध्यात्मशास्त्रोंका श्रवण और मेरे नामोंका उच्च स्वरसे कीर्त्तन करनेसे तथा मनकी सरलता, सत्पुरुषोंके सङ्ग और अहङ्कारके त्यागसे मेरे धर्मोंका (भागवतधर्मोंका) अनुष्ठान करनेवाले भक्त पुरुषका चित्त अत्यन्त शुद्ध होकर मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे अनायास ही मुझमें लग जाता है ॥ १५—१९ ॥

जिस प्रकार वायुके द्वारा उड़कर जानेवाला गन्ध अपने आश्रय पुष्पसे घ्राणेन्द्रियतक पहुँच जाता है, उसी प्रकार भक्तियोगमें तत्पर और राग-द्वेषादि विकारोंसे शून्य चित्त परमात्माको प्राप्त कर लेता है। मैं अन्तर्यामी-रूपसे सदा सभी जीवोंमें विराजमान हूँ; इसलिये जो लोग मुझ सर्वभूतस्थित परमात्माका अनादर करके केवल प्रतिमामें ही मेरा पूजन करते हैं, उनकी वह पूजा स्वाँगमात्र है। मैं सबका आत्मा, परमेश्वर सभी भूतोंमें स्थित हूँ; ऐसी दशामें जो मोहवश मेरी उपेक्षा करके केवल प्रतिमाके पूजनमें ही लगा रहता है, वह तो मानो भस्ममें ही हवन करता है—उसकी उस पूजाका कुछ भी फल नहीं होता। जो भेददर्शी और अभिमानी पुरुष दूसरे जीवोंके साथ वैर बाँधता है और इस प्रकार उनके शरीरोंमें विद्यमान मुझ अन्तर्यामीसे ही द्वेष करता है, उसके मनको कभी शान्ति नहीं मिल सकती। पापरहिता माताजी ! जो दूसरे जीवोंकी निन्दा करता है, वह बहुत-सी घटिया-बढ़िया सामग्रियोंसे अनेक प्रकारके विधि-विधानपूर्वक मेरी मूर्त्तिका पूजन भी करे तो भी मैं उससे प्रसन्न नहीं हो सकता। अवश्य ही जबतक उपासकको सब भूतोंमें स्थित मुझ परमेश्वरका अपने हृदयमें अनुभव न हो, तबतक उसे चाहिये कि वह स्वधर्मका पालन करते हुए यथावकाश प्रतिमादिके द्वारा मेरा पूजन करता रहे। जो व्यक्ति आत्मा और परमात्माके बीचमें थोड़ा-सा भी अन्तर करता है, उस भेददर्शीको मैं मृत्युरूपसे महान्

१. भगवान्‌के नित्यधाममें निवास, २. भगवान्‌के समान ऐश्वर्यभोग, ३. भगवान्‌की नित्य समीपता, ४. भगवान्‌का-सा रूप और ५. भगवान्‌के विग्रहमें समा जाना, उनसे एक हो जाना या ब्रह्म-स्वरूप प्राप्त कर लेना।

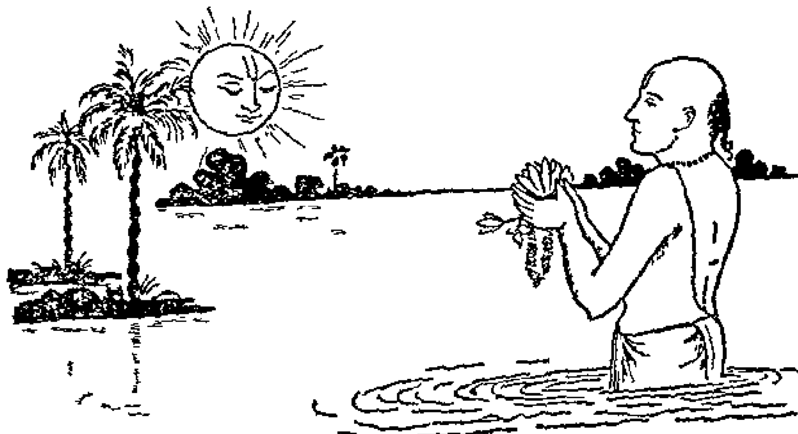
चिन्तन करते करते वे कुछ ही दिनोंमें ऐसे ऐश्वर्यसम्पन्न घरसे भी उपरत हो गयीं। फिर वे, कपिलदेवजीने भगवान्‌के जिस ध्यान करनेयोग्य प्रसन्नवदनारविन्दयुक्त स्वरूपका वर्णन किया था, उसके एक-एक अवयवका तथा उस समग्ररूपका भी ध्यान करने लगीं। इसके बाद भगवद्भक्तिके प्रवाह, प्रबल वैराग्य और यथोचित कर्मानुष्ठानसे उत्पन्न हुए ब्रह्मसाक्षात्कार करानेवाले ज्ञानद्वारा चित्त शुद्ध हो जानेपर वे उस सर्वव्यापक आत्माके ध्यानमें मग्न हो गयीं, जो अपने स्वरूपके प्रकाशसे मायाजनित आवरणको दूर कर देता है। इस प्रकार जीवके अधिष्ठानभूत परब्रह्म श्रीभगवान्‌में ही बुद्धिकी स्थिति हो जानेसे उनका जीवभाव निवृत्त हो गया और वे समस्त क्लेशोंसे मुक्त होकर परमानन्दमें निमग्न हो गयीं। अब निरन्तर समाधिस्थ रहनेके कारण सत्त्वादि गुणजनित भ्रम दूर हो जानेपर उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि न रही—जैसे जागे हुए पुरुषको अपने स्वप्नमें देखे हुए शरीरका भान नहीं रहता। इस समय उनके शरीरका पोषण भी उनकी दासियोंके ही प्रयत्नसे होता था। किन्तु किसी प्रकारका मानसिक क्लेश न होनेके कारण वह दुर्बल नहीं हुआ, बल्कि उसका तेज और भी निखर गया। धूलिसे ढक जानेके कारण वह साक्षात् धूमयुक्त अग्निके समान जान पड़ता था। उनके बाल बिखुर गये थे और वस्त्र भी गिर गया था, तथापि निरन्तर श्रीभगवान्‌में ही चित्त लगा रहनेके कारण उन्हें अपने तपोयोगमय शरीरकी कुछ भी सुधि नहीं थी, केवल प्रारब्ध ही उसकी रक्षा करता था॥ २१-२९॥

वीरवर विदुरजी! इस प्रकार देवहूतिजीने कपिलदेवजीके बताये हुए मार्गद्वारा थोड़े ही समयमें नित्यमुक्त परमात्मस्वरूप श्रीभगवान्‌को प्राप्त कर लिया। जिस स्थानपर उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी, वह परम पवित्र क्षेत्र त्रिलोकीमें 'सिद्धपद' नामसे विख्यात हुआ। साधुस्वभाव विदुरजी! योगसाधनके द्वारा उनके शरीरके सारे दैहिक मल दूर हो गये थे। वह एक नदीके रूपमें परिणत हो गया, जो सिद्धगणसे सेवित और सब प्रकारकी सिद्धि देनेवाली है॥ ३०-३२॥

महायोगी भगवान् कपिलजी भी माताकी आज्ञा ले पिताके आश्रमसे उत्तर पूर्व (ईशानकोण) की ओर चल दिये, जहाँ स्वयं समुद्रने उनका स्वागत करके उन्हें स्थान दिया। वे तीनों लोकोंको शान्ति प्रदान करनेके लिये योग मार्गका अवलम्बन कर समाधिमें स्थित हो गये हैं। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, मुनि और अप्सरागण उनकी स्तुति करते हैं तथा सांख्याचार्यगण भी उनका सब प्रकार स्तवन करते रहते हैं॥ ३३-३५॥

तात! तुम्हारे पूछनेसे मैंने तुम्हें यह भगवान् कपिल और देवहूतिका परम पवित्र संवाद सुनाया। निष्पाप विदुरजी! यह कपिलदेवजीका मत अध्यात्मयोगका गूढ़ रहस्य है। जो पुरुष इसे निरन्तर सुनता या कहता है, उसे भगवान् गरुडध्वजकी भक्ति प्राप्त होकर शीघ्र ही श्रीहरिके चरणारविन्दोंकी प्राप्ति हो जाती है॥ ३६-३७॥

तृतीय स्कन्ध समाप्त



भगवान् काल उससे छीन लेता है—जिसके कारण उसे बड़ा शोक होता है। इसका कारण यही है कि यह मन्दमति जीव अपने इस नाशवान् शरीर तथा उसके सम्बन्धियोंके घर, खेत और धन आदिको मोहवश नित्य मान लेता है। देखो, इस संसारमें यह जिस-जिस योनिमें जन्म लेता है, उसी-उसीमें आनन्द मानने लगता है और उससे विरक्त नहीं होता। यह भगवान्‌की मायासे ऐसा मोहित हो रहा है कि कर्मवश नारकी योनियोंमें जन्म लेनेपर भी वहाँके विष्ठा आदि भोगोंमें ही सुख माननेके कारण उसे भी छोड़ना नहीं चाहता। यह मूर्ख अपने शरीर, स्त्री, पुत्र, गृह, पशु, धन और बन्धु-बान्धवोंमें अत्यन्त आसक्त होकर उनके सम्बन्धमें नाना प्रकारके मनोरथ करता हुआ अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझता है। इनके पालन-पोषणकी चिन्तासे इसके सम्पूर्ण अङ्ग जलते रहते हैं; तथापि दुर्वासनाओंका दास होनेके कारण यह निरन्तर इन्हींके लिये तरह-तरहके पाप करता रहता है। कुलटा स्त्रियोंके द्वारा एकान्तमें सम्भोगादिके समय प्रदर्शित किये हुए कपटपूर्ण प्रेममें तथा बालकोंकी मीठी-मीठी बातोंमें मन और इन्द्रियोंके फँस जानेसे गृहस्थी पुरुष घरके कपट-धर्मयुक्त और अत्यन्त दुःखदायी कर्मोंमें लिप्त हो जाता है। उस समय बहुत सावधानी करनेपर यदि उसे किसी दुःखका प्रतीकार करनेमें सफलता मिल जाती है, तो उसे ही वह सुख-सा मान लेता है। जहाँ-तहाँसे भयङ्कर हिंसावृत्तिके द्वारा धन सञ्चय कर यह स्त्री-पुत्रादिका ही पोषण करता है और उनके पेटसे बचे हुए अन्नको खाकर आप नरकमें जाता है। बार-बार प्रयत्न करनेपर भी जब इसकी कोई जीविका नहीं चलती, तो यह लोभवश अधीर हो जानेसे दूसरेके धनकी इच्छा करने लगता है। जब मन्द भाग्यके कारण इसका कोई प्रयत्न नहीं चलता और यह मन्दबुद्धि धनहीन होकर कुटुम्बके भरण-पोषणमें असमर्थ हो जाता है, तो अत्यन्त दीन और चिन्तातुर होकर लंबी-लंबी साँसें छोड़ने लगता है ॥१—१२॥

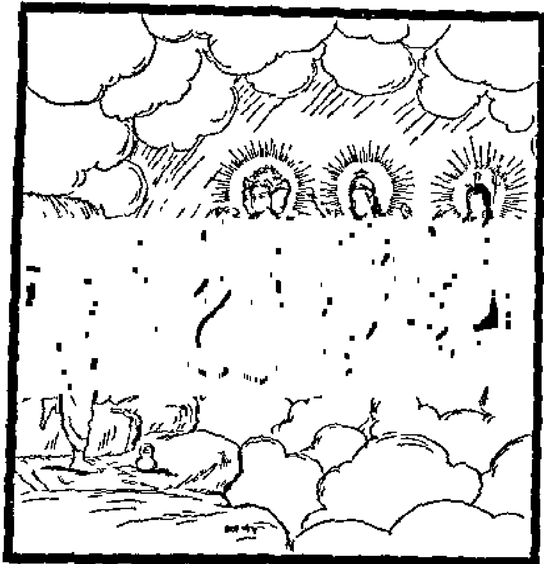
इस प्रकार इसे अपने पालन-पोषणमें असमर्थ देखकर वे स्त्री-पुत्रादि इसका पहलेके समान आदर नहीं करते, जैसे कृपण किसान बूढ़े बैलकी उपेक्षा कर देते हैं। किन्तु फिर भी इसे वैराग्य नहीं होता। वृद्धावस्थाके कारण इसका रूप बिगड़ जाता है, शरीर रोगी रहनेके कारण अग्नि मन्द पड़ जाती है तथा भोजन और पुरुषार्थ दोनों ही कम हो जाते हैं। इस प्रकार मरणोन्मुख हो जानेपर अपने ही पाले हुए स्त्री-पुत्रादिके अपमानपूर्वक दिये हुए टुकड़ेसे निर्वाह करता हुआ यह घरकी रखवाली करनेवाले कुत्तेके समान अपने घरपर ही पड़ा रहता है। जब प्राण-प्रयाणका समय आता है तो वायुके कारण इसकी पुतलियाँ चढ़ जाती हैं, श्वास-प्रश्वासकी नलिकाएँ कफसे रुक जाती हैं, खाँसने और साँस लेनेमें भी इसे बड़ा कष्ट होता है तथा कफ बढ़ जानेके कारण कण्ठमें घुर-घुर शब्द होने लगता है। यह अपने शोकातुर बन्धु-बान्धवोंसे घिरा हुआ पड़ा रहता है और मृत्युपाशके वशीभूत हो जानेसे उनके बुलवानेपर भी नहीं बोल सकता ॥ १३—१७ ॥

इस प्रकार इन्द्रियोंको न जीतकर निरन्तर कुटुम्ब-पोषणमें ही लगा रहनेवाला वह मूढ पुरुष आत्मीयोंको रोते छोड़कर चल बसता है। उस समय अत्यन्त कष्टके कारण उसकी बुद्धि मारी जाती है। इस अवसरपर उसे लेनेके लिये अति भयङ्कर और रोषयुक्त नेत्रोंवाले जो दो यमदूत आते हैं, उन्हें देखकर वह भयके कारण मल-मूत्र त्याग देता है। वे यमदूत उसे यातनादेहमें डाल देते हैं और फिर जिस प्रकार राजदूत किसी अपराधीको ले जाते हैं, उसी प्रकार उसके गलेमें रस्सी बाँधकर बलात्कारसे यमलोककी लंबी यात्रामें ले चलते हैं। उनकी घुड़कियोंसे उसका हृदय फटने और शरीर काँपने लगता है, मार्गमें उसे कुत्ते नोचते हैं। उस समय अपने पापोंकी याद आनेसे वह व्याकुल हो उठता है। भूख-प्यास उसे बेचैन कर देती है तथा घाम, दावानल और लूओंसे वह तप जाता है। ऐसी अवस्थामें जल और विश्राम-स्थानसे रहित उस तप्तबालुकामय मार्गमें जब उसे एक पग आगे बढ़नेकी भी शक्ति नहीं रहती, तो यमदूत उसकी पीठपर कोड़े बरसाते हैं। तब कष्ट पाकर भी उसे चलना ही पड़ता है। वह जहाँ-तहाँ थककर गिर जाता है, मूर्च्छा आ जाती है, चेतना आनेपर फिर उठता है। इस प्रकार अति दुःखमय अँधेरे मार्गसे यमदूत उसे यमपुरीको ले जाते हैं। यमलोकका मार्ग निन्यानवे हजार योजन है। इतने लंबे मार्गको दो-ही-तीन मुहूर्त्तमें तै करके वह नरकमें तरह-तरहकी यातनाएँ भोगता है। दहकती हुई लकड़ियों आदिके बीचमें डालकर जलाया जाना, स्वयं अथवा दूसरोंके द्वारा अपना ही मांस नोचकर खिलाया जाना, यमपुरीके कुत्तों अथवा गिद्धोंद्वारा जीते-जी आँतें खींची जानी, साँप, विच्छू और डाँस आदि डसनेवाले तथा डंक मारनेवाले जीवोंसे शरीरको पीड़ा पहुँचाया जाना, शरीरके काटकर टुकड़े-टुकड़े किये

उस समय वे मन-ही-मन यही प्रार्थना करते थे कि 'जो सम्पूर्ण जगत्‌के ईश्वर हैं, हम उनकी शरणमें हैं; वे हमें अपने ही समान सन्तान प्रदान करें' ॥१७–२०॥

तब यह देखकर कि प्राणायामरूपी ईंधनसे प्रज्वलित हुआ अत्रिमुनिका तेज उनके मस्तकसे निकलकर तीनों लोकोंको तपा रहा है,—ब्रह्मा, विष्णु और महादेव—तीनों जगत्पति उनके आश्रमपर आये। उस समय अप्सरा, मुनि, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर और नाग उनका सुयश गा रहे थे। उन तीनोंका एक ही साथ प्रादुर्भाव होनेसे अत्रिमुनिका अन्तःकरण प्रकाशित हो उठा। उन्होंने एक पैरसे खड़े-खड़े ही उन देवदेवोंको देखा और फिर पृथ्वीपर दण्डके समान लोटकर प्रणाम करनेके अनन्तर अर्घ्य पुष्पादि पूजनकी सामग्री हाथमें ले उनकी पूजा की। वे तीनों अपने-अपने वाहन—हंस, गरुड़ और बैलपर चढ़े हुए तथा अपने कमण्डलु, चक्र, त्रिशूलादि चिह्नोंसे सुशोभित थे। उनकी आँखोंसे कृपाकी वर्षा हो रही थी। उनके मुखपर मन्दहास्यकी रेखा थी—जिससे उनकी प्रसन्नता झलक रही थी। उनके तेजसे चौंधियाकर मुनिवरने अपनी आँखें मूँद लीं और चित्तको उन्हींकी ओर लगाकर हाथ जोड़कर वे अति मधुर और सुन्दर भावपूर्ण शब्दोंमें लोकमें सबसे बड़े उन तीनों देवोंकी स्तुति करने लगे॥२१–२६॥

अत्रिमुनिने कहा—भगवन्! प्रत्येक कल्पके आरम्भमें



जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये जो मायाके सत्त्वादि तीनों गुणोंका विभाग करके भिन्न-भिन्न शरीर धारण करते हैं—वे ब्रह्मा, विष्णु और महादेव आप ही हैं; मैं आपको प्रणाम करता हूँ। कहिये—मैंने जिनको बुलाया था, आपमेंसे वे कौन महानुभाव हैं? क्योंकि मैंने तो सन्तानप्राप्तिकी इच्छासे विविध पूजोपचारोंके द्वारा केवल एक ही भगवान्‌का चिन्तन किया था। फिर आप तीनोंने यहाँ पधारनेकी कृपा कैसे की? आपलोगोंतक तो देहधारियोंके मनकी भी गति नहीं है, इसलिये मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है। आपलोग कृपा करके मुझे इसका रहस्य बतलाइये ॥२७-२८॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—समर्थ विदुरजी! अत्रिमुनिके वचन सुनकर वे तीनों देव हँसे और उनसे सुमधुर वाणीमें कहने लगे ॥२९॥

देवगण बोले—ब्रह्मन्! तुम सत्यसङ्कल्प हो। इससे तुमने जैसा सङ्कल्प किया था, वही तो होना चाहिये था; उससे विपरीत कैसे हो सकता था? तुम जिस 'जगदीश्वर' का ध्यान करते थे, वह हम तीनों ही तो हैं। प्यारे मुनि! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे यहाँ हमारे ही अंशस्वरूप तीन जगद्विख्यात पुत्र उत्पन्न होंगे। वे तुम्हारे सुन्दर यशका खूब विस्तार करेंगे। उन्हें इस प्रकार अभीष्ट वर देकर तथा पति-पत्नी दोनोंसे भली भाँति पूजित होकर उनके देखते-ही-देखते वे तीनों सुरेश्वर अपने-अपने लोकोंको चले गये। फिर समय पाकर ब्रह्माजीके अंशसे चन्द्रमा, विष्णुके अंशसे योगवेत्ता दत्तात्रेयजी और महादेवजीके अंशसे दुर्वासा ऋषि अत्रिके पुत्ररूपमें प्रकट हुए। अब अङ्गिरा ऋषिकी सन्तानका वर्णन सुनो ॥३०–३३॥

अङ्गिराकी पत्नी श्रद्धासे सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति—इन चार कन्याओंका जन्म हुआ। इनके सिवा उनके साक्षात् भगवान् उतथ्यजी और ब्रह्मनिष्ठ बृहस्पतिजी—ये दो पुत्र भी हुए, जो स्वारोचिष मन्वन्तरमें विख्यात हुए। पुलस्त्यजीके उनकी पत्नी हविर्भूसे महर्षि अगस्त्य और महातपस्वी विश्रवा—ये दो पुत्र हुए। इनमें अगस्त्यजी दूसरे जन्ममें जठराग्नि हुए। विश्रवा मुनिके इडविडाके गर्भसे यक्षराज कुबेरका जन्म हुआ और उनकी दूसरी पत्नी केशिनीसे रावण, कुम्भकर्ण एवं विभीषण उत्पन्न हुए ॥३४–३७॥

महामते! महर्षि पुलहकी स्त्री परम साध्वी गतिसे कर्मश्रेष्ठ, वरीयान् और सहिष्णु—ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इसी प्रकार क्रतुकी पत्नी क्रियाने ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान वालखिल्यादि साठ हजार ऋषियोंको जन्म दिया। शत्रुतापन विदुरजी! वसिष्ठजीकी पत्नी ऊर्जा (अरुन्धती) से चित्रकेतु आदि सात

जान पड़ते हैं, अपने सन्तप्त हृदयमें स्फुरित होनेवाले उन विशुद्ध (उपाधिरहित), अविकारी और अखण्ड बोधस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं वस्तुतः शरीरादिसे रहित (असङ्ग) होनेपर भी देखनेमें पाञ्चभौतिक शरीरसे सम्बद्ध हूँ और इसीलिये इन्द्रिय, गुण, शब्दादि विषय और चिदाभास (अहङ्कार)-रूप जान पड़ता हूँ। अतः इस शरीरादिके आवरणसे जिनकी महिमा कुण्ठित नहीं हुई है, उन प्रकृति और पुरुषके नियन्ता सर्वज्ञ (विद्याशक्तिसम्पन्न) परमपुरुषकी मैं वन्दना करता हूँ। उन्हींकी मायासे मोहित होकर यह जीव अनेक प्रकारके सत्त्वादि गुण और कर्मके बन्धनसे युक्त इस संसारमार्गमें तरह-तरहके कष्ट झेलता हुआ भटकता रहता है; अतः उन परमपुरुष परमात्माकी कृपाके बिना और किस युक्तिसे इसे अपने स्वरूपका ज्ञान हो सकता है? मुझे जो यह त्रैकालिक ज्ञान हुआ है, यह भी उनके सिवा और किसने दिया है? क्योंकि स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंमें एकमात्र वे ही तो अन्तर्यामीरूप अंशसे विद्यमान हैं। अतः जीवोंके अनुरूप कर्मदशाका अनुवर्तन करनेवाले हम अपने त्रिविध तापोंकी शान्तिके लिये उन्हींका भजन करते हैं ॥१२–१६॥

भगवन्! यह देहधारी जीव दूसरे (माताके) देहके उदरमें, जो साक्षात् मल-मूत्र और रुधिरका कुआँ ही है, पड़ा हुआ उसकी जठराग्निसे अत्यन्त सन्तप्त हो रहा है। इससे निकलनेकी इच्छा करता हुआ यह अपने महीने गिन रहा है। दयानिधे! अब इस दीनको यहाँसे कब निकाला जायगा? स्वामिन्! आप परम उदार हैं, आपहीने इस दस मासके जीवको ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान दिया है। दीनबन्धो! इस अपने किये हुए उपकारसे ही आप प्रसन्न हों; क्योंकि आपको हाथ जोड़नेके सिवा आपके उस उपकारका बदला तो कोई दे भी क्या सकता है ॥१७-१८॥

प्रभो! संसारके ये पशु-पक्षी आदि अन्य जीव तो अपने शरीरमें होनेवाले सुख-दुःखादिका ही अनुभव करते हैं; किन्तु मैं तो आपकी कृपासे शम-दमादि साधनसम्पन्न शरीरसे युक्त हुआ हूँ, अतः आपकी दी हुई विवेकवती बुद्धिसे आप पुराणपुरुषको अपने शरीरके बाहर और भीतर (हृदयमें) अहङ्कारके विषयरूप आत्माकी भाँति प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ। भगवन्! इस गर्भाशयमें यद्यपि मैं बड़े कष्टसे रह रहा हूँ, तो भी इससे बाहर निकलकर संसारमय अन्धकूपमें गिरनेकी मुझे बिल्कुल इच्छा नहीं है; क्योंकि उसमें जानेवाले जीवको आपकी माया घेर लेती है, जिसके कारण उसकी शरीरमें अहंबुद्धि हो जाती है और उसके परिणाममें उसे फिर इस संसारचक्रमें ही पड़ना होता है। अतः मैं व्याकुलताको छोड़कर हृदयमें श्रीविष्णुभगवान्‌के चरणोंको स्थापित कर अपनी बुद्धिकी सहायतासे ही अपनेको बहुत शीघ्र इस संसाररूप समुद्रके पार लगा दूँगा, जिससे मुझे अनेक प्रकारके दोषोंसे युक्त यह संसार-दुःख फिर न प्राप्त हो ॥१९–२१॥

श्रीकपिलदेवजी कहते हैं—माता! वह दस महीनेका जीव गर्भमें ही जब इस प्रकार विवेकसम्पन्न होकर भगवान्‌की स्तुति करता है, तो उस अधोमुख बालकको प्रसवकालकी वायु तत्काल बाहर आनेके लिये ढकेलती है। उसके सहसा ठेलनेसे बाहर निकलनेमें उस बालकको बड़ा कष्ट होता है। उसका सिर नीचेकी ओर रहता है, इसलिये वह तिलमिला उठता है; उसके श्वासकी गति रुक जाती है और पूर्वस्मृति नष्ट हो जाती है। पृथ्वीपर माताके रुधिर और मूत्रमें पड़ा हुआ वह बालक विष्ठाके कीड़ेके समान छटपटाता है। उसका गर्भवासका सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है और वह विपरीत गति (देहाभिमानरूप अज्ञान-दशा) को प्राप्त होकर रोने लगता है ॥२२–२४॥

फिर जो लोग उसका अभिप्राय नहीं समझ सकते, उनके द्वारा उसका पालन-पोषण होता है। ऐसी अवस्थामें उसे जो प्रतिकूलता प्राप्त होती है, उसका निषेध करनेकी शक्ति भी उसमें नहीं होती। जब उसे मैली-कुचैली खाटपर सुला दिया जाता है, जिसमें खटमल आदि स्वेदज जीव चिपटे रहते हैं, तो उसमें शरीरको खुजलाने, उठाने अथवा करवट बदलनेकी भी सामर्थ्य न होनेके कारण वह बड़ा कष्ट पाता है। उसकी त्वचा बड़ी कोमल होती है; उसे डाँस, मच्छर और खटमल आदि उसी प्रकार काटते रहते हैं, जैसे बड़े कीड़ेको छोटे कीड़े। इस समय उसका गर्भावस्थाका सारा ज्ञान जाता रहता है, सिवा रोनेके वह कुछ नहीं कर सकता ॥२५–२७॥

इस प्रकार बाल्य और कौमार अवस्थाओंके दुःख भोगकर वह बालक युवावस्थामें पहुँचता है। इस समय उसे यदि कोई इच्छित भोग नहीं प्राप्त होता, तो वह अज्ञानवश झुँझला उठता है और शोकाकुल हो जाता है। देहके साथ-ही-साथ अभिमान और क्रोध बढ़ जानेके कारण वह कामपरवश जीव अपना ही नाश करनेके लिये दूसरे कामी पुरुषोंके साथ वैर ठानता है। उसपर अज्ञानका पूरा प्रभुत्व

दूसरा अध्याय

भगवान् शिव और दक्षप्रजापतिका मनोमालिन्य

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन् ! प्रजापति दक्ष तो अपनी लड़कियोंसे बहुत ही स्नेह रखते थे, फिर उन्होंने अपनी कन्या सतीका अनादर करके शीलवानोंमें सबसे श्रेष्ठ श्रीमहादेवजीसे द्वेष क्यों किया ? महादेवजी भी चराचरके गुरु, वैररहित, शान्तमूर्ति, आत्माराम और जगत्‌के परम इष्टदेव हैं । उनसे भला, कोई क्यों वैर करेगा ? भगवन् ! ऐसे उन ससुर और दामादमें इतना विद्वेष कैसे हो गया, जिसके कारण सतीको अपने दुस्त्यज प्राणोंतककी बलि देनी पड़ी ? यह आप मुझसे कहिये ॥ १—३ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—विदुरजी ! पहले एक बार प्रजापतियोंके यज्ञमें सब बड़े बड़े ऋषि, देवता, मुनि और अग्नि आदि अपने अपने अनुयायियोंके सहित एकत्र हुए थे । उस समय प्रजापति दक्ष भी वहाँ आये । उनके सूर्यके समान तेजसे वह विशाल सभामण्डप जगमगा उठा । ब्रह्माजी और महादेवजीके अतिरिक्त तेजःपुञ्ज अग्निपर्यन्त सभी सभासद् उनके तेजसे प्रभावित होकर अपने अपने आसनोंसे उठकर खड़े हो गये । इस प्रकार समस्त सभासदोंसे भलीभाँति सम्मान प्राप्त करके तेजस्वी दक्ष जगत्पिता ब्रह्माजीको प्रणाम कर उनकी आज्ञासे अपने आसनपर बैठ गये ॥ ४—७ ॥

परन्तु महादेवजीको पहलेहीसे बैठा देख, तथा उनसे अभ्युत्थानादिके रूपमें कुछ भी आदर न पाकर दक्ष उनका यह व्यवहार सहन न कर सके । उन्होंने उनकी ओर टेढ़ी नजरसे इस प्रकार देखा, मानो उन्हें क्रोधाग्निसे जला डालेंगे । फिर वे कहने लगे—"देवता और अग्नियोंके सहित समस्त महर्षिगण मेरी बात सुनें । मैं अज्ञान अथवा मत्सरतासे नहीं कहता, मैं तो शिष्टाचारकी रक्षाके लिये ही कहता हूँ । यह निर्लज्ज महादेव समस्त लोकपालोंकी पवित्र कीर्तिको धूलमें मिला रहा है । देखिये, इस घमंडीने सत्पुरुषोंके आचरणको मटियामेट कर दिया है । बंदरके से नेत्रवाले इसने सत्पुरुषोंके समान मेरी सावित्री-सरीखी मृगनयनी पवित्र कन्याका अग्नि और ब्राह्मणोंके सामने पाणिग्रहण किया था, इसलिये यह एक प्रकार मेरे पुत्रके समान हो गया है । उचित तो यह था कि यह उठकर मेरा स्वागत करता, मुझे प्रणाम करता; परन्तु इसने तो वाणीसे भी मेरा सत्कार नहीं किया । हाय ! जिस प्रकार शूद्रको कोई वेद पढ़ा दे, उसी प्रकार मैंने इच्छा न होते हुए भी भावीवश इसको अपनी सुकुमारी कन्या दे दी । यह भ्रष्ट कर्म करता है, सदा अपवित्र रहता है, बड़ा घमंडी है और धर्मकी किसी भी मर्यादाको नहीं मानता । यह प्रेतोंके निवासस्थान भयङ्कर श्मशानोंमें भूत-प्रेतोंको साथ लिये घूमता रहता है । पूरे पागलकी तरह सिरके बाल बिखेरे नगधड़ंग भटकता है, कभी हँसता है, कभी रोता है । यह सारे शरीरपर चिताकी अपवित्र भस्म लपेटे रहता है, गलेमें भूतोंके पहनने योग्य नरमुण्डोंकी माला और सारे शरीरमें हड्डियोंके गहने पहने रहता है । यह बस, नामभरका ही शिव है, वास्तवमें है पूरा अशिव—अमङ्गलरूप । जैसे यह स्वयं नशेबाज मतवाला है, वैसे ही इसे मतवाले ही प्यारे लगते हैं । भूत प्रेत, प्रमथ आदि निरे तमोगुणी स्वभाववाले जीवोंका यह नेता है । अरे ! मैंने केवल ब्रह्माजीके बहकावेमें आकर ऐसे भूतोंके सरदार, आचारहीन और दुष्ट स्वभाववालेको अपनी भोलीभाली बेटी ब्याह दी' ॥ ८—१६ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! दक्षने इस प्रकार महादेवजीको बहुत कुछ बुरा भला कहा; तथापि उन्होंने इसका कोई प्रतिकार नहीं किया, वे पूर्ववत् निश्चलभावसे बैठे रहे । इससे दक्षके क्रोधका पारा और भी ऊँचा चढ़ गया और वे जल हाथमें लेकर उन्हें शाप देनेको तैयार हो गये । दक्षने कहा, 'यह महादेव देवताओंमें बड़ा ही अधम है । अबसे इसे इन्द्र उपेन्द्र आदि देवताओंके साथ यज्ञका भाग न मिले ।' उपस्थित सभासदोंने उन्हें बहुत रोका, परन्तु उन्होंने किसीकी न सुनी; वे महादेवजीको शाप दे अत्यन्त क्रोधित हो उस सभासे निकलकर अपने घर चले आये ॥ १७—१९ ॥

जब श्रीशङ्करजीके अनुयायियोंमें अग्रगण्य नन्दीश्वरको मालूम हुआ कि दक्षने शाप दिया है, तो वे क्रोधसे तमतमा उठे और उन्होंने दक्ष तथा उन ब्राह्मणोंको, जिन्होंने दक्षके दुर्वचनोंका अनुमोदन किया था, बड़ा भयङ्कर शाप दिया । वे बोले—"जो इस मरणधर्मा शरीरमें ही अभिमान करके किसीसे भी द्रोह न करनेवाले भगवान् शङ्करसे द्वेष करता है, वह भेद-बुद्धिवाला मूर्ख दक्ष तत्त्वज्ञानसे विमुख ही रहे । यह 'चातुर्मास्य यज्ञ करनेवालेको अक्षय पुण्य प्राप्त होता है' आदि अर्थवाद-रूप वेदवाक्योंसे मोहित एवं विवेकभ्रष्ट होकर विषयसुखकी

जान पड़ते हैं, अपने सन्तप्त हृदयमें स्फुरित होनेवाले उन विशुद्ध (उपाधिरहित), अविकारी और अखण्ड बोधस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं वस्तुतः शरीरादिसे रहित (असङ्ग) होनेपर भी देखनेमें पाञ्चभौतिक शरीरसे सम्बद्ध हूँ और इसीलिये इन्द्रिय, गुण, शब्दादि विषय और चिदाभास (अहङ्कार)-रूप जान पड़ता हूँ। अतः इस शरीरादिके आवरणसे जिनकी महिमा कुण्ठित नहीं हुई है, उन प्रकृति और पुरुषके नियन्ता सर्वज्ञ (विद्याशक्तिसम्पन्न) परमपुरुषकी मैं वन्दना करता हूँ। उन्हींकी मायासे मोहित होकर यह जीव अनेक प्रकारके सत्त्वादि गुण और कर्मके बन्धनसे युक्त इस संसारमार्गमें तरह-तरहके कष्ट झेलता हुआ भटकता रहता है; अतः उन परमपुरुष परमात्माकी कृपाके बिना और किस युक्तिसे इसे अपने स्वरूपका ज्ञान हो सकता है ? मुझे जो यह त्रैकालिक ज्ञान हुआ है, यह भी उनके सिवा और किसने दिया है ? क्योंकि स्थावर-जङ्गम समस्त प्राणियोंमें एकमात्र वे ही तो अन्तर्यामीरूप अंशसे विद्यमान हैं। अतः जीवोंके अनुरूप कर्मदशाका अनुवर्तन करनेवाले हम अपने त्रिविध तापोंकी शान्तिके लिये उन्हींका भजन करते हैं ॥१२–१६॥

भगवन् ! यह देहधारी जीव दूसरे (माताके) देहके उदरमें, जो साक्षात् मल-मूत्र और रुधिरका कुआँ ही है, पड़ा हुआ उसकी जठराग्निसे अत्यन्त सन्तप्त हो रहा है। इससे निकलनेकी इच्छा करता हुआ यह अपने महीने गिन रहा है। दयानिधे ! अब इस दीनको यहाँसे कब निकाला जायगा ? स्वामिन् ! आप परम उदार हैं, आपहीने इस दस मासके जीवको ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान दिया है। दीनबन्धो ! इस अपने किये हुए उपकारसे ही आप प्रसन्न हों; क्योंकि आपको हाथ जोड़नेके सिवा आपके उस उपकारका बदला तो कोई दे भी क्या सकता है ॥१७-१८॥

प्रभो ! संसारके ये पशु-पक्षी आदि अन्य जीव तो अपने शरीरमें होनेवाले सुख-दुःखादिका ही अनुभव करते हैं; किन्तु मैं तो आपकी कृपासे शम-दमादि साधनसम्पन्न शरीरसे युक्त हुआ हूँ, अतः आपकी दी हुई विवेकवती बुद्धिसे आप पुराणपुरुषको अपने शरीरके बाहर और भीतर (हृदयमें) अहङ्कारके विषयरूप आत्माकी भाँति प्रत्यक्ष अनुभव करता हूँ। भगवन् ! इस गर्भाशयमें यद्यपि मैं बड़े कष्टसे रह रहा हूँ, तो भी इससे बाहर निकलकर संसारमय अन्धकूपमें गिरनेकी मुझे बिल्कुल इच्छा नहीं है; क्योंकि उसमें जानेवाले जीवको आपकी माया घेर लेती है, जिसके कारण उसकी शरीरमें अहंबुद्धि हो जाती है और उसके परिणाममें उसे फिर इस संसारचक्रमें ही पड़ना होता है। अतः मैं व्याकुलताको छोड़कर हृदयमें श्रीविष्णुभगवान्‌के चरणोंको स्थापित कर अपनी बुद्धिकी सहायतासे ही अपनेको बहुत शीघ्र इस संसाररूप समुद्रके पार लगा दूँगा, जिससे मुझे अनेक प्रकारके दोषोंसे युक्त यह संसार-दुःख फिर न प्राप्त हो ॥१९–२१॥

श्रीकपिलदेवजी कहते हैं—माता ! वह दस महीनेका जीव गर्भमें ही जब इस प्रकार विवेकसम्पन्न होकर भगवान्‌की स्तुति करता है, तो उस अधोमुख बालकको प्रसवकालकी वायु तत्काल बाहर आनेके लिये ढकेलती है। उसके सहसा ठेलनेसे बाहर निकलनेमें उस बालकको बड़ा कष्ट होता है। उसका सिर नीचेकी ओर रहता है, इसलिये वह तिलमिला उठता है; उसके श्वासकी गति रुक जाती है और पूर्वस्मृति नष्ट हो जाती है। पृथ्वीपर माताके रुधिर और मूत्रमें पड़ा हुआ वह बालक विष्ठाके कीड़ेके समान छटपटाता है। उसका गर्भवासका सारा ज्ञान नष्ट हो जाता है और वह विपरीत गति (देहाभिमानरूप अज्ञान-दशा) को प्राप्त होकर रोने लगता है ॥२२–२४॥

फिर जो लोग उसका अभिप्राय नहीं समझ सकते, उनके द्वारा उसका पालन-पोषण होता है। ऐसी अवस्थामें उसे जो प्रतिकूलता प्राप्त होती है, उसका निषेध करनेकी शक्ति भी उसमें नहीं होती। जब उसे मैली-कुचैली खाटपर सुला दिया जाता है, जिसमें खटमल आदि स्वेदज जीव चिपटे रहते हैं, तो उसमें शरीरको खुजलाने, उठाने अथवा करवट बदलनेकी भी सामर्थ्य न होनेके कारण वह बड़ा कष्ट पाता है। उसकी त्वचा बड़ी कोमल होती है; उसे डाँस, मच्छर और खटमल आदि उसी प्रकार काटते रहते हैं, जैसे बड़े कीड़ेको छोटे कीड़े। इस समय उसका गर्भावस्थाका सारा ज्ञान जाता रहता है, सिवा रोनेके वह कुछ नहीं कर सकता ॥२५–२७॥

इस प्रकार बाल्य और कौमार अवस्थाओंके दुःख भोगकर वह बालक युवावस्थामें पहुँचता है। इस समय उसे यदि कोई इच्छित भोग नहीं प्राप्त होता, तो वह अज्ञानवश झुँझला उठता है और शोकाकुल हो जाता है। देहके साथ-ही-साथ अभिमान और क्रोध बढ़ जानेके कारण वह कामपरवश जीव अपना ही नाश करनेके लिये दूसरे कामी पुरुषोंके साथ वैर ठानता है। उसपर अज्ञानका पूरा प्रभुत्व

विमानोंपर बैठी उस यज्ञोत्सवमें जा रही हैं। इससे उन्हें भी बड़ी उत्सुकता हुई और उन्होंने अपने पति भगवान् भूतनाथसे कहा ॥ ५-७ ॥

सतीजी बोलीं—देव! सुना है, इस समय आपके ससुर दक्षप्रजापतिके यहाँ बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है। देखिये, ये सब देवता वहीं जा रहे हैं; यदि आपकी इच्छा हो तो हम



है! सुरश्रेष्ठ! ऐसी अवस्थामें अपने पिताके यहाँ उत्सवका समाचार पाकर उसकी बेटीका शरीर उसमें सम्मिलित होनेके लिये क्यों न छटपटायेगा! हाँ, यह अवश्य कह सकते हैं कि उन्होंने हमलोगोंको बुलाया नहीं, इसलिये वहाँ जाना उचित नहीं है। किन्तु पति, गुरु और माता पिता आदि सुहृदोंके यहाँ तो बिना बुलाये ही जा सकते हैं। इससे देव! आप मुझपर इतनी कृपा अवश्य कीजिये। आप बड़े करुणामय हैं, आपको मेरी यह इच्छा पूर्ण करनी ही उचित है। आपकी कृपालुता का मैं कहाँतक वर्णन करूँ! अहो, परम ज्ञानी होकर भी आपने मुझे अपने आधे अङ्गमें स्थान दिया है और इस प्रकार अर्द्धनारीश्वर कहलाये हैं! अब मेरी इस याचनाको स्वीकार करके मुझे अनुगृहीत कीजिये ॥ ८-१४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—प्रिया सतीजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर अपने आत्मीयोंका प्रिय करनेवाले भगवान् शङ्करको दक्षप्रजापतिके उन मर्मभेदी दुर्वचनरूप बाणोंका स्मरण हो आया, जो उन्होंने समस्त प्रजापतियोंके सामने

बत्तीसवाँ अध्याय

धूममार्ग और अर्चिरादि मार्गसे जानेवालोंकी गतिका और भक्तिमार्गकी उत्कृष्टताका वर्णन

श्रीकपिलदेवजी कहते हैं—माताजी ! जो पुरुष घरमें रहकर सकामभावसे गृहस्थीके धर्मोंका पालन करता है और उनके फलस्वरूप अर्थ एवं कामका उपभोग करके फिर उन्हींका अनुष्ठान करता रहता है, वह तरह-तरहकी कामनाओंसे मोहित रहनेके कारण भगवद्धर्मोंसे विमुख रहता है। बस, यज्ञोंद्वारा श्रद्धापूर्वक देवता और पितरोंकी ही आराधना करता रहता है । उसकी बुद्धि उसी प्रकारकी श्रद्धासे युक्त रहती है, देवता और पितर ही उसके उपास्य रहते हैं; अतः वह चन्द्रलोकमें जाकर उनके साथ सोमपान करता है और फिर पुण्य क्षीण होनेपर इसी लोकमें लौट आता है । जिस समय शेषशायी भगवान् शेषशय्यापर शयन करते हैं, उस समय गृहस्थाश्रमियोंको प्राप्त होनेवाले ये लोक भी लीन हो जाते हैं ॥ १–४ ॥

इनके विपरीत जो विवेकी पुरुष अपने धर्मोंका काम अथवा भोगके लिये उपयोग नहीं करते बल्कि भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही उनका पालन करते हैं—वे अनासक्त, प्रशान्त, शुद्धचित्त, निवृत्तिपरायण, ममतारहित और अहङ्कार-शून्य पुरुष स्वधर्मपालनरूप सत्त्वगुणके द्वारा सर्वथा शुद्धचित्त हो जाते हैं और अन्तमें सूर्यमार्ग (अर्चिमार्ग या देवयान) के द्वारा सर्वव्यापी पूर्णपुरुष श्रीहरिको ही प्राप्त होते हैं—जो कार्य-कारणरूप जगत्‌के नियन्ता, संसारके उपादान-कारण और उसकी उत्पत्ति, पालन एवं संहार करनेवाले हैं। जो लोग परमात्मदृष्टिसे हिरण्यगर्भकी उपासना करते हैं, वे दो परार्द्धमें होनेवाले ब्रह्माजीके प्रलयपर्यन्त उनके सत्यलोकमें ही रहते हैं। जिस समय देवतादिसे श्रेष्ठ ब्रह्माजी अपने द्विपरार्द्धकालके अधिकारको भोगकर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, इन्द्रिय, उनके विषय (शब्दादि) और अहङ्कारादिके सहित सम्पूर्ण विश्वका संहार करनेकी इच्छासे त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके साथ एकरूप होकर निर्विशेष परमात्मामें लीन हो जाते हैं, उस समय प्राण और मनको जीते हुए वे विरक्त योगिगण भी देह त्यागकर उन भगवान् ब्रह्माजीमें ही प्रवेश करते हैं और फिर उन्हींके साथ परमानन्दस्वरूप पुराणपुरुष परब्रह्ममें लीन हो जाते हैं। इससे पहले वे भगवान्‌में लीन नहीं हुए, क्योंकि अबतक उनमें अहङ्कार शेष था। इसलिये माताजी ! अब तुम भी अत्यन्त भक्तिभावसे उन श्रीहरिकी ही चरण-शरणमें जाओ; वे समस्त प्राणियोंके हृदय-कमलमें बसे हुए हैं और तुमने भी मुझसे उनका प्रभाव सुन ही लिया है। वेदगर्भ ब्रह्माजी भी—जो समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके आदिकारण हैं—मरीचि आदि ऋषियों, योगेश्वरों, सनकादिकों तथा योगप्रवर्तक सिद्धेश्वरोंके सहित निष्काम कर्मके द्वारा आदिपुरुष पुरुषश्रेष्ठ सगुण ब्रह्मको प्राप्त होकर भी, भेददृष्टि और कर्तृत्वाभिमानके कारण भगवदिच्छासे, जब सर्गकाल उपस्थित होता है तब, कालरूप ईश्वरकी प्रेरणासे गुणोंमें क्षोभ होनेपर फिर पूर्ववत् प्रकट हो जाते हैं। इसी प्रकार पूर्वोक्त ऋषिगण भी अपने-अपने कर्मानुसार ब्रह्मलोकके ऐश्वर्यको भोगकर भगवदिच्छासे गुणोंमें क्षोभ होनेपर पुनः इस लोकमें आ जाते हैं ॥ ५–१५ ॥

जिनकी इस लोकमें आसक्ति है और कर्मोंमें श्रद्धा है, वे वेदमें कहे हुए काम्य और नित्य कर्मोंका साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान करनेमें ही लगे रहते हैं। उनकी बुद्धि रजोगुणकी अधिकताके कारण कुण्ठित रहती है, हृदयमें कामनाओंका जाल फैला रहता है और इन्द्रियाँ उनके वशमें नहीं होतीं; बस, अपने घरोंमें ही आसक्त होकर वे नित्यप्रति पितरोंकी पूजामें लगे रहते हैं। ये लोग अर्थ, धर्म और कामके ही परायण होते हैं; इसलिये जिनके महान् पराक्रम अत्यन्त कीर्तनीय हैं, उन भवभयहारी श्रीमधुसूदन भगवान्‌की कथा-वार्ताओंसे तो ये विमुख ही रहते हैं। हाय ! विष्ठा खानेवाले कूकर-सूकर आदि जीव जिस प्रकार अमृततुल्य उत्तमोत्तम पदार्थोंका परित्याग कर विष्ठापर ही मन चलाते हैं, उसी प्रकार जो मनुष्य भगवत्कथामृतको छोड़कर निन्दित विषय-वार्ताओंको सुनते हैं—वे तो अवश्य ही विधाताके मारे हुए हैं, उनका बड़ा ही मन्द भाग्य है। गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टितक सब संस्कारोंको विधिपूर्वक करनेवाले ये सकाम कर्मी सूर्यसे दक्षिण ओरके पितृयान या धूममार्गसे पित्रीश्वर अर्यमाके लोकमें जाते हैं और फिर अपनी ही सन्ततिके वंशमें उत्पन्न होते हैं। माताजी ! पितृलोकके भोग भोग लेनेपर जब उनके पुण्य क्षीण हो जाते हैं, तो देवतालोग उन्हें वहाँके ऐश्वर्यसे च्युत कर देते हैं और फिर उन्हें विवश होकर तुरंत ही इस लोकमें लौट आना पड़ता है । इसलिये माताजी ! जिनके चरण-कमल सदा भजनेयोग्य हैं, उन

विमानोंपर बैठी उस यज्ञोत्सवमें जा रही हैं। इससे उन्हें भी बड़ी उत्सुकता हुई और उन्होंने अपने पति भगवान् भूतनाथसे कहा ॥ ५–७ ॥

सतीजी बोलीं—देव! सुना है, इस समय आपके ससुर दक्षप्रजापतिके यहाँ बड़ा भारी यज्ञ हो रहा है। देखिये, ये सब देवता वहीं जा रहे हैं; यदि आपकी इच्छा हो तो हम



भी चलें। इस समय अपने आत्मीयोंसे मिलनेके लिये मेरी बहिनें भी अपने-अपने पतियोंके सहित वहाँ अवश्य आयेंगी। मैं भी चाहती हूँ कि आपके साथ वहाँ जाकर माता पिताके दिये हुए गहने, कपड़े आदि उपहार स्वीकार करूँ। वहाँ अपनी पतिपरायणा बहिनों, मौसियों और ममतामयी माताको देखनेके लिये मेरा मन बहुत दिनोंसे उत्सुक है। कल्याणमय! इसके सिवा वहाँ महर्षियोंका रचा हुआ श्रेष्ठ यज्ञ भी देखनेको मिलेगा। अजन्मा प्रभो! आप जगत्‌की उत्पत्तिके हेतु हैं। आपकी मायासे रचा हुआ यह परम आश्चर्यमय त्रिगुणात्मक जगत् आपहीमें भास रहा है। किन्तु मैं तो स्त्रीस्वभाव होनेके कारण आपके तत्त्वसे अनभिज्ञ और बहुत दीन हूँ। इसलिये इस समय अपनी जन्मभूमि देखनेको बहुत उत्सुक हो रही हूँ। नीलकण्ठ! देखिये—इनमें कितनी ही स्त्रियाँ तो ऐसी हैं, जिनका दक्षसे कोई सम्बन्ध भी नहीं है। फिर भी वे अपने-अपने पतियोंके सहित खूब सज धजकर झुंड-की-झुंड वहाँ जा रही हैं। वहाँ जानेवाली इन देवाङ्गनाओंके राजहंसके समान श्वेत विमानोंसे आकाशमण्डल कैसा सुशोभित हो रहा है! सुरश्रेष्ठ! ऐसी अवस्थामें अपने पिताके यहाँ उत्सवका समाचार पाकर उसकी बेटीका शरीर उसमें सम्मिलित होनेके लिये क्यों न छटपटायेगा? हाँ, यह अवश्य कह सकते हैं कि उन्होंने हमलोगोंको बुलाया नहीं, इसलिये वहाँ जाना उचित नहीं है। किन्तु पति, गुरु और माता पिता आदि सुहृदोंके यहाँ तो बिना बुलाये ही जा सकते हैं। इससे देव! आप मुझपर इतनी कृपा अवश्य कीजिये। आप बड़े करुणामय हैं, आपको मेरी यह इच्छा पूर्ण करनी ही उचित है। आपकी कृपालुता-का मैं कहाँतक वर्णन करूँ? अहो, परम ज्ञानी होकर भी आपने मुझे अपने आधे अङ्गमें स्थान दिया है और इस प्रकार अर्द्धनारीश्वर कहलाये हैं! अब मेरी इस याचनाको स्वीकार करके मुझे अनुगृहीत कीजिये। ॥ ८–१४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—प्रिया सतीजीके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर अपने आत्मीयोंका प्रिय करनेवाले भगवान् शङ्करको दक्षप्रजापतिके उन मर्मभेदी दुर्वचनरूप बाणोंका स्मरण हो आया, जो उन्होंने समस्त प्रजापतियोंके सामने कहे थे; तब वे हँसकर बोले ॥ १५ ॥

भगवान् शङ्करने कहा—सुन्दरि! तुमने जो कहा कि अपने बन्धुजनोंके यहाँ बिना बुलाये भी जा सकते हैं, सो तो ठीक ही है; किन्तु ऐसा तभी करना चाहिये जब उनकी दृष्टि अतिशय प्रबल देहाभिमानसे उत्पन्न हुए मद और क्रोधके कारण द्वेष दोषसे युक्त न हो गयी हो। देखो! विद्या, तप, धन, सुदृढ़ शरीर, युवावस्था और उच्च कुल—ये छः सत्पुरुषोंके तो गुण हैं, परन्तु नीच पुरुषोंमें ये ही अवगुण हो जाते हैं; क्योंकि इनसे उनका अभिमान बढ़ जाता है, जिससे बुद्धि दोषयुक्त हो जाती है और विचारशक्ति नष्ट हो जाती है। इस कारण वे महापुरुषोंका प्रभाव नहीं देख पाते। इसीलिये जो अपने यहाँ आये हुए पुरुषोंको कुटिल बुद्धिसे भौं चढ़ाकर रोषभरी दृष्टिसे देखते हैं, उन अव्यवस्थितचित्त लोगोंके यहाँ 'ये हमारे बान्धव हैं' ऐसा समझकर कभी नहीं जाना चाहिये। देवि! शत्रुओंके बाणोंसे बिंधे जानेपर भी ऐसी व्यथा नहीं होती, जैसी अपने कुटिलबुद्धि स्वजनोंके कुटिल वचनोंसे होती है। क्योंकि बाणोंसे शरीर छिन्न भिन्न हो जाने-पर तो जैसे तैसे निद्रा आ जाती है, किन्तु कुवाक्योंसे मर्मस्थान विद्ध हो जानेपर तो मनुष्य हृदयकी पीड़ासे दिन-रात बेचैन रहता है ॥ १६–१९ ॥

सुन्दरि! अवश्य ही मैं यह जानता हूँ कि तुम परमोन्नतिको प्राप्त हुए दक्षप्रजापतिको अपनी कन्याओंमें सबसे

नाभिकमलसे प्रकट हुए थे। उन्होंने भी किङ्कर्त्तव्यविमूढ होकर प्रलयकालीन जलमें शयन करनेवाले आपके पञ्चभूत, इन्द्रिय, शब्दादि विषय और मनोमय विग्रहका, जो सत्त्वादि गुणोंके प्रवाहसे युक्त और कार्य एवं कारण दोनोंका बीज है, ध्यान ही किया था—वे उसे देख नहीं पाये। आप निष्क्रिय, सत्यसङ्कल्प, सम्पूर्ण जीवोंके प्रभु तथा अचिन्त्य और अनन्त शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। अपनी शक्तिको गुणप्रवाहरूपसे ब्रह्मादि अनन्त मूर्तियोंमें विभक्त कर उन्हींके द्वारा आप विश्वकी रचना आदि करते हैं, स्वयं कुछ नहीं करते। नाथ! यह कैसी विचित्र बात है कि जिनके उदरमें प्रलयकाल आनेपर यह सारा प्रपञ्च लीन हो जाता है और जो कल्पान्तमें मायामय बालकका रूप धारण कर अपने पैरका अँगूठा चूसते हुए अकेले ही वटवृक्षके पत्तेपर शयन करते हैं, उन्हीं आपको मैंने गर्भमें धारण किया। मेरा यह कहना भी ठीक नहीं; क्योंकि विभो! आप पापियोंका दमन और अपने आज्ञाकारी भक्तोंको सुखी करनेके लिये स्वेच्छासे देह धारण किया करते हैं। अतः जिस प्रकार आपके वराह आदि अवतार हुए हैं, उसी प्रकार यह कपिलावतार भी मुमुक्षुओंको ज्ञान-मार्ग दिखानेके लिये हुआ है। भगवन्! आपके नामोंका श्रवण या कीर्तन करनेसे तथा भूले-भटके कभी-कभी आपका वन्दन या स्मरण करनेसे ही कुत्तेका मांस खानेवाला चाण्डाल भी सोमयाजी ब्राह्मणके समान पूजनीय हो जाता है; फिर आपका दर्शन करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाय—इसमें तो कहना ही क्या है। अतः अब मेरे कल्याणमें भी कोई सन्देह नहीं है। अहो! जिसकी जिह्वापर आपका पवित्र नाम विराजता है, वह चाण्डाल इसीलिये (नाम लेनेके कारण ही) श्रेष्ठ है। जो भाग्यवान् पुरुष आपका नाम उच्चारण करते हैं, उन्होंने तप, हवन, तीर्थस्नान, सदाचारका पालन और वेदाध्ययन—सब कुछ कर लिया। क्योंकि इन सबका जो परम फल है, वह उन्हें नामके उच्चारणसे ही मिल जायगा। अथवा यह सब वे पूर्व जन्ममें कर चुके हैं, तभी तो वे नामोच्चारण करते हैं, जो सब साधनोंका परम फल है। कपिलदेवजी! आप साक्षात् परब्रह्म हैं, आप ही परम पुरुष हैं, वृत्तियोंके प्रवाहको अन्तर्मुख करके अन्तःकरणमें आपका ही चिन्तन किया जाता है। आप अपने तेजसे मायाके कार्य गुणप्रवाहको शान्त कर देते हैं तथा आपके ही उदरमें सम्पूर्ण वेदतत्त्व निहित है। ऐसे साक्षात् विष्णुस्वरूप आपको मैं प्रणाम करती हूँ॥ २–८॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—माताके इस प्रकार स्तुति करनेपर मातृवत्सल परमपुरुष भगवान् कपिलदेवजीने उनसे गम्भीर वाणीमें कहा॥ ९॥

श्रीकपिलदेवजी बोले—माताजी! मैंने तुम्हें जो यह सुगम मार्ग बताया है, इसका अवलम्बन करनेसे तुम शीघ्र ही परमपद प्राप्त कर लोगी। तुम मेरे इस मतमें विश्वास करो, ब्रह्मवादी लोगोंने इसका सेवन किया है; इसके द्वारा तुम मेरे जन्म-मरणरहित स्वरूपको प्राप्त कर लोगी। जो लोग मेरे इस मतको नहीं जानते, उनकी अधोगति होती है॥ १०-११॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार अपने श्रेष्ठ आत्मज्ञानका उपदेश कर श्रीकपिलदेवजी अपनी ब्रह्मवादिनी जननीकी अनुमति लेकर वहाँसे चल दिये। तब देवहूतिजी भी सरस्वतीके मुकुटसदृश अपने आश्रममें अपने पुत्रके उपदेश किये हुए योगसाधनके द्वारा योगाभ्यास करती हुई समाधिमें स्थित हो गयीं। त्रिकाल स्नान करनेसे उनकी घुँघराली अलकें भूरी-भूरी जटाओंमें परिणत हो गयीं, तथा चीरवस्त्रोंसे ढका हुआ शरीर उग्र तपस्याके कारण दुर्बल हो गया। उन्होंने प्रजापति कर्दमके तप और योगबलसे प्राप्त अनुपम गार्हस्थ्यसुखको, जिसके लिये देवता भी तरसते थे, त्याग दिया। जिसमें दुग्धफेनके समान स्वच्छ और सुकोमल शय्यासे युक्त हाथी-दाँतके पलंग, सुवर्णके पात्र, सोनेके सिंहासन और उनपर कोमल-कोमल गद्दे बिछे हुए थे तथा जिसकी स्वच्छ स्फटिकमणि और महामरकतमणिकी भीतोंमें रत्नोंकी बनी हुई रमणी-मूर्तियोंके सहित मणिमय दीपक जगमगा रहे थे—उस घरको छोड़नेमें उन्हें कोई कष्ट नहीं हुआ। जो फूलोंसे लदे हुए अनेकों दिव्य वृक्षोंसे सुशोभित था, जिसमें अनेक प्रकारके पक्षियोंका कलरव और मतवाले भौंरोंका गुंजार होता रहता था, जहाँकी कमलगन्धसे सुवासित बावलियोंमें कर्दमजीके साथ क्रीडा करते समय उसका (देवहूति-का) गन्धर्वगण गुणगान किया करते थे और जिसे पानेके लिये इन्द्राणियाँ भी लालायित रहती थीं—उस गृहोद्यानकी भी ममता उन्होंने त्याग दी। किन्तु पुत्रवियोगसे व्याकुल होनेके कारण अवश्य उनका मुख कुछ उदास हो गया॥ १२–२०॥

पतिके वनगमनके अनन्तर पुत्रका भी वियोग हो जानेसे वे आत्मज्ञानसम्पन्न होकर भी ऐसी व्याकुल हो गयीं, जैसे बछड़ेके बिछुड़ जानेसे उसे प्यार करनेवाली गौ। वत्स विदुरजी! अपने पुत्र कपिलदेवरूप भगवान् हरिका ही

ब्रह्मर्षि और देवता विराजमान थे तथा जहाँ-तहाँ मिट्टी, काठ, लोहे, सोने, डाभ और चर्मके पात्र रक्खे हुए थे। वहाँ पहुँचनेपर दक्षने उनका कुछ भी सत्कार नहीं किया। दक्षकी चुप्पी देखकर उसके भयसे और किसीने भी उनका आदर नहीं किया। अवश्य ही उनकी माता और बहिनें बहुत प्रसन्न हुईं और प्रेमसे गद्‌गद होकर उन्होंने सतीजीको आदरपूर्वक गले लगाया। किन्तु सतीजी पितासे अपमानित होनेके कारण, बहिनोंके कुशल प्रश्नसहित प्रेमपूर्ण वार्तालाप तथा माता और मौसियोंके सम्मानपूर्वक दिये हुए उपहार और सुन्दर आसनादिकी ओर कुछ भी ध्यान न दे सकीं॥६-८॥

सर्वलोकेश्वरी देवी सतीका तो यज्ञमण्डपमें अनादर हुआ ही था, उन्होंने यह भी देखा कि उस यज्ञमें भगवान् शङ्करके लिये कोई भाग नहीं दिया गया है और पिता दक्ष उनका बड़ा अपमान कर रहा है। इससे उन्हें बड़ा क्रोध हुआ, ऐसा जान पड़ता था मानो वे अपने रोषसे सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर देंगी। दक्षको कर्ममार्गके अभ्याससे बहुत घमंड हो गया था। उसे शिवजीसे द्वेष करते देख जब सतीके साथ आये हुए भूत उसे मारनेको तैयार हुए, तो देवी सतीने उन्हें अपने तेजसे रोक दिया और सब लोगोंको सुनाकर पिताकी निन्दा करते हुए क्रोधसे लड़खड़ाती हुई वाणीमें कहा ॥९-१०॥

देवी सती बोलीं—पिताजी! भगवान् शङ्करसे बड़ा तो संसारमें कोई भी नहीं है। वे तो सभी देहधारियोंके प्रिय आत्मा हैं। उनका न कोई प्रिय है न अप्रिय, अतएव उनका किसी भी प्राणीसे वैर नहीं है। वे तो सबके कारण एवं सर्वरूप हैं, आपके सिवा और ऐसा कौन है जो उनसे विरोध करेगा? द्विजवर! आप जैसे लोग तो दूसरोंके गुणोंमें भी दोष ही देखते हैं, किन्तु साधुलोग कोई ऐसा नहीं करते—वे तो गुणको गुण और दोषको दोष देखते हैं। उनसे भी श्रेष्ठतर पुरुष वे हैं जो केवल गुण ही देखते हैं, दोषोंपर दृष्टि ही नहीं डालते। और जो लोग-दोष देखनेकी बात तो अलग रही—दूसरोंके थोड़े-से गुणको भी बड़े रूपमें देखना चाहते हैं, वे श्रेष्ठतम हैं। खेद है, आपने तो उन महापुरुषोंपर भी दोषारोपण ही किया! जो दुष्ट मनुष्य इस शवरूप जड शरीरको ही आत्मा मानते हैं, वे यदि ईर्ष्यावश सर्वदा ही महापुरुषोंकी निन्दा करें तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि महापुरुष तो उनकी इस चेष्टापर कोई ध्यान नहीं देते, परन्तु उनके चरणोंकी धूलि उनके इस अपराधको न सहकर उनका तेज नष्ट कर देती है। अतः उनके लिये ऐसा करना उचित ही है। जिनका 'शिव' यह दो अक्षरोंका नाम प्रसङ्गवश एक बार भी मुखसे निकल जानेपर मनुष्यके समस्त पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है और जिनकी आज्ञाका कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता, अहो! उन्हीं पवित्रकीर्ति मङ्गलमय भगवान् शङ्करसे आप द्वेष करते हैं! अवश्य ही आप अमङ्गलरूप हैं। अरे! ब्रह्मानन्दमय रसका पान करनेकी इच्छासे जिनके चरणकमलों का महापुरुषोंके मन मधुकर निरन्तर सेवन किया करते हैं



और जो सकाम पुरुषोंको उनके अभीष्ट भोग भी देते हैं, उन विश्वबन्धु भगवान् शिवसे आप वैर करते हैं! इसे आपके दुर्भाग्यके सिवा और क्या कहा जाय? ॥११-१५॥

मैंने सुना है,—आप कहते हैं कि वे केवल नाममात्रके शिव हैं, उनका वेष तो अशिवरूप-अमङ्गलरूप है, क्योंकि वे नरमुण्डोंकी माला, चिताकी भस्म और हड्डियाँ पहने, जटा बिखेरे भूत पिशाचोंके साथ श्मशानमें ही विचरा करते हैं। मालूम होता है, आपके सिवा उनकी यह अशिवता ब्रह्मादि देवताओंमेंसे कोई नहीं जानता। वे तो उनके चरणोंपरसे गिरे हुए निर्माल्यको अपने सिरपर धारण करते हैं। आपहीको इसकी अच्छी परख है! अधिक क्या कहा जाय, मेरा तो ऐसा विचार है कि यदि निरङ्कुशलोग धर्ममर्यादाकी रक्षा करनेवाले अपने पूजनीय स्वामीकी निन्दा करें तो, अपनेमें उसे दण्ड देनेकी शक्ति न हो तो कानोंमें अँगुली डालकर वहाँसे चला जाय, और यदि शक्ति हो तो बलपूर्वक

परिच्छिन्न लिङ्गशरीरका ही हुआ करता है; इसका सर्वसाक्षी आत्मासे कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझमें दृढ़ अनुराग रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुष सुख-दुःखकी प्राप्ति होनेपर उनसे तनिक भी प्रभावित नहीं होते। इसलिये वीरवर! तुम उत्तम, मध्यम और अधम पुरुषोंमें समानभाव रखकर सुख-दुःखको भी एक-सा समझो, तथा मन और इन्द्रियोंको जीतकर मेरे ही द्वारा जुटाये हुए मन्त्री आदिकी सहायतासे सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करो। राजाका कल्याण प्रजापालनमें ही है। इससे उसे परलोकमें प्रजाके पुण्यका छठा भाग मिलता है। इसके विपरीत जो राजा प्रजाकी रक्षा तो नहीं करता किन्तु उससे कर वसूल करनेमें कसर नहीं रखता, उसका सारा पुण्य तो प्रजा छीन लेती है और बदलेमें उसे प्रजाके पापका भागी होना पड़ता है। यह सोचकर तुम अपने परम्पराप्राप्त धर्मपर ही मुख्य दृष्टि रखते हुए—किन्तु उसमें आसक्त न होकर—सद्ब्राह्मणोंकी सम्मतिके अनुसार पृथ्वीका पालन करो। इससे सब लोग तुमसे प्रेम करेंगे और कुछ ही दिनोंमें तुम्हें घर बैठे ही सनकादि सिद्धोंके दर्शन होंगे। राजन्! तुम्हारे गुणोंने और स्वभावने मुझको वशमें कर लिया है। अतः तुम्हें जो इच्छा हो, मुझसे वर माँग लो। यज्ञ, तप अथवा योगके द्वारा मुझको पाना आसान नहीं है; मैं तो उन्हींके हृदयमें रहता हूँ जिनके चित्तमें इस प्रकारके गुण-शील उत्पन्न करनेवाली समता रहती है॥ १२—१६॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! सर्वलोकगुरु श्रीहरिके इस प्रकार कहनेपर जगद्विजयी महाराज पृथुने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। देवराज इन्द्र अपने कर्मसे लज्जित होकर उनके चरणोंपर गिरना ही चाहते थे कि राजाने उन्हें प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया और चित्तमें जो मनोमालिन्य था, वह सब निकाल दिया। फिर महाराज पृथुने भगवान्का पूजन किया और क्षण-क्षणमें उमड़ते हुए भक्तिभावमें निमग्न होकर प्रभुके चरणकमल पकड़ लिये। विश्वात्मा श्रीहरि वहाँसे जाना चाहते थे; किन्तु पृथुके प्रति जो उनका वात्सल्यभाव था, उसने उन्हें रोक रक्खा था। वे तो साधुजनोंके परम सुहृद् हैं, इसलिये अपने कमलदलके समान नेत्रोंसे उनकी ओर देखते ही रह गये, वहाँसे जा न सके। आदिराज महाराज पृथु भी नेत्रोंमें जल भर आनेके कारण न तो भगवान्का दर्शन ही कर सके और न तो कण्ठ गद्गद हो जानेसे कुछ बोल ही सके। बस, उन्हें हृदयसे आलिङ्गन कर पकड़े रहे और हाथ जोड़े ज्यों-के-त्यों खड़े रह गये। प्रभु अपने चरणकमलोंसे पृथ्वीको स्पर्श किये खड़े थे; उनका करकमल गरुडजीके ऊँचे कंधेपर रक्खा हुआ था। महाराज पृथु नेत्रोंके आँसू पोंछकर अतृप्त दृष्टिसे उनकी ओर देखते हुए इस प्रकार कहने लगे॥ १७—२२॥

महाराज पृथु बोले—मोक्षपति प्रभो! आप वर देनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको भी वर देनेमें समर्थ हैं। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष आपसे देहाभिमानियोंके भोग्य विषयोंको कैसे माँग सकता है? वे तो नारकी जीवोंको भी मिलते ही हैं। अतः मैं इन तुच्छ विषयोंको आपसे नहीं माँगता; मुझे तो उस मोक्षपदकी भी इच्छा नहीं है, जिसमें महापुरुषोंके हृदयसे उनके मुखद्वारा निकली हुई आपके चरणकमल-मकरन्दकी कीर्ति सुननेको नहीं मिलती। इसलिये मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आपके लीलागुणोंको सुनता ही रहूँ। पुण्यकीर्ति प्रभो! आपके चरणकमल-मकरन्दरूपी अमृत-कणोंको लेकर महापुरुषोंके मुखसे जो हवा निकलती है, उसीमें इतनी शक्ति होती है कि वह तत्त्वको भूले हुए कुयोगियोंको पुनः तत्त्वज्ञान करा देती है। अतएव मुझे तो बस, यही वर दीजिये, इसके सिवा मुझे और कुछ नहीं चाहिये। सत्कीर्ते! आपके मङ्गलमय सुयशको दैववश एक बार भी साधु-समाजमें सुन लेनेपर कोई पशु-बुद्धि पुरुष भले ही तृप्त हो जाय; जो गुणग्राही है, वह तो कैसे उसे छोड़ सकता है। सब प्रकारके पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिये स्वयं लक्ष्मीजी भी आपके सुयशको सुनना चाहती हैं। अब लक्ष्मीजीके समान मैं भी अत्यन्त उत्सुकतासे आप सर्वगुणधाम पुरुषोत्तमकी सेवा ही करना चाहता हूँ। किन्तु ऐसा न हो कि एक ही पतिकी सेवा प्राप्त करनेकी होड़ होनेके कारण आपके चरणोंमें ही मनोनिवेश करनेवाले हम दोनोंमें (लक्ष्मीजीमें और मुझमें) कलह छिड़ जाय। जगदीश्वर! अब जगज्जननी लक्ष्मीजीसे तो मेरा झगड़ा होना ही है; क्योंकि जिस आपके सेवाकार्यमें उनका अनुराग है, उसीके लिये मैं भी लालायित हूँ। किन्तु आप दीनोंपर प्रेम करते हैं, उनके तुच्छ कर्मोंको भी बहुत करके मानते हैं। इसलिये मुझे आशा है कि हमारे झगड़ेमें भी आप मेरा ही पक्ष लेंगे। आप तो अपने स्वरूपमें ही रमण करते हैं; आपको भला, लक्ष्मीजीसे भी क्या लेना है। इसीसे निष्काम महात्मा ज्ञान हो जानेके बाद भी आपका भजन करते हैं। आपमें मायाके कार्य अहङ्कारादिका सर्वथा अभाव है। भगवन्! मुझे तो आपके चरणकमलोंका निरन्तर चिन्तन करनेके सिवा सत्पुरुषोंका कोई और प्रयोजन ही नहीं जान पड़ता। मैं भी आपका भजन ही करना चाहता हूँ। आपने जो मुझसे कहा कि 'वर

जीव इस दक्षप्रजापतिकी ही सन्तान हैं, फिर भी इसने कैसी दुष्टता की है ! इसकी पुत्री शुद्धहृदया सती सदा ही मान पानेके योग्य थी, किन्तु इसने उसका ऐसा निरादर किया कि उसने प्राण त्याग दिये ! वास्तवमें यह बड़ा ही असहिष्णु और ब्राह्मणद्रोही है ! अब इसकी संसारमें बड़ी अपकीर्ति होगी और अन्तमें इसे नरक भोगना पड़ेगा ! देखो, जब इसकी पुत्री सती इसीके द्वारा अपमानित होकर प्राण त्याग करनेको तैयार हुई, तब भी इस शङ्करद्रोहीने उसे रोका तक नहीं !' ॥ २८–३० ॥

जिस समय सब लोग ऐसा कह रहे थे, उसी समय शिवजीके पार्षद सतीका यह अद्भुत प्राणत्याग देख, अस्त्र शस्त्र लेकर दक्षको मारनेके लिये उठ खड़े हुए। उनके आक्रमणका वेग देखकर भगवान् भृगुने यज्ञमें विघ्न डालनेवालोंका नाश करनेके लिये 'अपहत रक्ष' इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करते हुए दक्षिणाग्निमें आहुति दी। अध्वर्यु भृगुने ज्यों ही आहुति छोड़ी कि यज्ञकुण्डसे 'ऋभु' नामवाले हजारों तेजस्वी देवता प्रकट हो गये। इन्होंने अपनी तपस्याके प्रभावसे चन्द्रलोक प्राप्त किया था। उन ब्रह्मतेजसम्पन्न देवताओंने जलती हुई लकड़ियोंसे आक्रमण किया, तो समस्त गुह्यक और प्रमथगण इधर उधर भाग गये ॥ ३१–३४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

वीरभद्रकी उत्पत्ति और दक्ष-यज्ञ विध्वंस

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इधर महादेवजीने जब देवर्षि नारदके मुखसे सुना कि अपने पिता दक्षसे अपमानित होनेके कारण देवी सतीने प्राण त्याग दिये हैं और उसकी यज्ञवेदीसे प्रकट हुए ऋभुओंने उनके पार्षदोंकी सेनाको मार कर भगा दिया है, तो उन्हें बड़ा ही क्रोध हुआ। उन्होंने उग्र रूप धारण कर क्रोधके मारे होठ चबाते हुए अपनी एक जटा उखाड़ ली—जो बिजली और आगकी लपटके समान दीप्त हो रही थी—और सहसा खड़े होकर बड़े गम्भीर अट्टहासके साथ उसे पृथ्वीपर पटक दिया। उससे तुरत ही एक बड़ा भारी लंबा चौड़ा पुरुष उत्पन्न हुआ। उसकी



देह इतनी लंबी चौड़ी थी कि वह स्वर्गको स्पर्श कर रही थी। उसके हजार भुजाएँ थीं। मेघके समान श्यामवर्ण था, सूर्यके समान जलते हुए तीन नेत्र थे, विकराल दाढ़ें थीं और अग्निकी ज्वालाओंके समान लाल-लाल जटाएँ थीं। उसके गलेमें नरमुण्डोंकी माला थी और हाथोंमें तरह-तरहके अस्त्र शस्त्र थे। जब उसने हाथ जोड़कर पूछा, 'भगवन् ! मैं क्या करूँ ?' तो भगवान् भूतनाथने कहा—'वीर रुद्र ! तू मेरा अंश है, इसलिये मेरे पार्षदोंका अधिनायक बनकर तू तुरत ही जा और दक्ष तथा उसके यज्ञको नष्ट कर दे ॥ १–४ ॥

प्यारे विदुरजी ! जब देवाधिदेव भगवान् शङ्करने क्रोधमें भरकर ऐसी आज्ञा दी तो वीरभद्र भी उनकी परिक्रमा करके चलनेको तैयार हो गये। उस समय उन्हें ऐसा मालूम होने लगा कि मेरे वेगका सामना करनेवाला संसारमें कोई नहीं है, और मैं बड़े-से-बड़े वीरका भी वेग सहन कर सकता हूँ। बस, वे भयङ्कर सिंहनाद करते हुए एक अति कराल त्रिशूल हाथमें लेकर दक्षके यज्ञमण्डपकी ओर दौड़े। उनका त्रिशूल संसारसंहारक मृत्युका भी संहार करनेमें समर्थ था। भगवान् रुद्रके और भी बहुत-से सेवक गर्जना करते हुए उनके पीछे हो लिये। उस समय वीरभद्रके पैरोंके नूपुरादि आभूषण छम-छम बजते जाते थे ॥ ५-६ ॥

इधर यज्ञशालामें बैठे हुए ऋत्विज, यजमान, सदस्य तथा अन्य ब्राह्मण और ब्राह्मणियोंने जब उत्तर दिशाकी ओर धूल उड़ती देखी तो वे सोचने लगे—'अरे ! यह अँधेरा सा कैसे होता आ रहा है ? यह धूल कहाँसे छा गयी ? इस समय न तो आँधी ही चल रही है और न कहीं लुटेरे ही सुने जाते हैं; क्योंकि अपराधियोंको कठोर दण्ड देनेवाला

विशुद्धचित्त ब्रह्मर्षियोंका जन्म हुआ। उनके नाम चित्रकेतु, सुरोचि, विरजा, मित्र, उल्बण, वसुभृद्यान और द्युमान् थे। इनके सिवा उनकी दूसरी पत्नीसे शक्ति आदि और भी कई पुत्र हुए। चिति अथर्वणऋषिकी पत्नी थी; उसके दध्यङ् (दधीचि) नामक एक तपोनिष्ठ पुत्र हुआ, जो अश्वशिरा भी कहलाता था। अब भृगुके वंशका वर्णन सुनो ॥३८–४२॥

महाभाग भृगुजीने अपनी भार्या ख्यातिसे धाता और विधाता नामक पुत्र तथा श्री नामकी एक कन्या उत्पन्न की। यह श्री एकमात्र श्रीभगवान्‌में ही अनुराग करनेवाली थी। धाता और विधाताको मेरुऋषिने क्रमशः अपनी ख्याति और नियति नामकी कन्याएँ व्याहीं; उनसे उनके मृकण्ड और प्राण नामक पुत्र हुए। उनमेंसे मृकण्डके मार्कण्डेय और प्राणके मुनिवर वेदशिराका जन्म हुआ। भृगुजीके एक कवि-नामक पुत्र भी थे। उनके भगवान् उशना (शुक्राचार्य) हुए। विदुरजी! इन सब मुनीश्वरोंने भी सन्तान उत्पन्न करके सृष्टिका विस्तार किया। इस प्रकार मैंने तुम्हें यह कर्दम-जीके दौहित्रोंकी सन्तानका वर्णन सुनाया। जो पुरुष इसे श्रद्धापूर्वक सुनता है, उसके पापोंको यह तत्काल नष्ट कर देता है ॥४३–४६॥

मनुजीकी तीसरी पुत्री प्रसूतिका विवाह ब्रह्माजीके पुत्र दक्षप्रजापतिसे हुआ था। उससे उन्होंने अति सुन्दरी सोलह कन्याएँ उत्पन्न कीं। भगवान् दक्षने उनमेंसे तेरह धर्मको, एक अग्निको, एक समस्त पितृगणको और एक संसारका संहार करनेवाले तथा जन्म-मृत्युसे छुड़ानेवाले भगवान् शङ्करको दी। श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री और मूर्ति—ये धर्मकी पत्नियाँ थीं। इनमेंसे श्रद्धाने शुभ, मैत्रीने प्रसाद, दयाने अभय, शान्तिने सुख, तुष्टिने मोद, पुष्टिने अहङ्कार, क्रियाने योग, उन्नतिने दर्प, बुद्धिने अर्थ, मेधाने स्मृति, तितिक्षाने क्षेम और ह्री (लज्जा) ने प्रश्रय (विनय) नामक पुत्र उत्पन्न किया। समस्त गुणोंकी खान मूर्तिदेवीने नर-नारायण ऋषियोंको जन्म दिया। इनका जन्म होनेपर इस सम्पूर्ण विश्वने आनन्दित होकर प्रसन्नता प्रकट की। उस समय लोगोंके मन, दिशाएँ, वायु, नदी और पर्वत—सभीमें प्रसन्नता छा गयी। आकाशमें माङ्गलिक बाजे बजने लगे, देवतालोग फूलोंकी वर्षा करने लगे, मुनि प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे, गन्धर्व और किन्नर गाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। इस प्रकार उस समय बड़ा ही आनन्द-मङ्गल हुआ तथा ब्रह्मादि समस्त देवता स्तोत्रोंद्वारा भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ४७–५५ ॥

देवताओंने कहा—जिस प्रकार आकाशमें तरह-तरहके रूपोंकी कल्पना कर ली जाती है—उसी प्रकार जिन्होंने अपनी मायाके द्वारा अपने ही जिस स्वरूपके अंदर इस संसारकी रचना की है, वे ही अपने उस स्वरूपको प्रकाशित करनेके लिये इस समय ऋषिका विग्रह धारण करके धर्मके घरमें हमारे सामने अवतीर्ण हुए हैं। उन परमपुरुषको हमारा नमस्कार है। जिनके तत्त्वका शास्त्रके आधारपर हमलोग केवल अनुमान ही करते हैं, प्रत्यक्ष नहीं कर पाते—उन्हीं भगवान्‌ने देवताओं-को संसारकी मर्यादामें किसी प्रकारकी गड़बड़ी न हो, इसीलिये सत्त्वगुणसे उत्पन्न किया है। अब वे अपने करुणामय नेत्रोंसे—जो समस्त शोभा और सौन्दर्यके निवासस्थान निर्मल दिव्य कमलको भी नीचा दिखानेवाले हैं—हमारी ओर निहारें ॥५६-५७॥

प्यारे विदुरजी! प्रभुका साक्षात् दर्शन पाकर देवताओंने उनकी इस प्रकार स्तुति और पूजा की। यों देवताओंसे पूजित होनेके बाद वे भगवान् नर-नारायण दोनों गन्धमादन पर्वतपर चले गये। भगवान् श्रीहरिके अंशभूत वे नर-नारायण ही इस समय पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यदुकुलभूषण श्रीकृष्ण और उन्हींके सरीखे श्यामवर्ण, कुरुकुलतिलक अर्जुनके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ॥५८-५९॥

अग्निदेवकी पत्नी स्वाहाने अग्निके ही अभिमानी पावक, पवमान और शुचि—ये तीन पुत्र उत्पन्न किये। ये तीनों ही हवन किये हुए पदार्थोंका भक्षण करनेवाले हैं। इन्हीं तीनोंसे पैंतालीस प्रकारके अग्नि और उत्पन्न हुए। ये ही अपने तीन पिता और एक पितामहको साथ लेकर उनचास अग्नि कहलाये। वेदज्ञ ब्राह्मण वैदिक यज्ञकर्ममें जिन उनचास अग्नियोंके नामोंसे आग्नेय इष्टियाँ करते हैं, वे ये ही अग्नियाँ हैं ॥६०—६२॥

अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, सोमप और आज्यप—ये पितर हैं; इनमें साग्निक भी हैं और निरग्निक भी। इन सब पितरोंकी पत्नी दक्षकुमारी स्वधा थी। इन पितरोंसे स्वधाके धारिणी और वयुना नामकी दो कन्याएँ हुईं। वे दोनों ही ज्ञान-विज्ञानमें पारङ्गत और ब्रह्मज्ञानका उपदेश करनेवाली थीं, इसलिये उनका वंश नहीं चला। महादेवजीकी पत्नी सती थीं, वे सब प्रकारसे पतिपरायणा थीं। किन्तु उनके भी अपने गुण और शीलके अनुरूप कोई पुत्र नहीं हुआ। क्योंकि सतीके पिता दक्षने बिना ही किसी अपराधके भगवान् शिवजीके प्रतिकूल आचरण किया था; इसलिये सतीने युवावस्थामें ही क्रोधवश योगके द्वारा स्वयं ही अपने शरीरका त्याग कर दिया था ॥६३–६६॥

छठा अध्याय

ब्रह्मादि देवताओंका कैलास जाकर श्रीमहादेवजीको मनाना

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार जब रुद्रके सेवकोंने समस्त देवताओंको हरा दिया और उनके सम्पूर्ण अङ्ग प्रत्यङ्ग भूत प्रेतोंके त्रिशूल, पट्टिश, खड्ग, गदा,



परिघ और मुद्गर आदि आयुधोंसे छिन्न भिन्न हो गये तो वे ऋत्विज और सदस्योंके सहित बहुत ही डरकर ब्रह्माजीके पास पहुँचे और प्रणाम करके उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया। भगवान् ब्रह्माजी और सर्वान्तर्यामी श्रीनारायण तो पहलेहीसे इस भावी उत्पातको जानते थे, इसीसे वे दक्षके यज्ञमें गये भी नहीं थे। अब देवताओंके मुखसे वहाँकी दुर्घटनाका हाल सुनकर उन्होंने कहा, 'देवताओ! परम समर्थ तेजस्वी पुरुषसे कोई दोष भी बन जाय, तो भी उसके बदलेमें अपराध करनेवाले मनुष्योंका बचाव नहीं हो सकता, फिर तुमलोगोंने तो यज्ञमें भगवान् शङ्करका प्राप्य भाग न देकर उनका बड़ा भारी अपराध किया है। परन्तु शङ्करजी भोलेनाथ हैं, बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, इसलिये तुमलोग मनसे बुरी भावनाओंको बिल्कुल निकालकर सरल हृदयसे उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करो। दक्षके दुर्वचन-बाणोंसे उनका हृदय तो पहलेसे ही बिंध रहा था, उसपर उनकी प्रिया सतीजीका वियोग हो गया। इसलिये यदि तुमलोग चाहते हो कि वह यज्ञ फिरसे आरम्भ होकर पूर्ण हो, तो पहले जाकर उनसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा माँगो। नहीं तो, इस यज्ञकी तो बात ही क्या है, उनके कुपित होनेपर लोकपालोंके सहित इन समस्त लोकोंका भी बचना कठिन है। भगवान् रुद्र परम स्वतन्त्र हैं, उनके तत्त्व और शक्ति-सामर्थ्यको न तो कोई ऋषि मुनि, देवता और यज्ञस्वरूप देवराज इन्द्र ही जानते हैं और न स्वयं मैं ही जानता हूँ, फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है। ऐसी अवस्थामें उन्हें शान्त करनेका उपाय कौन कर सकता है' ॥१—७॥

देवताओंसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजी उनको, प्रजापतियोंको और पितरोंको साथ ले अपने लोकसे पर्वतराज कैलासको गये, जो भगवान् शङ्करका प्रिय धाम है। उस कैलासपर जन्मसिद्ध, और ओषधि, तप, मन्त्र तथा योग आदि उपायोंसे सिद्धिको प्राप्त हुए देवता नित्य निवास करते हैं, किन्नर, गन्धर्व और अप्सरादि सदा बने रहते हैं। उसके मणिमय शिखर हैं, जो नाना प्रकारकी रंग बिरंगी धातुओंसे रँगे हुए हैं। उसपर अनेक प्रकारके वृक्ष, लता और गुल्मादि छाये हुए हैं, जिनमें तरह-तरहके जंगली जीव विचरते रहते हैं। वहाँ निर्मल जलके अनेकों झरने बहते हैं और बहुत सी गहरी कन्दरा और ऊँचे शिखरोंके कारण वह पर्वत अपने प्रियतमोंके साथ विहार करती हुई सिद्धपत्नियोंका क्रीडास्थल बना हुआ है। वह सब ओर मोरोंके शोर, मदभरे भ्रमरोंके गुञ्जार, कोयलोंकी कुहू कुहू ध्वनि तथा अन्यान्य पक्षियोंकी चहचहाहटसे गूँज रहा है। उसपर जो कल्पवृक्ष लगे हुए हैं, वे अपनी ऊँची ऊँची डालियोंको हिला हिलाकर मानो पक्षियोंको बुलाते रहते हैं। तथा हाथियोंके चलने फिरनेके कारण वह कैलास स्वयं चलता हुआ-सा और झरनोंकी कलकल ध्वनिसे बातचीत करता हुआ-सा जान पड़ता है ॥८–१३॥

मन्दार, पारिजात, सरल, तमाल, शाल, ताड़, कचनार, असन और अर्जुनके वृक्षोंसे वह पर्वत बड़ा ही सुहावना जान पड़ता है। इसी प्रकार आम, कदम्ब, नीप, नाग, पुन्नाग, चम्पा, गुलाब, अशोक, मौलसिरी, कुरवक, सुनहरे शतपत्र कमल, इलायची और मालतीकी मनोहर लताएँ तथा कुब्जक, मोगरा और माधवीकी बेलें भी उसकी शोभा बढ़ा रही हैं। कटहल, गूलर, पीपल, पाकर, बड़, गूगल, भोजवृक्ष, ओषधि जातिके पेड़ (केले आदि जो फल आनेके बाद काट दिये जाते हैं), सुपारी, राजपूग, जामुन,

इच्छासे कपटधर्ममय गृहस्थाश्रममें आसक्त रहकर कर्मकाण्डमें



ही लगा रहता है। इसकी देहादिमें ही आत्मबुद्धि है; इसीलिये आत्मस्वरूपको भूला हुआ यह साक्षात् पशुके ही समान है। अतः यह अत्यन्त स्त्रीलम्पट हो और शीघ्र ही इसका मुँह बकरेका हो जाय। यह मूर्ख कर्ममयी अविद्याको ही विद्या समझता है; इसलिये यह, और जो लोग भगवान् शङ्करका अपमान करनेवाले इस दुष्टके पीछे-पीछे चलनेवाले हैं, वे सभी जन्म-मरणरूप संसारचक्रमें पड़े रहें। वेदवाणीरूप लता फलश्रुतिरूप पुष्पोंसे सुशोभित है, उसके कर्मफलरूप मनोमोहक गन्धसे इनके चित्त मुग्ध हो रहे हैं। इससे ये शङ्करद्रोही कर्ममार्गमें ही भटकते रहें। ये ब्राह्मणलोग भक्ष्याभक्ष्यके विचारको छोड़कर केवल पेट पालनेके लिये ही विद्या, तप और व्रतादिका आश्रय लें तथा धन, शरीर और इन्द्रियोंके सुखको ही सुख मानकर—उन्हींके गुलाम बनकर दुनियामें भीख माँगते भटका करें'' ॥२०–२६॥

नन्दीश्वरके मुखसे इस प्रकार ब्राह्मणकुलके लिये शाप सुनकर उसके बदलेमें भृगुजीने यह दुस्तर शाप दिया कि 'जो लोग शिवभक्त हैं तथा जो उन भक्तोंके अनुयायी हैं, वे सत्-शास्त्रोंके विरुद्ध आचरण करनेवाले और पाखण्डी हों। जो लोग शौचाचारविहीन, मन्दबुद्धि तथा जटा, राख और हड्डियोंको धारण करनेवाले हैं—वे ही शैव-सम्प्रदायमें दीक्षित हों, जिसमें सुरा और आसव ही देवताओंके समान आदरणीय हैं। अरे! तुमलोग जो धर्ममर्यादाके संस्थापक एवं वर्णाश्रमियोंके रक्षक वेद और ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हो, इससे मालूम होता है तुमने पाखण्डका आश्रय ले रक्खा है। यह वेदमार्ग ही संसारमें कल्याणकारक और सनातन मार्ग है। पूर्वपुरुष इसीपर चलते आये हैं और इसके मूल साक्षात् श्रीविष्णुभगवान् हैं। तुमलोग सत्पुरुषोंके परम पवित्र और सनातन मार्गस्वरूप वेदकी निन्दा करते हो—इसलिये उस पाखण्डमार्गमें जाओ, जिसमें भूतोंके सर्दार तुम्हारे इष्टदेव निवास करते हैं।' ॥ २७–३२ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! भृगुऋषिके इस प्रकार शाप देनेपर भगवान् शङ्कर कुछ खिन्न-से हो वहाँसे अपने अनुयायियोंसहित चल दिये। वहाँ प्रजापतिलोग जो यज्ञ कर रहे थे, उसमें पुरुषोत्तम श्रीहरि ही उपास्यदेव थे। और वह यज्ञ एक हजार वर्षमें समाप्त होनेवाला था। उसे समाप्त कर उन्होंने श्रीगङ्गा-यमुनाके सङ्गममें यज्ञान्त-स्नान किया और फिर प्रसन्न मनसे वे अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ३३–३५ ॥

तीसरा अध्याय

सतीका पिताके घर जानेके लिये आग्रह

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार उन ससुर और दामादको आपसमें वैर-विरोध रखते हुए बहुत अधिक समय निकल गया। इसी समय ब्रह्माजीने दक्षको समस्त प्रजापतियोंका अधिपति बना दिया। इससे उसका गर्व और भी बढ़ गया। उसने भगवान् शङ्कर आदि ब्रह्मनिष्ठोंको यज्ञ-भाग न देकर उनका तिरस्कार करते हुए पहले तो वाजपेय-यज्ञ किया और फिर बृहस्पतिसव नामका महायज्ञ आरम्भ किया। उस यज्ञोत्सवमें सभी ब्रह्मर्षि, देवर्षि, पितर, देवता आदि अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ पधारे और सबका खूब स्वागत-सत्कार किया गया ॥ १–४ ॥

उस समय आकाशमार्गसे जाते हुए देवता आपसमें उस यज्ञकी चर्चा करते जाते थे। उनके मुखसे दक्षकुमारी सतीने अपने पिताके घर होनेवाले यज्ञकी बात सुन ली। उन्होंने देखा कि हमारे निवासस्थान कैलासके पाससे होकर सब ओरसे सुन्दर नेत्रोंवाली गन्धर्व और यक्षोंकी स्त्रियाँ चमकीले कुण्डल और हार पहने खूब सज-धजकर अपने-अपने पतियोंके साथ

महर्षिलोग बैठे थे, उन्होंने भी ब्रह्माजीको प्रणाम किया। तब आत्मयोनि भगवान् ब्रह्माने चन्द्रशेखर श्रीशङ्करजीको प्रणाम कर हँसते हुए कहा ॥ ३२–४१ ॥

श्रीब्रह्माजी बोले—देव ! मैं जानता हूँ आप सम्पूर्ण जगत्के स्वामी हैं; क्योंकि विश्वकी योनि शक्ति (प्रकृति) और उसके बीज शिव (पुरुष) से परे जो एकरस परब्रह्म है, वह आप ही हैं। भगवन् ! जिस प्रकार मकड़ी आप ही अपनेसे जाला फैलाकर उसमें क्रीडा करती और अन्तमें उसे अपनेमें ही लीन कर लेती है, उसी प्रकार आप भी अपने ही स्वरूपभूत पुरुष और प्रकृतिके रूपमें क्रीडा करते हुए लीला से ही संसारकी रचना, पालन और संहार करते रहते हैं। आपने ही धर्म और अर्थकी प्राप्ति करानेवाले वेदकी रक्षाके लिये दक्षको निमित्त बनाकर यज्ञको प्रकट किया है। आपहीकी बाँधी हुई ये वर्णाश्रमकी मर्यादाएँ हैं, जिनका नियमनिष्ठ ब्राह्मण श्रद्धापूर्वक पालन करते हैं। मङ्गलमय महेश्वर ! आप शुभ कर्म करनेवालोंको स्वर्गलोक अथवा मोक्षपद प्रदान करते हैं तथा पापकर्म करनेवालोंको घोर नरकोंमें डालते हैं। फिर भी किसी किसी व्यक्तिके लिये इन कर्मोंका फल उलटा कैसे हो जाता है ? देखिये, दक्ष यज्ञ जैसा शुभ कर्म कर रहा था, किन्तु उसका परिणाम कितना अशुभ हुआ ! ॥ ४२–४५ ॥

यदि आप कहें कि यह सब तो मेरे भक्तोंको कुपित कर देनेके कारण हुआ है, तो यह उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि जो महानुभाव आपके चरणोंमें अपनेको समर्पित कर देते हैं, जो समस्त जीवोंमें आपकी ही झाँकी करते हैं और समस्त जीवोंको अभेददृष्टिसे आत्मामें ही अध्यस्त देखते हैं, वे पशुओं-के समान प्रायः क्रोधके अधीन नहीं होते। जो लोग भेदबुद्धि होनेके कारण कर्मोंमें ही आसक्त हैं, जिनकी नीयत अच्छी नहीं है, दूसरोंकी उन्नति देखकर जिनका चित्त रात-दिन कुढ़ा करता है और जो मर्मभेदी अज्ञानी अपने दुर्वचनों-से दूसरोंके चित्त दुखाया करते हैं, आप-जैसे महापुरुषोंके लिये उन्हें भी मारना उचित नहीं है; क्योंकि वे बेचारे तो विधाताके ही मारे हुए हैं। देवदेव ! भगवान् कमलनाभकी प्रबल मायासे मोहित हो जानेके कारण यदि किसी पुरुषकी कभी किसी स्थानमें भेदबुद्धि होती है, तो भी साधु पुरुष अपने परदुःखकातर स्वभावके कारण उसपर कृपा ही करते हैं; दैववश जो कुछ हो जाता है, वे उसे रोकनेका प्रयत्न नहीं करते ॥ ४६–४८ ॥

प्रभो ! आप सर्वज्ञ हैं, भगवान्की दुस्तर मायाने आपकी बुद्धिका स्पर्श भी नहीं किया है। अतः जिनका चित्त उसके वशीभूत होकर कर्ममार्गमें आसक्त हो रहा है, उनके द्वारा अपराध बन जानेपर भी आपको कृपा ही करनी चाहिये। भगवन् ! आप सबके मूल हैं। आप ही सम्पूर्ण यज्ञोंको पूर्ण करनेवाले हैं। यज्ञभाग पानेका भी आपको पूरा अधिकार है। फिर भी इस दक्षयज्ञके बुद्धिहीन याजकोंने आपको यज्ञभाग नहीं दिया। इसीसे यह आपकेद्वारा विध्वस्त हुआ पड़ा है। अब आप इस अपूर्ण यज्ञका पुनरुद्धार करनेकी कृपा करें। प्रभो ! ऐसा कीजिये जिससे यजमान दक्ष फिर जी उठे, भगदेवताको नेत्र मिल जायँ, भृगुजीके दाढ़ी-मूँछ आ जायँ और पूषाके पहलेही-के समान दाँत निकल आवें। रुद्रदेव ! अस्त्र शस्त्र और पत्थरोंकी बौछारसे जिन देवता और ऋत्विजोंके अङ्ग प्रत्यङ्ग घायल हो गये हैं, आपकी कृपासे वे फिर ठीक हो जायँ। यज्ञ सम्पूर्ण होनेपर जो कुछ शेष रहे, वह सब आपका भाग होगा। यज्ञविध्वंसक ! आज यह यज्ञ आपके ही भागसे पूर्ण हो ॥ ४९–५३ ॥

सातवाँ अध्याय

दक्षयज्ञकी पूर्ति

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—महाबाहो विदुरजी ! ब्रह्माजी के इस प्रकार प्रार्थना करनेपर भगवान् शङ्करने प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए कहा कि—सुनिये ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—प्रजापते ! भगवान्की मायासे मोहित हुए दक्ष-जैसे नासमझोंके अपराधकी न तो मैं चर्चा करता हूँ और न याद ही। मैंने तो केवल सावधान करनेके लिये ही उन्हें थोड़ा सा दण्ड दे दिया था। दक्षप्रजापतिका सिर जल गया है, इसलिये उनके बकरेका सिर लगा दिया जाय; भगदेव मित्रदेवताके नेत्रोंसे अपना यज्ञभाग देखें, पूषा पिसा हुआ अन्न खानेवाले हैं, वे उसे यजमानके दाँतोंसे भक्षण करें तथा अन्य सब देवताओंके अङ्ग प्रत्यङ्ग भी स्वस्थ हो जायँ; क्योंकि उन्होंने यज्ञसे बचे हुए पदार्थोंको मेरा भाग निश्चित किया है। अध्वर्यु आदि याज्ञिकोंमेंसे जिनकी भुजाएँ टूट गयी हैं, वे अश्विनीकुमारकी भुजाओंसे और जिनके हाथ

अधिक प्रिय हो। तथापि मेरी आश्रिता होनेके कारण तुम्हें अपने पितासे मान नहीं मिलेगा; क्योंकि वे मुझसे बहुत जलते हैं। जीवकी चित्तवृत्तिके साक्षी अहङ्कारशून्य महापुरुषोंकी समृद्धिको देखकर जिसके हृदयमें सन्ताप और इन्द्रियोंमें व्यथा होती है, वह पुरुष उनके पदको तो सुगमतासे प्राप्त कर नहीं सकता; बस दैत्यगण जैसे श्रीहरिसे द्वेष मानते हैं, वैसे ही उनसे कुढ़ता रहता है ॥ २०-२१॥

सुमध्यमे! तुम कह सकती हो कि आपने प्रजापतियोंकी सभामें उनका आदर क्यों नहीं किया। सो ये सम्मुख जाना, नम्रता दिखाना, प्रणाम करना आदि क्रियाएँ जो लोकव्यवहारमें परस्पर की जाती हैं, तत्त्वज्ञानियोंके द्वारा बहुत अच्छे ढंगसे की जाती हैं। वे अन्तर्यामीरूपसे सबके अन्तःकरणोंमें स्थित परमपुरुष वासुदेवको ही प्रणामादि करते हैं; देहाभिमानी पुरुषको नहीं करते। विशुद्ध अन्तःकरणका नाम ही 'वसुदेव' है, क्योंकि उसीमें भगवान् वासुदेवका अपरोक्ष अनुभव होता है। उस शुद्ध चित्तमें स्थित इन्द्रियातीत भगवान् वासुदेवका ही मैं मनसे चिन्तन किया करता हूँ। इसीलिये प्रिये! जिसने प्रजापतियोंके यज्ञमें, मेरेद्वारा कोई अपराध न होनेपर भी, मेरा कटुवाक्योंसे तिरस्कार किया था, वह दक्ष यद्यपि तुम्हारे शरीरको उत्पन्न करनेवाला पिता है, तो भी मेरा शत्रु होनेके कारण तुम्हें उसे अथवा उसके अनुयायियोंको देखनेका विचार भी नहीं करना चाहिये। यदि तुम मेरी बात न मानकर वहाँ जाओगी, तो तुम्हारे लिये अच्छा न होगा; क्योंकि जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिका अपने आत्मीयजनोंके द्वारा अपमान होता है, तो वह तत्काल उनकी मृत्युका कारण हो जाता है ॥ २२–२५ ॥

चौथा अध्याय

सतीका शरीरत्याग

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इतना कहकर भगवान् शङ्कर मौन हो गये। उन्होंने देखा कि दक्षके यहाँ जाने देनेमें अथवा जानेसे रोकनेमें—दोनों ही अवस्थाओंमें सतीके प्राणत्यागकी सम्भावना है। इधर, सतीजी भी कभी बन्धुजनोंको देखने जानेकी इच्छासे बाहर आतीं और कभी 'भगवान् शङ्कर रुष्ट न हो जायँ' इस शङ्कासे फिर लौट जातीं। इस प्रकार कोई एक बात निश्चित न कर सकनेके कारण वे दुविधामें पड़ गयीं, चञ्चल हो गयीं। बन्धुजनोंसे मिलनेकी इच्छामें बाधा पड़नेसे वे बड़ी अनमनी हो गयीं। स्वजनोंके स्नेहवश उनका हृदय भर आया और वे आँखोंमें आँसू भरकर रोने लगीं। उनका शरीर थरथर काँपने लगा और वे अप्रतिम पुरुष भगवान् शङ्करकी ओर इस प्रकार रोषपूर्ण दृष्टिसे देखने लगीं मानो उन्हें भस्म कर देंगी। शोक और क्रोधने उनके चित्तको बिल्कुल बेचैन कर दिया तथा स्त्री-स्वभावके कारण उनकी बुद्धि मूढ़ हो गयी। वे लंबी-लंबी साँस लेती हुई अपने माता-पिताके घर चल दीं; यहाँतक कि जिन्होंने प्रीतिवश उन्हें अपना आधा अङ्गतक दे दिया था, उन सत्पुरुषोंके प्रिय भगवान् शङ्करको भी उन्होंने वहीं छोड़ दिया। सतीको बड़ी फुर्तीसे अकेली जाते देख श्रीमहादेवजीके मणिमान् एवं मद आदि हजारों सेवक भगवान्के वाहन वृषभराजको आगे कर, तथा और भी अनेकों पार्षद और यक्षोंको साथ ले बड़ी तेजीसे निर्भयतापूर्वक उनके पीछे हो लिये। उन्होंने सतीको बैलपर सवार करा दिया तथा मैना पक्षी, गेंद, दर्पण और कमल आदि खेलकी सामग्री, श्वेत छत्र, चँवर और



माला आदि राजचिह्न तथा दुन्दुभि, शङ्ख और बाँसुरी आदि गाने-बजानेका सामान लेकर वे उनके साथ चल दिये ॥ १–५॥

तदनन्तर सती अपने समस्त सेवकोंके साथ दक्षकी यज्ञशालामें पहुँचीं। वहाँ वेदध्वनि करते हुए ब्राह्मणोंमें परस्पर होड़ लग रही थी कि सबसे ऊँचे स्वरमें कौन बोले; सब ओर

कल्

दक्षको भगवान्‌के दर्शन



दक्षके यज्ञमें भगवान् सहसा प्रकट हो गये।

अधिक प्रिय हो। तथापि मेरी आश्रिता होनेके कारण तुम्हें अपने पितासे मान नहीं मिलेगा; क्योंकि वे मुझसे बहुत जलते हैं। जीवकी चित्तवृत्तिके साक्षी अहङ्कारशून्य महापुरुषोंकी समृद्धिको देखकर जिसके हृदयमें सन्ताप और इन्द्रियोंमें व्यथा होती है, वह पुरुष उनके पदको तो सुगमतासे प्राप्त कर नहीं सकता; बस दैत्यगण जैसे श्रीहरिसे द्वेष मानते हैं, वैसे ही उनसे कुढ़ता रहता है ॥ २०-२१॥

सुमध्यमे! तुम कह सकती हो कि आपने प्रजापतियोंकी सभामें उनका आदर क्यों नहीं किया। सो ये सम्मुख जाना, नम्रता दिखाना, प्रणाम करना आदि क्रियाएँ जो लोकव्यवहारमें परस्पर की जाती हैं, तत्त्वज्ञानियोंके द्वारा बहुत अच्छे ढंगसे की जाती हैं। वे अन्तर्यामीरूपसे सबके अन्तःकरणोंमें स्थित परमपुरुष वासुदेवको ही प्रणामादि करते हैं; देहाभिमानी पुरुषको नहीं करते। विशुद्ध अन्तःकरणका नाम ही 'वसुदेव' है, क्योंकि उसीमें भगवान् वासुदेवका अपरोक्ष अनुभव होता है। उस शुद्ध चित्तमें स्थित इन्द्रियातीत भगवान् वासुदेवका ही मैं मनसे चिन्तन किया करता हूँ। इसीलिये प्रिये! जिसने प्रजापतियोंके यज्ञमें, मेरेद्वारा कोई अपराध न होनेपर भी, मेरा कटुवाक्योंसे तिरस्कार किया था, वह दक्ष यद्यपि तुम्हारे शरीरको उत्पन्न करनेवाला पिता है, तो भी मेरा शत्रु होनेके कारण तुम्हें उसे अथवा उसके अनुयायियोंको देखनेका विचार भी नहीं करना चाहिये। यदि तुम मेरी बात न मानकर वहाँ जाओगी, तो तुम्हारे लिये अच्छा न होगा; क्योंकि जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिका अपने आत्मीयजनोंके द्वारा अपमान होता है, तो वह तत्काल उनकी मृत्युका कारण हो जाता है ॥ २२-२५ ॥

चौथा अध्याय

सतीका शरीरत्याग

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इतना कहकर भगवान् शङ्कर मौन हो गये। उन्होंने देखा कि दक्षके यहाँ जाने देनेमें अथवा जानेसे रोकनेमें—दोनों ही अवस्थाओंमें सतीके प्राणत्यागकी सम्भावना है। इधर, सतीजी भी कभी बन्धुजनोंको देखने जानेकी इच्छासे बाहर आतीं और कभी 'भगवान् शङ्कर रुष्ट न हो जायँ' इस शङ्कासे फिर लौट जातीं। इस प्रकार कोई एक बात निश्चित न कर सकनेके कारण वे दुविधामें पड़ गयीं, चञ्चल हो गयीं। बन्धुजनोंसे मिलनेकी इच्छामें बाधा पड़नेसे वे बड़ी अनमनी हो गयीं। स्वजनोंके स्नेहवश उनका हृदय भर आया और वे आँखोंमें आँसू भरकर रोने लगीं। उनका शरीर थरथर काँपने लगा और वे अप्रतिम पुरुष भगवान् शङ्करकी ओर इस प्रकार रोषपूर्ण दृष्टिसे देखने लगीं मानो उन्हें भस्म कर देंगी। शोक और क्रोधने उनके चित्तको बिल्कुल बेचैन कर दिया तथा स्त्रीस्वभावके कारण उनकी बुद्धि मूढ़ हो गयी। वे लंबी-लंबी साँस लेती हुई अपने माता-पिताके घर चल दीं; यहाँतक कि जिन्होंने प्रीतिवश उन्हें अपना आधा अङ्गतक दे दिया था, उन सत्पुरुषोंके प्रिय भगवान् शङ्करको भी उन्होंने वहीं छोड़ दिया। सतीको बड़ी फुर्तीसे अकेली जाते देख श्रीमहादेवजीके मणिमान् एवं मद आदि हजारों सेवक भगवान्‌के वाहन वृषभराजको आगे कर, तथा और भी अनेकों पार्षद और यक्षोंको साथ ले बड़ी तेजीसे निर्भयतापूर्वक उनके पीछे हो लिये। उन्होंने सतीको बैलपर सवार करा दिया तथा मैना पक्षी, गेंद, दर्पण और कमल आदि खेलकी सामग्री, श्वेत छत्र, चँवर और



माला आदि राजचिह्न तथा दुन्दुभि, शङ्ख और बाँसुरी आदि गाने-बजानेका सामान लेकर वे उनके साथ चल दिये ॥१-५॥

तदनन्तर सती अपने समस्त सेवकोंके साथ दक्षकी यज्ञशालामें पहुँचीं। वहाँ वेदध्वनि करते हुए ब्राह्मणोंमें परस्पर होड़ लग रही थी कि सबसे ऊँचे स्वरमें कौन बोले; सब ओर

महादेवजीके सहित समस्त देवता, गन्धर्व और ऋषि आदिने सहसा खड़े होकर उन्हें प्रणाम किया। उनके तेजसे सबकी कान्ति फीकी पड़ गयी, जिह्वा लड़खड़ाने लगी और सबके चित्तोंमें बड़ा विस्मय हुआ। वे सभी मस्तकपर अञ्जलि बाँधकर भगवान्‌के सामने खड़े हो गये। यद्यपि भगवान्‌की महिमातक ब्रह्मा आदिकी मतिकी गति नहीं है, तो भी भक्तों पर कृपा करनेके लिये प्रकट हुए श्रीहरिकी वे अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार स्तुति करने लगे। सबसे पहले प्रजापति दक्ष एक उत्तम पात्रमें पूजाकी सामग्री ले नन्द-सुनन्दादि पार्षदोंसे घिरे हुए, प्रजापतियोंके परमगुरु भगवान् यज्ञेश्वरके पास गये और अति आनन्दित हो विनीतभावसे हाथ जोड़कर प्रार्थना करते प्रभुके शरणापन्न हुए ॥ २२–२५ ॥

दक्ष बोले—भगवन्! अपने स्वरूपमें आप बुद्धिकी जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओंसे रहित, शुद्ध चिन्मय, भेदरहित, अतएव निर्भय हैं। आप मायाका तिरस्कार कर स्वतन्त्ररूपसे विराजमान हैं, तथापि जब मायासे ही जीवभावको स्वीकार कर उसी मायामें स्थित हो जाते हैं, तो अज्ञानी-से दीखने लगते हैं ॥ २६ ॥

ऋत्विजोंने कहा—उपाधिरहित प्रभो! भगवान् रुद्रके प्रधान अनुचर नन्दीश्वरके शापके कारण हमारी बुद्धि केवल कर्मकाण्डमें ही फँसी हुई है, अतएव हम आपके तत्त्वको नहीं जानते। जिसके लिये 'इस कर्मका यही देवता है' ऐसी व्यवस्था की गयी है—उस धर्मप्रवृत्तिके प्रयोजक, वेदत्रयीसे प्रतिपादित यज्ञको ही हम आपका स्वरूप समझते हैं ॥२७॥

सदस्योंने कहा—जीवोंको आश्रय देनेवाले प्रभो! जो अनेक प्रकारके क्लेशोंके कारण अत्यन्त दुर्गम है, जिसमें कालरूप भयङ्कर सर्प ताकमें बैठा हुआ है, द्वन्द्वरूप अनेकों गढे हैं, दुर्जनरूप जंगली जीवोंका भय है, विषयरूपी मृगतृष्णा दूर दूरतक फैली हुई है तथा शोकरूप दावानल धधक रहा है—ऐसे, विश्रामस्थलसे रहित संसारमार्गमें जो अज्ञानी जीव कामनाओंसे पीड़ित होकर देह गेहका भारी बोझा सिरपर लिये जा रहे हैं, वे आपकी चरण शरणमें कब आ सकते हैं ॥२८॥

भगवान् रुद्रने कहा—वरदायक प्रभो! अनेक प्रकारके भोग्य विषयोंसे भरे हुए इस संसारमें जिन्हें किसी भी वस्तुकी कामना नहीं है, वे निष्काम मुनिजन भी जिनका आदरपूर्वक पूजन करते हैं—आपके उन अत्युत्तम चरणकमलोंमें चित्त लगा रहनेके कारण यदि अज्ञानी लोग मुझे आचारभ्रष्ट कहते हैं, तो कहें, आपके परम अनुग्रहसे मैं उनके कहने सुननेका कोई विचार नहीं करता ॥ २९ ॥

भृगुजी बोले—आपकी गहन मायासे आत्मज्ञान लुप्त हो जानेके कारण जो अज्ञान निद्रामें सोये हुए हैं, वे ब्रह्मादि देहधारी आत्मज्ञानमें उपयोगी आपके तत्त्वको अभीतक नहीं जान सके। ऐसे होनेपर भी आप अपने शरणागत भक्तोंके तो आत्मा और सुहृद् हैं, अतः आप मुझपर प्रसन्न होइये ॥ ३० ॥

ब्रह्माजी बोले—प्रभो! पृथक् पृथक् पदार्थोंको जानने वाली इन्द्रियोंके द्वारा पुरुष जो कुछ देखता है, वह आपका स्वरूप नहीं है, क्योंकि आप ज्ञान, शब्दादि विषय और श्रोत्रादि इन्द्रियोंके अधिष्ठान हैं, वे सब आपमें अध्यस्त हैं। अतएव आप इस मायामय प्रपञ्चसे सर्वथा अलग हैं ॥३१॥

इन्द्रने कहा—अच्युत! आपका यह जगत्‌को प्रकाशित करनेवाला रूप देवद्रोहियोंका संहार करनेवाले आयुधोंसे युक्त आठ भुजाओंसे सुशोभित है। यह हमारे मन और नेत्रोंको परम आनन्द देनेवाला है। यह तो सत्य ही है, अन्य प्राकृतिक रूपोंके समान मिथ्या नहीं है ॥ ३२ ॥

याज्ञिकोंकी पत्नियोंने कहा—भगवन्! ब्रह्माजीने आपके पूजनके लिये ही इस यज्ञकी रचना की थी, परन्तु दक्षपर कुपित होनेके कारण इसे भगवान् पशुपतिने नष्ट कर दिया है। यज्ञमूर्ते! श्मशानभूमिके समान उत्सवहीन हुए उस यज्ञको आप अपने नयनारविन्दोंसे निहारकर पवित्र कीजिये ॥ ३३ ॥

ऋषियोंने कहा—भगवन्! आपकी लीला बड़ी अद्भुत है, क्योंकि आप कर्म करते हुए भी उससे निर्लेप रहते हैं। दूसरे लोग वैभवकी भूखसे जिन लक्ष्मीजीकी उपासना करते हैं, वे स्वयं आपकी सेवामें लगी रहती हैं, तो भी आप उनका मान नहीं करते, उनसे निःस्पृह रहते हैं ॥ ३४ ॥

सिद्धोंने कहा—प्रभो! नाना प्रकारके क्लेशरूप दावानलसे दग्ध हुआ हमारा यह मनरूप हाथी अत्यन्त तृषित होकर आपकी कथारूप विशुद्ध अमृतमयी सरितामें घुसकर गोता लगाये बैठा है। वहाँ ब्रह्मानन्दमें लीन-सा हो जानेके कारण उसे न तो संसाररूप दावानलका ही स्मरण है और न वह उस नदीसे बाहर ही निकलता है ॥ ३५ ॥

यजमानपत्नीने कहा—सर्वसमर्थ परमेश्वर! आप भले पधारे। मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप मुझपर प्रसन्न होइये। लक्ष्मीपते! अपनी प्रिया लक्ष्मीजीके सहित आप हमारी रक्षा कीजिये। यज्ञेश्वर! जिस प्रकार सिरके बिना मनुष्यका धड़ अच्छा नहीं लगता, उसी प्रकार अन्य अङ्गोंसे पूर्ण होनेपर भी आपके बिना यज्ञकी शोभा नहीं होती ॥३६॥

पकड़कर उस बकवाद करनेवाली अमङ्गलरूप जीभको काट डाले। इसके बाद यदि आवश्यक हो तो अपने प्राण भी दे दे, यही धर्म है। आप भगवान् नीलकण्ठकी निन्दा करनेवाले हैं, इसलिये आपसे उत्पन्न हुए इस शरीरको अब मैं नहीं रख सकती; यदि भूलसे कोई अखाद्य वस्तु खा ली जाय, तो उसे वमन करके निकाल देनेसे ही मनुष्यकी शुद्धि होती है। जो महामुनि निरन्तर अपने स्वरूपमें ही रमण करते हैं, उनकी बुद्धि सर्वथा वेदके विधि-निषेधमय वाक्योंका अनुसरण नहीं करती। जिस प्रकार देवता और मनुष्योंकी गतिमें भेद रहता है—एक आकाशमार्गसे विचरण करते हैं, दूसरे पृथ्वीपर ही चल सकते हैं—उसी प्रकार ज्ञानी और अज्ञानीकी चाल भी एक-सी नहीं होती। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह अपने ही धर्ममार्गमें अवश्य स्थित रहे, किन्तु दूसरोंके मार्गकी निन्दा न करे। प्रवृत्ति (यज्ञ-यागादि) और निवृत्ति (शम-दमादि)-रूप दोनों ही प्रकारके कर्म ठीक हैं। वेदमें उनके अलग-अलग रागी और विरागी दो प्रकारके अधिकारी बताये गये हैं। परस्परविरोधी होनेके कारण उक्त दोनों प्रकारके कर्मोंका एक साथ एक ही पुरुषके लिये विधान नहीं है, उन दोनोंका एक साथ आचरण नहीं किया जा सकता। परन्तु परब्रह्मरूप भगवान् शङ्करको इन दोनोंमेंसे किसी भी प्रकारका कर्म करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥१६–२०॥

पिताजी! हमारा ऐश्वर्य अव्यक्त है, आत्मज्ञानी महापुरुष ही उसका सेवन कर सकते हैं। आपके पास वह ऐश्वर्य नहीं है, और यज्ञशालाओंमें यज्ञान्नसे तृप्त होकर प्राणपोषण करनेवाले कर्मठलोग उसकी प्रशंसा भी नहीं करते। आप भगवान् शङ्करका अपराध करनेवाले हैं। अतः आपके शरीरसे उत्पन्न इस निन्दनीय देहको रखकर मुझे क्या करना है। मुझे अब इससे कोई प्रयोजन नहीं है। आप-जैसे दुर्जनसे सम्बन्ध होनेके कारण मुझे लज्जा आती है। जो महापुरुषोंका अपराध करता है, उससे होनेवाले जन्मको भी धिक्कार है! जिस समय भगवान् शिव आपके साथ मेरा सम्बन्ध दिखलाते हुए मुझे हँसीमें 'दाक्षायणी' (दक्षकुमारी) के नामसे पुकारेंगे, उस समय उनकी हँसीको भूलकर मुझे बड़ी ही लज्जा और खेद होगा। इसलिये उसके पहले ही मैं आपके अङ्गसे उत्पन्न इस शवतुल्य शरीरको त्याग दूँगी; मुझसे अब यह अपमान नहीं सहा जायगा ॥ २१–२३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—कामादि शत्रुओंको जीतनेवाले विदुरजी! उस यज्ञमण्डपमें दक्षसे इस प्रकार कह देवी सती मौन होकर उत्तरदिशामें बैठ गयीं। उन्होंने आचमन करके पीला वस्त्र ओढ़ लिया तथा आँखें मूँदकर वे योगमार्गमें स्थित हो गयीं। उन्होंने आसनको स्थिर कर प्राणायामद्वारा प्राण और अपानको एक रूप करके नाभिचक्रमें स्थित किया; फिर उदानवायुको नाभिचक्रसे ऊपर उठाकर धीरे-धीरे बुद्धि-के साथ हृदयमें स्थापित किया। इसके पश्चात् अनिन्दिता सती उस हृदयस्थित वायुको कण्ठमार्गसे भ्रुकुटियोंके बीचमें ले गयीं। इस प्रकार, जिस शरीरको महापुरुषोंके भी पूजनीय भगवान् शङ्करने कई बार बड़े आदरसे अपनी गोदमें बैठाया था, दक्षपर कुपित होकर, उसे त्यागनेकी इच्छासे महामनस्विनी सतीने अपने सम्पूर्ण अङ्गोंमें वायु और अग्निकी धारणा की। अपने पति जगद्गुरु भगवान् शङ्करके चरणकमलमकरन्दका चिन्तन करते-करते सतीने और सब ध्यान भुला दिये; उन्हें



उन चरणोंके अतिरिक्त कुछ भी दिखायी न दिया। इससे उनका देह सर्वथा निर्दोष, अर्थात् मैं दक्षकन्या हूँ—ऐसे अभिमानसे भी मुक्त होकर तुरंत ही योगाग्निसे जल उठा ॥ २४–२७ ॥

उस समय वहाँ आये हुए देवता आदिने जब सतीका देहत्यागरूप यह महान् आश्चर्यमय चरित्र देखा, तो वे सभी हाहाकार करने लगे और वह भयङ्कर कोलाहल आकाशमें एवं पृथ्वीतलपर सभी जगह फैल गया। सब ओर यही सुनायी देता था—'हाय! दक्षके कुपित कर देनेसे देवाधिदेव महादेवकी प्रिया सतीने प्राण त्याग दिये! देखो, सारे चराचर

अज्ञानी पुरुष ब्रह्मा, रुद्र तथा अन्य समस्त जीवोंको विभिन्न रूपसे देखता है। जिस प्रकार मनुष्य अपने सिर और हाथ आदि अङ्गोंमें 'ये मुझसे भिन्न हैं' ऐसी बुद्धि कभी नहीं करता, उसी प्रकार मेरा भक्त प्राणिमात्रको मुझसे भिन्न नहीं देखता। ब्रह्मन् ! हम—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—तीनों स्वरूपतः एक ही हैं और हम ही सम्पूर्ण जीवरूप हैं; अतः जो हममें कुछ भी भेद नहीं देखता, वही शान्ति प्राप्त करता है ॥ ५०–५४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान्‌के इस प्रकार आज्ञा देनेपर प्रजापतियोंके नायक दक्षने उनका त्रिकपाल यज्ञके द्वारा पूजन कर फिर अङ्गभूत और प्रधान दोनों प्रकारके यज्ञोंसे अन्य सब देवताओंका अर्चन किया। फिर एकाग्रचित्त हो भगवान् शङ्करका यज्ञशेषरूप उनके भागसे यजन किया तथा समाप्तिमें किये जानेवाले उदवसान नामक कर्मसे अन्य सोमपायी एवं दूसरे देवताओंका यजन कर यज्ञका उपसंहार किया और अन्तमें ऋत्विजोंके सहित अवभृथ स्नान किया। फिर जिन्हें अपने पुरुषार्थसे ही सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त थीं, उन दक्षप्रजापतिको 'तुम्हारी सदा धर्ममें बुद्धि रहे' ऐसा आशीर्वाद देकर सब देवता स्वर्गलोकको चले गये ॥ ५५–५७ ॥

विदुरजी ! सुना है कि दक्षपुत्री सतीजीने इस प्रकार अपना पूर्वशरीर त्यागकर फिर हिमालयकी पत्नी मेनाके गर्भसे जन्म लिया था। जिस प्रकार प्रलयकालमें लीन हुई शक्ति सृष्टिके आरम्भमें फिर ईश्वरका ही आश्रय लेती है, उसी प्रकार अनन्यपरायणा श्रीअम्बिकाजीने उस जन्ममें भी अपने एकमात्र आश्रय और प्रियतम भगवान् शङ्करको ही वरा था। विदुरजी ! दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाले भगवान् शिवका यह चरित्र मैंने बृहस्पतिजीके शिष्य परम भागवत उद्धवजीके मुखसे सुना था। कुरुनन्दन ! श्रीमहादेवजीका यह पावन चरित्र यश और आयुको बढ़ानेवाला तथा पापपुञ्जको नष्ट करनेवाला है। जो पुरुष भक्तिभावसे इसका नित्यप्रति श्रवण और कीर्तन करता है, उसकी संसार वासना नष्ट हो जाती है ॥ ५८–६१ ॥

आठवाँ अध्याय

ध्रुवका वनगमन

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—शत्रुसूदन विदुरजी ! सनकादि, नारद, ऋभु, हंस, अरुणि और यति—ब्रह्माजीके इन नैष्ठिक ब्रह्मचारी पुत्रोंने गृहस्थाश्रममें प्रवेश नहीं किया। अतः उनके कोई सन्तान नहीं हुई। अधर्म भी ब्रह्माजीका ही पुत्र था, उसकी स्त्रीका नाम मृषा था। उससे दम्भ नामक पुत्र और माया नामकी कन्या हुई। उन दोनोंको निर्ऋति ले गया, क्योंकि उसके कोई सन्तान न थी। दम्भ और मायासे लोभ और निकृति (शठता) का जन्म हुआ, उनसे क्रोध और हिंसा तथा उनसे कलि (कलह) और उसकी बहिन दुरुक्ति (गाली) उत्पन्न हुए। साधुशिरोमणे ! फिर दुरुक्तिसे कलिने भय और मृत्युको उत्पन्न किया तथा उन दोनोंके संयोगसे यातना और निरय (नरक) का जोड़ा उत्पन्न हुआ। निष्पाप विदुरजी ! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे तुम्हें प्रलयका कारणरूप यह अधर्मका वंश सुनाया। यह पुण्यका हेतु है, क्योंकि अधर्मको कुलसहित जान लेनेसे उसकी ओरसे मन हट जाता है। अतएव इसका वर्णन तीन बार सुननेसे मनुष्यके मनकी मलिनता दूर हो जाती है। कुरुनन्दन ! अब मैं श्रीहरिके अंश (ब्रह्माजी) के अंशसे उत्पन्न हुए पवित्रकीर्ति महाराज स्वायम्भुव मनुके पुत्रवंशका वर्णन करता हूँ ॥ १–६ ॥

महाराज स्वायम्भुव मनुकी महारानी शतरूपासे प्रियव्रत और उत्तानपाद—ये दो पुत्र हुए। भगवान् वासुदेवकी कलासे उत्पन्न होनेके कारण ये दोनों संसारकी रक्षामें तत्पर रहते थे। उत्तानपादके सुनीति और सुरुचि नामकी दो पत्नियाँ थीं। उनमें सुरुचि राजाको अधिक प्रिय थी, ध्रुवकी माता सुनीतिमें उनका प्रेम न था ॥ ७-८ ॥

एक दिन राजा उत्तानपाद सुरुचिके पुत्र उत्तमको गोदमें लिये खिला रहे थे। उसी समय ध्रुवने भी गोदमें



बैठना चाहा, परन्तु राजाने उसे प्यार नहीं किया। उस

राजा प्राचीनबर्हि अभी जीवित है। अभी गौओंके आनेका समय भी नहीं हुआ है। फिर, यह धूल कहाँसे आयी? क्या इसी समय संसारका प्रलय तो नहीं होनेवाला है?' तब दक्षपत्नी प्रसूति एवं अन्य स्त्रियोंने व्याकुल होकर कहा—'प्रजापति दक्षने अपनी सारी कन्याओंके सामने बेचारी निरपराधा सतीका तिरस्कार किया था, मालूम होता है यह उसी पापका फल है। अथवा हो-न-हो यह संहारमूर्ति भगवान् रुद्रके कोपका विलास है। प्रलयकाल उपस्थित होनेपर जिस समय वे अपने जटाजूटको बिखेरकर तथा शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित अपनी भुजाओंको ध्वजाओंके समान फैलाकर ताण्डवनृत्य करते हैं, उस समय उनके त्रिशूलके फलोंसे दिग्गज बिंध जाते हैं तथा उनके मेघगर्जनके समान भयङ्कर अट्टहाससे दिशाएँ विदीर्ण हो जाती हैं। उस समय उनका तेज असह्य और भ्रुकुटिविलास बड़ा ही भयानक होता है, और उनकी विकराल दाढ़ोंसे तारागण अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। उन क्रोधमूर्ति भगवान् शङ्करको कुपित करनेपर—चाहे वह साक्षात् विधाता ही क्यों न हो—क्या उस क्रोध दिलानेवालेका कल्याण हो सकता है? फिर दक्षादि अन्य जीवोंकी तो बात ही क्या है ॥ ७–११ ॥

जो लोग वहाँ बैठे थे, वे भयके कारण एक-दूसरेकी ओर कातर दृष्टिसे निहारते हुए ऐसी ही तरह-तरहकी बातें कर रहे थे कि इतनेहीमें आकाश और पृथ्वीमें सब ओर अनेकों भयङ्कर उत्पात होने लगे, जिन्हें देखकर परम समर्थ दक्ष भी भयभीत हो गये। विदुरजी! इसी समय दौड़कर आये हुए रुद्रसेवकोंने उस यज्ञमण्डपको सब ओरसे घेर लिया। वे सब तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे। उनमें कोई बौने, कोई भूरे रंगके, कोई पीले और कोई मगरके समान पेट और मुखवाले थे। उनमेंसे किन्हींने प्राग्वंश (यज्ञशालाके पूर्व और पश्चिमके खंभोंके बीचमें आड़े रक्खे हुए डंडे) को तोड़ डाला, किन्हींने यज्ञशालाके पश्चिम ओर स्थित पत्नीशालाको नष्ट कर दिया, किन्हींने यज्ञशालाके सामनेका सभामण्डप और मण्डपके आगे उत्तरकी ओर स्थित आग्नीध्रशालाको तोड़ दिया, किन्हींने यजमानगृह और पाकशालाको तहस-नहस कर डाला, किन्हींने यज्ञके पात्र फोड़ दिये, किन्हींने अग्नियोंको बुझा दिया, किन्हींने यज्ञकुण्डोंमें पेशाब कर दिया और किन्हींने वेदीकी सीमाके सूत्रोंको तोड़ डाला। कोई-कोई मुनियोंको तंग करने लगे, कोई स्त्रियोंको डराने-धमकाने लगे और किन्हींने अपने पास होकर भागते हुए देवताओंको पकड़ लिया। मणिमान्ने भृगु ऋषिको बाँध लिया, वीरभद्रने प्रजापतिको कैद कर लिया तथा चण्डीशने पूषाको और नन्दीश्वरने भगदेवको पकड़ लिया ॥ १२–१७ ॥

भगवान् शङ्करके पार्षदोंकी यह भयङ्कर लीला देखकर तथा उनके कंकड़-पत्थरोंकी मारसे तंग आकर वहाँ जितने ऋत्विज, सदस्य और देवतालोग थे, सब-के-सब जिस-तिस ओर भाग गये। भृगुजी हाथमें स्रुवा लिये हवन कर रहे थे। वीरभद्रने इनकी दाढ़ी-मूँछ नोंच लीं, क्योंकि इन्होंने प्रजापतियोंकी सभामें मूँछें मटकाते हुए महादेवजीका मज़ाक उड़ाया था। उन्होंने गुस्सेमें भरकर भगदेवताको पृथ्वीपर पटक दिया और उनकी आँखें निकाल लीं, क्योंकि इन्होंने सभामें श्रीमहादेवजीको बुरा-भला कहते हुए दक्षको सैन देकर उकसाया था। इसके पश्चात् जैसे अनिरुद्धके विवाहके समय बलरामजीने कलिङ्गराजके दाँत उखाड़े थे, उसी प्रकार उन्होंने पूषाके दाँत उखाड़ लिये; क्योंकि जब दक्षने महादेवजीको गालियाँ दी थीं, उस समय ये दाँत निकालकर हँसे थे। फिर वे दक्षकी छातीपर बैठकर एक तेज तलवारसे उसका सिर काटने लगे, परन्तु बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे उसे धड़से अलग न कर सके। जब किसी भी प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे दक्षकी त्वचा न कटी, तो वीरभद्रको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे बहुत देरतक विचार करते रहे। तब उन्होंने यज्ञमण्डपमें यज्ञपशुओंको जिस प्रकार मारा जाता है, उसी प्रकार दक्षरूप उस यजमान-पशुका सिर धड़से अलग कर दिया। यह देखकर भूत, प्रेत और पिशाचादि तो उनके इस कर्मकी प्रशंसा करते हुए 'वाह-वाह' करने लगे और दक्षके दलवालोंमें हाहाकार मच गया। वीरभद्रने अत्यन्त कुपित होकर दक्षके सिरको यज्ञकी दक्षिणाग्निमें डाल दिया और उस यज्ञशालामें आग लगाकर यज्ञको विध्वंस करके वे कैलासपर्वतको लौट गये ॥ १८–२६ ॥

इसलिये उसपर विचार करके बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि दैववश उसे जैसी भी परिस्थितिका सामना करना पड़े, उसीमें सन्तुष्ट रहे। अब, माताके उपदेशसे तू योग-साधनद्वारा जिन भगवान्‌की कृपा प्राप्त करने चला है—मेरे विचारसे साधारण पुरुषोंके लिये उनकी आराधना करना हँसी-खेल नहीं है। योगीलोग अनेकों जन्मोंतक अनासक्त रहकर समाधियोगके द्वारा बड़ी-बड़ी कठोर साधनाएँ करते रहते हैं, परन्तु भगवान्‌के मार्गका पता नहीं पाते। इसलिये तू यह व्यर्थका हठ छोड़ दे और घर लौट जा; बड़ा होनेपर जब परमार्थ-साधनका समय आवे, तब उसके लिये प्रयत्न कर लेना। विधाताके विधानके अनुसार सुख दुःख जो कुछ भी प्राप्त हो, उसीमें चित्तको सन्तुष्ट रखना चाहिये। ऐसा करनेवाला पुरुष मोहमय संसारसे पार हो जाता है। मनुष्यको चाहिये कि अपनेसे अधिक गुणवान्‌को देखकर प्रसन्न हो; जो कम गुण-वाला हो, उसपर दया करे और जो अपने समान गुणवाला हो, उससे मित्रताका भाव रखे। ऐसा करनेसे उसे दुःख कभी नहीं दबा सकते ॥ २४–३४ ॥

ध्रुवने कहा—भगवन्! सुख-दुःखसे जिनका चित्त चञ्चल हो जाता है, उन लोगोंके लिये शान्तिका यह बहुत अच्छा उपाय आपने कृपा करके बतलाया। परन्तु मुझ-जैसे अज्ञानियोंकी दृष्टि यहाँतक नहीं पहुँच पाती। यद्यपि मेरा कल्याण भी इसीमें है, तथापि क्षत्रिय होनेके कारण मेरी प्रकृति बड़ी उग्र है, स्वभाव भी बड़ा उद्धत है। माँ सुरुचिके वचनबाणोंसे बिंधा होनेके कारण उसमें अभी ये बातें ठहरती नहीं। ब्रह्मन्! मैं उस पदपर अधिकार करना चाहता हूँ, जो त्रिलोकीमें सबसे श्रेष्ठ है और जिसपर मेरे बाप दादे भी आरूढ़ नहीं हो सके। आप मुझे उसीकी प्राप्तिका कोई अच्छा-सा मार्ग बतलाइये। आप भगवान् ब्रह्माजीके पुत्र हैं और संसारके कल्याणके लिये ही वीणा बजाते सूर्यकी भाँति त्रिलोकीमें विचरा करते हैं ॥ ३५–३८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—ध्रुवकी बात सुनकर भगवान् नारदजी बड़े प्रसन्न हुए और उसपर कृपा करके इस प्रकार सदुपदेश करने लगे ॥ ३९ ॥

श्रीनारदजीने कहा—बेटा! तेरी माता सुनीतिने तुझे परम कल्याणका उपाय बतला दिया है। भगवान् वासुदेव ही वह उपाय हैं, इसलिये तू चित्त लगाकर उन्हींका भजन कर। जिस पुरुषको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप पुरुषार्थकी अभिलाषा हो, उसके लिये उनकी प्राप्तिका उपाय एकमात्र श्रीहरिके चरणोंका सेवन ही है। अच्छा, बेटा! तेरा कल्याण



होगा; अब तू श्रीयमुनाजीके तटवर्ती परम पवित्र मधुवनको जा। वहाँ श्रीहरिका नित्य निवास है। वहाँ श्रीकालिन्दीके निर्मल जलमें तीनों समय स्नान करके नित्यकर्मसे निवृत्त हो यथाविधि आसन बिछाकर स्थिरभावसे बैठना। फिर रेचक, पूरक और कुम्भक—तीन प्रकारके प्राणायामसे धीरे धीरे प्राण, मन और इन्द्रियके दोषोंको दूरकर शान्त मनसे परम-गुरु श्रीभगवान्‌का इस प्रकार ध्यान करना ॥ ४०–४४ ॥

भगवान्‌के नेत्र और मुख निरन्तर प्रसन्न रहते हैं; उन्हें देखनेसे ऐसा मालूम होता है कि वे वर देनेके लिये तैयार हैं। उनकी नासिका, भौंहें और कपोल बड़े ही सुहावने हैं; वे सभी देवताओंमें परम सुन्दर हैं। उनकी तरुण अवस्था है; सभी अङ्ग बड़े सुडौल हैं; होठ और नेत्र लाल लाल हैं। वे प्रणतजनोंको आश्रय देनेवाले, अपार सुखदायक, शरणा-गतवत्सल और दयाके समुद्र हैं। उन पुरुषोत्तमके वक्षःस्थल-में श्रीवत्सका चिह्न है; उनका शरीर सजल जलधरके समान श्यामवर्ण है; गलेमें वनमाला है और उनकी चार भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म सुशोभित हैं। उनके अङ्ग प्रत्यङ्ग किरीट, कुण्डल, केयूर और कङ्कणादि आभूषणोंसे विभूषित हैं; गला कौस्तुभमणिकी भी शोभा बढा रहा है तथा शरीरमें रेशमी पीताम्बर है। उनके कटिप्रदेशमें काञ्चनकी करधनी और चरणोंमें सुवर्णमय नूपुर सुशोभित हैं। भगवान्‌का स्वरूप

खजूर, आमड़ा, आम, प्रियाल, महुआ और लिसौड़ा आदि विभिन्न प्रकारके वृक्षों तथा पोले और ठोस बाँसके झाड़ोंसे वह पर्वत बड़ा ही मनोहर मालूम होता है। उसके सरोवरोंमें कुमुद, उत्पल, कल्हार और शतपत्र आदि अनेक जातिके कमल खिले रहते हैं। उनकी शोभासे मुग्ध होकर मीठी बोली बोलते हुए पक्षियोंसे वह बड़ा ही शोभायमान है। वहाँ जहाँ-तहाँ हरिन, बानर, सूअर, सिंह, रीछ, साही, नीलगाय, शरभ, बाघ, कृष्णमृग, भैंसे, कर्णान्त्र, एकपद, अश्वमुख, भेड़िये और कस्तूरी-मृग घूमते रहते हैं तथा वहाँके सरोवरोंके तट केलोंकी पङ्क्तियोंसे घिरे हुए हैं। उसके चारों ओर नन्दा नामकी नदी बहती है, जिसका पवित्र जल देवी सतीके स्नान करनेसे और भी पवित्र हो गया है। भगवान् भूतनाथके निवासस्थान उस कैलासपर्वतकी ऐसी रमणीयता देखकर देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ १४–२२ ॥

वहाँ उन्होंने अलका नामकी एक सुरम्य पुरी और सौगन्धिक वन देखा, जिसमें सर्वत्र सुगन्ध फैलानेवाले सौगन्धिक नामके कमल खिले हुए थे। उस नगरके बाहरकी ओर नन्दा और अलकनन्दा नामकी दो नदियाँ हैं; वे तीर्थपाद श्रीहरिकी चरणरजके संयोगसे अत्यन्त पवित्र हो गयी हैं। विदुरजी! उन नदियोंमें रतिविलाससे थकी हुई देवाङ्गनाएँ अपने-अपने निवासस्थानसे आकर जलक्रीडा करती हैं और उनमें प्रवेश कर अपने प्रियतमोंपर जल उलीचती हैं। स्नानके समय उनका तुरंतका लगाया हुआ कुचकुङ्कुम धुल जानेसे जल पीला हो जाता है। उस कुङ्कुम-मिश्रित जलको हाथी प्यास न होनेपर भी गन्धके लोभसे स्वयं पीते और अपनी हथिनियोंको पिलाते हैं ॥२३–२६॥

अलकापुरीपर चाँदी, सोने और बहुमूल्य मणियोंके सैकड़ों विमान छाये हुए थे तथा उसमें अनेकों यक्षपत्नियाँ निवास करती थीं। इनके कारण वह विशाल नगरी बिजली और बादलोंसे छाये हुए आकाशके समान जान पड़ती थी। यक्षराज कुबेरकी राजधानी उस अलकापुरीको पीछे छोड़कर देवगण सौगन्धिक वनमें आये। वह वन रंग-बिरंगे फल, फूल और पत्तोंवाले अनेकों कल्पवृक्षोंसे सुशोभित था। उसमें कोकिल आदि पक्षियोंका कलरव और भौंरोंका गुंजार हो रहा था तथा राजहंसोंके परमप्रिय कमलकुसुमोंसे सुशोभित अनेकों सरोवर थे। वहाँके हरिचन्दनके वृक्षोंसे बनैले हाथियोंकी रगड़ लगनेके कारण बड़ी मस्त गन्ध निकल रही थी, जो वायुके द्वारा फैलकर बार-बार यक्षपत्नियोंके मनोंको अत्यन्त क्षुब्ध किये डालती थी। उस वनमें जो बावलियाँ थीं, उनकी सीढ़ियाँ वैदूर्यमणिकी बनी हुई थीं तथा उनमें बहुत-से कमल खिले रहते थे। उनपर अनेकों किम्पुरुषगण जी बहलानेके लिये आये हुए थे। इस प्रकार उस वनकी शोभा निहारते जब देवगण कुछ आगे बढ़े, तो उन्हें पास ही एक वटवृक्ष दिखलायी दिया ॥ २७–३१ ॥

वह वृक्ष सौ योजन ऊँचा था तथा उसकी शाखाएँ पचहत्तर योजनतक फैली हुई थीं। उसके चारों ओर सर्वदा छाया बनी रहती थी, इसलिये घामका कष्ट कभी नहीं होता था; तथा उसमें कोई घोंसला भी न था। उस महायोगमय और मुमुक्षुओंके आश्रयभूत वृक्षके नीचे देवताओंने भगवान् शङ्करको विराजमान देखा। वे साक्षात् क्रोधहीन कालके समान जान पड़ते थे। भगवान् भूतनाथकी मूर्ति बड़ी ही शान्त थी तथा सनकादि शान्त (निवृत्तिपरायण) सिद्धगण और उनके सखा यक्षराज कुबेर उनकी सेवामें उपस्थित थे। जगत्पति महादेवजी सारे संसारके सुहृद् हैं, अकारण ही हित करनेवाले हैं। इसलिये स्नेहवश सबका कल्याण करनेके लिये वे उपासना, चित्तकी एकाग्रता और समाधि आदि साधनोंका आचरण करते रहते हैं। अपने सन्ध्याकालीन मेघकी-सी कान्तिवाले शरीरपर वे तपस्वियोंके चिह्न—भस्म, दण्ड, जटा और मृगचर्म आदि धारण किये हुए थे। उनके मस्तकपर चन्द्रमाकी कला सुशोभित थी। वे एक कुशासनपर बैठे थे और अनेकों जिज्ञासुओंके बीचमें श्रीनारदजीके पूछनेसे सनातन ब्रह्मका उपदेश कर रहे थे। उनका बायाँ चरण दायीं जाँघपर रक्खा था। वे बायाँ हाथ बायें घुटनेपर रक्खे, कलाईमें रुद्राक्षकी सुमरनी डाले तर्कमुद्रासे* विराजमान थे। वे योगपट्ट (काठ-की बनी हुई टेकनी) का सहारा लिये एकाग्र चित्तसे ब्रह्मानन्द-का अनुभव कर रहे थे। तब लोकपालोंके सहित समस्त मुनियोंने मननशीलोंमें सर्वश्रेष्ठ भगवान् शङ्करको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। यद्यपि समस्त देवता और दैत्योंके अधिपति भी श्रीमहादेवजीके चरणकमलोंकी वन्दना करते हैं, तथापि वे श्रीब्रह्माजीको अपने स्थानपर आया देख तुरंत खड़े हो गये और जैसे वामनावतारमें परमपूज्य विष्णुभगवान् कश्यपजीकी वन्दना करते हैं, उसी प्रकार सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। इसी प्रकार शङ्करजीके चारों ओर जो अन्य सिद्ध और

* तर्जनीको अँगूठेसे जोड़कर अन्य अँगुलियोंको आपसमें मिलाकर फैला देनेसे जो बन्ध सिद्ध होता है, उसे 'तर्कमुद्रा' कहते हैं। इसका नाम ध्यानमुद्रा भी है।

जो स्थिर रहता है तथा तारागणके सहित धर्म, अग्नि, कश्यप और शुक्र आदि नक्षत्र एवं सप्तर्षिगण जिसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं, वह ध्रुवलोक मैं तुझे देता हूँ। यहाँ भी जब तेरे पिता तुझे राजसिंहासन देकर वनको चले जायँगे, तो तू छत्तीस हजार वर्षतक धर्मपूर्वक पृथ्वीका पालन करेगा। तेरी इन्द्रियोंकी शक्ति ज्यों की त्यों बनी रहेगी। आगे चलकर किसी समय तेरा भाई उत्तम शिकार खेलता हुआ मारा जायगा, तब उसकी माता सुरुचि पुत्र प्रेममें पागल होकर उसे वनमें खोजती हुई दावानलमें प्रवेश कर जायगी। यज्ञ मेरी प्रिय मूर्ति है; तू अनेकों बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञोंके द्वारा मेरा यजन करेगा तथा यहाँ उत्तम उत्तम भोग भोगकर अन्तमें मेरा ही स्मरण करेगा। इससे तू अन्तमें सम्पूर्ण लोकोंके वन्दनीय और सप्तर्षियोंसे भी ऊपर मेरे निज धामको जायगा, जहाँ पहुँच जानेपर फिर संसारमें लौटकर नहीं आना होता ॥ १९–२५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—बालक ध्रुवसे इस प्रकार पूजित हो और उसे अपना पद प्रदानकर श्रीगरुडध्वज भगवान् उसके देखते देखते अपने लोकको चले गये। प्रभुकी चरण सेवासे सङ्कल्पित वस्तु प्राप्त हो जानेके कारण यद्यपि ध्रुवजीका सङ्कल्प तो निवृत्त हो गया, किन्तु उनका चित्त विशेष प्रसन्न नहीं हुआ। फिर वे अपने नगरको लौट गये ॥ २६ २७ ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! मायापति श्रीहरिका परमपद तो अत्यन्त दुर्लभ है और मिलता भी उनके चरण कमलोंकी उपासनासे ही है। ध्रुवजी भी सारासारका पूर्ण विवेक रखते थे, फिर एक ही जन्ममें उस परमपदको पा लेनेपर भी उन्होंने अपनेको अकृतार्थ क्यों समझा? ॥२८॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—ध्रुवजीका हृदय अपनी सौतेली माताके वाग्बाणोंसे बिंध गया था, तथा वर माँगनेके समय भी उन्हें उनका स्मरण बना हुआ था, इसीसे उन्होंने मुक्तिदाता श्रीहरिसे मुक्ति नहीं माँगी। अब जब भगवद्दर्शनसे वह मनोमालिन्य दूर हो गया तो उन्हें अपनी इस भूलके लिये पश्चात्ताप हुआ ॥ २९ ॥

ध्रुवजी मन-ही मन कहने लगे—अहो! सनन्दनादि ऊर्ध्वरेता (नैष्ठिक ब्रह्मचारी) सिद्ध भी जिन्हें समाधिद्वारा अनेकों जन्मोंमें प्राप्त कर पाते हैं, उन भगवच्चरणोंकी छायाको मैंने छः महीनेमें ही पा लिया, किन्तु चित्तमें दूसरी वासना रहनेके कारण मुझे फिर उससे वञ्चित होना पड़ा। अहो! मुझ मन्दभाग्यकी मूर्खता तो देखो, मैंने संसारपाशको काटनेवाले प्रभुके पादपद्मोंमें पहुँचकर भी उनसे नाशवान् वस्तुकी ही याचना की! देवताओंको स्वर्गभोगके पश्चात् फिर नीचे गिरना होता है, इसलिये वे मेरी भगवत्प्राप्ति रूप उच्च स्थितिको सहन नहीं कर सके, मालूम होता है, उन्होंने मेरी बुद्धिको नष्ट कर दिया। नारदजीने भी ठीक ही कहा था, परन्तु मैं बड़ा दुष्ट हूँ, मैंने उनकी बात स्वीकार ही नहीं की। मैं वास्तवमें अभी बच्चा ही हूँ। यद्यपि संसारमें आत्माके सिवा दूसरा कोई भी नहीं है, तथापि सोया हुआ मनुष्य जैसे स्वप्नमें अपने ही कल्पना किये हुए व्याघ्रादिसे डरता है, उसी प्रकार मैंने भी भगवान्‌की मायासे मोहित होकर भाई को ही शत्रु मान लिया और व्यर्थ ही द्वेषरूप हार्दिक रोगसे जलने लगा। विश्वात्मा श्रीहरिका प्रसन्न होना अत्यन्त कठिन है, बड़े सौभाग्यसे वे मेरी तपस्यासे प्रसन्न हो गये। वे तो संसारपाशको समूल नष्ट करनेमें समर्थ हैं, किन्तु मैं बड़ा भाग्यहीन हूँ, मैंने फिर भी उनसे संसार ही माँगा। मेरी यह प्रार्थना उसी प्रकार व्यर्थ है, जैसे कोई मरणासन्न पुरुष चिकित्साके लिये आग्रह करे। मैं बड़ा ही पुण्यहीन हूँ! जिस प्रकार कोई कँगला किसी सार्वभौम सम्राट्‌को प्रसन्न करके उससे तुषसहित चावलोंकी कनी माँगे, उसी प्रकार मैंने भी निजानन्द प्रदान करनेवाले श्रीहरिसे व्यर्थका अभिमान बढानेवाले उच्चपदादि ही माँगे ॥ ३०–३५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—तात! तुम्हारी तरह जो लोग श्रीमुकुन्दपादारविन्दमकरन्दके ही मधुकर हैं—जो निरन्तर प्रभुकी चरण रजका ही सेवन करते हैं और जिनका मन अपने आप आयी हुई सभी परिस्थितियोंमें सन्तुष्ट रहता है, वे भगवान्‌से उनकी सेवाके सिवा अपने लिये और कोई भी पदार्थ नहीं माँगते ॥ ३६ ॥

इधर जब राजा उत्तानपादने सुना कि उनका पुत्र ध्रुव लौट आया है, तो यह सोचकर कि 'मुझ अभागेका ऐसा भाग्य कहाँ' उन्हें सहसा विश्वास न हुआ। उनके लिये तो यह बात मुर्देके पुनः जीवित हो जानेके समान असम्भव थी। परन्तु फिर उन्हें देवर्षि नारदकी बात याद आ गयी। इससे उनका इस बातमें विश्वास हुआ और वे आनन्दके वेगसे अधीर हो उठे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उस समाचारके सुनानेवालेको एक बहुमूल्य हार दिया। अब तो पुत्रका मुख देखनेके लिये उनकी उत्सुकता चौगुनी हो चली। उन्होंने बहुत से ब्राह्मण, कुलके बड़े बूढ़े, मन्त्री और बन्धुजनोंको साथ लिया तथा एक बढ़िया घोड़ोंवाले

नष्ट हो गये हैं, वे पूषाके हाथोंसे काम करें तथा भृगुजीके चकरेकी-सी दाढ़ी-मूँछ हो जाय ॥ २—५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—वत्स विदुर ! तब भगवान् शङ्करके वचन सुनकर सब लोग प्रसन्नचित्तसे 'धन्य ! धन्य !' कहने लगे। फिर सभी देवता और ऋषियोंने महादेवजीसे दक्षकी यज्ञशालामें पधारनेकी प्रार्थना की और तब वे उन्हें तथा ब्रह्माजीको साथ लेकर वहाँ गये। वहाँ जैसा-जैसा भगवान् शङ्करने कहा था, उसी प्रकार सब कार्य करके उन्होंने दक्षकी धड़से यज्ञपशुका सिर जोड़ दिया। सिर जुड़ जानेपर रुद्रदेवकी दृष्टि पड़ते ही दक्ष तत्काल सोकर जागनेके समान जी उठे और अपने सामने भगवान् शिवको विराजमान देखा। दक्षका हृदय शङ्करद्रोहकी कालिमासे कलुषित हो रहा था, वह उनका दर्शन करनेसे शरत्कालीन सरोवरके समान स्वच्छ हो गया। उन्होंने महादेवजीकी स्तुति करनी चाही, किन्तु अपनी मरी हुई बेटी सतीका स्मरण हो आनेसे स्नेह और उत्कण्ठाके कारण उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये। उनके मुखसे शब्द न निकल सका। अन्तमें प्रेमसे विह्वल परम-बुद्धिमान् प्रजापतिने जैसे-तैसे अपने हृदयके आवेगको रोककर विशुद्धभावसे भगवान् शिवकी स्तुति करनी आरम्भ की ॥ ६—१२ ॥

दक्ष बोले—भगवन् ! मैंने आपका अपराध किया था, किन्तु आपने उसके बदलेमें मुझे दण्डके द्वारा शिक्षा देकर



बड़ा ही अनुग्रह किया है। अहो ! आप और श्रीहरि तो आचारहीन, नाममात्रके ब्राह्मणोंकी भी उपेक्षा नहीं करते—फिर हम-जैसे यज्ञ-यागादि करनेवालोंको क्यों भूलेंगे। विभो ! आपने ब्रह्मा होकर सबसे पहले आत्मतत्त्वकी रक्षाके लिये अपने मुखसे विद्या, तप और व्रतादिके धारण करनेवाले ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया था। उन ब्राह्मणोंकी, ग्वाला जैसे लाठी लेकर गौओंकी रक्षा करता है उसी प्रकार, आप सब विपत्तियोंसे रक्षा करते हैं। मैं आपके तत्त्वको नहीं जानता था, इसीसे मैंने भरी सभामें आपको अपने वाग्बाणोंसे बेधा था। किन्तु आपने मेरे उस अपराधका कोई विचार नहीं किया। मैं तो आप-जैसे पूज्यतम महानुभावोंका अपराध करनेके कारण नरकादि नीच लोकोंमें गिरनेवाला था, परन्तु आपने अपनी करुणाभरी दृष्टिसे मुझे उबार लिया। अब भी आपको प्रसन्न करनेयोग्य मुझमें कोई गुण नहीं है; बस, आप अपनी उदारतासे ही मुझपर प्रसन्न हों ॥ १३—१५ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान् शङ्करसे इस प्रकार अपना अपराध क्षमा कराकर दक्षने ब्रह्माजीके कहनेसे उपाध्याय, ऋत्विज आदिकी सहायतासे यज्ञकार्य आरम्भ किया। तब ब्राह्मणोंने यज्ञ सम्पन्न करनेके उद्देश्यसे भूत-पिशाचोंके संसर्ग-जनित दोषकी शान्तिके लिये तीन पात्रोंमें विष्णुभगवान्के लिये पुरोडाश नामक चरु तैयार किया। विदुरजी ! उस हविको हाथमें लेकर खड़े हुए अध्वर्युके साथ यजमान दक्षने ज्यों ही विशुद्ध चित्तसे श्रीहरिका ध्यान किया, त्यों ही सहसा भगवान् वहाँ प्रकट हो गये। भगवान्के अङ्गकी कान्तिसे दसों दिशाएँ जगमगा उठीं, उससे वहाँ सभी देवता और ऋषियोंके तेज फीके पड़ गये। वे गरुड़पर विराजमान थे, जिनके पंख साक्षात् सामवेदीय वृहत् एवं रथन्तर नामक सूक्त हैं। उनका श्यामवर्ण था, कमरमें सुवर्णकी करधनी तथा पीताम्बर सुशोभित थे। सिरपर सूर्यके समान देदीप्यमान मुकुट था, मुखकमल भौंरोंके समान नीली अलकावली और कान्तिमय कुण्डलोंसे शोभायमान था, उनके सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित आठ भुजाएँ थीं, जो भक्तोंकी रक्षाके लिये सदा उद्यत रहती हैं। आठों भुजाओंमें वे शङ्ख, पद्म, चक्र, बाण, धनुष, गदा, खड्ग और ढाल लिये हुए थे तथा इन सब आयुधोंके कारण वे फूले हुए कनेरके वृक्षके समान जान पड़ते थे। प्रभुके हृदयमें श्रीवत्सका चिह्न था और सुन्दर वनमाला सुशोभित थी। उनके उदार हास और लीलामय कटाक्षसे सारा संसार आनन्दमग्न हो रहा था, पार्षदगण दोनों ओर राजहंसके समान सफेद पंखे और चँवर डुला रहे थे। भगवान्के मस्तकपर चन्द्रमाके समान शुभ्र छत्र सुशोभित था ॥ १६—२१ ॥

भगवान् पधारे हैं—यह देखकर ब्रह्मा, इन्द्र और

स्फटिक और महामरकतमणि (पन्ने) की दीवारोंमें रत्नोंकी बनी हुई स्त्रीमूर्तियोंपर रक्खे हुए मणिमय दीपक जगमगा रहे थे। उस महलके चारों ओर अनेक जातिके दिव्य वृक्षोंसे सुशोभित उद्यान थे, जिनमें नर और मादा पक्षियोंका कलरव तथा मतवाले भौरोंका गुंजार होता रहता था। उन बगीचोंमें वैदूर्यमणिकी सीढ़ियोंसे सुशोभित बावलियाँ थीं—जिनमें लाल, नीले और सफेद रंगके कमल खिले रहते थे तथा हंस, कारण्डव, चकवा एवं सारस आदि पक्षी क्रीड़ा करते रहते थे ॥ ६०–६४ ॥

राजर्षि उत्तानपादने अपने पुत्रके अति अद्भुत प्रभावकी बात देवर्षि नारदसे पहले ही सुन रक्खी थी; अब उसे प्रत्यक्ष वैसा ही देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। फिर यह देखकर कि अब ध्रुव तरुण अवस्थाको प्राप्त हो गये हैं, अमात्यवर्ग उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखते हैं तथा प्रजाका भी उनपर अनुराग है, उन्होंने उन्हें निखिल भूमण्डलके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। और आप वृद्धावस्था आयी



जानकर आत्मस्वरूपका चिन्तन करते हुए संसारसे विरक्त होकर वनको चल दिये ॥ ६५–६७ ॥

दसवाँ अध्याय

उत्तमका मारा जाना, ध्रुवका यक्षोंसे युद्ध

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! ध्रुवने प्रजापति शिशुमारकी पुत्री भ्रमिके साथ विवाह किया, उससे उनके कल्प और वत्सर नामके दो पुत्र हुए। महाबली ध्रुवकी दूसरी स्त्री वायुपुत्री इला थी। उससे उनके उत्कल नामके एक पुत्र और एक कन्यारत्नका जन्म हुआ। उत्तमका अभी विवाह नहीं हुआ था कि एक दिन शिकार खेलते समय उसे हिमालय पर्वतपर एक बलवान् यक्षने मार डाला। उसके साथ उसकी माता भी परलोक सिधार गयी ॥ १–३ ॥

ध्रुवने जब भाईके मारे जानेका समाचार सुना तो वे क्रोध, शोक और उद्वेगसे भरकर एक विजयप्रद रथपर सवार हो यक्षोंके देशमें जा पहुँचे। उन्होंने उत्तर दिशामें जाकर हिमालयकी घाटीमें यक्षोंसे भरी हुई अलकापुरी देखी, उसमें अनेकों भूत-प्रेत पिशाचादि रुद्रानुचर रहते थे। वहाँ पहुँचकर महाबाहु ध्रुवने अपना शङ्ख बजाकर सम्पूर्ण आकाश और दिशाओंको गुँजा दिया। उस शङ्खध्वनिसे घबड़ाकर यक्षपत्नियाँ बहुत ही डर गयीं ॥ ४–६ ॥

वीरवर विदुरजी ! महाबलवान् यक्षवीरोंको वह शङ्खनाद सहन न हुआ। इसलिये वे तरह-तरहके अस्त्र-शस्त्र लेकर नगरसे बाहर निकल आये और ध्रुवपर टूट पड़े। महारथी ध्रुव प्रचण्ड धनुर्धर थे। उन्होंने एक ही साथ उनमेंसे प्रत्येकको तीन-तीन बाण मारे। उन सभीने जब अपने-अपने मस्तकोंमें तीन-तीन बाण लगे देखे, तो उन्हें यह विश्वास हो गया कि हमारी हार अवश्य होगी। वे ध्रुवजीके इस अद्भुत पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे। फिर ठोकर खाये हुए सर्पके समान इस पराक्रमको न सहकर उन्होंने भी उनके बाणोंके जवाबमें एक ही साथ उनसे दूने-छः-छः बाण छोड़े। यक्षोंकी संख्या तेरह अयुत (१३००००) थी। उन्होंने ध्रुवजीका बदला लेनेके लिये अत्यन्त कुपित होकर रथ और सारथीके सहित उनपर परिघ, खड्ग, प्रास, त्रिशूल, फरसा, शक्ति, ऋष्टि, भुशुण्डी तथा चित्र-विचित्र पंखोंवाले बाणोंकी वर्षा की। इस भीषण शस्त्रवर्षासे ध्रुवजी बिल्कुल ढक गये। तब वे लोगोंको वैसे ही दीखने बंद हो गये, जैसे भारी वर्षाके समय पर्वतका दीखना बंद हो जाता है। इस समय जो सिद्धगण आकाशमें स्थित होकर यह दृश्य देख रहे थे, वे सब हाहाकार करते हुए कहने लगे—'हाय ! आज यक्षसेनारूप समुद्रमें डूबकर

लोकपालोंने कहा—अनन्त परमात्मन्! आप समस्त अन्तःकरणोंके साक्षी हैं, यह सारा जगत् आपहीके द्वारा देखा जाता है। तो क्या मायिक पदार्थोंको ग्रहण करनेवाली इन इन्द्रियोंसे हम आपको देख सकते हैं? वस्तुतः आप हैं तो पञ्चभूतों-से पृथक्; फिर भी साधारण जीवोंके समान जो इस पाञ्चभौतिक रूपमें दीख रहे हैं, यह आपकी माया ही है॥ ३७॥

योगेश्वरोंने कहा—प्रभो! जो पुरुष सम्पूर्ण विश्वके आत्मा आपमें और अपनेमें कोई भेद नहीं देखता, उससे अधिक प्यारा आपको कोई नहीं है। तथापि भक्तवत्सल! जो लोग आपमें स्वामिभाव रखकर अनन्य भक्तिसे आपकी सेवा करते हैं, उनपर आप अनुग्रह करते हैं। जीवोंके अदृष्टवश जिसके सत्त्वादि गुणोंमें बड़ी विभिन्नता आ जाती है, उस अपनी मायाके द्वारा जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिये ब्रह्मादि विभिन्न रूप धारण करके आप भेदबुद्धि पैदा कर देते हैं; किन्तु अपनी स्वरूपस्थितिसे आप उस भेदज्ञान और उसके कारण सत्त्वादि गुणोंसे सर्वथा दूर हैं। ऐसे आपको हमारा नमस्कार है॥ ३८-३९॥

ब्रह्मस्वरूप वेदने कहा—आप ही धर्मादिकी उत्पत्तिके लिये शुद्ध सत्त्वको स्वीकार करते हैं, साथ ही आप निर्गुण भी हैं। अतएव आपका तत्त्व न तो मैं जानता हूँ और न ब्रह्मादि कोई और ही जानते हैं, आपको नमस्कार है॥४०॥

अग्निदेव बोले—भगवन्! आपहीके तेजसे प्रज्वलित होकर मैं श्रेष्ठ यज्ञोंमें देवताओंके पास घृतमिश्रित हवि पहुँचाता हूँ। आप साक्षात् यज्ञपुरुष एवं यज्ञकी रक्षा करनेवाले हैं। अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और सोम—ये पाँच प्रकारके यज्ञ आपके ही स्वरूप हैं तथा 'आश्रावय', 'अस्तु श्रौषट्', 'यजे', 'ये यजामहे' और 'वषट्'—इन पाँच प्रकारके यजुर्मन्त्रोंसे आपहीका पूजन होता है। मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ ४१॥

देवताओंने कहा—देव! आप आदिपुरुष हैं। पूर्व-कल्पका अन्त होनेपर अपने कार्यरूप इस प्रपञ्चको उदरमें लीनकर आपने ही प्रलयकालीन जलके भीतर शेषनागकी उत्तम शय्यापर शयन किया था। आपके आध्यात्मिक स्वरूपका जनलोकादिवासी सिद्धगण भी अपने हृदयमें चिन्तन करते हैं। अहो! वही आप आज हमारे नेत्रोंके विषय होकर अपने भक्तोंकी रक्षा कर रहे हैं॥ ४२॥

गन्धर्वोंने कहा—देव! मरीचि आदि ऋषि और ये ब्रह्मा, इन्द्र तथा रुद्रादि देवतागण आपके अंशके भी अंश हैं। महत्तम! यह सम्पूर्ण विश्व आपकी खेलकी सामग्री है। नाथ! ऐसे आपको हम सर्वदा प्रणाम करते हैं॥ ४३॥

विद्याधर बोले—प्रभो! परम पुरुषार्थकी प्राप्तिके साधनरूप इस मानवदेहको पाकर भी जीव आपकी मायासे मोहित होकर इसमें मैं-मेरेपनका अभिमान कर लेता है। फिर वह दुर्बुद्धि अपने आत्मीयोंसे तिरस्कृत होनेपर भी असत् विषयोंकी ही लालसा करता रहता है। किन्तु ऐसा होनेपर भी जो आपके कथामृतका सेवन करता है, वह इस अन्तःकरणके मोहसे सर्वथा मुक्त हो जाता है॥ ४४॥

ब्राह्मणोंने कहा—भगवन्! आप ही यज्ञ हैं, आप ही हवि हैं, आप ही अग्नि हैं, स्वयं आप ही मन्त्र हैं; आप ही समिधा, कुशा और यज्ञपात्र हैं तथा आप ही सदस्य, ऋत्विज, यजमान एवं उसकी धर्मपत्नी, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमरस, घृत और पशु हैं। वेदमूर्ते! यज्ञ और उसका सङ्कल्प दोनों आप ही हैं। पूर्वकालमें आप ही अति विशाल वराहरूप धारणकर रसातलमें डूबी हुई पृथ्वीको लीलासे ही अपनी दाढ़ोंपर उठाकर इस प्रकार निकाल लाये थे, जैसे कोई गजराज कमलिनीको उठा लाये। उस समय आप धीरे-धीरे गरज रहे थे और योगीगण आपका यह अलौकिक पुरुषार्थ देखकर आपकी स्तुति करते जाते थे। यज्ञेश्वर! जब लोग आपके नामका कीर्तन करते हैं, तो यज्ञके सारे विघ्न नष्ट हो जाते हैं। हमारा यह यज्ञरूप सत्कर्म नष्ट हो गया था, अतः हम आपके दर्शनोंकी इच्छा कर रहे थे। अब आप हमपर प्रसन्न होइये। आपको नमस्कार है॥ ४५—४७॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भाई विदुर! जब इस प्रकार सबलोग यज्ञरक्षक भगवान् हृषीकेशकी स्तुति करने लगे तो परम चतुर दक्षने रुद्रपार्षद वीरभद्रके ध्वंस किये हुए यज्ञको फिर आरम्भ कर दिया। सर्वान्तर्यामी श्रीहरि यों तो सभीके भागोंके भोक्ता हैं, तथापि त्रिकपाल-पुरोडाशरूप अपने भागसे और भी प्रसन्न होकर उन्होंने दक्षको सम्बोधन करके कहा॥ ४८-४९॥

श्रीभगवान् बोले—जगत्‌का परम कारण मैं ही ब्रह्मा और महादेव हूँ; मैं सबका आत्मा, ईश्वर और साक्षी हूँ तथा स्वयम्प्रकाश और उपाधिशून्य हूँ। प्रजापते! अपनी त्रिगुणात्मिका मायाको स्वीकार करके मैं ही जगत्‌की रचना, पालन और संहार करता रहता हूँ और मैंने ही उन कर्मोंके अनुरूप ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर—ये नाम धारण किये हैं। ऐसा जो भेदरहित विशुद्ध परब्रह्मस्वरूप मैं हूँ, उसीमें

ध्रुव अनेकों निरपराध यक्षोंको मार रहे हैं, तो उन्हें उनपर बहुत दया आयी। वे बहुत-से ऋषियोंको साथ लेकर वहाँ आये और उत्तानपादके पुत्र ध्रुवको समझाने लगे ॥१–६॥

मनुजी बोले—बेटा! क्रोध बहुत बुरा है, यह साक्षात् नरकका द्वार है। देखो, इसके वशीभूत होकर तुमने कितने निरपराध यक्षोंको मार डाला। अब तुम इसका परित्याग करो। तात! तुम जो निर्दोष यक्षोंके संहारपर उतर रहे हो, यह हमारे कुलके योग्य काम नहीं है, भले आदमी इसकी निन्दा ही करते हैं। बेटा! तुम्हारा अपने भाईपर बड़ा अनुराग था, यह तो ठीक है; परन्तु देखो, उसके वधसे सन्तप्त होकर तुमने एक यक्षके अपराध करनेपर प्रसङ्गवश कितनोंकी हत्या कर डाली! यह कहाँका न्याय है! इस जड शरीरको ही आत्मा मानकर इसके लिये पशुओंकी भाँति प्राणियोंकी हिंसा करना भगवत्सेवी साधुजनोंका मार्ग नहीं है। प्रभुकी आराधना करना बड़ा कठिन है, परन्तु तुमने तो लड़कपनमें ही सम्पूर्ण भूतोंके आश्रयस्थान श्रीहरिकी सर्वभूतात्मभावसे आराधना करके उनका परमपद प्राप्त कर लिया था। तुम्हें तो प्रभु भी अपना प्रिय भक्त समझते हैं तथा भक्तजन भी तुम्हारा आदर करते हैं। एक प्रकारसे तुम साधुजनोंके मार्गप्रदर्शक हो, फिर भी तुमने ऐसा निन्दनीय कर्म कैसे किया? सर्वात्मा श्रीहरि तो अपनेसे बड़े पुरुषोंके प्रति सहनशीलता, छोटोंके प्रति दया, बराबरवालोंके साथ मित्रता और समस्त जीवोंके साथ समताका बर्ताव करनेसे ही प्रसन्न होते हैं। और प्रभुके प्रसन्न हो जानेपर पुरुष प्राकृत गुण एवं उनके कार्यरूप लिङ्गशरीरसे छूटकर परमानन्दस्वरूप ब्रह्मपद प्राप्त कर लेता है ॥७–१४॥

बेटा ध्रुव! देहादिके रूपमें परिणत हुए पञ्चभूतोंसे ही स्त्री-पुरुषका आविर्भाव होता है और फिर उनके पारस्परिक समागमसे दूसरे स्त्री-पुरुष उत्पन्न होते हैं। ध्रुव! इस प्रकार भगवान्‌की मायासे सत्त्वादि गुणोंमें न्यूनाधिक भाव होनेसे ही जैसे भूतोंद्वारा शरीरोंकी रचना होती है, वैसे ही उनकी स्थिति और प्रलय भी होते हैं। पुरुषश्रेष्ठ! निर्गुण परमात्मा तो इनमें केवल निमित्तमात्र है, उसके आश्रयसे यह कार्य-कारणात्मक जगत् उसी प्रकार भ्रमता रहता है जैसे चुम्बकके आश्रयसे लोहा। समयके फेरसे सत्त्वादि गुणोंके प्रवाहमें न्यूनाधिकता हो जानेपर लीलामय भगवान्‌की शक्तिमें भी विषमता आ जाती है। उस शक्तिवैषम्यके कारण ही भगवान् अकर्ता होकर भी जगत्‌की रचना करते हैं और संहार करनेवाले न होकर भी इसका संहार करते हैं। सचमुच उन सर्वव्यापक प्रभुकी लीला सर्वथा अचिन्तनीय है। ध्रुव! वे कालस्वरूप अव्यय परमात्मा ही स्वयं अन्तरहित होकर भी जगत्‌का अन्त करनेवाले हैं तथा अनादि होकर भी सबके आदिकर्ता हैं। वे ही एक जीवसे दूसरे जीवको उत्पन्न कर संसारकी सृष्टि करते हैं तथा मृत्युके द्वारा मारनेवालेको भी मरवाकर उसका संहार करते हैं। वे कालभगवान् सम्पूर्ण सृष्टिमें समानरूपसे अनुप्रविष्ट हैं। उनका न तो कोई स्वपक्ष है और न परपक्ष। जैसे वायुके चलनेपर धूल उसके साथ साथ उड़ती है, उसी प्रकार समस्त जीव अपने-अपने कर्मोंके अधीन होकर कालकी गतिका अनुसरण करते हैं—अपने-अपने कर्मानुसार सुख-दुःखादि फल भोगते हैं। सर्वसमर्थ श्रीहरि कर्मबन्धनमें बँधे हुए जीवकी आयुकी वृद्धि और क्षयका विधान करते हैं, परन्तु वे स्वयं इन दोनोंसे रहित और अपने स्वरूपमें स्थित हैं। राजन्! इन परमात्माको ही मीमांसकलोग कर्म, चार्वाक स्वभाव, वैशेषिकमतावलम्बी काल, ज्योतिषी दैव और कामशास्त्री काम कहते हैं। वे किसी भी इन्द्रिय या प्रमाणके विषय नहीं हैं। महदादि अनेक शक्तियाँ भी उन्हींसे प्रकट हुई हैं। वे क्या करना चाहते हैं, इस बातको भी संसारमें कोई नहीं जानता, फिर अपने मूल कारण उन प्रभुको तो जान ही कौन सकता है ॥१५–२३॥

बेटा! ये कुबेरके अनुचर तुम्हारे भाईको मारनेवाले नहीं हैं, क्योंकि मनुष्यके जन्म-मरणका वास्तविक कारण तो ईश्वर है। एकमात्र वही संसारकी रचता, पालता और नष्ट करता है, किन्तु अहङ्कारशून्य होनेके कारण इसके गुण और कर्मोंसे वह सदा निर्लेप रहता है। वे सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तरात्मा, नियन्ता और रक्षा करनेवाले प्रभु ही अपनी मायाशक्तिसे युक्त होकर समस्त जीवोंका सृजन, पालन और संहार करते हैं। जिस प्रकार नाकमें नकेल पड़े हुए बैल अपने मालिकका बोझा ढोते रहते हैं, उसी प्रकार जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्मादि भी नामरूप डोरीसे बँधे हुए उन्हींकी आज्ञाका पालन करते हैं। वे अभक्तोंके लिये मृत्युरूप और भक्तोंके लिये अमृतरूप हैं तथा संसारके एकमात्र आश्रय हैं। तात! तुम सब प्रकार उन्हीं परमात्माकी शरण लो। तुम पाँच वर्षकी ही अवस्थामें अपनी सौतेली माताके वाग्बाणोंसे मर्माहत होकर माँकी गोद छोड़कर वनको चले गये थे। वहाँ तपस्याद्वारा जिन हृषीकेश भगवान्‌की आराधना करके तुमने त्रिलोकीसे ऊपर ध्रुवपद प्राप्त किया है और जो तुम्हारे वैरभावहीन सरल हृदयमें वात्सल्यवश विशेषरूपसे विराजमान हुए थे, उन निर्गुण अद्वितीय

समय घमंडसे भरी हुई सुरुचिने अपनी सौतके पुत्र ध्रुवको राजाकी गोदमें आनेका यत्न करते देख राजाके सामने ही उससे डाहभरे शब्दोंमें कहा, 'बेटा ! तू राजसिंहासनपर बैठनेका अधिकारी नहीं है । तू राजपुत्र है, इससे क्या हुआ; तुझको मैंने तो अपनी कोखमें नहीं रक्खा है। तू अभी बच्चा है, तुझे पता नहीं है कि तूने किसी दूसरी स्त्रीके गर्भसे जन्म लिया है; इसीसे ऐसे दुर्लभ विषयकी इच्छा कर रहा है ! यदि तुझे राजसिंहासनकी इच्छा है, तो तपस्या करके परम-पुरुष श्रीनारायणकी आराधना कर और उनकी कृपासे मेरे गर्भमें आकर जन्म ले' ॥ ९–१३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं–विदुरजी ! जिस प्रकार डंडेकी चोट खाकर साँप फुँफकार मारने लगता है, उसी प्रकार अपनी सौतेली माँके कठोर वचनोंसे घायल होकर ध्रुव क्रोधके मारे लंबी-लंबी साँस लेने लगा और अपने पिताको चुपचाप यह सब देखते हुए छोड़कर रोता हुआ अपनी माताके पास आया । बालक ध्रुवके दोनों होठ फड़क रहे थे और वह सिसक-सिसक कर रो रहा था । सुनीतिने उसे गोदमें उठा लिया और जब महलके दूसरे लोगोंसे अपनी सौत सुरुचिकी कही हुई बातें सुनीं, तो उसे भी बड़ा दुःख हुआ । उसका धीरज टूट गया । वह दावानलसे जली हुई बेलके समान शोकसे सन्तप्त होकर मुरझा गयी तथा फूट-फूटकर रोने लगी । सौतकी बातें याद आनेसे उसके कमल-सरीखे नेत्रोंमें आँसू भर आये । उस बेचारीको अपने दुःखपारावारका कहीं अन्त ही नहीं दिखायी देता था । तब उसने गहरी साँस लेकर ध्रुवसे कहा, 'बेटा ! तू दूसरोंके लिये किसी प्रकारके अमङ्गलकी कामना मत कर । जो मनुष्य दूसरोंको दुःख देता है, उसे स्वयं ही उसका फल भोगना पड़ता है । सुरुचिने जो कुछ कहा है, ठीक ही है; क्योंकि महाराजको मुझे पत्नी तो क्या, एक टहल करनेवाली दासीके रूपसे स्वीकार करनेमें भी लज्जा आती है । तूने मुझ मन्दभागिनीके गर्भसे ही जन्म लिया है, और मेरे ही दूधसे तू पला है । बेटा ! यदि तू राजकुमार उत्तमके समान राजसिंहासनपर बैठना चाहता है तो तेरी सौतेली माँने जो सच्ची बात कही है, द्वेषभाव छोड़कर उसीका पालन कर । बस, श्रीअधोक्षज भगवान्‌के चरण-कमलोंकी आराधनामें लग जा । देख, संसारका पालन करनेके लिये सत्त्वगुणको अङ्गीकार करनेवाले उन श्रीहरिके चरणोंकी आराधना करनेसे ही तेरे परदादा श्रीब्रह्माजीको वह सर्वश्रेष्ठ पद प्राप्त हुआ है, जिसकी मन और प्राणोंको जीतनेवाले मुनिजन भी वन्दना करते हैं । इसी प्रकार तेरे दादा स्वायम्भुव मनुने भी बड़ी-बड़ी दक्षिणाओंवाले यज्ञोंके द्वारा अनन्यभावसे उन्हीं भगवान्‌की आराधना की थी; तभी उन्हें अति दुर्लभ लौकिक और अलौकिक सुख तथा अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति हुई । इसलिये बेटा ! तू भी उन भक्तवत्सल श्रीभगवान्‌का ही आश्रय ले । जन्म-मृत्युके चक्रसे छूटनेकी इच्छा करनेवाले मुमुक्षुलोग निरन्तर उन्हींके चरणकमलोंके मार्गकी खोज किया करते हैं । तू स्वधर्मपालनसे पवित्र हुए अपने चित्तमें श्रीपुरुषोत्तम भगवान्‌को बैठा ले और सबका प्रेम छोड़कर उन्हींका भजन कर । बेटा ! उन कमलदललोचन श्रीहरिको छोड़कर मुझे तो तेरे दुःखको दूर करनेवाला और कोई दिखायी नहीं देता । देख, जिन लक्ष्मीजीकी कृपादृष्टिके लिये ब्रह्मादि सारे देवता तरसते रहते हैं, वे लक्ष्मीजी भी दीपककी भाँति हाथमें कमल लिये निरन्तर उन्हींकी खोज किया करती हैं ॥ १४–२३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं–जब माता सुनीतिने रोते-रोते ऐसे सार्थक वचन कहे, तो उन्हें सुनकर ध्रुवने बुद्धिद्वारा अपने चित्तको शान्त किया । इसके बाद वे पिताके नगरसे निकल पड़े । यह सब समाचार सुनकर और ध्रुव क्या करना चाहता है, इस बातको जानकर नारदजी वहाँ आये । नारदजी ध्रुवके मस्तकपर अपना पापनाशक कर-कमल फेरते हुए मन-ही-मन विस्मित होकर कहने लगे, 'अहो ! क्षत्रियोंका कैसा अद्भुत तेज है, वे थोड़ा-सा भी मान-भङ्ग नहीं सह सकते । देखो, अभी तो यह नन्हा-सा बच्चा है; तो भी इसके हृदयमें सौतेली माताके कटुवचन घर कर गये हैं ।' फिर वे ध्रुवसे बोले, 'बेटा ! अभी तो तू बच्चा है, खेल-कूदमें ही मस्त रहता है; हम नहीं समझते कि इस उम्रमें किसी बातसे तेरा सम्मान या अपमान हो सकता है । यदि तुझे मानापमानका विचार ही हो, तो बेटा ! असलमें मनुष्यके असन्तोषका कारण मोहके सिवा और कुछ नहीं है । संसारमें मनुष्य अपने कर्मानुसार ही मान-अपमान या सुख-दुःख आदि विभिन्न अवस्थाओंको प्राप्त होता है । प्यारे ! भगवान्‌की गति बड़ी विचित्र है;

आराधना की, भगवान् ही द्रव्य, क्रिया और देवतासम्बन्धी समस्त कर्मोंके फल हैं तथा वे ही कर्मफलके दाता भी हैं। सर्वोपाधिशून्य सर्वात्मा श्रीअच्युतमें प्रबल वेगयुक्त भक्तिभाव रखते हुए ध्रुवजी अपनेमें और समस्त प्राणियोंमें सर्वव्यापक श्रीहरिको ही विराजमान देखने लगे। ध्रुवजी बड़े ही शील सम्पन्न, ब्राह्मणभक्त, दीनवत्सल और धर्ममर्यादाके रक्षक थे, उनकी प्रजा उन्हें साक्षात् पिताके समान मानती थी। इस प्रकार तरह-तरहके ऐश्वर्यभोगसे पुण्यका और यज्ञादि कर्मोंसे पापका क्षय करते हुए उन्होंने छत्तीस हजार वर्षतक पृथ्वीका शासन किया। महात्मा ध्रुवने इसी तरह संयतेन्द्रिय रहकर अर्थ, धर्म और कामके सम्पादनमें बहुतसे वर्ष निकाल दिये। इसके बाद अपने पुत्र उत्कलको राजसिंहासनपर बैठा दिया तथा इस सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्चको अविद्यारचित स्वप्न और गन्धर्वनगरके समान मायासे अपनेहीमें कल्पित मानकर और यह समझकर कि शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र, सेना, भरा पूरा खजाना, जनाने महल, सुरम्य विहारभूमि और समुद्रपर्यन्त भूमण्डलका राज्य—ये सभी कालके गालमें पड़े हुए हैं, वे बदरिकाश्रमको चले गये ॥ ८-१६ ॥

वहाँ उन्होंने पवित्र जलमें स्नान कर इन्द्रियोंको विशुद्ध (शान्त) किया। फिर स्थिर आसनसे बैठकर प्राणायामद्वारा वायुको वशमें किया। तदनन्तर इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे हटाकर मनको भगवान्के स्थूल विराट्स्वरूपमें स्थिर कर दिया। उसी विराट्रूपका चिन्तन करते-करते वे अन्तमें ध्याता और ध्येयके भेदसे शून्य निर्विकल्प समाधिमें लीन हो गये, और उस अवस्थामें विराट्रूपका भी परित्याग कर दिया। इस प्रकार भगवान् श्रीहरिके प्रति निरन्तर भक्तिभावका प्रवाह चलते रहनेसे उनके नेत्रोंमें बार-बार आनन्दाश्रुओंकी बाढ़-सी आ जाती थी। इससे उनका हृदय द्रवीभूत हो गया और शरीरमें रोमाञ्च हो आया। फिर देहाभिमान गलित हो जानेसे उन्हें 'मैं ध्रुव हूँ' इसकी सुधि भी न रही ॥ १७ १८ ॥

इसी समय ध्रुवजीने आकाशसे एक बड़ा ही सुन्दर विमान उतरता देखा। वह अपने प्रकाशसे दसों दिशाओंको आलोकित कर रहा था, ऐसा प्रतीत होता था मानो साक्षात् पूर्णिमाका चन्द्र उदय हुआ हो। उसमें दो श्रेष्ठ पार्षद गदाओंका सहारा लिये खड़े थे। उनके चार भुजाएँ थीं, सुन्दर श्याम शरीर था, किशोर अवस्था थी और अरुण कमलके समान विशाल नेत्र थे। वे सुन्दर वस्त्र, किरीट, हार, भुजबन्ध और अति मनोहर कुण्डल धारण किये हुए थे। उन्हें पुण्यश्लोक श्रीहरिके सेवक जान ध्रुवजी हड़बड़ाहटमें पूजा आदिका क्रम भूलकर सहसा खड़े हो गये और ये भगवान्के पार्षदोंमें प्रधान हैं—ऐसा समझकर उन्होंने श्रीमधुसूदनके नामोंका कीर्तन करते हुए उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। ध्रुवजीका मन भगवान्के चरणकमलोंमें तल्लीन हो गया और वे हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे सिर नीचा किये खड़े रह गये। तब श्रीहरिके प्रिय पार्षद नन्द और सुनन्दने उनके पास जाकर मुसकराते हुए कहा ॥ १९-२२ ॥

सुनन्द और नन्द कहने लगे—राजन्! आपका कल्याण हो, आप तनिक सावधान होकर हमारी बात सुनिये। आपने पाँच ही वर्षकी अवस्थामें तपस्या करके जिन्हें प्रसन्न किया था, हम उन्हीं निखिलजगन्नियन्ता शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णुके सेवक हैं और आपको भगवान्के धाममें ले जानेके लिये यहाँ आये हैं। आपने अपनी भक्तिके प्रभावसे विष्णुलोकका अधिकार प्राप्त किया है, जो औरोंके लिये बड़ा दुर्लभ है। परमज्ञानी सप्तर्षि भी वहाँतक पहुँच नहीं सकते, नीचेसे केवल देखते रहते हैं। औरोंकी तो बात ही क्या—सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रह, नक्षत्र एवं तारागण भी उसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं। चलिये, आप उस परमपदपर विराजिये। प्रियवर! आजतक आपके पूर्वज तथा और कोई भी उस पदपर नहीं पहुँच सके। भगवान् विष्णुका वह परमधाम सारे संसारका वन्दनीय है, आप वहाँ चलकर विराजमान हों। आयुष्मन्! यह श्रेष्ठ विमान पुण्यश्लोकशिखामणि श्रीहरिने भेजा है, आप इसपर चढ़ जाइये ॥ २३-२७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान्के प्रमुख पार्षदोंके ये अमृतमय वचन सुनकर परम भागवत ध्रुवजीने स्नान किया, फिर सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्मसे निवृत्त हो माङ्गलिक अलङ्कारादि धारण किये। बदरिकाश्रममें रहनेवाले मुनियोंको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लिया। इसके बाद उस श्रेष्ठ विमानकी पूजा और प्रदक्षिणा की और पार्षदोंको प्रणाम कर उसपर चढ़नेको तैयार हुए। उस समय उनका शरीर सुवर्णके समान तेजोमय-दिव्य हो गया। इतनेहीमें उत्तानपादनन्दन

बड़ा ही दर्शनीय, शान्त तथा मन और नयनोंको आनन्दित करनेवाला है। जो लोग प्रभुका मानस-पूजन करते हैं, उनके अन्तःकरणमें वे हृदयकमलकी कर्णिकापर अपने नख-मणि-मण्डित मनोहर पादारविन्दोंको स्थापित करके विराजते हैं। इस प्रकार धारणा करते-करते जब चित्त स्थिर और एकाग्र हो जाय, तो उन वरदायक प्रभुका मन-ही-मन इस प्रकार ध्यान करे कि वे मेरी ओर अनुरागभरी दृष्टिसे निहारते हुए मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं। भगवान्की मङ्गलमयी मूर्तिका इस प्रकार निरन्तर ध्यान करनेसे मन शीघ्र ही परमानन्दमें डूबकर तल्लीन हो जाता है और फिर वहाँसे लौटता नहीं॥ ४५–५२ ॥

राजकुमार! इस ध्यानके साथ जिस परम गुह्य मन्त्रका जप करना चाहिये, वह भी बतलाता हूँ—सुन। इसका सात रात जप करनेसे मनुष्य आकाशमें विचरनेवाले सिद्धोंका दर्शन कर सकता है। वह मन्त्र है—'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'। किस देश और किस कालमें कौन वस्तु उपयोगी है—इसका विचार करके बुद्धिमान् पुरुषको इस मन्त्रद्वारा तरह-तरहकी सामग्रियोंसे भगवान्की द्रव्यमयी पूजा करनी चाहिये। प्रभुका पूजन विशुद्ध जल, पुष्पमाला, जंगली मूल और फलादि, पूजामें विहित दूर्वादि अङ्कुर, वनमें ही प्राप्त होनेवाले वल्कलवस्त्र और उनकी प्रेयसी तुलसीसे करना चाहिये। यदि शिला आदिकी मूर्ति मिल सके तो उसमें, नहीं तो पृथ्वी या जल आदिमें ही भगवान्की पूजा करे। सर्वदा संयतचित्त, मननशील, शान्त और मौन रहे तथा जंगली फल-मूलादिका परिमित आहार करे। इसके सिवा पुण्यकीर्ति श्रीहरि अपनी अनिर्वचनीया मायाको स्वीकार कर अपनी ही इच्छासे अवतार लेकर जो-जो मनोहर चरित्र करते हैं, उनका मन-ही-मन चिन्तन करता रहे। प्रभुकी पूजाके लिये जिन-जिन उपचारोंका विधान किया गया है, उन्हें मन्त्रमूर्ति श्रीहरिको द्वादशाक्षर मन्त्रके द्वारा ही अर्पण करे॥ ५३–५८ ॥

इस प्रकार जब हृदयस्थित हरिका मन, वाणी और शरीरसे भक्तिपूर्वक पूजन किया जाता है, तो वे निश्छलभावसे भलीभाँति भजन करनेवाले अपने उस भक्तके भावको बढ़ा देते हैं और उसे उसकी इच्छाके अनुसार धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्षरूप कल्याण प्रदान करते हैं। यदि उपासकको इन्द्रियसम्बन्धी भोगोंसे वैराग्य हो गया हो, तो वह मोक्ष-प्राप्तिके लिये अत्यन्त भक्तिपूर्वक अविच्छिन्नभावसे भगवान्का भजन करे॥ ५९–६१ ॥

श्रीनारदजीसे इस प्रकार उपदेश पाकर राजकुमार ध्रुवने परिक्रमा करके उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर वे भगवान्के चरणचिह्नोंसे अङ्कित परम पवित्र मधुवनको चल दिये। ध्रुवके तपोवनकी ओर चल देनेपर नारदजी महाराज उत्तानपादके महलोंमें पहुँचे। राजाने उनकी यथायोग्य उपचारोंसे भावसहित पूजा की, तब उन्होंने आरामसे आसन-पर बैठकर राजासे पूछा॥ ६२-६३ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन्! तुम्हारा मुख सूखा हुआ है, तुम बड़ी देरसे किस सोच-विचारमें पड़े हो? तुम्हारे धर्म, अर्थ और काममेंसे किसीमें कोई कमी तो नहीं आ गयी?॥ ६४॥

राजाने कहा—ब्रह्मन्! मैं बड़ा ही स्त्रैण और निर्दय हूँ। हाय, मैंने अपने पाँच वर्षके नन्हे-से बच्चेको उसकी माताके साथ घरसे निकाल दिया! मुनिवर! वह बड़ा ही होनहार था। उसका कमल-सा मुख भूखसे कुम्हला गया होगा, वह थककर कहीं रास्तेमें पड़ गया होगा। ब्रह्मन्! उस अकेले बच्चेको वनमें कहीं भेड़िये न खा जायँ। अहो! मैं परले सिरेका स्त्रीका गुलाम हूँ! मेरी कुटिलता तो देखिये—वह बालक प्रेमवश मेरी गोदमें चढ़ना चाहता था, किन्तु मैंने उसका तनिक भी मन नहीं रखा! मैं बड़ा ही दुष्ट हूँ॥ ६५–६७॥

श्रीनारदजी बोले—राजन्! तुम अपने बालककी चिन्ता मत करो। उसके रक्षक भगवान् हैं। तुम्हें उसके प्रभावका पता नहीं है, एक दिन उसका यश सारे जगत्में फैल जायगा। वह बालक बड़ा समर्थ है। जिस कामको बड़े-बड़े लोकपाल भी नहीं कर सके, उसे पूरा करके वह शीघ्र ही तुम्हारे पास लौट आयेगा। उसके कारण तुम्हारा यश भी बहुत बढ़ेगा॥ ६८-६९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—देवर्षि नारदजीकी बात सुनकर महाराज उत्तानपाद राजपाटकी ओरसे उदासीन होकर निरन्तर पुत्रकी ही चिन्तामें रहने लगे। इधर, ध्रुवजीने मधुवनमें पहुँचकर यमुनाजीमें स्नान किया और उस रात पवित्रतापूर्वक उपवास कर श्रीनारदजीके उपदेशानुसार एकाग्र चित्तसे परमपुरुष श्रीनारायणकी उपासना आरम्भ कर दी। उन्होंने तीन-तीन रात्रिके अन्तरसे शरीरनिर्वाहके लिये केवल कैथ और बेरके फल खाकर श्रीहरिकी उपासना करते हुए एक मास व्यतीत किया। दूसरे महीनेमें उन्होंने छः-छः दिनके पीछे सूखे घास और पत्ते खाकर भगवान्का भजन किया। तीसरा महीना नौ-नौ दिनपर केवल जल पीकर समाधियोगके

आराधना की, भगवान् ही द्रव्य, क्रिया और देवतासम्बन्धी समस्त कर्मोंके फल हैं तथा वे ही कर्मफलके दाता भी हैं। सर्वोपाधिशून्य सर्वात्मा श्रीअच्युतमें प्रबल वेगयुक्त भक्तिभाव रखते हुए ध्रुवजी अपनेमें और समस्त प्राणियोंमें सर्वव्यापक श्रीहरिको ही विराजमान देखने लगे। ध्रुवजी बड़े ही शील सम्पन्न, ब्राह्मणभक्त, दीनवत्सल और धर्ममर्यादाके रक्षक थे, उनकी प्रजा उन्हें साक्षात् पिताके समान मानती थी। इस प्रकार तरह-तरहके ऐश्वर्यभोगसे पुण्यका और यज्ञादि कर्मोंसे पापका क्षय करते हुए उन्होंने छत्तीस हजार वर्षतक पृथ्वीका शासन किया। महात्मा ध्रुवने इसी तरह संयतेन्द्रिय रहकर अर्थ, धर्म और कामके सम्पादनमें बहुतसे वर्ष निकाल दिये। इसके बाद अपने पुत्र उत्कलको राजसिंहासनपर बैठा दिया तथा इस सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्चको अविद्यारचित स्वप्न और गन्धर्वनगरके समान मायासे अपनेहीमें कल्पित मानकर और यह समझकर कि शरीर, स्त्री, पुत्र, मित्र, सेना, भरा पूरा खजाना, अनाने महल, सुरम्य विहारभूमि और समुद्रपर्यन्त भूमण्डलका राज्य—ये सभी कालके गालमें पड़े हुए हैं, वे बदरिकाश्रमको चले गये ॥ ८–१६ ॥

वहाँ उन्होंने पवित्र जलमें स्नान कर इन्द्रियोंको विशुद्ध (शान्त) किया। फिर स्थिर आसनसे बैठकर प्राणायामद्वारा वायुको वशमें किया। तदनन्तर इन्द्रियोंको बाह्य विषयोंसे हटाकर मनको भगवान्‌के स्थूल विराट्स्वरूपमें स्थिर कर दिया। उसी विराट्रूपका चिन्तन करते-करते वे अन्तमें ध्याता और ध्येयके भेदसे शून्य निर्विकल्प समाधिमें लीन हो गये, और उस अवस्थामें विराट्रूपका भी परित्याग कर दिया। इस प्रकार भगवान् श्रीहरिके प्रति निरन्तर भक्तिभावका प्रवाह चलते रहनेसे उनके नेत्रोंमें बार-बार आनन्दाश्रुओंकी बाढ़ सी आ जाती थी। इससे उनका हृदय द्रवीभूत हो गया और शरीरमें रोमाञ्च हो आया। फिर देहाभिमान गलित हो जानेसे उन्हें 'मैं ध्रुव हूँ' इसकी सुधि भी न रही ॥ १७ १८ ॥

इसी समय ध्रुवजीने आकाशसे एक बड़ा ही सुन्दर विमान उतरता देखा। वह अपने प्रकाशसे दसों दिशाओंको आलोकित कर रहा था, ऐसा प्रतीत होता था मानो साक्षात् पूर्णिमाका चन्द्र उदय हुआ हो। उसमें दो श्रेष्ठ पार्षद गदाओंका सहारा लिये खड़े थे। उनके चार भुजाएँ थीं, सुन्दर श्याम शरीर था, किशोर अवस्था थी और अरुण कमलके समान विशाल नेत्र थे। वे सुन्दर वस्त्र, किरीट, हार, भुजबन्ध और अति मनोहर कुण्डल धारण किये हुए थे। उन्हें पुण्यश्लोक श्रीहरिके सेवक जान ध्रुवजी हड़बड़ाहटमें पूजा आदिका क्रम भूलकर सहसा खड़े हो गये और ये भगवान्‌के पार्षदोंमें प्रधान हैं—ऐसा समझकर उन्होंने श्रीमधुसूदनके नामोंका कीर्तन करते हुए उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। ध्रुवजीका मन भगवान्‌के चरणकमलोंमें तल्लीन हो गया और वे हाथ जोड़कर बड़ी नम्रतासे सिर नीचा किये खड़े रह गये। तब श्रीहरिके प्रिय पार्षद नन्द और सुनन्दने उनके पास जाकर मुसकराते हुए कहा ॥ १९–२२ ॥

सुनन्द और नन्द कहने लगे—राजन्! आपका कल्याण हो, आप तनिक सावधान होकर हमारी बात सुनिये। आपने पाँच ही वर्षकी अवस्थामें तपस्या करके जिन्हें प्रसन्न किया था, हम उन्हीं निखिलजगन्नियन्ता शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णुके सेवक हैं और आपको भगवान्‌के धाममें ले जानेके लिये यहाँ आये हैं। आपने अपनी भक्तिके प्रभावसे विष्णुलोकका अधिकार प्राप्त किया है, जो औरोंके लिये बड़ा दुर्लभ है। परमज्ञानी सप्तर्षि भी वहाँतक पहुँच नहीं सकते, नीचेसे केवल देखते रहते हैं। औरोंकी तो बात ही क्या—सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रह, नक्षत्र एवं तारागण भी उसकी प्रदक्षिणा किया करते हैं। चलिये, आप उस परमपदपर विराजिये। प्रियवर! आजतक आपके पूर्वज तथा और कोई भी उस पदपर नहीं पहुँच सके। भगवान् विष्णुका वह परमधाम सारे संसारका वन्दनीय है, आप वहाँ चलकर विराजमान हों। आयुष्मन्! यह श्रेष्ठ विमान पुण्यश्लोकशिखामणि श्रीहरिने भेजा है, आप इसपर चढ़ जाइये ॥ २३–२७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान्‌के प्रमुख पार्षदोंके ये अमृतमय वचन सुनकर परम भागवत ध्रुवजीने स्नान किया, फिर सन्ध्या-वन्दनादि नित्यकर्मसे निवृत्त हो माङ्गलिक अलङ्कारादि धारण किये। बदरिकाश्रममें रहनेवाले मुनियोंको प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लिया। इसके बाद उस श्रेष्ठ विमानकी पूजा और प्रदक्षिणा की और पार्षदोंको प्रणाम कर उसपर चढ़नेको तैयार हुए। उस समय उनका शरीर सुवर्णके समान तेजोमय-दिव्य हो गया। इतनेहीमें उत्तानपादनन्दन

ध्रुवजी बोले—प्रभो ! आप सर्वशक्तिसम्पन्न हैं; आप ही मेरे अन्तःकरणमें प्रवेश कर अपने तेजसे मेरी सोयी हुई वाणीको सजीव करते हैं तथा हाथ, पैर, कान और त्वचा आदि अन्यान्य इन्द्रियों एवं प्राणोंको भी चेतनता देते हैं। मैं आप अन्तर्यामी भगवान्‌को प्रणाम करता हूँ। भगवन् ! आप एक ही हैं; परन्तु अपनी अनन्त गुणमयी मायाशक्तिसे इस महदादि सम्पूर्ण प्रपञ्चको रचकर अन्तर्यामीरूपसे उसमें प्रवेश कर जाते हैं और फिर इसके इन्द्रियादि असत् गुणोंमें उनके अधिष्ठातृ देवताओंके रूपमें स्थित होकर अनेकरूप भासते हैं—ठीक वैसे ही जैसे तरह-तरहकी लकड़ियोंमें प्रकट आग अपनी उपाधियोंके अनुसार भिन्न-भिन्न रूपोंमें भासती है। नाथ ! सृष्टिके आरम्भमें ब्रह्माजीने भी आपकी शरण लेकर आपके दिये हुए ज्ञानके प्रभावसे ही इस जगत्‌को सोकर उठे हुए पुरुषके समान देखा था। दीनबन्धो ! आपके चरणतलका तो मुक्त पुरुष भी आश्रय लेते हैं, कोई भी कृतज्ञ पुरुष उन्हें कैसे भूल सकता है ? प्रभो ! इन शवतुल्य शरीरोंके द्वारा भोगा जानेवाला, इन्द्रिय और विषयोंके संसर्गसे उत्पन्न सुख तो नरकमें भी मिल सकता है। जो लोग इस विषय-सुखके लिये लालायित रहते हैं और जो जन्म-मरणके बन्धनसे छुड़ा देनेवाले कल्पतरुस्वरूप आपकी उपासनाको भगवत्-प्राप्तिके सिवा अन्य किसी उद्देश्यकी पूर्तिमें लगाते हैं, उनकी बुद्धि अवश्य ही आपकी मायाके द्वारा ठगी गयी है। आपके चरणकमलोंका ध्यान करनेसे और आपके भक्तोंके पवित्र चरित्र सुननेसे प्राणियोंको जो आनन्द प्राप्त होता है, वह निजानन्दस्वरूप ब्रह्ममें भी नहीं मिल सकता। फिर जिन्हें कालकी तलवार काटे डालती है, उन स्वर्गीय विमानोंसे गिरनेवाले पुरुषोंको तो वह सुख मिल ही कैसे सकता है ॥ ६—१० ॥

अनन्त परमात्मन् ! मुझे तो आप उन विशुद्धहृदय महात्मा भक्तोंका सङ्ग दीजिये, जिनका आपमें अविच्छिन्न भक्तिभाव है; उनके सङ्गमें मैं आपके गुणों और लीलाओंकी कथा-सुधाको पी-पीकर उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही इस अनेक प्रकारके दुःखोंसे पूर्ण भयङ्कर संसारसागरके उस पार पहुँच जाऊँगा। कमलनाभ प्रभो ! जिनका चित्त आपके चरणकमलकी सुगन्धमें लुभाया हुआ है, उन महानुभावोंका जो लोग सङ्ग करते हैं—वे अपने इस अत्यन्त प्रिय शरीर और इसके सम्बन्धी पुत्र, मित्र, गृह और स्त्री आदिकी सुधि भी नहीं करते। अजन्मा परमेश्वर ! मैं तो पशु, वृक्ष, पर्वत, पक्षी, सरीसृप (सर्पादि रेंगनेवाले जन्तु), देवता, दैत्य और मनुष्य आदिसे परिपूर्ण तथा महदादि अनेकों कारणोंसे सम्पादित आपके इस सदसदात्मक स्थूल विश्वरूपको ही जानता हूँ; इससे परे जो आपका परम स्वरूप है, जिसमें वाणीकी गति नहीं है, उसका मुझे पता नहीं है। भगवन् ! कल्पका अन्त होनेपर योगनिद्रामें स्थित जो परमपुरुष इस सम्पूर्ण विश्वको अपने उदरमें लीन करके शेषजीकी सहायतासे उन्हींकी गोदमें शयन करते हैं तथा जिनके नाभि-समुद्रसे प्रकट हुए सर्वलोकमय सुवर्णवर्ण कमलसे परम तेजोमय ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, वे भगवान् आप ही हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। ११—१४।

प्रभो ! आप अपनी अखण्ड चिन्मयी दृष्टिसे बुद्धिकी सभी अवस्थाओंके साक्षी हैं तथा नित्यमुक्त, शुद्धसत्त्वमय, सर्वज्ञ, परमात्मस्वरूप, निर्विकार, आदिपुरुष, षडैश्वर्यसम्पन्न एवं तीनों गुणोंके अधीश्वर हैं। आप जीवसे सर्वथा भिन्न हैं तथा संसारकी स्थितिके लिये यज्ञाधिष्ठाता विष्णुरूपसे विराजमान हैं। आपहीसे विद्या-अविद्या आदि विरुद्ध गतियोंवाली अनेकों शक्तियाँ धारावाहिकरूपसे निरन्तर प्रकट होती रहती हैं। आप जगद्योनि, अखण्ड, अनादि, अनन्त, आनन्दमय, निर्विकार ब्रह्मस्वरूप हैं। मैं आपकी शरण हूँ। भगवन् ! आप परमानन्दमय हैं—जो लोग ऐसा समझकर निष्कामभावसे आपका निरन्तर भजन करते हैं, उनके लिये राज्यादि भोगोंकी अपेक्षा आपके चरणकमलोंकी प्राप्ति ही भजनका सच्चा फल है। यद्यपि बात ऐसी ही है, तो भी गौ जैसे अपने तुरंतके जन्मे हुए बछड़ेको दूध पिलाती और व्याघ्रादिसे बचाती रहती है, उसी प्रकार आप भी भक्तोंपर कृपा करनेके लिये निरन्तर विकल रहनेके कारण हम-जैसे सकाम जीवोंकी भी कामना पूर्ण करके उनकी संसार-भयसे रक्षा करते रहते हैं ॥ १५—१७॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! जब शुभ सङ्कल्पवाले मतिमान् ध्रुवजीने इस प्रकार स्तुति की तो भक्तवत्सल भगवान् उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे ॥ १८ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—तपस्वी राजकुमार ! मैं तेरे हृदयका सङ्कल्प जानता हूँ। यद्यपि उस पदका प्राप्त होना बहुत कठिन है, तो भी मैं तुझे वह देता हूँ। तेरा कल्याण हो। भद्र ! जिस तेजोमय अविनाशी लोकको आजतक किसीने प्राप्त नहीं किया, जिसके चारों ओर ग्रह, नक्षत्र और तारागणरूप ज्योतिश्चक्र उसी प्रकार चक्कर काटता रहता है जिस प्रकार अन्नकी ढेरीके बीचमें स्थित खंभेके चारों ओर दँवरीके बैल घूमते रहते हैं। अवान्तर कल्पपर्यन्त रहनेवाले अन्य लोकोंका नाश हो जानेपर भी

परम पवित्र चरणोंकी शरणमें रहनेवाला पुरुष इसे निष्काम भावसे पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी, श्रवण नक्षत्र, तिथिक्षय, व्यतीपात, संक्रान्ति अथवा रविवारके दिन श्रद्धालु पुरुषोंको सुनाता है, तो वह स्वयं अपने आत्मामें ही सन्तुष्ट रहने लगता है और इस प्रकार वह सिद्ध हो जाता है। यह साक्षात् भगवद्विषयक अमृतमय ज्ञान है, जो लोग भगवन्मार्गके मर्मसे अनभिज्ञ हैं—उन्हें जो कोई इसे प्रदान करता है उस दीनवत्सल कृपालु पुरुषपर देवता अनुग्रह करते हैं। ध्रुवजीके कर्म सर्वत्र प्रसिद्ध और परम पवित्र हैं, ये अपनी बाल्यावस्थामें ही माताके घर और खिलौनोंका मोह छोड़कर श्रीविष्णुभगवान्‌की शरणमें चले गये थे। कुरुनन्दन! उनका यह पवित्र चरित्र मैंने तुम्हें सुना दिया ॥ ४४–५२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

ध्रुववंशका वर्णन—राजा अङ्गका चरित्र

श्रीसूतजी कहते हैं—शौनकजी! श्रीमैत्रेय मुनिके मुखसे ध्रुवजीके विष्णुपदपर आरूढ होनेका वृत्तान्त सुनकर विदुरजीके हृदयमें भगवान् विष्णुकी भक्तिका उद्रेक हो आया और उन्होंने फिर मैत्रेयजीसे प्रश्न करना आरम्भ किया ॥ १ ॥

विदुरजी बोले—भगवत्परायण मुने! ये प्रचेतालोग कौन और किसके पुत्र थे? ये किसके वंशमें कहे जाते थे, और इन्होंने कहाँ यज्ञ किया था? साक्षात् देवमूर्ति नारदजीको तो मैं परम भगवद्भक्त मानता हूँ, उन्होंने तो पाञ्चरात्र दर्शनका निर्माण करके श्रीहरिकी पूजापद्धतिरूप क्रियायोगका उपदेश किया है। मैंने तो ऐसा सुना है कि जिस समय प्रचेतालोग स्वधर्मका आचरण करते हुए भगवान् यज्ञेश्वरकी आराधना कर रहे थे, उसी समय भक्तप्रवर नारदजीने उनका गुणगान किया था। ब्रह्मन्! उस स्थानपर उन्होंने जिन जिन भगवच्चरित्रोंका वर्णन किया था, वे सब मुझे सुनाइये, मुझे उनके सुननेकी बड़ी इच्छा है ॥ २–५ ॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा—विदुरजी! महाराज ध्रुवके वन चले जानेपर उनके पुत्र उत्कलने अपने पिताके सार्वभौम वैभव और राज्यसिंहासनकी तनिक भी इच्छा नहीं की। वह जन्मसे ही शान्तचित्त, आसक्तिशून्य और समदर्शी था तथा सम्पूर्ण लोकोंको अपने आत्मामें और अपने आत्माको सम्पूर्ण लोकोंमें स्थित देखता था। उसके अन्तःकरणका वासनारूप मल अखण्ड योगाग्निसे भस्म हो गया था। इसलिये वह अपने आत्माका विशुद्ध बोधरसके साथ अभिन्न, आनन्दमय और सर्वत्र व्याप्त देखता था। सब प्रकारके भेदसे रहित प्रशान्त ब्रह्मको ही वह अपना स्वरूप समझता था तथा अपने आत्मासे भिन्न कुछ भी न देखता था। वह रास्ते आदि साधारण स्थानोंमें अज्ञानियोंके बीचमें मूर्ख, अंधा, बहिरा, पागल अथवा गूँगा सा प्रतीत होता था—वास्तवमें ऐसा था नहीं। जिस प्रकार बिना लपटकी आगको लोग निकम्मी समझते हैं, उसी प्रकार वह भी निस्तेज और अकर्मण्य सा जान पड़ता था। इसलिये कुलके बड़े बूढे तथा मन्त्रियोंने उसे मूर्ख और पागल समझकर उसके छोटे भाई भ्रमिपुत्र वत्सरको राजा बनाया ॥ ६–११ ॥

वत्सरकी प्रेयसी भार्या स्वर्वीथिके गर्भसे पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु और जय नामके छः पुत्र हुए। पुष्पार्णके प्रभा और दोषा नामकी दो स्त्रियाँ थीं, उनमेंसे प्रभाके प्रातः, मध्यन्दिन और सायं—ये तीन पुत्र, तथा दोषाके प्रदोष, निशीथ और व्युष्ट—ये तीन पुत्र हुए। व्युष्टने अपनी भार्या पुष्करिणीसे सर्वतेजा नामका पुत्र उत्पन्न किया। उसकी आकूति नाम्नी भार्यासे चक्षुःनामक पुत्र हुआ। चाक्षुष मन्वन्तरमें वही मनु हुआ। चक्षु मनुकी स्त्री नड्वलासे पुरु, कुत्स, त्रित, द्युम्न, सत्यवान्, ऋत, व्रत, अग्निष्टोम, अतिरात्र, प्रद्युम्न, शिबि और उल्मुक—ये बारह निर्दोष बालक उत्पन्न हुए। इनमें उल्मुककी भार्या पुष्करिणीसे अङ्ग, सुमना, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और गय—ये छः पुत्र उत्पन्न हुए। अङ्गकी पत्नी सुनीथाने क्रूरकर्मा वेनको जन्म दिया, जिसकी दुष्टतासे तंग आकर राजर्षि अङ्ग नगर छोड़कर चल गये थे। प्यारे विदुरजी! मुनियोंके वाक्य वज्रके समान अमोघ होते हैं, उन्होंने कुपित होकर वेनको शाप दिया और जब वह मर गया, तो कोई राजा न रहनेके कारण लोकमें लुटेरोंके द्वारा प्रजाको बहुत कष्ट होने लगा। यह देखकर उन्होंने वेनकी दाहिनी भुजाका मन्थन किया, जिससे भगवान् विष्णुके अंशावतार आदिसम्राट् महाराज पृथु प्रकट हुए। इन्होंने नगर, ग्राम आदिकी रचना की ॥ १२–२० ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! महाराज अङ्ग तो बड़े शीलसम्पन्न, साधुस्वभाव, ब्राह्मणभक्त और महात्मा थे। उनके वेन जैसा दुष्ट पुत्र कैसे हुआ, जिसके कारण दुखी

सुवर्णजटित रथपर सवार होकर वे झटपट नगरके बाहर आये। उनके आगे-आगे वेदध्वनि होती जाती थी तथा शङ्ख, दुन्दुभि एवं वंशी आदि अनेकों माङ्गलिक बाजे बजते जाते थे। उनकी दोनों रानियाँ सुनीति और सुरुचि भी सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित हो राजकुमार उत्तमके साथ पालकियोंपर चढ़कर चल रही थीं। ध्रुवजी सरकारी बगीचेके पास पहुँचे ही थे कि उन्हें देखते ही महाराज उत्तानपाद तुरंत रथसे उतर पड़े। पुत्रको देखनेके लिये महाराजकी बहुत दिनोंसे लालसा लगी थी। बस, उन्होंने झटपट आगे बढ़कर प्रेमातुर हो, लंबी-लंबी साँसें लेते हुए, ध्रुवको भुजाओंमें भर लिया। अब ये पहले ध्रुव नहीं थे, प्रभुके परमपुनीत पादपद्मोंका स्पर्श होनेसे इनके समस्त पाप-बन्धन कट गये थे। राजा उत्तानपादकी एक बहुत बड़ी कामना पूर्ण हो गयी। उन्होंने बार-बार पुत्रका सिर सूँघा और आनन्द तथा प्रेमके कारण निकलनेवाले ठंढे-ठंढे आँसुओंसे उन्हें नहला दिया ॥ ३७—४४ ॥

तदनन्तर सज्जनोंमें अग्रगण्य ध्रुवजीने पिताके चरणोंमें प्रणाम किया और उनसे आशीर्वाद पाकर, कुशल-प्रश्नादिसे सम्मानित हो दोनों माताओंको सिर झुकाया। छोटी माता सुरुचिने अपने चरणोंपर झुके हुए बालक ध्रुवको उठाकर हृदयसे लगा लिया और अश्रुगद्गद वाणीसे 'चिरञ्जीव रहो' ऐसा आशीर्वाद दिया। उस समय ध्रुवजीके प्रति सुरुचिका ऐसा स्नेहपूर्ण व्यवहार कोई आश्चर्यकी बात नहीं थी; क्योंकि जिस प्रकार जल स्वयं ही नीचेकी ओर बहने लगता है—उसी प्रकार मैत्री आदि गुणोंके कारण जिसपर श्रीभगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, उसके आगे सभी जीवोंका हृदय झुक जाता है। इधर उत्तम और ध्रुव दोनों ही प्रेमसे विह्वल हो गये। एक दूसरेके अङ्गोंका स्पर्श पाकर उन दोनोंके ही शरीरमें रोमाञ्च हो आया तथा नेत्रोंसे बार-बार आँसुओंकी धारा बहने लगी। ध्रुवकी माता सुनीतिका तो कहना ही क्या था। वह तो अपने प्राणोंसे भी प्यारे पुत्रको गले लगाकर सारा सन्ताप भूल गयी। ध्रुवजीके सुकुमार अङ्गोंके स्पर्शसे उसे बड़ा ही आनन्द प्राप्त हुआ। वीरवर विदुरजी! वीरमाता सुनीतिके स्तन उसके नेत्रोंसे झरते हुए मङ्गलमय आनन्दाश्रुओंसे भीग गये और उनसे बार-बार दूध बहने लगा। उस समय पुरवासीलोग उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे, 'महारानीजी! आपका कुमार बहुत दिनोंसे खोया हुआ था; अब वह लौट आया, इससे हमारे सब दुःख दूर हो गये। यह बहुत दिनोंतक भूमण्डलकी रक्षा करेगा। आपने अवश्य ही शरणागतभयभञ्जन श्रीहरिकी उपासना की है। उनका निरन्तर ध्यान करनेवाले धीर पुरुष परम दुर्जय मृत्युको भी जीत लेते हैं' ॥४५—५२॥

विदुरजी! इस प्रकार सभी लोगोंने ध्रुवका लाड़-चाव किया। फिर उन्हें भाई उत्तमके सहित हथिनीपर चढ़ाकर महाराज उत्तानपादने बड़े हर्षके साथ राजधानीमें प्रवेश किया। उस समय सभी लोग उनके भाग्यकी बड़ाई कर रहे थे। नगरमें जहाँ-तहाँ मगरके आकारके सुन्दर दरवाजे बनाये गये थे तथा फल-फूलोंके गुच्छोंके सहित केलेके खंभे और सुपारीके पौधे सजाये गये थे। द्वार-द्वारपर दीपकके सहित जलके कलश रक्खे हुए थे—जो आमके पत्तों, वस्त्रों, पुष्पमालाओं तथा मोतीकी लड़ियोंसे सुसज्जित थे। नगरी जिन अनेकों परकोटों, फाटकों और महलोंसे सुशोभित थी, उन सबको सुवर्णकी सामग्रियोंसे सजाया गया था तथा उनके कँगूरे विमानोंके शिखरोंके समान चमक रहे थे। नगरके चौक, गलियों, अटारियों और सड़कोंको झाड़-बुहारकर उनपर चन्दनका छिड़काव किया गया था, और जहाँ-तहाँ खील, चावल, पुष्प, फल, जौ एवं अन्य माङ्गलिक उपहार-सामग्रियाँ सजी रखखी थीं। ध्रुवजी राजमार्गसे जा रहे थे। उस समय जहाँ-तहाँ नगरकी शीलवती सुन्दरियाँ उन्हें देखनेको एकत्रित हो रही थीं। उन्होंने वात्सल्यभावसे अनेकों शुभाशीर्वाद देते हुए उनपर सफेद सरसों, अक्षत, दही, जल, दूर्वा, पुष्प और फलोंकी वर्षा की। इस प्रकार उनके मनोहर गीत सुनते हुए ध्रुवजीने अपने पिताके महलमें प्रवेश किया ॥ ५३—५९ ॥

राजभवन महामूल्य मणियोंकी लड़ियोंसे सुसज्जित था। उसमें अपने पिताजीके लाड़-प्यारका सुख भोगते हुए वे उसी प्रकार आनन्दपूर्वक रहने लगे, जैसे स्वर्गमें देवतालोग रहते हैं। वहाँ दूधके फेनके समान सफेद और कोमल शय्याएँ, हाथीदाँतके पलंग, सुनहरी कामदार परदे, बहुमूल्य आसन और बहुत-सा सोनेका सामान था। उसकी

पकड़ लेता और पशुओंकी भाँति उन्हें बलात्कारसे मुक्कोंकी मारसे मार डालता। वेनकी ऐसी दुष्ट प्रकृति देखकर महाराज अङ्गने उसे तरह-तरहसे सुधारनेकी चेष्टा की; परन्तु वे उसे सुमार्गपर लानेमें समर्थ न हुए। इससे उन्हें बड़ा ही दुःख हुआ। वे मन-ही-मन कहने लगे—'जिन गृहस्थोंके पुत्र नहीं हैं, उन्होंने अवश्य ही पूर्वजन्ममें श्रीहरिकी आराधना की होगी; इसीसे उन्हें कपूतकी करतूतोंसे होनेवाले असह्य क्लेश नहीं सहने पड़ते। जिसकी करनीसे माता-पिताका सारा सुयश मिट्टीमें मिल जाय, उन्हें अधर्मका भागी होना पड़े, सबसे विरोध हो जाय, कभी न छूटनेवाली चिन्ता मोल लेनी पड़े और घर भी दुःखदायी हो जाय—ऐसी नाममात्रकी सन्तानके लिये कौन समझदार पुरुष ललचावेगा? वह तो सन्तान क्या, आत्माके लिये एक प्रकारका मोहमय बन्धन ही है। तब भी एक प्रकारसे तो मैं सपूतकी अपेक्षा कपूतको ही अच्छा समझता हूँ; क्योंकि सपूतको छोड़नेमें तो बड़ा क्लेश होता है। कपूत घरको नरक बना देता है, इसलिये उससे सहज ही छुटकारा हो जाता है!' ॥ ४०-४६ ॥

इस प्रकार सोचते-सोचते महाराज अङ्गको रातमें नींद भी न आयी। उनका चित्त गृहस्थीसे विरक्त हो गया। बस, वे आधी रातके समय बिछौनेसे उठे। इस समय वेनकी माता नींदमें बेसुध पड़ी थी। राजाने सबका मोह छोड़ दिया और उसी समय किसीको भी मालूम न हो, इस प्रकार चुपचाप उस महान् ऐश्वर्यसे भरे राजमहलको छोड़कर वनको चल दिये। दूसरे दिन लोगोंको मालूम हुआ कि महाराज विरक्त होकर घरसे निकल गये हैं। इससे सभी प्रजाजन तथा पुरोहित, मन्त्री और सुहृद्गण आदि अत्यन्त शोकाकुल होकर पृथ्वीपर उनकी खोज करने लगे। उनकी वह खोज ऐसी ही थी, जैसे योगका यथार्थ रहस्य न जाननेवाले पुरुष अपने हृदयमें छिपे हुए भगवान्‌को दूसरी जगह ढूँढ़ते रहते



है और उन्हें परिश्रमके सिवा कुछ भी हाथ नहीं लगता। जब उन्हें अपने स्वामीका कहीं पता न लगा, तो वे निराश होकर नगरमें लौट आये और वहाँ जो मुनिजन एकत्रित हुए थे, उन्हें यथावत् प्रणाम कर उन्होंने महाराजके वियोगका वृत्तान्त सुना दिया। उस समय उन सभीकी आँखोंमें आँसू भर आये ॥ ४७-४९ ॥

चौदहवाँ अध्याय

राजा वेनकी कथा

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—वीरवर विदुरजी! भृगु आदि वेदवादी मुनिगण सभी लोकोंकी कुशल चाहनेवाले हैं। उन्होंने देखा कि अङ्गके चले जानेसे अब पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं रह गया है, सब लोग पशुओंके समान उच्छृङ्खल होते जा रहे हैं। तब उन्होंने माता सुनीथाकी सम्मतिसे, मन्त्रियोंके सहमत न होनेपर भी वेनको भूमण्डलके राजपदपर अभिषिक्त कर दिया। वेन बड़ा कठोर शासक था। जब चोर-डाकुओंने सुना कि वही राजसिंहासनपर बैठा है, तो सर्पसे डरे हुए चूहोंके समान वे सब तुरंत ही जहाँ-तहाँ छिप गये। राज्यासन पानेपर वेन आठों लोकपालोंकी ऐश्वर्यकलाके कारण उन्मत्त हो गया और अभिमानवश अपनेहीको सबसे बड़ा मानकर महापुरुषोंका अपमान करने लगा। वह ऐश्वर्यमदसे अंधा हो रथपर चढ़कर निरङ्कुश गजराजके समान पृथ्वी और आकाशको कँपाता हुआ सर्वत्र विचरने लगा। उसने अपने राज्यमें यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि कोई भी द्विजातिवर्णका पुरुष कभी किसी प्रकारका यज्ञ, दान और हवन न करे। यों उसने सारे धर्म-कर्म बंद करवा दिये ॥ १-६ ॥

दुष्ट वेनका ऐसा अत्याचार देख सारे ऋषि-मुनि एक जगह एकत्रित हुए और संसारपर सङ्कट आया समझकर करुणावश वे आपसमें कहने लगे, 'अहो! जैसे दोनों ओरसे

यह मानव-सूर्य नष्ट हो गया।' यक्षलोग अपनी विजयकी घोषणा करते हुए युद्धक्षेत्रमें सिंहकी तरह गरजने लगे। इसी बीचमें ध्रुवजीका रथ एकाएक वैसे ही प्रकट हो गया, जैसे कुहरेमेंसे सूर्यभगवान् निकल आते हैं ॥ ७—१५ ॥

ध्रुवजीने अपने दिव्य धनुषकी टङ्कार करके शत्रुओंके दिल दहला दिये और फिर प्रचण्ड बाणोंकी वर्षा करके उनके अस्त्र-शस्त्रोंको इस प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिया, जैसे आँधी बादलोंको तितर-बितर कर देती है। उनके भीषण धनुषसे छूटे हुए तीखे तीर यक्ष-राक्षसोंके कवचोंको भेदकर इस प्रकार उनके शरीरोंमें घुस गये, जैसे इन्द्रके छोड़े हुए वज्र पर्वतोंमें प्रवेश कर गये थे। विदुरजी! महाराज ध्रुवके बाणोंसे कटे हुए यक्षोंके सुन्दर कुण्डलमण्डित मस्तकोंसे, सुनहरी तालवृक्षके समान जाँघोंसे, वलयविभूषित बाहुओंसे, हार, भुजबन्ध, मुकुट और बहुमूल्य पगड़ियोंसे पटी हुई वह वीरोंके मनको लुभानेवाली समरभूमि बड़ी सुहावनी जान पड़ती थी ॥ १६—१९ ॥

जो यक्ष किसी प्रकार जीवित बचे, वे क्षत्रियप्रवर ध्रुवजीके बाणोंसे अधिकांश घायल होकर युद्धक्रीडामें सिंहसे परास्त हुए गजराजके समान मैदान छोड़कर भाग गये। नरश्रेष्ठ ध्रुवजीने देखा कि उस विस्तृत रणभूमिमें अब एक भी शत्रु अस्त्र-शस्त्र लिये उनके सामने नहीं है, तो उनकी इच्छा अलकापुरी देखनेकी हुई। किन्तु फिर यह सोचकर कि 'इन मायावी शत्रुओंकी इच्छाका मनुष्यको पता नहीं लग सकता' वे पुरीके भीतर नहीं गये। सारथिसे इस प्रकार कहकर वे उस विचित्र रथमें बैठे रहे तथा शत्रुके नवीन आक्रमणकी आशङ्कासे सावधान हो गये। इतनेहीमें उन्हें समुद्रकी गर्जनाके समान आँधीका भीषण शब्द सुनायी दिया तथा दिशाओंमें उठती हुई धूल भी दिखायी दी ॥ २०—२२ ॥

एक क्षणमें ही सारा आकाश मेघमालासे घिर गया। सब ओर भयङ्कर गड़गड़ाहटके साथ बिजली चमकने लगी। निष्पाप विदुरजी! उन बादलोंसे खून, कफ, पीब, विष्ठा, मूत्र एवं चर्बीकी वर्षा होने लगी और ध्रुवजीके आगे आकाशसे बहुत-से धड़ गिरने लगे। फिर आकाशमें एक पर्वत दिखायी दिया और सभी दिशाओंमें पत्थरोंकी वर्षाके साथ गदा, परिघ, तलवार और मूसल गिरने लगे। उन्होंने देखा कि बहुत-से सर्प बिजलीकी तरह फुफकार मारते रोषपूर्ण नेत्रोंसे आगकी चिनगारियाँ उगलते आ रहे हैं; झुंड-के-झुंड मतवाले हाथी, सिंह और बाघ भी दौड़े चले आ रहे हैं तथा प्रलयकालके समान भयङ्कर समुद्र अपनी उत्ताल तरङ्गोंसे पृथ्वीको सब ओरसे डुबाता हुआ बड़ी भीषण गर्जनाके साथ उनकी ओर बढ़ रहा है। क्रूरस्वभाव असुरोंने अपनी आसुरी मायासे ऐसे ही बहुत-से कौतुक दिखलाये, जिनसे कायरोंके मन काँप सकते थे। ध्रुवजीपर असुरोंने अपनी दुस्तर माया फैलायी है, यह सुनकर वहाँ कुछ मुनियोंने आकर उनके लिये मङ्गलकामना की ॥२३—२९॥

मुनियोंने कहा—उत्तानपादनन्दन ध्रुव! शरणागत-भयभञ्जन शार्ङ्गपाणि श्रीहरि तुम्हारे शत्रुओंका संहार करें। भगवान्‌का तो नाम ही ऐसा है, जिसके सुनने और कीर्त्तन करनेमात्रसे मनुष्य दुस्तर मृत्युके मुखसे अनायास ही बच जाता है ॥ ३० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

स्वायम्भुव मनुका ध्रुवजीको युद्ध बंद करनेके लिये समझाना

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! ऋषियोंका ऐसा कथन सुनकर महाराज ध्रुवने आचमन कर श्रीनारायणके बनाये हुए नारायणास्त्रको अपने धनुषपर चढ़ाया। उस बाणके चढ़ाते ही यक्षोंद्वारा रची हुई नाना प्रकारकी माया उसी क्षण नष्ट हो गयी, जिस प्रकार ज्ञानका उदय होनेपर अविद्यादि क्लेश नष्ट हो जाते हैं। ऋषिवर नारायणके द्वारा आविष्कृत उस अस्त्रको धनुषपर चढ़ाते ही उससे राजहंसकेसे पक्ष और सोनेके फलवाले बड़े तीखे बाण निकले और जिस प्रकार मयूर केकारव करते वनमें घुस जाते हैं, उसी प्रकार भयानक साँय-साँय शब्द करते हुए वे शत्रुकी सेनामें घुस गये। उन तीखी धारवाले बाणोंने शत्रुओंको बेचैन कर दिया। तब उस रणाङ्गणमें अनेकों यक्षोंने अत्यन्त कुपित होकर अपने अस्त्र-शस्त्र सँभाले और जिस प्रकार गरुड़के छेड़नेसे बड़े-बड़े सर्प फन उठाकर उनकी ओर दौड़ते हैं, उसी प्रकार वे इधर-उधरसे ध्रुवजीपर टूट पड़े। उन्हें सामने आते देख ध्रुवजीने अपने बाणोंद्वारा उनकी भुजाएँ, जाँघें, कंधे और उदर आदि अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको छिन्न-भिन्न कर उन्हें उस सर्वश्रेष्ठ लोक (सत्यलोक) में भेज दिया, जिसमें ऊर्ध्वरेता मुनिगण सूर्यमण्डलका भेदन करके जाते हैं। अब उनके पितामह स्वायम्भुव मनुने देखा कि विचित्र रथपर चढ़े हुए

साक्षात् यज्ञपति श्रीविष्णुभगवान्‌की भी निन्दा करता है। अहो! जिनकी कृपासे इसे ऐसा ऐश्वर्य मिला, उन श्रीहरिकी निन्दा अभागे वेनको छोड़कर और कौन कर सकता है?' ॥२९—३३॥

इस प्रकार अपने छिपे हुए क्रोधको प्रकट कर उन्होंने उसे मारनेका निश्चय कर लिया। वह तो भगवान्‌की निन्दा करनेके कारण पहले ही मर चुका था, इसलिये केवल हुङ्कारोंसे ही उन्होंने उसका काम तमाम कर दिया। जब उसे मारकर मुनिगण अपने-अपने आश्रमोंको चले गये, तब इधर वेनकी शोकाकुला माता सुनीथा मन्त्रादिके बलसे तथा अन्य युक्तियोंसे अपने पुत्रके शवकी रक्षा करने लगी ॥ ३४-३५ ॥

एक दिन वे मुनिगण सरस्वतीके पवित्र जलमें स्नान कर अग्निहोत्रसे निवृत्त हो नदीके तीरपर बैठे हुए हरिचर्चा कर



रहे थे। उन दिनों लोकोंमें आतङ्क फैलानेवाले बहुत-से उपद्रव होते देखकर वे आपसमें कहने लगे, 'आजकल पृथ्वीका कोई रक्षक नहीं है; इसलिये चोर-डाकुओंके कारण उसका कुछ अमङ्गल तो नहीं होनेवाला है?' ऋषिलोग ऐसा विचार कर ही रहे थे कि उन्होंने लोगोंका धन लूटकर इधर-उधर भागते हुए चोरोंके कारण उठी हुई बड़ी भारी धूल देखी। वे देखते ही समझ गये कि राजा वेनके मर जानेके कारण देशमें अराजकता फैल गयी है, राज्य शक्तिहीन हो गया है और चोर-डाकू बढ़ गये हैं; यह सारा उपद्रव लोगोंका धन लूटनेवाले तथा एक दूसरेके खूनके प्यासे चोरोंका ही है। अपने तेजसे अथवा तपोबलसे लोगोंको ऐसी कुप्रवृत्तिसे रोकनेमें समर्थ होनेपर भी ऐसा करनेमें हिंसादि दोष देखकर उन्होंने इसका कोई प्रतिकार नहीं किया। फिर सोचा कि 'ब्राह्मण यदि समदर्शी और शान्तस्वभाव भी हो, तो भी दीनोंकी उपेक्षा करनेसे उसका तप उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे फूटे हुए घड़ेमेंसे जल बह जाता है। फिर राजर्षि अङ्गका वंश भी नष्ट नहीं होना चाहिये, क्योंकि इसमें अनेकों अमोघ-शक्ति और भगवत्परायण राजा हो चुके हैं।' ऐसा निश्चय कर उन्होंने मृत राजाकी जाँघको बड़े जोरसे मथा तो उसमेंसे एक बौना पुरुष उत्पन्न हुआ। वह कौएके समान काला था; उसके सभी अङ्ग और खासकर भुजाएँ बहुत छोटी थीं, जबड़े बहुत बड़े, टाँगें छोटी, नाक चपटी, नेत्र लाल और केश ताँबेके से रंगके थे। उसने बड़ी दीनता और नम्रभावसे पूछा कि 'मैं क्या करूँ?' तो ऋषियोंने कहा—'भैया, निषीद (बैठ जा)।' इसीसे वह 'निषाद' कहलाया। उसने जन्म लेते ही राजा वेनके भयङ्कर पापोंको अपने ऊपर ले लिया, इसीलिये उसके वंशधर वन और पर्वतोंमें रहनेवाले निषाद हुए॥ ३६-४६ ॥

पंद्रहवाँ अध्याय

राजा पृथुका आविर्भाव और राज्याभिषेक

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इसके बाद ब्राह्मणोंने पुत्रहीन राजा वेनकी भुजाओंका मन्थन किया, तब उनसे एक स्त्री पुरुषका जोड़ा प्रकट हुआ। उस जोड़ेको उत्पन्न हुआ देख उन वेदवादी मुनियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसे भगवान्‌की ही कलासे प्रकट हुआ समझकर उन्होंने कहा॥१-२॥

ऋषियोंने कहा—यह पुरुष भगवान् विष्णुकी विश्व-प्रतिपालिनी कलासे प्रकट हुआ है और यह स्त्री उनकी अविचल शक्तिस्वरूपा लक्ष्मीजीकी अवतार है। यह पुरुष अपने सुयशका प्रथन—विस्तार करनेके कारण परमयशस्वी 'पृथु' नामक सम्राट् होगा। राजाओंमें यही सबसे पहला होगा। यह सुन्दर दाँतोंवाली एवं गुण और आभूषणोंको भी विभूषित करनेवाली सुन्दरी इन पृथुको ही अपना पति बनायेगी। इसका नाम अर्चि होगा। पृथुके रूपमें साक्षात् श्रीहरिके अंशने ही संसारकी रक्षाके लिये अवतार लिया

अविनाशी और नित्यमुक्त परमात्माको अध्यात्मदृष्टिसे अपने अन्तःकरणमें ढूँढ़ो। उनमें यह भेदभावमय प्रपञ्च मिथ्या ही प्रतीत हो रहा है। ऐसा करनेसे सर्वशक्तिसम्पन्न परमानन्दस्वरूप सर्वान्तर्यामी भगवान् अनन्तमें तुम्हारी सुदृढ़ भक्ति होगी और उसके प्रभावसे तुम मैं-मेरेपनके रूपमें दृढ़ हुई अविद्याकी गाँठको काट डालोगे ॥२४–३०॥

राजन्! जिस प्रकार ओषधिसे रोग शान्त किया जाता है—उसी प्रकार मैंने तुम्हें जो कुछ उपदेश दिया है, उसपर विचार करके अपने क्रोधको शान्त करो। क्रोध कल्याणमार्ग-का बड़ा ही विरोधी है। भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें। क्रोधके वशीभूत हुए पुरुषसे सभी लोगोंको बड़ा भय होता है; इसलिये जो बुद्धिमान् पुरुष ऐसा चाहता है कि मुझसे किसी भी प्राणीको भय न हो, उसे क्रोधके वशमें कभी न होना चाहिये। तुमने जो अपने भाईके मारनेवाले समझकर इतने यक्षोंका संहार किया है, इससे तुम्हारे द्वारा भगवान् शङ्करके सखा कुबेरजीका बड़ा अपराध हुआ है। इसलिये बेटा! तुम विनम्र भाषण और विनयके द्वारा शीघ्र ही उन्हें प्रसन्न करो। ऐसा न हो, महापुरुषोंका तेज हमारे कुलका ह्रास कर दे ॥३१–३४॥

इस प्रकार स्वायम्भुव मनुने अपने पौत्र ध्रुवको बहुत समझाया-बुझाया। तब ध्रुवजीने उन्हें प्रणाम किया। इसके पश्चात् वे महर्षियोंके सहित अपने लोकको चले गये ॥३५॥

बारहवाँ अध्याय

ध्रुवजीको कुबेरका वरदान और विष्णुलोककी प्राप्ति

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! ध्रुवका क्रोध शान्त हो गया है और वे यक्षोंके वधसे निवृत्त हो गये हैं, यह जानकर भगवान् कुबेर वहाँ आये। उस समय यक्ष,



चारण और किन्नरलोग उनकी स्तुति कर रहे थे। उन्हें देखते ही ध्रुवजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये। तब कुबेरने कहा ॥ १ ॥

श्रीकुबेरजी बोले—शुद्धहृदय क्षत्रियकुमार! तुमने अपने दादाके उपदेशसे ऐसा दुस्त्यज वैर त्याग दिया; इससे मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। वास्तवमें न तो तुमने यक्षोंको मारा है और न यक्षोंने तुम्हारे भाईको। समस्त जीवोंकी उत्पत्ति और विनाशका कारण तो एकमात्र काल ही है। यह मैं-तू आदि मिथ्याबुद्धि तो जीवको अज्ञानवश स्वप्नके समान शरीरादिको ही आत्मा माननेसे उत्पन्न होती है। इसीसे मनुष्यको बन्धन एवं दुःखादि विपरीत अवस्थाओंकी प्राप्ति होती है। ध्रुव! अब तुम जाओ, भगवान् तुम्हारा मङ्गल करें। तुम संसारपाशसे मुक्त होनेके लिये सब जीवोंमें समदृष्टि रखकर सर्वभूतात्मा श्रीहरिका भजन करो। वे संसारपाशका छेदन करनेवाले हैं तथा संसारकी उत्पत्ति आदिके लिये अपनी त्रिगुणात्मिका मायाशक्तिसे युक्त होकर भी वास्तवमें उससे रहित हैं। उनके चरणकमल ही सबके लिये वन्दनीय हैं। प्रियवर! हमने सुना है, तुम सर्वदा भगवान् कमलनाभ-के चरणकमलोंके समीप रहनेवाले हो; इसलिये तुम अवश्य ही वर पानेयोग्य हो। ध्रुव! तुम्हें जिस वरकी इच्छा हो, मुझसे निःसङ्कोच एवं निःशङ्क होकर माँग लो ॥ २–७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! यक्षराज कुबेरने जब इस प्रकार वर माँगनेके लिये आग्रह किया, तो महाभागवत मतिमान् ध्रुवजीने उनसे यही माँगा कि मुझे श्रीहरिकी अखण्ड स्मृति बनी रहे। भगवान्‌की स्मृतिसे मनुष्य सहज ही दुस्तर संसारसागरको पार कर जाता है। इडविडाके पुत्र कुबेरजीने बड़े प्रसन्न मनसे उन्हें भगवत्स्मृति प्रदान की। फिर उनके देखते-ही-देखते वे अन्तर्धान हो गये। इसके पश्चात् ध्रुवजी भी अपनी राजधानीको लौट आये। वहाँ हुए उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे भग—

अभी हम तो अपने श्रेष्ठ कर्मोंके द्वारा लोकमें अप्रसिद्ध ही हैं, हमने अबतक कोई भी ऐसा काम नहीं किया है, जिसकी प्रशंसा की जा सके। तब तुम लोगोंसे बच्चोंके समान अपनी कीर्तिका किस प्रकार गान करावें ? ॥२१–२६॥

सोलहवाँ अध्याय

वन्दीजनद्वारा महाराज पृथुकी स्तुति

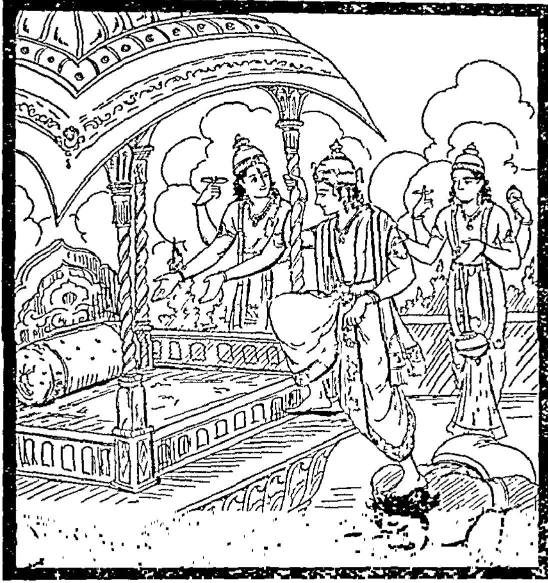
श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—महाराज पृथुने जब इस प्रकार कहा, तो उनके वचनामृतका आस्वादन करके सूत आदि गायकलोग बड़े प्रसन्न हुए। फिर वे मुनियोंके अनुरोधसे उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—'आप तो साक्षात् देवप्रवर श्रीनारायण ही हैं, जो अपनी मायासे अवतीर्ण हुए हैं, हम आपकी महिमाका वर्णन नहीं कर सकते। आपने जन्म तो राजा वेनके मृतक शरीरसे लिया है, किन्तु आपके पौरुषोंका वर्णन करनेमें साक्षात् ब्रह्मादिकी बुद्धि भी चक्कर खा जाती है। तो भी आपके कथामृतका आस्वादन करनेके लोभसे, योगबलसे हृदयमें किये हुए मुनियोंके उपदेशके अनुसार उन्हींकी प्रेरणासे हम आपके परम प्रशंसनीय कर्मोंका कुछ विस्तार करना चाहते हैं, आप साक्षात् श्रीहरिके कलावतार हैं और आपकी कीर्ति बड़ी उदार है ॥ १–३ ॥

'ये धर्मवानोंमें श्रेष्ठ महाराज पृथु लोकको धर्ममें प्रवृत्त करके धर्ममर्यादाकी रक्षा करेंगे तथा उसके विरोधियोंको दण्ड देंगे। ये अकेले ही समय-समयपर यज्ञादिके प्रचार तथा वृष्टिकी व्यवस्था आदि विभिन्न कार्योंके लिये अपने शरीरमें भिन्न भिन्न लोकपालोंकी मूर्तिको धारण करेंगे, जिससे पृथ्वी और स्वर्ग दोनों ही लोकोंका हित होगा। ये सूर्यके समान अलौकिक महिमान्वित एवं प्रतापवान् और सबके प्रति समान भाव रखनेवाले होंगे। जिस प्रकार सूर्यदेवता आठ महीने जीवोंको तपाकर जल खींचते हैं और वर्षा ऋतुमें उसे वर्षाके रूपमें उँडेल देते हैं, उसी प्रकार ये समयानुसार कर आदिके द्वारा कभी धन-सञ्चय करेंगे और कभी दुर्भिक्षादिके समय उसे प्रजाके हितके लिये व्यय कर डालेंगे। ये बड़े दयालु होंगे। यदि कभी कोई दीन पुरुष इनके मस्तकपर पैर भी रख देगा, तो ये पृथ्वीके समान उसके इस अनुचित व्यवहारको सदा सहन ही करेंगे। कभी वर्षा न होगी और प्रजाके प्राण सङ्कटमें पड़ जायँगे, तो ये राजवेषधारी श्रीहरि इन्द्रकी भाँति जल बरसाकर अनायास ही उसकी रक्षा कर लेंगे। ये अपने अमृतमय मुखचन्द्रकी मनोहर मुसकान और प्रेमभरी चितवनसे सम्पूर्ण लोकोंको आनन्दित करेंगे। इनकी गतिको कोई समझ न सकेगा, इनके कार्य भी गुप्त होंगे तथा उन्हें सम्पन्न करनेका ढंग भी बहुत गम्भीर होगा। इनका धन सदा सुरक्षित रहेगा। ये अनन्त माहात्म्य और गुणोंके एकमात्र आश्रय होंगे। इस प्रकार मनस्वी पृथु साक्षात् वरुणके ही समान होंगे ॥४–१०॥

'महाराज पृथु वेनरूप अरणिके मन्थनसे प्रकट हुए अग्निके समान हैं। शत्रुओंके लिये ये मनके द्वारा भी अत्यन्त दुष्प्राप्य और दुःसह होंगे। ये उनके समीप रहनेपर भी, सेनादिसे सुरक्षित रहनेके कारण, बहुत दूर रहनेवाले-से होंगे। शत्रु कभी इन्हें हरा भी न सकेंगे। जिस प्रकार प्राणियोंके भीतर रहनेवाला प्राणरूप सूत्रात्मा शरीरके भीतर-बाहरके समस्त व्यापारोंको देखते रहनेपर भी उदासीन रहता है, उसी प्रकार ये दूतोंके द्वारा प्राणियोंके गुप्त और प्रकट सभी प्रकारके व्यापार देखते हुए भी अपनी निन्दा और स्तुति आदिके प्रति उदासीनवत् रहेंगे। ये धर्मराजके मार्गका अनुसरण करते हुए अपने शत्रुके पुत्रको भी, दण्डनीय न होनेपर, कोई दण्ड न देंगे, और दण्डनीय होनेपर तो अपने पुत्रको भी न छोड़ेंगे। सूर्यभगवान् मानसोत्तर पर्वततक जितने प्रदेशको अपनी किरणोंसे प्रकाशित करते हैं, उस सम्पूर्ण क्षेत्रमें इनका निष्कण्टक राज्य रहेगा। ये अपने कार्योंसे सब लोकोंको सुख पहुँचावेंगे—उनका रञ्जन करेंगे, इससे उन मनोरञ्जनात्मक व्यापारोंके कारण प्रजा इन्हें 'राजा' (रञ्जन करनेवाला) कहेगी। ये बड़े दृढसङ्कल्प, सत्यप्रतिज्ञ, ब्राह्मणभक्त, वृद्धोंकी सेवा करनेवाले, शरणागतवत्सल, सब प्राणियोंको मान देनेवाले और दीनोंपर दया करनेवाले होंगे। ये परस्त्रीमें माताके समान भक्ति रखेंगे, पत्नीको अपने आधे अङ्गके समान मानेंगे, प्रजापर पिताके समान प्रेम रखेंगे और वेदवादियोंके सेवक होंगे। दूसरे प्राणी इन्हें उतना ही चाहेंगे जितना अपने शरीरको। मित्रमण्डलीको इनसे बड़ा सुख मिलेगा। ये सर्वदा वैराग्यवान् पुरुषोंसे विशेष प्रेम करेंगे और दुष्टोंको दण्ड देंगे ॥११–१८॥

'इनके रूपमें तीनों गुणोंके अधिष्ठाता और निर्विकार साक्षात् श्रीनारायणने ही अपने अंशसे अवतार लिया है,

ध्रुवजीने देखा कि काल मूर्तिमान् होकर उनके सामने खड़ा है। तब वे मृत्युके सिरपर पैर रखकर उस अद्भुत विमानपर चढ़ गये। उस समय आकाशमें दुन्दुभि, मृदङ्ग और ढोल



आदि बाजे बजने लगे, श्रेष्ठ गन्धर्व गायन करने लगे और फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ २८–३१ ॥

विमानपर बैठकर ध्रुवजी ज्यों ही स्वर्गलोक (भगवान्‌के धाम) को जानेके लिये तैयार हुए, त्यों ही उन्हें अपनी माता सुनीतिका स्मरण हो आया। वे सोचने लगे, 'क्या मैं बेचारी माताजीको छोड़कर अकेला ही इस दुर्गम स्वर्गलोकको चला जाऊँगा ?' देवश्रेष्ठ नन्द और सुनन्द उनके हृदयकी बात ताड़ गये। तब उन्होंने ध्रुवजीको दिखलाया कि उनकी माता उनसे भी आगे दूसरे विमानपर जा रही है। फिर ध्रुवजीका विमान आकाशमें चढ़ने लगा। उन्होंने क्रमशः सूर्य आदि सभी ग्रह देखे। मार्गमें जहाँ-तहाँ विमानोंपर बैठे हुए देवता उनकी प्रशंसा करते हुए फूलोंकी वर्षा करते जाते थे। उस दिव्य विमानपर बैठकर ध्रुवजी त्रिलोकीको पारकर सप्तर्षिमण्डलसे भी ऊपर भगवान् विष्णुके नित्यधाममें पहुँचे। इस प्रकार उन्होंने अविचल गति प्राप्त की। यह दिव्य धाम अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है, इसीके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित हैं। इसमें (यज्ञादिके मिससे) जीवोंपर निर्दयता करनेवाले पुरुष नहीं जा सकते। यहाँ तो उन्हींकी पहुँच होती है, जो दिन-रात शुभ कर्म ही करते हैं। जो शान्त, समदर्शी, शुद्ध और सब प्राणियोंको प्रसन्न रखनेवाले हैं तथा भगवद्भक्तोंको ही अपना एकमात्र सच्चा सुहृद् मानते हैं—ऐसे लोग सुगमतासे ही इस भगवद्धामको प्राप्त कर लेते हैं॥ ३२–३७॥

इस प्रकार उत्तानपादके पुत्र भगवत्परायण श्रीध्रुवजी तीनों लोकोंके ऊपर उसकी निर्मल चूडामणिके समान विराजमान हुए। कुरुनन्दन ! जिस प्रकार दायँ चलानेके समय खंभेके चारों ओर बैल घूमते हैं, उसी प्रकार यह गम्भीर वेगवाला ज्योतिश्चक्र उस अविनाशी लोकके आश्रय ही निरन्तर घूमता रहता है। उसकी महिमा देखकर देवर्षि नारदने प्रचेताओंकी यज्ञशालामें वीणा बजाकर ये तीन श्लोक गाये थे ॥ ३८–४० ॥

नारदजीने कहा था—इसमें सन्देह नहीं, पतिपरायणा सुनीतिके पुत्र ध्रुवने तपस्या करके जो गति पायी है, उसे भागवतधर्मोंकी आलोचना करके वेदवादी मुनिगण भी नहीं पा सकते; फिर राजाओंकी तो बात ही क्या है। अहो ! वे पाँच वर्षकी ही अवस्थामें सौतेली माताके वाग्बाणोंसे मर्माहत होकर दुखी हृदयसे वनमें चले गये और मेरे उपदेशके अनुसार आचरण करके ही उन अजेय प्रभुको जीत लिया, जो केवल अपने भक्तोंके गुणोंसे ही वशमें होते हैं। ध्रुवजीने तो पाँच-छः वर्षकी अवस्थामें कुछ दिनोंकी तपस्यासे ही भगवान्‌को प्रसन्न करके उनका परमपद प्राप्त कर लिया; किन्तु उनके अधिकृत किये हुए इस पदको भूमण्डलमें कोई दूसरा क्षत्रिय क्या वर्षोंतक तपस्या करके भी पा सकता है ? ॥ ४१–४३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! तुमने मुझसे उदारकीर्ति ध्रुवजीके चरित्रके विषयमें पूछा था, सो मैंने तुम्हें वह पूरा-का-पूरा सुना दिया। साधुजन इस चरित्रकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। यह धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला, परम पवित्र और अत्यन्त मङ्गलमय है। इससे स्वर्ग और अविनाशी पद भी प्राप्त हो सकता है। यह देवत्वकी प्राप्ति करानेवाला, बड़ा ही प्रशंसनीय और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। भगवद्भक्त ध्रुवके इस पवित्र चरित्रको जो श्रद्धापूर्वक बार-बार सुनते हैं, उन्हें भगवान्‌की भक्ति प्राप्त होती है, जिससे उनके सभी दुःखोंका नाश हो जाता है। इसे श्रवण करनेवालेको शीलादि गुणोंकी प्राप्ति होती है; जो महत्त्व चाहते हैं, उन्हें महत्त्व मिलता है और जो तेज चाहते हैं, उन्हें तेज प्राप्त होता है। इससे मनस्वियोंका मान बढ़ता है। पवित्रकीर्ति ध्रुवजीके इस महान् चरित्रका प्रातः और सायङ्काल ब्राह्मणादि द्विजातियोंके समाजमें एकाग्र चित्तसे कीर्तन करना चाहिये। भगवान्‌के

हिरनी भागती है, उसी प्रकार वह गौका रूप धारण करके भागने लगी ॥ १२–१४ ॥

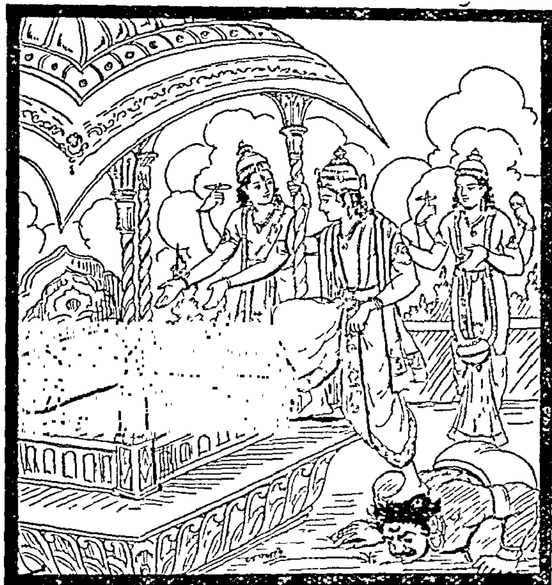
यह देखकर महाराज पृथुकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे, जहाँ-जहाँ पृथ्वी गयी, वहाँ-वहाँ धनुषपर बाण चढ़ाये उसके पीछे लगे रहे। दिशा, विदिशा, स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्षमें जहाँ-जहाँ भी वह दौड़कर जाती, वहीं उसे महाराज पृथु हथियार उठाये अपने पीछे दिखायी देते। जिस प्रकार मनुष्यको मृत्युसे कोई नहीं बचा सकता, उसी प्रकार उसे त्रिलोकीमें वेनपुत्र पृथुसे बचानेवाला कोई भी न मिला। तब वह अत्यन्त भयभीत होकर दुःखित चित्तसे पीछेकी ओर लौटी और महाभाग पृथुजीसे कहने लगी, 'धर्मके तत्त्वको जाननेवाले शरणागतवत्सल राजन्! आप तो सभी प्राणियोंकी रक्षा करनेमें तत्पर हैं, आप मेरी भी रक्षा कीजिये। मैं अत्यन्त दीन और निरपराधिनी हूँ, आप मुझे क्यों मारना चाहते हैं? इसके सिवा आप तो धर्मज्ञ माने जाते हैं; फिर मुझ स्त्रीका वध आप कैसे कर सकेंगे? स्त्रियाँ कोई अपराध करें, तो साधारण जीव भी उनपर हाथ नहीं उठाते; फिर आप जैसे करुणामय और दीनवत्सल तो ऐसा कर ही कैसे सकते हैं? मैं तो एक सुदृढ़ नौकाके समान हूँ, सारा जगत् मेरे ही आधार स्थित है। मुझे तोड़कर आप अपनेको और अपनी प्रजाको जलके ऊपर कैसे रक्खेंगे?' ॥१५–२१॥

महाराज पृथुने कहा—पृथ्वी! तू मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाली है। तू यज्ञमें देवतारूपसे भाग तो लेती है, किन्तु उसके बदलेमें हमें अन्न नहीं देती; इसलिये आज मैं तुझे मार डालूँगा। जो गाय चारा तो रोज रोज चट कर जाय, परन्तु दूध दे ही नहीं—उस दुष्टाको इस अपराधके लिये दण्ड देना किसी प्रकार अनुचित नहीं कहा जा सकता। तेरी बुद्धि बड़ी खोटी है, तूने पूर्वकालमें ब्रह्माजीके उत्पन्न किये हुए अन्नादिके बीजोंको अपनेमें लीन कर लिया है—छिपा लिया है, और अब मेरी भी परवा न करके उन्हें अपने गर्भसे निकालती नहीं। अब मैं अपने बाणोंसे तुझे छिन्न-भिन्न कर तेरे मेदेसे इन क्षुधातुर और दीन प्रजाजनोंका करुणक्रन्दन शान्त करूँगा। अवश्य ही स्त्रीपर हाथ उठाना उचित नहीं है; किन्तु जो दुष्ट अपना ही पोषण करनेवाला तथा अन्य प्राणियोंके प्रति निर्दय हो—वह पुरुष, स्त्री अथवा नपुंसक कोई भी हो—उसका मारना न मारनेके ही समान है। तू बड़ी गर्वीली और मदोन्मत्ता है; इस समय मायासे ही यह गौका रूप बनाये हुए है। मैं बाणोंसे तेरे टुकड़े-टुकड़े करके अपने योगबलसे प्रजाको धारण करूँगा ॥ २२–२७ ॥

इस समय महाराज पृथु क्रोधके कारण साक्षात् काल ही जान पड़ते थे। उनके ये शब्द सुनकर धरती काँपने लगी और उसने अत्यन्त विनीतभावसे हाथ जोड़कर कहा ॥२८॥

पृथ्वी बोली—आप साक्षात् परमपुरुष हैं तथा अपनी मायासे अनेक प्रकारके शरीर धारण कर गुणमय जान पड़ते हैं; अपनी स्वरूपसत्तामें तो आप अधिभूत, अध्यात्म और अधिदैवसम्बन्धी अभिमानसे उत्पन्न हुए राग-द्वेषादिसे सर्वथा रहित हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ। आप सम्पूर्ण जगत्के विधाता हैं; आपने ही यह त्रिगुणात्मक सृष्टि रची है और मुझे समस्त जीवोंका आश्रय बनाया है। आप सर्वथा स्वतन्त्र हैं, अब जब आप ही अस्त्र शस्त्र लेकर मुझे मारनेको तैयार हो गये, तो मैं और किसकी शरणमें जाऊँ? कल्पके आरम्भमें आपने अपने आश्रित रहनेवाली अचिन्तनीया मायासे ही इस चराचर जगत्की रचना की थी और उस मायाहीके द्वारा आप इसका पालन करनेके लिये तैयार हुए हैं। आप धर्मपरायण हैं; फिर मुझ गोरूपधारिणीको किस प्रकार मारना चाहते हैं? आप एक होकर भी मायावश अनेक-रूप जान पड़ते हैं तथा आपने स्वयं ब्रह्माको रचकर उनसे विश्वकी रचना करायी है। आप साक्षात् सर्वेश्वर हैं, आपकी लीलाओंको अजितेन्द्रिय लोग कैसे जान सकते हैं? उनकी बुद्धि तो आपकी दुर्जय मायासे विक्षिप्त हो रही है। आप ही पञ्चभूत, इन्द्रिय, उनके अधिष्ठातृ देवता, बुद्धि और अहङ्काररूप अपनी शक्तियोंके द्वारा क्रमशः जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करते हैं। भिन्न भिन्न कार्योंके लिये समय-समयपर आपकी शक्तियोंका आविर्भाव तिरोभाव हुआ करता है। आप साक्षात् परमपुरुष और जगद्विधाता हैं, आपको मेरा नमस्कार है। अजन्मा प्रभो! आप ही अपने रचे हुए भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप जगत्की स्थितिके लिये आदिवराहरूप होकर मुझे रसातलसे जलके बाहर लाये थे। इस प्रकार एक बार तो मेरा उद्धार करके आपने 'धराधर' नाम पाया था; आज वही आप वीरमूर्तिसे जलके ऊपर नौकाके समान स्थित मेरे ही आश्रय रहनेवाली प्रजाकी रक्षा करनेके अभिप्रायसे पैने-पैने बाण चढ़ाकर दूध न देनेके अपराधमें मुझे मारना चाहते हैं! इस त्रिगुणात्मक सृष्टिकी रचना करनेवाली आपकी मायासे मेरे-जैसे साधारण जीवोंके चित्त मोहग्रस्त हो रहे हैं। मैं तो आपके भक्तोंकी लीलाओंका भी

ध्रुवजीने देखा कि काल मूर्तिमान् होकर उनके सामने खड़ा है। तब वे मृत्युके सिरपर पैर रखकर उस अद्भुत विमानपर चढ़ गये। उस समय आकाशमें दुन्दुभि, मृदङ्ग और ढोल



आदि बाजे बजने लगे, श्रेष्ठ गन्धर्व गायन करने लगे और फूलोंकी वर्षा होने लगी ॥ २८–३१ ॥

विमानपर बैठकर ध्रुवजी ज्यों ही स्वर्गलोक (भगवान्‌के धाम)को जानेके लिये तैयार हुए, त्यों ही उन्हें अपनी माता सुनीतिका स्मरण हो आया। वे सोचने लगे, 'क्या मैं बेचारी माताजीको छोड़कर अकेला ही इस दुर्गम स्वर्गलोकको चला जाऊँगा ?' देवश्रेष्ठ नन्द और सुनन्द उनके हृदयकी बात ताड़ गये। तब उन्होंने ध्रुवजीको दिखलाया कि उनकी माता उनसे भी आगे दूसरे विमानपर जा रही है। फिर ध्रुवजीका विमान आकाशमें चढ़ने लगा। उन्होंने क्रमशः सूर्य आदि सभी ग्रह देखे। मार्गमें जहाँ-तहाँ विमानोंपर बैठे हुए देवता उनकी प्रशंसा करते हुए फूलोंकी वर्षा करते जाते थे। उस दिव्य विमानपर बैठकर ध्रुवजी त्रिलोकीको पारकर सप्तर्षिमण्डलसे भी ऊपर भगवान् विष्णुके नित्यधाममें पहुँचे। इस प्रकार उन्होंने अविचल गति प्राप्त की। यह दिव्य धाम अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित है, इसीके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित हैं। इसमें (यज्ञादिके मिससे) जीवोंपर निर्दयता करनेवाले पुरुष नहीं जा सकते। यहाँ तो उन्हींकी पहुँच होती है, जो दिन-रात शुभ कर्म ही करते हैं। जो शान्त, समदर्शी, शुद्ध और सब प्राणियोंको प्रसन्न रखनेवाले हैं तथा भगवद्भक्तोंको ही अपना एकमात्र सच्चा सुहृद् मानते हैं—ऐसे लोग सुगमतासे ही इस भगवद्धामको प्राप्त कर लेते हैं॥ ३२–३७॥

इस प्रकार उत्तानपादके पुत्र भगवत्परायण श्रीध्रुवजी तीनों लोकोंके ऊपर उसकी निर्मल चूडामणिके समान विराजमान हुए। कुरुनन्दन ! जिस प्रकार दायँ चलानेके समय खंभेके चारों ओर बैल घूमते हैं, उसी प्रकार यह गम्भीर वेगवाला ज्योतिश्चक्र उस अविनाशी लोकके आश्रय ही निरन्तर घूमता रहता है। उसकी महिमा देखकर देवर्षि नारदने प्रचेताओंकी यज्ञशालामें वीणा बजाकर ये तीन श्लोक गाये थे ॥ ३८–४० ॥

नारदजीने कहा था—इसमें सन्देह नहीं, पतिपरायणा सुनीतिके पुत्र ध्रुवने तपस्या करके जो गति पायी है, उसे भागवतधर्मोंकी आलोचना करके वेदवादी मुनिगण भी नहीं पा सकते; फिर राजाओंकी तो बात ही क्या है। अहो ! वे पाँच वर्षकी ही अवस्थामें सौतेली माताके वाग्बाणोंसे मर्माहत होकर दुखी हृदयसे वनमें चले गये और मेरे उपदेशके अनुसार आचरण करके ही उन अजेय प्रभुको जीत लिया, जो केवल अपने भक्तोंके गुणोंसे ही वशमें होते हैं। ध्रुवजीने तो पाँच-छः वर्षकी अवस्थामें कुछ दिनोंकी तपस्यासे ही भगवान्‌को प्रसन्न करके उनका परमपद प्राप्त कर लिया; किन्तु उनके अधिकृत किये हुए इस पदको भूमण्डलमें कोई दूसरा क्षत्रिय क्या वर्षोंतक तपस्या करके भी पा सकता है ? ॥ ४१–४३ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! तुमने मुझसे उदारकीर्ति ध्रुवजीके चरित्रके विषयमें पूछा था, सो मैंने तुम्हें वह पूरा-का-पूरा सुना दिया। साधुजन इस चरित्रकी बड़ी प्रशंसा करते हैं। यह धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला, परम पवित्र और अत्यन्त मङ्गलमय है। इससे स्वर्ग और अविनाशी पद भी प्राप्त हो सकता है। यह देवत्वकी प्राप्ति करानेवाला, बड़ा ही प्रशंसनीय और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। भगवद्भक्त ध्रुवके इस पवित्र चरित्रको जो श्रद्धापूर्वक बार-बार सुनते हैं, उन्हें भगवान्‌की भक्ति प्राप्त होती है, जिससे उनके सभी दुःखोंका नाश हो जाता है। इसे श्रवण करनेवालेको शीलादि गुणोंकी प्राप्ति होती है; जो महत्त्व चाहते हैं, उन्हें महत्त्व मिलता है और जो तेज चाहते हैं, उन्हें तेज प्राप्त होता है। इससे मनस्वियोंका मान बढ़ता है। पवित्रकीर्ति ध्रुवजीके इस महान् चरित्रका प्रातः और सायङ्काल ब्राह्मणादि द्विजातियोंके समाजमें एकाग्र चित्तसे कीर्तन करना चाहिये। भगवान्‌के

हिमालयरूप बछड़ेके द्वारा अपने शिखररूप पात्रोंमें अनेक प्रकारकी धातुओंको दुहा। पृथ्वी तो सभी अभीष्ट वस्तुओंको देनेवाली है और इस समय वह पृथुजीके अधीन थी। अतः उससे सभीने अपनी अपनी जातिके मुखियाको बछड़ा बनाकर अलग अलग पात्रोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके पदार्थोंको दूधके रूपमें दुह लिया ॥ २१–२६ ॥

कुरुश्रेष्ठ विदुरजी! इस प्रकार पृथु आदि सभी अन्न भोजियोंने दोहनपात्र और वत्सकी विभिन्नतासे अपने अपने विभिन्न अन्नरूप दूध पृथ्वीसे दुहे। इससे महाराज पृथु ऐसे प्रसन्न हुए कि सर्वकामदुहा पृथ्वीके प्रति उनका पुत्रीके समान स्नेह हो गया और उसे उन्होंने अपने कन्याके रूपमे स्वीकार कर लिया। फिर राजाधिराज महाराज पृथुने अपने धनुषकी नोकसे पर्वतोंको फोड़कर इस सारे भूमण्डलको प्रायः समतल कर दिया। वे पिताके समान अपनी प्रजाके पालन पोषणकी व्यवस्थामें लगे हुए थे। उन्होंने इस समतल भूमिमें प्रजावर्गके लिये जहाँ-तहाँ यथायोग्य निवासस्थानोंका विभाग किया तथा अनेकों गाँव, कस्बे, नगर, दुर्ग, अहीरोंकी बस्ती, पशुओंके रहनेके स्थान, छावनियाँ, खानें, किसानोंके गाँव और पहाड़ोंकी तलैटीके गाँव बसाये। महाराज पृथुसे पहले इस पृथ्वीतलपर पुर ग्रामादिका विभाग नहीं था; सब लोग अपने-अपने सुभीतेके अनुसार बेखटके जहाँ तहाँ बस जाते थे ॥ २७–३२ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

महाराज पृथुके सौ अश्वमेध-यज्ञ

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! महाराज मनुके ब्रह्मावर्त क्षेत्रमे, जहाँ सरस्वती नदी पूर्वमुखी होकर बहती है, राजा पृथुने सौ अश्वमेध-यज्ञोंकी दीक्षा ली। यह देखकर भगवान् इन्द्रको विचार हुआ कि इस प्रकार तो पृथुके कर्म मेरे कर्मोंकी अपेक्षा भी बढ जायँगे। इसलिये वे उनके यज्ञमहोत्सवको सहन न कर सके। महाराज पृथुके यज्ञमे सबके अन्तरात्मा सर्वलोकपूज्य जगदीश्वर भगवान् हरिने यज्ञेश्वररूपसे साक्षात् दर्शन दिया था। उनके साथ ब्रह्मा, रुद्र तथा अपने अपने अनुचरोंके सहित लोकपालगण भी पधारे थे। उस समय गन्धर्व, मुनि और अप्सराएँ प्रभुकी कीर्ति गा रहे थे तथा सिद्ध, विद्याधर, दैत्य, दानव, यक्ष, नन्द सुनन्दादि भगवान्के प्रमुख पार्षद और जो सर्वदा भगवान्की सेवाके लिये उत्सुक रहते हैं—वे कपिल, नारद, दत्तात्रेय एवं सनकादि योगेश्वर भी उनके साथ आये थे। भारत! उस यज्ञमें यज्ञसामग्रियोंको देनेवाली भूमिने कामधेनुरूप होकर यजमानकी सारी कामनाओंको पूर्ण किया था। नदियाँ दाख और ईख आदि सब प्रकारके रसोंसे युक्त पदार्थोंको बहा लाती थीं तथा जिनसे मधु चूता रहता था—ऐसे बड़े बड़े वृक्ष दूध, दही, अन्न और घृत आदि तरह तरहकी सामग्रियाँ समर्पण करते थे। समुद्र बहुत-सी रत्नराशियाँ, पर्वत भक्ष्य, भोज्य, चोष्य और लेह्य—चार प्रकारके अन्न तथा लोकपालोंके सहित सम्पूर्ण लोक तरह तरहके उपहार उन्हें समर्पण करते थे ॥ १–९ ॥

महाराज पृथु तो एकमात्र श्रीहरिको ही अपना प्रभु मानते थे। उनकी कृपासे उस यज्ञानुष्ठानमे उनका बड़ा उत्कर्ष हुआ। किन्तु यह बात देवराज इन्द्रको सहन न हुई और उन्होंने उसमें विघ्न डालनेकी भी चेष्टा की। जिस समय महाराज पृथु अन्तिम यज्ञद्वारा भगवान् यज्ञपतिकी आराधना कर रहे थे, इन्द्रने ईर्ष्यावश गुप्तरूपसे उनके यज्ञका घोड़ा हर लिया। इन्द्रने अपनी रक्षाके लिये कवच रूपसे पाखण्डवेष धारण कर लिया था, जिसमें पापी पुरुष भी धर्मात्मा सा जान पड़ता है। इस वेषमें वे घोड़ेको लिये



बड़ी शीघ्रतासे आकाशमार्गसे जा रहे थे कि उनपर भगवान् अत्रिकी दृष्टि पड़ गयी। उनके कहनेसे महाराज पृथुका

होकर उन्हें नगर छोड़ना पड़ा। राजदण्डधारी वेनका भी ऐसा क्या अपराध था, जो धर्मज्ञ मुनीश्वरोंको उसके प्रति शापरूप ब्रह्मदण्डका प्रयोग करना पड़ा? राजा तो अपने प्रभावसे सम्पूर्ण लोकपालोंका तेज धारण किये होता है। उसीसे तो प्रजाकी रक्षा होती है; इसलिये यदि वह अपराध भी करे, तो भी प्रजाको उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। ब्रह्मन्! आप भूत-भविष्यकी बातें जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, इसलिये आप मुझे सुनीथाके पुत्र वेनकी सब करतूतें सुनाइये। मैं आपका श्रद्धालु भक्त हूँ ॥ २१–२४ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—विदुरजी! एक बार राजर्षि अङ्गने अश्वमेध-महायज्ञका अनुष्ठान किया। उसमें वेदवादी ब्राह्मणोंके आवाहन करनेपर भी देवतालोग अपना भाग लेने नहीं आये। तब ऋत्विजोंने विस्मित होकर यजमान अङ्गसे कहा—'राजन्! हम आहुतियोंके रूपमें आपका जो घृत आदि पदार्थ हवन कर रहे हैं, उसे देवता लोग स्वीकार नहीं करते। हम जानते हैं आपकी होम-सामग्री दूषित नहीं है; आपने उसे जुटाया भी बड़ी श्रद्धासे है तथा वेदमन्त्र भी किसी प्रकार बलहीन नहीं हैं। क्योंकि उनका प्रयोग करनेवाले ऋत्विजगण याजकोचित सभी नियमोंका पूर्णतया पालन करते हैं। हमें ऐसी कोई बात नहीं दीखती, जिससे देवताओंका नाममात्रको भी तिरस्कार हुआ हो; फिर भी पता नहीं, कर्माध्यक्ष देवतालोग क्यों अपना भाग नहीं ले रहे हैं' ॥ २५–२८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—ऋत्विजोंकी बात सुनकर यजमान अङ्ग बहुत उदास हुए। तब उन्होंने याजकोंकी अनुमतिसे मौन तोड़कर सदस्योंसे पूछा, 'सदस्यगण! देवतालोग आवाहन करनेपर भी यज्ञमें नहीं आ रहे हैं और न सोमपात्र ही ग्रहण करते हैं; आप बतलाइये मुझसे ऐसा क्या अपराध हुआ है' ॥ २९-३० ॥

सदस्योंने कहा—राजन्! इस जन्ममें तो आपसे तनिक भी अपराध नहीं हुआ; हाँ, पूर्वजन्मका एक अपराध अवश्य है, जिसके कारण आप ऐसे सर्वगुणसम्पन्न होनेपर भी पुत्रहीन हैं। इसलिये पहले आप सुपुत्र प्राप्त करनेका कोई उपाय कीजिये। इससे आपका कल्याण होगा। यदि आप पुत्रकी कामनासे यज्ञ करेंगे, तो भगवान् यज्ञेश्वर आपको अवश्य पुत्र प्रदान करेंगे। और वैसा होनेपर देवतालोग भी अपना-अपना यज्ञभाग ग्रहण करेंगे। क्योंकि जब सन्तानके लिये साक्षात् यज्ञपुरुष श्रीहरिका आवाहन किया जायगा, तो उनके साथ देवता लोग अपने-आप खिंचे हुए चले आयेंगे। भक्त जिस-जिस वस्तुकी इच्छा करता है, श्रीहरि उसे वही-वही पदार्थ देते हैं। उनकी जिस प्रकार आराधना की जाती है, उसी प्रकार उपासकको फल भी मिलता है ॥ ३१–३४ ॥

इस प्रकार राजा अङ्गको पुत्रप्राप्ति करानेका निश्चय कर ऋत्विजोंने पशुमें यज्ञरूपसे रहनेवाले श्रीविष्णुभगवान्के पूजनके लिये पुरोडाश नामक चरु समर्पण किया। अग्निमें आहुति डालते ही अग्निकुण्डसे सुवर्णमय हार और शुभ्र



वस्त्रोंसे विभूषित एक पुरुष प्रकट हुए; वे एक सोनेके पात्रमें सिद्ध हुई खीर लिये हुए थे। उदारबुद्धि राजा अङ्गने याजकोंकी अनुमतिसे अपनी अञ्जलिमें वह खीर ले ली और उसे स्वयं सूँघकर प्रसन्नतापूर्वक अपनी पत्नीको दे दिया। पुत्रहीना रानीने वह पुत्रप्रदायिनी खीर खाकर अपने पतिके सहवाससे गर्भ धारण किया। उससे यथासमय उसके एक पुत्र हुआ। वह बालक बाल्यावस्थासे ही अधर्मके वंशमें उत्पन्न हुए अपने नाना मृत्युका अनुगामी था (सुनीथा मृत्युकी ही पुत्री थी); इसलिये वह भी अधार्मिक ही हुआ ॥ ३५–३९ ॥

वह दुष्ट बालक धनुष-बाण चढ़ाकर वनमें जाता और व्याधेके समान बेचारे भोलेभाले हरिणोंकी हत्या करता। उसे देखते ही पुरवासी लोग 'वेन आया! वेन आया!' कहकर पुकार उठते। वह ऐसा क्रूर और निर्दयी था कि मैदानमें खेलते हुए अपनी बराबरीके बालकोंको खेल-ही-खेलमें

यज्ञ बंद किये बिना यह धर्मका ह्रास रुक न सकेगा, क्योंकि देवताओंमें बड़ा दुराग्रह होता है। जरा देखिये तो, जो इन्द्र घोड़ेको चुराकर आपके यज्ञमें विघ्न डाल रहा था, उसीके रचे हुए इन आपातरमणीय पाखण्डोंकी ओर सारी जनता खिंचती चली जा रही है। प्रजापालक पृथुजी! आप साक्षात् विष्णुके अंश हैं। वेनके दुराचारसे धर्म लुप्त हो रहा था, उस समयोचित धर्मकी रक्षाके लिये ही आपने उसके शरीरसे अवतार लिया है। अतः अपने इस अवतारका उद्देश्य विचारकर आप भृगु आदि विश्वरचयिता मुनीश्वरोंका सङ्कल्प पूर्ण कीजिये। यह प्रचण्ड पाखण्डपथरूप इन्द्रकी माया अधर्मकी जननी है। आप इसे नष्ट कर डालिये' ॥२९-३८॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—लोकगुरु भगवान् ब्रह्माजीके इस प्रकार समझानेपर प्रबल पराक्रमी महाराज पृथुने यज्ञका आग्रह छोड़ दिया और इन्द्रके साथ प्रीतिपूर्वक सन्धि भी कर ली। इसके पश्चात् जब वे यज्ञान्त स्नान करके निवृत्त हुए तो उनके यज्ञोंसे तृप्त हुए देवताओंने उन्हें अभीष्ट वर दिये। फिर आदिराज पृथुने अत्यन्त श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको दक्षिणाएँ दीं तथा ब्राह्मणोंने उनके सत्कारसे सन्तुष्ट होकर उन्हें अमोघ आशीर्वाद दिये। वे कहने लगे, 'महाबाहो! आपके बुलानेसे जो पितर, देवता, ऋषि और मनुष्यादि आये थे, उन सभीका आपने दान मानसे खूब सत्कार किया' ॥३९-४२॥

बीसवाँ अध्याय

महाराज पृथुकी यज्ञशालामें श्रीविष्णुभगवान्‌का प्रादुर्भाव

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! महाराज पृथुके निन्यानबे यज्ञोंसे यज्ञभोक्ता यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुको भी बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने इन्द्रके सहित वहाँ उपस्थित होकर उनसे कहा ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजन्! इन्होंने (इन्द्रने) तुम्हारे सौ अश्वमेध पूरे करनेके सङ्कल्पमें विघ्न डाला है। अब ये तुमसे क्षमा चाहते हैं, तुम इन्हें क्षमा कर दो। जो महानुभाव



सत्पुरुष और सद्बुद्धिसम्पन्न होते हैं, वे दूसरे जीवोंसे द्रोह नहीं करते, क्योंकि यह शरीर ही आत्मा नहीं है। यदि तुम जैसे लोग भी मेरी मायासे मोहित हो जायँ, तो समझना चाहिये कि बहुत दिनोंतक की हुई ज्ञानीजनोंकी सेवासे केवल श्रम ही हाथ लगा। ज्ञानवान् पुरुष इस शरीरको अविद्या, वासना और कर्मोंका ही पुतला समझकर इसमें आसक्त नहीं होता। इस प्रकार जो इस शरीरमें ही आसक्त नहीं है, वह विवेकी पुरुष इससे उत्पन्न हुए घर, पुत्र और धन आदिमें भी किस प्रकार ममता रख सकता है ॥ २-६ ॥

यह आत्मा एक, शुद्ध, स्वयम्प्रकाश, निर्गुण, गुणोंका आश्रयस्थान, सर्वव्यापक, आवरणशून्य, सबका साक्षी एवं अन्य आत्मासे रहित है, अतएव शरीरसे भिन्न है। जो पुरुष इस देहस्थित आत्माको इस प्रकार शरीरसे भिन्न जानता है, वह प्रकृतिसे सम्बन्ध रखते हुए भी उसके गुणोंसे लिप्त नहीं होता, क्योंकि उसकी स्थिति मुझ परमात्मामें रहती है। राजन्! जो पुरुष किसी प्रकारकी कामना न रखकर अपने वर्णाश्रमके धर्मोंद्वारा नित्यप्रति श्रद्धापूर्वक मेरी आराधना करता है, उसका चित्त धीरे धीरे शुद्ध हो जाता है। चित्त शुद्ध होनेपर उसका विषयोंसे सम्बन्ध नहीं रहता तथा उसे तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है। फिर तो वह मेरी समतारूप स्थितिको प्राप्त हो जाता है। यही परमशान्ति, ब्रह्म अथवा कैवल्य है। जो पुरुष यह जानता है कि शरीर, ज्ञान, क्रिया और मनका साक्षी होनेपर भी कूटस्थ आत्मा उनसे निर्लिप्त ही रहता है, वह मोक्षपद प्राप्त कर लेता है ॥ ७-११ ॥

राजन्! गुणप्रवाहरूप आवागमन तो भूत, इन्द्रिय, इन्द्रियाभिमानी देवता और चिदाभास—इन सबकी समष्टिरूप

जलती हुई लकड़ीके बीचमें रहनेवाले चींटी आदि जीवोंका बचना असम्भव-सा हो जाता है—वे महान् सङ्कटमें पड़ जाते हैं, वैसे ही इस समय सारी प्रजा एक ओर राजाके और दूसरी ओर चोर-डाकुओंके अत्याचारसे महान् सङ्कटमें पड़ रही है। वेन इस योग्य न था कि उसे राजा बनाया जाता; बस, अराजकताके भयसे ही हमने इसे राजा बनाया था; किन्तु अब उससे भी प्रजाको भय हो गया। ऐसी अवस्थामें जीवोंको किस प्रकार शान्ति मिल सकती है? सुनीथाकी कोखसे उत्पन्न हुआ यह वेन स्वभावसे ही दुष्ट है। देखो, हमने तो इसका पक्ष लिया; परन्तु साँपको दूध पिलानेके समान इसको पालना पालनेवालोंके लिये अनर्थका कारण हो गया। हमने तो इसे प्रजाकी रक्षा करनेके लिये नियुक्त किया था, यह आज उसीको नष्ट करनेपर तुला हुआ है। इतना सब होनेपर भी हमें इसे समझाना अवश्य चाहिये; ऐसा करनेसे इसके किये हुए पाप हमें स्पर्श नहीं करेंगे, क्योंकि हमने जान-बूझकर दुराचारी वेनको राजा बनाया था। किन्तु यदि समझानेपर भी यह हमारी बात नहीं मानेगा, तो लोकके धिक्कारसे दग्ध हुए इस दुष्टको हम अपने तेजसे भस्म कर देंगे।' ऐसा विचार करके मुनिलोग वेनके पास गये और अपने क्रोधको छिपाकर उसे प्रिय वचनोंसे समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे ॥ ७-१३ ॥

मुनियोंने कहा—राजन्! हम आपसे जो बात कहते हैं, उसपर ध्यान दीजिये। इससे आपकी आयु, श्री, बल और कीर्तिकी वृद्धि होगी। तात! यदि मनुष्य मन, वाणी, शरीर और बुद्धिसे धर्मका आचरण करे, तो उसे स्वर्गादि शोकरहित लोकोंकी प्राप्ति होती है। यदि उसका निष्कामभाव हो, तब तो वही धर्म उसे अनन्त मोक्षपदपर पहुँचा देता है। इसलिये वीरवर! प्रजाका कल्याणरूप वह धर्म आपके कारण नष्ट नहीं होना चाहिये। धर्मके नष्ट होनेसे राजा भी ऐश्वर्य-भ्रष्ट हो जाता है। जो राजा दुष्ट मन्त्री और चोर आदिसे अपनी प्रजाकी रक्षा करते हुए न्यायानुकूल कर लेता है, वह इस लोकमें और परलोकमें दोनों जगह सुख पाता है। जिसके राज्य अथवा नगरमें वर्णाश्रम-धर्मोंका पालन करनेवाले पुरुष स्वधर्मपालनके द्वारा भगवान् यज्ञपुरुषका अर्चन करते हैं, महाभाग! अपनी आज्ञाका पालन करनेवाले उस राजासे भगवान् प्रसन्न रहते हैं; क्योंकि वे ही सारे विश्वकी आत्मा तथा सम्पूर्ण भूतोंके रक्षक हैं। भगवान् ब्रह्मादि जगदीश्वरोंके भी ईश्वर हैं, उनके प्रसन्न होनेपर कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। इन्द्रादि लोकपालोंके सहित समस्त लोक उन्हें बड़े आदरसे पूजोपहार समर्पण करते हैं। देखो, राजन्! भगवान् समस्त लोक, लोकपाल और यज्ञोंके नियन्ता हैं; वे वेदत्रयीरूप, द्रव्यरूप और तपःस्वरूप हैं। इसलिये आपके जो देशवासी आपकी उन्नतिके लिये अनेक प्रकारके यज्ञोंसे भगवान्‌का यजन करते हैं, आपको उनके अनुकूल ही रहना चाहिये। जब आपके राज्यमें ब्राह्मणलोग यज्ञोंका अनुष्ठान करेंगे, तो उनकी पूजासे प्रसन्न होकर भगवान्‌के अंशस्वरूप देवता आपको मनचाहा फल देंगे। वीरवर! आपको यज्ञादि धर्मानुष्ठान बंद करके देवताओंका तिरस्कार न करना चाहिये ॥ १४-२२ ॥

वेन बोला—तुमलोग बड़े मूर्ख हो! खेद है, तुमने अधर्ममें ही धर्मबुद्धि कर रक्खी है। तभी तो तुम अपने पालन करनेवाले मुझ प्रत्यक्ष ईश्वरको छोड़कर किसी दूसरे ईश्वरकी उपासना करना चाहते हो, जो तुम्हारे लिये जारके समान है। जो लोग मूर्खतावश राजारूप परमेश्वरका अनादर करते हैं, उन्हें न तो इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही! अरे! जिसमें आपलोगोंकी इतनी भक्ति है, वह यज्ञपुरुष है कौन? यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे कुलटा स्त्रियाँ अपने विवाहित पतिसे प्रेम न करके किसी परपुरुषमें आसक्त हो जायँ! देखो, विष्णु, ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, कुबेर, चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि और वरुण तथा इनके अतिरिक्त जो दूसरे वर और शाप देनेमें समर्थ देवता हैं, वे सब-के-सब राजाके शरीरमें रहते हैं; इसलिये राजा सर्वदेवमय है और देवता उसके अंशमात्र हैं। इसलिये ब्राह्मणो! तुम मत्सरता छोड़कर अपने सभी कर्मोंद्वारा एक मेरा ही पूजन करो और मुझीको बलि समर्पण करो। भला, मेरे सिवा और कौन अग्रपूजाका अधिकारी हो सकता है? ॥ २३-२८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार वेनकी बुद्धि विपरीत हो गयी थी, वह अत्यन्त पापपरायण और कुमार्गगामी हो गया था। उसका पुण्य क्षीण हो चुका था, इसलिये मुनियोंके बहुत विनयपूर्वक प्रार्थना करनेपर भी उसने उनकी बातपर ध्यान न दिया। विदुरजी! अपनेको बड़ा बुद्धिमान् समझनेवाले वेनने जब उन मुनियोंका इस प्रकार अपमान किया, तो अपनी कल्याणकारिणी माँगको व्यर्थ हुई देख वे उसपर अत्यन्त कुपित हो गये और कहने लगे, 'यह महापापी तो स्वभावसे ही बड़ा दुष्ट है; यह यदि जीता रह गया, तो कुछ ही दिनोंमें संसारको अवश्य भस्म कर डालेगा। इसलिये इसे मार डालो! मार डालो! यह दुराचारी किसी प्रकार राजसिंहासनके योग्य नहीं है, क्योंकि यह निर्लज्ज तो

माँग' सो आपकी इस वाणीको तो मैं संसारको मोहमें डालनेवाली ही मानता हूँ। यही क्या, आपकी वेदरूपा वाणीने भी तो जगत्को मोहमें ही डाल रक्खा है। यदि उस वेदवाणीरूप रस्सीसे लोग बँधे न होते, तो वे मोहवश कर्मजालमें क्यों फँसते? उससे तो उन्हें जन्म मरणके चक्रमें ही पड़ना होता है। सर्वसमर्थ प्रभो! आपकी मायासे ही मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप आपसे विमुक्त होकर अज्ञानवश अन्य स्त्री पुत्रादिकी इच्छा करता है। फिर भी जिस प्रकार पिता पुत्रकी प्रार्थनाकी अपेक्षा न रखकर अपने आप ही पुत्रका कल्याण करता है, उसी प्रकार आप भी हमारी इच्छाकी परवा न करके हमारे हितके लिये ही प्रयत्न करें॥ २३-३१॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—आदिराज पृथुके इस प्रकार स्तुति कर चुकनेपर सर्वसाक्षी श्रीहरिने उनसे कहा, 'राजन्! तुम्हारी मुझमें भक्ति हो। बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा चित्त इस प्रकार मुझमें लगा हुआ है। ऐसा होनेपर तो पुरुष सहजहीमें मेरी दुस्तर मायाको पार कर लेता है। अच्छा, अब तुम सावधानीसे मेरी आज्ञाका पालन करते रहो। प्रजापालक नरेश! जो पुरुष मेरी आज्ञाका पालन करता है, उसका सर्वत्र मङ्गल होता है'॥ ३२ ३३॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार भगवान्ने राजर्षि पृथुके सारगर्भित वचनोंका आदर किया। फिर पृथुने उनकी पूजा की और प्रभु उनपर सब प्रकार कृपा कर वहाँसे चलनेको तैयार हुए। महाराज पृथुने वहाँ जो देवता, ऋषि, पितर, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, नाग, किन्नर, अप्सरा, मनुष्य और पक्षी आदि अनेक प्रकारके प्राणी एवं भगवान्के पार्षद आये थे, उन सभीका भगवद्बुद्धिसे भक्तिपूर्वक वाणी और धनके द्वारा तथा हाथ जोड़कर पूजन किया। इसके बाद वे सब अपने-अपने स्थानोंको चले गये। फिर श्रीभगवान् भी राजा पृथु एवं उनके पुरोहितोंका चित्त चुराते हुए अपने धामको सिधारे। तदनन्तर अपना स्वरूप दिखाकर अन्तर्धान हुए अव्यक्तस्वरूप देवाधिदेव भगवान्को नमस्कार करके राजा पृथु भी अपनी राजधानीको चले आये॥ ३४-३८॥

इक्कीसवाँ अध्याय

राजा पृथुका अपनी प्रजाको उपदेश

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! उस समय महाराज पृथुका नगर जहाँ तहाँ मोतियोंकी लड़ियों, फूलोंकी मालाओं, रंग बिरंगे वस्त्रों, सोनेके दरवाजों और अत्यन्त सुगन्धित धूपोंसे सुशोभित था। उसकी गलियाँ, चौक और सड़कें चन्दन और अरगजेके जलसे सींच दी गयी थीं तथा उसे पुष्प, अक्षत, फल, दूर्वा, जौ, खील और दीपक आदि माङ्गलिक द्रव्योंसे सजाया गया था। वह और ठौरपर रक्खे हुए फल फूलके गुच्छोंसे युक्त केलेके खंभों और सुपारीके पौधोंसे बड़ा ही मनोहर जान पड़ता था, तथा सब ओर आम आदि वृक्षोंके नवीन पत्तोंकी बंदनवारोंसे विभूषित था। जिस समय महाराजने नगरमें प्रवेश किया, दीपक, उपहार और अनेक प्रकारकी माङ्गलिक सामग्री लिये हुए प्रजाजनोंने तथा मनोहर कुण्डलोंसे सुशोभित सुन्दरी कन्याओंने उनकी अगवानी की, शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे, ऋत्विजगण वेदध्वनि करने लगे, बन्दीजनोंने स्तुतिगान आरम्भ कर दिया। यह सब देख और सुनकर भी उन्हें किसी प्रकारका अहङ्कार नहीं हुआ। इस प्रकार वीरवर पृथुने राजमहलमें प्रवेश किया। मार्गमें जहाँ तहाँ पुरवासी और देशवासियोंने उनका अभिनन्दन किया। परमयशस्वी महाराजने भी उन्हें प्रसन्नतापूर्वक अभीष्ट वर देकर सन्तुष्ट किया। महाराज पृथु महापुरुष और सभीके पूजनीय थे। उन्होंने इसी प्रकारके अनेकों उदार कर्म करते हुए पृथ्वीका शासन किया और अन्तमें अपने विपुल यशका विस्तार कर भगवान्का परमपद प्राप्त किया॥ १-७॥

सूतजी कहते हैं—मुनिवर शौनकजी! इस प्रकार भगवान् मैत्रेयके मुखसे आदिराज पृथुका अनेक प्रकारके गुणोंसे सम्पन्न और गुणवानोंद्वारा प्रशंसित विस्तृत सुयश सुनकर परम भागवत विदुरजीने उनका अभिनन्दन करते हुए कहा॥८॥

विदुरजी बोले—ब्रह्मन्! महाराज पृथुने ब्राह्मणोंसे अभिषिक्त होनेके समय ही समस्त देवताओंसे उपहार प्राप्त किये थे और फिर अपनी भुजाओंमें वैष्णव तेज धारण कर उन्होंने पृथ्वीका दोहन किया। उनके उस पराक्रमके उच्छिष्ट रूप विषयभोगोंसे ही आज भी सम्पूर्ण राजा तथा लोकपालोंके सहित समस्त लोक इच्छानुसार जीवन निर्वाह करते हैं। भला, ऐसा कौन समझदार होगा जो उनकी पवित्रकीर्ति सुनना न चाहेगा। अतः अभी आप मुझे उनके कुछ और भी पवित्र चरित्र सुनाइये॥ ९ १०॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—साधुश्रेष्ठ विदुरजी! महाराज पृथु गङ्गा और यमुनाके मध्यवर्ती देशमें निवास कर अपने

है और अर्चिके रूपमें, निरन्तर भगवान्‌की सेवामें रहनेवाली उनकी नित्य सहचरी श्रीलक्ष्मीजी ही प्रकट हुई हैं ॥ ३–६ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! अब ब्राह्मणलोग पृथुकी स्तुति करने लगे, गन्धर्वोंने उनका गुणगान आरम्भ कर दिया, सिद्धोंने पुष्पोंकी वर्षा की, अप्सराएँ नाचने लगीं तथा आकाशमें शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग और दुन्दुभि आदि बाजे बजने लगे । समस्त देवता, ऋषि और पितर अपने-अपने लोकोंसे वहाँ आये । जगद्गुरु ब्रह्माजी भी देवता और देवेश्वरोंके साथ पधारे । उन्होंने वेनकुमार पृथुके दाहिने हाथमें भगवान् विष्णुकी हस्तरेखाएँ और चरणोंमें कमलका चिह्न देखकर उन्हें श्रीहरिका ही अंश समझा; *क्योंकि जिसके हाथमें दूसरी रेखाओंसे बिना कटा हुआ* चक्रका चिह्न होता है, वह भगवान्‌का ही अंश होता है ॥७–१०॥

अब वेदवादी ब्राह्मणोंने महाराज पृथुके अभिषेकका आयोजन किया । सब लोग उसकी सामग्री जुटानेमें लग गये । उस समय नदी, समुद्र, पर्वत, सर्प, गौ, पक्षी, मृग, स्वर्ग, पृथ्वी तथा अन्य सब प्राणियोंने भी उन्हें तरह-तरहके



उपहार भेंट किये । फिर सुन्दर वस्त्र और आभूषणोंसे अलङ्कृत महाराज पृथुका विधिवत् राज्याभिषेक हुआ । उस समय अनेकों अलङ्कारोंसे सजी हुई महारानी अर्चिके साथ वे दूसरे अग्निदेव-से जान पड़ते थे ॥११–१३ ॥

वीरवर विदुरजी ! उन्हें कुबेरने बड़ा ही सुन्दर सोनेका सिंहासन दिया तथा वरुणने चन्द्रमाके समान श्वेत और प्रकाशमय छत्र दिया, जिससे निरन्तर जलकी बूँदें झरती रहती थीं । इसी प्रकार वायुने दो चँवर, धर्मने कीर्तिमयी माला, इन्द्रने मनोहर मुकुट, यमने दमन करनेवाला दण्ड, ब्रह्माने वेदमय कवच, सरस्वतीने सुन्दर हार, विष्णुभगवान्‌ने सुदर्शनचक्र, विष्णुप्रिया लक्ष्मीजीने अविचल सम्पत्ति, रुद्रने दस चक्राकार चिह्नोंवाली तलवार, अम्बिकाजीने सौ चक्राकार चिह्नोंवाली ढाल, चन्द्रमाने अमृतमय अश्व, त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने सुन्दर रथ, अग्निने बकरे और गौके सींगोंका बना हुआ सुदृढ़ धनुष, सूर्यने तेजोमय बाण, पृथ्वीने चरणस्पर्शमात्रसे अभीष्ट स्थानपर पहुँचा देनेवाली पादुकाएँ, आकाशके अभिमानी द्यौदेवताने नित्य पुष्पवृष्टि, आकाशविहारी सिद्ध-गन्धर्वादिने नाचने-गाने, बजाने और अन्तर्धान हो जानेकी शक्तियाँ, ऋषियोंने अमोघ आशीर्वाद, समुद्रने अपनेसे उत्पन्न हुआ शङ्ख, तथा सातों समुद्र, पर्वत और नदियोंने उनके रथके लिये बेरोक-टोक मार्ग उपहारमें दिये । इसके पश्चात् सूत, मागध और वन्दीजन उनकी स्तुति करनेके लिये उपस्थित हुए । तब उन स्तुति करनेवालोंका अभिप्राय समझकर वेनपुत्र परमप्रतापी महाराज पृथुने हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा ॥१४–२१॥

पृथु बोले—भैया सूत, मागध और वन्दीजन ! अभी तो लोकमें मेरा कोई भी गुण प्रकट नहीं हुआ । फिर तुम किन गुणोंको लेकर मेरी स्तुति करोगे ? देखो, मेरे विषयमें तुम्हारी वाणी व्यर्थ नहीं होनी चाहिये । इसलिये इस समय तो मुझसे भिन्न किसी औरकी ही स्तुति करो । जब मेरे अप्रकट गुण प्रकट हो जायँ, तब भरपेट अपनी मधुर वाणीसे मेरी स्तुति कर लेना । देखो, शिष्ट पुरुष पवित्रकीर्ति श्रीहरिके गुणानुवादके रहते हुए तुच्छ मनुष्योंकी स्तुति नहीं किया करते । महान् गुणोंको धारण करनेमें समर्थ होनेपर भी ऐसा कौन बुद्धिमान् पुरुष है, जो उनके न रहनेपर भी केवल सम्भावनामात्रसे स्तुति करनेवालोंद्वारा अपनी स्तुति करायेगा ? यदि यह विद्याभ्यास करता, तो इसमें अमुक-अमुक गुण हो जाते—इस प्रकारकी स्तुतिसे तो मनुष्यको उल्लू बनाया जाता है । वह मन्दमति यह नहीं समझता कि इस प्रकार तो लोग उसका उपहास ही कर रहे हैं । जिस प्रकार लज्जाशील उदार पुरुष ब्रह्महत्यादि अपने किसी निन्दित पराक्रमकी चर्चा होनी बुरी समझते हैं, उसी प्रकार लोकविख्यात समर्थ पुरुषोंको अपनी स्तुतिसे भी घृणा होती है । फिर सूतगण !

मानना ही पड़ेगा। मनु, उत्तानपाद, ध्रुव, राजर्षि प्रियव्रत, हमारे दादा अङ्ग, तथा ब्रह्मा, शिव, प्रह्लाद, बलि और इसी कोटिके अन्यान्य महानुभावोंके मतमें तो धर्म अर्थ-काम मोक्षरूप चतुर्वर्ग तथा स्वर्ग और अपवर्गके स्वाधीन नियामकरूपसे भगवान् गदाधरकी आवश्यकता है ही। इस विषयमे तो केवल मृत्युके दौहित्र वेन आदि कुछ शोचनीय और धर्मविमूढ लोगोंका ही मतभेद है। अत उसका कोई विशेष महत्त्व नहीं हो सकता ॥ २७–३० ॥

महानुभावो! जिनके चरणकमलोंमे निरन्तर बढ़नेवाली सात्त्विकी प्रीति, उन्हींके चरण-नखसे निकली हुई गङ्गाजीके समान, ससारतप्त जीवोंके अनेकों जन्मोंके सञ्चित मनोमलको तत्काल नष्ट कर देती है, जिनके चरणतलका आश्रय लेनेवाला पुरुष सब प्रकारके मानसिक दोषोंसे छूटकर तथा वैराग्य और तत्त्वसाक्षात्काररूप बल पाकर फिर इस दु.खमय ससार चक्रमें नहीं पड़ता और जिनके चरणकमल सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं—उन प्रभुको आपलोग अपनी अपनी आजीविकाके उपयोगी वर्णाश्रमोचित अध्यापनादि कर्मों तथा ध्यान स्तुति पूजादि मानसिक, वाचिक एव शारीरिक क्रियाओंके द्वारा भजें। हृदयमें किसी प्रकारका कपट न रक्खें तथा यह निश्चय रक्खें कि हमें अपने अपने अधिकारानुसार इसका फल अवश्य प्राप्त होगा ॥ ३१–३३ ॥

भगवान् स्वरूपत' तो विशुद्ध विज्ञानघन और प्राकृत गुणरहित हैं, किन्तु यव आदि विविध द्रव्य, शुक्लादि गुण, अवघात (कूटना) आदि क्रिया एव मन्त्रोंके द्वारा पूजे जानेपर प्रयाज अनुयाज आदि यज्ञाङ्गोंसे होनेवाली पूर्णताओं, सङ्कल्पों, पदार्थोंकी शक्ति तथा ज्योतिष्टोम आदि नामोंके कारण इस कर्ममार्गमें अनेक विशेषणोंसे युक्त यज्ञरूपसे प्रकाशित होते हैं। जिस प्रकार एक ही अग्नि भिन्न भिन्न काष्ठोंमे उन्हींके आकारादिके अनुरूप भासता है, उसी प्रकार वे सर्वव्यापक प्रभु परमानन्दस्वरूप होते हुए भी प्रकृति, काल, वासना और अदृष्टसे उत्पन्न हुए शरीरोंमे विषयाकार बनी हुई बुद्धिके नियामकरूपसे स्थित होकर उन यज्ञ यागादि क्रियाओंके फलरूपसे अनेक प्रकारके जान पड़ते हैं। अहो! इस पृथ्वीतलपर मेरे जो प्रजाजन यज्ञभोक्ताओंके अधीश्वर सर्वगुरु श्रीहरिका एकनिष्ठभावसे अपने अपने धर्मोंके द्वारा निरन्तर पूजन करते है, वे मुझपर बड़ी कृपा करते हैं। सहनशीलता, तपस्या और ज्ञान—इन विशिष्ट विभूतियोंके कारण वैष्णव और ब्राह्मणोंके वश स्वभावतः ही उज्ज्वल होते है। मेरी प्रार्थना है कि उनपर राजकुलका तेज धन, ऐश्वर्य आदि समृद्धियोंके कारण अपना प्रभाव न डालने पावे। हम ही क्या, ब्रह्मादि समस्त महापुरुषोंमे अग्रगण्य, ब्राह्मणभक्त, पुराणपुरुष श्रीहरिने भी निरन्तर इन्हींके चरणोंकी वन्दना करके अविचल लक्ष्मी और ससारको पवित्र करनेवाली कीर्ति प्राप्त की है। आपलोग भगवान्के लोकसग्रहरूप धर्मका पालन करनेवाले हैं तथा सर्वान्तर्यामी स्वयप्रकाश ब्राह्मणप्रिय श्रीहरि विप्रवशकी सेवा करनेसे ही परम सन्तुष्ट होते हैं, अत आप सभीको सब प्रकारसे विनयपूर्वक ब्राह्मणकुलकी सेवा करनी चाहिये। इनकी नित्य सेवा करनेसे मनुष्यका चित्त बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाता है और उसे स्वय ही (ज्ञानादिका अभ्यास किये बिना ही) मोक्षरूप परम शान्ति प्राप्त हो जाती है। इन ब्राह्मणोंको छोड़कर अपनी अपनी आहुति ग्रहण करनेके लिये देवताओंका और कौन मुख हो सकता है? सम्पूर्ण उपनिषद् ज्ञानानन्दस्वरूप बतलाते हुए जिनका एक स्वरसे निरूपण करते हैं, वे भगवान् अनन्त इन्द्रादि यज्ञीय देवताओंके नामसे तत्त्वज्ञानियोंद्वारा ब्राह्मणोंके मुखमें श्रद्धापूर्वक हवन किये हुए पदार्थको जैसे चावसे ग्रहण करते हैं, वैसे चेतना शून्य अग्निमें होमे हुए द्रव्यको नहीं करते। सभ्यगण! जिस प्रकार स्वच्छ दर्पणमे प्रतिबिम्बका भान होता है—उसी प्रकार जिससे इस सम्पूर्ण प्रपञ्चका ठीक ठीक ज्ञान होता है, उस नित्य, शुद्ध और सनातन वेदको जो परमार्थतत्त्वकी उपलब्धिके लिये श्रद्धा, तप, मङ्गलमय आचरण, स्वाध्यायविरोधी वार्तालापके त्याग तथा सयम और समाधिके अभ्यासद्वारा धारण करते है, उन ब्राह्मणोंके चरणकमलोंकी धूलिको मैं आयुपर्यन्त अपने मुकुटपर धारण करूँ, क्योंकि उसे सर्वदा सिरपर चढ़ाते रहनेसे मनुष्यके सारे पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं और सम्पूर्ण गुण उसकी सेवा करने लगते हैं। उस गुणवान्, शील सम्पन्न, कृतज्ञ और गुरुजनोंकी सेवा करनेवाले पुरुषके पास सारी सम्पदाएँ अपने आप आ जाती हैं। अत मेरी तो यही अभिलाषा है कि ब्राह्मणकुल, गोवश और भक्तोंके सहित श्रीभगवान् मुझपर सदा प्रसन्न रहे ॥ ३४–४४ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—महाराज पृथुका यह भाषण सुनकर देवता, पितर और ब्राह्मण आदि सभी साधुजन बड़े प्रसन्न हुए और 'धन्य! धन्य!' ऐसा कहकर उनकी प्रशसा करने लगे। उन्होंने कहा, 'पुत्रके द्वारा पिता पुण्य लोकोंको प्राप्त कर लेता है' यह श्रुति यथार्थ है, देखिये, पापी वेन ब्राह्मणोंके शापसे मारा गया था, फिर भी इनके पुण्यबलसे उसका नरकसे निस्तार हो गया। इसी प्रकार हिरण्यकशिपु

जिनमें पण्डितलोग अविद्यावश प्रतीत होनेवाले इस नानात्वको मिथ्या ही समझते हैं। ये अद्वितीय वीर और एकछत्र सम्राट् होकर अकेले ही उदयाचलपर्यन्त समस्त भूमण्डलकी रक्षा करेंगे तथा अपने जयशील रथपर चढ़कर धनुष हाथमें लिये सूर्यके समान सर्वत्र प्रदक्षिणा करेंगे। उस समय जहाँ-तहाँ सभी लोकपाल और पृथ्वीपाल इन्हें भेंटें समर्पण करेंगे, उनकी स्त्रियाँ इनका गुणगान करेंगी और इन आदिराजको साक्षात् श्रीहरि ही समझेंगी। ये प्रजापालक राजाधिराज होकर प्रजाके जीवननिर्वाहके लिये गोरूपधारिणी पृथ्वीका दोहन करेंगे और इन्द्रके समान अपने धनुषके कोनोंसे बात-की-बातमें पर्वतोंको तोड़-फोड़कर पृथ्वीको समतल कर देंगे। इनके धनुषकी मारको रणभूमिमें कोई सह न सकेगा। जिस समय ये जङ्गलमें पूँछ उठाकर विचरते हुए सिंहके समान धनुषका टंकार करते हुए भूमण्डलमें विचरेंगे, उस समय सभी दुष्टजन इधर-उधर छिप जायँगे। ये सरस्वतीके उद्गमस्थानपर सौ अश्वमेध-यज्ञ करेंगे। तब अन्तिम यज्ञानुष्ठानके समय इन्द्र इनके घोड़ेको हरकर ले जायँगे। अपने महलके बगीचेमें इनकी एक बार भगवान् सनत्कुमारसे भेंट होगी। अकेले उनकी भक्तिपूर्वक सेवा करके ये उस निर्मल ज्ञानको प्राप्त करेंगे, जिससे परब्रह्मकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार जब इनके पराक्रम जनताके सामने आ जायँगे, तो ये परमपराक्रमी महाराज जहाँ-तहाँ अपने चरित्रकी ही चर्चा सुनेंगे। इनकी आज्ञाका विरोध कोई भी न कर सकेगा तथा ये सारी दिशाओंको जीतकर और अपने तेजसे प्रजाके क्लेशरूप काँटेको निकालकर सम्पूर्ण भूमण्डलके शासक होंगे। उस समय देवता और असुर भी इनके विपुल प्रभावका वर्णन करेंगे' ॥१९–२६॥

सतरहवाँ अध्याय

महाराज पृथुका पृथ्वीपर कोप और पृथ्वीके द्वारा उनकी स्तुति

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार जब वन्दीजनने महाराज पृथुके गुण और कर्मोंका बखान करके उनकी प्रशंसा की, तो उन्होंने भी उनकी बड़ाई करके तथा उन्हें गहने-कपड़े आदि मनचाही वस्तुएँ देकर सन्तुष्ट किया। फिर उन्होंने ब्राह्मणादि चारों वर्णों, सेवकों, मन्त्रियों, पुरोहितों, पुरवासियों, देशवासियों, तेली-तँबोली आदि भिन्न-भिन्न व्यवसायियों तथा अन्यान्य आज्ञानुवर्तियोंका भी सत्कार किया ॥ १-२ ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! पृथ्वी तो अनेक रूप धारण कर सकती है, उसने गौका रूप ही क्यों धारण किया? और जब महाराज पृथुने उसे दुहा, तो बछड़ा कौन बना? और दुहनेका पात्र क्या हुआ? पृथ्वीदेवी तो पहले स्वभावसे ही ऊँची-नीची थी। उसे उन्होंने समतल किस प्रकार किया और इन्द्र उनके यज्ञसम्बन्धी घोड़ेको क्यों हर ले गये? ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमारजीसे ज्ञान और विज्ञान प्राप्त करके वे राजर्षि किस गतिको प्राप्त हुए? पृथुरूपसे भगवान् श्रीकृष्णने ही पृथ्वीको दुहा था; अतः पुण्यकीर्ति श्रीहरिके उस पृथु-अवतारसे सम्बन्ध रखनेवाले जो और भी पवित्र चरित्र हों, वे सभी आप मुझसे कहिये। मैं आपका और श्रीकृष्णचन्द्रका बड़ा अनुरक्त भक्त हूँ ॥ ३–७ ॥

श्रीसूतजी कहते हैं—जब विदुरजीने भगवान् वासुदेवकी कथाओंके लिये इस प्रकार प्रेरणा की, तो श्रीमैत्रेयजी प्रसन्न चित्तसे उनकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे ॥ ८ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—विदुरजी! ब्राह्मणोंने महाराज पृथुका राज्याभिषेक करके उन्हें प्रजाका रक्षक उद्घोषित किया। इन दिनों पृथ्वी अन्नहीन हो गयी थी, इसलिये भूख-के कारण प्रजाजनोंके शरीर सूखकर काँटे हो गये थे। उन्होंने अपने स्वामी पृथुके पास आकर कहा—'राजन्! जिस प्रकार कोटरमें सुलगती हुई आगसे पेड़ जल जाता है, उसी प्रकार हम पेटकी भीषण ज्वालासे जले जा रहे हैं। आप शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले हैं और हमारे अन्नदाता प्रभु बनाये गये हैं; इसलिये हम आपकी शरणमें आये हैं। आप समस्त लोकोंकी रक्षा करनेवाले हैं, आप हमें जीविका देनेमें समर्थ हैं। अतः राजराजेश्वर! आप हम क्षुधापीड़ितोंको शीघ्र ही अन्न देनेका प्रबन्ध कीजिये; ऐसा न हो, अन्न मिलने-से पहले ही हमारा अन्त हो जाय' ॥ ९–११ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—कुरुवर! प्रजाका करुणक्रन्दन सुनकर महाराज पृथु बहुत देरतक विचार करते रहे। अन्तमें उन्हें पृथ्वीके अन्नहीन होनेका कारण मालूम हो गया। वे जान गये कि पृथ्वीने स्वयं ही अन्न एवं औषधादिको अपने भीतर छिपा लिया है। इसलिये उन्होंने अपना धनुष उठाया और त्रिपुरविनाशक भगवान् शङ्करके समान अत्यन्त क्रोधित होकर पृथ्वीको लक्ष्य बनाकर बाण चढ़ाया। उन्हें शस्त्र चढ़ाये देख पृथ्वी काँप गयी और जिस प्रकार व्याधेके भयसे

हैं, जिनपर साँप रहते हैं। मनुष्योंके लिये तो वे किसी भी कामके नहीं हैं। मुनीश्वरो! आप भले पधारे, आपका स्वागत है। आपलोग तो बाल्यावस्थासे ही मुमुक्षुओंके मार्गका अनुसरण करते हुए एकाग्र चित्तसे ब्रह्मचर्यादि महान् व्रतोंका बड़ी श्रद्धापूर्वक आचरण कर रहे हैं। स्वामियो! हमलोग अपने कर्मोंके वशीभूत होकर विपत्तियोंके क्षेत्ररूप इस संसारमें पड़े हुए केवल इन्द्रियसम्बन्धी भोगोंको ही परम पुरुषार्थ मान रहे हैं; सो क्या हमारे निस्तारका भी कोई उपाय है? आप लोगोंसे कुशल प्रश्न करना तो उचित नहीं; क्योंकि आप निरन्तर आत्मामें ही रमण करते हैं। इसलिये कुशल और अकुशलमें तो आपकी वृत्तियाँ कभी जाती ही नहीं। आप संसारानलसे सन्तप्त जीवोंके परम सुहृद् हैं; इसलिये आपमें विश्वास करके मैं यह पूछना चाहता हूँ कि इस संसारमें मनुष्यका किस प्रकार सुगमतासे कल्याण हो सकता है। यह बात स्पष्ट ही है कि आप अजन्मा होनेपर भी अपने भक्तोंपर कृपा करनेके लिये सिद्धरूपसे इस पृथ्वीपर विचरा करते हैं। वस्तुतः तो आप विशुद्धचित्त महानुभावोंके चित्तोंमें प्रकाशित होनेवाले उनके आत्मस्वरूप श्रीभगवान् ही हैं ॥७-१६॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—राजा पृथुके ये युक्तियुक्त, गम्भीर, परिमित और मधुर वचन सुनकर श्रीसनत्कुमारजी बड़े प्रसन्न हुए और कुछ मुसकराते हुए कहने लगे ॥१७॥

श्रीसनत्कुमारजी बोले—महाराज! आपने सब कुछ जानते हुए भी समस्त प्राणियोंके कल्याणकी दृष्टिसे बड़ी अच्छी बात पूछी है। सच है, साधु पुरुषोंकी बुद्धि ऐसी ही हुआ करती है। सत्पुरुषोंका समागम श्रोता और वक्ता दोनोंको ही अभिमत होता है, क्योंकि उनके प्रश्नोत्तर सभीका कल्याण करते हैं। राजन्! श्रीमधुसूदनभगवान्के चरण-कमलोंके गुणानुवादमें अवश्य ही आपकी अविचल प्रीति है। हर किसीको इसका प्राप्त होना बहुत कठिन है और प्राप्त हो जानेपर यह हृदयके भीतर रहनेवाले उस वासनारूप मलको सर्वथा नष्ट कर देती है—जो और किसी उपायसे जल्दी नहीं छूटता। शास्त्रोंमें जीवोंके कल्याणके लिये खूब विचार किया गया है; उन्होंने आत्मासे व्यतिरिक्त देहादिके प्रति वैराग्य तथा अपने आत्मस्वरूप निर्गुण ब्रह्ममें सुदृढ़ अनुरागको ही कल्याणका साधन निश्चित किया है। शास्त्रोंका यह भी कहना है कि गुरु और शास्त्रके वचनोंमें विश्वास रखनेसे, भगवद्धर्मोंका आचरण करनेसे, तत्त्वजिज्ञासासे, ज्ञानयोगकी निष्ठासे, योगेश्वर श्रीहरिकी उपासनासे, नित्यप्रति पुण्यकीर्ति श्रीभगवान्की पावन कथाओंको सुननेसे, जो लोग धन और इन्द्रियोंके भोगोंमें ही रत हैं उनकी गोष्ठीमें प्रेम न रखनेसे, उन्हें प्रिय लगनेवाले पदार्थोंका आसक्तिपूर्वक संग्रह न करनेसे, भगवद्गुणामृतका पान करनेके सिवा अन्य समय आत्मामें ही सन्तुष्ट रहते हुए एकान्तसेवनमें प्रेम रखनेसे, किसी भी जीवको कष्ट न देनेसे, निवृत्तिनिष्ठासे, आत्महितका अनुसन्धान करते रहनेसे, श्रीहरिके पवित्र चरित्ररूप श्रेष्ठ अमृतका आस्वादन करनेसे, किसी प्रकारकी इच्छा न रखकर (निष्कामभावसे) यम नियमोंका पालन करनेसे, कभी किसीकी निन्दा न करनेसे, योगक्षेमके लिये प्रयत्न न करनेसे, शीतोष्णादि द्वन्द्वोंको सहन करनेसे, भक्तजनोंके कानोंको सुख देनेवाले श्रीहरिके गुणोंका बार-बार वर्णन करनेसे और बढ़ते हुए भक्तिभावसे मनुष्यका कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण जड प्रपञ्चसे वैराग्य हो जाता है और आत्मस्वरूप निर्गुण परब्रह्ममें अनायास ही उसकी प्रीति हो जाती है। परब्रह्ममें सुदृढ प्रीति हो जानेपर पुरुष ज्ञान और वैराग्यके प्रबल वेगके कारण सद्गुरुकी शरण लेता है; इससे उसका अविद्यादि पाँच प्रकारके क्लेशोंसे युक्त अहङ्कारात्मक लिङ्गशरीर वासनाशून्य हो जाता है। तब तत्त्वज्ञानका उदय होता है और वह तत्त्वज्ञान अपने आश्रयभूत लिङ्गशरीरको उसी प्रकार भस्म कर देता है, जैसे अग्नि लकड़ीसे प्रकट होकर फिर उसीको जला डालती है। इस प्रकार लिङ्गदेहका नाश हो जानेपर वह उसके कर्तृत्वादि सभी गुणोंसे मुक्त हो जाता है। फिर तो जैसे स्वप्नावस्थामें तरह-तरहके पदार्थ देखनेपर भी उससे जग पड़नेपर उनमेंसे कोई चीज दिखायी नहीं देती, उसी प्रकार वह पुरुष शरीरके बाहर दिखायी देनेवाले घट-पटादि और भीतर अनुभव होनेवाले सुख दु:खादिको भी नहीं देखता। इस स्थितिके प्राप्त होनेसे पहले ये पदार्थ ही जीवात्मा और परमात्माके बीचमें रहकर उनका भेद कर रहे थे ॥१८-२७॥

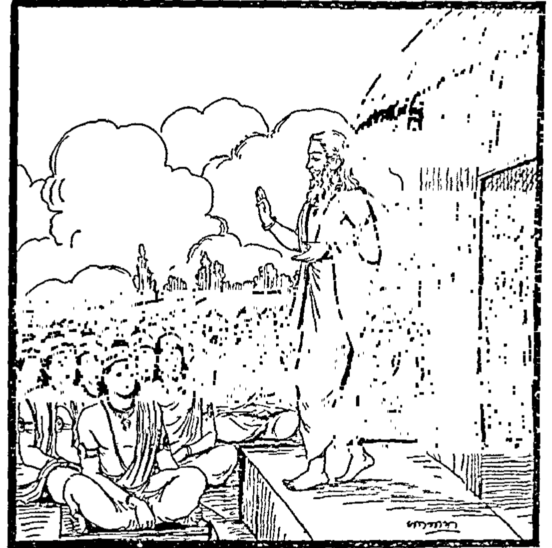
जबतक अन्तःकरणरूप उपाधि रहती है, तभीतक पुरुषको जीवात्मा, इन्द्रियोंके विषय और इन दोनोंका सम्बन्ध करानेवाले अहङ्कारका अनुभव होता है; इसके बाद नहीं। बाह्य जगत्में भी देखा जाता है कि जल, दर्पण आदि निमित्तोंके रहनेपर ही अपने बिम्ब और प्रतिबिम्बका भेद दिखायी देता है, अन्य समय नहीं। जो लोग विषयचिन्तनमें लगे रहते हैं, उनकी इन्द्रियाँ विषयोंमें फँस जाती हैं तथा मनको भी उन्हींकी ओर खींच ले जाती हैं। फिर तो जैसे जलाशयके तीरपर उगे हुए कुशादि अपनी जड़ोंसे उसका जल खींचते रहते हैं, उसी प्रकार वह इन्द्रियासक्त मन

भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे द्रव्य, देश, काल, आयु, श्रद्धा और ऋत्विज आदिसे सुसम्पन्न सभी प्रकारके सौ-सौ यज्ञ किये। भगवान् ऋषभदेवके शासनकालमें इस देशका कोई भी पुरुष अपने लिये किसीसे भी अपने प्रभुके प्रति दिन-दिन बढ़नेवाले अनुरागके सिवा और किसी वस्तुकी कभी इच्छा नहीं करता था। यही नहीं, आकाशकुसुमादि अविद्यमान वस्तुकी भाँति कोई किसीकी वस्तुकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करता था। एक बार भगवान् ऋषभदेव घूमते-घूमते ब्रह्मावर्तदेशमें पहुँचे। वहाँ बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंकी सभामें उन्होंने प्रजाके सामने ही अपने समाहितचित्त, तथा विनय और प्रेमके भारसे सुसंयत पुत्रोंको शिक्षा देनेके लिये इस प्रकार कहा॥ १४–१९॥

पाँचवाँ अध्याय

ऋषभजीका पुत्रोंको उपदेश और स्वयं अवधूतवृत्ति ग्रहण करना

श्रीऋषभदेवजी बोले—पुत्रो! इस मर्त्यलोकमें नर-देह पाकर जीवको दुःखमय विषयभोगोंमें ही नहीं फँसे रहना चाहिये। ये भोग तो विष्ठाभोजी सूकर-कूकरादिको भी मिलते ही हैं। इस शरीरके द्वारा तो दिव्य तप ही करना चाहिये, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो और फिर अनन्त ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति हो सके। शास्त्रोंने महापुरुषोंकी सेवाको मुक्तिका और स्त्रीसंगी कामियोंके सङ्गको नरकका द्वार बताया है। महापुरुष वे ही हैं जो समानचित्त, परम-शान्त, क्रोधहीन, सबके हितचिन्तक और सदाचारसम्पन्न हों; अथवा मुझ परमात्माके प्रेमको ही जो एकमात्र पुरुषार्थ मानते हों, केवल विषयोंकी ही चर्चा करनेवाले लोगोंमें तथा स्त्री, पुत्र और धन आदि सामग्रियोंसे सम्पन्न घरोंमें जिनकी अरुचि हो और जो लौकिक कार्योंमें केवल शरीरनिर्वाहके लिये ही प्रवृत्त होते हों। मनुष्य जो प्रमादी होकर कुकर्म करने लगता है, उसकी वह प्रवृत्ति इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये ही होती है। मैं इसे अच्छा नहीं समझता, क्योंकि इसीके कारण आत्माको यह असत् और दुःखदायक शरीर प्राप्त होता है। जबतक जीवको आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा नहीं होती, तभीतक अज्ञानवश देहादिके द्वारा उसका स्वरूप छिपा रहता है। जबतक यह लौकिक-वैदिक कर्मोंमें फँसा रहता है, तबतक मनमें कर्मकी वासनाएँ भी बनी ही रहती हैं और इन्हींसे देह-बन्धनकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार अविद्याके द्वारा आत्मस्वरूपके ढक जानेसे कर्मवासनाओंके वशीभूत हुआ चित्त मनुष्यको फिर कर्मोंमें ही प्रवृत्त करता है। अतः जबतक उसकी मुझ वासुदेवमें प्रीति नहीं होती, तबतक वह देहबन्धनसे छूट नहीं सकता। स्वार्थमें पागल जीव जबतक विवेकदृष्टिका आश्रय लेकर इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको मिथ्या नहीं देखता, तबतक आत्मस्वरूपकी स्मृति खो बैठनेके कारण वह अज्ञानवश विषयप्रधान गृह आदिमें आसक्त



रहता है और तरह-तरहके क्लेश उठाता रहता है॥१–७॥

स्त्री और पुरुष—इन दोनोंका जो परस्पर दाम्पत्यभाव है, इसीको पण्डितजन उनके हृदयकी दूसरी स्थूल एवं दुर्भेद्य ग्रन्थि कहते हैं। देहाभिमानरूपी एक-एक सूक्ष्म ग्रन्थि तो उनमें अलग-अलग पहलेहीसे है। इसीके कारण जीवको देहेन्द्रियादिके अतिरिक्त घर, खेत, पुत्र, स्वजन और धन आदिमें भी 'मैं' और 'मेरे' पनका मोह हो जाता है। जिस समय कर्मवासनाओंके कारण पड़ी हुई इसकी यह दृढ़ हृदय-ग्रन्थि ढीली हो जाती है, उसी समय यह दाम्पत्यभावसे निवृत्त हो जाता है और संसारके हेतुभूत अहङ्कारको त्यागकर सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो परमपद प्राप्त कर लेता है। पुत्रो! संसारसागरसे पार होनेमें कुशल तथा धैर्य, उद्यम एवं सत्त्वगुणविशिष्ट पुरुषको चाहिये कि सबके आत्मा और

समस्त कर्मोंका फल परमात्माको अर्पण करने तथा आत्माको कर्मोंका साक्षी एवं प्रकृतिसे अतीत देखनेके कारण वे सर्वथा निर्लिप्त रहे। जिस प्रकार सूर्यदेव सर्वत्र प्रकाश करनेपर भी वस्तुओंके गुण दोषसे निर्लेप रहते हैं, उसी प्रकार सार्वभौम साम्राज्यलक्ष्मीसे सम्पन्न और गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी अहङ्कारशून्य होनेके कारण वे इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त नहीं हुए ॥ ४८–५२ ॥

इस प्रकार आत्मनिष्ठामें स्थित होकर सभी कर्तव्य कर्मोंका यथोचित रीतिसे अनुष्ठान करते हुए उन्होंने अपनी भार्या अर्चिके गर्भसे अपनी इच्छाके अनुरूप पाँच पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण और वृक थे। महाराज पृथु भगवान्‌के अंश थे। यह बात पहले कही जा चुकी है कि वे समय समयपर, जब जब आवश्यक होता था, जगत्‌के प्राणियोंकी रक्षाके लिये अकेले ही समस्त लोकपालोंके गुण धारण कर लिया करते थे। अपने उदार मन, प्रिय और हितकर वचन, मनोहर मूर्ति और सौम्य गुणोंके द्वारा प्रजाका रञ्जन करते रहनेसे दूसरे चन्द्रमाके समान उनका 'राजा' (रञ्जन करनेवाला) यह नाम सार्थक हुआ। सूर्य जिस प्रकार गर्मीमें पृथ्वीका जल खींचकर वर्षाकालमें उसे पुनः पृथ्वीपर बरसा देता है तथा अपनी किरणोंसे सबको ताप पहुँचाता है, उसी प्रकार वे कररूपसे प्रजाका धन लेकर उसे दुष्कालादिके समय मुक्तहस्तसे प्रजाके हितमें लगा देते थे तथा सबपर अपना प्रभाव जमाये रखते थे। वे तेजमें अग्निके समान दुर्धर्ष, इन्द्रके समान अजेय, पृथ्वीके समान क्षमाशील और स्वर्गके समान मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाले थे। समय समयपर प्रजाजनोंको तृप्त करनेके लिये वे मेघके समान उनके अभीष्ट अर्थोंको खुले हाथसे लुटाते रहते थे। यही नहीं, वे समुद्रके समान गम्भीर और पर्वतराज सुमेरुके समान धैर्यवान् भी थे ॥ ५३–५८ ॥

महाराज पृथु दुष्टोंके दमन करनेमें यमराजके समान, आश्चर्यपूर्ण वस्तुओंके संग्रहमें हिमालयके समान, कोशकी समृद्धिमें कुबेरके समान, धनको छिपानेमें वरुणके समान, शारीरिक बल, इन्द्रियोंकी पटुता तथा पराक्रममें सर्वत्र गतिशील वायुके समान, तेजकी असह्यतामें भगवान् शङ्करके समान, सौन्दर्यमें कामदेवके समान, उत्साहमें सिंहके समान, वात्सल्यमें मनुके समान, मनुष्योंके आधिपत्यमें ब्रह्माजीके समान, ब्रह्मविचारमें बृहस्पतिजीके समान, इन्द्रियजयमें साक्षात् श्रीहरिके समान तथा गौ, ब्राह्मण, गुरुजन एवं भगवद्भक्तोंकी भक्ति, लज्जा, विनय, शील एवं परोपकार आदि गुणोंमें अपने ही समान (अनुपम) थे। जिस प्रकार भगवान् राम अपनी पुण्यमय कीर्तिके द्वारा सत्पुरुषोंके कानोंमें प्रवेश कर जाते हैं, उसी प्रकार त्रिलोकीमें अनेकों पुरुषोंद्वारा उच्चस्वरसे गायी हुई अपनी कीर्तिके द्वारा उन्होंने रमणियोंके कर्णरन्ध्रोंमें प्रवेश किया ॥ ५९–६३ ॥

तेईसवाँ अध्याय

राजा पृथुकी तपस्या और परलोकगमन

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—इस प्रकार महामनस्वी प्रजापति पृथुने स्वयमेव अन्नादि तथा पुर-ग्रामादि सर्गकी व्यवस्था करके स्थावर-जङ्गम सभीकी आजीविकाका सुभीता कर दिया तथा साधुजनोचित धर्मोंका भी खूब पालन किया। अब एक दिन उन्होंने सोचा कि मेरी अवस्था कुछ ढल गयी है और जिसके लिये मैंने इस लोकमें जन्म लिया था, उस प्रजारक्षणरूप ईश्वराज्ञाका पालन भी हो चुका है; अतः अब मुझे अन्तिम पुरुषार्थ मोक्षके लिये प्रयत्न करना चाहिये। यह सोचकर उन्होंने अपने विरहमें रोती हुई अपनी पुत्रीरूपा पृथ्वीका भार पुत्रोंको सौंप दिया और सारी प्रजाको बिलखते छोड़कर वे अपनी पत्नीसहित अकेले ही तपोवनको चल दिये। वहाँ भी वे वानप्रस्थ आश्रमके नियमानुसार उसी प्रकार कठोर तपस्यामें लग गये, जैसे पहले गृहस्थाश्रममें अखण्ड-व्रतपूर्वक पृथ्वीके विजय करनेमें लगे थे। कुछ दिन तो उन्होंने कन्द-मूल फल खाकर बिताये, कुछ काल सूखे पत्ते खाकर रहे, फिर कुछ पखवाड़ोंतक जलपर ही रहे और इसके बाद केवल वायुसे ही निर्वाह करने लगे। वीरवर पृथु मुनिवृत्तिसे रहते थे। गर्मियोंमें उन्होंने पञ्चाग्नियोंका सेवन किया, वर्षाऋतुमें खुले मैदानमें रहकर अपने शरीरपर जलकी धाराएँ सहीं और जाड़ेमें गलेतक जलमें खड़े रहे। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेकी इच्छासे कठोर तप करते हुए उन्होंने नित्यप्रति भूमिपर ही शयन किया, शीतोष्णादि सब प्रकारके द्वन्द्वोंको सहा, तथा वाणी और मनका संयम करके ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए प्राणोंको

महारथी पुत्र इन्द्रको मारनेके लिये उनके पीछे दौड़ा और बड़े क्रोधसे बोला, 'अरे खड़ा रह! खड़ा रह!' किन्तु इन्द्र सिरपर जटाजूट और शरीरमें भस्म धारण किये थे। उनका ऐसा वेष देखकर पृथुकुमारने उन्हें मूर्तिमान् धर्म समझा, इसलिये उनपर बाण नहीं छोड़ा। जब वह इन्द्रपर वार किये बिना ही लौट आया, तो महर्षि अत्रिने पुनः उसे इन्द्रको मारनेके लिये उत्साहित किया। वे बोले, 'वत्स! इस देवताधम इन्द्रने तुम्हारे यज्ञमें विघ्न किया है, तुम इसे मार डालो'॥१०–१५॥

अत्रि मुनिके इस प्रकार उत्साहित करनेसे पृथुकुमार क्रोधमें भर गया। इन्द्र बड़ी तेजीसे आकाशमें जा रहे थे। उनके पीछे वह इस प्रकार दौड़ा, जैसे रावणके पीछे जटायु दौड़ा था। स्वर्गपति इन्द्र उसे पीछे आते देख, उस वेष और घोड़ेको छोड़कर वहीं अन्तर्धान हो गये और वह वीर अपना यज्ञपशु लेकर पिताकी यज्ञशालामें लौट आया। शक्तिशाली विदुरजी! उसके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर महर्षियोंने उसका नाम विजिताश्व रक्खा॥ १६–१८॥

यज्ञपशुको चषाल और यूपमें* बाँध दिया गया था। शक्तिशाली इन्द्रने घोर अन्धकार फैला दिया और उसीमें छिपकर वे फिर उस घोड़ेको उसकी सोनेकी जंजीरसमेत ले गये। अत्रि मुनिने फिर उन्हें आकाशमें तेजीसे जाते दिखा दिया, किन्तु उनके पास कपाल और खट्वाङ्ग देखकर पृथु-पुत्रने उनके मार्गमें कोई बाधा न डाली। तब उन्होंने राजकुमारको फिर उकसाया और उसने गुस्सेमें भरकर इन्द्रको लक्ष्य बनाकर अपना बाण चढ़ाया। यह देखते ही देवराज उस वेष और घोड़ेको छोड़कर वहीं अन्तर्धान हो गये और वीर विजिताश्व अपना घोड़ा लेकर पिताकी यज्ञशालामें लौट आया। तबसे इन्द्रके उस निन्दित वेषको मन्दबुद्धि पुरुषोंने ग्रहण कर लिया। इन्द्रने अश्वहरणकी इच्छासे जो-जो रूप धारण किये थे, वे पापके खण्ड (चिह्न) होनेके कारण पाखण्ड कहलाये। यहाँ 'खण्ड' शब्द चिह्नका वाचक है। इस प्रकार पृथुके यज्ञका विध्वंस करनेके लिये यज्ञपशुको चुराते समय इन्द्रने जिन्हें कई बार ग्रहण करके त्यागा था, उन नंगे और लाल कपड़ोंवाले आदि पाखण्डपूर्ण वेषोंमें मनुष्योंकी बुद्धि प्रायः मोहित हो जाती है; क्योंकि ये नास्तिक मत देखनेमें सुन्दर हैं और बड़ी-बड़ी युक्तियोंसे अपने पक्षका समर्थन करते हैं। वास्तवमें ये उपधर्ममात्र हैं, लोग भ्रमवश इन्हें ही धर्म मान बैठते हैं॥१९–२५॥

इन्द्रकी इस कुचालका पता लगनेपर परमपराक्रमी महाराज पृथुको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने अपना धनुष उठाकर उसपर बाण चढ़ाया। उस समय क्रोधावेशके कारण उनकी ओर देखा नहीं जाता था। जब ऋत्विजोंने देखा कि असह्य पराक्रमी महाराज पृथु इन्द्रका बध करनेको तैयार हैं, तो उन्हें रोकते हुए कहा—'राजन्! आप तो बड़े बुद्धिमान् हैं, जरा सावधान रहिये; यज्ञदीक्षा ले लेनेपर शास्त्रविहित यज्ञपशुको छोड़कर और किसीका बध करना उचित नहीं है। इस यज्ञकार्यमें विघ्न डालनेवाला आपका शत्रु इन्द्र तो आपके सुयशसे ही ईर्ष्यावश निस्तेज हो रहा है। हम अमोघ आवाहन-मन्त्रोंद्वारा उसे यहीं बुला लेते हैं और बलात्कारसे अग्निमें हवन किये देते हैं'॥२६–२८॥

विदुरजी! यजमानको इस प्रकार शान्तकर उसके याजकोंने क्रोधपूर्वक इन्द्रका आवाहन किया। वे स्रुवाद्वारा आहुति डालना ही चाहते थे, कि ब्रह्माजीने वहाँ आकर उन्हें रोक दिया। वे बोले, 'याजको! तुम्हें इन्द्रका बध नहीं करना चाहिये, यह यज्ञसंज्ञक इन्द्र तो भगवान्‌का ही अवतार है। तुम यज्ञद्वारा जिन देवताओंकी आराधना कर रहे हो, वे इन्द्रके ही तो अङ्ग हैं और उसे तुम यज्ञद्वारा मारना चाहते हो! पृथुके इस यज्ञानुष्ठानमें विघ्न डालनेके लिये इन्द्रने जो पाखण्ड फैलाया है, वह धर्मका उच्छेद करनेवाला है। इस बातपर तुम ध्यान दो। अब उससे अधिक विरोध मत करो; नहीं तो वह और भी पाखण्ड-मार्गोंका प्रचार करेगा। अच्छा, परमयशस्वी महाराज पृथुके निन्यानवे ही यज्ञ रहने दो।' फिर राजर्षि पृथुसे कहा, 'राजन्! आप तो मोक्षधर्मके जाननेवाले हैं; अतः अब आपको इन यज्ञानुष्ठानोंकी आवश्यकता नहीं है। आपका मङ्गल हो। आप और इन्द्र—दोनों ही पवित्रकीर्ति श्रीहरिके अवतार हैं; इसलिये अपने ही स्वरूपभूत इन्द्रके प्रति आपको क्रोध नहीं करना चाहिये। आपका यह यज्ञ निर्विघ्न समाप्त नहीं हुआ, इसके लिये आप चिन्ता न करें। हमारी बात आप आदरपूर्वक स्वीकार कीजिये। देखिये, जो मनुष्य विधाताके बिगाड़े हुए कामको बनानेका विचार करता है, उसका मन अत्यन्त क्रोधमें भरकर भयङ्कर मोहमें फँस जाता है। बस, इस यज्ञको बंद कीजिये। इसीके कारण इन्द्रके चलाये हुए पाखण्डोंसे धर्मका नाश हो रहा है। अब

* यज्ञमण्डपमें यज्ञपशुको बाँधनेके लिये जो खंभा होता है, उसे 'यूप' कहते हैं और यूपके आगे रक्खे हुए वलयाकार काष्टको 'चषाल' कहते हैं।

ही है, उसे तो भगवान्‌की मायाने ठग लिया है ॥ २५-२८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! जिस समय देवाङ्गनाएँ इस प्रकार स्तुति कर रही थीं, महारानी अर्चि पतिलोकको सिधारीं । अथवा भगवान्‌के जिस परमधामको आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवत्प्राण महाराज पृथु गये, उसीको वे भी चली गयीं । परमभागवत पृथुजी ऐसे ही प्रभावशाली थे । उनके चरित बड़े उदार हैं, मैंने तुम्हारे सामने उनका वर्णन कर दिया । जो पुरुष इस परम पवित्र चरित्रको श्रद्धापूर्वक (निष्कामभावसे) एकाग्रचित्तसे पढ़ता, सुनता अथवा सुनाता है—वह भी महाराज पृथुके पद—भगवान्‌के परमधामको प्राप्त होता है । इसका सकामभावसे पाठ करनेसे ब्राह्मण ब्रह्मतेज प्राप्त करता है, क्षत्रिय पृथ्वीपति हो जाता है, वैश्य व्यापारियोंमें प्रधान हो जाता है और शूद्रमें साधुता आ जाती है । स्त्री हो अथवा पुरुष—जो कोई इसे आदरपूर्वक तीन बार सुनता है, वह सन्तानहीन हो तो पुत्रवान्, धनहीन हो तो महाधनी, कीर्तिहीन हो तो यशस्वी और मूर्ख हो तो पण्डित हो जाता है । यह चरित मनुष्यमात्रका कल्याण करनेवाला और अमङ्गलको दूर करनेवाला है । यह धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला और कलियुगके दोषोंका नाश करनेवाला है । यह धर्मादि चतुर्वर्गकी प्राप्तिमें भी बड़ा सहायक है, इसलिये जो लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्षको भलीभाँति सिद्ध करना चाहते हों, उन्हें इसका श्रद्धापूर्वक श्रवण करना चाहिये । जो राजा विजयके लिये प्रस्थान करते समय इसे सुनकर जाता है, उसके आगे आ आकर राजालोग उसी प्रकार भेंटें रखते हैं जैसे पृथुके सामने रखते थे । मनुष्यको चाहिये कि अन्य सब प्रकारकी आसक्ति छोड़कर भगवान्‌में विशुद्ध निष्काम भक्तिभाव रखते हुए महाराज पृथुके इस निर्मल चरितको सुने, सुनावे और पढ़े । विदुरजी ! मैंने भगवान्‌के माहात्म्यको प्रकट करनेवाला यह पवित्र चरित्र तुम्हें सुना दिया । इसमें प्रेम करनेवाला पुरुष महाराज पृथुकी-सी गति पाता है । जो पुरुष इस पृथु चरितका नित्यप्रति आदरपूर्वक- निष्कामभावसे श्रवण और कीर्तन करता है उसका, जिनके चरण संसार सागरको पार करनेके लिये नौकाके समान हैं उन, श्रीहरिमें सुदृढ़ अनुराग हो जाता है ॥२९-३९॥

चौबीसवाँ अध्याय

पृथुकी वंशपरम्परा और प्रचेताओंको भगवान् रुद्रका उपदेश

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! महाराज पृथुके बाद उनके पुत्र परमयशस्वी विजिताश्व राजा हुए । उनका अपने छोटे भाइयोंपर बड़ा स्नेह था, इसलिये उन्होंने चारोंको एक एक दिशाका अधिकार सौंप दिया । हर्यक्षको पूर्व, धूम्रकेशको दक्षिण, वृकको पश्चिम और द्रविणको उत्तर दिशाका राज्य दिया । राजा विजिताश्वने इन्द्रसे अन्तर्धान होनेकी शक्ति प्राप्त की थी, इसलिये उन्हें 'अन्तर्धान' भी कहते थे । उनकी पत्नीका नाम शिखण्डिनी था । उससे उनके तीन सुपुत्र हुए । उनके नाम पावक, पवमान और शुचि थे । पूर्वकालमें वसिष्ठजीका शाप होनेसे उपर्युक्त नामके अग्नियोंने ही उनके रूपमें जन्म लिया था । आगे चलकर योगमार्गसे ये फिर अग्निरूप हो गये ॥१-४॥

महाराज अन्तर्धान बड़े उदार पुरुष थे । जिस समय इन्द्र उनके पिताके अश्वमेध यज्ञका घोड़ा हरकर ले गये थे, उन्होंने पता लग जानेपर भी उनका वध नहीं किया था । इनकी नभस्वती नामकी एक दूसरी भार्या भी थी । उससे इनके हविर्धान नामका पुत्र हुआ । राजा अन्तर्धानने कर लेना, दण्ड देना, जुरमाना वसूल करना आदि कर्तव्योंको बहुत कठोर एवं दूसरोंके लिये कष्टदायक समझकर एक दीर्घकालीन यज्ञमें दीक्षित होनेके बहाने अपना राज काज छोड़ दिया । यज्ञकार्यमें लगे रहनेपर भी उन आत्मज्ञानी राजाने भक्तभयभञ्जन पूर्णतम परमात्माकी आराधना करके सुदृढ़ समाधिके द्वारा भगवान्‌के दिव्य लोकको प्राप्त किया ॥५-७॥

विदुरजी ! हविर्धानसे उसकी भार्या हविर्धानीके बर्हिषद्, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य और जितव्रत नामके छ पुत्र हुए । कुरुश्रेष्ठ विदुरजी ! इनमें हविर्धानके पुत्र महाभाग बर्हिषद् यज्ञादि कर्मकाण्ड और योगाभ्यासमें कुशल थे । उन्होंने प्रजापतिका पद प्राप्त किया, और एक स्थानके बाद दूसरे स्थानमें लगातार इतने यज्ञ किये कि यह सारी भूमि पूर्वकी ओर अग्रभाग करके फैलाये हुए कुशोंसे पट गयी थी । इसीसे आगे चलकर वे 'प्राचीनबर्हि' नामसे विख्यात हुए ॥ ८-१० ॥

राजा प्राचीनबर्हिने देवदेव ब्रह्माजीके कहनेसे समुद्रकी कन्या शतद्रुतिसे विवाह किया था । शतद्रुति ऐसी रूपवती थी कि पाणिग्रहणके समय जब वह सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे

परिच्छिन्न लिङ्गशरीरका ही हुआ करता है; इसका सर्वसाक्षी आत्मासे कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझमें दृढ़ अनुराग रखनेवाले बुद्धिमान् पुरुष सुख-दुःखकी प्राप्ति होनेपर उनसे तनिक भी प्रभावित नहीं होते। इसलिये वीरवर! तुम उत्तम, मध्यम और अधम पुरुषोंमें समानभाव रखकर सुख-दुःखको भी एक-सा समझो, तथा मन और इन्द्रियोंको जीतकर मेरे ही द्वारा जुटाये हुए मन्त्री आदिकी सहायतासे सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षा करो। राजाका कल्याण प्रजापालनमें ही है। इससे उसे परलोकमें प्रजाके पुण्यका छठा भाग मिलता है। इसके विपरीत जो राजा प्रजाकी रक्षा तो नहीं करता किन्तु उससे कर वसूल करनेमें कसर नहीं रखता, उसका सारा पुण्य तो प्रजा छीन लेती है और बदलेमें उसे प्रजाके पापका भागी होना पड़ता है। यह सोचकर तुम अपने परम्पराप्राप्त धर्मपर ही मुख्य दृष्टि रखते हुए—किन्तु उसमें आसक्त न होकर—सद्ब्राह्मणोंकी सम्मतिके अनुसार पृथ्वीका पालन करो। इससे सब लोग तुमसे प्रेम करेंगे और कुछ ही दिनोंमें तुम्हें घर बैठे ही सनकादि सिद्धोंके दर्शन होंगे। राजन्! तुम्हारे गुणोंने और स्वभावने मुझको वशमें कर लिया है। अतः तुम्हें जो इच्छा हो, मुझसे वर माँग लो। यज्ञ, तप अथवा योगके द्वारा मुझको पाना आसान नहीं है; मैं तो उन्हींके हृदयमें रहता हूँ जिनके चित्तमें इस प्रकारके गुण-शील उत्पन्न करनेवाली समता रहती है॥ १२—१६॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! सर्वलोकगुरु श्रीहरिके इस प्रकार कहनेपर जगद्विजयी महाराज पृथुने उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। देवराज इन्द्र अपने कर्मसे लज्जित होकर उनके चरणोंपर गिरना ही चाहते थे कि राजाने उन्हें प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया और चित्तमें जो मनोमालिन्य था, वह सब निकाल दिया। फिर महाराज पृथुने भगवान्का पूजन किया और क्षण-क्षणमें उमड़ते हुए भक्तिभावमें निमग्न होकर प्रभुके चरणकमल पकड़ लिये। विश्वात्मा श्रीहरि वहाँसे जाना चाहते थे; किन्तु पृथुके प्रति जो उनका वात्सल्यभाव था, उसने उन्हें रोक रक्खा था। वे तो साधुजनोंके परम सुहृद् हैं, इसलिये अपने कमलदलके समान नेत्रोंसे उनकी ओर देखते ही रह गये, वहाँसे जा न सके। आदिराज महाराज पृथु भी नेत्रोंमें जल भर आनेके कारण न तो भगवान्का दर्शन ही कर सके और न तो कण्ठ गद्गद हो जानेसे कुछ बोल ही सके। बस, उन्हें हृदयसे आलिङ्गन कर पकड़े रहे और हाथ जोड़े ज्यों-के-त्यों खड़े रह गये। प्रभु अपने चरणकमलोंसे पृथ्वीको स्पर्श किये खड़े थे; उनका करकमल गरुडजीके ऊँचे कंधेपर रक्खा हुआ था। महाराज पृथु नेत्रोंके आँसू पोंछकर अतृप्त दृष्टिसे उनकी ओर देखते हुए इस प्रकार कहने लगे॥ १७—२२॥

महाराज पृथु बोले—मोक्षपति प्रभो! आप वर देनेवाले ब्रह्मादि देवताओंको भी वर देनेमें समर्थ हैं। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष आपसे देहाभिमानियोंके भोग्य विषयोंको कैसे माँग सकता है? वे तो नारकी जीवोंको भी मिलते ही हैं। अतः मैं इन तुच्छ विषयोंको आपसे नहीं माँगता; मुझे तो उस मोक्षपदकी भी इच्छा नहीं है, जिसमें महापुरुषोंके हृदयसे उनके मुखद्वारा निकली हुई आपके चरणकमल-मकरन्दकी कीर्ति सुननेको नहीं मिलती। इसलिये मेरी तो यही प्रार्थना है कि आप मुझे दस हजार कान दे दीजिये, जिनसे मैं आपके लीलागुणोंको सुनता ही रहूँ। पुण्यकीर्ति प्रभो! आपके चरणकमल-मकरन्दरूपी अमृत-कणोंको लेकर महापुरुषोंके मुखसे जो हवा निकलती है, उसीमें इतनी शक्ति होती है कि वह तत्त्वको भूले हुए कुयोगियोंको पुनः तत्त्वज्ञान करा देती है। अतएव मुझे तो बस, यही वर दीजिये, इसके सिवा मुझे और कुछ नहीं चाहिये। सत्कीर्ते! आपके मङ्गलमय सुयशको दैववश एक बार भी साधु-समाजमें सुन लेनेपर कोई पशु-बुद्धि पुरुष भले ही तृप्त हो जाय; जो गुणग्राही है, वह तो कैसे उसे छोड़ सकता है। सब प्रकारके पुरुषार्थोंकी सिद्धिके लिये स्वयं लक्ष्मीजी भी आपके सुयशको सुनना चाहती हैं। अब लक्ष्मीजीके समान मैं भी अत्यन्त उत्सुकतासे आप सर्वगुणधाम पुरुषोत्तमकी सेवा ही करना चाहता हूँ। किन्तु ऐसा न हो कि एक ही पतिकी सेवा प्राप्त करनेकी होड़ होनेके कारण आपके चरणोंमें ही मनोनिवेश करनेवाले हम दोनोंमें (लक्ष्मीजीमें और मुझमें) कलह छिड़ जाय। जगदीश्वर! अब जगज्जननी लक्ष्मीजीसे तो मेरा झगड़ा होना ही है; क्योंकि जिस आपके सेवाकार्यमें उनका अनुराग है, उसीके लिये मैं भी लालायित हूँ। किन्तु आप दीनोंपर प्रेम करते हैं, उनके तुच्छ कर्मोंको भी बहुत करके मानते हैं। इसलिये मुझे आशा है कि हमारे झगड़ेमें भी आप मेरा ही पक्ष लेंगे। आप तो अपने स्वरूपमें ही रमण करते हैं; आपको भला, लक्ष्मीजीसे भी क्या लेना है। इसीसे निष्काम महात्मा ज्ञान हो जानेके बाद भी आपका भजन करते हैं। आपमें मायाके कार्य अहङ्कारादिका सर्वथा अभाव है। भगवन्! मुझे तो आपके चरणकमलोंका निरन्तर चिन्तन करनेके सिवा सत्पुरुषोंका कोई और प्रयोजन ही नहीं जान पड़ता। मैं भी आपका भजन ही करना चाहता हूँ। आपने जो मुझसे कहा कि 'वर

होता है। और इससे भी अधिक पुण्य होनेपर वह मुझे प्राप्त होता है। परन्तु जो भगवान्‌का अनन्य भक्त है वह तो मृत्युके बाद ही सीधे भगवान् विष्णुके उस सर्वप्रपञ्चातीत परमपदको प्राप्त हो जाता है, जिसे रुद्ररूपमें स्थित मैं तथा अन्य आधिकारिक देवता अपने अपने अधिकारकी समाप्तिके बाद प्राप्त करेंगे। तुमलोग भगवद्भक्त होनेके नाते मुझे भगवान्‌के समान ही प्यारे हो। इसी प्रकार भगवान्‌के भक्तोंको भी मुझसे बढ़कर और कोई प्रिय नहीं होता। अब मैं तुम्हे एक बड़ा ही पवित्र, मङ्गलमय और कल्याणकारी स्तोत्र सुनाता हूँ। इसका तुमलोग शुद्धभावसे जप करना ॥ २७–३१ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—तब नारायणपरायण करुणार्द्र-चित्त भगवान् शिवने अपने सामने हाथ जोड़े खड़े हुए उन राजपुत्रोको यह स्तोत्र सुनाया ॥ ३२ ॥

भगवान् रुद्र स्तुति करने लगे—भगवन्! आपका उत्कर्ष उच्चकोटिके आत्मज्ञानियोंके कल्याणके लिये—निजानन्द लाभके लिये है, उससे मेरा भी कल्याण हो। आप सर्वदा अपने निरतिशय परमानन्दस्वरूपमें ही स्थित रहते हैं, ऐसे सर्वात्मक आत्मस्वरूप आपको नमस्कार है। आप पद्मनाभ (समस्त लोकोंके आदि कारण) हैं; भूतसूक्ष्म (तन्मात्र) और इन्द्रियोंके नियन्ता, शान्त, एकरस और स्वयप्रकाश वासुदेव (चित्तके अधिष्ठाता) भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है। आप ही सूक्ष्म (अव्यक्त), अनन्त और मुखाग्निके द्वारा सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेवाले अहङ्कारके अधिष्ठाता सङ्कर्षण तथा जगत्‌के प्रकृष्ट ज्ञानके उद्गमस्थान बुद्धिके अधिष्ठाता प्रद्युम्न हैं, आपको नमस्कार है। आप ही इन्द्रियोंके स्वामी मनस्तत्त्वके अधिष्ठाता भगवान् अनिरुद्ध हैं; आपको नमस्कार है। आप अपने तेजसे जगत्‌को व्याप्त करनेवाले सूर्यदेव हैं, पूर्ण होनेके कारण आपमें वृद्धि और क्षय नहीं होता, आपको नमस्कार है। आप स्वर्ग और मोक्षके द्वार तथा निरन्तर पवित्र हृदयमें रहनेवाले हैं। आप ही सुवर्णरूप वीर्यसे युक्त और चातुर्होत्र कर्मके साधन तथा विस्तार करने वाले अग्निदेव है; आपको नमस्कार है। आप पितर और देवताओंके पोषक सोम हैं, तथा तीनों वेदोंके अधिष्ठाता हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं। आप ही समस्त प्राणियोंको तृप्त करनेवाले सर्वरस (जल)रूप हैं; आपको नमस्कार है। आप समस्त प्राणियोंके देह, पृथ्वी और विराट्स्वरूप हैं तथा त्रिलोकीकी रक्षा करनेवाले मानसिक, ऐन्द्रियिक और शारीरिक शक्तिस्वरूप वायु (प्राण) हैं; आपको नमस्कार है। आप ही अपने गुणशब्दके द्वारा समस्त पदार्थोंका ज्ञान करानेवाले तथा बाहर भीतरका भेद करनेवाले आकाश हैं तथा आप ही महान् पुण्योंसे प्राप्त होनेवाले परम तेजोमय स्वर्ग-वैकुण्ठादि लोक हैं; आपको नमस्कार है। आप पितृलोककी प्राप्ति करानेवाले प्रवृत्तिकर्मरूप और देवलोककी प्राप्तिके साधन निवृत्तिकर्मरूप हैं तथा आप ही अधर्मके फलरूप दुःखदायक मृत्यु हैं; आपको नमस्कार है। नाथ! आप ही पुराणपुरुष तथा सांख्य और योगके अधीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हैं; आप सब प्रकारकी कामनाओंकी पूर्तिके कारण, साक्षात् मन्त्रमूर्ति और महान् धर्मस्वरूप हैं; आपकी ज्ञानशक्ति किसी भी प्रकार कुण्ठित होनेवाली नहीं है; आपको नमस्कार है। आप ही कर्ता, करण और कर्म—तीनों शक्तियोंके एकमात्र आश्रय हैं, आप ही अहङ्कारके अधिष्ठाता रुद्र हैं, आप ही ज्ञान और क्रियास्वरूप हैं तथा आपहीसे परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी—चार प्रकारकी वाणीकी अभिव्यक्ति होती है; आपको नमस्कार है ॥ ३३–४३ ॥

प्रभो! हमें आपके दर्शनोंकी अभिलाषा है; अतः आपके भक्तजन जिसका पूजन करते हैं और जो आपके निजजनोंको अत्यन्त प्रिय है, अपने उस अनूप रूपकी आप हमें झाँकी कराइये। आपका वह रूप अपने गुणोंसे समस्त इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाला है। वह वर्षाऋतुके मनोहर मेघोंके समान श्यामवर्ण और सम्पूर्ण सौन्दर्यकी खान है। उसमें अति सुन्दर चार विशाल भुजाएँ, महामनोहर मुखारविन्द, कमल कोशकी पँखुड़ियोंके समान विशाल नेत्र, सुन्दर भौंहें, सुघड़ नासिका, मनमोहिनी दन्तपंक्ति, अमोल-कपोलयुक्त मनोहर मुखमण्डल और शोभाशाली समान कर्णपुट सुशोभित हैं। प्रेममयी मुसकान, मनोहर कटाक्षभंगी, काली काली घुँघराली अलकें, कमलकुसुमकी केसरके समान पीत वस्त्र, उज्ज्वल कुण्डल, चमचमाते हुए मुकुट, कङ्कण, हार, नूपुर और मेखला आदि विचित्र आभूषण तथा शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, वनमाला और कौस्तुभमणिके कारण उसकी अपूर्व शोभा है। उसके सिंहके समान स्थूल कंधे हैं—जिनपर हार, केयूर एवं कुण्डलादि-की कान्ति झिलमिलाती रहती है—तथा कौस्तुभमणिकी कान्तिसे सुशोभित मनोहर ग्रीवा है। उसका श्यामल वक्षःस्थल श्रीवत्स चिह्नके रूपमे लक्ष्मीजीका नित्य निवास होनेके कारण कसौटीकी शोभाको भी मात करता है। उसका त्रिवलीसे सुशोभित, पीपलके पत्तेके समान सुडौल उदर श्वासके आने-जानेसे हिलता हुआ बड़ा ही मनोहर जान पड़ता है। उसमें जो

पुण्यकर्मोंके क्षयकी इच्छासे प्रारब्धवश प्राप्त हुए भोगोंको भोगने लगे। ब्राह्मणवंश और भगवान्‌के कुटुम्बी विष्णुभक्तोंको छोड़कर उनका सातों द्वीपोंके सभी पुरुषोंपर अखण्ड एवं अबाध शासन था। एक बार उन्होंने एक महासत्रकी दीक्षा ली; उस समय वहाँ देवताओं, ब्रह्मर्षियों और राजर्षियोंका बहुत बड़ा समाज एकत्र हुआ। उस समाजमें महाराज पृथुने उन पूजनीय अतिथियोंका यथायोग्य सत्कार किया और फिर उस सभामें, नक्षत्रमण्डलके बीचमें उदित हुए चन्द्रमाके समान खड़े हो गये। उनका शरीर ऊँचा था, भुजाएँ भरी हुई और लंबी-लंबी थीं, शरीरका रंग गोरा था, नेत्र कमलके समान विशाल और अरुणवर्ण थे। तथा नासिका सुघड़, मुख मनोहर, स्वरूप सौम्य, कंधे ऊँचे और दन्तपंक्ति सुन्दर थी जो मुसकराते समय और भी भली मालूम होती थी। उनकी छाती चौड़ी, कमरका पिछला भाग स्थूल और उदर पीपलके पत्तेके समान सुडौल तथा बल पड़े हुए होनेसे और भी सुन्दर जान पड़ता था। नाभि भँवरके समान गम्भीर थी, शरीर तेजस्वी था, जङ्घाएँ सुवर्णके समान देदीप्यमान थीं तथा पैरोंके पंजे उभरे हुए थे। उनके बाल बारीक, घुँघराले, काले और चमकीले थे; गरदन शङ्खके समान उतार-चढ़ाववाली तथा रेखाओंसे युक्त थी और वे उत्तम बहुमूल्य धोती पहने और वैसी ही चादर ओढ़े थे। दीक्षाके नियमानुसार उन्होंने समस्त आभूषण उतार दिये थे; इसीसे उनके शरीरके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी शोभा अपने स्वाभाविक रूपमें स्पष्ट झलक रही थी। वे शरीरपर कृष्ण-मृगका चर्म और हाथोंमें कुशा धारण किये हुए थे। इससे उनके शरीरकी कान्ति और भी बढ़ गयी थी। वे अपने सारे नित्यकृत्य यथाविधि सम्पन्न कर चुके थे। उनके नेत्रोंकी पुतलियाँ सन्तापको हरनेवाली और स्नेहयुक्त थीं। बस, उन्होंने खड़े होकर एक बार सब ओर दृष्टिपात किया और फिर सारी सभाको हर्षित करते हुए अपना भाषण आरम्भ किया। उनका भाषण कानोंको प्रिय लगनेवाला, विचित्र पदावलीसे युक्त, सुन्दर, शुद्ध, गम्भीर और स्पष्ट था—मानो सबके उपकारके लिये वे अपने अनुभवको ही प्रकट कर रहे थे ॥ ११—२० ॥

राजा पृथुने कहा—सभ्यगण! भगवान् आपका कल्याण करें; आप महानुभाव, जो यहाँ पधारे हैं, मेरी प्रार्थना सुननेकी कृपा करें; मैं आपलोगोंकी सेवामें कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। क्योंकि सत्पुरुषोंके सामने अपना अभिप्राय प्रकट कर देना धर्मजिज्ञासुका प्रधान कर्त्तव्य है। इस लोकमें मुझे प्रजाजनोंका शासन, उनकी रक्षा, उनकी



आजीविकाका प्रबन्ध तथा उन्हें अलग-अलग अपनी मर्यादामें रखनेके लिये राजा बनाया गया है। अतः इनका यथावत् पालन करनेसे मुझे उन्हीं मनोरथ पूर्ण करनेवाले लोकोंकी प्राप्ति होनी चाहिये, जो वेदवादी मुनियोंके मतानुसार सम्पूर्ण कर्मोंके साक्षी श्रीहरिके प्रसन्न होनेपर मिलते हैं। जो राजा प्रजाको धर्ममार्गकी शिक्षा न देकर केवल उससे कर वसूल करनेमें लगा रहता है, वह केवल प्रजाके पापका ही भागी होता है और अपने ऐश्वर्यसे हाथ धो बैठता है। अतः प्रिय प्रजाजन! अपने इस राजाका परलोकमें हित करनेके लिये आपलोग परस्पर दोषदृष्टि छोड़कर हृदयसे भगवान्‌को याद रखते हुए अपने-अपने कर्त्तव्यका पालन करते रहिये। यह मेरे प्रति आपका बड़ा अनुग्रह होगा। विशुद्धचित्त देवता, पितर और महर्षिगण! आप भी मेरी इस प्रार्थनाका अनुमोदन कीजिये। इससे आप भी इस पुण्यके भागी होंगे; क्योंकि कोई भी कर्म हो—मरनेके अनन्तर उसके कर्ता, उपदेष्टा और समर्थकको उसका समान फल मिलता है ॥ २१—२६ ॥

मान्यवरो! श्रेष्ठ महानुभावोंके मतमें तो कर्मोंका फल देनेवाले भगवान् यज्ञपति ही हैं; क्योंकि इहलोक और परलोक दोनों ही जगह कोई-कोई शरीर बड़े तेजोमय देखे जाते हैं। वे किन्हीं-किन्हीं विशेष अधिकारियोंको ही मिलते हैं। अतः इस भोगवैचित्र्यकी व्यवस्थाके लिये कोई नियामक

आप भी प्रत्यक्ष प्रमाणके विषय नहीं हैं, आपके स्वरूपका ज्ञान केवल अनुमानसे ही होता है । भगवन् ! यह मोहग्रस्त जीव प्रमादवश हर समय इसी चिन्तामें रहता है कि 'अमुक कार्य करना है' । इसकी लोलुपता यहाँतक बढ़ गयी है कि इसे निरन्तर विषयोंकी ही लालसा बनी रहती है । किन्तु आप तो सदा ही सजग रहते हैं; बस, भूखसे जीभ लपलपाता हुआ सर्प जैसे चूहेको चट कर जाता है—उसी प्रकार आप उसके कभी पूरे न होनेवाले कार्योंकी कोई चिन्ता न करके अपने कालस्वरूपसे उसे सहसा लील जाते हैं । आपकी अवहेलना करनेके कारण जिसका शरीर कालके भयसे काँप रहा है—ऐसा कौन विद्वान् होगा, जो आपके चरणकमलोंको विसारेगा ? इनकी पूजा तो कालकी आशङ्कासे ही हमारे पिता ब्रह्माजी और स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओंने भी बिना कोई विचार किये केवल श्रद्धासे ही की थी । ब्रह्मन् ! इस प्रकार सारा जगत् रुद्ररूप कालके भयसे व्याकुल है । अतः परमात्मन् ! इस तत्त्वको जाननेवाले हमलोगोंके तो इस समय आप ही सर्वथा भयशून्य आश्रय हैं ॥ ६५–६८ ॥

राजकुमारो ! तुमलोग विशुद्ध भावसे स्वधर्मका आचरण करते हुए भगवान्में चित्त लगाकर मेरे कहे हुए इस स्तोत्रका जप करते रहो; भगवान् तुम्हारा मङ्गल करेंगे । तुमलोग निरन्तर श्रीहरिका ही स्तवन और चिन्तन करते हुए अपने अन्तःकरणमें स्थित उन सर्वभूतान्तर्यामी परमात्माका ही पूजन करो । मैंने तुम्हें यह योगादेश नामका स्तोत्र सुनाया है । तुमलोग इसे मनसे धारणकर मुनिव्रतका आचरण करते हुए इसका एकाग्रतासे आदरपूर्वक जप करो । यह स्तोत्र पूर्वकालमें जगद्विस्तारके इच्छुक प्रजापतियोंके पति भगवान् ब्रह्माजीने प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छावाले हम भृगु आदि अपने पुत्रोंको सुनाया था । जब हम प्रजापतियोंको प्रजाका विस्तार करनेकी आज्ञा हुई, तो इसीके द्वारा हमने अपना अज्ञान निवृत्त करके अनेक प्रकारकी प्रजा उत्पन्न की थी । अब भी जो भगवत्परायण पुरुष इसका एकाग्र चित्तसे नित्यप्रति जप करेगा, उसका शीघ्र ही कल्याण हो जायगा । इस लोकमें सब प्रकारके कल्याणसाधनोंमें मोक्षदायक ज्ञान ही सबसे श्रेष्ठ है । जो पुरुष ज्ञान नौकापर चढ़ चुका है, वह अनायास ही इस दुस्तर संसारसागरको पार कर लेगा । यद्यपि भगवान्की आराधना बहुत कठिन है—किन्तु मेरे कहे हुए इस स्तोत्रका जो श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा, वह सुगमतासे ही उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेगा । भगवान् ही सम्पूर्ण कल्याणोंके एकमात्र आश्रय हैं । अतः मेरे गाये हुए इस स्तोत्रके गानसे उन्हें प्रसन्न करके वह उनसे जो कुछ चाहेगा, तत्काल प्राप्त कर लेगा । जो पुरुष उषाकालमें उठकर इसे श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर सुनता या सुनाता है, वह सब प्रकारके कर्मबन्धनोंसे मुक्त हो जाता है । अतः राजपुत्रो ! मैंने तुम्हें जो यह परमपुरुष परमात्माका स्तोत्र सुनाया है, इसे एकाग्र चित्तसे जपते हुए तुम घोर तपस्या करो । बस, तपस्या समाप्त होनेपर इसीसे तुम्हें अभीष्ट फल प्राप्त हो जायगा ॥ ६९–७९ ॥

पचीसवाँ अध्याय

पुरञ्जनोपाख्यानका प्रारम्भ

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी ! इस प्रकार भगवान् शङ्करने प्रचेताओंको उपदेश दिया । फिर प्रचेताओं ने शङ्करजीकी बड़े भक्तिभावसे पूजा की । इसके पश्चात् वे उन राजकुमारोंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये । अब सब-के-सब प्रचेता जलमें खड़े रहकर भगवान् रुद्रके बताये स्तोत्रका जप करते हुए दस हजार वर्षतक तपस्या करते रहे । इन दिनों राजा प्राचीनबर्हिका चित्त कर्मकाण्डमें बहुत रम गया था । उन्हें आत्मतत्त्वको जाननेवाले परम कृपालु नारदजीने अध्यात्मविद्याका उपदेश दिया । उन्होंने बतलाया कि 'राजन् ! इन कर्मोंके द्वारा तुम अपना कौन-सा कल्याण करना चाहते हो ? जिससे दुःखका आत्यन्तिक नाश और सुखकी प्राप्ति होती है, वह परम कल्याण तो इनसे हो नहीं सकता' ॥ १–४ ॥

राजाने कहा—महाभाग नारदजी ! मेरी बुद्धि तो कर्ममें फँसी हुई है, इसलिये मुझे परम कल्याणका कोई पता नहीं है । आप मुझे विशुद्ध ज्ञानका उपदेश दीजिये, जिससे मैं इस कर्मबन्धनसे छूट जाऊँ । क्योंकि जो पुरुष कपटधर्ममय गृहस्थाश्रममें ही रहता हुआ पुत्र, स्त्री और धनको ही परमपुरुषार्थ मानता है, वह अज्ञानवश संसारारण्य में ही भटकता रहनेके कारण उस परम कल्याणको प्राप्त नहीं कर सकता ॥ ५ ६ ॥

श्रीनारदजी बोले—देखो, देखो, राजन् ! तुमने यज्ञमें निर्दयतापूर्वक जिन हजारों पशुओंकी बलि दी है—उन्हें आकाशमें देखो । ये सब तुम्हारे द्वारा प्राप्त हुई पीड़ाओंको

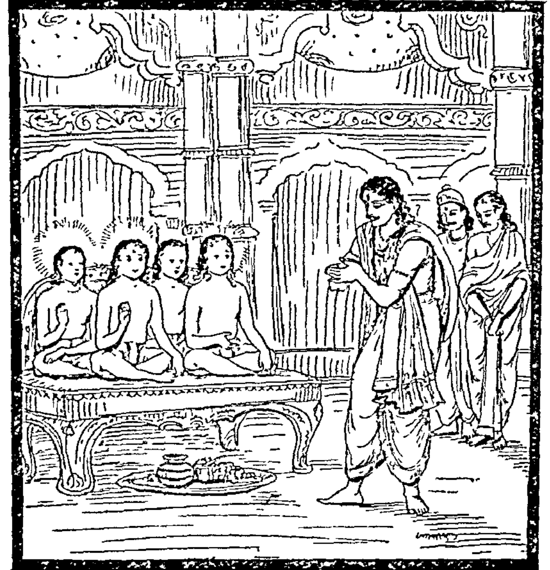
भी भगवान्‌की निन्दा करनेके कारण नरकोंमें गिरनेहीवाला था कि अपने पुत्र प्रह्लादके प्रभावसे उन्हें पार कर गया। वीरवर पृथुजी! आप तो पृथ्वीके पिता ही हैं और सर्वलोकेश्वर श्रीहरिमें भी आपकी ऐसी अविचल भक्ति है; इसलिये आप अनन्त वर्षोंतक जीवित रहें। आपका सुयश बड़ा पवित्र है; आप उदारकीर्ति ब्रह्मण्यदेव श्रीहरिकी कथाओंका प्रचार करते हैं। हमारा बड़ा सौभाग्य है; आज आपको अपने स्वामीके रूपमें पाकर हम अपनेको भगवान्‌के ही राज्यमें समझते हैं। राजन्! अपने आश्रितोंको इस प्रकारका श्रेष्ठ उपदेश देना आपके लिये कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि अपनी प्रजाके ऊपर प्रेम रखना तो करुणामय महापुरुषोंका स्वभाव ही होता है। हमलोग प्रारब्धवश विवेकहीन होकर संसारारण्यमें भटक रहे थे; सो प्रभो! आज आपने हमें इस अज्ञानान्धकारसे पार कर दिया। आप शुद्ध सत्त्वमय परमपुरुष हैं, जो ब्राह्मणजातिमें प्रविष्ट होकर क्षत्रियोंकी और क्षत्रियजातिमें प्रविष्ट होकर ब्राह्मणोंकी तथा दोनों जातियोंमें प्रतिष्ठित होकर सारे जगत्‌की रक्षा करते हैं। हमारा आपको नमस्कार है॥ ४५—५२॥

बाईसवाँ अध्याय

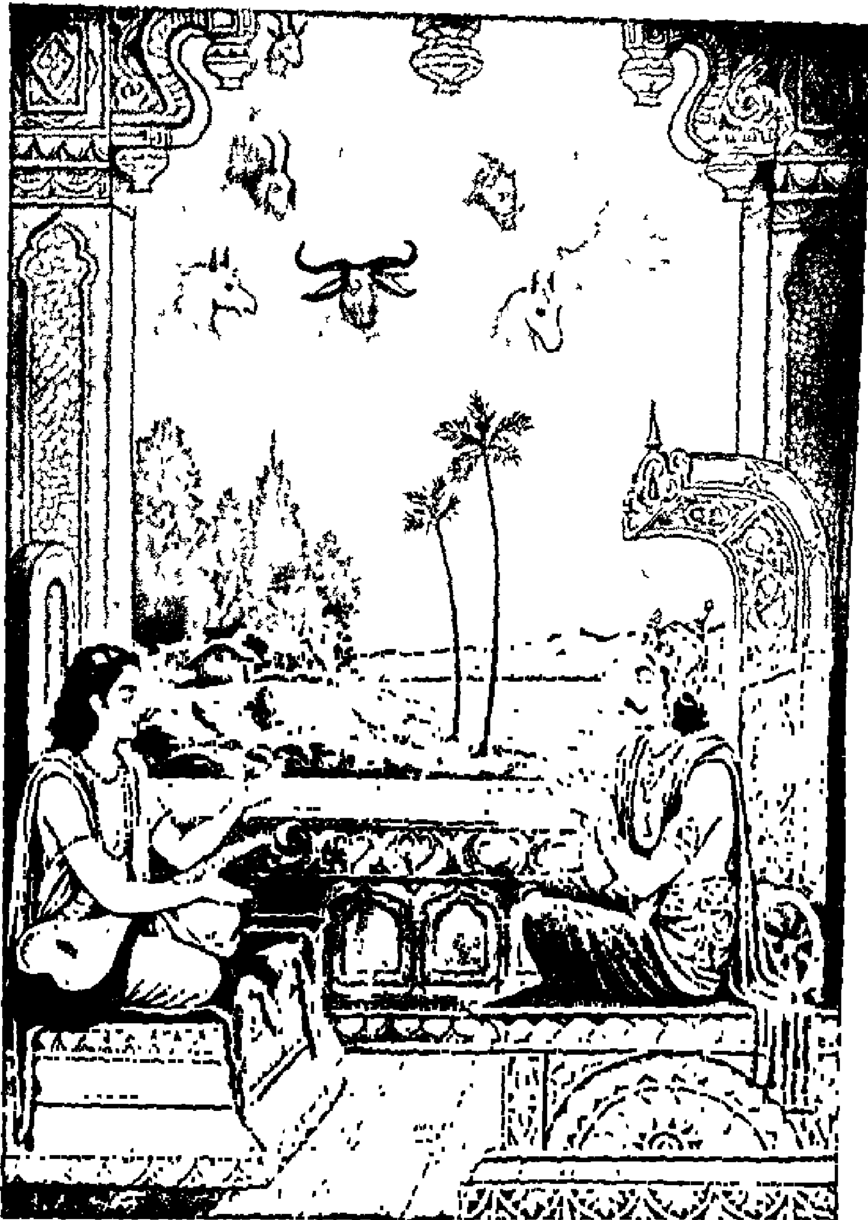
राजा पृथुको सनकादिका उपदेश

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—जिस समय प्रजाजन परमपराक्रमी महाराज पृथुकी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे, उसी समय वहाँ सूर्यके समान तेजस्वी चार मुनीश्वर आये। राजा और उनके अनुचरोंने देखा कि वे सिद्धेश्वरगण आकाशसे उतरकर आये हैं। उनकी दिव्य कान्ति सम्पूर्ण लोकोंको पापनिर्मुक्त कर रही थी। उसे देखकर उन्हें दूरसे ही पहचान लिया गया। उन्हें देखते ही महाराज पृथु सभासदों एवं सेवकोंसहित सहसा उठ खड़े हुए। उस समय राजाके प्राण मुनीश्वरोंकी ओर जानेके लिये इस प्रकार उतावले हो रहे थे, जैसे जीव इन्द्रियोंके विषयोंकी ओर ललककर दौड़ता है। उन्हें रोक रखनेके लिये ही मानो उन्होंने ऐसा किया। जब वे मुनिगण अर्घ्य स्वीकार कर आसनपर विराज गये, तो शिष्टाग्रणी पृथुने उनके गौरवसे प्रभावित हो विनयवश गरदन झुकाये हुए उनकी विधिवत् पूजा की। फिर उनके चरणोदकको अपने सिरके बालोंपर छिड़का। इस प्रकार शिष्टजनोचित आचरण करके उन्होंने यही दिखाया कि सभी सत्पुरुषोंको ऐसा व्यवहार करना चाहिये। समागत सिद्धगण सनकादि मुनीश्वर थे, जो साक्षात् भगवान् शङ्करके भी अग्रज होनेके नाते मान्य थे। सोनेके सिंहासनपर विराजमान वे ऐसे सुशोभित हुए, जैसे अपने-अपने स्थानोंपर अग्निदेवता सुशोभित होते हैं। महाराज पृथुने बड़ी श्रद्धा और सङ्कोचके साथ प्रेमपूर्वक उनसे कहा॥ १—६॥

पृथुजी बोले—मङ्गलमूर्ति मुनीश्वरो! आपके दर्शन तो योगियोंको भी दुर्लभ हैं; मुझसे ऐसा क्या पुण्य बना है जो आपने स्वयं ही यहाँ पधारनेकी कृपा की? सच है, यह सब विप्रवंशकी कृपा है। भला, जिसपर ब्राह्मण अथवा अनुचरोंके सहित श्रीशङ्कर या विष्णुभगवान् प्रसन्न हों, उसके लिये इहलोक और परलोकमें कौन-सी वस्तु दुर्लभ है? इस



दृश्य-प्रपञ्चके कारण महत्तत्त्वादि यद्यपि सर्वगत हैं, तो भी वे सर्वसाक्षी आत्माको नहीं देख सकते; इसी प्रकार यद्यपि आप समस्त लोकोंमें विचरते रहते हैं, तो भी अनधिकारीलोग आपको देख नहीं पाते। जिनके घरोंमें आप-जैसे पूज्य पुरुष उनके जल, तृण, पृथ्वी, गृहस्वामी अथवा सेवकादि किसी अन्य पदार्थको स्वीकार कर लेते हैं, वे गृहस्थ तो धनहीन होनेपर भी बड़े ही भाग्यशाली हैं। जिन घरोंमें कभी भगवद्भक्तोंके परमपवित्र चरणोदकके छींटे नहीं पड़े, वे सब प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियोंसे भरे होनेपर भी ऐसे वृक्षोंके समान



राजा प्राचीनबर्हिको नारदजीका उपदेश

बुद्धिकी विचारशक्तिको क्रमशः हर लेता है। विचारशक्तिके नष्ट हो जानेपर पूर्वापरकी स्मृति जाती रहती है और स्मृतिका नाश हो जानेपर ज्ञान नहीं रहता। इस ज्ञानके नाशको ही पण्डितजन 'अपने-आप अपना नाश करना' कहते हैं। जिसके उद्देश्यसे अन्य सब पदार्थोंमें प्रियताका बोध होता है—उस आत्माका अपनेद्वारा ही नाश होनेसे जो स्वार्थहानि होती है, उससे बढ़कर लोकमें जीवकी और कोई हानि नहीं है॥२८–३२॥

धन और इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करनेसे मनुष्यके सभी पुरुषार्थ नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि इनकी चिन्तासे वह ज्ञान और विज्ञानसे भ्रष्ट होकर वृक्षादि स्थावर योनियोंमें जन्म पाता है। इसलिये जिसे अज्ञानान्धकारसे पार होनेकी इच्छा हो, उस पुरुषको विषयोंका सङ्ग कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिमें बड़ा बाधक है। इन चार पुरुषार्थोंमें भी सबसे श्रेष्ठ तो मोक्ष ही माना जाता है; क्योंकि अन्य तीन पुरुषार्थोंमें सर्वदा कालका भय लगा रहता है। प्रकृतिमें गुणक्षोभ होनेके बाद जितने भी उत्तम और अधम भाव—पदार्थ प्रकट हुए हैं, उनमें कुशलसे रह सके ऐसा कोई भी नहीं है। कालभगवान् उन सभीके कुशलोंको कुचलते रहते हैं॥ ३३–३६॥

अतः राजन्! जो श्रीभगवान् देह, इन्द्रिय, प्राण, बुद्धि और अहङ्कारसे आवृत सभी स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके हृदयोंमें जीवके नियामकरूपसे अन्तर्मुखतया सर्वत्र साक्षात् प्रकाशित हो रहे हैं—उन्हें तुम 'वह मैं ही हूँ' ऐसा जानो। जिस प्रकार मालाका ज्ञान हो जानेपर उसमें सर्पबुद्धि नहीं रहती, उसी प्रकार विवेक होनेपर जिसका कहीं खोज भी नहीं मिलता—ऐसा यह मायामय प्रपञ्च जिसमें कार्य-कारणरूपसे प्रतीत हो रहा है और जो स्वयं कर्ममलकलुषित प्रकृतिसे परे है, उस नित्यमुक्त, निर्मल और ज्ञानस्वरूप परमात्माकी मैं शरणमें हूँ—ऐसी भावना करो। अहङ्काररूप हृदयकी गाँठको काटनेका भी सबसे सुगम उपाय प्रभुके चरणकमलोंकी भक्ति ही है। विषय-विरत योगिजन अपनी इन्द्रियोंका संयम करके भी उसका छेदन कर तो सकते हैं, किन्तु यह बात उतनी सहज उनके लिये भी नहीं है। अतः जिनके चरणकमलदलकी कान्तिके स्मरणमात्रसे भक्तजन उसे सहजहीमें काट डालते हैं, उन शरणागतवत्सल श्रीवासुदेवका ही तुम भजन करो। जो लोग मन और इन्द्रियरूप घड़ियालोंसे भरे हुए इस संसारसागरको योगादि दुष्कर साधनोंसे पार करना चाहते हैं, उनका उस पार पहुँचना कठिन ही है; क्योंकि उन्हें कर्णधाररूप श्रीहरिका आश्रय नहीं है। अतः तुम तो भगवान्के आराधनीय चरणकमलोंको नौका बनाकर अनायास ही इस दुस्तर समुद्रको पार कर लो॥ ३७–४०॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! ब्रह्माजीके पुत्र आत्मज्ञानी सनत्कुमारजीसे इस प्रकार आत्मतत्त्वका उपदेश पाकर महाराज पृथुने उनकी बहुत प्रशंसा करते हुए कहा॥४१॥

राजा पृथु बोले—भगवन्! दीनबन्धु श्रीहरिने मुझपर पहले कृपा की थी, उसीको पूर्ण करनेके लिये आपलोग पधारे हैं। आपलोग बड़े ही दयालु हैं, जिस कार्यके लिये आपलोग पधारे थे, उसे आपलोगोंने अच्छी तरह सम्पन्न कर दिया। अब, इसके बदलेमें मैं आपलोगोंको क्या दूँ? मेरे पास तो शरीर और इसके साथ जो कुछ है, वह सब महापुरुषोंका ही प्रसाद है। ब्रह्मन्! प्राण, स्त्री, पुत्र, सब प्रकारकी सामग्रियोंसे भरा हुआ भवन, राज्य, सेना, पृथ्वी और कोश—यह सब कुछ आप ही लोगोंका है, अतः आपहीके श्रीचरणोंमें अर्पित है। वास्तवमें तो सेनापतित्व, राज्य, दण्डविधान और सम्पूर्ण लोकोंके शासनका अधिकार वेद-शास्त्रोंके ज्ञाता ब्राह्मणको ही है। उसे कोई क्या देगा? वह तो अपने ही पदार्थोंको खाता है, अपने ही वस्त्र पहनता है और अपनी ही वस्तु दान देता है। दूसरे—क्षत्रिय आदिको तो उसीकी कृपासे अन्न खानेको मिलता है। आपलोग वेदके पारगामी हैं, आपने अध्यात्म-तत्त्वका विचार करके हमें निश्चितरूपसे समझा दिया है कि भगवान्के प्रति इस प्रकारकी अभेद-भक्ति ही उनकी उपलब्धिका प्रधान साधन है। आपकी इस अतुलित अनुकम्पाके लिये हम आपकी क्या सेवा करें? आपलोग परम कृपालु हैं, अतः अपने इस दीनोद्धाररूप कर्मसे ही सर्वदा सन्तुष्ट रहें। सिवा हाथ जोड़नेके आपके इस उपकारका बदला तो कोई क्या दे सकता है? उसके लिये तो प्रयत्न करना भी अपनी हँसी कराना ही है॥ ४२–४७॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! फिर आदिराज पृथुने आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ सनकादिकी पूजा की और वे उनके शीलकी प्रशंसा करते हुए सब लोगोंके देखते-देखते आकाश-मार्गसे चले गये। तबसे महात्माओंमें अग्रगण्य महाराज पृथु उनसे आत्मोपदेश पाकर चित्तकी एकाग्रतासे आत्मामें ही स्थित रहनेके कारण अपनेको कृतकृत्य-सा अनुभव करने लगे। वे देश, काल, शक्ति और आयके अनुसार सभी कर्म ब्रह्मार्पण-बुद्धिसे यथोचित रीतिसे करते थे। इस प्रकार एकाग्र चित्तसे

कटाक्षोंने मेरे मनको बेकाबू कर दिया है। तुम्हारी लजीली और रतिभावसे भरी मुसकानके साथ भौंहोंके इशारे पाकर यह कामदेव मुझे पीड़ित कर रहा है। इसलिये सुन्दरि! अब तुम्हें मुझपर कृपा करनी चाहिये। शुचिस्मिते! सुन्दर भौंहें और सुघड़ नेत्रोंसे सुशोभित तुम्हारा मुखारविन्द इन लंबी-लंबी काली अलकावलियोंसे घिरा हुआ है, तुम्हारे मुखसे निकले हुए वाक्य बड़े ही मीठे और मन हरनेवाले हैं, परन्तु वह तो लाजके मारे मेरी ओर होता ही नहीं। जरा ऊँचा करके अपने उस सुन्दर मुखड़ेके मुझे दर्शन तो कराओ ॥२५–३१॥

श्रीनारदजी बोले—वीरवर! जब राजा पुरञ्जनने अधीर-से होकर इस प्रकार याचना की, तो उस बालाने भी हँसते हुए उसका अनुमोदन किया। वह भी राजाको देखकर मोहित हो चुकी थी। वह कहने लगी, 'नरश्रेष्ठ! हमें अपने उत्पन्न करनेवालेका ठीक-ठीक पता नहीं है और न हम अपने या किसी दूसरेके नाम या गोत्रको ही जानती हैं। वीरवर! आज हम सब इस पुरीमें हैं—इसके सिवा मैं और कुछ नहीं जानती, मुझे इसका भी पता नहीं है कि हमारे रहनेके लिये यह पुरी किसने बनायी है। प्रियवर! ये पुरुष मेरे सखा और स्त्रियाँ मेरी सहेलियाँ हैं तथा जिस समय मैं सो जाती हूँ, यह सर्प जागता हुआ इस पुरीकी रक्षा करता रहता है। शत्रुदमन! आप भले आये, आपका मङ्गल हो। आपको विषय-भोगोंकी इच्छा है, उसकी पूर्तिके लिये मैं और मेरे ये साथी सभी प्रकारके भोग प्रस्तुत करते रहेंगे। प्रभो! इस नौ द्वारोंवाली पुरीमें मेरे प्रस्तुत किये हुए इच्छित भोगोंको भोगते हुए आप सौ वर्षतक निवास कीजिये। भला, आपको छोड़कर मैं और किस नर-पशुके साथ रमण करूँगी? दूसरे लोग (ब्रह्मचारी और सन्यासी आदि) तो न रति-सुखको जानते हैं न विहित भोगोंको ही भोगते हैं, न परलोकका ही विचार करते हैं और न कल क्या होगा—इसका ही ध्यान रखते हैं। अहो! इस लोकमें गृहस्थाश्रममें ही धर्म, अर्थ, काम, सन्तान-सुख, मोक्ष, सुयश और स्वर्गादि दिव्य लोकोंकी प्राप्ति हो सकती है। संसारत्यागी यतिजन तो इन सबकी कल्पना भी नहीं कर सकते। महापुरुषोंका कथन है कि इस लोकमें पितर, देव, ऋषि, मनुष्य तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके और अपने भी कल्याणका आश्रय एकमात्र गृहस्थाश्रम ही है। वीर शिरोमणे! लोकमें मेरी जैसी कौन स्त्री होगी, जो स्वयं प्राप्त हुए आप जैसे सुप्रसिद्ध, उदारचित्त और सुन्दर पतिको वरण न करेगी? महाबाहो! इस पृथ्वीपर आपकी साँप-जैसी गोलाकार सुकोमल भुजाओंमें स्थान पानेके लिये किस कामिनीका चित्त न ललचावेगा? आप तो अपनी मधुर मुसकानमयी करुणापूर्ण दृष्टिसे हम-जैसी अनाथाओंके मानसिक सन्तापको शान्त करनेके लिये ही पृथ्वीमें विचर रहे हैं' ॥३२–४२॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! उन स्त्री-पुरुषोंने इस प्रकार एक दूसरेकी बातका समर्थन कर फिर सौ वर्ष तक उस पुरीमें रहकर आनन्द भोगा। गायकलोग सुमधुर स्वरमें जहाँ-तहाँ राजा पुरञ्जनकी कीर्ति गाया करते थे। जब ग्रीष्मऋतु आती तो वह अनेकों स्त्रियोंके साथ सरोवरमें घुसकर जलक्रीडा करता। राजन्! उस नगरमें जो नौ द्वार थे, उनमेंसे सात नगरीके ऊपर और दो नीचे थे। उस नगरका जो कोई राजा होता, उसके पृथक्-पृथक् देशोंमें जानेके लिये ये द्वार बनाये गये थे। इनमेंसे पाँच पूर्वकी ओर, एक दक्षिणकी ओर, एक उत्तरकी ओर और दो पश्चिमकी ओर थे। उनके नाम इस प्रकार थे। पूर्वकी ओर खद्योता और आविर्मुखी नामके दो द्वार एक ही जगह बनाये गये थे। उनमें होकर राजा पुरञ्जन अपने मित्र द्युमान्‌के साथ विभ्राजित नामक देशको जाया करता था। इसी प्रकार उस ओर नलिनी और नालिनी नामके दो द्वार और भी एक ही जगह बनाये गये थे। उनसे होकर वह अवधूतके साथ सौरभ नामक देशको जाता था। मुख्या नामका जो पाँचवाँ द्वार था, उसमें होकर वह रसज्ञ और विपणके साथ क्रमशः बहूदन और आपण नामके देशोंको जाता था। पुरीके दक्षिणकी ओर जो पितृहू नामका द्वार था, उसमें होकर राजा पुरञ्जन श्रुतधरके साथ दक्षिणपाञ्चाल देशको जाता था और उत्तरकी ओर जो देवहू नामका द्वार था, उससे श्रुतधरके ही साथ वह उत्तरपाञ्चाल देशको जाता था। पश्चिम दिशामें आसुरी नामका दरवाजा था, उसमें होकर वह दुर्मदके साथ ग्रामक देशको जाता था। तथा निर्ऋति नामका जो दूसरा पश्चिम द्वार था, उससे लुब्धकके साथ वह वैशस नामके देशको जाता था। इस नगरके निवासियोंमें निर्वाक् और पेशस्कृत्—ये दो नागरिक अंधे थे। राजा पुरञ्जन आँखवाले नागरिकोंका अधिपति होनेपर भी इन्हींकी सहायतासे जहाँ-तहाँ जाता और सब प्रकारके कार्य करता था ॥४३–५४॥

राजा पुरञ्जन जब कभी अपने प्रधान सेवक विषूचीनके

अपने अधीन किया। इस क्रमसे उनकी तपस्या बहुत पुष्ट हो गयी और उसके प्रभावसे कर्ममल नष्ट हो जानेके कारण उनका चित्त सर्वथा शुद्ध हो गया। प्राणायामोंके द्वारा मन और इन्द्रियोंके निरुद्ध हो जानेसे उनका वासनाजनित बन्धन भी कट गया। तब, भगवान् सनत्कुमारने उन्हें जिस परमोत्कृष्ट अध्यात्मयोगकी शिक्षा दी थी, उसीके अनुसार राजा पृथु पुरुषोत्तम श्रीहरिकी आराधना करने लगे। इस तरह भगवत्परायण होकर श्रद्धापूर्वक सदाचारका पालन करते हुए निरन्तर साधन करनेसे परब्रह्म परमात्मामें उनकी अनन्य भक्ति हो गयी ॥ १—१० ॥

इस प्रकार भगवदुपासनासे अन्तःकरण शुद्ध—सात्त्विक हो जानेपर निरन्तर भगवच्चिन्तनके प्रभावसे प्राप्त हुई इस अनन्य भक्तिसे उन्हें वैराग्यसहित ज्ञानकी प्राप्ति हुई और फिर उस तीव्र ज्ञानके द्वारा उन्होंने जीवके उपाधिभूत अहङ्कारको नष्ट कर दिया, जो सब प्रकारके संशय-विपर्ययका आश्रय है। इसके पश्चात् देहात्मबुद्धिकी निवृत्ति और परमात्मस्वरूप श्रीकृष्णकी अनुभूति होनेपर अन्य सब प्रकारकी सिद्धि आदिसे भी उदासीन हो जानेके कारण उन्होंने उस तत्त्वज्ञानके लिये भी प्रयत्न करना छोड़ दिया, जिसकी सहायतासे पहले अपने जीवकोशका नाश किया था; क्योंकि जबतक साधकको योगमार्गके द्वारा श्रीकृष्णकथामृतमें अनुराग नहीं होता, तबतक केवल योगसाधनासे उसका मोहजनित प्रमाद दूर नहीं होता—भ्रम नहीं मिटता। फिर जब अन्तकाल उपस्थित हुआ तो वीरवर पृथुने अपने चित्तको दृढ़तापूर्वक परमात्मामें स्थिर कर, ब्रह्मभावमें स्थित हो अपना शरीर त्याग दिया। उन्होंने एड़ीसे गुदाके द्वारको रोककर प्राणवायुको धीरे-धीरे मूलाधारसे ऊपरकी ओर उठाते हुए उसे क्रमशः नाभि, हृदय, वक्षःस्थल, कण्ठ और मस्तकमें स्थित किया। फिर उसे और ऊपरकी ओर ले जाते हुए क्रमशः ब्रह्मरन्ध्रमें स्थिर किया। अब उन्हें किसी प्रकारके सांसारिक भोगोंकी लालसा नहीं रही। फिर यथास्थान विभाग करके प्राणवायुको समष्टि वायुमें, पार्थिव शरीरको पृथ्वीमें, शरीरके तेजको समष्टि तेजमें, हृदयाकाशादि देहावच्छिन्न आकाशको महाकाशमें और शरीरगत रुधिरादि जलीय अंशको समष्टि जलमें लीन किया। इसी प्रकार फिर पृथ्वीको जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें और वायुको आकाशमें लीन किया। तदनन्तर मनको [सविकल्प ज्ञानमें जिनके अधीन वह रहता है, उन] इन्द्रियोंमें, इन्द्रियोंको उनके कारणरूप तन्मात्राओंमें और सूक्ष्मभूतों (तन्मात्राओं) के कारण अहङ्कारके द्वारा आकाश, इन्द्रिय और तन्मात्राओंको उसी अहङ्कारमें लीन कर, अहङ्कारको महत्तत्त्वमें लीन किया। फिर सम्पूर्ण गुणोंकी अभिव्यक्ति करनेवाले उस महत्तत्त्वको मायोपाधिक जीवमें स्थित किया। तदनन्तर उस मायारूप जीवकी उपाधिको भी उन्होंने ज्ञान और वैराग्यके प्रभावसे अपने शुद्ध ब्रह्मस्वरूपमें स्थित होकर त्याग दिया ॥ ११—१८ ॥

महाराज पृथुकी पत्नी महारानी अर्चि भी उनके साथ वनको गयी थीं। वे ऐसी सुकुमारी थीं कि उनके लिये पृथ्वीपर पैर रखना भी कठिन था। फिर भी उन्होंने अपने स्वामीके व्रत और नियमादिका पालन करते हुए उनकी खूब सेवा की और मुनिवृत्तिके अनुसार कन्द-मूल आदिसे निर्वाह किया। इससे यद्यपि वे बहुत दुर्बल हो गयी थीं, तो भी प्रियतमके करस्पर्शसे सम्मानित होकर उसीमें आनन्द माननेके कारण उन्हें किसी प्रकार कष्ट नहीं होता था। अब पृथ्वीके स्वामी और अपने प्रियतम महाराज पृथुकी देहको जीवनके चेतना आदि सभी धर्मोंसे रहित देख उस सतीने कुछ देर विलाप किया। फिर पर्वतके ऊपर चिता बनाकर उसे उस चितापर रख दिया। इसके बाद उस समयके सारे कृत्य कर नदीके जलमें स्नान किया। अपने परम पराक्रमी पतिको जलाञ्जलि दे आकाशस्थित देवताओंकी वन्दना की तथा तीन बार चिताकी परिक्रमा कर पतिदेवके चरणोंका ध्यान करती हुई अग्निमें प्रवेश कर गयीं। परमसाध्वी अर्चिको इस प्रकार अपने पति वीरवर पृथुका अनुगमन करते देख सहस्रों वरदायिनी देवियोंने अपने-अपने पतियोंके साथ उनकी स्तुति की। फिर वहाँ देवताओंके बाजे बजने लगे। उस समय उस मन्दराचलके शिखरपर वे देवाङ्गनाएँ पुष्पोंकी वर्षा करती हुई आपसमें इस प्रकार कहने लगीं ॥ १९—२४ ॥

देवियाँ बोलीं—अहो! यह स्त्री धन्य है! इसने अपने पति राजराजेश्वर पृथुकी मन-वाणी-शरीरसे ठीक उसी प्रकार सेवा की है, जैसे श्रीलक्ष्मीजी यज्ञेश्वर भगवान् विष्णुकी करती हैं। देखो, अपने अचिन्त्य कर्मके प्रभावसे यह सती हमें भी लाँघकर अपने पतिके साथ उच्चतर लोकोंको जा रही है। इस लोकमें कुछ ही दिनोंका जीवन होनेपर भी जो लोग भगवान्के परमपदकी प्राप्ति करानेवाला आत्मज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, उनके लिये संसारमें कौन पदार्थ दुर्लभ है? अतः जो पुरुष बड़ी कठिनतासे भूलोकमें मोक्षका साधनस्वरूप मनुष्य-शरीर पाकर भी विषयोंमें आसक्त रहता है, वह तो आत्मघाती

तो यह घर बिना पहियेके रथके समान हो जाता है; फिर उसमें कौन बुद्धिमान् दीन पुरुषोंके समान ठहरना पसंद करेगा ? अतः बताओ वह सुन्दरी कहाँ है, जो दुःख-समुद्रमें डूबनेपर मेरी विवेक बुद्धिको पद पदपर जाग्रत् करके मुझे उस सङ्कटसे उबार लेती थी ?' ॥ १४-१६ ॥

स्त्रियोंने कहा—नरनाथ ! मालूम नहीं आज आपकी प्रियाने क्या ठानी है । शत्रुदमन ! देखिये, वे बिना बिछौनेके पृथ्वीपर ही पड़ी हुई हैं ॥ १७ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन् ! उस स्त्रीके सङ्गसे राजा पुरञ्जनका विवेक नष्ट हो चुका था; इसलिये अपनी रानीको पृथ्वीपर अस्त-व्यस्त अवस्थामें पड़ी देखकर वह अत्यन्त व्याकुल हो गया । उसने उसे दुःखित हृदयसे मधुर वचनों द्वारा बहुत कुछ समझाया, किन्तु उसे अपनी प्रेयसीके अंदर अपने प्रति प्रणयकोपका कोई चिह्न नहीं दिखायी दिया । वह मनानेमें भी बहुत कुशल था, इसलिये अब पुरञ्जनने उसे धीरे-धीरे मनाना आरम्भ किया । उसने पहले उसके चरण छुए और फिर गोदमें बिठाकर बड़े प्यारसे कहने लगा ॥ १८-२० ॥

पुरञ्जन बोला—सुन्दरि ! वे सेवक तो निश्चय ही बड़े अभागे हैं, जिनके अपराध करनेपर स्वामी उन्हें अपना समझकर शिक्षाके लिये उचित दण्ड नहीं देते । सेवकको दिया हुआ स्वामीका दण्ड तो उसपर बड़ा अनुग्रह ही होता है । जो मूर्ख हैं, उन्हींको क्रोधके कारण अपने हितकारी स्वामीके किये हुए उस उपकारका पता नहीं चलता । शोभनाङ्गि ! तुम तो हमारी मालकिन हो, हम सेवकोंके ऊपर तुम्हारा यह कोप उचित ही है । किन्तु मनस्विनि ! अब यह क्रोध दूर करो और एक बार मुझे प्रणय भार तथा लज्जासे झुका हुआ एवं मधुर मुसकानमयी चितवनसे सुशोभित अपना मनोहर मुखड़ा दिखाओ । अहो ! भ्रमरपङ्क्तिके समान नीली अलकावली, उन्नत नासिका और सुमधुर वाणीके कारण तुम्हारा वह मुखारविन्द कैसा मनोमोहक जान पड़ता है ! वीरपत्नि ! क्या किसी दूसरेने तुम्हारा कोई अपराध किया है ? ऐसी बात हो, तो तुम मुझे अपने उस अपराधीको बस दिखा दो । ब्राह्मणकुलको छोड़कर यदि किसी औरने तुम्हारा अपराध किया हो, तो मैं उसे अभी दण्ड देता हूँ । मुझे तो भगवान्‌के भक्तोंको छोड़कर त्रिलोकीमें अथवा उससे बाहर ऐसा कोई नहीं दिखायी देता जो तुम्हारा अपराध करके निर्भय और आनन्दपूर्वक रह सके । प्रिये ! मैंने आजतक तुम्हारा मुख कभी तिलकहीन, उदास, मुरझाया हुआ, क्रोधके कारण डरावना, कान्तिहीन और स्नेहशून्य नहीं देखा; और न कभी तुम्हारे सुन्दर स्तनोंको ही शोकाश्रुओंसे तर तथा बिम्बाफलसदृश अधरोंको कुङ्कुमरागके समान पानकी लालीसे रहित देखा है । मैं व्यसनवश तुमसे बिना पूछे शिकार खेलने चला गया, इसलिये अवश्य अपराधी हूँ । फिर भी अपना समझकर तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ; कामदेवके विषम बाणोंसे अधीर होकर जो सर्वदा अपने अधीन रहता है, उस अपने प्रिय पतिको उचित कार्यके लिये भला कौन कामिनी स्वीकार नहीं करती ? ॥ २१-२६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

पुरञ्जनपुरीपर चण्डवेगकी चढ़ाई तथा कालकन्याका चरित्र

श्रीनारदजी कहते हैं—महाराज ! इस प्रकार अनेकों हाव-भावोंसे पुरञ्जनको पूरी तरह अपने काबूमें कर वह सुन्दरी उसे आनन्दित करती हुई स्वयं भी आनन्दित हुई । उसने अच्छी तरह स्नान कर अनेक प्रकारके माङ्गलिक शृङ्गार किये तथा भोजनादिसे तृप्त होकर वह राजाके पास आयी । राजाने उस मनोहर मुखवाली राजमहिषीका आदरपूर्वक अभिनन्दन किया । पुरञ्जनीने राजाका आलिङ्गन किया और राजाने उसे गले लगाया । फिर एकान्तमें मनके अनुकूल रहस्यकी बातें करते हुए वह ऐसा मोहित हो गया कि उस कामिनीमें ही चित्त लगा रहनेके कारण उसे दिन-रातके भेदसे निरन्तर बीतते हुए कालकी दुस्तर गतिका भी कुछ पता न चला । मदसे छका हुआ मनस्वी पुरञ्जन अपनी प्रियाकी भुजापर सिर रक्खे महामूल्य शय्यापर पड़ा रहता । उस वीरको तो वह रमणी ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ (जीवनका परम फल) जान पड़ती थी । अज्ञानसे आवृत हो जानेके कारण उसे आत्मा अथवा परमात्माका कोई ज्ञान न रहा ॥ १-४ ॥

राजन् ! इस प्रकार कामातुर चित्तसे उसके साथ विहार करते-करते राजा पुरञ्जनकी जवानी आधे क्षणके समान बीत गयी । प्रजापते ! उस पुरञ्जनीसे राजा पुरञ्जनके ग्यारह सौ पुत्र और एक सौ दस कन्याएँ हुईं, जो सभी माता पिताका सुयश बढ़ानेवाली और सुशीलता-उदारता आदि गुणोंसे

सुसज्जित होकर अग्निकी प्रदक्षिणा कर रही थी, उस समय उस नवोढाको देखकर अग्निदेवके मनमें वैसा ही विकार हो गया था, जैसा कभी सप्तर्षियोंकी भार्या शुकीको देखकर हुआ था। नवविवाहिता शतद्रुतिके नूपुरोंकी झनकार सुनकर ही दिशा-विदिशाओंके देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य और नाग—सभी उसके वशीभूत हो गये थे। उस शतद्रुतिके गर्भसे प्राचीनबर्हिके प्रचेता नामके दस पुत्र हुए। वे सब बड़े ही धर्मज्ञ तथा एक-से नाम और आचरणवाले थे। जब पिताने उन्हें सन्तान उत्पन्न करनेका आदेश दिया, तो उन सबने तपस्या करनेके लिये समुद्रमें प्रवेश किया। वहाँ दस हजार वर्षतक तपस्या करते हुए उन्होंने तपका फल देनेवाले श्रीहरिकी आराधना की। घरसे तपस्या करनेके लिये जाते समय मार्गमें श्रीमहादेवजीने उन्हें दर्शन देकर कृपापूर्वक जिस तत्त्वका उपदेश दिया था, उसीका वे एकाग्रतापूर्वक ध्यान, जप और पूजन करते रहे ॥ ११–१५ ॥

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! प्रचेताओंका श्रीमहादेवजीके साथ मार्गमें किस प्रकार समागम हुआ और उनपर प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने उन्हें क्या उपदेश किया, वह सारयुक्त बात आप कृपा करके मुझसे कहिये। ब्रह्मर्षे! शिवजीके साथ समागम होना तो देहधारियोंके लिये बहुत कठिन है। औरोंकी तो बात ही क्या है—मुनिजन भी सब प्रकारकी आसक्ति छोड़कर उन्हें पानेके लिये उनका निरन्तर ध्यान ही किया करते हैं, किन्तु सहजमें पाते नहीं। यद्यपि भगवान् शङ्कर आत्माराम हैं, उन्हें अपने लिये न कुछ करना है, न पाना, तो भी इस लोकसृष्टिकी रक्षाके लिये वे अपनी घोररूपा शक्ति (शिवा) के साथ सर्वत्र विचरते रहते हैं॥ १६–१८ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! साधुस्वभाव प्रचेतागण पिताकी आज्ञा शिरोधार्य कर तपस्यामें चित्त लगा पश्चिमकी ओर चल दिये। चलते-चलते उन्होंने समुद्रके समान विशाल एक सरोवर देखा। वह महापुरुषोंके चित्तके समान बड़ा ही स्वच्छ था तथा उसमें रहनेवाले मत्स्यादि जलजीव भी प्रसन्न जान पड़ते थे। उसमें नीलकमल, लाल कमल, रातमें, दिनमें और सायङ्कालमें खिलनेवाले कमल तथा इन्दीवर आदि अन्य कई प्रकारके कमल सुशोभित थे। उसके तटोंपर हंस, सारस, चकवा और कारण्डव आदि जलपक्षी चहक रहे थे। उसके चारों ओर तरह-तरहके वृक्ष और लताएँ थीं, उनपर मतवाले भौंरें गूँज रहे थे। उनकी मधुर ध्वनिसे हर्षित होकर मानो उन्हें रोमाञ्च हो रहा था। जलके भीतर खिले हुए कमलोंके मध्यभागमें जो पराग था, वह वायुके झकोरोंसे चारों ओर उड़ रहा था। इससे ऐसा जान पड़ता था मानो वहाँ कोई उत्सव हो रहा है। वहाँ मृदङ्गादि बाजोंके साथ अनेकों दिव्य राग-रागिनियोंके क्रमसे गायनकी मधुर ध्वनि सुनकर उन राजकुमारोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। इतनेहीमें उन्होंने देखा कि देवाधिदेव भगवान् शङ्कर अपने अनुचरोंके सहित उस सरोवरसे बाहर आ रहे हैं। उनका शरीर तपी हुई सुवर्णराशिके समान कान्तिमान् है, कण्ठ नीलवर्ण है तथा तीन विशाल नेत्र हैं। वे अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उद्यत हैं। अनेकों गन्धर्व उनका सुयश गा रहे हैं। उनका सहसा दर्शन पाकर प्रचेताओंको बड़ा कुतूहल हुआ और उन्होंने शङ्करजीके चरणोंमें प्रणाम किया। तब शरणागतभयहारी धर्मवत्सल भगवान् शङ्करने अपने दर्शनसे प्रसन्न हुए उन धर्मज्ञ और शीलसम्पन्न राजकुमारोंसे प्रसन्न होकर कहा ॥ १९–२६ ॥

श्रीमहादेवजी बोले—तुमलोग राजा प्राचीनबर्हिके पुत्र हो, तुम्हारा कल्याण हो। तुम जो कुछ करना चाहते



हो, वह भी मुझे मालूम है। इस समय तुमलोगोंपर कृपा करनेके लिये ही मैंने तुम्हें इस प्रकार दर्शन दिया है। जो व्यक्ति अव्यक्त प्रकृति तथा जीवसंज्ञक पुरुष—इन दोनोंके नियामक भगवान् वासुदेवकी साक्षात् शरण लेता है, वह मुझे परम प्रिय होता है। अपने वर्णाश्रमधर्मका भलीभाँति पालन करनेवाला पुरुष सौ जन्मके बाद ब्रह्माके पदको प्राप्त

अट्ठाईसवाँ अध्याय

पुरञ्जनको स्त्रीयोनिकी प्राप्ति और अविज्ञातके उपदेशसे उसका मुक्त होना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! फिर भयनामक यवनराजके आज्ञाकारी सैनिक प्रज्वार और कालकन्याके साथ इस पृथ्वीतलपर सर्वत्र विचरने लगे। एक बार उन्होंने बड़े वेगसे बूढ़े साँपसे सुरक्षित और संसारकी सब प्रकारकी सुख-सामग्रीसे सम्पन्न पुरञ्जनपुरीको घेर लिया। तब, जिसके चंगुलमें फँसकर पुरुष शीघ्र ही निःसार हो जाता है, वह कालकन्या भी बलात्कारसे उस पुरीको (वहाँके निवासियोंको) भोगने लगी। उस समय वे यवनलोग भी कालकन्याके द्वारा भोगी जाती हुई उस पुरीमें चारों ओरसे भिन्न भिन्न दरवाजोंसे घुसकर उसका विध्वंस करने लगे। पुरीके इस प्रकार पीड़ित किये जानेपर उसके स्वामित्वका अभिमान रखनेवाले तथा ममताग्रस्त, बहुकुटुम्बी राजा पुरञ्जनको भी नाना प्रकारके क्लेश सताने लगे॥ १–५॥

कालकन्याके आलिङ्गन करनेसे उसकी सारी श्री नष्ट हो गयी तथा अत्यन्त विषयासक्त होनेके कारण वह बहुत दीन हो गया, उसकी विवेकशक्ति नष्ट हो गयी। गन्धर्व और यवनोंने बलात्कारसे उसका सारा ऐश्वर्य लूट लिया। उसने देखा कि सारा नगर नष्ट भ्रष्ट हो गया है; पुत्र, पौत्र, भृत्य और अमात्यवर्ग प्रतिकूल होकर अनादर करने लगे हैं; स्त्री स्नेहशून्य हो गयी है, मेरे देहको कालकन्याने काबूमें कर रक्खा है और पाञ्चाल देश शत्रुओंके हाथमें पड़कर भ्रष्ट हो गया है। यह सब देखकर राजा पुरञ्जन अपार चिन्तामें डूब गया और उसे उस विपत्तिसे छुटकारा पानेका कोई उपाय न दिखायी दिया। कालकन्याने जिन्हें निःसार कर दिया था, उन्हीं भोगोंकी लालसासे वह दीन था। अपनी पारलौकिकी गति और बन्धुजनोंके स्नेहसे वञ्चित रहकर उसका चित्त केवल स्त्री और पुत्रके लालन पालनमें ही लगा हुआ था। ऐसी अवस्थामें उनसे बिछुड़नेकी इच्छा न होनेपर भी उसे उस पुरीको छोड़नेके लिये बाध्य होना पड़ा; क्योंकि उसे गन्धर्व और यवनोंने घेर रक्खा था तथा कालकन्याने निकम्मा कर दिया था। इतनेहीमें यवनराज भयके बड़े भाई प्रज्वारने अपने भाईका प्रिय करनेके लिये उस सारी पुरीमें आग लगा दी॥ ६–११॥

जब वह नगरी जलने लगी तो पुरवासी, सेवकवृन्द, सन्तानवर्ग और कुटुम्बकी स्वामिनीके सहित कुटुम्बवत्सल पुरञ्जनको बड़ा दुःख हुआ। नगरको कालकन्याके हाथमें पड़ा देख उसकी रक्षा करनेवाले सर्पको भी बड़ी पीड़ा हुई, क्योंकि उसके निवासस्थानपर भी यवनोंने अधिकार कर लिया था और प्रज्वार उसपर भी आक्रमण कर रहा था। जब उस नगरकी रक्षा करनेमें वह सर्वथा असमर्थ हो गया, तो जिस प्रकार जलते हुए वृक्षके कोटरमें रहनेवाला सर्प उससे निकल जाना चाहता है, उसी प्रकार उसने भी महान् कष्टसे काँपते हुए वहाँसे भागनेकी इच्छा की। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग ढीले पड़ गये थे तथा गन्धर्वोंने उसकी सारी शक्ति नष्ट कर दी थी; अतः जब यवन शत्रुओंने उसे जाते देखकर रोक दिया, तो वह दुखी होकर रोने लगा॥ १२–१५॥

गृहासक्त पुरञ्जन देह-गेहादिमें मैं-मेरेपनका भाव रखनेसे अत्यन्त बुद्धिहीन हो गया था। स्त्रीके प्रेमपाशमें फँसकर वह बहुत दीन हो गया था। अब जब इनसे बिछुड़नेका समय उपस्थित हुआ तो वह अपने पुत्री, पुत्र, पौत्र, पुत्रवधू, दामाद, नौकर और जिन घर, खजाना तथा अन्यान्य पदार्थोंमें उसकी ममतामात्र शेष थी (उनका भोग तो कभीका छूट गया था) उन सबके लिये इस प्रकार चिन्ता करने लगा 'हाय! मेरी भार्या तो बहुत घर गृहस्थीवाली है; जब मैं परलोकको चला जाऊँगा, तो यह असहाय होकर किस प्रकार अपना निर्वाह करेगी? इसे तो इन बाल-बच्चोंकी चिन्ता ही खा जायगी। यह तो मेरे भोजन किये बिना भोजन नहीं करती थी और स्नान किये बिना स्नान नहीं करती थी, सदा मेरी ही सेवामें तत्पर रहती थी। मैं कभी रूठ जाता था तो यह बड़ी भयभीत हो जाती थी, और झिड़कने लगता था तो डरके मारे चुप रह जाती थी। यही नहीं, इससे मुझे सहारा भी बड़ा मिलता था; मुझसे कोई भूल हो जाती थी, तो यह मुझे सचेत कर देती थी। मुझमें इसका इतना अधिक स्नेह है कि यदि मैं कभी परदेश चला जाता था तो यह विरहव्यथासे सूखकर काँटा हो जाती थी। यों तो यह वीरमाता है, इसने वीर पुत्रोंको उत्पन्न किया है; तो भी मेरे पीछे क्या यह गृहस्थाश्रमका व्यवहार चला सकेगी! मेरे चले जानेपर एकमात्र मेरे ही सहारे रहनेवाले ये पुत्र और पुत्री भी कैसे जीवन धारण करेंगे! ये तो बीच समुद्रमें नाव टूट जानेसे व्याकुल हुए यात्रियोंके समान बिलबिलाने लगेंगे'॥ १६–२१॥

भँवरके समान चक्करदार नाभि है, वह इतनी गहरी है कि उससे उत्पन्न हुआ यह विश्व मानो फिर उसीमें लीन होना चाहता है। आपके श्यामवर्ण कटिभागमें अत्यन्त कान्तियुक्त पीताम्बर और सुवर्णकी मेखला शोभायमान है तथा समान और सुन्दर चरण, पिंडली, जाँघ और घुटनोंके कारण वह बड़ा ही सुघड़ जान पड़ता है। आपका वह दिव्य विग्रह भक्तोंके भयको दूर करनेवाला है। उसके चरणकमलोंकी शोभा शरद् ऋतुके कमल-दलकी कान्तिका भी तिरस्कार करती है। उनके नखोंसे जो प्रकाश निकलता है, वह जीवोंके हृदयान्धकारको तत्काल नष्ट कर देता है। हमें आप कृपा करके भक्तोंके आश्रय उसी रूपका दर्शन कराइये। जगद्गुरो! हम अज्ञानावृत प्राणियोंको अपनी प्राप्तिका मार्ग बतलानेवाले आप ही हमारे गुरु हैं ॥ ४४–५२ ॥

प्रभो! चित्तशुद्धिकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको आपके इस रूपका निरन्तर ध्यान करना चाहिये; इसकी भक्ति ही स्वधर्मका पालन करनेवाले पुरुषको भी अभय करनेवाली है। स्वर्गका शासन करनेवाला इन्द्र भी आपको ही पाना चाहता है, तथा विशुद्ध आत्मज्ञानियोंकी गति भी आप ही हैं। इस प्रकार आप सभी देहधारियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं; केवल भक्तिमान् पुरुष ही आपको पा सकते हैं। आपकी अनन्य भक्ति बड़े-बड़े महापुरुषोंके लिये भी दुर्लभ है; और भक्तिको छोड़कर अन्य किसी साधनसे आप जल्दी प्रसन्न नहीं होते। ऐसी दशामें जिन बड़भागियोंने अनन्य निष्ठासे आपकी आराधना की है, उनमें ऐसा कौन होगा जो आपके चरणतलके सिवा किसी अन्य बाह्य विषयकी आकाङ्क्षा करेगा? आपके चरणोंकी शरणका माहात्म्य कहाँतक कहा जाय? जो काल अपने अदम्य उत्साह और पराक्रमसे केवल भौंहके इशारेमात्रसे सारे संसारका संहार कर डालता है, वह भी आपके चरणोंकी शरणमें गये हुए प्राणीपर अपना अधिकार नहीं मानता। ऐसे भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका यदि आधे क्षणके लिये भी समागम हो जाय तो उसके सामने में स्वर्ग और मोक्षको कुछ नहीं समझता; फिर मर्त्यलोकके तुच्छ भोगोंकी तो बात ही क्या है। प्रभो! आपके चरण सम्पूर्ण पापराशिको भस्म कर देनेवाले हैं। हम तो केवल यही चाहते हैं कि जिन लोगोंने आपकी कीर्तिरूपी गङ्गाजीमें गोता लगाकर शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारके समस्त पापोंको धो डाला है, उन सारे जीवोंपर दया करनेवाले, राग-द्वेषसे छूटे हुए, सरलहृदय, निर्मल-चरित्र भक्तोंका सङ्ग हमें सदा प्राप्त होता रहे। यही हमपर आपकी बड़ी कृपा होगी। आपके भक्तोंके सङ्गसे भक्ति प्राप्त होती है। भक्तियोगके प्रभावसे जिस साधकका चित्त विशुद्ध होकर न तो बाह्य विषयोंमें भटकता है और न अज्ञानगुहारूप प्रकृतिमें ही लीन होता है, वह अनायास ही आपके स्वरूपका दर्शन पा जाता है। जिसमें यह सारा जगत् दिखायी देता है और जो स्वयं सम्पूर्ण जगत्‌में भास रहा है, वह आकाशके समान विस्तृत और परम प्रकाशमय ब्रह्मतत्त्व आप ही हैं ॥ ५३–६० ॥

भगवन्! आपकी माया अनेक प्रकारके रूप धारण करती है। इसीके द्वारा आप इस प्रकार जगत्‌की रचना, पालन और संहार करते हैं जैसे यह कोई सद्वस्तु हो। किन्तु इससे आपमें किसी प्रकारका विकार नहीं आता। मायाके कारण दूसरे लोगोंमें ही भेदबुद्धि उत्पन्न होती है, आपपर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता; आपको तो हम परम स्वतन्त्र ही समझते हैं। आपका स्वरूप पञ्चभूत, इन्द्रिय और अन्तःकरणके प्रेरकरूपसे उपलक्षित होता है। जो कर्मयोगी पुरुष सिद्धि प्राप्त करनेके लिये तरह-तरहके कर्मोंद्वारा आपके इस सगुण साकार स्वरूपका श्रद्धापूर्वक भलीभाँति पूजन करते हैं, वे ही वेद और शास्त्रोंके सच्चे मर्मज्ञ हैं। प्रभो! आप ही अद्वितीय आदिपुरुष हैं। सृष्टिके पूर्व आपकी मायाशक्ति सोयी रहती है। फिर उसीके द्वारा सत्त्व, रज और तमरूप गुणोंका भेद होता है और इसके बाद उन्हीं रज आदि गुणोंसे महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, देवता, ऋषि और समस्त प्राणियोंसे युक्त इस जगत्‌की उत्पत्ति होती है। फिर आप अपनी ही मायाशक्तिसे रचे हुए इन जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्जभेदसे चार प्रकारके शरीरोंमें अंशरूपसे प्रवेश कर जाते हैं और जिस प्रकार मधुमक्खियाँ अपने ही उत्पन्न किये हुए मधुका आस्वादन करती हैं, उसी प्रकार वह आपका अंश उन शरीरोंमें रहकर इन्द्रियोंके द्वारा इन तुच्छ विषयोंको भोगता है। आपके उस अंशको ही पुरुष या जीव कहते हैं ॥ ६१–६४ ॥

प्रभो! जिस समय प्रलयकाल उपस्थित होता है, उस समय कालस्वरूप आप ही अपने प्रचण्ड एवं असह्य वेगसे पृथ्वी आदि भूतोंको अन्य भूतोंसे विचलित कराकर समस्त लोकोंका संहार कर देते हैं—जैसे वायु अपने असहनीय एवं प्रचण्ड झोंकोंसे मेघोंके द्वारा ही मेघोंको तितर-बितर करके नष्ट कर डालती है। वायु जिस प्रकार नेत्रोंका विषय नहीं है, केवल अनुमानसे ही उसका ज्ञान होता है, उसी प्रकार

वसुन्धरा लुटेरों और अधार्मिक राजाओंसे भयभीत हो रही है, आप इसकी रक्षा कीजिये ।' पतिके साथ वनमें गयी हुई वह अबला इस प्रकार विलाप करती पतिके चरणोंमें गिर गयी और रो रोकर आँसू बहाने लगी। फिर लकड़ियोंकी चिता बनाकर उसने उसपर पतिका शव रक्खा और अग्नि लगाकर विलाप करते-करते स्वयं सती होनेका निश्चय किया। राजन्! इसी समय उसका कोई पुराना मित्र एक आत्मज्ञानी ब्राह्मण वहाँ आया। उसने उस रोती हुई अबलाको मधुर वाणीसे समझाते हुए कहा ॥ ४३-५१ ॥

ब्राह्मणने कहा—तू कौन है? किसकी पुत्री है? और जिसके लिये तू शोक कर रही है, वह यह सोया हुआ पुरुष कौन है? क्या तू मुझे नहीं जानती? मैं वही तेरा मित्र हूँ, जिसके साथ तू पहले विचरा करती थी। सखे! क्या तुम्हें याद आता है, किसी समय अविज्ञात नामका तुम्हारा एक सखा था? तुम पृथ्वीके भोग भोगनेके लिये निवासस्थानकी खोजमें मुझे छोड़कर चले गये थे। आर्य! पहले मैं और तुम दोनों ही मानसमें रहनेवाले हंस थे। हम दोनों एक सहस्र वर्षतक बिना किसी निवासस्थानके ही रहे थे। किन्तु मित्र! फिर तुम विषयभोगोंकी इच्छासे मुझे छोड़कर यहाँ पृथ्वीपर चले आये। यहाँ घूमते घूमते तुमने एक स्त्रीका रचा हुआ स्थान देखा। उसमें पाँच बगीचे, नौ दरवाजे, एक द्वारपाल, तीन परकोटे, छः वैश्यकुल और पाँच बाजार थे। वह पाँच उपादानकारणोंसे बना हुआ था और उसकी स्वामिनी एक स्त्री थी। देखो, महाराज! इन्द्रियोंके पाँच विषय उसके बगीचे थे, नौ इन्द्रिय छिद्र द्वार थे, तेज, जल और अन्न—तीन परकोटे थे, मन और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—छः वैश्यकुल थे, क्रियाशक्तिरूप कर्मेन्द्रियाँ ही बाजार थीं, पाँच भूत ही उसके कभी क्षीण न होनेवाले उपादानकारण थे और बुद्धिशक्ति ही उसकी स्वामिनी थी। यह ऐसा नगर था, जिसमें प्रवेश करनेपर पुरुष ज्ञानशून्य हो जाता है—अपने स्वरूपको भूल जाता है। फिर भाई! उस नगरमें उसकी स्वामिनीके फंदेमें पड़कर उसके साथ विहार करते करते तुम भी अपने स्वरूपको भूल गये और उसीके सङ्गसे तुम्हारी यह दुर्दशा हुई है ॥ ५२-५९ ॥

देखो, तुम न तो विदर्भराजकी पुत्री ही हो और न यह वीर मलयध्वज तुम्हारा पति ही है। जिसने तुम्हें नौ द्वारोंके नगरमें बंद किया था, उस पुरञ्जनीके पति भी तुम नहीं हो। तुम पहले जन्ममें अपनेको पुरुष समझते थे और अब सती स्त्री मानते हो—यह सब मेरी ही फैलायी हुई माया है। वास्तवमें तुम न पुरुष हो न स्त्री। हम दोनों तो हंस हैं, हमारा जो वास्तविक स्वरूप है, उसका अनुभव करो। मित्र! जो मैं (ईश्वर) हूँ, वही तुम (जीव) हो। तुम मुझसे भिन्न नहीं हो और तुम विचारपूर्वक देखो, मैं भी वही हूँ जो तुम हो। बुद्धिमान्लोग हम दोनोंमें कभी थोड़ा-सा भी अन्तर नहीं देखते। यदि तुम कहो कि फिर तुम ही ये सब बातें कैसे जानते हो, मैं क्यों नहीं जानती, तो इसका कारण केवल हमारी उपाधियोंका भेद ही है। वस्तुतः एक ही आत्मा मायाके अधीन होनेसे अल्पज्ञ और मायाका अधीश्वर होनेसे सर्वज्ञ कहा जाता है—जैसे एक ही पुरुष दर्पणमें अपने प्रतिबिम्बको स्पष्ट देखता है, किन्तु दूसरे पुरुषके नेत्रकी पुतलीमें वैसा नहीं देखता। ऐसा ही हम दोनोंका भेद है ॥ ६०-६३ ॥

इस प्रकार जब हंस (ईश्वर) ने उसे सावधान किया, तो वह मानसरोवरका हंस (जीव) अपने स्वरूपमें स्थित हो गया और उसे अपने मित्रके बिछुड़नेसे भूला हुआ आत्मज्ञान फिर प्राप्त हो गया। प्राचीनबर्हि! मैंने तुम्हें परोक्षरूपसे यह आत्मज्ञानका दिग्दर्शन कराया है, क्योंकि जगत्कर्ता जगदीश्वरको परोक्ष वर्णन ही अधिक प्रिय है ॥ ६४-६५ ॥

उन्तीसवाँ अध्याय

पुरञ्जनोपाख्यानका तात्पर्य

राजा प्राचीनबर्हिने कहा—भगवन्! आपके वचनोंका अभिप्राय पूरा पूरा मेरी समझमें नहीं आ रहा है। इनका तात्पर्य तो विवेकी पुरुष ही समझ सकते हैं, हम कर्ममोहित जीव क्या जानें। अतः इस उपाख्यानका तात्पर्य समझानेकी कृपा करें ॥ १ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन्! पुरञ्जन तो पुरुष (जीव) है—जो अपने लिये एक, दो, तीन, चार अथवा बहुत पैरोंवाला या बिना पैरोंका शरीररूप पुर तैयार कर लेता है। इसीलिये उसका नाम पुरञ्जन (नगरका निर्माण करनेवाला) रक्खा गया। उस जीवका सखा जो अविज्ञात

याद करते हुए बदला लेनेके लिये तुम्हारी बाट देख रहे हैं। जब तुम मरकर परलोकमें जाओगे, तो ये अत्यन्त क्रोधमें भरकर तुम्हें अपने लोहेके-से सींगोंसे छेदेंगे। अच्छा, इस विषयमें मैं तुम्हें एक प्राचीन उपाख्यान सुनाता हूँ। वह राजा पुरञ्जनका चरित्र है, उसे तुम मेरे मुखसे सावधान होकर सुनो ॥७—९॥

राजन्! पूर्वकालमें पुरञ्जन नामका एक बड़ा यशस्वी राजा था। उसका अविज्ञात नामक एक मित्र था। उसके कर्म बड़े रहस्यपूर्ण होते थे, कोई भी पुरुष उसकी चेष्टाओंको समझ नहीं सकता था। राजा पुरञ्जन अपने रहनेयोग्य स्थानकी खोजमें सारी पृथ्वीमें घूमा; फिर भी जब उसे कोई अनुरूप स्थान न मिला, तो वह कुछ उदास-सा हो गया। उसे तरह-तरहके भोगोंकी लालसा थी; उन्हें भोगनेके लिये उसने संसारमें जितने नगर देखे, उनमेंसे कोई भी उसे ठीक न जँचा ॥१०—१२॥

एक दिन उसने हिमालयके दक्षिण तटवर्ती प्रान्तमें (कर्मभूमि भारतमें) एक नौ द्वारोंका नगर देखा। वह सब प्रकारके सुलक्षणोंसे सम्पन्न था। वह सब ओरसे परकोटों, बगीचों, अटारियों, खाइयों, झरोखों और राजद्वारोंसे सुशोभित था और सोने, चाँदी और लोहेके शिखरोंवाले विशाल भवनोंसे खचाखच भरा हुआ था। उसके महलोंकी फर्शें नीलम, स्फटिक, वैदूर्य, मोती, पन्ने और लालोंकी बनी हुई थीं। अपनी कान्तिके कारण वह नागोंकी राजधानी भोगवतीपुरीके समान जान पड़ता था। उसमें जहाँ-तहाँ अनेकों सभा-भवन, चौराहे, सड़कें, क्रीडाभवन, बाजार, सराय आदि विश्राम-स्थान, ध्वजा-पताकाएँ और मूँगेके चबूतरे सुशोभित थे ॥१३—१६॥

उस नगरके बाहर दिव्य वृक्ष और लताओंसे पूर्ण एक सुन्दर बाग था; उसके बीचमें एक सरोवर दिखायी दिया। उसके आस-पास अनेकों पक्षी भाँति-भाँतिकी बोली बोल रहे थे तथा भौंरे गुंजार कर रहे थे। सरोवरके तटपर जो वृक्ष थे, उनकी डालियाँ और पत्ते शीतल झरनोंके जलकणोंसे मिली हुई वसन्तकालीन वायुके झकोरोंसे हिल रहे थे। वहाँके वन्य पशु भी मुनिजनोचित अहिंसादि व्रतोंका पालन करनेवाले थे, इसलिये उनसे किसीको कोई कष्ट नहीं पहुँचता था। वहाँ बार-बार जो कोकिलकी कुहू-ध्वनि होती थी, उससे मार्गमें चलनेवाले बटोहियोंको ऐसा भ्रम होता था मानो वह बगीचा विश्राम करनेके लिये उन्हें बुला रहा है॥१७—१९॥

राजा पुरञ्जनने उस अद्भुत वनमें घूमते-घूमते दैववश एक सुन्दरीको आते देखा। उसके साथ दस सेवक थे, जिनमेंसे प्रत्येक सौ-सौ नायिकाओंका पति था। एक पाँच फनवाला साँप उसका द्वारपाल था, वही उसकी सब ओरसे रक्षा करता था। उस कामिनीकी अभी बिल्कुल नयी अवस्था थी, मुश्किलसे सोलह वर्षकी होगी। वह अपने लिये एक श्रेष्ठ पतिकी खोजमें थी। उसकी नासिका, दन्तपङ्क्ति, कपोल और मुख बहुत सुन्दर थे। उसके समान कानोंमें कुण्डलोंकी बड़ी शोभा हो रही थी। उसका कटिप्रदेश बड़ा सुन्दर था और रंग साँवला था। वह पीले रंगकी साड़ी और सोनेकी करधनी पहने हुए थी तथा चलते समय चरणोंसे नूपुरोंकी झनकार करती जाती थी। अधिक क्या वह साक्षात् कोई देवी-सी जान पड़ती थी। वह गजगामिनी बाला किशोरावस्थाकी सूचना देनेवाले अपने गोल-गोल समान और परस्पर सटे हुए स्तनोंको लज्जावश बार-बार अञ्चलसे ढकती जाती थी ॥२०—२४॥

उस सुन्दरीका भ्रुकुटि-धनुष प्रेमोद्वेगके कारण चञ्चल हो रहा था। उससे छूटे हुए प्रणय-कटाक्षरूप बाणोंसे वीरवर पुरञ्जनका हृदय घायल हो गया। तब उसने लज्जाभरी मुसकानसे सुशोभित उस सुन्दरीसे अत्यन्त मधुर एवं कोमल वाणीमें कहा, 'कमलदललोचने! तुम कौन हो, और किसकी कन्या हो? देवि, इस समय आ कहाँसे रही हो? इस पुरीके समीप तुम किस प्रयोजनसे आयी हो? सारा हाल मुझे बताओ। सुकुमारी! तुम्हारे साथ इस ग्यारहवें महान् शूरवीरसे सञ्चालित ये दस सेवक कौन हैं? और ये सहेलियाँ तथा तुम्हारे आगे-आगे चलनेवाला यह सर्प कौन है? सुन्दरि! तुम साक्षात् लज्जादेवी हो अथवा उमा, रमा और ब्रह्माणीमेंसे कोई हो? यहाँ वनमें मुनियोंकी तरह एकान्तवास करके क्या अपने पतिदेवको खोज रही हो? तुम्हारे प्राणनाथ तो 'तुम उनके चरणोंकी कामना करती हो,' इतनेहीसे पूर्णकाम हो जायँगे। अच्छा, यदि तुम साक्षात् कमलादेवी हो, तो तुम्हारे हाथका क्रीडाकमल कहाँ गिर गया? किन्तु सुभगे! तुम इनमेंसे तो कोई हो नहीं; क्योंकि तुम्हारे चरण पृथ्वीका स्पर्श कर रहे हैं। तुम कोई देवाङ्गना होतीं, तो तुम्हारे पैर भी पृथ्वीका स्पर्श नहीं करते। अच्छा, यदि तुम कोई मानवी ही हो, तो लक्ष्मीजी जिस प्रकार भगवान् विष्णुके साथ वैकुण्ठकी शोभा बढ़ाती हैं—उसी प्रकार तुम मेरे साथ इस श्रेष्ठ पुरीको अलङ्कृत करो। देखो, मैं बड़ा ही वीर और पराक्रमी हूँ। परन्तु आज तुम्हारे

मनुष्यकी आयुको हरते रहते हैं। वृद्धावस्था ही साक्षात् कालकन्या है, उसे कोई भी पुरुष पसंद नहीं करता। तब मृत्युरूप यवनराजने लोकका संहार करनेके लिये उसे बहिन मानकर स्वीकार कर लिया। उस यवनराजकी आधि (मानसिक क्लेश) और व्याधि (रोगादि शारीरिक कष्ट) ही पैदल सेना है तथा प्राणियोंको पीड़ा पहुँचाकर शीघ्र ही मृत्युके मुखमें ले जानेवाला शीत और उष्ण दो प्रकारका ज्वर ही प्रज्वार नामका उसका भाई है॥२१-२३॥

इस प्रकार यह देहाभिमानी जीव अज्ञानसे आच्छादित होकर अनेक प्रकारके आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक कष्ट भोगता हुआ सौ वर्षतक मनुष्य शरीरमें पड़ा रहता है। वस्तुतः तो वह निर्गुण है, किन्तु प्राण, इन्द्रिय और मनके धर्मोंको अपनेमें आरोपित कर मैं मेरेपनके अभिमानसे बँधकर क्षुद्र विषयोंकी लालसासे तरह-तरहके कर्म करता रहता है। यह यद्यपि स्वयम्प्रकाश है—तथापि जबतक सबके परमगुरु आत्मस्वरूप श्रीभगवान्‌के स्वरूपको नहीं जानता, तबतक प्रकृतिके गुणोंमें ही बँधा रहता है। फिर उन गुणोंका अभिमानी होनेसे वह विवश होकर सात्त्विक, राजस और तामस कर्म करता है तथा उन कर्मोंके अनुसार भिन्न भिन्न योनियोंमें जन्म लेता है। वह कभी तो सात्त्विक कर्मोंके द्वारा प्रकाशबहुल स्वर्गादि लोक प्राप्त करता है, कभी राजसी कर्मोंके द्वारा दुःखमय रजोगुणी लोकोंमें जाता है—जहाँ उसे तरह तरहके कर्मोंका क्लेश उठाना पड़ता है—और कभी तमोगुणी कर्मोंके द्वारा शोकबहुल तमोमयी योनियोंमें जन्म लेता है। इस प्रकार अपने कर्म और गुणोंके अनुसार देवयोनि, मनुष्ययोनि अथवा पशु पक्षीयोनिमें जन्म लेकर वह अज्ञानान्ध जीव कभी पुरुष, कभी स्त्री और कभी नपुंसक होता है। जिस प्रकार बेचारा भूखसे व्याकुल कुत्ता दर दर भटकता हुआ अपने प्रारब्धानुसार कहीं डंडा खाता है और कहीं भात खाता है, उसी प्रकार यह चित्तमें नाना प्रकारकी वासनाओंको लेकर ऊँचे नीचे मार्गसे ऊपर, नीचे अथवा मध्यके लोकोंमें भटकता हुआ अपने कर्मानुसार सुख दुःख भोगता रहता है॥ २४-३१ ॥

यदि कहो कि उन दुःखोंको दूर करनेका उपाय करनेसे उनसे छुटकारा भी तो मिल सकता है, सो ऐसी बात नहीं है, क्योंकि आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक—इन तीन प्रकारके दुःखोंमेंसे किसी भी एकसे जीवका सर्वथा छुटकारा नहीं हो सकता। इनकी जो तात्कालिक निवृत्ति होती है, वह ऐसी ही है जैसे कोई सिरपर भारी बोझा ढोकर ले जानेवाला पुरुष उसे कंधेपर रख ले। इस प्रकार सिरका दुःख दूर होनेपर भी कंधेपर तो उसका भार आ ही जाता है। इसी तरह यदि किसी उपायसे मनुष्य एक प्रकारके दुःखसे छुट्टी पाता है, तो दूसरा दुःख आकर उसके सिरपर सवार हो जाता है। शुद्धहृदय नरेन्द्र! जिस प्रकार स्वप्नमें होनेवाला स्वप्नान्तर उस स्वप्नसे सर्वथा छूटनेका उपाय नहीं है, उसी प्रकार कर्मफल भोगसे सर्वथा छूटनेका उपाय केवल (ज्ञानरहित) कर्म नहीं हो सकता, क्योंकि कर्म और कर्मफल भोग दोनों ही अविद्यायुक्त होते हैं। जिस प्रकार स्वप्नावस्थामें अपने मनोमय लिङ्गशरीरसे विचरनेवाले प्राणीको स्वप्नके पदार्थ न होनेपर भी भासते हैं, उसी प्रकार ये दृश्यपदार्थ वस्तुतः न होनेपर भी, जबतक अज्ञान निद्रा नहीं टूटती, बने ही रहते हैं और जीवको जन्म मरणरूप संसारसे मुक्ति नहीं मिलती। अतः इनकी आत्यन्तिक निवृत्तिका उपाय तो एकमात्र आत्मज्ञान ही है॥ ३२-३५ ॥

राजन्! जिस अविद्याके कारण परमार्थस्वरूप आत्माको यह जन्म मरणरूप अनर्थपरम्परा प्राप्त हुई है, उसकी निवृत्ति गुरुस्वरूप श्रीहरिमें सुदृढ भक्ति होनेपर हो सकती है। भगवान् वासुदेवमें एकाग्रतापूर्वक सम्यक् प्रकारसे किया हुआ भक्तिभाव ज्ञान और वैराग्यका आविर्भाव कर देता है। राजर्षे! यह भक्तिभाव भगवान्‌की कथाओंके आश्रित रहता है। इसलिये जो श्रद्धापूर्वक उन्हें प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, उसे बहुत शीघ्र इसकी प्राप्ति हो जाती है। राजन्! जहाँ भगवद्गुणोंको सुनने सुनानेमें तत्पर विशुद्धचित्त भक्तजन रहते हैं, उस साधु-समाजमें सब ओर महापुरुषोंके मुखसे निकले हुए श्रीमधुसूदनभगवान्‌के चरित्ररूप शुद्ध अमृतकी अनेकों नदियाँ बहती रहती हैं। जो लोग अतृप्त चित्तसे श्रवणमें तत्पर अपने कर्णकुहरोंद्वारा उस अमृतका छककर पान करते हैं—उन्हें भूख प्यास, भय, शोक और मोह आदि कुछ भी बाधा नहीं पहुँचा सकते। हाय! जन्म जन्मान्तरके संस्कारोंसे स्वभावतः ही प्राप्त होनेवाले इन क्षुधा पिपासादि विघ्नोंसे घिरा रहनेके कारण ही जीव श्रीहरिके कथामृत सिन्धुमें प्रेम नहीं करता। अधिक क्या—साक्षात् प्रजापतियोंके पति ब्रह्माजी, भगवान् शङ्कर, स्वायम्भुव मनु, दक्षादि प्रजापतिगण, सनकादि नैष्ठिक ब्रह्मचारी, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ और मैं—ये जितने वेदवादी मुनिगण हैं, अनेक प्रकारकी व्याख्याएँ करनेमें कुशल होनेपर भी तप, उपासना और समाधिके

साथ अन्तःपुरमें जाता तो उसे स्त्री और पुत्रोंके कारण होनेवाले मोह, प्रसन्नता एवं हर्ष आदि विकारोंका अनुभव होता। उसका चित्त तरह-तरहके कर्मोंमें फँसा हुआ था और काम-परवश होनेके कारण वह मूढ़ रमणीके जालमें पड़ गया था। बस, जो-जो काम उसकी रानी करती थी, वही वह भी करने लगता था। वह जब मद्यपान करती, तो वह भी मदमत्त होकर मदिरापान करने लगता; वह भोजन करती तो आप भी भोजन करने लगता और वह जो कुछ खाती, आप भी वही चीज खाने लगता। इसी प्रकार कभी उसके गानेपर गाने लगता, रोनेपर रोने लगता, हँसनेपर हँसने लगता और बोलनेपर बोलने लगता। वह दौड़ती तो आप भी दौड़ने लगता, खड़ी होती तो आप भी खड़ा हो जाता, सोती तो आप भी उसीके साथ सो जाता और बैठती तो आप भी बैठ जाता। कभी वह सुनने लगती तो आप भी सुनने लगता, देखती तो देखने लगता, सूँघती तो सूँघने लगता और किसी चीजको छूती तो आप भी छूने लगता। कभी उसकी प्रिया शोकाकुल होती तो आप भी अत्यन्त दीनके समान व्याकुल हो जाता; जब वह प्रसन्न होती, आप भी प्रसन्न हो जाता। और उसके आनन्दित होनेपर आप भी आनन्दित हो जाता। इस प्रकार स्त्रीके चंगुलमें फँसे हुए राजा पुरञ्जनको उसके सभी परिकरोंने अपने काबूमें कर लिया और खेलके लिये पाले हुए पशुके समान इच्छा न होनेपर भी वह मूढ़ अपनी स्त्रीके अधीन होकर उसीका अनुकरण करता रहता ॥५५–६२॥

छब्बीसवाँ अध्याय

राजा पुरञ्जनका शिकार खेलने वनमें जाना और रानीका कुपित होना

श्रीनारदजी कहते हैं—राजन्! एक दिन राजा पुरञ्जन अपना विशाल धनुष, सोनेका कवच और अक्षय तरकस धारणकर अपने ग्यारहवें सेनापतिके साथ पाँच घोड़ोंके शीघ्रगामी रथमें बैठकर पञ्चप्रस्थ नामके वनमें गया। उस रथमें दो ईषादण्ड (बंब), दो पहिये, एक धुरी, तीन ध्वजदण्ड, पाँच डोरियाँ, एक लगाम, एक सारथि, एक बैठनेका स्थान, दो जुए, पाँच आयुध और सात पर्दे थे। वह पाँच प्रकारकी चालोंसे चलता था तथा उसका साज-बाज सब सुनहरा था। यद्यपि राजाके लिये अपनी प्रियाको क्षणभर भी छोड़ना कठिन था, किन्तु उस दिन उसे शिकारका ऐसा शौक लगा कि उसकी भी परवा न कर वह बड़े गर्वसे धनुष-बाण चढ़ाकर आखेट करने लगा। इस समय आसुरी वृत्ति बढ़ जानेसे उसका चित्त बड़ा कठोर और दयाशून्य हो गया था, इससे उसने अपने तीखे बाणोंसे बहुत-से निर्दोष जंगली जानवरोंका वध कर डाला। वस्तुतः शास्त्रमें पशुहिंसाकी विधि नहीं है, लोगोंकी स्वाभाविक प्रवृत्तिको रोकनेके लिये ही ऐसा नियम बना दिया है कि जिसकी मांसमें आसक्ति हो, वह राजा केवल शास्त्रप्रदर्शित कर्मोंके लिये वनमें जाकर आवश्यकतानुसार अनिषिद्ध पशुओंका वध करे; उस समय भी व्यर्थ पशुहिंसा तो करे ही नहीं। राजन्! जो विद्वान् इस प्रकार शास्त्र-नियत कर्मोंका आचरण करता है, वह उस कर्मानुष्ठानसे प्राप्त हुए ज्ञानके कारणभूत कर्मोंसे लिप्त नहीं होता। नहीं तो मनमाना कर्म करनेसे मनुष्य अभिमानके वशीभूत होकर कर्मोंमें बँध जाता है तथा संसारचक्रमें पड़कर विवेकबुद्धिके नष्ट हो जानेसे अधम योनियोंमें जन्म लेता है ॥१–८॥

बस, पुरञ्जनके तरह-तरहके पंखोंवाले बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर अनेकों जीव बड़े कष्टके साथ प्राण त्यागने लगे। उसका वह निर्दयतापूर्ण जीव-संहार देखकर सभी दयालु पुरुष बहुत दुखी हुए। वे इसे सह नहीं सके। इस प्रकार वहाँ खरगोश, सूअर, भैंसे, नीलगाय, कृष्णमृग, साही तथा और भी बहुत-से मेध्य पशुओंका वध करते-करते राजा पुरञ्जन बहुत थक गया। तब वह भूख-प्याससे अत्यन्त शिथिल हो वनसे लौटकर राजमहलमें आया। वहाँ उसने यथायोग्य रीतिसे स्नान और भोजनसे निवृत्त हो, कुछ विश्राम करके थकान दूर की। फिर गन्ध, चन्दन और माला आदिसे सुसज्जित हो सब अङ्गोंमें सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहने। तब उसे अपनी प्रियाकी याद आयी। वह भोजनादि-से तृप्त, हृदयमें आनन्दित, मदसे उन्मत्त और कामसे व्यथित होकर अपनी सुन्दरी भार्याको ढूँढ़ने लगा; किन्तु उसे वह कहीं भी दिखायी न दी ॥ ९–१३ ॥

प्राचीनबर्हि! तब उसने चित्तमें कुछ उदास होकर अन्तःपुरकी स्त्रियोंसे पूछा, 'सुन्दरियो! अपनी स्वामिनीके सहित तुम सब पहलेहीकी तरह कुशलसे हो न? क्या कारण है आज इस घरकी सम्पत्ति पहले-जैसी सुहावनी नहीं जान पड़ती? घरमें माता अथवा पतिपरायणा भार्या न हो,

कथन जगह जगह सुना जाता है कि 'पुरुष इस लोकमें जिसके द्वारा कर्म करता है, उस स्थूलशरीरको यहीं छोड़कर परलोकमें कर्मोंसे ही बने हुए दूसरे देहसे उनका फल भोगता है।' किन्तु यह बात कैसे सम्भव हो सकती है? क्योंकि जो जो कर्म यहाँ किये जाते हैं, वे तो दूसरे ही क्षणमें अदृश्य हो जाते हैं, वे परलोकमें फल देनेके लिये किस प्रकार पुनः प्रकट हो सकते हैं? ॥ ५६-५९ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन्! जिस मनःप्रधान लिङ्ग शरीरकी सहायतासे मनुष्य कर्म करता है, वह तो मरनेके बाद भी उसके साथ रहता ही है, अतः वह परलोकमें अपरोक्षरूपसे स्वयं उसीके द्वारा उनका फल भोगता है। देखो—स्वप्नावस्थामें मनुष्य इस जीवित शरीरका अभिमान तो छोड़ देता है, किन्तु इसीके समान अथवा इससे भिन्न प्रकारके पशु पक्षी आदि शरीरसे वह मनमें संस्काररूपसे स्थित कर्मोंका फल भोगता रहता है। यही बात परलोकके विषयमें समझनी चाहिये। इस मनके द्वारा जीव जिन स्त्री पुत्रादिको 'ये मेरे हैं' और देहादिको 'यह मैं हूँ' ऐसा कहकर मानता है, उनके किये हुए पाप पुण्यादिरूप कर्मोंको भी यह अपने ऊपर ले लेता है और उनके कारण इसे व्यर्थ ही फिर जन्म लेना पड़ता है। जिस प्रकार ज्ञान और कर्म—दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंकी चेष्टाओंसे उनके प्रेरक चित्तका अनुमान किया जाता है, उसी प्रकार चित्तकी भिन्न भिन्न प्रकारकी वृत्तियोंसे भी पूर्वजन्मके कर्मोंका भी अनुमान होता ही है। कभी कभी देखा जाता है कि जिस वस्तुका इस शरीरसे कभी अनुभव नहीं किया—जिसे न तो कभी देखा, न सुना ही—उसका स्वप्नमें, वह जैसी होती है, वैसा ही अनुभव हो जाता है। राजन्! इससे तुम निश्चय मानो कि लिङ्गदेहके अभिमानी जीवको उसका अनुभव पूर्वजन्ममें हो चुका है, क्योंकि जो वस्तु पहले अनुभव की हुई नहीं होती, उसकी मनमें वासना भी नहीं हो सकती ॥ ६०-६५ ॥

राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। देखो, मन ही मनुष्यके पूर्व रूपोंको तथा भावी शरीरादिको भी बता देता है, और जिनका भावी जन्म होनेवाला नहीं होता, उन तत्त्ववेत्ताओंकी विदेह मुक्तिका पता भी उनके मनसे ही लग जाता है। कभी कभी स्वप्नमें देश, काल अथवा क्रियासम्बन्धी ऐसी बातें भी देखी जाती हैं, जो पहले कभी देखी या सुनी नहीं गयीं—जैसे पर्वतकी चोटीपर समुद्र, दिनमें तारे अथवा अपना सिर कटा दिखायी देना, इत्यादि। इनके दीखनेमें निद्रादोषको ही कारण मानना चाहिये। मनके सामने इन्द्रियोंसे अनुभव होने योग्य पदार्थ ही भोगरूपमें बार बार आते हैं और भोग समाप्त होनेपर चले जाते हैं, ऐसा कोई पदार्थ नहीं आता, जिसका इन्द्रियोंसे अनुभव ही न हो सके। इसका कारण यही है कि सब जीव मनःसहित हैं। इसलिये साधारणतया तो सब पदार्थोंका क्रमशः ही भान होता है, किन्तु यदि किसी समय भगवच्चिन्तनमें लगा हुआ मन विशुद्ध सत्त्वमें स्थित हो जाय, तो उसमें भगवान्‌का संसर्ग होनेसे एक साथ समस्त विश्वका भी भान हो सकता है—जैसे राहु दृष्टिका विषय न होनेपर भी प्रकाशात्मक चन्द्रमाके संसर्गसे दीखने लगता है। राजन्! जबतक गुणोंका परिणाम एवं बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शब्दादि विषयोंका सङ्घात यह अनादि लिङ्गदेह बना हुआ है, तबतक जीवके अंदर स्थूल देहके प्रति 'मैं मेरा' इस भावका अभाव नहीं हो सकता। सुषुप्ति, मूर्च्छा, शोक तथा मृत्यु और तीव्र ज्वरादिके समय भी इन्द्रियोंका व्यापार रुक जानेके कारण अहङ्कारकी केवल अभिव्यक्ति भर नहीं होती, सूक्ष्मरूपसे तो वह बना ही रहता है। जिस प्रकार अमावास्याकी रात्रिमें चन्द्रमा रहते हुए भी दिखायी नहीं देता, उसी प्रकार युवावस्थामें स्पष्ट प्रतीत होनेवाला यह एकादश इन्द्रियविशिष्ट लिङ्गशरीर गर्भावस्था और बाल्यकालमें रहते हुए भी इन्द्रियोंका पूर्ण विकास न होनेके कारण प्रतीत नहीं होता। देखो, जिस प्रकार स्वप्नमें किसी वस्तुका अस्तित्व न होनेपर भी जागे बिना स्वप्नजनित अनर्थकी निवृत्ति नहीं होती—उसी प्रकार सांसारिक वस्तुएँ यद्यपि असत् हैं, तो भी अविद्यावश जीव उनका चिन्तन करता रहता है, इसलिये उसका जन्म मरणरूप संसारसे छुटकारा नहीं हो पाता ॥ ६६-७२ ॥

इस प्रकार पञ्च तन्मात्राओंसे बना हुआ तथा सोलह तत्त्वोंके रूपमें विकसित यह त्रिगुणमय सङ्घात ही लिङ्गशरीर है। यही चेतनाशक्तिसे युक्त होकर जीव कहा जाता है। इसीके द्वारा पुरुष भिन्न भिन्न देहोंको ग्रहण करता और त्यागता है तथा इसीसे उसे हर्ष, शोक, भय, दुःख और सुख आदिका अनुभव होता है। जिस प्रकार घासमें रहनेवाली जोंक जबतक दूसरे तृणको नहीं पकड़ लेती, तबतक पहलेको नहीं छोड़ती—उसी प्रकार जीव मरणकाल उपस्थित होनेपर भी जबतक प्रारब्ध क्षय होनेपर दूसरा शरीर प्राप्त नहीं कर लेता, तबतक पहले शरीरके अभिमानको नहीं छोड़ता। राजन्! इस प्रकार यह मनःप्रधान लिङ्गशरीर ही जीवके

सम्पन्न थीं। ये पौरञ्जनी नामसे विख्यात हुईं। इतनेहीमें उस सम्राट्की लंबी आयुका आधा भाग निकल गया। फिर पाञ्चालराज पुरञ्जनने पितृवंशकी वृद्धि करनेवाले पुत्रोंका वधुओंके साथ और कन्याओंका उनके योग्य वरोंके साथ विवाह कर दिया। पुत्रोंमेंसे प्रत्येकके सौ-सौ पुत्र हुए। उनसे वृद्धिको प्राप्त होकर पुरञ्जनका वंश सारे पाञ्चाल देशमें फैल गया। इन पुत्र, पौत्र, गृह, कोश, सेवक और मन्त्री आदिमें दृढ़ ममता हो जानेसे वह इन विषयोंमें ही बँध गया। फिर तुम्हारी तरह उसने भी अनेक प्रकारके भोगोंकी कामनासे यज्ञकी दीक्षा ले तरह-तरहके पशुहिंसामय घोर यज्ञोंसे देवता, पितर और भूतपतियोंकी आराधना की। इस प्रकार वह जीवनभर आत्माका कल्याण करनेवाले कर्मोंकी ओरसे असावधान और कुटुम्बपालनमें व्यस्त रहा। अन्तमें वृद्धावस्थाका वह समय आ पहुँचा, जो स्त्रीलोलुप पुरुषोंको बड़ा अप्रिय होता है ॥५-१२॥

राजन्! चण्डवेग नामका एक गन्धर्वराज था। उसके अधीन तीन सौ साठ महाबलवान् गन्धर्व थे। इनके साथ मिथुनभावसे स्थित कृष्ण और शुक्ल वर्णकी उतनी ही गन्धर्विणियाँ थीं। ये बारी-बारीसे चक्कर लगाकर पुरञ्जनकी सर्वभोगसम्पन्ना पुरीको लूटती रहती थीं। इस तरह जब गन्धर्वराज चण्डवेगके अनुचर राजा पुरञ्जनका नगर लूटने लगे, तो उन्हें प्रजागर नामवाले उस पाँच फनके सर्पने रोका। यह पुरञ्जनपुरीकी चौकसी करनेवाला महाबलवान् सर्प सौ वर्षतक अकेला ही उन सात सौ बीस गन्धर्व-गन्धर्विणियोंसे युद्ध करता रहा। बहुत-से वीरोंके साथ अकेले ही युद्ध करनेके कारण अपने एकमात्र सम्बन्धी प्रजागरको बलहीन हुआ देख राजा पुरञ्जनको अपने राष्ट्र और नगरमें रहनेवाले अन्य बान्धवोंके सहित बड़ी चिन्ता हुई। वह तो इतने दिनोंतक पाञ्चाल देशके उस नगरमें अपने दूतोंद्वारा लाये हुए करको लेकर विषयभोगोंमें मस्त रहता था। स्त्रीके वशीभूत रहनेके कारण इस आपत्तिका तो उसे पता ही न चला ॥ १३-१८ ॥

बर्हिष्मन्! इसी समय एक सङ्कट और उपस्थित हो गया। कालकी एक कन्या वरकी खोजमें त्रिलोकीमें भटकती रही, फिर भी उसे किसीने स्वीकार न किया। वह कालकन्या (जरा) बड़ी भाग्यहीना थी, इसलिये लोग उसे 'दुर्भगा' कहते थे। एक बार राजर्षि पूरुने पिताको अपना यौवन देनेके लिये अपनी ही इच्छासे उसे वर लिया था, इससे प्रसन्न होकर उसने उन्हें राज्यप्राप्तिका वर दिया था। एक दिन मैं ब्रह्मलोकसे पृथ्वीपर आया, तो वह घूमती-घूमती मुझे भी मिल गयी। तब मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी जानकर भी कामातुरा होनेके कारण उसने वरना चाहा। मैंने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। इसपर उसने अत्यन्त कुपित होकर मुझे यह दुःसह शाप दिया कि 'तुमने मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की, अतः तुम एक स्थानपर अधिक देर न ठहर सकोगे' ॥१९-२२॥

तब मेरी ओरसे निराश होकर उस कन्याने मेरी ही सम्मतिसे यवनराज भयके पास जाकर उसे पतिरूपसे वरा और उससे कहा, 'वीरवर! आप यवनोंमें श्रेष्ठ हैं, मैं आपको अपना मनमाना पति बनाना चाहती हूँ। मुझे आशा है, आप मेरी प्रार्थना अवश्य स्वीकार करेंगे; क्योंकि आपके प्रति किया हुआ जीवोंका सङ्कल्प कभी विफल नहीं होता। जो मनुष्य लोक अथवा शास्त्रकी दृष्टिसे देनेयोग्य वस्तुका दान नहीं करता और जो शास्त्रदृष्टिसे अधिकारी होकर भी ऐसा दान नहीं लेता, वे दोनों ही दुराग्रही और मूढ हैं, चिन्ता करने योग्य हैं। भद्र! इस समय मैं आपकी सेवामें उपस्थित हुई हूँ, आप मुझे स्वीकार करके अनुगृहीत कीजिये। पुरुषका सबसे बड़ा धर्म तो दीनोंपर दया करना ही है' ॥२३-२६॥

कालकन्याकी बात सुनकर यवनराजने विधाताका एक गुप्त कार्य करानेकी इच्छासे उससे कहा, 'मैंने योगदृष्टिसे देखकर तेरे लिये एक पति निश्चय किया है। तू सबका अनिष्ट करनेवाली है, इसलिये किसीको भी अच्छी नहीं लगती और इसीसे लोग तुझे स्वीकार नहीं करते। अतः इस कर्मजनित लोकको तू अलक्षित होकर बलात्कारसे भोग। तू मेरी सेना लेकर जा; इसकी सहायतासे तू सारी प्रजाका नाश करनेमें समर्थ होगी, कोई भी तेरा सामना न कर सकेगा। यह प्रज्वार नामका मेरा भाई है, और तू मेरी बहिन बन जा। बस, तुम दोनोंके साथ मैं अव्यक्त गतिसे भयङ्कर सेना लेकर सारे लोकोंमें विचरूँगा' ॥ २७-३० ॥

कथन जगह जगह सुना जाता है कि 'पुरुष इस लोकमें जिसके द्वारा कर्म करता है, उस स्थूलशरीरको यहीं छोड़कर परलोकमे कर्मोंसे ही बने हुए दूसरे देहसे उनका फल भोगता है।' किन्तु यह बात कैसे सम्भव हो सकती है ? क्योंकि जो जो कर्म यहाँ किये जाते हैं, वे तो दूसरे ही क्षणमें अदृश्य हो जाते है, वे परलोकमे फल देनेके लिये किस प्रकार पुन प्रकट हो सकते हैं ? ॥ ५६–५९ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजन् ! जिस मन प्रधान लिङ्ग शरीरकी सहायतासे मनुष्य कर्म करता है, वह तो मरनेके बाद भी उसके साथ रहता ही है, अत वह परलोकमे अपरोक्षरूपसे स्वय उसीके द्वारा उनका फल भोगता है। देखो—स्वप्नावस्थामें मनुष्य इस जीवित शरीरका अभिमान तो छोड़ देता है, किन्तु इसीके समान अथवा इससे भिन्न प्रकारके पशु पक्षी आदि शरीरसे वह मनमें सस्काररूपसे स्थित कर्मोंका फल भोगता रहता है। यही बात परलोकके विषयम समझनी चाहिये। इस मनके द्वारा जीव जिन स्त्री पुत्रादिको 'ये मेरे हैं' और देहादिको 'यह मैं हूँ' ऐसा कहकर मानता है, उनके किये हुए पाप पुण्यादिरूप कर्मोंको भी यह अपने ऊपर ले लेता है और उनके कारण इसे व्यर्थ ही फिर जन्म लेना पड़ता है। जिस प्रकार ज्ञान और कर्म—दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंकी चेष्टाओंसे उनके प्रेरक चित्तका अनुमान किया जाता है, उसी प्रकार चित्तकी भिन्न भिन्न प्रकारकी वृत्तियोंसे भी पूर्वजन्मके कर्मोंका भी अनुमान होता ही है। कभी कभी देखा जाता है कि जिस वस्तुका इस शरीरसे कभी अनुभव नहीं किया—जिसे न तो कभी देखा, न सुना ही—उसका स्वप्नमें, वह जैसी होती है, वैसा ही अनुभव हो जाता है। राजन् ! इससे तुम निश्चय मानो कि लिङ्गदेहके अभिमानी जीवको उसका अनुभव पूर्वजन्ममे हो चुका है, क्योंकि जो वस्तु पहले अनुभव की हुई नहीं होती, उसकी मनमे वासना भी नहीं हो सकती ॥ ६०–६५ ॥

राजन् ! तुम्हारा कल्याण हो। देखो, मन ही मनुष्यके पूर्व रूपोंको तथा भावी शरीरादिको भी बता देता है, और जिनका भावी जन्म होनेवाला नहीं होता, उन तत्त्ववेत्ताओंकी विदेह मुक्तिका पता भी उनके मनसे ही लग जाता है। कभी कभी स्वप्नमें देश, काल अथवा क्रियासम्बन्धी ऐसी बातें भी देखी जाती हैं, जो पहले कभी देखी या सुनी नहीं गयीं–जैसे पर्वतकी चोटीपर समुद्र, दिनमे तारे अथवा अपना सिर कटा दिखायी देना, इत्यादि। इनके दीखनेमें निद्रादोषको ही कारण मानना चाहिये। मनके सामने इन्द्रियोंसे अनुभव होने योग्य पदार्थ ही भोगरूपमें बार-बार आते हैं और भोग समाप्त होनेपर चले जाते है, ऐसा कोई पदार्थ नहीं आता, जिसका इन्द्रियोंसे अनुभव ही न हो सके। इसका कारण यही है कि सब जीव मनसहित हैं। इसलिये साधारणतया तो सब पदार्थोंका क्रमश ही भान होता है, किन्तु यदि किसी समय भगवच्चिन्तनमें लगा हुआ मन विशुद्ध सत्त्वमें स्थित हो जाय, तो उसमें भगवान्‌का ससर्ग होनेसे एक साथ समस्त विश्वका भी भान हो सकता है—जैसे राहु दृष्टिका विषय न होनेपर भी प्रकाशात्मक चन्द्रमाके ससर्गसे दीखने लगता है। राजन् ! जबतक गुणोंका परिणाम एव बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शब्दादि विषयोंका सङ्घात यह अनादि लिङ्गदेह बना हुआ है, तबतक जीवके अदर स्थूल देहके प्रति 'मैं मेरा' इस भावका अभाव नहीं हो सकता। सुषुप्ति, मूर्च्छा, शोक तथा मृत्यु और तीव्र ज्वरादिके समय भी इन्द्रियोंका व्यापार रुक जानेके कारण अहङ्कारकी केवल अभिव्यक्ति भर नहीं होती, सूक्ष्मरूपसे तो वह बना ही रहता है। जिस प्रकार अमावास्याकी रात्रिमें चन्द्रमा रहते हुए भी दिखायी नहीं देता, उसी प्रकार युवावस्थामें स्पष्ट प्रतीत होनेवाला यह एकादश इन्द्रियविशिष्ट लिङ्गशरीर गर्भावस्था और बाल्यकालमे रहते हुए भी इन्द्रियोंका पूर्ण विकास न होनेके कारण प्रतीत नहीं होता। देखो, जिस प्रकार स्वप्नमे किसी वस्तुका अस्तित्व न होनेपर भी जागे बिना स्वप्नजनित अनर्थकी निवृत्ति नहीं होती–उसी प्रकार सासारिक वस्तुएँ यद्यपि असत् हैं, तो भी अविद्यावश जीव उनका चिन्तन करता रहता है, इसलिये उसका जन्म मरणरूप ससारसे छुटकारा नहीं हो पाता ॥ ६६–७२ ॥

इस प्रकार पञ्च तन्मात्राओंसे बना हुआ तथा सोलह तत्त्वोंके रूपमें विकसित यह त्रिगुणमय सङ्घात ही लिङ्गशरीर है। यही चेतनाशक्तिसे युक्त होकर जीव कहा जाता है। इसीके द्वारा पुरुष भिन्न भिन्न देहोंको ग्रहण करता और त्यागता है तथा इसीसे उसे हर्ष, शोक, भय, दु ख और सुख आदिका अनुभव होता है। जिस प्रकार घासमें रहनेवाली जोंक जबतक दूसरे तृणको नहीं पकड़ लेती, तबतक पहलेको नहीं छोड़ती–उसी प्रकार जीव मरणकाल उपस्थित होनेपर भी जबतक प्रारब्ध क्षय होनेपर दूसरा शरीर प्राप्त नहीं कर लेता, तबतक पहले शरीरके अभिमानको नहीं छोड़ता। राजन् ! इस प्रकार यह मन प्रधान लिङ्गशरीर ही जीवके



भय और प्रज्वार आदिका पुरञ्जनपुरीपर आक्रमण

अपनी सन्तानसे तीनों लोकोंको पूर्ण कर देगा ॥ ८–१२ ॥

राजकुमारो ! कण्डु ऋषिके तपोनाशके लिये इन्द्रकी भेजी हुई प्रम्लोचा अप्सरासे एक कमलनयनी कन्या उत्पन्न हुई थी। उसे छोड़कर वह स्वर्गलोकको चली गयी। तब वृक्षोंने उस कन्याको लेकर पाला पोसा। जब वह भूखसे व्याकुल होकर रोने लगी, तो ओषधियोंके राजा चन्द्रमाने दयावश उसके मुँहमें अपनी अमृतवर्षिणी तर्जनी अँगुली दे दी। तुम्हारे पिता आजकल मेरी सेवा (भक्ति) में लगे हुए हैं; उन्होंने तुम्हें सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है। अतः तुम शीघ्र ही उस देवोपम सुन्दरी कन्यासे विवाह कर लो। तुम सब एक ही धर्ममें तत्पर हो और तुम्हारा स्वभाव भी एक-सा ही है, इसलिये तुम्हारे ही समान धर्म और स्वभाववाली वह सुन्दरी कन्या तुम सभीकी पत्नी होगी तथा तुम सभीमें उसका समान अनुराग होगा। तुम लोग मेरी कृपासे दस लाख दिव्यवर्षोंतक पूर्ण बलवान् रहकर अनेकों प्रकारके पार्थिव और दिव्य भोग भोगोगे। अन्तमें मेरी अविचल भक्तिसे हृदयका समस्त वासनारूप मल दग्ध हो जानेपर तुम इस लोक तथा परलोकके नरकतुल्य भोगोंसे उपरत होकर मेरे परमधामको जाओगे। जिन लोगोंके कर्म भगवदर्पणबुद्धिसे होते हैं और जिनका सारा समय मेरी कथा वार्ताओंमें ही बीतता है, वे गृहस्थाश्रममें रहें तो भी घर उनके बन्धनका कारण नहीं होते। वे नित्यप्रति मेरी लीलाएँ सुनते रहते हैं, इसलिये ब्रह्मवादी वक्ताओंके द्वारा मैं ज्ञानस्वरूप परब्रह्म उनके हृदयमें नित्य नया-नया-सा भासता रहता हूँ और मुझे प्राप्त कर लेनेपर जीवोंको न मोह हो सकता है, न शोक हो सकता है और न हर्ष ही हो सकता है ॥१३–२०॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—भगवान्‌के दर्शनोंसे प्रचेताओं का रजोगुण तमोगुणरूप मल नष्ट हो चुका था। जब उनसे सकल पुरुषार्थोंके आश्रय और सबके परम सुहृद् श्रीहरिने इस प्रकार कहा, तो वे हाथ जोड़कर गद्गद वाणीसे कहने लगे ॥२१॥

प्रचेतागण बोले—प्रभो ! आप भक्तोंके क्लेश दूर करनेवाले हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं। आपके उदार गुण और नामोंको वेदोंने *समस्त कल्याणोंकी प्राप्तिका साधन बतलाया* है, आपका वेग मन और वाणीके वेगसे भी बढ़कर है तथा आपका स्वरूप सभी इन्द्रियोंकी गतिसे परे है। हम आपको बारंबार नमस्कार करते हैं। आप अपने स्वरूपमें स्थित रहनेके कारण नित्य शुद्ध और शान्त हैं, मनरूप निमित्तके कारण हमें आपमें यह मिथ्या द्वैत भास रहा है। वास्तवमें तो जगत्‌की उत्पत्ति, *स्थिति और लयके लिये आप* मायाके गुणोंको स्वीकार करके ही ब्रह्मा, विष्णु और महादेव रूप धारण करते हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। आप विशुद्ध सत्त्वस्वरूप हैं, आपका ज्ञान संसारबन्धनको दूर कर देता है। आप ही समस्त भागवतोंके प्रभु वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण हैं, आपको नमस्कार है। आपकी ही *नाभिसे ब्रह्माण्डरूप कमल प्रकट हुआ था*, आपके कण्ठमें *कमलकुसुमोंकी माला सुशोभित है* तथा आपके चरण कमल के समान कोमल हैं, कमलनयन ! आपको नमस्कार है। आप कमलकुसुमकी केसरके समान स्वच्छ पीताम्बर धारण किये हुए हैं, समस्त भूतोंके *आश्रयस्थान* हैं तथा सबके साक्षी हैं, हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ २२–२६ ॥

भगवन् ! आपका यह स्वरूप सम्पूर्ण क्लेशोंकी निवृत्ति करनेवाला है, हम त्रितापपीड़ितोंके सामने आपने इसे प्रकट किया है। इससे बढ़कर हमपर और क्या कृपा होगी ! *अमङ्गलहारी प्रभो* ! दीनोंपर दया करनेवाले *समर्थ पुरुषोंको तो इतनी ही कृपा करनी चाहिये कि समय-समयपर उन* दीनजनोंको 'ये हमारे हैं' इस प्रकार स्मरण कर लिया करें। इसीसे उनके आश्रितोंका चित्त शान्त हो जाता है। आप तो क्षुद्र से क्षुद्र *प्राणियोंके भी अन्तःकरणोंमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान* रहते हैं। फिर आपके उपासक हमलोग जो-जो कामनाएँ करते हैं, हमारी उन कामनाओंको आप क्यों न जान लेंगे ! जगदीश्वर ! आप मोक्षका मार्ग दिखानेवाले और स्वयं पुरुषार्थस्वरूप हैं। आप हमपर प्रसन्न हैं, इससे बढ़कर हमें और क्या चाहिये ? बस, हमारा अभीष्ट वर तो आपकी प्रसन्नता ही है। तो भी, नाथ ! हम एक वर आपसे अवश्य माँगते हैं। प्रभो ! आप प्रकृति आदिसे भी परे हैं, और आपकी विभूतियोंका भी कोई अन्त नहीं है; इसीलिये आप 'अनन्त' कहे जाते हैं। तब आपकी चरणशरणमें आकर अब हम क्या-क्या माँगें ! यदि भ्रमरको अनायास ही कल्पवृक्ष मिल जाय, तो क्या वह किसी दूसरे वृक्षका सेवन करेगा ? अतः हम आपसे केवल यही माँगते हैं कि जबतक आपकी मायासे मोहित होकर हम अपने कर्मानुसार संसारमें भ्रमते रहें, तबतक जन्म जन्ममें हमें आपके प्रेमी भक्तोंका सङ्ग प्राप्त होता रहे। हम तो भगवद्भक्तोंके क्षणभरके सङ्गके सामने स्वर्ग और मोक्षको भी कुछ नहीं समझते; फिर मानवी भोगोंकी तो बात ही क्या है। भगवद्भक्तोंके समाजमें सदा-सर्वदा भगवान्‌की पवित्र कथाएँ होती रहती हैं, जिनके श्रवण मात्रसे भोगतृष्णा शान्त हो जाती है। वहाँ प्राणियोंमें किसी

यद्यपि ज्ञानदृष्टिसे उसे शोक करना उचित न था, फिर भी अज्ञानवश राजा पुरञ्जन इस प्रकार दीन बुद्धिसे अपने स्त्री-पुत्रादिके लिये शोकाकुल हो रहा था। इसी समय उसे पकड़नेके लिये वहाँ भयनामक यवनराज आ धमका। जब यवनलोग उसे पशुके समान बाँधकर अपने स्थानको ले चले, तो उसके अनुचरगण अत्यन्त आतुर और शोकाकुल होकर उसके साथ हो लिये। यवनोंद्वारा रोका हुआ सर्प भी उस पुरीको छोड़कर इन सबके साथ ही चल दिया। उसके जाते ही सारा नगर छिन्न-भिन्न होकर अपने कारणमें लीन हो गया। इस प्रकार महाबली यवनराजके बलपूर्वक खींचनेपर भी राजा पुरञ्जनने अज्ञानवश अपने पुराने मित्र अविज्ञातका स्मरण नहीं किया ॥ २२–२५ ॥

फिर उस निर्दयी राजाने जिन यज्ञपशुओंकी बलि दी थी, वे उसकी दी हुई पीड़ाको याद करके उसे क्रोधपूर्वक कुठारोंसे काटने लगे। इस प्रकार वह वर्षोंतक विवेकहीन अवस्थामें अपार अन्धकारमें पड़ा निरन्तर कष्ट भोगता रहा। स्त्रीकी आसक्तिसे उसकी यह दुर्गति हुई थी। अन्तसमयमें भी पुरञ्जनको उसीका चिन्तन बना हुआ था। इसलिये दूसरे जन्ममें वह नृपश्रेष्ठ विदर्भराजके यहाँ सुन्दरी कन्या होकर उत्पन्न हुआ। जब यह विदर्भनन्दिनी विवाहयोग्य हुई, तो विदर्भराजने घोषित कर दिया कि इसे सर्वश्रेष्ठ वीर ही ब्याह सकेगा। तब शत्रुओंके नगरोंको जीतनेवाले पाण्ड्यनरेश महाराज मलयध्वजने समरभूमिमें समस्त राजाओंको जीतकर उसके साथ विवाह किया। उससे महाराज मलयध्वजके एक श्यामलोचना कन्या और उससे छोटे सात पुत्र हुए, जो आगे चलकर द्रविडदेशके सात राजा हुए। राजन्! फिर उनमेंसे प्रत्येक पुत्रके दस-दस करोड़ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके वंशधर इस पृथ्वीको मन्वन्तरके अन्ततक तथा उसके बाद भी भोगेंगे। राजा मलयध्वजकी पहली पुत्री बड़ी व्रतशीला थी। उसके साथ अगस्त्य ऋषिका विवाह हुआ। उससे उनके दृढच्युत नामका पुत्र हुआ, और दृढच्युतके इध्मवाह हुआ ॥ २६–३२ ॥

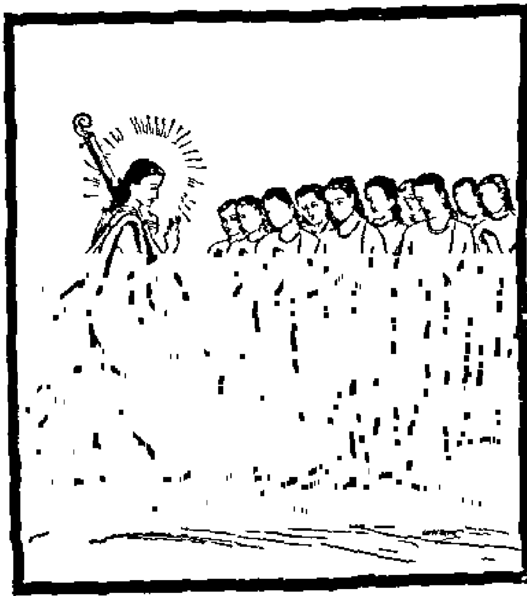
अन्तमें राजर्षि मलयध्वज पृथ्वीको पुत्रोंमें बाँटकर भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करनेकी इच्छासे मलय पर्वतपर चले गये। उस समय—चन्द्रिका जिस प्रकार चन्द्रदेवका अनुसरण करती है—उसी प्रकार मत्तलोचना वैदर्भी अपने घर, पुत्र और समस्त भोगोंको तिलाञ्जलि दे पाण्ड्यनरेशके साथ हो ली। वहाँ चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी और वटोदका नामकी तीन नदियाँ थीं। उनके पवित्र जलमें स्नान करके वे प्रतिदिन अपना बाहर-भीतरका मल धोते थे। वहाँ रहकर उन्होंने कन्द, बीज, मूल, फल, पुष्प, पत्ते, तृण और जलसे ही निर्वाह करते हुए बड़ा कठोर तप किया। इससे धीरे-धीरे उनका शरीर बहुत सूख गया। महाराज मलयध्वजने सर्वत्र समदृष्टि रखकर शीत-उष्ण, वर्षा-वायु, भूख-प्यास, प्रिय-अप्रिय और सुख-दुःखादि सभी द्वन्द्वोंको जीत लिया। फिर तप और उपासनासे वासनाओंको निर्मूल कर तथा यम-नियमादिके द्वारा इन्द्रिय, प्राण और मनको वशमें करके वे आत्मामें ब्रह्मभावना करने लगे। इस प्रकार सौ दिव्य वर्षोंतक स्थाणुके समान निश्चलभावसे एक ही स्थानपर बैठे रहे। भगवान् वासुदेवमें सुदृढ प्रेम हो जानेके कारण इतने समयतक उन्हें शरीरादिका भी भान न हुआ। राजन्! गुरुस्वरूप साक्षात् श्रीहरिके उपदेश किये हुए तथा अपने अन्तःकरणमें सब ओर स्फुरित होनेवाले विशुद्ध विज्ञानदीपकसे उन्होंने देखा कि अन्तःकरणकी वृत्तिका प्रकाशक आत्मा स्वप्नावस्थाकी भाँति देहादि समस्त उपाधियोंमें व्याप्त तथा उनसे पृथक् भी है। ऐसा अनुभव करके वे सब ओरसे उदासीन हो गये। फिर अपने आत्माको परब्रह्ममें और परब्रह्मको आत्मामें अभिन्नरूपसे देखा और अन्तमें इस अभेद चिन्तनको भी त्याग कर सर्वथा शान्त हो गये ॥ ३३–४२ ॥

राजन्! इस समय पतिपरायणा वैदर्भी सब प्रकारके भोगोंको त्याग कर अपने परमधर्मज्ञ पति मलयध्वजकी सेवा बड़े प्रेमसे करती थी। वह चीर-वस्त्र धारण किये रहती, व्रत-उपवासादिके कारण उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था और सिरके बाल आपसमें उलझ जानेके कारण उनमें लटें पड़ गयी थीं। उस समय अपने पतिदेवके पास वह अङ्गारभावको प्राप्त धूमरहित अग्निके समीप अग्निकी शान्त शिखाके समान सुशोभित हो रही थी। उसके पति परलोकवासी हो चुके थे, परन्तु पूर्ववत् स्थिर आसनसे विराजमान थे। इस रहस्यको न जाननेके कारण वह उनके पास जाकर उनकी पूर्ववत् सेवा करती रही। एक दिन चरणसेवा करते समय उसे अपने पतिके चरणोंमें गर्मी बिल्कुल नहीं मालूम हुई। तब तो वह झुंडसे बिछुड़ी हुई मृगीके समान चित्तमें अत्यन्त व्याकुल हो गयी। उस भयङ्कर वनमें अपनेको अकेली और दीन अवस्थामें देखकर वह बड़ी शोकाकुल हुई और आँसुओंकी धारासे स्तनोंको भिगोती हुई बड़े जोर-जोरसे रोने लगी। वह बोली, 'राजर्षे! उठिये, उठिये; समुद्रसे घिरी हुई यह

आपका परिभ्रमण भी ज्ञानालोकसे समस्त जीवोंको अभय प्रदान करनेके लिये ही होता है। प्रभो! भगवान् शङ्कर और श्रीविष्णुभगवान्‌ने हमें जो उपदेश दिया था, उसे तो गृहस्थीमें आसक्त रहनेके कारण हमलोग प्रायः भूल गये हैं। अतः आप हमारे हृदयोंमें उस परमार्थतत्त्वका साक्षात्कार करानेवाले अध्यात्मज्ञानको फिर प्रकाशित कर दीजिये, जिससे हम सुगमतासे ही इस दुस्तर संसार-सागरसे पार हो जायँ ॥ ५–७ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—प्रचेताओंके इस प्रकार पूछनेपर भगवान् नारदजीने पुण्यकीर्ति श्रीहरिमें चित्त लगाकर उनसे कहा ॥ ८ ॥

श्रीनारदजी बोले—राजाओ! इस लोकमें मनुष्यका वही जन्म, वही कर्म, वही आयु, वही मन और वही वाणी सफल है, जिसके द्वारा सर्वात्मा सर्वेश्वर श्रीहरिका सेवन किया जाता है। जिनके द्वारा अपने स्वरूपका साक्षात्कार करानेवाले श्रीहरिको



प्राप्त न किया जाय, उन शौक्र (विशुद्ध माता पिताके अंशसे उत्पन्न होनेवाले), सावित्र (उपनयनसंस्कारजनित) और याज्ञिक (यज्ञदीक्षासे होनेवाले)—तीन प्रकारके जन्मोंसे, वेदोक्त कर्मोंसे, देवताओंके समान दीर्घ आयुसे, शास्त्रज्ञानसे, तपसे, वाणीकी चतुराईसे, अनेक प्रकारकी बातें याद रखनेकी शक्तिसे, तीव्र बुद्धिसे, बलसे, इन्द्रियोंकी पटुतासे, योगसे, सांख्य (आत्मानात्मविवेक)से, संन्यास और वेदाध्ययनसे तथा व्रत वैराग्यादि अन्य कल्याण-साधनोंसे भी पुरुषका क्या लाभ है? वास्तवमें समस्त कल्याणोंकी अवधि आत्मा ही है और आत्मज्ञान प्रदान करनेवाले श्रीहरि ही सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रिय आत्मा हैं। जिस प्रकार वृक्षकी जड़ोंको सींचनेसे उसके तना, शाखा, उपशाखा आदि सभीका पोषण हो जाता है और जैसे भोजनद्वारा प्राणोंको तृप्त करनेसे समस्त इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं, उसी प्रकार श्रीभगवान्‌की आराधना करनेसे सभीकी आराधना हो जाती है। जिस प्रकार वर्षाकालमें जल सूर्यके तापसे उत्पन्न होता है और ग्रीष्म ऋतुमें उसीकी किरणोंमें पुनः प्रवेश कर जाता है तथा जैसे समस्त चराचर भूत पृथ्वीसे उत्पन्न होते हैं और फिर उसीमें मिल जाते हैं, उसी प्रकार चेतनाचेतनात्मक यह समस्त प्रपञ्च श्रीहरिसे ही उत्पन्न होता है और उन्हींमें लीन हो जाता है। वस्तुतः यह विश्वात्मा श्रीभगवान्‌का वह शास्त्रप्रसिद्ध सर्वोपाधिरहित स्वरूप ही है। जैसे सूर्यकी प्रभा उससे भिन्न नहीं होती, उसी प्रकार यह जगत् भगवान्‌से भिन्न नहीं है, तथा जैसे जाग्रत्-अवस्थामें इन्द्रियाँ क्रियाशील रहती हैं किन्तु सुषुप्तिमें उनकी शक्तियाँ लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार यह जगत् सर्गकालमें भगवान्‌से प्रकट हो जाता है और कल्पान्त होनेपर उन्हींमें लीन हो जाता है। स्वरूपतः तो भगवान्‌में द्रव्य, क्रिया और ज्ञानरूपी त्रिविध अहङ्कारके कार्योंकी तथा उनके निमित्तसे होनेवाले भेदभ्रमकी सत्ता है ही नहीं। नृपतिगण! जैसे बादल, अन्धकार और प्रकाश—ये क्रमशः आकाशसे प्रकट होते हैं और उसीमें लीन हो जाते हैं किन्तु आकाश इनसे लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार ये सत्त्व, रज और तमोमयी शक्तियाँ कभी परब्रह्मसे उत्पन्न होती हैं और कभी उसीमें लीन हो जाती हैं। इसी प्रकार इनका प्रवाह चलता रहता है, किन्तु इससे आकाशके समान असङ्ग परमात्मामें कोई विकार नहीं होता। अतः तुम ब्रह्मादि समस्त लोकपालोंके भी अधीश्वर श्रीहरिको अपनेसे अभिन्न मानते हुए भजो, क्योंकि वे ही समस्त देहधारियोंके एकमात्र आत्मा हैं। वे ही जगत्‌के निमित्तकारण काल, उपादानकारण प्रधान और नियन्ता पुरुषोत्तम हैं तथा अपनी कालशक्तिसे वे ही इस गुणोंके प्रवाहरूप प्रपञ्चका संहार कर देते हैं ॥ ९–१८ ॥

वे भक्तवत्सल भगवान् समस्त जीवोंपर दया करनेसे, जो कुछ मिल जाय उसीमें सन्तुष्ट रहनेसे तथा समस्त इन्द्रियोंको विषयोंसे निवृत्त करके शान्त करनेसे शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं। पुत्रैषणा आदि सब प्रकारकी वासनाओंके निकल जानेसे जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है, उन संतोंके हृदयमें उनके निरन्तर बढ़ते हुए चिन्तनसे खिंचकर अविनाशी

नामसे कहा गया है, वह ईश्वर है; क्योंकि किसी भी प्रकारके नाम, गुण अथवा कर्मोंसे जीवोंको उसका पता नहीं चलता। जीव जब सुख-दुःखरूप सभी प्राकृत विषयोंको भोगना चाहता है तो उसे और शरीरोंकी अपेक्षा नौ द्वार, दो हाथ और दो पैरोंवाला मानव-देह ही अच्छा मालूम होता है। बुद्धि अथवा अविद्याको ही तुम पुरञ्जनी नामकी स्त्री जानो; इसीके कारण देह और इन्द्रिय आदिमें मैं-मेरेपनका भाव उत्पन्न होता है और शरीरमें इसीका आश्रय लेकर पुरुष इन्द्रियोंद्वारा विषयोंको भोगता है। दस इन्द्रियाँ ही उसके मित्रोंके रूपमें वर्णित हुई हैं, जिनसे कि सब प्रकारके ज्ञान और कर्म होते हैं। इन्द्रियोंकी वृत्तियाँ ही उसकी सखियाँ कही गयी हैं और प्राण-अपान-व्यान-उदान-समानरूप पाँच वृत्तियोंवाले प्राणवायुको ही नगरकी रक्षा करनेवाला पाँच फनका सर्प समझो। दोनों प्रकारकी इन्द्रियोंके नायक मनको ही ग्यारहवाँ महाबली योद्धा जानना चाहिये। शब्दादि पाँच विषय ही पाञ्चालदेश हैं, जिसके बीचमें वह नौ द्वारोंवाला नगर बसा हुआ है ॥२—७॥

उस नगरमें जो एक-एक स्थानपर दो-दो द्वार बताये गये थे—वे दो नेत्रगोलक, दो नासाछिद्र और दो कर्णछिद्र हैं। इनके साथ मुख, लिङ्ग और गुदा—ये तीन और मिलाकर कुल नौ द्वार हैं; इन्हींमें होकर वह जीव इन्द्रियोंके साथ बाह्य विषयोंमें जाता है। इनमें दो नेत्रगोलक, दो नासाछिद्र और एक मुख—ये पाँच पूर्वके द्वार हैं; दाहिने कानको दक्षिणका और बायें कानको उत्तरका द्वार समझना चाहिये। तथा गुदा और लिङ्ग—ये नीचेके दो छिद्र पश्चिमी द्वार हैं। खद्योता और आविर्मुखी नामके जो दो द्वार एक स्थानपर बतलाये थे, वे नेत्रगोलक हैं तथा रूप विभ्राजित नामका देश है, जिसका इन द्वारोंसे जीव चक्षु-इन्द्रियकी सहायतासे अनुभव करता है। चक्षु-इन्द्रियोंको ही पहले द्युमान् नामका सखा कहा गया है। दोनों नासाछिद्र ही नलिनी और नालिनी नामके द्वार हैं और नासिकाका विषय गन्ध ही सौरभ नामका देश है, तथा घ्राणेन्द्रिय अवधूत नामका मित्र है। मुख मुख्या नामका द्वार है। उसमें रहनेवाला वागिन्द्रिय विपण है और रसनेन्द्रिय रसविद् (रसज्ञ) नामका मित्र है। वाणीका व्यापार आपण नामका देश है और तरह-तरहका अन्न बहूदन है, तथा दाहिना कान पितृहू और बायाँ कान देवहू कहा गया है। कर्मकाण्डरूप प्रवृत्तिमार्गका शास्त्र और उपासनाकाण्डरूप निवृत्तिमार्गका शास्त्र ही क्रमशः दक्षिण और उत्तर पाञ्चालदेश हैं। इन्हें श्रवणेन्द्रियरूप श्रुतधरकी सहायतासे सुनकर जीव क्रमशः पितृयान और देवयान मार्गोंमें जाता है। लिङ्ग ही आसुरी नामका पश्चिमी द्वार है, स्त्रीप्रसङ्ग ग्रामक नामका देश है और लिङ्गमें रहनेवाला उपस्थेन्द्रिय दुर्मद नामका मित्र है। गुदा निर्ऋति नामका पश्चिमी द्वार है, नरक वैशस नामका देश है और गुदामें स्थित पायु-इन्द्रिय लुब्धक नामका मित्र है। इनके सिवा दो पुरुष अंधे बताये गये थे, उनका रहस्य भी सुनो। वे हाथ और पाँव हैं; इन्हींकी सहायतासे जीव क्रमशः सब काम करता और जहाँ-तहाँ जाता है। हृदय अन्तःपुर है, उसमें रहनेवाला मन ही विषूचि (विषूचीन) नामका प्रधान सेवक है। जीव उस मनके सत्त्वादि गुणोंके कारण ही हर्ष, शोक अथवा मोहको प्राप्त होता है। बुद्धि ही पुरञ्जनी नामकी राजमहिषी है—यह पहले कहा जा चुका है। वह जिस-जिस प्रकार स्वप्नावस्थामें विकारको प्राप्त होती है और जाग्रत् अवस्थामें इन्द्रियादिको विकृत करती है, उसके गुणोंसे लिप्त होकर आत्मा (जीव) भी उसी-उसी रूपमें उसकी वृत्तियोंका अनुकरण करनेको बाध्य होता है—यद्यपि वस्तुतः वह उनका निर्विकार साक्षीमात्र ही है ॥८—१७॥

अब जिस शीघ्रगामी रथपर चढ़कर राजा पुरञ्जन शिकारके लिये गया था, उसका तात्पर्य बतलाते हैं। शरीर ही वह रथ है। उसमें ज्ञानेन्द्रियरूप पाँच घोड़े जुते हुए हैं। देखनेमें संवत्सररूप कालके समान ही उसका अप्रतिहत वेग है, वास्तवमें वह गतिहीन है। पुण्य और पाप—ये दो प्रकारके कर्म ही उसके पहिये हैं, तीन गुण ध्वजा हैं, पाँच प्राण डोरियाँ हैं, मन बागडोर है, बुद्धि सारथि है, हृदय बैठनेका स्थान है, सुख-दुःखादि द्वन्द्व जुए हैं, इन्द्रियोंके पाँच विषय उसमें रक्खे हुए आयुध हैं, त्वचा आदि सात धातुएँ उसके परदे हैं तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ उसकी पाँच प्रकारकी गति हैं। इस रथपर चढ़कर रथीरूप यह जीव मृगतृष्णाके समान मिथ्या विषयोंकी ओर दौड़ता है। ग्यारह इन्द्रियाँ उसकी सेना हैं तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा उन-उन इन्द्रियोंके विषयोंको अन्यायपूर्वक ग्रहण करना ही उसका शिकार खेलना है ॥१८—२०॥

जिसके द्वारा कालका ज्ञान होता है, वह संवत्सर ही चण्डवेग नामक गन्धर्वराज है। उसके अधीन जो तीन सौ साठ गन्धर्व बताये गये थे, वे दिन हैं और तीन सौ साठ गन्धर्विणियाँ रात्रि हैं। ये बारी-बारीसे चक्कर लगाते हुए

भागवतका ही सेवन करना चाहिये

श्रीश्रीकृष्णविहारैकभजनास्वादलोलुपाः ।
मुक्तावपि निराकाङ्क्षास्तेषां भागवतं धनम् ॥
येऽपि संसारसन्तापनिर्विण्णा मोक्षकाङ्क्षिणः ।
तेषां भवौषधं चैतत् कलौ सेव्यं प्रयत्नतः ॥
ये चापि विषयारामाः सांसारिकसुखस्पृहाः ।
तेषां तु कर्ममार्गेण या सिद्धिः साधुना कलौ ॥
सामर्थ्यधनविज्ञानाभावादत्यन्तदुर्लभा ।
तस्मात्तैरपि संसेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥
(स्कन्दपुराण)

इस लोक और परलोकके सुखोंका परित्याग करके अधिक तो क्या मोक्षकी भी आकाङ्क्षा छोड़कर जो लोग एकमात्र श्रीराधाकृष्णकी लीलाओंके भजन-कीर्तनका आनन्द लेनेके लिये लालायित रहते हैं उनके लिये श्रीमद्भागवत ही परम धन है। जो लोग जन्म-जन्मान्तरके चक्र—संसारके त्रिविध तापकी तपनसे झुलसकर उससे छुटकारा पाना चाहते हैं—मोक्ष चाहते हैं उनके लिये भी इस संसार रोगसे मुक्ति पानेका औषध केवल श्रीमद्भागवत ही है। विशेषतः कलियुगमें तो प्रयत्न-पूर्वक इसीका सेवन करना चाहिये। जो विषयोंमें सुख मानते हैं, जिन्हें सांसारिक सुखकी लालसा-तृष्णा है, उन्हें कर्ममार्गसे जो सिद्धि मिलती थी वह अब कलियुगमें सामर्थ्य, धन और विज्ञान आदिकी न्यूनता और अभावके कारण अत्यन्त दुर्लभ हो गयी है। इसलिये उन्हें भी श्रीमद्भागवत महापुराणका ही सेवन करना चाहिये।

द्वारा ढूँढ़-ढूँढ़कर हार गये, फिर भी उस सर्वसाक्षी परमेश्वरको आजतक न देख सके। वेद भी अत्यन्त विस्तृत है, उसका पार पाना हँसी-खेल नहीं है। अनेकों महानुभाव उसकी आलोचना करके मन्त्रोंमें बताये हुए वज्रहस्तत्वादि गुणोंसे युक्त इन्द्रादि देवताओंके रूपमें, भिन्न-भिन्न कर्मोंके द्वारा, यद्यपि उस परमात्माका ही यजन करते हैं—तथापि उसके स्वरूपको वे भी नहीं जानते। हृदयमें बार-बार चिन्तन किये जानेपर भगवान् जिस समय जिस जीवपर कृपा करते हैं, उसी समय वह लौकिक व्यवहार एवं वैदिक कर्म-मार्गकी बद्धमूल आस्थासे छुट्टी पा जाता है ॥ ३६–४६ ॥

अतः बर्हिष्मन्! तुम इन कर्मोंमें परमार्थबुद्धि मत करो। ये सुननेमें ही प्रिय जान पड़ते हैं, परमार्थका तो स्पर्श भी नहीं करते। ये जो परमार्थवत् दीख पड़ते हैं, इसमें केवल अज्ञान ही कारण है। जो मलिनमति कर्मवादी लोग वेदको कर्मपरक बताते हैं, वे वास्तवमें उसका मर्म नहीं जानते। इसका कारण यही है कि वे अपने स्वरूपभूत लोक (आत्मतत्त्व) को नहीं जानते, जहाँ साक्षात् श्रीजनार्दन-भगवान् विराजमान हैं। पूर्वकी ओर अग्रभागवाले कुशाओंसे सम्पूर्ण भूमण्डलको आच्छादित कर देने और अनेकों पशुओंका वध करनेसे तुम बड़े कर्माभिमानी और उद्धत हो गये हो; किन्तु वास्तवमें तुम्हें कर्म या उपासना—किसीके भी रहस्यका पता नहीं है। वास्तवमें कर्म तो वही है, जिससे श्रीहरिको प्रसन्न किया जा सके और विद्या भी वही है, जिससे भगवान्में चित्त लगे। श्रीहरि सम्पूर्ण देहधारियोंके आत्मा, नियामक और स्वतन्त्र कारण हैं; अतः उनके चरणतल ही मनुष्योंके एकमात्र आश्रय हैं और उन्हींसे संसारमें सबका कल्याण हो सकता है। 'जिससे किसीको अणुमात्र भी भय नहीं होता, वही उसका प्रियतम आत्मा है' ऐसा जो पुरुष जानता है, वही ज्ञानी है और जो ज्ञानी है, वही गुरु एवं साक्षात् श्रीहरि है ॥ ४७–५१ ॥

श्रीनारदजी कहते हैं—पुरुषश्रेष्ठ! यहाँतक जो कुछ कहा गया है, उससे तुम्हारे प्रश्नका उत्तर तो हो गया। अब मैं तुम्हारे कल्याणके लिये एक भलीभाँति निश्चित किया हुआ गुप्त साधन बताता हूँ, ध्यान देकर सुनो। 'पुष्पवाटिकामें अपनी हरिणीके साथ विहार करता हुआ एक हरिण मस्त घूम रहा है, वह दूब आदि छोटे-छोटे अङ्कुरोंको चर रहा है। उसके कान भौंरोंके मधुर गुंजारमें लग रहे हैं। उसके सामने ही दूसरे जीवोंको मारकर अपना पेट पालनेवाले भेड़िये ताक लगाये खड़े हैं और पीछेसे शिकारी व्याधने उसे बाणसे बींध डाला है। परन्तु हरिन इतना बेसुध है कि उसे इसका कुछ भी पता नहीं है।' एक बार इस हरिनकी दशापर विचार करो ॥ ५२-५३ ॥

राजन्! इस रूपकका आशय सुनो। देखो, यह मृतप्राय हरिन तुम्हीं हो, तुम अपनी दशापर विचार करो। पुष्पोंकी तरह ये स्त्रियाँ केवल देखनेमें सुन्दर हैं, परिणाममें तो पुष्पोंके सूख जानेके समान नष्ट होकर दुःख ही देती हैं। इन स्त्रियोंके रहनेका घर ही पुष्पवाटिका है। इसमें रहकर तुम पुष्पोंके मधु और गन्धके समान क्षुद्र सकाम कर्मोंके फलरूप जीभको अच्छे लगनेवाले भाँति-भाँतिके भोजन और जननेन्द्रियकी वासना पूर्ण करनेवाले स्त्रीसङ्ग आदि तुच्छ भोगोंको ढूँढ़ रहे हो। स्त्रियोंसे घिरे रहते हो और अपने मनको तुमने उन्हींमें फँसा रक्खा है। स्त्री-पुत्रोंका मधुर भाषण ही भौंरोंका मधुर गुंजार है, तुम्हारे कान उसीमें अत्यन्त आसक्त हो रहे हैं। सामने ही भेड़ियोंके झुंडके समान कालके अंश दिन और रात तुम्हारी आयुको हर रहे हैं, परन्तु तुम कुछ भी परवा न कर गृहस्थीके सुखोंमें मस्त हो रहे हो। तुम्हारे पीछे गुप-चुप लगे हुए शिकारी कालने अपने छिपे हुए बाणसे तुम्हारे हृदयको बेध दिया है। इस प्रकार अपनेको मृगकी-सी स्थितिमें देखकर तुम अपने चित्तको हृदयके भीतर निरुद्ध करो और कर्णादि इन्द्रियोंकी बहिर्मुखी वृत्तियोंको चित्तमें स्थापित करो (अन्तर्मुखी करो)। तथा जहाँ कामी पुरुषोंकी चर्चा होती रहती है, उस गृहस्थाश्रमको छोड़कर परमहंसोंके आश्रय श्रीहरिको प्रसन्न करो और क्रमशः सभी विषयोंसे विरत हो जाओ ॥ ५४-५५ ॥

राजा प्राचीनबर्हिने कहा—भगवन्! आपने कृपा करके मुझे जो उपदेश दिया, उसे मैंने सुना और उसपर विशेषरूपसे विचार भी किया। वस्तुतः जीवका कल्याण तो इसीमें है। मुझे कर्मका उपदेश देनेवाले इन आचार्यों-को निश्चय ही इसका ज्ञान नहीं है; यदि ये इस विषयको जानते होते, तो मुझे इसका उपदेश क्यों न करते? विप्रवर! इन उपाध्यायोंने वेदवाक्योंमें विरोध दिखाकर मेरे हृदयमें 'वेद कर्मपरक हैं या ज्ञानपरक?' यह महान् संशय खड़ा कर दिया था, इसे आपने पूरी तरहसे काट दिया। इस विषयमें इन्द्रियोंकी गति न होनेके कारण मन्त्रद्रष्टा ऋषियोंको भी मोह हो जाता है। अब कर्मकाण्डके विषयमें भी मुझे एक सन्देह और है, उसे निवृत्त करनेकी कृपा करें। वेदवादियोंका

प्रियव्रतके पास ब्रह्माजीका पधारना



सबने हाथ जोड़कर प्रणाम किया ।

जन्मादिका कारण है। जीव जब इन्द्रियजनित भोगोंका चिन्तन करते हुए बार-बार उन्हींके लिये कर्म करता है, तो उन कर्मोंके होते रहनेसे अविद्यावश वह देहादिके कर्मोंमें बँध जाता है। अतएव उस कर्मबन्धनसे छुटकारा पानेके लिये सम्पूर्ण विश्वको भगवद्रूप देखते हुए सब प्रकार श्रीहरिका ही भजन करो। वे ही इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले हैं॥ ७४—७९॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार भक्तश्रेष्ठ श्रीनारदजीने राजा प्राचीनबर्हिको जीव और ईश्वरके स्वरूपका दिग्दर्शन कराया। फिर वे उनसे विदा लेकर सिद्धलोकको चले गये। तब राजर्षि प्राचीनबर्हि भी प्रजापालनका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर तपस्या करनेके लिये कपिलाश्रमको चले गये। वहाँ उन वीरवरने समस्त विषयोंकी आसक्ति छोड़ एकाग्र मनसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिके चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए सारूप्यपद प्राप्त किया॥ ८०—८२॥

निष्पाप विदुरजी! देवर्षि नारदके परोक्षरूपसे कहे हुए इस आत्मज्ञानको जो पुरुष सुने या सुनायेगा, वह शीघ्र ही लिङ्गदेहके बन्धनसे छूट जायगा। देवर्षि नारदके मुखसे निकला हुआ यह परम पवित्र आत्मज्ञान भगवान् मुकुन्दके यशसे सम्बद्ध होनेके कारण त्रिलोकीको पवित्र करनेवाला तथा सर्वोत्कृष्ट फल देनेवाला है। जो पुरुष इसकी कथा सुनेगा, वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जायगा और फिर उसे इस संसार-चक्रमें नहीं भटकना पड़ेगा। विदुरजी! गृहस्थाश्रमी पुरञ्जनके रूपकसे परोक्षरूपमें कहा हुआ यह अद्भुत आत्मज्ञान मैंने गुरुजीसे प्राप्त किया था। इसका तात्पर्य समझ लेनेसे बुद्धियुक्त जीवका देहाभिमान निवृत्त हो जाता है तथा उसका 'परलोकमें जीव किस प्रकार कर्मोंका फल भोगता है' यह संशय भी निवृत्त हो जाता है॥ ८३—८५॥

तीसवाँ अध्याय

प्रचेताओंको श्रीविष्णुभगवान्‌का वरदान

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! आपने राजा प्राचीनबर्हिके जिन पुत्रोंका वर्णन किया था, उन्होंने रुद्रगीतके द्वारा श्रीहरिकी स्तुति करके क्या सिद्धि प्राप्त की? बार्हस्पत्य! भगवान् शङ्कर मोक्षाधिपति श्रीनारायणको अत्यन्त प्रिय हैं। उनसे अकस्मात् ही प्रचेताओंकी भेंट हो गयी थी। अतः उनके सान्निध्यके प्रभावसे ही उन्होंने मुक्ति तो प्राप्त की ही होगी; इससे पहले इस लोकमें अथवा परलोकमें भी उन्होंने क्या पाया—वह बतलानेकी कृपा करें॥ १-२॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले प्रचेताओंने समुद्रके अंदर खड़े रहकर रुद्रगीतके जपरूपी यज्ञ और तपस्याके द्वारा श्रीहरिको प्रसन्न कर लिया। तपस्या करते-करते दस हजार वर्ष बीत जानेपर पुराणपुरुष श्रीनारायण सौम्य विग्रहसे उनके सामने प्रकट हुए। प्रभुकी स्निग्ध कान्तिसे तत्काल ही उनका सारा श्रम दूर हो गया। गरुड़जीके कंधेपर बैठे हुए श्रीभगवान् ऐसे जान पड़ते थे, मानो सुमेरुके शिखरपर कोई श्याम घटा छायी हो। उनके अङ्गमें मनोहर पीताम्बर और कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थी। उनकी कान्तिसे वे सब दिशाओंको अन्धकारशून्य कर रहे थे। उनके कमनीय कपोल और मनोहर मुखमण्डलपर देदीप्यमान सुवर्णमय उत्कृष्ट आभूषणोंकी आभा छिटक रही थी और मस्तकपर झिलमिलाता हुआ मुकुट शोभायमान था। प्रभुकी आठ भुजाओंमें आठ आयुध थे; देवता, मुनि और पार्षदगण सेवामें उपस्थित थे तथा गरुड़जी किन्नरोंकी भाँति साममय पंखोंकी ध्वनिसे कीर्तिगान कर रहे थे। उनकी आठ लंबी-लंबी स्थूल भुजाओंके बीचमें लक्ष्मीजीसे स्पर्धा करनेवाली वनमाला विराजमान थी। आदिपुरुष श्रीनारायणने इस प्रकार पधारकर अपने शरणागत प्रचेताओंकी ओर दयादृष्टिसे निहारते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा॥ ३—७॥

श्रीभगवान् बोले—राजपुत्रो! तुम्हारा कल्याण हो। तुम सबमें परस्पर बड़ा प्रेम है और स्नेहवश तुम एक ही धर्मका पालन कर रहे हो। तुम्हारे इस आदर्श सौहार्दसे मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे वर माँगो। जो पुरुष सायङ्कालके समय प्रतिदिन तुम्हारा स्मरण करेगा,* उसका अपने भाइयोंमें अपने ही समान प्रेम होगा तथा समस्त जीवोंके प्रति मित्रताका भाव हो जायगा। जो लोग सायङ्काल और प्रातःकाल एकाग्र चित्तसे रुद्रगीतद्वारा मेरी स्तुति करेंगे, उनको मैं अभीष्ट वर और शुद्ध बुद्धि प्रदान करूँगा। तुमलोगोंने बड़ी प्रसन्नतासे अपने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की है, इससे तुम्हारी कमनीय कीर्ति समस्त लोकोंमें फैल जायगी। तुम्हारे एक बड़ा ही विख्यात पुत्र होगा। वह गुणोंमें किसी भी प्रकार ब्रह्माजीसे कम नहीं होगा, तथा

गन्धमादनकी घाटीको देदीप्यमान करते हुए प्रियव्रतके पास पहुँचे। प्रियव्रतको आत्मविद्याका उपदेश देनेके लिये वहाँ नारदजी भी आये हुए थे। ब्रह्माजीके वहाँ पहुँचनेपर उनके वाहन हंसको देखकर देवर्षि नारद जान गये कि हमारे पिता भगवान् ब्रह्माजी पधारे हैं; अतः वे स्वायम्भुव मनु और प्रियव्रतके सहित तुरत खड़े हो गये और सबने उनको हाथ जोड़कर प्रणाम किया। परीक्षित्! फिर नारदजीने उनकी अनेक प्रकारसे पूजा की और सुमधुर वचनोंमें उनके गुण और अवतारकी उत्कृष्टताका वर्णन किया। तब आदिपुरुष भगवान् ब्रह्माजीने प्रियव्रतकी ओर मन्दमुसकानयुक्त दयादृष्टिसे देखते हुए इस प्रकार कहा।७-१०।

श्रीब्रह्माजी बोले—तात! मैं तुमसे बिलकुल सच्ची बात कहता हूँ, ध्यान देकर सुनना। देखो, तुम्हें महामहिम श्रीहरिके प्रति किसी प्रकारकी दोषदृष्टि नहीं रखनी चाहिये। तुम्हीं क्या—हम, महादेवजी, तुम्हारे पिता स्वायम्भुव मनु और तुम्हारे गुरु ये महर्षि नारद भी विवश होकर उन्हींकी आज्ञाका पालन करते हैं। उनके विधानको कोई भी देहधारी न तो तप, विद्या, योगबल या बुद्धिबलसे, न अर्थ या धर्मकी शक्तिसे और न स्वयं या किसी दूसरेकी सहायतासे ही टाल सकता है। प्रियवर! उसी अव्यक्त ईश्वरके दिये हुए शरीरको सब जीव जन्म, मरण, शोक, मोह, भय और सुख दुःखका भोग करने तथा कर्म करनेके लिये सदा धारण करते हैं। वत्स! जिस प्रकार रस्सीसे नथा हुआ चौपाया मनुष्योंका बोझा ढोता है, उसी प्रकार परमात्माकी वेदवाणी रूप रस्सीमें सात्त्विक, राजस, तामस—तीन प्रकारके कर्मोंके आधारभूत ब्राह्मणादि नामोंकी मजबूत डोरीसे जकड़े हुए हम सब लोग उन्हींके इच्छानुसार कर्मोंमें लगे रहते हैं। हमारे गुण और कर्मोंके अनुसार प्रभुने हमें जिस योनिमें डाल दिया है उसीको स्वीकार करके, वे जैसी व्यवस्था करते हैं उसीके अनुसार हम सुख या दुःख भोगते रहते हैं—उसमें दखल देनेका हमारा कोई अधिकार नहीं है; हमे उनकी इच्छाका उसी प्रकार अनुसरण करना पड़ता है, जैसे किसी अंधेको आँखवाले पुरुषका॥ ११-१५॥

यदि कहो कि यह सब बन्धन तो बद्ध जीवोंके ही लिये हैं, मुक्त पुरुष तो परमस्वतन्त्र होते हैं, उनपर तो कर्म या काल आदिका कोई अधिकार नहीं होता, सो वे भी जबतक उनका प्रारब्ध शेष है उसे भोगनेके लिये देह धारण करते ही हैं; हाँ, उनमें अभिमान नहीं होता और इसीसे दूसरे शरीरकी प्राप्ति करानेवाले कर्म तथा उनके संस्कार भी उनमें नहीं होते। जिस प्रकार सोकर उठा हुआ पुरुष स्वप्नके पदार्थोंका स्मरण करता है, उसी प्रकार वे भी अभिमानशून्य होकर प्रारब्धभोग करते रहते हैं। इस प्रकार वासनाशून्य होनेके कारण स्वरूपतः स्वतन्त्र होनेपर भी प्रारब्धभोगमें तो वे भी भगवान्की इच्छाके अधीन हैं ही। जो पुरुष इन्द्रियोंके वशीभूत है, उसके लिये तो वनमें भी जन्म मरणका भय बना ही रहता है—चाहे वह एक वनसे न रहकर अनेक वनोंमें विचरता रहे; क्योंकि बिना जीते हुए मन और इन्द्रियरूपी उसके छः शत्रु कभी उसका पीछा नहीं छोड़ते। उसके विपरीत जो बुद्धिमान् पुरुष इन्द्रियोंको जीतकर अपने आत्मामें ही रमण करता है, उसका गृहस्थाश्रम भी क्या बिगाड़ सकता है? अतः जिसे इन छः शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा हो, वह पहले घरमें रहकर ही उनका अत्यन्त निरोध करते हुए उन्हें वशमें करनेका प्रयत्न करे। देखो, किलेमें सुरक्षित रहकर लड़नेवाला राजा अपने प्रबल शत्रुओंको भी जीत लेता है। फिर जब इन शत्रुओंका बल अत्यन्त क्षीण हो जाय, तब विद्वान् पुरुष इच्छानुसार विचर सकता है। उसके लिये घर और वन समान हो जाते हैं। तुम यद्यपि श्रीकमल नाभ भगवान्के चरणकमलकी कलीरूप किलेके आश्रित रहकर इन छहों शत्रुओंको जीत चुके हो, तो भी पहले उन पुराणपुरुषके दिये हुए भोगोंको भोगो; इसके बाद निःसङ्ग होकर अपने आत्मस्वरूपमें स्थित हो जाना।१६-१९।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब त्रिलोकीके गुरु श्रीब्रह्माजीने इस प्रकार कहा, तो परमभागवत प्रियव्रतने छोटे होनेके कारण नम्रतासे सिर झुका लिया और 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर बड़े आदरपूर्वक उनका आदेश शिरोधार्य किया। तब स्वायम्भुव मनुने अपने पुत्रके इस व्यवहारसे प्रसन्न होकर भगवान् ब्रह्माजीकी विधिवत् पूजा की। इसके पश्चात् वे मन और वाणीके अविषय, अपने आश्रय तथा सर्वव्यवहारातीत परब्रह्मका चिन्तन करते हुए अपने लोकको चले गये। इस समय प्रियव्रत और नारदजी सरल भावसे उनकी ओर देख रहे थे। प्रियव्रतको अपनी आत्मचिन्तन सम्बन्धी आशाके नाशसे और नारदजीको शिष्यके योगभ्रष्ट होनेकी आशङ्कासे कोई क्षोभ नहीं हुआ; क्योंकि सर्वत्र भगवद्भाव होनेके कारण सभी परिस्थितियोंमें उनकी समान दृष्टि थी॥ २०-२१॥

जन्मादिका कारण है। जीव जब इन्द्रियजनित भोगोंका चिन्तन करते हुए बार-बार उन्हींके लिये कर्म करता है, तो उन कर्मोंके होते रहनेसे अविद्यावश वह देहादिके कर्मोंमें बँध जाता है। अतएव उस कर्मबन्धनसे छुटकारा पानेके लिये सम्पूर्ण विश्वको भगवद्रूप देखते हुए सब प्रकार श्रीहरिका ही भजन करो। वे ही इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाले हैं ॥ ७४-७९ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! इस प्रकार भक्तश्रेष्ठ श्रीनारदजीने राजा प्राचीनबर्हिको जीव और ईश्वरके स्वरूपका दिग्दर्शन कराया। फिर वे उनसे विदा लेकर सिद्धलोकको चले गये। तब राजर्षि प्राचीनबर्हि भी प्रजापालनका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर तपस्या करनेके लिये कपिलाश्रमको चले गये। वहाँ उन वीरवरने समस्त विषयोंकी आसक्ति छोड़ एकाग्र मनसे भक्तिपूर्वक श्रीहरिके चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए सारूप्यपद प्राप्त किया ॥ ८०-८२ ॥

निष्पाप विदुरजी! देवर्षि नारदके परोक्षरूपसे कहे हुए इस आत्मज्ञानको जो पुरुष सुने या सुनायेगा, वह शीघ्र ही लिङ्गदेहके बन्धनसे छूट जायगा। देवर्षि नारदके मुखसे निकला हुआ यह परम पवित्र आत्मज्ञान भगवान् मुकुन्दके यशसे सम्बद्ध होनेके कारण त्रिलोकीको पवित्र करनेवाला तथा सर्वोत्कृष्ट फल देनेवाला है। जो पुरुष इसकी कथा सुनेगा, वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जायगा और फिर उसे इस संसार-चक्रमें नहीं भटकना पड़ेगा। विदुरजी! गृहस्थाश्रमी पुरञ्जनके रूपकसे परोक्षरूपमें कहा हुआ यह अद्भुत आत्मज्ञान मैंने गुरुजीसे प्राप्त किया था। इसका तात्पर्य समझ लेनेसे बुद्धियुक्त जीवका देहाभिमान निवृत्त हो जाता है तथा उसका 'परलोकमें जीव किस प्रकार कर्मोंका फल भोगता है' यह संशय भी निवृत्त हो जाता है ॥ ८३-८५ ॥

तीसवाँ अध्याय

प्रचेताओंको श्रीविष्णुभगवान्का वरदान

विदुरजीने पूछा—ब्रह्मन्! आपने राजा प्राचीनबर्हिके जिन पुत्रोंका वर्णन किया था, उन्होंने रुद्रगीतके द्वारा श्रीहरिकी स्तुति करके क्या सिद्धि प्राप्त की? बार्हस्पत्य! भगवान् शङ्कर मोक्षाधिपति श्रीनारायणको अत्यन्त प्रिय हैं। उनसे अकस्मात् ही प्रचेताओंकी भेंट हो गयी थी। अतः उनके सान्निध्यके प्रभावसे ही उन्होंने मुक्ति तो प्राप्त की ही होगी; इससे पहले इस लोकमें अथवा परलोकमें भी उन्होंने क्या पाया—वह बतलानेकी कृपा करें ॥ १-२ ॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! पिताकी आज्ञाका पालन करनेवाले प्रचेताओंने समुद्रके अंदर खड़े रहकर रुद्रगीतके जपरूपी यज्ञ और तपस्याके द्वारा श्रीहरिको प्रसन्न कर लिया। तपस्या करते-करते दस हजार वर्ष बीत जानेपर पुराणपुरुष श्रीनारायण सौम्य विग्रहसे उनके सामने प्रकट हुए। प्रभुकी स्निग्ध कान्तिसे तत्काल ही उनका सारा श्रम दूर हो गया। गरुड़जीके कंधेपर बैठे हुए श्रीभगवान् ऐसे जान पड़ते थे, मानो सुमेरुके शिखरपर कोई श्याम घटा छायी हो। उनके अङ्गमें मनोहर पीताम्बर और कण्ठमें कौस्तुभमणि सुशोभित थी। उनकी कान्तिसे वे सब दिशाओंको अन्धकारशून्य कर रहे थे। उनके कमनीय कपोल और मनोहर मुखमण्डलपर देदीप्यमान सुवर्णमय उत्कृष्ट आभूषणोंकी आभा छिटक रही थी और मस्तकपर झिलमिलाता हुआ मुकुट शोभायमान था। प्रभुकी आठ भुजाओंमें आठ आयुध थे; देवता, मुनि और पार्षदगण सेवामें उपस्थित थे तथा गरुड़जी किन्नरोंकी भाँति साममय पंखोंकी ध्वनिसे कीर्तिगान कर रहे थे। उनकी आठ लंबी-लंबी स्थूल भुजाओंके बीचमें लक्ष्मीजीसे स्पर्धा करनेवाली वनमाला विराजमान थी। आदिपुरुष श्रीनारायणने इस प्रकार पधारकर अपने शरणागत प्रचेताओंकी ओर दयादृष्टिसे निहारते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा ॥ ३-७ ॥

श्रीभगवान् बोले—राजपुत्रो! तुम्हारा कल्याण हो। तुम सबमें परस्पर बड़ा प्रेम है और स्नेहवश तुम एक ही धर्मका पालन कर रहे हो। तुम्हारे इस आदर्श सौहार्दसे मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे वर माँगो। जो पुरुष सायङ्कालके समय प्रतिदिन तुम्हारा स्मरण करेगा,* उसका अपने भाइयोंमें अपने ही समान प्रेम होगा तथा समस्त जीवोंके प्रति मित्रताका भाव हो जायगा। जो लोग सायङ्काल और प्रातःकाल एकाग्र चित्तसे रुद्रगीतद्वारा मेरी स्तुति करेंगे, उनको मैं अभीष्ट वर और शुद्ध बुद्धि प्रदान करूँगा। तुमलोगोंने बड़ी प्रसन्नतासे अपने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की है, इससे तुम्हारी कमनीय कीर्ति समस्त लोकोंमें फैल जायगी। तुम्हारे एक बड़ा ही विख्यात पुत्र होगा। वह गुणोंमें किसी भी प्रकार ब्रह्माजीसे कम नहीं होगा, तथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! आग्नीध्र देवताओंके समान बुद्धिमान् और स्त्रियोंको प्रसन्न करनेमें बड़े कुशल थे। उन्होंने इसी प्रकारकी रतिचातुर्यमयी मीठी मीठी बातोंसे उस अप्सराको प्रसन्न कर लिया। वह वीर समाजमें अग्रगण्य आग्नीध्रकी बुद्धि, शील, रूप, अवस्था, लक्ष्मी और उदारतासे आकर्षित होकर उन जम्बूद्वीपाधिपतिके साथ कई हजार वर्षोंतक पृथ्वी और स्वर्गके भोग भोगती रही। तदनन्तर नृपवर आग्नीध्रने उसके गर्भसे नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व और केतुमाल नामके नौ पुत्र उत्पन्न किये॥ १७–१९॥

इस प्रकार नौ वर्षमें प्रतिवर्ष एकके क्रमसे नौ पुत्र उत्पन्न कर पूर्वचित्ति उन्हें राजभवनमें ही छोड़कर फिर ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित हो गयी। ये आग्नीध्रके पुत्र माताके अनुग्रहसे स्वभावसे ही सुडौल और सबल शरीरवाले थे। आग्नीध्रने जम्बूद्वीपके विभाग करके उन्हींके समान नामवाले नौ वर्ष (भूखण्ड) बनाये और उन्हें एक एक पुत्रको सौंप दिया। तब वे सब अपने-अपने वर्षका राज्य भोगने लगे। महाराज आग्नीध्र दिन दिन भोगोंको भोगते रहनेपर भी उनसे अतृप्त ही रहे। वे उस अप्सराको ही परम पुरुषार्थ समझते थे। इसलिये उन्होंने वैदिक कर्मोंके द्वारा उसी लोकको प्राप्त किया, जहाँ पितृगण अपने सुकृतोंके अनुसार तरह तरहके भोगोंमें मस्त रहते हैं। पिताके परलोक सिधारनेपर नाभि आदि नौ भाइयोंने मेरुकी मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता, रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा और देववीति नामकी नौ कन्याओंसे विवाह किया॥ २०–२३॥

तीसरा अध्याय

राजा नाभिका उपाख्यान

श्रीशुकदेवजी बोले—राजन्! आग्नीध्रके पुत्र नाभिके कोई सन्तान न थी, इसलिये उन्होंने अपनी भार्या मेरुदेवीके सहित पुत्रकी कामनासे एकाग्रतापूर्वक भगवान् यज्ञपुरुषका यजन किया। यद्यपि श्रीभगवान् द्रव्य, देश, काल, मन्त्र, ऋत्विज, दक्षिणा और विधि—इन यज्ञके साधनोंसे सहजमें नहीं मिलते, तथापि वे भक्तोंपर तो कृपा करते ही हैं। इसलिये जब महाराज नाभिने श्रद्धापूर्वक विशुद्धभावसे उनकी आराधना की, तो उनका चित्त अपने भक्तका अभीष्ट कार्य करनेके लिये उत्सुक हो गया। यद्यपि उनका स्वरूप सर्वथा स्वतन्त्र है, तथापि उन्होंने प्रवर्ग्यकर्मका अनुष्ठान होते समय उसे मन और नयनोंको आनन्द देनेवाले अवयवोंसे युक्त अति सुन्दर हृदयाकर्षक मूर्तिमें प्रकट किया। उनके श्रीअङ्गमें रेशमी पीताम्बर था, वक्षःस्थलपर सुमनोहर श्रीवत्सचिह्न सुशोभित था, भुजाओंमें शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म तथा गलेमें वनमाला और कौस्तुभमणिकी शोभा थी। सम्पूर्ण शरीर अङ्ग प्रत्यङ्गकी कान्तिको बढानेवाले किरणजालमण्डित मणिमय मुकुट, कुण्डल, कङ्कण, करधनी, हार, बाजूबंद और नूपुर आदि आभूषणोंसे विभूषित था। ऐसे परम तेजस्वी चतुर्भुजमूर्ति पुरुषविशेषको प्रकट हुआ देख ऋत्विज, सदस्य और यजमान आदि सभी लोग ऐसे आह्लादित हुए, जैसे निर्धन पुरुष अपार धनराशि पाकर फूला नहीं समाता। फिर सभीने सिर झुकाकर अत्यन्त आदरपूर्वक प्रभुकी अर्घ्यद्वारा पूजा की और ऋत्विजोंने उनकी स्तुति की॥ १–३॥

ऋत्विज बोले—पूज्यतम! हम आपके अनुगत भक्त हैं, आप हमारे पुनः पुनः पूजनीय हैं। किन्तु हम आपकी पूजा करना क्या जानें? हम तो बार-बार आपको नमस्कार करते हैं—बस, इतना ही हमें महापुरुषोंने सिखलाया है। आप प्रकृति और पुरुषसे भी परे हैं; फिर प्राकृत गुणोंके कार्यभूत इस प्रपञ्चमें बुद्धि फँस जानेसे आपके गुण-गानमें सर्वथा असमर्थ ऐसा कौन पुरुष है जो प्राकृत नाम, रूप एव आकृतिके द्वारा आपके स्वरूपका निरूपण कर सके? आप साक्षात् परमेश्वर हैं। आपके परम मङ्गलमय गुण सम्पूर्ण जनसमूहके दुःखोंका दमन करनेवाले हैं। यदि कोई उन्हें वर्णन करनेका साहस भी करेगा, तो केवल उनके एक देशका ही वर्णन कर सकेगा। किन्तु प्रभो! यदि आपके भक्त प्रेम गद्गद वाणीसे स्तुति करते हुए सामान्य जल, विशुद्ध पल्लव, तुलसी और दूबके अङ्कुर आदि सामग्रीसे ही आपकी पूजा करते हैं, तो भी आप सब प्रकार सन्तुष्ट हो जाते हैं। हमें तो अनुरागके सिवा इस द्रव्य-कालादि अनेकों अङ्गोंवाले यज्ञसे भी आपका कोई प्रयोजन नहीं दिखलायी देता; क्योंकि आपसे स्वतः ही क्षण क्षणमें जो सम्पूर्ण पुरुषार्थोंका फल स्वरूप परमानन्द स्वभावतः ही निरन्तर प्रादुर्भूत होता रहता है, आप साक्षात् उसके स्वरूप ही हैं। इस प्रकार यद्यपि आपको इन यज्ञादिसे कोई प्रयोजन नहीं है, तथापि अनेक



प्रचेताओंको भगवान्‌के दर्शन

चौथा अध्याय

ऋषभदेवजीका राज्यशासन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! नाभिनन्दन जन्मसे ही भगवान् विष्णुके वज्र अङ्कुश आदि चिह्नोंसे युक्त थे, समता, शान्ति, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि महाविभूतियोंके कारण उनका प्रभाव दिनोंदिन बढ़ता जाता था। यह देखकर मन्त्री, प्रजा, ब्राह्मण और देवताओंकी यह उत्कट अभिलाषा होने लगी कि ये ही पृथ्वीका शासन करें। उनके सुन्दर और सुडौल शरीर, विपुल कीर्ति, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, पराक्रम और शूरवीरता आदि गुणोंके कारण महाराज नाभिने उनका नाम 'ऋषभ' (श्रेष्ठ) रखा ॥ १ २ ॥

एक बार भगवान् इन्द्रने ईर्ष्यावश उनके राज्यमें वर्षा नहीं की। तब योगेश्वर भगवान् ऋषभने इन्द्रकी मूर्खतापर हँसते हुए अपनी योगमायाके प्रभावसे अपने वर्ष अजनाभखण्डमें खूब जल बरसाया। महाराज नाभि अपनी इच्छाके अनुसार श्रेष्ठ पुत्र पाकर अत्यन्त आनन्दमग्न हो गये और अपनी ही इच्छासे मनुष्यशरीर धारण करनेवाले पुराणपुरुष श्रीहरिका सप्रेम लालन करते हुए, उन्हींके लीलाविलाससे मुग्ध होकर 'वत्स! तात!' ऐसा गद्गदवाणीसे कहते हुए बड़ा सुख मानने लगे ॥ ३ ४ ॥

महाराज नाभि लोकमतका बड़ा आदर करते थे। जब उन्होंने देखा कि पुरवासी और मन्त्रिगण ऋषभदेवको बहुत मानते हैं, उनसे बड़ा प्रेम करते हैं, तो उन्होंने उन्हें धर्म मर्यादाकी रक्षाके लिये राज्याभिषिक्त करके ब्राह्मणोंकी देख रेखमें छोड़ दिया। आप अपनी पत्नी मेरुदेवीके सहित बदरिकाश्रमको चले गये। वहाँ अहिंसावृत्तिसे कठोर तपस्या और समाधियोगके द्वारा भगवान् वासुदेवके नर नारायणरूपकी आराधना करते हुए समय आनेपर उन्हींके स्वरूपमें लीन हो गये ॥ ५ ॥

पाण्डुनन्दन! राजा नाभिके विषयमें यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

राजर्षि नाभिके उदार कर्मोंका आचरण दूसरा कौन पुरुष कर सकता है—जिनके शुद्ध कर्मोंसे सन्तुष्ट होकर साक्षात् श्रीहरि उनके पुत्र हो गये थे। महाराज नाभिके समान ब्राह्मणभक्त भी कौन हो सकता है—जिनकी दक्षिणादिसे सन्तुष्ट हुए ब्राह्मणोंने अपने मन्त्रबलसे उन्हें यज्ञशालामें साक्षात् श्रीविष्णुभगवान्‌के दर्शन करा दिये ॥ ६ ७ ॥

भगवान् ऋषभदेवने अपने देश अजनाभखण्डको कर्म भूमि मानकर लोकसंग्रहके लिये कुछ काल गुरुकुलमें वास किया। गुरुदेवको यथोचित दक्षिणा देकर गृहस्थमें प्रवेश करनेके लिये उनकी आज्ञा ली। फिर लोगोंको गृहस्थधर्मकी शिक्षा देनेके लिये देवराज इन्द्रकी दी हुई उनकी कन्या जयन्तीसे विवाह किया तथा श्रौत स्मार्त दोनों प्रकारके शास्त्रोपदिष्ट कर्मोंका आचरण करते हुए उसके गर्भसे अपने ही समान गुणवाले सौ पुत्र उत्पन्न किये। उनमें महायोगी भरतजी सबसे बड़े और सबसे अधिक गुणवान् थे। उन्हींके नामसे लोग इस अजनाभखण्डको 'भारतवर्ष' कहने लगे। उनसे छोटे कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मावर्त, मलय, केतु, भद्रसेन, इन्द्रस्पृक्, विदर्भ और कीकट—ये नौ राजकुमार शेष नब्बे भाइयोंसे बड़े एवं श्रेष्ठ थे। उनसे छोटे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन—ये नौ राजकुमार भागवतधर्मका प्रचार करनेवाले बड़े भगवद्भक्त थे। भगवान्‌की महिमासे महिमान्वित और परमशान्तिसे पूर्ण इनका पवित्र चरित हम नारद वसुदेव संवादके प्रसङ्गसे आगे (एकादश स्कन्धमें) कहेंगे। इनसे छोटे इक्यासी जयन्तीकुमार पिताकी आज्ञाका पालन करने वाले, अति विनीत, महान् वेदज्ञ और निरन्तर यज्ञ करने वाले थे। वे पुण्यकर्मोंका अनुष्ठान करनेसे शुद्ध होकर ब्राह्मण हो गये थे ॥ ८–१३ ॥

भगवान् ऋषभदेव, यद्यपि परमस्वतन्त्र होनेके कारण स्वयं सर्वदा ही सब प्रकारकी अनर्थपरम्परासे रहित, केवल आनन्दानुभवस्वरूप और साक्षात् ईश्वर ही थे, तो भी अज्ञानियोंके समान कर्म करते हुए उन्होंने कालके अनुसार प्राप्त धर्मका आचरण करके उसका तत्त्व न जाननेवाले लोगोंको उसकी शिक्षा दी। साथ ही सम, शान्त, सुहृद् और कारुणिक रहकर धर्म, अर्थ, यश, सन्तान, भोग सुख और मोक्षका संग्रह करते हुए गृहस्थाश्रममें लोगोंको नियमित किया, क्योंकि महापुरुष जैसा-जैसा आचरण करते हैं, दूसरे लोग उसीका अनुकरण करने लगते हैं। यद्यपि वे सभी धर्मोंके साररूप वेदके गूढ़ रहस्यको जानते थे, तो भी ब्राह्मणोंकी बतलायी हुई विधिसे साम दानादि नीतिके अनुसार ही प्रजाका पालन करते थे। उन्होंने शास्त्र और ब्राह्मणोंके उपदेशानुसार

श्रीहरि आ जाते हैं और अपनी भक्ताधीनताको चरितार्थ करते हुए हृदयाकाशकी भाँति वहाँसे हटते नहीं। भगवान् तो अपनेको (भगवान्‌को) ही सर्वस्व माननेवाले निर्धन पुरुषोंपर ही प्रेम करते हैं; क्योंकि वे परम रसज्ञ हैं—उन अकिञ्चनोंकी अनन्याश्रया अहैतुकी भक्तिमें कितना माधुर्य होता है, इसे प्रभु अच्छी तरह जानते हैं। जो लोग अपने शास्त्रज्ञान, धन, कुल और कर्मोंके मदसे उन्मत्त होकर ऐसे निष्किञ्चन साधुजनोंका तिरस्कार करते हैं उन दुर्बुद्धियोंकी पूजा तो प्रभु स्वीकार ही नहीं करते। भगवान् तो स्वरूपानन्दसे ही परिपूर्ण हैं, उन्हें निरन्तर अपनी सेवामें रहनेवाली लक्ष्मीजी तथा उनकी इच्छा करनेवाले नरपति और देवताओंकी भी कोई परवा नहीं है। इतनेपर भी अपने भक्तोंके तो अधीन ही रहते हैं। अहो! ऐसे करुणासागर श्रीहरिको कोई भी कृतज्ञ पुरुष थोड़ी देरके लिये भी कैसे छोड़ सकता है! ॥१९–२२॥

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! भगवान् नारदने प्रचेताओंको इस उपदेशके साथ-साथ ध्रुवचरित्रादि और भी बहुत-सी भगवत्सम्बन्धी बातें सुनायीं। इसके पश्चात् वे ब्रह्मलोकको चले गये। प्रचेतागण भी उनके मुखसे संसार-मलको दूर करनेवाले भगवच्चरित्र सुनकर भगवान्‌के चरण-कमलोंका ही चिन्तन करने लगे और अन्तमें भगवद्धामको प्राप्त हुए। इस प्रकार आपने जो मुझसे श्रीनारदजी और प्रचेताओंके भगवत्कथासम्बन्धी संवादके विषयमें पूछा था, वह मैंने आपको सुना दिया ॥ २३–२५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! यहाँतक स्वायम्भुव मनुके पुत्र उत्तानपादके वंशका वर्णन हुआ, अब प्रियव्रतके वंशका विवरण भी सुनो। राजा प्रियव्रतने श्रीनारदजीसे आत्मज्ञानका उपदेश पाकर भी राज्यभोग किया था तथा अन्तमें इस सम्पूर्ण पृथ्वीको अपने पुत्रोंमें बाँटकर वे भगवान्‌के परमधामको प्राप्त हुए थे ॥२६-२७॥

राजन्! इधर श्रीमैत्रेयजीके मुखसे यह भगवद्गुणानुवादयुक्त पवित्र कथा सुनकर विदुरजी प्रेममग्न हो गये, भक्तिभावका उद्रेक होनेसे उनके नेत्रोंसे पवित्र आँसुओंकी धारा बहने लगी तथा उन्होंने हृदयमें भगवच्चरणोंका स्मरण करते हुए अपना मस्तक मुनिवर मैत्रेयजीके चरणोंपर रख दिया ॥२८॥

विदुरजी कहने लगे—महायोगिन्! आप बड़े ही करुणामय हैं। आज आपने मुझे अज्ञानान्धकारके उस पार पहुँचा दिया है, जहाँ अकिञ्चनोंके सर्वस्व श्रीहरि विराजते हैं ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—मैत्रेयजीको उपर्युक्त कृतज्ञतासूचक वचन कहकर तथा प्रणाम कर विदुरजीने उनसे आज्ञा ली और फिर शान्तचित्त होकर अपने बन्धुजनोंसे मिलनेके लिये वे हस्तिनापुर चले गये। राजन्! जो पुरुष भगवान्‌के शरणागत परमभागवत राजाओंका यह पवित्र चरित्र सुनेगा, उसे दीर्घ आयु, धन, सुयश, क्षेम, सद्गति और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी ॥३०-३१॥

चतुर्थ स्कन्ध समाप्त



गुरुस्वरूप मुझ भगवान्‌में भक्तिभाव रखनेसे, मेरे परायण रहनेसे, तृष्णाके त्यागसे, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंके सहनेसे 'जीवको सभी योनियोंमें दुःख ही उठाना पड़ता है' इस विचारसे, तत्त्वजिज्ञासासे, तपसे, सकाम कर्मके त्यागसे, मेरे ही लिये कर्म करनेसे, मेरी कथाओंका नित्यप्रति श्रवण करनेसे, मेरे भक्तोंके सङ्ग और मेरे गुणोंके कीर्तनसे, वैरत्याग, समता, शान्तिसे और शरीर तथा घर आदिमें मैं मेरेपनके भावको त्यागनेकी इच्छासे, अध्यात्मशास्त्रके अनुशीलनसे, एकान्त सेवनसे, प्राण, इन्द्रिय और मनके पूर्ण संयमसे, ब्रह्मचर्यसे, कर्तव्यकर्मोंमें निरन्तर सावधान रहनेसे, वाणीके संयमसे, सर्वत्र मेरी ही सत्ता देखनेसे, अनुभवज्ञानसहित तत्त्वविचारसे और योगसाधनसे अहङ्काररूप अपने लिङ्गशरीरको लीन कर दे। इस प्रकार अविद्याके कारण पड़ी हुई कर्मोंकी बीजरूप इस हृदयग्रन्थिको पूर्वोक्त साधनोंद्वारा सावधानीसे पूर्णतया नष्ट करके फिर इन साधनोंसे भी निवृत्त हो जाय ॥८–१४॥

जिसको मेरे लोककी इच्छा हो अथवा जो मेरे अनुग्रहकी प्राप्तिको ही परम पुरुषार्थ मानता हो—वह राजा हो तो अपनी अबोध प्रजाको, गुरु अपने शिष्योंको और पिता अपने पुत्रोंको ऐसी ही शिक्षा दे। अज्ञानके कारण यदि वे उस शिक्षाके अनुसार न चलकर कर्मको ही परम पुरुषार्थ मानते रहें, तो भी उनपर क्रोध न करके उन्हें समझा बुझाकर कर्ममें प्रवृत्त न होने दे। उन्हें विषयासक्तियुक्त काम्य कर्मोंमें लगाना तो ऐसा ही है, जैसे किसी अंधे मनुष्यको जान बूझकर गढ़ेमें ढकेल देना। इससे भला, किस पुरुषार्थकी सिद्धि हो सकती है? अपना सच्चा कल्याण किस बातमें है, इसको लोग नहीं जानते; इसीसे वे तरह-तरहकी भोग कामनाओंमें फँसकर तुच्छ क्षणिक सुखके लिये आपसमें वैर ठान लेते हैं और निरन्तर विषयभोगोंके लिये ही प्रयत्न करते रहते हैं। वे मूर्ख इस बात-पर कुछ भी विचार नहीं करते कि इस वैर-विरोधके कारण नरक आदि अनन्त घोर दुःखोंकी प्राप्ति होगी। गढ़ेमें गिरने-के लिये उल्टे रास्तेसे जाते हुए मनुष्यको जैसे आँखवाला पुरुष उधर नहीं जाने देता, वैसे ही अज्ञानी मनुष्यको अविद्यामें फँसकर दुःखोंकी ओर जाते देखकर कौन ऐसा दयालु और ज्ञानी पुरुष होगा, जो जान बूझकर भी उसे उसी राहपर जाने दे या जानेके लिये प्रेरणा करे। सच्ची बात तो यह है कि भगवान्‌की भक्तिके मार्गमें लगानेवाला ही अपना सच्चा आत्मीय है। जो अपने प्रिय सम्बन्धीको भगवद्भक्तिका उपदेश देकर मृत्युकी फाँसीसे नहीं छुड़ाता, वह गुरु गुरु नहीं है, स्वजन स्वजन नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है ॥ १५–१८ ॥

मेरा यह मानव-शरीर सर्वथा अचिन्तनीय है, स्वेच्छासे ग्रहण किया हुआ है। जिसमें धर्मकी स्थिति है, वह शुद्ध सत्त्व ही मेरा हृदय है। अधर्मको मैंने दूर पीठकी ओर कर रक्खा है। इसीसे साधुजन मुझे 'ऋषभ' (श्रेष्ठ) कहते हैं। तुम सब मेरे उस शुद्ध सत्त्वमय हृदयसे उत्पन्न हुए हो, इसलिये मत्सर छोड़कर अपने बड़े भाई भरतकी सेवा करो। उसकी सेवा करना मेरी ही सेवा करना है और यही तुम्हारा प्रजापालन भी है। देखो, अन्य सब भूतोंकी अपेक्षा वृक्ष अत्यन्त श्रेष्ठ हैं, उनसे चलनेवाले जीव श्रेष्ठ हैं और उनमें भी कीटादिकी अपेक्षा ज्ञानयुक्त पशु आदि श्रेष्ठ हैं। पशुओंसे मनुष्य, मनुष्योंसे भूत प्रेतादि प्रमथगण, प्रमथोंसे गन्धर्व, गन्धर्वोंसे सिद्ध और सिद्धोंसे देवताओंके अनुयायी किन्नरादि श्रेष्ठ हैं। उनसे असुर, असुरोंसे देवता और देवताओंसे भी इन्द्र श्रेष्ठ हैं। इन्द्रसे भी ब्रह्माजीके पुत्र दक्षादि प्रजापति श्रेष्ठ हैं। ब्रह्मा-जीके पुत्रोंमें रुद्र सबसे श्रेष्ठ हैं। वे ब्रह्माजीसे उत्पन्न हुए हैं, इसलिये ब्रह्माजी उनसे श्रेष्ठ हैं। वे भी मुझसे उत्पन्न हैं और मेरी उपासना करते हैं, इसलिये मैं उनसे भी श्रेष्ठ हूँ। परन्तु ब्राह्मण मुझसे भी श्रेष्ठ हैं, क्योंकि मैं उन्हें पूज्य मानता हूँ ॥ १९–२२ ॥

[सभामें उपस्थित ब्राह्मणोंको लक्ष्य करके] विप्रगण! दूसरे किसी भी प्राणीको मैं ब्राह्मणोंके समान भी नहीं समझता, फिर उनसे अधिक तो मान ही कैसे सकता हूँ। लोग श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मणोंके मुखमें जो अन्नादि आहुति डालते हैं, उसे मैं जैसी प्रसन्नतासे ग्रहण करता हूँ वैसे अग्निहोत्रमें होमी हुई सामग्रीको स्वीकार नहीं करता। जिन्होंने इस लोकमें अध्यय नादिके द्वारा मेरी वेदरूपा अति सुन्दर और पुरातन मूर्तिको धारण कर रक्खा है तथा जो परमपवित्र सत्त्वगुण, शम, दम, सत्य, दया, तप, तितिक्षा और ज्ञानादि आठ गुणोंसे सम्पन्न हैं—उन ब्राह्मणोंसे बढ़कर और कौन हो सकता है? देखो, मैं ब्रह्मादिसे भी श्रेष्ठ और अनन्त हूँ तथा स्वर्ग मोक्ष आदि देनेकी भी सामर्थ्य रखता हूँ; किन्तु मेरे अकिञ्चन भक्त ऐसे निःस्पृह होते हैं कि वे मुझसे भी कभी कुछ नहीं चाहते; फिर राज्यादि अन्य वस्तुओंकी तो वे इच्छा ही कैसे कर सकते हैं ॥ २३–२५ ॥

इसलिये पुत्रो! तुम सम्पूर्ण चराचर भूतोंको मेरा ही शरीर समझकर शुद्ध बुद्धिसे पद-पदपर उनकी सेवा करो, यही

छठा अध्याय

ऋषभदेवजीका देहत्याग

राजा परीक्षित्‌ने पूछा-भगवन् ! योगरूप वायुसे प्रज्वलित हुए ज्ञानाग्निसे जिनके रागादि कर्मबीज दग्ध हो गये हैं—उन आत्माराम मुनियोंको दैववश यदि स्वयं ही अणिमादि सिद्धियाँ प्राप्त हो जायँ, तो वे उनके राग द्वेषादि क्लेशोंका कारण तो किसी प्रकार हो नहीं सकतीं। फिर भगवान् ऋषभने उन्हे स्वीकार क्यों नहीं किया ?॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं-तुम्हारा कहना ठीक है; किन्तु संसारमें जैसे चालाक व्याध अपने पकड़े हुए मृगका विश्वास नहीं करते, उसी प्रकार बुद्धिमान् लोग इस चञ्चल चित्तका भरोसा नहीं करते। ऐसा ही कहा भी है—'इस चञ्चल चित्तसे कभी दोस्ती नहीं करनी चाहिये। देखो, इसमें विश्वास करनेसे ही मोहिनीरूपमें फँसकर महादेवजीका चिरकालका सञ्चित तप क्षीण हो गया था। जैसे व्यभिचारिणी स्त्री जार पुरुषोंको अवकाश देकर उनके द्वारा अपनेमें विश्वास रखनेवाले पतिका वध करा देती है—उसी प्रकार जो योगी मनपर विश्वास करते हैं, उनका मन काम और उसके साथी क्रोधादि शत्रुओंको आक्रमण करनेका अवसर देकर उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह और भय आदि शत्रुओंका तथा कर्म-बन्धनका मूल तो यह मन ही है; इसपर कोई भी बुद्धिमान् कैसे विश्वास कर सकता है ?' ॥ २–५ ॥

इसीसे भगवान् ऋषभदेव यद्यपि इन्द्रादि सभी लोकपालोंके भी भूषणस्वरूप थे, तो भी वे जड पुरुषोंकी भाँति अवधूतोंके से विविध वेष, भाषा और आचरणसे अपने ईश्वरीय प्रभावको छिपाये रहते थे। अन्तमें उन्होंने योगियोंको देहत्यागकी विधि सिखानेके लिये अपना शरीर छोड़ना चाहा। वे अपने अन्तःकरणमें अभेदरूपसे स्थित परमात्माको अभिन्नरूपसे देखते हुए वासनाओंकी अनुवृत्तिसे छूटकर लिङ्गदेहके अभिमानसे भी मुक्त हो गये। इस प्रकार लिङ्गदेहके अभिमानसे मुक्त भगवान् ऋषभदेवजीका शरीर योगमायाकी वासनासे केवल अभिमानाभासके आश्रय ही इस पृथ्वीतलपर विचरता रहा। वह दैववश कोङ्क, वेङ्क और कुटक आदि दक्षिण कर्णाटकके देशोंमें गया और मुँहमें पत्थरका टुकड़ा डाले तथा बाल बिखेरे उन्मत्तके समान दिगम्बररूपसे कुटकाचलके वनमें घूमने लगा। इसी समय वायु-वेगसे झूमते हुए बाँसोंकी रगड़से प्रबल दावाग्नि प्रकट हुई। उसने उस वनको जलाते हुए उसीके साथ ऋषभदेवजीके शरीरको भी भस्म कर दिया ॥ ६–८ ॥

राजन् ! जिस समय कलियुगमें अधर्मकी वृद्धि होगी, उस समय कोङ्क, वेङ्क और कुटकदेशका मन्दमति राजा अर्हत् वहाँके लोगोंसे ऋषभदेवजीके आश्रमातीत आचरणका वृत्तान्त सुनकर तथा स्वयं उसे ग्रहणकर लोगोंके पूर्वसञ्चित पापफलरूप होनहारके वशीभूत हो भयरहित वैदिक मार्गको छोड़कर अपनी बुद्धिसे अनुचित और पाखण्डपूर्ण कुमार्गका प्रचार करेगा। उससे कलियुगमें देवमायासे मोहित अनेकों अधम मनुष्य अपने शास्त्रविहित शौच और आचारको छोड़ बैठेंगे। अधर्मबहुल कलियुगके प्रभावसे बुद्धिहीन हो जानेके कारण वे स्नान न करना, आचमन न करना, अशुद्ध रहना, केश नुचवाना आदि ईश्वरका तिरस्कार करनेवाले पाखण्डधर्मोंको मनमाने ढगसे स्वीकार करेंगे और प्रायः वेद, ब्राह्मण एव भगवान् यज्ञपुरुषकी निन्दा करने लगेंगे। वे अपनी इस अवैदिक स्वेच्छाकृत प्रवृत्तिमें अन्धपरम्परासे विश्वास करके मस्त रहनेके कारण स्वयं ही घोर नरकमें गिरेंगे ॥९–११॥

भगवान्‌का यह अवतार रजोगुणसे भरे हुए लोगोंको मोक्षमार्गकी शिक्षा देनेके लिये ही हुआ था। इसके गुणोंका वर्णन करते हुए लोग इन वाक्योंको कहा करते हैं—'अहो ! सात समुद्रोंवाली पृथ्वीके समस्त द्वीप और वर्षोंमें यह भारतवर्ष बड़ी ही पुण्यभूमि है, क्योंकि यहाँके लोग श्रीहरिके मङ्गलमय अवतार चरित्रोंका गान करते हैं। अहो ! महाराज प्रियव्रतका वंश बड़ा ही उज्ज्वल एवं सुयशपूर्ण है, जिसमें पुराणपुरुष श्रीआदिनारायणने ऋषभावतार लेकर मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले पारमहंस्य धर्मका आचरण किया। अहो! इन जन्मरहित भगवान् ऋषभदेवके मार्गपर कोई दूसरा योगी मनसे भी कैसे चल सकता है। क्योंकि योगीलोग जिन योगसिद्धियोंके लिये लालायित होकर निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं, उन्हें इन्होंने अपने-आप प्राप्त होनेपर भी असत् समझकर त्याग दिया था' ॥ १२–१५ ॥

राजन् ! इस प्रकार सम्पूर्ण वेद, लोक, देवता, ब्राह्मण और गौओंके परमगुरु भगवान् ऋषभदेवका यह विशुद्ध चरित्र मैंने तुम्हें सुनाया। यह मनुष्योंके समस्त पापोंको

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत

पञ्चम स्कन्ध

पहला अध्याय

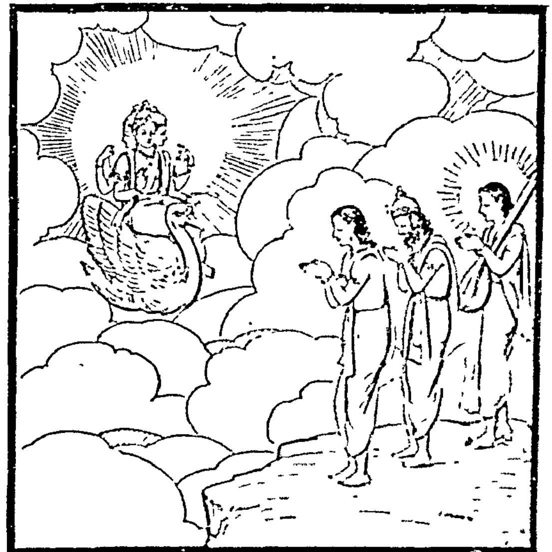
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

प्रियव्रत-चरित्र

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! महाराज प्रियव्रत तो बड़े भगवद्भक्त और आत्माराम थे। उनकी गृहस्थाश्रममें कैसे रुचि हुई, जिसमें फँसनेसे जीव अपने स्वरूपको भूलकर कर्मबन्धनमें बँध जाता है? विप्रवर! ऐसे निःसङ्ग महापुरुषों-का तो इस प्रकार गृहस्थाश्रममें अभिनिवेश होना उचित नहीं था। इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं कि जिनका चित्त पुण्यकीर्ति श्रीहरिके चरणोंकी शीतल छायाका आश्रय लेकर शान्त हो गया है, उन महापुरुषोंकी कुटुम्बादिमें कभी आसक्ति नहीं हो सकती। ब्रह्मन्! मुझे तो इस बातका बड़ा सन्देह है कि महाराज प्रियव्रतने स्त्री, घर और पुत्रादिमें आसक्त रहकर भी किस प्रकार सिद्धि प्राप्त कर ली और क्योंकर उनकी भगवान् श्रीकृष्णमें अविचल भक्ति हुई॥१–४॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्! तुम्हारा कथन बहुत ठीक है। जिनका चित्त पवित्रकीर्ति श्रीहरिके परम मधुर चरणकमलमकरन्दके रसमें सराबोर हो गया है, वे किसी विघ्न-बाधाके कारण रुकावट हो जानेपर भी भगवद्भक्त परमहंसोंके प्रिय श्रीवासुदेवभगवान्‌के कथाश्रवणरूपी परम कल्याणमय मार्गको प्रायः छोड़ते नहीं। राजन्! राजकुमार प्रियव्रत बड़े भगवद्भक्त थे। श्रीनारदजीके चरणोंकी सेवा करनेसे उन्हें सहजहीमें परमार्थतत्त्वका बोध हो गया था। वे निरन्तर ब्रह्माभ्यासमें जीवन बितानेका सङ्कल्प करने-हीवाले थे कि उसी समय उनके पिता स्वायम्भुव मनुने उन्हें पृथ्वीपालनके लिये शास्त्रमें बताये हुए सभी श्रेष्ठ गुणोंसे पूर्णतया सम्पन्न देख राज्यशासनके लिये आज्ञा दी। किन्तु प्रियव्रत तो अखण्ड समाधियोगके द्वारा अपनी सारी इन्द्रियोंको और क्रियाओंको भगवान् वासुदेवके चरणोंमें ही समर्पण कर चुके थे। अतः पिताकी आज्ञा किसी प्रकार उल्लङ्घन करनेयोग्य न होनेपर भी, यह सोचकर कि राज्याधिकार पाकर मेरा आत्मस्वरूप स्त्री-पुत्रादि असत् प्रपञ्चसे आच्छादित हो जायगा—राज्य और कुटुम्बकी चिन्तामें फँसकर मैं परमार्थतत्त्वको प्रायः भूल जाऊँगा, उन्होंने उसे स्वीकार न किया॥५-६॥

ब्रह्माजीको तो निरन्तर इस गुणमय प्रपञ्चकी वृद्धिका ही विचार रहता है और राजालोग जैसे अपने गुप्तचरोंद्वारा मण्डलेश्वरोंकी मनोवृत्तियोंका पता लगाते रहते हैं, उस प्रकार वे भी सारे संसारके जीवोंका अभिप्राय जानते रहते हैं। जब उन्होंने प्रियव्रतकी ऐसी प्रवृत्ति देखी, तो वे मूर्तिमान् चारों वेद और मरीचि आदि पार्षदोंको साथ लिये अपने लोकसे उतरे। आकाशमें जहाँ-तहाँ विमानोंपर चढ़े हुए इन्द्रादि प्रधान-प्रधान देवताओंने उनका पूजन किया तथा मार्गमें टोलियाँ बाँधकर आये हुए सिद्ध, गन्धर्व, साध्य, चारण और मुनिजनने स्तवन किया। इस प्रकार जगह-जगह



आदर-सम्मान पाते वे साक्षात् नक्षत्रनाथ चन्द्रमाके समान

उनके इष्टरूपमें मिलते रहते हैं। वहाँ चक्रनदी (गण्डकी) नामकी प्रसिद्ध सरिता चक्राकार शालग्राम शिलाओंसे, जिनके ऊपर नीचे दोनों ओर नाभिके समान चिह्न होते हैं, सब ओरसे ऋषियोंके आश्रमोंको पवित्र करती रहती है ॥ ८–१० ॥

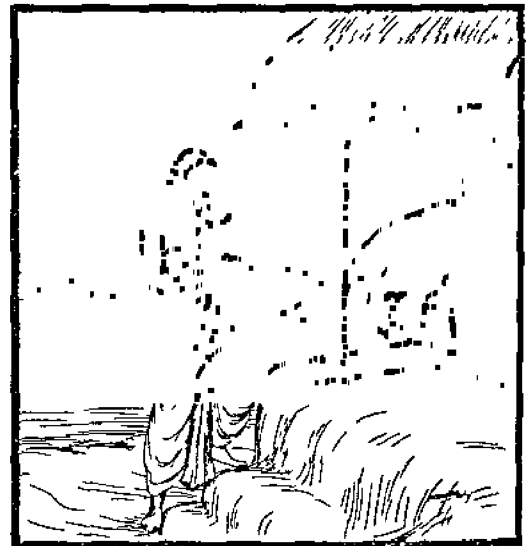
उस पुलहाश्रमके उपवनमें एकान्त स्थानमें अकेले ही रहकर वे अनेक प्रकारके पत्र, पुष्प, तुलसीदल, जल और कन्द-मूल फलादि उपहारोंसे भगवान्‌की आराधना करने लगे। इससे उनका अन्तःकरण समस्त विषयाभिलाषाओंसे निवृत्त होकर शान्त हो गया और उन्हें परम आनन्द प्राप्त हुआ। इस प्रकार जब वे नियमपूर्वक भगवान्‌की परिचर्या करने लगे, तो उससे प्रेमका वेग बढ़ता गया—जिससे उनका हृदय द्रवीभूत होकर शान्त हो गया, आनन्दके प्रबल प्रवाहसे शरीरमें रोमाञ्च होने लगा तथा उत्कण्ठाके कारण नेत्रोंमें प्रेमके आँसू उमड़ आये, जिससे उनकी दृष्टि रुक गयी। अन्तमें जब अपने प्रियतमके अरुण चरणारविन्दोंके ध्यानसे भक्तियोगका आविर्भाव हुआ, तो परमानन्दसे सराबोर हृदयरूप गम्भीर सरोवरमें बुद्धिके डूब जानेसे उन्हें उस नियमपूर्वक की जाने वाली भगवत्पूजाका भी स्मरण न रहा। इस प्रकार वे भगवत्सेवाके नियममें ही तत्पर रहते थे, शरीरपर कृष्ण मृगचर्म धारण करते थे तथा त्रिकालस्नानके कारण भीगते रहनेसे उनके केश भूरी भूरी घुँघराली लटोंमें परिणत हो गये थे, जिनसे वे बड़े ही सुहावने लगते थे। वे उदित हुए सूर्यमण्डलमें सूर्यसम्बन्धिनी ऋचाओंद्वारा ज्योतिर्मय परम पुरुष भगवान् नारायणकी आराधना करते और इस प्रकार कहते—'भगवान् सूर्यका कर्मफलदायक तेज प्रकृतिसे परे है। *उसीने सङ्कल्पद्वारा इस जगत्‌की उत्पत्ति की है। फिर वही* अन्तर्यामीरूपसे इसमें प्रविष्ट होकर अपनी चित्‌शक्तिद्वारा विषयलोलुप जीवोंकी रक्षा करता है। हम उसी बुद्धिप्रवर्तक तेजकी शरण लेते हैं' ॥ ११–१४ ॥

आठवाँ अध्याय

भरतजीका मृगके मोहमें फँसकर मृगयोनिमें जन्म लेना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—एक बार भरतजी गण्डकीमें स्नान कर नित्य नैमित्तिक तथा शौचादि अन्य आवश्यक कृत्योंसे निवृत्त हो प्रणवका जप करते हुए तीन मुहूर्ततक नदीकी धाराके पास बैठे रहे। राजन्! इसी समय एक हिरनी प्याससे व्याकुल हो जल पीनेके लिये अकेली ही उस नदीके तीरपर आयी। जब वह आनन्दसे जल पीने लगी, तो पास ही गरजते हुए एक सिंहका बड़ा लोकभयङ्कर शब्द हुआ। हरिनजाति तो स्वभावसे ही डरपोक होती है। वह पहले ही चौकन्नी होकर इधर उधर देखती जाती थी। अब ज्यों ही उसके कानमें वह भीषण शब्द पड़ा कि सिंहके डरके मारे उसका कलेजा धड़कने लगा और नेत्र कातर हो गये। प्यास अभी बुझी न थी, किन्तु अब तो प्राणोंपर आ बनी थी। इसलिये उसने भयवश एकाएकी नदी पार करनेके लिये छलाँग मारी। उसके पेटमें गर्भ था, अतः उछलते समय अत्यन्त भयके कारण उसका गर्भ अपने स्थानसे हटकर योनिद्वारसे निकलकर नदीके प्रवाहमें गिर गया। वह कृष्ण मृगपत्नी अकस्मात् गर्भके गिर जाने, लंबी छलाँग मारने तथा सिंहसे डरी होनेके कारण बहुत पीड़ित हो गयी थी। अब अपने झुंडसे भी उसका बिछोह हो गया, इसलिये वह किसी गुफामें जा पड़ी और वहीं मर गयी ॥ १–६ ॥

राजर्षि भरतने देखा कि बेचारा हिरनीका बच्चा अपने बन्धुओंसे बिछुड़कर नदीके प्रवाहमें बह रहा है। इससे उन्हें उसपर बड़ी दया आयी और वे आत्मीयके समान उस



मातृहीन बच्चेको अपने आश्रमपर ले आये। उस मृगछौनेके प्रति भरतजीकी ममता उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी। वे नित्य उसके खाने पीनेका प्रबन्ध करने, व्याघ्रादिसे बचाने, लाड़

इस प्रकार ब्रह्माजीकी कृपासे अपना मनोरथ पूर्ण हुआ देख मनुजीने देवर्षि नारदकी आज्ञासे प्रियव्रतको सम्पूर्ण भूमण्डलकी रक्षाका भार सौंप दिया और स्वयं विषयरूपी विषैले जलसे भरे हुए गृहस्थाश्रमरूपी दुस्तर जलाशयकी भोगेच्छासे निवृत्त हो गये। अब पृथ्वीपति महाराज प्रियव्रत भगवान्‌की इच्छासे राज्यशासनके कार्यमें नियुक्त हुए। जो सम्पूर्ण जगत्‌को बन्धनसे छुड़ानेमें अत्यन्त समर्थ हैं, उन आदिपुरुष श्रीभगवान्‌के चरणयुगलका निरन्तर ध्यान करते रहनेसे यद्यपि उनके रागादि सभी मल नष्ट हो चुके थे और उनका हृदय भी अत्यन्त शुद्ध था, तथापि बड़ोंका मान रखनेके लिये वे पृथ्वीका शासन करने लगे। उन्होंने प्रजापति विश्वकर्माकी पुत्री बर्हिष्मतीसे विवाह किया। उससे उनके दस पुत्र हुए। वे सब उन्हींके समान शीलवान्, गुणी, कर्मनिष्ठ, रूपवान् और पराक्रमी थे। उनसे छोटी ऊर्जस्वती नामकी एक कन्या भी हुई। पुत्रोंके नाम आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि थे। ये सब नाम अग्निके भी हैं। इनमें कवि, महावीर और सवन—ये तीन नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए। इन्होंने बाल्यावस्थासे आत्मविद्याका अभ्यास करते हुए अन्तमें संन्यास-आश्रम ही स्वीकार किया। इन निवृत्तिपरायण महर्षियोंने संन्यासाश्रममें ही रहते हुए समस्त जीवोंके अधिष्ठान और भवबन्धनसे डरे हुए लोगोंको आश्रय देनेवाले भगवान् वासुदेवके श्रीसम्पन्न चरणारविन्दोंका निरन्तर चिन्तन किया। उससे प्राप्त हुए अखण्ड एवं श्रेष्ठ भक्तियोगसे उनका अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध हो गया और उसमें श्रीभगवान्‌का आविर्भाव हुआ। तब देहादि उपाधिकी निवृत्ति हो जानेसे उनके आत्माकी सम्पूर्ण जीवोंके आत्मभूत प्रत्यगात्मामें एकीभावसे स्थिति हो गयी। महाराज प्रियव्रतकी दूसरी भार्यासे उत्तम, तामस और रैवत—ये तीन पुत्र हुए, जो आगामी मन्वन्तरोंके अधिपति हुए॥ २२—२८॥

इस प्रकार कवि आदि तीन पुत्रोंके निवृत्तिपरायण हो जानेपर राजा प्रियव्रतने ग्यारह अरब* वर्षतक पृथ्वीका शासन किया। जिस समय वे अपनी अखण्ड पुरुषार्थमयी और वीर्यशालिनी भुजाओंसे धनुषकी डोरी खींचकर टङ्कार करते थे, उस समय डरके मारे सभी धर्मद्रोही न जाने कहाँ छिप जाते थे। प्राणप्रिया बर्हिष्मतीके दिन-दिन बढ़नेवाले आमोद-प्रमोद और अभ्युत्थानादि क्रीडाओंके कारण तथा उसके स्त्रीजनोचित हाव-भाव, लज्जासे सङ्कुचित मन्दहास्ययुक्त चितवन और मनको भानेवाले विनोद आदिसे महामना प्रियव्रत विवेकहीन व्यक्तिकी भाँति आत्मविस्मृत-से होकर सब भोगोंको भोगने लगे। किन्तु वास्तवमें ये उनमें आसक्त नहीं थे॥ २९॥

एक बार इन्होंने जब यह देखा कि भगवान् सूर्य सुमेरुकी परिक्रमा करते हुए लोकालोकपर्यन्त पृथ्वीके जितने भागको आलोकित करते हैं, उसमेंसे आधा ही प्रकाशमें रहता है और आधेमें अन्धकार छाया रहता है, तो उन्होंने इसे पसंद नहीं किया। तब उन्होंने रातको भी दिन कर देनेके विचारसे सूर्यके समान ही वेगवान् एक ज्योतिर्मय रथपर चढ़कर सूर्यके पीछे-पीछे इतने अन्तरसे पृथ्वीकी सात परिक्रमाएँ कीं कि जिस समय सूर्य अस्ताचलपर होते थे, इनका रथ उदयाचलपर आरूढ़ हो जाता था और सूर्यके उदय होनेपर ये अस्ताचलपर चले जाते थे। भगवान्‌की उपासनासे इनका अलौकिक प्रभाव इतना बढ़ गया था कि ये दूसरे सूर्यके समान ही जान पड़ते थे। उस समय इनके रथके पहियोंसे जो लीकें बनीं, वे ही सात समुद्र हुए; उनसे पृथ्वीमें सात द्वीप हो गये। उनके नाम क्रमशः जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर द्वीप हैं। इनमेंसे पहले-पहलेकी अपेक्षा आगे-आगेके द्वीपका परिमाण दूना है और ये समुद्रके बाहरी भागमें पृथ्वीके चारों ओर फैले हुए हैं। सात समुद्र क्रमशः खारे जल, ईखके रस, मदिरा, घी, दूध, मट्ठे और मीठे जलसे भरे हुए हैं। ये सातों द्वीपोंकी खाइयोंके समान हैं और परिमाणमें अपने भीतरवाले द्वीपके बराबर हैं। इनमेंसे एक-एक क्रमशः अलग-अलग सातों द्वीपोंको बाहरसे घेरे हुए है।† बर्हिष्मतीपति महाराज प्रियव्रतने अपने अनुगत पुत्र आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्रमेंसे क्रमशः एक-एकको उक्त जम्बू आदि द्वीपोंमेंसे एक-एकका राजा बनाया और अपनी कन्या ऊर्जस्वतीका विवाह शुक्राचार्यजीसे किया; उसीसे शुक्रकन्या देवयानीका जन्म

* संस्कृतमें दस करोड़की संख्याको अर्बुद कहते हैं, उसीको यहाँ अरब कहा गया है।

† इनका क्रम इस प्रकार समझना चाहिये—पहले जम्बूद्वीप है, उसके चारों ओर क्षार समुद्र है। वह प्लक्षद्वीपसे घिरा हुआ है, उसके चारों ओर ईखके रसका समुद्र है। उसे शाल्मलि द्वीप घेरे हुए है, उसके चारों ओर मदिराका समुद्र है। फिर कुशद्वीप है, वह घीके समुद्रसे घिरा हुआ है। उसके बाहर क्रौञ्चद्वीप है, उसके चारों ओर दूधका समुद्र है। फिर शाकद्वीप है, उसे मट्ठेका समुद्र घेरे हुए है। उसके चारों ओर पुष्करद्वीप है, वह मीठे जलके समुद्रसे घिरा हुआ है।

हुए मृग-वराहादि जीवोंसे अपने खेतोंकी रखवाली कर रहे थे। उन्होंने देखा कि यह पशु तो बड़े अच्छे लक्षणोंवाला है, इससे हमारे स्वामीका कार्य अवश्य सिद्ध हो जायगा। यह सोचकर उनका मुख आनन्दसे खिल उठा और वे उन्हें रस्सियोंसे बाँधकर चण्डिकाके मन्दिरमें ले आये ॥१२–१४॥

तदनन्तर उन चोरोंने उन्हें विधिपूर्वक स्नान कराकर कोरे वस्त्र पहनाये तथा नाना प्रकारके आभूषण, चन्दन, माला और तिलक आदिसे विभूषित कर अच्छी तरह भोजन कराया। फिर धूप, दीप, माला, खील, पत्ते, अङ्कुर, फल और नैवेद्य आदि सामग्रीके सहित बलिदानकी विधिसे गान, स्तुति और मृदङ्ग एवं ढोल आदिका महान् शब्द करते उस पुरुष पशुको भद्रकालीके सामने नीचा सिर कराके बैठा दिया। इसके पश्चात् दस्युराजके लुटेरे पुरोहितने उस नरपशुके रुधिरसे देवीको तृप्त करनेके लिये देवीमन्त्रोंसे अभिमन्त्रित एक तेज तलवार उठायी ॥ १५ १६ ॥

चोर स्वभावसे तो रजोगुणी तमोगुणी थे ही, धनके मदसे उनका चित्त और भी उन्मत्त हो गया था। हिंसामें भी उनकी स्वाभाविक रुचि थी। इस समय तो वे भगवान्के अंशस्वरूप ब्राह्मणकुलका तिरस्कार करके स्वच्छन्दतासे कुमार्गकी ओर बढ़ रहे थे। आपत्तिकालमें भी शास्त्र जिसके वधकी आज्ञा नहीं देते, ऐसे साक्षात् ब्रह्मभावको प्राप्त हुए वैरहीन तथा समस्त प्राणियोंके सुहृद् एक ब्रह्मर्षिकुमारकी वे बलि देना चाहते थे। यह भयङ्कर कुकर्म देखकर देवी भद्रकालीके शरीरमें दुःसह ब्रह्मतेजसे दाह होने लगा और वे एकाएक मूर्तिको फोड़कर प्रकट हो गयीं। अत्यन्त असहनशीलता और क्रोधके कारण उनकी भौंहें चढ़ी हुई थीं तथा कराल दाढ़ों और चढ़ी हुई लाल आँखोंके कारण उनका चेहरा बड़ा भयानक जान पड़ता था। उनके उस विकराल वेषको देखकर ऐसा जान पड़ता था मानो वे इस संसारका संहार कर डालेंगी। उन्होंने क्रोधसे तड़ककर बड़ा भीषण अट्टहास किया और उछलकर उस अभिमन्त्रित खड्गसे ही उन सारे पापियोंके सिर उड़ा दिये और अपने गणोंके सहित उनके गलेसे बहता हुआ गर्म-गर्म रुधिररूप आसव पीकर अति उन्मत्त हो ऊँचे स्वरसे गाती और नाचती हुई उन सिरोंको ही गेंद बनाकर खेलने लगीं। सच है, महापुरुषोंके प्रति किया हुआ अत्याचाररूप अपराध इसी प्रकार ज्यों-का त्यों अपने ही ऊपर पड़ता है। परीक्षित्! जिनकी देहाभिमानरूप सुदृढ हृदयग्रन्थि छूट गयी है, जो समस्त प्राणियोंके सुहृद् एवं आत्मा तथा वैरहीन हैं, साक्षात् भगवान् ही भद्रकाली आदि भिन्न भिन्न रूप धारण करके अपने कभी न चूकनेवाले कालचक्ररूप श्रेष्ठ शस्त्रसे जिनकी रक्षा करते हैं और जिन्होंने भगवान्के निर्भय चरणकमलोंका आश्रय ले रखा है—उन भगवद्भक्त परमहंसोंके लिये अपना सिर कटनेका अवसर आनेपर भी किसी प्रकार व्याकुल न होना—यह कोई बड़े आश्चर्यकी बात नहीं है ॥ १७–२० ॥

दसवाँ अध्याय

जडभरत और राजा रहूगणकी भेंट

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! एक बार सिन्धुसौवीर देशका स्वामी राजा रहूगण पालकीपर चढ़कर जा रहा था। जब वह इक्षुमती नदीके किनारे पहुँचा तो उसकी पालकी उठानेवाले कहारोंके जमादारको एक कहारकी आवश्यकता पड़ी। दैववश उसे ये ब्राह्मणदेवता मिल गये। इन्हें देखकर उसने सोचा, 'यह मनुष्य हृष्ट पुष्ट, जवान और गठीले अङ्गोंवाला है। इसलिये यह तो बैल या गधेके समान अच्छी तरह बोझा ढो सकता है।' यह सोचकर उसने बेगारमें पकड़े हुए अन्य कहारोंके साथ इन्हें भी बलात्कारसे पकड़कर पालकीमें जोड़ दिया। महात्मा भरतजी यद्यपि किसी प्रकार इस कार्यके योग्य नहीं थे, तो भी वे बिना कुछ बोले चुपचाप पालकीको उठा ले चले ॥ १ ॥

वे द्विजश्रेष्ठ, कोई जीव पैरोंतले दब न जाय—इस डरसे आगेकी एक बाण पृथ्वी देखकर चलते थे। इसलिये दूसरे कहारोंके साथ उनकी चालका मेल न खानेसे जब पालकी टेढ़ी-सीधी होने लगी, तो यह देखकर राजा रहूगणने पालकी उठानेवालोंसे कहा—'अरे कहारो! अच्छी तरह चलो, पालकीको इस प्रकार ऊँची नीची करके क्यों चलते हो?' ॥२॥

तब अपने मालिकका यह आक्षेपयुक्त वचन सुनकर उन कहारोंको डर लगा कि राजा उन्हें दण्ड न दें। इसलिये

प्रकारकी कामनाओंकी सिद्धि चाहनेवाले हम लोगोंके लिये तो मनोरथसिद्धिका पर्याप्त साधन यही होना चाहिये। आप ब्रह्मादि परमपुरुषोंकी अपेक्षा भी परम श्रेष्ठ हैं। हम तो यह भी नहीं जानते कि हमारा परम कल्याण किसमें है, और न हमसे आपकी यथोचित पूजा ही बनी है; तथापि जिस प्रकार तत्त्वज्ञ पुरुष बिना बुलाये भी केवल करुणावश अज्ञानी पुरुषोंके पास चले जाते हैं, उसी प्रकार आप भी हमें मोक्षसंज्ञक अपना परमपद और हमारी अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करनेके लिये अन्य साधारण यज्ञदर्शकोंके समान यहाँ प्रकट हुए हैं। पूज्यतम! हमें सबसे बड़ा वर तो आपने यही दे दिया कि ब्रह्मादि समस्त वरदायकोंमें श्रेष्ठ होकर भी आप राजर्षि नाभिकी



इस यज्ञशालामें साक्षात् हमारे नेत्रोंके सामने प्रकट हो गये! अब हम और वर क्या माँगें?॥ ४-१०॥

प्रभो! आपके गुणगणोंका गान परम मङ्गलमय है। जिन्होंने वैराग्यसे प्रज्वलित हुई ज्ञानाग्निके द्वारा अपने अन्तःकरणके राग-द्वेषादि सम्पूर्ण मलोंको जला डाला है, अतएव जिनका स्वभाव आपहीके समान शान्त है, वे आत्माराम मुनिगण भी निरन्तर आपके गुणोंका गान ही किया करते हैं। अतः हम आपसे यही वर माँगते हैं कि गिरने, ठोकर खाने, छींकने अथवा जँभाई लेने और सङ्कटादिके समय एवं ज्वर और मरणादिकी अवस्थाओंमें आपका स्मरण न हो सकनेपर भी किसी प्रकार आपके सकलकलिमलविनाशक 'भक्तवत्सल', 'दीनबन्धु' आदि गुणद्योतक नामोंका हम उच्चारण कर सकें॥ ११-१२॥

इसके सिवा, कहनेयोग्य न होनेपर भी एक प्रार्थना और है। आप साक्षात् परमेश्वर हैं; स्वर्ग-अपवर्ग आदि ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे आप न दे सकें। तथापि जैसे कोई कंगाल किसी धन लुटानेवाले परम उदार पुरुषके पास पहुँचकर भी उससे भूसा ही माँगे, उसी प्रकार हमारे यजमान ये राजर्षि नाभि सन्तानको ही परमपुरुषार्थ मानकर आपहीके समान पुत्र पानेके लिये आपकी आराधना कर रहे हैं। परन्तु यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आपकी मायाका पार कोई नहीं पा सकता, और न वह किसीके वशमें ही आ सकती है। जिन लोगोंने महापुरुषोंके चरणोंका आश्रय नहीं लिया, उनमें ऐसा कौन है जो उसके वशमें नहीं होता, उसकी बुद्धिपर उसका परदा नहीं पड़ जाता और विषयरूप विषका वेग उसके स्वभावको दूषित नहीं कर देता? देवदेव! आप भक्तोंके बड़े-बड़े काम कर देते हैं। हम मन्दमतियोंने कामनावश इस तुच्छ कार्यके लिये आपका आवाहन किया, यह आपका अनादर ही है। किन्तु आप समदर्शी हैं, अतः हम अज्ञानियोंकी इस धृष्टताको आप क्षमा करें॥ १३-१५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! वर्षाधिपति नाभिके पूज्य ऋत्विजोंने प्रभुके चरणोंकी वन्दना करके जब पूर्वोक्त स्तोत्रसे स्तुति की, तो देवश्रेष्ठ श्रीहरिने करुणावश इस प्रकार कहा॥ १६॥

श्रीभगवान् बोले—ऋषियो! बड़े असमंजसकी बात है! आप सब सत्यवादी महात्मा हैं, आपने मुझसे यह बड़ा दुर्लभ वर माँगा है कि राजर्षि नाभिके मेरे समान पुत्र हो। मुनियो! मेरे समान तो मैं ही हूँ, क्योंकि मैं अद्वितीय हूँ। तो भी ब्राह्मणोंका वचन मिथ्या नहीं होना चाहिये, द्विजकुल मेरा ही तो मुख है। इसलिये मैं स्वयं ही अपनी अंशकलासे आग्नीध्रनन्दन नाभिके यहाँ अवतार लूँगा, क्योंकि अपने समान मुझे कोई और दिखायी ही नहीं देता॥ १७-१८॥

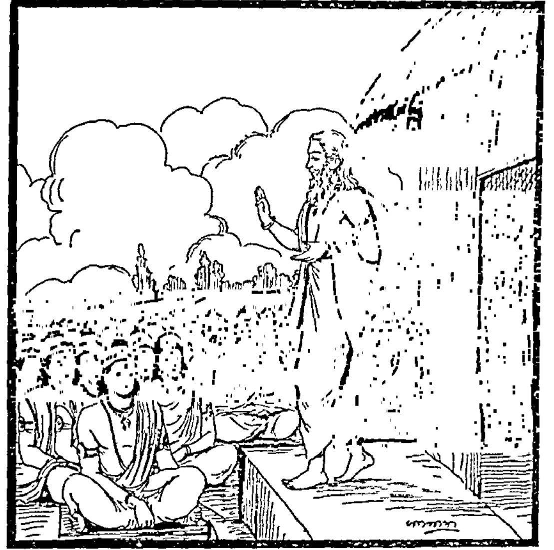
श्रीशुकदेवजी कहते हैं—महारानी मेरुदेवीके सामने ही उसके पतिसे इस प्रकार कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। परीक्षित्! उस यज्ञमें महर्षियोंद्वारा इस प्रकार प्रसन्न किये जानेपर श्रीभगवान् महाराज नाभिका प्रिय करनेके लिये उनके रनिवासमें महारानी मेरुदेवीके गर्भसे दिगम्बर संन्यासी और ऊर्ध्वरेता मुनियोंका धर्म प्रकट करनेके लिये शुद्धसत्त्वमय विग्रहसे प्रकट हुए। उनके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं समझनी चाहिये; क्योंकि तुम्हें याद ही होगा कि उन्होंने गर्भके अंदर तुम्हारी रक्षा की थी॥ १९-२०॥

भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे द्रव्य, देश, काल, आयु, श्रद्धा और ऋत्विज आदिसे सुसम्पन्न सभी प्रकारके सौ-सौ यज्ञ किये। भगवान् ऋषभदेवके शासनकालमें इस देशका कोई भी पुरुष अपने लिये किसीसे भी अपने प्रभुके प्रति दिन-दिन बढ़नेवाले अनुरागके सिवा और किसी वस्तुकी कभी इच्छा नहीं करता था। यही नहीं, आकाशकुसुमादि अविद्यमान वस्तुकी भाँति कोई किसीकी वस्तुकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करता था। एक बार भगवान् ऋषभदेव घूमते-घूमते ब्रह्मावर्तदेशमें पहुँचे। वहाँ बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंकी सभामें उन्होंने प्रजाके सामने ही अपने समाहितचित्त, तथा विनय और प्रेमके भारसे सुसंयत पुत्रोंको शिक्षा देनेके लिये इस प्रकार कहा ॥ १४—१९ ॥

पाँचवाँ अध्याय

ऋषभजीका पुत्रोंको उपदेश और स्वयं अवधूतवृत्ति ग्रहण करना

श्रीऋषभदेवजी बोले—पुत्रो! इस मर्त्यलोकमें नर-देह पाकर जीवको दुःखमय विषयभोगोंमें ही नहीं फँसे रहना चाहिये। ये भोग तो विष्ठाभोजी सूकर-कूकरादिको भी मिलते ही हैं। इस शरीरके द्वारा तो दिव्य तप ही करना चाहिये, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो और फिर अनन्त ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति हो सके। शास्त्रोंने महापुरुषोंकी सेवाको मुक्तिका और स्त्रीसंगी कामियोंके सङ्गको नरकका द्वार बताया है। महापुरुष वे ही हैं जो समानचित्त, परम-शान्त, क्रोधहीन, सबके हितचिन्तक और सदाचारसम्पन्न हों; अथवा मुझ परमात्माके प्रेमको ही जो एकमात्र पुरुषार्थ मानते हों, केवल विषयोंकी ही चर्चा करनेवाले लोगोंमें तथा स्त्री, पुत्र और धन आदि सामग्रियोंसे सम्पन्न घरोंमें जिनकी अरुचि हो और जो लौकिक कार्योंमें केवल शरीरनिर्वाहके लिये ही प्रवृत्त होते हों। मनुष्य जो प्रमादी होकर कुकर्म करने लगता है, उसकी वह प्रवृत्ति इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिये ही होती है। मैं इसे अच्छा नहीं समझता, क्योंकि इसीके कारण आत्माको यह असत् और दुःखदायक शरीर प्राप्त होता है। जबतक जीवको आत्मतत्त्वकी जिज्ञासा नहीं होती, तभीतक अज्ञानवश देहादिके द्वारा उसका स्वरूप छिपा रहता है। जबतक यह लौकिक-वैदिक कर्मोंमें फँसा रहता है, तबतक मनमें कर्मकी वासनाएँ भी बनी ही रहती हैं और इन्हींसे देह-बन्धनकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार अविद्याके द्वारा आत्मस्वरूपके ढक जानेसे कर्मवासनाओंके वशीभूत हुआ चित्त मनुष्यको फिर कर्मोंमें ही प्रवृत्त करता है। अतः जबतक उसकी मुझ वासुदेवमें प्रीति नहीं होती, तबतक वह देहबन्धनसे छूट नहीं सकता। स्वार्थमें पागल जीव जबतक विवेकदृष्टिका आश्रय लेकर इन्द्रियोंकी चेष्टाओंको मिथ्या नहीं देखता, तबतक आत्मस्वरूपकी स्मृति खो बैठनेके कारण वह अज्ञानवश विषयप्रधान गृह आदिमें आसक्त



रहता है और तरह-तरहके क्लेश उठाता रहता है ॥ १—७ ॥

स्त्री और पुरुष—इन दोनोंका जो परस्पर दाम्पत्यभाव है, इसीको पण्डितजन उनके हृदयकी दूसरी स्थूल एवं दुर्भेद्य ग्रन्थि कहते हैं। देहाभिमानरूपी एक-एक सूक्ष्म ग्रन्थि तो उनमें अलग-अलग पहलेहीसे है। इसीके कारण जीवको देहेन्द्रियादिके अतिरिक्त घर, खेत, पुत्र, स्वजन और धन आदिमें भी 'मैं' और 'मेरे' पनका मोह हो जाता है। जिस समय कर्मवासनाओंके कारण पड़ी हुई इसकी यह दृढ़ हृदय-ग्रन्थि ढीली हो जाती है, उसी समय यह दाम्पत्यभावसे निवृत्त हो जाता है और संसारके हेतुभूत अहङ्कारको त्यागकर सब प्रकारके बन्धनोंसे मुक्त हो परमपद प्राप्त कर लेता है। पुत्रो! संसारसागरसे पार होनेमें कुशल तथा धैर्य, उद्यम एवं सत्त्वगुणविशिष्ट पुरुषको चाहिये कि सबके आत्मा और

इस विषयमें कोई विवाद नहीं है। स्थूलता, कृशता, आधि, व्याधि, भूख प्यास, भय, कलह, इच्छा, बुढ़ापा, निद्रा, प्रेम, क्रोध, अभिमान और शोक—ये सब धर्म देहाभिमानको लेकर उत्पन्न होनेवाले जीवमें रहते हैं, मुझमें तो इनका लेश भी नहीं है। राजन्! तुमने जो जीने मरनेकी बात कही—सो जितने भी विकारी पदार्थ हैं, उन सभीमें नियमितरूपसे ये दोनों बातें देखी जाती हैं, क्योंकि वे सभी आदि-अन्तवाले हैं। यशस्वी नरेश! जहाँ स्वामी-सेवकभाव स्थिर हो, वहीं आज्ञापालनादि का नियम भी लागू हो सकता है। तुम्हारे और मेरे बीचमें तो यह सम्बन्ध स्थिर नहीं है, इसमें परिवर्तन भी हो सकता है। 'तुम राजा हो और मैं प्रजा हूँ' इस प्रकारकी भेदबुद्धिके लिये मुझे व्यवहारके सिवा और कहीं तनिक भी अवकाश नहीं दिखायी देता। परमार्थदृष्टिसे देखा जाय तो किसे स्वामी कहें और किसे सेवक? फिर भी राजन्! तुम्हें यदि स्वामित्वका अभिमान है तो कहो, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ? वीरवर! मैं तो मत्त, उन्मत्त और जडके समान अपनी ही स्थितिमें रहता हूँ। मेरा इलाज करके तुम्हें क्या हाथ लगेगा? यदि मैं वास्तवमें जड और प्रमादी ही हूँ, तो भी मुझे शिक्षा देना पिसे हुएको पीसनेके समान व्यर्थ ही होगा। मुझे ठोक-पीटकर तुम चतुर चालाक तो बना नहीं सकोगे ॥९–१३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मुनिवर जड भरत यथार्थ तत्त्वका उपदेश करते हुए इतना उत्तर देकर मौन हो गये। उनका देहात्मबुद्धिका हेतुभूत अज्ञान निवृत्त हो चुका था, इसलिये वे परम शान्त हो गये थे। अतः इतना कहकर भोगद्वारा प्रारब्धक्षय करनेके लिये वे फिर पहलेहीके समान उस पालकीको कंधेपर लेकर चलने लगे। इधर सिन्धु-सौवीरनरेश रहूगण भी अपनी उत्तम श्रद्धाके कारण तत्त्वजिज्ञासाका पूरा अधिकारी था। जब उसने उन द्विजश्रेष्ठके ये अनेकों योग ग्रन्थोंसे समर्थित और हृदयकी ग्रन्थिका छेदन करनेवाले वाक्य सुने, तो वह तत्काल पालकीसे उतर पड़ा। उसका राजमद सर्वथा दूर हो गया और वह उनके चरणोंमें सिर रखकर अपना अपराध क्षमा कराते हुए इस प्रकार कहने लगा—'देव! आपने द्विजोंका चिह्न यज्ञोपवीत धारण कर रखा है, बतलाइये इस प्रकार प्रच्छन्नभावसे विचरनेवाले आप कौन हैं? क्या आप दत्तात्रेय आदि अवधूतोंमेंसे कोई हैं? आप किसके पुत्र हैं, आपका कहाँ जन्म हुआ है और यहाँ कैसे आपका पदार्पण हुआ है? यदि आप हमारा कल्याण करने पधारे हैं, तो क्या आप साक्षात् सत्त्वमूर्ति भगवान् कपिलजी ही तो नहीं हैं? मुझे इन्द्रके वज्र, महादेवजीके त्रिशूल, यमराजके दण्ड तथा अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वायु और कुबेरके आयुधोंका भी कोई भय नहीं है, परन्तु ब्राह्मणकुलका अपमान होनेसे मैं बहुत डरता हूँ। अतः कृपया बतलाइये, इस प्रकार अपने विज्ञान और शक्तिको छिपाकर पागलोंकी भाँति विचरनेवाले आप कौन हैं? विषयोंसे तो आप सर्वथा अनासक्त जान पड़ते हैं। मुझे आपकी कोई थाह नहीं मिल रही है। साधो! आपके योगयुक्त वाक्योंकी बुद्धिद्वारा आलोचना करनेपर भी मेरा सन्देह दूर नहीं होता। मैं तो आत्मज्ञानी मुनियोंके परमगुरु और साक्षात् श्रीहरिकी ज्ञानशक्तिके अवतार योगेश्वर भगवान् कपिलसे यह पूछनेके लिये जा रहा था कि इस लोकमें एकमात्र शरण लेने योग्य कौन है। सो क्या आप वे कपिलमुनि ही हैं, जो लोकोंकी दशा देखनेके लिये इस प्रकार अपना रूप छिपाकर विचर रहे हैं? भला, घरमें आसक्त रहनेवाला विवेकहीन पुरुष योगेश्वरोंकी गति कैसे जान सकता है'॥ १४–२०॥

[इस प्रकार भरतजीका परिचय पूछकर अब उनके कथनमें शङ्का करते हुए राजा रहूगण कहता है—] 'मैंने युद्धादि कर्मोंमें अनेकों श्रम होते देखा है, इसलिये मेरा अनुमान है कि बोझा ढोने और मार्गमें चलनेसे आपको भी अवश्य हुआ होगा। अतः आपका यह कथन कि 'मुझे किसी प्रकारका क्लेश या श्रम नहीं है' मेरी समझमें नहीं आता। इसके सिवा आपने जो कहा कि स्वामी-सेवकभाव केवल व्यवहारमात्र ही है, वास्तवमें नहीं है, सो व्यवहारमार्ग भी सप्रमाण ही माना गया है, अतः वह भी सत्य ही होना चाहिये। नहीं तो असत् घटसे जल लाना आदि क्रिया कैसे हो सकेगी? देहादिके धर्मोंका आत्मापर कोई प्रभाव ही नहीं होता, ऐसी बात भी नहीं है। देखिये, चूल्हेपर रक्खी हुई बटलोही जब अग्निसे तपने लगती है, तो उसका जल भी खौलने लगता है और फिर उस जलसे चावलका भीतरी भाग भी पक जाता है। इसी प्रकार अपनी उपाधिके धर्मोंका अनुवर्तन करनेके कारण देह, इन्द्रिय, प्राण और मनकी सन्निधिसे आत्माको भी उनके धर्म श्रमादिका अनुभव होता ही है। और आपने जो दण्डादिकी व्यर्थता बतायी, सो राजा तो प्रजाका शासन और पालन करनेके लिये नियुक्त किया हुआ उसका दास ही है। अतः उसका उन्मत्तादिको दण्ड देना पिसे हुएको पीसनेके समान व्यर्थ नहीं हो सकता,

मेरा पूजन होगा। मन, वचन, दृष्टि तथा अन्य इन्द्रियोंकी चेष्टाओंका साक्षात् फल मेरा इस प्रकारका पूजन ही है। इसके बिना मनुष्य अपनेको महामोहमय कालपाशसे छुड़ा नहीं सकता ॥ २६-२७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! ऋषभदेवजीके पुत्र यद्यपि स्वयं ही सब प्रकार सुशिक्षित थे, तो भी लोगोंको शिक्षा देनेके उद्देश्यसे महाप्रभावशाली परम-सुहृद् भगवान् ऋषभने उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया। ऋषभदेवजीके सौ पुत्रोंमें भरत सबसे बड़े थे। वे भगवान्‌के परम भक्त और भगवद्भक्तोंके परायण थे। ऋषभ-देवजीने पृथ्वीका पालन करनेके लिये उन्हें राजगद्दीपर बैठा दिया और स्वयं उपशमशील निवृत्तिपरायण महामुनियोंके भक्ति, ज्ञान और वैराग्यरूप परमहंसोचित धर्मोंकी शिक्षा देनेके लिये बिल्कुल विरक्त हो गये। केवल शरीरमात्रका परिग्रह रक्खा, और सब कुछ घरपर रहते ही छोड़ दिया। अब वे वस्त्रों-का भी त्याग करके सर्वथा दिगम्बर हो गये। उस समय उनके बाल बिखरे हुए थे। उन्मत्तका-सा वेष था। इस स्थितिमें वे आहवनीय (अग्निहोत्रकी) अग्नियोंको अपनेमें ही लीन करके संन्यासी हो गये और ब्रह्मावर्त देशसे बाहर निकल गये। वे सर्वथा मौन हो गये थे, कोई बात करना चाहता तो बोलते नहीं थे। जड, अंधे, बहरे, गूँगे, पिशाच और पागलोंकी-सी चेष्टा करते हुए वे अवधूत बने जहाँ-तहाँ विचरने लगे। कभी नगरों और गाँवोंमें चले जाते तो कभी खानों, किसानोंकी बस्तियों, बगीचों, पहाड़ी गावों, सेनाकी छावनियों, गोशालाओं, अहीरोंकी बस्तियों और यात्रियोंके टिकनेके स्थानोंमें रहते। कभी पहाड़ों, जंगलों और आश्रम आदिमें विचरते। वे किसी भी रास्तेसे निकलते तो जिस प्रकार वनमें विचरनेवाले हाथी-को मक्खियाँ तंग करती हैं, उसी प्रकार मूर्ख और दुष्टलोग उनके पीछे हो जाते और उन्हें तंग करते। कोई धमकी देते, कोई मारते, कोई पेशाब कर देते, कोई थूक देते, कोई ढेला मारते, कोई विष्ठा और धूल फेंकते, कोई अधोवायु छोड़ते और कोई खोटी-खरी सुनाकर उनका तिरस्कार करते। किन्तु वे इन सब बातोंपर जरा भी ध्यान नहीं देते। इसका कारण यह था कि भ्रमसे सत्य कहे जानेवाले इस मिथ्या शरीरमें उनकी अहंता-ममता तनिक भी नहीं थी। वे कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण प्रपञ्चके साक्षी होकर अपने परमात्मस्वरूपमें ही स्थित थे, इसलिये अखण्ड चित्तवृत्तिसे अकेले ही पृथ्वीपर विचरते रहते थे। यद्यपि उनके हाथ, पैर, छाती, लंबी-लंबी बाहें, कंधे, गरदन और मुख आदि अङ्गोंकी बनावट बड़ी ही सुकुमार थी; उनका स्वभावसे ही सुन्दर मुख स्वाभाविक मधुर मुसकानसे और भी मनोहर जान पड़ता था; नेत्र नवीन कमलदलके समान बड़े ही सुहावने, विशाल, सन्तापहारी एवं कुछ लाली लिये हुए थे; कपोल, कान और नासिका छोटे-बड़े न होकर समान एवं सुन्दर थे, तथा उनके अस्फुट हास्ययुक्त मनोहर मुखारविन्दकी शोभाको देखकर पुरनारियोंके चित्तमें कामदेवका सञ्चार हो जाता था; तथापि उनके मुखके आगे जो भूरे रंगकी लंबी-लंबी घुँघराली लटें लटकी रहती थीं, उनके महान् भार और अवधूतोंके समान धूलिधूसरित देहके कारण वे भूतबाधाग्रस्त व्यक्तिके समान जान पड़ते थे॥ २८–३१॥

जब भगवान् ऋषभदेवने देखा कि यह जनसमूह योग-साधनमें विघ्नरूप है और इससे बचनेका उपाय बीभत्सवृत्तिसे रहना ही है, तो उन्होंने अजगरवृत्ति धारण कर ली। वे लेटे-ही-लेटे खाने-पीने, चबाने और मल-मूत्र-त्याग करने लगे। वे अपने त्यागे हुए मलमें लोट-लोटकर शरीरको उससे सान लेते। किन्तु उनके मलमें दुर्गन्ध नहीं थी, बड़ी सुगन्ध थी। और हवा उस सुगन्धको लेकर उनके चारों ओर दस योजनतक सारे देशको सुगन्धित कर देती थी। इसी प्रकार गौ, मृग और काकादिकी वृत्तियोंको स्वीकार कर वे उन्हींके समान कभी चलते हुए, कभी खड़े-खड़े, कभी बैठे हुए और कभी लेटे-लेटे ही खाने-पीने और मल-मूत्रका त्याग करने लगते थे। परीक्षित्! परमहंसोंको त्यागके आदर्शकी शिक्षा देनेके लिये इस प्रकार मोक्षपति भगवान् ऋषभदेवने कई तरहकी योगचर्याओंका आचरण किया। वे निरन्तर सर्व-श्रेष्ठ महान् आनन्दका अनुभव करते रहते थे। उनकी दृष्टिमें निरुपाधिकरूपसे सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा अपने आत्मस्वरूप भगवान् वासुदेवसे किसी प्रकारका भेद नहीं था। इसलिये उनके सभी पुरुषार्थ पूर्ण हो चुके थे। उनके पास आकाश-गमन, मनोजवित्व (मनकी गतिके समान ही शरीरका भी इच्छा करते ही सर्वत्र पहुँच जाना), अन्तर्धान, परकाय-प्रवेश (दूसरेके शरीरमें प्रवेश करना), दूरकी बातें सुन लेना और दूरके दृश्य देख लेना आदि सब प्रकारकी सिद्धियाँ अपने-आप ही सेवा करनेको आयीं; परन्तु उन्होंने उनको मनसे भी स्वीकार नहीं किया ॥ ३२–३५ ॥



जीवात्मा और परमात्मा भेदसे क्षेत्रज्ञ दो प्रकारका है। यहाँतक जीवात्माका वर्णन हुआ है, अब परमात्माका निरूपण किया जाता है। यह क्षेत्रज्ञ परमात्मा सर्वव्यापक, जगत्का आदिकारण, परिपूर्ण, अपरोक्ष, स्वयम्प्रकाश, अजन्मा, ब्रह्मादिका भी नियन्ता और अपने अधीन रहनेवाली मायाके द्वारा सबके अन्तःकरणोंमें रहकर जीवोंको प्रेरित करनेवाला समस्त भूतोंका आश्रयरूप भगवान् वासुदेव है। जिस प्रकार वायु सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम प्राणियोंमें प्राणरूपसे प्रविष्ट होकर उन्हें प्रेरित करती है, उसी प्रकार वह परमेश्वर भगवान् वासुदेव सर्वसाक्षी आत्मस्वरूपसे इस सम्पूर्ण प्रपञ्चमें ओत प्रोत है। राजन्! जबतक मनुष्य ज्ञानोदयके द्वारा इस मायाका तिरस्कार कर, सबकी आसक्ति छोड़कर तथा काम क्रोधादि छः शत्रुओंको जीतकर आत्मतत्त्वको नहीं जान लेता और जबतक वह आत्माके उपाधिरूप मनको संसारदुःखका क्षेत्र नहीं समझता, तबतक वह इस लोकमें यों ही भटकता रहता है, क्योंकि यह चित्त उसके शोक, मोह, रोग, राग, लोभ और वैर आदिके संस्कार तथा ममताकी वृद्धि करता रहता है। यह मन ही तुम्हारा बड़ा बलवान् शत्रु है। तुम्हारे उपेक्षा करनेसे इसकी शक्ति और भी बढ़ गयी है। यह यद्यपि स्वयं तो सर्वथा मिथ्या है, तथापि इसने तुम्हारे आत्मस्वरूपको आच्छादित कर रक्खा है। इसलिये तुम सावधान होकर श्रीगुरु और हरिके चरणोंकी सेवाके प्रतापसे इसे मार डालो, इसपर विजय पानेके लिये यही एकमात्र अमोघ शस्त्र है॥ १३–१७॥

बारहवाँ अध्याय

रहूगणका प्रश्न और भरतजीका समाधान

राजा रहूगणने कहा—भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। भगवान् जिस प्रकार लोकरक्षाके लिये ही शरीर धारण करते हैं, उसी प्रकार आपने भी जगत्का उद्धार करनेके लिये ही यह देह धारण की है। योगेश्वर! अपने परमानन्दमय स्वरूपका अनुभव करके आप इस स्थूलशरीरसे उदासीन हो गये हैं तथा एक जड ब्राह्मणके वेषसे अपने नित्य ज्ञानमय स्वरूपको जनसाधारणकी दृष्टिसे ओझल किये हुए हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। ब्रह्मन्! जिस प्रकार ज्वरसे पीड़ित रोगीके लिये मीठी ओषधि और धूपसे तपे हुए पुरुषके लिये शीतल जल अमृततुल्य होता है, उसी प्रकार मेरे लिये, जिसकी विवेकबुद्धिको देहाभिमानरूप विषैले सर्पने डस लिया है, आपके वचन अमृतमय ओषधिके समान हैं। देव! मैं आपसे अपने संशयोंकी निवृत्ति तो पीछे कराऊँगा। पहले तो इस समय आपने जो अध्यात्मयोगमय उपदेश दिया है, उसीको सरल करके समझाइये, उसे समझनेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा है। योगेश्वर! आपने जो यह कहा कि भार उठानेकी क्रिया तथा उससे जो श्रमरूप फल होता है, वे दोनों ही प्रत्यक्ष होनेपर भी केवल व्यवहारमूलक ही हैं, वास्तवमें सत्य नहीं हैं—वे तत्त्वविचारके सामने कुछ भी नहीं ठहरते—सो इस विषयमें मेरा मन चक्कर खा रहा है, आपके इस कथनका मर्म मेरी समझमें नहीं आ रहा है॥ १–४॥

ब्राह्मणने कहा—पृथ्वीपते! यह देह पृथ्वीका ही तो विकार है, पाषाणादिसे इसका क्या भेद है? जब यह किसी कारणसे पृथ्वीपर चलने लगता है, तो इसके भारवाही आदि नाम पड़ जाते हैं। देखो, इसके दो चरण हैं, उनके ऊपर क्रमशः टखने, पिंडली, घुटने, जाँघ, कमर, वक्षःस्थल, गर्दन और कंधे आदि अङ्ग हैं। कंधोंके ऊपर लकड़ीकी पालकी रक्खी हुई है, उसमें भी सौवीरराज नामका एक पार्थिव विकार ही है, जिसमें आत्मबुद्धिरूप अभिमान करनेसे तुम 'मैं सिन्धु देशका राजा हूँ' इस प्रबल मदसे अंधे हो रहे हो। किन्तु इसीसे तुम्हारी कोई श्रेष्ठता सिद्ध नहीं होती, वास्तवमें तो तुम बड़े क्रूर और धृष्ट ही हो। तुमने इन बेचारे दीन दुखिया कहारोंको बेगारमें पकड़कर पालकीमें जोत रक्खा है और फिर महापुरुषोंकी सभामें बढ़-बढ़कर बातें बनाते हो कि मैं लोकोंकी रक्षा करनेवाला हूँ। यह तुम्हें शोभा नहीं देता। यहाँतक जितने नाम भेद बताये गये हैं—सोचो तो, वे पृथ्वीसे भिन्न और क्या हैं? हम देखते हैं कि सम्पूर्ण चराचर भूत सर्वदा पृथ्वीसे ही उत्पन्न होते हे और पृथ्वीमें ही लीन होते हैं, अतः उनके क्रियाभेदके कारण जो अलग-अलग नाम पड़ गये हैं—बताओ तो, उनके सिवा व्यवहारका और क्या मूल है?॥ ५–८॥

इसी प्रकार 'पृथ्वी' शब्दका व्यवहार भी मिथ्या ही है, वास्तविक नहीं है, क्योंकि यह अपने उपादानकारण सूक्ष्म परमाणुओंमें लीन हो जाती है। और जिनके मिलनेसे पृथ्वीरूप कार्यकी सिद्धि होती है, वे परमाणु अविद्यावश

हरनेवाला है। जो मनुष्य इस परम मङ्गलमय पवित्र चरित्रको एकाग्र चित्तसे श्रद्धापूर्वक निरन्तर सुनते या सुनाते हैं, उन दोनोंकी ही भगवान् वासुदेवमें अनन्य भक्ति हो जाती है। तरह-तरहके पापोंसे पूर्ण सांसारिक तापोंसे अत्यन्त तपे हुए अपने अन्तःकरणको पण्डितजन इस भक्ति-सरितामें ही नित्य-निरन्तर नहलाते रहते हैं। वे योग-सांख्य आदि अन्य साधनोंका भरोसा नहीं रखते। इससे उन्हें जो परम शान्ति मिलती है वह इतनी आनन्दमयी होती है कि फिर वे लोग इसके सामने, अपने-ही-आप प्राप्त हुए मोक्षरूप परम पुरुषार्थका भी आदर नहीं करते। क्यों करें? भगवान्‌के निजजन हो जानेसे ही उनके समस्त पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं ॥ १६-१७ ॥

राजन्! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं पाण्डवोंके और यदुवंशियोंके रक्षक, गुरु, इष्टदेव, सुहृद् और कुलपति थे; यहाँतक कि वे कभी-कभी आज्ञाकारी सेवक भी बन जाते थे। इसी प्रकार भगवान् दूसरे भक्तोंके भी अनेकों कार्य कर सकते हैं और उन्हें मुक्ति भी दे देते हैं, परन्तु मुक्तिसे भी बढ़कर जो भक्तियोग है उसे सहजमें नहीं देते। उसका मिलना वास्तवमें बड़ा ही कठिन है ॥ १८ ॥

निरन्तर विषय-भोगोंकी अभिलाषा करनेके कारण अपने वास्तविक श्रेयसे चिरकालतक बेसुध हुए लोगोंको जिन्होंने करुणावश निर्भय आत्मलोकका उपदेश दिया और जो स्वयं निरन्तर अनुभव होनेवाले आत्मस्वरूपकी प्राप्तिसे सब प्रकारकी तृष्णाओंसे मुक्त थे, उन भगवान् ऋषभदेवको नमस्कार है ॥१९॥

सातवाँ अध्याय

भरत-चरित्र

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! महाराज भरत बड़े ही भगवद्भक्त थे। जब भगवान् ऋषभदेवने उन्हें पृथ्वीकी रक्षा करनेके लिये नियुक्त करनेका विचार किया, तो उनकी आज्ञासे उन्होंने विश्वरूपकी कन्या पञ्चजनीसे विवाह किया। जिस प्रकार तामस अहङ्कारसे शब्दादि पाँच भूततन्मात्र उत्पन्न होते हैं—उसी प्रकार पञ्चजनीके गर्भसे उनके सुमति, राष्ट्रभृत्, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु नामक पाँच पुत्र हुए—जो सर्वथा उन्हींके समान थे। इस वर्षको, जिसका नाम पहले अजनाभवर्ष था, राजा भरतके समयसे ही 'भारतवर्ष' कहते हैं ॥ १–३ ॥

महाराज भरत सभी विषयोंके ज्ञाता थे। वे अपने-अपने कर्मोंमें लगी हुई प्रजाका अपने बाप-दादोंके समान स्वधर्ममें स्थित रहते हुए अत्यन्त वात्सल्यभावसे पालन करने लगे। उन्होंने होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा—इन चार ऋत्विजोंद्वारा कराये जानेवाले प्रकृति और विकृति* दोनों प्रकारके अग्निहोत्र, दर्श, पूर्णमास, चातुर्मास्य, पशु और सोम आदि छोटे-बड़े क्रतुओंसे यथासमय श्रद्धापूर्वक यज्ञ और क्रतुरूप श्रीभगवान्‌का यजन किया। इस प्रकार अङ्ग और क्रियाओंके सहित भिन्न-भिन्न यज्ञोंके अनुष्ठानके समय जब अध्वर्युगण आहुति देनेके लिये हवि हाथमें लेते, तो यजमान भरत उस यज्ञकर्मसे होनेवाले पुण्यरूप फलको यज्ञपुरुष भगवान् वासुदेवके अर्पण कर देते थे। वस्तुतः वे परब्रह्म ही इन्द्रादि समस्त देवताओंके प्रकाशक, मन्त्रोंके वास्तविक प्रतिपाद्य तथा उन देवताओंके भी नियामक होनेसे मुख्य कर्ता एवं प्रधान देव हैं। इस प्रकार अपनी भगवदर्पणबुद्धिरूप कुशलतासे हृदयके राग-द्वेषादि मलोंका मार्जन करते हुए वे सूर्यादि सभी यज्ञभोक्ता देवताओंका भगवान्‌के नेत्रादि अवयवोंके रूपमें चिन्तन करते थे। इस तरह कर्मकी शुद्धिसे उनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया। तब उन्हें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान, हृदयाकाशमें ही अभिव्यक्त होनेवाले, ब्रह्मस्वरूप एवं महापुरुषोंके लक्षणोंसे उपलक्षित भगवान् वासुदेवमें—जो श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, चक्र, शङ्ख और गदा आदिसे सुशोभित तथा नारदादि निजजनोंके हृदयोंमें चित्रके समान निश्चलभावसे स्थित रहते हैं—दिन-दिन बढ़नेवाली उत्कृष्ट भक्ति प्राप्त हुई ॥ ४–७॥

इस प्रकार एक करोड़ वर्ष निकल जानेपर उन्होंने राज्य-भोगका प्रारब्ध क्षीण हुआ जानकर अपनी भोगी हुई वंशपरम्परागत सम्पत्तिको यथायोग्य पुत्रोंमें बाँट दिया। फिर अपने सर्वसम्पत्तिसम्पन्न राजमहलसे निकलकर वे पुलहाश्रम (हरिहरक्षेत्र)में चले आये। इस पुलहाश्रममें रहनेवाले भक्तोंपर भगवान्‌का बड़ा ही वात्सल्य है। वे आज भी उनसे

* प्रकृति और विकृति भेदसे अग्निहोत्रादि क्रतु दो प्रकारके होते हैं। सम्पूर्ण अङ्गोंसे युक्त क्रतुओंको 'प्रकृति' कहते हैं और जिनमें सब अङ्ग पूर्ण नहीं होते, किसी-न-किसी अङ्गकी कमी रहती है, उन्हें 'विकृति' कहते हैं।

बढ़ जाता है और उदरपूर्तिका साधन नहीं होता तो भूखकी ज्वालासे सन्तप्त होकर अपने ही बन्धु बान्धवोंपर खीझने लगता है। कभी अजगर डस लेता है तो वनमें फेंके हुए मुर्देके समान पड़ा रहता है। उस समय इसे कोई सुध बुध नहीं रहती। कभी दूसरे विषैले जन्तु इसे काटने लगते हैं तो उनके विषके प्रभावसे अधा होकर किसी अँधेरे कुएँमें गिर पड़ता है और दुःख भोगता रहता है। कभी मधु खोजने लगता है तो मक्खियाँ उसके नाकमें दम कर देती हैं और उसकी सारी शेखी चूर हो जाती है। यदि किसी प्रकार अनेकों कठिनाइयोंका सामना करके वह मिल भी गया तो बलात्कारसे दूसरे लोग उसे छीन लेते हैं। कभी शीत, घाम, आँधी और वर्षासे अपनी रक्षा करनेमें असमर्थ हो जाता है। कभी आपसमें थोड़ा-बहुत व्यापार करता है, तो धनके लोभसे दूसरोंको धोखा देकर उनसे वैर ठान लेता है। कभी कभी उस संसारवनमें इसका धन नष्ट हो जाता है तो इसके पास शय्या, आसन, रहनेके लिये स्थान और सैर-सपाटेके लिये सवारी आदि भी नहीं रहते। तब दूसरोंकी चीजपर दृष्टि डालता है; और जब उनसे माँगनेपर भी वह नहीं मिलती तो इसे बड़ा तिरस्कार सहना पड़ता है ॥१-१२॥

इस प्रकार व्यावहारिक सम्बन्धके कारण एक दूसरेसे द्वेषभाव बढ जानेपर भी वह वणिक्समूह आपसमें विवाहादि सम्बन्ध स्थापित करता है और फिर इस मार्गमें तरह-तरहके कष्ट और धनक्षय आदि सङ्कटोंको भोगते भोगते मृतकवत् हो जाता है। साथियोंमेंसे जो जो मरते जाते हैं, उन्हें जहाँ-का-तहाँ छोड़कर नवीन उत्पन्न हुओंको साथ लिये वह बनिजारोंका समूह बराबर आगे ही बढता रहता है। वीरवर! उनमेंसे कोई भी प्राणी न तो आजतक वापस लौटा है और न किसीने इस सङ्कटपूर्ण मार्गको पार करके परमानन्दमय योगकी ही शरण ली है। वस्तुतः यह योगमार्ग ही आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिका साधन है, इसीलिये विचारशील पुरुष सब ओरसे मुख मोड़कर इसीका आश्रय लेते हैं। जिन्होंने बड़े बड़े दिग्पालोंको जीत लिया है, वे धीर-वीर पुरुष भी पृथ्वीमें 'यह मेरी है' ऐसा अभिमान करके आपसमें वैर ठानकर सग्रामभूमिमें जूझ जाते हैं। तो भी उन्हें भगवान् विष्णुका अविनाशी पद नहीं मिलता, जो वैरहीन परमहंसोंको प्राप्त होता है ॥ १३-१५ ॥

इस भवाटवीमें भटकनेवाला यह बनिजारोंका दल कभी किसी लताकी डालियोंका आश्रय लेता है और उसपर रहनेवाले मधुरभाषी पक्षियोंके मोहमें फँस जाता है। कभी सिंहोंके समूहसे भय मानकर बगुला, कंक और गिद्धोंसे प्रीति करता है। जब उनसे धोखा उठाता है, तो हंसोंकी पंक्तिमें प्रवेश करना चाहता है। किन्तु अब उनका आचार भी नहीं सुहाता, इसलिये वानरोंमें मिलकर उनके जाति स्वभावके अनुसार दाम्पत्यसुखमें रत रहकर विषयभोगोंमें इन्द्रियोंको तृप्त करता रहता है और एक-दूसरेका मुख देखते देखते अपनी आयुकी अवधिको भूल जाता है। वहाँ वृक्षोंमें क्रीडा करता हुआ पुत्र और स्त्रीके स्नेहपाशमें बँध जाता है। इसमें मैथुनकी वासना इतनी बढ़ जाती है कि तरह तरहके दुर्व्यवहारोंसे दीन होनेपर भी यह विवश होकर अपने बन्धनको तोड़नेका साहस नहीं कर सकता। कभी असावधानीसे पर्वतकी गुफामें गिरने लगता है तो उसमें रहनेवाले हाथीसे डरकर किसी लताके सहारे लटका रहता है। शत्रुदमन! यदि किसी प्रकार इसे उस आपत्तिसे छुटकारा मिल जाता है, तो यह फिर अपने गोलमें मिल जाता है। जो मनुष्य मायाकी प्रेरणासे एक बार इस मार्गमें पहुँच जाता है, उसे भटकते भटकते अन्ततक अपने परम पुरुषार्थका पता नहीं लगता। रहूगण! तुम भी इसी मार्गमें भटक रहे हो, इसलिये अब प्रजाको दण्ड देनेका कार्य छोड़कर समस्त प्राणियोंके सुहृद् हो जाओ और विषयोंमें अनासक्त होकर भगवत् सेवासे तीक्ष्ण किया हुआ ज्ञानरूप खड्ग लेकर इस मार्गको पार कर लो ॥ १६-२० ॥

राजा रहूगणने कहा—धन्य है! समस्त योनियोंमें यह मनुष्य जन्म ही श्रेष्ठ है। अन्यान्य लोकोंमें प्राप्त होनेवाले देवादि उत्कृष्ट जन्मोंसे भी क्या लाभ है, जहाँ श्रीहृषीकेश-भगवान्के पवित्र यशसे कृतकृत्य हुए आप जैसे महात्माओंका खूब खुलकर समागम नहीं मिलता? आपके चरणकमलोंकी रजका सेवन करनेसे जिनके सारे पाप ताप नष्ट हो गये हैं, उन महानुभावोंको भगवान्की विशुद्ध भक्ति प्राप्त होना कोई विचित्र बात नहीं है। मेरा तो आपके एक मुहूर्तके सत्सङ्गसे ही सारा कुतर्कमूलक अज्ञान नष्ट हो गया। तत्त्ववेत्ताओंकी उनके बाह्य आचरणसे कोई पहचान नहीं हो सकती; अतः वे किसी भी वेष या आयुके हों, मैं उन्हें नमस्कार करता हूँ। उनमें जो वयोवृद्ध हों, उन्हें नमस्कार है; जो शिशु हों, उन्हें नमस्कार है; जो युवा हों, उन्हें नमस्कार है और जो क्रीडारत बालक हों, उन्हें भी नमस्कार

लड़ाने और पुचकारने आदिकी चिन्तामें ही डूबे रहने लगे। इसलिये उनके यम, नियम और भगवत्पूजा आदि आवश्यक कृत्य एक-एक करके छूटते गये और अन्तमें सभी छूट गये। उन्हें ऐसा विचार रहने लगा—'अहो! कैसे खेदकी बात है! इस बेचारे दीन मृगछौनेको कालचक्रके वेगने अपने दल, सुहृद् और बन्धुओंसे दूर करके मेरी शरणमें पहुँचा दिया है। यह मुझे ही अपना माता-पिता, भाई-बन्धु और साथी-सङ्गी समझता है। इसे मेरे सिवा और किसीका पता नहीं है और मुझमें इसका विश्वास भी बहुत है। मैं भी शरणागतकी उपेक्षा करनेमें जो दोष हैं, उन्हें जानता ही हूँ। इसलिये मुझे अब अपने इस आश्रितका सब प्रकारकी दोषबुद्धि छोड़कर अच्छी तरह पालन-पोषण और प्यार-दुलार करना चाहिये; क्योंकि शान्तस्वभाव और दीनोंकी रक्षा करनेवाले परोपकारी सज्जन ऐसे शरणागतकी रक्षाके लिये अपने बड़े-से-बड़े स्वार्थकी भी परवा नहीं करते' ॥ ७-१० ॥

इस प्रकार उस हरिनके बच्चेमें आसक्ति बढ़ जानेसे उनका चित्त उसके स्नेहपाशमें बँध गया। यहाँतक कि उठते-बैठते, चलते-फिरते, सोते और भोजन करते समय भी उनके सिरपर उसीका भूत सवार रहने लगा। जब उन्हें कुश, पुष्प, समिधा, पत्र और फल-मूलादि लाने होते तो भेड़ियों और कुत्तोंके भयसे उसे वे साथ लेकर ही वनमें जाते। मार्गमें जहाँ-तहाँ कोमल घास आदिको देखकर मुग्धभावसे वह हरिणशावक अटक जाता तो वे अत्यन्त प्रेमपूर्ण हृदयसे दयावश उसे अपने कंधेपर चढ़ा लेते। इसी प्रकार कभी गोदमें लेकर और कभी छातीसे लगाकर उसका दुलार करनेमें भी उन्हें बड़ा सुख मिलता। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको करते समय भी राजराजेश्वर भरत बीच-बीचमें उठ-उठकर उस मृगबालकको देखते और जब उसपर उनकी दृष्टि पड़ती, तभी उनके चित्तको शान्ति मिलती। उस समय उसके लिये मङ्गलकामना करते हुए वे कहने लगते, 'बेटा! तेरा सर्वत्र कल्याण हो' ॥ ११—१४ ॥

कभी यदि वह दिखायी न देता तो–जिसका धन लुट गया हो, उस दीन मनुष्यके समान वे अत्यन्त दुखी हो जाते। और फिर उस हिरनीके बच्चेके विरहसे व्याकुल और सन्तप्त हो करुणावश अत्यन्त उत्कण्ठित एवं मोहाविष्ट हो जाते तथा बड़े ही उदास होकर इस प्रकार कहने लगते—'अहो! क्या कहा जाय। क्या वह मातृहीन दीन मृगछौना दुष्ट बहेलियेकी-सी बुद्धिवाले मुझ पुण्यहीन अनार्यका विश्वास करके और मुझे अपना मानकर मेरे किये हुए अपराधोंको सत्पुरुषोंके समान भूलकर फिर लौट आवेगा? क्या मैं उसे फिर इस आश्रमके उपवनमें भगवान्‌की कृपासे सुरक्षित रहकर निर्विघ्न हरी-हरी दूब चरते देखूँगा? ऐसा न हो कि कोई भेड़िया, कुत्ता, गोल बाँधकर विचरनेवाले सूकरादि अथवा अकेले घूमनेवाले व्याघ्रादि ही उसे चट कर जायँ। अरे! सम्पूर्ण जगत्‌की कुशलके लिये प्रकट होनेवाले वेदत्रयीरूप भगवान् सूर्य अस्त होना चाहते हैं, किन्तु अभीतक वह मृगीकी धरोहर लौटकर नहीं आयी! क्या वह हरिणराजकुमार मुझ पुण्यहीनके पास आकर अपनी तरह-तरहकी मृगशावकोचित मनोहर एवं दर्शनीय क्रीडाओंसे अपने स्वजनोंका शोक दूर करते हुए मुझे आनन्दित करेगा? 'अहो! जब कभी मैं प्रणयकोपसे खेलमें झूठ-मूठ समाधिके बहाने आँख मूँदकर बैठ जाता, तो वह चकित चित्तसे मेरे पास आकर अपने जलबिन्दुके समान कोमल और नन्हे-नन्हे सींगोंसे किस प्रकार मेरे अङ्गोंको खुजलाने लगता था! मैं कभी कुशोंपर हवनसामग्री रख देता और वह उन्हें दाँतसे खींचकर अपवित्र कर देता तो मेरे डाँटने-डपटनेपर वह अत्यन्त भयभीत होकर उसी समय सारी उछल-कूद छोड़ देता और ऋषिकुमारके समान अपनी समस्त इन्द्रियोंको रोककर चुपचाप बैठ जाता था' ॥ १५—२२ ॥

[फिर पृथ्वीपर उस मृगशावकके खुरके चिह्न देखकर कहने लगते—] 'अहो! इस भाग्यवती धरतीमाताने ऐसा कौन-सा तप किया है जो उस अतिविनीत मृगशावकके छोटे-छोटे सुन्दर, सुखकारी और सुकोमल खुरोंकी पंक्तिसे मुझे, जो अपना मृगधन लुट जानेसे अत्यन्त व्याकुल और दीन हो रहा हूँ, उस द्रव्यकी प्राप्तिका मार्ग दिखा रही है और स्वयं अपने शरीरको भी सर्वत्र उन चरण-चिह्नोंसे विभूषित कर स्वर्ग और अपवर्गके इच्छुक द्विजोंके लिये यज्ञस्थल* बना रही है।' [इसी समय यदि उनकी दृष्टि चन्द्रमाकी मृगतुल्य कालिमापर पड़ जाती, तो उसे ही अपना मृग समझकर कहने लगते—] 'अहो! जिसकी माता सिंहके भयसे मर गयी थी, आज वही मृगशिशु अपने आश्रमसे बिछुड़ गया है। अतः उसे अनाथ देखकर क्या ये दीनवत्सल नक्षत्रनाथ दयावश उसकी रक्षा कर रहे हैं?' [फिर उसकी शीतल किरणोंसे आह्लादित होकर कहने लगते—] 'अथवा अपने पुत्रोंके

* शास्त्रोंमें उल्लेख आता है कि जिस भूमिमें कृष्णमृग विचरते हैं, वह अत्यन्त पवित्र और यज्ञानुष्ठानके योग्य होती है।

भद्रकालीके द्वारा जडभरतकी रक्षा



भद्रकालीने उन सारे पापियोंके सिर उड़ा दिये ।

है, जैसे वनमें जाड़ेसे ठिठुरता हुआ पुरुष अग्निके लिये व्याकुल होकर अगियाबेतालकी ओर उसे आग समझकर दौड़े। उससे आग तो मिलती नहीं; उलटे प्राणोंसे भी हाथ धोने पड़ते हैं। कभी इस शरीरको जीवित रखनेवाले घर, अन्न जल और धन आदिमें अभिनिवेश करके इस संसारारण्य में इधर-उधर दौड़ धूप करता रहता है। कभी बवंडरके समान आँखोंमें धूल झोंक देनेवाली स्त्री गोदमें बैठा लेती है तो तत्काल रागान्ध सा होकर सत्पुरुषोंकी मर्यादाका भी विचार नहीं करता। उस समय नेत्रोंमें रजोगुणकी धूल भर जानेसे बुद्धि ऐसी मलिन हो जाती है कि अपने कर्मोंके साक्षी दिशाओंके देवताओंको भी भुला देता है। कभी अपने आप ही एकाध बार विषयोंका मिथ्यात्व जान भी लेता है, तो भी अनादि कालसे देहमें आत्मबुद्धि रहनेसे विवेक बुद्धि नष्ट हो जानेके कारण उन मरुमरीचिकातुल्य विषयोंकी ओर फिर दौड़ने लगता है। कभी प्रत्यक्ष शब्द करनेवाले उल्लूके समान शत्रुओंकी और परोक्षरूपसे बोलनेवाले झींगुरोंके समान राजाकी अति कठोर एवं दिलको दहला देनेवाली डरावनी डाँट डपटसे इसके कान और मनको बड़ी व्यथा होती है ॥ ५–११ ॥

जब इसके पूर्वपुण्य क्षीण हो जाते हैं, तो यह जीवित रहते हुए भी मुर्देके समान हो जाता है, और जो कारस्कर एवं काकतुण्ड आदि जहरीले फलोंवाले पापवृक्षों, इसी प्रकारकी दूषित लताओं और विषैले कुओंके समान हैं तथा जिनका धन इस लोक और परलोक दोनोंहीके काममें नहीं आता और जो जीते हुए भी मुर्देके समान हैं—उन कृपण पुरुषोंका आश्रय लेता है। कभी असत् पुरुषोंके सङ्गसे बुद्धि बिगड़ जानेके कारण सूखी नदीमें गिरकर दुःखी होनेके समान इस लोक और परलोकमें दुःख देनेवाले पाखण्डमें फँस जाता है। जब दूसरोंको सतानेसे उसे अन्न भी नहीं मिलता, तब वह अपने सगे पिता पुत्रोंको अथवा पिता या पुत्र आदिका एक तिनका भी जिनके पास देखता है, उनको फाड़ खानेके लिये तैयार हो जाता है। कभी दावानलके समान प्रिय विषयोंसे शून्य एवं परिणाममें दुःखमय घरमें पहुँचता है, तो वहाँ इष्टजनोंके वियोगादिसे उसके शोककी आग भड़क उठती है, उससे सन्तप्त होकर वह बहुत ही खिन्न होने लगता है। कभी कालके समान भयङ्कर राजकुलरूप राक्षस इसके परम प्रिय धनरूप प्राणोंको हर लेता है, तो यह मरे हुएके समान निर्जीव हो जाता है। कभी मनोरथके पदार्थोंके समान अत्यन्त असत् पिता पितामह आदि सम्बन्धोंको सत्य समझकर उनके सहवाससे स्वप्नके समान क्षणिक सुखका अनुभव करता है। गृहस्थाश्रमके लिये जिस कर्मविधिका महान् विस्तार किया गया है, उसका अनुष्ठान किसी पर्वतकी कड़ी चढ़ाईके समान ही है। लोगोंको उस ओर प्रवृत्त देखकर उनकी देखादेखी जब यह भी उसे पूरा करनेका प्रयत्न करता है, तो तरह तरहकी कठिनाइयोंसे क्लेशित होकर काँटे और कंकड़ोंसे भरी भूमिमें पहुँचे हुए व्यक्तिके समान दुःखी हो जाता है। कभी पेटकी असह्य ज्वालासे अधीर होकर अपने कुटुम्बपर ही बिगड़ने लगता है। फिर जब निद्रारूप अजगरके चंगुलमें फँस जाता है, तो अज्ञानरूप घोर अन्धकारमें डूबकर सूने वनमें फेंके हुए मुर्देके समान सोया पड़ा रहता है। उस समय इसे किसी बातका होश नहीं रहता ॥ १२–२० ॥

कभी दुर्जनरूप काटनेवाले जीव इतना काटते–तिरस्कार करते हैं कि इसके गर्वरूप दाँत, जिनसे यह दूसरोंको काटता था, टूट जाते हैं। तब इसे बेचैनीके कारण नींद भी नहीं आती तथा मर्मवेदनाके कारण क्षण क्षणमें विवेक शक्ति क्षीण होते रहनेसे अन्तमें अंधेकी भाँति यह नरकरूप अँधेरे कुएमें जा गिरता है। कभी विषयसुखरूप मधुकणोंको ढूँढते ढूँढते जब यह लुक छिपकर परस्त्री या परधनको उड़ाना चाहता है, तो उनके स्वामी या राजाके हाथसे मारा जाता है और बिना ओरछोरके नरकमें जा गिरता है। इसीसे ऐसा कहते हैं कि प्रवृत्तिमार्गमें रहकर किये हुए लौकिक और वैदिक दोनों ही प्रकारके कर्म जीवको संसारकी ही प्राप्ति करानेवाले हैं। यदि किसी प्रकार राजा आदिके बन्धनसे छूट भी गया, तो अन्यायसे अपहरण किये हुए उन स्त्री और धनको देवदत्त नामका कोई दूसरा व्यक्ति छीन लेता है और उससे विष्णुमित्र नामका कोई तीसरा व्यक्ति झटक लेता है। इस प्रकार वे भोग एक पुरुषसे दूसरे पुरुषके पास जाते रहते हैं, एक स्थानपर नहीं ठहरते। कभी कभी शीत और वायु आदि अनेकों आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखकी स्थितियोंके निवारण करनेमें समर्थ न होनेसे यह अपार चिन्ताओंके कारण उदास हो जाता है। कभी परस्पर लेन देनका व्यवहार करते समय किसी दूसरेका थोड़ा-सा—दमड़ीभर अथवा इससे भी कम—धन चुरा लेता है तो इस बेईमानीके कारण उससे वैर ठन जाता है ॥ २१–२६ ॥

राजन्! इस मार्गमें पूर्वोक्त विघ्नोंके अतिरिक्त सुख दुःख, राग द्वेष, भय, अभिमान, प्रमाद, उन्माद, शोक,

उन्होंने राजासे इस प्रकार निवेदन किया, 'महाराज ! हम-लोग बेसुध नहीं हैं, हम तो सरकारके आज्ञानुसार ठीक-ठीक ही पालकी ले चल रहे हैं । यह एक नया कहार अभी-अभी पालकीमें लगाया गया है, तो भी यह जल्दी-जल्दी नहीं चलता । हमलोग इसके साथ पालकी नहीं ले जा सकते' ॥३-४॥

कहारोंके ये दीन वचन सुनकर राजा रहूगणने सोचा, 'संसर्गसे उत्पन्न होनेवाला दोष एक व्यक्तिमें होनेपर भी उससे सम्बन्ध रखनेवाले सभी पुरुषोंमें आ सकता है । इसलिये यदि इसका प्रतिकार न किया गया तो धीरे-धीरे ये सभी कहार अपनी चाल बिगाड़ लेंगे ।' ऐसा सोचकर राजा रहूगणको कुछ क्रोध हो आया । यद्यपि उसने महत्पुरुषोंका सेवन किया था, तथापि क्षत्रियस्वभाववश बलात्कारसे उसकी बुद्धि रजोगुणसे व्याप्त हो गयी और वह उन द्विजश्रेष्ठसे, जिनका ब्रह्मतेज भस्मसे ढके हुए अग्निके समान प्रकट नहीं था, इस प्रकार व्यङ्गसे भरे वचन कहने लगा—'अरे भैया ! बड़े दुःखकी बात है, अवश्य ही तुम बहुत थक गये हो । मालूम होता है, तुम्हारे इन साथियोंने तुम्हें तनिक भी सहारा नहीं लगाया । इतनी दूरसे तुम अकेले ही बड़ी देरसे पालकी ढोते चले आ रहे हो । तुम्हारा शरीर भी तो विशेष मोटा-ताजा और हट्टा-कट्टा नहीं है, और मित्र ! बुढ़ापेने अलग तुम्हें दबा रक्खा है ।' इस प्रकार बहुत ताना मारनेपर भी वे पहले-की ही भाँति चुपचाप पालकी उठाये चलते रहे ! उन्होंने इसका कुछ भी बुरा न माना; क्योंकि उनकी दृष्टिमें तो पञ्चभूत, इन्द्रिय और अन्तःकरणका सङ्घात यह अपना चरम देह अविद्याका ही कार्य था । वह विविध अङ्गोंसे युक्त दिखायी देनेपर भी वस्तुतः था ही नहीं, इसलिये उसमें उनका मैं-मेरेपनका मिथ्या अध्यास सर्वथा निवृत्त हो गया था और वे ब्रह्मरूप हो गये थे ॥ ५-६ ॥

किन्तु पालकी अब भी सीधी चालसे नहीं चल रही है—यह देखकर राजा-रहूगण क्रोधसे आग-बबूला हो गया और कहने लगा, 'अरे ! यह क्या ? क्या तू जीता ही मर गया है ? जानता नहीं, मैं तेरा मालिक हूँ; तू मेरा निरादर करके मेरी आज्ञाका इस प्रकार उल्लङ्घन कर रहा है ! मालूम होता है, तू पूरा पागल है । अरे ! मैं दण्डपाणि यमराजके समान प्रजाका शासन करनेवाला हूँ । अच्छा, खड़ा रह;



मैं अभी तेरा इलाज किये देता हूँ । तब तेरे होश ठिकाने आ जायँगे' ॥ ७ ॥

रहूगणको राजा होनेका अभिमान था, इसलिये वह इसी प्रकार बहुत-सी अनाप-शनाप बातें बोल गया । वह अपनेको बड़ा बुद्धिमान् समझता था, अतः रज-तमयुक्त अभिमानके वशीभूत होकर उसने भगवान्‌के अनन्य प्रीतिपात्र भक्तवर भरतजीका तिरस्कार कर डाला । योगेश्वरोंकी विचित्र कहनी-करनीका तो उसे कुछ पता ही न था । उसकी ऐसी कच्ची बुद्धि देखकर वे सम्पूर्ण प्राणियोंके सुहृद् एवं आत्मा, ब्रह्मभूत ब्राह्मणदेवता मुसकराये और बिना किसी प्रकारका अभिमान किये इस प्रकार कहने लगे ॥ ८ ॥

ब्राह्मणदेवता बोले—राजन् ! तुम जो कुछ कह रहे हो, ठीक ही है; मैं इसे कोई उलाहना या ताना नहीं मानता । क्योंकि वीरवर ! यदि कोई भार है तो वह उसे ढोनेवाले शरीरको ही है, और यदि कोई मार्ग है तो वह भी उसमें चलनेवाले शरीरके लिये ही है । मेरा शरीरसे कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिये मुझे न तो भार ढोनेका क्लेश है और न मार्ग चलनेका श्रम ही है । तुम्हारा यह कथन भी ठीक ही है कि तुम विशेष मोटे-ताजे नहीं हो; मोटा-दुबलापन तो इस पञ्चभूतोंकी ढेरी—शरीरमें ही है । इसलिये समझदारोंका

चले जाते हैं। इस ससारसे वे भी पार नहीं होते। अपने पुण्यकर्मरूप लताका आश्रय लेकर यदि किसी प्रकार यह जीव इन आपत्तियोंसे अथवा नरकसे छुटकारा पा भी जाता है, तो फिर इसी प्रकार ससारमार्गमें भटकता हुआ इस जनसमुदायमें मिल जाता है। यही दशा स्वर्गादि ऊर्ध्वलोकोंमें जानेवालोंकी भी है ॥ ३३–४१ ॥

राजन्! यह भवाटवीके रूपकका तात्पर्य तो तुम्हारी समझमें आ ही गया होगा। अब भरतजीका माहात्म्य सुनो। उनके विषयमें पण्डितजन ऐसा कहते हैं—'जैसे गरुडजीकी होड़ कोई मक्खी नहीं कर सकती, उसी प्रकार ऋषभपुत्र राजर्षि भरतके मार्गका कोई और राजा मनसे भी अनुसरण नहीं कर सकता। उन्होंने पुण्यकीर्ति श्रीहरिमें अनुरक्त होकर अति मनोरम स्त्री, पुत्र, मित्र और राज्यादि को युवावस्थामें ही विष्ठाके समान त्याग दिया था, दूसरोंके लिये तो इन्हें त्यागना बहुत ही कठिन है। उन्होंने अति दुस्त्यज पृथ्वी, पुत्र, स्वजन, सम्पत्ति और स्त्रीकी, तथा जिसके लिये बड़े बड़े देवता भी लालायित रहते हैं किन्तु जो स्वय उनकी दयादृष्टिके लिये उनपर दृष्टिपात करती रहती थी—उस लक्ष्मीकी भी, लेशमात्र इच्छा नहीं की। यह सब उनके लिये उचित ही था, क्योंकि जिन महानुभावोंका चित्त भगवान् मधुसूदनकी सेवामें अनुरक्त हो गया है, उनकी दृष्टिमें मोक्षपद भी अत्यन्त तुच्छ है। देखो, उन्होंने अपना मृगशरीर छोड़नेके समय उच्चस्वरसे कहा था कि 'धर्मकी रक्षा करनेवाले, धर्मानुष्ठानमें निपुण, योगगम्य, साख्यके प्रतिपाद्य, प्रकृतिके अधीश्वर, यज्ञमूर्ति सर्वान्तर्यामी श्रीहरिको नमस्कार है।' भला, जिनकी ऐसी अलौकिकी भक्ति थी, उन भरतजीकी बराबरी कौन कर सकता है?" ॥४२–४०॥

राजन्! राजर्षि भरतके पवित्र गुण और कर्मोंकी भक्तजन भी प्रशसा करते हैं। उनका यह चरित्र बड़ा कल्याणकारी, आयु और धनकी वृद्धि करनेवाला, लोकमें सुयश बढाने[illegible] और अन्तमें स्वर्ग तथा मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला [illegible]। जो पुरुष इसे सुनता या सुनाता है अथवा इसका [illegible] करता है, उसकी सारी कामनाएँ स्वय ही पूर्ण हो जाती हैं, दूसरोंसे उसे कुछ भी नहीं माँगना पड़ता ॥४६॥

पंद्रहवाँ अध्याय

भरतके वशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! भरतजीका पुत्र सुमति था, यह पहले कहा जा चुका है। उसने ऋषभ देवजीके मार्गका अनुसरण किया। इसीलिये कलियुगमे बहुत से पाखण्डी अनार्य पुरुष अपनी दुष्ट बुद्धिसे वेदविरुद्ध कल्पना करके उसे देवता मानेंगे। उसकी पत्नी वृद्धसेनासे देवताजित् नामका पुत्र हुआ। देवताजित्के असुरीके गर्भसे देवद्युम्न, देवद्युम्नके धेनुमतीसे परमेष्ठी और उसके सुवर्चलाके गर्भसे प्रतीह नामका पुत्र हुआ। इसने अन्य पुरुषोंको आत्मविद्याका उपदेश कर स्वय शुद्धचित्त होकर परमपुरुष श्रीनारायणका साक्षात् अनुभव किया था। प्रतीहकी भार्या सुवर्चलाके गर्भसे प्रतिहर्ता, प्रस्तोता और उद्गाता नामके तीन पुत्र हुए। ये यज्ञादि कर्मोंमें बहुत निपुण थ। इनमे प्रतिहर्ताकी भार्या स्तुति थी। उसके गर्भसे अज और भूमा नामके दो पुत्र हुए। भूमाके ऋषिकुल्यासे उद्गीथ, उसके देवकुल्यासे प्रस्ताव और प्रस्तावके नियुत्साके गर्भसे विभु नामका पुत्र हुआ। विभुके रतिके उदरसे पृथुषेण, पृथुषेणके आकृतिसे नक्त और नक्तके द्रुतिके गर्भसे उदारकीर्ति राजर्षिप्रवर गयका जन्म हुआ। ये जगत्की रक्षाके लिये सत्त्वगुणको स्वीकार करनेवाले साक्षात् भगवान् विष्णुके अश माने जाते थे। सयमादि अनेकों गुणोंके कारण इनकी महापुरुषोंमे गणना की जाती है। महाराज गयने प्रजाका पालन, पोषण, रञ्जन, लाड़ चाव और शासनादि करके तथा तरह तरहके यज्ञोंका अनुष्ठान करके निष्कामभावसे केवल भगवत्प्रीतिके लिये अपने धर्मोंका आचरण किया। इससे उनके सभी कर्म सर्वश्रेष्ठ परमपुरुष परमात्मा श्रीहरिके अर्पित होकर परमार्थ रूप बन गये थे। इससे तथा ब्रह्मवेत्ता महापुरुषोंके चरणोंकी सेवासे उन्हें भक्तियोगकी प्राप्ति हुई। तब निरन्तर भगवच्चिन्तन करके उन्होंने अपना चित्त शुद्ध किया और देहादि अनात्म वस्तुओंसे अहभाव हटाकर वे अपने आत्माको ब्रह्मरूप अनुभव करने लगे। यह सब होनेपर भी वे निरभिमान होकर पृथ्वीका पालन करते रहे ॥ १–७ ॥

परीक्षित्! प्राचीन इतिहासको जाननेवाले महात्माओंने राजर्षि गयके विषयमें यह गाथा कही है—'अहो! अपने कर्मोंसे महाराज गयकी बराबरी और कौन राजा कर सकता है? वे साक्षात् भगवान्की कला ही थे। उन्हें

क्योंकि अपने धर्मका आचरण करना तो भगवान्‌की सेवा ही है, उसे करनेवाला व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण पापराशिको नष्ट कर देता है ॥२१–२३॥

[इतना कहकर वे उनसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए कहने लगे—] 'दीनबन्धो ! राजत्वके अभिमानसे उन्मत्त होकर मैंने आप-जैसे साधुश्रेष्ठकी अवज्ञा की है। अब आप ऐसी कृपादृष्टि कीजिये, जिससे इस साधु-अवज्ञारूप अपराधसे मैं मुक्त हो जाऊँ। आप तो देहाभिमानशून्य, और विश्वबन्धु श्रीहरिके अनन्य भक्त हैं; इसलिये सबमें समान दृष्टि होनेसे इस मानापमानके कारण आपमें कोई विकार नहीं हो सकता। तथापि एक महापुरुषका अपमान करनेके कारण मेरे-जैसा पुरुष, साक्षात् त्रिशूलपाणि महादेवजीके समान प्रभावशाली होनेपर भी, अपने अपराधसे ही अवश्य थोड़े ही कालमें नष्ट हो जायगा' ॥२४-२५॥

ग्यारहवाँ अध्याय

राजा रहूगणको भरतजीका उपदेश

ब्राह्मणने कहा—राजन् ! तुम परमार्थतत्त्वके यथार्थ जानकार न होनेपर भी बड़े ज्ञानियोंकी तरह तर्क-वितर्क कर रहे हो, इसीसे मैं तुम्हें ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तो नहीं कह सकता। देखो, विचारवान् पुरुष तत्त्वविचारके समय तुम्हारे प्रतिपादन किये हुए इस व्यवहारको स्वीकार नहीं करते। यदि तुम चाहो कि केवल शास्त्र-विचारसे ही तत्त्वका निर्णय हो जायगा, सो यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि वेदवाक्य भी अधिकतर गृहस्थजनोचित यज्ञविधिके विस्तारमें ही व्यस्त हैं, राग-द्वेषादि दोषोंसे रहित विशुद्ध तत्त्वज्ञानकी पूरी-पूरी अभिव्यक्ति प्रायः उनमें भी नहीं हुई है। सच बात तो यह है कि जिसे गृहस्थोचित यज्ञादि कर्मोंसे प्राप्त होनेवाला स्वर्गादि सुख स्वप्नके समान हेय नहीं जान पड़ता, उसे तत्त्वज्ञान करानेमें साक्षात् उपनिषद्-वाक्य भी समर्थ नहीं है। जबतक मनुष्यका चित्त सत्त्व, रज अथवा तमोगुणके वशीभूत रहता है, तबतक वह स्वच्छन्दतापूर्वक उसकी ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंसे शुभाशुभ कर्म कराता रहता है। यह मन वासनामय, विषयासक्त, गुणोंसे प्रेरित, विकारी और भूत एवं इन्द्रियरूप सोलह कलाओंमें मुख्य है। यही भिन्न-भिन्न नामोंसे देवता और मनुष्यादिरूप धारण करके शरीररूप उपाधियोंके भेदसे जीवकी उत्तमता और अधमताका कारण होता है। यह मायामय मन सारे संसारको छलनेवाला है, यही अपने देहके अभिमानी जीवसे मिलकर उसे काल-क्रमसे प्राप्त हुए सुख-दुःख और इनसे व्यतिरिक्त मोहरूप अवश्यम्भावी फलोंकी अभिव्यक्ति करता है। जबतक यह मन रहता है, तभीतक जाग्रत् और स्वप्नावस्थाका व्यवहार प्रकाशित होकर जीवका दृश्य बनता है। इसलिये पण्डितजन मनको ही त्रिगुणमय अधम संसारका और गुणातीत परमोत्कृष्ट मोक्षपदका कारण बताते हैं। विषयासक्त मन जीवको संसार-सङ्कटमें डाल देता है, विषयहीन होनेपर वही उसे शान्तिमय मोक्षपद प्राप्त करा देता है। जिस प्रकार घीसे भीगी हुई बत्तीको खानेवाले दीपकसे तो धूएँवाली शिखा निकलती रहती है और जब घी समाप्त हो जाता है तो वह अपने कारण अग्नितत्त्वमें लीन हो जाता है—उसी प्रकार गुण और कर्मोंमें आसक्त हुआ मन तरह-तरहकी वृत्तियों-का आश्रय लिये रहता है और इनसे मुक्त होनेपर वह अपने तत्त्वमें लीन हो जाता है ॥१–८॥

वीरवर ! पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक अहङ्कार—ये ग्यारह मनकी वृत्तियाँ हैं तथा पाँच प्रकारके कर्म, पाँच तन्मात्र और एक शरीर—ये ग्यारह उनके आधारभूत विषय कहे जाते हैं। गन्ध, रूप, स्पर्श, रस और शब्द—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियोंके विषय हैं; मलत्याग, सम्भोग, गमन, भाषण और लेना-देना आदि व्यापार—ये पाँच कर्मेन्द्रियोंके विषय हैं तथा शरीरको 'यह मेरा है' इस प्रकार स्वीकार करना अहङ्कारका विषय है। कुछ लोग अहङ्कारको मनकी बारहवीं वृत्ति और उसके आश्रय शरीरको बारहवाँ विषय मानते हैं। ये मनकी ग्यारह वृत्तियाँ द्रव्य (विषय), स्वभाव, आशय (संस्कार), कर्म और कालके द्वारा सैकड़ों, हजारों और करोड़ों भेदोंमें परिणत हो जाती हैं। किन्तु इनकी सत्ता क्षेत्रज्ञ आत्माकी सत्तासे ही है, स्वतः या परस्पर मिलकर नहीं है। ऐसा होनेपर भी मनसे क्षेत्रज्ञका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो जीवकी ही उपाधि है। इसका कारण माया है और यह प्रायः संसारबन्धनमें डालनेवाले अविशुद्ध कर्मोंमें ही प्रवृत्त रहता है। इसकी उपर्युक्त वृत्तियाँ प्रवाहरूपसे नित्य ही रहती हैं; जाग्रत् और स्वप्नके समय वे प्रकट हो जाती हैं और सुषुप्तिमें छिप जाती हैं। इन दोनों ही अवस्थाओंमें क्षेत्रज्ञ, जो विशुद्ध चिन्मात्र है, उनका साक्षी ही रहता है ॥९–१२॥

उनमेंसे प्रत्येककी चौड़ाई दो हजार योजन है तथा लंबाईमें पहलेकी अपेक्षा पिछला क्रमशः दशमांशसे कुछ अधिक कम है, चौड़ाई और ऊँचाई तो सभीकी समान है ॥ ४–८ ॥

इसी प्रकार इलावृतके दक्षिणकी ओर एकके बाद एक निषध, हेमकूट और हिमालय नामके तीन पर्वत हैं। नीलादि पर्वतोंके समान ये भी पूर्व-पश्चिमकी ओर फैले हुए हैं और दस-दस हजार योजन ऊँचे हैं । इनसे क्रमशः हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारतवर्षकी सीमाओंका विभाग होता है। इलावृतके पूर्व और पश्चिमकी ओर—उत्तरमें नील पर्वत और दक्षिणमें निषध पर्वततक फैले हुए गन्धमादन और माल्यवान् नामके दो पर्वत हैं। इनकी चौड़ाई दो-दो हजार योजन है और ये भद्राश्व एवं केतुमाल नामक दो वर्षोंकी सीमा निश्चित करते हैं। इनके सिवा मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद—ये चार दस-दस हजार योजन ऊँचे और उतने ही चौड़े पर्वत मेरु पर्वतकी आधारभूता थूनियोंके समान बने हुए हैं । इन चारोंके ऊपर इनकी ध्वजाओंके समान क्रमशः आम, जामुन, कदम्ब और बड़के चार पेड़ हैं। इनमेंसे प्रत्येक ग्यारह सौ योजन ऊँचा है और इतना ही इनकी शाखाओंका विस्तार है। इनकी मोटाई सौ-सौ योजन है। भरतश्रेष्ठ ! इन पर्वतों पर चार सरोवर भी हैं—जो क्रमशः दूध, मधु, ईखके रस और मीठे जलसे भरे हुए हैं। इनका सेवन करनेवाले यक्ष किन्नरादि उपदेवोंको स्वभावसे ही योगसिद्धियाँ प्राप्त हैं। इसी प्रकार इनपर क्रमशः नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र नामके चार दिव्य उपवन भी हैं। इनमें प्रधान-प्रधान देवगण अनेकों सुरसुन्दरियोंके नायक बनकर विहार करते हैं। उस समय गन्धर्वादि उपदेवगण इनकी महिमाका बखान किया करते हैं ॥ ९–१५ ॥

मन्दराचलकी गोदमें जो ग्यारह सौ योजन ऊँचा देवताओंका आम्रवृक्ष है, उससे पहाड़की चोटीके समान मोटे-मोटे और अमृतके समान स्वादिष्ट फल गिरते हैं। वे जब फटते हैं, तो उनसे बड़ा सुगन्धित और मीठा लाल-लाल रस बहने लगता है । वही अरुणोदा नामकी नदीमें परिणत हो जाता है। यह नदी मन्दराचलके शिखरसे गिरकर अपने जलसे इलावृतवर्षके पूर्वी भागको सींचती है। श्रीपार्वतीजीकी अनुचरी यक्षपत्नियाँ इस जलका सेवन करती हैं। इससे उनके अंगोंसे ऐसी सुगन्ध निकलती है कि उन्हें स्पर्श करके बहनेवाली वायु उनके चारों ओर दस-दस योजन तक सारे देशको सुगन्धसे भर देती है। इसी प्रकार जामुनके वृक्षसे हाथीके समान बड़े-बड़े प्रायः बिना गुठलीके फल गिरते हैं। बहुत ऊँचेसे गिरनेके कारण वे फट जाते हैं। उनके रससे जम्बू नामकी नदी प्रकट होती है, जो मेरुमन्दर पर्वतके दस हजार योजन ऊँचे शिखरसे गिरकर इलावृतके दक्षिणी भू-भागको सींचती है। उस नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी उस रससे भीगकर जब वायु और सूर्यके संयोगसे सूख जाती है, तो वही देवलोकको विभूषित करनेवाला जाम्बूनद नामका सोना बन जाती है । इसे देवता और गन्धर्वादि अपनी तरुणी स्त्रियोंके सहित मुकुट, कङ्कण और करधनी आदि आभूषणोंके रूपमें धारण करते हैं ॥ १६–२१ ॥

सुपार्श्व पर्वतपर जो विशाल कदम्बवृक्ष है, उसके पाँच कोटरोंसे मधुकी पाँच धाराएँ निकलती हैं, उनकी मोटाई पाँच पुरसे जितनी है । ये सुपार्श्वके शिखासे गिरकर इलावृतवर्षके पश्चिमी भागको अपनी सुगन्धसे सुवासित करती हैं। जो लोग इनका मधुपान करते हैं, उनके मुखसे निकली हुई वायु अपने चारों ओर सौ-सौ योजनतक इसकी महँक फैला देती है। इसी प्रकार कुमुद पर्वतपर जो शतवल्श नामका वटवृक्ष है, उसकी जटाओंसे नीचेकी ओर बहनेवाले अनेक नद निकलते हैं, वे सब इच्छानुसार भोग देनेवाले हैं। उनसे दूध, दही, मधु, घृत, गुड़, अन्न, वस्त्र, शय्या, आसन और आभूषण आदि सभी पदार्थ मिल सकते हैं । ये सब कुमुदके शिखरसे गिरकर इलावृतके उत्तरी भागको सींचते हैं। इनके दिये हुए पदार्थोंका उपभोग करनेसे वहाँकी प्रजाको त्वचामें झुर्रियाँ पड़ जाना, बाल पक जाना, थकान होना, शरीरमें पसीना आना तथा दुर्गन्ध निकलना, बुढ़ापा, रोग, मृत्यु, सर्दी-गर्मीकी पीड़ा, शरीरका कान्तिहीन हो जाना तथा अङ्गोंका टूटना आदि कष्ट कभी नहीं सताते। और उन्हें जीवनपर्यन्त पूरा-पूरा सुख प्राप्त होता है ॥२२–२५॥

राजन् ! कमलकी कर्णिकाके चारों ओर जैसे केसर होता है—उसी प्रकार मेरुके मूलदेशमें उसके चारों ओर कुरङ्ग, कुरर, कुसुम्भ, वैकङ्क, त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शङ्ख, वैदूर्य, जारुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालञ्जर और नारद आदि बीस पर्वत और हैं। इनके सिवा मेरुके पूर्वकी ओर जठर और देवकूट नामके दो पर्वत हैं, जो अठारह-अठारह हजार योजन लंबे तथा दो-दो हजार योजन चौड़े और ऊँचे हैं। इसी प्रकार पश्चिमकी ओर पवन और पारियात्र, दक्षिणकी ओर कैलास और करवीर तथा उत्तरकी ओर त्रिशृङ्ग और मकर नामके पर्वत हैं। इन आठ पहाड़ोंसे

मनसे ही कल्पना किये हुए हैं। वास्तवमें उनकी भी सत्ता नहीं है। यह सारा प्रपञ्च भगवान्‌की मायाका ही खेल है, उससे पृथक् उसकी कोई सत्ता नहीं है। इसी प्रकार और भी जो कुछ कृश-स्थूल, छोटा-बड़ा, कार्य-कारण तथा चेतन और अचेतन आदि गुणोंसे युक्त भेदमय प्रपञ्च है—उसे भी द्रव्य, स्वभाव, आशय, काल और कर्म आदि नामोंवाली भगवान्‌की मायाका ही कार्य समझो। विशुद्ध परमार्थरूप, अद्वितीय तथा भीतर-बाहरके भेदसे रहित परिपूर्ण ज्ञान ही सत्य वस्तु है। वह सर्वान्तर्वर्ती और सर्वथा निर्विकार है। उसीका नाम 'भगवान्' है और उसीको पण्डितजन 'वासुदेव' कहते हैं। किन्तु रहूगण! वह ज्ञानरूप परमात्मा महापुरुषोंके चरणोंकी धूलसे अपनेको नहलानेके सिवा तप, यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादिके दान, अतिथिसेवा, दीनसेवा आदि गृहस्थोचित धर्मानुष्ठान, वेदाध्ययन अथवा जल, अग्नि या सूर्यकी उपासना आदि किसी भी साधनसे प्राप्त नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि महापुरुषोंके समाजमें सदा पवित्रकीर्ति श्रीहरिके गुणोंकी चर्चा होती रहती है, जिससे विषयवार्ता तो पास ही नहीं फटकने पाती। और जब भगवत्कथाका नित्यप्रति सेवन किया जाता है, तो वह मोक्षाकाङ्क्षी पुरुषकी शुद्ध बुद्धिको भगवान् वासुदेवमें लगा देती है॥ ९–१३॥

देखो, पूर्वजन्ममें मैं भरत नामका राजा था। मैं ऐहिक और पारलौकिक दोनों प्रकारके विषयोंसे विरक्त होकर भगवान्‌की आराधनामें ही लगा रहता था; तो भी एक मृगमें आसक्ति हो जानेसे मुझे परमार्थसे भ्रष्ट होकर अगले जन्ममें मृग बनना पड़ा। किन्तु भगवान् श्रीकृष्णकी आराधनाके प्रभावसे उस मृगयोनिमें भी मेरी पूर्वजन्मकी स्मृति लुप्त नहीं हुई। इसीसे अब मैं जनसंसर्गसे डरकर सर्वदा असङ्गभावसे गुप्तरूपसे ही विचरता रहता हूँ। सारांश यह है कि विरक्त महापुरुषोंके सत्सङ्गसे प्राप्त ज्ञानरूप खड्गके द्वारा मनुष्यको इस लोकमें ही अपने मोहबन्धनको काट डालना चाहिये। फिर श्रीहरिकी लीलाओंके कथन और श्रवणसे भगवत्स्मृति बनी रहनेके कारण वह सुगमतासे ही संसारमार्गको पार करके भगवान्‌को प्राप्त कर सकता है॥ १४–१६॥

तेरहवाँ अध्याय

भवाटवीका वर्णन और रहूगणका संशय-नाश

ब्राह्मणने कहा—राजन्! यह जीवसमूह सुखरूप धनमें आसक्त देश-देशान्तरमें घूम-फिरकर व्यापार करनेवाले व्यापारियोंके दलके समान है। इसे मायाने दुस्तर प्रवृत्तिमार्गमें लगा दिया है; इसलिये इसकी दृष्टि सात्त्विक, राजस, तामस भेदसे नाना प्रकारके कर्मोंपर ही जाती है। उन कर्मोंमें भटकता-भटकता यह संसाररूप जंगलमें पहुँच जाता है। वहाँ उसे तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। उस जंगलमें छः चोर हैं। इस वणिक्-समाजका नायक बड़ा दुष्ट है। उसके नेतृत्वमें जब यह वहाँ पहुँचता है, तो ये चोर बलात्कारसे इसका सब माल-मता लूट लेते हैं। तथा भेड़िये जिस प्रकार भेड़ोंके झुंडमें घुसकर उन्हें खींच ले जाते हैं, उसी प्रकार इसके साथ रहनेवाले गीदड़ ही इसे असावधान देखकर इसके धनको इधर-उधर खींचने लगते हैं। वह जंगल बहुत-सी लता, घास और झाड़-झंखाड़के कारण बहुत दुर्गम हो रहा है। उसमें तीव्र डाँस और मच्छड़ इसे चैन नहीं लेने देते। वहाँ इसे कभी तो गन्धर्वनगर दीखने लगता है और कभी-कभी चमचमाता हुआ अति चञ्चल अगियाबेताल आँखोंके सामने आ जाता है। यह वणिक्-समुदाय इस वनमें निवासस्थान, जल और धनादिमें आसक्त होकर इधर-उधर भटकता रहता है। कभी बवंडरसे उठी हुई धूल इसकी आँखोंमें पड़ जाती है, तो इसे दिशाओंका ज्ञान भी नहीं रहता। कभी इसे दिखायी न देनेवाले झींगुरोंका कर्णकटु शब्द सुनायी देता है, कभी उल्लू अपनी बोलीसे इसके चित्तको व्यथित कर देता है। कभी इसे भूख सताने लगती है तो यह निन्दनीय वृक्षोंका ही सहारा टटोलने लगता है और कभी प्याससे व्याकुल होकर मृगतृष्णाकी ओर दौड़ लगाता है। कभी सूखी नदियोंकी चकमकमें फँसकर उनकी ओर जाता है, कभी अन्न नहीं मिलता तो आपसमें एक-दूसरेके टुकड़ेका ही ग्राहक बन जाता है, कभी दावानलमें घुसकर अग्निसे झुलस जाता है और कभी यक्षलोग इसके प्राण खींचने लगते हैं तो यह खिन्न होने लगता है। कभी अपनेसे अधिक बलवान् लोग इसका धन छीन लेते हैं, तो यह दुखी होकर शोक और मोहसे अचेत हो जाता है और कभी गन्धर्वनगरमें पहुँचकर घड़ीभरके लिये सब दुःख भूलकर खुशी मनाने लगता है। कभी पर्वतोंपर चढ़ना चाहता है तो काँटे और कंकड़ोंसे पैर चलनी हो जानेसे उदास हो जाता है। कुटुम्ब बहुत

ऋतुओंके फूलोंके गुच्छे, फल और नवीन कोंपलोंके भारसे झुकी रहती हैं। वहाँके निर्मल जलाशयोंमें तरह-तरहके नूतन कमल-कुसुम खिले रहते हैं। उनकी मत्त गन्धसे प्रमुदित होकर राजहंस, जलमुर्ग, कारण्डव, सारस और चकवा आदि पक्षी तरह-तरहकी बोली बोलते तथा विविध रूप रंगके मतवाले भौंरे मधुर मधुर गुंजार करते रहते हैं। इन जलाशयोंमें वहाँके देवश्रेष्ठ परम सुन्दरी देवाङ्गनाओंके साथ उनके कामवेगसूचक हास विलास और लीला-कटाक्षोंसे मन और नेत्रोंके आकृष्ट हो जानेके कारण जलक्रीडादि नाना प्रकारके खेल करते हुए स्वच्छन्द विहार करते हैं तथा उनके प्रधान प्रधान अनुचरगण अनेक प्रकारकी सामग्रियोंसे उनका आदर-सत्कार करते रहते हैं ॥ ११-१३ ॥

इन नवों वर्षोंमें परमपुरुष भगवान् नारायण वहाँके पुरुषोंपर अनुग्रह करनेके लिये इस समय भी अपनी विभिन्न मूर्तियोंसे विराजमान रहते हैं। इलावृतवर्षमें तो एकमात्र भगवान् शङ्कर ही पुरुष हैं। श्रीपार्वतीजीका शाप होनेके कारण वहाँ किसी दूसरे सामान्य पुरुषका प्रवेश नहीं हो सकता, क्योंकि वहाँ जो जाता है, वही स्त्रीरूप हो जाता है। इस प्रसङ्ग का हम आगे (नवम स्कन्धमें) वर्णन करेंगे। वहाँ पार्वती आदि अरबों-खरबों स्त्रियोंसे सेवित भगवान् शङ्कर परमपुरुष



परमात्माकी वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षणसंज्ञक चतुर्व्यूह मूर्तियोंमेंसे अपनी कारणरूपा सङ्कर्षण नामकी तमःप्रधान चौथी मूर्तिका ध्यानस्थित मनोमय विग्रहके रूपमें चिन्तन करते हैं (भगवान्का विग्रह शुद्ध चिन्मय ही है परन्तु संहार आदि तामसी कार्योंका हेतु होनेसे इसे तामसी मूर्ति कहते हैं।) और 'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नमः' (ॐ जिनसे सभी गुणोंकी अभिव्यक्ति होती है, उन अनन्त और अव्यक्तमूर्ति ओङ्कारस्वरूप परमपुरुष श्रीभगवान्को नमस्कार है) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥ १४-१७ ॥

भगवान् शङ्कर कहते हैं-भजनीय प्रभो ! आपके चरणकमल भक्तोंको आश्रय देनेवाले हैं, तथा आप स्वयं सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके परम आश्रय हैं। भक्तोंके सामने आप अपना भूतभावन स्वरूप पूर्णतया प्रकट कर देते हैं तथा उन्हें संसारबन्धनसे भी मुक्त कर देते हैं, किन्तु अभक्तोंको उस बन्धनमें डालते रहते हैं। आप ही सर्वेश्वर हैं, मैं आपकी वन्दना करता हूँ। प्रभो ! हमलोग क्रोधके आवेगको जीतनेमें असमर्थ हैं, तथा हमारी दृष्टि तत्काल पापसे लिप्त हो जाती है। परन्तु आप तो संसारका नियमन करनेके लिये निरन्तर साक्षीरूपसे उसके सारे व्यापारोंको देखते रहते हैं। तथापि हमारी तरह आपकी दृष्टिपर उन मायिक विषयों तथा चित्तकी वृत्तियोंका नाममात्रको भी प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी स्थितिमें अपने अन्तःकरणको जीतनेकी इच्छावाला कौन पुरुष आपका आदर न करेगा ? आप मायावश असत् पुरुषोंको मधु-आसवादि पानके कारण अरुणनयन और मतवाले जान पड़ते हैं, तथा आपके चरणस्पर्शसे ही चित्त चञ्चल हो जानेके कारण नागपत्नियाँ लज्जावश आपकी पूजा करनेमें असमर्थ हो जाती हैं। वेदमन्त्र आपको जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण बताते हैं; परन्तु आप स्वयं इन तीनों विकारोंसे रहित हैं; इसलिये आपको 'अनन्त' कहते हैं। आपके सहस्र मस्तकोंपर यह भूमण्डल सरसोंके दानेके समान रक्खा हुआ है, आपको तो यह भी नहीं मालूम होता कि वह कहाँ स्थित है। जिनसे उत्पन्न हुआ मैं अहङ्काररूप अपने त्रिगुणमय तेजसे देवता, इन्द्रिय और भूतोंकी रचना करता हूँ—वे विज्ञानके आश्रय भगवान् ब्रह्माजी भी आपहीके महत्तत्त्वसंज्ञक प्रथम गुणमय स्वरूप हैं। महात्मन् ! महत्तत्त्व, अहङ्कार, इन्द्रियाभिमानी देवता, इन्द्रियाँ और पञ्चभूत आदि हम सभी डोरीमें बँधे हुए पक्षीके समान आपकी क्रियाशक्तिके वशीभूत रहकर आपकी ही कृपासे इस जगत्की रचना करते हैं। सत्त्वादि गुणोंकी सृष्टिसे मोहित हुआ यह जीव आपकी ही रची हुई तथा कर्मबन्धनमें बाँधनेवाली मायाको तो कदाचित् जान भी लेता है, किन्तु उससे मुक्त होनेका उपाय उसे सुगमतासे नहीं मालूम होता। इस जगत्की उत्पत्ति और प्रलय भी आपके ही रूप हैं। ऐसे आपको मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ ॥ १८-२४ ॥

है। जो ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण अवधूतवेषसे पृथ्वीपर विचरते हैं, उनसे हम-जैसे ऐश्वर्योन्मत्त राजाओंका कल्याण हो ॥ २१–२३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—उत्तरानन्दन ! इस प्रकार उन परम प्रभावशाली ब्रह्मर्षिपुत्रने अपना अपमान करनेवाले सिन्धुनरेश रहूगणको अत्यन्त करुणावश आत्मतत्त्वका उपदेश दिया। तब राजा रहूगणने दीनभावसे उनके चरणोंकी वन्दना की। फिर वे परिपूर्ण समुद्रके समान शान्तचित्त और उपरतेन्द्रिय होकर पृथ्वीपर विचरने लगे। तथा उनके सत्सङ्गसे परमात्मतत्त्वका ज्ञान पाकर सौवीरपति रहूगणने भी अन्तःकरणमें अविद्यावश आरोपित देहात्म-बुद्धिको त्याग दिया। राजन् ! जो लोग भगवदाश्रित अनन्य भक्तोंकी शरण ले लेते हैं, उनका ऐसा ही प्रभाव होता है—उनके पास अविद्या ठहर नहीं सकती ॥ २४-२५ ॥

राजा परीक्षित्‌ने कहा—महाभागवत मुनिश्रेष्ठ ! आप परम विद्वान् हैं। आपने रूपकादिके द्वारा अप्रत्यक्षरूपसे जीवोंके जिस संसाररूप मार्गका वर्णन किया है, उस विषयकी कल्पना विवेकी पुरुषोंकी बुद्धिने की है; वह अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंकी समझमें सुगमतासे नहीं आ सकता। अतः मेरी प्रार्थना है कि इस दुर्बोध विषयको रूपकका स्पष्टीकरण करनेवाले शब्दोंसे खोलकर समझाइये ॥ २६ ॥

चौदहवाँ अध्याय

भवाटवीका स्पष्टीकरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! देहाभिमानी जीवोंसे सत्त्वादि गुणोंके कारण शुभ, अशुभ और मिश्र—तीन प्रकारके कर्म होते रहते हैं। उनके फलरूपमें उन्हें जो तरह-तरहकी देहोंमें इष्ट वस्तुके साथ संयोग-वियोग होनेसे सुख-दुःखका अनुभव होता रहता है, यही उसका अनादि संसार है। मन आदि छः ज्ञानेन्द्रियाँ इसके अनुभवके द्वार हैं। उनसे विवश होकर यह जीवसमूह मार्ग भूलकर भयङ्कर वनमें भटकते हुए धनके लोभी बनिजारोंके समान परमसमर्थ भगवान् विष्णुके आश्रित रहनेवाली मायाकी प्रेरणासे बीहड़ वनके समान दुर्गम मार्गमें पड़कर संसार-वनमें जा पहुँचता है। यह वन श्मशानके समान अत्यन्त अशुभ है। इसमें भटकते हुए उसे अपने शरीरसे किये हुए कर्मोंका फल भोगना पड़ता है। यहाँ अनेकों विघ्नोंके कारण उसे अपने व्यापारमें सफलता भी नहीं मिलती; तो भी यह उसके श्रमको शान्त करनेवाले श्रीहरिचरणारविन्दोंके रसिक भक्त-भ्रमरोंके मार्गका अनुसरण नहीं करता। इस संसार-वनमें मनसहित छः इन्द्रियाँ ही अपने कर्मोंकी दृष्टिसे चोरोंके समान हैं। ये चोर किस प्रकार हैं, सो बतलाते हैं। पुरुष बहुत-सा कष्ट उठाकर जो धन कमाता है, उसका उपयोग धर्ममें होना चाहिये; वही धर्म यदि भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये होता है, तो उसे परलोकमें निःश्रेयसका हेतु बतलाया गया है। किन्तु जिस मनुष्यका बुद्धिरूप सारथि विवेकहीन होता है और मन वशमें नहीं होता, उसके उस धर्मोपयोगी धनको ये मनसहित छः इन्द्रियाँ देखना, स्पर्श करना, सुनना, स्वाद लेना, सूँघना, सङ्कल्प-विकल्प करना और निश्चय करना—इन वृत्तियोंके द्वारा गृहस्थोचित विषय-भोगोंमें फँसाकर उसी प्रकार लूट लेती हैं, जिस प्रकार बेईमान मुखियाका अनुगमन करनेवाले एवं असावधान बनिजारोंके दलका धन चोर-डाकू लूट ले जाते हैं। ये ही नहीं, उस संसार-वनमें रहनेवाले उसके कुटुम्बी भी—जो नामसे तो स्त्री-पुत्रादि कहे जाते हैं, किन्तु कर्म जिनके साक्षात् भेड़ियों और गीदड़ोंके समान होते हैं—उस अर्थलोलुप कुटुम्बीके धनको उसकी इच्छा न रहनेपर भी उसके देखते-देखते इस प्रकार छीन ले जाते हैं, जैसे भेड़िये गडरियोंसे सुरक्षित भेड़ोंको उठा ले जाते हैं। जिस प्रकार यदि किसी खेतके बीजोंको अग्निद्वारा जला न दिया गया हो, तो प्रतिवर्ष जोतनेपर भी खेतीका समय आनेपर वह फिर झाड़-झंखाड़, लता और तृण आदिसे गहन हो जाता है—उसी प्रकार यह गृहस्थाश्रम भी कर्मभूमि है; इसमें भी कर्मोंका सर्वथा उच्छेद कभी नहीं होता, क्योंकि यह घर तो कर्म-वासनाओंकी ही पिटारी है ॥ १–४ ॥

उस गृहस्थाश्रममें आसक्त हुए व्यक्तिके धनरूप बाहरी प्राणोंको डाँस और मच्छड़ोंके समान नीच पुरुषोंसे तथा टिड्डी, पक्षी, चोर और चूहे आदिसे क्षति पहुँचती रहती है। कभी इस मार्गमें भटकते-भटकते वह अविद्या, कामना और कर्मोंसे कलुषित हुए अपने चित्तसे दृष्टिदोषके कारण इस मर्त्यलोकको, जो गन्धर्वनगरके समान असत् है, सत्य समझने लगता है। फिर खान-पान और स्त्री-प्रसङ्गादि व्यसनोंमें फँसकर मृगतृष्णाके समान मिथ्या विषयोंकी ओर दौड़ने लगता है। कभी रजोगुणका वेग होनेपर सारे अनर्थोंकी जड़ अग्निके मलरूप सोनेको ही सुखका साधन समझकर उसे पानेके लिये इस प्रकार दौड़-धूप करने लगता

दैहिक और मानसिक मलोंको धो डालते हैं। फिर भला, उन भगवद्भक्तोंका सङ्ग कौन न करना चाहेगा ? जिस पुरुषकी भगवान्में निष्काम भक्ति है, उसके हृदयमें समस्त



देवता धर्म ज्ञानादि सम्पूर्ण सद्गुणोंके सहित सदा निवास करते हैं। किन्तु जो भगवान्का भक्त नहीं है, उसमें तो महापुरुषों के वे गुण आ ही कहाँसे सकते हैं ? वह तो तरह-तरहके सङ्कल्प करके निरन्तर बाहरी विषयोंकी ओर ही दौड़ता रहता है। जैसे मछलियोंको जल अत्यन्त प्रिय—उनके जीवनका आधार होता है, उसी प्रकार साक्षात् श्रीहरि ही समस्त देहधारियोंके प्रियतम आत्मा हैं। उन्हें त्यागकर यदि कोई महत्त्वाभिमानी पुरुष घरमें आसक्त रहता है, तो उसकी महत्ताको तो स्त्री-पुरुषोंके यौवनजनित उत्कर्षके समान ही समझना चाहिये, वह अधिक दिन ठहरनेवाली नहीं होती। अतः असुरगण ! तुम तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, अभिमान, इच्छा, भय, दीनता और मानसिक सन्तापके मूल तथा जन्म मरणरूप संसारचक्रका वहन करनेवाले गृह आदिको त्यागकर भगवान् नृसिंहके निर्भय चरणकमलोंका आश्रय लो' ॥७–१४॥

केतुमालवर्षमें लक्ष्मीजीका तथा संवत्सर नामक प्रजापतिके पुत्र और पुत्रियोंका प्रिय करनेके लिये भगवान् कामदेवरूपसे निवास करते हैं। उन रात्रिकी अभिमानी देवतारूप कन्याओं और दिवसाभिमानी देवतारूप पुत्रोंकी संख्या मनुष्यकी सौ वर्षकी आयुके दिन और रातके बराबर अर्थात् छत्तीस-छत्तीस हजार वर्ष है, और वे ही उस वर्षके अधिपति हैं। वे कन्याएँ परमपुरुष श्रीनारायणके श्रेष्ठ अस्त्र सुदर्शनचक्रके तेजसे डर जाती हैं, इसलिये प्रत्येक वर्षके अन्तमें उनके गर्भ नष्ट होकर गिर जाते हैं। भगवान् कामदेव अपने परम सुन्दर गति विलाससे, सुशोभित मधुर मुसकानमयी मनोहर चितवनसे, और कुछ-कुछ ऊपरको उठी हुई सुन्दर भौंहोंके कारण अत्यन्त शोभायमान सुन्दर मुखारविन्दकी शोभासे लक्ष्मीजीको



आनन्दित करते स्वयं भी आनन्दित होते रहते हैं। श्रीलक्ष्मीजी परम समाधियोगके द्वारा भगवान्के उस मायामय स्वरूपकी रात्रिके समय प्रजापति संवत्सरकी कन्याओंके सहित और दिनमें उनके पतियोंके सहित आराधना करती हैं और 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं । ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषै र्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय च्छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ।' (जो इन्द्रियोंके नियन्ता और सम्पूर्ण श्रेष्ठ वस्तुओंके आकर हैं, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति और सङ्कल्प अध्यवसाय आदि चित्तके धर्मों तथा उनके विषयोंके अधीश्वर हैं, ग्यारह इन्द्रिय और पाँच विषय—इन सोलह कलाओंसे युक्त हैं, वेदोक्त कर्मोंसे प्राप्त होते हैं तथा अन्नमय, अमृतमय और सर्वमय हैं—उन मानसिक, ऐन्द्रियिक एवं शारीरिक बलस्वरूप परमसुन्दर भगवान् कामदेवको 'ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं' इन बीजमन्त्रोंके सहित सब ओरसे नमस्कार है।) इस मन्त्रका जप करती हुई इस प्रकार भगवान्की स्तुति करती हैं ॥ १५–१७ ॥

'भगवन् ! आप इन्द्रियोंके अधीश्वर हैं। स्त्रियाँ

मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान, क्षुधा-पिपासा, आधि-व्याधि, जन्म, जरा और मृत्यु आदि और भी अनेकों विघ्न हैं। इस विघ्नबहुल मार्गमें इस प्रकार भटकता हुआ यह जीव किसी समय देवमायारूपिणी स्त्रीके बाहुपाशमें पड़कर विवेकहीन हो जाता है। तब उसीके लिये विहारभवन आदि बनवानेकी चिन्तामें ग्रस्त रहता है तथा उसीके आश्रित रहनेवाले पुत्र, पुत्री और अन्यान्य स्त्रियोंके मीठे-मीठे बोल, चितवन और चेष्टाओंमें आसक्त होकर, उन्हींमें चित्त फँस जानेसे वह इन्द्रियोंका दास अपार अन्धकारमय नरकोंमें गिरता है ॥ २७-२८ ॥

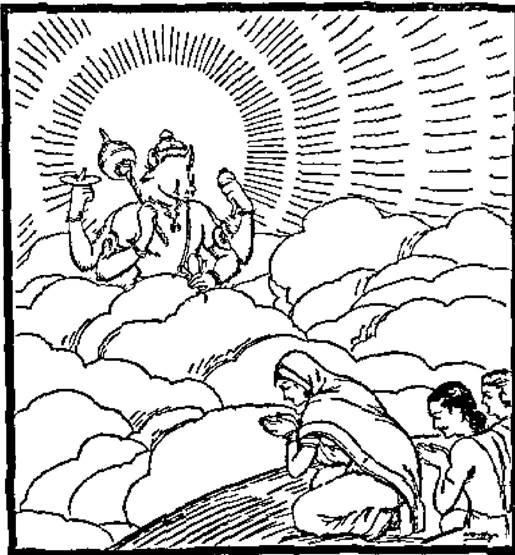
कालचक्र साक्षात् भगवान् विष्णुका आयुध है। वह परमाणुसे लेकर द्विपरार्धपर्यन्त क्षण-घटी आदि अवयवोंसे युक्त है। वह निरन्तर सावधान रहकर घूमता रहता है, तनिक भी विश्राम नहीं लेता। जल्दी-जल्दी बदलनेवाली बाल्य-यौवन आदि अवस्थाएँ ही उसका वेग हैं। उसके द्वारा वह ब्रह्मासे लेकर क्षुद्रातिक्षुद्र तृणपर्यन्त सभी भूतोंका निरन्तर संहार करता रहता है। कोई भी उसकी गतिमें बाधा नहीं डाल सकता। उससे भय मानकर भी जिनका यह कालचक्र निज आयुध है, उन साक्षात् भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना छोड़कर यह मन्दमति मनुष्य पाखण्डियोंके चक्करमें पड़कर उनके कंक, गिद्ध, बगुला और उल्लुओंके समान आर्यशास्त्र-बहिष्कृत देवताओंका आश्रय लेता है—जिनका केवल वेदबाह्य अप्रामाणिक आगमोंने ही उल्लेख किया है। ये पाखण्डी तो स्वयं ही धोखेमें हैं; जब यह भी उनकी ठगाईमें आकर दुखी होता है, तो ब्राह्मणोंकी शरण लेता है। किन्तु उपनयन-संस्कारके अनन्तर श्रौत-स्मार्तकर्मोंसे भगवान् यज्ञ-पुरुषकी आराधना करना आदि जो उनका शास्त्रोक्त आचार है, वह अपनी अपवित्र प्रकृतिके कारण इसे अच्छा नहीं लगता; इसलिये फिर कर्मशून्य शूद्रकुलमें प्रवेश करता है, जिसका स्वभाव वानरोंके समान केवल कुटुम्बपोषण और स्त्रीसेवन करना ही है। वहाँ बिना रोक-टोक स्वच्छन्द विहार करनेसे इसकी बुद्धि अत्यन्त दीन हो जाती है और एक-दूसरेका मुख देखना आदि विषय-भोगोंमें फँसकर इसे अपने मृत्युकालका भी स्मरण नहीं होता। बस, वृक्षोंके समान जिनका लौकिक सुख ही फल है—उन घरोंमें ही सुख मानकर वानरोंकी भाँति स्त्री-पुत्रादिमें आसक्त होकर यह अपना सारा समय मैथुनादि विषय-भोगोंमें ही बिता देता है ॥२९—३२॥

इस प्रकार प्रवृत्तिमार्गमें पड़कर सुख-दुःख भोगता हुआ यह जीव रोगरूपी गिरि-गुहामें फँसकर उसमें रहनेवाले मृत्युरूप हाथीसे डरता रहता है। कभी-कभी शीत, वायु आदि अनेक प्रकारके आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखोंकी निवृत्ति करनेमें जब असफल हो जाता है, तो उस समय अपार विषयवासना इसे और भी सताने लगती है। कभी आपसमें क्रय-विक्रय आदि व्यापार करनेपर बहुत कंजूसी करनेसे इसे थोड़ा-सा धन हाथ लग जाता है। कभी धन नष्ट हो जानेसे जब इसके पास सोने, बैठने और खाने आदिकी भी कोई सामग्री नहीं रहती तो अपने अभीष्ट भोग न मिलनेसे यह उन्हें चोरी आदि बुरे उपायोंसे पानेका निश्चय करता है। इससे इसे जहाँ-तहाँ दूसरोंके हाथसे बहुत अपमानित होना पड़ता है। इस प्रकार धनकी आसक्तिसे परस्पर वैरभाव बढ़ जानेपर भी यह अपनी पूर्ववासनाओंसे विवश होकर आपसमें विवाहादि सम्बन्ध करता और छोड़ता रहता है। इस प्रकार इस संसार-मार्गमें चलनेवाला यह जीव अनेक प्रकारके क्लेश और विघ्न-बाधाओंसे बाधित होनेपर भी मार्गमें जिसपर जहाँ आपत्ति आती है अथवा जो कोई मर जाता है, उसे जहाँ-का-तहाँ छोड़ देता है; तथा नये जन्मे हुओंको साथ लगाता कभी किसीके लिये शोक करता है, किसीका दुःख देखकर मूर्च्छित हो जाता है, किसीके वियोग होनेकी आशङ्कासे भयभीत हो जाता है, किसीसे झगड़ने लगता है, कोई आपत्ति आती है तो रोने-चिल्लाने लगता है, कहीं कोई मनके अनुकूल बात हो गयी तो खुशीके मारे फूला नहीं समाता, कभी गाने लगता है और कभी उन्हींके लिये कैदखानेकी हवा खानेमें भी नहीं हिचकता। साधुजन इसके पास कभी नहीं आते, यह साधुसङ्गसे सदा वञ्चित रहता है। इस प्रकार यह निरन्तर आगे ही बढ़ रहा है। जहाँसे इसकी यात्रा आरम्भ हुई है और जिसे इस मार्गकी अन्तिम अवधि कहते हैं, उस परमात्माके पास यह अभीतक नहीं लौटा है। परमात्मातक तो योगशास्त्रकी भी गति नहीं है; उसे तो, जिन्होंने सब प्रकारके दण्ड (शासन) का त्याग कर दिया है—वे निवृत्तिपरायण संयतात्मा मुनिजन ही प्राप्त कर पाते हैं। जो दिग्गजोंको जीतनेवाले और बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले राजर्षि हैं, उनकी भी वहाँतक गति नहीं है। वे सङ्ग्रामभूमिमें शत्रुओंका सामना करके केवल प्राणपरित्याग ही करते हैं, तथा जिसमें 'यह मेरी है' ऐसा अभिमान करके वैर ठाना था—उस पृथ्वीमें ही अपना शरीर छोड़कर स्वयं परलोकको

उस प्रियतम मूर्तिकी उपासना करते हैं और 'ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणायानुपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते।' (जो सम्पूर्ण सत्त्वगुणसे युक्त हैं, जलमें विचरते रहनेके कारण जिनके स्थानका कोई निश्चय नहीं है तथा जो कालकी मर्यादाके बाहर हैं, उन ओङ्कारस्वरूप सर्वव्यापक सर्वाधार भगवान् कच्छपको बारबार नमस्कार है) इस मन्त्रको निरन्तर जपते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥२९ ३०॥

'भगवन्! अनेक रूपोंमें प्रतीत होनेवाला यह प्रपञ्च यद्यपि मिथ्या ही निश्चय होता है, इसलिये इसकी वस्तुत कोई संख्या नहीं है, तथापि यह मायासे प्रकाशित होनेवाला आपका ही रूप है। ऐसे अनिर्वचनीयरूप आपको मेरा नमस्कार है। एकमात्र आप ही जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जङ्गम, स्थावर, देवता, ऋषि, पितृगण, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और तारा आदि विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हैं। आप असंख्य नाम, रूप और आकृतियोंसे युक्त हैं, कपिलादि विद्वानोंने जो आपमें चौबीस तत्त्वोंकी सख्या निश्चित की है—वह जिस तत्त्वदृष्टिका उदय होनेपर निवृत्त हो जाती है, वह भी वस्तुत आपका ही स्वरूप है। ऐसे साख्यसिद्धान्तस्वरूप आपको मेरा नमस्कार है' ॥ ३१–३३ ॥

उत्तरकुरुवर्षमें भगवान् यज्ञपुरुष वराहमूर्ति धारण



करके विराजमान हैं। वहाँके निवासियोंके सहित साक्षात् पृथ्वीदेवी उनकी अविचल भक्तिभावसे उपासना करती हैं और 'ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महापुरुषाय नम कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते।' (जिनका तत्त्व मन्त्रोंसे जाना जाता है, जो यज्ञ और क्रतुरूप हैं तथा यज्ञादि जिनके अङ्ग हैं—उन ओङ्कारस्वरूप शुक्लकर्ममय त्रियुगमूर्ति पुरुषोत्तम भगवान् वराहको बारबार नमस्कार है।) इस परमोत्कृष्ट मन्त्रका जप करती हुई इस प्रकार स्तुति करती है—॥ ३४ ३५ ॥

'ऋत्विजगण जिस प्रकार अरणिरूप काष्ठखण्डोंमे छिपी हुई अग्निको मन्थनद्वारा प्रकट करते हैं, उसी प्रकार कर्मासक्ति एवकर्मफलकी कामनासे छिपे हुए जिनके रूपको देखनेकी इच्छासे परमप्रवीण पण्डितजन अपने विवेकयुक्त मनरूप मन्थनकाष्ठसे शरीर एव इन्द्रियादिको बिलो डालते हैं—नाना प्रकारके व्रत-उपवासादिके द्वारा उन्हें सुखाते हैं, किन्तु फिर भी आप प्रकट तो होते हैं स्वेच्छासे ही। ऐसे आपको नमस्कार है। यम नियमादि योगाङ्गोंका साधन करनेसे जिनकी बुद्धि निश्चयात्मिका हो गयी है—वे महापुरुष विषय, इन्द्रियोंके व्यापार, इन्द्रियाधिष्ठाता देवता, शरीर, काल और अहङ्कार आदि मायाके कार्योंको देखकर विचारद्वारा जिनके वास्तविक स्वरूपका निश्चय करते हैं, ऐसे मायिक आकृतियोंसे रहित आपको बार बार नमस्कार है। जिस प्रकार लोहा जड होनेपर भी चुम्बककी सन्निधिमात्रसे चलने फिरने लगता है, उसी प्रकार जिन सर्वसाक्षीकी इच्छामात्रसे—जो अपने लिये नहीं बल्कि समस्त प्राणियोंके लिये होती है—प्रकृति अपने गुणोंके द्वारा जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करती रहती है, ऐसे सम्पूर्ण गुणों एव कर्मोंके साक्षी आपको नमस्कार है। आप जगत्के कारणभूत आदिसूकर हैं, आपकी सामर्थ्यका कोई पारावार नहीं है। जिस प्रकार एक हाथी दूसरे हाथीको पछाड़ देता है, उसी प्रकार गजराजके समान क्रीडा करते हुए आप युद्धमें अपने प्रतिद्वन्द्वी हिरण्याक्ष दैत्यको दलित करके मुझे अपनी दाढोंकी नोकपर रखकर रसातलसे प्रलय पयोधिके बाहर लाये थे। मै आपको बारबार नमस्कार करती हूँ॥ ३६–३९॥

मोह, लोभ, मात्सर्य, ईर्ष्या, अपमान, क्षुधा-पिपासा, आधि-व्याधि, जन्म, जरा और मृत्यु आदि और भी अनेकों विघ्न हैं। इस विघ्नबहुल मार्गमें इस प्रकार भटकता हुआ यह जीव किसी समय देवमायारूपिणी स्त्रीके बाहुपाशमें पड़कर विवेकहीन हो जाता है। तब उसीके लिये विहारभवन आदि बनवानेकी चिन्तामें ग्रस्त रहता है तथा उसीके आश्रित रहनेवाले पुत्र, पुत्री और अन्यान्य स्त्रियोंके मीठे-मीठे बोल, चितवन और चेष्टाओंमें आसक्त होकर, उन्हींमें चित्त फँस जानेसे वह इन्द्रियोंका दास अपार अन्धकारमय नरकोंमें गिरता है ॥ २७-२८ ॥

कालचक्र साक्षात् भगवान् विष्णुका आयुध है। वह परमाणुसे लेकर द्विपरार्धपर्यन्त क्षण-घटी आदि अवयवोंसे युक्त है। वह निरन्तर सावधान रहकर घूमता रहता है, तनिक भी विश्राम नहीं लेता। जल्दी-जल्दी बदलनेवाली बाल्य-यौवन आदि अवस्थाएँ ही उसका वेग हैं। उसके द्वारा वह ब्रह्मासे लेकर क्षुद्रातिक्षुद्र तृणपर्यन्त सभी भूतोंका निरन्तर संहार करता रहता है। कोई भी उसकी गतिमें बाधा नहीं डाल सकता। उससे भय मानकर भी जिनका यह कालचक्र निज आयुध है, उन साक्षात् भगवान् यज्ञपुरुषकी आराधना छोड़कर यह मन्दमति मनुष्य पाखण्डियोंके चक्करमें पड़कर उनके कंक, गिद्ध, बगुला और उल्लुओंके समान आर्यशास्त्र-बहिष्कृत देवताओंका आश्रय लेता है—जिनका केवल वेदबाह्य अप्रामाणिक आगमोंने ही उल्लेख किया है। ये पाखण्डी तो स्वयं ही धोखेमें हैं; जब यह भी उनकी ठगाईमें आकर दुखी होता है, तो ब्राह्मणोंकी शरण लेता है। किन्तु उपनयन-संस्कारके अनन्तर श्रौत-स्मार्तकर्मोंसे भगवान् यज्ञ-पुरुषकी आराधना करना आदि जो उनका शास्त्रोक्त आचार है, वह अपनी अपवित्र प्रकृतिके कारण इसे अच्छा नहीं लगता; इसलिये फिर कर्मशून्य शूद्रकुलमें प्रवेश करता है, जिसका स्वभाव वानरोंके समान केवल कुटुम्बपोषण और स्त्रीसेवन करना ही है। वहाँ बिना रोक-टोक स्वच्छन्द विहार करनेसे इसकी बुद्धि अत्यन्त दीन हो जाती है और एक-दूसरेका मुख देखना आदि विषय-भोगोंमें फँसकर इसे अपने मृत्युकालका भी स्मरण नहीं होता। बस, वृक्षोंके समान जिनका लौकिक सुख ही फल है—उन घरोंमें ही सुख मानकर वानरोंकी भाँति स्त्री-पुत्रादिमें आसक्त होकर यह अपना सारा समय मैथुनादि विषय-भोगोंमें ही बिता देता है ॥२९-३२॥

इस प्रकार प्रवृत्तिमार्गमें पड़कर सुख-दुःख भोगता हुआ यह जीव रोगरूपी गिरि-गुहामें फँसकर उसमें रहनेवाले मृत्युरूप हाथीसे डरता रहता है। कभी-कभी शीत, वायु आदि अनेक प्रकारके आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुःखोंकी निवृत्ति करनेमें जब असफल हो जाता है, तो उस समय अपार विषयवासना इसे और भी सताने लगती है। कभी आपसमें क्रय-विक्रय आदि व्यापार करनेपर बहुत कंजूसी करनेसे इसे थोड़ा-सा धन हाथ लग जाता है। कभी धन नष्ट हो जानेसे जब इसके पास सोने, बैठने और खाने आदिकी भी कोई सामग्री नहीं रहती तो अपने अभीष्ट भोग न मिलनेसे यह उन्हें चोरी आदि बुरे उपायोंसे पानेका निश्चय करता है। इससे इसे जहाँ-तहाँ दूसरोंके हाथसे बहुत अपमानित होना पड़ता है। इस प्रकार धनकी आसक्तिसे परस्पर वैरभाव बढ़ जानेपर भी यह अपनी पूर्ववासनाओंसे विवश होकर आपसमें विवाहादि सम्बन्ध करता और छोड़ता रहता है। इस प्रकार इस संसार-मार्गमें चलनेवाला यह जीव अनेक प्रकारके क्लेश और विघ्न-बाधाओंसे बाधित होनेपर भी मार्गमें जिसपर जहाँ आपत्ति आती है अथवा जो कोई मर जाता है, उसे जहाँ-का-तहाँ छोड़ देता है; तथा नये जन्मे हुओंको साथ लगाता कभी किसीके लिये शोक करता है, किसीका दुःख देखकर मूर्च्छित हो जाता है, किसीके वियोग होनेकी आशङ्कासे भयभीत हो जाता है, किसीसे झगड़ने लगता है, कोई आपत्ति आती है तो रोने-चिल्लाने लगता है, कहीं कोई मनके अनुकूल बात हो गयी तो खुशीके मारे फूला नहीं समाता, कभी गाने लगता है और कभी उन्हींके लिये कैदखानेकी हवा खानेमें भी नहीं हिचकता। साधुजन इसके पास कभी नहीं आते, यह साधुसङ्गसे सदा वञ्चित रहता है। इस प्रकार यह निरन्तर आगे ही बढ़ रहा है। जहाँसे इसकी यात्रा आरम्भ हुई है और जिसे इस मार्गकी अन्तिम अवधि कहते हैं, उस परमात्माके पास यह अभीतक नहीं लौटा है। परमात्मातक तो योगशास्त्रकी भी गति नहीं है; उसे तो, जिन्होंने सब प्रकारके दण्ड (शासन) का त्याग कर दिया है—वे निवृत्तिपरायण संयतात्मा मुनिजन ही प्राप्त कर पाते हैं। जो दिग्गजोंको जीतनेवाले और बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले राजर्षि हैं, उनकी भी वहाँतक गति नहीं है। वे सङ्ग्रामभूमिमें शत्रुओंका सामना करके केवल प्राणपरित्याग ही करते हैं; तथा जिसमें 'यह मेरी है' ऐसा अभिमान करके वैर ठाना था—उस पृथ्वीमें ही अपना शरीर छोड़कर स्वयं परलोकको

प्रकट करनेवाले पाञ्चरात्रदर्शनका सावर्णि मुनिको उपदेश करनेके लिये भारतवर्षकी वर्णाश्रमधर्मावलम्बिनी प्रजाके सहित अत्यन्त भक्तिभावसे भगवान् श्रीनर नारायणकी उपासना करते हैं और 'ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय



नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंस परमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नमः ।' (ओङ्कारस्वरूप, अहङ्कारसे रहित, निर्धनोंके धन, शान्तस्वभाव ऋषिश्रेष्ठ भगवान् नर नारायणको नमस्कार है। वे परमहंसोंके गुरु और आत्मारामों के अधीश्वर हैं, उन्हें बार बार नमस्कार है।)—इस मन्त्रका जप करते है । तथा इस स्तोत्रको गाकर उनकी स्तुति करते हैं—'जो विश्वकी उत्पत्ति आदिमें उनके कर्ता होकर भी कर्तृत्वके अभिमानसे नहीं बँधते, शरीरमें रहते हुए भी उसके धर्म भूख प्यास आदिके वशीभूत नहीं होते तथा द्रष्टा होनेपर भी जिनकी दृष्टि दृश्यके गुण-दोषोंसे दूषित नहीं होती—उन निःसङ्ग एवं विशुद्ध साक्षिस्वरूप भगवान् नर नारायणको नमस्कार है । योगेश्वर ! हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्माजीने योग साधनकी सबसे बड़ी कुशलता यही बतलायी है कि मनुष्य अन्त कालमें देहाभिमानको छोड़कर भक्तिपूर्वक आपके प्राकृत गुणरहित स्वरूपमें अपना मन लगावे । क्योंकि लौकिक और पारलौकिक भोगोंके लालची मूढ पुरुष जैसे पुत्र, स्त्री और धनकी चिन्ता करके मौतसे डरते हैं—उसी प्रकार यदि विद्वान्को भी इस निन्दनीय शरीरके छूटनेका भय ही बना रहा, तो उसका ज्ञान प्राप्तिके लिये किया हुआ सारा प्रयत्न केवल श्रममात्र ही है । अत. अधोक्षज ! आप हमें अपना स्वाभाविक प्रेमरूप भक्तियोग प्रदान कीजिये, जिससे कि प्रभो ! इस निन्दनीय शरीरमें आपकी मायाके कारण बद्धमूल हुई दुर्भेद्य अहंता ममताको हम तुरत काट डालें' ॥ ९–१५ ॥

राजन् ! इस भारतवर्षमें भी बहुत से पर्वत और नदियाँ हैं—जैसे मलय, मङ्गलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेङ्कट, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, शुक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गोकामुख, इन्द्रकील और कामगिरि आदि । इसी प्रकार और भी सैकड़ों हजारों पर्वत हैं । उनके तटप्रान्तोंसे निकलनेवाले नद और नदियाँ भी अगणित हैं । ये नदियाँ अपने नामसे ही जीवको पवित्र कर देती हैं, भारतीय प्रजा इन्हींके जलमें स्नानादि करती हैं । उनमेंसे मुख्य मुख्य नदियाँ ये हैं—चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी, कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुङ्गभद्रा, कृष्णा, वेण्या, भीमरथी, गोदावरी, निर्विन्ध्या, पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिन्धु, अन्ध और शोण नामके नद, महानदी, वेदस्मृति, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मन्दाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा । इस वर्षमें जन्म लेनेवाले पुरुषोंको ही अपने किये हुए सात्त्विक, राजस और तामस कर्मोंके अनुसार क्रमशः नाना प्रकारकी दिव्य, मानुष और नारकी योनियाँ प्राप्त होती हैं, क्योंकि कर्मानुसार सब जीवोंको सभी योनियाँ प्राप्त हो सकती हैं । इसी वर्षमें अपने अपने वर्णके लिये नियत किये हुए धर्मोंका विधिवत् अनुष्ठान करनेसे मोक्षतककी प्राप्ति हो सकती है । परीक्षित् ! सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा, रागादि दोषोंसे रहित, अनिर्वचनीय, निराधार परमात्मा भगवान् वासुदेवमें अनन्य एवं अहैतुक भक्तिभाव ही यह मोक्षपद है । यह भक्तिभाव तभी प्राप्त होता है, जब अनेक प्रकारकी गतियोंको प्रकट करनेवाली अविद्यारूप हृदय की ग्रन्थि कट जानेपर भगवान्के प्रेमी भक्तोंका सङ्ग मिलता है ॥ १६–२० ॥

देवता भी भारतवर्षमें उत्पन्न हुए मनुष्योंकी इस प्रकार महिमा गाते हैं—'अहा ! जिन जीवोंने भारतवर्षमें भगवान्की सेवाके योग्य मनुष्य जन्म प्राप्त किया है, उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है ? अथवा इनपर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं ? इस परम सौभाग्यके लिये तो निरन्तर हम भी तरसते

छोड़कर और कौन इस प्रकार यज्ञोंका विधिवत् अनुष्ठान करनेवाला, मनस्वी, बहुज्ञ, धर्मकी रक्षा करनेवाला, लक्ष्मीका प्रियपात्र, साधुसमाजका शिरोमणि और सत्पुरुषोंका सच्चा सेवक हो सकता है ! सत्यसङ्कल्पवाली परमसाध्वी श्रद्धा, मैत्री और दया आदि दक्षकन्याओंने गङ्गा आदि नदियोंके सहित बड़ी प्रसन्नतासे उनका अभिषेक किया था तथा उनकी इच्छा न होनेपर भी वसुन्धराने, गौ जिस प्रकार बछड़ेके स्नेहसे पिन्हाकर दूध देती है, उसी प्रकार उनके गुणोंपर रीझकर प्रजाको धन-रत्नादि सभी अभीष्ट पदार्थ दिये थे। उन्हें कोई कामना न थी, तब भी वेदोक्त कर्मोंने उनको सब प्रकारके भोग दिये, राजाओंने युद्धस्थलमें उनके बाणोंसे सत्कृत होकर तरह-तरहकी भेंटें दीं तथा ब्राह्मणोंने दक्षिणादि धर्मसे सन्तुष्ट होकर उन्हें परलोकमें मिलनेवाले अपने धर्मफलका छठा अंश दिया। उनके यज्ञमें बहुत अधिक सोमपान करनेसे इन्द्र उन्मत्त हो गये थे, तथा उनके अत्यन्त श्रद्धा तथा विशुद्ध और निश्चल भक्तिभावसे समर्पित किये हुए यज्ञफलको भगवान् यज्ञपुरुषने साक्षात् प्रकट होकर ग्रहण किया था। इस प्रकार जिनके तृप्त होनेसे ब्रह्माजीसे लेकर देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष एवं तृणपर्यन्त सभी जीव तत्काल तृप्त हो जाते हैं—वे विश्वात्मा श्रीहरि नित्यतृप्त होकर भी राजर्षि गयके यज्ञमें तृप्त हो गये थे। इसलिये उनकी बराबरी कोई दूसरा व्यक्ति कैसे कर सकता है ? ॥८-१३॥

महाराज गयके गयन्तीके गर्भसे चित्ररथ, सुगति और अवरोध नामक तीन पुत्र हुए। उनमें चित्ररथकी पत्नी ऊर्णासे सम्राट्का जन्म हुआ। सम्राट्के उत्कलासे मरीचि और मरीचिके विन्दुमतीसे विन्दुमान् नामक पुत्र हुआ। उसके सरघासे मधु, मधुके सुमनासे वीरव्रत और वीरव्रतके भोजासे मन्थु और प्रमन्थु नामके दो पुत्र हुए। उनमेंसे मन्थुके सत्याके गर्भसे भौवन, भौवनके दूषणाके उदरसे त्वष्टा, त्वष्टाके विरोचनासे विरज और विरजके विषूची नामकी भार्यासे शतजित् आदि सौ पुत्र और एक कन्याका जन्म हुआ। विरजके विषयमें यह श्लोक प्रसिद्ध है—'जिस प्रकार भगवान् विष्णु देवताओंकी शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार इस प्रियव्रत-वंशको इसमें सबसे पीछे उत्पन्न हुए राजा विरजने अपने सुयशसे विभूषित किया था'॥१४-१६॥

सोलहवाँ अध्याय

भुवनकोशका वर्णन

राजा परीक्षित्ने कहा—मुनिवर ! जहाँतक सूर्यका प्रकाश है और जहाँतक तारागणके सहित चन्द्रदेव दीख पड़ते हैं, वहाँतक आपने भूमण्डलका विस्तार बतलाया है। उसमें भी आपने बतलाया कि महाराज प्रियव्रतके रथके पहियोंकी सात लीकोंसे सात समुद्र बन गये थे, जिनके कारण इस भूमण्डलमें सात द्वीपोंका विभाग हुआ। अतः भगवन् ! अब मैं इन सबका परिमाण और लक्षणोंके सहित पूरा विवरण जानना चाहता हूँ; क्योंकि जो मन भगवान्‌के इस गुणमय स्थूल विग्रहमें लग सकता है, उसीका उनके वासुदेवसंज्ञक स्वयम्प्रकाश निर्गुण ब्रह्मरूप सूक्ष्मतम स्वरूपमें भी लगना सम्भव है। अतः गुरुवर ! इस विषयका विशदरूपसे वर्णन करनेकी कृपा कीजिये ॥ १-३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—महाराज ! भगवान्‌की मायाके गुणोंका इतना विस्तार है कि यदि कोई पुरुष देवताओंके समान आयु पा ले, तो भी मन या वाणीसे इसका अन्त नहीं पा सकता। इसलिये हम नाम, रूप, परिमाण और लक्षणोंके द्वारा मुख्य-मुख्य बातोंको लेकर ही इस भूमण्डलकी विशेषताओंका वर्णन करेंगे। यह जम्बूद्वीप—जिसमें हम रहते हैं—भूमण्डलरूप कमलके कोशस्थानीय जो सात द्वीप हैं, उनमें सबसे भीतरका कोश है। इसका विस्तार एक लाख योजन है और यह कमलपत्रके समान गोलाकार है। इसमें नौ-नौ हजार योजन विस्तारवाले नौ वर्ष हैं, जो इनकी सीमाओंका विभाग करनेवाले आठ पर्वतोंसे बँटे हुए हैं। इनके बीचों-बीच इलावृत नामका दसवाँ वर्ष है, जिसके मध्यमें कुलपर्वतोंका राजा मेरुपर्वत है। वह मानो भूमण्डलरूप कमलकी कर्णिका ही है। वह ऊपरसे नीचेतक सारा-का-सारा सुवर्णमय है और एक लाख योजन ऊँचा है। उसका विस्तार शिखरपर बत्तीस हजार और तलैटीमें सोलह हजार योजन है तथा सोलह हजार योजन ही वह भूमिके भीतर घुसा हुआ है। अर्थात् भूमिके बाहर उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। इलावृतवर्षके उत्तरमें क्रमशः नील, श्वेत और शृङ्गवान् नामके तीन पर्वत हैं—जो रम्यक, हिरण्मय और कुरु नामके वर्षोंकी सीमा बाँधते हैं। ये पूर्वसे पश्चिमतक खारे पानीके समुद्रतक फैले हुए हैं।

क्षीण होते रहते हैं। इनकी आयु एक हजार वर्षकी होती है। इनके शरीरोंमें देवताओंकी भाँति थकावट, पसीना आदि नहीं होता और सन्तानोत्पत्ति भी उन्हींके समान होती है। ये त्रयीविद्याके द्वारा तीनों वेदोंमें वर्णन किये हुए स्वर्गके द्वारभूत आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं और कहते हैं कि 'जो सत्य (अनुष्ठानयोग्य धर्म) और ऋत (प्रतीत होनेवाले धर्म), वेद और शुभाशुभ फलके अधिष्ठाता हैं—उन पुराणपुरुष विष्णुस्वरूप भगवान् सूर्यकी हम शरणमें जाते हैं।' प्लक्ष आदि पाँच द्वीपोंमें सभी मनुष्योंको जन्मसे ही आयु, इन्द्रिय, मनोबल, इन्द्रियबल, शारीरिक बल, बुद्धि और पराक्रम समानरूपसे सिद्ध रहते हैं॥१—६॥

प्लक्षद्वीप अपने ही समान विस्तारवाले इक्षुरसके समुद्रसे घिरा हुआ है। उसके आगे उससे दुगुने परिमाणवाला शाल्मलीद्वीप है, जो उतने ही विस्तारवाले मदिराके सागरसे घिरा है। प्लक्षद्वीपके पाकरके पेड़के बराबर उसमें शाल्मली (सेमर) का वृक्ष है। कहते हैं, यही वृक्ष अपने वेदमय पंखोंसे भगवान्‌की स्तुति करनेवाले पक्षिराज भगवान् गरुडका निवासस्थान है तथा यही इस द्वीपके नामकरणका भी हेतु है। इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज यज्ञबाहु थे। उन्होंने इसके सुरोचन, सौमनस्य, रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन और अविज्ञात नामसे सात विभाग किये और इन्हें इन्हीं नामवाले अपने पुत्रोंको सौंप दिया। इनमें भी सात वर्षपर्वत और सात ही नदियाँ प्रसिद्ध हैं। पर्वतोंके नाम स्वरस, शतशृङ्ग, वामदेव, कुन्द, मुकुन्द, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति हैं तथा नदियाँ अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका हैं। इन वर्षोंमें रहनेवाले श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषन्धर नामके चार वर्ण वेदमय आत्मस्वरूप भगवान् चन्द्रमाकी वेदमन्त्रोंसे उपासना करते हैं और कहते हैं कि 'जो कृष्णपक्ष और शुक्लपक्षमें अपनी किरणोंसे विभाग करके देवता, पितर और सम्पूर्ण प्राणियोंको अन्न देते हैं—वे चन्द्रदेव हमारे राजा (रञ्जन करनेवाले) हों॥ ७—१२॥

इसी प्रकार मदिराके समुद्रसे आगे उससे दूने परिमाणवाला कुशद्वीप है। पूर्वोक्त द्वीपोंके समान यह भी अपने ही समान विस्तारवाले घृतके समुद्रसे घिरा हुआ है। इसमें भगवान्‌का रचा हुआ एक कुशोंका झाड़ है, उसीसे इस द्वीपका नाम निश्चित हुआ है। वह दूसरे अग्निदेवके समान अपनी कोमल शिखाओंकी कान्तिसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करता रहता है। राजन्! इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज हिरण्यरेता थे। उन्होंने इसके सात विभाग करके उनमेंसे एक-एक अपने सात पुत्र वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और वामदेवको दे दिया और स्वयं तप करने चले गये। उनकी सीमाओंको निश्चय करनेवाले सात पर्वत हैं और सात ही नदियाँ हैं। पर्वतोंके नाम चक्र, चतुःशृङ्ग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविण हैं। नदियोंके नाम हैं—रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रवृन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता और मन्त्रमाला। इनके जलमें स्नान करके कुशद्वीपवासी कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक वर्णके पुरुष अग्निस्वरूप भगवान् हरिका यज्ञादि कर्मकौशलके द्वारा पूजन करते हैं तथा इस प्रकार स्तुति करते हैं—'अग्ने! आप परब्रह्मको साक्षात् हवि पहुँचानेवाले हैं, अतः भगवान्‌के अङ्गभूत देवताओंके यजनद्वारा आप उन परमपुरुषका ही यजन करें'॥१३—१७॥

राजन्! फिर घृतसमुद्रसे आगे उससे द्विगुण परिमाणवाला क्रौञ्चद्वीप है। जिस प्रकार कुशद्वीप घृतसमुद्रसे घिरा हुआ है, उसी प्रकार यह अपने ही समान विस्तारवाले दूधके समुद्रसे घिरा हुआ है। यहाँ क्रौञ्च नामका एक बहुत बड़ा पर्वत है, उसीके कारण इसका नाम क्रौञ्चद्वीप हुआ है। पूर्वकालमें श्रीस्वामिकार्तिकेयजीके शस्त्रप्रहारसे इसका कटिप्रदेश और लता-निकुञ्जादि क्षत-विक्षत हो गये थे, किन्तु क्षीरसमुद्रसे सींचा जाकर और वरुणदेवसे सुरक्षित होकर यह फिर निर्भय हो गया। इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज घृतपृष्ठ थे। वे बड़े ज्ञानी थे। उन्होंने इसको सात वर्षोंमें विभक्त कर उनमें उन्हींके समान नामवाले अपने सात उत्तराधिकारी पुत्रोंको नियुक्त किया और स्वयं सम्पूर्ण जीवोंके अन्तरात्मा, परममङ्गलमय कीर्तिशाली भगवान् श्रीहरिके पावन पादारविन्दोंकी शरण ली। महाराज घृतपृष्ठके आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामा, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति—ये सात पुत्र थे। उनके वर्षोंमें भी सात वर्षपर्वत और सात ही नदियाँ कही जाती हैं। पर्वतोंके नाम शुक्ल, वर्धमान, भोजन, उपबर्हिण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र हैं तथा नदियाँ अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, पवित्रवती और शुक्ला नामवाली हैं। इनके पवित्र और निर्मल जलका सेवन करनेवाले वहाँके पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक नामके निवासी जलसे भरी हुई अञ्जलिके द्वारा आपोदेवता (जलके देवता) की उपासना करते हैं और कहते

चारों ओर घिरा हुआ सुवर्णगिरि मेरु अग्निके समान जगमगाता रहता है। कहते हैं, मेरुके शिखरपर बीचोंबीच भगवान् ब्रह्माजीकी सुवर्णमयी पुरी है—जो आकारमें समचौरस तथा करोड़ योजन विस्तारवाली है। उसके नीचे पूर्वादि आठ दिशा और उपदिशाओंमें उनके अधिपति इन्द्रादि आठ लोकपालोंकी आठ पुरियाँ हैं। वे अपने-अपने स्वामीके अनुरूप उन्हीं-उन्हीं दिशाओंमें हैं तथा परिमाणमें ब्रह्माजीके पुरीसे चौथाई हैं ॥ २६—२९ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

गङ्गाजीका विवरण और रुद्रदेवकृत भगवान् सङ्कर्षणकी स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जब राजा बलिकी यज्ञशालामें साक्षात् यज्ञमूर्ति भगवान् विष्णुने त्रिलोकीको नापनेके लिये अपना पैर फैलाया, तो उनके बायें पैरके अँगूठेके नखसे ब्रह्माण्डकटाहका ऊपरका भाग फट गया। उस छिद्रमें होकर जो ब्रह्माण्डसे बाहरके जलकी धारा आयी, वह उस चरणकमलको धोनेसे उसमें लगे हुए केसरके मिलनेसे लाल हो गयी। उस निर्मल धाराका स्पर्श होते ही संसारके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, किन्तु वह सर्वथा निर्मल ही रहती है। पहले किसी और नामसे न पुकारकर उसे 'भगवत्पदी' ही कहते थे। वह धारा हजारों युग बीतनेपर स्वर्गके शिरोभागमें स्थित ध्रुवलोकमें उतरी, जिसे 'विष्णुपद' भी कहते हैं। वीरव्रत परीक्षित्! उस ध्रुवलोकमें उत्तानपादके पुत्र परम भागवत ध्रुवजी रहते हैं। वे नित्यप्रति बढ़ते हुए भक्तिभावसे 'यह हमारे कुलदेवताका चरणोदक है' ऐसा मानकर आज भी उस जलको बड़े आदरसे सिरपर चढ़ाते हैं। उस समय प्रेमावेशके कारण उनका हृदय अत्यन्त गद्गद हो जाता है, उत्कण्ठावश बरबस मुँदे हुए दोनों नयन-कमलोंसे निर्मल आँसुओंकी धारा बहने लगती है और शरीरमें रोमाञ्च हो आता है ॥ १-२ ॥

इसके पश्चात् आत्मनिष्ठ सप्तर्षिगण उनका प्रभाव जाननेके कारण 'यही तपस्याकी आत्यन्तिक सिद्धि है' ऐसा मानकर उसे आज भी इस प्रकार आदरपूर्वक अपने जटाजूटपर वैसे ही धारण करते हैं, जैसे मुमुक्षुजन प्राप्त हुई मुक्तिको। यों ये बड़े ही निष्काम हैं; सर्वात्मा भगवान् वासुदेवकी निश्चल भक्तिको ही अपना परमधन मानकर इन्होंने अन्य सभी कामनाओंको त्याग दिया है, यहाँतक कि आत्मज्ञानको भी ये उसके सामने कोई चीज नहीं समझते। वहाँसे गङ्गाजी करोड़ों विमानोंसे घिरे हुए आकाशमें होकर उतरती हैं और चन्द्रमण्डलको आप्लावित करती मेरुके शिखरपर ब्रह्मपुरीमें गिरती हैं। वहाँ ये सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा नामसे चार धाराओंमें विभक्त हो जाती हैं तथा अलग-अलग चारों दिशाओंमें बहती हुई अन्तमें नद-नदियोंके अधीश्वर समुद्रमें गिर जाती हैं। इनमें सीता ब्रह्मपुरीसे गिरकर केसराचलोंके सर्वोच्च शिखरोंमें होकर नीचेकी ओर बहती गन्धमादनके शिखरोंपर गिरती है और भद्राश्ववर्षको प्लावित कर पूर्वकी ओर खारे समुद्रमें मिल जाती है। इसी प्रकार चक्षु माल्यवान्के शिखरपर पहुँचकर वहाँसे बेरोक-टोक केतुमालवर्षमें बहती पश्चिमकी ओर क्षारसमुद्रमें जा मिलती है। भद्रा मेरुपर्वतके शिखरसे उत्तरकी ओर गिरती है तथा एक पर्वतसे दूसरे पर्वतपर जाती अन्तमें शृङ्गवान्के शिखरसे गिरकर उत्तरकुरु देशमें होकर उत्तरकी ओर बहती हुई समुद्रमें मिल जाती है। अलकनन्दा ब्रह्मपुरीसे दक्षिणकी ओर गिरकर अनेकों गिरि-शिखरोंको लाँघती हेमकूट पर्वतपर पहुँचती है, वहाँसे अत्यन्त तीव्र वेगसे हिमालयके शिखरोंको चीरती हुई भारतवर्षमें आती है और फिर दक्षिणकी ओर समुद्रमें जा मिलती है। इसमें स्नान करनेके लिये आनेवाले पुरुषोंको पद-पदपर अश्वमेध और राजसूय आदि यज्ञोंका फल भी दुर्लभ नहीं है। इसी प्रकार प्रत्येक वर्षमें मेरु आदि पर्वतोंसे निकली हुई और भी सैकड़ों नद-नदियाँ हैं ॥ ३—१० ॥

इन सब वर्षोंमें भारतवर्ष ही कर्मभूमि है। शेष आठ वर्ष तो स्वर्गवासी पुरुषोंके स्वर्गभोगसे बचे हुए पुण्योंको भोगनेके स्थान हैं। इसलिये इन्हें भूलोकके स्वर्ग भी कहते हैं। वहाँके देवतुल्य मनुष्योंकी मानवी गणनाके अनुसार दस हजार वर्षकी आयु होती है। उनमें दस हजार हाथियोंका बल होता है तथा उनके वज्रसदृश सुदृढ शरीरमें जो शक्ति, यौवन और उल्लास होते हैं—उनके कारण वे बहुत समयतक मैथुन आदि विषय भोगते रहते हैं। अन्तमें जब भोग समाप्त होनेपर उनकी आयुका केवल एक वर्ष रह जाता है, तब उनकी स्त्रियाँ गर्भ धारण करती हैं। इस प्रकार वहाँ सर्वदा त्रेतायुगके समान समय बना रहता है। वहाँ ऐसे आश्रम, भवन और पर्वतोंकी घाटियाँ हैं जिनके सुन्दर बगीचोंमें सब प्रकारके वृक्ष और लताएँ सुशोभित हैं; इन वृक्षोंकी शाखाएँ सभी

विग्रह धारण किये हुए हैं। उनके करकमलोंमें शङ्ख चक्रादि आयुध सुशोभित हैं। इस प्रकार अपनी मायासे रचे हुए विविध लोकोंकी व्यवस्थाको सुरक्षित रखनेके लिये वे इसी लीलामय रूपसे कल्पके अन्ततक वहीं रहते हैं। लोकालोकके अन्तर्वर्ती भूभागका जितना विस्तार है, उसीसे उसके दूसरी ओरके अलोक प्रदेशके परिमाणकी भी व्याख्या समझ लेनी चाहिये। उसके आगे तो केवल योगेश्वरोंकी ही ठीक ठीक गति हो सकती है ॥ ३८–४२ ॥

राजन्! स्वर्ग और पृथ्वीके बीचमें जो ब्रह्माण्डका केन्द्र है, वहीं सूर्यकी स्थिति है। सूर्य और ब्रह्माण्डगोलकके बीचमें सब ओरसे पचीस करोड़ योजनका अन्तर है। सूर्य इस मृत अर्थात् मरे हुए (अचेतन) अण्डमें वैराजरूपसे विराजते हैं, इसीसे इनका नाम 'मार्त्तण्ड' हुआ है। ये हिरण्मय (ज्योतिर्मय) ब्रह्माण्डसे प्रकट हुए हैं, इसलिये इन्हें 'हिरण्यगर्भ' भी कहते हैं। सूर्यके द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक (अन्तरिक्षलोक), भूर्लोक, स्वर्ग और मोक्षके प्रदेश, नरक और रसातल तथा अन्य समस्त भागोंका विभाग होता है तथा सूर्य ही देवता, तिर्यक, मनुष्य, सरीसृप और लता वृक्षादि समस्त जीवसमूहोंके आत्मा और नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं ॥ ४३–४६ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

सूर्यके रथ और उसकी गतिका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! परिमाण और लक्षणोंके सहित इस भूमण्डलका कुल इतना ही विस्तार है, सो हमने तुम्हें सुना दिया। इसीके अनुसार विद्वान्‌लोग द्युलोकका भी परिमाण बताते हैं। जिस प्रकार चना मटर आदिके दो दलोंमेंसे एकका स्वरूप जान लेनेसे दूसरेका भी जाना जा सकता है, उसी प्रकार भूलोकके परिमाणसे ही द्युलोकका भी परिमाण जान लेना चाहिये। इन दोनोंके बीचमें अन्तरिक्षलोक है। यह इन दोनोंका सन्धिस्थान है। इसके मध्यभागमें स्थित ग्रह और नक्षत्रोंके अधिपति भगवान् सूर्य अपने ताप और प्रकाशसे तीनों लोकोंको तपाते और प्रकाशित करते रहते हैं। वे उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् (मध्यम) मार्गोंसे क्रमशः मन्द, शीघ्र और समान गतियोंसे चलते हुए समयानुसार मकरादि राशियोंमें ऊँचे, नीचे और समान स्थानोंमें जाकर दिन-रातको बड़ा छोटा या समान करते हैं। जब सूर्यभगवान् मेष या तुलाराशिपर आते हैं, तो दिन रात समान हो जाते हैं, जब वृषादि पाँच राशियोंमें चलते हैं तो प्रतिमास रात्रियोंमें एक एक घड़ी कम होती जाती है और उसी हिसाबसे दिन बढते जाते हैं तथा जब वृश्चिकादि पाँच राशियोंमें चलते हैं तो दिन और रात्रियोंमें इसके विपरीत [illegible] है अर्थात् दिन प्रतिमास एक एक घड़ी घटते [illegible] बढती जाती हैं। इस प्रकार दक्षिणायन [illegible] बढते रहते हैं और उत्तरायण लगने [illegible] ॥ [illegible] पर्वतपर सूर्यकी परि[illegible] लाख योजन बताते हैं।

उस पर्वतपर मेरुके पूर्वकी ओर इन्द्रकी देवधानी नामकी पुरी है, दक्षिणकी ओर यमराजकी संयमनी पुरी है, पश्चिममें वरुणकी निम्लोचनी नामकी पुरी है और उत्तरमें चन्द्रमाकी विभावरी पुरी है। इन पुरियोंमें मेरुके चारों ओर समय समयपर सूर्योदय, मध्याह्न, सायङ्काल और अर्धरात्रि होते रहते हैं, इन्हींके कारण सम्पूर्ण जीवोंकी प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है। राजन्! जो लोग सुमेरुपर रहते हैं उन्हें तो सूर्यदेव सदा मध्याह्नकालीन रहकर ही तपाते रहते हैं। वे अपनी गतिके अनुसार अश्विनी आदि नक्षत्रोंकी ओर जाते हुए यद्यपि मेरुको बायीं ओर रखकर चलते हैं, तो भी सारे ज्योतिर्मण्डलको घुमानेवाली निरन्तर दायीं ओर बहती हुई प्रवाह वायुद्वारा घुमा दिये जानेसे वे उसे दायीं ओर रखकर चलते जान पड़ते हैं। जिस पुरीमें सूर्यभगवान्‌का उदय होता है, उसके ठीक दूसरी ओरकी पुरीमें वे अस्त होते मालूम होंगे और जहाँ वे लोगोंको पसीने-पसीने करके तपा रहे होंगे, उसके ठीक सामनेकी ओर आधीरात होनेके कारण वे उन्हें निद्रावश किये होंगे। जिन लोगोंको मध्याह्नके समय वे स्पष्ट दीख रहे होंगे, वे ही यदि किसी प्रकार पृथ्वीके दूसरी ओर पहुँच जायँ तो उनका दर्शन नहीं कर सकेंगे ॥ ७–९ ॥

सूर्यदेव जब इन्द्रकी पुरीसे यमराजकी पुरीको चलते हैं, तो पन्द्रह घड़ीमें वे सवा दो करोड़ और साढे बारह लाख योजनसे कुछ—पचीस हजार वर्ष—अधिक चलते हैं। फिर इसी क्रमसे वे वरुण और चन्द्रमाकी पुरियोंको पार करके पुनः इन्द्रकी पुरीमें पहुँचते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा आदि अन्य ग्रह भी ज्योतिश्चक्रमें अन्य नक्षत्रोंके साथ-साथ उदित और

अठारहवाँ अध्याय

अन्य वर्षोंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! भद्राश्ववर्षमें धर्मपुत्र भद्रश्रवा और उनके मुख्य-मुख्य सेवक भगवान् वासुदेवकी हयग्रीवसंज्ञक धर्ममयी प्रियमूर्तिको अत्यन्त समाधिनिष्ठाके



द्वारा हृदयमें स्थापित कर 'ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नमः।' (चित्तको विशुद्ध करनेवाले ओङ्कारस्वरूप भगवान् धर्मको नमस्कार है ।) इस मन्त्रका जप करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं। भद्रश्रवा और उनके सेवक कहते हैं—'अहो! भगवान्‌की लीला बड़ी विचित्र है, जिसके कारण यह जीव सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेवाले कालको देखकर भी नहीं देखता और तुच्छ विषयोंका सेवन करनेके लिये पापमय विचारोंकी उधेड़-बुनमें लगा हुआ अपने ही हाथों अपने पुत्र और पितादिकी लाशको जलाकर भी स्वयं जीते रहनेकी इच्छा करता है। विद्वान्‌लोग जगत्‌को नश्वर बताते हैं और आत्मज्ञानी ऐसा ही देखते भी हैं; तो भी जन्मरहित प्रभो! आपकी मायासे लोग मोहित हो जाते हैं। आप अनादि हैं तथा आपके कृत्य बड़े विस्मयजनक हैं, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। परमात्मन्! आप अकर्ता और मायाके आवरणसे रहित हैं। तो भी जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय—ये आपके ही कर्म माने गये हैं। सो ठीक ही है, इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि सर्वात्मरूपसे आप ही सम्पूर्ण कार्योंके कारण हैं और अपने शुद्धस्वरूपमें इस कार्य-कारणभावसे सर्वथा अतीत हैं। आपका विग्रह मनुष्य और घोड़ेका संयुक्त रूप है। प्रलयकालमें जब तमःप्रधान दैत्यगण वेदोंको चुरा ले गये थे, तब ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर आपने उन्हें रसातलसे लाकर दिया। ऐसी अमोघ लीला करनेवाले सत्यसङ्कल्प आपको मैं नमस्कार करता हूँ।१—६।

हरिवर्षखण्डमें भगवान् नृसिंहरूपसे रहते हैं। उन्होंने यह रूप जिस कारणसे धारण किया था, उसका आगे (सप्तम स्कन्धमें) वर्णन किया जायगा। भगवान्‌के उस रूपकी महाभागवत प्रह्लादजी उस वर्षके अन्य पुरुषोंके सहित निष्काम एवं अनन्य भक्तिभावसे उपासना करते हैं। ये प्रह्लादजी महापुरुषोचित गुणोंसे सम्पन्न हैं तथा इन्होंने अपने शील और आचरणसे दैत्य और दानवोंके कुलको पवित्र कर दिया है। वे 'ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा। अभयमभयमात्मनि भूयिष्ठाः ॐ क्ष्रौम्।' (ओङ्कारस्वरूप भगवान् श्रीनृसिंहदेवको नमस्कार है। आप अग्नि आदि तेजोंके भी तेज हैं, आपको नमस्कार है। हे वज्रनख! हे वज्रदंष्ट्र! आप हमारे समीप प्रकट होइये; हमारी कर्म-वासनाओंको जला डालिये, जला डालिये। हमारे अज्ञानरूप अन्धकारको नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये। ॐ स्वाहा। हमारे अन्तःकरणमें अभय-दान देते हुए प्रकाशित होइये। ॐ क्ष्रौम्।) इस मन्त्रका जप करते हुए इस प्रकार कहते हैं—'नाथ! समस्त विश्वका कल्याण हो, दुष्टलोग अपनी कुटिलता छोड़कर शान्त हों, सब प्राणी अपनी बुद्धिसे एक-दूसरेका हितचिन्तन करें, हमारा मन शुभ मार्गमें प्रवृत्त हो और हम सबकी बुद्धि निष्कामभावसे भगवान् श्रीहरिमें लगे। प्रभो! घर, स्त्री, पुत्र, धन और भाई-बन्धुओंमें हमारी आसक्ति न हो; यदि हो तो केवल भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंमें ही हो। जो धीर पुरुष केवल शरीरनिर्वाहके योग्य अन्नादिसे सन्तुष्ट रहता है, उसे जितनी जल्दी सिद्धि प्राप्त होती है वैसी इन्द्रियलोलुप पुरुषको नहीं होती। उन भगवद्भक्तोंके सङ्गसे भगवान्‌के तीर्थतुल्य पवित्र चरित्र सुननेको मिलते हैं, जो उनकी असाधारण शक्ति एवं प्रभावके सूचक होते हैं। उनका बार-बार सेवन करनेवालोंके कानोंके रास्तेसे भगवान् हृदयमें प्रवेश कर जाते हैं और उनके सभी प्रकारके

विग्रह धारण किये हुए हैं। उनके करकमलोंमें शङ्ख चक्रादि आयुध सुशोभित हैं। इस प्रकार अपनी मायासे रचे हुए विविध लोकोंकी व्यवस्थाको सुरक्षित रखनेके लिये वे इसी लीलामय रूपसे कल्पके अन्ततक वहीं रहते हैं। लोकालोकके अन्तर्वर्ती भूभागका जितना विस्तार है, उसीसे उसके दूसरी ओरके अलोक प्रदेशके परिमाणकी भी व्याख्या समझ लेनी चाहिये। उसके आगे तो केवल योगेश्वरोंकी ही ठीक ठीक गति हो सकती है ॥ ३८–४२ ॥

राजन्! स्वर्ग और पृथ्वीके बीचमें जो ब्रह्माण्डका केन्द्र है, वहीं सूर्यकी स्थिति है। सूर्य और ब्रह्माण्डगोलकके बीचमें सब ओरसे पचीस करोड़ योजनका अन्तर है। सूर्य इस मृत अर्थात् मरे हुए (अचेतन) अण्डमें वैरागरूपसे विराजते हैं, इसीसे इनका नाम 'मार्त्तण्ड' हुआ है। ये हिरण्मय (ज्योतिर्मय) ब्रह्माण्डसे प्रकट हुए हैं, इसलिये इन्हें 'हिरण्यगर्भ' भी कहते हैं। सूर्यके द्वारा ही दिशा, आकाश, द्युलोक (अन्तरिक्षलोक), भूर्लोक, स्वर्ग और मोक्षके प्रदेश, नरक और रसातल तथा अन्य समस्त भागोंका विभाग होता है तथा सूर्य ही देवता, तिर्यक्, मनुष्य, सरीसृप और लता वृक्षादि समस्त जीवसमूहोंके आत्मा और नेत्रेन्द्रियके अधिष्ठाता हैं ॥ ४३–४६ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

सूर्यके रथ और उसकी गतिका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! परिमाण और लक्षणोंके सहित इस भूमण्डलका कुल इतना ही विस्तार है, सो हमने तुम्हें सुना दिया। इसीके अनुसार विद्वान्लोग द्युलोकका भी परिमाण बताते हैं। जिस प्रकार चना मटर आदिके दो दलोंमेंसे एकका स्वरूप जान लेनेसे दूसरेका भी जाना जा सकता है, उसी प्रकार भूलोकके परिमाणसे ही द्युलोकका भी परिमाण जान लेना चाहिये। इन दोनोंके बीचमे अन्तरिक्षलोक है। यह इन दोनोंका सन्धिस्थान है। इसके मध्यभागमें स्थित ग्रह और नक्षत्रोंके अधिपति भगवान् सूर्य अपने ताप और प्रकाशसे तीनों लोकोंको तपाते और प्रकाशित करते रहते हैं। वे उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् (मध्यम) मार्गोंसे क्रमशः मन्द, शीघ्र और समान गतियोंसे चलते हुए समयानुसार मकरादि राशियोंमें ऊँचे, नीचे और समान स्थानोंमें जाकर दिन-रातको बड़ा छोटा या समान करते हैं। जब सूर्यभगवान् मेष या तुलाराशिपर आते हैं, तो दिन रात समान हो जाते हैं, जब वृषादि पाँच राशियोंमें चलते हैं तो प्रतिमास रात्रियोंमें एक एक घड़ी कम होती जाती है और उसी हिसाबसे दिन बढते जाते हैं तथा जब वृश्चिकादि पाँच राशियोंमें चलते हैं तो दिन और रात्रियोंमें इसके विपरीत परिवर्तन होता है अर्थात् दिन प्रतिमास एक एक घड़ी घटते जाते हैं और रात्रियाँ बढती जाती हैं। इस प्रकार दक्षिणायन आरम्भ होनेतक दिन बढते रहते हैं और उत्तरायण लगने तक रात्रियाँ ॥ १–६ ॥

इस प्रकार पण्डितजन मानसोत्तर पर्वतपर सूर्यकी परिक्रमाका मार्ग नौ करोड़, इक्यावन लाख योजन बताते हैं। उस पर्वतपर मेरुके पूर्वकी ओर इन्द्रकी देवधानी नामकी पुरी है, दक्षिणकी ओर यमराजकी संयमनी पुरी है, पश्चिममें वरुणकी निम्लोचनी नामकी पुरी है और उत्तरमें चन्द्रमाकी विभावरी पुरी है। इन पुरियोंमें मेरुके चारों ओर समय समयपर सूर्योदय, मध्याह्न, सायङ्काल और अर्धरात्रि होते रहते हैं, इन्हींके कारण सम्पूर्ण जीवोंकी प्रवृत्ति या निवृत्ति होती है। राजन्! जो लोग सुमेरुपर रहते हैं उन्हें तो सूर्यदेव सदा मध्याह्नकालीन रहकर ही तपाते रहते हैं। वे अपनी गतिके अनुसार अश्विनी आदि नक्षत्रोंकी ओर जाते हुए यद्यपि मेरुको बायीं ओर रखकर चलते हैं, तो भी सारे ज्योतिर्मण्डलको घुमानेवाली निरन्तर दायीं ओर बहती हुई प्रवाह वायुद्वारा घुमा दिये जानेसे वे उसे दायीं ओर रखकर चलते जान पड़ते हैं। जिस पुरीमें सूर्यभगवान्का उदय होता है, उसके ठीक दूसरी ओरकी पुरीमें वे अस्त होते मालूम होंगे और जहाँ वे लोगोंको पसीने-पसीने करके तपा रहे होंगे, उसके ठीक सामनेकी ओर आधीरात होनेके कारण वे उन्हे निद्रावश किये होंगे। जिन लोगोंको मध्याह्नके समय वे स्पष्ट दीख रहे होंगे, वे ही यदि किसी प्रकार पृथ्वीके दूसरी ओर पहुँच जायँ तो उनका दर्शन नहीं कर सकेंगे ॥ ७–९ ॥

सूर्यदेव जब इन्द्रकी पुरीसे यमराजकी पुरीको चलते हैं, तो पद्रह घड़ीमें वे सवा दो करोड़ और साढे बारह लाख योजनसे कुछ—पचीस हजार वर्ष—अधिक चलते हैं। फिर इसी क्रमसे वे वरुण और चन्द्रमाकी पुरियोंको पार करके पुन इन्द्रकी पुरीमे पहुँचते है। इसी प्रकार चन्द्रमा आदि अन्य ग्रह भी ज्योतिश्चक्रमें अन्य नक्षत्रोंके साथ-साथ उदित और

तरह-तरहके कठोर व्रतोंसे आपकी ही आराधना करके अन्य लौकिक पतियोंकी इच्छा किया करती हैं। किन्तु वे उनके प्रिय पुत्र, धन और आयुकी रक्षा नहीं कर सकते; क्योंकि वे तो स्वयं ही परतन्त्र हैं। सच्चा पति (रक्षा करनेवाला या ईश्वर) तो वही है, जो स्वयं सर्वथा निर्भय हो और दूसरे भयभीत लोगोंकी सब प्रकार रक्षा कर सके। ऐसे पति तो एकमात्र आप ही हैं; यदि एकसे अधिक ईश्वर माने जायँ, तो उन्हें एक-दूसरेसे भय होनेकी सम्भावना है। अतएव आप अपनी प्राप्तिसे बढ़कर और किसी वस्तुको नहीं मानते। भगवन् ! जो स्त्री आपके चरणकमलोंका पूजन ही चाहती है, और किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करती—उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं; किन्तु जो किसी एक कामनाको लेकर आपकी उपासना करती है, उसे तो आप केवल वही वस्तु देते हैं और जब भोग समाप्त होनेपर वह नष्ट हो जाती है तो उसके लिये उसे सन्तप्त होना पड़ता है। अजित ! मुझे पानेके लिये, इन्द्रिय-सुखके अभिलाषी ब्रह्मा और रुद्र आदि समस्त सुरासुरगण घोर तपस्या करते रहते हैं; किन्तु आपके चरणकमलोंका आश्रय लेनेवाले भक्तके सिवा मुझे कोई पा नहीं सकता, क्योंकि मेरा मन तो आपहीमें लगा रहता है। अच्युत ! आप अपने जिस वन्दनीय करकमलको भक्तोंके मस्तकपर रखते हैं, उसे मेरे सिरपर भी रखिये। वरेण्य ! आप मुझे केवल श्रीलाञ्छनरूपसे अपने वक्षःस्थलमें ही धारण करते हैं; सो आप सर्वसमर्थ हैं, आपकी इन लीलाओंका रहस्य कौन जान सकता है ?' ॥ १८–२३ ॥

रम्यक वर्षमें भगवान्ने वहाँके अधिपति मनुको पूर्वकालमें अपना परम प्रिय मत्स्यरूप दिखाया था। मनुजी इस समय भी भगवान्के उसी रूपकी बड़े भक्तिभावसे उपासना करते हैं और 'ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नमः।' (सत्त्वप्रधान मुख्य प्राण—सूत्रात्मा—तथा मानसिक, ऐन्द्रियिक और शारीरिक शक्तिस्वरूप ओङ्कारपदवाच्य भगवान् महामत्स्यको बार-बार नमस्कार है।) इस मन्त्रका जप करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं ॥ २४-२५ ॥

प्रभो ! नट जिस प्रकार कठपुतलियोंको नचाता है, उसी प्रकार आप ब्राह्मणादि नामोंकी डोरीसे सम्पूर्ण विश्वको अपने अधीन करके नचा रहे हैं। अतः आप ही सबके प्रेरक हैं। आपको ब्रह्मादि लोकपालगण भी नहीं देख सकते; तथापि आप समस्त प्राणियोंके भीतर प्राणरूपसे, और बाहर वायुरूपसे निरन्तर सञ्चार करते रहते हैं। वेद ही आपका महान् शब्द है। एक बार इन्द्रादि इन्द्रियाभिमानी देवताओंको प्राणस्वरूप आपसे डाह हुआ। तब आपके अलग हो जानेपर



वे अलग-अलग अथवा आपसमें मिलकर भी मनुष्य-पशु, स्थावर-जङ्गम आदि जितने शरीर दिखायी देते हैं—उनमेंसे किसीकी बहुत यत्न करनेपर भी रक्षा नहीं कर सके। अजन्मा प्रभो ! आपने मेरे सहित समस्त औषध और लताओंकी आश्रयरूपा इस पृथ्वीको लेकर बड़ी-बड़ी उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त प्रलयकालीन समुद्रमें बड़े उत्साहसे विहार किया था। आप संसारके प्राणस्वरूप हैं, मेरा आपको नमस्कार है ॥२६–२८॥

हिरण्मयवर्षमें भगवान् कच्छपरूप धारण करके रहते



हैं। वहाँके निवासियोंके सहित पितृराज अर्यमा भगवान्की

मार्गको एक ही दिनमें तै कर लेता है। यह कृष्णपक्षमें क्षीण होती हुई कलाओंसे पितृगणके और शुक्लपक्षमें बढ़ती हुई कलाओंसे देवताओंके दिन-रातका विभाग करता है तथा तीस तीस मुहूर्तोंमें एक एक नक्षत्रको पार करता है। अन्नमय और अमृतमय होनेके कारण यही समस्त जीवोंका प्राण और जीवन है। ये जो सोलह कलाओंसे युक्त मनोमय, अन्नमय, अमृतमय पुरुषस्वरूप भगवान् चन्द्रमा हैं—ये ही देवता, पितर, मनुष्य, भूत, पशु, पक्षी, सरीसृप और वृक्षादि समस्त प्राणियोंके प्राणोंका पोषण करते हैं, इसलिये इन्हें 'सर्वमय' कहते हैं ॥ ८–१० ॥

चन्द्रमासे तीन लाख योजन ऊपर अभिजित्के सहित अट्ठाईस नक्षत्र हैं। भगवान्ने इन्हें कालचक्रमें नियुक्त कर रक्खा है, अत ये मेरुको दायीं ओर रखकर घूमते रहते हैं। इनसे दो लाख योजन ऊपर शुक्र दिखायी देता है। यह सूर्यकी शीघ्र, मन्द और समान गतियोंके अनुसार उन्हींके समान कभी आगे, कभी पीछे और कभी साथ साथ रहकर चलता है। यह वर्षा करनेवाला ग्रह है, इसलिये लोकोंको प्राय सर्वदा ही अनुकूल रहता है। इसकी गतिसे ऐसा अनुमान होता है कि यह वर्षा रोकनेवाले ग्रहोंको शान्त कर देता है ॥ ११ १२ ॥

शुक्रकी व्याख्याके अनुसार ही बुधकी गति भी समझ लेनी चाहिये। यह चन्द्रमाका पुत्र शुक्रसे दो लाख योजन ऊपर है। यह प्राय मङ्गलकारी ही है, किन्तु जब सूर्यकी गतिका उल्लङ्घन करके चलता है तो बहुत अधिक आँधी, बादल और सूखेके भयकी सूचना देता है। इससे दो लाख योजन ऊपर मङ्गल है। वह, यदि वक्रगतिसे न चले तो, एक एक राशिको तीन तीन पक्षमें भोगता हुआ बारहों राशियोंको पार करता है। यह अशुभ ग्रह है और प्राय अमङ्गलका सूचक है। इसके ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर भगवान् बृहस्पतिजी हैं। ये यदि वक्रगतिसे न चलें, तो एक एक राशिको एक एक वर्षमें भोगते हैं। ये प्राय ब्राह्मणकुलके लिये अनुकूल रहते हैं ॥ १३–१५ ॥

बृहस्पतिजीसे दो लाख योजन ऊपर शनैश्चरजी दिखायी देते हैं। ये तीस तीस महीनेतक एक एक राशिमें रहते हैं। अत इन्हें सब राशियोंको पार करनेमें तीस वर्ष लग जाते हैं। ये प्राय. सभीके लिये अशान्तिकारक हैं। इनके ऊपर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर कश्यपादि सप्तर्षि दिखायी देते हैं। ये सब लोकोंकी मङ्गल-कामना करते हुए भगवान् विष्णुके परमपद ध्रुवलोककी—जो भगवान् विष्णुका परमपद है—प्रदक्षिणा किया करते हैं ॥ १६ १७ ॥

तेईसवाँ अध्याय

शिशुमारचक्रका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! सप्तर्षियोंसे तेरह लाख योजन ऊपर ध्रुवलोक है। इसे भगवान् विष्णुका परमपद कहते हैं। यहाँ उत्तानपादके पुत्र परम भगवद्भक्त ध्रुवजी विराजमान हैं। इनके साथ ही अग्नि, इन्द्र, प्रजापति कश्यप और धर्मको भी नक्षत्ररूपसे नियुक्त किया गया था। ये सब एक साथ अत्यन्त आदरपूर्वक इनकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं। अब भी कल्पान्तपर्यन्त रहनेवाले लोक इन्हींके आधार स्थित हैं। इनका इस लोकका पराक्रम हम पहले (चौथे स्कन्धमें) वर्णन कर चुके हैं। सदा जागते रहनेवाले अव्यक्तगति भगवान् कालकी प्रेरणासे जो ग्रह नक्षत्रादि ज्योतिर्गण निरन्तर घूमते रहते हैं, भगवान्ने ध्रुवलोकको ही उन सबके आधारस्तम्भरूपसे नियुक्त किया है। अत यह एक ही स्थानमें रहकर सदा प्रकाशित होता है। जिस प्रकार दाँय चलानेके समय अनाजको खूँदनेवाले पशु छोटी, बड़ी और मध्यम रस्सीमें बँधकर क्रमश निकट, दूर और मध्यमें रहकर खंभेके चारों ओर मण्डल बाँधकर घूमते रहते हैं, उसी प्रकार सारे नक्षत्र और ग्रहगण बाहर भीतरके क्रमसे इस कालचक्रमें नियुक्त होकर ध्रुवलोकका ही आश्रय लेकर वायुकी प्रेरणासे कल्पके अन्ततक घूमते रहते हैं। जिस प्रकार मेघ और बाज आदि पक्षी अपने कर्मोंकी सहायतासे वायुके अधीन रहकर आकाशमें उड़ते रहते हैं, उसी प्रकार ये ज्योतिर्गण भी प्रकृति और पुरुषके संयोगवश अपने-अपने कर्मोंके अनुसार चक्कर काट रहे हैं, पृथ्वीपर नहीं गिरते ॥ १–३ ॥

कोई-कोई पुरुष भगवान्की योगमायाके आधार स्थित इस ज्योतिश्चक्रका शिशुमार (जलजन्तुविशेष) के रूपमें वर्णन करते हैं। यह शिशुमार कुण्डली मारे हुए है और इसका मुख नीचेकी ओर है। इसकी पूँछके सिरेपर ध्रुव स्थित है। पूँछके मध्यभागमें प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म हैं। पूँछकी जड़में धाता और विधाता हैं। इसके कटिप्रदेशमें सप्तर्षि हैं। यह शिशुमार दाहिनी ओरको सिकुड़कर कुण्डली

श्रीदामोदर और सम्पूर्ण सन्ध्याओंमें कालमूर्ति भगवान् विश्वेश्वर मेरी रक्षा करें ॥ १२–२२ ॥

'सुदर्शन ! आपका आकार चक्र (रथके पहिये) की तरह है । आपके किनारेका भाग प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त तीव्र है । आप भगवान्‌की प्रेरणासे सब ओर घूमते रहते हैं । जैसे आग वायुकी सहायतासे सूखे घास-फूसको जला डालती है, वैसे ही आप हमारी शत्रुसेनाको शीघ्र-से-शीघ्र जला दीजिये । कौमोदकी गदा ! आपसे छूटनेवाली चिनगारियोंका स्पर्श वज्रके समान असह्य है । आप भगवान् अजितकी प्रिया हैं और मैं उनका सेवक हूँ । इसलिये आप कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत और ग्रहोंको अभी कुचल डालिये तथा मेरे शत्रुओंको चूर-चूर कर दीजिये । शङ्खश्रेष्ठ ! आप भगवान् श्रीकृष्णके फूँकनेसे भयङ्कर शब्द करके मेरे शत्रुओंका दिल दहला दीजिये एवं यातुधान, प्रमथ, प्रेत, मातृका, पिशाच तथा ब्रह्मराक्षस आदि भयावने प्राणियोंको यहाँसे झटपट भगा दीजिये । भगवान्‌की प्यारी तलवार ! आपकी धार बहुत तीखी है । आप भगवान्‌की प्रेरणासे मेरे शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर दीजिये । भगवान्‌की प्यारी ढाल ! आपमें सैकड़ों चन्द्राकार मण्डल हैं । आप पापदृष्टि पापात्मा शत्रुओंकी आँखें बंद कर दीजिये और उन्हें सदाके लिये अंधा बना दीजिये ॥ २३–२६ ॥

'सूर्य आदि ग्रह, धूमकेतु (पुच्छल तारे) आदि केतु, दुष्ट मनुष्य, सर्पादि रेंगनेवाले जन्तु, दाढ़ोंवाले हिंसक पशु, भूत-प्रेत आदि तथा पापी प्राणियोंसे हमें जो-जो भय हों और जो-जो हमारे मङ्गलके विरोधी हों—वे सभी भगवान्‌के नाम, रूप तथा आयुधोंका कीर्तन करनेसे तत्काल नष्ट हो जायँ । बृहद्, रथन्तर आदि सामवेदीय स्तोत्रोंसे जिनकी स्तुति की जाती है, वे वेदमूर्ति भगवान् गरुड़ और विष्वक्सेनजी अपने नामोच्चारणके प्रभावसे हमें सब प्रकारकी विपत्तियोंसे बचायें । भगवान् श्रीहरिके नाम, रूप, वाहन, आयुध और श्रेष्ठ पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंको सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचावें ॥ २७–३० ॥

'जितना भी कार्य अथवा कारणरूप जगत् है, वह वास्तवमें भगवान् ही हैं—इस सत्यके प्रभावसे हमारे सारे विघ्न नष्ट हो जायँ । जो लोग ब्रह्म और आत्माकी एकताका अनुभव कर चुके हैं, उनकी दृष्टिमें भगवान्‌का स्वरूप समस्त विकल्पों—भेदोंसे रहित है; फिर भी वे अपनी माया-शक्तिके द्वारा भूषण, आयुध और रूप नामक शक्तियोंको धारण करते हैं । यह बात निश्चितरूपसे सत्य है । इस कारण सर्वज्ञ, सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि सदा-सर्वत्र सब स्वरूपोंसे हमारी रक्षा करें । जो अपने भयङ्कर अट्टहाससे सब लोगोंके भयको भगा देते हैं और अपने तेजसे सबका तेज ग्रस लेते हैं वे भगवान् नृसिंह दिशा-विदिशामें, नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर—सब ओर हमारी रक्षा करें' ॥ ३१–३४ ॥

देवराज इन्द्र ! मैंने तुम्हें यह नारायणकवच सुना दिया । इस कवचको तुम धारण कर लो । बस, फिर तुम अनायास ही सब दैत्य-यूथपतियोंको जीत लोगे । इस नारायणकवचको धारण करनेवाला पुरुष जिसको भी अपने नेत्रोंसे देख लेता अथवा पैरसे छू देता है, वह तत्काल समस्त भयोंसे मुक्त हो जाता है । जो इस वैष्णवी विद्याको धारण कर लेता है उसे राजा, डाकू, प्रेत-पिशाचादि और बाघ आदि हिंसक जीवोंसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं होता । देवराज ! प्राचीन कालकी बात है, एक कौशिकगोत्री ब्राह्मणने इस विद्याको धारण करके योगधारणासे अपना शरीर मरुभूमिमें त्याग दिया । जहाँ उस ब्राह्मणका शरीर पड़ा था, उसके ऊपरसे एक दिन गन्धर्वराज चित्ररथ अपनी स्त्रियोंके साथ विमानपर बैठकर निकले । वहाँ आते ही वे नीचेकी ओर सिर किये विमानसहित गिर पड़े । इस घटनासे उनके आश्चर्यकी सीमा न रही । जब उन्हें वालखिल्य मुनियोंने बतलाया कि यह नारायणकवच धारण करनेका प्रभाव है, तो उन्होंने उस ब्राह्मणदेवताकी हड्डियोंको ले जाकर पूर्ववाहिनी सरस्वती नदीमें प्रवाहित कर दिया और फिर स्नान करके वे अपने लोकको गये ॥ ३५–४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जो पुरुष इस नारायणकवचको समयपर सुनता है और जो आदरपूर्वक इसे धारण करता है, उसके सामने सभी प्राणी आदरसे झुक जाते हैं और वह सब प्रकारके भयोंसे मुक्त हो जाता है । परीक्षित् ! शतक्रतु इन्द्रने आचार्य विश्वरूपजीसे यह वैष्णवी विद्या प्राप्त करके रणभूमिमें असुरोंको जीत लिया और वे त्रैलोक्यलक्ष्मीका उपभोग करने लगे ॥ ४१-४२ ॥

और नाग तरह तरहकी मायामयी क्रीडाएँ करते हुए निवास करते हैं। वे सब गार्हस्थ्यधर्मका पालन करनेवाले हैं। उनके स्त्री, पुत्र, बन्धु, बान्धव और सेवकलोग उनसे बड़ा प्रेम रखते हैं और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। उनके भोगोंमें बाधा डालनेकी इन्द्रादिमें भी सामर्थ्य नहीं है ॥ ४–८ ॥

महाराज! इन बिलोंमें महामायावी मय दानवकी बनायी हुई अनेकों पुरियाँ शोभासे जगमगा रही हैं। उनमें अनेक जातिकी सुन्दर-सुन्दर श्रेष्ठ मणियोंसे रचे हुए चित्र विचित्र भवन, परकोटे, नगरद्वार, सभाभवन, मन्दिर और बड़े बड़े विशाल आँगन हैं, तथा जिनमें नाग और असुरोंके जोड़े एव कबूतर, तोता और मैना आदि पक्षी किलोल करते रहते हैं, ऐसी वाटिकाएँ और उन लोकोंके अधिपतियोंके भव्य भवन सुशोभित हैं। वहाँके बगीचे भी अपनी शोभासे देवलोकके उद्यानोंको मात करते हैं। उनमें अनेकों श्रीसम्पन्न श्रेष्ठ वृक्ष हैं, जिनकी डालियाँ फल फूलोंके गुच्छों और कोमल कोंपलोंके भारसे झुकी रहती हैं तथा जिन्हे तरह तरहकी लताओंने अपने अङ्गपाशसे बाँध रक्खा है। वहाँ जो निर्मल जलसे भरे हुए अनेकों जलाशय हैं, उनकी भी अपूर्व शोभा है। उनके तटपर तरह-तरहके पक्षियोंके जोड़े निवास करते हैं। जब उनमें रहनेवाली मछलियाँ खिलवाड़ करती हुई उछलती हैं, तो उनका जल हिलने लगता है। जलके ऊपर उगे हुए कमल, कुमुद, कुवलय, कह्लार, नीलकमल, लाल कमल और शतपत्र कमल सदा खिले रहते हैं। इन कमलोंके वनोंमें रहनेवाले पक्षी अविराम क्रीडा-कौतुक करते हुए बड़ी मीठी बोली बोलते रहते हैं, जिसे सुनकर मन और इन्द्रियोंको बड़ा ही आह्लाद होता है। वहाँ सूर्यका प्रकाश नहीं जाता, इसलिये दिन रात आदि कालविभागका भी कोई खटका नहीं देखा जाता। वहाँके सम्पूर्ण अन्धकारको बड़े-बड़े नागोंके मस्तकोंकी मणियाँ ही दूर करती हैं। इन लोकोंके निवासी जिन ओषधि, रस, रसायन, अन्न, पान और स्नानादिका सेवन करते हैं—वे सभी पदार्थ दिव्य होते हैं, इसलिये उन्हे मानसिक या शारीरिक रोग नहीं होते। तथा झुर्रियाँ पड़ जाना, बाल पक जाना, बुढापा आ जाना, देहका कान्तिहीन हो जाना, शरीरमेंसे दुर्गन्ध आना, पसीना चूना, थकावट अथवा शिथिलता आना तथा आयुके साथ शरीरकी अवस्थाओंका बदलना—ये कोई विकार नहीं होते। वे सदा सुन्दर, स्वस्थ, जवान और शक्तिसम्पन्न रहते हैं। उन पुण्यपुरुषोंकी भगवान्‌के तेजरूप सुदर्शन चक्रके सिवा और किसी साधनसे मृत्यु नहीं हो सकती। सुदर्शन चक्रके तो आते ही भयके कारण असुररमणियोंका गर्भस्राव और गर्भपात हो जाता है ॥ ९–१५ ॥

अतल लोकमें मय दानवका पुत्र असुरश्रेष्ठ बल रहता है। उसने छियानबे प्रकारकी मायाएँ रची हैं। उनमेंसे कोई कोई आज भी मायावी पुरुषोंमें पायी जाती हैं। उसने एक बार जँभाई ली थी, उस समय उसके मुखसे स्वैरिणी (केवल अपने वर्णके पुरुषोंसे रमण करनेवाली), कामिनी (अन्य वर्णोंके पुरुषोंसे भी समागम करनेवाली) और पुंश्चली (अत्यन्त चञ्चल स्वभाववाली)—तीन प्रकारकी स्त्रियाँ उत्पन्न हुईं। ये उस लोकमें रहनेवाले पुरुषोंको हाटक नामका रस पिलाकर सम्भोग करनेमें समर्थ बना लेती हैं और फिर उनके साथ अपनी हाव भावमयी चितवन, प्रेममयी मुसकान, प्रेमालाप और आलिङ्गनादिके द्वारा यथेष्ट रमण करती हैं। उस हाटक-रसको पीकर मनुष्य मदान्ध-सा हो जाता है और अपनेको दस हजार हाथियोंके समान बलवान् समझकर 'मैं ईश्वर हूँ, मैं सिद्ध हूँ' इस प्रकार बढ-बढकर बातें करने लगता है ॥ १६ ॥

उसके नीचे वितल लोकमें भगवान् हाटकेश्वर नामक महादेवजी अपने पार्षद भूतगणोंके सहित रहते हैं। वे प्रजापतिकी सृष्टिकी वृद्धिके लिये भवानीके साथ विहार करते रहते हैं। उन दोनोंके तेजसे वहाँ हाटकी नामकी एक श्रेष्ठ नदी निकली है। उसके जलको वायुसे प्रज्वलित अग्नि बड़े उत्साहसे पीता है। वह जो हाटक नामका सोना थूकता है, उससे बने हुए आभूषणोंको दैत्यराजोंके अन्त पुरोंमें स्त्री पुरुष सभी धारण करते हैं ॥ १७ ॥

वितलके नीचे सुतल लोक है। उसमें महायशस्वी पवित्र कीर्ति विरोचनपुत्र बलि रहते हैं। भगवान्‌ने इन्द्रका प्रिय करनेके लिये अदितिके गर्भसे वटु वामनरूपमें अवतीर्ण होकर उनसे तीनों लोक छीन लिये थे। फिर कृपा करके भगवान्‌ने ही उन्हें इस लोकमें भेज दिया। यहाँ उन्हें जैसी उत्कृष्ट सम्पत्ति मिली हुई है, वैसी इन्द्रादिके पास भी नहीं है। अत. वे उन्हीं पूज्यतम प्रभुकी अपने धर्माचरणद्वारा आराधना करते हुए यहाँ आज भी निर्भयतापूर्वक रहते हैं। राजन्! सम्पूर्ण जीवोंके नियन्ता एव आत्मस्वरूप परमात्मा भगवान् वासुदेव-जैसे पूज्यतम, पवित्रतम पात्रके आनेपर उन्हें परम श्रद्धा और आदरके साथ स्थिर चित्तसे दिये हुए भूमिदानका यही कोई मुख्य फल नहीं है कि बलिको सुतल लोकका ऐश्वर्य

रहते हैं। हमें बड़े कठोर यज्ञ, तप, व्रत और दानादि करके जो यह तुच्छ स्वर्गका अधिकार प्राप्त हुआ है—इससे क्या लाभ है ? यहाँ तो इन्द्रियोंके भोगोंकी इतनी बहुलता है कि उससे दबे रहनेके कारण कभी श्रीनारायणके चरणकमलोंकी स्मृति होती नहीं। यह स्वर्ग तो क्या—जहाँके निवासियोंकी एक-एक कल्पकी आयु होती है किन्तु जहाँसे फिर संसार-चक्रमें लौटना पड़ता है, उन ब्रह्मलोकादिकी अपेक्षा भी भारतभूमिमें थोड़ी आयुवाले होकर जन्म लेना अच्छा है; क्योंकि यहाँ धीर पुरुष एक क्षणमें ही अपने इस मर्त्यशरीरसे किये हुए सम्पूर्ण कर्म श्रीभगवान्‌को अर्पण करके उनका अभयपद प्राप्त कर सकता है ॥ २१—२३ ॥

जहाँ भगवत्कथाकी अमृतमयी सरिता नहीं बहती, जहाँ उसके उद्गमस्थान भगवद्भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ नृत्य-गीतादिके साथ बड़े समारोहसे भगवान् यज्ञपुरुषकी पूजा-अर्चा नहीं की जाती—वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उसका सेवन नहीं करना चाहिये। जिन जीवोंने इस भारतवर्षमें ज्ञान (विवेकबुद्धि), तदनुकूल कर्म तथा उस कर्मके उपयोगी द्रव्यादि सामग्रीसे सम्पन्न मनुष्यजन्म पाया है—वे यदि आवागमनके चक्रसे निकलनेका प्रयत्न नहीं करते, तो व्याधकी फाँसीसे छूटकर भी फलादिके लोभसे उसी वृक्षपर विहार करनेवाले वनवासी पक्षियोंके समान फिर बन्धनमें पड़ जायँगे ॥ २४-२५ ॥

'अहो ! इन भारतवासियोंका कैसा सौभाग्य है ! जब ये यज्ञमें भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे अलग-अलग भाग रखकर विधि, मन्त्र और द्रव्यादिके योगसे श्रद्धापूर्वक उन्हें हवि प्रदान करते हैं, तो इस प्रकार इन्द्रादि भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारे जानेपर सम्पूर्ण कामनाओंके पूर्ण करनेवाले स्वयं पूर्णकाम श्रीहरि ही प्रसन्न होकर उस हविको ग्रहण करते हैं। यह ठीक है कि भगवान् सकाम पुरुषोंको माँगनेपर उनके अभीष्ट पदार्थ देते हैं; किन्तु यह असली चीज नहीं है, क्योंकि उन्हें फिर भी कामनाएँ होती ही रहती हैं। इसके विपरीत जो उनका निष्कामभावसे भजन करते हैं, उन्हें तो वे साक्षात् अपने चरणकमल ही दे देते हैं—जिन्हें पाकर मनुष्यकी सभी कामनाएँ सदाके लिये पूर्ण हो जाती हैं। अतः अबतक स्वर्गसुख भोग लेनेके बाद यदि हमारे पूर्वकृत यज्ञ, प्रवचन और शुभ कर्मोंसे यदि कुछ भी पुण्य बचा हो, तो उसके प्रभावसे हमें इस भारतवर्षमें भगवान्‌की स्मृतिसे युक्त मनुष्यजन्म मिले; क्योंकि अपना भजन करनेवालेका श्रीहरि सब प्रकार कल्याण करते हैं' ॥ २६–२८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! राजा सगरके पुत्रोंने अपने यज्ञके घोड़ेको ढूँढ़ते हुए इस पृथ्वीको चारों ओरसे खोदा था। उससे जम्बूद्वीपके अन्तर्गत ही आठ उपद्वीप और बन गये, ऐसा कुछ लोगोंका कथन है। वे स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मन्दरहरिण, पाञ्चजन्य, सिंहल और लंका हैं। भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार जैसा मैंने गुरुमुखसे सुना था, ठीक वैसा ही तुम्हें यह जम्बूद्वीपके वर्षोंका विभाग सुना दिया ॥ २९–३१ ॥

बीसवाँ अध्याय

अन्य छः द्वीपों तथा लोकालोकपर्वतका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! अब आगे परिमाण, लक्षण और स्थितिके अनुसार प्लक्षादि अन्य द्वीपोंके वर्ष-विभागका वर्णन किया जाता है। जिस प्रकार मेरु पर्वत जम्बूद्वीपसे घिरा हुआ है, उसी प्रकार जम्बूद्वीप भी अपने ही समान परिमाण और विस्तारवाले खारे जलके समुद्रसे परिवेष्टित है। फिर खाई जिस प्रकार बाहरके उपवनसे घिरी रहती है, उसी प्रकार क्षारसमुद्र भी अपनेसे दूने विस्तारवाले प्लक्षद्वीपसे घिरा हुआ है। जम्बूद्वीपमें जितना बड़ा जामुनका पेड़ है, उतने ही विस्तारवाला यहाँ सुवर्णमय प्लक्ष (पाकर) का वृक्ष है। उसीके कारण इसका नाम प्लक्षद्वीप हुआ है। यहाँ सात जिह्वाओंवाले अग्निदेव विराजते हैं। इस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज इध्मजिह्व थे। उन्होंने इसको सात वर्षोंमें विभक्त किया और उन्हें उन वर्षोंके समान ही नामवाले अपने पुत्रोंको सौंप दिया, तथा स्वयं अध्यात्मयोगका आश्रय लेकर उपरत हो गये। इन वर्षोंके नाम शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय हैं। इनमें भी सात पर्वत और सात नदियाँ ही प्रसिद्ध हैं। वहाँ मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल—ये सात मर्यादापर्वत हैं तथा अरुणा, नृम्णा, आङ्गिरसी, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा—ये सात महानदियाँ हैं। वहाँ हंस, पतङ्ग, ऊर्ध्वायन और सत्याङ्ग नामके चार वर्ण हैं। उक्त नदियोंके जलमें स्नान करनेसे इनके रजोगुण-तमोगुण

पचीसवाँ अध्याय

श्रीसङ्कर्षणदेवका विवरण और स्तुति

श्रीशुकदेवजी बोले—राजन् ! पाताललोकके नीचे तीस हजार योजनकी दूरीपर अनन्त नामसे विख्यात भगवान्‌की तामसी नित्य कला है। यह अहङ्काररूपा होनेसे द्रष्टा और दृश्यको खींचकर एक कर देती है, इसलिये पाञ्चरात्र आगमके अनुयायी भक्तजन इसे 'सङ्कर्षण' कहते हैं। इन भगवान् अनन्तके एक हजार मस्तक हैं। उनमेंसे एकपर रक्खा हुआ यह सारा भूमण्डल सरसोंके दानेके समान दिखायी देता है। प्रलयकाल उपस्थित होनेपर जब इन्हें इस विश्वका उपसंहार करनेकी इच्छा होती है, तो इनकी क्रोधवश घूमती हुई मनोहर भ्रुकुटियोंके मध्यभागसे सङ्कर्षण नामक रुद्र प्रकट होते हैं। उनकी व्यूहसंख्या ग्यारह है। वे सभी तीन नेत्रोंवाले होते हैं और हाथमें तीन नोकोंवाले त्रिशूल लिये रहते हैं। भगवान् सङ्कर्षणके चरणकमलोंके गोल-गोल स्वच्छ और अरुणवर्ण नख मणियोंकी पङ्क्तिके समान देदीप्यमान हैं। जब अन्य प्रधान प्रधान भक्तोंके सहित अनेकों नागराज अनन्य भक्तिभावसे उन्हें प्रणाम करते हैं, तो उन्हें उन नखमणियोंमें अपने कुण्डलकान्तिमण्डित कमनीय कपोलोंवाले मनोहर मुखारविन्दोंकी मनमोहिनी झाँकी होती है। अनेकों नागराजोंकी कन्याएँ तरह-तरहकी कामनाओंसे उनके अङ्गमण्डलपर चाँदीके खंभोंके समान सुशोभित उनकी लंबी-लंबी श्वेतवर्ण सुन्दर भुजाओंपर अरगजा, चन्दन और कुङ्कुमपङ्कका लेप करती हैं। उस अङ्गस्पर्शसे मथित हुए उनके हृदयमें कामका सञ्चार हो जाता है। तब वे उनके मदविह्वल सकरुण अरुण नयनकमलोंसे सुशोभित तथा प्रेममदसे मुदित मुखारविन्दकी ओर मधुर और मनोहर मुसकान पूर्वक सलज्ज भावसे निहारने लगती हैं। वे अनन्त गुणोंके सागर आदिदेव भगवान् अनन्त अपने अमर्ष (असहन शीलता) और रोषके वेगको रोके हुए वहाँ समस्त लोकोंके कल्याणके लिये विराजमान हैं॥ १–६॥

देवता, असुर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और मुनिलोग निरन्तर भगवान् अनन्तका ध्यान किया करते हैं। उनके नेत्र मदके कारण खिले हुए, विकारयुक्त और चञ्चल रहते हैं। वे सुललित वचनामृतसे अपने पार्षद और देवयूथपोंको सन्तुष्ट करते रहते हैं। उनके अङ्गपर नीलाम्बर और कानोंमें केवल एक कुण्डल जगमगाता रहता है तथा उनका सुभग और सुन्दर हाथ हलकी मूठपर रक्खा रहता है। वे उदारलीलामय भगवान् सङ्कर्षण गलेमें वैजयन्ती माला धारण किये रहते हैं, जो साक्षात् इन्द्रके हाथी ऐरावतके गलेमें पड़ी हुई सुवर्णकी शृङ्खलाके समान जान पड़ती है। जिसकी कान्ति कभी फीकी नहीं पड़ती, ऐसी नवीन तुलसीकी गन्ध और मधुर मकरन्दसे उन्मत्त हुए भौंरे निरन्तर मधुर गुंजार करके उसकी शोभा बढ़ाते रहते हैं। परीक्षित् ! इस प्रकार माहात्म्यश्रवण और ध्यान करनेसे भगवान् अनन्त मुमुक्षुओंके हृदयमें आविर्भूत होकर उनकी अनादिकालीन कर्मवासनाओंसे ग्रथित सत्त्व, रज और तमोगुणात्मक अविद्यामयी हृदयग्रन्थिको तत्काल काट डालते हैं। उनके गुणोंका एक बार ब्रह्माजीके पुत्र भगवान् नारदने तुम्बुरु गन्धर्वके साथ ब्रह्माजीकी सभामें इस प्रकार वर्णन किया था—॥७ ८॥

जिनकी दृष्टि पड़नेसे ही जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके हेतुभूत सत्त्वादि गुण अपने अपने कार्यमें समर्थ होते हैं, जिनका स्वरूप अनादि और अनन्त है तथा जो अकेले ही इस नानात्मक प्रपञ्चको अपनेमें धारण किये हुए हैं—उन भगवान् सङ्कर्षणके तत्त्वको कोई कैसे जान सकता है। जिनमें यह कार्य-कारणरूप सारा प्रपञ्च भास रहा है तथा अपने निजजनोंका चित्त आकर्षित करनेके लिये की हुई जिनकी वीरतापूर्ण लीलाको परम पराक्रमी सिंहने आदर्श मानकर अपनाया है—उन सङ्कर्षणभगवान्‌ने हमपर बड़ी कृपा करके यह विशुद्ध सत्त्वमय स्वरूप धारण किया है। जिनके सुने-सुनाये नामका कोई दीन या पापी पुरुष अकस्मात् अथवा हँसीमें भी उच्चारण कर लेता है तो वह पुरुष दूसरे मनुष्योंके भी सारे पापोंको तत्काल नष्ट कर देता है—ऐसे शेषभगवान्‌को छोड़कर मोक्षाकाङ्क्षी पुरुष और किसका आश्रय ले सकता है ? यह पर्वत, नदी और समुद्रादिसे पूर्ण सम्पूर्ण भूमण्डल उन सहस्रशीर्षा भगवान्‌के एक मस्तकपर एक रजकणके समान रक्खा हुआ है। वे अनन्त हैं, इसलिये उनके पराक्रमका कोई परिमाण नहीं है। किसीके हजार जीभें हों, तो भी उन सर्वव्यापक भगवान्‌के पराक्रमोंकी गणना करनेका साहस वह कैसे कर सकता है। वास्तवमें उनके वीर्योंका कोई अन्त नहीं है तथा उनके गुण और प्रभाव भी असीम हैं। ऐसे प्रभावशाली

हैं—'हे जलके देवता ! तुम्हें परमात्मासे सामर्थ्य प्राप्त है। तुम भूः, भुवः और स्वः—तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले हो; इसलिये तुम स्वभावसे ही पापनाशक हो। हम अपने शरीरसे तुम्हारा स्पर्श करते हैं, तुम हमें पवित्र करो' ॥ १८–२३ ॥

इसी प्रकार क्षीरसमुद्रसे आगे उसके चारों ओर बत्तीस लाख योजन विस्तारवाला शाकद्वीप है, जो अपने ही समान परिमाणवाले मट्ठेके समुद्रसे घिरा हुआ है। इसमें शाक नामका एक बहुत बड़ा वृक्ष है, वही इस क्षेत्रके नामका कारण है। उसकी अत्यन्त मनोहर सुगन्धसे सारा द्वीप मँहकता रहता है। मेधातिथि नामक उसके अधिपति भी राजा प्रियव्रतके ही पुत्र थे। उन्होंने भी अपने द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्त किया और उनमें उन्हींके समान नामवाले अपने पुत्र पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वधारको अधिपतिरूपसे नियुक्त कर स्वयं भगवान् अनन्तमें दत्तचित्त हो तपोवनको चले गये। इन वर्षोंमें भी सात मर्यादापर्वत और सात नदियाँ ही हैं। पर्वतोंके नाम ईशान, उरुशृङ्ग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महानस हैं तथा नदियाँ अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पञ्चपदी, सहस्रस्रुति और निजधृति हैं। उस वर्षके ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत नामक पुरुष प्राणायामद्वारा अपने रजोगुण-तमोगुणको क्षीण कर महान् समाधिके द्वारा वायुरूप श्रीहरिकी आराधना करते हैं और इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं—'जो प्राणादि वृत्तिरूप अपनी ध्वजाओंके सहित प्राणियोंके भीतर प्रवेश करके उनका पालन करते हैं तथा सम्पूर्ण दृश्य जगत् जिनके अधीन है, वे साक्षात् अन्तर्यामी वायुभगवान् हमारी रक्षा करें' ॥ २४–२८ ॥

इसी तरह मट्ठेके समुद्रसे आगे उसके चारों ओर उससे दुगुने विस्तारवाला पुष्करद्वीप है। वह चारों ओरसे अपने ही समान विस्तारवाले मीठे जलके समुद्रसे घिरा है। वहाँ अग्निकी शिखाके समान देदीप्यमान लाखों स्वर्णमय पंखड़ियों-वाला एक बहुत बड़ा पुष्कर (कमल) है, जो ब्रह्माजीका आसन माना जाता है। उस द्वीपके बीचोंबीच उसके पूर्वीय और पश्चिमीय विभागोंकी मर्यादा निश्चित करनेवाला मानसोत्तर नामका एक ही पर्वत है। यह दस हजार योजन ऊँचा और उतना ही लंबा है। इसके ऊपर चारों दिशाओंमें इन्द्रादि लोकपालोंकी चार पुरियाँ हैं। इसपर मेरुपर्वतके चारों ओर घूमनेवाले सूर्यके रथका संवत्सररूप पहिया देवताओंके दिन और रात अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायनके क्रमसे सर्वदा घूमा करता है। उस द्वीपका अधिपति प्रियव्रतपुत्र वीतिहोत्र भी अपने पुत्र रमणक और धातकिको दोनों वर्षोंका अधिपति बनाकर स्वयं अपने बड़े भाइयोंके समान भगवत्सेवामें ही तत्पर रहने लगा था। वहाँके निवासी ब्रह्मरूप भगवान् हरिकी ब्रह्मसालोक्यादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्मोंसे आराधना करते हुए इस प्रकार स्तुति करते हैं—'जो साक्षात् कर्मफलरूप हैं और एक परमेश्वरमें ही जिनकी पूर्ण स्थिति है तथा जिनकी सब लोग पूजा करते हैं, ब्रह्मज्ञानके साधनरूप उन अद्वितीय और शान्तस्वरूप ब्रह्ममूर्ति भगवान्को मेरा नमस्कार है' ॥ २९–३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! इसके आगे लोकालोक नामका पर्वत है। यह पृथ्वीके सब ओर सूर्यद्वारा प्रकाशित और अप्रकाशित प्रदेशोंके बीचमें उनका विभाग करनेके लिये स्थित है। मेरुसे लेकर मानसोत्तर पर्वततक जितना अन्तर है, उतनी ही भूमि शुद्धोदक समुद्रके उस ओर है। उसके आगे सुवर्णमयी भूमि है, जो दर्पणके समान स्वच्छ है। इसमें गिरी हुई कोई वस्तु फिर नहीं मिलती, इसलिये वहाँ देवताओंके अतिरिक्त और कोई प्राणी नहीं रहता। लोकालोकपर्वत सूर्यसे प्रकाशित और अप्रकाशित भूभागोंके बीचमें है, इसीसे इसका यह नाम पड़ा है। इसे परमात्माने त्रिलोकीके बाहर उसके चारों ओर सीमाके रूपमें स्थापित किया है। यह इतना ऊँचा और लंबा है कि इसके एक ओरसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करनेवाली सूर्यसे लेकर ध्रुवपर्यन्त समस्त ज्योतिर्मण्डलकी किरणें दूसरी ओर नहीं जा सकतीं ॥ ३४–३७ ॥

विद्वानोंने प्रमाण, लक्षण और स्थितिके अनुसार सम्पूर्ण लोकोंका इतना ही विस्तार बतलाया है। यह समस्त भूगोल पचास करोड़ योजन है। इसका चौथाई भाग (अर्थात् साढ़े बारह करोड़ योजन विस्तारवाला) यह लोकालोकपर्वत है। इसके ऊपर चारों दिशाओंमें समस्त संसारके गुरु स्वयम्भू श्रीब्रह्माजीने सम्पूर्ण लोकोंकी स्थितिके लिये ऋषभ, पुष्करचूड, वामन और अपराजित नामके चार गजराज नियुक्त किये हैं। इन दिग्गजों और अपने अंशस्वरूप इन्द्रादि लोकपालों-की विभिन्न शक्तियोंकी तथा समस्त लोकोंके कल्याणकी अभिवृद्धिके लिये परम ऐश्वर्यके अधिपति सर्वान्तर्यामी परमपुरुष श्रीहरि अपने विष्वक्सेन आदि पार्षदोंके सहित इस पर्वतपर सब ओर विराजते हैं। वे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य आदि आठ महासिद्धियोंसे सम्पन्न विशुद्ध सत्त्वमय

शरीरका पालन पोषण करता है। वहाँ कच्चा मास खानेवाले रुरु इसे मासके लोभसे काटते हैं ॥१०–१२॥

जो क्रूर मनुष्य इस लोकमे अपना पेट पालनेके लिये जीवित पशु या पक्षियोंको राँधता है, उस निर्दयीको तो राक्षसलोग भी निन्दा करते हैं। उसे यमदूत कुम्भीपाक नरकमें ले जाकर खौलते हुए तैलमें राँधते हैं। जो मनुष्य इस लोकमें माता पिता, ब्राह्मण और वेदसे विरोध करता है, उसे यमदूत कालसूत्र नरकमें ले जाते हैं। इसका घेरा दस हजार योजन है। इसकी भूमि ताँबेकी है। इसमें जो तपा हुआ मैदान है, वह ऊपरसे सूर्य और नीचेसे अग्निके दाहसे तपा रहता है। वहाँ वह भूख प्याससे व्याकुल हो जाता है और उसका शरीर बाहर भीतरसे जलने लगता है। उसकी बेचैनी यहाँतक बढती है कि कभी वह बैठता है, कभी लेटता है, कभी छटपटाने लगता है, कभी खड़ा होता है और कभी इधर-उधर दौड़ने लगता है। इस प्रकार उस नर-पशुके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने ही वर्षतक उसकी यह दुर्गति होती रहती है ॥१३ १४॥

जो पुरुष किसी प्रकारकी आपत्ति न आनेपर भी अपने वैदिक मार्गको छोड़कर अन्य पाखण्डपूर्ण धर्मोंका आश्रय लेता है, उसे यमदूत असिपत्रवन नरकमें ले जाकर कोड़ोंसे पीटते हैं। जब मारसे बचनेके लिये वह इधर-उधर दौड़ने लगता है तो उसके सारे अङ्ग तालवनके तलवारके समान पैने पत्तोंसे, जिनमें दोनों ओर धारें होती हैं, टूक टूक होने लगते हैं। तब वह अत्यन्त वेदनासे 'हाय, मैं मरा!' इस प्रकार चिल्लाता हुआ पद पदपर मूर्च्छित होकर गिरने लगता है। अपने धर्मको छोड़कर पाखण्डमार्गमें चलनेसे उसे इस प्रकार अपने कुकर्मका फल भोगना पड़ता है ॥१५॥

इस लोकमें जो पुरुष राजा या राजकर्मचारी होकर किसी निरपराध मनुष्यको दण्ड देता है अथवा ब्राह्मणको शरीरदण्ड देता है, वह पापी मरकर सूकरमुख नरकमे गिरता है। वहाँ जब महाबली यमदूत उसके अङ्गोंको कुचलते हैं तो वह कोल्हूमें पेरे जाते हुए गन्नोंके समान पीड़ित होकर, जिस प्रकार इस लोकमें उसके द्वारा सताये हुए निरपराध प्राणी रोते चिल्लाते थे उसी प्रकार—कभी आर्त्त स्वरसे चिल्लाता और कभी मूर्च्छित हो जाता है—॥ १६ ॥

जो पुरुष इस लोकमें खटमल आदि जीवोंकी हिंसा करता है, वह उनसे द्रोह करनेके कारण अन्धकूप नरकमें गिरता है। क्योंकि स्वय भगवान्ने ही रक्तपानादि उनकी वृत्ति बना दी है और उन्हें उसके कारण दूसरोंको कष्ट पहुँचनेका ज्ञान भी नहीं है, किन्तु मनुष्यकी वृत्ति भगवान्ने विधि निषेधपूर्वक बनायी है और उसे दूसरोंके कष्टका ज्ञान भी है। वहाँ वे पशु, मृग, पक्षी, साँप आदि रेंगनेवाले जन्तु, मच्छर, जूँ, खटमल और मक्खी आदि जीव—जिनसे उसने द्रोह किया था—उसे सब ओरसे काटते हैं। इससे उसकी निद्रा और शान्ति भग हो जाती है और स्थान न मिलनेपर भी वह बेचैनीके कारण उस घोर अन्धकारमें इस प्रकार भटकता रहता है जैसे रोगग्रस्त शरीरमें जीव छटपटाया करता है ॥१७॥

जो मनुष्य इस लोकमें बिना पञ्चमहायज्ञ किये तथा जो कुछ मिले, उसे बिना किसी दूसरेको दिये स्वय ही खा लेता है—उसे कौएके समान कहा गया है। वह परलोकमें कृमिभोजन नामक निकृष्ट नरकमें गिरता है। वहाँ एक लाख योजन लबा चौड़ा एक कीड़ोंका कुण्ड है। उसीमें उसे भी कीड़ा बनकर रहना पड़ता है और जबतक उस प्रायश्चित्तहीनके बिना दिये और बिना हवन किये खानेका अच्छी तरह प्रायश्चित्त नहीं हो जाता, तबतक वह उसीमें पड़ा-पड़ा कष्ट भोगता रहता है। वहाँ कीड़े उसे नोचते हैं और वह कीड़ोंको खाता है। राजन्! इस लोकमें जो व्यक्ति चोरी या बरजोरीसे ब्राह्मणके अथवा आपत्तिका समय न होनेपर भी किसी दूसरे पुरुषके सुवर्ण और रत्नादिका हरण करता है, उसे मरनेपर यमदूत सन्दश नामक नरकमें ले जाकर तपाये हुए लोहेके गोलोंसे दागते हैं और सँड़सीसे उसकी खाल नोचते हैं। इस लोकमे यदि कोई पुरुष अगम्या स्त्रीके साथ सम्भोग करता है अथवा कोई स्त्री अगम्य पुरुषसे व्यभिचार करती है, तो यमदूत उसे तप्तसूर्मि नामक नरकमें ले जाकर कोड़ोंसे पीटते हैं तथा पुरुषको तपाये हुए लोहेकी स्त्री-मूर्तिसे और स्त्रीको तपायी हुई पुरुष प्रतिमासे आलिङ्गन कराते है। जो पुरुष इस लोकमें पशु आदि सभीके साथ व्यभिचार करता है, उसे मृत्युके बाद यमदूत वज्रकण्टकशाल्मली नरकमें गिराते हैं और वज्रके समान कठोर काँटोंवाले सेमरके वृक्षपर चढाकर फिर नीचेकी ओर खींचते हैं ॥१८–२१॥

जो राजा या राजपुरुष इस लोकमें श्रेष्ठ कुलमें जन्म पाकर भी धर्मकी मर्यादाका उच्छेद करते हैं, वे उस मर्यादातिक्रमणके कारण मरनेपर वैतरणी नदीमें पटके जाते हैं। यह नदी नरकोंकी खाईके समान है, उसमें मल, मूत्र, पीव, रक्त, केश, नख, हड्डी, चर्बी, मास और मज्जा आदि गदी चीजें

अस्त होते रहते हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्यका वेदमय रथ एक मुहूर्त्तमें चौंतीस लाख आठ सौ योजनके हिसाबसे चलता हुआ इन चारों पुरियोंमें घूमता रहता है। इसका संवत्सर नामका एक चक्र (पहिया) बतलाया जाता है। उसमें मासरूप बारह अरे हैं, ऋतुरूप छः नेमियाँ (हाल) हैं, चौमासेरूप तीन नाभि (आँवन) हैं। इस रथकी धुरीका एक सिरा मेरुपर्वतकी चोटीपर है और दूसरा मानसोत्तर पर्वतपर। इसमें लगा हुआ यह पहिया कोल्हूके पहियेके समान घूमता हुआ मानसोत्तर पर्वतके ऊपर चक्कर लगाता है। इस धुरीमें—जिसका मूल भाग जुड़ा हुआ है, ऐसी एक धुरी और है। वह लंबाईमें इससे चौथाई है। उसका ऊपरी भाग तैलयन्त्रके धुरेके समान ध्रुवलोकसे लगा हुआ है ॥ १०—१४॥

इस रथमें बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लंबा और नौ लाख योजन चौड़ा है। इसका जूआ भी छत्तीस लाख योजन ही लंबा है। उसमें अरुण नामके सारथिने गायत्री आदि छन्दोंके-से नामवाले सात घोड़े जोत रक्खे हैं, वे ही इस रथपर बैठे हुए भगवान् सूर्यको ले चलते हैं। सूर्यदेवके आगे उन्हींकी ओर मुँह करके बैठे हुए अरुण उनके सारथिका कार्य करते हैं। उस रथके आगे अँगूठेके पोरुएके बराबर आकारवाले वालखिल्यादि साठ हजार ऋषि स्वस्तिवाचनके लिये नियुक्त हैं। वे उनकी स्तुति करते रहते हैं। इनके सिवा ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता भी—जो कुल मिलाकर चौदह हैं, किन्तु जोड़ेसे रहनेके कारण सात गण कहे जाते हैं—प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न नामोंवाले होकर अपने भिन्न-भिन्न कर्मोंसे प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न नाम धारण करनेवाले आत्मस्वरूप भगवान् सूर्यकी दो-दो मिलकर उपासना करते हैं। इस प्रकार भगवान् सूर्य भूमण्डलके नौ करोड़, इक्यावन लाख योजन लंबे घेरेमेंसे प्रत्येक क्षणमें दो हजार दो योजनकी दूरी पार कर लेते हैं ॥ १५—१९ ॥

बाईसवाँ अध्याय

भिन्न-भिन्न ग्रहोंकी स्थिति और गतिका वर्णन

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! आपने जो कहा कि यद्यपि भगवान् सूर्य राशियोंकी ओर जाते समय मेरु और ध्रुवको दायीं ओर रखकर चलते मालूम होते हैं, किन्तु वस्तुतः उनकी गति दक्षिणावर्त नहीं होती—इस विषयको हम किस प्रकार समझें? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जैसे कुम्हारके घूमते हुए चाकपर दूसरी ओर चलनेवाली चींटीकी गति भी चाककी गतिके अनुसार विपरीत दिशामें जान पड़ती है—क्योंकि वह भिन्न-भिन्न समयमें उस चक्रके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें देखी जाती है—उसी प्रकार नक्षत्र और राशियोंसे उपलक्षित काल-चक्रमें पड़कर ध्रुव और मेरुको दायें रखकर घूमनेवाले सूर्य आदि ग्रहोंकी गति वास्तवमें उससे विपरीत ही है; क्योंकि वे कालभेदसे भिन्न-भिन्न राशि और नक्षत्रोंमें देख पड़ते हैं। वेद और विद्वान्लोग भी जिनकी गतिको जाननेके लिये उत्सुक रहते हैं, वे साक्षात् आदिपुरुष भगवान् नारायण ही लोकोंके कल्याण और कर्मोंकी शुद्धिके लिये अपने वेदमय विग्रह कालको बारह मासोंमें विभक्त कर वसन्तादि छः ऋतुओंमें उनके यथायोग्य गुणोंका विधान करते हैं। इस लोकमें वर्णाश्रमधर्मका अनुसरण करनेवाले पुरुष वेदत्रयीद्वारा प्रतिपादित छोटे-बड़े कर्मोंसे इन्द्रादि देवताओंके रूपमें और योगके साधनोंसे अन्तर्यामीरूपमें उनकी श्रद्धापूर्वक आराधना करके सुगमतासे ही परमपद प्राप्त कर सकते हैं ॥ २—४ ॥

भगवान् सूर्य सम्पूर्ण लोकोंके आत्मा हैं। वे पृथ्वी और द्युलोकके मध्यमें स्थित आकाशमण्डलके भीतर कालचक्रमें स्थित होकर बारह मासोंको भोगते हैं, जो संवत्सरके अवयव हैं और मेष आदि राशियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे प्रत्येक मास चन्द्रमानसे शुक्ल और कृष्ण दो पक्षका, पितृमान-से एक रात और एक दिनका तथा सौरमानसे सवा दो नक्षत्रका बताया जाता है। जितने कालमें सूर्यदेव इस संवत्सरका छठा भाग भोगते हैं, उसका वह अवयव 'ऋतु' कहा जाता है। आकाशमें भगवान् सूर्यका जितना मार्ग है, उसका आधा वे जितने समयमें पार कर लेते हैं, उसे एक 'अयन' कहते हैं। तथा जितने समयमें वे अपनी मन्द, तीव्र और समान गतिसे स्वर्ग और पृथ्वीमण्डलके सहित पूरे आकाशका चक्कर लगा जाते हैं—उसे अवान्तर भेदसे संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर अथवा वत्सर कहते हैं ॥ ५—७ ॥

इसी प्रकार सूर्यकी किरणोंसे एक लाख योजन ऊपर चन्द्रमा है। उसकी चाल बहुत तेज है, इसलिये यह सब नक्षत्रोंसे आगे रहता है। यह सूर्यके एक वर्षके मार्गको एक मासमें, एक मासके मार्गको सवा दो दिनोंमें और एक पक्षके

अग्निपत्रवन नरक





सूकरमुख नरक

मारे हुए है। ऐसी स्थितिमें अभिजित्से लेकर पुनर्वसुपर्यन्त जो उत्तरायणके चौदह नक्षत्र हैं, वे इसके दाहिने भागमें हैं और पुष्यसे लेकर उत्तराषाढ़ापर्यन्त जो दक्षिणायनके चौदह नक्षत्र हैं, वे बायें भागमें हैं। लोकमें भी जब शिशुमार कुण्डलाकार होता है, तो उसके दोनों ओरके अङ्गोंकी संख्या समान रहती है; उसी प्रकार यहाँ नक्षत्र-संख्यामें भी समानता है। इसकी पीठमें अजवीथी (मूला, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नामके तीन नक्षत्रोंका समूह) है और उदरमें आकाशगङ्गा है। राजन्! इसके दाहिने और बायें कटितटोंमें पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हैं, पीछेके दाहिने और बायें चरणोंमें आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं, तथा दाहिने और बायें नथुनोंमें क्रमशः अभिजित् और उत्तराषाढ़ा हैं। इसी प्रकार दाहिने और बायें नेत्रोंमें श्रवण और पूर्वाषाढ़ा एवं दाहिने और बायें कानोंमें धनिष्ठा और मूल नक्षत्र हैं। मघा आदि दक्षिणायनके आठ नक्षत्र बायीं पसलियोंमें और विपरीत क्रमसे मृगशिरा आदि उत्तरायणके आठ नक्षत्र दाहिनी पसलियोंमें हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा—ये दो नक्षत्र क्रमशः दाहिने और बायें कंधोंकी जगह हैं। इसकी ऊपरकी थूथनीमें अगस्त्य, नीचेकी ठोडीमें नक्षत्ररूप यम, मुखोंमें मङ्गल, लिङ्गप्रदेशमें शनि, कुम्भमें बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोंमें अश्विनीकुमार, प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु, समस्त अङ्गोंमें केतु और रोमोंमें सम्पूर्ण तारागण स्थित हैं ॥ ४–७ ॥

राजन्! यह भगवान् विष्णुका सर्वदेवमय स्वरूप है। इसका नित्यप्रति सायङ्कालके समय पवित्र और मौन होकर चिन्तन करना चाहिये तथा इस मन्त्रका जप करते हुए भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये—'नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहि।' (सम्पूर्ण ज्योतिर्गणोंके आश्रय, कालचक्रस्वरूप, सर्वदेवाधिपति परमपुरुष परमात्माका नमस्कारपूर्वक हम ध्यान करते हैं।) तीनों काल इस मन्त्रका जप करनेवाले पुरुषके पापोंको भगवान् नष्ट कर देते हैं। ग्रह, नक्षत्र और तारोंके रूपमें भी वे ही प्रकाशित हो रहे हैं, ऐसा समझकर जो पुरुष प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों समय उनके आधिदैविक स्वरूपका नित्यप्रति चिन्तन और वन्दन करता है, उसके उस समय किये हुए पाप तुरंत नष्ट हो जाते हैं ॥ ८-९ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

राहु आदिकी स्थिति और अतलादि नीचेके लोकोंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कुछ लोगोंका कथन है कि सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहु नक्षत्रोंके समान घूमता है। इसने भगवान्‌की कृपासे ही देवत्व और ग्रहत्व प्राप्त किया है, स्वयं यह सिंहिकापुत्र असुराधम होनेके कारण किसी प्रकार इस पदके योग्य नहीं है। इसके जन्म और कर्मोंका हम आगे वर्णन करेंगे। सूर्यका जो यह अत्यन्त तपता हुआ मण्डल है, उसका विस्तार दस हजार योजन बतलाया जाता है। इसी प्रकार चन्द्रमण्डलका विस्तार बारह हजार योजन है और राहुका तेरह हजार योजन। अमृतपानके समय राहु देवताके वेषमें सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें आकर बैठ गया था, उस समय सूर्य और चन्द्रमाने इनका भेद खोल दिया था; उस वैरको याद करके यह अमावास्या और पूर्णिमाके दिन उनपर आक्रमण करता है। यह देखकर भगवान्‌ने सूर्य और चन्द्रमाकी रक्षाके लिये उन दोनोंके पास अपने प्रिय आयुध सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर दिया है। वह निरन्तर घूमता रहता है, इसलिये राहु उसके असह्य तेजसे उद्विग्न और चकितचित्त होकर मुहूर्त्तमात्र उनके सामने टिककर फिर सहसा लौट आता है। उसके उतनी देर उनके सामने ठहरनेको ही लोग 'ग्रहण' कहते हैं ॥ १–३ ॥

राहुसे दस हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और विद्याधर आदिके स्थान हैं। उनके नीचे जहाँतक वायुकी गति है और बादल दिखायी देते हैं, अन्तरिक्ष लोक है। यह यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत और भूतोंका विहारस्थल है। उससे नीचे सौ योजनकी दूरीपर यह पृथ्वी है। जहाँतक हंस, गिद्ध, बाज और गरुड आदि प्रधान-प्रधान पक्षी उड़ सकते हैं, वहींतक इसकी सीमा है। पृथ्वीके विस्तार और स्थिति आदिका वर्णन तो हो ही चुका है। इसके भी नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल नामके सात भू-विवर (भूगर्भस्थित बिल या लोक) हैं। ये एकके नीचे एक दस-दस हजार योजनकी दूरीपर स्थित हैं और इनमेंसे प्रत्येककी लंबाई-चौड़ाई भी दस-दस हजार योजन ही है। ये भूमिके बिल भी एक प्रकारके स्वर्ग ही हैं। इनमें स्वर्गसे भी अधिक विषयभोग, ऐश्वर्य, आनन्द, सन्तान-सुख और धन-सम्पत्ति है। यहाँके वैभवपूर्ण भवन, उद्यान और क्रीडास्थलोंमें दैत्य, दानव

है तो उस पापदृष्टिके नेत्रोंको गिद्ध, कङ्क, काक और बटेर आदि वज्रकी-सी कठोर चोंचोंवाले पक्षी बलात्कारसे निकाल लेते हैं। इस नरकको पर्यावर्तन कहते हैं ॥ ३३—३५ ॥

इस लोकमें जो व्यक्ति अपनेको बड़ा धनवान् समझकर अभिमानवश सबको टेढ़ी नजरसे देखता है और सभीपर सन्देह रखता है, धनके व्यय और नाशकी चिन्तासे जिसके हृदय और मुँह सूखे रहते हैं, अतः तनिक भी चैन न मानकर जो यक्षके समान धनकी रक्षामें ही लगा रहता है तथा पैसा पैदा करने, बढ़ाने और बचानेमें जो तरह-तरहके पाप करता रहता है—वह नराधम मरनेपर सूचीमुख नरकमें गिरता है। वहाँ उस अर्थपिशाच पापात्माके सारे अङ्गोंको यमराजके दूत दर्जियोंके समान सूई-धागेसे सीते हैं ॥ ३६ ॥

राजन्! यमलोकमें इसी प्रकारके सैकड़ों-हजारों नरक हैं। उनमें जिनका यहाँ उल्लेख हुआ है और जिनके विषयमें कुछ नहीं कहा गया, वे सभी अधर्मपरायण जीव अपने कर्मोंके अनुसार जाते हैं। इसी प्रकार धर्मात्मा पुरुष स्वर्गादिमें जाते हैं। इस प्रकार नरक और स्वर्गके भोगसे जब इनके अधिकांश पाप और पुण्य क्षीण हो जाते हैं, तो बाकी बचे हुए पुण्य-पापरूप कर्मोंको लेकर ये फिर इसी लोकमें जन्म लेनेके लिये लौट आते हैं। इन धर्म और अधर्म दोनोंसे विलक्षण जो निवृत्तिमार्ग है, उसका तो पहले (द्वितीय स्कन्धमें) ही वर्णन हो चुका है। पुराणोंमें जिसका चौदह भुवनके रूपमें वर्णन किया गया है, वह ब्रह्माण्डकोश इतना ही है। यह साक्षात् परमपुरुष श्रीनारायणका अपनी मायाके गुणोंसे युक्त अत्यन्त स्थूल स्वरूप है। इसका वर्णन मैंने तुम्हें सुना दिया। परमात्मा भगवान्‌का उपनिषदोंमें वर्णित निर्गुण स्वरूप यद्यपि मन-बुद्धिकी पहुँचके बाहर है—तो भी जो पुरुष इस स्थूल रूपका वर्णन आदरपूर्वक पढ़ता, सुनता या सुनाता है, उसकी बुद्धि श्रद्धा और भक्तिके कारण शुद्ध हो जाती है और वह उस सूक्ष्म रूपका भी अनुभव कर सकता है ॥३७-३८॥

यतिको चाहिये कि भगवान्‌के स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकारके रूपोंका श्रवण करके पहले स्थूल रूपमें चित्तको स्थिर करे, फिर धीरे-धीरे वहाँसे हटाकर उसे सूक्ष्ममें लगा दे। परीक्षित्! मैंने तुमसे पृथ्वी, उसके अन्तर्गत द्वीप, वर्ष, नदी, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशा, नरक, ज्योतिर्गण और लोकोंकी स्थितिका वर्णन किया। यही भगवान्‌का अति अद्भुत स्थूल रूप है, जो समस्त जीव-समुदायका आश्रय है ॥ ३९-४० ॥

पञ्चम स्कन्ध समाप्त



मारे हुए है। ऐसी स्थितिमें अभिजित्से लेकर पुनर्वसुपर्यन्त जो उत्तरायणके चौदह नक्षत्र हैं, वे इसके दाहिने भागमें हैं और पुष्यसे लेकर उत्तराषाढ़ापर्यन्त जो दक्षिणायनके चौदह नक्षत्र हैं, वे बायें भागमें हैं। लोकमें भी जब शिशुमार कुण्डलाकार होता है, तो उसके दोनों ओरके अङ्गोंकी संख्या समान रहती है; उसी प्रकार यहाँ नक्षत्र-संख्यामें भी समानता है। इसकी पीठमें अजवीथी (मूला, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा नामके तीन नक्षत्रोंका समूह) है और उदरमें आकाशगङ्गा है। राजन्! इसके दाहिने और बायें कटितटोंमें पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र हैं, पीछेके दाहिने और बायें चरणोंमें आर्द्रा और आश्लेषा नक्षत्र हैं, तथा दाहिने और बायें नथुनोंमें क्रमशः अभिजित् और उत्तराषाढ़ा हैं। इसी प्रकार दाहिने और बायें नेत्रोंमें श्रवण और पूर्वाषाढ़ा एवं दाहिने और बायें कानोंमें धनिष्ठा और मूल नक्षत्र हैं। मघा आदि दक्षिणायनके आठ नक्षत्र बायीं पसलियोंमें और विपरीत क्रमसे मृगशिरा आदि उत्तरायणके आठ नक्षत्र दाहिनी पसलियोंमें हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा—ये दो नक्षत्र क्रमशः दाहिने और बायें कंधोंकी जगह हैं। इसकी ऊपरकी थूथनीमें अगस्त्य, नीचेकी ठोडीमें नक्षत्ररूप यम, मुखोंमें मङ्गल, लिङ्गप्रदेशमें शनि, कुम्भमें बृहस्पति, छातीमें सूर्य, हृदयमें नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभिमें शुक्र, स्तनोंमें अश्विनीकुमार; प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु, समस्त अङ्गोंमें केतु और रोमोंमें सम्पूर्ण तारागण स्थित हैं॥ ४–७॥

राजन्! यह भगवान् विष्णुका सर्वदेवमय स्वरूप है। इसका नित्यप्रति सायङ्कालके समय पवित्र और मौन होकर चिन्तन करना चाहिये तथा इस मन्त्रका जप करते हुए भगवान्‌की स्तुति करनी चाहिये—'नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषायाभिधीमहि।' (सम्पूर्ण ज्योतिर्गणोंके आश्रय, कालचक्रस्वरूप, सर्वदेवाधिपति परमपुरुष परमात्माका नमस्कारपूर्वक हम ध्यान करते हैं।) तीनों काल इस मन्त्रका जप करनेवाले पुरुषके पापोंको भगवान् नष्ट कर देते हैं। ग्रह, नक्षत्र और तारोंके रूपमें भी वे ही प्रकाशित हो रहे हैं, ऐसा समझकर जो पुरुष प्रातः, मध्याह्न और सायं—तीनों समय उनके आधिदैविक स्वरूपका नित्यप्रति चिन्तन और वन्दन करता है, उसके उस समय किये हुए पाप तुरंत नष्ट हो जाते हैं॥ ८-९॥

चौबीसवाँ अध्याय

राहु आदिकी स्थिति और अतलादि नीचेके लोकोंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कुछ लोगोंका कथन है कि सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहु नक्षत्रोंके समान घूमता है। इसने भगवान्‌की कृपासे ही देवत्व और ग्रहत्व प्राप्त किया है, स्वयं यह सिंहिकापुत्र असुराधम होनेके कारण किसी प्रकार इस पदके योग्य नहीं है। इसके जन्म और कर्मोंका हम आगे वर्णन करेंगे। सूर्यका जो यह अत्यन्त तपता हुआ मण्डल है, उसका विस्तार दस हजार योजन बतलाया जाता है। इसी प्रकार चन्द्रमण्डलका विस्तार बारह हजार योजन है और राहुका तेरह हजार योजन। अमृतपानके समय राहु देवताके वेषमें सूर्य और चन्द्रमाके बीचमें आकर बैठ गया था, उस समय सूर्य और चन्द्रमाने इनका भेद खोल दिया था; उस वैरको याद करके यह अमावास्या और पूर्णिमाके दिन उनपर आक्रमण करता है। यह देखकर भगवान्‌ने सूर्य और चन्द्रमाकी रक्षाके लिये उन दोनोंके पास अपने प्रिय आयुध सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर दिया है। वह निरन्तर घूमता रहता है, इसलिये राहु उसके असह्य तेजसे उद्विग्न और चकितचित्त होकर मुहूर्त्तमात्र उनके सामने टिककर फिर सहसा लौट आता है। उसके उतनी देर उनके सामने ठहरनेको ही लोग 'ग्रहण' कहते हैं॥ १–३॥

राहुसे दस हजार योजन नीचे सिद्ध, चारण और विद्याधर आदिके स्थान हैं। उनके नीचे जहाँतक वायुकी गति है और बादल दिखायी देते हैं, अन्तरिक्ष लोक है। यह यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत और भूतोंका विहारस्थल है। उससे नीचे सौ योजनकी दूरीपर यह पृथ्वी है। जहाँतक हंस, गिद्ध, बाज और गरुड आदि प्रधान-प्रधान पक्षी उड़ सकते हैं, वहींतक इसकी सीमा है। पृथ्वीके विस्तार और स्थिति आदिका वर्णन तो हो ही चुका है। इसके भी नीचे अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल नामके सात भू-विवर (भूगर्भस्थित बिल या लोक) हैं। ये एकके नीचे एक दस-दस हजार योजनकी दूरीपर स्थित हैं और इनमेंसे प्रत्येककी लंबाई-चौड़ाई भी दस-दस हजार योजन ही है। ये भूमिके बिल भी एक प्रकारके स्वर्ग ही हैं। इनमें स्वर्गसे भी अधिक विषयभोग, ऐश्वर्य, आनन्द, सन्तान-सुख और धन-सम्पत्ति है। यहाँके वैभवपूर्ण भवन, उद्यान और क्रीडास्थलोंमें दैत्य, दानव



अवीचिमान्, अय पान, अन्धतामिस्र, सारमेयादन, सूचीमुख, रक्षोगणभोजन और शूलप्रोत नरक

प्राप्त हो गया। यह ऐश्वर्य तो अनित्य है। किन्तु वह भूमिदान तो साक्षात् मोक्षका ही द्वार है। भगवान्‌का तो छींकने, गिरने और फिसलनेके समय विवश होकर एक बार नाम लेनेसे भी मनुष्य सहसा कर्म-बन्धनको काट देता है, जब कि मुमुक्षुलोग इस कर्मबन्धनको योगसाधन आदि अन्य अनेकों उपायोंका आश्रय लेनेपर बड़े कष्टसे कहीं काट पाते हैं। अतएव अपने संयमी भक्त और ज्ञानियोंको स्वस्वरूप प्रदान करनेवाले और समस्त प्राणियोंके आत्मा श्रीभगवान्‌को आत्मभावसे किये हुए भूमिदानका यह फल नहीं हो सकता ॥ १८–२१ ॥

भगवान्‌ने यदि बलिको उसके सर्वस्वदानके बदले अपनी विस्मृति करानेवाला यह मायामय भोग और ऐश्वर्य ही दिया, तो यह उनका उसपर कोई अनुग्रह नहीं हुआ; क्योंकि बलिको तो पहलेसे ही भोगादिसे पूर्ण वैराग्य था। जिस समय कोई और उपाय न देखकर भगवान्‌ने याचनाके छलसे उसका त्रिलोकीका राज्य छीन लिया और उसके पास केवल उसका शरीरमात्र ही रह गया, तब वरुणके पाशोंसे बाँधकर पर्वतकी गुफामें मूँद दिये जानेपर उसने कहा था—'खेद है, यह इन्द्र विद्वान् होकर भी अपना सच्चा स्वार्थ सिद्ध करनेमें कुशल नहीं है। इसने सम्मति लेनेके लिये अनन्यभावसे बृहस्पतिजी-को अपना मन्त्री बनाया; फिर भी उनकी अवहेलना करके, इसने श्रीविष्णुभगवान्‌से उनका दास्य न माँगकर उनके द्वारा मुझसे अपने लिये ये भोग ही माँगे। ये तीन लोक तो केवल एक मन्वन्तरतक ही रहते हैं, जो अनन्तकालका एक अवयवमात्र है। भगवान्‌के कैङ्कर्यके आगे भला, इन तुच्छ भोगोंका क्या मूल्य है। देखो, हमारे पितामह प्रह्लादजीने—भगवान्‌के हाथों अपने पिता हिरण्यकशिपुके मारे जानेपर—प्रभुकी सेवाका ही वर माँगा था। भगवान् देना भी चाहते थे, तो भी उनसे दूर करनेवाला समझकर उन्होंने अपने पिताका निष्कण्टक राज्य लेना स्वीकार नहीं किया। वे बड़े महानुभाव थे। मुझपर तो न भगवान्‌की कृपा ही है और न मेरी वासनाएँ ही शान्त हुई हैं; फिर मेरे-जैसा कौन पुरुष उनका अनुसरण करनेका साहस कर सकता है!' राजन्! इस बलिका चरित हम आगे (अष्टम स्कन्धमें) विस्तारसे कहेंगे। अपने भक्तोंके प्रति भगवान्‌का हृदय दयासे भरा रहता है। इसीसे अखिल जगत्‌के परमपूजनीय गुरु भगवान् नारायण हाथमें गदा लिये सुतल लोकमें राजा बलिके द्वारपर सदा उपस्थित रहते हैं। एक बार जब दिग्विजय करता हुआ घमंडी रावण वहाँ पहुँचा, तो उसे भगवान्‌ने अपने पैरके अँगूठेकी ठोकरसे ही लाखों योजन दूर फेंक दिया था ॥ २२–२७ ॥

सुतललोकसे नीचे तलातल है। वहाँ त्रिपुराधिपति दानवराज मय रहता है। पहले तीनों लोकोंको शान्ति प्रदान करनेके लिये भगवान् शङ्करने उसके तीनों पुर भस्म कर दिये थे। फिर उन्हींकी कृपासे उसे यह स्थान मिला। वह मायावियोंका परम गुरु है और महादेवजीका उसपर सब प्रकार हाथ है, इसलिये उसे सुदर्शन चक्रसे भी कोई खटका नहीं है। वहाँके निवासी उसका खूब आदर करते हैं ॥२८॥

उसके नीचे महातलमें कद्रूसे उत्पन्न हुए अनेक सिरोंवाले सर्पोंका क्रोधवश नामका एक समुदाय रहता है। उनमें कुहक, तक्षक, कालिय और सुषेण आदि प्रधान हैं। उनके बड़े-बड़े फन हैं। वे सदा भगवान्‌के वाहन पक्षिराज गरुडजीसे डरते रहते हैं; तो भी कभी-कभी अपने स्त्री, पुत्र, मित्र और कुटुम्बके सङ्गसे मस्त होकर विहार करने लगते हैं ॥२९॥

उसके नीचे रसातलमें पणि नामके दैत्य और दानव रहते हैं। ये निवातकवच, कालेय और हिरण्यपुरवासी भी कहलाते हैं। इनका देवताओंसे विरोध है। ये जन्मसे ही बड़े बलवान् और साहसी होते हैं। किन्तु जिनका प्रभाव सम्पूर्ण लोकोंमें फैला हुआ है, उन श्रीहरिके चक्रसे वीर्यमद चूर्ण हो जानेके कारण ये सर्पोंके समान लुक छिपकर रहते हैं तथा इन्द्रकी दूती सरमाके कहे हुए मन्त्रवर्णरूप *वाक्यके कारण सर्वदा इन्द्रसे डरते रहते हैं ॥ ३० ॥

रसातलके नीचे पाताल है। वहाँ शङ्ख, कुलिक, महाशङ्ख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शङ्खचूड, कम्बल, अश्वतर और देवदत्त आदि बड़े क्रोधी और बड़े-बड़े फनोंवाले नाग रहते हैं। इनमें वासुकि प्रधान है। उनमेंसे किसीके पाँच, किसीके सात, किसीके दस, किसीके सौ और किसीके हजार सिर हैं। उनके फनोंकी दमकती हुई मणियाँ अपने प्रकाशसे पाताललोकका सारा अन्धकार नष्ट कर देती हैं ॥३१॥

* एक कथा आती है कि जब पणि नामक दैत्योंने पृथ्वीको रसातलमें छिपा लिया, तब इन्द्रने उसे ढूँढनेके लिये सरमा नामकी एक दूतीको भेजा था। सरमासे दैत्योंने सन्धि करनी चाही, परन्तु सरमाने सन्धि न करके इन्द्रकी स्तुति करते हुए कहा था—'हता इन्द्रेण पणयः शयध्वम्' (हे पणिगण! तुम इन्द्रके हाथसे मरकर पृथ्वीपर सो जाओ।) इसी शापके कारण उन्हें सदा इन्द्रका डर लगा रहता है।

चेष्टा करनी चाहिये। जो पुरुष केवल सुपथ्यका ही सेवन करता है, उसे रोग अपने वशमें नहीं कर सकते। वैसे ही परीक्षित्! जो पुरुष नियमोंका पालन करता है, वह धीरे धीरे अपने सारे पापोंको धो डालता है और ज्ञान प्राप्त करके उनकी वासनाओंको भी नष्ट कर देता है। जैसे बाँसोंके झुरमुटमें लगी आग बाँसोंको जला डालती है—वैसे ही धर्मज्ञ और श्रद्धावान् धीर पुरुष तपस्या, ब्रह्मचर्य, इन्द्रियदमन, मनकी स्थिरता, दान, सत्य, बाहर भीतरकी पवित्रता तथा यम एवं नियम—इन नौ साधनोंसे मन, वाणी और शरीरद्वारा किये गये बड़े-से-बड़े पापोंको भी नष्ट कर देते हैं। भगवान्‌की शरणमें रहनेवाले भक्तजन, जो विरले ही होते हैं, केवल भक्तिके द्वारा अपने सारे पापोंको उसी प्रकार भस्म कर देते हैं जैसे सूर्य कुहरेको नष्ट कर देते हैं। परीक्षित्! पापी पुरुषकी जैसी शुद्धि भगवान्‌को आत्मसमर्पण करनेसे और उनके भक्तोंका सेवन करनेसे होती है, वैसी तपस्या आदिके द्वारा नहीं होती। जगत्‌में यह भक्तिका पथ ही सर्वश्रेष्ठ, भयरहित और कल्याणस्वरूप है। क्योंकि इस मार्गपर भगवत्परायण, सुशील साधुजन चलते हैं। परीक्षित्! जैसे शराबसे भरे घड़ेको नदियाँ पवित्र नहीं कर सकतीं, वैसे ही बड़े-बड़े प्रायश्चित्त बार बार किये जानेपर भी भगवद्विमुख मनुष्यको पवित्र करनेमें असमर्थ हैं। जिन्होंने अपने भगवद्गुणानुरागी मन मधुकरको भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंसे एक बार भी संयोग करा दिया, उन्होंने सारे प्रायश्चित्त कर लिये। वे स्वप्नमें भी यमराज और उनके पाशधारी दूतोंको नहीं देखते। फिर नरककी तो बात ही क्या है ॥ ११–१९ ॥

परीक्षित्! इस विषयमें महात्मालोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। उसमें भगवान् विष्णु और यमराजके दूतोंका संवाद है। तुम उसे सुनो। कान्यकुब्ज नगर (कन्नौज) में एक दासीपति ब्राह्मण रहता था। उसका नाम था अजामिल। दासीके संसर्गसे दूषित होनेके कारण उसका सदाचार नष्ट हो चुका था। वह कभी बटोहियोंको बाँधकर उन्हें लूट लेता, कभी लोगोंको जूएमें हरा देता, किसीका धन धोखा धड़ीसे ले लेता तो किसीका चुरा लेता। इस प्रकार अत्यन्त निन्दनीय वृत्तिका आश्रय लेकर वह अपने कुटुम्बका पेट भरता था और दूसरे प्राणियोंको बहुत ही सताता था। परीक्षित्! इसी प्रकार वह वहाँ रहकर दासीके बच्चोंका लालन पालन करता रहा। इस प्रकार उसकी आयुका बहुत बड़ा भाग—अस्सी वर्ष—बीत गया। बूढ़े अजामिलके दस पुत्र थे। उनमें सबसे छोटेका नाम था 'नारायण'। माँ बाप उससे बहुत प्यार करते थे। वृद्ध अजामिलने अत्यन्त मोहके कारण अपना सम्पूर्ण हृदय अपने बच्चे नारायणको सौंप दिया था। वह अपने बच्चेकी तोतली बोली सुन सुनकर तथा बालसुलभ खेल देख देखकर फूला नहीं समाता था। अजामिल बालकके स्नेह बन्धनमें बँध गया था। जब वह खाता तब उसे भी खिलाता, जब पानी पीता तो उसे भी पिलाता। इस प्रकार वह अतिशय मूढ़ हो गया था, उसे इस बातका पता ही न चला कि मृत्यु मेरे सिरपर आ पहुँची है ॥ २०–२६ ॥

वह मूर्ख इसी प्रकार अपना जीवन बिता रहा था कि मृत्युका समय आ पहुँचा। अब वह अपने पुत्र बालक नारायणके सम्बन्धमें ही सोचने विचारने लगा। उसकी सारी वृत्तियाँ पुत्रपर ही केन्द्रित हो गयीं। इतनेमें ही अजामिलने देखा कि उसे ले जानेके लिये अत्यन्त भयावने तीन यमदूत आये हैं। उनके हाथोंमें फाँसी है, मुँह टेढ़े टेढ़े हैं और शरीरके रोएँ खड़े हुए हैं। उस समय बालक नारायण वहाँसे कुछ दूरीपर खेल रहा था। यमदूतोंको देखकर अजामिल अत्यन्त व्याकुल हो गया और उसने बहुत ऊँचे स्वरसे पुकारा—'नारायण!' भगवान्‌के पार्षदोंने देखा कि यह मरते समय हमारे स्वामी भगवान् नारायणका नाम ले रहा है, उनके नामका कीर्तन कर रहा है, अतः वे बड़े वेगसे झटपट वहाँ आ पहुँचे। उस समय यमराजके दूत दासीपति अजामिलके शरीरमेंसे उसके सूक्ष्मशरीरको खींच रहे थे। विष्णुदूतोंने उन्हें बलपूर्वक रोक दिया। उनके रोकनेपर यमराजके दूतोंने उनसे कहा—'अरे, धर्मराजकी आज्ञाका निषेध करनेवाले तुमलोग हो कौन? तुम किसके दूत हो, कहाँसे आये हो और इसे ले जानेसे हमें क्यों रोक रहे हो? क्या तुमलोग कोई देवता, उपदेवता अथवा सिद्धश्रेष्ठ हो? हम देखते हैं कि तुम सब लोगोंके नेत्र कमलदलके समान कोमलतासे भरे हैं, तुम पीले-पीले रेशमी वस्त्र पहने हो, तुम्हारे सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और गलेमें कमलके हार लहरा रहे हैं। सबकी नयी अवस्था है, सुन्दर सुन्दर चार चार भुजाएँ हैं, सभीके करकमलोंमें धनुष, तरकस, तलवार, गदा, शङ्ख, चक्र, कमल आदि सुशोभित हैं। तुमलोगोंकी अङ्गकान्तिसे दिशाओंका अन्धकार और प्राकृत प्रकाश भी दूर हो रहा है। हम धर्मराजके सेवक हैं। हमें तुमलोग क्यों रोक रहे हो?' ॥ २७–३६ ॥

भगवान् अनन्त रसातलके नीचे अपने ही आधार स्थित हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी स्थितिके लिये लीलाहीसे पृथ्वीको धारण किये हुए हैं ॥ ९-१३ ॥

राजन्! भोगोंकी कामनावाले पुरुषोंकी अपने कर्मोंके अनुसार प्राप्त होनेवाली भगवान्‌की रची हुई ये ही गतियाँ हैं। इन्हें जिस प्रकार मैंने गुरुमुखसे सुना था, उसी प्रकार तुम्हें सुना दिया। मनुष्यको प्रवृत्तिरूप धर्मके परिणाममें प्राप्त होनेवाली जो तरह-तरहकी ऊँची-नीची गतियाँ हैं, वे इतनी ही हैं; इन्हें तुम्हारे प्रश्नके अनुसार मैंने सुना दिया। अब बताओ, और क्या सुनाऊँ? ॥ १४-१५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

विभिन्न नरकोंका वर्णन

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—महर्षे! लोगोंको जो ये ऊँची-नीची गतियाँ प्राप्त होती हैं, उनमें इतनी विभिन्नता क्यों है? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—राजन्! कर्म करनेवाले पुरुष सात्त्विक, राजस और तामस—तीन प्रकारके होते हैं तथा उनकी श्रद्धाओंमें भी भेद रहता है। इस प्रकार स्वभाव और श्रद्धाके भेदसे उनके कर्मोंकी गतियाँ भी भिन्न-भिन्न होती हैं और न्यूनाधिकरूपमें ये सभी गतियाँ सभी कर्ताओंको प्राप्त होती हैं। इसी प्रकार निषिद्ध कर्मरूप पाप करनेवालोंको भी, उनकी श्रद्धाकी असमानताके कारण, समान फल नहीं मिलता। अतः अनादि अविद्याके वशीभूत होकर कामनापूर्वक किये हुए उन निषिद्ध कर्मोंके परिणाममें जो हजारों तरहकी नारकी गतियाँ होती हैं, उनका हम विस्तारसे वर्णन करेंगे ॥ २-३ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आप जिनका वर्णन करना चाहते हैं, वे नरक इसी पृथ्वीके कोई देशविशेष हैं अथवा त्रिलोकीसे बाहर या इसीके भीतर किसी जगह हैं? ॥४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! वे त्रिलोकीके भीतर ही हैं तथा दक्षिणकी ओर पृथ्वीसे नीचे जलके ऊपर स्थित हैं। इसी दिशामें अग्निष्वात्त आदि पितृगण रहते हैं, वे अत्यन्त एकाग्रतापूर्वक अपने वंशधरोंके लिये मङ्गलकामना किया करते हैं। उस नरकलोकमें सूर्यके पुत्र पितृराज भगवान् यम अपने सेवकोंके सहित रहते हैं तथा भगवान्‌की आज्ञाका उल्लङ्घन न करते हुए, अपने दूतोंद्वारा वहाँ लाये हुए मृत प्राणियोंको उनके दुष्कर्मोंके अनुसार पापका फल दण्ड देते हैं। परीक्षित्! कोई-कोई लोग नरकोंकी संख्या इक्कीस बताते हैं। अब हम नाम, रूप और लक्षणोंके अनुसार उनका क्रमशः वर्णन करते हैं। उनके नाम ये हैं—तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तसूर्मि, वज्रकण्टकशाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि और अयःपान। इनके सिवा क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दन्दशूक, अवटरोधन, पर्यावर्तन और सूचीमुख—ये सात और मिलाकर कुल अट्ठाईस नरक तरह-तरहकी यातनाओंको भोगनेके स्थान हैं ॥ ५-७ ॥

जो पुरुष दूसरोंके धन, सन्तान अथवा स्त्रियोंका हरण करता है, उसे अत्यन्त भयानक यमदूत कालपाशमें बाँधकर बलात्कारसे तामिस्र नरकमें गिरा देते हैं। उस अन्धकारमय नरकमें उसे अन्न-जल न देना, डंडे लगाना और भय दिखलाना आदि अनेक प्रकारके उपायोंसे पीडित किया जाता है। इससे अत्यन्त दुखी होकर वह एकाएक मूर्च्छित हो जाता है। इसी प्रकार जो पुरुष किसी दूसरेको धोखा देकर उसकी स्त्री आदिको भोगता है, वह अन्धतामिस्र नरकमें पड़ता है। वहाँकी यातनाओंमें पड़कर वह, जड़से कटे हुए वृक्षके समान, वेदनाके मारे सारी सुध-बुध खो बैठता है और उसे कुछ भी नहीं सूझ पड़ता। इसीसे इस नरकको अन्धतामिस्र कहते हैं ॥८-९॥

जो पुरुष इस लोकमें 'यह शरीर ही मैं हूँ और ये स्त्री-धनादि मेरे हैं' ऐसी बुद्धिसे दूसरे प्राणियोंसे द्रोह करके निरन्तर अपने कुटुम्बके ही पालन-पोषणमें लगा रहता है, वह अपना शरीर छोड़नेपर अपने पापके कारण स्वयं ही रौरव नरकमें गिरता है। इस लोकमें उसने जिन जीवोंको जिस प्रकार कष्ट पहुँचाया होता है, परलोकमें यमयातनाका समय आनेपर वे जीव 'रुरु' होकर उसे उसी प्रकार कष्ट पहुँचाते हैं। इसीलिये इस नरकका नाम 'रौरव' है। 'रुरु' सर्पसे भी अधिक क्रूर स्वभाववाले एक जीवका नाम है। ऐसा ही महारौरव नरक है। इसमें वह व्यक्ति जाता है, जो अपने कुटुम्ब आदिकी भी परवा न कर केवल अपने ही

खजाना ही था। ब्रह्मचारी, विनयी, जितेन्द्रिय, सत्यनिष्ठ, मन्त्रवेत्ता और पवित्र भी था। इसने गुरु, अग्नि, अतिथि और वृद्ध पुरुषोंकी सेवा की थी। अहङ्कार तो इसमें था ही नहीं। यह समस्त प्राणियोंका हित चाहता, उपकार करता, आवश्यकताके अनुसार ही बोलता और किसीके गुणोंमें दोष नहीं ढूँढ़ता था। एक दिन यह ब्राह्मण अपने पिताके आदेशानुसार वनमें गया और वहाँसे फल-फूल, समिधा तथा कुश लेकर घरके लिये लौटा। लौटते समय इसने देखा कि एक भ्रष्ट शूद्र, जो बहुत कामी और निर्लज्ज है, शराब पीकर किसी वेश्याके साथ विहार कर रहा है। वेश्या भी शराब पीकर मतवाली हो रही है। नशेके कारण उसकी आँखें नाच रही हैं और वह अर्द्धनग्न अवस्थामें हो रही है। वह शूद्र उस वेश्याके साथ कभी गाता, कभी हँसता और कभी तरह-तरहकी चेष्टाएँ करके उसे प्रसन्न करता है। निष्पाप पुरुषो! शूद्रकी भुजाओंमें अङ्गरागादि कामोद्दीपक वस्तुएँ लगी हुई थीं और वह उनसे उस कुलटाका आलिङ्गन कर रहा था। अजामिल उन्हें इस अवस्थामें देखकर सहसा मोहित और कामके वश हो गया। यद्यपि अजामिलने अपने धैर्य और ज्ञानके अनुसार अपने काम-वेगसे विचलित मनको रोकनेकी बहुत-बहुत चेष्टाएँ कीं, परन्तु पूरी शक्ति लगा देनेपर भी वह अपने मनको रोकनेमें असमर्थ रहा। उस वेश्याको निमित्त बनाकर काम-पिशाचने अजामिलके मनको ग्रस लिया। इसकी सदाचार और शास्त्रसम्बन्धी चेतना नष्ट हो गयी। अब यह मन-ही-मन उसी वेश्याका चिन्तन करने लगा और अपने धर्मसे विमुख हो गया। अब अजामिल सुन्दर-सुन्दर वस्त्र आभूषण आदि वस्तुएँ, जिनसे वह प्रसन्न होती, ले आता। यहाँतक कि इसने अपने पिताकी सारी सम्पत्ति उसी कुलटाको सौंप दी। यह ब्राह्मण अब उसी प्रकारकी चेष्टा करता, जिससे वह वेश्या प्रसन्न हो। उस स्वच्छन्दचारिणी कुलटाकी तिरछी चितवनने इसके मनको ऐसा लुभा लिया कि इसने अपनी कुलीन नवयुवती और विवाहिता पत्नीतकका परित्याग कर दिया। इसके पापकी भी भला, कोई सीमा है। यह कुबुद्धि जहाँ धन मिलता, वहींसे उठा लाता। न्याय-अन्याय या पाप-पुण्यका कोई विचार न करता। उस वेश्याके बड़े कुटुम्बका पालन करनेमें ही यह व्यस्त रहता। इस पापीने शास्त्राज्ञाका उल्लङ्घन करके स्वच्छन्द आचरण किया है। यह सत्पुरुषोंके द्वारा निन्दित है। इसने बहुत दिनोंतक वेश्याके मल-समान अपवित्र अन्नसे अपना जीवन व्यतीत किया है, इसका सारा जीवन ही पापमय है। इसने अबतक अपने पापोंका कोई प्रायश्चित्त भी नहीं किया है। इसलिये अब हम इस पापीको दण्डपाणि भगवान् यमराजके पास ले जायँगे। वहाँ यह अपने पापोंका दण्ड भोगकर शुद्ध हो जायगा॥५६-६८॥

दूसरा अध्याय

विष्णुदूतोंद्वारा भागवत धर्म निरूपण और अजामिलका परमधामगमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌के नीति-निपुण एवं धर्मका मर्म जाननेवाले पार्षदोंने यमदूतोंका यह अभिभाषण सुनकर उनसे इस प्रकार कहा॥१॥

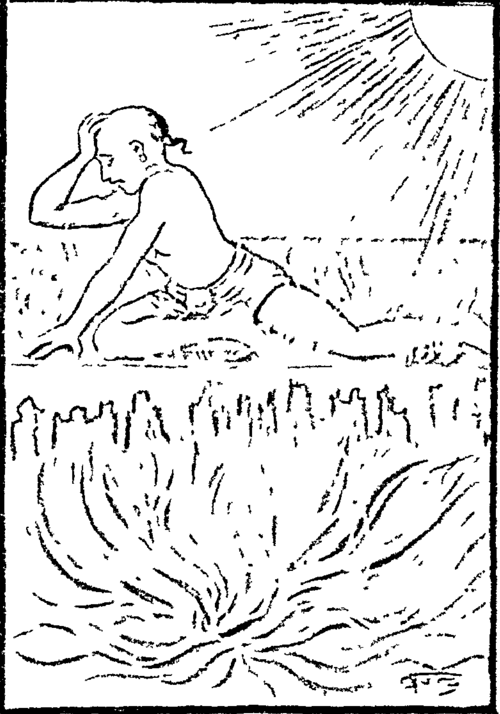
भगवान्‌के पार्षदोंने कहा—यमदूतो! यह बड़े आश्चर्य और खेदकी बात है कि धर्मज्ञोंकी सभामें अधर्म प्रवेश कर रहा है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि वहाँ निरपराध और अदण्डनीय व्यक्तियोंको व्यर्थ ही दण्ड दिया जाता है। जो प्रजाके रक्षक हैं, शासक हैं, समदर्शी और परोपकारी हैं—यदि वे ही प्रजाके प्रति विषमताका व्यवहार करने लगें तो फिर प्रजा किसकी शरण लेगी? तुमलोगोंको यह जानना चाहिये कि सत्पुरुष जैसा आचरण करते हैं, साधारण लोग भी वैसा ही करते हैं। वे अपने आचरणके द्वारा जिस कर्मको धर्मानुकूल प्रमाणित कर देते हैं, लोग उसीका अनुकरण करने लगते हैं। साधारण लोग पशुओंके समान धर्म और अधर्मका स्वरूप न जानकर किसी सत्पुरुषपर विश्वास कर लेते हैं, उसकी गोदमें सिर रखकर निर्भय और निश्चिन्त सो जाते हैं। वही दयालु सत्पुरुष, जो प्राणियोंका अत्यन्त विश्वासपात्र है और जिसे मित्रभावसे अपना हितैषी समझकर उन्होंने आत्मसमर्पण कर दिया है, उन अज्ञानी जीवोंके साथ कैसे विश्वासघात कर सकता है?॥२-६॥

यमदूतो! इसने कोटि-कोटि जन्मोंकी पाप-राशिका पूरा-पूरा प्रायश्चित्त ही नहीं कर लिया है बल्कि यह तो स्वयं कल्याणका पात्र बन गया है। क्योंकि इसने विवश होकर ही सही, भगवान्‌के परम कल्याणमय नामका उच्चारण तो किया है। जिस समय इसने 'नारायण' इन चार अक्षरोंका उच्चारण किया, उसी समय केवल उतनेसे ही इस पापीके समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो गया। चाहे चोर हो या शराबी, मित्रद्रोही हो या ब्रह्मघाती, गुरुपत्नीगामी हो या

महारौरव नरक







कुम्भीपाक नरक

कालसूत्र नरक

भरी हुई हैं। वहाँ गिरनेपर उन्हें इधर-उधरसे जलके जीव नोचते हैं। किन्तु इससे उनका शरीर नहीं छूटता, पापके कारण प्राण उसे वहन किये रहते हैं और वे उस दुर्गतिको अपनी करनीका फल समझकर मन-ही-मन सन्तप्त होते रहते हैं। जो लोग शौच और आचारके नियमोंका परित्याग कर तथा लज्जाको तिलाञ्जलि देकर इस लोकमें शूद्राओंके साथ सम्बन्ध गाँठकर पशुओंके समान आचरण करते हैं, वे भी मरनेके बाद पीब, विष्ठा, मूत्र, कफ और मलसे भरे हुए पूयोद नामक समुद्रमें गिरकर उन अत्यन्त घृणित वस्तुओंको ही खाते हैं॥ २२-२३॥

इस लोकमें जो ब्राह्मणादि उच्च वर्णके लोग कुत्ते या गधे पालते और शिकार आदिमें लगे रहते हैं तथा यज्ञादि विहित कर्मोंके सिवा अन्यत्र भी पशुओंका वध करते हैं, मरनेके पश्चात् वे प्राणरोध नरकमें डाले जाते हैं और वहाँ यमदूत उन्हें लक्ष्य बनाकर बाणोंसे बींधते हैं। जो पाखण्डी लोग पाखण्डपूर्ण यज्ञोंमें पशुओंका वध करते हैं, उन्हें परलोकमें वैशस (विशसन) नरकमें डालकर वहाँके अधिकारी बहुत पीड़ा देकर काटते हैं। जो द्विज कामातुर होकर अपनी सवर्णा भार्याको वीर्यपान कराता है, उस पापीको मरनेके बाद यमदूत वीर्यकी नदी (लालाभक्ष नामक नरक) में डालकर वीर्य पिलाते हैं॥ २४–२६॥

जो कोई चोर अथवा राजा या राजपुरुष इस लोकमें किसीके घरमें आग लगा देते हैं, किसीको विष दे देते हैं अथवा गाँवों या व्यापारियोंकी टोलियोंको लूट लेते हैं, उन्हें मरनेके पश्चात् सारमेयादन नामक नरकमें वज्रकी-सी दाढ़ोंवाले सात सौ बीस यमदूत कुत्ते बनकर बड़े वेगसे काटने लगते हैं। इस लोकमें जो पुरुष किसीकी गवाही देनेमें, व्यापारमें अथवा दानके समय किसी भी तरह झूठ बोलता है—वह मरनेपर आधारशून्य अवीचिमान् नरकमें पड़ता है। वहाँ उसे सौ योजन ऊँचे पहाड़के शिखरसे नीचेको सिर करके गिराया जाता है। उस नरककी पत्थरकी भूमि जलके समान जान पड़ती है। इसीलिये इसका नाम अवीचिमान् है। वहाँ गिराये जानेसे इसके शरीरके टुकड़े-टुकड़े हो जानेपर भी प्राण नहीं निकलते, इसलिये इसे बार-बार ऊपर ले जाकर पटका जाता है॥ २७-२८॥

जो ब्राह्मण या ब्राह्मणी अथवा व्रतमें स्थित और कोई भी प्रमादवश मद्यपान करता है, तथा जो क्षत्रिय या वैश्य सोमपान* करता है, उन्हें यमदूत अयःपान नामके नरकमें ले जाते हैं और उनकी छातीपर पैर रखकर उनके मुँहमें आगसे गलाया हुआ लोहा डालते हैं। जो पुरुष इस लोकमें निम्न श्रेणीका होकर भी अपनेको बड़ा माननेके कारण जन्म, तप, विद्या, आचार, वर्ण या आश्रममें अपनेसे बड़ोंका विशेष सत्कार नहीं करता—वह जीता हुआ भी मरेके ही समान है। उसे मरनेपर क्षारकर्दम नामके नरकमें नीचेको सिर करके गिराया जाता है और वहाँसे उसे अनन्त पीड़ाएँ भोगनी पड़ती हैं॥ २९-३०॥

जो पुरुष इस लोकमें नरमेधादिके द्वारा भैरव, यक्ष, राक्षस आदिका यजन करते हैं और जो स्त्रियाँ पशुओंके समान पुरुषोंको खा जाती हैं—उन्हें वे पशुओंकी तरह मारे हुए पुरुष यमलोकमें राक्षस होकर तरह-तरहकी यातनाएँ देते हैं और रक्षोगणभोजन नामक नरकमें कसाइयोंके समान कुल्हाड़ीसे काट-काटकर उसका लोहू पीते हैं। तथा जिस प्रकार वे मांसभोजी पुरुष इस लोकमें उनका मांस भक्षण करके आनन्दित होते थे, उसी प्रकार वे भी उनका रक्तपान करते और आनन्दित होकर नाचते-गाते हैं। इस लोकमें जो लोग वन या गाँवके निरपराध जीवोंको—जो सभी अपने प्राणोंको रखना चाहते हैं—तरह-तरहके उपायोंसे फुसलाकर अपने पास बुला लेते हैं, और फिर उन्हें काँटेसे बेधकर या रस्सीसे बाँधकर खिलवाड़ करते हुए तरह-तरहकी पीड़ाएँ देते हैं, उन्हें भी मरनेके पश्चात् यमयातनाओंके समय शूलप्रोत नामक नरकमें शूलोंसे बेधा जाता है। उस समय जब उन्हें भूख-प्यास सताती है और कङ्क, बटेर आदि तीखी चोंचोंवाले नरकके भयानक पक्षी नोचने लगते हैं तो अपने किये हुए सारे पाप याद आ जाते हैं॥ ३१-३२॥

राजन्! इस लोकमें जो सर्पोंके समान उग्रस्वभाव पुरुष दूसरे जीवोंको पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मरनेपर दन्दशूक नामके नरकमें गिरते हैं। वहाँ पाँच-पाँच, सात-सात मुँहवाले सर्प उनके समीप आकर उन्हें चूहोंकी तरह निगल जाते हैं। जो व्यक्ति यहाँ दूसरे प्राणियोंको अँधेरी खत्तियों, कोठों या गुफाओंमें डाल देते हैं, उन्हें परलोकमें यमदूत वैसे ही स्थानोंमें डालकर विषैली आगके धूएँमें घोटते हैं। इसीलिये इस नरकको अवटनिरोधन कहते हैं। जो गृहस्थ अपने घर आये अतिथि-अभ्यागतोंकी ओर बार-बार क्रोधमें भरकर ऐसी कुटिल दृष्टिसे देखता है मानो उन्हें भस्म कर देगा, वह जब नरकमें जाता

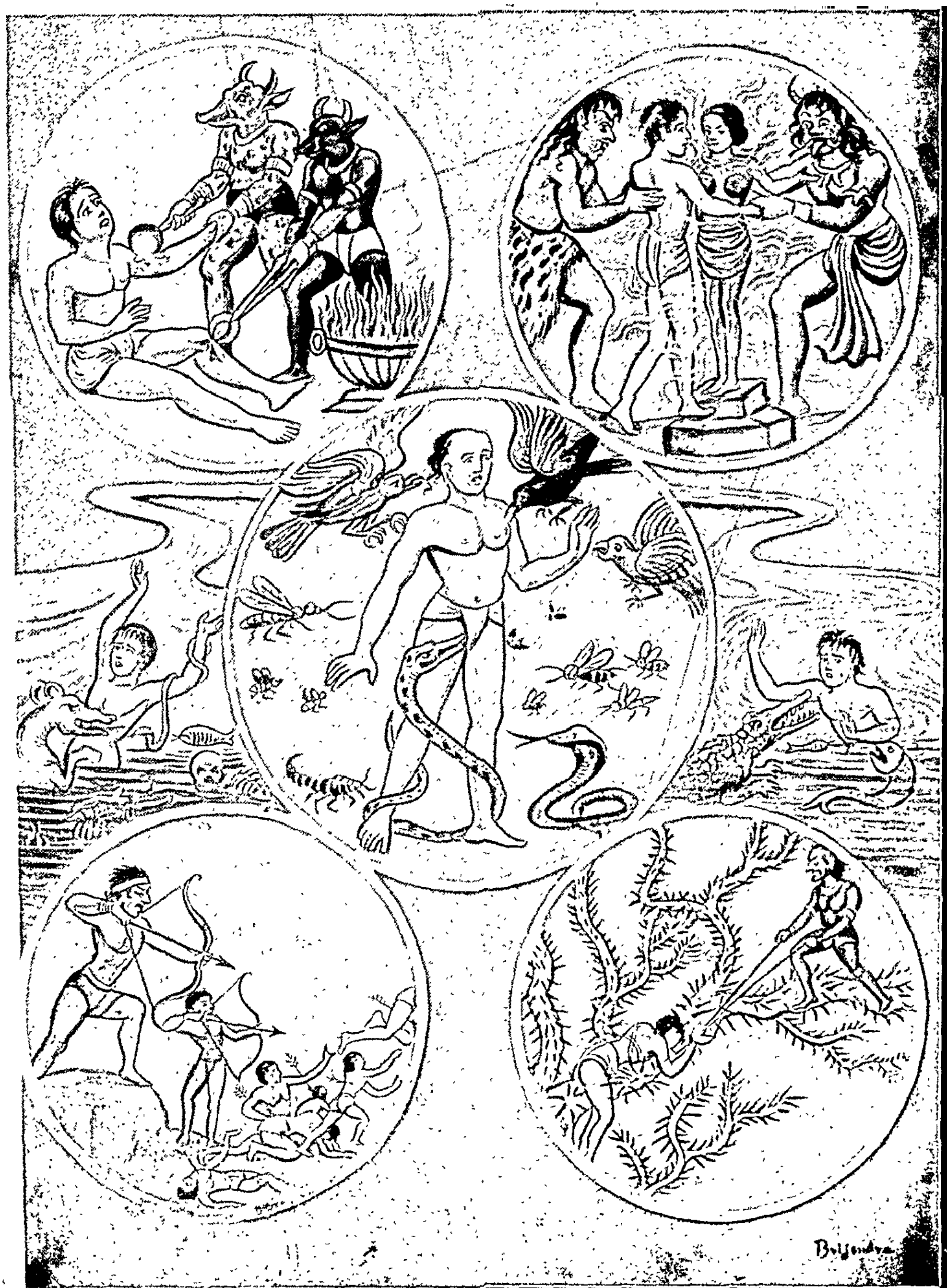
* क्षत्रियों एवं वैश्योंके लिये शास्त्रमें सोमपानका निषेध है।

जा रहे थे, परन्तु चार अत्यन्त सुन्दर सिद्धोंने आकर मुझे छुड़ा लिया ! वे अब कहाँ चले गये ? यद्यपि मैं इस जन्मका महापापी हूँ, फिर भी मैंने पूर्वजन्मोंमें अवश्य ही शुभकर्म किये होंगे, तभी तो मुझे इन श्रेष्ठ देवताओंके दर्शन हुए। उनकी स्मृतिसे मेरा हृदय अब भी आनन्दसे भर रहा है ! मैं कुलटागामी और अत्यन्त अपवित्र हूँ। यदि पूर्व जन्ममें मैंने पुण्य न किये होते, तो मरनेके समय मेरी जीभ भगवान्‌के मनोमोहक नामका उच्चारण कैसे कर पाती ? कहाँ तो मैं महाकपटी, पापी, निर्लज्ज और ब्रह्मतेजको नष्ट करनेवाला तथा कहाँ भगवान्‌का वह परम मङ्गलमय 'नारायण' नाम ! सचमुच मैं तो कृतार्थ हो गया। अच्छा ठीक है ! अब मैं अपने मन, इन्द्रिय और प्राणोंको वशमें करके ऐसा प्रयत्न करूँगा कि फिर अपनेको घोर अन्धकारमय नरकमें न डालूँ। अज्ञानवश मैंने अपनेको शरीर समझकर उसके लिये बड़ी-बड़ी कामनाएँ कीं और उनकी पूर्तिके लिये अनेकों कर्म किये। उन्हींका फल है यह बन्धन ! अब मैं इसे काटकर समस्त प्राणियोंका हित करूँगा, वासनाओंको शान्त कर दूँगा, सबसे मित्रताका व्यवहार करूँगा, दुखियोंपर दया करूँगा और पूरे संयमके साथ रहूँगा। भगवान्‌की मायाने स्त्रीका रूप धारण करके मुझ अधमको खिलौना बना लिया और मुझसे तरह तरहके खेल खेले। अब मैं अपने आपको उस मायासे मुक्त करूँगा। मैंने सत्य वस्तु परमात्माको पहचान लिया है, अत अब मैं शरीर आदिमें 'मैं' तथा 'मेरे' का भाव छोड़कर भगवन्नामके कीर्तन आदिसे अपने मनको शुद्ध करूँगा और उसे भगवान्‌में लगाऊँगा' ॥ ३०–३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान्‌के पार्षद उन महात्माओंका केवल थोड़ी ही देरके लिये सत्सङ्ग हुआ था। इतनेहीसे अजामिलके चित्तमें संसारके प्रति तीव्र वैराग्य हो गया। वे सबके सम्बन्ध और मोहको छोड़कर हरद्वार चले गये। उस देवस्थानमें जाकर वे भगवान्‌के मन्दिरमें आसनसे बैठ गये और उन्होंने योगमार्गका आश्रय लेकर अपनी सारी इन्द्रियोंको विषयोंसे हटाकर मनमें लीन कर लिया और मनको बुद्धिमें मिला दिया। इसके बाद आत्मचिन्तनके द्वारा उन्होंने अपने आपको गुणोंसे पृथक् कर लिया तथा भगवान्‌के धाम अनुभवस्वरूप परब्रह्ममें जोड़ दिया। इस प्रकार जब अजामिलकी बुद्धि त्रिगुणमयी प्रकृतिसे ऊपर उठकर भगवान्‌के स्वरूपमें स्थित हो गयी, तब उन्होंने देखा कि उनके सामने वे ही चारों पार्षद, जिन्हें उन्होंने पहले देखा था, खड़े हैं। विप्र अजामिलने सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया। उनका दर्शन पानेके बाद उन्होंने उस तीर्थस्थानमें गङ्गाके तटपर अपना शरीर त्याग दिया और तत्काल भगवान्‌के पार्षदोंके रूपमें परिणत हो गये। अब अजामिल भगवान्‌के पार्षदोंके साथ स्वर्णमय विमानपर आरूढ होकर आकाशमार्गसे भगवान् लक्ष्मीपतिके निवासस्थान वैकुण्ठको चले गये ॥ ३९–४४ ॥

परीक्षित् ! तुम सुन ही चुके हो कि अजामिलने दासीका सहवास करके सारा धर्म-कर्म चौपट कर दिया था। वे अपने निन्दित कर्मके कारण पतित हो गये थे। नियमोंसे च्युत हो जानेके कारण उन्हें नरकमें गिराया जा रहा था। परन्तु भगवान्‌के एक नामका उच्चारण करनेमात्रसे वे उससे मुक्त हो गये। भगवान् ही तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले हैं। जो लोग इस संसारबन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिये भगवन्नामसे बढकर और कोई साधन नहीं है, क्योंकि नामका आश्रय लेनेसे मनुष्यका मन फिर कर्मके पचड़ोंमें नहीं पड़ता। भगवन्नामके अतिरिक्त और किसी प्रायश्चित्तका आश्रय लेनेपर मन रजोगुण और तमोगुणसे ग्रस्त ही रहता है तथा पापोंका पूरा पूरा नाश भी नहीं होता ॥ ४५ ४६ ॥

परीक्षित् ! यह इतिहास अत्यन्त गोपनीय और समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। जो पुरुष श्रद्धा और भक्तिके साथ इसका श्रवण कीर्तन करता है, वह नरकमें कभी नहीं जाता। यमराजके दूत तो आँख उठाकर उसकी ओर देखतक नहीं सकते। उस पुरुषका जीवन चाहे पापमय ही क्यों न रहा हो, वैकुण्ठलोकमें उसकी पूजा होती है। परीक्षित् ! देखो—अजामिल जैसे पापीने मृत्युके समय पुत्रके बहाने भगवान्‌के नामका उच्चारण किया ! उसे भी वैकुण्ठकी प्राप्ति हो गयी। फिर जो लोग श्रद्धाके साथ भगवन्नामका उच्चारण करते हैं, उनकी तो बात ही क्या है ॥ ४७–४९ ॥



सन्दंश, तप्तसूर्मि, वैतरणी, अन्धकूप, प्राणरोध और वज्रकण्टक-शाल्मली नरक

वे प्रभु सबके स्वामी और स्वयं परम स्वतन्त्र हैं। उन्हीं मायापति पुरुषोत्तमके दूत उन्हींके समान परम मनोहर रूप, गुण और स्वभावसे सम्पन्न होकर इस लोकमें प्रायः विचरण किया करते हैं। विष्णुभगवान्‌के उन पार्षदोंकी पूजा बड़े बड़े देवता भी किया करते हैं। वे परम अलौकिक होते हैं और उनका दर्शन बड़ा दुर्लभ है। वे भगवान्‌के भक्तजनोंको उनके शत्रुओंसे, मुझसे और अग्नि आदि सब विपत्तियोंसे सर्वदा सुरक्षित रखते हैं ॥१२–१८॥

स्वयं भगवान्‌ने ही धर्मकी मर्यादाका निर्माण किया है। उसे न तो ऋषि जानते हैं और न देवता या सिद्धगण ही। ऐसी स्थितिमें मनुष्य, विद्याधर, चारण और असुर आदि तो जान ही कैसे सकते हैं। भगवान्‌के द्वारा निर्मित भागवतधर्म परम शुद्ध और अत्यन्त गोपनीय है। उसे जानना बहुत ही कठिन है। जो उसे जान लेता है, वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। दूतो! भागवतधर्मका रहस्य हम बारह व्यक्ति ही जानते हैं—ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, भगवान् शङ्कर, सनत्कुमार, कपिलदेव, स्वायम्भुव मनु, प्रह्लाद, जनक, भीष्मपितामह, बलि, शुकदेवजी और मैं (धर्मराज)। इस जगत्‌में जीवोंके लिये बस, यही सबसे बड़ा कर्तव्य—परम धर्म—है कि वे नाम कीर्तन आदि उपायोंसे चाहे जिस प्रकार भगवान्‌के चरणोंमें भक्तिभाव प्राप्त कर लें। प्रिय दूतो! भगवान्‌के नामोच्चारणकी महिमा तो देखो, अजामिल जैसा पापी भी एक बार नामोच्चारण करनेमात्रसे मृत्युमयी फाँसीसे छुटकारा पा गया। इसलिये यह नहीं मानना चाहिये कि भगवान्‌के गुण, लीला और नामोंका श्रद्धा भक्तिके साथ कीर्तन करनेसे जीवोंके केवल पाप ही नष्ट होते हैं। श्रद्धा भक्तिपूर्वक नामसंकीर्तन करनेसे तो दुर्लभ भगवत् प्रेम मिल जाता है। पापोंका नाश तो जैसे तैसे नामोच्चारणमात्रसे ही हो जाता है। तुमलोगोंने अभी देखा ही है अजामिल कितना बड़ा पापी था! उसने जीवनभर नहीं, केवल मरनेके समय—सो भी भगवान्‌का नाम समझकर नहीं, अपने पुत्रको पुकारनेके लिये, 'नारायण' नामका उच्चारणमात्र किया था, तो भी वह समस्त पापोंसे मुक्त हो गया। बड़े खेदकी बात है कि प्रायश्चित्तका विधान बनानेवाले बड़े बड़े विद्वानोंकी मति भी अवश्य ही भगवान्‌की मायासे मोहित हो गयी थी। इसीसे वेदके उन वचनोंमें ही वे मोहित हो गये—उन्हींमें उनकी बुद्धि जड़ हो गयी—ो बड़ाई करनेके कारण सुन्दर सुन्दर पुष्पोंके समान बड़े लुभावने जान पड़ते हैं परन्तु वास्तवमें निःसार हैं। उनके चित्तकी कुछ वासना ही ऐसी थी कि थोड़े परिश्रमसे सिद्ध होनेवाले साधनोंपर ध्यान न देकर वे बड़े बड़े यज्ञ यागादि कार्योंमें ही लगे रहे। ऐसा जान पड़ता है कि उन बड़े बड़े विद्वानोंको भगवन्नामकी महिमाका पता नहीं था, अथवा यह भी हो सकता है कि उन्होंने जान बूझकर भगवन्नाम जैसी महान् वस्तुको पापनाश जैसे छोटे काममें लगाना न चाहा हो ॥१९–२५॥

प्रिय दूतो! बुद्धिमान् पुरुष ऐसा विचार कर भगवान् अनन्तमें ही सम्पूर्ण अन्तःकरणसे अपना भक्तिभाव स्थापित करते हैं। वे मेरे शासन-क्षेत्रके बाहरके व्यक्ति हैं, इसलिये मेरे दण्डके पात्र नहीं हैं। पहली बात तो यह है कि वे पाप करते ही नहीं, उनसे पाप होता ही नहीं। परन्तु यदि कदाचित् संयोगवश कोई पाप बन भी जाय, तो उसे भगवान्‌का गुणगान तत्काल नष्ट कर देता है। जो समदर्शी साधु भगवान्‌की शरणमें चले गये हैं, उन्हींको अपना साध्य और साधन दोनों समझकर उनपर निर्भर हैं, बड़े-बड़े देवता और सिद्ध उनके पवित्र चरित्रोंका प्रेमसे गायन करते रहते हैं। मेरे दूतो! भगवान्‌की गदा उनकी सदा रक्षा करती रहती है। उनके पास तुमलोग कभी भूलकर भी मत फटकना। उन्हें दण्ड देनेकी सामर्थ्य न मुझमें है और न साक्षात् कालमें ही। बड़े-बड़े परमहंस दिव्य रसके लोभसे सम्पूर्ण जगत् और शरीर आदिसे भी अपनी अहंता ममता हटाकर, अकिञ्चन होकर निरन्तर भगवान् मुकुन्दके पादारविन्दका मकरन्द रस पान करते रहते हैं। जो दुष्ट उस दिव्य रससे विमुख हैं और नरकके दरवाजे घर गृहस्थीकी तृष्णाका बोझा बाँधकर उसे ढो रहे है, उन्हींको मेरे पास बार बार लाया करो। जिनकी जीभ भगवान्‌के गुणों और नामोंका उच्चारण नहीं करती, जिनका चित्त उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन नहीं करता और जिनका सिर एक बार भी भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें नहीं झुकता, उन भगवत्सेवाविमुख पापियोंको ही मेरे पास लाया करो। आज मेरे दूतोंने भगवान्‌के पार्षदोंका अपराध करके स्वयं भगवान्‌का ही तिरस्कार किया है। यह मेरा ही अपराध है। पुराणपुरुष भगवान् नारायण हमलोगोंका यह अपराध क्षमा करें। हम अज्ञानी होनेपर भी हैं उनके निजजन, और उनकी आज्ञा पानेके लिये अञ्जलि बाँधकर सदा उत्सुक रहते हैं। अतः परममहिमान्वित भगवान्‌के लिये

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत

षष्ठ स्कन्ध

पहला अध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

अजामिलोपाख्यानका प्रारम्भ

राजा परीक्षित्‌ने कहा—भगवन्! आप पहले (द्वितीय स्कन्धमें) निवृत्तिमार्गका वर्णन कर चुके हैं और यह बतला चुके हैं कि उसके द्वारा अर्चिरादि मार्गसे जीव क्रमशः ब्रह्मलोकमें पहुँचता है और फिर ब्रह्माके साथ मुक्त हो जाता है। मुनिवर! इसके सिवा आपने उस प्रवृत्तिमार्गका भी (तृतीय स्कन्धमें) भलीभाँति वर्णन किया है, जिससे त्रिगुणमय स्वर्ग आदि लोकोंकी प्राप्ति होती है और प्रकृतिका सम्बन्ध न छूटनेके कारण जीवोंको बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें आना पड़ता है। आपने यह भी बतलाया कि अधर्म करनेसे अनेक नरकोंकी प्राप्ति होती है और (पाँचवें स्कन्धमें) उनका विस्तारसे वर्णन भी किया। (चौथे स्कन्धमें) आपने उस प्रथम मन्वन्तरका वर्णन किया, जिसके अधिपति स्वायम्भुव मनु थे, और साथ ही (चौथे और पाँचवें स्कन्धोंमें) प्रियव्रत और उत्तानपादके वंशों तथा चरित्रोंका एवं द्वीप, वर्ष, समुद्र, पर्वत, नदी, उद्यान और विभिन्न द्वीपोंके वृक्षोंका भी निरूपण किया। भूमण्डलकी स्थिति, उसके द्वीप-वर्षादि विभाग, उनके लक्षण तथा माप, नक्षत्रोंकी स्थिति, अतल-वितल आदि भू-विवर (सात पाताल) और भगवान्‌ने इन सबकी जिस प्रकार सृष्टि की—उसका वर्णन भी सुनाया। महाभाग! अब मैं वह उपाय जानना चाहता हूँ, जिसके अनुष्ठानसे मनुष्योंको अनेकानेक भयङ्कर यातनाओंसे पूर्ण नरकोंमें न जाना पड़े। आप कृपा करके उसका उपदेश कीजिये ॥ १–६ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—मनुष्य मन, वाणी और शरीरसे पाप करता है। यदि वह उन पापोंका इसी जन्ममें प्रायश्चित्त न कर ले, तो मरनेके बाद उसे अवश्य ही उन भयङ्कर यातनापूर्ण नरकोंमें जाना पड़ता है, जिनका वर्णन मैंने तुम्हें (पाँचवें स्कन्धके अन्तमें) सुनाया है। इसलिये बड़ी सावधानी और सजगताके साथ रोग एवं मृत्युके पहले ही शीघ्र-से-शीघ्र पापोंकी गुरुता और लघुतापर विचार करके उनका प्रायश्चित्त कर डालना चाहिये, जैसे मर्मज्ञ चिकित्सक रोगोंका कारण और उनकी गुरुता-लघुता जानकर झटपट उनकी चिकित्सा कर डालता है ॥ ७-८ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! मनुष्यको इस बातका तो पता रहता ही है कि पाप उसका शत्रु है। राजदण्ड, समाजदण्ड आदि लौकिक, और नरकगमन आदि पारलौकिक कष्टोंसे इस बातका निर्णय हो ही जाता है। फिर भी ऐसा देखा जाता है कि मनुष्य पापवासनाओंसे विवश होकर बार-बार वैसे ही कर्मोंमें प्रवृत्त हो जाता है। ऐसी अवस्थामें उसके पापोंका प्रायश्चित्त कैसे सम्भव है? मनुष्य कभी तो प्रायश्चित्त आदिके द्वारा पापोंसे छुटकारा पा लेता है, कभी फिर उन्हीं पापोंको करने लगता है। ऐसी स्थितिमें मैं तो समझता हूँ कि, जैसे हाथी स्नान करनेके बाद अपने ऊपर धूल डाल लेता है और इस प्रकार उसका स्नान व्यर्थ हो जाता है, वैसे ही मनुष्यका प्रायश्चित्त करना भी व्यर्थ ही है ॥९-१० ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! यह बात सत्य है कि कर्मके द्वारा ही कर्मका सम्पूर्णतः नाश नहीं हो सकता, कुछ-न-कुछ बीज शेष रह ही जाता है। क्योंकि जिसके लिये कर्मका विधान है, वह अज्ञानी है। इसीसे अज्ञान-मूलक पापवासनाएँ नहीं मिटतीं। यही कारण है कि फिर पाप होते हैं। इसलिये सच्चा प्रायश्चित्त तो तब होता है, जब भगवत्स्वरूपका ज्ञान हो जाता है; क्योंकि उस समय वासनाएँ जड़-मूलसे उखड़ जाती हैं। इसलिये उसीकी

और हितका जिम्मेवार राजा होता है। प्रचेताओ! समस्त प्राणियोंके हृदयमें सर्वशक्तिमान् भगवान् आत्माके रूपमें विराजमान हैं। इसलिये आपलोग सभीको भगवान्का निवासस्थान समझें। यदि आप ऐसा करेंगे तो भगवान्को प्रसन्न कर लेंगे। जो पुरुष हृदयके उबलते हुए भयङ्कर क्रोधको आत्मविचारके द्वारा शरीरमें ही शान्त कर लेता है, बाहर नहीं निकलने देता, वह कालक्रमसे तीनों गुणोंपर विजय प्राप्त कर लेता है। प्रचेताओ! इन बेचारे गरीब वृक्षोंको और न जलाइये, जो कुछ बच रहे हैं, उनकी रक्षा कीजिये। इससे आपका भी कल्याण होगा। देखिये, इस श्रेष्ठ कन्याका पालन इन वृक्षोंने ही किया है, इसे आप लोग पत्नीके रूपमें स्वीकार कीजिये'॥ ४–१५॥

परीक्षित्! वनस्पतियोंके राजा चन्द्रमाने प्रचेताओंको इस प्रकार समझा बुझाकर उन्हें प्रम्लोचा अप्सराकी सुन्दरी कन्या दे दी और वे वहाँसे चले गये। अब प्रचेताओंने धर्मानुसार उसका पाणिग्रहण किया। उन्हीं प्रचेताओंके द्वारा उस कन्याके गर्भसे प्राचेतस दक्षकी उत्पत्ति हुई। फिर दक्षकी प्रजा सृष्टिसे तीनों लोक भर गये। इनका अपनी पुत्रियोंपर बड़ा प्रेम था। इन्होंने जिस प्रकार अपने सङ्कल्प और वीर्यसे विविध प्राणियोंकी सृष्टि की, वह मैं सुनाता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो ॥१६–१८॥

परीक्षित्! पहले प्रजापति दक्षने जल, थल और आकाशमें रहनेवाली देवता, असुर एवं मनुष्य आदि प्रजाकी सृष्टि अपने सङ्कल्पसे ही की। परन्तु जब उन्होंने देखा कि वह सृष्टि बढ नहीं रही है, तब उन्होंने विन्ध्याचलके निकटवर्ती पर्वतोंपर जाकर बड़ी घोर तपस्या की। वहाँ एक अत्यन्त श्रेष्ठ तीर्थ है, उसका नाम है—अघमर्षण। वह सारे पापोंको धो बहाता है। प्रजापति दक्ष उस तीर्थमें त्रिकाल स्नान करते और तपस्याके द्वारा भगवान्की आराधना करते। प्रजापति दक्षने इन्द्रियातीत भगवान्की 'हंसगुह्य' नामक स्तोत्रसे स्तुति की थी। उसीसे भगवान् उन पर प्रसन्न हुए थे। मैं तुम्हें वह स्तुति सुनाता हूँ ॥१९–२२॥

दक्ष प्रजापतिने इस प्रकार स्तुति की—भगवन्! आपकी अनुभूति, आपकी चित् शक्ति अमोघ है। आप जीव और प्रकृतिसे परे, उनके नियन्ता और उन्हें सत्ता स्फूर्ति देनेवाले हैं। जिन जीवोंने त्रिगुणमयी सृष्टिको ही वास्तविक सत्य समझ रक्खा है, वे आपके स्वरूपका साक्षात्कार करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं, क्योंकि आपतक किसी भी प्रमाणकी पहुँच नहीं है—आपकी कोई अवधि, कोई सीमा नहीं है। आप स्वयम्प्रकाश और परात्पर हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। यों तो जीव और ईश्वर एक दूसरेके सखा हैं तथा इसी शरीरमें इकट्ठे ही निवास करते हैं, परन्तु जीव सर्वशक्तिमान् आपके सख्यभावको नहीं जानता—ठीक वैसे ही, जैसे रूप, रस, गन्ध आदि विषय अपने प्रकाशित करनेवाले नेत्र, घ्राण आदि इन्द्रियवृत्तियोंको नहीं जानते। क्योंकि आप जीव और जगत्के द्रष्टा हैं, दृश्य नहीं। महेश्वर! मैं आपके श्रीचरणोंमें नमस्कार करता हूँ। देह, प्राण, इन्द्रिय, अन्तःकरणकी वृत्तियाँ, पञ्चमहाभूत और उनकी तन्मात्राएँ—ये सब जड होनेके कारण अपनेको और अपनेसे अतिरिक्तको भी नहीं जानते। परन्तु जीव इन सबको और इनके कारण सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंको भी जानता है। परन्तु वह भी दृश्य अथवा ज्ञेयरूपसे आपको नहीं जान सकता। क्योंकि आप ही सबके ज्ञाता और अनन्त हैं। जाननेवालेको भला, कोई कैसे जाने? इसलिये प्रभो! मैं तो केवल आपकी स्तुति करता हूँ। इससे यह बात तो सिद्ध हो गयी कि आपका स्वरूप और कोई नहीं जानता। परन्तु आप स्वयम्प्रकाश हैं, यह बात भी युक्तिसङ्गत ही है। क्योंकि इस नाम रूपात्मक जगत्का निरूपण करनेवाला मन जब दर्शन और स्मरणशक्तिसे रहित होकर समाधिमें स्थित हो जाता है, उस समय बिना मनके भी अपनी स्वरूपस्थितिके द्वारा आप प्रकाशित होते रहते हैं। उस समय प्रकाशित होनेका साधन न रहनेपर भी प्रकाशित होना, यही तो आपकी स्वयम्प्रकाशता है। प्रभो! आप शुद्ध मनोमन्दिरमें ही निवास करते हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जैसे याज्ञिक लोग काष्ठमें छिपे हुए अग्निको 'सामिधेनी' नामके पद्रह मन्त्रोंके द्वारा प्रकट करते हैं, वैसे ही ज्ञानी पुरुष अपनी सत्ताइस शक्तियोंके भीतर गूढभावसे छिपे हुए आपको अपनी शुद्ध बुद्धिके द्वारा हृदयमें ही ढूँढ निकालते हैं। जगत्में जितनी भिन्नताएँ देख पड़ती हैं, वे सब मायाकी ही हैं। मायाका निषेध कर देनेपर केवल परमसुखके साक्षात्कारस्वरूप आप ही अवशेष रहते हैं। परन्तु यदि मायापर विचार करने लगते हैं, तो आपके स्वरूपमें मायाकी उपलब्धि नहीं होती। और न किसी भी प्रकार आपसे पृथक् उसका निर्वचन ही हो सकता है। इस दृष्टिसे माया आपसे भिन्न भी नहीं है। अर्थात् माया भी आप ही हैं। अतः सारे नाम और सारे रूप आपके ही हैं। प्रभो! आप मुझपर प्रसन्न

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब यमदूतोंने इस प्रकार कहा, तब भगवान् नारायणके आज्ञाकारी पार्षदोंने हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीसे उनके प्रति यों कहा ॥३७॥

भगवान्‌के पार्षदोंने कहा—यमदूतो ! यदि तुमलोग सचमुच धर्मराजके आज्ञाकारी हो, तो हमें धर्मका लक्षण और धर्मका तत्त्व सुनाओ। दण्ड किस प्रकार दिया जाता है ? दण्डका पात्र कौन है ? कौन-सा कर्म करनेवालोंको दण्ड देना चाहिये ? मनुष्योंमें सभी पापाचारी दण्डनीय हैं अथवा उनमेंसे कुछ ही ? ॥ ३८-३९ ॥

यमदूतोंने कहा—वेदोंने जिन कर्मोंका विधान किया है वे धर्म; और जिनका निषेध किया है वे अधर्म हैं। वेद स्वयं भगवान्‌के स्वरूप हैं। क्योंकि वे किसीके बनाये हुए नहीं हैं। वे भगवान्‌के स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास, उनका नित्यसिद्ध ज्ञान, स्वयम्प्रकाश हैं—ऐसा हमने सुना है। जगत्‌के रजोमय, सत्त्वमय और तमोमय—सभी पदार्थ, सभी प्राणी अपने परम आश्रय भगवान्‌में ही स्थित रहते हैं। वेद ही उनके गुण, नाम, कर्म और रूप आदिके अनुसार उनका यथोचित विभाजन करते हैं। जीव शरीर अथवा मनोवृत्तियोंसे जितने कर्म करता है, उसके साक्षी रहते हैं—सूर्य, अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्रियाँ, चन्द्रमा, सन्ध्या, रात, दिन, दिशाएँ, जल, पृथ्वी, काल और धर्म। इनके द्वारा अधर्मका पता चल जाता है और तब दण्डके पात्रका निर्णय होता है। सभी कर्म करनेवाले मनुष्य अपने-अपने कर्मोंके अनुसार दण्डनीय होते हैं। निष्पाप पुरुषो ! जो प्राणी कर्म करते हैं, उनका गुणोंसे सम्बन्ध रहता ही है। इसीलिये सभीसे कुछ पाप और कुछ पुण्य होते ही हैं। और देहवान् होकर कोई भी पुरुष कर्म किये बिना रह ही नहीं सकता। इस लोकमें जो मनुष्य जिस प्रकारका और जितना धर्म या अधर्म करता है, वह परलोकमें उसका उतना और वैसा ही फल भोगता है। देवशिरोमणियो ! सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंके भेदके कारण इस लोकमें भी तीन प्रकारके प्राणी दीख पड़ते हैं—पुण्यात्मा, पापात्मा और पुण्य-पाप दोनोंसे युक्त, अथवा सुखी, दुखी और सुख-दुःख दोनोंसे युक्त; वैसे ही परलोकमें भी उनकी त्रिविधताका अनुमान किया जा सकता है। वर्तमान समय ही भूत और भविष्यका अनुमान करा देता है। इस समय जो हो रहा है; वह पहले भी हुआ होगा और आगे भी हो सकता है। वैसे ही वर्तमान जन्मके पाप-पुण्य भी भूत और भविष्य जन्मोंके पाप-पुण्यका अनुमान करा देते हैं। परन्तु पुण्य-पाप जाननेके लिये हमारे स्वामी यमराजको साक्षियों और इन अनुमानोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती। वे तो सबके अन्तःकरणोंमें ही विराजमान हैं। इसलिये वे अपने मनसे ही सबके पूर्वरूपोंको देख लेते हैं। वे अजन्मा भगवान् अतीतके साथ ही उसके भावी स्वरूपका भी विचार कर लेते हैं। परन्तु जीवकी स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। जैसे सोया हुआ अज्ञानी पुरुष स्वप्नके समय प्रतीत हो रहे कल्पित शरीरको ही अपना वास्तविक शरीर समझता है, सोये हुए अथवा जागनेवाले शरीरको भूल जाता है—वैसे ही जीव भी अपने पूर्वजन्मोंकी याद भूल जाता है और वर्तमान शरीरके सिवा पहले और पिछले शरीरोंके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानता। सिद्ध पुरुषो ! जीव केवल स्थूलशरीर ही नहीं है। इसके भीतर एक लिङ्गशरीर भी है। जीव इस शरीरमें पाँच कर्मेन्द्रियोंसे लेना-देना, चलना-फिरना आदि काम करता है, पाँच ज्ञानेन्द्रियोंसे रूप, रस आदि पाँच विषयोंका अनुभव करता है और सोलहवें मनके साथ सत्रहवाँ वह स्वयं मिलकर अकेले ही मन, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय—इन तीनोंके विषयोंको भोगता है। जीवका यह सोलह कला और सत्त्वादि तीन गुणोंवाला लिङ्गशरीर अत्यन्त दारुण है। यही लिङ्गशरीर जीवको बार-बार हर्ष, शोक, भय और पीड़ा देनेवाले जन्म-मृत्युके चक्करमें डालता है। जो जीव अज्ञानवश काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर—इन छः शत्रुओंपर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, उसे इच्छा न रहते हुए भी विभिन्न वासनाओंके अनुसार अनेकों कर्म करने पड़ते हैं। वैसी स्थितिमें वह रेशमके कीड़ेके समान अपनेको कर्मके जालमें जकड़ लेता है और इस प्रकार अपने हाथों मोहका शिकार बन जाता है। कोई शरीरधारी जीव बिना कर्म किये कभी एक क्षण भी नहीं रह सकता। प्रत्येक प्राणीके स्वाभाविक गुण उसके द्वारा बलपूर्वक कर्म कराते हैं। जीव अपने पूर्वजन्मोंके पाप-पुण्यमय संस्कारोंके अनुसार, शास्त्रीय भाषामें अदृष्टके अनुसार, स्थूल और सूक्ष्म शरीर प्राप्त करता है। उसकी स्वाभाविक बलवान् वासनाएँ कभी उसे माताके-जैसा (स्त्रीरूप) बना देती हैं, तो कभी पिताके-जैसा (पुरुषरूप)। प्रकृतिका संसर्ग होनेसे ही पुरुष अपनेको अपने वास्तविक स्वरूपके विपरीत लिङ्गशरीर मान बैठा है। यह विपर्यय भगवान्‌के भजनसे शीघ्र ही दूर हो जाता है।४०—५५।

देवताओ ! आप तो जानते ही हैं, कि यह अजामिल बड़ा शास्त्रज्ञ था। शील, सदाचार और सद्गुणोंका तो यह

मन है और देवता प्राण हैं। जब यह सृष्टि नहीं थी, तब केवल मैं ही था और वह भी निष्क्रियरूपमें। बाहर भीतर कहीं भी और कुछ न था। न तो कोई द्रष्टा था और न दृश्य। मैं केवल ज्ञानस्वरूप और अव्यक्त था। ऐसा समझ लो, मानो सब ओर सुषुप्ति ही सुषुप्ति छा रही हो। प्रिय दक्ष! मैं अनन्त गुणोंका आधार एवं स्वयं अनन्त हूँ। जब गुणमयी मायाके क्षोभसे यह ब्रह्माण्ड शरीर प्रकट हुआ, तब इसमें अयोनिज आदिपुरुष ब्रह्मा उत्पन्न हुए। जब मैंने उनमें शक्ति और चेतनाका सञ्चार किया, तब देव शिरोमणि ब्रह्मा सृष्टि करनेके लिये उद्यत हुए। परन्तु उन्होंने अपनेको सृष्टिकार्यमें असमर्थ सा पाया। उस समय मैंने उन्हें आज्ञा दी कि तप करो। तब उन्होंने घोर तपस्या की और उस तपस्याके प्रभावसे पहले-पहल तुम नौ प्रजापतियोंकी सृष्टि की। यह सारी सृष्टि मेरी ही प्रेरणासे हो रही है। इसलिये सृष्टिसम्बन्धी तुम्हारी अभिलाषा अभिनन्दनीय है ॥४३-५०॥

प्रिय दक्ष! देखो, यह पञ्चजन प्रजापतिकी कन्या असिक्नी है। इसे तुम अपनी पत्नीके रूपमें ग्रहण करो। अब तुम गृहस्थोचित स्त्रीसहवासरूप धर्मको स्वीकार करो। यह असिक्नी भी उसी धर्मको स्वीकार करेगी। तब तुम इसके द्वारा बहुत-सी प्रजा उत्पन्न कर सकोगे। प्रजापते! अबतक तो मानसी सृष्टि होती थी, परन्तु अब तुम्हारे बाद सारी प्रजा मेरी मायासे स्त्री पुरुषके संयोगसे ही उत्पन्न होगी तथा मेरी सेवामें तत्पर रहेगी ॥ ५१-५३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—विश्वके जीवनदाता भगवान् श्रीहरि यह कहकर दक्षके सामने ही इस प्रकार अन्तर्धान हो गये, जैसे स्वप्नमें देखी हुई वस्तु स्वप्न टूटते ही लुप्त हो जाती है ॥ ५४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

श्रीनारदजीके उपदेशसे दक्षपुत्रोंकी विरक्ति तथा नारदजीको दक्षका शाप

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब भगवान्के शक्तिसञ्चारसे दक्ष प्रजापति परम समर्थ हो गये थे। उन्होंने पञ्चजनकी पुत्री असिक्नीसे हर्यश्व नामके दस हजार पुत्र उत्पन्न किये। राजन्! दक्षके ये सभी पुत्र एक आचरण और एक स्वभावके थे। जब उनके पिता दक्षने उन्हें सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी, तब वे तपस्या करनेके विचारसे पश्चिमकी ओर चल दिये। पश्चिम दिशामें सिन्धुनदी और समुद्रके सङ्गमपर नारायण-सर नामका एक महान् तीर्थ है। बड़े-बड़े मुनि और सिद्ध पुरुष वहाँ निवास करते हैं। नारायण-सरमें स्नान करते ही हर्यश्वोंके अन्तःकरण शुद्ध हो गये, उनकी बुद्धि भागवतधर्ममें लग गयी। फिर भी अपने पिता दक्षकी आज्ञासे बँधे होनेके कारण वे उग्र तपस्या ही करते रहे। जब देवर्षि नारदने देखा कि भागवतधर्ममें रुचि होने पर भी ये प्रजावृद्धिके लिये ही तत्पर हैं, तो उन्होंने उनके पास आकर कहा—'अरे हर्यश्वो! तुम प्रजापति हो तो क्या हुआ। वास्तवमें तो तुमलोग मूर्ख ही हो। बतलाओ तो, जब तुमलोगोंने पृथ्वीका अन्त ही नहीं देखा तो सृष्टि कैसे करोगे? बड़े खेदकी बात है! देखो—एक ऐसा देश है, जिसमें एक ही पुरुष है। एक ऐसा बिल है, जिससे बाहर निकलनेका रास्ता ही नहीं है। एक ऐसी स्त्री है, जो बहुरूपिणी है। एक ऐसा पुरुष है, जो व्यभिचारिणीका पति है। एक ऐसी



नदी है, जो आगे-पीछे दोनों ओर बहती है। एक ऐसा विचित्र घर है, जो पचीस पदार्थोंसे बना है। एक ऐसा हंस है, जिसकी कहानी बड़ी विचित्र है। एक ऐसा चक्र है, जो छुरे एवं वज्रसे बना हुआ है और अपने आप घूमता रहता है। मूर्ख हर्यश्वो! जबतक तुमलोग अपने सर्वज्ञ

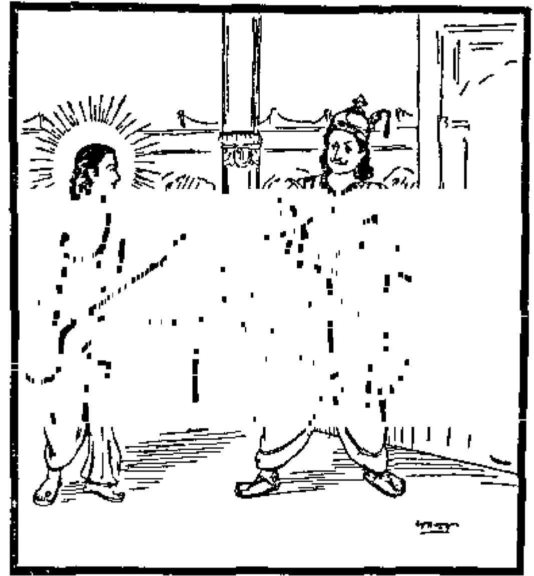
नाम-माहात्म्य



यमदूत अजामिलके सूक्ष्म शरीरको खींच रहे थे, विष्णुदूतोंने उन्हें बलपूर्वक रोक दिया।

सिद्धि प्राप्त की थी। शबलाश्वोंने वहाँ जाकर उस सरोवरमें स्नान किया। स्नानमात्रसे ही उनके अन्तःकरणके सारे मल धुल गये। अब वे परब्रह्मस्वरूप प्रणवका जप करते हुए कठोर तपस्यामें लग गये। कुछ महीनोंतक केवल जल और कुछ महीनोंतक केवल हवा पीकर ही उन्होंने जीवन धारण किया। इसके बाद वे 'ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने। विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥' (हम नमस्कारपूर्वक ओङ्कारस्वरूप भगवान् नारायणका ध्यान करते हैं, जो विशुद्ध चित्तमें निवास करते हैं, सबके अन्तर्यामी हैं तथा सर्वव्यापक एवं परमहंसस्वरूप हैं।)—इस मन्त्रका अभ्यास करते हुए मन्त्राधिपति भगवान्‌की आराधना करने लगे। परीक्षित्! इस प्रकार दक्षके पुत्र शबलाश्व प्रजासृष्टिके लिये तपस्यामें संलग्न थे। उनके पास भी देवर्षि नारद आये और उन्होंने पहलेके समान ही कूट वचन कहे। उन्होंने फिर कहा—'दक्षप्रजापतिके पुत्रो! मैं तुमलोगोंको जो उपदेश देता हूँ, उसे सुनो। तुमलोग तो अपने भाइयोंसे बड़ा प्रेम करते हो। तब भला, उनके मार्गका पता क्यों नहीं लगाते? तुमलोग उसीका अनुसरण करो। जो धर्मज्ञ भाई अपने बड़े भाइयोंके श्रेष्ठ मार्गका अनुसरण करता है, वही सच्चा भाई है। वह पुण्यवान् पुरुष परलोकमें मरुद्गणोंके साथ आनन्द भोगता है।' परीक्षित्! शबलाश्वोंको इस प्रकार उपदेश देकर देवर्षि नारद वहाँसे चले गये और उन लोगोंने भी अपने भाइयोंके मार्गका ही अनुगमन किया। क्योंकि नारदजीका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता। वे उस पथके पथिक बने, जो अन्तर्मुखी वृत्तिसे प्राप्त होने योग्य, अत्यन्त सुन्दर और भगवत्प्राप्तिके अनुकूल है। वे बीती हुई रात्रियोंके समान न तो उस मार्गसे अबतक लौटे हैं और न आगे लौटेंगे ही ॥२२—३३॥

दक्षप्रजापतिने देखा कि आजकल बहुत-से अशकुन हो रहे हैं। उनके चित्तमें पुत्रोंके अनिष्टकी आशङ्का हो आयी। इतनेहीमें उन्हें मालूम हुआ कि पहलेकी भाँति अबकी बार भी नारदजीने मेरे पुत्रोंको चौपट कर दिया। उन्हें अपने पुत्रोंकी कर्तव्यच्युतिसे और उस मार्गपर आरूढ हो जानेसे बड़ा शोक हुआ और वे नारदजीपर बड़े क्रोधित हुए। इसी समय देवर्षि नारद घूमते घामते वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर क्रोधके मारे दक्षप्रजापतिके होठ फड़कने लगे और वे आवेशमें भरकर नारदजीसे बोले ॥३४ ३५॥



दक्षप्रजापतिने कहा—ओ दुष्ट! तुमने झूठमूठ साधुओंका बाना पहन रक्खा है! हमारे बच्चे अभी नादान थे और स्वधर्माचरणमें प्रवृत्त थे। उन भोलेभाले बालकोंको भिक्षुकोंका मार्ग दिखाकर तुमने हमारा बड़ा अपकार किया है। अभी उन्होंने ब्रह्मचर्यसे ऋषि ऋण, यज्ञसे देव ऋण और पुत्रोत्पत्तिसे पितृ ऋण नहीं उतारा था। उन्हें अभी कर्मफलकी नश्वरताके सम्बन्धमें भी कुछ विचार नहीं था। परन्तु पापात्मन्! तुमने उनके दोनों लोकोंका सुख चौपट कर दिया। सचमुच तुम्हारे हृदयमें दयाका नाम भी नहीं है। भला, इस प्रकार तुम बच्चोंकी बुद्धि बिगाड़ते फिरते हो? तुमने भगवान्‌के पार्षदोंमें रहकर उनकी कीर्तिमें कलङ्क ही लगाया। सचमुच तुम बड़े निर्लज्ज हो। मैं जानता हूँ कि भगवान्‌के पार्षद सदा सर्वदा दुखी प्राणियोंपर दया करनेके लिये व्यग्र रहते हैं। परन्तु तुम तो प्रेमभावका विनाश करनेवाले हो। सबसे प्रेम करना तो दूर रहा, तुम उन लोगोंसे भी वैर करते हो, जो किसीसे वैर नहीं करते। यदि तुम ऐसा समझते हो कि वैराग्यसे ही स्नेहपाश—विषयासक्तिका बन्धन कट सकता है, तो तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है। क्योंकि तुम्हारे जैसे झूठमूठ वैराग्यका स्वाँग

ऐसे लोगोंका संसर्गी, स्त्री, राजा, पिता और गायको मारनेवाला ही क्यों न हो, कह तो दिया, चाहे जैसा और चाहे जितना बड़ा पापी हो, सभीके लिये यही—इतना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है कि भगवान्‌के नामोंका उच्चारण किया जाय ! क्योंकि भगवन्नामोंके उच्चारणसे मनुष्यकी बुद्धि भगवान्‌के गुण, लीला और स्वरूपमें रम जाती है और स्वयं भगवान्‌की उसके प्रति आत्मीयबुद्धि हो जाती है। बड़े-बड़े ब्रह्मवादी ऋषियोंने पापोंके बहुत-से प्रायश्चित्त—कृच्छ्र, चान्द्रायण आदि व्रत बतलाये हैं; परन्तु उन प्रायश्चित्तोंसे पापीकी वैसी जड़से शुद्धि नहीं होती, जैसी भगवान्‌के नामोंका, उनसे गुम्फित पदोंका उच्चारण करनेसे होती है। क्योंकि वे नाम पवित्रकीर्ति भगवान्‌के गुणोंका ज्ञान करानेवाले हैं। यदि प्रायश्चित्त करनेके बाद भी मन फिरसे कुमार्गमें—पापकी ओर दौड़े, तो वह चरम सीमाका—पूरा-पूरा प्रायश्चित्त नहीं है। इसलिये जो लोग ऐसा प्रायश्चित्त करना चाहें कि जिससे पापकर्मों और वासनाओंकी जड़ ही उखड़ जाय, उन्हें भगवान्‌के गुणोंका ही गायन करना चाहिये। क्योंकि उससे चित्त सर्वथा शुद्ध हो जाता है ॥ ७–१२ ॥

इसलिये यमदूतो ! तुमलोग अजामिलको मत ले जाओ। इसने तो सारे पापोंका प्रायश्चित्त कर लिया है, क्योंकि इसके मुखसे मरते समय भगवान्‌के नामका उच्चारण हो गया है। बड़े-बड़े महात्मा पुरुष यह बात जानते हैं कि सङ्केतमें (किसी दूसरे अभिप्रायसे), परिहासमें, तान अलापनेमें अथवा किसीकी अवहेलना करनेमें भी यदि कोई भगवान्‌के नामोंका उच्चारण करता है तो उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य गिरते समय, पैर फिसलते समय, अङ्ग-भङ्ग होते समय और साँपके डँसते, आगमें जलते तथा चोट लगते समय भी विवशतासे 'हरि हरि' कहकर भगवान्‌के नामका उच्चारण कर लेता है, वह यमयातनाका पात्र नहीं रह जाता। महर्षियोंने जान-बूझकर बड़े पापोंके लिये बड़े, और छोटे पापोंके लिये छोटे प्रायश्चित्त बतलाये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि उन तपस्या, दान, जप आदि प्रायश्चित्तोंके द्वारा वे पाप नष्ट हो जाते हैं। परन्तु उन पापोंको जन्म देनेवाला हृदय शुद्ध नहीं होता। वह तो तब शुद्ध होता है, जब भगवान्‌के चरणोंकी सेवा की जाती है। यमदूतो ! जैसे जान या अनजानमें ईंधनसे अग्निका स्पर्श हो जाय तो वह भस्म हो ही जाता है, वैसे ही जान-बूझकर या अनजानमें भगवान्‌के नामोंका सङ्कीर्तन करनेसे मनुष्यके सारे पाप भस्म हो जाते हैं। जैसे कोई परम शक्तिशाली अमृतको संयोगवश अनजानमें भी पी ले तो वह अपना प्रभाव प्रकट करता ही है—अवश्य ही पीनेवालेको अमर बना देता है, वैसे ही अनजानमें उच्चारण करनेपर भी भगवान्‌का नाम अपना फल देकर ही रहता है ॥ १३–१९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! इस प्रकार भगवान्‌के पार्षदोंने भागवतधर्मका पूरा-पूरा निर्णय सुना दिया और अजामिलको यमदूतोंके पाशसे छुड़ाकर मृत्युके मुखसे बचा लिया। प्रिय परीक्षित् ! पार्षदोंकी यह बात सुनकर यमदूत यमराजके पास गये और उन्हें यह सारा वृत्तान्त ज्यों-का-त्यों सुना दिया ॥ २०-२१ ॥

अजामिल यमदूतोंके फंदेसे छूटकर निर्भय और स्वस्थ हो गया। अब उसने भगवान्‌के पार्षदोंके दर्शनजनित आनन्दमें मग्न होकर उन्हें सिर झुकाकर प्रणाम किया। निष्पाप परीक्षित् ! भगवान्‌के पार्षदोंने देखा कि अजामिल कुछ कहना चाहता है, तब वे उसके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गये। इस अवसरपर अजामिलने भगवान्‌के पार्षदोंसे विशुद्ध भागवतधर्म और यमदूतोंके मुखसे वेदोक्त सगुण (प्रवृत्तिविषयक) धर्मका श्रवण किया था। सर्वपापापहारी भगवान्‌की महिमा सुननेसे अजामिलके हृदयमें शीघ्र ही भक्तिका उदय हो गया। अब उसे अपने पापोंकी याद करके बड़ा पश्चात्ताप होने लगा। अजामिल मन-ही-मन सोचने लगा—'अरे, मैं कैसा इन्द्रियोंका गुलाम हूँ ! मैंने एक दासीके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करके अपना ब्राह्मणत्व नष्ट कर दिया। धिक्कार है ! मुझे बार-बार धिक्कार है ! मैं संतोंके द्वारा निन्दित हूँ, पापात्मा हूँ ! मैंने अपने कुलमें कलङ्कका टीका लगा दिया ! हाय-हाय, मैंने अपनी सती एवं अबोध पत्नीका परित्याग कर दिया और शराब पीनेवाली कुलटाका संसर्ग किया। मैं कितना नीच हूँ ! मेरे माँ-बाप बूढ़े और तपस्वी थे। वे सर्वथा असहाय थे, उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाला और कोई नहीं था। मैंने उनका भी परित्याग कर दिया ! ओह, मैं कितना कृतघ्न हूँ ! मैं अब अवश्य ही अत्यन्त भयावने नरकमें गिरूँगा, जिसमें गिरकर धर्मघाती पापात्मा कामी पुरुष अनेकों प्रकारकी यमयातना भोगते हैं ॥ २२–२९ ॥

'मैंने अभी जो अद्भुत दृश्य देखा, क्या यह स्वप्न है ? अथवा जाग्रत् अवस्थाका ही प्रत्यक्ष अनुभव है ? अभी-अभी जो हाथोंमें फंदा लेकर मुझे खींच रहे थे, वे कहाँ चले गये ? अभी-अभी वे मुझे अपने फंदोंमें फँसाकर पृथ्वीके नीचे ले

सिद्धि प्राप्त की थी। शबलाश्वोंने वहाँ जाकर उस सरोवरमें स्नान किया। स्नानमात्रसे ही उनके अन्तःकरणके सारे मल धुल गये। अब वे परब्रह्मस्वरूप प्रणवका जप करते हुए कठोर तपस्यामें लग गये। कुछ महीनोंतक केवल जल और कुछ महीनोंतक केवल हवा पीकर ही उन्होंने जीवन धारण किया। इसके बाद वे 'ॐ नमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने। विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥' (हम नमस्कारपूर्वक ओङ्कारस्वरूप भगवान् नारायणका ध्यान करते हैं, जो विशुद्ध चित्तमें निवास करते हैं, सबके अन्तर्यामी हैं तथा सर्वव्यापक एवं परमहंसस्वरूप हैं।)—इस मन्त्रका अभ्यास करते हुए मन्त्राधिपति भगवान्‌की आराधना करने लगे। परीक्षित्! इस प्रकार दक्षके पुत्र शबलाश्व प्रजासृष्टिके लिये तपस्यामें संलग्न थे। उनके पास भी देवर्षि नारद आये और उन्होंने पहलेके समान ही कूट वचन कहे। उन्होंने फिर कहा—'दक्षप्रजापतिके पुत्रो! मैं तुमलोगोंको जो उपदेश देता हूँ, उसे सुनो। तुमलोग तो अपने भाइयोंसे बड़ा प्रेम करते हो। तब भला, उनके मार्गका पता क्यों नहीं लगाते? तुमलोग उसीका अनुसरण करो। जो धर्मज्ञ भाई अपने बड़े भाइयोंके श्रेष्ठ मार्गका अनुसरण करता है, वही सच्चा भाई है। वह पुण्यवान् पुरुष परलोकमें मरुद्गणोंके साथ आनन्द भोगता है।' परीक्षित्! शबलाश्वोंको इस प्रकार उपदेश देकर देवर्षि नारद वहाँसे चले गये और उन लोगोंने भी अपने भाइयोंके मार्गका ही अनुगमन किया। क्योंकि नारदजीका दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता। वे उस पथके पथिक बने, जो अन्तर्मुखी वृत्तिसे प्राप्त होने योग्य, अत्यन्त सुन्दर और भगवत्प्राप्तिके अनुकूल है। वे बीती हुई रात्रियोंके समान न तो उस मार्गसे अबतक लौटे हैं और न आगे लौटेंगे ही ॥२३-३३॥

दक्षप्रजापतिने देखा कि आजकल बहुत-से अशकुन हो रहे हैं। उनके चित्तमें पुत्रोंके अनिष्टकी आशङ्का हो आयी। इतनेहीमें उन्हें मालूम हुआ कि पहलेकी भाँति अबकी बार भी नारदजीने मेरे पुत्रोंको चौपट कर दिया। उन्हें अपने पुत्रोंकी कर्तव्यच्युतिसे और उस मार्गपर आरूढ हो जानेसे बड़ा शोक हुआ और वे नारदजी पर बड़े क्रोधित हुए। इसी समय देवर्षि नारद घूमते घामते वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर क्रोधके मारे दक्षप्रजापतिके होठ फड़कने लगे और वे आवेशमें भरकर नारदजीसे बोले ॥३४-३५॥



दक्षप्रजापतिने कहा—ओ दुष्ट! तुमने झूठमूठ साधुओंका बाना पहन रक्खा है। हमारे बच्चे अभी नादान थे और स्वधर्माचरणमें प्रवृत्त थे। उन भोलेभाले बालकोंको भिक्षुकोंका मार्ग दिखाकर तुमने हमारा बड़ा अपकार किया है। अभी उन्होंने ब्रह्मचर्यसे ऋषि ऋण, यज्ञसे देव ऋण और पुत्रोत्पत्तिसे पितृ ऋण नहीं उतारा था। उन्हें अभी कर्मफलकी नश्वरताके सम्बन्धमें भी कुछ विचार नहीं था। परन्तु पापात्मन्! तुमने उनके दोनों लोकोंका सुख चौपट कर दिया। सचमुच तुम्हारे हृदयमें दयाका नाम भी नहीं है। भला, इस प्रकार तुम बच्चोंकी बुद्धि बिगाड़ते फिरते हो? तुमने भगवान्‌के पार्षदोंमें रहकर उनकी कीर्तिमें कलङ्क ही लगाया। सचमुच तुम बड़े निर्लज्ज हो। मैं जानता हूँ कि भगवान्‌के पार्षद सदा-सर्वदा दुखी प्राणियोंपर दया करनेके लिये व्यग्र रहते हैं। परन्तु तुम तो प्रेमभावका विनाश करनेवाले हो। सबसे प्रेम करना तो दूर रहा, तुम उन लोगोंसे भी वैर करते हो, जो किसीसे वैर नहीं करते। यदि तुम ऐसा समझते हो कि वैराग्यसे ही स्नेहपाश—विषयासक्तिका बन्धन कट सकता है, तो तुम्हारा यह विचार ठीक नहीं है। क्योंकि तुम्हारे जैसे झूठमूठ वैराग्यका स्वाँग

तीसरा अध्याय

यम और यमदूतोंकी बातचीत

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! देवाधिदेव धर्मराजके वशमें सारे जीव हैं और भगवान्‌के पार्षदोंने उन्हींकी आज्ञा भङ्ग कर दी तथा उनके दूतोंको अपमानित कर दिया। जब उनके दूतोंने यमपुरीमें जाकर उनसे अजामिल-का वृत्तान्त कह सुनाया, तब सब कुछ सुनकर उन्होंने अपने दूतोंसे क्या कहा ? ऋषिवर ! मैंने पहले यह बात कभी नहीं सुनी कि किसीने किसी भी कारणसे धर्मराजके शासनका उल्लङ्घन किया हो। परन्तु यहाँ ऐसी ही घटना घट गयी। भगवन् ! इस विषयमें लोग बहुत सन्देह करेंगे। और उसका निवारण आपके अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता, ऐसा मेरा निश्चय है। इस-लिये आप कृपा करके मेरे प्रश्नका उत्तर दीजिये ॥ १-२ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! जब भगवान्‌के पार्षदोंने यमदूतोंका प्रयत्न विफल कर दिया, तब उन लोगोंने संयमनीपुरीके स्वामी एवं अपने शासक यमराजके पास जाकर निवेदन किया ॥ ३ ॥

यमदूतोंने कहा—प्रभो ! संसारके जीव तीन प्रकारके कर्म करते हैं—पाप, पुण्य अथवा दोनोंसे मिश्रित। अब हमें आप कृपा करके बतलाइये कि जीवोंको उन कर्मोंका फल देनेवाले शासक संसारमें कितने हैं। यदि संसारमें दण्ड देनेवाले बहुत-से शासक हों, तो किसे सुख मिले और किसे दुःख—इसकी व्यवस्था एक-सी न हो सकेगी। कहीं सुखके अधिकारीको दुःख मिल जायगा तो कहीं दुःखके अधिकारीको सुख मिल जायगा। आप यह कह सकते हैं कि संसारमें कर्म करनेवाले भी तो बहुत हैं, तब उनके शासक भी अनेक हों तो इसमें क्या आपत्ति है। परन्तु ऐसी स्थितिमें उन शासकोंका शासकपना तो नाममात्रका ही होगा, जैसे एक सम्राट्‌के अधीन बहुत-से नाममात्रके सामन्त होते हैं। क्योंकि असलमें तो वे पराधीन ही हैं। इसलिये हम तो ऐसा समझते हैं कि अकेले आप ही समस्त प्राणियों और उनके स्वामियोंके भी अधीश्वर हैं। आप ही मनुष्योंके पाप और पुण्यके निर्णायक, दण्डदाता और शासक हैं। परन्तु प्रभो ! आप-जैसे शासकका दण्ड भी इस समय संसारमें नहीं चल रहा है, वह भी कुण्ठित हो गया है। क्योंकि आज चार अद्भुत सिद्धोंने आपकी आज्ञाकी अवहेलना कर दी है। प्रभो ! आपकी आज्ञासे हमलोग एक पापीको यातनागृहकी ओर ले जा रहे थे, परन्तु उन्होंने बलपूर्वक आपके फंदे काटकर उसे छुड़ा दिया। हम आपसे उनका रहस्य जानना चाहते हैं। यदि आप हमें सुननेका अधिकारी समझें तो कहें। प्रभो ! बड़े ही आश्चर्यकी बात हुई कि इधर तो अजामिलके मुँहसे 'नारायण !' यह शब्द निकला और उधर वे 'डरो मत, डरो मत !' कहते हुए झटपट वहाँ आ पहुँचे ॥४–१०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब दूतोंने इस प्रकार प्रश्न किया, तब देवशिरोमणि प्रजाके शासक भगवान् यमराजने श्रीहरिके चरणकमलोंका स्मरण करते हुए उनसे कहा ॥११॥

यमराजने कहा—दूतो ! मेरे अतिरिक्त एक और ही चराचर जगत्‌के स्वामी हैं। उन्हींमें यह सम्पूर्ण जगत् सूतमें वस्त्रके समान ओतप्रोत है। उन्हींके अंश ब्रह्मा, विष्णु और शङ्कर इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय करते हैं। उन्होंने इस सारे जगत्‌को नथे हुए बैलके समान अपने अधीन कर रक्खा है। मेरे प्यारे दूतो ! जैसे किसान अपने बैलोंको पहले छोटी-छोटी रस्सियोंमें बाँधकर फिर उन रस्सियोंको एक बड़ी आड़ी रस्सीमें बाँध देते हैं, वैसे ही जगदीश्वर भगवान्‌ने भी ब्राह्मणादि वर्ण और ब्रह्मचर्य आदि आश्रमरूप छोटी-छोटी नामकी रस्सियोंमें बाँधकर फिर सब नामोंको वेदवाणीरूप बड़ी रस्सीमें बाँध रक्खा है। इस प्रकार सारे जीव नाम एवं कर्मरूप बन्धनोंमें बँधे हुए भयभीत होकर उन्हें ही अपना सर्वस्व भेंट कर रहे हैं। दूतो ! मैं, इन्द्र, निर्ऋति, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि, शङ्कर, वायु, सूर्य, ब्रह्मा, बारहों आदित्य, विश्वेदेवता, आठों वसु, साध्य, उनचास मरुत्, सिद्ध, ग्यारहों रुद्र, रजोगुण एवं तमोगुणसे रहित भृगु आदि प्रजापति और बड़े-बड़े देवता—सब-के-सब सत्त्व-प्रधान होनेपर भी उनकी मायाके अधीन हैं, तथा भगवान् कब क्या किस रूपमें करना चाहते हैं—इस बातको नहीं जानते। तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है। दूतो ! जिस प्रकार घट, पट आदि रूपवान् पदार्थ अपने देखनेवाले नेत्रको नहीं देख सकते—वैसे ही अन्तःकरणमें अपने साक्षीरूपसे स्थित परमात्माको कोई भी प्राणी इन्द्रिय, मन, प्राण, हृदय या वाणी आदि किसी भी साधनके द्वारा नहीं जान सकता।

यामिनी। पतङ्गीसे पक्षियोंका और यामिनीसे शलभों (पतिंगों) का जन्म हुआ। विनताके पुत्र गरुड़ हुए, ये ही भगवान् विष्णुके वाहन हैं। विनताके ही दूसरे पुत्र अरुण हैं, जो भगवान् सूर्यके सारथि हैं। कद्रूसे अनेकों नाग उत्पन्न हुए ॥ १७–२२ ॥

परीक्षित्! कृत्तिका आदि सत्ताईस नक्षत्राभिमानी देवता चन्द्रमाकी पत्नियाँ हैं। रोहिणीसे विशेष प्रेम करनेके कारण चन्द्रमाको दक्षने शाप दे दिया, जिससे उन्हें क्षय रोग हो गया था। उन्होंने दक्षको फिरसे प्रसन्न करके कृष्ण पक्षकी क्षीण कलाओंके शुक्लपक्षमें पूर्ण होनेका वर तो प्राप्त कर लिया, परन्तु नक्षत्राभिमानी देवताओंसे उन्हें कोई सन्तान न हुई। अब तुम कश्यपपत्नियोंके मङ्गलमय नाम सुनो। वे लोकमाताएँ हैं। उन्हींसे यह सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। उनके नाम हैं—अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमि। इनमें तिमिके पुत्र हैं—जलचर जन्तु और सरमाके बाघ आदि हिंसक जीव। सुरभिके पुत्र हैं—भैंस, गाय तथा दूसरे दो खुरवाले पशु। ताम्राकी सन्तान हैं—बाज, गीध आदि शिकारी पक्षी। मुनिसे अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। क्रोधवशाके पुत्र हुए—साँप, बिच्छू आदि विषैले जन्तु। इलासे वृक्ष, लता आदि पृथ्वीमें उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियाँ, सुरसासे यातुधान (राक्षस), अरिष्टासे गन्धर्व और काष्ठासे घोड़े आदि एक खुरवाले पशु उत्पन्न हुए। दनुके इकसठ पुत्र हुए। उनमें प्रधान प्रधान हैं—द्विमूर्धा, शम्बर, अरिष्ट, हयग्रीव, विभावसु, अयोमुख, शङ्कुशिरा, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, पुलोमा, वृषपर्वा, एकचक्र, अनुतापन, धूम्रकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति और दुर्जय। स्वर्भानुकी कन्या सुप्रभासे नमुचिने और वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठासे महाबली नहुषनन्दन ययातिने विवाह किया। दनुके पुत्र वैश्वानरकी चार सुन्दर कन्याएँ थीं। इनके नाम थे—उपदानवी, हयशिरा, पुलोमा और कालका। इनमेंसे उपदानवीके साथ हिरण्याक्षका और हयशिराके साथ क्रतुका विवाह हुआ। ब्रह्माजीकी आज्ञासे प्रजापति भगवान् कश्यपने ही वैश्वानरकी शेष दो पुत्रियों पुलोमा और कालकाके साथ विवाह किया। उनसे पौलोम और कालकेय नामके साठ हजार रणवीर दानव हुए। इन्हींका दूसरा नाम निवातकवच था। ये यज्ञकर्ममें विघ्न डालते थे, इसलिये परीक्षित्! तुम्हारे दादा अर्जुनने अकेले ही उन्हें इन्द्रको प्रसन्न करनेके लिये मार डाला। यह उन दिनोंकी बात है, जब अर्जुन स्वर्गमें गये हुए थे। विप्रचित्तिकी पत्नी सिंहिकाके गर्भसे एक सौ एक पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सबसे बड़ा था राहु, जिसकी गणना ग्रहोंमें हो गयी। शेष सौ पुत्रोंका नाम केतु था ॥ २३–३७ ॥

परीक्षित्! अब क्रमशः अदितिकी वंशपरम्परा सुनो। इस वंशमें सर्वव्यापक देवाधिदेव नारायणने अपने अंशसे वामनरूपमें अवतार लिया था। अदितिके पुत्र थे—विवस्वान्, अर्यमा, पूषा, त्वष्टा, सविता, भग, धाता, विधाता, वरुण, मित्र, इन्द्र और त्रिविक्रम (वामन)। यही बारह आदित्य कहलाये। विवस्वान्की पत्नी महाभाग्यवती संज्ञाके गर्भसे श्राद्धदेव (वैवस्वत) मनु एवं यम यमीका जोड़ा पैदा हुआ। संज्ञाने ही घोड़ीका रूप धारण करके भगवान् सूर्यके द्वारा भूलोकमें दोनों अश्विनीकुमारोंको जन्म दिया। विवस्वान्की दूसरी पत्नी थी छाया। उसके शनैश्चर और सावर्णि मनु नामके दो पुत्र तथा तपती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। तपतीने संवरणको पतिरूपमें वरण किया। अर्यमाकी पत्नी मातृका थी। उसके गर्भसे चर्षणी नामक पुत्र हुए। वे कर्तव्य-अकर्तव्यके ज्ञानसे युक्त थे। इसलिये ब्रह्माजीने उन्हींके आधारपर मनुष्यजातिकी (ब्राह्मणादि वर्णोंकी) कल्पना की। पूषाके कोई सन्तान न हुई। प्राचीन कालमें जब शिवजी दक्षपर क्रोधित हुए थे, तब पूषा दाँत दिखाकर हँसने लगे थे, इसलिये वीरभद्रने इनके दाँत तोड़ दिये थे। तबसे पूषा पिसा हुआ अन्न ही खाते हैं। दैत्योंकी छोटी बहन कुमारी रचना त्वष्टाकी पत्नी थी। रचनाके गर्भसे दो पुत्र हुए—संनिवेश और पराक्रमी विश्वरूप। इस प्रकार विश्वरूप यद्यपि शत्रुओंके भानजे थे—फिर भी जब देवगुरु बृहस्पतिजीने इन्द्रसे अपमानित होकर देवताओंका परित्याग कर दिया, तब देवताओंने विश्वरूपको ही अपना पुरोहित बनाया था ॥ ३८–४५ ॥

यही योग्य है कि वे क्षमा कर दें। मैं उन सर्वान्तर्यामी एकरस अनन्त प्रभुको नमस्कार करता हूँ ॥२६–३०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इसलिये तुम ऐसा समझ लो कि बड़े-से-बड़े पापोंका सर्वोत्तम, अन्तिम और पाप-वासनाओंको भी निर्मूल कर डालनेवाला प्रायश्चित्त यही है कि केवल भगवान्के गुणों, लीलाओं और नामोंका कीर्तन किया जाय। इसीसे संसारका कल्याण हो सकता है। जो लोग बार-बार भगवान्के उदार और कृपापूर्ण चरित्रोंका श्रवण-कीर्तन करते हैं, उनके हृदयमें प्रेममयी भक्तिका उदय हो जाता है। उस भक्तिसे जैसी आत्मशुद्धि होती है, वैसी कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रतोंसे नहीं होती। जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्द-मकरन्द-रसका लोभी भ्रमर है, वह स्वभावसे ही मायाके आपात रम्य, दुःखद और पहलेसे ही छोड़े हुए विषयोंमें फिर नहीं रमता। किन्तु जो लोग उस दिव्य रससे विमुख हैं, कामनाओंने जिनकी विवेकबुद्धिपर पानी फेर दिया है, वे अपने पापोंका मार्जन करनेके लिये पुनः प्रायश्चित्तरूप कर्म ही करते हैं। इससे होता यह है कि उनके कर्मोंकी वासना मिटती नहीं और वे फिर वैसे ही दोष कर बैठते हैं ॥३१–३३॥

परीक्षित्! जब यमदूतोंने अपने स्वामी धर्मराजके मुखसे इस प्रकार भगवान्की महिमा सुनी और उसका स्मरण किया, तो उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। तभीसे वे धर्मराज-की बातपर विश्वास करके अपने नाशकी आशङ्कासे भगवान्के आश्रित भक्तोंके पास नहीं जाते। और तो क्या, वे उनकी ओर आँख उठाकर देखनेमें भी डरते हैं। प्रिय परीक्षित्! यह इतिहास परम गोपनीय—अत्यन्त रहस्यमय है। मलयपर्वतपर विराजमान भगवान् अगस्त्यजीने श्रीहरिकी पूजा करते समय उनकी शपथ लेकर मुझे यह सुनाया था॥३४-३५॥

चौथा अध्याय

दक्षके द्वारा भगवान्की स्तुति और भगवान्का प्रादुर्भाव

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! आपने संक्षेपसे (तीसरे स्कन्धमें) इस बातका वर्णन किया कि स्वायम्भुव मन्वन्तरमें देवता, असुर, मनुष्य, सर्प और पशु-पक्षी आदिकी सृष्टि कैसे हुई। अब मैं उसीका विस्तृत विवरण जानना चाहता हूँ। प्रकृति आदि कारणोंके भी परम कारण भगवान् अपनी जिस शक्तिसे जिस प्रकार उसके बादकी सृष्टि करते हैं, उसे जाननेकी भी मेरी इच्छा है ॥ १-२ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! परमयोगी व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने राजर्षि परीक्षित्का यह सुन्दर प्रश्न सुनकर उनका अभिनन्दन किया और इस प्रकार कहा ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजा प्राचीनबर्हिके दस लड़के–जिनका नाम प्रचेता था–जब समुद्रसे बाहर निकले, तो उन्होंने देखा कि हमारे पिताके निवृत्तिपरायण हो जानेसे सारी पृथ्वी पेड़ोंसे घिर गयी है। उन्हें वृक्षोंपर बड़ा क्रोध आया। उनके तपोबलने तो मानो क्रोधकी आगमें आहुति ही डाल दी। बस, उन्होंने वृक्षोंको जला डालनेके लिये अपने मुखसे वायु और अग्निकी सृष्टि की। परीक्षित्! जब प्रचेताओंकी छोड़ी हुई अग्नि और वायु उन वृक्षोंको जलाने लगीं, तब वृक्षोंके राजाधिराज चन्द्रमाने उनका क्रोध शान्त करते हुए इस प्रकार कहा—'महाभाग्यवान् प्रचेताओ! ये वृक्ष बड़े दीन हैं। आपलोग इनसे वैर मत कीजिये। क्योंकि आप तो प्रजाकी अभिवृद्धि करना चाहते हैं और सभी जानते हैं कि आप प्रजापति हैं। महात्मा प्रचेताओ! प्रजा-पतियोंके अधिपति अविनाशी भगवान् श्रीहरिने सम्पूर्ण वनस्पतियों और ओषधियोंको प्रजाके हितार्थ उनके खान-पानके लिये बनाया है। संसारमें पाँखोंसे उड़नेवाले चर प्राणियोंके भोजन फल-पुष्पादि अचर पदार्थ हैं। पैरसे चलनेवालोंके घास-तृणादि बिना पैरवाले पदार्थ भोजन हैं; हाथवालोंके वृक्ष-लता आदि बिना हाथवाले, और दो पैर-वाले मनुष्यादिके लिये धान, गेहूँ आदि अन्न भोजन हैं। चार पैरवाले बैल-ऊँट आदि खेती प्रभृतिके द्वारा अन्नकी उत्पत्तिमें सहायक हैं। निष्पाप प्रचेताओ! आपके पिता और देवाधिदेव भगवान्ने आपलोगोंको यह आदेश दिया है कि प्रजाकी सृष्टि करो। ऐसी स्थितिमें आप वृक्षोंको जला डालें, यह कैसे उचित हो सकता है? इसलिये अब आप-लोग अपना क्रोध शान्त करें और अपने पिता, पितामह, प्रपितामह आदिके द्वारा सेवित सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करें। देखिये, जैसे माँ-बाप बालकोंकी, पलकें नेत्रोंकी, पति पत्नीकी, गृहस्थ भिक्षुकोंकी और ज्ञानी अज्ञानियोंकी रक्षा करते हैं और उनका हित चाहते हैं—वैसे ही प्रजाकी रक्षा

गया। तब उन मदोन्मत्त और आततायी असुरोंने अपने गुरु शुक्राचार्यके आदेशानुसार देवताओंपर विजय पानेके लिये धावा बोल दिया। उन्होंने देवताओंपर इतने तीखे तीखे बाणोंकी वर्षा की कि उनके मस्तक, जघा, बाहु आदि अग कट-कटकर गिरने लगे। तब इन्द्रके साथ सभी देवता सिर झुकाकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये। स्वयम्भू एव समर्थ ब्रह्माजीने देखा कि देवताओंकी तो सचमुच बड़ी दुर्दशा हो रही है। अत उनका हृदय अत्यन्त करुणासे भर गया। वे देवताओंको धीरज बँधाते हुए बोले ॥ १६–२० ॥

ब्रह्माजीने कहा—देवताओ! यह बड़े खेदकी बात है। सचमुच तुमलोगोंने बहुत बुरा काम किया। हरे, हरे! तुमलोगोंने ऐश्वर्यके मदसे अधे होकर ब्रह्मज्ञानी, वेदज्ञ एव सयमी ब्राह्मणका सत्कार नहीं किया। देवताओ! तुम्हारी उसी अनीतिका यह फल है कि आज समृद्धिशाली होनेपर भी तुम्हें अपने निर्बल शत्रुओंके सामने नीचा देखना पड़ा। देवराज! देखो, तुम्हारे शत्रु भी पहले अपने गुरुदेव शुक्राचार्यका तिरस्कार करनेके कारण अत्यन्त निर्बल हो गये थे, परन्तु अब भक्तिभावसे उनकी आराधना करके वे फिर धन-जनसे सम्पन्न हो गये हैं। देवताओ! अधिक क्या कहूँ, मुझे तो ऐसा मालूम पड़ रहा है कि शुक्राचार्यको अपना आराध्यदेव माननेवाले ये दैत्यलोग कुछ दिनोंमें मेरा ब्रह्मलोक भी छीन लेंगे। भृगुवशियोंने इन्हें अर्थशास्त्रकी पूरी पूरी शिक्षा दे रक्खी है। ये जो कुछ करना चाहते हैं, उसका भेद तुम लोगोंको नहीं मिल पाता। उनकी सलाह बहुत गुप्त होती है। ऐसी स्थितिमें वे स्वर्गको तो समझते ही क्या हैं, वे चाहे जिस लोकको जीत सकते हैं। सच है, जो श्रेष्ठ मनुष्य ब्राह्मण, गोविन्द और गौओंको अपना सर्वस्व मानते हैं और जिनपर उनकी कृपा रहती है, उनका कभी अमङ्गल नहीं होता। इसलिये अब तुमलोग शीघ्र ही त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपके पास जाओ और उन्हींकी सेवा करो। वे सच्चे ब्राह्मण, तपस्वी और सयमी हैं। यदि तुमलोग उनके असुरोंके प्रति प्रेमको क्षमा कर सकोगे और उनका सम्मान करोगे, तो वे तुम्हारा काम बना देंगे ॥ २१–२५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब ब्रह्माजीने देवताओंसे इस प्रकार कहा, तो उनकी चिन्ता दूर हो गयी।



वे त्वष्टाके पुत्र विश्वरूप ऋषिके पास गये और उन्हें हृदयसे लगाकर यों कहने लगे ॥ २६ ॥

देवताओंने कहा—बेटा विश्वरूप! तुम्हारा कल्याण हो। हम तुम्हारे आश्रमपर अतिथिके रूपमें आये हैं। हम एक प्रकारसे तुम्हारे पिता हैं। इसलिये तुम हम लोगोंकी समयोचित अभिलाषा पूर्ण करो। जिन्हें सन्तान हो गयी हो, उन सत्पुत्रोंका भी सबसे बडा धर्म यही है कि वे अपने पिता तथा अन्य गुरुजनोंकी सेवा करें। फिर जो ब्रह्मचारी हैं, उनके लिये तो कहना ही क्या है। उन्हें तो अवश्य ही गुरुजनोंकी सेवा करनी चाहिये। वत्स! आचार्य वेदकी, पिता ब्रह्माजीकी, भाई इन्द्रकी और माता साक्षात् पृथ्वीकी मूर्ति होती है। इसी प्रकार बहिन दयाकी, अतिथि धर्मकी, अभ्यागत अग्निकी और जगत्के सभी प्राणी अपने आत्माकी ही मूर्ति—आत्मस्वरूप होते हैं। पुत्र! हम तुम्हारे पितर हैं। इस समय शत्रुओंने हमें जीत लिया है। हम बड़े दुखी हो रहे हैं। तुम अपने तपोबलसे हमारा यह दु ख, दारिद्र्य, पराजय टाल दो। पुत्र! तुम्हें हमलोगोंकी आज्ञा पालन करनी चाहिये। तुम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो। अत जन्मसे ही हमारे गुरु हो। हम तुम्हें आचार्यके रूपमें वरण करते हैं। ऐसा करके हमलोग तुम्हारी शक्तिसे अनायास ही शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर लेंगे। पुत्र! आवश्यकता पड़नेपर अपनेसे छोटोंका पैर छूना भी निन्दनीय नहीं है। इसलिये तुम्हें

होइये। मुझे आत्मप्रसादसे पूर्ण कर दीजिये। प्रभो! जो कुछ वाणीसे कहा जाता है अथवा जो कुछ मन, बुद्धि और इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जाता है—वह आपका स्वरूप नहीं है। क्योंकि वह तो गुणरूप है और आप गुणोंकी उत्पत्ति और प्रलयके अधिष्ठान हैं। आपमें केवल उनकी प्रतीतिमात्र है। भगवन्! आपमें ही यह सारा जगत् स्थित है, आपसे ही निकला है, और आपने—और किसीके सहारे नहीं—अपने-आपसे ही इसका निर्माण किया है। यह आपका ही है और आपके लिये ही है। इसके रूपमें बननेवाले भी आप हैं और बनानेवाले भी आप ही हैं। बनने-बनानेकी विधि भी आप ही हैं। आप ही सबसे काम लेनेवाले भी हैं। जब कार्य और कारणका भेद नहीं था, तब भी आप स्वयंसिद्ध स्वरूपसे स्थित थे। इसीसे आप सबके कारण भी हैं। सच्ची बात तो यह है कि आप जीव-जगत्के भेद और स्वगतभेदसे सर्वथा रहित एक, अद्वितीय हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। आप मुझपर प्रसन्न हों। प्रभो! आपकी ही शक्तियाँ वादी-प्रतिवादियोंके विवाद और संवाद (ऐकमत्य) का विषय होती हैं और उन्हें बार-बार मोहमें डाल दिया करती हैं। आप अनन्त अप्राकृत कल्याण-गुणगणोंसे युक्त एवं स्वयं अनन्त हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। भगवन्! उपासकलोग कहते हैं कि हमारे प्रभु हस्त-पादादिसे युक्त साकारविग्रह हैं और सांख्यवादी कहते हैं कि भगवान् हस्त-पादादिविग्रहसे रहित—निराकार हैं। यद्यपि इस प्रकार वे एक ही वस्तुके दो परस्परविरोधी धर्मोंका वर्णन करते हैं, परन्तु फिर भी उसमें विरोध नहीं है। क्योंकि दोनों एक ही परम वस्तुमें स्थित हैं। बिना आधारके हाथ-पैर आदिका होना सम्भव नहीं और निषेधकी भी कोई-न-कोई अवधि होनी ही चाहिये। आप वही आधार और निषेधकी अवधि हैं। इसलिये आप साकार, निराकार दोनोंसे ही अविरुद्ध सम परब्रह्म हैं। प्रभो! आप अनन्त हैं। आपका न तो कोई प्राकृत नाम है और न कोई प्राकृत रूप; फिर भी जो आपके चरणकमलोंका भजन करते हैं, उनपर अनुग्रह करनेके लिये आप अनेक रूपोंमें प्रकट होकर अनेकों लीलाएँ करते हैं तथा उन-उन रूपों एवं लीलाओंके अनुसार अनेकों नाम धारण कर लेते हैं। परमात्मन्! आप मुझपर कृपा-प्रसाद कीजिये। लोगोंकी उपासनाएँ प्रायः साधारण कोटिकी होती हैं। अतः आप सबके हृदयमें रहकर उनकी भावनाके अनुसार भिन्न-भिन्न देवताओंके रूपमें प्रतीत होते रहते हैं—ठीक वैसे ही जैसे हवा गन्धका आश्रय लेकर सुगन्धित प्रतीत होती है परन्तु वास्तवमें सुगन्धित नहीं होती। ऐसे सबकी भावनाओंका अनुसरण करनेवाले प्रभु मेरी अभिलाषा पूर्ण करें॥ २३—३४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! विन्ध्याचलके अघमर्षण तीर्थमें जब प्रजापति दक्षने इस प्रकार स्तुति की, तब भक्तवत्सल भगवान् उनके सामने प्रकट हुए। उस समय भगवान् गरुड़के कंधोंपर चरण रक्खे हुए थे। लंबी-लंबी, मोटी-मोटी आठ भुजाएँ थीं; उनमें चक्र, शङ्ख, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और गदा धारण किये हुए थे। वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल शरीरपर पीताम्बर फहरा रहा था। मुखमण्डल प्रफुल्लित था। नेत्रोंसे प्रसादकी वर्षा हो रही थी। घुटनोंतक वनमाला लटक रही थी। वक्षःस्थलपर सुनहरी रेखा—श्रीवत्सचिह्न और गलेमें कौस्तुभ मणि जगमगा रही थी। बहुमूल्य किरीट, कंगन, मकराकृत कुण्डल, करधनी, अँगूठी, कड़े, नूपुर और बाजूबंद अपने-अपने स्थानपर सुशोभित थे। त्रिभुवनपति भगवान्ने त्रैलोक्य-विमोहन रूप धारण कर रक्खा था। नारद, नन्द, सुनन्द आदि पार्षद उनके चारों ओर खड़े थे। इन्द्र आदि देवेश्वरगण स्तुति कर रहे थे तथा सिद्ध, गन्धर्व और चारण भगवान्के गुणोंका गायन कर रहे थे। यह अत्यन्त आश्चर्यमय और अलौकिक रूप देखकर दक्षप्रजापति कुछ सहम गये। फिर उन्होंने आनन्दसे भरकर भगवान्के चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। जैसे झरनोंके जलसे नदियाँ भर जाती हैं, वैसे ही परमानन्दके उद्रेकसे उनकी एक-एक इन्द्रिय भर गयी और आनन्दपरवश हो जानेके कारण वे कुछ भी बोल न सके। परीक्षित्! प्रजापति दक्ष अत्यन्त नम्रतासे झुककर भगवान्के सामने खड़े हो गये। भगवान् तो सबके हृदयकी बात जानते ही हैं, उन्होंने दक्ष प्रजापतिकी भक्ति और प्रजावृद्धिकी कामना देखकर उनसे यों कहा॥ ३५—४२॥

श्रीभगवान्ने कहा—परमभाग्यवान् दक्ष! अब तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गयी, क्योंकि मुझपर श्रद्धा करनेसे तुम्हारे हृदयमें मेरे प्रति परम प्रेमभावका उदय हो गया है। प्रजापते! तुमने इस विश्वकी वृद्धिके लिये तपस्या की है, इसलिये मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। क्योंकि यह मेरी ही इच्छा है कि जगत्के समस्त प्राणी अभिवृद्ध और समृद्ध हों। ब्रह्मा, शङ्कर, तुम्हारे-जैसे प्रजापति, स्वायम्भुव आदि मनु तथा इन्द्रादि देवेश्वर—ये सब मेरी विभूतियाँ हैं और सभी प्राणियोंकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं। ब्रह्मन्! तपस्या मेरा हृदय है, विद्या शरीर है, कर्म आकृति है, यज्ञ अङ्ग हैं, धर्म

है। इसके बाद समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्यसे परिपूर्ण इष्टदेव भगवान्का ध्यान करे और अपनेको भी तद्रूप ही चिन्तन करे। तत्पश्चात् विद्या, तेज और तप स्वरूप इस कवचका पाठ करे ॥ ४-११ ॥

'भगवान् श्रीहरि गरुड़जीकी पीठपर अपने चरण कमल रक्खे हुए हैं। अणिमादि आठों सिद्धियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। आठ हाथोंमें शङ्ख, चक्र, ढाल, तलवार, गदा, बाण, धनुष और पाश (फंदा) धारण किये हुए हैं। वे ही ॐकारस्वरूप प्रभु सब प्रकारसे, सब ओरसे मेरी रक्षा करें। मत्स्यमूर्ति भगवान् जलके भीतर जलजन्तुओंसे और वरुणके पाशसे मेरी रक्षा करें। मायासे ब्रह्मचारीका रूप धारण करनेवाले वामनभगवान् स्थलपर और विश्वरूप श्रीत्रिविक्रमभगवान् आकाशमें मेरी रक्षा करें। जिनके घोर अट्टहाससे सब दिशाएँ गूँज उठती थीं और गर्भवती दैत्यपत्नियोंके गर्भ गिर जाते थे, वे दैत्य-यूथपतियोंके शत्रु भगवान् नृसिंह किले, जङ्गल, रणभूमि आदि विकट स्थानोंमें मेरी रक्षा करें। अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको धारण करनेवाले यज्ञमूर्ति वराहभगवान् मार्गमें, परशुरामजी पर्वतोंके शिखरोंपर और लक्ष्मणजीके सहित भगवान् रामचन्द्र प्रवासके समय मेरी रक्षा करें। भगवान् नारायण मारण, मोहन आदि भयङ्कर अभिचारों और सब प्रकारके प्रमादोंसे मेरी रक्षा करें। ऋषिश्रेष्ठ नर गर्वसे, योगेश्वर भगवान् दत्तात्रेय योगके विघ्नोंसे और त्रिगुणाधिपति भगवान् कपिल कर्मबन्धनोंसे मेरी रक्षा करें। परमर्षि सनत्कुमार कामदेवसे, हयग्रीव भगवान् मार्गमें चलते समय देवमूर्तियोंको नमस्कार आदि न करनेके अपराधसे, देवर्षि नारद सेवापराधोंसे* और भगवान् कच्छप सब प्रकारके नरकोंसे मेरी रक्षा करें। भगवान् धन्वन्तरि कुपथ्यसे, जितेन्द्रिय भगवान् ऋषभदेव सुख दुःख आदि भयदायक द्वन्द्वोंसे, यज्ञभगवान् लोकापवादसे, बलरामजी मनुष्यकृत कष्टोंसे और श्रीशेषजी विषैले एवं क्रोधी साँपोंसे मेरी रक्षा करें। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी अज्ञानसे, तथा बुद्धदेव पाखण्डियोंसे और प्रमादसे मेरी रक्षा करें। धर्मरक्षाके लिये महान् अवतार धारण करनेवाले भगवान् कल्कि पापबहुल कलिकालके दोषोंसे मेरी रक्षा करें। प्रातःकाल भगवान् केशव अपनी गदा लेकर, कुछ दिन चढ़ आनेपर भगवान् गोविन्द अपनी बाँसुरी लेकर, दोपहरके पहले भगवान् नारायण अपनी तीक्ष्ण शक्ति लेकर, दोपहरको भगवान् विष्णु चक्रराज सुदर्शन लेकर और दोपहरके बाद भगवान् मधुसूदन अपना धनुष लेकर मेरी रक्षा करें। सायङ्कालमें ब्रह्मा आदि त्रिमूर्तिधारी माधव, सूर्यास्तके बाद हृषीकेश, अर्धरात्रिके समय तथा उसके पूर्व अकेले भगवान् पद्मनाभ, रात्रिके पिछले प्रहरमें श्रीवत्सलाञ्छन हरि, उषाकालमें खड्गधारी भगवान् जनार्दन, सूर्योदयसे पूर्व

* बत्तीस प्रकारके सेवापराध माने गये हैं—१-सवारीपर चढ़कर अथवा पैरोंमें खड़ाऊँ पहनकर श्रीभगवान्के मन्दिरमें जाना। २-रथयात्रा, जन्माष्टमी आदि उत्सवोंका न करना या उनके दर्शन न करना। ३-श्रीमूर्तिके दर्शन करके प्रणाम न करना। ४-अशौच अवस्थामें दर्शन करना। ५-एक हाथसे प्रणाम करना। ६-परिक्रमा करते समय भगवान्के सामने आकर कुछ न रुककर फिर परिक्रमा करना अथवा केवल सामने ही परिक्रमा करते रहना। ७-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने पैर पसारकर बैठना। ८-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने दोनों घुटनोंको ऊँचा करके उनको हाथोंसे लपेटकर बैठ जाना। ९-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने सोना। १०-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने भोजन करना। ११-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने झूठ बोलना। १२-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने जोरसे बोलना। १३-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने आपसमें बातचीत करना। १४-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने चिल्लाना। १५-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने कलह करना। १६-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने किसीको पीड़ा देना। १७-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने किसीपर अनुग्रह करना। १८-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने किसीको निष्ठुर वचन बोलना। १९-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने कम्बलसे सारा शरीर ढक लेना। २०-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी निन्दा करना। २१-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी स्तुति करना। २२-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने अश्लील शब्द बोलना। २३-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने अधोवायुका त्याग करना। २४-शक्ति रहते हुए भी गौण अर्थात् सामान्य उपचारोंसे भगवान्की सेवा पूजा करना। २५-श्रीभगवान्को निवेदित किये बिना किसी भी वस्तुका खाना पीना। २६-जिस ऋतुमें जो फल हो, उसे सबसे पहले श्रीभगवान्को न चढ़ाना। २७-किसी शाक या फलादिके अगले भागको तोड़कर भगवान्के व्यञ्जनादिके लिये देना। २८-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहको पीठ देकर बैठना। २९-श्रीभगवान्के श्रीविग्रहके सामने दूसरे किसीको भी प्रणाम करना। ३०-गुरुदेवकी अभ्यर्थना, कुशल प्रश्न और उनका स्तवन न करना। ३१-अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना और ३२-किसी भी देवताकी निन्दा करना।

पिताके उचित आदेशको समझ नहीं लोगे और इन उपर्युक्त वस्तुओंको देख नहीं लोगे, तबतक उनके आज्ञानुसार सृष्टि कैसे कर सकोगे ?' ॥ १–९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! हर्यश्व जन्मसे ही बड़े बुद्धिमान् थे। वे देवर्षि नारदकी यह पहेली, ये गूढ़ वचन सुनकर अपनी बुद्धिसे स्वयं ही विचार करने लगे—'देवर्षि नारदका कहना तो सच है। यह लिङ्गशरीर ही जिसे साधारणतः जीव कहते हैं, पृथ्वी है और यही आत्माका अनादि बन्धन है। इसका अन्त (विनाश) देखे बिना मोक्षके अनुपयोगी कर्मोंमें लगे रहनेसे क्या लाभ है ? सचमुच ईश्वर एक ही है। वह जाग्रत् आदि तीनों अवस्थाओं और उनके अभिमानियोंसे भिन्न, उनका साक्षी है। वह सबका आश्रय है, परन्तु उसका आश्रय कोई नहीं है। वही भगवान् हैं। उस प्रकृति आदिसे अतीत, नित्यमुक्त परमात्माको देखे बिना भगवान्‌के प्रति असमर्पित कर्मोंसे जीवको क्या लाभ है ? जैसे मनुष्य बिलरूप पातालमें प्रवेश करके वहाँसे नहीं लौट पाता—वैसे ही जीव जिसको प्राप्त होकर फिर संसारमें नहीं लौटता, जो स्वयं अन्तर्ज्योतिः-स्वरूप है, उस परमात्माको जाने बिना विनाशवान् स्वर्ग आदि फल देनेवाले कर्मोंको करना-न-करना एक-सा ही है। यह अपनी बुद्धि ही बहुरूपिणी और सत्त्व, रज आदि गुणोंको धारण करनेवाली व्यभिचारिणी स्त्रीके समान है। इस जीवनमें इसका अन्त जाने बिना—विवेक प्राप्त किये बिना अशान्तिको अधिकाधिक बढ़ानेवाले कर्म करनेका प्रयोजन ही क्या है ? यह बुद्धि ही कुलटा स्त्रीके समान है। इसके संगसे जीवरूप पुरुषका ऐश्वर्य—इसकी स्वतन्त्रता नष्ट हो गयी है। इसीके पीछे-पीछे वह न जाने कहाँ-कहाँ भटक रहा है। इसकी विभिन्न गतियों, चालोंको जाने बिना ही विवेकरहित कर्मोंसे क्या सिद्धि मिलेगी ? यह माया ही एक नदी है। तपस्या, विद्या आदि इसके किनारे हैं। परन्तु उन किनारोंपर अहङ्कार आदिके रूपमें इसका वेग और भी बढ़ जाता है। सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात तो यह है कि इसका प्रवाह सृष्टि और प्रलय दोनोंकी ओर है। जो इसके वेगमें पड़कर विवश हो रहा है और इसके स्वरूप-पर विचार नहीं करता, वह इसीके प्रवाहमें अधिकाधिक बहा ले जानेवाले मायिक कर्मोंको करके क्या लाभ उठा सकेगा ? ये पचीस तत्त्व ही एक अद्भुत घर हैं। पुरुष उनका आश्चर्यमय आश्रय है। वही समस्त कार्य-कारणात्मक जगत्‌का अधिष्ठाता है। यह बात न जानकर सच्चा स्वातन्त्र्य प्राप्त किये बिना झूठी स्वतन्त्रतासे किये जानेवाले कर्म व्यर्थ ही हैं। भगवान्‌का स्वरूप बतलानेवाला शास्त्र हंसके समान नीर-क्षीर-विवेकी है। वह बन्ध-मोक्ष, चेतन और जडको अलग-अलग करके दिखा देता है। ऐसे अध्यात्मशास्त्ररूप हंसका आश्रय छोड़कर, उसे जाने बिना बहिर्मुख बनानेवाले कर्मोंसे लाभ ही क्या है ? यह काल ही एक चक्र है। यह निरन्तर घूमता रहता है। इसकी धार छुरे और वज्रके समान तीखी है और यह सारे जगत्‌को अपनी ओर खींच रहा है। इसको रोकनेवाला कोई नहीं, यह परम स्वतन्त्र है। यह बात न जानकर कर्मोंके फलको नित्य समझकर जो लोग सकामभावसे उनका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें उन अनित्य कर्मोंसे क्या लाभ होगा ? शास्त्र ही पिता है; क्योंकि दूसरा जन्म शास्त्रके द्वारा ही होता है और उसका आदेश कर्मोंमें लगना नहीं, उनसे निवृत्त होना है। इसे जो नहीं जानता, वह गुणमय शब्द आदि विषयोंपर विश्वास कर लेता है। अब वह कर्मोंसे निवृत्त होनेकी आज्ञाका पालन भला, कैसे कर सकता है ?' परीक्षित् ! हर्यश्वोंने एक मतसे यही निश्चय किया और नारदजीकी परिक्रमा करके वे उस मोक्षपथके पथिक बन गये, जिसपर चलकर फिर लौटना नहीं पड़ता। इसके बाद देवर्षि नारद स्वरब्रह्ममें—संगीतलहरीमें अभिव्यक्त हुए, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके चरणकमलोंमें अपने चित्तको अखण्डरूपसे स्थिर करके लोक-लोकान्तरोंमें विचरने लगे ॥१०–२२॥

परीक्षित् ! जब दक्षप्रजापतिको मालूम हुआ कि मेरे शीलवान् पुत्र नारदके उपदेशसे कर्त्तव्यच्युत हो गये हैं, तो वे शोकसे व्याकुल हो गये। उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ। सचमुच अच्छी सन्तानका होना भी शोकका ही कारण है। ब्रह्माजीने दक्षप्रजापतिको बड़ी सान्त्वना दी। तब उन्होंने पञ्चजन-नन्दिनी असिक्नीके गर्भसे एक हजार पुत्र और उत्पन्न किये। उनका नाम था शबलाश्व। वे भी अपने पिता दक्षप्रजापतिकी आज्ञा पाकर प्रजासृष्टिके उद्देश्यसे तप करनेके लिये उसी नारायणसरोवरपर गये, जहाँ जाकर उनके बड़े भाइयोंने

है। इसके बाद समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्यसे परिपूर्ण इष्टदेव भगवान्‌का ध्यान करे और अपनेको भी तद्रूप ही चिन्तन करे। तत्पश्चात् विद्या, तेज और तप स्वरूप इस कवचका पाठ करे ॥ ४-११ ॥

'भगवान् श्रीहरि गरुड़जीकी पीठपर अपने चरण-कमल रक्खे हुए हैं। अणिमादि आठों सिद्धियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। आठ हाथोंमें शङ्ख, चक्र, ढाल, तलवार, गदा, बाण, धनुष और पाश (फंदा) धारण किये हुए हैं। वे ही ॐकारस्वरूप प्रभु सब प्रकारसे, सब ओरसे मेरी रक्षा करें। मत्स्यमूर्ति भगवान् जलके भीतर जलजन्तुओंसे और वरुणके पाशसे मेरी रक्षा करें। मायासे ब्रह्मचारीका रूप धारण करनेवाले वामनभगवान् स्थलपर और विश्वरूप श्रीत्रिविक्रमभगवान् आकाशमें मेरी रक्षा करें। जिनके घोर अट्टहाससे सब दिशाएँ गूँज उठती थीं और गर्भवती दैत्यपत्नियोंके गर्भ गिर जाते थे, वे दैत्य-यूथपतियोंके शत्रु भगवान् नृसिंह किले, जङ्गल, रणभूमि आदि विकट स्थानोंमें मेरी रक्षा करें। अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको धारण करनेवाले यज्ञमूर्ति वराहभगवान् मार्गमें, परशुरामजी पर्वतोंके शिखरोंपर और लक्ष्मणजीके सहित भगवान् रामचन्द्र प्रवासके समय मेरी रक्षा करें। भगवान् नारायण मारण, मोहन आदि भयङ्कर अभिचारों और सब प्रकारके प्रमादोंसे मेरी रक्षा करें। ऋषिश्रेष्ठ नर गर्वसे, योगेश्वर भगवान् दत्तात्रेय योगके विघ्नोंसे और त्रिगुणाधिपति भगवान् कपिल कर्मबन्धनोंसे मेरी रक्षा करें। परमर्षि सनत्कुमार कामदेवसे, हयग्रीव भगवान् मार्गमें चलते समय देवमूर्तियोंको नमस्कार आदि न करनेके अपराधसे, देवर्षि नारद सेवापराधोंसे* और भगवान् कच्छप सब प्रकारके नरकोंसे मेरी रक्षा करें। भगवान् धन्वन्तरि कुपथ्यसे, जितेन्द्रिय भगवान् ऋषभदेव सुख-दुःख आदि भयदायक द्वन्द्वोंसे, यज्ञभगवान् लोकापवादसे, बलरामजी मनुष्यकृत कष्टोंसे और श्रीशेषजी विषैले एवं सभी साँपोंसे मेरी रक्षा करें। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी अज्ञानसे, तथा बुद्धदेव पाखण्डियोंसे और प्रमादसे मेरी रक्षा करें। धर्मरक्षाके लिये महान् अवतार धारण करनेवाले भगवान् कल्कि पापबहुल कलिकालके दोषोंसे मेरी रक्षा करें। प्रातःकाल भगवान् केशव अपनी गदा लेकर, कुछ दिन चढ़ आनेपर भगवान् गोविन्द अपनी बाँसुरी लेकर, दोपहरके पहले भगवान् नारायण अपनी तीक्ष्ण शक्ति लेकर, दोपहरको भगवान् विष्णु चक्रराज सुदर्शन लेकर और दोपहरके बाद भगवान् मधुसूदन अपना धनुष लेकर मेरी रक्षा करें। सायङ्कालमें ब्रह्मा आदि त्रिमूर्तिधारी माधव, सूर्यास्तके बाद हृषीकेश, अर्धरात्रिके समय तथा उसके पूर्व अकेले भगवान् पद्मनाभ, रात्रिके पिछले प्रहरमें श्रीवत्सलाञ्छन हरि, उषाकालमें खड्गधारी भगवान् जनार्दन, सूर्योदयसे पूर्व

* बत्तीस प्रकारके सेवापराध माने गये हैं—१-सवारीपर चढ़कर अथवा पैरोंमें खड़ाऊँ पहनकर श्रीभगवान्‌के मन्दिरमें जाना। २-रथयात्रा, जन्माष्टमी आदि उत्सवोंका न करना या उनके दर्शन न करना। ३-श्रीमूर्तिके दर्शन करके प्रणाम न करना। ४-अशौच अवस्थामें दर्शन करना। ५-एक हाथसे प्रणाम करना। ६-परिक्रमा करते समय भगवान्‌के सामने आकर कुछ न रुककर फिर परिक्रमा करना अथवा केवल सामने ही परिक्रमा करते रहना। ७-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने पैर पसारकर बैठना। ८-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दोनों घुटनोंको ऊँचा करके उनको हाथोंसे लपेटकर बैठ जाना। ९-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने सोना। १०-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने भोजन करना। ११-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने झूठ बोलना। १२-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने जोरसे बोलना। १३-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने आपसमें बातचीत करना। १४-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने चिल्लाना। १५-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने कलह करना। १६-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीको पीड़ा देना। १७-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीपर अनुग्रह करना। १८-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीको निष्ठुर वचन बोलना। १९-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने कम्बलसे सारा शरीर ढक लेना। २०-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी निन्दा करना। २१-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी स्तुति करना। २२-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने अश्लील शब्द बोलना। २३-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने अधोवायुका त्याग करना। २४-शक्ति रहते हुए भी गौण अर्थात् सामान्य उपचारोंसे भगवान्‌की सेवा-पूजा करना। २५-श्रीभगवान्‌को निवेदित किये बिना किसी भी वस्तुका खाना-पीना। २६-जिस ऋतुमें जो फल हो, उसे सबसे पहले श्रीभगवान्‌को न चढ़ाना। २७-किसी शाक या फलादिके अगले भागको तोड़कर भगवान्‌के व्यञ्जनादिके लिये देना। २८-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहको पीठ देकर बैठना। २९-श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरे किसीको भी प्रणाम करना। ३०-गुरुदेवकी अभ्यर्थना, कुशल-प्रश्न और उनका स्तवन न करना। ३१-अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना और ३२-किसी भी देवताकी निन्दा करना।

भरनेवालोंसे किसीको वैराग्य नहीं हो सकता। देखो, बिना सच्चे वैराग्यके शान्ति नहीं होती और बिना शान्तिके स्नेहपाश नहीं कट सकता। नारद ! मनुष्य विषयोंका अनुभव किये बिना उनकी कटुता नहीं जान सकता। इसलिये उनकी दुःखरूपताका अनुभव होनेपर स्वयं जैसा वैराग्य होता है, वैसा दूसरोंके बहकानेसे नहीं होता। देखो— हमलोग सद्गृहस्थ हैं, अपनी धर्ममर्यादाका पालन करते हैं। एक बार पहले भी तुमने हमारा असह्य अपकार किया था। तब हमने उसे सह लिया। परन्तु तुम तो हमारी वंशपरम्पराका उच्छेद करनेपर ही उतारू हो रहे हो। तुमने फिर हमारे साथ वही दुष्टताका व्यवहार किया। इसलिये मूढ ! जाओ, लोक-लोकान्तरोंमें भटकते रहो। कहीं भी तुम्हारे लिये ठहरनेको ठौर नहीं होगी ॥३६–४३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! संतशिरोमणि देवर्षि नारदने 'बहुत अच्छा' कहकर दक्षका शाप स्वीकार कर लिया। संसारमें बस, साधुता इसीका नाम है कि बदला लेनेकी शक्ति रहनेपर भी दूसरेका किया हुआ अपकार सह लिया जाय ॥ ४४ ॥

छठा अध्याय

दक्षप्रजापतिकी साठ कन्याओंके वंशका विवरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! तदनन्तर ब्रह्माजीके बहुत अनुनय-विनय करनेपर दक्षप्रजापतिने अपनी पत्नी असिक्नीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। वे सभी अपने पिता दक्षसे बहुत प्रेम करती थीं। दक्षप्रजापतिने उनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, दो भूतको, दो अङ्गिराको, दो कृशाश्वको और शेष चार तार्क्ष्यनामधारी कश्यपको ही ब्याह दीं। परीक्षित् ! तुम इन दक्षकन्याओं और इनकी सन्तानोंके नाम मुझसे सुनो। इन्हींकी वंशपरम्परा तीनों लोकोंमें फैली हुई है ॥१–३॥

धर्मकी दस पत्नियाँ थीं—भानु, लम्बा, ककुभ्, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता और सङ्कल्पा। इनके पुत्रोंके नाम सुनो। राजन् ! भानुका पुत्र देवऋषभ और देवऋषभका इन्द्रसेन था। लम्बाका पुत्र हुआ विद्योत और विद्योतके पुत्र मेघगण हुए। ककुभ्का पुत्र हुआ सङ्कट, सङ्कटका कीकट और कीकटके पुत्र हुए पृथ्वीके सम्पूर्ण दुर्गों (किलों) के अभिमानी देवता। जामिके पुत्रका नाम था स्वर्ग और स्वर्गका पुत्र हुआ नन्दी। विश्वाके विश्वेदेव हुए। उनके कोई सन्तान न हुई। साध्यासे साध्यगण हुए और उनका पुत्र हुआ अर्थसिद्धि। मरुत्वतीके दो पुत्र हुए— मरुत्वान् और जयन्त। जयन्त भगवान् वासुदेवके अंश हैं, जिन्हें लोग उपेन्द्र भी कहते हैं। मुहूर्तासे मुहूर्तके अभिमानी देवता उत्पन्न हुए। ये अपने-अपने मुहूर्तमें जीवोंको उनके कर्मानुसार फल देते हैं। सङ्कल्पाका पुत्र हुआ सङ्कल्प और सङ्कल्पका काम। वसुके पुत्र आठों वसु हुए। उनके नाम हैं—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु। द्रोणकी पत्नीका नाम है अभिमति। उससे हर्ष, शोक, भय आदिके अभिमानी देवता उत्पन्न हुए। प्राणकी पत्नी ऊर्जस्वतीके गर्भसे सह, आयु और पुरोजव नामके तीन पुत्र हुए। ध्रुवकी पत्नी धरणीने अनेक नगरोंके अभिमानी देवता उत्पन्न किये। अर्ककी पत्नी वासनाके गर्भसे तर्ष (तृष्णा) आदि पुत्र हुए। अग्नि नामक वसुकी पत्नी धाराके गर्भसे द्रविणक आदि बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। कृत्तिकापुत्र स्कन्द भी अग्निसे ही उत्पन्न हुए। उनसे विशाख आदिका जन्म हुआ। दोषकी पत्नी शर्वरीके गर्भसे शिशुमारका जन्म हुआ। वह भगवान्की कला है। वसुकी पत्नी आङ्गिरसीसे शिल्पकलाके अधिपति विश्वकर्माजी हुए। विश्वकर्माके उनकी भार्या कृतीके गर्भसे चाक्षुष मनु हुए और उनके पुत्र विश्वेदेव एवं साध्यगण हुए। विभावसुकी पत्नी उषासे तीन पुत्र हुए—व्युष्ट, रोचिष् और आतप। उनमेंसे (दिवस) नामक पुत्र हुआ, उसीके कारण सब जीव अपने-आतपके पञ्चयाम अपने कार्योंमें लगे रहते हैं ॥ ४–१६ ॥

भूतकी पत्नी दक्षनन्दिनी सरूपाने कोटि-कोटि रुद्रगण उत्पन्न किये। इनमें रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप और महान्—ये ग्यारह मुख्य हैं। भूतकी दूसरी पत्नी भूतासे भयङ्कर भूत और विनायकादिका जन्म हुआ। ये सब ग्यारहवें प्रधान रुद्र महान्के पार्षद हुए। अङ्गिरा प्रजापतिकी प्रथम पत्नी स्वधाने पितृगणको उत्पन्न किया और दूसरी पत्नी सतीने अथर्वाङ्गिरस नामक वेदको ही पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया। कृशाश्वकी पत्नी अर्चिसे धूम्रकेशका जन्म हुआ और धिषणासे चार पुत्र हुए—वेदशिरा, देवल, वयुन और मनु। तार्क्ष्यनामधारी कश्यपकी चार स्त्रियाँ थीं—विनता, कद्रू, ˆ और

है। इसके बाद समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्यसे परिपूर्ण इष्टदेव भगवान्‌का ध्यान करे और अपनेको भी तद्‌रूप ही चिन्तन करे। तत्पश्चात् विद्या, तेज और तपःस्वरूप इस कवचका पाठ करे ॥ ४-११ ॥

'भगवान् श्रीहरि गरुड़जीकी पीठपर अपने चरणकमल रक्खे हुए हैं। अणिमादि आठों सिद्धियाँ उनकी सेवा कर रही हैं। आठ हाथोंमें शङ्ख, चक्र, ढाल, तलवार, गदा, बाण, धनुष और पाश (फंदा) धारण किये हुए हैं। वे ही ॐकारस्वरूप प्रभु सब प्रकारसे, सब ओरसे मेरी रक्षा करें। *मत्स्यमूर्ति भगवान् जलके भीतर जलजन्तुओंसे* और वरुणके पाशसे मेरी रक्षा करें। मायासे ब्रह्मचारीका रूप धारण करनेवाले वामनभगवान् स्थलपर और विश्वरूप *श्रीत्रिविक्रमभगवान् आकाशमें मेरी रक्षा करें। जिनके* घोर अट्टहाससे सब दिशाएँ गूँज उठती थीं और गर्भवती दैत्यपत्नियोंके गर्भ गिर जाते थे, वे दैत्य-यूथपतियोंके शत्रु *भगवान् नृसिंह किले, जङ्गल, रणभूमि आदि विकट स्थानोंमें* मेरी रक्षा करें। अपनी दाढ़ोंपर पृथ्वीको धारण करनेवाले यज्ञमूर्ति वराहभगवान् मार्गमें, परशुरामजी पर्वतोंके शिखरोंपर और लक्ष्मणजीके सहित भगवान् रामचन्द्र प्रवासके समय मेरी रक्षा करें। भगवान् नारायण मारण, मोहन आदि भयङ्कर अभिचारों और सब प्रकारके प्रमादोंसे मेरी रक्षा करें। ऋषिश्रेष्ठ नर गर्वसे, योगेश्वर भगवान् दत्तात्रेय योगके विघ्नोंसे और त्रिगुणाधिपति भगवान् कपिल कर्मबन्धनोंसे मेरी रक्षा करें। परमर्षि सनत्कुमार कामदेवसे, हयग्रीव भगवान् मार्गमें चलते समय देवमूर्तियोंको नमस्कार आदि न करनेके अपराधसे, देवर्षि नारद सेवापराधोंसे* और भगवान् कच्छप सब प्रकारके नरकोंसे मेरी रक्षा करें। भगवान् धन्वन्तरि कुपथ्यसे, जितेन्द्रिय भगवान् ऋषभदेव सुख-दुःख आदि भयदायक द्वन्द्वोंसे, यज्ञभगवान् लोकापवादसे, *बलरामजी मनुष्यकृत कष्टोंसे और श्रीशेषजी विषैले एवं क्रोधी* सर्पोंसे मेरी रक्षा करें। भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी अज्ञानसे, तथा बुद्धदेव पाखण्डियोंसे और प्रमादसे मेरी रक्षा करें। *धर्मरक्षाके लिये महान् अवतार धारण करनेवाले* भगवान् कल्कि पापबहुल कलिकालके दोषोंसे मेरी रक्षा करें। प्रातःकाल भगवान् केशव अपनी गदा लेकर, कुछ दिन चढ़ आनेपर *भगवान् गोविन्द अपनी बाँसुरी लेकर*, दोपहरके पहले भगवान् नारायण अपनी तीक्ष्ण शक्ति लेकर, दोपहरको भगवान् विष्णु चक्रराज सुदर्शन लेकर और दोपहरके बाद भगवान् मधुसूदन अपना धनुष लेकर मेरी रक्षा करें। सायङ्कालमें ब्रह्मा आदि त्रिमूर्तिधारी माधव, सूर्यास्तके बाद हृषीकेश, अर्धरात्रिके समय तथा उसके पूर्व अकेले भगवान् पद्मनाभ, रात्रिके पिछले प्रहरमें श्रीवत्सलाञ्छन हरि, उषाकालमें खड्गधारी भगवान् जनार्दन, सूर्योदयसे पूर्व

* बत्तीस प्रकारके सेवापराध माने गये हैं—१—सवारीपर चढ़कर अथवा पैरोंमें खड़ाऊँ पहनकर श्रीभगवान्‌के मन्दिरमें जाना। २—रथयात्रा, जन्माष्टमी आदि उत्सवोंका न करना या उनके दर्शन न करना। ३—श्रीमूर्तिके दर्शन करके प्रणाम न करना। ४—अशौच-अवस्थामें दर्शन करना। ५—एक हाथसे प्रणाम करना। ६—परिक्रमा करते समय भगवान्‌के सामने आकर कुछ न रुककर फिर परिक्रमा करना अथवा केवल सामने ही परिक्रमा करते रहना। ७—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने पैर पसारकर बैठना। ८—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दोनों घुटनोंको ऊँचा करके उनको हाथोंसे लपेटकर बैठ जाना। ९—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने सोना। १०—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने भोजन करना। ११—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने झूठ बोलना। १२—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने जोरसे बोलना। १३—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने आपसमें बातचीत करना। १४—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने चिल्लाना। १५—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने कलह करना। १६—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीको पीड़ा देना। १७—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीपर अनुग्रह करना। १८—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने किसीको निष्ठुर वचन बोलना। १९—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने कम्बलसे सारा शरीर ढक लेना। २०—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी निन्दा करना। २१—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरेकी स्तुति करना। २२—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने अश्लील शब्द बोलना। २३—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने अधोवायुका त्याग करना। २४—शक्ति रहते हुए भी गौण अर्थात् सामान्य उपचारोंसे भगवान्‌की सेवा पूजा करना। २५—श्रीभगवान्‌को निवेदित किये बिना किसी भी वस्तुका खाना-पीना। २६—जिस ऋतुमें जो फल हो, उसे सबसे पहले श्रीभगवान्‌को न चढ़ाना। २७—किसी शाक या फलादिके अगले भागको तोड़कर भगवान्‌के व्यञ्जनादिके लिये देना। २८—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहको पीठ देकर बैठना। २९—श्रीभगवान्‌के श्रीविग्रहके सामने दूसरे किसीको भी प्रणाम करना। ३०—गुरुदेवकी अभ्यर्थना, कुशल-प्रश्न और उनका स्तवन न करना। ३१—अपने मुखसे अपनी प्रशंसा करना और ३२—किसी भी देवताकी निन्दा करना।

भरनेवालोंसे किसीको वैराग्य नहीं हो सकता। देखो, बिना सच्चे वैराग्यके शान्ति नहीं होती और बिना शान्तिके स्नेहपाश नहीं कट सकता। नारद! मनुष्य विषयोंका अनुभव किये बिना उनकी कटुता नहीं जान सकता। इसलिये उनकी दुःखरूपताका अनुभव होनेपर स्वयं जैसा वैराग्य होता है, वैसा दूसरोंके बहकानेसे नहीं होता। देखो—हमलोग सद्गृहस्थ हैं, अपनी धर्ममर्यादाका पालन करते हैं। एक बार पहले भी तुमने हमारा असह्य अपकार किया था। तब हमने उसे सह लिया। परन्तु तुम तो हमारी वंशपरम्पराका उच्छेद करनेपर ही उतारू हो रहे हो। तुमने फिर हमारे साथ वही दुष्टताका व्यवहार किया। इसलिये मूढ! जाओ, लोक-लोकान्तरोंमें भटकते रहो। कहीं भी तुम्हारे लिये ठहरनेको ठौर नहीं होगी॥३६–४३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! संतशिरोमणि देवर्षि नारदने 'बहुत अच्छा' कहकर दक्षका शाप स्वीकार कर लिया। संसारमें बस, साधुता इसीका नाम है कि बदला लेनेकी शक्ति रहनेपर भी दूसरेका किया हुआ अपकार सह लिया जाय॥ ४४॥

छठा अध्याय

दक्षप्रजापतिकी साठ कन्याओंके वंशका विवरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! तदनन्तर ब्रह्माजीके बहुत अनुनय-विनय करनेपर दक्षप्रजापतिने अपनी पत्नी असिक्नीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। वे सभी अपने पिता दक्षसे बहुत प्रेम करती थीं। दक्षप्रजापतिने उनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, दो भूतको, दो अङ्गिराको, दो कृशाश्वको और शेष चार तार्क्ष्यनामधारी कश्यपको ही ब्याह दीं। परीक्षित्! तुम इन दक्षकन्याओं और इनकी सन्तानोंके नाम मुझसे सुनो। इन्हींकी वंशपरम्परा तीनों लोकोंमें फैली हुई है॥१–३॥

धर्मकी दस पत्नियाँ थीं—भानु, लम्बा, ककुभ्, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता और सङ्कल्पा। इनके पुत्रोंके नाम सुनो। राजन्! भानुका पुत्र देवऋषभ और देवऋषभका इन्द्रसेन था। लम्बाका पुत्र हुआ विद्योत और विद्योतके पुत्र मेघगण हुए। ककुभ्‌का पुत्र हुआ सङ्कट, सङ्कटका कीकट और कीकटके पुत्र हुए पृथ्वीके सम्पूर्ण दुर्गों (किलों) के अभिमानी देवता। जामिके पुत्रका नाम था स्वर्ग और स्वर्गका पुत्र हुआ नन्दी। विश्वाके विश्वेदेव हुए। उनके कोई सन्तान न हुई। साध्यासे साध्यगण हुए और उनका पुत्र हुआ अर्थसिद्धि। मरुत्वतीके दो पुत्र हुए—मरुत्वान् और जयन्त। जयन्त भगवान् वासुदेवके अंश हैं, जिन्हें लोग उपेन्द्र भी कहते हैं। मुहूर्तासे मुहूर्तके अभिमानी देवता उत्पन्न हुए। ये अपने-अपने मुहूर्तमें जीवोंको उनके कर्मानुसार फल देते हैं। सङ्कल्पाका पुत्र हुआ सङ्कल्प और सङ्कल्पका काम। वसुके पुत्र आठों वसु हुए। उनके नाम हैं—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु और विभावसु। द्रोणकी पत्नीका नाम है अभिमति। उससे हर्ष, शोक, भय आदिके अभिमानी देवता उत्पन्न हुए। प्राणकी पत्नी ऊर्जस्वतीके गर्भसे सह, आयु और पुरोजव नामके तीन पुत्र हुए। ध्रुवकी पत्नी धरणीने अनेक नगरोंके अभिमानी देवता उत्पन्न किये। अर्ककी पत्नी वासनाके गर्भसे तर्ष (तृष्णा) आदि पुत्र हुए। अग्नि नामक वसुकी पत्नी धाराके गर्भसे द्रविणक आदि बहुत-से पुत्र उत्पन्न हुए। कृत्तिकापुत्र स्कन्द भी अग्निसे ही उत्पन्न हुए। उनसे विशाख आदिका जन्म हुआ। दोषकी पत्नी शर्वरीके गर्भसे शिशुमारका जन्म हुआ। वह भगवान्‌की कला है। वसुकी पत्नी आङ्गिरसीसे शिल्पकलाके अधिपति विश्वकर्माजी हुए। विश्वकर्माके उनकी भार्या कृतीके गर्भसे चाक्षुष मनु हुए और उनके पुत्र विश्वेदेव एवं साध्यगण हुए। विभावसुकी पत्नी उषासे तीन पुत्र हुए—व्युष्ट, रोचिष् और आतप। उनमेंसे (दिवस) नामक पुत्र हुआ, उसीके कारण सब जीव अपने-आतपके पञ्चयाम अपने कार्योंमें लगे रहते हैं॥ ४–१६॥

भूतकी पत्नी दक्षनन्दिनी सरूपाने कोटि-कोटि रुद्रगण उत्पन्न किये। इनमें रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपि, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, बहुरूप और महान्—ये ग्यारह मुख्य हैं। भूतकी दूसरी पत्नी भूतासे भयङ्कर भूत और विनायकादिका जन्म हुआ। ये सब ग्यारहवें प्रधान रुद्र महान्‌के पार्षद हुए। अङ्गिरा प्रजापतिकी प्रथम पत्नी स्वधाने पितृगणको उत्पन्न किया और दूसरी पत्नी सतीने अथर्वाङ्गिरस नामक वेदको ही पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया। कृशाश्वकी पत्नी अर्चिसे धूम्रकेशका जन्म हुआ और धिषणासे चार पुत्र हुए—वेदशिरा, देवल, वयुन और मनु। तार्क्ष्यनामधारी कश्यपकी चार स्त्रियाँ थीं—विनता, कद्रू, पतङ्गी और

नवाँ अध्याय

विश्वरूपका वध, वृत्रासुरद्वारा देवताओंकी हार और भगवान्‌की प्रेरणासे देवताओंका दधीचि ऋषिके पास जाना ।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! हमने सुना है कि विश्वरूपके तीन सिर थे। वे एक मुँहसे सोमरस तथा दूसरेसे सुरा पीते थे और तीसरेसे अन्न खाते थे। उनके पिता त्वष्टा आदि बारह आदित्य देवता थे, इसलिये वे यज्ञके समय प्रत्यक्षरूपमें ऊँचे स्वरसे बोलकर बड़े विनयके साथ देवताओंको आहुति देते थे। परन्तु उनकी माता असुरकुलकी थी, इसलिये वे भीतरसे दैत्योंके पक्षपाती थे और स्नेहवश गुप्तरूपसे उन्हें भी यज्ञभाग दे दिया करते थे। देवराज इन्द्रने देखा कि इस प्रकार वे देवताओंका अपराध और धर्मकी ओटमें कपट कर रहे हैं। इससे इन्द्र



डर गये कि कहीं दैत्योंका बल बढ़ाकर ये हमारा नाश न कर दें। अतः उन्होंने क्रोधमें भरकर बड़ी फुर्तीसे उनके तीनों सिर काट लिये। विश्वरूपका सोमरस पीनेवाला सिर पपीहा, सुरापान करनेवाला गौरैया और अन्न खानेवाला तीतर हो गया। इन्द्र चाहते तो विश्वरूपके वधसे लगी हुई हत्याको दूर कर सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा करना उचित न समझा, हाथ जोड़कर उसे स्वीकार कर लिया तथा एक वर्षतक उससे छूटनेका कोई उपाय नहीं किया। एक वर्षके बाद सब लोगोंके सामने अपनी शुद्धि प्रकट करनेके लिये उन्होंने अपनी ब्रह्महत्याको चार हिस्सोंमें बाँटकर पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियोंको दे दिया। परीक्षित् ! पृथ्वीने यह वरदान लेकर कि जहाँ कहीं गड्ढा होगा, वह समयपर अपने आप भर जायगा, इन्द्रकी ब्रह्महत्याका चतुर्थांश स्वीकार कर लिया। वही ब्रह्महत्या पृथ्वीमें कहीं-कहीं ऊसरके रूपमें दिखायी पड़ती है। दूसरा चतुर्थांश वृक्षोंने लिया। उन्हें यह वर मिला कि उनका कोई हिस्सा कट जानेपर फिर जम जायगा। उनमें अब भी गोंदके रूपमें ब्रह्महत्या दिखायी पड़ती है। स्त्रियोंने यह वर पाकर कि वे सर्वदा पुरुषका सहवास कर सकें, ब्रह्महत्याका तीसरा चतुर्थांश स्वीकार किया। इसके पहले वे ऋतुकालमें ही पुरुषका सहवास करती थीं। उनकी ब्रह्महत्या प्रत्येक महीनेमें रजके रूपसे दिखायी पड़ती है। जलने यह वर पाकर कि खर्च करते रहनेपर भी निर्झर आदिके रूपमें तुम्हारी बढ़ती ही होती रहेगी, ब्रह्महत्याका चौथा चतुर्थांश स्वीकार किया। फेन, बुद्बुद आदिके रूपमें वही ब्रह्महत्या दिखायी पड़ती है। अतएव मनुष्य उसे हटाकर जल ग्रहण किया करते हैं ॥ १-१० ॥

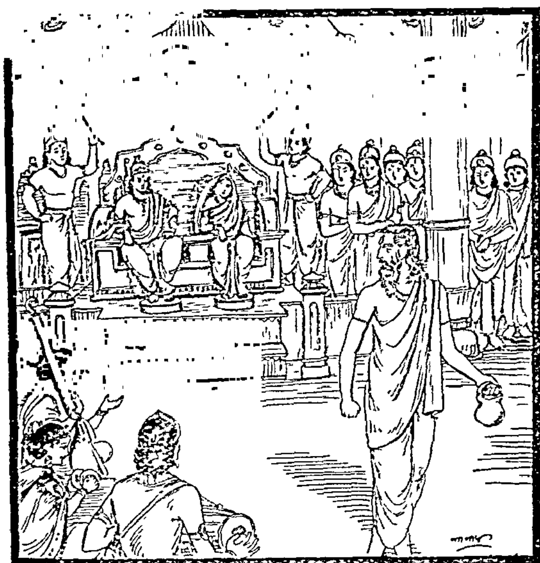
परीक्षित् ! विश्वरूपकी मृत्युके बाद उनके पिता त्वष्टा 'हे इन्द्रशत्रो ! तुम्हारी अभिवृद्धि हो और शीघ्र से शीघ्र तुम अपने शत्रुको मार डालो'—इस मन्त्रसे इन्द्रका शत्रु उत्पन्न करनेके लिये हवन करने लगे। यज्ञ समाप्त होनेपर अन्वाहार्य पचन नामक अग्नि (दक्षिणाग्नि) से एक बड़ा भयावना दैत्य प्रकट हुआ। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो लोकोंका नाश करनेके लिये प्रलयकालीन विकराल काल ही प्रकट हुआ हो। परीक्षित् ! वह प्रतिदिन अपने शरीरके सब ओर बाणके बराबर बढ़ जाया करता था। वह जले हुए पहाड़के समान काला और बड़े डील-डौलका था। उसके शरीरमेंसे सन्ध्याकालीन बादलोंके समान दीप्ति निकलती रहती थी। उसके सिरके बाल और दाढ़ी-मूँछ तपे हुए ताँबेके समान लाल रंगके तथा नेत्र दोपहरके सूर्यके समान डरावने थे। चमकते हुए तीन नोकोंवाले त्रिशूलको लेकर जब वह नाचने, चिल्लाने और कूदने लगता था, उस समय पृथ्वी काँप उठती थी, और ऐसा जान पड़ता था कि उस त्रिशूलपर उसने अन्तरिक्षको उठा रक्खा है। वह बार-बार जँभाई लेता था। इससे

सातवाँ अध्याय

बृहस्पतिजीके द्वारा देवताओंका त्याग और विश्वरूपका देवगुरुके रूपमें वरण

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! देवाचार्य बृहस्पतिजीने अपने प्रिय शिष्य देवताओंको किस कारण त्याग दिया था? देवताओंने अपने गुरुदेवका ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया था, आप कृपा करके मुझे बतलाइये ॥१॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—राजन्! इन्द्रको त्रिलोकीका ऐश्वर्य पाकर घमंड हो गया था। इस घमंडके कारण वे धर्ममर्यादाका, सदाचारका उल्लङ्घन करने लगे थे। एक दिनकी बात है, वे भरी सभामें अपनी पत्नी शचीके साथ ऊँचे सिंहासनपर बैठे हुए थे। उनचास मरुद्गण, आठ वसु, ग्यारह रुद्र, आदित्य, ऋभुगण, विश्वेदेवा, साध्यगण और दोनों अश्विनीकुमार उनकी सेवामें उपस्थित थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, ब्रह्मवादी मुनिगण, विद्याधर, अप्सराएँ, किन्नर, पक्षी और नाग उनकी सेवा और स्तुति कर रहे थे। सब ओर ललित स्वरसे देवराज इन्द्रकी कीर्तिका गायन हो रहा था। ऊपरकी ओर चन्द्रमण्डलके समान सुन्दर श्वेतछत्र शोभायमान था। चँवर, पंखे आदि महाराजोचित सामग्रियाँ यथास्थान सुसज्जित थीं। इस दिव्य समाजमें देवराज बड़े ही सुशोभित हो रहे थे। इसी समय देवगुरु बृहस्पतिजी वहाँ आये। परीक्षित्! बृहस्पतिजी देवराज इन्द्र और समस्त देवताओंके परम आचार्य हैं।



उन्हें सुर-असुर सभी नमस्कार करते हैं। इन्द्रने देख लिया कि वे सभामें आये हैं। परन्तु वे न तो खड़े हुए और न आसन आदि देकर गुरुका सत्कार ही किया। यहाँतक कि वे अपने आसनसे हिले-डुलेतक नहीं। त्रिकालदर्शी समर्थ बृहस्पतिजीने देखा कि यह ऐश्वर्यमदका दोष है! बस, वे झटपट वहाँसे निकलकर चुपचाप अपने घर चले आये ॥२–९॥

परीक्षित्! उसी समय देवराज इन्द्रको चेत हुआ। वे समझ गये कि मैंने अपने गुरुदेवकी अवहेलना की है। अब वे भरी सभामें अपने-आप अपनी निन्दा करने लगे—'हाय-हाय! बड़े खेदकी बात है कि भरी सभामें मैंने अपने गुरुदेवका तिरस्कार कर दिया। सचमुच मेरा यह कर्म अत्यन्त निन्दनीय है। मैं ऐश्वर्यके नशेमें चूर हो रहा हूँ। मैं बड़ा मन्दबुद्धि हूँ। भला, कौन विवेकी पुरुष इस स्वर्गकी राजलक्ष्मीको पानेकी इच्छा करेगा? देखो तो सही, आज इसीने मुझ देवराजको भी असुरोंके-से रजोगुणी भावसे भर दिया। मुझे पतनकी सीमापर ले जाकर पटक दिया। जो लोग यह कहते हैं कि सार्वभौम राजसिंहासनपर बैठा हुआ सम्राट् किसीके आनेपर राजसिंहासनसे न उठे, वे धर्मका वास्तविक स्वरूप नहीं जानते। ऐसा उपदेश करनेवाले कुमार्गकी ओर ले जानेवाले हैं। वे स्वयं घोर नरकमें गिरते हैं। उनकी बातपर जो लोग विश्वास करते हैं, वे पत्थरकी नावकी तरह डूब जाते हैं। मेरे गुरुदेव बृहस्पतिजी ज्ञानके अथाह समुद्र हैं। मैंने बड़ी शठता की। अब मैं उनके चरणोंमें अपना माथा टेककर उन्हें मनाऊँगा' ॥ १०–१५ ॥

परीक्षित्! देवराज इन्द्र इस प्रकार सोच ही रहे थे कि भगवान् बृहस्पतिजी अपने घरसे निकलकर योगबलसे अन्तर्धान हो गये। देवराज इन्द्रने अपने गुरुदेवको बहुत ढूँढ़ा-ढुँढ़वाया, परन्तु उनका कहीं पता न चला। तब वे गुरुके बिना अपनेको सुरक्षित न समझकर देवताओंके साथ अपनी बुद्धिके अनुसार स्वर्गकी रक्षाका उपाय सोचने लगे, परन्तु वे कुछ भी सोच न सके। उनका चित्त अशान्त ही बना रहा। परीक्षित्! देवगुरु बृहस्पति और देवराज इन्द्रकी अनबनका समाचार छिपा न रहा। अन्ततः दैत्योंको भी उसका पता लग ही

कल्याणस्वरूप और परम दयालु हैं। आप ही सारे जगत्‌के आधार एवं अद्वितीय हैं, केवल आप ही सारे जगत्‌के स्वामी हैं। आप सर्वशक्तिमान् एवं सौन्दर्य और मृदुलताकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मीके परम पति हैं। प्रभो! परमहंस परिव्राजक विरक्त महात्मा जब आत्मसंयमरूप परम समाधिसे भलीभाँति आपका चिन्तन करते हैं, तब उनके शुद्ध हृदयमें परमहंसोंके धर्म वास्तविक भगवद्भजनका उदय होता है। इससे उनके हृदयके अज्ञानरूप किवाड़ खुल जाते हैं और उनके आत्मलोकमें आप आत्मानन्दके रूपमें बिना किसी आवरणके प्रकट हो जाते हैं और वे आपका अनुभव करके निहाल हो जाते हैं। हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं। भगवन्! आपकी लीलाका रहस्य जानना बड़ा ही कठिन है। क्योंकि आप बिना किसी आश्रय और प्राकृत शरीरके, हमलोगोंके सहयोगकी अपेक्षा न करके, निर्गुण और निर्विकार होनेपर भी स्वयं ही इस सगुण जगत्‌की सृष्टि, रक्षा और संहार करते हैं। भगवन्! हमलोग यह बात भी ठीक-ठीक नहीं समझ पाते कि सृष्टिकर्ममें आप किसी व्यक्तिके समान गुणोंके कार्यरूप इस जगत्‌में जीवरूपसे प्रकट हो जाते हैं और कर्मोंके अधीन होकर अपने किये अच्छे-बुरे कर्मोंका फल भोगते हैं, अथवा आप आत्माराम, शान्तस्वभाव एवं सबसे उदासीन—साक्षीमात्र रहते हैं तथा सबको समान देखते हैं। आपके स्वरूपके सम्बन्धमें इन दोनोंमेंसे कौन-सी बात ठीक है? हम तो ऐसा समझते हैं कि यदि आपमें ये दोनों बातें रहें तो भी कोई विरोध नहीं है। क्योंकि आप स्वयं भगवान् हैं। आपके गुण अगणित हैं, महिमा असीम है और आप सर्वशक्तिमान् हैं। आधुनिक लोग अनेकों प्रकारके विकल्प, वितर्क, विचार, झूठे प्रमाण और कुतर्कपूर्ण शास्त्रोंका अध्ययन करके अपने हृदयको दूषित कर लेते हैं और यही कारण है कि वे दुराग्रही हो जाते हैं। आपमें उन दुराग्रहियोंके वाद विवादके लिये अवसर ही नहीं है, क्योंकि वे आपका छूतक नहीं सकते। आपका वास्तविक स्वरूप समस्त मायामय पदार्थोंसे परे, केवल है। जब आप उसीमें अपनी मायाको छिपा लेते हैं, तब ऐसी कौन सी बात है जो आपमें नहीं हो सकती? इसलिये आप साधारण पुरुषोंके समान कर्ता भोक्ता भी हो सकते हैं और महापुरुषोंके समान उदासीन भी। इसका कारण यह है कि न तो आपमें कर्तृत्व भोक्तृत्व है और न तो उदासीनता ही। आप तो दोनोंसे विलक्षण, अनिर्वचनीय है। जैसे एक ही रस्सीका टुकड़ा भ्रान्तपुरुषोंको सर्प, माला, धारा आदिके रूपमें प्रतीत होता है किन्तु जानकारको रस्सीके रूपमें ही प्रतीत होता है—वैसे ही आप भी भ्रान्तबुद्धि वालोंको कर्ता, भोक्ता आदि अनेक रूपोंमें दीखते हैं और ज्ञानीको शुद्ध सच्चिदानन्दके रूपमें। आप सभीकी बुद्धिका अनुसरण करते हैं। विचारपूर्वक देखनेसे मालूम होता है कि आप ही समस्त वस्तुओंमें वस्तुत्वके रूपसे विराजमान हैं, सबके स्वामी हैं और सम्पूर्ण जगत्‌के कारण ब्रह्मा, प्रकृति आदिके भी कारण हैं। आप सबके अन्तर्यामी अन्तरात्मा हैं, इसलिये जगत्‌में जितने भी गुण-दोष प्रतीत हो रहे हैं, उन सबकी प्रतीतियाँ अपने अधिष्ठानस्वरूप आपका ही सङ्केत करती हैं और श्रुतियोंने समस्त पदार्थोंका निषेध करके अन्तमें निषेधकी अवधिके रूपमें केवल आपको ही शेष रक्खा है। मधुसूदन! आपकी अमृतमयी महिमा रसका अनन्त समुद्र है। जो पुरुष उसकी नन्ही-सी बूँदका भी, अधिक नहीं—एक बार भी स्वाद चख लेते हैं, उनके हृदयमें नित्य निरन्तर परमानन्दकी धारा बहने लगती है। उसके कारण वे अबतक जगत्‌में विषय भोगोंके जितने भी लेशमात्र, प्रतीतिमात्र सुखका अनुभव कर चुके हैं या परलोक आदिके विषयमें सुन चुके हैं, वह सब-का सब भूल जाते हैं और आपके अनन्य प्रेमी-परम भक्त हो जाते हैं। आप समस्त ऐश्वर्य और माधुर्यके निधि हैं। समस्त प्राणियोंके परम प्रियतम, हितैषी, सुहृद् और सर्वात्मा हैं। आपके प्रेमी भक्त नित्य निरन्तर अपने सम्पूर्ण हृदयसे आपके चिन्तनका ही सुख लूटते रहते हैं। सचमुच वे ही अपने स्वार्थ और परमार्थमें निपुण हैं। मधुसूदन! आपके वे प्यारे और सुहृद् भक्तजन भला, आपके चरणकमलोंका सेवन कैसे त्याग सकते हैं? इनकी सेवा करनेसे तो जन्म मृत्युरूप संसारके चक्करसे सदाके लिये छुटकारा मिल जाता है ॥३२-३९॥

प्रभो! आप त्रिलोकीके आत्मा और आश्रय हैं। आपने अपने तीन पगोंसे सारे जगत्‌को नाप लिया था और आप ही तीनों लोकोंके सञ्चालक हैं। आपकी महिमा त्रिलोकीका मन हरण करनेवाली है। इसमें सन्देह नहीं कि दैत्य, दानव आदि असुर भी आपकी ही विभूतियाँ हैं। तथापि यह उनकी उन्नतिका समय नहीं है—ऐसा सोचकर आप अपनी योग मायासे देवता, मनुष्य, पशु, नृसिंह आदि मिश्रित और मत्स्य आदि जलचरोंके रूपमें अवतार ग्रहण करते और उनके अपराधके अनुसार उन्हें दण्ड देते हैं। दण्डधारी प्रभो! यदि जँचे तो आप उन्हीं असुरोंके समान इस वृत्रासुरका भी नाश कर डालिये। भगवन्! आप हमारे पिता, पितामह—

आचार्य बनानेमें कोई दोष नहीं है। और सच पूछो, तो वेदज्ञानको छोड़कर केवल अवस्था बड़प्पनका कारण भी नहीं है ॥ २७–३३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब देवताओंने इस प्रकार विश्वरूपसे पुरोहिती करनेकी प्रार्थना की, तब परमतपस्वी विश्वरूपने प्रसन्न होकर उनसे अत्यन्त प्रिय और मधुर शब्दोंमें कहा ॥ ३४ ॥

विश्वरूपने कहा—पुरोहितीका काम ब्रह्मतेजको क्षीण करनेवाला है। इसलिये धर्मशील महात्माओंने उसकी निन्दा की है। किन्तु आप तो मेरे स्वामी हैं और लोकेश्वर होकर भी मुझसे उसके लिये प्रार्थना कर रहे हैं। ऐसी हालतमें मेरे-जैसा व्यक्ति भला, आप लोगोंको कोरा जवाब कैसे दे सकता है? मैं तो आप लोगोंका सेवक हूँ। आपकी आज्ञाओंका पालन करना ही मेरा स्वार्थ है। देवगण! हम अकिञ्चन हैं। अपने पास कुछ भी संग्रह-परिग्रह नहीं रखते। हमारे पास पूँजीके नामपर केवल इतना ही है कि खेती कट जानेपर अथवा अनाजकी हाट उठ जानेपर उसमेंसे गिरे हुए कुछ दाने चुन लाते हैं और उसीसे अपने देवकार्य तथा पितृकार्य सम्पन्न कर लेते हैं। लोकपालो! इस प्रकार जब मेरी जीविका चल ही रही है, तब मैं पुरोहितीकी निन्दनीय वृत्ति क्यों करूँ? पुरोहिती मिलनेसे तो केवल वे ही लोग प्रसन्न होते हैं, जिनकी बुद्धि बिगड़ गयी है। मैं जानता हूँ कि जो काम आपलोग मुझसे कराना चाहते हैं, वह निन्दनीय है—मेरे करने योग्य नहीं है। फिर भी मैं आपके कामसे मुँह नहीं मोड़ सकता। क्योंकि आप लोगोंकी माँग ही कितनी है। इसलिये आपलोग मुझसे जो कुछ भी करवाना चाहते हैं, उसे मैं तन-मन-धनसे पूरा करूँगा॥३५–३७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! विश्वरूप बड़े तपस्वी थे। देवताओंसे ऐसी प्रतिज्ञा करके उनके वरण करनेपर वे बड़ी लगनके साथ उनकी पुरोहिती करने लगे। यद्यपि शुक्राचार्यने अपने नीतिबलसे असुरोंकी सम्पत्ति सुरक्षित कर दी थी, फिर भी समर्थ विश्वरूपने वैष्णवी विद्याके प्रभावसे उनसे वह सम्पत्ति छीनकर देवराज इन्द्रको दिला दी। राजन्! जिस विद्यासे सुरक्षित होकर इन्द्रने असुरोंकी सेनापर विजय प्राप्त की थी, उसका उदारबुद्धि विश्वरूपने ही उन्हें उपदेश किया था ॥ ३८–४० ॥

आठवाँ अध्याय

नारायणकवचका उपदेश

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! देवराज इन्द्रने जिससे सुरक्षित होकर शत्रुओंकी चतुरङ्गिणी सेनाको खेल-खेलमें—अनायास ही जीतकर त्रिलोकीकी राजलक्ष्मीका उपभोग किया, आप उस नारायणकवचको मुझे सुनाइये और यह भी बतलाइये कि उन्होंने उससे सुरक्षित होकर रणभूमिमें किस प्रकार आक्रमणकारी शत्रुओंपर विजय प्राप्त की ॥ १-२ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! जब देवताओंने विश्वरूपको पुरोहित बना लिया, तब देवराज इन्द्रके प्रश्न करनेपर विश्वरूपने उन्हें नारायणकवचका उपदेश किया। तुम एकाग्रचित्तसे उसका श्रवण करो ॥ ३ ॥

विश्वरूपने कहा—देवराज इन्द्र! भयका अवसर उपस्थित होनेपर नारायणकवच धारण करके अपने शरीरकी रक्षा कर लेनी चाहिये। उसकी विधि यह है कि पहले हाथ-पैर धोकर आचमन करे, फिर हाथमें कुशकी पवित्री धारण करके उत्तर मुँह बैठ जाय। इसके बाद कवच-धारणपर्यन्त और कुछ न बोलनेका निश्चय करके पवित्रतासे 'ॐ नमो नारायणाय' और 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इन मन्त्रोंके द्वारा हृदयादि-अङ्गन्यास तथा अङ्गुष्ठादि-करन्यास करे। पहले 'ॐ नमो नारायणाय' इस अष्टाक्षर मन्त्रके ॐ आदि आठ अक्षरोंका क्रमशः पैरों, घुटनों, जाँघों, पेट, हृदय, वक्षःस्थल, मुख और सिरमें न्यास करे। अथवा पूर्वोक्त मन्त्रके मकारसे लेकर ॐकारपर्यन्त आठ अक्षरोंका सिरसे आरम्भ करके उन्हीं आठ अङ्गोंमें विपरीत क्रमसे न्यास करे। तदनन्तर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रके ॐ आदि बारह अक्षरोंका दायीं तर्जनीसे बायीं तर्जनीतक दोनों हाथकी आठ अँगुलियों और दोनों अँगूठोंकी दो-दो गाँठोंमें न्यास करे। फिर 'ॐ विष्णवे नमः' इस मन्त्रके पहले अक्षर 'ॐ' का हृदयमें, 'वि' का ब्रह्मरन्ध्रमें, 'ष्' का भौंहोंके बीचमें, 'ण' का चोटीमें, 'वे' का दोनों नेत्रोंमें और 'न' का शरीरकी सब गाँठोंमें न्यास करे। तदनन्तर 'ॐ मः अस्त्राय फट्' ऐसा कहकर दिग्बन्ध करे। इस प्रकार न्यास करनेसे इस विधिको जाननेवाला पुरुष मन्त्रस्वरूप हो जाता

दसवाँ अध्याय

देवताओंद्वारा दधीचि ऋषिकी अस्थियोंसे वज्र निर्माण और वृत्रासुरकी सेनापर आक्रमण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! विश्वके जीवन दाता भगवान् श्रीहरि देवराज इन्द्रको इस प्रकार आदेश देकर देवताओंके सामने वहीं-के-वहीं अन्तर्धान हो गये। अब देवताओंने उदारशिरोमणि अथर्ववेदी दधीचि ऋषिके पास आकर भगवान्‌के आज्ञानुसार याचना की। देवताओंकी याचना सुनकर दधीचि ऋषिको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने तनिक हँसकर देवताओंसे धर्मकी बातें सुननेके लिये कहा—'देवताओ ! आपलोगोंको सम्भवत यह बात नहीं मालूम है कि मरते समय प्राणियोंको बड़ा कष्ट होता है। उन्हें जबतक चेत रहता है बड़ी असह्य पीड़ा सहनी पड़ती है और अन्तमें वे मूर्छित हो जाते हैं। जो जीव जगत्‌में जीवित रहना चाहते हैं उनके लिये शरीर बहुत ही अनमोल, प्रियतम एव अभीष्ट वस्तु है। ऐसी स्थितिमें मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि स्वय विष्णुभगवान् भी यदि जीवसे उसका शरीर माँगें तो वह उसे देनेका साहस नहीं करेगा॥ १-४॥



देवताओंने कहा—ब्रह्मन् ! आपके कर्मोंकी तो बड़े बड़े यशस्वी महानुभाव भी प्रशसा करते हैं। आप-जैसे उदार और प्राणियोंपर दया करनेवाले महापुरुष प्राणियोंकी भलाईके लिये कौन-सी वस्तु निछावर नहीं कर सकते ! भगवन् ! इसमें सन्देह नहीं कि माँगनेवाले लोग स्वार्थी होते हैं। उनमें देनेवालोंकी कठिनाईका विचार करनेकी बुद्धि नहीं होती। यदि उनमें इतनी समझ होती, तो वे माँगते ही क्यों। इसी प्रकार दाता भी माँगनेवालेकी विपत्ति नहीं जानता। यदि वह उसकी स्थितिका अनुभव कर ले, तो उसके मुँहसे कदापि नाहीं न निकले। इसलिये आप हमारी विपत्ति समझकर हमारी याचना पूर्ण कीजिये॥ ५ ६॥

दधीचि ऋषिने कहा—देवताओ ! मैंने आपलोगोंके मुँहसे धर्मकी बात सुननेके लिये ही आपकी माँगके प्रति उपेक्षा दिखलायी थी। यह लीजिये, मैं अपने प्यारे शरीरको आप लोगोंके लिये अभी छोड़े देता हूँ। जब एक दिन यह स्वय ही मुझे छोड़नेवाला है, तब इसको पालकर क्या करना है ? देवशिरोमणियो ! जो मनुष्य इस विनाशी शरीरसे दुखी प्राणियोंपर दया करके मुख्यत धर्म और गौणत यशका सम्पादन नहीं करता, वह जड पेड़-पौधोंसे भी गया बीता है। बड़े-बड़े महात्माओंने इस अविनाशी धर्मकी उपासना की है। उसका स्वरूप बस, इतना ही है कि मनुष्य किसी भी प्राणीके दु खमें दु खका अनुभव करे और सुखमें सुखका। जगत्‌के धन, जन और शरीर आदि पदार्थ क्षणभङ्गुर हैं। ये अपने किसी काम नहीं आते, अन्तमें दूसरोंके ही काम आयेंगे। ओह ! यह कैसी कृपणता है, कितने दु खकी बात है कि यह मरणधर्मा मनुष्य इनके द्वारा दूसरोंका उपकार नहीं कर लेता॥ ७-१०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अथर्ववेदी महर्षि दधीचिने ऐसा निश्चय कर अपनेको परब्रह्म परमात्मा श्रीभगवान्‌में लीन करके अपना स्थूलशरीर त्याग दिया। दधीचिके इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि सयत थे, दृष्टि तत्त्वमयी थी, उनके सारे बन्धन कट चुके थे। अत जब वे भगवान्‌से अत्यन्त युक्त होकर स्थित हो गये, तो उन्हें इस बातका पता ही न चला कि मेरा शरीर है या नहीं॥ ११ १२॥

परीक्षित् ! भगवान्‌की शक्ति पाकर इन्द्रका बल-पौरुष उन्नतिकी सीमापर पहुँच गया। अब विश्वकर्माजीने दधीचि ऋषिकी हड्डियोंसे वज्र बनाकर उन्हें दिया और वे उसे हाथमें लेकर ऐरावत हाथीपर सवार हुए। उनके साथ-साथ सभी देवतालोग तैयार हो गये। बड़े-बड़े ऋषि मुनि देवराज इन्द्रकी स्तुति करने लगे। अब उन्होंने त्रिलोकीको हर्षित करते हुए वृत्रासुरका वध करनेके लिये उसपर पूरी शक्ति लगाकर

श्रीदामोदर और सम्पूर्ण सन्ध्याओंमें कालमूर्ति भगवान् विश्वेश्वर मेरी रक्षा करें ॥ १२–२२ ॥

'सुदर्शन ! आपका आकार चक्र (रथके पहिये) की तरह है । आपके किनारेका भाग प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त तीव्र है । आप भगवान्‌की प्रेरणासे सब ओर घूमते रहते हैं । जैसे आग वायुकी सहायतासे सूखे घास-फूसको जला डालती है, वैसे ही आप हमारी शत्रुसेनाको शीघ्र-से-शीघ्र जला दीजिये । कौमोदकी गदा ! आपसे छूटनेवाली चिनगारियोंका स्पर्श वज्रके समान असह्य है । आप भगवान् अजितकी प्रिया हैं और मैं उनका सेवक हूँ । इसलिये आप कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत और ग्रहोंको अभी कुचल डालिये तथा मेरे शत्रुओंको चूर-चूर कर दीजिये । शङ्खश्रेष्ठ ! आप भगवान् श्रीकृष्णके फूँकनेसे भयङ्कर शब्द करके मेरे शत्रुओंका दिल दहला दीजिये एवं यातुधान, प्रमथ, प्रेत, मातृका, पिशाच तथा ब्रह्मराक्षस आदि भयावने प्राणियोंको यहाँसे झटपट भगा दीजिये । भगवान्‌की प्यारी तलवार ! आपकी धार बहुत तीखी है । आप भगवान्‌की प्रेरणासे मेरे शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर दीजिये । भगवान्‌की प्यारी ढाल ! आपमें सैकड़ों चन्द्राकार मण्डल हैं । आप पापदृष्टि पापात्मा शत्रुओंकी आँखें बंद कर दीजिये और उन्हें सदाके लिये अंधा बना दीजिये ॥ २३–२६ ॥

'सूर्य आदि ग्रह, धूमकेतु (पुच्छल तारे) आदि केतु, दुष्ट मनुष्य, सर्पादि रेंगनेवाले जन्तु, दाढ़ोंवाले हिंसक पशु, भूत-प्रेत आदि तथा पापी प्राणियोंसे हमें जो-जो भय हों और जो-जो हमारे मङ्गलके विरोधी हों—वे सभी भगवान्‌के नाम, रूप तथा आयुधोंका कीर्तन करनेसे तत्काल नष्ट हो जायँ । बृहद्, रथन्तर आदि सामवेदीय स्तोत्रोंसे जिनकी स्तुति की जाती है, वे वेदमूर्ति भगवान् गरुड़ और विष्वक्सेनजी अपने नामोच्चारणके प्रभावसे हमें सब प्रकारकी विपत्तियोंसे बचायें । भगवान् श्रीहरिके नाम, रूप, वाहन, आयुध और श्रेष्ठ पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंको सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचावें ॥ २७–३० ॥

'जितना भी कार्य अथवा कारणरूप जगत् है, वह वास्तवमें भगवान् ही हैं—इस सत्यके प्रभावसे हमारे सारे विघ्न नष्ट हो जायँ । जो लोग ब्रह्म और आत्माकी एकताका अनुभव कर चुके हैं, उनकी दृष्टिमें भगवान्‌का स्वरूप समस्त विकल्पों—भेदोंसे रहित है; फिर भी वे अपनी माया-शक्तिके द्वारा भूषण, आयुध और रूप नामक शक्तियोंको धारण करते हैं । यह बात निश्चितरूपसे सत्य है । इस कारण सर्वज्ञ, सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि सदा-सर्वत्र सब स्वरूपोंसे हमारी रक्षा करें । जो अपने भयङ्कर अट्टहाससे सब लोगोंके भयको भगा देते हैं और अपने तेजसे सबका तेज ग्रस लेते हैं वे भगवान् नृसिंह दिशा-विदिशामें, नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर—सब ओर हमारी रक्षा करें' ॥३१–३४॥

देवराज इन्द्र ! मैंने तुम्हें यह नारायणकवच सुना दिया । इस कवचको तुम धारण कर लो । बस, फिर तुम अनायास ही सब दैत्य-यूथपतियोंको जीत लोगे । इस नारायणकवचको धारण करनेवाला पुरुष जिसको भी अपने नेत्रोंसे देख लेता अथवा पैरसे छू देता है, वह तत्काल समस्त भयोंसे मुक्त हो जाता है । जो इस वैष्णवी विद्याको धारण कर लेता है उसे राजा, डाकू, प्रेत-पिशाचादि और बाघ आदि हिंसक जीवोंसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं होता । देवराज ! प्राचीन कालकी बात है, एक कौशिकगोत्री ब्राह्मणने इस विद्याको धारण करके योगधारणासे अपना शरीर मरुभूमिमें त्याग दिया । जहाँ उस ब्राह्मणका शरीर पड़ा था, उसके ऊपरसे एक दिन गन्धर्वराज चित्ररथ अपनी स्त्रियोंके साथ विमानपर बैठकर निकले । वहाँ आते ही वे नीचेकी ओर सिर किये विमानसहित गिर पड़े । इस घटनासे उनके आश्चर्यकी सीमा न रही । जब उन्हें वालखिल्य मुनियोंने बतलाया कि यह नारायणकवच धारण करनेका प्रभाव है, तो उन्होंने उस ब्राह्मणदेवताकी हड्डियोंको ले जाकर पूर्ववाहिनी सरस्वती नदीमें प्रवाहित कर दिया और फिर स्नान करके वे अपने लोकको गये ॥ ३५–४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जो पुरुष इस नारायणकवचको समयपर सुनता है और जो आदरपूर्वक इसे धारण करता है, उसके सामने सभी प्राणी आदरसे झुक जाते हैं और वह सब प्रकारके भयोंसे मुक्त हो जाता है । परीक्षित् ! शतक्रतु इन्द्रने आचार्य विश्वरूपजीसे यह वैष्णवी विद्या प्राप्त करके रणभूमिमें असुरोंको जीत लिया और वे त्रैलोक्यलक्ष्मीका उपभोग करने लगे ॥ ४१-४२ ॥

करनेमें क्या लाभ है ? ये लोग तो अपने माँ-बापके मल मूत्र हैं। परन्तु तुम्हारे जैसे अपनेको शूरवीर माननेवाले पुरुषोंके लिये भी तो डरपोकोंको मारना कोई प्रशंसाकी बात नहीं है और न इससे तुम्हें स्वर्ग ही मिल सकता है। यदि तुम्हारे मनमें युद्ध करनेका शौक और साहस है तथा अब जीवित रहकर विषय सुख भोगनेकी लालसा नहीं है, तो क्षणभर मेरे सामने डट जाओ और युद्धका मजा चख लो ॥ १–५ ॥

परीक्षित्! वृत्रासुर बड़ा बली था। वह अपने डीलडौलसे ही शत्रु देवताओंको भयभीत करने लगा। उसने क्रोधमें भरकर इतने जोरसे सिंहनाद किया कि बहुत से लोग तो उसे सुनकर ही अचेत हो गये। वृत्रासुरकी भयानक गर्जनासे सब-के-सब देवता मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, मानो उनपर बिजली गिर गयी हो। अब जैसे मदोन्मत्त गजराज नरकटका वन रौंद डालता है, वैसे ही रणबाँकुरा वृत्रासुर हाथमें त्रिशूल लेकर भयसे नेत्र बंद किये पड़ी हुई देवसेनाको पैरोंसे कुचलने लगा। उसके वेगसे धरती डगमगाने लगी। वज्रपाणि देवराज इन्द्र उसकी यह करतूत सह न सके। जब वह उनकी ओर झपटा, तब उन्होंने और भी चिढ़कर अपने शत्रुपर एक बहुत बड़ी गदा चलायी। अभी वह असह्य गदा वृत्रासुरके पास पहुँची भी न थी कि उसने खेल ही-खेलमें बायें हाथसे उसे पकड़ लिया। परम पराक्रमी वृत्रासुरने क्रोधसे आग-बबूला होकर उसी गदासे इन्द्रके वाहन ऐरावतके सिरपर बड़े जोरसे गरजते हुए प्रहार किया। उसके इस कार्यकी सभी लोग बड़ी प्रशंसा करने लगे। वृत्रासुरकी गदाके आघातसे ऐरावत हाथी वज्राहत पर्वतके समान तिलमिला उठा। सिर फट जानेसे वह अत्यन्त व्याकुल हो गया और खून उगलता हुआ इन्द्रको लिये हुए ही अट्ठाईस हाथ पीछे हट गया। देवराज इन्द्र अपने वाहन ऐरावतके मूर्छित हो जानेसे स्वयं भी विषादग्रस्त हो गये। यह देखकर युद्धधर्मके मर्मज्ञ वृत्रासुरने उनके ऊपर फिरसे गदा नहीं चलायी। तबतक इन्द्रने अपने अमृतस्रावी हाथके स्पर्शसे घायल ऐरावतकी व्यथा मिटा दी और वे फिर रणभूमिमें आ डटे। परीक्षित्! जब वृत्रासुरने देखा कि मेरे भाई विश्वरूपका वध करनेवाला शत्रु इन्द्र युद्धके लिये हाथमें वज्र लेकर फिर सामने आ गया है, तो उनके उस क्रूर पापकर्मका स्मरण हो आनेसे उसका शोक और मोह हरा हो गया तथा वह हँसता हुआ उनसे कहने लगा ॥ ६–१३ ॥

वृत्रासुरने कहा—आज मेरे लिये बड़े सौभाग्यका दिन है कि तुम्हारे-जैसा शत्रु—जिसने विश्वरूपके रूपमें ब्राह्मण, अपने गुरु एवं मेरे भाईकी हत्या की है—मेरे सामने खड़ा है। अरे दुष्ट! अब शीघ्र-से शीघ्र मैं तेरे पत्थरके समान कठोर हृदयको अपने शूलसे विदीर्ण करके भाईसे उऋण होऊँगा। अहा! यह मेरे लिये कैसे आनन्दकी बात होगी! इन्द्र! तूने मेरे आत्मवेत्ता और निष्पाप बड़े भाइके, जो ब्राह्मण होनेके साथ ही यज्ञमे दीक्षित और तुम्हारा गुरु था, विश्वास दिलाकर तलवारसे तीनों सिर उतार लिये—ठीक वैसे ही जैसे स्वर्गकामी निर्दय मनुष्य यज्ञमें पशुका सिर काट डालता है। न तो तेरे दिलमें दया है और न लज्जा। लक्ष्मी और कीर्ति भी तुझे छोड़ चुकी हैं। तूने ऐसे ऐसे नीच कर्म किये हैं, जिनकी निन्दा मनुष्योंकी तो बात ही क्या—राक्षसतक करते हैं। आज मेरे त्रिशूलसे तेरा शरीर टूक-टूक हो जायगा। बड़े कष्टसे तेरी मृत्यु होगी। तेरे-जैसे पापीको आग भी नहीं जलायेगी, तुझे तो गीध नोंच नोंचकर खायेंगे। ये अज्ञानी देवता तेरे-जैसे नीच और क्रूरके अनुयायी बनकर मुझपर शस्त्रोंसे प्रहार कर रहे हैं। मैं अपने तीखे त्रिशूलसे उनकी गरदन काट डालूँगा और उनके द्वारा गणोंके सहित भैरवादि भूतनाथोंको बलि चढाऊँगा। वीर इन्द्र! यह भी सम्भव है कि तू मेरी सेनाको छिन्न भिन्न करके अपने वज्रसे मेरा सिर काट ले। तब तो मैं अपने शरीरकी बलि पशु पक्षियोंको समर्पित करके, कर्म बन्धनसे मुक्त हो महापुरुषोंकी चरण-रजकी शरण ग्रहण करूँगा—जिस लोकमें महापुरुष जाते हैं वहाँ पहुँच जाऊँगा। देवराज! मैं तेरे सामने खड़ा हूँ, तेरा शत्रु हूँ, अब तू मुझपर अपना अमोघ वज्र क्यों नहीं छोड़ता? तू यह सन्देह न कर कि जैसे तेरी गदा निष्फल हो गयी, कृपण पुरुषसे की हुई याचनाके समान यह वज्र भी वैसे ही निष्फल हो जायगा। इन्द्र! तेरा यह वज्र श्रीहरिके तेज और दधीचि ऋषिकी तपस्यासे शक्तिमान् हो रहा है। विष्णुभगवान्ने मुझे मारनेके लिये तुझे आज्ञा भी दी है। इसलिये अब तू उसी वज्रसे मुझे मार डाल। क्योंकि जिस पक्षमें विष्णुभगवान् हैं उधर ही विजय, लक्ष्मी और सारे गुण निवास करते है। देवराज! भगवान् सङ्कर्षणके आज्ञानुसार मैं अपने मनको उनके चरणकमलोंमें लीन कर दूँगा। तेरे वज्रका वेग मुझे नहीं, मेरे विषयभोग रूप फंदेको काट डालेगा और मैं शरीर त्यागकर मुनिजनोचित गति प्राप्त करूँगा। जो पुरुष भगवान्से अनन्य प्रेम करते हैं—उनके निजजन हैं—उन्हें वे स्वर्ग, पृथ्वी अथवा रसातलकी सम्पत्तियाँ नहीं देते। क्योंकि उनसे परमानन्दकी उपलब्धि

श्रीदामोदर और सम्पूर्ण सन्ध्याओंमें कालमूर्ति भगवान् विश्वेश्वर मेरी रक्षा करें ॥ १२–२२ ॥

'सुदर्शन ! आपका आकार चक्र (रथके पहिये) की तरह है। आपके किनारेका भाग प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त तीव्र है। आप भगवान्‌की प्रेरणासे सब ओर घूमते रहते हैं। जैसे आग वायुकी सहायतासे सूखे घास-फूसको जला डालती है, वैसे ही आप हमारी शत्रुसेनाको शीघ्र-से-शीघ्र जला दीजिये । कौमोदकी गदा ! आपसे छूटनेवाली चिनगारियोंका स्पर्श वज्रके समान असह्य है। आप भगवान् अजितकी प्रिया हैं और मैं उनका सेवक हूँ। इसलिये आप कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत और ग्रहोंको अभी कुचल डालिये तथा मेरे शत्रुओंको चूर-चूर कर दीजिये। शङ्खश्रेष्ठ ! आप भगवान् श्रीकृष्णके फूँकनेसे भयङ्कर शब्द करके मेरे शत्रुओंका दिल दहला दीजिये एवं यातुधान, प्रमथ, प्रेत, मातृका, पिशाच तथा ब्रह्मराक्षस आदि भयावने प्राणियोंको यहाँसे झटपट भगा दीजिये। भगवान्‌की प्यारी तलवार ! आपकी धार बहुत तीखी है। आप भगवान्‌की प्रेरणासे मेरे शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर दीजिये। भगवान्‌की प्यारी ढाल ! आपमें सैकड़ों चन्द्राकार मण्डल हैं। आप पापदृष्टि पापात्मा शत्रुओंकी आँखें बंद कर दीजिये और उन्हें सदाके लिये अंधा बना दीजिये ॥ २३–२६ ॥

'सूर्य आदि ग्रह, धूमकेतु (पुच्छल तारे) आदि केतु, दुष्ट मनुष्य, सर्पादि रेंगनेवाले जन्तु, दाढ़ोंवाले हिंसक पशु, भूत-प्रेत आदि तथा पापी प्राणियोंसे हमें जो-जो भय हों और जो-जो हमारे मङ्गलके विरोधी हों—वे सभी भगवान्‌के नाम, रूप तथा आयुधोंका कीर्तन करनेसे तत्काल नष्ट हो जायँ। बृहद्, रथन्तर आदि सामवेदीय स्तोत्रोंसे जिनकी स्तुति की जाती है, वे वेदमूर्ति भगवान् गरुड़ और विष्वक्सेनजी अपने नामोच्चारणके प्रभावसे हमें सब प्रकारकी विपत्तियोंसे बचायें। भगवान् श्रीहरिके नाम, रूप, वाहन, आयुध और श्रेष्ठ पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंको सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचावें ॥ २७–३० ॥

'जितना भी कार्य अथवा कारणरूप जगत् है, वह वास्तवमें भगवान् ही हैं—इस सत्यके प्रभावसे हमारे सारे विघ्न नष्ट हो जायँ। जो लोग ब्रह्म और आत्माकी एकताका अनुभव कर चुके हैं, उनकी दृष्टिमें भगवान्‌का स्वरूप समस्त विकल्पों—भेदोंसे रहित है; फिर भी वे अपनी माया-शक्तिके द्वारा भूषण, आयुध और रूप नामक शक्तियोंको धारण करते हैं। यह बात निश्चितरूपसे सत्य है। इस कारण सर्वज्ञ, सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि सदा-सर्वत्र सब स्वरूपोंसे हमारी रक्षा करें। जो अपने भयङ्कर अट्टहाससे सब लोगोंके भयको भगा देते हैं और अपने तेजसे सबका तेज ग्रस लेते हैं वे भगवान् नृसिंह दिशा-विदिशामें, नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर—सब ओर हमारी रक्षा करें' ॥३१–३४॥

देवराज इन्द्र ! मैंने तुम्हें यह नारायणकवच सुना दिया। इस कवचको तुम धारण कर लो। बस, फिर तुम अनायास ही सब दैत्य-यूथपतियोंको जीत लोगे। इस नारायणकवचको धारण करनेवाला पुरुष जिसको भी अपने नेत्रोंसे देख लेता अथवा पैरसे छू देता है, वह तत्काल समस्त भयोंसे मुक्त हो जाता है। जो इस वैष्णवी विद्याको धारण कर लेता है उसे राजा, डाकू, प्रेत-पिशाचादि और बाघ आदि हिंसक जीवोंसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं होता। देवराज ! प्राचीन कालकी बात है, एक कौशिकगोत्री ब्राह्मणने इस विद्याको धारण करके योगधारणासे अपना शरीर मरुभूमिमें त्याग दिया। जहाँ उस ब्राह्मणका शरीर पड़ा था, उसके ऊपरसे एक दिन गन्धर्वराज चित्ररथ अपनी स्त्रियोंके साथ विमानपर बैठकर निकले। वहाँ आते ही वे नीचेकी ओर सिर किये विमानसहित गिर पड़े। इस घटनासे उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। जब उन्हें वालखिल्य मुनियोंने बतलाया कि यह नारायणकवच धारण करनेका प्रभाव है, तो उन्होंने उस ब्राह्मणदेवताकी हड्डियोंको ले जाकर पूर्ववाहिनी सरस्वती नदीमें प्रवाहित कर दिया और फिर स्नान करके वे अपने लोकको गये ॥ ३५–४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जो पुरुष इस नारायणकवचको समयपर सुनता है और जो आदरपूर्वक इसे धारण करता है, उसके सामने सभी प्राणी आदरसे झुक जाते हैं और वह सब प्रकारके भयोंसे मुक्त हो जाता है। परीक्षित् ! शतक्रतु इन्द्रने आचार्य विश्वरूपजीसे यह वैष्णवी विद्या प्राप्त करके रणभूमिमें असुरोंको जीत लिया और वे त्रैलोक्यलक्ष्मीका उपभोग करने लगे ॥ ४१-४२ ॥

अहङ्कार, पञ्चभूत, इन्द्रियाँ और अन्तःकरणचतुष्टय—ये कोई भी इस विश्वकी उत्पत्ति आदि करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। जिसे इस बातका पता नहीं है कि भगवान् ही सबका नियन्त्रण करते हैं, वही इस परतन्त्र जीवको स्वतन्त्र कर्ता भोक्ता मान बैठता है। सच्ची बात तो यह है कि भगवान् ही प्राणियोंके द्वारा प्राणियोंकी रचना और उन्हींके द्वारा उनका संहार करते हैं। देवराज इन्द्र! जिस प्रकार इच्छा न होनेपर भी समय विपरीत होनेसे मनुष्यको मृत्यु और अपयश आदि प्राप्त होते हैं—वैसे ही समयकी अनुकूलता होनेपर इच्छा न होनेपर भी उसे आयु, लक्ष्मी, यश और ऐश्वर्य आदि भोग भी मिल जाते हैं। इसलिये यश अपयश, जय-पराजय, सुख-दुःख, जीवन-मरण—इनमेंसे किसी एककी इच्छा अनिच्छा न रखकर सभी परिस्थितियोंमें समभावसे रहना चाहिये, हर्ष शोकके वशीभूत नहीं होना चाहिये। सत्त्व, रज और तम—ये तीनों गुण प्रकृतिके हैं, आत्माके नहीं; अतः जो पुरुष आत्माको उनका साक्षीमात्र जानता है, वह उनके गुण-दोषसे लिप्त नहीं होता। देवराज इन्द्र! देखो, मुझे देखो; तुमने मेरा हाथ और शस्त्र काटकर एक प्रकारसे मुझे परास्त कर दिया है, फिर भी मैं तुम्हारे प्राण लेनेके लिये यथाशक्ति प्रयत्न कर ही रहा हूँ। यह युद्ध क्या है, एक जूएका खेल। इसमें प्राणकी बाजी लगती है, बाणोंके पासे डाले जाते हैं और वाहन ही चौसर हैं। इसमें पहलेसे यह बात नहीं मालूम होती कि कौन जीतेगा और कौन हारेगा॥ ५—१७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! वृत्रासुरके ये सत्य एवं निष्कपट वचन सुनकर इन्द्रने उनका आदर किया और अपना वज्र उठा लिया। इसके बाद बिना किसी प्रकारका आश्चर्य किये मुसकराते हुए वे कहने लगे—॥१८॥

देवराज इन्द्रने कहा—अहो दानवराज! सचमुच तुम सिद्ध पुरुष हो। तभी तो तुम्हारा धैर्य, निश्चय और भगवद्भाव इतना विलक्षण है। तुमने समस्त प्राणियोंके सुहृद् आत्मस्वरूप जगदीश्वरकी अनन्य भावसे भक्ति की है। अवश्य ही तुम लोगोंको मोहित करनेवाली भगवान्‌की मायाको पार कर गये हो। तभी तो तुम असुरोचित भाव छोड़कर महापुरुष हो गये हो। अवश्य ही यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि तुम रजोगुणी प्रकृतिके हो, तो भी विशुद्ध सत्त्वस्वरूप भगवान् वासुदेवमें तुम्हारी बुद्धि दृढ़तासे लगी हुई है। जो परम कल्याणके स्वामी भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें प्रेममय भक्तिभाव रखता है, उसे जगत्‌के भोगोंकी क्या आवश्यकता है? जो अमृतके समुद्रमें विहार कर रहा है, उसे क्षुद्र गढ़ोंके जलसे प्रयोजन ही क्या हो सकता है? ॥१९—२२॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार देवराज इन्द्र और वृत्रासुर धर्मका तत्त्व जाननेकी अभिलाषासे एक दूसरेके साथ बातचीत करते हुए आपसमें युद्ध करने लगे। उन्मुक्त रणस्थलीमें दोनों पराक्रमी वीरोंकी अद्भुत शोभा हो रही थी। अब शत्रुसूदन वृत्रासुरने बायें हाथसे फौलादका बना हुआ एक बहुत भयावना परिघ उठाकर आकाशमें घुमाया और उससे इन्द्रपर प्रहार किया। किन्तु देवराज इन्द्रने वृत्रासुरका वह परिघ तथा हाथीकी सूँड़के समान लंबी भुजा अपने सौ गाँठोंवाले वज्रसे एक साथ ही काट गिरायी। इस प्रकार दोनों भुजाओंके कट जानेपर वृत्रासुरके बायें और दायें दोनों कंधोंसे खूनकी धारा बहने लगी। उस समय वह ऐसा मालूम हुआ, मानो इन्द्रके वज्रसे पंख कट जानेपर कोई पर्वत ही आकाशसे गिरा हो! अब पैरोंसे चलने-फिरनेवाले पर्वतराजके समान दीर्घकाय वृत्रासुरने अपनी ठोड़ीको धरतीसे और ऊपरके होठको स्वर्गसे लगाया तथा आकाशके समान गहरे मुँह, साँपके समान भयावनी जीभ एवं मृत्युके समान कराल दाढ़ोंसे मानो त्रिलोकीको निगलता, अपने पैरोंकी चोटसे



पृथ्वीको रौंदता और प्रबल वेगसे पर्वतोंको उलटता-पलटता वह इन्द्रके पास आया और उन्हें उनके वाहन ऐरावत हाथीके

श्रीदामोदर और सम्पूर्ण सन्ध्याओंमें कालमूर्ति भगवान् विश्वेश्वर मेरी रक्षा करें ॥ १२–२२ ॥

'सुदर्शन ! आपका आकार चक्र (रथके पहिये) की तरह है । आपके किनारेका भाग प्रलयकालीन अग्निके समान अत्यन्त तीव्र है । आप भगवान्की प्रेरणासे सब ओर घूमते रहते हैं । जैसे आग वायुकी सहायतासे सूखे घास-फूसको जला डालती है, वैसे ही आप हमारी शत्रुसेनाको शीघ्र-से-शीघ्र जला दीजिये । कौमोदकी गदा ! आपसे छूटनेवाली चिनगारियोंका स्पर्श वज्रके समान असह्य है । आप भगवान् अजितकी प्रिया हैं और मैं उनका सेवक हूँ । इसलिये आप कूष्माण्ड, विनायक, यक्ष, राक्षस, भूत और ग्रहोंको अभी कुचल डालिये तथा मेरे शत्रुओंको चूर-चूर कर दीजिये । शङ्खश्रेष्ठ ! आप भगवान् श्रीकृष्णके फूँकनेसे भयङ्कर शब्द करके मेरे शत्रुओंका दिल दहला दीजिये एवं यातुधान, प्रमथ, प्रेत, मातृका, पिशाच तथा ब्रह्मराक्षस आदि भयावने प्राणियोंको यहाँसे झटपट भगा दीजिये । भगवान्की प्यारी तलवार ! आपकी धार बहुत तीखी है । आप भगवान्की प्रेरणासे मेरे शत्रुओंको छिन्न-भिन्न कर दीजिये । भगवान्की प्यारी ढाल ! आपमें सैकड़ों चन्द्राकार मण्डल हैं । आप पापदृष्टि पापात्मा शत्रुओंकी आँखें बंद कर दीजिये और उन्हें सदाके लिये अंधा बना दीजिये ॥ २३–२६ ॥

'सूर्य आदि ग्रह, धूमकेतु (पुच्छल तारे) आदि केतु, दुष्ट मनुष्य, सर्पादि रेंगनेवाले जन्तु, दाढ़ोंवाले हिंसक पशु, भूत-प्रेत आदि तथा पापी प्राणियोंसे हमें जो-जो भय हों और जो-जो हमारे मङ्गलके विरोधी हों—वे सभी भगवान्के नाम, रूप तथा आयुधोंका कीर्तन करनेसे तत्काल नष्ट हो जायँ । बृहद्, रथन्तर आदि सामवेदीय स्तोत्रोंसे जिनकी स्तुति की जाती है, वे वेदमूर्ति भगवान् गरुड़ और विष्वक्सेनजी अपने नामोच्चारणके प्रभावसे हमें सब प्रकारकी विपत्तियोंसे बचायें । भगवान् श्रीहरिके नाम, रूप, वाहन, आयुध और श्रेष्ठ पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रिय, मन और प्राणोंको सब प्रकारकी आपत्तियोंसे बचावें ॥ २७–३० ॥

'जितना भी कार्य अथवा कारणरूप जगत् है, वह वास्तवमें भगवान् ही हैं—इस सत्यके प्रभावसे हमारे सारे विघ्न नष्ट हो जायँ । जो लोग ब्रह्म और आत्माकी एकताका अनुभव कर चुके हैं, उनकी दृष्टिमें भगवान्का स्वरूप समस्त विकल्पों—भेदोंसे रहित है; फिर भी वे अपनी माया-शक्तिके द्वारा भूषण, आयुध और रूप नामक शक्तियोंको धारण करते हैं । यह बात निश्चितरूपसे सत्य है । इस कारण सर्वज्ञ, सर्वव्यापक भगवान् श्रीहरि सदा-सर्वत्र सब स्वरूपोंसे हमारी रक्षा करें । जो अपने भयङ्कर अट्टहाससे सब लोगोंके भयको भगा देते हैं और अपने तेजसे सबका तेज ग्रस लेते हैं वे भगवान् नृसिंह दिशा-विदिशामें, नीचे-ऊपर, बाहर-भीतर—सब ओर हमारी रक्षा करें' ॥ ३१–३४ ॥

देवराज इन्द्र ! मैंने तुम्हें यह नारायणकवच सुना दिया । इस कवचको तुम धारण कर लो । बस, फिर तुम अनायास ही सब दैत्य-यूथपतियोंको जीत लोगे । इस नारायणकवचको धारण करनेवाला पुरुष जिसको भी अपने नेत्रोंसे देख लेता अथवा पैरसे छू देता है, वह तत्काल समस्त भयोंसे मुक्त हो जाता है । जो इस वैष्णवी विद्याको धारण कर लेता है उसे राजा, डाकू, प्रेत-पिशाचादि और बाघ आदि हिंसक जीवोंसे कभी किसी प्रकारका भय नहीं होता । देवराज ! प्राचीन कालकी बात है, एक कौशिकगोत्री ब्राह्मणने इस विद्याको धारण करके योगधारणासे अपना शरीर मरुभूमिमें त्याग दिया । जहाँ उस ब्राह्मणका शरीर पड़ा था, उसके ऊपरसे एक दिन गन्धर्वराज चित्ररथ अपनी स्त्रियोंके साथ विमानपर बैठकर निकले । वहाँ आते ही वे नीचेकी ओर सिर किये विमानसहित गिर पड़े । इस घटनासे उनके आश्चर्यकी सीमा न रही । जब उन्हें वालखिल्य मुनियोंने बतलाया कि यह नारायणकवच धारण करनेका प्रभाव है, तो उन्होंने उस ब्राह्मणदेवताकी हड्डियोंको ले जाकर पूर्ववाहिनी सरस्वती नदीमें प्रवाहित कर दिया और फिर स्नान करके वे अपने लोकको गये ॥ ३५–४० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जो पुरुष इस नारायणकवचको समयपर सुनता है और जो आदरपूर्वक इसे धारण करता है, उसके सामने सभी प्राणी आदरसे झुक जाते हैं और वह सब प्रकारके भयोंसे मुक्त हो जाता है । परीक्षित् ! शतक्रतु इन्द्रने आचार्य विश्वरूपजीसे यह वैष्णवी विद्या प्राप्त करके रणभूमिमें असुरोंको जीत लिया और वे त्रैलोक्यलक्ष्मीका उपभोग करने लगे ॥ ४१-४२ ॥

प्रकार चिल्लाती आ रही है। उसके श्वासके साथ मछलीकी सी दुर्गन्ध आ रही है, जिसके कारण मार्ग भी दूषित होता जा रहा है। राजन्! देवराज इन्द्र उसके भयसे दिशाओं और आकाशमें भागते फिरे। अन्तमें कहीं भी शरण न मिलनेके कारण उन्होंने पूर्व और उत्तरके कोनेमें स्थित मानसरोवरका आश्रय लिया। देवराज इन्द्र मानसरोवरके कमलनालके तन्तुओंमें एक हजार वर्षतक छिपकर निवास करते रहे और सोचते रहे कि ब्रह्महत्यासे मेरा छुटकारा कैसे होगा! इतने दिनोंतक उन्हें भोजनके लिये किसी प्रकारकी सामग्री न मिल सकी। क्योंकि वे अग्निदेवताके मुखसे भोजन करते हैं और अग्निदेवता जलके भीतर कमलतन्तुओंमें जा नहीं सकते थे। जबतक देवराज इन्द्र कमलतन्तुओंमें रहे तबतक अपनी विद्या, तपस्या और योगबलके प्रभावसे राजा नहुष स्वर्गका शासन करते रहे। परन्तु जब उन्होंने सम्पत्ति और ऐश्वर्यके मदसे अंधे होकर इन्द्रपत्नी शचीके साथ अनाचार करना चाहा, तब शचीने उनसे ऋषियोंका अपराध करवाकर उन्हें शाप दिला दिया—जिससे वे साँप हो गये। तदनन्तर जब सत्यके परम पोषक भगवान्‌का ध्यान करनेसे इन्द्रके पाप नष्टप्राय हो गये, तब ब्राह्मणोंके बुलवाने पर वे पुनः स्वर्गलोकमें गये। कमलवनविहारिणी विष्णुपत्नी लक्ष्मीजी इन्द्रकी रक्षा कर रही थीं और पूर्वोत्तर दिशाके अधिपति रुद्रने पापको पहले ही निस्तेज कर दिया था, जिससे वह इन्द्रपर आक्रमण नहीं कर सका ॥ १०–१७ ॥

परीक्षित्! इन्द्रके स्वर्गमें आ जानेपर ब्रह्मर्षियोंने वहाँ आकर भगवान्‌की आराधनाके लिये इन्द्रको अश्वमेध यज्ञकी दीक्षा दी, उनसे अश्वमेध यज्ञ कराया। जब वेदवादी ऋषियोंने उनसे अश्वमेध यज्ञ कराया तथा देवराज इन्द्रने उस यज्ञके द्वारा सर्वदेवस्वरूप पुरुषोत्तम भगवान्‌की आराधना की, तब भगवान्‌की आराधनाके प्रभावसे वृत्रासुरके वधकी वह बहुत बड़ी पापराशि इस प्रकार भस्म हो गयी जैसे सूर्योदयसे कुहरेका नाश हो जाता है। इस प्रकार जब मरीचि आदि मुनीश्वरोंने उनसे विधिपूर्वक अश्वमेध यज्ञ कराया, तो उसके द्वारा सनातन पुरुष यज्ञपति भगवान्‌की आराधना करके इन्द्र सब पापोंसे छूट गये और पूर्ववत् फिर पूजनीय हो गये॥ १८–२१॥

परीक्षित्! इस श्रेष्ठ आख्यानमें इन्द्रकी विजय, उनकी पापोंसे मुक्ति और भगवान्‌के प्यारे भक्त वृत्रासुरका वर्णन हुआ है। इसमें तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले भगवान्‌के अनुग्रह आदि गुणोंका सङ्कीर्तन है। यह सारे पापोंको धो बहाता है और भक्तिको बढ़ाता है। बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि वे इस इन्द्रसम्बन्धी आख्यानको सदा-सर्वदा पढ़ें और सुनें। विशेषतः पर्वोंके अवसरपर तो अवश्य ही इसका सेवन करें। यह धन और यशको बढ़ाता है, सारे पापोंसे छुड़ाता है, शत्रुपर विजय प्राप्त कराता है तथा आयु और मङ्गलकी अभिवृद्धि करता है ॥ २२-२३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

वृत्रासुरके पूर्वजन्मका वृत्तान्त—चित्रकेतु-चरित्र।

राजा परीक्षित्‌ने कहा—भगवन्! वृत्रासुरका स्वभाव तो बड़ा रजोगुणी-तमोगुणी था। वह देवताओंको कष्ट पहुँचाकर पाप भी करता ही था। ऐसी स्थितिमें भगवान् नारायणके चरणोंमें उसकी सुदृढ भक्ति कैसे हुई? हम देखते हैं कि प्रायः शुद्ध सत्त्वमय देवता और पवित्रहृदय ऋषि भी भगवान्‌की परम प्रेममयी अनन्य भक्तिसे वञ्चित ही रह जाते हैं। सचमुच भगवान्‌की भक्ति बड़ी दुर्लभ है। भगवन्! इस जगत्‌के प्राणी पृथ्वीके धूलिकणोंके समान ही असंख्य हैं। उनमेंसे कुछ मनुष्य आदि श्रेष्ठ जीव ही अपने कल्याणकी चेष्टा करते हैं। ब्रह्मन्! उनमें भी संसारसे मुक्त होनेकी इच्छा करनेवाले तो बिरले ही होते हैं और मोक्ष प्राप्त करनेकी इच्छावालोंमें भी उन लोगोंकी संख्या तो बहुत ही थोड़ी है, जो मुक्ति या सिद्धि लाभ करते हैं। और महामुने! करोड़ों सिद्ध एवं मुक्त पुरुषोंमें भी वैसे शान्तचित्त महापुरुष का मिलना तो बहुत ही कठिन है, जो एकमात्र भगवान्‌के ही परायण हो। ऐसी अवस्थामें वह वृत्रासुर, जो सब लोगों को सताता था और बड़ा पापी था, उस भयङ्कर युद्धके अवसरपर भगवान् श्रीकृष्णमें अपनी वृत्तियोंको इस प्रकार दृढतासे लगा सका—इसका क्या कारण है? प्रभो! इस विषयमें हमें बहुत अधिक सन्देह है और सुननेका बड़ा कौतूहल भी है। अहो, वृत्रासुरका बल-पौरुष कितना महान् था कि उसने रणभूमिमें देवराज इन्द्रको भी सन्तुष्ट कर दिया! ॥ १–७ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! भगवान् शुकदेवजीने परम श्रद्धालु राजर्षि परीक्षित्‌का यह श्रेष्ठ प्रश्न सुनकर उनका अभिनन्दन करते हुए यह बात कही ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! तुम सावधान होकर यह इतिहास सुनो। मैंने इसे अपने पिता व्यासजी, देवर्षि नारद और महर्षि देवलके मुँहसे भी विधिपूर्वक सुना है। प्राचीन कालकी बात है, शूरसेन देशमें चक्रवर्ती सम्राट् महाराज चित्रकेतु राज्य करते थे। उनके राज्यमें पृथ्वी

जब उसका कन्दराके समान मुँह खुल जाता, तब जान पड़ता कि यह सारे आकाशको पी जायगा, जीभसे सारे नक्षत्रोंको चाट जायगा और अपनी विशाल एवं विकराल दाढ़ोंवाले मुँहसे तीनों लोकोंको निगल जायगा। उसके भयावने रूपको देखकर सब लोग डर गये और इधर-उधर भागने लगे ॥११–१७॥

परीक्षित्! त्वष्टाके तमोगुणी पुत्रने सारे लोकोंको घेर लिया था। इसीसे उस पापी और अत्यन्त क्रूर पुरुषका नाम वृत्रासुर पड़ा। बड़े-बड़े देवता अपने-अपने अनुयायियों-के सहित एक साथ ही उसपर टूट पड़े तथा अपने-अपने दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे। परन्तु वृत्रासुर उनके सारे अस्त्र-शस्त्रोंको निगल गया। अब तो देवताओंके आश्चर्य-की सीमा न रही। उनका प्रभाव जाता रहा। वे सब-के-सब दीन-हीन और उदास हो गये तथा एकाग्र चित्तसे अपने हृदयमें विराजमान आदिपुरुष श्रीनारायणकी शरणमें गये ॥१८–२०॥

देवताओंने भगवान्‌से प्रार्थना की—वायु, आकाश, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँचों भूत, इनसे बने हुए तीनों लोक, उनके अधिपति ब्रह्मादि तथा हम सब देवता जिस कालसे डरकर उसे पूजा-सामग्रीकी भेंट दिया करते हैं, वही काल भगवान्‌से भयभीत रहता है। इसलिये अब भगवान् ही हमारे रक्षक हैं। प्रभो! आपके लिये कोई नयी बात नहीं है। कुछ भी देखकर आप विस्मित नहीं होते। आप अपने स्वरूपके साक्षात्कारसे ही सर्वथा पूर्णकाम हैं। आप सम-विषमरूपसे प्रतीत होनेवाले सभी पदार्थोंमें समरूपसे स्थित हैं। आपमें किसी प्रकारका विकार नहीं है, अतः आप शान्त हैं। जो आपको छोड़कर किसी दूसरेकी शरण लेता है, वह मूर्ख है। वह मानो कुत्तेकी पूँछ पकड़कर समुद्र पार करना चाहता है। वैवस्वत मनु पिछले कल्पके अन्तमें जिनके विशाल सींगमें पृथ्वीरूप नौकाको बाँधकर अनायास ही प्रलयकालीन सङ्कटसे बच गये, वे ही मत्स्य-भगवान् हम शरणागतोंको वृत्रासुरके द्वारा उपस्थित हुए महान् भयसे अवश्य बचायेंगे। प्राचीन कालमें प्रचण्ड पवनके थपेड़ोंसे उठी हुई उत्ताल तरंगोंकी गर्जनाके कारण ब्रह्माजी भगवान्‌के नाभिकमलसे अत्यन्त भयानक प्रलयकालीन जलमें गिर पड़े थे। यद्यपि वे असहाय थे, तथापि जिनकी कृपासे वे उस विपत्तिसे बच सके, वे ही भगवान् हमें इस सङ्कटसे पार करें। उन्हीं प्रभुने बिना किसीकी सहायता लिये अपनी मायासे हमारी रचना की, और उन्हींके अनुग्रहसे हमलोग सृष्टिकार्यका सञ्चालन करते हैं। यद्यपि वे हमारे सामने ही सब प्रकारकी चेष्टाएँ कर-करा रहे हैं, तथापि 'हम स्वतन्त्र ईश्वर हैं'—अपने इस अभिमानके कारण हमलोग उनके स्वरूपको देख नहीं पाते। वे प्रभु जब देखते हैं कि देवता अपने शत्रुओंसे बहुत पीड़ित हो रहे हैं, तब वे वास्तवमें निर्विकार रहनेपर भी अपनी मायाका आश्रय लेकर देवता, ऋषि, पशु-पक्षी और मनुष्यादि योनियोंमें अवतार लेते हैं तथा युग-युगमें हमें अपना समझकर हमारी रक्षा करते हैं। वे ही सबके आत्मा और परमाराध्य देव हैं। वे ही प्रकृति और पुरुषरूपसे विश्वके कारण हैं। वे विश्वसे पृथक् भी हैं और विश्वरूप भी हैं। हम सब उन्हीं शरणागतवत्सल भगवान् श्रीहरिकी शरण ग्रहण करते हैं। उदारशिरोमणि प्रभु अवश्य ही अपने निजजन हम देवताओंका कल्याण करेंगे ॥२१–२७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब देवताओंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की, तब स्वयं भगवान् उनके सामने पश्चिमकी ओर प्रकट हुए। वे अपने हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे। उनके साथ सोलह पार्षद उनकी सेवामें लगे हुए थे। वे देखनेमें सब प्रकारसे भगवान्‌के समान ही थे। केवल उनके वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न नहीं था और गलेमें कौस्तुभमणि नहीं थी। उनके नेत्र शरत्कालीन कमलके समान खिले हुए थे। परीक्षित्! भगवान्‌का दर्शन पाकर सभी देवता आनन्दसे विह्वल हो गये। उन लोगोंने धरतीपर लोटकर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और फिर धीरे-धीरे उठकर वे भगवान्-की स्तुति करने लगे ॥२८–३०॥

देवताओंने कहा—भगवन्! यज्ञमें स्वर्गादि देनेकी शक्ति आप ही हैं तथा उनके फलकी सीमा निश्चित करनेवाले काल भी आप ही हैं। आपको नमस्कार है। यज्ञमें विघ्न डालनेवाले दैत्योंको आप चक्रसे छिन्नभिन्न कर डालते हैं। इसलिये आपके नामोंकी कोई सीमा नहीं है। हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं। प्रभो! सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंके अनुसार जो उत्तम, मध्यम और निकृष्ट गतियाँ प्राप्त होती हैं, उनके नियामक आप ही हैं। आपके परम-पदका वास्तविक स्वरूप बुद्धि, मन, इन्द्रिय आदि नवीन साधनोंसे कोई भी नहीं जान सकता। क्योंकि यह जगत् कार्य है और आप इसके विधाता हैं। भगवन्! नारायण! वासुदेव! आप जगत्‌के परम कारण और पुरुषोत्तम हैं। आपकी महिमा असीम है। आप परम मङ्गलमय, परम

आप हमें सन्तान दान करके परलोकमें प्राप्त होनेवाले घोर नरकसे उबारिये और ऐसी व्यवस्था कीजिये कि मैं लोक परलोकके सब दु खोंसे छुटकारा पा लूँ ॥ २३–२६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब राजा चित्रकेतुने इस प्रकार प्रार्थना की, तब सर्वसमर्थ एव परम कृपालु भगवान् अङ्गिराने त्वष्टा देवताके योग्य चरु निर्माण करके उससे उनका यजन किया। परीक्षित् ! राजा चित्रकेतुकी रानियोंमें सबसे बड़ी और सद्गुणवती महारानी कृतद्युति थीं। महर्षि अङ्गिराने उन्हींको यज्ञका अवशेष प्रसाद दिया और राजा चित्रकेतुसे कहा—'राजन् ! तुम्हारी पत्नीके गर्भसे एक पुत्र होगा। उससे तुम्हें हर्ष और शोक दोनों ही होंगे।' यों कहकर अङ्गिरा ऋषि चले गये। उस यज्ञावशेष प्रसादके खानेसे ही महारानी कृतद्युतिने महाराज चित्रकेतुके द्वारा गर्भ धारण किया, जैसे कृत्तिकाने अपने गर्भमें अग्निकुमारको धारण किया था। राजन् ! शूरसेन देशके राजा चित्रकेतुके तेजसे कृतद्युतिका गर्भ शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान दिनोंदिन क्रमश बढने लगा ॥ २७–३१ ॥

परीक्षित् ! समय आनेपर महारानी कृतद्युतिके गर्भसे एक सुन्दर पुत्रका जन्म हुआ। उसके जन्मका समाचार पाकर शूरसेन देशकी प्रजा बहुत ही आनन्दित हुई। सम्राट् चित्रकेतुके आनन्दका तो कहना ही क्या था। वे स्नान करके पवित्र हुए। फिर उन्होंने वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो, ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर और आशीर्वाद लेकर पुत्रका जातकर्म सस्कार करवाया। उन्होंने उन ब्राह्मणोंको सोना, चाँदी, वस्त्र, आभूषण, गाँव, घोड़े, हाथी और साठ करोड़ गौएँ दान कीं। उदारशिरोमणि राजा चित्रकेतुने पुत्रके धन, यश और आयुकी वृद्धिके लिये दूसरे लोगोंको भी मुहमाँगी वस्तुएँ दीं, जैसे मेघ सभी जीवोंका मनोरथ पूर्ण करता है। परीक्षित् ! जिस प्रकार किसी कगालको बड़ी कठिनाइसे कुछ धन मिल जाय तो उसमें उसकी आसक्ति हो जाती है, वैसे ही बहुत कठिनाईसे प्राप्त हुए उस पुत्रमें राजर्षि चित्रकेतुका स्नेहबन्धन दिनोंदिन दृढ होने लगा। माता कृतद्युतिको भी अपने पुत्रपर मोहके कारण बहुत ही स्नेह था। परन्तु उनकी सौत रानियोंके मनमें पुत्रकी कामनासे और भी जलन होने लगी। प्रतिदिन बालकका लाड़ प्यार करते रहनेके कारण बच्चेकी माँ कृतद्युतिमें सम्राट् चित्रकेतुका जितना प्रेम था, उतना दूसरी रानियोंमें न रहा। इस प्रकार एक तो वे रानियाँ सन्तान न होनेके कारण ही दुखी थीं, दूसरे राजा चित्रकेतुने उनकी उपेक्षा कर दी। अत वे डाहसे अपनेको धिक्कारने और मन ही मन जलने लगीं। वे आपसमें कहने लगीं—'अरी बहिनो ! पुत्रहीन स्त्री बहुत ही अभागिनी होती है। पुत्रवाली सौतें तो दासीके समान उसका तिरस्कार करती हैं। और तो और, स्वय पतिदेव ही उसे पत्नी करके नहीं मानते। सचमुच पुत्रहीन स्त्री धिक्कारके योग्य है। भला, दासियोंको क्या दु ख है ? वे तो अपने स्वामीकी सेवा करके निरन्तर सम्मान पाती रहती हैं। परन्तु हम अभागिनी तो इस समय उनसे भी गयी-बीती हो रही हैं और दासियोंकी दासीके समान बार बार तिरस्कार पा रही हैं।' परीक्षित् ! इस प्रकार वे रानियाँ अपनी सौतकी गोद भरी देखकर जलती रहती थीं और राजा भी उनकी ओर। उदासीन हो गये थे। इसलिये उनके मनमें कृतद्युतिके प्रति बहुत बड़ा द्वेष हो गया। द्वेषके कारण रानियोंकी बुद्धि मारी गयी। उनके चित्तमें क्रूरता छा गयी। उन्हें अपने पति चित्रकेतुका पुत्र-स्नेह सहन न हुआ। इसलिये उन्होंने चिढकर नन्हे-से राजकुमारको विष दे दिया। महारानी कृतद्युतिको सौतोंकी इस पापमयी करतूतका कुछ भी पता न था। उन्होंने दूरसे देखकर समझ लिया कि बच्चा सो रहा है, इसलिये वे महलमें इधर उधर डोलती फिरती रहीं। परन्तु रानी बड़ी बुद्धिमती थीं। कुछ समयके बाद जब उन्हे यह खयाल आया कि बच्चा बहुत देरसे सो रहा है, तब उन्होंने धायसे कहा—'कल्याणी ! मेरे लालको ले आ।' धायने सोते हुए बालकके पास जाकर देखा कि उसके नेत्रोंकी पुतलियाँ उलट गयी हैं। प्राण, इन्द्रिय और जीवात्माने भी उसके शरीरसे विदा ले ली है। यह देखते ही 'हाय रे ! मैं मारी गयी !' इस प्रकार कहकर वह धरतीपर गिर पड़ी ॥ ३२–४६ ॥

धाय अपने दोनों हाथोंसे छाती पीट-पीटकर बड़े आर्त स्वरसे जोर जोरसे रोने लगी। उसकी आवाज सुनकर महारानी कृतद्युति जल्दी-जल्दी अपने पुत्रके शयनगृहमें पहुँचीं और उन्होंने देखा कि मेरा दुलारा बच्चा अकस्मात् मर गया है। तब तो वे अत्यन्त शोकके कारण मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं। उनके सिरके बाल बिखर गये और

सब-कुछ हैं। हम आपके निजजन हैं और निरन्तर आपके सामने सिर झुकाये रहते हैं। आपके चरणकमलोंका ध्यान करते-करते हमारा हृदय उन्हींके प्रेमबन्धनसे बँध गया है। आपने हमारे सामने अपना दिव्यगुणोंसे युक्त साकार विग्रह प्रकट करके हमें अपनाया है। इसलिये प्रभो! हम आपसे यह प्रार्थना करते हैं कि आप अपनी दयाभरी, विशद, सुन्दर और शीतल मुसकानयुक्त चितवनसे तथा अपने मुखारविन्दसे टपकते हुए मनोहर वाणीरूप सुमधुर सुधा-बिन्दुसे हमारे हृदयका ताप शान्त कीजिये, हमारे अन्तरकी जलन बुझाइये! प्रभो! जिस प्रकार अग्निकी ही अंशभूत चिनगारियाँ आदि अग्निको प्रकाशित करनेमें असमर्थ हैं, वैसे ही हम भी आपको अपना कोई भी स्वार्थ-परमार्थ निवेदन करनेमें असमर्थ हैं। आपसे भला, कहना ही क्या है? क्योंकि आप सम्पूर्ण जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लय करनेवाली दिव्य मायाके साथ विनोद करते रहते हैं तथा समस्त जीवोंके अन्तःकरणमें ब्रह्म और अन्तर्यामीके रूपसे विराजमान रहते हैं। केवल इतना ही नहीं, उनके बाहर भी प्रकृतिके रूपसे आप ही विराजमान हैं। जगत्‌में जितने भी देश, काल, शरीर और अवस्था आदि हैं, उनके उपादान और प्रकाशकके रूपमें आप ही उनका अनुभव करते रहते हैं। वृत्तियोंके कार्यरूपमें और उनके अभावरूपमें जितनी भी प्रतीतियाँ होती हैं, उन सबके आप साक्षी हैं। आप आकाश-के समान सर्वगत हैं, निर्लिप्त हैं। कहाँतक कहें? आप स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं। अतएव हम अपना अभिप्राय आपसे निवेदन करें—इसकी अपेक्षा न रखकर जिस अभिलाषासे हमलोग यहाँ आये हैं, उसे पूरी कीजिये। आप अचिन्त्य-ऐश्वर्यसम्पन्न और जगत्‌के परमगुरु हैं। हम आपके चरण-कमलोंकी छत्रछायामें आये हैं, जो विविध पापोंके फलस्वरूप जन्म-मृत्युरूप संसारमें भटकनेकी थकावटको मिटानेवाली है। सर्वशक्तिमान् श्रीकृष्ण! वृत्रासुरने हमारे प्रभाव और अस्त्र-शस्त्रोंको तो निगल ही लिया है। अब वह तीनों लोकोंको भी ग्रस रहा है। आप उसे मार डालिये। प्रभो! आप शुद्धस्वरूप हैं। हृदयस्थित शुद्ध ज्योतिर्मय आकाश ही आपका निवासस्थान है। आप सबके साक्षी, सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। आप अनादि, अनन्त और उज्ज्वल कीर्तिसम्पन्न हैं। संतलोग आपका संग्रह करके और सारे संग्रह छोड़ देते हैं। संसारके पथिक जब घूमते-घूमते आपकी शरणमें आ पहुँचते हैं, तब अन्तमें आप उन्हें परमानन्दस्वरूप अभीष्ट फल देते हैं और इस प्रकार उनके जन्म-जन्मान्तरके कष्टको हर लेते हैं। प्रभो! हम आपको नमस्कार करते हैं॥ ४०–४५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब देवताओंने बड़े आदरके साथ इस प्रकार भगवान्‌का स्तवन किया, तो वे अपनी स्तुति सुनकर बहुत प्रसन्न हुए तथा उनसे कहने लगे॥ ४६॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—श्रेष्ठ देवताओ! तुमलोगोंने स्तुतियुक्त ज्ञानसे मेरी उपासना की है, इससे मैं तुमलोगोंपर प्रसन्न हूँ। इस स्तुतिके द्वारा मनुष्योंको अपने स्वरूपकी स्मृति और मेरी भक्ति प्राप्त होती है। देवशिरोमणियो! मेरे प्रसन्न हो जानेपर कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रह जाती। तथापि मेरे अनन्यप्रेमी तत्त्ववेत्ता भक्त मुझसे मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहते। जो पुरुष जगत्‌के विषयोंको सत्य समझता है, वह नासमझ अपने वास्तविक कल्याणको नहीं जानता। यही तो कारण है कि वह विषय चाहता है। परन्तु यदि कोई जानकार उसे उसकी इच्छित वस्तु दे देता है, तो वह भी वैसा ही नासमझ है। जो पुरुष मुक्तिका स्वरूप जानता है, वह अज्ञानीको भी कर्मोंमें फँसनेका उपदेश नहीं देता—जैसे रोगीके चाहते रहनेपर भी सद्वैद्य उसे कुपथ्य नहीं देता। देवराज इन्द्र! तुमलोगोंका कल्याण हो। अब देर मत करो। ऋषिशिरोमणि दधीचिके पास जाओ और उनसे उनका शरीर—जो विद्या, व्रत तथा तपस्याके कारण अत्यन्त दृढ़ हो गया है—माँग लो। दधीचि ऋषिको शुद्ध ब्रह्मका ज्ञान है। अश्विनीकुमारोंको घोड़ेके सिरसे उपदेश करनेके कारण उनका एक नाम 'अश्वशिर' भी है। उनकी उपदेश की हुई आत्मविद्याके प्रभावसे ही दोनों अश्विनीकुमार जीवन्मुक्त हो गये। अथर्ववेदी दधीचि ऋषिने ही पहले-पहल मेरे स्वरूपभूत अभेद्य नारायणकवचका त्वष्टाको उपदेश किया था। त्वष्टाने वही विश्वरूपको दिया और विश्वरूपसे तुम्हें मिला। दधीचि ऋषि धर्मके परम मर्मज्ञ हैं। वे तुम लोगोंको, अश्विनीकुमारोंके माँगनेपर, अपने शरीरके अङ्ग अवश्य दे देंगे। इसके बाद विश्वकर्माके द्वारा उन अङ्गोंसे एक श्रेष्ठ आयुध तैयार करा लेना। देवराज! मेरी शक्तिसे युक्त होकर तुम उसी शस्त्रके द्वारा वृत्रासुरका सिर काट लोगे। देवताओ! वृत्रासुरके मर जानेपर तुम लोगोंको फिरसे तेज, अस्त्र-शस्त्र और सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जायँगी। तुम्हारा कल्याण अवश्यम्भावी है; क्योंकि मेरे शरणागतोंको कोई सता नहीं सकता॥ ४७–५५॥

पंद्रहवाँ अध्याय

चित्रकेतुको अङ्गिरा और नारदजीका उपदेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा चित्रकेतु शोकग्रस्त होकर मुर्देके समान अपने मृत पुत्रके पास ही पड़े हुए थे। अब महर्षि अङ्गिरा और देवर्षि नारद उन्हें सुन्दर सुन्दर उक्तियोंसे समझाने लगे। उन्होंने



कहा—राजेन्द्र! जिसके लिये तुम इतना शोक कर रहे हो, वह बालक इस जन्म और पहलेके जन्मोंमें तुम्हारा कौन था? उसके तुम कौन थे? और अगले जन्मोंमें भी उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहेगा? जैसे जलके वेगसे बालूके कण एक दूसरेसे जुड़ते और बिछुड़ते रहते हैं, वैसे ही समयके प्रवाहमें प्राणियोंका भी मिलन और बिछोह होता रहता है। राजन्! जैसे कुछ बीजोंसे दूसरे बीज उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही भगवान्की मायासे प्रेरित होकर प्राणियोंसे अन्य प्राणी उत्पन्न होते और नष्ट हो जाते हैं। राजन्! हम, तुम और हमलोगोंके साथ इस जगत्में जितने भी चराचर प्राणी वर्तमान हैं—वे सब अपने जन्मके पहले नहीं थे और मृत्युके पश्चात् नहीं रहेंगे। इससे सिद्ध है कि इस समय भी उनका अस्तित्व नहीं है। क्योंकि सत्य वस्तु तो सब समय एक-सी रहती है। भगवान् ही समस्त प्राणियोंके अधिपति हैं। उनमें जन्म-मृत्यु आदि विकार बिल्कुल नहीं हैं। उन्हें न किसीकी इच्छा है और न अपेक्षा! वे अपने-आप परतन्त्र प्राणियोंकी सृष्टि कर लेते हैं और उनके द्वारा अन्य प्राणियोंकी रचना, पालन तथा संहार करते हैं—ठीक वैसे ही जैसे बच्चे घर घरौंदे, खेल खिलौने बना-बनाकर बिगाड़ते रहते हैं। परीक्षित्! जैसे एक बीजसे दूसरा बीज उत्पन्न होता है, वैसे ही पिताकी देहद्वारा माताकी देहसे पुत्रकी देह उत्पन्न होती है। पिता माता और पुत्र जीवके रूपमें देही हैं और बाह्य दृष्टिसे केवल शरीर। उनमें देही जीव घट आदि कार्योंमें पृथ्वीके समान नित्य है। राजन्! जैसे एक ही मृत्तिकारूप वस्तुमें घटत्व आदि जाति और घट आदि व्यक्तियोंका विभाग केवल कल्पनामात्र है, उसी प्रकार यह देही और देहका विभाग भी अनादि एवं अविद्याकल्पित है। सच पूछो तो अनित्य होनेके कारण शरीर असत्य हैं और शरीर असत्य होनेके कारण उनके भिन्न-भिन्न अभिमानी भी असत्य ही हैं। त्रिकालाबाधित सत्य तो एकमात्र परमात्मा ही है। अतः शोक करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है॥ १-८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जब महर्षि अङ्गिरा और देवर्षि नारदने इस प्रकार राजा चित्रकेतुको समझाया-बुझाया, तब उन्होंने कुछ धीरज धारण करके शोकसे मुरझाये हुए मुखको हाथसे पोंछा और उनसे कहा—॥ ९॥

राजा चित्रकेतुने कहा—आप दोनों परम ज्ञानवान् और महान्से भी महान् जान पड़ते हैं, तथा अपनेको अवधूतवेषमें छिपाकर यहाँ आये हैं। कृपा करके बतलाइये, आपलोग हैं कौन? मैं जानता हूँ कि बहुत-से भगवान्के प्यारे ब्रह्मवेत्ता मेरे-जैसे विषयासक्त प्राणियोंको उपदेश करनेके लिये उन्मत्तका-सा वेष बनाकर पृथ्वीपर स्वच्छन्द विचरण करते हैं। सनत्कुमार, नारद, ऋभु, अङ्गिरा, देवल, असित, अपान्तरतम, व्यास, मार्कण्डेय, गौतम, वसिष्ठ, भगवान् परशुराम, कपिलदेव, शुकदेव, दुर्वासा, याज्ञवल्क्य, जातूकर्ण्य, आरुणि, रोमश, च्यवन, दत्तात्रेय, आसुरि, पतञ्जलि, वेदशिरा, बोध्यमुनि, पञ्चशिरा, हिरण्यनाभ, कौशल्य, श्रुतदेव और ऋतध्वज—ये सब तथा दूसरे सिद्धेश्वर ऋषि मुनि ज्ञानदान करनेके लिये पृथ्वीपर विचरते रहते हैं। इसलिये स्वामियो! आपलोग मुझपर कृपा कीजिये। मैं विषय-

धावा बोल दिया—ठीक वैसे ही, जैसे भगवान् रुद्र क्रोधित होकर स्वयं कालपर ही आक्रमण कर रहे हों। परीक्षित्! वृत्रासुर भी दैत्य-सेनापतियोंकी बहुत बड़ी सेनाके साथ मोर्चेपर डटा हुआ था। जो वैवस्वत मन्वन्तर इस समय चल रहा है, इसकी पहली चतुर्युगीका त्रेतायुग अभी आरम्भ ही हुआ था। उसी समय नर्मदातटपर देवताओंका दैत्योंके साथ यह भयङ्कर संग्राम हुआ। उस समय देवराज इन्द्र हाथमें वज्र लेकर रुद्र, वसु, आदित्य, दोनों अश्विनीकुमार, पितृगण, अग्नि, मरुद्गण, ऋभुगण, साध्यगण और विश्वेदेव आदिके साथ अपनी कान्तिसे शोभायमान हो रहे थे। वृत्रासुर आदि दैत्य उनको अपने सामने आया देख और भी चिढ़ गये। तब नमुचि, शम्बर, अनर्वा, द्विमूर्धा, ऋषभ, अम्बर, हयग्रीव, शङ्कुशिरा, विप्रचित्ति, अयोमुख, पुलोमा, वृषपर्वा, प्रहेति, हेति, उत्कल, सुमाली, माली आदि हजारों दैत्य-दानव एवं यक्ष-राक्षस स्वर्णके साज-सामानसे सुसज्जित होकर देवराज इन्द्रकी सेनाको आगे बढ़नेसे रोकने लगे। परीक्षित्! उस समय देवताओंकी सेना स्वयं मृत्युके लिये भी अजेय थी। वे घमंडी असुर सिंहनाद करते हुए बड़ी सावधानीसे देवसेनापर प्रहार करने लगे। उन लोगोंने गदा, परिघ, बाण, प्रास, मुद्गर, तोमर, शूल, फरसे, तलवार, शतघ्नी, भुशुण्डि आदि अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछारसे देवताओंको सब ओरसे ढक दिया। एक-पर-एक इतने बाण चारों ओरसे आ रहे थे कि उनसे ढक जानेके कारण देवता दिखलायी भी नहीं पड़ते थे—जैसे बादलोंसे ढक जानेपर आकाशके तारे नहीं दिखायी देते। परन्तु परीक्षित्! वह शस्त्रों और अस्त्रोंकी वर्षा देवसैनिकोंको छू तक न सकी। उन्होंने अपने हस्तलाघवसे आकाशमें ही उनके हजार-हजार टुकड़े कर दिये। जब असुरोंके अस्त्र-शस्त्र समाप्त हो गये, तब वे देवताओंकी सेनापर पर्वतोंके शिखर, वृक्ष और पत्थर बरसाने लगे। परन्तु देवताओंने उन्हें पहलेहीकी भाँति काट गिराया॥१३—२६॥

परीक्षित्! जब वृत्रासुरके अनुयायी असुरोंने देखा कि उनके असंख्य अस्त्र-शस्त्र भी देव-सेनाका कुछ न बिगाड़ सके—यहाँतक कि वृक्षों, चट्टानों और पहाड़ोंके बड़े-बड़े शिखरोंसे भी उनके शरीरपर खरोंचतक नहीं आयी, सब-के-सब सकुशल हैं—तब तो वे बहुत डर गये। दैत्यलोग देवताओंको पराजित करनेके लिये जो-जो प्रयत्न करते, वे सब-के-सब निष्फल हो जाते—ठीक वैसे ही, जैसे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित भक्तोंपर क्षुद्र मनुष्योंके कठोर और अमङ्गलमय दुर्वचनोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। भगवद्विमुख असुर अपना प्रयत्न व्यर्थ देखकर उत्साहरहित हो गये। उनका वीरताका घमंड जाता रहा। अब वे अपने सरदार वृत्रासुरको युद्धभूमिमें ही छोड़कर भाग खड़े हुए, क्योंकि देवताओंने उनका सारा बल-पौरुष छीन लिया था। जब धीर-वीर वृत्रासुरने देखा कि मेरे अनुयायी असुर भाग रहे हैं और अत्यन्त भयभीत होकर मेरी सेना भी तहस-नहस और तितर-बितर हो रही है, तब वह हँसकर कहने लगा। वीर-शिरोमणि वृत्रासुरने समयानुसार वीरोचित वाणीसे विप्रचित्ति, नमुचि, पुलोमा, मय, अनर्वा, शम्बर आदि दैत्योंको सम्बोधित करके कहा—असुरो! भागो मत, मेरी एक बात सुन लो। इसमें सन्देह नहीं कि जो पैदा हुआ है, उसे एक-न-एक दिन अवश्य मरना पड़ेगा। इस जगत्में विधाताने मृत्युसे बचनेका कोई उपाय नहीं बताया है। ऐसी स्थितिमें यदि मृत्युके द्वारा स्वर्गादि लोक और सुयश भी मिल रहा हो, तो ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो उस उत्तम मृत्युको न अपनावेगा! संसारमें दो प्रकारकी मृत्यु परम दुर्लभ और श्रेष्ठ मानी गयी है—एक तो योगी पुरुषका अपने प्राणोंको वशमें करके ब्रह्मचिन्तनके द्वारा शरीरका परित्याग, और दूसरा युद्धभूमिमें सेनाके आगे रहकर बिना पीठ दिखाये जूझ मरना। तुम लोग भला, ऐसा शुभ अवसर क्यों खो रहे हो?॥२७—३३॥

ग्यारहवाँ अध्याय

वृत्रासुरकी वीरवाणी और भगवत्प्रपत्ति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! असुरसेना भयभीत होकर भाग रही थी। उसके सैनिक इतने अचेत हो रहे थे कि उन्होंने अपने स्वामीके धर्मानुकूल वचनोंपर भी ध्यान न दिया। वृत्रासुरने देखा कि समयकी अनुकूलताके कारण देवतालोग असुरोंकी सेनाको खदेड़ रहे हैं और वह इस प्रकार छिन्न-भिन्न हो रही है, मानो बिना नायककी हो। यह देखकर वृत्रासुर असहिष्णुता और क्रोधके मारे तिलमिला उठा। उसने बलपूर्वक देवसेनाको आगे बढ़नेसे रोक दिया और उन्हें डाँटकर ललकारते हुए कहा—'क्षुद्र देवताओ! रणभूमिमें पीठ दिखानेवाले कायर असुरोंपर पीछेसे प्रहार

तो यह जीव नित्य, अविनाशी, जन्मादिरहित, सबका आश्रय और स्वयम्प्रकाश है। इसमें स्वरूपतः जन्म मृत्यु आदि कुछ भी नहीं हैं। फिर भी यह ईश्वररूप होनेके कारण अपनी मायाके गुणोंसे ही अपने-आपको विश्वके रूपमें प्रकट कर देता है। इसका न तो कोई अत्यन्त प्रिय है और न अप्रिय, न अपना और न पराया। क्योंकि हित-अहित करनेवाले मित्र शत्रु आदि की भिन्न भिन्न बुद्धि वृत्तियोंका यह अकेला ही साक्षी है, वास्तवमें यह अद्वितीय है। यह आत्मा कार्य कारणका साक्षी और स्वतन्त्र है। इसलिये यह शरीर आदिके गुण-दोष अथवा कर्मफलको ग्रहण नहीं करता, सदा उदासीनभावसे स्थित रहता है॥ ४–११॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—यह जीवात्मा इस प्रकार कहकर चला गया। उसके घरके लोग उसकी बात सुनकर अत्यन्त विस्मित हुए। उनका स्नेह-बन्धन कट गया और उसके मरनेका शोक भी जाता रहा। इसके बाद जातिवालोंने बालककी मृत देहको ले जाकर तत्कालोचित संस्कार और और्ध्वदैहिक क्रियाएँ पूर्ण कीं और उस दुस्त्यज स्नेहको छोड़ दिया जिसके कारण शोक, मोह, भय और दुःखकी प्राप्ति होती है। परीक्षित्! जिन रानियोंने बच्चेको विष दिया था, वे बालहत्याके कारण श्रीहीन हो गयी थीं और लज्जाके मारे आँखतक नहीं उठा सकती थीं। उन्होंने अङ्गिरा ऋषिके उपदेशको याद करके मात्सर्यहीन हो यमुनाजीके तटपर ब्राह्मणोंके आदेशानुसार बालहत्याका प्रायश्चित्त किया। परीक्षित्! इस प्रकार अङ्गिरा और नारदजीके उपदेशसे विवेकबुद्धि जाग्रत् हो जानेके कारण राजा चित्रकेतु वैसे ही घर गृहस्थीके अँधेरे कुएँसे बाहर निकल पड़े, जैसे कोई हाथी कीचड़से निकल आये। उन्होंने यमुनाजीमें विधिपूर्वक स्नान करके तर्पण आदि आवश्यक कर्म किये। तदनन्तर संयतेन्द्रिय और मौन होकर वे देवर्षि नारद और महर्षि अङ्गिराके पास आये तथा उनके चरणोंकी वन्दना की। भगवान् नारदने देखा कि चित्रकेतु जितेन्द्रिय, भगवद्भक्त और शरणागत है। अतः उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर उन्हें इस विद्याका उपदेश किया॥ १२–१७॥

देवर्षि नारदने यों उपदेश किया—'ॐकारस्वरूप भगवन्! आप वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और सङ्कर्षणके रूपमें क्रमशः चित्त, बुद्धि, मन और अहङ्कारके अधिष्ठाता हैं। मैं आपके इस चतुर्व्यूहरूपका बार-बार नमस्कारपूर्वक ध्यान करता हूँ। आप विशुद्ध विज्ञानस्वरूप हैं। आपकी मूर्ति परमानन्दमयी है। आप अपने स्वरूपभूत आनन्दमें ही मग्न और परम शान्त हैं। द्वैतदृष्टि आपको छूतक नहीं सकती। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। अपने स्वरूपभूत आनन्दकी अनुभूतिसे ही आपने मायाजनित राग द्वेष आदि दोषोंका तिरस्कार कर रक्खा है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सबकी समस्त इन्द्रियोंके प्रेरक, परम महान् और विराट्स्वरूप हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मन और वाणी आपतक न पहुँचकर बीचसे ही लौट आते हैं। उनके उपरत हो जानेपर जो अद्वितीय, नाम रूपरहित, चेतनमात्र और कार्य-कारणसे परेकी वस्तु रह जाती है—वह हमारी रक्षा करे। यह कार्य कारणरूप जगत् जिनसे उत्पन्न होता है, जिनमें स्थित है और जिनमें लीन होता है तथा जो मिट्टीकी वस्तुओंमें व्याप्त मृत्तिकाके समान सबमें ओतप्रोत हैं—उन परब्रह्मस्वरूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ। यद्यपि आप आकाशके समान बाहर भीतर एकरस व्याप्त हैं तथापि आपको मन, बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियाँ अपनी ज्ञानशक्तिसे नहीं जान सकतीं और प्राण तथा कर्मेन्द्रियाँ अपनी क्रियारूप शक्तिसे स्पर्श भी नहीं कर सकतीं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। शरीर, इन्द्रिय, प्राण, मन और बुद्धि जाग्रत् तथा स्वप्न अवस्थाओंमें आपके चैतन्यांशसे युक्त होकर ही अपना-अपना काम कर सकते हैं तथा सुषुप्ति और मूर्च्छाकी अवस्थाओंमें आपके चैतन्यांशसे युक्त न होनेके कारण अपना-अपना काम करनेमें असमर्थ हो जाते हैं—ठीक वैसे ही जैसे लोहा अग्निसे तप्त होनेपर जला सकता है, अन्यथा नहीं। जिसे 'द्रष्टा' कहते हैं, वह भी आपका ही एक नाम है, जाग्रत् आदि अवस्थाओंमें आप उसे स्वीकार कर लेते हैं। वास्तवमें आपसे पृथक् उनका कोई अस्तित्व नहीं है। ॐकारस्वरूप महाप्रभावशाली महाविभूतिपति भगवान् महापुरुषको नमस्कार है। श्रेष्ठ भक्तोंका समुदाय अपने कर कमलोंकी कलियोंसे आपके चरणकमलोंकी सेवामें संलग्न रहता है। प्रभो! आप ही सर्वश्रेष्ठ हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ'॥ १८–२५॥

लिये जोरसे छटपटा रहा था। भगवान्‌ने सभाके दरवाज़ेपर ले जाकर उसे अपनी जाँघोंपर गिरा लिया और खेल-खेलमें अपने नखोंसे उसे इस प्रकार फाड़ डाला, जैसे गरुड़ महाविषधर साँपको चीर डालते हैं। उस समय उनकी क्रोधसे भरी विकराल आँखोंकी ओर देखा नहीं जाता था। वे अपनी लपलपाती हुई जीभसे मुँहके दोनों कोने चाट रहे थे। खूनके छींटोंसे उनका मुँह और गरदनके बाल लाल हो रहे थे। हाथीको मारकर गलेमें आँतोंकी माला पहने हुए मृगराजके समान उनकी शोभा हो रही थी। उन्होंने अपने तीखे नखोंसे हिरण्यकशिपुका कलेजा फाड़कर उसे जमीनपर पटक दिया। उस समय हजारों दैत्य-दानव हाथोंमें शस्त्र लेकर भगवान्‌पर प्रहार करनेके लिये आये। पर भगवान्‌ने अपनी भुजारूपी सेनासे, लातोंसे और नखरूपी शस्त्रोंसे चारों ओर खदेड़-खदेड़कर उन्हें मार डाला ॥ २४–३१ ॥

युधिष्ठिर! उस समय भगवान् नृसिंहके गरदनके बालोंकी फटकारसे बादल तितर-बितर होने लगे। उनके नेत्रोंकी ज्वालासे सूर्य आदि ग्रहोंका तेज फीका पड़ गया। उनके श्वासके धक्केसे समुद्र क्षुब्ध हो गये। उनके सिंहनादसे भयभीत होकर दिग्गज चिग्घाड़ने लगे। उनके गरदनके बालोंसे टकराकर देवताओंके विमान अस्त-व्यस्त हो गये। स्वर्ग डगमगा गया। उनके पैरोंकी धमकसे भूकम्प आ गया, वेगसे पर्वत उड़ने लगे और उनके तेजकी चकाचौंधसे आकाश तथा दिशाओंका दीखना बंद हो गया। इस समय नृसिंह-भगवान्‌का सामना करनेवाला कोई दिखायी न पड़ता था। फिर भी उनका क्रोध अभी बढ़ता ही जा रहा था। वे हिरण्यकशिपुकी राजसभामें ऊँचे सिंहासनपर जाकर विराज गये। उस समय उनके अत्यन्त तेजपूर्ण और क्रोधभरे भयङ्कर चेहरेको देखकर किसीका भी साहस न हुआ कि उनके पास जाकर उनकी सेवा करे ॥ ३२–३४ ॥

युधिष्ठिर! जब स्वर्गकी देवियोंको यह शुभ समाचार मिला कि तीनों लोकोंके सिरकी पीड़ाका मूर्तिमान् स्वरूप हिरण्यकशिपु युद्धमें भगवान्‌के हाथों मार डाला गया, तो आनन्दके उल्लाससे उनका रोम-रोम खिल उठा। वे बार-बार भगवान्‌पर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं। आकाशमें विमानोंसे आये हुए भगवान्‌के दर्शनार्थी देवताओंकी भीड़ लग गयी। देवताओंके ढोल और नगाड़े बजने लगे। गन्धर्वराज गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं। इसी समय ब्रह्मा-इन्द्र-शङ्कर आदि देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, महानाग, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरा, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वेताल, सिद्ध, किन्नर और सुनन्द-कुमुद आदि भगवान्‌के सभी पार्षद उनके पास आये। उन लोगोंने सिरपर अञ्जलि बाँधकर सिंहासनपर विराजमान अत्यन्त तेजस्वी नृसिंहभगवान्‌की थोड़ी दूरसे अलग-अलग स्तुति की ॥ ३५–३९ ॥

ब्रह्माजीने कहा—प्रभो! आप अनन्त हैं। आपकी शक्तिका कोई पार नहीं पा सकता। आपका पराक्रम विचित्र और कर्म पवित्र हैं। यद्यपि गुणोंके द्वारा आप लीलासे ही सम्पूर्ण विश्वका सृजन, पालन और प्रलय करते हैं—फिर भी आप उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते, स्वयं निर्विकार रहते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४० ॥

श्रीरुद्रने कहा—आपके क्रोध करनेका समय तो कल्पके अन्तमें होता है। यदि इस दैत्यको मारनेके लिये ही आपने क्रोध किया है, तो वह तुच्छ दैत्य भी मारा जा चुका। उसका पुत्र आपकी शरणमें आया है। भक्तवत्सल प्रभो! आप अपने इस भक्तकी रक्षा कीजिये ॥ ४१ ॥

इन्द्रने कहा—पुरुषोत्तम! आपने हमारी रक्षा की है। आपने हमारे जो यज्ञभाग लौटाये हैं, वे वास्तवमें आपके ही हैं। क्योंकि अन्तर्यामीरूपसे आप ही तो समस्त यज्ञोंके भोक्ता हैं। दैत्योंके आतङ्कसे हमारा हृदयकमल सङ्कुचित हो गया था। उसे आपने प्रफुल्लित कर दिया। परन्तु वह तो आपका ही निवासस्थान है। यह जो स्वर्गादिका राज्य हमलोगोंको पुनः प्राप्त हुआ है, यह सब कालका ग्रास है। जो आपके सेवक हैं, उनके लिये यह है ही क्या? स्वामिन्! जिन्हें आपकी सेवाकी चाह है, वे तो मुक्तिका भी आदर नहीं करते। फिर अन्य भोगोंकी तो उन्हें आवश्यकता ही क्या है? ॥ ४२ ॥

ऋषियोंने कहा—पुरुषोत्तम! आपने तपस्याके द्वारा ही अपनेमें लीन हुए जगत्‌की फिरसे रचना की थी और कृपा करके उसी आत्मतेजःस्वरूप श्रेष्ठ तपस्याका उपदेश आपने हमारे लिये भी किया था। इस दैत्यने उसी तपस्याका उच्छेद कर दिया था। शरणागतवत्सल! उस तपस्याकी रक्षाके लिये अवतार ग्रहण करके आपने हमारे लिये फिरसे तपस्या करनेका ही उपदेश दिया है ॥ ४३ ॥

पितरोंने कहा—प्रभो! हमारे पुत्र हमारे लिये पिण्डदान करते थे, तो यह उन्हें बलात् छीनकर खा जाया करता था। जब वे पवित्र तीर्थमें या संक्रान्ति आदिके

सहित इस प्रकार लील गया, जैसे कोई परम पराक्रमी और अत्यन्त बलवान् अजगर हाथीको निगल जाय। प्रजापतियों और महर्षियोंके साथ देवताओंने जब देखा कि वृत्रासुर इन्द्रको निगल गया, तब तो वे अत्यन्त दुखी हो गये तथा 'हाय-हाय! बड़ा अनर्थ हो गया।' ऐसा कहकर विलाप करने लगे। परीक्षित्! बल दैत्यका संहार करनेवाले देवराज इन्द्रने नारायणकवचसे अपनेको सुरक्षित कर रक्खा था और उनके पास योगमायाका बल था ही। इसलिये वृत्रासुरके निगल लेनेपर—उसके पेटमें पहुँचकर भी वे मरे नहीं। उन्होंने अपने वज्रसे उसकी कोख फाड़ डाली और उसके पेटसे निकलकर बड़े वेगसे उसका पर्वत-शिखरके समान ऊँचा सिर काट डाला। सूर्यादि ग्रहोंकी उत्तरायण-दक्षिणायन-रूप गतिमें जितना समय लगता है, उतने दिनोंमें अर्थात् एक वर्षमें वृत्रवधका योग उपस्थित होनेपर घूमते हुए उस तीव्र वेगशाली वज्रने उसकी गरदनको सब ओरसे काटकर भूमिपर गिरा दिया। उस समय आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। महर्षियोंके साथ गन्धर्व, सिद्ध आदि वृत्रघाती इन्द्रका पराक्रम सूचित करनेवाले मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करके बड़े आनन्दके साथ उनपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। शत्रुदमन परीक्षित्! उस समय वृत्रासुरके शरीरसे उसकी आत्मज्योति बाहर निकली और इन्द्र आदि सब लोगोंके देखते-देखते सर्वलोकातीत भगवान्‌के स्वरूपमें लीन हो गयी ॥ २३—३५ ॥

तेरहवाँ अध्याय

इन्द्रपर ब्रह्महत्याका आक्रमण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—महादानी परीक्षित्! वृत्रासुरकी मृत्युसे इन्द्रके अतिरिक्त तीनों लोक और लोकपाल तत्क्षण परम प्रसन्न हो गये। उनका भय, उनकी चिन्ता जाती रही। युद्ध समाप्त होनेपर देवता, ऋषि, पितर, भूत, दैत्य और देवताओंके अनुचर गन्धर्व आदि इन्द्रसे बिना पूछे ही अपने-अपने लोकको चले गये। इसके पश्चात् ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र आदि भी चले गये ॥ १-२ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! मैं देवराज इन्द्रकी अप्रसन्नताका कारण जानना चाहता हूँ। जब वृत्रासुरके वधसे सभी देवता सुखी हुए, तब इन्द्रको दुःख होनेका क्या कारण था? ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! जब वृत्रासुरके पराक्रमसे सभी देवता और ऋषि-महर्षि अत्यन्त भयभीत हो गये, तब उन लोगोंने उसके वधके लिये इन्द्रसे प्रार्थना की; परन्तु वे ब्रह्महत्याके भयसे उसे मारना नहीं चाहते थे ॥४॥

देवराज इन्द्रने उन लोगोंसे कहा—देवताओ और ऋषियो! मुझे विश्वरूपके वधसे जो ब्रह्महत्या लगी थी उसे तो स्त्री, पृथ्वी, जल और वृक्षोंने कृपा करके बाँट लिया। अब यदि मैं वृत्रका वध करूँ तो उसकी हत्यासे मेरा छुटकारा कैसे होगा? ॥५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवराज इन्द्रकी बात सुनकर ऋषियोंने उनसे कहा—'देवराज! तुम्हारा कल्याण हो। तुम तनिक भी भय मत करो। क्योंकि हम अश्वमेध यज्ञ कराकर तुम्हें सारे पापोंसे मुक्त कर देंगे। अश्वमेध यज्ञके द्वारा सबके अन्तर्यामी सर्वशक्तिमान् परमात्मा नारायणदेवकी आराधना करके तुम सम्पूर्ण जगत्‌का वध करनेके पापसे भी मुक्त हो सकोगे; फिर वृत्रासुरके वधकी तो बात ही क्या है। देवराज! भगवान्‌के नाम-कीर्तनमात्रसे ही ब्राह्मण, पिता, गौ, माता, आचार्य आदिकी हत्या करनेवाले महापापी, कुत्तेका मांस खानेवाले चाण्डाल और कसाई भी शुद्ध हो जाते हैं। हमलोग 'अश्वमेध'नामक महायज्ञका अनुष्ठान करेंगे। उसके द्वारा श्रद्धापूर्वक भगवान्‌की आराधना करके तुम ब्रह्मापर्यन्त समस्त चराचर जगत्‌की हत्याके भी पापसे लिप्त नहीं होगे। फिर इस दुष्टको दण्ड देनेके पापसे न छूटनेकी तो बात ही क्या है ॥ ६—९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार ब्राह्मणोंसे प्रेरणा प्राप्त करके देवराज इन्द्रने वृत्रासुरका वध किया था। अब उसके मारे जानेपर ब्रह्महत्या इन्द्रके पास आयी। उसके कारण इन्द्रको बड़ा क्लेश, बड़ी जलन सहनी पड़ी। उन्हें एक क्षणके लिये भी चैन नहीं पड़ता था। सच है, जब किसी सङ्कोची सज्जनपर कलङ्क लग जाता है, तब उसके धीरज आदि गुण भी उसे सुखी नहीं कर पाते। देवराज इन्द्रने देखा कि ब्रह्महत्या साक्षात् चाण्डालिनीके समान उनके पीछे-पीछे दौड़ी आ रही है। बुढ़ापेके कारण उसके सारे अंग काँप रहे हैं और क्षयरोग उसे सता रहा है। उसके सारे वस्त्र खूनसे लथपथ हो रहे हैं, वह अपने सफेद-सफेद बालोंको बिखेरे 'ठहर जा! ठहर जा!!' इस

भागवतधर्मका उपदेश किया था, उसी समय आपने सबको जीत लिया। क्योंकि अपने पास कुछ भी संग्रह-परिग्रह न रखनेवाले, किसी भी वस्तुमें अहंता-ममता न करनेवाले आत्माराम सनकादि परमर्षि भी परम साम्य और मोक्ष प्राप्त करनेके लिये उसी भागवतधर्मका आश्रय लेते हैं। वह भागवतधर्म इतना शुद्ध है कि उसमें सकाम धर्मोंके समान मनुष्योंकी यह विषमबुद्धि नहीं होती कि 'यह मैं हूँ, यह मेरा है; यह तू है और यह तेरा है।' इसके विपरीत जिस धर्मके मूलमें ही विषमताका बीज बो दिया जाता है वह तो अशुद्ध, नाशवान् और अधर्मबहुल होता है। सकाम धर्म तो अपने और पराये दोनोंका ही अहित करनेवाला है। उससे अपना या पराया—किसीका कोई भी प्रयोजन और हित सिद्ध नहीं होता। बल्कि सकाम धर्मसे जब अनुष्ठान करनेवालेका चित्त दुखता है, तब आप रुष्ट होते हैं और जब दूसरेका चित्त दुखता है, तब वह धर्म नहीं रहता—अधर्म हो जाता है। भगवन्! आपने जिस दृष्टिसे भागवतधर्मका निरूपण किया है, वह कभी परमार्थसे विचलित नहीं होती। इसलिये जो संत पुरुष चर-अचर समस्त प्राणियोंमें समदृष्टि रखते हैं, वे ही उसका सेवन करते हैं। भगवन्! आपके दर्शनमात्रसे ही मनुष्योंके सारे पाप क्षीण हो जाते हैं, यह कोई असम्भव बात नहीं है; क्योंकि आपका नाम एक बार सुननेसे ही कसाई भी संसारसे मुक्त हो जाता है। भगवन्! इस समय आपके दर्शनमात्रसे ही मेरे अन्तःकरणका सारा मल धुल गया है, सो ठीक ही है। क्योंकि आपके अनन्यप्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीने जो कुछ कहा है, वह मिथ्या कैसे हो सकता है! हे अनन्त! आप सम्पूर्ण जगत्के आत्मा हैं। अतएव संसारमें प्राणी जो कुछ करते हैं, वह तो आप जानते ही रहते हैं। इसलिये जैसे जुगनू सूर्यको प्रकाशित नहीं कर सकता, वैसे ही परमगुरु आपसे मैं क्या निवेदन करूँ? भगवन्! आपकी ही अध्यक्षतामें सारे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होते हैं। कुयोगीजन भेददृष्टिके कारण आपका वास्तविक स्वरूप नहीं जान पाते। आपका स्वरूप वास्तवमें अत्यन्त शुद्ध है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपकी चेष्टासे शक्ति प्राप्त करके ही ब्रह्मा आदि लोकपालगण चेष्टा करनेमें समर्थ होते हैं। आपकी दृष्टिसे जीवित होकर ही ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषयोंको ग्रहण करनेमें समर्थ होती हैं। यह भूमण्डल आपके सिरपर सरसोंके दानेके समान जान पड़ता है। मैं आप सहस्रशीर्षा भगवान्‌को बार-बार नमस्कार करता हूँ॥ ३४—४८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब विद्याधरोंके अधिपति चित्रकेतुने अनन्तभगवान्‌की इस प्रकार स्तुति की, तब उन्होंने प्रसन्न होकर उनसे कहा॥ ४९॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—चित्रकेतो! देवर्षि नारद और महर्षि अङ्गिराने तुम्हें मेरे सम्बन्धमें जिस विद्याका उपदेश दिया है, उससे और मेरे दर्शनसे तुम भलीभाँति सिद्ध हो चुके हो। मैं ही समस्त प्राणियोंके रूपमें हूँ, मैं ही उनका आत्मा हूँ और मैं ही पालनकर्ता भी हूँ। शब्दब्रह्म (वेद) और परब्रह्म दोनों ही मेरे सनातन रूप हैं। आत्मा कार्य कारणात्मक जगत्‌में व्याप्त है और कार्य-कारणात्मक जगत् आत्मामें स्थित है तथा इन दोनोंमें मैं अधिष्ठानरूपसे व्याप्त हूँ और मुझमें ये दोनों कल्पित हैं। जैसे स्वप्नमें सोया हुआ पुरुष स्वप्नान्तर होनेपर सम्पूर्ण जगत्‌को अपनेमें ही देखता है और स्वप्नान्तर टूट जानेपर स्वप्नमें ही जागता है तथा अपनेको संसारके एक कोनेमें स्थित देखता है, परन्तु वास्तवमें वह भी स्वप्न ही है, वैसे ही जीवकी जाग्रत् आदि अवस्थाएँ परमेश्वरकी ही माया हैं—ऐसा जानकर सबके साक्षी मायातीत परमात्माका ही स्मरण करना चाहिये। सोया हुआ पुरुष जिसकी सहायतासे अपनी निद्रा और उसके अतीन्द्रिय सुखका अनुभव करता है, वह ब्रह्म मैं ही हूँ; उसे तुम अपनी आत्मा समझो। पुरुष निद्रा और जागृति—इन दोनों अवस्थाओंका अनुभव करनेवाला है। वह उन अवस्थाओंमें साक्षीरूपसे अनुगत होनेपर भी वास्तवमें उनसे पृथक् है। वह सब अवस्थाओंमें रहनेवाला अखण्ड एकरस ज्ञान ही ब्रह्म है। जब जीव मेरे स्वरूपको भूल जाता है, तब वह अपनेको अलग मान बैठता है; इसीसे उसे संसारके चक्करमें पड़ना पड़ता है और जन्म-पर-जन्म तथा मृत्यु-पर-मृत्यु प्राप्त होती है। यह मनुष्ययोनि ज्ञान और विज्ञानका मूल स्रोत है। जो इसे पाकर भी अपने आत्मस्वरूप परमात्माको नहीं जान लेता, उसे कहीं किसी भी योनिमें शान्ति नहीं मिल सकती। राजन्! सांसारिक सुखके लिये जो चेष्टाएँ की जाती हैं उनमें श्रम है, क्लेश है, और जिस परम सुखके उद्देश्यसे वे की जाती हैं उसके ठीक विपरीत परम दुःख देती हैं, किन्तु कर्मोंसे निवृत्त हो जानेमें किसी प्रकारका भय नहीं है—ऐसा सोचकर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि किसी प्रकारके कर्म अथवा उनके फलोंका सङ्कल्प न करे। जगत्‌के सभी स्त्री-पुरुष इसलिये कर्म करते हैं कि उन्हें सुख मिले

स्वयं ही प्रजाकी इच्छाके अनुसार अन्न आदि दे दिया करती थी। उनके एक करोड़ रानियाँ थीं और वे स्वयं सन्तान उत्पन्न करनेमें समर्थ भी थे। परन्तु उन्हें उनमेंसे किसीके भी गर्भसे कोई सन्तान न हुई। यों महाराज चित्रकेतुको किसी बातकी कमी न थी। सुन्दरता, उदारता, युवावस्था, कुलीनता, विद्या, ऐश्वर्य और सम्पत्ति आदि सभी गुण उनमें विद्यमान थे। फिर भी उनकी पत्नियाँ बाँझ थीं, इसलिये उन्हें बड़ी चिन्ता रहती थी। वे सारी पृथ्वीके एकछत्र सम्राट् थे, बहुत-सी सुन्दरी रानियाँ थीं तथा सारी पृथ्वी उनके वशमें थी। सब प्रकारकी सम्पत्तियाँ उनकी सेवामें उपस्थित थीं, परन्तु वे सब वस्तुएँ उन्हें सुखी न कर सकीं। एक दिन शाप और वरदान देनेमें समर्थ अङ्गिरा ऋषि स्वच्छन्दरूपसे विभिन्न लोकोंमें विचरते राजा चित्रकेतुके महलमें पहुँच गये। राजाने प्रत्युत्थान और अर्घ्य आदिसे उनकी विधिपूर्वक पूजा की। आतिथ्य-सत्कार हो जानेके बाद जब अङ्गिरा ऋषि सुखपूर्वक आसनपर विराज गये, तब राजा चित्रकेतु भी शान्तभावसे उनके पास ही बैठ गये। महाराज! महर्षि अङ्गिराने देखा कि यह राजा बहुत विनयी है और मेरे पास पृथ्वीपर बैठकर मेरी भक्ति कर रहा है। तब उन्होंने चित्रकेतुको सम्बोधित करके यह बात कही ॥ ९—१६ ॥

अङ्गिरा ऋषिने कहा—राजन्! तुम अपनी प्रकृतियों



—गुरु, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, सेना और मित्रके साथ सकुशल तो हो न? जैसे जीव महत्तत्त्वादि सात आवरणोंसे घिरा रहता है, वैसे ही राजा भी इन सात प्रकृतियोंसे घिरा रहता है। उनके कुशलसे ही राजाकी कुशल है। नरेन्द्र! जिस प्रकार राजा अपनी उपर्युक्त प्रकृतियोंके अनुकूल रहनेपर ही राज्यसुख भोग सकता है, वैसे ही प्रकृतियाँ भी अपनी रक्षाका भार राजापर छोड़कर सुख और समृद्धि लाभ कर सकती हैं। राजन्! तुम्हारी रानियाँ, प्रजा, मन्त्री (सलाहकार), सेवक, व्यापारी, अमात्य (दीवान), नागरिक, देशवासी, मण्डलेश्वर राजा और पुत्र तुम्हारे वशमें तो हैं न? सच्ची बात तो यह है कि जिसका मन अपने वशमें है, उसके ये सभी वशमें होते हैं। इतना ही नहीं, सभी लोक और लोकपाल भी बड़ी सावधानीसे उसे भेंट देकर उसकी प्रसन्नता चाहते हैं। परन्तु मैं देख रहा हूँ कि तुम्हारे मुँहपर किसी आन्तरिक चिन्ताके चिह्न झलक रहे हैं। मालूम होता है कि तुम्हारी कोई कामना पूर्ण नहीं हुई है। तुम्हारे इस असन्तोषका कारण कोई और है या स्वयं तुम्हीं हो? ॥ १७—२१ ॥

परीक्षित्! महर्षि अङ्गिरा यह जानते थे कि राजाके मनमें किस बातकी चिन्ता है। फिर भी उन्होंने उनसे चिन्ताके सम्बन्धमें अनेकों प्रश्न पूछे। चित्रकेतुको सन्तानकी कामना थी। अतः महर्षिके पूछनेपर उन्होंने बड़ी नम्रतासे निवेदन किया ॥ २२ ॥

सम्राट् चित्रकेतुने कहा—भगवन्! जिन योगियोंके तपस्या, ज्ञान, धारणा, ध्यान और समाधिके द्वारा सारे पाप नष्ट हो चुके हैं—उनके लिये प्राणियोंके बाहर या भीतरकी ऐसी कौन-सी बात है, जिसे वे न जानते हों? ऐसा होनेपर भी जब आप सब कुछ जान-बूझकर मुझसे मेरे मनकी चिन्ता पूछ रहे हैं, तब मैं आपकी आज्ञा और प्रेरणासे अपनी चिन्ता आपके चरणोंमें निवेदन करता हूँ। प्रभो! मुझे पृथ्वीका एकछत्र साम्राज्य, सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य और दुर्लभ सम्पत्तियाँ प्राप्त हैं। बड़े-बड़े देवता भी इनके लिये लालायित रहते हैं। परन्तु सन्तान न होनेके कारण मुझे इन सुख-भोगोंसे तनिक भी शान्ति नहीं मिल रही है। भला, भूखे-प्यासे प्राणीको अन्न-जलके सिवा दूसरे भोग कभी प्रसन्न कर सकते हैं? महाभाग्यवान् महर्षे! मैं तो दुखी हूँ ही, पिण्डदान न मिलनेकी आशङ्कासे मेरे पितर भी दुखी हो रहे हैं। अब

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब पार्वतीजीने इस प्रकार चित्रकेतुको शाप दिया, तब तो वे विमानसे उतर पड़े और सिर झुकाकर उन्हें प्रसन्न करने लगे ॥ १६ ॥

चित्रकेतुने कहा—माता पार्वतीजी! मैं बड़ी प्रसन्नता से हाथ जोड़कर आपका शाप स्वीकार करता हूँ। क्योंकि देवतालोग मनुष्योंके लिये जो कुछ कह देते हैं, वह कोई नयी बात नहीं होती। वह तो उनके प्रारब्धानुसार मिलनेवाले फलकी पूर्वसूचना मात्र होती है। देवि! यह जीव अज्ञानसे मोहित हो रहा है और इसी कारण संसारके चक्रमें भटकता रहता है तथा सदा-सर्वदा सर्वत्र सुख और दुःख भोगता रहता है। माताजी! सुख और दुःखको देनेवाला न तो अपना आत्मा है और न कोई दूसरा। जो अज्ञानी हैं, वे ही अपनेको अथवा दूसरेको सुख-दुःखका कारण माना करते हैं। यह जगत् सत्त्व, रज आदि गुणोंका स्वाभाविक प्रवाह है। इसमें शाप या अनुग्रह, स्वर्ग या नरक, सुख या दुःख कौन वस्तु है? कुछ नहीं, केवल कल्पना है। एकमात्र भगवान् ही बिना किसीकी सहायताके अपनी आत्मस्वरूपिणी मायाके द्वारा समस्त प्राणियों की तथा उनके बन्धन, मोक्ष और सुख दुःखकी रचना करते हैं। यह सब करते रहनेपर भी उनका बन्धन, मोक्ष आदिसे कोई सम्बन्ध नहीं है। माताजी! भगवान् श्रीहरि सबमें सम और माया आदि मलसे रहित हैं। उनका कोई प्रिय अप्रिय, नाती-गोती, अपना-पराया नहीं है। जब उनका सुखमें राग ही नहीं है, तब उनमें रागजन्य क्रोध तो हो ही कैसे सकता है? तथापि उनकी मायाशक्तिके कार्य पाप और पुण्य ही प्राणियोंके सुख दुःख, हित अहित, बन्ध मोक्ष, मृत्यु-जन्म और आवागमनके कारण बनते हैं। देवि! मैं शापसे मुक्त होनेके लिये आपको प्रसन्न नहीं करना चाहता। मैं तो यह चाहता हूँ कि आप मेरी बातपर बुरा मान गयी हैं, सो उसके लिये क्षमा करें ॥ १७–२४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! विद्याधर चित्रकेतु भगवान् शङ्कर और पार्वतीजीको इस प्रकार प्रसन्न करके उनके सामने ही विमानपर सवार होकर वहाँसे चले गये। इससे उन लोगोंको बड़ा विस्मय हुआ। तब भगवान् शङ्करने देवता, ऋषि, दैत्य, सिद्ध और पार्षदोंके सामने ही भगवती पार्वतीसे यह बात कही ॥ २५ २६ ॥

भगवान् शङ्करने कहा—सुन्दरि! दिव्यलीलाविहारी भगवान्के निःस्पृह और उदारहृदय दासानुदासोंकी महिमा तुमने अपनी आँखों देख ली। जो लोग भगवान्के शरणागत होते हैं, वे किसी भी बातसे डरते नहीं। क्योंकि उन्हें स्वर्ग, मोक्ष और नरकोंमें भी एक ही वस्तुके—केवल भगवान्के ही समान भावसे दर्शन होते हैं। जीवोंको भगवान्की लीलासे ही देहका संयोग होनेके कारण सुख दुःख, जन्म मरण और शाप-अनुग्रह आदि द्वन्द्व प्राप्त होते हैं। जैसे स्वप्नमें भेद भ्रमसे सुख दुःख आदिकी प्रतीति होती है, और जाग्रत्-अवस्थामें भ्रमवश मालामें ही सर्पबुद्धि हो जाती है—वैसे ही, मनुष्य अज्ञानवश आत्मामें देवता, मनुष्य आदिका भेद तथा गुण-दोष आदिकी कल्पना कर लेता है। जिनके पास ज्ञान और वैराग्यका बल है और जो भगवान् वासुदेवके चरणोंमें भक्तिभाव रखते हैं, उनके लिये इस जगत्में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जिसमें वे अपनी बुद्धिको टिका दें, आसक्त हो जायँ। मैं, ब्रह्माजी, सनकादि, नारद, ब्रह्माजीके पुत्र भृगु आदि मुनि और बड़े-बड़े देवता—कोई भी भगवान्की लीलाका रहस्य नहीं जान पाते। ऐसी अवस्थामें जो उनके नन्हे-से-नन्हे अंश हैं और अपनेको उनसे अलग ईश्वर मान बैठे हैं, वे तो उनके स्वरूपको जान ही कैसे सकते हैं! भगवान्को न तो कोई प्रिय है और न अप्रिय। उनका न तो कोई अपना है और न पराया। वे सभी प्राणियोंके आत्मा हैं, इसलिये सभी प्राणियोंके प्रियतम हैं। प्रिये! यह परम भाग्यवान् चित्रकेतु उन्हींका प्रिय अनुचर, शान्त एवं समदर्शी है और मैं भी भगवान् श्रीहरिका ही प्रिय हूँ। इसलिये तुम्हें भगवान्के प्यारे भक्त, शान्त, समदर्शी, महात्मा पुरुषोंके सम्बन्धमें किसी प्रकारका आश्चर्य नहीं करना चाहिये ॥२७–३५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् शङ्करका यह भाषण सुनकर भगवती पार्वतीकी चित्तवृत्ति शान्त हो गयी और उनका विस्मय जाता रहा। प्रिय परीक्षित्! भगवान्के परमप्रेमी भक्त चित्रकेतु भी भगवती पार्वतीको भलीभाँति शाप दे सकते थे, परन्तु उन्होंने उन्हें शाप न देकर उनका शाप सिर चढ़ा लिया—यही साधु पुरुषका लक्षण है। यही विद्याधर चित्रकेतु दानवयोनिका आश्रय लेकर त्वष्टाके दक्षिणाग्निसे पैदा हुए। वहाँ इनका नाम वृत्रासुर हुआ और वहाँ भी ये भगवत्स्वरूपके ज्ञान एवं भक्तिसे परिपूर्ण ही रहे। तुमने मुझसे पूछा था कि वृत्रासुरका दैत्ययोनिमें जन्म क्यों हुआ और उसे भगवान्की ऐसी भक्ति कैसे प्राप्त हुई। उसका पूरा पूरा विवरण मैंने तुम्हें सुना दिया। महात्मा चित्रकेतुका यह पवित्र इतिहास केवल उनका ही नहीं, समस्त

शरीरपरके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये। तदनन्तर महारानीका रुदन सुनकर रनिवासके सभी स्त्री-पुरुष वहाँ दौड़ आये और उन्हींके समान दुखी होकर रोने लगे। वे हत्यारी रानियाँ भी वहाँ आकर झूठमूठ रोनेका ढोंग करने लगीं। जब राजा चित्रकेतुको यह मालूम हुआ कि मेरे पुत्रकी अकारण ही मृत्यु हो गयी है, तो अत्यन्त स्नेहके कारण शोकके आवेगसे उनकी आँखोंके सामने अँधेरा छा गया। वे धीरे-धीरे अपने मन्त्रियों और ब्राह्मणोंके साथ मार्गमें गिरते-पड़ते मृत बालकके पास पहुँचे और मूर्छित होकर उसके पैरोंके पास गिर पड़े। उनके केश और वस्त्र इधर-उधर बिखर गये। वे लंबी-लंबी साँस लेने लगे। आँसुओंकी अधिकतासे उनका गला रुँध गया और वे कुछ भी बोल न सके। रानी कृतद्युति अपने पति चित्रकेतुको अत्यन्त शोकाकुल और एकमात्र पुत्रको मरा हुआ देख भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगीं। उनका यह दुःख देखकर मन्त्री आदि सभी उपस्थित मनुष्य शोकग्रस्त हो गये। महारानीके नेत्रोंसे इतने आँसू बह रहे थे कि वे उनकी आँखोंका अंजन लेकर केसर और चन्दनसे चर्चित वक्षःस्थलको भिगोने लगे। उनके बाल बिखर रहे थे तथा उनमें गुँथे हुए फूल गिर रहे थे। इस प्रकार वे कुररी पक्षीके समान उच्च-स्वरसे भाँति-भाँतिसे विलाप कर रही थीं ॥४७—५३॥

वे कहने लगीं—'अरे विधाता! सचमुच तू बड़ा मूर्ख है, जो अपनी सृष्टिके प्रतिकूल चेष्टा करता है। बड़े आश्चर्यकी बात है कि बूढ़े-बूढ़े तो जीते रहें और बालक मर जायँ। यदि वास्तवमें तेरे स्वभावमें ऐसी ही विपरीतता है, तब तो तू जीवोंका अमर शत्रु है। यदि संसारमें प्राणियोंके जीवन-मरणका कोई क्रम न रहे, तो वे अपने प्रारब्धके अनुसार जनमते-मरते रहेंगे। फिर तो तेरी आवश्यकता ही क्या है? तूने सम्बन्धियोंमें स्नेह-बन्धन तो इसीलिये डाल रक्खा है न कि वे तेरी सृष्टिको बढ़ावें? परन्तु तू इस प्रकार बच्चोंको मारकर अपने किये-करायेपर अपने हाथों पानी फेर रहा है।' फिर वे अपने मृत पुत्रकी ओर देखकर कहने लगीं—'बेटा! मैं तुम्हारे बिना अनाथ और दीन हो रही हूँ। मुझे छोड़कर इस प्रकार चले जाना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। तनिक आँख खोलकर देखो तो सही, तुम्हारे पिताजी तुम्हारे वियोगमें कितने शोक-सन्तप्त हो रहे हैं। बेटा! जिस घोर नरकको निःसन्तान पुरुष बड़ी कठिनाईसे पार कर पाते हैं, उसे हम तुम्हारे सहारे अनायास ही पार कर लेंगे। अरे बेटा! तुम इस यमराजके साथ दूर मत जाओ। देखो, यह तो बड़ा ही निर्दयी है। मेरे प्यारे लल्ला! ओ राजकुमार! उठो बेटा! देखो, तुम्हारे साथी बालक तुम्हें खेलनेके लिये बुला रहे हैं। तुम्हें सोते-सोते बहुत देर हो गयी, अब भूख लगी होगी। उठो, कुछ खा लो। और कुछ नहीं तो मेरा दूध ही पी लो और अपने स्वजन-सम्बन्धियोंका शोक दूर करो। प्यारे लाल! आज मैं तुम्हारे मुखारविन्दपर भोलीभाली मुसकराहट और तुम्हारी आनन्दभरी चितवन नहीं देख रही हूँ। मैं बड़ी अभागिनी हूँ। हाय-हाय! अब भी मुझे तुम्हारी सुमधुर तोतली बोली नहीं सुनायी दे रही है। क्या सचमुच निठुर यमराज तुम्हें उस परलोकमें ले गया, जहाँसे फिर कोई लौटकर नहीं आता?' ॥५४—५८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब सम्राट् चित्रकेतुने देखा कि मेरी रानी अपने पुत्रके लिये इस प्रकार भाँति-भाँतिसे विलाप कर रही है, तो वे शोकसे अत्यन्त सन्तप्त हो फूट-फूटकर रोने लगे। राजा-रानीके इस प्रकार विलाप करनेपर उनके अनुगामी स्त्री-पुरुष भी दुखित होकर रोने लगे। इस प्रकार सारा नगर ही शोकसे अचेत-सा हो गया। राजन्! महर्षि अङ्गिरा और देवर्षि नारदने देखा कि राजा चित्रकेतु पुत्रशोकके कारण चेतनाहीन हो रहे हैं, यहाँतक कि उन्हें समझानेवाला भी कोई नहीं है। तब वे दोनों वहाँ आये ॥५९—६१॥

परीक्षित्‌का प्रश्न थोड़े शब्दोंमें बड़ा सारगर्भित था। उन्होंने बड़े आदरसे पूछा भी था। इसलिये सर्वज्ञ श्रीशुकदेवजी महाराज ने बड़ी प्रसन्नतासे उनका अभिनन्दन करके यों कहा ॥२२॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परीक्षित्! भगवान् विष्णुने इन्द्रका पक्ष लेकर दितिके दोनों पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षको मार डाला। अतः शोककी आगसे दितिका हृदय जलने लगा। वह क्रोधसे तिलमिलाकर इस प्रकार सोचने लगी—'सचमुच इन्द्र बड़ा विषयी, क्रूर और निर्दयी है। राम! राम! उसने अपने भाइयोंको ही मरवा डाला। वह दिन कब होगा, जब मैं भी इन्द्रको मरवाकर आरामसे सोऊँगी। इस शरीरमें रक्खा ही क्या है। लोग राजाओंके, देवताओंके शरीरको 'प्रभु' कहकर पुकारते हैं, परन्तु वह है क्या? एक दिन वह सड़कर कीड़ा बन जायगा। यदि पक्षी खा लेंगे तो विष्ठा बन जायगा और यदि जला दिया जायगा तो राखका ढेर। ऐसे तुच्छ शरीरके लिये जो दूसरे प्राणियोंको सताता है, उसे अपने सच्चे स्वार्थ या परमार्थका बिल्कुल पता नहीं है। अरे! स्वार्थ और परमार्थकी तो बात अभिनन्दन करते हुए उससे मुसकराकर कहा ॥ २३–३१ ॥

कश्यपजीने कहा—प्रिये! तुम्हारा शरीर एवं सभी चेष्टाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो। पतिके प्रसन्न हो जानेपर पत्नीके लिये लोक या परलोकमें ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो न मिल सके। शास्त्रोंमें यह बात स्पष्ट कही गयी है कि पति ही स्त्रियोंका परमाराध्य इष्टदेव है। प्रिये! लक्ष्मीपति भगवान् वासुदेव ही समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हैं। विभिन्न देवताओंके रूपमें नाम और रूपके भेदसे उन्हींकी कल्पना हुई है। सभी पुरुष—चाहे किसी भी देवताकी उपासना करें—उन्हींकी उपासना करते हैं। ठीक वैसे ही स्त्रियोंके लिये भगवान्‌ने पतिका रूप धारण किया है। वे उनकी उसी रूपमें पूजा करती हैं। इसलिये प्रिये! अपना कल्याण चाहनेवाली पतिव्रता स्त्रियाँ अनन्य प्रेमभावसे अपने पतिदेवकी ही पूजा करती हैं, क्योंकि पतिदेव ही उनके परम प्रियतम आत्मा और ईश्वर हैं। कल्याणी! तुमने बड़े प्रेमभावसे, भक्तिसे मेरी वैसी ही पूजा की है। अब मैं तुम्हारी सब अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा। असतियोंके जीवनमें ऐसा अवसर कभी आ नहीं सकता ॥ ३२–३६ ॥

दितिने कहा—आर्यपुत्र! ब्रह्मन्! इन्द्रने विष्णुके हाथों मेरे दो पुत्र मरवाकर मुझे निपूती बना दिया है। इसलिये यदि आप मुझे मुँहमाँगा वर देना चाहते हैं तो कृपा करके एक ऐसा अमर पुत्र दीजिये, जो इन्द्रको मार डाले ॥३७॥

परीक्षित्! दितिकी बात सुनकर कश्यपजी खिन्न होकर पछताने लगे। वे मन-ही-मन कहने लगे—'हाय! हाय! आज मेरे जीवनमें बहुत बड़े अधर्मका अवसर आ पहुँचा। देखो तो सही, अब मैं इन्द्रियोंके विषयोंमें सुख मानने लगा हूँ। स्त्रीरूपिणी मायाने मेरे चित्तको अपने वशमें कर लिया है। हाय! हाय! आज मैं कितनी दीन-हीन अवस्थामें हूँ। अवश्य ही अब मुझे नरकमें गिरना पड़ेगा। इस स्त्रीका कोई दोष नहीं है। क्योंकि इसने अपने जन्मजात स्वभावका ही अनुसरण किया है। दोष तो मेरा है—जो मैं अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें न रख सका, अपने सच्चे स्वार्थ और परमार्थको न समझ सका। मुझ मूढको बार-बार धिक्कार है। लानत है मेरे इस जीवनपर! सच है, स्त्रियोंके चरित्रका किसीको पता नहीं चलता। इनका मुँह तो ऐसा होता है मानो शरद्‌ऋतुका खिला हुआ कमल हो। बातें सुननेमें ऐसी होती हैं मानो अमृत घोल रक्खा हो। परन्तु हृदय!

भोगोंमें फँसा हुआ, मूढ़बुद्धि ग्राम्य पशु हूँ और अज्ञानके घोर अन्धकारमें डूब रहा हूँ। आपलोग मुझे ज्ञानकी ज्योतिसे प्रकाशके केन्द्रमें लाइये ॥१०—१६॥

महर्षि अङ्गिराने कहा—राजन्! जिस समय तुम पुत्रके लिये बहुत इच्छुक थे, तब मैंने ही तुम्हें पुत्रदान किया था। मैं अङ्गिरा हूँ। ये जो तुम्हारे सामने खड़े हैं, स्वयं ब्रह्माजीके पुत्र सर्वसमर्थ देवर्षि नारद हैं। जब हमलोगोंने देखा कि तुम पुत्रशोकके कारण बहुत ही घने अज्ञानान्धकारमें डूब रहे हो, तब सोचा कि तुम भगवान्‌के भक्त हो, शोक करनेके योग्य नहीं हो। अतः तुमपर अनुग्रह करनेके लिये ही हम दोनों यहाँ आये हैं। राजन्! सच्ची बात तो यह है कि जो भगवान् और ब्राह्मणोंका भक्त है, उसे किसी अवस्थामें शोक नहीं करना चाहिये। देखो, जिस समय पहले-पहल मैं तुम्हारे पास आया था, उसी समय मैं तुम्हें परम ज्ञानका उपदेश करता; परन्तु मैंने देखा कि अभी तो तुम्हारे हृदयमें पुत्रकी उत्कट लालसा है, इसलिये उस समय तुम्हें ज्ञान न देकर मैंने पुत्र ही दिया। तब तुम्हारी कल्पना थी कि पुत्रमें सुख है, परन्तु अब तुम स्वयं ही अनुभव कर रहे हो कि पुत्रवानोंको कितना दुःख होता है। यह बात केवल पुत्रके लिये ही नहीं है। स्त्री, घर, धन, विविध प्रकारके ऐश्वर्य, सम्पत्तियाँ, शब्द-रूप-रस आदि विषय, राज्यवैभव, पृथ्वी, राज्य, सेना, खजाना, सेवक, अमात्य, सगे-सम्बन्धी, इष्ट-मित्र—सब-के-सब अनित्य हैं, अतएव शोक, मोह, भय और दुःखके कारण हैं। ये सभी पदार्थ मनके खेल-खिलौने हैं, सर्वथा कल्पित और मिथ्या हैं; क्योंकि ये न होनेपर भी दिखायी पड़ रहे हैं। यही कारण है कि ये एक क्षण दीखनेपर भी दूसरे क्षण लुप्त हो जाते हैं। ये गन्धर्वनगर, स्वप्न, जादू और मनोरथकी वस्तुओंके समान सर्वथा असत्य हैं। जो लोग कर्म-वासनाओंसे प्रेरित होकर विषयोंका चिन्तन करते रहते हैं, उन्हींका मन अनेक प्रकारके कर्मोंकी सृष्टि करता है। जीवात्माकी यह देह—जो पञ्चभूत, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियोंका संघात है—जीवको विविध प्रकारके क्लेश और सन्ताप देती रहती है। इसलिये तुम अपने मनको विषयोंमें भटकनेसे रोककर शान्त करो, स्वस्थ करो और फिर अपने वास्तविक स्वरूपका विचार करो। तथा इस द्वैत-भ्रममें नित्यत्वकी बुद्धि छोड़कर परम शान्तिस्वरूप परमात्मामें स्थित हो जाओ ॥१७—२६॥

देवर्षि नारदने कहा—राजन्! तुम एकाग्र चित्तसे मुझसे यह मन्त्रोपनिषद् ग्रहण करो। इसे धारण करनेसे सात रातमें ही तुम्हें भगवान् सङ्कर्षणका दर्शन होगा। राजेन्द्र! प्राचीन कालमें भगवान् शङ्कर आदिने श्रीसङ्कर्षणदेवके ही चरणकमलोंका आश्रय लिया था। इससे उन्होंने द्वैतभ्रमका परित्याग कर दिया और उनकी उस महिमाको प्राप्त हुए, जिससे बढ़कर तो कोई है ही नहीं, समान भी नहीं है। तुम भी बहुत शीघ्र ही भगवान्‌के उसी परमपदको प्राप्त कर लोगे ॥ २७-२८ ॥

सोलहवाँ अध्याय

चित्रकेतुका वैराग्य तथा सङ्कर्षणदेवके दर्शन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! तदनन्तर देवर्षि नारदने मृत राजकुमारके जीवात्माको शोकाकुल स्वजनोंके सामने प्रत्यक्ष बुलाकर कहा ॥ १ ॥

देवर्षि नारदने कहा—जीवात्मन्! तुम्हारा कल्याण हो। देखो, तुम्हारे माता-पिता, सुहृद्-सम्बन्धी तुम्हारे बिछोहसे अत्यन्त शोकाकुल हो रहे हैं। इसलिये तुम अपने शरीरमें आ जाओ और शेष आयु अपने सगे-सम्बन्धियोंके साथ ही रहकर व्यतीत करो। अपने पिताके दिये हुए भोगोंको भोगो और राजसिंहासनपर बैठो ॥ २-३ ॥

जीवात्माने कहा—देवर्षिजी! मैं अपने कर्मोंके अनुसार देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि योनियोंमें न जाने कितने जन्मोंसे भटक रहा हूँ। उनमेंसे ये लोग किस जन्ममें मेरे माता-पिता हुए? विभिन्न जन्मोंमें सभी एक-दूसरेके भाई-बन्धु, नाती-गोती, शत्रु-मित्र, मध्यस्थ, उदासीन और द्वेषी होते रहते हैं। जैसे सुवर्ण आदि क्रय-विक्रयकी वस्तुएँ एक व्यापारीसे दूसरेके पास जाती-आती रहती हैं, वैसे ही जीव भी भिन्न-भिन्न योनियोंमें उत्पन्न होता रहता है। इस प्रकार विचार करनेसे पता लगता है कि मनुष्योंकी अपेक्षा अधिक दिन ठहरनेवाले सुवर्ण आदि पदार्थोंका सम्बन्ध भी मनुष्योंके साथ स्थायी नहीं, क्षणिक ही होता है; और जबतक जिसका जिस वस्तुसे सम्बन्ध रहता है, तभीतक उसकी उस वस्तुसे ममता भी रहती है। जीव नित्य और अहङ्काररहित है। वह गर्भमें आकर जबतक जिस शरीरमें रहता है, तभीतक उस शरीरको अपना समझता है। सच पूछिये

परीक्षित्‌का प्रश्न थोड़े शब्दोंमें बड़ा सारगर्भित था। उन्होंने बड़े आदरसे पूछा भी था। इसलिये सर्वज्ञ श्रीशुकदेवजी महाराजने बड़ी प्रसन्नतासे उनका अभिनन्दन करके यों कहा ॥२२॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परीक्षित्! भगवान् विष्णुने इन्द्रका पक्ष लेकर दितिके दोनों पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षको मार डाला। अतः शोककी आगसे दितिका हृदय जलने लगा। वह क्रोधसे तिलमिलाकर इस प्रकार सोचने लगी—'सचमुच इन्द्र बड़ा विषयी, क्रूर और निर्दयी है। राम! राम! उसने अपने भाइयोंको ही मरवा डाला। वह दिन कब होगा, जब मैं भी इन्द्रको मरवाकर आरामसे सोऊँगी। इस शरीरमें रक्खा ही क्या है। लोग राजाओंके, देवताओंके शरीरको 'प्रभु' कहकर पुकारते हैं, परन्तु वह है क्या? एक दिन वह सड़कर कीड़ा बन जायगा। यदि पक्षी खा लेंगे तो विष्ठा बन जायगा और यदि जला दिया जायगा तो राखका ढेर। ऐसे तुच्छ शरीरके लिये जो दूसरे प्राणियोंको सताता है, उसे अपने सच्चे स्वार्थ या परमार्थका बिल्कुल पता नहीं है। अरे! स्वार्थ और परमार्थकी तो बात ही क्या, उसे तो नरकमें जाना पड़ेगा! मैं समझती हूँ इन्द्र अपने शरीरको नित्य मानकर मतवाला हो रहा है। उसे अपने विनाशका पता ही नहीं है। अब मैं वह उपाय करूँगी, जिससे मुझे ऐसा पुत्र प्राप्त हो जो इन्द्रका घमंड चूर चूर कर दे।' प्रिय परीक्षित्! दिति अपने मनमें ऐसा विचार करके सेवा शुश्रूषा, विनय प्रेम और जितेन्द्रियता आदिके द्वारा निरन्तर अपने पतिदेव कश्यपजीको प्रसन्न रखने लगी। वह अपने पतिदेवके हृदयका एक एक भाव जानती रहती थी और परम प्रेमभाव, मन हरनेवाली मीठी मीठी बातें तथा मुसकानभरी तिरछी चितवनसे उनका मन अपनी ओर आकर्षित करती रहती थी। इसमें सन्देह नहीं कि कश्यपजी महाराज बड़े विद्वान् और विचारवान् थे। परन्तु वे भी चतुर दितिकी सेवासे मोहित हो गये और उन्होंने विवश होकर यह स्वीकार कर लिया कि 'मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा।' परीक्षित्! इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि स्त्रीके वशमें हो जानेपर ऐसा करना तो स्वाभाविक ही है। सृष्टिके प्रभातमें ब्रह्माजीने देखा कि सभी जीव असङ्ग हो रहे हैं। तब उन्होंने अपने आधे शरीरसे स्त्रियोंकी सृष्टि की। और स्त्रियोंने जीवोंकी मति अपनी ओर आकर्षित कर ली। हाँ, तो मैं कह रहा था कि दितिने भगवान् कश्यपकी बड़ी सेवा की। इससे वे उसपर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने दितिका अभिनन्दन करते हुए उससे मुसकराकर कहा ॥ २३–३१ ॥

कश्यपजीने कहा—प्रिये! तुम्हारा शरीर एवं सभी चेष्टाएँ अत्यन्त सुन्दर हैं। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो। पतिके प्रसन्न हो जानेपर पत्नीके लिये लोक या परलोकमें ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो न मिल सके। शास्त्रोंमें यह बात स्पष्ट कही गयी है कि पति ही स्त्रियोंका परमाराध्य इष्टदेव है। प्रिये! लक्ष्मीपति भगवान् वासुदेव ही समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान हैं। विभिन्न देवताओंके रूपमें नाम और रूपके भेदसे उन्हींकी कल्पना हुई है। सभी पुरुष—चाहे किसी भी देवताकी उपासना करें—उन्हींकी उपासना करते हैं। ठीक वैसे ही स्त्रियोंके लिये भगवान्‌ने पतिका रूप धारण किया है। वे उनकी उसी रूपमें पूजा करती हैं। इसलिये प्रिये! अपना कल्याण चाहनेवाली पतिव्रता स्त्रियाँ अनन्य प्रेमभावसे अपने पतिदेवकी ही पूजा करती हैं, क्योंकि पतिदेव ही उनके परम प्रियतम आत्मा और ईश्वर हैं। कल्याणी! तुमने बड़े प्रेमभावसे, भक्तिसे मेरी वैसी ही पूजा की है। अब मैं तुम्हारी सब अभिलाषाएँ पूर्ण कर दूँगा। असतियोंके जीवनमें ऐसा अवसर कभी आ नहीं सकता ॥ ३२–३६ ॥

दितिने कहा—आर्यपुत्र! ब्रह्मन्! इन्द्रने विष्णुके हाथों मेरे दो पुत्र मरवाकर मुझे निपूती बना दिया है। इसलिये यदि आप मुझे मुँहमाँगा वर देना चाहते हैं तो कृपा करके एक ऐसा अमर पुत्र दीजिये, जो इन्द्रको मार डाले ॥३७॥

परीक्षित्! दितिकी बात सुनकर कश्यपजी खिन्न होकर पछताने लगे। वे मन ही मन कहने लगे—'हाय! हाय! आज मेरे जीवनमें बहुत बड़े अधर्मका अवसर आ पहुँचा। देखो तो सही, अब मैं इन्द्रियोंके विषयोंमें सुख मानने लगा हूँ। स्त्रीरूपिणी मायाने मेरे चित्तको अपने वशमें कर लिया है। हाय! हाय! आज मैं कितनी दीन हीन अवस्थामें हूँ। अवश्य ही अब मुझे नरकमें गिरना पड़ेगा। इस स्त्रीका कोई दोष नहीं है। क्योंकि इसने अपने जन्मजात स्वभावका ही अनुसरण किया है। दोष तो मेरा है—जो मैं अपनी इन्द्रियोंको अपने वशमें न रख सका, अपने सच्चे स्वार्थ और परमार्थको न समझ सका। मुझ मूढको बार बार धिक्कार है। लानत है मेरे इस जीवनपर! सच है, स्त्रियोंके चरित्रका किसीको पता नहीं चलता। इनका मुँह तो ऐसा होता है मानो शरद्‌ऋतुका खिला हुआ कमल हो। बातें सुननेमें ऐसी मीठी होती हैं मानो अमृत घोल रक्खा हो। परन्तु हृदय!

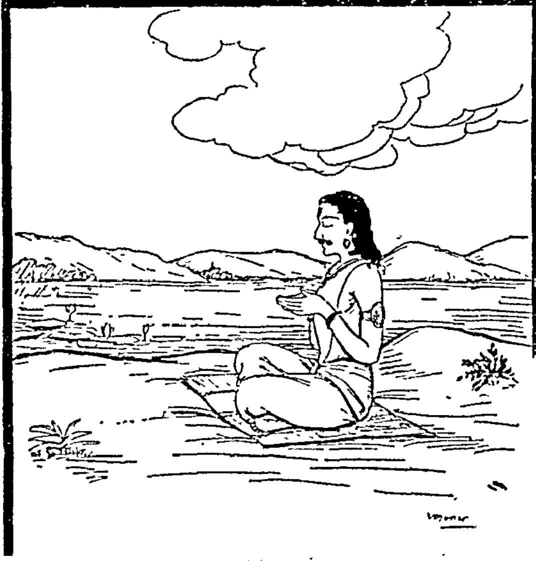
कौन सा उपाय करूँ, जिससे मेरा कल्याण हो ॥ ५५–५९ ॥

एक दिनकी बात है। दिति व्रतके नियमोंका पालन करते-करते बहुत दुर्बल हो गयी थी। विधिका विधान भी कुछ ऐसा ही था। इसलिये सन्ध्याके समय जूठे मुँह, बिना आचमन किये और बिना पैर धोये ही वह सो गयी। परमयोगी इन्द्रने देखा कि यह तो अच्छा अवसर हाथ लगा। वे योगबलसे झटपट सोई हुई दितिके गर्भमें प्रवेश कर गये। उन्होंने वहाँ जाकर सोनेके समान चमकते हुए गर्भके वज्रके द्वारा सात टुकड़े कर दिये। जब वह गर्भ रोने लगा, तो उन्होंने 'मत रो, मत रो' ऐसा कहकर सातों टुकड़ोंमेंसे एक एकके और भी सात सात टुकड़े कर दिये। राजन्! जब इस प्रकार इन्द्रने उनके टुकड़े टुकड़े कर डाले, तब उन्होंने हाथ जोड़कर इन्द्रसे कहा—'देवराज! तुम हमें क्यों मार रहे हो? हम तो तुम्हारे भाई मरुद्गण हैं।' तब इन्द्रने अपने भावी अनन्यप्रेमी पार्षद मरुद्गणसे कहा—'अच्छी बात है, तुमलोग मेरे भाई हो। अब मत डरो।' परीक्षित्! जैसे अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ, वैसे ही भगवान् श्रीहरिकी कृपासे दितिका वह गर्भ वज्रके द्वारा टुकड़े टुकड़े होनेपर भी मरा नहीं। इसमें तनिक भी आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि जो मनुष्य एक बार भी आदिपुरुष भगवान् नारायणकी आराधना कर लेता है, वह उनकी समानता प्राप्त कर लेता है, फिर दितिने तो कुछ ही दिन कम एक वर्षतक भगवान्की आराधना की थी। हाँ, तो अब वे उनचास मरुद्गण इन्द्रके साथ मिलकर पचास हो गये। इन्द्रने भी सौतेली माताके पुत्रोंके साथ शत्रुभाव न रखकर उन्हें सोमपायी देवता बना लिया। जब दितिकी नींद टूटी, उसकी आँख खुली, तब उसने देखा कि उसके अग्निके समान तेजस्वी उनचास बालक इन्द्रके साथ हैं। इससे सुन्दरी दितिको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने इन्द्रको सम्बोधन करके कहा—'बेटा! मैं इस इच्छासे यह कठिन व्रत पालन कर रही थी कि तुम—अदितिके पुत्रोंको भयभीत करनेवाला पुत्र उत्पन्न हो। और मैंने तो केवल एक ही पुत्रके लिये सङ्कल्प किया था। फिर ये उनचास पुत्र क्यों और कैसे हो गये? बेटा इन्द्र! यदि तुम्हें इसका रहस्य मालूम हो, तो सच-सच मुझे बतला दो। देखो—झूठ न बोलना, भला' ॥ ६०–७० ॥

इन्द्रने कहा—माता! मुझे इस बातका पता चल गया था कि तुम किस उद्देश्यसे व्रत कर रही हो। इसीलिये अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके उद्देश्यसे मैं स्वर्ग छोड़कर तुम्हारे पास आया। मेरे मनमें तनिक भी धर्म भावना नहीं थी। इसीसे आपके व्रतमें त्रुटि होते ही मैंने उस गर्भके टुकड़े टुकड़े कर दिये। पहले मैंने उसके सात टुकड़े किये थे। तब वे सातों टुकड़े सात बालक बन गये। इसके बाद मैंने फिर एक एकके सात सात टुकड़े कर दिये। तब भी वे न मरे, बल्कि उनचास हो गये। यह परम आश्चर्यमयी घटना देखकर मैंने ऐसा निश्चय किया कि परमपुरुष भगवान्की उपासनाकी यह कोई स्वाभाविक सिद्धि है। जो लोग निष्काम भावसे भगवान्की आराधना करते हैं और दूसरी वस्तुओंकी तो बात ही क्या, मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते—सच पूछो तो, वे ही अपने स्वार्थ और परमार्थमें निपुण हैं। भगवान् जगदीश्वर सबके आराध्यदेव और अपने आत्मा ही हैं। वे प्रसन्न होकर आत्मदान कर देते हैं। भला, ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो उनकी आराधना करके विषयभोगोंका वरदान माँगे। माताजी! ये विषयभोग तो नरकमें भी मिल सकते हैं। मेरी स्नेहमयी जननी! तुम सब प्रकार मेरी पूज्या हो। मैंने मूर्खतावश बड़ी दुष्टताका काम किया है। तुम मेरे अपराधको क्षमा कर दो। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा गर्भ खण्ड खण्ड हो जानेसे एक प्रकार मर जानेपर भी फिरसे जीवित हो गया ॥ ७१–७६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! दिति देवराज इन्द्रके शुद्धभावसे सन्तुष्ट हो गयी। उससे आज्ञा लेकर देवराज इन्द्रने मरुद्गणोंके साथ उसे नमस्कार किया और स्वर्गमें चले गये। राजन्! यह मरुद्गणका जन्म बड़ा ही मङ्गलमय है। इसके विषयमें तुमने मुझसे जो प्रश्न किया था, उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो? ॥ ७७ ७८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवर्षि नारद अपने शरणागत भक्त चित्रकेतुको इस विद्याका उपदेश करके महर्षि अङ्गिराके साथ ब्रह्मलोकको चले गये। राजा चित्रकेतुने देवर्षि नारदके द्वारा उपदिष्ट विद्याका उनके आज्ञानुसार सात दिनतक केवल



जल पीकर बड़ी एकाग्रताके साथ अनुष्ठान किया। तदनन्तर उस विद्याके अनुष्ठानसे सात रातके पश्चात् राजा चित्रकेतुको विद्याधरोंका अखण्ड आधिपत्य प्राप्त हुआ। इसके बाद कुछ ही दिनोंमें इस विद्याके प्रभावसे उनका मन और भी शुद्ध हो गया। अब वे देवाधिदेव भगवान् शेषजीके चरणोंके समीप पहुँच गये। उन्होंने देखा कि भगवान् शेषजी सिद्धेश्वरोंके मण्डलमें विराजमान हैं। उनका शरीर कमलनालके समान गौरवर्ण है। उसपर नीले रंगका वस्त्र फहरा रहा है। सिरपर किरीट, बाँहोंमें बाजूबंद, कमरमें करधनी और कलाईमें कंगन आदि आभूषण सुशोभित हो रहे हैं। नेत्र रतनारे हैं और मुखपर प्रसन्नता छा रही है। भगवान् शेषका दर्शन करते ही राजर्षि चित्रकेतुके सारे पाप नष्ट हो गये। उनका अन्तःकरण स्वच्छ और निर्मल हो गया। हृदयमें भक्तिभावकी बाढ़ आ गयी। नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये। शरीरका एक-एक रोम खिल उठा। उन्होंने ऐसी ही स्थितिमें आदिपुरुष भगवान् शेषको नमस्कार किया। उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू टप-टप गिरते जा रहे थे। इससे भगवान् शेषके चरण रखनेकी चौकी भीग गयी। प्रेमोद्रेकके कारण उनके मुँहसे एक अक्षर भी न निकल सका। वे बहुत देरतक शेषभगवान्‌की कुछ भी स्तुति न कर सके। थोड़ी देर बाद उन्हें बोलनेकी कुछ-कुछ शक्ति प्राप्त हुई। अब उन्होंने विवेकबुद्धिसे मनको समाहित किया और सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी बाह्यवृत्तिको रोका। फिर उन जगद्गुरुकी, जिनके स्वरूपका पाञ्चरात्र आदि भक्ति-शास्त्रोंमें वर्णन किया गया है, इस प्रकार स्तुति की ॥ २६—३३ ॥

चित्रकेतुने कहा—प्रभो! यद्यपि आप सभीके लिये अजेय हैं, फिर भी जितेन्द्रिय एवं समदर्शी साधुओंने आपको जीत लिया है। आप भक्तवत्सलतावश उनके अधीन हो गये हैं। साथ ही आपने भी अपने सौन्दर्य, माधुर्य, कारुण्य आदि गुणोंसे उनको अपने वशमें कर लिया है। अहो, आप धन्य हैं! क्योंकि जो निष्कामभावसे आपका भजन करते हैं, उन्हें आप करुणापरवश होकर अपने-आपका भी दान कर देते हैं। भगवन्! जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आपका लीला-विलास है। विश्वनिर्माता ब्रह्मा आदि आपके अंशके भी अंश हैं। फिर भी वे पृथक्-पृथक् अपनेको जगत्कर्ता मानकर झूठमूठ एक-दूसरेसे स्पर्धा करते हैं। नन्हे-से-नन्हे परमाणुसे लेकर बड़े-से-बड़े महत्तत्त्वपर्यन्त सम्पूर्ण वस्तुओंके आदि, अन्त और मध्यमें आप ही विराजमान हैं तथा स्वयं आप आदि, अन्त और मध्य—इन तीन अवस्थाओंसे रहित हैं। सच्ची बात तो यह है कि परमाणु, महत्तत्त्व आदि कुछ भी नहीं हैं; केवल आप-ही-आप हैं। क्योंकि किसी भी पदार्थके आदि और अन्तमें जो वस्तु रहती है, वही मध्यमें भी रहती है। वास्तवमें वही सत्य है; आदि-अन्तवाली वस्तुएँ सर्वथा मिथ्या, प्रतीतिमात्र हैं। यह ब्रह्माण्डकोष, जो जल आदि एक-से-एक दसगुने सात आवरणोंसे घिरा हुआ है, अपने ही समान दूसरे करोड़ों ब्रह्माण्डोंके सहित आपमें एक परमाणुके समान घूमता रहता है और फिर भी उसे आपकी सीमाका पता नहीं है। इसलिये आप अनन्त हैं। जो नरपशु केवल विषयभोग ही चाहते हैं, वे आपका भजन न करके आपके विभूतिस्वरूप इन्द्रादि देवताओंकी उपासना करते हैं। प्रभो! जैसे राजकुलका नाश होनेके पश्चात् उसके अनुयायियोंकी जीविका भी जाती रहती है, वैसे ही क्षुद्र उपास्यदेवोंका ह्रास होनेपर उनके दिये हुए भोग भी नष्ट हो जाते हैं। परमात्मन्! आप ज्ञानस्वरूप और निर्गुण हैं। इसलिये आपके प्रति की हुई सकाम भावना भी अन्यान्य कर्मोंके समान जन्म-मृत्युरूप फल देनेवाली नहीं होती, जैसे भुने हुए बीजोंसे अङ्कुर नहीं उगते। क्योंकि जीवको जो सुख-दुःख आदि द्वन्द्व प्राप्त होते हैं वे सत्त्वादि गुणोंसे ही होते हैं, **निर्गुणसे** नहीं। हे अजित! जिस समय आपने विशुद्ध

हो तो बड़ी एकाग्रता और सावधानीसे पतिको ही इसका अनुष्ठान करना चाहिये। यह भगवान् विष्णुका व्रत है। इसका नियम लेकर बीचमें कभी नहीं छोड़ना चाहिये। जो यह नियम ग्रहण करे वह प्रतिदिन माला, चन्दन, नैवेद्य और आभूषण आदिसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मण और सुहागिनी स्त्रियोंका पूजन करे तथा भगवान् विष्णुकी भी पूजा करे। इसके बाद भगवान्‌को उनके धाममें पधरा दे, विसर्जन कर दे। तदनन्तर आत्मशुद्धि और समस्त अभिलाषाओंकी पूर्तिके लिये पहलेहीसे उन्हें निवेदित किया हुआ प्रसाद ग्रहण करे। साध्वी स्त्री इस विधिसे बारह महीनेतक—पूरे साल भर इस व्रतका आचरण करके मार्गशीर्षकी अमावस्याको उद्यापनसम्बन्धी उपवास और पूजन आदि करे। उस दिन प्रातःकाल ही स्नान करके पूर्ववत् विष्णुभगवान्‌का पूजन करे और उसका पति पाकयज्ञकी विधिसे घृतमिश्रित खीरकी अग्निमें बारह आहुति दे। इसके बाद जब ब्राह्मण प्रसन्न होकर उसे आशीर्वाद दें, तो बड़े आदरसे सिर झुकाकर उन्हें स्वीकार करे। भक्तिभावसे माथा टेककर उनके चरणोंमें प्रणाम करे और उनकी आज्ञा लेकर भोजन करे। भोजनके समय मौन रहे और पहले आचार्यको भोजन करावे, तब भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं भोजन करे। इसके बाद हवनसे बची हुई घृतमिश्रित खीर अपनी पत्नीको दे। वह प्रसाद स्त्रीको सत्पुत्र और सौभाग्य दान करनेवाला होता है॥ १५—२४॥

परीक्षित्! भगवान्‌के इस पुंसवन व्रतका जो विधिपूर्वक अनुष्ठान करता है, उसे उसकी मनचाही वस्तु मिल जाती है। स्त्री इस व्रतका पालन करके सौभाग्य, सम्पत्ति, सन्तान, यश और गृह प्राप्त करती है तथा उसका पति चिरायु हो जाता है। इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाली कन्या समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त पति प्राप्त करती है और विधवा इस व्रतसे निष्पाप होकर वैकुण्ठमें जाती है। जिसके बच्चे मर जाते हों, वह स्त्री इसके प्रभावसे चिरायु पुत्र प्राप्त करती है। धनवती किन्तु अभागिनी स्त्रीको सौभाग्य प्राप्त होता है और कुरूपाको श्रेष्ठ रूप मिल जाता है। रोगी इस व्रतके प्रभावसे रोगसे मुक्त होकर बलिष्ठ शरीर और श्रेष्ठ इन्द्रिय शक्ति प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य माङ्गलिक श्राद्धकर्मोंमें इसका पाठ करता है, उसके पितर और देवता अनन्त तृप्ति लाभ करते हैं और सन्तुष्ट होकर हवनके समाप्त होनेपर व्रतीकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर देते हैं। ये सब तो सन्तुष्ट होते ही हैं, समस्त यज्ञोंके एकमात्र भोक्ता भगवान् लक्ष्मीनारायण भी सन्तुष्ट हो जाते हैं और व्रतीकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर देते हैं। परीक्षित्! मैंने तुम्हें मरुद्गणकी आदरणीय और पुण्यप्रद जन्म कथा सुनायी और साथ ही दितिके श्रेष्ठ पुंसवन व्रतका वर्णन भी सुना दिया॥ २५—२८॥

षष्ठ स्कन्ध समाप्त



और दुःखोंसे पिण्ड छूटे; परन्तु उन कर्मोंसे न तो उनका दुःख दूर होता है और न उन्हें सुखकी ही प्राप्ति होती है। जो मनुष्य अपनेको बहुत बड़ा बुद्धिमान् मानकर कर्मके पचड़ोंमें पड़े हुए हैं, उनको विपरीत फल मिलता है—यह बात समझ लेनी चाहिये; साथ ही यह भी जान लेना चाहिये कि आत्माका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओं तथा इनके अभिमानियोंसे विलक्षण है। यह जानकर इस लोकमें देखे और परलोकके सुने हुए विषयभोगोंसे विवेकबुद्धिके द्वारा अपना पिण्ड छुड़ा ले और ज्ञान तथा विज्ञानमें ही सन्तुष्ट रहकर मेरी प्रेममयी अनन्य भक्तिमें लीन हो जाय। जो लोग योगमार्गका तत्त्व समझनेमें निपुण हैं, उनको भलीभाँति समझ लेना चाहिये कि जीवका सबसे बड़ा स्वार्थ और परमार्थ केवल इतना ही है कि वह ब्रह्म और आत्माकी एकताका अनुभव कर ले। राजन्! यदि तुम मेरे इस उपदेशको सावधान होकर श्रद्धाभावसे धारण करोगे तो ज्ञान एवं विज्ञानसे सम्पन्न होकर शीघ्र ही सिद्ध हो जाओगे॥ ५०—६४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! जगद्गुरु विश्वात्मा भगवान् श्रीहरि चित्रकेतुको इस प्रकार समझा-बुझाकर उनके सामने ही वहाँसे अन्तर्धान हो गये॥ ६५॥

सत्रहवाँ अध्याय

चित्रकेतुको पार्वतीजीका शाप

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् सङ्कर्षण जिस दिशामें अन्तर्धान हुए थे, उसे नमस्कार करके विद्याधर चित्रकेतु आकाशमार्गसे स्वच्छन्द विचरने लगे। महायोगी चित्रकेतु करोड़ों वर्षोंतक सब प्रकारके सङ्कल्पोंको पूर्ण करनेवाली सुमेरु पर्वतकी घाटियोंमें विहार करते रहे। उनके शरीरका बल और इन्द्रियोंकी शक्ति अक्षुण्ण रही। बड़े-बड़े मुनि, सिद्ध, चारण उनकी स्तुति करते रहते। उनकी प्रेरणासे विद्याधरोंकी स्त्रियाँ उनके पास सर्वशक्तिमान् भगवान्‌के गुण और लीलाओंका गायन करती रहतीं। एक दिनकी बात है, चित्रकेतु भगवान्‌के दिये हुए तेजोमय विमानपर सवार होकर कहीं जा रहे थे। इसी समय उन्होंने देखा कि भगवान् शङ्कर बड़े-बड़े मुनियोंकी सभामें सिद्ध-चारणोंके बीच बैठे हुए हैं और साथ ही भगवती पार्वतीको अपनी गोदमें बैठाकर एक हाथसे उन्हें आलिङ्गन किये हुए हैं। यह देखकर चित्रकेतु विमानपर चढ़े हुए ही उनके पास चले गये और भगवती पार्वतीको सुना-सुनाकर हँसने और कहने लगे॥ १—५॥

चित्रकेतुने कहा—अहो, ये सारे जगत्‌के धर्मशिक्षक और गुरुदेव हैं। ये समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ हैं। इनकी यह दशा है कि भरी सभामें अपनी पत्नीको शरीरसे चिपकाकर बैठे हुए हैं। जटाधारी, बहुत बड़े तपस्वी एवं ब्रह्मवादियोंके सभापति होकर भी साधारण पुरुषके समान निर्लज्जतासे गोदमें स्त्री लेकर बैठे हैं। प्रायः साधारण पुरुष भी एकान्तमें ही स्त्रियोंके साथ उठते-बैठते हैं, परन्तु ये इतने बड़े व्रतधारी होकर भी उसे भरी सभामें लिये बैठे हैं!॥ ६—८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् शङ्करकी बुद्धि अगाध है। चित्रकेतुका यह कटाक्ष सुनकर वे हँसने लगे, कुछ भी बोले नहीं। उस सभामें बैठे हुए दूसरे सदस्यगण भी चुप रहे। सच पूछो तो चित्रकेतुको भगवान् शङ्करका प्रभाव नहीं मालूम था। इसीसे वे उनके लिये बहुत-कुछ बुरा-भला बक रहे थे। उन्हें इस बातका घमंड हो गया था कि 'मैं जितेन्द्रिय हूँ।' पार्वतीजीने उनकी यह धृष्टता देखकर क्रोधसे कहा॥ ९—१०॥

पार्वतीजीने कहा—अहो, हम-जैसे दुष्ट और निर्लज्जोंका दण्डके बलपर शासन एवं तिरस्कार करनेवाला प्रभु इस संसारमें यही है क्या? जान पड़ता है कि ब्रह्माजी, भृगु-नारद आदि उनके पुत्र, सनकादि परमर्षि, कपिलदेव और मनु आदि बड़े-बड़े महापुरुष धर्मका रहस्य नहीं जानते। तभी तो वे धर्ममर्यादाका उल्लङ्घन करनेवाले भगवान्‌को इस कामसे नहीं रोकते। ब्रह्मा आदि समस्त महापुरुष जिनके चरणकमलोंका ध्यान करते रहते हैं, उन्हीं मङ्गलोंको मङ्गल बनानेवाले जगद्गुरु भगवान्‌का और उनके अनुयायी महात्माओंका इस अधम क्षत्रियने तिरस्कार किया है और शासन करनेकी चेष्टा की है। इसलिये यह ढीठ सर्वथा दण्डका पात्र है। इसे अपने बड़प्पनका घमंड है। यह दुष्ट भगवान् श्रीहरिके उन चरणकमलोंमें रहनेयोग्य नहीं है, जिनकी उपासना बड़े-बड़े सत्पुरुष किया करते हैं। [चित्रकेतुको सम्बोधन कर] अतः दुर्मते! तुम पापमय असुरयोनिमें जाओ। ऐसा होनेसे बेटा! तुम फिर कभी किसी महापुरुषका अपराध नहीं कर सकोगे॥ ११—१५॥

चेदिराज शिशुपाल सबके देखते देखते भगवान् श्रीकृष्णमें समा गया। वहीं देवर्षि नारद भी बैठे हुए थे। इस घटनासे आश्चर्यचकित होकर राजा युधिष्ठिरने बड़े-बड़े मुनियोंसे भरी हुई सभामें, उस यज्ञमण्डपमें ही देवर्षि नारदसे यह प्रश्न किया ॥ १२–१४ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—अहो! यह तो बड़ी विचित्र बात है। परम तत्त्व भगवान् श्रीकृष्णमें समा जाना—यह तो बड़े बड़े अनन्य भक्तोंके लिये भी दुर्लभ है, फिर उन भगवान्‌से द्वेष करनेवाले शिशुपालको यह गति कैसे मिली? नारदजी! पूर्वकालमें राजा वेनने भगवान्‌की निन्दा की थी, उसे तो ऋषियोंने नरकमें डाल दिया था। और शिशुपालको मिली मुक्ति। इसका रहस्य हम सभी जानना चाहते हैं। यह दमघोषका लड़का पापात्मा शिशुपाल और दुर्बुद्धि दन्तवक्त्र दोनों ही जबसे तुतलाकर बोलने लगे थे तबसे अबतक भगवान्‌से द्वेष ही करते रहे हैं। अविनाशी परमब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णको ये पानी पी-पीकर गाली देते रहे हैं। परन्तु इसके फलस्वरूप न तो इनकी जीभमें कोढ ही हुआ और न इन्हें घोर अन्धकारमय नरककी ही प्राप्ति हुई! प्रत्युत जिन भगवान्‌की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है, उन्हींमें ये दोनों सबके देखते देखते अनायास ही लीन हो गये—इसका क्या कारण है? भगवन्! हवाके झोंकेसे लड़खड़ाती हुई दीपककी लौके समान मेरी बुद्धि इस विषयमें बहुत आगा-पीछा कर रही है। आप इस अद्भुत घटनाका रहस्य समझाइये ॥१५–२०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवर्षि नारद राजाके ये प्रश्न सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने युधिष्ठिरको सम्बोधित करके भरी सभामें यह कथा कही ॥ २१ ॥

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर! निन्दा, स्तुति, सत्कार और तिरस्कार इस शरीरके ही तो होते हैं। और इस शरीरकी कल्पना प्रकृति और पुरुषका ठीक ठीक विवेक न होनेके कारण ही हुई है। जब इस शरीरको ही अपना आत्मा मान लिया जाता है, तब 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' ऐसा भाव बन जाता है। यही सारे भेदभावका मूल है। इसीके कारण ताड़ना और दुर्वचनोंसे पीड़ा होती है। जिस शरीरमें अभिमान हो जाता है कि 'यह मैं हूँ', उस शरीरके वधसे प्राणियोंको अपना वध जान पड़ता है। किन्तु भगवान्‌में तो जीवोंके समान ऐसा अभिमान है नहीं। क्योंकि वे तो सर्वात्मा हैं। उनके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। वे जो दूसरोंको दण्ड देते हैं—वह भी उनके कल्याणके लिये ही, क्रोधवश अथवा द्वेषवश नहीं। तब भगवान्‌के सम्बन्धमें हिंसाकी कल्पना तो की ही कैसे जा सकती है! इसलिये चाहे सुदृढ वैरभावसे या वैरहीन भक्तिभावसे, भयसे, स्नेहसे अथवा कामनासे—कैसे भी हो, भगवान्‌में अपना मन पूर्णरूपसे लगा देना चाहिये। भगवान्‌की दृष्टिसे इन भावोंमें कोई भेद नहा है। और युधिष्ठिर! मेरा तो ऐसा दृढ निश्चय है कि मनुष्य वैरभावसे भगवान्‌में जितना तन्मय हो जाता है, उतना भक्तियोगसे नहीं! देखो न, भृङ्गी कीड़ेको लाकर भीतपर अपने छिद्रमें बद कर देता है और वह भय तथा उद्वेगसे भृङ्गीका चिन्तन करते करते उसके-जैसा ही हो जाता है। यही बात भगवान् श्रीकृष्णके सम्बन्धमें भी है। लीलाके द्वारा मनुष्य मालूम पड़ते हुए ये सर्वशक्तिमान् भगवान् ही तो हैं। इनसे वैर करनेवाले भी इनका चिन्तन करते करते पापरहित होकर इन्हींको प्राप्त हो गये। युधिष्ठिर! एक नहीं, अनेकों मनुष्य कामसे, द्वेषसे, भयसे और स्नेहसे अपने मनको भगवान्‌में लगाकर एवं अपने सारे पाप धोकर उसी प्रकार भगवान्‌को प्राप्त हुए हैं, जैसे भक्त भक्तिसे। गोपियोंने भगवान्‌से मिलनके तीव्र काम अर्थात् प्रेमसे, कंसने भयसे, शिशुपाल दन्तवक्त्र आदि राजाओंने द्वेषसे, यदुवंशियोंने परिवारके सम्बन्धसे, तुमलोगोंने स्नेहसे और हमलोगोंने भक्तिसे अपने मनको भगवान्‌में लगाया है। भक्तोंके अतिरिक्त जो पाँच प्रकारके भगवान्‌का चिन्तन करनेवाले हैं, उनमेंसे राजा वेनकी तो किसीमें भी गणना नहीं होती। क्योंकि उसने किसी भी प्रकारसे भगवान्‌में मन नहीं लगाया था। इसीलिये उसकी ऐसी दुर्गति हुई। सारांश यह कि चाहे जैसे हो, अपना मन भगवान् श्रीकृष्णमें तन्मय कर देना चाहिये। महाराज! फिर तुम्हारे मौसेरे भाई शिशुपाल और दन्तवक्त्र तो दोनों ही विष्णुभगवान्‌के मुख्य पार्षद थे। ब्राह्मणोंके शापसे इन दोनोंको अपने पदसे च्युत होना पड़ा था ॥ २२–३२ ॥

राजा युधिष्ठिरने पूछा—नारदजी! भगवान्‌के पार्षदों पर भी असर करनेवाला ऐसा शाप किसने दिया था तथा वह कैसा था? भगवान्‌के अनन्य प्रेमी फिर जन्ममृत्युमय संसारमें आवें, यह बात तो कुछ अविश्वसनीय-सी मालूम पड़ती है। वैकुण्ठके रहनेवाले लोग प्राकृत शरीर, इन्द्रिय और प्राणोंसे रहित होते हैं। उनका प्राकृत शरीरसे सम्बन्ध किस प्रकार हुआ, यह बात आप अवश्य सुनाइये ॥ ३३–३४ ॥

नारदजीने कहा—एक दिन ब्रह्माके मानसपुत्र सनकादि ऋषि तीनों लोकोंमें स्वच्छन्द विचरण करते हुए

विष्णुभक्तोंका माहात्म्य है; इसे जो सुनता है, वह समस्त बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। जो पुरुष प्रातःकाल उठकर मौन रहकर श्रद्धाके साथ भगवान्‌का स्मरण करते हुए इस इतिहास-का पाठ करता है, उसे परमगतिकी प्राप्ति होती है॥३६-४१॥

अठारहवाँ अध्याय

अदिति और दितिकी सन्तानोंकी तथा मरुद्गणकी उत्पत्ति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! सविताकी पत्नी पृश्निके गर्भसे आठ सन्तानें हुईं—सावित्री, व्याहृति, त्रयी, अग्निहोत्र, पशु, सोम, चातुर्मास्य और पञ्चमहायज्ञ। भगकी पत्नी सिद्धिने महिमा, विभु और प्रभु—ये तीन पुत्र और आशिष् नामकी एक कन्या उत्पन्न की। यह कन्या बड़ी सुन्दरी और सदाचारिणी थी। धाताकी चार पत्नियाँ थीं—कुहू, सिनीवाली, राका और अनुमति। उनसे क्रमशः सायं, दर्श, प्रातः और पूर्णमास—ये चार पुत्र हुए। धाताके छोटे भाईका नाम था—विधाता, उनकी पत्नी क्रिया थी। उससे पुरीष्य नामके पाँच अग्नियोंकी उत्पत्ति हुई। वरुणजीकी पत्नीका नाम चर्षणी था। उससे भृगुजीने पुनः जन्म ग्रहण किया। इसके पहले वे ब्रह्माजीके पुत्र थे। महायोगी वाल्मीकिजी भी वरुणके पुत्र थे। वल्मीकसे पैदा होनेके कारण ही उनका नाम वाल्मीकि पड़ गया था। उर्वशीको देखकर मित्र और वरुण दोनोंका वीर्य स्खलित हो गया था। उसे उन लोगोंने घड़ेमें रख दिया। उसीसे मुनिवर अगस्त्य और वसिष्ठजीका जन्म हुआ। मित्रकी पत्नी थी रेवती। उसके तीन पुत्र हुए—उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पल। प्रिय परीक्षित्! देवराज इन्द्रकी पत्नी थीं पुलोमनन्दिनी शची। उनके तीन पुत्र हुए—जयन्त, ऋषभ और मीढ्वान्। स्वयं भगवान् विष्णु ही बलिपर अनुग्रह करने और इन्द्रका राज्य लौटानेके लिये मायासे वामन (उपेन्द्र) के रूपमें अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने तीन पग पृथ्वी माँगकर तीनों लोक नाप लिये थे। उनकी पत्नीका नाम था कीर्ति। उससे बृहच्छ्लोक नामका पुत्र हुआ। उसके सौभग आदि कई सन्तानें हुईं। कश्यपनन्दन भगवान् वामनने माता अदितिके गर्भसे क्यों जन्म लिया और इस अवतारमें उन्होंने कौन-से गुण, लीलाएँ और पराक्रम प्रकट किये—इसका वर्णन मैं आगे (आठवें स्कन्धमें) करूँगा॥१-९॥

प्रिय परीक्षित्! इस प्रकार मैंने संक्षेपमें तुम्हें अदितिके बारहों पुत्रोंके वंशका वर्णन सुनाया। अब मैं कश्यपजीकी दूसरी पत्नी दितिसे उत्पन्न होनेवाली उस सन्तान-परम्पराका वर्णन सुनाता हूँ, जिसमें भगवान्‌के प्यारे भक्त श्रीप्रह्लादजी और बलिका जन्म हुआ। दितिके दैत्य और दानवोंके वन्दनीय दो ही पुत्र हुए—हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष। इनकी संक्षिप्त कथा मैं तुम्हें (तीसरे स्कन्धमें) सुना चुका हूँ। हिरण्यकशिपुकी पत्नीका नाम कयाधु था। वह दानवी थी। उसके पिता जम्भने उसका विवाह हिरण्यकशिपुसे कर दिया था। कयाधुके चार पुत्र हुए—संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद। इनकी सिंहिका नामकी एक बहिन भी थी। उसका विवाह विप्रचित्ति नामक दानवसे हुआ। उससे राहु नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। यह वही राहु है, जिसका सिर अमृतपानके समय मोहिनीरूपधारी भगवान्‌ने चक्रसे काट लिया था। संह्लादकी पत्नी थी कृति। उससे पञ्चजन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ह्लादकी पत्नी थी धमनी। उसके दो पुत्र हुए—वातापि और इल्वल। इस इल्वलने ही महर्षि अगस्त्यके आतिथ्यके समय वातापिको पकाकर उन्हें खिला दिया था। अनुह्लादकी पत्नी सूर्म्या थी, उसके दो पुत्र हुए—बाष्कल और महिषासुर। प्रह्लादका पुत्र था विरोचन। उसकी पत्नी देवीके गर्भसे दैत्यराज बलिका जन्म हुआ। बलिकी पत्नीका नाम अशना था। उससे बाण आदि सौ पुत्र हुए। दैत्यराज बलिकी महिमा गायन करने योग्य है। उसे मैं आगे (आठवें स्कन्धमें) सुनाऊँगा। बलिका पुत्र बाणासुर भगवान् शंकरकी आराधना करके उनके गणोंका मुखिया बन गया। आज भी भगवान् शंकर उसके नगरकी रक्षा करनेके लिये उसके पास ही रहते हैं। दितिके हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्षके अतिरिक्त उनचास पुत्र और थे। उन्हें मरुद्गण कहते हैं। वे सब निःसन्तान रहे। देवराज इन्द्रने उन्हें अपने ही समान देवता बना लिया॥१०-१९॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! मरुद्गणने ऐसा कौन-सा सत्कर्म किया था, जिसके कारण वे अपने जन्मजात असुरोचित भावको छोड़ सके और देवराज इन्द्रके द्वारा देवता बना लिये गये। ब्रह्मन्! मेरे साथ यहाँकी सभी ऋषिमण्डली यह बात जाननेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो रही है। अतः आप कृपा करके विस्तारसे वह रहस्य बतलाइये॥२०-२१॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! राजा

पहले तो बड़ा शुद्ध और निष्पक्ष था। परन्तु अब मायासे वराह आदि रूप धारण करने लगा है और अपने स्वभावसे च्युत हो गया है। बच्चेकी तरह जो उसकी सेवा करे, उसीकी ओर हो जाता है। उसका चित्त स्थिर नहीं है। अब मैं अपने इस शूलसे उसका गला काट डालूँगा और उसके खूनकी धारासे अपने रुधिरप्रेमी भाईका तर्पण करूँगा। तब कहीं मेरे हृदयकी पीड़ा शान्त होगी। उस मायावी शत्रुके नष्ट होनेपर, पेड़की जड़ कट जानेपर डालियों की तरह सब देवता अपने आप सूख जायँगे। क्योंकि उनका जीवन तो विष्णु ही है। इसलिये तुमलोग इसी समय पृथ्वीपर जाओ। आजकल वहाँ ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी बहुत बढ़ती हो गयी है। वहाँ जो लोग तपस्या, यज्ञ, स्वाध्याय, व्रत और दानादि शुभकर्म कर रहे हों, उन सबको मार डालो। विष्णुकी जड़ है द्विजातियोंका धर्म-कर्म। क्योंकि यज्ञ और धर्म ही उसके स्वरूप हैं। देवता, ऋषि, पितर, समस्त प्राणी और धर्मका वही आश्रय है। जहाँ-जहाँ ब्राह्मण, गाय, वेद, वर्णाश्रम और धर्म कर्म हों, उन-उन देशोंमें तुमलोग जाओ, उन्हें जला दो, उजाड़ डालो'॥१–१२॥

दैत्य तो स्वभावसे ही लोगोंको सताकर सुखी होते हैं। दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी आज्ञा उन्होंने बड़े आदरसे सिर झुकाकर स्वीकार की और उसीके अनुसार जनताका नाश करने लगे। उन्होंने नगर, गाँव, गौओंके रहनेके स्थान, बगीचे, खेत, टहलनेके स्थान, ऋषियोंके आश्रम, रत्न आदिकी खानें, किसानोंकी बस्तियाँ, तराईके गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ और व्यापारके केन्द्र बड़े-बड़े नगर जला डाले। कुछ दैत्योंने खोदनेके शस्त्रोंसे बड़े-बड़े पुल, परकोटे और नगरके फाटकोंको तोड़-फोड़ डाला तथा दूसरोंने कुल्हाड़ियों से फले फूले, हरे भरे पेड़ काट डाले। कुछ दैत्योंने जलती हुई लकड़ियोंसे लोगोंके घर जला दिये। इस प्रकार दैत्योंने निरीह प्रजाका बड़ा उत्पीड़न किया। उस समय देवतालोग स्वर्ग छोड़कर छिपे रूपसे पृथ्वीमें विचरण करते थे॥१३–१६॥

युधिष्ठिर! भाईकी मृत्युसे हिरण्यकशिपुको बड़ा दुःख हुआ था। जब उसने उसकी अन्त्येष्टि क्रियासे छुट्टी पा ली तब शकुनि, शम्बर, धृष्ट, भूतसन्तापन, वृक, कालनाभ, महानाभ, हरिश्मश्रु और उत्कच—अपने इन भतीजों को सान्त्वना दी और उनकी माता रुषाभानुको और अपनी माता दितिको देश-कालके अनुसार मधुर वाणीसे समझाते हुए कहा॥१७–१९॥

हिरण्यकशिपुने कहा—मेरी प्यारी माँ, बहू और पुत्रो! तुम्हें वीर हिरण्याक्षके लिये किसी प्रकारका शोक नहीं करना चाहिये। वीर पुरुष तो ऐसा चाहते ही हैं कि लड़ाईके मैदानमें अपने शत्रुके दाँत खट्टे करके श्लाघनीय मृत्युसे मरें। देवि! जैसे प्याऊपर बहुत-से लोग इकट्ठे हो जाते हैं, परन्तु उनका मिलना-जुलना थोड़ी देरके लिये ही होता है—वैसे ही अपने कर्मोंके फेरसे दैववश जीव भी मिलते और बिछुड़ते हैं। वास्तवमें आत्मा नित्य, अविनाशी, शुद्ध, सर्वगत, सर्वज्ञ और देह इन्द्रिय आदिसे पृथक् है। वह अपनी अविद्यासे ही देह आदिकी सृष्टि करके भोगोंके साधन सूक्ष्मशरीरको स्वीकार करता है। जैसे चलता तो है पानी परन्तु चलते मालूम पड़ते हैं उसके किनारेके वृक्ष, और घूमती हैं आँखें परन्तु मालूम पड़ता है कि पृथ्वी घूम रही है—कल्याणी! वैसे ही विषयों और गुणोंके कारण मन भटकने लगता है और वास्तवमें निर्विकार होनेपर भी उसीके समान आत्मा भी भटकता हुआ-सा जान पड़ता है। उसका स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है, फिर भी वह सम्बन्धी-सा जान पड़ता है। सब प्रकारसे शरीररहित आत्माको शरीर समझ लेना—यही तो उलटा ज्ञान है। यही सबसे बड़ा अज्ञान है। इसीसे प्रिय अथवा अप्रिय वस्तुओंका मिलना और बिछुड़ना होता है। इसीसे कर्मोंके साथ सम्बन्ध हो जानेके कारण संसारमें भटकना पड़ता है। जन्म, मृत्यु, अनेकों प्रकारके शोक, अविवेक, चिन्ता और विवेककी विस्मृति—सबका कारण यह अज्ञान ही है। इस विषयमें महात्मालोग एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। वह इतिहास मरे हुए मनुष्यके सम्बन्धियोंके साथ यमराजकी बातचीत है। तुमलोग ध्यानसे उसे सुनो॥२०–२७॥

उशीनर देशमें एक बड़ा यशस्वी राजा था। उसका नाम था सुयज्ञ। लड़ाईमें शत्रुओंने उसे मार डाला। उस समय उसके भाई बन्धु उसे घेरकर बैठ गये। उसका जड़ाऊ कवच छिन्न भिन्न हो गया था। गहने और मालाएँ तहस-नहस हो गयी थीं। बाणोंकी मारसे कलेजा फट गया था। शरीर खूनसे लथपथ था। बाल बिखर गये थे। आँखें धँस गयी थीं। क्रोधके मारे दाँतोंसे उसके ओठ दबे हुए थे। मुख धूलसे ढक गया था। शस्त्र और हाथ कट गये थे। वह उस लड़ाईके मैदान में कटे हुए पेड़की तरह पड़ा हुआ था॥२८–३०॥

रानियोंको दैववश अपने पतिदेव उशीनरनरेशकी यह दशा देखकर बड़ा दुःख हुआ। वे 'हा नाथ! हम अभागिनें

वह तो इतना तीखा होता है मानो छुरेकी पैनी धार हो। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियाँ अपनी लालसाओंकी कठपुतली होती हैं। सच पूछो तो वे किसीसे प्यार नहीं करतीं। मतलब आनेपर वे अपने पति, पुत्र और भाईतकको मार डालती हैं या मरवा डालती हैं। अब तो मैं बड़े धर्मसङ्कटमें पड़ गया। क्योंकि कह चुका हूँ—जो तुम माँगोगी, दूँगा। मेरी बात तो झूठी नहीं होनी चाहिये। परन्तु इन्द्रका क्या होगा? हाँ, इन्द्र भी वध करने योग्य नहीं है। अच्छा, अब इस विषयमें मैं यह व्यवस्था करता हूँ।' प्रिय परीक्षित्! सर्वसमर्थ कश्यपजीने इस प्रकार मन-ही-मन अपनी भर्त्सना करके दोनों बात बनानेका उपाय सोचा और फिर तनिक रुष्ट होकर दितिसे कहा॥ ३८–४४॥

कश्यपजीने कहा—कल्याणी! यदि तुम मेरे बतलाये हुए व्रतका एक वर्षतक विधिपूर्वक पालन करोगी, तो तुम्हें इन्द्रको मारनेवाला पुत्र प्राप्त होगा। परन्तु यदि किसी प्रकार नियमोंमें त्रुटि हो गयी तो वह देवताओंका मित्र बन जायगा॥ ४५॥

दितिने कहा—ब्रह्मन्! मैं आपके बतलाये हुए व्रतका पालन करूँगी। आप कृपा करके बतलाइये कि मुझे क्या-क्या करना चाहिये, कौन-कौन-से काम छोड़ देने चाहिये और कौन-से काम ऐसे हैं, जिनसे व्रत-भंग नहीं होता॥ ४६॥

कश्यपजीने कहा—प्रिये! इस व्रतका आचरण करते समय किसी भी प्राणीको मन, वाणी या क्रियाके द्वारा सताये नहीं, किसीको बुरा-भला न कहे, झूठ न बोले, शरीरके नख और रोएँ न काटे और किसी भी अशुभ वस्तुका स्पर्श न करे। जलमें घुसकर स्नान न करे, क्रोध न करे, दुर्जनोंसे बातचीत न करे, बिना धुला वस्त्र न पहने और किसीकी पहनी हुई माला न पहने; जूठा न खाय, भद्रकालीका प्रसाद या मांसयुक्त अन्नका भोजन न करे। शूद्रका लाया हुआ और रजस्वलाका देखा हुआ अन्न भी न खाय। अञ्जलिसे जलपान न करे। जूठे मुँह, बिना आचमन किये, सन्ध्याके समय, बाल खोले हुए, बिना श्रृंगारके, वाणीका संयम किये बिना और बिना चद्दर ओढ़े घरसे बाहर न निकले। बिना पैर धोये, अपवित्र अवस्थामें, गीले पाँवोंसे, उत्तर या पश्चिम सिर करके, दूसरेके साथ, नग्नावस्थामें, तथा सुबह-शाम सोना नहीं चाहिये। इस प्रकार इन निषिद्ध कर्मोंका त्याग करके सर्वदा पवित्र रहे, धुला वस्त्र धारण करे और सौभाग्यके चिह्नोंसे सुसज्जित रहे। प्रातःकाल कलेवा करनेके पहले ही गाय, ब्राह्मण, लक्ष्मीजी और भगवान् नारायणकी पूजा करे। इसके बाद पुष्पमाला, चन्दनादि सुगन्ध-द्रव्य, नैवेद्य और आभूषणादिसे सुहागिनी स्त्रियोंकी पूजा करे तथा पतिकी पूजा करके उसकी सेवामें संलग्न रहे और यह भावना करती रहे कि पतिका तेज मेरी कोखमें स्थित है। प्रिये! इस व्रतका नाम 'पुंसवन' है। यदि एक वर्षतक तुम इसे बिना किसी त्रुटिके पालन कर सकोगी तो तुम्हारी कोखसे ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो इन्द्रको मार डाले॥ ४७–५४॥

परीक्षित्! दिति बड़ी मनस्विनी और दृढ़निश्चयवाली थी। उसने 'बहुत ठीक' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली। अब दिति अपनी कोखमें भगवान् कश्यपका वीर्य और जीवनमें उनका बतलाया हुआ व्रत धारण करके अनायास ही नियमोंका पालन करने लगी। प्रिय परीक्षित्! जब देवराज इन्द्रको यह मालूम हुआ कि मेरी मौसी दिति मुझे मरवा डालनेके लिये पुत्र उत्पन्न करना चाहती है, तो वे बड़ी बुद्धिमानीसे अपना वेष बदलकर दितिके आश्रमपर आये और उसकी सेवा करने लगे। वे दितिके लिये प्रतिदिन समय-समयपर वनसे फूल-फल,



कन्द-मूल, समिधा, कुश, पत्ते, दूब, मिट्टी और जल ले आते और उसकी सेवामें समर्पित करते। राजन्! जिस प्रकार बहेलिया हरिनको मारनेके लिये हरिनकी-सी सूरत बनाकर वहाँ जाता है, वैसे ही देवराज इन्द्र भी कपट-वेष धारण करके उसके व्रत-पालनकी त्रुटिका मौका देखते हुए वहाँ रहने लगे। सर्वदा पैनी दृष्टि रखनेपर भी उन्हें उसके व्रतमें किसी प्रकारकी त्रुटि न मिली, और वे पूर्ववत् उसकी सेवा-टहलमें लगे रहे। अब तो इन्द्रको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—मैं ऐसा

यह मान्यता कि 'प्राण ही बोलने या सुननेवाला था, सो निकल गया' मूर्खतापूर्ण है, क्योंकि सुषुप्तिके समय प्राण तो रहता है, पर न वह बोलता है न सुनता है। समस्त इन्द्रियाँ जिसके कारण अपना अपना काम करती हैं, वह आत्मा तो शरीर और प्राण दोनोंसे पृथक् है। यद्यपि वह परिच्छिन्न नहीं है, व्यापक है—फिर भी पञ्चभूत, इन्द्रिय और मनसे युक्त नीचे ऊँचे (देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) शरीरोंको ग्रहण करता और अपने विवेकबलसे उनसे मुक्त भी हो जाता है। वास्तवमें वह इन सबसे अलग है। जबतक वह पाँच प्राण, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, बुद्धि और मन—इन सत्रह तत्त्वोंसे बने हुए लिङ्गशरीरसे युक्त रहता है, तभीतक कर्मोंसे बँधा रहता है। और इस बन्धनके कारण ही मायासे होनेवाले मोह और क्लेश बराबर उसके पीछे पड़े रहते हैं। प्रकृतिके गुणों और उनसे बनी हुई वस्तुओंको सत्य समझना अथवा कहना झूठमूठका दुराग्रह है। मनोरथके समयकी कल्पित और स्वप्नके समयकी दीख पड़नेवाली वस्तुओंके समान इन्द्रियोंके द्वारा जो कुछ ग्रहण किया जाता है, सब मिथ्या है। इसलिये शरीर और आत्माका तत्त्व जाननेवाले पुरुष न तो अनित्य शरीरके लिये शोक करते हैं और न नित्य आत्माके लिये ही। परन्तु जिन लोगोंका स्वभाव ही शोक करनेका है, उनके लिये क्या किया जाय ? ॥ ४४–४९ ॥

किसी जगलमें एक बहेलिया रहता था। वह बहेलिया क्या था, विधाताने मानो उसे पक्षियोंका काल ही रच रखा था। जहाँ कहीं भी वह जाल फैला देता और ललचाकर चिड़ियोंको फँसा लेता। एक दिन उसने कुलिंग पक्षीके एक जोड़ेको चारा चुगते देखा। उनमेंसे उस बहेलियेने मादा पक्षीको तो शीघ्र ही फँसा लिया और कालवश वह जालके फदोंमें फँस गयी। नर पक्षीको अपनी मादाकी विपत्ति देखकर बड़ा दु ख हुआ। वह बेचारा उसे छुड़ा तो सकता न था, स्नेहसे उस बेचारीके लिये विलाप करने लगा। उसने कहा—'यों तो विधाता सब कुछ कर सकता है। परन्तु है वह बड़ा निर्दयी। यह मेरी सहचरी एक तो स्त्री है, दूसरे मुझ अभागेके लिये शोक करती हुई बड़ी दीनतासे छटपटा रही है। ऐसी अवस्थामें तो इसपर दया ही करनी चाहिये। इसे लेकर वह करेगा क्या ? उसकी मौज हो तो मुझे ले जाय। इसके बिना मैं अपना यह अधूरा विधुर जीवन, जो दीनता और दु खसे भरा हुआ है, लेकर क्या करूँगा ? अभी मेरे अभागे बच्चोंके पर भी नहीं जमे हैं। माँके मर जानेपर उनको मैं कैसे पालूँगा ? ओह, घोंसलेमें वे अपनी माँकी बाट देख रहे होंगे।' इस तरह वह पक्षी बहुत-सा विलाप करने लगा। अपनी सहचरीके वियोगसे वह आतुर हो रहा था। आँसुओंके मारे उसका गला रुँध गया था। तबतक उसी बहेलियेने कालकी प्रेरणासे छिपकर ऐसा बाण मारा कि वह भी वहींपर लोट गया। मूर्ख रानियो ! तुम्हारी भी यही दशा होनेवाली है। तुम्हें अपनी मृत्यु तो दीखती नहीं, और इसके लिये रो-पीट रही हो। यदि तुम लोग सौ बरसतक इसी तरह कलेजा पीटती रहो, तो भी यह अब तुमलोगोंको नहीं मिल सकता ॥ ५०–५७ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—उस छोटे से बालककी ऐसी ज्ञानपूर्ण बातें सुनकर सब-के-सब दग रह गये। उशीनरनरेशके भाई-बन्धु और स्त्रियोंने यह बात समझ ली कि समस्त ससार और इसके सुख दु ख अनित्य एव मिथ्या हैं। यमराज तो इतना कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। भाई बन्धुओंने भी सुयज्ञकी अन्त्येष्टि-क्रिया की। इसलिये तुमलोग भी अपने लिये या किसी दूसरेके लिये भी शोक मत करो। इस ससारमें कौन आत्मा है और कौन अपनेसे भिन्न ? क्या अपना है और क्या पराया ? प्राणियोंको अज्ञानके कारण ही यह अपने परायेका दुराग्रह हो रहा है ॥ ५८–६० ॥

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर ! अपनी पुत्रवधूके साथ दितिने हिरण्यकशिपुकी यह बात सुनकर उसी क्षण पुत्रशोकका त्याग कर दिया और अपना चित्त परमतत्त्वस्वरूप परमात्मामें लगा दिया ॥ ६१ ॥

तीसरा अध्याय

हिरण्यकशिपुकी तपस्या और वरप्राप्ति

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर ! जब हिरण्यकशिपुने यह विचार किया कि 'मैं अजर अमर होकर ससारका एकछत्र सम्राट् बन जाऊँ, जीतनेकी तो बात ही क्या, कोई मेरे सामने खड़ातक न हो सके।' इसके लिये वह मन्दराचलकी एक घाटीमें जाकर अत्यन्त दारुण तपस्या करने लगा। वहाँ हाथ ऊपर उठाकर आकाशकी ओर देखता हुआ वह पैरके अगूठेके बल पृथ्वीपर खड़ा हो गया। उसकी जटाएँ ऐसी चमक रही थीं, जैसे प्रलयकालके सूर्यकी किरणें। जब

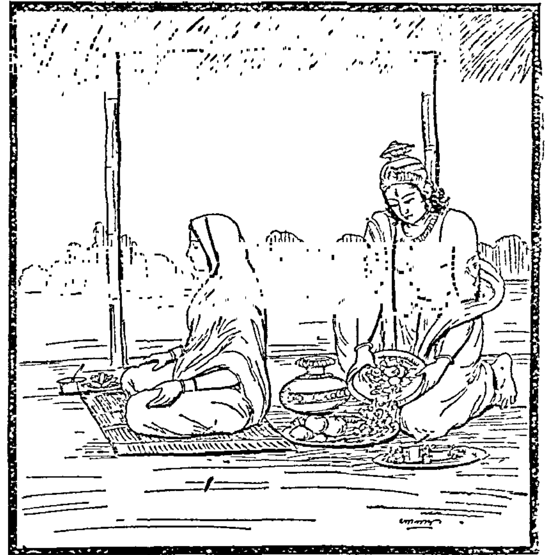
वह तो इतना तीखा होता है मानो छुरेकी पैनी धार हो। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियाँ अपनी लालसाओंकी कठपुतली होती हैं। सच पूछो तो वे किसीसे प्यार नहीं करतीं। मतलब आनेपर वे अपने पति, पुत्र और भाईतकको मार डालती हैं या मरवा डालती हैं। अब तो मैं बड़े धर्मसङ्कटमें पड़ गया। क्योंकि कह चुका हूँ—जो तुम माँगोगी, दूँगा। मेरी बात तो झूठी नहीं होनी चाहिये। परन्तु इन्द्रका क्या होगा? हाँ, इन्द्र भी वध करने योग्य नहीं है। अच्छा, अब इस विषयमें मैं यह व्यवस्था करता हूँ।' प्रिय परीक्षित्! सर्वसमर्थ कश्यपजीने इस प्रकार मन-ही-मन अपनी भर्त्सना करके दोनों बात बनानेका उपाय सोचा और फिर तनिक रुष्ट होकर दितिसे कहा॥ ३८—४४॥

कश्यपजीने कहा—कल्याणी! यदि तुम मेरे बतलाये हुए व्रतका एक वर्षतक विधिपूर्वक पालन करोगी, तो तुम्हें इन्द्रको मारनेवाला पुत्र प्राप्त होगा। परन्तु यदि किसी प्रकार नियमोंमें त्रुटि हो गयी तो वह देवताओंका मित्र बन जायगा॥ ४५॥

दितिने कहा—ब्रह्मन्! मैं आपके बतलाये हुए व्रतका पालन करूँगी। आप कृपा करके बतलाइये कि मुझे क्या-क्या करना चाहिये, कौन-कौन-से काम छोड़ देने चाहिये और कौन-से काम ऐसे हैं, जिनसे व्रत-भंग नहीं होता॥ ४६॥

कश्यपजीने कहा—प्रिये! इस व्रतका आचरण करते समय किसी भी प्राणीको मन, वाणी या क्रियाके द्वारा सताये नहीं, किसीको बुरा-भला न कहे, झूठ न बोले, शरीरके नख और रोएँ न काटे और किसी भी अशुभ वस्तुका स्पर्श न करे। जलमें घुसकर स्नान न करे, क्रोध न करे, दुर्जनोंसे बातचीत न करे, बिना धुला वस्त्र न पहने और किसीकी पहनी हुई माला न पहने; जूठा न खाय, भद्रकालीका प्रसाद या मांसयुक्त अन्नका भोजन न करे। शूद्रका लाया हुआ और रजस्वलाका देखा हुआ अन्न भी न खाय। अञ्जलिसे जलपान न करे। जूठे मुँह, बिना आचमन किये, सन्ध्याके समय, बाल खोले हुए, बिना शृंगारके, वाणीका संयम किये बिना और बिना चद्दर ओढ़े घरसे बाहर न निकले। बिना पैर धोये, अपवित्र अवस्थामें, गीले पाँवोंसे, उत्तर या पश्चिम सिर करके, दूसरेके साथ, नग्नावस्थामें, तथा सुबह-शाम सोना नहीं चाहिये। इस प्रकार इन निषिद्ध कर्मोंका त्याग करके सर्वदा पवित्र रहे, धुला वस्त्र धारण करे और सौभाग्यके चिह्नोंसे सुसज्जित रहे। प्रातःकाल कलेवा करनेके पहले ही गाय, ब्राह्मण, लक्ष्मीजी और भगवान् नारायणकी पूजा करे। इसके बाद पुष्पमाला, चन्दनादि सुगन्ध-द्रव्य, नैवेद्य और आभूषणादिसे सुहागिनी स्त्रियोंकी पूजा करे तथा पतिकी पूजा करके उसकी सेवामें संलग्न रहे और यह भावना करती रहे कि पतिका तेज मेरी कोखमें स्थित है। प्रिये! इस व्रतका नाम 'पुंसवन' है। यदि एक वर्षतक तुम इसे बिना किसी त्रुटिके पालन कर सकोगी तो तुम्हारी कोखसे ऐसा पुत्र उत्पन्न होगा, जो इन्द्रको मार डाले॥ ४७—५४॥

परीक्षित्! दिति बड़ी मनस्विनी और दृढ़निश्चयवाली थी। उसने 'बहुत ठीक' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली। अब दिति अपनी कोखमें भगवान् कश्यपका वीर्य और जीवनमें उनका बतलाया हुआ व्रत धारण करके अनायास ही नियमोंका पालन करने लगी। प्रिय परीक्षित्! जब देवराज इन्द्रको यह मालूम हुआ कि मेरी मौसी दिति मुझे मरवा डालनेके लिये पुत्र उत्पन्न करना चाहती है, तो वे बड़ी बुद्धिमानीसे अपना वेष बदलकर दितिके आश्रमपर आये और उसकी सेवा करने लगे। वे दितिके लिये प्रतिदिन समय-समयपर वनसे फूल-फल,



कन्द-मूल, समिधा, कुश, पत्ते, दूब, मिट्टी और जल ले आते और उसकी सेवामें समर्पित करते। राजन्! जिस प्रकार बहेलिया हरिनको मारनेके लिये हरिनकी-सी सूरत बनाकर वहाँ जाता है, वैसे ही देवराज इन्द्र भी कपट-वेष धारण करके उसके व्रत-पालनकी त्रुटिका मौका देखते हुए वहाँ रहने लगे। सर्वदा पैनी दृष्टि रखनेपर भी उन्हें उसके व्रतमें किसी प्रकारकी त्रुटि न मिली, और वे पूर्ववत् उसकी सेवा-टहलमें लगे रहे। अब तो इन्द्रको बड़ी चिन्ता हुई। वे सोचने लगे—मैं ऐसा

नयनोंसे उन्हें देखता हुआ गद्गद वाणीसे स्तुति करने लगा। उस समय उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू उमड़ रहे थे और सारा शरीर पुलकित हो रहा था ॥ २२–२५ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—कल्पके अन्तमें यह सारी सृष्टि कालके द्वारा प्रेरित तमोगुणसे, घने अन्धकारसे ढक गयी थी। उस समय स्वयंप्रकाशस्वरूप आपने अपने तेजसे फिरसे इसे प्रकट किया। आप ही अपने त्रिगुणमय रूपसे इसकी रचना, रक्षा और संहार करते हैं। आप रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके आश्रय हैं। आप ही सबसे परे और महान् हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप ही जगत्के मूल कारण हैं। ज्ञान और विज्ञान आपकी मूर्ति हैं। प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि विकारोंके द्वारा आपने अपनेको प्रकट किया है। आप मुख्यप्राण सूत्रात्माके रूपसे चराचर जगत्को अपने नियन्त्रणमें रखते हैं। आप ही प्रजाके रक्षक भी हैं। भगवन्! चित्त, चेतना, मन और इन्द्रियोंके स्वामी आप ही हैं। पञ्चभूत, शब्दादि विषय और उनके संस्कारोंके रचयिता भी महत्तत्त्वके रूपमें आप ही हैं। जो वेद होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाता—इन ऋत्विजोंसे होनेवाले यज्ञका प्रतिपादन करते हैं, वे आपके ही शरीर हैं। उन्हींके द्वारा अग्निष्टोम आदि सात यज्ञोंका आप विस्तार करते हैं। आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा हैं। क्योंकि आप अनादि, अनन्त, अपार, सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं। आप ही काल हैं। आप प्रतिक्षण सावधान रहकर अपने क्षण, लव आदि विभागोंके द्वारा लोगोंकी आयु क्षीण करते रहते हैं। फिर भी आप निर्विकार हैं। क्योंकि आप ज्ञानस्वरूप, परमेश्वर, अजन्मा, महान् और सम्पूर्ण जीवोंके जीवनदाता अन्तरात्मा हैं। प्रभो! कार्य, कारण, चल और अचल ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो आपसे भिन्न हो। समस्त विद्या और कलाएँ आपके शरीर हैं। आप त्रिगुणमयी मायासे अतीत स्वयं ब्रह्म हैं। यह स्वर्णमय ब्रह्माण्ड आपके गर्भमें स्थित है। आप इसे अपनेमेंसे ही प्रकट करते हैं। प्रभो! यह व्यक्त ब्रह्माण्ड आपका स्थूलशरीर है। इससे आप इन्द्रिय, प्राण और मनके विषयोंका उपभोग करते हैं। किन्तु उस समय भी आप अपने परम ऐश्वर्यमय स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं। वस्तुतः आप पुराणपुरुष, स्थूल सूक्ष्मसे परे ब्रह्मस्वरूप ही हैं। आप अपने अनन्त और अव्यक्त स्वरूपसे सारे जगत्में व्याप्त हैं। चेतन और अचेतन दोनों ही आपकी शक्ति हैं। भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥२६–३४॥

प्रभो! आप समस्त वरदाताओंमें श्रेष्ठ हैं। यदि आप मुझे मेरे माँगे हुए वर देना चाहते हैं, तो ऐसा कर दीजिये कि आपके बनाये हुए किसी भी प्राणीसे—चाहे वह मनुष्य हो या पशु, प्राणी हो या अप्राणी, देवता हो या दैत्य अथवा नागादि—किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो। भीतर बाहर, दिनमें, रात्रिमें, आपके बनाये प्राणियोंके अतिरिक्त और भी किसी जीवसे, अस्त्र शस्त्रसे, पृथ्वी या आकाशमें कहीं भी मेरी मृत्यु न हो। युद्धमें कोई मेरा सामना न कर सके। मैं समस्त प्राणियोंका एकछत्र सम्राट् होऊँ। इन्द्रादि सब लोकपालोंमें जैसी आपकी महिमा है, वैसी ही मेरी भी हो। तपस्वियों और योगियोंको जो अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त है, वही मुझे भी दीजिये ॥ ३५–३८ ॥

चौथा अध्याय

हिरण्यकशिपुके अत्याचार और प्रह्लादके गुणोंका वर्णन

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! जब हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीसे इस प्रकारके अत्यन्त दुर्लभ वर माँगे, तब उन्होंने उसकी तपस्यासे प्रसन्न होनेके कारण उसे वे वर दे दिये ॥१॥

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! तुम जो वर मुझसे माँग रहे हो, वे जीवोंके लिये बहुत ही दुर्लभ हैं; परन्तु दुर्लभ होनेपर भी मैं तुम्हें वे सब वर दिये देता हूँ ॥ २ ॥

[**नारदजी कहते हैं**—] ब्रह्माजीके वरदान कभी झूठे नहीं होते। वे समर्थ एवं भगवद्रूप ही हैं। वरदान मिल जानेके बाद हिरण्यकशिपुने उनकी पूजा की। तत्पश्चात् प्रजापतियोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे अपने लोकको चले गये। हिरण्यकशिपुका शरीर सुवर्णके समान कान्तिमान् हो गया था। जब ब्रह्माजीने उसे इस प्रकार वर दे दिया, तब वह अपने भाईकी मृत्युका स्मरण करके भगवान्से द्वेष करने लगा। उस महादैत्यने समस्त दिशाओं, तीनों लोकों तथा देवता, असुर, नरपति, गन्धर्व, गरुड़, सर्प, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितरोंके अधिपति, मनु, यक्ष, राक्षस, पिशाचराज, प्रेत, भूतपति एवं समस्त प्राणियोंके राजाओंको जीतकर अपने वशमें कर लिया। यहाँतक कि उस विश्वविजयी दैत्यने लोकपालोंकी शक्ति और स्थान भी छीन लिये। अब वह नन्दनवन आदि दिव्य उद्यानोंके सौन्दर्यसे सेवित

उन्नीसवाँ अध्याय

पुंसवन-व्रतकी विधि

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आपने अभी-अभी पुंसवन-व्रतका वर्णन किया है और कहा है कि उससे भगवान् विष्णु प्रसन्न हो जाते हैं। सो अब मैं उसकी विधि जानना चाहता हूँ॥ १॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! यह पुंसवन-व्रत समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। स्त्रीको चाहिये कि वह अपने पतिदेवकी आज्ञा लेकर मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदासे इसका आरम्भ करे। पहले मरुद्गणके जन्मकी कथा सुनकर ब्राह्मणोंसे आज्ञा ले। फिर प्रतिदिन प्रातःकाल दाँतुन आदिसे दाँत साफ करके स्नान करे। दो श्वेत वस्त्र धारण करे और आभूषण भी पहन ले। प्रातःकाल कुछ भी खानेसे पहले ही भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी पूजा करे और इस प्रकार प्रार्थना करे—'प्रभो! आप पूर्णकाम हैं। सदा-सर्वदा आपको सब कुछ प्राप्त है। अतएव आपको किसीसे भी कुछ लेना-देना नहीं है। आप निरपेक्ष हैं। आप समस्त विभूतियोंके स्वामी और सकलसिद्धिस्वरूप हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ। मेरे आराध्यदेव! आप कृपा, विभूति, तेज, महिमा और वीर्य आदि समस्त गुणोंसे नित्ययुक्त हैं। इन्हीं भगों—ऐश्वर्योंसे नित्ययुक्त रहनेके कारण आपको भगवान् कहते हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं। मैं आपको नमस्कार करती हूँ। माता लक्ष्मीजी! आप भगवान्‌की अर्द्धाङ्गिनी और महामायास्वरूपिणी हैं। भगवान्‌के सारे गुण आपमें निवास करते हैं। महाभाग्यवती जगन्माता! आप मुझपर प्रसन्न हों। मैं आपको बार-बार नमस्कार करती हूँ।' परीक्षित्! इस प्रकार स्तुति करके एकाग्र चित्तसे 'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिमुपहराणि।' (ओङ्कार-स्वरूप, महानुभाव, समस्त महाविभूतियोंके स्वामी भगवान् पुरुषोत्तमको और उनकी महाविभूतियोंको मैं नमस्कार करती हूँ और उन्हें पूजोपहारकी सामग्री समर्पण करती हूँ)—इस मन्त्रके द्वारा प्रतिदिन विष्णुभगवान्‌का आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य आदि निवेदन करके पूजन करे। जो नैवेद्य बच रहे, उससे 'ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहा।' (महान् ऐश्वर्योंके अधिपति भगवान् पुरुषोत्तमको नमस्कार है। मैं उन्हींके लिये इस हविष्यका हवन कर रही हूँ।)—यह मन्त्र बोलकर अग्निमें बारह आहुतियाँ दे। परीक्षित्! जो सब प्रकारकी सम्पत्तियोंको प्राप्त करना चाहता हो, उसे चाहिये कि प्रतिदिन भक्तिभावसे भगवान् लक्ष्मीनारायणकी पूजा करे। क्योंकि वे ही दोनों समस्त अभिलाषाओंके पूर्ण करनेवाले एवं श्रेष्ठ वरदानी हैं। इसके बाद भक्तिभावसे भरकर बड़ी नम्रतासे भगवान्‌को साष्टाङ्ग दण्डवत् करे। दस बार पूर्वोक्त मन्त्रका जप करे और फिर इस स्तोत्रका पाठ करे—॥ २—१०॥

'हे लक्ष्मीनारायण! आप दोनों सर्वव्यापक और सम्पूर्ण चराचर जगत्‌के अन्तिम कारण हैं। आपका और कोई कारण नहीं है। भगवन्! माता लक्ष्मीजी आपकी मायाशक्ति हैं। ये ही स्वयं अव्यक्त प्रकृति भी हैं। इनका पार पाना अत्यन्त कठिन है। प्रभो! आप ही इन महामायाके अधीश्वर हैं और आप ही स्वयं परमपुरुष हैं। आप समस्त यज्ञ हैं और ये हैं यज्ञ-क्रिया। आप फलके भोक्ता हैं और ये हैं उसको उत्पन्न करनेवाली क्रिया। माता लक्ष्मीजी तीनों गुणोंकी अभिव्यक्ति हैं और आप उन्हें व्यक्त करनेवाले और उनके भोक्ता हैं। आप समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं और लक्ष्मीजी शरीर, इन्द्रिय और अन्तःकरण हैं। माता लक्ष्मीजी नाम एवं रूप हैं और आप नाम-रूप दोनोंके प्रकाशक तथा आधार हैं। प्रभो! आपकी कीर्ति पवित्र है। आप दोनों ही त्रिलोकीके वरदानी परमेश्वर हैं। अतः मेरी बड़ी-बड़ी आशा-अभिलाषाएँ आपकी कृपासे पूर्ण हों।॥ ११—१४॥

परीक्षित्! इस प्रकार परम वरदानी भगवान् लक्ष्मी-नारायणकी स्तुति करके वहाँसे नैवेद्य हटा दे और आचमन कराके पूजा करे। तदनन्तर भक्तिभावभरित हृदयसे भगवान्‌की स्तुति करे और यज्ञावशेषको सूँघकर फिर भगवान्‌की पूजा करे। भगवान्‌की पूजाके बाद अपने पतिको साक्षात् भगवान् समझकर परम प्रेमसे उनकी प्रिय वस्तुएँ सेवामें उपस्थित करे। पतिका भी यह कर्तव्य है कि वह आन्तरिक प्रेमसे अपनी पत्नीके प्रिय पदार्थ ला-लाकर उसे दे और उसके छोटे-बड़े सब प्रकारके काम करता रहे। परीक्षित्! पति-पत्नीमेंसे एक भी कोई काम करता है, तो उसका फल दोनोंको होता है। इसलिये यदि पत्नी यह व्रत न कर सकती

नयनोंसे उन्हें देखता हुआ गद्‌गद वाणीसे स्तुति करने लगा। उस समय उसके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू उमड़ रहे थे और सारा शरीर पुलकित हो रहा था ॥ २२–२५ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—कल्पके अन्तमें यह सारी सृष्टि कालके द्वारा प्रेरित तमोगुणसे, घने अन्धकारसे ढक गयी थी। उस समय स्वयंप्रकाशस्वरूप आपने अपने तेजसे फिरसे इसे प्रकट किया। आप ही अपने त्रिगुणमय रूपसे इसकी रचना, रक्षा और संहार करते हैं। आप रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणके आश्रय हैं। आप ही सबसे परे और महान् हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप ही जगत्‌के मूल कारण हैं। ज्ञान और विज्ञान आपकी मूर्ति है। प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धि आदि विकारोंके द्वारा आपने अपनेको प्रकट किया है। आप मुख्यप्राण सूत्रात्माके रूपसे चराचर जगत्‌को अपने नियन्त्रणमें रखते हैं। आप ही प्रजाके रक्षक भी हैं। भगवन्! चित्त, चेतना, मन और इन्द्रियोंके स्वामी आप ही हैं। पञ्चभूत, शब्दादि विषय और उनके संस्कारोंके रचयिता भी महत्तत्त्वके रूपमें आप ही हैं। जो वेद होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाता—इन ऋत्विजोंसे होनेवाले यज्ञका प्रतिपादन करते हैं, वे आपके ही शरीर हैं। उन्हींके द्वारा अग्निष्टोम आदि सात यज्ञोंका आप विस्तार करते हैं। आप ही सम्पूर्ण प्राणियोंके आत्मा हैं। क्योंकि आप अनादि, अनन्त, अपार, सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं। आप ही काल हैं। आप प्रतिक्षण सावधान रहकर अपने क्षण, लव आदि विभागोंके द्वारा लोगोंकी आयु क्षीण करते रहते हैं। फिर भी आप निर्विकार हैं। क्योंकि आप ज्ञानस्वरूप, परमेश्वर, अजन्मा, महान् और सम्पूर्ण जीवोंके जीवनदाता अन्तरात्मा हैं। प्रभो! कार्य, कारण, चल और अचल ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जो आपसे भिन्न हो। समस्त विद्या और कलाएँ आपके शरीर हैं। आप त्रिगुणमयी मायासे अतीत स्वयं ब्रह्म हैं। यह स्वर्णमय ब्रह्माण्ड आपके गर्भमें स्थित है। आप इसे अपनेमेंसे ही प्रकट करते हैं। प्रभो! यह व्यक्त ब्रह्माण्ड आपका स्थूलशरीर है। इससे आप इन्द्रिय, प्राण और मनके विषयोंका उपभोग करते हैं। किन्तु उस समय भी आप अपने परम ऐश्वर्यमय स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं। वस्तुतः आप पुराणपुरुष, स्थूल सूक्ष्मसे परे ब्रह्मस्वरूप ही हैं। आप अपने अनन्त और अव्यक्त स्वरूपसे सारे जगत्‌में व्याप्त हैं। चेतन और अचेतन दोनों ही आपकी शक्ति हैं। भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥२६–३४॥

प्रभो! आप समस्त वरदाताओंमें श्रेष्ठ हैं। यदि आप मुझे मेरे माँगे हुए वर देना चाहते हैं, तो ऐसा कर दीजिये कि आपके बनाये हुए किसी भी प्राणीसे—चाहे वह मनुष्य हो या पशु, प्राणी हो या अप्राणी, देवता हो या दैत्य अथवा नागादि—किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो। भीतर बाहर, दिनमें, रात्रिमें, आपके बनाये प्राणियोंके अतिरिक्त और भी किसी जीवसे, अस्त्र शस्त्रसे, पृथ्वी या आकाशमें कहीं भी मेरी मृत्यु न हो। युद्धमें कोई मेरा सामना न कर सके। मैं समस्त प्राणियोंका एकछत्र सम्राट् होऊँ। इन्द्रादि सब लोकपालोंमें जैसी आपकी महिमा है, वैसी ही मेरी भी हो। तपस्वियों और योगियोंको जो अक्षय ऐश्वर्य प्राप्त है, वही मुझे भी दीजिये ॥ ३५–३८ ॥

चौथा अध्याय

हिरण्यकशिपुके अत्याचार और प्रह्लादके गुणोंका वर्णन

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! जब हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीसे इस प्रकारके अत्यन्त दुर्लभ वर माँगे, तब उन्होंने उसकी तपस्यासे प्रसन्न होनेके कारण उसे वे वर दे दिये ॥१॥

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! तुम जो वर मुझसे माँग रहे हो, वे जीवोंके लिये बहुत ही दुर्लभ हैं, परन्तु दुर्लभ होनेपर भी मैं तुम्हें वे सब वर दिये देता हूँ ॥ २ ॥

[**नारदजी कहते हैं**—] ब्रह्माजीके वरदान कभी झूठे नहीं होते। वे समर्थ एवं भगवद्‌रूप ही हैं। वरदान मिल जानेके बाद हिरण्यकशिपुने उनकी पूजा की। तत्पश्चात् प्रजापतियोंसे अपनी स्तुति सुनते हुए वे अपने लोकको चले गये। हिरण्यकशिपुका शरीर सुवर्णके समान कान्तिमान् हो गया था। जब ब्रह्माजीने उसे इस प्रकार वर दे दिया, तब वह अपने भाईकी मृत्युका स्मरण करके भगवान्‌से द्वेष करने लगा। उस महादैत्यने समस्त दिशाओं, तीनों लोकों तथा देवता, असुर, नरपति, गन्धर्व, गरुड़, सर्प, सिद्ध, चारण, विद्याधर, ऋषि, पितरोंके अधिपति, मनु, यक्ष, राक्षस, पिशाचराज, प्रेत, भूतपति एवं समस्त प्राणियोंके राजाओंको जीतकर अपने वशमें कर लिया। यहाँतक कि उस विश्वविजयी दैत्यने लोकपालोंकी शक्ति और स्थान भी छीन लिये। अब वह नन्दनवन आदि दिव्य उद्यानोंके सौन्दर्यसे सेवित

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत

सप्तम स्कन्ध

पहला अध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

नारद-युधिष्ठिर-संवाद और जय-विजयकी कथा

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! भगवान् तो स्वभावसे ही भेदभावसे रहित हैं, सम हैं, समस्त प्राणियोंके प्रिय और सुहृद् हैं; फिर उन्होंने, जैसे कोई साधारण मनुष्य भेदभावसे अपने मित्रका पक्ष ले और शत्रुओंका अनिष्ट करे, इस प्रकार इन्द्रके लिये दैत्योंका वध क्यों किया ? वे स्वयं परिपूर्ण कल्याणस्वरूप हैं, इसलिये उन्हें देवताओंसे तो कुछ लेना-देना नहीं है । और निर्गुण होनेके कारण दैत्योंसे कुछ वैर-विरोध भी नहीं है । घबड़ाहट तो हो ही कैसे सकती है ? क्योंकि ये दोनों ही तमोगुणके कार्य हैं । भगवत्प्रेमके सौभाग्यसे सम्पन्न महात्मन् ! हमारे चित्तमें भगवान्‌के समत्व आदि गुणोंके सम्बन्धमें बड़ा भारी सन्देह हो रहा है । आप कृपा करके इसे मिटाइये ॥ १—३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—महाराज ! भगवान्‌के चरित्रके सम्बन्धमें तुमने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया । क्योंकि ऐसे प्रसंग प्रह्लाद आदि भक्तोंकी महिमासे परिपूर्ण होते हैं, जिसके श्रवणसे भगवान्‌की भक्ति बढ़ती है । इस परम पुण्यमय प्रसङ्गको नारदादि महात्मागण बड़े प्रेमसे गाते रहते हैं । अब मैं अपने पिता श्रीव्यासमुनिको नमस्कार करके भगवान्‌की लीलाका वर्णन करता हूँ । वास्तवमें भगवान् निर्गुण, अजन्मा, अव्यक्त और प्रकृतिसे परे हैं । ऐसा होते हुए भी अपनी मायाके गुणोंको स्वीकार करके वे बाध्य-बाधक-भावको अर्थात् मरने और मारनेवाले दोनोंके परस्परविरोधी रूपोंको ग्रहण करते हैं । सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये प्रकृतिके गुण हैं, परमात्माके नहीं । परीक्षित् ! इन तीनों गुणोंकी भी एक साथ ही घटती-बढ़ती नहीं होती । भगवान् समय-समयके अनुसार गुणोंको स्वीकार करते हैं । सत्त्वगुणकी वृद्धिके समय देवता और ऋषियोंका, रजोगुणकी वृद्धिके समय दैत्योंका और तमोगुणकी वृद्धिके समय वे यक्ष एवं राक्षसोंका अभ्युदय करते हैं । जैसे व्यापक अग्नि काष्ठ आदि भिन्न-भिन्न आश्रयोंमें रहनेपर भी उनसे अलग नहीं जान पड़ती, परन्तु मन्थन करनेपर वह प्रकट हो जाती है—वैसे ही परमात्मा सभी शरीरोंमें रहते हैं, अलग नहीं जान पड़ते । परन्तु विचारशील पुरुष हृदय-मन्थन करके—उनके अतिरिक्त सभी वस्तुओंका बाध करके अन्ततः अपने हृदयमें ही अन्तर्यामीरूपसे उन्हें प्राप्त कर लेते हैं । जब परमेश्वर अपने लिये शरीरोंका निर्माण करना चाहते हैं तब अपनी मायासे रजोगुणकी अलग सृष्टि करते हैं । जब वे विचित्र योनियोंमें रमण करना चाहते हैं तब सत्त्वगुणकी सृष्टि करते हैं । और जब वे शयन करना चाहते हैं तब तमोगुणको बढ़ा देते हैं । परीक्षित् ! भगवान् सत्यसङ्कल्प हैं । वे ही जगत्‌की उत्पत्तिके निमित्त प्रकृति और पुरुषके सहकारी तथा आश्रय कालकी सृष्टि करते हैं । इसलिये वे कालके अधीन नहीं, काल ही उनके अधीन है । यही कारण है कि कालके द्वारा किये हुए कर्म भी एक प्रकारसे उन्हींके किये हुए हैं । इसीसे जब समयके फेरसे अथवा समर्थ कालकी प्रेरणासे सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है, तब देवताओंके प्यारे परमयशस्वी परमात्मा भी देवताओंके बलकी वृद्धि और उनके विरोधी रजोगुणी एवं तमोगुणी दैत्योंका संहार करते हुए-से जान पड़ते हैं । वास्तवमें तो वे सम ही हैं ॥ ४—११ ॥

इसी विषयमें देवर्षि नारदने बड़े प्रेमसे एक इतिहास कहा था । यह उस समयकी बात है, जब राजसूय-यज्ञमें तुम्हारे दादा युधिष्ठिरने उनसे इस सम्बन्धमें एक प्रश्न किया था । उस महान् राजसूय-यज्ञमें राजा युधिष्ठिरने अपनी आँखोंके सामने ही बड़ी आश्चर्यजनक घटना देखी कि

और कुलीनतासे सम्पन्न होनेपर भी घमंड और हेकड़ी उन्हें छू तक नहीं गयी थी। बड़े-बड़े दुःखोंमें भी वे तनिक भी घबड़ाते न थे। लोक-परलोकके विषयोंको उन्होंने देखा सुना तो बहुत था, परन्तु वे उन्हें निस्सार और असत्य समझते थे। इसलिये उनके मनमें किसी भी वस्तुकी लालसा न थी। इन्द्रिय, प्राण, शरीर और मन उनके वशमें थे। उनके चित्तमें कभी किसी प्रकारकी कामना नहीं उठती थी। सच पूछिये तो दैत्यवंशमें उनका केवल जन्म ही हुआ था, आसुरी सम्पत्तिका उनके अंदर लेश भी न था। जैसे भगवान्के गुण अनन्त हैं, उनकी कभी समाप्ति नहीं होती, वैसे ही प्रह्लादके श्रेष्ठ गुणोंकी भी कोई सीमा नहीं है। महात्मालोग सर्वदासे उनका वर्णन करते और उन्हें अपनाते आये हैं। उनके गुण आज भी ज्यों-के-त्यों संसारमें बने हुए हैं। युधिष्ठिर! यों तो देवता उनके शत्रु हैं, परन्तु फिर भी भक्तोंका चरित्र सुननेके लिये जब उन लोगोंकी सभा होती है, तब वे दूसरे भक्तोंको प्रह्लादके समान कहकर उनका सम्मान करते हैं। फिर आप-जैसे अजातशत्रु भगवद्भक्त उनका आदर करेंगे, इसमें तो सन्देह ही क्या है। उनकी महिमाका वर्णन करनेके लिये अगणित गुणोंके कहने सुननेकी आवश्यकता नहीं। केवल एक ही गुण—भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें स्वाभाविक, जन्मजात प्रेम उनकी महिमाको प्रकट करनेके लिये पर्याप्त है ॥ ३०–३६॥

युधिष्ठिर! प्रह्लाद बचपनमें ही खेल-कूद छोड़कर



भगवान्के ध्यानमें तन्मय हो जाया करते। भगवान् श्रीकृष्णने अनुग्रह करके उनके हृदयको इस प्रकार अपनी ओर खींच लिया था कि उन्हें जगत्की कुछ सुध-बुध ही न रहती। वे इतने जड हो जाते, मानो किसी भूत-प्रेत आदिके आवेशसे बेहोश हो गये हों। उन्हें ऐसा जान पड़ता कि भगवान् मुझे अपनी गोदमें लेकर आलिङ्गन कर रहे हैं। इसलिये उन्हें सोते उठते, खाते-पीते चलते फिरते और बातचीत करते समय भी इन बातोंका ध्यान बिल्कुल न रहता। कभी कभी भगवान् मुझे छोड़कर चले गये, इस चिन्तनमें उनका हृदय इतना डूब जाता कि वे जोर-जोरसे रोने लगते। कभी मन ही मन उन्हें अपने सामने पाकर ठठाकर हँसने लगते। कभी उनके ध्यानके मधुर आनन्दका अनुभव करके गायन करने लगते तो कभी बेसुरा चिल्ला पड़ते। कभी-कभी लोकलज्जाका त्याग करके प्रेममें छककर नाचने भी लगते थे। कभी कभी उनकी लीलाके चिन्तनमें इतने तल्लीन हो जाते कि उन्हें अपनी याद ही न रहती, उन्हींका अनुकरण करने लगते। कभी भीतर ही भीतर भगवान्का कोमल संस्पर्श अनुभव करके आनन्दमें मग्न हो जाते और चुपचाप शान्त होकर बैठ रहते। उस समय उनका रोम-रोम पुलकित हो उठता। अधखुले नेत्र अविचल प्रेम और आनन्दके आँसुओंसे उमड़े रहते। भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी यह भक्ति अकिञ्चन भगवत्प्रेमी महात्माओंके सङ्गसे ही प्राप्त होती है। इसके द्वारा वे स्वयं तो परमानन्दमें मग्न रहते ही थे, जिन बेचारोंका मन कुसङ्गके कारण अत्यन्त दीन हीन हो रहा था उन्हें भी बार-बार शान्ति प्रदान करते थे। युधिष्ठिर! प्रह्लाद भगवान्के परम प्रेमी भक्त, परम भाग्यवान् और ऊँची कोटिके महात्मा थे। हिरण्यकशिपु ऐसे पुत्रको भी अपराधी बतलाकर उनका अनिष्ट करनेकी चेष्टा करने लगा॥ ३७–४३॥

युधिष्ठिरने पूछा—नारदजी! आपका व्रत अखण्ड है। अब हम आपसे यह सुनना चाहते हैं कि हिरण्यकशिपुने पिता होकर भी ऐसे शुद्धहृदय महात्मा पुत्रसे द्रोह क्यों किया। पिता तो स्वभावसे ही अपने पुत्रोंसे प्रेम करते हैं। यदि पुत्र कोई उल्टा काम करता है, तब वे उसे शिक्षा देनेके लिये ही डाँटते हैं, शत्रुकी तरह वैर विरोध तो नहीं करते। फिर प्रह्लादजी-जैसे अनुकूल, शुद्धहृदय एवं गुरुजनोंमें भगवद्भाव करनेवाले पुत्रोंसे तो भला, कोई द्वेष कर ही कैसे सकता है। नारदजी! आप तो सब कुछ जानते हैं। हमें यह जानकर बड़ा कौतूहल हो रहा है कि पिताने द्वेषके कारण पुत्रको मार डालना चाहा। आप कृपा करके मेरा यह कुतूहल शान्त कीजिये॥ ४४–४६॥

वैकुण्ठमें जा पहुँचे। यों तो वे सबसे प्राचीन हैं, परन्तु जान पड़ते हैं ऐसे, मानो पाँच-छः बरसके बच्चे हों। वस्त्र भी नहीं पहनते। उन्हें साधारण बालक समझकर द्वारपालोंने उनको भीतर जानेसे रोक दिया। इसपर वे क्रोधित-से हो गये और उन्होंने द्वारपालोंको यह शाप दिया कि 'मूर्खो! भगवान् विष्णुका यह धाम तो रजोगुण और तमोगुणसे रहित है। तुम दोनों यहाँ निवास करनेयोग्य नहीं हो। इसलिये शीघ्र ही तुम पापमयी असुरयोनिमें जाओ।' उनके इस प्रकार शाप देते ही जब वे वैकुण्ठसे नीचे गिरने लगे, तब उन कृपालु महात्माओंने कहा—'अच्छा, तीन जन्ममें इस शापको भोगकर तुमलोग फिर इसी वैकुण्ठमें आ जाना'॥३५—३८॥

युधिष्ठिर! वे ही दोनों दितिके पुत्र हुए। उनमें बड़ेका नाम हिरण्यकशिपु था और छोटेका नाम हिरण्याक्ष। दैत्य और दानवोंके समाजमें यही दोनों सर्वश्रेष्ठ थे। विष्णु-भगवान्ने नृसिंहका रूप धारण करके हिरण्यकशिपुको और पृथ्वीका उद्धार करनेके समय वराहावतार ग्रहण करके हिरण्याक्षको मारा। हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लादको भगवत्प्रेमी होनेके कारण मार डालना चाहा और इसके लिये उन्हें बहुत-सी यातनाएँ दीं। परन्तु प्रह्लाद तो सर्वात्मा भगवान्के परम प्रिय हो चुके थे, समदर्शी हो चुके थे। उनके हृदयमें अटल शान्ति थी। भगवान्के प्रभावसे वे सुरक्षित थे। इसलिये तरह-तरहसे चेष्टा करनेपर भी हिरण्यकशिपु उनको मार डालनेमें समर्थ न हो सका॥३९—४२॥

युधिष्ठिर! वे ही दोनों विश्रवा मुनिके द्वारा केशिनी (कैकसी) के गर्भसे राक्षसके रूपमें पैदा हुए। उनका नाम था रावण और कुम्भकर्ण। उनके उत्पातसे सब लोकोंमें आग-सी लग गयी थी। उस समय भी भगवान्ने उन्हें शापसे छुड़ानेके लिये रामावतार ग्रहण किया। युधिष्ठिर! मार्कण्डेय मुनि तुम्हें भगवान् श्रीरामका चरित्र सुनायेंगे। वे ही दोनों जय-विजय इस जन्ममें तुम्हारी मौसीके लड़के शिशुपाल और दन्तवक्त्रके रूपमें क्षत्रियकुलमें उत्पन्न हुए थे। भगवान् श्रीकृष्णके चक्रका स्पर्श प्राप्त होनेसे उनके सारे पाप नष्ट हो गये और वे सनकादिकोंके शापसे मुक्त हो गये। वैरभावके कारण निरन्तर ही वे भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन किया करते थे। उसी तीव्र तन्मयताके फलस्वरूप वे भगवान्को प्राप्त हो गये और पुनः उनके पार्षद होकर उन्हींके समीप चले गये॥ ४३—४६॥

युधिष्ठिरजीने पूछा—भगवन्! हिरण्यकशिपुने अपने स्नेहभाजन पुत्र प्रह्लादसे इतना द्वेष क्यों किया? फिर प्रह्लाद तो महात्मा थे! साथ ही यह भी बतलाइये कि किस साधनसे प्रह्लाद भगवन्मय हो गये॥ ४७॥

दूसरा अध्याय

हिरण्याक्षका वध होनेपर हिरण्यकशिपुका अपनी माता और कुटुम्बियोंको समझाना

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर! जब भगवान्ने वराहावतार धारण करके हिरण्याक्षको मार डाला, तब भाईकी मृत्युसे हिरण्यकशिपुके शोक और रोषका ठिकाना न रहा। वह क्रोधसे काँपता हुआ अपने दाँतोंसे बार-बार ओठ चबाने लगा। क्रोधसे दहकती हुई आँखोंकी आगके धूएँसे धूमिल हुए आकाशकी ओर देखता हुआ वह कहने लगा। उस समय विकराल दाढ़ों, आग उगलनेवाली दृष्टि और चढ़ी हुई भौंहोंके कारण उसका मुँह देखा न जाता था। भरी सभामें त्रिशूल उठाकर उसने द्विमूर्धा, त्र्यक्ष, शम्बर, शतबाहु, हयग्रीव, नमुचि, पाक, इल्वल, विप्रचित्ति, पुलोमा और शकुन आदिको सम्बोधन करके कहा 'दैत्यो और दानवो! तुमलोग मेरी बात सुनो और उसके बाद बिना विलम्बके जैसा मैं कहता हूँ, वैसा करो। तुम्हें इस बातका पता है कि मेरे क्षुद्र शत्रुओंने मेरे परमप्यारे और हितैषी भाईको विष्णुसे मरवा डाला है। यद्यपि वह तो देवता और दैत्य दोनोंके प्रति समान है, तथापि दौड़-धूप और अनुनय-विनय



करके देवताओंने उसे अपने पक्षमें कर लिया है। वह विष्णु

रहा है।' इस प्रकार गुरुजी तरह-तरहसे डाँट-डपटकर प्रह्लादको धमकाते रहे और अर्थ, धर्म एवं कामसम्बन्धी शिक्षा देते रहे। कुछ समयके बाद जब गुरुजीने देखा कि प्रह्लादने साम, दाम, भेद और दण्डके सम्बन्धकी सारी बातें जान ली हैं, तब वे उन्हें उनकी माँके पास ले गये। माताने बड़े लाड़-प्यारसे उन्हें नहला-धुलाकर अच्छी तरह गहने-कपड़ोंसे सजा दिया। इसके बाद वे उन्हें हिरण्यकशिपुके पास ले गये। प्रह्लादने अपने पिताके चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया। हिरण्यकशिपुने उन्हें आशीर्वाद दिया और दोनों हाथोंसे उठाकर बहुत देरतक गलेसे लगाये रक्खा। उस समय उसका हृदय आनन्दसे भर रहा था। युधिष्ठिर! हिरण्यकशिपुने प्रसन्नमुख प्रह्लादको अपनी गोदमें बैठाकर उनका सिर सूँघा। उसके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू गिर-गिरकर प्रह्लादके शरीरको भिगोने लगे। उसने अपने पुत्रसे पूछा ॥१५—२१॥

हिरण्यकशिपुने कहा—चिरञ्जीव बेटा प्रह्लाद! इतने दिनोंमें तुमने गुरुजीसे जो शिक्षा प्राप्त की है, उसमेंसे कोई अच्छी-सी बात हमें सुनाओ ॥ २२ ॥

प्रह्लादजीने कहा—'पिताजी! विष्णुभगवान्‌की भक्तिके नौ भेद हैं—भगवान्‌के गुण, लीला, नाम आदिका श्रवण; उन्हींका कीर्तन; उनके रूप, नाम आदिका स्मरण; उनके चरणोंकी सेवा; पूजा-अर्चा; वन्दन; दास्य; सख्य और आत्मनिवेदन। यदि भगवान्‌के प्रति समर्पणके भावसे यह नौ प्रकारकी भक्ति की जाय, तो मैं उसीको उत्तम अध्ययन समझता हूँ। पर यह बात तो गुरुजीने मुझे



सिखायी नहीं।' प्रह्लादकी यह बात सुनते ही क्रोधके मारे हिरण्यकशिपुके ओठ फड़कने लगे। उसने गुरुपुत्रसे कहा—रे नीच ब्राह्मण! नासमझ! तूने मेरी कुछ भी परवा न करके इस बच्चेको कैसी निस्सार शिक्षा दे दी? अवश्य ही तू हमारे शत्रुओंका आश्रित है। संसारमें ऐसे दुष्टोंकी कमी नहीं है, जो *मित्रका बाना धारणकर छिपे-छिपे शत्रुका काम* करते हैं। परन्तु उनकी कलई ठीक वैसे ही खुल जाती है, जैसे छिपकर पाप करनेवालोंका पाप समयपर रोगके रूपमें प्रकट होकर उनकी पोल खोल देता है ॥ २३—२७ ॥

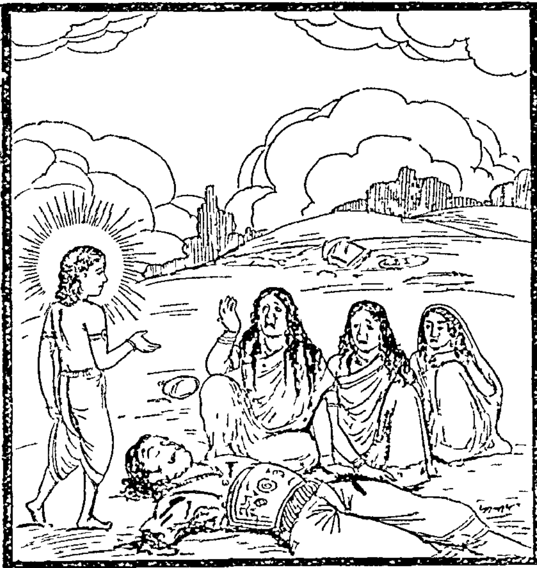
गुरुपुत्रने कहा—महाराज! आपका पुत्र जो कुछ कह रहा है, वह मेरे या और किसीके बहकानेसे नहीं कह रहा है। यह तो इसकी जन्मजात स्वाभाविक बुद्धि है। आप क्रोध शान्त कीजिये। व्यर्थमें हमें दोष न लगाइये ॥२८॥

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! जब गुरुजीने ऐसा उत्तर दिया, तब हिरण्यकशिपुने फिर प्रह्लादसे पूछा—'क्यों रे! यदि तुझे ऐसी अहित करनेवाली खोटी बुद्धि गुरुमुखसे नहीं मिली, तो बता कहाँसे प्राप्त हुई?॥ २९ ॥

प्रह्लादजीने कहा—पिताजी! संसारके लोग तो पिसे हुएको पीस रहे हैं, चबाये हुएको चबा रहे हैं। इन्द्रियोंके वशमें न होनेके कारण वे भोगे हुए विषयोंको ही फिर-फिर भोगनेके लिये संसाररूप घोर नरककी ओर जा रहे है। ऐसे गृहासक्त पुरुषोंकी बुद्धि अपने-आप, किसीके सिखानेसे अथवा अपने-ही-जैसे लोगोंके सङ्गसे भगवान् श्रीकृष्णमें नहीं लगती। जो इन्द्रियोंसे दीखनेवाले बाह्य विषयोंको परम इष्ट समझकर मूर्खतावश अंधोंके पीछे अंधोंकी तरह गड्ढेमें गिरनेके लिये चले जा रहे हैं और वेदवाणीरूप रस्सीके काम्यकर्मोंके दीर्घ बन्धनमें बँधे हुए हैं, उनको यह बात मालूम नहीं कि हमारे स्वार्थ और परमार्थ भगवान् विष्णु ही हैं। उन्हींकी प्राप्तिसे हमें सब पुरुषार्थोंकी प्राप्ति हो सकती है। जिनकी बुद्धि भगवान्‌के चरणकमलोंका स्पर्श कर लेती है, उनके जन्म-मृत्युरूप अनर्थका सर्वथा नाश हो जाता है। परन्तु जो लोग अकिञ्चन भगवत्प्रेमी महात्माओंके चरणोंकी धूलमें स्नान नहीं कर लेते, उनकी बुद्धि काम्यकर्मोंका पूरा सेवन करनेपर भी भगवच्चरणोंका स्पर्श नहीं कर सकती ॥३०—३२॥

प्रह्लादजी इतना कहकर चुप हो गये। हिरण्यकशिपु क्रोधके मारे आग-बबूला हो गया। उसने उन्हें अपनी गोदसे उठाकर नीचे पटक दिया। प्रह्लादकी बातको वह सह न सका। रोषके मारे उसके नेत्र लाल हो गये। वह कहने लगा—दैत्यो! इसे यहाँसे बाहर ले जाओ और तुरंत मार डालो। यह मार ही डालने योग्य है। देखो तो सही—जिसने

तो बेमौत मर गयीं ।' ऐसा कहकर बार-बार छाती पीटती हुई अपने स्वामीके चरणोंके पास गिर पड़ीं । वे जोर-जोरसे इतना रोने लगीं कि उनके कुच-कुङ्कुमसे मिलकर बहते हुए लाल-लाल आँसुओंने प्रियतमके पाद-पद्म पखार दिये । उनके केश और गहने इधर-उधर बिखर गये । वे विलाप कर रही थीं और उनका करुण-क्रन्दन सुननेवालोंका भी हृदय फटा जाता था । 'हाय ! विधाता बड़ा क्रूर है । स्वामिन् ! उसीने आज आपको हमारी आँखोंसे ओझल कर दिया । पहले तो आप समस्त देशवासियोंके जीवनदाता थे । आज उसीने आपको ऐसा बना दिया कि आप हमारा शोक बढ़ा रहे हैं । पतिदेव ! आप हमसे बड़ा प्रेम करते थे । हमारी थोड़ी-सी सेवाको भी बड़ी करके मानते थे । हाय ! अब आपके बिना हम कैसे रह सकेंगी ? हम आपके चरणोंकी चेरी हैं । आप जहाँ जा रहे हैं, वहीं चलनेकी हमें भी आज्ञा दीजिये ।' वे अपने पतिकी लाश पकड़कर इसी प्रकार विलाप करती रहीं । सूर्यास्त हो गया, परन्तु उन्होंने मुर्देको जलाने नहीं दिया । उस समय उशीनरराजके सम्बन्धियोंने जो विलाप किया



था, उसे सुनकर वहाँ स्वयं यमराज बालकके वेषमें आये और उन्होंने उन लोगोंसे कहा ॥ ३१–३६ ॥

यमराजने कहा—बड़े आश्चर्यकी बात है ! तुमलोग तो मुझसे सयाने हो । बराबर लोगोंका मरना-जीना देखते हो । फिर भी इतने मूढ हो रहे हो ! अरे भाई, यह मनुष्य जहाँसे आया था, वहीं चला गया । तुम्हें भी एक-न-एक दिन वहीं जाना है । फिर झूठमूठ इतना शोक करनेकी क्या आवश्यकता है ? हम तो तुमसे लाखगुने अच्छे हैं, परम धन्य हैं । क्योंकि हमारे माँ-बापने हमें छोड़ दिया है, हमारे शरीरमें पर्याप्त बल भी नहीं है; फिर भी हमें कोई चिन्ता नहीं है । भेड़िये आदि हिंसक जन्तु हमारा बाल भी बाँका नहीं कर पाते । करें कैसे ? जिसने गर्भमें रक्षा की थी, वही इस जीवनमें भी हमारी रक्षा करता रहता है । जो प्रभु अपनी मौजसे इसको बनाता है, रखता है और बिगाड़ देता है—उस अविनाशी प्रभुका यह जगत् एक खिलौनामात्र है । वह इस चराचर जगत्को दण्ड या पुरस्कार देनेमें समर्थ है । भाग्य अनुकूल हो तो रास्तेमें गिरी हुई वस्तु भी ज्यों-की-त्यों पड़ी रहती है । परन्तु भाग्यके प्रतिकूल होनेपर तिजोरीमें रक्खी हुई वस्तु भी खो जाती है । जीव बिना किसी सहारेके दैवकी दयादृष्टिसे जंगलमें भी बहुत दिनोंतक जीवित रहता है, परन्तु दैवके विपरीत होनेपर घरमें सुरक्षित रहनेपर भी मर जाता है ॥ ३७–४० ॥

रानियो ! सभी प्राणियोंकी मृत्यु अपने पूर्वजन्मोंकी कर्मवासनाके अनुसार समयपर होती है और उसीके अनुसार उनका जन्म भी होता है । परन्तु आत्मा शरीरसे अत्यन्त भिन्न है, इसलिये वह उसमें रहनेपर भी उसके जन्म-मृत्यु आदि धर्मोंसे अछूता ही रहता है । जैसे मनुष्य अपने मकानको अपनेसे अलग और मिट्टीका समझता है, वैसे ही यह शरीर भी अलग और मिट्टीका है । मोहवश वह इसे अपना समझ बैठता है । जैसे पानीके विकार बुलबुले आदि, मिट्टीके विकार घड़े आदि और स्वर्णके विकार गहने आदि समयपर बनते हैं, रूपान्तरित होते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं—वैसे ही इन्हीं तीनोंके विकारसे बना हुआ यह शरीर भी समयपर बन-बिगड़ जाता है । जैसे काठमें रहनेवाली व्यापक अग्नि उससे अलग है, जैसे देहमें रहनेपर भी वायुका उससे कोई सम्बन्ध नहीं है, जैसे आकाश सब जगह एक-सा रहनेपर भी किसीके दोष-गुणसे लिप्त नहीं होता—वैसे ही समस्त देहेन्द्रियोंमें रहनेवाला और उनका आश्रय आत्मा भी उनसे अलग और निर्लिप्त है ॥ ४१–४३ ॥

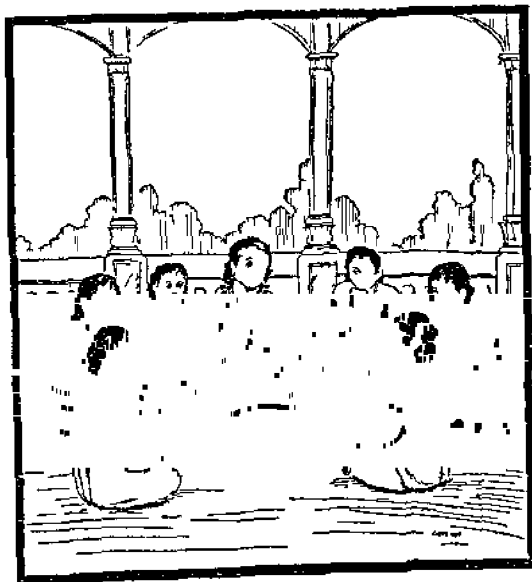
मूर्खो ! जिसके लिये तुम सब शोक कर रहे हो, वह सुयज्ञ नामका शरीर तो तुम्हारे सामने पड़ा है । तुमलोग इसीको तो देखते थे । इसमें जो सुननेवाला और बोलनेवाला था, वह तो कभी किसीको नहीं दिखायी पड़ता था । फिर आज भी नहीं दिखायी दे रहा है, तो शोक क्यों ? तुम्हारी

सलाह मान ली और कहा कि इसे उन धर्मोंका उपदेश करना चाहिये, जिनका पालन गृहस्थ नरपति किया करते हैं। युधिष्ठिर! इसके बाद पुरोहित उन्हें लेकर पाठशालामें गये और क्रमश धर्म, अर्थ और काम—इन तीन पुरुषार्थोंकी शिक्षा देने लगे। प्रह्लाद वहाँ अत्यन्त नम्र सेवककी भाँति रहते थे। परन्तु गुरुओंकी वह शिक्षा प्रह्लादको अच्छी न लगी। क्योंकि गुरुजी तो उन्हें केवल अर्थ, धर्म और कामकी ही शिक्षा देते थे। यह शिक्षा तो केवल उन लोगोंके लिये है, जो राग द्वेष आदि द्वन्द्व और विषयभोगोंमें रस ले रहे हों। एक दिन गुरुजी गृहस्थीके कामसे कहीं बाहर चले गये थे। छुट्टी मिल जानेके कारण समवयस्क बालकोंने प्रह्लादजीको खेलनेके लिये पुकारा। प्रह्लादजी तो सब कुछ जाननेवाले परम ज्ञानी थे, उनका प्रेम देखकर उन्होंने उन बालकोंको ही बड़ी मधुर वाणीसे पुकारकर अपने पास बुला लिया। उनसे उनके जन्म मरणकी गति भी छिपी न थी। उनपर कृपा करके हँसते हुए-से उन्हें उपदेश करने लगे। युधिष्ठिर! वे सब अभी बालक ही थे, इसलिये राग द्वेषपरायण विषय भोगी पुरुषोंके उपदेशोंसे और चेष्टाओंसे उनकी बुद्धि अभी दूषित नहीं हुई थी। इसीसे, और प्रह्लादजीके प्रति आदर बुद्धि होनेसे उन सबने अपनी खेल कूदकी सामग्रियोंको छोड़ दिया तथा प्रह्लादजीके पास जाकर उनके चारों ओर बैठ गये और बड़े प्रेमसे एकटक उनकी ओर देखने लगे। भगवान्‌के परमप्रेमी भक्त प्रह्लादका हृदय उनके प्रति करुणा और मैत्रीके भावसे भर गया तथा वे उनसे कहने लगे॥ ५१—५७॥

छठा अध्याय

प्रह्लादजीका असुरबालकोंको उपदेश

प्रह्लादजीने कहा—मित्रो! इस ससारमे मनुष्यजन्म बड़ा दुर्लभ है। इसके द्वारा अविनाशी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। परन्तु पता नहीं कब यह चल बसे, इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको बुढ़ापे या जवानीके भरोसे न रहकर बचपन



मे ही भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाले साधनोंका अनुष्ठान कर लेना चाहिये। इस मनुष्यजन्ममे श्रीभगवान्‌के चरणोंकी शरण लेना ही जीवनकी एकमात्र सफलता है। क्योंकि भगवान् समस्त प्राणियोंके स्वामी, सुहृद्, प्रियतम और आत्मा हैं। भाइयो! इन्द्रियोंसे जो सुख भोगा जाता है, वह तो—जीव चाहे जिस योनिमें रहे—प्रारब्धके अनुसार वैसे ही मिलता रहता है जैसे बिना किसी प्रकारका प्रयत्न किये, निवारण करनेपर भी दुःख मिलता है। इसलिये सासारिक सुखके उद्देश्यसे प्रयत्न करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि स्वय मिलनेवाली वस्तुके लिये परिश्रम करना आयु और शक्तिको व्यर्थ गँवाना है। जो इनमें उलझ जाते हैं, उन्हें भगवान्‌के परम कल्याणस्वरूप चरणकमलोंकी प्राप्ति नहीं होती। हमारे सिरपर अनेकों प्रकारके भय सवार रहते हैं। इसलिये यह शरीर—जो भगवत्प्राप्तिके लिये पर्याप्त है—जबतक रोग शोकादिग्रस्त होकर मृत्युके मुखमे नहीं चला जाता, तभी तक बुद्धिमान् पुरुषको अपने कल्याणके लिये प्रयत्न कर लेना चाहिये। मनुष्यकी पूरी आयु सौ वर्षकी है। जिन्होंने अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं कर लिया है, उनकी आयुका आधा हिस्सा तो यों ही बीत जाता है। क्योंकि वे रातमे घोर तमो गुण—अज्ञानसे ग्रस्त होकर सोते रहते हैं, बचपनमे उन्हें अपने हित अहितका ज्ञान नहीं रहता, कुछ बड़े होनेपर कुमार अवस्थामें वे खेल कूदमे लग जाते हैं। इस प्रकार बीस वर्षका तो पता ही नहीं चलता। जब बुढ़ापा शरीरको ग्रस लेता है, तब अन्तके बीस वर्षोंमें कुछ करने धरनेकी शक्ति ही नहीं रह जाती। रह गयी बीचकी कुछ थोड़ी-सी आयु। उसमें कभी न पूरी होनेवाली बड़ी-बड़ी कामनाएँ हैं, बलात् पकड़ रखनेवाला मोह है और घर द्वारकी वह आसक्ति है, जिससे

वह इस प्रकार तपस्यामें संलग्न हो गया, तब देवतालोग अपने-अपने स्थानों और पदोंपर पुनः प्रतिष्ठित हो गये। बहुत दिनोंतक तपस्या करनेके बाद उसकी तपस्याकी आग धूएँके साथ सिरसे निकलने लगी। वह चारों ओर फैल गयी और ऊपर-नीचे तथा अगल-बगलके लोकोंको जलाने लगी। उसकी लपटसे नदी और समुद्र खौलने लगे। द्वीप और पर्वतोंके सहित पृथ्वी डगमगाने लगी। ग्रह और तारे टूट-टूटकर गिरने लगे तथा दसों दिशाओंमें मानो आग लग गयी॥१—५॥

हिरण्यकशिपुकी उस तपोमयी आगकी लपटोंसे स्वर्गके देवता भी जलने लगे। वे घबड़ाकर स्वर्गसे ब्रह्मलोकमें गये और ब्रह्माजीसे प्रार्थना करने लगे—'हे देवताओंकी रचना करनेवाले जगत्पति ब्रह्माजी! हमलोग हिरण्यकशिपुके तपकी ज्वालासे जल रहे हैं। अब हम स्वर्गमें नहीं रह सकते। हे अनन्त! हे सर्वाध्यक्ष! यदि आप उचित समझें तो अपनी सेवा करनेवाली जनताका नाश होनेके पहले ही यह सङ्कट दूर कर दीजिये। भगवन्! आप तो सब कुछ जानते ही हैं, फिर भी हम अपनी ओरसे आपसे यह निवेदन कर देते हैं कि वह किस अभिप्रायसे यह घोर तपस्या कर रहा है! उसका विचार है कि 'जैसे ब्रह्माजी अपनी तपस्या और योगके प्रभावसे इस चराचर जगत्की सृष्टि करके सब लोकोंसे ऊपर सत्यलोकमें विराजते हैं, वैसे ही मैं भी अपनी उग्र तपस्या और योगके प्रभावसे वही पद और स्थान प्राप्त कर लूँगा। क्योंकि समय असीम है, और आत्मा भी नित्य है। एक युगमें न सही, अनेक युगोंमें। एक जन्ममें न सही, अनेक जन्मोंमें। सफलता तो मुझे मिलेगी ही। अपनी तपस्याकी शक्तिसे मैं पाप-पुण्यादिके नियमोंको पलटकर इस संसारमें ऐसा उलट-फेर कर दूँगा, जैसा कभी नहीं था। वैष्णवादि पदोंमें तो रक्खा ही क्या है। क्योंकि कल्पके अन्तमें उन्हें भी कालके गालमें चले जाना पड़ता है।'* हमने सुना है कि ऐसा हठ करके ही वह घोर तपस्यामें जुटा हुआ है। आप तीनों लोकोंके स्वामी हैं। अब आप जो उचित समझें, वही करें। ब्रह्माजी! आपका यह सर्वश्रेष्ठ पद ब्राह्मण एवं गौओंकी वृद्धि, कल्याण, विभूति, कुशल और विजयके लिये है। यदि यह हिरण्यकशिपुके हाथमें चला गया, तो सज्जनोंपर सङ्कटोंका पहाड़ टूट पड़ेगा॥६—१३॥

युधिष्ठिर! जब देवताओंने ब्रह्माजीसे इस प्रकार निवेदन किया, तब वे भृगु और दक्ष आदि प्रजापतियोंके साथ हिरण्यकशिपुके आश्रमपर गये। वहाँ जानेपर पहले तो वे उसे देख ही न सके। क्योंकि दीमककी मिट्टी, घास और बाँसोंसे उसका शरीर ढक गया था। चींटियाँ उसकी मेदा, त्वचा, मांस और खून खा-पी गयी थीं। बादलोंसे ढके हुए सूर्यके समान वह अपनी तपस्याके तेजसे लोकोंको तपा रहा था। उसको देखकर ब्रह्माजी भी विस्मित हो गये। उन्होंने हँसते हुए कहा॥१४—१६॥

ब्रह्माजीने कहा—बेटा हिरण्यकशिपु! उठो, उठो। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम्हारी तपस्या सिद्ध हो गयी। मैं तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, बेखटके माँग लो। मैंने तुम्हारे हृदयका अद्भुत बल देखा। अरे, डाँसोंने तुम्हारी देह खा डाली है। फिर भी तुम्हारे प्राण हड्डियोंके सहारे टिके हुए हैं। ऐसी कठिन तपस्या न तो पहले किसी ऋषिने की थी और न आगे ही कोई करेगा। भला, ऐसा कौन है जो देवताओंके सौ वर्षतक बिना पानीके जीता रहे? बेटा हिरण्यकशिपु! तुम्हारा यह काम बड़े-बड़े धीर पुरुष भी नहीं कर सकते। तुमने इस तपोनिष्ठासे मुझे अपने वशमें कर लिया है। दैत्यशिरोमणे! इसीसे प्रसन्न होकर मैं तुम्हें जो कुछ माँगो, दिये देता हूँ। तुम हो मरनेवाले और मैं हूँ अमर! अतः तुम्हें अमर तो नहीं बनाया जा सकता, परन्तु मेरा दर्शन निष्फल भी नहीं हो सकता॥१७—२१॥

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! इतना कहकर ब्रह्माजीने उसके चींटियोंसे खाये हुए शरीरपर अपने कमण्डलुका दिव्य एवं अमोघ प्रभावशाली जल छिड़क दिया। जैसे लकड़ीके ढेरमेंसे आग जल उठे, वैसे ही वह जल छिड़कते ही बाँस और दीमकोंकी मिट्टीके बीचसे उठ खड़ा हुआ। उस समय उसका शरीर सब अवयवोंसे पूर्ण एवं बलवान् हो गया था, इन्द्रियोंमें शक्ति आ गयी थी और मन सचेत हो गया था। सारे अंग वज्रके समान कठोर एवं तपाये हुए सोनेकी तरह चमकीले हो गये थे। जब वह नवयुवक होकर उठ खड़ा हुआ, तब उसने देखा कि आकाशमें हंसपर चढ़े हुए ब्रह्माजी खड़े हैं। उन्हें देखकर उसे बड़ा आनन्द हुआ। अपना सिर पृथ्वीपर रखकर उसने उनको नमस्कार किया। फिर अञ्जलि बाँधकर खड़ा हुआ और बड़े प्रेमसे अपने निर्निमेष

* यद्यपि वैष्णवपद (वैकुण्ठादि नित्यधाम) अविनाशी हैं, परन्तु हिरण्यकशिपु अपनी आसुरी बुद्धिके कारण उनको कल्पके अन्तमें नष्ट होनेवाला ही मानता था। तामसी बुद्धिमें सब बातें विपरीत ही दीखा करती हैं।

भी वर्णन है। आत्मविद्या, कर्मकाण्ड, न्याय, दण्डनीति और व्यापारके विविध विधान भी वैदिक सत्य हैं। परन्तु यदि ये अपने परम हितैषी, परम प्रियतम भगवान्‌को आत्मसमर्पण करनेमें सहायक हैं, तभी सार्थक हैं, अन्यथा सब-के सब निरर्थक हैं। यह निर्मल ज्ञान जो मैंने तुम लोगोंको बतलाया है, बड़ा ही दुर्लभ है। इसे पहले नर नारायणने नारदजीको उपदेश किया था। और यह ज्ञान उन सब लोगोंको प्राप्त हो सकता है, जिन्होंने भगवान्‌के अनन्यप्रेमी एवं अकिञ्चन भक्तोंके चरणकमलोंकी धूलिसे अपने शरीरको सराबोर कर लिया है। यह विज्ञानसहित ज्ञान विशुद्ध भागवतधर्म है। इसे मैंने भगवान्‌का दर्शन करानेवाले देवर्षि नारदजीके मुँहसे ही पहले-पहल सुना था ॥ १९–२८ ॥

प्रह्लादजीके सहपाठियोंने पूछा—प्रह्लादजी! हमने और तुमने इन दोनों गुरुपुत्रोंको छोड़कर और किसीको तो गुरु बनाया नहीं। ये ही हम बालकोंके शासक हैं। तुम एक तो अभी छोटी अवस्थाके हो और दूसरे, जन्मसे ही महलमें अपनी माँके पास रहे हो। तुम्हारा नारदजीसे मिलना तो कुछ असम्भव-सी घटना मालूम पड़ती है। प्रियवर! यदि इस विषयमें विश्वास दिलानेवाली कोई बात हो, तो तुम उसे कहकर हमारी शङ्का मिटा दो ॥ २९ ३० ॥

सातवाँ अध्याय

माताके गर्भमें प्रह्लादजीका नारदजीसे उपदेश प्राप्त करना

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! जब दैत्यबालकोंने इस प्रकार प्रश्न किया, तब भगवान्‌के परमप्रेमी भक्त प्रह्लाद जीको मेरी बातका स्मरण हो आया। कुछ मुसकराते हुए उन्होंने दैत्यबालकोंसे कहा ॥ १ ॥

प्रह्लादजीने कहा—जब हमारे पिताजी तपस्या करनेके लिये मन्दराचलपर चले गये, तब इन्द्रादि देवताओंने दानवोंसे युद्ध करनेका बहुत बड़ा उद्योग किया। वे इस प्रकार कहने लगे कि जैसे चींटियाँ साँपको चाट जाती हैं, वैसे ही लोगोंको सतानेवाले पापी हिरण्यकशिपुको उसके पाप खा गये। जब दैत्यसेनापतियोंको देवताओंकी भारी तैयारीका पता चला, तब उनका साहस जाता रहा। वे उनका सामना नहीं कर सके। मार खाकर स्त्री, पुत्र, मित्र, गुरुजन, महल, पशु और साज सामानकी कुछ भी परवा न करके वे अपने प्राण बचानेके लिये बड़ी जल्दीमें सब-के सब इधर-उधर भाग गये। अपनी जीत चाहनेवाले देवताओंने राजमहलमें लूट खसोट मचा दी। यहाँतक कि इन्द्रने राजरानी मेरी माता कयाधुको कैद कर लिया। मेरी माँ भयसे घबड़ाकर कुररी पक्षीकी भाँति रो रही थी और इन्द्र उसे बलात् लिये जा रहे थे। दैववश देवर्षि नारद उधर निकल आये और उन्होंने मार्गमें मेरी माँको देख लिया। उन्होंने कहा—'देवराज! यह निरपराध है। इसे ले जाना उचित नहीं। महाभाग! इस सती साध्वी परनारीका तिरस्कार मत करो। इसे छोड़ दो, तुरत छोड़ दो!' ॥ २–८ ॥

इन्द्रने कहा—'इसके पेटमें देवद्रोही हिरण्यकशिपुका अत्यन्त प्रभावशाली वीर्य है। प्रसवपर्यन्त यह मेरे पास रहे, बालक हो जानेपर उसे मारकर मैं इसे छोड़ दूँगा ॥ ९ ॥

नारदजीने कहा—'इसके गर्भमें भगवान्‌का साक्षात् परमप्रेमी भक्त, अत्यन्त बली, उनका सेवक और निष्पाप महात्मा है। तुममें उसको मारनेकी शक्ति नहीं है।' देवर्षि नारदकी यह बात सुनकर उसका सम्मान करते हुए इन्द्रने मेरी माताको छोड़ दिया। और फिर इसके गर्भमें भगवद्भक्त है, इस भावसे उन्होंने मेरी माताकी प्रदक्षिणा की तथा अपने लोकमें चले गये ॥ १० ११ ॥

इसके बाद देवर्षि नारदजी मेरी माताको अपने आश्रम पर लिवा गये और उसे समझा बुझाकर कहा कि—'बेटी! जबतक तुम्हारा पति तपस्या करके लौटे, तबतक तुम यहीं रहो।' 'जो आज्ञा' कहकर वह निर्भयतासे देवर्षि नारदके आश्रमपर ही रहने लगी और तबतक रही, जबतक मेरे पिता घोर तपस्यासे लौटकर नहीं आये। मेरी गर्भवती माता मुझ गर्भस्थ शिशुकी मङ्गलकामनासे और इच्छित समयपर (अर्थात् मेरे पिताके लौटनेके बाद) सन्तान उत्पन्न करनेकी कामनासे बड़े प्रेम तथा भक्तिके साथ नारदजीकी सेवा शुश्रूषा करती रही ॥ १२–१४ ॥

देवर्षि नारदजी बड़े दयालु और सर्वसमर्थ हैं। उन्होंने मेरी माँको भागवतधर्मका रहस्य और विशुद्ध ज्ञान दोनोंका उपदेश किया। उपदेश करते समय वे मुझपर भी दृष्टि रखते थे। बहुत समय बीत जानेके कारण और स्त्री होनेके कारण भी मेरी माताको तो अब उस ज्ञानकी स्मृति नहीं रही, परन्तु देवर्षिकी विशेष कृपा होनेके कारण

स्वर्गमें ही रहने लगा था। स्वयं विश्वकर्माका बनाया हुआ इन्द्रका भवन ही उसका निवासस्थान था। उस भवनमें तीनों लोकोंका सौन्दर्य मूर्तिमान् होकर निवास करता था। वह सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे सम्पन्न था। उस महलमें मूँगेकी सीढ़ियाँ, नीलमकी गचें, स्फटिकमणिकी दीवारें, वैदूर्यमणिके खंभे और हीरोंके आसन थे। रंग-बिरंगे चँदोवे तथा दूधके फेनके समान शय्याएँ, जिनपर मोतियोंकी झालरें लगी हुई थीं, शोभायमान हो रही थीं। चमकीले दाँतोंवाली अप्सराएँ अपने नूपुरोंसे रुन-झुन ध्वनि करती हुई रत्नमय भूमिमें इधर-उधर टहला करती थीं और कहीं-कहीं उसीमें अपना सुन्दर मुख देखने लगती थीं। उस महेन्द्रके महलमें महाबली और महामनस्वी हिरण्यकशिपु सब लोकोंको जीतकर, सबका एकछत्र सम्राट् बनकर बड़ी स्वतन्त्रतासे विहार करने लगा। उसका शासन इतना कठोर था कि उससे भयभीत होकर देवतालोग उसके चरणोंकी वन्दना करते रहते थे। वह उत्कट गन्धवाली मदिरा पीकर मतवाला रहा करता था। उसकी आँखें लाल-लाल और चढ़ी हुई रहतीं। उस समय तपस्या, योग, शारीरिक और मानसिक बलमें वह बेजोड़ था। ब्रह्मा, विष्णु और महादेवके सिवा और सभी लोकपाल अपने हाथोंमें भेंट ले-लेकर उसकी सेवामें लगे रहते। जब वह अपने पुरुषार्थसे इन्द्रासनपर बैठ गया, तब युधिष्ठिर! विश्वावसु, तुम्बुरु तथा हम सभी लोग उसके सामने गायन करते थे। तथा गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि, विद्याधर और अप्सराएँ बार-बार उसकी स्तुति करती थीं ॥३—१४॥

युधिष्ठिर! वह इतना तेजस्वी था कि वर्णाश्रमधर्मका पालन करनेवाले पुरुष जो बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ करते, उनके यज्ञोंकी आहुति वह स्वयं ही ग्रहण करता। पृथ्वीके सातों द्वीपोंमें उसका अखण्ड राज्य था। सभी जगह बिना ही जोते-बोये धरतीसे अन्न पैदा होता था। वह जो कुछ चाहता, अन्तरिक्षसे उसे मिल जाता। तथा आकाश उसे भाँति-भाँतिकी आश्चर्यजनक वस्तुएँ दे-देकर उसकी सेवा करता था। इसी प्रकार खारे पानी, मदिरा, घृत, इक्षुरस, दधि, दुग्ध और मीठे पानीके समुद्र भी अपनी पत्नी नदियोंके साथ तरङ्गोंके द्वारा उसके पास रत्नराशि पहुँचाया करते। पर्वत अपनी घाटियोंके रूपमें उसके लिये खेलनेका स्थान जुटाते और वृक्ष सब ऋतुओंमें फूलते-फलते। वह अकेला ही सब लोकपालोंके विभिन्न गुणोंको धारण करता। इस प्रकार दिग्विजयी और एकछत्र सम्राट् होकर वह अपनेको प्रिय लगनेवाले विषयोंका स्वच्छन्द उपभोग करने लगा। परन्तु इतने विषयोंसे भी उसकी तृप्ति न हो सकी। क्योंकि अन्ततः वह इन्द्रियोंका दास ही तो था ॥१५—१९॥

युधिष्ठिर! इस रूपमें भी वह भगवान्‌का वही पार्षद है, जिसे सनकादिकोंने शाप दिया था। वह ऐश्वर्यके मदसे मतवाला हो रहा था। घमंडमें चूर होकर शास्त्रोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन कर रहा था। देखते-ही-देखते उसके जीवनका बहुत-सा समय निकल गया। उसके कठोर शासनसे सब लोक और लोकपाल घबड़ा गये। जब उन्हें और कहीं किसीका आश्रय न मिला, तब उन्होंने भगवान्‌की शरण ली। उन्होंने मन-ही-मन कहा—'जहाँ सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं और जिसे प्राप्त करके शान्त एवं निर्मल संन्यासी महात्मा फिर लौटते नहीं, भगवान्‌के उस परम धामको हम नमस्कार करते हैं।' इस भावसे अपनी इन्द्रियोंका संयम और मनको समाहित करके उन लोगोंने खाना-पीना और सोना छोड़ दिया तथा निर्मल हृदयसे भगवान्‌की आराधना की। एक दिन उन्हें मेघके समान गम्भीर आकाशवाणी सुनायी पड़ी। उसकी ध्वनिसे दिशाएँ गूँज उठीं। साधुओंको अभय देनेवाली वह वाणी यों थी—'श्रेष्ठ देवताओ! डरो मत। तुम सब लोगोंका कल्याण हो। मेरे दर्शनसे प्राणियोंको परम कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है। इस नीच दैत्यकी दुष्टताका मुझे पहलेहीसे पता है। मैं इसको मिटा दूँगा। अभी कुछ दिनोंतक समयकी प्रतीक्षा करो। कोई भी प्राणी, जब देवता, वेद, गाय, ब्राह्मण, साधु, धर्म और मुझसे द्वेष करने लगता है, तब शीघ्र ही उसका विनाश हो जाता है। जब यह अपने वैरहीन, शान्त और महात्मा पुत्र प्रह्लादसे द्रोह करेगा—उसका अनिष्ट करना चाहेगा, तब वरके कारण शक्तिसम्पन्न होनेपर भी इसे मैं अवश्य मार डालूँगा' ॥२०—२८॥

नारदजी कहते हैं—सबके हृदयमें ज्ञानका सञ्चार करनेवाले भगवान्‌ने जब देवताओंको यह आदेश दिया तब वे उन्हें प्रणाम करके लौट आये। उनकी सारी घबड़ाहट मिट गयी और उन्हें ऐसा मालूम होने लगा कि हिरण्यकशिपु मर गया॥२९॥

युधिष्ठिर! दैत्यराज हिरण्यकशिपुके बड़े ही विलक्षण चार पुत्र थे। उनमें प्रह्लाद यों तो सबसे छोटे थे, परन्तु गुणोंमें सबसे बड़े थे। वे बड़े संतसेवी, ब्राह्मणभक्त, सौम्यस्वभाव, सत्यप्रतिज्ञ एवं जितेन्द्रिय थे। वे समस्त प्राणियोंके साथ अपने समान ही समताका बर्ताव करते थे। सबके एकमात्र प्रिय और सच्चे हितैषी थे। बड़े लोगोंके चरणोंमें सेवककी तरह झुककर रहते थे। गरीबोंपर पिताके समान स्नेह रखते थे। बराबरीवालोंसे भाईके समान प्रेम करते और गुरुजनोंमें भगवद्भाव रखते थे। विद्या, धन, सौन्दर्य

स्वर्गमें ही रहने लगा था। स्वयं विश्वकर्माका बनाया हुआ इन्द्रका भवन ही उसका निवासस्थान था। उस भवनमें तीनों लोकोंका सौन्दर्य मूर्तिमान् होकर निवास करता था। वह सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे सम्पन्न था। उस महलमें मूँगेकी सीढ़ियाँ, नीलमकी गचें, स्फटिकमणिकी दीवारें, वैदूर्यमणिके खंभे और हीरोंके आसन थे। रंग-बिरंगे चँदोवे तथा दूधके फेनके समान शय्याएँ, जिनपर मोतियोंकी झालरें लगी हुई थीं, शोभायमान हो रही थीं। चमकीले दाँतोंवाली अप्सराएँ अपने नूपुरोंसे रुन-झुन ध्वनि करती हुई रत्नमय भूमिमें इधर-उधर टहला करती थीं और कहीं-कहीं उसीमें अपना सुन्दर मुख देखने लगती थीं। उस महेन्द्रके महलमें महाबली और महामनस्वी हिरण्यकशिपु सब लोकोंको जीतकर, सबका एकछत्र सम्राट् बनकर बड़ी स्वतन्त्रतासे विहार करने लगा। उसका शासन इतना कठोर था कि उससे भयभीत होकर देवतालोग उसके चरणोंकी वन्दना करते रहते थे। वह उत्कट गन्धवाली मदिरा पीकर मतवाला रहा करता था। उसकी आँखें लाल-लाल और चढ़ी हुई रहतीं। उस समय तपस्या, योग, शारीरिक और मानसिक बलमें वह बेजोड़ था। ब्रह्मा, विष्णु और महादेवके सिवा और सभी लोकपाल अपने हाथोंमें भेंट ले-लेकर उसकी सेवामें लगे रहते। जब वह अपने पुरुषार्थसे इन्द्रासनपर बैठ गया, तब युधिष्ठिर! विश्वावसु, तुम्बुरु तथा हम सभी लोग उसके सामने गायन करते थे। तथा गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि, विद्याधर और अप्सराएँ बार-बार उसकी स्तुति करती थीं ॥३—१४॥

युधिष्ठिर! वह इतना तेजस्वी था कि वर्णाश्रमधर्मका पालन करनेवाले पुरुष जो बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञ करते, उनके यज्ञोंकी आहुति वह स्वयं ही ग्रहण करता। पृथ्वीके सातों द्वीपोंमें उसका अखण्ड राज्य था। सभी जगह बिना ही जोते-बोये धरतीसे अन्न पैदा होता था। वह जो कुछ चाहता, अन्तरिक्षसे उसे मिल जाता। तथा आकाश उसे भाँति-भाँतिकी आश्चर्यजनक वस्तुएँ दे-देकर उसकी सेवा करता था। इसी प्रकार खारे पानी, मदिरा, घृत, इक्षुरस, दधि, दुग्ध और मीठे पानीके समुद्र भी अपनी पत्नी नदियोंके साथ तरङ्गोंके द्वारा उसके पास रत्नराशि पहुँचाया करते। पर्वत अपनी घाटियोंके रूपमें उसके लिये खेलनेका स्थान जुटाते और वृक्ष सब ऋतुओंमें फूलते-फलते। वह अकेला ही सब लोकपालोंके विभिन्न गुणोंको धारण करता। इस प्रकार दिग्विजयी और एकछत्र सम्राट् होकर वह अपनेको प्रिय लगनेवाले विषयोंका स्वच्छन्द उपभोग करने लगा। परन्तु इतने विषयोंसे भी उसकी तृप्ति न हो सकी। क्योंकि अन्ततः वह इन्द्रियोंका दास ही तो था ॥ १५—१९ ॥

युधिष्ठिर! इस रूपमें भी वह भगवान्का वही पार्षद है, जिसे सनकादिकोंने शाप दिया था। वह ऐश्वर्यके मदसे मतवाला हो रहा था। घमंडमें चूर होकर शास्त्रोंकी मर्यादाका उल्लङ्घन कर रहा था। देखते-ही-देखते उसके जीवनका बहुत-सा समय निकल गया। उसके कठोर शासनसे सब लोक और लोकपाल घबड़ा गये। जब उन्हें और कहीं किसीका आश्रय न मिला, तब उन्होंने भगवान्की शरण ली। उन्होंने मन-ही-मन कहा—'जहाँ सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं और जिसे प्राप्त करके शान्त एवं निर्मल संन्यासी महात्मा फिर लौटते नहीं, भगवान्के उस परम धामको हम नमस्कार करते हैं।' इस भावसे अपनी इन्द्रियोंका संयम और मनको समाहित करके उन लोगोंने खाना-पीना और सोना छोड़ दिया तथा निर्मल हृदयसे भगवान्की आराधना की। एक दिन उन्हें मेघके समान गम्भीर आकाशवाणी सुनायी पड़ी। उसकी ध्वनिसे दिशाएँ गूँज उठीं। साधुओंको अभय देनेवाली वह वाणी यों थी—'श्रेष्ठ देवताओ! डरो मत। तुम सब लोगोंका कल्याण हो। मेरे दर्शनसे प्राणियोंको परम कल्याणकी प्राप्ति हो जाती है। इस नीच दैत्यकी दुष्टताका मुझे पहलेहीसे पता है। मैं इसको मिटा दूँगा। अभी कुछ दिनोंतक समयकी प्रतीक्षा करो। कोई भी प्राणी, जब देवता, वेद, गाय, ब्राह्मण, साधु, धर्म और मुझसे द्वेष करने लगता है, तब शीघ्र ही उसका विनाश हो जाता है। जब यह अपने वैरहीन, शान्त और महात्मा पुत्र प्रह्लादसे द्रोह करेगा—उसका अनिष्ट करना चाहेगा, तब वरके कारण शक्तिसम्पन्न होनेपर भी इसे मैं अवश्य मार डालूँगा' ॥२०—२८॥

नारदजी कहते हैं—सबके हृदयमें ज्ञानका सञ्चार करनेवाले भगवान्ने जब देवताओंको यह आदेश दिया तब वे उन्हें प्रणाम करके लौट आये। उनकी सारी घबड़ाहट मिट गयी और उन्हें ऐसा मालूम होने लगा कि हिरण्यकशिपु मर गया॥२९॥

युधिष्ठिर! दैत्यराज हिरण्यकशिपुके बड़े ही विलक्षण चार पुत्र थे। उनमें प्रह्लाद यों तो सबसे छोटे थे, परन्तु गुणोंमें सबसे बड़े थे। वे बड़े संतसेवी, ब्राह्मणभक्त, सौम्यस्वभाव, सत्यप्रतिज्ञ एवं जितेन्द्रिय थे। वे समस्त प्राणियोंके साथ अपने समान ही समताका बर्ताव करते थे। सबके एकमात्र प्रिय और सच्चे हितैषी थे। बड़े लोगोंके चरणोंमें सेवककी तरह झुककर रहते थे। गरीबोंपर पिताके समान स्नेह रखते थे। बराबरीवालोंसे भाईके समान प्रेम करते और गुरुजनोंमें भगवद्भाव रखते थे। विद्या, धन, सौन्दर्य

जगत्पते ! नारायण !!!' कहकर पुकारने लगता है—तब भक्तियोगके महान् प्रभावसे उसके सारे बन्धन कट जाते हैं और भगवद्भावकी ही भावना करते-करते उसका हृदय भी तदाकार—भगवन्मय हो जाता है। उस समय उसके जन्म मृत्युके बीजोंका खजाना ही जल जाता है और वह पुरुष श्रीभगवान्को प्राप्त कर लेता है। इस अशुभ संसारके दलदलमें फँसकर अशुभमय हो जानेवाले जीवके लिये भगवान्की यह प्राप्ति संसारके चक्करको मिटा देनेवाली है। इसी वस्तुको कोई ब्रह्म और कोई निर्वाण सुख कहते हैं। इसलिये मित्रो! तुमलोग अपने अपने हृदयमें हृदयेश्वर भगवान्का भजन करो। भाइयो! अपने हृदयमें ही आकाशके समान नित्य विराजमान भगवान्का भजन करनेमें कौन-सा विशेष परिश्रम है? वे समान रूपसे समस्त प्राणियोंके अत्यन्त प्रेमी मित्र हैं, और तो क्या, अपने आत्मा ही हैं। उनको छोड़कर विषयोंके लिये भटकना—राम! राम! कितनी मूर्खता है। अरे भाई! धन, स्त्री, पशु, पुत्र, पुत्री, महल, पृथ्वी, हाथी, खजाना और भाँति भाँतिकी विभूतियाँ—और तो क्या, संसारका समस्त धन तथा भोगसामग्रियाँ इस क्षणभङ्गुर मनुष्यको क्या सुख दे सकती हैं? वे तो स्वयं ही क्षणभङ्गुर हैं। जैसे इस लोककी सम्पत्ति प्रत्यक्ष ही नाशवान् है, वैसे ही यज्ञोंसे प्राप्त होनेवाले स्वर्गादि लोक भी नाशवान् और आपेक्षिक—एक दूसरेसे छोटे-बड़े, नीचे ऊँचे हैं। इसलिये वे भी निर्दोष नहीं हैं। तब निर्दोष क्या है? निर्दोष हैं केवल परमात्मा। न तो किसीने उनमें दोष देखा है और न सुना है। अतः परमात्माकी प्राप्तिके लिये अनन्य भक्तिसे उन्हीं परमेश्वरका भजन करना चाहिये ॥ ३४–४० ॥

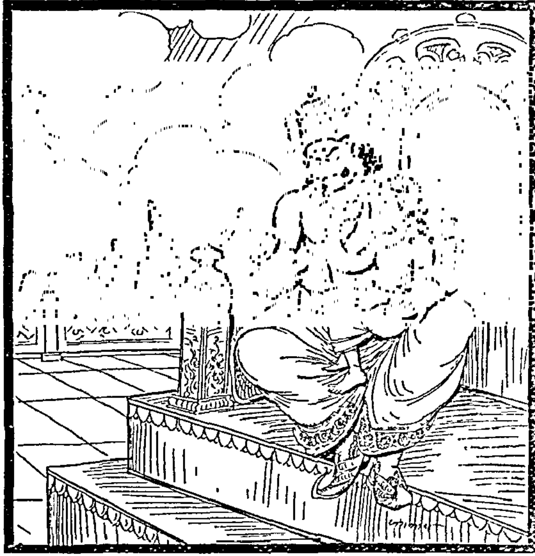
इसके सिवा अपनेको बड़ा विद्वान् माननेवाला पुरुष इस लोकमें जिस उद्देश्यसे बार-बार बहुत से कर्म करता है, उस उद्देश्यकी प्राप्ति तो दूर रही—उलटा उसे उसके विपरीत ही फल मिलता है, और निस्सन्देह मिलता है। कर्ममें प्रवृत्त होनेके दो ही उद्देश्य होते हैं—सुख पाना और दुःखसे छूटना। परन्तु कामनाके कारण उसे यहाँ सदा सर्वदा दुःख ही भोगना पड़ता है। साथ ही कामना होनेके पूर्व उसे जो निष्कामताका सुख था, उससे भी वञ्चित हो जाता है। मनुष्य इस लोकमें सकाम कर्मोंके द्वारा जिस शरीरके लिये भोग प्राप्त करना चाहता है, वह शरीर ही पराया—स्यार कुत्तोंका भोजन और नाशवान् है। कभी वह मिल जाता है तो कभी बिछुड़ जाता है। जब शरीरकी ही यह दशा है—तब इससे अलग रहनेवाले पुत्र, स्त्री, महल, धन, सम्पत्ति, राज्य, खजाने, हाथी घोड़े, मन्त्री, नौकर, चाकर, गुरुजन और दूसरे अपने कहलानेवालोंकी तो बात ही क्या है। ये तुच्छ विषय शरीरके साथ ही नष्ट हो जाते हैं। ये जान तो पड़ते हैं पुरुषार्थके समान, परन्तु हैं वास्तवमें अनर्थरूप ही। आत्मा स्वयं ही अनन्त आनन्दका महान् समुद्र है। उसके लिये इन वस्तुओंकी क्या आवश्यकता है? भाइयो! तनिक विचार तो करो—जो जीव गर्भाधानसे लेकर मृत्युपर्यन्त सभी अवस्थाओंमें अपने कर्मोंके अधीन होकर क्लेश ही क्लेश भोगता है, उसका इस संसारमें स्वार्थ ही क्या है? यह जीव सूक्ष्मशरीरको ही अपना आत्मा मानकर उसके द्वारा अनेकों प्रकारके कर्म करता है और कर्मोंके कारण ही फिर शरीर ग्रहण करता है। इस प्रकार कर्मसे शरीर और शरीरसे कर्मकी परम्परा चल पड़ती है। और ऐसा होता है केवल इन दोनोंको अपनेसे पृथक् न समझ लेनेके कारण। इसलिये निष्काम भावसे निष्क्रिय आत्मस्वरूप भगवान् श्रीहरिका भजन करना चाहिये। अर्थ, धर्म और काम—सब उन्हींके आश्रित हैं, बिना उनकी इच्छाके नहीं मिल सकते। भगवान् श्रीहरि समस्त प्राणियोंके ईश्वर, आत्मा और परम प्रियतम हैं। वे अपने ही बनाये हुए पञ्चभूत और सूक्ष्मभूत आदिके द्वारा निर्मित शरीरोंमें जीवके नामसे कहे जाते हैं। देवता, दैत्य, मनुष्य, यक्ष अथवा गन्धर्व—कोई भी क्यों न हो—जो भगवान्के चरणकमलोंका सेवन करता है, वह हमारे ही समान कल्याणका भाजन होता है ॥४१–५०॥

दैत्यबालको! भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये ब्राह्मण, देवता या ऋषि होना, सदाचार और विविध ज्ञानोंसे सम्पन्न होना, तथा दान, तप, यज्ञ, शारीरिक और मानसिक शौच और बड़े बड़े व्रतोंका अनुष्ठान पर्याप्त नहीं है। भगवान् तो केवल निष्काम प्रेम भक्तिसे ही प्रसन्न होते हैं। और सब तो केवल ऊपर ऊपरकी बातें हैं। इसलिये दैत्यबालको! समस्त प्राणियोंको अपने समान ही समझकर सर्वत्र विराजमान, सर्वात्मा, सर्वशक्तिमान् भगवान्की भक्ति करो। भगवान्की भक्तिके प्रभावसे दैत्य, यक्ष, राक्षस, स्त्री, शूद्र, गोपालक अहीर, पक्षी, मृग और बहुत से पापी जीव भी भगवद्भावको प्राप्त हो गये हैं। इस संसारमें या मनुष्य-शरीरमें जीवका सबसे बड़ा स्वार्थ अर्थात् एकमात्र परमार्थ इतना ही है कि वह भगवान् श्रीकृष्णकी अनन्य भक्ति प्राप्त करे। उस भक्तिका स्वरूप है सदा-सर्वदा, सर्वत्र, सब वस्तुओंमें भगवान्का दर्शन ॥५१–५५॥

पाँचवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपुके द्वारा प्रह्लादकी हत्याका प्रयत्न

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! दैत्योंने भगवान् श्रीशुक्राचार्यजीको अपना पुरोहित बनाया था । उनके दो पुत्र थे—शण्ड और अमर्क । वे दोनों राजमहलके पास ही रहकर हिरण्यकशिपुके द्वारा भेजे हुए नीतिनिपुण बालक प्रह्लादको और दूसरे पढ़ानेयोग्य दैत्यबालकोंको पढ़ाया करते थे । प्रह्लाद गुरुजीका पढ़ाया हुआ पाठ सुन लेते थे और उसे ज्यों-का-त्यों उन्हें सुना भी दिया करते थे । किन्तु वे उसे मनसे अच्छा नहीं समझते थे । समझते कैसे, उस पाठका मूल आधार था अपने और परायेका झूठा आग्रह । युधिष्ठिर ! एक दिन हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र प्रह्लादको बड़े प्रेमसे गोदमें लेकर पूछा—'बेटा !



बताओ तो सही, तुम्हें कौन-सी बात अच्छी लगती है ?' ॥ १–४॥

प्रह्लादने कहा—पिताजी ! संसारके प्राणी 'मैं' और 'मेरे' के झूठे आग्रहमें पड़कर अत्यन्त उद्विग्न हो रहे हैं । ऐसे प्राणियोंके लिये मैं तो यही ठीक समझता हूँ कि वे अपने अधःपतनके मूल कारण, घाससे ढके हुए अँधेरे कूएँके समान इस घरको छोड़कर वनमें चले जायँ और भगवान् श्रीहरिकी शरण ग्रहण करें ॥ ५ ॥

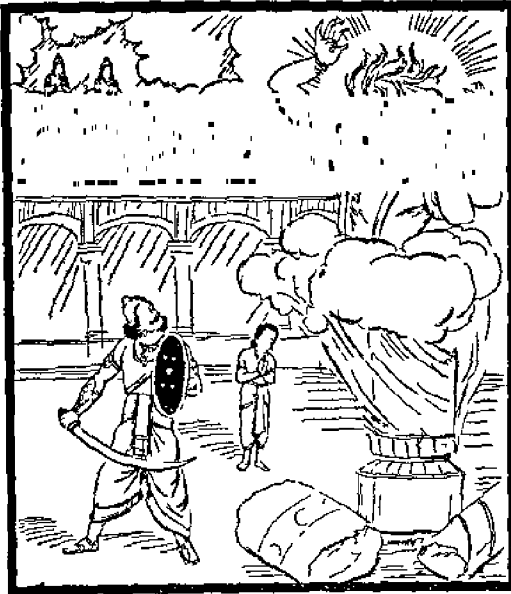
नारदजी कहते हैं—प्रह्लादजीके मुँहसे शत्रुपक्षकी प्रशंसासे भरी बात सुनकर हिरण्यकशिपु ठठाकर हँस पड़ा । उसने कहा—'दूसरोंके बहकानेसे बच्चोंकी बुद्धि यों ही बिगड़ जाया करती है । बच्चेकी अच्छी तरह देखरेख रखनी चाहिये । जान पड़ता है गुरुजीके घरपर विष्णुके पक्षपाती कुछ ब्राह्मण छिपे हुए हैं । अब वे इसको बहकाने न पावें'॥६-७॥

जब दैत्योंने प्रह्लादको गुरुजीकी पाठशालामें पहुँचा दिया, तब पुरोहितोंने उनको बहुत पुचकारकर और फुसलाकर बड़ी मधुर वाणीसे पूछा—बेटा प्रह्लाद ! तुम्हारा कल्याण हो । ठीक-ठीक बतलाना, भला । देखो, झूठ न बोलना । यह तुम्हारी बुद्धि उलटी कैसे हो गयी ? और किसी बालककी बुद्धि तो ऐसी नहीं हुई ! कुलनन्दन प्रह्लाद ! हम तुम्हारे गुरुजन यह जानना चाहते हैं कि तुम्हारी बुद्धि स्वयं ऐसी हो गयी या किसीने सचमुच तुमको बहका दिया है ? ॥८–१०॥

प्रह्लादजीने कहा—जिन मनुष्योंकी बुद्धि मोहसे ग्रस्त हो रही है, उन्हींको भगवान्‌की मायासे यह झूठा दुराग्रह हो गया है कि यह 'अपना' है और यह 'पराया' । उन मायापति भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ । वे भगवान् ही जब कृपा करते हैं, तब मनुष्योंकी पाशविक बुद्धि नष्ट होती है । इस पशुबुद्धिके कारण ही तो 'यह मैं हूँ और यह मुझसे भिन्न है' इस प्रकारका झूठा भेदभाव पैदा होता है । वही परमात्मा यह आत्मा है । उसके स्वरूपको न जाननेके कारण ही अज्ञानीलोग अपने और परायेका भेद करके उसीका वर्णन किया करते हैं । उनका न जानना भी ठीक ही है । क्योंकि ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े वेदज्ञ भी उसके विषयमें मोहित हो जाते हैं । वही परमात्मा आपलोगोंके शब्दोंमें मेरी बुद्धि 'बिगाड़' रहा है । गुरुजी ! जैसे चुम्बकके पास लोहा स्वयं खिंच जाता है, वैसे ही चक्रपाणि भगवान्‌की स्वच्छन्द इच्छाशक्तिसे मेरा चित्त भी संसारसे अलग होकर उनकी ओर बरबस खिंच जाता है ॥११–१४॥

नारदजी कहते हैं—परमज्ञानी प्रह्लाद अपने गुरुजीसे इतना कहकर चुप हो गये । पुरोहित बेचारे राजाके सेवक एवं पराधीन थे । वे तो डर गये । उन्होंने क्रोधसे प्रह्लादको झिड़क दिया और कहा—'अरे, कोई मेरा बेंत तो लाओ । यह हमारी कीर्तिमें कलङ्क लगा रहा है । इस दुर्बुद्धि, कुलाङ्गार लड़केका होश बिना दण्डके ठीक न होगा । दैत्यवंशके चन्दनवनमें यह काँटेदार बबूल कहाँसे पैदा हुआ ? जो विष्णु इस वनकी जड़ काटनेमें कुल्हाड़ेका काम करते हैं, यह नादान बालक उन्हींकी बेंट बन रहा है, सहायक हो

इसी समय अपने सेवक प्रह्लाद और ब्रह्माकी वाणी सत्य करने और समस्त पदार्थोंमें अपनी व्यापकता दिखानेके लिये सभाके भीतर उसी खंभेमें बड़ा ही विचित्र रूप



धारण करके भगवान् प्रकट हुए। वह रूप न तो पूरा पूरा सिंहका ही था और न मनुष्यका ही। जिस समय हिरण्यकशिपु शब्द करनेवालेकी इधर उधर खोज कर रहा था, उसी समय खंभेके भीतरसे निकलते हुए उस अद्भुत प्राणीको उसने देखा। वह सोचने लगा—अहो, यह न तो मनुष्य है और न पशु, फिर यह नृसिंहके रूपमें कौन-सा अलौकिक जीव है? जिस समय हिरण्यकशिपु इस उधेड़ बुनमें लगा हुआ था, उसी समय उसके बिल्कुल सामने ही नृसिंह भगवान् खड़े हो गये। उनका वह रूप अत्यधिक भयावना था। तपाये हुए सोनेके समान पीली पीली भयानक आँखें थीं। जँभाई लेनेसे गरदनके बाल इधर-उधर लहरा रहे थे। दाढ़ें बड़ी पैनी थीं। तलवारकी तरह लपलपाती हुई, छुरेकी धारके समान तीखी जीभ थी। टेढ़ी भौंहोंसे उनका मुख और भी दारुण हो रहा था। कान निश्चल एवं ऊपरकी ओर उठे हुए थ। फूली हुई नासिका और खुला हुआ मुँह पहाड़की गुफाके समान जान पड़ता था। फटे हुए जबड़ोंसे उसकी भयङ्करता बहुत बढ गयी थी। विशाल शरीर स्वर्गका स्पर्श कर रहा था। गरदन कुछ नाटी और मोटी थी। छाती चौड़ी और कमर बहुत पतली थी। चन्द्रमाकी किरणोंके समान सफेद रोएँ सारे शरीरपर चमक रहे थे चारों ओर सैकड़ों भुजाएँ फैली हुई थीं, जिनके बड़े बड़े नख आयुधका काम देते थे। उनके पास फटकने तकका साहस किसीको न होता था। चक्र आदि अपने निज आयुध तथा वज्र आदि अन्य शस्त्रोंके द्वारा उन्होंने सारे दैत्य दानवोंको भगा दिया। हिरण्यकशिपु सोचने लगा—हो न हो महामायावी विष्णुने ही मुझे मार डालनेके लिये यह ढंग रचा है, परन्तु इसकी इन चालोंसे हो ही क्या सकता है ॥ १८-२३ ॥

'यह मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकता'—इस प्रकार कहता हुआ और सिंहनाद करता हुआ दैत्यराज हिरण्यकशिपु हाथमे गदा लेकर नृसिंहभगवान्पर टूट पड़ा। परन्तु जैसे पतिंगा आगमें गिरकर अदृश्य हो जाता है, वैसे ही वह दैत्य भगवान्के तेजके भीतर जाकर लापता हो गया। समस्त शक्ति और तेजके आश्रय भगवान्के सम्बन्धमें ऐसी घटना कोई आश्चर्यजनक नहीं है। क्योंकि सृष्टिके प्रारम्भमें उन्होंने अपने तेजसे प्रलयके निमित्त तमोगुणरूपी घोर अन्धकारको भी पी लिया था। तदनन्तर वह दैत्य बड़े क्रोधसे लपका और अपनी गदाको बड़े जोरसे घुमाकर नृसिंहभगवान्पर प्रहार किया। प्रहार करते समय ही—जैसे गरुड़ साँपको पकड़ लेते हैं, वैसे ही भगवान्ने गदासहित उस दैत्यको पकड़ लिया। वे जब उसके साथ खिलवाड़ करने लगे, तब वह दैत्य उनके हाथसे वैसे ही निकल गया जैसे क्रीड़ा करते हुए गरुड़के चंगुलसे साँप छूट जाय। युधिष्ठिर! उस समय सब-के-सब लोकपाल बादलोंमें छिपकर इस युद्धको देख रहे थे। उनका स्वर्ग तो हिरण्यकशिपुने पहले ही छीन लिया था। जब उन्होंने देखा कि वह तो भगवान्के हाथसे छूट गया, तब वे और भी डर गये। हिरण्यकशिपुने भी यही समझा कि नृसिंहने मेरे बल वीर्यसे डरकर ही मुझे अपने हाथसे छोड़ दिया है। इस विचारसे उसकी थकान जाती रही, और वह युद्धके लिये ढाल-तलवार लेकर फिर उनकी ओर दौड़ पड़ा। उस समय वह बाजकी तरह बड़े वेगसे ऊपर नीचे उछल कूदकर इस प्रकार ढाल-तलवारके पैंतरे बदलने लगा कि जिससे उसपर आक्रमण करनेका अवसर ही न मिले। तब भगवान्ने बड़े ऊँचे स्वरसे प्रचण्ड और भयङ्कर अट्टहास किया, जिससे हिरण्यकशिपुकी आँखें बंद हो गयीं। फिर बड़े वेगसे झपटकर भगवान्ने उसे वैसे ही पकड़ लिया, जैसे साँप चूहेको पकड़ लेता है। जिस हिरण्यकशिपुके चमड़ेपर वज्रकी चोटसे भी खरोंच नहीं आयी थी, वही अब उनके पंजेसे निकलनेके

इसके चाचाको मार डाला, अपने सुहृद्-स्वजनोंको छोड़कर यह नीच गुलामके समान उसी विष्णुके चरणोंकी पूजा करता है ! हो-न-हो, इसके रूपमें मेरे भाईको मारनेवाला विष्णु ही आ गया है । अतः यह विश्वासके योग्य नहीं है । पाँच बरसकी अवस्थामें ही जिसने अपने माता-पिताके दुस्त्यज वात्सल्यस्नेहको भुला दिया—वह कृतघ्न भला, विष्णुका ही क्या हित करेगा ? कोई दूसरा भी यदि औषधके समान भलाई करे, तो वह एक प्रकारसे पुत्र ही है । पर यदि अपना पुत्र भी अहित करने लगे तो रोगके समान वह शत्रु है । अपने शरीरके ही किसी अङ्गसे सारे शरीरकी हानि होती हो, तो उसको काट डालना चाहिये । क्योंकि उसे काट देनेसे शेष शरीर तो सुखसे जी सकता है । यह स्वजनका बाना पहनकर मेरा कोई शत्रु ही आया है । जैसे योगीकी भोग-लोलुप इन्द्रियाँ उसका अनिष्ट करती हैं, वैसे ही यह मेरा अहित करनेवाला है । इसलिये खाने, सोने, बैठने आदिके समय किसी भी उपायसे इसे मार डालो' ॥ ३३–३८ ॥

जब हिरण्यकशिपुने दैत्योंको इस प्रकार आज्ञा दी तब तीखी दाढ़, विकराल वदन और लाल-लाल दाढ़ी-मूँछ एवं केशोंवाले दैत्य हाथोंमें त्रिशूल ले-लेकर 'मारो, काटो'—इस प्रकार बड़े जोरसे चिल्लाने लगे । प्रह्लाद तो चुपचाप बैठे हुए थे और दैत्य उनके मर्मस्थानोंमें शूलसे घाव कर रहे थे । उस समय प्रह्लादजीका चित्त उन परमात्मामें लगा हुआ था जो मन-वाणीके अगोचर, सर्वात्मा, समस्त



शक्तियोंके आधार एवं परब्रह्म हैं । इसलिये उनके सारे प्रहार ठीक वैसे ही निष्फल हो गये, जैसे भाग्यहीनोंके बड़े-बड़े उद्योग-धंधे व्यर्थ होते हैं । युधिष्ठिर ! जब शूलोंकी मारसे प्रह्लादके शरीरपर कोई असर नहीं हुआ, तब हिरण्यकशिपुको बड़ी शङ्का हुई । अब वह प्रह्लादको मार डालनेके लिये बड़े हठसे तरह-तरहके उपाय करने लगा । बड़े-बड़े मतवाले हाथियोंसे कुचलवाया, विषधर साँपोंसे डँसवाया, पुरोहितोंसे कृत्या राक्षसी उत्पन्न करायी, पहाड़की चोटीसे नीचे डलवा दिया, शम्बरासुरसे अनेकों प्रकारकी मायाका प्रयोग करवाया, अँधेरी कोठरियोंमें बंद करा दिया, विष दिलाया, खाना बंद कर दिया, बर्फीली जगह, दहकती हुई आग और समुद्रमें बारी-बारीसे डलवाया, आँधीमें छोड़ दिया तथा पर्वतोंके नीचे दबवा दिया; परन्तु इनमेंसे किसी भी उपायसे निष्पाप प्रह्लादका बाल भी बाँका न हुआ । अपनी बेबसी देखकर हिरण्यकशिपुको बड़ी चिन्ता हुई । उसे प्रह्लादको मारनेके लिये और कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा ! वह सोचने लगा—'इसे मैंने बहुत-कुछ बुरा-भला कहा, मार डालनेके बहुत-से उपाय किये । परन्तु यह मेरे द्रोह और दुर्व्यवहारोंसे बिना किसीकी सहायताके अपने प्रभावसे ही बचता गया । यह बालक होनेपर भी समझदार है और मेरे पास ही निःशङ्क भावसे रहता है । हो-न-हो इसमें कुछ सामर्थ्य अवश्य है । जैसे शुनःशेप अपने पिताकी करतूतोंसे उसका विरोधी हो गया था, वैसे ही यह भी मेरे किये अपकारोंको न भूलेगा । न तो यह किसीसे डरता है और न इसकी मृत्यु ही होती है । इसकी शक्तिकी थाह नहीं है । अवश्य ही इसके विरोधसे मेरी मृत्यु होगी । सम्भव है, न भी हो' ॥ ३९–४७ ॥

इस प्रकार सोच-विचार करते-करते उसका चेहरा कुछ उतर गया । शुक्राचार्यके पुत्र शण्ड और अमर्कने जब देखा कि हिरण्यकशिपु तो मुँह लटकाकर बैठा हुआ है, तब उन्होंने एकान्तमें जाकर उससे यह बात कही—'स्वामी ! आपने अकेले ही तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली । आपके भौंहें टेढ़ी करनेपर ही सारे लोकपाल काँप उठते हैं । हमारे देखनेमें तो आपके लिये चिन्ताकी कोई बात नहीं है । भला, बच्चोंके खिलवाड़में भी भलाई-बुराई सोचनेकी कोई बात है ? जबतक हमारे पिता शुक्राचार्यजी नहीं आ जाते, तबतक यह डरकर कहीं भाग न जाय । इसलिये इसे वरुणके पाशोंसे बाँध रखिये । प्रायः ऐसा होता है कि अवस्थाकी वृद्धिके साथ-साथ और गुरुजनोंकी सेवासे बुद्धि सुधर जाया करती है' ॥ ४८–५० ॥

हिरण्यकशिपुने 'अच्छा ठीक है' कहकर गुरु-पुत्रोंकी

जीव इतना उलझ जाता है कि उसे कुछ कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान ही नहीं रहता। इस प्रकार बची-खुची आयु भी हाथसे निकल जाती है ॥ १–८ ॥

दैत्यबालको! जिसकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, जो एक बार घर-गृहस्थीमें आसक्त हो गया और माया-ममताकी मजबूत फाँसीमें फँस गया, वह तो अपनेको उससे छुड़ानेका साहस भी नहीं कर सकता। जिसे चोर, सेवक एवं व्यापारी अपने अत्यन्त प्यारे प्राणोंकी भी बाजी लगाकर संग्रह करते हैं और इसलिये उन्हें जो प्राणोंसे भी अधिक वाञ्छनीय है—उस धनकी तृष्णाको भला, कौन त्याग सकता है। जो अपनी प्रियतमा पत्नीके सहवास, उसकी प्रेमभरी बातों और मीठी-मीठी सलाहपर अपनेको निछावर कर चुका है, भाई-बन्धु और मित्रोंके स्नेह-पाशमें बँध चुका है और नन्हे-नन्हे शिशुओंकी तोतली बोलीपर लुभा चुका है—भला, वह उन्हें कैसे छोड़ सकता है। जो अपनी ससुराल गयी हुई प्रिय पुत्रियों, पुत्रों, भाई-बहिनों और दीन अवस्थाको प्राप्त पिता-माता, बहुत-सी सुन्दर-सुन्दर बहुमूल्य सामग्रियोंसे सजे हुए घरों, कुलपरम्परागत जीविकाके साधनों तथा पशुओं और सेवकोंके निरन्तर स्मरणमें रम गया है, वह भला उन्हें कैसे छोड़ सकता है। जो जननेन्द्रिय और रसनेन्द्रियके सुखोंको ही सर्वस्व मान बैठा है, जिसकी भोग-वासनाएँ कभी अघाती ही नहीं हैं, जो लोभवश कर्म-पर-कर्म करता हुआ रेशमके कीड़ेकी तरह अपनेको और भी कड़े बन्धनमें जकड़ता जा रहा है और जिसके मोहकी कोई सीमा नहीं है—वह उनसे किस प्रकार विरक्त हो सकता है और कैसे उनका त्याग कर सकता है। यह मेरा कुटुम्ब है, इस भावसे उसमें वह इतना रम जाता है कि उसीके पालन-पोषणके लिये अपनी अमूल्य आयुको गँवा देता है और उसे यह भी नहीं जान पड़ता कि मेरे जीवनका वास्तविक उद्देश्य नष्ट हो रहा है। भला, इस प्रमादकी भी कोई सीमा है। यदि इन कामोंमें कुछ सुख मिले तो भी एक बात है; परन्तु यहाँ तो जहाँ-जहाँ जाता है वहीं-वहीं दैहिक, दैविक और मानसिक ताप उसके हृदयको जलाते ही रहते हैं। फिर भी वैराग्यका उदय नहीं होता। कितनी विडम्बना है! कुटुम्बकी ममताके फेरमें पड़कर वह इतना असावधान हो जाता है, उसका मन धनके चिन्तनमें इतना घुल-मिल जाता है कि वह दूसरेका धन चुरानेके लौकिक-पारलौकिक दोषोंको जानता हुआ भी कामनाओंको वशमें न कर सकनेके कारण इन्द्रियोंके भोगकी लालसासे चोरी कर ही बैठता है। भाइयो! जो इस प्रकार अपने कुटुम्बियोंके पेट पालनेमें ही लगा रहता है, कभी भगवद्भजन नहीं करता— वह विद्वान् हो, तो भी उसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो सकती। क्योंकि अपने-परायेका भेदभाव रहनेके कारण उसे भी अज्ञानियोंके समान ही तमःप्रधान गति प्राप्त होती है। जो कामिनियोंके मनोरञ्जनका सामान—उनका खिलौना बन रहा है और जिसने अपने पैरोंमें सन्तानकी बेड़ी जकड़ ली है, वह बेचारा गरीब—चाहे कोई भी हो, कहीं भी हो—किसी भी प्रकारसे अपना उद्धार नहीं कर सकता। इसलिये तुमलोग विषयासक्त दैत्योंका संग दूरहीसे छोड़ दो और आदि-देव भगवान् नारायणकी शरण ग्रहण करो। क्योंकि जिन्होंने संसारकी आसक्ति छोड़ दी है, उन महात्माओंके वे ही परम प्रियतम और परम गति हैं ॥ ९–१८ ॥

मित्रो! भगवान्‌को प्रसन्न करनेके लिये कोई बहुत परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता। क्योंकि वे समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं और सर्वत्र सबकी सत्ताके रूपमें स्वयंसिद्ध वस्तु हैं। ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक छोटे-बड़े समस्त प्राणियोंमें, पञ्चभूतोंसे बनी हुई वस्तुओंमें, पञ्चभूतोंमें, सूक्ष्म तन्मात्राओंमें, महत्तत्त्वमें, तीनों गुणोंमें और गुणोंकी साम्यावस्था प्रकृतिमें एक ही अविनाशी परमात्मा विराजमान हैं। वे ही समस्त सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्योंकी खान हैं। वे ही अन्तर्यामी द्रष्टाके रूपमें हैं और वे ही दृश्य जगत्‌के रूपमें भी हैं। सर्वथा अनिर्वचनीय होनेपर भी द्रष्टा और दृश्य, व्याप्य और व्यापकके रूपमें उनका निर्वचन किया जाता है। सच बात तो यह है कि उनमें एक भी विकल्प नहीं है। वे केवल अनुभव-स्वरूप, आनन्दस्वरूप एकमात्र परमेश्वर ही हैं। गुणमयी सृष्टि करनेवाली मायाके द्वारा ही उनका ऐश्वर्य छिप रहा है। इसके निवृत्त होते ही उनके दर्शन हो जाते हैं। इसलिये तुमलोग अपने दैत्यपनेका, आसुरी सम्पत्तिका त्याग करके समस्त प्राणियोंपर दया करो। प्रेमसे उनकी भलाई करो। भगवान्‌की प्रसन्नताका यही उपाय है। आदिनारायण अनन्त भगवान्‌के प्रसन्न हो जानेपर ऐसी कौन-सी वस्तु है जो नहीं मिल जाती? लोक और परलोकके लिये जिन धर्म, अर्थ आदिकी आवश्यकता बतलायी जाती है—वे तो गुणोंके परिणामसे बिना प्रयासके स्वयं ही मिलनेवाले हैं। जब हम श्री-भगवान्‌के चरणामृतका सेवन करने और उनके नाम-गुणोंका कीर्तन करनेमें लगे हैं, तब हमें मोक्षकी भी क्या आवश्यकता है? यों शास्त्रोंमें धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों पुरुषार्थोंका

अवसरपर नैमित्तिक तर्पण करते या तिलाञ्जलि देते, तो उसे भी यह पी जाता । आज आपने अपने नखोंसे उसका पेट फाड़कर वह सब का-सब लौटाकर मानो हमें दे दिया । आप समस्त धर्मोंके एकमात्र रक्षक हैं । नृसिंहदेव ! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ४४ ॥

सिद्धोंने कहा—नृसिंहदेव ! इस दुष्टने अपने योग और तपस्याके बलसे हमारी योगसिद्ध गति छीन ली थी । अपने नखोंसे आपने उस घमंडीको फाड़ डाला है । हम आपके चरणोंमें विनीत भावसे नमस्कार करते हैं ॥ ४५ ॥

विद्याधरोंने कहा—यह मूर्ख हिरण्यकशिपु अपने बल और वीरताके घमंडमें चूर था । यहाँतक कि हमलोगोंने विविध धारणाओंसे जो विद्या प्राप्त की थी, उसे इसने व्यर्थ कर दिया था । आपने युद्धमें यज्ञपशुकी तरह इसको नष्ट कर दिया । अपनी लीलासे नृसिंह बने हुए भगवन् ! हम आपको नित्य निरन्तर प्रणाम करते हैं ॥ ४६ ॥

नागोंने कहा—इस पापीने हमारी मणियों और हमारी श्रेष्ठ और सुन्दर स्त्रियोंको भी छीन लिया था । आज उसकी छाती फाड़कर आपने हमारी पत्नियोंको बड़ा आनन्द दिया है । प्रभो ! हम आपको नमस्कार करते हैं ॥ ४७ ॥

मनुओंने कहा—देवाधिदेव ! हम आपके आज्ञाकारी मनु हैं । इस दैत्यने हमलोगोंकी बाँधी हुई सारी धर्म मर्यादाएँ कुचल डाली थीं । आपने इस दुष्टको मारकर बड़ा उपकार किया है । प्रभो ! हम आपके सेवक हैं । आज्ञा कीजिये, हम आपकी क्या सेवा करें ? ॥ ४८ ॥

प्रजापतियोंने कहा—परमेश्वर ! आपने हमें प्रजापति बनाया था । परन्तु इसके रोक देनेसे हम प्रजाकी सृष्टि नहीं कर पाते थे । इसीकी आपने छाती फाड़ डाली और यह जमीनपर सर्वदाके लिये सो गया । सत्त्वमय मूर्ति धारण करनेवाले प्रभो ! आपका यह अवतार संसारके कल्याणके लिये है ॥ ४९ ॥

गन्धर्वोंने कहा—प्रभो ! हम आपके नाचनेवाले, अभिनय करनेवाले और संगीत सुनानेवाले सेवक हैं । इस दैत्यने अपने बल, वीर्य और पराक्रमसे हमें अपना गुलाम बना रक्खा था । उसे आपने इस दशाको पहुँचा दिया । सच है, कुमार्गसे चलनेवालेका भी क्या कभी कल्याण हो सकता है ? ॥ ५० ॥

चारणोंने कहा—प्रभो ! आपने सज्जनोंके हृदयको पीड़ा पहुँचानेवाले इस दुष्टको समाप्त कर दिया । इसलिये हम आपके उन चरणकमलोंकी शरणमें हैं, जिनके प्राप्त होते ही जन्म मृत्युरूप संसारचक्रसे छुटकारा मिल जाता है ॥ ५१ ॥

यक्षोंने कहा—भगवन् ! हमारे जीवनका एक वह भी समय था, जब अपने श्रेष्ठ कर्मोंके कारण हमलोग आपके सेवकोंमें प्रधान गिने जाते थे । परन्तु बड़े दुःखकी बात है कि हिरण्यकशिपुने हमें अपनी पालकी ढोनेवाला कहार बना रक्खा था । प्रकृतिके नियामक परमात्मा ! इसके कारण होनेवाले अपने निजजनोंके कष्ट जानकर ही आपने इसे मार डाला है ॥ ५२ ॥

किम्पुरुषोंने कहा—हमलोग अत्यन्त तुच्छ किम्पुरुष हैं और आप सर्वशक्तिमान् महापुरुष हैं । जब सत्पुरुषोंने इसका तिरस्कार किया—इसे धिक्कारा, तभी आज आपने इस कुपुरुष—नराधमको नष्ट कर दिया ॥ ५३ ॥

वैतालिकोंने कहा—भगवन् ! बड़ी बड़ी सभाओं और ज्ञानयज्ञोंमें आपके निर्मल यशका गायन करके हम बड़ी प्रतिष्ठा पूजा प्राप्त करते थे । इस दुष्टने हमारी वह आजीविका ही नष्ट कर दी थी । बड़े सौभाग्यकी बात है कि महारोगके समान इस दुष्टको आपने जड़ मूलसे उखाड़ दिया ॥ ५४ ॥

किन्नरोंने कहा—हम किन्नरगण आपके सेवक हैं । यह दैत्य हमसे बेगारमें ही काम लेता था । भगवन् ! आपने कृपा करके आज इस पापीको नष्ट कर दिया । प्रभो ! आप इसी प्रकार हमारा अभ्युदय करते रहें ॥ ५५ ॥

भगवान्‌के पार्षदोंने कहा—शरणागतवत्सल ! सम्पूर्ण लोकोंको शान्ति प्रदान करनेवाला आपका यह अलौकिक नृसिंहरूप हमने आज ही देखा है । भगवन् ! यह दैत्य दैत्य थोड़े ही था । यह तो आपका वही आज्ञाकारी सेवक था, जिसे सनकादिने शाप दे दिया था । हम समझते हैं, आपने कृपा करके इसके उद्धारके लिये ही इसका वध किया है ॥ ५६ ॥

नवाँ अध्याय

प्रह्लादकृत नृसिंहस्तुति

नारदजी कहते हैं—नृसिंहभगवान् क्रोधावेशमें बैठे हुए थे । उनको शान्त करनेका कोई उपाय किसीको नहीं सूझता था । यहाँतक कि सारे देवता, ऋषि मुनि और ब्रह्मा-शङ्कर भी उनके पास न जा सके । देवताओंने उन्हें शान्त करनेके लिये स्वयं लक्ष्मीजीको भेजा । उन्होंने जाकर जब नृसिंहभगवान्‌का वह महान् अद्भुत रूप देखा, तो भयवश

प्रह्लादकी माताको नारदजीका उपदेश



नारदजीने भागवतधर्मका रहस्य और विशुद्ध ज्ञान दोनोंका उपदेश किया ।

दुःखरूप ही है। मैं न जाने कबसे अपनेसे अतिरिक्त वस्तुओंको आत्मा समझकर इधर-उधर भटक रहा हूँ! आप कृपा करके ऐसी बात बतलाइये जिससे कि आपकी सेवा प्राप्तिका साधन आपके चरणकमलोंका भजन कर सकूँ। आप हमारे प्रिय हैं। अहैतुक हितैषी सुहृद् हैं। आप ही वास्तवमें सबके आराध्यदेव हैं। मैं ब्रह्माजीके द्वारा गायी हुई आपकी लीला-कथाओंका गायन करता हुआ बड़ी सुगमतासे रागादि प्राकृत गुणोंसे मुक्त होकर इस संसारकी कठिनाइयोंको पार कर जाऊँगा। क्योंकि आपके चरणयुगलोंमें रहनेवाले भक्त परमहंस महात्माओंका संग तो मुझे मिलता ही रहेगा। भगवन्! इस लोकमें दुखियोंका दुःख मिटानेके लिये जो उपाय माना जाता है, वह आपके उपेक्षा करनेपर एक क्षणके लिये ही होता है। यहाँतक कि माँ-बाप बालककी रक्षा नहीं कर सकते, औषध रोग नहीं मिटा सकती और समुद्रमें डूबते हुएको नौका नहीं बचा सकती। सत्त्वादि गुणोंके कारण भिन्न-भिन्न स्वभावके जितने भी ब्रह्मादि श्रेष्ठ और कालादि कनिष्ठ कर्ता हैं, उनको प्रेरित करनेवाले आप ही हैं। वे आपकी प्रेरणासे जिस आधारमें स्थित होकर जिन मिट्टी आदि उपकरणोंसे जिस समय जिन साधनोंके द्वारा जिस अदृष्ट आदिकी सहायतासे जिस प्रयोजनके उद्देश्यसे जिसलिये जिस विधिसे जो कुछ उत्पन्न करते हैं या रूपान्तरित करते हैं, वे सब और वह सब आपका ही स्वरूप है ॥१३—२०॥

पुरुषकी अनुमतिसे कालके द्वारा गुणोंमें क्षोभ होनेपर माया मनःप्रधान लिङ्गशरीरका निर्माण करती है। यह लिङ्गशरीर बलवान्, कर्ममय एवं अनेक नाम रूपोंमें आसक्त—छन्दोमय है। यही अविद्याके कारण मन, दस इन्द्रिय और पाँच तन्मात्रा—इन सोलह विकाररूप अरोंसे युक्त संसार-चक्र है। जन्मरहित प्रभो! आपसे भिन्न रहकर ऐसा कौन पुरुष है, जो इस मनरूप संसार चक्रको पार कर जाय? सर्वशक्तिमान् प्रभो! माया इस सोलह अरोंवाले संसार चक्रमें डालकर ईखके समान मुझे पेर रही है। आप अपनी चैतन्यशक्तिसे बुद्धिके समस्त गुणोंको सर्वदा पराजित रखते हैं और कालरूपसे सम्पूर्ण साध्य और साधनोंको अपने अधीन रखते हैं। मैं आपकी शरणमें आया हूँ, आप मुझे इससे बचाकर अपनी सन्निधिमें खींच लीजिये। भगवन्! जिनके लिये संसारीलोग बड़े लालायित रहते हैं, स्वर्गमें मिलनेवाली समस्त लोकपालोंकी वह आयु, लक्ष्मी और ऐश्वर्य मैंने खूब देख लिये। जिस समय मेरे पिता तनिक क्रोध करके हँसते थे और उससे उनकी भौंहे थोड़ी टेढ़ी हो जाती थीं, तब उन स्वर्गकी सम्पत्तियोंके लिये कहीं ठिकाना नहीं रह जाता था, वे लुटती फिरती थीं। किन्तु आपने मेरे उन पिताको भी मार डाला! इसलिये मैं ब्रह्मलोकतककी आयु, लक्ष्मी, ऐश्वर्य और वे इन्द्रियभोग, जिन्हें संसारके प्राणी चाहा करते हैं, नहीं चाहता। क्योंकि मैं जानता हूँ कि अत्यन्त शक्तिशाली कालका रूप धारण करके आपने उन्हें ग्रस रक्खा है। इसलिये मुझे आप अपने दासोंकी सन्निधिमें ले चलिये। विषयभोगकी बातें सुननेमें ही अच्छी लगती हैं, वास्तवमें तो वे मृगतृष्णाके जलके समान नितान्त असत्य हैं और यह शरीर भी, जिससे वे भोग भोगे जाते हैं, अगणित रोगोंका उद्गमस्थान है। इन दोनोंकी क्षणभङ्गुरता और असारता जानकर भी मनुष्य इनसे विरक्त नहीं होता। वह कठिनाईसे प्राप्त होनेवाले भोगके नन्हे नन्हे मधुबिन्दुओंसे अपनी कामनाकी आग बुझानेकी चेष्टा करता है। प्रभो! कहाँ तो इस तमोगुणी असुरवंशमें रजोगुणसे उत्पन्न हुआ मैं, और कहाँ आपकी अनन्त कृपा! धन्य है! आपने अपना परम प्रसादस्वरूप और सकलसन्तापहारी वह करकमल मेरे सिरपर रक्खा है जिसे आपने ब्रह्मा, शङ्कर और लक्ष्मीजीके सिरपर भी कभी नहीं रक्खा! दूसरे संसारी जीवोंके समान आपमें छोटे-बड़ेका भेदभाव नहीं है। क्योंकि आप सबके आत्मा और अकारण प्रेमी हैं। फिर भी कल्पवृक्षके समान आपका कृपा-प्रसाद भी सेवन भजनसे ही प्राप्त होता है। सेवाके अनुसार ही जीवोंपर आपकी कृपाका उदय होता है, उसमें जातिगत उच्चता या नीचता कारण नहीं है। भगवन्! यह संसार एक ऐसा अँधेरा कुआँ है, जिसमें कालरूप सर्प डँसनेके लिये सदा तैयार रहता है। विषय भोगोंकी इच्छा वाले पुरुष उसीमें गिरे हुए हैं। मैं भी सङ्गवश उसीमें गिरने जा रहा था। परन्तु भगवन्! देवर्षि नारदने मुझे अपनाकर बचा लिया। तब भला, मैं आपके भक्तजनोंकी सेवा कैसे छोड़ सकता हूँ? अविनाशी प्रभो! जिस समय मेरे पिताने अन्याय करनेके लिये कमर कसकर हाथमें खड्ग ले लिया और वह कहने लगा कि 'यदि मेरे सिवा और कोई ईश्वर है तो तुझे बचावे, मैं तेरा सिर काटता हूँ,' उस समय आपने मेरे प्राणोंकी रक्षा की और मेरे पिताका वध किया। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि आपने अपने प्रेमी भक्त सनकादि ऋषियोंका वचन सत्य करनेके लिये ही वैसा किया था ॥ २१—२९ ॥

भगवन्! यह सम्पूर्ण जगत् एकमात्र आप ही हैं। क्योंकि इसके आदिमें आप ही कारणरूपसे थे, अन्तमें आप ही अवधिके रूपमें रहेंगे और बीचमें इसकी प्रतीतिके रूपमें भी

मुझे उसकी विस्मृति नहीं हुई । यदि तुमलोग मेरी इस बातपर श्रद्धा करो, तो तुम्हें भी वह ज्ञान हो सकता है। क्योंकि श्रद्धासे स्त्री और बालकोंकी बुद्धि भी मेरे ही समान शुद्ध हो सकती है। जैसे ईश्वरमूर्ति कालकी प्रेरणासे वृक्षोंके फल लगते, बढ़ते, पकते, क्षीण होते और नष्ट हो जाते हैं—वैसे ही जन्म, अस्तित्वकी अनुभूति, वृद्धि, परिणाम, क्षय और विनाश—ये छः भाव-विकार शरीरमें ही देखे जाते हैं, आत्मासे इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस प्रकार शरीरके धर्मोंकी दृष्टिसे तो आत्मा विलक्षण है ही, वह अपने स्वरूपगत लक्षणोंसे भी शरीरकी अपेक्षा अत्यन्त विलक्षण है। आत्मा नित्य है और शरीर अनित्य; वह अविनाशी है तो यह विनाशी; वह शुद्ध है और यह मलिन; आत्मा एक है और शरीर अनेक; शरीर जड़ क्षेत्र है तो आत्मा उसका ज्ञाता क्षेत्रज्ञ; शरीर आश्रित है और वह आश्रय; शरीर विकारी है और आत्मा निर्विकार; आत्मा स्वयंप्रकाश है और शरीर आदि पर-प्रकाशित; आत्मा कारण है और यह कार्य; वह व्यापक है और यह व्याप्य; आत्मा असङ्ग है और शरीर संसक्त; वह निरावरण है तो यह आवरणरूप। ये बारह आत्माके उत्कृष्ट लक्षण हैं। इनको जाननेवाले पुरुषको चाहिये कि शरीर आदिमें अज्ञानके कारण जो 'मैं' और 'मेरे' का झूठा भाव हो रहा है, उसे इनकी सहायतासे छोड़ दे। जिस प्रकार सुवर्णकी खानोंमें पत्थरमें मिले हुए सुवर्णको उसके निकालनेकी विधि जाननेवाला स्वर्णकार उस विधिसे उसे प्राप्त कर लेता है, वैसे ही अध्यात्मतत्त्वको जाननेवाला पुरुष उपर्युक्त आत्मयोगके द्वारा अपने शरीररूप क्षेत्रमें ही ब्रह्मपदका साक्षात्कार कर लेता है ॥ १५–२१ ॥

आचार्योंने मूल प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार और पञ्च-तन्मात्राएँ—इन आठ तत्त्वोंको प्रकृति बतलाया है। उसके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। इनके विकार हैं सोलह—दस इन्द्रियाँ, एक मन और शब्दादि पाँच विषय। इन सबमें एक पुरुषतत्त्व अनुगत है। इन सबका समुदाय ही देह है। यह दो प्रकारका है—स्थावर और जङ्गम। इसीमें अन्तः-करण, इन्द्रिय आदि अनात्मवस्तुओंका 'यह आत्मा नहीं है'—इस प्रकार बाध करते हुए आत्माको ढूँढ़ना चाहिये। आत्मा सबमें अनुगत है, परन्तु है वह सबसे पृथक्। इस प्रकार शुद्ध बुद्धिसे धीरे-धीरे संसारकी उत्पत्ति, स्थिति और उसके प्रलयपर विचार करना चाहिये। उतावली नहीं करनी चाहिये। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीनों बुद्धिकी वृत्तियाँ हैं। इन वृत्तियोंका जिसके द्वारा अनुभव होता है—वही सबसे अतीत, सबका साक्षी परमात्मा है। जैसे गन्धसे उसके आश्रय वायुका ज्ञान होता है, वैसे ही बुद्धिकी इन कर्मजन्य एवं बदलनेवाली तीनों अवस्थाओंके द्वारा इनके साक्षी आत्माको जाने। गुणों और कर्मोंके कारण होनेवाला जन्म-मृत्युका यह चक्र आत्माको शरीर और प्रकृतिसे पृथक् न करनेके कारण ही है। यह अज्ञानमूलक एवं मिथ्या है। फिर भी स्वप्नके समान जीवको इसकी प्रतीति हो रही है ॥ २२–२७ ॥

इसलिये तुमलोगोंको सबसे पहले इन गुणोंके अनुसार होनेवाले कर्मोंका बीज ही नष्ट कर देना चाहिये। इससे बुद्धि-वृत्तियोंका प्रवाह निवृत्त हो जाता है। इसीको दूसरे शब्दोंमें योग या परमात्मासे मिलन कहते हैं। यद्यपि इन त्रिगुणात्मक कर्मोंकी जड़ उखाड़ फेंकनेके लिये अथवा बुद्धि-वृत्तियोंका प्रवाह बंद कर देनेके लिये सहस्रों साधन हैं—परन्तु जिस उपायसे और जैसे सर्वशक्तिमान् भगवान्में स्वाभाविक निष्काम प्रेम हो जाय, वही उपाय सर्वश्रेष्ठ है। यह बात स्वयं भगवान्ने कही है। गुरुकी प्रेमपूर्वक सेवा, अपनेको जो कुछ मिले वह सब प्रेमसे भगवान्को समर्पित कर देना, भगवत्प्रेमी महात्माओंका सत्सङ्ग, भगवान्की आराधना, उनकी कथा-वार्तामें श्रद्धा, उनके गुण और लीलाओंका कीर्तन, उनके चरणकमलोंका ध्यान और उनके मन्दिर-मूर्ति आदिका दर्शन-पूजन आदि साधनोंसे भगवान्में स्वाभाविक प्रेम हो जाता है। सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि समस्त प्राणियोंमें विराजमान हैं—ऐसी भावनासे यथाशक्ति सभी प्राणियोंकी इच्छा पूर्ण करे और हृदयसे उनका सम्मान करे। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन छः शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके जो लोग इस प्रकार भगवान्की साधन-भक्तिका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें अनन्य प्रेमकी प्राप्ति हो जाती है ॥ २८–३३ ॥

जब भगवान्के लीलाशरीरोंसे किये हुए अद्भुत पराक्रम, उनके अनुपम गुण और चरित्रोंको श्रवण करके अत्यन्त आनन्दके उद्रेकसे मनुष्यका रोम-रोम खिल उठता है, आँसुओंके मारे कण्ठ गद्गद हो जाता है और वह सङ्कोच छोड़कर जोर-जोरसे गाने-चिल्लाने और नाचने लगता है; जिस समय वह ग्रहग्रस्त पागलकी तरह कभी हँसता है, कभी करुणा-क्रन्दन करने लगता है, कभी ध्यान करता है तो कभी भगवद्भावसे लोगोंकी वन्दना करने लगता है; जब वह भगवान्में ही तन्मय हो जाता है और सङ्कोच छोड़कर श्वास-श्वासमें 'हरे !

वाले भगवन्! इन प्राणियोंको भी अब पार लगा दीजिये। आप ही निखिल प्राणियोंको शिक्षा दीक्षा देनेवाले गुरुदेव हैं और इस सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति तथा पालन करनेवाले सर्वशक्तिमान् भी हैं। ऐसी अवस्थामें प्रभो! इन जीवोंको इस भव नदीके पार उतार देनेमें कोई प्रयास भी तो नहीं है। केवल आपके कृपासङ्कल्पसे ही इनका उद्धार हो जायगा। दीनजनोंके परमहितैषी प्रभो! भूले भटके मूढ ही तो महान् पुरुषोंके विशेष अनुग्रहपात्र होते हैं। हमें तो उसकी कोइ आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि हम तो आपके प्रियजनोंकी सेवामें लगे रहते हैं, इसलिये पार जानेकी हमें कभी चिन्ता ही नहीं होती। इस भव वैतरणीसे पार उतरना दूसरे लोगोंके लिये अवश्य ही कठिन है, परन्तु मुझे तो इससे तनिक भी भय या घबड़ाहट नहीं है। क्योंकि मेरा चित्त इस वैतरणीमें नहीं, आपकी उन लीलाओंके गायनमें मग्न रहता है, जो स्वगाय अमृतको भी तिरस्कृत करनेवाली—परमामृत स्वरूप हैं। मैं तो उन मूढ प्राणियोंके लिये शोक कर रहा हूँ जो आपके गुणगानसे विमुख रहकर इन्द्रियोंके विषयोंका मायामय झूठा सुख प्राप्त करनेके लिये अपने सिरपर सारे ससारका बोझ लादे हुए हैं। मेरे स्वामी! बड़े बड़े ऋषि मुनि तो प्राय अपनी मुक्तिके लिये निर्जन वनमें जाकर मौनव्रत धारण कर लेते हैं। वे दूसरोंकी भलाईके लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं करते। परन्तु मेरी दशा तो दूसरी ही हो रही है। मैं तो इन भूले हुए असहाय गरीबोंको छोड़कर अकेला मुक्त होना नहीं चाहता। और इन भटकते हुए प्राणियोंके लिये आपके सिवा और कोई सहारा भी नहीं दिखायी पड़ता ॥३९–४४॥

घरमें फँसे हुए लोगोंको जो मैथुन आदिका सुख मिलता है, वह अत्यन्त तुच्छ एव दु खरूप ही है—जैसे कोई दोनों हाथोंसे खुजला रहा हो तो उस खुजलीमें पहले उसे कुछ थोड़ा सा सुख मालूम पड़ता है, परन्तु पीछेसे दु ख ही दु ख होता है—ये भूले हुए अज्ञानी मनुष्य बहुत दु ख भोगनेपर भी इन विषयोंसे अघाते नहीं। परन्तु धीर पुरुष जैसे खुजलाहटको सह लेते हैं, वैसे ही कामादि वेगोंको भी सह लेते हैं। सहनेसे ही उनका नाश होता है। पुरुषोत्तम! मोक्षके दस साधन प्रसिद्ध हैं—मौन, ब्रह्मचर्य, शास्त्रश्रवण, तपस्या, स्वाध्याय, स्वधर्म पालन, युक्तियोंसे शास्त्रविचार, एकान्तसेवन, जप और समाधि। परन्तु जिनकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, उनके लिये तो ये सब जीविकाके साधन—व्यापारमात्र रह जाते हैं। और दम्भियोंके लिये तो जबतक उनकी पोल खुलती नहीं, तबतक ये जीवननिर्वाहके साधन रहते हैं और भडा फोड़ हो जानेपर वह भी नहीं। वेदोंने बीज और अङ्कुरके समान आपके दो रूप बताये हैं—कार्य और कारण। वास्तव में आप प्राकृत रूपसे रहित हैं। परन्तु इन कार्य और कारण रूपोंको छोड़कर आपके ज्ञानका और कोई साधन भी नहीं है। काष्ठमन्थनके द्वारा जिस प्रकार अग्नि प्रकट की जाती है, उसी प्रकार योगीजन भक्तियोगकी साधनासे आपको कार्य और कारण दोनोंमें ही ढूँढ निकालते हैं। क्योंकि वास्तवमें ये दोनों आपसे पृथक् नहीं हैं, आपके स्वरूप ही हैं। अनन्त प्रभो! वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, पञ्च तन्मात्राएँ, प्राण, इन्द्रिय, मन, चित्त, अहङ्कार, सम्पूर्ण जगत् एव सगुण और निर्गुण—सब कुछ केवल आप ही हैं। और तो क्या, मन और वाणीके द्वारा जो कुछ निरूपण किया जाता है और जो कुछ नहीं किया जा सकता, वह सब आपसे पृथक् नहीं है। समग्र कीर्तिके आश्रय भगवन्! ये सत्त्वादि गुण और इन गुणोंके परिणाम महत्तत्त्वादि, देवता, मनुष्य एव मन आदि कोई भी आपका स्वरूप जाननेमें समर्थ नहीं हैं। क्योंकि ये सब आदि अन्तवाले हैं और आप अनादि एव अनन्त हैं। ऐसा विचार करके ज्ञानीजन शब्दोंकी माया से उपरत हो जाते हैं। वे वर्णनशैलीके भेदसे मोहित नहीं होते। परमपूज्य! आपकी सेवाके छ अङ्ग हैं—नमस्कार, स्तुति, समस्त कर्मोंका समर्पण, सेवा पूजा, चरणकमलोंका चिन्तन और लीला कथाका श्रवण। इस सेवाके बिना आपके चरणकमलोंकी भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? और भक्तिके बिना आपकी प्राप्ति कैसे होगी? प्रभो! आप तो अपने परम प्रिय भक्तजनोंके, परमहंसोंके ही सर्वस्व हैं ॥४५–५०॥

नारदजी कहते हैं—इस प्रकार भक्त प्रह्लादने बड़े प्रेमसे प्रकृति और प्राकृत गुणोंसे रहित भगवान्के निज गुणोंका—स्वरूपभूत गुणोंका वर्णन किया। इसके बाद वे भगवान्के चरणोंमें सिर झुकाकर चुप हो गये। अब तो नृसिंहभगवान्का क्रोध शान्त हो गया, और वे बड़े प्रेम तथा प्रसन्नतासे बोले ॥ ५१ ॥

श्रीनृसिंहभगवान्ने कहा—परम कल्याणस्वरूप प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। दैत्यश्रेष्ठ! मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तुम्हारी जो अभिलाषा हो, मुझसे माँग लो। मैं जीवोंकी इच्छाओंको पूर्ण करनेवाला हूँ। आयुष्मन्! जो मुझे प्रसन्न नहीं कर लेता, उसे मेरा दर्शन मिलना बहुत ही कठिन

आठवाँ अध्याय

नृसिंहभगवान्‌का प्रादुर्भाव, हिरण्यकशिपुका वध और देवताओंद्वारा भगवान्‌की स्तुति

नारदजी कहते हैं—प्रह्लादजीका प्रवचन सुनकर दैत्यबालकोंने उसी समयसे, निर्दोष होनेके कारण, उनकी बात पकड़ ली। गुरुजीकी दूषित शिक्षाकी ओर उन्होंने ध्यान ही न दिया। जब गुरुजीने देखा कि उन सभी विद्यार्थियोंकी बुद्धि एकमात्र भगवान्‌में स्थिर हो रही है, तब वे बहुत घबड़ाये और तुरंत हिरण्यकशिपुके पास जाकर सब हाल कहा। अपने पुत्र प्रह्लादकी इस असह्य और अप्रिय अनीतिको सुनकर क्रोधके मारे उसका शरीर थर-थर काँपने लगा। अन्तमें उसने यही निश्चय किया कि प्रह्लादको अब अपने ही हाथसे मार डालना चाहिये ॥ १—३ ॥

मन और इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले प्रह्लादजी बड़ी नम्रतासे हाथ जोड़कर चुपचाप हिरण्यकशिपुके सामने खड़े थे। उनकी मूर्ति इतनी सौम्य थी कि कोई भी सत्पुरुष उनका तिरस्कार नहीं कर सकता था। परन्तु हिरण्यकशिपु तो स्वभावसे ही क्रूर था। प्रह्लादका यह हाल सुनकर पैरकी चोट खाये हुए साँपकी तरह वह फुफकारने लगा। उसने उनकी ओर पाप-भरी टेढ़ी नजरसे देखा और कठोर वाणीसे डाँटते हुए कहा—'मूर्ख! तू बड़ा उद्दण्ड हो गया है। स्वयं तो नीच है ही, अब हमारे कुलके और बालकोंको भी फोड़ना चाहता है! तूने बड़ी ढिठाईसे मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है। आज ही तुझे यमराजके घर भेजकर इसका फल चखाता हूँ। मैं तनिक-सा क्रोध करता हूँ, तो तीनों लोक और उनके लोकपाल काँप उठते हैं। फिर मूर्ख! तूने किसके बल-बूतेपर निडरकी तरह मेरी आज्ञाके विरुद्ध काम किया है?' ॥ ४—७ ॥

प्रह्लादजीने कहा—दैत्यराज! ब्रह्मासे लेकर तिनकेतक सब छोटे-बड़े, चर-अचर जीवोंको भगवान्‌ने ही अपने वशमें कर रक्खा है। न केवल मेरे और आपके, बल्कि संसारके समस्त बलवानोंके बल भी केवल वही हैं। वे ही सर्वशक्तिमान् प्रभु काल हैं तथा समस्त प्राणियोंके इन्द्रिय-बल, मनोबल, देहबल, धैर्य एवं इन्द्रिय भी वही हैं। वही परमेश्वर अपनी शक्तियोंके द्वारा इस विश्वकी रचना, रक्षा और संहार करते हैं। वे ही तीनों गुणोंके स्वामी हैं। आप अपना यह आसुर भाव छोड़ दीजिये। अपने मनको सबके प्रति समान बनाइये। इस संसारमें यदि सबसे बड़ा कोई शत्रु है, तो अपने वशमें न रहनेवाला कुमार्गगामी मन ही है। इसके अतिरिक्त और कोई शत्रु नहीं हैं। सबके प्रति समताका भाव ही भगवान्‌की सबसे बड़ी पूजा है। जो लोग इन छः इन्द्रियोंके रूपमें रहनेवाले सर्वस्वहारी डाकुओंपर तो विजय नहीं प्राप्त करते और ऐसा मानने लगते हैं कि हमने दसों दिशाएँ जीत लीं, वे मूर्ख हैं। हाँ, जिस ज्ञानी एवं जितेन्द्रिय महात्माने समस्त प्राणियोंके प्रति समताका भाव प्राप्त कर लिया, उसके अज्ञानसे पैदा होनेवाले काम-क्रोधादि शत्रु भी मर-मिट जाते हैं; फिर बाहरके शत्रु तो रहें ही कैसे ॥ ८—११ ॥

हिरण्यकशिपुने कहा—रे मन्दबुद्धि! तेरे बहकनेकी भी अब हद हो गयी। यह बात स्पष्ट है कि अब तू मरना चाहता है। क्योंकि जो मरना चाहते हैं, वे ही ऐसी बेसिर-पैरकी बातें बका करते हैं। अभागे! तूने मेरे सिवा जो और किसीको जगत्‌का स्वामी बतलाया है, सो देखूँ तो तेरा वह जगदीश्वर कहाँ है। अच्छा; क्या कहा, वह सर्वत्र है? तो इस खंभेमें क्यों नहीं दीखता? अच्छा, तुझे इस खंभेमें भी दिखायी देता है। अरे, तू क्यों इतनी डींग हाँक रहा है? मैं अभी-अभी तेरा सिर धड़से अलग किये देता हूँ। देखता हूँ तेरा वह सर्वस्व हरि, जिसपर तुझे इतना भरोसा है, तेरी कैसे रक्षा करता है। वह मेरे सामने आवे तो सही। इस प्रकार वह महादैत्य भगवान्‌के परम प्रेमी प्रह्लादको बार-बार झिड़कियाँ देता और सताता रहा। जब क्रोधके मारे वह अपनेको रोक न सका, तब हाथमें खड्ग लेकर सिंहासनसे कूद पड़ा और बड़े जोरसे उस खंभेको एक घूँसा मारा। उसी समय उस खंभेमें एक बड़ा भयङ्कर शब्द हुआ। ऐसा जान पड़ा मानो यह ब्रह्माण्ड ही फट गया हो। वह ध्वनि जब लोकपालोंके लोकमें पहुँची तो उसे सुनकर ब्रह्मादिको ऐसा मालूम पड़ा, मानो उनके लोकोंका प्रलय हो गया हो। हिरण्यकशिपु प्रह्लादको मार डालनेके लिये बड़े जोरसे झपटा था, परन्तु दैत्यसेनापतियोंको भी भयसे कँपा देनेवाले उस अद्भुत और अपूर्व घोर शब्दको सुनकर वह घबड़ाया हुआ-सा देखने लगा कि यह शब्द करनेवाला कौन है। परन्तु उसे सभाके भीतर कुछ भी दिखायी न पड़ा ॥ १२—१७ ॥

मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि उस जल्दी नाश न होनेवाले दुस्तर दोषसे मेरे पिता शुद्ध हो जायँ ॥ १५–१७ ॥

श्रीनृसिंहभगवान्‌ने कहा—निष्पाप प्रह्लाद ! तुम्हारे पिता और उसके बाप-दादोंकी तो बात ही क्या है, उसके पूर्वकल्पोंकी भी इक्कीस पीढ़ियाँ तर गयीं । क्योंकि प्रह्लाद ! तुम्हारे-जैसा कुलको पवित्र करनेवाला पुत्र उसको प्राप्त हुआ । मेरे शान्त, समदर्शी और सुखसे सदाचार पालन करनेवाले प्रेमी भक्तजन जहाँ-जहाँ निवास करते हैं, वे स्थान चाहे कीकट ही क्यों न हों, पवित्र हो जाते हैं । दैत्यराज ! मेरे भक्तिभावसे जिनकी कामनाएँ नष्ट हो गयी हैं, वे सर्वत्र आत्मभाव हो जानेके कारण छोटे-बड़े किसी भी प्राणीको किसी भी प्रकारसे कष्ट नहीं पहुँचाते । संसारमें जो लोग तुम्हारे अनुयायी होंगे, वे भी मेरे भक्त हो जायँगे । बेटा ! तुम मेरे सभी भक्तोंके आदर्श हो । यद्यपि मेरे अंगोंका स्पर्श होनेसे तुम्हारा पिता पूर्णरूपसे पवित्र हो गया है, तथापि तुम उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करो । तुम्हारे-जैसी सन्तानके कारण उसे उत्तम लोकोंकी प्राप्ति होगी । वत्स ! तुम अपने पिताके पदपर स्थित हो जाओ और वेदवादी मुनियोंकी आज्ञाके अनुसार मुझमें अपना मन लगाकर और मेरी शरणमें रहकर मेरी सेवाके लिये ही अपने सारे कार्य करो ॥१८–२३॥

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर ! भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार प्रह्लादजीने अपने पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया की, इसके बाद श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने उनका राज्याभिषेक किया । इसी समय देवता, ऋषि आदिके साथ ब्रह्माजीने नृसिंहभगवान्‌को प्रसन्नवदन देखकर पवित्र वचनोंके द्वारा उनकी स्तुति की और उनसे यह बात कही ॥ २४ २५ ॥

ब्रह्माजीने कहा—देवताओंके आराध्यदेव ! आप सर्वान्तर्यामी, जीवोंके जीवनदाता और मेरे भी पिता हैं । यह पापी दैत्य लोगोंको बहुत ही सता रहा था । यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपने इसे मार डाला । मैंने इसे वर दे दिया था कि मेरी सृष्टिका कोई भी प्राणी तुम्हारा वध न कर सकेगा । इससे यह मतवाला हो गया था । तपस्या, योग और बलके कारण उच्छृङ्खल होकर इसने वेदविधियोंका उच्छेद कर दिया था । यह भी बड़े सौभाग्यकी बात है कि इसके पुत्र परमभागवत शुद्धहृदय नन्हे-से शिशु प्रह्लादको आपने मृत्युके मुखसे छुड़ा दिया, तथा यह भी बड़े आनन्द और मङ्गलकी बात है कि वह अब आपकी शरणमें है । भगवन् ! आपके इस नृसिंहरूपका ध्यान जो कोई एकाग्र मनसे करेगा, उसे यह सब प्रकारके भयोंसे बचा लेगा । यहाँतक कि मारनेकी इच्छासे आयी हुई मृत्यु भी उसका कुछ न बिगाड़ सकेगी ॥ २६–२९ ॥

श्रीनृसिंहभगवान् बोले—ब्रह्माजी ! आप दैत्योंको ऐसा वर न दिया करें । जो स्वभावसे ही क्रूर हैं, उनको दिया हुआ वर तो वैसा ही है जैसा साँपोंको दूध पिलाना ॥३०॥

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! नृसिंहभगवान् इतना कहकर और ब्रह्माजीके द्वारा की हुई पूजाको स्वीकार करके वहीं अन्तर्धान हो गये । इसके बाद प्रह्लादजीने भगवत्स्वरूप ब्रह्मा शङ्करकी तथा प्रजापति और देवताओंकी पूजा करके उन्हें माथा टेककर प्रणाम किया । तब शुक्राचार्य आदि मुनियोंके साथ ब्रह्माजीने प्रह्लादजीको समस्त दानव और दैत्योंका अधिपति बना दिया । फिर ब्रह्मादि देवताओंने प्रह्लादका अभिनन्दन किया और उन्हें शुभाशीर्वाद दिये । प्रह्लादजीने भी यथा योग्य सबका सत्कार किया और वे लोग अपने अपने लोकोंको चले गये ॥ ३१–३४ ॥

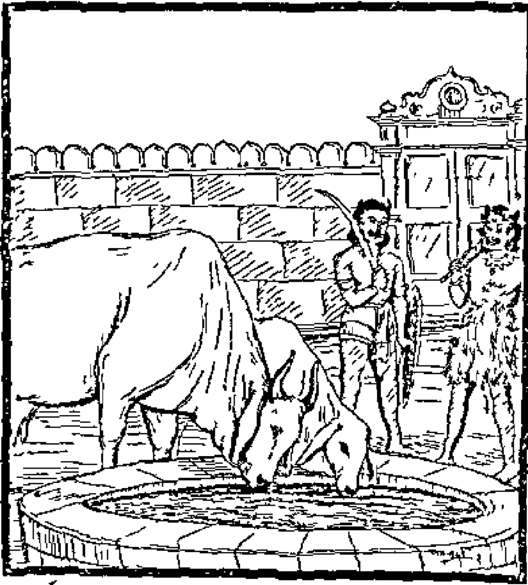
युधिष्ठिर ! इस प्रकार भगवान्‌के वे दोनों पार्षद जय और विजय दितिके पुत्र दैत्य हो गये थे । वे भगवान्‌से वैरभाव रखते थे । उनके हृदयमें रहनेवाले भगवान्‌ने उनका उद्धार करनेके लिये उन्हें मार डाला । ऋषियोंके शापके कारण उनकी मुक्ति नहीं हुई, वे फिरसे कुम्भकर्ण और रावणके रूपमें राक्षस हुए । उस समय भगवान् श्रीरामके पराक्रमसे उनका अन्त हुआ । युद्धमें भगवान् रामके बाणोंसे उनका कलेजा फट गया । वहीं पड़े-पड़े पूर्वजन्मकी तरह भगवान्‌का स्मरण करते-करते उन्होंने अपने शरीर छोड़े । वे ही अब इस युगमें शिशुपाल और दन्तवक्त्रके रूपमें पैदा हुए थे । भगवान्‌के प्रति वैरभाव होनेके कारण तुम्हारे देखते ही देखते वे उनमें समा गये । युधिष्ठिर ! केवल शिशुपाल और दन्तवक्त्रकी ही बात नहीं, जितने भी श्रीकृष्णसे शत्रुता रखनेवाले राजा थे, उन सबने अन्तसमयमें श्रीकृष्णके स्मरणसे तद्रूप होकर अपने पूर्वकृत पापों और पापमय शरीरोंसे सदाके लिये मुक्ति प्राप्त कर ली—जैसे भृंगीके द्वारा पकड़ा हुआ कीड़ा भयसे ही उसका स्वरूप प्राप्त कर लेता है । जिस प्रकार भगवान्‌के प्यारे भक्त अपनी भेदभावरहित अनन्य भक्तिके द्वारा भगवत्स्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं, वैसे ही शिशुपाल आदि नरपति भी भगवान्‌के वैरभावजनित अनन्य चिन्तनसे भगवान्‌के सारूप्य को प्राप्त हो गये ॥३५–४०॥

भगवान् नृसिंहजी



हिरण्यकशिपु हाथमें गदा लेकर भगवान्‌की ओर लपका ।

बछड़ा बने। दोनों ही मध्याह्नके समय उन तीनों पुरोंमें



गये और उस सिद्धरसके कुएँका सारा अमृत पी गये। यद्यपि उसके रक्षक दैत्य इन दोनोंको देख रहे थे, फिर भी भगवान्‌की मायासे वे इतने मोहित हो गये कि उन्हें रोक न सके। जब उपाय जाननेवालोंमें श्रेष्ठ मयासुरको यह बात मालूम हुई, तब भगवान्‌की इस लीलाका स्मरण करके उसे कोई शोक न हुआ। शोक करनेवाले अमृत-रक्षकोंसे उसने कहा—'भाई! देवता, असुर, मनुष्य अथवा और कोई भी प्राणी अपने, पराये अथवा दोनोंके लिये जो प्रारब्धका विधान है, उसे मिटा नहीं सकता। जो होना था, हो गया। शोक करके क्या करना है!' इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने अपनी शक्तियोंके द्वारा भगवान् शङ्करके युद्धकी सामग्री तैयार की। उन्होंने धर्मसे रथ, ज्ञानसे सारथि, वैराग्यसे ध्वजा, ऐश्वर्यसे घोड़े, तपस्यासे धनुष, विद्यासे कवच, क्रियासे बाण और अपनी अन्यान्य शक्तियोंसे अन्यान्य वस्तुओंका निर्माण किया। इन सामग्रियोंसे सज-धजकर भगवान् शङ्कर रथपर सवार हुए एवं धनुष बाण धारण किया। भगवान् शङ्करने अभिजित् मुहूर्तमें धनुषपर बाण चढ़ाया और उन तीनों दुर्भेद्य विमानोंको भस्म कर दिया। युधिष्ठिर! उसी समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। सैकड़ों विमानोंकी भीड़ लग गयी। देवता, ऋषि, पितर और सिद्धेश्वर आनन्दसे जय जयकार करते हुए पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। अप्सराएँ नाचने और गाने लगीं। युधिष्ठिर! इस प्रकार उन तीनों पुरोंको जलाकर भगवान् शङ्करने 'पुरारि'की पदवी प्राप्त की और ब्रह्मादिकोंकी स्तुति सुनते हुए वे अपने धामको चले गये। युधिष्ठिर! आत्मस्वरूप जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार अपनी मायासे जो मनुष्योंकी-सी लीलाएँ करते हैं, ऋषिलोग उन्हीं अनेकों लोकपावन लीलाओंका गायन किया करते हैं। बताओ, अब मैं तुम्हें और क्या सुनाऊँ? ॥६१-७१॥

ग्यारहवाँ अध्याय

मानवधर्म, वर्णधर्म और स्त्रीधर्मका निरूपण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—संतशिरोमणि भगवन्मय प्रह्लादजीके साधुसमाजमें सम्मानित पवित्र चरित्र सुनकर युधिष्ठिरको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने नारदजीसे और भी पूछा ॥ १ ॥

युधिष्ठिरजीने कहा—भगवन्! अब मैं वर्ण और आश्रमोंके सदाचारके साथ मनुष्योंके सनातनधर्मका श्रवण करना चाहता हूँ। क्योंकि धर्मसे ही मनुष्यको ज्ञान, भगवत्प्रेम और साक्षात् परमपुरुष भगवान्‌की प्राप्ति होती है। आप स्वयं प्रजापति ब्रह्माजीके पुत्र हैं और नारदजी! आपकी तपस्या, योग एवं समाधिके कारण वे अपने दूसरे पुत्रोंकी अपेक्षा आपका अधिक सम्मान भी करते हैं। आपके समान नारायण-परायण, दयालु, सदाचारी और शान्त ब्राह्मण धर्मके गुप्त-से-गुप्त रहस्यको जैसा यथार्थरूपसे जानते हैं, दूसरे लोग वैसा नहीं जानते ॥२-४॥

नारदजीने कहा—युधिष्ठिर! अजन्मा भगवान् ही समस्त धर्मोंके मूल कारण हैं। वही प्रभु चराचर जगत्‌के कल्याणके लिये धर्म और दक्षपुत्री मूर्तिके द्वारा अपने अंशसे अवतीर्ण होकर बदरिकाश्रममें तपस्या कर रहे हैं। उन नारायणभगवान्‌को नमस्कार करके उन्हींके मुखसे सुने हुए सनातनधर्मका मैं वर्णन करता हूँ। युधिष्ठिर! सर्ववेदस्वरूप भगवान् श्रीहरि, उनका तत्त्व जाननेवाले महर्षियोंकी स्मृतियाँ और जिससे आत्मग्लानि न होकर आत्मप्रसादकी उपलब्धि हो, वह कर्म धर्मके मूल हैं ॥ ५-७ ॥

युधिष्ठिर! धर्मके ये तीस लक्षण शास्त्रोंमें कहे गये हैं—

लिये जोरसे छटपटा रहा था। भगवान्‌ने सभाके दरवाज़ेपर ले जाकर उसे अपनी जाँघोंपर गिरा लिया और खेल-खेलमें अपने नखोंसे उसे इस प्रकार फाड़ डाला, जैसे गरुड़ महाविषधर साँपको चीर डालते हैं। उस समय उनकी क्रोधसे भरी विकराल आँखोंकी ओर देखा नहीं जाता था। वे अपनी लपलपाती हुई जीभसे मुँहके दोनों कोने चाट रहे थे। खूनके छीटोंसे उनका मुँह और गरदनके बाल लाल हो रहे थे। हाथीको मारकर गलेमें आँतोंकी माला पहने हुए मृगराजके समान उनकी शोभा हो रही थी। उन्होंने अपने तीखे नखोंसे हिरण्यकशिपुका कलेजा फाड़कर उसे जमीनपर पटक दिया। उस समय हजारों दैत्य-दानव हाथोंमें शस्त्र लेकर भगवान्‌पर प्रहार करनेके लिये आये। पर भगवान्‌ने अपनी भुजारूपी सेनासे, लातोंसे और नखरूपी शस्त्रोंसे चारों ओर खदेड़-खदेड़कर उन्हें मार डाला ॥ २४—३१ ॥

युधिष्ठिर! उस समय भगवान् नृसिंहके गरदनके बालोंकी फटकारसे बादल तितर-बितर होने लगे। उनके नेत्रोंकी ज्वालासे सूर्य आदि ग्रहोंका तेज फीका पड़ गया। उनके श्वासके धक्केसे समुद्र क्षुब्ध हो गये। उनके सिंहनादसे भयभीत होकर दिग्गज चिग्घाड़ने लगे। उनके गरदनके बालोंसे टकराकर देवताओंके विमान अस्त-व्यस्त हो गये। स्वर्ग डगमगा गया। उनके पैरोंकी धमकसे भूकम्प आ गया, वेगसे पर्वत उड़ने लगे और उनके तेजकी चकाचौंधसे आकाश तथा दिशाओंका दीखना बंद हो गया। इस समय नृसिंहभगवान्‌का सामना करनेवाला कोई दिखायी न पड़ता था। फिर भी उनका क्रोध अभी बढ़ता ही जा रहा था। वे हिरण्यकशिपुकी राजसभामें ऊँचे सिंहासनपर जाकर विराज गये। उस समय उनके अत्यन्त तेजपूर्ण और क्रोधभरे भयङ्कर चेहरेको देखकर किसीका भी साहस न हुआ कि उनके पास जाकर उनकी सेवा करे ॥ ३२—३४ ॥

युधिष्ठिर! जब स्वर्गकी देवियोंको यह शुभ समाचार मिला कि तीनों लोकोंके सिरकी पीड़ाका मूर्तिमान् स्वरूप हिरण्यकशिपु युद्धमें भगवान्‌के हाथों मार डाला गया, तो आनन्दके उल्लासमें उनका रोम-रोम खिल उठा। वे बार-बार भगवान्‌पर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं। आकाशमें विमानोंसे आये हुए भगवान्‌के दर्शनार्थी देवताओंकी भीड़ लग गयी। देवताओंके ढोल और नगाड़े बजने लगे। गन्धर्वराज गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं। इसी समय ब्रह्मा-इन्द्र-शङ्कर आदि देवता, ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, महानाग, मनु, प्रजापति, गन्धर्व, अप्सरा, चारण, यक्ष, किम्पुरुष, वेताल, सिद्ध, किन्नर और सुनन्द-कुमुद आदि भगवान्‌के सभी पार्षद उनके पास आये। उन लोगोंने सिरपर अञ्जलि बाँधकर सिंहासनपर विराजमान अत्यन्त तेजस्वी नृसिंहभगवान्‌की थोड़ी दूरसे अलग-अलग स्तुति की ॥ ३५—३९ ॥

ब्रह्माजीने कहा—प्रभो! आप अनन्त हैं। आपकी शक्तिका कोई पार नहीं पा सकता। आपका पराक्रम विचित्र और कर्म पवित्र हैं। यद्यपि गुणोंके द्वारा आप लीलासे ही सम्पूर्ण विश्वका सृजन, पालन और प्रलय करते हैं—फिर भी आप उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखते, स्वयं निर्विकार रहते हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४० ॥

श्रीरुद्रने कहा—आपके क्रोध करनेका समय तो कल्पके अन्तमें होता है। यदि इस दैत्यको मारनेके लिये ही आपने क्रोध किया है, तो वह तुच्छ दैत्य भी मारा जा चुका। उसका पुत्र आपकी शरणमें आया है। भक्तवत्सल प्रभो! आप अपने इस भक्तकी रक्षा कीजिये ॥ ४१ ॥

इन्द्रने कहा—पुरुषोत्तम! आपने हमारी रक्षा की है। आपने हमारे जो यज्ञभाग लौटाये हैं, वे वास्तवमें आपके ही हैं। क्योंकि अन्तर्यामीरूपसे आप ही तो समस्त यज्ञोंके भोक्ता हैं। दैत्योंके आतङ्कसे हमारा हृदयकमल सङ्कुचित हो गया था। उसे आपने प्रफुल्लित कर दिया। परन्तु वह तो आपका ही निवासस्थान है। यह जो स्वर्गादिका राज्य हमलोगोंको पुनः प्राप्त हुआ है, यह सब कालका ग्रास है। जो आपके सेवक हैं, उनके लिये यह है ही क्या? स्वामिन्! जिन्हें आपकी सेवाकी चाह है, वे तो मुक्तिका भी आदर नहीं करते। फिर अन्य भोगोंकी तो उन्हें आवश्यकता ही क्या है? ॥ ४२ ॥

ऋषियोंने कहा—पुरुषोत्तम! आपने तपस्याके द्वारा ही अपनेमें लीन हुए जगत्‌की फिरसे रचना की थी और कृपा करके उसी आत्मतेजःस्वरूप श्रेष्ठ तपस्याका उपदेश आपने हमारे लिये भी किया था। इस दैत्यने उसी तपस्याका उच्छेद कर दिया था। शरणागतवत्सल! उस तपस्याकी रक्षाके लिये अवतार ग्रहण करके आपने हमारे लिये फिरसे तपस्या करनेका ही उपदेश दिया है ॥ ४३ ॥

पितरोंने कहा—प्रभो! हमारे पुत्र हमारे लिये पिण्डदान करते थे, तो यह उन्हें बलात् छीनकर खा जाया करता था। जब वे पवित्र तीर्थमें या संक्रान्ति आदिके

मुनियोंने युग युगमें प्राय मनुष्योंके स्वभावके अनुसार धर्मकी व्यवस्था की है। वही धर्म उनके लिये इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी है। जो स्वाभाविक वृत्तिका आश्रय लेकर अपने स्वधर्मका पालन करता है, वह धीरे धीरे उन स्वाभाविक कर्मोंसे भी ऊपर उठ जाता है और गुणातीत हो जाता है। जिस प्रकार बार-बार बोनेसे खेत स्वय ही शक्तिहीन हो जाता है और उसमें अङ्कुर उगना बद हो जाता है, यहॉतक कि उसमें बोया हुआ बीज भी नष्ट हो जाता है—उसी प्रकार यह चित्त, जो वासनाओंका खजाना है, विषयों का अत्यन्त सेवन करनेसे स्वय ही ऊब जाता है। परन्तु स्वल्प भोगोंसे ऐसा नहीं होता। जैसे एक एक बूँद घी डालनेसे आग नहीं बुझती, परन्तु एक ही साथ अधिक घी पड़ जाय तो वह बुझ जाती है। महाराज! जिस पुरुषके वर्णको बतलानेवाला जो लक्षण कहा गया है, वह यदि दूसरे वर्णवालेमें भी मिले तो उसे भी उसी वर्णका समझना चाहिये ॥ ३०–३५ ॥

बारहवाँ अध्याय

आश्रमधर्मका वर्णन

नारदजी कहते हैं—धर्मराज! गुरुकुलमें निवास करनेवाला ब्रह्मचारी अपनी इन्द्रियोंको वशमे रखकर दासके समान अपनेको छोटा माने, गुरुदेवके चरणोंमें सुदृढ अनुराग रक्खे और उनके हितके कार्य करता रहे। सायङ्काल और प्रात काल गुरु, अग्नि, सूर्य और श्रेष्ठ देवताओंकी उपासना करे और मौन होकर एकाग्रतासे गायत्रीका जप करता हुआ दोनों समयकी सन्ध्या करे। गुरुजी जब बुलावें तभी पूर्णतया अनुशासनमे रहकर उनसे वेदोंका स्वाध्याय करे। पाठके प्रारम्भ और अन्तमें उनके चर [illegible] कर प्रणाम करे। शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार मेख [illegible] पास रहना चाहिये। जबतक यह जीव आत्मसाक्षात्कारके द्वारा इन देह और इन्द्रियोंको प्रतीतिमात्र निश्चय करके स्वतन्त्र नहीं हो जाता, तबतक 'मैं पुरुष हूँ और यह स्त्री है'—यह द्वैत नहीं मिटता। और तबतक यह भी निश्चित है कि ऐसे पुरुष यदि स्त्रीके ससर्गमें रहेंगे, तो उनकी उनमें भोग्यबुद्धि हो ही जायगी ॥ १–१० ॥

ये सब शील-रक्षादि गुण गृहस्थके लिये और सन्यासीके लिये भी विहित हैं। गृहस्थके लिये गुरुकुलमें रहकर गुरुकी

वे भी उनके पासतक न जा सकीं। उन्होंने ऐसा अनूठा रूप न कभी देखा था और न सुना ही था। तब ब्रह्माजीने अपने पास ही खड़े प्रह्लादको यह कहकर भेजा कि 'बेटा! तुम्हारे पितापर ही तो भगवान् क्रोधित हुए थे। अब तुम्हीं उनके पास जाकर उन्हें शान्त करो। भगवान्‌के परम प्रेमी प्रह्लाद 'जो आज्ञा' कहकर और धीरेसे भगवान्‌के पास जाकर हाथ जोड़ पृथ्वीपर साष्टाङ्ग लोट गये। नृसिंहभगवान्‌ने देखा कि नन्हा-सा बालक मेरे चरणोंके पास पड़ा हुआ है। उनका हृदय दयासे भर गया। उन्होंने प्रह्लादको उठाकर उनके सिरपर अपना वह करकमल रख दिया, जो काल-सर्पसे भयभीत पुरुषोंको अभयदान करनेवाला है। भगवान्‌के करकमलोंका स्पर्श होते ही उनके बचे-खुचे अशुभ संस्कार भी धुल गये। तत्काल उन्हें परमात्मतत्त्वका साक्षात्कार हो गया। उन्होंने बड़े प्रेम और आनन्दमें मग्न होकर भगवान्‌के चरणकमलोंको अपने हृदयमें धारण किया। उस समय उनका सारा शरीर पुलकित हो गया, हृदयमें प्रेमकी धारा प्रवाहित होने लगी और नेत्रोंसे आनन्दाश्रु झरने लगे। प्रह्लादजी निर्निमेष नयनोंसे भगवान्‌को देख रहे थे। उनका हृदय भी भगवान्‌की ओर खिंचा जा रहा था। अपने-आप उन्हें भावसमाधि लग रही थी। उन्होंने स्वयं एकाग्र हुए मनके द्वारा भगवान्‌के गुणोंका चिन्तन करते हुए प्रेमगद्गद वाणीसे उनकी स्तुति की॥ १–७॥

प्रह्लादजीने कहा—ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि-मुनि और सिद्ध पुरुषोंकी बुद्धि निरन्तर सत्त्वगुणमें ही स्थित रहती है। फिर भी वे अपनी धारा-प्रवाह स्तुति और अपने विविध गुणोंसे आपको अबतक भी सन्तुष्ट नहीं कर सके। फिर मैं तो घोर असुर जातिमें उत्पन्न हुआ हूँ। क्या आप मुझसे सन्तुष्ट हो सकते हैं? परन्तु मैं तो ऐसा समझता हूँ कि धन, कुलीनता, रूप, तप, विद्या, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि और योग—ये सभी गुण परमपुरुष भगवान्‌को सन्तुष्ट करनेमें समर्थ नहीं हैं। परन्तु भक्तिसे तो भगवान् गजेन्द्रपर भी सन्तुष्ट हो गये थे। मेरी समझसे उपर्युक्त बारह गुणोंसे युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् कमलनाभके चरण-कमलोंसे विमुख हो, तो उससे वह चाण्डाल श्रेष्ठ है जिसने अपने मन, वचन, कर्म, धन और प्राण भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर रक्खे हैं; क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने कुलतकको पवित्र कर देता है और बड़प्पनका अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता। सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने स्वरूपके साक्षात्कारसे ही परिपूर्ण हैं। उन्हें अपने लिये क्षुद्र पुरुषोंसे पूजा ग्रहण करनेकी आवश्यकता नहीं है। वे तो करुणावश ही भोले भक्तोंके हितके लिये उनके द्वारा की हुई पूजा स्वीकार कर लेते हैं। इसका लाभ भी उन भक्तोंको ही होता है। जैसे अपने मुखका सौन्दर्य दर्पणमें दीखनेवाले प्रतिबिम्बको भी सुन्दर बना देता है, वैसे ही भक्त भगवान्‌के प्रति जो-जो सम्मान प्रकट करता है वह उसे ही प्राप्त होता है। क्योंकि जीव तो भगवान्‌का अंश ही है न? इसलिये सर्वथा अयोग्य और अनधिकारी होनेपर भी मैं बिना किसी शङ्काके अपनी बुद्धिके अनुसार सब प्रकारसे भगवान्‌की महिमाका वर्णन कर रहा हूँ। इस महिमाके गायनका ही ऐसा प्रभाव है कि अविद्यावश संसार-चक्रमें पड़ा हुआ जीव तत्काल पवित्र हो जाता है॥८–१२॥

भगवन्! आप सत्त्वगुणके आश्रय हैं। ये ब्रह्मा आदि सभी देवता आपके आज्ञाकारी भक्त हैं। ये हम दैत्योंकी तरह आपसे द्वेष नहीं करते। प्रभो! आप बड़े-बड़े सुन्दर-सुन्दर अवतार ग्रहण करके इस जगत्‌के कल्याण एवं अभ्युदयके लिये तथा उसे आत्मानन्दकी प्राप्ति करानेके लिये अनेकों प्रकारकी लीलाएँ करते हैं। जिस असुरको मारनेके लिये आपने क्रोध किया था, वह मारा जा चुका। अब आप अपना क्रोध शान्त कीजिये। जैसे बिच्छू और साँपकी मृत्युसे सज्जन भी सुखी ही होते हैं, वैसे ही इस दैत्यके संहारसे सभी लोगोंको बड़ा सुख मिला है। अब सब आपके शान्त स्वरूपके दर्शनकी बाट जोह रहे हैं। नृसिंहदेव! भयसे मुक्त होनेके लिये भक्तजन आपके इस रूपका स्मरण करेंगे। परमात्मन्! आपका मुख बड़ा भयावना है। आपकी जीभ लपलपा रही है। आँखें सूर्यके समान हैं। भौंहें चञ्चल हो रही हैं। बड़ी पैनी दाढ़ें हैं। आँतोंकी माला, खूनसे लथपथ गरदनके बाल, बर्छेकी तरह सीधे खड़े कान और दिग्गजोंको भी भयभीत कर देनेवाला सिंहनाद एवं शत्रुओंको फाड़ डालनेवाले आपके इन नखोंको देखकर मैं तनिक भी भयभीत नहीं हुआ हूँ। दीन-बन्धो! मैं भयभीत हूँ तो केवल इस असह्य और उग्र संसार-चक्रमें पिसनेसे। मैं अपने कर्मपाशोंसे बँधकर इन भयङ्कर जन्तुओंके बीचमें डाल दिया गया हूँ। मेरे स्वामी! आप प्रसन्न होकर मुझे कब अपने उन चरणकमलोंमें बुलायेंगे, जो समस्त जीवोंकी एकमात्र शरण और मोक्षस्वरूप हैं? अनन्त! मैं जिन-जिन योनियोंमें गया, उन सभी योनियोंमें प्रियके वियोग और अप्रियके संयोगसे होनेवाले शोककी आगमें झुलसता रहा। उन दुःखोंको मिटानेकी जो दवा है, वह भी

मुनियोंने युग युगमे प्राय मनुष्योंके स्वभावके अनुसार धर्मकी व्यवस्था की है। वही धर्म उनके लिये इस लोक और परलोकमें कल्याणकारी है। जो स्वाभाविक वृत्तिका आश्रय लेकर अपने स्वधर्मका पालन करता है, वह धीरे धीरे उन स्वाभाविक कर्मोंसे भी ऊपर उठ जाता है और गुणातीत हो जाता है। जिस प्रकार बार बार बोनेसे खेत स्वय ही शक्ति हीन हो जाता है और उसमें अङ्कुर उगना बद हो जाता है, यहाँतक कि उसमें बोया हुआ बीज भी नष्ट हो जाता है—उसी प्रकार यह चित्त, जो वासनाओंका खजाना है, विषयों का अत्यन्त सेवन करनेसे स्वय ही ऊब जाता है। परन्तु स्वल्प भोगोंसे ऐसा नहीं होता। जैसे एक एक बूँद घी डालनेसे आग नहीं बुझती, परन्तु एक ही साथ अधिक घी पड़ जाय तो वह बुझ जाती है। महाराज! जिस पुरुषके वर्णको बतलानेवाला जो लक्षण कहा गया है, वह यदि दूसरे वर्णवालेमें भी मिले तो उसे भी उसी वर्णका समझना चाहिये॥ ३०–३५॥

बारहवाँ अध्याय

आश्रमधर्मका वर्णन

नारदजी कहते हैं—धर्मराज! गुरुकुलमे निवास करनेवाला ब्रह्मचारी अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर दासके समान अपनेको छोटा माने, गुरुदेवके चरणोंमें सुदृढ अनुराग रक्खे और उनके हितके कार्य करता रहे। सायङ्काल और प्रात काल गुरु, अग्नि, सूर्य और श्रेष्ठ देवताओंकी उपासना करे और मौन होकर एकाग्रतासे गायत्रीका जप करता हुआ दोनों समयकी सन्ध्या करे। गुरुजी जब बुलावें तभी पूर्णतया अनुशासनमे रहकर उनसे वेदोंका स्वाध्याय करे। पाठके प्रारम्भ और अन्तमे उनके चरणोंमे सिर टेक कर प्रणाम करे। शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डलु, यज्ञोपवीत तथा हाथमें कुश धारण करे। सायङ्काल और प्रात काल भिक्षा माँगकर लावे और उसे गुरुजीको समर्पित कर दे। वे आज्ञा दें तब भोजन करे, और यदि कभी आज्ञा न दें तो उपवास कर ले। अपने शीलकी रक्षा करे। थोड़ा खाय। अपने कामोंको निपुणताके साथ करे। श्रद्धा रक्खे और इन्द्रियोंको अपने वशमें रक्खे। स्त्री और स्त्रियोंके वशमें रहनेवालोंके साथ जितनी आवश्यकता हो, उतना ही व्यवहार करे। जो गृहस्थ नहीं है और ब्रह्मचर्यका व्रत लिये हुए है, उसे स्त्रियोंकी चर्चासे ही अलग रहना चाहिये। इन्द्रियाँ बड़ी बलवान् हैं। ये प्रयत्नपूर्वक साधन करनेवालोंके मनको भी क्षुब्ध करके खींच लेती हैं। युवक ब्रह्मचारी युवती गुरुपत्नियोंसे बाल सुलझवाना, शरीर मलवाना, स्नान करवाना, उबटन लगवाना इत्यादि कार्य न करावे। स्त्रियाँ आगके समान हैं और पुरुष घीके घड़ेके समान, इनका एक साथ रहना हानिकारक है। एकान्तमें तो अपनी कन्याके साथ भी न रहना चाहिये। जब वह एकान्तमें न हो, तब भी आवश्यकताके अनुसार ही उसके पास रहना चाहिये। जबतक यह जीव आत्मसाक्षात्कारके द्वारा इन देह और इन्द्रियोंको प्रतीतिमात्र निश्चय करके स्वतन्त्र नहीं हो जाता, तबतक 'मैं पुरुष हूँ और यह स्त्री है'—यह द्वैत नहीं मिटता। और तबतक यह भी निश्चित है कि ऐसे पुरुष यदि स्त्रीके ससर्गमें रहेंगे, तो उनकी उनमें भोग्यबुद्धि हो ही जायगी॥ १–१०॥

ये सब शील-रक्षादि गुण गृहस्थके लिये और सन्यासीके लिये भी विहित हैं। गृहस्थके लिये गुरुकुलमें रहकर गुरुकी सेवा शुश्रूषा वैकल्पिक है, क्योंकि ऋतुगमनके कारण उसे वहाँसे अलग भी होना पड़ता है। जो ब्रह्मचर्यका व्रत धारण करें, उन्हे चाहिये कि वे सुरमा या तेल न लगावें। उबटन न मले। स्त्रियोंके चित्र न बनावें। मास और मद्यसे कोई सम्बन्ध न रक्खें। फूलोंके हार, इत्र फुलेल, चन्दन और आभूषणोंका त्याग कर दे। इस प्रकार गुरुकुलमें निवास करके द्विजातिको अपनी शक्ति और आवश्यकताके अनुसार वेद, उनके अङ्ग—शिक्षा, कल्प आदि और उपनिषदोंका अध्ययन तथा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। फिर यदि सामर्थ्य हो तो गुरुको मुँहमाँगी दक्षिणा देनी चाहिये। इसके बाद उनकी आज्ञासे गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा सन्यास आश्रममें प्रवेश करे या आजीवन ब्रह्मचर्यका पालन करते हुए उन्हींके घर रहे। यद्यपि भगवान् स्वरूपत सर्वत्र एकरस स्थित हैं, अतएव उनका कहीं प्रवेश करना या निकलना नहीं हो सकता—फिर भी अग्नि, गुरु, आत्मा और समस्त प्राणियोंमे अपने आश्रित जीवोंके साथ वे विशेषरूपसे विराजमान हैं। इसलिये उनपर सदा दृष्टि जमी रहनी चाहिये। इस प्रकार आचरण करनेवाला ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, सन्यासी अथवा गृहस्थ विज्ञानसम्पन्न होकर परब्रह्म तत्त्वका अनुभव प्राप्त कर लेता है॥ ११–१६॥

केवल आप ही हैं। आप अपनी मायासे गुणोंके परिणामस्वरूप इस जगत्‌की सृष्टि करके इसमें पहलेसे विद्यमान रहनेपर भी प्रवेशकी लीला करते हैं और उन गुणोंसे युक्त होकर आप एक एवं अद्वितीय होनेपर भी अनेक मालूम पड़ रहे हैं। भगवन्! यह जो कुछ कार्य-कारण अथवा भाव-अभावके रूपमें प्रतीत हो रहा है, वह सब आप ही हैं और इससे भिन्न भी, इसके अभावमें भी, आप ही हैं। अपने-परायेका भेदभाव तो अर्थहीन शब्दोंकी माया है; क्योंकि जिससे जिसका जन्म, स्थिति, लय और प्रकाश होता है वह उसका स्वरूप ही होता है। जैसे बीज और वृक्ष कारण और कार्यकी दृष्टिसे भिन्न-भिन्न हैं, तो भी गन्ध-तन्मात्रकी दृष्टिसे दोनों एक ही हैं—वैसे ही यह सब कुछ आप-ही-आप हैं ॥३०-३१॥

भगवन्! आप इस सम्पूर्ण विश्वको स्वयं ही अपनेमें समेटकर आत्मसुखका अनुभव करते हुए निष्क्रिय होकर प्रलयकालीन जलमें शयन करते हैं। उस समय अपने स्वयंसिद्ध योगके द्वारा बाह्य दृष्टिको बंद कर आप अपने स्वरूपके प्रकाशमें निद्राको विलीन कर लेते हैं और तुरीय ब्रह्मपदमें स्थित रहते हैं। उस समय आप न तो तमोगुणसे ही युक्त होते और न तो विषयोंको ही स्वीकार करते हैं। आप अपनी कालशक्तिसे प्रकृतिके गुणोंको प्रेरित करते हैं, इसलिये यह ब्रह्माण्ड आपका ही शरीर है। पहले यह आपमें ही लीन था। जब प्रलयकालीन जलके भीतर शेषशय्यापर शयन करनेवाले आपने योगनिद्राकी समाधि त्याग दी, तब वटके बीजसे विशाल वृक्षके समान आपकी नाभिसे ब्रह्माण्ड-कमल उत्पन्न हुआ। उसपर सूक्ष्मदर्शी ब्रह्माजी प्रकट हुए। जब उन्हें कमलके सिवा और कुछ भी दिखायी न पड़ा, तब अपनेमें बीजरूपसे व्याप्त आपको वे न जान सके और आपको अपनेसे बाहर समझकर जलके भीतर घुसकर सौ वर्षतक ढूँढ़ते रहे। परन्तु वहाँ उन्हें कुछ नहीं मिला। यह ठीक ही है, क्योंकि अङ्कुर उग आनेपर उसमें व्याप्त बीजको कोई बाहर अलग कैसे देख सकता है? ब्रह्माको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हारकर कमलपर बैठ गये। बहुत समय बीतनेपर तीव्र तपस्या करनेसे जब उनका हृदय शुद्ध हो गया, तब उन्हें भूत, इन्द्रिय और अन्तःकरणरूप अपने शरीरमें ही ओतप्रोतरूपसे स्थित आपके सूक्ष्मरूपका साक्षात्कार हुआ—ठीक वैसे ही जैसे पृथ्वीमें व्याप्त उसकी अति सूक्ष्म तन्मात्रा गन्धका होता है॥ ३२-३५॥

ब्रह्माजीको विराट् पुरुषका दर्शन करके बड़ा आनन्द हुआ। वह विराट् पुरुष सहस्रों मुख, चरण, सिर, हाथ, जङ्घा, नासिका, मुख, कान, नेत्र, आभूषण और आयुधोंसे सम्पन्न था। चौदहों लोक उसके विभिन्न अंगोंके रूपमें शोभायमान थे। वह भगवान्‌की एक लीलामयी मूर्ति थी। रजोगुण और तमोगुणरूप मधु और कैटभ नामके दो बड़े बलवान् दैत्य थे। जब वे वेदोंको चुराकर ले गये, तब आपने हयग्रीव-अवतार ग्रहण किया और उन दोनोंको मारकर सत्त्वगुणरूप श्रुतियाँ ब्रह्माजीको लौटा दीं। वह सत्त्वगुण ही आपका अत्यन्त प्रिय शरीर है—महात्मालोग ऐसा वर्णन करते हैं। पुरुषोत्तम! इस प्रकार आप मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि, देवता और मत्स्य आदि अवतार लेकर लोकोंका पालन तथा विश्वके द्रोहियोंका संहार करते हैं। इन अवतारोंके द्वारा आप प्रत्येक युगमें उसके धर्मोंकी रक्षा करते हैं। कलियुगमें आप छिपकर गुप्तरूपसे ही रहते हैं, इसीलिये आपका एक नाम 'त्रियुग' भी है ॥३६-३८॥

भक्तोंकी रक्षामें निरन्तर तत्पर रहनेवाले प्रभो! मेरे मनकी बड़ी दुर्दशा है। वह पापवासनाओंसे तो कलुषित है ही, स्वयं भी अत्यन्त दुष्ट है। वह प्रायः ही कामनाओंके कारण आतुर रहता है और हर्ष-शोक, भय एवं लोक-परलोक, धन, पत्नी, पुत्र आदिकी चिन्ताओंसे व्याकुल रहता है। इसे आपकी लीला-कथाओंमें तो रस ही नहीं मिलता। इसके मारे मैं दीन हो रहा हूँ। ऐसे मनसे मैं आपके स्वरूपका चिन्तन कैसे करूँ? अपने स्वरूपमें नित्य-निरन्तर एकरस विराजित रहनेवाले प्रभो! यह कभी न अघानेवाली जीभ मुझे स्वादिष्ट रसोंकी ओर खींचती रहती है। जननेन्द्रिय सुन्दरी स्त्रीकी ओर, त्वचा सुकोमल स्पर्शकी ओर, पेट भोजनकी ओर, कान मधुर सङ्गीतकी ओर, नासिका भीनी-भीनी सुगन्धकी ओर और नेत्र सौन्दर्यकी ओर मुझे खींचते रहते हैं। इनके सिवा कर्मेन्द्रियाँ भी अपने-अपने विषयोंकी ओर ले जानेका जोर लगाती ही रहती हैं। मेरी तो वह दशा हो रही है, जैसे किसी पुरुषकी बहुत-सी स्त्रियाँ उसे अपने-अपने शयनगृहमें ले जानेके लिये चारों ओरसे घसीट रही हों। इस प्रकार यह जीव अपने कर्मोंके बन्धनमें पड़कर इस संसाररूप वैतरणी नदीमें गिरा हुआ है। जन्मसे मृत्यु, मृत्युसे जन्म और दोनोंके द्वारा कर्मभोग करते-करते यह भयभीत हो गया है। यह अपना है, यह पराया है—इस प्रकारके भेद-भावसे युक्त होकर किसीसे मित्रता करता है तो किसीसे शत्रुता। आप इस मूढ़ जीव-जातिकी यह दुर्दशा देखकर करुणासे द्रवित हो जाइये। इस भव-नदीसे सर्वदा पार रहने-

मोक्ष दोनों ही केवल माया हैं, वस्तुतः कुछ नहीं—ऐसा समझे। न तो अवश्य होनेवाली शरीरकी मृत्युका अभिनन्दन करे और न तो अनिश्चित जीवनका। केवल समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और नाशके कारण कालकी प्रतीक्षा करता रहे। असत्य—अनात्म वस्तुका प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रोंसे प्रीति न करे, अपने जीवन निर्वाहके लिये कोई जीविका न करे, केवल वाद विवादके लिये कोई तर्क न करे और संसारमें किसीका पक्ष न ले। शिष्य मण्डली न जुटावे, बहुत से ग्रन्थोंका अभ्यास न करे, व्याख्यान न दे और बड़े बड़े कार्मोंका आरम्भ न करे। शान्त, समदर्शी एवं महात्मा संन्यासीके लिये किसी आश्रमका बन्धन धर्मका कारण नहीं है। वह अपने आश्रमके चिह्नोंको धारण करे, चाहे छोड़ दे। उसके पास कोई आश्रमका चिह्न न हो, परन्तु वह आत्मानुसन्धानमें मग्न हो। हो तो अत्यन्त विचारशील, परन्तु जान पड़े पागल और बालककी तरह। वह अत्यन्त प्रतिभाशील होनेपर भी साधारण मनुष्योंकी दृष्टिसे ऐसा जान पड़े मानो कोई गूँगा है ॥ १–१० ॥

युधिष्ठिर! इस विषयमें महात्मालोग एक प्राचीन इतिहासका वर्णन करते हैं। वह है दत्तात्रेय मुनि और भक्तराज प्रह्लादका संवाद। एक बार भगवान्‌के परमप्रेमी प्रह्लादजी कुछ मन्त्रियोंके साथ लोगोंके हृदयकी बात जाननेकी इच्छासे लोकोंमें विचरण कर रहे थे। उन्होंने देखा कि सह्य पर्वतकी तराईमें कावेरी नदीके तटपर पृथ्वीपर ही एक मुनि पड़े हुए हैं। उनके शरीरकी निर्मल ज्योति अंगोंके धूलि धूसरित होनेके कारण ढकी हुई थी। उनके कर्म, आकार, वाणी और वर्ण आश्रम आदिके चिह्नोंसे लोग यह नहीं समझ सकते थे कि वे कोई सिद्धपुरुष हैं या नहीं। भगवान्‌के परमप्रेमी भक्त प्रह्लादजीने अपने सिरसे उनके चरणोंका स्पर्श करके प्रणाम किया और विधिपूर्वक उनकी पूजा करके जाननेकी इच्छासे यह प्रश्न किया 'भगवन्! आपका शरीर उद्योगी और भोगी पुरुषोंके समान हृष्ट पुष्ट है। संसारका यह नियम है कि उद्योग करनेवालोंको धन मिलता है, धनवानोंको ही भोग प्राप्त होता है और भोगियोंका ही शरीर हृष्ट पुष्ट होता है। और कोई दूसरा कारण तो नहीं हो सकता। भगवन्! आप कोई उद्योग तो करते नहीं, यों ही पड़े रहते हैं। इसलिये आपके पास धन तो है नहीं। फिर आपको भोग कहाँसे प्राप्त होंगे? ब्राह्मणदेवता! बिना भोगके ही आपका यह शरीर इतना हृष्ट पुष्ट कैसे है? यदि हमारे सुननेयोग्य हो, तो अवश्य बतलाइये। आप विद्वान्, समर्थ और चतुर हैं। आपकी बातें बड़ी अद्भुत और प्रिय होती हैं। ऐसी अवस्थामें आप सारे संसारको कर्म करते हुए देखकर भी समभावसे पड़े हुए हैं, इसका क्या कारण है?' ॥ ११–१८ ॥

नारदजी कहते हैं—धर्मराज! जब प्रह्लादजीने दत्तात्रेयजीसे इस प्रकार प्रश्न किया, तब वे उनकी वाणीकी मिठाससे खिंच गये और मुसकराते हुए उनसे बोले ॥ १९ ॥

दत्तात्रेयजीने कहा—दैत्यराज! सभी श्रेष्ठ पुरुष तुम्हारा सम्मान करते हैं। मनुष्योंको कर्मोंकी प्रवृत्ति और उनकी निवृत्तिका क्या फल मिलता है, यह बात तुम अपनी ज्ञानदृष्टिसे जानते ही हो। क्योंकि तुम्हारी अनन्य भक्तिके कारण देवाधिदेव भगवान् नारायण तुम्हारे हृदयमें सदा विराजमान रहते हैं और जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, वैसे ही वे तुम्हारे अज्ञानको नष्ट करते रहते हैं। तो भी प्रह्लाद! मैंने जैसा कुछ जाना है, उसके अनुसार मैं तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देता हूँ। क्योंकि आत्मशुद्धिके अभिलाषियोंको तुम्हारा सम्मान अवश्य करना चाहिये ॥ २०–२२ ॥

प्रह्लादजी! तृष्णा एक ऐसी वस्तु है, जो इच्छानुसार भोगोंके प्राप्त होनेपर भी तृप्त नहीं होती। उसीके कारण जन्म मृत्युके चक्करमें भटकना पड़ता है। तृष्णाने मुझसे न जाने कितने कर्म करवाये और उनके कारण न जाने कितनी योनियोंमें मुझे जाना पड़ा। कर्मोंके कारण अनेकों योनियोंमें भटकते भटकते दैववश मुझे यह मनुष्ययोनि मिली है। इसमें पुण्य करें तो स्वर्ग, पाप करें तो पशु पक्षी आदिकी योनि, निवृत्त हो जायँ तो मोक्ष और दोनों प्रकारके कर्म किये जायँ तो फिर मनुष्य योनिकी ही प्राप्ति हो सकती है। परन्तु मैं देखता हूँ कि संसारके स्त्री पुरुष कर्म तो करते हैं सुखकी प्राप्ति और दुःखकी निवृत्तिके लिये, परन्तु उसका फल उलटा ही होता है—वे और भी दुःखमें पड जाते हैं। इसी लिये मैं कर्मोंसे उपरत हो गया हूँ ॥ २३—२५ ॥

सुख ही आत्माका स्वरूप है। चेष्टा नहीं, चेष्टाओंकी निवृत्ति ही उसके प्रकाशित होनेका स्थान है। इसलिये समस्त भोगोंको मनोरथमात्र समझकर मैं अपने प्रारब्धको भोगता हुआ पड़ा रहता हूँ। मनुष्य अपने सच्चे स्वार्थ अर्थात् वास्तविक सुखको, जो अपना स्वरूप ही है, भूलकर इस मिथ्या द्वैतको सत्य मानता हुआ अत्यन्त भयङ्कर और विचित्र जन्मों और मृत्युओंमें भटकता रहता है। जैसे अज्ञानी मनुष्य जलमें उत्पन्न तिनके और सेवारसे ढके हुए जलको जल न समझकर

है। परन्तु जब मेरे दर्शन हो जाते हैं, तब फिर प्राणीके हृदयमें किसी प्रकारकी जलन नहीं रह जाती। मैं समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला हूँ। इसलिये सभी कल्याणकामी परम-भाग्यवान् साधुजन जितेन्द्रिय होकर अपनी समस्त वृत्तियोंसे मुझे प्रसन्न करनेका ही यत्न करते हैं ॥५२–५४॥

प्रह्लादजी भगवान्‌के अनन्य प्रेमी थे। इसलिये बड़े-बड़े लोगोंको प्रलोभनमें डालनेवाले वरोंके द्वारा प्रलोभित किये जानेपर भी उन्होंने उनकी इच्छा नहीं की ॥५५॥

दसवाँ अध्याय

प्रह्लादजीके राज्याभिषेक और त्रिपुरदहनकी कथा

नारदजी कहते हैं—प्रह्लादजी अभी बालक ही थे; फिर भी उन्होंने यही समझा कि यह वरदान माँगनेकी बात तो प्रेम-भक्तिका विघ्न है। इसलिये कुछ मुसकराते हुए वे भगवान्‌से बोले ॥ १ ॥

प्रह्लादजीने कहा—प्रभो! मैं तो जन्मसे ही विषय-भोगोंमें आसक्त हूँ, अब मुझे इन वरोंके द्वारा आप लुभाइये नहीं। मैं उन भोगोंके सङ्गसे डरकर, उनके द्वारा होनेवाली तीव्र वेदनाका अनुभव कर उनसे छूटनेकी अभिलाषासे ही आपकी शरणमें आया हूँ। भगवन्! अवश्य ही अपने सेवकके हृदयकी बात जाननेके लिये आपने अपने भक्तको वरदान माँगनेकी ओर प्रेरित किया है। ये विषय-भोग तो हृदयकी गाँठको और भी मजबूत करनेवाले तथा बार-बार जन्म-मृत्युके चक्करमें डालनेवाले हैं। चराचरके गुरुदेव! परीक्षाके सिवा ऐसा कहनेका और कोई कारण नहीं दीखता। क्योंकि आप परम दयालु हैं। आपसे जो सेवक अपनी कामनाएँ पूर्ण करना चाहता है, वह सेवक नहीं; वह तो लेन-देन करनेवाला कोरा व्यापारी है। जो स्वामीसे अपनी कामनाओंकी पूर्ति चाहता है, वह सेवक नहीं; और जो सेवकसे सेवा करानेके लिये, उसका स्वामी बननेके लिये उसकी कामनाएँ पूर्ण करता है, वह स्वामी नहीं। मैं आपका निष्काम सेवक हूँ और आप मेरे निरपेक्ष स्वामी हैं। जैसे राजा और उसके सेवकोंका प्रयोजनवश स्वामी-सेवकका सम्बन्ध रहता है, वैसा तो मेरा और आपका सम्बन्ध है नहीं। अवश्य ही आप वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं एवं और किसी प्रयोजनसे नहीं, अपनी प्रसन्नताके लिये ही आप मुझे वर देना चाहते हैं—मेरी कामनाएँ पूर्ण करना चाहते हैं। मेरे स्वामी! यह आपके अनुरूप ही है। अतः आप मुझे यह वर दीजिये कि मेरे हृदयमें कभी किसी कामनाका बीज अङ्कुरित ही न हो। हृदयमें किसी भी कामनाके उदय होते ही इन्द्रिय, मन, प्राण, देह, धर्म, धैर्य, बुद्धि, लज्जा, श्री, तेज, स्मृति और सत्य—ये सब-के-सब नष्ट हो जाते हैं। कमलनयन! जिस समय मनुष्य अपने मनमें रहनेवाली कामनाओंका परित्याग कर देता है, उसी समय वह भगवत्स्वरूपको प्राप्त कर लेता है। भगवन्! आपको नमस्कार है। आप सबके हृदयमें विराजमान, उदारशिरोमणि स्वयं परब्रह्म परमात्मा हैं। अद्भुत नृसिंहरूपधारी श्रीहरिके चरणोंमें मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ ॥ २–१० ॥

श्रीनृसिंहभगवान्‌ने कहा—प्रह्लाद! तुम्हारे-जैसे मेरे एकान्तप्रेमी इस लोक अथवा परलोककी किसी भी वस्तुके लिये कभी कोई कामना नहीं करते। फिर भी अधिक नहीं, केवल एक मन्वन्तरतक मेरी प्रसन्नताके लिये तुम इस लोकमें दैत्याधिपतियोंके समस्त भोग स्वीकार कर लो। डरना नहीं भला, समस्त प्राणियोंके हृदयमें यज्ञोंके भोक्ता ईश्वरके रूपमें मैं ही विराजमान हूँ। तुम अपने हृदयमें मुझे देखते रहना और मेरी लीला-कथाएँ, जो तुम्हें अत्यन्त प्रिय हैं, सुनते रहना। समस्त कर्मोंके द्वारा मेरी ही आराधना करना और इस प्रकार अपने प्रारब्ध-कर्मका क्षय कर देना। भोगके द्वारा पुण्यकर्मोंके फल और पुण्यकर्मोंके द्वारा पापका नाश करते हुए समयपर शरीरका त्याग करके समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर तुम मेरे पास आ जाओगे। देवलोकमें भी लोग तुम्हारी विशुद्ध कीर्तिका गायन करेंगे। तुम्हारे द्वारा की हुई मेरी इस स्तुतिका जो मनुष्य कीर्तन करेगा और साथ ही मेरा और तुम्हारा स्मरण भी करेगा, वह समयपर कर्मोंके बन्धनसे मुक्त हो जायगा ॥ ११–१४ ॥

प्रह्लादजीने कहा—महेश्वर! आप वर देनेवालोंके स्वामी हैं। आपसे मैं एक वर और माँगता हूँ। मेरे पिताने आपके ईश्वरीय तेजको और सर्वशक्तिमान् चराचरगुरु स्वयं आपको न जानकर आपकी बड़ी निन्दा की है। 'इस विष्णुने मेरे भाईको मार डाला है' ऐसी मिथ्यादृष्टि रखनेके कारण पिताजी क्रोधके वेगको सहन करनेमें असमर्थ हो गये थे। इसीसे उन्होंने आपका भक्त होनेके कारण मुझसे भी द्रोह किया। दीनबन्धो! यद्यपि आपकी दृष्टि पड़ते ही वे पवित्र हो चुके, फिर भी

भगवत्प्रेमी लोगोंका सत्सङ्ग करे और श्रद्धापूर्वक भगवान्के अवतारोंकी लीला सुधाका सदा पान करता रहे। इसके अतिरिक्त स्वय बड़े बड़े मुनीश्वर सतोंकी सेवा भी करता रहे। जैसे स्वप्न टूट जानेपर मनुष्य स्वप्नके सम्बन्धियोंसे आसक्त नहीं रहता—वैसे ही ज्यों ज्यों सत्सगके द्वारा बुद्धि शुद्ध हो, त्यों ही त्यों शरीर, स्त्री, पुत्र, धन आदिकी आसक्ति स्वय छोड़ता चले। क्योंकि एक न एक दिन तो ये छूटनेहीवाले हैं। बुद्धिमान् पुरुषको आवश्यकताके अनुसार ही घर और शरीरकी सेवा करनी चाहिये, अधिक नहीं। भीतरसे विरक्त रहे और बाहरसे रागीके समान लोगोंमें साधारण मनुष्यों जैसा ही व्यवहार कर ले। माता पिता, भाई बन्धु, पुत्र मित्र, जातिवाले और दूसरे जो कुछ कहें अथवा जो कुछ चाहें, भीतरसे ममता न रखकर उनका अनुमोदन कर दे ॥२–६॥

बुद्धिमान् पुरुष वर्षा आदिके द्वारा होनेवाले अन्नादि, पृथ्वीसे उत्पन्न होनेवाले सुवर्ण आदि, अकस्मात् प्राप्त होनेवाले द्रव्य आदि तथा और सब प्रकारके धन भगवान्के ही दिये हुए हैं—ऐसा समझकर प्रारब्धके अनुसार उनका उपभोग करता हुआ सञ्चय न करे, उन्हें पूर्वोक्त साधु सेवा आदि कर्मोंमें लगा दे। मनुष्योंका अधिकार केवल उतने ही धनपर है, जितनेसे उनकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्तिको जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये। हरिन, ऊँट, गधा, बदर, चूहा, साँप, पक्षी और मक्खी आदिको अपने पुत्रके समान ही समझे। उनमें और पुत्रोंमें अन्तर ही कितना है। गृहस्थ मनुष्यको भी धर्म, अर्थ और कामके लिये बहुत कष्ट नहीं उठाना चाहिये, बल्कि देश, काल और प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तोष करना चाहिये। अपनी समस्त भोग सामग्रियोंको कुत्ते, पतित और चाण्डालपर्यन्त सब प्राणियोंको यथायोग्य बाँटकर ही अपने काममें लाना चाहिये। और तो क्या, अपनी स्त्रीको भी—जिसे मनुष्य समझता है कि यह मेरी है—अतिथि आदिकी सेवामें नियुक्त रखले। लोग स्त्रीके लिये अपने प्राणतक दे डालते हैं। यहाँ तक कि अपने माँ बाप और गुरुको भी मार डालते हैं। उस स्त्रीपरसे जिसने अपनी ममता हटा ली, उसने स्वय नित्यविजयी भगवान्पर भी विजय प्राप्त कर ली। अरे भाई! यह शरीर तो अन्तमें कीड़े, विष्ठा या राखकी ढेर होकर रहेगा। कहाँ तो यह तुच्छ शरीर और इसके लिये जिसमें आसक्ति होती है वह स्त्री, और कहाँ अपनी महिमासे आकाशको भी ढक रखनेवाला अनन्त आत्मा! ॥ ७–१३ ॥

गृहस्थको चाहिये कि प्रारब्धसे प्राप्त और पञ्चयज्ञ आदिसे बचे हुए अन्नसे ही अपना जीवन निर्वाह करे। जो बुद्धिमान् पुरुष इसके सिवा और किसी वस्तुमें स्वत्व नहीं रखते, उन्हे सतोंका पद प्राप्त होता है। अपनी वर्णाश्रम विहित वृत्तिके द्वारा प्राप्त सामग्रियोंसे प्रतिदिन देवता, ऋषि, मनुष्य, भूत और पितृगणका तथा अपने आत्माका पूजन करना चाहिये। यह एक ही परमेश्वरकी भिन्न भिन्न रूपोंमें आराधना है। यदि अपनेको अधिकार आदि यज्ञके लिये आवश्यक सब वस्तुएँ प्राप्त हों, तो बड़े बड़े यज्ञ या अग्निहोत्र आदिके द्वारा भगवान्की आराधना करनी चाहिये। युधिष्ठिर! वैसे तो समस्त यज्ञोंके भोक्ता भगवान् ही हैं, परन्तु ब्राह्मणके मुखमें अर्पित किये हुए हविष्यान्नसे उनकी जैसी तृप्ति होती है, वैसी अग्निके मुखमें हवन करनेसे नहीं। इस लिये ब्राह्मण, देवता, मनुष्य आदि सभी प्राणियोंमें यथायोग्य, उनके उपयुक्त सामग्रियोंके द्वारा सबके हृदयमें अन्तर्यामी रूपसे विराजमान भगवान्की पूजा करनी चाहिये। इनमें प्रधानता ब्राह्मणोंकी ही है ॥ १४–१८ ॥

द्विजातिमात्रको अपने सामर्थ्यके अनुसार आश्विन मासके कृष्णपक्षमें अपने माता पिताका महालय श्राद्ध करना चाहिये और धनवानोंको तो उनके भाई बन्धुओंका भी करना चाहिये। इसके सिवा अयन (कर्क एव मकरकी सक्रान्ति), विषुव (तुला और मेषकी सक्रान्ति), व्यतीपात, दिनक्षय, चन्द्रग्रहण या सूर्य ग्रहणके समय, द्वादशीके दिन, श्रवण, धनिष्ठा और अनुराधा नक्षत्रोंमें, वैशाख शुक्ला तृतीया (अक्षय तृतीया), कार्तिक शुक्ला नवमी (अक्षय नवमी), अगहन, पौष, माघ और फाल्गुन—इन चार महीनोंकी कृष्णाष्टमी, माघ शुक्ला सप्तमी, माघकी मघा नक्षत्रसे युक्त पूर्णिमा और प्रत्येक महीनेकी वह पूर्णिमा, जो अपने मास नक्षत्र चित्रा, विशाखा, ज्येष्ठा आदिसे युक्त हो—चाहे चन्द्रमा पूर्ण हों या अपूर्ण, द्वादशी तिथिका अनुराधा, श्रवण, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा और उत्तराभाद्रपदाके साथ योग, एकादशी तिथिका तीनों उत्तरा नक्षत्रोंसे योग अथवा जन्म नक्षत्र या श्रवण नक्षत्रसे योग—ये सारे समय पितृगणोंका श्राद्ध करनेके योग्य हैं। ये योग केवल श्राद्धके लिये ही नहीं, सभी पुण्यकर्मोंके लिये उपयोगी हैं। ये कल्याणकी साधनाके उपयुक्त और शुभकी अभिवृद्धि करनेवाले हैं। इन अवसरोंपर अपनी पूरी शक्ति लगाकर शुभ कर्म करने चाहिये। इसीमें जीवनकी सफलता है। इन शुभ सयोगोंमें जो स्नान, जप, होम, व्रत तथा देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा की जाती है

युधिष्ठिर ! तुमने मुझसे पूछा था कि भगवान्से द्वेष करनेवाले शिशुपाल आदिको उनके सारूप्यकी प्राप्ति कैसे हुई। उसका उत्तर मैंने तुम्हें दे दिया। ब्रह्मण्यदेव परमात्मा श्रीकृष्णका यह परम पवित्र अवतार-चरित्र है। इसमें हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु इन दोनों दैत्योंके वधका वर्णन है। इस प्रसङ्गमें भगवान्के परम भक्त प्रह्लादका चरित्र, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य; एवं संसारकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके स्वामी श्रीहरिके यथार्थ स्वरूप तथा उनके दिव्य गुण एवं लीलाओंका वर्णन है। इस आख्यानमें देवता और दैत्योंके पदोंमें कालक्रमसे जो महान् परिवर्तन होता है, उसका भी निरूपण किया गया है और साथ ही जिसके द्वारा भगवान्की प्राप्ति होती है, उस भागवतधर्मका भी वर्णन है। अध्यात्मके सम्बन्धमें भी सभी जानने योग्य बातें इसमें हैं। भगवान्के पराक्रमसे पूर्ण इस पवित्र आख्यानको जो कोई पुरुष श्रद्धासे कीर्तन करता और सुनता है, वह कर्मबन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य परमपुरुष परमात्माकी यह श्रीनृसिंह-लीला, सेनापतियों-सहित हिरण्यकशिपुका वध और संतशिरोमणि प्रह्लादजीका पावन प्रभाव एकाग्र मनसे पढ़ता और सुनता है, वह भगवान्के अभयपद वैकुण्ठको प्राप्त होता है ॥ ४१–४७ ॥

युधिष्ठिर ! इस मनुष्यलोकमें तुमलोगोंके भाग्य अत्यन्त प्रशंसनीय हैं, क्योंकि तुम्हारे घरमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मनुष्यका रूप धारण करके गुप्तरूपसे निवास करते हैं। इसीसे सारे संसारको पवित्र कर देनेवाले ऋषि-मुनि बार-बार उनका दर्शन करनेके लिये चारों ओरसे तुम्हारे पास आया करते हैं। बड़े-बड़े महापुरुष निरन्तर जिनको ढूँढ़ते रहते हैं, जो मायाके लेशसे रहित परम शान्त परमानन्दानुभवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा हैं—वे ही तुम्हारे प्रिय, हितैषी, ममेरे भाई, पूज्य, आज्ञाकारी, गुरु और स्वयं आत्मा श्रीकृष्ण हैं। शङ्कर, ब्रह्मा आदि भी अपनी सारी बुद्धि लगाकर 'वे यह हैं'—इस रूपमें उनका वर्णन नहीं कर सके। फिर हम तो कर ही कैसे सकते हैं। हम तो मौन, भक्ति और संयमके द्वारा ही उनकी पूजा करते हैं। कृपया हमारी यह पूजा स्वीकार करके भक्तवत्सल भगवान् हमपर प्रसन्न हों। युधिष्ठिर ! यही एकमात्र आराध्यदेव हैं। प्राचीन कालमें बहुत बड़े मायावी मयासुरने जब रुद्रदेवकी कमनीय कीर्तिमें कलङ्क लगाना चाहा था, तब इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णने फिरसे उनके यशकी रक्षा और विस्तार किया था ॥४८–५१॥

राजा युधिष्ठिरने पूछा—नारदजी ! मय दानव किस कार्यमें जगदीश्वर रुद्रदेवका यश नष्ट करना चाहता था ? और भगवान् श्रीकृष्णने किस प्रकार उनके यशकी रक्षा की ? आप कृपा करके बतलाइये ॥५२॥

नारदजीने कहा—एक बार इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णसे शक्ति प्राप्त करके देवताओंने युद्धमें असुरोंको जीत लिया था। उस समय सब-के-सब असुर मायावियोंके परमगुरु मय दानवकी शरणमें गये। शक्तिशाली मयासुरने सोने, चाँदी और लोहेके तीन विमान बना दिये। वे विमान क्या थे, तीन पुर ही थे। इतने विलक्षण थे वे कि उनका आना-जाना जान नहीं पड़ता था। उनमें अपरिमित सामग्रियाँ भरी हुई थीं। युधिष्ठिर ! दैत्यसेनापतियोंके मनमें तीनों लोक और लोकपतियोंके प्रति वैरभाव तो था ही, अब उसकी याद करके उन तीनों विमानोंके द्वारा वे उनमें छिपे रहकर सबका नाश करने लगे। तब लोकपालोंके साथ सारी प्रजा भगवान् शङ्करकी शरणमें गयी और उनसे प्रार्थना की कि 'प्रभो ! त्रिपुरमें रहनेवाले असुर हमारा नाश कर रहे हैं। हम आपके हैं; अतः देवाधिदेव ! आप हमारी रक्षा कीजिये' ॥५३–५६॥

उनकी प्रार्थना सुनकर भगवान् शङ्करने कृपापूर्ण शब्दोंमें कहा—'डरो मत।' फिर उन्होंने अपने धनुषपर बाण चढ़ाकर तीनों पुरोंपर छोड़ दिया। उनके उस बाणसे सूर्यमण्डलसे निकलनेवाली किरणोंके समान अन्य बहुत-से बाण निकले। उनमेंसे मानो आगकी लपटें निकल रही थीं। उनके कारण उन पुरोंका दीखना बंद हो गया और उनके स्पर्शसे सभी विमानवासी निष्प्राण होकर गिर पड़े। महामायावी मय बहुत-से उपाय जानता था, वह उन दैत्योंको उठा लाया और अपने बनाये हुए अमृतके कुएँमें डाल दिया। उस सिद्ध अमृत-रसका स्पर्श होते ही असुरोंका शरीर अत्यन्त तेजस्वी और वज्रके समान सुदृढ़ हो गया। वे बादलोंको विदीर्ण करनेवाली बिजलीकी आगकी तरह उठ खड़े हुए ॥५७–६०॥

इन्हीं भगवान् श्रीकृष्णने जब देखा कि महादेवजी तो अपना सङ्कल्प पूरा न होनेके कारण उदास हो गये हैं, तब उन असुरोंपर विजय प्राप्त करनेके लिये इन्होंने एक युक्ति की। यही भगवान् विष्णु उस समय गौ बन गये और ब्रह्माजी

विस्तार कर देनेसे देश कालोचित श्रद्धा, पदार्थ, पात्र और पूजन आदि ठीक ठीक नहीं हो पाते। देश और कालके प्राप्त होनेपर ऋषि मुनियोंके भोजन करनेयोग्य शुद्ध हविष्यान्न भगवान्‌को भोग लगाकर श्रद्धासे विधिपूर्वक योग्य पात्रको देना चाहिये। वह समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाला और अक्षय होता है। देवता, ऋषि, पितर, अन्य प्राणी, स्वजन और अपने आपको भी अन्नका विभाजन करनेके समय परमात्मस्वरूप ही देखे ॥ १–६ ॥

धर्मका मर्म जाननेवाला पुरुष श्राद्धमे मासका अर्पण न करे, और न तो स्वय ही उसे खाय, क्योंकि पितरोंको ऋषि मुनियोंके योग्य हविष्यान्नसे जैसी प्रसन्नता होती है, वैसी पशु हिंसासे नहीं होती। जो लोग सद्धर्मपालनकी अभिलाषा रखते हैं, उनके लिये इससे बढकर और कोई धर्म नहीं है कि किसी भी प्राणीको मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकारका कष्ट न दिया जाय। इसीसे कोई कोई यज्ञ तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी ज्ञानके द्वारा प्रज्वलित आत्मसयम रूप अग्निमे इन कर्ममय यज्ञोंका हवन कर देते हैं और बाह्य कर्मकलापोंसे उपरत हो जाते हैं। जब कोइ इन द्रव्यमय यज्ञोंसे यजन करना चाहता है, तब सभी प्राणी डर जाते हैं, वे सोचने लगते हैं कि यह अपने प्राणोंका पोषण करनेवाला निर्दयी मूर्ख मुझे अवश्य मार डालेगा। इसलिये धर्मज्ञ मनुष्यको यही उचित है कि प्रतिदिन प्रारब्धके द्वारा प्राप्त मुनिजनोचित हविष्यान्नसे ही अपने नित्य और नैमित्तिक कर्म करे, तथा उसीसे सर्वदा सन्तुष्ट रहे ॥ ७–११ ॥

अधर्मकी पॉच शाखाएँ हैं—विधर्म, परधर्म, आभास, उपमा और छल। धर्मज्ञ पुरुष अधर्मके समान ही इनका भी त्याग कर दे। जिस कार्यको धर्मबुद्धिसे करनेपर भी अपने धर्ममें बाधा पड़े, वह 'विधर्म' है। किसी अन्यके द्वारा अन्य पुरुषके लिये उपदेश किया हुआ धर्म 'परधर्म' है। पाखण्ड या दम्भका नाम 'उपधर्म' अथवा 'उपमा' है। शास्त्रके वचनोंका दूसरे प्रकारका अर्थ कर देना 'छल' है। और मनुष्य अपने आश्रमके विपरीत स्वेच्छासे जिसे धर्म मान लेता है, वह 'आभास' है। अपने अपने स्वभावके अनुकूल जो वर्णाश्रमोचित धर्म हैं, वे भला किसे शान्ति नहीं देते? इसलिये दूसरेके धर्मसे आकृष्ट न होकर अपने धर्ममें ही दृढ रहना चाहिये ॥ १२–१४ ॥

धर्मात्मा पुरुष निर्धन होनेपर भी धर्मके लिये अथवा शरीर निर्वाहके लिये धन प्राप्त करनेकी चेष्टा न करे। क्योंकि जैसे बिना किसी प्रकारकी चेष्टा किये अजगरकी जीविका चलती ही है, वैसे ही निवृत्तिपरायण पुरुषकी निवृत्ति ही उसकी जीविकाका निर्वाह कर देती है। जो सुख अपनी आत्मामें रमण करनेवाले निष्क्रिय सन्तोषी पुरुषको मिलता है—वह कामना और लोभके उस किङ्करको भला कैसे मिल सकता है, जो धनके लिये हाय हाय करता हुआ इधर-उधर दौड़ता फिरता है। जैसे पैरोंमें जूता पहनकर चलनेवालेको ककड़ और कॉंटोंसे कोई डर नहीं होता—वैसे ही जिसके मनमें सन्तोष है, उसके लिये सदा-सर्वदा और सब कहीं सुख ही सुख है, दु ख है ही नहीं। युधिष्ठिर! न जाने क्यों मनुष्य केवल जलमात्रमे ही सन्तुष्ट रहकर अपने जीवनका निर्वाह नहीं कर लेता। अपितु रसनेन्द्रिय और जननेन्द्रियके फेरमें पड़कर यह बेचारा घरकी चौकसी करनेवाले कुत्तेके समान हो जाता है। जो ब्राह्मण सन्तोषी नहीं है, इन्द्रियोंकी लोलुपताके कारण उसके तेज, विद्या, तपस्या और यश क्षीण हो जाते हैं और वह विवेक भी खो बैठता है। भूख और प्यास मिट जानेपर खाने पीनेकी कामनाका अन्त हो जाता है। क्रोध भी अपना काम पूरा करके शान्त हो जाता है। परन्तु यदि मनुष्य पृथ्वीकी समस्त दिशाओंको जीत ले और भोग ले, तब भी लोभका अन्त नहीं होता। अनेक विषयोंके ज्ञाता, शङ्काओंका समाधान करके चित्तमें शास्त्रोक्त अर्थको बैठा देनेवाले, और विद्वत्सभाओंके सभापति बड़े बडे विद्वान् भी असन्तोष के कारण गिर जाते हैं ॥ १५–२१ ॥

धर्मराज! सङ्कल्पोंके परित्यागसे कामको, कामनाओंके त्यागसे क्रोधको, ससारीलोग जिसे 'अर्थ' कहते हैं उसे अनर्थ समझकर लोभको और तत्त्वके विचारसे भयको जीत लेना चाहिये। अध्यात्मविद्यासे शोक और मोहपर, सतोंकी उपासनासे दम्भपर, मौनके द्वारा योगके विघ्नोंपर और शरीर प्राण आदिको निश्चेष्ट करके हिंसापर विजय प्राप्त करनी चाहिये। आधिभौतिक दु खको दयाके द्वारा, आधिदैविक वेदनाको समाधिके द्वारा और आध्यात्मिक दु:खको योगबल से, एव निद्राको सात्त्विक भोजन, स्थान, सङ्ग आदिके सेवनसे जीत लेना चाहिये। सत्त्वगुणके द्वारा रजोगुण एव तमोगुण पर और उपरतिके द्वारा सत्त्वगुणपर विजय प्राप्त करनी चाहिये। श्रीगुरुदेवकी भक्तिके द्वारा साधक इन सभी दोषोंपर सुगमतासे विजय प्राप्त कर सकता है। हृदयमें ज्ञानका दीपक

सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, उचित-अनुचितका विचार, मनका संयम, इन्द्रियोंका संयम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदर्शी महात्माओंकी सेवा, धीरे-धीरे सांसारिक भोगोंकी चेष्टासे निवृत्ति, मनुष्यके अभिमानपूर्ण प्रयत्नोंका फल उलटा ही होता है—ऐसा विचार, मौन, आत्मचिन्तन, प्राणियोंको अन्न आदिका यथायोग्य विभाजन, उनमें और विशेष करके मनुष्योंमें अपने आत्मा तथा इष्टदेवका भाव, संतोंके परम आश्रय भगवान् श्रीकृष्णका श्रवण, कीर्तन और स्मरण; उनकी सेवा, पूजा और नमस्कार; उनके प्रति दास्य, सख्य और आत्म-समर्पण। यह सभी मनुष्योंका परम धर्म है। इसके पालनसे सर्वात्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं॥ ८–१२॥

धर्मराज! जिनके वंशमें अखण्डरूपसे संस्कार होते आये हैं और जिन्हें ब्रह्माजीने संस्कारके योग्य स्वीकार किया है, उन्हें द्विज कहते हैं। जन्म और कर्मसे शुद्ध द्विजोंके लिये यज्ञ, अध्ययन, दान और ब्रह्मचर्य आदि आश्रमोंके विशेष कर्मोंका विधान है। अध्ययन-अध्यापन, दान लेना, दान देना और यज्ञ करना, यज्ञ कराना—ये छः कर्म ब्राह्मणके हैं। क्षत्रियको दान नहीं लेना चाहिये। प्रजाकी रक्षा करनेवाले क्षत्रियका जीवननिर्वाह ब्राह्मणके सिवा और सबसे यथायोग्य कर तथा दण्ड (जुर्माना) आदिके द्वारा होता है। वैश्यको सर्वदा ब्राह्मणवंशका अनुयायी रहकर गोरक्षा, कृषि एवं व्यापारके द्वारा अपनी जीविका चलानी चाहिये। शूद्रका धर्म है द्विजातियोंकी सेवा। उसकी जीविका-का निर्वाह उसका स्वामी करता है। ब्राह्मणके जीवन-निर्वाहके साधन चार प्रकारके हैं—वार्ता, शालीन, यायावर और शिलोञ्छन्। इनमेंसे पीछे-पीछेकी वृत्तियाँ अपेक्षाकृत श्रेष्ठ हैं। निम्नवर्णका पुरुष बिना आपत्तिकालके उत्तम वर्णकी वृत्तियोंका अवलम्बन न करे। क्षत्रिय दान लेना छोड़कर ब्राह्मणकी शेष पाँचों वृत्तियोंका अवलम्बन ले सकता है। आपत्तिकालमें तो सभी सब वृत्तियोंको स्वीकार कर सकते हैं। ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत और सत्यानृत—इनमेंसे किसी भी वृत्तिका आश्रय ले, परन्तु श्वानवृत्तिका अवलम्बन कभी न करे। बाजारमें पड़े हुए अन्न (उञ्छ) तथा खेतोंमें पड़े हुए अन्न (शिल) को बीनकर 'शिलोञ्छ' वृत्तिसे जीविका-निर्वाह करना 'ऋत' है। बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसी अयाचित (शालीन) वृत्तिके द्वारा जीवन-निर्वाह करना 'अमृत' है। नित्य माँगकर लाना अर्थात् 'यायावर' वृत्तिके द्वारा जीवन-यापन करना 'मृत' है। कृषि आदिके द्वारा 'वार्ता' वृत्तिसे जीवन-निर्वाह करना 'प्रमृत' है। वाणिज्य 'सत्यानृत' है। और निम्न-वर्णकी सेवा करना श्वानवृत्ति है। ब्राह्मण और क्षत्रियको इस अन्तिम निन्दित वृत्तिका कभी आश्रय नहीं लेना चाहिये। क्योंकि ब्राह्मण सर्ववेदमय और क्षत्रिय सर्वदेवमय है। १३–२०।

शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, सरलता, ज्ञान, दया, भगवत्परायणता और सत्य—ये ब्राह्मणके लक्षण हैं। युद्धमें उत्साह, वीरता, धीरता, तेजस्विता, त्याग, मनोजय, क्षमा, ब्राह्मणोंके प्रति भक्ति, अनुग्रह और प्रजाकी रक्षा करना—ये क्षत्रियके लक्षण हैं। देवता, गुरु और भगवान्‌के प्रति भक्ति; अर्थ, धर्म और काम—इन तीनों पुरुषार्थोंकी रक्षा करना; आस्तिकता, उद्योगशीलता और व्यावहारिक निपुणता—ये वैश्यके लक्षण हैं। उच्च वर्णोंके सामने विनम्र रहना, पवित्रता, स्वामीकी निष्कपट सेवा, वैदिक मन्त्रोंसे रहित यज्ञ, चोरी न करना, सत्य तथा गौ-ब्राह्मणोंकी रक्षा करना—ये शूद्रके लक्षण हैं॥ २१–२४॥

पतिकी सेवा करना, उसके अनुकूल रहना, पतिके सम्बन्धियोंको प्रसन्न रखना और सर्वदा पतिके नियमोंकी रक्षा करना—ये पतिको ही ईश्वर माननेवाली पतिव्रता स्त्रियोंके धर्म हैं। साध्वी स्त्रीको चाहिये कि झाड़ने-बुहारने, लीपने तथा चौक पूरने आदिसे घरको और मनोहर वस्त्राभूषणोंसे अपने शरीरको अलङ्कृत रक्खे। सामग्रियोंको साफ-सुथरी रक्खे। अपने पतिदेवकी छोटी-बड़ी इच्छाओं-को समयके अनुसार पूर्ण करे। विनय, इन्द्रिय-संयम, सत्य एवं प्रिय वचनोंसे प्रेमपूर्वक पतिदेवकी सेवा करे। जो कुछ मिल जाय, उसीमें सन्तुष्ट रहे; किसी भी वस्तुके लिये ललचावे नहीं। सभी कार्योंमें चतुर एवं धर्मज्ञ हो। सत्य और प्रिय बोले। अपने कर्तव्यमें सावधान रहे। पवित्रता और प्रेमसे परिपूर्ण रहकर, यदि पति पतित न हो तो, उसका सहवास करे। जो लक्ष्मीजीके समान पतिपरायणा होकर अपने पतिकी उसे साक्षात् भगवान्‌का स्वरूप समझकर सेवा करती है, उसके पतिदेव वैकुण्ठलोकमें भगवत्सारूप्यको प्राप्त होते हैं और वह लक्ष्मीजीके समान उनके साथ आनन्दित होती है॥ २५–२९॥

युधिष्ठिर! जो चोरी तथा अन्यान्य पाप-कर्म नहीं करते—उन धोबी, चमार आदि अन्त्यज तथा चाण्डाल आदि अन्तेवसायी वर्णसङ्कर जातियोंकी वृत्तियाँ वे ही हैं जो कुल-परम्परासे उनके यहाँ चली आयी हैं। वेददर्शी ऋषि-

आत्मसाक्षात्कारके योग्य बना देते हैं—निवृत्तिपरक। प्रवृत्ति परक कर्ममार्गसे बार बार जन्म मृत्युकी प्राप्ति होती है और निवृत्तिपरक भक्तिमार्ग या ज्ञानमार्गके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति होती है। श्येनयागादि हिंसामय कर्म, अग्निहोत्र, दर्श, पूर्ण मास, चातुर्मास्य, पशुयाग, सोमयाग, वैश्वदेव, बलिहरण आदि द्रव्यमय कर्म 'इष्ट' कहलाते हैं। और देवालय, बगीचा, कूआँ आदि बनवाना तथा प्याऊ आदि लगाना 'पूर्त कर्म' हैं। ये सभी प्रवृत्तिपरक कर्म हैं और सकामभावसे युक्त होनेपर अशान्तिके ही कारण बनते हैं। प्रवृत्तिपरायण पुरुष मरनेपर चरु, पुरोडाशादि यज्ञसम्बन्धी द्रव्योंके सूक्ष्मभागसे बना हुआ शरीर धारण कर धूमाभिमानी देवताओंके पास जाता है। फिर क्रमश रात्रि, कृष्णपक्ष और दक्षिणायनके अभिमानी देवताओंके पास जाकर चन्द्रलोकमें पहुँचता है। वहाँसे भोग समाप्त होनेपर अमावस्याके चन्द्रमाके समान क्षीण होकर वृष्टिद्वारा क्रमश ओषधि, लता, अन्न और वीर्यके रूपमें परिणत होकर पितृयान मार्गसे पुन ससारमें ही जन्म लेता है। युधिष्ठिर! गर्भाधानसे लेकर अन्त्येष्टिपर्यन्त सम्पूर्ण सस्कार जिनके होते हैं, उनको 'द्विज' कहते हैं। उनमेंसे कुछ तो पूर्वोक्त प्रवृत्तिमार्गका अनुष्ठान करते हैं और कुछ आगे कहे जानेवाले निवृत्तिमार्गका। निवृत्तिपरायण पुरुष इष्ट, पूर्त आदि कर्मोंसे होनेवाले समस्त यज्ञोंको विषयोंका ज्ञान करानेवाले इन्द्रियोंमे हवन कर देता है अर्थात् विषयोंको उनके प्रकाशक इन्द्रियोंमे ही अन्तर्भूत कर लेता है। फिर इन्द्रियोंको दर्शनादि-सङ्कल्परूप मनमें, वैकारिक मनको परा वाणीमें और परा वाणीको वर्णसमुदायमें, वर्णसमुदायको 'अ उ म्' इन तीन स्वरोंके रूपमें रहनेवाले ॐकारमें, ॐकारको बिन्दुमे, बिन्दुको नादमें, नादको सूत्रात्मारूप प्राणमें तथा प्राणको ब्रह्ममे लीन कर देता है। वह निवृत्तिनिष्ठ ज्ञानी क्रमश अग्नि, सूर्य, दिन, सायङ्काल, शुक्लपक्ष, पूर्णमासी और उत्तरायणके अभिमानी देवताओंके पास जाकर ब्रह्मलोकमे पहुँचता है और वहाँके भोग समाप्त होनेपर वह स्थूलोपाधिक 'विश्व' अपनी स्थूल उपाधिको लीन करके सूक्ष्मोपाधिक 'तैजस' हो जाता है। फिर सूक्ष्म उपाधिको कारणमें लय करके 'प्राज्ञ' रूपसे स्थित होता है और अन्तमें कारणोपाधिका भी लय हो जानेपर सर्वसाक्षी 'तुरीय' रूपसे स्थित हो जाता है। यही मोक्षपद है। इसे 'देवयान' मार्ग कहते हैं। इस मार्गसे जानेवाला आत्मोपासक ससारकी ओरसे निवृत्त होकर क्रमश एकसे दूसरे देवताके पास होता हुआ ब्रह्मलोकमें जाकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है। वह प्रवृत्तिमार्गीके समान फिर जन्म मृत्युके चक्करमें नहीं पड़ता ॥४७–५५॥

ये पितृयान और देवयान दोनों ही वेदोक्त मार्ग हैं। जो शास्त्रीय दृष्टिसे इन्हें तत्त्वत. जान लेता है, वह ससारमें रहता हुआ भी उसमें मोहित नहीं होता। उन दोनों मार्गोंके तत्त्वको जाननेवाला वह पुरुष तो स्वय आत्मा ही है। पैदा होनेवाले पदार्थोंके पहले भी और उनका अन्त हो जानेपर भी जो सत्ताके रूपमें विद्यमान रहता है, जो भोग्यरूपसे बाहर और भोक्तारूपसे भीतर है, ऊँचे और नीचे एकरस है, तथा जानना और जाननेका विषय, वाणी और वाणीका विषय, अन्धकार और प्रकाश—जो कुछ भी है, सब वह तत्त्ववेत्ता ही है। इसीसे मोह उसका स्पर्श नहीं कर सकता। दर्पण आदिमें दीख पड़नेवाला प्रतिबिम्ब विचार और युक्तिसे बाधित है, उसका उनमें अस्तित्व है नहीं, फिर भी वस्तुके रूपमें तो दीखता ही है। वैसे ही इन्द्रियोंके द्वारा दीखनेवाला वस्तुओंका भेद भाव भी विचार, युक्ति और आत्मानुभवसे असम्भव होनेके कारण वस्तुत न होनेपर भी सत्य सा प्रतीत होता है। पृथ्वी आदि पञ्चभूतोंसे इस शरीरका निर्माण नहीं हुआ है। वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो न तो यह उन पञ्चभूतोंका सङ्घात है और न तो विकार ही। क्योंकि यह अपने अवयवोंसे न तो पृथक् है और न उनमें अनुगत ही है, अतएव मिथ्या है। इसी प्रकार शरीरके कारणरूप पञ्चभूत भी अवयवी होनेके कारण अपने अवयवोंसे भिन्न नहीं हैं, अवयवरूप ही हैं। इस प्रकार जब बहुत खोज बीन करनेपर भी अवयवोंके अतिरिक्त अवयवीका अस्तित्व नहीं मिलता—वह असत् ही सिद्ध होता है, तब अपने आप ही यह सिद्ध हो जाता है कि ये अवयव भी असत्य ही हैं। जबतक अज्ञानके कारण एक ही परमतत्त्वमें अनेक वस्तुओंके भेद मालूम पड़ते रहते हैं, तबतक यह भ्रम भी रह सकता है कि जो वस्तुएँ पहले थीं, वे अब भी हैं। और स्वप्नमें भी जिस प्रकार जाग्रत्, स्वप्न आदि अवस्थाओंके अलग अलग अनुभव होते ही हैं तथा उनमें भी विधि निषेधके शास्त्र रहते हैं—वैसे ही जबतक इन भिन्नताओंके अस्तित्वका मोह बना हुआ है, तबतक यहाँ भी विधि निषेधके शास्त्र हैं ही ॥५६–६१॥

जो विचारशील पुरुष स्वानुभूतिसे आत्माके त्रिविध अद्वैतका साक्षात्कार करते हैं—वे जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और द्रष्टा, दर्शन तथा दृश्यके भेदरूप स्वप्नको मिटा देते हैं। ये अद्वैत तीन प्रकारके हैं—भावाद्वैत, क्रियाद्वैत और द्रव्या द्वैत। जैसे वस्त्र सूतरूप ही होता है, वैसे ही कार्य भी कारण

अब मैं ऋषियोंके मतानुसार वानप्रस्थ-आश्रमके नियम बतलाता हूँ। इनका आचरण करनेसे वानप्रस्थ-आश्रमीको अनायास ही ऋषियोंके लोक महर्लोककी प्राप्ति हो जाती है। वानप्रस्थ-आश्रमीको जोती हुई भूमिमें उत्पन्न होनेवाले चावल, गेहूँ आदि अन्न नहीं खाने चाहिये। बिना जोते पैदा हुआ अन्न भी यदि असमयमें पका हो, तो उसे भी न खाना चाहिये। आगसे पकाया हुआ या कच्चा अन्न भी न खाय। केवल सूर्यके तापसे पके हुए कन्द, मूल, फल आदिका ही सेवन करे। जङ्गलोंमें अपने-आप पैदा हुए धान्यों-से नित्यनैमित्तिक चरु और पुरोडाशका हवन करे। जब नये-नये अन्न, फल, फूल आदि मिलने लगें, तब पहलेके इकट्ठे किये हुए अन्नका परित्याग कर दे। अग्निहोत्रके अग्निकी रक्षाके लिये ही घर, पर्णकुटी अथवा पहाड़की गुफाका आश्रय ले। स्वयं तो शीत, वायु, अग्नि, वर्षा और घामका सहन करे। सिरपर जटा धारण करे और केश, रोम, नख और दाढ़ी-मूँछ न कटवावे तथा मैलको भी शरीरसे अलग न करे। कमण्डलु, मृगचर्म, दण्ड, वल्कल-वस्त्र और अग्निहोत्रकी सामग्रियोंको अपने पास रक्खे। विचारवान् पुरुषको चाहिये कि बारह, आठ, चार, दो या एक वर्षतक वानप्रस्थ-आश्रमके नियमोंका पालन करे। ध्यान रहे कि कहीं अधिक तपस्याका क्लेश सहन करनेसे बुद्धि बिगड़ न जाय ॥ १७—२२ ॥

वानप्रस्थी पुरुष जब रोग अथवा बुढ़ापेके कारण अपने कर्म पूरे न कर सके और वेदान्त-विचार करनेकी भी सामर्थ्य न रहे, तो उसे अनशन आदि व्रत करने चाहिये। अनशनके पूर्व ही वह अपने आहवनीय आदि अग्नियोंको अपने आत्मामें लीन कर ले। 'मैंपन' और 'मेरेपन'का त्याग करके शरीरको उसके कारण भूत-तत्त्वोंमें यथायोग्य भलीभाँति लीन करे। जितेन्द्रिय पुरुष अपने शरीरके छिद्राकाशोंको आकाशमें, प्राणोंको वायुमें, गर्मीको अग्निमें, रक्त, कफ, पीब आदि जलीय तत्त्वोंको जलमें और हड्डी आदि ठोस वस्तुओंको पृथ्वीमें लीन करे। इसी प्रकार वाणी और उसके कर्म भाषणको उसके अधिष्ठातृ देवता अग्निमें, हाथ और उसके द्वारा होनेवाले कला-कौशलको इन्द्रमें, चरण और उसकी गतिको कालस्वरूप विष्णुमें, रति और उपस्थको प्रजापतिमें, एवं पायु और मलोत्सर्गको उनके आश्रयके अनुसार मृत्युमें लीन कर दे। श्रोत्र और उसके द्वारा सुने जानेवाले शब्दको दिशाओंमें, स्पर्श और त्वचाको वायुमें, नेत्रसहित रूपको ज्योतिमें, मधुर आदि रसोंके सहित रसनेन्द्रियको जलमें, और युधिष्ठिर! घ्राणेन्द्रिय एवं उसके द्वारा सूँघे जानेवाले गन्धको पृथ्वीमें लीन कर दे। मनोरथोंके साथ मनको चन्द्रमामें, समझमें आनेवाले पदार्थोंके सहित बुद्धिको ब्रह्मामें तथा अहंता और ममतारूप क्रिया करनेवाले अहङ्कारको उसके कर्मोंके साथ रुद्रमें लीन कर दे। इसी प्रकार चेतनासहित चित्तको क्षेत्रज्ञ (जीव) में, और गुणोंके कारण विकारी-से प्रतीत होनेवाले जीवको परब्रह्ममें लीन कर दे। साथ ही पृथ्वीका जलमें, जलका अग्निमें, अग्निका वायुमें, वायुका आकाशमें, आकाशका अहङ्कारमें, अहङ्कारका महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वका अव्यक्तमें और अव्यक्तका अविनाशी परमात्मामें लय कर दे। इस प्रकार अविनाशी परमात्माके रूपमें अवशिष्ट जो चिद्वस्तु है, वह आत्मा है, वह मैं हूँ—यह जानकर अद्वितीय भावमें स्थित हो जाय। जैसे अपने आश्रय काष्ठादिके भस्म हो जानेपर अग्नि शान्त होकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है, वैसे ही वह भी उपरत हो जाय ॥ २३—३१ ॥

तेरहवाँ अध्याय

यतिधर्मका निरूपण और अवधूत-प्रह्लाद-संवाद

नारदजी कहते हैं—धर्मराज! इस प्रकार लय-चिन्तन करनेके अनन्तर यदि वानप्रस्थीमें ब्रह्मविचारकी सामर्थ्य हो, तो शरीरके अतिरिक्त और सब कुछ छोड़कर वह संन्यास ले ले; तथा किसी भी व्यक्ति, वस्तु, स्थान और समयकी अपेक्षा न रखकर एक गाँवमें एक ही रात ठहरनेका नियम लेकर पृथ्वीपर विचरण करे। यदि वह वस्त्र पहने तो केवल कौपीन, जिससे उसके गुप्त अङ्ग ढक जायँ। और जबतक कोई आपत्ति न आवे, तबतक दण्ड तथा अपने आश्रमके चिह्नोंके सिवा अपनी त्यागी हुई किसी भी वस्तुको ग्रहण न करे। संन्यासीको चाहिये कि वह समस्त प्राणियोंका हितैषी हो, शान्त रहे, भगवत्परायण रहे और किसीका आश्रय न लेकर अपने-आपमें ही रमे एवं अकेला ही विचरे। इस सम्पूर्ण विश्वको कार्य और कारणसे अतीत परमात्मामें अध्यस्त जाने और कार्य-कारणरूप इस जगत्में ब्रह्मस्वरूप अपने आत्माको परिपूर्ण देखे। सुषुप्ति और जागरणकी सन्धिमें आत्मदर्शी संन्यासी अपने स्वरूपका साक्षात्कार करे और बन्धन तथा



अब मैं ऋषियोंके मतानुसार वानप्रस्थ-आश्रमके नियम बतलाता हूँ। इनका आचरण करनेसे वानप्रस्थ-आश्रमीको अनायास ही ऋषियोंके लोक महर्लोककी प्राप्ति हो जाती है। वानप्रस्थ-आश्रमीको जोती हुई भूमिमें उत्पन्न होनेवाले चावल, गेहूँ आदि अन्न नहीं खाने चाहिये। बिना जोते पैदा हुआ अन्न भी यदि असमयमें पका हो, तो उसे भी न खाना चाहिये। आगसे पकाया हुआ या कच्चा अन्न भी न खाय। केवल सूर्यके तापसे पके हुए कन्द, मूल, फल आदिका ही सेवन करे। जङ्गलोंमें अपने-आप पैदा हुए धान्योंसे नित्यनैमित्तिक चरु और पुरोडाशका हवन करे। जब नये-नये अन्न, फल, फूल आदि मिलने लगें, तब पहलेके इकट्ठे किये हुए अन्नका परित्याग कर दे। अग्निहोत्रके अग्निकी रक्षाके लिये ही घर, पर्णकुटी अथवा पहाड़की गुफाका आश्रय ले। स्वयं तो शीत, वायु, अग्नि, वर्षा और घामका सहन करे। सिरपर जटा धारण करे और केश, रोम, नख और दाढ़ी-मूँछ न कटवावे तथा मैलको भी शरीरसे अलग न करे। कमण्डलु, मृगचर्म, दण्ड, वल्कल-वस्त्र और अग्निहोत्रकी सामग्रियोंको अपने पास रक्खे। विचारवान् पुरुषको चाहिये कि बारह, आठ, चार, दो या एक वर्षतक वानप्रस्थ-आश्रमके नियमोंका पालन करे। ध्यान रहे कि कहीं अधिक तपस्याका क्लेश सहन करनेसे बुद्धि बिगड़ न जाय॥ १७—२२॥

वानप्रस्थी पुरुष जब रोग अथवा बुढ़ापेके कारण अपने कर्म पूरे न कर सके और वेदान्त-विचार करनेकी भी सामर्थ्य न रहे, तो उसे अनशन आदि व्रत करने चाहिये। अनशनके पूर्व ही वह अपने आहवनीय आदि अग्नियोंको अपने आत्मामें लीन कर ले। 'मैंपन' और 'मेरेपन'का त्याग करके शरीरको उसके कारण भूत-तत्त्वोंमें यथायोग्य भलीभाँति लीन करे। जितेन्द्रिय पुरुष अपने शरीरके छिद्राकाशोंको आकाशमें, प्राणोंको वायुमें, गर्मीको अग्निमें, रक्त, कफ, पीब आदि जलीय तत्त्वोंको जलमें और हड्डी आदि ठोस वस्तुओंको पृथ्वीमें लीन करे। इसी प्रकार वाणी और उसके कर्म भाषणको उसके अधिष्ठातृ देवता अग्निमें, हाथ और उसके द्वारा होनेवाले कला-कौशलको इन्द्रमें, चरण और उसकी गतिको कालस्वरूप विष्णुमें, रति और उपस्थको प्रजापतिमें, एवं पायु और मलोत्सर्गको उनके आश्रयके अनुसार मृत्युमें लीन कर दे। श्रोत्र और उसके द्वारा सुने जानेवाले शब्दको दिशाओंमें, स्पर्श और त्वचाको वायुमें, नेत्रसहित रूपको ज्योतिमें, मधुर आदि रसोंके सहित रसनेन्द्रियको जलमें, और युधिष्ठिर! घ्राणेन्द्रिय एवं उसके द्वारा सूँघे जानेवाले गन्धको पृथ्वीमें लीन कर दे। मनोरथोंके साथ मनको चन्द्रमामें, समझमें आनेवाले पदार्थोंके सहित बुद्धिको ब्रह्मामें तथा अहंता और ममतारूप क्रिया करनेवाले अहङ्कारको उसके कर्मोंके साथ रुद्रमें लीन कर दे। इसी प्रकार चेतनासहित चित्तको क्षेत्रज्ञ (जीव) में, और गुणोंके कारण विकारी-से प्रतीत होनेवाले जीवको परब्रह्ममें लीन कर दे। साथ ही पृथ्वीका जलमें, जलका अग्निमें, अग्निका वायुमें, वायुका आकाशमें, आकाशका अहङ्कारमें, अहङ्कारका महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वका अव्यक्तमें और अव्यक्तका अविनाशी परमात्मामें लय कर दे। इस प्रकार अविनाशी परमात्माके रूपमें अवशिष्ट जो चिद्वस्तु है, वह आत्मा है, वह मैं हूँ—यह जानकर अद्वितीय भावमें स्थित हो जाय। जैसे अपने आश्रय काष्ठादिके भस्म हो जानेपर अग्नि शान्त होकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है, वैसे ही वह भी उपरत हो जाय॥ २३—३१॥

तेरहवाँ अध्याय

यतिधर्मका निरूपण और अवधूत-प्रह्लाद-संवाद

नारदजी कहते हैं—धर्मराज! इस प्रकार लय-चिन्तन करनेके अनन्तर यदि वानप्रस्थीमें ब्रह्मविचारकी सामर्थ्य हो, तो शरीरके अतिरिक्त और सब कुछ छोड़कर वह संन्यास ले ले; तथा किसी भी व्यक्ति, वस्तु, स्थान और समयकी अपेक्षा न रखकर एक गाँवमें एक ही रात ठहरनेका नियम लेकर पृथ्वीपर विचरण करे। यदि वह वस्त्र पहने तो केवल कौपीन, जिससे उसके गुप्त अङ्ग ढक जायँ। और जबतक कोई आपत्ति न आवे, तबतक दण्ड तथा अपने आश्रमके चिह्नोंके सिवा अपनी त्यागी हुई किसी भी वस्तुको ग्रहण न करे। संन्यासीको चाहिये कि वह समस्त प्राणियोंका हितैषी हो, शान्त रहे, भगवत्परायण रहे और किसीका आश्रय न लेकर अपने-आपमें ही रमे एवं अकेला ही विचरे। इस सम्पूर्ण विश्वको कार्य और कारणसे अतीत परमात्मामें अध्यस्त जाने और कार्य-कारणरूप इस जगत्‌में ब्रह्मस्वरूप अपने आत्माको परिपूर्ण देखे। सुषुप्ति और जागरणकी सन्धिमें आत्मदर्शी संन्यासी अपने स्वरूपका साक्षात्कार करे और बन्धन तथा

छिड़कता था और कभी पीता था। गजेन्द्र गृहस्थ पुरुषोंकी भाँति मोहग्रस्त होकर अपनी सूँड़से जलकी फुहारें छोड़ छोड़कर साथकी हथिनियों और बच्चोंको नहलाने लगा तथा उनके मुँहमें सूँड़ डालकर जल पिलाने लगा। भगवान्‌की मायासे मोहित हुआ गजेन्द्र उन्मत्त हो रहा था। उस बेचारेको इस बातका पता ही न था कि मेरे सिरपर बहुत बड़ी विपत्ति मँडरा रही है॥ २०–२६॥

परीक्षित्! गजेन्द्र जिस समय इतना उन्मत्त हो रहा था, उसी समय प्रारब्धकी प्रेरणासे एक बलवान् ग्राहने क्रोधमें भरकर उसका पैर पकड़ लिया। इस प्रकार अकस्मात् विपत्तिमें पड़कर उस बलवान् गजेन्द्रने अपनी शक्तिके अनुसार अपनेको छुड़ानेकी बड़ी चेष्टा की, परन्तु छुड़ा न सका। दूसरे हाथी, हथिनियों और उनके बच्चोंने देखा कि उनके स्वामीको बलवान् ग्राह बड़े वेगसे खींच रहा है और वे बहुत घबड़ा रहे हैं। उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे बड़ी विकलतासे चिग्घाड़ने लगे। बहुतोंने उसे सहायता पहुँचाकर जलसे बाहर निकाल लेना चाहा, परन्तु इसमें भी वे असमर्थ ही रहे। गजेन्द्र और ग्राह अपनी अपनी पूरी शक्ति लगाकर भिड़े हुए थे। कभी गजेन्द्र ग्राहको बाहर खींच लाता तो कभी ग्राह गजेन्द्रको भीतर खींच ले जाता। परीक्षित्! इस प्रकार उनको लड़ते-लड़ते एक हजार वर्ष बीत गये और दोनों ही जीते रहे। यह घटना देखकर देवता भी आश्चर्य चकित हो गये॥२७–२९॥

अन्तमें बहुत दिनोंतक बार-बार जलमें खींचे जानेसे गजेन्द्रका शरीर शिथिल पड़ गया। न तो उसके शरीरमें बल रह गया और न मनमें उत्साह। शक्ति भी क्षीण हो गयी। इधर ग्राह तो जलचर ही ठहरा। इसलिये उसकी शक्ति क्षीण होनेके स्थानपर बढ़ गयी, वह बड़े उत्साहसे और भी बल लगाकर गजेन्द्रको खींचने लगा। इस प्रकार देहाभिमानी गजेन्द्र अकस्मात् प्राण सङ्कटमें पड़ गया और अपनेको छुड़ानेमें सर्वथा असमर्थ हो गया। बहुत देरतक उसने अपने छुटकारेके उपाय पर विचार किया, अन्तमें वह इस निश्चयपर पहुँचा—'यह ग्राह विधाताकी फाँसी ही है। इसमें फँसकर मैं आतुर हो रहा हूँ। जब मुझे मेरे बराबरके हाथी भी इस विपत्तिसे न उबार सके, तब ये बेचारी हथिनियाँ तो छुड़ा ही कैसे सकती हैं? इसलिये अब मैं सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र आश्रय भगवान्‌की ही शरण लेता हूँ। काल बड़ा बली है। यह साँपके समान बड़े प्रचण्ड वेगसे सबको निगल जानेके लिये दौड़ता ही रहता है। इससे अत्यन्त भयभीत होकर जो कोई भगवान्‌की शरणमें चला जाता है, उसे वे प्रभु अवश्य अवश्य बचा लेते हैं। उनके भयसे भयभीत होकर मृत्यु भी अपना काम ठीक-ठीक पूरा करता है। वही प्रभु सबके आश्रय हैं। मैं उन्हींकी शरण ग्रहण करता हूँ'॥ ३०–३३॥

तीसरा अध्याय

गजेन्द्रके द्वारा भगवान्‌की स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अपनी बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके गजेन्द्रने अपने मनको हृदयमें एकाग्र किया और फिर पूर्वजन्ममें सीखे हुए श्रेष्ठ स्तोत्रके जपद्वारा भगवान्‌की स्तुति करने लगा॥ १॥

गजेन्द्रने कहा—जो जगत्‌के मूल कारण हैं और सबके हृदयमें पुरुषके रूपमें विराजमान हैं एवं समस्त जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसारमें चेतनताका विस्तार होता है—उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ, प्रेमसे उनका ध्यान करता हूँ। यह संसार उन्हींमें स्थित है, उन्हींकी सत्तासे प्रतीत हो रहा है, वे ही इसमें व्याप्त हो रहे हैं और स्वयं वे ही इसके रूपमें प्रकट हो रहे हैं। यह सब होनेपर भी वे इस संसार और इसके कारण—प्रकृतिसे सर्वथा परे हैं। उन स्वयम्प्रकाश, स्वयंसिद्ध सत्तात्मक भगवान्‌की मैं शरण ग्रहण करता हूँ। यह विश्व प्रपञ्च उन्हींकी मायासे उनमें अध्यस्त है। यह कभी प्रतीत होता है, तो कभी इसकी प्रतीतिका अभाव हो जाता है। परन्तु उनकी दृष्टि ज्यों की त्यों—एक सी रहती है। वे इसके भाव और अभाव दोनोंके साक्षी हैं। वे उन दोनोंको ही देखते रहते हैं। वे सबके मूल हैं, और अपने मूल भी वही हैं। कोई दूसरा उनका कारण नहीं है। वे ही समस्त कार्य और कारणोंसे अतीत प्रभु मेरी रक्षा करें। प्रलयके समय लोक, लोकपाल और इन सबके कारण सम्पूर्णरूपसे नष्ट हो जाते हैं। उस समय केवल अत्यन्त घना और गहरा अन्धकार ही अन्धकार रहता है। परन्तु अनन्त परमात्मा उससे सर्वथा परे विराजमान रहते हैं। वे ही प्रभु मेरी रक्षा करें। उनकी लीलाओंका रहस्य जानना बहुत ही कठिन है। वे नटकी भाँति अनेकों वेष धारण करते हैं। उनके वास्तविक स्वरूप-

जलके लिये मृगतृष्णाकी ओर दौड़ता है, वैसे ही अपने आत्मासे भिन्न वस्तुमें सुख समझनेवाला पुरुष आत्माको छोड़कर विषयोंकी ओर दौड़ता है। प्रह्लादजी ! शरीर आदि तो प्रारब्धके अधीन हैं। उनके द्वारा जो अपने लिये सुख पाना और दुःख मिटाना चाहता है, वह कभी अपने कार्यमें सफल नहीं हो सकता। उसके बार-बार किये हुए सारे कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। यदि मनुष्यको बड़े कष्टसे कुछ धन या भोगकी सामग्री मिल ही जाय, तो उससे क्या हो सकता है। एक क्षणके लिये भी तो वह मानसिक, शारीरिक आदि दुःखोंसे कभी छुटकारा नहीं पाता। इसके सिवा उसकी मृत्यु भी होनेवाली ही है। लोभी और इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले धनियोंका दुःख तो मैं देखता ही रहता हूँ। भयके मारे उन्हें नींद नहीं आती। वे किसीपर विश्वास नहीं कर सकते, सबपर उनका सन्देह बना रहता है। जो जीवन और धनके लोभी हैं—वे राजा, चोर, शत्रु, स्वजन, पशु-पक्षी, याचक और कालसे, यहाँतक कि 'कहीं मैं भूल न कर बैठूँ, अधिक न खर्च कर दूँ'—इस आशङ्कासे अपने-आपसे भी सदा डरते रहते हैं। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि जिसके कारण शोक, मोह, भय, क्रोध, राग, कायरता और श्रम आदिका शिकार होना पड़ता है—उस धन और जीवनकी स्पृहाका त्याग कर दे ॥ २६—३३ ॥

इस लोकमें मेरे सबसे बड़े गुरु हैं—अजगर और मधुमक्खी। उनकी शिक्षासे मैंने वैराग्य और सन्तोष पाया है। मधुमक्खी जैसे मधु इकट्ठा करती है, वैसे ही लोग बड़े कष्टसे धन-सञ्चय करते हैं; परन्तु दूसरा ही कोई उस धन-राशिके स्वामीको मारकर उसे छीन लेता है। इससे मैंने यह शिक्षा ग्रहण की कि विषय-भोगोंसे विरक्त रहना ही अच्छा है। मैं अजगरके समान निश्चेष्ट पड़ा रहता हूँ और दैववश जो कुछ मिल जाता है, उसीमें सन्तुष्ट रहता हूँ। और यदि कुछ नहीं मिलता, तो बहुत दिनोंतक धैर्य धारण कर यों ही पड़ा रहता हूँ। कभी थोड़ा अन्न खा लेता हूँ तो कभी बहुत; कभी स्वादिष्ट तो कभी नीरस—बेस्वाद; और कभी अनेकों गुणोंसे युक्त तो कभी सर्वथा गुणहीन। कभी कोई बड़ी श्रद्धासे खिलाता है, कभी कोई बिल्कुल अपमानके साथ। अपने-आप ही मिल जानेपर कभी दिनमें, कभी रातमें और कभी एक बार भोजन करके भी दुबारा कर लेता हूँ। मैं अपने प्रारब्धके भोगमें ही सन्तुष्ट रहता हूँ। इसलिये मुझे रेशमी या सूती, मृगचर्म या चीर, वल्कल या और कुछ—जैसा भी वस्त्र मिल जाता है, वैसा ही पहन लेता हूँ। कभी तो मैं पृथ्वी, घास, पत्ते, पत्थर या राखके ढेरपर ही पड़ रहता हूँ तो कभी दूसरोंकी इच्छासे महलोंमें पलंगों और गद्दोंपर सो लेता हूँ। दैत्यराज ! कभी नहा-धोकर, शरीरमें चन्दन लगाकर सुन्दर वस्त्र, फूलोंके हार और गहने पहन रथ, हाथी और घोड़ेपर चढ़कर चलता हूँ तो कभी पिशाचके समान बिल्कुल नंग-धड़ंग विचरता हूँ। मनुष्योंके स्वभाव भिन्न-भिन्न होते ही हैं। अतः न तो मैं किसीकी निन्दा करता हूँ और न स्तुति ही करता हूँ। मैं केवल इनका परम कल्याण और परमात्मासे एकता चाहता हूँ ॥ ३४—४२ ॥

सत्यका अनुसन्धान करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि जो नाना प्रकारके पदार्थ और उनके भेद-विभेद मालूम पड़ रहे हैं, उनको चित्तवृत्तिमें हवन कर दे। चित्तवृत्तिको इन पदार्थोंके सम्बन्धमें विविध भ्रम उत्पन्न करनेवाले मनमें, मनको सात्त्विक अहङ्कारमें और सात्त्विक अहङ्कारको महत्तत्त्वके द्वारा मायामें हवन कर दे। इस प्रकार ये सब भेद-विभेद और उनका कारण माया ही है, ऐसा निश्चय करके फिर उस मायाको आत्मानुभूतिमें स्वाहा कर दे। अर्थात् आत्माके अतिरिक्त माया कोई वस्तु नहीं है, इस निश्चयमें स्थित हो जाय। इस प्रकार आत्मसाक्षात्कारके द्वारा आत्मस्वरूपमें स्थित होकर निष्क्रिय एवं उपरत हो जाय। प्रह्लादजी ! मेरी यह आत्मकथा अत्यन्त गुप्त एवं लोक और शास्त्रसे परेकी वस्तु है। तुम भगवान्‌के अत्यन्त प्रेमी हो, इसलिये मैंने तुम्हारे प्रति इसका वर्णन किया है ॥ ४३—४५ ॥

नारदजी कहते हैं—महाराज ! प्रह्लादजीने दत्तात्रेय मुनिसे परमहंसोंके इस धर्मका श्रवण करके उनकी पूजा की और फिर उनसे विदा लेकर बड़ी प्रसन्नतासे अपनी राजधानीके लिये प्रस्थान किया ॥ ४६ ॥

चौदहवाँ अध्याय

गृहस्थसम्बन्धी सदाचार

राजा युधिष्ठिरने पूछा—देवर्षि नारदजी ! मेरे-जैसा गृहासक्त गृहस्थ बिना विशेष परिश्रमके इस पदको किस साधनसे प्राप्त कर सकता है, आप कृपा करके मुझे बतलाइये ॥ १ ॥

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर ! मनुष्य गृहस्थाश्रममें रहे और गृहस्थ-धर्मके अनुसार सब काम करे, परन्तु उन्हें भगवान्‌के प्रति समर्पित कर दे। समय-समयपर संसारसे विरक्त

ज्ञानयोग या भक्तियोगके द्वारा प्राप्त होते हैं—उन्हीं आदिपुरुष, अनन्त एवं परिपूर्ण परब्रह्म परमात्माकी मैं स्तुति करता हूँ ॥ १७–२१ ॥

जिनकी अत्यन्त छोटी कलासे अनेकों नाम रूपके भेद भावसे युक्त ब्रह्मा आदि देवता, वेद और चराचर लोकोंकी सृष्टि हुई है, जैसे धधकती हुई आगसे लपटें और प्रकाशमान सूर्यसे उनकी किरणें बार बार निकलती और लीन होती रहती हैं, वैसे ही जिन स्वयम्प्रकाश परमात्मासे बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीर—जो गुणोंके प्रवाहरूप है—बार-बार प्रकट होते हैं तथा लीन हो जाते हैं, वे भगवान् न देवता हैं और न तो असुर। वे मनुष्य और पशु पक्षी भी नहीं है। न वे स्त्री हैं न पुरुष और न नपुंसक। वे कोई साधारण या असाधारण प्राणी भी नहीं है। न वे गुण है और न कर्म, न कार्य हैं और न तो कारण ही। सबका निषेध हो जानेपर जो कुछ बच रहता है, वही उनका स्वरूप है तथा वे ही सब कुछ हैं। वे ही परमात्मा मेरे उद्धारके लिये प्रकट हों। मैं जीना नहीं चाहता। यह हाथीकी योनि बाहर और भीतर—सब ओरसे अज्ञानरूप आवरणके द्वारा ढकी हुई है, इसको रखकर करना ही क्या है? मैं तो आत्मप्रकाशको ढकनेवाले उस अज्ञानरूप आवरणसे छूटना चाहता हूँ, जो कालक्रमसे अपने आप नहीं छूट सकता जो केवल भगवत्कृपा अथवा तत्त्वज्ञानके द्वारा ही नष्ट होता है। इसलिये मैं उन परब्रह्म परमात्माकी शरणमें हूँ, जो विश्वरहित होनेपर भी विश्वके रचयिता और विश्वस्वरूप हैं—साथ ही जो विश्वकी अन्तरात्माके रूपमें विश्वरूप सामग्रीसे क्रीडा भी करते रहते हैं। उन अजन्मा परमपदस्वरूप ब्रह्मको मैं नमस्कार करता हूँ। योगीलोग योगके द्वारा कर्म, कर्म वासना और कर्म फलको भस्म करके अपने योगशुद्ध हृदयमें जिन योगेश्वर भगवान्‌का साक्षात्कार करते हैं—उन प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आपकी तीन शक्तियोंके—सत्त्व, रज और तमके रागादि वेग असह्य हैं। समस्त इन्द्रियों और मनके विषयोंके रूपमें भी आप ही प्रतीत हो रहे हैं। इसलिये जिनकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं है, वे तो आपकी प्राप्तिका मार्ग भी नहीं पा सकते। आपकी शक्ति अनन्त है। आप शरणागतवत्सल हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ। आपकी माया अहंबुद्धिसे आत्माका स्वरूप ढक गया है, इसीसे यह जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमा अपार है। उन सर्वशक्तिमान् एवं माधुर्यनिधि भगवान्‌की मैं शरणमें हूँ ॥ २२–२९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! गजेन्द्रने बिना किसी भेदभावके निर्विशेषरूपसे भगवान्‌की स्तुति की थी, इसलिये भिन्न भिन्न नाम और रूपको अपना स्वरूप माननेवाले ब्रह्मा आदि देवता उसकी रक्षा करनेके लिये नहीं आये। उस समय सर्वात्मा होनेके कारण सर्वदेवस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि प्रकट हो गये। विश्वके एकमात्र आधार भगवान्‌ने देखा कि गजेन्द्र अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। अतः उसकी स्तुति सुनकर वेदमय गरुडपर सवार हो चक्रधारी भगवान् बड़ी शीघ्रतासे वहाँके लिये चल पड़े, जहाँ गजेन्द्र अत्यन्त सङ्कटमें पड़ा हुआ था। उनके साथ स्तुति करते हुए देवता भी आये। सरोवरके भीतर बलवान् ग्राहने गजेन्द्रको पकड़ रक्खा था और वह अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। जब उसने देखा कि आकाशमें गरुड़पर सवार होकर हाथमें चक्र लिये भगवान् श्रीहरि आ रहे हैं, तब अपनी सूँड़में कमलका एक सुन्दर पुष्प लेकर उसने ऊपरको उठाया और बड़े कष्टसे बोला—'नारायण! जगद्गुरो! भगवन्! आपको नमस्कार है!' जब भगवान्‌ने देखा कि गजेन्द्र तो अत्यन्त पीड़ित हो रहा है, तब वे एकबारगी गरुड़को छोड़कर कूद पड़े और कृपा करके गजेन्द्रके साथ ही ग्राहको भी बड़ी शीघ्रतासे सरोवरसे बाहर निकाल लाये। फिर सब देवताओंके सामने ही भगवान् श्रीहरिने चक्रसे ग्राहका मुँह फाड़ डाला और गजेन्द्रको छुड़ा लिया ॥ ३०–३३ ॥

चौथा अध्याय

गज और ग्राहका पूर्वचरित्र तथा उनका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! उस समय ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवता, ऋषि और गन्धर्व श्रीहरि भगवान्‌के इस कर्मकी प्रशंसा करने लगे तथा उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्व और अप्सराएँ नाचने-गाने लगीं, ऋषि, चारण और सिद्धगण भगवान् पुरुषोत्तमकी स्तुति करने लगे। इधर वह ग्राह तुरत ही परम आश्चर्यमय दिव्य शरीरसे सम्पन्न हो गया। यह ग्राह इसके पहले 'हूहू' नामका एक श्रेष्ठ गन्धर्व था। देवलके शापसे उसे यह गति प्राप्त हुई थी। अब भगवान्‌की कृपासे वह मुक्त हो गया। उसने सर्वेश्वर भगवान्‌के चरणोंमें

अथवा जो कुछ देवता, पितर, मनुष्य एवं प्राणियोंको समर्पित किया जाता है—उसका फल अक्षय होता है। युधिष्ठिर! इसी प्रकार स्त्रीके पुंसवन आदि, सन्तानके जातकर्मादि तथा अपने यज्ञ-दीक्षा आदि संस्कारोंके समय, शव-दाहके दिन या वार्षिक श्राद्धके उपलक्ष्यमें अथवा अन्य माङ्गलिक कर्मोंमें जो कुछ दान-पुण्य किया जाता है—वह भी अक्षय फल-दायक होता है॥ १९–२६॥

युधिष्ठिर! अब मैं उन स्थानोंका वर्णन करता हूँ, जो धर्म आदि श्रेयकी प्राप्ति करानेवाले हैं। सबसे पवित्र देश तो वह है, जिसमें सत्पात्र मिलते हों। जिनमें यह सारा चर और अचर जगत् स्थित है, उन भगवान्‌की प्रतिमा जिस देशमें हो, जहाँ तप, विद्या एवं दया आदि गुणोंसे युक्त ब्राह्मणोंके परिवार निवास करते हों तथा जहाँ-जहाँ भगवान्‌की पूजा होती हो—वे सभी स्थान परम कल्याणकारी हैं। पुराणोंमें प्रसिद्ध गङ्गा आदि नदियाँ, पुष्कर आदि सरोवर, सिद्ध पुरुषोंके द्वारा सेवित क्षेत्र, कुरुक्षेत्र, गया, प्रयाग, पुलहाश्रम, नैमिषारण्य, फल्गुनक्षेत्र, सेतुबन्ध, प्रभास, द्वारका, काशी, मथुरा, पम्पासर, बिन्दुसरोवर, बदरिकाश्रम, अलकनन्दा, भगवान् सीतारामजीके आश्रम अयोध्या-चित्रकूटादि, महेन्द्र और मलय आदि समस्त कुलपर्वत और जहाँ-जहाँ भगवान्‌के अर्चावतार हैं—वे सब-के-सब देश अत्यन्त पवित्र हैं। कल्याणकामी पुरुषको बार-बार इन देशोंका सेवन करना चाहिये। इन स्थानोंपर जो पुण्यकर्म किये जाते हैं, मनुष्योंको उनका हजारगुना फल मिलता है॥ २७–३३॥

युधिष्ठिर! पात्र-निर्णयके प्रसङ्गमें पात्रके गुणोंको जाननेवाले विवेकी पुरुषोंने एकमात्र भगवान्‌को ही सत्पात्र बतलाया है। यह चराचर जगत् उन्हींका स्वरूप है। अभी तुम्हारे इसी यज्ञकी तो बात है; देवता, ऋषि, सिद्ध और सनकादिकोंके रहनेपर भी अग्रपूजाके लिये भगवान् श्रीकृष्णको ही पात्र समझा गया। असंख्य जीवोंसे भरपूर इस ब्रह्माण्डरूप महावृक्षके एकमात्र मूल भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। इसलिये उनकी पूजासे समस्त जीवोंकी आत्मा तृप्त हो जाती है। उन्हींने मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि और देवता आदिके शरीररूप पुरोंकी रचना की है तथा वे ही इन पुरोंमें जीवरूपसे शयन भी करते हैं। इसीसे उनका एक नाम 'पुरुष' भी है। युधिष्ठिर! एकरस रहते हुए भी भगवान् इन मनुष्यादि शरीरोंमें उनकी विभिन्नताके कारण न्यूनाधिकरूपसे प्रकाशमान हैं। इसलिये पशु-पक्षी आदि शरीरोंकी अपेक्षा मनुष्य ही श्रेष्ठ पात्र है और मनुष्योंमें भी, जिसमें भगवान्‌का अंश तप-योगादि जितना ही अधिक है, वह उतना ही श्रेष्ठ है॥ ३४–३८॥

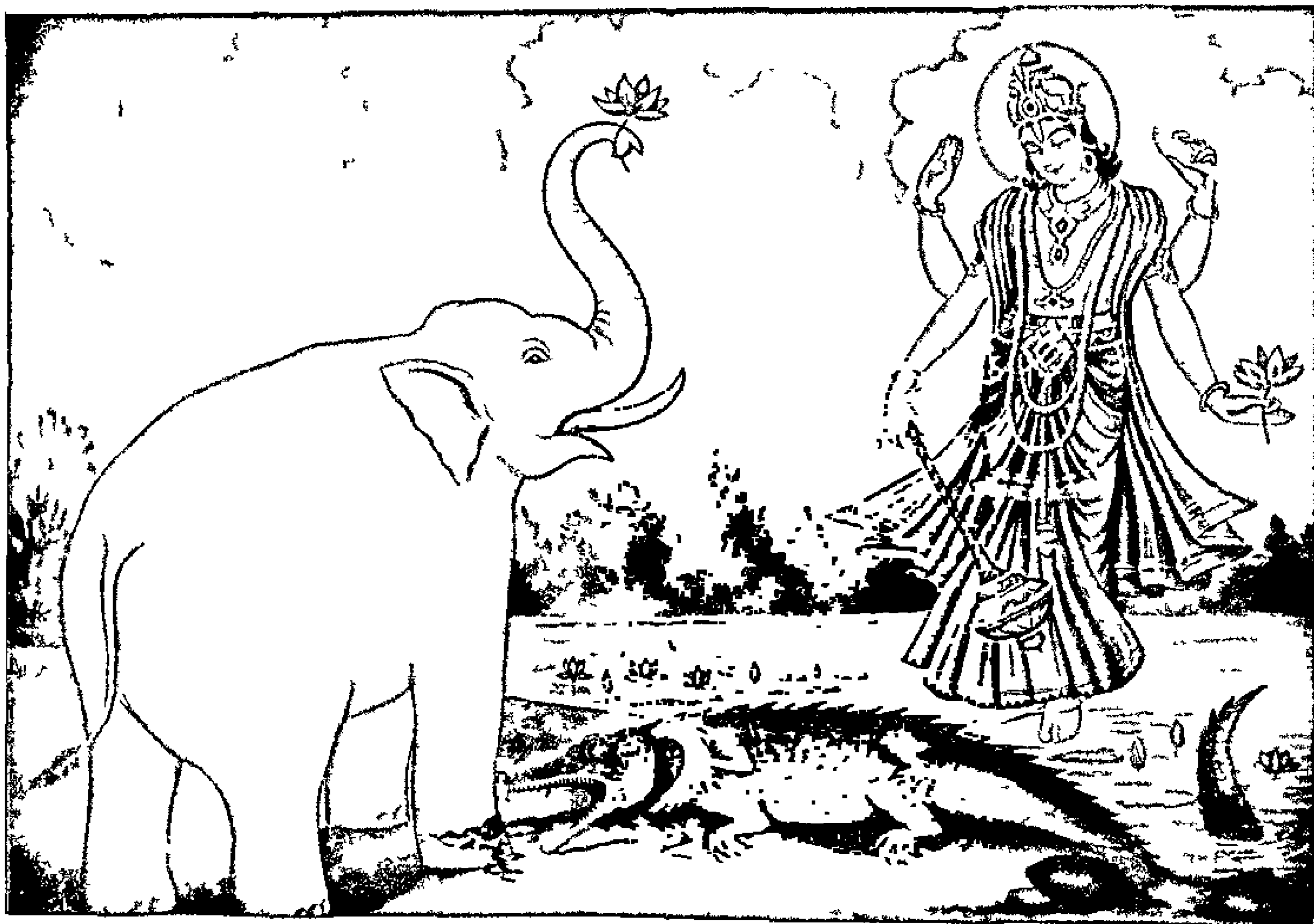
युधिष्ठिर! त्रेता आदि युगोंमें जब विद्वानोंने देखा कि मनुष्य परस्पर एक दूसरेका अपमान आदि करते हैं, तब उन लोगोंने उपासनाकी सिद्धिके लिये भगवान्‌की प्रतिमाकी प्रतिष्ठा की। तभीसे कितने ही लोग बड़ी श्रद्धा और सामग्रीसे प्रतिमामें ही भगवान्‌की पूजा करते हैं। परन्तु जो मनुष्यसे द्वेष करते हैं, उन्हें प्रतिमाकी उपासना करनेपर भी सिद्धि नहीं मिल सकती। युधिष्ठिर! मनुष्योंमें भी ब्राह्मण विशेष सुपात्र है। क्योंकि वह अपनी तपस्या, विद्या और सन्तोष आदि गुणोंसे भगवान्‌के वेदरूप शरीरको ही धारण करता है। महाराज! हमारी और तुम्हारी तो बात ही क्या—ये जो सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण हैं, इनके भी इष्टदेव ब्राह्मण ही हैं। क्योंकि उनके चरणोंकी धूलसे तीनों लोक पवित्र होते रहते हैं॥ ३९–४२॥

पंद्रहवाँ अध्याय

मोक्षधर्मका वर्णन

नारदजी कहते हैं—युधिष्ठिर! कुछ ब्राह्मणोंकी निष्ठा कर्ममें होती है, तो कुछकी तपस्यामें; कुछ वेदोंके स्वाध्यायमें ही तन्मय रहते हैं, तो कुछ अपना सम्पूर्ण जीवन उनके प्रवचनमें ही व्यतीत करते हैं। कोई आत्मज्ञानका सम्पादन करके कृतकृत्य हो जाते हैं तो कोई भक्तियोग, कर्मयोग या अष्टाङ्गयोगका अभ्यास करते रहते हैं। गृहस्थ पुरुषको चाहिये कि श्राद्ध अथवा देवपूजाके अवसरपर अपने कर्मका अक्षय फल प्राप्त करनेके लिये ज्ञाननिष्ठ पुरुषको ही हव्य-कव्यका दान करे। यदि वह न मिले तो योगी, प्रवचनकार आदिको यथायोग्य और यथाक्रम देना चाहिये। देवकार्यमें दो और पितृकार्यमें तीन अथवा दोनोंमें ही एक-एक ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। अत्यन्त धनी होनेपर भी श्राद्धकर्ममें अधिक विस्तार नहीं करना चाहिये। क्योंकि सगे-सम्बन्धी आदि स्वजनोंको बुलाकर अधिक

गजेन्द्र मोक्ष



भगवान् श्रीहरिने चक्रसे ग्राहका मुँह फाड़ डाला और गजेन्द्रको छुड़ा लिया।

जलानेवाले गुरुदेव तो साक्षात् भगवान् ही हैं । जो दुर्बुद्धि पुरुष उन्हें मनुष्य समझता है, उसका समस्त शास्त्र-श्रवण हाथीके स्नानके समान व्यर्थ है । बड़े-बड़े योगेश्वर जिनके चरणकमलोंका अनुसन्धान करते रहते हैं, प्रकृति और पुरुष-के अधीश्वर वे स्वयं भगवान् ही तो गुरुदेवके रूपमें प्रकट हैं। इन्हें लोग भ्रमसे मनुष्य मानते हैं ॥ २२–२७ ॥

शास्त्रोंमें जितने भी नियमसम्बन्धी आदेश हैं, उनका एकमात्र तात्पर्य यही है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन छः शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर ली जाय अथवा पाँचों इन्द्रिय और मन—ये छः वशमें हो जायँ। ऐसा होनेपर भी यदि उन नियमोंके द्वारा भगवान्के ध्यान-चिन्तन आदिकी प्राप्ति नहीं होती, तो उन्हें केवल श्रम-ही-श्रम समझना चाहिये। जैसे खेती, व्यापार आदि और उनके फल भी योग-साधनाके फल भगवत्प्राप्ति या मुक्तिको नहीं दे सकते—वैसे ही दुष्ट पुरुषके श्रौत-स्मार्त कर्म भी कल्याणकारी नहीं होते, प्रत्युत उलटा फल देते हैं ॥ २८-२९ ॥

जो पुरुष अपने मनपर विजय प्राप्त करनेके लिये उद्यत हो, वह आसक्ति और परिग्रहका त्याग करके संन्यास ग्रहण करे। एकान्तमें अकेला ही रहे और भिक्षा-वृत्तिसे शरीर-निर्वाह-मात्रके लिये स्वल्प और परिमित भोजन करे । युधिष्ठिर! पवित्र और समान भूमिपर अपना आसन बिछाये और सीधे स्थिरभावसे समान और सुखकर आसनसे उसपर बैठकर ॐकारका जप करे। जबतक मन सङ्कल्प-विकल्पोंको छोड़ न दे, तबतक नासिकाके अग्रभागपर दृष्टि जमाकर पूरक, कुम्भक और रेचकद्वारा प्राण तथा अपानकी गतिको रोके। कामनाओं-का मारा हुआ चित्त जहाँ-जहाँ भटककर जाय, विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह वहाँ-वहाँसे उसे लौटा लाये और धीरे-धीरे हृदयमें रोके। जब साधक थोड़े दिनोंतक निरन्तर इस प्रकारका अभ्यास करता है, तब ईंधनके बिना जैसे अग्नि बुझ जाती है वैसे ही उसका चित्त शान्त हो जाता है । इस प्रकार जब काम-वासनाएँ चोट करना बंद कर देती हैं और समस्त वृत्तियाँ अत्यन्त शान्त हो जाती हैं, तब चित्त ब्रह्मानन्द-के संस्पर्शमें मग्न हो जाता है और फिर उसका कभी उत्थान नहीं होता ॥ ३०–३५ ॥

जो संन्यासी पहले तो धर्म, अर्थ और कामके मूल कारण गृहस्थाश्रमका परित्याग कर देता है और फिर उन्हींका सेवन करने लगता है, वह निर्लज्ज अपने उगले हुएको खानेवाला कुत्ता ही है। जिन्होंने अपने शरीरको अनात्मा, मृत्युग्रस्त और विष्ठा, कृमि एवं राख समझ लिया था—वे ही मूढ़ फिर उसे आत्मा मानकर उसकी प्रशंसा करने लगते हैं। कर्मत्यागी गृहस्थ, व्रतत्यागी ब्रह्मचारी, गाँवमें रहनेवाला तपस्वी (वानप्रस्थ) और इन्द्रियलोलुप संन्यासी—ये चारों आश्रमके कलङ्क हैं और व्यर्थ ही आश्रमोंका ढोंग करते हैं। भगवान्की मायासे विमोहित उन मूढ़ोंपर तरस खाकर उनकी उपेक्षा कर देनी चाहिये । आत्मज्ञानके द्वारा जिसकी सारी वासनाएँ निर्मूल हो गयी हैं और जिसने अपने आत्माको परब्रह्मस्वरूप जान लिया है, वह किस इच्छा और किस कारणसे इन्द्रियलोलुप होकर अपने शरीरका पोषण करेगा ? ॥ ३६–४० ॥

उपनिषदोंमें कहा गया है कि शरीर रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, इन्द्रियोंका स्वामी मन लगाम है, शब्दादि विषय मार्ग हैं, बुद्धि सारथि है, चित्त ही भगवान्के द्वारा निर्मित बाँधनेकी विशाल रस्सी है, दस प्राण धुरी हैं, धर्म और अधर्म पहिये हैं और इनका अभिमानी जीव रथी है । ॐकार ही उस रथीका धनुष है, शुद्ध जीवात्मा बाण और परमात्मा लक्ष्य है। इस ॐकारके द्वारा अन्तरात्माको परमात्मामें लीन कर देना चाहिये। राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, दूसरेके गुणोंमें दोष निकालना, छल, हिंसा, दूसरेकी उन्नति देखकर जलना, तृष्णा, प्रमाद, भूख और नींद—ये सब, और ऐसे ही दूसरे भी जीवोंके बहुत-से शत्रु हैं। उनमें रजोगुण और तमोगुणप्रधान वृत्तियाँ अधिक हैं, कहीं-कहीं कोई-कोई सत्त्वगुणप्रधान भी होती हैं। यह मनुष्य-शरीररूप रथ जबतक अपने वशमें है और इसके इन्द्रिय-मन आदि सारे साधन अच्छी दशामें विद्यमान हैं, तभीतक श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंकी सेवा-पूजासे शान धरायी हुई ज्ञानकी तीखी तलवार लेकर भगवान्के आश्रयसे इन शत्रुओं-का नाश करके अपने स्वाराज्य-सिंहासनपर विराजमान हो जाय, और फिर अत्यन्त शान्तभावसे इस शरीरका भी परित्याग कर दे । नहीं तो, तनिक भी प्रमाद हो जानेपर ये इन्द्रियरूप दुष्ट घोड़े और उनसे मित्रता रखनेवाला बुद्धिरूप सारथि रथके स्वामी जीवको उलटे रास्ते ले जाकर विषयरूपी लुटेरोंके हाथोंमें डाल देगा। वे डाकू सारथि और घोड़ोंके सहित इस जीवको मृत्युके अत्यन्त भयावने घोर अन्धकारमय संसारके कुएँमें गिरा देंगे ॥ ४१–४६ ॥

वैदिक कर्म दो प्रकारके हैं—एक तो वे जो वृत्तियोंको उनके विषयोंकी ओर ले जाते हैं—प्रवृत्तिपरक, और दूसरे वे जो वृत्तियोंको उनके विषयोंकी ओरसे लौटाकर शान्त एवं

आदि आदर्श मनुष्योंका स्मरण करते हैं—वे समस्त पापोंसे छूट जाते हैं। क्योंकि ये सब-के-सब मेरे ही रूप हैं। प्यारे गजेन्द्र! जो लोग ब्राह्ममुहूर्तमें जगकर तुम्हारी की हुई स्तुतिसे मेरा स्तवन करेंगे, मृत्युके समय उन्हें मैं निर्मल बुद्धिका दान करूँगा ॥ १७–२५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने ऐसा कहकर देवताओंको आनन्दित करते हुए अपना श्रेष्ठ शङ्ख बजाया और गरुड़पर सवार हो गये ॥ २६ ॥

पाँचवाँ अध्याय

देवताओंका ब्रह्माजीके पास जाना और ब्रह्माकृत भगवान्‌की स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌की यह गजेन्द्रमोक्षकी पवित्र-लीला समस्त पापोंका नाश करनेवाली है। इसे मैंने तुम्हें सुना दिया। अब रैवत मन्वन्तरकी कथा सुनो। पाँचवें मनुका नाम था रैवत। वे चौथे मनु तामसके सगे भाई थे। उनके अर्जुन, बलि, विन्ध्य आदि कई पुत्र थे। उस मन्वन्तरमें इन्द्रका नाम था विभु, और भूतरय आदि देवताओंके प्रधान गण थे। परीक्षित्! उस समय हिरण्यरोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्वबाहु आदि सप्तर्षि थे। उनमेंसे शुभ्र ऋषिकी पत्नीका नाम था विकुण्ठा। उन्हींके गर्भसे वैकुण्ठ नामक श्रेष्ठ देवताओंके साथ अपने अंशसे स्वयं भगवान्‌ने वैकुण्ठ नामक अवतार धारण किया। उन्हींने लक्ष्मीदेवीकी प्रार्थनासे उनको प्रसन्न करनेके लिये वैकुण्ठधामकी रचना की थी। वह लोक समस्त लोकोंमें श्रेष्ठ है। उन वैकुण्ठनाथके कल्याणमय गुण और प्रभावका वर्णन मैं संक्षेपसे (तीसरे स्कन्धमें) कर चुका हूँ। भगवान् विष्णुके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता। ऐसा करना तो मानो पृथ्वीके परमाणुओंकी गिनती कर लेना है ॥ १–६ ॥

छठे मनु चक्षुके पुत्र चाक्षुष थे। उनके पूरु, पुरुष, सुद्युम्न आदि कई पुत्र थे। इन्द्रका नाम था मन्त्रद्रुम और प्रधान देवगण थे आप्य आदि। उस मन्वन्तरमें हविष्यमान् और वीरक आदि सप्तर्षि थे। जगत्पति भगवान्‌ने उस समय भी वैराजकी पत्नी सम्भूतिके गर्भसे अजित नामका अंशावतार ग्रहण किया था। उन्होंने ही समुद्र मन्थन करके देवताओंके लिये अमृत निकाला था, तथा वे ही कच्छपरूप धारण करके मन्दराचलकी मथानीके आधार बने थे ॥ ७–१० ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! भगवान्‌ने क्षीरसागरका मन्थन कैसे किया? उन्होंने कच्छपरूप धारण करके किस कारण और किस उद्देश्यसे मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया? देवताओंको उस समय अमृत कैसे मिला? और भी कौन-कौन-सी वस्तुएँ समुद्रसे निकलीं? भगवान्‌की यह लीला बड़ी ही अद्भुत है। आप कृपा करके अवश्य सुनाइये। आप भक्तवत्सल भगवान्‌की महिमाका ज्यों-ज्यों [illegible] मेरा हृदय उसको और भी सुननेके लिये उत्सुक होता जा रहा है। अघानेका तो नाम ही नहीं लेता। क्यों न हो, बहुत दिनोंसे यह संसारकी ज्वालाओंसे जलता जो रहा है ॥ ११–१३ ॥

सूतजीने कहा—शौनकादि ऋषियो! भगवान् श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षित्‌के इस प्रश्नका अभिनन्दन करते हुए भगवान्‌की समुद्र मन्थन लीलाका वर्णन आरम्भ किया ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जिस समयकी यह बात है, उस समय असुरोंने अपने तीखे शस्त्रोंसे देवताओंको पराजित कर दिया था। उस युद्धमें बहुतोंके तो प्राणोंपर ही बन आयी, वे रणभूमिमें गिरकर फिर उठ न सके। इसका कारण था। दुर्वासाके शापसे तीनों लोक और स्वयं इन्द्र भी श्रीहीन हो गये थे। यहाँतक कि यज्ञ यागादि धर्म कर्मोंका भी लोप हो गया था। यह सब दुर्दशा देखकर इन्द्र, वरुण आदि देवताओंने आपसमें बहुत कुछ सोचा विचारा, परन्तु अपने विचारोंसे वे किसी निश्चयपर



नहीं पहुँच सके। तब वे सब-के सब सुमेरुके शिखरपर स्थित ब्रह्माजीकी सभामें गये और वहाँ उन लोगोंने बड़ी नम्रतासे

मात्र ही है। क्योंकि भेद तो वास्तवमें है नहीं। इस प्रकार सबकी एकताका विचार 'भावाद्वैत' है। युधिष्ठिर! मन, वाणी और शरीरसे होनेवाले सब कर्म स्वयं परब्रह्म परमात्मामें ही हो रहे हैं, उसीमें अध्यस्त हैं—इस भावसे समस्त कर्मोंको समर्पित कर देना 'क्रियाद्वैत' है। स्त्री-पुत्रादि सगे-सम्बन्धी एवं संसारके अन्य समस्त प्राणियोंके तथा अपने स्वार्थ और भोग एक ही हैं, उनमें अपने और परायेका भेद नहीं है—इस प्रकारका विचार 'द्रव्याद्वैत' है॥ ६२-६५॥

युधिष्ठिर! जिस पुरुषके लिये जिस द्रव्यको जिस समय जिस उपायसे जिससे ग्रहण करना शास्त्राज्ञाके विरुद्ध न हो, उसे उसीसे अपने सब कार्य सम्पन्न करने चाहिये; आपत्तिकाल-को छोड़कर इससे अन्यथा नहीं करना चाहिये। महाराज! भगवान्‌की भक्ति करनेवाला पुरुष घरमें रहते हुए भी वेदमें कहे हुए इन कर्मोंके तथा अन्यान्य स्वकर्मोंके द्वारा वैसे ही श्रीकृष्णकी गतिको प्राप्त करता है, जैसे युधिष्ठिर! तुम अपने स्वामी भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा और सहायतासे बड़ी-बड़ी कठिन विपत्तियोंसे पार हो गये हो और उन्हींके चरणकमलोंकी सेवासे समस्त भूमण्डलको जीतकर तुमने बड़े-बड़े राजसूय आदि यज्ञ किये हैं॥ ६६-६८॥

पूर्वजन्ममें इसके पहलेके महाकल्पमें मैं एक गन्धर्व था। मेरा नाम था उपबर्हण और गन्धर्वोंमें मेरा बड़ा सम्मान था। मेरी सुन्दरता, सुकुमारता और मधुरता अपूर्व थी। मेरे शरीरमेंसे सुगन्धि निकला करती और देखनेमें मैं बहुत अच्छा लगता। स्त्रियाँ मुझसे बहुत प्रेम करतीं और मैं सदा प्रमादमें ही रहता। मैं अत्यन्त विलासी था। एक बार देवताओंके यहाँ ज्ञानसत्र हुआ। उसमें बड़े-बड़े संत आये थे। भगवान्‌की लीलाका गायन करनेके लिये उन लोगोंने गन्धर्व और अप्सराओंको बुलाया। मैं जानता था कि वह संतोंका समाज है और वहाँ भगवान्‌की लीलाका ही गायन होता है। फिर भी मैं स्त्रियोंके साथ लौकिक गीतोंका गायन करता हुआ उन्मत्तकी तरह वहाँ जा पहुँचा। देवताओंने देखा कि यह तो हमलोगोंका अनादर कर रहा है। उन्होंने अपनी शक्तिसे मुझे शाप दे दिया कि 'तुमने हमलोगोंकी अवहेलना की है, इसलिये तुम्हारी सारी सौन्दर्य-सम्पत्ति नष्ट हो जाय और तुम शीघ्र ही शूद्र हो जाओ।' उनके शापसे मैं दासीका पुत्र हुआ। किन्तु उस शूद्र जीवनमें किये हुए महात्माओंके सत्सङ्ग और सेवा-शुश्रूषाके प्रभावसे मैं दूसरे जन्ममें ब्रह्माजीका पुत्र हुआ। संतोंकी अवहेलना और सेवाका यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। संत-सेवासे ही भगवान् प्रसन्न होते हैं। मैंने तुम्हें गृहस्थोंके पापनाशक धर्म बतला दिये। इस धर्मके आचरणसे गृहस्थ भी अनायास ही संन्यासियोंको मिलनेवाला परमपद प्राप्त कर लेता है॥ ६९-७४॥

युधिष्ठिर! इस मनुष्यलोकमें तुमलोगोंके भाग्य अत्यन्त प्रशंसनीय हैं। क्योंकि तुम्हारे घरमें साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मनुष्यका रूप धारण करके गुप्तरूपसे निवास करते हैं। इसीसे सारे संसारको पवित्र कर देनेवाले ऋषि-मुनि बार-बार उनका दर्शन करनेके लिये चारों ओरसे तुम्हारे पास आया करते हैं। बड़े-बड़े महापुरुष निरन्तर जिनको ढूँढते रहते हैं, जो मायाके लेशसे रहित परम शान्त परमानन्दानुभवस्वरूप परब्रह्म परमात्मा हैं—वे ही तुम्हारे प्रिय, हितैषी, ममेरे भाई, पूज्य, आज्ञाकारी, गुरु और स्वयं आत्मा श्रीकृष्ण हैं। शङ्कर-ब्रह्मा आदि भी अपनी सारी बुद्धि लगाकर 'वे यह हैं'—इस रूपमें उनका वर्णन नहीं कर सके। फिर हम तो क्या कर सकते हैं। हम तो मौन, भक्ति और संयमके द्वारा ही उनकी पूजा करते हैं। कृपया हमारी यह पूजा स्वीकार करके भक्त-वत्सल भगवान् हमपर प्रसन्न हों॥ ७५-७७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! देवर्षि नारदका यह प्रवचन सुनकर राजा युधिष्ठिरको अत्यन्त आनन्द हुआ। उन्होंने प्रेम-विह्वल होकर देवर्षि नारद और भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की। देवर्षि नारद भगवान् श्रीकृष्ण और राजा युधिष्ठिरसे विदा लेकर और उनके द्वारा सत्कार पाकर चले गये। भगवान् श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं, यह सुनकर युधिष्ठिरके आश्चर्यकी सीमा न रही। परीक्षित्! इस प्रकार मैंने तुम्हें दक्ष-पुत्रियोंके वंशोंका अलग-अलग वर्णन सुनाया। उन्हींके वंशमें देवता, असुर, मनुष्य आदि और सम्पूर्ण चराचरकी सृष्टि हुई है॥ ७८-८०॥

सप्तम स्कन्ध समाप्त



सब कुछ कर सकते थे, फिर भी समुद्र-मन्थन आदि लीलाओंके द्वारा विहार करनेकी इच्छासे वे देवताओंको सम्बोधित करके इस प्रकार कहने लगे ॥ १६-१७ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्मा, शङ्कर और देवताओ! तुमलोग सावधान होकर मेरी सलाह सुनो। तुम्हारे कल्याणका यही उपाय है। इस समय असुरोंपर कालकी कृपा है। इसलिये जबतक तुम्हारे अभ्युदय और उन्नतिका समय नहीं आता, तबतक दैत्य और दानवोंके पास जाकर उनसे सन्धि कर लो। देवताओ! कोई बड़ा कार्य करना हो तो शत्रुओंसे भी मेल मिलाप कर लेना चाहिये। यह बात अवश्य है कि काम बन जानेपर उनके साथ साँप और चूहेवाला बर्ताव कर सकते हैं।* तुम लोग बिना विलम्बके अमृत निकालनेका प्रयत्न करो। उसे पी लेनेपर मरनेवाला प्राणी भी अमर हो जाता है। पहले क्षीरसागरमें सब प्रकारके घास, तिनके, लताएँ और ओषधियाँ डाल दो। फिर तुमलोग मन्दराचलकी मथानी और वासुकि नागकी नेती बनाकर मेरी सहायतासे समुद्रका मन्थन करो। अब आलस्य और प्रमादका समय नहीं है। देवताओ! विश्वास रक्खो—दैत्योंको तो मिलेगा केवल श्रम और क्लेश, परन्तु फल मिलेगा तुम्हीं लोगोंको। देवताओ! असुरलोग तुमसे जो जो चाहें, सब स्वीकार कर लो। शान्तिसे सब काम बन जाते हैं, क्रोध करनेसे कुछ नहीं होता। पहले समुद्रसे कालकूट विष निकलेगा, उससे डरना नहीं। और किसी भी वस्तुके लिये कभी भी लोभ न करना। पहले तो किसी वस्तुकी कामना ही नहीं करनी चाहिये। परन्तु यदि कामना हो और वह पूरी न हो, तो क्रोध तो करना ही नहीं चाहिये ॥ १८-२५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! देवताओंको यह आदेश देकर पुरुषोत्तम भगवान् उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये। वे सर्वशक्तिमान् एवं परम स्वतन्त्र जो ठहरे! उनकी लीलाका रहस्य कौन समझे! उनके चले जानेपर ब्रह्मा और शङ्करने फिरसे भगवान्‌को नमस्कार किया और अपने-अपने लोकोंको चले गये, तदनन्तर इन्द्रादि देवता राजा बलिके पास गये। देवताओंको बिना अस्त्र शस्त्रके भी सामने आते देख दैत्यसेनापतियोंके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने देवताओंको पकड़ लेना चाहा। परन्तु दैत्यराज बलि सन्धि और विरोधके अवसरको जाननेवाले एवं पवित्र कीर्तिसे सम्पन्न थे। उन्होंने दैत्योंको वैसा करनेसे रोक दिया। इसके बाद देवतालोग बलिके पास पहुँचे। बलिने तीनों लोकोंको जीत लिया था। वे समस्त सम्पत्तियोंसे सेवित एवं असुर-सेनापतियोंसे सुरक्षित होकर अपने राजसिंहासनपर बैठे हुए



थे। बुद्धिमान् इन्द्रने बड़ी मधुर वाणीसे समझाते हुए राजा बलिसे वे सब बातें कहीं, जिनकी शिक्षा स्वयं भगवान्‌ने उन्हें दी थी। वह बात दैत्यराज बलिको जँच गयी। वहाँ बैठे हुए दूसरे सेनापति शम्बर, अरिष्टनेमि और त्रिपुरनिवासी असुरोंको भी यह बात बहुत अच्छी लगी। तब देवता और असुरोंने आपसमें एक दूसरेकी बात मानकर सन्धि कर ली, और परीक्षित्! वे सब मिलकर अमृतमन्थनके लिये उद्योग करने लगे। इसके बाद उन्होंने अपनी शक्तिसे मन्दराचलको उखाड़ लिया और ललकारते तथा गरजते हुए उसे समुद्रतटकी ओर ले चले। उनकी भुजाएँ परिघके समान थीं, शरीरमें शक्ति थी और अपने-अपने बलका घमंड तो था ही। परन्तु एक तो वह मन्दरपर्वत ही बहुत भारी था और दूसरे उसे ले जाना भी बहुत दूर था। इससे इन्द्र, बलि आदि सब-के-सब हार गये। जब वे किसी प्रकार भी मन्दराचलको आगे

* किसी मदारीकी पिटारीमें साँप तो पहलेसे था ही, संयोगवश उसमें एक चूहा भी जा घुसा। चूहेके भयभीत होनेपर साँपने उसे प्रेमसे समझाया कि तुम पिटारीमें छेद कर दो, फिर हम दोनों भाग निकलेंगे। पहले तो साँपकी इस बातपर चूहेको विश्वास न हुआ, परन्तु पीछे उसने पिटारीमें छेद कर दिया। इस प्रकार काम बन जानेपर साँप चूहेको निगल गया और पिटारीसे निकल भागा!

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत

अष्टम स्कन्ध

पहला अध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

मन्वन्तरोंका वर्णन

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—गुरुदेव ! आपने स्वायम्भुव मनुके वंशका विस्तारसे वर्णन किया। इसी वंशमें उनकी कन्याओंके द्वारा मरीचि आदि प्रजापतियोंने अपनी वंश-परम्परा चलायी थी। अब आप कृपा करके मुझे दूसरे मनुओंका वर्णन सुनाइये। भगवान्‌की महिमा अनन्त है। जिस-जिस मन्वन्तरमें जो-जो अवतार ग्रहण करके भगवान्‌ने जैसी-जैसी लीलाएँ की हैं और महात्मालोगोंने जिनका वर्णन किया है, उन्हें आप अवश्य सुनाइये। हम बड़ी श्रद्धासे उनका श्रवण करना चाहते हैं। भगवन् ! विश्वभावन भगवान् बीते हुए मन्वन्तरोंमें जो-जो लीलाएँ कर चुके हैं, वर्तमान मन्वन्तरमें जो कर रहे हैं और आगामी मन्वन्तरोंमें जो कुछ करेंगे, वह सब हमें सुनाइये ॥ १—३ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—इस कल्पमें स्वायम्भुव आदि छः मन्वन्तर बीत चुके हैं। उनमेंसे पहले मन्वन्तरका तो मैंने वर्णन कर दिया, उसीमें देवता आदिकी उत्पत्ति हुई थी। स्वायम्भुव मनुकी पुत्री आकूतिसे यज्ञपुरुषके रूपमें धर्मका उपदेश करनेके लिये तथा देवहूतिसे कपिलके रूपमें ज्ञानका उपदेश करनेके लिये भगवान्‌ने उनके पुत्ररूपसे अवतार ग्रहण किया था। परीक्षित् ! भगवान् कपिलका वर्णन तो मैं पहले ही (तीसरे स्कन्धमें) कर चुका हूँ। अब भगवान् यज्ञपुरुषने आकूतिके गर्भसे अवतार लेकर जो कुछ किया, उसका वर्णन करता हूँ ॥ ४—६ ॥

परीक्षित् ! भगवान् स्वायम्भुव मनुने समस्त कामनाओं और भोगोंसे विरक्त होकर राज्य छोड़ दिया। वे अपनी पत्नी शतरूपाके साथ तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। परीक्षित् ! उन्होंने सुनन्दा नदीके किनारे पृथ्वीपर एक पैरसे खड़े रहकर सौ वर्षतक घोर तपस्या की। तपस्या करते समय वे प्रतिदिन इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति करते थे—॥ ७-८॥

मनुजी कहा करते थे—जिनकी चेतनताके स्पर्शमात्रसे यह विश्व चेतन हो जाता है किन्तु यह विश्व जिन्हें चेतनाका दान नहीं कर सकता—स्पर्शतक नहीं कर सकता, जो इसके सो जानेपर अर्थात् प्रलयमें भी जागते रहते हैं; जिनको यह नहीं जान सकता परन्तु जो इसे जानते हैं—वही परमात्मा हैं। यह सम्पूर्ण विश्व और इस विश्वमें रहनेवाले समस्त चर-अचर प्राणी—सब उन परमात्मासे ही ओतप्रोत हैं, भरे-पूरे हैं। इसलिये संसारके किसी भी पदार्थमें मोह न करके उसका त्याग करते हुए ही जीवन-निर्वाहमात्रके लिये उपभोग करना चाहिये। तृष्णाका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। भला, ये संसारकी सम्पत्तियाँ किसकी हैं ? भगवान् सबके साक्षी हैं। उन्हें बुद्धि-वृत्तियाँ या नेत्र आदि इन्द्रियाँ नहीं देख सकतीं। परन्तु उनकी ज्ञान-शक्ति अखण्ड है। समस्त प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले उन्हीं स्वयम्प्रकाश असङ्ग परमात्माकी शरण ग्रहण करो। जिनका न आदि है और न तो अन्त, फिर मध्य तो होगा ही कहाँसे ? जिनका न कोई अपना है और न पराया, फिर बाहर-भीतरकी तो कल्पना ही क्या हो सकती है ? वे विश्वके आदि, अन्त, मध्य, अपने-पराये, बाहर और भीतर—सब कुछ हैं। उन्हींकी सत्तासे विश्वकी सत्ता है। वही अनन्त वास्तविक सत्य परब्रह्म हैं। वही परमात्मा विश्वरूप हैं। उनके अनन्त नाम हैं और अनन्त शक्तियाँ हैं। वे सत्य, स्वयम्प्रकाश, अजन्मा और सनातन हैं। वे अपनी मायाशक्तिके द्वारा ही विश्वसृष्टिके जन्म आदिको स्वीकार कर लेते हैं और अपनी विद्याशक्तिके

जीव क्षुब्ध हो गये। नागराज वासुकिके हजारों कठोर नेत्र, मुख और श्वासोंसे विषकी आग निकलने लगी। उसके धूएँसे पौलोम, कालेय, बलि, इल्वल आदि असुर निस्तेज हो गये। उस समय वे ऐसे जान पड़ते थे मानो दावानलसे झुलसे हुए साखूके पेड़ खड़े हों। देवता भी उससे न बच सके। वासुकिके श्वासकी लपटोंसे उनका भी तेज फीका पड़ गया। वस्त्र, माला, कवच एवं मुख धूमिल हो गये। उनकी यह दशा देखकर भगवान्की प्रेरणासे बादल देवताओंके ऊपर वर्षा करने लगे एवं वायु समुद्रकी तरङ्गोंका स्पर्श करके शीतलता और सुगन्धिका सञ्चार करने लगी ॥ ६–१५ ॥

इस प्रकार देवता और असुरोंके समुद्र मन्थन करनेपर भी जब अमृत न निकला, तब स्वयं अजितभगवान् समुद्र मन्थन करने लगे। उस समय उनकी झाँकी अनूठी थी। मेघके समान साँवले शरीरपर सुनहला पीताम्बर, कानोंमें बिजलीके समान चमकते हुए कुण्डल, सिरपर लहराते हुए घुँघराले बाल, नेत्रोंमें लाल-लाल रेखाएँ और गलेमें वनमाला सुशोभित हो रही थी। सम्पूर्ण जगत्को अभयदान करनेवाले अपने विश्वविजयी भुजदण्डोंसे वासुकि नागको पकड़कर जब गिरिवरधारी भगवान् मन्दराचलकी मथानीसे समुद्र मन्थन करने लगे। उस समय वे दूसरे पर्वतराजके समान बड़े ही सुन्दर लग रहे थे। जब अजितभगवान्ने इस प्रकार समुद्र-मन्थन किया, तब समुद्रमें बड़ी खलबली मच गयी। मछली, मगर, साँप और कछुए भयभीत होकर ऊपर आ गये और इधर-उधर भागने लगे। तिमि तिमिङ्गिल आदि मच्छ, समुद्री हाथी और ग्राह व्याकुल हो गये। उसी समय पहले-पहल हालाहल नामका अत्यन्त उग्र विष निकला। वह अत्यन्त उग्र विष दिशा विदिशा में, ऊपर-नीचे सर्वत्र उड़ने और फैलने लगा। इस असह्य विषसे बचनेका कोई उपाय भी तो न था। भयभीत होकर सम्पूर्ण प्रजा और प्रजापति किसीके द्वारा त्राण न मिलनेपर भगवान् सदाशिवकी शरणमें गये। भगवान् शङ्कर सतीजीके साथ कैलास पर्वतपर विराजमान थे। बड़े-बड़े ऋषि मुनि उनकी सेवा कर रहे थे। वे वहाँ तीनों लोकोंके अभ्युदय और मोक्षके लिये तपस्या कर रहे थे। प्रजापतियोंने उनका दर्शन करके उनकी स्तुति करते हुए उन्हें प्रणाम किया ॥ १६–२० ॥

प्रजापतियोंने भगवान् शंकरकी स्तुति की—देवताओंके आराध्यदेव महादेव! आप समस्त प्राणियोंके आत्मा और उनके जीवनदाता हैं। हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। त्रिलोकीको भस्म करनेवाले इस उग्र विषसे आप हमारी रक्षा कीजिये। सारे जगत्को बाँधने और मुक्त करनेमें एकमात्र आप ही समर्थ हैं। इसलिये विवेकी पुरुष आपकी ही आराधना करते हैं। क्योंकि आप शरणागतकी पीड़ा नष्ट करनेवाले एवं जगद्गुरु हैं। प्रभो! अपनी गुणमयी शक्तिसे इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय करनेके लिये आप अनन्त, एकरस होनेपर भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि नाम धारण कर लेते हैं। आप स्वयम्प्रकाश हैं। इसका कारण यह है कि आप परम रहस्यमय ब्रह्मतत्त्व हैं। जितने भी देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सत् अथवा असत् चराचर प्राणी हैं—उनको जीवन दान देनेवाले आप ही हैं। आपके अतिरिक्त सृष्टि भी और कुछ नहीं है। क्योंकि आप आत्मा हैं। अनेक शक्तियोंके द्वारा आप ही जगत्रूपमें भी प्रतीत हो रहे हैं। क्योंकि आप ईश्वर हैं, सर्वसमर्थ हैं। समस्त वेद आपहीसे प्रकट हुए हैं। इसलिये आप समस्त ज्ञानोंके मूलस्रोत स्वतःसिद्ध ज्ञान हैं। आप ही जगत्के आदिकारण महत्तत्त्व और त्रिविध अहङ्कार हैं। एवं आप ही प्राण, इन्द्रिय, पञ्च महाभूत तथा शब्दादि विषयोंके भिन्न भिन्न स्वभाव और उनके मूल कारण हैं। आप स्वयं ही प्राणियोंकी वृद्धि और ह्रास करनेवाले काल हैं, उनका कल्याण करनेवाले यज्ञ हैं एवं सत्य और मधुर वाणी हैं। धर्म भी आपका ही स्वरूप है। आप ही 'अ, उ, म्' इन तीन अक्षरोंसे युक्त प्रणव हैं अथवा त्रिगुणात्मिका प्रकृति हैं—ऐसा वेदवादी महात्मा कहते हैं। सर्वदेवस्वरूप अग्नि आपका मुख है। तीनों लोकोंके अभ्युदय करनेवाले शङ्कर! यह पृथ्वी आपका चरणकमल है। आप अखिल देवस्वरूप हैं। यह काल आपकी गति है, दिशाएँ कान हैं और वरुण रसनेन्द्रिय हैं। आकाश नाभि है, वायु श्वास है, सूर्य नेत्र हैं और जल वीर्य है। आपका अहङ्कार नीचे-ऊँचे सभी जीवोंका आश्रय है। चन्द्रमा मन है और प्रभो! स्वर्ग आपका सिर है। वेदस्वरूप भगवन्! समुद्र आपकी कोख हैं। पर्वत हड्डियाँ हैं। सब प्रकारकी ओषधियाँ और घास आपके रोम हैं। गायत्री आदि छन्द आपकी सातों धातुएँ हैं। और सभी प्रकारके धर्म आपके हृदय हैं। स्वामिन्! सद्योजातादि पाँच उपनिषद् ही आपके तत्पुरुष, अघोर, सद्योजात, वामदेव और ईशान नामक पाँच मुख हैं। उन्हींके पदच्छेदसे अड़तीस कलात्मक मन्त्र निकले हैं। आप जब समस्त प्रपञ्चसे उपरत होकर अपने स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं, तब उसी स्थितिका नाम होता है 'शिव'। वास्तवमें वही स्वयम्प्रकाश

को न तो देवता जानते हैं और न ऋषि ही; फिर दूसरा ऐसा कौन प्राणी है, जो वहाँतक जा सके और उसका वर्णन कर सके ? वे प्रभु मेरी रक्षा करें। जिनके परम मङ्गलमय स्वरूपका दर्शन करनेके लिये महात्मागण संसारकी समस्त आसक्तियोंका परित्याग कर देते हैं और वनमें जाकर अखण्ड-भावसे ब्रह्मचर्य आदि व्रतोंका पालन करते हैं तथा अपने आत्माको सबके हृदयमें विराजमान देखकर स्वाभाविक ही सबकी भलाई करते हैं—वही मुनियोंके सर्वस्व भगवान् मेरे सहायक हैं; वे ही मेरी गति हैं। न उनके जन्म-कर्म हैं और न तो नाम-रूप; फिर उनके सम्बन्धमें गुण और दोषकी तो कल्पना ही कैसे की जा सकती है ? फिर भी विश्वकी सृष्टि और संहार करनेके लिये समय-समयपर वे उन्हें अपनी मायासे स्वीकार करते हैं। उन्हीं सर्वशक्तिमान् सर्वैश्वर्यमय परब्रह्म परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। वे अरूप होनेपर भी बहुरूप हैं। उनके कर्म अत्यन्त आश्चर्यमय हैं। मैं उनके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। स्वयम्प्रकाश, सबके साक्षी परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। मन, वाणी और चित्त जिनका स्पर्श भी नहीं कर सकते, जो इनसे अत्यन्त दूर हैं—उन परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २—१०॥

विवेकी पुरुष कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पणके द्वारा अपना अन्तःकरण शुद्ध करके जिन्हें प्राप्त करते हैं, तथा जो स्वयं तो नित्यमुक्त, परमानन्द एवं ज्ञानस्वरूप हैं ही, दूसरोंको कैवल्य-मुक्ति देनेकी सामर्थ्य भी केवल उन्हींमें है—उन प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंका धर्म स्वीकार करके क्रमशः शान्त, घोर और मूढ अवस्था भी धारण करते हैं, किन्तु फिर भी सर्वत्र समभावसे स्थित रहते हैं—किसी प्रकारकी ऊँचाई-निचाई अथवा अल्पता-महत्ता आदि विशेषण उनका स्पर्श नहीं करते। ऐसी स्थितिमें भी साम्यावस्थाको प्राप्त प्रकृतिकी अपेक्षा उनमें यह महान् विलक्षणता है कि वे ज्ञानघन हैं। उनको मैं नमस्कार करता हूँ। आप सबके स्वामी, समस्त क्षेत्रोंके एकमात्र ज्ञाता एवं सर्वसाक्षी हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप स्वयं ही अपने कारण हैं। पुरुष और मूल प्रकृतिके रूपमें भी आप ही हैं। आपके चरणोंमें मेरे बार-बार नमस्कार हैं। आप समस्त इन्द्रिय और उनके विषयोंके द्रष्टा हैं, समस्त प्रतीतियोंके आधार हैं। अहङ्कार आदि छायारूप असत् वस्तुओंके द्वारा आपहीका अस्तित्व प्रकट होता है। समस्त वस्तुओंकी सत्ताके रूपमें भी केवल आप ही प्रकाशित हो रहे हैं। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। आप सबके मूल कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है। तथा कारण होनेपर भी आपमें विकार या परिणाम नहीं होता, इसीलिये आप अनोखे कारण हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जैसे समस्त नदी-झरने आदिका परम आश्रय समुद्र है, वैसे ही आप समस्त वेद और शास्त्रोंके परम तात्पर्य हैं। आप मोक्षस्वरूप हैं और समस्त संत आपहीकी शरण ग्रहण करते हैं; अतः आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जैसे यज्ञके काष्ठ अरणिमें अग्नि गुप्त रहती है, वैसे ही आपने अपने ज्ञानको गुणोंकी मायासे ढक रक्खा है। गुणोंमें क्षोभ होनेपर उनके द्वारा विविध प्रकारकी सृष्टि-रचनाका आप सङ्कल्प करते हैं। जो लोग कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पणके द्वारा आत्मतत्त्वकी भावना करके वेद-शास्त्रोंसे ऊपर उठ जाते हैं, उनके आत्माके रूपमें आप स्वयं ही प्रकाशित हो जाते हैं। आपके चरणोंमें मैं नमस्कार करता हूँ॥ ११—१६॥

जैसे कोई दयालु पुरुष फंदेमें पड़े हुए पशुका बन्धन काट दे, वैसे ही आप मेरे-जैसे शरणागतोंकी फाँसी काट देते हैं। आप नित्यमुक्त हैं, परम करुणामय हैं और भक्तोंका कल्याण करनेमें आप कभी आलस्य नहीं करते। आपके चरणोंमें मेरा नमस्कार है। समस्त प्राणियोंके हृदयमें अपने अंशके द्वारा अन्तरात्माके रूपमें आप उपलब्ध होते रहते हैं। आप सर्वैश्वर्यपूर्ण एवं अनन्त हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जो लोग शरीर, पुत्र, गुरुजन, गृह, सम्पत्ति और स्वजनोंमें आसक्त हैं—उन्हें आपकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। क्योंकि आप स्वयं गुणोंकी आसक्तिसे रहित हैं। जीवन्मुक्त पुरुष अपने हृदयमें आपका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। उन सर्वैश्वर्यपूर्ण ज्ञानस्वरूप भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी कामनासे मनुष्य उन्हींका भजन करके अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेते हैं। इतना ही नहीं, वे उनको सभी प्रकारका सुख देते हैं और अपने-ही-जैसा अविनाशी पार्षद-शरीर भी देते हैं। वे ही परमदयालु प्रभु मेरा उद्धार करें। जिनके अनन्यप्रेमी भक्तजन उन्हींकी शरणमें रहते हुए उनसे किसी भी वस्तुकी—यहाँतक कि मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं करते, केवल उनकी परम दिव्य मङ्गलमय लीलाओंका गायन करते हुए आनन्दके समुद्रमें निमग्न रहते हैं; जो अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, अव्यक्त, इन्द्रियातीत और अत्यन्त सूक्ष्म हैं; जो अत्यन्त निकट रहनेपर भी बहुत दूर जान पड़ते हैं; जो आध्यात्मिक योग अर्थात्

शङ्करका विषपान



भगवान् शङ्कर उस तीक्ष्ण हलाहल विषको हथेलीपर उठाकर पी गये ।

पड़ गया, परन्तु वह तो प्रजाका कल्याण करनेवाले भगवान् शङ्करके लिये भूषणरूप हो गया। परोपकारी सज्जन प्रायः प्रजाका दुःख टालनेके लिये स्वयं दुःख झेला ही करते हैं। परन्तु यह दुःख नहीं है, यह तो सबके हृदयमें विराजमान भगवान्‌की परम आराधना है ॥४१—४४॥

देवाधिदेव भगवान् शङ्कर सबकी कामना पूर्ण करनेवाले हैं। उनका यह कल्याणकारी अद्भुत कर्म सुनकर सम्पूर्ण प्रजा, दक्षकन्या सती, ब्रह्माजी और स्वयं विष्णुभगवान् भी उनकी प्रशंसा करने लगे। जिस समय भगवान् शङ्कर विषपान कर रहे थे, उस समय उनके हाथसे थोड़ा-सा विष टपक पड़ा था। उसे बिच्छू, साँप तथा अन्य विषैले जीवों ने एवं विषैली ओषधियोंने ग्रहण कर लिया ॥४५-४६॥

आठवाँ अध्याय

समुद्रसे अमृतका प्रकट होना और भगवान्‌का मोहिनी अवतार ग्रहण करना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार जब भगवान् शङ्करने विष पी लिया, तब देवता और असुरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे फिर नये उत्साहसे समुद्र मथने लगे। तब समुद्रसे कामधेनु प्रकट हुई। वह अग्निहोत्रकी सामग्री उत्पन्न करनेवाली थी। इसलिये ब्रह्मलोकतक पहुँचानेवाले यज्ञके लिये उपयोगी पवित्र घी, दूध आदि प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मवादी ऋषियोंने उसे ग्रहण किया। उसके बाद उच्चैःश्रवा नामका घोड़ा निकला। वह चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णका था। बलिने उसे लेनेकी इच्छा प्रकट की। इन्द्रने उसे नहीं चाहा, क्योंकि भगवान्‌ने उन्हें पहलेसे ही सिखा रक्खा था। तदनन्तर ऐरावत नामका श्रेष्ठ हाथी निकला। उसके बड़े-बड़े चार दाँत थे, जो उज्ज्वलवर्ण कैलासकी शोभाको भी मात करते थे। तत्पश्चात् कौस्तुभ नामक पद्मरागमणि समुद्रसे निकली। उस मणिको अपने हृदयपर धारण करनेके लिये अजितभगवान्‌ने लेना चाहा। परीक्षित्! इसके बाद स्वर्गलोककी शोभा बढ़ानेवाला कल्पवृक्ष निकला। वह याचकोंकी इच्छाएँ उनकी इच्छित वस्तु देकर वैसे ही पूर्ण करता रहता है, जैसे पृथ्वीपर तुम सबकी इच्छाएँ पूर्ण करते हो। तत्पश्चात् अप्सराएँ प्रकट हुईं। वे सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित एवं गलेमें हैकल हुमेल पहने हुए थीं। वे अपनी मनोहर चाल और विलासभरी चितवनसे देवताओंको सुख पहुँचानेवाली हुईं। इसके बाद शोभाकी मूर्ति स्वयं भगवती लक्ष्मी देवी प्रकट हुईं। वे भगवान्‌की नित्यशक्ति हैं। उनकी बिजलीके समान चमकीली छटासे दिशाएँ जगमगा उठीं। उनके सौन्दर्य, औदार्य, यौवन, रूप-रंग और महिमासे सबका चित्त खिंच गया। देवता, असुर, मनुष्य—सभीने चाहा कि ये हमें मिल जायँ। स्वयं इन्द्र अपने हाथों उनके बैठनेके लिये बड़ा विचित्र आसन ले आये। श्रेष्ठ नदियोंने मूर्तिमान् होकर उनके अभिषेकके लिये सोनेके घड़ोंमें भरभरकर पवित्र जल ला दिया। पृथ्वीने अभिषेकके योग्य सब ओषधियाँ दीं। गौओंने पञ्चगव्य और वसन्त ऋतुने चैत्र-वैशाखमें होनेवाले सब फूल-फल उपस्थित कर दिये। इन सामग्रियोंसे ऋषियोंने विधिपूर्वक उनका अभिषेक सम्पन्न किया। गन्धर्वोंने मङ्गलमय संगीतकी तान छेड़ दी। नर्तकियाँ नाच-नाच कर गाने लगीं। बादल सदेह होकर मृदङ्ग, डमरू, ढोल, नगारे, नरसिंगे, शङ्ख, वेणु और वीणा बड़े जोरसे बजाने लगे। तब भगवती लक्ष्मीदेवी हाथमें कमल लेकर सिंहासनपर विराजमान हो गयीं। दिग्गजोंने जलसे भरे कलशोंसे उनको स्नान कराया। उस समय ब्राह्मणगण वेदमन्त्रोंका पाठ कर रहे थे। समुद्रने पीले रेशमी वस्त्र उनको पहननेके लिये दिये। वरुणने ऐसी वैजयन्ती माला समर्पित की, जिसकी मधुमय सुगन्धसे भौंरे मतवाले हो रहे थे। प्रजापति विश्वकर्माने भाँति-भाँतिके गहने, सरस्वतीने मोतियोंका हार, ब्रह्माजीने कमल और नागोंने दो कुण्डल समर्पित किये ॥ १—१६ ॥

इसके बाद लक्ष्मीजी ब्राह्मणोंके स्वस्त्ययन-पाठ कर चुकनेपर अपने हाथोंमें कमलकी माला लेकर उसे सर्वगुणसम्पन्न पुरुषके गलेमें डालने चलीं। मालाके आस-पास उसकी सुगन्धसे मतवाले हुए भौंरे गुंजार कर रहे थे। उस समय लक्ष्मीजीके मुखकी शोभा अवर्णनीय हो रही थी। सुन्दर कपोलोंपर कुण्डल लटक रहे थे। लक्ष्मीजी कुछ लज्जाके साथ मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं। उनकी कमर बहुत पतली थी। दोनों स्तन बिल्कुल सटे हुए और सुन्दर थे। उनपर चन्दन और केसरका लेप किया हुआ था। जब वे इधर-उधर चलती थीं तो उनके पायजेबसे बड़ी मधुर झनकार निकलती थी। ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई सोनेकी लता इधर-उधर घूम-फिर रही है। वे चाहती थीं कि मुझे कोई निर्दोष और समस्त उत्तम गुणोंसे नित्ययुक्त

सिर रखकर प्रणाम किया, इसके बाद वह भगवान्के सुयशका गायन करने लगा। वास्तवमें अविनाशी भगवान् ही सर्वश्रेष्ठ कीर्तिसे सम्पन्न हैं। उन्हींके गुण और मनोहर लीलाएँ गायन करने योग्य हैं। भगवान्के कृपापूर्ण स्पर्शसे उसके सारे पाप-ताप नष्ट हो गये। उसने भगवान्की परिक्रमा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया और सबके देखते-देखते अपने लोककी यात्रा की॥ १-५॥

गजेन्द्र भी भगवान्का स्पर्श प्राप्त होते ही अज्ञानके बन्धनसे मुक्त हो गया। उसे भगवान्का ही रूप प्राप्त हो गया। वह पीताम्बरधारी एवं चतुर्भुज बन गया। गजेन्द्र पूर्वजन्ममें द्रविड़ देशका पाण्ड्यवंशी राजा था। उसका नाम था इन्द्रद्युम्न। वह भगवान्का एक श्रेष्ठ उपासक एवं अत्यन्त यशस्वी था। एक बार राजा इन्द्रद्युम्न राजपाट छोड़कर मलयपर्वतपर रहने लगे थे। उन्होंने जटाएँ बढ़ा लीं, तपस्वीका वेष धारण कर लिया। एक दिन स्नानके बाद पूजाके समय मनको एकाग्र करके एवं मौनव्रती होकर वे सर्वशक्तिमान् भगवान्की आराधना कर रहे थे। उसी समय दैवयोगसे परमयशस्वी अगस्त्य मुनि अपनी शिष्यमण्डलीके साथ वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने देखा कि यह प्रजापालन और गृहस्थोचित अतिथिसेवा आदि धर्मका परित्याग करके



तपस्वियोंकी तरह एकान्तमें चुपचाप बैठकर उपासना कर रहा है, इसलिये वे राजा इन्द्रद्युम्नपर क्रोधित हो गये। उन्होंने राजाको यह शाप दिया—'इस राजाने गुरुजनोंसे शिक्षा नहीं ग्रहण की है, अभिमानवश परोपकारसे निवृत्त होकर मनमानी कर रहा है। ब्राह्मणोंका अपमान करनेवाला यह हाथीके समान जडबुद्धि है। इसलिये इसे वही घोर अज्ञानमयी हाथीकी योनि प्राप्त हो'॥ ६-१०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! शाप एवं वरदान देनेमें समर्थ अगस्त्य ऋषि इस प्रकार शाप देकर अपनी शिष्यमण्डलीके साथ वहाँसे चले गये। राजर्षि इन्द्रद्युम्नने यह समझकर सन्तोष किया कि यह मेरा प्रारब्ध ही था। इसके बाद आत्माकी विस्मृति करा देनेवाली हाथीकी योनि उन्हें प्राप्त हुई। परन्तु भगवान्की आराधनाका ऐसा प्रभाव है कि हाथी होनेपर भी उन्हें भगवान्की स्मृति हो ही गयी। भगवान् श्रीहरिने इस प्रकार गजेन्द्रका उद्धार करके उसे अपना पार्षद बना लिया। गन्धर्व, सिद्ध, देवता उनकी इस लीलाका गायन करने लगे और वे पार्षदरूप गजेन्द्रको साथ ले गरुड़पर सवार होकर अपने अलौकिक धामको चले गये। कुरुवंशशिरोमणि परीक्षित्! मैंने भगवान् श्रीकृष्णकी महिमा तथा गजेन्द्रके उद्धारकी कथा तुम्हें सुना दी। यह प्रसङ्ग सुननेवालोंके कलि-मल और दुःस्वप्नको मिटानेवाला एवं यश, उन्नति और स्वर्ग देनेवाला है; इसीसे कल्याणकामी द्विजगण दुःस्वप्न आदिकी शान्तिके लिये प्रातःकाल जगते ही पवित्र होकर इसका पाठ करते हैं। परीक्षित्! गजेन्द्रकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सर्वव्यापक एवं सर्वभूतस्वरूप श्रीहरि भगवान्ने सब लोगोंके सामने ही उसे यह बात कही थी॥ ११-१६॥

श्रीभगवान्ने कहा—जो लोग रातके पिछले पहरमें उठकर इन्द्रियनिग्रहपूर्वक एकाग्र चित्तसे मेरा, तेरा तथा इस सरोवर, पर्वत एवं कन्दरा, वन, बेंत, कीचक और बाँसके झुरमुट, यहाँके दिव्य वृक्ष तथा पर्वतशिखर, मेरे, ब्रह्माजी और शिवजीके निवासस्थान, मेरे प्यारे धाम क्षीरसागर, प्रकाशमय श्वेतद्वीप, श्रीवत्स, कौस्तुभ मणि, वनमाला, मेरी कौमोदकी गदा, सुदर्शन चक्र, पाञ्चजन्य शङ्ख, पक्षिराज गरुड़, मेरे सूक्ष्म कलास्वरूप शेषजी, मेरे आश्रयमें रहनेवाली लक्ष्मीदेवी, ब्रह्माजी, देवर्षि नारद, शङ्करजी तथा भक्तराज प्रह्लाद, मत्स्य, कच्छप, वराह आदि अवतारोंमें किये हुए मेरे अनन्त पुण्यमय चरित्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, ॐकार, सत्य, मूलप्रकृति, गौ, ब्राह्मण, अविनाशी सनातनधर्म, चन्द्रमा, कश्यप और धर्मकी पत्नी दक्षकन्याएँ, गङ्गा, सरस्वती, अलकनन्दा, यमुना, ऐरावत हाथी, भक्तशिरोमणि ध्रुव, सात ब्रह्मर्षि और पवित्रकीर्ति युधिष्ठिरका तथा जनक एवं नल

पड़ गया, परन्तु वह तो प्रजाका कल्याण करनेवाले भगवान् शङ्करके लिये भूषणरूप हो गया। परोपकारी सज्जन प्राय प्रजाका दु ख टालनेके लिये स्वय दु ख झेला ही करते हैं। परन्तु यह दु ख नहीं है, यह तो सबके हृदयमें विराजमान भगवान्‌की परम आराधना है ॥४१–४४॥

देवाधिदेव भगवान् शङ्कर सबकी कामना पूर्ण करनेवाले हैं। उनका यह कल्याणकारी अद्भुत कर्म सुनकर सम्पूर्ण प्रजा, दक्षकन्या सती, ब्रह्माजी और स्वय विष्णुभगवान् भी उनकी प्रशसा करने लगे। जिस समय भगवान् शङ्कर विषपान कर रहे थे, उस समय उनके हाथसे थोड़ा-सा विष टपक पड़ा था। उसे बिच्छू, साँप तथा अन्य विषैले जीवोंने एव विषैली ओषधियोंने ग्रहण कर लिया ॥४५ ४६॥

आठवाँ अध्याय

समुद्रसे अमृतका प्रकट होना और भगवान्‌का मोहिनी अवतार ग्रहण करना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार जब भगवान् शङ्करने विष पी लिया, तब देवता और असुरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे फिर नये उत्साहसे समुद्र मथने लगे। तब समुद्रसे कामधेनु प्रकट हुई। वह अग्निहोत्रकी सामग्री उत्पन्न करनेवाली थी। इसलिये ब्रह्मलोकतक पहुँचानेवाले यज्ञके लिये उपयोगी पवित्र घी, दूध आदि प्राप्त करनेके लिये ब्रह्मवादी ऋषियोंने उसे ग्रहण किया। उसके बाद उच्चै श्रवा नामका घोड़ा निकला। वह चन्द्रमाके समान श्वेतवर्णका था। बलिने उसे लेनेकी इच्छा प्रकट की। इन्द्रने उसे नहीं चाहा, क्योंकि भगवान्‌ने उन्हें पहलेसे ही सिखा रक्खा था। तदनन्तर ऐरावत नामका श्रेष्ठ हाथी निकला। उसके बड़े-बड़े चार दाँत थे, जो उज्ज्वलवर्ण कैलासकी शोभाको भी मात करते थे। तत्पश्चात् कौस्तुभ नामक पद्मरागमणि समुद्रसे निकली। उस मणिको अपने हृदयपर धारण करनेके लिये अजितभगवान्‌ने लेना चाहा। परीक्षित्! इसके बाद स्वर्गलोककी शोभा बढानेवाला कल्पवृक्ष निकला। वह याचकोंकी इच्छाएँ उनकी इच्छित वस्तु देकर वैसे ही पूर्ण करता रहता है, जैसे पृथ्वीपर तुम सबकी इच्छाएँ पूर्ण करते हो। तत्पश्चात् अप्सराएँ प्रकट हुईं। वे सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित एव गलेमें हैकल हुमेल पहने हुए थीं। वे अपनी मनोहर चाल और विलासभरी चितवनसे देवताओंको सुख पहुँचानेवाली हुईं। इसके बाद शोभाकी मूर्ति स्वय भगवती लक्ष्मी देवी प्रकट हुईं। वे भगवान्‌की नित्यशक्ति हैं। उनकी बिजलीके समान चमकीली छटासे दिशाएँ जगमगा उठीं। उनके सौन्दर्य, औदार्य, यौवन, रूप-रग और महिमासे सबका चित्त खिंच गया। देवता, असुर, मनुष्य—सभीने चाहा कि ये हमें मिल जायँ। स्वय इन्द्र अपने हाथों उनके बैठनेके लिये बड़ा विचित्र आसन ले आये। श्रेष्ठ नदियोंने मूर्तिमान् होकर उनके अभिषेकके लिये सोनेके घड़ोंमें भर भरकर पवित्र जल ला दिया। पृथ्वीने अभिषेकके योग्य सब ओषधियाँ दीं। गौओंने पञ्चगव्य और वसन्त ऋतुने चैत्र-वैशाखमें होनेवाले सब फूल फल उपस्थित कर दिये। इन सामग्रियोंसे ऋषियोंने विधिपूर्वक उनका अभिषेक सम्पन्न किया। गन्धर्वोंने मङ्गलमय सगीतकी तान छेड़ दी। नर्तकियाँ नाच-नाच कर गाने लगीं। बादल सदेह होकर मृदङ्ग, डमरू, ढोल, नगारे, नरसिंगे, शङ्ख, वेणु और वीणा बड़े जोरसे बजाने लगे। तब भगवती लक्ष्मीदेवी हाथमें कमल लेकर सिंहासनपर विराजमान हो गयीं। दिग्गजोंने जलसे भरे कलशोंसे उनको स्नान कराया। उस समय ब्राह्मणगण वेदमन्त्रोंका पाठ कर रहे थे। समुद्रने पीले रेशमी वस्त्र उनको पहननेके लिये दिये। वरुणने ऐसी वैजयन्ती माला समर्पित की, जिसकी मधुमय सुगन्धसे भौंरे मतवाले हो रहे थे। प्रजापति विश्वकर्माने भाँति भाँतिके गहने, सरस्वतीने मोतियोंका हार, ब्रह्माजीने कमल और नागोंने दो कुण्डल समर्पित किये ॥ १–१६ ॥

इसके बाद लक्ष्मीजी ब्राह्मणोंके स्वस्त्ययन पाठ कर चुकनेपर अपने हाथोंमें कमलकी माला लेकर उसे सर्वगुणसम्पन्न पुरुषके गलेमें डालने चलीं। मालाके आस-पास उसकी सुगन्धसे मतवाले हुए भौंरे गुजार कर रहे थे। उस समय लक्ष्मीजीके मुखकी शोभा अवर्णनीय हो रही थी। सुन्दर कपोलोंपर कुण्डल लटक रहे थे। लक्ष्मीजी कुछ लज्जाके साथ मन्द मन्द मुसकरा रही थीं। उनकी कमर बहुत पतली थी। दोनों स्तन बिल्कुल सटे हुए और सुन्दर थे। उनपर चन्दन और केसरका लेप किया हुआ था। जब वे इधर उधर चलती थीं तो उनके पायजेबसे बड़ी मधुर झनकार निकलती थी। ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई सोनेकी लता इधर-उधर घूम फिर रही है। वे चाहती थीं कि मुझे कोई निर्दोष और समस्त उत्तम गुणोंसे नित्ययुक्त

ब्रह्माजीकी सेवामें अपनी परिस्थितिका विस्तृत विवरण उपस्थित किया। ब्रह्माजीने स्वयं देखा कि इन्द्र, वायु आदि देवता श्रीहीन एवं शक्तिहीन हो गये हैं। लोगोंकी परिस्थिति बड़ी विकट, सङ्कटग्रस्त हो गयी है। और असुर इसके विपरीत फल-फूल रहे हैं। समर्थ ब्रह्माजीने अपना मन एकाग्र करके परमपुरुष भगवान्‌का स्मरण किया; फिर थोड़ी देर रुककर भगवन्मय ब्रह्माजीने प्रफुल्लित मुखसे देवताओंको सम्बोधित करते हुए कहा—'देवताओ! मैं, शङ्करजी, तुमलोग, तथा असुर, दैत्य, मनुष्य, पशु-पक्षी, वृक्ष और स्वेदज आदि समस्त प्राणी जिनके विराट्‌रूपके एक अत्यन्त स्वल्पाति-स्वल्प अंशसे रचे गये हैं—हमलोग उन अविनाशी प्रभुकी ही शरण ग्रहण करें। यद्यपि उनकी दृष्टिमें न कोई वधका पात्र है और न रक्षाका, उनके लिये न तो कोई उपेक्षणीय है न कोई आदरका पात्र ही है—फिर भी सृष्टि, स्थिति और प्रलयके लिये समय-समयपर वे रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणको स्वीकार किया करते हैं। उन्होंने इस समय प्राणियोंके कल्याणके लिये सत्त्वगुणको स्वीकार कर रक्खा है। इसलिये यह जगत्‌की स्थिति और रक्षाका अवसर है। अतः हम सब उन्हीं जगद्‌गुरु परमात्माकी शरण ग्रहण करते हैं। वे देवताओंके प्रिय हैं और देवता उनके प्रिय। इसलिये हम निजजनोंका वे अवश्य ही कल्याण करेंगे॥ १५—२३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! देवताओंसे यह कहकर ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर भगवान् अजितके निजधाम वैकुण्ठमें गये। वह धाम तमोमयी प्रकृतिसे परे है। इन लोगोंने भगवान्‌के स्वरूप और धामके सम्बन्धमें पहलेहीसे बहुत कुछ सुन रक्खा था, परन्तु वहाँ जानेपर उन लोगोंको कुछ दिखायी न पड़ा। इसलिये वहाँ जाकर ब्रह्माजी एकाग्र मनसे वेदवाणीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति करने लगे॥ २४-२५॥

ब्रह्माजी बोले—भगवन्! आप निर्विकार, सत्य, अनन्त और आदिपुरुष हैं। सबके हृदयमें अन्तर्यामी-रूपसे विराजमान हैं। आपमें किसी प्रकारका अंश सम्भव नहीं है। तर्क और अनुमानके द्वारा आपका स्वरूप नहीं जाना जा सकता। मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ आप पहलेहीसे विद्यमान रहते हैं। वाणी आपका निरूपण नहीं कर सकती। आप समस्त देवताओंके आराधनीय और स्वयम्प्रकाश हैं। हम सब आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। आप प्राण, मन, बुद्धि और अहङ्कारके ज्ञाता हैं। इन्द्रियाँ और उनके विषय दोनों ही आपके द्वारा प्रकाशित होते हैं। अज्ञान आपका स्पर्श नहीं कर सकता। प्रकृतिके विकार मरने-जीनेवाले शरीरसे भी आप रहित हैं। जीवके दोनों पक्ष अविद्या और विद्या आपमें बिल्कुल ही नहीं हैं। आप अविनाशी और सुखस्वरूप हैं। सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें तो आप प्रकटरूपसे ही विराजमान रहते हैं। हम सब आपकी शरण ग्रहण करते हैं। यह शरीर जीवका एक मनोमय चक्र (रथका पहिया) है। दस इन्द्रिय और पाँच प्राण—ये पंद्रह इसके अरे हैं। सत्त्व, रज और तम—ये तीन गुण इसकी नाभि हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार—ये आठ इसमें नेमि (पहियेका घेरा) हैं। स्वयं माया इसका सञ्चालन करती है और यह बिजलीसे भी अधिक शीघ्रगामी है। इस चक्रके धुरे हैं स्वयं परमात्मा। वे ही एकमात्र सत्य हैं। हम उनकी शरणमें हैं। जो एकमात्र ज्ञानस्वरूप, प्रकृतिसे परे एवं अदृश्य हैं; जो समस्त वस्तुओंके मूलमें स्थित अव्यक्त हैं और देश, काल अथवा वस्तुसे जिनका पार नहीं पाया जा सकता—वही प्रभु इस जीवके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान रहते हैं। विचारशील मनुष्य भक्तियोगके द्वारा उन्हींकी आराधना करते हैं। जिस मायासे मोहित होकर जीव अपने वास्तविक लक्ष्य अथवा स्वरूपको भूल गया है, वह उन्हींकी है और उसका पार पाना सम्भव नहीं है। परन्तु सर्वशक्तिमान् प्रभु तो अपनी उस माया तथा उसके गुणोंको अपने वशमें करके समस्त प्राणियोंके हृदयमें समभावसे विचरण करते रहते हैं। जीव अपने पुरुषार्थसे नहीं, उनकी कृपासे ही उन्हें प्राप्त कर सकता है। हम उनके चरणोंमें नमस्कार करते हैं। यों तो हमलोग एवं ऋषिगण भी उनके परमप्रिय सत्त्वमय शरीरसे ही उत्पन्न हुए हैं, फिर भी उनके बाहर-भीतर एकरस प्रकट वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते। फिर रजोगुण एवं तमोगुणप्रधान असुर आदि तो उन्हें जान ही कैसे सकते हैं? उन्हीं प्रभुके चरणोंमें हम नमस्कार करते हैं॥ २६—३१॥

उन्हींकी बनायी हुई यह पृथ्वी उनका चरण है। इसी पृथ्वीपर जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज—ये चार प्रकारके प्राणी रहते हैं। वे परम स्वतन्त्र, परम ऐश्वर्यशाली, पुरुषोत्तम परब्रह्म हमपर प्रसन्न हों। यह परम शक्तिशाली जल उन्हींका वीर्य है। इसीसे तीनों लोक और समस्त लोकों-के लोकपाल उत्पन्न होते, बढ़ते और जीवित रहते हैं। वे

हाथोंमें कंगन और अमृतसे भरा हुआ कलश था। वह और कोई नहीं, साक्षात् विष्णुभगवान्‌के अंशांश, आयुर्वेदके प्रवर्तक और यज्ञभोक्ता सुप्रसिद्ध धन्वन्तरि थे। जब दैत्योंकी दृष्टि उनपर तथा उनके हाथमें अमृतसे भरे हुए



कलशपर पड़ी, तब उन्होंने शीघ्रतासे बलात् उस अमृतके कलशको छीन लिया। वे तो पहलेसे ही इस ताकमें थे कि किसी तरह समुद्रमन्थनसे निकली हुई सभी वस्तुएँ हमें मिल जायँ! जब असुर उस अमृतसे भरे कलशको छीन ले गये, तब देवताओंका मन विषादसे भर गया। अब वे भगवान्‌की शरणमें आये। उनकी दीन दशा देखकर भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान्‌ने कहा—'देवताओ! तुमलोग खेद मत करो। देखो, मैं अपनी मायासे उनमें आपसकी फूट डालकर अभी तुम्हारा काम बना देता हूँ'॥ ३०—३७॥

परीक्षित्! फिर क्या था, दैत्योंमें अमृतके लिये आपसमें झगड़ा खड़ा हो गया। सभी कहने लगे 'पहले मैं पीऊँगा, पहले मैं; तुम नहीं, तुम नहीं।' उनमें जो दुर्बल थे, वे उन बलवान् दैत्योंका विरोध करने लगे जिन्होंने कलश छीनकर अपने हाथमें कर लिया था। वे ईर्ष्यावश धर्मकी दुहाई देकर उनको रोकने और बार-बार कहने लगे कि 'भाई! देवताओंने भी हमारे बराबर ही परिश्रम किया है, उनको भी यज्ञभागके समान इसका भाग मिलना ही चाहिये। यही सनातनधर्म है।' इस प्रकार इधर दैत्योंमें 'तू-तू, मैं-मैं' हो रही थी और उधर सभी उपाय जाननेवालोंके स्वामी चतुरशिरोमणि भगवान्‌ने अत्यन्त अद्भुत और अवर्णनीय स्त्रीका रूप धारण किया। शरीरका रंग नील कमलके समान श्याम एवं देखने ही योग्य था। अङ्ग-प्रत्यङ्ग बड़े ही आकर्षक थे। दोनों कान बराबर और कर्णफूलसे सुशोभित थे। सुन्दर कपोल, ऊँची नासिका और रमणीय मुख! नयी जवानीके कारण स्तन उभरे हुए थे और उन्हींके भारसे कमर पतली हो गयी थी। मुखसे निकलती हुई सुगन्धके प्रेमसे गुनगुनाते हुए भौंरे उसपर टूटे पड़ते थे, जिससे नेत्रोंमें कुछ घबड़ाहटका भाव आ जाता था। अपने लंबे केशपाशोंमें उन्होंने खिले हुए बेलेके पुष्पोंकी माला गूँथ रक्खी थी। सुन्दर गलेमें कण्ठके आभूषण और सुन्दर भुजाओंमें बाजूबंद सुशोभित थे। स्वच्छ वस्त्र पहने हुए थीं और कटिभागमें करधनी तथा सुन्दर चञ्चल चरणोंमें नूपुर रुन झुन, रुन-झुन कर रहे थे। अपनी लज्जाभरी मुसकान, नाचती हुई तिरछी भौंहें और विलासभरी चितवनसे मोहिनीरूपधारी भगवान् दैत्य-सेनापतियोंके चित्तमें बार-बार कामोद्दीपन करने लगे॥ ३८—४६॥

नवाँ अध्याय

मोहिनीरूपसे भगवान्‌के द्वारा अमृत बाँटा जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! असुर आपसके सद्भाव और प्रेमको छोड़कर एक-दूसरेकी निन्दा कर रहे थे और डाकूकी तरह एक दूसरेके हाथसे अमृतका कलश छीन रहे थे। इसी बीचमें उन्होंने देखा कि एक बड़ी सुन्दरी स्त्री उनकी ओर चली आ रही है। वे सोचने लगे—'कैसा अनुपम सौन्दर्य है! शरीरमेंसे कितनी अद्भुत छटा छिटक रही है! तनिक इसकी नयी उम्र तो देखो!' बस, अब क्या पूछना। वे आपसकी लाग-डाँट भूलकर उसके पास दौड़ गये। उन लोगोंने काममोहित होकर उससे पूछा—'कमलनयनी! तुम कौन हो? कहाँसे आ रही हो? क्या करना चाहती हो? सुन्दरी! तुम किसकी कन्या हो? तुम्हें देखकर हमारे मनमें खलबली मच गयी है। हम समझते हैं कि अबतक देवता, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, चारण और लोकपालोंने भी तुम्हें स्पर्शतक न किया होगा। फिर मनुष्य तो तुम्हें कैसे छू पाते? सुन्दरी! अवश्य ही विधाताने दया करके शरीरधारियोंकी सम्पूर्ण इन्द्रियों एवं मनको तृप्त

न ले जा सके, तब विवश होकर उन्होंने उसे रास्तेमें ही पटक दिया। वह सोनेका पर्वत मन्दराचल बड़ा भारी था। गिरते समय उसने बहुत-से देवता और दानवोंको चकनाचूर कर डाला ॥ २६—३५ ॥

उन देवता और असुरोंके हाथ, कमर और कंधे तो टूट ही गये थे, मन भी टूट गया था। उनका उत्साह भंग हुआ देख गरुड़पर चढ़े हुए भगवान् सहसा वहीं प्रकट हो गये। उन्होंने देखा कि देवता और असुर पर्वतके गिरनेसे पिस गये हैं। अतः उन्होंने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे देवताओंको इस प्रकार जीवित कर दिया, मानो उनके शरीरमें बिल्कुल चोट ही न लगी हो। इसके बाद उन्होंने खेल-ही-खेलमें एक हाथसे उस पर्वतको उठाकर गरुड़पर रख लिया, और स्वयं भी सवार हो गये। फिर देवता और असुरोंके साथ उन्होंने समुद्रतटकी यात्रा की। पक्षिराज गरुड़ने समुद्रके तटपर पर्वतको उतार दिया। फिर भगवान्के बिदा करनेपर गरुड़जी वहाँसे चले गये ॥ ३६—३९ ॥

सातवाँ अध्याय

समुद्रमन्थनका आरम्भ और भगवान् शङ्करका विषपान

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! देवता और असुरोंने नागराज वासुकिको यह वचन देकर कि समुद्रमन्थन-से प्राप्त होनेवाले अमृतमें तुम्हारा भी हिस्सा रहेगा, उन्हें भी सम्मिलित कर लिया। इसके बाद उन लोगोंने वासुकि नागको नेतीके समान मन्दराचलमें लपेटकर बड़े प्रेम और आनन्दसे सज-धजकर अमृतके लिये समुद्रमन्थन प्रारम्भ किया। उस समय पहले-पहल अजित भगवान् वासुकिके मुखकी ओर लग गये, इसलिये देवता भी उधर ही आ जुटे। परन्तु भगवान्की यह चेष्टा दैत्यसेनापतियोंको पसंद न आयी। उन्होंने कहा कि 'पूँछ तो साँपका अशुभ अङ्ग है। हम किस बातमें कम हैं कि पूँछ पकड़ें? हमने वेद-शास्त्रोंका विधिपूर्वक अध्ययन किया है, ऊँचे वंशमें हमारा जन्म हुआ है और बहादुरीके बड़े-बड़े काम हमने किये हैं।' यह कहकर वे लोग चुपचाप एक ओर खड़े हो गये। उनकी यह मनोवृत्ति देखकर भगवान्ने मुसकराकर वासुकिका मुँह छोड़ दिया और देवताओंके साथ उन्होंने पूँछ पकड़ ली। इस प्रकार अपना-अपना स्थान निश्चित करके देवता और असुर अमृत-प्राप्तिके लिये पूरी तैयारीसे समुद्रमन्थन करने लगे ॥ १—५ ॥

परीक्षित्! जब समुद्रमन्थन होने लगा, तब बड़े-बड़े बलवान् देवता और असुरोंके पकड़े रहनेपर भी अपने भारकी अधिकता और नीचे कोई आधार न होनेके कारण मन्दराचल समुद्रमें डूबने लगा। इस प्रकार अपना सब किया-कराया मिट्टीमें मिलते देख उनका मन टूट गया। सबके मुँहपर उदासी छा गयी। वे करते ही क्या, अत्यन्त बलवान् दैवपर उनका क्या वश था? उस समय भगवान्ने देखा कि यह तो विघ्नराजकी करतूत है। इसलिये उन्होंने उसके निवारणका उपाय सोचकर अत्यन्त विशाल एवं विचित्र कच्छपका रूप धारण किया और समुद्रके जलमें प्रवेश करके मन्दराचलको ऊपर उठा दिया। भगवान्की शक्ति अनन्त है। वे सत्यसङ्कल्प हैं। उनके लिये यह कौन-सी बड़ी बात थी। देवता और असुरोंने देखा कि मन्दराचल तो ऊपर उठ आया है, तब वे फिरसे समुद्र-मन्थनके लिये उठ खड़े हुए। उस समय भगवान्ने जम्बूद्वीपके समान एक लाख योजन फैली हुई अपनी पीठपर मन्दराचलको धारण कर रक्खा था। परीक्षित्! जब बड़े-बड़े देवता और असुरोंने अपने बाहुबलसे मन्दराचलको प्रेरित किया, तब वह भगवान्की पीठपर घूमने लगा। अनन्त शक्तिशाली आदिकच्छप भगवान्को उस पर्वतका चक्कर लगाना ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई उनकी पीठ खुजला रहा हो। साथ ही समुद्र-मन्थन सम्पन्न करनेके लिये भगवान्ने असुरोंमें उनकी शक्ति और बलको बढ़ाते हुए असुररूपसे प्रवेश किया। वैसे ही उन्होंने देवताओंको उत्साहित करते हुए उनमें देवरूपसे प्रवेश किया और वासुकिनागमें निद्राके रूपसे। इधर पर्वतके ऊपर दूसरे पर्वतके समान बनकर सहस्रबाहु भगवान् अपने हाथोंसे उसे दबाकर स्थित हो गये। उस समय आकाशमें ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि उनकी स्तुति और उनके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। इस प्रकार भगवान्ने पर्वतके ऊपर उसको दबा रखनेवालेके रूपमें, नीचे उसके आधार कच्छपके रूपमें, देवता और असुरोंके शरीरमें उनकी शक्तिके रूपमें, पर्वतमें दृढ़ताके रूपमें और नेती बने हुए वासुकिनागमें निद्राके रूपमें—जिससे उसे कष्ट न हो—प्रवेश करके सब ओरसे सबको शक्तिसम्पन्न कर दिया। अब वे अपने बलके मदसे उन्मत्त होकर मन्दराचलके द्वारा बड़े वेगसे समुद्रमन्थन करने लगे। उस समय समुद्र और उसमें रहनेवाले मगर, मछली आदि



अपने हाव भाव और कटाक्षसे दैत्योंको मोहित करके भगवान् देवताओंको अमृत पिलाने लगे ।

हो गया और ब्रह्माजीने उसे 'ग्रह' बना दिया। वही राहु



पर्वके दिन (पूर्णिमा और अमावस्याको) वैर भावसे बदला लेनेके लिये चन्द्रमा तथा सूर्यपर आक्रमण किया करता है। जब देवताओंने अमृत पी लिया, तब समस्त लोकोंको जीवनदान करनेवाले भगवान्‌ने बड़े-बड़े दैत्योंके सामने ही मोहिनीरूप त्याग कर अपना वास्तविक रूप धारण कर लिया। परीक्षित्! देखो—देवता और दैत्य दोनोंने एक ही समय एक स्थानपर एक प्रयोजन तथा एक वस्तुके लिये एक विचारसे एक ही कर्म किया था, परन्तु फलमें बड़ा भेद हो गया। उनमेंसे देवताओंने तो बड़ी सुगमतासे अपने परिश्रमका फल—अमृत प्राप्त कर लिया, क्योंकि उन्होंने भगवान्‌के चरणकमलोंकी रजका आश्रय लिया था। परन्तु उससे विमुख होनेके कारण परिश्रम करनेपर भी असुरगण अमृतसे वञ्चित ही रहे। मनुष्य अपने प्राण, धन, कर्म, मन और वाणी आदिसे शरीर एवं पुत्र आदिके लिये जो कुछ करता है—वह व्यर्थ ही होता है। क्योंकि उसके मूलमें भेदबुद्धि बनी रहती है। परन्तु उन्हीं प्राण आदि वस्तुओंके द्वारा भगवान्‌के लिये जो कुछ किया जाता है, वह सब भेदभावसे रहित होनेके कारण अपने शरीर, पुत्र और समस्त संसारके लिये सफल हो जाता है। जैसे वृक्षकी जड़में पानी देनेसे उसका तना, टहनियाँ और पत्ते—सब के-सब सिंच जाते हैं, वैसे ही भगवान्‌के लिये कर्म करनेसे वे सबके लिये हो जाते हैं॥ २४—२९॥

दसवाँ अध्याय

देवासुर-संग्राम

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यद्यपि दानव और दैत्योंने बड़ी सावधानीसे समुद्रमन्थनकी चेष्टा की थी, फिर भी भगवान्‌से विमुख होनेके कारण उन्हें अमृतकी प्राप्ति नहीं हुई। राजन्! भगवान्‌ने समुद्रको मथकर अमृत निकाला और अपने निजजन देवताओंको पिला दिया। फिर सबके देखते-देखते वे गरुड़पर सवार हुए और वहाँसे चले गये। जब दैत्योंने देखा कि हमारे शत्रुओंको तो बड़ी सफलता मिली, तब वे उनकी बढ़ती सह न सके। उन्होंने तुरत अपने हथियार उठाये और देवताओंपर धावा बोल दिया। इधर देवताओंने एक तो अमृत पीकर विशेष शक्ति प्राप्त कर ली थी और दूसरे उन्हें भगवान्‌के चरणकमलोंका आश्रय था ही। बस, वे भी अपने अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो दैत्योंसे भिड़ गये। परीक्षित्! क्षीरसागरके तटपर बड़ा ही रोमाञ्चकारी और अत्यन्त भयङ्कर संग्राम हुआ। देवता और दैत्योंकी वह घमासान लड़ाई ही 'देवासुरसंग्राम' के नामसे कही जाती है। दोनों ही एक-दूसरेके प्रबल शत्रु हो रहे थे, दोनों ही क्रोधसे भरे हुए थे। एक-दूसरेको आमने सामने पाकर तलवार, बाण और अन्य अनेकानेक अस्त्र-शस्त्रोंसे परस्पर चोट पहुँचाने लगे। उस समय लड़ाईमें शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग, नगारे और डमरू बड़े जोरसे बजने लगे, हाथियोंकी चिग्घाड़, घोड़ोंकी हिनहिनाहट, रथोंकी घरघराहट और पैदल सेनाकी चिल्लाहटसे बड़ा कोलाहल मच गया। रथियोंके साथ रथी, पैदलके साथ पैदल, घुड़सवारोंके साथ घुड़सवार, एवं हाथीवालोंके साथ हाथीवाले भिड़ गये। उनमेंसे कोई-कोई वीर ऊँटोंपर, हाथियोंपर और गधोंपर चढ़कर लड़ रहे थे तो कोई-कोई गौर मृग, भालू, बाघ और सिंहोंपर। कोई-कोई सैनिक गिद्ध, कङ्क, बगुले, बाज और भास पक्षियोंपर चढ़े हुए थे तो बहुत-से तिमिङ्गिल मच्छ, शरभ, भैंसे, गैंड़े, बैल, नीलगाय और जङ्गली साँड़ोंपर सवार थे। किसी-किसीने सियारिन, चूहे, गिरगिट और खरहोंपर ही सवारी कर ली थी तो बहुत-से मनुष्य, बकरे, कृष्णसार मृग, हंस और सूअरोंपर चढ़े थे। इस प्रकार जल, स्थल एवं आकाशमें रहनेवाले तथा देखनेमें भयङ्कर शरीरवाले

परमार्थतत्त्व है । अधर्मकी दम्भ-लोभ आदि तरङ्गोंमें आपकी छाया है । सत्त्व, रज और तम—ये तीन आपके नेत्र हैं । यही विविध सृष्टिके मूल हैं । प्रभो ! गायत्री आदि छन्द-रूप सनातन वेद ही आपका विचार है । क्योंकि आप ही सांख्य आदि समस्त शास्त्रोंके रूपमें स्थित हैं और उनके कर्त्ता भी हैं । भगवन् ! आपका परम ज्योतिर्मय स्वरूप स्वयं ब्रह्म है । उसमें न तो रजोगुण, तमोगुण एवं सत्त्वगुण हैं और न तो किसी प्रकारका भेदभाव ही है । आपके उस स्वरूपको सारे लोकपाल—यहाँतक कि ब्रह्मा, विष्णु और देवराज इन्द्र भी नहीं जान सकते । आपने कामदेव, दक्षके यज्ञ, त्रिपुरासुर और कालकूट विष (जिसको आप अभी-अभी अवश्य पी जायँगे) और अनेक जीवद्रोही असुरोंको नष्ट कर दिया है । परन्तु यह कहनेसे आपकी कोई स्तुति नहीं होती । क्योंकि प्रलयके समय आपका बनाया हुआ यह विश्व आपके ही नेत्रसे निकली हुई आगकी चिनगारी एवं लपटसे जलकर खाक हो जाता है और आप इस प्रकार ध्यानमग्न रहते हैं कि आपको इसका पता ही नहीं चलता । जीवन्मुक्त आत्माराम पुरुष अपने हृदयमें आपके युगल चरणोंका ध्यान करते रहते हैं, तथा आप स्वयं भी निरन्तर ज्ञान और तपस्यामें ही लीन रहते हैं । फिर भी सतीके साथ रहते देखकर जो आपको आसक्त, एवं श्मशानवासी होनेके कारण उग्र अथवा निष्ठुर बतलाते हैं—वे मूर्ख आपकी लीलाओंका रहस्य भला क्या जानें ! उनका वैसा कहना निर्लज्जतासे भरा है । इस कार्य और कारणरूप जगत्से परे माया है और मायासे भी अत्यन्त परे आप हैं । इसलिये प्रभो ! आपके अनन्त स्वरूपका साक्षात् ज्ञान प्राप्त करनेमें सहसा ब्रह्मा आदि भी समर्थ नहीं होते, फिर स्तुति तो कर ही कैसे सकते हैं । ऐसी अवस्थामें उनके पुत्रोंके पुत्र हमलोग तो कह ही क्या सकते हैं । फिर भी अपनी शक्तिके अनुसार हमने आपका कुछ गुणगान किया है । हमलोग तो केवल आपके इसी लीलाविहारी रूपको देख रहे हैं । आपके परम स्वरूपको हम नहीं जानते । महेश्वर ! यद्यपि आपकी लीलाएँ अव्यक्त हैं, फिर भी संसारका कल्याण करनेके लिये आप व्यक्तरूपसे भी रहते हैं ॥२१–३५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! प्रजाका यह सङ्कट देखकर समस्त प्राणियोंके अकारण बन्धु देवाधिदेव भगवान् शङ्करके हृदयमें कृपावश बड़ी व्यथा हुई । उन्होंने अपनी प्रिया सतीसे यह बात कही ॥३६॥

शिवजीने कहा—देवि ! यह तो बड़े खेदकी बात है । देखो तो सही, समुद्र-मन्थनसे निकले हुए कालकूट विष-के कारण प्रजापर कितना बड़ा दुःख आ पड़ा है ! ये बेचारे किसी प्रकार अपने प्राणोंकी रक्षा करना चाहते हैं । इस समय मेरा यह कर्तव्य है कि मैं इन्हें निर्भय कर दूँ । जिनके पास शक्ति-सामर्थ्य है, उनके जीवनकी सफलता इसीमें है कि वे दीन-दुखियोंकी रक्षा करें । सज्जन पुरुष अपने क्षणभङ्गुर प्राणोंकी बलि देकर भी दूसरे प्राणियोंके प्राणकी रक्षा करते हैं । कल्याणि ! अपने ही मोहकी मायामें फँसकर संसारके प्राणी मोहित हो रहे हैं और एक दूसरेसे वैरकी गाँठ बाँधे बैठे हैं । उनके ऊपर जो कृपा करता है, उसपर सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं । और जब भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं, तब चराचर जगत्के साथ मैं भी प्रसन्न हो जाता हूँ। इसलिये अभी-अभी मैं इस विषको भक्षण करता हूँ, जिससे मेरी प्रजाका कल्याण हो ॥३७–४०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—विश्वके जीवनदाता भगवान् शङ्कर इस प्रकार सती देवीसे प्रस्ताव करके उस विषको खानेके लिये तैयार हो गये । देवी तो उनका प्रभाव जानती ही थीं, उन्होंने हृदयसे इस बातका अनुमोदन किया । भगवान् शङ्कर बड़े कृपालु हैं । उन्हींकी शक्तिसे तो समस्त प्राणी जीवित रहते हैं । उन्होंने उस तीक्ष्ण हालाहल विषको



अपनी हथेलीपर उठाया और भक्षण कर गये । वह विष क्या था, वह था जलका पाप—उसका मल ! उसने शङ्करजीपर भी अपना प्रभाव प्रकट कर दिया, उससे उनका कण्ठ नीला

थे, तो किसीकी आँखोंसे क्रोधकी मुद्रा प्रकट हो रही थी। किसी किसीने अपने दाँतोंसे होंठ दबा रक्खा था। बहुतोंकी आभूषणों और शस्त्रोंसे सुसज्जित लंबी-लंबी भुजाएँ कटकर गिरी हुई थीं और बहुतोंकी मोटी मोटी जाँघें कटी हुई पड़ी थीं। इस प्रकार वह रणभूमि बड़ी भीषण दीख रही थी। तब वहाँ बहुत से धड़ सहसा उठ खड़े हुए और अपने कटकर गिरे हुए सिरोंके नेत्रोंसे देखकर हाथोंमें हथियार उठा वीरोंकी ओर दौड़ने लगे ॥ ३५–४० ॥

राजा बलिने दस बाण इन्द्रपर, तीन उनके वाहन ऐरावतपर, चार ऐरावतके चार चरण-रक्षकोंपर, और एक मुख्य महावतपर—इस प्रकार कुल अठारह बाण छोड़े। इन्द्रने देखा कि बलिके बाण तो हमें घायल करना ही चाहते हैं। तब उन्होंने बड़ी फुर्तीसे उतने ही (दस) तीखे भल्ल नामक बाणोंसे उनको वहाँतक पहुँचनेके पहले ही हँसते हँसते काट डाला"। इन्द्रकी यह प्रशंसनीय फुर्ती देखकर राजा बलि और भी चिढ़ गये। उन्होंने एक बहुत बड़ी शक्ति, जो बड़े भारी लूकेके समान जल रही थी, उठायी। किन्तु अभी वह उनके हाथमें ही थी—छूटने नहीं पायी थी कि इन्द्रने उसे भी काट डाला। इसके बाद बलिने एकके-पीछे एक क्रमशः शूल, प्रास, तोमर और शक्ति उठायी। परन्तु वे जो जो शस्त्र हाथमें उठाते, इन्द्र उन्हें टुकड़े टुकड़े कर डालते। इस हस्तलाघवसे इन्द्रका ऐश्वर्य और भी चमक उठा ॥४१–४४॥

परीक्षित्! अब इन्द्रकी फुर्तीसे घबड़ाकर पहले तो बलि अन्तर्धान हो गये, फिर उन्होंने आसुरी मायाकी सृष्टि की। तुरत ही देवताओंकी सेनाके ऊपर एक पर्वत प्रकट हुआ। उस पर्वतसे दावाग्निसे जलते हुए वृक्ष और टाँकी जैसी तीखी धारवाले शिखरोंके साथ नुकीली शिलाएँ गिरने लगीं। इससे देवताओंकी सेना चकनाचूर होने लगी। तत्पश्चात् बड़े बड़े साँप, बिच्छू और अन्य विषैले जीव उछल-उछलकर काटने और डंक मारने लगे। सिंह, बाघ और सूअर देव-सेनाके बड़े-बड़े हाथियोंको फाड़ने लगे। परीक्षित्! हाथोंमें शूल लिये 'मारो काटो' इस प्रकार चिल्लाती हुई सैकड़ों नंग धड़ंग राक्षसियाँ और राक्षस भी वहाँ प्रकट हो गये। कुछ ही क्षण बाद आकाशमें बादलोंकी घनघोर घटाएँ मँडराने लगीं, उनके आपसमें टकरानेसे बड़ी गहरी और कठोर गर्जना होने लगी, बिजलियाँ चमकने लगीं और आँधीके झकझोरनेसे बादल अंगारोंकी वर्षा करने लगे। दैत्यराज बलिने प्रलयकी अग्निके समान बड़ी भयानक आगकी सृष्टि की। वह बात-की बातमें वायुकी सहायतासे देव सेनाको जलाने लगी। थोड़ी ही देरमें ऐसा जान पड़ा कि प्रबल आँधीके थपेड़ोंसे समुद्रमें बड़ी-बड़ी लहरें और भयानक भँवर उठ रहे हैं और वह अपनी मर्यादा छोड़कर चारों ओरसे देव सेनाको घेरता हुआ उमड़ा आ रहा है। इस प्रकार जब उन भयानक असुरोंने बहुत बड़ी मायाकी सृष्टि की और स्वयं अपनी मायाके प्रभावसे छिप रहे—न दीखनेके कारण उनपर प्रहार भी नहीं किया जा सकता था, तब देवताओंके सैनिक बहुत दुखी हो गये। परीक्षित्! इन्द्र आदि देवताओंने उनकी मायाका प्रतीकार करनेके लिये बहुत कुछ सोचा विचारा, परन्तु उन्हें कुछ न सूझा। तब उन्होंने विश्वके जीवनदाता भगवान्‌का ध्यान किया और ध्यान करते ही वे वहीं प्रकट हो गये। बड़ी ही सुन्दर झाँकी थी। गरुड़के कंधेपर उनके चरणकमल विराजमान थे। नवीन कमलके समान बड़े ही कोमल नेत्र थे। पीताम्बर धारण किये हुए थे। आठ भुजाओंमें आठ आयुध, गलेमें कौस्तुभ मणि, मस्तकपर अमूल्य मुकुट एवं कानोंमें कुण्डल झलमला रहे थे। देवताओंने अपने नेत्रोंसे भगवान्‌की इस छबिका दर्शन किया। परमपुरुष परमात्माके प्रकट होते ही उनके प्रभावसे असुरोंकी वह कपटभरी माया विलीन हो गयी—ठीक वैसे ही, जैसे जग जानेपर स्वप्नकी वस्तुओंका पता नहीं चलता। ठीक ही है, भगवान्‌की स्मृति समस्त विपत्तियोंसे मुक्त कर देती है। इसके बाद कालनेमि दैत्यने देखा कि लड़ाईके मैदानमें गरुड़वाहन भगवान् आ गये हैं, तब उसने अपने सिंहपर बैठे ही बैठे बड़े वेगसे उनके ऊपर एक त्रिशूल चलाया। वह गरुड़के सिरपर लगनेहीवाला था कि खेल-खेलमें भगवान्‌ने उसे पकड़ लिया और उसी त्रिशूलसे उसके चलानेवाले कालनेमि दैत्य तथा उसके वाहनको मार डाला। माली और सुमाली—दो दैत्य बड़े बलवान् थे, भगवान्‌ने युद्धमें अपने चक्रसे उनके सिर भी काट डाले और वे निर्जीव होकर गिर पड़े। तदनन्तर माल्यवान्‌ने अपनी प्रचण्ड गदासे गरुड़पर बड़े वेगके साथ प्रहार किया। परन्तु गर्जना करते हुए माल्यवान्‌के प्रहार करते-न करते ही भगवान्‌ने चक्रसे उसके सिरको भी धड़से अलग कर दिया ॥ ४५–५७ ॥

अविनाशी पुरुष मिले तो मैं उसे अपना आश्रय बनाऊँ, वरण करूँ। परन्तु गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध, चारण, देवता आदिमें कोई भी वैसा पुरुष उन्हें न मिला। वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि 'दुर्वासा आदि तपस्वी तो हैं, परन्तु उन्होंने क्रोधपर विजय नहीं प्राप्त की है। बृहस्पति आदिमें ज्ञान तो है, परन्तु वे पूरे अनासक्त नहीं हैं। ब्रह्मा आदि हैं तो बड़े महत्त्वशाली, परन्तु वे कामको नहीं जीत सके हैं। इन्द्र आदिमें ऐश्वर्य भी बहुत है; परन्तु वह ऐश्वर्य ही किस कामका, जब उन्हें दूसरोंका आश्रय लेना पड़ता है। परशुराम आदिके धर्मात्मा होनेमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु प्राणियोंके प्रति वे प्रेमका पूरा बर्ताव नहीं करते। शिवि आदिके त्यागी होनेमें कोई कसर नहीं, परन्तु केवल त्याग ही तो मुक्तिका कारण नहीं है। कार्तवीर्य आदि किसी-किसीमें वीरता तो अवश्य है, परन्तु वे भी कालके पंजेसे बाहर नहीं हैं। अवश्य ही सनकादि महात्माओंमें विषयासक्ति नहीं है, परन्तु वे तो निरन्तर अद्वैत-समाधिमें ही तल्लीन रहते हैं। उनको कैसे वरण किया जा सकता है ? किसी-किसी मार्कण्डेय आदि ऋषिने आयु तो बहुत लंबी प्राप्त कर ली है, परन्तु उनका शील-मङ्गल भी मेरे योग्य नहीं है। हिरण्यकशिपु आदिमें शील-मङ्गल भी था, परन्तु उनकी आयुका तो कुछ ठिकाना नहीं। अवश्य ही भगवान् शङ्कर आदिमें दोनों ही बातें हैं, परन्तु वे अमङ्गल वेषमें रहते हैं। रहे एक भगवान् विष्णु। उनमें सभी मङ्गलमय गुण नित्य निवास करते हैं, परन्तु वे तो मुझे चाहते ही नहीं' ॥ १७–२२ ॥

इस प्रकार सोच-विचारकर अन्तमें श्रीलक्ष्मीजीने अपने चिर अभीष्ट भगवान्‌को ही वरके रूपमें चुना। क्योंकि उनमें समस्त सद्गुण नित्य निवास करते हैं। प्राकृत गुण उनका स्पर्श नहीं कर सकते और अणिमा आदि समस्त गुण उनको चाहा करते हैं, परन्तु वे किसीकी भी अपेक्षा नहीं रखते। सच पूछा जाय, तो लक्ष्मीजीके एकमात्र आश्रय भगवान् ही हैं। इसीसे उन्होंने उन्हींको वरण किया। लक्ष्मीजीने भगवान्‌के गलेमें वह नवीन कमलोंकी सुन्दर माला पहना दी, जिसके चारों ओर झुंड-के-झुंड मतवाले मधुकर गुंजार कर रहे थे। इसके बाद लज्जापूर्ण मुसकान और प्रेमपूर्ण चितवनसे अपने निवासस्थान उनके वक्षःस्थलको देखती हुई वे उनके पास ही खड़ी हो गयीं। जगत्पिता भगवान्‌ने जगज्जननी, समस्त सम्पत्तियोंकी अधिष्ठातृ-देवता श्रीलक्ष्मीजीको अपने वक्षःस्थलपर ही सर्वदा निवास करनेका स्थान दिया। लक्ष्मीजीने वहाँ विराजमान होकर अपनी करुणाभरी चितवनसे



तीनों लोक, लोकपति और अपनी प्यारी प्रजाकी अभिवृद्धि की। उस समय शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे। गन्धर्व अप्सराओंके साथ नाचने-गाने लगे। इससे बड़ा भारी शब्द होने लगा। ब्रह्मा, रुद्र, अङ्गिरा आदि सब प्रजापति पुष्पवर्षा करते हुए भगवान्‌के गुण, स्वरूप और लीला आदिके यथार्थ वर्णन करनेवाले मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे। परीक्षित्! देवता, प्रजापति और प्रजा—सभी लक्ष्मीजीकी कृपादृष्टिसे शील आदि उत्तम गुणोंसे सम्पन्न होकर बहुत सुखी हो गये। इधर जब लक्ष्मीजीने दैत्य और दानवोंकी उपेक्षा कर दी तो वे लोग निर्बल, उद्योगरहित, निर्लज्ज और लोभी हो गये ॥ २३–२९ ॥

इसके बाद समुद्रमन्थन करनेपर कमलनयनी कन्याके रूपमें वारुणी देवी प्रकट हुई। भगवान्‌की अनुमतिसे दैत्योंने उसे ले लिया। तत्पश्चात् देवता और असुरोंने अमृतकी इच्छासे जब और भी समुद्रमन्थन किया, तब उसमेंसे एक अत्यन्त अलौकिक पुरुष प्रकट हुआ। उसकी भुजाएँ लंबी एवं मोटी थीं। उसका गला शङ्खके समान उतार-चढ़ाववाला था और आँखोंमें लालिमा थी। शरीरका रंग बड़ा सुन्दर साँवला-साँवला था। गलेमें माला, अङ्ग-अङ्ग सब प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित, शरीरपर पीताम्बर, कानोंमें चमकीले मणियोंके कुण्डल, चौड़ी छाती, तरुण अवस्था, सिंहके समान पराक्रम, अनुपम सौन्दर्य, चिकने और घुँघराले बाल लहराते हुए! उस पुरुषकी छवि बड़ी अनोखी थी। उसके

क्रोधित होकर अपने वज्रसे जम्भका सिर काट डाला॥१०—१८॥

देवर्षि नारदसे जम्भासुरकी मृत्युका समाचार जानकर उसके भाई बन्धु नमुचि, बल और पाक झटपट रणभूमिमें आ पहुँचे। अपनी कठोर और मर्मस्पर्शी वाणीसे उन्होंने इन्द्रको बहुत कुछ बुरा भला कहा और जैसे बादल पहाड़पर मूसलधार पानी बरसाते हैं, वैसे ही उनको बाणोंसे ढक दिया। बलने बड़े हस्तलाघवसे एक साथ ही एक हजार बाण चलाकर इन्द्रके एक हजार घोड़ोंको घायल कर दिया। पाकने सौ बाणोंसे मातलिको और सौ बाणोंसे रथके एक एक अङ्गको छेद डाला। युद्धभूमिमें यह बड़ी अद्भुत घटना हुई कि एक ही बार इतने बाण उसने चढ़ाये और चलाये। नमुचिने बड़े बड़े पद्रह बाणोंसे, जिनमें सोनेके पंख लगे हुए थे, इन्द्रको मारा और युद्धभूमिमें वह जलसे भरे बादलके समान गरजने लगा। जैसे वर्षाकालके बादल सूर्यको ढक लेते हैं, वैसे ही असुरोंने बाणोंकी वर्षासे इन्द्र और उनके रथ तथा सारथिको भी चारों ओरसे ढक दिया। इन्द्रको न देखकर देवता और उनके अनुचर अत्यन्त विह्वल होकर रोने चिल्लाने लगे। एक तो शत्रुओंने उन्हें हरा दिया था और दूसरे अब उनका कोई सेनापति भी न रह गया था। उस समय देवताओंकी ठीक वैसी ही अवस्था हो रही थी, जैसे बीच समुद्रमें नाव टूट जानेपर व्यापारियोंकी होती है। परन्तु थोड़ी ही देरमें शत्रुओंके बनाये हुए बाणोंके पिंजड़ेसे घोड़े, रथ, ध्वजा और सारथिके साथ इन्द्र निकल आये। जैसे प्रातःकाल सूर्य अपनी किरणोंसे दिशा, आकाश और पृथ्वीको चमका देते हैं, वैसे ही इन्द्रके तेजसे सब के सब जगमगा उठे। इन्द्रने देखा कि शत्रुओंने रणभूमिमें हमारी सेनाको रौंद डाला है, तब उन्होंने बड़े क्रोधसे शत्रुको मार डालनेके लिये वज्र उठाया। उन्होंने उस आठ धारवाले पैने वज्रसे बल और पाकके सिर काट लिये। परीक्षित्! उस समय उन दैत्योंके भाई बन्धु भी भयभीत होकर यह काण्ड देख रहे थे॥ १९—२८॥

परीक्षित्! अपने भाइयोंको मरा हुआ देख नमुचिको बड़ा शोक हुआ। वह क्रोधके कारण आपसे बाहर होकर इन्द्रको मार डालनेके लिये जी जानसे प्रयास करने लगा। 'इन्द्र! अब तुम बच नहीं सकते'—इस प्रकार ललकारते हुए एक त्रिशूल उठाकर वह इन्द्रपर टूट पड़ा। वह त्रिशूल फौलादका बना हुआ था, सोनेके आभूषणोंसे विभूषित था और उसमें घण्टे लगे हुए थे। नमुचिने क्रोधके मारे सिंहके समान गरजकर इन्द्रपर वह त्रिशूल चला दिया। परीक्षित्! इन्द्रने देखा कि त्रिशूल बड़े वेगसे मेरी ओर आ रहा है। उन्होंने अपने बाणोंसे आकाशमें ही उसके हजारों टुकड़े कर दिये और इसके बाद देवराज इन्द्रने बड़े क्रोधसे उसका सिर काट लेनेके लिये उसकी गर्दनपर वज्र मारा। यद्यपि इन्द्रने बड़े वेगसे वह वज्र चलाया था, परन्तु उस यशस्वी वज्रसे उसके चमड़ेपर खरोंचतक नहीं आयी। यह बड़ी आश्चर्यजनक घटना हुई कि जिस वज्रने महाबली वृत्रासुरका शरीर टुकड़े टुकड़े कर डाला था, नमुचिके गलेकी त्वचाने उसका तिरस्कार कर दिया। जब वज्र नमुचिका कुछ न बिगाड़ सका, तब इन्द्र उससे डर गये। वे सोचने लगे कि 'दैवयोगसे संसारभरको संशयमें डालनेवाली यह कैसी घटना हो गयी! पहले युगमें जब ये पर्वत पाँखोंसे उड़ते थे और घूमते फिरते भारके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ते थे, तब प्रजाका विनाश होते देखकर इसी वज्रसे मैंने उन पहाड़ोंकी पाँखें काट डाली थीं। त्वष्टाकी तपस्याका सार ही वृत्रासुरके रूपमें प्रकट हुआ था। उसे भी मैंने इसी वज्रके द्वारा काट डाला था। और भी अनेकों दैत्य, जो बहुत बलवान् थे और किसी अस्त्र शस्त्रसे जिनके चमड़ेको भी चोट न पहुँचायी जा सकी थी, इसी वज्रसे मैंने मृत्युके घाट उतार दिये थे। वही मेरा वज्र मेरे प्रहार करनेपर भी इस तुच्छ असुरको न मार सका, अतः अब मैं इसे अङ्गीकार नहीं कर सकता। यह ब्रह्मतेजसे बना है तो क्या हुआ, अब तो निकम्मा हो चुका है।' इस प्रकार इन्द्र विषाद करने लगे। उसी समय यह आकाशवाणी हुई—"यह दानव न तो सूखी वस्तुसे मर सकता है न गीलीसे। इसे मैं वर दे चुका हूँ कि 'सूखी या गीली वस्तुसे तुम्हारी मृत्यु न होगी।' इसलिये इन्द्र! इस शत्रुको मारनेके लिये अब तुम कोई दूसरा उपाय सोचो।" उस आकाशवाणीको सुनकर देवराज इन्द्र बड़ी एकाग्रतासे विचार करने लगे। सोचते-सोचते उन्हें सूझ गया कि समुद्रका फेन तो सूखा भी है, गीला भी, इसलिये न उसे सूखा कह सकते हैं न गीला। अतः इन्द्रने उसे ही शत्रुको मारनेका उपाय समझा और उस फेनसे नमुचिका सिर काट डाला। उस समय बड़े बड़े ऋषि मुनि भगवान् इन्द्रपर पुष्पोंकी वर्षा और उनकी स्तुति करने लगे। गन्धर्वशिरोमणि विश्वावसु तथा परावसु गायन करने लगे, देवताओंकी दुन्दुभियाँ बजने लगीं और नर्तकियाँ आनन्दसे नाचने लगीं। इसी प्रकार वायु, अग्नि, वरुण आदि दूसरे देवताओंने भी अपने शस्त्र अस्त्रोंसे विपक्षियोंको वैसे ही मार गिराया जैसे सिंह हरिनोंको मार डालते हैं। परीक्षित्! इधर

अविनाशी पुरुष मिले तो मैं उसे अपना आश्रय बनाऊँ, वरण करूँ। परन्तु गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध, चारण, देवता आदिमें कोई भी वैसा पुरुष उन्हें न मिला। वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि 'दुर्वासा आदि तपस्वी तो हैं, परन्तु उन्होंने क्रोधपर विजय नहीं प्राप्त की है। बृहस्पति आदिमें ज्ञान तो है, परन्तु वे पूरे अनासक्त नहीं हैं। ब्रह्मा आदि हैं तो बड़े महत्त्वशाली, परन्तु वे कामको नहीं जीत सके हैं। इन्द्र आदिमें ऐश्वर्य भी बहुत है; परन्तु वह ऐश्वर्य ही किस कामका, जब उन्हें दूसरोंका आश्रय लेना पड़ता है। परशुराम आदिके धर्मात्मा होनेमें कोई सन्देह नहीं, परन्तु प्राणियोंके प्रति वे प्रेमका पूरा बर्ताव नहीं करते। शिबि आदिके त्यागी होनेमें कोई कसर नहीं, परन्तु केवल त्याग ही तो मुक्तिका कारण नहीं है। कार्तवीर्य आदि किसी-किसीमें वीरता तो अवश्य है, परन्तु वे भी कालके पंजेसे बाहर नहीं हैं। अवश्य ही सनकादि महात्माओंमें विषयासक्ति नहीं है, परन्तु वे तो निरन्तर अद्वैत-समाधिमें ही तल्लीन रहते हैं। उनको कैसे वरण किया जा सकता है? किसी-किसी मार्कण्डेय आदि ऋषिने आयु तो बहुत लंबी प्राप्त कर ली है, परन्तु उनका शील-मङ्गल भी मेरे योग्य नहीं है। हिरण्यकशिपु आदिमें शील-मङ्गल भी था, परन्तु उनकी आयुका तो कुछ ठिकाना नहीं। अवश्य ही भगवान् शङ्कर आदिमें दोनों ही बातें हैं, परन्तु वे अमङ्गल वेषमें रहते हैं। रहे एक भगवान् विष्णु। उनमें सभी मङ्गलमय गुण नित्य निवास करते हैं, परन्तु वे तो मुझे चाहते ही नहीं'॥ १७—२२॥

इस प्रकार सोच-विचारकर अन्तमें श्रीलक्ष्मीजीने अपने चिर अभीष्ट भगवान्‌को ही वरके रूपमें चुना। क्योंकि उनमें समस्त सद्गुण नित्य निवास करते हैं। प्राकृत गुण उनका स्पर्श नहीं कर सकते और अणिमा आदि समस्त गुण उनको चाहा करते हैं, परन्तु वे किसीकी भी अपेक्षा नहीं रखते। सच पूछा जाय, तो लक्ष्मीजीके एकमात्र आश्रय भगवान् ही हैं। इसीसे उन्होंने उन्हींको वरण किया। लक्ष्मीजीने भगवान्‌के गलेमें वह नवीन कमलोंकी सुन्दर माला पहना दी, जिसके चारों ओर झुंड-के-झुंड मतवाले मधुकर गुंजार कर रहे थे। इसके बाद लज्जापूर्ण मुसकान और प्रेमपूर्ण चितवनसे अपने निवासस्थान उनके वक्षःस्थलको देखती हुई वे उनके पास ही खड़ी हो गयीं। जगत्पिता भगवान्‌ने जगज्जननी, समस्त सम्पत्तियोंकी अधिष्ठातृ-देवता श्रीलक्ष्मीजीको अपने वक्षःस्थलपर ही सर्वदा निवास करनेका स्थान दिया। लक्ष्मीजीने वहाँ विराजमान होकर अपनी करुणाभरी चितवनसे



तीनों लोक, लोकपति और अपनी प्यारी प्रजाकी अभिवृद्धि की। उस समय शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग आदि बाजे बजने लगे। गन्धर्व अप्सराओंके साथ नाचने-गाने लगे। इससे बड़ा भारी शब्द होने लगा। ब्रह्मा, रुद्र, अङ्गिरा आदि सब प्रजापति पुष्पवर्षा करते हुए भगवान्‌के गुण, स्वरूप और लीला आदिके यथार्थ वर्णन करनेवाले मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे। परीक्षित्! देवता, प्रजापति और प्रजा—सभी लक्ष्मीजीकी कृपादृष्टिसे शील आदि उत्तम गुणोंसे सम्पन्न होकर बहुत सुखी हो गये। इधर जब लक्ष्मीजीने दैत्य और दानवोंकी उपेक्षा कर दी तो वे लोग निर्बल, उद्योगरहित, निर्लज्ज और लोभी हो गये॥ २३—२९॥

इसके बाद समुद्रमन्थन करनेपर कमलनयनी कन्याके रूपमें वारुणी देवी प्रकट हुई। भगवान्‌की अनुमतिसे दैत्योंने उसे ले लिया। तत्पश्चात् देवता और असुरोंने अमृतकी इच्छासे जब और भी समुद्रमन्थन किया, तब उसमेंसे एक अत्यन्त अलौकिक पुरुष प्रकट हुआ। उसकी भुजाएँ लंबी एवं मोटी थीं। उसका गला शङ्खके समान उतार-चढ़ाववाला था और आँखोंमें लालिमा थी। शरीरका रंग बड़ा सुन्दर साँवला-साँवला था। गलेमें माला, अङ्ग-अङ्ग सब प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित, शरीरपर पीताम्बर, कानोंमें चमकीले मणियोंके कुण्डल, चौड़ी छाती, तरुण अवस्था, सिंहके समान पराक्रम, अनुपम सौन्दर्य, चिकने और घुँघराले बाल लहराते हुए! उस पुरुषकी छवि बड़ी अनोखी थी। उसके

हैं तो कोई विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना और अनुग्रहा—इन नौ शक्तियोंसे युक्त परम पुरुष, तथा दूसरे क्लेश-कर्म आदिके बन्धनसे रहित, पूर्वजोंके भी पूर्वज, अविनाशी पुरुषविशेषके रूपमें मानते हैं। प्रभो! मैं, ब्रह्मा, और मरीचि आदि ऋषि—जो सत्त्वगुणकी सृष्टिके अन्तर्गत हैं—जब आपकी बनायी हुई सृष्टिका भी रहस्य नहीं जान पाते, तब आपको तो जान ही कैसे सकते हैं। फिर जिनका चित्त मायाने अपने वशमें कर रक्खा है और जो सर्वदा रजोगुणी और तमोगुणी कर्मोंमें लगे रहते हैं, वे असुर और मनुष्य आदि तो भला जानेंगे ही क्या। प्रभो! आप सर्वात्मक एवं ज्ञानस्वरूप हैं। इसीलिये वायुके समान आकाशमें अदृश्य रहकर भी आप सम्पूर्ण चराचर जगत्में सदा-सर्वदा विद्यमान रहते हैं तथा इसकी चेष्टा, स्थिति, जन्म, नाश, प्राणियोंके कर्म एवं संसारके बन्धन, मोक्ष—सभीको जानते हैं। प्रभो! आप जब गुणोंको स्वीकार करके लीला करनेके लिये बहुत-से अवतार ग्रहण करते हैं, तब मैं उनका दर्शन करता ही हूँ। अब मैं आपके उस स्त्रीरूपका भी दर्शन करना चाहता हूँ, जिससे दैत्योंको मोहित करके आपने देवताओंको अमृत पिलाया। स्वामिन्! उसीको देखनेके लिये हम सब आये हैं। हमारे मनमें उसके दर्शनका बड़ा कौतूहल है॥ ४–१३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान् शङ्करने विष्णुभगवान्‌से यह प्रार्थना की, तब वे गम्भीर भावसे हँसकर शङ्करजीसे बोले॥ १४॥

श्रीविष्णुभगवान्‌ने कहा—शङ्करजी! उस समय अमृतका कलश दैत्योंके हाथमें चला गया था। अतः देवताओंका काम बनानेके लिये और दैत्योंका मन एक नये कौतूहलकी ओर खींच लेनेके लिये ही मैंने यह स्त्रीरूप धारण किया था। देवशिरोमणे! आप उसे देखना चाहते हैं, इसलिये मैं आपको वह रूप दिखलाऊँगा। परन्तु वह रूप तो कामी पुरुषोंका ही आदरणीय है, क्योंकि वह कामभावको उत्तेजित करनेवाला है॥ १५-१६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस तरह कहते कहते विष्णु भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये और भगवान् शङ्कर सती देवीके साथ चारों ओर दृष्टि दौड़ाते हुए वहीं बैठे रहे। इतनेमें ही उन्होंने देखा कि सामने एक बड़ा सुन्दर उपवन है। उसमें भाँति भाँतिके वृक्ष लग रहे हैं, जो रंग बिरंगे फूल और लाल लाल कोपलोंसे भरे-पूरे हैं। उन्होंने यह भी देखा कि उस उपवनमें एक सुन्दरी स्त्री गेंद उछाल-उछालकर खेल रही है। वह बड़ी ही सुन्दर साड़ी पहने हुए है और उसकी कमरमें करधनीकी लड़ियाँ लटक रही हैं। गेंदको उछालने और लपककर पकड़नेसे उसके स्तन और उनपर पड़े हुए हार हिल रहे हैं। ऐसा जान पड़ता था, मानो इनके भारसे उसकी पतली कमर पग पगपर टूटते टूटते बच जाती है। वह अपने लाल लाल पल्लवोंके समान सुकुमार चरणोंसे बड़ी कलाके साथ ठुमुक ठुमुक चल रही थी। उछलता हुआ गेंद जब इधर उधर छलक जाता था, तब वह लपककर उसे रोक लेती थी। इससे उसकी बड़ी बड़ी चञ्चल आँखें कुछ उद्विग्न सी हो रही थीं। उसके कपोलोंपर कानोंके कुण्डलोंकी आभा जगमगा रही थी और घुँघराली काली काली अलकें उनपर लटक आती थीं, जिससे मुख और भी उल्लसित हो उठता। जब कभी साड़ी सरक जाती और केशोंकी वेणी खुलने लगती, तब अपने अत्यन्त सुकुमार बायें हाथसे वह उन्हें सम्हाल-सँवार लिया करती। उस समय भी वह दाहिने हाथसे गेंद उछाल-उछालकर सारे जगत्‌को अपनी मायासे मोहित कर रही थी। गेंदसे खेलते खेलते उसने तनिक सलज्ज भावसे मुसकराकर तिरछी नजरसे शङ्करजीकी ओर देखा। बस, उनका मन हाथसे निकल गया। वे मोहिनीको निहारने और उसकी चितवनके रसमें डूबकर इतने विह्वल हो गये कि उन्हें अपने आपकी भी सुधि न रही। फिर पास बैठी हुई सती और गणोंकी तो याद ही कैसे रहती। एक बार मोहिनीके हाथसे उछलकर गेंद थोड़ी दूर चला गया। वह भी उसीके पीछे दौड़ी। उसी समय शङ्करजीके देखते देखते वायुने उसकी झीनी-सी साड़ी करधनीके साथ ही उड़ा ली। मोहिनीका एक एक अंग बड़ा ही रुचिर और मनोरम था। जहाँ आँखें लग जातीं, लगी ही रहतीं। यही नहीं, मन भी वहीं रमण करने लगता। उसको इस दशामें देखकर भगवान् शङ्कर उसकी ओर अत्यन्त आकृष्ट हो गये। उसकी चेष्टाओंसे तो पहलेहीसे यह मालूम हो रहा था कि वह उन्हें चाहती है। उसने शङ्करजीका विवेक छीन लिया। वे उसकी चेष्टाओंसे कामातुर हो गये। भवानीके सामने ही वे लज्जा छोड़कर उसकी ओर चल पड़े॥ १७–२५॥

मोहिनी वस्त्रहीन तो पहले ही हो चुकी थी, शङ्करजीको अपनी ओर आते देख बहुत लज्जित हो गयी। वह एक वृक्षसे दूसरे वृक्षकी आड़में जाकर छिप जाती और हँसने लगती। परन्तु कहीं ठहरती न थी। भगवान् शङ्करकी इन्द्रियाँ अपने वशमें नहीं रहीं, वे कामवश हो गये थे। वे हथिनीके पीछे हाथीकी तरह उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे।

लीलाओंका गायन संसारके समस्त क्लेश और परिश्रमको मिटा देनेवाला है। दुष्ट पुरुषोंको भगवान्‌के चरणकमलोंकी प्राप्ति कभी हो नहीं सकती, वे तो भक्तिभावसे युक्त पुरुषको ही प्राप्त होते हैं। इसीसे उन्होंने स्त्रीका मायामय रूप धारण करके दैत्योंको मोहित किया और अपने चरणकमलोंके शरणागत देवताओंको समुद्र मन्थनसे निकले हुए अमृतका पान कराया। केवल उन्हींकी बात नहीं—चाहे जो भी उनके चरणोंकी शरण ग्रहण करे, वे उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं। मैं उन प्रभुके चरणकमलोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ ४६–४७ ॥

तेरहवाँ अध्याय

अगले सात मन्वन्तरोंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! विवस्वान्‌के पुत्र यशस्वी श्राद्धदेव ही सातवें (वैवस्वत) मनु हैं। यह वर्तमान मन्वन्तर ही उनका कार्यकाल है। उनकी सन्तानका वर्णन मैं करता हूँ। वैवस्वत मनुके दस पुत्र हैं—इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, दिष्ट, करूष, पृषध्र और वसुमान्। परीक्षित्! इस मन्वन्तरमें आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव, मरुद्गण, अश्विनीकुमार और ऋभु—ये देवताओंके प्रधान गण हैं और पुरन्दर उनका इन्द्र है। कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज—ये सप्तर्षि हैं। इस मन्वन्तरमें भी कश्यपकी पत्नी अदितिके गर्भसे आदित्योंके छोटे भाई वामनके रूपमें भगवान् विष्णुने अवतार ग्रहण किया था ॥ १–६ ॥

परीक्षित्! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे तुम्हें सात मन्वन्तरोंका वर्णन सुनाया, अब भगवान्‌की शक्तिसे युक्त अगले (आनेवाले) सात मन्वन्तरोंका वर्णन करता हूँ ॥ ७ ॥

परीक्षित्! यह तो मैं तुम्हें पहले (छठे स्कन्धमें) बता चुका हूँ कि विवस्वान् (भगवान् सूर्य) की दो पत्नियाँ थीं—संज्ञा और छाया। ये दोनों ही विश्वकर्माकी पुत्री थीं। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि उनकी एक तीसरी पत्नी बड़वा भी थी। (मेरे विचारसे तो संज्ञाका ही नाम बड़वा हो गया था।) उन सूर्यपत्नियोंमें संज्ञासे तीन सन्तानें हुई—यम, यमी और श्राद्धदेव। छायाके भी तीन सन्तानें हुई—सावर्णि, शनैश्चर और तपती नामकी कन्या, जो संवरणकी पत्नी हुई। जब संज्ञाने बड़वाका रूप धारण कर लिया, तब उससे दोनों अश्विनी कुमार हुए। आठवें मन्वन्तरमें सावर्णि मनु होंगे। उनके पुत्र होंगे निर्मोक, विरजस्क आदि। परीक्षित्! उस समय सुतपा, विरज और अमृतप्रभ नामक देवगण होंगे। इन देवताओंके इन्द्र होंगे विरोचनके पुत्र बलि। विष्णुभगवान्‌ने वामन अवतार ग्रहण करके इन्हींसे तीन पग पृथ्वी माँगी थी। परन्तु इन्होंने उनको सारी त्रिलोकी दे दी। राजा बलिको एक बार तो भगवान्‌ने बाँध दिया था, परन्तु फिर प्रसन्न होकर उन्होंने इनको स्वर्गसे भी श्रेष्ठ सुतल लोकका राज्य दे दिया। वे इस समय वहीं इन्द्रके समान विराजमान हैं। आगे चलकर ये ही इन्द्र होंगे और समस्त ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण इन्द्रपदका भी परित्याग करके परम सिद्धि प्राप्त करेंगे। गालव, दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, ऋष्यशृङ्ग और हमारे पिता भगवान् व्यास—ये आठवें मन्वन्तरमें सप्तर्षि होंगे। इस समय ये लोग योगबलसे अपने अपने आश्रम मण्डलमें स्थित हैं। देवगुह्यकी पत्नी सरस्वतीके गर्भसे सार्वभौम नामक भगवान्‌का अवतार होगा। ये ही प्रभु पुरन्दर इन्द्रसे स्वर्गका राज्य छीनकर राजा बलिको दे देंगे ॥ ८–१७ ॥

परीक्षित्! वरुणके पुत्र दक्षसावर्णि नवें मनु होंगे। भूतकेतु, दीप्तकेतु आदि उनके पुत्र होंगे। पार, मरीचिगर्भ आदि देवताओंके गण होंगे और अद्भुत नामके इन्द्र होंगे। उस मन्वन्तरमें द्युतिमान् आदि सप्तर्षि होंगे। आयुष्मान्‌की पत्नी अम्बुधाराके गर्भसे ऋषभके रूपमें भगवान्‌का कलावतार होगा। अद्भुत नामक इन्द्र उन्हींकी दी हुई त्रिलोकीका उपभोग करेंगे ॥ १८–२० ॥

दसवें मनु होंगे उपश्लोकके पुत्र ब्रह्मसावर्णि। उनमें समस्त सद्गुण निवास करेंगे। भूरिषेण आदि उनके पुत्र होंगे और हविष्मान्, सुकृति, सत्य, जय, मूर्ति आदि सप्तर्षि। सुवासन, विरुद्ध आदि देवताओंके गण होंगे और इन्द्र होंगे शम्भु। विश्वसृज्‌की पत्नी विषूचिके गर्भसे भगवान् विष्वक्सेनके रूपमें अंशावतार ग्रहण करके शम्भुनामक इन्द्रसे मित्रता करेंगे ॥ २१–२३ ॥

ग्यारहवें मनु होंगे अत्यन्त संयमी धर्मसावर्णि। उनके सत्य, धर्म आदि दस पुत्र होंगे और विहङ्गम, कामगम, निर्वाणरुचि आदि देवताओंके गण होंगे। अरुणादि सप्तर्षि

करनेके लिये तुम्हें यहाँ भेजा है। मानिनी! वैसे तो हमलोग एक ही जातिके हैं। फिर भी हम सब एक ही वस्तु चाह रहे हैं, इसलिये हममें डाह और वैरकी गाँठ पड़ गयी है। सुन्दरी! तुम हमारा झगड़ा मिटा दो। हम सभी कश्यपजीके पुत्र होनेके नाते सगे भाई हैं। हमलोगोंने अमृतके लिये बड़ा पुरुषार्थ किया है। तुम न्यायके अनुसार निष्पक्षभावसे इसे बाँट दो, जिससे फिर हमलोगोंमें किसी प्रकारका झगड़ा न हो।' असुरोंने जब इस प्रकार प्रार्थना की, तब लीलासे स्त्री-वेष धारण करनेवाले भगवान्‌ने तनिक हँसकर और तिरछी चितवनसे उनकी ओर देखते हुए कहा ॥ १–८ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—आपलोग महर्षि कश्यपके पुत्र हैं और मैं हूँ कुलटा। आपलोग मुझपर न्यायका भार क्यों डाल रहे हैं? विवेकी पुरुष स्वेच्छाचारिणी स्त्रियोंका कभी विश्वास नहीं करते। दैत्यो! कुत्ते और व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी मित्रता स्थायी नहीं होती। वे दोनों ही नये-नये शिकार ढूँढ़ा करते हैं ॥ ९-१० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मोहिनीकी परिहासभरी वाणीसे दैत्योंके मनमें और भी विश्वास हो गया। उन लोगोंने रहस्यपूर्ण भावसे हँसकर अमृतका कलश मोहिनीके हाथमें दे दिया। भगवान्‌ने अमृतका कलश अपने हाथमें लेकर तनिक मुसकराते हुए मीठी वाणीसे कहा—'मैं उचित या अनुचित जो कुछ भी करूँ, वह सब यदि तुमलोगोंको स्वीकार हो तो मैं यह अमृत बाँट सकती हूँ।' बड़े-बड़े दैत्योंने मोहिनीकी यह मीठी बात सुनकर उसकी बारीकी तो समझी नहीं, इसलिये सबने एक स्वरसे कह दिया 'स्वीकार है!' इसका कारण यह था कि उन्हें मोहिनीके वास्तविक स्वरूपका पता नहीं था ॥ ११–१३ ॥

इसके बाद एक दिनका उपवास करके सबने स्नान किया। हविष्यसे अग्निमें हवन किया। गौ, ब्राह्मण और समस्त प्राणियोंको घास-चारा, अन्न-धनादिका यथायोग्य दान दिया तथा ब्राह्मणोंसे स्वस्त्ययन कराया। अपनी-अपनी रुचिके अनुसार सबने नये-नये वस्त्र धारण किये और इसके बाद सुन्दर-सुन्दर आभूषण धारण करके सब-के-सब उन कुशासनोंपर बैठ गये, जिनका अगला हिस्सा पूर्वकी ओर था। जब देवता और दैत्य दोनों ही धूपसे सुगन्धित, मालाओं और दीपकोंसे सजे-सजाये भव्य भवनमें पूर्वकी ओर मुँह करके बैठ गये, तब हाथमें अमृतका कलश लेकर मोहिनी सभामण्डपमें आयी। वह एक बड़ी सुन्दर साड़ी पहने हुए थी। नितम्बोंके भारके कारण वह धीरे-धीरे चल रही थी। आँखें मदसे विह्वल हो रही थीं। कलशके समान स्तन और गजशावककी सूँडके समान जङ्घाएँ थीं। उसके स्वर्णनूपुर अपनी झनकारसे सभाभवनको मुखरित कर रहे थे। सुन्दर कानोंमें सोनेके कुण्डल थे और उसकी नासिका, कपोल तथा मुख बड़े ही सुन्दर थे। स्वयं परदेवता भगवान् मोहिनीके रूपमें ऐसे जान पड़ते थे मानो लक्ष्मीजीकी कोई श्रेष्ठ सखी वहाँ आ गयी हो। मोहिनीने अपनी मुसकानभरी चितवनसे देवता और दैत्योंकी ओर देखा, तो वे सब-के-सब मोहित हो गये। उस समय उनके स्तनोंपरसे अञ्चल कुछ खिसक गया था। भगवान्‌ने मोहिनीरूपमें यह विचार किया कि असुर तो जन्मसे ही क्रूर स्वभाववाले हैं। इनको अमृत पिलाना तो सर्पोंको दूध पिलानेके समान बड़ा अन्याय होगा। इसलिये उन्होंने असुरोंको अमृतमें भाग नहीं दिया। भगवान्‌ने देवता और असुरोंकी अलग-अलग पंक्तियाँ बना दीं और फिर दोनोंको कतार बाँधकर अपने-अपने दलमें बैठा दिया। इसके बाद अमृतका कलश हाथमें लेकर भगवान् दैत्योंके पास चले गये। उन्हें हाव-भाव और कटाक्षसे मोहित करके दूर बैठे हुए देवताओंके पास आ गये तथा उन्हें वह अमृत पिलाने लगे, जिसे पी लेनेपर बुढ़ापे और मृत्युका नाश हो जाता है। परीक्षित्! असुर अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन कर रहे थे। उनका स्नेह भी हो गया था और वे स्त्रीसे झगड़नेमें अपनी निन्दा भी समझते थे। इसलिये वे चुपचाप बैठे रहे। मोहिनीमें उनका अत्यन्त प्रेम हो गया था। वे डर रहे थे कि उससे हमारा प्रेम-सम्बन्ध टूट न जाय। मोहिनीने भी पहले उन लोगोंका बड़ा सम्मान किया था, इससे वे और भी बँध गये थे। यही कारण है कि उन्होंने मोहिनीको कोई अप्रिय बात नहीं कही, सब चुपचाप बैठे रहे ॥ १४–२३ ॥

जिस समय भगवान् देवताओंको अमृत पिला रहे थे, उसी समय राहु दैत्य देवताओंका वेष बनाकर उनके बीचमें आ बैठा और देवताओंके साथ उसने भी अमृत पी लिया। परन्तु तत्क्षण चन्द्रमा और सूर्यने उसकी पोल खोल दी। अमृत पिलाते-पिलाते ही भगवान्‌ने अपने तीखी धारवाले चक्रसे उसका सिर काट डाला। अमृतका संसर्ग न होनेसे उसकी धड़ तो नीचे गिर गयी, परन्तु सिर अमर

पंद्रहवाँ अध्याय

राजा बलिकी स्वर्गपर विजय

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! श्रीहरि तो स्वयं ही सबके स्वामी हैं। फिर उन्होंने दीन हीनकी भाँति राजा बलिसे तीन पग पृथ्वी क्यों माँगी ? तथा जो कुछ वे चाहते थे, वह मिल जानेपर भी उन्होंने बलिको बाँधा क्यों ? मेरे हृदयमें इस बातका बड़ा कौतूहल है कि स्वयं परिपूर्ण यज्ञेश्वर भगवान्‌के द्वारा याचना और निरपराधका बन्धन— ये दोनों ही कैसे सम्भव हुए ? हमलोग यह जानना चाहते हैं ॥ १ २ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब इन्द्रने बलिको पराजित करके उनकी सम्पत्ति छीन ली और उनके प्राण भी ले लिये, तब भृगुनन्दन शुक्राचार्यने उन्हें अपनी सञ्जीवनी विद्यासे जीवित कर दिया। इसपर शुक्राचार्यजीके शिष्य महात्मा बलिने अपना सर्वस्व उनके चरणोंपर चढ़ा दिया और वे तन मनसे गुरुजीके साथ ही समस्त भृगुवंशी ब्राह्मणोंकी सेवा करने लगे। इससे प्रभावशाली भृगुवंशी ब्राह्मण उनपर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने स्वर्गपर विजय प्राप्त करनेकी इच्छावाले बलिका महाभिषेककी विधिसे अभिषेक करके उनसे विश्वजित् नामका यज्ञ कराया। यज्ञकी विधिसे हविष्योंके द्वारा जब अग्निदेवताकी पूजा की गयी, तब यज्ञकुण्डमेंसे सोनेकी चद्दरसे मढ़ा हुआ एक बड़ा सुन्दर रथ निकला। फिर इन्द्रके घोड़ों जैसे हरे रंगके घोड़े और सिंहके चिह्नसे युक्त रथपर लगानेकी ध्वजा निकली। साथ ही सोनेके पत्रसे मढ़ा हुआ दिव्य धनुष, कभी खाली न होनेवाले दो अक्षय तरकस और दिव्य कवच भी प्रकट हुए। दादा प्रह्लादजीने उन्हें एक ऐसी माला दी, जिसके फूल कभी कुम्हलाते न थे। तथा शुक्राचार्यने एक शङ्ख दिया। इस प्रकार ब्राह्मणोंकी कृपासे युद्धकी सामग्री प्राप्त करके उनके द्वारा स्वस्तिवाचन हो जानेपर राजा बलिने उन ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा की और नमस्कार किया। इसके बाद उन्होंने प्रह्लादजीसे सम्भाषण करके उनके चरणोंमें नमस्कार किया। फिर वे भृगुवंशी ब्राह्मणोंके दिये हुए दिव्य रथपर सवार हुए। जब महारथी राजा बलिने कवच धारण कर धनुष, तलवार, तरकस आदि शस्त्र ग्रहण कर लिये और दादाकी दी हुई सुन्दर माला धारण कर ली, तब उनकी बड़ी शोभा हुई। उनकी भुजाओंमें सोनेके बाजूबंद और कानोंमें मकराकृत कुण्डल जगमगा रहे थे। उनके कारण रथपर बैठे हुए वे ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानो अग्निकुण्डमें अग्नि प्रज्वलित हो रही हो। उनके साथ उन्हींके समान ऐश्वर्य, बल और विभूतिवाले दैत्यसेनापति अपनी अपनी सेना लेकर हो लिये। ऐसा जान पड़ता था मानो वे आकाशको पी जायँगे और अपने क्रोधभरे प्रज्वलित नेत्रोंसे समस्त दिशाओंको, क्षितिजको भस्म कर डालेंगे। राजा बलिने इस बहुत बड़ी आसुरी सेनाको लेकर उसका युद्धके ढंगसे सञ्चालन किया तथा आकाश और अन्तरिक्षको कँपाते हुए सकल ऐश्वर्योंसे परिपूर्ण इन्द्रपुरी अमरावतीपर चढ़ाई की ॥ ३–११ ॥

देवताओंकी राजधानी अमरावतीमें बड़े सुन्दर सुन्दर नन्दन वन आदि उद्यान और उपवन हैं। उन उद्यानों और उपवनोंमें पक्षियोंके जोड़े चहकते रहते हैं। मधुलोभी भौंरे मतवाले होकर गुनगुनाते रहते हैं। लाल लाल नये नये पत्तों, फलों और पुष्पोंसे कल्पवृक्षोंकी शाखाएँ लदी रहती हैं। वहाँके सरोवरोंमें हंस, सारस, चकवे और बत्तखोंकी भीड़ लगी रहती है। उन्हींमें देवताओंके द्वारा सम्मानित देवाङ्गनाएँ जलक्रीड़ा करती रहती हैं। ज्योतिर्मय आकाशगङ्गाने खाईकी भाँति अमरावतीको चारों ओरसे घेर रखा है। उसके चारों ओर बहुत ऊँचा सोनेका परकोटा बना हुआ है, जिसमें स्थान स्थानपर बड़ी बड़ी अटारियाँ बनी हुई हैं। सोनेके किवाड़ द्वार द्वारपर लगे हुए हैं और स्फटिकमणिके गोपुर (नगरके बाहरी फाटक) हैं। उसमें अलग अलग बड़े-बड़े राजमार्ग हैं। स्वयं विश्वकर्माने ही उस पुरीका निर्माण किया है। सभाके स्थान, खेलके चबूतरे और रथ चलनेके बड़े बड़े मार्गोंसे वह शोभायमान है। दस करोड़ विमान उसमें सर्वदा विद्यमान रहते हैं और मणियोंके बड़े बड़े चौराहे एवं हीरे और मूँगेकी वेदियाँ बनी हुई हैं। वहाँकी स्त्रियाँ सर्वदा सोलह वर्षकी-सी रहती हैं, उनका यौवन और सौन्दर्य स्थिर रहता है। वे निर्मल वस्त्र पहनकर अपने रूपकी छटासे इस प्रकार देदीप्यमान होती हैं, जैसे अपनी ज्वालाओंसे अग्नि। देवाङ्गनाओंके जूड़ेसे गिरे हुए नवीन सौगन्धिक पुष्पोंकी सुगन्धि लेकर वहाँके मार्गोंमें मन्द मन्द हवा चलती रहती है। सुनहली खिड़कियोंमेंसे अगरकी सुगन्धसे युक्त सफेद धूआँ निकल निकलकर वहाँके मार्गोंको ढक दिया करता है। उसी मार्गसे देवाङ्गनाएँ जाती आती हैं। स्थान स्थानपर मोतियोंकी झालरोंसे सजाये हुए चँदोवे तने रहते हैं। सोनेकी

बहुत-से प्राणियोंपर चढ़कर कई दैत्य दोनों सेनाओंमें आगे-आगे घुस गये ॥ १—१२ ॥

परीक्षित् ! उस समय रंग-बिरंगी पताकाओं, स्फटिक मणिके समान श्वेत निर्मल छत्रों, रत्नोंसे जड़े हुए दण्डवाले बहुमूल्य पंखों, मोरपंखों, चँवरों और वायुसे उड़ते हुए दुपट्टों, पगड़ी, कलँगी, कवच, आभूषण तथा सूर्यकी किरणोंसे अत्यन्त दमकते हुए उज्ज्वल शस्त्रों एवं वीरोंकी पंक्तियोंके कारण देवता और असुरोंकी सेनाएँ ऐसी शोभायमान हो रही थीं, मानो जल-जन्तुओंसे भरे हुए दो महासागर लहरा रहे हों। परीक्षित् ! रणभूमिमें दैत्योंके सेनापति विरोचनपुत्र बलि मय दानवके बनाये हुए वैहायस नामक विमानपर सवार हुए। वह विमान चलानेवालेकी जहाँ इच्छा होती थी, वहीं चला जाता था। युद्धकी समस्त सामग्रियाँ उसमें सुसज्जित थीं। परीक्षित् ! वह इतना आश्चर्यमय था कि कभी दिखलायी पड़ता तो कभी अदृश्य हो जाता। वह इस समय कहाँ है—जब इस बातका अनुमान भी नहीं किया जा सकता था, तब बतलाया तो कैसे जा सकता था। उसी श्रेष्ठ विमानपर राजा बलि सवार थे। सभी बड़े-बड़े सेनापति उनको चारों ओरसे घेरे हुए थे। उनपर श्रेष्ठ चमर डुलाये जा रहे थे और छत्र तना हुआ था। उस समय बलि ऐसे जान पड़ते थे, जैसे उदयाचलपर चन्द्रमा। उनके चारों ओर अपने-अपने विमानोंपर सेनाकी छोटी-छोटी टुकड़ियोंके स्वामी नमुचि, शम्बर, बाण, विप्रचित्ति, अयोमुख, द्विमूर्धा, कालनाभ, प्रहेति, हेति, इल्वल, शकुनि, भूतसन्ताप, वज्रदंष्ट्र, विरोचन, हयग्रीव, शङ्कुशिरा, कपिल, मेघदुन्दुभि, तारक, चक्राक्ष, शुम्भ, निशुम्भ, जम्भ, उत्कल, अरिष्ट, अरिष्टनेमि, त्रिपुराधिपति मय, पौलोम, कालेय और निवातकवच आदि स्थित थे। ये सब-के-सब समुद्रमन्थनमें सम्मिलित थे। परन्तु उन्हें अमृतके स्थानपर केवल क्लेश ही हाथ लगा था। इन असुरोंने एक नहीं, अनेक बार युद्धमें देवताओंको पराजित किया था। इसलिये वे बड़े उत्साहसे सिंहनाद करते हुए अपने घोर स्वरवाले शङ्ख बजाने लगे। इन्द्रने देखा कि हमारे शत्रुओंका मन बढ़ रहा है, ये मदोन्मत्त हो रहे हैं; तब उन्हें बड़ा क्रोध आया। वे अपने वाहन ऐरावत नामक दिग्गजपर सवार हुए। उसके कपोलोंसे मद बह रहा था। इसलिये इन्द्रकी ऐसी शोभा हुई, मानो भगवान् सूर्य उदयाचलपर आरूढ़ हों और उससे अनेकों झरने बह रहे हों। इन्द्रके चारों ओर अपने-अपने वाहन, ध्वजा और आयुधोंसे युक्त देवगण एवं अपने-अपने गणोंके साथ वायु, अग्नि, वरुण आदि लोकपाल हो लिये ॥ १३—२६ ॥

दोनों सेनाएँ आमने-सामने खड़ी हो गयीं। दो-दोकी जोड़ियाँ बनाकर वे लोग लड़ने लगे। कोई आगे बढ़ रहा था, तो कोई नाम ले-लेकर ललकार रहा था। कोई-कोई मर्मभेदी वचनोंके द्वारा अपने प्रतिद्वन्द्वीको धिक्कार रहा था। बलि इन्द्रसे, तारकासुर स्वामिकार्तिकसे, हेति वरुणसे और प्रहेति मित्रसे भिड़ गये। यमराज कालनाभसे, विश्वकर्मा मयसे, त्वष्टा शम्बरासुरसे तथा सविता विरोचनसे लड़ने लगे। नमुचि अपराजितसे, वृषपर्वा अश्विनीकुमारसे तथा बलिके बाण आदि सौ पुत्र सूर्यदेवसे युद्ध करने लगे। राहुके साथ चन्द्रमा और पुलोमाके साथ वायुका युद्ध हुआ। भद्रकाली देवी निशुम्भ और शुम्भपर झपट पड़ीं। परीक्षित् ! जम्भासुरसे महादेवजीकी, महिषासुरसे अग्निदेवकी और वातापि तथा इल्वलसे ब्रह्माके पुत्र मरीचि आदिकी ठन गयी। दुर्मर्षकी कामदेवसे, उत्कलकी मातृगणोंसे, शुक्राचार्यकी बृहस्पतिसे और नरकासुरकी शनैश्चरसे लड़ाई होने लगी। निवातकवचोंके साथ मरुद्गण, कालेयोंके साथ वसुगण, पौलोमोंके साथ विश्वेदेवगण तथा क्रोधवशोंके साथ रुद्रगणका संग्राम होने लगा ॥ २७—३४ ॥

इस प्रकार असुर और देवता रणभूमिमें एक-दूसरेसे भिड़कर अपने-अपने जोड़ीदारपर विजयकी इच्छासे उत्साहपूर्वक तीखे बाण, तलवार और भालोंसे प्रहार करने लगे। वे तरह-तरहसे युद्ध कर रहे थे। वे भुशुण्डि, चक्र, गदा, ऋष्टि, पट्टिश, शक्ति, उल्मुक, प्रास, फरसा, तलवार, भाले, मुद्गर, परिघ और भिन्दिपालसे एक-दूसरेका सिर काटने लगे। उस समय अपने सवारोंके साथ हाथी, घोड़े, रथ आदि अनेकों प्रकारके वाहन और पैदल सेना छिन्न-भिन्न होने लगी। किसीकी भुजा, किसीकी जङ्घा, किसीकी गरदन और किसीके पैर कट गये तो किसी-किसीकी ध्वजा, धनुष, कवच और आभूषण ही टुकड़े-टुकड़े हो गये। उनके चरणोंकी धमक और रथके पहियोंकी रगड़से पृथ्वी खुद गयी। उस समय रणभूमिसे ऐसी प्रचण्ड धूल उठी कि उसने दिशा, आकाश और सूर्यको भी ढक दिया। परन्तु थोड़ी ही देरमें खूनकी धारासे भूमि आप्लावित हो गयी और कहीं धूलका नाम भी न रहा। तदनन्तर लड़ाईका मैदान कटे हुए सिरोंसे भर गया। किसीके मुकुट और कुण्डल गिर गये

प्रकारका विघ्न तो नहीं हो रहा है ? यह भी सम्भव है कि तुम कुटुम्बके भरण पोषणमें व्यग्र रही हो, अतिथि आये हों और तुमसे बिना सम्मान पाये ही लौट गये हों; तुम खड़ी होकर उनका सत्कार करनेमें भी असमर्थ रही हो। इसीसे तो तुम उदास नहीं हो रही हो ? जिन घरोंमें आये हुए अतिथिका जलसे भी सत्कार नहीं किया जाता और वे ऐसे ही लौट जाते हैं, वे घर अवश्य ही गीदड़ोंके घरके समान हैं। प्रिये! सम्भव है, मेरे बाहर चले जानेपर कभी तुम्हारा चित्त उद्विग्न रहा हो और समयपर तुमने हविष्यसे अग्नियोंमें हवन न किया हो। सर्वदेवमय भगवान्‌के मुख हैं—ब्राह्मण और अग्नि। गृहस्थ पुरुष यदि इन दोनोंकी पूजा करता है तो उसे उन लोकोंकी प्राप्ति होती है, जो समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। प्रिये! तुम तो सर्वदा प्रसन्न रहती हो; परन्तु तुम्हारे बहुत-से लक्षणोंसे मैं देख रहा हूँ कि इस समय तुम्हारा चित्त अस्वस्थ है। तुम्हारे सब लड़के तो कुशल-मङ्गलसे हैं न?' ॥ १–१० ॥

अदितिने कहा—भगवन्! ब्राह्मण, गौ, धर्म और आपकी यह दासी—सब सकुशल हैं। मेरे स्वामी! यह गृहस्थ आश्रम ही अर्थ, धर्म और कामकी साधनामें परम सहायक है। प्रभो! आपके निरन्तर स्मरण और कल्याण कामनासे अग्नि, अतिथि, सेवक, भिक्षुक और दूसरे याचकोंका भी मैंने तिरस्कार नहीं किया है। भगवन्! जब आप जैसे प्रजापति मुझे इस प्रकार धर्म-पालनका उपदेश करते हैं, तब भला मेरे मनकी ऐसी कौन सी कामना है जो पूरी न हो जाय? आर्यपुत्र! समस्त प्रजा—वह चाहे सत्त्वगुणी, रजोगुणी या तमोगुणी हो—आपकी ही सन्तान है। कुछ आपके सङ्कल्पसे उत्पन्न हुए हैं और कुछ शरीरसे। भगवन्! इसमें सन्देह नहीं कि आप सब सन्तानोंके प्रति—चाहे असुर हों या देवता—एक-सा भाव रखते हैं, सम हैं। तथापि स्वयं परमेश्वर भी अपने भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण किया करते हैं। मेरे स्वामी! ऐसा उपाय कीजिये जिससे कि मेरे पुत्रोंको वे वस्तुएँ फिरसे प्राप्त हो जायँ ॥ ११–१७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इस प्रकार अदितिने जब कश्यपजीसे प्रार्थना की, तब वे कुछ विस्मित से होकर बोले—'बड़े आश्चर्यकी बात है। भगवान्‌की माया भी कैसी प्रबल है! यह सारा जगत् स्नेहकी रज्जुसे बँधा हुआ है। कहाँ तो यह पञ्चभूतोंसे बना हुआ अनात्मा शरीर और कहाँ प्रकृतिसे परे आत्मा? न किसीका कोई पति है, न पुत्र है और न तो सम्बन्धी ही है। मोह ही स्नेह-बन्धनमें जकड़कर मनुष्यको नचा रहा है। प्रिये! तुम सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें विराजमान, अपने भक्तोंके दुःख मिटानेवाले जगद्गुरु भगवान् वासुदेवकी आराधना करो। वे बड़े दीनदयालु हैं। अवश्य ही श्रीहरि तुम्हारी कामनाएँ पूर्ण करेंगे। मेरा यह दृढ निश्चय है कि भगवान्‌की भक्ति कभी व्यर्थ नहीं होती। इसके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं है' ॥ १८–२१ ॥

अदितिने पूछा—भगवन्! मैं जगदीश्वर भगवान्‌की आराधना किस प्रकार करूँ, जिससे वे सत्यसङ्कल्प प्रभु मेरा मनोरथ पूर्ण करें? पतिदेव! मैं अपने पुत्रोंके साथ बहुत ही दुःख भोग रही हूँ। जिससे वे शीघ्र ही मुझपर प्रसन्न हो जायँ, उनकी आराधनाकी वही विधि मुझे बतलाइये ॥ २२-२३ ॥

कश्यपजीने कहा—देवि! जब मुझे सन्तानकी कामना हुई थी, तब मैंने भगवान् ब्रह्माजीसे यही बात पूछी थी। उन्होंने मुझे भगवान्‌को प्रसन्न करनेवाले जिस व्रतका उपदेश किया था, वही मैं तुम्हें बतलाता हूँ। फाल्गुनके शुक्लपक्षमें बारह दिनतक केवल दूध पीकर रहे और परम भक्तिसे भगवान् कमलनयनकी पूजा करे। अमावस्याके दिन यदि मिल सके तो सूअरकी खोदी हुई मिट्टीसे अपना शरीर मलकर नदीमें स्नान करे। उस समय यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—'त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता। उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥' (हे देवि! प्राणियोंको स्थान देनेकी इच्छासे वराह-भगवान्‌ने रसातलसे तुम्हारा उद्धार किया था। तुम्हें मेरा नमस्कार है। तुम मेरे पापोंको नष्ट कर दो।) इसके बाद ... और नैमित्तिक नियमोंको पूरा करके एकाग्र चित्त ..., सूर्य, जल, अग्नि और गुरुदेवके रूपमें भगवान्‌की ... इस प्रकार स्तुति करे—'प्रभो! आप सर्वशक्ति- ... और आराधनीय हैं। समस्त प्राणी

ग्यारहवाँ अध्याय

देवासुर-संग्रामकी समाप्ति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! परमपुरुष भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे देवताओंकी घबड़ाहट जाती रही, उनमें नवीन उत्साहका सञ्चार हो गया। पहले इन्द्र, वायु आदि देवगण रणभूमिमें जिन-जिन दैत्योंसे आहत हुए थे, उन्हींके ऊपर अब वे पूरी शक्तिसे प्रहार करने लगे। परम ऐश्वर्यशाली इन्द्रने बलिसे लड़ते-लड़ते जब उनपर क्रोध करके वज्र उठाया, तब सारी प्रजामें हाहाकार मच गया। बलि अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर बड़े उत्साहसे युद्धभूमिमें बड़ी निर्भयतासे डटकर विचर रहे थे। उनको अपने सामने ही देखकर हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्रने उनका तिरस्कार करके कहा—'मूर्ख ! जैसे नट बच्चोंकी आँखें बाँधकर अपने जादूसे उनका धन ऐंठ लेता है, वैसे ही तू मायाकी चालोंसे हमपर विजय प्राप्त करना चाहता है। तुझे पता नहीं कि हमलोग मायाके स्वामी हैं, वह हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जो मूर्ख मायाके द्वारा स्वर्गपर अधिकार करना चाहते हैं, और उसको लाँघकर ऊपरके लोकोंमें भी धाक जमाना चाहते हैं—उन लुटेरे मूर्खोंको मैं उनके पहले स्थानसे भी नीचे पटक देता हूँ। नासमझ ! तूने मायाकी बड़ी-बड़ी चालें चली हैं। देख, आज मैं अपने सौ धारवाले वज्रसे तेरा सिर धड़से अलग किये देता हूँ। तू अपने भाई-बन्धुओंके साथ जो कुछ कर सकता हो, करके देख ले' ॥ १—६ ॥

बलिने कहा—इन्द्र ! जो लोग कालशक्तिकी प्रेरणासे अपने कर्मके अनुसार युद्ध करते हैं—उन्हें जीत या हार, यश या अपयश अथवा मृत्यु मिलती ही है। इसीसे ज्ञानीजन इस जगत्‌को कालके अधीन समझकर न तो विजय होनेपर हर्षसे फूल उठते हैं, और न तो अपकीर्ति, हार अथवा मृत्युसे शोकके ही वशीभूत होते हैं। तुम इस तत्त्वसे अनभिज्ञ हो। जय हो या पराजय, यश हो या अपयश, बल्कि चाहे प्राणसे ही हाथ क्यों न धोने पड़ें—उनके सम्बन्धमें हमें कोई चिन्ता नहीं है। तुमलोग अपनेको उसमें कारण मानते हो, तुम्हारा अभिमान अभी नष्ट नहीं हुआ है; इसीलिये ऐसी बात कह रहे हो। वास्तवमें तुम सज्जनोंके लिये शोचनीय हो। तुम्हारे ये मर्मस्पर्शी वचन हम ग्रहण ही नहीं करते, फिर हमें दुःख क्यों होने लगा ? ॥७—९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—वीर बलिने इन्द्रको इस प्रकार फटकारा। बलिकी फटकारसे इन्द्र कुछ झेंप गये। तबतक वीरोंका मान मर्दन करनेवाले बलिने अपने धनुषको कानतक खींच-खींचकर बहुत-से बाण मारे। परीक्षित् ! सत्यवादी देवशत्रु बलिने इस प्रकार इन्द्रका अत्यन्त तिरस्कार किया। अब तो इन्द्र अङ्कुशसे मारे हुए हाथीकी तरह और भी चिढ़ गये। बलिका आक्षेप वे सहन न कर सके। शत्रुघाती इन्द्रने बलिपर अपने अमोघ वज्रका प्रहार किया। उसकी चोटसे बलि पंख कटे हुए पर्वतके समान अपने विमानके साथ पृथ्वीपर गिर पड़े। बलिका एक बड़ा हितैषी और घनिष्ठ मित्र जम्भासुर था। अपने मित्रके गिर जानेपर भी उनको मारनेका बदला लेनेके लिये वह इन्द्रके सामने आ खड़ा हुआ। सिंहपर चढ़कर वह इन्द्रके पास पहुँच गया और बड़े वेगसे अपनी गदा उठाकर उनके जत्रुस्थान (हँसली) पर प्रहार किया। साथ ही उस महाबलीने ऐरावतपर भी एक गदा जमायी। गदाकी चोटसे ऐरावतको बड़ी पीड़ा हुई, उसने व्याकुलतासे घुटने टेक दिये और फिर मूर्च्छित हो गया ! उसी समय इन्द्रका सारथि मातलि हजार घोड़ोंसे जुता हुआ रथ ले आया और शक्तिशाली इन्द्र ऐरावतको छोड़कर तुरंत रथपर सवार हो गये। दानवश्रेष्ठ जम्भने मातलिके इस कामकी बड़ी प्रशंसा की और मुसकरा-



कर चमकता हुआ त्रिशूल उसके ऊपर चलाया। मातलिने धैर्यके साथ इस असह्य पीड़ाको सह लिया। तब इन्द्रने

उन सभीको, तथा दीन, अंधे और असमर्थ पुरुषोंको भी अन्न आदि देकर सन्तुष्ट करना चाहिये। जब सब लोग खा चुकें, तब उन सबके सत्कारको भगवान्‌की प्रसन्नताका साधन समझते हुए अपने भाई-बन्धुओंके साथ स्वयं भोजन करे। प्रतिपदासे लेकर त्रयोदशीतक प्रतिदिन नाच-गान, बाजे-गाजे, स्तुति, स्वस्तिवाचन और भगवत्कथाओंसे भगवान्‌की पूजा करे-करावे ॥ ४८–५७ ॥

प्रिये! यह भगवान्‌की श्रेष्ठ आराधना है। इसका नाम है 'पयोव्रत'। ब्रह्माजीने मुझे जैसा बताया था, वैसा ही मैंने तुम्हें बता दिया। देवि! तुम भाग्यवान् हो। अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके शुद्ध भाव एवं श्रद्धापूर्ण चित्तसे इस व्रतका भलीभाँति अनुष्ठान करो और इसके द्वारा अविनाशी भगवान्‌की आराधना करो। कल्याणी! यह व्रत भगवान्‌को सन्तुष्ट करनेवाला है, इसलिये इसका नाम है 'सर्वयज्ञ' और 'सर्वव्रत'। यह समस्त तपस्याओंका सार और मुख्य दान है। जिनसे भगवान् प्रसन्न हों—वे ही सच्चे नियम हैं, वे ही उत्तम यम हैं, वे ही वास्तवमें तपस्या, दान, व्रत और यज्ञ हैं। इसलिये देवि! संयम और श्रद्धासे तुम इस व्रतका अनुष्ठान करो। भगवान् शीघ्र ही तुमपर प्रसन्न होंगे और तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगे ॥ ५८–६२ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

भगवान्‌का प्रकट होकर अदितिको वर देना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अपने पतिदेव महर्षि कश्यपजीका उपदेश प्राप्त करके अदितिने बड़ी सावधानीसे बारह दिनतक इस व्रतका अनुष्ठान किया। बुद्धिको सारथि बनाकर मनकी लगामसे उसने इन्द्रियरूप दुष्ट घोड़ोंको अपने वशमें कर लिया और एकनिष्ठ बुद्धिसे वह पुरुषोत्तम भगवान्‌का चिन्तन करती रही। जब उसने एकाग्र बुद्धिसे अपने मनको सर्वात्मा भगवान् वासुदेवमें पूर्णरूपसे लगाकर पयोव्रतका अनुष्ठान किया, तब पुरुषोत्तम भगवान् उसके सामने प्रकट हुए। परीक्षित्! वे पीताम्बर धारण किये हुए थे, चार भुजाएँ थीं और शङ्ख, चक्र, गदा लिये हुए थे। अपने नेत्रोंके सामने भगवान्‌को सहसा प्रकट हुआ देख अदिति सादर उठ खड़ी हुई और फिर प्रेमसे विह्वल होकर उसने पृथ्वीपर लोटकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। फिर उठकर, हाथ जोड़, भगवान्‌की स्तुति करनेकी चेष्टा की, परन्तु नेत्रोंमें आनन्दके आँसू उमड़ आये, उससे बोला न गया। सारा शरीर पुलकित हो रहा था, दर्शनके आनन्दोल्लाससे उसके अङ्गोंमें कम्प होने लगा था, वह चुपचाप खड़ी रही। परीक्षित्! देवी अदिति अपने प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे लक्ष्मीपति, विश्वपति, यज्ञेश्वर भगवान्‌को इस प्रकार देख रही थी मानो वह उन्हें पी जायगी। फिर बड़े प्रेमसे, गद्‌गद वाणीसे, धीरे धीरे उसने भगवान्‌की स्तुति की ॥ १–७ ॥

अदितिने कहा—आप यज्ञके स्वामी हैं और स्वयं यज्ञ भी आप ही हैं। अच्युत! आपके चरणकमलोंका आश्रय लेकर लोग भवसागरसे तर जाते हैं। आपके यश कीर्तनका श्रवण भी संसारसे तारनेवाला है। आपके नामोंके श्रवणमात्रसे ही कल्याण हो जाता है। आदिपुरुष! जो आपकी शरणमें आ जाता है, उसकी सारी विपत्तियोंका आप नाश कर देते हैं। भगवन्! आप दीनोंके स्वामी हैं। आप हमारा कल्याण कीजिये। आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं। और विश्वरूप भी आप ही हैं। अनन्त होनेपर भी स्वच्छन्दतासे आप अनेक शक्ति और गुणोंको स्वीकार कर लेते हैं। आप सदा अपने स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं। नित्य निरन्तर बढ़ते हुए पूर्ण बोधके द्वारा आप हृदयके अन्धकारको नष्ट करते रहते हैं। भगवन्! मैं आपको नमस्कार करती हूँ। प्रभो! अनन्त! जब आप प्रसन्न हो जाते हैं, तब मनुष्योंको ब्रह्माजीकी दीर्घ आयु, उनका सा दिव्य शरीर, प्रत्येक अभीष्ट वस्तु, अतुलित धन, स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, योगकी समस्त सिद्धियाँ, अर्थ धर्म-कामरूप त्रिवर्ग और केवल ज्ञानतक प्राप्त हो जाता है। फिर शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना आदि जो छोटी-छोटी कामनाएँ हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ ८–१० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब अदितिने इस प्रकार कमलनयन भगवान्‌की स्तुति की, तब समस्त

ब्रह्माजीने देखा कि दानवोंका तो सर्वथा नाश हुआ जा रहा है। तब उन्होंने देवर्षि नारदको देवताओंके पास भेजा और नारदजीने वहाँ जाकर देवताओंको लड़नेसे रोक दिया ॥२९-४३॥

नारदजीने कहा—देवताओ! भगवान्‌की भुजाओंकी छत्रछायामें रहकर आपलोगोंने अमृत प्राप्त कर लिया है और लक्ष्मीजीने भी अपनी कृपा-कोरसे आपकी अभिवृद्धि की है, इसलिये आपलोग अब लड़ाई बंद कर दें ॥ ४४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवताओंने देवर्षि नारदकी बात मानकर अपने क्रोधके वेगको शान्त कर लिया और फिर वे सब-के-सब अपने लोक स्वर्गको चले गये। उस समय देवताओंके अनुचर उनके यशका गायन कर रहे थे। युद्धमें बचे हुए दैत्योंने देवर्षि नारदकी सम्मतिसे वज्रकी चोटसे मरे हुए बलिको लेकर अस्ताचलकी यात्रा की। वहाँ शुक्राचार्यने अपनी सञ्जीवनी विद्यासे उन असुरोंको जीवित कर दिया, जिनके गरदन आदि अंग कटे नहीं थे, बच रहे थे। शुक्राचार्यके स्पर्श करते ही बलिकी इन्द्रियोंमें चेतना और मनमें स्मरणशक्ति आ गयी। बलि यह बात समझते थे कि संसारमें जीवन-मृत्यु, जय-पराजय आदि उलट-फेर तो होते ही रहते हैं। इसलिये पराजित होनेपर भी उन्हें किसी प्रकारका खेद नहीं हुआ ॥ ४५-४८ ॥

बारहवाँ अध्याय

मोहिनीरूपको देखकर महादेवजीका मोहित होना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान् शङ्करने यह सुना कि श्रीहरिने स्त्रीका रूप धारण करके असुरोंको मोहित कर लिया और देवताओंको अमृत पिला दिया, तब वे सती देवीके साथ बैलपर सवार हो समस्त भूतगणोंको लेकर वहाँ गये जहाँ भगवान् मधुसूदन निवास करते हैं। भगवान् श्रीहरिने बड़े प्रेमसे गौरी-शङ्कर भगवान्‌का स्वागत-



सत्कार किया। वे भी सुखसे बैठकर भगवान्‌का सम्मान करके मुसकराते हुए बोले ॥ १-३ ॥

श्रीमहादेवजीने कहा—समस्त देवोंके आराध्यदेव! आप विश्वव्यापी, जगदीश्वर एवं जगत्स्वरूप हैं। समस्त चराचर पदार्थोंके मूल कारण, ईश्वर और आत्मा भी आप ही हैं। इस जगत्‌के आदि, अन्त और मध्य आपसे ही होते हैं; परन्तु आप आदि, मध्य और अन्तसे रहित हैं। आपके अविनाशी स्वरूपमें द्रष्टा, दृश्य, भोक्ता और भोग्यका भेदभाव नहीं है। वास्तवमें आप सत्य, चिन्मात्र ब्रह्म ही हैं। कल्याणकामी महात्मालोग इस लोक और परलोक दोनोंकी आसक्ति एवं समस्त कामनाओंका परित्याग करके आपके चरण-कमलोंकी ही आराधना करते हैं। आप अमृतस्वरूप, समस्त प्राकृत गुणोंसे रहित, शोककी छायासे भी दूर, स्वयं परिपूर्ण ब्रह्म हैं। आप केवल आनन्दस्वरूप हैं। आप निर्विकार हैं। आपसे भिन्न कुछ नहीं है, परन्तु आप सबसे भिन्न हैं। आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके परम कारण हैं। आप समस्त जीवोंके शुभाशुभ कर्मका फल देनेवाले स्वामी हैं। परन्तु यह बात भी जीवोंकी अपेक्षासे ही कही जाती है; वास्तवमें तो आप सबकी अपेक्षासे रहित, अनपेक्ष हैं। स्वामिन्! कार्य और कारण, द्वैत और अद्वैत—जो कुछ है, वह सब एकमात्र आप ही हैं; ठीक वैसे ही जैसे आभूषणोंके रूपमें स्थित सुवर्ण और मूल सुवर्णमें कोई अन्तर नहीं है—दोनों एक ही वस्तु हैं। लोगोंने आपके वास्तविक स्वरूपको न जाननेके कारण आपमें नाना प्रकारके भेद-भाव और विकल्पोंकी कल्पना कर रक्खी है। यही कारण है कि आपमें किसी प्रकारकी उपाधि न होनेपर भी गुणोंको लेकर भेदकी प्रतीति होती है। प्रभो! कोई-कोई आपको ब्रह्म समझते हैं, तो दूसरे आपको धर्म कहकर वर्णन करते हैं। इसी प्रकार कोई आपको प्रकृति और पुरुषसे परे परमेश्वर मानते

उन सभीको, तथा दीन, अंधे और असमर्थ पुरुषोंको भी अन्न आदि देकर सन्तुष्ट करना चाहिये। जब सब लोग खा चुकें, तब उन सबके सत्कारको भगवान्‌की प्रसन्नताका साधन समझते हुए अपने भाई बन्धुओंके साथ स्वयं भोजन करे। प्रतिपदासे लेकर त्रयोदशीतक प्रतिदिन नाच-गान, बाजे-गाजे, स्तुति, स्वस्तिवाचन और भगवत्कथाओंसे भगवान्‌की पूजा करे-करावे ॥ ४८–५७ ॥

प्रिये! यह भगवान्‌की श्रेष्ठ आराधना है। इसका नाम है 'पयोव्रत'। ब्रह्माजीने मुझे जैसा बताया था, वैसा ही मैंने तुम्हें बता दिया। देवि! तुम भाग्यवान् हो। अपनी इन्द्रियों को वशमें करके शुद्ध भाव एवं श्रद्धापूर्ण चित्तसे इस व्रतका भलीभाँति अनुष्ठान करो और इसके द्वारा अविनाशी भगवान्‌की आराधना करो। कल्याणी! यह व्रत भगवान्‌को सन्तुष्ट करनेवाला है, इसलिये इसका नाम है 'सर्वयज्ञ' और 'सर्वव्रत'। यह समस्त तपस्याओंका सार और मुख्य दान है। जिनसे भगवान् प्रसन्न हों—वे ही सच्चे नियम हैं, वे ही उत्तम यम हैं, वे ही वास्तवमें तपस्या, दान, व्रत और यज्ञ हैं। इसलिये देवि! संयम और श्रद्धासे तुम इस व्रतका अनुष्ठान करो। भगवान् शीघ्र ही तुमपर प्रसन्न होंगे और तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करेंगे ॥ ५८–६२ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

भगवान्‌का प्रकट होकर अदितिको वर देना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अपने पतिदेव महर्षि कश्यपजीका उपदेश प्राप्त करके अदितिने बड़ी सावधानीसे बारह दिनतक इस व्रतका अनुष्ठान किया। बुद्धिको सारथि बनाकर मनकी लगामसे उसने इन्द्रियरूप दुष्ट घोड़ोंको अपने वशमें कर लिया और एकनिष्ठ बुद्धिसे वह पुरुषोत्तम भगवान्‌का चिन्तन करती रही। जब उसने एकाग्र बुद्धिसे अपने मनको सर्वात्मा भगवान् वासुदेवमें पूर्णरूपसे लगाकर पयोव्रतका अनुष्ठान किया, तब पुरुषोत्तम भगवान् उसके सामने प्रकट हुए। परीक्षित्! वे पीताम्बर धारण किये हुए थे, चार भुजाएँ थीं और शङ्ख, चक्र, गदा लिये हुए थे। अपने नेत्रोंके सामने भगवान्‌को सहसा प्रकट हुआ देख अदिति सादर उठ खड़ी हुई और फिर प्रेमसे विह्वल होकर उसने पृथ्वीपर लोटकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। फिर उठकर, हाथ जोड़, भगवान्‌की स्तुति करनेकी चेष्टा की, परन्तु नेत्रोंमें आनन्दके आँसू उमड़ आये, उससे बोला न गया। सारा शरीर पुलकित हो रहा था, दर्शनके आनन्दोल्लाससे उसके अङ्गोंमें कम्प होने लगा था, वह चुपचाप खड़ी रही। परीक्षित्! देवी अदिति अपने प्रेमपूर्ण नेत्रोंसे लक्ष्मीपति, विश्वपति, यज्ञेश्वर भगवान्‌को इस प्रकार देख रही थी मानो वह उन्हें पी जायगी। फिर बड़े प्रेमसे, गद्गद वाणीसे, धीरे-धीरे उसने भगवान्‌की स्तुति की ॥ १–७ ॥

अदितिने कहा—आप यज्ञके स्वामी हैं और स्वयं यज्ञ भी आप ही हैं। अच्युत! आपके चरणकमलोंका आश्रय लेकर लोग भवसागरसे तर जाते हैं। आपके यश कीर्तनका श्रवण भी संसारसे तारनेवाला है। आपके नामोंके श्रवणमात्रसे ही कल्याण हो जाता है। आदिपुरुष! जो आपकी शरणमें आ जाता है, उसकी सारी विपत्तियोंका आप नाश कर देते हैं। भगवन्! आप दीनोंके स्वामी हैं। आप हमारा कल्याण कीजिये। आप विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके कारण हैं। और विश्वरूप भी आप ही हैं। अनन्त होनेपर भी स्वच्छन्दतासे आप अनेक शक्ति और गुणोंको स्वीकार कर लेते हैं। आप सदा अपने स्वरूपमें ही स्थित रहते हैं। नित्य निरन्तर बढ़ते हुए पूर्ण बोधके द्वारा आप हृदयके अन्धकारको नष्ट करते रहते हैं। भगवन्! मैं आपको नमस्कार करती हूँ। प्रभो! अनन्त! जब आप प्रसन्न हो जाते हैं, तब मनुष्योंको ब्रह्माजी की दीर्घ आयु, उनका सा दिव्य शरीर, प्रत्येक अभीष्ट वस्तु, अतुलित धन, स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, योगकी समस्त सिद्धियाँ, अर्थ धर्म कामरूप त्रिवर्ग और केवल ज्ञानतक प्राप्त हो जाता है। फिर शत्रुओंपर विजय प्राप्त करना आदि जो छोटी-छोटी कामनाएँ हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है ॥ ८–१० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब अदितिने इस प्रकार कमलनयन भगवान्‌की स्तुति की, तब समस्त

उन्होंने अत्यन्त वेगसे उसका पीछा करके पीछेसे उसका जूड़ा पकड़ लिया और उसकी इच्छा न होनेपर भी उसे दोनों भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया। जैसे हाथी हथिनीका आलिङ्गन करता है, वैसे ही भगवान् शङ्करने उसका आलिङ्गन किया। वह इधर-उधर खिसककर छुड़ानेकी चेष्टा करने लगी, इसी छीना-झपटीमें उसके सिरके बाल बिखर गये। वास्तवमें तो वह भगवान्की रची हुई माया ही थी, इससे उसने किसी प्रकार शङ्करजीके भुजपाशसे अपनेको छुड़ा लिया और बड़े वेगसे भागी। भगवान् शङ्कर भी उन मोहिनी-वेषधारी अद्भुतकर्मा भगवान् विष्णुके पीछे-पीछे दौड़ने लगे! उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो उनके शत्रु कामदेवने इस समय उनपर विजय प्राप्त कर ली है। कामुक हथिनीके पीछे दौड़नेवाले मदोन्मत्त हाथीके समान वे मोहिनीके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे। यद्यपि भगवान् शङ्करका वीर्य अमोघ है, फिर भी मोहिनीकी मायासे वह स्खलित हो गया। परीक्षित्! भगवान् शङ्करका वीर्य पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ गिरा, वहाँ-वहाँ सोने-चाँदीकी खानें बन गयीं; नदी, सरोवर, पर्वत, वन और उपवनमें एवं जहाँ-जहाँ ऋषि-मुनि निवास करते थे, वहाँ-वहाँ मोहिनीके पीछे-पीछे भगवान् शङ्कर गये थे। परीक्षित्! वीर्यपात हो जानेके बाद उन्हें अपनी स्मृति हुई। उन्होंने देखा कि अरे, भगवान्की मायाने तो मुझे खूब छकाया! वे तुरंत उस दुःखद प्रसङ्गसे अलग हो गये। इसके बाद आत्मस्वरूप सर्वात्मा भगवान्की यह महिमा जानकर उन्हें कोई आश्चर्य नहीं हुआ। वे जानते



थे कि भला, भगवान्की शक्तियोंका पार कौन पा सकता है। भगवान्ने देखा कि भगवान् शङ्करको इससे विषाद या लज्जा नहीं हुई है, तब वे पुरुष-शरीर धारण करके फिर प्रकट हो गये और बड़ी प्रसन्नतासे उनसे कहने लगे॥ २६—३७॥

श्रीभगवान्ने कहा—देवशिरोमणे! मेरी स्त्रीरूपिणी मायासे विमोहित होकर भी आप स्वयं ही अपनी निष्ठामें स्थित हो गये। यह बड़े ही आनन्दकी बात है। मेरी माया अपार है। वह ऐसे-ऐसे हाव-भाव रचती है कि अजितेन्द्रिय पुरुष तो किसी प्रकार उससे छुटकारा पा ही नहीं सकते। भला, आपके अतिरिक्त ऐसा कौन पुरुष है, जो एक बार मेरी मायाके फंदेमें फँसकर फिर स्वयं ही उससे निकल सके। यद्यपि मेरी यह गुणमयी माया बड़ों-बड़ोंको मोहित कर देती है, फिर भी अब यह आपको कभी मोहित नहीं करेगी। क्योंकि सृष्टि आदिके लिये समयपर उसे क्षोभित करनेवाला काल मैं ही हूँ, इसलिये मेरी इच्छाके विपरीत वह रजोगुण आदिकी सृष्टि नहीं कर सकती॥३८—४०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार भगवान् विष्णुने भगवान् शङ्करका सत्कार किया। तब उनसे विदा लेकर एवं परिक्रमा करके वे अपने गणोंके साथ कैलासको चले गये। भरतवंशशिरोमणे! भगवान् शङ्करने बड़े-बड़े ऋषियोंकी सभामें अपनी अर्द्धाङ्गिनी सती देवीसे अपने विष्णुरूपकी अंशभूता मायामयी मोहिनीका इस प्रकार बड़े प्रेमसे वर्णन किया—'देवि! तुमने परमपुरुष परमेश्वर भगवान् विष्णुकी माया देखी? देखो, यों तो मैं समस्त कला-कौशल, विद्या आदिका स्वामी और स्वतन्त्र हूँ, फिर भी उस मायासे विवश होकर मोहित हो जाता हूँ। फिर दूसरे जीव तो परतन्त्र हैं ही; अतः वे मोहित हो जायँ—इसमें तो कहना ही क्या है। जब मैं एक हजार वर्षकी समाधिसे उठा था, तब तुमने मेरे पास आकर पूछा था कि तुम किसकी उपासना करते हो। वे यही साक्षात् सनातन पुरुष हैं। न तो काल ही इन्हें अपनी सीमामें बाँध सकता है और न वेद ही इनका वर्णन कर सकता है! इनका वास्तविक स्वरूप अनन्त और अनिर्वचनीय है'॥ ४१—४४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित्! मैंने विष्णुभगवान्की यह ऐश्वर्यपूर्ण लीला तुमको सुनायी, जिसमें समुद्र-मन्थनके समय अपनी पीठपर मन्दराचल धारण करनेवाले भगवान्का वर्णन है। जो पुरुष बार-बार इसका कीर्तन और श्रवण करता है, उसका उद्योग कभी और कहीं निष्फल नहीं होता। क्योंकि पवित्रकीर्ति भगवान्के गुण और

अठारहवाँ अध्याय

वामनभगवान्‌का प्रकट होकर राजा बलिकी यज्ञशालामें जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार जब ब्रह्माजीने भगवान्‌की शक्ति और लीलाकी स्तुति की, तब जन्म-मृत्युरहित भगवान् अदितिके सामने प्रकट हुए। भगवान्‌के चार



भुजाएँ थीं; उनमें वे शङ्ख, गदा, कमल और चक्र धारण किये हुए थे। कमलके समान कोमल और बड़े-बड़े नेत्र थे। पीताम्बर शोभायमान हो रहा था। विशुद्ध श्यामवर्णका शरीर था। मकराकृत कुण्डलोंकी कान्तिसे मुख कमलकी शोभा और भी उल्लसित हो रही थी। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, हाथोंमें कंगन और भुजाओंमें बाजूबंद, सिरपर किरीट, कमरमें करधनीकी लड़ियाँ और चरणोंमें नूपुर जगमगा रहे थे। भगवान् गलेमें अपनी स्वरूपभूत वनमाला धारण किये हुए थे, जिसके चारों ओर झुंड-के झुंड भौंरे गुंजार कर रहे थे। उनके कण्ठमें कौस्तुभ मणि सुशोभित थी। भगवान्‌की अङ्ग-कान्तिसे प्रजापति कश्यपजीके घरका अन्धकार नष्ट हो गया। उस समय दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं। नदी और सरोवरोंका जल निर्मल हो गया। प्रजाके हृदयमें आनन्दकी बाढ आ गयी। सब ऋतुएँ एक साथ अपना-अपना गुण प्रकट करने लगीं। स्वर्गलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, देवता, गौ, द्विज और पर्वत—इन सबके हृदयमें हर्षका सञ्चार हो गया ॥ १-४ ॥

परीक्षित् ! जिस समय भगवान्‌ने जन्म ग्रहण किया, उस समय चन्द्रमा श्रवण नक्षत्रपर थे। भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी श्रवणनक्षत्रवाली द्वादशी थी। अभिजित् मुहूर्तमें भगवान्‌का जन्म हुआ था। सभी नक्षत्र और तारे भगवान्‌के जन्मको मङ्गलमय सूचित कर रहे थे। परीक्षित् ! जिस तिथिमें भगवान्‌का जन्म हुआ था, उसे 'विजया द्वादशी' कहते हैं। जन्मके समय सूर्य आकाशके मध्यभागमें स्थित थे। भगवान्‌के अवतारके समय शङ्ख, ढोल, मृदङ्ग, डफ और नगाड़े आदि बाजे बजने लगे। इन तरह-तरहके बाजों और तुरहियोंकी तुमुल ध्वनि होने लगी। अप्सराएँ प्रसन्न होकर नाचने लगीं। श्रेष्ठ गन्धर्व गाने लगे। मुनि, देवता, मनु, पितर और अग्नि स्तुति करने लगे। सिद्ध, विद्याधर, किम्पुरुष, किन्नर, चारण, यक्ष, राक्षस, पक्षी, मुख्य-मुख्य नागगण और देवताओंके अनुचर नाचने गाने और दिल खोलकर प्रशंसा करने लगे तथा उन लोगोंने अदितिके आश्रमको पुष्पोंकी वर्षासे ढक दिया ॥ ५-१० ॥

जब अदितिने अपने गर्भसे प्रकट हुए परम पुरुष परमात्माको देखा, तो वह अत्यन्त आश्चर्यचकित और परमानन्दित हो गयी। प्रजापति कश्यपजी भी भगवान्‌को अपनी योगमायासे शरीर धारण किये हुए देख विस्मित हो गये और भगवान्‌की जय-जयकार करने लगे। परीक्षित् ! भगवान् स्वयं अव्यक्त एवं चित्स्वरूप हैं। उन्होंने जो परम कान्तिमय आभूषण एवं आयुधोंसे युक्त शरीर ग्रहण किया था, उसी शरीरसे, कश्यप और अदितिके देखते देखते वामन ब्रह्मचारीका रूप धारण कर लिया—ठीक वैसे ही, जैसे नट अपना वेष बदल ले। क्यों न हो, भगवान्‌की लीला तो अद्भुत है ही ! ॥ ११-१२ ॥

भगवान्‌को वामन ब्रह्मचारीके रूपमें देखकर महर्षियोंको बड़ा आनन्द हुआ। उन लोगोंने कश्यप प्रजापतिको आगे करके उनके जातकर्म आदि संस्कार करवाये। जब उनका उपनयन-संस्कार होने लगा, तब गायत्रीके अधिष्ठातृ-देवता स्वयं सविताने उन्हें गायत्रीका उपदेश किया। देवगुरु बृहस्पतिजीने यज्ञोपवीत और कश्यपने मेखला दी। पृथ्वीने कृष्णमृगका चर्म, वनके स्वामी चन्द्रमाने दण्ड, माता अदितिने कौपीन तथा उसके ऊपर धारण करनेका वस्त्र एवं आकाशके अभिमानी देवताने वामन-वेषधारी भगवान्‌को छत्र दिया। परीक्षित् ! अविनाशी प्रभुको ब्रह्माजीने कमण्डलु, सप्तर्षियोंने

होंगे और वैधृत नामके इन्द्र होंगे। आर्यककी पत्नी वैधृताके गर्भसे धर्मसेतुके रूपमें भगवान्‌का अंशावतार होगा और उसी रूपमें वे त्रिलोकीकी रक्षा करेंगे ॥ २४—२६ ॥

परीक्षित्! बारहवें मनु होंगे रुद्रसावर्णि। उनके देववान्, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि पुत्र होंगे। उस मन्वन्तरमें ऋतधामा नामक इन्द्र होंगे और हरित आदि देवगण। तपोमूर्ति, तपस्वी आग्नीध्रक आदि सप्तर्षि होंगे। सत्यसहाकी पत्नी सूनृताके गर्भसे स्वधामाके रूपमें भगवान्‌का अंशावतार होगा और उसी रूपमें भगवान् उस मन्वन्तरका पालन करेंगे ॥ २७—२९ ॥

तेरहवें मनु होंगे परम जितेन्द्रिय देवसावर्णि। चित्रसेन, विचित्र आदि उनके पुत्र होंगे। सुकर्म और सुत्राम आदि देवगण होंगे तथा इन्द्रका नाम होगा दिवस्पति। उस समय निर्मोक और तत्त्वदर्श आदि सप्तर्षि होंगे। देवहोत्रकी पत्नी बृहतीके गर्भसे योगेश्वरके रूपमें भगवान्‌का अंशावतार होगा और उसी रूपमें भगवान् दिवस्पतिको इन्द्रपद देंगे ॥ ३०—३२ ॥

महाराज! चौदहवें मनु होंगे इन्द्रसावर्णि। उरु, गम्भीरबुद्धि आदि उनके पुत्र होंगे। उस समय पवित्र, चाक्षुष आदि देवगण होंगे और इन्द्रका नाम होगा शुचि। अग्नि, बाहु, शुचि, शुद्ध और मागध आदि सप्तर्षि होंगे। उस समय सत्रायणकी पत्नी वितानाके गर्भसे बृहद्भानुके रूपमें भगवान् अवतार ग्रहण करेंगे तथा कर्मकाण्डका विस्तार करेंगे ॥ ३३—३५ ॥

परीक्षित्! ये चौदह मन्वन्तर भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनों ही कालमें चलते रहते हैं। इन्हींके द्वारा एक सहस्र चतुर्युगीवाले कल्पके समयकी गणना की जाती है ॥ ३६ ॥

चौदहवाँ अध्याय

मनु आदिके कर्मोंका निरूपण

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आपके द्वारा वर्णित ये मनु, मनुपुत्र, सप्तर्षि आदि अपने-अपने मन्वन्तरमें किसके द्वारा नियुक्त होकर कौन-कौन-सा काम किस प्रकार करते हैं—यह आप कृपा करके मुझे बतलाइये ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मनु, मनुपुत्र, सप्तर्षि और देवता—सबको नियुक्त करनेवाले तो स्वयं भगवान् ही हैं। राजन्! भगवान्‌के जिन यज्ञपुरुष आदि अवतार-शरीरोंका वर्णन मैंने किया है, उन्हींकी प्रेरणासे मनु आदि विश्व-व्यवस्थाका सञ्चालन करते हैं। चतुर्युगीके अन्तमें समयके उलट-फेरसे जब श्रुतियाँ नष्टप्राय हो जाती हैं, तब सप्तर्षिगण अपनी तपस्यासे पुनः उनका साक्षात्कार करते हैं। उन श्रुतियोंसे ही सनातनधर्मकी रक्षा होती है। भगवान्‌की प्रेरणासे अपने-अपने मन्वन्तरमें बड़ी सावधानीसे सब-के-सब मनु पृथ्वीपर चारों चरणसे परिपूर्ण धर्मका अनुष्ठान करवाते हैं। मनुपुत्र मन्वन्तरभर काल और देश दोनोंका विभाग करके प्रजापालन तथा धर्मपालनका कार्य करते हैं। पञ्चमहायज्ञ आदि कर्मोंमें जिन ऋषि, पितर, भूत और मनुष्य आदिका सम्बन्ध है—उनके साथ देवता उस मन्वन्तरमें यज्ञका भाग स्वीकार करते हैं। इन्द्र भगवान्‌की दी हुई त्रिलोकीकी अतुल सम्पत्तिका उपभोग और प्रजाका पालन करते हैं। संसारमें यथेष्ट वर्षा करनेका अधिकार भी उन्हींको है। भगवान् युग-युगमें सनक आदि सिद्धोंका रूप धारण करके ज्ञानका, याज्ञवल्क्य आदि ऋषियोंका रूप धारण करके कर्मका और दत्तात्रेय आदि योगेश्वरोंके रूपमें योगका उपदेश करते हैं। वे मरीचि आदि प्रजापतियोंके रूपमें सृष्टिका विस्तार करते हैं, सम्राट्के रूपमें लुटेरोंका वध करते हैं और शीत, उष्ण आदि विभिन्न गुणोंको धारण करके कालरूपसे सबको संहारकी ओर ले जाते रहते हैं। नाम और रूपकी मायासे प्राणियोंकी बुद्धि विमूढ़ हो रही है। इसलिये वे अनेक प्रकारके दर्शनशास्त्रोंके द्वारा महिमा तो भगवान्‌की ही गाते हैं, परन्तु उनके वास्तविक स्वरूपको नहीं जान पाते ॥ २—१० ॥

परीक्षित्! इस प्रकार मैंने तुम्हें महाकल्प और अवान्तर कल्पका परिमाण सुना दिया। पुराणतत्त्वके विद्वानोंने प्रत्येक अवान्तर कल्पमें चौदह मन्वन्तर बतलाये हैं ॥ ११ ॥

कभी हुआ ही नहीं, ऐसा भी कोई नहीं हुआ, जिसने ब्राह्मण को कभी दान न दिया हो अथवा जो एक बार किसीको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके बादमें मुकर गया हो। दानके अवसरपर याचकोंकी याचना सुनकर, और युद्धके अवसरपर शत्रुके ललकारनेपर उनकी ओरसे मुँह मोड़ लेनेवाला कायर आपके वंशमें कोई भी नहीं हुआ। क्यों न हो, आपकी कुलपरम्परामें प्रह्लाद अपने निर्मल यशसे वैसे ही शोभायमान होते हैं, जैसे आकाशमें चन्द्रमा। आपके कुलमें ही हिरण्याक्ष जैसे वीरका जन्म हुआ था। वह वीर जब हाथमें गदा लेकर अकेला ही दिग्विजयके लिये निकला, तब सारी पृथ्वीमें घूमनेपर भी उसे अपनी जोड़का कोई वीर न मिला। जब विष्णुभगवान् जलमेंसे पृथ्वीका उद्धार कर रहे थे, तब वह उनके सामने आया और बड़ी कठिनाईसे उन्होंने उस पर विजय प्राप्त की। परन्तु उसके बहुत बाद भी उन्हें बार बार हिरण्याक्षकी शक्ति और बलका स्मरण हो आया करता था, और उसे जीत लेनेपर भी वे अपनेको विजयी नहीं समझते थे। जब हिरण्याक्षके भाई हिरण्यकशिपुको उसके वधका वृत्तान्त मालूम हुआ, तब वह अपने भाईका वध करनेवालेको मार डालनेके लिये क्रोध करके भगवान्‌के निवासस्थान वैकुण्ठधाम मे पहुँचा। विष्णुभगवान् माया रचनेवालोंमें सबसे बड़े हैं और समयको तो खूब पहचानते ही हैं। जब उन्होंने देखा कि हिरण्यकशिपु तो हाथमें शूल लेकर कालकी भाँति मेरे ही ऊपर धावा कर रहा है, तब उन्होंने विचार किया—'जैसे संसारके प्राणियोंके पीछे मृत्यु लगी रहती है—वैसे ही मैं जहाँ जहाँ जाऊँगा, वहीं वहीं यह मेरा पीछा करेगा। इसलिये मैं इसके हृदयमें प्रवेश कर जाऊँ, जिससे यह मुझे देख न सके। क्योंकि यह तो बहिर्मुख है, बाहरकी वस्तुएँ ही देखता है।' असुरशिरोमणे! जिस समय हिरण्यकशिपु उनपर झपट रहा था, उसी समय ऐसा निश्चय करके डरसे काँपते हुए विष्णुभगवान्‌ने अपने शरीरको सूक्ष्म बना लिया और उसके प्राणोंके द्वारा नासिकामेंसे होकर हृदयमें जा बैठे। हिरण्यकशिपुने उनके लोकको भलीभाँति छान डाला, परन्तु उनका कहीं पता न चला। इसपर क्रोधित होकर वह सिंहनाद करने लगा। उस वीरने पृथ्वी, स्वर्ग, दिशा, आकाश, पाताल और समुद्र—सब कहीं विष्णुभगवान्‌को ढूँढा, परन्तु वे कहीं भी उसे दिखायी न दिये। उनको कहीं न देखकर वह कहने लगा—'मैंने सारा जगत् छान डाला, परन्तु वह मिला नहीं। अवश्य ही वह उस लोकमें चला गया, जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं होता। बस, अब उससे वैरभाव रखनेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि वैर तो देहके साथ ही समाप्त हो जाता है। क्रोधका कारण अज्ञान है और अहङ्कारसे उसकी वृद्धि होती है।' राजन्! आपके पिता प्रह्लादनन्दन विरोचन बड़े ही ब्राह्मणभक्त थे। यहाँतक कि उनके शत्रु देवताओंने ब्राह्मणोंका वेष बनाकर उनसे उनकी आयुका दान माँगा और उन्होंने ब्राह्मणोंके छलको जानते हुए भी अपनी आयु दे डाली। आप भी उसी धर्मका आचरण करते हैं जिसका शुक्राचार्य आदि गृहस्थ ब्राह्मण, आपके पूर्वज प्रह्लाद और दूसरे यशस्वी वीरोंने पालन किया है। दैत्येन्द्र! आप मुँहमाँगी वस्तु देनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं। इसीसे मैं आपसे थोड़ी सी पृथ्वी, केवल अपने पैरोंसे तीन डग माँगता हूँ। माना कि आप सारे जगत्‌के स्वामी और बड़े उदार हैं, फिर भी मैं आपसे इससे अधिक नहीं चाहता। विद्वान् पुरुषको केवल अपनी आवश्यकताके अनुसार ही दान स्वीकार करना चाहिये। इससे वह प्रतिग्रहजन्य पापसे बच जाता है॥ २–१७॥

राजा बलिने कहा—ब्राह्मणकुमार! तुम्हारी बातें तो बूढ़ों जैसी हैं, परन्तु तुम्हारी बुद्धि अभी बच्चोंकी सी ही है। अभी तुम हो भी तो बालक ही न, इसीसे अपना हानि लाभ नहीं समझ रहे हो। मैं तीनों लोकोंका एकमात्र अधिपति हूँ और तुम्हें द्वीप का द्वीप दे सकता हूँ। मुझे तुमने अपनी वाणीसे प्रसन्न कर लिया है। अब भला, मुझसे केवल तीन डग भूमि माँगना कोई बुद्धिमानीकी बात है? ब्रह्मचारीजी! जो एक बार कुछ माँगनेके लिये मेरे पास आ गया, उसे फिर कभी किसीसे कुछ माँगनेकी आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिये। अत अपनी जीविका चलानेके लिये तुम्हें जितनी भूमिकी आवश्यकता हो, उतनी मुझसे माँग लो॥१८–२०॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—राजन्! संसारके सब-के-सब प्यारे विषय एक मनुष्यकी कामनाओंको भी पूर्ण करनेमें समर्थ नहीं हैं, यदि वह अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखने वाला—सन्तोषी न हो। जो तीन पग भूमिसे सन्तोष नहीं कर लेता, उसे नौ वर्षोंसे युक्त एक द्वीप भी दे दिया जाय तो भी वह सन्तुष्ट नहीं हो सकता। क्योंकि उसके मनमें सातों द्वीप पानेकी इच्छा बनी ही रहेगी। मैंने सुना है कि पृथु, गय आदि नरेश सातों द्वीपोंके अधिपति थे, परन्तु उतने धन और भोगकी सामग्रियोंके मिलनेपर भी वे तृष्णाका पार न पा सके। जो कुछ प्रारब्धसे मिल जाय, उसीसे सन्तुष्ट हो रहनेवाला पुरुष अपना जीवन सुखसे व्यतीत करता है।

मणिमय पताकाएँ फहराती रहती हैं। छज्जोंपर अनेकों झंडियाँ लहराती रहती हैं। मोर, कबूतर और भौंरे कलगान करते रहते हैं। देवाङ्गनाओंके मधुर संगीतसे वहाँ सदा ही मङ्गल छाया रहता है। मृदङ्ग, शङ्ख, नगाड़े, ढोल, वीणा, वंशी, मँजीरे और ऋष्टियाँ बजती रहती हैं। गन्धर्व बाजोंके साथ गाया करते हैं और अप्सराएँ नाचा करती हैं। इनसे अमरावती इतनी मनोहर जान पड़ती है मानो उसने अपनी छटासे छटाकी अधिष्ठात्री देवीको भी जीत लिया है। उस पुरीमें अधर्मी, दुष्ट, जीवद्रोही, ठग, मानी, कामी और लोभी नहीं जा सकते। जो इन दोषोंसे रहित हैं, वे ही वहाँ जाते हैं। असुरोंकी सेनाके स्वामी राजा बलिने अपनी बहुत बड़ी सेनासे बाहरकी ओर सब ओरसे अमरावतीको घेर लिया और इन्द्रपत्नियोंके हृदयमें भयका सञ्चार करते हुए उन्होंने शुक्राचार्यजीके दिये हुए महान् शङ्खको बजाया। उस शङ्खकी ध्वनि सर्वत्र फैल गयी ॥ १२–२३ ॥

इन्द्रने देखा कि बलिने तो युद्धकी बहुत बड़ी तैयारी की है। अतः सब देवताओंके साथ वे अपने गुरु बृहस्पतिजीके पास गये और उनसे बोले—'भगवन्! मेरे पुराने शत्रु बलिने इस बार युद्धकी बहुत बड़ी तैयारी की है। मुझे ऐसा जान पड़ता है कि हमलोग उनका सामना नहीं कर सकेंगे। पता नहीं, किस शक्तिसे इनकी इतनी बढ़ती हो गयी है। मैं देखता हूँ कि इस समय बलिको कोई भी किसी प्रकारसे रोक नहीं सकता। वे तो प्रलयकी आगके समान बढ़ गये हैं और जान पड़ता है मुखसे इस विश्वको पी जायँगे, जीभसे दसों दिशाओंको चाट जायँगे और नेत्रोंकी ज्वालासे दिशाओंको भस्म कर देंगे। आप कृपा करके मुझे बतलाइये कि मेरे शत्रुकी इतनी बढ़तीका, जिसे किसी प्रकार भी दबाया नहीं जा सकता, क्या कारण है। इसके शरीरमें, मनमें, इन्द्रियोंमें इतना बल और इतना तेज कहाँसे आ गया है कि इसने इतनी बड़ी तैयारी करके चढ़ाई की है ? ॥२४–२७॥

देवगुरु बृहस्पतिजीने कहा—'इन्द्र! मैं तुम्हारे शत्रु बलिकी उन्नतिका कारण जानता हूँ। ब्रह्मवादी भृगुवंशियोंने अपने शिष्य बलिको महान् तेज देकर शक्तियोंका खजाना बना दिया है। सर्वशक्तिमान् भगवान्‌को छोड़कर तुम या तुम्हारे-जैसा और कोई भी बलिके सामने उसी प्रकार नहीं ठहर सकता, जैसे कालके सामने प्राणी। इसलिये तुमलोग स्वर्गको छोड़कर कहीं छिप जाओ और उस समयकी प्रतीक्षा करो, जब तुम्हारे शत्रुका भाग्यचक्र पलटे। इस समय ब्राह्मणोंके तेजसे बलिकी उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। उसकी शक्ति बहुत बढ़ गयी है। जब यह उन्हीं ब्राह्मणोंका तिरस्कार करेगा, तब अपने परिवारके साथ नष्ट हो जायगा।' बृहस्पतिजी देवताओंके समस्त स्वार्थ और परमार्थके ज्ञाता थे। उन्होंने जब इस प्रकार देवताओंको सलाह दी, तब वे स्वेच्छानुसार रूप धारण करके स्वर्ग छोड़कर चले गये। देवताओंके छिप जानेपर बलिने अमरावती पुरीपर अपना अधिकार कर लिया और फिर तीनों लोकोंको जीत लिया। जब बलि विश्वविजयी हो गये, तब शिष्यप्रेमी भृगुवंशियोंने अपने अनुगत शिष्यसे सौ अश्वमेध यज्ञ करवाये। उन यज्ञोंके प्रभावसे बलिकी कीर्ति-कौमुदी तीनों लोकोंसे बाहर भी दसों दिशाओंमें फैल गयी और वे नक्षत्रोंके राजा चन्द्रमाके समान शोभायमान हुए। ब्राह्मण-देवताओंकी कृपासे प्राप्त समृद्ध राज्य-लक्ष्मीका वे बड़ी उदारतासे उपभोग करने लगे और अपनेको कृतकृत्य-सा मानने लगे ॥ २८–३६ ॥

सोलहवाँ अध्याय

कश्यपजीके द्वारा अदितिको पयोव्रतका उपदेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब देवता इस प्रकार भागकर छिप गये और दैत्योंने स्वर्गपर अधिकार कर लिया, तब देवमाता अदितिको बड़ा दुःख हुआ। वे अनाथ-सी हो गयीं। एक बार बहुत दिनोंके बाद जब कश्यप मुनिकी समाधि टूटी, तब वे अदितिके आश्रमपर आये। उन्होंने देखा कि न तो वहाँ सुख-शान्ति है और न किसी प्रकारका उत्साह या सजावट ही है, चारों ओर उदासी छायी हुई है। परीक्षित्! जब वे वहाँ जाकर आसनपर बैठ गये और अदितिने विधिपूर्वक उनका सत्कार कर लिया, तब वे अपनी पत्नी अदितिसे—जिसके चेहरेपर बड़ी उदासी छायी हुई थी—बोले, 'कल्याणी! इस समय संसारमें ब्राह्मणोंपर कोई विपत्ति तो नहीं आयी है ? धर्मका पालन तो ठीक-ठीक होता है ? कालके कराल गालमें पड़े हुए लोगोंका कुछ अमङ्गल तो नहीं हो रहा है ? प्रिये! गृहस्थाश्रम तो, जो लोग योग नहीं कर सकते, उन्हें भी योगका फल देनेवाला है। इस गृहस्थाश्रममें रहकर धर्म, अर्थ और कामके सेवनमें किसी

आपमें और आप समस्त प्राणियोंमें निवास करते हैं। इसीसे आपको 'वासुदेव' कहते हैं। आप समस्त चराचर जगत् और उसके कारणके भी साक्षी हैं। भगवन्! मेरा आपको नमस्कार है। आप अव्यक्त और सूक्ष्म हैं। प्रकृति और पुरुषके रूपमें भी आप ही स्थित हैं। आप चौबीस गुणोंके जाननेवाले और गुणोंकी संख्या करनेवाले सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक हैं। आपको मेरा नमस्कार है। आप वह यज्ञ हैं, जिसके प्रायणीय और उदयनीय—ये दो कर्म सिर हैं। प्रातः, मध्याह्न और तृतीय—ये तीन सवन ही तीन पाद हैं। चारों वेद चार सींग हैं। गायत्री आदि सात छन्द ही सात हाथ हैं। यह धर्ममय वृषभरूप यज्ञ वेदोंके द्वारा प्रतिपादित है और इसकी आत्मा हैं स्वयं आप! आपको मेरे नमस्कार हैं। आप ही लोककल्याणकारी शिव और आप ही प्रलयकारी रुद्र हैं। समस्त शक्तियोंको धारण करनेवाले भी आप ही हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार है! आप समस्त विद्याओंके अधिपति एवं भूतोंके स्वामी हैं। आपके चरणोंमें नमस्कार! आप ही सबके प्राण और आप ही इस जगत्के स्वरूप भी हैं। आप योगके कारण तो हैं ही, स्वयं योग और उससे मिलनेवाला ऐश्वर्य भी आप ही हैं। हे हिरण्यगर्भ! आपके लिये मेरे नमस्कार! आप ही आदिदेव हैं। सबके साक्षी हैं। आप ही नर-नारायण ऋषिके रूपमें प्रकट स्वयं भगवान् हैं। आपको मेरे नमस्कार! आपका शरीर मरकतमणिके समान साँवला है। समस्त सम्पत्ति और सौन्दर्यकी देवी लक्ष्मी आपकी सेविका हैं। पीताम्बरधारी केशव! आपको मेरे बार-बार नमस्कार! आप सब प्रकारके वर देनेवाले हैं। वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं। तथा जीवोंके एकमात्र वरणीय हैं। यही कारण है कि धीर विवेकी पुरुष अपने कल्याणके लिये आपके चरणोंकी रजकी उपासना करते हैं। जिनके चरणकमलोंकी सुगन्ध प्राप्त करनेकी लालसासे समस्त देवता और स्वयं लक्ष्मीजी भी सेवामें लगी रहती हैं, वे भगवान् मुझपर प्रसन्न हों।' प्रिये! भगवान् हृषीकेशका आवाहन तो पहले ही कर ले। फिर इन मन्त्रोंके द्वारा पाद्य, आचमन आदिके साथ श्रद्धापूर्वक पूजा करे। गन्ध, माला आदिसे पूजा करके भगवान्को दूधसे स्नान करावे। उसके बाद वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभूषण, पाद्य, आचमन, गन्ध, धूप आदिके द्वारा द्वादशाक्षर मन्त्रसे भगवान्की पूजा करे। यदि सामर्थ्य हो तो दूधमें पकाये हुए तथा घी और गुड़ मिले हुए शालिके चावलका नैवेद्य लगावे और उसीका द्वादशाक्षर मन्त्रसे हवन करे। उस नैवेद्यको भगवान्के भक्तोंमें बाँट दे या स्वयं पा ले। इसके बाद आचमन करावे और पूजाके बाद ताम्बूल निवेदन करे। एक सौ आठ बार द्वादशाक्षर-मन्त्रका जप करे और स्तुतियोंके द्वारा भगवान्का स्तवन करे। प्रदक्षिणा करके बड़े प्रेम और आनन्दसे भूमिपर लोटकर दण्डवत्-प्रणाम करे। निर्माल्यको सिरसे लगाकर देवताका विसर्जन करे। कम-से-कम दो ब्राह्मणोंको यथोचित रीतिसे खीरका भोजन करावे तथा दक्षिणा आदिसे उनका सत्कार करे। इसके बाद उनसे आज्ञा लेकर अपने इष्ट-मित्रोंके साथ बचे हुए अन्नको स्वयं ग्रहण करे। उस दिन ब्रह्मचर्यसे रहे और दूसरे दिन प्रातःकाल ही स्नान आदि करके पवित्रतापूर्वक पूर्वोक्त विधिसे एकाग्र होकर भगवान्की पूजा करे। इस प्रकार जबतक व्रत समाप्त न हो, तबतक दूधसे स्नान कराकर प्रतिदिन भगवान्की पूजा करे। भगवान्की पूजामें आदर-बुद्धि रखते हुए केवल पयोव्रती रहकर यह व्रत करना चाहिये। पूर्ववत् प्रतिदिन हवन और ब्राह्मण-भोजन भी कराना चाहिये। इस प्रकार पयोव्रती रहकर बारह दिनतक प्रतिदिन भगवान्की आराधना, होम और पूजा करे तथा ब्राह्मण-भोजन कराता रहे ॥ २४—४७ ॥

फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदासे लेकर त्रयोदशीपर्यन्त ब्रह्मचर्यसे रहे, पृथ्वीपर शयन करे और तीनों समय स्नान करे। झूठ न बोले। पापियोंसे बात न करे। पापकी बात न करे। छोटे-बड़े सब प्रकारके भोगोंका त्याग कर दे। किसी भी प्राणीको किसी प्रकारसे कष्ट न पहुँचावे। भगवान्की आराधनामें लगा ही रहे। त्रयोदशीके दिन विधि जाननेवाले ब्राह्मणोंके द्वारा शास्त्रोक्त विधिसे भगवान् विष्णुको पञ्चामृतस्नान करावे। उस दिन धनका सङ्कोच छोड़कर भगवान्की बहुत बड़ी पूजा करनी चाहिये। और दूधमें चरु (खीर) पकाकर विष्णुभगवान्को अर्पित करना चाहिये। अत्यन्त एकाग्र चित्तसे उसी पकाये हुए चरुके द्वारा भगवान्का यजन करना चाहिये और उनको प्रसन्न करनेवाला गुणयुक्त तथा स्वादिष्ट नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। इसके बाद ज्ञानसम्पन्न आचार्य और ऋत्विजोंको वस्त्र, आभूषण और गौ आदि देकर सन्तुष्ट करना चाहिये। प्रिये! इसे भी भगवान्की ही आराधना समझो। प्रिये! आचार्य और ऋत्विजोंको तो शुद्ध, सात्त्विक और गुणयुक्त भोजन कराना ही चाहिये; दूसरे ब्राह्मण और आये हुए अतिथियोंको भी अपनी शक्तिके अनुसार भोजन कराना चाहिये। गुरु और ऋत्विजोंको यथायोग्य दक्षिणा देनी चाहिये। जो चाण्डाल आदि अपने-आप वहाँ आ गये हों,

बीसवाँ अध्याय

भगवान् वामनजीका विराट्रूप होकर दो ही पगसे पृथ्वी और स्वर्गको नाप लेना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन् ! जब कुलगुरु शुक्राचार्यने इस प्रकार कहा, तब आदर्श गृहस्थ राजा बलिने एक क्षण चुप रहकर बड़ी विनय और सावधानीसे शुक्राचार्यजीके प्रति यों कहा ॥ १ ॥

राजा बलिने कहा—भगवन् ! आपका कहना सत्य है। गृहस्थाश्रममें रहनेवालोंके लिये वही धर्म है जिससे अर्थ, काम, यश और आजीविकामें कभी किसी प्रकार बाधा न पड़े। परन्तु गुरुदेव ! मैं प्रह्लादजीका पौत्र हूँ और एक बार देनेकी प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अतः अब मैं धनके लोभसे धोखेबाजकी तरह इस ब्राह्मणसे कैसे कहूँ कि 'मैं तुम्हें नहीं दूँगा' ? इस पृथ्वीने कहा है कि 'असत्यसे बढ़कर कोई अधर्म नहीं है। मैं सब कुछ सहनेमें समर्थ हूँ, परन्तु झूठे मनुष्यका भार मुझसे नहीं सहा जाता।' मैं नरकसे, दरिद्रतासे, दुःखके समुद्रसे, अपने राज्यके नाशसे और मृत्युसे भी उतना नहीं डरता, जितना ब्राह्मणसे प्रतिज्ञा करके उसे धोखा देनेसे डरता हूँ। इस संसारमें मर जानेके बाद धन आदि वस्तुएँ तो साथ छोड़ ही देती हैं; यदि उनके द्वारा दान आदिसे ब्राह्मणोंको भी सन्तुष्ट न किया जा सका, तो उनके त्यागका लाभ ही क्या रहा ? दधीचि, शिबि आदि महापुरुषोंने अपने परमप्रिय दुस्त्यज प्राणोंका दान करके भी प्राणियोंकी भलाई की है। फिर पृथ्वी आदि वस्तुओंको देनेमें सोच विचार करनेकी क्या आवश्यकता है ? ब्रह्मन् ! पहले युगमें बड़े-बड़े दैत्यराजोंने इस पृथ्वीका उपभोग किया है। पृथ्वीमें उनका सामना करनेवाला कोई नहीं था। उनके लोक और परलोकको तो काल खा गया, परन्तु उनका यश अभी पृथ्वीपर ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। गुरुदेव ! ऐसे लोग तो संसारमें बहुत हैं, जो युद्धमें पीठ न दिखाकर अपने प्राणोंकी बलि चढ़ा देते हैं; परन्तु ऐसे लोग बहुत दुर्लभ हैं, जो सत्पात्रके प्राप्त होनेपर श्रद्धाके साथ धनका दान करें। गुरुदेव ! यदि उदार और करुणाशील पुरुष अपात्र याचककी कामना पूर्ण करके दुर्गति भोगता है, तो वह दुर्गति भी उसके लिये शोभाकी बात होती है। फिर आप जैसे ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंको दान करनेसे दुःख प्राप्त हो, तो उसके लिये क्या कहना है। इसलिये मैं इस ब्रह्मचारीकी अभिलाषा अवश्य पूर्ण करूँगा। महर्षे ! वेद विधिके जाननेवाले आपलोग बड़े आदरसे यज्ञ-यागादिके द्वारा जिनकी आराधना करते हैं—वे वरदानी विष्णु ही इस रूपमें हों अथवा कोई दूसरा हो, मैं इनकी इच्छाके अनुसार इन्हें पृथ्वीका दान करूँगा। यदि मेरे अपराध न करनेपर भी ये अधर्मसे मुझे बाँध लेंगे, तब भी मैं इनका अनिष्ट नहीं चाहूँगा। क्योंकि मेरे शत्रु होनेपर भी इन्होंने भयभीत होकर ब्राह्मणका शरीर धारण किया है। यदि ये पवित्रकीर्ति भगवान् विष्णु ही हैं तो भला, ये मुझसे दान लेकर अपनी कीर्तिमें बट्टा क्यों लगायेंगे ? ये यदि चाहें तो मुझे युद्धमें मारकर भी पृथ्वी छीन सकते हैं। और यदि कदाचित् ये कोई दूसरे ही हैं, तो मेरे बाणोंकी चोटसे सदाके लिये रण भूमिमें सो जायँगे ॥ २–१३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब शुक्राचार्यजीने देखा कि मेरा यह शिष्य मेरी बातपर श्रद्धा नहीं कर रहा है तथा मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर रहा है, तब दैवकी प्रेरणासे उन्होंने राजा बलिको शाप दे दिया—यद्यपि वे शापके पात्र नहीं थे, क्योंकि वे अपनी प्रतिज्ञापर अटल और अत्यन्त उदार थे। शुक्राचार्यजीने कहा—'मूर्ख ! तू है तो अज्ञानी, परन्तु अपनेको बहुत बड़ा पण्डित मानता है ! तू मेरी उपेक्षा करके गर्व कर रहा है। तूने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है। इसलिये शीघ्र से-शीघ्र तू अपनी लक्ष्मी खो बैठेगा।' राजा बलि बड़े महात्मा थे। अपने गुरुदेवके शाप देनेपर भी वे सत्यसे नहीं डिगे। उन्होंने वामनभगवान्की विधिपूर्वक पूजा की और



हाथमें जल लेकर तीन पग भूमिका सङ्कल्प कर दिया। उसी समय राजा बलिकी पत्नी विन्ध्यावली, जो मोतियोंके गहनोंसे

प्राणियोंके हृदयमें रहकर उनकी गति-विधि जाननेवाले भगवान्ने यह बात कही ॥ ११ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—देवताओंकी जननी अदिति ! तुम्हारी चिरकालीन अभिलाषाको मैं जानता हूँ । शत्रुओंने तुम्हारे पुत्रोंकी सम्पत्ति छीन ली है, उन्हें उनके लोक (स्वर्ग) से खदेड़ दिया है । तुम चाहती हो कि युद्धमें तुम्हारे पुत्र उन मतवाले और बली असुरोंको जीतकर विजयलक्ष्मी प्राप्त करें, तब तुम उनके साथ भगवान्की उपासना करो । तुम्हारी इच्छा यह भी है कि तुम्हारे इन्द्रादि पुत्र जब शत्रुओंको मार डालें, तब तुम उनकी रोती हुई दुखी स्त्रियोंको अपनी आँखों देख सको । अदिति ! तुम चाहती हो कि तुम्हारे पुत्र धन और शक्तिसे समृद्ध हो जायँ, उनकी कीर्ति और ऐश्वर्य उन्हें फिरसे प्राप्त हो जायँ तथा वे स्वर्गपर अधिकार जमाकर पूर्ववत् विहार करें । परन्तु देवि ! वे असुर सेनापति इस समय जीते नहीं जा सकते, ऐसा मेरा निश्चय है । क्योंकि ईश्वर और ब्राह्मण इस समय उनके अनुकूल हैं । इस समय उनके साथ यदि लड़ाई छेड़ी जायगी, तो उससे सुख मिलनेकी आशा नहीं है । फिर भी देवि ! तुम्हारे इस व्रतके अनुष्ठानसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिये मुझे इस सम्बन्धमें कोई-न-कोई उपाय सोचना ही पड़ेगा । क्योंकि मेरी आराधना व्यर्थ तो होनी नहीं चाहिये । उससे श्रद्धाके अनुसार फल अवश्य मिलता है । तुमने अपने पुत्रोंकी रक्षाके लिये ही विधिपूर्वक पयोव्रतसे मेरी उपासना की है । अतः मैं अंशरूपसे कश्यपके वीर्यमें प्रवेश करूँगा और तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारी सन्तानकी रक्षा करूँगा । कल्याणी ! तुम अपने पति कश्यपमें मुझे इसी रूपमें स्थित देखो और उन निष्पाप प्रजापतिकी सेवा करो । देवि ! देखो किसीके पूछनेपर भी यह बात दूसरेको मत बतलाना । देवि ! देवताओंका रहस्य जितना गुप्त रहता है, उतना ही सफल होता है ॥ १२–२० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इतना कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये । उस समय अदिति यह जानकर कि स्वयं भगवान् मेरे गर्भसे जन्म लेंगे, अपनी कृतकृत्यताका अनुभव करने लगी । भला, यह कितनी दुर्लभ बात है ! वह बड़े प्रेमसे अपने पतिदेव कश्यपकी सेवा करने लगी । कश्यपजी सत्यदर्शी थे, उनके नेत्रोंसे कोई बात छिपी नहीं रहती थी । अपने समाधि-योगसे उन्होंने जान लिया कि भगवान्का अंश मेरे अंदर प्रविष्ट हो गया है । जैसे वायु काठमें अग्निका आधान करती है, वैसे ही कश्यपजीने समाहित चित्तसे अपनी तपस्याके द्वारा चिर-सञ्चित वीर्यका अदितिमें आधान किया । जब ब्रह्माजीको यह बात मालूम हुई कि अदितिके गर्भमें तो स्वयं अविनाशी भगवान् आये हैं, तब वे भगवान्के रहस्यमय नामोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २१–२४ ॥

ब्रह्माजीने कहा—समग्र कीर्तिके आश्रय भगवन् ! आपकी जय हो । अनन्त शक्तियोंके अधिष्ठान ! आपके चरणोंमें नमस्कार है । ब्रह्मण्यदेव ! त्रिगुणोंके नियामक ! आपके चरणोंमें मेरे बार-बार प्रणाम हैं । पृश्निके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेवाले ! वेदोंके समस्त ज्ञानको अपने अंदर रखनेवाले प्रभो ! वास्तवमें आप ही सबके विधाता हैं । आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । ये तीनों लोक आपकी नाभिमें स्थित हैं । तीनों लोकोंसे परे वैकुण्ठमें आप निवास करते हैं । जीवोंके अन्तःकरणमें आप सर्वदा विराजमान रहते हैं । ऐसे सर्वव्यापक विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ । प्रभो ! आप ही संसारके आदि, अन्त और इसलिये मध्य भी हैं । यही कारण है कि वेद अनन्तशक्ति पुरुषके रूपमें आपका वर्णन करते हैं । जैसे गहरा स्रोत अपने भीतर पड़े हुए तिनकेको बहा ले जाता है, वैसे ही आप कालरूपसे संसारका धाराप्रवाह सञ्चालन करते रहते हैं । आप चराचर प्रजा और प्रजापतियोंको भी उत्पन्न करनेवाले मूल कारण हैं । देवाधिदेव ! जैसे जलमें डूबते हुएके लिये नौका ही सहारा है, वैसे ही स्वर्गसे भगाये हुए देवताओंके लिये एकमात्र आप ही आश्रय हैं ॥ २५–२८ ॥

वन्दना की। इसी चरणकमलके स्मरणकी महिमासे ये सब कर्मके द्वारा प्राप्त न होनेयोग्य ब्रह्मलोकमें पहुँचे हैं। भगवान् ब्रह्माकी कीर्ति बड़ी पवित्र है। वे विष्णुभगवान्‌के नाभि कमलसे उत्पन्न हुए हैं। अगवानी करनेके बाद उन्होंने स्वयं विश्वरूप भगवान्‌के ऊपर उठे हुए चरणका अर्घ्य पाद्यसे पूजन किया, प्रक्षालन किया। पूजा करके बड़े प्रेम और भक्तिसे उन्होंने भगवान्‌की स्तुति की। परीक्षित्! ब्रह्माके कमण्डलुका वही जल विश्वरूप भगवान्‌के पाँव पखारनेसे पवित्र होनेके कारण उन गङ्गाजीके रूपमें परिणत हो गया, जो आकाश मार्गसे पृथ्वीपर गिरकर तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं। ये गङ्गाजी क्या हैं, भगवान्‌की मूर्तिमान् उज्ज्वल कीर्ति। जब भगवान्‌ने अपने स्वरूपको कुछ छोटा कर लिया, अपनी विभूतियोंको कुछ समेट लिया, तब ब्रह्मा आदि लोकपालोंने अपने अनुचरोंके साथ बड़े आदरभावसे अपने स्वामी भगवान्‌को अनेकों प्रकारकी भेंटें समर्पित कीं। उन लोगोंने जल, उपहार, माला, दिव्य गन्धोंसे भरे अङ्गराग, सुगन्धित धूप, दीप, खील, अक्षत, फल, अङ्कुर, भगवान्‌की महिमा और प्रभावसे युक्त स्तोत्र, जयघोष, नृत्य, बाजे गाजे, गायन एवं शङ्ख और दुन्दुभिके शब्दोंसे भगवान्‌की आराधना की। उस समय ऋक्षराज जाम्बवान् मनके समान वेगसे दौड़कर सब दिशाओंमें भगवान्‌की मङ्गलमय विजयकी घोषणा कर आये॥ १–८॥

दैत्योंने देखा कि वामनजीने तीन पग पृथ्वी माँगनेके बहाने सारी पृथ्वी ही छीन ली! तब वे सोचने लगे कि हमारे स्वामी बलि तो इस समय यज्ञमें दीक्षित हैं, वे तो कुछ कहेंगे नहीं। इसलिये बहुत चिढ़कर वे आपसमें कहने लगे—'अरे, यह ब्राह्मण नहीं है। यह तो सबसे बड़ा मायावी विष्णु है। ब्राह्मणके रूपमें छिपकर यह देवताओंका काम बनाना चाहता है। जब हमारे स्वामी यज्ञमें दीक्षित होकर किसीको किसी प्रकारका दण्ड देनेसे उपरत हो गये हैं, तब इस शत्रुने ब्रह्मचारीका वेष बनाकर पहले तो याचना की और पीछे हमारा सर्वस्व हरण कर लिया। यों तो हमारे स्वामी सदा ही सत्यनिष्ठ हैं, परन्तु यज्ञमें दीक्षित होनेपर तो वे इस बातका विशेष ध्यान रखते हैं। वे ब्राह्मणोंके बड़े भक्त हैं तथा उनके हृदयमें दया भी बहुत है। इसलिये वे कभी झूठ नहीं बोल सकते। ऐसी अवस्थामें हमलोगोंका यही धर्म है कि इस शत्रुको मार डालें। इससे हमारे स्वामी बलिकी सेवा भी होती है।' ऐसा सोचकर राजा बलिके अनुचर असुरोंने अपने अपने हथियार उठा लिये। परीक्षित्! राजा बलिकी इच्छा न होनेपर भी वे सब बड़े क्रोधसे शूल, पट्टिश आदि ले-लेकर वामनभगवान्‌को मारनेके लिये टूट पड़े। परीक्षित्! जब विष्णुभगवान्‌के पार्षदोंने देखा कि दैत्योंके सेनापति आक्रमण करनेके लिये दौड़े आ रहे हैं, तब उन्होंने हँसकर अपने-अपने शस्त्र उठा लिये और उन्हें रोक दिया। नन्द, सुनन्द, जय, विजय, प्रबल, बल, कुमुद, कुमुदाक्ष, विष्वक्सेन, गरुड, जयन्त, श्रुतदेव, पुष्पदन्त और सात्वत—ये सभी भगवान्‌के पार्षद दस दस हजार हाथियोंका बल रखते हैं। वे असुरोंकी सेनाका संहार करने लगे। जब राजा बलिने देखा कि भगवान्‌के पार्षद मेरे सैनिकोंको मार रहे हैं और वे भी क्रोधमें भरकर उनसे लड़नेके लिये तैयार हो रहे हैं, तो उन्होंने शुक्राचार्यके शापका स्मरण करके उन्हें युद्ध करनेसे रोक दिया। उन्होंने विप्रचित्ति, राहु, नेमि आदि दैत्योंको सम्बोधित करके कहा—'भाइयो! मेरी बात सुनो। लड़ो मत, वापिस लौट आओ। यह समय हमारे कार्यके अनुकूल नहीं है। दैत्यो! जो काल समस्त प्राणियोंको सुख और दुःख देनेकी सामर्थ्य रखता है—उसे यदि कोई पुरुष चाहे कि मैं अपने प्रयत्नोंसे दबा दूँ, तो यह उसकी शक्तिसे बाहर है। जो पहले हमारी उन्नति और देवताओंकी अवनतिके कारण हुए थे, वही कालभगवान् अब उनकी उन्नति और हमारी अवनतिके कारण हो रहे हैं। बल, मन्त्री, बुद्धि, दुर्ग, मन्त्र, ओषधि और सामादि उपाय—इनमेंसे किसी भी साधनके द्वारा अथवा सबके द्वारा मनुष्य कालपर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। जब दैव तुमलोगोंके अनुकूल था, तब तुम लोगोंने भगवान्‌के इन पार्षदोंको कई बार जीत लिया था। पर देखो, आज वे ही युद्धमें हमपर विजय प्राप्त करके सिंहनाद कर रहे हैं। यदि दैव हमारे अनुकूल हो जायगा, तो हम भी इन्हें जीत लेंगे। इसलिये उस समयकी प्रतीक्षा करो, जो हमारी कार्यसिद्धिके लिये अनुकूल हो'॥ ९–२४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अपने स्वामी बलिकी बात सुनकर भगवान्‌के पार्षदोंसे हारे हुए दानव और दैत्यसेनापति रसातलमें चले गये। उनके जानेके बाद विश्वरूप भगवान्‌के हृदयकी बात जानकर गरुडने वरुणके पाशोंसे बलिको बाँध दिया। उस दिन उनके अश्वमेध यज्ञमें सोमपान होनेवाला था। जब सर्वशक्तिमान् भगवान् विष्णुने बलिको इस प्रकार बँधवा दिया तब पृथ्वी, आकाश और

प्राणियोंके हृदयमें रहकर उनकी गति-विधि जाननेवाले भगवान्‌ने यह बात कही ॥ ११ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवताओंकी जननी अदिति ! तुम्हारी चिरकालीन अभिलाषाको मैं जानता हूँ । शत्रुओंने तुम्हारे पुत्रोंकी सम्पत्ति छीन ली है, उन्हें उनके लोक (स्वर्ग) से खदेड़ दिया है । तुम चाहती हो कि युद्धमें तुम्हारे पुत्र उन मतवाले और बली असुरोंको जीतकर विजयलक्ष्मी प्राप्त करें, तब तुम उनके साथ भगवान्‌की उपासना करो । तुम्हारी इच्छा यह भी है कि तुम्हारे इन्द्रादि पुत्र जब शत्रुओंको मार डालें, तब तुम उनकी रोती हुई दुखी स्त्रियोंको अपनी आँखों देख सको । अदिति ! तुम चाहती हो कि तुम्हारे पुत्र धन और शक्तिसे समृद्ध हो जायँ, उनकी कीर्ति और ऐश्वर्य उन्हें फिरसे प्राप्त हो जायँ तथा वे स्वर्गपर अधिकार जमाकर पूर्ववत् विहार करें । परन्तु देवि ! वे असुर सेनापति इस समय जीते नहीं जा सकते, ऐसा मेरा निश्चय है । क्योंकि ईश्वर और ब्राह्मण इस समय उनके अनुकूल हैं । इस समय उनके साथ यदि लड़ाई छेड़ी जायगी, तो उससे सुख मिलनेकी आशा नहीं है । फिर भी देवि ! तुम्हारे इस व्रतके अनुष्ठानसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ, इसलिये मुझे इस सम्बन्धमें कोई-न-कोई उपाय सोचना ही पड़ेगा । क्योंकि मेरी आराधना व्यर्थ तो होनी नहीं चाहिये । उससे श्रद्धाके अनुसार फल अवश्य मिलता है । तुमने अपने पुत्रोंकी रक्षाके लिये ही विधिपूर्वक पयोव्रतसे मेरी उपासना की है । अतः मैं अंशरूपसे कश्यपके वीर्यमें प्रवेश करूँगा और तुम्हारा पुत्र बनकर तुम्हारी सन्तानकी रक्षा करूँगा । कल्याणी ! तुम अपने पति कश्यपमें मुझे इसी रूपमें स्थित देखो और उन निष्पाप प्रजापतिकी सेवा करो । देवि ! देखो किसीके पूछनेपर भी यह बात दूसरेको मत बतलाना । देवि ! देवताओंका रहस्य जितना गुप्त रहता है, उतना ही सफल होता है ॥ १२—२० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—इतना कहकर भगवान् वहीं अन्तर्धान हो गये । उस समय अदिति यह जानकर कि स्वयं भगवान् मेरे गर्भसे जन्म लेंगे, अपनी कृतकृत्यताका अनुभव करने लगी । भला, यह कितनी दुर्लभ बात है ! वह बड़े प्रेमसे अपने पतिदेव कश्यपकी सेवा करने लगी । कश्यपजी सत्यदर्शी थे, उनके नेत्रोंसे कोई बात छिपी नहीं रहती थी । अपने समाधि-योगसे उन्होंने जान लिया कि भगवान्‌का अंश मेरे अंदर प्रविष्ट हो गया है । जैसे वायु काठमें अग्निका आधान करती है, वैसे ही कश्यपजीने समाहित चित्तसे अपनी तपस्याके द्वारा चिर-सञ्चित वीर्यका अदितिमें आधान किया । जब ब्रह्माजीको यह बात मालूम हुई कि अदितिके गर्भमें तो स्वयं अविनाशी भगवान् आये हैं, तब वे भगवान्‌के रहस्यमय नामोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ २१—२४ ॥

ब्रह्माजीने कहा—समग्र कीर्तिके आश्रय भगवन् ! आपकी जय हो । अनन्त शक्तियोंके अधिष्ठान ! आपके चरणोंमें नमस्कार है । ब्रह्मण्यदेव ! त्रिगुणोंके नियामक ! आपके चरणोंमें मेरे बार-बार प्रणाम हैं । पृश्निके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेवाले ! वेदोंके समस्त ज्ञानको अपने अंदर रखनेवाले प्रभो ! वास्तवमें आप ही सबके विधाता हैं । आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ । ये तीनों लोक आपकी नाभिमें स्थित हैं । तीनों लोकोंसे परे वैकुण्ठमें आप निवास करते हैं । जीवोंके अन्तःकरणमें आप सर्वदा विराजमान रहते हैं । ऐसे सर्वव्यापक विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ । प्रभो ! आप ही संसारके आदि, अन्त और इसलिये मध्य भी हैं । यही कारण है कि वेद अनन्तशक्ति पुरुषके रूपमें आपका वर्णन करते हैं । जैसे गहरा स्रोत अपने भीतर पड़े हुए तिनकेको बहा ले जाता है, वैसे ही आप कालरूपसे संसारका धाराप्रवाह सञ्चालन करते रहते हैं । आप चराचर प्रजा और प्रजापतियोंको भी उत्पन्न करनेवाले मूल कारण हैं । देवाधिदेव ! जैसे जलमें डूबते हुएके लिये नौका ही सहारा है, वैसे ही स्वर्गसे भगाये हुए देवताओंके लिये एकमात्र आप ही आश्रय हैं ॥ २५—२८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा बलि इस प्रकार कह ही रहे थे कि उदय होते हुए चन्द्रमाके



समान भगवान्‌के परम प्रेमी प्रह्लादजी वहाँ आ पहुँचे। राजा बलिने देखा कि मेरे पितामह बड़े श्रीसम्पन्न हैं। कमलके समान कोमल नेत्र हैं, लंबी-लंबी भुजाएँ हैं, सुन्दर ऊँचे और श्यामल शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए हैं। बलि इस समय वरुणपाशमें बँधे हुए थे। इसलिये प्रह्लादजीके आनेपर जैसे पहले वे उनकी पूजा किया करते थे, उस प्रकार न कर सके। उनके नेत्र आँसुओंसे चञ्चल हो उठे, लज्जाके मारे मुँह नीचा हो गया। उन्होंने केवल सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया। प्रह्लादजीने देखा कि भक्तवत्सल भगवान् वहीं विराजमान हैं और सुनन्द, नन्द आदि पार्षद उनकी सेवा कर रहे हैं। प्रेमके उद्रेकसे प्रह्लादजीका शरीर पुलकित हो गया, उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये। वे आनन्दपूर्ण हृदयसे सिर झुकाये अपने स्वामीके पास गये और पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया॥ १२–१५॥

प्रह्लादजीने कहा—प्रभो! आपने ही तो बलिको यह ऐश्वर्यपूर्ण इन्द्रपद दिया था, अब आज आपने ही उसे छीन लिया। आपका देना जैसा सुन्दर है, वैसा ही सुन्दर लेना भी! मैं तो समझता हूँ कि आपने इसपर बड़ी भारी कृपा की है, जो आत्माको मोहित करनेवाली राज्यलक्ष्मीसे इसे अलग कर दिया। प्रभो! लक्ष्मीके मदसे तो विद्वान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। उसके रहते भला, अपने वास्तविक स्वरूपको ठीक-ठीक कौन जान सकता है। अतः उस लक्ष्मीको छीनकर महान् उपकार करनेवाले, समस्त जगत्‌के महान् ईश्वर, सबके हृदयमें विराजमान और सबके परम साक्षी श्रीनारायणदेवको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १६-१७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! प्रह्लादजी अञ्जलि बाँधकर खड़े थे। उनके सामने ही भगवान् ब्रह्माजीने वामनभगवान्‌से कुछ कहना चाहा, परन्तु इतनेमें ही राजा बलिकी परम साध्वी पत्नी विन्ध्यावलीने अपने पतिको बँधा देखकर भयभीत हो भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़, मुँह नीचा कर वह भगवान्‌से बोली॥ १८ १९॥

विन्ध्यावलीने कहा—प्रभो! आपने अपनी क्रीड़ाके लिये ही इस सम्पूर्ण जगत्‌की रचना की है। जो लोग कुबुद्धि हैं, वे ही अपनेको इसका स्वामी मानते हैं। जब आप ही इसके कर्ता, भर्ता और संहर्ता हैं, तब आपकी मायासे मोहित होकर अपनेको झूठमूठ कर्ता माननेवाले निर्लज्ज आपको समर्पण क्या करेंगे?॥ २०॥

ब्रह्माजीने कहा—समस्त प्राणियोंके जीवनदाता, उनके स्वामी और जगत्स्वरूप देवाधिदेव प्रभो! अब आप इसे छोड़ दीजिये। आपने इसका सर्वस्व ले लिया है, अतः अब यह दण्डका पात्र नहीं है। इसने अपनी सारी भूमि और पुण्यकर्मोंसे उपार्जित स्वर्ग आदि लोक, अपना सर्वस्व तथा आत्मातक आपको समर्पित कर दिया है। एवं ऐसा करते समय इसकी बुद्धि स्थिर रही है, यह धैर्यसे च्युत नहीं हुआ है। प्रभो! जो मनुष्य सच्चे हृदयसे कृपणता छोड़कर आपके चरणोंमें जलका अर्घ्य देता है और केवल दूर्वादलसे भी आपकी सच्ची पूजा करता है, उसे भी उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। फिर बलिने तो बड़ी प्रसन्नतासे धैर्य और स्थिरतापूर्वक आपको त्रिलोकीका दान कर दिया है। तब यह दुःखका भागी कैसे हो सकता है?॥ २१–२३॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्माजी! मैं जिसपर कृपा करता हूँ, उसका धन छीन लिया करता हूँ। क्योंकि जब मनुष्य धनके मदसे मतवाला हो जाता है, तब मेरा और लोगोंका तिरस्कार करने लगता है। यह जीव अपने कर्मोंके कारण विवश होकर अनेक योनियोंमें भटकता रहता है, जब कभी मेरी बड़ी कृपासे मनुष्यका शरीर प्राप्त करता है। मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर यदि कुलीनता, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदिके कारण घमंड न हो जाय तो समझना चाहिये कि मेरी बड़ी ही कृपा है। नहीं तो, कुलीनता आदि बहुत-से ऐसे कारण हैं, जो अभिमान और

कुश और सरस्वतीने रुद्राक्षकी माला समर्पित की। इस रीतिसे जब वामनभगवान्का उपनयन-संस्कार हो चुका, तब यक्षराज कुबेरने उनको भिक्षाका पात्र और सतीशिरोमणि जगज्जननी स्वयं भगवती उमाने भिक्षा दी। इस प्रकार जब सब लोगोंने वटुवेष-धारी भगवान्का सम्मान किया, तब वे ब्रह्मर्षियोंसे भरी हुई सभामें अपने ब्रह्मतेजके कारण अत्यन्त शोभायमान हुए। इसके बाद भगवान्ने स्थापित और प्रज्वलित अग्निका कुशोंसे परिसमूहन और परिस्तरण करके पूजा की और समिधाओंसे हवन किया ॥ १३—१९ ॥

परीक्षित्! उसी समय भगवान्ने सुना कि सब प्रकारकी सामग्रियोंसे सम्पन्न यशस्वी बलि भृगुवंशी ब्राह्मणोंके आदेशानुसार बहुत-से अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं, तब उन्होंने वहाँके लिये यात्रा की। भगवान् समस्त शक्तियोंसे युक्त हैं। उनके चलनेके समय उनके भारसे पृथ्वी पग-पगपर झुकने लगी। नर्मदा नदीके उत्तर तटपर 'भृगुकच्छ' नामका एक बड़ा सुन्दर स्थान है। वहीं बलिके भृगुवंशी ऋत्विज श्रेष्ठ यज्ञका अनुष्ठान करा रहे थे। उन लोगोंने दूरसे ही वामनभगवान्को देखा, तो उन्हें ऐसा जान पड़ा मानो साक्षात् सूर्यदेवका उदय हो रहा हो। परीक्षित्! वामनभगवान्के तेजसे ऋत्विज, यजमान और सदस्य—सब-के-सब निस्तेज हो गये। वे लोग सोचने लगे कि कहीं यज्ञ देखनेके लिये सूर्य, अग्नि अथवा सनत्कुमार तो नहीं आ रहे हैं। भृगुके पुत्र शुक्राचार्य आदि अपने शिष्योंके साथ इसी प्रकार अनेकों कल्पनाएँ कर रहे थे। उसी समय हाथमें छत्र, दण्ड और जलसे भरा कमण्डलु लिये हुए वामनभगवान्ने अश्वमेध यज्ञके मण्डपमें प्रवेश किया। वे कमरमें मूँजकी मेखला और गलेमें यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। बगलमें मृगचर्म था और सिरपर जटा थी। इस प्रकार बौने ब्राह्मणके वेषमें अपनी मायासे ब्रह्मचारी बने हुए भगवान्ने जब उनके यज्ञमण्डपमें प्रवेश किया, तब भृगुवंशी ब्राह्मण अपने शिष्योंके साथ उनके तेजसे प्रभावित हो गये। वे सब-के-सब अग्नियोंके साथ उठ खड़े हुए और उन्होंने वामनभगवान्का स्वागत-सत्कार किया। भगवान्के लघुरूपके अनुरूप सारे अङ्ग छोटे-छोटे बड़े ही मनोरम एवं दर्शनीय थे। उन्हें देखकर बलिको बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने वामनभगवान्को एक उत्तम आसन दिया। फिर स्वागत-वाणीसे उनका अभिनन्दन करके पाँव पखारे और सङ्गरहित महापुरुषोंको भी अत्यन्त मनोहर लगनेवाले वामनभगवान्की पूजा की। भगवान्के चरणकमलोंका धोवन परम मङ्गलमय है। उससे जीवोंके सारे पाप-ताप धुल जाते हैं। स्वयं देवाधिदेव चन्द्रमौलि भगवान् शङ्करने अत्यन्त भक्तिभावसे उसे अपने सिरपर धारण किया था। आज वही चरणामृत धर्मके मर्मज्ञ राजा बलिको प्राप्त हुआ। उन्होंने बड़े प्रेमसे उसे अपने मस्तकपर रक्खा ॥ २०—२८ ॥

बलिने कहा—ब्राह्मणकुमार! आप भले पधारे। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आज्ञा कीजिये, मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आर्य! ऐसा जान पड़ता है कि बड़े-बड़े ब्रह्मर्षियोंकी तपस्या ही स्वयं मूर्तिमान् होकर मेरे सामने आयी है। आज आप मेरे घर पधारे, इससे मेरे पितर तृप्त हो गये। आज मेरा वंश पवित्र हो गया। आज मेरा यह यज्ञ सफल हो गया। ब्राह्मणकुमार! आपके पाँव पखारनेसे मेरे सारे पाप धुल गये और विधिपूर्वक यज्ञ करनेसे, अग्निमें आहुति डालनेसे जो फल मिलता, वह अनायास ही मिल गया। आपके इन नन्हे-नन्हे चरणों और इनके धोवनसे पृथ्वी पवित्र हो गयी। ब्राह्मणकुमार! ऐसा जान पड़ता है कि आप कुछ चाहते हैं। परम पूज्य ब्रह्मचारीजी! आप जो चाहते हों—गाय, सोना, सामग्रियोंसे सुसज्जित घर, पवित्र अन्न, पीनेकी वस्तु, विवाहके लिये कन्या, सम्पत्तियोंसे भरे हुए गाँव, घोड़े, हाथी, रथ—वह सब आप मुझसे माँग लीजिये। अवश्य ही वह सब मुझसे माँग लीजिये ॥ २९—३२ ॥

उन्नीसवाँ अध्याय

भगवान् वामनका बलिसे तीन पग पृथ्वी माँगना, बलिका वचन देना और शुक्राचार्यजीका उन्हें रोकना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजा बलिके ये वचन धर्मभावसे भरे और बड़े मधुर थे। उन्हें सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे भगवान्ने उनका अभिनन्दन किया और कहा ॥ १ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—राजन्! आपने जो कुछ कहा—वह आपकी कुलपरम्पराके अनुरूप, धर्मभावसे परिपूर्ण, यशको बढ़ानेवाला और अत्यन्त मधुर है। क्यों न हो, परलोकहितकारी धर्मके सम्बन्धमें आप भृगुपुत्र शुक्राचार्यको परम प्रमाण जो मानते हैं। साथ ही आपके कुलवृद्ध पितामह परम शान्त प्रह्लादजीकी आज्ञा भी तो आप वैसे ही मानते हैं। आपकी वंशपरम्परामें कोई धैर्यहीन अथवा कृपण पुरुष ने

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा बलि इस प्रकार कह ही रहे थे कि उदय होते हुए चन्द्रमाके



समान भगवान्‌के परम प्रेमी प्रह्लादजी वहाँ आ पहुँचे। राजा बलिने देखा कि मेरे पितामह बड़े श्रीसम्पन्न हैं। कमलके समान कोमल नेत्र हैं, लंबी-लंबी भुजाएँ हैं, सुन्दर ऊँचे और श्यामल शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए हैं। बलि इस समय वरुणपाशमें बँधे हुए थे। इसलिये प्रह्लादजीके आनेपर जैसे पहले वे उनकी पूजा किया करते थे, उस प्रकार न कर सके। उनके नेत्र आँसुओंसे चञ्चल हो उठे, लज्जाके मारे मुँह नीचा हो गया। उन्होंने केवल सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार किया। प्रह्लादजीने देखा कि भक्तवत्सल भगवान् वहीं विराजमान हैं और सुनन्द, नन्द आदि पार्षद उनकी सेवा कर रहे हैं। प्रेमके उद्रेकसे प्रह्लादजीका शरीर पुलकित हो गया, उनकी आँखोंमें आँसू छलक आये। वे आनन्दपूर्ण हृदयसे सिर झुकाये अपने स्वामीके पास गये और पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया॥ १२-१५॥

प्रह्लादजीने कहा—प्रभो! आपने ही तो बलिको यह ऐश्वर्यपूर्ण इन्द्रपद दिया था, अब आज आपने ही उसे छीन लिया। आपका देना जैसा सुन्दर है, वैसा ही सुन्दर लेना भी! मैं तो समझता हूँ कि आपने इसपर बड़ी भारी कृपा की है, जो आत्माको मोहित करनेवाली राज्यलक्ष्मीसे इसे अलग कर दिया। प्रभो! लक्ष्मीके मदसे तो विद्वान् पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। उसके रहते भला, अपने वास्तविक स्वरूपको ठीक-ठीक कौन जान सकता है। अतः उस लक्ष्मीको छीनकर महान् उपकार करनेवाले, समस्त जगत्‌के महान् ईश्वर, सबके हृदयमें विराजमान और सबके परम साक्षी श्रीनारायणदेवको मैं नमस्कार करता हूँ॥ १६-१७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! प्रह्लादजी अञ्जलि बाँधकर खड़े थे। उनके सामने ही भगवान् ब्रह्माजीने वामनभगवान्‌से कुछ कहना चाहा; परन्तु इतनेमें ही राजा बलिकी परम साध्वी पत्नी विन्ध्यावलीने अपने पतिको बँधा देखकर भयभीत हो भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया और हाथ जोड़, मुँह नीचा कर वह भगवान्‌से बोली॥ १८-१९॥

विन्ध्यावलीने कहा—प्रभो! आपने अपनी क्रीड़ाके लिये ही इस सम्पूर्ण जगत्‌की रचना की है। जो लोग कुबुद्धि हैं, वे ही अपनेको इसका स्वामी मानते हैं। जब आप ही इसके कर्ता, भर्ता और संहर्ता हैं, तब आपकी मायासे मोहित होकर अपनेको झूठमूठ कर्ता माननेवाले निर्लज्ज आपको समर्पण क्या करेंगे?॥ २०॥

ब्रह्माजीने कहा—समस्त प्राणियोंके जीवनदाता, उनके स्वामी और जगत्स्वरूप देवाधिदेव प्रभो! अब आप इसे छोड़ दीजिये। आपने इसका सर्वस्व ले लिया है, अतः अब यह दण्डका पात्र नहीं है। इसने अपनी सारी भूमि और पुण्यकर्मोंसे उपार्जित स्वर्ग आदि लोक, अपना सर्वस्व तथा आत्मातक आपको समर्पित कर दिया है। एवं ऐसा करते समय इसकी बुद्धि स्थिर रही है, यह धैर्यसे च्युत नहीं हुआ है। प्रभो! जो मनुष्य सच्चे हृदयसे कृपणता छोड़कर आपके चरणोंमें जलका अर्घ्य देता है और केवल दूर्वादलसे भी आपकी सच्ची पूजा करता है, उसे भी उत्तम गतिकी प्राप्ति होती है। फिर बलिने तो बड़ी प्रसन्नतासे धैर्य और स्थिरतापूर्वक आपको त्रिलोकीका दान कर दिया है। तब यह दुःखका भागी कैसे हो सकता है?॥ २१-२३॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्माजी! मैं जिसपर कृपा करता हूँ, उसका धन छीन लिया करता हूँ। क्योंकि जब मनुष्य धनके मदसे मतवाला हो जाता है, तब मेरा और लोगोंका तिरस्कार करने लगता है। यह जीव अपने कर्मोंके कारण विवश होकर अनेक योनियोंमें भटकता रहता है, जब कभी मेरी बड़ी कृपासे मनुष्यका शरीर प्राप्त करता है। मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर यदि कुलीनता, कर्म, अवस्था, रूप, विद्या, ऐश्वर्य और धन आदिके कारण घमंड न हो जाय तो समझना चाहिये कि मेरी बड़ी ही कृपा है। नहीं तो, कुलीनता आदि बहुत-से ऐसे कारण हैं, जो अभिमान और



भगवान् वामन

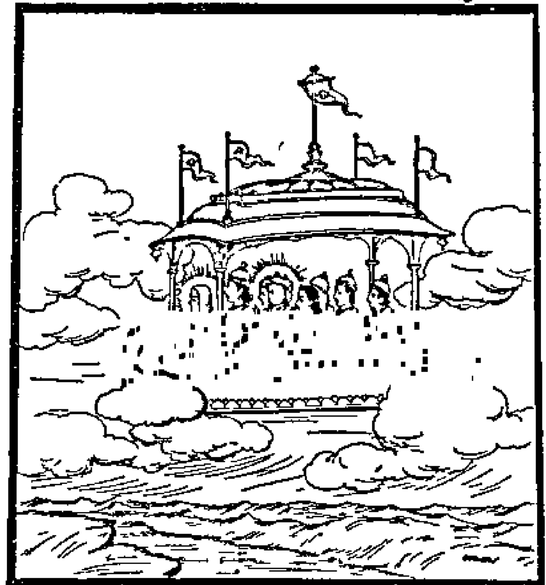
और कल्पवृक्षका स्वभाव एक-सा है। कल्पवृक्ष अपने आश्रितोंको मनचाही वस्तु देता है, वैसे ही आप अपने प्रेमी भक्तोंसे प्रेम करते हैं। इसीलिये आपके समदर्शी होनेपर भी जो आपकी भक्ति करेगा, वह तो आपके विशेष प्रसादका भाजन होगा ही ॥ ६–८ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—बेटा प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम भी सुतल लोकमें जाओ। वहाँ अपने पौत्र बलिके साथ आनन्दपूर्वक रहो और जाति-बन्धुओंको सुखी करो। वहाँ तुम मुझे नित्य ही गदा हाथमें लिये खड़ा देखोगे। मेरे दर्शनके परमानन्दमें मग्न रहनेके कारण तुम्हारे सारे कर्मबन्धन नष्ट हो जायँगे ॥ ९-१० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! विशुद्ध बुद्धिवाले प्रह्लादजीने 'जो आज्ञा' कहकर, हाथ जोड़, भगवान्का आदेश मस्तकपर चढ़ाया। फिर समस्त दैत्यसेनाके स्वामी प्रह्लादजीने बलिके साथ आदिपुरुष भगवान्की परिक्रमा की, उन्हें प्रणाम किया और उनसे अनुमति लेकर सुतल लोककी यात्रा की। परीक्षित्! उस समय भगवान् श्रीहरिने ब्रह्मवादी ऋत्विजोंकी सभामें अपने पास ही बैठे हुए शुक्राचार्यजीसे कहा—'ब्रह्मन्! आपका शिष्य यज्ञ कर रहा था। उसमें जो त्रुटि रह गयी है, उसे आप पूर्ण कर दीजिये। क्योंकि कर्म करनेमें जो कुछ भूल-चूक हो जाती है, वह ब्राह्मणोंकी कृपादृष्टिसे सुधर जाती है' ॥ ११–१४ ॥

शुक्राचार्यजीने कहा—भगवन्! जिसने अपना समस्त कर्म समर्पित करके सब प्रकारसे यज्ञेश्वर यज्ञपुरुष आपकी पूजा की है—उसके कर्ममें कोई त्रुटि, कोई विषमता कैसे रह सकती है? क्योंकि मन्त्रोंकी, अनुष्ठान पद्धतिकी, देश, काल, पात्र और वस्तु[illegible] नामसंकीर्तन-मात्रसे सुधर जाती हैं; आ[illegible] पूर्ण कर देता है। तथापि अन[illegible] हैं, तब मैं आपकी आज्ञाका [illegible] लि[illegible]

ब्रह्माजीने देवर्षि, पितर, मनु, दक्ष, भृगु, अङ्गिरा, सनत्कुमार और शङ्करजीके साथ कश्यप एवं अदितिकी प्रसन्नताके लिये तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अभ्युदयके लिये समस्त लोक और लोकपालोंके स्वामीके पदपर वामनभगवान्का अभिषेक कर दिया। परीक्षित्! वेद, समस्त देवता, धर्म, यश, लक्ष्मी, मङ्गल, व्रत, स्वर्ग और अपवर्ग—सबके रक्षकके रूपमें सबके परम कल्याणके लिये सर्वशक्तिमान् वामनभगवान्को उन्होंने उपेन्द्रका पद दिया। उस समय सभी प्राणियोंको अत्यन्त आनन्द हुआ। इसके बाद ब्रह्माजीकी अनुमतिसे लोकपालोंके साथ देवराज इन्द्रने वामनभगवान्को सबसे आगे विमानपर बैठाया और अपने साथ स्वर्ग



लिवा ले गये। इन्द्रको एक तो त्रिभुवनका राज्य मिल गया और दूसरे, वामनभगवान्के करकमलोंकी छत्रछाया! सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्यलक्ष्मी उनकी सेवा करने लगी और वे निर्भय होकर आनन्दोत्सव मनाने लगे। ब्रह्मा, शङ्कर, सनत्कुमार, भृगु आदि मुनि, पितर, सारे भूत, सिद्ध और विमानारोही देवगण भगवान्के इस परम अद्भुत एवं अत्यन्त महान् कर्मका गायन करते हुए अपने-अपने लोकको चले गये और [illegible] अदितिकी भी बड़ी प्रशंसा की ॥ १८–२७ ॥

परीक्षित्! तुम्हें मैंने भगवान्की यह सब लीला सुनायी। [illegible] सारे पाप छूट जाते हैं। भगवान्की लीलाएँ [illegible] हैं, उनकी महिमा अपार है। जो मनुष्य उसका [illegible] चाहता है, वह मानो पृथ्वीके परमाणुओंको [illegible] चाहता है। भगवान्के सम्बन्धमें मन्त्रद्रष्टा

परन्तु अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखनेवाला तीनों लोकोंका राज्य पानेपर भी दुखी ही रहता है। क्योंकि उसके हृदयमें असन्तोषकी आग धधकती रहती है। धन और भोगोंसे सन्तोष न होना ही जीवके जन्म-मृत्युके चक्करमें गिरनेका कारण है। तथा जो कुछ प्राप्त हो जाय, उसीमें सन्तोष कर लेना मुक्तिका कारण है। जो ब्राह्मण स्वयंप्राप्त वस्तुसे ही सन्तुष्ट हो रहता है, उसके तेजकी वृद्धि होती है। उसके असन्तोषी हो जानेपर तो उसका तेज वैसे ही शान्त हो जाता है जैसे जलसे अग्नि। इसमें सन्देह नहीं कि आप मुँहमाँगी वस्तु देनेवालोंमें शिरोमणि हैं। फिर भी उपर्युक्त कारणोंसे मैं आपसे केवल तीन पग भूमि ही माँगता हूँ। इतनेसे ही मेरा काम बन जायगा। धन उतना ही संग्रह करना चाहिये, जितनेकी आवश्यकता हो ॥ २१–२७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर राजा बलि हँस पड़े। उन्होंने कहा—'अच्छी बात है; जितनी तुम्हारी इच्छा हो, उतनी ही ले लो।' यों कहकर वामनभगवान्‌को तीन पग पृथ्वीका सङ्कल्प करनेके लिये उन्होंने जलपात्र उठाया। शुक्राचार्यजी तो सब कुछ जानते थे। उनसे भगवान्‌की यह लीला भी छिपी नहीं थी। उन्होंने राजा बलिको पृथ्वी देनेके लिये तैयार देखकर उनसे कहा ॥२८-२९॥

शुक्राचार्यजीने कहा—विरोचनकुमार ! ये स्वयं अविनाशी भगवान् विष्णु हैं। देवताओंका काम बनानेके लिये कश्यपकी पत्नी अदितिके गर्भसे अवतीर्ण हुए हैं। तुमने यह न जानकर कि ये मेरा सब कुछ छीन लेंगे, इन्हें दान देनेकी प्रतिज्ञा कर ली है। यह तो दैत्योंपर बहुत बड़ा अन्याय होने जा रहा है। इसे मैं ठीक नहीं समझता। स्वयं भगवान् ही अपनी योगमायासे यह ब्रह्मचारी बनकर बैठे हुए हैं। ये तुम्हारा राज्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और विश्वविख्यात कीर्ति—सब कुछ तुमसे छीनकर इन्द्रको दे देंगे। ये विश्वरूप हैं। तीन पगमें तो ये सारे लोकोंको नाप लेंगे। मूर्ख ! जब तुम अपना सर्वस्व ही विष्णुको दे डालोगे, तो तुम्हारा जीवन-निर्वाह कैसे होगा ? ये विश्वव्यापक भगवान् एक पगमें पृथ्वी और दूसरे पगमें स्वर्गको नाप लेंगे। इनके विशाल शरीरसे आकाश भर जायगा। तब इनका तीसरा पग कहाँ जायगा ? तुम उसे पूरा न कर सकोगे। ऐसी दशामें मैं तो समझता हूँ कि प्रतिज्ञा करके पूरा न कर पानेके कारण तुम्हें नरकमें ही जाना पड़ेगा। क्योंकि तुम अपनी की हुई प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेमें सर्वथा असमर्थ होओगे। विद्वान् पुरुष उस दानकी प्रशंसा नहीं करते, जिसके बाद जीवन-निर्वाहके लिये कुछ बचे ही नहीं। जिसका जीवन-निर्वाह ठीक-ठीक चलता है—वही संसारमें दान, यज्ञ, तप और परोपकारके कर्म कर सकता है। जो मनुष्य अपने धनको पाँच भागोंमें बाँट देता है—कुछ धर्मके लिये, कुछ यशके लिये, कुछ धनकी अभिवृद्धिके लिये, कुछ भोगोंके लिये और कुछ अपने स्वजनोंके लिये—वही इस लोक और परलोक दोनोंमें ही सुख पाता है। असुरशिरोमणे ! यदि तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा टूट जानेकी चिन्ता हो, तो मैं इस विषयमें तुम्हें कुछ ऋग्वेदकी श्रुतियोंका आशय सुनाता हूँ, तुम सुनो। श्रुति कहती है—'किसीको कुछ देनेकी बात स्वीकार कर लेना तो सत्य है और नकार जाना अर्थात् अस्वीकार कर देना असत्य है। यह शरीर एक वृक्ष है, और सत्य इसका फल-फूल है। परन्तु यदि वृक्ष ही न रहे तो फल-फूल कैसे रह सकते हैं ? क्योंकि नकार जाना, अपनी वस्तु दूसरेको न देना, दूसरे शब्दोंमें अपना संग्रह बचाये रखना—यही शरीररूप वृक्षका मूल है। जैसे जड़ न रहनेपर वृक्ष सूखकर थोड़े ही दिनोंमें गिर जाता है, उसी प्रकार यदि धन देनेसे अस्वीकार न किया जाय तो यह जीवन सूख जाता है—इसमें सन्देह नहीं। 'मैं दूँगा'—यह वाक्य ही धनको दूर हटा देता है। इसलिये इसका उच्चारण ही अपूर्ण अर्थात् धनसे खाली कर देनेवाला है। यही कारण है कि जो पुरुष 'मैं दूँगा'—ऐसा कहता है, वह धनसे खाली हो जाता है। जो याचकको सब कुछ देना स्वीकार कर लेता है, वह अपने लिये भोगकी कोई सामग्री नहीं रख सकता। इसके विपरीत 'मैं नहीं दूँगा'—यह जो अस्वीकारात्मक असत्य है, वह अपने धनको सुरक्षित रखने तथा पूर्ण करनेवाला है। परन्तु ऐसा सब समय नहीं करना चाहिये। जो सबसे, सभी वस्तुओंके लिये नाहीं करता रहता है, वह बदनाम हो जाता है। वह तो जीवित रहनेपर भी मृतकके समान ही है। स्त्रियोंको प्रसन्न करनेके लिये, हास-परिहासमें, विवाहमें कन्या आदिकी प्रशंसा करते समय, अपनी जीविकाकी रक्षाके लिये, प्राण-सङ्कट उपस्थित होनेपर, गौ और ब्राह्मणके हितके लिये तथा किसीको मृत्युसे बचानेके लिये असत्य-भाषण भी उतना निन्दनीय नहीं है ॥ ३०–४३ ॥

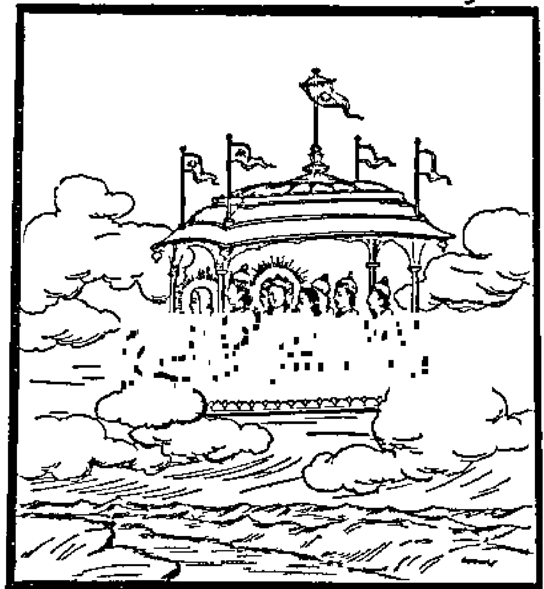
और कल्पवृक्षका स्वभाव एक सा है। कल्पवृक्ष अपने आश्रितोंको मनचाही वस्तु देता है, वैसे ही आप अपने प्रेमी भक्तोंसे प्रेम करते हैं। इसीलिये आपके समदर्शी होनेपर भी जो आपकी भक्ति करेगा, वह तो आपके विशेष प्रसादका भाजन होगा ही ॥ ६-८ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—बेटा प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम भी सुतल लोकमें जाओ। वहाँ अपने पौत्र बलिके साथ आनन्दपूर्वक रहो और जाति बन्धुओंको सुखी करो। वहाँ तुम मुझे नित्य ही गदा हाथमें लिये खड़ा देखोगे। मेरे दर्शनके परमानन्दमें मग्न रहनेके कारण तुम्हारे सारे कर्मबन्धन नष्ट हो जायँगे ॥ ९-१० ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! विशुद्ध बुद्धिवाले प्रह्लादजीने 'जो आज्ञा' कहकर, हाथ जोड़, भगवान्‌का आदेश मस्तकपर चढ़ाया। फिर समस्त दैत्यसेनाके स्वामी प्रह्लादजीने बलिके साथ आदिपुरुष भगवान्‌की परिक्रमा की, उन्हें प्रणाम किया और उनसे अनुमति लेकर सुतल लोककी यात्रा की। परीक्षित्! उस समय भगवान् श्रीहरिने ब्रह्मवादी ऋत्विजोंकी सभामें अपने पास ही बैठे हुए शुक्राचार्यजीसे कहा—'ब्रह्मन्! आपका शिष्य यज्ञ कर रहा था। उसमें जो त्रुटि रह गयी है, उसे आप पूर्ण कर दीजिये। क्योंकि कर्म करनेमें जो कुछ भूल चूक हो जाती है, वह ब्राह्मणोंकी कृपादृष्टिसे सुधर जाती है' ॥ ११-१४ ॥

शुक्राचार्यजीने कहा—भगवन्! जिसने अपना समस्त कर्म समर्पित करके सब प्रकारसे यज्ञेश्वर यज्ञपुरुष आपकी पूजा की है—उसके कर्ममें कोई त्रुटि, कोई विषमता कैसे रह सकती है? क्योंकि मन्त्रोंकी, अनुष्ठान पद्धतिकी, देश, काल, पात्र और वस्तुकी सारी भूलें आपके नामसंकीर्तन मात्रसे सुधर जाती हैं, आपका नाम सारी त्रुटियोंको पूर्ण कर देता है। तथापि अनन्त! जब आप स्वयं कह रहे हैं, तब मैं आपकी आज्ञाका अवश्य पालन करूँगा। मनुष्यके लिये सबसे बड़ा कल्याणका साधन यही है कि वह आपकी आज्ञाका पालन करे ॥ १५-१७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् शुक्राचार्यने भगवान् श्रीहरिकी यह आज्ञा स्वीकार करके दूसरे ब्रह्मर्षियोंके साथ, यज्ञमें जो कमी रह गयी थी, उसे पूर्ण किया। परीक्षित्! इस प्रकार वामनभगवान्‌ने बलिसे पृथ्वीकी भिक्षा माँगकर अपने बड़े भाई इन्द्रको स्वर्गका राज्य दिया, जिसे उनके शत्रुओंने छीन लिया था। इसके बाद प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्माजीने देवर्षि, पितर, मनु, दक्ष, भृगु, अङ्गिरा, सनत्कुमार और शङ्करजीके साथ कश्यप एवं अदितिकी प्रसन्नताके लिये तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अभ्युदयके लिये समस्त लोक और लोकपालोंके स्वामीके पदपर वामनभगवान्‌का अभिषेक कर दिया। परीक्षित्! वेद, समस्त देवता, धर्म, यश, लक्ष्मी, मङ्गल, व्रत, स्वर्ग और अपवर्ग—सबके रक्षकके रूपमें सबके परम कल्याणके लिये सर्वशक्तिमान् वामनभगवान्‌को उन्होंने उपेन्द्रका पद दिया। उस समय सभी प्राणियोंको अत्यन्त आनन्द हुआ। इसके बाद ब्रह्माजीकी अनुमतिसे लोकपालोंके साथ देवराज इन्द्रने वामनभगवान्‌को सबसे आगे विमानपर बैठाया और अपने साथ स्वर्ग



लिवा ले गये। इन्द्रको एक तो त्रिभुवनका राज्य मिल गया और दूसरे, वामनभगवान्‌के करकमलोंकी छत्रछाया! सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्यलक्ष्मी उनकी सेवा करने लगी और वे निर्भय होकर आनन्दोत्सव मनाने लगे। ब्रह्मा, शङ्कर, सनत्कुमार, भृगु आदि मुनि, पितर, सारे भूत, सिद्ध और विमानारोही देवगण भगवान्‌के इस परम अद्भुत एवं अत्यन्त महान् कर्मका गायन करते हुए अपने अपने लोकको चले गये और सबने अदितिकी भी बड़ी प्रशंसा की ॥ १८-२७ ॥

परीक्षित्! तुम्हें मैंने भगवान्‌की यह सब लीला सुनायी। इसे सुननेवालोंके सारे पाप छूट जाते हैं। भगवान्‌की लीलाएँ अनन्त हैं, उनकी महिमा अपार है। जो मनुष्य उसका पार पाना चाहता है, वह मानो पृथ्वीके परमाणुओंको गिन डालना चाहता है। भगवान्‌के सम्बन्धमें मन्त्रद्रष्टा

सुसज्जित थी, वहाँ आयी। उसने अपने हाथों वामनभगवान्‌के चरण पखारनेके लिये जलसे भरा सोनेका कलश लाकर दिया। बलिने स्वयं बड़े आनन्दसे उनके सुन्दर-सुन्दर युगल चरणोंको धोया और उनके चरणोंका वह विश्वपावन जल अपने सिरपर चढ़ाया। उस समय आकाशमें स्थित देवता, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, चारण—सभीलोग राजा बलिके इस अलौकिक कार्य तथा सरलताकी प्रशंसा करते हुए बड़े आनन्दसे उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। एक साथ ही हजारों दुन्दुभियाँ बार-बार बजने लगीं। गन्धर्व, किम्पुरुष और किन्नर गान करने लगे—'अहो धन्य है! इस उदारशिरोमणि बलिने ऐसा काम कर दिखाया, जो दूसरोंके लिये अत्यन्त कठिन है। देखो तो सही, इन्होंने जान-बूझकर अपने शत्रुको तीनों लोकोंका दान कर दिया!' ॥ १४–२० ॥

इसी समय एक बड़ी अद्भुत घटना घट गयी। अनन्त भगवान्‌का वह त्रिगुणात्मक वामनरूप बढ़ने लगा। वह यहाँतक बढ़ा कि पृथ्वी, आकाश, दिशाएँ, स्वर्ग, पाताल, समुद्र, पशु-पक्षी, मनुष्य, देवता और ऋषि—सब-के-सब उसीमें समा गये। ऋत्विज, आचार्य और सदस्योंके साथ बलिने समस्त ऐश्वर्योंके एकमात्र स्वामी भगवान्‌के उस त्रिगुणात्मक शरीरमें पञ्चभूत, इन्द्रिय, उनके विषय, अन्तःकरण और जीवोंके साथ यह सम्पूर्ण त्रिगुणमय जगत् देखा। राजा बलिने विश्वरूप भगवान्‌के चरणतलमें रसातल, चरणोंमें पृथ्वी, पिंडलियोंमें पर्वत, घुटनोंमें पक्षी और जाँघोंमें मरुद्गणको देखा। इसी प्रकार भगवान्‌के वस्त्रोंमें सन्ध्या, गुह्यस्थानोंमें प्रजापतिगण, जघनस्थलमें अपने सहित समस्त असुरगण, नाभिमें आकाश, कोखमें सातों समुद्र और हृदयमें नक्षत्रसमूह देखे। उन लोगोंको भगवान्‌के हृदयमें धर्म, स्तनोंमें मधुर और सत्य वाणी, मनमें चन्द्रमा, वक्षःस्थलपर हाथोंमें कमल लिये लक्ष्मीजी, कण्ठमें सामवेद और सम्पूर्ण शब्दसमूह, बाहुओंमें इन्द्रादि समस्त देवगण, कानोंमें दिशाएँ, मस्तकमें स्वर्ग, केशोंमें मेघमाला, नासिकामें वायु, नेत्रोंमें सूर्य और मुखमें अग्नि दिखायी पड़े। वाणीमें वेद, रसनामें वरुण, भौंहोंमें विधि और निषेध, पलकोंमें दिन और रात। विश्वरूपके ललाटमें क्रोध, नीचेके होठमें लोभ, स्पर्शमें काम, वीर्यमें जल, पीठमें अधर्म, पद-विन्यासमें यज्ञ, छायामें मृत्यु, हँसीमें माया, शरीरके रोमोंमें सब प्रकारकी ओषधियाँ, नाड़ियोंमें नदियाँ, नखोंमें शिलाएँ और बुद्धिमें ब्रह्मा, देवता एवं ऋषिगण दीख पड़े। इस प्रकार वीरवर बलिने भगवान्‌की इन्द्रियों और शरीरमें सभी चराचर प्राणियोंका दर्शन किया ॥ २१–२९ ॥

परीक्षित्! सर्वात्मा भगवान्‌में यह सम्पूर्ण जगत् देखकर *सब-के-सब दैत्य अत्यन्त भयभीत हो गये। इसी समय* भगवान्‌के पास असह्य तेजवाला सुदर्शन चक्र, गरजते हुए मेघके समान भयङ्कर टङ्कार करनेवाला शार्ङ्ग-धनुष, बादलकी तरह गम्भीर शब्द करनेवाला पाञ्चजन्य शङ्ख, विष्णुभगवान्‌की अत्यन्त वेगवती कौमोदकी गदा, सौ चन्द्राकार चिह्नोंवाली ढाल और विद्याधर नामकी तलवार, अक्षय बाणोंसे भरे दो तरकस तथा लोकपालोंके सहित भगवान्‌के सुनन्द आदि पार्षदगण सेवा करनेके लिये उपस्थित हो गये। उस समय भगवान्‌की बड़ी शोभा हुई। मस्तकपर मुकुट, बाहुओंमें बाजूबंद, कानोंमें मकराकृति कुण्डल, वक्षःस्थलपर श्रीवत्स-चिह्न, गलेमें कौस्तुभ मणि, कमरमें मेखला और कंधेपर पीताम्बर शोभायमान हो रहा था। वे पाँच प्रकारके पुष्पोंकी बनी वनमाला धारण किये हुए थे, जिसपर मधुलोभी भौंरे गुंजार कर रहे थे। उन्होंने अपने एक पगसे बलिकी सारी पृथ्वी नाप ली, शरीरसे आकाश और भुजाओंसे दिशाएँ घेर लीं; दूसरे पगसे उन्होंने स्वर्गको भी नाप लिया। तीसरा पैर रखनेके लिये बलिकी तनिक-सी भी कोई वस्तु न बची। भगवान्‌का वह दूसरा पग ही ऊपरकी ओर जाता हुआ महर्लोक, जनलोक और तपलोकसे भी ऊपर सत्यलोकमें पहुँच गया ॥ ३०–३४ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

बलिका बाँधा जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌का चरणकमल सत्यलोकमें पहुँच गया। उसके नखचन्द्रकी छटासे सत्यलोककी आभा फीकी पड़ गयी। स्वयं ब्रह्मा भी उसके प्रकाशमें डूब-से गये। उन्होंने मरीचि आदि ऋषियों, सनन्दन आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारियों एवं बड़े-बड़े योगियोंके *साथ भगवान्‌के चरणकमलकी अगवानी की।* वेद, उपवेद, नियम, यम, तर्क, इतिहास, वेदाङ्ग और पुराण-संहिताएँ—जो ब्रह्मलोकमें मूर्तिमान् होकर निवास करते हैं—तथा जिन लोगोंने योगरूप वायुसे ज्ञानाग्निको प्रज्वलित करके कर्ममलको भस्म कर डाला है वे महात्मा, सबने भगवान्‌के

मछलीके रूपमें पधारे हैं। इसलिये उन्होंने उस मछलीकी रक्षाका मन ही-मन सङ्कल्प किया । राजा सत्यव्रतने उस मछलीकी अत्यन्त दीनतासे भरी बात सुनकर बड़ी दयासे उसे अपने पात्रके जलमें रख लिया और अपने आश्रमपर ले आये । आश्रमपर लानेके बाद एक रातमें ही वह मछली उस कमण्डलुमें इतनी बढ़ गयी कि उसमें उसके लिये स्थान ही न रहा। उस समय मछलीने राजासे कहा—'अब तो इस कमण्डलुमें मैं कष्टपूर्वक भी नहीं रह सकती; अतः मेरे लिये कोई बड़ा-सा स्थान नियत कर दो, जहाँ मैं आरामसे रह सकूँ।' राजा सत्यव्रतने मछलीको कमण्डलुसे निकालकर एक बहुत बड़े पानीके मटकेमें रख दिया। परन्तु वहाँ डालनेपर वह मछली दो ही घड़ीमें तीन हाथ बढ़ गयी और फिर उसने राजा सत्यव्रतसे कहा—'राजन् ! अब यह मटका भी मेरे लिये पर्याप्त नहीं है। इसमें मैं सुखपूर्वक नहीं रह सकती। मैं तुम्हारी शरणमें हूँ, इसलिये मेरे रहने-योग्य कोई बड़ा-सा स्थान मुझे दो।' परीक्षित् ! सत्यव्रतने वहाँसे उस मछलीको उठाकर एक सरोवरमें डाल दिया। परन्तु वह थोड़ी ही देरमें इतनी बढ़ गयी कि उसने एक महामत्स्यका आकार धारण कर उस सरोवरके जलको घेर लिया और कहा—'राजन् ! मैं जलचर प्राणी हूँ। इस सरोवरका जल भी मेरे सुखपूर्वक रहनेके लिये पर्याप्त नहीं है। इसलिये आप मेरी रक्षा कीजिये और मुझे किसी अगाध सरोवरमें रख दीजिये।' मत्स्यभगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर वे एक एक करके उन्हें कई अटूट जलवाले सरोवरोंमें ले गये; परन्तु जितना बड़ा सरोवर होता, उतने ही बड़े वे बन जाते। अन्तमें उन्होंने उन लीलामत्स्यको समुद्रमें छोड़ दिया। समुद्रमें डालते समय मत्स्यभगवान्‌ने सत्यव्रतसे कहा—'वीर ! समुद्रमें बड़े बड़े बली मगर आदि रहते हैं, वे मुझे खा जायँगे। इसलिये आप मुझे समुद्रके जलमें मत छोड़िये' ॥१०–२४॥

मत्स्यभगवान्‌की यह मधुर वाणी सुनकर राजा सत्यव्रत तो मोहमुग्ध हो गये। उन्होंने कहा—'मत्स्यका रूप धारण करके मुझे मोहित करनेवाले आप कौन हैं? आपने एक ही दिनमें चार सौ कोसके विस्तारका सरोवर घेर लिया। आजतक ऐसी शक्ति रखनेवाला जलचर जीव तो न मैंने [कभ]ी देखा था और न सुना ही था। अवश्य ही आप [साक्ष]ात् सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी अविनाशी श्रीहरि हैं। जीवोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही आपने जलचरका रूप धारण किया है। पुरुषोत्तम ! आप जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और



प्रलयके स्वामी हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ। प्रभो ! हम शरणागत भक्तोंके लिये आप ही आत्मा और आश्रय हैं। यद्यपि आपके सभी लीलावतार प्राणियोंके अभ्युदयके लिये ही होते हैं, तथापि मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपने यह रूप किस उद्देश्यसे ग्रहण किया है। कमलनयन प्रभो ! जैसे देहादि अनात्मपदार्थोंमें अपनेपनका अभिमान करनेवाले संसारी पुरुषोंका आश्रय व्यर्थ होता है उस प्रकार आपके चरणोंकी शरण तो व्यर्थ हो नहीं सकती; क्योंकि आप सबके अहैतुक प्रेमी, परम प्रियतम और आत्मा हैं। आपने इस समय जो रूप धारण करके हमें दर्शन दिया है, यह तो बड़ा ही अद्भुत है ॥२५–३०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् अपने अनन्यप्रेमी भक्तोंपर अत्यन्त प्रेम करते हैं। जब जगत्पति मत्स्यभगवान्‌ने अपने प्यारे भक्त राजर्षि सत्यव्रतकी यह प्रार्थना सुनी तो उनका प्रिय और हित करनेके लिये, साथ ही कल्पान्तके प्रलयकालीन समुद्रमें विहार करनेके लिये उनसे कहा ॥ ३१ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—सत्यव्रत ! आजसे सातवें दिन भूर्लोक आदि तीनों लोक प्रलयके समुद्रमें डूब जायँगे। उस समय जब तीनों लोक प्रलयकालकी जलराशिमें डूबने लगेंगे, तब मेरी प्रेरणासे तुम्हारे पास एक बहुत बड़ी नौका आयेगी। उस समय तुम समस्त प्राणियोंके सूक्ष्मशरीरोंको लेकर सप्तर्षियोंके साथ उस नौकापर चढ़ जाना और समस्त

समस्त दिशाओंमें लोग 'हाय-हाय!' करने लगे। यद्यपि बलि वरुणके पाशोंसे बँधे हुए थे, उनकी सम्पत्ति भी उनके हाथोंसे निकल गयी थी—फिर भी उनकी बुद्धि निश्चयात्मक थी और सब लोग उनके उदार यशका गायन कर रहे थे। परीक्षित्! उस समय भगवान्‌ने बलिसे कहा—असुर! तुमने मुझे पृथ्वीके तीन पग दिये थे; दो पगमें तो मैंने सारी त्रिलोकी नाप ली, अब तीसरा पग पूरा करो। जहाँतक सूर्यकी गरमी पहुँचती है, जहाँतक नक्षत्रों और चन्द्रमाकी किरणें पहुँचती हैं और जहाँतक बादल जाकर बरसते हैं—वहाँतककी सारी पृथ्वी तुम्हारे अधिकारमें थी। तुम्हारे देखते-ही-देखते मैंने अपने एक पैरसे भूर्लोक, शरीरसे आकाश और दिशाएँ एवं दूसरे पैरसे स्वर्लोक नाप लिया है। इस प्रकार तुम्हारा सब कुछ मेरा हो चुका है। फिर भी तुमने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे पूरा न कर सकनेके कारण अब तुम्हें नरकमें रहना पड़ेगा। तुम्हारे गुरुकी तो इस विषयमें सम्मति है ही; अब जाओ, तुम नरकमें प्रवेश करो। जो याचकको देनेकी प्रतिज्ञा करके मुकर जाता है और इस प्रकार उसे धोखा देता है, उसके सारे मनोरथ व्यर्थ होते हैं। स्वर्गकी बात तो दूर रही, उसे नरकमें गिरना पड़ता है। तुम्हें इस बातका बड़ा घमंड था कि मैं बड़ा धनी हूँ। तुमने मुझसे 'दूँगा'—ऐसी प्रतिज्ञा करके फिर धोखा दे दिया, अब तुम कुछ वर्षोंतक इस झूठका फल नरक भोगो'॥२५–३४॥

बाईसवाँ अध्याय

बलिके द्वारा भगवान्‌की स्तुति और भगवान्‌का उसपर प्रसन्न होना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार भगवान्‌ने असुरराज बलिका बड़ा तिरस्कार किया और उन्हें धैर्यसे विचलित करना चाहा। परन्तु वे तनिक भी विचलित न हुए, बड़े धैर्यसे बोले॥१॥

दैत्यराज बलिने कहा—देवताओंके आराध्यदेव! आपकी कीर्ति तो बड़ी पवित्र है। क्या आप मेरी बातको असत्य समझते हैं? ऐसा नहीं है। मैं उसे सत्य कर दिखाता हूँ। आप धोखेमें नहीं पड़ेंगे। आप कृपा करके अपना तीसरा पग मेरे सिरपर रख दीजिये। मुझे नरकमें जानेका अथवा राज्यसे च्युत होनेका भय नहीं है। मैं पाशमें बँधने अथवा अपार दुःखमें पड़नेसे भी नहीं डरता। मेरे पास फूटी कौड़ी भी न रहे अथवा आप मुझे घोर दण्ड दें, यह भी मेरे भयका कारण नहीं है। मैं डरता हूँ तो केवल अपनी अपकीर्तिसे। अपने पूजनीय गुरुजनोंके द्वारा दिया हुआ दण्ड तो जीवमात्रके लिये अत्यन्त वाञ्छनीय है। क्योंकि वैसा दण्ड माता, पिता, भाई और सुहृद् भी मोहवश नहीं दे पाते। आप छिपे रूपसे अवश्य ही हम असुरोंको श्रेष्ठ शिक्षा दिया करते हैं, अतः आप हमारे परमगुरु हैं। जब हमलोग धन, कुलीनता, बल आदिके मदसे अंधे हो जाते हैं, तब आप उन वस्तुओंको हमसे छीनकर हमें नेत्रदान करते हैं। आपसे हमलोगोंका जो उपकार होता है, उसे मैं क्या बताऊँ? अनन्य भावसे योग करनेवाले योगीगण जो सिद्धि प्राप्त करते हैं, वही सिद्धि बहुत-से असुरोंको आपके साथ दृढ वैरभाव करनेसे ही प्राप्त हो गयी है। जिनकी ऐसी महिमा, ऐसी अनन्त लीलाएँ, वही आप मुझे दण्ड दे रहे हैं और वरुण-पाशसे बाँध रहे हैं। इसकी न तो मुझे कोई लज्जा है और न तो किसी प्रकारकी व्यथा ही है। प्रभो! मेरे पितामह प्रह्लादजीकी कीर्ति तो सारे जगत्‌में प्रसिद्ध है। वे आपके भक्तोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। उनके पिता हिरण्यकशिपुने आपसे वैर-विरोध रखनेके कारण उन्हें अनेकों प्रकारके दुःख दिये। परन्तु वे आपके ही परायण रहे, उन्होंने अपना जीवन आपपर ही निछावर कर दिया। उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि शरीरको लेकर क्या करना है, जब यह एक-न-एक दिन साथ छोड़ ही देता है। जो धन-सम्पत्ति लेनेके लिये स्वजन बने हुए हैं, उन डाकुओंसे अपना स्वार्थ ही क्या है? पत्नीसे भी क्या लाभ है, जब वह जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्रमें डालनेहीवाली है। जब मर ही जाना है, तब घरसे मोह करनेमें भी क्या स्वार्थ है? इन सब वस्तुओंमें उलझ जाना तो केवल अपनी आयु खो देना है। ऐसा निश्चय करके मेरे पितामह प्रह्लादजीने यह जानते हुए भी कि आप लौकिक दृष्टिसे उनके भाई-बन्धुओंका नाश करनेवाले शत्रु हैं, आपके ही भयरहित एवं अविनाशी चरणकमलोंकी शरण ग्रहण की थी। क्यों न हो—वे संसारसे परम विरक्त, अगाध बोधसम्पन्न, उदारहृदय एवं संतशिरोमणि जो हैं। आप उस दृष्टिसे मेरे भी शत्रु हैं, फिर भी विधाताने मुझे बलात् ऐश्वर्य-लक्ष्मीसे अलग करके आपके पास पहुँचा दिया है। अच्छा ही हुआ; क्योंकि ऐश्वर्य लक्ष्मीके कारण जीवकी बुद्धि जड हो जाती है और वह यह नहीं समझ पाता कि 'मेरा यह जीवन मृत्युके पंजेमें पड़ा हुआ और अनित्य है'॥२–११॥

पलक उठने और गिरनेसे उनके अस्तित्वका पता चलता रहेगा।' इसके बाद महर्षियोंने यह सोचकर कि राजाके न रहनेपर लोगोंमें अराजकता फैल जायगी, निमिके शरीरका मन्थन किया। उस मन्थनसे एक कुमार उत्पन्न हुआ। जन्म लेनेके कारण उसका नाम हुआ जनक। विदेहसे उत्पन्न होनेके कारण 'वैदेह' और मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण उसी बालकका नाम 'मिथिल' हुआ। उसीने मिथिलापुरी बसायी ॥११–१३॥

परीक्षित्! जनकका उदावसु, उदावसुका नन्दिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धनका सुकेतु, सुकेतुका देवरात, देवरातका बृहद्रथ, बृहद्रथका महावीर्य, महावीर्यका सुधृति, सुधृतिका धृष्टकेतु, धृष्टकेतुका हर्यश्व और हर्यश्वका मरु नामक पुत्र हुआ। मरुसे प्रतीपक, प्रतीपकसे कृतिरथ, कृतिरथसे देवमीढ, देवमीढसे विश्रुत और विश्रुतसे महाधृतिका जन्म हुआ। महाधृतिका कृतिरात, कृतिरातका महारोमा, महारोमाका स्वर्णरोमा और स्वर्णरोमाका पुत्र हुआ ह्रस्वरोमा। इसी ह्रस्वरोमाके पुत्र महाराज सीरध्वज थे। वे जब यज्ञके लिये धरती जोत रहे थे, तब उनके सीर (हल) के अग्रभाग (फाल) से सीताजीकी उत्पत्ति हुई। इसीसे उनका नाम 'सीरध्वज' पड़ा। सीरध्वजके कुशध्वज, कुशध्वजके धर्मध्वज और धर्मध्वजके दो पुत्र हुए— कृतध्वज और मितध्वज। कृतध्वजके केशिध्वज और मितध्वजके खाण्डिक्य हुए। केशिध्वज आत्मविद्यामें बड़ा प्रवीण था और खाण्डिक्य था कर्मकाण्डका मर्मज्ञ। वह केशिध्वजसे भयभीत होकर भाग गया। केशिध्वजका पुत्र भानुमान् और भानुमान्का शतद्युम्न था। शतद्युम्नसे शुचि, शुचिसे सनद्वाज, सनद्वाजसे ऊर्ध्वकेतु, ऊर्ध्वकेतुसे अज, अजसे पुरुजित्, पुरुजित्से अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमिसे श्रुतायु, श्रुतायुसे सुपार्श्वक, सुपार्श्वकसे चित्ररथ और चित्ररथसे मिथिलापति क्षेमधिका जन्म हुआ। क्षेमधिसे समरथ, समरथसे सत्यरथ, सत्यरथसे उपगुरु और उपगुरुसे उपगुप्त नामक पुत्र हुआ। यह अग्निका अंश था। उपगुप्तका वस्वनन्त, वस्वनन्तका युयुध, युयुधका सुभाषण, सुभाषणका श्रुत, श्रुतका जय, जयका विजय और विजयका ऋत नामक पुत्र हुआ। ऋतका शुनक, शुनकका वीतहव्य, वीतहव्यका धृति, धृतिका बहुलाश्व, बहुलाश्वका कृति और कृतिका पुत्र हुआ महावशी। परीक्षित्! ये मिथिलके वंशमें उत्पन्न सभी नरपति 'मैथिल' कहलाते हैं। ये सब-के-सब आत्मज्ञानसे सम्पन्न एवं गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे मुक्त थे। क्यों न हो, याज्ञवल्क्य आदि बड़े-बड़े योगेश्वरोंकी इनपर महान् कृपा जो थी ॥१४–२७॥

चौदहवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब मैं तुम्हें चन्द्रमाके परम पवित्र वंशका वर्णन सुनाता हूँ। इस वंशमें पुरूरवा आदि बड़े-बड़े पवित्र कीर्तिवाले राजा हो गये हैं। सहस्रों सिरवाले विराट् पुरुष नारायणके नाभि-सरोवरके कमलसे ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजीके पुत्र हुए अत्रि। महर्षि अत्रि अपने गुणोंके कारण ब्रह्माजीके समान ही थे। उन्हीं अत्रिके नेत्रोंसे अमृतमय चन्द्रमाका जन्म हुआ। ब्रह्माजीने चन्द्रमाको ब्राह्मण, ओषधि और नक्षत्रोंका अधिपति बना दिया। उन्होंने तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त की और राजसूय यज्ञ किया। इससे उनका घमड कुछ बढ़ गया और उन्होंने बलपूर्वक बृहस्पतिकी पत्नी ताराको हर लिया। देवगुरु बृहस्पतिने अपनी पत्नीको लौटा देनेके लिये उनसे बार-बार याचना की, परन्तु वे इतने मतवाले हो गये थे कि उन्होंने किसी प्रकार उनकी पत्नीको नहीं लौटाया। ऐसी रि... उसके लिये देवता और दानवोंमें घोर संग्राम छिड़ ... शुक्राचार्यजीने बृहस्पतिजीके द्वेषसे असुरोंके साथ ... पक्ष ले लिया और महादेवजी... समस्त ... साथ अपने विद्यागुरु अङ्गिराजीके पुत्र बृहस्पतिका पक्ष लिया। देवराज इन्द्रने भी समस्त देवताओंके साथ अपने गुरु बृहस्पतिजीका ही पक्ष लिया। इस प्रकार ताराके निमित्तसे देवता और असुरोंका संहार करनेवाला घोर संग्राम हुआ ॥१–७॥

तदनन्तर अङ्गिरा ऋषिने ब्रह्माजीके पास जाकर यह युद्ध बंद करानेकी प्रार्थना की। इसपर ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बहुत डाँटा-फटकारा और ताराको उसके पति बृहस्पतिजीके हवाले कर दिया। जब बृहस्पतिजीको यह मालूम हुआ कि तारा तो गर्भवती है, तब उन्होंने कहा—'दुष्टे! मेरे क्षेत्रमें यह तो किसी दूसरेका गर्भ है। इसे तू अभी त्याग दे, तुरंत त्याग दे। डर मत, मैं तुझे जलाऊँगा नहीं। क्योंकि एक तो तू स्त्री है और दूसरे मुझे भी सन्तानकी कामना है। देवी ... तू निर्दोष भी है ही।' अपने पतिकी बात सुनकर ... लज्जित हुई। उसने सोनेके समान चमकता ... अपने गर्भसे अलग कर दिया। उस ... बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों ही मोहित हो

जडता आदि उत्पन्न करके मनुष्यको कल्याणके समस्त साधनोंसे वञ्चित कर देते हैं; परन्तु जो मेरे शरणागत होते हैं, वे इनसे मोहित नहीं होते। यह बलि दानव और दैत्य दोनों ही वंशोंमें अग्रगण्य और उनकी कीर्ति बढ़ानेवाला है। इसने उस मायापर विजय प्राप्त कर ली है, जिसे जीतना अत्यन्त कठिन है। तुम तो देख ही रहे हो, इतना दुःख भोगनेपर भी यह मोहित नहीं हुआ। इसका धन छीन लिया, राजपदसे अलग कर दिया, तरह-तरहके आक्षेप किये, शत्रुओंने बाँध लिया, भाई-बन्धु छोड़कर चले गये, इतनी यातनाएँ भोगनी पड़ीं—यहाँतक कि गुरुदेवने भी इसको डाँटा-फटकारा और शापतक दे दिया। परन्तु इस दृढ़व्रतीने अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी। मैंने इससे छलभरी बातें कीं, मनमें छल रखकर धर्मका उपदेश किया; परन्तु इस सत्यवादीने अपना धर्म न छोड़ा। अतः मैंने इसे वह स्थान दिया है, जो बड़े-बड़े देवताओंको भी बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होता है। सावर्णि मन्वन्तरमें यह मेरा परमभक्त इन्द्र होगा। तबतक यह विश्वकर्माके बनाये हुए सुतल लोकमें रहे। वहाँ रहनेवाले लोग मेरी कृपादृष्टिका अनुभव करते हैं। इसलिये उन्हें शारीरिक अथवा मानसिक रोग, थकावट, तन्द्रा, बाहरी या भीतरी शत्रुओंसे पराजय और किसी प्रकारके विघ्नोंका सामना नहीं करना पड़ता। [बलिको सम्बोधित कर] महाराज इन्द्रसेन! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ उस सुतल लोकमें जाओ, जिसे स्वर्गके देवता भी चाहते रहते हैं। बड़े-बड़े लोकपाल भी अब तुम्हें पराजित नहीं कर सकेंगे, दूसरोंकी तो बात ही क्या है। जो दैत्य तुम्हारी आज्ञाका उल्लङ्घन करेंगे, मेरा चक्र उनके टुकड़े-टुकड़े कर देगा। मैं तुम्हारी, तुम्हारे अनुचरोंकी और भोगसामग्रीकी भी सब प्रकारके विघ्नोंसे रक्षा करूँगा। वीर बलि! तुम मुझे वहाँ सदा-सर्वदा अपने पास ही देखोगे। दानव और दैत्योंके संसर्गसे तुम्हारा जो कुछ आसुरभाव होगा, वह मेरे प्रभावसे तुरंत दब जायगा और नष्ट हो जायगा ॥ २४–३६ ॥

तेईसवाँ अध्याय

बलिका बन्धनसे छूटकर सुतल लोकको जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब सनातनपुरुष भगवान्‌ने इस प्रकार कहा, तो साधुओंके आदरणीय महानुभाव दैत्यराजके नेत्रोंमें आँसू छलक आये। प्रेमके उद्रेकसे उनका गला भर आया। वे हाथ जोड़कर गद्‌गद वाणीसे भगवान्‌से कहने लगे ॥ १ ॥

बलिने कहा—प्रभो! मैंने तो आपको पूरा प्रणाम भी नहीं किया, केवल प्रणाम करनेमात्रकी चेष्टा भर की। उसीसे मुझे वह फल मिला, जो आपके चरणोंके शरणागत भक्तोंको प्राप्त होता है। बड़े-बड़े लोकपाल और देवताओंपर आपने जो कृपा कभी नहीं की, वह मुझ-जैसे नीच असुरको सहज ही प्राप्त हो गयी ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यों कहते ही बलि वरुणके पाशोंसे मुक्त हो गये। तब उन्होंने भगवान्, ब्रह्माजी और शङ्करजीको प्रणाम किया और इसके बाद बड़ी प्रसन्नतासे असुरोंके साथ सुतल लोककी यात्रा की। इस प्रकार भगवान्‌ने बलिसे स्वर्गका राज्य लेकर इन्द्रको दे दिया, अदितिकी कामना पूर्ण की और स्वयं उपेन्द्र बनकर वे सारे जगत्‌का शासन करने लगे। जब प्रह्लादने देखा कि मेरे वंशधर पौत्र राजा बलि बन्धनसे छूट गये और उन्हें भगवान्‌का कृपाप्रसाद प्राप्त हो गया, तो वे भक्तिसे गद्‌गद हो गये। उस समय उन्होंने भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति की ॥ ३–५ ॥

प्रह्लादजीने कहा—प्रभो! यह कृपाप्रसाद तो कभी ब्रह्माजी, लक्ष्मीजी और शङ्करजीको भी नहीं प्राप्त हुआ, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है। भला, आप हम असुरोंके दुर्गपाल—किलेदार होकर रहेंगे! सम्पूर्ण विश्व जिनके चरणोंकी वन्दना करता है, वे ब्रह्मा आदि भी आपके चरणोंकी वन्दना करते रहते हैं। शरणागतवत्सल प्रभो! ब्रह्मा आदि लोकपाल तो आपके चरणकमलोंका मकरन्द-रस सेवन करनेके कारण सृष्टि-रचनाकी शक्ति आदि अनेक विभूतियाँ प्राप्त करते हैं। हमलोग तो जन्मसे ही खल और कुमार्गगामी हैं; हमपर आपकी ऐसी अनुग्रहपूर्ण दृष्टि कैसे हो गयी, जो आप हमारे द्वारपाल ही बन गये! अवश्य ही आपकी यह अहैतुकी कृपा है। आपने अपनी योगमायाके बलसे खेल-ही-खेलमें त्रिभुवनकी रचना कर दी। आप सर्वज्ञ, सर्वात्मा और समदर्शी हैं। फिर भी आपकी लीलाएँ बड़ी विलक्षण जान पड़ती हैं। आपका स्वभाव भी कभी-कभी विषमतापूर्ण मालूम पड़ने लगता है; क्योंकि

रूपमें वरण करते हैं। अज्ञानी मनुष्य अज्ञानियोंको जिस ज्ञानका उपदेश करता है, वह तो अज्ञान ही है। उसके द्वारा तो संसाररूप घोर अन्धकारकी अधिकाधिक प्राप्ति होती है। परन्तु आप तो उस अविनाशी और अमोघ ज्ञानका उपदेश करते हैं, जिससे मनुष्य अनायास ही अपने वास्तविक स्वरूपको प्राप्त कर लेता है। आप सारे लोकके सुहृद्, प्रियतम, ईश्वर और आत्मा हैं। गुरु, उसके द्वारा प्राप्त होनेवाला ज्ञान, और अभीष्टकी सिद्धि भी आपका ही स्वरूप है। फिर भी कामनाओंके बन्धनमें जकड़े जाकर लोग अंधे हो रहे हैं, उन्हें इस बातका पता ही नहीं है कि आप उनके हृदयमें ही विराजमान हैं। आप देवताओंके भी आराध्यदेव, परम पूजनीय परमेश्वर हैं। मैं आपसे ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आपकी शरणमें आया हूँ। भगवन्! आप परमार्थको प्रकाशित करनेवाली अपनी वाणीके द्वारा मेरे हृदयकी ग्रन्थि काट डालिये और अपने स्वरूपको प्रकाशित कीजिये॥ ४६–५३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब राजा सत्यव्रतने इस प्रकार प्रार्थना की, तब मत्स्यरूपधारी पुरुषोत्तम भगवान्‌ने प्रलयके समुद्रमें विहार करते हुए उन्हें आत्मतत्त्वका उपदेश किया। भगवान्‌ने राजर्षि सत्यव्रतको अपने स्वरूपके सम्पूर्ण रहस्यका वर्णन करते हुए ज्ञान, भक्ति और कर्मयोगसे परिपूर्ण दिव्य पुराणका उपदेश किया, जिसको 'मत्स्यपुराण' कहते हैं। सत्यव्रतने ऋषियोंके साथ नावमें बैठे हुए ही सन्देहरहित होकर भगवान्‌के द्वारा उपदिष्ट सनातन ब्रह्मस्वरूप आत्मतत्त्वका श्रवण किया। इसके बाद जब पिछले प्रलयका अन्त हो गया और ब्रह्माजीकी नींद टूटी, तब भगवान्‌ने हयग्रीव असुरको मारकर उससे वेद छीन लिये और ब्रह्माजीको दे दिये। भगवान्‌की कृपासे राजा सत्यव्रत ज्ञान और विज्ञानसे संयुक्त होकर इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुए। अपनी योगमायासे मत्स्यरूप धारण करनेवाले भगवान् विष्णु और राजर्षि सत्यव्रतका यह संवाद *एवं श्रेष्ठ आख्यान सुनकर मनुष्य सब प्रकारके पापोंसे* मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य भगवान्‌के इस अवतारका प्रतिदिन कीर्तन करता है, उसके सारे सङ्कल्प सिद्ध हो जाते हैं और उसे परमगतिकी प्राप्ति होती है। प्रलयकालीन समुद्रमें ब्रह्माजी सो गये थे। उनके मुखसे निकली हुई श्रुतियोंको चुराकर हयग्रीव दैत्य पातालमें ले गया था। भगवान्‌ने उसे मारकर वे श्रुतियाँ ब्रह्माजीको लौटा दीं एवं सत्यव्रत तथा सप्तर्षियोंको ब्रह्मतत्त्वका उपदेश किया। उन समस्त जगत्‌के परमकारण लीलामत्स्य भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ॥ ५४–६१॥

अष्टम स्कन्ध समाप्त



जडता आदि उत्पन्न करके मनुष्यको कल्याणके समस्त साधनोंसे वञ्चित कर देते हैं; परन्तु जो मेरे शरणागत होते हैं, वे इनसे मोहित नहीं होते। यह बलि दानव और दैत्य दोनों ही वंशोंमें अग्रगण्य और उनकी कीर्ति बढ़ानेवाला है। इसने उस मायापर विजय प्राप्त कर ली है, जिसे जीतना अत्यन्त कठिन है। तुम तो देख ही रहे हो, इतना दुःख भोगनेपर भी यह मोहित नहीं हुआ। इसका धन छीन लिया, राजपदसे अलग कर दिया, तरह-तरहके आक्षेप किये, शत्रुओंने बाँध लिया, भाई-बन्धु छोड़कर चले गये, इतनी यातनाएँ भोगनी पड़ीं—यहाँतक कि गुरुदेवने भी इसको डाँटा-फटकारा और शापतक दे दिया। परन्तु इस दृढ़व्रतीने अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी। मैंने इससे छलभरी बातें कीं, मनमें छल रखकर धर्मका उपदेश किया; परन्तु इस सत्यवादीने अपना धर्म न छोड़ा। अतः मैंने इसे वह स्थान दिया है, जो बड़े-बड़े देवताओंको भी बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होता है। सावर्णि मन्वन्तरमें यह मेरा परमभक्त इन्द्र होगा। तबतक यह विश्वकर्माके बनाये हुए सुतल लोकमें रहे। वहाँ रहनेवाले लोग मेरी कृपादृष्टिका अनुभव करते हैं। इसलिये उन्हें शारीरिक अथवा मानसिक रोग, थकावट, तन्द्रा, बाहरी या भीतरी शत्रुओंसे पराजय और किसी प्रकारके विघ्नोंका सामना नहीं करना पड़ता। [बलिको सम्बोधित कर] महाराज इन्द्रसेन! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपने भाई-बन्धुओंके साथ उस सुतल लोकमें जाओ, जिसे स्वर्गके देवता भी चाहते रहते हैं। बड़े-बड़े लोकपाल भी अब तुम्हें पराजित नहीं कर सकेंगे, दूसरोंकी तो बात ही क्या है। जो दैत्य तुम्हारी आज्ञाका उल्लङ्घन करेंगे, मेरा चक्र उनके टुकड़े-टुकड़े कर देगा। मैं तुम्हारी, तुम्हारे अनुचरोंकी और भोगसामग्रीकी भी सब प्रकारके विघ्नोंसे रक्षा करूँगा। वीर बलि! तुम मुझे वहाँ सदा-सर्वदा अपने पास ही देखोगे। दानव और दैत्योंके संसर्गसे तुम्हारा जो कुछ आसुरभाव होगा, वह मेरे प्रभावसे तुरंत दब जायगा और नष्ट हो जायगा ॥ २४–३६ ॥

तेईसवाँ अध्याय

बलिका बन्धनसे छूटकर सुतल लोकको जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब सनातनपुरुष भगवान्‌ने इस प्रकार कहा, तो साधुओंके आदरणीय महानुभाव दैत्यराजके नेत्रोंमें आँसू छलक आये। प्रेमके उद्रेकसे उनका गला भर आया। वे हाथ जोड़कर गद्गद वाणीसे भगवान्‌से कहने लगे ॥ १ ॥

बलिने कहा—प्रभो! मैंने तो आपको पूरा प्रणाम भी नहीं किया, केवल प्रणाम करनेमात्रकी चेष्टा भर की। उसीसे मुझे वह फल मिला, जो आपके चरणोंके शरणागत भक्तोंको प्राप्त होता है। बड़े-बड़े लोकपाल और देवताओंपर आपने जो कृपा कभी नहीं की, वह मुझ-जैसे नीच असुरको सहज ही प्राप्त हो गयी ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यों कहते ही बलि वरुणके पाशोंसे मुक्त हो गये। तब उन्होंने भगवान्, ब्रह्माजी और शङ्करजीको प्रणाम किया और इसके बाद बड़ी प्रसन्नतासे असुरोंके साथ सुतल लोककी यात्रा की। इस प्रकार भगवान्‌ने बलिसे स्वर्गका राज्य लेकर इन्द्रको दे दिया, अदितिकी कामना पूर्ण की और स्वयं उपेन्द्र बनकर वे सारे जगत्‌का शासन करने लगे। जब प्रह्लादने देखा कि मेरे वंशधर पौत्र राजा बलि बन्धनसे छूट गये और उन्हें भगवान्‌का कृपाप्रसाद प्राप्त हो गया, तो वे भक्तिसे गद्गद हो गये। उस समय उन्होंने भगवान्‌की इस प्रकार स्तुति की ॥ ३–५ ॥

प्रह्लादजीने कहा—प्रभो! यह कृपाप्रसाद तो कभी ब्रह्माजी, लक्ष्मीजी और शङ्करजीको भी नहीं प्राप्त हुआ, तब दूसरोंकी तो बात ही क्या है। भला, आप हम असुरोंके दुर्गपाल—किलेदार होकर रहेंगे? सम्पूर्ण विश्व जिनके चरणोंकी वन्दना करता है, वे ब्रह्मा आदि भी आपके चरणोंकी वन्दना करते रहते हैं। शरणागतवत्सल प्रभो! ब्रह्मा आदि लोकपाल तो आपके चरणकमलोंका मकरन्द-रस सेवन करनेके कारण सृष्टि-रचनाकी शक्ति आदि अनेक विभूतियाँ प्राप्त करते हैं। हमलोग तो जन्मसे ही खल और कुमार्गगामी हैं; हमपर आपकी ऐसी अनुग्रहपूर्ण दृष्टि कैसे हो गयी, जो आप हमारे द्वारपाल ही बन गये? अवश्य ही आपकी यह अहैतुकी कृपा है। आपने अपनी योगमायाके बलसे खेल-ही-खेलमें त्रिभुवनकी रचना कर दी। आप सर्वज्ञ, सर्वात्मा और समदर्शी हैं। फिर भी आपकी लीलाएँ बड़ी विलक्षण जान पड़ती हैं। आपका स्वभाव भी कभी-कभी विषमतापूर्ण मालूम पड़ने लगता है; क्योंकि आपका

होताके विपरीत सङ्कल्पसे ही हमारा सङ्कल्प ठीक-ठीक पूरा नहीं हुआ। फिर भी अपने तपके प्रभावसे मैं तुम्हें श्रेष्ठ पुत्र दूँगा। परीक्षित्! परम यशस्वी भगवान् वसिष्ठने ऐसा



निश्चय करके उस इला नामकी कन्याको ही पुरुष बना देनेके लिये पुरुषोत्तम भगवान् नारायणकी स्तुति की। सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिने सन्तुष्ट होकर उन्हें मुँहमाँगा वर दिया, जिसके प्रभावसे वह कन्या ही सुद्युम्न नामक श्रेष्ठ पुत्र बन गयी॥ १३–२२॥

परीक्षित्! एक बार राजा सुद्युम्न शिकार खेलनेके लिये कुछ मन्त्रियोंके साथ सिन्धुदेशके घोड़ेपर सवार होकर वनमें गये। वीर सुद्युम्न कवच पहनकर और हाथमें सुन्दर धनुष एवं अत्यन्त अद्भुत बाण लेकर हरिनोंका पीछा करते हुए उत्तर दिशामें बहुत आगे बढ़ गये। अन्तमें सुद्युम्न मेरु पर्वतकी तलहटीके एक वनमें चले गये। उस वनमें भगवान् शङ्कर पार्वतीके साथ विहार करते रहते हैं। उसमें प्रवेश करते ही वीरवर सुद्युम्नने देखा कि मैं स्त्री हो गया हूँ और घोड़ा घोड़ी हो गया है। परीक्षित्! साथ ही उनके सब अनुचरोंने भी अपनेको स्त्रीरूपमें देखा। वे सब एक-दूसरेका मुँह देखने लगे, उनका चित्त बहुत उदास हो गया॥ २३–२७॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! उस भूखण्डमें ऐसा विचित्र गुण कैसे आ गया? किसने उसे ऐसा बना दिया था? हमें इस बातका बड़ा कौतूहल हो रहा है, आप कृपा कर हमारे इस प्रश्नका उत्तर दीजिये॥ २८॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! एक दिन भगवान् शङ्करका दर्शन करनेके लिये बड़े-बड़े व्रतधारी ऋषि अपने तेजसे दिशाओंका अन्धकार मिटाते हुए उस वनमें गये। उस समय अम्बिका देवी वस्त्रहीन थीं। ऋषियोंको सहसा आया देख वे अत्यन्त लज्जित हो गयीं। झटपट उन्होंने भगवान् शङ्करकी गोदसे उठकर वस्त्र धारण कर लिया। ऋषियोंने भी देखा कि भगवान् गौरी-शङ्कर इस समय विहार कर रहे हैं, इसलिये वहाँसे लौटकर वे भगवान् नर नारायणके आश्रमपर चले गये। उसी समय भगवान् शङ्करने अपनी प्रिया भगवती अम्बिकाको प्रसन्न करनेके लिये कहा कि 'जो भी पुरुष इस स्थानमें प्रवेश करेगा, वही स्त्री हो जायगा।' परीक्षित्! तभीसे पुरुष उस स्थानमें प्रवेश नहीं करते। अब



सुद्युम्न स्त्री हो गये थे। इसलिये वे अपने स्त्री बने हुए अनुचरोंके साथ एक वनसे दूसरे वनमें विचरने लगे। उसी समय शक्तिशाली बुधने देखा कि मेरे आश्रमके पास ही बहुत-सी स्त्रियोंसे घिरी हुई एक सुन्दरी स्त्री विचर रही है। उन्होंने इच्छा की कि यह मुझे प्राप्त हो जाय। उस सुन्दरी स्त्रीने भी चन्द्रकुमार बुधको पति बनाना चाहा। इसपर बुधने उसके गर्भसे पुरूरवा नामका पुत्र उत्पन्न किया। इस प्रकार मनुपुत्र राजा सुद्युम्न स्त्री हो गये। ऐसा सुनते हैं कि उन्होंने उस अवस्थामें अपने कुलपुरोहित वसिष्ठजीका स्मरण किया। सुद्युम्नकी यह दशा देखकर वसिष्ठजीके हृदयमें कृपावश अत्यन्त पीड़ा हुई। उन्होंने सुद्युम्नको पुनः पुरुष बना देनेके लिये भगवान् शङ्करकी

महर्षि वसिष्ठने वेदोंमें कहा है कि 'ऐसा पुरुष न कभी हुआ, न है और न होगा, जो भगवान्‌की महिमाका पार पा सके।' देवताओंके आराध्यदेव अद्भुतलीलाधारी वामनभगवान्‌के अवतार-चरित्रका जो श्रवण करता है, उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। देवयज्ञ, पितृयज्ञ और मनुष्ययज्ञ—किसी भी कर्मका अनुष्ठान करते समय जहाँ-जहाँ भगवान्‌की इस लीलाका कीर्तन होता है, वह कर्म सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है। यह बड़े-बड़े महात्माओंका अनुभव है ॥२८—३१॥

चौबीसवाँ अध्याय

भगवान्‌के मत्स्यावतारकी कथा

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवान्‌के कर्म बड़े अद्भुत हैं। उन्होंने एक बार अपनी योगमायासे मत्स्यावतार धारण करके बड़ी सुन्दर लीला की थी, मैं उनके उसी आदि अवतारकी कथा सुनना चाहता हूँ। भगवन्! उन्होंने यह मत्स्यका रूप क्यों धारण किया? मत्स्ययोनि एक तो यों ही लोकनिन्दित है, दूसरे तमोगुणी और असह्य परतन्त्रतासे युक्त भी है। सर्वशक्तिमान् होनेपर भी भगवान्‌ने कर्मबन्धनमें बँधे हुए जीवकी तरह ऐसी लीला क्यों की? भगवन्! महात्माओंके कीर्तनीय भगवान्‌का चरित्र समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाला है। आप कृपा करके उनकी वह सब लीला हमारे सामने पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये ॥ १—३ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! जब राजा परीक्षित्‌ने भगवान् श्रीशुकदेवजीसे यह प्रश्न किया, तब उन्होंने विष्णुभगवान्‌का वह चरित्र, जो उन्होंने मत्स्यावतार धारण करके किया था, वर्णन किया ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यों तो भगवान् सबके एकमात्र प्रभु हैं; फिर भी वे गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, धर्म और अर्थकी रक्षाके लिये शरीर धारण किया करते हैं। वे सर्वशक्तिमान् प्रभु वायुकी तरह नीचे-ऊँचे, छोटे-बड़े सभी प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे लीला करते रहते हैं। परन्तु उन-उन प्राणियोंके बुद्धिगत गुणोंसे वे छोटे-बड़े या ऊँचे-नीचे नहीं हो जाते। क्योंकि वे वास्तवमें समस्त प्राकृत गुणोंसे रहित—निर्गुण हैं। परीक्षित्! पिछले कल्पके अन्तमें ब्रह्माजीके सो जानेके कारण ब्राह्म नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था। उस समय भूर्लोक आदि सारे लोक समुद्रमें डूब गये थे। ब्रह्माजीके सोनेका समय आ गया था; इसलिये उन्हें नींद आ रही थी, वे सोना चाहते थे। उसी समय वेद उनके मुखसे निकल पड़े और उनके पास ही रहनेवाले हयग्रीव नामक बली दैत्यने उन्हें चुरा लिया। सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिने दानवराज हयग्रीवकी यह चेष्टा जान ली। इसलिये उन्होंने मत्स्यावतार ग्रहण किया ॥ ५—९ ॥

परीक्षित्! उस समय सत्यव्रत नामके एक बड़े उदार एवं भगवत्परायण राजर्षि थे। वे केवल जल पीकर तपस्या कर रहे थे। वही सत्यव्रत वर्तमान महाकल्पमें विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र श्राद्धदेवके नामसे विख्यात हुए और उन्हें भगवान्‌ने वैवस्वत मनु बना दिया। एक दिन वे राजर्षि कृतमाला नदीमें जलसे तर्पण कर रहे थे। उसी



समय उनकी अञ्जलिके जलमें एक छोटी-सी मछली आ गयी। परीक्षित्! द्रविड़ देशके राजा सत्यव्रतने अपनी अञ्जलिमें आयी हुई मछलीको जलके साथ ही फिरसे नदीमें डाल दिया। उस मछलीने बड़ी करुणाके साथ परम दयालु राजा सत्यव्रतसे कहा—'राजन्! आप तो बड़े दीनदयालु हैं। आप जानते ही हैं कि जलमें रहनेवाले जन्तु अपनी जातिवालोंको भी खा डालते हैं। मैं उनके भयसे अत्यन्त व्याकुल हो रही हूँ। आप मुझे फिर इसी जलमें क्यों छोड़ रहे हैं?' राजा सत्यव्रतको इस बातका पता नहीं था कि स्वयं भगवान् मुझपर प्रसन्न होकर कृपा करनेके लिये

मनुका सबसे छोटा पुत्र था कवि । विषयोंसे वह अत्यन्त उदासीन था । वह राज्य छोड़कर अपने बन्धुजनोंके साथ वनमें चला गया और अपने हृदयमें स्वयम्प्रकाश परमात्माको विराजमान कर किशोर अवस्थामें ही परमपदको प्राप्त हो गया । वह ब्रह्मलीन हो गया ॥ १५ ॥

मनुपुत्र करूषसे कारूष नामक क्षत्रिय उत्पन्न हुए । वे बड़े ही ब्राह्मणभक्त, धर्मप्रेमी एवं उत्तरीय प्रान्तोंके रक्षक थे । धृष्टसे धार्ष्ट नामक क्षत्रिय हुए । अन्तमें वे इस शरीरसे ही ब्राह्मण बन गये । नृगका पुत्र हुआ सुमति, उसका पुत्र भूतज्योति और भूतज्योतिका पुत्र वसु था । वसुका पुत्र प्रतीक और प्रतीकका पुत्र ओघवान् । ओघवान्के पुत्रका नाम भी ओघवान् ही था । उनके एक ओघवती नामकी कन्या भी थी, जिसका विवाह सुदर्शनसे हुआ । मनुपुत्र नरिष्यन्तसे चित्रसेन, उससे ऋक्ष, ऋक्षसे मीढ्वान् और मीढ्वान्से कूर्चकी उत्पत्ति हुई । कूर्चसे इन्द्रसेन, उससे वीतिहोत्र, उससे सत्यश्रवा और सत्यश्रवासे उरुश्रवाका जन्म हुआ । उरुश्रवाके देवदत्त और देवदत्तके अग्निवेश्य नामक पुत्र हुए, जो स्वयं अग्निदेव ही थे । आगे चलकर वे ही कानीन एवं महर्षि जातूकर्ण्यके नामसे विख्यात हुए । परीक्षित् ! ब्राह्मणोंका 'आग्निवेश्यायन' गोत्र उन्हींसे चला है । इस प्रकार नरिष्यन्तके वंशका मैंने वर्णन किया, अब दिष्टका वंश सुनो ॥ १६–२२ ॥

दिष्टके पुत्रका नाम था नाभाग । यह उस नाभागसे अलग है, जिसका मैं आगे वर्णन करूँगा । वह अपने कर्मके कारण वैश्य हो गया । उसका पुत्र हुआ भलन्दन । भलन्दनका वत्सप्रीति, वत्सप्रीतिका प्रांशु और प्रांशुका पुत्र हुआ प्रमति । प्रमतिके खनित्र, खनित्रके चाक्षुष और उनके विविंशति हुए । विविंशतिके पुत्र रम्भ और रम्भके पुत्र खनिनेत्र—दोनों ही परम धार्मिक हुए । उनके पुत्र करन्धम और करन्धमके अवीक्षित् । महाराज परीक्षित् ! अवीक्षित्के पुत्र मरुत्त चक्रवर्ती राजा हुए । उनसे अङ्गिराके पुत्र महायोगी संवर्त ऋषिने यज्ञ कराया था । मरुत्तका यज्ञ जैसा हुआ, वैसा और किसीका नहीं हुआ । उस यज्ञके समस्त छोटे-बड़े पात्र अत्यन्त सुन्दर एवं सोनेके बने हुए थे । उस यज्ञमें इन्द्र सोमपान करके मतवाले हो गये थे और दक्षिणाओंसे ब्राह्मण तृप्त हो गये थे । उसमें परसनेवाले थे मरुद्गण और विश्वेदेव सभासद् थे ॥ २३–२८ ॥

मरुत्तके पुत्रका नाम था दम । दमसे राज्यवर्धन, उससे सुधृति और सुधृतिसे नर नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई । नरसे केवल, केवलसे बन्धुमान्, बन्धुमान्से वेगवान्, वेगवान्से बन्धु और बन्धुसे राजा तृणबिन्दुका जन्म हुआ । तृणबिन्दु श्रेष्ठ गुणोंके खजाने थे । अप्सराओंमें श्रेष्ठ अलम्बुषा देवीने उनको वरण किया, जिससे उनके कई पुत्र और इडविडा नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई । मुनिवर विश्रवाने अपने योगेश्वर पिता पुलस्त्यजीसे उत्तम विद्या प्राप्त करके इडविडाके गर्भसे लोकपाल कुबेरको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया । महाराज तृणबिन्दुके अपनी धर्मपत्नीसे तीन पुत्र हुए—विशाल, शून्यबन्धु और धूम्रकेतु । उनमेंसे वंशकी वृद्धि करनेवाले राजा विशालने वैशाली नामकी नगरी बसायी । विशालसे हेमचन्द्र, हेमचन्द्रसे धूम्राक्ष, धूम्राक्षसे संयम और संयमसे दो पुत्र हुए—कृशाश्व और देवज । कृशाश्वके पुत्रका नाम था सोमदत्त । उसने अश्वमेध यज्ञोंके द्वारा यज्ञपति भगवान्की आराधना की और योगेश्वर संतोंका आश्रय लेकर उत्तम गति प्राप्त की । सोमदत्तका पुत्र हुआ सुमति और सुमतिसे जनमेजय । ये सब तृणबिन्दुकी कीर्तिको बढानेवाले विशालवंशी राजा हुए ॥ २९–३६ ॥

तीसरा अध्याय

महर्षि च्यवन और सुकन्याका चरित्र, राजा शर्यातिका वंश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! मनुपुत्र राजा शर्याति वेदोंका निष्ठावान् विद्वान् था । उसने अङ्गिरा गोत्रके ऋषियोंके यज्ञमें दूसरे दिनका कर्म बतलाया था । उसकी एक बड़ी सुन्दरी कन्या थी । उसका नाम था सुकन्या । एक दिन राजा शर्याति अपनी कन्याके साथ वनमें घूमते-घूमते च्यवन ऋषिके आश्रमपर जा पहुँचे । सुकन्या अपनी सखियोंके साथ वनमें घूम-घूमकर वृक्षोंका सौन्दर्य देख रही थी । उसने एक स्थानपर देखा कि बाँबी (दीमकोंकी एकत्रित की हुई मिट्टी)के

महर्षि वसिष्ठने वेदोंमें कहा है कि 'ऐसा पुरुष न कभी हुआ, न है और न होगा, जो भगवान्‌की महिमाका पार पा सके।' देवताओंके आराध्यदेव अद्भुतलीलाधारी वामनभगवान्‌के अवतार-चरित्रका जो श्रवण करता है, उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। देवयज्ञ, पितृयज्ञ और मनुष्ययज्ञ—किसी भी कर्मका अनुष्ठान करते समय जहाँ-जहाँ भगवान्‌की इस लीलाका कीर्तन होता है, वह कर्म सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जाता है। यह बड़े-बड़े महात्माओंका अनुभव है ॥२८—३१॥

चौबीसवाँ अध्याय

भगवान्‌के मत्स्यावतारकी कथा

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवान्‌के कर्म बड़े अद्भुत हैं। उन्होंने एक बार अपनी योगमायासे मत्स्यावतार धारण करके बड़ी सुन्दर लीला की थी, मैं उनके उसी आदि अवतारकी कथा सुनना चाहता हूँ। भगवन्! उन्होंने यह मत्स्यका रूप क्यों धारण किया? मत्स्ययोनि एक तो यों ही लोकनिन्दित है, दूसरे तमोगुणी और असह्य परतन्त्रतासे युक्त भी है। सर्वशक्तिमान् होनेपर भी भगवान्‌ने कर्मबन्धनमें बँधे हुए जीवकी तरह ऐसी लीला क्यों की? भगवन्! महात्माओंके कीर्तनीय भगवान्‌का चरित्र समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाला है। आप कृपा करके उनकी वह सब लीला हमारे सामने पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये ॥ १—३ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! जब राजा परीक्षित्‌ने भगवान् श्रीशुकदेवजीसे यह प्रश्न किया, तब उन्होंने विष्णुभगवान्‌का वह चरित्र, जो उन्होंने मत्स्यावतार धारण करके किया था, वर्णन किया ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यों तो भगवान् सबके एकमात्र प्रभु हैं; फिर भी वे गौ, ब्राह्मण, देवता, साधु, वेद, धर्म और अर्थकी रक्षाके लिये शरीर धारण किया करते हैं। वे सर्वशक्तिमान् प्रभु वायुकी तरह नीचे-ऊँचे, छोटे-बड़े सभी प्राणियोंमें अन्तर्यामीरूपसे लीला करते रहते हैं। परन्तु उन-उन प्राणियोंके बुद्धिगत गुणोंसे वे छोटे-बड़े या ऊँचे-नीचे नहीं हो जाते। क्योंकि वे वास्तवमें समस्त प्राकृत गुणोंसे रहित—निर्गुण हैं। परीक्षित्! पिछले कल्पके अन्तमें ब्रह्माजीके सो जानेके कारण ब्राह्म नामक नैमित्तिक प्रलय हुआ था। उस समय भूर्लोक आदि सारे लोक समुद्रमें डूब गये थे। ब्रह्माजीके सोनेका समय आ गया था; इसलिये उन्हें नींद आ रही थी, वे सोना चाहते थे। उसी समय वेद उनके मुखसे निकल पड़े और उनके पास ही रहनेवाले हयग्रीव नामक बली दैत्यने उन्हें चुरा लिया। सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिने दानवराज हयग्रीवकी यह चेष्टा जान ली। इसलिये उन्होंने मत्स्यावतार ग्रहण किया ॥ ५—९ ॥

परीक्षित्! उस समय सत्यव्रत नामके एक बड़े उदार एवं भगवत्परायण राजर्षि थे। वे केवल जल पीकर तपस्या कर रहे थे। वही सत्यव्रत वर्तमान महाकल्पमें विवस्वान् (सूर्य) के पुत्र श्राद्धदेवके नामसे विख्यात हुए और उन्हें भगवान्‌ने वैवस्वत मनु बना दिया। एक दिन वे राजर्षि कृतमाला नदीमें जलसे तर्पण कर रहे थे। उसी



समय उनकी अञ्जलिके जलमें एक छोटी-सी मछली आ गयी। परीक्षित्! द्रविड़ देशके राजा सत्यव्रतने अपनी अञ्जलिमें आयी हुई मछलीको जलके साथ ही फिरसे नदीमें डाल दिया। उस मछलीने बड़ी करुणाके साथ परम दयालु राजा सत्यव्रतसे कहा—'राजन्! आप तो बड़े दीनदयालु हैं। आप जानते ही हैं कि जलमें रहनेवाले जन्तु अपनी जातिवालोंको भी खा डालते हैं। मैं उनके भयसे अत्यन्त व्याकुल हो रही हूँ। आप मुझे फिर इसी जलमें क्यों छोड़ रहे हैं?' राजा सत्यव्रतको इस बातका पता नहीं था कि स्वयं भगवान् मुझपर प्रसन्न होकर कृपा करनेके लिये

हुआ है। सुकन्याने उनके चरणोंकी वन्दना की। शर्यातिने उसे आशीर्वाद नहीं दिया और कुछ अप्रसन्न-से होकर बोले—'दुष्टे! यह तूने क्या किया? क्या तूने सबके वन्दनीय च्यवन मुनिको धोखा दे दिया? अवश्य ही तूने उनको बूढ़ा और अपने कामका न समझकर छोड़ दिया और अब तू इस राह चलते जार पुरुषकी सेवा कर रही है। तेरा जन्म तो बड़े ऊँचे कुलमें हुआ था। यह उलटी बुद्धि तुझे कैसे प्राप्त हुई? तेरा यह व्यवहार तो कुलमें कलङ्क लगानेवाला है। अरे राम-राम! तू निर्लज्ज होकर जार पुरुषकी सेवा कर रही है और इस प्रकार अपने पिता और पति दोनोंके वंशको घोर नरकमें ले जा रही है।' राजा शर्यातिके इस प्रकार कहनेपर पवित्र मुसकानवाली सुकन्याने तनिक मुसकराकर कहा—'पिताजी! ये आपके जामाता स्वयं भृगुनन्दन महर्षि च्यवन ही हैं।' इसके बाद उसने अपने पितासे महर्षि च्यवनके यौवन और सौन्दर्यकी प्राप्तिका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वह सब सुनकर राजा शर्याति अत्यन्त विस्मित हुए। उन्होंने बड़े प्रेमसे अपनी पुत्रीको गलेसे लगा लिया ॥ १८–२३ ॥

महर्षि च्यवनने वीर शर्यातिसे सोमयज्ञका अनुष्ठान कराया और सोमपानके अधिकारी न होनेपर भी अपने प्रभावसे अश्विनीकुमारोंको सोमपान कराया। इन्द्र बहुत जल्दी क्रोध कर बैठते हैं। इसलिये उनसे यह सहा न गया। उन्होंने



चिढ़कर शर्यातिको मारनेके लिये वज्र उठाया। महर्षि च्यवनने वज्रके साथ उनके हाथको वहीं स्तम्भित कर दिया। तब सब देवताओंने अश्विनीकुमारोंको सोमका भाग देना स्वीकार कर लिया। उन लोगोंने पहले यह कहकर कि ये तो वैद्य हैं, अश्विनीकुमारोंका सोमपानसे बहिष्कार कर दिया था ॥ २४–२६ ॥

परीक्षित्! शर्यातिके तीन पुत्र थे—उत्तानबर्हि, आनर्त और भूरिषेण। आनर्तसे रेवत हुए। महाराज! रेवतने समुद्रके भीतर कुशस्थली नामकी एक नगरी बसायी थी। उसीमें रहकर वे आनर्त आदि देशोंका राज्य करते थे। उनके सौ श्रेष्ठ पुत्र थे, जिनमें सबसे बड़े थे ककुद्मी। ककुद्मी अपनी कन्या रेवतीको लेकर उसके लिये वर पूछनेके उद्देश्यसे ब्रह्माजीके पास गये। उस समय ब्रह्मलोकका रास्ता ऐसे लोगोंके लिये बेरोक टोक था। ब्रह्मलोकमें गाने-बजानेकी धूम मची हुई थी। बातचीतके लिये अवसर न मिलनेके कारण वे कुछ क्षण वहीं ठहर गये। उत्सवके अन्तमें ब्रह्माजीको नमस्कार करके उन्होंने अपना अभिप्राय कह सुनाया। उनकी बात सुनकर भगवान् ब्रह्माजीने हँसकर उनसे कहा—'महाराज! तुमने अपने मनमें जिन लोगोंके विषयमें सोच रक्खा था, वे सब तो कालके गालमें चले गये। अब उनके पुत्र, पौत्र अथवा नातियोंकी तो बात ही क्या है, गोत्रोंके नाम भी नहीं सुनायी पड़ते। इस बीचमें सत्ताईस चतुर्युगी-का समय बीत चुका है। इसलिये तुम जाओ। इस समय भगवान् नारायणके अंशावतार महाबली बलदेवजी पृथ्वीपर विद्यमान हैं। राजन्! उन्हीं नररत्नको यह कन्यारत्न तुम समर्पित कर दो। जिनके नाम, लीला आदिका श्रवण-कीर्तन बड़ा ही पवित्र है—वे ही प्राणियोंके जीवनसर्वस्व भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अपने अंशसे अवतीर्ण हुए हैं।' राजा ककुद्मीने ब्रह्माजीका यह आदेश प्राप्त करके उनके चरणोंकी वन्दना की और अपने नगरमें चले आये। उनके वंशजोंने यक्षोंके भयसे वह नगरी छोड़ दी थी और जहाँ तहाँ यों ही निवास कर रहे थे। राजा ककुद्मीने अपनी सर्वाङ्गसुन्दरी पुत्री परम बलशाली बलरामजीको सौंप दी और स्वयं तपस्या करनेके लिये भगवान् नर नारायणके आश्रम बदरीवनकी ओर चल दिये ॥ २७–३६ ॥

राजर्षि अम्बरीषका चरित्र सुनना चाहता हूँ। वे तो बड़े प्रभावशाली थे। ब्राह्मणने क्रोधित होकर उन्हें ऐसा दण्ड दिया, जो किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता, परन्तु वह भी उनका कुछ न बिगाड़ सका। यह कैसी बात है? ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! अम्बरीष बड़े भाग्यवान् थे। पृथ्वीके सातों द्वीप, अचल सम्पत्ति और अतुलनीय ऐश्वर्य उनको प्राप्त था। यद्यपि ये सब साधारण मनुष्योंके लिये अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएँ हैं, फिर भी वे इन्हें स्वप्नतुल्य समझते थे। क्योंकि वे जानते थे कि जिस धन वैभवके लोभमें पड़कर मनुष्य घोर नरकमें जाता है, वह केवल चार दिनकी चाँदनी है। उसका दीपक तो बुझा-बुझाया है। भगवान् श्रीकृष्णमें और उनके प्रेमी साधुओंमें उनका परम प्रेम था। उस प्रेमके प्राप्त हो जानेपर तो यह सारा विश्व और इसकी समस्त सम्पत्तियाँ मिट्टीके ढेलेके समान जान पड़ती हैं। वे मनसे सर्वदा भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंका स्मरण करते रहते। उनकी वाणी भगवान् श्रीकृष्णके गुण और लीलाओंके वर्णनमें ही निरन्तर रस लेती रहती। वे अपने हाथोंसे भगवान्के मन्दिर झाड़ते बुहारते, धोते और सजाते रहते। जब देखिये, उनके कान भगवान्की मधुर मङ्गलमयी लीला-कथाके श्रवणमें ही लगे रहते। उनके नेत्र भगवान्की स्मृति दिलानेवाले मन्दिर और मूर्तियोंमें ही रमे रहते। वे भगवान्के भक्त और उनके सेवकोंके शरीरके स्पर्शमें ही अपने शरीरकी सफलता समझते। भगवान्के चरणकमलोंपर समर्पित श्रीमती तुलसीकी दिव्य गन्ध सूँघनेमें ही उनकी नासिका मत्त रहती। वे रसनासे भगवान्के निवेदित नैवेद्यका ही स्वाद लेते। अम्बरीषके पैर भगवान्के क्षेत्र आदिकी पैदल यात्रा करनेमें ही लगे रहते और वे सिरसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी वन्दना किया करते। राजा अम्बरीषने माला, चन्दन आदि भोग-सामग्रीको भगवान्की सेवामें समर्पित कर दिया था। भोगनेकी इच्छासे नहीं, बल्कि इसलिये कि इससे वह भगवत्प्रेम प्राप्त हो, जो पवित्रकीर्ति भगवान्के निज जनोंमें ही निवास करता है। इस प्रकार उन्होंने अपने सारे कर्म यज्ञपुरुष, इन्द्रियातीत भगवान्के प्रति उन्हें सर्वात्मा एवं सर्वस्वरूप समझकर समर्पित कर दिये थे। और भगवद्भक्त ब्राह्मणोंकी आज्ञाके अनुसार वे इस पृथ्वीका शासन करते थे। उन्होंने 'धन्व' नामके निर्जल देशमें सरस्वती नदीके प्रवाहके सामने वसिष्ठ, असित, गौतम आदि भिन्न-भिन्न आचार्योंके द्वारा महान् ऐश्वर्यके कारण सर्वाङ्गपरिपूर्ण तथा बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले अनेकों अश्वमेध यज्ञ करके यज्ञाधिपति भगवान्की आराधना की थी। उनके यज्ञोंमें देवताओंके साथ जब सदस्य और ऋत्विज बैठ जाते थे, तब उनकी पलकें नहीं पड़ती थीं और वे अपने सुन्दर वस्त्र और वैसे ही रूपके कारण देवताओंके समान दिखायी पड़ते थे। उनकी प्रजा महात्माओंके द्वारा गाये हुए भगवान्के उत्तम चरित्रोंका किसी समय बड़े प्रेमसे श्रवण करती और किसी समय उनका गायन करती। इस प्रकार उनके राज्यके मनुष्य देवताओंके अत्यन्त प्यारे स्वर्गकी भी इच्छा नहीं करते। वे अपने हृदयमें अनन्त प्रेमका दान करनेवाले श्रीहरिका नित्य निरन्तर दर्शन करते रहते थे। इसलिये उन लोगोंको वह भोग-सामग्री भी हर्षित नहीं कर पाती थी, जो बड़े-बड़े सिद्धोंको भी दुर्लभ है। वे वस्तुएँ उनके आत्मानन्दके सामने अत्यन्त तुच्छ और तिरस्कृत थीं। राजा अम्बरीष इस प्रकार तपस्यासे युक्त भक्तियोग और प्रजापालनरूप स्वधर्मके द्वारा भगवान्को प्रसन्न करने लगे और धीरे-धीरे उन्होंने सब प्रकारकी आसक्तियोंका परित्याग कर दिया। घर, स्त्री, पुत्र, भाई-बन्धु, बड़े-बड़े हाथी, रथ, घोड़े एवं पैदलोंकी चतुरङ्गिणी सेना, अक्षय रत्न, आभूषण और आयुध आदि समस्त वस्तुओं तथा कभी समाप्त न होनेवाले कोशोंके सम्बन्धमें उनका ऐसा दृढ़ निश्चय था कि ये सब-के-सब असत्य हैं। उनकी अनन्य प्रेममयी भक्तिसे प्रसन्न होकर भगवान्ने उनकी रक्षाके लिये सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर दिया था, जो विरोधियोंको भयभीत करनेवाला एवं भगवद्भक्तोंकी रक्षा करनेवाला है ॥ १५—२८ ॥

राजा अम्बरीषकी पत्नी भी उन्हींके समान धर्मशील, संसारसे विरक्त एवं भक्तिपरायण थीं। एक बार उन्होंने अपनी पत्नीके साथ भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करनेके लिये एक वर्षतक द्वादशीप्रधान एकादशी व्रत करनेका नियम ग्रहण किया। व्रतकी समाप्ति होनेपर कार्तिक महीनेमें उन्होंने तीन रातका उपवास किया और एक दिन यमुनाजीमें स्नान करके मधुवनमें भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की। उन्होंने महाभिषेककी विधिसे सब प्रकारकी सामग्री और सम्पत्तिद्वारा भगवान्का अभिषेक किया और हृदयसे तन्मय होकर वस्त्र, आभूषण, चन्दन, माला एवं अर्घ्य आदिके द्वारा उनकी पूजा की। यद्यपि महाभाग्यवान् ब्राह्मणोंको इस पूजाकी कोई आवश्यकता नहीं थी, स्वयं ही उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं—वे सिद्ध थे—तथापि राजा अम्बरीषने

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत

नवम स्कन्ध

पहला अध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

वैवस्वत मनुके पुत्र राजा सुद्युम्नकी कथा

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! आपने सब मन्वन्तरों और उनमें अनन्त शक्तिशाली भगवान्के द्वारा किये हुए ऐश्वर्यपूर्ण चरित्रोंका वर्णन किया, और मैंने उनका श्रवण भी किया। आपने कहा कि पिछले कल्पके अन्तमें द्रविड़ देशके स्वामी राजर्षि सत्यव्रतने भगवान्की सेवासे ज्ञान प्राप्त किया, और वही इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुए। आपने उनके इक्ष्वाकु आदि नरपति पुत्रोंका भी वर्णन किया। अब आप कृपा करके उनके वंश और वंशमें होनेवालोंका अलग-अलग चरित्र वर्णन कीजिये। महाभाग! हमारे हृदयमें सर्वदा ही कथा सुननेकी उत्सुकता बनी रहती है। इसलिये वैवस्वत मनुके वंशमें जो भी पवित्र कीर्तिवाले पुरुष हो चुके हों, इस समय विद्यमान हों और आगे होनेवाले हों—उन सबके चरित्रका वर्णन कीजिये॥ १-५॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! ब्रह्मवादी ऋषियोंकी सभामें राजा परीक्षित्ने जब यह प्रश्न किया, तब धर्मके परम मर्मज्ञ भगवान् श्रीशुकदेवजीने कहा॥ ६॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! तुम मनुवंशका वर्णन संक्षेपसे सुनो। विस्तारसे तो सैकड़ों वर्षमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जो परम पुरुष परमात्मा छोटे-बड़े सभी प्राणियोंके आत्मा हैं, प्रलयके समय केवल वही थे; यह विश्व तथा और कुछ भी नहीं था। महाराज! उनकी नाभिसे एक सुवर्णमय कमलकोष प्रकट हुआ। उसीमें चतुर्मुख ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ। ब्रह्माजीके मनसे मरीचि, और मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। कश्यपकी धर्मपत्नी थीं दक्ष प्रजापतिकी पुत्री अदिति। उन्हींसे विवस्वान (सूर्य) का जन्म हुआ। विवस्वान्की संज्ञा नामक पत्नीसे श्राद्धदेव मनुका जन्म हुआ। परीक्षित्! परम मनस्वी श्राद्धदेवने अपनी पत्नी श्रद्धाके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम थे—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि॥ ७-१२॥

वैवस्वत मनु पहले सन्तानहीन थे। उस समय सर्वसमर्थ भगवान् वसिष्ठने उन्हें सन्तान-प्राप्ति करानेके लिये मित्रावरुणका यज्ञ कराया था। यज्ञके आरम्भमें केवल दूध पीकर रहनेवाली वैवस्वत मनुकी धर्मपत्नी श्रद्धाने अपने होताके पास जाकर प्रणामपूर्वक याचना की कि मुझे कन्या ही प्राप्त हो। तब अध्वर्युकी प्रेरणासे होता बने हुए ब्राह्मणने श्रद्धाके कथनका स्मरण करके एकाग्र चित्तसे वषट्कारका उच्चारण करते हुए यज्ञकुण्डमें आहुति दी। जब होताने इस प्रकार विपरीत कर्म किया, तो यज्ञके फलस्वरूप पुत्रके स्थानपर इला नामकी कन्या हुई। उसे देखकर श्राद्धदेव मनुका मन कुछ विशेष प्रसन्न नहीं हुआ। उन्होंने अपने गुरु वसिष्ठजीसे कहा—'भगवन्! आपलोग तो ब्रह्मवादी हैं, आपका कर्म इस प्रकार विपरीत फल देनेवाला कैसे हो गया? अरे, यह तो बड़े दुःखकी बात है। वैदिक कर्मका ऐसा विपरीत फल तो कभी नहीं होना चाहिये। आप लोगोंका मन्त्रज्ञान तो पूर्ण है ही; इसके अतिरिक्त आपलोग जितेन्द्रिय भी हैं, तथा तपस्याके कारण निष्पाप हो चुके हैं। देवताओंमें असत्यकी प्राप्तिके समान आपके सङ्कल्पका यह उलटा फल कैसे हुआ?' परीक्षित्! हमारे पूर्वज भगवान् वसिष्ठने उनकी यह बात सुनकर जान लिया कि होताने विपरीत सङ्कल्प किया है। इसलिये उन्होंने वैवस्वत मनुसे कहा—'राजन्! तुम्हारे

दुर्वासाका क्रोध



कृत्या हाथमें तलवार लेकर अम्बरीषपर टूट पड़ी ।

दुर्वासाका दुःख



चक्रकी ज्वालासे जलते हुए दुर्वासा राजा अम्बरीषकी शरणमें आये ।

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत

नवम स्कन्ध

पहला अध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

वैवस्वत मनुके पुत्र राजा सुद्युम्नकी कथा

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! आपने सब मन्वन्तरों और उनमें अनन्त शक्तिशाली भगवान्के द्वारा किये हुए ऐश्वर्यपूर्ण चरित्रोंका वर्णन किया, और मैंने उनका श्रवण भी किया। आपने कहा कि पिछले कल्पके अन्तमें द्रविड़ देशके स्वामी राजर्षि सत्यव्रतने भगवान्की सेवासे ज्ञान प्राप्त किया, और वही इस कल्पमें वैवस्वत मनु हुए। आपने उनके इक्ष्वाकु आदि नरपति पुत्रोंका भी वर्णन किया। अब आप कृपा करके उनके वंश और वंशमें होनेवालोंका अलग-अलग चरित्र वर्णन कीजिये। महाभाग! हमारे हृदयमें सर्वदा ही कथा सुननेकी उत्सुकता बनी रहती है। इसलिये वैवस्वत मनुके वंशमें जो भी पवित्र कीर्तिवाले पुरुष हो चुके हों, इस समय विद्यमान हों और आगे होनेवाले हों—उन सबके चरित्रका वर्णन कीजिये॥ १–५॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! ब्रह्मवादी ऋषियोंकी सभामें राजा परीक्षित्ने जब यह प्रश्न किया, तब धर्मके परम मर्मज्ञ भगवान् श्रीशुकदेवजीने कहा॥ ६॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! तुम मनुवंशका वर्णन संक्षेपसे सुनो। विस्तारसे तो सैकड़ों वर्षमें भी उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जो परम पुरुष परमात्मा छोटे-बड़े सभी प्राणियोंके आत्मा हैं, प्रलयके समय केवल वही थे; यह विश्व तथा और कुछ भी नहीं था। महाराज! उनकी नाभिसे एक सुवर्णमय कमलकोष प्रकट हुआ। उसीमें चतुर्मुख ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ। ब्रह्माजीके मनसे मरीचि, और मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। कश्यपकी धर्मपत्नी थीं दक्ष प्रजापतिकी पुत्री अदिति। उन्हींसे विवस्वान् (सूर्य) का जन्म हुआ। विवस्वान्की संज्ञा नामक पत्नीसे श्राद्धदेव मनुका जन्म हुआ। परीक्षित्! परम मनस्वी श्राद्धदेवने अपनी पत्नी श्रद्धाके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम थे—इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूष, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि॥ ७–१२॥

वैवस्वत मनु पहले सन्तानहीन थे। उस समय सर्वसमर्थ भगवान् वसिष्ठने उन्हें सन्तान-प्राप्ति करानेके लिये मित्रा-वरुणका यज्ञ कराया था। यज्ञके आरम्भमें केवल दूध पीकर रहनेवाली वैवस्वत मनुकी धर्मपत्नी श्रद्धाने अपने होताके पास जाकर प्रणामपूर्वक याचना की कि मुझे कन्या ही प्राप्त हो। तब अध्वर्युकी प्रेरणासे होता बने हुए ब्राह्मणने श्रद्धाके कथनका स्मरण करके एकाग्र चित्तसे वषट्कारका उच्चारण करते हुए यज्ञकुण्डमें आहुति दी। जब होताने इस प्रकार विपरीत कर्म किया, तो यज्ञके फलस्वरूप पुत्रके स्थानपर इला नामकी कन्या हुई। उसे देखकर श्राद्धदेव मनुका मन कुछ विशेष प्रसन्न नहीं हुआ। उन्होंने अपने गुरु वसिष्ठजीसे कहा—'भगवन्! आपलोग तो ब्रह्मवादी हैं, आपका कर्म इस प्रकार विपरीत फल देनेवाला कैसे हो गया? अरे, यह तो बड़े दुःखकी बात है। वैदिक कर्मका ऐसा विपरीत फल तो कभी नहीं होना चाहिये। आप लोगोंका मन्त्रज्ञान तो पूर्ण है ही; इसके अतिरिक्त आपलोग जितेन्द्रिय भी हैं, तथा तपस्याके कारण निष्पाप हो चुके हैं। देवताओंमें असत्यकी प्राप्तिके समान आपके सङ्कल्पका यह उलटा फल कैसे हुआ?' परीक्षित्! हमारे पूर्वज भगवान् वसिष्ठने उनकी यह बात सुनकर जान लिया कि होताने विपरीत सङ्कल्प किया है। इसलिये उन्होंने वैवस्वत मनुसे कहा—'राजन्! तुम्हारे

लग गया है, तब सुमेरु पर्वतकी गुफामें प्रवेश करनेके लिये वे उसी ओर दौड़ पड़े। दुर्वासाजी दिशा, आकाश, पृथ्वी, अतल वितल आदि नीचेके लोक, समुद्र, लोकपाल और उनके द्वारा सुरक्षित लोक एवं स्वर्गतकमें गये, परन्तु जहाँ-जहाँ वे जाते, वहीं-वहीं असह्य तेजवाला सुदर्शन चक्र उनके पीछे लगा रहता। जब उन्हें कहीं भी कोई रक्षक न मिला, तब तो वे और भी डर गये। अपने लिये त्राण ढूँढ़ते हुए वे देवशिरोमणि ब्रह्माजीके पास गये और बोले—'ब्रह्माजी! आप स्वयम्भू हैं। भगवान्के इस तेजोमय चक्रसे मेरी रक्षा कीजिये'॥ ३६–५२॥

ब्रह्माजीने कहा—'जब मेरी दो परार्धकी आयु समाप्त होगी और भगवान् अपनी यह सृष्टि-लीला समेटने लगेंगे, तब वे कालरूप धारण कर लेंगे और इस जगत्को जलाना चाहेंगे। उस समय उनके भ्रूभङ्गमात्रसे यह सारा संसार और मेरा यह लोक भी लापता हो जायगा। मैं, शङ्करजी, दक्ष भृगु आदि प्रजापति, भूतेश्वर, देवेश्वर आदि सब जिनके बनाये नियमोंमें बँधे हैं तथा जिनकी आज्ञा शिरोधार्य करके हमलोग संसारका हित करते हैं, उनके भक्तके द्रोहीको बचानेमें हम समर्थ नहीं हैं।' जब ब्रह्माजीने इस प्रकार दुर्वासाको निराश कर दिया, तब भगवान्के चक्रसे सन्तप्त होकर वे कैलासवासी भगवान् शङ्करकी शरणमें गये॥५३–५५॥

श्रीमहादेवजीने कहा—'दुर्वासाजी! जिन अनन्त परमेश्वरमें ब्रह्मा-जैसे जीव और उनके उपाधिभूत कोश इस ब्रह्माण्डके समान ही अनेकों ब्रह्माण्ड समयपर पैदा होते हैं और समय आनेपर फिर उनका पता भी नहीं चलता, जिनमें हमारे-जैसे हजारों चक्कर काटते रहते हैं—उन प्रभुके सम्बन्धमें हम कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते। मैं, सनत्कुमार, नारद, भगवान् ब्रह्मा, कपिलदेव, अपान्तरतम, देवल, धर्म, आसुरि तथा मरीचि आदि दूसरे सर्वज्ञ सिद्धेश्वर—ये हम सभी भगवान्की मायाको नहीं जान सकते। क्योंकि हम उसीके घेरेमें हैं। यह चक्र उन विश्वेश्वरका शस्त्र है। यह हम लोगोंके लिये असह्य है। तुम उन्हींकी शरणमें जाओ। वे भगवान् ही तुम्हारा मङ्गल करेंगे।' वहाँसे भी निराश होकर दुर्वासा भगवान्के परमधाम वैकुण्ठमें गये। लक्ष्मीपति भगवान् लक्ष्मीके साथ वहीं निवास करते हैं। दुर्वासाजी भगवान्के चक्रकी आगसे जल रहे थे। वे काँपते हुए भगवान्के चरणोंमें गिर पड़े। उन्होंने कहा—'हे अच्युत! हे अनन्त! आप सन्तोंके एकमात्र वाञ्छनीय हैं। प्रभो! विश्वके जीवनदाता! मैं अपराधी हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये। आपका परम प्रभाव न जाननेके कारण ही मैंने आपके प्यारे भक्तका अपराध किया है। प्रभो! आप



मुझे उससे बचाइये। आपके तो नामका ही उच्चारण करनेसे नारकी जीव भी मुक्त हो जाता है'॥५६–६२॥

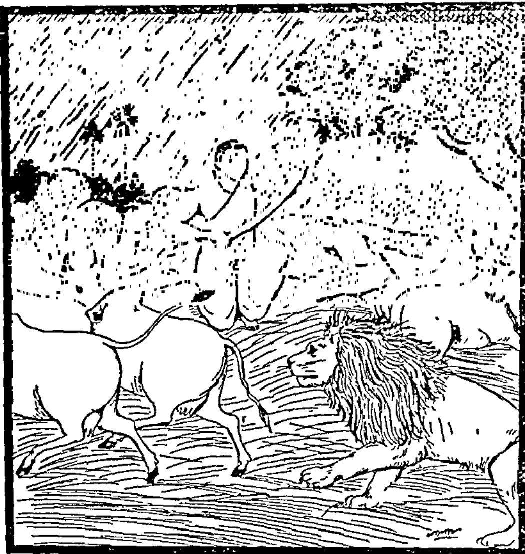
श्रीभगवान्ने कहा—दुर्वासाजी! मैं सर्वथा भक्तोंके अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतन्त्रता नहीं है। मेरे सीधे सादे सरल भक्तोंने मेरे हृदयको अपने हाथमें कर रक्खा है। भक्तजन मुझसे प्यार करते हैं और मैं उनसे। ब्रह्मन्! अपने भक्तोंका एकमात्र आश्रय मैं ही हूँ। इसलिये अपने साधुस्वभाव भक्तोंको छोड़कर मैं न तो अपने-आपको चाहता हूँ और न तो अपनी अर्द्धाङ्गिनी विनाशरहित लक्ष्मीको। जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन, इहलोक और परलोक—सबको छोड़कर केवल मेरी शरणमें आ गये हैं, उन्हें छोड़नेका सङ्कल्प भी मैं कैसे कर सकता हूँ! जैसे सती स्त्री अपने पातिव्रत्यसे सदाचारी पतिको वशमें कर लेती है, वैसे ही मेरे साथ अपने हृदयको प्रेम बन्धनसे बाँध रखनेवाले समदर्शी साधु भक्तिके द्वारा मुझे अपने वशमें कर लेते हैं। मेरे अनन्यप्रेमी भक्त सेवासे ही अपनेको परिपूर्ण—कृतकृत्य मानते हैं। मेरी सेवाके फलस्वरूप जब उन्हें सालोक्य-सारूप्य आदि मुक्तियाँ प्राप्त होती हैं, तब वे सेवाका परित्याग करके उन्हें भी स्वीकार करना नहीं चाहते; फिर समयके फेरसे नष्ट हो जानेवाली वस्तुओंकी तो बात ही

आराधना की। भगवान् शङ्कर वसिष्ठजीपर प्रसन्न हुए। परीक्षित्! उन्होंने उनकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये अपनी वाणीको सत्य रखते हुए ही यह बात कही—'वसिष्ठ! तुम्हारा यह यजमान एक महीनेतक पुरुष रहेगा और एक महीनेतक स्त्री। इस व्यवस्थासे सुद्युम्न इच्छानुसार पृथ्वीका पालन कर सकता है।' इस प्रकार वसिष्ठजीके अनुग्रहसे व्यवस्थापूर्वक पुरुषत्व लाभ करके सुद्युम्न पृथ्वीका पालन करने लगे। परन्तु प्रजा उनका अभिनन्दन नहीं करती थी। उनके तीन पुत्र हुए—उत्कल, गय और विमल। परीक्षित्! वे सब-के-सब बड़े धर्मप्रेमी थे। उनका राज्य दक्षिणमें था। बहुत दिनोंके बाद वृद्धावस्था आनेपर प्रतिष्ठान नगरीके अधिपति सुद्युम्नने अपने पुत्र पुरूरवाको राज्य दे दिया और स्वयं तपस्या करनेके लिये वनकी यात्रा की ॥२९–४२॥

दूसरा अध्याय

पृषध्र आदि मनुके पाँच पुत्रोंका वंश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार जब सुद्युम्न तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये, तब वैवस्वत मनुने पुत्रकी कामनासे यमुनाके तटपर सौ वर्षतक तपस्या की। इसके बाद उन्होंने सन्तानके लिये सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरिकी आराधना की और अपने ही समान इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र पैदा किये। उन मनु-पुत्रोंमेंसे एकका नाम था पृषध्र। गुरु वसिष्ठजीने उसे गायोंकी रक्षामें नियुक्त कर रक्खा था, अतः वह रात्रिके समय बड़ी सावधानीसे वीरासनसे



बैठा रहता और गायोंकी रक्षा करता। एक दिन रातमें वर्षा हो रही थी। उस समय गायोंके झुंडमें एक बाघ घुस आया। उससे डरकर सोई हुई गौएँ उठ खड़ी हुईं। वे गोशालामें ही इधर-उधर भागने लगीं। बलवान् बाघने एक गायको पकड़ लिया। वह अत्यन्त भयभीत होकर चिल्लाने लगी। उसका वह क्रन्दन सुनकर पृषध्र गायके पास दौड़ आया। एक तो रातका समय और दूसरे घनघोर घटाओंसे आच्छादित होनेके कारण तारे भी नहीं दीखते थे। उसने हाथमें तलवार उठाकर अनजानमें ही बड़े वेगसे गायका सिर काट लिया। वह समझ रहा था कि यही बाघ है। तलवारकी नोकसे बाघका भी कान कट गया, वह अत्यन्त भयभीत होकर रास्तेमें खून गिराता हुआ वहाँसे निकल भागा। वीर पृषध्रने तो यही समझा कि बाघ मर गया। परन्तु रात बीतनेपर उसने देखा कि मैंने तो गायहीको मार डाला है, इससे उसे बड़ा दुःख हुआ! यद्यपि पृषध्रने जान-बूझकर अपराध नहीं किया था, फिर भी कुलपुरोहित वसिष्ठजीने उसे शाप दे दिया कि 'तुम इस कर्मसे क्षत्रिय नहीं रहोगे; जाओ, शूद्र हो जाओ।' पृषध्रने अपने गुरुदेवका यह शाप अञ्जलि बाँधकर स्वीकार किया और इसके बाद सदाके लिये मुनियोंको प्रिय लगनेवाले नैष्ठिक ब्रह्मचर्य-व्रतको धारण किया। वह समस्त प्राणियोंका अहैतुक हितैषी एवं सबके प्रति समान भावसे युक्त होकर भक्तिके द्वारा परम-विशुद्ध सर्वात्मा भगवान् वासुदेवका अनन्य प्रेमी हो गया। उसकी सारी आसक्तियाँ मिट गयीं। वृत्तियाँ शान्त हो गयीं। इन्द्रियाँ वशमें हो गयीं। वह कभी किसी प्रकारका संग्रह-परिग्रह नहीं रखता था। जो कुछ दैववश प्राप्त हो जाता, उसीसे अपना जीवन-निर्वाह कर लेता। वह आत्मज्ञानसे सन्तुष्ट एवं अपने चित्तको परमात्मामें स्थित करके प्रायः समाधिस्थ रहता। कभी-कभी जड, अंधे और बहरेके समान पृथ्वीपर विचरण भी करता। इस प्रकारका जीवन व्यतीत करता हुआ वह एक दिन वनमें गया। वहाँ उसने देखा कि दावानल धधक रहा है। मननशील पृषध्रने अपनी इन्द्रियोंको उसी अग्निमें भस्म करके परब्रह्म परमात्माकी प्राप्ति की॥१–१४॥

कर सकते । जिनका हृदय उदार है वे महात्मा भला, किस वस्तुका परित्याग नहीं कर सकते । जिनके मङ्गलमय नामोंके श्रवणमात्रसे जीव निर्मल हो जाता है—उन्हीं भगवान्‌के चरणकमलोंके जो दास हैं, उनके लिये कौन-सा कर्तव्य शेष रह जाता है ? महाराज अम्बरीष ! आपका हृदय करुणाभावसे परिपूर्ण है । आपने मेरे ऊपर महान् अनुग्रह किया । अहो, आपने मेरे अपराधको भुलाकर मेरे प्राणोंकी रक्षा की है ! ॥ १४–१७ ॥

परीक्षित् ! जबसे दुर्वासाजी भागे थे, तबसे अबतक राजा अम्बरीषने भोजन नहीं किया था । वे उनके लौटनेकी बाट देख रहे थे । अब उन्होंने दुर्वासाजीके चरण पकड़ लिये और उन्हें प्रसन्न करके विधिपूर्वक भोजन कराया । राजा अम्बरीष बड़े आदरसे अतिथिके योग्य सब प्रकारकी भोजन सामग्री ले आये । दुर्वासाजी भोजन करके तृप्त हो गये । अब उन्होंने आदरसे कहा—'राजन् ! अब आप भी भोजन कीजिये । अम्बरीष ! आप भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त हैं । आपके दर्शन, स्पर्श, बातचीत और मनको भगवान्‌की ओर प्रवृत्त करनेवाले आतिथ्यसे मैं अत्यन्त प्रसन्न और अनुगृहीत हुआ हूँ । स्वर्गकी देवाङ्गनाएँ बार बार आपके इस उज्ज्वल चरित्रका गायन करेंगी । यह पृथ्वी भी आपकी परम पुण्यमयी कीर्तिका बखान करती रहेगी' ॥ १८–२१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—दुर्वासाजीने बहुत ही सन्तुष्ट होकर राजा अम्बरीषके गुणोंकी प्रशंसा की और उसके बाद उनसे अनुमति लेकर आकाशमार्गसे उस ब्रह्मलोककी यात्रा की, जो केवल निष्काम कर्मसे ही प्राप्त होता है । परीक्षित् ! जब सुदर्शन चक्रसे भयभीत होकर दुर्वासाजी भगे थे, तबसे लेकर उनके लौटनेतक एक वर्षका समय बीत गया । इतने दिनोंतक राजा अम्बरीष उनके दर्शनकी आकाङ्क्षासे केवल जल पीकर ही रहे । जब दुर्वासाजी चले गये, तब उनके भोजनसे बचे हुए अत्यन्त पवित्र अन्नका उन्होंने भोजन किया । अपने कारण दुर्वासाजीका दुःखमें पड़ना और फिर अपनी ही प्रार्थनासे उनका छूटना—इन दोनों बातोंको उन्होंने अपनेद्वारा होनेपर भी भगवान्‌की ही महिमा समझा । राजा अम्बरीषमें ऐसे ऐसे एक नहीं, अनेकों गुण थे । अपने समस्त कर्मोंके द्वारा वे परब्रह्म परमात्मा श्रीभगवान्‌में भक्तिभावकी अभिवृद्धि करते रहते थे । भक्तिभावकी ऐसी महिमा है कि उससे ब्रह्मलोकतकके समस्त भोगोंमें नारकीय यन्त्रणाका अनुभव होने लगता है । इसीसे राजा अम्बरीषने अपने ही समान भक्त पुत्रोंपर राज्यका भार छोड़ दिया और स्वयं वनमें चले गये । वहाँ वे बड़ी धीरताके साथ आत्मस्वरूप भगवान्‌में अपना मन लगाकर गुणोंके प्रवाहरूप संसारसे मुक्त हो गये । परीक्षित् ! महाराज अम्बरीषका यह परम पवित्र आख्यान है । जो इसका सङ्कीर्तन और स्मरण करता है, वह भगवान्‌का भक्त हो जाता है ॥ २२–२७ ॥

छठा अध्याय

इक्ष्वाकुके वंशका वर्णन, मान्धाता और सौभरि ऋषिकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अम्बरीषके तीन पुत्र थे—विरूप, केतुमान् और शम्भु । विरूपसे पृषदश्व और उसका पुत्र रथीतर हुआ । रथीतर सन्तानहीन था । वंश परम्पराकी रक्षाके लिये उसने अङ्गिरा ऋषिसे प्रार्थना की, उन्होंने उसकी पत्नीसे ब्रह्मतेजसे सम्पन्न कई पुत्र उत्पन्न किये । यद्यपि ये सब रथीतरकी भार्यासे उत्पन्न हुए थे, इसलिये इनका गोत्र वही होना चाहिये था जो रथीतरका था; फिर भी वे आङ्गिरस ही कहलाये । रथीतर वंशमें यही सर्वश्रेष्ठ हुए । क्योंकि ये क्षत्रियोंके वंशमें जन्म लेनेपर भी थे ब्राह्मण ही ॥ १—३ ॥

परीक्षित् ! एक बार मनुजीके छींकनेपर उनकी नासिकासे इक्ष्वाकु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । इक्ष्वाकुके सौ पुत्र थे । उनमें सबसे बड़े तीन थे—विकुक्षि, निमि और दण्डक । परीक्षित् ! उनसे छोटे पचीस पुत्र आर्यावर्तके पूर्वभागके और पचीस पश्चिमभागके तथा उपर्युक्त तीन मध्यभागके अधिपति हुए । शेष सैंतालीस दक्षिण आदि अन्य प्रान्तोंके अधिपति हुए । एक बार राजा इक्ष्वाकुने अष्टका श्राद्धके समय अपने बड़े पुत्रको आज्ञा दी—'विकुक्षे ! शीघ्र ही जाकर श्राद्धके योग्य पवित्र पशुओंका मांस लाओ ।' वीर विकुक्षिने 'बहुत अच्छा' कहकर वनकी यात्रा की । वहाँ उसने श्राद्धके योग्य बहुत-से पशुओंका शिकार किया । वह थक तो गया ही था, भूख भी लग आयी थी । इसलिये यह बात भूल गया कि श्राद्धके लिये मारे हुए पशुको स्वयं न खाना चाहिये । उसने एक खरगोश खा लिया । विकुक्षिने बचा हुआ मांस लाकर अपने पिताको दिया । इक्ष्वाकुने अब

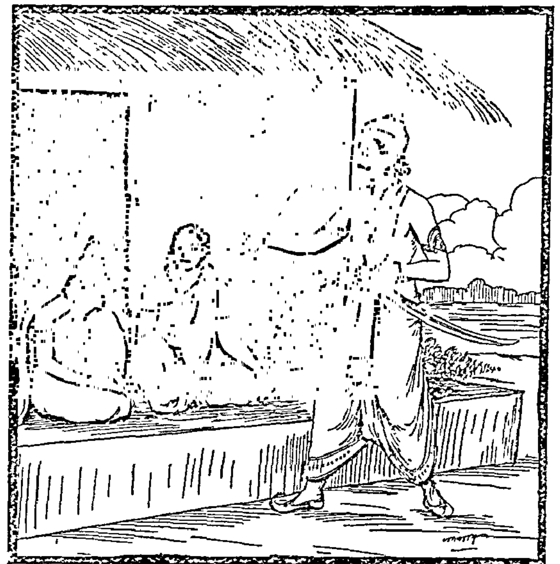
छेदमेंसे जुगनूकी तरह दो ज्योतियाँ दीख रही हैं। दैवकी कुछ ऐसी ही प्रेरणा थी, सुकन्याने बालसुलभ चपलतासे एक



काँटेके द्वारा उन ज्योतियोंको वेध दिया। इससे उनमेंसे बहुत-सा खून बह चला। उसी समय राजा शर्यातिके सैनिकोंका मल-मूत्र रुक गया। राजर्षि शर्यातिको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने अपने सैनिकोंसे कहा—'अरे, तुमलोगोंने कहीं महर्षि च्यवनजीके प्रति कोई अनुचित व्यवहार तो नहीं कर दिया? मुझे तो यह स्पष्ट जान पड़ता है कि हमलोगोंमेंसे किसी-न-किसीने उनके आश्रममें कोई अनर्थ किया है।' तब सुकन्याने अपने पितासे डरते-डरते कहा कि 'पिताजी! मैंने कुछ अपराध अवश्य किया है। मैंने अनजानमें दो ज्योतियोंको काँटेसे छेद दिया है।' अपनी कन्याकी यह बात सुनकर शर्याति घबड़ा गये। उन्होंने धीरे-धीरे स्तुति करके बाँबीमें छिपे हुए च्यवन मुनिको प्रसन्न किया। तदनन्तर च्यवन मुनिका अभिप्राय जानकर उन्होंने अपनी कन्या उन्हें समर्पित कर दी। और इस सङ्कटसे छूटकर बड़ी सावधानीसे उनकी अनुमति लेकर वे अपनी राजधानीमें चले आये॥ १—९॥

इधर सुकन्या परम क्रोधी च्यवन मुनिको अपने पतिके रूपमें प्राप्त करके बड़ी सावधानीसे उनकी सेवा करती हुई उन्हें प्रसन्न करने लगी। वह उनकी मनोवृत्तिको जानकर उसके अनुसार ही बर्ताव करती थी। कुछ समय बीत जानेपर उनके आश्रमपर दोनों अश्विनीकुमार आये। च्यवन मुनिने उनका यथोचित सत्कार किया और कहा कि—'आप दोनों समर्थ हैं, इसलिये मुझे युवा अवस्था प्रदान कीजिये। मेरा रूप एवं अवस्था ऐसी कर दीजिये, जिसे युवती स्त्रियाँ चाहती हैं। इसके बदलेमें मैं भी आपकी कुछ सेवा कर दूँगा। मैं जानता हूँ कि आपलोग सोमपानके अधिकारी नहीं हैं, फिर भी मैं आपको यज्ञमें सोमरसका भाग दूँगा।' वैद्यशिरोमणि अश्विनीकुमारोंने महर्षि च्यवनका अभिनन्दन करके कहा, 'ठीक है।' और इसके बाद उनसे कहा कि—'यह सिद्धोंके द्वारा बनाया हुआ कुण्ड है, आप इसमें स्नान कीजिये।' च्यवन मुनिके शरीरको बुढ़ापेने घेर रक्खा था। चारों ओर नसें दीख रही थीं, झुर्रियाँ पड़ जाने एवं बाल पक जानेके कारण वे देखनेमें बहुत भद्दे लगते थे। अश्विनीकुमारोंने उन्हें अपने साथ लेकर कुण्डमें प्रवेश किया। उसी समय कुण्डसे तीन पुरुष बाहर निकले। वे तीनों ही कमलोंकी माला, कुण्डल और सुन्दर वस्त्र पहने एक-से मालूम होते थे। वे बड़े ही सुन्दर एवं स्त्रियोंको प्रिय लगनेवाले थे। परम साध्वी सुन्दरी सुकन्याने जब देखा कि ये तीनों ही एक आकृतिके तथा सूर्यके समान तेजस्वी हैं, तब अपने पतिको न पहचानकर उसने अश्विनीकुमारोंकी शरण ली। उसके पातिव्रत्यसे अश्विनीकुमार बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उसके पतिको बतला दिया और फिर च्यवन मुनिसे आज्ञा लेकर विमानके द्वारा वे स्वर्गको चले गये॥ १०—१७॥

कुछ समयके बाद यज्ञ करनेकी इच्छासे राजा शर्याति च्यवन मुनिके आश्रमपर आये। वहाँ उन्होंने देखा कि उनकी



कन्या सुकन्याके पास एक सूर्यके समान तेजस्वी पुरुष बैठा

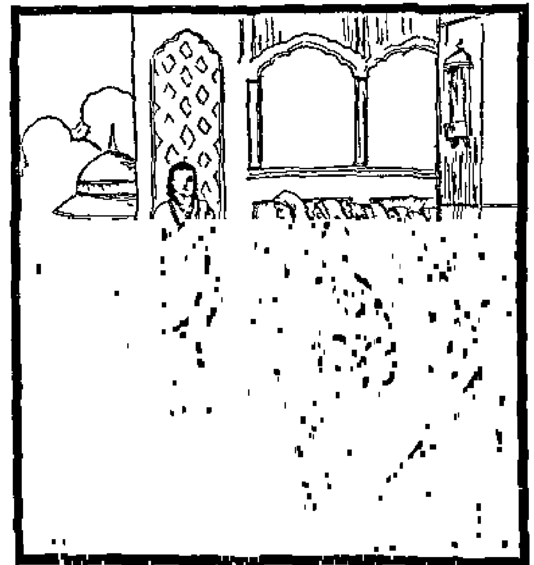
'धन्य है! भगवान्‌का बल ही वास्तवमें बल है। वे जो कुछ चाहते हैं, वही होता है।' इसके बाद प्रसवका समय आनेपर युवनाश्वकी दाहिनी कोख फाड़कर उसके एक चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ। जब वह दूध पीनेके लिये बहुत रोने लगा, तब ऋषियोंने कहा—'यह बालक किसका



दूध पियेगा?' तब इन्द्रने कहा, 'मेरा पियेगा (मां धाता)' 'बेटा! तू रो मत!' यह कहकर इन्द्रने अपनी तर्जनी अँगुली उसके मुँहमें डाल दी। ब्राह्मण और देवताओंके प्रसादसे उस बालकके पिता युवनाश्वकी भी मृत्यु नहीं हुई। वह वहीं तपस्या करके मुक्त हो गया। इन्द्रने उस बालकका नाम रक्खा त्रसद्दस्यु, क्योंकि रावण आदि दस्यु (लुटेरे) उससे भयभीत रहते थे। युवनाश्वके पुत्र मान्धाता (त्रसद्दस्यु) चक्रवर्ती राजा हुए। भगवान्‌के तेजसे तेजस्वी होकर उन्होंने अकेले ही सातों द्वीपवाली पृथ्वीका शासन किया। वे यद्यपि आत्मज्ञानी थे, उन्हें कर्मकाण्डकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी—फिर भी उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणावाले यज्ञोंसे उन यज्ञस्वरूप प्रभुकी आराधना की जो स्वयम्प्रकाश, सर्व देवस्वरूप, सर्वात्मा एवं इन्द्रियातीत हैं। भगवान्‌के अतिरिक्त और है ही क्या? यज्ञकी सामग्री, मन्त्र, विधि-विधान, यज्ञ, यजमान, ऋत्विज, धर्म, देश और काल—यह सब-का-सब भगवान्‌का ही स्वरूप तो है। परीक्षित्! जहाँसे सूर्यका उदय होता है और जहाँ वे अस्त होते हैं, वह सारा-का-सारा भूभाग युवनाश्वके पुत्र मान्धाताके ही अधिकारमें था॥ २०—३७॥

राजा मान्धाताकी पत्नी शशबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमती थी। उसके गर्भसे उनके तीन पुत्र हुए—पुरुकुत्स, अम्बरीष (ये दूसरे अम्बरीष हैं) और योगी मुचुकुन्द। इनकी पचास बहनें थीं। उन पचासोंने अकेले सौभरि ऋषिको पतिके रूपमें वरण किया। सौभरिजी बड़े तपस्वी थे। वे एक बार यमुनाजलमें डुबकी लगाकर तपस्या कर रहे थे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक मत्स्यराज अपनी पत्नियोंके साथ बहुत सुखी हो रहा है। उसके इस सुखको देखकर ब्राह्मण सौभरिके मनमें भी विवाह करनेकी इच्छा जग उठी और उन्होंने राजा मान्धाताके पास आकर उनकी पचास कन्याओंमेंसे एक कन्या माँगी। राजाने कहा—'ब्रह्मन्! कन्या स्वयंवरमें आपको चुन ले, तो आप उसे ले लीजिये।' सौभरि ऋषि राजा मान्धाताका अभिप्राय समझ गये। उन्होंने सोचा कि 'राजाने इसलिये मुझे ऐसा सूखा जवाब दिया है कि अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ, शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी हैं, बाल पक गये हैं और सिर काँपने लगा है! अब कोई स्त्री मुझसे प्रेम नहीं कर सकती। अच्छी बात है! मैं अपनेको ऐसा सुन्दर बनाऊँगा कि राजकन्याएँ तो क्या, देवाङ्गनाएँ भी मेरे लिये लालायित हो जायँगी।' ऐसा सोचकर समर्थ सौभरिजीने वैसा ही किया॥ ३८—४२॥

फिर क्या था, अन्तःपुरके रक्षकने सौभरि मुनिको कन्याओंके सजे-सजाये महलमें पहुँचा दिया। फिर तो उन



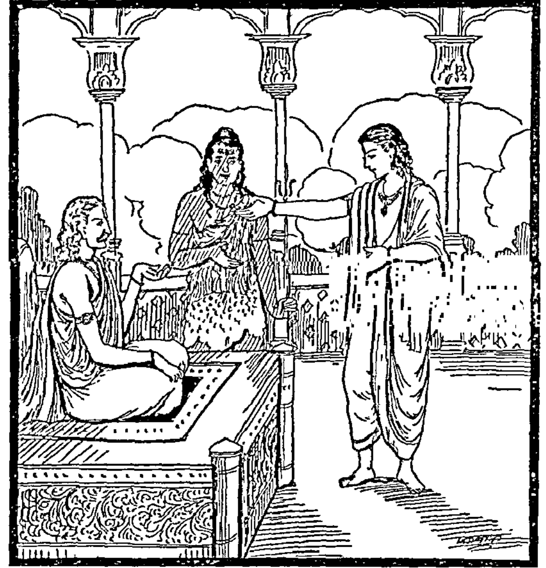
पचासों राजकन्याओंने एक सौभरिको ही अपना पति चुन लिया। उन कन्याओंका मन सौभरिजीमें इस प्रकार आसक्त

चौथा अध्याय

नाभाग और अम्बरीषकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मनुपुत्र नभगके सबसे छोटे पुत्रका नाम था नाभाग। वह बड़ा विद्वान् था। उसने बहुत दिनोंतक गुरुकुलमें वास किया। उसके भाइयोंने उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी समझ पिताकी सारी सम्पत्ति आपसमें बाँट ली, उसके लिये कुछ न छोड़ा। अतः जब वह गुरुकुलसे लौटकर आया, तब भाइयोंने उसे पिता नभगको ही उसके हिस्सेके रूपमें दिया। उसने अपने भाइयोंसे पूछा—'भाइयो! आपलोगोंने मुझे हिस्सेमें क्या दिया है?' तब उन्होंने उत्तर दिया कि 'हम तुम्हारे हिस्सेमें पिताजीको ही तुम्हें देते हैं।' उसने अपने पितासे जाकर कहा—'पिताजी! मेरे बड़े भाइयोंने हिस्सेमें मेरे लिये आपको ही दिया है।' पिताने कहा—'बेटा! तुम उनकी बात न मानो। देखो, ये बड़े बुद्धिमान् आङ्गिरस-गोत्रके ब्राह्मण इस समय एक बहुत बड़ा यज्ञ कर रहे हैं। परन्तु मेरे विद्वान् पुत्र! वे प्रत्येक छठे दिन अपने कर्ममें भूल कर बैठते हैं। तुम उन महात्माओंके पास जाकर उन्हें वैश्वदेवसम्बन्धी दो सूक्त बतला दो; जब वे स्वर्ग जाने लगेंगे, तब यज्ञसे बचा हुआ अपना सारा धन तुम्हें दे देंगे। इसलिये अब तुम उन्हींके पास चले जाओ।' उसने अपने पिताके आज्ञानुसार वैसा ही किया। उन आङ्गिरसगोत्री ब्राह्मणोंने भी यज्ञका बचा हुआ धन उसे दे दिया और वे स्वर्गमें चले गये ॥१–५॥

जब नाभाग उस धनको लेने लगा, तब उत्तर दिशासे एक काले रंगका पुरुष आया। उसने कहा—'इस यज्ञभूमिमें जो कुछ बचा हुआ है, वह सब धन मेरा है।' इसपर नाभागने कहा कि 'ऋषियोंने इस धनको मुझे दिया है।' तब उस पुरुषने कहा—'हम दोनोंके इस विवादका निर्णय तुम्हारे पिता करें।' तब नाभागने जाकर अपने पितासे पूछा। पिताने कहा—'एक बार दक्षप्रजापतिके यज्ञमें ऋषिलोग यह निश्चय कर चुके हैं कि यज्ञभूमिमें जो कुछ बच रहता है, वह सब रुद्रदेवका हिस्सा है। इसलिये वह धन तो महादेवजीको ही मिलना चाहिये।' नाभागने जाकर उन काले रंगके पुरुष रुद्रभगवान्‌को प्रणाम किया और



कहा कि 'प्रभो! यज्ञभूमिकी सभी वस्तुएँ आपकी हैं, मेरे पिताने ऐसा ही कहा है। भगवन्! मुझसे अपराध हुआ, मैं सिर झुकाकर आपसे क्षमा माँगता हूँ।' तब भगवान् रुद्रने कहा—'तुम्हारे पिताने धर्मके अनुकूल निर्णय दिया है, और तुमने भी मुझसे सत्य ही कहा है। इससे मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम वेदोंका अर्थ तो पहलेसे ही जानते हो। अब मैं तुम्हें सनातन ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान देता हूँ। यहाँ यज्ञमें बचा हुआ मेरा जो अंश है, यह धन भी मैं तुम्हें ही दे रहा हूँ; तुम इसे स्वीकार करो।' इतना कहकर सत्यप्रेमी भगवान् रुद्र अन्तर्धान हो गये। जो मनुष्य प्रातः और सायंकाल एकाग्र चित्तसे इस आख्यानका स्मरण करता है वह प्रतिभाशाली एवं वेदज्ञ तो होता ही है, साथ ही अपने स्वरूपको भी जान लेता है। नाभागके पुत्र हुए अम्बरीष। वे भगवान्‌के बड़े प्रेमी एवं उदार धर्मात्मा थे। जो ब्रह्मशाप कभी कहीं रोका नहीं जा सका, वह भी अम्बरीषका स्पर्श न कर सका ॥ ६–१३ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! मैं परमज्ञानी

वहाँसे ढकेल दिया और वे नीचेको सिर किये हुए गिर पड़े। परन्तु विश्वामित्रजीने अपने तपोबलसे उन्हें आकाशमें ही



स्थिर कर दिया। वे अब भी आकाशमें लटके हुए दीखते हैं ॥ १–६ ॥

त्रिशङ्कुके पुत्र थे हरिश्चन्द्र। उनके लिये विश्वामित्र और वसिष्ठ एक दूसरेको शाप देकर पक्षी हो गये और बहुत वर्षोंतक लड़ते रहे। हरिश्चन्द्रको कोई सन्तान न थी। इससे वे बहुत उदास रहा करते थे। नारदके उपदेशसे वे वरुणदेवताकी शरणमें गये और उनसे प्रार्थना की कि 'प्रभो! मुझे पुत्र प्राप्त हो। महाराज! यदि मेरे वीर पुत्र होगा तो मैं उसीसे आपका यजन करूँगा।' वरुणने कहा—'ठीक है।' तब वरुणकी कृपासे हरिश्चन्द्रके रोहित नामका पुत्र हुआ। पुत्र होते ही वरुणने आकर कहा—'हरिश्चन्द्र! तुम्हें पुत्र प्राप्त हो गया। अब इसके द्वारा मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब आपका यह यज्ञपशु (रोहित) दस दिनसे अधिकका हो जायगा, तब यज्ञके योग्य होगा।' दस दिन बीतनेपर वरुणने आकर फिर कहा—'अब मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब आपके यज्ञपशुके मुँहमें दाँत निकल आयँगे, तब वह यज्ञके योग्य होगा।' दाँत उग आनेपर वरुणने कहा—'अब इसके दाँत निकल आये, मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब इसके दूधके दाँत गिर जायँगे, तब यह यज्ञके योग्य होगा।' दूधके दाँत गिर जानेपर वरुणने कहा—'अब इस यज्ञपशुके दाँत गिर गये, मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'जब इसके दुबारा दाँत आ जायँगे, तब यह पशु यज्ञके योग्य हो जायगा।' दाँतोंके फिर उग आनेपर वरुणने कहा—'अब मेरा यज्ञ करो।' हरिश्चन्द्रने कहा—'वरुणजी महाराज! क्षत्रिय पशु तब यज्ञके योग्य होता है, जब वह कवच धारण करने लगे।' परीक्षित्! इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्र पुत्रके प्रेमसे हीला हवाला करके समय टालते रहे। इसका कारण यह था कि पुत्र स्नेहकी फाँसीने उनके हृदयको जकड़ लिया था। वे जो जो समय बताते, वरुणदेवता उसीकी बाट देखते। जब रोहितको इस बातका पता चला कि पिताजी तो मेरा बलिदान करना चाहते हैं, तब वह अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये हाथमें धनुष लेकर वनमें चला गया। कुछ दिनके बाद उसे मालूम हुआ कि वरुणदेवताने रुष्ट होकर मेरे पिताजीपर आक्रमण किया है—जिसके कारण वे महोदर रोगसे पीड़ित हो रहे हैं, तब रोहित अपने नगरकी ओर चल पड़ा। परन्तु इन्द्रने आकर उसे रोक दिया। उन्होंने कहा—'बेटा रोहित! यज्ञपशु बनकर मरनेकी अपेक्षा तो पवित्र तीर्थ और क्षेत्रोंका सेवन करते हुए पृथ्वीमें विचरना ही अच्छा है।' इन्द्रकी बात मानकर वह एक वर्षतक और वनमें ही रहा। इसी प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें वर्ष भी रोहितने अपने पिताके पास जानेका विचार किया; परन्तु बूढ़े ब्राह्मणका वेष धारण कर हर बार इन्द्र आते और उसे रोक देते। इस प्रकार छः वर्षतक रोहित वनहीमें रहा। सातवें वर्ष जब वह अपने नगरको लौटने लगा, तब उसने



अजीगर्तसे उनके मँझले पुत्र शुनःशेपको मोल ले लिया और

सब-के-सब जलकर खाक हो गये। परीक्षित्! सगरके लड़के



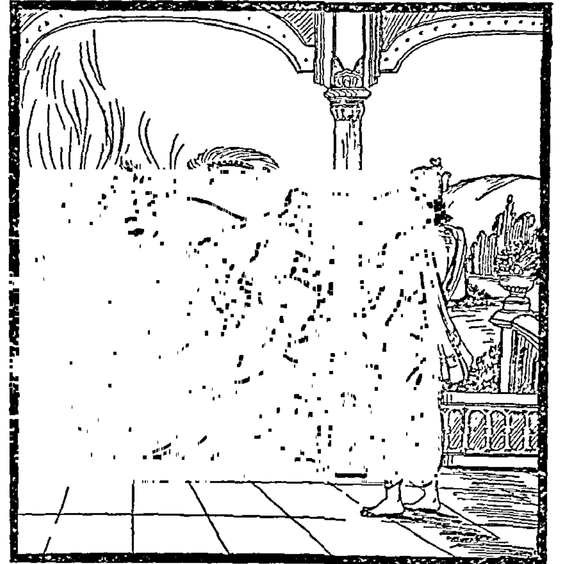
कपिलमुनिके क्रोधसे जल गये, ऐसा कहना उचित नहीं है। वे तो शुद्ध सत्त्वगुणके परम आश्रय हैं। उनका शरीर तो जगत्‌को पवित्र करता रहता है। उनमें भला, क्रोधरूप तमोगुणकी सम्भावना कैसे की जा सकती है। भला, कहीं पृथ्वीकी धूलका भी आकाशसे सम्बन्ध होता है? यह संसार-सागर एक मृत्युमय पथ है। इसके पार जाना अत्यन्त कठिन है। परन्तु कपिलमुनिने इस जगत्‌में सांख्यशास्त्रकी एक ऐसी दृढ नाव बना दी है, जिससे मुक्तिकी इच्छा रखनेवाला कोई भी व्यक्ति उस समुद्रके पार जा सकता है। वे केवल परम ज्ञानी ही नहीं, स्वयं परमात्मा हैं। उनमें भला, यह शत्रु है और यह मित्र—इस प्रकारकी भेदबुद्धि कैसे हो सकती है? ॥५–१४॥

सगरकी दूसरी पत्नीका नाम था केशिनी। उसके गर्भसे उन्हें असमञ्जस नामका पुत्र हुआ था। असमञ्जसके पुत्रका नाम था अंशुमान्। वह अपने दादा सगरकी आज्ञाओंके पालन तथा उन्हींकी सेवामें लगा रहता। असमञ्जस पहले जन्ममें योगी थे। सङ्गके कारण वे योगसे विचलित हो गये थे, परन्तु अब भी उन्हें अपने पूर्वजन्मका स्मरण बना हुआ था। इसलिये वे ऐसे काम किया करते थे, जिनसे भाई-बन्धु उन्हें प्रिय न समझें। वे कभी-कभी तो अत्यन्त निन्दित कर्म कर बैठते और अपनेको पागल-सा दिखलाते—यहाँतक कि खेलते हुए बच्चोंको सरयूमें डाल देते! इस प्रकार उन्होंने लोगोंको उद्विग्न कर दिया था। अन्तमें उनकी ऐसी करतूत देखकर पिताने पुत्र-स्नेहको तिलाञ्जलि दे दी और उन्हें घरसे निकाल दिया। तदनन्तर असमञ्जसने अपने योगबलसे उन सब बालकोंको जीवित कर दिया और अपने पिताको दिखाकर वे वनमें चले गये। अयोध्याके नागरिकोंने जब देखा कि हमारे बालक तो फिर लौट आये, तब उन्हें असीम आश्चर्य हुआ और राजा सगरको भी बड़ा पश्चात्ताप हुआ। इसके बाद राजा सगरकी आज्ञासे अंशुमान् घोड़ेको ढूँढनेके लिये निकले। उन्होंने अपने चाचाओंके द्वारा खोदे हुए समुद्रके किनारे-किनारे चलकर उनके शरीरके भस्मके पास ही घोड़ेको देखा। वहीं भगवान्‌के अवतार कपिल मुनि बैठे हुए थे। उनको देखकर उदारहृदय अंशुमान्‌ने उनके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर हाथ जोड़कर वे एकाग्र मनसे उनकी स्तुति करने लगे ॥१५–२१॥

अंशुमान्‌ने कहा—भगवन्! आप अजन्मा ब्रह्माजीसे भी परे हैं। इसीलिये वे आपको प्रत्यक्ष नहीं देख पाते। देखनेकी बात तो अलग रही—वे समाधि करते-करते एवं युक्ति लड़ाते-लड़ाते हार गये, किन्तु आजतक आपको समझ भी नहीं पाये। हमलोग तो उनके मन, शरीर और बुद्धिसे होनेवाली सृष्टिके द्वारा बने हुए अज्ञानी जीव हैं। तब भला, हम आपको कैसे समझ सकते हैं? संसारके शरीरधारी सत्त्वगुण, रजोगुण या तमोगुणप्रधान हैं। वे जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाओंमें केवल गुणमय पदार्थों, विषयोंको और सुषुप्ति अवस्थामें केवल अज्ञान-ही-अज्ञान देखते हैं। इसका कारण यह है कि वे आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं। वे बहिर्मुख होनेके कारण बाहरकी वस्तुओंको तो देखते हैं, पर अपने ही हृदयमें स्थित आपको नहीं देख पाते। आप एकरस, ज्ञानघन हैं। सनन्दन आदि मुनि, जो आत्मस्वरूपके अनुभवसे मायाके गुणोंके द्वारा होनेवाले भेदभावको और उसके कारण—अज्ञानको नष्ट कर चुके हैं, आपका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। मायाके गुणोंमें ही भूला हुआ मैं मूढ किस प्रकार आपका चिन्तन करूँ? माया, उसके गुण और गुणोंके कारण होनेवाले कर्म एवं कर्मोंके संस्कारसे बना हुआ लिङ्गशरीर आपमें है ही नहीं। न तो आपका नाम है और न तो रूप। आपमें न कार्य है और न तो कारण। आप सनातन आत्मा हैं। ज्ञानका उपदेश करनेके लिये ही आपने यह शरीर धारण कर रक्खा है। हम आपको नमस्कार करते हैं। प्रभो! यह संसार आपकी मायाकी करामात है। इसको सत्य समझकर काम, लोभ,

भक्तिभावसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् पहले ब्राह्मणोंको स्वादिष्ट और अत्यन्त गुणकारी भोजन कराकर उन लोगोंके घर साठ करोड़ गौएँ सुसज्जित करके भेज दीं। उन गौओंके सींग सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए थे। सुन्दर-सुन्दर वस्त्र उन्हें ओढ़ा दिये गये थे। वे गौएँ बड़ी सुशील, छोटी अवस्थाकी, देखनेमें सुन्दर, बछड़ेवाली और खूब दूध देनेवाली थीं। उनके साथ दुहनेकी उपयुक्त सामग्री भी उन्होंने भेजवा दी थी। जब ब्राह्मणोंको सब कुछ मिल चुका, तब राजाने उन लोगोंसे आज्ञा लेकर व्रतका पारण करनेकी तैयारी की। उसी समय शाप और वरदान देनेमें समर्थ स्वयं दुर्वासा भी उनके यहाँ अतिथिके रूपमें पधारे ॥२९–३५॥

राजा अम्बरीष उन्हें देखते ही उठकर खड़े हो गये, आसन देकर बैठाया और विविध सामग्रियोंसे अतिथिके रूपमें आये हुए दुर्वासाजीकी पूजा की। उनके चरणोंमें प्रणाम करके अम्बरीषने भोजनके लिये प्रार्थना की। दुर्वासाजीने अम्बरीषकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इसके बाद आवश्यक कर्मोंसे निवृत्त होनेके लिये वे नदीतटपर चले गये। वे ब्रह्मका ध्यान करते हुए यमुनाके पवित्र जलमें स्नान करने लगे। इधर द्वादशी केवल घड़ीभर शेष रह गयी थी। धर्मज्ञ अम्बरीषने धर्म-सङ्कटमें पड़कर ब्राह्मणोंके साथ परामर्श किया। उन्होंने कहा—'ब्राह्मणदेवताओ! ब्राह्मणको बिना भोजन कराये स्वयं खा लेना और द्वादशी रहते पारण न करना—दोनों ही दोष हैं। इसलिये इस समय जैसा करनेसे मेरी भलाई हो और मुझे पाप न लगे, ऐसा काम करना चाहिये।' तब ब्राह्मणोंके साथ विचार करके उन्होंने कहा—'ब्राह्मणो! श्रुतियोंमें ऐसा कहा गया है कि जल पी लेना भोजन करना भी है, नहीं भी करना है। इसलिये इस समय केवल जलसे पारण किये लेता हूँ।' ऐसा निश्चय करके मन-ही-मन भगवान्‌का चिन्तन करते हुए राजर्षि अम्बरीषने जल पी लिया, और परीक्षित्! वे दुर्वासाजीके आनेकी बाट देखने लगे। दुर्वासाजी आवश्यक कर्मोंसे निवृत्त होकर यमुनातटसे लौट आये। जब राजाने आगे बढ़कर उनका अभिनन्दन किया, तब उन्होंने अनुमानसे ही समझ लिया कि राजाने पारण कर लिया है। उस समय दुर्वासाजी बहुत भूखे थे। इसलिये यह जानकर कि राजाने पारण कर लिया है, वे क्रोधसे थर-थर काँपने लगे। भौंहोंके चढ़ जानेसे उनका मुँह विकट हो गया। उन्होंने हाथ जोड़कर खड़े अम्बरीषसे डाँटकर कहा—'देखो तो सही, यह कितना क्रूर है! यह धनके मदमें मतवाला हो रहा है। भगवान्‌की भक्ति तो इसे छू तक नहीं गयी, और यह अपनेको बड़ा समर्थ मानता है। आज इसने धर्मका उल्लङ्घन करके बड़ा अन्याय किया है। देखो, मैं इसका अतिथि होकर आया हूँ। इसने अतिथिसत्कार करनेके लिये मुझे निमन्त्रण भी दिया है, किन्तु फिर भी मुझे खिलाये बिना ही खा लिया है। अच्छा देख, तुझे अभी इसका फल चखाता हूँ।' ऐसा कहते-कहते वे क्रोधसे जल उठे। उन्होंने अपनी एक जटा उखाड़ी और उससे अम्बरीषको मार डालनेके लिये एक कृत्या उत्पन्न की। वह प्रलयकालकी आगके समान दहक रही थी। वह आगके समान जलती हुई, हाथमें तलवार लेकर राजा अम्बरीषपर टूट पड़ी। उस समय उसके पैरोंकी धमकसे पृथ्वी काँप रही थी। परन्तु राजा अम्बरीष उससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे एक पग भी नहीं हटे, ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। परमपुरुष परमात्माने अपने सेवककी रक्षाके लिये पहलेसे ही सुदर्शन चक्रको नियुक्त कर रक्खा था। जैसे आग क्रोधसे गुर्राते हुए साँपको भस्म कर देती है, वैसे ही चक्रने दुर्वासाजीकी कृत्याको जलाकर राखका ढेर कर दिया।



जब दुर्वासाजीने देखा कि मेरी बनायी हुई कृत्या तो जल रही है और चक्र मेरी ओर आ रहा है, तब वे भयभीत हो अपने प्राण बचानेके लिये जी छोड़कर एकाएक भाग निकले। जैसे ऊँची-ऊँची लपटोंवाला दावानल साँपके पीछे दौड़ता है, वैसे ही भगवान्‌का चक्र उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगा। जब दुर्वासाजीने देखा कि चक्र तो मेरे पीछे

गङ्गावतरण



शिवजीने सावधान होकर गङ्गाजीको अपने सिरपर धारण किया ।

क्या है। दुर्वासाजी! मैं आपसे और क्या कहूँ, मेरे प्रेमी भक्त तो मेरे हृदय हैं और उन प्रेमी भक्तोंका हृदय स्वयं मैं हूँ। वे मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते तथा मैं उनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानता। दुर्वासाजी! सुनिये, मैं आपको एक उपाय बताता हूँ। जिसका अनिष्ट करनेसे आपको इस विपत्तिमें पड़ना पड़ा है, आप उसीके पास जाइये। निरपराध साधुओंके अनिष्टकी चेष्टासे अनिष्ट करनेवालेका ही अमङ्गल होता है। इसमें सन्देह नहीं कि ब्राह्मणोंके लिये तपस्या और विद्या परम कल्याणके साधन हैं। परन्तु यदि ब्राह्मण उद्दण्ड और अन्यायी हो जाय, तो वे ही दोनों उलटा फल देने लगते हैं। दुर्वासाजी! आपका कल्याण हो। आप नाभागनन्दन परम भाग्यशाली राजा अम्बरीषके पास जाइये और उनसे क्षमा माँगिये। तब आपको शान्ति मिलेगी॥ ६३–७१॥

पाँचवाँ अध्याय

दुर्वासाजीकी दुःख-निवृत्ति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान्‌ने इस प्रकार आज्ञा दी, तब सुदर्शन चक्रकी ज्वालासे जलते हुए दुर्वासा लौटकर राजा अम्बरीषके पास आये और उन्होंने अत्यन्त दुखी होकर राजाके पैर पकड़ लिये। दुर्वासाजीकी यह चेष्टा देखकर और उनके चरण पकड़नेसे लज्जित होकर राजा अम्बरीष भगवान्‌के चक्रकी स्तुति करने लगे। उस समय उनका हृदय दयावश अत्यन्त पीड़ित हो रहा था॥ १-२॥

अम्बरीषने कहा—प्रभो सुदर्शन! आप अग्निस्वरूप हैं। आप ही परम समर्थ सूर्य हैं। समस्त नक्षत्रमण्डलके अधिपति चन्द्रमा भी आपहीके स्वरूप हैं। जल, पृथ्वी, आकाश, वायु, पञ्चतन्मात्रा और सम्पूर्ण इन्द्रियोंके रूपमें भी आप ही हैं। भगवान्‌के प्यारे, हजार दाँतोंवाले चक्रदेव! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। समस्त अस्त्र-शस्त्रोंको नष्ट कर देनेवाले एवं पृथ्वीके रक्षक! आप इन ब्राह्मणकी रक्षा कीजिये। आप ही धर्म हैं, मधुर एवं सत्य वाणी हैं; आप ही समस्त यज्ञोंके अधिपति और स्वयं यज्ञ भी हैं। आप समस्त लोकोंके रक्षक एवं सर्वलोकस्वरूप भी हैं। आप परमपुरुष परमात्माके श्रेष्ठ तेज हैं। सुनाभ! आप समस्त धर्मोंकी मर्यादाके रक्षक हैं। अधर्मका आचरण करनेवाले असुरोंको भस्म करनेके लिये आप साक्षात् अग्नि हैं। आप ही तीनों लोकोंके रक्षक एवं विशुद्ध तेजोमय हैं। आपकी गति मनके वेगके समान है और आपके कर्म अद्भुत हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ, आपकी स्तुति करता हूँ। वेदवाणीके अधीश्वर! आपके धर्ममय तेजसे अन्धकारका नाश होता है और सूर्य आदि महापुरुषोंके प्रकाशकी रक्षा होती है। आपकी महिमाका पार पाना अत्यन्त कठिन है। ऊँचे-नीचे और छोटे-बड़ेके भेद-भावसे युक्त यह समस्त कार्य-कारणात्मक संसार आपका ही स्वरूप है। सुदर्शन चक्र! आपपर कोई विजय नहीं प्राप्त कर सकता। जिस समय भगवान् आपको चलाते हैं और आप दैत्य एवं दानवोंकी सेनामें प्रवेश करते हैं, उस समय युद्धभूमिमें उनकी भुजा, उदर, जंघा, चरण और गरदन आदि निरन्तर काटते हुए आप अत्यन्त शोभायमान होते हैं। विश्वके रक्षक! आप रणभूमिमें सबका प्रहार सह लेते हैं, आपका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। भगवान्‌ने दुष्टोंके नाशके लिये ही आपको नियुक्त किया है। आप कृपा करके हमारे कुलके भाग्योदयके लिये दुर्वासाजीका कल्याण कीजिये। हमारे ऊपर यह आपका महान् अनुग्रह होगा। यदि मैंने कुछ भी दान किया हो, यज्ञ किया हो अथवा अपने धर्मका पालन किया हो, यदि हमारे वंशके लोग ब्राह्मणोंको ही अपना आराध्यदेव समझते रहे हों, तो दुर्वासाजीकी जलन मिट जाय। भगवान् समस्त गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। यदि मैंने समस्त प्राणियोंके आत्माके रूपमें उन्हें देखा हो और वे मुझपर प्रसन्न हों, तो दुर्वासाजीके हृदयकी सारी जलन मिट जाय॥ ३–११॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब राजा अम्बरीषने दुर्वासाजीको सब ओरसे जलानेवाले भगवान्‌के सुदर्शन चक्रकी इस प्रकार स्तुति की, तब उनकी प्रार्थनासे चक्र शान्त हो गया। जब दुर्वासा चक्रकी आगसे मुक्त हो गये और उनका चित्त स्वस्थ हो गया, तब वे राजा अम्बरीषको अनेकानेक उत्तम आशीर्वाद देते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे॥ १२-१३॥

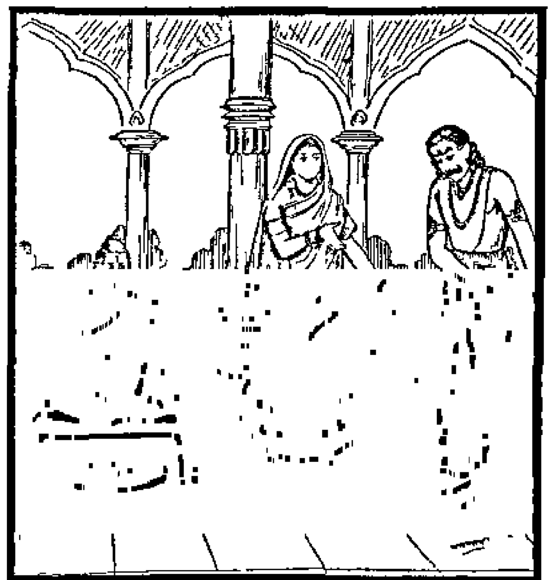
दुर्वासाजीने कहा—धन्य है! आज मैंने भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका महत्त्व देखा। राजन्! मैंने आपका अपराध किया; फिर भी आप मेरे लिये मङ्गल-कामना ही कर रहे हैं। जिन्होंने भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंको दृढ़-प्रेमभावसे पकड़ लिया है—वे साधुपुरुष भला, क्या नहीं

चल रहे थे और उनके पीछे पीछे मार्गमें पड़नेवाले देशोंको पवित्र करती हुई गङ्गाजी दौड़ रही थीं। इस प्रकार गङ्गासागर-सङ्गमपर पहुँचकर उन्होंने सगरके जले हुए पुत्रोंको अपने जलमें डुबा दिया। यद्यपि सगरके पुत्र ब्राह्मणके तिरस्कारके कारण भस्म हो गये थे, इसलिये उनके उद्धारका कोई उपाय न था—फिर भी केवल शरीरकी राखके साथ गङ्गाजलका स्पर्श हो जानेसे ही वे स्वर्गमें चले गये। परीक्षित्! जब गङ्गाजलसे शरीरकी राखका स्पर्श हो जानेसे सगरके पुत्रोंको स्वर्गकी प्राप्ति हो गयी, तब जो लोग श्रद्धाके साथ नियम लेकर श्रीगङ्गाजीका सेवन करते हैं उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है। मैंने गङ्गाजीकी महिमाके सम्बन्धमें जो कुछ कहा है, उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। क्योंकि गङ्गाजी भगवान्‌के उन चरणकमलोंसे निकली हैं, जिनका श्रद्धाके साथ चिन्तन करके बड़े-बड़े मुनि निर्मल हो जाते हैं और तीनों गुणोंके कठिन बन्धनको काटकर तुरत भगवत्स्वरूप बन जाते हैं। फिर गङ्गाजी संसारका बन्धन काट दें, इसमें कौन बड़ी बात है ॥ ६—१५ ॥

भगीरथका पुत्र था श्रुत, श्रुतका नाभ। यह नाभ पूर्वोक्त नाभसे भिन्न है। नाभका पुत्र था सिन्धुद्वीप और सिन्धुद्वीपका अयुतायु। अयुतायुके पुत्रका नाम था ऋतुपर्ण। वह नलका मित्र था। उसने नलको पासा फेंकनेकी विद्याका रहस्य बतलाया था और बदलेमें उससे अश्वविद्या सीखी थी। ऋतुपर्णका पुत्र सर्वकाम हुआ, और परीक्षित्! सर्वकामके पुत्रका नाम था सुदास। सुदासके पुत्रका नाम था सौदास, और सौदासकी पत्नीका नाम था मदयन्ती। सौदासको ही कोई कोई मित्रसह कहते हैं और कहीं-कहीं उसे कल्माषपाद भी कहा गया है। वह वसिष्ठके शापसे राक्षस हो गया था और फिर अपने कर्मोंके कारण सन्तानहीन हुआ ॥१६—१८॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! हम यह जानना चाहते हैं कि महात्मा सौदासको गुरु वसिष्ठजीने शाप क्यों दिया। यदि कोई गोपनीय बात न हो तो कृपया बतलाइये ॥१९॥

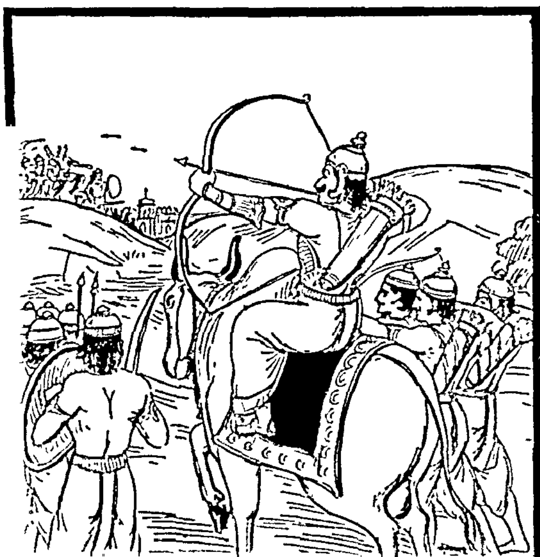
श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! एक बार राजा सौदास शिकार खेलने गये हुए थे। वहाँ उन्होंने किसी राक्षसको मार डाला और उसके भाईको छोड़ दिया। उसने राजाके इस कामको अन्याय समझा और उनसे भाईकी मृत्युका बदला लेनेके लिये वह रसोइयेका रूप धारण करके उनके घर गया। जब एक दिन भोजन करनेके लिये गुरु वसिष्ठजी राजाके यहाँ आये, तब उसने मनुष्यका मांस राँधकर उन्हें परस दिया। जब सर्वसमर्थ वसिष्ठजीने देखा कि परोसी जानेवाली वस्तु तो नितान्त अभक्ष्य है, तब उन्होंने क्रोधित होकर राजाको शाप दिया कि 'जा, इस कामसे तू राक्षस हो जायगा।' जब उन्हें यह बात मालूम हुई कि यह काम तो राक्षसका है—राजाका नहीं, तब उन्होंने उस शापको केवल बारह वर्षके लिये कर दिया। उस समय राजा सौदासने भी अपनी अञ्जलिमें जल लेकर गुरु वसिष्ठको शाप देना चाहा, परन्तु उनकी पत्नी मदयन्तीने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया। इसपर सौदासने विचार किया कि 'दिशाएँ, आकाश और



पृथ्वी—सब-के-सब तो जीवमय ही हैं। तब यह तीक्ष्ण जल कहाँ छोड़ूँ?' अन्तमें उन्होंने उस जलको अपने पैरोंपर डाल लिया। इसीसे उनका नाम 'मित्रसह' हुआ। उस जलसे उनके पैर काले पड़ गये थे, इसलिये उनका नाम 'कल्माषपाद' भी हुआ। अब वे राक्षस हो चुके थे। एक दिन राक्षस बने हुए राजा कल्माषपादने एक वनवासी ब्राह्मण दम्पतिको सहवासके समय देख लिया। कल्माषपादको भूख तो लगी ही थी, उसने ब्राह्मणको पकड़ लिया। ब्राह्मणपत्नीकी कामना अभी पूर्ण नहीं हुई थी। उसने कहा—'राजन्! आप राक्षस नहीं हैं। आप महारानी मदयन्तीके पति और इक्ष्वाकुवंशके वीर महारथी हैं। आपको ऐसा अधर्म नहीं करना चाहिये। मुझे सन्तानकी कामना है और इस ब्राह्मणकी भी कामनाएँ अभी पूर्ण नहीं हुई हैं। इसलिये आप मुझे मेरा यह ब्राह्मण पति दे दीजिये। राजन्! यह मनुष्यशरीर जीवको धर्म, अर्थ,

अपने गुरुसे उसे प्रोक्षण करनेके लिये कहा, तब गुरुजीने बताया कि यह मांस तो दूषित एवं श्राद्धके अयोग्य है। परीक्षित्! गुरुजीके कहनेपर राजा इक्ष्वाकुको अपने पुत्रकी करतूतका पता चल गया। उन्होंने शास्त्रीय विधिका उल्लङ्घन करनेवाले पुत्रको क्रोधवश अपने देशसे निकाल दिया। तदनन्तर राजा इक्ष्वाकुने अपने गुरुदेव वसिष्ठसे ज्ञानविषयक चर्चा की। फिर योगके द्वारा शरीरका परित्याग करके उन्होंने परमपद प्राप्त किया। पिताका देहान्त हो जानेपर विकुक्षि अपनी राजधानीमें लौट आया और इस पृथ्वीका शासन करने लगा। उसने बड़े-बड़े यज्ञोंसे भगवान्‌की आराधना की, और संसारमें शशादके नामसे प्रसिद्ध हुआ। विकुक्षिके पुत्रका नाम था पुरञ्जय। उसीको कोई 'इन्द्रवाह' और कोई 'ककुत्स्थ' कहते हैं। जिन कर्मोंके कारण उसके ये नाम पड़े थे, उन्हें सुनो॥ ४–१२॥

सत्ययुगके अन्तमें देवता और दानवोंका घोर संग्राम हुआ था। उसमें सब-के-सब देवता दैत्योंसे हार गये। तब उन्होंने वीर पुरञ्जयको सहायताके लिये अपना मित्र बनाया। पुरञ्जयने कहा कि 'यदि देवराज इन्द्र मेरे वाहन बनें, तो मैं युद्ध कर सकता हूँ।' पहले तो इन्द्रने अस्वीकार कर दिया, परन्तु देवताओंके आराध्यदेव सर्वशक्तिमान् विश्वात्मा भगवान्‌की बात मानकर पीछे वे एक बड़े भारी बैल बन गये। सर्वान्तर्यामी भगवान् विष्णुने अपनी शक्तिसे पुरञ्जयको भर



दिया। उन्होंने कवच पहनकर दिव्य धनुष और तीखे बाण ग्रहण किये। इसके बाद बैलपर चढ़कर वे उसके ककुद (डील) के पास बैठ गये। जब इस प्रकार वे युद्धके लिये तत्पर हुए, तब देवता उनकी स्तुति करने लगे। देवताओंको साथ लेकर उन्होंने पश्चिमकी ओरसे दैत्योंका नगर घेर लिया। वीर पुरञ्जयका दैत्योंके साथ अत्यन्त रोमाञ्चकारी घोर संग्राम हुआ। युद्धमें जो-जो दैत्य उनके सामने आये, पुरञ्जयने बाणोंके द्वारा उन्हें यमराजके हवाले कर दिया। उनके बाणोंकी वर्षा क्या थी, प्रलयकालकी धधकती हुई आग। जो भी उसके सामने आता, छिन्न-भिन्न हो जाता। दैत्योंका साहस जाता रहा। वे रणभूमि छोड़कर अपने-अपने घरोंमें घुस गये। पुरञ्जयने उनका नगर, धन और ऐश्वर्य—सब कुछ जीतकर इन्द्रको दे दिया। इसीसे उन राजर्षिको पुर जीतनेके कारण 'पुरञ्जय', इन्द्रको वाहन बनानेके कारण 'इन्द्रवाह' और बैलके ककुदपर बैठनेके कारण 'ककुत्स्थ' कहा जाता है॥ १३–१९॥

पुरञ्जयका पुत्र था अनेना। उसका पुत्र पृथु हुआ। पृथुके विश्वरन्धि, उसके चन्द्र और चन्द्रके युवनाश्व। युवनाश्वके पुत्र हुए शाबस्त, जिन्होंने शाबस्तीपुरी बसायी। शाबस्तके बृहदश्व और उसके कुवलयाश्व हुए। ये बड़े बली थे। इन्होंने उत्तङ्क ऋषिको प्रसन्न करनेके लिये अपने इक्कीस हजार पुत्रोंको साथ लेकर धुन्धु नामक दैत्यका वध किया। इसीसे उनका नाम हुआ 'धुन्धुमार'। धुन्धु दैत्यके मुखकी आगसे उनके सब पुत्र जल गये। केवल तीन ही बच रहे थे। परीक्षित्! बचे हुए पुत्रोंके नाम थे—दृढाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व। दृढाश्वसे हर्यश्व और उससे निकुम्भका जन्म हुआ। निकुम्भके बर्हणाश्व, उसके कृशाश्व, कृशाश्वके सेनजित् और सेनजित्‌के युवनाश्व नामक पुत्र हुआ। युवनाश्व सन्तानहीन था, इसलिये वह बहुत दुखी होकर अपनी सौ स्त्रियोंके साथ वनमें चला गया। वहाँ ऋषियोंने बड़ी कृपा करके युवनाश्वसे पुत्रप्राप्तिके लिये बड़ी एकाग्रताके साथ इन्द्रदेवताका यज्ञ कराया। एक दिन राजा युवनाश्वको रात्रिके समय बड़ी प्यास लगी। वह यज्ञशालामें गया, किन्तु वहाँ देखा कि ऋषिलोग तो सो रहे हैं। तब जल मिलनेका और कोई उपाय न देख उसने वह मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल ही पी लिया। परीक्षित्! जब प्रातःकाल ऋषिलोग सोकर उठे और उन्होंने देखा कि कलशमें तो जल ही नहीं है, तब उन लोगोंने पूछा कि 'यह किसका काम है? पुत्र उत्पन्न करनेवाला जल किसने पी लिया?' अन्तमें जब उन्हें यह मालूम हुआ कि भगवान्‌की प्रेरणासे राजा युवनाश्वने ही उस जलको पी लिया है, तो उन लोगोंने भगवान्‌के चरणोंमें नमस्कार किया और कहा—

वास्तविक आत्मस्वरूपमें स्थित हो गये। वह स्वरूप साक्षात् परब्रह्म है। वह सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, शून्यके समान ही है। परन्तु वह शून्य नहीं, परम सत्य है। भक्तजन उसी वस्तुको 'भगवान् वासुदेव' इस नामसे वर्णन करते हैं ॥३७–४९॥

दसवाँ अध्याय

भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! खट्वाङ्गके पुत्र दीर्घबाहु और दीर्घबाहुके परम यशस्वी पुत्र रघु हुए। रघुके अज और अजके पुत्र हुए महाराज दशरथ। देवताओंकी प्रार्थनासे साक्षात् परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि ही अपने अंशांशसे चार रूप धारण करके राजा दशरथके पुत्र हुए। उनके नाम थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न। परीक्षित्! सीतापति भगवान् श्रीरामका चरित्र तो तत्त्वदर्शी ऋषियोंने बहुत-कुछ वर्णन किया है और तुमने अनेक बार उसे सुना भी है ॥ १–३ ॥

भगवान् श्रीरामने अपने पिता राजा दशरथके सत्यकी रक्षाके लिये राजपाट छोड़ दिया और वे वन-वनमें फिरते रहे। उनके चरणकमल इतने सुकुमार थे कि परम सुकुमारी श्रीजानकीजीके करकमलोंका स्पर्श भी उनसे सहन नहीं होता था। वे ही चरण जब वनमें चलते-चलते थक जाते, तब हनूमान् और लक्ष्मण उन्हें दबा दबाकर उनकी थकावट मिटाते। शूर्पणखाको नाक-कान काटकर विरूप कर देनेके कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजीका वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोगके कारण क्रोधवश उनकी भौंहें तन गयीं, जिन्हें देखकर समुद्रतक भयभीत हो गया। इसके बाद उन्होंने समुद्रपर पुल बाँधा और लङ्कामें जाकर दुष्ट राक्षसोंको वैसे ही भस्म कर दिया, जैसे वृक्षोंकी रगड़से उत्पन्न हुई आग उन वृक्षोंको भस्म कर देती है। वे कोसल-नरेश हमारी रक्षा करें ॥ ४ ॥

भगवान् श्रीरामने विश्वामित्रके यज्ञमें लक्ष्मणके सामने ही मारीच आदि राक्षसोंको मार डाला। वे सब बड़े बड़े राक्षसोंकी गिनतीमें थे। परीक्षित्! जनकपुरमें सीताजीका स्वयंवर हो रहा था। संसारके चुने हुए वीरोंकी सभामें भगवान् शङ्करका वह भयङ्कर धनुष रक्खा हुआ था। वह इतना भारी था कि तीन सौ वीर बड़ी कठिनाईसे उसे स्वयंवरसभामें ला सके थे। भगवान् श्रीरामने उस धनुषको बात-की-बातमें उठाकर उसपर डोरी चढ़ा दी और खींचकर बीचो-बीचसे उसके दो टुकड़े कर दिये—ठीक वैसे ही, जैसे हाथीका बच्चा खेलते-खेलते ईख तोड़ डाले। भगवान्ने जिन्हें अपने वक्षःस्थलपर स्थान देकर



सम्मानित किया है, वे श्रीलक्ष्मीजी ही सीताके नामसे जनकपुरमें अवतीर्ण हुई थीं। वे गुण, शील, अवस्था, शरीरकी गठन और सौन्दर्यमें सर्वथा भगवान् श्रीरामके अनुरूप थीं। भगवान्ने धनुष तोड़कर उन्हें प्राप्त कर लिया। अयोध्याको लौटते समय मार्गमें उन परशुरामजीसे भेंट हुई, जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको राजवंशके बीजसे भी रहित कर दिया था। भगवान्ने उनके बढ़े हुए गर्वको नष्ट कर दिया। इसके बाद पिताके वचनको सत्य करनेके लिये उन्होंने वनवास स्वीकार किया। यद्यपि महाराज दशरथने अपनी पत्नीके अधीन होकर ही उसे वैसा वचन दिया था, फिर भी वे सत्यके बन्धनमें बँध गये थे। इसलिये भगवान्ने अपने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की। उन्होंने प्राणोंके समान प्यारे राज्य, लक्ष्मी, प्रेमी, हितैषी मित्र और महलोंको छोड़कर अपनी पत्नीके साथ वनकी यात्रा की; क्योंकि उन्हें किसीके प्रति कोई आसक्ति न थी। वनमें पहुँचकर भगवान्ने राक्षसराज रावणकी बहिन शूर्पणखाको विरूप कर दिया। क्योंकि उसकी बुद्धि बहुत ही कलुषित, काम-वासनाके कारण अशुद्ध थी। उसके पक्षपाती खर, दूषण, त्रिशिरा आदि प्रधान-प्रधान भाइयोंको—

हो गया कि वे उनके लिये आपसके प्रेमभावको तिलाञ्जलि देकर परस्पर कलह करने लगीं और एक-दूसरीसे कहने लगीं कि 'ये तुम्हारे योग्य नहीं, मेरे योग्य हैं।' ऋग्वेदी सौभरिने उन सभीका पाणिग्रहण कर लिया। वे अपनी अपार तपस्याके प्रभावसे बहुमूल्य सामग्रियोंसे सुसज्जित, अनेकों उपवनों और निर्मल जलसे परिपूर्ण सरोवरोंसे युक्त एवं सौगन्धिक पुष्पोंके बगीचोंसे घिरे महलोंमें बहुमूल्य शय्या, आसन, वस्त्र, आभूषण, स्नान, उबटन, सुस्वादु भोजन और पुष्पमालाओंके द्वारा अपनी पत्नियोंके साथ विहार करने लगे। सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये स्त्री-पुरुष सदा-सर्वदा सर्वत्र उनकी सेवामें लगे रहते। कहीं पक्षी चहकते रहते, तो कहीं भौंरे गुंजार करते रहते। और कहीं-कहीं वन्दीजन उनकी विरदावलीका बखान करते रहते। सातों द्वीपके राजा मान्धाता सौभरिजीकी इस गृहस्थीका सुख देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उनका यह गर्व कि, मैं सार्वभौम सम्पत्तिका स्वामी हूँ, जाता रहा। इस प्रकार सौभरिजी गृहस्थीके सुखमें रम गये और अपनी नीरोग इन्द्रियोंसे अनेकों विषयोंका सेवन करते रहे। फिर भी जैसे घीकी बूँदोंसे आग तृप्त नहीं होती, वैसे ही उन्हें सन्तोष नहीं हुआ ॥ ४३–४८ ॥

ऋग्वेदाचार्य सौभरिजी एक दिन स्वस्थ चित्तसे बैठे हुए थे। उस समय उन्होंने देखा कि मत्स्यराजके क्षणभरके सङ्गसे मैं किस प्रकार अपनी तपस्या तथा अपना आपा तक खो बैठा। वे सोचने लगे—'अरे, मैं तो बड़ा तपस्वी था। मैंने भलीभाँति अपने व्रतोंका अनुष्ठान भी किया था। मेरा यह अधःपतन तो देखो! मैंने दीर्घकालसे अपने ब्रह्मतेजको अक्षुण्ण रक्खा था, परन्तु जलके भीतर विहार करती हुई एक मछलीके संसर्गसे मेरा वह ब्रह्मतेज नष्ट हो गया। अतः जिसे मोक्षकी इच्छा है, उस पुरुषको चाहिये कि वह भोगी प्राणियोंका सङ्ग सर्वथा छोड़ दे और एक क्षणके लिये भी अपनी इन्द्रियोंको बहिर्मुख न होने दे। अकेला ही रहे और एकान्तमें अपने चित्तको सर्वशक्तिमान् भगवान्में ही लगा दे। यदि सङ्ग करनेकी आवश्यकता ही हो, तो भगवान्के अनन्यप्रेमी निष्ठावान् महात्माओंका ही सङ्ग करे। कितने खेदकी बात है कि जलमें रहनेवाली एक मछलीके सङ्गसे मैंने अपनी एकान्त तपस्या छोड़ दी और एकसे पचास हो गया! उतनेसे भी सन्तोष नहीं हुआ और फिर सन्तानरूपसे बढ़कर मेरी संख्या पाँच हजारतक पहुँच गयी। विषयोंमें सत्यबुद्धि होनेसे मायाके गुणोंने मेरी बुद्धि हर ली। अब तो लोक और परलोकके सम्बन्धमें मेरा मन इतनी लालसाओंसे भर गया है कि मैं किसी तरह उनका पार ही नहीं पाता।' इस प्रकार विचार करते हुए वे कुछ दिनोंतक तो घरहीमें रहे। फिर विरक्त होकर उन्होंने संन्यास ले लिया और वे वनमें चले गये। अपने पतिको ही सर्वस्व माननेवाली उनकी पत्नियोंने भी उनके साथ ही वनकी यात्रा की। वहाँ जाकर परम संयमी सौभरिजीने बड़ी घोर तपस्या की, शरीरको सुखा दिया तथा आहवनीय आदि अग्नियोंके साथ ही अपने-आपको परमात्मामें लीन कर दिया। परीक्षित्! उनकी पत्नियोंने जब अपने पति सौभरि मुनिकी आध्यात्मिक गति देखी, तब जैसे ज्वालाएँ शान्त अग्निमें लीन हो जाती हैं—वैसे ही वे उनके प्रभावसे सती होकर उन्हींमें लीन हो गयीं, उन्हींकी गतिको प्राप्त हुईं ॥ ४९–५५ ॥

सातवाँ अध्याय

राजा त्रिशङ्कु और हरिश्चन्द्रकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! मान्धाताके पुत्रोंमें सबसे श्रेष्ठ था अम्बरीष। उनके दादा युवनाश्वने उन्हें पुत्रके रूपमें स्वीकार कर लिया था। उनका पुत्र हुआ यौवनाश्व और यौवनाश्वका हारीत। मान्धाताके वंशमें ये तीन अवान्तर गोत्रोंके प्रवर्तक हुए। नागोंने अपनी बहिन नर्मदाका विवाह पुरुकुत्ससे कर दिया था। नागराज वासुकिकी आज्ञासे नर्मदा अपने पतिको रसातलमें ले गयी। वहाँ भगवान्की शक्तिसे सम्पन्न होकर पुरुकुत्सने वध करनेयोग्य गन्धर्वोंको मार डाला। इसपर नागराजने प्रसन्न होकर पुरुकुत्सको वर दिया कि जो इस प्रसङ्गका स्मरण करेगा, वह सर्पोंसे निर्भय हो जायगा। राजा पुरुकुत्सका पुत्र त्रसद्दस्यु था। उसके पुत्र हुए अनरण्य। अनरण्यके हर्यश्व, उसके अरुण, अरुणके त्रिबन्धन और त्रिबन्धनके पुत्र सत्यव्रत हुए। यही सत्यव्रत त्रिशङ्कुके नामसे विख्यात हुए। यद्यपि त्रिशङ्कु अपने पिता और गुरुके शापसे चाण्डाल हो गये थे, परन्तु विश्वामित्रजीके प्रभावसे वे सशरीर स्वर्गमें चले गये। देवताओंने उन्हें

उसे यज्ञपशु बनानेके लिये अपने पिताको सौंपकर उनके चरणोंमें नमस्कार किया। तब परम यशस्वी एवं श्रेष्ठ चरित्र-वाले राजा हरिश्चन्द्रने महोदर रोगसे छूटकर वरुण आदि देवताओंका यजन किया। उस यज्ञमें विश्वामित्रजी होता हुए। परम संयमी जमदग्निने अध्वर्युका काम किया। वसिष्ठजी ब्रह्मा बने और अयास्य मुनि साम गायन करनेवाले उद्‌गाता बने। उस समय इन्द्रने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्रको एक सोने-का रथ दिया था ॥ ७–२३ ॥

परीक्षित्! आगे चलकर मैं शुनःशेपका माहात्म्य वर्णन करूँगा। हरिश्चन्द्रको अपनी पत्नीके साथ सत्यमें दृढ़तापूर्वक स्थित देखकर विश्वामित्रजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उन्हें उस ज्ञानका उपदेश किया, जिसका कभी नाश नहीं होता। उसके अनुसार राजा हरिश्चन्द्रने अपने मनको पृथ्वीमें, पृथ्वी-को जलमें, जलको तेजमें, तेजको वायुमें और वायुको आकाशमें स्थिर करके, आकाशको अहङ्कारमें लीन कर दिया। फिर अहङ्कारको महत्तत्त्वमें लीन करके उसमें ज्ञान-कलाका ध्यान किया और उससे अज्ञानको भस्म कर दिया। इसके बाद निर्वाण-सुखकी अनुभूतिसे उस ज्ञान-कलाका भी परित्याग कर दिया और समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर वे अपने उस स्वरूपमें स्थित हो गये, जो न तो किसी प्रकार बतलाया जा सकता है और न तो उसके सम्बन्धमें किसी प्रकारका अनुमान ही किया जा सकता है ॥ २४–२७ ॥

आठवाँ अध्याय

सगर-चरित्र

रोहितका पुत्र था हरित। हरितसे चम्प हुआ। उसीने चम्पापुरी बसायी थी। चम्पका सुदेव, सुदेवका विजय, विजयका भरुक, भरुकका वृक और वृकका पुत्र हुआ बाहुक। शत्रुओंने बाहुकसे राज्य छीन लिया, तब वह अपनी पत्नीके साथ वनमें चला गया। वनमें जानेपर बुढ़ापेके कारण जब बाहुककी मृत्यु हो गयी, तब उसकी पत्नी भी उसके साथ सती होनेको उद्यत हुई। परन्तु महर्षि और्वको यह मालूम था कि इसे गर्भ है। इसलिये उन्होंने उसे सती होने-से रोक दिया। जब उसकी सौतोंको यह बात मालूम हुई, तो उन्होंने उसे भोजनके साथ गर (विष) दे दिया। परन्तु गर्भपर उस विषका कोई प्रभाव न पड़ा; बल्कि उस विषको लिये हुए ही एक बालकका जन्म हुआ, जो गरके साथ पैदा होनेके कारण 'सगर' कहलाया। सगर बड़े यशस्वी राजा हुए ॥ १–४ ॥

सगर चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्हींके पुत्रोंने पृथ्वी खोद-कर समुद्र बना दिया था। सगरने अपने गुरुदेव और्वकी आज्ञा मानकर तालजङ्घ, यवन, शक, हैहय और बर्बर जाति-के लोगोंका वध नहीं किया, बल्कि उन्हें विरूप बना दिया। उनमेंसे कुछके सिर मुँड़वा दिये, कुछके मूँछ-दाढ़ी रखवा दी, कुछको खुले बालोंवाला बना दिया तो कुछको आधा मुँड़वा दिया। कुछ लोगोंको सगरने केवल वस्त्र ओढ़नेकी ही आज्ञा दी, पहननेकी नहीं। और कुछको केवल लँगोटी पहनने-को ही कहा, ओढ़नेको नहीं। इसके बाद राजा सगरने और्व ऋषिके उपदेशानुसार अश्वमेध यज्ञके द्वारा सम्पूर्ण वेद एवं देवतामय, आत्मस्वरूप, सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की आराधना की। उसके यज्ञमें जो घोड़ा छोड़ा गया था, उसे इन्द्रने चुरा लिया। उस समय महारानी सुमतिके गर्भसे उत्पन्न सगरके पुत्रोंने अपने पिताके आज्ञानुसार घोड़ेके लिये सारी पृथ्वी छान डाली। जब उन्हें कहीं घोड़ा न मिला, तब उन्होंने बड़े घमंडसे सारी पृथ्वीको खोद डाला। खोदते-खोदते उन्हें पूर्व और उत्तरके कोनेपर कपिल मुनिके पास अपना घोड़ा दिखायी दिया। घोड़ेको देखकर वे साठ हजार राजकुमार शस्त्र उठाकर यह कहते हुए उनकी ओर दौड़ पड़े कि 'यही हमारे घोड़ेको चुरानेवाला चोर है। देखो तो सही, इसने इस समय कैसे आँखें मूँद रक्खी हैं! यह पापी है। इसको मार डालो, मार डालो!' उसी समय कपिल मुनिने अपनी पलकें खोलीं। इन्द्रने राजकुमारोंकी बुद्धि हर ली थी, इसीसे उन्होंने कपिलमुनि-जैसे महापुरुषका तिरस्कार किया। इस तिरस्कारके फलस्वरूप उनके शरीरमें ही आग जल उठी, जिससे क्षणभरमें ही वे

राक्षसोंकी वह विशाल सेना तलवार, त्रिशूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, बाण, भाले, खड्ग आदि शस्त्र अस्त्रोंसे सुरक्षित और अत्यन्त दुर्गम थी। भगवान् श्रीरामने सुग्रीव, लक्ष्मण, हनूमान्, गन्धमादन, नील, अङ्गद, जाम्बवान् और पनस आदि वीरोंको अपने साथ लेकर राक्षसोंकी सेनाका सामना किया। रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामके अङ्गद आदि सब सेनापति राक्षसोंकी चतुरङ्गिणी सेना—हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदलोंके साथ द्वन्द्वयुद्धकी रीतिसे भिड़ गये और राक्षसोंको वृक्ष, पर्वतशिखर, गदा और बाणोंसे मारने लगे। उनका मारा जाना तो स्वाभाविक ही था। क्योंकि वे उसी रावणके अनुचर थे, जिसका मङ्गल श्रीसीताजीको स्पर्श करनेके कारण पहले ही नष्ट हो चुका था॥ १६–२०॥

जब राक्षसराज रावणने देखा कि मेरी सेनाका तो नाश हुआ जा रहा है, तब वह क्रोधमें भरकर पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो भगवान् श्रीरामके सामने आया। उस समय इन्द्रका सारथि मातलि बड़ा ही तेजस्वी दिव्य रथ लेकर आया और उसपर भगवान् श्रीरामजी विराजमान हुए। रावण अपने तीखे बाणोंसे उनपर प्रहार करने लगा। भगवान् श्रीरामजीने रावणसे कहा—"नीच राक्षस! तुम कुत्तेकी तरह हमारी अनुपस्थितिमें हमारी प्राणप्रिया पत्नीको हर लाये। तुमने दुष्टताकी हद कर दी! तुम्हारे-जैसा निर्लज्ज तथा निन्दनीय और कौन होगा। जैसे कालको कोई टाल नहीं सकता—कर्तापनेके अभिमानीको वह फल दिये बिना रह नहीं सकता, वैसे ही आज मैं तुम्हें तुम्हारी करनीका फल



चखाता हूँ।" इस प्रकार रावणको फटकारते हुए भगवान् श्रीरामने अपने धनुषपर चढ़ाया हुआ बाण उसपर छोड़ा। उस बाणने वज्रके समान उसके हृदयको विदीर्ण कर दिया। वह अपने दसों मुखोंसे खून उगलता हुआ विमानसे गिर पड़ा—ठीक वैसे ही, जैसे पुण्यात्मालोग भोग समाप्त होनेपर स्वर्गसे गिर पड़ते हैं। उस समय उसके पुरजन परिजन 'हाय, हाय' करके चिल्लाने लगे॥ २१–२३॥

तदनन्तर हजारों राक्षसियाँ मन्दोदरीके साथ रोती हुई लङ्कासे निकल पड़ीं और रणभूमिमें आयीं। उन्होंने देखा कि उनके स्वजन-सम्बन्धी लक्ष्मणजीके बाणोंसे छिन्न भिन्न होकर पड़े हुए हैं। वे अपने हाथों अपनी छाती पीट-पीटकर और अपने सगे सम्बन्धियोंको हृदयसे लगा लगाकर ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगीं—"स्वामी! आज हम सब बेमौत मारी गयीं। एक दिन वह था, जब आपके भयसे समस्त लोकोंमें त्राहि त्राहि मच जाती थी। आज वह दिन आ पहुँचा कि आपके न रहनेसे हमारे शत्रु लङ्काकी दुर्दशा कर रहे हैं और यह प्रश्न उठ रहा है कि अब लङ्का किसके अधीन रहेगी। आप सब प्रकारसे सम्पन्न थे, किसी भी बातकी कमी न थी। परन्तु आप कामके वश हो गये और यह नहीं सोचा कि सीताजी कितनी तेजस्विनी हैं और उनका कितना प्रभाव है। आपकी यही भूल आपकी इस दुर्दशाका कारण बन गयी। कभी आपके कार्मोसे हम सब और समस्त राक्षसवंश आनन्दित होता था और आज हम सब तथा यह सारी लङ्का नगरी विधवा हो गयी। आपका वह शरीर, जिसके लिये आपने सब कुछ कर डाला, आज गीधोंका आहार बन रहा है और अपने आत्माको आपने नरकका अधिकारी बना डाला। यह सब आपहीकी नासमझी और कामुकताका फल है॥२४–२८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कोसलाधीश भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे विभीषणने अपने स्वजन सम्बन्धियोंका पितृयज्ञकी विधिसे शास्त्रके अनुसार अन्त्येष्टि-कर्म किया। इसके बाद भगवान् श्रीरामने अशोकवाटिकाके आश्रममें अशोक वृक्षके नीचे बैठी हुई श्रीसीताजीको देखा। वे उन्हींके विरहकी व्याधिसे पीड़ित एवं अत्यन्त दुर्बल हो रही थीं। अपनी प्राणप्रिया अर्धाङ्गिनी श्रीसीताजीको अत्यन्त दीन अवस्थामें देखकर श्रीरामका हृदय प्रेम और कृपासे भर आया। इधर भगवान्का दर्शन पाकर सीताजीका हृदय प्रेम और आनन्दसे परिपूर्ण हो गया, उनका मुख-कमल खिल उठा। भगवान्ने विभीषणको राक्षसोंका

था तो त्रेतायुग, परन्तु मालूम होता था मानो सत्ययुग ही है। परीक्षित्! उस समय वन, नदी, पर्वत, वर्ष, द्वीप और समुद्र—सब-के-सब प्रजाके लिये कामधेनुके समान समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले बन रहे थे। इन्द्रियातीत भगवान् श्रीरामके राज्य करते समय किसीको मानसिक चिन्ता या शारीरिक रोग नहीं होते थे। बुढ़ापा, दुर्बलता, दुःख, शोक, भय और थकावट नाममात्रके लिये भी नहीं थे। यहाँतक कि जो मरना नहीं चाहते थे, उनकी मृत्यु भी नहीं होती थी। भगवान् श्रीरामने एकपत्नीका व्रत धारण कर रक्खा था, उनके चरित्र अत्यन्त पवित्र एवं राजर्षियोंके-से थे। वे गृहस्थोचित स्वधर्मकी शिक्षा देनेके लिये स्वयं उस धर्मका आचरण करते थे। सतीशिरोमणि सीताजी अपने पतिके हृदयका भाव जानती रहतीं। उन्होंने प्रेमसे, सेवासे, शीलसे, अत्यन्त विनयसे तथा अपनी बुद्धि और लज्जा आदि गुणोंसे अपने पति भगवान् श्रीरामजीका चित्त चुरा लिया था॥ ४६–५६॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवान् श्रीरामकी शेष लीलाओंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीरामने गुरु वसिष्ठजीको अपना आचार्य बनाकर उत्तम सामग्रियोंसे युक्त यज्ञोंके द्वारा अपने आप ही अपने सर्वदेवस्वरूप स्वयम्प्रकाश आत्माका यजन किया। उन्होंने होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण, अध्वर्युको पश्चिम और उद्गाताको उत्तर दिशा दे दी। तथा उनके बीचमें जितनी भूमि बच रही थी, वह उन्होंने आचार्यको दे दी। उनका यह निश्चय था कि सम्पूर्ण भूमण्डलका एकमात्र अधिकारी निःस्पृह ब्राह्मण ही है। इस प्रकार सारे भूमण्डलका दान करके उन्होंने अपने शरीरके वस्त्र और अलङ्कार ही अपने पास रक्खे। इसी प्रकार महारानी सीताजीके पास भी केवल माङ्गलिक वस्त्र और आभूषण ही बच रहे। जब आचार्य आदि ब्राह्मणोंने देखा कि भगवान् श्रीराम तो ब्राह्मणोंको ही अपना इष्टदेव मानते हैं, उनके हृदयमें ब्राह्मणोंके प्रति अनन्त स्नेह है, तब उनका हृदय प्रेमसे द्रवित हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर सारी पृथ्वी भगवान्‌को लौटा दी और कहा—'प्रभो! आप सब लोकोंके एकमात्र स्वामी हैं। आप तो हमारे हृदयके भीतर रहकर अपनी ज्योतिसे अज्ञानान्धकारका नाश कर रहे हैं। ऐसी स्थितिमें भला, आपने हमे क्या नहीं दे रक्खा है? आपका ज्ञान अनन्त है। पवित्र कीर्तिवाले पुरुषोंमें आप सर्वश्रेष्ठ हैं। उन महात्माओंको, जो किसीको किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं पहुँचाते, आपने अपने चरणकमल दे रक्खे हैं। ऐसा होनेपर भी आप ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव मानते हैं। भगवन्! आपके इस रामरूपको हम नमस्कार करते हैं'॥ १–७॥

परीक्षित्! एक बार अपनी प्रजाकी स्थिति जाननेके लिये भगवान् श्रीरामजी रातके समय छिपकर बिना किसीको बतलाये घूम रहे थे। उस समय उन्होंने किसीकी यह बात सुनी। वह अपनी पत्नीसे कह रहा था—'अरी! तू दुष्ट और कुलटा है। तू पराये घरमें रह आयी है। अब मैं तुझे अपने घर नहीं रख सकता। मैं राम-जैसा स्त्रीलोभी नहीं हूँ कि फिरसे तुझे रख लूँ।' सचमुच सब लोगोंको प्रसन्न रखना टेढ़ी खीर है। क्योंकि मूर्खोंकी तो कमी नहीं है। जब भगवान् श्रीरामने बहुतोंके मुँहसे ऐसी बात सुनी, तो वे लोकापवादसे कुछ भयभीत से हो गये। उन्होंने श्रीसीताजीका परित्याग कर दिया और वे वाल्मीकि मुनिके आश्रममें रहने लगीं। सीताजी उस समय गर्भवती थीं। समय आनेपर उन्होंने एक



साथ ही दो पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हुए—कुश और लव। वाल्मीकि मुनिने उनके जातकर्मादि संस्कार किये।

ईर्ष्या और मोहसे लोगोंका चित्त शरीर तथा घर आदिमें भटकने लगता है। लोग इसीके चक्करमें फँस जाते हैं। समस्त प्राणियोंके आत्मा प्रभो! आज आपके दर्शनसे मेरे मोहकी वह दृढ़ फाँसी कट गयी जो कामना, कर्म और इन्द्रियोंको जीवन-दान देती है ॥२२–२७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब अंशुमान्ने भगवान् कपिलमुनिके प्रभावका इस प्रकार गायन किया, तब उन्होंने मन-ही-मन अंशुमान्पर बड़ा अनुग्रह किया और कहा—॥ २८ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—'बेटा! यह घोड़ा तुम्हारे पितामहका यज्ञपशु है। इसे तुम ले जाओ। तुम्हारे जले हुए चाचाओंका उद्धार केवल गङ्गाजलसे होगा, और कोई उपाय नहीं है।' अंशुमान्ने बड़ी नम्रतासे उन्हें प्रसन्न करके उनकी परिक्रमा की और वे घोड़ेको ले आये। सगरने उस यज्ञपशुके द्वारा यज्ञकी शेष क्रिया समाप्त की। तब राजा सगरने अंशुमान्को राज्यका भार सौंप दिया और वे स्वयं विषयोंसे निःस्पृह एवं बन्धनमुक्त हो गये। उन्होंने महर्षि और्वके बतलाये हुए मार्गसे परमपदकी प्राप्ति की ॥२९–३१॥

नवाँ अध्याय

भगीरथ-चरित्र और गङ्गावतरण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अंशुमान्ने गङ्गाजीको लानेकी कामनासे बहुत वर्षोंतक घोर तपस्या की। परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली, समय आनेपर उनकी मृत्यु हो गयी। अंशुमान्के पुत्र दिलीपने भी वैसी ही तपस्या की। परन्तु वे भी असफल ही रहे, समयपर उनकी भी मृत्यु हो गयी। दिलीपके पुत्र थे भगीरथ। उन्होंने बहुत बड़ी तपस्या की। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती गङ्गाने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि—'मैं तुम्हें वर देनेके लिये



आयी हूँ।' उनके ऐसा कहनेपर राजा भगीरथने बड़ी नम्रतासे निवेदन किया कि 'आप मर्त्यलोकमें चलिये।'

गङ्गाजीने कहा—जिस समय मैं स्वर्गसे पृथ्वीतलपर गिरूँ, उस समय मेरे वेगको कोई धारण करनेवाला होना चाहिये। भगीरथ! ऐसा न होनेपर मैं पृथ्वीको फोड़कर रसातलमें चली जाऊँगी। और असलमें तो मैं पृथ्वीपर आना ही नहीं चाहती। क्योंकि लोग तो अपने पाप मुझमें बहा देंगे, किन्तु मैं उनके वे पाप कहाँ धोने जाऊँगी? भगीरथ! इस विषयमें तुम स्वयं विचार कर लो ॥ १–५ ॥

भगीरथने कहा—'माता! जिन्होंने लोक-परलोक, धन-सम्पत्ति और स्त्री-पुत्रकी कामनाका संन्यास कर दिया है, जो संसारसे उपरत होकर अपने-आपमें शान्त हैं, जो ब्रह्मनिष्ठ और लोकोंको पवित्र करनेवाले परोपकारी सज्जन हैं—वे अपने अङ्गस्पर्शसे तुम्हारे पापोंको नष्ट कर देंगे। क्योंकि उनके हृदयमें अघरूप अघासुरको मारनेवाले भगवान् सर्वदा निवास करते हैं। अब रही बात तुम्हारा वेग धारण करनेकी, सो समस्त प्राणियोंके आत्मा रुद्रदेव उसे धारण कर लेंगे। क्योंकि जैसे साड़ी सूतोंमें ओतप्रोत है, वैसे ही यह सारा विश्व भगवान् रुद्रमें ही ओतप्रोत है।' परीक्षित्! गङ्गाजीसे इस प्रकार कहकर राजा भगीरथने तपस्याके द्वारा भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया। थोड़े ही दिनोंमें महादेवजी उनपर प्रसन्न हो गये। भगवान् शङ्कर तो सम्पूर्ण विश्वके हितैषी हैं, राजाकी बात उन्होंने स्वीकार कर ली। फिर शिवजीने सावधान होकर गङ्गाजीको अपने सिरपर धारण किया। क्यों न हो, भगवान्के चरणोंका सम्पर्क होनेके कारण गङ्गाजीका जल परम पवित्र जो है! इसके बाद राजर्षि भगीरथ त्रिभुवनपावनी गङ्गाजीको वहाँ ले गये, जहाँ उनके पितरोंके शरीर राखके ढेर बने पड़े थे। वे वायुके समान वेगसे चलनेवाले रथपर सवार होकर आगे-आगे

अतृप्त नेत्रोंसे कमलनयन भगवान्‌को देखते हुए उनपर पुष्पोंकी वर्षा करते ॥ २५—३० ॥

इस प्रकार प्रजाका निरीक्षण करके भगवान् फिर अपने महलोंमें आ गये। उनके वे महल पूर्ववर्ती राजाओंके द्वारा सेवित थे। उनमें इतने बड़े-बड़े सब प्रकारके खजाने थे, जो कभी समाप्त नहीं होते थे। वे बड़ी-बड़ी बहुमूल्य बहुत-सी सामग्रियोंसे सुसज्जित थे। महलोंके द्वार तथा देहलियाँ मूँगेकी बनी हुई थीं। उनमें जो खंभे थे, वे वैदूर्यमणिके थे। मरकतमणिके बड़े सुन्दर-सुन्दर फर्श थे, तथा स्फटिकमणिकी दीवारें चमकती रहती थीं। रंग-बिरंगी मालाओं, पताकाओं, मणियोंकी चमक, शुद्ध चेतनके समान उज्ज्वल मोती, सुन्दर-सुन्दर भोग-सामग्री, सुगन्धित धूप-दीप तथा फूलोंके गहनोंसे वे महल खूब सजाये हुए थे। आभूषणोंको भी भूषित करनेवाले देवताओंके समान स्त्री-पुरुष उसकी सेवामें लगे रहते थे। परीक्षित्! भगवान् श्रीरामजी आत्माराम जितेन्द्रिय पुरुषोंके शिरोमणि थे। उसी महलमें वे अपनी प्राणप्रिया प्रेममयी पत्नी श्रीसीताजीके साथ विहार करते थे। सभी स्त्री-पुरुष जिनके चरण-कमलोंका ध्यान करते रहते हैं, वे ही भगवान् श्रीराम बहुत वर्षोंतक धर्मकी मर्यादाका पालन करते हुए समयानुसार भोगोंका उपभोग करते रहे ॥ ३१—३६ ॥

बारहवाँ अध्याय

इक्ष्वाकुवंशके शेष राजाओंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कुशका पुत्र हुआ अतिथि, उसका निषध, निषधका नभ, नभका पुण्डरीक, पुण्डरीकका क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाका देवानीक, देवानीकका अनीह, अनीहका पारियात्र, पारियात्रका बलस्थल और बलस्थलका पुत्र हुआ वज्रनाभ। यह सूर्यका अंश था। वज्रनाभसे खगण, खगणसे विधृति और विधृतिसे हिरण्यनाभकी उत्पत्ति हुई। वह जैमिनिका शिष्य और योगाचार्य था। कोसलदेशवासी याज्ञवल्क्य ऋषिने उसकी शिष्यता स्वीकार करके उससे अध्यात्मयोगकी शिक्षा ग्रहण की थी। वह योग हृदयकी गाँठ काट देनेवाला तथा परम सिद्धि देनेवाला है। हिरण्यनाभका पुष्य, पुष्यका ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिका सुदर्शन, सुदर्शनका अग्निवर्ण, अग्निवर्णका शीघ्र और शीघ्रका पुत्र हुआ मरु। मरुने योगसाधनासे सिद्धि प्राप्त कर ली और वह इस समय भी कलाप नामक ग्राममें रहता है। कलियुगके अन्तमें सूर्यवंशके नष्ट हो जानेपर वह उसे फिरसे चलायेगा। मरुसे प्रसुश्रुत, उससे सन्धि और सन्धिसे अमर्षणका जन्म हुआ। अमर्षणका महस्वान् और महस्वान्‌का विश्वसाह्व। विश्वसाह्वका प्रसेनजित्, प्रसेनजित्‌का तक्षक और तक्षकका [illegible]। परीक्षित्!

काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाला है। इसलिये वीर! इस शरीरको नष्ट कर देना सभी पुरुषार्थोंको नष्ट कर देना है। फिर यह ब्राह्मण विद्वान् है। तपस्या, शील और बड़े-बड़े गुणोंसे सम्पन्न है। यह उन पुरुषोत्तम परब्रह्मकी समस्त प्राणियोंके आत्माके रूपमें आराधना करना चाहता है, जो समस्त पदार्थोंमें विद्यमान रहते हुए भी उनके पृथक्-पृथक् गुणोंसे छिपे हुए हैं। राजन्! आप शक्तिशाली हैं। आप धर्मका मर्म भलीभाँति जानते हैं। जैसे पिताके हाथों पुत्रकी मृत्यु उचित नहीं, वैसे ही आप-जैसे श्रेष्ठ राजर्षिके हाथों मेरे श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि पतिका वध किसी प्रकार उचित नहीं है। आपका साधु-समाजमें बड़ा सम्मान है। भला आप मेरे परोपकारी, निरपराध, श्रोत्रिय एवं ब्रह्मवादी पतिका वध कैसे ठीक समझ रहे हैं? ये तो गौके समान निरीह हैं! फिर भी यदि आप इन्हें खा ही डालना चाहते हैं, तो पहले मुझे खा डालिये। क्योंकि अपने पतिके बिना मैं मुर्देके समान हो जाऊँगी और एक क्षण भी जीवित न रह सकूँगी।' ब्राह्मणपत्नी बड़ी ही करुणापूर्ण वाणीमें इस प्रकार कहकर अनाथकी भाँति रोने लगी। परन्तु सौदासने शापसे मोहित होनेके कारण उसकी प्रार्थनापर कुछ भी ध्यान न दिया और वह उस ब्राह्मणको वैसे ही खा गया, जैसे बाघ किसी पशुको खा जाय। जब ब्राह्मणीने देखा कि राक्षसने मेरे गर्भाधानके लिये उद्यत पतिको खा लिया, तब उसे बड़ा शोक हुआ। सती ब्राह्मणीने क्रोध करके राजाको शाप दिया कि 'रे पापी! मैं अभी कामसे पीड़ित हो रही थी। ऐसी अवस्थामें तूने मेरे पतिको खा डाला है। इसलिये मूर्ख! जब तू स्त्रीसे सहवास करना चाहेगा, तभी तेरी मृत्यु हो जायगी।' इस प्रकार मित्रसहको शाप देकर ब्राह्मणी अपने पतिकी अस्थियोंको धधकती हुई चितामें डालकर स्वयं भी सती हो गयी और उसने वही गति प्राप्त की, जो उसके पतिदेवको मिली थी। क्यों न हो, वह अपने पतिको छोड़कर और किसी लोकमें जाना भी तो नहीं चाहती थी ॥२०—३६॥

बारह वर्ष बीतनेपर राजा सौदास शापसे मुक्त हो गये। जब वे सहवासके लिये अपनी पत्नीके पास गये, तब उसने इन्हें रोक दिया। क्योंकि उसे उस ब्राह्मणीके शापका पता था। इसके बाद उन्होंने स्त्री-सुखका बिल्कुल परित्याग ही कर दिया। इस प्रकार अपने कर्मके फलस्वरूप वे सन्तानहीन हो गये। तब वसिष्ठजीने उनके कहनेसे मदयन्तीको गर्भाधान कराया। मदयन्ती सात वर्षतक गर्भ धारण किये रही, परन्तु बच्चा पैदा नहीं हुआ। तब वसिष्ठजीने पत्थरसे उसके पेटपर आघात किया। इससे जो बालक हुआ, वह अश्म (पत्थर) की चोटसे पैदा होनेके कारण 'अश्मक' कहलाया। अश्मकसे मूलकका जन्म हुआ। जब परशुरामजी पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर रहे थे, तब स्त्रियोंने उसे छिपाकर रख लिया था। इसीसे उसका एक नाम 'नारीकवच' भी हुआ। उसे मूलक इसलिये कहते हैं कि वह पृथ्वीके क्षत्रियहीन हो जानेपर उस वंशका मूल (प्रवर्तक) बना। मूलकके पुत्र हुए दशरथ, दशरथके ऐडविड और ऐडविडके राजा विश्वसह। विश्वसहके पुत्र ही चक्रवर्ती सम्राट् खट्वाङ्ग हुए। युद्धमें उन्हें कोई जीत नहीं सकता था। उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे दैत्योंका वध किया था। जब उन्हें देवताओंसे यह मालूम हुआ कि अब मेरी आयु केवल दो ही घड़ी बाकी है, तब वे अपनी राजधानीमें लौट आये और अपने मनको उन्होंने भगवान्में लगा दिया। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि 'मेरे कुलके इष्ट देवता हैं ब्राह्मण! उनसे बढ़कर मेरा प्रेम अपने प्राणोंपर भी नहीं है। पत्नी, पुत्र, लक्ष्मी, राज्य और पृथ्वी भी मुझे उतने प्यारे नहीं लगते। मेरा मन बचपनमें भी कभी अधर्मकी ओर नहीं गया। मैंने पवित्रकीर्ति भगवान्के अतिरिक्त और कुछ भी कहीं नहीं देखा। तीनों लोकोंके स्वामी देवताओंने मुझे मुँहमाँगा वर देनेको कहा। परन्तु मैंने उन भोगोंकी लालसा बिल्कुल नहीं की। क्योंकि समस्त प्राणियोंके जीवनदाता श्रीहरिकी भावनामें ही मैं मग्न हो रहा था। जिन देवताओंकी इन्द्रियाँ और मन विषयोंमें भटक रहे हैं वे सत्त्वगुणप्रधान होनेपर भी अपने हृदयमें विराजमान, सदा-सर्वदा प्रियतमके रूपमें रहनेवाले अपने आत्मस्वरूप भगवान्को नहीं जानते। फिर भला जो रजोगुणी और तमोगुणी हैं, वे तो जान ही कैसे सकते हैं। इसलिये अब इन विषयोंमें मैं नहीं रमता। ये तो मायाके खेल हैं। आकाशमें झूठमूठ प्रतीत होनेवाले गन्धर्व-नगरोंसे बढ़कर इनकी सत्ता नहीं है। ये तो अज्ञानवश ही चित्तपर चढ़ गये थे। संसारके सच्चे रचयिता भगवान्की भावनामें लीन होकर मैं विषयोंको छोड़ रहा हूँ और केवल उन्हींकी शरण ले रहा हूँ।' परीक्षित्! भगवान्ने राजा खट्वाङ्गकी बुद्धिको पहलेहीसे अपनी ओर आकर्षित कर रक्खा था। इसीसे वे अन्त समयमें ऐसा निश्चय कर सके। अब उन्होंने शरीर आदि अनात्म पदार्थोंमें जो अज्ञानमूलक आत्मभाव था, उसका परित्याग कर दिया और अपने

अतृप्त नेत्रोंसे कमलनयन भगवान्‌को देखते हुए उनपर पुष्पोंकी वर्षा करते ॥ २५—३० ॥

इस प्रकार प्रजाका निरीक्षण करके भगवान् फिर अपने महलोंमें आ गये। उनके वे महल पूर्ववर्ती राजाओंके द्वारा सेवित थे। उनमें इतने बड़े-बड़े सब प्रकारके खजाने थे, जो कभी समाप्त नहीं होते थे। वे बड़ी-बड़ी बहुमूल्य बहुत-सी सामग्रियोंसे सुसज्जित थे। महलोंके द्वार तथा देहलियाँ मूँगेकी बनी हुई थीं। उनमें जो खंभे थे, वे वैदूर्यमणिके थे। मरकतमणिके बड़े सुन्दर-सुन्दर फर्श थे, तथा स्फटिकमणिकी दीवारें चमकती रहती थीं। रंग-बिरंगी मालाओं, पताकाओं, मणियोंकी चमक, शुद्ध चेतनके समान उज्ज्वल मोती, सुन्दर-सुन्दर भोग-सामग्री, सुगन्धित धूप दीप तथा फूलोंके गहनोंसे वे महल खूब सजाये हुए थे। आभूषणोंको भी भूषित करनेवाले देवताओंके समान स्त्री-पुरुष उसकी सेवामें लगे रहते थे। परीक्षित्! भगवान् श्रीरामजी आत्माराम जितेन्द्रिय पुरुषोंके शिरोमणि थे। उसी महलमें वे अपनी प्राणप्रिया प्रेममयी पत्नी श्रीसीताजीके साथ विहार करते थे। सभी स्त्री-पुरुष जिनके चरण-कमलोंका ध्यान करते रहते हैं, वे ही भगवान् श्रीराम बहुत वर्षोंतक धर्मकी मर्यादाका पालन करते हुए समयानुसार भोगोंका उपभोग करते रहे ॥ ३१—३६ ॥

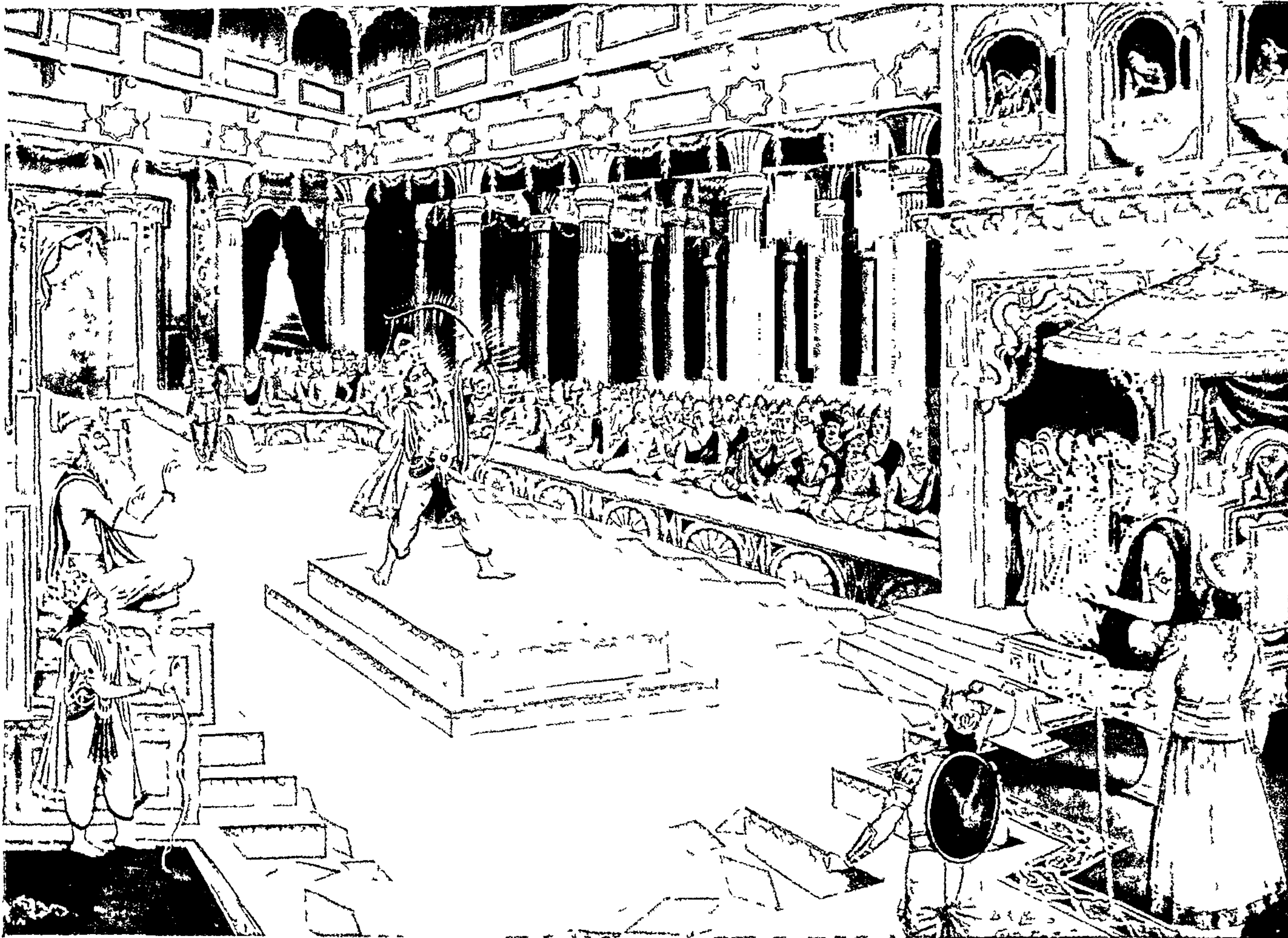
बारहवाँ अध्याय

इक्ष्वाकुवंशके शेष राजाओंका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कुशका पुत्र हुआ अतिथि, उसका निषध, निषधका नभ, नभका पुण्डरीक, पुण्डरीकका क्षेमधन्वा, क्षेमधन्वाका देवानीक, देवानीकका अनीह, अनीहका पारियात्र, पारियात्रका बलस्थल और बलस्थलका पुत्र हुआ वज्रनाभ। यह सूर्यका अंश था। वज्रनाभसे खगण, खगणसे विधृति और विधृतिसे हिरण्यनाभकी उत्पत्ति हुई। वह जैमिनिका शिष्य और योगाचार्य था। कोसलदेशवासी याज्ञवल्क्य ऋषिने उसकी शिष्यता स्वीकार करके उससे अध्यात्मयोगकी शिक्षा ग्रहण की थी। वह योग हृदयकी गाँठ काट देनेवाला तथा परम सिद्धि देनेवाला है। हिरण्यनाभका पुष्य, पुष्यका ध्रुवसन्धि, ध्रुवसन्धिका सुदर्शन, सुदर्शनका अग्निवर्ण, अग्निवर्णका शीघ्र और शीघ्रका पुत्र हुआ मरु। मरुने योगसाधनासे सिद्धि प्राप्त कर ली और वह इस समय भी कलाप नामक ग्राममें रहता है। कलियुगके अन्तमें सूर्यवंशके नष्ट हो जानेपर वह उसे फिरसे चलायेगा। मरुसे प्रसुश्रुत, उससे सन्धि और सन्धिसे अमर्षणका जन्म हुआ। अमर्षणका महस्वान् और महस्वान्‌का विश्वसाह्व। विश्वसाह्वका प्रसेनजित्, प्रसेनजित्‌का तक्षक और तक्षकका पुत्र बृहद्बल हुआ। परीक्षित्! इसी बृहद्बलको तुम्हारे पिता अभिमन्युने युद्धमें मार डाला था ॥ १—८ ॥

परीक्षित्! इक्ष्वाकुवंशके इतने नरपति हो चुके हैं। अब आनेवालोंके विषयमें सुनो। बृहद्बलका पुत्र होगा बृहद्रण। बृहद्रणका उरुक्रिय, उसका वत्सवृद्ध, वत्सवृद्धका प्रतिव्योम, प्रतिव्योमका भानु और भानुका पुत्र होगा सेनापति दिवाक। दिवाकका वीर सहदेव, सहदेवका बृहदश्व, बृहदश्वका भानुमान्, भानुमान्‌का प्रतीकाश्व और प्रतीकाश्वका पुत्र होगा सुप्रतीक। सुप्रतीकका मरुदेव, मरुदेवका सुनक्षत्र, सुनक्षत्रका पुष्कर, पुष्करका अन्तरिक्ष, अन्तरिक्षका सुतपा और सुतपाका पुत्र होगा अमित्रजित्। अमित्रजित्से बृहद्राज, बृहद्राजसे बर्हि, बर्हिसे कृतञ्जय, कृतञ्जयसे रणञ्जय और रणञ्जयसे सञ्जय होगा। सञ्जयका शाक्य, शाक्यका शुद्धोद और शुद्धोदका लाङ्गल, लाङ्गलका प्रसेनजित् और प्रसेनजित्‌का पुत्र क्षुद्रक होगा। क्षुद्रकसे रणक, रणकसे सुरथ और सुरथसे इस वंशके अन्तिम राजा सुमित्रका जन्म होगा। ये सब बृहद्बलके वंशधर होंगे। इक्ष्वाकुका यह वंश सुमित्रतक ही रहेगा। क्योंकि सुमित्रके राजा होनेपर कलियुगमें यह वंश समाप्त हो जायगा ॥ ९—१६ ॥

धनुष-भङ्ग



भगवान् श्रीरामने धनुषको उठाकर उसपर डोरी चढ़ा दी और खींचकर बीचो-बीचसे उसके दो टुकड़े कर दिये ।

पलक उठने और गिरनेसे उनके अस्तित्वका पता चलता रहेगा।' इसके बाद महर्षियोंने यह सोचकर कि राजाके न रहनेपर लोगोंमें अराजकता फैल जायगी, निमिके शरीरका मन्थन किया। उस मन्थनसे एक कुमार उत्पन्न हुआ। जन्म लेनेके कारण उसका नाम हुआ जनक। विदेहसे उत्पन्न होनेके कारण 'वैदेह' और मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण उसी बालकका नाम 'मिथिल' हुआ। उसीने मिथिलापुरी बसायी ॥११-१३॥

परीक्षित्! जनकका उदावसु, उदावसुका नन्दिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धनका सुकेतु, सुकेतुका देवरात, देवरातका बृहद्रथ, बृहद्रथका महावीर्य, महावीर्यका सुधृति, सुधृतिका धृष्टकेतु, धृष्टकेतुका हर्यश्व और हर्यश्वका मरु नामक पुत्र हुआ। मरुसे प्रतीपक, प्रतीपकसे कृतिरथ, कृतिरथसे देवमीढ, देवमीढसे विश्रुत और विश्रुतसे महाधृतिका जन्म हुआ। महाधृतिका कृतिरात, कृतिरातका महारोमा, महारोमाका स्वर्णरोमा और स्वर्णरोमाका पुत्र हुआ ह्रस्वरोमा। इसी ह्रस्वरोमाके पुत्र महाराज सीरध्वज थे। वे जब यज्ञके लिये धरती जोत रहे थे, तब उनके सीर (हल) के अग्रभाग (फाल) से सीताजीकी उत्पत्ति हुई। इसीसे उनका नाम 'सीरध्वज' पड़ा। सीरध्वजके कुशध्वज, कुशध्वजके धर्मध्वज और धर्मध्वजके दो पुत्र हुए—कृतध्वज और मितध्वज। कृतध्वजके केशिध्वज और मितध्वजके खाण्डिक्य हुए। केशिध्वज आत्मविद्यामें बड़ा प्रवीण था और खाण्डिक्य था कर्मकाण्डका मर्मज्ञ। वह केशिध्वजसे भयभीत होकर भाग गया। केशिध्वजका पुत्र भानुमान् और भानुमान्का शतद्युम्न था। शतद्युम्नसे शुचि, शुचिसे सनद्वाज, सनद्वाजसे ऊर्ध्वकेतु, ऊर्ध्वकेतुसे अज, अजसे पुरुजित्, पुरुजित्से अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमिसे श्रुतायु, श्रुतायुसे सुपार्श्वक, सुपार्श्वकसे चित्ररथ और चित्ररथसे मिथिलापति क्षेमधिका जन्म हुआ। क्षेमधिसे समरथ, समरथसे सत्यरथ, सत्यरथसे उपगुरु और उपगुरुसे उपगुप्त नामक पुत्र हुआ। यह अग्निका अंश था। उपगुप्तका वस्वनन्त, वस्वनन्तका युयुध, युयुधका सुभाषण, सुभाषणका श्रुत, श्रुतका जय, जयका विजय और विजयका ऋत नामक पुत्र हुआ। ऋतका शुनक, शुनकका वीतहव्य, वीतहव्यका धृति, धृतिका बहुलाश्व, बहुलाश्वका कृति और कृतिका पुत्र हुआ महावशी। परीक्षित्! ये मिथिलके वंशमें उत्पन्न सभी नरपति 'मैथिल' कहलाते हैं। ये सब-के-सब आत्मज्ञानसे सम्पन्न एवं गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे मुक्त थे। क्यों न हो, याज्ञवल्क्य आदि बड़े-बड़े योगेश्वरोंकी इनपर महान् कृपा जो थी ॥१४-२७॥

चौदहवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब मैं तुम्हें चन्द्रमाके परम पवित्र वंशका वर्णन सुनाता हूँ। इस वंशमें पुरूरवा आदि बड़े-बड़े पवित्र कीर्तिवाले राजा हो गये हैं। सहस्रों सिरवाले विराट् पुरुष नारायणके नाभि-सरोवरके कमलसे ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजीके पुत्र हुए अत्रि। महर्षि अत्रि अपने गुणोंके कारण ब्रह्माजीके समान ही थे। उन्हीं अत्रिके नेत्रोंसे अमृतमय चन्द्रमाका जन्म हुआ। ब्रह्माजीने चन्द्रमाको ब्राह्मण, ओषधि और नक्षत्रोंका अधिपति बना दिया। उन्होंने तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त की और राजसूय यज्ञ किया। इससे उनका घमंड कुछ बढ़ गया और उन्होंने बलपूर्वक बृहस्पतिकी पत्नी ताराको हर लिया। देवगुरु बृहस्पतिने अपनी पत्नीको लौटा देनेके लिये उनसे बार-बार याचना की, परंतु वे इतने मतवाले हो गये थे कि उन्होंने किसी प्रकार उनकी पत्नीको नहीं लौटाया। ऐसी [illegible] उसके लिये देवता और दानवोंमें घोर संग्राम छिड़ [illegible] शुक्राचार्यजीने बृहस्पतिजीके द्वेषसे असुरोंके साथ [illegible] पक्ष ले लिया और महादेवजी[illegible] समस्त साथ अपने विद्यागुरु अङ्गिराजीके पुत्र बृहस्पतिका पक्ष लिया। देवराज इन्द्रने भी समस्त देवताओंके साथ अपने गुरु बृहस्पतिजीका ही पक्ष लिया। इस प्रकार ताराके निमित्तसे देवता और असुरोंका संहार करनेवाला घोर संग्राम हुआ ॥१-७॥

तदनन्तर अङ्गिरा ऋषिने ब्रह्माजीके पास जाकर यह युद्ध बंद करानेकी प्रार्थना की। इसपर ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बहुत डाँटा फटकारा और ताराको उसके पति बृहस्पतिजीके हवाले कर दिया। जब बृहस्पतिजीको यह मालूम हुआ कि तारा तो गर्भवती है, तब उन्होंने कहा—'दुष्टे! मेरे क्षेत्रमें यह तो किसी दूसरेका गर्भ है। इसे तू अभी त्याग दे, तुरत त्याग दे। डर मत, मैं तुझे जलाऊँगा नहीं। क्योंकि एक तो तू स्त्री है और दूसरे मुझे भी सन्तानकी कामना है। देवी [illegible] तू निर्दोष भी है ही।' अपने पतिकी बात सुनकर [illegible] लज्जित हुई। उसने सोनेके समान चमकता [illegible] अपने गर्भसे अलग कर दिया। उस [illegible] [बृह]स्पति और चन्द्रमा दोनों ही मोहित हो

जो संख्यामें चौदह हजार थे—हाथमें महान् धनुष लेकर भगवान् श्रीरामने नष्ट कर डाला; और अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंसे परिपूर्ण वनमें वे इधर-उधर विचरते हुए निवास करते रहे । परीक्षित् ! जब रावणने सीताजीके रूप, गुण, सौन्दर्य आदिकी बात सुनी तो उसका हृदय कामवासनासे आतुर हो गया । उसने अद्भुत हरिनके वेषमें मारीचको उनकी पर्णकुटीके पास भेजा । वह धीरे-धीरे भगवान्को वहाँसे दूर ले गया । अन्तमें भगवान्ने अपने बाणसे उसे बात-की-बातमें वैसे ही मार डाला, जैसे दक्षप्रजापतिको वीरभद्रने मारा था । जब भगवान् श्रीराम जंगलमें दूर निकल गये, तब (लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें) नीच राक्षस रावणने भेड़ियेके समान विदेहनन्दिनी सुकुमारी श्रीसीताजीको हर लिया । तदनन्तर वे अपनी प्राणप्रिया सीताजीसे बिछुड़कर



अपने भाई लक्ष्मणके साथ वन-वनमें दीनकी भाँति घूमने लगे । और इस प्रकार उन्होंने यह शिक्षा दी कि 'जो स्त्रियोंमें आसक्ति रखते हैं, उनकी यही गति होती है ।' इसके बाद भगवान्ने उस जटायुका दाह-संस्कार किया, जिसके सारे कर्म-बन्धन भगवत्सेवारूप कर्मसे पहले ही भस्म हो चुके थे । फिर भगवान्ने कबन्धका संहार किया और इसके अनन्तर सुग्रीव आदि वानरोंसे मित्रता करके बालिका वध किया, तदनन्तर वानरोंके द्वारा अपनी प्राणप्रियाका पता लगवाया । ब्रह्मा और शङ्कर जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं, वे भगवान् श्रीराम मनुष्यकी-सी लीला करते हुए बंदरोंकी सेनाके साथ समुद्रतटपर पहुँचे । वहाँ उपवास और प्रार्थनासे जब समुद्रपर कोई प्रभाव न पड़ा, तब भगवान्ने क्रोधकी लीला करते हुए अपनी उग्र एवं टेढ़ी नजर समुद्रपर डाली । उसी समय समुद्रके बड़े-बड़े मगर और मच्छ खलबला उठे । डर जानेके कारण समुद्रकी सारी गर्जना शान्त हो गयी । तब समुद्र शरीरधारी बनकर और अपने सिरपर बहुत-सी भेंटें लेकर भगवान्के चरणकमलोंकी शरणमें आया और इस प्रकार कहने लगा—'अनन्त ! हम मूर्ख हैं; इसलिये आपके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते । जानें भी कैसे ? आप समस्त जगत्के एकमात्र स्वामी, पुरुषोत्तम एवं जगत्के समस्त परिवर्तनोंमें एकरस रहनेवाले हैं । आप समस्त गुणोंके स्वामी हैं । इसलिये जब आप सत्त्वगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब देवताओंकी, रजोगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब प्रजापतियोंकी, और तमोगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब आपके क्रोधसे रुद्रकी उत्पत्ति होती है । वीरशिरोमणे ! आप अपनी इच्छाके अनुसार मुझे पार कर जाइये और त्रिलोकीको रुलानेवाले विश्रवाके कुपूत रावणको मारकर अपनी पत्नीको फिरसे प्राप्त कीजिये । परन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है । आप यहाँ मुझपर एक पुल बाँध दीजिये । इससे आपके यशका विस्तार होगा और आगे चलकर जब बड़े-बड़े नरपति दिग्विजय करते हुए यहाँ आयेंगे, तब वे आपके यशका गायन करेंगे' ॥ ५—१५ ॥

भगवान् श्रीरामजीने अनेकानेक पर्वतोंके शिखरोंसे समुद्रपर पुल बाँधा । जब बड़े-बड़े बंदर अपने हाथोंसे पर्वत उठा-उठाकर लाते थे, तब उनके वृक्ष और बड़ी-बड़ी चट्टानें थर-थर काँपने लगती थीं । इसके बाद विभीषणकी सलाहसे भगवान्ने सुग्रीव, नील, हनूमान् आदि प्रमुख वीरों और वानरी सेनाके साथ लङ्कामें प्रवेश किया । वह तो श्रीहनूमान्जीके द्वारा पहले ही जलायी जा चुकी थी । उस समय बंदरोंकी सेनाने लङ्काके सैर करने और खेलनेके स्थान, अन्नके गोदाम, खजाने, दरवाजे, फाटक, सभाभवन, छज्जे और पक्षियोंके रहनेके स्थानतकको घेर लिया । उन्होंने वहाँकी वेदी, ध्वजाएँ, सोनेके कलश और चौराहे तोड़-फोड़ डाले । उस समय लङ्का ऐसी मालूम पड़ रही थी, जैसे झुंड-के-झुंड हाथियोंने किसी नदीको मथ डाला हो । यह देखकर राक्षसराज रावणने निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पन आदि अपने सब अनुचरों, पुत्र मेघनाद और अन्तमें भाई कुम्भकर्णको भी युद्ध करनेके लिये भेजा ।

पलक उठने और गिरनेसे उनके अस्तित्वका पता चलता रहेगा।' इसके बाद महर्षियोंने यह सोचकर कि राजाके न रहनेपर लोगोंमें अराजकता फैल जायगी, निमिके शरीरका मन्थन किया। उस मन्थनसे एक कुमार उत्पन्न हुआ। जन्म लेनेके कारण उसका नाम हुआ जनक। विदेहसे उत्पन्न होनेके कारण 'वैदेह' और मन्थनसे उत्पन्न होनेके कारण उसी बालकका नाम 'मिथिल' हुआ। उसीने मिथिलापुरी बसायी ॥११-१३॥

परीक्षित्! जनकका उदावसु, उदावसुका नन्दिवर्द्धन, नन्दिवर्द्धनका सुकेतु, सुकेतुका देवरात, देवरातका बृहद्रथ, बृहद्रथका महावीर्य, महावीर्यका सुधृति, सुधृतिका धृष्टकेतु, धृष्टकेतुका हर्यश्व और हर्यश्वका मरु नामक पुत्र हुआ। मरुसे प्रतीपक, प्रतीपकसे कृतिरथ, कृतिरथसे देवमीढ, देवमीढसे विश्रुत और विश्रुतसे महाधृतिका जन्म हुआ। महाधृतिका कृतिरात, कृतिरातका महारोमा, महारोमाका स्वर्णरोमा और स्वर्णरोमा का पुत्र हुआ ह्रस्वरोमा। इसी ह्रस्वरोमाके पुत्र महाराज सीरध्वज थे। वे जब यज्ञके लिये धरती जोत रहे थे, तब उनके सीर (हल) के अग्रभाग (फाल) से सीताजीकी उत्पत्ति हुई। इसीसे उनका नाम 'सीरध्वज' पड़ा। सीरध्वजके कुशध्वज, कुशध्वजके धर्मध्वज और धर्मध्वजके दो पुत्र हुए— कृतध्वज और मितध्वज। कृतध्वजके केशिध्वज और मितध्वजके खाण्डिक्य हुए। केशिध्वज आत्मविद्यामें बड़ा प्रवीण था और खाण्डिक्य था कर्मकाण्डका मर्मज्ञ। वह केशिध्वजसे भयभीत होकर भाग गया। केशिध्वजका पुत्र भानुमान् और भानुमान्का शतद्युम्न था। शतद्युम्नसे शुचि, शुचिसे सनद्वाज, सनद्वाजसे ऊर्ध्वकेतु, ऊर्ध्वकेतुसे अज, अजसे पुरुजित्, पुरुजित्से अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमिसे श्रुतायु, श्रुतायुसे सुपार्श्वक, सुपार्श्वकसे चित्ररथ और चित्ररथसे मिथिलापति क्षेमधिका जन्म हुआ। क्षेमधिसे समरथ, समरथसे सत्यरथ, सत्यरथसे उपगुरु और उपगुरुसे उपगुप्त नामक पुत्र हुआ। यह अग्निका अंश था। उपगुप्तका वस्वनन्त, वस्वनन्तका युयुध, युयुधका सुभाषण, सुभाषणका श्रुत, श्रुतका जय, जयका विजय और विजयका ऋत नामक पुत्र हुआ। ऋतका शुनक, शुनकका वीतहव्य, वीतहव्यका धृति, धृतिका बहुलाश्व, बहुलाश्वका कृति और कृतिका पुत्र हुआ महावशी। परीक्षित्! ये मिथिलके वंशमें उत्पन्न सभी नरपति 'मैथिल' कहलाते हैं। ये सब-के-सब आत्मज्ञानसे सम्पन्न एवं गृहस्थाश्रममें रहते हुए भी सुख दु:ख आदि द्वन्द्वोंसे मुक्त थे। क्यों न हो, याज्ञवल्क्य आदि बड़े-बड़े योगेश्वरोंकी इनपर महान् कृपा जो थी ॥१४-२७॥

चौदहवाँ अध्याय

चन्द्रवंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब मैं तुम्हें चन्द्रमाके परम पवित्र वंशका वर्णन सुनाता हूँ। इस वंशमें पुरूरवा आदि बड़े-बड़े पवित्र कीर्तिवाले राजा हो गये हैं। सहस्रों सिरवाले विराट् पुरुष नारायणके नाभि-सरोवरके कमल से ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुई। ब्रह्माजीके पुत्र हुए अत्रि। महर्षि अत्रि अपने गुणोंके कारण ब्रह्माजीके समान ही थे। उन्हीं अत्रिके नेत्रोंसे अमृतमय चन्द्रमाका जन्म हुआ। ब्रह्माजीने चन्द्रमाको ब्राह्मण, ओषधि और नक्षत्रोंका अधिपति बना दिया। उन्होंने तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त की और राजसूय यज्ञ किया। इससे उनका घमंड कुछ बढ़ गया और उन्होंने बलपूर्वक बृहस्पतिकी पत्नी ताराको हर लिया। देवगुरु बृहस्पतिने अपनी पत्नीको लौटा देनेके लिये उनसे बार-बार याचना की, परंतु वे इतने मतवाले हो गये थे कि उन्होंने किसी प्रकार उनकी पत्नीको नहीं लौटाया। ऐसी परिस्थितिमें उसके लिये देवता और दानवोंमें घोर संग्राम छिड़ गया। शुक्राचार्यजीने बृहस्पतिजीके द्वेषसे असुरोंके साथ चन्द्रमाका पक्ष ले लिया और महादेवजीने स्नेहवश समस्त भूतगणोंके साथ अपने विद्यागुरु अङ्गिराजीके पुत्र बृहस्पतिका पक्ष लिया। देवराज इन्द्रने भी समस्त देवताओंके साथ अपने गुरु बृहस्पतिजीका ही पक्ष लिया। इस प्रकार ताराके निमित्तसे देवता और असुरोंका संहार करनेवाला घोर संग्राम हुआ ॥ १-७ ॥

तदनन्तर अङ्गिरा ऋषिने ब्रह्माजीके पास जाकर यह युद्ध बंद करानेकी प्रार्थना की। इसपर ब्रह्माजीने चन्द्रमाको बहुत डाँटा फटकारा और ताराको उसके पति बृहस्पतिजीके हवाले कर दिया। जब बृहस्पतिजीको यह मालूम हुआ कि तारा तो गर्भवती है, तब उन्होंने कहा—'दुष्टे! मेरे क्षेत्रमें यह तो किसी दूसरेका गर्भ है। इसे तू अभी त्याग दे, तुरंत त्याग दे। डर मत, मैं तुझे जलाऊँगा नहीं। क्योंकि एक तो तू स्त्री है और दूसरे मुझे भी सन्तानकी कामना है। देवी होनेके कारण तू निर्दोष भी है ही।' अपने पतिकी बात सुनकर तारा अत्यन्त लज्जित हुई। उसने सोनेके समान चमकता हुआ एक बालक अपने गर्भसे अलग कर दिया। उस बालकको देखकर बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों ही मोहित हो

पीताम्बर फहरा रहा है। बहुमूल्य वैदूर्यमणिके किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। कमरमें चमचमाती करधनीकी लड़ियाँ लटक रही हैं। बाँहोंमें बाजूबंद और कलाइयोंमें कङ्कण शोभायमान हो रहे हैं। बालकके अङ्ग-अङ्गसे अनोखी छटा छिटक रही है। जब वसुदेवजीने देखा कि मेरे पुत्रके रूपमें तो स्वयं भगवान् ही आये हैं, तब पहले तो उन्हें असीम आश्चर्य हुआ; फिर आनन्दसे उनकी आँखें खिल उठीं। उनका रोम-रोम परमानन्दमें मग्न हो गया। श्रीकृष्णका जन्मोत्सव मनानेकी उतावलीमें उन्होंने उसी समय ब्राह्मणोंके लिये दस हजार गायोंका सङ्कल्प कर दिया। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी अङ्गकान्तिसे सूतिकागृह जगमगा रहा था। जब वसुदेवजीको यह निश्चय हो गया कि ये तो परमपुरुष परमात्मा ही हैं, तब भगवान्का प्रभाव जान लेनेसे उनका सारा भय जाता रहा। अपनी बुद्धि स्थिर करके उन्होंने भगवान्के चरणोंमें अपना सिर झुका दिया और फिर हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे—॥९–१२॥

वसुदेवजीने कहा—मैं समझ गया कि आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। आपका स्वरूप है केवल अनुभव और केवल आनन्द। आप समस्त बुद्धियोंके एकमात्र साक्षी हैं। आप ही सर्गके आदिमें अपनी प्रकृतिसे इस त्रिगुणमय जगत्की सृष्टि करते हैं। फिर उसमें प्रविष्ट न होनेपर भी आप प्रविष्टके समान जान पड़ते हैं। जैसे जबतक महत्तत्त्व आदि कारण-तत्त्व पृथक्-पृथक् रहते हैं, तबतक उनकी शक्ति भी पृथक्-पृथक् होती है; जब वे इन्द्रियादि सोलह विकारोंके साथ मिलते हैं, तभी इस ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं और इसे उत्पन्न करके इसीमें अनुप्रविष्ट-से जान पड़ते हैं। परन्तु सच्ची बात तो यह है कि वे किसी भी पदार्थमें प्रवेश नहीं करते। ऐसा होनेका कारण यह है कि उनसे बनी हुई जो भी वस्तु है, उसमें वे पहलेहीसे विद्यमान रहते हैं। ठीक वैसे ही बुद्धिके द्वारा केवल गुणोंके लक्षणोंका ही अनुमान किया जाता है और इन्द्रियोंके द्वारा केवल गुणमय विषयोंका ही ग्रहण होता है। यद्यपि आप उनमें रहते हैं, फिर भी उन गुणोंके ग्रहणसे आपका ग्रहण नहीं होता। इसका कारण यह है कि आप सब कुछ हैं, सबके अन्तर्यामी हैं और परमार्थ सत्य, आत्मस्वरूप हैं। गुणोंका आवरण आपको ढक नहीं सकता। इसलिये आपमें न बाहर है न भीतर। फिर आप किसमें प्रवेश करेंगे? इसलिये प्रवेश न करनेपर भी आप प्रवेश किये हुएके समान दीखते हैं। जो अपने इन दृश्य गुणोंको अपनेसे पृथक् मानकर सत्य समझता है, वह अज्ञानी है। क्योंकि आत्मतत्त्वके अतिरिक्त और कोई भी वस्तु युक्तिसङ्गत नहीं है, केवल नाममात्र है। विचारके द्वारा जिस वस्तुका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, बल्कि जो बाधित हो जाती है, उसको सत्य माननेवाला पुरुष बुद्धिमान् कैसे हो सकता है? प्रभो! कहते हैं कि आप स्वयं समस्त क्रियाओं, गुणों और विकारोंसे रहित हैं। फिर भी इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय आपसे ही होते हैं। यह बात परम ऐश्वर्यशाली परब्रह्म परमात्मा आपके लिये असम्भव नहीं है। क्योंकि तीनों गुणोंके आश्रय आप ही हैं, इसलिये उन गुणोंके कार्य आदिका आपहीमें आरोप किया जाता है। आप ही तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये अपनी मायासे सत्त्वमय शुक्लवर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप) धारण करते हैं, उत्पत्तिके लिये रजःप्रधान रक्तवर्ण (सृजनकारी ब्रह्मारूप) और प्रलयके समय तमोगुणप्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) स्वीकार करते हैं। प्रभो! आप सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं। इस संसारकी रक्षाके लिये ही आपने मेरे घर अवतार लिया है। आजकल कोटि-कोटि असुर सेनापतियोंने राजाका नाम धारण कर रक्खा है और अपने अधीन बड़ी-बड़ी सेनाएँ कर रक्खी हैं। आप उन सबका संहार करेंगे। देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो! यह कंस बड़ा दुष्ट है। इसे जब मालूम हुआ कि आपका अवतार हमारे घर होनेवाला है, तब उसने आपके भयसे आपके बड़े भाइयोंको मार डाला। अभी उसके दूत आपके अवतारका समाचार उसे सुनायेंगे और वह अभी-अभी हाथमें शस्त्र लेकर दौड़ा आयेगा॥ १३–२२॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इधर देवकीने देखा कि मेरे पुत्रमें तो पुरुषोत्तम भगवान्के सभी लक्षण मौजूद हैं। पहले तो उन्हें कंससे कुछ भय मालूम हुआ, परन्तु फिर वे बड़े पवित्र भावसे मुसकराती हुई स्तुति करने लगीं॥ २३॥

माता देवकीने कहा—प्रभो! वेदोंने आपके जिस रूपको अव्यक्त और सबका कारण बतलाया है, जो अनन्त ज्योतिःस्वरूप, समस्त गुणोंसे रहित और विकारहीन है, जिसे विशेषणरहित—अनिर्वचनीय, निष्क्रिय एवं केवल विशुद्ध सत्ताके रूपमें कहा गया है—वही बुद्धि आदिके प्रकाशक विष्णु आप स्वयं हैं। जिस समय ब्रह्माकी पूरी आयु—दो

नहीं। यह मेरे भेड़ोंको भी न बचा सका। इसीपर विश्वास करनेके कारण लुटेरे मेरे बच्चोंको लूटकर लिये जा रहे हैं। मैं तो मर गयी। देखो तो सही, यह दिनमें तो मर्द बनता है और रातमें स्त्रियोंकी तरह डरकर सोया रहता है।' परीक्षित्! जैसे कोई हाथीको अङ्कुशसे बेध डाले, वैसे ही उर्वशीने अपने वचनोंसे राजाको बींध दिया। राजा पुरूरवाको बड़ा क्रोध आया और हाथमें तलवार लेकर वस्त्रहीन अवस्थामें ही वे उस ओर दौड़ पड़े। गन्धर्वोंने उनके झपटते ही भेड़ोंको तो वहीं छोड़ दिया और स्वयं बिजलीकी तरह चमकने लगे। जब राजा पुरूरवा भेड़ोंको लेकर लौटे, तब उर्वशीने उस प्रकाशमें उन्हें वस्त्रहीन अवस्थामें देख लिया। बस, वह उसी समय उन्हें छोड़कर चली गयी ॥ २४–३१ ॥

परीक्षित्! राजा पुरूरवाने जब अपने शयनागारमें अपनी प्रियतमा उर्वशीको नहीं देखा, तो वे अनमने हो गये। उनका चित्त उर्वशीमें ही बसा हुआ था। वे उसके लिये शोकसे विह्वल हो गये और उन्मत्तकी भाँति इधर-उधर भटकने लगे। एक दिन कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदीके तटपर उन्होंने उर्वशी और उसकी पाँच प्रसन्नमुखी सखियोंको देखा और बड़ी मीठी वाणीसे कहा—'प्रिये! तनिक ठहर जाओ। एक बार मेरी बात मान लो। निष्ठुर! अब आज तो मुझे सुखी किये बिना मत जाओ। क्षणभर ठहरो, आओ, हम दोनों कुछ बातें तो कर लें। देवि! अब इस शरीरपर तुम्हारा कृपा-प्रसाद नहीं रहा, इसीसे तुमने इसे दूर फेंक दिया है। अतः मेरा यह सुन्दर शरीर अभी ढेर हुआ जाता है और तुम्हारे देखते-देखते इसे भेड़िये और गीध खा जायँगे' ॥ ३२–३५ ॥

उर्वशीने कहा—राजन्! तुम पुरुष हो। इस प्रकार मत मरो। देखो, सचमुच ये भेड़िये तुम्हें खा न जायँ। तुमसे मैं सच्ची बात कहती हूँ। स्त्रियोंकी किसीके साथ मित्रता नहीं हुआ करती। स्त्रियोंका हृदय और भेड़ियोंका हृदय बिल्कुल एक जैसा होता है। स्त्रियाँ निर्दय होती हैं। क्रूरता तो उनमें स्वाभाविक ही रहती है। तनिक-सी बातमें चिढ़ जाती हैं और अपने सुखके लिये बड़े-बड़े साहसके काम कर बैठती हैं। थोड़े-से स्वार्थके लिये विश्वास दिलाकर अपने पति और भाईतकको मार डालती हैं। इनके हृदयमें सौहार्द तो है ही नहीं। भोले-भाले लोगोंको झूठमूठका विश्वास दिलाकर फाँस लेती हैं और नये-नये पुरुषकी चाटसे कुलटा और स्वच्छन्दचारिणी बन जाती हैं। तो फिर तुम धीरज धरो। तुम राजराजेश्वर हो। घबड़ाओ मत। प्रति एक वर्षके बाद एक रात तुम मेरे साथ रहोगे। तब तुम्हारे और भी सन्तानें होंगी ॥ ३६–३९ ॥

राजा पुरूरवाने देखा कि उर्वशी गर्भवती है, इसलिये वे अपनी राजधानीमें लौट आये। एक वर्षके बाद फिर वहाँ गये। तबतक उर्वशी एक वीर पुत्रकी माता हो चुकी थी। उर्वशीके मिलनेसे पुरूरवाको बड़ा सुख मिला और वे एक रात उसीके साथ रहे। प्रातःकाल जब वे विदा होने लगे, तब विरहके दुःखसे वे अत्यन्त दीन हो गये। उर्वशीने उनसे कहा कि 'तुम इन गन्धर्वोंकी स्तुति करो, ये चाहें तो तुम्हें मुझे दे सकते हैं।' तब राजा पुरूरवाने गन्धर्वोंकी स्तुति की। परीक्षित्! राजा पुरूरवाकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर गन्धर्वोंने उन्हें एक अग्निस्थाली (अग्निस्थापन करनेका पात्र) दी। राजाने समझा यही उर्वशी है, इसलिये उसको हृदयसे लगाकर वे एक वनसे दूसरे वनमें घूमते रहे। जब उन्हें होश हुआ, तब वे स्थालीको वनमें छोड़कर अपने महलमें लौट आये एवं रातके समय उर्वशीका ध्यान करते रहे। इस प्रकार जब त्रेतायुगका प्रारम्भ हुआ, तब उनके हृदयमें तीनों वेद प्रकट हुए। फिर वे उस स्थानपर गये, जहाँ उन्होंने वह अग्निस्थाली छोड़ी थी। अब उस स्थानपर शमीवृक्षके गर्भमें एक पीपलका वृक्ष उग आया था, उसे देखकर उन्होंने उससे दो अरणियाँ (मन्थनकाष्ठ) बनायीं। फिर उन्होंने उर्वशीलोककी कामनासे नीचेकी अरणिको उर्वशी, ऊपरकी अरणिको पुरूरवा और बीचके काष्ठको पुत्ररूपसे चिन्तन करते हुए अग्नि प्रज्वलित करनेवाले मन्त्रोंसे मन्थन किया। उनके मन्थनसे 'जातवेदा' नामका अग्नि प्रकट हुआ। राजा पुरूरवाने अग्निदेवताको त्रयीविद्याके द्वारा आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि—इन तीन भागोंमें विभक्त करके पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया। फिर उर्वशीलोककी इच्छासे पुरूरवाने उन तीनों अग्नियोंद्वारा सर्वदेवस्वरूप इन्द्रियातीत यज्ञपति भगवान् श्रीहरिका यजन किया ॥ ४०–४७ ॥

परीक्षित्! त्रेताके पूर्व सत्ययुगमें एकमात्र प्रणव (ॐकार) ही वेद था। सारे वेद-शास्त्र उसीके अन्तर्भूत थे। देवता थे एकमात्र नारायण, और कोई न था। अग्नि भी तीन नहीं, केवल एक था और वर्ण भी केवल एक 'हंस' ही था। परीक्षित्! त्रेताके प्रारम्भमें पुरूरवासे ही वेदत्रयी और अग्नित्रयीका आविर्भाव हुआ। राजा पुरूरवाने अग्निको सन्तानरूपसे स्वीकार करके गन्धर्वलोककी प्राप्ति की ॥ ४८-४९ ॥

लक्ष्मणजीके दो पुत्र हुए—अङ्गद और चित्रकेतु । परीक्षित्! इसी प्रकार भरतजीके भी दो ही पुत्र थे—तक्ष और पुष्कल। तथा शत्रुघ्नके भी दो पुत्र हुए—सुबाहु और श्रुतसेन। भरतजीने दिग्विजयमें करोड़ों गन्धर्वोंका संहार किया और उनका धन लाकर अपने बड़े भाई भगवान् श्रीरामकी सेवामें निवेदन किया। शत्रुघ्नजीने मधुवनमें मधुके पुत्र लवण नामक राक्षसको मारकर वहाँ मथुरा नामकी पुरी बसायी। भगवान् श्रीरामके द्वारा निर्वासित सीताजीने अपने पुत्रोंको वाल्मीकिजीके हाथोंमें सौंप दिया और भगवान् श्रीरामके चरणकमलोंका ध्यान करती हुई वे पृथ्वीदेवीके लोकमें चली गयीं। यह समाचार सुनकर भगवान् श्रीरामने अपने शोकावेशको बुद्धिके द्वारा रोकना चाहा, परन्तु परम समर्थ होनेपर भी वे उसे रोक न सके। क्योंकि उन्हें जानकीजीके पवित्र गुण बार-बार स्मरण हो आया करते थे। परीक्षित्! यह स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध सब कहीं इसी प्रकार दुःखका कारण है। यह बात बड़े-बड़े समर्थ लोगोंके विषयमें भी ऐसी ही है, फिर गृहासक्त विषयी पुरुषके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है॥ ८—१७॥

इसके बाद भगवान् श्रीरामने ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अखण्डरूपसे अग्निहोत्र किया। तदनन्तर अपना स्मरण करनेवाले भक्तोंके हृदयमें अपने उन चरण-कमलोंको स्थापित करके, जो दण्डकवनके काँटोंसे बिंध गये थे, अपने स्वयम्प्रकाश परम ज्योतिर्मय धाममें चले गये॥१८-१९॥

परीक्षित्! भगवान्के समान कोई नहीं है, फिर उनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है। उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे ही यह लीला-विग्रह धारण किया था। ऐसी स्थितिमें रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामके लिये यह कोई बड़े गौरवकी बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंसे राक्षसोंको मार डाला या समुद्रपर पुल बाँध दिया। भला, उन्हें शत्रुओंको मारनेके लिये बंदरोंकी भी आवश्यकता थी क्या? यह सब उनकी लीला ही है। भगवान् श्रीरामका निर्मल यश समस्त पापोंको नष्ट कर देनेवाला है। वह इतना फैल गया है कि दिग्गजोंका श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलतासे चमक उठता है। आज भी बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि राजाओंकी सभामें उसका गायन करते रहते हैं। स्वर्गके देवता और पृथ्वीके नरपति अपने कमनीय किरीटोंसे उनके चरणकमलोंकी सेवा करते रहते हैं। मैं उन्हीं रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामचन्द्रकी शरण ग्रहण करता हूँ। जिन्होंने भगवान् श्रीरामका दर्शन और स्पर्श किया, उनका सहवास अथवा अनुगमन किया—वे सब-के-सब, तथा कोसलदेशके निवासी भी उसी लोकमें गये, जहाँ बड़े-बड़े योगी योगसाधनाके द्वारा जाते हैं। जो पुरुष अपने कानोंसे भगवान् श्रीरामका चरित्र सुनता है—उसे सरलता, कोमलता आदि गुणोंकी प्राप्ति होती है। परीक्षित्! केवल इतना ही नहीं, वह समस्त कर्म-बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है॥ २०—२३॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवान् श्रीराम स्वयं अपने भाइयोंके साथ किस प्रकारका व्यवहार करते थे? तथा भरत आदि भाई, प्रजाजन और अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामके प्रति कैसा बर्ताव करते थे?॥ २४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—त्रिभुवनपति महाराज श्रीरामने राजसिंहासन स्वीकार करनेके बाद अपने भाइयोंको दिग्विजयकी आज्ञा दी और स्वयं अपने निजजनोंको दर्शन देते हुए अपने अनुचरोंके साथ पुरीकी देखरेख करने लगे। उस समय अयोध्यापुरीके मार्ग सुगन्धित जल और हाथियोंके मदकणोंसे सिंचे रहते। ऐसा जान पड़ता, मानो यह नगरी अपने स्वामी भगवान् श्रीरामको देखकर अत्यन्त मतवाली हो रही है। उसके महल, फाटक, सभाभवन, विहार और देवालय आदिमें सुवर्णके कलश रक्खे हुए थे और स्थान-स्थानपर पताकाएँ फहरा रही थीं। वह डंठलसमेत सुपारी, केलेके खंभे और सुन्दर वस्त्रोंके पट्टोंसे सजायी हुई थी। दर्पण, वस्त्र और पुष्पमालाओंसे तथा माङ्गलिक चित्रकारियों और बंदनवारोंसे सारी नगरी जगमगा रही थी। नगरवासी अपने हाथोंमें तरह-तरहकी भेंटें लेकर भगवान्के पास आते और उनसे प्रार्थना करते कि 'देव! पहले आपहीने वराह-रूपसे पृथ्वीका उद्धार किया था, अब आप ही इसका पालन कीजिये।' परीक्षित्! उस समय जब प्रजाको मालूम होता कि बहुत दिनोंके बाद भगवान् श्रीरामजी इधर पधारे हैं, तब सभी स्त्री-पुरुष उनके दर्शनकी लालसासे घर-द्वार छोड़कर दौड़ पड़ते। वे ऊँची-ऊँची अटारियोंपर चढ़ जाते और

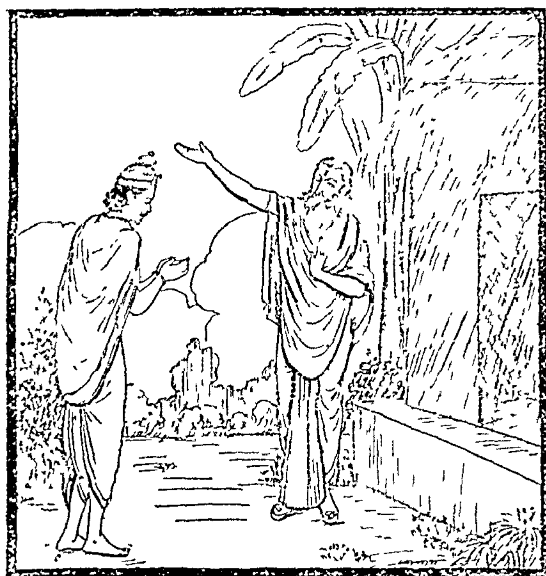


भगवान् परशुराम

तेरहवाँ अध्याय

राजा निमिके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इक्ष्वाकुके पुत्र थे निमि। उन्होंने यज्ञ आरम्भ करके महर्षि वसिष्ठको ऋत्विजके रूपमें वरण किया। वसिष्ठजीने कहा कि 'राजन्!



इन्द्र अपने यज्ञके लिये मुझे पहले ही वरण कर चुके हैं। उनका यज्ञ पूरा करके मैं तुम्हारे पास आऊँगा। तबतक तुम मेरी प्रतीक्षा करना।' यह बात सुनकर राजा निमि चुप हो रहे और वसिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ कराने चले गये। विचारवान् निमिने यह सोचकर कि जीवन तो क्षणभङ्गुर है, विलम्ब करना उचित न समझा और यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। जबतक गुरु वसिष्ठजी न लौटें, तबतकके लिये उन्होंने दूसरे ऋत्विजोंको वरण कर लिया। गुरु वसिष्ठजी जब इन्द्रका यज्ञ सम्पन्न करके लौटे, तो उन्होंने देखा कि उनके शिष्य निमिने तो उनकी बात न मानकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया है। उस समय उन्होंने शाप दिया कि 'निमिको अपनी विचारशीलता और पाण्डित्यका बड़ा घमंड है, इसलिये इसका शरीरपात हो जाय।' निमिकी दृष्टिमें गुरु वसिष्ठका यह शाप धर्मके अनुकूल नहीं, प्रतिकूल था। इसलिये उन्होंने भी शाप दिया कि 'आपने लोभवश अपने धर्मका आदर नहीं किया, इसलिये आपका शरीर भी गिर जाय।' यह कहकर आत्मविद्यामें निपुण निमिने अपने शरीरका त्याग कर दिया। परीक्षित्! इधर हमारे पूर्वज वसिष्ठजीने भी अपना शरीर त्यागकर मित्रावरुणके द्वारा उर्वशीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया। राजा निमिके यज्ञमें आये हुए श्रेष्ठ मुनियोंने राजाके शरीरको सुगन्धित वस्तुओंमें रख



दिया। जब सत्रयागकी समाप्ति हुई और देवतालोग आये, तब उन लोगोंने उनसे प्रार्थना की कि 'महानुभावो! आपलोग समर्थ हैं। यदि आप प्रसन्न हैं तो राजा निमिका यह शरीर पुनः जीवित हो उठे।' देवताओंने कहा—'ऐसा ही हो।' उस समय निमिने कहा—'मुझे देहका बन्धन नहीं चाहिये। विचारशील मुनिजन अपनी बुद्धिको पूर्णरूपसे श्रीभगवान्‌में ही लगा देते हैं और उन्हींके चरणकमलोंका भजन करते हैं। एक-न-एक दिन यह शरीर अवश्य ही छूटेगा—इस भयसे भीत होनेके कारण वे इस शरीरका कभी संयोग ही नहीं चाहते; वे तो मुक्त ही होना चाहते हैं। अतः मैं अब दुःख, शोक और भयके मूल कारण इस शरीरको धारण करना नहीं चाहता। जैसे जलमें मछलीके लिये सर्वत्र ही मृत्युके अवसर हैं, वैसे ही इस शरीरके लिये भी सब कहीं मृत्यु-ही-मृत्यु है'॥१—१०॥

देवताओंने कहा—'मुनियो! राजा निमि बिना शरीरके ही प्राणियोंके नेत्रोंमें अपनी इच्छाके अनुसार निवास करें। वे वहाँ रहकर सूक्ष्मशरीरसे भगवान्‌का चिन्तन करते रहें।



भगवान् परशुराम

तेरहवाँ अध्याय

राजा निमिके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इक्ष्वाकुके पुत्र थे निमि। उन्होंने यज्ञ आरम्भ करके महर्षि वसिष्ठको ऋत्विजके रूपमें वरण किया। वसिष्ठजीने कहा कि 'राजन्! इन्द्र अपने यज्ञके लिये मुझे पहले ही वरण कर चुके हैं। उनका यज्ञ पूरा करके मैं तुम्हारे पास आऊँगा। तबतक तुम मेरी प्रतीक्षा करना।' यह बात सुनकर राजा निमि चुप हो रहे और वसिष्ठजी इन्द्रका यज्ञ कराने चले गये। विचारवान् निमिने यह सोचकर कि जीवन तो क्षणभङ्गुर है, विलम्ब करना उचित न समझा और यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। जबतक गुरु वसिष्ठजी न लौटें, तबतकके लिये उन्होंने दूसरे ऋत्विजोंको वरण कर लिया। गुरु वसिष्ठजी जब इन्द्रका यज्ञ सम्पन्न करके लौटे, तो उन्होंने देखा कि उनके शिष्य निमिने तो उनकी बात न मानकर यज्ञ प्रारम्भ कर दिया है। उस समय उन्होंने शाप दिया कि 'निमिको अपनी विचारशीलता और पाण्डित्यका बड़ा घमंड है, इसलिये इसका शरीरपात हो जाय।' निमिकी दृष्टिमें गुरु वसिष्ठका यह शाप धर्मके अनुकूल नहीं, प्रतिकूल था। इसलिये उन्होंने भी शाप दिया कि 'आपने लोभवश अपने धर्मका आदर नहीं किया, इसलिये आपका शरीर भी गिर जाय।' यह कहकर आत्मविद्यामें निपुण निमिने अपने शरीरका त्याग कर दिया। परीक्षित्! इधर हमारे पूर्वज वसिष्ठजीने भी अपना शरीर त्यागकर मित्रावरुणके द्वारा उर्वशीके गर्भसे जन्म ग्रहण किया। राजा निमिके यज्ञमें आये हुए श्रेष्ठ मुनियोंने राजाके शरीरको सुगन्धित वस्तुओंमें रख दिया। जब सत्रयागकी समाप्ति हुई और देवतालोग आये, तब उन लोगोंने उनसे प्रार्थना की कि 'महानुभावो! आपलोग समर्थ हैं। यदि आप प्रसन्न हैं तो राजा निमिका यह शरीर पुनः जीवित हो उठे।' देवताओंने कहा—'ऐसा ही हो।' उस समय निमिने कहा—'मुझे देहका बन्धन नहीं चाहिये। विचारशील मुनिजन अपनी बुद्धिको पूर्णरूपसे श्रीभगवान्‌में ही लगा देते हैं और उन्हींके चरणकमलोंका भजन करते हैं। एक-न-एक दिन यह शरीर अवश्य ही छूटेगा—इस भयसे भीत होनेके कारण वे इस शरीरका कभी संयोग ही नहीं चाहते; वे तो मुक्त ही होना चाहते हैं। अतः मैं अब दुःख, शोक और भयके मूल कारण इस शरीरको धारण करना नहीं चाहता। जैसे जलमें मछलीके लिये सर्वत्र ही मृत्युके अवसर हैं, वैसे ही इस शरीरके लिये भी सब कहीं मृत्यु-ही-मृत्यु है' ॥१—१०॥





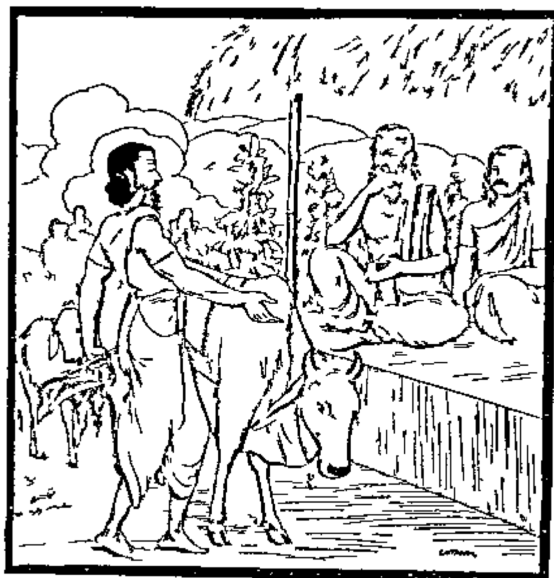
देवताओंने कहा—'मुनियो! राजा निमि बिना शरीरके ही प्राणियोंके नेत्रोंमें अपनी इच्छाके अनुसार निवास करें। वे वहाँ रहकर सूक्ष्मशरीरसे भगवान्‌का चिन्तन करते रहें।

को पकड़ लिया और अपनी राजधानी माहिष्मतीमें ले जाकर बंदरके समान कैद कर लिया। पीछे पुलस्त्यजीके कहनेसे सहस्रबाहुने रावणको छोड़ दिया ॥ १७—२२ ॥

एक दिन सहस्रबाहु अर्जुन शिकार खेलनेके लिये बड़े घोर जंगलमें निकल गया था। दैववश वह जमदग्नि मुनिके आश्रमपर जा पहुँचा। परमतपस्वी जमदग्नि मुनिके आश्रममें कामधेनु रहती थी। उसके प्रतापसे उन्होंने सेना, मन्त्री और वाहनोंके साथ हैहयाधिपतिका खूब स्वागत-सत्कार किया। वीर हैहयाधिपतिने देखा कि जमदग्नि मुनिका ऐश्वर्य तो मुझसे भी बढ़ा चढ़ा है। इसलिये उसने उनके स्वागत सत्कारको कुछ भी आदर न देकर कामधेनुको ही ले लेना चाहा। उसने अभिमानवश जमदग्नि मुनिसे माँगा भी नहीं, अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि कामधेनुको छीन ले चलो। उसकी आज्ञासे उसके सेवक बछड़ेके साथ 'बाँ-बाँ' डकराती हुई कामधेनुको बलपूर्वक माहिष्मतीपुरी ले गये। जब वे सब चले गये, तब परशुरामजी आश्रमपर आये और उसकी दुष्टताका वृत्तान्त सुनकर चोट खाये हुए साँपकी तरह क्रोधसे तिलमिला उठे। वे अपना भयङ्कर फरसा, तरकस, ढाल एवं धनुष लेकर बड़े वेगसे उसके पीछे दौड़े—जैसे कोई किसीसे न दबनेवाला सिंह हाथीपर टूट पड़े ॥ २३—२८ ॥

सहस्रबाहु अर्जुन अभी अपने नगरमें प्रवेश कर ही रहा था कि उसने देखा परशुरामजी महाराज बड़े वेगसे उसीकी ओर झपटे आ रहे हैं। उनकी बड़ी विलक्षण झाँकी थी। वे हाथमें धनुष-बाण और फरसा लिये हुए थे, शरीरपर काला मृगचर्म धारण किये हुए थे और उनकी जटाएँ सूर्यकी किरणोंके समान चमक रही थीं। उन्हें देखते ही उसने गदा, खड्ग, बाण, ऋष्टि, शतघ्नी और शक्ति आदि आयुधोंसे सुसज्जित एवं हाथी, घोड़े, रथ तथा पदातियोंसे युक्त अत्यन्त भयङ्कर सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी। भगवान् परशुरामने बात-की-बातमें अकेले ही उस सारी सेनाको नष्ट कर दिया। भगवान् परशुरामजीकी गति मन और वायुके समान थी। बस, वे शत्रुकी सेना काटते ही जा रहे थे। जहाँ-जहाँ वे अपने फरसेका प्रहार करते, वहाँ-वहाँ सारथि और वाहनोंके साथ बड़े-बड़े वीरोंकी बाँहें, जाँघें और कंधे कट-कटकर पृथ्वीपर गिरते जाते थे। हैहयाधिपति अर्जुनने देखा कि मेरी सेनाके सैनिक, उनके धनुष, ध्वजाएँ और ढाल भगवान् परशुरामके फरसे और बाणोंसे कट-कटकर खूनसे लथ-पथ रणभूमिमें गिर गये हैं, तब उसे बड़ा क्रोध आया और वह स्वयं भिड़नेके लिये आ धमका। उसने एक साथ ही अपनी हजार भुजाओंसे पाँच सौ धनुषोंपर बाण चढाये और परशुरामजीपर छोड़े। परंतु परशुरामजी तो समस्त शस्त्रधारियोंके शिरोमणि ठहरे। उन्होंने अपने एक धनुषपर छोड़े हुए बाणोंसे ही एक साथ सबको काट डाला। अब हैहयाधिपति अपने हाथोंसे पहाड़ और पेड़ उखाड़कर बड़े वेगसे युद्धभूमिमें परशुरामजीकी ओर झपटा। परन्तु परशुरामजीने अपनी तीखी धारवाले फरसेसे बड़ी फुर्तीके साथ उसकी साँपोंके समान भुजाओंको काट डाला। जब उसकी बाँहें कट गयीं, तब उन्होंने पहाड़की चोटीकी तरह उसका ऊँचा सिर धड़से अलग कर दिया। पिताके मर जानेपर उसके दस हजार लड़के डरकर भग गये ॥ २९—३५ ॥

परीक्षित्! विपक्षी वीरोंके नाशक परशुरामजीने बछड़ेके साथ कामधेनु लौटा ली। वह बहुत ही दुखी हो रही थी।



उन्होंने उसे अपने आश्रमपर लाकर पिताजीको सौंप दिया। और माहिष्मतीमें सहस्रबाहुने तथा उन्होंने जो कुछ किया था, सब अपने पिताजी तथा भाइयोंको कह सुनाया। सब कुछ सुनकर जमदग्नि मुनिने कहा—'हाय, हाय, परशुराम! तुमने बड़ा पाप किया। राम, राम! तुम बड़े वीर हो, परन्तु सर्वदेवमय नरदेवका तुमने व्यर्थ ही वध किया। बेटा! हम लोग ब्राह्मण हैं। क्षमाके प्रभावसे ही हम संसारमें पूजनीय हुए हैं। और तो क्या, सबके दादा ब्रह्माजी भी क्षमाके

गये और चाहने लगे कि यह हमें मिल जाय। अब वे एक दूसरेसे इस प्रकार जोर-जोरसे झगड़ा करने लगे कि 'यह तुम्हारा नहीं, मेरा है।' ऋषियों और देवताओंने तारासे पूछा कि 'यह किसका लड़का है।' परन्तु ताराने लज्जावश कोई उत्तर न दिया। बालकने अपनी माताकी झूठी लज्जासे क्रोधित होकर कहा—'दुष्टे! तू बतलाती क्यों नहीं? तू अपना कुकर्म मुझे शीघ्र-से-शीघ्र बतला दे।' उसी समय ब्रह्माजीने ताराको एकान्तमें बुलाकर बहुत कुछ समझा-बुझाकर पूछा। तब ताराने धीरेसे कहा कि 'चन्द्रमाका।' इसलिये चन्द्रमाने उस बालकको ले लिया। परीक्षित्! ब्रह्माजीने उस बालकका नाम रक्खा 'बुध', क्योंकि उसकी बुद्धि बड़ी गम्भीर थी। ऐसा पुत्र प्राप्त करके चन्द्रमाको बहुत आनन्द हुआ॥ ८—१४॥

परीक्षित्! बुधके द्वारा इलाके गर्भसे पुरूरवाका जन्म हुआ। इसका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ। एक दिन इन्द्रकी सभामें देवर्षि नारदजी पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, शील-स्वभाव, धन-सम्पत्ति और पराक्रमका गायन कर रहे थे। उन्हें सुनकर उर्वशीके हृदयमें काम-भावका उदय हो आया और उससे पीड़ित होकर वह देवाङ्गना पुरूरवाके पास चली आयी। यद्यपि उर्वशीको मित्रावरुणके शापसे ही मृत्युलोकमें आना पड़ा था, फिर भी पुरुषशिरोमणि पुरूरवा मूर्तिमान् कामदेवके समान सुन्दर हैं—यह सुनकर सुर-सुन्दरी उर्वशीने धैर्य धारण किया और वह उनके पास



चली आयी। देवाङ्गना उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवाके नेत्र हर्षसे खिल उठे। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने बड़ी मीठी वाणीसे कहा—॥ १५—१८॥

राजा पुरूरवाने कहा—सुन्दरी! तुम्हारा स्वागत है। बैठो, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ? तुम मेरे साथ विहार करो और हम दोनोंका यह विहार अनन्त कालतक चलता रहे॥ १९॥

उर्वशीने कहा—'राजन्! आप सौन्दर्यके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। भला, ऐसी कौन कामिनी है जिसकी दृष्टि और मन आपमें आसक्त न हो जाय? आपका यह विशाल वक्षःस्थल देखकर मेरी दृष्टि और मन वहीं अटक गये हैं—रम गये हैं, वहाँसे हटते ही नहीं। राजन्! जो पुरुष रूप-गुण आदिके कारण प्रशंसनीय होता है, वही स्त्रियोंको अभीष्ट होता है। अतः मैं आपके साथ अवश्य विहार करूँगी। परन्तु मेरे प्रेमी महाराज! मेरी एक शर्त है। मैं आपको धरोहरके रूपमें भेड़के दो बच्चे सौंपती हूँ। आप इनकी रक्षा करना। वीरशिरोमणे! मैं केवल घी खाऊँगी और मैथुनके अतिरिक्त और किसी भी समय आपको वस्त्रहीन न देख सकूँगी।' परम मनस्वी पुरूरवाने 'ठीक है'—ऐसा कहकर उसकी शर्त स्वीकार कर ली और फिर उर्वशीसे कहा—'तुम्हारा यह सौन्दर्य अद्भुत है। तुम्हारा भाव अलौकिक है। यह तो सारी मनुष्य-सृष्टिको मोहित करनेवाला है। और फिर कृपा करके तुम स्वयं यहाँ आयी हो। तब कौन ऐसा मनुष्य है, जो तुम्हारा सेवन न करेगा?'॥ २०—२३॥

परीक्षित्! तब उर्वशी कामशास्त्रोक्त पद्धतिसे पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाके साथ विहार करने लगी। वे भी देवताओंकी विहारस्थली चैत्ररथ, नन्दनवन आदि उपवनोंमें उसके साथ स्वच्छन्द विहार करने लगे। देवी उर्वशीके शरीरसे कमल-केसरकी-सी सुगन्ध निकला करती थी। उसके साथ राजा पुरूरवाने बहुत वर्षोंतक आनन्द-विहार किया। वे उसके मुखकी सुरभिसे अपनी सुध-बुध खो बैठते थे। इधर जब इन्द्रने उर्वशीको नहीं देखा, तब उन्होंने गन्धर्वोंको उसे लानेके लिये भेजा और कहा—'उर्वशीके बिना मुझे यह स्वर्ग फीका जान पड़ता है।' वे गन्धर्व आधी रातके समय घोर अन्धकारमें वहाँ गये और उर्वशीके दोनों भेड़ोंको, जिन्हें उसने राजाके पास धरोहर रक्खा था, चुराकर चलते बने। उर्वशीने जब अपने पुत्रके समान प्यारे भेड़ोंकी 'बें-बें' सुनी, तब वह कह उठी कि 'अरे, मैं तो मारी गयी। यह नपुंसक अपनेको बड़ा वीर मानता है। यह तो किसी कामका

गये और चाहने लगे कि यह हमें मिल जाय। अब वे एक दूसरेसे इस प्रकार जोर-जोरसे झगड़ा करने लगे कि 'यह तुम्हारा नहीं, मेरा है।' ऋषियों और देवताओंने तारासे पूछा कि 'यह किसका लड़का है।' परन्तु ताराने लज्जावश कोई उत्तर न दिया। बालकने अपनी माताकी झूठी लज्जासे क्रोधित होकर कहा—'दुष्टे! तू बतलाती क्यों नहीं? तू अपना कुकर्म मुझे शीघ्र-से-शीघ्र बतला दे।' उसी समय ब्रह्माजीने ताराको एकान्तमें बुलाकर बहुत कुछ समझा-बुझाकर पूछा। तब ताराने धीरेसे कहा कि 'चन्द्रमाका।' इसलिये चन्द्रमाने उस बालकको ले लिया। परीक्षित्! ब्रह्माजीने उस बालकका नाम रक्खा 'बुध', क्योंकि उसकी बुद्धि बड़ी गम्भीर थी। ऐसा पुत्र प्राप्त करके चन्द्रमाको बहुत आनन्द हुआ॥ ८–१४॥

परीक्षित्! बुधके द्वारा इलाके गर्भसे पुरूरवाका जन्म हुआ। इसका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ। एक दिन इन्द्रकी सभामें देवर्षि नारदजी पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, शील-स्वभाव, धन-सम्पत्ति और पराक्रमका गायन कर रहे थे। उन्हें सुनकर उर्वशीके हृदयमें काम-भावका उदय हो आया और उससे पीड़ित होकर वह देवाङ्गना पुरूरवाके पास चली आयी। यद्यपि उर्वशीको मित्रावरुणके शापसे ही मृत्युलोकमें आना पड़ा था, फिर भी पुरुषशिरोमणि पुरूरवा मूर्तिमान् कामदेवके समान सुन्दर हैं—यह सुनकर सुर-सुन्दरी उर्वशीने धैर्य धारण किया और वह उनके पास



चली आयी। देवाङ्गना उर्वशीको देखकर राजा पुरूरवाके नेत्र हर्षसे खिल उठे। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने बड़ी मीठी वाणीसे कहा—॥ १५–१८॥

राजा पुरूरवाने कहा—सुन्दरी! तुम्हारा स्वागत है। बैठो, मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ? तुम मेरे साथ विहार करो और हम दोनोंका यह विहार अनन्त कालतक चलता रहे॥ १९॥

उर्वशीने कहा—'राजन्! आप सौन्दर्यके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। भला, ऐसी कौन कामिनी है जिसकी दृष्टि और मन आपमें आसक्त न हो जाय? आपका यह विशाल वक्षःस्थल देखकर मेरी दृष्टि और मन वहीं अटक गये हैं—रम गये हैं, वहाँसे हटते ही नहीं। राजन्! जो पुरुष रूप-गुण आदिके कारण प्रशंसनीय होता है, वही स्त्रियोंको अभीष्ट होता है। अतः मैं आपके साथ अवश्य विहार करूँगी। परन्तु मेरे प्रेमी महाराज! मेरी एक शर्त है। मैं आपको धरोहरके रूपमें भेड़के दो बच्चे सौंपती हूँ। आप इनकी रक्षा करना। वीरशिरोमणे! मैं केवल घी खाऊँगी और मैथुनके अतिरिक्त और किसी भी समय आपको वस्त्रहीन न देख सकूँगी।' परम मनस्वी पुरूरवाने 'ठीक है'—ऐसा कहकर उसकी शर्त स्वीकार कर ली और फिर उर्वशीसे कहा—'तुम्हारा यह सौन्दर्य अद्भुत है। तुम्हारा भाव अलौकिक है। यह तो सारी मनुष्य-सृष्टिको मोहित करनेवाला है। और फिर कृपा करके तुम स्वयं यहाँ आयी हो। तब कौन ऐसा मनुष्य है, जो तुम्हारा सेवन न करेगा?'॥ २०–२३॥

परीक्षित्! तब उर्वशी कामशास्त्रोक्त पद्धतिसे पुरुषश्रेष्ठ पुरूरवाके साथ विहार करने लगी। वे भी देवताओंकी विहारस्थली चैत्ररथ, नन्दनवन आदि उपवनोंमें उसके साथ स्वच्छन्द विहार करने लगे। देवी उर्वशीके शरीरसे कमल-केसरकी-सी सुगन्ध निकला करती थी। उसके साथ राजा पुरूरवाने बहुत वर्षोंतक आनन्द-विहार किया। वे उसके मुखकी सुरभिसे अपनी सुध-बुध खो बैठते थे। इधर जब इन्द्रने उर्वशीको नहीं देखा, तब उन्होंने गन्धर्वोंको उसे लानेके लिये भेजा और कहा—'उर्वशीके बिना मुझे यह स्वर्ग फीका जान पड़ता है।' वे गन्धर्व आधी रातके समय घोर अन्धकारमें वहाँ गये और उर्वशीके दोनों भेड़ोंको, जिन्हें उसने राजाके पास धरोहर रक्खा था, चुराकर चलते बने। उर्वशीने जब अपने पुत्रके समान प्यारे भेड़ोंकी 'बें-बें' सुनी, तब वह कह उठी कि 'अरे, मैं तो मारी गयी। यह नपुंसक अपनेको बड़ा वीर मानता है। यह तो किसी कामका

बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन कर दिया और कुरुक्षेत्रके समन्त पञ्चकमें ऐसे ऐसे पाँच तालाब बना दिये, जो रक्तके जलसे भरे हुए थे। परशुरामजीने अपने पिताजीका सिर लाकर उनके धड़से जोड़ दिया और यज्ञोंके द्वारा सर्वदेवमय आत्मस्वरूप भगवान्‌का यजन किया। यज्ञोंमें उन्होंने पूर्व दिशा होताको, दक्षिण दिशा ब्रह्माको, पश्चिम दिशा अध्वर्युको और उत्तर दिशा साम गायन करनेवाले उद्गाताको दे दी। इसी प्रकार अग्निकोण आदि विदिशाएँ ऋत्विजोंको दीं, कश्यपजीको मध्यभूमि दी, उपद्रष्टाको आर्यावर्त दिया तथा दूसरे सदस्योंको अन्यान्य दिशाएँ प्रदान कर दीं। इसके बाद यज्ञान्त स्नान करके वे समस्त पापोंसे मुक्त हो गये और ब्रह्मनदी सरस्वतीके तटपर मेघरहित सूर्यके समान शोभायमान हुए। महर्षि जमदग्निको स्मृतिरूप सङ्कल्पमय शरीरकी प्राप्ति हो गयी। परशुरामजीसे सम्मानित होकर वे सप्तर्षियोंके मण्डलमें सातवें ऋषि हो गये। परीक्षित्! इसके बाद कमललोचन जमदग्निनन्दन भगवान् परशुरामने भी सौम्य रूप धारण कर लिया। आगामी मन्वन्तरमें सप्तर्षियोंके मण्डलमें रहकर वे वेदोंका विस्तार करेंगे। वे आज भी किसीको किसी प्रकारका दण्ड न देते हुए शान्त चित्तसे महेन्द्र पर्वतपर निवास करते हैं। वहाँ सिद्ध, गन्धर्व और चारण उनके चरित्र का मधुर स्वरसे गायन करते रहते हैं। सर्वशक्तिमान् विश्वात्मा भगवान् श्रीहरिने इस प्रकार भृगुवंशियोंमें अवतार ग्रहण करके पृथ्वीके भारभूत राजाओंका बहुत बार वध किया॥१७—२७॥

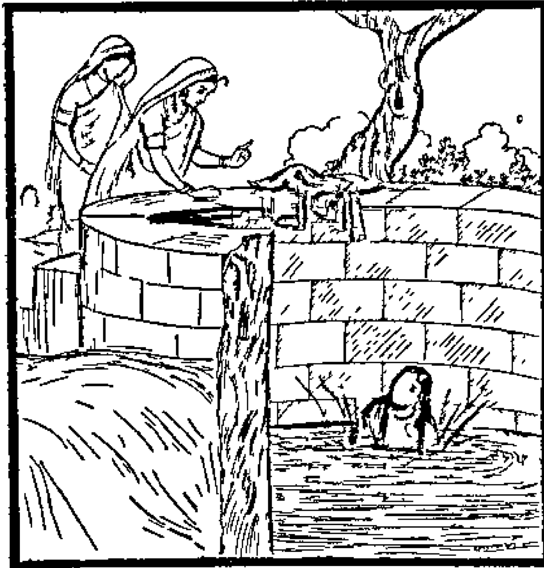
महाराज गाधिके पुत्र हुए प्रज्वलित अग्निके समान परम तेजस्वी विश्वामित्रजी। इन्होंने अपने तपोबलसे क्षत्रियत्वका त्याग करके ब्रह्मतेज प्राप्त कर लिया। परीक्षित्! विश्वामित्रजीके सौ पुत्र थे। उनमें बिचले पुत्रका नाम था मधुच्छन्दा। इसलिये सभी पुत्र 'मधुच्छन्दा'के ही नामसे विख्यात हुए। विश्वामित्रजीने भृगुवंशी अजीगर्तके पुत्र अपने भानजे शुनःशेपको, जिसका एक नाम देवरात भी था, पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया और अपने पुत्रोंसे कहा कि 'तुमलोग इसे अपना बड़ा भाई मानो।' यह वही प्रसिद्ध भृगुवंशी शुनःशेप था, जो हरिश्चन्द्रके यज्ञमें यज्ञपशुके रूपमें मोल लेकर लाया गया था। विश्वामित्रजीने प्रजापति वरुण आदि देवताओंकी स्तुति करके उसे पाशबन्धनसे छुड़ा लिया था। देवताओंके यज्ञमें इसी शुनःशेपकी उन लोगोंने रक्षा की थी और गाधिवंशमें यही तपस्वी देवरातके नामसे विख्यात था। विश्वामित्रजीके पुत्रोंमें जो बड़े थे, उन्हें शुनःशेपको बड़ा भाई माननेकी बात अच्छी न लगी। इसपर विश्वामित्रजीने क्रोधित होकर उन्हें शाप दे दिया कि 'दुष्टो! तुम सब म्लेच्छ हो जाओ।' इस प्रकार जब उनचास भाई म्लेच्छ हो गये, तब विश्वामित्रजीके बिचले पुत्र मधुच्छन्दाने अपनेसे छोटे पचासों भाइयोंके साथ कहा—'पिताजी! आप हमलोगोंको जो आज्ञा करते हैं, हम उसका पालन करनेके लिये तैयार हैं।' यह कहकर मधुच्छन्दाने मन्त्रद्रष्टा शुनःशेपको बड़ा भाई स्वीकार कर लिया और कहा कि 'हम सब तुम्हारे अनुयायी—छोटे भाई हैं।' तब विश्वामित्रजीने अपने इन आज्ञाकारी पुत्रोंसे कहा—'तुमलोगोंने मेरी बात मानकर मेरे सम्मानकी रक्षा की है, इसलिये तुमलोगों जैसे सुपुत्र प्राप्त करके मैं धन्य हुआ। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें भी सुपुत्र प्राप्त होंगे। मेरे प्यारे पुत्रो! यह देवरात शुनःशेप भी तुम्हारे ही गोत्रका है। तुमलोग इसकी आज्ञामें रहना।' परीक्षित्! विश्वामित्रजीके अष्टक, हारीत, जय और क्रतुमान् आदि और भी पुत्र थे। इस प्रकार विश्वामित्रजीकी सन्तानोंसे कौशिक गोत्रमें कई भेद हो गये और देवरातको बड़ा भाई माननेके कारण उसका प्रवर ही दूसरा हो गया॥२८—३७॥

सत्रहवाँ अध्याय

क्षत्रवृद्ध, रजि आदि राजाओंके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! पुरूरवाका एक पुत्र था आयु। उसके पाँच लड़के हुए—नहुष, क्षत्रवृद्ध, रजि, शक्तिशाली रम्भ और अनेना। अब क्षत्रवृद्धका वंश सुनो। क्षत्रवृद्धके पुत्र थे सुहोत्र। सुहोत्रके तीन पुत्र हुए—काश्य, कुश और गृत्समद। गृत्समदका पुत्र हुआ शुनक। इसी शुनकके पुत्र ऋग्वेदियोंमें श्रेष्ठ मुनिवर शौनकजी हुए। काश्यका पुत्र काशि, काशिका राष्ट्र, राष्ट्रका दीर्घतमा और दीर्घतमाके धन्वन्तरि। यही धन्वन्तरि आयुर्वेदके प्रवर्तक हैं। ये यज्ञभागके भोक्ता और भगवान् वासुदेवके अंश हैं। इनके स्मरणमात्रसे ही सब प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं। धन्वन्तरिका पुत्र हुआ केतुमान्, केतुमान्‌का भीमरथ, भीमरथका दिवोदास और दिवोदासका द्युमान्—जिसका एक नाम प्रतर्दन भी है। यही द्युमान् शत्रुजित्, ऋतध्वज, वत्स और कुवलयाश्वके नामसे भी प्रसिद्ध है। द्युमान्‌के ही पुत्र

अपने तपोबलसे इस संसारकी सृष्टि की है, जो परमपुरुष परमात्माके मुखरूप हैं, जो अपने हृदयमें निरन्तर ज्योतिर्मय परमात्माको धारण किये रहते हैं और जिन्होंने सम्पूर्ण प्राणियोंके कल्याणके लिये वैदिक मार्गका निर्देश किया है, बड़े बड़े लोकपाल तथा देवराज इन्द्र ब्रह्मा आदि भी जिनके चरणोंकी वन्दना और सेवा करते हैं,—और तो क्या, लक्ष्मीजीके एकमात्र आश्रय परमपावन विश्वात्मा भगवान् भी जिनकी वन्दना और स्तुति करते हैं—उन्हीं ब्राह्मणोंमें हम सबसे श्रेष्ठ भृगुवंशी हैं। और इसका पिता प्रथम तो असुर है, फिर हमारा शिष्य है। इसपर भी इस दुष्टाने जैसे शूद्र वेद पढ़ ले, उसी तरह हमारे कपड़ोंको पहन लिया है।' जब देवयानी इस प्रकार गाली देने लगी, तब शर्मिष्ठा क्रोधसे तिलमिला उठी। वह चोट खायी हुई सर्पिणीके समान लंबी साँस लेने लगी। उसने अपने दाँतोंसे होठ दबाकर कहा—'भिखारिन! तू इतना बहक रही है! तुझे कुछ अपनी बातका भी पता है? जैसे कौए और कुत्ते हमारे दरवाजेपर रोटीके टुकड़ोंके लिये प्रतीक्षा करते रहते हैं, वैसे ही क्या तुमलोग भी हमारे घरोंकी ओर नहीं ताकती रहतीं?' शर्मिष्ठाने इस प्रकार बड़ी कड़ी कड़ी बात कहकर गुरुपुत्री देवयानीका



तिरस्कार किया और क्रोधवश उसके वस्त्र छीनकर उसे कूएँमें ढकेल दिया ॥ ६—१७ ॥

शर्मिष्ठाके चले जानेके बाद संयोगवश शिकार खेलते हुए राजा ययाति उधर आ निकले। उन्हें जलकी आवश्यकता थी, इसलिये कूएँमें पड़ी हुई देवयानीको उन्होंने देख लिया। उस समय वह वस्त्रहीन थी। इसलिये उन्होंने अपना दुपट्टा उसे दे दिया और दया करके अपने हाथसे उसका हाथ पकड़कर उसे बाहर निकाल लिया। देवयानीने प्रेमभरी वाणीसे वीर ययातिसे कहा—'वीरशिरोमणे राजन्! आज आपने मेरा हाथ पकड़ा है। अब जब आपने मेरा हाथ पकड़ लिया, तब कोई दूसरा इसे न पकड़े। वीरश्रेष्ठ! कूएँमें गिर जानेपर मुझे जो आपका अचानक दर्शन हुआ है, यह भगवान्का ही किया हुआ सम्बन्ध समझना चाहिये। इसमें हमलोगोंकी या और किसी मनुष्यकी कोई चेष्टा नहीं है। वीरश्रेष्ठ! पहले मैंने बृहस्पतिके पुत्र कचको शाप दे दिया था, इसपर उसने भी मुझे शाप दे दिया। इसी कारण ब्राह्मणके साथ मेरा विवाह नहीं हो सकता।'* ययातिको शास्त्रप्रतिकूल होनेके कारण यह सम्बन्ध अभीष्ट तो न था, परन्तु उन्होंने देखा कि प्रारब्धने स्वयं ही मुझे यह उपहार दिया है, और मेरा मन भी इसकी ओर खिंच रहा है। इसलिये ययातिने उसकी बात मान ली ॥ १८—२३ ॥

वीर राजा ययाति जब चले गये, तब देवयानी रोती पीटती अपने पिता शुक्राचार्यके पास पहुँची और शर्मिष्ठाने जो कुछ किया था, वह सब उन्हें कह सुनाया। शर्मिष्ठाके व्यवहारसे भगवान् शुक्राचार्यजीका भी मन उचट गया। वे पुरोहिताई की निन्दा करने लगे। उन्होंने सोचा कि इसकी अपेक्षा तो खेत या बाजारमेंसे कबूतरकी तरह कुछ बीनकर खा लेना अच्छा है। अतः अपनी कन्या देवयानीको साथ लेकर वे नगरसे निकल पड़े। जब वृषपर्वाको यह मालूम हुआ, तो उनके मनमें यह शङ्का हुई कि गुरुजी कहीं शत्रुओंकी जीत न करा दें, अथवा मुझे शाप न दे दें। अतएव वे उनको प्रसन्न करनेके लिये पीछे पीछे गये और रास्तेमें उनके चरणोंपर सिरके बल गिर गये। भगवान् शुक्राचार्यजीका क्रोध तो आधे ही क्षणका था। उन्होंने वृषपर्वासे कहा—'राजन्! मैं अपनी पुत्री देवयानीको नहीं छोड़ सकता।

* बृहस्पतिजीका पुत्र कच शुक्राचार्यजीसे मृतसंजीवनी विद्या पढ़ता था। अध्ययन समाप्त करके जब वह अपने घर जाने लगा, तो देवयानीने उसे वरण करना चाहा। परन्तु गुरुपुत्री होनेके कारण कचने उसका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। इसपर देवयानीने उसे शाप दे दिया कि 'तुम्हारी पढ़ी हुई विद्या निष्फल हो जाय।' कचने भी उसे शाप दिया कि 'कोई भी ब्राह्मण तुम्हें पत्नीरूपमें स्वीकार न करेगा।'

पंद्रहवाँ अध्याय

ऋचीक, जमदग्नि और परशुरामजीका चरित्र

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उर्वशीके गर्भसे पुरूरवाके छः पुत्र हुए—आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय। श्रुतायुका पुत्र था वसुमान्, सत्यायुका श्रुतञ्जय, रयका एक, जयका अमित और विजयका भीम। भीमका पुत्र हुआ काञ्चन, काञ्चनका होत्र और होत्रका पुत्र था जह्नु। ये जह्नु वही थे, जो गङ्गाजीको अपनी अञ्जलिमें लेकर पी गये थे। जह्नुका पुत्र था पूरु, पूरुका बलाक, बलाकका अजक और अजकका कुश था। कुशके चार पुत्र थे—कुशाम्बु, तनय, वसु और कुशनाभ। इनमेंसे कुशाम्बुके पुत्र गाधि हुए॥ १-४॥

परीक्षित् ! गाधिकी कन्याका नाम था सत्यवती। ऋचीक ऋषिने गाधिसे उनकी कन्या माँगी। गाधिने यह समझकर कि ये कन्याके योग्य वर नहीं हैं, उनसे कहा—'मुनिवर ! हमलोग कुशिक-वंशके हैं। हमारी कन्या मिलनी कठिन है। इसलिये आप एक हजार ऐसे घोड़े लाकर मुझे शुल्करूपमें दीजिये, जिनका सारा शरीर तो श्वेत हो परन्तु एक-एक कान श्याम वर्णका हो।' जब गाधिने यह बात कही, तब ऋचीक मुनि उनका आशय समझ गये और वरुणके पास जाकर वैसे ही घोड़े ले आये तथा उन्हें देकर सत्यवतीसे विवाह कर लिया। एक बार महर्षि ऋचीकसे उनकी पत्नी और सास दोनोंने ही पुत्रप्राप्तिके लिये प्रार्थना की। महर्षि ऋचीकने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके दोनोंके लिये अलग-अलग मन्त्रोंसे चरु पकाया। जब वे स्नान करनेके लिये चले गये, तब सत्यवतीकी माँने यह समझकर कि ऋषिने अपनी पत्नीके लिये श्रेष्ठ चरु पकाया होगा, उससे वह चरु माँग लिया। इसपर सत्यवतीने अपना चरु तो माँको दे दिया और माँका चरु वह स्वयं खा गयी। जब ऋचीक मुनिको इस बातका पता चला, तब उन्होंने अपनी पत्नी सत्यवतीसे कहा कि 'तुमने बड़ा अनर्थ कर डाला। अब तुम्हारा पुत्र तो लोगोंको दण्ड देनेवाला घोर प्रकृतिका होगा, और तुम्हारा भाई होगा एक श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता।' सत्यवतीने ऋचीक मुनिको प्रसन्न किया और प्रार्थना की कि 'स्वामी ! ऐसा नहीं होना चाहिये।' तब उन्होंने कहा—'अच्छी बात है। पुत्रके बदले तुम्हारा पौत्र वैसा होगा।' समयपर सत्यवतीके गर्भसे जमदग्निका जन्म हुआ। सत्यवती समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली परम पुण्यमयी 'कौशिकी' नदी बन गयी। रेणु ऋषिकी कन्या थी रेणुका। जमदग्निने उसका पाणिग्रहण किया। रेणुकाके गर्भसे जमदग्नि ऋषिके वसुमान् आदि कई पुत्र हुए। उनमें सबसे छोटे परशुरामजी थे। उनका यश सारे संसारमें प्रसिद्ध है। कहते हैं कि हैहयवंशका अन्त करनेके लिये स्वयं भगवान्ने ही परशुरामके रूपमें अंशावतार ग्रहण किया था। उन्होंने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियहीन कर दिया। यद्यपि क्षत्रियोंने उनका कोई बड़ा भारी अपराध नहीं किया था—फिर भी वे लोग बड़े दुष्ट, ब्राह्मणोंके अभक्त, रजोगुणी और विशेष करके तमोगुणी हो रहे थे। यही कारण था कि वे पृथ्वीके भार हो गये थे और इसीके फलस्वरूप भगवान् परशुरामने उनका नाश करके पृथ्वीका भार उतार दिया॥ ५-१५॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! अवश्य ही उस समयके क्षत्रिय विषयलोलुप हो गये थे; परन्तु उन्होंने परशुरामजीका ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया, जिसके कारण उन्होंने बार-बार क्षत्रियोंके वंशका संहार किया ?॥ १६॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परीक्षित् ! उन दिनों हैहयवंशका अधिपति था अर्जुन। वह एक श्रेष्ठ क्षत्रिय था। उसने अनेकों प्रकारकी सेवा-शुश्रूषा करके भगवान् नारायणके अंशावतार दत्तात्रेयजीको प्रसन्न कर लिया और उनसे एक हजार भुजाएँ तथा कोई भी शत्रु युद्धमें पराजित न कर सके—यह वरदान प्राप्त कर लिया। साथ ही इन्द्रियोंका अबाध बल, अतुल सम्पत्ति, तेजस्विता, वीरता, कीर्ति और शारीरिक बल भी उसने उनकी कृपासे प्राप्त कर लिये थे। वह योगेश्वर हो गया था। उसमें ऐसा ऐश्वर्य था कि वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, स्थूल-से-स्थूल रूप धारण कर लेता। सभी सिद्धियाँ उसे प्राप्त थीं। वह संसारमें वायुकी तरह सब जगह बेरोक-टोक विचरा करता। एक बार गलेमें वैजयन्ती माला पहने सहस्रबाहु अर्जुन बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीमें जल-विहार कर रहा था। उस समय मदोन्मत्त सहस्रबाहुने अपनी बाँहोंसे नदीका प्रवाह रोक दिया। दशमुख रावणका शिविर भी वहीं कहीं पासमें ही था। नदीकी धारा उलटी बहने लगी, जिससे उसका शिविर डूबने लगा। रावण अपनेको बहुत बड़ा वीर तो मानता ही था, इसलिये सहस्रार्जुनके इस कामसे वह चिढ़ गया। जब रावण सहस्रबाहु अर्जुनके पास जाकर बुरा-भला कहने लगा, तब उसने स्त्रियोंके सामने ही खेल-खेलमें रावण-

हुआ। इसी मेधातिथिसे प्रस्कण्व आदि ब्राह्मण उत्पन्न हुए। सुमतिका पुत्र रैभ्य हुआ, इसी रैभ्यका पुत्र दुष्यन्त था ॥१–७॥

एक बार दुष्यन्त वनमें अपने कुछ सैनिकोंके साथ शिकार खेलनेके लिये गये हुए थे। उधर ही वे कण्व मुनिके आश्रमपर जा पहुँचे। उस आश्रमपर देवमायाके समान मनोहर एक स्त्री बैठी हुई थी। उसकी लक्ष्मीके समान अङ्गकान्तिसे वह आश्रम जगमगा रहा था। उस सुन्दरीको देखते ही दुष्यन्त मोहित हो गये और उससे बातचीत करने लगे। उसको देखनेसे उनको बड़ा आनन्द मिला। उनके मनमें काम-वासना जाग्रत् हो गयी। थकावट दूर करनेके बाद उन्होंने बड़ी मधुर वाणीसे मुसकराते हुए उससे पूछा—'कमलदलके समान सुन्दर नेत्रोंवाली देवि! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो? मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित करनेवाली सुन्दरी! तुम इस निर्जन वनमें किस उद्देश्यसे रह रही हो? सुन्दरी! मैं स्पष्ट समझ रहा हूँ कि तुम किसी क्षत्रियकी कन्या हो। क्योंकि पुरुवंशियोंका चित्त कभी अधर्मकी ओर नहीं झुकता' ॥ ८–१२ ॥

शकुन्तलाने कहा—आपका कहना सत्य है। मैं विश्वामित्रजीकी पुत्री हूँ। मेनका अप्सराने मुझे वनमें छोड़ दिया था। इस बातके साक्षी हैं मेरा पालन पोषण करनेवाले महर्षि कण्व। वीरशिरोमणे! मैं आपकी क्या सेवा करूँ? कमलनयन! आप यहाँ बैठिये और हम जो कुछ आपका स्वागत सत्कार करें, उसे स्वीकार कीजिये। आश्रममें कुछ नीवार (सावाँका भात) है। आपकी इच्छा हो तो भोजन कीजिये और जँचे तो यहीं ठहरिये ॥ १३ १४ ॥

दुष्यन्तने कहा—'सुन्दरी! तुम कुशिकवंशमें उत्पन्न हुई हो, इसलिये इस प्रकारका आतिथ्य सत्कार तुम्हारे योग्य ही है। क्योंकि राजकन्याएँ स्वयं ही अपने योग्य पतिको वरण कर लिया करती हैं।' फिर शकुन्तलाकी स्वीकृति मिल जानेपर देश, काल और शास्त्रकी आज्ञाको जाननेवाले राजा दुष्यन्तने गान्धर्वविधिसे उसके साथ विवाह कर लिया। राजर्षि दुष्यन्तका वीर्य अमोघ था। रात्रिमें वहाँ रहकर दुष्यन्तने शकुन्तलाका सहवास किया और दूसरे दिन सबेरे वे अपनी राजधानीमें चले गये। समय आनेपर शकुन्तलाको एक पुत्र उत्पन्न हुआ। महर्षि कण्वने वनमें ही राजकुमारके जातकर्म आदि संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न किये। वह बालक बचपनमें ही इतना बलवान् था कि बड़े बड़े सिंहोंको बलपूर्वक बाँध लेता और उनसे खेला करता ॥ १५–१८॥

वह बालक भगवान्‌का अंशांशावतार था। उसका बल विक्रम अपरिमित था। उसे अपने साथ लेकर शकुन्तला अपने पतिके पास गयी। जब राजा दुष्यन्तने अपनी निर्दोष पत्नी और पुत्रको स्वीकार नहीं किया, तब सब लोगोंके सामने ही यह आकाशवाणी हुई—'पुत्र उत्पन्न करनेमें माता तो केवल धौंकनीके समान है। वास्तवमें पुत्र पिताका ही है। क्योंकि पिता ही पुत्रके रूपमें उत्पन्न होता है। इसलिये दुष्यन्त! तुम शकुन्तलाका तिरस्कार न करो, अपने पुत्रका भरण-पोषण करो। राजन्! वंशकी वृद्धि करनेवाला पुत्र अपने पिताको नरकसे उबार लेता है। शकुन्तलाका कहना बिल्कुल ठीक है। इस गर्भको धारण करानेवाले तुम्हीं हो ॥१९–२२॥

परीक्षित्! पिता दुष्यन्तकी मृत्यु हो जानेके बाद वह परमयशस्वी बालक चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। उसका जन्म भगवान्‌के अंशसे हुआ था, इसलिये आज भी पृथ्वीपर उसकी महिमाका गायन किया जाता है। उसके दाहिने हाथमें चक्रका चिह्न था और पैरोंमें कमलकोषका। महाभिषेककी विधिसे राजाधिराजके पदपर उसका अभिषेक हुआ। भरतकी शक्ति अपार थी। भरतने ममताके पुत्र दीर्घतमा मुनिको पुरोहित बनाकर गङ्गातटपर गङ्गासागरसे लेकर गंगोत्रीपर्यन्त पचपन पवित्र अश्वमेध यज्ञ किये। और इसी प्रकार यमुनातटपर भी प्रयागसे लेकर यमुनोत्री तक उन्होंने अठहत्तर अश्वमेध यज्ञ किये। इन सभी यज्ञोंमें उन्होंने अपार धनराशिका दान किया था। दुष्यन्त कुमार भरतका यज्ञीय अग्निस्थापन बड़े ही उत्तम गुणवाले स्थानमें किया गया था। उस स्थानमें भरतने इतनी गौएँ दान दी थीं कि एक हजार ब्राह्मणोंमें प्रत्येक ब्राह्मणको एक एक बद्व (१३०८४) गौएँ मिली थीं। इस प्रकार राजा भरतने उन यज्ञोंमें एक सौ तैंतीस (५५–७८) घोड़े बाँधकर (१३३ यज्ञ करके) समस्त नरपतियोंको असीम आश्चर्यमें डाल दिया। इन यज्ञोंके द्वारा इस लोकमें तो राजा भरतको परम यश मिला ही, अन्तमें उन्होंने मायापर भी विजय प्राप्त की और देवताओंके परमगुरु भगवान् श्रीहरिको प्राप्त कर लिया। यज्ञमें एक कर्म होता है 'मष्णार'। उसमें भरतने सुवर्णसे विभूषित, श्वेत दाँतोंवाले तथा काले रंगके चौदह लाख हाथी दान किये। भरतने जो महान् कर्म किया, वह न तो पहले कोई राजा कर सका था और न तो आगे ही कोई कर सकेगा। अरे भाई, क्या कभी कोई हाथसे स्वर्गको छू सकता है? भरतने दिग्विजयके समय किरात, हूण, यवन,

पंद्रहवाँ अध्याय

ऋचीक, जमदग्नि और परशुरामजीका चरित्र

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उर्वशीके गर्भसे पुरूरवाके छः पुत्र हुए—आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय। श्रुतायुका पुत्र था वसुमान्, सत्यायुका श्रुतञ्जय, रयका एक, जयका अमित और विजयका भीम। भीमका पुत्र हुआ काञ्चन, काञ्चनका होत्र और होत्रका पुत्र था जह्नु। ये जह्नु वही थे, जो गङ्गाजीको अपनी अञ्जलिमें लेकर पी गये थे। जह्नुका पुत्र था पूरु, पूरुका बलाक, बलाकका अजक और अजकका कुश था। कुशके चार पुत्र थे—कुशाम्बु, तनय, वसु और कुशनाभ। इनमेंसे कुशाम्बुके पुत्र गाधि हुए॥१-४॥

परीक्षित् ! गाधिकी कन्याका नाम था सत्यवती। ऋचीक ऋषिने गाधिसे उनकी कन्या माँगी। गाधिने यह समझकर कि ये कन्याके योग्य वर नहीं हैं, उनसे कहा—'मुनिवर ! हमलोग कुशिक-वंशके हैं। हमारी कन्या मिलनी कठिन है। इसलिये आप एक हजार ऐसे घोड़े लाकर मुझे शुल्करूपमें दीजिये, जिनका सारा शरीर तो श्वेत हो परन्तु एक-एक कान श्याम वर्णका हो।' जब गाधिने यह बात कही, तब ऋचीक मुनि उनका आशय समझ गये और वरुणके पास जाकर वैसे ही घोड़े ले आये तथा उन्हें देकर सत्यवतीसे विवाह कर लिया। एक बार महर्षि ऋचीकसे उनकी पत्नी और सास दोनोंने ही पुत्रप्राप्तिके लिये प्रार्थना की। महर्षि ऋचीकने उनकी प्रार्थना स्वीकार करके दोनोंके लिये अलग-अलग मन्त्रोंसे चरु पकाया। जब वे स्नान करनेके लिये चले गये, तब सत्यवतीकी माँने यह समझकर कि ऋषिने अपनी पत्नीके लिये श्रेष्ठ चरु पकाया होगा, उससे वह चरु माँग लिया। इसपर सत्यवतीने अपना चरु तो माँको दे दिया और माँका चरु वह स्वयं खा गयी। जब ऋचीक मुनिको इस बातका पता चला, तब उन्होंने अपनी पत्नी सत्यवतीसे कहा कि 'तुमने बड़ा अनर्थ कर डाला। अब तुम्हारा पुत्र तो लोगोंको दण्ड देनेवाला घोर प्रकृतिका होगा, और तुम्हारा भाई होगा एक श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता।' सत्यवतीने ऋचीक मुनिको प्रसन्न किया और प्रार्थना की कि 'स्वामी ! ऐसा नहीं होना चाहिये।' तब उन्होंने कहा—'अच्छी बात है। पुत्रके बदले तुम्हारा पौत्र वैसा होगा।' समयपर सत्यवतीके गर्भसे जमदग्निका जन्म हुआ। सत्यवती समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली परम पुण्यमयी 'कौशिकी' नदी बन गयी। रेणु ऋषिकी कन्या थी रेणुका। जमदग्निने उसका पाणिग्रहण किया। रेणुकाके गर्भसे जमदग्नि ऋषिके वसुमान् आदि कई पुत्र हुए। उनमें सबसे छोटे परशुरामजी थे। उनका यश सारे संसारमें प्रसिद्ध है। कहते हैं कि हैहयवंशका अन्त करनेके लिये स्वयं भगवान्ने ही परशुरामके रूपमें अंशावतार ग्रहण किया था। उन्होंने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियहीन कर दिया। यद्यपि क्षत्रियोंने उनका कोई बड़ा भारी अपराध नहीं किया था—फिर भी वे लोग बड़े दुष्ट, ब्राह्मणोंके अभक्त, रजोगुणी और विशेष करके तमोगुणी हो रहे थे। यही कारण था कि वे पृथ्वीके भार हो गये थे और इसीके फलस्वरूप भगवान् परशुरामने उनका नाश करके पृथ्वीका भार उतार दिया॥५-१५॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन् ! अवश्य ही उस समयके क्षत्रिय विषयलोलुप हो गये थे; परन्तु उन्होंने परशुरामजीका ऐसा कौन-सा अपराध कर दिया, जिसके कारण उन्होंने बार-बार क्षत्रियोंके वंशका संहार किया ?॥१६॥

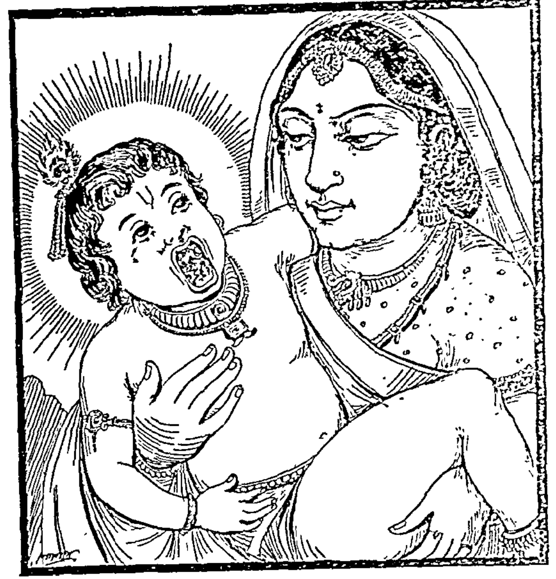
श्रीशुकदेवजी कहने लगे—परीक्षित् ! उन दिनों हैहयवंशका अधिपति था अर्जुन। वह एक श्रेष्ठ क्षत्रिय था। उसने अनेकों प्रकारकी सेवा-शुश्रूषा करके भगवान् नारायणके अंशावतार दत्तात्रेयजीको प्रसन्न कर लिया और उनसे एक हजार भुजाएँ तथा कोई भी शत्रु युद्धमें पराजित न कर सके—यह वरदान प्राप्त कर लिया। साथ ही इन्द्रियोंका अबाध बल, अतुल सम्पत्ति, तेजस्विता, वीरता, कीर्ति और शारीरिक बल भी उसने उनकी कृपासे प्राप्त कर लिये थे। वह योगेश्वर हो गया था। उसमें ऐसा ऐश्वर्य था कि वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, स्थूल-से-स्थूल रूप धारण कर लेता। सभी सिद्धियाँ उसे प्राप्त थीं। वह संसारमें वायुकी तरह सब जगह बेरोक-टोक विचरा करता। एक बार गलेमें वैजयन्ती माला पहने सहस्रबाहु अर्जुन बहुत-सी सुन्दरी स्त्रियोंके साथ नर्मदा नदीमें जल-विहार कर रहा था। उस समय मदोन्मत्त सहस्रबाहुने अपनी बाँहोंसे नदीका प्रवाह रोक दिया। दशमुख रावणका शिविर भी वहीं कहीं पासमें ही था। नदीकी धारा उलटी बहने लगी, जिससे उसका शिविर डूबने लगा। रावण अपनेको बहुत बड़ा वीर तो मानता ही था, इसलिये सहस्रार्जुनके इस कामसे वह चिढ़ गया। जब रावण सहस्रबाहु अर्जुनके पास जाकर बुरा-भला कहने लगा, तब उसने स्त्रियोंके सामने ही खेल-खेलमें रावण-

पीकर चला गया, तब कुत्तोंको लिये हुए एक और अतिथि आया। उसने कहा—'राजन्! मैं और मेरे ये कुत्ते बहुत भूखे हैं। हमें कुछ खानेको दीजिये।' रन्तिदेवने अत्यन्त आदरभावसे, जो कुछ बच रहा था सब-का-सब उसे



दे दिया और भगवन्मय होकर उन्होंने कुत्ते और कुत्तोंके स्वामीके रूपमें आये हुए भगवान्‌को नमस्कार किया। अब केवल जल ही बच रहा था और वह भी केवल एक मनुष्यके पीनेभरका था। वे उसे आपसमें बाँटकर पीना ही चाहते थे कि एक चाण्डाल और आ पहुँचा। उसने कहा—'मैं अत्यन्त नीच हूँ। मुझे जल पिला दीजिये।' चाण्डालकी वाणी दीनतासे भरी हुई थी। ऐसा जान पड़ता था कि वह बहुत थका हुआ है। उसकी बात सुनकर रन्तिदेवका हृदय करुणासे भर गया, वे उसका दुःख देखकर पीड़ित हो गये। उस समय उनके मुखसे यह अमृतमयी वाणी निकली—'मैं भगवान्‌से आठों सिद्धियोंसे युक्त परम गति नहीं चाहता। और तो क्या, मैं मोक्षकी भी कामना नहीं करता। मैं चाहता हूँ तो केवल यही कि मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हो जाऊँ और उनका सारा दुःख मैं ही सहन करूँ, जिससे और किसी भी प्राणीको दुःख न हो। यह दीन प्राणी जल पी करके जीना चाहता था। जल दे देनेसे इसके जीवनकी रक्षा हो गयी। अब मेरी भूख-प्यासकी पीड़ा, शरीरकी शिथिलता, दीनता, ग्लानि, शोक, विषाद और मोह—ये सब-के-सब जाते रहे। मैं सुखी हो गया।' इस प्रकार कहकर रन्तिदेवने वह बचा हुआ जल भी उस चाण्डालको दे दिया। यद्यपि जलके बिना वे स्वयं मर रहे थे, फिर भी स्वभावसे ही उनका हृदय इतना करुणापूर्ण था कि वे अपनेको रोक न सके। उनके धैर्यकी भी कोई सीमा है? परीक्षित्! ये अतिथि वास्तवमें अतिथि नहीं थे, भगवान्‌की रची हुई मायाके ही विभिन्न रूप थे। उन-उन रूपमें स्वयं भगवान् ही आये थे। अब परीक्षा पूरी हो जानेपर अपने भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवाले त्रिभुवनके स्वामी ब्रह्मा, विष्णु और महेश—तीनों उनके सामने प्रकट हुए। रन्तिदेवने उनके चरणोंमें नमस्कार किया। उन्हें कुछ लेना तो था नहीं। भगवान्‌की कृपासे वे आसक्ति और स्पृहासे भी रहित हो गये तथा परमप्रेममय भक्तिभावसे अपने मनको भगवान् वासुदेवमें तन्मय कर दिया। कुछ भी माँगा नहीं। परीक्षित्! उन्हें भगवान्‌के सिवा और किसी भी वस्तुकी इच्छा तो थी नहीं, उन्होंने अपने मनको पूर्णरूपसे भगवान्‌में लगा दिया। इसलिये त्रिगुणमयी माया उनके सामनेसे स्वप्नके समान लापता हो गयी। उनको भगवत्तत्त्वका साक्षात्कार हो गया। रन्तिदेवके अनुयायी भी उनके संगके प्रभावसे योगी हो गये और सब भगवान्‌के ही आश्रित परमभक्त बन गये॥ ७-१८॥

मन्युपुत्र गर्गसे शिनि और शिनिसे गार्ग्यका जन्म हुआ। यद्यपि गार्ग्य क्षत्रिय था, फिर भी उससे ब्राह्मणवंश चला। महावीर्यका पुत्र था दुरितक्षय। दुरितक्षयके तीन पुत्र हुए—त्रय्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि। ये तीनों ब्राह्मण हो गये। बृहत्क्षत्रका पुत्र हुआ हस्ती, उसीने हस्तिनापुर बसाया था। हस्तीके तीन पुत्र थे—अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ। अजमीढके पुत्रोंमें प्रियमेध आदि ब्राह्मण हुए। इन्हीं अजमीढके एक पुत्रका नाम था बृहदिषु। बृहदिषुका पुत्र हुआ बृहद्धनु, बृहद्धनुका बृहत्काय और बृहत्कायका जयद्रथ हुआ। जयद्रथका पुत्र हुआ विशद और विशदका सेनजित्। सेनजित्‌के चार पुत्र हुए—रुचिराश्व, दृढहनु, काश्य और वत्स। रुचिराश्वका पुत्र पार था और पारका पृथुसेन। पारके दूसरे पुत्रका नाम नीप था। उसके सौ पुत्र थे। इसी नीपने छाया शुककी कन्या कृत्वीसे विवाह किया था। उससे ब्रह्मदत्त नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ब्रह्मदत्त बड़ा योगी था। उसने अपनी पत्नी सरस्वतीके गर्भसे विष्वक्सेन नामक पुत्र उत्पन्न किया। इसी विष्वक्सेनने जैगीषव्यके उपदेशसे योगशास्त्रकी रचना की। विष्वक्सेनका



गोदमें लेकर बड़े प्रेमसे स्तन-पान करा रही थीं। वे वात्सल्य-स्नेहसे इस प्रकार सराबोर हो रही थीं कि उनके स्तनोंसे अपने-आप ही दूध झरता जा रहा था। परीक्षित्! यह उस समयकी बात है जब श्रीकृष्ण प्रायः दूध पी चुके थे। यशोदाजी उनके मन्द-मन्द मुसकराते हुए मुखको चूम रही थीं। ठीक उसी समय श्रीकृष्णको जँभाई आ गयी। जँभानेपर जब उनका मुँह खुला, तब यशोदाने देखा कि उसमें आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन और समस्त चराचर प्राणी स्थित हैं। परीक्षित्! अपने पुत्रके मुँहमें इस प्रकार यकायक सारा जगत् देखकर यशोदाजीका शरीर काँप उठा। उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें बंद कर लीं। वे अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो गयीं॥ ३४–३७॥

आठवाँ अध्याय

नामकरण-संस्कार और बाललीला

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित थे श्रीगर्गाचार्यजी। वे बड़े तपस्वी थे। वसुदेवजीकी प्रेरणासे वे एक दिन नन्दबाबाके गोकुलमें आये। उन्हें देखकर नन्दबाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए। उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके बाद 'ये स्वयं भगवान् ही हैं'—इस भावसे उनकी पूजा की। जब गर्गाचार्यजी आरामसे बैठ गये और विधिपूर्वक उनका आतिथ्य-सत्कार हो गया, तब नन्दबाबाने बड़ी ही मधुर वाणीसे उनका अभिनन्दन किया और कहा—'भगवन्! आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं, आपको न किसी वस्तुका अभाव है और न आवश्यकता। फिर मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप-जैसे महात्माओंका हमारे-जैसे गृहस्थोंके घर आ जाना ही हमारे परम कल्याणका कारण है। हम तो घरोंमें इतने उलझ रहे हैं और इन प्रपञ्चोंमें हमारा चित्त इतना दीन हो रहा है कि हम आपके आश्रमतक जा भी नहीं सकते। हमारे कल्याणके सिवा आपके आगमनका और कोई हेतु नहीं है। प्रभो! जो बात साधारणतः इन्द्रियोंकी पहुँचके बाहर है अथवा भूत और भविष्यके गर्भमें निहित है, वह भी ज्यौतिष-शास्त्रके द्वारा प्रत्यक्ष जान ली जाती है। आपने उसी ज्यौतिष-शास्त्रकी रचना की है। इसके सिवा आप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये मेरे इन दोनों बालकोंके नामकरणादि संस्कार आप ही कर दीजिये। आप कह सकते हैं कि यह काम तो तुम्हें अपने कुलगुरुसे ही कराना चाहिये। किन्तु आप तो जानते ही हैं कि ब्राह्मण जन्मसे ही मनुष्यमात्रका गुरु है॥ १–६॥

गर्गाचार्यजीने कहा—नन्दजी! यह बात तो तुम जानते ही हो कि मैं सब जगह यदुवंशियोंके आचार्यके रूपमें प्रसिद्ध हूँ। यदि मैं तुम्हारे पुत्रके संस्कार करूँगा, तो लोग समझेंगे कि यह तो देवकीका पुत्र है। कंसकी नीयत बहुत बुरी है। वह पाप ही सोचा करता है। जबसे देवकीकी कन्यासे उसने यह बात सुनी है कि उसको मारनेवाला और कहीं पैदा हो गया है, तबसे वह यही सोचा करता है कि देवकीके आठवें गर्भसे कन्याका जन्म तो नहीं होना चाहिये। वसुदेवजीके साथ तुम्हारी बड़ी घनिष्ठ मित्रता है। यदि मैं तुम्हारे पुत्रका संस्कार कर दूँ और वह इस बालकको

पुत्र था सुरथ, सुरथका विदूरथ, विदूरथका सार्वभौम, सार्वभौमका जयसेन, जयसेनका राधिक, राधिकका अयुत, अयुतका क्रोधन, क्रोधनका देवातिथि, देवातिथिका ऋष्य, ऋष्यका दिलीप और दिलीपका पुत्र प्रतीप हुआ। प्रतीपके तीन पुत्र थे—देवापि, शन्तनु और बाह्लीक। देवापि अपना पैतृक राज्य छोड़कर वनमें चला गया, इसलिये उसके छोटे भाई शन्तनु राजा हुए। पूर्वजन्ममें शन्तनुका नाम महाभिष था। इस जन्ममें भी वे अपने हाथोंसे जिसे छू देते थे, वह बूढ़ेसे जवान हो जाता था। और उसे परम शान्ति मिल जाती थी। इसी करामातके कारण उनका नाम 'शन्तनु' हुआ। एक बार शन्तनुके राज्यमें बारह वर्षतक इन्द्रने वर्षा नहीं की। इसपर ब्राह्मणोंने शन्तनुसे कहा कि 'तुमने अपने बड़े भाई देवापिसे पहले ही विवाह, अग्निहोत्र और राजपदको स्वीकार कर लिया; इसीसे तुम्हारे राज्यमें वर्षा नहीं होती। अब यदि तुम अपने नगर और राष्ट्रकी उन्नति चाहते हो, तो शीघ्र-से-शीघ्र अपने बड़े भाईको राज्य लौटा दो।' जब ब्राह्मणोंने शन्तनुसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने वनमें जाकर अपने बड़े भाई देवापिसे राज्य स्वीकार करनेका अनुरोध किया। परन्तु शन्तनुके मन्त्री अश्मरातने पहलेहीसे उनके पास कुछ ऐसे ब्राह्मण भेज दिये थे, जो वेदको दूषित करनेवाले वचनोंसे देवापिको वेदमार्गसे विचलित कर चुके थे। इसका फल यह हुआ कि देवापि वेदोंके अनुसार गृहस्थाश्रम स्वीकार करनेकी जगह उनकी निन्दा करने लगे। इसलिये वे राज्यके अधिकारसे वञ्चित हो गये और तब शन्तनुके राज्यमें वर्षा हुई। देवापि इस समय भी योग साधना कर रहे हैं और योगियोंके प्रसिद्ध निवासस्थान कलापग्राममें रहते हैं। जब कलियुगमें चन्द्रवंशका नाश हो जायगा, तब सत्ययुगके प्रारम्भमें वे फिर उसकी स्थापना करेंगे। शन्तनुके छोटे भाई बाह्लीकका पुत्र हुआ सोमदत्त। सोमदत्तके तीन पुत्र हुए—भूरि, भूरिश्रवा और शल। शन्तनुके द्वारा गङ्गाजीके गर्भसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी भीष्मका जन्म हुआ। वे समस्त धर्मज्ञोंके सिरमौर, भगवान्‌के परमप्रेमी भक्त और परमज्ञानी थे। वे संसारके समस्त वीरोंके अग्रगण्य नेता थे। औरोंकी तो बात ही क्या, उन्होंने अपने गुरु भगवान् परशुरामको भी युद्धमें सन्तुष्ट कर दिया था। शन्तनुके द्वारा दाशराजकी कन्या*के गर्भसे दो पुत्र हुए—चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। चित्राङ्गदको चित्राङ्गद नामक गन्धर्वने मार डाला। इसी दाशराजकी कन्या सत्यवतीसे पराशरजीके द्वारा मेरे पिता, भगवान्‌के कलावतार स्वयं भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने वेदोंकी रक्षा की। परीक्षित्! मैंने उन्हींसे इस श्रीमद्भागवत-पुराणका अध्ययन किया था। यह पुराण परम गोपनीय—अत्यन्त रहस्यमय है। इसीसे मेरे पिता भगवान् व्यासजीने अपने पैल आदि शिष्योंको इसका अध्ययन नहीं कराया, मुझे ही इसके योग्य अधिकारी समझा! एक तो मैं उनका पुत्र था और दूसरे शान्ति आदि गुण भी मुझमें विशेषरूपसे थे। शन्तनुके दूसरे पुत्र विचित्रवीर्यने काशिराजकी कन्या अम्बिका और अम्बालिकासे विवाह किया। उन दोनोंको भीष्मजी स्वयंवरसे बलपूर्वक ले आये थे। विचित्रवीर्य अपनी दोनों पत्नियोंमें इतना आसक्त हो गया कि उसे राजयक्ष्मा रोग हो गया और उसकी मृत्यु हो गयी। माता सत्यवतीके कहनेसे भगवान् व्यासजीने अपने सन्तानहीन भाईकी स्त्रियोंसे धृतराष्ट्र और पाण्डु दो पुत्र उत्पन्न किये। उनकी दासीसे तीसरे पुत्र विदुरजी हुए॥ १-२५॥

परीक्षित्! धृतराष्ट्रकी पत्नी थी गान्धारी। गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्र हुए, उनमें सबसे बड़ा था दुर्योधन। उसके एक बहन भी थी, उसका नाम था दुःशला। पाण्डुकी पत्नी थी कुन्ती। शापवश पाण्डु स्त्री सहवास नहीं कर सकते थे। इसलिये उनकी पत्नी कुन्तीके गर्भसे धर्म, वायु और इन्द्रके द्वारा क्रमशः युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ये तीनों-के तीनों महारथी थे। पाण्डुकी दूसरी पत्नीका नाम था माद्री। दोनों अश्विनीकुमारोंके द्वारा उसके गर्भसे नकुल और सहदेवका जन्म हुआ। परीक्षित्! इन पाँच पाण्डवोंके द्वारा द्रौपदीके गर्भसे तुम्हारे पाँच चाचा उत्पन्न हुए। इनमेंसे युधिष्ठिरके पुत्रका नाम था प्रतिविन्ध्य, भीमसेनका पुत्र था श्रुतसेन, अर्जुनका श्रुतकीर्ति, नकुलका शतानीक और सहदेवका श्रुतकर्मा। इनके सिवा युधिष्ठिरके पौरवी नामकी पत्नीसे देवक, और भीमसेनके हिडिम्बासे घटोत्कच और कालीसे सर्वगत नामके पुत्र हुए। सहदेवके पर्वतकुमारी विजयासे सुहोत्र और नकुलके करेणुमतीसे नरमित्र हुआ। अर्जुनद्वारा नागकन्या उलूपीके गर्भसे इरावान् और मणिपूर नरेशकी कन्यासे बभ्रुवाहनका जन्म हुआ। बभ्रुवाहन अपने नानाका ही पुत्र माना गया। क्योंकि पहलेहीसे यह बात तै हो चुकी थी। अर्जुनकी

* यह कन्या वास्तवमें उपरिचरवसुके वीर्यसे मछलीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी, किन्तु दाशों (केवटों) के द्वारा पालित होनेसे वह केवटोंकी कन्या कहलायी।

बृहद्रथ, बृहत्कर्मा और बृहद्भानु—तीन पुत्र हुए। बृहद्रथका पुत्र हुआ बृहन्मना और बृहन्मनाका जयद्रथ। जयद्रथकी पत्नीका नाम था सम्भूति। उसके गर्भसे विजयका जन्म हुआ। विजयका धृति, धृतिका धृतव्रत, धृतव्रतका सत्कर्मा और सत्कर्माका पुत्र था अधिरथ। अधिरथको कोई सन्तान न थी। किसी दिन वह गङ्गातटपर क्रीडा कर रहा था कि देखा एक पिटारीमें नन्हा-सा शिशु बहा चला जा रहा है। वह बालक कर्ण था, जिसे कुन्तीने कन्यावस्थामें उत्पन्न होनेके कारण उस प्रकार बहा दिया था। अधिरथने उसीको अपना पुत्र बना लिया। परीक्षित्! राजा कर्णके पुत्रका नाम था वृषसेन। ययातिके पुत्र द्रुह्युसे बभ्रुका जन्म हुआ। बभ्रुका सेतु, सेतुका आरब्ध, आरब्धका गान्धार, गान्धारका धर्म, धर्मका धृत, धृतका दुर्मना और दुर्मनाका पुत्र प्रचेता हुआ। प्रचेताके सौ पुत्र हुए, ये उत्तर दिशामें म्लेच्छोंके राजा हुए। ययातिके पुत्र तुर्वसुका वह्नि, वह्निका भर्ग, भर्गका भानुमान्, भानुमान्‌का त्रिभानु, त्रिभानुका उदार बुद्धि करन्धम और करन्धमका पुत्र हुआ मरुत। मरुत सन्तानहीन था। इसलिये उसने पूरुवंशी दुष्यन्तको अपना पुत्र बनाकर रक्खा था। परन्तु दुष्यन्त राज्यकी कामनासे अपने ही वंशमें लौट गये। परीक्षित्! अब मैं राजा ययातिके बड़े पुत्र यदुके वंशका वर्णन करता हूँ॥१-१८॥

परीक्षित्! महाराज यदुका वंश परम पवित्र और मनुष्योंके समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है। जो मनुष्य इसका श्रवण करेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा। इसका कारण है। इस वंशमें स्वयं भगवान् परब्रह्म श्रीकृष्णने मनुष्यके से रूपमें अवतार लिया था। यदुके चार पुत्र थे—सहस्रजित्, क्रोष्टा, नल और रिपु। सहस्रजित्‌से शतजित्‌का जन्म हुआ। शतजित्‌के तीन पुत्र थे—महाहय, वेणुहय और हैहय। हैहयका धर्म, धर्मका नेत्र, नेत्रका कुन्ति, कुन्तिका सोहंजि, सोहंजिका महिष्मान् और महिष्मान्‌का पुत्र भद्रसेन हुआ। भद्रसेनके दो पुत्र थे—दुर्मद और धनक। धनकके चार पुत्र हुए—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और कृतौजा। कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन था। वह सातों द्वीपका एकछत्र सम्राट् था। उसने भगवान्‌के अंशावतार श्रीदत्तात्रेयजीसे योगविद्या और अणिमा लघिमा आदि बड़ी बड़ी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। इसमें सन्देह नहीं कि संसारका कोई भी सम्राट् यज्ञ, दान, तपस्या, योग, शास्त्रज्ञान, पराक्रम और विजय आदि गुणोंमें कार्तवीर्य अर्जुनकी बराबरी नहीं कर सकता। सहस्रबाहु अर्जुन पचासी हजार वर्षतक छहों इन्द्रियोंसे अक्षय विषयोंका भोग करता रहा। इस बीचमें न तो उसके शरीरका बल ही क्षीण हुआ और न तो कभी उसने यही स्मरण किया कि मेरे धनका नाश हो जायगा। उसके धनके नाशकी तो बात ही क्या है, उसका ऐसा प्रभाव था कि उसके स्मरणसे दूसरोंका खोया हुआ धन भी मिल जाता था। उसके एक हजार पुत्र थे, परन्तु उनमेंसे केवल पाँच ही जीवित रहे। शेष सब परशुरामजीकी क्रोधाग्निमें भस्म हो गये। बचे हुए पुत्रोंके नाम थे—जयध्वज, शूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित॥१९-२७॥

जयध्वजके पुत्रका नाम था तालजङ्घ। तालजङ्घके सौ पुत्र हुए। वे 'तालजङ्घ' नामक क्षत्रिय कहलाये। महर्षि और्वकी शक्तिसे राजा सगरने उनका संहार कर डाला। उन सौ पुत्रोंमें सबसे बड़ा था वीतिहोत्र। वीतिहोत्रका पुत्र मधु हुआ। मधुके सौ पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ा था वृष्णि। परीक्षित्! इन्हीं मधु, वृष्णि और यदुके कारण यह वंश माधव, वार्ष्णेय और यादवके नामसे प्रसिद्ध हुआ। यदुपुत्र क्रोष्टुके पुत्रका नाम था वृजिनवान्। वृजिनवान्‌का पुत्र श्वाहि, श्वाहिका रुशेकु, रुशेकुका चित्ररथ और चित्ररथके पुत्रका नाम था शशबिन्दु। वह परम योगी, महान् भोगैश्वर्य सम्पन्न और अत्यन्त पराक्रमी था। वह चौदह रत्नों* का स्वामी, चक्रवर्ती और युद्धमें अजेय था। परमयशस्वी शशबिन्दुके दस हजार पत्नियाँ थीं। उनमेंसे एक एकके लाख लाख सन्तान हुई थीं। इस प्रकार उसके सौ करोड़—एक अरब सन्तान उत्पन्न हुईं। उनमें पृथुश्रवा आदि छ: पुत्र प्रधान थे। पृथुश्रवाके पुत्रका नाम था धर्म। धर्मका पुत्र उशना हुआ। उसने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। उशनाका पुत्र हुआ रुचक। रुचकके पाँच पुत्र हुए—पुरुजित्, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ। ज्यामघकी पत्नीका नाम था शैब्या। उसे बहुत दिनोंतक कोई सन्तान न हुई। परन्तु उसने अपनी पत्नीके भयसे दूसरा विवाह नहीं किया। एक बार वह अपने शत्रुके घरसे भोज्या नामकी कन्या हर लाया। जब शैब्याने पतिके रथपर उस कन्याको देखा, तब वह चिढ़कर अपने पतिसे बोली—'कपटी! मेरे बैठनेकी जगह पर आज किसे बैठाकर लिये आ रहे हो?' ज्यामघने कहा—'यह तो तुम्हारी पुत्रवधू है।' शैब्याने मुसकराकर अपने

* चौदह रत्न ये हैं—हाथी, घोड़ा, रथ, स्त्री, बाण, खजाना, माला, वस्त्र, वृक्ष, शक्ति, पाश, मणि, छत्र और विमान।

अलर्क आदि हुए। परीक्षित्! अलर्कके सिवा और किसी राजाने छासठ हजार वर्षतक युवा रहकर पृथ्वीका राज्य नहीं भोगा। अलर्कका पुत्र हुआ सन्तति, सन्ततिका सुनीथ, सुनीथका सुकेतन, सुकेतनका धर्मकेतु और धर्मकेतुका सत्यकेतु। सत्यकेतुसे धृष्टकेतु, धृष्टकेतुसे राजा सुकुमार, सुकुमारसे वीतिहोत्र, वीतिहोत्रसे भर्ग और भर्गसे राजा भार्गभूमिका जन्म हुआ॥ १—९॥

ये सब-के-सब क्षत्रवृद्धके वंशमें काशिसे उत्पन्न नरपति हुए। रम्भके पुत्रका नाम था रभस, उससे गम्भीर और गम्भीरसे अक्रियका जन्म हुआ। अक्रियकी पत्नीसे ब्राह्मणवंश चला। अब अनेनाका वंश सुनो। अनेनाका पुत्र था शुद्ध, शुद्धका शुचि, शुचिका त्रिककुद्, त्रिककुद्का धर्मसारथि और धर्मसारथिके पुत्र थे शान्तरय। शान्तरय आत्मज्ञानी होनेके कारण कृतकृत्य थे, उन्हें सन्तानकी आवश्यकता न थी। परीक्षित्! आयुके पुत्र रजिके अत्यन्त तेजस्वी पाँच सौ पुत्र थे। देवताओंकी प्रार्थनासे रजिने दैत्योंका वध करके इन्द्रको स्वर्गका राज्य दिया। परन्तु वे अपने प्रह्लाद आदि शत्रुओंसे भयभीत रहते थे, इसलिये उन्होंने वह स्वर्ग फिर रजिको लौटा दिया और उनके चरण पकड़कर उन्हींको अपनी रक्षाका भार भी सौंप दिया। जब रजिकी मृत्यु हो गयी, तब इन्द्रके माँगनेपर भी रजिके पुत्रोंने स्वर्ग नहीं लौटाया। वे स्वयं ही यज्ञोंका भाग भी ग्रहण करने लगे! तब गुरु बृहस्पतिजीने इन्द्रकी प्रार्थनासे अभिचार-विधिसे हवन किया। इससे वे धर्मके मार्गसे भ्रष्ट हो गये। तब इन्द्रने अनायास ही उन सब रजिके पुत्रोंको मार डाला। उनमेंसे कोई भी न बचा। क्षत्रवृद्धके पौत्र कुशसे प्रति और प्रतिसे सञ्जयका जन्म हुआ। सञ्जयसे जय, जयसे कृत, कृतसे राजा हर्यवन, हर्यवनसे सहदेव, सहदेवसे हीन और हीनसे जयसेन नामक पुत्र हुआ। जयसेनका सङ्कृति, सङ्कृतिका पुत्र हुआ महारथी वीरशिरोमणि जय। क्षत्रवृद्धकी वंश-परम्परामें इतने ही नरपति हुए। अब नहुषवंशका वर्णन सुनो॥१०—१८॥

अठारहवाँ अध्याय

ययाति-चरित्र

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जैसे शरीर-धारियोंके छः इन्द्रियाँ होती हैं, वैसे ही नहुषके छः पुत्र थे। उनके नाम थे—यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृति। नहुष अपने बड़े पुत्र यतिको राज्य देना चाहते थे। परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया। क्योंकि वह राज्य पानेका परिणाम जानता था। राज्य एक ऐसी वस्तु है कि जो उसके दाव-पेंच और प्रबन्ध आदिमें भीतर प्रवेश कर जाता है, वह अपने आत्मस्वरूपको नहीं समझ सकता। जब इन्द्रपत्नी शचीसे सहवास करनेकी चेष्टा करनेके कारण नहुषको ब्राह्मणोंने इन्द्रपदसे गिरा दिया और अजगर बना दिया, तब राजाके पदपर ययाति बैठे। ययातिने अपने चार छोटे भाइयोंको चार दिशाओंमें नियुक्त कर दिया और स्वयं शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी और दैत्यराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाको पत्नीके रूपमें स्वीकार करके पृथ्वीकी रक्षा करने लगा॥ १—४॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! भगवान् शुक्राचार्यजी तो ब्राह्मण थे और ययाति क्षत्रिय। फिर ब्राह्मणकन्या और क्षत्रिय वरका प्रतिलोम (उलटा) विवाह कैसे हुआ?॥ ५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! दानवराज वृषपर्वाकी एक बड़ी मानिनी कन्या थी। उसका नाम था शर्मिष्ठा। वह एक दिन अपनी गुरुपुत्री देवयानी और हजारों सखियोंके साथ अपनी राजधानीके श्रेष्ठ उद्यानमें टहल रही थी। उस उद्यानमें सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंसे लदे हुए अनेकों वृक्ष थे। उसमें एक बड़ा ही सुन्दर सरोवर था। सरोवरमें कमल खिले हुए थे और उनपर बड़े ही मधुर स्वरसे भौंरे गुंजार कर रहे थे। जलाशयके पास पहुँचनेपर उन सुन्दरी कन्याओंने अपने-अपने वस्त्र तो घाटपर रख दिये और उस तालाबमें प्रवेश करके वे एक-दूसरेपर जल उलीच-उलीचकर क्रीड़ा करने लगीं। उसी समय उधरसे पार्वतीजीके साथ बैलपर चढ़े हुए भगवान् शङ्कर आ निकले। उनको देखकर सब-की-सब कन्याएँ सकुचा गयीं और उन्होंने झटपट सरोवरसे निकलकर अपने-अपने वस्त्र पहन लिये। शीघ्रताके कारण शर्मिष्ठाने अनजानमें देवयानीके वस्त्रको अपना समझकर पहन लिया। इसपर देवयानी क्रोधके मारे आग-बबूला हो गयी। उसने कहा—'अरे, देखो तो सही, इस दासीने कितना अनुचित काम कर डाला! राम-राम, जैसे कुतिया यज्ञका हविष्य उठा ले जाय, वैसे ही इसने मेरे वस्त्र पहन लिये हैं। जिन ब्राह्मणोंने

सृञ्जय, श्यामक, कङ्क, शमीक, वत्सक और वृक । ये सब-के-सब बड़े पुण्यात्मा थे । वसुदेवजीके जन्मके समय देवताओंके नगारे और नौबत स्वयं ही बजने लगे थे । अतः वे 'आनकदुन्दुभि' भी कहलाये । वे ही भगवान् श्रीकृष्णके पिता हुए । वसुदेव आदिकी पाँच बहनें भी थीं—पृथा (कुन्ती), श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी । वसुदेवके पिता शूरसेनके एक मित्र थे—कुन्तिभोज । कुन्तिभोजके कोई सन्तान न थी । इसलिये शूरसेनने उन्हें पृथा नामकी अपनी सबसे बड़ी कन्या गोद दे दी । पृथाने दुर्वासा ऋषिको प्रसन्न करके उनसे देवताओंको बुलानेकी विद्या सीख ली । एक दिन उस विद्याके प्रभावकी परीक्षा लेनेके लिये पृथाने परम पवित्र भगवान् सूर्यका आवाहन किया । उसी समय भगवान् सूर्य वहाँ आ पहुँचे । उन्हें देखकर कुन्तीका हृदय विस्मयसे भर गया । उसने कहा—'भगवन् ! मुझे क्षमा कीजिये । मैंने तो परीक्षा करनेके लिये ही इस विद्याका प्रयोग किया था । अब आप पधार सकते हैं ।' सूर्यदेवने कहा—'देवि ! मेरा दर्शन निष्फल नहीं हो सकता । इसलिये हे सुन्दरी ! अब मैं तुमसे एक पुत्र उत्पन्न करूँगा । हाँ, अवश्य ही तुम्हारी योनि दूषित न हो, इसका उपाय मैं कर दूँगा ।' यह कहकर भगवान् सूर्यने गर्भ स्थापित कर दिया । और इसके बाद वे स्वर्ग चले गये । उसी समय उससे एक बड़ा सुन्दर एवं तेजस्वी शिशु उत्पन्न हुआ । वह देखनेमें दूसरे सूर्यके समान जान पड़ता था । पृथा लोकनिन्दासे डर गयी । इसलिये उसने बड़े दुःखसे उस बालकको नदीके जलमें छोड़ दिया । परीक्षित् ! उसी पृथाका विवाह तुम्हारे परदादा पाण्डुसे हुआ था, जो वास्तवमें बड़े सच्चे वीर थे ॥२६-३६॥

परीक्षित् ! पृथाकी छोटी बहिन श्रुतदेवाका विवाह करूष देशके अधिपति वृद्धशर्मासे हुआ था । उसके गर्भसे दन्तवक्त्रका जन्म हुआ । यह वही दन्तवक्त्र है, जो पूर्वजन्ममें सनकादि ऋषियोंके शापसे हिरण्याक्ष हुआ था । श्रुतकीर्तिका विवाह केकय देशके राजा धृष्टकेतुसे हुआ था । उससे सन्तर्दन आदि पाँच पुत्र हुए थे । राजाधिदेवीका विवाह जयसेनसे हुआ था । उसके दो पुत्र हुए—विन्द और अनुविन्द । वे दोनों ही अवन्तीके राजा हुए । श्रुतश्रवाका विवाह चेदिराज दमघोषसे हुआ । उसका पुत्र था शिशुपाल, जिसका वर्णन मैं पहले (सप्तम स्कन्धमें) कर चुका हूँ । वसुदेवजीके भाइयोंमेंसे देवभागकी पत्नी कंसाके गर्भसे दो पुत्र हुए—चित्रकेतु और बृहद्बल । देवश्रवाकी पत्नी कंसवतीसे सुवीर और इषुमान् नामके दो पुत्र हुए । आनककी पत्नी कङ्काके गर्भसे भी दो पुत्र हुए—शत्रुजित् और पुरुजित् । सृञ्जयने अपनी पत्नी राष्ट्रपालिकाके गर्भसे वृष और दुर्मर्षण आदि कई पुत्र उत्पन्न किये । इसी प्रकार श्यामकने शूरभूमि (शूरभू) नामकी पत्नीसे हरिकेश और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न किये । मिश्रकेशी अप्सराके गर्भसे वत्सकके भी वृक आदि कई पुत्र हुए । वृकने दुर्वाक्षीके गर्भसे तक्ष, पुष्कर और शाल आदि कई पुत्र उत्पन्न किये । शमीककी पत्नी सुदामिनीने भी सुमित्र और अर्जुनपाल आदि कई बालक उत्पन्न किये । कङ्ककी पत्नी कर्णिकाके गर्भसे दो पुत्र हुए—ऋतुधाम और जय ॥३७-४४॥

वसुदेवजीके बहुत सी पत्नियाँ थीं—पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना, इला और देवकी आदि । रोहिणीके गर्भसे वसुदेवजीके बलराम, गद, सारण, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृत आदि पुत्र हुए थे । पौरवीके गर्भसे उनके बारह पुत्र हुए—भूत, सुभद्र, भद्रबाह, दुर्मद और भद्र आदि । नन्द, उपनन्द, कृतक, शूर आदि मदिराके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । कौसल्याने एक ही वंश-उजागर पुत्र उत्पन्न किया था । उनका नाम था केशी । रोचनासे हस्त और हेमाङ्गद आदि, तथा इलासे उरुवल्क आदि प्रधान यदुवंशी पैदा हुए । परीक्षित् ! वसुदेवजीको धृतदेवाके गर्भसे विपृष्ठ नामका एक ही पुत्र हुआ । और शान्तिदेवासे श्रम और प्रतिश्रुत आदि कई पुत्र हुए । उपदेवाके पुत्र कल्पवर्ष आदि दस राजा हुए और श्रीदेवाके वसु, हंस, सुवंश आदि छः पुत्र हुए । देवरक्षिताके गर्भसे गद आदि नौ पुत्र हुए तथा जैसे स्वयं धर्मने आठ वसुओंको उत्पन्न किया था, वैसे ही वसुदेवजीने सहदेवाके गर्भसे पुरुविश्रुत आदि आठ पुत्र उत्पन्न किये । परम उदार वसुदेवजीने देवकीके गर्भसे भी आठ पुत्र उत्पन्न किये, जिनमें सातके नाम हैं—कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन, भद्र और शेषावतार श्रीबलरामजी । उन दोनोंके आठवें पुत्र श्रीभगवान् ही थे । परीक्षित् ! तुम्हारी परम सौभाग्यवती दादी सुभद्रा भी देवकीजीकी ही कन्या थीं ॥ ४५-५५ ॥

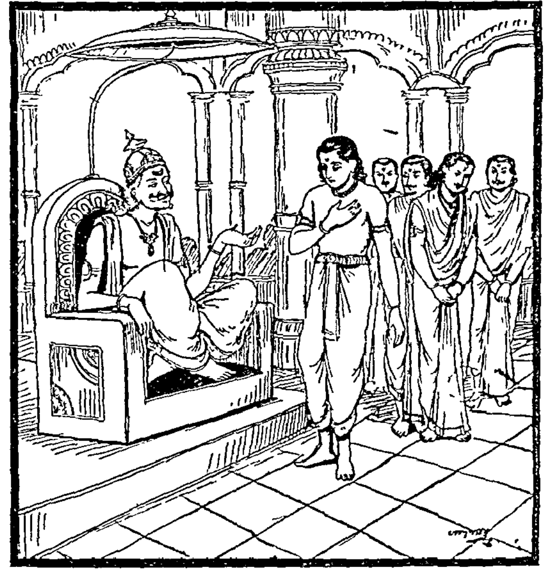
जब-जब संसारमें धर्मका ह्रास और पापकी वृद्धि होती है, तब-तब सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि अवतार ग्रहण करते हैं । परीक्षित् ! भगवान् सबके द्रष्टा और वास्तवमें असङ्ग आत्मा ही हैं । इसलिये उनकी आत्मस्वरूपिणी योगमायाके अतिरिक्त उनके जन्म अथवा कर्मका और कोई

इसलिये इसकी जो इच्छा हो, पूरी कर दो। फिर मुझे लौट चलनेमें कोई आपत्ति न होगी।' जब वृषपर्वाने 'ठीक है' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली, तब देवयानीने अपने मनकी बात कही। उसने कहा—'पिताजी मुझे जिस किसीको दे दें और मैं जहाँ कहीं जाऊँ, शर्मिष्ठा अपनी सहेलियोंके साथ मेरी सेवाके लिये वहीं चले' ॥ २४—२८ ॥

शर्मिष्ठाने अपने परिवारवालोंका सङ्कट और उनके कार्यका गौरव देखकर देवयानीकी बात स्वीकार कर ली। वह अपनी एक हजार सहेलियोंके साथ दासीके समान उसकी सेवा करने लगी। शुक्राचार्यजीने देवयानीका विवाह राजा ययातिके साथ कर दिया और उनसे कह दिया—'राजन्! इस शर्मिष्ठाको अपनी सेजपर कभी न आने देना।' परीक्षित्! कुछ ही दिनों बाद देवयानी पुत्रवती हो गयी। उसको पुत्रवती देखकर एक दिन शर्मिष्ठाने भी अपने ऋतुकालमें देवयानीके पति ययातिसे एकान्तमें सहवासकी याचना की। शर्मिष्ठाकी पुत्रके लिये प्रार्थना धर्मसंगत है—यह देखकर धर्मज्ञ राजा ययातिने शुक्राचार्यकी बात याद रहनेपर भी यही निश्चय किया कि समयपर प्रारब्धके अनुसार जो होना होगा, हो जायगा। देवयानीके दो पुत्र हुए—यदु और तुर्वसु। तथा वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाके तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु और पूरु। जब मानिनी देवयानीको यह मालूम हुआ कि शर्मिष्ठाको भी मेरे पतिके द्वारा ही गर्भ रहा था, तब वह क्रोधसे बेसुध होकर अपने पिताके घर चली गयी। कामी ययातिने मीठी-मीठी बातें, अनुनय-विनय और चरण दबाने आदिके द्वारा देवयानीको मनानेकी चेष्टा की, उसके पीछे-पीछे वहाँतक गये भी; परन्तु वह मानी नहीं। शुक्राचार्यजीने भी क्रोधमें भरकर ययातिसे कहा—'तू अत्यन्त स्त्रीलम्पट, मन्दबुद्धि और झूठा है। जा, तेरे शरीरमें वह बुढ़ापा आ जाय, जो मनुष्योंको कुरूप कर देता है' ॥ २९—३६ ॥

ययातिने कहा—'ब्रह्मन्! आपकी पुत्रीके साथ विषय-भोग करते-करते अभी मेरी तृप्ति नहीं हुई है। इस शापसे तो आपकी पुत्रीका भी अनिष्ट ही है।' इसपर शुक्राचार्यजीने कहा—'अच्छा जाओ; जो प्रसन्नतासे तुम्हें अपनी जवानी दे दे, उससे अपना बुढ़ापा बदल लो।' शुक्राचार्यजीने जब ऐसी व्यवस्था दे दी, तब अपनी राजधानीमें आकर ययातिने अपने बड़े पुत्र यदुसे कहा—'बेटा! तुम अपनी जवानी मुझे दे दो और अपने नानाका दिया हुआ यह बुढ़ापा तुम स्वीकार कर लो। क्योंकि मेरे प्यारे पुत्र! मैं अभी विषयोंसे तृप्त नहीं हुआ हूँ। इसलिये तुम्हारी आयु लेकर मैं कुछ वर्षोंतक और आनन्द भोगूँगा' ॥ ३७—३९ ॥

यदुने कहा—'पिताजी! बिना समयके ही प्राप्त हुआ आपका बुढ़ापा लेकर तो मैं जीना भी नहीं चाहता। क्योंकि कोई भी मनुष्य जबतक विषय-सुखका अनुभव नहीं कर लेता, तबतक उसे उससे वैराग्य नहीं होता।' परीक्षित्! इसी प्रकार तुर्वसु, द्रुह्यु और अनुने भी पिताकी आज्ञा अस्वीकार कर दी। सच पूछो तो उन पुत्रोंको धर्मका तत्त्व मालूम नहीं था। वे इस अनित्य शरीरको ही नित्य माने बैठे थे। अब ययातिने अवस्थामें सबसे छोटे किन्तु गुणोंमें बड़े अपने पुत्र



पूरुको बुलाकर पूछा और कहा—'बेटा! अपने बड़े भाइयोंके समान तुम्हें तो मेरी बात नहीं टालनी चाहिये' ॥ ४०—४२ ॥

पूरुने कहा—'पिताजी! पिताकी कृपासे मनुष्यको परमपदकी प्राप्ति हो सकती है। वास्तवमें पुत्रका शरीर पिताका ही दिया हुआ है। ऐसी अवस्थामें ऐसा कौन है, जो इस संसारमें पिताके उपकारोंका बदला चुका सके? उत्तम पुत्र तो वह है, जो पिताके मनकी बात बिना कहे ही कर दे। कहनेपर श्रद्धाके साथ आज्ञापालन करनेवाले पुत्रको मध्यम कहते हैं। जो आज्ञा प्राप्त होनेपर भी अश्रद्धासे उसका पालन करे, वह अधम पुत्र है। और जो किसी प्रकार भी पिताकी आज्ञाका पालन नहीं करता, उसको तो पुत्र कहना ही भूल है। वह तो पिताका मल-मूत्र ही है।' परीक्षित्! इस प्रकार कहकर पूरुने बड़े आनन्दसे अपने


GT

अन्ध्र, कङ्क, खश, शक और म्लेच्छ आदि समस्त ब्राह्मण-द्रोही राजाओंको मार डाला। पहले युगमें बलवान् असुरोंने देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली थी और वे रसातलमें रहने लगे थे। उस समय वे बहुत-सी देवाङ्गनाओंको रसातलमें ले गये थे। राजा भरतने फिरसे उन्हें छुड़ा दिया। उनके राज्यमें पृथ्वी और आकाश प्रजाकी सारी आवश्यकताएँ पूर्ण कर देते थे। भरतने सत्ताईस हज़ार वर्षतक समस्त दिशाओंका एकछत्र शासन किया। अन्तमें सार्वभौम सम्राट् भरतने यही निश्चय किया कि लोकपालोंको भी चकित कर देनेवाला ऐश्वर्य, सार्वभौम सम्पत्ति, अखण्ड शासन और यह जीवन भी मिथ्या ही है। यह निश्चय करके वे संसारसे उदासीन हो गये॥ २३–३३॥

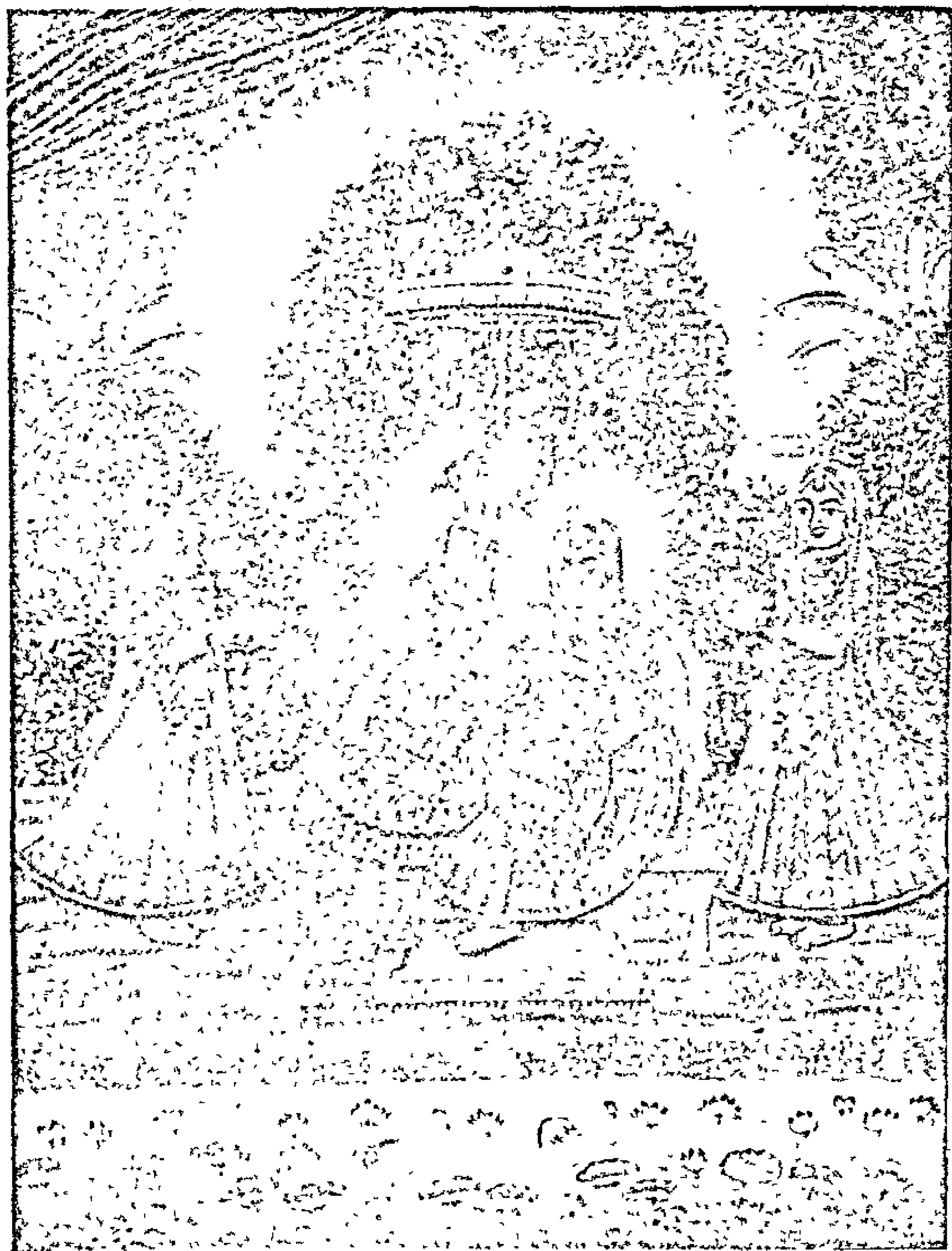
परीक्षित्! विदर्भराजकी तीन कन्याएँ सम्राट् भरतकी पत्नियाँ थीं। वे उनका बड़ा आदर भी करते थे। परन्तु जब भरतने उनसे कह दिया कि तुम्हारे पुत्र मेरे अनुरूप नहीं हैं, तब वे डर गयीं कि कहीं सम्राट् हमें त्याग न दें। इसलिये उन्होंने अपने बच्चोंको मार डाला। इस प्रकार सम्राट् भरतका वंश वितथ अर्थात् विच्छिन्न होने लगा। तब उन्होंने सन्तानके लिये 'मरुत्सोम' नामका यज्ञ किया। इससे मरुद्गणोंने प्रसन्न होकर भरतको भरद्वाज नामका पुत्र दिया। भरद्वाजकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग यह है कि एक बार बृहस्पतिजीने अपने भाई उतथ्यकी गर्भवती पत्नीसे मैथुन करना चाहा। उस समय गर्भमें जो बालक (दीर्घतमा) था, उसने मना किया। किन्तु बृहस्पतिजीने उसकी बातपर ध्यान न दिया और उसे 'तू अंधा हो जा' यह शाप देकर बलपूर्वक गर्भाधान कर दिया। उतथ्यकी पत्नी ममता इस बातसे डर गयी कि कहीं मेरे पति मेरा त्याग न कर दें। इसलिये उसने बृहस्पतिजीके द्वारा होनेवाले लड़केको त्याग देना चाहा। उस समय देवताओंने गर्भस्थ शिशुके नामका निर्वचन करते हुए यह कहा—'बृहस्पतिजी कहते हैं कि अरी मूढे! यह मेरा औरस और मेरे भाईका क्षेत्रज—इस प्रकार दोनोंका पुत्र (द्वाज) है; इसलिये तू डर मत, इसका भरण पोषण कर (भर)'। इसपर ममताने कहा—'बृहस्पते! यह मेरे पतिका नहीं, हम दोनोंका ही पुत्र है; इसलिये तुम्हीं इसका भरण-पोषण करो।' इस प्रकार आपसमें विवाद करते हुए माता-पिता दोनों ही इसको छोड़कर चले गये। इसलिये इस लड़केका नाम 'भरद्वाज' हुआ।' देवताओंके द्वारा नामका ऐसा निर्वचन होनेपर भी ममताने यही समझा कि मेरा यह पुत्र वितथ अर्थात् अन्यायसे पैदा हुआ है। अतः उसने उस बच्चेको छोड़ दिया। अब मरुद्गणोंने उसका पालन किया और जब राजा भरतका वंश नष्ट होने लगा, तब उसे लाकर उनको दे दिया। यही वितथ (भरद्वाज) भरतका दत्तक पुत्र हुआ॥ ३४–३९॥

इक्कीसवाँ अध्याय

भरतवंशका वर्णन, राजा रन्तिदेवकी कथा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! वितथ अथवा भरद्वाजका पुत्र था मन्यु। मन्युके पाँच पुत्र हुए—बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग। नरका पुत्र था संकृति। संकृतिके दो पुत्र हुए—गुरु और रन्तिदेव। परीक्षित्! रन्तिदेवका निर्मल यश इस लोक और परलोकमें सब जगह गाया जाता है। रन्तिदेव धन कमानेके लिये कोई विशेष उद्योग नहीं करते थे। प्रारब्धके अनुसार जो कुछ मिल जाता, वही स्वीकार कर लेते। प्राप्त वस्तु भी रखते न थे; जो कुछ भी मिलता, दूसरोंको दे डालते और स्वयं भूखे रह जाते। वे न तो अपने पास कुछ रखते और न किसी वस्तुसे ममता ही करते। उनके हृदयमें बड़ा धैर्य था। रन्तिदेव अकेले ही नहीं, अपने कुटुम्बके साथ कष्ट भोगते रहते। एक बार तो लगातार अड़तालीस दिन ऐसे बीत गये कि उन्हें पानीतक पीनेको न मिला। उनचासवें दिन प्रातःकाल ही उन्हें कुछ घी, खीर, लपसी और जल मिला। उनका परिवार बड़े सङ्कटमें था। भूख और प्यासके मारें वे लोग काँप रहे थे। परन्तु ज्यों ही उन लोगोंने भोजन करना चाहा, त्यों ही एक ब्राह्मण अतिथिके रूपमें आ गया। रन्तिदेव सबमें श्रीभगवान्‌के ही दर्शन करते थे। अतएव उन्होंने बड़ी श्रद्धासे आदरपूर्वक उसी अन्नमेंसे ब्राह्मणको भोजन कराया। ब्राह्मणदेवता भोजन करके चले गये॥ १–६॥

परीक्षित्! अब बचे हुए अन्नको रन्तिदेवने आपसमें बाँट लिया और भोजन करना चाहा। उसी समय एक दूसरा शूद्र-अतिथि आ गया। रन्तिदेवने भगवान्‌का स्मरण करते हुए उस बचे हुए अन्नमेंसे भी कुछ भाग शूद्रके रूपमें आये अतिथिको खिला दिया। जब शूद्र खा-



पामरी आर्ता

पुत्र था उदक्स्वन और उदक्स्वनका भल्लाद। ये सब बृहदिषुके वंशज हुए ॥ १९–२६ ॥

द्विमीढका पुत्र था यवीनर, यवीनरका कृतिमान्, कृतिमान्का सत्यधृति, सत्यधृतिका दृढनेमि और दृढनेमिका पुत्र सुपार्श्व हुआ। सुपार्श्वसे सुमति, सुमतिसे सन्नतिमान् और सन्नतिमान्से कृतिका जन्म हुआ। उसने हिरण्यनाभसे योगविद्या प्राप्त की थी और 'प्राच्यसाम' नामक ऋचाओंकी छः संहिताएँ कही थीं। कृतिका पुत्र नीप था, नीपका उग्रायुध, उग्रायुधका क्षेम्य, क्षेम्यका सुवीर, सुवीरका रिपुञ्जय और रिपुञ्जयका पुत्र था बहुरथ। द्विमीढके भाई पुरुमीढको कोई सन्तान न हुई। अजमीढकी दूसरी पत्नीका नाम था नलिनी। उसके गर्भसे नीलका जन्म हुआ। नीलका शान्ति, शान्तिका सुशान्ति, सुशान्तिका पुरुज, पुरुजका अर्क और अर्कका पुत्र हुआ भर्म्याश्व। भर्म्याश्वके पाँच पुत्र थे—मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु, काम्पिल्य और सञ्जय। भर्म्याश्वने कहा—'ये मेरे पुत्र पाँच देशोंका शासन करनेमें समर्थ (पञ्च अलम्) हैं।' इसीलिये ये 'पञ्चाल' नामसे प्रसिद्ध हुए। इनमेंसे मुद्गल ब्राह्मणोंके 'मौद्गल्य' गोत्रके प्रवर्तक हुए ॥ २७–३३ ॥

भर्म्याश्वके पुत्र मुद्गलसे यमज (जुड़वाँ) सन्तान हुई। उनमें पुत्रका नाम था दिवोदास और कन्याका अहल्या। अहल्याका विवाह महर्षि गौतमसे हुआ। गौतमके पुत्र हुए शतानन्द। शतानन्दका पुत्र सत्यधृति था, वह धनुर्विद्यामें अत्यन्त निपुण था। सत्यधृतिके पुत्रका नाम था शरद्वान्। एक दिन उर्वशीको देखनेसे शरद्वान्का वीर्य मूँजके झाड़पर गिर पड़ा, उससे एक शुभ लक्षणवाले पुत्र और पुत्रीका जन्म हुआ। महाराज शन्तनुकी उसपर दृष्टि पड़ गयी, क्योंकि वे उधर शिकार खेलनेके लिये गये हुए थे। उन्होंने दयावश दोनोंको उठा लिया। उनमें जो पुत्र था, उसका नाम कृपाचार्य हुआ और जो कन्या थी, उसका नाम हुआ कृपी। यही कृपी द्रोणाचार्यकी पत्नी हुई ॥ ३४–३६ ॥

बाईसवाँ अध्याय

पाञ्चाल, कौरव और मगधदेशीय राजाओंके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! दिवोदासका पुत्र था मित्रेयु। मित्रेयुके चार पुत्र हुए—च्यवन, सुदास, सहदेव और सोमक। सोमकके सौ पुत्र थे, उनमें सबसे बड़ा जन्तु और सबसे छोटा पृषत था। पृषतके पुत्र द्रुपद थे, द्रुपदके द्रौपदी नामकी पुत्री और धृष्टद्युम्न आदि पुत्र हुए। धृष्टद्युम्नका पुत्र था धृष्टकेतु। भर्म्याश्वके वंशमें उत्पन्न हुए ये नरपति 'पाञ्चाल' कहलाये। अजमीढका दूसरा पुत्र था ऋक्ष। उनके पुत्र हुए संवरण। संवरणका विवाह सूर्यकी कन्या तपतीसे हुआ। उन्हींके गर्भसे कुरुक्षेत्रके स्वामी कुरुका जन्म हुआ। कुरुके चार पुत्र हुए—परीक्षित्, सुधन्वा, जह्नु और निषधाश्व। सुधन्वासे सुहोत्र, सुहोत्रसे च्यवन, च्यवनसे कृती, कृतीसे उपरिचरवसु और उपरिचरवसुसे बृहद्रथ आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें बृहद्रथ, कुशाम्ब, मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप आदि चेदिदेशके राजा हुए। बृहद्रथका पुत्र था कुशाग्र, कुशाग्रका ऋषभ, ऋषभका सत्यहित, सत्यहितका पुष्पवान् और पुष्पवान्के जहु नामक पुत्र हुआ। बृहद्रथकी दूसरी पत्नीके गर्भसे एक शरीरके दो टुकड़े उत्पन्न हुए, उन्हें माताने बाहर फेंकवा दिया। तब 'जरा' नामकी राक्षसीने 'जियो, जियो' इस प्रकार कहकर खेल-खेलमें उन दोनों टुकड़ोंको जोड़ दिया। उसी जोड़े



हुए बालकका नाम हुआ जरासन्ध। जरासन्धका सहदेव, सहदेवका सोमापि और सोमापिका पुत्र हुआ श्रुतश्रवा। कुरुके ज्येष्ठ पुत्र परीक्षित्के कोई सन्तान न हुई। जह्नुका

माताओंका पुन होना कैसे सम्भव है ? असुरोंको मुक्ति देनेवाले और भक्तोंको प्रेम वितरण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण अपने वात्सल्य स्नेहसे भरे हुए पिताका घर छोड़ कर व्रजमें क्यों चले गये ? यदुवंशशिरोमणि भक्तवत्सल प्रभुने नन्द आदि गोपोंके साथ कहाँ कहाँ निवास किया ? ब्रह्मा और शङ्करका भी शासन करनेवाले प्रभुने व्रजमें तथा मधुपुरीमें रहकर कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं ? और महाराज ! यह तो बतलाइये कि उन्होंने अपनी माँके भाई मामा कंसको अपने हाथों क्यों मार डाला ? यह काम तो उनके योग्य नहीं था । मनुष्याकार सच्चिदानन्दमय विग्रह प्रकट करके द्वारकापुरीमें यदुवंशियोंके साथ उन्होंने कितने वर्षोंतक निवास किया ? और उन सर्वशक्तिमान् प्रभुकी पत्नियाँ कितनी थीं—उन्होंने कितने विवाह किये ? आप तो निरन्तर श्रीकृष्णकी लीलामें ही मग्न रहते हैं । मैंने श्रीकृष्णकी जितनी लीलाएँ पूछी हैं और जो नहीं पूछी हैं, वे सब आप मुझे विस्तारसे सुनाइये । क्योंकि आप सब कुछ जानते हैं और मैं बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें सुनना चाहता हूँ । भगवन् ! अन्नकी तो बात ही क्या, मैंने जलका भी परित्याग कर दिया है । फिर भी वह भूख प्यास, जो लोगोंके लिये अत्यन्त असह्य होती है, मुझे तनिक भी नहीं सता रही है । इसका कारण यह है कि मैं आपके मुखकमलसे झरती हुई भगवान्‌की सुधामयी लीला-कथाका पान जो कर रहा हूँ ! ॥ ८–१३ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकजी ! भगवान्‌के प्रेमियोंमें अग्रगण्य एवं सर्वज्ञ श्रीशुकदेवजी महाराजने परीक्षित्‌का ऐसा प्रश्न सुनकर—जो संतोंकी सभामें भगवान्‌की लीलाके वर्णनका हेतु हुआ करता है—उनका अभिनन्दन किया और भगवान् श्रीकृष्णकी उन लीलाओंका वर्णन प्रारम्भ किया, जो समस्त कलिमलोंको सदाके लिये धो डालती हैं ॥१४॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—भगवान्‌की लीला-रसके रसिक राजर्षे ! तुमने जो कुछ निश्चय किया है, वह बहुत ही सुन्दर और आदरणीय है । क्योंकि अब तुम भगवान् श्रीकृष्णकी लीला-कथा सुननेके लिये स्वभावसे ही उत्सुक हो रहे हो । भगवान् श्रीकृष्णकी कथाके सम्बन्धमें प्रश्न करनेसे ही श्रोता, वक्ता और प्रश्नकर्ता तीनों व्यक्ति पवित्र हो जाते हैं—जैसे गङ्गाजीका जल या भगवान् शालग्रामका चरणामृत सभीको पवित्र कर देता है ॥१५–१६॥

परीक्षित् ! उस समय शासकगण घमंडमें भरकर धर्मका उल्लङ्घन कर रहे थे । वे राजा नहीं थे, राजाओंके रूपमें असंख्यों दैत्य ही प्रकट हो रहे थे । उनके असह्य भारसे पृथ्वीको बड़ी पीड़ा हुई । उसके निवारणके लिये वह ब्रह्माजीकी शरणमें गयी । उसने उस समय गौका रूप धारण कर रक्खा था । उसके नेत्रोंसे आँसू बह-बहकर मुँहपर आ रहे थे । उसका मन तो खिन्न था ही, शरीर भी बहुत कृश हो गया था । वह बड़े करुण स्वरसे रँभा रही थी । ब्रह्माजीके पास जाकर उसने उन्हें अपनी पूरी कष्ट कहानी सुनायी । ब्रह्माजीने बड़ी सहानुभूतिके साथ उसकी दुःख-गाथा सुनी । उसके बाद वे भगवान् शङ्कर, स्वर्गके अन्यान्य प्रमुख देवता तथा गौके रूपमें आयी हुई पृथ्वीको अपने साथ लेकर क्षीरसागरके तटपर गये । भगवान् देवताओंके भी आराध्यदेव हैं । वे अपने भक्तोंकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण करते और उनके समस्त क्लेशोंको नष्ट कर देते हैं । वे ही जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं । क्षीरसागरके तटपर पहुँचकर ब्रह्मा आदि देवताओंने 'पुरुषसूक्त'के द्वारा उन्हीं परमपुरुष सर्वान्तर्यामी प्रभुकी स्तुति की । स्तुति करते-करते ब्रह्माजी समाधिस्थ हो गये । उन्होंने समाधि अवस्थामें आकाशवाणी सुनी । इसके बाद जगत्‌के निर्माणकर्ता ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा—'देवताओ ! मैंने भगवान्‌की वाणी सुनी है । तुमलोग भी उसे मेरे द्वारा अभी सुन लो और फिर वैसा ही करो । उसके पालनमें विलम्ब नहीं होना चाहिये । भगवान्‌को पृथ्वीके कष्टका पहलेसे ही पता है । वे ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं । अतः अपनी कालशक्तिके द्वारा पृथ्वीका भार हरण करते हुए वे जबतक पृथ्वीपर लीला करें, तबतक तुमलोग भी अपने अपने अंशोंके साथ यदुकुलमें जन्म लेकर उनकी लीलामें सहयोग दो । वसुदेवजीके घर स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् प्रकट होंगे । उनकी और उनके प्रेयसी-वर्गकी सेवाके लिये देवाङ्गनाएँ जन्म ग्रहण करें । स्वयंप्रकाश भगवान् शेष भी, जो भगवान्‌की कला होनेके कारण अनन्त हैं (अनन्तका अंश भी अनन्त ही होता है) और जिनके सहस्र मुख हैं, भगवान्‌के प्रिय कार्य करनेके लिये उनसे पहले ही उनके बड़े भाईके रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे । भगवान्‌की वह ऐश्वर्यशालिनी योगमाया भी, जिसने सारे जगत्‌को मोहित कर रक्खा है, उनकी आज्ञासे उनकी लीलाके कार्य सम्पन्न करनेके लिये अंशरूपसे अवतार ग्रहण करेगी ॥ १७–२५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! प्रजापतियोंके स्वामी भगवान् ब्रह्माजीने देवताओंको इस प्रकार आज्ञा दी और पृथ्वीको समझा-बुझाकर ढाढ़स बँधाया । इसके बाद वे अपने उत्कृष्ट धाम सत्यलोकको चले गये । प्राचीन कालमें यदुवंशी राजा थे शूरसेन । वे मथुरापुरीमें रहकर माथुरमण्डल और शूरसेनमण्डलका राज्यशासन करते थे । उसी समयसे मथुरा ही

सुभद्रा नामकी पत्नीसे तुम्हारे पिता अभिमन्युका जन्म हुआ। अभिमन्युने सभी अतिरथियोंको जीत लिया था। अभिमन्युके द्वारा उत्तराके गर्भसे तुम्हारा जन्म हुआ। परीक्षित्! उस समय कुरुवंशका नाश हो चुका था। अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे तुम भी जल ही चुके थे, परन्तु भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रभावसे तुम्हें उस मृत्युसे जीता-जागता बचा लिया॥२६–३४॥

परीक्षित्! तुम्हारे पुत्र तो सामने ही बैठे हुए हैं—इनके नाम हैं—जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन। ये सब-के-सब बड़े पराक्रमी हैं। जब तक्षकके काटनेसे तुम्हारी मृत्यु हो जायगी, तब इस बातको जानकर जनमेजय बहुत क्रोधित होगा और यह सर्प-यज्ञकी आगमें सर्पोंका हवन करेगा। यह कावषेय तुरको पुरोहित बनाकर अश्वमेध यज्ञ करेगा और सब ओरसे सारी पृथ्वीपर विजय प्राप्त करके यज्ञोंके द्वारा भगवान्‌की आराधना करेगा। जनमेजयका पुत्र होगा शतानीक। वह याज्ञवल्क्य ऋषिसे तीनों वेद और कर्मकाण्डकी तथा कृपाचार्यसे अस्त्रविद्याकी शिक्षा प्राप्त करेगा एवं शौनकजीसे आत्मज्ञानका सम्पादन करके परमात्माको प्राप्त होगा। शतानीकका सहस्रानीक, सहस्रानीकका अश्वमेधज, अश्वमेधजका असीमकृष्ण और असीमकृष्णका पुत्र होगा नेमिचक्र। जब हस्तिनापुर गङ्गाजीमें बह जायगा, तब वह कौशाम्बीपुरीमें सुखपूर्वक निवास करेगा। नेमिचक्रका पुत्र होगा चित्ररथ, चित्ररथका कविरथ, कविरथका वृष्टिमान्, वृष्टिमान्का राजा सुषेण, सुषेणका सुनीथ, सुनीथका नृचक्षु, नृचक्षुका सुखीनल, सुखीनलका परिप्लव, परिप्लवका सुनय, सुनयका मेधावी, मेधावीका नृपञ्जय, नृपञ्जयका दूर्व और दूर्वका पुत्र तिमि होगा। तिमिसे बृहद्रथ, बृहद्रथसे सुदास, सुदाससे शतानीक, शतानीकसे दुर्दमन, दुर्दमनसे वहीनर, वहीनरसे दण्डपाणि, दण्डपाणिसे निमि और निमिसे राजा क्षेमकका जन्म होगा। इस प्रकार मैंने तुम्हें ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनोंके उत्पत्तिस्थान सोमवंशका वर्णन सुनाया। बड़े-बड़े देवता और ऋषि इस वंशका सत्कार करते हैं। यह वंश कलियुगमें राजा क्षेमकके साथ ही समाप्त हो जायगा। अब मैं भविष्यमें होनेवाले मगध देशके राजाओंका वर्णन सुनाता हूँ॥३५–४५॥

जरासन्धके पुत्र सहदेवसे मार्जारि, मार्जारिसे श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवासे युतायु और युतायुसे नरमित्र नामक पुत्र होगा। नरमित्रके सुनक्षत्र, सुनक्षत्रके बृहत्सेन, बृहत्सेनके कर्मजित्, कर्मजित्के सुतञ्जय, सुतञ्जयके विप्र और विप्रके पुत्रका नाम होगा शुचि। शुचिसे क्षेम, क्षेमसे सुव्रत, सुव्रतसे धर्मसूत्र, धर्मसूत्रसे शम, शमसे द्युमत्सेन, द्युमत्सेनसे सुमति और सुमतिसे सुबलका जन्म होगा। सुबलका सुनीथ, सुनीथका सत्यजित्, सत्यजित्का विश्वजित् और विश्वजित्का पुत्र रिपुञ्जय होगा। ये सब बृहद्रथवंशके राजा होंगे। इनका शासनकाल एक हजार वर्षके भीतर ही होगा॥ ४६–४९॥

तेईसवाँ अध्याय

अनु, द्रुह्यु, तुर्वसु और यदुके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! ययातिके पुत्र अनुके तीन पुत्र हुए—सभानर, चक्षु और परोक्ष। सभानरका कालनर, कालनरका सृञ्जय, सृञ्जयका जनमेजय, जनमेजयका महाशील, महाशीलका पुत्र हुआ महामना। महामनाके दो पुत्र हुए—उशीनर एवं तितिक्षु। उशीनरके चार पुत्र थे—शिबि, वन, शमी और दक्ष। शिबिके चार पुत्र हुए—वृषादर्भ, सुवीर, मद्र और कैकेय। उशीनरके भाई तितिक्षुके रुशद्रथ, रुशद्रथके हेम, हेमके सुतपा और सुतपाके बलि नामक पुत्र हुआ। राजा बलिकी पत्नीके गर्भसे दीर्घतमा मुनिने छः पुत्र उत्पन्न किये—अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और अन्ध्र। इन लोगोंने अपने-अपने नामसे पूर्व-दिशामें छः देश बसाये। अङ्गका पुत्र हुआ खनपान, खनपानका दिविरथ, दिविरथका धर्मरथ और धर्मरथका चित्ररथ। यह चित्ररथ ही रोमपादके नामसे प्रसिद्ध था। इसके मित्र थे अयोध्याधिपति महाराज दशरथ। रोमपादको कोई सन्तान न थी। इसलिये दशरथने उन्हें अपनी शान्ता नामकी कन्या गोद दे दी। शान्ताका विवाह ऋष्यशृङ्ग मुनिसे हुआ। ऋष्यशृङ्ग विभाण्डक ऋषिके द्वारा हरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। एक बार राजा रोमपादके राज्यमें बहुत दिनोंतक वर्षा नहीं हुई। तब गणिकाएँ अपने नृत्य, संगीत, वाद्य, हाव-भाव, आलिङ्गन और विविध उपहारोंसे मोहित करके ऋष्यशृङ्गको वहाँ ले आयीं। उनके आते ही वर्षा हो गयी। उन्होंने ही इन्द्र देवताका यज्ञ कराया, तब सन्तानहीन राजा रोमपादको भी पुत्र हुआ और पुत्रहीन दशरथने भी उन्हींके प्रयत्नसे चार पुत्र प्राप्त किये। रोमपादका पुत्र हुआ चतुरंग और चतुरंगका पृथुलाक्ष। पृथुलाक्षके

देवकीजीपर कंसका कोप



वसुदेवजी कंसको साम और भेदनीतिसे समझाने लगे ।

पतिसे कहा—'मैं तो जन्मसे ही बाँझ हूँ और मेरी कोई सौत भी नहीं है। फिर यह मेरी पुत्रवधू कैसे हो सकती है?' ज्यामघने कहा—'रानी! तुमको जो पुत्र होगा, उसकी यह पत्नी बनेगी।' राजा ज्यामघके इस वचनका विश्वेदेव और पितरोंने अनुमोदन किया। फिर क्या था, समयपर शैव्याको गर्भ रहा और उसने बड़ा ही सुन्दर बालक उत्पन्न किया। उसका नाम हुआ विदर्भ। उसीने शैव्याकी साध्वी पुत्रवधू भोज्यासे विवाह किया॥ २८–३९॥

चौबीसवाँ अध्याय

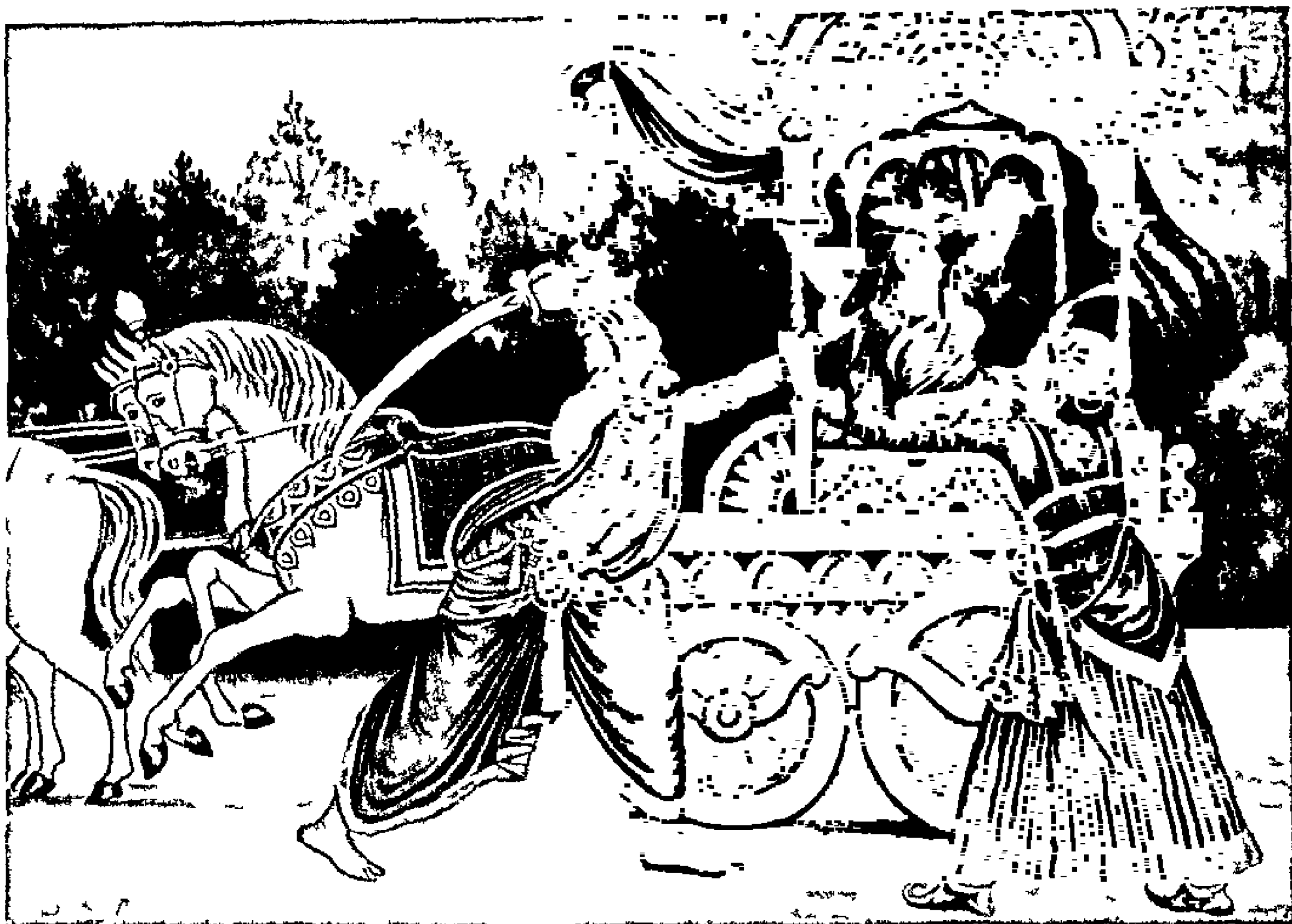
विदर्भके वंशका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! राजा विदर्भकी भोज्या नामक पत्नीसे तीन पुत्र हुए—कुश, क्रथ और रोमपाद। रोमपाद विदर्भवंशमें बहुत ही श्रेष्ठ पुरुष हुए। रोमपादका पुत्र बभ्रु, बभ्रुका कृति, कृतिका उशिक और उशिकका चेदि। राजन्! इस चेदिके वंशमें ही शिशुपाल आदि हुए। क्रथका पुत्र हुआ कुन्ति, कुन्तिका धृष्टि, धृष्टिका निर्वृति, निर्वृतिका दशार्ह, दशार्हका व्योम, व्योमका जीमूत, जीमूतका विकृति, विकृतिका भीमरथ, भीमरथका नवरथ और नवरथका दशरथ। दशरथसे शकुनि, शकुनिसे करम्भि, करम्भिसे देवरात, देवरातसे देवक्षत्र, देवक्षत्रसे मधु, मधुसे कुरुवश, कुरुवशसे अनु, अनुसे पुरुहोत्र, पुरुहोत्रसे आयु और आयुसे सात्वतका जन्म हुआ। परीक्षित्! सात्वतके सात पुत्र हुए—भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अन्धक और महाभोज। भजमानकी दो पत्नियाँ थीं। एकसे तीन पुत्र हुए—निम्लोचि, किङ्किण और धृष्टि। दूसरी पत्नीसे भी तीन पुत्र हुए—शताजित्, सहस्राजित् और अयुताजित्। देवावृधके पुत्रका नाम था बभ्रु। देवावृध और बभ्रुके सम्बन्धमें यह बात कही जाती है—'हमने दूरसे जैसा सुन रक्खा था, अब वैसा ही निकटसे देखते भी हैं। बभ्रु मनुष्योंमें श्रेष्ठ है और देवावृध देवताओंके समान है। इसका कारण यह है कि बभ्रु और देवावृधसे उपदेश लेकर चौदह हजार पैंसठ मनुष्य परमपदको प्राप्त कर चुके हैं।' सात्वतके पुत्रोंमें महाभोज भी बड़ा धर्मात्मा था। उसीके वंशमें भोजवंशी यादव हुए॥१–११॥

परीक्षित्! वृष्णिके दो पुत्र हुए—सुमित्र और युधाजित्। युधाजित्के शिनि और अनमित्र—ये दो पुत्र थे। अनमित्रसे निम्नका जन्म हुआ। सत्राजित् और प्रसेन नामसे प्रसिद्ध यदुवंशी निम्नके ही पुत्र थे। अनमित्रका एक और पुत्र था, जिसका नाम था शिनि। शिनिसे ही सत्यकका जन्म हुआ। इसी सत्यकके पुत्र युयुधान थे, जो सात्यकिके नामसे प्रसिद्ध हुए। सात्यकिका जय, जयका कुणि और कुणिका पुत्र युगन्धर हुआ। अनमित्रके तीसरे पुत्रका नाम वृष्णि था। वृष्णिके दो पुत्र हुए—श्वफल्क और चित्ररथ। श्वफल्ककी पत्नीका नाम था गान्दिनी। उनसे तेरह प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुए—अक्रूर, आसङ्ग, सारमेय, मृदुर, मृदुविद्, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेत्रोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गन्धमादन और प्रतिबाहु। इनके एक बहिन भी थी, जिसका नाम था सुचीरा। अक्रूरके दो पुत्र थे—देववान् और उपदेव। श्वफल्कके भाई चित्ररथके पृथु, विदूरथ आदि बहुत-से पुत्र हुए—जो वृष्णिवंशियोंमें श्रेष्ठ माने जाते हैं। सात्वतके पुत्र अन्धकके चार पुत्र हुए—कुकुर, भजमान, शुचि और कम्बलबर्हि। उनमें कुकुरका पुत्र वह्नि, वह्निका विलोमा, विलोमाका कपोतरोमा और कपोतरोमाका अनु हुआ। तुम्बुरु गन्धर्वके साथ अनुकी बड़ी मित्रता थी। अनुका पुत्र अन्धक, अन्धकका दुन्दुभि, दुन्दुभिका अरिद्योत, अरिद्योतका पुनर्वसु और पुनर्वसुके आहुक नामका एक पुत्र तथा आहुकी नामकी एक कन्या हुई। आहुकके दो पुत्र हुए—देवक और उग्रसेन। देवकके चार पुत्र हुए—देववान्, उपदेव, सुदेव और देववर्धन। देवकके सात कन्याएँ भी थीं—धृतदेवा, शान्तिदेवा, उपदेवा, श्रीदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा और देवकी। इन सबका विवाह वसुदेवजीके साथ हुआ था। उग्रसेनके नौ लड़के थे—कंस, सुनामा, न्यग्रोध, कङ्क, शङ्कु, सुहू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान्। उग्रसेनके पाँच कन्याएँ भी थीं—कंसा, कंसवती, कङ्का, शूरभू और राष्ट्रपालिका। इनका विवाह देवभाग आदि वसुदेवजीके छोटे भाइयोंसे हुआ था॥१२–२५॥

चित्ररथके पुत्र विदूरथसे शूर, शूरसे भजमान, भजमानसे शिनि, शिनिसे स्वयम्भोज, स्वयम्भोजसे हृदीक और हृदीकसे तीन पुत्र हुए—देवबाहु, शतधन्वा और कृतवर्मा। देवमीढके पुत्र शूरकी पत्नीका नाम था मारिषा; उसके गर्भसे दस पुत्र हुए—वसुदेव, देवभाग, देवश्रवा, आनक,

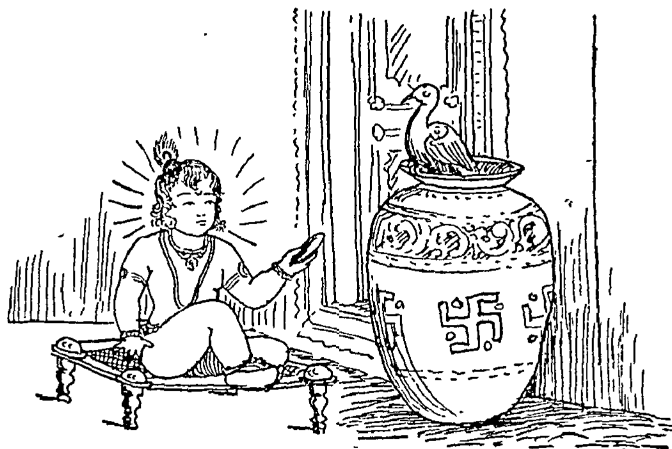
देवकीजीपर कंसका कोप



वसुदेवजी कंसको साम और भेदनीतिसे समझाने लगे ।

भी कारण नहीं है। उनकी मायाका विलास ही जीवके जन्म, जीवन और मृत्युका कारण है। और उनका अनुग्रह ही मायाको अलग करके आत्मस्वरूपको प्राप्त करानेवाला है। जब असुरोंने राजाओंका वेष धारण कर लिया और कई अक्षौहिणी सेना इकट्ठी करके वे सारी पृथ्वीको रौंदने लगे, तब पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान् मधुसूदन बलराम-जीके साथ अवतीर्ण हुए। उन्होंने ऐसी-ऐसी लीलाएँ कीं, जिनके सम्बन्धमें बड़े-बड़े देवता मनसे अनुमान भी नहीं कर सकते—शरीरसे करनेकी बात तो अलग रही। पृथ्वीका भार तो उतरा ही, साथ ही कलियुगमें पैदा होनेवाले भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये भगवान्ने ऐसे परम पवित्र यशका विस्तार किया, जिसका गायन और श्रवण करनेसे ही उनके दुःख, शोक और अज्ञान सब-के-सब नष्ट हो जायँगे। उनका यश क्या है, लोगोंको पवित्र करनेवाला श्रेष्ठ तीर्थ है। संतोंके कानोंके लिये तो वह साक्षात् अमृत ही है। एक बार भी यदि कानकी अँजुलियोंसे उसका आचमन कर लिया जाता है, तो कर्मकी वासनाएँ निर्मूल हो जाती हैं। परीक्षित्! भोज, वृष्णि, अन्धक, मधु, शूरसेन, दशार्ह, कुरु, सृञ्जय और पाण्डुवंशी वीर निरन्तर भगवान्की लीलाओंका आदर-पूर्वक बखान करते रहते थे। उनका श्यामल शरीर सर्वाङ्ग-सुन्दर था। उनकी प्रेमभरी मुसकान, मधुर चितवन, प्रसाद-पूर्ण वचन और पराक्रमपूर्ण-लीला—सब-की-सब सारे मनुष्य-लोकको आनन्दमें सराबोर कर देनेवाली थी। भगवान्के मुखकमलकी शोभा तो निराली ही थी। मकराकृति कुण्डलोंसे उनके कान बड़े कमनीय मालूम पड़ते थे। उनकी आभासे कपोलोंका सौन्दर्य और भी खिल उठता था। जब वे विलासके साथ हँस देते, तो उनके मुखपर निरन्तर रहनेवाले आनन्दमें मानो बाढ़-सी आ जाती। सभी नर-नारी अपने नेत्रोंके प्यालोंसे उनके मुखकी माधुरीका निरन्तर पान करते रहते, परन्तु तृप्त नहीं होते। वे उसका रस ले-लेकर आनन्दित तो होते ही, परन्तु पलकें गिरनेसे उनके गिरानेवाले निमिपर खीझते भी। उन्हें यह बात सहन न होती कि पलकें गिरकर भगवान्के दर्शनमें बाधा डालें। लीलापुरुषोत्तम भगवान् अवतीर्ण हुए मथुरामें वसुदेवजीके घर, परन्तु वहाँ रहे नहीं; गोकुलमें नन्दबाबाके घर चले गये। वहाँ अपना प्रयोजन—जो ग्वाल, गोपी और गौओंको सुखी करना था—पूरा करके मथुरा लौट आये। व्रजमें, मथुरामें तथा द्वारकामें रहकर अनेकों शत्रुओंका संहार किया। बहुत-सी स्त्रियोंसे विवाह करके हजारों पुत्र उत्पन्न किये। साथ ही लोगोंमें अपने स्वरूपका साक्षात्कार करानेवाली अपनी वाणीस्वरूप श्रुतियों-की मर्यादा स्थापित करनेके लिये अनेक यज्ञोंके द्वारा स्वयं अपना ही यजन किया। कौरव और पाण्डवोंके बीच उत्पन्न हुए आपसके कलहसे उन्होंने पृथ्वीका बहुत-सा भार हल्का कर दिया तथा युद्धमें अपनी दृष्टिसे ही राजाओंकी बहुत-सी अक्षौहिणियोंको ध्वंस करके संसारमें अर्जुनकी जीतका डंका पिटवा दिया। फिर उद्धवको आत्मतत्त्वका उपदेश किया और इसके बाद अपने परमधामको सिधार गये॥ ५६—६७॥

नवम स्कन्ध समाप्त



आना-जाना मानने लगता है। इसलिये जो अपना कल्याण चाहता है, उसे किसीसे द्रोह नहीं करना चाहिये। क्योंकि जीव कर्मके अधीन हो गया है और जो किसीसे भी द्रोह करेगा, उसको इस जीवनमें शत्रुसे और जीवनके बाद परलोकसे भयभीत होना ही पड़ेगा। कंस! यह आपकी छोटी बहिन अभी बच्ची और बहुत दीन है। यह तो आपकी कन्याके समान है। इसपर, अभी-अभी इसका विवाह हुआ है, विवाहके मङ्गलचिह्न भी इसके शरीरपरसे नहीं उतारे हैं। ऐसी दशामें आप-जैसे दीनवत्सल पुरुषको इस बेचारीका वध करना उचित नहीं है॥ ३७–४५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार वसुदेवजीने प्रशंसा आदि सामनीति और भय आदि भेदनीतिसे कंसको बहुत समझाया। परन्तु वह क्रूर तो राक्षसोंका अनुयायी हो रहा था; इसलिये उसने अपने घोर सङ्कल्पको नहीं छोड़ा। वसुदेवजीने कंसका विकट हठ देखकर यह विचार किया कि किसी प्रकार यह समय तो टाल ही देना चाहिये। तब वे इस निश्चयपर पहुँचे कि 'बुद्धिमान् पुरुषको, जहाँतक उसकी बुद्धि और बल साथ दें, मृत्युको टालनेका प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न करनेपर भी वह न टल सके, तो फिर प्रयत्न करनेवालेका कोई दोष नहीं रहता। इसलिये इस मृत्युरूप कंसको अपने पुत्र दे देनेकी प्रतिज्ञा करके मैं इस दीन देवकीको बचा लूँ। यदि मेरे लड़के होंगे और तबतक यह कंस स्वयं नहीं मर जायगा, तब क्या होगा? सम्भव है, उलटा ही हो। मेरा लड़का ही इसे मार डाले! क्योंकि विधाताका विधान पहलेसे जान लेना बहुत कठिन है। मृत्यु सामने आकर भी टल जाती है और टली हुई भी लौट आती है। जिस समय वनमें आग लगती है, उस समय कौन-सी लकड़ी जले और कौन-सी न जले, दूरकी जल जाय और पासकी बच रहे—इन सब बातोंमें अदृष्टके सिवा और कोई कारण नहीं होता। वैसे ही किस प्राणीका कौन-सा शरीर बना रहेगा और किस हेतुसे कौन-सा शरीर नष्ट हो जायगा—इस बातका पता लगा लेना बहुत ही कठिन है।' अपनी बुद्धिके अनुसार ऐसा निश्चय करके वसुदेवजीने बहुत सम्मानके साथ पापी कंसकी बड़ी प्रशंसा की। परीक्षित्! कंस बड़ा क्रूर और निर्लज्ज था; अतः ऐसा करते समय वसुदेवजीके मनमें बड़ी पीड़ा भी हो रही थी। फिर भी उन्होंने ऊपरसे अपने मुख-कमलको प्रफुल्लित करके हँसते हुए कहा—॥४६–५३॥

वसुदेवजीने कहा—सौम्य! आपको देवकीसे तो कोई भय है नहीं, जैसा कि आकाशवाणीने कहा है। भय है पुत्रोंसे, सो इसके पुत्र मैं आपको लाकर सौंप दूँगा॥५४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कंस जानता था कि वसुदेवजीके वचन झूठे नहीं होते और इन्होंने जो कुछ कहा है, वह युक्तिसंगत भी है। इसलिये उसने अपनी बहिन देवकीको मारनेका विचार छोड़ दिया। इससे वसुदेवजी बहुत प्रसन्न हुए और उसकी प्रशंसा करके अपने घर चले आये। देवकी बड़ी सती-साध्वी थी। सारे देवता उसके शरीरमें निवास करते थे। समय आनेपर देवकीके गर्भसे प्रतिवर्ष एक-एक करके आठ पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई। पहले पुत्रका नाम था कीर्तिमान्। वसुदेवजीने उसे लाकर कंसको दे दिया। ऐसा करते समय उन्हें कष्ट तो अवश्य हुआ, परन्तु उससे भी बड़ा कष्ट उन्हें इस बातका था कि कहीं मेरे वचन झूठे न हो जायँ। परीक्षित्! सत्यसन्ध पुरुष बड़े-से-बड़ा कष्ट भी सह लेते हैं, ज्ञानियोंको किसी बातकी अपेक्षा नहीं होती, नीच पुरुष बुरे-से-बुरा काम भी कर सकते हैं और जो जितेन्द्रिय हैं—जिन्होंने भगवान्‌को हृदयमें धारण कर रक्खा है, वे सब कुछ त्याग सकते हैं। जब कंसने देखा कि वसुदेवजीका अपने पुत्रके जीवन और मृत्युमें



समान भाव है एवं वे अपने वचनके पालनमें दृढ़ भी हैं, तब वह बहुत प्रसन्न हुआ और उनसे हँसकर बोला—'वसुदेवजी! आप इस नन्हें-से सुकुमार बालकको ले जाइये। इससे मुझे कोई भय नहीं है। क्योंकि आकाशवाणीने तो

हम कोई तर्कना करें, तो यही कह सकते हैं कि यह आपका एक लीला-विनोद है। ऐसा कहनेका कारण यह है कि आप तो द्वैतके लेशसे रहित सर्वाधिष्ठानस्वरूप हैं और इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय अज्ञानके द्वारा आपमें आरोपित हैं। प्रभो! आपने जैसे अनेकों बार मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, राम, परशुराम और वामन अवतार धारण करके हमलोगोंकी और तीनों लोकोंकी रक्षा की है—वैसे ही आप इस बार भी पृथ्वीका भार हरण कीजिये। यदुनन्दन! हम आपके चरणोंमें वन्दना करते हैं।' [देवकीजीको सम्बोधित करके] 'माताजी! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी कोखमें हम सबका कल्याण करनेके लिये स्वयं भगवान् पुरुषोत्तम अपने ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ पधारे हैं। अब आप कंससे तनिक भी मत डरिये। अब तो वह कुछ ही दिनोंका मेहमान है। आपका पुत्र यदुवंशकी रक्षा करेगा' ॥२५-४१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! ब्रह्मादि देवताओंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की। उनका रूप 'यह है' इस प्रकार निश्चितरूपसे तो कहा नहीं जा सकता, सब अपनी-अपनी मतिके अनुसार उसका निरूपण करते हैं। इसके बाद ब्रह्मा और शङ्करजीको आगे करके देवगण स्वर्गमें चले गये ॥ ४२ ॥

तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब समस्त शुभ गुणोंसे युक्त बहुत सुहावना समय आया। रोहिणी नक्षत्र था। आकाशके सभी नक्षत्र, ग्रह और तारे शान्त—सौम्य हो रहे थे। दिशाएँ स्वच्छ-प्रसन्न थीं। निर्मल आकाशमें तारे जगमगा रहे थे। पृथ्वीके बड़े-बड़े नगर, छोटे-छोटे गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ और हीरे आदिकी खानें मङ्गलमय हो रही थीं। नदियोंका जल निर्मल हो गया था। रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल रहे थे। वनमें वृक्षोंकी पंक्तियाँ रंग बिरंगे पुष्पोंके गुच्छोंसे लद गयीं। कहीं पक्षी चहक रहे थे, तो कहीं भौंरे गुनगुना रहे थे। उस समय परम पवित्र और पुण्य गन्धसे भरी वायु किसीको छू जाती थी, तो बड़ा सुख मिलता था। उसकी गति बड़ी धीमी थी। ब्राह्मणोंके अग्निहोत्रकी कभी न बुझनेवाली अग्नियाँ कंसके अत्याचारसे बुझ गयी थीं। परन्तु इस समय वे अपने आप जल उठीं। सत पुरुष पहलेहीसे चाहते थे कि असुरोंकी बढ़ती न होने पाये। अब उनका मन सहसा प्रसन्नतासे भर गया। जिस समय भगवान्‌के आविर्भावका अवसर आया, स्वर्गमें देवताओंकी नौबतें अपने आप बज उठीं। किन्नर और गन्धर्व मधुर स्वरसे गाने लगे तथा सिद्ध और चारण भगवान्‌के मङ्गलमय गुणोंका बखान करने लगे। विद्याधरियाँ अप्सराओंके साथ नाचने लगीं। बड़े-बड़े देवता और ऋषि मुनि आनन्दसे भरकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। आधी रातका समय था। चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य था। भगवान्‌के अवतारके समय जलसे भरे हुए बादल समुद्रके पास जाकर धीरे धीरे गर्जना करने लगे। उसी समय सबके हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णु देवरूपिणी देवकीके गर्भसे प्रकट हुए, जैसे पूर्व दिशामें सोलहों कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय हो गया हो ॥ १-८ ॥

वसुदेवजीने देखा, उनके सामने एक अद्भुत बालक है। उसके नेत्र कमलके समान कोमल और विशाल हैं। चार सुन्दर हाथोंमें शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए है। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न—अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी



रेखा है। गलेमें कौस्तुभमणि झिलमिला रही है। वर्षाकालीन मेघके समान परम सुन्दर श्यामल शरीरपर मनोहर

श्रीगणेशाय नमः

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

श्रीमद्भागवत

दशम स्कन्ध

(पूर्वार्ध)

पहला अध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

भगवान्‌के द्वारा पृथ्वीको आश्वासन, वसुदेव-देवकीका विवाह और कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंकी हत्या

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन् ! आपने चन्द्रवंश और सूर्यवंशके विस्तार तथा दोनों वंशोंके राजाओंका अत्यन्त अद्‌भुत चरित्र वर्णन किया । भगवान्‌के परमप्रेमी मुनिवर ! आपने स्वभावसे ही धर्मप्रेमी यदुवंशका भी विशद वर्णन किया । अब कृपा करके उसी वंशमें अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ अवतीर्ण हुए भगवान् श्रीकृष्णके परम-पवित्र चरित्र भी हमें सुनाइये । भगवान् श्रीकृष्ण समस्त प्राणियोंके जीवनदाता एवं सर्वात्मा हैं । उन्होंने यदुवंशमें अवतार लेकर जो-जो लीलाएँ कीं, उनका विस्तारसे हम-लोगोंको श्रवण कराइये । भगवान् श्रीकृष्णके गुण और उनकी लीलाएँ इतनी मधुर और स्वभावसे ही इतनी सुन्दर हैं कि जिन मुक्त महापुरुषोंके हृदयमें किसी भी प्रकारकी लालसा-तृष्णा नहीं है, वे भी उनकी ओर आकर्षित होकर नित्य-निरन्तर उनका गायन किया करते हैं । जो लोग इस भव-रोगसे छुटकारा पाना चाहते हैं उनके लिये तो वे लीलाएँ औषधरूप ही हैं, जन्म-मृत्युके चक्करसे छुड़ा देनेवाली हैं । यहाँतक कि जो विषयप्रेमी हैं, उनके मन और कान भी उनमें रम जाते हैं । उन्हें भी उनमें बड़ा रस, बड़ा सुख मिलता है । ऐसी स्थितिमें पशुघाती अथवा आत्मघातीके अतिरिक्त ऐसा और कोई जीव नहीं हो सकता जो मुक्त, मुमुक्षु और विषयी सभीको सुख देनेवाली भगवान्‌की लीलाओंमें रुचि न करे—उनसे प्रेम न करे । इसके अतिरिक्त मेरे कुलसे तो श्रीकृष्णका बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है । जब कुरुक्षेत्रमें महाभारत-युद्ध हो रहा था, और देवताओंको भी जीत लेनेवाले भीष्मपितामह आदि अतिरथियोंसे मेरे दादा पाण्डवोंका युद्ध हो रहा था, उस समय कौरवोंकी सेना उनके लिये अपार समुद्रके समान थी—जिसमें भीष्म आदि वीर बड़े-बड़े मच्छोंको भी निगल जानेवाले तिमिङ्गिल मच्छोंकी भाँति भय उत्पन्न कर रहे थे । परन्तु मेरे स्वनाम-धन्य पितामह भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी नौकाका आश्रय लेकर उस समुद्रको अनायास ही पार कर गये—ठीक वैसे ही, जैसे कोई मार्गमें चलता हुआ स्वभावसे ही बछड़ेके खुरका गड्ढा पार कर जाय । महाराज ! दादाओं-की बात जाने दीजिये, मेरा यह शरीर—जो आपके सामने है तथा जो कौरव और पाण्डव दोनों ही वंशोंका एकमात्र सहारा था—अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे जल चुका था । उस समय मेरी माता जब भगवान्‌की शरणमें गयी, तब उन्होंने हाथमें चक्र लेकर मेरी माताके गर्भमें प्रवेश किया और मेरी रक्षा की । केवल मेरी ही बात नहीं, वे समस्त शरीर-धारियोंके भीतर आत्मारूपसे रहकर अमृतत्वका दान कर रहे हैं, और बाहर कालरूपसे रहकर मृत्युका । मनुष्यके रूपमें प्रतीत होना, यह तो उनकी एक लीला है । आप उन्हींकी ऐश्वर्य और माधुर्यसे परिपूर्ण लीलाओंका वर्णन कीजिये । वे मेरे कुलदेवता हैं, जीवनदाता हैं और समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं ॥ १–७ ॥

भगवन् ! आपने अभी बतलाया था कि बलरामजी रोहिणीके पुत्र थे । इसके बाद देवकीके पुत्रोंमें भी आपने उनकी गणना की । दूसरा शरीर धारण किये बिना दो

हम कोई तर्कना करें, तो यही कह सकते हैं कि यह आपका एक लीला-विनोद है। ऐसा कहनेका कारण यह है कि आप तो द्वैतके लेशसे रहित सर्वाधिष्ठानस्वरूप हैं और इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय अज्ञानके द्वारा आपमें आरोपित हैं। प्रभो! आपने जैसे अनेकों बार मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, राम, परशुराम और वामन अवतार धारण करके हमलोगोंकी और तीनों लोकोंकी रक्षा की है—वैसे ही आप इस बार भी पृथ्वीका भार हरण कीजिये। यदुनन्दन! हम आपके चरणोंमें वन्दना करते हैं।' [देवकीजीको सम्बोधित करके] 'माताजी! यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आपकी कोखमें हम सबका कल्याण करनेके लिये स्वयं भगवान् पुरुषोत्तम अपने ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ पधारे हैं। अब आप कंससे तनिक भी मत डरिये। अब तो वह कुछ ही दिनोंका मेहमान है। आपका पुत्र यदुवंशकी रक्षा करेगा'॥ २५-४१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! ब्रह्मादि देवताओंने इस प्रकार भगवान्की स्तुति की। उनका रूप 'यह है' इस प्रकार निश्चितरूपसे तो कहा नहीं जा सकता, सब अपनी-अपनी मतिके अनुसार उसका निरूपण करते हैं। इसके बाद ब्रह्मा और शङ्करजीको आगे करके देवगण स्वर्गमें चले गये ॥ ४२॥

तीसरा अध्याय

भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब समस्त शुभ गुणोंसे युक्त बहुत सुहावना समय आया। रोहिणी नक्षत्र था। आकाशके सभी नक्षत्र, ग्रह और तारे शान्त—सौम्य हो रहे थे। दिशाएँ स्वच्छ—प्रसन्न थीं। निर्मल आकाशमें तारे जगमगा रहे थे। पृथ्वीके बड़े-बड़े नगर, छोटे-छोटे गाँव, अहीरोंकी बस्तियाँ और हीरे आदिकी खानें मङ्गलमय हो रही थीं। नदियोंका जल निर्मल हो गया था। रात्रिके समय भी सरोवरोंमें कमल खिल रहे थे। वनमें वृक्षोंकी पंक्तियाँ रंग-बिरंगे पुष्पोंके गुच्छोंसे लद गयीं। कहीं पक्षी चहक रहे थे, तो कहीं भौंरे गुनगुना रहे थे। उस समय परम पवित्र और पुण्य गन्धसे भरी वायु किसीको छू जाती थी, तो बड़ा सुख मिलता था। उसकी गति बड़ी धीमी थी। ब्राह्मणोंके अग्निहोत्रकी कभी न बुझनेवाली अग्नियाँ कंसके अत्याचारसे बुझ गयी थीं। परन्तु इस समय वे अपने आप जल उठीं। संत पुरुष पहलेहीसे चाहते थे कि असुरोंकी बढ़ती न होने पाये। अब उनका मन सहसा प्रसन्नतासे भर गया। जिस समय भगवान्के आविर्भावका अवसर आया, स्वर्गमें देवताओंकी नौबतें अपने आप बज उठीं। किन्नर और गन्धर्व मधुर स्वरसे गाने लगे तथा सिद्ध और चारण भगवान्के मङ्गलमय गुणोंका बखान करने लगे। विद्याधरियाँ अप्सराओंके साथ नाचने लगीं। बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि आनन्दसे भरकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। आधी रातका समय था। चारों ओर अन्धकारका साम्राज्य था। भगवान्के अवतारके समय जलसे भरे हुए बादल समुद्रके पास जाकर धीरे-धीरे गर्जना करने लगे। उसी समय सबके हृदयमें विराजमान भगवान् विष्णु देवरूपिणी देवकीके गर्भसे प्रकट हुए, जैसे पूर्व दिशामें सोलहों कलाओंसे पूर्ण चन्द्रमाका उदय हो गया हो ॥ १-८॥

वसुदेवजीने देखा, उनके सामने एक अद्भुत बालक है। उसके नेत्र कमलके समान कोमल और विशाल हैं। चार सुन्दर हाथोंमें शङ्ख, गदा, चक्र और कमल लिये हुए है। वक्षःस्थलपर श्रीवत्सका चिह्न—अत्यन्त सुन्दर सुवर्णमयी



रेखा है। गलेमें कौस्तुभमणि झिलमिला रही है। वर्षाकालीन मेघके समान परम सुन्दर श्यामल शरीरपर मनोहर

समस्त यदुवंशी नरपतियोंकी राजधानी हो गयी थी। मथुराकी महिमा अपार है। वहाँ तो सर्वदा ही भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं। एक बार मथुरामें शूरके पुत्र वसुदेवजी विवाह करके अपनी नवविवाहिता पत्नी देवकीके साथ घर जानेके लिये रथपर सवार हुए। उग्रसेनका लड़का था कंस। उसने अपनी चचेरी बहिन देवकीको प्रसन्न करनेके लिये उसके रथके घोड़ोंकी रास पकड़ ली। वह स्वयं ही रथ हाँकने लगा, यद्यपि उसके साथ सैकड़ों सोनेके बने हुए रथ चल रहे थे। देवकीके पिता थे देवक। अपनी पुत्रीपर उनका बड़ा प्रेम था। कन्याको बिदा करते समय उन्होंने उसे सोनेके हारोंसे अलङ्कृत चार सौ हाथी, पंद्रह हजार घोड़े, अठारह सौ रथ तथा सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित दो सौ सुकुमारी दासियाँ दहेजमें दीं। विदाईके समय वर-वधूके मङ्गलके लिये एक ही साथ शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग और दुन्दुभियाँ बजने लगीं। मार्गमें जिस समय घोड़ोंकी रास पकड़कर कंस रथ हाँक रहा था, उस समय आकाशवाणीने उसे सम्बोधन करके कहा—'अरे मूर्ख! जिसको तू रथमें बैठाकर लिये जा रहा है, उसकी आठवें गर्भकी सन्तान तुझे मार डालेगी।' कंस बड़ा पापी था। उसकी दुष्टताकी सीमा नहीं थी। वह भोजवंशका कलङ्क ही था। आकाशवाणी सुनते ही उसने तलवार खींच ली और अपनी बहिनकी चोटी पकड़कर वह उसे मारनेके लिये तैयार हो गया।



वह अत्यन्त क्रूर तो था ही, पाप-कर्म करते-करते निर्लज्ज भी हो गया था। उसका यह काम देखकर महात्मा वसुदेवजी उसको शान्त करते हुए बोले॥ २९—३६॥

वसुदेवजीने कहा—राजकुमार! आप भोजवंशके होनहार वंशधर हैं। बड़े-बड़े शूरवीर आपके गुणोंकी सराहना करते हैं। इधर यह एक तो स्त्री, दूसरे आपकी बहिन, और तीसरे यह विवाहका शुभ अवसर! ऐसी स्थितिमें आप इसे कैसे मार सकते हैं? वीरवर! जो जन्म लेते हैं, उनके शरीरके साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। आज हो या सौ वर्षके बाद—जो प्राणी है, उसकी मृत्यु होगी ही। जब शरीरका अन्त हो जाता है, तब जीव अपने कर्मके अनुसार दूसरे शरीरको ग्रहण करके अपने पहले शरीरको छोड़ देता है। उसे विवश होकर ऐसा करना पड़ता है। जैसे चलते समय मनुष्य एक पैर जमाकर ही दूसरा पैर उठाता है और जैसे जोंक किसी अगले तिनकेको पकड़ लेती है, तब पहलेके पकड़े हुए तिनकेको छोड़ती है—वैसे जीव भी अपने कर्मके अनुसार किसी शरीरको प्राप्त करनेके बाद ही इस शरीरको छोड़ता है। जैसे कोई पुरुष जाग्रत् अवस्थामें राजाके ऐश्वर्यको देखकर और इन्द्रादिके ऐश्वर्यको सुनकर उसकी अभिलाषा करने लगता है और उसका चिन्तन करते-करते उन्हीं बातोंमें घुल-मिलकर एक हो जाता है तथा स्वप्नमें अपनेको राजा या इन्द्रके रूपमें अनुभव करने लगता है, साथ ही अपने दरिद्रावस्थाके शरीरको भूल जाता है। कभी-कभी तो जाग्रत् अवस्थामें ही मन-ही-मन उन बातोंका चिन्तन करते-करते तन्मय हो जाता है और उसे स्थूल शरीरकी सुधि नहीं रहती। वैसे ही जीव कर्मकृत कामना और कामनाकृत कर्मके वश होकर अपने पहले शरीरको भूल जाता है तथा दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है। जीवका मन अनेक विकारोंका पुञ्ज है। देहान्तके समय वह अनेक जन्मोंके सञ्चित और प्रारब्ध कर्मोंकी वासनाओंके अधीन होकर मायाके द्वारा रचे हुए अनेक पाञ्चभौतिक शरीरोंमेंसे जिस किसी शरीरके चिन्तनमें तल्लीन हो जाता है और मान बैठता है कि यह मैं हूँ, उसे वही शरीर ग्रहण करके जन्म लेना पड़ता है। जैसे सूर्य-चन्द्रमा आदि चमकीली वस्तुएँ जलसे भरे हुए घड़ोंमें या तेल आदि तरल पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होती हैं, और हवाके झोंकेसे उनके जल आदिके हिलने-डोलनेपर उनमें प्रतिबिम्बित वस्तुएँ भी चञ्चल जान पड़ती हैं—वैसे ही जीव अपनी अविद्याद्वारा रचे हुए शरीरोंमें राग करके उन्हें अपना स्वरूप मान बैठता है और मोहवश उनके आने-जानेको **अपना**

परार्ध समाप्त हो जाते हैं, कालशक्तिके प्रभावसे सारे लोक नष्ट हो जाते हैं, पञ्च महाभूत अहङ्कारमें, अहङ्कार महत्तत्त्वमें और महत्तत्त्व प्रकृतिमें लीन हो जाता है—उस समय एकमात्र आप ही शेष रह जाते हैं। इसीसे आपका एक नाम 'शेष' भी है। प्रकृतिके एकमात्र सहायक प्रभो! निमेषसे लेकर वर्षपर्यन्त अनेक विभागोंमें विभक्त जो काल है, जिसकी चेष्टासे यह सम्पूर्ण विश्व सचेष्ट होता है और जिसकी कोई सीमा नहीं है, वह आपकी लीलामात्र है। आप सर्वशक्तिमान् और परम कल्याणके आश्रय हैं। मैं आपकी शरण लेती हूँ। प्रभो! यह जीव मृत्युग्रस्त हो रहा है। यह मृत्युरूप कराल व्यालसे भयभीत होकर सम्पूर्ण लोक-लोकान्तरोंमें भटकता रहा है, परन्तु इसे कभी कहीं भी ऐसा स्थान न मिल सका, जहाँ यह निर्भय होकर रहे। आज बड़े भाग्यसे इसे आपके चरणोंकी शरण मिल गयी। अतः अब यह सुखकी नींद सो रहा है। औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं मृत्यु भी इससे भयभीत होकर भाग गयी है। प्रभो! आप हैं भक्तभयहारी। और हमलोग इस दुष्ट कंससे बहुत ही भयभीत हैं। अतः आप हमारी रक्षा कीजिये। एक बात और है, आपका यह चतुर्भुज दिव्यरूप ध्यानकी वस्तु है। इसे केवल मांस-मज्जामय शरीरपर ही दृष्टि रखनेवाले देहाभिमानी पुरुषोंके सामने प्रकट मत कीजिये। मधुसूदन! इस पापी कंसको यह बात मालूम न हो कि आपका जन्म मेरे गर्भसे हुआ है। मेरा धैर्य टूट रहा है। आपके लिये मैं कंससे बहुत डर रही हूँ। विश्वात्मन्! आपका यह रूप अलौकिक है। आप शङ्ख, चक्र, गदा और कमलकी शोभासे युक्त अपना यह चतुर्भुजरूप छिपा लीजिये, सामान्य बालकका रूप धारण कर लीजिये। प्रलयके समय आप इस सम्पूर्ण विश्वको अपने शरीरमें वैसे ही स्वाभाविक रूपसे धारण करते हैं, जैसे कोई मनुष्य अपने शरीरमें रहनेवाले छिद्ररूप आकाशको। वही परमपुरुष परमात्मा आप मेरे गर्भवासी हुए, यह आपकी अद्भुत मनुष्य-लीला नहीं तो और क्या है? ॥ २४–३१ ॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवि! स्वायम्भुव मन्वन्तरमें जब तुम्हारा पहला जन्म हुआ था, उस समय तुम्हारा नाम था पृश्नि और ये वसुदेव सुतपा नामके प्रजापति थे। तुम दोनोंके हृदय बड़े ही शुद्ध थे। जब ब्रह्माजीने तुम दोनोंको सन्तान उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी, तब तुमलोगोंने इन्द्रियोंका दमन करके उत्कृष्ट तपस्या की। तुम दोनोंने वर्षा, वायु, घाम, शीत, उष्ण आदि कालके विभिन्न गुणोंका सहन किया और प्राणायामके द्वारा अपने मनके मल धो डाले। तुम दोनों कभी सूखे पत्ते खा लेते और कभी हवा पीकर ही रह जाते। तुम्हारा चित्त बड़ा शान्त था। इस प्रकार तुमलोगोंने मुझसे अभीष्ट वस्तु प्राप्त करनेकी इच्छासे मेरी आराधना की। मुझमें चित्त लगाकर ऐसा परम दुष्कर और घोर तप करते-करते देवताओंके बारह हजार वर्ष बीत गये। पुण्यमयी देवि! उस समय मैं तुम दोनोंपर प्रसन्न हुआ। क्योंकि तुम दोनोंने तपस्या, श्रद्धा और प्रेममयी भक्तिसे अपने हृदयमें नित्य निरन्तर मेरी भावना की थी। उस समय तुम दोनोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये वर देनेवालोंका राजा मैं इसी रूपसे तुम्हारे सामने प्रकट हुआ। जब मैंने कहा कि 'तुम्हारी जो इच्छा हो, मुझसे माँग लो', तब तुम दोनोंने मेरे-जैसा पुत्र माँगा। उस समयतक विषय-भोगोंसे तुमलोगोंका कोई सम्बन्ध नहीं हुआ था। तुम्हारे कोई सन्तान भी न थी। इसलिये मेरी मायासे मोहित होकर तुम दोनोंने मुझसे मोक्ष नहीं माँगा। तुम्हें मेरे-जैसा पुत्र होनेका वर प्राप्त हो गया और मैं वहाँसे चला गया। अब सफलमनोरथ होकर तुमलोग विषयोंका भोग करने लगे। मैंने देखा कि संसारमें शील-स्वभाव, उदारता तथा अन्य गुणोंमें मेरे जैसा दूसरा कोई नहीं है। इसलिये मैं ही तुम दोनोंका पुत्र हुआ और उस समय मैं 'पृश्निगर्भ' के नामसे विख्यात हुआ। फिर दूसरे जन्ममें तुम हुई अदिति और वसुदेव हुए कश्यप। उस समय भी मैं तुम्हारा पुत्र हुआ। उस समय मेरा नाम था 'उपेन्द्र'। शरीर छोटा होनेके कारण लोग मुझे 'वामन' भी कहते थे। सती देवकी! तुम्हारे इस तीसरे जन्ममें भी मैं उसी रूपसे फिर तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ। मेरी वाणी कभी झूठी नहीं होती। मैंने तुम्हें अपना यह रूप इसलिये दिखला दिया है कि तुम्हें मेरे पूर्व अवतारोंका स्मरण हो जाय। यदि मैं ऐसा नहीं करता, तो केवल मनुष्य-शरीरसे मेरे अवतारकी पहचान नहीं हो पाती। तुम दोनों मेरे प्रति पुत्रभाव तथा निरन्तर ब्रह्मभाव रखना। इस प्रकार वात्सल्य-स्नेह और चिन्तनके द्वारा तुम्हें मेरे परमपदकी प्राप्ति होगी ॥ ३२–४५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् इतना कहकर चुप हो गये। अब उन्होंने अपनी योगमायासे पिता-माताके देखते-देखते तुरंत एक साधारण शिशुका रूप धारण कर लिया। तब वसुदेवजीने भगवान्‌की प्रेरणासे अपने पुत्रको लेकर सूतिकागृहसे बाहर निकलनेकी इच्छा की। उसी समय नन्दपत्नी यशोदाके गर्भसे उस योगमायाका जन्म हुआ,

समस्त यदुवंशी नरपतियोंकी राजधानी हो गयी थी। मथुराकी महिमा अपार है। वहाँ तो सर्वदा ही भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं। एक बार मथुरामें शूरके पुत्र वसुदेवजी विवाह करके अपनी नवविवाहिता पत्नी देवकीके साथ घर जानेके लिये रथपर सवार हुए। उग्रसेनका लड़का था कंस। उसने अपनी चचेरी बहिन देवकीको प्रसन्न करनेके लिये उसके रथके घोड़ोंकी रास पकड़ ली। वह स्वयं ही रथ हाँकने लगा, यद्यपि उसके साथ सैकड़ों सोनेके बने हुए रथ चल रहे थे। देवकीके पिता थे देवक। अपनी पुत्रीपर उनका बड़ा प्रेम था। कन्याको बिदा करते समय उन्होंने उसे सोनेके हारोंसे अलङ्कृत चार सौ हाथी, पंद्रह हजार घोड़े, अठारह सौ रथ तथा सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे विभूषित दो सौ सुकुमारी दासियाँ दहेजमें दीं। बिदाईके समय वर-वधूके मङ्गलके लिये एक ही साथ शङ्ख, तुरही, मृदङ्ग और दुन्दुभियाँ बजने लगीं। मार्गमें जिस समय घोड़ोंकी रास पकड़कर कंस रथ हाँक रहा था, उस समय आकाशवाणीने उसे सम्बोधन करके कहा—'अरे मूर्ख! जिसको तू रथमें बैठाकर लिये जा रहा है, उसकी आठवें गर्भकी सन्तान तुझे मार डालेगी।' कंस बड़ा पापी था। उसकी दुष्टताकी सीमा नहीं थी। वह भोजवंशका कलङ्क ही था। आकाशवाणी सुनते ही उसने तलवार खींच ली और अपनी बहिनकी चोटी पकड़कर वह उसे मारनेके लिये तैयार हो गया।



वह अत्यन्त क्रूर तो था ही, पाप-कर्म करते-करते निर्लज्ज भी हो गया था। उसका यह काम देखकर महात्मा वसुदेवजी उसको शान्त करते हुए बोले ॥ २६—३६ ॥

वसुदेवजीने कहा—राजकुमार! आप भोजवंशके होनहार वंशधर हैं। बड़े-बड़े शूरवीर आपके गुणोंकी सराहना करते हैं। इधर यह एक तो स्त्री, दूसरे आपकी बहिन, और तीसरे यह विवाहका शुभ अवसर! ऐसी स्थितिमें आप इसे कैसे मार सकते हैं? वीरवर! जो जन्म लेते हैं, उनके शरीरके साथ ही मृत्यु भी उत्पन्न होती है। आज हो या सौ वर्षके बाद—जो प्राणी है, उसकी मृत्यु होगी ही। जब शरीरका अन्त हो जाता है, तब जीव अपने कर्मके अनुसार दूसरे शरीरको ग्रहण करके अपने पहले शरीरको छोड़ देता है। उसे विवश होकर ऐसा करना पड़ता है। जैसे चलते समय मनुष्य एक पैर जमाकर ही दूसरा पैर उठाता है और जैसे जोंक किसी अगले तिनकेको पकड़ लेती है, तब पहलेके पकड़े हुए तिनकेको छोड़ती है—वैसे जीव भी अपने कर्मके अनुसार किसी शरीरको प्राप्त करनेके बाद ही इस शरीरको छोड़ता है। जैसे कोई पुरुष जाग्रत् अवस्थामें राजाके ऐश्वर्यको देखकर और इन्द्रादिके ऐश्वर्यको सुनकर उसकी अभिलाषा करने लगता है और उसका चिन्तन करते-करते उन्हीं बातोंमें घुल-मिलकर एक हो जाता है तथा स्वप्नमें अपनेको राजा या इन्द्रके रूपमें अनुभव करने लगता है, साथ ही अपने दरिद्रावस्थाके शरीरको भूल जाता है। कभी-कभी तो जाग्रत् अवस्थामें ही मन-ही-मन उन बातोंका चिन्तन करते-करते तन्मय हो जाता है और उसे स्थूल शरीरकी सुधि नहीं रहती। वैसे ही जीव कर्मकृत कामना और कामनाकृत कर्मके वश होकर अपने पहले शरीरको भूल जाता है तथा दूसरे शरीरको प्राप्त हो जाता है। जीवका मन अनेक विकारोंका पुञ्ज है। देहान्तके समय वह अनेक जन्मोंके सञ्चित और प्रारब्ध कर्मोंकी वासनाओंके अधीन होकर मायाके द्वारा रचे हुए अनेक पाञ्चभौतिक शरीरोंमेंसे जिस किसी शरीरके चिन्तनमें तल्लीन हो जाता है और मान बैठता है कि यह मैं हूँ, उसे वही शरीर ग्रहण करके जन्म लेना पड़ता है। जैसे सूर्य-चन्द्रमा आदि चमकीली वस्तुएँ जलसे भरे हुए घड़ोंमें या तेल आदि तरल पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होती हैं, और हवाके झोंकेसे उनके जल आदिके हिलने-डोलनेपर उनमें प्रतिबिम्बित वस्तुएँ भी चञ्चल जान पड़ती हैं—वैसे ही जीव अपनी अविद्याद्वारा रचे हुए शरीरोंमें राग करके उन्हें अपना स्वरूप मान बैठता है और मोहवश उनके आने-जानेको अपना

योगमायाका प्रभाव



वसुदेवजी भगवान्‌को लेकर चले ।

ऐसा कहा था कि देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न सन्तानके द्वारा मेरी मृत्यु होगी।' वसुदेवजीने कहा—'ठीक है' और उस बालकको लेकर वे लौट आये। परन्तु उन्हें मालूम था कि कंस बड़ा दुष्ट है और उसका मन उसके हाथमें नहीं है। वह किसी क्षण बदल सकता है। इसलिये उन्होंने उसकी बातपर विश्वास नहीं किया॥ ५९—६१॥

परीक्षित्! इधर भगवान् नारद कंसके पास आये और उससे बोले कि 'कंस! व्रजमें रहनेवाले नन्द आदि गोप, उनकी स्त्रियाँ, वसुदेव आदि वृष्णिवंशी यादव, देवकी आदि यदुवंशकी स्त्रियाँ और नन्द, वसुदेव दोनोंके सजातीय बन्धु-बान्धव और सगे-सम्बन्धी—सब-के-सब देवता हैं; जो इस समय तुम्हारी सेवा कर रहे हैं, वे भी देवता ही हैं।' उन्होंने यह भी बतलाया कि दैत्योंके कारण पृथ्वीका भार बढ़ गया है, इसलिये देवताओंकी ओरसे अब उनके वधकी तैयारी की जा रही है। जब देवर्षि नारद इतना कहकर चले गये, तब कंसको यह निश्चय हो गया कि यदुवंशी देवता हैं और देवकीके गर्भसे विष्णुभगवान् ही मुझे मारनेके लिये पैदा होनेवाले हैं। इसलिये उसने देवकी और वसुदेवको हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर कैदमें डाल दिया और उन दोनोंसे जो-जो पुत्र होते गये, उन्हें वह मारता गया। उसे हर बार यह शङ्का बनी रहती कि कहीं विष्णु ही उस बालकके रूपमें न आ गया हो। परीक्षित्! पृथ्वीमें यह बात प्रायः देखी जाती है कि अपने प्राणोंका ही पोषण करनेवाले लोभी राजा अपने स्वार्थके लिये माता-पिता, भाई-बन्धु और अपने अत्यन्त हितैषी इष्ट-मित्रोंकी भी हत्या कर डालते हैं। कंस जानता था कि मैं पहले कालनेमि असुर था और विष्णुने मुझे मार डाला था। इससे उसने यदुवंशियोंसे घोर विरोध ठान लिया। कंस बड़ा बलवान् था। उसने यदु, भोज और अन्धक-वंशके अधिनायक अपने पिता उग्रसेनको कैद कर लिया और शूरसेन-देशका राज्य वह स्वयं करने लगा॥६२—६९॥

दूसरा अध्याय

भगवान्का गर्भ-प्रवेश और देवताओंद्वारा गर्भ-स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कंस एक तो स्वयं बड़ा बली था और दूसरे, मगधनरेश जरासन्धकी उसे बहुत बड़ी सहायता प्राप्त थी। तीसरे, उसके साथी थे—प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्टासुर, द्विविद, पूतना, केशी और धेनुक। तथा बाणासुर और भौमासुर आदि बहुत-से दैत्य राजा उसके सहायक थे। इनको साथ लेकर वह यदुवंशियोंको नष्ट करने लगा। वे लोग भयभीत होकर कुरु, पञ्चाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह और कोसल आदि देशोंमें जा बसे। कुछ लोग ऊपर-ऊपरसे उसके मनके अनुसार काम करते हुए उसकी सेवामें लगे रहे। जब कंसने एक-एक करके देवकीके छः बालक मार डाले, तब देवकीके सातवें गर्भमें भगवान्के अंशस्वरूप श्रीशेषजी—जिन्हें अनन्त भी कहते हैं—पधारे। आनन्दस्वरूप शेषजीके गर्भमें आनेके कारण देवकीको स्वाभाविक ही हर्ष हुआ। परन्तु कंस शायद इसे भी मार डाले, इस भयसे उनका शोक भी बढ़ गया॥१—५॥

विश्वात्मा भगवान्ने देखा कि मुझे ही अपना स्वामी और सर्वस्व माननेवाले यदुवंशी कंसके द्वारा बहुत ही सताये जा रहे हैं। तब उन्होंने अपनी योगमायाको यह आदेश दिया—'देवि! कल्याणी! तुम व्रजमें जाओ। वह प्रदेश बड़ा ही सुन्दर है। जहाँ देखो, वहीं ग्वाल और गायोंकी छटा छा रही है। वहाँ नन्दबाबाके गोकुलमें वसुदेवकी पत्नी रोहिणी निवास करती हैं। उनकी और भी पत्नियाँ कंससे डरकर गुप्त स्थानोंमें रह रही हैं। इस समय मेरा वह अंश, जिसे शेष कहते हैं, देवकीके उदरमें गर्भरूपसे स्थित है। उसे वहाँसे निकालकर तुम रोहिणीके पेटमें रख दो। कल्याणी! अब मैं अपने समस्त ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ देवकीका पुत्र बनूँगा। और तुम नन्दबाबाकी पत्नी यशोदाके गर्भसे जन्म लेना। तुम लोगोंको मुँहमाँगे वरदान देनेमें समर्थ होओगी। मनुष्य तुम्हें अपनी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाली जानकर धूप-दीप, नैवेद्य एवं अन्य प्रकारकी सामग्रियोंसे तुम्हारी पूजा करेंगे। पृथ्वीमें लोग तुम्हारे लिये बहुत-से स्थान बनायेंगे और दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्या, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा और अम्बिका आदि बहुत-से नामोंसे पुकारेंगे। देवकीके गर्भमेंसे खींचे जानेके कारण शेषजीको लोग संसारमें 'संकर्षण' कहेंगे, लोकरञ्जन करनेके कारण 'राम' कहेंगे और बलवानोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण 'बलभद्र' भी कहेंगे॥ ६—१३॥

वह विह्वल हो रहा था और यही कारण है कि उसे इस बातका भी ध्यान न रहा कि उसके बाल बिखरे हुए हैं। रास्तेमें कई जगह वह लड़खड़ाकर गिरते गिरते बचा। बंदीगृहमें पहुँचनेपर सती देवकीने बड़े दुःख और करुणाके साथ अपने भाई कंससे कहा—'मेरे हितैषी भाई! यह कन्या तो तुम्हारी पुत्रवधूके समान है। इस बेचारी अबला को तुम्हें न मारना चाहिये। मेरे प्यारे भाई! तुमने मेरे बहुत से आगके समान चमकते हुए बच्चे मार डाले। परन्तु उसमें तुम्हारा दोष नहीं, प्रारब्ध ही वैसा था। अब मुझे यह कन्या तो दे दो। अवश्य ही मैं तुम्हारी छोटी बहिन हूँ। मेरे बहुत से बच्चे मर गये हैं, इसलिये मैं अत्यन्त दीन हूँ। मेरे प्यारे और समर्थ भाई! तुम मुझ मन्दभागिनीको यह अन्तिम सन्तान अवश्य दे दो' ॥ १–६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कन्याको अपनी गोदमें छिपाकर देवकीजीने अत्यन्त दीनताके साथ रोते-रोते याचना की। परन्तु कंस बड़ा दुष्ट था। उसने देवकीजीको



झिड़ककर उनके हाथसे वह कन्या छीन ली। अपनी उस नन्ही-सी भानजीके पैर पकड़कर कंसने उसे बड़े जोरसे एक चट्टानपर दे मारा। स्वार्थके कारण उसके हृदयसे सहृदयता तो पहलेसे ही कूच कर चुकी थी। परन्तु श्रीकृष्णकी वह छोटी बहिन साधारण कन्या तो थी नहीं, देवी थी; उसके हाथसे छूटकर तुरंत आकाशमें चली गयी और अपने बड़े-बड़े आठ हाथोंमें आयुध लिये हुए दीख पड़ी। वह दिव्य माला, वस्त्र, चन्दन और मणिमय आभूषणोंसे विभूषित थी। उसके हाथोंमें धनुष, त्रिशूल, बाण, ढाल, तलवार, शङ्ख, चक्र और गदा—ये आठ आयुध थे। सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर और नागगण बहुत-सी भेंटकी सामग्री समर्पित करके उसकी स्तुति कर रहे थे। उस समय देवीने कंससे कहा—'रे मूर्ख! मुझे मारनेसे तुझे क्या मिलेगा? तेरे पूर्वजन्मका शत्रु तुझे मारनेके लिये किसी स्थानपर पैदा हो चुका है। अब तू व्यर्थ निर्दोष बालकोंकी हत्या न किया कर।' कंससे इस प्रकार कहकर भगवती योगमाया वहाँसे अन्तर्धान हो गयीं और पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें विभिन्न नामोंसे प्रसिद्ध हुईं ॥ ७–१३ ॥

देवीकी यह बात सुनकर कंसको असीम आश्चर्य हुआ। उसने उसी समय देवकी और वसुदेवको कैदसे छोड़ दिया और बड़ी नम्रतासे उनसे कहा—'मेरी प्यारी बहिन और बहनोईजी! मैं बड़ा पापी हूँ। राक्षस जैसे अपने ही बच्चोंको मार डालता है, वैसे ही मैंने तुम्हारे बहुत-से लड़के मार डाले। इस बातका मुझे बड़ा खेद है। मैं इतना दुष्ट हूँ कि करुणाका तो मुझमें लेश भी नहीं है। मैंने अपने भाई-बन्धु और हितैषियोंतकका त्याग कर दिया। पता नहीं, अब मुझे किस नरकमें जाना पड़ेगा। वास्तवमें तो मैं ब्रह्मघातीके समान जीवित होनेपर भी मुर्दा ही हूँ। केवल मनुष्य ही झूठ नहीं बोलते, विधाता भी झूठ बोलते हैं। उसीके धोखेमें आकर मैंने अपनी बहिनके बच्चे मार डाले। ओह! मैं कितना पापी हूँ! तुम दोनों महात्मा हो। अपने पुत्रोंके लिये शोक मत करो। उन्हें तो अपने कर्मका ही फल मिला है। सभी प्राणी प्रारब्धके अधीन हैं। इसीसे वे सदा सर्वदा एक साथ नहीं रह सकते। जैसे मिट्टीके बने हुए पदार्थ बनते और बिगड़ते रहते हैं, परन्तु मिट्टीमें कोई अदल बदल नहीं होती—वैसे ही शरीरका तो बनना बिगड़ना होता ही रहता है, परन्तु आत्मापर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जो लोग इस तत्त्वको नहीं जानते, वे इस अनात्मा शरीरको ही आत्मा मान बैठते हैं। यही उलटी बुद्धि अथवा अज्ञान है। इसीके कारण जन्म और मृत्यु होते हैं। और जबतक यह अज्ञान नहीं मिटता, तबतक आवागमनरूप संसारसे छुटकारा नहीं मिलता। मेरी प्यारी बहिन! यद्यपि मैंने तुम्हारे पुत्रोंको मार डाला है, फिर भी तुम उनके लिये शोक न करो। क्योंकि सभी प्राणी अपने-अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये

कंसके कारागारमें भगवान् श्रीकृष्णका प्राकट्य



वसुदेवजीने देखा, उनके सामने एक अद्भुत बालक है।

स्वामी तथा असुरोंका प्रधान द्वेषी है। परन्तु वह किसी गुफामें छिपा रहता है। महादेव, ब्रह्मा और सारे देवताओंकी जड़ वही है। उसको मार डालनेका उपाय यह है कि ऋषियोंको मार डाला जाय' ॥ २८-४२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! एक तो कंसकी बुद्धि स्वयं ही बिगड़ी हुई थी, फिर उसे मन्त्री ऐसे मिले थे, जो उससे भी बढ़कर दुष्ट थे। इस प्रकार उनसे सलाह करके कंसने यही ठीक समझा कि ब्राह्मणोंको ही मार डाला जाय। वह असुर उस समय कालकी फाँसीमें फँस गया था। उसने हिंसाप्रेमी राक्षसोंको संत पुरुषोंकी हिंसा करनेका आदेश दे दिया। वे इच्छानुसार रूप धारण कर सकते थे। जब वे इधर-उधर चले गये, तब कंसने अपने महलमें प्रवेश किया। उन असुरोंकी प्रकृति थी रजोगुणी। तमोगुणके कारण उनका चित्त उचित और अनुचितके विवेकसे रहित हो गया था। उनके सिरपर मौत नाच रही थी। यही कारण है कि उन्होंने संतोंसे द्वेष किया। परीक्षित्! मैं सत्य कहता हूँ—जो लोग महान् संत पुरुषोंका अनादर करते हैं उनकी आयु, लक्ष्मी, कीर्ति, धर्म, लोक परलोक, विषय भोग और सब के सब कल्याणके साधन नष्ट हो जाते हैं ॥ ४३-४६ ॥

पाँचवाँ अध्याय

गोकुलमें भगवान्‌का जन्ममहोत्सव

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! नन्दबाबा बड़े मनस्वी और उदार थे। पुत्रका जन्म होनेपर तो उनका हृदय विलक्षण आनन्दसे भर गया। उन्होंने स्नान किया और पवित्र होकर सुन्दर सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये। फिर वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलवाकर स्वस्तिवाचन और अपने पुत्रका जातकर्म संस्कार करवाया। साथ ही देवता और पितरोंकी विधिपूर्वक पूजा भी करवायी। उन्होंने ब्राह्मणोंको वस्त्र और आभूषणोंसे सुसज्जित दो लाख गौएँ दान कीं। रत्नों और सुनहले वस्त्रोंसे ढके हुए तिलके सात पहाड़ दान किये। पृथ्वी, शरीर, अपवित्र पदार्थ, गर्भादि, इन्द्रियाँ, द्विजाति वर्ण, धन और चित्त आदि समस्त पदार्थोंकी शुद्धि क्रमशः काल, स्नान, शौच, संस्कार, तपस्या, यज्ञ, दान और सन्तोषसे होती है। आत्माकी शुद्धि तो आत्माके नित्य शुद्ध स्वरूपका ज्ञान होनेसे ही होती है। उस समय ब्राह्मण, सूत, मागध और वंदीजन मङ्गलमय आशीर्वाद देने तथा स्तुति करने लगे। गायक गाने लगे। भेरी और दुन्दुभियाँ बार बार बजने लगीं। व्रजमण्डलके सभी घरोंके द्वार, आँगन और भीतरी भाग झाड़ बुहार दिये गये, उनमें सुगन्धित जलका छिड़काव किया गया, उन्हें चित्र विचित्र ध्वजा पताका, पुष्पोंकी मालाएँ, रंग बिरंगे वस्त्र और पत्तोंकी बन्दनवारोंसे सजाया गया। गाय, बैल और बछड़ोंको हल्दी तेलसे रँग दिया गया, और उन्हें गेरू आदि रंगीन धातुएँ, मोरपंख, फूलोंके हार, तरह-तरहके सुन्दर वस्त्र और सोनेकी जंजीरोंसे सजा दिया गया। परीक्षित्! सभी ग्वाल बहुमूल्य वस्त्र, गहने, अँगरखे और पगड़ियोंसे सुसज्जित होकर और अपने हाथोंमें भेंटकी बहुत सी सामग्रियाँ ले लेकर नन्दबाबाके घर आये ॥ १-८ ॥

जब गोपियोंको यह बात मालूम हुई कि यशोदाजीके बालक हुआ है, तो उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने सुन्दर सुन्दर वस्त्र, आभूषण और अञ्जन आदिसे अपना शृङ्गार किया, भेंटमें देनेकी सामग्री लेकर यशोदाजीके पास जानेके लिये वे झटपट चल पड़ीं। उनके मुखकमल बड़े ही सुन्दर जान पड़ते थे। उनपर लगी हुई कुंकुम ऐसी लगती मानो कमलकी केशर हो। उनके नितम्ब बड़े बड़े थे। जब वे जल्दी जल्दी चलतीं, तब उनके पयोधर हिलने लगते। गोपियोंके कानोंमें चमकती हुई मणियोंके कुण्डल झिलमिला रहे थे। गलेमें सोनेके हार (हैकल या हुमेल) जगमगा रहे थे। वे बड़े सुन्दर सुन्दर रंग बिरंगे वस्त्र पहने हुए थीं। मार्गमें उनकी चोटियोंमें गुँथे हुए फूल बरसते जा रहे थे। हाथोंमें जड़ाऊ कंगन अलग ही चमक रहे थे। उनके कानोंके कुण्डल, पयोधर और हार हिलते जाते थे। इस प्रकार नन्दबाबाके घर जाते समय उनकी शोभा बड़ी अनूठी जान पड़ती थी। नन्दबाबाके घर जाकर वे नवजात शिशुको आशीर्वाद देतीं 'यह चिरजीवी हो' और लोगोंपर हल्दी तेलसे मिला हुआ पानी छिड़क देतीं तथा ऊँचे स्वरसे मङ्गल गान करती थीं ॥ ९-१२ ॥

भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत्‌के एकमात्र स्वामी हैं। उनके ऐश्वर्य, माधुर्य, वात्सल्य—सभी अनन्त हैं। वे जब नन्दबाबाके व्रजमें प्रकट हुए, उस समय उनके जन्मका महान् उत्सव मनाया गया। बड़े बड़े विचित्र और मङ्गलमय

पीताम्बर फहरा रहा है। बहुमूल्य वैदूर्यमणिके किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। कमरमें चमचमाती करधनीकी लड़ियाँ लटक रही हैं। बाँहोंमें बाजूबंद और कलाइयोंमें कङ्कण शोभायमान हो रहे हैं। बालकके अङ्ग-अङ्गसे अनोखी छटा छिटक रही है। जब वसुदेवजीने देखा कि मेरे पुत्रके रूपमें तो स्वयं भगवान् ही आये हैं, तब पहले तो उन्हें असीम आश्चर्य हुआ; फिर आनन्दसे उनकी आँखें खिल उठीं। उनका रोम-रोम परमानन्दमें मग्न हो गया। श्रीकृष्णका जन्मोत्सव मनानेकी उतावलीमें उन्होंने उसी समय ब्राह्मणोंके लिये दस हजार गायोंका सङ्कल्प कर दिया। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी अङ्गकान्तिसे सूतिकागृह जगमगा रहा था। जब वसुदेवजीको यह निश्चय हो गया कि ये तो परमपुरुष परमात्मा ही हैं, तब भगवान्का प्रभाव जान लेनेसे उनका सारा भय जाता रहा। अपनी बुद्धि स्थिर करके उन्होंने भगवान्के चरणोंमें अपना सिर झुका दिया और फिर हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे—॥९–१२॥

वसुदेवजीने कहा—मैं समझ गया कि आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। आपका स्वरूप है केवल अनुभव और केवल आनन्द। आप समस्त बुद्धियोंके एकमात्र साक्षी हैं। आप ही सर्गके आदिमें अपनी प्रकृतिसे इस त्रिगुणमय जगत्की सृष्टि करते हैं। फिर उसमें प्रविष्ट न होनेपर भी आप प्रविष्टके समान जान पड़ते हैं। जैसे जबतक महत्तत्त्व आदि कारण-तत्त्व पृथक्-पृथक् रहते हैं, तबतक उनकी शक्ति भी पृथक्-पृथक् होती है; जब वे इन्द्रियादि सोलह विकारोंके साथ मिलते हैं, तभी इस ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं और इसे उत्पन्न करके इसीमें अनुप्रविष्ट-से जान पड़ते हैं। परन्तु सच्ची बात तो यह है कि वे किसी भी पदार्थमें प्रवेश नहीं करते। ऐसा होनेका कारण यह है कि उनसे बनी हुई जो भी वस्तु है, उसमें वे पहलेहीसे विद्यमान रहते हैं। ठीक वैसे ही बुद्धिके द्वारा केवल गुणोंके लक्षणोंका ही अनुमान किया जाता है और इन्द्रियोंके द्वारा केवल गुणमय विषयोंका ही ग्रहण होता है। यद्यपि आप उनमें रहते हैं, फिर भी उन गुणोंके ग्रहणसे आपका ग्रहण नहीं होता। इसका कारण यह है कि आप सब कुछ हैं, सबके अन्तर्यामी हैं और परमार्थ सत्य, आत्मस्वरूप हैं। गुणोंका आवरण आपको ढक नहीं सकता। इसलिये आपमें न बाहर है न भीतर। फिर आप किसमें प्रवेश करेंगे? इसलिये प्रवेश न करनेपर भी आप प्रवेश किये हुएके समान दीखते हैं। जो अपने इन दृश्य गुणोंको अपनेसे पृथक् मानकर सत्य समझता है, वह अज्ञानी है। क्योंकि आत्मतत्त्वके अतिरिक्त और कोई भी वस्तु युक्तिसङ्गत नहीं है, केवल नाममात्र है। विचारके द्वारा जिस वस्तुका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, बल्कि जो बाधित हो जाती है, उसको सत्य माननेवाला पुरुष बुद्धिमान् कैसे हो सकता है? प्रभो! कहते हैं कि आप स्वयं समस्त क्रियाओं, गुणों और विकारोंसे रहित हैं। फिर भी इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय आपसे ही होते हैं। यह बात परम ऐश्वर्यशाली परब्रह्म परमात्मा आपके लिये असम्भव नहीं है। क्योंकि तीनों गुणोंके आश्रय आप ही हैं, इसलिये उन गुणोंके कार्य आदिका आपहीमें आरोप किया जाता है। आप ही तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये अपनी मायासे सत्त्वमय शुक्लवर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप) धारण करते हैं, उत्पत्तिके लिये रजःप्रधान रक्तवर्ण (सृजनकारी ब्रह्मारूप) और प्रलयके समय तमोगुणप्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) स्वीकार करते हैं। प्रभो! आप सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं। इस संसारकी रक्षाके लिये ही आपने मेरे घर अवतार लिया है। आजकल कोटि-कोटि असुर सेनापतियोंने राजाका नाम धारण कर रक्खा है और अपने अधीन बड़ी-बड़ी सेनाएँ कर रक्खी हैं। आप उन सबका संहार करेंगे। देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो! यह कंस बड़ा दुष्ट है। इसे जब मालूम हुआ कि आपका अवतार हमारे घर होनेवाला है, तब उसने आपके भयसे आपके बड़े भाइयोंको मार डाला। अभी उसके दूत आपके अवतारका समाचार उसे सुनायेंगे और वह अभी-अभी हाथमें शस्त्र लेकर दौड़ा आयेगा॥१३–२२॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इधर देवकीने देखा कि मेरे पुत्रमें तो पुरुषोत्तम भगवान्के सभी लक्षण मौजूद हैं। पहले तो उन्हें कंससे कुछ भय मालूम हुआ, परन्तु फिर वे बड़े पवित्र भावसे मुसकराती हुई स्तुति करने लगीं॥२३॥

माता देवकीने कहा—प्रभो! वेदोंने आपके जिस रूपको अव्यक्त और सबका कारण बतलाया है, जो अनन्त ज्योतिःस्वरूप, समस्त गुणोंसे रहित और विकारहीन है, जिसे विशेषणरहित—अनिर्वचनीय, निष्क्रिय एवं केवल विशुद्ध सत्ताके रूपमें कहा गया है—वही बुद्धि आदिके प्रकाशक विष्णु आप स्वयं हैं। जिस समय ब्रह्माकी पूरी आयु—दो

छठा अध्याय

पूतना-उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! नन्दबाबा जब मथुरासे चले, तब रास्तेमें विचार करने लगे कि वसुदेवजीका कथन झूठा नहीं हो सकता। इससे उनके मनमें उत्पात होनेकी आशङ्का हो गयी। तब उन्होंने मन-ही मन 'भगवान् ही शरण हैं, वे ही रक्षा करेंगे' ऐसा निश्चय किया। पूतना नामकी एक बड़ी क्रूर राक्षसी थी। उसका एक ही काम था—बच्चोंको मारना। कंसकी आज्ञासे वह नगर, ग्राम और अहीरोंकी बस्तियोंमें बच्चोंको मारनेके लिये घूमा करती थी। जहाँके लोग अपने प्रतिदिनके कामोंमें राक्षसोंके भयको दूर भगानेवाले भक्तवत्सल भगवान्‌के नाम, गुण और लीलाओंका श्रवण, कीर्तन और स्मरण नहीं करते—वहीं ऐसी राक्षसियोंका बल चलता है। वह पूतना आकाशमार्गसे चल सकती थी और अपनी इच्छाके अनुसार रूप भी बना लेती थी। एक दिन नन्दबाबाके गोकुलके पास आकर उसने मायासे अपनेको एक सुन्दरी युवती बना लिया और गोकुलके भीतर घुस गयी। उसने बड़ा सुन्दर रूप बनाया था। उसकी चोटियोंमें बेलेके फूल गुँथे हुए थे। सुन्दर वस्त्र पहने हुए थी। जब उसके कर्णफूल हिलते थे, तब उनकी चमकसे मुखकी ओर लटकी हुई अलकें और भी शोभायमान हो जाती थीं। उसके नितम्ब और कुच कलश ऊँचे-ऊँचे थे और कमर पतली थी। वह अपनी मधुर मुसकान और कटाक्षपूर्ण चितवनसे व्रजवासियोंका चित्त चुरा रही थी। उस रूपवती रमणीको हाथमें कमल लेकर आते देख गोपियाँ ऐसी उत्प्रेक्षा करने लगीं, मानो स्वयं लक्ष्मीजी अपने पतिका दर्शन करनेके लिये आ रही हैं॥ १—६॥

पूतना बालकोंके लिये ग्रहके समान थी। वह इधर-उधर बालकोंको ढूँढ़ती हुई अनायास ही नन्दबाबाके घरमें घुस गयी। वहाँ उसने देखा कि बालक श्रीकृष्ण शय्यापर सोये हुए हैं। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण दुष्टोंके काल हैं। परन्तु जैसे आग राखकी ढेरीमें अपनेको छिपाये हुए हो, वैसे ही उस समय उन्होंने अपने प्रचण्ड तेजको छिपा रक्खा था। भगवान् श्रीकृष्ण चर-अचर सभी प्राणियोंके आत्मा हैं। इसलिये उन्होंने उसी क्षण जान लिया कि यह बच्चोंको मार डालनेवाला पूतना ग्रह है और अपने नेत्र बंद कर लिये। जैसे कोई पुरुष भ्रमवश सोये हुए साँपको रस्सी समझकर उठा ले, वैसे ही अपने कालरूप भगवान् श्रीकृष्णको पूतनाने अपनी गोदमें उठा लिया। मखमली म्यानके भीतर



छिपी हुई तीखी धारवाली तलवारके समान पूतनाका हृदय तो बड़ा कुटिल था, किन्तु ऊपरसे वह बहुत मधुर और सुन्दर व्यवहार कर रही थी। देखनेमें वह एक भद्र महिलाके समान जान पड़ती थी। इसलिये रोहिणी और यशोदाजी उसके सौन्दर्यसे प्रभावित हो गयीं; उन्होंने कोई रोक टोक नहीं की, चुपचाप खड़ी-खड़ी देखती रहीं। इधर राक्षसी पूतनाने बालक श्रीकृष्णको अपनी गोदमें लेकर उनके मुँहमें अपना स्तन दे दिया, जिसमें बड़ा भयङ्कर और किसी प्रकार न पच सकनेवाला विष लगा हुआ था। भगवान्‌ने क्रोधको अपना साथी बनाया और दोनों हाथोंसे उसके स्तनोंको जोरसे दबाकर उसके प्राणोंके साथ उसका दूध पीने लगे। (वे उसका दूध पीने लगे और उनका साथी क्रोध प्राण पीने लगा!)। अब तो पूतनाका एक एक मर्मस्थान फटने लगा। वह पुकारने लगी—'अरे छोड़ दे, छोड़ दे, अब बस कर!' वह बार-बार अपने हाथ और पैर पटक-पटककर रोने लगी। उसके नेत्र उलट गये। उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। उसकी चिल्लाहटका वेग बड़ा भयङ्कर था। उसके प्रभावसे पहाड़ोंके साथ पृथ्वी और ग्रहोंके साथ अन्तरिक्ष डगमगा उठा। सातों पाताल और दिशाएँ गूँज उठीं। बहुत-से लोग वज्रपातकी आशङ्कासे

पीताम्बर फहरा रहा है। बहुमूल्य वैदूर्यमणिके किरीट और कुण्डलकी कान्तिसे सुन्दर-सुन्दर घुँघराले बाल सूर्यकी किरणोंके समान चमक रहे हैं। कमरमें चमचमाती करधनीकी लड़ियाँ लटक रही हैं। बाँहोंमें बाजूबंद और कलाइयोंमें कङ्कण शोभायमान हो रहे हैं। बालकके अङ्ग-अङ्गसे अनोखी छटा छिटक रही है। जब वसुदेवजीने देखा कि मेरे पुत्रके रूपमें तो स्वयं भगवान् ही आये हैं, तब पहले तो उन्हें असीम आश्चर्य हुआ; फिर आनन्दसे उनकी आँखें खिल उठीं। उनका रोम-रोम परमानन्दमें मग्न हो गया। श्रीकृष्णका जन्मोत्सव मनानेकी उतावलीमें उन्होंने उसी समय ब्राह्मणोंके लिये दस हजार गायोंका सङ्कल्प कर दिया। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णकी अङ्गकान्तिसे सूतिकागृह जगमगा रहा था। जब वसुदेवजीको यह निश्चय हो गया कि ये तो परमपुरुष परमात्मा ही हैं, तब भगवान्का प्रभाव जान लेनेसे उनका सारा भय जाता रहा। अपनी बुद्धि स्थिर करके उन्होंने भगवान्के चरणोंमें अपना सिर झुका दिया और फिर हाथ जोड़कर वे उनकी स्तुति करने लगे—॥९–१२॥

वसुदेवजीने कहा—मैं समझ गया कि आप प्रकृतिसे अतीत साक्षात् पुरुषोत्तम हैं। आपका स्वरूप है केवल अनुभव और केवल आनन्द। आप समस्त बुद्धियोंके एकमात्र साक्षी हैं। आप ही सर्गके आदिमें अपनी प्रकृतिसे इस त्रिगुणमय जगत्की सृष्टि करते हैं। फिर उसमें प्रविष्ट न होनेपर भी आप प्रविष्टके समान जान पड़ते हैं। जैसे जबतक महत्तत्त्व आदि कारण-तत्त्व पृथक-पृथक् रहते हैं, तबतक उनकी शक्ति भी पृथक्-पृथक् होती है; जब वे इन्द्रियादि सोलह विकारोंके साथ मिलते हैं, तभी इस ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं और इसे उत्पन्न करके इसीमें अनुप्रविष्ट-से जान पड़ते हैं। परन्तु सच्ची बात तो यह है कि वे किसी भी पदार्थमें प्रवेश नहीं करते। ऐसा होनेका कारण यह है कि उनसे बनी हुई जो भी वस्तु है, उसमें वे पहलेहीसे विद्यमान रहते हैं। ठीक वैसे ही बुद्धिके द्वारा केवल गुणोंके लक्षणोंका ही अनुमान किया जाता है और इन्द्रियोंके द्वारा केवल गुणमय विषयोंका ही ग्रहण होता है। यद्यपि आप उनमें रहते हैं, फिर भी उन गुणोंके ग्रहणसे आपका ग्रहण नहीं होता। इसका कारण यह है कि आप सब कुछ हैं, सबके अन्तर्यामी हैं और परमार्थ सत्य, आत्मस्वरूप हैं। गुणोंका आवरण आपको ढक नहीं सकता। इसलिये आपमें न बाहर है न भीतर। फिर आप किसमें प्रवेश करेंगे? इसलिये प्रवेश न करनेपर भी आप प्रवेश किये हुएके समान दीखते हैं। जो अपने इन दृश्य गुणोंको अपनेसे पृथक् मानकर सत्य समझता है, वह अज्ञानी है। क्योंकि आत्मतत्त्वके अतिरिक्त और कोई भी वस्तु युक्तिसङ्गत नहीं है, केवल नाममात्र है। विचारके द्वारा जिस वस्तुका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, बल्कि जो बाधित हो जाती है, उसको सत्य माननेवाला पुरुष बुद्धिमान् कैसे हो सकता है? प्रभो! कहते हैं कि आप स्वयं समस्त क्रियाओं, गुणों और विकारोंसे रहित हैं। फिर भी इस जगत्की सृष्टि, स्थिति और प्रलय आपसे ही होते हैं। यह बात परम ऐश्वर्यशाली परब्रह्म परमात्मा आपके लिये असम्भव नहीं है। क्योंकि तीनों गुणोंके आश्रय आप ही हैं, इसलिये उन गुणोंके कार्य आदिका आपहीमें आरोप किया जाता है। आप ही तीनों लोकोंकी रक्षा करनेके लिये अपनी मायासे सत्त्वमय शुक्लवर्ण (पोषणकारी विष्णुरूप) धारण करते हैं, उत्पत्तिके लिये रजःप्रधान रक्तवर्ण (सृजनकारी ब्रह्मारूप) और प्रलयके समय तमोगुणप्रधान कृष्णवर्ण (संहारकारी रुद्ररूप) स्वीकार करते हैं। प्रभो! आप सर्वशक्तिमान् और सबके स्वामी हैं। इस संसारकी रक्षाके लिये ही आपने मेरे घर अवतार लिया है। आजकल कोटि-कोटि असुर सेनापतियोंने राजाका नाम धारण कर रक्खा है और अपने अधीन बड़ी-बड़ी सेनाएँ कर रक्खी हैं। आप उन सबका संहार करेंगे। देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो! यह कंस बड़ा दुष्ट है। इसे जब मालूम हुआ कि आपका अवतार हमारे घर होनेवाला है, तब उसने आपके भयसे आपके बड़े भाइयोंको मार डाला। अभी उसके दूत आपके अवतारका समाचार उसे सुनायेंगे और वह अभी-अभी हाथमें शस्त्र लेकर दौड़ा आयेगा॥१३–२२॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इधर देवकीने देखा कि मेरे पुत्रमें तो पुरुषोत्तम भगवान्के सभी लक्षण मौजूद हैं। पहले तो उन्हें कंससे कुछ भय मालूम हुआ, परन्तु फिर वे बड़े पवित्र भावसे मुसकराती हुई स्तुति करने लगीं॥२३॥

माता देवकीने कहा—प्रभो! वेदोंने आपके जिस रूपको अव्यक्त और सबका कारण बतलाया है, जो अनन्त ज्योतिःस्वरूप, समस्त गुणोंसे रहित और विकारहीन है, जिसे विशेषणरहित—अनिर्वचनीय, निष्क्रिय एवं केवल विशुद्ध सत्ताके रूपमें कहा गया है—वही बुद्धि आदिके प्रकाशक विष्णु आप स्वयं हैं। जिस समय ब्रह्माकी पूरी आयु—दो

लगे—'यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। अवश्य ही वसुदेवके रूपमें किसी ऋषिने जन्म ग्रहण किया है। अथवा सम्भव है वसुदेवजी पूर्वजन्ममें कोई योगेश्वर रहे हों। क्योंकि उन्होंने जैसा कहा था, वैसा ही उत्पात यहाँ देखनेमें आ रहा है।' तबतक व्रजवासियोंने कुल्हाड़ीसे पूतनाके शरीरको टुकड़े टुकड़े कर डाला और गोकुलसे दूर ले जाकर लकड़ियोंपर रखकर जला दिया। जब उसका शरीर जलने लगा तब उसमेंसे ऐसा धूआँ निकला, जिसमेंसे अगरकी सी सुगन्ध आ रही थी। क्यों न हो, भगवान्‌ने जो उसका दूध पी लिया था—जिससे उसके सारे पाप तत्काल ही नष्ट हो गये थे। परीक्षित्! यों तो तुम जानते ही हो कि पूतना एक राक्षसी थी। लोगोंके बच्चोंको मार डालना और उनका खून पी जाना—यही उसका काम था। भगवान्‌को भी उसने मार डालनेकी इच्छासे ही स्तन पिलाया था। फिर भी उसे वह परम गति मिली, जो सत्पुरुषोंको मिलती है। ऐसी स्थितिमें जो परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको श्रद्धा और भक्तिसे माताके समान अनुरागपूर्वक अपनी प्रिय-से प्रिय वस्तु और उनको प्रिय लगनेवाली वस्तु समर्पित करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है। भगवान्‌के चरणकमल सबके वन्दनीय ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवताओंके द्वारा भी वन्दित हैं। वे भक्तोंके हृदयकी पूँजी हैं। उन्हीं चरणोंसे भगवान्‌ने पूतनाका शरीर दबाकर उसका स्तन-पान किया था। माना कि वह राक्षसी थी, परन्तु उसे उत्तम-से-उत्तम गति—जो माताको मिलनी चाहिये—प्राप्त हुई। फिर जिनके स्तनका दूध भगवान्‌ने बड़े प्रेमसे पिया, उन गौओं और माताओंकी तो बात ही क्या है! परीक्षित्! देवकीनन्दन भगवान् कैवल्य आदि सब प्रकारकी मुक्ति और सब कुछ देनेवाले हैं। उन्होंने व्रजकी गोपियों और गौओंका वह दूध, जो वात्सल्य स्नेहकी अधिकताके कारण स्वयं ही झरता रहता था, भरपेट पान किया। वे गौएँ और गोपियाँ, जो नित्य-निरन्तर भगवान् श्रीकृष्णको अपने पुत्रके ही रूपमें देखती थीं, फिर जन्म मृत्युरूप संसारके चक्रमें कभी नहीं पड़ सकतीं, क्योंकि यह संसार तो अज्ञानके कारण ही है और वे अज्ञानसे मुक्त थीं ॥ ३०–४० ॥

परीक्षित्! नन्दबाबाके साथ आनेवाले व्रजवासियोंकी नाकमें जब चिताके धूएँकी सुगन्ध पहुँची, तब 'यह क्या है? कहाँसे ऐसी सुगन्ध आ रही है?' इस प्रकार कहते हुए वे व्रजमें पहुँचे। वहाँ गोपोंने उन्हें पूतनाके आनेसे लेकर मरने तकका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वे लोग पूतनाकी मृत्यु और श्रीकृष्णके कुशलपूर्वक बच जानेकी बात सुनकर बड़े ही आश्चर्यचकित हुए। परीक्षित्! उदारशिरोमणि नन्दबाबाने मृत्युके मुखसे बचे हुए अपने बालकको गोदमें उठा लिया और बार-बार उसका सिर सूँघकर मन ही मन बहुत आनन्दित हुए। यह 'पूतना मोक्ष' भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत बाललीला है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण करता है, उसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति अविचल प्रेम प्राप्त होता है ॥ ४१–४४ ॥

सातवाँ अध्याय

शकटभञ्जन और तृणावर्त्त उद्धार

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—प्रभो! सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीहरि अनेकों अवतार धारण करके बहुत सी सुन्दर एवं कर्णमधुर लीलाएँ करते हैं। वे सभी मेरे हृदयको बहुत प्रिय लगती हैं। उनके श्रवणमात्रसे भगवत्सम्बन्धी कथासे अरुचि और विविध विषयोंकी तृष्णा भाग जाती है। मनुष्यका अन्तःकरण शीघ्र-से शीघ्र शुद्ध हो जाता है। भगवान्‌के चरणोंमें भक्ति और उनके भक्तजनोंसे प्रेम भी प्राप्त हो जाता है। यदि आप मुझे उनके श्रवणका अधिकारी समझते हों, तो भगवान्‌की उन्हीं लीलाओंका वर्णन कीजिये। भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्य-लोकमें प्रकट होकर मनुष्योंकी सी लीलाएँ की हैं। अवश्य ही वे अत्यन्त अद्भुत हैं, इसलिये आप अब उनकी दूसरी बाल लीलाओंका भी वर्णन कीजिये ॥१–३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! एक बार भगवान् श्रीकृष्णके करवट बदलनेका अभिषेक-उत्सव मनाया जा रहा था। उसी दिन उनका जन्मनक्षत्र भी था। घरमें बहुत-सी स्त्रियोंकी भीड़ लगी हुई थी। गाना बजाना हो रहा था। ब्राह्मणलोग मन्त्र पढ-पढकर नन्दनन्दन श्रीकृष्णका अभिषेक कर रहे थे। सती यशोदा यही सब करानेमें व्यस्त थीं। नन्दरानी यशोदाजीने ब्राह्मणोंका खूब पूजन सम्मान किया। उन्हें अन्न, वस्त्र, माला, गाय आदि मुँहमाँगी वस्तुएँ दीं। जब स्वस्तिवाचन और अभिषेक आदि कार्य सम्पन्न हो गये, तब उन्होंने यह देखकर कि मेरे लल्लाके नेत्रोंमें नींद आ

काँप उठीं। सारा व्रज दो घड़ीतक धूल और घोर अन्धकारसे

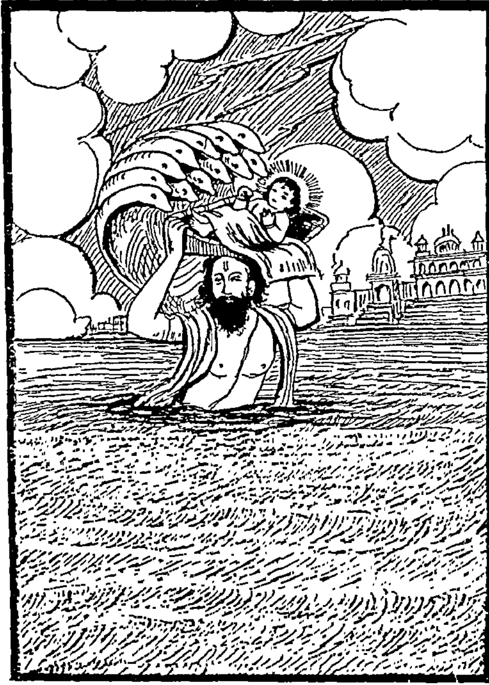


ढका रहा। यशोदाजीने अपने पुत्रको जहाँ बैठा दिया था, वहाँ जाकर देखा तो श्रीकृष्ण वहाँ नहीं थे। उस समय तृणावर्तने बवंडररूपसे इतनी बालू उड़ा रखी थी कि सभी लोग अत्यन्त उद्विग्न और बेसुध हो गये थे। उन्हें अपना-पराया कुछ भी नहीं सूझ रहा था। उस जोरकी आँधी और धूलकी वर्षामें अपने पुत्रका पता न पाकर यशोदाको बड़ा शोक हुआ। वे अपने पुत्रकी याद करके बहुत ही दीन हो गयीं और बछड़ेके मर जानेपर गायकी जो दशा हो जाती है, वही दशा उनकी हो गयी। वे पृथ्वीपर गिर पड़ीं। बवंडरके शान्त होनेपर जब धूलका उड़ना बंद हुआ, तब यशोदाजीके रोनेका शब्द सुनकर दूसरी गोपियाँ वहाँ दौड़ आयीं। नन्दनन्दन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णको न देखकर उनके हृदयमें भी आग लग गयी, आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी। वे फूट-फूटकर रोने लगीं॥ २०—२५॥

इधर तृणावर्त बवंडररूपसे जब भगवान् श्रीकृष्णको आकाशमें उठा ले गया, तब उनके भारी बोझको न सम्हाल सकनेके कारण उसका वेग शान्त हो गया। वह अधिक चल न सका। भगवान् उससे भी अधिक भारी हो गये थे। इसलिये वे उसे एक चट्टानके समान जान पड़ते थे। उसने उन्हें छुड़ाकर गिरा देनेकी चेष्टा की, परन्तु वह सफल न हुआ। उस अद्भुत बालकने उसके गलेको कसकर पकड़ रक्खा था। भगवान्ने इतने जोरसे उसका गला पकड़ रक्खा था कि वह असुर निश्चेष्ट हो गया। उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। बोलती बंद हो गयी। प्राण-पखेरू उड़ गये और बालक श्रीकृष्णके साथ वह व्रजमें गिर पड़ा। वहाँ जो स्त्रियाँ इकट्ठी होकर रो रही थीं, उन्होंने देखा कि वह विकराल दैत्य आकाशसे एक चट्टानपर गिर पड़ा और उसका एक-एक अङ्ग चकनाचूर हो गया—ठीक वैसे ही, जैसे भगवान् शङ्करके बाणोंसे आहत हो त्रिपुरासुर गिरकर चूर-चूर हो गया था। भगवान् श्रीकृष्ण उसके वक्षःस्थलपर लटक रहे थे। यह देखकर गोपियाँ विस्मित हो गयीं। उन्होंने झटपट वहाँ जाकर श्रीकृष्णको गोदमें ले लिया और लाकर उन्हें माताको दे दिया। बालक मृत्युके मुखसे सकुशल लौट आया। यद्यपि उसे राक्षस आकाशमें उठा ले गया था, फिर भी वह बच गया। इस प्रकार बालक श्रीकृष्णको फिर पाकर यशोदा आदि गोपियों तथा नन्द आदि गोपोंको अत्यन्त आनन्द हुआ। वे कहने लगे—'अहो, यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। देखो तो सही, यह कितनी अद्भुत घटना घट गयी! यह बालक राक्षसके द्वारा मृत्युके मुखमें डाल दिया गया था, परन्तु फिर जीता-जागता आ गया और उस हिंसक दुष्टको उसके पाप ही खा गये! सच है, साधु पुरुष अपनी समतासे ही सम्पूर्ण भयोंसे बच जाता है। हमने ऐसा कौन-सा तप, भगवान्‌की पूजा, प्याऊ पौसरा, कूआँ-बावली, बाग बगीचे आदि पूर्त, यज्ञ, दान अथवा जीवोंकी भलाई की थी, जिसके फलसे हमारा यह बालक मरकर भी अपने स्वजनोंको सुखी करनेके लिये फिर लौट आया? अवश्य ही यह बड़े सौभाग्यकी बात है।' जब नन्दबाबाने देखा कि बृहद्वनमें बहुत-सी अद्भुत घटनाएँ घटित हो रही हैं, तब आश्चर्यचकित होकर उन्होंने वसुदेवजीकी बातका बार-बार समर्थन किया॥ २६—३३॥

एक दिनकी बात है, यशोदाजी अपने प्यारे शिशुको

जो भगवान्‌की शक्ति होनेके कारण उनके समान ही जन्म-रहित है। उसी योगमायाने द्वारपाल और पुरवासियोंकी समस्त इन्द्रिय-वृत्तियोंकी चेतना हर ली, वे सब-के-सब अचेत होकर सो गये। बंदीगृहके सभी दरवाजे बंद थे। उनमें बड़े-बड़े किवाड़, लोहेकी जंजीरें और ताले जड़े हुए थे। उनके बाहर जाना बड़ा ही कठिन था। परन्तु वसुदेवजी भगवान् श्रीकृष्णको गोदमें लेकर ज्यों ही उनके निकट पहुँचे, त्यों ही वे सब दरवाजे आप-से-आप खुल गये—ठीक वैसे ही, जैसे सूर्योदय होते ही अन्धकार दूर हो जाता है। उस समय बादल धीरे-धीरे गरजकर जलकी



फुहारें छोड़ रहे थे, इसलिये शेषजी अपने फनोंसे जलको रोकते हुए भगवान्‌के पीछे-पीछे चलने लगे। उन दिनों बार-बार वर्षा होती रहती थी, इससे यमुनाजी बहुत बढ़ गयी थीं। उनका प्रवाह गहरा और तेज हो गया था। तरल तरङ्गोंके कारण जलपर फेन-ही-फेन हो रहा था। सैकड़ों भयानक भँवर पड़ रहे थे। जैसे सीतापति भगवान् श्रीरामजीको समुद्रने मार्ग दे दिया था, वैसे ही यमुनाजीने भगवान्‌को मार्ग दे दिया। वसुदेवजीने नन्दबाबाके गोकुलमें जाकर देखा कि सब-के-सब गोप नींदसे अचेत पड़े हुए हैं। उन्होंने अपने पुत्रको यशोदाजीकी शय्यापर



सुला दिया और उनकी नवजात कन्या लेकर वे बंदीगृहमें लौट आये। जेलमें पहुँचकर वसुदेवजीने उस कन्याको देवकीकी शय्यापर सुला दिया और अपने पैरोंमें बेड़ियाँ डाल लीं तथा पहलेहीकी तरह वे बंदीगृहमें बंद हो गये। उधर नन्दपत्नी यशोदाजीको इतना तो मालूम हुआ कि कोई सन्तान हुई है, परन्तु वे यह न जान सकीं कि पुत्र है या पुत्री। क्योंकि एक तो उन्हें बड़ा परिश्रम हुआ था और दूसरे योगमायाने उन्हें अचेत कर दिया था॥४६—५३॥

चौथा अध्याय

कंसके हाथसे छूटकर योगमायाका आकाशमें जाकर भविष्यवाणी करना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब वसुदेवजी लौट आये, तब नगरके बाहरी और भीतरी सब दरवाजे अपने-आप ही पहलेकी तरह बंद हो गये। इसके बाद नवजात शिशुके रोनेकी ध्वनि सुनकर द्वारपालोंकी नींद टूटी। वे तुरंत भोजराज कंसके पास गये और देवकीको सन्तान होनेकी बात कही। कंस तो बड़ी आकुलता और घबड़ाहटके साथ इसी बातकी प्रतीक्षा कर रहा था। द्वारपालोंकी बात सुनते ही वह झटपट पलँगसे उठ खड़ा हुआ और बड़ी शीघ्रतासे सूतिकागृहकी ओर झपटा। इस बार तो मेरे कालका ही जन्म हुआ है, यह सोचकर

काँप उठीं। सारा व्रज दो घड़ीतक धूल और घोर अन्धकारसे



ढका रहा। यशोदाजीने अपने पुत्रको जहाँ बैठा दिया था, वहाँ जाकर देखा तो श्रीकृष्ण वहाँ नहीं थे। उस समय तृणावर्त्तने बवंडररूपसे इतनी बालू उड़ा रक्खी थी कि सभी लोग अत्यन्त उद्विग्न और बेसुध हो गये थे। उन्हें अपना-पराया कुछ भी नहीं सूझ रहा था। उस जोरकी आँधी और धूलकी वर्षामें अपने पुत्रका पता न पाकर यशोदाको बड़ा शोक हुआ। वे अपने पुत्रकी याद करके बहुत ही दीन हो गयीं और बछड़ेके मर जानेपर गायकी जो दशा हो जाती है, वही दशा उनकी हो गयी। वे पृथ्वीपर गिर पड़ीं। बवंडरके शान्त होनेपर जब धूलका उड़ना बंद हुआ, तब यशोदाजीके रोनेका शब्द सुनकर दूसरी गोपियाँ वहाँ दौड़ आयीं। नन्दनन्दन श्यामसुन्दर श्रीकृष्णको न देखकर उनके हृदयमें भी आग लग गयी, आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी। वे फूट-फूटकर रोने लगीं॥ २०—२५॥

इधर तृणावर्त्त बवंडररूपसे जब भगवान् श्रीकृष्णको आकाशमें उठा ले गया, तब उनके भारी बोझको न सम्हाल सकनेके कारण उसका वेग शान्त हो गया। वह अधिक चल न सका। भगवान् उससे भी अधिक भारी हो गये थे। इसलिये वे उसे एक चट्टानके समान जान पड़ते थे। उसने उन्हें छुड़ाकर गिरा देनेकी चेष्टा की, परन्तु वह सफल न हुआ। उस अद्भुत बालकने उसके गलेको कसकर पकड़ रक्खा था। भगवान्‌ने इतने जोरसे उसका गला पकड़ रक्खा था कि वह असुर निश्चेष्ट हो गया। उसकी आँखें बाहर निकल आयीं। बोलती बंद हो गयी। प्राण-पखेरू उड़ गये और बालक श्रीकृष्णके साथ वह व्रजमें गिर पड़ा। वहाँ जो स्त्रियाँ इकट्ठी होकर रो रही थीं, उन्होंने देखा कि वह विकराल दैत्य आकाशसे एक चट्टानपर गिर पड़ा और उसका एक-एक अङ्ग चकनाचूर हो गया—ठीक वैसे ही, जैसे भगवान् शङ्करके बाणोंसे आहत हो त्रिपुरासुर गिरकर चूर-चूर हो गया था। भगवान् श्रीकृष्ण उसके वक्षःस्थलपर लटक रहे थे। यह देखकर गोपियाँ विस्मित हो गयीं। उन्होंने झटपट वहाँ जाकर श्रीकृष्णको गोदमें ले लिया और लाकर उन्हें माताको दे दिया। बालक मृत्युके मुखसे सकुशल लौट आया। यद्यपि उसे राक्षस आकाशमें उठा ले गया था, फिर भी वह बच गया। इस प्रकार बालक श्रीकृष्णको फिर पाकर यशोदा आदि गोपियों तथा नन्द आदि गोपोंको अत्यन्त आनन्द हुआ। वे कहने लगे—'अहो, यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है। देखो तो सही, यह कितनी अद्भुत घटना घट गयी! यह बालक राक्षसके द्वारा मृत्युके मुखमें डाल दिया गया था, परन्तु फिर जीता-जागता आ गया और उस हिंसक दुष्टको उसके पाप ही खा गये! सच है, साधु पुरुष अपनी समतासे ही सम्पूर्ण भयोंसे बच जाता है। हमने ऐसा कौन-सा तप, भगवान्‌की पूजा, प्याऊ-पौसरा, कूआँ-बावली, बाग-बगीचे आदि पूर्त, यज्ञ, दान अथवा जीवोंकी भलाई की थी, जिसके फलसे हमारा यह बालक मरकर भी अपने स्वजनोंको सुखी करनेके लिये फिर लौट आया? अवश्य ही यह बड़े सौभाग्यकी बात है।' जब नन्दबाबाने देखा कि बृहद्वनमें बहुत-सी अद्भुत घटनाएँ घटित हो रही हैं, तब आश्चर्यचकित होकर उन्होंने वसुदेवजीकी बातका बार-बार समर्थन किया॥ २६—३३॥

एक दिनकी बात है, यशोदाजी अपने प्यारे शिशुको

योगमाया

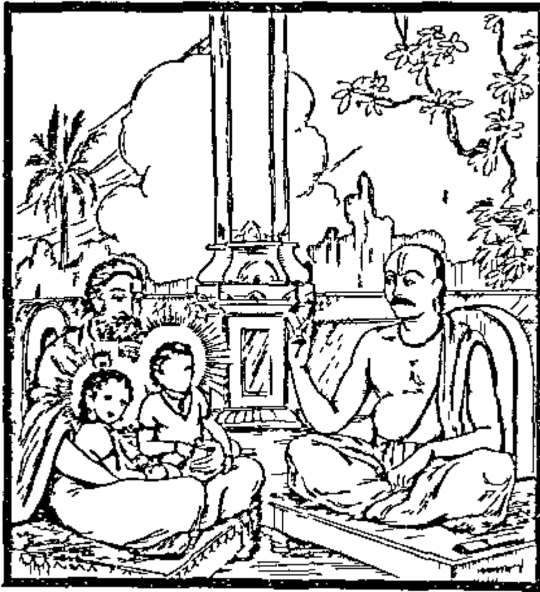


वह अपने बड़े-बड़े आठ हाथोंमें आयुध लिये दीख पड़ी।

वसुदेवजीका लड़का समझकर मार डाले, तो हमसे बड़ा अन्याय हो जायगा ॥७–९॥

नन्दबाबाने कहा—आचार्यजी! आप चुपचाप इस एकान्त गोशालामें केवल स्वस्तिवाचन करके इस बालकका द्विजातिसमुचित नामकरण-संस्कारमात्र कर दीजिये। औरोंकी कौन कहे, मेरे सगे सम्बन्धी भी इस बातको न जानने पावें॥१०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—गर्गाचार्यजी तो संस्कार करना चाहते ही थे। जब नन्दबाबाने उनसे इस प्रकार



प्रार्थना की, तब उन्होंने एकान्तमें छिपकर गुप्तरूपसे दोनों बालकोंका नामकरण संस्कार कर दिया॥ ११ ॥

गर्गाचार्यजीने कहा—'यह रोहिणीका पुत्र है। इसलिये इसका नाम होगा रौहिणेय। यह अपने सगे सम्बन्धी और मित्रोंको अपने गुणोंसे अत्यन्त आनन्दित करेगा। इसलिये उनके रमणमें हेतु होनेके कारण इसका दूसरा नाम होगा 'राम'। इसके बलकी कोई सीमा नहीं है, अतः इसका एक नाम 'बल' भी है। यह यादवोंमें और तुमलोगोंमें कोई भेदभाव नहीं रखखेगा और लोगोंमें फूट पड़नेपर मेल करावेगा, इसलिये इसका एक नाम 'सङ्कर्षण' भी है। और यह जो साँवला-साँवला है, यह प्रत्येक युगमें शरीर ग्रहण करता है। पिछले युगोंमें इसने क्रमशः श्वेत, रक्त और पीत—ये तीन विभिन्न रंग स्वीकार किये थे। अबकी यह कृष्णवर्ण हुआ है। इसलिये इसका नाम 'कृष्ण' होगा। नन्दजी! यह तुम्हारा पुत्र पहले कभी वसुदेवजीके घर भी पैदा हुआ था, इसलिये इस रहस्यको जाननेवाले लोग इसे 'श्रीमान् वासुदेव' भी कहते हैं। तुम्हारे पुत्रके और भी बहुत से नाम हैं, तथा रूप भी अनेक हैं। इसके जितने गुण हैं और जितने कर्म, उन सबके अनुसार अलग-अलग नाम पड़ जाते हैं। मैं तो उन नामोंको जानता हूँ, परन्तु संसारके साधारणलोग नहीं जानते। यह तुमलोगोंका परम कल्याण करेगा। समस्त गोप और गौओंको यह बहुत ही आनन्दित करेगा। इसकी सहायतासे तुमलोग बड़ी बड़ी विपत्तियोंको बड़ी सुगमतासे पार कर लोगे। व्रजराज! पहले युगकी बात है। एक बार पृथ्वीमें कोई राजा नहीं रह गया था। डाकुओंने चारों ओर लूट खसोट मचा रखखी थी। तब तुम्हारे इसी पुत्रने सज्जन पुरुषोंकी रक्षा की और इससे बल पाकर उन लोगोंने लुटेरोंपर विजय प्राप्त की। नन्दबाबा! मैं तुमसे सच कहता हूँ—जो तुम्हारे इस साँवले शिशुसे प्रेम करते हैं, वे बड़े भाग्यवान् हैं। जैसे विष्णुभगवान्‌के करकमलोंकी छत्रछायामें रहनेवाले देवताओंको असुर नहीं जीत सकते, वैसे ही इससे प्रेम करनेवालोंको भीतर या बाहर किसी भी प्रकारके शत्रु नहीं जीत सकते। नन्दजी! चाहे जिस दृष्टिसे देखें—गुणमें, सम्पत्ति और सौन्दर्यमें, कीर्ति और प्रभावमें तुम्हारा यह बालक साक्षात् भगवान् नारायणके समान है। तुम बड़ी सावधानी और तत्परतासे इसकी रक्षा करो। इस प्रकार नन्दबाबाको समझाकर, आदेश देकर गर्गाचार्यजी अपने आश्रमको लौट गये। उनकी बात सुनकर नन्दबाबाको बड़ा ही आनन्द हुआ। उन्होंने ऐसा समझा कि मेरी सब आशा लालसाएँ पूरी हो गयीं, मैं अब कृतकृत्य हूँ॥१२–२०॥

परीक्षित्! कुछ ही दिनोंमें राम और श्याम घुटनों और हाथोंके बल बकैयाँ चल चलकर गोकुलमें खेलने लगे। दोनों भाई अपने नन्हे-नन्हे पाँवोंको गोकुलकी कीचड़में घसीटते हुए चलते। उस समय उनके पाँव और कमरके घुँघरू रुन झुन बजने लगते। वह शब्द बड़ा भला मालूम पड़ता। वे दोनों स्वयं वह ध्वनि सुनकर खिल उठते। कभी कभी वे रास्ते चलते किसी अज्ञात व्यक्तिके पीछे हो लेते। फिर जब देखते कि यह तो कोई दूसरा है, तब झकसे

बाजे बजने लगे। आनन्दसे मतवाले होकर गोपगण एक दूसरेपर दही, दूध, घी और पानी उड़ेलने लगे। एक-दूसरेके मुँहसे मक्खन मलने लगे और मक्खन फेंक-फेंककर आनन्दोत्सव मनाने लगे। नन्दबाबा स्वभावसे ही परम उदार और मनस्वी थे। उन्होंने गोपोंको बहुत-से वस्त्र, आभूषण और गौएँ दीं। सूत-मागध-बंदीजनों, नृत्य, वाद्य आदि विद्याओंसे अपना जीवन-निर्वाह करनेवालों, तथा दूसरे गुणीजनोंको भी नन्दबाबाने उनकी मुँहमाँगी वस्तुएँ देकर उनका यथोचित सत्कार किया। यह सब करनेमें उनका उद्देश्य यही था कि इन कर्मोंसे भगवान् विष्णु प्रसन्न हों और मेरे इस नवजात शिशुका मङ्गल हो। नन्दबाबाने परम सौभाग्यवती रोहिणीजीका भी बड़ा सत्कार किया। वे दिव्य वस्त्र, माला और गलेके भाँति-भाँतिके गहनोंसे सुसज्जित होकर गृहस्वामिनीकी भाँति आने-जानेवाली स्त्रियोंका सत्कार करती हुई विचर रही थीं। परीक्षित्! उसी दिनसे नन्दबाबाके व्रजमें सब प्रकारकी ऋद्धि-सिद्धियाँ अठखेलियाँ करने लगीं और भगवान् श्रीकृष्णके निवास तथा अपने स्वाभाविक गुणोंके कारण वह लक्ष्मीजीका क्रीडास्थल बन गया ॥१३-१८॥

परीक्षित्! कुछ दिनोंके बाद नन्दबाबाने गोकुलकी रक्षाका भार तो दूसरे गोपोंको सौंप दिया और वे स्वयं कंसका सालाना कर चुकानेके लिये मथुरा चले गये। जब वसुदेवजीको यह मालूम हुआ कि हमारे भाई नन्दजी मथुरामें आये हैं और राजा कंसको उसका कर भी दे चुके हैं तब वे, जहाँ नन्दबाबा ठहरे हुए थे, वहाँ आये। वसुदेवजीको देखते ही नन्दजी सहसा उठकर खड़े हो गये मानो मृतक शरीरमें प्राण आ गया हो। उन्होंने बड़े प्रेमसे अपने प्रियतम वसुदेवजीको दोनों हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया। नन्दबाबा उस समय प्रेमसे विह्वल हो रहे थे। परीक्षित्! नन्दबाबाने वसुदेवजीका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। वे आदरपूर्वक आरामसे बैठ गये। उस समय उनका चित्त अपने पुत्रोंमें लग रहा था। वे नन्दबाबासे कुशल-मङ्गल पूछकर कहने लगे ॥१९-२२॥

वसुदेवजीने कहा—भाई! तुम्हारी अवस्था ढल चली थी और अबतक तुम्हें कोई सन्तान नहीं हुई थी, यहाँतक कि अब तुम्हें सन्तानकी कोई आशा भी न थी। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि अब तुम्हें सन्तान प्राप्त हो गयी। यह भी बड़े आनन्दका विषय है कि आज हमलोगोंका मिलना हो गया। अपने प्रेमियोंका मिलना भी बड़ा दुर्लभ है। इस संसारका चक्कर ही ऐसा है। इसे तो एक प्रकारका पुनर्जन्म ही समझना चाहिये। जैसे नदीके प्रबल प्रवाहमें बहते हुए बेड़े और तिनके सदा एक साथ नहीं रह सकते, वैसे ही सगे-सम्बन्धी और प्रेमियोंका भी एक स्थानपर रहना सम्भव नहीं है—यद्यपि वह सबको प्रिय लगता है। क्योंकि सबके प्रारब्धकर्म अलग-अलग होते हैं। आजकल तुम जिस बृहद्वनमें अपने भाई-बन्धु और स्वजनोंके साथ रहते हो उसमें जल, घास और लता-पत्रादि तो भरे-पूरे हैं न? वह वन पशुओंके लिये अनुकूल और सब प्रकारके रोगोंसे तो बचा है? भाई! मेरा लड़का अपनी माँ (रोहिणी) के साथ तुम्हारे व्रजमें रहता है। उसका लालन-पालन तुम और यशोदा करते हो, इसलिये वह तो तुम्हींको अपने पिता-माता मानता होगा। वह अच्छी तरह है न? मनुष्यके लिये वे ही धर्म, अर्थ और काम शास्त्रविहित हैं जिनसे उसके स्वजनोंको सुख मिले। जिनसे केवल अपनेको ही सुख मिलता है किन्तु अपने स्वजनोंको दुःख मिलता है वे धर्म, अर्थ और काम हितकारी नहीं हैं ॥२३-२८॥

नन्दबाबाने कहा—भाई वसुदेव! कंसने देवकीके गर्भसे उत्पन्न तुम्हारे कई पुत्र मार डाले। अन्तमें एक सबसे छोटी कन्या बच रही थी, वह भी स्वर्ग सिधार गयी। इसमें सन्देह नहीं कि प्राणियोंका सुख-दुःख भाग्यपर ही अवलम्बित है। भाग्य ही प्राणीका एकमात्र आश्रय है। जो जान लेता है कि जीवनके सुख-दुःखका कारण भाग्य ही है, वह उनके प्राप्त होनेपर मोहित नहीं होता ॥ २९-३० ॥

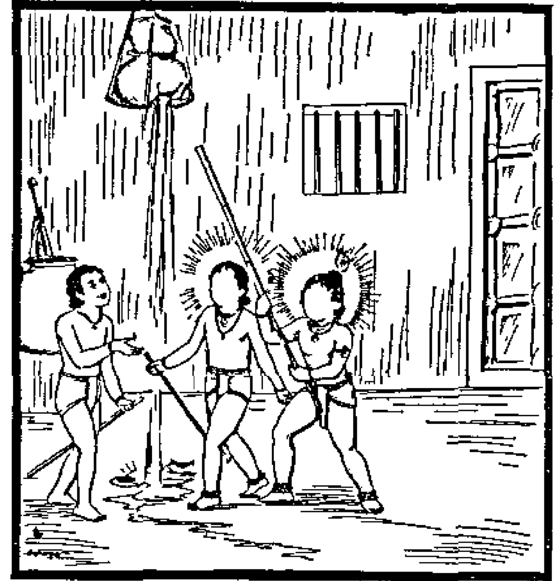
वसुदेवजीने कहा—भाई! तुमने राजा कंसको उसका सालाना कर चुका दिया। हम दोनों मिल भी चुके। अब तुम्हें यहाँ अधिक दिन नहीं ठहरना चाहिये। क्योंकि आजकल गोकुलमें बड़े-बड़े उत्पात हो रहे हैं ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब वसुदेवजीने इस प्रकार कहा, तब नन्द आदि गोपोंने उनसे अनुमति ले, बैलोंसे जुते हुए छकड़ोंपर सवार होकर गोकुलकी यात्रा की ॥ ३२ ॥

करते हुए तरह तरहके खेल खेलते। उनके बचपनकी चञ्चलताएँ बड़ी ही अनोखी होती थीं। गोपियोंको तो वे बड़ी ही सुन्दर और बड़ी ही मधुर लगतीं। एक दिन सब की



सब इकट्ठी होकर नन्दबाबाके घर आयीं और यशोदा माताको सुना सुनाकर कन्हैयाकी करतूत कहने लगीं—'अरी महर! यह तेरा कान्हा बड़ा नटखट हो गया है। गाय दुहनेका समय न होनेपर भी यह बछड़ोंको खोल देता है और हम डाँटती हैं, तो ठठा ठठाकर हँसने लगता है। इतना ही नहीं, यह हमारे मीठे मीठे दही दूध चुरा-चुराकर खा जाता है। इसे चोरीके बड़े-बड़े उपाय मालूम हैं। इससे कुछ भी बचने नहीं पाता। केवल अपने ही खाता तो भी एक बात थी, यह तो सारा दही दूध वानरोंको बाँट देता है। और जब सब वानर भरपेट खा लेते हैं, एककी भी भूख बाकी नहीं रहती, तब यह हमारे माटोंको ही फोड़ डालता है। यदि घरमें कोई वस्तु इसे नहीं मिलती तो घरवालोंपर बहुत खीझता है और कहता है कि 'घरका स्वामी तो मैं हूँ, मेरी सब वस्तुएँ कहाँ छिपा दी हैं?' जब इसका और कोई बस नहीं चलता, तो यशोदा रानी! तुम्हारा लाड़ला हमारे बच्चोंको रुलाकर भाग जाता है। जब हम दही दूधको छीकोंपर रख देती हैं और इसके छोटे छोटे हाथ वहाँतक नहीं पहुँच पाते, तब यह बड़े बड़े उपाय रचता है। कहीं दो चार पीढ़ोंको एकके ऊपर एक रख देता है। कहीं ऊखलपर चढ जाता है तो कहीं ऊखलपर पीढा रख देता है। कभी-कभी तो अपने किसी साथीके कंधेपर ही चढ जाता है। जब इतनेपर भी काम नहीं चलता, तो यह नीचेसे ही उन बर्तनोंमें छेद कर



देता है। इसे इस बातकी पक्की पहचान रहती है कि किस छींकेपर किस बर्तनमें क्या रक्खा है। और ऐसे ढंगसे छेद करना जानता है कि किसीको पतातक न चले। जब हम अपनी वस्तुओंको बहुत अँधेरेमें छिपा देती हैं तब नन्दरानी! जो तुमने इसे बहुत सा हीरा मोती पहना रक्खा है, उनके प्रकाशसे अपने आप ही सब कुछ देख लेता है। परन्तु इस बातपर कहीं तुम इसके गहने उतार न लेना। इसके शरीरमें ही ऐसी ज्योति है, जिससे इसे सब कुछ दीख जाता है। यह इतना चालाक है कि कब कौन कहाँ रहता है, इसका पता रखता है और जब हम सब घरके काम धंधोंमें उलझी रहती हैं, तब यह अपना काम बना लेता है। तुम तो बड़ी सीधी-सादी हो। तुम्हें इसकी करतूतोंका पता नहीं है। यह इतनी ढिठाई करता है कि हमारे लिपे पुते स्वच्छ घरोंमें मल-मूत्रतक कर देता है। तनिक देखो तो इसकी ओर, वहाँ तो चोरीके अनेकों ढंग निकालता है, तरह-तरहकी चालाकियाँ करता है और यहाँ मालूम हो रहा है मानो पत्थरकी मूर्ति खड़ी हो। वाह रे भोले-भाले साधु!' इस प्रकार गोपियाँ कहती जातीं और भगवान् श्रीकृष्णके भीत चकित नेत्रोंसे युक्त

पृथ्वीपर गिर पड़े । परीक्षित् ! इस प्रकार निशाचरी पूतनाके स्तनोंमें इतनी पीड़ा हुई कि वह अपनेको छिपा न सकी, राक्षसीरूपमें प्रकट हो गयी । उसके शरीरसे प्राण निकल गये, मुँह फट गया, बाल बिखर गये और हाथ-पाँव फैल



गये । जैसे इन्द्रके वज्रसे घायल होकर वृत्रासुर गिर पड़ा था, वैसे ही वह बाहर गोष्ठमें आकर गिर पड़ी ॥७–१३॥

परीक्षित् ! पूतनाके शरीरने गिरते-गिरते भी छः कोसके वृक्षोंको कुचल डाला । यह बड़ी ही अद्भुत घटना हुई । परीक्षित् ! पूतनाका मुँह हलके समान तीखी और भयङ्कर दाढ़ोंसे युक्त था । उसके नथुने पहाड़की गुफाके समान गहरे थे और स्तन पहाड़से गिरी हुई चट्टानोंकी तरह बड़े-बड़े थे । चारों ओर बिखरे हुए लाल-लाल बाल बड़े ही विकराल थे । आँखें अंधे कूएँके समान गहरी; नितम्ब नदीके करारकी तरह भयङ्कर; भुजाएँ, जाँघें और पैर नदीके पुलके समान तथा पेट सूखे हुए सरोवरकी भाँति जान पड़ता था । पूतनाके उस भयङ्कर शरीरको देखकर सब-के-सब ग्वाल और गोपी डर गये । उसकी भयङ्कर चिल्लाहट सुनकर उनके हृदय, कान और सिर तो पहले ही सूने-से हो गये थे । जब गोपियोंने देखा कि बालक श्रीकृष्ण उसकी छातीपर निर्भय होकर खेल रहे हैं, तब वे बड़ी घबड़ाहट और उतावलीके साथ झटपट वहाँ पहुँच गयीं तथा श्रीकृष्णको

उठा लिया । इसके बाद यशोदा और रोहिणीके साथ गोपियों-ने गायकी पूँछ घुमाना आदि उपायोंसे बालक श्रीकृष्णके अंगोंकी सब प्रकारसे रक्षा की । उन्होंने पहले बालक श्रीकृष्ण-को गोमूत्रसे स्नान कराया, फिर सब अंगोंमें गोरज लगायी और फिर बारहों अंगोंमें गोबर लगाकर भगवान्‌के केशव आदि नामोंसे रक्षा की । इसके बाद गोपियोंने आचमन करके 'अज' आदि ग्यारह बीज-मन्त्रोंसे अपने अंगोंमें अङ्गन्यास एवं करन्यास किया और फिर बालकके अंगोंमें बीजन्यास किया ॥ १४–२१ ॥

वे कहने लगीं—'अजन्मा भगवान् तेरे पैरोंकी रक्षा करें, मणिमान् घुटनोंकी, यज्ञपुरुष जाँघोंकी, अच्युत कमरकी, हयग्रीव पेटकी, केशव हृदयकी, ईश वक्षःस्थलकी, सूर्य कण्ठकी, विष्णु बाँहोंकी, उरुक्रम मुखकी और ईश्वर सिरकी रक्षा करें । चक्रधर भगवान् तेरे आगे रक्षा करें, पीछे गदाधर हरि, दोनों बगल क्रमशः धनुष और खड्ग धारण करनेवाले भगवान् मधुसूदन और अजन, चारों कोनोंमें शङ्खधारी उरुगाय गरुड़वाहन, उपेन्द्र ऊपर, हलधर पृथ्वीपर और भगवान् परमपुरुष तेरे सब ओर रहकर रक्षा करें । हृषीकेश भगवान् इन्द्रियोंकी और नारायण प्राणोंकी रक्षा करें । श्वेतद्वीपके अधिपति चित्तकी और योगेश्वर मनकी रक्षा करें । पृश्निगर्भ तेरी बुद्धिकी और परमात्मा भगवान् तेरे अहङ्कारकी रक्षा करें । खेलते समय गोविन्द रक्षा करें, सोते समय माधव रक्षा करें, चलते समय भगवान् वैकुण्ठ और बैठते समय भगवान् श्रीपति तेरी रक्षा करें । भोजनके समय समस्त ग्रहोंको भयभीत करनेवाले यज्ञभोक्ता भगवान् तेरी रक्षा करें । डाकिनी, राक्षसी और कूष्माण्डा आदि बालग्रह; भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस और विनायक, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृका आदि; शरीर, इन्द्रिय तथा प्राणोंका नाश करनेवाले उन्माद (पागलपन) एवं अपस्मार (मृगी) आदि रोग; स्वप्नमें देखे हुए महान् उत्पात; वृद्ध-ग्रह और बालग्रह आदि—ये सभी अनिष्ट भगवान् विष्णुका नामोच्चारण करनेसे भयभीत होकर नष्ट हो जायँ'॥२२–२९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार गोपियोंने प्रेमपाशमें बँधकर भगवान् श्रीकृष्णकी रक्षा की । माता यशोदाने अपने पुत्रको स्तन पिलाया और फिर पालनेपर सुला दिया । इसी समय नन्दबाबा और उनके साथी गोप मथुरासे गोकुलमें पहुँचे । जब उन्होंने पूतनाका भयङ्कर शरीर देखा, तो वे आश्चर्यचकित हो गये । वे कहने

जाग्रत् कर दिया। यशोदाजीको तुरत वह घटना भूल गयी। उन्होंने अपने दुलारे लालको गोदमें उठा लिया। जैसे पहले उनके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ता रहता था, वैसे ही फिर उमड़ने लगा। सारे वेद, उपनिषद्, सांख्य, योग और भक्तजन जिनके सुयशका गीत गाते गाते अघाते नहीं—उन्हीं भगवान्‌को यशोदाजी अपना पुत्र मानती थीं॥३५-४५॥

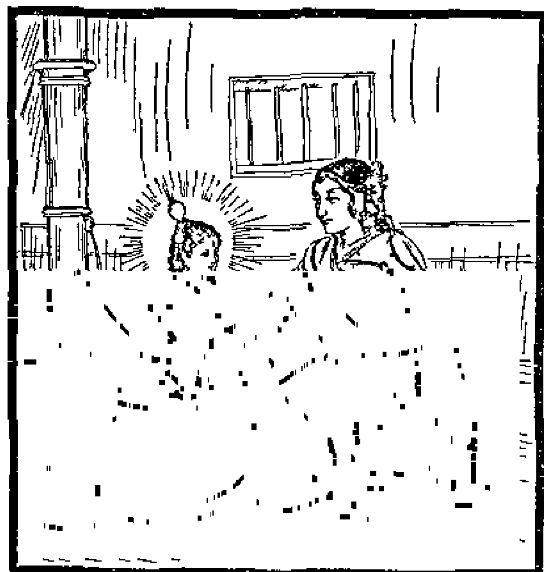
राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! नन्दबाबाने ऐसा कौन सा बहुत बड़ा मङ्गलमय साधन किया था? और परमभाग्यवती यशोदाजीने भी ऐसी कौन सी तपस्या की थी, जिसके कारण स्वयं भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे उनका स्तन पान किया? भगवान् श्रीकृष्णकी वे बाललीलाएँ, जो वे अपने ऐश्वर्य और महत्ता आदिको छिपाकर ग्वालबालोंमें करते हैं, इतनी पवित्र हैं कि उनका श्रवण कीर्तन करनेवाले लोगोंके भी सारे पाप ताप शान्त हो जाते हैं। त्रिकालदर्शी ज्ञानी पुरुष आज भी उनका गायन करते रहते हैं। वे ही लीलाएँ उनके जन्मदाता माता पिता देवकी वसुदेवजीको तो देखनेतकको न मिलीं और नन्द यशोदा उनका अपार सुख लूट रहे हैं। इसका क्या कारण है?॥४६-४७॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! नन्दबाबा पूर्व जन्ममें एक श्रेष्ठ वसु थे। उनका नाम था द्रोण और उनकी पत्नीका नाम था धरा। उन्होंने ब्रह्माजीके आदेशोंका पालन करनेकी इच्छासे उनसे कहा—'भगवन्! जब हम पृथ्वीपर जन्म लें, तब जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णमें हमारी अनन्य प्रेममयी भक्ति हो—जिस भक्तिके द्वारा संसारमें लोग अनायास ही दुर्गतियोंको पार कर जाते हैं।' ब्रह्माजीने कहा—'ऐसा ही होगा।' वे ही परमयशस्वी भगवन्मय द्रोण व्रजमें पैदा हुए और उनका नाम हुआ नन्द। और वे ही धरा इस जन्ममें यशोदाके नामसे उनकी पत्नी हुईं। परीक्षित्! अब इस जन्ममें भगवान् उनके पुत्र हुए और समस्त गोप गोपियोंकी अपेक्षा इन पति पत्नी नन्द और यशोदाजीका भगवान्‌के प्रति अत्यन्त प्रेम हुआ। ब्रह्माजीकी बात सत्य करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण बलराम जीके साथ व्रजमें रहकर समस्त व्रजवासियोंको अपनी बाल लीलासे आनन्दित करने लगे॥४८-५२॥

नवाँ अध्याय

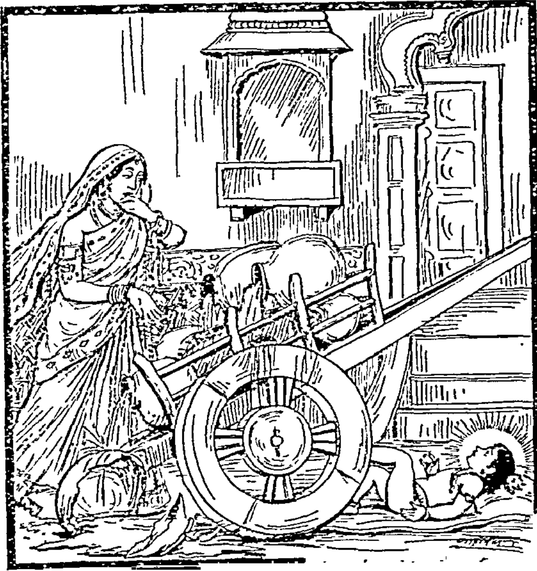
श्रीकृष्णका ऊखलसे बाँधा जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! एक दिन नन्द रानी यशोदाजीने घरकी दासियोंको तो दूसरे कामोंमें लगा दिया और स्वयं अपने लालाको मक्खन खिलानेके लिये दही मथने लगीं। मैंने तुमसे अबतक भगवान्‌की जिन जिन बाल लीलाओंका वर्णन किया है, उन सबका स्मरण करके वे उन्हें गाती भी जाती थीं और दही भी मथती जाती थीं। वे अपने स्थूल कटिभागमें सूतसे बाँधकर रेशमी लहँगा पहने हुए थीं। उनके स्तनोंमेंसे पुत्र स्नेहकी अधिकतासे दूध चूता जा रहा था और वे काँप भी रहे थे। नेती खींचते रहनेसे बाँहें कुछ थक गयी थीं। हाथोंके कंगन और कानोंके कर्णफूल हिल रहे थे। मुँहपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं। चोटीमें गुँथे हुए मालतीके सुन्दर पुष्प गिरते जा रहे थे। सुन्दर भौंहोंवाली यशोदा इस प्रकार दही मथ रही थीं। उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण स्तन पीनेके लिये दही मथती हुई अपनी माताके पास आये। उन्होंने अपनी



माताके हृदयमें प्रेम और आनन्दको और भी बढ़ाते हुए

रही है, अपने पुत्रको धीरेसे शय्यापर सुला दिया। थोड़ी देरमें श्यामसुन्दरकी आँखें खुलीं, तो वे स्तन-पानके लिये रोने लगे। उस समय मनस्विनी यशोदाजी उत्सवमें आये हुए व्रजवासियोंके स्वागत-सत्कारमें बहुत ही तन्मय हो गयी थीं। इसलिये उन्हें श्रीकृष्णका रोना सुनायी नहीं पड़ा। तब वे श्रीकृष्ण रोते-रोते अपने पाँव उछालने लगे। बालक श्रीकृष्ण एक छकड़ेके नीचे सोये हुए थे। उनके पाँव अभी लाल-लाल कोंपलोंके समान बड़े ही कोमल और नन्हे-नन्हे थे। परन्तु वह नन्हा-सा पाँव लगते ही विशाल छकड़ा उलट



गया। उस छकड़ेपर दूध-दही आदि अनेक रसोंसे भरी हुई मटकियाँ और दूसरे बर्तन रखखे हुए थे। वे सब-के-सब फूट-फाट गये और छकड़ेके पहिये तथा धुरे अस्त-व्यस्त हो गये, उसका जूआ फट गया। करवट बदलनेके उत्सवमें जितनी भी स्त्रियाँ आयी हुई थीं—वे सब और यशोदा, रोहिणी, नन्दबाबा और गोपगण इस विचित्र घटनाको देखकर व्याकुल हो गये। वे आपसमें कहने लगे—'अरे, यह क्या हो गया? यह छकड़ा अपने-आप कैसे उलट गया?' वे इसका कोई कारण निश्चित न कर सके। वहाँ खेलते हुए बालकोंने गोपों और गोपियोंसे कहा कि इस कृष्णने ही तो रोते-रोते अपने पाँवकी ठोकरसे इसे उलट दिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु गोपोंने उसे 'बालकोंकी बात' मानकर उसपर विश्वास नहीं किया। ठीक ही है, वे गोप उस बालकके अनन्त बलको नहीं जानते थे॥ ४—१०॥

यशोदाजीने समझा यह किसी ग्रह आदिका उत्पात है। उन्होंने अपने रोते हुए लाड़ले लालको गोदमें लेकर ब्राह्मणोंसे वेदमन्त्रोंके द्वारा शान्तिपाठ कराया और फिर वे उसे स्तन पिलाने लगीं। बलवान् गोपोंने छकड़ेको फिर सीधा कर दिया। उसपर पहलेकी तरह सारी सामग्री रख दी गयी। ब्राह्मणोंने हवन किया और दही, अक्षत, कुश तथा जलके द्वारा भगवान्‌की पूजा की। जो किसीके गुणोंमें दोष नहीं निकालते, झूठ नहीं बोलते, दंभ, ईर्ष्या और हिंसा नहीं करते तथा अभिमानसे रहित हैं—उन सत्यशील ब्राह्मणोंका आशीर्वाद कभी विफल नहीं होता। यह सोचकर नन्दबाबाने बालकको गोदमें उठा लिया और ब्राह्मणोंसे साम, ऋक् और यजुर्वेदके मन्त्रोंद्वारा संस्कृत एवं पवित्र ओषधियोंसे युक्त जलसे अभिषेक कराया। उन्होंने बड़ी एकाग्रतासे स्वस्त्ययन-पाठ और हवन कराकर ब्राह्मणोंको अति उत्तम अन्नका भोजन कराया। इसके बाद नन्दबाबाने अपने पुत्रकी उन्नति और अभिवृद्धिकी कामनासे ब्राह्मणोंको सर्वगुणसम्पन्न बहुत-सी गौएँ दीं। वे गौएँ वस्त्र, पुष्पमाला और सोनेके हारोंसे सजी हुई थीं। ब्राह्मणोंने उन्हें आशीर्वाद दिया। परीक्षित्! यह बात स्पष्ट है कि जो वेदवेत्ता और योगयुक्त ब्राह्मण होते हैं, उनका आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता॥ ११—१७॥

एक दिनकी बात है, सती यशोदाजी अपने प्यारे लल्लाको गोदमें लेकर दुलार रही थीं। सहसा श्रीकृष्ण चट्टानके समान भारी बन गये। वे उनका भार न सह सकीं। उन्होंने भारसे पीड़ित होकर श्रीकृष्णको पृथ्वीपर बैठा दिया। इस नयी घटनासे वे अत्यन्त चकित हो रही थीं। इसके बाद उन्होंने भगवान् पुरुषोत्तमका स्मरण किया और घरके काममें लग गयीं॥ १८—१९॥

तृणावर्त नामका एक दैत्य था। वह कंसका निजी सेवक था। कंसकी प्रेरणासे ही बवंडरके रूपमें वह गोकुलमें आया और बैठे हुए बालक श्रीकृष्णको उड़ाकर आकाशमें ले गया। उसने धूलसे सारे व्रजमण्डलको ढक दिया। लोगोंके नेत्र बंद कर दिये। उसके भयङ्कर शब्दसे दसों दिशाएँ

गयी। वे ज्यों ज्यों आगे बढ़तीं, पीछे पीछे चोटीमें गुँथे हुए फूल गिरते जाते। इस प्रकार सुन्दरी यशोदा ज्यों त्यों करके उन्हें पकड़ सकीं। श्रीकृष्णका हाथ पकड़कर वे उन्हें डराने धमकाने लगीं। उस समय श्रीकृष्णकी झाँकी बड़ी विलक्षण हो रही थी। अपराध तो किया ही था, इसलिये रुलाई रोकनेपर भी न रुकती थी। हाथोंसे आँखें मल रहे थे, इसलिये मुँहपर काजलकी स्याही फैल गयी थी। पिटनेके भयसे आँखें ऊपरकी ओर उठ गयी थीं। माँकी ओर देखा ही न जाता था। जब यशोदाजीने देखा कि लल्ला बहुत डर गया है, तब उनके हृदयमें वात्सल्य स्नेह उमड़ आया। उन्होंने छड़ी फेंक दी। इसके बाद सोचा कि इसको एक बार बाँध तो देना ही चाहिये, नहीं तो यह और भी ऊधम मचायेगा। परीक्षित्! सच पूछो तो यशोदा मैयाको अपने बालकके ऐश्वर्यका पता न था। भला, बताओ तो सही—जिसमें न बाहर है न भीतर, न आदि है और न अन्त, जो जगत्के पहले भी थे, बादमें भी रहेंगे, इस जगत्के भीतर तो हैं ही, बाहरी रूपोंमें भी हैं, और तो क्या, जगत्के रूपमें भी स्वयं वही हैं, यही नहीं, जो समस्त इन्द्रियोंसे परे और अव्यक्त हैं—उन्हीं भगवान्को मनुष्यका सा रूप धारण करनेके कारण पुत्र समझकर यशोदारानी ऊखलसे बाँधना चाहती हैं! और रस्सीसे ऊखलमें ठीक वैसे ही बाँध देती हैं, जैसे कोई साधारण सा बालक हो! जब माता यशोदा अपने ऊधमी और नटखट लड़केको रस्सीसे बाँधने लगीं, तब वह दो अंगुल छोटी पड़ गयी। तब उन्होंने दूसरी रस्सी लाकर उसमें जोड़ी। जब वह भी छोटी हो गयी तो उसके साथ और जोड़ी। इस प्रकार वे ज्यों ज्यों रस्सी लातीं और जोड़ती गयीं, त्यों त्यों जुड़नेपर भी वे सब दो दो अंगुल छोटी पड़ती गयीं। यशोदारानीने घरकी सारी रस्सियाँ जोड़ डालीं, फिर भी वे भगवान् श्रीकृष्णको न बाँध सकीं। उनकी असफलतापर देखनेवाली गोपियाँ मुसकराने लगीं और वे स्वयं भी मुसकराती हुई आश्चर्यचकित हो गयीं। भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरी माँका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया है, चोटीमें गुँथी हुई मालाएँ गिर गयी हैं और वे बहुत थक भी गयी हैं; तब कृपा करके वे स्वयं ही अपनी माँके बन्धनमें बँध गये। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण परम स्वतन्त्र हैं। ब्रह्मा, इन्द्र आदिके साथ यह सम्पूर्ण जगत् उनके वशमें है। फिर भी इस प्रकार बँधकर उन्होंने संसारको यह बात दिखला दी कि मैं अपने प्रेमी भक्तोंके वशमें हूँ। मैं सच कहता हूँ, मुक्ति देनेवाले भगवान्ने बन्धनमें बँधकर अपनी माता नन्दरानी यशोदापर यह कृपा की—उन्हें वह प्रसाद दिया—जो उनके पुत्र ब्रह्माजी, आत्मस्वरूप शङ्करजी और अर्धाङ्गिनी लक्ष्मीजीको भी कभी नहीं प्राप्त हुआ। यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्णकी प्राप्ति भक्तोंके लिये जितनी सुलभ है, उतनी सुलभ और किसी भी प्राणीके लिये नहीं है—यहाँतक कि भगवान्के आत्मस्वरूप तत्त्वज्ञानियोंको भी नहीं है ॥७–२१॥

इसके बाद नन्दरानी यशोदाजी तो घरके काम धंधोंमें उलझ गयीं और ऊखलमें बँधे हुए भगवान् श्यामसुन्दरने उन दोनों अर्जुन वृक्षोंको मुक्ति देनेकी सोची, जो पहले यक्षराज कुबेरके पुत्र थे। इनके नाम थे नलकूबर और मणिग्रीव। इनके पास धन, सौन्दर्य और ऐश्वर्यकी पूर्णता थी। इनका घमंड देखकर ही देवर्षि नारदजीने इन्हें शाप दे दिया था और ये वृक्ष हो गये थे ॥२२-२३॥

दसवाँ अध्याय

यमलार्जुनका उद्धार

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! आप कृपया यह बतलाइये कि नलकूबर और मणिग्रीवको शाप क्यों मिला। उन्होंने ऐसा कौन-सा निन्दित कर्म किया था, जिसके कारण परम शान्त देवर्षि नारदजीको भी क्रोध आ गया? ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! नलकूबर और मणिग्रीव—ये दोनों एक तो धनाध्यक्ष कुबेरके लाड़ले लड़के थे, और दूसरे इनकी गिनती हो गयी रुद्रभगवान्के अनुचरोंमें। इससे उनका घमंड बढ़ गया। घमंडी तो धर्मका उल्लङ्घन करता ही है। यही कारण है कि वे दोनों मन्दाकिनीके तटपर कैलासके रमणीय उपवनमें मदोन्मत्त होकर रहा करते थे। एक दिन वे वारुणी मदिरा पिये हुए थे। नशेके कारण उनकी आँखें घूम रही थीं। बहुत सी स्त्रियाँ उनके साथ गा बजा रही थीं और वे पुष्पोंसे लदे हुए वनमें उनके साथ विहार कर रहे थे। उस समय गङ्गाजीमें पाँत-के-पाँत कमल खिले हुए थे। वे स्त्रियोंके साथ उनके भीतर घुस गये और जैसे हाथियोंका जोड़ा हथिनियोंके



गोदमें लेकर बड़े प्रेमसे स्तन-पान करा रही थीं। वे वात्सल्य-स्नेहसे इस प्रकार सराबोर हो रही थीं कि उनके स्तनोंसे अपने-आप ही दूध झरता जा रहा था। परीक्षित्! यह उस समयकी बात है जब श्रीकृष्ण प्रायः दूध पी चुके थे। यशोदाजी उनके मन्द-मन्द मुसकराते हुए मुखको चूम रही थीं। ठीक उसी समय श्रीकृष्णको जँभाई आ गयी। जँभानेपर जब उनका मुँह खुला, तब यशोदाने देखा कि उसमें आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन और समस्त चराचर प्राणी स्थित हैं। परीक्षित्! अपने पुत्रके मुँहमें इस प्रकार यकायक सारा जगत् देखकर यशोदाजीका शरीर काँप उठा। उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें बंद कर लीं। वे अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो गयीं॥ ३४—३७॥

आठवाँ अध्याय

नामकरण-संस्कार और बाललीला

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित थे श्रीगर्गाचार्यजी। वे बड़े तपस्वी थे। वसुदेवजीकी प्रेरणासे वे एक दिन नन्दबाबाके गोकुलमें आये। उन्हें देखकर नन्दबाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए। उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके बाद 'ये स्वयं भगवान् ही हैं'—इस भावसे उनकी पूजा की। जब गर्गाचार्यजी आरामसे बैठ गये और विधिपूर्वक उनका आतिथ्य-सत्कार हो गया, तब नन्दबाबाने बड़ी ही मधुर वाणीसे उनका अभिनन्दन किया और कहा—'भगवन्! आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं, आपको न किसी वस्तुका अभाव है और न आवश्यकता। फिर मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप-जैसे महात्माओंका हमारे-जैसे गृहस्थोंके घर आ जाना ही हमारे परम कल्याणका कारण है। हम तो घरोंमें इतने उलझ रहे हैं और इन प्रपञ्चोंमें हमारा चित्त इतना दीन हो रहा है कि हम आपके आश्रमतक जा भी नहीं सकते। हमारे कल्याणके सिवा आपके आगमनका और कोई हेतु नहीं है। प्रभो! जो बात साधारणतः इन्द्रियोंकी पहुँचके बाहर है अथवा भूत और भविष्यके गर्भमें निहित है, वह भी ज्यौतिष-शास्त्रके द्वारा प्रत्यक्ष जान ली जाती है। आपने उसी ज्यौतिष-शास्त्रकी रचना की है। इसके सिवा आप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये मेरे इन दोनों बालकोंके नामकरणादि संस्कार आप ही कर दीजिये। आप कह सकते हैं कि यह काम तो तुम्हें अपने कुलगुरुसे ही कराना चाहिये। किन्तु आप तो जानते ही हैं कि ब्राह्मण जन्मसे ही मनुष्यमात्रका गुरु है॥ १—६॥

गर्गाचार्यजीने कहा—नन्दजी! यह बात तो तुम जानते ही हो कि मैं सब जगह यदुवंशियोंके आचार्यके रूपमें प्रसिद्ध हूँ। यदि मैं तुम्हारे पुत्रके संस्कार करूँगा, तो लोग समझेंगे कि यह तो देवकीका पुत्र है। कंसकी नीयत बहुत बुरी है। वह पाप ही सोचा करता है। जबसे देवकीकी कन्यासे उसने यह बात सुनी है कि उसको मारनेवाला और कहीं पैदा हो गया है, तबसे वह यही सोचा करता है कि देवकीके आठवें गर्भसे कन्याका जन्म तो नहीं होना चाहिये। वसुदेवजीके साथ तुम्हारी बड़ी घनिष्ठ मित्रता है। यदि मैं तुम्हारे पुत्रका संस्कार कर दूँ और वह इस बालकको

करके मतवाले और श्रीमदसे अंधे हो रहे हैं। अपनी इन्द्रियोंके अधीन रहनेवाले इन स्त्री-लम्पट यक्षोंका अज्ञानजनित मद मैं चूर-चूर कर दूँगा। देखो तो सही, कितना अनर्थ है कि ये लोकपाल कुबेरके पुत्र होनेपर भी मदोन्मत्त होकर अचेत हो रहे हैं और इनको इस बातका भी पता नहीं है कि हम बिल्कुल नंग-धड़ंग हैं। इसलिये ये दोनों अब वृक्षयोनिमें जानेके योग्य हैं। ऐसा होनेसे इन्हें फिर इस प्रकारका अभिमान न होगा। वृक्षयोनिमें जानेपर भी मेरी कृपासे इन्हें भगवान्‌की स्मृति बनी रहेगी और मेरे अनुग्रहसे देवताओंके सौ वर्ष बीतनेपर इन्हें भगवान् श्रीकृष्णका सांनिध्य प्राप्त होगा; और फिर भगवान्‌के चरणोंमें परम प्रेम प्राप्त करके ये अपने लोकमें चले आयेंगे ॥८–२२॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—देवर्षि नारद इस प्रकार कहकर भगवान् नर-नारायणके आश्रमपर चले गये। नलकूबर और मणिग्रीव—ये दोनों एक ही साथ अर्जुन वृक्ष होकर यमलार्जुन नामसे प्रसिद्ध हुए। भगवान् श्रीकृष्णने अपने परमप्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीकी बात सत्य करनेके लिये धीरे-धीरे ऊखल घसीटते हुए उस ओर प्रस्थान किया, जिधर यमलार्जुन वृक्ष थे। भगवान्‌ने सोचा कि 'देवर्षि नारद मेरे अत्यन्त प्यारे हैं और ये दोनों भी मेरे भक्त कुबेरके लड़के हैं। इसलिये देवर्षि नारदने जो कुछ कहा है, उसे मैं ठीक उसी रूपमें पूरा करूँगा।' यह विचार करके भगवान् श्रीकृष्ण दोनों वृक्षोंके बीचमें घुस गये। वे तो दूसरी ओर निकल गये, परन्तु ऊखल टेढ़ी होकर अटक गयी। दामोदर भगवान् श्रीकृष्णकी कमरमें रस्सी कसी हुई थी। उन्होंने अपने पीछे लुढ़कती हुई ऊखलको ज्यों ही तनिक जोरसे खींचा, त्यों ही पेड़ोंकी सारी जड़ें उखड़ गयीं। समस्त बल-विक्रमके केन्द्र भगवान्‌का तनिक-सा जोर लगते ही पेड़ोंके तने, शाखाएँ, छोटी-छोटी डालियाँ और एक-एक पत्ते काँप उठे और वे दोनों बड़े जोरसे तड़तड़ाते हुए पृथ्वीपर गिर पड़े। उन दोनों वृक्षोंमेंसे अग्निके समान तेजस्वी दो सिद्ध पुरुष निकले। उनके चमचमाते हुए सौन्दर्यसे दिशाएँ दमक उठीं। उन्होंने सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्णके पास आकर उनके चरणोंमें सिर



रखकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर शुद्ध हृदयसे वे उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ २३–२८ ॥

उन्होंने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप! सबको अपनी ओर आकर्षित करनेवाले परम योगेश्वर! आप प्रकृतिसे अतीत स्वयं पुरुषोत्तम हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण यह बात जानते हैं कि यह व्यक्त और अव्यक्त सम्पूर्ण जगत् आपका ही रूप है। आप ही समस्त प्राणियोंके शरीर, प्राण, अन्तःकरण और इन्द्रियोंके स्वामी हैं। तथा आप ही सर्वशक्तिमान् काल, सर्वव्यापक एवं अविनाशी ईश्वर हैं। आप ही महत्तत्त्व और वह प्रकृति हैं, जो अत्यन्त सूक्ष्म एवं सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणरूपा है। आप ही समस्त स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके कर्म, भाव, धर्म और सत्ताको जाननेवाले सबके साक्षी परमात्मा हैं। वृत्तियोंसे ग्रहण किये जानेवाले प्रकृतिके गुणों और विकारोंके द्वारा आप पकड़में नहीं आ सकते। स्थूल और सूक्ष्म शरीरके आवरणसे ढका हुआ ऐसा कौन-सा पुरुष है, जो आपको जान सके? क्योंकि आप तो उन शरीरोंके पहले भी एकरस विद्यमान थे। समस्त प्रपञ्चके विधाता भगवान् वासुदेवको हम नमस्कार करते हैं। प्रभो! आपके द्वारा प्रकाशित होनेवाले गुणोंसे ही आपने अपनी महिमा छिपा रखी है। परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्ण! हम आपको नमस्कार करते हैं। भगवन्! आपकी लीलाएँ ऐसी हैं, जिन्हें साधारण पुरुष नहीं कर सकते। अनेक अवसरोंपर यह प्रकट होता है कि आपकी शक्तिके समान भी और



गोदमें लेकर बड़े प्रेमसे स्तन-पान करा रही थीं। वे वात्सल्य-स्नेहसे इस प्रकार सराबोर हो रही थीं कि उनके स्तनोंसे अपने-आप ही दूध झरता जा रहा था। परीक्षित्! यह उस समयकी बात है जब श्रीकृष्ण प्रायः दूध पी चुके थे। यशोदाजी उनके मन्द-मन्द मुसकराते हुए मुखको चूम रही थीं। ठीक उसी समय श्रीकृष्णको जँभाई आ गयी। जँभानेपर जब उनका मुँह खुला, तब यशोदाने देखा कि उसमें आकाश, अन्तरिक्ष, ज्योतिर्मण्डल, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ, वन और समस्त चराचर प्राणी स्थित हैं। परीक्षित्! अपने पुत्रके मुँहमें इस प्रकार यकायक सारा जगत् देखकर यशोदाजीका शरीर काँप उठा। उन्होंने अपनी बड़ी-बड़ी आँखें बंद कर लीं। वे अत्यन्त आश्चर्य-चकित हो गयीं ॥ ३४—३७ ॥

आठवाँ अध्याय

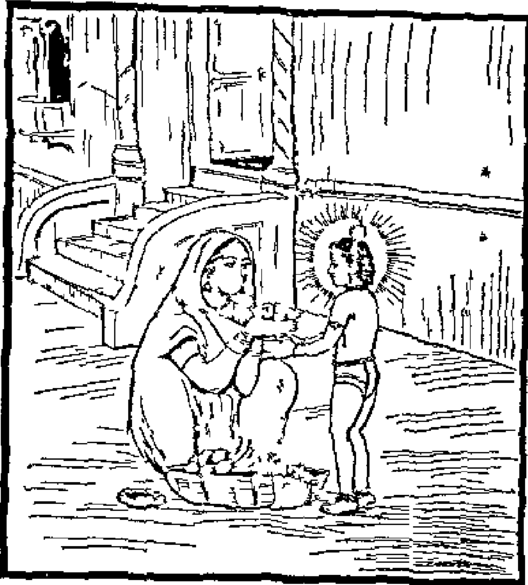
नामकरण-संस्कार और बाललीला

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित थे श्रीगर्गाचार्यजी। वे बड़े तपस्वी थे। वसुदेवजीकी प्रेरणासे वे एक दिन नन्दबाबाके गोकुलमें आये। उन्हें देखकर नन्दबाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हाथ जोड़कर उठ खड़े हुए। उनके चरणोंमें प्रणाम किया। इसके बाद 'ये स्वयं भगवान् ही हैं'—इस भावसे उनकी पूजा की। जब गर्गाचार्यजी आरामसे बैठ गये और विधिपूर्वक उनका आतिथ्य-सत्कार हो गया, तब नन्दबाबाने बड़ी ही मधुर वाणीसे उनका अभिनन्दन किया और कहा—'भगवन्! आप तो स्वयं पूर्णकाम हैं, आपको न किसी वस्तुका अभाव है और न आवश्यकता। फिर मैं आपकी क्या सेवा करूँ? आप-जैसे महात्माओंका हमारे-जैसे गृहस्थोंके घर आ जाना ही हमारे परम कल्याणका कारण है। हम तो घरोंमें इतने उलझ रहे हैं और इन प्रपञ्चोंमें हमारा चित्त इतना दीन हो रहा है कि हम आपके आश्रमतक जा भी नहीं सकते। हमारे कल्याणके सिवा आपके आगमनका और कोई हेतु नहीं है। प्रभो! जो बात साधारणतः इन्द्रियोंकी पहुँचके बाहर है अथवा भूत और भविष्यके गर्भमें निहित है, वह भी ज्यौतिष-शास्त्रके द्वारा प्रत्यक्ष जान ली जाती है। आपने उसी ज्यौतिष-शास्त्रकी रचना की है। इसके सिवा आप ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। इसलिये मेरे इन दोनों बालकोंके नामकरणादि संस्कार आप ही कर दीजिये। आप कह सकते हैं कि यह काम तो तुम्हें अपने कुलगुरुसे ही कराना चाहिये। किन्तु आप तो जानते ही हैं कि ब्राह्मण जन्मसे ही मनुष्यमात्रका गुरु है ॥ १—६ ॥

गर्गाचार्यजीने कहा—नन्दजी! यह बात तो तुम जानते ही हो कि मैं सब जगह यदुवंशियोंके आचार्यके रूपमें प्रसिद्ध हूँ। यदि मैं तुम्हारे पुत्रके संस्कार करूँगा, तो लोग समझेंगे कि यह तो देवकीका पुत्र है। कंसकी नीयत बहुत बुरी है। वह पाप ही सोचा करता है। जबसे देवकीकी कन्यासे उसने यह बात सुनी है कि उसको मारनेवाला और कहीं पैदा हो गया है, तबसे वह यही सोचा करता है कि देवकीके आठवें गर्भसे कन्याका जन्म तो नहीं होना चाहिये। वसुदेवजीके साथ तुम्हारी बड़ी घनिष्ठ मित्रता है। यदि मैं तुम्हारे पुत्रका संस्कार कर दूँ और वह इस बालकको

ताल ठोंकने लगते । इस प्रकार सर्वशक्तिमान् भगवान् अपनी बाल लीलाओंसे व्रजवासियोंको आनन्दित करते और संसारमें जो लोग उनके रहस्यको जाननेवाले हैं, उनको यह दिखलाते कि मैं अपने भक्तोंके वशमें हूँ ॥ ७–९ ॥

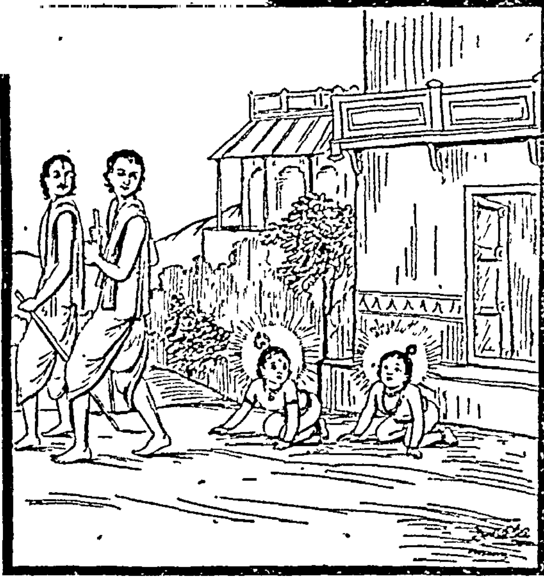
कहीं किसी दिन फल बेचनेवाली पुकार उठती 'फल लो, फल !' यह सुनते ही समस्त कर्म और उपासनाओंके फल देनेवाले भगवान् अच्युत फल खरीदनेके लिये मचल पड़ते और अपनी छोटी-सी अँजुलीमें अनाज लेकर दौड़ पड़ते। उनकी अँजुलीमेंसे अनाज तो रास्तेमें ही बिखर जाता, पर फल बेचनेवाली उनके दोनों हाथोंको फलसे भर देती।



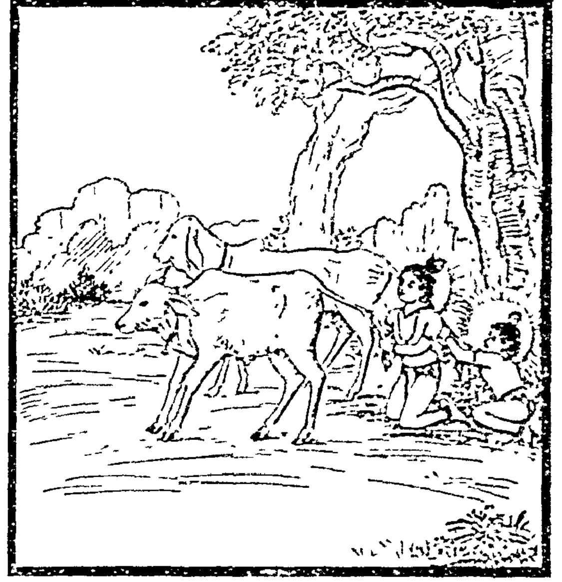
इधर भगवान्‌की ऐसी लीला होती कि उसकी फल रखनेवाली टोकरी रत्नोंसे भर जाती। जब श्रीकृष्ण और बलराम बालकोंके साथ खेलते-खेलते यमुनातटपर चले जाते और खेलहीमें रम जाते, तब रोहिणीदेवी उन्हें पुकारतीं 'ओ अर्जुन वृक्षको तोड़नेवाले कृष्ण ! ओ बलराम ! जल्दी आओ !' परन्तु रोहिणीके पुकारनेपर भी वे आते नहीं। क्योंकि उनका खेल छोड़कर आनेको जी नहीं करता। तब रोहिणी लौट आतीं और वात्सल्यस्नेहमयी यशोदाजीको भेजतीं। जब बच्चोंके साथ खेलते-खेलते श्रीकृष्ण और बलरामको बहुत देर हो जाती, खाने-पीनेका समय बीतने लगता, तब यशोदाजी उनको पुकारनेके लिये जातीं। उस समय वात्सल्यस्नेहके कारण उनके स्तनोंमेंसे दूध चुचुआता रहता। वे जोर-जोरसे पुकारने लगतीं—'मेरे प्यारे कन्हैया ! ओ कृष्ण ! कमलनयन ! श्यामसुन्दर ! बेटा ! आओ, अपनी माँका दूध पी लो। अब खेलते खेलते थक गये हो। बेटा ! अब बस करो। खेलनेकी भी हद होती है। देखो तो सही, तुम भूखसे दुबले हो रहे हो। मेरे प्यारे बेटा राम ! तुम तो बड़े अच्छे हो। अपने छोटे भाईको लेकर जल्दीसे आ जाओ तो ! देखो, भाई ! आज तुमने बहुत सबेरे कलेऊ किया था। अब तो तुम दोनोंको कुछ खाना चाहिये। बेटा बलराम ! व्रजराज भोजन करनेके लिये बैठ गये हैं, परन्तु अभीतक तुम्हारी बाट देख रहे हैं। आओ, अब हमें आनन्दित करो। बालको ! अब तुमलोग भी अपने अपने घर जाओ। बेटा ! देखो तो सही, तुम्हारा एक एक अङ्ग धूलसे लथपथ हो रहा है। आओ, जल्दीसे स्नान कर लो। आज तुम्हारा जन्म-नक्षत्र है। पवित्र होकर ब्राह्मणोंको गोदान करो। तुम देखते नहीं, तुम्हारे साथियोंको उनकी माताओंने नहला धुलाकर, मींज पोंछकर कैसे सुन्दर सुन्दर गहने पहना दिये हैं। अब तुम भी नहा धोकर, खा-पीकर, पहन ओढ़कर तब खेलना।' परीक्षित् ! माता यशोदाका सम्पूर्ण मन प्राण प्रेम-बन्धनसे बँधा हुआ था। वे चराचर जगत्‌के शिरोमणि भगवान्‌को अपना पुत्र समझतीं और इस प्रकार कहकर एक हाथसे बलराम तथा दूसरे हाथसे श्रीकृष्ण को पकड़ लेतीं और अपने घर ले आतीं। इसके बाद जो कुछ उनके मङ्गलके लिये करना होता, बड़े प्रेमसे किया करतीं ॥ १०–२० ॥

जब नन्दबाबा आदि बड़े बूढ़े गोपोंने देखा कि बृहद्वनमें तो बड़े बड़े उत्पात होने लगे हैं, तब वे लोग इकट्ठे होकर 'अब व्रजवासियोंको क्या करना चाहिये'—इस विषयपर विचार करने लगे। उनमेंसे एक गोपका नाम था उपनन्द। वे अवस्थामें तो बड़े थे ही, ज्ञानमें भी बड़े थे। उन्हें इस बातका पता था कि किस समय किस स्थानपर किस वस्तुसे कैसा व्यवहार करना चाहिये। साथ ही वे यह भी चाहते थे कि राम और श्याम सुखी रहें, उनपर कोई विपत्ति न आवे। उन्होंने कहा—'भाइयो ! अब बृहद्वनमें ऐसे बड़े-बड़े उत्पात होने लगे हैं, जो बच्चोंके लिये तो बहुत ही अनिष्टकारी हैं। इसलिये यदि हमलोग गोकुल और गोकुलवासियोंका भला चाहते हैं, तो हमें यहाँसे अपना डेरा डंडा उठाकर कूच कर देना चाहिये। देखो, यह सामने बैठा हुआ नन्दरायका लाड़ला सबसे पहले तो बच्चोंके लिये कालस्वरूपिणी हत्यारी पूतनाके चंगुलसे किसी प्रकार

रह जाते और डरकर अपनी माताओं रोहिणीजी और



यशोदाजीके पास लौट आते। माताएँ यह सब देख-देखकर स्नेहसे भर जातीं। उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहने लगती थी। जब उनके दोनों नन्हे-नन्हे-से शिशु अपने शरीरमें कीचड़का अङ्गराग लगाकर लौटते, तब उनकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती थी। माताओंको कीचड़का तो ध्यान ही न रहता। वे उन्हें आते ही दोनों हाथोंसे गोदमें लेकर हृदयसे लगा लेतीं और उन्हें स्तन-पान कराने लगतीं। जब वे दूध पीने लगते और बीच-बीचमें मुसकरा-मुसकराकर अपनी माताओंकी ओर देखने लगते, तब वे उनकी मन्द-मन्द मुसकान, छोटी-छोटी दँतुलियाँ और भोलाभाला मुँह देखकर आनन्दके समुद्रमें डूबने-उतराने लगतीं। जब राम और श्याम दोनों कुछ और बड़े हुए, तब व्रजमें घरके बाहर ऐसी-ऐसी बाललीलाएँ करने लगे, जिन्हें गोपियाँ देखती ही रह जातीं। जब वे किसी बैठे हुए बछड़ेकी पूँछ पकड़ लेते और बछड़े डरकर इधर-उधर भागते, तब वे दोनों और भी जोरसे पूँछ पकड़ लेते और बछड़े उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगते। गोपियाँ अपने घरका काम-धंधा छोड़कर यही सब देखती रहतीं और हँसते-हँसते लोटपोट हो जातीं। फिर दौड़कर छुड़ातीं और परम आनन्दमें मग्न हो जातीं। कन्हैया और बलदाऊ दोनों ही बड़े चञ्चल और बड़े खिलाड़ी थे। वे कहीं हरिन, गाय आदि सींगवाले पशुओंके पास

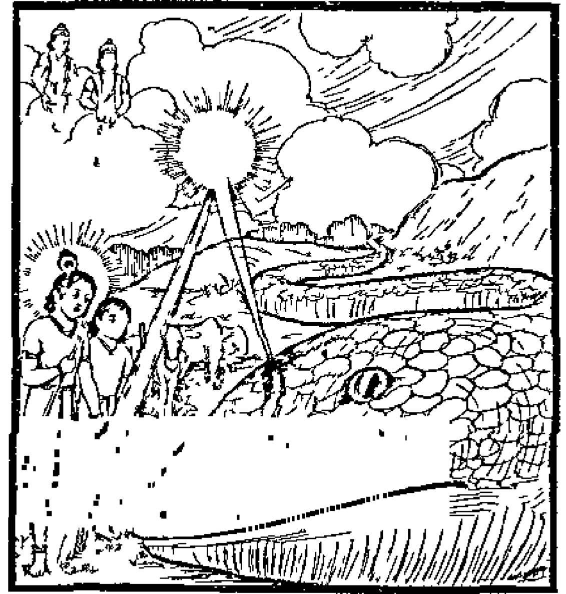


दौड़ जाते, तो कहीं धधकती हुई आगसे खेलनेके लिये कूद पड़ते। कभी दाँतसे काटनेवाले कुत्तोंके पास पहुँच जाते, तो कभी आँख बचाकर तलवार उठा लेते। कभी रक्खा हुआ पानी ढरका देते तो कभी गड्ढेमें छपका खेलने लगते। कभी किसी पक्षीको पकड़नेके लिये धीरे-धीरे चलकर उसपर लपकते, और वह उड़ जाता तो उसकी छायाके साथ-साथ घुटनोंके बल दौड़ते। उन्हें काँटे और कुशका तो कोई ख्याल ही न था। माताएँ उन्हें बहुत बरजतीं, परन्तु उनकी एक न चलती। वे मानते तो केवल अच्छा-सा खिलौना पानेपर! ऐसी स्थितिमें माताएँ घरका काम-धंधा भी न सम्हाल पातीं। उनका चित्त बच्चोंको खिलाने-पिलानेकी तैयारी और उन्हें भयकी वस्तुओंसे बचानेकी सजगता—इन दोनोंके बीचमें ही लटकता रहता॥ २१—२५॥

परीक्षित्! गोकुलमें समयका तो पता ही न चलता था। कुछ ही दिनोंमें यशोदा और रोहिणीके लाड़ले लाल घुटनोंका सहारा लिये बिना अनायास ही खड़े होकर चलने लगे। परीक्षित्! ये व्रजवासियोंके कन्हैया स्वयं भगवान् हैं। परम सुन्दर और परम मधुर! देखो, अब वे बलराम और अपनी ही उम्रके ग्वालबालोंको अपने साथ लेकर खेलनेके लिये व्रजमें निकल पड़ते और व्रजकी भाग्यवती गोपियोंको निहाल

कि अघासुर अपने भाई बकासुर और बहिन पूतनाके वधकी याद करके इस बातकी बाट देख रहा था कि उनको मारनेवाले श्रीकृष्ण मुँहमें आ जायँ, तब सबको एक साथ ही निगल जाऊँ। भगवान् श्रीकृष्ण सबको अभय देनेवाले हैं। जब उन्होंने देखा कि ये बेचारे ग्वालबाल—जिनका एकमात्र रक्षक मैं ही हूँ—मेरे हाथसे निकल गये और जैसे कोई तिनका उड़कर आगमें गिर पड़े, वैसे ही अपने आप मृत्युरूप अघासुरके ग्रास बन गये, तब दैववी इस विचित्र लीलापर भगवान्‌को बड़ा विस्मय हुआ और उनका हृदय दयासे द्रवित हो गया। वे सोचने लगे कि 'अब मुझे क्या करना चाहिये? ऐसा कौन सा उपाय है, जिससे इस दुष्टकी मृत्यु भी हो जाय और इन संत स्वभाव भोले भाले बालकोंकी हत्या भी न हो? ये दोनों काम कैसे हो सकते हैं?' परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण भूत, भविष्य, वर्तमान—सबको प्रत्यक्ष देखते रहते हैं। उनके लिये यह उपाय जानना कोई कठिन न था। वे अपना कर्तव्य निश्चय करके स्वयं उसके मुँहमें घुस गये। यह देखकर बादलोंमें छिपे हुए देवता भयवश 'हाय हाय' पुकार उठे और अघासुरके हितैषी कंस आदि राक्षस उसी समय समाचार पाकर हर्ष प्रकट करने लगे ॥ १८–२९ ॥

अघासुर बछड़ों और ग्वालबालोंके सहित भगवान् श्रीकृष्णको चबा जाना चाहता था। परन्तु उसी समय अविनाशी श्रीकृष्णने देवताओंकी 'हाय हाय' सुनकर उसके गलेमें अपने शरीरको बड़ी फुर्तीसे बढ़ा लिया। परीक्षित्! मैं तुमसे कह चुका हूँ कि अघासुरका शरीर बड़ा विशाल था, परन्तु भगवान्‌ने अपने शरीरको इतना बड़ा कर लिया कि उसका गला ही रूँध गया। आँखें उलट गयीं। वह व्याकुल होकर बहुत ही छटपटाने लगा। साँस रुककर सारे शरीरमें भर गयी और अन्तमें उसके प्राण ब्रह्मरन्ध्र फोड़कर निकल गये। प्राणोंके साथ उसकी सारी इन्द्रियाँ भी शरीरसे बाहर हो गयीं। उसी समय भगवान्‌ने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे मरे हुए बछड़ों और ग्वालबालोंको जिला दिया और उन सबको साथ लेकर वे अघासुरके मुँहसे बाहर निकल आये। उस अजगरके स्थूल शरीरसे एक अत्यन्त अद्भुत और महान् ज्योति निकली। उस समय उस ज्योतिके प्रकाशसे दसों दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं। वह थोड़ी देरतक तो आकाशमें स्थित होकर भगवान्‌के निकलनेकी प्रतीक्षा करती रही। जब



वे बाहर निकल आये, तब वह सब देवताओंके देखते देखते उन्हींमें समा गयी। उस समय देवताओंने फूल बरसाकर, अप्सराओंने नाचकर, गन्धर्वोंने गाकर, विद्याधरोंने बाजे बजाकर, ब्राह्मणोंने स्तुति पाठ कर और पार्षदोंने जय जयकारके नारे लगाकर बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णका अभिनन्दन किया। क्योंकि भगवान् श्रीकृष्णने अघासुरको मारकर उन सबका बहुत बड़ा काम किया था। उन अद्भुत स्तुतियों, सुन्दर बाजों, मङ्गलमय गीतों, जय जयकार और आनन्दोत्सवोंकी मङ्गलध्वनि ब्रह्मलोकके पास पहुँच गयी। जब ब्रह्माजीने वह ध्वनि सुनी, तब वे बहुत ही शीघ्र अपने वाहनपर चढ़कर वहाँ आये और भगवान् श्रीकृष्णकी यह महिमा देखकर आश्चर्यचकित हो गये। परीक्षित्! जब वृन्दावनमें अजगरका वह चाम सूख गया, तब व्रजवासियोंके लिये बहुत दिनोंतक खेलनेकी एक अद्भुत गुफा-सी बना रहा। यह जो भगवान्‌ने अपने ग्वालबालोंको मृत्युके मुखसे बचाया था और अघासुरको मोक्ष दान किया था, वह लीला भगवान्‌ने अपनी कुमार अवस्थामें अर्थात् पाँचवें वर्षमें ही की थी। परन्तु ग्वालबालोंने इसे पौगण्ड अवस्था अर्थात् छठे वर्षमें देखा और अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर व्रजमें उसका वर्णन किया। परीक्षित्! अघासुर मूर्तिमान् अघ (पाप) ही था।

मुखकमलको देखती जातीं। उनकी यह दशा देखकर नन्द-रानी यशोदाजी उनके मनका भाव ताड़ लेतीं और उनके हृदयमें स्नेह और आनन्दकी बाढ़ आ जाती। वे इस प्रकार हँसने लगतीं कि अपने लाड़ले कन्हैयाको इस बातका उलाहना भी न दे पातीं, डाँटनेकी बाततक नहीं सोच पातीं ॥ २६—३१ ॥

एक दिन बलराम आदि ग्वालबाल श्रीकृष्णके साथ खेल रहे थे। उन लोगोंने माँ यशोदाके पास आकर कहा—'माँ! कन्हैयाने मिट्टी खायी है।' यशोदा रानी डर गयी कि मिट्टी खानेसे कन्हैयाको रोग न हो जाय। उन्होंने श्रीकृष्णका हाथ पकड़ लिया। उस समय भगवान् श्रीकृष्णकी विचित्र हालत थी। उनकी आँखें डरके मारे नाच रही थीं। यशोदा मैयाने डाँटकर कहा—'क्यों रे नटखट! तू बहुत ढीठ हो गया है। तूने अकेलेमें छिपकर मिट्टी क्यों खायी? देख तो तुझसे होड़ करनेवाले नहीं, तेरे दलके तेरे सखा क्या कह रहे हैं! केवल वे ही नहीं, तेरे बड़े भैया बलदाऊ भी तो उन्हींकी ओरसे गवाही दे रहे हैं' ॥ ३२—३४ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'माँ! मैंने मिट्टी नहीं खायी। ये सब झूठ बक रहे हैं। यदि तुम इन्हींकी बात सच मानती हो तो मेरा मुँह तुम्हारे सामने ही है, तुम अपनी आँखोंसे देख लो!' यशोदाजीने कहा—'अच्छी बात। यदि ऐसा है, तो मुँह खोल।' माताके ऐसा कहनेपर भगवान् श्रीकृष्णने अपना मुँह खोल दिया। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णका ऐश्वर्य अनन्त है। वे केवल लीलाके लिये ही मनुष्यके बालक बने हुए हैं। यशोदाजीने देखा कि उनके मुँहमें चर-अचर सम्पूर्ण जगत् विद्यमान है। आकाश (वह शून्य जिसमें किसीकी गति नहीं), दिशाएँ; पहाड़, द्वीप और समुद्रोंके सहित सारी पृथ्वी; बहनेवाली वायु, वैद्युत अग्नि, चन्द्रमा और तारोंके साथ सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डल; जल, तेज, पवन, वियत् (प्राणियोंके चलने-फिरनेका आकाश); वैकारिक अहङ्कारके कार्य देवता, मन-इन्द्रिय, पञ्चतन्मात्राएँ और तीनों गुण श्रीकृष्णके मुखमें दीख पड़े। परीक्षित्! कहाँतक कहूँ—जीव, काल, स्वभाव, कर्म, उनकी वासना और शरीर आदिके द्वारा विभिन्न रूपोंमें दीखनेवाला यह सारा विचित्र संसार, सम्पूर्ण व्रज और अपने-आपको भी



यशोदाजीने श्रीकृष्णके नन्हे-से खुले हुए मुखमें देखा। वे बड़ी शङ्कामें पड़ गयीं। वे सोचने लगी कि 'यह कोई स्वप्न है या भगवान्‌की माया? कहीं मेरी बुद्धिमें ही तो कोई भ्रम नहीं हो गया है? सम्भव है, मेरे इस बालकमें ही कोई जन्मजात योगसिद्धि हो!' यह सोचते-सोचते यशोदाजीकी समझमें बात आ गयी। उन्होंने कहा—'जो चित्त, मन, कर्म और वाणीके द्वारा ठीक-ठीक तथा सुगमतासे अनुमानके विषय नहीं होते, यह सारा विश्व जिनके आश्रित है, जो इसके प्रेरक हैं और जिनकी सत्तासे ही इसकी प्रतीति होती है, जिनका स्वरूप सर्वथा अचिन्त्य है—उन प्रभुको मैं प्रणाम करती हूँ। यह मैं हूँ और ये मेरे पति, तथा यह मेरा लड़का है; साथ ही मैं व्रजराजकी समस्त सम्पत्तियोंकी स्वामिनी धर्मपत्नी हूँ; ये गोपियाँ, गोप और गोधन मेरे अधीन हैं—जिनकी मायासे मुझे इस प्रकारकी कुमति घेरे हुए है, वे भगवान् ही मेरे एकमात्र आश्रय हैं—मैं उन्हींकी शरणमें हूँ।' भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरी माता तो मेरा तत्त्व जान गयी, अब मैं इनका वात्सल्य-स्नेह कैसे पा सकूँगा। बस, उन्होंने अपनी उस योगमायाको, जो उनकी अपनी शक्ति है, पुत्र-स्नेहके रूपमें यशोदाजीके हृदयमें

के लिये तुम अपने हाथ जोड़कर सिरसे लगाओ और उन्हें झुककर प्रणाम करो, तदनन्तर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ।' भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर उन व्रजकुमारियोंने ऐसा ही समझा कि वास्तवमें वस्त्रहीन होकर स्नान करनेसे हमारे व्रतमें त्रुटि आ गयी। अतः उसकी निर्विघ्न पूर्तिके लिये उन्होंने समस्त कर्मोंके साक्षी श्रीकृष्णको नमस्कार किया। क्योंकि उन्हें नमस्कार करनेसे ही सारी त्रुटियों और अपराधोंका मार्जन हो जाता है। जब नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि सब-की-सब कुमारियाँ मेरी आज्ञाके अनुसार प्रणाम कर रही हैं, तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके हृदयमें करुणा उमड़ आयी और उन्होंने उनके वस्त्र दे दिये। प्रिय परीक्षित्! श्रीकृष्णने कुमारियोंसे छलभरी बातें कीं, उनका लज्जा-सङ्कोच छुड़ाया, हँसी की और उन्हें कठपुतलियोंके समान नचाया; यहाँतक कि उनके वस्त्रतक हर लिये। फिर भी वे उनसे रुष्ट नहीं हुईं, उनकी इन चेष्टाओंको दोष नहीं माना, बल्कि अपने प्रियतमके संगसे और भी प्रसन्न हुईं। परीक्षित्! गोपियोंने अपने-अपने वस्त्र पहन लिये। परन्तु श्रीकृष्णने उनके चित्तको इस प्रकार अपने वशमें कर रक्खा था कि वे वहाँसे एक पग भी न चल सकीं। अपने प्रियतमके समागमके लिये सजकर वे उन्हींकी ओर लजीली चितवनसे निहारती रहीं॥ १६–२३॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि उन कुमारियोंने उनके चरणकमलोंके स्पर्शकी कामनासे ही व्रत धारण किया है और उनके जीवनका यही एकमात्र सङ्कल्प है। तब गोपियोंके प्रेमके अधीन होकर ऊखलतकमें बँध जानेवाले भगवान्ने उनसे कहा—'मेरी परम प्रेयसी कुमारियो! मैं तुम्हारा यह सङ्कल्प जानता हूँ कि तुम मेरी पूजा करना चाहती हो। मैं तुम्हारी इस अभिलाषाका अनुमोदन करता हूँ, तुम्हारा यह सङ्कल्प सत्य होगा। तुम मेरी पूजा कर सकोगी। जिन्होंने अपना मन और प्राण मुझे समर्पित कर रक्खा है—मुझमें लगा रक्खा है, उनकी कामनाएँ उन्हें सांसारिक भोगोंकी ओर ले जानेमें समर्थ नहीं होतीं। क्योंकि उनकी कामनाओंका विषय होता हूँ मैं, और मेरे पास आते ही सारी कामनाएँ भुन जाती हैं—शुद्ध हो जाती हैं। जैसे भुने या उबाले हुए बीज फिर अङ्कुरके रूपमें उगनेके योग्य नहीं रह जाते, वैसे ही मेरे प्रति की हुई कामनाएँ भी विषय-सुख उत्पन्न करनेके योग्य नहीं रहतीं। इसलिये कुमारियो! अब तुम अपने-अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी साधना सिद्ध हो गयी है। तुम आनेवाली शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें मेरे साथ विहार करना। सतियो! इसी उद्देश्यसे तो तुमलोगोंने यह व्रत और कात्यायनी देवीकी पूजा की थी'॥ २४–२७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्की यह आज्ञा पाकर वे कुमारियाँ भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका ध्यान करती हुई जानेकी इच्छा न होनेपर भी बड़े कष्टसे व्रजमें गयीं। अब उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं॥ २८॥

प्रिय परीक्षित्! एक दिनकी बात है, भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी और ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावनसे बहुत दूर निकल गये। ग्रीष्म ऋतु थी। सूर्यकी किरणें बहुत ही प्रखर हो रही थीं। परन्तु घने-घने वृक्ष भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर छत्तेका काम कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने वृक्षोंको छाया करते देख स्तोककृष्ण, अंशु, श्रीदामा, सुबल, अर्जुन, विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ और वरूथप आदि ग्वालबालोंको सम्बोधन करके कहा—'मेरे प्यारे मित्रो! देखो, ये वृक्ष कितने भाग्यवान् हैं! इनका सारा जीवन केवल दूसरोंकी भलाई करनेके लिये ही है। ये स्वयं तो हवाके झोंके, वर्षा, धूप और पाला—सब कुछ सहते हैं, परन्तु हम लोगोंकी उनसे रक्षा करते हैं। धन्य है, मैं कहता हूँ कि इन्हींका जीवन सबसे श्रेष्ठ है। क्योंकि इनके द्वारा सब प्राणियोंको सहारा मिलता है, उनका जीवन-निर्वाह होता है। जैसे किसी सज्जन पुरुषके घरसे कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटता, वैसे ही इन वृक्षोंसे भी सभीको कुछ-न-कुछ मिल ही जाता है। ये अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, जड़, छाल, लकड़ी, गन्ध, गोंद, राख, कोयला, अङ्कुर और कोंपलोंसे भी लोगोंकी कामना पूर्ण करते हैं। मेरे प्यारे मित्रो! संसारमें प्राणी तो बहुत हैं; परन्तु उनके जीवनकी सफलता बस, इतनेमें ही है कि जहाँतक हो सके अपने धनसे, विवेक-विचारसे, वाणीसे और प्राणोंसे भी ऐसे ही कर्म किये जायँ, जिनसे दूसरोंकी भलाई हो।' परीक्षित्! दोनों ओरके वृक्ष नयी-नयी कोंपलों, गुच्छों, फल-फूलों और पत्तोंसे लद रहे थे। उनकी डालियाँ पृथ्वीतक झुकी हुई थीं। इस प्रकार भाषण करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हींके बीचसे यमुना-तटपर निकल आये। यमुनाजीका जल बड़ा ही मधुर, शीतल, स्वादिष्ट और स्वच्छ था। उन लोगोंने पहले गौओंको वह जल पिलाया और इसके बाद स्वयं भी जी भरकर पिया। परीक्षित्! जिस समय वे यमुनाजीके तटपर हरे-भरे उपवनमें बड़ी स्वतन्त्रतासे अपनी गौएँ चरा रहे थे, उसी समय कुछ भूखे ग्वालोंने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके पास आकर यह बात कही—॥ २९–३८॥

दहीकी मथानी पकड़ ली तथा उन्हें मथनेसे रोक दिया। माता यशोदाने श्रीकृष्णको अपनी गोदमें उठा लिया। वात्सल्य-स्नेहकी अधिकतासे उनके स्तनोंसे दूध तो स्वयं झर ही रहा था। वे पीने लगे और यशोदाजी मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त उनका मुख देखने लगीं। इतनेमें ही दूसरी ओर अँगीठीपर रक्खे हुए दूधमें उफान आया। उसे देखकर यशोदाजी उन्हें अतृप्त ही छोड़कर जल्दीसे दूध उतारनेके लिये चली गयीं। इससे श्रीकृष्णको कुछ क्रोध आ गया। उनके लाल-लाल होठ फड़कने लगे। उन्हें दाँतोंसे दबाकर श्रीकृष्णने पास ही पड़े हुए लोढ़ेसे दहीका मटका फोड़-फाड़ डाला, बनावटी



आँसू आँखोंमें भर लिये और दूसरे घरमें जाकर अकेलेमें माखन खाने लगे ॥१–६॥

यशोदाजी औंटे हुए दूधको उतारकर फिर मथनेके घरमें चली आयीं। वहाँ देखती हैं तो दहीका मटका (कमोरा) टुकड़े-टुकड़े हो गया है। वे समझ गयीं कि यह सब मेरे लालाकी ही करतूत है। साथ ही जब उन्होंने देखा कि मेरे लाड़ले सपूत स्वयं लापता हैं, तब तो उनकी हँसी रोके भी न रुकी। इधर-उधर ढूँढनेपर पता चला कि श्रीकृष्ण एक उलटे हुए ऊखलपर खड़े हैं और छीकेपरका माखन ले-लेकर बंदरोंको खूब लुटा रहे हैं। उन्हें यह भी डर है कि कहीं मेरी चोरी खुल न जाय, इसलिये चौकन्ने होकर चारों ओर ताकते जाते हैं। यह देखकर यशोदारानी पीछेसे धीरे-धीरे उनके पास जा पहुँचीं। जब श्रीकृष्णने देखा कि मेरी माँ हाथमें छड़ी लिये मेरी ही ओर आ रही है,



तब झटसे ओखलीपरसे कूद पड़े और डरकर भागे। परीक्षित्! बड़े-बड़े योगी तपस्याके द्वारा अपने मनको अत्यन्त सूक्ष्म और शुद्ध बनाकर भी जिनमें प्रवेश नहीं करा पाते, पानेकी बात तो दूर रही, उन्हीं भगवान्के पीछे-पीछे उन्हें पकड़नेके लिये यशोदाजी दौड़ीं। जब इस प्रकार माता यशोदा श्रीकृष्णके पीछे दौड़ने लगीं, तब कुछ



ही देरमें नितम्बोंकी स्थूलताके कारण उनकी चाल धीमी पड़ गयी। वेगसे दौड़नेके कारण चोटीकी गाँठ ढीली पड़

उनका स्नेह अवश्य अधिक था। इसी प्रकार भगवान् भी उनके पहले पुत्रोंके समान ही पुत्रभाव दिखला रहे थे, परन्तु भगवान्‌में उन बालकोंके जैसा मोहका भाव नहीं था कि मैं इनका पुत्र हूँ। अपने-अपने बालकोंके प्रति व्रजवासियोंकी स्नेह-लता दिन-प्रतिदिन एक वर्षतक धीरे-धीरे बढ़ती ही गयी। यहाँतक कि पहले श्रीकृष्णमें उनका जैसा असीम और अपूर्व प्रेम था, वैसा ही अपने इन बालकोंके प्रति भी हो गया। वास्तवमें तो वे श्रीकृष्ण ही थे। इस प्रकार एक वर्षतक भगवान् श्रीकृष्णने ग्वालबालोंका रूप धारण करके अपने ही स्वरूपभूत बछड़ोंका पालन किया और वन तथा गोष्ठमें अनेकों प्रकारकी क्रीड़ाएँ कीं ॥ २२—२७ ॥

जब एक वर्ष पूरा होनेमें पाँच-छः दिन बाकी थे, तब एक दिन भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ बछड़ोंको चराते हुए वनमें गये। उस समय गौएँ बहुत दूर गोवर्धनकी चोटीपर घास चर रही थीं। वहाँसे उन्होंने व्रजके पास ही घास चरते हुए अपने बछड़ोंको देखा। बछड़ोंको देखते ही गौओंका वात्सल्य स्नेह उमड़ आया। वे अपने-आपकी सुध-बुध खो बैठीं और ग्वालोंके रोकनेकी कुछ भी परवा न



कर जिस मार्गसे वे न जा सकते थे, उस मार्गसे हुंकार करती हुई बड़े वेगसे दौड़ पड़ीं। उस समय उनके थनोंसे दूध बहता जाता था और उनकी गरदनें सिकुड़कर डीलसे मिल गयी थीं। वे पूँछ तथा सिर उठाकर इतने वेगसे दौड़ रही थीं कि मालूम होता था मानो उनके दो ही पैर हैं। जिन गौओंके और भी बछड़े हो चुके थे, वे भी गोवर्धनके नीचे अपने पहले बछड़ोंके पास दौड़ आयीं और उन्हें स्नेहवश अपने-आप बहता हुआ दूध पिलाने लगीं। उस समय वे अपने बच्चोंका एक-एक अङ्ग ऐसे चावसे चाट रही थीं, मानो उन्हें अपने पेटमें रख लेंगी। गोपोंने उन्हें रोकनेका बहुत कुछ प्रयत्न किया, परन्तु उनका सारा प्रयत्न व्यर्थ रहा। उन्हें अपनी विफलतापर कुछ लज्जा और गायोंपर बड़ा क्रोध आया। जब वे बहुत कष्ट उठाकर उस कठिन मार्गसे उस स्थानपर पहुँचे, तब उन्होंने बछड़ोंके साथ अपने बालकोंको भी देखा। अपने बच्चोंको देखते ही उनका हृदय प्रेम-रससे सराबोर हो गया। बालकोंके प्रति अनुरागकी बाढ़ आ गयी, उनका क्रोध न जाने कहाँ लापता हो गया। उन्होंने अपने-अपने बालकोंको गोदमें उठाकर हृदयसे लगा लिया और उनका मस्तक सूँघकर अत्यन्त आनन्दित हुए। बूढ़े गोपोंको अपने बालकोंके आलिङ्गनसे परम आनन्द प्राप्त हुआ। वे निहाल हो गये। वे उन्हें छोड़कर बड़ी कठिनतासे जा सके। पीछे भी बालकों और उनके आलिङ्गनके स्मरणसे उनके नेत्रोंसे प्रेमके आँसू बहते रहे ॥ २८—३४ ॥

बलरामजीने देखा कि व्रजवासी गोप, गौएँ और ग्वालिनोंका उन सन्तानोंपर भी, जिन्होंने अपनी माँका दूध पीना छोड़ दिया है, क्षण-प्रतिक्षण प्रेम और उसके अनुरूप उत्कण्ठा बढ़ती ही जा रही है। तब वे विचारमें पड़ गये। क्योंकि उन्हें इसका कारण मालूम न था। वे सोचने लगे—'यह कैसी विचित्र बात है! सर्वात्मा श्रीकृष्णमें व्रजवासियोंका और मेरा जैसा अपूर्व स्नेह है, वैसा ही इन बालकों और बछड़ोंपर भी बढ़ता जा रहा है। यह कौन-सी माया है? कहाँसे आयी है? यह किसी देवताकी है, मनुष्यकी है अथवा असुरोंकी? परन्तु क्या ऐसा भी सम्भव है? नहीं-नहीं, यह तो मेरे प्रभुकी ही माया है। और किसीकी मायामें ऐसी सामर्थ्य नहीं, जो मुझे भी मोहित कर ले।' बलरामजीने ऐसा विचार करके ज्ञानदृष्टिसे देखा, तो उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि इन सब बछड़ों और ग्वालबालोंके रूपमें केवल श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं। तब उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—'भगवन्!

साथ जलक्रीड़ा कर रहा हो, वैसे ही वे उन युवतियोंके साथ तरह-तरहकी क्रीड़ा करने लगे । परीक्षित् ! संयोगवश उधरसे परम समर्थ देवर्षि नारदजी आ निकले । उन्होंने उन यक्ष-युवकोंको देखकर समझ लिया कि ये इस समय मतवाले हो रहे हैं । देवर्षि नारदको देखकर वस्त्रहीन अप्सराएँ लजा गयीं । शापके डरसे उन्होंने तो अपने-अपने कपड़े झटपट पहन लिये, परन्तु इन यक्षोंने कपड़े नहीं



पहने । जब देवर्षि नारदजीने देखा कि ये देवताओंके पुत्र होकर श्रीमदसे अंधे और मदिरापान करके उन्मत्त हो रहे हैं, तब उन्होंने उनपर अनुग्रह करनेके लिये शाप देते हुए यह कहा—॥ २-७ ॥

नारदजीने कहा—जो लोग अपने प्रिय विषयोंका सेवन करते हैं, उनकी बुद्धिको सबसे बढ़कर नष्ट करनेवाला है श्रीमद—धन सम्पत्तिका नशा । वैसे तो हिंसा आदि रजोगुणी कर्म और कुलीनता आदिका अभिमान भी बुद्धिको नष्ट करता है; परन्तु श्रीमदके साथ-साथ तो स्त्री, जूआ और मदिरा भी रहती है । ऐश्वर्यमद और श्रीमदसे अंधे होकर अपनी इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले क्रूर पुरुष अपने नाशवान् शरीरको तो अजर-अमर मान बैठते हैं और अपने ही-जैसे शरीरवाले पशुओंकी हत्या करते हैं। जिस शरीरको 'भूदेव' 'नरदेव' 'देव' आदि नामोंसे पुकारते हैं—उसकी अन्तमें क्या गति होगी ? उसमें कीड़े पड़ जायँगे, पक्षी खाकर उसे विष्ठा बना देंगे या वह जलकर राखका ढेर बन जायगा । उसी शरीरके लिये प्राणियोंसे द्रोह करनेमें मनुष्य अपना कौन-सा स्वार्थ समझता है ? ऐसा करनेसे तो उसे नरककी ही प्राप्ति होगी । बतलाओ तो सही, यह शरीर किसकी सम्पत्ति है ? अन्न देकर पालनेवालेकी है या गर्भाधान करानेवाले पिताकी ? यह शरीर उसे नौ महीने पेटमें रखनेवाली माताका है अथवा माताको भी पैदा करनेवाले नानाका ? जो बलवान् पुरुष बलपूर्वक इससे काम करा लेता है उसका है अथवा दाम देकर खरीद लेनेवालेका ? चिताकी जिस धधकती आगमें यह जल जायगा उसका है अथवा जो कुत्ते-स्यार इसको चींथ-चींथकर खा जानेकी आशा लगाये बैठे हैं उनका ? यह शरीर एक साधारण-सी वस्तु है । प्रकृतिसे पैदा होता है और उसीमें समा जाता है । ऐसी स्थितिमें मूर्ख पशुओंके सिवा और ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो इसको अपना आत्मा मानकर दूसरोंको कष्ट पहुँचायेगा, उनके प्राण लेगा ? जो दुष्ट श्रीमदसे अंधे हो रहे हैं, उनकी आँखोंमें ज्योति डालनेके लिये दरिद्रता ही सबसे बड़ा अंजन है । क्योंकि दरिद्र यह देख सकता है कि दूसरे प्राणी भी मेरे ही-जैसे हैं ! जिसके शरीरमें एक बार काँटा गड़ जाता है, वह नहीं चाहता कि किसी भी प्राणीको काँटा गड़नेकी पीड़ा सहनी पड़े । क्योंकि उस पीड़ा और उसके द्वारा होनेवाले विकारोंसे वह समझता है कि दूसरेको भी वैसी ही पीड़ा होती है । परन्तु जिसे कभी काँटा गड़ा ही नहीं, वह उसकी पीड़ाका अनुमान नहीं कर सकता । दरिद्रमें घमंड और हेकड़ी नहीं होती; वह सब तरहके मदोंसे बचा रहता है । बल्कि दैववश उसे जो कष्ट उठाना पड़ता है, वह उसके लिये एक बहुत बड़ी तपस्या भी है । जिसे प्रतिदिन भोजनके लिये अन्न जुटाना पड़ता है, भूखसे जिसका शरीर दुबला-पतला हो गया है, उस दरिद्रकी इन्द्रियाँ भी अधिक विषय नहीं भोगना चाहतीं, सूख जाती हैं और फिर वह अपने भोगोंके लिये दूसरे प्राणियोंको सताता नहीं—उनकी हिंसा नहीं करता । यद्यपि साधु पुरुष समदर्शी होते हैं, फिर भी उनका समागम दरिद्रके लिये ही सुलभ है । क्योंकि उसके भोग तो पहलेसे ही छूटे हुए हैं । अब संतोंके संगसे उसकी लालसा-तृष्णा भी मिट जाती है और शीघ्र ही उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है । जिन महात्माओंके चित्तमें सबके लिये समता है, जो केवल भगवान्के चरणारविन्दोंका मकरन्दरस पीनेके लिये सदा उत्सुक रहते हैं, उन्हें दुर्गुणोंके खजाने और धनके मदसे मतवाले दुष्टोंकी क्या आवश्यकता है ? वे तो उनकी उपेक्षाके ही पात्र हैं । ये दोनों यक्ष वारुणी मदिराका पान

जगमगा रही थीं। वे नखसे शिखतक समस्त अंगोंमें कोमल और नूतन तुलसीकी मालाएँ, जो उन्हें बड़े भाग्यशाली भक्तोंने पहनायी थीं, धारण किये हुए थे। उनकी मुसकान चाँदनीके समान उज्ज्वल थी और रतनारे नेत्रोंकी कटाक्ष-पूर्ण चितवन बड़ी ही मधुर थी। ऐसा जान पड़ता था मानो वे इन दोनोंके द्वारा सत्त्वगुण और रजोगुणका स्वीकार करके भक्तजनोंके हृदयमें शुद्ध लालसाएँ जगाकर उनको पूर्ण कर रहे हैं। ब्रह्माजीने यह भी देखा कि उन्हींके जैसे दूसरे ब्रह्मासे लेकर तृणतक सभी चराचर जीव मूर्तिमान् होकर नाचते गाते अनेक प्रकारकी पूजा सामग्रीसे अलग अलग भगवान्के उन सब रूपोंकी उपासना कर रहे हैं। उन्हें अलग अलग अणिमा महिमा आदि सिद्धियाँ, माया विद्या आदि विभूतियाँ, और महत्तत्त्व आदि चौबीसों तत्त्व चारों ओरसे घेरे हुए हैं। प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाला काल, उसके परिणामका कारण स्वभाव, वासनाओंको जगानेवाला संस्कार, कामनाएँ, कर्म, विषय और फल—सभी मूर्तिमान् होकर भगवान्के प्रत्येक रूपकी उपासना कर रहे हैं। भगवान्की सत्ता और महत्ताके सामने उन सभीकी सत्ता और महत्ता अपना अस्तित्व खो बैठी थी। ब्रह्माजीने यह भी देखा कि वे सभी भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालके द्वारा सीमित नहीं हैं, त्रिकालाबाधित सत्य हैं। वे सब-के-सब स्वयंप्रकाश और केवल अनन्त आनन्दस्वरूप हैं। उनमें जडता अथवा चेतनताका भेदभाव नहीं है। वे सब-के-सब एकरस हैं। यहाँतक कि तत्त्वज्ञानियोंकी दृष्टि भी उनकी अनन्त महिमा-का स्पर्श नहीं कर सकती। इस प्रकार ब्रह्माजीने एक साथ ही देखा कि वे सब-के-सब उन परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णके ही स्वरूप हैं, जिनके प्रकाशसे यह सारा चराचर जगत् प्रकाशित हो रहा है॥ ४६—५५॥

यह अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्य देखकर ब्रह्माजी तो चकित रह गये। उनकी ग्यारहों इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और एक मन) क्षुब्ध एवं स्तब्ध रह गयीं। वे भगवान्के तेजसे निस्तेज होकर मौन हो गये। उस समय वे ऐसे स्तब्ध होकर खड़े रह गये, मानो व्रजके अधिष्ठातृ-देवताके पास एक पुतली खड़ी हो। परीक्षित्! भगवान्की महिमा तर्कसे परे है। वह स्वयंप्रकाश, आनन्दस्वरूप और मायासे अतीत है। श्रुतियाँ भी साक्षात्रूपसे उसका वर्णन करनेमें असमर्थ हैं। इसलिये उससे भिन्नका निषेध करके आनन्दस्वरूप ब्रह्मका किसी प्रकार कुछ सङ्केत करती हैं। यद्यपि ब्रह्माजी समस्त विद्याओंके अधिपति हैं, तथापि भगवान्की इस महिमाको वे तनिक भी न समझ सके कि यह क्या है। यहाँतक कि वे भगवान्के उन महिमामय रूपोंको देखनेमें भी असमर्थ हो गये। उनकी आँखें मुँद गयीं। भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माके इस मोह और असमर्थताको जानकर बिना किसी प्रयासके तुरत अपनी मायाका परदा हटा दिया। इससे ब्रह्माजीको बाह्यज्ञान हुआ। वे मानो मरकर फिर जी उठे। सचेत होकर उन्होंने ज्यों त्यों करके बड़े कष्टसे अपने नेत्र खोले। तब कहीं उन्हें अपना शरीर और यह जगत् दिखायी पड़ा। फिर ब्रह्माजी जब चारों ओर देखने लगे, तब पहले दिशाएँ और उसके बाद तुरंत ही उनके सामने वृन्दावन दिखायी पड़ा। वृन्दावन सबके लिये एक सा प्यारा है। जिधर देखिये, उधर ही फल और फूलोंसे लदे हुए, हरे हरे पत्तोंसे लहलहाते हुए वृक्षोंकी पाँतें शोभा पा रही हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि होनेके कारण वृन्दावन धाममें क्रोध, तृष्णा आदि दोष प्रवेश नहीं कर सकते और वहाँ स्वभावसे ही परस्पर दुरत्यज वैर रखनेवाले मनुष्य और पशु-पक्षी भी प्रेमी मित्रोंके समान हिल मिलकर एक साथ रहते हैं। ब्रह्माजी-ने वृन्दावनका दर्शन करनेके बाद देखा कि अद्वितीय परब्रह्म गोपवंशके बालकका सा नाट्य कर रहा है। एक होनेपर भी उसके सखा हैं, अनन्त होनेपर भी वह इधर उधर घूम रहा है और उसका ज्ञान अगाध होनेपर भी वह अपने ग्वालबाल और बछड़ोंको ढूँढ रहा है। ब्रह्माजीने देखा कि जैसे भगवान् श्रीकृष्ण पहले अपने हाथमें दही-भातका कौर लिये उन्हें ढूँढ रहे थे, वैसे ही अब भी अकेले ही उनकी खोजमें लगे हैं। भगवान्को देखते ही ब्रह्माजी अपने वाहन हंसपरसे कूद पड़े और सोनेके समान चमकते हुए अपने शरीरसे पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिर पड़े। उन्होंने अपने चारों मुकुटोंके अग्रभागसे भगवान्के चरणकमलोंका स्पर्श करके नमस्कार किया और आनन्दके आँसुओंकी धारासे उन्हें नहला दिया। वे भगवान् श्रीकृष्णकी पहले देखी हुई महिमाका बार-बार स्मरण करते, उनके चरणोंपर गिरते और उठ-उठकर फिर-फिर गिर पड़ते। इसी प्रकार बहुत देरतक वे भगवान्के चरणोंमें ही पड़े रहे। फिर धीरे धीरे उठे और अपने नेत्रोंके आँसू पोंछे। प्रेम और मुक्तिके एकमात्र उद्गम भगवान्को देखकर उनका सिर झुक गया। वे काँपने लगे। अञ्जलि बाँधकर बड़ी नम्रता और एकाग्रताके साथ गद्गद वाणीसे वे भगवान्की स्तुति करने लगे॥ ५६—६४॥

किसीकी शक्ति नहीं है, अधिककी तो बात ही क्या। वास्तवमें ऐसी लीलाओंसे ही यह बात जान पड़ती है कि शरीर-धारियोंमें शरीररहित आपने अवतार धारण किया है। प्रभो! आपने समस्त लोकोंके अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये इस समय अपनी सम्पूर्ण शक्तियोंसे अवतार ग्रहण किया है। आप समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। परम कल्याणस्वरूप! आपको नमस्कार है। परम मङ्गलस्वरूप! आपको नमस्कार है। परम शान्त! सबके हृदयमें विहार करनेवाले यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्णको नमस्कार है। अनन्त! हम आपके दासानुदास हैं। आप यह स्वीकार कीजिये। देवर्षि भगवान् नारदके परम अनुग्रहसे ही हम अपराधियोंको आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। अब आज्ञा दीजिये, हम अपने घर जायँ। परन्तु वहाँ हम आपको भूल न जायँ! प्रभो! हमारी वाणी आपके मङ्गलमय गुणोंका वर्णन करती रहे। हमारे कान आपकी रसमयी कथामें लगे रहें। हमारे हाथ आपकी सेवामें और मन आपके चरण-कमलोंकी स्मृतिमें रम जायँ। यह सम्पूर्ण जगत् आपका निवासस्थान है। हमारा मस्तक सबके सामने झुका रहे। संत आपके प्रत्यक्ष शरीर हैं। हमारी आँखें उन्हें देखा करें॥ २९—३८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान्की लीला बड़ी विलक्षण है। गोकुलेश्वर श्रीकृष्णने नलकूबर और मणिग्रीवके इस प्रकार स्तुति करनेपर रस्सीसे ऊखलमें बँधे-बँधे ही हँसते हुए उनसे कहा—॥ ३९॥

श्रीभगवान्ने कहा—मैं पहलेसे ही यह बात जानता था कि तुमलोग श्रीमदसे अंधे हो रहे थे; और परम कारुणिक देवर्षि नारदने शाप देकर तुम्हारा ऐश्वर्य नष्ट कर दिया तथा इस प्रकार तुम्हारे ऊपर कृपा की। जिन लोगोंका चित्त नित्य-निरन्तर मुझमें लगा रहता है और संसारके प्राणियोंमें जो छोटे-बड़ेका भेदभाव नहीं रखते उनके दर्शनसे संसारका बन्धन नहीं मिलता, मुक्ति मिलती है। भला, सूर्य कभी नेत्रोंको अन्धकारमें डालते हैं? इसलिये नलकूबर और मणिग्रीव! तुमलोग मेरे परायण होकर अपने-अपने घर जाओ। तुमलोग मेरी वह अनन्य भक्ति चाहते थे, जिससे संसारका बन्धन मिट जाता है। जाओ, वह तुमलोगोंको प्राप्त हो गयी॥ ४०—४२॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—जब भगवान्ने इस प्रकार कहा, तब उन दोनोंने उनकी परिक्रमा की और बार-बार प्रणाम किया। इसके बाद ऊखलमें बँधे हुए सर्वेश्वरकी आज्ञा प्राप्त करके उन लोगोंने उत्तर दिशाकी यात्रा की॥ ४३॥

ग्यारहवाँ अध्याय

गोकुलसे वृन्दावन जाना तथा वत्सासुर और बकासुरका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! वृक्षोंके गिरनेसे जो भयङ्कर शब्द हुआ था, उसे नन्दबाबा आदि गोपोंने भी सुना। उनके मनमें यह शङ्का हुई कि कहीं बिजली तो नहीं गिरी! सब-के-सब भयभीत होकर वृक्षोंके पास आ गये। वहाँ पहुँचनेपर उन लोगोंने देखा कि दोनों अर्जुनके वृक्ष गिरे हुए हैं। परीक्षित्! यद्यपि वृक्ष गिरनेका कारण स्पष्ट था—वहीं उनके सामने ही रस्सीमें बँधा हुआ बालक ऊखल खींच रहा था, परन्तु वे समझ न सके। 'यह किसका काम है, ऐसी आश्चर्यजनक दुर्घटना कैसे घट गयी?'—यह सोचकर वे कातर हो गये, उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी। वहाँ कुछ बालक खेल रहे थे। उन्होंने कहा—'अरे, इसी कन्हैयाका तो काम है। यह दोनों वृक्षोंके बीचमेंसे होकर निकल रहा था। ऊखल तिरछा हो जानेपर दूसरी ओरसे इसने उसे खींचा और वृक्ष गिर पड़े। हमने तो इनमेंसे निकलते हुए दो पुरुष भी देखे हैं।' परन्तु गोपोंने बालकोंकी बात नहीं मानी। वे कहने लगे—'एक नन्हा-सा बच्चा इतने बड़े वृक्षोंको उखाड़ डाले, यह कभी सम्भव नहीं है।' किसी-किसीके चित्तमें श्रीकृष्णकी पहलेकी लीलाओंका स्मरण करके सन्देह भी हो आया कि शायद इसीने उन्हें गिरा दिया हो! नन्दबाबाने देखा उनका प्राणोंसे प्यारा बच्चा रस्सीसे बँधा हुआ ऊखल घसीटता जा रहा है। वे हँसने लगे और जल्दीसे जाकर उन्होंने रस्सीकी गाँठ खोल दी॥ १—६॥

परीक्षित्! भगवान्की एक-से-एक बढ़कर अनेकों लीलाएँ हैं। सर्वशक्तिमान् भगवान् कभी-कभी गोपियोंके फुसलानेसे साधारण बालकोंके समान नाचने लगते। कभी भोलेभाले अनजान बालककी तरह गाने लगते। कहाँतक कहूँ, वे उनके हाथकी कठपुतली हो गये थे। कभी उनकी आज्ञासे पीढ़ा ले आते, तो कभी दुसेरी आदि तौलनेके बटखरे उठा लाते। कभी खड़ाऊँ ले आते, तो कभी अपने प्रेमी भक्तोंको आनन्दित करनेके लिये पहलवानोंकी तरह

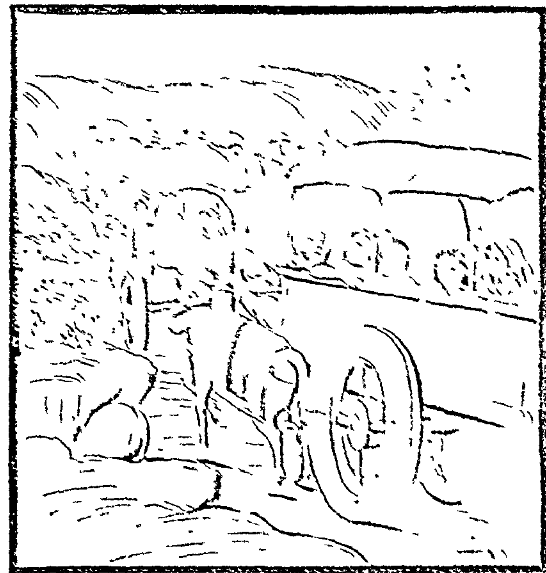
ब्रह्म-स्तुति



ब्रह्माजी अत्यन्त दीनताके साथ श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे ।

छूटा। इसके बाद भगवान्‌की दूसरी कृपा यह हुई कि इसके ऊपर उतना बड़ा छकड़ा गिरते-गिरते बचा। उसके बाद तो बहुत बड़ी विपत्ति आयी। बवंडररूपधारी दैत्य तो इसे आकाशमें ही उठा ले गया था। परन्तु वहाँसे जब वह चट्टानपर गिरा, तब भी हमारे कुलदेवताओंने ही इस बालककी रक्षा की। यमलार्जुन वृक्षोंके गिरनेके समय उनके बीचमें आकर भी यह था और कोई बालक न मरा। इससे भी यही समझना चाहिये कि भगवान्‌ने हमारी रक्षा की। इसलिये जबतक कोई बहुत बड़ा अनिष्टकारी अरिष्ट हमें और हमारे व्रजको नष्ट न कर दे; तबतक हमलोग अपने बच्चों और अनुचरोंको लेकर यहाँसे अन्यत्र चले चलें। यहाँसे थोड़ी ही दूरपर 'वृन्दावन' नामका एक वन है। उसमें छोटे-छोटे और भी बहुत-से नये-नये हरे-भरे वन हैं। वहाँ बड़ा ही पवित्र पर्वत, घास और हरी-भरी लता-वनस्पतियाँ हैं। हमारे पशुओंके लिये तो वह बहुत ही हितकारी है। गोप, गोपी और गायोंके लिये वह केवल सुविधाका ही नहीं, सेवन करनेयोग्य स्थान है। सो यदि तुम सब लोगोंको यह बात जँचती हो तो आज ही हमलोग वहाँके लिये कूच कर दें। देर न करें, गाड़ी-छकड़े जोतें और पहले गायोंको, जो हमारी एकमात्र सम्पत्ति हैं, वहाँ भेज दें' ॥ २१—२९ ॥

उपनन्दकी बात सुनकर सभी गोपोंने एक स्वरसे कहा—'बहुत ठीक, बहुत ठीक।' इस विषयमें किसीका भी मतभेद न था। सब लोगोंने अपनी झुंड-की-झुंड गायें इकट्ठी कीं और छकड़ोंपर घरकी सब सामग्री लादकर वृन्दावनके लिये चल पड़े। परीक्षित्! ग्वालोंने बूढ़ों, बच्चों, स्त्रियों और सब सामग्रियोंको छकड़ोंपर चढ़ा दिया और स्वयं उनके पीछे-पीछे धनुष-बाण लेकर बड़ी सावधानीसे चलने लगे। उन्होंने गौ और बछड़ोंको तो सबसे आगे कर लिया और उनके पीछे-पीछे सींग और तुरही जोर-जोरसे बजाते हुए चले। उनके साथ-ही-साथ पुरोहित-लोग भी चल रहे थे। गोपियाँ अपने-अपने वक्षःस्थलपर नयी केसर लगाकर, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र पहनकर गलेमें सोनेके हार धारण किये हुए रथोंपर सवार थीं और बड़े आनन्दसे भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके गीत गाती जाती थीं। यशोदारानी और रोहिणीजी भी वैसे ही सज-धजकर अपने-



अपने प्यारे पुत्र श्रीकृष्ण तथा बलरामके साथ एक छकड़ेपर शोभायमान हो रही थीं। वे अपने दोनों बालकोंकी तोतली बोली सुन-सुनकर भी अघाती न थीं, और-और सुनना चाहती थीं। वृन्दावन बड़ा ही सुन्दर वन है। चाहे कोई भी ऋतु हो, वहाँ सुख-ही-सुख है। उसमें प्रवेश करके ग्वालोंने अपने छकड़ोंको अर्द्धचन्द्राकार मण्डल बाँधकर खड़ा कर दिया और अपने गोधनके रहनेयोग्य स्थान बना लिया। परीक्षित्! वृन्दावनका हरा-भरा वन, अत्यन्त मनोहर गोवर्धन पर्वत और यमुना नदीके सुन्दर-सुन्दर पुलिनोंको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३०—३६ ॥

राम और श्याम दोनों ही अपनी तोतली बोली और अत्यन्त मधुर बालोचित लीलाओंसे गोकुलकी ही तरह वृन्दावनमें भी व्रजवासियोंको आनन्द देते रहे। थोड़े ही दिनोंमें समय आनेपर वे बछड़े चराने लगे। दूसरे ग्वालबालों-के साथ खेलनेके लिये बहुत-सी सामग्री लेकर वे घरसे निकल पड़ते और गोशालाके पास ही अपने बछड़ोंको चराते। श्याम और राम कहीं बाँसुरी बजा रहे हैं तो कहीं गुलेल या ढेलवाँससे ढेले या गोलियाँ फेंक रहे हैं। किसी समय अपने पैरोंके घुँघरूपर तान छेड़ रहे हैं तो कहीं

सो भगवन्! आपकी महिमाका ज्ञान तो बड़ा ही कठिन है। इसलिये जो पुरुष क्षण-क्षणपर बड़ी उत्सुकतासे इस बातकी बाट देखता रहता है कि आपकी कृपा कब होगी, और प्रारब्धके अनुसार जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त होता है उसे निर्विकार मनसे भोग लेता है, एवं जो प्रेमपूर्ण हृदय, गद्गद वाणी और पुलकित शरीरसे अपनेको आपके चरणोंमें समर्पित करता रहता है—इस प्रकार जीवन व्यतीत करनेवाला पुरुष ठीक वैसे ही आपके परमपदका अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिताकी सम्पत्तिका पुत्र!॥५–८॥

प्रभो! मेरी कुटिलता तो देखिये। आप अनन्त आदि पुरुष परमात्मा हैं और मेरे जैसे बड़े बड़े मायावी भी आपकी मायाके चक्रमें हैं। फिर भी मैंने आपपर अपनी माया फैला कर अपना ऐश्वर्य देखना चाहा! प्रभो! मैं आपके सामने हूँ ही क्या। क्या आगके सामने चिनगारीकी भी कुछ गिनती है? भगवन्! मैं रजोगुणसे उत्पन्न हुआ हूँ। आपके स्वरूपको मैं ठीक ठीक नहीं जानता। इसीसे अपनेको आपसे अलग संसारका स्वामी माने बैठा था। मैं अजन्मा जगत्कर्ता हूँ—इस मायाकृत मोहके घने अन्धकारसे मैं अंधा हो रहा था। इसलिये आप यह समझकर कि 'यह मेरे ही अधीन है—मेरा भृत्य है, इसपर कृपा करनी चाहिये,' मेरा अपराध क्षमा कीजिये। मेरे स्वामी! प्रकृति, महत्तत्त्व, अहङ्कार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वीरूप आवरणों से घिरा हुआ यह ब्रह्माण्ड ही मेरा शरीर है। और आपके एक एक रोएँके छिद्रमें ऐसे ऐसे अगणित ब्रह्माण्ड उसी प्रकार उड़ते पड़ते रहते हैं, जैसे झरोखेकी जालीमेंसे आनेवाली सूर्यकी किरणोंमें रजके छोटे-छोटे परमाणु उड़ते हुए दिखायी पड़ते हैं। कहाँ अपने परिमाणसे साढ़े तीन हाथके शरीरवाला अत्यन्त क्षुद्र मैं, और कहाँ आपकी अनन्त महिमा! वृत्तियोंकी पकड़में न आनेवाले परमात्मन्! जब बच्चा माताके पेटमें रहता है, तब अज्ञानवश अपने हाथ पैर पीटता है, परन्तु क्या माता उसे अपराध समझती है या उसके लिये वह कोई अपराध होता है? 'है' और 'नहीं है'—इन शब्दोंसे कही जानेवाली कोई भी वस्तु ऐसी है क्या, जो आपके भीतर न हो! ऐसी स्थितिमें मैं भी तो आपकी कोखमें ही हूँ। इसलिये मेरा अपराध क्षमा कीजिये॥९–१२॥

यही नहीं—श्रुतियाँ कहती हैं कि जिस समय तीनों लोक प्रलयकालीन जलमें लीन थे, उस समय उस जलमें स्थित श्रीनारायणके नाभिकमलसे ब्रह्माका जन्म हुआ। उनका यह कहना किसी प्रकार असत्य नहीं हो सकता। तब आप ही बतलाइये, प्रभो! क्या मैं आपका पुत्र नहीं हूँ? प्रभो! आप समस्त जीवोंके आत्मा हैं। इसलिये आप नारायण (नार—जीव और अयन—आश्रय) हैं। आप समस्त जगत्के और जीवोंके अधीश्वर हैं, इसलिये आप नारायण (नार—जीव और अयन—प्रवर्तक) हैं। आप समस्त लोकोंके साक्षी हैं, इसलिये भी नारायण (नार—जीव और अयन—जाननेवाला) हैं। नरसे उत्पन्न होनेवाले जलमें निवास करनेके कारण जिन्हें नारायण (नार—जल और अयन—निवासस्थान) कहा जाता है, वे भी आपके एक अंश ही हैं। परन्तु सच्ची बात तो यह है कि आप किसी भी देश या कालमें अंशरूपसे नहीं रहते, पूर्णरूपसे ही रहते हैं, इसीलिये वह अंशरूपसे दीखना आपकी माया ही है। भगवन्! यदि आपका वह विराट् स्वरूप सचमुच उस समय जलमें ही था तो मैंने उसी समय उसे क्यों नहीं देखा, जब कि मैं कमलनालके मार्गसे उसे सौ वर्षतक जलमें ढूँढ़ता रहा? फिर मैंने जब तपस्या की, तब उसी समय मेरे हृदयमें उसका दर्शन कैसे हो गया? और फिर कुछ ही क्षणोंमें वह पुनः क्यों नहीं दीखा, अन्तर्धान क्यों हो गया? इससे सिद्ध है कि वह आपकी एक लीलामात्र थी। मायाका नाश करनेवाले प्रभो! दूरकी बात कौन करे—अभी इसी अवतारमें आपने इस बाहर दीखनेवाले जगत्को अपने पेटमें ही दिखला दिया, जिसे देखकर माता यशोदा चकित हो गयी थीं। इससे यही तो सिद्ध होता है कि यह सम्पूर्ण विश्व केवल आपकी माया ही माया है! जब आपके सहित यह सम्पूर्ण विश्व जैसा बाहर दीखता है वैसा ही आपके उदरमें भी दीखा, तो क्या यह सब आपकी मायाके बिना ही आपमें प्रतीत हुआ? अवश्य ही आपकी लीला है। उस दिनकी बात जाने दीजिये, आजकी ही लीजिये। क्या आज आपने मेरे सामने अपने अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्वको अपनी मायाका खेल नहीं दिखलाया है? पहले आप अकेले थे। फिर सम्पूर्ण ग्वालबाल, बछड़े और छड़ी-छीके भी आप ही हो गये। उसके बाद मैंने देखा कि आपके वे सब रूप चतुर्भुज हैं और मेरे-सहित सब-के सब तत्त्व उनकी सेवा कर रहे हैं। आपने अलग-अलग उतने ही ब्रह्माण्डोंका रूप भी धारण कर लिया था, परन्तु अब आप केवल अपरिमित अद्वितीय ब्रह्मरूपसे ही शेष रह गये हैं। प्रभो! केवल आप ही-आप हैं। आपके अतिरिक्त और सब आपकी लीला है॥१३–१८॥

भगवान्‌के स्पर्शमात्रसे उसके सारे पाप धुल गये और उसे उस सारूप्य-मुक्तिकी प्राप्ति हुई, जो पापियोंको कभी मिल नहीं सकती। परन्तु यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। क्योंकि मनुष्य-बालककी-सी लीला रचनेवाले ये वे ही परम-पुरुष परमात्मा हैं, जो व्यक्त-अव्यक्त और कार्य-कारणरूप समस्त जगत्‌के एकमात्र विधाता हैं। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके किसी एक अङ्गकी भावनिर्मित प्रतिमा यदि ध्यानके द्वारा एक बार भी हृदयमें बैठा ली जाय, तो उससे वह गति प्राप्त होती है जो भगवान्‌के बड़े-बड़े भक्तोंको मिलती है। तुम जानते हो कि भगवान् आत्मानन्दके नित्य साक्षात्कारस्वरूप हैं। माया उनके पासतक नहीं फटक पाती। वे ही स्वयं अघासुरके शरीरमें प्रवेश कर गये। क्या अब भी उसकी सद्‌गतिके विषयमें कोई सन्देह है? ॥ ३०—३९ ॥

सूतजी कहते हैं—शौनकादि ऋषियो! यदुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने ही राजा परीक्षित्‌को जीवन-दान दिया था! उन्होंने जब अपने रक्षक एवं जीवनसर्वस्वका यह विचित्र चरित्र सुना, तब उन्होंने फिर श्रीशुकदेवजी महाराजसे उन्हींकी पवित्र लीलाके सम्बन्धमें प्रश्न किया। इसका कारण यह था कि भगवान्‌की अमृतमयी लीलाने परीक्षित्‌के चित्तको अपने वशमें कर रक्खा था ॥ ४० ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आपने कहा था कि ग्वालबालोंने भगवान्‌की की हुई पाँचवें वर्षकी लीला व्रजमें छठे वर्षमें जाकर कही। अब इस विषयमें आप कृपा करके यह बतलाइये कि एक समयकी लीला दूसरे समयमें वर्तमान-कालीन कैसे हो सकती है? मेरे सर्वज्ञ गुरुदेव! मुझे इस आश्चर्यपूर्ण रहस्यको जाननेके लिये बड़ा कौतूहल हो रहा है। आप कृपा करके बतलाइये। अवश्य ही इसमें भगवान् श्रीकृष्णकी विचित्र घटनाओंको घटित करनेवाली मायाका कुछ-न-कुछ काम होगा। क्योंकि और किसी प्रकार ऐसा कैसे हो सकता है? गुरुदेव! यद्यपि क्षत्रियोचित धर्म ब्राह्मण-सेवासे विमुख होनेके कारण मैं अपराधी नाममात्रका क्षत्रिय हूँ, तथापि हमारा अहोभाग्य है कि हम आपके मुखारविन्दसे निरन्तर झरते हुए परम पवित्र मधुमय श्रीकृष्णलीलामृतका पान कर रहे हैं ॥ ४१—४३ ॥

सूतजी कहते हैं—भगवान्‌के परम प्रेमी भक्तोंमें श्रेष्ठ शौनकजी! जब राजा परीक्षित्‌ने इस प्रकार प्रश्न किया, तब श्रीशुकदेवजीको भगवान्‌की वह लीला स्मरण हो आयी। और उनकी समस्त इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण विवश होकर भगवान्‌की नित्यलीलामें खिंच गये। कुछ समयके बाद धीरे-धीरे श्रम और कष्टसे उन्हें बाह्यज्ञान हुआ। तब वे परीक्षित्‌से भगवान्‌की लीलाका वर्णन करने लगे ॥ ४४ ॥

तेरहवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका मोह और उसका नाश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! तुम बड़े भाग्यवान् हो। तुम्हारे हृदयमें भगवान्‌का परम प्रेम है। तभी तो तुमने इतना सुन्दर प्रश्न किया है। यों तो तुम्हें बार-बार भगवान्‌की लीला-कथाएँ सुननेको मिलती हैं, फिर भी तुम उनके सम्बन्धमें प्रश्न करके उन्हें और भी सरस—और भी नूतन बना देते हो। रसिक संतोंकी वाणी, हृदय और कान भगवान्‌की लीलाके गायन, श्रवण और चिन्तनके लिये ही होते हैं—उनका यह स्वभाव ही होता है कि वे क्षण-प्रतिक्षण भगवान्‌की लीलाओंको अपूर्व रसमयी और नित्य-नूतन अनुभव करते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे लम्पट पुरुषोंको स्त्रियोंकी चर्चामें नया-नया रस जान पड़ता है। परीक्षित्! तुम एकाग्र चित्तसे श्रवण करो। यद्यपि भगवान्‌की यह लीला अत्यन्त रहस्यमयी है, फिर भी मैं तुम्हें सुनाता हूँ। क्योंकि दयालु आचार्यगण अपने प्रेमी शिष्यको गुप्त रहस्य भी बतला दिया करते हैं। यह तो मैं तुमसे कह ही चुका हूँ कि भगवान् श्रीकृष्णने अपने साथी ग्वालबालोंको मृत्युरूप अघासुरके मुँहसे बचा लिया। इसके बाद वे उन्हें यमुनाके पुलिनपर ले आये और उनसे कहने लगे—'मेरे प्यारे मित्रो! यमुनाजीका यह पुलिन अत्यन्त रमणीय है। देखो तो सही, यहाँकी बालू कितनी कोमल और स्वच्छ है! हमलोगोंके लिये खेलनेकी तो यहाँ सभी सामग्री मौजूद है। देखो, एक ओर रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं और उनकी सुगन्धसे खिंचकर भौंरे गुंजार कर रहे हैं; तो दूसरी ओर हरे-भरे वृक्षोंपर सुन्दर-सुन्दर पक्षी बड़ा ही मधुर कलरव कर रहे हैं, जिसकी प्रतिध्वनि जलमें सुनायी दे रही है। अब हमलोगोंको यहाँ भोजन कर लेना चाहिये। क्योंकि दिन बहुत चढ़ आया है और हमलोगोंको भूख भी खूब लग गयी है। बछड़ोंकी चिन्ता मत करो। उन्हें पानी

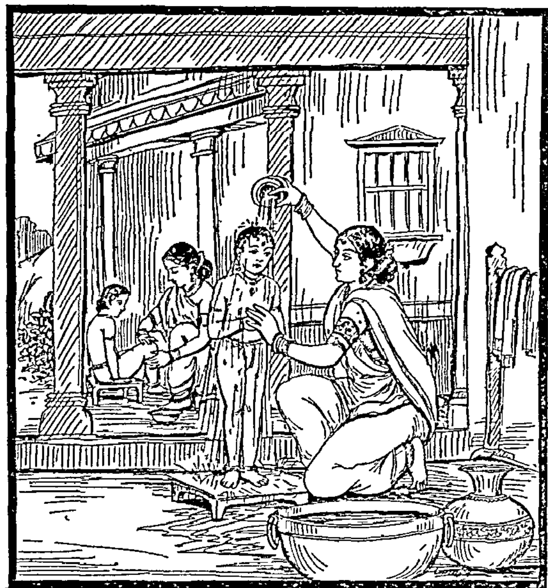
अहो, नन्द आदि व्रजवासी गोपोंके धन्य भाग्य हैं। वास्तवमें उनका अहोभाग्य है। क्योंकि परमानन्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्म आप उनके अपने सगे-सम्बन्धी और सुहृद् हैं। हे अच्युत ! इन व्रजवासियोंके सौभाग्यकी महिमा तो अलग रही—मन आदि ग्यारह इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ-देवताके रूपमें रहनेवाले महादेव आदि हमलोग बड़े ही भाग्यवान् हैं। क्योंकि इन व्रजवासियोंकी मन आदि ग्यारह इन्द्रियोंको प्याले बनाकर हम आपके चरणकमलोंका अमृतसे भी मीठा, मदिरासे भी मादक मधुर मकरन्द-रस पान करते रहते हैं। जब उसका एक एक इन्द्रियसे पान करके हम धन्य-धन्य हो रहे हैं, तब समस्त इन्द्रियोंसे उसका सेवन करनेवाले व्रजवासियोंकी तो बात ही क्या है ! प्रभो ! इस व्रजभूमिके किसी वनमें और विशेष करके गोकुलमें किसी भी योनिमें जन्म हो जाय, यही हमारे लिये बड़े सौभाग्यकी बात होगी ! क्योंकि यहाँ जन्म हो जानेपर आपके किसी न किसी प्रेमीके चरणोंकी धूलि अपने ऊपर पड़ ही जायगी। प्रभो ! आपके प्रेमी व्रजवासियोंका सम्पूर्ण जीवन आपका ही जीवन है। आप ही उनके जीवनके एकमात्र सर्वस्व हैं। इसलिये उनके चरणोंकी धूलि मिलना आपके ही चरणोंकी धूलि मिलना है। और आपके चरणोंकी धूलिको तो श्रुतियाँ भी अनादि कालसे अबतक ढूँढ ही रही हैं। देवताओंके भी आराध्यदेव प्रभो ! इन व्रजवासियोंको इनकी सेवाके बदलेमें आप क्या फल देंगे ? सम्पूर्ण फलोंके फलस्वरूप ! आपसे बढ़कर और कोई फल तो है ही नहीं, यह सोचकर मेरा चित्त मोहित हो रहा है। आप उन्हें अपना स्वरूप भी देकर उऋण नहीं हो सकते। क्योंकि आपके स्वरूपको तो उस पूतनाने भी अपने सम्बन्धियों—अघासुर, बकासुर आदिके साथ प्राप्त कर लिया, जिसका केवल वेष ही साध्वी स्त्रीका था पर जो हृदयसे महान् क्रूर थी। फिर, जिन्होंने अपने घर, धन, स्वजन, प्रिय, शरीर, पुत्र, प्राण और मन—सब कुछ आपके ही चरणोंमें समर्पित कर दिया है, जिनका सब कुछ आपके ही लिये है, उन व्रज-वासियोंको भी वही फल देकर आप कैसे उऋण हो सकते हैं ? सच्चिदानन्दस्वरूप श्यामसुन्दर ! तभीतक राग द्वेष आदि दोष चोरोंके समान सर्वस्व अपहरण करते रहते हैं, तभीतक घर और उसके सम्बन्धी कैदकी तरह सम्बन्धके बन्धनोंमें बाँध रखते हैं और तभीतक मोह पैरकी बेड़ियोंकी तरह जकड़े रखता है—जबतक जीव आपकी शरणमें नहीं आ जाता, आपका नहीं हो जाता। प्रभो ! आप विश्वके बखेड़ेसे सर्वथा रहित हैं, फिर भी अपने शरणागत भक्तजनोंको अनन्त आनन्द वितरण करनेके लिये पृथ्वीमें अवतार लेकर विश्वके समान ही लीलाविलासका विस्तार करते हैं। मेरे स्वामी ! बहुत कहनेकी आवश्यकता नहीं—जो लोग आपकी महिमा जानते हैं, वे जानते रहें; मेरे मन, वाणी और शरीर तो आपकी महिमा जाननेमें सर्वथा असमर्थ हैं। सच्चिदानन्द-स्वरूप श्रीकृष्ण ! आप सबके साक्षी हैं। इसलिये आप सब कुछ जानते हैं। आप समस्त जगत्‌के स्वामी हैं। यह सम्पूर्ण प्रपञ्च आपमें ही स्थित है। आपसे मैं और क्या कहूँ ? अब आप मुझे स्वीकार कीजिये। मुझे अपने लोकमें जानेकी आज्ञा दीजिये। सबके मन प्राणको अपनी रूप-माधुरीसे आकर्षित करनेवाले श्यामसुन्दर ! आप यदुवंशके कमलको विकसित करनेवाले सूर्य हैं। प्रभो ! पृथ्वी, देवता, ब्राह्मण और पशुरूप समुद्रकी अभिवृद्धि करनेवाले आप चन्द्रमा भी हैं। आप पाखण्डियोंके धर्मरूप रात्रिका घोर अन्धकार नष्ट करनेके लिये सूर्य और चन्द्रमा दोनोंके ही समान हैं। पृथ्वीपर रहनेवाले राक्षसोंके नष्ट करनेवाले आप चन्द्रमा, सूर्य आदि समस्त देवताओंके भी परम पूजनीय हैं। भगवन् ! मैं अपने जीवनभर, महाकल्पपर्यन्त आपको नमस्कार ही करता रहूँ ॥२९–४०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! संसारके रचयिता ब्रह्माजीने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की। इसके बाद उन्होंने तीन बार परिक्रमा करके उनके चरणोंमें प्रणाम किया और फिर अपने गन्तव्य स्थान सत्यलोकमें चले गये। ब्रह्माजीने बछड़ों और ग्वालबालोंको पहले ही यथास्थान पहुँचा दिया था। भगवान् श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको विदा कर दिया और बछड़ोंको लेकर यमुनाजीके पुलिनपर आये, जहाँ वे अपने सखा ग्वालबालोंको पहले छोड़ गये थे। परीक्षित् ! अपने जीवनसर्वस्व—प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके वियोगमें यद्यपि एक वर्ष बीत गया था, तथापि उन ग्वालबालोंको वह समय आधे क्षणके समान जान पड़ा। क्यों न हो, वे भगवान्‌की विश्वविमोहिनी योगमायासे मोहित जो हो गये थे। जगत्‌के सभी जीव उसी मायासे मोहित होकर शास्त्र और आचार्योंके

ब्रह्माजी पहलेसे ही आकाशमें उपस्थित थे। अघासुरका मोक्ष देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि लीलासे मनुष्य-बालक बने हुए सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी कोई और मनोहर महिमामयी लीला देखनी चाहिये। ऐसा सोचकर उन्होंने पहले तो बछड़ोंको, और भगवान् श्रीकृष्णके चले जानेपर ग्वालबालोंको भी, अन्यत्र ले जाकर रख दिया और स्वयं अन्तर्धान हो गये॥ १२–१५॥

भगवान् श्रीकृष्ण बछड़े न मिलनेपर यमुनाजीके पुलिन-पर लौट आये, परन्तु यहाँ क्या देखते हैं कि ग्वालबाल भी नहीं हैं। तब उन्होंने वनमें घूम-घूमकर चारों ओर बछड़ों और ग्वालबालोंको ढूँढ़ा। परन्तु जब वे उन्हें कहीं न मिले, तब वे तुरंत जान गये कि यह सब ब्रह्माकी करतूत है। भला, उनसे क्या छिपा रहता? वे तो सारे विश्वके एकमात्र ज्ञाता हैं! अब भगवान् श्रीकृष्णने बछड़ों और ग्वालबालोंकी माताओंको तथा ब्रह्माजीको भी आनन्दित करनेके लिये अपने-आपको ही बछड़ों और ग्वालबालों—दोनोंके रूपमें बना लिया। उनके लिये यह क्या कठिन था। वे ही तो सम्पूर्ण विश्वके कर्ता हैं। परीक्षित्! वे बालक और बछड़े संख्यामें जितने थे, जितने छोटे-छोटे उनके शरीर थे, उनके हाथ-पाँव जैसे-जैसे थे, उनके पास जितनी और जैसी छड़ियाँ, सींग, बाँसुरी, पत्ते और छीके थे, जैसे और जितने वस्त्राभूषण थे, उनके शील, स्वभाव, गुण, नाम, रूप और अवस्थाएँ जैसी थीं, जिस प्रकार वे खाते-पीते और चलते थे, ठीक वैसे ही और उतने ही रूपोंमें भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उस समय 'यह सम्पूर्ण जगत् विष्णुरूप है'—यह वेदवाणी प्रत्यक्ष हो गयी। पहले जो भगवान्‌की लीलामें भेदभाव मालूम पड़ रहा था, उसके मिट जानेसे उनकी शोभा और भी बढ़ गयी। सर्वात्मा भगवान् स्वयं ही बछड़े बन गये, और स्वयं ही ग्वालबाल। अपने आत्मस्वरूप बछड़ोंको अपने आत्मस्वरूप ग्वालबालोंके द्वारा घेरकर अपने ही साथ अनेकों प्रकारके खेल खेलते हुए उन्होंने व्रजमें प्रवेश किया। जिस ग्वालबालके जो बछड़े थे, उन्हें उसी ग्वालबालके रूपसे अलग-अलग ले जाकर उसकी बाखलमें घुसा दिया और विभिन्न बालकोंके रूपमें उनके भिन्न-भिन्न घरोंमें चले गये॥ १६–२१॥

ग्वालबालोंकी माताएँ बाँसुरीकी तान सुनते ही जल्दीसे दौड़ आयीं। ग्वालबाल बने हुए परब्रह्म श्रीकृष्णको अपने बच्चे समझकर हाथोंसे उठाकर उन्होंने जोरसे हृदयसे लगा लिया। उनके स्तनोंसे वात्सल्य-स्नेहकी अधिकताके कारण सुधासे भी मधुर और आसवसे भी मादक दूधकी बूँदें टपक रही थीं। वे अपने पुत्रोंको स्तन-पान कराने लगीं। परीक्षित्! इसी प्रकार प्रतिदिन सन्ध्यासमय भगवान् श्रीकृष्ण उन ग्वालबालोंके रूपमें वनसे लौट आते और अपनी बालसुलभ लीलाओंसे माताओंको आनन्दित करते। वे माताएँ उन्हें



उबटन लगातीं, नहलातीं, चन्दनका लेप करतीं और अच्छे-अच्छे वस्त्रों तथा गहनोंसे सजातीं। दोनों भौंहोंके बीचमें नजरसे बचानेके लिये काजलका डिठौना लगा देतीं तथा भोजन करातीं और तरह-तरहसे बड़े लाड़-प्यारसे उनका लालन-पालन करतीं। ग्वालिनोंके समान गौएँ भी जब जङ्गलोंमेंसे चरकर जल्दी-जल्दी लौटतीं और उनकी हुंकार सुनकर उनके प्यारे बछड़े दौड़कर उनके पास आ जाते, तो वे बार-बार उन्हें अपनी जीभसे चाटतीं और अपना दूध पिलातीं। परीक्षित्! उस समय स्नेहकी अधिकताके कारण उनके थनोंसे स्वयं ही दूधकी धारा बहने लगती। इन गायों और ग्वालिनोंके बच्चे पहलेवाले न थे, स्वयं भगवान् थे। फिर भी उनका मातृभाव पहले-जैसा ही ऐश्वर्यज्ञानरहित और विशुद्ध था। हाँ, अपने असली पुत्रोंकी अपेक्षा इस समय

नौकाका आश्रय ले लेते हैं, उनके लिये यह भवसागर बछड़ेके खुरके गड्ढेके समान हो जाता है। इसे पार करनेमें उन्हें कुछ भी श्रम नहीं होता। पद-पदपर उन्हें परमपदका साक्षात्कार होता रहता है! विपत्तियोंसे भरा-पूरा यह संसार उन्हें कभी नहीं प्राप्त होता! ॥५०-५८॥

परीक्षित्! तुमने मुझसे पूछा था कि भगवान्के पाँचवें वर्षकी लीला ग्वालबालोंने छठे वर्षमें कैसे कही; उसका सारा रहस्य मैंने तुम्हें बतला दिया। भगवान् श्रीकृष्णकी ग्वालबालोंके साथ वनक्रीड़ा, अघासुरको मारना, हरी हरी घाससे युक्त भूमिपर बैठकर भोजन करना, अप्राकृतरूपधारी बछड़ों और ग्वालबालोंका प्रकट होना और ब्रह्माजीके द्वारा की हुई इस महान् स्तुतिको जो मनुष्य सुनता है और कहता है—उस की सारी अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं। परीक्षित्! इस प्रकार श्रीकृष्ण और बलरामने कुमार अवस्थाके उपयुक्त लीलाएँ करते हुए व्रजमें अपनी कुमार अवस्था व्यतीत की। वे कभी आँखमिचौनी खेलते, कभी पुल बाँधते, कभी बंदरोंकी तरह उछलते-कूदते; इस प्रकार अनेकों लीलाएँ करते रहते। ५९-६१।

पंद्रहवाँ अध्याय

धेनुकासुरका उद्धार और ग्वालबालोंको कालिय नागके विषसे बचाना

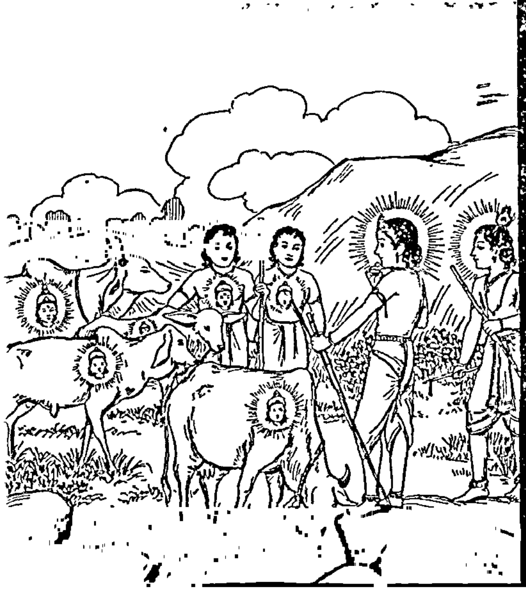
श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अब बलराम और श्रीकृष्णने पौगण्ड अवस्थामें अर्थात् छठे वर्षमें प्रवेश किया। अब उन्हें गौएँ चरानेकी स्वीकृति मिल गयी। वे अपने सखा ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावनमें जाते; उनके चरणचिह्नोंसे वृन्दावनकी भूमि और भी पवित्र होने लगी। एक दिन भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजीके साथ



बाँसुरी बजाते हुए बड़ी सुन्दर लीला करनेकी इच्छासे उस परम मनोहर वनमें प्रवेश किया। उस वनका एक एक वृक्ष और लता पुष्पोंसे लदी हुई थी। गौओंके लिये सब ओर हरी-हरी घास उग रही थी। भगवान्के आगे-आगे गौएँ चल रही थीं और पीछे-पीछे उनकी कीर्तिके मधुर गीत गाते हुए ग्वालबाल चल रहे थे। उस वनमें कहीं तो भौंरे बड़ी मधुर गुंजार कर रहे थे, कहीं झुंड-के झुंड हरिन चौकड़ी भर रहे थे और कहीं सुन्दर-सुन्दर पक्षी चहक रहे थे। बड़े ही सुन्दर-सुन्दर सरोवर थे, जिनका जल महात्माओंके हृदयके समान स्वच्छ और निर्मल था। उनमें खिले हुए कमलोंकी सुरभिसे सुवासित होकर शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु उस वनकी सेवा कर रही थी। इतना मनोहर था वह वन कि उसे देखकर मन-रहित भगवान्ने भी वन विहार करनेके लिये मनको स्वीकार किया। पूर्णकाम भगवान्ने भी कामना की। कहीं-कहीं बड़े-बड़े वृक्ष फल और फूलोंके भारसे इतने लद गये थे कि वे झुक-कर पृथ्वीका स्पर्श कर रहे थे। जब भगवान्ने देखा कि वे अपनी डालियों और नूतन कोंपलोंकी लालिमासे उनके चरणोंका स्पर्श कर रहे हैं, तब उन्होंने बड़े आनन्दसे कुछ मुसकराते हुए-से अपने बड़े भाई बलरामजीसे कहा ॥१-४॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवशिरोमणे! यों तो बड़े-बड़े देवता आपके चरणकमलोंकी पूजा करते हैं; परन्तु देखिये तो, ये वृक्ष भी अपनी डालियोंसे सुन्दर पुष्प और फलोंकी सामग्री लेकर आपके चरणकमलोंमें झुक रहे हैं, नमस्कार कर रहे हैं। क्यों न हो, इन्होंने अपने अज्ञानका नाश करनेके लिये ही तो वृन्दावनधाममें वृक्ष योनि ग्रहण की है। इनका जीवन धन्य है। पुण्यमय पुरुषोत्तम! यद्यपि आप इस वृन्दावनमें अपने ऐश्वर्यरूपको छिपाकर बालकोंकी-सी लीला कर रहे हैं, फिर भी आपके श्रेष्ठ भक्त मुनिगण अपने इष्टदेवको पहचानकर यहाँ भी प्रायः भौंरोंके रूपमें आपके भुवन-पावन यशका निरन्तर गायन करते रहते हैं। वे एक क्षणके लिये भी आपको नहीं छोड़ना चाहते। भाईजी!

ये ग्वालबाल और बछड़े न देवता हैं और न तो कोई ऋषि ही। इन भिन्न-भिन्न रूपोंका आश्रय लेनेपर भी आप



अकेले ही इन रूपोंमें प्रकाशित हो रहे हैं। कृपया स्पष्ट करके थोड़ेमें ही यह बतला दीजिये कि आप इस प्रकार बछड़े, बालक, सींग, रस्सी आदिके रूपमें अलग-अलग क्यों प्रकाशित हो रहे हैं?' तब भगवान्‌ने ब्रह्माकी सारी करतूत सुनायी और बलरामजीने सब बातें जान लीं॥ ३५—३९॥

परीक्षित्! तबतक ब्रह्माजी ब्रह्मलोकसे व्रजमें लौट आये। उनके कालमानसे अबतक केवल एक त्रुटि (जितनी देरमें तीखी सूईसे कमलकी पँखुड़ी छिदे) समय व्यतीत हुआ था। उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण ग्वालबाल और बछड़ोंके साथ एक सालसे पहलेकी भाँति ही क्रीड़ा कर रहे हैं। वे सोचने लगे—'गोकुलमें जितने भी ग्वालबाल और बछड़े थे, उनको तो मैंने अपनी मायासे अचेत कर दिया था; वे तबसे अबतक सचेत नहीं हुए। तब मेरी मायासे मोहित ग्वालबाल और बछड़ोंके अतिरिक्त ये उतने ही दूसरे बालक तथा बछड़े कहाँसे आ गये, जो एक सालसे भगवान्‌के साथ खेल रहे हैं?' ब्रह्माजीने दोनों स्थानोंपर दोनोंको देखा और बहुत देरतक ध्यान करके अपनी ज्ञानदृष्टिसे उनका रहस्य खोलना चाहा; परन्तु इन दोनोंमें कौनसे पहलेके ग्वालबाल हैं और कौन-से पीछे बना लिये गये हैं, इनमेंसे कौन सच्चे हैं और कौन बनावटी—यह बात वे किसी प्रकार न समझ सके। भगवान् श्रीकृष्णकी मायामें तो सभी मुग्ध हो रहे हैं, परन्तु कोई भी माया-मोह भगवान्‌का स्पर्श नहीं कर सकता। ब्रह्माजी उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णको अपनी मायासे मोहित करने चले थे। किन्तु उनको मोहित करना तो दूर रहा, वे अजन्मा होनेपर भी अपनी ही मायासे अपने-आप मोहित हो गये। जिस प्रकार रातके घोर अन्धकारमें कुहरेके अन्धकारका और दिनके प्रकाशमें जुगनूके प्रकाशका पता नहीं चलता, वे अपनी सत्ता और महत्ता खो बैठते हैं—वैसे ही जब क्षुद्र पुरुष महापुरुषोंपर अपनी मायाका प्रयोग करते हैं तब वह उनका तो कुछ बिगाड़ नहीं सकती, अपना ही प्रभाव खो बैठती है॥ ४०—४५॥

ब्रह्माजी विचार कर ही रहे थे कि उनके देखते-देखते उसी क्षण सभी ग्वालबाल और बछड़े श्रीकृष्णके रूपमें दिखायी पड़ने लगे। सब-के-सब सजल जलधरके समान श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे युक्त—



चतुर्भुज। सबके सिरपर मुकुट, कानोंमें कुण्डल और कण्ठोंमें मनोहर हार तथा वनमालाएँ शोभायमान हो रही थीं। वक्षःस्थलपर सुवर्णकी सुनहली रेखा—श्रीवत्स, बाहुओंमें बाजूबंद, कलाइयोंमें शङ्खाकार रत्नोंसे जड़े कंगन, चरणोंमें नूपुर और कड़े, कमरमें करधनी तथा अँगुलियोंमें अँगूठियाँ

बड़े-बड़े पत्तों या अँगोछियोंसे पंखा झलने लगते । किसी-किसीके हृदयमें प्रेमकी धारा उमड़ आती, तो वह धीरे-धीरे भगवान्‌की लीलाओंके अनुरूप उनके मनको प्रिय लगनेवाले मनोहर गीत गाने लगता । भगवान्‌ने इस प्रकार अपनी योगमायासे अपने ऐश्वर्यमय स्वरूपको छिपा रक्खा था । वे ऐसी लीलाएँ करते, जो ठीक ठीक गोपबालकोंकी-सी ही मालूम पड़तीं । स्वयं भगवती लक्ष्मी जिनके चरणकमलोंकी सेवामें संलग्न रहती हैं, वे ही भगवान् इन ग्रामीण बालकोंके साथ बड़े प्रेमसे ग्रामीण खेल खेला करते थे । परीक्षित्! ऐसा होनेपर भी कभी-कभी उनकी ऐश्वर्यमयी लीलाएँ भी प्रकट हो जाया करतीं ॥ ९–१९ ॥

बलरामजी और श्रीकृष्णके सखाओंमें एक प्रधान गोप थे श्रीदामा । एक दिन उन्होंने तथा सुबल और स्तोककृष्ण (छोटे कृष्ण) आदि ग्वालबालोंने श्याम और रामसे बड़े प्रेमके साथ कहा—'हम लोगोंको सर्वदा सुख पहुँचानेवाले बलरामजी! आपके बलकी तो कोई थाह ही नहीं है । हमारे मनमोहन श्रीकृष्ण! दुष्टोंको नष्ट कर डालना तो तुम्हारा स्वभाव ही है । यहाँसे थोड़ी ही दूरपर एक बड़ा भारी वन है । हम उसका क्या वर्णन करें! बस, उसमें ताड़के वृक्ष भरे पड़े हैं । जहाँ देखो, कतार-की-कतार खड़े हैं । वहाँ बहुत-से ताड़के फल पक-पककर गिरते रहते हैं और बहुत-से पहलेके गिरे हुए भी हैं । परन्तु वहाँ धेनुक नामका एक दुष्ट दैत्य रहता है । उसने उन फलोंपर रोक टोक लगा रक्खी है । वह उन्हें किसीको लेने नहीं देता । बलरामजी और भैया श्रीकृष्ण! वह दैत्य गधेके रूपमें रहता है । वह स्वयं तो बड़ा बलवान् है ही, उसके साथ और भी बहुत-से उसीके समान बलवान् दैत्य उसी रूपमें रहते हैं । मेरे वीर भैया! उस दैत्यने अबतक न जाने कितने मनुष्य खा डाले हैं । यही कारण है कि लोग उससे डरते रहते हैं । मनुष्योंकी तो बात ही क्या, उसके डरके मारे पशु-पक्षी भी उस जंगलमें नहीं जाते । उसके फल हैं तो बड़े सुगन्धित, परन्तु हमने कभी नहीं खाये । देखो न, चारों ओर उन्हींकी मन्द-मन्द सुगन्ध फैल रही है । तनिक-सा ध्यान देनेसे उसका रस मिलने लगता है । श्रीकृष्ण! उनकी सुगन्धसे हमारा मन मोहित हो गया है और उन्हें पानेके लिये मचल रहा है । तुम हमें वे फल अवश्य खिलाओ । बलराम दादा! हमें उन फलोंकी बड़ी उत्कट अभिलाषा है । आपको रुचे तो वहाँ अवश्य चलिये ॥ २०–२६ ॥

अपने सखा ग्वालबालोंकी यह बात सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों हँसे और फिर उन्हें प्रसन्न करनेके लिये उनके साथ तालवनके लिये चल पड़े । उस वनमें पहुँचकर बलरामजीने अपनी बाहोंसे उन ताड़के पेड़ोंको पकड़ लिया और मतवाले हाथीके बच्चेके समान उन्हें बड़े जोरसे हिलाया । देखते-देखते बहुत से फल नीचे आ पड़े । जब गधेके रूपमें रहनेवाले दैत्यने फलोंके गिरनेका शब्द सुना, तब वह पर्वतोंके साथ सारी पृथ्वीको कँपाता हुआ उनकी ओर दौड़ा । वह बड़ा बलवान् था । उसने बड़े वेगसे बलरामजीके सामने आकर अपने पिछले पैरोंसे उनकी छातीमें दुलत्ती मारी और इसके बाद वह दुष्ट बड़े जोरसे रेंकता हुआ वहाँसे हट गया । वह गधा क्रोधमें भरकर फिर रेंकता हुआ दूसरी बार उनके पास पहुँचा और उनकी ओर पीठ करके फिर बड़े क्रोधसे अपने पिछले पैरोंकी दुलत्ती चलायी । बलरामजीने अपने एक ही हाथसे उसके दोनों पैर पकड़ लिये और उसे आकाशमें घुमाकर एक



ताड़के पेड़पर दे मारा । घुमाते समय ही उस गधेके प्राण-पखेरू उड़ गये थे । उसके गिरनेकी चोटसे वह महान् ताड़का वृक्ष—जिसका ऊपरी भाग बहुत विशाल था—स्वयं तो तड़तड़ाकर गिर ही पड़ा, सटे हुए दूसरे वृक्षको भी उसने तोड़ डाला । उसने तीसरेको, तीसरेने चौथेको—इस प्रकार एक दूसरेको गिराते हुए बहुत से तालवृक्ष गिर पड़े । बलरामजीके लिये तो यह एक खेल था । परन्तु उनके द्वारा फेंके हुए गधेके शरीरसे चोट खा खाकर वहाँ सब-के सब ताड़ हिल गये । ऐसा जान पड़ा, मानो बड़े जोरकी आँधी आयी हो । परीक्षित्! भगवान् बलराम

आषाढके घामसे गौएँ और ग्वालबाल अत्यन्त पीड़ित हो रहे थे। पानीके बिना उनका हलक सूख रहा था। इसलिये उन्होंने यमुनाजीका विषैला जल पी लिया। परीक्षित्! होनहारके वश उन्हें इस बातका ध्यान ही नहीं रहा था। उस विषैले जलके पीते ही सब गौएँ और ग्वालबाल प्राणहीन होकर यमुनाजीके तटपर गिर पड़े। उन्हें ऐसी अवस्थामें देखकर योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णने अपनी अमृत बरसानेवाली दृष्टिसे उन्हें जीवित कर दिया। श्रीकृष्णके अतिरिक्त उनका और रक्षक ही कौन था? परीक्षित्! चेतना आनेपर वे सब यमुनाजीके तटपर उठ खड़े हुए और आश्चर्यचकित होकर एक-दूसरेकी ओर देखने लगे। अन्तमें उन्होंने यही निश्चय किया कि हमलोग विषैला जल पी लेनेके कारण मर चुके थे, परन्तु हमारे श्रीकृष्णने अपनी अनुग्रहभरी दृष्टिसे देखकर हमें फिरसे जिला दिया है ॥४७-५२॥

सोलहवाँ अध्याय

कालियपर कृपा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि महाविषधर कालिय नागने यमुनाजीका जल विषैला कर दिया है। तब यमुनाजीको शुद्ध करनेके विचारसे उन्होंने वहाँसे उस सर्पको निकाल दिया ॥१॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! आप सब जानते हैं। भगवान् श्रीकृष्णने यमुनाजीके अगाध जलमें किस प्रकार उस सर्पका दमन किया? फिर कालिय नाग तो जलचर जीव नहीं था, ऐसी दशामें वह अनेक युगोंतक जलमें क्यों और कैसे रहा? कृपा करके अवश्य बतलाइये। ब्रह्मस्वरूप महात्मन्! भगवान् अनन्त हैं। वे अपनी लीला प्रकट करके स्वच्छन्द विहार करते हैं। गोपालरूपसे उन्होंने जो लीला की है, वह तो बहुत ही मधुर और बहुत ही उदार है। वह अमृतसे भी बढ़कर है। भला, उसके सेवनसे कौन तृप्त हो सकता है? ॥२-३॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! यमुनाजीमें कालिय नागका एक कुण्ड था। उसका जल विषकी गर्मीसे खौलता रहता था। यहाँतक कि उसके ऊपर उड़नेवाले पक्षी भी झुलसकर उसमें गिर जाया करते थे। उसके विषैले जलका स्पर्श करके तथा उसकी छोटी-छोटी बूँदें लेकर जब वायु बाहर आती और तटके घास-पात, वृक्ष, पशु पक्षी आदिका स्पर्श करती, तो वे उसी समय मर जाते थे। परीक्षित्! भगवान्‌का अवतार तो दुष्टोंका दमन करनेके लिये होता ही है। जब उन्होंने देखा कि उस साँपका विष बड़ा प्रबल और भयङ्कर है तथा उसके कारण मेरे विहारका स्थान यमुनाजी भी दूषित हो गयी है, तब भगवान् श्रीकृष्ण अपनी कमरका फेंटा कसकर एक बहुत ऊँचे कदम्बके वृक्षपर चढ़ गये और वहाँसे ताल ठोंककर विषैले जलमें कूद पड़े। यमुनाजीका जल साँपके विषके कारण पहलेसे ही खौल रहा था। उसकी तरङ्गें लाल-पीली और अत्यन्त भयङ्कर उठ रही थीं। पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके कूद पड़नेसे उसका जल और भी उछलने लगा। उस समय तो कालियदहका जल इधर उधर उछलकर चार सौ हाथतक फैल गया। अचिन्त्य अनन्त बलशाली भगवान् श्रीकृष्णके लिये इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। प्रिय परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण कालियदहमें कूदकर अतुल बलशाली मतवाले गजराजके समान जल उछालने लगे। इस प्रकार जलक्रीड़ा करनेपर उनकी भुजाओंकी टक्करसे जलमें बड़े जोरका शब्द होने लगा। आँखसे ही सुननेवाले कालिय नागने वह आवाज सुनी और देखा कि कोई मेरे निवासस्थानका तिरस्कार कर रहा है। उसे यह सहन न हुआ। वह चिढ़कर भगवान् श्रीकृष्णके सामने आ गया। उसने देखा कि सामने एक साँवला सलोना बालक है। वर्षाकालीन मेघके समान अत्यन्त सुकुमार शरीर है, उसमें लगकर आँखें हटनेका नाम ही नहीं लेतीं। उसके वक्षःस्थलपर एक सुनहली रेखा—श्रीवत्सका चिह्न है और पीले रंगका वस्त्र धारण किये हुए है। बड़े मधुर एवं मनोहर मुखपर मन्द मन्द मुसकान अत्यन्त शोभायमान हो रही है। चरण इतने सुकुमार और सुन्दर हैं, मानो कमलकी गद्दी हो। इतना आकर्षक रूप होनेपर भी जब कालिय नागने देखा कि बालक तनिक भी न डरकर इस विषैले जलमें मौजसे खेल रहा है, तब उसका क्रोध और भी बढ़ गया। उसने श्रीकृष्णको मर्मस्थानोंमें डँसकर अपने शरीरके बन्धनसे उन्हें जकड़ लिया। भगवान् श्रीकृष्ण नागपाशमें बँधकर निश्चेष्ट हो गये। यह देखकर उनके प्यारे सखा ग्वालबाल बहुत ही पीड़ित हुए और उसी समय दुःख, पश्चात्ताप और भयसे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। परीक्षित्! ऐसा होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि उन्होंने अपने शरीर, सुहृद्, धन सम्पत्ति, स्त्री,

चौदहवाँ अध्याय

ब्रह्माजीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति

श्रीब्रह्माजीने स्तुति की—'प्रभो! एकमात्र आप ही स्तुति करने योग्य हैं। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। आपका यह वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल शरीर, स्थिर बिजलीके समान झिलमिल-झिलमिल करता हुआ पीताम्बर, गलेमें घुँघचीकी माला, कानोंमें मकराकृत कुण्डल, सिरपर मोरपंखोंका मुकुट—इनकी कान्तिसे मुखपर अनोखी छटा छिटक रही है। वक्षःस्थलपर लटकती हुई वनमाला और नन्ही-सी हथेलीपर दही-भातका कौर। बगलमें बेत और सींग तथा कमरकी फेंटमें आपकी पहचान बतानेवाली बाँसुरी शोभा पा रही है। आपके



कमल-से सुकोमल परम सुकुमार चरण और यह गोपाल-बालकका सुमधुर वेष। मैं और कुछ नहीं जानता; बस, मैं तो इन्हीं चरणोंपर निछावर हूँ। स्वयंप्रकाश परमात्मन्! आपका यह श्रीविग्रह भक्तजनोंकी लालसा-अभिलाषा पूर्ण करनेवाला है। यह आपकी चिन्मयी इच्छाका मूर्तिमान् स्वरूप मुझपर आपका साक्षात् कृपा-प्रसाद है। मुझे अनुगृहीत करनेके लिये ही आपने इसे प्रकट किया है। कौन कहता है कि यह पञ्चभूतोंकी रचना है? प्रभो! यह तो अप्राकृत शुद्ध सत्त्वमय है। मैं या और कोई समाधि लगाकर भी आपके इस सच्चिदानन्द-विग्रहकी महिमा नहीं जान सकता। फिर आपके स्वरूपभूत हृदयमें जो आत्मसुखका साक्षात्कार है, आपके उस अनिर्वचनीय स्वरूपकी महिमा तो भला कोई जान ही कैसे सकता है। प्रभो! जो लोग ज्ञानके लिये प्रयत्न न करके केवल सत्संगमें रहते हैं और आपके प्रेमी संत पुरुषोंके द्वारा गायी हुई आपकी लीला-कथाका, जो उन लोगोंके पास रहनेसे अपने-आप सुननेको मिलती है, शरीर, वाणी और मनसे सेवन करते हैं—यहाँतक कि उसे ही अपना जीवन बना लेते हैं, उसके बिना जी ही नहीं सकते—प्रभो! यद्यपि आपपर त्रिलोकीमें कोई कभी विजय नहीं प्राप्त कर सकता, फिर भी वे आपपर विजय प्राप्त कर लेते हैं, आप उनके प्रेमके अधीन हो जाते हैं। भगवन्! आपकी भक्ति सब प्रकारके कल्याणका मूलस्रोत—उद्गम है। जो लोग उसे छोड़कर केवल ज्ञानकी प्राप्तिके लिये श्रम उठाते और दुःख भोगते हैं, उनको बस, क्लेश-ही-क्लेश हाथ लगता है—जैसे थोथी भूसी कूटनेवालेको केवल श्रम ही मिलता है, चावल नहीं॥ १–४॥

हे अच्युत! हे अनन्त! इस लोकमें पहले भी बहुत-से योगी हो गये हैं। जब उन्हें योगादिके द्वारा आपकी प्राप्ति न हुई, तब उन्होंने अपने लौकिक और वैदिक समस्त कर्म आपके चरणोंमें समर्पित कर दिये। उन समर्पित कर्मोंसे तथा आपकी लीलाकथासे उन्हें आपकी भक्ति प्राप्त हुई। उस भक्तिसे ही आपके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने बड़ी सुगमतासे आपके परमपदकी प्राप्ति कर ली। यद्यपि आपके सगुण और निर्गुण दोनों ही रूपोंकी महिमा जानना अत्यन्त कठिन है, फिर भी जिनका अन्तःकरण शुद्ध हो गया है वे स्वयंप्रकाश आत्मस्वरूपसे आपके निर्गुण स्वरूपकी महिमा जान सकते हैं। उसके जाननेका और कोई उपाय नहीं है। क्योंकि आपका निर्गुण स्वरूप निर्विकार, अनुभवस्वरूप और वृत्तियोंका अविषय है। परन्तु भगवन्! जिन समर्थ पुरुषोंने अनेक जन्मोंतक परिश्रम करके पृथ्वीका एक-एक परमाणु, आकाशके हिमकण (ओसकी बूँदें) तथा उसमें चमकनेवाले नक्षत्र एवं तारोंतकको गिन डाला है—उनमें भी भला, ऐसा कौन हो सकता है जो आपके सगुण स्वरूपके अनन्त गुणोंको गिन सके? प्रभो! आप केवल संसारके कल्याणके लिये ही अवतीर्ण हुए हैं।

सभी लोग स्त्री और बच्चोंके साथ मेरे लिये इस प्रकार अत्यन्त दुखी हो रहे हैं और सचमुच मेरे सिवा इनका कोई दूसरा सहारा भी नहीं है, तब वे एक मुहूर्ततक सर्पके बन्धनमें रहकर बाहर निकल आये। भगवान् श्रीकृष्णने उस समय अपना शरीर फुलाकर खूब मोटा कर लिया। इससे साँपका शरीर टूटने लगा। वह अपना नागपाश छोड़कर अलग खड़ा हो गया और क्रोधसे आगबबूला हो अपने फण फैलाकर फुफकारें मारने लगा। घात मिलते ही श्रीकृष्णपर चोट करनेके लिये वह उनकी ओर टकटकी लगाकर देखने लगा। उस समय उसके नथुनोंसे विषकी फुहारें निकल रही थीं। उसकी आँखें स्थिर थीं और इतनी लाल-लाल हो रही थीं, मानो भट्ठीपर तपाया हुआ खपड़ा हो। उसके मुँहसे आगकी लपटें निकल रही थीं। उस समय कालिय नाग अपनी दुहरी जीभ लपलपाकर अपने होठोंके दोनों किनारोंको चाट रहा था और अपनी कराल आँखोंसे विषकी ज्वाला उगलता जा रहा था। अपने वाहन गरुड़के समान भगवान् श्रीकृष्ण उसके साथ खेलते हुए पैंतरा बदलने लगे। और वह साँप भी उनपर चोट करनेका दाँव देखता हुआ पैंतरा बदलने लगा। इस प्रकार पैंतरा बदलते बदलते उसका बल क्षीण हो गया। तब भगवान् श्रीकृष्णने उसके बड़े-बड़े सिरोंको तनिक दबा दिया और उछलकर उनपर सवार हो गये। कालिय नागके मस्तकोंपर बहुत-सी लाल-लाल मणियाँ थीं। उनके स्पर्शसे भगवान्के सुकुमार तलुओंकी लालिमा और भी बढ़ गयी। नृत्य गान आदि समस्त कलाओंके आदिप्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण उसके सिरोंपर कलापूर्ण नृत्य करने लगे। भगवान्के प्यारे भक्त गन्धर्व, सिद्ध, देवता, चारण और देवाङ्गनाओंने जब देखा कि भगवान् नृत्य करना चाहते हैं तब वे बड़े प्रेमसे मृदङ्ग, ढोल, नगारे आदि बाजे बजाते हुए, सुन्दर-सुन्दर गीत गाते हुए, पुष्पोंकी वर्षा करते हुए और अपनेको निछावर करते हुए भेंट ले लेकर उसी समय भगवान्के पास आ पहुँचे। परीक्षित्! कालिय नागके एक सौ-एक सिर थे। वह अपने जिस सिरको नहीं झुकाता था, उसीको प्रचण्ड दण्डधारी भगवान् अपने पैरोंकी चोटसे कुचल डालते। इससे कालिय नागकी जीवनशक्ति क्षीण हो चली, वह मुँह और नथुनोंसे खून उगलने लगा। अन्तमें चक्कर काटते-काटते वह बेहोश हो गया। तनिक भी चेत होता तो वह अपनी आँखोंसे विष उगलने लगता और क्रोधके मारे जोर-जोरसे फुफकारें मारने लगता। इस प्रकार वह अपने सिरोंमेंसे जिस सिरको ऊपर उठाता, उसीको नाचते हुए भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणोंकी ठोकरसे झुकाकर रौंद डालते। उस समय पुराण-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर जो खूनकी बूँदें पड़ती थीं, उनसे ऐसा मालूम होता मानो रक्त-पुष्पोंसे उनकी पूजा की जा रही हो। परीक्षित्! भगवान्के इस अद्भुत ताण्डव नृत्यसे कालियके फणरूप छत्ते छिन्न-भिन्न हो गये। उसका एक एक अंग चूर-चूर हो गया और मुँहसे खूनकी उलटी होने लगी। अब उसे सारे जगत्के आदिशिक्षक पुराणपुरुष भगवान् नारायणकी स्मृति हुई। वह मन ही-मन भगवान्की शरणमें चला गया। भगवान् श्रीकृष्णके उदरमें सम्पूर्ण विश्व है। इसलिये उनके भारी बोझसे कालिय नागके शरीरकी एक एक गाँठ ढीली पड़ गयी। उनकी एड़ियोंकी चोटसे उसके छत्रके समान फण छिन्न भिन्न हो गये। अपने पतिकी यह दशा देखकर उसकी पत्नियाँ भगवान्की शरणमें चली आयीं। वे अत्यन्त आतुर हो रही थीं। भयके मारे उनके वस्त्राभूषण अस्त-व्यस्त हो रहे थे और केशकी चोटियाँ भी बिखर रही थीं। उस समय उन साध्वी नागपत्नियोंके चित्तमें बड़ी घबड़ाहट थी। अपने बालकोंको आगे करके वे पृथ्वीपर लोट गयीं और हाथ जोड़कर उन्होंने समस्त प्राणियोंके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया। भगवान् श्रीकृष्णको शरणागत-वत्सल जानकर अपने अपराधी पतिको छुड़ानेकी इच्छासे उन्होंने उनकी शरण ग्रहण की ॥ २३—३२ ॥

नागपत्नियोंने कहा—प्रभो! आपका यह अवतार ही



दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये हुआ है। इसलिये इस अपराधीको

यशोदारानी, रोहिणीजी, नन्दबाबा और बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजीने स्नेहातुर होकर श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया तथा आशीर्वाद दिये। परीक्षित्! उस समय आकाशमें स्थित देवता, साध्य, सिद्ध और चारण आदि प्रसन्न होकर भगवान्‌की स्तुति करते हुए उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। परीक्षित्! स्वर्गमें देवतालोग शङ्ख और नौबत बजाने लगे। तुम्बुरु आदि गन्धर्वराज भगवान्‌की मधुर लीलाका गायन करने लगे। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने व्रजकी यात्रा की। उनके बगलमें बलरामजी चल रहे थे और उनके प्रेमी ग्वालबाल उनकी सेवा कर रहे थे। उनके साथ ही प्रेममयी गोपियाँ भी अपने हृदयको आकर्षित करनेवाले, उसमें प्रेम जगानेवाले भगवान्‌की गोवर्द्धनधारण आदि लीलाओंका गायन करती हुई बड़े आनन्दसे व्रजमें लौट आयीं॥२९—३३॥

छब्बीसवाँ अध्याय

नन्दबाबासे गोपोंकी श्रीकृष्णके प्रभावके विषयमें बातचीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! व्रजके गोप भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे अलौकिक कर्म देखकर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। उन्हें भगवान्‌की अनन्त शक्तिका तो पता था नहीं, वे इकट्ठे होकर आपसमें इस प्रकार कहने लगे—'इस बालकके जितने भी कर्म हैं, सभी बड़े अद्भुत—बड़े अलौकिक हैं। इसका हमारे-जैसे गँवार ग्रामीणोंमें जन्म लेना तो इसके लिये बड़ी निन्दाकी बात है। यह भला, कैसे उचित हो सकता है? जैसे गजराज कोई कमल उखाड़कर उसे ऊपर उठा ले और धारण करे, वैसे ही इस नन्हे-से सात वर्षके बालकने एक ही हाथसे गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और खेल-खेलमें सात दिनोंतक उठाये रक्खा। यह साधारण मनुष्यके लिये भला, कैसे सम्भव है? अभीकी बात जाने दो; जब यह नन्हा-सा बच्चा था उस समय बड़ी भयङ्कर राक्षसी पूतना आयी और इसने आँख बंद किये-किये ही उसका स्तन तो पिया ही, प्राण भी पी डाले—ठीक वैसे ही, जैसे काल शरीरकी आयुको निगल जाता है। जिस समय यह केवल तीन महीनेका था और छकड़ेके नीचे सोकर रो रहा था, उस समय रोते-रोते इसने ऐसा पाँव उछाला कि उसकी ठोकरसे वह बड़ा भारी छकड़ा उलटकर गिर ही पड़ा। क्यों भाई! उस समय तो यह एक ही वर्षका था न, जब दैत्य बवंडरके रूपमें इसे बैठे-बैठे आकाशमें उड़ा ले गया था? तुम सब जानते ही हो कि इसने उस तृणावर्त दैत्यको गला घोंटकर मार डाला! उस दिनकी बात तो सभी जानते हैं कि माखन चोरी करनेपर यशोदारानीने इसे ऊखलसे बाँध दिया था। यह घुटनोंके बल बकैयाँ खींचते-खींचते उन दोनों विशाल अर्जुन-वृक्षोंके बीचमेंसे निकल गया और उन्हें उखाड़ ही डाला। यह बात भी किसीसे छिपी नहीं है कि जब यह ग्वालबाल और बलरामजीके साथ बछड़ोंको चरानेके लिये वनमें गया हुआ था, उस समय इसको मार डालनेके लिये एक दैत्य बगुलेके रूपमें आया और इसने दोनों हाथोंसे उसके दोनों ठोर पकड़कर उसे तिनकेकी तरह चीर डाला। जिस समय इसको मार डालनेकी इच्छासे एक दैत्य बछड़ेके रूपमें बछड़ोंके झुंडमें घुस गया था, उस समय इसने उस दैत्यको खेल-ही-खेलमें मार डाला और उसे कैथके पेड़ोंपर पटककर उन पेड़ोंको भी गिरा दिया। इसने बलरामजीके साथ मिलकर गधेके रूपमें रहनेवाले धेनुकासुर तथा उसके भाई-बन्धुओंको मार डाला और पके हुए फलोंसे पूर्ण तालवनको सबके लिये उपयोगी और मङ्गलमय बना दिया। इसीने परम बलशाली बलरामजीके द्वारा प्रलम्बासुरको मरवा डाला तथा दावानलसे गौओं और ग्वालबालोंको उबार लिया। कौन नहीं जानता कि यमुनाजलमें रहनेवाला कालिय नाग कितना विषैला था? परन्तु इसने उसका भी मान मर्दन कर उसे बलपूर्वक दहसे निकाल दिया और यमुनाजीका जल सदाके लिये अमृतमय बना दिया। इसके सिवा नन्दजी! हम यह भी देखते हैं कि तुम्हारे इस साँवले बालकपर हम सभी व्रजवासियोंका अनन्त प्रेम है और इसका भी हमपर स्वाभाविक ही स्नेह है। क्या आप बतला सकते हैं कि इसका क्या कारण है? भला, कहाँ तो यह सात वर्षका नन्हा-सा

बार-बार समझानेपर भी अपने आत्माको निरन्तर भूले हुए हैं। वास्तवमें उस मायाकी ऐसी ही शक्ति है। भला, उससे मोहित होकर क्या-क्या नहीं भूला जा सकता ?॥ ४१–४४॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णको देखते ही ग्वालबालोंने बड़ी उतावलीसे कहा—'भाई! तुम भले आये। स्वागत है, स्वागत! अभी तो हमने तुम्हारे बिना एक कौर भी नहीं



खाया है। आओ, इधर आओ; आनन्दसे भोजन करो।' तब हँसते हुए भगवान्ने ग्वालबालोंके साथ भोजन किया और उन्हें अघासुरके शरीरका ढाँचा दिखाते हुए वनसे व्रजमें लौट आये। उस समय श्रीकृष्णकी छटा दर्शनीय थी। उनके सिरपर मोरपंखका मनोहर मुकुट और घुँघराले बालोंमें सुन्दर-सुन्दर महँ-महँ महँकते हुए पुष्प गुँथ रहे थे। नयी-नयी रंगीन धातुओंसे श्याम शरीरपर चित्रकारी की हुई थी। वे चलते समय रास्तेमें कभी बाँसुरी, कभी पत्ते और कभी सींग ही बजाने लगते हैं। उनकी तालके अनुसार कभी-कभी तनिक नाचकर मुसकराते भी हैं। पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोकपावन कीर्तिका गायन करते जा रहे हैं। कभी वे नाम ले-लेकर अपने बछड़ोंको पुकारते, तो कभी उनके साथ लाड़ लड़ाने लगते। मार्गके दोनों ओर गोपियाँ खड़ी हैं; जब वे कभी तिरछे नेत्रोंसे उनकी नजरमें नजर मिला देते हैं, तब गोपियाँ आनन्द-मुग्ध हो जाती हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णने वृन्दावनमें प्रवेश किया। परीक्षित्! उसी दिन बालकोंने व्रजमें जाकर कहा कि 'आज यशोदा मैयाके लाड़ले नन्दनन्दनने वनमें एक बड़ा भारी अजगर मार डाला है, और उससे हम लोगोंकी रक्षा की है'॥ ४५–४८॥

राजा परीक्षित्ने कहा—भगवन्मय महात्मन्! व्रजवासियोंके लिये श्रीकृष्ण अपने पुत्र नहीं थे, दूसरेके पुत्र थे। फिर उनका श्रीकृष्णके प्रति इतना प्रेम कैसे हुआ? ऐसा प्रेम तो उनका अपने बालकोंपर भी पहले कभी नहीं हुआ था! आप कृपा करके बतलाइये, इसका क्या कारण है?॥ ४९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! संसारके सभी प्राणी अपने आत्मासे ही सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं। पुत्रसे, धनसे या और किसीसे जो प्रेम होता है—वह तो इसलिये कि वे वस्तुएँ अपने आत्माको प्रिय लगती हैं। परीक्षित्! यही *कारण है कि सभी प्राणियोंका अपने आत्माके प्रति जैसा प्रेम* होता है, वैसा अपने कहलानेवाले पुत्र, धन और गृह आदिमें नहीं होता। भगवान्के परम प्रेमी परीक्षित्! जो लोग देहको ही आत्मा मानते हैं वे भी अपने शरीरसे जितना प्रेम करते हैं, उतना प्रेम शरीरके सम्बन्धी पुत्र-मित्र आदिसे नहीं करते। जब विचारके द्वारा यह मालूम हो जाता है कि 'यह शरीर मैं नहीं हूँ, यह शरीर मेरा है' तब इस शरीरसे भी आत्माके समान प्रेम नहीं रहता। यही कारण है कि इस देहके जीर्ण-शीर्ण हो जानेपर भी जीनेकी आशा प्रबल रूपसे बनी रहती है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि सभी प्राणी अपने आत्मासे ही सबसे बढ़कर प्रेम करते हैं, और उसीके लिये इस सारे चराचर जगत्से भी प्रेम करते हैं। इसके साथ ही परीक्षित्! तुम यह बात भी समझ लो कि श्रीकृष्ण ही सबके आत्माओंके आत्मा परमात्मा हैं। संसारके कल्याणके लिये ही योगमायाका आश्रय लेकर वे यहाँ देहधारीके समान जान पड़ते हैं। जो लोग भगवान् श्रीकृष्णके वास्तविक स्वरूपको जानते हैं, उनके लिये तो इस जगत्में जो कुछ भी चराचर पदार्थ हैं, अथवा इससे परे परमात्मा, ब्रह्म, नारायण आदि जो भगवत्स्वरूप हैं—सभी श्रीकृष्णस्वरूप ही हैं। सच्ची बात यही है भाई! कि श्रीकृष्णके अतिरिक्त और कोई प्राकृत-अप्राकृत वस्तु है ही नहीं। सभी वस्तुओंकी—जो भावरूपसे अनुभवमें आती हैं—एक परम सत्ता है, कारण है। उसे चाहे प्रकृति कहो, चाहे और कुछ। उस कारणके भी परम कारण हैं भगवान् श्रीकृष्ण। तब भला बताओ, किस वस्तुको श्रीकृष्णसे भिन्न बतलायें? संतपुरुष सदासे ही भगवान्के चरणकमलोंका आश्रय लेते आये हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी कीर्ति परम पवित्र है। जो उनके चरणकमलरूप

वास्तवमें आप ही स्तुति करनेयोग्य हैं । देखिये, आपको अपने घर आया देख ये मोर आपके दर्शनोंसे आनन्दित होकर नाच रहे हैं । हरिनियाँ मृगनयनी गोपियोंके समान अपनी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे आपके प्रति प्रेम प्रकट कर रही हैं, आपको प्रसन्न कर रही हैं। देखिये न, ये कोयलें अपनी मधुर कुहू-कुहू ध्वनिसे आपका कितना सुन्दर स्वागत कर रही हैं ! ये वनवासी होनेपर भी धन्य हैं । क्योंकि सत्पुरुषोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वे घर आये अतिथिको अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु भेंट कर देते हैं । आज यहाँकी भूमि अपनी हरी-हरी घासके साथ आपके चरणोंका स्पर्श प्राप्त करके धन्य हो रही है । यहाँके वृक्ष, लताएँ और झाड़ियाँ आपकी अँगुलियोंका स्पर्श पाकर अपना अहोभाग्य मान रही हैं । आपकी दयाभरी चितवनसे नदी, पर्वत, पशु, पक्षी—सब कृतार्थ हो रहे हैं और व्रजकी गोपियाँ आपके वक्षःस्थलका स्पर्श प्राप्त करके, जिसके लिये स्वयं लक्ष्मी भी लालायित रहती हैं, धन्य-धन्य हो रही हैं ॥ ५-८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! इस प्रकार परम सुन्दर वृन्दावनको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण बहुत ही आनन्दित हुए । वे अपने सखा ग्वालबालोंके साथ गोवर्धनकी तराईमें, यमुनातटपर गौओंको चराते हुए अनेकों प्रकारकी लीलाएँ करने लगे । एक ओर ग्वालबाल भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रोंकी मधुर तान छेड़े रहते हैं, तो दूसरी ओर भौंरोंकी सुरीली गुनगुनाहटमें अपना स्वर मिलाकर मधुर संगीत अलापने लगते हैं । कभी-कभी श्रीकृष्ण कूजते हुए राजहंसोंके साथ स्वयं भी कूजने लगते हैं और कभी ग्वालबालोंको हँसाते हुए, नाचते हुए मोरोंके साथ स्वयं भी ठुमुक-ठुमुक नाचने लगते हैं । कभी मेघके समान गम्भीर वाणीसे दूर गये हुए पशुओंको उनका नाम ले-लेकर बड़े प्रेमसे पुकारते हैं । उनके कण्ठकी मधुर ध्वनि सुनकर गायों और ग्वालबालोंका चित्त भी अपने वशमें नहीं रहता । कभी चकोर, क्रौंच (कराँकुल), चकवा, भरदूल और मोर आदि पक्षियोंकी-सी बोली बोलते तो कभी बाघ, सिंह आदिकी गर्जनासे डरे हुए जीवोंके समान स्वयं भी भयभीतकी-सी लीला करते । जब बलरामजी खेलते-खेलते थककर किसी ग्वालबालकी गोदमें सिर रखकर लेट जाते तब श्रीकृष्ण उनके पैर दबाने लगते, पंखा झलने लगते और इस प्रकार अपने बड़े भाईकी थकावट दूर करते । जब ग्वालबाल नाचने-गाने लगते अथवा ताल ठोंक-ठोंककर एक-दूसरेसे कुश्ती लड़ने लगते, तब श्याम और राम दोनों भाई हाथमें हाथ डालकर खड़े हो जाते और हँस-हँसकर 'वाह-वाह' करते । कभी-कभी स्वयं श्रीकृष्ण भी ग्वालबालोंके साथ कुश्ती लड़ते-लड़ते थक जाते तथा किसी सुन्दर वृक्षके नीचे कोमल पल्लवोंकी सेजपर किसी ग्वालबालकी गोदमें सिर रखकर लेट जाते । परीक्षित् ! उस समय कोई-कोई पुण्यके मूर्तिमान् स्वरूप ग्वालबाल





बलरामजीके साथ वनमाला पहने हुए श्रीकृष्ण मतवाले भगवान् श्रीकृष्णके चरण दबाने लगते और कोई-कोई उन्हें

कुछ संकेत भी मिलता है। आप उन गुणों और उनकी वृत्तियोंके साक्षी तथा स्वयंप्रकाश हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं। आपकी लीला हमारे ज्ञानका विषय नहीं है। आप मूलप्रकृतिमें नित्य विहार करते रहते हैं। फिर भी समस्त स्थूल और सूक्ष्म जगत्‌की सिद्धि आपसे ही होती है। आप समस्त इन्द्रियोंके प्रवर्तक होनेपर भी आत्माराम हैं। आपकी यह आत्मारामता साधनसिद्ध नहीं है, बल्कि आपका अपने-आपमें रमण करना तो स्वतःसिद्ध स्वभाव ही है। आप स्थूल, सूक्ष्म समस्त गतियोंके जाननेवाले तथा सबके साक्षी हैं। एक दृष्टिसे आप सम्पूर्ण विश्वसे रहित हैं, तो दूसरी दृष्टिसे विश्वरूप हैं। वास्तवमें आप विश्वके भाव और अभाव दोनोंके साक्षी हैं और विश्वके कारण भी आप ही हैं। आपको हमारा बार-बार नमस्कार है ॥ ३९-४८ ॥

प्रभो! यद्यपि कर्तापन न होनेके कारण आप कोई भी कर्म नहीं करते, निष्क्रिय हैं—तथापि अनादि कालशक्तिको स्वीकार करके प्रकृतिके गुणोंके द्वारा आप इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करते हैं। क्योंकि आपकी लीलाएँ अमोघ हैं। आप सत्यसङ्कल्प हैं। इसलिये जीवोंके संस्काररूपसे छिपे हुए स्वभावोंको अपनी दृष्टिसे जाग्रत् कर देते हैं। त्रिलोकीमें तीन प्रकारकी योनियाँ हैं—सत्त्वगुणप्रधान शान्त, रजोगुणप्रधान अशान्त और तमोगुणप्रधान मूढ। वे सब-की-सब आपकी लीलामूर्तियाँ हैं। फिर भी इस समय आपको सत्त्वगुणप्रधान शान्तजन ही विशेष प्रिय हैं। क्योंकि आपका यह अवतार और ये लीलाएँ साधुजनोंकी रक्षा तथा धर्मकी रक्षा एवं विस्तारके लिये ही हैं। प्रभो! हमारा यह पति भी आपकी ही सन्तान और प्रजा है। इसने अनजानमें आपका अपराध किया है। एक बार तो इसे अवश्य ही क्षमा कर देना चाहिये। क्योंकि आप शान्तरूप हैं और यह मूढ है। प्रभो! देखिये, कृपा कीजिये, अब यह सर्प मरनेहीवाला है। साधु पुरुष सदासे ही हम अबलाओंपर दया करते आये हैं। अतः आप अवश्य ही कृपा करके हमें हमारे प्राणनायकको दे दीजिये। हम आपकी दासी हैं। हमें आप आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करें? क्योंकि जो श्रद्धाके साथ आपकी आज्ञाओंका पालन—आपकी सेवा करता है, वह सब प्रकारके भयोंसे छुटकारा पा जाता है ॥४९-५३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌के चरणोंकी ठोकरोंसे कालिय नागके फण छिन्न-भिन्न हो गये थे। वह बेसुध हो रहा था। जब नागपत्नियोंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की, तब उन्होंने दया करके उसे छोड़ दिया। धीरे-धीरे कालिय नागकी इन्द्रियों और प्राणोंमें कुछ-कुछ चेतना आ गयी। वह बड़ी कठिनतासे श्वास लेने लगा और थोड़ी देरके बाद बड़ी दीनतासे हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोला ॥५४-५५॥

कालिय नागने कहा—प्रभो! हम जन्मसे ही बड़े दुष्ट, तमोगुणी और बहुत दिनोंके बाद भी बदला लेनेवाले—बड़े क्रोधी जीव हैं। हमारा ऐसा स्वभाव ही बन गया है। आप जानते ही हैं कि सभी जीवोंके लिये अपना स्वभाव छोड़ देना बहुत कठिन है। इसी स्वभावके कारण संसारके लोग नाना प्रकारके दुराग्रहोंमें फँस जाते हैं। आपने ही इस संसारकी रचना की है। इसलिये यह कहनेमें कोई सङ्कोच नहीं कि आपने ही गुणोंके भेदसे इस जगत्‌में नाना प्रकारके स्वभाव, वीर्य, बल, योनि, बीज, चित्त और आकारोंका निर्माण किया है। भगवन्! आपकी ही सृष्टिमें हम सर्प भी हैं। हम जन्मसे ही बड़े क्रोधी होते हैं। हम इस मायाके चक्करमें स्वयं मोहित हो रहे हैं। फिर अपने प्रयत्नसे इस मायाका त्याग कैसे करें? आप सर्वज्ञ और सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं। आप ही हमारे स्वभाव और इस मायाके भी कारण हैं। अब आप अपनी इच्छासे—जैसा ठीक समझें—कृपा कीजिये या दण्ड दीजिये। हमें इस विषयमें कुछ भी कहना नहीं है ॥५६-५९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—कालिय नागकी बात सुनकर लीला-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'सर्प! अब तुझे यहाँ नहीं रहना चाहिये। तू अपने जाति-भाई, पुत्र और स्त्रियोंके साथ शीघ्र ही यहाँसे समुद्रमें चला जा। अब गौएँ और मनुष्य यमुना-जलका उपभोग करें। जो मनुष्य दोनों समय तुझको दी हुई मेरी इस आज्ञाका स्मरण तथा कीर्तन करे, उसे साँपोंसे कभी भय न हो। मैंने इस कालियदहमें क्रीडा की है। इसलिये जो पुरुष इसमें स्नान करके जलसे देवता और पितरोंका तर्पण करेगा, एवं उपवास करके

स्वयं जगदीश्वर हैं। उनमें यह सारा संसार ठीक वैसे ही ओतप्रोत है, जैसे सूतोंमें वस्त्र। तब भला, उनके लिये यह कौन आश्चर्यकी बात है। उस समय धेनुकासुरके भाई-बन्धु अपने भाईके मारे जानेसे क्रोधके मारे आगबबूला हो गये। सब-के-सब गधे बलरामजी और श्रीकृष्णपर बड़े वेगसे टूट पड़े। परीक्षित्! उनमेंसे जो-जो पास आया, उसी-उसीको बलरामजी और श्रीकृष्णने खेल-खेलमें ही पिछले पैर पकड़कर तालवृक्षोंपर दे मारा। उस समय वह भूमि ताड़के फलोंसे पट गयी और टूटे हुए वृक्ष तथा दैत्योंके प्राणहीन शरीरोंसे भर गयी। जैसे बादलोंसे आकाश ढक गया हो, उस भूमिकी वैसी ही शोभा होने लगी। बलरामजी और श्रीकृष्णकी यह मङ्गलमयी लीला देखकर देवतागण उनपर फूल बरसाने लगे। और बाजे बजा-बजाकर स्तुति करने लगे। जिस दिन धेनुकासुर मरा, उसी दिनसे लोग निडर होकर उस वनके तालफल खाने लगे तथा पशु भी स्वच्छन्दताके साथ घास चरने लगे॥ २७—४०॥

इसके बाद कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण बड़े भाई बलरामजीके साथ व्रजमें आये। उस समय उनके साथी ग्वालबाल उनके पीछे-पीछे चलते हुए उनकी स्तुति करते जाते थे। क्यों न हो, भगवान्‌की लीलाओंका श्रवण-कीर्तन ही सबसे बढ़कर पवित्र जो है! उस समय श्रीकृष्णकी छटा अवर्णनीय थी। घुँघराली अलकोंपर गौओंके खुरोंसे उड़-उड़कर धूलि पड़ी हुई थी, सिरपर मोरपंखका मुकुट था और बालोंमें सुन्दर-सुन्दर जंगली पुष्प गुँथे हुए थे। उनकी मधुर चितवन और मनोहर मुसकान देख-देखकर लोग अपनेको निछावर कर रहे थे। श्रीकृष्ण मधुर-मधुर मुरली बजा रहे थे और साथी ग्वालबाल उनकी ललित कीर्तिका गायन कर रहे थे। वंशीकी ध्वनि सुनकर बहुत-सी गोपियाँ एक साथ ही व्रजसे बाहर निकल आयीं। उनकी आँखें न जाने कबसे श्रीकृष्णके दर्शनके लिये तरस रही थीं। गोपियोंने अपने नेत्ररूप भ्रमरोंसे भगवान्‌के मुखारविन्दका मकरन्द-रस पान करके दिनभरके विरहकी जलन शान्त की। और भगवान्‌ने भी उनकी लाजभरी हँसी तथा विनयसे युक्त प्रेमभरी चितवनका सत्कार स्वीकार करके व्रजमें प्रवेश किया। उधर यशोदामैया और रोहिणीजीका हृदय वात्सल्य-स्नेहसे उमड़ रहा था। उन्होंने श्याम और रामके घर पहुँचते ही उनकी इच्छाके अनुसार तथा समयके अनुरूप पहलेसे ही सोच-सँजोकर रक्खी हुई वस्तुएँ उन्हें खिलायीं-पिलायीं और पहनायीं। माताओंने दिनभर घूमने-फिरनेकी थकान दूर होनेपर तेल-उबटन आदि लगाकर स्नान कराया और



सुन्दर वस्त्र पहनाकर दिव्य पुष्पोंकी माला पहनायी तथा चन्दन लगाया। फिर माताओंने अपने हाथसे परसकर उनको बड़ा ही स्वादिष्ट भोजन कराया और इसके बाद बड़े लाड़-प्यारसे दुलार-दुलार कर सुन्दर शय्यापर सुलाया। श्याम और राम बड़े आरामसे सो गये॥ ४१—४६॥

भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार वृन्दावनमे अनेकों लीलाएँ करते। एक दिन ग्वालबालोंके साथ वे यमुनातटपर गये।



उस दिन बलरामजी उनके साथ नहीं थे। उस समय जेठ-

कुछ संकेत भी मिलता है। आप उन गुणों और उनकी वृत्तियोंके साक्षी तथा स्वयंप्रकाश हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं। आपकी लीला हमारे ज्ञानका विषय नहीं है। आप मूलप्रकृतिमें नित्य विहार करते रहते हैं। फिर भी समस्त स्थूल और सूक्ष्म जगत्की सिद्धि आपसे ही होती है। आप समस्त इन्द्रियोंके प्रवर्तक होनेपर भी आत्माराम हैं। आपकी यह आत्मारामता साधनसिद्ध नहीं है, बल्कि आपका अपने-आपमें रमण करना तो स्वतःसिद्ध स्वभाव ही है। आप स्थूल, सूक्ष्म समस्त गतियोंके जाननेवाले तथा सबके साक्षी हैं। एक दृष्टिसे आप सम्पूर्ण विश्वसे रहित हैं, तो दूसरी दृष्टिसे विश्वरूप हैं। वास्तवमें आप विश्वके भाव और अभाव दोनोंके साक्षी हैं और विश्वके कारण भी आप ही हैं। आपको हमारा बार-बार नमस्कार है ॥ ३९-४८ ॥

प्रभो! यद्यपि कर्तापन न होनेके कारण आप कोई भी कर्म नहीं करते, निष्क्रिय हैं—तथापि अनादि कालशक्तिको स्वीकार करके प्रकृतिके गुणोंके द्वारा आप इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयकी लीला करते हैं। क्योंकि आपकी लीलाएँ अमोघ हैं। आप सत्यसङ्कल्प हैं। इसलिये जीवोंके संस्काररूपसे छिपे हुए स्वभावोंको अपनी दृष्टिसे जाग्रत् कर देते हैं। त्रिलोकीमें तीन प्रकारकी योनियाँ हैं—सत्त्वगुणप्रधान शान्त, रजोगुणप्रधान अशान्त और तमोगुणप्रधान मूढ। वे सब-की-सब आपकी लीलामूर्तियाँ हैं। फिर भी इस समय आपको सत्त्वगुणप्रधान शान्तजन ही विशेष प्रिय हैं। क्योंकि आपका यह अवतार और ये लीलाएँ साधुजनोंकी रक्षा तथा धर्मकी रक्षा एवं विस्तारके लिये ही हैं। प्रभो! हमारा यह पति भी आपकी ही सन्तान और प्रजा है। इसने अनजानमें आपका अपराध किया है। एक बार तो इसे अवश्य ही क्षमा कर देना चाहिये। क्योंकि आप शान्तरूप हैं और यह मूढ है। प्रभो! देखिये, कृपा कीजिये, अब यह सर्प मरनेहीवाला है। साधु पुरुष सदासे ही हम अबलाओंपर दया करते आये हैं। अतः आप अवश्य ही कृपा करके हमें हमारे प्राणनाथको दे दीजिये। हम आपकी दासी हैं। हमें आप आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करें? क्योंकि जो श्रद्धाके साथ आपकी आज्ञाओंका पालन—आपकी सेवा करता है, वह सब प्रकारके भयोंसे छुटकारा पा जाता है ॥४९-५३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌के चरणोंकी ठोकरोंसे कालिय नागके फण छिन्न-भिन्न हो गये थे। वह बेसुध हो रहा था। जब नागपत्नियोंने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति की, तब उन्होंने दया करके उसे छोड़ दिया। धीरे-धीरे कालिय नागकी इन्द्रियों और प्राणोंमें कुछ-कुछ चेतना आ गयी। वह बड़ी कठिनतासे श्वास लेने लगा और थोड़ी देरके बाद बड़ी दीनतासे हाथ जोड़कर भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार बोला ॥५४-५५॥

कालिय नागने कहा—प्रभो! हम जन्मसे ही बड़े दुष्ट, तमोगुणी और बहुत दिनोंके बाद भी बदला लेनेवाले—बड़े क्रोधी जीव हैं। हमारा ऐसा स्वभाव ही बन गया है। आप जानते ही हैं कि सभी जीवोंके लिये अपना स्वभाव छोड़ देना बहुत कठिन है। इसी स्वभावके कारण संसारके लोग नाना प्रकारके दुराग्रहोंमें फँस जाते हैं। आपने ही इस संसारकी रचना की है। इसलिये यह कहनेमें कोई सङ्कोच नहीं कि आपने ही गुणोंके भेदसे इस जगत्‌में नाना प्रकारके स्वभाव, वीर्य, बल, योनि, बीज, चित्त और आकारोंका निर्माण किया है। भगवन्! आपकी ही सृष्टिमें हम सर्प भी हैं। हम जन्मसे ही बड़े क्रोधी होते हैं। हम इस मायाके चक्करमें स्वयं मोहित हो रहे हैं। फिर अपने प्रयत्नसे इस मायाका त्याग कैसे करें? आप सर्वज्ञ और सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी हैं। आप ही हमारे स्वभाव और इस मायाके भी कारण हैं। अब आप अपनी इच्छासे—जैसा ठीक समझें—कृपा कीजिये या दण्ड दीजिये। हमें इस विषयमें कुछ भी कहना नहीं है ॥५६-५९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—कालिय नागकी बात सुनकर लीला-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'सर्प! अब तुझे यहाँ नहीं रहना चाहिये। तू अपने जाति-भाई, पुत्र और स्त्रियोंके साथ शीघ्र ही यहाँसे समुद्रमें चला जा। अब गौएँ और मनुष्य यमुना-जलका उपभोग करें। जो मनुष्य दोनों समय तुझको दी हुई मेरी इस आज्ञाका स्मरण तथा कीर्तन करे, उसे साँपोंसे कभी भय न हो। मैंने इस कालियदहमें क्रीड़ा की है। इसलिये जो पुरुष इसमें स्नान करके जलसे देवता और पितरोंका तर्पण करेगा, एवं उपवास करके

पुत्र, भोग और कामनाएँ—सब कुछ भगवान् श्रीकृष्णको ही समर्पित कर रक्खा था। गाय, बैल, बछिया और बछड़े बड़े दुःखसे डकराने लगे। श्रीकृष्णकी ओर ही उनकी टकटकी बँध रही थी। वे डरकर इस प्रकार खड़े हो गये, मानो रो रहे हों। उस समय उनका शरीर हिलता-डोलतातक न था॥ ४—११॥

इधर व्रजमें बड़े भयङ्कर-भयङ्कर तीनों प्रकारके उत्पात होने लगे। पृथ्वी, आकाश और शरीरोंमें ऐसे लक्षण दीखने लगे, जो इस बातकी सूचना दे रहे थे कि बहुत ही शीघ्र कोई अशुभ घटना घटनेवाली है। नन्दबाबा आदि गोपोंने पहले तो उन अशकुनोंको देखा और पीछेसे यह जाना कि आज श्रीकृष्ण बिना बलरामके ही गाय चराने चले गये। वे भयसे व्याकुल हो गये। परीक्षित्! सच्ची बात तो यह है कि वे भगवान्‌का प्रभाव नहीं जानते थे। इसीलिये उन अशकुनोंको देखकर उनके मनमें यह बात आयी कि आज तो श्रीकृष्णकी मृत्यु ही हो गयी होगी। वे उसी क्षण दुःख, शोक और भयसे आतुर हो गये। क्यों न हों, श्रीकृष्ण ही उनके प्राण, मन और सर्वस्व जो थे! प्रिय परीक्षित्! व्रजके बालक, वृद्ध और स्त्रियोंका स्वभाव गायों-जैसा ही वात्सल्य-पूर्ण था। वे मनमें ऐसी बात आते ही अत्यन्त दीन हो गये और अपने प्यारे कन्हैयाको देखनेकी उत्कट लालसासे घरद्वार छोड़कर निकल पड़े। बलरामजी स्वयं भगवान्‌के स्वरूप और सर्वशक्तिमान् हैं। उन्होंने जब व्रजवासियोंको इतना कातर और इतना आतुर देखा, तब उन्हें हँसी आ गयी। परन्तु वे कुछ बोले नहीं, चुप ही रहे। क्योंकि वे अपने छोटे भाई श्रीकृष्णका प्रभाव भलीभाँति जानते थे। व्रजवासी अपने प्यारे श्रीकृष्णको ढूँढने लगे। कोई अधिक कठिनाई न हुई क्योंकि मार्गमें उन्हें भगवान्‌के चरण-चिह्न मिलते जाते थे। जौ, कमल, अङ्कुश आदिसे युक्त होनेके कारण उन्हें पहचान होती जाती थी। इस प्रकार वे यमुना-तटकी ओर जाने लगे॥ १२—१७॥

परीक्षित्! मार्गमें गौओं और दूसरोंके चरणचिह्नोंके बीच-बीचमें भगवान्‌के चरणचिह्न भी दीख जाते थे। उनमें कमल, जौ, अङ्कुश, वज्र और ध्वजाके चिह्न बहुत ही स्पष्ट थे। उन्हें देखते हुए वे बहुत ही शीघ्रतासे चले। उन्होंने दूरसे ही देखा कि कालियदहमें कालिय नागके शरीरसे बँधे हुए श्रीकृष्ण चेष्टाहीन हो रहे हैं। कुंडके किनारेपर ग्वालबाल अचेत हुए पड़े हैं और गौएँ, बैल, बछड़े आदि बड़े आर्तस्वरसे डकरा रहे हैं। यह सब देखकर वे सब गोप अत्यन्त व्याकुल और अन्तमें मूर्छित हो गये। भगवान् श्रीकृष्णमें गोपियोंका कितना प्रेम था, यह कहनेकी बात नहीं। वे तो नित्य-निरन्तर भगवान्‌के सौहार्द, उनकी मधुर मुसकान, प्रेमभरी चितवन तथा मीठी वाणीका ही चिन्तन करती रहती थीं। जब उन प्रेममयी गोपियोंने देखा कि हमारे प्रियतम श्यामसुन्दरको काले साँपने जकड़ रक्खा है, तब तो उनके हृदयमें बड़ा ही दुःख और बड़ी ही जलन हुई। अपने प्राणवल्लभ जीवनसर्वस्वके बिना उन्हें तीनों लोक सूने दीखने लगे। माता यशोदा तो अपने लाड़ले लालके पीछे कालियदहमें कूदने ही जा रही थीं, परन्तु उनके समान उम्रकी स्नेहमयी गोपियोंने उन्हें रोक लिया। ऐसी बात नहीं कि उन गोपियोंके हृदयमें उनसे कम पीड़ा हो; उनके हृदयमें भी वैसी ही पीड़ा थी, वैसा ही शोक था। उनकी आँखोंसे भी आँसुओंकी झड़ी लगी हुई थी। सबकी आँखें श्रीकृष्णके मुखकमलपर लगी थीं। जिनके शरीरमें चेतना थी, वे व्रजमोहन श्रीकृष्णकी पूतना-वध आदिकी प्यारी-प्यारी ऐश्वर्यकी लीलाएँ कह-कहकर यशोदाजीको धीरज बँधाने लगीं। किन्तु अधिकांश तो मुर्देकी तरह पड़ ही गयी थीं। परीक्षित्! नन्दबाबा आदिके जीवन-प्राण तो श्रीकृष्ण ही थे। वे श्रीकृष्णके लिये कालियदहमें घुसने लगे।



परन्तु श्रीकृष्णका प्रभाव जाननेवाले भगवान् बलरामजीने समझा-बुझाकर बलपूर्वक और उनके हृदयोंमें प्रेरणा करके उन्हें रोक लिया॥ १८—२२॥

परीक्षित्! यह साँपके शरीरसे बँध जाना तो श्रीकृष्णकी मनुष्यों-जैसी एक लीला थी। जब उन्होंने देखा कि व्रजके

नहीं आ सकते थे। साथ ही वह इतना गहरा था कि उसमें दूसर लोग भी नहीं जा सकते थे। गरुड़जीके न आ सकने का यह कारण था कि पहले सौभरि ऋषि इसी स्थानपर तपस्या करते थे। एक बार उनके बहुत मना करनेपर भी गरुड़जीने अपनी रुचिके अनुकूल बलपूर्वक एक मत्स्यराजको खा लिया। उस समय गरुड़को बहुत भूख लगी हुई थी और वह मत्स्यराज स्वभावसे भी उनका भक्ष्य ही था। अपने मुखिया मत्स्यराजके मारे जानेके कारण मछलियोंको बड़ा कष्ट हुआ। वे अत्यन्त दीन और व्याकुल हो गयीं। उनकी यह दशा देखकर महर्षि सौभरिको बड़ी दया आयी। उन्होंने उस कुण्डमें रहनेवाले सब जीवोंकी भलाईके लिये गरुड़को यह शाप दे दिया कि 'यदि फिर कभी तुम इस कुण्डमें घुसकर मछलियोंको खाओगे, तो उसी क्षण मर जाओगे। मेरी यह बात कभी झूठी नहीं हो सकती।' परीक्षित्! महर्षि सौभरिके इस शापकी बात कालिय नागके सिवा और कोई साँप नहीं जानता था। इसलिये वह गरुड़के भयसे वहाँ रहने लगा था और अब भगवान् श्रीकृष्णने उसे निर्भय करके वहाँसे रमणक द्वीपमें वापस भेज दिया॥२–१२॥

परीक्षित्! इधर भगवान् श्रीकृष्ण दिव्य माला, गन्ध, वस्त्र, महामूल्य मणि और सुवर्णमय आभूषणोंसे विभूषित हो



उस कुण्डसे बाहर निकले। उनको देखकर सब-के-सब व्रजवासी इस प्रकार उठ खड़े हुए, जैसे प्राणोंको पाकर इन्द्रियाँ सचेत हो जाती हैं। सभी गोपोंका हृदय आनन्दसे भर गया। वे बड़े प्रेम और प्रसन्नतासे अपने कन्हैयाको हृदयसे लगाने लगे। परीक्षित्! यशोदारानी, रोहिणीजी, नन्दबाबा, गोपी और गोप—सभी श्रीकृष्णके आते ही सचेत हो गये। उनका मनोरथ सफल हो गया। बलरामजी तो भगवान्‌का प्रभाव जानते ही थे। वे श्रीकृष्णको हृदयसे लगा कर हँसने लगे। श्रीकृष्णके बाहर आ जानेसे जड़ चेतन सभीको आनन्द हुआ। पर्वत, वृक्ष, गाय, बैल, बछड़े—सब के सब आनन्दमग्न हो गये। गोपोंके कुलगुरु ब्राह्मणोंने अपनी पत्नियोंके साथ नन्दबाबाके पास आकर कहा—'नन्दजी! तुम्हारे बालकको कालिय नागने पकड़ लिया था। सो छूटकर आ गया। यह कितने सौभाग्यकी बात है! श्रीकृष्णके मृत्युके मुखसे लौट आनेके उपलक्ष्यमें तुम ब्राह्मणोंको दान करो।' परीक्षित्! ब्राह्मणोंकी बात सुनकर नन्दबाबाको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बहुत सा सोना और गौएँ ब्राह्मणोंको दान दीं। परमसौभाग्यवती देवी यशोदाजीने कालके गालसे बचे हुए अपने लालको गोदमें लेकर हृदयसे चिपका लिया। उनकी आँखोंसे आनन्दके आँसुओंकी बूँदें बार-बार टपकी पड़ती थीं॥१३–१९॥

परीक्षित्! व्रजवासी और गौएँ सब बहुत ही थक गये थे। ऊपरसे भूख प्यास भी लग रही थी। इसलिये उस रात वे व्रजमें नहीं गये, वहीं यमुनाजीके तटपर सो रहे। गर्मीके दिन थे, उधरका वन सूख गया था। आधी रातके समय उसमें आग लग गयी। उस आगने सोये हुए



व्रजवासियोंको चारों ओरसे घेर लिया और वह उन्हें जलाने लगी। आगकी आँच लगनेपर व्रजवासी घबड़ाकर उठ खड़े

कालिय नागपर कृपा

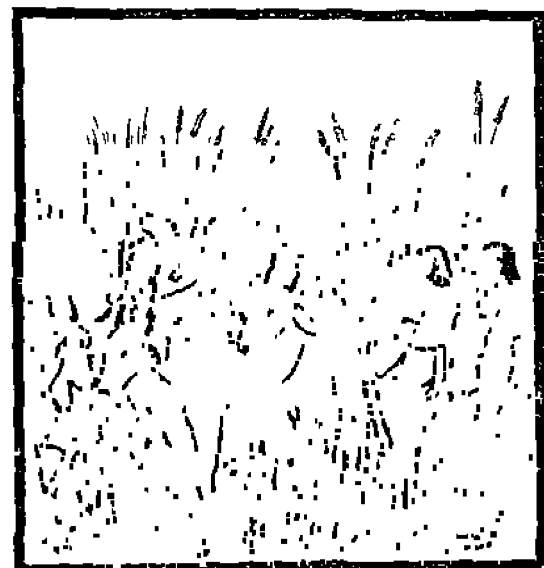


भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंपर जो खूनकी बूँदें पड़ती थीं उनसे मालूम होता था मानो रक्तकुसुमोंसे उनकी पूजा की जा रही हो।

उन्नीसवाँ अध्याय

गौओं और गोपोंको दावानलसे बचाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उस समय जब ग्वालबाल खेल-कूदमें लग गये, तब उनकी गौएँ बेरोकटोक चरती हुई बहुत दूर निकल गयीं और हरी-हरी घासके लोभसे एक गहन वनमें घुस गयीं। उनकी बकरियाँ, गायें और भैंसें एक वनसे दूसरे वनमें होती हुई आगे बढ़ गयीं तथा गर्मीके तापसे व्याकुल हो गयीं। वे बेसुध-सी होकर अन्तमें डकराती हुई सरकंडोंके वनमें जा पहुँचीं। जब श्रीकृष्ण, बलराम आदि ग्वालबालोंने देखा कि हमारे पशुओंका तो कहीं पता-ठिकाना ही नहीं है, तब उन्हें अपने खेल-कूदपर बड़ा पछतावा हुआ और वे उनको ढूँढ़ने लगे। परन्तु बहुत कुछ खोज-तलाश करनेपर भी वे अपनी गौओंका पता न लगा सके। गौएँ ही तो व्रजवासियोंकी जीविकाका साधन थीं। उनके न मिलनेसे वे अचेत-से हो रहे थे। अब वे गौओंके खुर और दाँतोंसे कटी हुई घास और पृथ्वीपर बने हुए खुरोंके चिह्नोंसे उनका पता लगाते हुए आगे बढ़े। अन्तमें उन्होंने देखा कि उनकी गौएँ मूँजमें रास्ता भूलकर डकरा रही हैं। उन्हें पाकर वे लौटानेकी चेष्टा करने लगे। परीक्षित्! उस समय वे एकदम थक गये थे और उन्हें प्यास भी बड़े



जोरसे लगी हुई थी। इससे वे व्याकुल हो रहे थे। उनकी यह दशा देखकर भगवान् श्रीकृष्ण अपनी मेघके समान गम्भीर वाणीसे नाम ले-लेकर गौओंको पुकारने लगे। गौएँ अपने नामकी ध्वनि सुनकर बहुत हर्षित हुईं। वे भी उत्तरमें हुंकारने और रँभाने लगीं ॥ १–६ ॥

परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान् उन गायोंको पुकार ही रहे थे कि उस वनमें सब ओर अकस्मात् दावाग्नि लग गयी, जो वनवासी जीवोंका काल ही होती है। साथ ही बड़े जोरकी आँधी भी चलने लगी। इससे वह चारों ओर फैल गयी और उसकी लपटें और भी भयङ्कर हो गयीं। उन लपटोंकी चपेटमें आकर लताएँ, वृक्ष, पशु, पक्षी एवं मनुष्य भस्म होने लगे। जब ग्वालों और गौओंने देखा कि दावानल चारों ओरसे हमारी ही ओर बढ़ता आ रहा है, तब वे



अत्यन्त भयभीत हो गये। और मृत्युके भयसे डरे हुए जीव जिस प्रकार भगवान्‌की शरणमें आते हैं, वैसे ही वे श्रीकृष्ण और बलरामजीके शरणापन्न होकर उन्हें पुकारने लगे। उन्होंने कहा—'महावीर श्रीकृष्ण ! प्यारे श्रीकृष्ण ! परम बलशाली बलराम ! हम तुम्हारे शरणागत हैं। देखो भाई, अब हम दावानलसे जलना ही चाहते हैं। तुम दोनों हमें इससे बचाओ। जिनके तुम्हीं भाई-बन्धु और सब कुछ हो, उन्हें तो किसी प्रकारका कष्ट नहीं होना चाहिये। श्रीकृष्ण! क्या तुम्हें भी धर्मका उपदेश करना पड़ेगा ? तुम तो सब धर्मोंका मर्म जानते हो। देखो, तुम्हीं हमारे एकमात्र स्वामी हो और हमें केवल तुम्हारा ही भरोसा है' ॥ ७–१० ॥

दण्ड देना सर्वथा उचित है। आपकी दृष्टिमें शत्रु और पुत्रका कोई भेदभाव नहीं है। इसलिये आप जो किसीको दण्ड देते हैं, वह उसके पापोंका प्रायश्चित्त कराने और उसका परम कल्याण करनेके लिये ही। आपने हमलोगोंपर यह बड़ा ही अनुग्रह किया। यह तो आपका कृपा-प्रसाद ही है। क्योंकि आप जो दुष्टोंको दण्ड देते हैं, उससे उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इस सर्पके अपराधी होनेमें तो कोई सन्देह ही नहीं है। यदि यह अपराधी न होता, तो इसे सर्पकी योनि ही क्यों मिलती? इसलिये हम सच्चे हृदयसे आपके इस क्रोधको भी आपका अनुग्रह ही समझती हैं। अवश्य ही पूर्वजन्ममें इसने स्वयं मानरहित होकर और दूसरोंका सम्मान करते हुए कोई बहुत बड़ी तपस्या की है। अथवा सब जीवोंपर दया करते हुए इसने कोई बहुत बड़ा धर्म किया है। तभी तो आप इसके ऊपर सन्तुष्ट हुए हैं। क्योंकि सर्व-जीवस्वरूप आपकी प्रसन्नताका यही उपाय है। भगवन्! हम नहीं समझ पातीं कि यह इसकी किस साधनाका फल है, जो यह आपके चरण-कमलोंकी धूलका स्पर्श पानेका अधिकारी हुआ है। आपके चरणोंकी रज इतनी दुर्लभ है कि उसके लिये आपकी अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मीजीको भी बहुत दिनोंतक समस्त भोगोंका त्याग करके नियमोंका पालन करते हुए तपस्या करनी पड़ी थी। प्रभो! जो आपके चरणोंकी धूलकी शरण ले लेते हैं, वे भक्तजन स्वर्गका राज्य या पृथ्वीकी बादशाही नहीं चाहते। न वे रसातलका ही राज्य चाहते और न तो ब्रह्माका पद ही लेना चाहते हैं। उन्हें अणिमादि योग-सिद्धियोंकी भी चाह नहीं होती। यहाँतक कि वे जन्म-मृत्युसे छुड़ानेवाले कैवल्य-मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते। स्वामी! यह नागराज तमोगुणी योनिमें उत्पन्न हुआ है और अत्यन्त क्रोधी है। फिर भी इसे आपकी वह परमपवित्र चरणरज प्राप्त हुई, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है तथा जिसको प्राप्त करनेकी इच्छामात्रसे ही संसारचक्रमें पड़े हुए जीवको संसारके वैभव-सम्पत्तिकी तो बात ही क्या—मोक्षकी भी प्राप्ति हो जाती है॥ ३३—३८॥

प्रभो! हम आपको प्रणाम करती हैं। आप अनन्त एवं अचिन्त्य ऐश्वर्यके नित्य निधि हैं। आप सबके अन्तःकरणोंमें विराजमान होनेपर भी अनन्त हैं। आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंके आश्रय तथा सब पदार्थोंके रूपमें भी विद्यमान हैं। आप प्रकृतिसे परे स्वयं परमात्मा हैं। आप सब प्रकारके ज्ञान और उनके अनुभवोंके खजाने हैं। आपकी महिमा और शक्ति अनन्त है। आप अप्राकृत अनन्त शक्तियोंसे युक्त हैं, प्राकृतिक गुणों एवं विकारोंका कभी स्पर्श ही नहीं करते। ब्रह्मस्वरूप! हम आपको नमस्कार कर रही हैं। आप प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले काल हैं, कालशक्तिके आश्रय हैं और कालके क्षण-कल्प आदि समस्त अवयवोंके साक्षी हैं। आप विश्वरूप होते हुए भी उससे अलग रहकर उसके द्रष्टा हैं। आप उसके बनानेवाले निमित्तकारण तो हैं ही, उसके रूपमें बननेवाले उपादानकारण भी हैं। प्रभो! पञ्चभूत, उनकी तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि और इन सबका खजाना चित्त—ये सब आप ही हैं। तीनों गुण और उनके कार्योंमें होनेवाले अभिमानके द्वारा आपने अपने साक्षात्कारको छिपा रक्खा है। आप देश, काल और वस्तुओंकी सीमासे बाहर—अनन्त हैं। सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और कार्य-कारणोंके समस्त विकारोंमें भी एकरस, विकाररहित और सर्वज्ञ हैं। ईश्वर हैं कि नहीं हैं, सर्वज्ञ हैं कि अल्पज्ञ इत्यादि अनेक मतभेदोंके अनुसार आप उन-उन मतवादियोंको उन्हीं-उन्हीं रूपोंमें दर्शन देते हैं। समस्त शब्दोंके अर्थके रूपमें तो आप हैं ही, शब्दोंके रूपमें भी हैं तथा उन दोनोंका सम्बन्ध जोड़नेवाली शक्ति भी आप ही हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं। प्रत्यक्ष-अनुमान आदि जितने भी प्रमाण हैं, उनको प्रमाणित करनेवाले आप ही हैं। समस्त शास्त्र आपसे ही निकले हैं और आपका ज्ञान स्वतःसिद्ध है। आप ही मनको लगानेकी विधिके रूपमें और उसको सब कहींसे हटा लेनेकी आज्ञाके रूपमें प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग हैं। इन दोनोंके मूल वेद भी स्वयं आप ही हैं। हम आपको बार-बार नमस्कार करती हैं। आप शुद्धसत्त्वमय वसुदेवके पुत्र वासुदेव, सङ्कर्षण एवं प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भी हैं। इस प्रकार चतुर्व्यूहके रूपमें आप भक्तों तथा यादवोंके स्वामी हैं। श्रीकृष्ण! हम आपको नमस्कार करती हैं। आप अन्तःकरण और उसकी वृत्तियोंके प्रकाशक हैं, और उन्हींके द्वारा अपने-आपको ढक रखते हैं। उन अन्तःकरण और वृत्तियोंके द्वारा ही आपके स्वरूपका कुछ-

और वैदिक सम्प्रदाय लुप्त हो जाते हैं। जो मेंढक पहले चुपचाप सो रहे थे, अब वे बादलोंकी गरज सुनकर टर्र टर्र करने लगे—जैसे नित्य नियमसे निवृत्त होनेपर गुरुके आदेशानुसार ब्रह्मचारी लोग वेदपाठ करने लगते हैं। छोटी-छोटी नदियाँ, जो जेठ आषाढमें बिल्कुल सूखनेको आ गयी थीं, वे अब उमड़-घुमड़कर अपने घेरेसे बाहर बहने लगीं—जैसे परतन्त्र अथवा उच्छृङ्खल पुरुषके शरीर और धन सम्पत्तियोंका कुमार्गमें उपयोग होने लगता है। पृथ्वीपर कहीं कहीं हरी हरी घासकी हरियाली थी, तो कहीं कहीं बीरबहूटियोंकी लालिमा और कहीं-कहीं बरसाती छत्तों (सफेद कुकुरमुत्तों) के कारण वह सफेद मालूम देती थी। इस प्रकार उसकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो किसी राजाकी रंग बिरंगी सेना हो। सब खेत अनाजोंसे भरे पूरे लहलहा रहे थे। उन्हें देखकर किसान तो मारे आनन्दके फूले न समाते थे, परन्तु सब कुछ प्रारब्धके अधीन है—यह बात न जाननेवाले धनियोंके चित्तमें बड़ी जलन हो रही थी कि अब हम इन्हें अपने पंजेमें कैसे रख सकेंगे। नये बरसाती जलके सेवनसे सभी जलचर और थलचर प्राणियोंकी सुन्दरता बढ़ गयी थी, जैसे भगवान्‌की सेवा करनेसे बाहर और भीतरके दोनों ही रूप सुधर जाते हैं। वर्षा ऋतुमें हवाके झोंकोंसे समुद्र एक तो यों ही उत्ताल तरङ्गोंसे युक्त हो रहा था, अब नदियोंके संयोगसे वह और भी क्षुब्ध हो उठा—ठीक वैसे ही, जैसे वासनायुक्त योगीका चित्त विषयोंका सम्पर्क होनेपर कामनाओंके उभारसे भर जाता है। मूसलधार वर्षाकी चोट खाते रहनेपर भी पर्वतोंको कोई व्यथा नहीं होती थी—जैसे दुःखोंकी भरमार होनेपर भी उन पुरुषोंको किसी प्रकारकी व्यथा नहीं होती, जिन्होंने अपना चित्त भगवान्‌को ही समर्पित कर रक्खा है। जो मार्ग कभी साफ नहीं किये जाते थे, वे घाससे ढक गये और उनको पहचानना कठिन हो गया—जैसे जब द्विजाति वेदोंका अभ्यास नहीं करते, तब कालक्रमसे वे उन्हें भूल जाते हैं। यद्यपि बादल बड़े लोकोपकारी हैं, फिर भी बिजलियाँ उनमें स्थिर नहीं रहतीं—ठीक वैसे ही जैसे चञ्चल प्रेमवाली कुलटाएँ धन आदि देनेवाले गुणी पुरुषोंके पास भी नहीं टिकतीं। आकाश मेघोंके गर्जन तर्जनसे भर रहा था। उसमें निर्गुण (बिना डोरीके) इन्द्रधनुषकी वैसी ही शोभा हुई, जैसी सत्त्व-रज आदि गुणोंके क्षोभसे होनेवाले विश्वके बखेड़ेमें निर्गुण ब्रह्मकी। यद्यपि चन्द्रमाकी उज्ज्वल चाँदनीसे ही बादलोंका पता चलता था, फिर भी उन बादलोंने ही चन्द्रमाको ढककर शोभाहीन भी बना दिया था—ठीक वैसे ही जैसे पुरुषके आभाससे आभासित होनेवाला अहङ्कार ही उसे ढककर प्रकाशित नहीं होने देता। बादलोंके शुभागमनसे मोरोंका रोम रोम खिल रहा था, वे अपनी कुहक और नृत्यके द्वारा आनन्दोत्सव मना रहे थे—ठीक वैसे ही जैसे गृहस्थीके जंजालमें फँसे हुए लोग, जो अधिकतर तीनों तापोंसे जलते और घबड़ाते रहते हैं, भगवान्‌के भक्तोंके शुभागमनसे आनन्दमग्न हो जाते हैं। जो वृक्ष जेठ आषाढमें सूख गये थे, वे अब अपनी जड़ोंसे जल पीकर पत्ते, फूल तथा डालियोंसे खूब सज धज गये—जैसे सकामभावसे तपस्या करनेवाले पहले तो दुर्बल हो जाते हैं, परन्तु कामना पूरी होनेपर मोटे तगड़े हो जाते हैं। परीक्षित्! तालाबोंके तट काँटे कीचड़ और जलके बहावके कारण प्रायः अशान्त ही रहते थे, परन्तु सारस एक क्षणके लिये भी उन्हें नहीं छोड़ते थे—जैसे अशुद्ध हृदयवाले विषयी पुरुष काम धंधोंकी झंझटसे कभी छुटकारा नहीं पाते, फिर भी घरोंमें ही पड़े रहते हैं। वर्षा ऋतुमें इन्द्रकी प्रेरणासे मूसलधार वर्षा होती है, इससे नदियोंके बाँध और खेतोंकी मेड़ें टूट फूट जाती हैं—जैसे कलियुगमें पाखण्डियोंके तरह-तरहके मिथ्या मतवादोंसे वैदिक मार्गकी मर्यादा ढीली पड़ जाती है। वायुकी प्रेरणासे घने बादल प्राणियोंके लिये अमृतमय जलकी वर्षा करने लगते हैं—जैसे ब्राह्मणोंकी प्रेरणासे धनीलोग समय-समयपर दानके द्वारा प्रजाकी अभिलाषाएँ पूर्ण करते हैं॥ ३–२४॥

वर्षा ऋतुमें वृन्दावन इसी प्रकार शोभायमान और पके हुए खजूर तथा जामुनोंसे भर रहा था। उसी वनमें विहार करनेके लिये श्याम और बलरामने ग्वालबाल और गौओंके साथ प्रवेश किया। गौएँ अपने थनोंके भारी भारके कारण बहुत ही धीरे धीरे चल रही थीं। जब भगवान् श्रीकृष्ण उनका नाम लेकर पुकारते, तब वे प्रेमपरवश होकर जल्दी जल्दी दौड़ने लगतीं। परीक्षित्! उस समय उनके थनोंसे दूधकी धारा गिरती जाती थी। भगवान्‌ने देखा कि वनवासी भील और भीलनियाँ आनन्दमग्न हैं। वृक्षोंकी पंक्तियाँ मधुधारा उँडेल रही हैं। पर्वतोंसे झर झर करते हुए झरने झर रहे हैं। उनकी आवाज बड़ी सुरीली जान पड़ती है और साथ ही वर्षा होनेपर छिपनेके लिये बहुत-सी गुफाएँ भी हैं। जब वर्षा होने लगती, तब श्रीकृष्ण कभी किसी वृक्षकी गोदमें या खोंड़रमें जा छिपते। कभी

दण्ड देना सर्वथा उचित है। आपकी दृष्टिमें शत्रु और पुत्रका कोई भेदभाव नहीं है। इसलिये आप जो किसीको दण्ड देते हैं, वह उसके पापोंका प्रायश्चित्त कराने और उसका परम कल्याण करनेके लिये ही। आपने हमलोगोंपर यह बड़ा ही अनुग्रह किया। यह तो आपका कृपा-प्रसाद ही है। क्योंकि आप जो दुष्टोंको दण्ड देते हैं, उससे उनके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। इस सर्पके अपराधी होनेमें तो कोई सन्देह ही नहीं है। यदि यह अपराधी न होता, तो इसे सर्पकी योनि ही क्यों मिलती? इसलिये हम सच्चे हृदयसे आपके इस क्रोधको भी आपका अनुग्रह ही समझती हैं। अवश्य ही पूर्वजन्ममें इसने स्वयं मानरहित होकर और दूसरोंका सम्मान करते हुए कोई बहुत बड़ी तपस्या की है। अथवा सब जीवोंपर दया करते हुए इसने कोई बहुत बड़ा धर्म किया है। तभी तो आप इसके ऊपर सन्तुष्ट हुए हैं। क्योंकि सर्व-जीवस्वरूप आपकी प्रसन्नताका यही उपाय है। भगवन्! हम नहीं समझ पातीं कि यह इसकी किस साधनाका फल है, जो यह आपके चरण-कमलोंकी धूलका स्पर्श पानेका अधकारी हुआ है। आपके चरणोंकी रज इतनी दुर्लभ है कि उसके लिये आपकी अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मीजीको भी बहुत दिनोंतक समस्त भोगोंका त्याग करके नियमोंका पालन करते हुए तपस्या करनी पड़ी थी। प्रभो! जो आपके चरणोंकी धूलकी शरण ले लेते हैं, वे भक्तजन स्वर्गका राज्य या पृथ्वीकी बादशाही नहीं चाहते। न वे रसातलका ही राज्य चाहते और न तो ब्रह्माका पद ही लेना चाहते हैं। उन्हें अणिमादि योग-सिद्धियोंकी भी चाह नहीं होती। यहाँतक कि वे जन्म-मृत्युसे छुड़ानेवाले कैवल्य-मोक्षकी भी इच्छा नहीं करते। स्वामी! यह नागराज तमोगुणी योनिमें उत्पन्न हुआ है और अत्यन्त क्रोधी है। फिर भी इसे आपकी वह परमपवित्र चरणरज प्राप्त हुई, जो दूसरोंके लिये सर्वथा दुर्लभ है तथा जिसको प्राप्त करनेकी इच्छामात्रसे ही संसारचक्रमें पड़े हुए जीवको संसारके वैभव-सम्पत्तिकी तो बात ही क्या—मोक्षकी भी प्राप्ति हो जाती है ॥ ३३–३८ ॥

प्रभो! हम आपको प्रणाम करती हैं। आप अनन्त एवं अचिन्त्य ऐश्वर्यके नित्य निधि हैं। आप सबके अन्तःकरणोंमें विराजमान होनेपर भी अनन्त हैं। आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंके आश्रय तथा सब पदार्थोंके रूपमें भी विद्यमान हैं। आप प्रकृतिसे परे स्वयं परमात्मा हैं। आप सब प्रकारके ज्ञान और उनके अनुभवोंके खजाने हैं। आपकी महिमा और शक्ति अनन्त है। आप अप्राकृत अनन्त शक्तियोंसे युक्त हैं, प्राकृतिक गुणों एवं विकारोंका कभी स्पर्श ही नहीं करते। ब्रह्मस्वरूप! हम आपको नमस्कार कर रही हैं। आप प्रकृतिमें क्षोभ उत्पन्न करनेवाले काल हैं, कालशक्तिके आश्रय हैं और कालके क्षण-कल्प आदि समस्त अवयवोंके साक्षी हैं। आप विश्वरूप होते हुए भी उससे अलग रहकर उसके द्रष्टा हैं। आप उसके बनानेवाले निमित्तकारण तो हैं ही, उसके रूपमें बननेवाले उपादानकारण भी हैं। प्रभो! पञ्चभूत, उनकी तन्मात्राएँ, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि और इन सबका खजाना चित्त—ये सब आप ही हैं। तीनों गुण और उनके कार्योंमें होनेवाले अभिमानके द्वारा आपने अपने साक्षात्कारको छिपा रक्खा है। आप देश, काल और वस्तुओंकी सीमासे बाहर—अनन्त हैं। सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और कार्य-कारणोंके समस्त विकारोंमें भी एकरस, विकाररहित और सर्वज्ञ हैं। ईश्वर हैं कि नहीं हैं, सर्वज्ञ हैं कि अल्पज्ञ इत्यादि अनेक मतभेदोंके अनुसार आप उन-उन मतवादियोंको उन्हीं-उन्हीं रूपोंमें दर्शन देते हैं। समस्त शब्दोंके अर्थके रूपमें तो आप हैं ही, शब्दोंके रूपमें भी हैं तथा उन दोनोंका सम्बन्ध जोड़नेवाली शक्ति भी आप ही हैं। हम आपको नमस्कार करती हैं। प्रत्यक्ष-अनुमान आदि जितने भी प्रमाण हैं, उनको प्रमाणित करनेवाले आप ही हैं। समस्त शास्त्र आपसे ही निकले हैं और आपका ज्ञान स्वतःसिद्ध है। आप ही मनको लगानेकी विधिके रूपमें और उसको सब कहींसे हटा लेनेकी आज्ञाके रूपमें प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्ग हैं। इन दोनोंके मूल वेद भी स्वयं आप ही हैं। हम आपको बार-बार नमस्कार करती हैं। आप शुद्धसत्त्वमय वसुदेवके पुत्र वासुदेव, सङ्कर्षण एवं प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भी हैं। इस प्रकार चतुर्व्यूहके रूपमें आप भक्तों तथा यादवोंके स्वामी हैं। श्रीकृष्ण! हम आपको नमस्कार करती हैं। आप अन्तःकरण और उसकी वृत्तियोंके प्रकाशक हैं, और उन्हींके द्वारा अपने-आपको ढक रखते हैं। उन अन्तःकरण और वृत्तियोंके द्वारा ही आपके स्वरूपका कुछ-

पुरुष जैसे समय आनेपर अपने देव आदि शरीरोंको प्राप्त होते हैं वैसे ही वैश्य, सन्यासी, राजा और स्नातक—जो वर्षाके कारण एक स्थानपर रुके हुए थे—वहाँसे चलकर अपने अपने अभीष्ट काम काजमें लग गये ॥ ३२-४९ ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

वेणुगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! शरद् ऋतुके कारण वह वन बड़ा सुन्दर हो रहा था। जल निर्मल था और जलाशयोंमें खिले हुए कमलोंकी सुगन्धसे सनकर वायु मन्द मन्द चल रही थी। भगवान् श्रीकृष्णने गौओं और ग्वालबालोंके साथ उस वनमें प्रवेश किया। उस वनके सरोवर, नदियाँ और पर्वत—सब-के-सब सुन्दर सुन्दर पुष्पोंसे परिपूर्ण हरी हरी वृक्ष पत्तियोंसे शोभायमान हो रहे थे। मतवाले भौंरे स्थान स्थानपर गुनगुना रहे थे और तरह-तरहके पक्षी झुंड-के-झुंड अलग-अलग कलरव कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने बलरामजी और ग्वालबालोंके साथ उसके भीतर



घुसकर गौओंको चराते हुए अपनी बाँसुरीपर बड़ी मधुर तान छेड़ी। श्रीकृष्णकी वह वंशीध्वनि भगवान्‌के प्रति प्रेम भावको, उनके मिलनकी आकाङ्क्षाको जगानेवाली थी। उसे सुनकर गोपियोंका हृदय प्रेमसे परिपूर्ण हो गया। वे एकान्तमें अपनी सखियोंसे उनके रूप, गुण और वंशीध्वनिके प्रभावका वर्णन करने लगीं। व्रजकी गोपियोंने वंशीध्वनिका माधुर्य आपसमें वर्णन करना चाहा तो अवश्य; परन्तु वंशीका स्मरण होते ही उन्हें श्रीकृष्णकी मधुर चेष्टाओंकी, प्रेमपूर्ण चितवन, भौंहोंके इशारे और मधुर मुसकान आदिकी याद हो आयी। उनकी भगवान्‌से मिलनेकी आकाङ्क्षा और भी बढ़ गयी। उनका मन हाथसे निकल गया। वे मन ही मन वहाँ पहुँच गयीं, जहाँ श्रीकृष्ण थे। अब उनकी वाणी बोले कैसे? वे उसके वर्णनमें असमर्थ हो गयीं। वे मन ही मन देखने लगीं कि श्रीकृष्ण वृन्दावनमें प्रवेश कर रहे हैं। उनके सिरपर मयूर पिच्छ है और कानोंपर कनेरके पीले-पीले पुष्प, उनके शरीरपर सुनहला पीताम्बर और गलेमें पाँच प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंकी बनी वैजयन्ती माला है। रंग मञ्चपर अभिनय करते हुए श्रेष्ठ नटका-सा क्या ही सुन्दर वेष है! बाँसुरीके छिद्रोंको वे अपने अधरामृतसे भर रहे हैं। उनके पीछे-पीछे ग्वालबाल उनकी लोकपावन कीर्तिका गायन करते हुए चल रहे हैं। इस प्रकार श्रीकृष्ण वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ इस वृन्दावनधामको अपने चरणचिह्नोंसे और भी रमणीय बना रहे हैं। परीक्षित्! यह वंशीध्वनि जड, चेतन—समस्त भूतोंका मन चुरा लेती है। गोपियोंने उसे सुना और सुनकर उसका वर्णन करने लगीं। वर्णन करते करते वे तन्मय हो गयीं और श्रीकृष्णको पाकर आलिङ्गन करने लगीं ॥ १–६ ॥

गोपियाँ आपसमें बातचीत करने लगीं—अरी सखी! हमने तो आँखवालोंके जीवनकी और उनकी आँखोंकी बस, यही—इतनी ही सफलता समझी है। और तो हमें कुछ मालूम ही नहीं है। वह कौन सा लाभ है? वह यही है कि जब श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलराम ग्वालबालोंके साथ गायोंको हाँककर वनमें ले जा रहे हों या लौटाकर व्रजमें ला रहे हों, उन्होंने अपने अधरोंपर मुरली धर रक्खी हो और प्रेमभरी तिरछी चितवनसे हमारी ओर देख रहे हों, उस समय हम उनकी मुख माधुरीका पान करती रहें। अरी सखी! जब वे आमकी नयी कोंपलें, मोरोंके पंख, फूलोंके गुच्छे, रंग बिरंगे कमल और कुमुदकी मालाएँ धारण कर लेते हैं, श्रीकृष्णके साँवरे शरीरपर पीताम्बर और बलरामके गोरे शरीरपर नीलाम्बर फहराने लगता है, तब उनका वेष बड़ा विचित्र बन जाता है। ग्वालबालोंकी गोष्ठीमें वे दोनों बीचोबीच बैठ जाते हैं और मधुर सङ्गीतकी

मेरा स्मरण करता हुआ मेरी पूजा करेगा—वह सब पापोंसे मुक्त हो जायगा। मैं जानता हूँ कि तू गरुड़के भयसे रमणक द्वीप छोड़कर इस दहमें आ बसा था। अब तेरा शरीर मेरे चरणचिह्नोंसे अङ्कित हो गया है। इसलिये जा, अब गरुड़ तुझे खायेंगे नहीं ॥६०-६३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्णकी एक-एक लीला अद्भुत है। भगवान्‌की ऐसी आज्ञा पाकर कालिय नाग और उसकी पत्नियोंने आनन्दसे भरकर बड़े आदरसे उनकी पूजा की। उन्होंने दिव्य वस्त्र, पुष्पमाला, मणि, बहुमूल्य आभूषण, दिव्य गन्ध, चन्दन और अति उत्तम कमलोंकी मालासे जगत्‌के स्वामी गरुड़ध्वज भगवान् श्रीकृष्णका पूजन करके उन्हें प्रसन्न किया। इसके बाद बड़े प्रेम और आनन्दसे उनकी परिक्रमा की, वन्दना की और उनसे अनुमति ली। तब अपनी पत्नियों, पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंके साथ रमणक द्वीपकी, जो समुद्रमें सर्पोंके रहनेका एक स्थान है, यात्रा की। लीला-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे यमुनाजीका जल केवल विषहीन ही नहीं,



बल्कि उसी समय अमृतके समान मधुर हो गया ॥६४-६७॥

सत्रहवाँ अध्याय

व्रजवासियोंको दावानलसे बचाना

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! कालिय नागने नागोंके निवासस्थान रमणक द्वीपको क्यों छोड़ा था? और उस अकेलेने ही ऐसा कौन-सा अपराध किया था, जिससे गरुड़ उसपर नाराज़ हो गये थे ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! पहले गरुड़जी साँपोंको खा जाया करते थे। इसलिये सर्पोंने यह नियम कर लिया था कि प्रत्येक मासमें निर्दिष्ट वृक्षके नीचे गरुड़को एक सर्पकी बलि दी जाय। इस नियमके अनुसार प्रत्येक अमावस्याको सारे सर्प अपनी रक्षाके लिये गरुड़जीको अपना-अपना भाग देते रहते थे। उन्होंने भी कृपा करके यह बात स्वीकार कर ली थी। उन सर्पोंमें कद्रूका पुत्र कालिय नाग भी था। वह अपने विष और बलके घमंडसे मतवाला हो रहा था। उसने गरुड़को अत्यन्त तुच्छ समझा और स्वयं तो बलि देना दूर रहा—दूसरे साँप जो गरुड़को बलि देते, उसे भी वह खा लेता। परीक्षित्! यह सुनकर भगवान्‌के प्यारे पार्षद महात्मा गरुड़को बड़ा क्रोध आया। इसलिये उन्होंने कालिय नागको मार डालनेके विचारसे बड़े वेगसे उसपर आक्रमण किया। कालिय नागने जब देखा कि गरुड़ बड़े वेगसे मुझपर आक्रमण करने आ रहे हैं, तब वह अपने एक-सौ-एक फण फैलाकर डसनेके लिये उनपर टूट पड़ा। उसके पास शस्त्र थे केवल दाँत, इसलिये उसने दाँतोंसे गरुड़को डस लिया। उस समय वह अपनी भयावनी जीभें लपलपा रहा था, उसकी साँस लंबी चल रही थी और आँखें बड़ी डरावनी जान पड़ती थीं। परीक्षित्! गरुड़जी विष्णु-भगवान्‌के वाहन हैं और उनका वेग तथा पराक्रम भी अतुलनीय है। कालिय नागकी यह ढिठाई देखकर उनका क्रोध और भी बढ़ गया तथा उन्होंने उसे अपने शरीरसे झटककर फेंक दिया। इसके बाद गरुड़ने अपने सुनहले बायें पंखसे कालिय नागपर बड़े जोरसे प्रहार किया। गरुड़जी-के पंखकी चोटसे कालिय नाग घायल हो गया। वह घबड़ाकर वहाँसे भगा और यमुनाजीके इस कुण्डमें चला आया। यमुनाजीका यह कुण्ड गरुड़के लिये अगम्य था। वे इसमें

मुरलीकी मोहिनी



श्रीकृष्ण जब मधुर तान छेड़ते हैं तब सिद्धपत्नियाँ अपने पतियोंके साथ
विमानोंपर चढ़कर आकाशमें आ जाती हैं।

हुए और लीला-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये। उन्होंने कहा—'प्यारे श्रीकृष्ण! श्यामसुन्दर! महाभाग्यवान् बलराम! तुम दोनोंका बल-विक्रम अनन्त है। देखो, देखो, यह भयङ्कर आग तुम्हारे सगे-सम्बन्धी स्वजनोंको जलाना ही चाहती है। तुममें सब सामर्थ्य है। हम तुम्हारे सुहृद् हैं, इसलिये इस प्रलयकी अपार आगसे हमें बचाओ। प्रभो! हम मृत्युसे नहीं डरते, परन्तु तुम्हारे चरणकमल हमसे नहीं छोड़े जाते। इसलिये गोविन्द! तुम हमें अपने निर्भय चरणोंमें ही रक्खो।' जब अनन्तशक्ति जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरे स्वजन इस प्रकार व्याकुल हो रहे हैं, तब वे उस भयङ्कर आगको पी गये। भगवान् अनन्त हैं। उनके लिये यह कौन-सी बड़ी बात है? ॥ २०—२५ ॥

अठारहवाँ अध्याय

प्रलम्बासुर-उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सकुशल कालियदहसे निकल आये और दावाग्निसे सब लोगोंकी रक्षा हो गयी। इससे व्रजवासियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। दूसरे दिन प्रातःकाल भगवान् श्रीकृष्णने उनके साथ व्रजमें प्रवेश किया। व्रजमें चारों ओर बड़ी सुन्दर-सुन्दर गौएँ शोभायमान हो रही थीं और उनके साथ चलनेवाले ग्वाल उनकी कीर्तिका गायन कर रहे थे। इस प्रकार अपनी योगमायासे ग्वालका-सा वेष बनाकर राम और श्याम व्रजमें क्रीड़ा कर रहे थे। उन दिनों ग्रीष्म ऋतु थी। उस ऋतुमें लोग बहुत प्रसन्न—बहुत सुखी नहीं रहते। परन्तु वृन्दावनमें तो उसकी निराली ही छटा थी। उस स्थानके स्वाभाविक गुणोंसे वहाँ वसन्तकी ही छटा छिटक रही थी। इसका कारण था, वृन्दावनमें परम मधुर भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और बलरामजी निवास जो करते थे! झींगुरोंकी तीखी झंकार झरनोंके मधुर झर-झरमें छिप गयी थी। उन झरनोंसे सदा-सर्वदा बहुत ठंडी जलकी फुहियाँ उड़ा करती थीं, जिनसे वहाँके वृक्षोंकी हरियाली देखते ही बनती थी। जिधर देखिये, हरी-हरी दूबसे पृथ्वी हरी-हरी हो रही है। नदी, सरोवर एवं झरनोंकी लहरोंका स्पर्श करके जो वायु चलती थी उसमें लाल-पीले-नीले, तुरतके खिले हुए, देरके खिले हुए—कल्हार, उत्पल आदि अनेकों प्रकारके कमलोंका पराग मिला हुआ होता था। इस शीतल, मन्द और सुगन्ध वायुके कारण वनवासियोंको गर्मीका किसी प्रकारका क्लेश नहीं सहना पड़ता था। न दावाग्निका ताप लगता था और न तो सूर्यका घाम ही। नदियोंमें अगाध जल भरा हुआ था। बड़ी-बड़ी लहरें उनके तटोंको चूम जाया करती थीं। वे उनके पुलिनोंसे टकरातीं और उन्हें स्वच्छ बना जातीं। उनके कारण आस-पासकी भूमि गीली बनी रहती और सूर्यकी अत्यन्त उग्र तथा तीखी किरणें भी वहाँकी पृथ्वी और हरी-भरी घासको नहीं सुखा सकती थीं। चारों ओर हरियाली छा रही थी। उस वनमें वृक्षोंकी पाँत-की-पाँत फूलोंसे लद रही थी। जहाँ देखिये, वहींसे सुन्दरता फूटी पड़ती थी। कहीं रंग-बिरंगे पक्षी चहक रहे हैं, तो कहीं तरह-तरहके हरिन चौकड़ी भर रहे हैं। कहीं मोर कूक रहे हैं, तो कहीं भौंरे गुंजार कर रहे हैं। कहीं कोयलें कुहक रही हैं, तो कहीं सारस अलग ही अपना अलाप छेड़े हुए हैं। ऐसा सुन्दर वन देखकर श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलरामजीने उसमें विहार करनेकी इच्छा की। आगे-आगे गौएँ चलीं, पीछे-पीछे ग्वालबाल और बीचमें अपने बड़े भाईके साथ बाँसुरी बजाते हुए श्रीकृष्ण! ॥ १—८ ॥

राम, श्याम और ग्वालबालोंने लाल-लाल मूँगों,



मोरपंखके गुच्छों, सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंके हारों और गेरू

करती हो ! ये तो चेतन हैं। इन जड नदियोंको नहीं देखतीं ! इनमें जो भँवर दीख रहे हैं, उनसे इनके हृदयमें श्यामसुन्दरसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षाका पता चलता है ! देखती नहीं हो, उसके वेगसे ही तो ये बह नहीं रही हैं, इनका प्रवाह रुक गया है। ऐसा क्यों हुआ है सखी ? इन्होंने भी प्रेमस्वरूप श्रीकृष्णकी वंशीध्वनि सुन ली है। देखो, देखो ! ये अपनी तरङ्गोंके हाथोंसे उनके चरणोंपर कमलके फूल चढाकर उनका आलिङ्गन कर रही हैं, उनके चरणोंपर अपने आपको निछावर कर रही हैं। अरी सखी ! ये नदियाँ तो हमारी पृथ्वीकी, हमारे वृन्दावनकी वस्तुएँ हैं; तनिक इन बादलोंको भी देखो ! जब वे देखते हैं कि व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण और बलरामजी ग्वालबालोंके साथ धूपमें गौएँ चरा रहे हैं और साथ-साथ बाँसुरी भी बजाते जा रहे हैं, तब उनके हृदयमें प्रेम उमड़ आता है। वे उनके ऊपर मँडराने लगते हैं और वे श्यामघन अपने सखा घनश्यामके ऊपर अपने शरीरको ही छाता बना कर तान देते हैं। इतना ही नहीं, सखी ! वे जब उनपर नन्ही नन्ही फुहियोंकी वर्षा करने लगते हैं, तब ऐसा जान पड़ता है कि वे उनके ऊपर सुन्दर सुन्दर श्वेत कुसुम चढा रहे हैं। नहीं सखी, उनके बहाने वे तो अपना जीवन ही निछावर कर देते हैं ! ॥ १५-१६ ॥

अरी भटू ! हम तो वृन्दावनकी इन भीलनियोंको ही धन्य और कृतकृत्य मानती हैं। ऐसा क्यों सखी ? अरी सखी, इनके हृदयमें तो बड़ा प्रेम है। जब ये हमारे कृष्ण प्यारेको देखती हैं, तब इनके हृदयमें भी उनसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जाग उठती है। इनके हृदयमें भी प्रेमकी व्याधि लग जाती है। उस समय ये क्या उपाय करती हैं, सखी ? सखी ! यह भी सुन लो। हमारे प्रियतमकी प्रेयसी गोपियाँ अपने वक्षःस्थलोंपर जो केसर लगाती हैं, वह श्यामसुन्दरके चरणोंमें लगी होती है और वे जब वृन्दावनके घास पातपर चलते हैं, तब उनमें भी लग जाती है। ये सौभाग्यवती भीलनियाँ उन्हें उन तिनकोंपरसे छुड़ाकर अपने स्तनों और मुखोंपर मल लेती हैं और इस प्रकार अपने हृदयकी प्रेमपीड़ा शान्त करती हैं। अरी गोपियो ! यह गिरिराज गोवर्द्धन तो भगवान्के भक्तोंमें बहुत ही श्रेष्ठ है। धन्य हैं इसके भाग्य ! देखती नहीं हो, हमारे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण और नयनाभिराम बलरामके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके यह कितना आनन्दित रहता है ! इसके भाग्यकी सराहना कौन करे ? यह तो उन दोनोंका—ग्वालबालों और गौओंका बड़ा ही सत्कार करता है। स्नान पानके लिये झरनोंका जल देता है, धूपके लिये गुग्गुल आदि सुगन्धित द्रव्य, सजानेके लिये फूल, पहननेके लिये वस्त्र, विश्राम करनेके लिये कन्दराएँ और खानेके लिये कन्द मूल फल देता है तथा मणियोंसे उनकी आरती भी तो उतारता है ! वास्तवमें यह धन्य है ! अरी सखी ! इन साँवरे गोरे किशोरोंकी तो गति ही निराली है। जब वे सिरपर नोवना (दुहते समय गायके पैर बाँधनेकी रस्सी) लपेटकर और कंधोंपर फंदा (भागनेवाली गायोंको पकड़नेकी रस्सी) रखकर गायोंको एक वनसे दूसरे वनमें हाँककर ले जाते हैं, साथमें ग्वालबाल भी होते हैं और मधुर मधुर संगीत गाते हुए बाँसुरीकी तान छेड़ते हैं, उस समय सखी ! मनुष्योंकी तो बात ही क्या, अन्य शरीरधारियोंमें भी चलनेवाले चेतन पशु पक्षी और जड नदी आदि तो स्थिर हो जाते हैं तथा अचल वृक्षोंको भी रोमाञ्च हो आता है। जादूभरी वंशीका और क्या चमत्कार सुनाऊँ, सखी ! ॥ १७-१९ ॥

परीक्षित् ! वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णकी ऐसी ऐसी एक नहीं, अनेकों लीलाएँ हैं। गोपियाँ प्रतिदिन आपसमें उनका वर्णन करतीं और तन्मय हो जातीं। भगवान्की लीलाएँ उनके हृदयमें स्फुरित होने लगतीं ॥ २० ॥

बाईसवाँ अध्याय

चीरहरण-लीला

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! शरद् ऋतुमें श्रीकृष्ण क्रीड़ा देख सुनकर गोपियाँ मोहित हो चुकी थीं। अब हेमन्त ऋतु आयी। उसके पहले ही महीनेमें अर्थात् मार्गशीर्षमें नन्दबाबाके व्रजकी कुमारियाँ कात्यायनी देवीकी पूजा और व्रत करने लगीं। वे केवल हविष्यान्न ही खाती थीं। राजन् ! वे कुमारी कन्याएँ पूर्व दिशाका क्षितिज लाल होते-होते यमुना जलमें स्नान कर लेतीं और तटपर ही देवीकी बालुकामयी मूर्ति बनाकर सुगन्धित चन्दन, फूलोंके हार, भाँति भाँतिके नैवेद्य, धूप दीप, छोटी बड़ी भेंटकी सामग्री, पल्लव, फल और चावल आदिसे उनकी पूजा करतीं। साथ ही 'हे कात्यायनी ! हे महामाये ! हे महायोगिनी ! हे सबकी एकमात्र स्वामिनी ! आप नन्दनन्दन श्रीकृष्णको हमारा

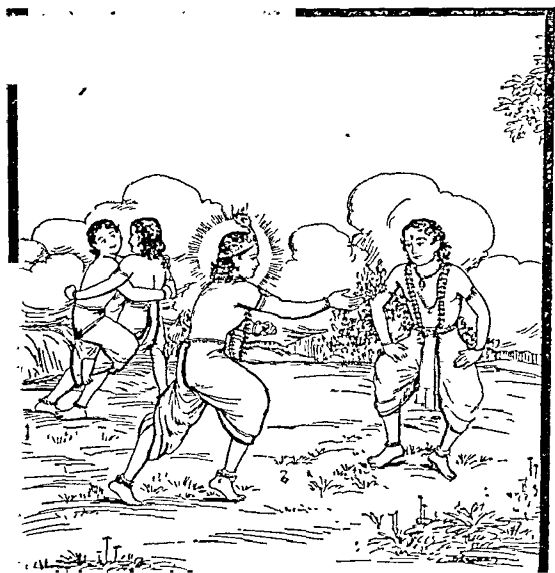
हुए और लीला-मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें गये। उन्होंने कहा—'प्यारे श्रीकृष्ण! श्यामसुन्दर! महाभाग्यवान् बलराम! तुम दोनोंका बल-विक्रम अनन्त है। देखो, देखो, यह भयङ्कर आग तुम्हारे सगे-सम्बन्धी स्वजनोंको जलाना ही चाहती है। तुममें सब सामर्थ्य है। हम तुम्हारे सुहृद् हैं, इसलिये इस प्रलयकी अपार आगसे हमें बचाओ। प्रभो! हम मृत्युसे नहीं डरते, परन्तु तुम्हारे चरणकमल हमसे नहीं छोड़े जाते। इसलिये गोविन्द! तुम हमें अपने निर्भय चरणोंमें ही रक्खो।' जब अनन्तशक्ति जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरे स्वजन इस प्रकार व्याकुल हो रहे हैं, तब वे उस भयङ्कर आगको पी गये। भगवान् अनन्त हैं। उनके लिये यह कौन-सी बड़ी बात है? ॥ २०—२५ ॥

अठारहवाँ अध्याय

प्रलम्बासुर-उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सकुशल कालियदहसे निकल आये और दावाग्निसे सब लोगोंकी रक्षा हो गयी। इससे व्रजवासियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। दूसरे दिन प्रातःकाल भगवान् श्रीकृष्णने उनके साथ व्रजमें प्रवेश किया। व्रजमें चारों ओर बड़ी सुन्दर-सुन्दर गौएँ शोभायमान हो रही थीं और उनके साथ चलनेवाले ग्वाल उनकी कीर्तिका गायन कर रहे थे। इस प्रकार अपनी योगमायासे ग्वालका-सा वेष बनाकर राम और श्याम व्रजमें क्रीड़ा कर रहे थे। उन दिनों ग्रीष्म ऋतु थी। उस ऋतुमें लोग बहुत प्रसन्न—बहुत सुखी नहीं रहते। परन्तु वृन्दावनमें तो उसकी निराली ही छटा थी। उस स्थानके स्वाभाविक गुणोंसे वहाँ वसन्तकी ही छटा छिटक रही थी। इसका कारण था, वृन्दावनमें परम मधुर भगवान् श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और बलरामजी निवास जो करते थे! झींगुरोंकी तीखी झंकार झरनोंके मधुर झर-झरमें छिप गयी थी। उन झरनोंसे सदा-सर्वदा बहुत ठंडी जलकी फुहियाँ उड़ा करती थीं, जिनसे वहाँके वृक्षोंकी हरियाली देखते ही बनती थी। जिधर देखिये, हरी-हरी दूबसे पृथ्वी हरी-हरी हो रही है। नदी, सरोवर एवं झरनोंकी लहरोंका स्पर्श करके जो वायु चलती थी उसमें लाल-पीले-नीले, तुरतके खिले हुए, देरके खिले हुए—कल्हार, उत्पल आदि अनेकों प्रकारके कमलोंका पराग मिला हुआ होता था। इस शीतल, मन्द और सुगन्ध वायुके कारण वनवासियोंको गर्मीका किसी प्रकारका क्लेश नहीं सहना पड़ता था। न दावाग्निका ताप लगता था और न तो सूर्यका घाम ही। नदियोंमें अगाध जल भरा हुआ था। बड़ी-बड़ी लहरें उनके तटोंको चूम जाया करती थीं। वे उनके पुलिनोंसे टकरातीं और उन्हें स्वच्छ बना जातीं। उनके कारण आस-पासकी भूमि गीली बनी रहती और सूर्यकी अत्यन्त उग्र तथा तीखी किरणें भी वहाँकी पृथ्वी और हरी-भरी घासको नहीं सुखा सकती थीं। चारों ओर हरियाली छा रही थी। उस वनमें वृक्षोंकी पाँत-की-पाँत फूलोंसे लद रही थी। जहाँ देखिये, वहींसे सुन्दरता फूटी पड़ती थी। कहीं रंग-बिरंगे पक्षी चहक रहे हैं, तो कहीं तरह-तरहके हरिन चौकड़ी भर रहे हैं। कहीं मोर कूक रहे हैं, तो कहीं भौंरे गुंजार कर रहे हैं। कहीं कोयलें कुहक रही हैं, तो कहीं सारस अलग ही अपना अलाप छेड़े हुए हैं। ऐसा सुन्दर वन देखकर श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण और गौरसुन्दर बलरामजीने उसमें विहार करनेकी इच्छा की। आगे-आगे गौएँ चलीं, पीछे-पीछे ग्वालबाल और बीचमें अपने बड़े भाईके साथ बाँसुरी बजाते हुए श्रीकृष्ण! ॥ १—८ ॥

राम, श्याम और ग्वालबालोंने लाल-लाल मूँगों,



मोरपंखके गुच्छों, सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंके हारों और गेरू

के लिये तुम अपने हाथ जोड़कर सिरसे लगाओ और उन्हें झुककर प्रणाम करो, तदनन्तर अपने अपने वस्त्र ले जाओ।' भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर उन व्रजकुमारियोंने ऐसा ही समझा कि वास्तवमें वस्त्रहीन होकर स्नान करनेसे हमारे व्रतमें त्रुटि आ गयी। अत उसकी निर्विघ्न पूर्तिके लिये उन्होंने समस्त कर्मोंके साक्षी श्रीकृष्णको नमस्कार किया। क्योंकि उन्हें नमस्कार करनेसे ही सारी त्रुटियों और अपराधोंका मार्जन हो जाता है। जब नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि सब की सब कुमारियाँ मेरी आज्ञाके अनुसार प्रणाम कर रही हैं, तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके हृदयमें करुणा उमड़ आयी और उन्होंने उनके वस्त्र दे दिये। प्रिय परीक्षित्! श्रीकृष्णने कुमारियोंसे छलभरी बातें कीं, उनका लज्जा-सङ्कोच छुड़ाया, हँसी की और उन्हें कठपुतलियोंके समान नचाया, यहाँतक कि उनके वस्त्रतक हर लिये। फिर भी वे उनसे रुष्ट नहीं हुईं, उनकी इन चेष्टाओंको दोष नहीं माना, बल्कि अपने प्रियतमके सगसे और भी प्रसन्न हुईं। परीक्षित्! गोपियोंने अपने अपने वस्त्र पहन लिये। परन्तु श्रीकृष्णने उनके चित्तको इस प्रकार अपने वशमें कर रक्खा था कि वे वहाँसे एक पग भी न चल सकीं। अपने प्रियतमके समागमके लिये सजकर वे उन्हींकी ओर लजीली चितवनसे निहारती रहीं॥ १९–२३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि उन कुमारियोंने उनके चरणकमलोंके स्पर्शकी कामनासे ही व्रत धारण किया है और उनके जीवनका यही एकमात्र सङ्कल्प है। तब गोपियोंके प्रेमके अधीन होकर ऊखलतकमें बँध जानेवाले भगवान्‌ने उनसे कहा—'मेरी परम प्रेयसी कुमारियो! मैं तुम्हारा यह सङ्कल्प जानता हूँ कि तुम मेरी पूजा करना चाहती हो। मैं तुम्हारी इस अभिलाषाका अनुमोदन करता हूँ, तुम्हारा यह सङ्कल्प सत्य होगा। तुम मेरी पूजा कर सकोगी। जिन्होंने अपना मन और प्राण मुझे समर्पित कर रक्खा है—मुझमें लगा रक्खा है, उनकी कामनाएँ उन्हें सासारिक भोगोंकी ओर ले जानेमें समर्थ नहीं होतीं। क्योंकि उनकी कामनाओंका विषय होता हूँ मैं, और मेरे पास आते ही सारी कामनाएँ भुन जाती हैं—शुद्ध हो जाती हैं। जैसे भुने या उबाले हुए बीज फिर अङ्कुरके रूपमें उगनेके योग्य नहीं रह जाते, वैसे ही मेरे प्रति की हुई कामनाएँ भी विषय सुख उत्पन्न करनेके योग्य नहीं रहतीं। इसलिये कुमारियो! अब तुम अपने अपने घर लौट जाओ। तुम्हारी साधना सिद्ध हो गयी है। तुम आनेवाली शरद् ऋतुकी रात्रियोंमें मेरे साथ विहार करना। सतियो! इसी उद्देश्यसे तो तुमलोगोंने यह व्रत और कात्यायनी देवीकी पूजा की थी'॥२४–२७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌की यह आज्ञा पाकर वे कुमारियाँ भगवान् श्रीकृष्णके चरण कमलोंका ध्यान करती हुई जानेकी इच्छा न होनेपर भी बड़े कष्टसे व्रजमें गयीं। अब उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो चुकी थीं॥ २८ ॥

प्रिय परीक्षित्! एक दिनकी बात है, भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी और ग्वालबालोंके साथ गौएँ चराते हुए वृन्दावनसे बहुत दूर निकल गये। ग्रीष्म ऋतु थी। सूर्यकी किरणें बहुत ही प्रखर हो रही थीं। परन्तु घने घने वृक्ष भगवान् श्रीकृष्णके ऊपर छत्तेका काम कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने वृक्षोंको छाया करते देख स्तोककृष्ण, अंशु, श्रीदामा, सुबल, अर्जुन, विशाल, ऋषभ, तेजस्वी, देवप्रस्थ और वरूथप आदि ग्वालबालोंको सम्बोधन करके कहा—'मेरे प्यारे मित्रो! देखो, ये वृक्ष कितने भाग्यवान् हैं! इनका सारा जीवन केवल दूसरोंकी भलाई करनेके लिये ही है। ये स्वय तो हवाके झोंके, वर्षा, धूप और पाला—सब कुछ सहते हैं, परन्तु हम लोगोंकी उनसे रक्षा करते हैं। धन्य है, मैं कहता हूँ कि इन्हींका जीवन सबसे श्रेष्ठ है। क्योंकि इनके द्वारा सब प्राणियोंको सहारा मिलता है, उनका जीवन निर्वाह होता है। जैसे किसी सज्जन पुरुषके घरसे कोई याचक खाली हाथ नहीं लौटता, वैसे ही इन वृक्षोंसे भी सभीको कुछ न कुछ मिल ही जाता है। ये अपने पत्ते, फूल, फल, छाया, जड़, छाल, लकड़ी, गन्ध, गोंद, राख, कोयला, अङ्कुर और कोंपलोंसे भी लोगोंकी कामना पूर्ण करते हैं। मेरे प्यारे मित्रो! ससारमें प्राणी तो बहुत हैं, परन्तु उनके जीवनकी सफलता बस, इतनेमें ही है कि जहाँतक हो सके अपने धनसे, विवेक विचारसे, वाणीसे और प्राणोंसे भी ऐसे ही कर्म किये जायँ, जिनसे दूसरोंकी भलाई हो।' परीक्षित्! दोनों ओरके वृक्ष नयी नयी कोंपलों, गुच्छों, फल फूलों और पत्तोंसे लद रहे थे। उनकी डालियाँ पृथ्वीतक झुकी हुई थीं। इस प्रकार भाषण करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उन्हींके बीचसे यमुना तटपर निकल आये। यमुनाजीका जल बड़ा ही मधुर, शीतल, स्वादिष्ट और स्वच्छ था। उन लोगोंने पहले गौओंको वह जल पिलाया और इसके बाद स्वय भी जी भरकर पिया। परीक्षित्! जिस समय वे यमुनाजीके तटपर हरे भरे उपवनमें बड़ी स्वतन्त्रतासे अपनी गौएँ चरा रहे थे, उसी समय कुछ भूखे ग्वालोंने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके पास आकर यह बात कही—॥ २९–३८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—अपने सखा ग्वालबालोंके ये दीनतासे भरे वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा—



'डरो मत, तुम अपनी आँखें बंद कर लो।' भगवान्‌की आज्ञा सुनकर उन ग्वालबालोंने कहा 'बहुत अच्छा' और अपनी आँखें मूँद लीं। तब योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने उस भयङ्कर आगको अपने मुँहसे पी लिया और इस प्रकार उन्हें उस घोर सङ्कटसे छुड़ा दिया। जब ग्वालबालोंने अपनी-अपनी आँखें खोलकर देखा, तब अपनेको भाण्डीर-वटके पास पाया। इस प्रकार अपने आपको और गौओंको दावानलसे बचा देख वे ग्वालबाल बहुत ही विस्मित हुए। श्रीकृष्णकी इस योगसिद्धि तथा योगमायाके प्रभावको एवं दावानलसे अपनी रक्षाको देखकर उन्होंने यही समझा कि श्रीकृष्ण कोई देवता हैं ॥ ११-१४ ॥

परीक्षित्! सायङ्काल होनेपर सबने गौएँ लौटायीं। बलरामजीके साथ भगवान् श्रीकृष्णने भी वंशी बजाते हुए गौओंके पीछे-पीछे व्रजकी यात्रा की। उनके साथ-साथ ग्वालबाल उनकी स्तुति करते आ रहे थे। इधर व्रजमें गोपियोंको श्रीकृष्णके बिना एक-एक क्षण सौ-सौ युगके समान हो रहा था। जब भगवान् श्रीकृष्ण लौटे तब उनका दर्शन करके वे परमानन्दमें मग्न हो गयीं, निहाल हो गयीं ॥ १५-१६ ॥

बीसवाँ अध्याय

वर्षा और शरद् ऋतुका वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! ग्वालबालोंने घर पहुँचकर अपनी माँ, बहिन आदि स्त्रियोंसे श्रीकृष्ण और बलरामने जो कुछ अद्भुत कर्म किये थे—दावानलसे उनको बचाना, प्रलम्बको मारना इत्यादि—सबका वर्णन किया। बड़े-बड़े बूढ़े गोप और गोपियाँ भी राम और श्यामकी अलौकिक लीलाएँ सुनकर विस्मित हो गयीं। वे सब ऐसा मानने लगे कि श्रीकृष्ण और बलरामके वेषमें कोई बहुत बड़े देवता ही व्रजमें पधारे हैं ॥ १-२ ॥

इसके बाद वर्षा-ऋतुका शुभागमन हुआ। इस ऋतुमें सभी प्रकारके प्राणियोंकी बढ़ती हो जाती है। उस समय सूर्य और चन्द्रमापर बार-बार मण्डल बैठने लगे। बादल, वायु, चमक, कड़क आदिसे आकाश क्षुब्ध-सा दीखने लगा। आकाशमें नीले और घने बादल घिर आते, बिजली कौंधने लगती, बार-बार तड़प सुनायी पड़ती; सूर्य, चन्द्रमा और तारे ढके रहते। इससे आकाशकी ऐसी शोभा होती, जैसे ब्रह्मस्वरूप होनेपर भी गुणोंसे ढक जानेपर जीवकी होती है। सूर्यने राजाकी तरह पृथ्वीरूप प्रजासे आठ महीनेतक जलका कर ग्रहण किया था, अब समय आनेपर वे अपने किरण-करोंसे फिर उसे बाँटने लगे। जैसे दयालु पुरुष जब देखते हैं कि प्रजा बहुत पीड़ित हो रही है, तब वे दयापरवश होकर अपने जीवन-प्राणतक निछावर कर देते हैं—वैसे ही बिजलीकी चमकसे शोभायमान घनघोर बादल तेज हवाकी प्रेरणासे प्राणियोंके कल्याणके लिये अपने जीवनस्वरूप जलको बरसाने लगे। जेठ-आषाढ़की गर्मीसे पृथ्वी सूख गयी थी। अब वर्षाके जलसे सिंचकर वह फिर हरी-भरी हो गयी—जैसे सकामभावसे तपस्या करते समय पहले तो शरीर दुर्बल हो जाता है, परन्तु जब उसका फल मिलता है तब हृष्ट-पुष्ट हो जाता है। वर्षाके दिनोंमें घना अँधेरा छा जानेके कारण ग्रह और तारोंका प्रकाश तो नहीं दिखलायी पड़ता, परन्तु सायङ्काल होते ही जुगनू चमकने लगते हैं—जैसे कलियुगमें पापकी प्रबलता हो जानेसे पाखण्ड मतोंका प्रचार हो जाता है

समय उन्हें और उनके साथियोंको भूख लगी है। तुम उनके लिये कुछ भोजन दे दो।' परीक्षित्! वे ब्राह्मणियाँ बहुत दिनोंसे भगवान्‌की मनोहर लीलाएँ सुनती थीं। उनका मन उनमें लग चुका था। वे सदा सर्वदा इस बातके लिये उत्सुक रहतीं कि किसी प्रकार श्रीकृष्णके दर्शन हो जायँ। श्रीकृष्णके आनेकी बात सुनते ही वे उतावली हो गयीं। उन्होंने बर्तनोंमें अत्यन्त स्वादिष्ट और हितकर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—चारों प्रकारकी भोजन-सामग्री ले ली तथा भाई-बन्धु, पति पुत्रोंके रोकते रहनेपर भी अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णके पास जानेके लिये घरसे निकल पड़ीं—ठीक वैसे ही जैसे नदियाँ समुद्रके लिये। क्यों न हो; न जाने कितने दिनोंसे पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके गुण, लीला, सौन्दर्य और माधुर्य आदिका वर्णन सुन सुनकर उन्होंने उनके चरणोंपर अपना हृदय निछावर जो कर दिया था! ब्राह्मण पत्नियोंने जाकर देखा कि यमुनाके तटपर नये-नये कोंपलोंसे शोभायमान अशोक वनमें ग्वालबालोंसे घिरे हुए बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण इधर-उधर घूम रहे हैं। उनके साँवले शरीरपर सुनहला पीताम्बर झिलमिला रहा है। गलेमें वनमाला लटक रही है। मस्तकपर मोरपंखका मुकुट है। अङ्ग-अङ्गमें रंगीन धातुओंसे चित्रकारी कर रक्खी है। नये-नये कोंपलोंके गुच्छे शरीरमें लगाकर नटका-सा वेष बना रक्खा है। एक हाथ अपने सखा ग्वालबालके कंधेपर रक्खे हुए हैं और दूसरे हाथसे कमलका फूल नचा रहे है। कानोंमें कमलके कुण्डल हैं, कपोलोंपर घुँघराली अलकें लटक रही हैं और मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानकी रेखासे प्रफुल्लित हो रहा है। परीक्षित्! अबतक अपने प्रियतम श्यामसुन्दरके गुण और लीलाएँ अपने कानोंसे सुन-सुनकर उन्होंने अपने मनको उन्हींके प्रेमके रंगमें रँग डाला था, उसीमें सराबोर कर दिया था। अब नेत्रोंके मार्गसे उन्हें भीतर ले जाकर बहुत देरतक वे मन-ही-मन उनका आलिङ्गन करती रहीं और इस प्रकार उन्होंने अपने हृदयकी जलन शान्त की—ठीक वैसे ही जैसे जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाओंकी वृत्तियाँ 'यह मैं, यह मेरा' इस भावसे जलती रहती हैं, परन्तु सुषुप्ति अवस्थामें उसके अभिमानी प्राज्ञको पाकर उसीमें लीन हो जाती हैं और उनकी सारी जलन मिट जाती है॥ १५-२३॥

प्रिय परीक्षित्! भगवान् सबके हृदयकी बात जानते हैं, सबकी बुद्धियोंके साक्षी हैं। उन्होंने जब देखा कि ये ब्राह्मणपत्नियाँ अपने भाई-बन्धु और पति-पुत्रोंके रोकनेपर भी सब सगे सम्बन्धियों और विषयोंकी आशा छोड़कर केवल



मेरे दर्शनकी लालसासे ही मेरे पास आयी हैं, तब उन्होंने उनसे कहा—'महाभाग्यवती देवियो! तुम्हारा स्वागत है। आओ, बैठो। कहो, हम तुम्हारा क्या स्वागत करें? तुम-लोग हमारे दर्शनकी इच्छासे यहाँ आयी हो, यह तुम्हारे-जैसे प्रेमपूर्ण हृदयवालोंके योग्य ही है। इसमें सन्देह नहीं कि संसारमें अपनी सच्ची भलाईको समझनेवाले जितने भी बुद्धिमान् पुरुष हैं, वे अपने प्रियतमके समान ही मुझसे प्रेम करते हैं और ऐसा प्रेम करते है, जिसमें किसी प्रकारकी कामना नहीं रहती—जिसमें किसी प्रकारका व्यवधान, सङ्कोच, छिपाव, दुविधा या द्वैत नहीं होता। प्राण, बुद्धि, मन, शरीर, स्वजन, स्त्री, पुत्र और धन आदि संसारकी सभी वस्तुएँ जिसके लिये और जिसकी सन्निधिसे प्रिय लगती हैं—उस आत्मासे, परमात्मासे, मुझ श्रीकृष्णसे बढ़कर और कौन प्यारा हो सकता है? इसलिये तुम्हारा आना उचित ही है। मैं तुम्हारे प्रेमका अभिनन्दन करता हूँ। परन्तु अब तुमलोग मेरा दर्शन कर चुकीं। अब अपनी यज्ञशालामें

कभी किसी गुफामें ही जा बैठते । कभी कन्द-मूल-फल खाकर ग्वालबालोंके साथ खेलते रहते, तो कभी जलके पास ही किसी चट्टानपर बैठ जाते और बलरामजी तथा ग्वाल-बालोंके साथ मिलकर घरसे लाया हुआ दही-भात खाते। उस समय जंगलकी भी बहुत-सी खानेकी वस्तुएँ होतीं। वर्षा ऋतुमें बैल, बछड़े और थनोंके भारी भारसे थकी हुई गौएँ थोड़ी ही देरमें भरपेट घास चर लेतीं और हरी-हरी घासपर बैठकर ही आँख मूँदकर जुगाली करती रहतीं। वर्षा ऋतुकी सुन्दरता अपार थी। वह सभी प्राणियोंको सुख पहुँचा रही थी। इसमें सन्देह नहीं कि वह ऋतु, गाय, बैल, बछड़े—सब-के-सब भगवान्‌की लीलाके ही विलास थे। फिर भी उन्हें देखकर भगवान् बहुत प्रसन्न होते और बार-बार उनकी प्रशंसा करते ॥ २५—३१ ॥

इस प्रकार श्याम और बलराम बड़े आनन्दसे व्रजमें वर्षा ऋतुका सुख लूट रहे थे। थोड़े ही दिनोंमें शरद् ऋतु आ गयी। अब आकाशमें बादल नहीं रहे, जल निर्मल हो गया, वायु बड़ी धीमी गतिसे चलने लगी। शरद् ऋतुमें कमलोंकी उत्पत्तिसे जलाशय स्वच्छ हो गये—ठीक वैसे ही जैसे योगभ्रष्ट पुरुषोंका चित्त फिरसे योगका सेवन करनेसे निर्मल हो जाता है। शरद् ऋतुने आकाशके बादल, वर्षा-कालके बढ़े हुए जीव, पृथ्वीकी कीचड़ और जलके मटमैले-पनको नष्ट कर दिया—जैसे भगवान्‌की भक्ति ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियोंके सब प्रकारके कष्टों और अशुभों-का झटपट नाश कर देती है। यद्यपि बादलोंने अपना सर्वस्व बाँट दिया था, अब वे निर्जल हो गये थे, फिर भी उनकी कान्ति पहलेसे अधिक उज्ज्वल हो गयी थी—ठीक वैसे ही जैसे लोक-परलोक, स्त्री-पुत्र और धन-सम्पत्तिसम्बन्धी चिन्ता और कामनाओंका परित्याग कर देनेपर संसारके बन्धनसे छूटे हुए परम शान्त संन्यासी शोभायमान होते हैं। अब पर्वतोंसे कहीं-कहीं झरने झरते थे और कहीं-कहीं वे अपने कल्याणकारी जलको नहीं भी बहाते थे—जैसे ज्ञानी पुरुष समयपर अपने अमृतमय ज्ञानका दान किसी अधिकारीको कर देते हैं और किसी-किसीको नहीं भी करते। छोटे-छोटे गड्ढोंमें भरे हुए जलके जलचर यह नहीं जानते कि इस गड्ढेका जल दिन-पर-दिन सूखता जा रहा है—जैसे कुटुम्बके भरण-पोषणमें भूले हुए मूढ़ यह नहीं जानते कि हमारी आयु क्षण-क्षण छीज रही है। थोड़े जलमें रहनेवाले प्राणियोंको शरत्कालीन सूर्यकी प्रखर किरणोंसे बड़ी पीड़ा होने लगी—जैसे अपनी इन्द्रियोंके वशमें रहनेवाले कृपण एवं दरिद्र कुटुम्बीको तरह-तरहके ताप सताते ही रहते हैं। पृथ्वी धीरे-धीरे अपना कीचड़ छोड़ने लगी और घास-पात धीरे-धीरे अपनी कचाई छोड़ने लगे—ठीक वैसे ही जैसे विवेकसम्पन्न साधक धीरे-धीरे शरीर आदि अनात्म पदार्थोंमेंसे 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' यह अहंता और ममता छोड़ देते हैं। शरद् ऋतुमें समुद्रका जल स्थिर, गम्भीर और शान्त हो गया—जैसे मनके निःसङ्कल्प हो जानेपर आत्माराम पुरुष कर्मकाण्डका झमेला छोड़कर शान्त हो जाता है। किसान खेतोंकी मेड़ मजबूत करके जलका बहना रोकने लगे—जैसे योगीजन अपनी इन्द्रियोंको विषयोंकी ओर जानेसे रोककर, प्रत्याहार करके उनके द्वारा क्षीण होते हुए ज्ञानकी रक्षा करते हैं। शरद् ऋतुमें दिनके समय बड़ी कड़ी धूप होती, लोगोंको बहुत कष्ट होता; परन्तु चन्द्रमा रात्रिके समय लोगों-का सारा सन्ताप वैसे ही हर लेते—जैसे देहाभिमानसे होने-वाले दुःखको ज्ञान और भगवद्विरहसे होनेवाले गोपियोंके दुःखको श्रीकृष्ण नष्ट कर देते हैं। जैसे वेदोंके अर्थको स्पष्ट रूपसे जाननेवाला सत्त्वगुणी चित्त अत्यन्त शोभायमान होता है, वैसे ही शरद् ऋतुमें रातके समय मेघोंसे रहित निर्मल आकाश तारोंकी ज्योतिसे जगमगाने लगा। परीक्षित्! जैसे पृथ्वीतलमें यदुवंशियोंके बीच यदुपति भगवान् श्रीकृष्णकी शोभा होती है, वैसे ही आकाशमें तारोंके बीच पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होने लगा। फूलोंसे लदे हुए वृक्ष और लताओंमें होकर बड़ी ही सुन्दर वायु बहती; वह न अधिक ठंडी होती और न अधिक गर्म। उस वायुके स्पर्शसे सब लोगोंकी जलन तो मिट जाती, परन्तु गोपियोंकी जलन और भी बढ़ जाती। क्योंकि उनका चित्त उनके हाथमें नहीं था, श्रीकृष्णने उसे चुरा लिया था। शरद् ऋतुमें गौएँ, हरिनियाँ, चिड़ियाँ और नारियाँ ऋतुमती—सन्तानोत्पत्तिकी कामनासे युक्त हो गयीं तथा साँड़, हरिन, पक्षी और पुरुष उनका अनुसरण करने लगे—ठीक वैसे ही जैसे समर्थ पुरुषके द्वारा की हुई क्रियाओंका अनुसरण उनके फल करते हैं। परीक्षित्! जैसे राजाके शुभागमनसे डाकू-चोरोंके सिवा और सब लोग निर्भय हो जाते हैं, वैसे ही सूर्योदयके कारण कुमुदिनी (कुँई या कोंई) के अतिरिक्त और सभी प्रकारके कमल खिल गये। उस समय बड़े-बड़े शहरों और गाँवोंमें नवान्नप्राशन और इन्द्र-सम्बन्धी उत्सव होने लगे। खेतोंमें अनाज पक गये और पृथ्वी भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीकी उपस्थितिसे अत्यन्त शोभायमान होने लगी। साधना करके सिद्ध हुए

समय उन्हें और उनके साथियोंको भूख लगी है। तुम उनके लिये कुछ भोजन दे दो।' परीक्षित्! वे ब्राह्मणियाँ बहुत दिनोंसे भगवान्‌की मनोहर लीलाएँ सुनती थीं। उनका मन उनमें लग चुका था। वे सदा सर्वदा इस बातके लिये उत्सुक रहतीं कि किसी प्रकार श्रीकृष्णके दर्शन हो जायँ। श्रीकृष्णके आनेकी बात सुनते ही वे उतावली हो गयीं। उन्होंने बर्तनोंमें अत्यन्त स्वादिष्ट और हितकर भक्ष्य, भोज्य, लेह्य और चोष्य—चारों प्रकारकी भोजन-सामग्री ले ली तथा भाई-बन्धु, पति पुत्रोंके रोकते रहनेपर भी अपने प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णके पास जानेके लिये घरसे निकल पड़ीं—ठीक वैसे ही जैसे नदियाँ समुद्रके लिये। क्यों न हो; न जाने कितने दिनोंसे पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके गुण, लीला, सौन्दर्य और माधुर्य आदिका वर्णन सुन सुनकर उन्होंने उनके चरणोंपर अपना हृदय निछावर जो कर दिया था! ब्राह्मण-पत्नियोंने जाकर देखा कि यमुनाके तटपर नये-नये कोंपलोंसे शोभायमान अशोक वनमें ग्वालबालोंसे घिरे हुए बलरामजीके साथ श्रीकृष्ण इधर-उधर घूम रहे हैं। उनके साँवले शरीरपर सुनहला पीताम्बर झिलमिल रहा है। गलेमें वनमाला लटक रही है। मस्तकपर मोरपंखका मुकुट है। अङ्ग-अङ्गमें रंगीन धातुओंसे चित्रकारी कर रक्खी है। नये-नये कोंपलोंके गुच्छे शरीरमें लगाकर नटका-सा वेष बना रक्खा है। एक हाथ अपने सखा ग्वालबालके कंधेपर रक्खे हुए हैं और दूसरे हाथसे कमलका फूल नचा रहे हैं। कानोंमें कमलके कुण्डल हैं, कपोलोंपर घुँघराली अलकें लटक रही हैं और मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानकी रेखासे प्रफुल्लित हो रहा है। परीक्षित्! अबतक अपने प्रियतम श्यामसुन्दरके गुण और लीलाएँ अपने कानोंसे सुन-सुनकर उन्होंने अपने मनको उन्हींके प्रेमके रंगमें रँग डाला था, उसीमें सराबोर कर दिया था। अब नेत्रोंके मार्गसे उन्हें भीतर ले जाकर बहुत देरतक वे मन ही-मन उनका आलिङ्गन करती रहीं और इस प्रकार उन्होंने अपने हृदयकी जलन शान्त की—ठीक वैसे ही जैसे जाग्रत् और स्वप्न अवस्थाओंकी वृत्तियाँ 'यह मैं, यह मेरा' इस भावसे जलती रहती हैं, परन्तु सुषुप्ति अवस्थामें उसके अभिमानी प्राज्ञको पाकर उसीमें लीन हो जाती हैं और उनकी सारी जलन मिट जाती है॥ १५—२३॥

प्रिय परीक्षित्! भगवान् सबके हृदयकी बात जानते हैं, सबकी बुद्धियोंके साक्षी हैं। उन्होंने जब देखा कि ये ब्राह्मणपत्नियाँ अपने भाई-बन्धु और पति-पुत्रोंके रोकनेपर भी सब सगे सम्बन्धियों और विषयोंकी आशा छोड़कर केवल



मेरे दर्शनकी लालसासे ही मेरे पास आयी हैं, तब उन्होंने उनसे कहा—'महाभाग्यवती देवियो! तुम्हारा स्वागत है। आओ, बैठो। कहो, हम तुम्हारा क्या स्वागत करें? तुम-लोग हमारे दर्शनकी इच्छासे यहाँ आयी हो, यह तुम्हारे-जैसे प्रेमपूर्ण हृदयवालोंके योग्य ही है। इसमें सन्देह नहीं कि संसारमें अपनी सच्ची भलाईको समझनेवाले जितने भी बुद्धिमान् पुरुष हैं, वे अपने प्रियतमके समान ही मुझसे प्रेम करते हैं और ऐसा प्रेम करते हैं, जिसमें किसी प्रकारकी कामना नहीं रहती—जिसमें किसी प्रकारका व्यवधान, सङ्कोच, छिपाव, दुविधा या द्वैत नहीं होता। प्राण, बुद्धि, मन, शरीर, स्वजन, स्त्री, पुत्र और धन आदि संसारकी सभी वस्तुएँ जिसके लिये और जिसकी सन्निधिसे प्रिय लगती हैं—उस आत्मासे, परमात्मासे, मुझ श्रीकृष्णसे बढ़कर और कौन प्यारा हो सकता है! इसलिये तुम्हारा आना उचित ही है। मैं तुम्हारे प्रेमका अभिनन्दन करता हूँ। परन्तु अब तुमलोग मेरा दर्शन कर चुकीं। अब अपनी यज्ञशालामें

तान छेड़ देते हैं। मेरी प्यारी सखी! उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो दो चतुर नट रंगमञ्चपर अभिनय कर रहे हों! मैं क्या बताऊँ कि उस समय उनकी कितनी शोभा होती है! अरी भट्ट! यह बाँसुरी तो बड़ी ढीठ हो गयी है। इसने पूर्वजन्ममें न जाने कौन-सी पुण्य-साधना की है, जिससे यह श्यामसुन्दरके अधरामृतका पान करती ही रहती है। श्रीकृष्ण तो गोपियोंके अपने हैं। हमने उन्हें ऊखलतकमें बाँधा है। वह हमारी सम्पत्तिपर इस प्रकार क्यों अपना अधिकार जमाये बैठी है? देखो तो सही, वह सब-का-सब अधरामृत पी जाती है, हम लोगोंके लिये तनिक भी नहीं छोड़ती। उसका यह सौभाग्य देखकर उसे अपने रससे पालन-पोषण करनेवाली पुष्करिणियाँ भी पुलकित हो जाती हैं। देखो तो सही, उनमें ये खिले हुए कमल उनके रोमाञ्च नहीं तो और क्या हैं? उनकी बात जाने दो—जिनके वंशमें वह पैदा हुई है, वे वृक्ष भी अपने वंशमें इतनी सौभाग्यवतीका जन्म देखकर मधुधाराके मिस आनन्द और प्रेमके आँसू बहा रहे हैं; जैसे अपने वंशमें भगवत्प्रेमी सन्तान उत्पन्न होनेपर भक्तजन बहाया करते हैं॥ ७–९॥

अरी सखी! यह वृन्दावन तो वैकुण्ठलोकतक पृथ्वीकी कीर्तिका विस्तार कर रहा है। इसका क्या कारण है, सखी? तुम नहीं जानती हो? यशोदानन्दन श्रीकृष्णके चरणकमलोंके चिह्नोंसे यह वृन्दावन चिह्नित जो हो रहा है! सखी! कहाँ-तक बताऊँ तुमसे, जब श्रीकृष्ण अपनी मुनिजनमोहिनी मुरली बजाते हैं, तब मोर मतवाले होकर उसकी तालपर नाचने लगते हैं। वे समझते हैं कि यह श्याममेघ ही मन्द-मन्द गरज रहा है। बाँसुरीकी धुनके साथ मोरोंका नाचना देखकर पर्वतकी चोटियोंपर विचरनेवाले सभी पशु-पक्षी चुपचाप—शान्त होकर खड़े रह जाते हैं। अरी सखी! तुमने नहीं देखा है क्या? जब प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण विचित्र वेष धारण करके बाँसुरी बजाते हैं, तब मूढ़ बुद्धिवाली ये हरिनियाँ भी वंशीकी तान सुनकर अपने पति कृष्णसार मृगोंके साथ नन्दनन्दनके पास चली आती हैं और अपनी प्रेमभरी बड़ी-बड़ी आँखोंसे उन्हें निरखने लगती हैं। निरखती क्या हैं, अपनी कमलके समान बड़ी-बड़ी आँखें श्रीकृष्णके चरणोंपर निछावर कर देती हैं। वास्तवमें उनका जीवन धन्य है। हम वृन्दावनकी गोपी होनेपर भी इस प्रकार उनपर अपनेको निछावर नहीं कर पातीं, हमारे घरवाले कुढ़ने लगते हैं। कितनी विडम्बना है! अरी सखी! हरिनियोंकी तो बात ही क्या है—स्वर्गकी देवियाँ जब युवतियोंको आनन्दित करनेवाले सौन्दर्य और शीलके खजाने श्रीकृष्णको देखती हैं और बाँसुरीपर उनके द्वारा गाया हुआ मधुर संगीत सुनती हैं, तब उनके चित्र-विचित्र आलाप सुनकर वे अपने विमानपर ही सुध-बुध खो बैठती हैं—मूर्छित हो जाती हैं। यह कैसे मालूम हुआ सखी? सुनो तो, जब उनके हृदयमें श्रीकृष्णसे मिलनेकी तीव्र आकाङ्क्षा जग जाती है तब वे अपना धीरज खो बैठती हैं, बेहोश हो जाती हैं; उन्हें इस बातका भी पता नहीं चलता कि उनकी चोटियोंमें गुँथे हुए फूल पृथ्वीपर गिर रहे हैं। यहाँतक कि उन्हें अपनी साड़ीका भी पता नहीं रहता, वह कमरसे खिसककर जमीनपर गिर जाती है। अरी सखी! तुम देवियोंकी बात क्या कह रही हो, इन गौओंको नहीं देखतीं? जब हमारे कृष्ण-प्यारे बाँसुरी बजाने लगते हैं और गौएँ उनका मधुर सङ्गीत सुनती हैं, तब ये अपने दोनों कानोंके दोने सम्हाल लेती हैं—खड़े कर लेती हैं और मानो उनसे अमृत पी रही हों, इस प्रकार उस सङ्गीतका रस लेने लगती हैं! ऐसा क्यों होता है सखी? अपने नेत्रोंके द्वारसे श्यामसुन्दरको हृदयमें ले जाकर वे उन्हें वहीं विराजमान कर देती हैं और मन-ही-मन उनका आलिङ्गन करती हैं। देखती नहीं हो, उनके नेत्रोंसे आनन्दके आँसू छलकने लगते हैं! और उनके बछड़े, बछड़ोंकी तो दशा ही निराली हो जाती है। यद्यपि गायोंके थनोंसे अपने-आप दूध झरता रहता है, वे जब दूध पीते-पीते अचानक ही वंशीध्वनि सुनते हैं तब मुँहमें लिया हुआ दूधका घूँट न उगल पाते हैं और न निगल पाते हैं। उनके हृदयमें भी होता है भगवान्‌का संस्पर्श और नेत्रोंमें छलकते होते हैं आनन्दके आँसू। अरी सखी! गौएँ और बछड़े तो हमारी घरकी वस्तु हैं। उनकी बात तो जाने ही दो। वृन्दावनके पक्षियोंको तुम नहीं देखती हो? उन्हें पक्षी कहना ही भूल है! सच पूछो तो उनमेंसे अधिकांश बड़े-बड़े ऋषि-मुनि हैं! सो कैसे? देखती नहीं हो, वे वृन्दावनके सुन्दर-सुन्दर वृक्षोंकी नयी और मनोहर कोंपलोंवाली डालियों-पर चुपचाप बैठ जाते हैं और आँखें बंद नहीं करते, निर्निमेष नयनोंसे श्रीकृष्णकी रूप-माधुरी तथा प्यारभरी चितवन देख-देखकर निहाल होते रहते हैं, तथा कानोंसे अन्य सब प्रकारके शब्दोंको छोड़कर केवल उन्हींकी मोहनी वाणी और वंशीका त्रिभुवनमोहन सङ्गीत सुनते रहते हैं। मेरी प्यारी सखी! उनका जीवन कितना धन्य है!॥१०–१४॥

अरी बीर! देवता, गौओं और पक्षियोंकी बात क्यों

माया बड़े-बड़े योगियोंको भी मोहित कर लेती है। तभी तो हम कहलाते हैं मनुष्योंके गुरु और ब्राह्मण, परन्तु अपने सच्चे स्वार्थ और परमार्थके विषयमें बिल्कुल भूले हुए हैं। कितने आश्चर्यकी बात है! देखो तो सही—यद्यपि ये स्त्रियाँ हैं, तथापि जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णमें इनका कितना अगाध प्रेम है, अखण्ड अनुराग है! उसीसे इन्होंने गृहस्थीकी वह बहुत बड़ी फाँसी भी काट डाली, जो मृत्युके साथ भी नहीं कटती। इनके न तो द्विजातिके योग्य यज्ञोपवीत आदि संस्कार हुए हैं और न तो इन्होंने गुरुकुलमें ही निवास किया है। न इन्होंने तपस्या की है और न तो आत्माके सम्बन्धमें ही कुछ विवेक विचार किया है। उनकी बात तो दूर रही, इनमें न तो पूरी पवित्रता है और न तो शुभकर्म ही। फिर भी समस्त योगेश्वरोंके ईश्वर पुण्यकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें इनका दृढ प्रेम है। और हमने अपने संस्कार किये हैं, गुरुकुलमें निवास किया है, तपस्या की है, आत्मानुसन्धान किया है, पवित्रताका निर्वाह किया है तथा अच्छे अच्छे कर्म किये हैं, फिर भी भगवान्‌के चरणोंमें हमारा प्रेम नहीं है। सच्ची बात यह है कि हमलोग गृहस्थीके काम धंधोंमें मतवाले हो गये थे, अपनी भलाई और बुराईको बिल्कुल भूल गये थे। अहो, भगवान्‌की कितनी कृपा है! भक्तवत्सल प्रभुने ग्वालबालोंको भेजकर उनके वचनोंसे हमें चेतावनी दी, अपनी याद दिलायी। भगवान् स्वयं पूर्णकाम हैं और कैवल्य मोक्षपर्यन्त जितनी भी कामनाएँ होती हैं, उनको पूर्ण करनेवाले हैं। यदि हमें सचेत नहीं करना था, तो उनका हम सरीखे क्षुद्र जीवोंसे प्रयोजन ही क्या हो सकता था? अवश्य ही उन्होंने इसी उद्देश्यसे माँगनेका बहाना बनाया। अन्यथा उन्हें माँगनेकी भला क्या आवश्यकता थी? स्वयं लक्ष्मी अन्य सब देवताओंको छोड़कर, और अपनी चञ्चलता, गर्व आदि दोषोंका परित्याग कर केवल एक बार उनके चरणकमलोंका स्पर्श पानेके लिये सेवा करती रहती हैं। वे ही प्रभु किसीसे भोजनकी याचना करें, यह लोगोंको मोहित करनेके लिये नहीं तो और क्या है? देश, काल, पृथक् पृथक् सामग्रियाँ, उन उन कर्मोंमें विनियुक्त मन्त्र, अनुष्ठानकी पद्धति, ऋत्विज, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म—सब भगवान्‌के ही स्वरूप हैं। वे ही योगेश्वरोंके भी ईश्वर भगवान् विष्णु स्वयं श्रीकृष्णके रूपमें यदुवंशियोंमें अवतीर्ण हुए हैं, यह बात हमने सुन रक्खी थी, परन्तु हम इतने मूढ हैं कि उन्हें पहचान न सके। यह सब होनेपर भी हम धन्यातिधन्य हैं, हमारे अहो भाग्य हैं। तभी तो हमें वैसी पत्नियाँ प्राप्त हुई हैं। उनकी भक्तिसे हमारी बुद्धि भी भगवान् श्रीकृष्णके अविचल प्रेमसे युक्त हो गयी है। प्रभो! आप अचिन्त्य और अनन्त ऐश्वर्योंके स्वामी हैं। श्रीकृष्ण! आपका ज्ञान अबाध है। आपकी ही मायासे हमारी बुद्धि मोहित हो रही है और हम कर्मोंके पचड़ेमें भटक रहे हैं। हम आपको बार-बार नमस्कार करते हैं। वे आदिपुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण हमारे इस अपराधको क्षमा करें। क्योंकि हमारी बुद्धि उनकी मायासे मोहित हो रही है और हम उनके प्रभावको न जाननेवाले अज्ञानी हैं, इसलिये हम क्षमाके विशेष पात्र हैं ॥ ३७–५१ ॥

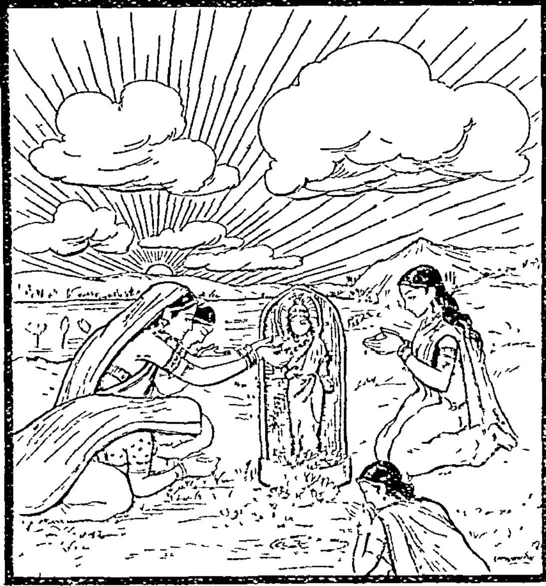
परीक्षित्! उन ब्राह्मणोंने श्रीकृष्णका तिरस्कार किया था। अतः उन्हें अपने अपराधकी स्मृतिसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उनके हृदयमें श्रीकृष्णके दर्शनकी बड़ी इच्छा भी हुई, परन्तु कंसके डरके मारे वे उनका दर्शन करने न जा सके ॥ ५२ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

इन्द्रयज्ञ निवारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ वृन्दावनमें रहकर अनेकों प्रकारकी लीलाएँ कर रहे थे। उन्होंने एक दिन देखा कि वहाँके सब गोप इन्द्र-यज्ञ करनेकी तैयारी कर रहे हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सबके अन्तर्यामी और सर्वज्ञ हैं। उनसे कोई बात छिपी नहीं थी, वे सब जानते थे। फिर भी बड़ी नम्रतासे उन्होंने नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपोंसे पूछा—'पिताजी! आपलोगोंके सामने यह कौन सा बड़ा भारी काम, कौन-सा उत्सव आ पहुँचा है? इसका फल क्या है? किस उद्देश्यसे कौन लोग किन साधनोंके द्वारा यह यज्ञ किया करते हैं? पिताजी! आप मुझे यह

पति बना दीजिये। देवि! हम आपके चरणोंमें नमस्कार करती हैं।'—इस मन्त्रका जप करती हुई वे कुमारियाँ



देवीकी आराधना करतीं। इस प्रकार उन कुमारियोंने, जिनका मन श्रीकृष्णपर निछावर हो चुका था, इस सङ्कल्पके साथ एक महीनेतक भद्रकालीकी भलीभाँति पूजा की कि 'नन्दनन्दन श्यामसुन्दर ही हमारे पति हों।' वे प्रतिदिन उषाकालमें ही नाम ले-लेकर एक-दूसरी सखीको पुकार लेतीं और परस्पर हाथ-में-हाथ डालकर ऊँचे स्वरसे भगवान् श्रीकृष्णकी लीला तथा नामोंका गायन करती हुई यमुना-जलमें स्नान करनेके लिये जातीं॥ १—६॥

एक दिन सब कुमारियोंने प्रतिदिनकी भाँति यमुनाजीके तटपर जाकर अपने-अपने वस्त्र उतार दिये और भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंका गायन करती हुई बड़े आनन्दसे जल-क्रीड़ा करने लगीं। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शङ्कर आदि योगेश्वरोंके भी ईश्वर हैं। उनसे गोपियोंकी अभिलाषा छिपी न रही। वे उनका अभिप्राय जानकर अकेले नहीं, अपने सखा ग्वालबालोंके साथ उन कुमारियोंकी साधना सफल करनेके लिये यमुना-तटपर गये। उन्होंने अकेले ही उन गोपियोंके सारे वस्त्र उठा लिये और बड़ी फुर्तीसे वे एक कदम्बके वृक्षपर चढ़ गये। साथी ग्वाल-बाल ठठा-ठठाकर हँसने लगे और स्वयं श्रीकृष्ण भी हँसते हुए गोपियोंसे हँसीकी बात कहने लगे—'अरी कुमारियो! तुम यहाँ आकर इच्छा हो, तो अपने-अपने वस्त्र ले जाओ। मैं तुमलोगोंसे सच-सच कहता हूँ। हँसी बिल्कुल नहीं करता। तुमलोग व्रत करते-करते दुबली हो गयी हो; भला, तुम भी क्या हँसी करनेयोग्य हो! देखो, ये मेरे सखा ग्वालबाल जानते हैं कि मैंने कभी कोई झूठी बात नहीं कही है। सुन्दरियो! तुम्हारी इच्छा हो तो अलग-अलग आकर अपने-अपने वस्त्र ले लो, या सब एक साथ ही आओ। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है'॥ ७—११॥

भगवान्की यह हँसी-मसखरी देखकर गोपियोंका हृदय प्रेमसे सराबोर हो गया। वे तनिक सकुचाकर एक-दूसरीकी ओर देखने और मुसकराने लगीं। वे जलसे बाहर नहीं निकलीं। जब भगवान्ने हँसी-हँसीमें यह बात कही, तब उनके विनोदसे कुमारियोंका चित्त और भी उनकी ओर खिंच गया। वे ठंडे पानीमें कण्ठतक डूबी हुई थीं और उनका शरीर थर-थर काँप रहा था। उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—'प्यारे श्रीकृष्ण! तुम ऐसी अनीति मत करो। हम जानती हैं कि तुम नन्दबाबाके लाड़ले लाल हो। हमारे प्यारे हो। सारे व्रजवासी तुम्हारी सराहना करते रहते हैं। देखो, हम जाड़ेके मारे ठिठुर रही हैं। हमें कँपकँपी छूट रही है। तुम हमें हमारे वस्त्र दे दो। प्यारे श्यामसुन्दर! हम तुम्हारी दासी हैं। तुम जो कुछ कहोगे, उसे हम करनेको तैयार हैं। तुम तो धर्मका मर्म भलीभाँति जानते हो। हमें कष्ट मत दो। हमारे वस्त्र हमें दे दो; नहीं तो हम जाकर नन्दबाबासे कह देंगी'॥ १२—१५॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'कुमारियो! तुम्हारी मुसकान पवित्रता और प्रेमसे भरी है। देखो, जब तुम अपनेको मेरी दासी स्वीकार करती हो और मेरी आज्ञाका पालन करना चाहती हो, तो यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्र ले लो।' परीक्षित्! वे कुमारियाँ ठंडसे ठिठुर रही थीं, काँप रही थीं। भगवान्की ऐसी बात सुनकर वे अपने दोनों हाथोंसे गुप्त अंगोंको छिपाकर यमुनाजीसे बाहर निकलीं। उस समय ठंड उन्हें बहुत ही सता रही थी। उनके इस शुद्ध भावसे भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए। उनकी पवित्रता देखकर भगवान्ने उनके वस्त्र अपने कंधेपर रख लिये और बड़ी प्रसन्नतासे मुसकराते हुए बोले—'अरी गोपियो! तुमने जो व्रत लिया था, उसे अच्छी तरह निभाया है—इसमें सन्देह नहीं। परन्तु इस अवस्थामें वस्त्रहीन होकर तुमने जलमें स्नान किया है, इससे तो जलके अधिष्ठातृ-देवता वरुणका तथा यमुनाजीका अपराध हुआ है। अतः अब इस दोषकी शान्ति-

सेवासे अपनी जीविकाका निर्वाह करें। वैश्योंकी वार्तावृत्ति चार प्रकारकी है—कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और ब्याज लेना। हमलोग उन चारोंमेंसे एक केवल गोपालन ही सदासे करते आये हैं। पिताजी! इस संसारकी स्थिति, उत्पत्ति और अन्तके कारण क्रमशः सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण हैं। यह विविध प्रकारका सम्पूर्ण जगत् स्त्री पुरुषके संयोगसे रजोगुणके द्वारा उत्पन्न होता है। उसी रजोगुणकी प्रेरणासे मेघगण सब कहीं जल बरसाते हैं। उसीसे अन्न, और अन्नसे ही सब जीवोंकी जीविका चलती है। इसमें भला, इन्द्रका क्या लेना देना है? वह भला, क्या कर सकता है? ॥१३–२३॥

पिताजी! न तो हमारे पास किसी देशका राज्य है और न तो बड़े-बड़े नगर ही हमारे अधीन हैं। देश या नगरकी तो बात ही अलग रही, हमारे पास गाँव या घर भी नहीं हैं। हम तो सदाके वनवासी हैं, वन और पहाड़ ही हमारे घर हैं। इसलिये हमलोग गौओं, ब्राह्मणों और गिरिराजका यजन करनेकी तैयारी करें। इन्द्र यज्ञके लिये जो सामग्रियाँ इकट्ठी की गयी हैं, उन्हींसे इस यज्ञका अनुष्ठान होने दें। अनेकों प्रकारके पकवान—खीर, हलवा, पूआ, पूरी आदिसे लेकर मूँगकी दालतक बनाये जायँ। व्रजका सारा दूध एकत्र कर लिया जाय। वेदवादी ब्राह्मणोंके द्वारा भलीभाँति हवन करवाया जाय तथा उन्हें अनेकों प्रकारके अन्न, गौएँ और दक्षिणाएँ दी जायँ। और भी, चाण्डाल, पतित तथा कुत्तोंतकको यथायोग्य वस्तुएँ देकर गायोंको चारा दिया जाय और फिर गिरिराजको भोग लगाया जाय। इसके बाद खूब प्रसाद खा पीकर, सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहनकर, गहनोंसे सज सजा लिया जाय और चन्दन लगाकर गौ, ब्राह्मण, अग्नि तथा गिरिराज गोवर्धनकी प्रदक्षिणा की जाय। पिताजी! मेरी तो ऐसी ही सम्मति है। यदि आपलोगोंको रुचे, तो ऐसा ही कीजिये। ऐसा यज्ञ गौ, ब्राह्मण और गिरिराजको तो प्रिय होगा ही; मुझे भी बहुत प्रिय है ॥२४–३०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्की इच्छा थी कि इन्द्रका घमंड चूर-चूर कर दें। इसीलिये उन्होंने ऐसा कहा। वे स्वयं भी कालके रूपमें हैं, इसलिये उनकी बात कौन टाल सकता है? नन्दबाबा आदि गोपोंने उनकी बात सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार कर ली। भगवान् श्रीकृष्णने जिस प्रकारका यज्ञ करनेको कहा था, वैसा ही यज्ञ उन्होंने प्रारम्भ किया। पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर उसी सामग्रीसे गिरिराज और ब्राह्मणोंको सादर भेंटें दीं, गौओंको हरी हरी घास खिलायी, ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिये। इसके बाद नन्दबाबा आदि गोपोंने गौओंको आगे करके गिरिराजकी प्रदक्षिणा की। उनमेंसे बहुत-से बैलोंपर जुते छकड़ोंपर भी चढ़े हुए थे। गोपियाँ भलीभाँति शृङ्गार करके और गाड़ियोंपर सवार होकर भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका गायन करती हुई गिरिराजकी परिक्रमा करने लगीं। भगवान् श्रीकृष्ण गोपोंको विश्वास दिलानेके लिये गिरिराजके ऊपर



एक दूसरा विशाल शरीर धारण करके प्रकट हो गये, तथा 'मैं गिरिराज हूँ' इस प्रकार कहते हुए सारी सामग्री आरोगने लगे। भगवान् श्रीकृष्णने अपने उस स्वरूपको दूसरे व्रजवासियोंके साथ स्वयं भी प्रणाम किया और कहने लगे—'देखो, कैसा आश्चर्य है! गिरिराजने साक्षात् प्रकट होकर हमपर कृपा की है। ये चाहे जैसा रूप धारण कर सकते हैं। जो वनवासी जीव इनका निरादर करते हैं, उन्हें ये नष्ट कर डालते हैं। आओ, अपना और गौओंका कल्याण करनेवाले इन गिरिराजको हम नमस्कार करें।' इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे नन्दबाबा आदि बड़े-बूढ़े गोपोंने गिरिराज, गौ और ब्राह्मणोंका विधिपूर्वक पूजन किया तथा फिर श्रीकृष्णके साथ सब व्रजमें लौट आये ॥३१–३८॥

तेईसवाँ अध्याय

यज्ञपत्नियोंपर कृपा

ग्वालबालोंने कहा—नयनाभिराम बलराम ! तुम बड़े पराक्रमी हो। हमारे चितचोर श्यामसुन्दर ! तुमने बड़े-बड़े दुष्टोंका संहार किया है। उन्हीं दुष्टोंके समान यह भूख भी हमें सता रही है। अतः तुम दोनों इसे भी बुझानेका कोई उपाय करो ॥ १ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित् ! जब ग्वालबालोंने नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णसे इस प्रकार प्रार्थना की, तब उन्होंने मथुराकी अपनी भक्त ब्राह्मणपत्नियोंपर अनुग्रह करनेके लिये यह बात कही—'मेरे प्यारे मित्रो ! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर वेदवादी ब्राह्मण स्वर्गकी कामनासे आङ्गिरस नामका यज्ञ कर रहे हैं। तुम उनकी यज्ञशालामें जाओ। इसमें संकोच करनेकी कोई बात नहीं है। भला, तुम तो हमारे भेजनेसे जा रहे हो न ! वहाँ जाकर मेरे बड़े भाई भगवान् बलरामजीका और मेरा नाम बतलाना और कुछ थोड़ा-सा भात माँग लेना।' जब भगवान्ने ऐसी आज्ञा दी, तब ग्वालबाल उन ब्राह्मणोंकी यज्ञशालामें गये और उनसे भगवान्की आज्ञाके अनुसार ही अन्न माँगा। पहले उन्होंने पृथ्वीपर गिरकर दण्डवत्-प्रणाम किया और फिर हाथ जोड़कर कहा—'पृथ्वीके मूर्तिमान् देवता ब्राह्मणो ! हम व्रजके ग्वाले हैं। भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी आज्ञासे हम आपके पास आये हैं। आप हमारी बात सुनें। आपका कल्याण हो। भगवान् बलराम और श्रीकृष्ण गौएँ चराते हुए यहाँसे थोड़ी ही दूरपर आये हुए हैं। उन्हें इस समय भूख लगी है और वे चाहते हैं कि आपलोग उन्हें थोड़ा-सा भात दे दें। ब्राह्मणो ! आप धर्मका मर्म जानते हैं। यदि आपकी श्रद्धा हो, तो उन भोजनार्थियोंके लिये कुछ भात दे दीजिये। सज्जनो ! यद्यपि यज्ञमें दीक्षित पुरुषका अन्न अग्राह्य है, परन्तु यह निषेध केवल दो ही प्रकारके यज्ञोंके लिये है—एक तो जिस यज्ञमें पशुबलि होनेवाली हो, उसमें पशुबलिके पूर्व, और दूसरे सौत्रामणि यज्ञमें। इनके अतिरिक्त और किसी भी समय किसी भी यज्ञमें दीक्षित पुरुषका अन्न खानेमें कोई दोष नहीं है।' परीक्षित् ! इस प्रकार भगवान्के अन्न माँगनेकी बात सुनकर भी उन ब्राह्मणोंने उसपर कोई ध्यान नहीं दिया। वे चाहते थे स्वर्गादि तुच्छ फल, और उनके लिये बड़े-बड़े कर्मोंमें उलझे हुए थे। सच पूछो तो वे ब्राह्मण ज्ञानकी दृष्टिसे थे बालक ही, परन्तु अपनेको बड़ा ज्ञानवृद्ध मानते थे। परीक्षित् ! देश, काल, अनेक प्रकारकी सामग्रियाँ, भिन्न-भिन्न कर्मोंमें विनियुक्त मन्त्र, अनुष्ठानकी पद्धति, ऋत्विज-ब्रह्मा आदि यज्ञ करानेवाले, अग्नि, देवता, यजमान, यज्ञ और धर्म—इन सब रूपोंमें एकमात्र भगवान् ही प्रकट हो रहे हैं। वे ही इन्द्रियातीत परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ग्वालबालोंके द्वारा भात माँग रहे हैं ! परन्तु इन मूर्खोंने, जो अपनेको शरीर ही माने बैठे हैं, भगवान्को भी एक साधारण मनुष्य ही माना और उनका सम्मान नहीं किया। परीक्षित् ! जब उन ब्राह्मणोंने 'हाँ' या 'ना'—कुछ नहीं कहा, तब ग्वालबालोंकी आशा टूट गयी; वे लौट आये और वहाँकी सब बात उन्होंने श्रीकृष्ण तथा बलरामसे कह दी। उनकी बात सुनकर सारे जगत्के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण हँसने लगे। उन्होंने ग्वालबालोंको समझाया कि 'संसारमें असफलता तो बार-बार होती ही है, उससे निराश नहीं होना चाहिये; बार-बार प्रयत्न करते रहनेसे सफलता मिल ही जाती है।' फिर उनसे कहा—'मेरे प्यारे ग्वालबालो ! इस बार तुमलोग उनकी पत्नियोंके पास जाओ और उनसे कहो कि राम और श्याम यहाँ आये हैं। तुम जितना चाहोगे उतना भोजन वे तुम्हें देंगी। वे मुझसे बड़ा प्रेम करती हैं। उनका मन सदा-सर्वदा मुझमें लगा रहता है' ॥ २—१४ ॥

अबकी बार ग्वालबाल पत्नीशालामें गये। वहाँ जाकर देखा तो ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और गहनोंसे सज-धजकर बैठी हैं। उन्होंने उनको प्रणाम करके बड़ी नम्रतासे यह बात कही—'देवियो ! हम तुम्हें नमस्कार करते हैं। तुमलोग कृपा करके हमारी बात सुनो। भगवान् श्रीकृष्ण यहाँसे थोड़ी ही दूरपर आये हुए हैं और उन्होंने ही हमें तुम्हारे पास भेजा है। वे ग्वालबाल और बलरामजीके साथ गौएँ चराते हुए इधर बहुत दूर आ गये हैं। इस

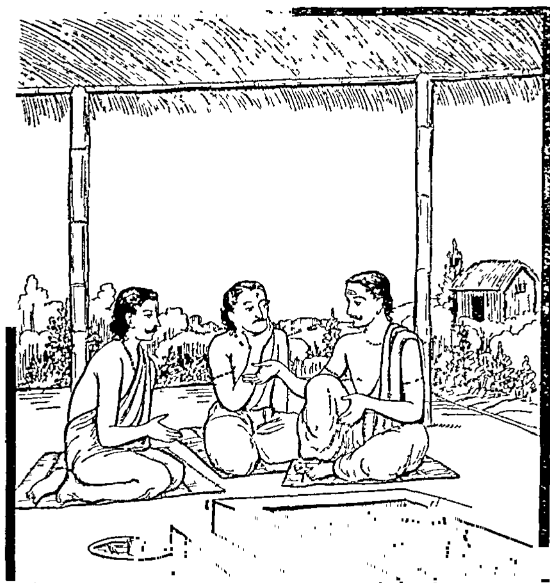
लौट जाओ। तुम्हारे ब्राह्मण पति गृहस्थ हैं। वे तुम्हारे साथ मिलकर ही अपना यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे' ॥२४-२८॥

ब्राह्मणपत्नियोंने कहा—अन्तर्यामी श्यामसुन्दर! आपकी यह बात निष्ठुरतासे पूर्ण है। आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। श्रुतियाँ कहती हैं कि जो एक बार भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है, उसे फिर संसारमें नहीं लौटना पड़ता। आप अपनी यह वेदवाणी सत्य कीजिये। हम अपने समस्त सगे-सम्बन्धियोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके आपके चरणोंमें इसलिये आयी हैं कि आपके चरणोंसे गिरी हुई तुलसीकी माला अपने केशोंमें धारण करें। सदा-सर्वदा आपकी ही शरणमें रहें। स्वामी! अब हमारे पति-पुत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु और स्वजन-सम्बन्धी हमें स्वीकार नहीं करेंगे; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है। वीरशिरोमणे! अब हम आपके चरणोंमें आ पड़ी हैं। हमें और किसीका सहारा नहीं है। इसलिये अब आप ही हमें अपनी शरणमें रखिये ॥ २९-३० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवियो! तुम अपने घर जाओ। तुम्हारे पति-पुत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु—कोई भी तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे। उनकी तो बात ही क्या, सारा संसार तुम्हारा सम्मान करेगा। इसका कारण है। अब तुम मेरी हो गयी हो, मुझसे युक्त हो गयी हो। देखो न, ये देवता मेरी बातका अनुमोदन कर रहे हैं। देवियो! इस संसारमें मेरा अङ्ग-सङ्ग ही मनुष्योंमें मेरी प्रीति या अनुरागका कारण नहीं है। इसलिये तुम जाओ, अपना मन मुझमें लगा दो। तुम्हें बहुत शीघ्र मेरी प्राप्ति हो जायगी ॥ ३१-३२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान्‌ने इस प्रकार कहा, तब वे ब्राह्मणपत्नियाँ यज्ञशालामें लौट गयीं। उन ब्राह्मणोंने अपनी स्त्रियोंमें तनिक भी दोषदृष्टि नहीं की। उनके साथ मिलकर अपना यज्ञ पूरा किया। उन स्त्रियोंमेंसे एकको आनेके समय ही उसके पतिने बलपूर्वक रोक लिया था। इसपर उस ब्राह्मणपत्नीने भगवान्‌के वैसे ही स्वरूपका ध्यान किया, जैसा कि बहुत दिनोंसे सुन रक्खा था। जब उसका ध्यान जम गया, तब मन-ही-मन भगवान्‌का आलिङ्गन करके उसने कर्मके द्वारा बने हुए अपने शरीरको छोड़ दिया—शुद्धसत्त्वमय दिव्य शरीरसे उसने भगवान्‌की सन्निधि प्राप्त कर ली। इधर भगवान् श्रीकृष्णने ब्राह्मणियोंके लाये हुए उस चार प्रकारके अन्नसे पहले ग्वालबालोंको भोजन कराया और फिर उन्होंने स्वयं भी भोजन किया। परीक्षित्! उनकी लीला अलौकिक है। इस प्रकार लीलामनुष्य भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्यकी-सी लीला की और अपने सौन्दर्य, माधुर्य, वाणी तथा कर्मोंसे गौएँ, ग्वालबाल और गोपियोंको आनन्दित किया और स्वयं भी उनके अलौकिक प्रेमरसका आस्वादन करके आनन्दित हुए ॥ ३३-३६ ॥

परीक्षित्! इधर जब ब्राह्मणोंको यह मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं, तब उन्हें बड़ा पछतावा हुआ। वे सोचने लगे कि जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम-की आज्ञाका उल्लङ्घन करके हमने बड़ा भारी अपराध किया है। वे तो मनुष्यकी-सी लीला करते हुए भी परमेश्वर ही हैं। जब उन्होंने देखा कि हमारी पत्नियोंके हृदयमें तो भगवान्‌का अलौकिक प्रेम है और हमलोग उससे बिल्कुल रीते हैं, तब वे पछता-पछताकर अपनी निन्दा करने लगे।



वे कहने लगे—'हाय! हम भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख हैं। बड़े ऊँचे कुलमें हमारा जन्म हुआ, गायत्री ग्रहण करके हम द्विजाति हुए, वेदाध्ययन करके हमने बड़े-बड़े यज्ञ किये; परन्तु वह सब किस कामका? धिक्कार है, धिक्कार है! हमारी विद्या व्यर्थ गयी, हमारे व्रत बुरे सिद्ध हुए। हमारी इस बहुज्ञताको धिक्कार है! ऊँचे वंशमें जन्म लेना, कर्मकाण्डमें निपुण होना किसी काम न आया। इन्हें बार-बार धिक्कार है! इसमें सन्देह नहीं, यह बात हमारे अनुभवसे सिद्ध हो गयी कि भगवान्‌की

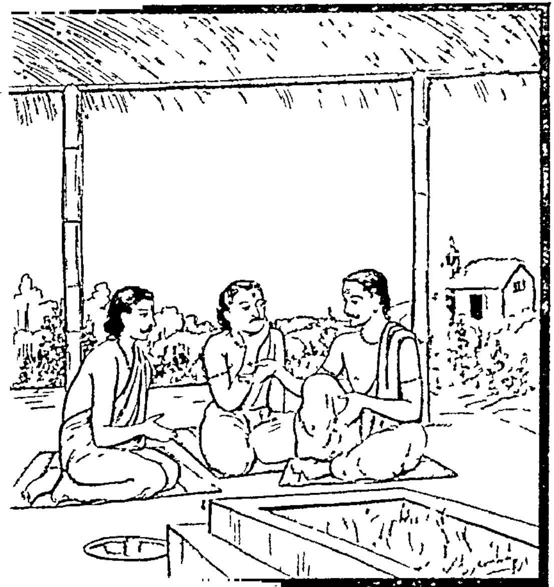
लौट जाओ। तुम्हारे ब्राह्मण पति गृहस्थ हैं। वे तुम्हारे साथ मिलकर ही अपना यज्ञ पूर्ण कर सकेंगे' ॥२४–२८॥

ब्राह्मणपत्नियोंने कहा—अन्तर्यामी श्यामसुन्दर! आपकी यह बात निष्ठुरतासे पूर्ण है। आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। श्रुतियाँ कहती हैं कि जो एक बार भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है, उसे फिर संसारमें नहीं लौटना पड़ता। आप अपनी यह वेदवाणी सत्य कीजिये। हम अपने समस्त सगे-सम्बन्धियोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करके आपके चरणोंमें इसलिये आयी हैं कि आपके चरणोंसे गिरी हुई तुलसीकी माला अपने केशोंमे धारण करें। सदा-सर्वदा आपकी ही शरणमें रहे। स्वामी! अब हमारे पति-पुत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु और स्वजन-सम्बन्धी हमें स्वीकार नहीं करेंगे; फिर दूसरोंकी तो बात ही क्या है। वीरशिरोमणे! अब हम आपके चरणोंमें आ पड़ी हैं। हमें और किसीका सहारा नहीं है। इसलिये अब आप ही हमें अपनी शरणमें रखिये ॥ २९–३० ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—देवियो! तुम अपने घर जाओ। तुम्हारे पति-पुत्र, माता-पिता, भाई-बन्धु—कोई भी तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे। उनकी तो बात ही क्या, सारा संसार तुम्हारा सम्मान करेगा। इसका कारण है। अब तुम मेरी हो गयी हो, मुझसे युक्त हो गयी हो। देखो न, ये देवता मेरी बातका अनुमोदन कर रहे हैं। देवियो! इस संसारमें मेरा अङ्ग-सङ्ग ही मनुष्योंमे मेरी प्रीति या अनुरागका कारण नहीं है। इसलिये तुम जाओ, अपना मन मुझमें लगा दो। तुम्हे बहुत शीघ्र मेरी प्राप्ति हो जायगी ॥ ३१-३२ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान्‌ने इस प्रकार कहा, तब वे ब्राह्मणपत्नियाँ यज्ञशालामें लौट गयीं। उन ब्राह्मणोंने अपनी स्त्रियोंमें तनिक भी दोषदृष्टि नहीं की। उनके साथ मिलकर अपना यज्ञ पूरा किया। उन स्त्रियोंमेसे एकको आनेके समय ही उसके पतिने बलपूर्वक रोक लिया था। इसपर उस ब्राह्मणपत्नीने भगवान्‌के वैसे ही स्वरूपका ध्यान किया, जैसा कि बहुत दिनोंसे सुन रक्खा था। जब उसका ध्यान जम गया, तब मन-ही-मन भगवान्‌का आलिङ्गन करके उसने कर्मके द्वारा बने हुए अपने शरीरको छोड़ दिया—शुद्धसत्त्वमय दिव्य शरीरसे उसने भगवान्‌की सन्निधि प्राप्त कर ली। इधर भगवान् श्रीकृष्णने ब्राह्मणियोंके लाये हुए उस चार प्रकारके अन्नसे पहले ग्वालबालोंको भोजन कराया और फिर उन्होंने स्वयं भी भोजन किया। परीक्षित्! उनकी लीला अलौकिक है। इस प्रकार लीलामनुष्य भगवान् श्रीकृष्णने मनुष्यकी-सी लीला की और अपने सौन्दर्य, माधुर्य, वाणी तथा कर्मोंसे गौएँ, ग्वालबाल और गोपियोंको आनन्दित किया और स्वयं भी उनके अलौकिक प्रेमरसका आस्वादन करके आनन्दित हुए ॥ ३३–३६ ॥

परीक्षित्! इधर जब ब्राह्मणोंको यह मालूम हुआ कि श्रीकृष्ण तो स्वयं भगवान् हैं, तब उन्हे बड़ा पछतावा हुआ। वे सोचने लगे कि जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम-की आज्ञाका उल्लङ्घन करके हमने बड़ा भारी अपराध किया है। वे तो मनुष्यकी-सी लीला करते हुए भी परमेश्वर ही हैं। जब उन्होंने देखा कि हमारी पत्नियोंके हृदयमें तो भगवान्‌का अलौकिक प्रेम है और हमलोग उससे बिल्कुल रीते हैं, तब वे पछता-पछताकर अपनी निन्दा करने लगे।



वे कहने लगे—'हाय! हम भगवान् श्रीकृष्णसे विमुख हैं। बड़े ऊँचे कुलमें हमारा जन्म हुआ, गायत्री ग्रहण करके हम द्विजाति हुए, वेदाध्ययन करके हमने बड़े-बड़े यज्ञ किये; परन्तु वह सब किस कामका? धिक्कार है, धिक्कार है! हमारी विद्या व्यर्थ गयी, हमारे व्रत बुरे सिद्ध हुए। हमारी इस बहुज्ञताको धिक्कार है! ऊँचे वंशमें जन्म लेना, कर्मकाण्डमें निपुण होना किसी काम न आया। इन्हें बार-बार धिक्कार है! इसमें सन्देह नहीं, यह बात हमारे अनुभवसे सिद्ध हो गयी कि भगवान्‌की

मैं मान भङ्ग कर दूँ। इससे अन्तमें उन्हें शान्ति ही मिलेगी। इसमें सन्देह नहीं कि यह सारा व्रज मेरे आश्रित है, मेरे द्वारा स्वीकृत है और एकमात्र मैं ही इनका रक्षक हूँ। अतः मैं अपनी योगमायासे इनकी रक्षा करूँगा। संतोंकी रक्षा करना तो मेरा व्रत ही है। अब उसके पालनका अवसर आ पहुँचा है' ॥८–१८॥

इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीकृष्णने खेल-खेलमें एक ही हाथसे गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और जैसे छोटे-छोटे बालक बरसाती छत्तेके पुष्पको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं, वैसे ही उन्होंने उस पर्वतको धारण कर लिया। इसके बाद भगवान्‌ने गोपोंसे कहा—'माताजी, पिताजी और व्रजवासियो! तुमलोग अपनी गौओं और सब सामग्रियोंके साथ इस पर्वतके गड्ढेमें आकर आरामसे बैठ जाओ। देखो, तुमलोग ऐसी शङ्का न करना कि मेरे हाथसे यह पर्वत गिर पड़ेगा। तुमलोग तनिक भी मत डरो। इस आँधी पानीके डरसे तुम्हें बचानेके लिये ही मैंने यह युक्ति रची है।' जब भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सबको आश्वासन दिया—ढाढस बँधाया, तब सब-के-सब ग्वाल अपने-अपने गोधन, छकड़ों, आश्रितों, पुरोहितों और भृत्योंको अपने-अपने साथ लेकर सुभीतेके अनुसार गोवर्द्धनके



गड्ढेमें आ घुसे। भगवान् श्रीकृष्णने सब व्रजवासियोंके देखते देखते भूख प्यासकी पीड़ा, आराम विश्रामकी आवश्यकता आदि सब कुछ भुलाकर सात दिनतक लगातार उस पर्वतको उठाये रक्खा, वे एक डग भी वहाँसे इधर उधर नहीं हुए। श्रीकृष्णकी योगमायाका यह प्रभाव देखकर इन्द्रके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। अपना सङ्कल्प पूरा न होनेके कारण उनकी सारी हेकड़ी बंद हो गयी, वे भौंचक्के से रह गये। इसके बाद उन्होंने मेघोंको अपने आप वर्षा करनेसे रोक दिया। जब गोवर्द्धनधारी भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि वह भयङ्कर आँधी और घनघोर वर्षा बंद हो गयी, आकाशसे बादल छँट गये और सूर्य दीखने लगे, तब उन्होंने गोपोंसे कहा—'मेरे प्यारे गोपो! अब तुमलोग निडर हो जाओ और अपनी स्त्रियों, गोधन तथा बच्चोंके साथ बाहर निकल आओ। देखो, अब आँधी पानी बंद हो गया तथा नदियोंका पानी भी उतर गया।' भगवान्‌की ऐसी आज्ञा पाकर अपने अपने गोधन, स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ोंको साथ ले तथा अपनी सामग्री छकड़ोंपर लादकर धीरे धीरे सब लोग बाहर निकल आये। सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णने भी सब प्राणियोंके देखते देखते खेल खेलमें ही गिरिराजको पूर्ववत् उसके स्थानपर रख दिया ॥१९–२८॥

व्रजवासियोंका हृदय प्रेमके आवेगसे भर रहा था। पर्वतको रखते ही वे भगवान् श्रीकृष्णके पास दौड़ आये,



कोई उन्हें हृदयसे लगाने और कोई चूमने लगा। सबने उनका सत्कार किया। बड़ी बूढ़ी गोपियोंने बड़े आनन्द और स्नेहसे दही, चावल, जल आदिसे उनका मङ्गल तिलक किया और उन्मुक्त हृदयसे शुभ आशीर्वाद दिये।

तथा कुछ चोर बन गये थे। इस प्रकार वे बेखटके खेलमें



रम गये थे। उसी समय ग्वालका वेष धारण करके व्योमासुर वहाँ आया। वह मायावियोंके आचार्य मयासुरका पुत्र था और स्वयं भी बड़ा मायावी था। वह खेलमें अधिकतर चोर ही बनता और भेड़ बने हुए बहुत-से बालकोंको चुराकर छिपा आता, वह महान् असुर बार-बार उन्हें ले जाकर एक पहाड़की गुफामें डाल देता और उसका दरवाजा एक बड़ी चट्टानसे ढक देता। इस प्रकार ग्वालबालोंमें केवल चार-पाँच बालक ही बच रहे। भक्तवत्सल भगवान् उसकी यह करतूत जान गये। जिस समय वह ग्वालबालोंको लिये जा रहा था, उसी समय उन्होंने, जैसे सिंह भेड़ियेको दबोच ले उसी प्रकार, उसे धर दबाया। व्योमासुर बड़ा बली था। उसने पहाड़के समान अपना



असली रूप प्रकट कर दिया और चाहा कि अपनेको छुड़ा लूँ। परन्तु भगवान्‌ने उसको इस प्रकार अपने शिकंजेमें फाँस लिया था कि वह अपनेको छुड़ा न सका। तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे जकड़कर उसे जमीनपर गिरा दिया और पशुकी भाँति गला घोंटकर मार डाला। देवतालोग विमानोंपर चढ़कर उनकी यह लीला देख रहे थे। अब भगवान् श्रीकृष्णने गुफाके दरवाजेपर लगे हुए चट्टानोंके पिहान तोड़ डाले और ग्वालबालोंको उस सङ्कटपूर्ण स्थानसे निकाल लिया। बड़े-बड़े देवता और ग्वालबाल उनकी स्तुति करने लगे और भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें चले आये ॥ २४–३३ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय

अक्रूरजीकी व्रजयात्रा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! देवर्षि नारदकी प्रार्थना सुनकर इधर तो भगवान् श्रीकृष्णने मथुरा जानेका सङ्कल्प किया, और उधर महामति अक्रूरजी भी वह रात मथुरापुरीमें बिताकर प्रातःकाल होते ही रथपर सवार हुए और नन्दबाबाके गोकुलकी ओर चल दिये। परीक्षित्! इसमें सन्देह नहीं कि अक्रूरजी परम भाग्यवान् थे। तभी तो उन्हें व्रजकी यात्रा करनेका सुअवसर मिला और वे मार्गमें कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णकी परम प्रेममयी भक्तिसे परिपूर्ण हो गये। वे इस प्रकार सोचने लगे—'मैंने ऐसा कौन-सा शुभ कर्म किया है, ऐसी कौन-सी श्रेष्ठ तपस्या की है अथवा किसी सत्पात्रको ऐसा कौन-सा महत्त्वपूर्ण दान दिया है, जिसके फलस्वरूप आज मुझे भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होंगे? मैं बड़ा विषयी हूँ। मेरी एक-एक रग विषय-वासनासे अनुप्राणित है। ऐसी स्थितिमें, बड़े-बड़े सात्त्विक पुरुष भी जिनके गुणोंका ही गायन करते रहते हैं, दर्शन नहीं कर पाते—उन भगवान्‌के दर्शन मेरे लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं,

पूज्य और पुजारी एक ही



भगवान् श्रीकृष्ण ही गिरिराजपर दूसरा विशाल शरीर धारण करके प्रकट हो गये ।

बालक और कहाँ इतने बड़े गिरिराजको सात दिनोंतक उठाये रखना ! व्रजराज ! इसीसे तो तुम्हारे पुत्रके सम्बन्धमें हमें बड़ी शङ्का हो रही है ॥१-१४॥

नन्दबाबाने कहा—गोपो ! तुमलोग सावधान होकर मेरी बात सुनो । मेरे बालकके विषयमें तुमलोग किसी प्रकारकी शङ्का मत करो । क्योंकि महर्षि गर्गने इस बालकको देखकर इसके विषयमें ऐसा ही कहा था कि, 'तुम्हारा यह बालक प्रत्येक युगमें शरीर ग्रहण करता है । विभिन्न युगोंमें इसने श्वेत, रक्त और पीत—ये भिन्न भिन्न रंग स्वीकार किये थे । इस बार यह कृष्णवर्ण हुआ है । इसलिये इसका नाम होगा 'कृष्ण' । नन्दजी ! यह तुम्हारा पुत्र पहले कभी वसुदेवके घर भी पैदा हुआ था, इसलिये इस रहस्यको जाननेवाले लोग 'इसका नाम श्रीमान् वासुदेव है'—ऐसा कहते हैं । तुम्हारे पुत्रके और भी बहुत से नाम हैं तथा बहुत से रूप इसके जितने गुण हैं और जितने कर्म, उन सबके अनुसार इसके अलग अलग नाम पड़ जाते हैं । मैं तो उन नामोंको जानता हूँ, परन्तु संसारके साधारण लोग नहीं जानते । यह तुमलोगोंका परम कल्याण करेगा, समस्त गोप और गौओंको यह बहुत ही आनन्दित करेगा । इसकी सहायतासे तुमलोग बड़ी बड़ी विपत्तियोंको बड़ी सुगमतासे पार कर लोगे । व्रजराज ! पहले युगकी बात है, एक बार पृथ्वीमें कोई राजा नहीं रह गया था । डाकुओंने चारों ओर लूट खसोट मचा रक्खी थी । तब तुम्हारे इसी पुत्रने सज्जन पुरुषोंकी रक्षा की और इससे बल पाकर उन लोगोंने लुटेरोंपर विजय प्राप्त की । नन्दबाबा ! मैं तुमसे सच कहता हूँ—जो तुम्हारे इस साँवले शिशुसे प्रेम करते हैं, वे बड़े भाग्यवान् हैं । जैसे विष्णुभगवान्‌के कर-कमलोंकी छत्र-छायामें रहनेवाले देवताओंको असुर नहीं जीत सकते, वैसे ही इससे प्रेम करनेवालोंको भीतरी या बाहरी—किसी भी प्रकारके शत्रु नहीं जीत सकते । नन्दजी ! चाहे जिस दृष्टिसे देखें—गुणसे, ऐश्वर्य और सौन्दर्यसे, कीर्ति और प्रभावसे तुम्हारा बालक स्वयं भगवान् नारायणके ही समान है । अतः इस बालकके अलौकिक कार्योंको देखकर आश्चर्य न करना चाहिये ।' गोपो ! मुझे स्वयं गर्गाचार्यजी यह आदेश देकर अपने घर चले गये । तबसे मैं अलौकिक और परम सुखद कर्म करनेवाले इस बालकको भगवान् नारायणका ही अंश मानता हूँ । जब व्रजवासियोंने नन्दबाबाके मुखसे गर्गजीकी यह बात सुनी, तब उनका विस्मय जाता रहा । उन्होंने बहुत प्रसन्न होकर नन्दबाबा और श्रीकृष्णकी भूरि-भूरि प्रशंसा की ॥ १५-२४ ॥

जिस समय अपना यज्ञ भङ्ग हो जानेके कारण इन्द्र क्रोधके मारे आग बबूला हो गये थे और मूसलधार वर्षा करने लगे थे उस समय वज्रपात, ओलोंकी बौछार और प्रचण्ड आँधीसे स्त्री, पशु तथा ग्वाले अत्यन्त पीड़ित हो गये थे । अपनी शरणमें रहनेवाले व्रजवासियोंकी यह दशा देखकर भगवान्‌का हृदय करुणासे भर आया । परन्तु फिर एक नयी लीला करनेके विचारसे वे तुरत ही मुसकराने लगे । जैसे कोई नन्हा-सा निर्बल बालक खेल खेलमें ही बरसाती छत्तेका पुष्प उखाड़ ले, वैसे ही उन्होंने एक हाथसे ही गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़कर धारण कर लिया और सारे व्रजकी रक्षा की । इन्द्रका मद चूर करनेवाले वे ही भगवान् गोविन्द हमपर प्रसन्न हों ॥ २५ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका अभिषेक

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जब भगवान् श्रीकृष्णने गिरिराज गोवर्द्धनको धारण करके मूसलधार वर्षासे व्रजको बचा लिया, तब उनके पास गोलोकसे कामधेनु और स्वर्गसे देवराज इन्द्र आये । भगवान्‌का तिरस्कार करनेके कारण इन्द्र बहुत ही लज्जित थे । इसलिये उन्होंने एकान्त स्थानमें भगवान्‌के पास जाकर अपने सूर्यके समान तेजस्वी मुकुटसे उनके चरणोंका स्पर्श किया । परमतेजस्वी भगवान् श्रीकृष्णका प्रभाव देख-सुनकर इन्द्रका यह

पचीसवाँ अध्याय

गोवर्धन-धारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब इन्द्रको पता लगा कि मेरी पूजा बंद कर दी गयी है, तब वे नन्दबाबा आदि गोपोंपर बहुत ही क्रोधित हुए। परन्तु उनके क्रोध करनेसे होता क्या, उन गोपोंके रक्षक तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण थे। इन्द्रको अपने पदका बड़ा घमंड था, वे समझते थे कि मैं ही त्रिलोकीका ईश्वर हूँ। उन्होंने क्रोधसे तिलमिलाकर प्रलय करनेवाले मेघोंके सांवर्तक नामक गणको व्रजपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी और कहा—'ओह! इन जंगली ग्वालोंको इतना घमंड! सचमुच यह धनका ही नशा है। भला देखो तो सही, एक साधारण मनुष्य कृष्णके बलपर उन्होंने मुझ देवराजका अपमान कर डाला! जैसे पृथ्वीपर बहुत-से मन्दबुद्धि पुरुष भवसागरसे पार जानेके सच्चे साधन ब्रह्मविद्याको तो छोड़ देते हैं और नाममात्रकी टूटी हुई नावसे—कर्ममय यज्ञोंसे इस घोर संसार-सागरको पार करना चाहते हैं। कृष्ण बकवादी, नादान, अभिमानी और मूर्ख होनेपर भी अपनेको बहुत बड़ा ज्ञानी समझता है। वह स्वयं मृत्युका ग्रास है। फिर भी उसीका सहारा लेकर इन अहीरोंने मेरी अवहेलना की है। एक तो ये यों ही धनके नशेमें चूर हो रहे थे; दूसरे, कृष्णने इनको और बढ़ावा दे दिया है। अब तुमलोग जाकर इनके इस धनके घमंड और हेकड़ीको धूलमें मिला दो तथा उनके पशुओंका संहार कर डालो। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे ऐरावत हाथीपर चढ़कर नन्दके व्रजका नाश करनेके लिये महापराक्रमी मरुद्गणोंके साथ आता हूँ' ॥ १—७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इन्द्रने इस प्रकार प्रलयके मेघोंको आज्ञा दी और उनके बन्धन खोल दिये। अब वे बड़े वेगसे नन्दबाबाके व्रजपर चढ़ आये और मूसलधार पानी बरसाकर सारे व्रजको पीड़ित करने लगे। चारों ओर बिजलियाँ चमकने लगीं, बादल आपसमें टकराकर कड़कने लगे और प्रचण्ड आँधीकी प्रेरणासे वे बड़े-बड़े ओले बरसाने लगे। इस प्रकार जब दल-के-दल बादल बार-बार आ-आकर खंभेके समान मोटी-मोटी धाराएँ गिराने लगे, तब जभू[illegible] कोना-कोना पानीसे भर गया और कहाँ नीचा है, [illegible] ऊँचा—इसका पता चलना कठिन हो गया। इस [illegible] मूसलधार वर्षा तथा झंझावातके झपाटेसे जब एक-एक ठिठुरने और काँपने लगा, ग्वाल और ग्वालिनें भी ठंडके मारे अत्यन्त व्याकुल होने लगीं, तब वे सब-के-सब भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। मूसलधार वर्षासे सताये जानेके कारण



सबने अपने-अपने सिर और बच्चोंको निहुककर अपने शरीरके नीचे छिपा लिया था और वे काँपते-काँपते भगवान्‌की चरण-शरणमें पहुँचे। गोप और गोपियोंने श्रीकृष्णसे कहा—'प्यारे श्रीकृष्ण! तुम बड़े भाग्यवान् हो। अब तो कृष्ण! केवल तुम्हारे ही भाग्यसे हमारी रक्षा होगी। प्रभो! इस सारे गोकुलके एकमात्र स्वामी, एकमात्र रक्षक तुम्हीं हो। भक्तवत्सल! इन्द्रके क्रोधसे अब तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो।' भगवान्‌ने देखा कि वर्षा और ओलोंकी मारसे पीड़ित होकर सब बेहोश हो रहे हैं। वे समझ गये कि यह सारी करतूत इन्द्रकी है। उन्होंने ही क्रोधवश ऐसा किया है। वे मन-ही-मन कहने लगे—'हमने इन्द्रका यज्ञ भङ्ग कर दिया है, इसीसे वे व्रजका नाश करनेके लिये बिना ऋतुके ही यह प्रचण्ड वायु और ओलोंके साथ घनघोर वर्षा कर रहे हैं। अच्छा, मैं अपनी योगमायासे इसका भलीभाँति जवाब दूँगा। ये मूर्खतावश अपनेको लोकपाल मानते हैं, इनके ऐश्वर्य और धनका घमंड मैं चूर-चूर कर दूँगा। इनका यह अज्ञान मैं मिटाकर छोड़ूँगा। देवतालोग तो सत्त्वप्रधान होते हैं। इनमें अपने ऐश्वर्य और पदका अभिमान न होना चाहिये। अतः यह उचित ही है कि इन सत्त्वगुणसे च्युत दुष्ट देवताओंका

और धन-सम्पत्तिके मदसे अंधा हो जाता है, वह यह नहीं देखता कि मैं कालरूप परमेश्वर हाथमें दण्ड लेकर उसके सिरपर सवार हूँ। मैं जिसपर अनुग्रह करना चाहता हूँ उसका ऐश्वर्य और सम्पत्ति छीन लेता हूँ, नष्ट कर देता हूँ। इन्द्र! तुम्हारा मङ्गल हो। अब तुम अपनी राजधानी अमरावतीमें जाओ और मेरी आज्ञाका पालन करो। देखो, अब कभी घमंड न करना। नित्य निरन्तर मेरी सन्निधिका, मेरे संयोगका अनुभव करते रहना और अपने अधिकारके अनुसार उचित रीतिसे मर्यादाका पालन करना॥ १५-१७॥

परीक्षित्! भगवान् इस प्रकार आज्ञा दे ही रहे थे कि मनस्विनी कामधेनुने अपनी सन्तानोंके साथ गोपवेषधारी परमेश्वर श्रीकृष्णकी वन्दना की और उनको सम्बोधित करके कहा—॥ १८॥

कामधेनुने कहा—सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! आप महायोगेश्वर हैं। आप स्वयं विश्व हैं, विश्वके परम कारण हैं। और कारण होनेपर भी आप विकारी अथवा परिणामी नहीं हैं, अपने एकरस स्वरूपमें स्थित हैं—अच्युत हैं। इन्द्रने हमें मारनेकी चेष्टा की, परन्तु समस्त लोकोंके एकमात्र स्वामी आपने हम गायोंको उनसे बचा लिया। आपने हमारी रक्षा की, इसलिये हम सनाथ हो गयीं। आप जगत्के स्वामी हैं। परन्तु हमारे तो परम पूजनीय आराध्यदेव ही हैं। प्रभो! इन्द्र त्रिलोकीके इन्द्र हुआ करें, परन्तु हमारे इन्द्र तो आप ही हैं। अतः आप ही गौ, ब्राह्मण, देवता और साधुजनोंकी रक्षाके लिये हमारे इन्द्र बन जाइये, हमारा इन्द्रत्व स्वीकार कीजिये। हम गौएँ ब्रह्माजीकी प्रेरणासे आपको अपना इन्द्र मानकर अभिषेक करेंगी। विश्वात्मन्! आपने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही अवतार धारण किया है॥१९-२१॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर कामधेनुने अपने दूधसे और देवमाताओंकी प्रेरणासे देवराज इन्द्रने ऐरावतकी सूँडके द्वारा लाये हुए आकाशगङ्गाके जलसे देवर्षियोंके साथ यदुनाथ श्रीकृष्णका अभिषेक किया और उन्हें 'गोविन्द' नामसे सम्बोधित किया। उस समय वहाँ नारद, तुम्बुरु आदि ऋषिगण, गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध और चारण पहलेसे ही आ गये थे। वे समस्त संसारके पाप-तापको मिटा देनेवाले भगवान्के निर्मल



यशका गायन करने लगे और अप्सराएँ आनन्दसे भरकर नृत्य करने लगीं। मुख्य मुख्य देवता भगवान्की स्तुति करके उनपर नन्दनवनके दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करने लगे। तीनों लोकोंमें परमानन्दकी बाढ़ आ गयी और गौओंके स्तनोंसे आप ही आप इतना दूध गिरा कि सारी पृथ्वी गीली हो गयी। नदियोंमें विविध रसोंकी बाढ़ आ गयी। वृक्षोंसे मधुधारा बहने लगी। बिना जोते बोये पृथ्वीमें अनेकों प्रकारकी ओषधियाँ, अन्न पैदा हो गये। पर्वतोंमें छिपे हुए मणि-माणिक्य स्वयं ही बाहर निकल आये। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णका अभिषेक होनेपर जो जीव स्वभावसे ही क्रूर हैं, वे भी वैरहीन हो गये, उनमें भी परस्पर मित्रता हो गयी। इन्द्रने इस प्रकार गौ और गोकुलके स्वामी श्रीगोविन्दका अभिषेक किया और उनसे अनुमति प्राप्त होनेपर देवता, गन्धर्व आदिके साथ स्वर्गकी यात्रा की॥ २२-२८॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

वरुणलोकसे नन्दजीको छुड़ाकर लाना

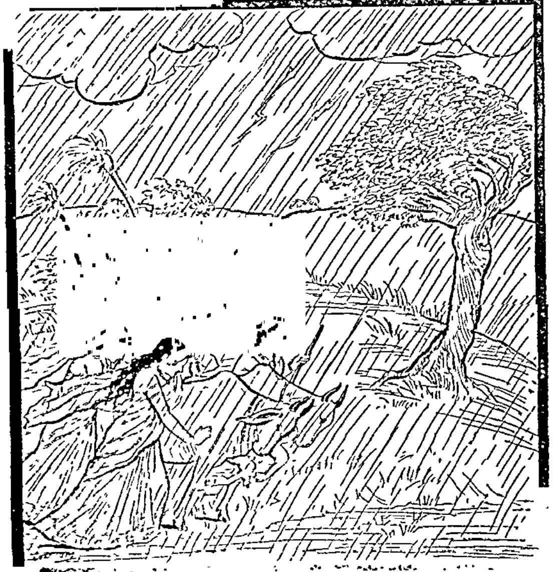
श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! नन्दबाबाने कार्तिक शुक्ल एकादशीका उपवास किया और भगवान्की पूजा की तथा उसी दिन रातमें द्वादशी लगनेपर स्नान करनेके लिये यमुनाजलमें प्रवेश किया। नन्दबाबाको यह मालूम

पचीसवाँ अध्याय

गोवर्धन-धारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब इन्द्रको पता लगा कि मेरी पूजा बंद कर दी गयी है, तब वे नन्दबाबा आदि गोपोंपर बहुत ही क्रोधित हुए। परन्तु उनके क्रोध करनेसे होता क्या, उन गोपोंके रक्षक तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण थे। इन्द्रको अपने पदका बड़ा घमंड था, वे समझते थे कि मैं ही त्रिलोकीका ईश्वर हूँ। उन्होंने क्रोधसे तिलमिलाकर प्रलय करनेवाले मेघोंके सांवर्तक नामक गणको व्रजपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी और कहा—'ओह! इन जंगली ग्वालोंको इतना घमंड! सचमुच यह धनका ही नशा है। भला देखो तो सही, एक साधारण मनुष्य कृष्णके बलपर उन्होंने मुझ देवराजका अपमान कर डाला! जैसे पृथ्वीपर बहुत-से मन्दबुद्धि पुरुष भवसागरसे पार जानेके सच्चे साधन ब्रह्मविद्याको तो छोड़ देते हैं और नाममात्रकी टूटी हुई नावसे—कर्ममय यज्ञोंसे इस घोर संसार-सागरको पार करना चाहते हैं। कृष्ण बकवादी, नादान, अभिमानी और मूर्ख होनेपर भी अपनेको बहुत बड़ा ज्ञानी समझता है। वह स्वयं मृत्युका ग्रास है। फिर भी उसीका सहारा लेकर इन अहीरोंने मेरी अवहेलना की है। एक तो ये यों ही धनके नशेमें चूर हो रहे थे; दूसरे, कृष्णने इनको और बढ़ावा दे दिया है। अब तुमलोग जाकर इनके इस धनके घमंड और हेकड़ीको धूलमें मिला दो तथा उनके पशुओंका संहार कर डालो। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे ऐरावत हाथीपर चढ़कर नन्दके व्रजका नाश करनेके लिये महापराक्रमी मरुद्गणोंके साथ आता हूँ' ॥ १—७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इन्द्रने इस प्रकार प्रलयके मेघोंको आज्ञा दी और उनके बन्धन खोल दिये। अब वे बड़े वेगसे नन्दबाबाके व्रजपर चढ़ आये और मूसलधार पानी बरसाकर सारे व्रजको पीड़ित करने लगे। चारों ओर बिजलियाँ चमकने लगीं, बादल आपसमें टकराकर कड़कने लगे और प्रचण्ड आँधीकी प्रेरणासे वे बड़े-बड़े ओले बरसाने लगे। इस प्रकार जब दल-के-दल बादल बार-बार आ-आकर खंभेके समान मोटी-मोटी धाराएँ गिराने लगे, तब व्रजभूमिका कोना-कोना पानीसे भर गया और कहाँ नीचा है, कहाँ ऊँचा—इसका पता चलना कठिन हो गया। इस प्रकार मूसलधार वर्षा तथा झंझावातके झपाटेसे जब एक-एक पशु ठिठुरने और काँपने लगा, ग्वाल और ग्वालिनें भी ठंडके मारे अत्यन्त व्याकुल होने लगीं, तब वे सब-के-सब भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। मूसलधार वर्षासे सताये जानेके कारण



सबने अपने-अपने सिर और बच्चोंको निहुककर अपने शरीरके नीचे छिपा लिया था और वे काँपते-काँपते भगवान्की चरण-शरणमें पहुँचे। गोप और गोपियोंने श्रीकृष्णसे कहा—'प्यारे श्रीकृष्ण! तुम बड़े भाग्यवान् हो। अब तो कृष्ण! केवल तुम्हारे ही भाग्यसे हमारी रक्षा होगी। प्रभो! इस सारे गोकुलके एकमात्र स्वामी, एकमात्र रक्षक तुम्हीं हो। भक्तवत्सल! इन्द्रके क्रोधसे अब तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो।' भगवान्ने देखा कि वर्षा और ओलोंकी मारसे पीड़ित होकर सब बेहोश हो रहे हैं। वे समझ गये कि यह सारी करतूत इन्द्रकी है। उन्होंने ही क्रोधवश ऐसा किया है। वे मन-ही-मन कहने लगे—'हमने इन्द्रका यज्ञ भङ्ग कर दिया है, इसीसे वे व्रजका नाश करनेके लिये बिना ऋतुके ही यह प्रचण्ड वायु और ओलोंके साथ घनघोर वर्षा कर रहे हैं। अच्छा, मैं अपनी योगमायासे इसका भलीभाँति जवाब दूँगा। ये मूर्खतावश अपनेको लोकपाल मानते हैं, इनके ऐश्वर्य और धनका घमंड मैं चूर-चूर कर दूँगा। इनका यह अज्ञान मैं मिटाकर छोड़ूँगा। देवतालोग तो सत्त्वप्रधान होते हैं। इनमें अपने ऐश्वर्य और पदका अभिमान न होना चाहिये। अतः यह उचित ही है कि इन सत्त्वगुणसे च्युत दुष्ट देवताओंका

मेरे आत्मीय ये व्रजवासी ऐसे नहीं है। ये तो मेरी सेवामें आत्मसमर्पण करके इतने तन्मय हो गये हैं कि इन्हें अपने स्वरूपकी भी सुधि नहीं रही!' परमदयालु भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार सोचकर उन गोपोंको मायान्धकारसे अतीत अपना परमधाम दिखलाया। भगवान्‌के स्वरूपभूत परमधामका दर्शन ब्रह्मसाक्षात्कार कर चुकनेवाले पुरुषोंको ही होता है। इसलिये भगवान्‌ने पहले उनको उस ब्रह्मका साक्षात्कार करवाया जिसका स्वरूप सत्य, ज्ञान, अनन्त, सनातन और ज्योतिः-स्वरूप है तथा समाधिनिष्ठ गुणातीत पुरुष ही जिसे देख पाते हैं। परीक्षित्! जिस जलाशयमें अक्रूरको भगवान्‌ने अपना स्वरूप दिखलाया था, उसी ब्रह्मस्वरूप ब्रह्महृदमें भगवान् उन गोपोंको ले गये। वहाँ उन लोगोंने उसमें डुबकी लगायी। वे ब्रह्महृदमें प्रवेश कर गये। तब भगवान्‌ने उसमेंसे उनको निकालकर अपने परमधामका दर्शन कराया। उस दिव्य भगवत्स्वरूप लोकको देखकर नन्द आदि गोप परमानन्दमें मग्न हो गये। वहाँ उन्होंने देखा कि सारे वेद मूर्तिमान् होकर भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति कर रहे हैं। यह देखकर वे सब-के-सब परम विस्मित हो गये॥ १-१७॥

उन्तीसवाँ अध्याय

रासलीलाका आरम्भ

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! शरद् ऋतु थी। बिना समयके ही बेला, चमेली आदि सुगन्धित पुष्प खिलकर महँ-महँ महँक रहे थे। भगवान्‌ने चीरहरणके समय गोपियोंको जिन रात्रियोंका सङ्केत किया था, वे सब-की-सब पुञ्जीभूत होकर एक ही रात्रिके रूपमें उल्लसित हो रही थीं। भगवान्‌ने उन्हें देखा, देखकर दिव्य बनाया। गोपियाँ तो चाहती ही थीं। अब भगवान्‌ने भी अपनी अचिन्त्य महाशक्ति योगमायाके सहारे उन्हें निमित्त बनाकर रसमयी रासक्रीडा करनेका सङ्कल्प किया। अमना होनेपर भी उन्होंने अपने प्रेमियोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये मन स्वीकार किया। भगवान्‌के सङ्कल्प करते ही चन्द्रदेवने प्राची दिशाके मुख-मण्डलपर अपने शीतल किरणरूपी करकमलोंसे लालिमाकी रोली-केशर मल दी, जैसे बहुत दिनोंके बाद अपनी प्राणप्रिया पत्नीके पास आकर उसके प्रियतम पतिने उसे आनन्दित करनेके लिये ऐसा किया हो! इस प्रकार चन्द्रदेवने उदय होकर न केवल पूर्वदिशाका, प्रत्युत संसारके समस्त चर-अचर प्राणियोंका सन्ताप—जो दिनमें शरत्कालीन प्रखर सूर्यरश्मियोंके कारण बढ गया था—दूर कर दिया। उस दिन चन्द्रदेवका मण्डल अखण्ड था। पूर्णिमाकी रात्रि थी। वे नूतन केशरके समान लाल-लाल हो रहे थे, कुछ सङ्कोचमिश्रित अभिलाषासे युक्त जान पड़ते थे। उनका मुखमण्डल लक्ष्मीजीके समान मालूम हो रहा था। उनकी कोमल किरणोंसे सारा वन अनुरागके रंगमें रँग गया था। वनके कोने-कोनेमें उन्होंने अपनी चाँदनीके द्वारा अमृतका समुद्र उड़ेल दिया था। भगवान् श्रीकृष्णने अपने दिव्य उज्ज्वल रसके उद्दीपनकी पूरी सामग्री उन्हें और उस वनको देखकर अपनी बाँसुरीपर व्रजसुन्दरियोंके मनको हरण



करनेवाली मधुर तान छेड़ी। भगवान्‌का यह वंशी-वादन भगवान्‌के प्रेमको, उनके मिलनकी लालसाको अत्यन्त उकसानेवाला—बढ़ानेवाला था। यों तो श्यामसुन्दरने पहले से ही गोपियोंके मनको अपने वशमें कर रक्खा था। अब तो उनके मनकी सारी वस्तुएँ—भय, सङ्कोच, धैर्य, मर्यादा आदिकी वृत्तियाँ भी—छीन लीं। वंशीध्वनि सुनते ही उनकी विचित्र गति हो गयी। जिन्होंने एक साथ साधना की थी श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये, वे गोपियाँ भी एक दूसरेको सूचना न देकर—यहाँतक कि एक दूसरेसे

पचीसवाँ अध्याय

गोवर्धन-धारण

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब इन्द्रको पता लगा कि मेरी पूजा बंद कर दी गयी है, तब वे नन्दबाबा आदि गोपोंपर बहुत ही क्रोधित हुए। परन्तु उनके क्रोध करनेसे होता क्या, उन गोपोंके रक्षक तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण थे। इन्द्रको अपने पदका बड़ा घमंड था, वे समझते थे कि मैं ही त्रिलोकीका ईश्वर हूँ। उन्होंने क्रोधसे तिलमिलाकर प्रलय करनेवाले मेघोंके सांवर्तक नामक गणको व्रजपर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी और कहा—'ओह! इन जंगली ग्वालोंको इतना घमंड! सचमुच यह धनका ही नशा है। भला देखो तो सही, एक साधारण मनुष्य कृष्णके बलपर उन्होंने मुझ देवराजका अपमान कर डाला! जैसे पृथ्वीपर बहुत-से मन्दबुद्धि पुरुष भवसागरसे पार जानेके सच्चे साधन ब्रह्मविद्याको तो छोड़ देते हैं और नाममात्रकी टूटी हुई नावसे—कर्ममय यज्ञोंसे इस घोर संसार-सागरको पार करना चाहते हैं। कृष्ण बकवादी, नादान, अभिमानी और मूर्ख होनेपर भी अपनेको बहुत बड़ा ज्ञानी समझता है। वह स्वयं मृत्युका ग्रास है। फिर भी उसीका सहारा लेकर इन अहीरोंने मेरी अवहेलना की है। एक तो ये यों ही धनके नशेमें चूर हो रहे थे; दूसरे, कृष्णने इनको और बढ़ावा दे दिया है। अब तुमलोग जाकर इनके इस धनके घमंड और हेकड़ीको धूलमें मिला दो तथा उनके पशुओंका संहार कर डालो। मैं भी तुम्हारे पीछे-पीछे ऐरावत हाथीपर चढ़कर नन्दके व्रजका नाश करनेके लिये महापराक्रमी मरुद्गणोंके साथ आता हूँ' ॥ १–७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इन्द्रने इस प्रकार प्रलयके मेघोंको आज्ञा दी और उनके बन्धन खोल दिये। अब वे बड़े वेगसे नन्दबाबाके व्रजपर चढ़ आये और मूसलधार पानी बरसाकर सारे व्रजको पीड़ित करने लगे। चारों ओर बिजलियाँ चमकने लगीं, बादल आपसमें टकराकर कड़कने लगे और प्रचण्ड आँधीकी प्रेरणासे वे बड़े-बड़े ओले बरसाने लगे। इस प्रकार जब दल-के-दल बादल बार-बार आ-आकर खंभेके समान मोटी-मोटी धाराएँ गिराने लगे, तब व्रजभूमिका कोना-कोना पानीसे भर गया और कहाँ नीचा है, कहाँ ऊँचा—इसका पता चलना कठिन हो गया। इस प्रकार मूसलधार वर्षा तथा झंझावातके झपाटेसे जब एक-एक पशु ठिठुरने और काँपने लगा, ग्वाल और ग्वालिनें भी ठंडके मारे अत्यन्त व्याकुल होने लगीं, तब वे सब-के-सब भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। मूसलधार वर्षासे सताये जानेके कारण



सबने अपने-अपने सिर और बच्चोंको निहुककर अपने शरीरके नीचे छिपा लिया था और वे काँपते-काँपते भगवान्‌की चरण-शरणमें पहुँचे। गोप और गोपियोंने श्रीकृष्णसे कहा—'प्यारे श्रीकृष्ण! तुम बड़े भाग्यवान् हो। अब तो कृष्ण! केवल तुम्हारे ही भाग्यसे हमारी रक्षा होगी। प्रभो! इस सारे गोकुलके एकमात्र स्वामी, एकमात्र रक्षक तुम्हीं हो। भक्तवत्सल! इन्द्रके क्रोधसे अब तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो।' भगवान्‌ने देखा कि वर्षा और ओलोंकी मारसे पीड़ित होकर सब बेहोश हो रहे हैं। वे समझ गये कि यह सारी करतूत इन्द्रकी है। उन्होंने ही क्रोधवश ऐसा किया है। वे मन-ही-मन कहने लगे—'हमने इन्द्रका यज्ञ भङ्ग कर दिया है, इसीसे वे व्रजका नाश करनेके लिये बिना ऋतुके ही यह प्रचण्ड वायु और ओलोंके साथ घनघोर वर्षा कर रहे हैं। अच्छा, मैं अपनी योगमायासे इसका भलीभाँति जवाब दूँगा। ये मूर्खतावश अपनेको लोकपाल मानते हैं, इनके ऐश्वर्य और धनका घमंड मैं चूर-चूर कर दूँगा। इनका यह अज्ञान मैं मिटाकर छोड़ूँगा। देवतालोग तो सत्त्वप्रधान होते हैं। इनमें अपने ऐश्वर्य और पदका अभिमान न होना चाहिये। अतः यह उचित ही है कि इन सत्त्वगुणसे च्युत दुष्ट देवताओंका

उन्होंने जिनका आलिङ्गन किया, चाहे किसी भी भावसे किया हो, वे स्वयं परमात्मा ही तो थे। इसलिये उन्होंने



पाप और पुण्यरूप कर्मके परिणामसे बने हुए गुणमय शरीरका परित्याग कर दिया। और भगवान्‌की लीलामें सम्मिलित होनेके योग्य दिव्य अप्राकृत शरीर प्राप्त कर लिया। इस शरीरसे भोगे जानेवाले कर्मबन्धन तो ध्यानके समय ही छिन्न भिन्न हो चुके थे ॥ ५–११ ॥

राजा परीक्षित्‌ने पूछा—भगवन्! गोपियाँ तो भगवान् श्रीकृष्णको केवल अपना परम प्रियतम ही मानती थीं। उनका उनमें ब्रह्मभाव नहीं था। इस प्रकार उनकी दृष्टि प्राकृत गुणोंमें ही आसक्त दीखती है। ऐसी स्थितिमें उनके लिये गुणोंके प्रवाहरूप इस संसारकी निवृत्ति कैसे सम्भव हुई? ॥ १२ ॥

श्रीशुकदेवजीने कहा—परीक्षित्! मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ कि चेदिराज शिशुपाल भगवान्‌के प्रति द्वेष भाव रखनेपर भी अपने प्राकृत शरीरको छोड़कर अप्राकृत शरीरसे उनका पार्षद हो गया। ऐसी स्थितिमें जो समस्त प्रकृति और उसके गुणोंसे अतीत भगवान् श्रीकृष्णकी प्यारी हैं और उनसे अनन्य प्रेम करती हैं, वे गोपियाँ उन्हें प्राप्त हो जायँ—इसमें कौन सी आश्चर्यकी बात है? परीक्षित्! वास्तवमें भगवान् प्रकृतिसम्बन्धी वृद्धि विनाश, प्रमाण प्रमेय और गुण गुणीभावसे रहित हैं। वे अचिन्त्य-अनन्त अप्राकृत परम कल्याणस्वरूप गुणोंके एकमात्र आश्रय हैं। उन्होंने यह जो अपनेको तथा अपनी लीलाको प्रकट किया है, उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि जीव उसके सहारे अपना परम कल्याण सम्पादन करे। इसलिये भगवान्‌से केवल सम्बन्ध हो जाना चाहिये। वह सम्बन्ध चाहे जैसा हो—कामका हो, क्रोधका हो या भयका हो, स्नेह, नातेदारी या सौहार्दका हो। चाहे जिस भावसे भगवान्‌में नित्य निरन्तर अपनी वृत्तियाँ जोड़ दी जायँ, वे भगवान्‌से ही जुड़ती हैं। इसलिये वृत्तियाँ भगवन्मय हो जाती हैं, और उस जीवको भगवान्‌की ही प्राप्ति होती है। परीक्षित्! तुम्हारे जैसे परम भागवत, भगवान्‌का रहस्य जाननेवाले भक्तको श्रीकृष्णके सम्बन्धमें ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिये। योगेश्वरोंके भी ईश्वर अजन्मा भगवान्‌के लिये भी यह कोई आश्चर्यकी बात है? अरे परीक्षित्! उनके सङ्कल्पमात्रसे—भौंहोंके इशारेसे सारे जगत्‌का परम कल्याण हो सकता है। तुम गोपियोंके सम्बन्धमें क्या प्रश्न कर रहे हो? अच्छा, अब आगेकी बात सुनो। जब भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि व्रजकी अनुपम विभूतियाँ गोपियाँ मेरे बिल्कुल पास आ गयी हैं, तब उन्होंने अपनी वाक्चातुरीसे उन्हें मोहित करते हुए कहा। क्यों न हो—भूत, भविष्य और वर्तमान कालके जितने वक्ता हैं उनमें वे ही सर्वश्रेष्ठ जो हैं ॥ १३–१७ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—महाभाग्यवती गोपियो! तुम्हारा स्वागत है। बतलाओ, तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये मैं कौन सा काम करूँ? व्रजमें तो सब कुशल मङ्गल है न? इस



समय यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता पड़ गयी? सुन्दरी

गोवर्द्धन-धारण



जैसे छोटे-छोटे बालक बरसाती छत्तेके पुष्पको उखाड़कर हाथमें रख लेते हैं, वैसे ही उन्होंने गोवर्द्धनको धारण कर लिया ।

परम प्रेमास्पद अपने आत्मा ही हो । इसीसे वे ज्ञानी पुरुष तुमसे ही सम्बन्ध रखते हैं, उनसे नहीं । इसलिये परमेश्वर श्रीकृष्ण ! तुम हमपर कृपा करो । तुम्हारी ये आँखें कमल-सी कोमल और प्रेमसे पूर्ण हैं । हमारी बहुत दिनोंकी लगी आशा तोड़ो मत, इसे पूरी करो । मनमोहन ! अबतक हमारा चित्त घरके काम धंधोंमें लगता था । इसीसे हमारे हाथ भी उनमें रमे हुए थे । परन्तु तुमने हमारे देखते-देखते हमारा वह चित्त लूट लिया । इसमें तुम्हें कोई कठिनाई भी नहीं उठानी पड़ी, तुम तो सुखस्वरूप हो न ! परन्तु अब तो हमारी गति मति निराली ही हो गयी है । हमारे ये पैर तुम्हारे चरणकमलोंको छोड़कर एक पग भी हटनेके लिये तैयार नहीं हैं, नहीं हट रहे हैं । फिर हम व्रजमें कैसे जायँ ? और यदि वहाँ जायँ भी तो करें क्या ? प्राणवल्लभ ! हमारे प्यारे सखा ! तुम्हारी मन्द-मन्द मधुर मुसकान, प्रेमभरी चितवन और मनोहर संगीतने हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रेम और मिलनकी आग धधका दी है । उसे तुम अपने अधरोंकी रसधारासे बुझा दो । नहीं तो प्रियतम ! हम सच कहती हैं, तुम्हारी विरह व्यथाकी आगसे हम अपने-अपने शरीर जला देंगी और ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणकमलोंको प्राप्त करेंगी ॥३१-३५॥

कमलनयन ! जीवनधन ! तुम वनवासियोंके प्यारे हो और वे भी तुमसे बहुत प्रेम करते हैं । इससे प्रायः तुम उन्हींके पास रहते हो । यहाँतक कि तुम्हारे जिन चरणकमलोंकी सेवाका अवसर स्वयं लक्ष्मीजीको भी कभी कभी ही मिलता है, उन्हीं चरणोंका स्पर्श हमें प्राप्त हुआ । जिस दिन यह सौभाग्य हमें मिला और तुमने हमें स्वीकार करके आनन्दित किया, उसी दिनसे हम और किसीके सामने एक क्षणके लिये भी ठहरनेमें असमर्थ हो गयी हैं—पति पुत्रादिकोंकी सेवा तो दूर रही ! हमारे स्वामी ! जिन लक्ष्मीजीका कृपा कटाक्ष प्राप्त करनेके लिये बड़े बड़े देवता तपस्या करते रहते हैं, वही लक्ष्मीजी तुम्हारे वक्षःस्थलमें बिना किसीकी प्रतिद्वन्द्विताके स्थान प्राप्त कर लेनेपर भी अपनी सौत तुलसीके साथ तुम्हारे चरणोंकी रज पानेकी अभिलाषा किया करती हैं । अबतकके सभी भक्तोंने उस चरणरजका सेवन किया है । हम भी तुम्हारी उसी चरणरजकी शरणमें आयी हैं । भगवन् ! अबतक जिसने भी तुम्हारे चरणोंकी शरण ली, उसके सारे कष्ट तुमने मिटा दिये । अब तुम हमपर कृपा करो । हमें भी अपने प्रसादका भाजन बनाओ । हम तुम्हारी सेवा करनेकी आशा-अभिलाषासे घर, गाँव, कुटुम्ब—सब कुछ छोड़कर तुम्हारे युगल चरणोंकी शरणमें आयी हैं । प्रियतम ! वहाँ तो तुम्हारी आराधनाके लिये अवकाश ही नहीं है । पुरुषभूषण ! पुरुषोत्तम ! तुम्हारी मधुर मुसकान और चारु चितवनने हमारे हृदयमें प्रेमकी—मिलनकी आकांक्षाकी आग धधका दी है; हमारा रोम रोम उससे जल रहा है । तुम हमें अपनी दासीके रूपमें स्वीकार कर लो । हमें अपनी सेवाका अवसर दो । प्रियतम ! तुम्हारा सुन्दर मुखकमल, जिसपर घुँघराली अलकें झलक रही हैं; तुम्हारे ये कमनीय कपोल, जिनपर सुन्दर सुन्दर कुण्डल अपना अनन्त सौन्दर्य बिखेर रहे हैं; तुम्हारे ये मधुर अधर, जिनकी सुधा सुधाको भी लजानेवाली है, तुम्हारी यह नयन मनोहारी चितवन, जो मन्द मन्द मुसकानसे उल्लसित हो रही है; तुम्हारी ये दोनों भुजाएँ, जो शरणागतोंको अभयदान देनेमें अत्यन्त उदार हैं और तुम्हारा यह वक्षःस्थल, जो लक्ष्मीजीका—सौन्दर्यकी एकमात्र देवीका नित्य क्रीडास्थल है, देखकर हम सब तुम्हारी दासी हो गयी हैं । श्याम सुन्दर ! हमारी तो बात ही क्या है—तीनों लोकोंमें भी और ऐसी कौन-सी स्त्री है, जो मधुर मधुर पद और आरोह अवरोह-क्रमसे विविध प्रकारकी मूर्च्छनाओंसे युक्त तुम्हारी वंशीकी तान सुनकर तथा इस त्रिलोकसुन्दर मोहिनी मूर्तिको—जो अपने एक बूँद सौन्दर्यसे त्रिलोकीको सौन्दर्यका दान करती है एवं जिसे देखकर गौ, पक्षी, वृक्ष और हरिन भी रोमाञ्चित, पुलकित हो जाते हैं—अपने नेत्रोंसे निहारकर आर्य मर्यादासे विचलित न हो जाय, कुल कान और लोकलज्जाको त्यागकर तुममें अनुरक्त न हो जाय ? हमसे यह बात छिपी नहीं है कि जैसे भगवान् नारायण देवताओंकी रक्षा करते हैं, वैसे ही तुम व्रजमण्डलका भय और दुःख मिटानेके लिये ही प्रकट हुए हो । और यह भी स्पष्ट ही है कि दीन दुखियोंपर तुम्हारा बड़ा प्रेम, बड़ी कृपा है । प्रियतम ! हम भी बड़ी दुःखिनी हैं । तुम्हारे मिलनकी आकांक्षाकी आगसे हमारा वक्षःस्थल जल रहा है । तुम अपनी इन दासियोंके वक्षःस्थल और सिरपर अपने कोमल करकमल रखकर इन्हें अपनालो; हमें जीवनदान दो ॥ ३६–४१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्ण सनकादि योगियों और शिवादि योगेश्वरोंके भी ईश्वर है । जब उन्होंने गोपियोंकी व्यथा और व्याकुलतासे भरी वाणी सुनी, तब उनका हृदय दयासे भर गया और यद्यपि वे आत्माराम हैं—अपने-आपमें ही रमण करते रहते हैं, उन्हें अपने

यशोदारानी, रोहिणीजी, नन्दबाबा और बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामजीने स्नेहातुर होकर श्रीकृष्णको हृदयसे लगा लिया तथा आशीर्वाद दिये। परीक्षित्! उस समय आकाशमें स्थित देवता, साध्य, सिद्ध और चारण आदि प्रसन्न होकर भगवान्की स्तुति करते हुए उनपर फूलोंकी वर्षा करने लगे। परीक्षित्! स्वर्गमें देवतालोग शङ्ख और नौबत बजाने लगे। तुम्बुरु आदि गन्धर्वराज भगवान्की मधुर लीलाका गायन करने लगे। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने व्रजकी यात्रा की। उनके बगलमें बलरामजी चल रहे थे और उनके प्रेमी ग्वालबाल उनकी सेवा कर रहे थे। उनके साथ ही प्रेममयी गोपियाँ भी अपने हृदयको आकर्षित करनेवाले, उसमें प्रेम जगानेवाले भगवान्की गोवर्द्धनधारण आदि लीलाओंका गायन करती हुई बड़े आनन्दसे व्रजमें लौट आयीं ॥२९-३३॥

छब्बीसवाँ अध्याय

नन्दबाबासे गोपोंकी श्रीकृष्णके प्रभावके विषयमें बातचीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! व्रजके गोप भगवान् श्रीकृष्णके ऐसे अलौकिक कर्म देखकर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। उन्हें भगवान्की अनन्त शक्तिका तो पता था नहीं, वे इकट्ठे होकर आपसमें इस प्रकार कहने लगे—'इस बालकके जितने भी कर्म हैं, सभी बड़े अद्भुत—बड़े अलौकिक हैं। इसका हमारे-जैसे गँवार ग्रामीणोंमें जन्म लेना तो इसके लिये बड़ी निन्दाकी बात है। यह भला, कैसे उचित हो सकता है? जैसे गजराज कोई कमल उखाड़कर उसे ऊपर उठा ले और धारण करे, वैसे ही इस नन्हे-से सात वर्षके बालकने एक ही हाथसे गिरिराज गोवर्द्धनको उखाड़ लिया और खेल-खेलमें सात दिनोंतक उठाये रक्खा। यह साधारण मनुष्यके लिये भला, कैसे सम्भव है? अभीकी बात जाने दो; जब यह नन्हा-सा बच्चा था उस समय बड़ी भयङ्कर राक्षसी पूतना आयी और इसने आँख बंद किये-किये ही उसका स्तन तो पिया ही, प्राण भी पी डाले—ठीक वैसे ही, जैसे काल शरीरकी आयुको निगल जाता है। जिस समय यह केवल तीन महीनेका था और छकड़ेके नीचे सोकर रो रहा था, उस समय रोते-रोते इसने ऐसा पाँव उछाला कि उसकी ठोकरसे वह बड़ा भारी छकड़ा उलटकर गिर ही पड़ा। क्यों भाई! उस समय तो यह एक ही वर्षका था न, जब दैत्य बवंडरके रूपमें इसे बैठे-बैठे आकाशमें उड़ा ले गया था? तुम सब जानते ही हो कि इसने उस तृणावर्त दैत्यको गला घोंटकर मार डाला! उस दिनकी बात तो सभी जानते हैं कि माखन चोरी करनेपर यशोदारानीने इसे ऊखलसे बाँध दिया था। यह घुटनोंके बल बकैयाँ खींचते-खींचते उन दोनों विशाल अर्जुन-वृक्षोंके बीचमेंसे निकल गया और उन्हें उखाड़ ही डाला। यह बात भी किसीसे छिपी नहीं है कि जब यह ग्वालबाल और बलरामजीके साथ बछड़ोंको चरानेके लिये वनमें गया हुआ था, उस समय इसको मार डालनेके लिये एक दैत्य बगुलेके रूपमें आया और इसने दोनों हाथोंसे उसके दोनों ठोर पकड़कर उसे तिनकेकी तरह चीर डाला। जिस समय इसको मार डालनेकी इच्छासे एक दैत्य बछड़ेके रूपमें बछड़ोंके झुंडमें घुस गया था, उस समय इसने उस दैत्यको खेल-ही-खेलमें मार डाला और उसे कैथके पेड़ोंपर पटककर उन पेड़ोंको भी गिरा दिया। इसने बलरामजीके साथ मिलकर गधेके रूपमें रहनेवाले धेनुकासुर तथा उसके भाई-बन्धुओंको मार डाला और पके हुए फलोंसे पूर्ण तालवनको सबके लिये उपयोगी और मङ्गलमय बना दिया। इसीने परम बलशाली बलरामजीके द्वारा प्रलम्बासुरको मरवा डाला तथा दावानलसे गौओं और ग्वालबालोंको उबार लिया। कौन नहीं जानता कि यमुनाजलमें रहनेवाला कालिय नाग कितना विषैला था? परन्तु इसने उसका भी मान मर्दन कर उसे बलपूर्वक दहसे निकाल दिया और यमुनाजीका जल सदाके लिये अमृतमय बना दिया। इसके सिवा नन्दजी! हम यह भी देखते हैं कि तुम्हारे इस साँवले बालकपर हम सभी व्रजवासियोंका अनन्त प्रेम है और इसका भी हमपर स्वाभाविक ही स्नेह है। क्या आप बतला सकते हैं कि इसका क्या कारण है? भला, कहाँ तो यह सात वर्षका नन्हा-सा

कहा—'बहिन तुलसी ! तुम्हारा हृदय तो बड़ा कोमल है, तुम तो सभी लोगोंका कल्याण चाहती हो । भगवान्‌के चरणोंमें तुम्हारा प्रेम तो है ही, वे भी तुमसे बहुत प्यार करते हैं । तभी तो भौंरोंके मँड़राते रहनेपर भी वे तुम्हारी माला नहीं उतारते, सर्वदा पहने रहते हैं । क्या तुमने अपने परम प्रियतम श्यामसुन्दरको देखा है ? गोपियोंने सोचा तुलसीको भी अपने सुहागका गर्व है । चलो अपने-जैसी इन बहिनोंसे पूछें—'प्यारी मालती ! जाती और जूही ! तुमलोगोंने हमारे श्यामसुन्दरको अवश्य देखा होगा । क्योंकि उन्होंने इधरसे जाते समय अपने कोमल करोंसे स्पर्श करके तुम्हें आनन्दित किया होगा ।' उनके भी कुछ न बोलनेपर वे फल आदिके द्वारा परोपकार करनेवाले वृक्षोंसे पूछने लगीं । उन्होंने रसाल, प्रियाल, कटहल, पीतशाल, कचनार, जामुन, आक, बेल, मौलसिरी, आम, कदम्ब और नीम तथा अन्यान्य वृक्षोंको सम्बोधन करके कहा—'यमुनाके तटपर विराजमान सुखी तरुवरो ! तुम्हारा जन्म-जीवन केवल परोपकारके लिये है । श्रीकृष्णके बिना हमारा जीवन सूना हो रहा है, हम बेहोश हो रही हैं । तुम हमें उन्हें पानेका मार्ग बता दो ।' उनसे भी कुछ उत्तर न पाकर गोपियोंकी दृष्टि पृथ्वीपर गयी, उन्होंने कहा—'भगवान्‌की प्रेयसी पृथ्वीदेवी ! तुमने ऐसी कौन सी तपस्या की है कि श्रीकृष्णके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके तुम आनन्दसे भर रही हो और तृण-लता आदिके रूपमें अपना रोमाञ्च प्रकट कर रही हो ? तुम्हारा यह उल्लास-विलास श्रीकृष्णके चरणस्पर्शके कारण है अथवा वामनावतारमें विश्वरूप धारण करके उन्होंने तुम्हें जो नापा था, उसके कारण है ? कहीं उनसे भी पहले वराहभगवान्‌के अंग-संगके कारण तो तुम्हारी यह दशा नहीं हो रही है ?' आखिर तो यह धरती ही है, यह क्या उत्तर देगी—यह सोचकर जब गोपियोंने सामने देखा, तब हरिनियाँ दिखायी पड़ीं । वे बोल उठीं—'अरी सखी हरिनियो ! हमारे श्यामसुन्दरके अंग-अंगसे सुषमा-सौन्दर्यकी धारा बहती रहती है, वे कहीं अपनी प्राणप्रियाके साथ तुम्हारे नयनोंको परमानन्दका दान करते हुए इधरसे ही तो नहीं गये हैं ? अनुमान तो ऐसा ही होता है । देखो, देखो; कुलपति श्रीकृष्णकी कुन्दकलीकी मालाकी मनोहर गन्ध आ रही है और उसमें उनकी परम प्रेयसीके अंग संगसे मिले हुए कुच कुङ्कुमकी सुवास भी जान



पड़ती है । वे अवश्य इधरसे ही गये हैं ! [फिर वृक्षोंको सम्बोधित कर कहती हैं–] तरुवरो ! उनकी मालाकी तुलसीमें ऐसी सुगन्ध है कि उसकी गन्धके लोभी मतवाले भौंरे प्रत्येक क्षण उसपर मँड़राते रहते हैं । उनके एक हाथमें लीलाकमल होगा और दूसरा हाथ अपनी प्रेयसीके कंधेपर रक्खे होंगे । हमारे प्यारे श्यामसुन्दर इधरसे विचरते हुए अवश्य गये होंगे । जान पड़ता है तुमलोग उन्हें प्रणाम करनेके लिये ही झुके हो । परन्तु उन्होंने अपनी प्रेमभरी चितवनसे भी तुम्हारी वन्दनाका अभिनन्दन किया है या नहीं ? [दूसरी ओर मुड़कर] अरी सखी ! इन वृक्षोंसे पूछना व्यर्थ है । इन लताओंसे पूछो । ये अपने पति वृक्षोंको भुजपाशमें बाँधकर आलिङ्गन किये हुए हैं, इससे क्या हुआ ? इनके शरीरमें जो पुलक है, रोमाञ्च है, वह तो भगवान्‌के नखोंके स्पर्शसे ही है । अहो ! इनका कैसा सौभाग्य है' ॥५–१३॥

परीक्षित् ! इस प्रकार मतवाली गोपियाँ प्रलाप करती हुई भगवान् श्रीकृष्णको ढूँढते-ढूँढते कातर हो रही थीं । अब और भी गाढ आवेश हो जानेके कारण वे भगवन्मय होकर भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगीं । एक पूतना बन गयी, तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी । कोई छकड़ा बन गयी, तो किसीने बालकृष्ण

घमंड जाता रहा कि मैं ही तीनों लोकोंका स्वामी हूँ।



अब उन्होंने हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की ॥ १—३ ॥

इन्द्रने कहा—भगवन्! आपका स्वरूप परमशान्त, सर्वज्ञ, रजोगुण तथा तमोगुणसे रहित एवं विशुद्ध अप्राकृत सत्त्वमय है। यह गुणोंके प्रवाहरूपसे प्रतीत होनेवाला प्रपञ्च केवल मायामय है। आपमें तो इसका लेश भी नहीं है। क्योंकि आपका स्वरूप न जाननेके कारण ही आपमें इसकी प्रतीति होती है। जब आपका सम्बन्ध अज्ञान और उसके कारण प्रतीत होनेवाले देहादिसे है ही नहीं, फिर उन देह आदिकी प्राप्तिके कारण तथा उन्हींसे होनेवाले लोभ-क्रोध आदि दोष तो आपमें हो ही कैसे सकते हैं? प्रभो! इन दोषोंका होना तो अज्ञानका लक्षण है। इस प्रकार यद्यपि अज्ञान और उससे होनेवाले जगत्से आपका कोई सम्बन्ध नहीं है, फिर भी धर्मकी रक्षा और दुष्टोंका दमन करनेके लिये आप अवतार ग्रहण करते हैं और निग्रह-अनुग्रह भी करते हैं। आप जगत्के पिता, गुरु और स्वामी हैं। आप जगत्का नियन्त्रण करनेके लिये दण्ड धारण किये हुए दुस्तर काल हैं। आप अपने भक्तोंकी लालसा पूर्ण करनेके लिये स्वच्छन्दतासे लीला-शरीर प्रकट करते हैं और जो लोग हमारी तरह अपनेको ईश्वर मान बैठते हैं, उनका मान मर्दन करते हुए अनेकों प्रकारकी लीलाएँ करते हैं। प्रभो! जो मेरे-जैसे अज्ञानी और अपनेको जगत्का ईश्वर माननेवाले हैं वे जब देखते हैं कि बड़े-बड़े भयके अवसरोंपर भी आप निर्भय रहते हैं, तब वे अपना घमंड छोड़ देते हैं और गर्वरहित होकर संतपुरुषोंके द्वारा सेवित भक्तिमार्गका आश्रय लेकर आपका भजन करते हैं। प्रभो! आपकी एक-एक चेष्टा दुष्टोंके लिये दण्डविधान है। प्रभो! मैंने ऐश्वर्यके मदसे मत्त होकर आपका अपराध किया है। इसका कारण था—मैं आपकी शक्ति और प्रभावके सम्बन्धमे बिल्कुल अनजान था। प्रभो! आप कृपा करके मुझ मूर्ख अपराधीका यह अपराध क्षमा करें और ऐसी कृपा करें भगवन्! कि मुझे फिर कभी ऐसे दुष्ट अज्ञानका शिकार न होना पड़े। स्वयंप्रकाश, इन्द्रियातीत परमात्मन्! आपका यह अवतार इसलिये हुआ है कि जो असुर-सेनापति केवल अपना पेट पालनेमे ही लग रहे हैं और पृथ्वीके लिये बड़े भारी भारके कारण बन रहे हैं, उनका वध करके उन्हें मोक्ष दिया जाय, और जो आपके चरणोंके सेवक हैं—आज्ञाकारी भक्तजन हैं, उनका अभ्युदय हो—उनकी रक्षा हो। भगवन्! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप सर्वान्तर्यामी पुरुषोत्तम तथा सर्वात्मा वासुदेव हैं। आप यदुवंशियोंके एकमात्र स्वामी, भक्तवत्सल एवं सबके चित्तको आकर्षित करनेवाले हैं। मै आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। आपने जीवोंके समान कर्मवश होकर नहीं, स्वतन्त्रतासे अपने भक्तोंकी तथा अपनी इच्छाके अनुसार शरीर स्वीकार किया है। आपका यह शरीर भी विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है। आप सब कुछ है, सबके कारण हैं और सबके आत्मा हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। भगवन्! मेरे अभिमानका अन्त नहीं है। और मेरा क्रोध भी बहुत ही तीव्र, मेरे वशके बाहर है। जब मैंने देखा कि मेरा यज्ञ तो नष्ट कर दिया गया, तब मैंने मूसलधार वर्षा और आँधीके द्वारा सारे व्रजमण्डलको नष्ट कर देना चाहा। परन्तु प्रभो! आपने मुझपर बहुत ही अनुग्रह किया। मेरी चेष्टा व्यर्थ होनेसे मेरे घमंडकी जड़ उखड़ गयी। आप मेरे स्वामी हैं, गुरु हैं और मेरे आत्मा हैं। मैं आपकी शरणमे हूँ ॥ ४—१३ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब देवराज इन्द्रने श्रीकृष्णकी इस प्रकार स्तुति की, तब उन्होंने हँसते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे इन्द्रको सम्बोधन करके कहा—॥ १४ ॥

श्रीभगवान्ने कहा—इन्द्र! तुम ऐश्वर्य और धन-सम्पत्तिके मदसे पूरे-पूरे मतवाले हो रहे थे। इसलिये तुमपर अनुग्रह करके ही मैंने तुम्हारा यज्ञ भङ्ग किया है। यह इसलिये कि अब तुम मुझे नित्य-निरन्तर स्मरण रख सको। जो ऐश्वर्य

कहा—'बहिन तुलसी! तुम्हारा हृदय तो बड़ा कोमल है, तुम तो सभी लोगोंका कल्याण चाहती हो। भगवान्‌के चरणोंमें तुम्हारा प्रेम तो है ही, वे भी तुमसे बहुत प्यार करते हैं। तभी तो भौंरोंके मँड़राते रहनेपर भी वे तुम्हारी माला नहीं उतारते, सर्वदा पहने रहते हैं। क्या तुमने अपने परम प्रियतम श्यामसुन्दरको देखा है?' गोपियोंने सोचा तुलसीको भी अपने सुहागका गर्व है। चलो अपने-जैसी इन बहिनोंसे पूछें—'प्यारी मालती! जाती और जूही! तुमलोगोंने हमारे श्यामसुन्दरको अवश्य देखा होगा। क्योंकि उन्होंने इधरसे जाते समय अपने कोमल करोंसे स्पर्श करके तुम्हें आनन्दित किया होगा।' उनके भी कुछ न बोलनेपर वे फल आदिके द्वारा परोपकार करनेवाले वृक्षोंसे पूछने लगीं। उन्होंने रसाल, प्रियाल, कटहल, पीतशाल, कचनार, जामुन, आक, बेल, मौलसिरी, आम, कदम्ब और नीम तथा अन्यान्य वृक्षोंको सम्बोधन करके कहा—'यमुनाके तटपर विराजमान सुखी तरुवरो! तुम्हारा जन्म जीवन केवल परोपकारके लिये है। श्रीकृष्णके बिना हमारा जीवन सूना हो रहा है, हम बेहोश हो रही हैं। तुम हमें उन्हें पानेका मार्ग बता दो।' उनसे भी कुछ उत्तर न पाकर गोपियोंकी दृष्टि पृथ्वीपर गयी, उन्होंने कहा—'भगवान्‌की प्रेयसी पृथ्वीदेवी! तुमने ऐसी कौन सी तपस्या की है कि श्रीकृष्णके चरणकमलोंका स्पर्श प्राप्त करके तुम आनन्दसे भर रही हो और तृण लता आदिके रूपमें अपना रोमाञ्च प्रकट कर रही हो? तुम्हारा यह उल्लास विलास श्रीकृष्णके चरणस्पर्शके कारण है अथवा वामनावतारमें विश्वरूप धारण करके उन्होंने तुम्हें जो नापा था, उसके कारण है? कहीं उनसे भी पहले वराहभगवान्‌के अंग संगके कारण तो तुम्हारी यह दशा नहीं हो रही है?' आखिर तो यह धरती ही है, यह क्या उत्तर देगी—यह सोचकर अब गोपियोंने सामने देखा, तब हरिनियाँ दिखायी पड़ीं। वे बोल उठीं—'अरी सखी हरिनियो! हमारे श्यामसुन्दरके अंग अंगसे सुषमा-सौन्दर्यकी धारा बहती रहती है, वे कहीं अपनी प्राणप्रियाके साथ तुम्हारे नयनोंको परमानन्दका दान करते हुए इधरसे ही तो नहीं गये हैं? अनुमान तो ऐसा ही होता है। देखो, देखो, कुलपति श्रीकृष्णकी कुन्दकलीकी मालाकी मनोहर गन्ध आ रही है और उसमें उनकी परम प्रेयसीके अंग संगसे मिले हुए कुच कुङ्कुमकी सुवास भी जान



पड़ती है। वे अवश्य इधरसे ही गये हैं! [फिर वृक्षोंको सम्बोधित कर कहती हैं-] तरुवरो! उनकी मालाकी तुलसीमें ऐसी सुगन्ध है कि उसकी गन्धके लोभी मतवाले भौंरे प्रत्येक क्षण उसपर मँड़राते रहते हैं। उनके एक हाथमें लीलाकमल होगा और दूसरा हाथ अपनी प्रेयसीके कंधेपर रक्खे होंगे। हमारे प्यारे श्यामसुन्दर इधरसे विचरते हुए अवश्य गये होंगे। जान पड़ता है तुमलोग उन्हें प्रणाम करनेके लिये ही झुके हो। परन्तु उन्होंने अपनी प्रेमभरी चितवनसे भी तुम्हारी वन्दनाका अभिनन्दन किया है या नहीं? [दूसरी ओर मुड़कर] अरी सखी! इन वृक्षोंसे पूछना व्यर्थ है। इन लताओंसे पूछो। ये अपने पति वृक्षोंको भुजपाशमें बाँधकर आलिङ्गन किये हुए हैं, इससे क्या हुआ? इनके शरीरमें जो पुलक है, रोमाञ्च है, वह तो भगवान्‌के नखोंके स्पर्शसे ही है। अहो! इनका कैसा सौभाग्य है' ॥५-१३॥

परीक्षित्! इस प्रकार मतवाली गोपियाँ प्रलाप करती हुई भगवान् श्रीकृष्णको ढूँढ़ते ढूँढ़ते कातर हो रही थीं। अब और भी गाढ आवेश हो जानेके कारण वे भगवन्मय होकर भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगीं। एक पूतना बन गयी, तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसका स्तन पीने लगी। कोई छकड़ा बन गयी, तो किसीने बालकृष्ण

नहीं था कि यह असुरोंकी वेला है, इसलिये वे रातके समय ही यमुनाजलमें घुस गये। उस समय वरुणके सेवक एक असुरने उन्हें पकड़ लिया और वह अपने स्वामीके पास ले गया। नन्दबाबाके खो जानेसे व्रजके सारे गोप 'श्रीकृष्ण! अब तुम्हीं अपने पिताको ला सकते हो; बलराम! अब तुम्हारा ही भरोसा है'—इस प्रकार कहते हुए रोने-पीटने लगे। भगवान् श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान् हैं एवं सदासे ही अपने भक्तोंका भय भगाते आये हैं। जब उन्होंने व्रजवासियोंका रोना-पीटना सुना और यह जाना कि पिताजीको वरुणका कोई सेवक ले गया है, तब वे वरुणजीके पास गये। जब लोकपाल वरुणने देखा कि समस्त जगत्‌के अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रियोंके प्रवर्तक भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही उनके यहाँ पधारे हैं, तब उन्होंने उनकी बहुत बड़ी पूजा की।



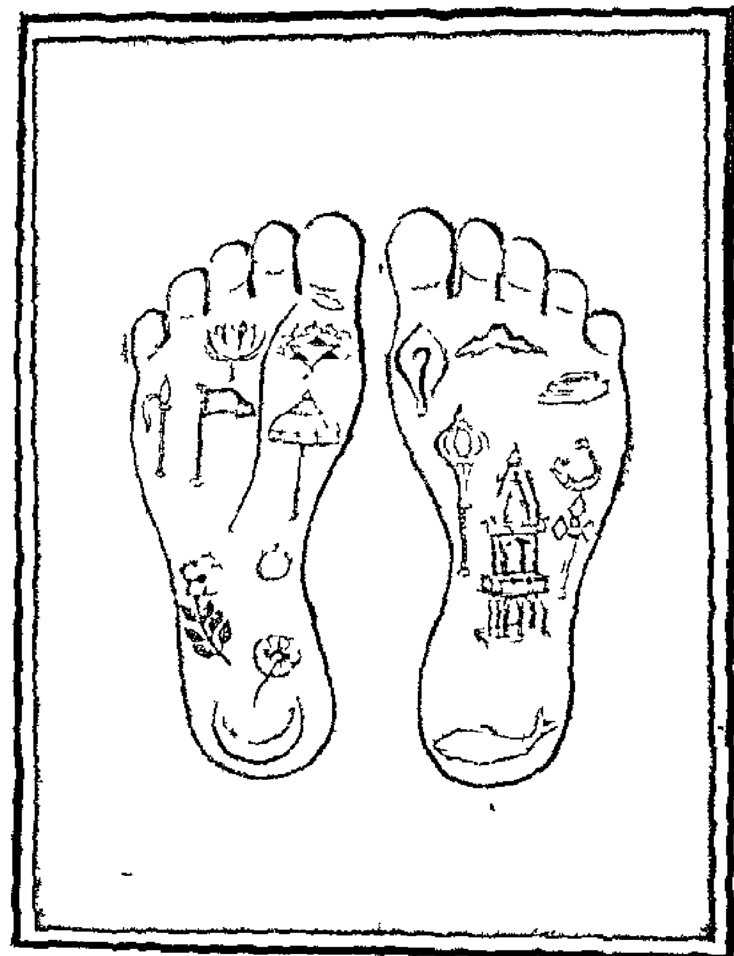
भगवान्‌के दर्शनसे उनका रोम-रोम आनन्दसे खिल उठा। इसके बाद उन्होंने भगवान्‌से निवेदन किया—॥ १-४ ॥

वरुणजीने कहा—प्रभो! आज मेरा शरीर धारण करना सफल हुआ। आज मेरा जीवन सचमुच कृतार्थ हो गया। क्योंकि भगवन्! आज मुझे आपके चरणोंकी सेवाका शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। जिन्हें भी आपके चरणकमलोंकी सेवाका सुअवसर मिला, वे भवसागरसे पार हो गये। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप समस्त विशेषताओंसे रहित, एकरस समसत्ता हैं। आप समस्त प्रकृति और प्राकृत पदार्थोंके आश्रय परमात्मा हैं और आप ही अचिन्त्य-अनन्त माधुर्य, सौन्दर्य, ऐश्वर्य आदि अपने स्वरूपभूत दिव्य कल्याणस्वरूप गुणोंसे नित्य युक्त हैं। यह विभिन्न लोक-सृष्टिकी कल्पना करनेवाली माया आपमें बिल्कुल नहीं है। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो! मेरा यह सेवक बड़ा मूढ़ और अनजान है। वह अपने कर्तव्यको भी नहीं जानता। वही आपके पिताजीको ले आया है, आप कृपा करके उसका अपराध क्षमा कीजिये। गोविन्द! मैं जानता हूँ कि आप अपने पिताके प्रति बड़ा प्रेमभाव रखते हैं। ये आपके पिता हैं। इन्हें आप ले जाइये। परन्तु भगवन्! आप सबके अन्तर्यामी, सबके साक्षी हैं। इसलिये विश्वविमोहन श्रीकृष्ण! आप मुझ दासपर भी कृपा कीजिये। मुझे भी अपना स्वीकार कीजिये ॥ ५-८ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण ब्रह्मा आदि ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। लोकपाल वरुणने इस प्रकार उनकी स्तुति करके उन्हें प्रसन्न किया। इसके बाद भगवान् व्रजवासी भाई-बन्धुओंको आनन्दित करनेके लिये अपने पिता नन्दजीको लेकर व्रजमें चले आये। नन्दबाबाने वरुणलोकमें लोकपालके इन्द्रियातीत ऐश्वर्य और सुख-सम्पत्तिको देखा तथा यह भी देखा कि वहाँके निवासी उनके पुत्र श्रीकृष्णके चरणोंमें झुक-झुककर प्रणाम कर रहे हैं। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने व्रजमें आकर अपने जाति-भाइयोंको सब बातें कह सुनायीं। परीक्षित्! भगवान्‌के प्रेमी गोप यह सुनकर ऐसा समझने लगे कि अरे, ये तो स्वयं भगवान् हैं। जब वरुणलोकका ही इतना वैभव है—तब जिनके चरणोंमें स्वयं वरुण देवताने प्रणाम किया, उन भगवान्‌के परमधामका वैभव तो न जाने कैसा होगा? तब उन्होंने मन-ही-मन बड़ी उत्सुकतासे विचार किया कि क्या कभी जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्ण हमलोगोंको भी अपना वह मायातीत स्वधाम, जहाँ केवल इनके प्रेमी भक्त ही जा सकते हैं, दिखलायेंगे। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं सर्वदर्शी हैं। भला, उनसे यह बात कैसे छिपी रहती? वे अपने आत्मीय गोपोंकी यह अभिलाषा जान गये और उनका सङ्कल्प सिद्ध करनेके लिये कृपासे भरकर इस प्रकार सोचने लगे—'इस संसारमें जीव अज्ञानवश शरीरमें आत्मबुद्धि करके भाँति-भाँतिकी कामना और उनकी पूर्तिके लिये नाना प्रकारके कर्म करता है। फिर उनके फलस्वरूप देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि ऊँची-नीची योनियोंमें भटकता फिरता है; अपनी असली गतिको—आत्मस्वरूपको नहीं पहचान पाता।



श्रीकृष्ण-चरण



श्रीराधिका-चरण

छिपकर—जहाँ वे थे, वहाँके लिये चल पड़ीं। परीक्षित्! वे इतने वेगसे चली थीं कि अब भी मुझे उनके कानोंके हिलते हुए कुण्डल दीख-से रहे हैं ॥ १—४ ॥

वंशीध्वनि सुनकर जो गोपियाँ दूध दुह रही थीं, वे अत्यन्त उत्सुकतावश दूध दुहना छोड़कर चल पड़ीं। जो चूल्हेपर दूध औंटा रही थीं वे उफनता हुआ दूध छोड़कर, और जो लपसी पका रही थीं वे पकी हुई लपसी बिना उतारे ही ज्यों-की-त्यों छोड़कर चल दीं। जो भोजन परस रही



थीं वे परसना छोड़कर, जो छोटे-छोटे बच्चोंको दूध पिला रही थीं वे दूध पिलाना छोड़कर, जो पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं वे सेवा-शुश्रूषा छोड़कर और जो स्वयं भोजन कर रही थीं वे भोजन करना छोड़कर अपने कृष्णप्यारेके पास चल पड़ीं। जिस समय बाँसुरी बजी, उस समय कुछ गोपियाँ अपने शरीरमें अंगरागका लेप कर रही थीं। कुछ चन्दन, कुछ उबटन, तो कुछ आँखोंमें अंजन लगा रही थीं। वे सब-की-सब अपना-अपना काम छोड़कर चल पड़ीं। उन्हें यह भी सुध न रही कि हमने अपने कपड़े और गहने ठीक-ठीक पहने हैं या नहीं। उन्होंने उलटे-सीधे, आधे-चौथाई, जैसे-तैसे उन्हें पहन लिया और बड़ी उतावलीसे झटपट श्रीकृष्णके पास जानेके लिये दौड़ पड़ीं। इस प्रकार जब अर्थ, धर्म, काम और मोक्षसम्बन्धी कर्मोंको छोड़कर वे श्रीकृष्णके लिये चलीं तब पिता और पतियोंने, भाई और जाति-बन्धुओंने उन्हें रोका, उनकी मङ्गलमयी प्रेमयात्रामें विघ्न डाला। परन्तु वे इतनी मोहित हो गयी थीं कि



रोकनेपर भी न रुकीं, रुक न सकीं। रुकतीं कैसे? विश्व-विमोहन श्रीकृष्णने उनके प्राण, मन और आत्मा सब कुछ-का अपहरण जो कर लिया था। परीक्षित्! उस समय कुछ गोपियाँ घरोंके भीतर थीं। वे इतनी बेसुध हो गयी कि उन्हें निकलनेका मार्ग ही न मिला या घरवालोंने उन्हें वहीं रोक दिया; वे बाहर न निकल सकीं। तब उन्होंने अपने नेत्र मूँद लिये और वे बड़ी तन्मयतासे श्रीकृष्णके सौन्दर्य, माधुर्य और लीलाओंका ध्यान करने लगीं। परीक्षित्! अपने परम प्रियतम श्रीकृष्णके विरहकी तीव्र वेदनासे उनके हृदयमें इतनी व्यथा—इतनी जलन हुई कि उनमें जो कुछ अशुभ संस्कारोंका लेशमात्र अवशेष था, वह भस्म हो गया। इसके बाद तुरंत ही ध्यान लग गया। ध्यानमें उनके सामने भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने मन-ही-मन बड़े प्रेमसे, बड़े आवेगसे उनका आलिङ्गन किया। उस समय उन्हें इतना सुख, इतनी शान्ति मिली कि उनके सब-के-सब पुण्यके संस्कार एक साथ ही क्षीण हो गये। परीक्षित्! उनका श्रीकृष्णके प्रति भगवद्भाव नहीं था, जारभाव था; परन्तु कहीं सत्य वस्तु भी भावकी अपेक्षा रखती है?

लिये तुम यदुवंशमें अवतीर्ण हुए हो । परन्तु प्यारे ! हो तो तुम हमारे सखा ही न ! अपने विरहकी ज्वालामें हमें क्यों जला रहे हो ? ॥ १–४ ॥

अपने प्रेमियोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेवालोंमें अग्रगण्य यदुवंशशिरोमणे ! जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसारके चक्करसे डरकर तुम्हारे चरणोंकी शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें तुम्हारे करकमल अपनी छत्रछायामें लेकर अभय कर देते हैं। हमारे प्रियतम ! सबकी लालसा-अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाला वही करकमल, जिससे तुमने लक्ष्मीजीका हाथ पकड़ा है, हमारे सिरपर रख दो। व्रजवासियोंके दुःख दूर करनेवाले वीरशिरोमणि श्यामसुन्दर ! हमारा मान और सुहागका मद देखकर अन्तर्धान होनेकी क्या आवश्यकता है ? तुम्हारी मन्द-मन्द मुसकानकी एक उज्ज्वल रेखा ही तुम्हारे प्रेमीजनोंके सारे मान-मदको चूर-चूर कर देनेके लिये पर्याप्त है। हमारे प्यारे सखा ! हमसे रूठो मत। हम तो तुम्हारी दासी हैं, तुम्हारे चरणोंपर निछावर हैं। हमें अपना वह परमसुन्दर साँवला-साँवला मुखकमल दिखलाओ। तुम्हारे चरणकमल शरणागत प्राणियोंके सारे पापोंको नष्ट कर देते हैं। वे समस्त सौन्दर्य, माधुर्यकी खान हैं और स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती रहती हैं। हम व्रजवासियोंके लिये वे कितने सुलभ हैं ? तुम उन्हीं चरणोंसे हमारे बछड़ोंके पीछे-पीछे चलते हो और हमारे लिये उन्हें साँपके फणोंतकपर रखनेमें भी सङ्कोच नहीं करते। हमारा हृदय तुम्हारी विरह-व्यथाकी आगसे जल रहा है, तुम्हारे मिलनकी आकाङ्क्षा हमें सता रही है। तुम अपने वे ही चरण हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हमारे हृदयकी ज्वालाको शान्त कर दो। कमलनयन ! तुम्हारी वाणी कितनी मधुर है ! उसका एक-एक पद, एक-एक शब्द, एक-एक अक्षर मधुरातिमधुर है। बड़े-बड़े विद्वान् उसमें रम जाते हैं। उसपर अपना सर्वस्व निछावर कर देते हैं। तुम्हारी उसी वाणीका रसास्वादन करके तुम्हारी आज्ञाकारिणी दासी गोपियाँ मोहित हो रही हैं। अब तुम अपना दिव्य अमृतसे भी मधुर अधर-रस पिलाकर हमें जीवन-दान दो। प्रभो ! तुम्हारी लीलाकथा भी अमृतस्वरूप है। विरहसे सताये हुए लोगोंके लिये तो वह जीवन-सर्वस्व ही है। वास्तवमें उन्हें वही जिलाये रखती है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओंने उसका गायन किया है, उसकी महिमाका बखान किया है। वह सारे पाप-ताप तो मिटाती ही है, साथ ही परम मङ्गल—परम कल्याणका दान भी करती है। वह परम सुन्दर, परम मधुर और बहुत विस्तृत भी है। जो तुम्हारी उस लीला-कथाका गायन करते हैं, वास्तवमें भूलोकमें वही सबसे बड़े दाता हैं, सबसे अधिक दान करनेवाले हैं। उन्हींके द्वारा जगत्का सबसे अधिक उपकार होता है। जब तुम्हारी कथाकी ही यह महिमा है, तब सङ्गके बारेमें तो क्या कहें ? अब हमें और अधिक उससे वञ्चित न रक्खो। प्यारे ! एक दिन वह था, जब तुम्हारी प्रेमभरी हँसी और चितवन तथा तुम्हारी तरह-तरहकी क्रीडाओंका ध्यान करके हम आनन्दमें मग्न हो जाया करती थीं। उसके बाद तुम मिले। तुमने एकान्तमें हृदयस्पर्शी ठिठोलियाँ कीं, प्रेमकी बातें कहीं। परन्तु हमारे कपटी मित्र ! अब वे सब बातें कहाँ हैं ? अब तो उनकी याद आनेसे हमारा हृदय उलटा क्षुब्ध हो रहा है। इससे तो अच्छा था तुम मिलते ही नहीं। तुमसे मिलकर बिछुड़ना तो बड़ा ही दुःखदायी है ॥ ५–१० ॥

हमारे स्वामी ! तुम्हारे चरण कमलसे भी सुकोमल और सुन्दर हैं। जब तुम गौओंको चरानेके लिये व्रजसे निकलते हो तब कहीं तुम्हारे चरणोंमें कंकड़, तिनके और कुश-काँटे न गड़ जायँ—यह सोचकर हमारा मन बेचैन हो जाता है। प्रियतम ! वह दिनका थोड़ा-सा समय भी हमारे लिये भारी हो जाता है और हमें बड़ा दुःख होता है। दिन ढलनेपर जब तुम वनसे घर लौटते हो, तो हम देखती हैं कि तुम्हारे मुखकमलपर नीली-नीली अलकें लटक रही हैं और गौओंके खुरसे उड़-उड़कर घनी धूल पड़ी हुई है। हमारे वीर प्रियतम ! हम तो तुम्हारा वह सौन्दर्य देखती हैं और तुम हमारे हृदयमें मिलनकी आकाङ्क्षा—प्रेम उत्पन्न करते हो। हमारे प्रियतम ! एकमात्र तुम्हीं हमारे सारे दुःखोंको मिटानेवाले हो। तुम्हारे चरणकमल शरणागत भक्तोंकी समस्त अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। स्वयं लक्ष्मीजी उनकी सेवा करती हैं और पृथ्वीके तो वे भूषण ही हैं। आपत्तिके समय उनका स्मरण करनेसे सारी आपत्तियाँ कट जाती हैं। प्रभो ! तुम अपने वे परम कल्याणस्वरूप चरणकमल हमारे वक्षःस्थलपर रखकर हृदयकी व्यथा शान्त कर दो। वीरशिरोमणे ! तुम्हारा अधरामृत मिलनके सुखको, आकाङ्क्षाको बढ़ानेवाला है। वह विरहजन्य समस्त शोक-सन्तापको नष्ट कर देता है। हमारी यह प्रार्थना किसी ऐसी वस्तुके लिये नहीं है, जो अलभ्य हो। यह गानेवाली बाँसुरी भलीभाँति उसे

गोपियो ! रातका समय है, यह स्वयं ही बड़ा भयावना होता है और इसमें बड़े-बड़े भयावने जीव-जन्तु इधर-उधर घूमते रहते हैं। अतः तुम सब तुरंत व्रजमें लौट जाओ। रातके समय घोर जंगलमें स्त्रियोंको नहीं रुकना चाहिये। तुम्हें न देखकर तुम्हारे माँ-बाप, पति-पुत्र और भाई-बन्धु ढूँढ़ रहे होंगे। उन्हें झूठ-मूठ तंग करनेसे क्या लाभ है ! समझा, तुमलोग रंग-बिरंगे पुष्पोंसे लदे हुए इस वनको देखनेके लिये आयी होगी। क्यों न हो, बड़ा सुन्दर वन है। पूर्ण चन्द्रमाकी कोमल रश्मियोंसे यह रँगा हुआ जो है, मानो उन्होंने अपने हाथों चित्रकारी की हो। और मन्द-मन्द पवनसे झिलमिलाते हुए ये वृक्षोंके पत्ते तो और भी शोभायमान हो रहे हैं। इनकी यमुनामें पड़ी हुई चञ्चल परछाईं भी कम सुन्दर नहीं है। परन्तु अब तो तुमलोगोंने यह सब कुछ देख लिया। अब देर मत करो, शीघ्र-से-शीघ्र व्रजमें लौट जाओ। तुमलोग कुलीन स्त्री हो और स्वयं भी सती हो; जाओ, अपने पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा करो। तुम्हारे हृदयमें दया भी नहीं रही क्या ? देखो, तुम्हारे घरके नन्हे-नन्हे बच्चे और गौओंके बछड़े रो-रँभा रहे हैं; उन्हें दूध पिलाओ, गौएँ दुहो। अथवा यदि मेरे प्रेमसे परवश होकर तुमलोग यहाँ आयी हो तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं हुई, यह तो तुम्हारे योग्य ही है। क्योंकि जगत्के पशु-पक्षीतक मुझसे प्रेम करते हैं, मुझे देखकर प्रसन्न होते हैं। परन्तु कल्याणी गोपियो ! स्त्रियोंका परम धर्म यही है कि वे पति और उसके भाई-बन्धुओंकी निष्कपट-भावसे सेवा करें और सन्तानका पालन-पोषण करें। जिन स्त्रियोंको शुभगति प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो, वे पातकीको छोड़कर और किसी भी प्रकारके पतिका परित्याग न करें। भले ही वह बुरे स्वभाववाला, भाग्यहीन, वृद्ध, मूर्ख, रोगी या निर्धन ही क्यों न हो ! कुलीन स्त्रियोंके लिये जार पुरुषकी सेवा सब तरहसे निन्दनीय ही है। इससे उनका परलोक बिगड़ता है, स्वर्ग नहीं मिलता, इस लोकमें अपयश होता है। यह कुकर्म स्वयं तो अत्यन्त तुच्छ, क्षणिक है ही; इसमें प्रत्यक्ष—वर्तमानमें भी कष्ट-ही-कष्ट है। मोक्ष आदिकी तो बात ही कौन करे, यह साक्षात् परम भय—नरक आदिका हेतु है। गोपियो ! यदि तुम मेरे अनन्य प्रेमकी आशा-अभिलाषासे यहाँ आयी हो तो यह समझ लो कि मेरी लीला और गुणोंके श्रवणसे, रूपके दर्शनसे, उन सबके कीर्तन और ध्यानसे मेरे प्रति जैसे अनन्य प्रेमकी प्राप्ति होती है, वैसे प्रेमकी प्राप्ति पास रहनेसे नहीं होती। इसलिये तुमलोग अभी अपने-अपने घर लौट जाओ ॥१८–२७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका यह अप्रिय भाषण सुनकर गोपियाँ उदास, खिन्न हो गयीं। उनकी आशा टूट गयी। वे चिन्ताके अथाह समुद्रमें डूबने-उतराने लगीं। उनके बिम्बाफल (पके हुए कुँदरू) के समान लाल-लाल अधर शोकके कारण चलनेवाली लंबी और गरम साँससे सूख गये। उन्होंने अपने मुँह नीचेकी ओर लटका लिये, वे पैरके नखोंसे धरती कुरेदने लगीं। नेत्रोंसे दुःखके आँसू बह-बहकर काजलके साथ वक्षःस्थलपर पहुँचने और वहाँ लगी हुई केशरको धोने लगे। उनका हृदय दुःखसे इतना भर गया कि वे कुछ बोल न सकीं, चुपचाप खड़ी रह गयीं। गोपियोंने अपने प्यारे श्यामसुन्दरके लिये सारी कामनाएँ, सारे भोग छोड़ दिये थे। श्रीकृष्णमें उनका अनन्य अनुराग, परम प्रेम था। जब उन्होंने अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी यह निष्ठुरतासे भरी बात सुनी, जो बड़ी ही अप्रिय मालूम हो रही थी, तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। आँखें रोते-रोते लाल हो गयीं, आँसुओंके मारे रूँध गयीं। उन्होंने धीरज धारण करके अपनी आँखोंके आँसू पोंछे और फिर प्रणयकोपके कारण वे गद्गद वाणीसे कहने लगीं ॥ २८–३० ॥

गोपियोंने कहा—प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम हमारे हृदयकी बात जानते हो। तुम्हें इस प्रकार निष्ठुरताभरे वचन नहीं कहने चाहिये। हम सब कुछ छोड़कर—संसारके सभी विषयोंसे मुँह मोड़कर केवल तुम्हारे चरणोंमें ही प्रेम करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि तुम स्वतन्त्र और हठीले हो। तुमपर हमारा कोई वश नहीं है। फिर भी तुम अपनी ओरसे, जैसे भगवान् नारायण कृपा करके अपने भक्तोंसे प्रेम करते हैं, वैसे ही हमें स्वीकार कर लो। हमारा त्याग मत करो। प्यारे श्यामसुन्दर ! तुम सब धर्मोंका रहस्य जानते हो। तुम्हारा यह कहना कि 'अपने पति, पुत्र और भाई-बन्धुओंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका स्वधर्म है'—अक्षरशः ठीक है। परन्तु यह उपदेश तो और भी तुम्हारी ही सेवा करनेकी प्रेरणा करता है। तुम साक्षात् भगवान् हो। पति-पुत्र आदिसे हमारा जो प्रेम-सम्बन्ध होना चाहिये, वह सब तुम्हींसे हो। क्योंकि तुम समस्त शरीरधारियोंके सुहृद् हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो। हमारे प्रियतम ! जो लोग तुम्हारे और अपने स्वरूपको जानते हैं, वे केवल तुम्हींसे प्रेम करते हैं। क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त जगत्की सभी वस्तुएँ अनित्य और दुःखद हैं। पति, पुत्र आदिकी यही स्थिति है। परन्तु तुम तो नित्य प्रिय,

अतिरिक्त और किसी भी बाह्य वस्तुकी अपेक्षा नहीं है, फिर भी उन्होंने हँसकर उनके साथ क्रीडा प्रारम्भ की। भगवान् श्रीकृष्णने अपनी भाव-भङ्गी और चेष्टाएँ गोपियोंके अनुकूल कर दीं; फिर भी वे अपने स्वरूपमें ज्यों-के-त्यों एकरस स्थित थे, अच्युत थे। जब वे खुलकर हँसते, तब उनके उज्ज्वल-उज्ज्वल दाँत कुन्दकलीके समान जान पड़ते थे। उनकी प्रेमभरी चितवनसे और उनके दर्शनके आनन्दसे गोपियोंका मुखकमल प्रफुल्लित हो गया। वे उन्हें चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। उस समय श्रीकृष्णकी ऐसी शोभा हुई, मानो अपनी पत्नी तारिकाओंसे घिरे हुए चन्द्रमा ही हों। गोपियोंके शत-शत यूथोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण वैजयन्ती माला पहने वृन्दावनको शोभायमान करते हुए विचरण करने लगे। कभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्णके गुण और लीलाओंका गायन करतीं, तो कभी श्रीकृष्ण गोपियोंके प्रेम और सौन्दर्यके गीत गाने लगते। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ यमुनाजीके पावन पुलिनपर, जो कपूरके समान चमकीली बालूसे जगमगा रहा था, पदार्पण किया। वह यमुनाजीकी तरल तरङ्गोंके स्पर्शसे शीतल, और कुमुदिनीकी सहज सुगन्धसे सुवासित वायुके द्वारा सेवित हो रहा था। उस आनन्दप्रद पुलिनपर भगवान्‌ने गोपियोंके साथ क्रीड़ा की। हाथ फैलाना, आलिङ्गन करना, गोपियोंके हाथ दबाना, उनकी चोटी, जाँघ, नीवी और स्तन आदिका स्पर्श करना, विनोद करना, नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवनसे देखना और मुसकाना—इन क्रियाओंके द्वारा गोपियोंके दिव्य कामरसको, परमोज्ज्वल प्रेमभावको उत्तेजित करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण उनके साथ क्रीड़ा करने लगे। उदारशिरोमणि सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्णने जब इस प्रकार गोपियोंका सम्मान किया, तब गोपियोंके मनमें ऐसा भाव आया कि संसारकी समस्त स्त्रियोंमें हम ही सर्वश्रेष्ठ हैं, हमारे समान और कोई नहीं है। वे कुछ मानवती हो गयीं। जब भगवान्‌ने देखा कि इन्हें तो अपने सुहागका कुछ गर्व हो आया है और अब मान भी करने लगी हैं, तब वे उनका गर्व शान्त करनेके लिये तथा उनका मान दूर कर प्रसन्न करनेके लिये वहीं—उनके बीचमें ही अन्तर्धान हो गये ॥४२–४८॥

तीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णके विरहमें गोपियोंकी दशा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् यकायक अन्तर्धान हो गये। उन्हें न देखकर व्रजयुवतियोंकी वैसी ही दशा हो गयी, जैसे यूथपति गजराजके बिना हथिनियोंकी होती है। उनका हृदय विरहकी ज्वालासे जलने लगा। उनका चित्त भगवान् श्रीकृष्णकी सिंह-शावककी-सी चाल, प्रेमभरी मुसकान, विलासभरी चितवन, मनोरम प्रेमालाप, भिन्न-भिन्न प्रकारकी लीलाएँ तथा शृङ्गार-रसकी भाव-भङ्गियोंके स्मरणमें तन्मय हो गया। वे प्रेमकी मतवाली गोपियाँ श्रीकृष्णमय हो गयीं और फिर श्रीकृष्णकी विभिन्न चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं अपने प्रियतम श्रीकृष्णकी चाल-ढाल, हास-विलास और चितवन-बोलन आदिमें श्रीकृष्णकी प्यारी गोपियाँ उनके समान ही बन गयीं; उनके शरीरमें भी वही गति-मति, वही भाव-भङ्गी उतर आयी। वे अपनेको सर्वथा भूलकर श्रीकृष्णस्वरूप हो गयीं और 'मैं श्रीकृष्ण ही हूँ'—इस प्रकार कहने लगीं। क्यों न हो, श्रीकृष्णके विविध लीला-विलासको देखकर वे अपनेको खो जो बैठी थीं! वे सब परस्पर मिलकर ऊँचे स्वरसे उन्हींके गुणोंका गान करने लगीं और मतवाली होकर एक वनसे दूसरे वनमें, एक झाड़ीसे दूसरी झाड़ीमें जा-जाकर श्रीकृष्णको ढूँढ़ने लगीं। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण कहीं दूर थोड़े ही गये थे। वे तो समस्त जड-चेतन पदार्थोंमें तथा उनके बाहर भी आकाशके समान एकरस स्थित ही हैं। वे वहीं थे, उन्हींमें थे; परन्तु उन्हें न देखकर गोपियाँ वनस्पतियोंसे—पेड़-पौधोंसे उनका पता पूछने लगीं ॥ १–४ ॥

परीक्षित्! गोपियोंने पहले बड़े-बड़े वृक्षोंसे जाकर पूछा—'हे पीपल, पाकर और बरगद! नन्दनन्दन श्यामसुन्दर अपनी प्रेमभरी मुसकान और चितवनसे हमारा मन चुराकर चले गये हैं। क्या तुमलोगोंने उन्हें देखा है?' गोपियोंको आशा थी कि ये बड़े वृक्ष बता देंगे; परन्तु उन्हें कुछ न बोलते देख वे आगे बढ़ीं। उन्होंने कुरबक, अशोक, नागकेशर और छोटी-बड़ी चम्पाको सम्बोधन करके कहा—'भाई! क्या इधरसे बलरामजीके छोटे भाई, जिनकी मुसकानमात्रसे बड़ी-बड़ी मानिनियोंका मान-मर्दन हो जाता है, आये थे क्या? तुमने उनकी मुसकान देखकर ही पहचान लिया होगा।' उन्हें कुछ न बोलते देख वे स्त्री-जातिके पौधोंकी ओर चलीं। उन्होंने

रख लिया। तीसरी सुन्दरीने भगवान्‌का चबाया हुआ



पान अपने हाथोंमें ले लिया। चौथी गोपी, जिसके हृदयमें भगवान्‌के विरहसे बड़ी जलन हो रही थी, बैठ गयी और उनके चरणकमलको अपने वक्ष:स्थलपर रख लिया। पाँचवीं गोपी प्रणयकोपसे विह्वल होकर, भौंहें चढाकर, दाँतोंसे होठ दबाकर अपने कटाक्ष-बाणोंसे बींधती हुई उनकी ओर ताकने लगी। छठी गोपी अपने निर्निमेष नयनोंसे उनके मुखकमलका मकरन्द रस पान करने लगी। परन्तु जैसे संत पुरुष भगवान्‌के चरणोंके दर्शनसे कभी तृप्त नहीं होते, वैसे ही वह उनकी मुख माधुरीका निरन्तर पान करते रहनेपर भी तृप्त नहीं होती थी। सातवीं गोपी नेत्रोंके मार्गसे भगवान्‌को अपने हृदयमें ले गयी और फिर उसने आँखें बंद कर लीं। अब मन-ही मन भगवान्‌का आलिङ्गन करनेसे उसका शरीर पुलकित हो गया, रोम रोम खिल उठा और वह सिद्ध योगियोंके समान परमानन्दमें मग्न हो गयी। परीक्षित्! जैसे मुमुक्षुजन परम ज्ञानी संत पुरुषको प्राप्त करके संसारकी पीड़ासे मुक्त हो जाते हैं, वैसे ही सभी गोपियोंको भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे परम आनन्द और परम उल्लास प्राप्त हुआ। उनके विरहके कारण गोपियोंको जो दु:ख हुआ था, उससे वे मुक्त हो गयीं और शान्तिके समुद्रमें डूबने उतराने लगीं। परीक्षित्! यों तो भगवान् श्रीकृष्ण अच्युत और एकरस हैं, उनका सौन्दर्य और माधुर्य निरतिशय है; फिर भी विरह व्यथासे मुक्त हुई गोपियोंके बीचमें उनकी शोभा और भी बढ़ गयी। ठीक वैसे ही जैसे परमेश्वर अपने नित्य ज्ञान, बल आदि शक्तियोंसे सेवित होनेपर और भी शोभायमान होता है ॥ १–१० ॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण उन व्रजसुन्दरियोंको साथ लेकर यमुनाजीके पुलिनपर आये। उस समय खिले हुए कुन्द और मन्दारके पुष्पोंकी सुरभि लेकर बड़ी ही शीतल और सुगन्धित मन्द मन्द वायु चल रही थी और उसकी महँकसे मतवाले होकर भौंरे इधर-उधर मँड़रा रहे थे। शरद्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी चाँदनी अपनी निराली ही छटा दिखला रही थी। उसके कारण रात्रिके अन्धकारका तो कहीं पता ही न था, सर्वत्र आनन्द मङ्गलका ही साम्राज्य छाया था। वह पुलिन क्या था, यमुनाजीने स्वयं अपनी लहरोंके हाथों भगवान्‌की लीलाके लिये सुकोमल बालुकाका रंगमञ्च बना रक्खा था। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनसे गोपियोंके हृदयमें इतने आनन्द और इतने रसका उल्लास हुआ कि उनके हृदयकी सारी आधि व्याधि मिट गयी। जैसे कर्मकाण्डकी श्रुतियाँ उसका वर्णन करते करते अन्तमें ज्ञानकाण्डका प्रतिपादन करने लगती हैं और फिर वे समस्त मनोरथोंसे ऊपर उठ जाती हैं, कृतकृत्य हो जाती हैं—वैसे ही गोपियाँ भी पूर्णकाम हो गयीं। अब उन्होंने अपने वक्ष:स्थलपर लगी हुई रोली केसरसे चिह्नित ओढनीको अपने परम प्यारे सुहृद् श्रीकृष्णके विराजनेके लिये बिछा दिया। बड़े-बड़े योगेश्वर अपने योगसाधनसे पवित्र किये हुए हृदयमें जिनके लिये आसनकी कल्पना करते रहते हैं किन्तु फिर भी अपने हृदय सिंहासनपर बैठा नहीं पाते, वही सर्वशक्तिमान् भगवान् यमुनाजीकी रेतीमें गोपियोंकी ओढनीपर बैठ गये। सहस्र-सहस्र गोपियोंके बीचमें उनसे पूजित होकर भगवान् बड़े ही शोभायमान हो रहे थे। परीक्षित्! तीनों लोकोंमें—तीनों कालोंमें जितना भी सौन्दर्य प्रकाशित होता है, वह सब तो भगवान्‌के बिन्दुमात्र सौन्दर्यका आभास भर है। वे उसके एकमात्र आश्रय हैं। भगवान् श्रीकृष्ण अपने इस अलौकिक सौन्दर्यके द्वारा उनके प्रेम और आकाङ्क्षाको और भी उभाड़ रहे थे। गोपियोंने अपनी मन्द-मन्द मुसकान, विलासपूर्ण चितवन और तिरछी भौंहोंसे उनका सम्मान किया। किसीने उनके चरणकमलोंको अपनी गोदमें रख लिया, तो किसीने उनके करकमलोंको। वे उनके

गोपियोंकी तन्मयता



गोपियाँ भगवन्मय होकर भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ।

दिया। इस प्रकार एक गोपी और एक श्रीकृष्ण, यही क्रम था। सभी गोपियाँ ऐसा अनुभव करती थीं कि हमारे प्यारे तो हमारे ही पास हैं। इस प्रकार सहस्र-सहस्र गोपियोंसे शोभायमान भगवान् श्रीकृष्णका दिव्य रासोत्सव प्रारम्भ हुआ। उस समय आकाशमें शत-शत विमानोंकी भीड़ लग गयी। सभी देवता अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ वहाँ आ पहुँचे। रासोत्सवके दर्शनकी लालसासे, उत्सुकतासे उनका मन उनके वशमें नहीं था। स्वर्गकी दिव्य दुन्दुभियाँ अपने-आप बज उठीं। स्वर्गीय पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। गन्धर्वगण अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ भगवान्‌के निर्मल यशका गायन करने लगे। रासमण्डलमें सभी गोपियाँ अपने प्रियतम श्यामसुन्दरके साथ नृत्य करने लगीं। उनकी कलाइयोंके कंगन, पैरोंके पायजेब और करधनीके छोटे-छोटे घुँघरू एक साथ बज उठे। असंख्य गोपियाँ थीं, इसलिये यह मधुर ध्वनि भी बड़े ही जोरकी हो रही थी। यमुनाजीकी रमणरेतीपर व्रजसुन्दरियोंके बीचमें भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी अनोखी शोभा हुई। ऐसा जान पड़ता था, मानो अगणित पीली-पीली दमकती हुई सुवर्ण-मणियोंके बीचमें ज्योतिर्मयी नील-



मणि चमक रही हो। नृत्यके समय गोपियाँ तरह-तरहसे ठुमुक-ठुमुककर अपने पाँव कभी आगे बढ़ातीं और कभी पीछे हटा लेतीं। कभी गतिके अनुसार धीरे-धीरे पाँव रखतीं, तो कभी बड़े वेगसे; कभी चाककी तरह घूम जातीं, कभी अपने हाथ उठा-उठाकर भाव बतातीं, तो कभी विभिन्न प्रकारसे उन्हें चमकातीं। कभी बड़े कलापूर्ण ढंगसे मुसकरातीं, तो कभी भौंहें मटकातीं। नाचते-नाचते उनकी पतली कमर ऐसी लचक जाती थी, मानो टूट गयी हो। झुकने, बैठने, उठने और चलनेकी फुर्तीसे उनके स्तन हिल रहे थे तथा वस्त्र उड़े जा रहे थे। कानोंके कुण्डल हिल-हिलकर कपोलोंपर आ जाते थे। नाचनेके परिश्रमसे उनके मुँहपर पसीनेकी बूँदें झलकने लगी थीं। केशोंकी चोटियाँ कुछ ढीली पड़ गयी थीं। नीवीकी गाँठें खुली जा रही थीं। इस प्रकार नटवर नन्दलालकी परम प्रेयसी गोपियाँ उनके साथ गा-गाकर नाच रही थीं। परीक्षित्! उस समय ऐसा जान पड़ता था, मानो बहुत-से श्रीकृष्ण तो साँवले-साँवले मेघ मण्डल हैं और उनके बीच-बीचमें चमकती हुई गोरी गोपियाँ बिजली हैं। उनकी शोभा असीम थी। उनका सौभाग्य अपार था। गोपियोंका जीवन भगवान्‌की रति है, प्रेम है। वे श्रीकृष्णसे सटकर नाचते-नाचते ऊँचे स्वरसे मधुर गायन कर रही थीं। श्रीकृष्णका संस्पर्श पा-पाकर और भी आनन्दमग्न हो रही थीं। उनके राग-रागिनियोंसे पूर्ण गायनके द्वारा यह सारा जगत् गूँज उठा। कोई गोपी भगवान्‌के साथ—उनके स्वरमें स्वर मिलाकर गा रही थी। वह श्रीकृष्णके स्वरकी अपेक्षा और भी ऊँचे स्वरसे राग अलापने लगी। उसके विलक्षण और उत्तम स्वरको सुनकर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और वाह-वाह करके उसकी प्रशंसा करने लगे। उसी रागको एक दूसरी सखीने ध्रुपदमें गाया। उसका भी भगवान्‌ने बहुत सम्मान किया। एक गोपी नृत्य करते करते थक गयी। उसकी कलाइयोंसे कंगन और चोटियोंसे बेलाके फूल खिसकने लगे। तब उसने अपने बगलमें ही खड़े मुरली-मनोहर श्यामसुन्दरके कंधेको अपने बाँहसे कसकर पकड़ लिया। भगवान् श्रीकृष्णने अपना एक हाथ दूसरी गोपीके कंधेपर रख रक्खा था। वह स्वभावसे तो कमलके समान सुगन्धिसे युक्त था ही, उसपर बड़ा सुगन्धित चन्दनका लेप भी था। उसकी सुगन्धसे वह गोपी पुलकित हो गयी, उसका रोम रोम खिल उठा। उसने झटसे उसे चूम लिया। एक गोपी नृत्य कर रही थी। नाचनेके कारण उसके कुण्डल हिल रहे थे, उनकी छटासे उसके कपोल और भी चमक रहे थे। उसने अपने कपोलोंको भगवान् श्रीकृष्णके कपोलसे सटा दिया और भगवान्‌ने उसके मुँहमें अपना चबाया हुआ पान दे दिया। कोई गोपी नूपुर और करधनीके घुँघरुओंको झनकारती हुई नाच और गा रही थी। वह जब बहुत थक



गोपियाँ भगवन्मय होकर भगवान्‌की विभिन्न लीलाओंका अनुकरण करने लगीं ।

बनकर रोते हुए उसे पैरकी ठोकर मारकर उलट दिया। कोई सखी बालकृष्ण बनकर बैठ गयी तो कोई तृणावर्त दैत्यका रूप धारण करके उसे हर ले गयी। कोई गोपी पाँव घसीट-घसीटकर घुटनोंके बल बकैयाँ चलने लगी और उस समय उसके पायजेब रुनझुन-रुनझुन बोलने लगे। एक बनी कृष्ण तो दूसरी बनी बलराम, और बहुत-सी गोपियाँ ग्वालबालोंके रूपमें हो गयीं। एक गोपी बन गयी वत्सासुर, तो दूसरी बनी बकासुर। तब तो गोपियोंने अलग-अलग श्रीकृष्ण बनकर वत्सासुर और बकासुर बनी हुई गोपियोंको मारनेकी लीला की। जैसे श्रीकृष्ण वनमें करते थे, वैसे ही एक गोपी बाँसुरी बजा-बजाकर दूर गये हुए पशुओंको बुलानेका खेल खेलने लगी। तब दूसरी गोपियाँ 'वाह-वाह' करके उसकी प्रशंसा करने लगीं। एक गोपी अपनेको श्रीकृष्ण समझकर



दूसरी सखीके गलेमें बाँह डालकर चलती और गोपियोंसे कहने लगती—'मित्रो! मैं श्रीकृष्ण हूँ। तुमलोग मेरी यह मनोहर चाल देखो।' कोई गोपी श्रीकृष्ण बनकर कहती—'अरे व्रजवासियो! तुम आँधी-पानीसे मत डरो। मैंने उससे बचनेका उपाय निकाल लिया है।' ऐसा कहकर गोवर्द्धन-धारणका अनुकरण करती हुई वह अपनी ओढ़नी उठाकर ऊपर तान लेती। परीक्षित्! एक गोपी बनी कालिय नाग, तो दूसरी श्रीकृष्ण बनकर उसके सिरपर पैर रखकर चढ़ी-चढ़ी बोलने लगी 'रे दुष्ट साँप! तू यहाँसे चला जा। मैं दुष्टोंका दमन करनेके लिये ही उत्पन्न हुआ हूँ।' इतनेमें ही एक गोपी बोली—'अरे ग्वालो! देखो, वनमें बड़ी भयङ्कर आग लगी है। तुमलोग जल्दी-से-जल्दी अपनी आँखें मूँद लो, मैं अनायास ही तुमलोगोंको बचा लूँगा।' एक गोपी यशोदा बनी और दूसरी बनी श्रीकृष्ण। यशोदाने फूलोंकी मालासे श्रीकृष्णको ऊखलमें बाँध दिया। अब वह श्रीकृष्ण बनी हुई सुन्दरी गोपी हाथोंसे मुँह ढापकर भयकी नकल करने लगी॥ १४-२३॥

परीक्षित्! इस प्रकार लीला करते-करते गोपियाँ वृन्दावनके वृक्ष और लता आदिसे फिर भी श्रीकृष्णका पता पूछने लगीं। इसी समय उन्होंने एक स्थानपर भगवान्‌के चरण-चिह्न देखे। वे आपसमें कहने लगीं—'अवश्य ही ये चरण-चिह्न उदारशिरोमणि नन्दनन्दन श्यामसुन्दरके हैं। क्योंकि इनमें ध्वजा, कमल, वज्र, अङ्कुश और जौ आदिके चिह्न



स्पष्ट ही दीख रहे हैं।' उन चरणचिह्नोंके द्वारा व्रजवल्लभ भगवान्‌को ढूँढती हुई गोपियाँ आगे बढ़ीं, तब उन्हें श्रीकृष्णके साथ किसी व्रजयुवतीके भी चरणचिह्न दीख पड़े। उन्हें देखकर वे व्याकुल हो गयीं। वे आपसमें कहने लगीं—'जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराजके साथ गयी हो, वैसे ही नन्दनन्दन श्यामसुन्दरके साथ उनके कंधेपर हाथ रखकर चलनेवाली किस बड़भागिनीके ये चरणचिह्न हैं? अवश्य ही सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्णकी यह 'आराधिका' होगी। इसीलिये इसपर प्रसन्न होकर हमारे प्राणप्यारे श्यामसुन्दरने हमें छोड़ दिया है और इसे एकान्तमें ले गये हैं। प्यारी सखियो! भगवान् श्रीकृष्ण अपने चरणकमलसे जिस रजका स्पर्श कर देते हैं, वह धन्य हो जाती है। उसके अहोभाग्य

श्रीबलरामजीके सहित पूर्णरूपमें अवतार ग्रहण किया था। उनके अवतारका उद्देश्य ही यह था कि धर्मकी स्थापना हो और अधर्मका नाश, वे धर्ममर्यादाके बनानेवाले, उपदेश करनेवाले और रक्षक थे। फिर उन्होंने स्वय धर्मके विपरीत परस्त्रियोंका स्पर्श कैसे किया ? मैं मानता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णकाम थे, उन्हें किसी भी वस्तुकी कामना नहीं थी, फिर भी उन्होंने किस अभिप्रायसे यह निन्दनीय कर्म किया ? परम ब्रह्मचारी मुनीश्वर ! आप कृपा करके मेरा यह सन्देह मिटाइये ॥ २७–२९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—सूर्य, अग्नि आदि ईश्वर (समर्थ) कभी कभी धर्मका उल्लङ्घन और साहसका काम करते देखे जाते हैं। परन्तु उन कामोंसे उन तेजस्वी पुरुषोंको कोई दोष नहीं होता। देखो, अग्नि सब कुछ खा जाता है, परन्तु उन पदार्थोंके दोषसे लिप्त नहीं होता। जिन लोगोंमें ऐसी सामर्थ्य नहीं है, उन्हें मनसे भी वैसी बात कभी नहीं सोचनी चाहिये, शरीरसे करना तो दूर रहा। यदि मूर्खतावश कोई ऐसा काम कर बैठे, तो उसका नाश हो जाता है। भगवान् शङ्करने हलाहल विष पी लिया था, दूसरा कोई पिये तो वह जलकर भस्म हो जायगा। इसलिये इस प्रकारके जो शङ्कर आदि ईश्वर हैं, अपने अधिकारके अनुसार उनके वचनको ही सत्य मानना और उसीके अनुसार आचरण करना चाहिये। उनके आचरणका अनुकरण तो कहीं कहीं ही किया जाता है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि उनका जो आचरण उनके उपदेशके अनुकूल हो, उसीको जीवनमें उतारे। परीक्षित् ! वे सामर्थ्यवान् पुरुष अहङ्कारहीन होते हैं। शुभकर्म करनेमें उनका कोई सांसारिक स्वार्थ नहीं होता और अशुभ कर्म करनेमें अनर्थ (नुकसान) नहीं होता। वे स्वार्थ और अनर्थसे ऊपर उठे होते हैं। जब उन्हींके सम्बन्धमें ऐसी बात है तब जो पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता आदि समस्त चराचर जीवोंके एकमात्र प्रभु सर्वेश्वर भगवान् हैं, उनके साथ मानवीय शुभ और अशुभका सम्बन्ध कैसे जोड़ा जा सकता है ? जिनके चरणकमलोंकी रजका सेवन करके भक्तजन तृप्त हो जाते हैं, जिनके साथ योग प्राप्त करके उसके प्रभावसे योगीजन अपने सारे कर्मबन्धन काट डालते हैं और विचारशील ज्ञानीजन जिनके तत्त्वका विचार करके तत्स्वरूप हो जाते हैं तथा समस्त कर्मबन्धनोंसे मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरते हैं, वे ही भगवान् अपने भक्तोंकी इच्छासे अपना चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करते हैं, तब भला, उनमें कर्मबन्धनकी कल्पना ही कैसे हो सकती है ? परीक्षित् ! तनिक भगवान्‌के स्वरूपके सम्बन्धमें विचार तो करो। गोपियोंके, उनके पतियोंके और सम्पूर्ण शरीरधारियोंके अन्तःकरणोंमें जो आत्मारूपसे विराजमान हैं, जो सबके साक्षी और परमपति हैं, वही तो अपना दिव्य चिन्मय श्रीविग्रह प्रकट करके यह लीला कर रहे हैं। भगवान् जीवोंपर कृपा करनेके लिये ही अपनेको मनुष्यरूपमें प्रकट करते हैं और ऐसी लीलाएँ करते हैं, जिन्हें सुनकर जीव भगवत्परायण हो जायँ। परीक्षित् ! व्रजवासी गोपोंने भगवान् श्रीकृष्णमें तनिक भी दोषबुद्धि नहीं की। वे उनकी योगमायासे मोहित होकर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही हैं। ब्रह्माकी रात्रिके बराबर वह रात्रि बीत गयी। ब्राह्ममुहूर्त आया। यद्यपि गोपियोंकी इच्छा अपने घर लौटनेकी नहीं थी, फिर भी भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे वे अपने अपने घर चली गयीं। क्योंकि वे अपनी प्रत्येक चेष्टासे, प्रत्येक सङ्कल्पसे केवल भगवान्‌को ही प्रसन्न करना चाहती थीं ॥ ३०–३९ ॥

परीक्षित् ! जो धीर पुरुष व्रजयुवतियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णके इस चिन्मय रास विलासका श्रद्धाके साथ बार बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान्‌के चरणोंमें परा भक्तिकी प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदयके रोग—कामविकारसे छुटकारा पा जाता है। उसका कामभाव सर्वदाके लिये नष्ट हो जाता है ॥ ४० ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

सुदर्शन और शङ्खचूडका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! एक बार नन्द बाबा आदि गोपोंने शिवरात्रिके अवसरपर बड़ी उत्सुकता, कौतूहल और आनन्दसे भरकर बैलोंसे जुती हुई गाड़ियोंपर सवार होकर अम्बिकावनकी यात्रा की। वहाँ उन लोगोंने सरस्वती नदीमें स्नान किया और सर्वान्तर्यामी पशुपति भगवान् शङ्करजी का तथा भगवती अम्बिकाजीका बड़ी भक्तिसे अनेक प्रकारकी सामग्रियोंके द्वारा पूजन किया। वहाँ उन्होंने आदरपूर्वक गौएँ, सोना, वस्त्र, मधु और मधुर अन्न ब्राह्मणोंको दिये तथा उनको खिलाया पिलाया। यह सब करनेमें उनका कोई सकाम भाव नहीं था। वे यही सोच रहे थे कि इससे देवाधिदेव

गोपियोंके बीचमें भगवान्‌का प्रकट होना



परम मनोहर श्यामसुन्दरको देखकर गोपियोंके नेत्र आनन्दसे खिल उठे ।

चढ़ाव-उतारसे बहुत ही सुन्दर लग रहा था। वह जगत्के समस्त प्राणियोंके मन और कानोंको आनन्दसे भर देनेवाला था। उनका वह गायन सुनकर गोपियाँ मोहित हो गयीं। परीक्षित्! उन्हें अपने शरीरकी भी सुधि नहीं रही कि वे उसपरसे खिसकते हुए वस्त्रों और चोटियोंसे बिखरते हुए पुष्पोंको सम्हाल सकें ॥ २०–२४ ॥

जिस समय बलराम और श्याम दोनों भाई इस प्रकार स्वच्छन्द विहार कर रहे थे और उन्मत्तकी भाँति गा रहे थे, उसी समय वहाँ शङ्खचूड नामका एक यक्ष आया। वह कुबेरका अनुचर था। परीक्षित्! दोनों भाइयोंके देखते-देखते वह उन गोपियोंको लेकर बेखटके उत्तरकी ओर भाग चला। जिनके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं वे गोपियाँ उस समय रो-रोकर चिल्लाने लगीं। दोनों भाइयोंने देखा कि जैसे कोई डाकू गौओंको लूट ले जाय, वैसे ही यह यक्ष हमारी प्रेयसियोंको लिये जा रहा है और वे 'हा कृष्ण! हा राम!' पुकारकर रो पीट रही हैं। उसी समय दोनों भाई हाथमें शालका वृक्ष लेकर बड़े वेगसे उसकी ओर दौड़ पड़े और 'डरो मत, डरो मत' इस प्रकार कहते हुए क्षण-भरमें ही उस नीच यक्षके पास पहुँच गये। यक्षने देखा कि काल और मृत्युके समान ये दोनों भाई मेरे पास आ पहुँचे। तब वह मूढ घबड़ा गया। उसने गोपियोंको तो वहीं छोड़ दिया, स्वय प्राण बचानेके लिये भागा। तब स्त्रियोंकी रक्षा करनेके *लिये बलरामजी तो वहीं खड़े रह गये, परन्तु भगवान्* श्रीकृष्ण जहाँ जहाँ वह भागकर गया, उसके पीछे पीछे दौड़ते गये। वे चाहते थे कि उसके सिरकी चूडामणि निकाल लें। कुछ ही दूर जानेपर भगवान्ने उसे पकड़ लिया और उस दुष्टके सिरपर एक ऐसा घूँसा कसकर जमाया कि चूडामणि तो निकल ही गयी, उसका सिर भी धड़से अलग हो गया। भगवान्के लिये यह कौन सी बड़ी बात थी। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण शङ्खचूडको मारकर और वह चमकीली मणि लेकर लौट आये तथा सब गोपियोंके सामने ही उन्होंने बड़े प्रेमसे वह मणि बड़े भाई बलरामजीको दे दी॥२५–३२॥

पैंतीसवाँ अध्याय

युगलगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण प्रतिदिन गौओंको चरानेके लिये वनमें चले जाते थे। उनके साथ गोपियोंका चित्त भी चला जाता था। उनका मन श्रीकृष्णका चिन्तन करता रहता और वे वाणीसे उनकी लीलाओंका गायन करती रहतीं। इस प्रकार वे बड़ी कठिनाईसे अपना दिन बितातीं ॥ १ ॥

गोपियाँ आपसमें कहतीं—अरी सखी! अपने प्रेमी-जनोंको प्रेम वितरण करनेवाले और द्वेष करनेवालोंतकको मोक्ष दे देनेवाले श्यामसुन्दर नटनागर जब अपने बायें कपोल-को बायीं बाँहकी ओर लटका देते हैं और अपनी भौंहें नचाते हुए बाँसुरीको अधरोंसे लगाते हैं तथा अपनी सुकुमार अंगुलियोंको उसके छेदोंपर फिराते हुए मधुर तान छेड़ते हैं, उस समय सिद्धपत्नियाँ आकाशमें अपने पति सिद्धगणोंके साथ विमानोंपर चढ़कर आ जाती हैं और उस तानको सुनकर अत्यन्त ही चकित तथा विस्मित हो जाती हैं। पहले तो उन्हें अपने पतियोंके साथ रहनेपर भी चित्तकी यह दशा देखकर लज्जा मालूम होती है; परन्तु क्षणभरमें ही उनका चित्त कामबाणसे बिंध जाता है, वे विवश और अचेत हो जाती हैं। उन्हें इस बातकी भी सुधि नहीं रहती कि उनकी नीवी खुल गयी है और उनके वस्त्र खिसक गये हैं ॥२-३॥

अरी गोपियो! तुम यह आश्चर्यकी बात जानती हो न? ये नन्दनन्दन कितने सुन्दर हैं। जब वे हँसते हैं तब हास्य-रेखाएँ हारका रूप धारण कर लेती हैं, शुभ्र मोती-सी चमकने लगती हैं। अरी वीर! उनके वक्षःस्थलपर लहराते हुए हारमें हास्यकी किरणें चमकने लगती हैं। उनके वक्षःस्थलपर जो श्रीवत्सकी सुनहली रेखा है, वह तो ऐसी जान पड़ती है, मानो श्याम मेघपर बिजली ही स्थिररूपसे बैठ गयी है। वे जब दुखी जनोंको सुख देनेके लिये, विरहियोंके मृतक शरीरमें प्राणोंका सञ्चार करनेके लिये बाँसुरी बजाते हैं तब व्रजके झुंड-के झुंड बैल, गौएँ और हरिन उनके पास ही दौड़ आते हैं। केवल आते ही नहीं, सखी! दाँतोंसे चबाया हुआ

चूमती रहती है। प्रभो! उसका यह एक बहुत बड़ा गुण है कि जिसने एक बार उसे पी लिया, उसे फिर दूसरों और दूसरोंकी आसक्तियोंका स्मरण भी नहीं होता। हमारे वीर! अपना वही अधरामृत वितरण करो, हमें पिलाओ। प्यारे! दिनके समय जब तुम वनमें विहार करनेके लिये चले जाते हो, तब तुम्हें देखे विना हमारे लिये एक-एक क्षण युगके समान हो जाता है और जब तुम सन्ध्याके समय लौटते हो तथा घुँघराली अलकोंसे युक्त तुम्हारा परम सुन्दर मुखारविन्द हम देखती हैं, उस समय पलकोंका गिरना हमारे लिये भार हो जाता है और ऐसा जान पड़ता है कि इन पलकोंको बनानेवाला विधाता मूर्ख है। प्यारे श्यामसुन्दर! हम अपने पति-पुत्र, भाई-बन्धु और कुल-परिवारका त्याग कर, उनकी इच्छा और आज्ञाओंका उल्लङ्घन करके तुम्हारे पास आयी हैं। हम तुम्हारी एक-एक चाल जानती हैं, सङ्केत समझती हैं और तुम्हारे मधुर गायनकी गति समझकर, उसीसे मोहित होकर यहाँ आयी हैं। कपटी! इस प्रकार रात्रिके समय आयी हुई युवतियोंको तुम्हारे सिवा और कौन छोड़ सकता है? प्यारे! एकान्तमें तुम मिलनकी आकाङ्क्षा, प्रेम-भावको जगानेवाली बातें करते थे। ठिठोली करके हमें छेड़ते थे। तुम प्रेमभरी चितवनसे हमारी ओर देखकर मुसकरा देते थे और हम देखती थीं तुम्हारा वह विशाल वक्षःस्थल, जिसपर लक्ष्मीजी नित्य-निरन्तर निवास करती हैं। तबसे अबतक निरन्तर हमारी लालसा बढ़ती ही जा रही है और हमारा मन अधिकाधिक मुग्ध होता जा रहा है। प्रियतम! तुमने समस्त व्रजवासियोंका दुःख नष्ट करनेके लिये ही अवतार लिया है। तुम्हारे इस अवतारसे अपने-आप ही समस्त संसारका मङ्गल हो रहा है। हमारा हृदय तुम्हारे मिलनके लिये बहुत ही मचल रहा है। इसकी उत्सुकताकी सीमा नहीं है। अतः यह सूमपना छोड़कर तनिक हमें भी कुछ ऐसी दवा दो, जिससे तुम्हारी इन दासियोंके हृदयकी पीड़ा मिट जाय—यह जलन शान्त हो जाय। प्यारे! हमें इसकी भी परवा नहीं, हमारा यह हृदय जल जाय; परन्तु एक बातसे हमें बड़ा दुःख हो रहा है। तुम्हारे चरण कमलसे भी सुकुमार हैं। उन्हें हम अपने कठोर स्तनोंपर भी डरते-डरते बहुत धीरेसे रखती हैं कि कहीं उन्हें चोट न लग जाय। उन्हीं चरणोंसे तुम रात्रिके समय घोर जङ्गलमें छिपे-छिपे भटक रहे हो! कहीं उनमें कंकड़-पत्थरकी चोट न लग जाय, यह सोचकर ही हमें चक्कर आ रहा है। हम अचेत होती जा रही हैं। श्रीकृष्ण! श्यामसुन्दर! प्राणनाथ! हमारा जीवन तुम्हारे लिये है, हम तुम्हारे लिये जी रही हैं, हम तुम्हारी हैं॥ ११–१९॥

बत्तीसवाँ अध्याय

भगवान्‌का प्रकट होकर गोपियोंको सान्त्वना देना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌की प्यारी गोपियाँ विरहके आवेशमें इस प्रकार भाँति-भाँतिसे गाने और प्रलाप करने लगीं। अपने कृष्ण-प्यारेके दर्शनकी लालसासे वे अपनेको रोक न सकीं, फूट-फूटकर रोने लगीं। ठीक उसी समय उनके बीचोबीच मुसकराते हुए भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानसे खिला हुआ था। गलेमें वनमाला थी, पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका यह रूप क्या था, सबके मनको मथ डालनेवाले कामदेवके मनको भी मथनेवाला था। कोटि-कोटि कामोंसे भी सुन्दर परम मनोहर श्यामसुन्दरको आया देख गोपियोंके नेत्र प्रेम और आनन्दसे खिल उठे। वे सब-की-सब एक ही साथ इस प्रकार उठ खड़ी हुईं मानो प्राणहीन शरीरमें दिव्य प्राणोंका सञ्चार हो गया हो, शरीरके एक-एक अङ्गमें नवीन चेतना—नूतन स्फूर्ति आ गयी हो। एक गोपीने बड़े प्रेम और आनन्दसे श्रीकृष्णके करकमलको अपने दोनों हाथोंमें ले लिया और वह धीरे-धीरे उसे सहलाने लगी। दूसरी गोपीने उनके चन्दनचर्चित भुजदण्डको अपने कंधेपर

रहनेवाले सारस हंस आदि पक्षियोंका भी चित्त उनके हाथसे निकल जाता है, छिन जाता है। वे विवश होकर प्यारे श्यामसुन्दरके पास आ बैठते हैं तथा आँखें मूँद, चुपचाप, चित्त एकाग्र करके उनकी आराधना करने लगते हैं—मानो कोई विहङ्गम वृत्तिके रसिक परमहंस ही हों, भला कहो तो यह कितने आश्चर्यकी बात है! ॥ १०-११ ॥

अरी व्रजदेवियो! वास्तवमें तुम भी देवी ही हो। नहीं तो तुम्हें ऐसा सौभाग्य कहाँसे मिलता? हमारे श्यामसुन्दर जब पुष्पोंके कुण्डल बनाकर अपने कानोंमें धारण कर लेते हैं तब कैसी छटा छा जाती है। और जब वे बलरामजीके साथ गिरिराजके शिखरोंपर खड़े होकर सारे जगत्‌को हर्षित करते हुए बाँसुरी बजाने लगते हैं—बाँसुरी क्या बजाते हैं, आनन्दमें भरकर उसकी ध्वनिके द्वारा सारे विश्वका आलिङ्गन करने लगते हैं—उस समय श्याम मेघ बाँसुरीकी तानके साथ मन्द-मन्द गरजने लगता है। उसके चित्तमें इस बातकी शङ्का बनी रहती है कि कहीं मैं जोरसे गर्जना कर उठूँ और वह कहीं बाँसुरीकी तानके विपरीत पड़ जाय, उसमें बेसुरापन ले आये, तो मुझसे महात्मा श्रीकृष्णका अपराध हो जायगा। अरी सखी! वह इतना ही नहीं करता, वह जब देखता है कि हमारे सखा घनश्यामको घाम लग रहा है, तब वह उनके ऊपर आकर छाया कर लेता है, उनका छत्र बन जाता है। अरी वीर! वह तो प्रसन्न होकर बड़े प्रेमसे उनके ऊपर अपना जीवन ही निछावर कर देता है—नन्ही-नन्ही फुहियोंके रूपमें ऐसा बरसने लगता है, मानो दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहा हो। कभी-कभी बादलोंकी ओटमें छिपकर देवतालोग भी पुष्पवर्षा कर जाया करते हैं ॥ १२-१३ ॥

नन्दरानी यशोदाजी! सचमुच तुम सती हो। तभी तो तुम्हें ऐसे सुन्दर कुँवर मिले हैं। वे ग्वालबालोंके साथ खेल खेलनेमें बड़े निपुण हैं। रानीजी! तुम्हारे लाड़ले लाल सबके प्यारे तो हैं ही, चतुर भी बहुत हैं। देखो, उन्होंने बाँसुरी बजाना किसीसे सीखा नहीं। अपने ही अनेकों प्रकारकी राग-रागिनियाँ उन्होंने निकाल लीं। तुम जानती हो? जब वे अपने लाल-लाल अधरोंपर बाँसुरी रखकर ऋषभ, निषाद आदि स्वरोंकी अनेक जातियाँ बजाने लगते हैं, उस समय वंशीकी परम मोहिनी और नयी तान सुनकर ब्रह्मा, शङ्कर और इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता भी—जो सर्वज्ञ हैं—उसे नहीं पहचान पाते। वे इतने मोहित हो जाते हैं कि उनका चित्त तो उनके रोकनेपर भी उनके हाथसे निकलकर वंशीध्वनिमें तल्लीन हो ही जाता है, सिर भी झुक



जाता है, और वे अपनी सुध-बुध खोकर उसीमें तन्मय हो जाते हैं ॥ १४-१५ ॥

अरी वीर! तुमसे क्या कहूँ, उनके चरणकमलोंमें ध्वजा, वज्र, कमल, अङ्कुश आदिके विचित्र और सुन्दर-सुन्दर चिह्न हैं? जब व्रजभूमि गौओंके खुरसे खुद जाती है, तब वे अपने सुकुमार चरणोंसे उसकी पीड़ा मिटाते हुए गजराजके समान मन्दगतिसे आते हैं और बाँसुरी भी बजाते रहते हैं। उनकी वह वंशीध्वनि, उनकी वह चाल और उनकी वह विलासभरी चितवन हमारे हृदयमें प्रेमका, मिलनकी आकांक्षाका आवेग बढ़ा देती है। हम उस समय इतनी मुग्ध, इतनी मोहित हो जाती हैं कि हिल-डोलतक नहीं सकतीं, मानो हम जड वृक्ष हों! अरी भट्ट! हमें तो इस बातका भी पता नहीं चलता कि हमारा जूड़ा खुल गया है या बँधा है, हमारे शरीरपरका वस्त्र उतर गया है या है ॥ १६-१७ ॥

अरी वीर! उनके गलेमें मणियोंकी माला बहुत ही भली मालूम होती है। तुलसीकी मधुर गन्ध उन्हें बहुत प्यारी है। इसीसे तुलसीकी मालाको तो वे कभी छोड़ते ही नहीं, सदा धारण किये रहते हैं। जब वे श्यामसुन्दर उस मणियोंकी मालासे गौओंकी गिनती करते-करते किसी प्रेमी सखाके गलेमें बाँह डाल देते हैं और भाव बता-बताकर बाँसुरी बजाते हुए गाने लगते हैं, उस समय बजती हुई उस बाँसुरीके मधुर स्वरसे मोहित होकर कृष्णसार मृगोंकी पत्नी हरिनियाँ भी

संस्पर्शका आनन्द लेती हुई कभी-कभी कह उठती थीं—कितना सुकुमार है, कितना मधुर है! इसके बाद श्रीकृष्णके छिप जानेसे मन-ही-मन तनिक रूठकर उनके मुँहसे ही उनका दोष स्वीकार करानेके लिये वे कहने लगीं—॥११—१५॥

गोपियोंने कहा—नटनागर! कुछ लोग तो ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे ही प्रेम करते हैं और कुछ लोग प्रेम न करनेवालोंसे भी प्रेम करते हैं। परन्तु इन दोनोंसे विलक्षण एक तीसरे प्रकारके ऐसे लोग भी होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेम नहीं करते—फिर न करनेवालोंकी तो बात ही क्या है। प्यारे! इन तीनोंमें तुम्हें कौन-सा अच्छा लगता है? ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—मेरी प्रिय सखियो! जो प्रेम करनेपर प्रेम करते हैं, उनका तो सारा उद्योग स्वार्थको लेकर है। लेन-देनमात्र है। न तो उनमें सौहार्द है और न तो धर्म। उनका प्रेम केवल स्वार्थके लिये ही है; इसके अतिरिक्त उनका और कोई प्रयोजन नहीं है। जो लोग प्रेम न करनेवालेसे भी प्रेम करते हैं—जैसे स्वभावसे ही करुणाशील सज्जन और माता-पिता—उनका हृदय सौहार्दसे, हितैषितासे भरा रहता है और सच पूछो, तो उनके व्यवहार-में निश्छल सत्य एवं पूर्ण धर्म भी है। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेम नहीं करते, न प्रेम करनेवालों-का तो उनके सामने कोई प्रश्न ही नहीं है। ऐसे लोग चार प्रकारके होते हैं। एक तो वे, जो अपने स्वरूपमें ही मस्त रहते हैं—जिनकी दृष्टिमें कभी द्वैत भासता ही नहीं। दूसरे वे, जिन्हें द्वैत तो भासता है परन्तु जो कृतकृत्य हो चुके हैं; उनका किसीसे कोई प्रयोजन ही नहीं है। तीसरे वे हैं, जो कृतघ्नतावश जानते ही नहीं कि हमसे कौन प्रेम करता है; और चौथे वे हैं, जो जान-बूझकर अपना हित करनेवाले परोपकारी गुरुतुल्य लोगोंसे भी द्रोह करते हैं, उनको सताना चाहते हैं। गोपियो! यदि तुम मेरे बारेमें यह प्रश्न कर रही हो तो मेरी स्थिति तो ऐसी है कि मैं प्रेम करनेवालोंसे भी प्रेमका वैसा व्यवहार नहीं करता, जैसा करना चाहिये। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि मैं उनसे प्रेम नहीं करता। मैं वैसा केवल इसीलिये करता हूँ कि उनकी चित्तवृत्ति और भी मुझमें लगे, निरन्तर लगी ही रहे। जैसे निर्धन पुरुषको कभी बहुत-सा धन मिल जाय और फिर खो जाय तो उसका हृदय खोये हुए धनकी चिन्तासे भर जाता है, वह और सब कुछ भूलकर उसीकी चिन्तामें तन्मय हो जाता है—वैसे ही मैं भी मिल-मिलकर छिप-छिप जाता हूँ। गोपियो! इसमें सन्देह नहीं कि तुम लोगोंने मेरे लिये लोक-मर्यादा, वेदमार्ग और अपने सगे-सम्बन्धियोंको भी छोड़ दिया है। ऐसी स्थितिमें तुम्हारी मनोवृत्ति और कहीं न जाय, अपने सौन्दर्य और सुहागकी चिन्ता न करने लगे, मुझमें ही लगी रहे—इसीलिये मैं छिप गया था। मैं कहीं गया थोड़े ही था, तुम्हारे पास और तुम्हारे बीचमें ही था। तुम्हारी प्रेमभरी बातें सुन रहा था। तुम्हारे प्रेमसे सराबोर हो रहा था। इसलिये तुमलोग मेरे प्रेममें दोष मत निकालो। तुम सब मेरी प्यारी हो और मैं तुम्हारा प्यारा हूँ। मेरी प्यारी गोपियो! तुमने मेरे लिये घर-गृहस्थीकी उन बेड़ियोंको तोड़ डाला है, जिन्हें बड़े-बड़े योगी-यति भी नहीं तोड़ पाते। मुझसे तुम्हारा यह मिलन, यह आत्मिक संयोग सर्वथा निर्मल और सर्वथा निर्दोष है। यदि मैं अमर शरीरसे—अमर जीवनसे अनन्त कालतक तुम्हारे प्रेम, सेवा और त्यागका बदला चुकाना चाहूँ तो नहीं चुका सकता। मैं जन्म-जन्मके लिये तुम्हारा ऋणी हूँ। तुम अपने सौम्य स्वभावसे, प्रेमसे मुझे उऋण कर सकती हो। परन्तु मैं तो तुम्हारा ऋणी ही हूँ ॥ १७—२२ ॥

तैंतीसवाँ अध्याय

महारास

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण क्यों अन्तर्धान हो गये, इस प्रश्नको लेकर, गोपियोंके मनमें उनके आ जानेपर भी विरहकी कुछ पीड़ा अवशेष थी। अब उनकी मधुर और प्रेमपूर्ण वाणी सुनकर गोपियोंकी वह व्यथा भी मिट गयी। भगवान् श्रीकृष्णका संस्पर्श प्राप्त करके उनके सारे मनोरथ सफल हो गये। वे कृतकृत्य हो गयीं। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी और सेविका गोपियाँ एक-दूसरेकी बाँह-में-बाँह डाले खड़ी थीं। उनके भाग्यकी प्रशंसा भला कौन करे? उन स्त्रीरत्नोंके साथ यमुनाजीके पुलिनपर भगवान्ने अपनी रसमयी रासक्रीड़ा प्रारम्भ की। सम्पूर्ण योगोंके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण दो-दो गोपियोंके बीचमें प्रकट हो गये और उनके गलेमें अपना हाथ डाल

मिटानेके लिये हमारे ये श्याम चन्द्र—यही देखो, आ गये ! ॥२४-२५॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! बड़भागिनी गोपियोंका मन श्रीकृष्णमें ही लगा रहता था। वे श्रीकृष्णमय हो गयी थीं। जब भगवान् श्रीकृष्ण दिनमें गौओंको चरानेके लिये वनमें चले जाते, तब वे उन्हींका चिन्तन करती रहतीं और अपनी-अपनी सखियोंके साथ अलग-अलग उन्हींकी लीलाओंका गायन करके उसीमें रम जातीं। इस प्रकार उनके दिन बीत जाते ॥ २६ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

अरिष्टासुरका उद्धार और कंसका श्रीअक्रूरजीको व्रज भेजना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें प्रवेश कर रहे थे और वहाँ आनन्दोत्सवकी धूम मची हुई थी, उसी समय अरिष्टासुर नामका एक दैत्य बैलका रूप धारण करके आया। उसका ककुद् (कंधेका पुट्ठा) या थुआ और डील-डौल दोनों ही बहुत बड़े-बड़े थे। वह अपने खुरोंको इतने जोरसे पटक रहा था कि उससे धरती काँप रही थी। वह बड़े जोरसे दहाड़ रहा था और पैरोंसे धूल उछालता जाता था। पूँछ खड़ी किये हुए था और सींगोंसे चहारदीवारी, खेतोंकी मेंड़ आदि तोड़ता जाता था। बीच-बीचमें बार-बार मूतता और गोबर छोड़ता जाता था। आँखें फाड़कर इधर-उधर दौड़ रहा था। परीक्षित् ! उसके जोरसे हँकड़नेसे—निष्ठुर गर्जनासे भयवश स्त्रियों और गौओंके तीन-चार महीनेके गर्भ स्रवित हो जाते थे और पाँच-छः महीनेके गिर जाते थे। और तो क्या कहूँ, उसके ककुद्को पर्वत समझकर बादल उसपर आकर ठहर जाते थे। परीक्षित् ! उस तीखे सींगवाले बैलको देखकर गोपियाँ और गोप सभी भयभीत हो गये। पशु तो इतने डर गये कि अपने रहनेका स्थान छोड़कर भाग ही गये। उस समय सभी व्रजवासी 'श्रीकृष्ण ! श्रीकृष्ण ! हमें इस भयसे बचाओ' इस प्रकार पुकारते हुए भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें आये। भगवान्‌ने देखा कि हमारा गोकुल अत्यन्त भयातुर हो रहा है। तब उन्होंने 'डरनेकी कोई बात नहीं है'—यह कहकर सबको ढाढस बँधाया और फिर वृषासुरको ललकारा, 'अरे मूर्ख ! महादुष्ट ! तू इन गौओं और ग्वालोंको क्यों डरा रहा है ? इससे क्या होगा ? देख, तुझ-जैसे दुरात्मा दुष्टोंके बलका घमंड चूर-चूर कर देनेवाला यह मैं हूँ।' इस प्रकार ललकारकर भगवान्‌ने ताल ठोंकी और उसे क्रोधित करनेके लिये वे अपने एक सखाके गलेमें बाँह डालकर खड़े हो गये। भगवान् श्रीकृष्णकी इस चुनौतीसे वह क्रोधके मारे तिलमिला उठा और अपने खुरोंसे बड़े जोरसे धरती खोदता हुआ श्रीकृष्णकी ओर झपटा। उस समय उसकी फटकारी हुई पूँछके धक्केसे आकाशके बादल तितर-बितर होने लगे। उसने अपने तीखे सींग आगे कर लिये। टकटकी लगाकर लाल-लाल आँखोंसे श्रीकृष्णकी ओर यों देख रहा था, मानो उन्हें पी जाना चाहता हो। वह भगवान् श्रीकृष्णपर इतने वेगसे टूट पड़ा, मानो इन्द्रके हाथसे छोड़ा हुआ वज्र हो ! भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे उसके दोनों सींग पकड़ लिये और जैसे एक हाथी अपनेसे भिड़नेवाले दूसरे हाथीको पीछे हटा देता है, वैसे ही उन्होंने उसे अठारह पग पीछे ठेलकर गिरा दिया। भगवान्‌के इस प्रकार ठेल देनेपर वह फिर तुरंत ही उठ खड़ा हुआ और क्रोधसे अचेत होकर लंबी-लंबी साँस छोड़ता हुआ फिर उनपर झपटा। उस समय उसका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ हो रहा था। भगवान्‌ने जब देखा कि वह अब मुझपर प्रहार करना ही चाहता है, तब उन्होंने



उसके सींग पकड़ लिये और उसे लात मारकर जमीनपर



महारास—रसमय भगवान्‌की अन्तरङ्गलीला

उदार दानी हैं। सब तरहसे मेरे आदरणीय हैं। आज आप मेरा एक मित्रोचित काम कर दीजिये। क्योंकि भोजवंशी और वृष्णिवंशी यादवोंमें आपसे बढ़कर मेरी भलाई करनेवाला दूसरा कोई नहीं है। यह काम बहुत बड़ा है, इसलिये मेरे मित्र! मैंने आपका आश्रय लिया है। ठीक वैसे ही, जैसे इन्द्र समर्थ होनेपर भी विष्णुका आश्रय लेकर अपना स्वार्थ साधता रहता है। आप नन्दरायके व्रजमें जाइये। वहाँ वसुदेवजीके दो पुत्र हैं। उन्हें इसी रथपर चढ़ाकर यहाँ ले आइये। बस, अब इस काममें देर नहीं होनी चाहिये। सुनते हैं, विष्णुके भरोसे जीनेवाले देवताओंने उन दोनोंको मेरी मृत्युका कारण निश्चित किया है। इसलिये आप उन दोनोंको तो ले ही आइये, साथ ही नन्द आदि गोपोंको भी बड़ी-बड़ी भेंटोंके साथ ले आइये। यहाँ आनेपर मैं उन्हें अपने कुवलयापीड हाथीसे मरवा डालूँगा। आप मेरे घनिष्ठ मित्र हैं, इसीलिये मैं आपको यह गुप्त बात बतला रहा हूँ। आप तो जानते ही हैं कि कुवलयापीड हाथी कालके समान विकराल है। यदि वे कदाचित् उस हाथीसे बच गये, जो असम्भव है, तो मैं अपने वज्रके समान मजबूत और फुर्तीले पहलवान मुष्टिक चाणूर आदिसे उन्हें मरवा डालूँगा। उनके मारे जानेपर वसुदेव आदि वृष्णि, भोज और दशार्हवंशी उनके भाई-बन्धु शोकाकुल हो जायँगे। फिर उन्हें मैं अपने हाथों मार डालूँगा। मेरा पिता उग्रसेन यों तो बूढ़ा हो गया है, परन्तु अभी उसको राज्यका लोभ बना हुआ है। यह सब कर चुकनेके बाद मैं उसको, उसके भाई देवकको और दूसरे भी जो जो मुझसे द्वेष करनेवाले हैं—उन सबको तलवारके घाट उतार दूँगा। मेरे मित्र अक्रूरजी! फिर तो मैं होऊँगा और आप होंगे, तथा होगा इस पृथ्वीका अकण्टक राज्य। आप तो जानते ही हैं कि जरासन्ध हमारे बड़े-बूढ़े ससुर हैं और वानरराज द्विविद मेरे प्यारे सखा हैं। शम्बरासुर, नरकासुर और बाणासुर—ये तो मुझसे मित्रता करते ही हैं, मेरा मुँह देखते रहते हैं, इन सबकी सहायतासे मैं देवताओंके पक्षपाती नरपतियोंको मारकर पृथ्वीका अकण्टक राज्य भोगूँगा। यह सब अपनी गुप्त बातें मैंने आपको बतला दीं। अब आप जल्दी-से-जल्दी बलराम और कृष्णको यहाँ ले आइये। अभी तो वे बच्चे ही हैं। उनको मार डालनेमें क्या लगता है? उनसे केवल इतनी ही बात कहियेगा कि वे लोग धनुषयज्ञके दर्शन और यदुवंशियोंकी राजधानी मथुराकी शोभा देखनेके लिये यहाँ आ जायँ'॥२७—३५॥

अक्रूरजीने कहा—महाराज! आप अपनी मृत्यु, अपना अरिष्ट दूर करना चाहते हैं, इसलिये आपका ऐसा सोचना ठीक ही है। मनुष्यको चाहिये कि चाहे सफलता हो या असफलता, दोनोंके प्रति समभाव रखकर अपना काम करता जाय। रही फलकी बात, सो फल तो प्रयत्नसे नहीं, दैवी प्रेरणासे मिलते हैं। मनुष्य बड़े-बड़े मनोरथोंके पुल बाँधता रहता है परन्तु वह यह नहीं जानता कि दैवने, प्रारब्धने इसे पहलेसे ही नष्ट कर रक्खा है। यही कारण है कि कभी प्रारब्धके अनुकूल होनेपर प्रयत्न सफल हो जाता है, तो वह हर्षसे फूल उठता है और प्रतिकूल होनेपर विफल हो जाता है तो शोकग्रस्त हो जाता है। फिर भी मैं आपकी आज्ञाका पालन तो कर ही रहा हूँ॥३८ ३९॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—कंसने मन्त्रियों और अक्रूरजीको इस प्रकारकी आज्ञा देकर सबको विदा कर दिया। तदनन्तर वह अपने महलमें चला गया और अक्रूरजी अपने घर लौट आये॥४०॥

सैंतीसवाँ अध्याय

केशी और व्योमासुरका उद्धार तथा नारदजीके द्वारा भगवान्‌की स्तुति

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! कंसने जिस केशी नामक दैत्यको भेजा था, वह बड़े भारी घोड़ेके रूपमें मनके समान वेगसे दौड़ता हुआ व्रजमें आया। उसकी टापोंसे धरती खुदती जाती थी। उसकी गरदनके छितराये हुए बालोंके झटकेसे आकाशके बादल और विमानोंकी भीड़ तितर बितर हो रही थी। उसकी भयानक हिनहिनाहटसे सब के सब भयसे काँप रहे थे। उसकी बड़ी बड़ी आँखें थीं, मुँह क्या था, मानो किसी वृक्षका खोड़र ही हो। उसे देखनेसे ही डर लगता था। बड़ी मोटी गरदन थी। शरीर इतना विशाल था कि मालूम होता था काली काली बादलकी घटा है। उसकी नीयतमें पाप भरा था। वह श्रीकृष्णको मारकर अपने स्वामी कंसका हित करना चाहता था। उसके चलनेसे भूकम्प होने लगता था। भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि उसकी हिनहिनाहटसे उनके आश्रित रहनेवाला गोकुल भयभीत हो रहा है और उसकी पूँछके बालोंसे बादल तितर बितर हो रहे हैं, तथा वह लड़नेके लिये उन्हींको ढूँढ भी

गयी, तब उसने अपने बगलमें ही खड़े श्यामसुन्दरके शीतल करकमलको अपने हृदयके दोनों ओर रख लिया ॥१–१४॥

परीक्षित्! गोपियोंका सौभाग्य लक्ष्मीजीसे भी बढ़कर है। लक्ष्मीजीके परम प्रियतम एकान्तवल्लभ भगवान् श्रीकृष्णको अपने परम प्रियतमके रूपमें पाकर गोपियाँ गायन करती हुई उनके साथ विहार करने लगीं। भगवान् श्रीकृष्णने उनके गलोंको अपने भुजपाशमें बाँध रक्खा था। उस समय गोपियोंकी बड़ी अपूर्व शोभा थी। उनके कानोंमें कमलके कुण्डल शोभायमान थे। घुँघराली अलकें कपोलोंपर लटक रही थीं। पसीनेकी बूँदें झलकनेसे उनके मुखकी छटा निराली ही हो गयी थी। वे रासमण्डलमें भगवान् श्रीकृष्णके साथ नृत्य कर रही थीं। उनके कंगन और पायजेबोंके बाजे बज रहे थे। भौंरे उनके ताल-सुरमें अपना सुर मिलाकर गा रहे थे। और उनके जूड़ों और चोटियोंमें गुँथे हुए फूल गिरते जा रहे थे। परीक्षित्! जैसे नन्हा-सा शिशु निर्विकारभावसे अपनी परछाईंके साथ खेलता है, वैसे ही रमारमण भगवान् श्रीकृष्ण कभी उन्हें अपने हृदयसे लगा लेते, कभी हाथसे उनका अंग स्पर्श करते, कभी प्रेमभरी तिरछी चितवनसे उनकी ओर देखते तो कभी लीलासे उन्मुक्त ँसी हँसने लगते। इस प्रकार उन्होंने व्रजसुन्दरियोंके साथ क्रीड़ा की, विहार किया। परीक्षित्! भगवान्के अङ्गोंका संस्पर्श प्राप्त करके गोपियोंकी इन्द्रियाँ प्रेम और आनन्दसे विह्वल हो गयीं। उनके केश बिखर गये। फूलोंके हार टूट गये और गहने अस्त-व्यस्त हो गये। वे अपने केश, वस्त्र और कंचुकीको भी पूर्णतया सम्हालनेमें असमर्थ हो गयीं। भगवान् श्रीकृष्णकी यह रासक्रीड़ा देखकर स्वर्गकी देवाङ्गनाएँ भी मिलनकी कामनासे मोहित हो गयीं और समस्त तारों तथा ग्रहोंके साथ चन्द्रमा चकित, विस्मित हो गये। परीक्षित्! यद्यपि भगवान् आत्माराम हैं—उन्हें अपने अतिरिक्त और किसीकी भी आवश्यकता नहीं है—फिर भी उन्होंने जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही रूप धारण किये और खेल-खेलमें उनके साथ इस प्रकार विहार किया। जब बहुत देरतक गायन और नृत्य आदि विहार करनेके कारण गोपियाँ थक गयीं, तब करुणामय भगवान् श्रीकृष्णने बड़े प्रेमसे स्वयं अपने सुखद करकमलोंके द्वारा उनके मुँह पोंछे। परीक्षित्! भगवान्के करकमल और नखस्पर्शसे गोपियोंको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अपने उन कपोलोंके सौन्दर्यसे, जिनपर सोनेके कुण्डल झिलमिला रहे थे और घुँघराली अलकें लटक रही थीं, तथा उस प्रेमभरी चितवनसे, जो सुधासे भी मीठी मुसकानसे उज्ज्वल हो रही थी, भगवान् श्रीकृष्णका सम्मान किया और प्रभुकी परम पवित्र लीलाओंका गायन करने लगीं। इसके बाद जैसे थका हुआ गजराज किनारोंको तोड़ता हुआ हथिनियोंके साथ जलमें घुसकर क्रीड़ा करता है, वैसे ही लोक और वेदकी मर्यादाका अतिक्रमण करनेवाले भगवान्ने अपनी थकान दूर करनेके लिये गोपियोंके साथ जलक्रीड़ा करनेके उद्देश्यसे यमुनामें प्रवेश किया। उस समय भगवान्की वनमाला गोपियोंके अंगकी रगड़से कुछ कुचल-सी गयी थी और उनके वक्षःस्थलकी केसरसे वह रँग भी गयी थी। उसके चारों ओर गुनगुनाते हुए भौंरे उनके पीछे-पीछे इस प्रकार चल रहे थे, मानो गन्धर्वराज उनकी कीर्तिका गायन करते हुए पीछे-पीछे चल रहे हों। परीक्षित्! यमुनाजलमें गोपियोंने प्रेमभरी चितवनसे भगवान्की ओर देख-देखकर तथा हँस-हँसकर उनपर जलकी खूब बौछारें डालीं। जल उलीच-उलीचकर उन्हें खूब नहलाया। विमानोंपर चढ़े हुए देवता पुष्पोंकी वर्षा करके उनकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार यमुनाजलमें स्वयं आत्माराम भगवान् श्रीकृष्णने गजराजके समान जलविहार किया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण व्रजयुवतियों और भौंरोंकी भीड़से घिरे हुए यमुनातटके उपवनमें गये। वह बड़ा ही रमणीय था। उसके चारों ओर जल और स्थलमें बड़ी सुन्दर सुगन्धवाले फूल खिले हुए थे। उनकी सुवास लेकर मन्द-मन्द वायु चल रही थी। उसमें भगवान् इस प्रकार विचरण करने लगे, जैसे मदमत्त गजराज हथिनियोंके झुंडके साथ घूम रहा हो। परीक्षित्! शरद्की वह रात्रि जिसके रूपमें अनेक रात्रियाँ पुञ्जीभूत हो गयी थीं, बहुत ही सुन्दर थी। चारों ओर चन्द्रमाकी बड़ी सुन्दर चाँदनी छिटक रही थी। काव्योंमें शरद् ऋतुकी जिन रस-सामग्रियोंका वर्णन मिलता है, उन सभीसे वह युक्त थी। उसमें भगवान् श्रीकृष्णने अपनी प्रेयसी गोपियोंके साथ यमुनाके पुलिन, यमुनाजी और उनके उपवनमें विहार किया। यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि भगवान् सत्यसङ्कल्प हैं। यह सब उनके चिन्मय सङ्कल्पकी ही चिन्मयी लीला है। और उन्होंने इस लीलामें कामभावको, उसकी चेष्टाओंको तथा उसकी क्रियाको सर्वथा अपने अधीन कर रक्खा था, उन्हें अपने-आपमें कैद कर रक्खा था ॥१५–२६॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीकृष्ण सारे जगत्के एकमात्र स्वामी हैं। उन्होंने अपने अंश

उन गुणोंको ही स्वीकार करके आप जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते रहते हैं। यह सब करनेके लिये आपको अपनेसे अतिरिक्त और किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि आप सर्वशक्तिमान् और सत्यसङ्कल्प हैं। वास्तवमें प्रभो! आप ऐसे ही हैं। वही आप दैत्य, प्रमथ और राक्षसोंका, जिन्होंने आजकल राजाओंका वेष धारण कर रक्खा है, विनाश करनेके लिये तथा धर्मकी मर्यादाओंकी रक्षा करनेके लिये यदुवंशमें अवतीर्ण हुए हैं। यह बड़े आनन्दकी बात है कि आपने खेल ही खेलमें घोड़ेके रूपमें रहनेवाले इस केशी दैत्यको मार डाला। इसकी हिनहिनाहटसे डरकर देवतालोग अपना स्वर्ग छोड़कर भाग जाया करते थे ॥९–१४॥

प्रभो! अब परसों मैं आपके हाथों चाणूर, मुष्टिक,



दूसरे पहलवान, कुवलयापीड़ हाथी और स्वयं कंसको भी मरते देखूँगा। उसके बाद शङ्खासुर, कालयवन, मुर और नरकासुरका वध देखूँगा। आप स्वर्गसे कल्पवृक्ष उखाड़ लायेंगे और इन्द्रके चीं चपड़ करनेपर उनको उसका मजा चखायेंगे। आप अपनी कृपा, वीरता, सौन्दर्य आदिका शुल्क देकर वीर कन्याओंसे विवाह करेंगे, और जगदीश्वर! आप द्वारकामें रहते हुए नृगको शापसे छुड़ायेंगे। आप जाम्बवतीके साथ स्यमन्तक मणिको जाम्बवान्‌से ले आयेंगे और अपने धामसे ब्राह्मणके मरे हुए पुत्रोंको ला देंगे। इसके पश्चात् आप पौण्ड्रक—मिथ्यावासुदेवका वध करेंगे और उसके मित्र काशिराजके हिमायती बनकर आनेपर उनकी राजधानी काशीपुरीको जला देंगे। युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें चेदिराज शिशुपालको और वहाँसे लौटते समय उसके मौसेरे भाई दन्तवक्त्रको नष्ट करेंगे। प्रभो! द्वारकामें आप और भी बहुत से पराक्रम प्रकट करेंगे, जिन्हें पृथ्वीके बड़े बड़े ज्ञानी और प्रतिभाशील पुरुष आगे चलकर गायेंगे। मैं वह सब देखूँगा। इसके बाद आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये कालरूपसे अर्जुनके सारथि बनेंगे और अनेक अक्षौहिणी सेनाका संहार करेंगे। यह सब मैं अपनी आँखोंसे देखूँगा ॥१५–२१॥

प्रभो! आप विशुद्ध विज्ञानघन हैं। आपके स्वरूपमें और किसीका अस्तित्व है ही नहीं। आप नित्य निरन्तर अपने परमानन्दस्वरूपमें स्थित रहते हैं। इसलिये सारे पदार्थ आपको नित्य प्राप्त ही हैं। आपका सङ्कल्प अमोघ है। आपकी चिन्मयी शक्तिके सामने माया और मायासे होनेवाला यह त्रिगुणमय संसार चक्र नित्यनिवृत्त है—कभी हुआ ही नहीं। ऐसे आप अखण्ड, एकरस, सच्चिदानन्दस्वरूप, निरतिशय ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान्‌की मैं शरण ग्रहण करता हूँ। आप सबके अन्तर्यामी और नियन्ता हैं। अपने आपमें स्थित, परम स्वतन्त्र हैं। जगत् और उसके अशेष विशेषों—भाव अभावरूप सारे भेद विभेदोंकी कल्पना केवल आपकी मायासे ही हुई है। इस समय आपने अपनी लीला प्रकट करनेके लिये मनुष्यका-सा श्रीविग्रह प्रकट किया है। और आप यदु, वृष्णि तथा सात्वतवंशियोंके शिरोमणि बने हैं। प्रभो! मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ' ॥२२ २३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌के परमप्रेमी भक्त देवर्षि नारदजीने इस प्रकार भगवान्‌की स्तुति और प्रणाम किया। भगवान्‌के दर्शनोंके आह्लादसे नारदजीका रोम-रोम खिल उठा। तदनन्तर उनकी आज्ञा प्राप्त करके वे स्वच्छन्द विचरण करनेके लिये चले गये। इधर भगवान् श्रीकृष्ण केशीको लड़ाईमें मारकर फिर अपने प्रेमी एवं प्रसन्नचित्त ग्वालबालोंके साथ पूर्ववत् पशुपालनके काममें लग गये तथा व्रजवासियोंको परमानन्द वितरण करने लगे। एक समय वे ग्वालबालोंके साथ पहाड़की चोटियोंपर गाय आदि पशुओंको चरा रहे थे तथा कुछ चोर और कुछ रक्षक बनकर छिपने छिपानेका—लुकालुकीका खेल खेल रहे थे। परीक्षित्! उन लोगोंने अपनेको तीन भागोंमें बाँट लिया था। कुछ तो भेड़ बन गये थे और कुछ उनके रक्षक,

भगवान् शङ्कर हमपर प्रसन्न हों। उस दिन परम भाग्यवान् नन्द-सुनन्द आदि गोपोंने उपवास कर रक्खा था, इसलिये वे लोग केवल जल पीकर रातके समय सरस्वती नदीके तटपर ही बेखटके सो गये ॥ १–४ ॥

उस अम्बिकावनमें एक बड़ा भारी अजगर रहता था। उस दिन वह भूखा भी बहुत था। दैववश वह उधर ही आ निकला और उसने सोये हुए नन्दजीको पकड़ लिया। अजगरके पकड़ लेनेपर नन्दरायजी चिल्लाने लगे—'बेटा कृष्ण! कृष्ण! दौड़ो, दौड़ो। देखो बेटा! यह अजगर मुझे निगल रहा है। मैं तुम्हारी शरणमें हूँ। जल्दी मुझे इस सङ्कटसे बचाओ।' नन्दबाबाका चिल्लाना सुनकर सब-के-सब गोप एकाएक उठ खड़े हुए और उन्हें अजगरके मुँहमें देखकर घबड़ा गये। अब वे लुकाठियों (अधजली लकड़ियों) से उस अजगरको मारने लगे। किन्तु लुकाठियोंसे मारे जाने और जलनेपर भी अजगरने नन्दबाबाको छोड़ा नहीं। इतनेमें ही भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने अपने चरणोंसे उस अजगरको छू दिया। भगवान्‌के श्रीचरणोंका स्पर्श होते ही अजगरके सारे अशुभ भस्म हो गये और वह उसी क्षण अजगरका शरीर छोड़कर सर्वाङ्ग-सुन्दर विद्याधरोंका भी वन्दनीय बन गया। उसके शरीरसे दिव्य ज्योति निकल रही थी। वह सोनेके हार पहने हुए था। जब वह प्रणाम करनेके बाद हाथ जोड़कर भगवान्‌के सामने खड़ा हो गया, तब भगवान्‌ने उससे पूछा—'तुम कौन हो? तुम्हारे अंग-अंगसे सुन्दरता फूटी पड़ती है। तुम देखनेमें बड़े अद्भुत जान पड़ते हो। तुम्हें यह अत्यन्त निन्दनीय अजगर-योनि क्यों प्राप्त हुई थी? अवश्य ही तुम्हें विवश होकर इसमें आना पड़ा होगा'॥ ५–११ ॥

अजगरके शरीरसे निकला हुआ पुरुष बोला—भगवन्! मैं पहले एक विद्याधर था। मेरा नाम था सुदर्शन। मेरे पास सौन्दर्य तो था ही, लक्ष्मी भी बहुत थी। इससे मैं विमानपर चढ़कर यहाँ-से-वहाँ घूमता रहता था। एक दिन मैंने अङ्गिरा गोत्रके ऋषियोंको देखा। वे बड़े कुरूप थे। मुझे अपने सौन्दर्यका बहुत घमंड था, इसलिये मैंने उनकी हँसी उड़ायी। तब मेरे अपराधसे कुपित होकर उन लोगोंने मुझे अजगर-योनिमें जानेका शाप दे दिया। भगवन्! उन्होंने शाप नहीं दिया, वास्तवमें मेरे पापोंने ही दिया। परन्तु सच पूछिये तो उन कृपालु ऋषियोंने दण्डके लिये नहीं, अनुग्रहके लिये ही मुझे शाप दिया था। क्योंकि यह उसीका प्रभाव है कि आज चराचरके गुरु स्वयं आपने अपने चरणकमलोंसे मेरा स्पर्श किया है, इससे मेरे सारे अशुभ नष्ट हो गये। समस्त पापोंका नाश करनेवाले प्रभो! जो लोग जन्म-मृत्युरूप संसारसे भयभीत होकर आपके चरणों-की शरण ग्रहण करते हैं, उन्हें आप समस्त भयोंसे मुक्त कर देते हैं। अब मैं आपके श्रीचरणोंके स्पर्शसे शापसे छूट गया हूँ और अपने लोकमें जानेकी अनुमति चाहता हूँ। भक्तवत्सल! महायोगेश्वर! पुरुषोत्तम! मैं आपकी शरणमें हूँ। इन्द्रादि समस्त लोकेश्वरोंके परमेश्वर! स्वयंप्रकाश परमात्मन्! मुझे आज्ञा दीजिये। अपने स्वरूपमें नित्य-निरन्तर एकरस रहनेवाले अच्युत! आपके दर्शनमात्रसे मैं ब्राह्मणोंके शापसे मुक्त हो गया, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। *क्योंकि जो पुरुष आपके नामोंका उच्चारण करता* है, वह न केवल अपने-आपको बल्कि समस्त श्रोताओंको भी तुरंत पवित्र कर देता है। फिर मुझे तो आपने स्वयं अपने चरणकमलोंसे स्पर्श किया है। तब भला, मेरी मुक्तिमें क्या सन्देह हो सकता है?' इस प्रकार सुदर्शनने भगवान् श्रीकृष्णसे विनती की, परिक्रमा की और प्रणाम किया। फिर उनसे आज्ञा लेकर वह अपने लोकमें चला गया और नन्दबाबा इस भारी सङ्कटसे छूट गये। परीक्षित्! जब व्रजवासियोंने भगवान् श्रीकृष्णका यह अद्भुत प्रभाव देखा, तब उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। उन लोगोंने उस क्षेत्रमें जो नियम ले रक्खे थे, उनको पूर्ण करके वे बड़े आदर और प्रेमसे श्रीकृष्णकी उस लीलाका गायन करते हुए पुनः व्रजमें लौट आये ॥ १२–१९ ॥

एक दिनकी बात है, अलौकिक कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी रात्रिके समय वनमें गोपियोंके साथ विहार कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्ण निर्मल पीताम्बर और बलरामजी नीलाम्बर धारण किये हुए थे। दोनोंके गलेमें फूलोंके सुन्दर-सुन्दर हार लटक रहे थे तथा शरीरमें अङ्गराग, सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था और सुन्दर-सुन्दर आभूषण पहने हुए थे। गोपियाँ बड़े प्रेम और आनन्दसे ललित स्वरमें उन्हींके गुणोंका गायन कर रही थीं। अभी-अभी सायङ्काल हुआ था। आकाशमें तारे उग आये थे और चाँदनी छिटक रही थी। बेलाके सुन्दर गन्धसे मतवाले होकर भौंरे इधर-उधर गुनगुना रहे थे तथा जलाशयमें खिली हुई कुमुदिनीकी सुगन्ध लेकर वायु मन्द-मन्द चल रही थी। उस समय उनका सम्मान करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने एक ही साथ मिलकर राग अलापा। उनका राग आरोह-अवरोह

ठीक वैसे ही, जैसे शूद्रकुलके बालकके लिये वेदोंका स्वाध्याय। परन्तु नहीं, मेरा ऐसा सोचना ठीक नहीं है। मुझ अधमको भी भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होंगे ही। क्योंकि जैसे नदीमें बहते हुए तिनके कभी-कभी इस पारसे उस पार लग जाते हैं, वैसे ही समयके प्रवाहसे भी कहीं कोई इस संसार सागरको पार कर सकता है। अवश्य ही आज मेरे सारे अशुभ नष्ट हो गये। आज मेरा जन्म सफल हो गया। क्योंकि आज मैं भगवान्के उन चरणकमलोंमें साक्षात् नमस्कार करूँगा, बड़े-बड़े योगी-यति जिनके केवल ध्यानकी ही चेष्टा करते रहते हैं, ठीक-ठीक ध्यान भी नहीं कर पाते। कंस—हाँ, कंस चाहे जितना ही दुष्ट क्यों न हो उसने मेरे ऊपर तो आज बड़ी ही कृपा की है। उसी कंसके भेजनेसे तो मैं इस भूतलपर अवतीर्ण स्वयं भगवान्के चरणकमलोंके दर्शन पाऊँगा। अहो! मेरे लिये यह कितने सौभाग्यकी बात होगी। जिनके नखमण्डलकी कान्तिका ध्यान करके पहले युगोंके ऋषि महर्षि इस अज्ञानरूप अपार अन्धकार राशिको पार कर चुके हैं, स्वयं वही भगवान् तो अवतार ग्रहण करके प्रकट हुए हैं। ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र आदि बड़े-बड़े देवता जिन चरणकमलोंकी उपासना करते रहते हैं, स्वयं भगवती लक्ष्मी एक क्षणके लिये भी जिनकी सेवा नहीं छोड़तीं, प्रेमी भक्तोंके साथ बड़े-बड़े ज्ञानी भी जिनकी आराधनामें संलग्न रहते हैं—भगवान्के वे ही चरणकमल गौओंको चरानेके लिये ग्वालबालोंके साथ वन वनमें विचरते हैं। अरे, वे ही सुर मुनि-वन्दित श्रीचरण गोपियोंके वक्ष स्थलपर लगी हुई रोली केशरसे रँग जाते हैं, चिह्नित हो जाते हैं, मैं अवश्य अवश्य उनका दर्शन करूँगा। केवल चरणकमलका ही नहीं, वे प्रेम और मुक्तिके परम दानी श्रीमुकुन्दके उस मुखकमलका भी आज अवश्य दर्शन करूँगा। अहा! कितना सुन्दर है वह वदनारविन्द! मरकतमणिके समान सुस्निग्ध कान्तिमान् कोमल कपोल हैं, तोतेकी ठोरके समान नुकीली नासिका है, होठोंपर मन्द-मन्द मुसकान, प्रेमभरी चितवन, कमल-से कोमल रतनारे लोचन और कपोलोंपर घुँघराली अलकें लटक रही हैं। मेरा यह मनोरथ अवश्य ही सफल होगा, क्योंकि कितना शुभ शकुन हो रहा है! हरिन मेरी दायीं ओरसे निकल रहे हैं। भगवान् विष्णु पृथ्वीका भार उतारनेके लिये स्वेच्छासे मनुष्यकी-सी लीला कर रहे हैं। वे सम्पूर्ण लावण्य के धाम हैं। सौन्दर्यकी मूर्तिमान् निधि हैं। आज मुझे उन्हींका दर्शन होगा! अवश्य होगा! आज मुझे सहजमें ही आँखोंका फल मिल जायगा। भगवान् इस कार्य-कारण रूप जगत्के द्रष्टामात्र हैं, और ऐसा होनेपर भी द्रष्टापनका अहङ्कार उन्हें छूतक नहीं गया है। उनकी चिन्मयी शक्तिसे अज्ञानके कारण होनेवाला भेदभ्रम अज्ञानसहित दूरसे ही निरस्त रहता है। वे अपनी योगमायासे ही अपने आपमें भ्रूविलासमात्रसे प्राण, इन्द्रिय और बुद्धि आदिके सहित अपने स्वरूपभूत जीवोंकी रचना कर लेते हैं और उनके साथ वृन्दावनकी कुञ्जोंमें तथा गोपियोंके घरोंमें तरह-तरहकी लीलाएँ करते हुए प्रतीत होते हैं। जब समस्त पापोंके नाशक उनके परम मङ्गलमय गुण, कर्म और जन्मकी लीलाओंसे युक्त होकर वाणी उनका गायन करती है, तब उस गायनसे संसारमें जीवनकी स्फूर्ति होने लगती है, शोभाका सञ्चार हो जाता है, सारी अपवित्रताएँ धुलकर पवित्रताका साम्राज्य छा जाता है, परन्तु जिस वाणीसे उनके गुण, लीला और जन्मकी कथाएँ नहीं गायी जातीं वह तो मुर्देको ही शोभित करनेवाली है, होनेपर भी नहींके समान—व्यर्थ है। जिनके गुणगानका ही ऐसा माहात्म्य है, वे ही भगवान् स्वयं यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं। किसलिये? अपनी ही बनायी मर्यादाका पालन करनेवाले श्रेष्ठ देवताओंका कल्याण करनेके लिये। वे ही परम ऐश्वर्यशाली भगवान् आज व्रजमें निवास कर रहे हैं और वहींसे अपने यशका विस्तार कर रहे हैं। उनका यश कितना पवित्र है! अहो, देवतालोग भी उस सम्पूर्ण मङ्गलमय यशका गायन करते रहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आज मैं अवश्य ही उन्हें देखूँगा। मेरे चित्त! धीरज धरो। उकताओ मत। देखो, वे बड़े बड़े संतों और लोकपालोंके भी एकमात्र आश्रय हैं। सबके परम गुरु हैं। और उनका सौन्दर्य? त्रिलोकी उनके चरणोंपर निछावर है। जो नेत्रवाले हैं, उनके लिये वह आनन्द और रसकी चरम सीमा है! इसीसे स्वयं लक्ष्मीजी भी, जो सौन्दर्यकी अधीश्वरी हैं, उन्हें पानेके लिये ललकती रहती हैं। हाँ, तो मैं उन्हें अवश्य देखूँगा। क्योंकि आज मेरा मङ्गल प्रभात है, आज मुझे प्रात कालसे ही अच्छे अच्छे शकुन दीख रहे हैं॥१—१४॥

अच्छा, जब मैं उन्हें देखूँगा तब क्या करूँगा? प्रकृति और पुरुषरूप बलराम तथा श्रीकृष्णके चरणोंमें नमस्कार करनेके लिये तुरत रथसे कूद पड़ूँगा। उनके चरण पकड़ लूँगा। ओह, उनके चरण कितने दुर्लभ हैं! बड़े-बड़े योगी-यति आत्मसाक्षात्कारके लिये मन ही मन अपने हृदयमें उनके चरणोंकी धारणा करते हैं और मैं, मैं तो उन्हें प्रत्यक्ष पा जाऊँगा। और लोट जाऊँगा उनपर। उसके बाद उनके एक एक सखा, एक एक ग्वालबालके चरणोंकी वन्दना

घासका ग्रास उनके मुँहमें ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाता है,



वे उसे न निगल पाते और न तो उगल ही पाते हैं। दोनों कान खड़े करके इस प्रकार स्थिरभावसे खड़े हो जाते हैं मानो सो गये हैं या केवल भीतपर लिखे हुए चित्र हैं। उनकी ऐसी दशा होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि यह बाँसुरी-की तान उनके चित्तको चुरा जो लेती है ॥ ४-५ ॥

अरी भटू! जब वे नन्दके लाड़ले लाल अपने सिरपर मोरपंखका मुकुट बाँध लेते हैं, घुँघराली अलकोंमें फूलके गुच्छे खोंस लेते हैं, रंगीन धातुओंसे अपना अंग-अंग रँग लेते हैं और नये-नये पल्लवोंसे ऐसा वेष सजा लेते हैं, जैसे कोई बहुत बड़ा पहलवान हो और फिर बलरामजी तथा ग्वालबालोंके साथ बाँसुरीमें गौओंका नाम ले-लेकर उन्हें पुकारते हैं; उस समय प्यारी सखियो ! नदियोंकी गति भी रुक जाती है। वे चाहती हैं कि वायु उड़ाकर हमारे प्रियतमके चरणोंकी धूल हमारे पास पहुँचा दे और उसे पाकर हम निहाल हो जायँ, परन्तु सखियो ! वे भी हमारेही-जैसी मन्दभागिनी हैं। जैसे नन्दनन्दन श्रीकृष्णका आलिङ्गन करते समय हमारी भुजाएँ काँप जाती हैं और जड़तारूप सञ्चारीभावका उदय हो जानेसे हम अपने हाथोंको हिला भी नहीं पातीं, वैसे ही वे भी प्रेमके कारण काँपने लगती हैं। दो-चार बार अपनी तरङ्गरूप भुजाओंको काँपते-काँपते उठाती तो अवश्य हैं, परन्तु फिर विवश होकर स्थिर हो जाती हैं, प्रेमावेशसे स्तम्भित हो जाती हैं ॥ ६-७ ॥

अरी वीर! जैसे देवता लोग अनन्त और अचिन्त्य ऐश्वर्योंके स्वामी भगवान् नारायणकी शक्तियोंका गायन करते हैं, वैसे ही ग्वालबाल अनन्तसुन्दर नटनागर श्रीकृष्ण-की लीलाओंका गायन करते रहते हैं। वे अचिन्त्य-ऐश्वर्य-सम्पन्न श्रीकृष्ण जब वृन्दावनमें विहार करते रहते हैं और बाँसुरी बजाकर गिरिराज गोवर्द्धनकी तराईमें चरती हुई गौओंको नाम ले-लेकर पुकारते हैं, उस समय वनके वृक्ष और लताएँ फूल और फलोंसे लद जाती हैं, उनके भारसे डालियाँ झुककर धरती छूने लगती हैं, मानो प्रणाम कर रही



हों, वे वृक्ष और लताएँ प्रेमसे फूल उठती हैं, उनका रोम-रोम खिल जाता है और सब-की-सब मधुधाराएँ उँड़ेलने लगती हैं। ऐसा जान पड़ता है, मानो वे हमारे कुँवर कान्हको विष्णुभगवान् जानकर उनकी सेवा-शुश्रूषा कर रहे हों ॥८-९॥

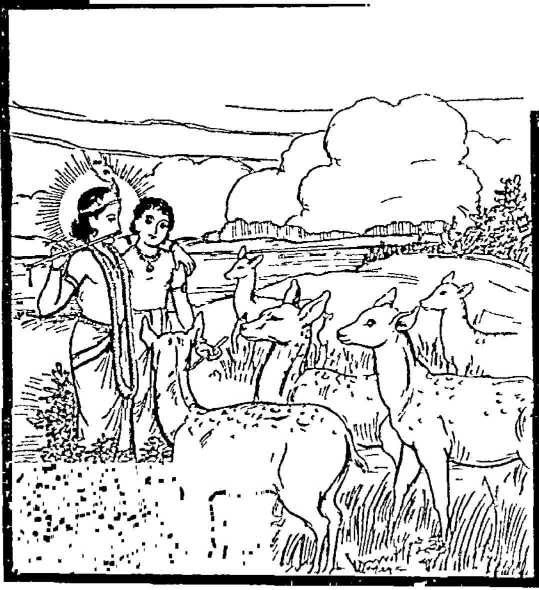
अरी सखी ! जितनी भी वस्तुएँ संसारमें या उसके बाहर देखनेयोग्य हैं, उनमें सबसे सुन्दर, सबसे मधुर, सबके शिरोमणि हैं—ये हमारे मनमोहन। उनके साँवले ललाटपर केसरकी खौर कितनी फबती है—बस, देखती ही जाओ! गलेमें घुटनोंतक लटकती हुई वनमाला, उसमें पिरोयी हुई तुलसीकी दिव्य गन्ध और मधुर मधुसे मतवाले होकर झुंड-के-झुंड भौंरे बड़े मनोहर एवं उच्च स्वरसे गुंजार करते रहते हैं। हमारे नटनागर श्यामसुन्दर भौंरोंकी उस गुनगुनाहटका आदर करते हैं और उन्हींके स्वर-में-स्वर मिलाकर अपनी बाँसुरी फूँकने लगते हैं। उस समय क्या बताऊँ सखि! उस मुनिजनमोहन संगीतको सुनकर सरोवरमें

अक्रूरका प्रेम



भगवान्‌के चरण चिह्नोंको देखकर अक्रूरजी उनपर लोटने लगे।

अपना चित्त उनके चरणोंपर निछावर कर देती हैं और जैसे हम गोपियाँ अपने घर-गृहस्थीकी आशा-अभिलाषा



छोड़कर गुणसागर नागर नन्दनन्दनको घेरे रहती हैं, वैसे ही वे भी उनके पास दौड़ आती हैं और वहीं एकटक देखती हुई खड़ी रह जाती हैं, लौटनेका नाम भी नहीं लेती। जब हरिनियोंकी यह दशा है, सखी! तब हम अपनी क्या बतावें?॥ १८-१९ ॥

नन्दरानी यशोदाजी! वास्तवमे तुम बड़ी पुण्यवती हो। तभी तो तुम्हें ऐसे पुत्र मिले है। तुम्हारे वे लाड़ले लाल बड़े प्रेमी हैं, उनका चित्त बड़ा कोमल है। वे प्रेमी सखाओंको तरह-तरहसे सुख पहुँचाते हैं। कुन्दकलीका हार पहनकर जब वे अपनेको सजा लेते हैं और ग्वालबाल तथा गौओंके साथ यमुनाजीके तटपर खेलने लगते हैं, उस समय मलयज चन्दनके समान शीतल और सुगन्धित स्पर्शसे मन्द-मन्द अनुकूल वहकर वायु तुम्हारे लालकी सेवा करती है और गन्धर्व आदि उपदेवता वंदीजनोंके समान गा-बजाकर उन्हें सन्तुष्ट करते हैं तथा अनेको प्रकारकी भेंटें देते हुए सब ओरसे घेरकर उनकी सेवा करते हैं ॥२०-२१॥

अरी सखी! श्यामसुन्दर व्रजकी गौओसे बड़ा प्रेम करते हैं। इसीलिये तो उन्होंने गोवर्धन धारण किया था। अब वे सब गौओंको लौटाकर आते ही होंगे; क्योंकि देखो, सायङ्काल हो चला है। तब इतनी देर क्यों होती है, सखी? तुम नहीं जानती हो? रास्तेमें बड़े-बड़े ब्रह्मा आदि वयोवृद्ध और शङ्कर आदि ज्ञानवृद्ध उनके चरणोंकी वन्दना जो करने लगते हैं। फिर भी इतनी देर तो नहीं होनी चाहिये। नहीं-नहीं; अब गौओंके पीछे-पीछे बाँसुरी बजाते हुए वे आते ही होंगे। ग्वालबाल उनकी कीर्तिका गायन कर रहे होंगे। देखो न, यह क्या आ रहे हैं। देखो, देखो; गौओंके खुरोंसे उड़-उड़कर बहुत-सी धूल वनमालापर पड़ गयी है। वे दिनभर जंगलोंमें घूमते-घूमते थक गये हैं। फिर भी वे अपनी इस शोभासे हमारी आँखोंको कितना सुख, कितना आनन्द दे रहे हैं। देखो, ये यशोदाकी कोखसे प्रकट हुए सबको आह्लादित करनेवाले चन्द्रमा हमारी भलाईके लिये, हमारी आशा-अभिलाषाओंको पूर्ण करनेके लिये ही हमारे पास चले आ रहे हैं। श्रीकृष्ण! हमे भर आँख देखकर तृप्त हो लेने दो॥ २२-२३ ॥

सखी! देखो कैसा सौन्दर्य है! मदभरी आँखें कुछ चढ़ी हुई हैं। कुछ-कुछ ललाई लिये हुए कैसी भली जान पड़ती हैं। गलेमें वनमाला लहरा रही है। सोनेके कुण्डलोंकी कान्ति कोमल कपोलोंपर झिलमिला रही है। इसीसे मुँहपर अधपके बेरके समान कुछ पीलापन जान पड़ता है। और रोम रोमसे, विशेष करके मुखकमलसे प्रसन्नता फूटी पड़ती है। देखो, अब वे अपने सखा ग्वालबालोंका सम्मान करके उन्हे विदा कर रहे हैं। देखो, देखो सखी! व्रजविभूषण



श्रीकृष्ण गजराजके समान मदभरी चालसे हमारी ओर आ रहे हैं। क्यों न हो, अब सायङ्काल जो हो गया है। अब व्रजमें रहनेवाली गौओंका, हमलोगोंका दिनभरका असह्य विरह-ताप



जैसी अवस्था रही है, यही जीवोंके देह धारण करनेका परम लाभ है। इसलिये जीवमात्रका यही परम कर्तव्य है कि दम्भ, भय और शोक त्याग कर भगवान्की मूर्ति (प्रतिमा, भक्त, आदि), चिह्न, लीला, स्थान तथा गुणोंके दर्शन श्रवण आदिके द्वारा ऐसा ही भाव सम्पादन करें ॥ २४–२७ ॥

व्रजमें पहुँचकर अक्रूरजीने श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाइयोंको गाय दुहनेके स्थानमें विराजमान देखा। श्याम सुन्दर श्रीकृष्ण पीताम्बर धारण किये हुए थे और गौरसुन्दर बलराम नीलाम्बर। उन्होंने अभी किशोर अवस्थामें प्रवेश ही किया था। ग्यारहवाँ वर्ष चल रहा था। वे दोनों निखिल सौन्दर्य की खान थे। शरत्कालीन कमलके समान खिले हुए सुन्दर नेत्र, घुटनोंका स्पर्श करनेवाली लंबी-लंबी भुजाएँ, सुन्दर वदन, परम मनोहर और गजशावकके समान ललित चाल वाले। दोनों बड़े उदार थे। उनके चरणोंमें ध्वजा, वज्र, अङ्कुश और कमलके चिह्न थे। जब वे चलते थे, उनसे चिह्नित होकर पृथ्वी शोभायमान हो जाती थी। उनकी मन्द मन्द मुसकान और चितवन ऐसी थी, मानो दया बरस रही हो। उनकी एक एक लीला उदारता और सुन्दर कलासे भरी थी। गलेमें वनमाला और मणियोंके हार जगमगा रहे थे। उन्होंने अभी-अभी स्नान करके निर्मल वस्त्र पहने थे और शरीरमें पवित्र अङ्गराग तथा चन्दनका लेप किया था। परीक्षित्! अक्रूरने देखा कि जगत्के आदिकारण, जगत्के परमपति, प्रधान और पुरुष ही संसारकी रक्षाके लिये अपने सम्पूर्ण अंशोंसे बलरामजी और श्रीकृष्णके रूपमें अवतीर्ण होकर अपनी अङ्गकान्तिसे दिशाओंका अन्धकार दूर कर रहे



हैं। वे ऐसे भले मालूम होते थे, जैसे सोनेसे मढे हुए मरकत मणि और चाँदीके पर्वत जगमगा रहे हों। उन्हें देखते ही अक्रूरजी प्रेमावेगसे अधीर होकर रथसे कूद पड़े और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामके चरणोंके पास साष्टाङ्ग लोट गये। परीक्षित्! भगवान्के दर्शनसे उन्हें इतना आह्लाद हुआ कि उनके नेत्र आँसूसे सर्वथा भर गये। सारे शरीरमें पुलकावली छा गयी। उत्कण्ठावश गला भर आनेके कारण वे अपना नाम भी न बतला सके। शरणागतवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण उनके मनका भाव जान गये। उन्होंने बड़ी प्रसन्नतासे चक्राङ्कित हाथोंके द्वारा उन्हें खींचकर उठाया और हृदयसे लगा लिया। इसके बाद जब वे परम मनस्वी श्रीबलरामजीके सामने विनीत भावसे खड़े हो गये, तब उन्होंने उनको गले लगा लिया और उनका एक हाथ श्रीकृष्णने पकड़ा तथा दूसरा बलरामजीने। दोनों भाई उन्हें घर ले गये ॥ २८–३७ ॥

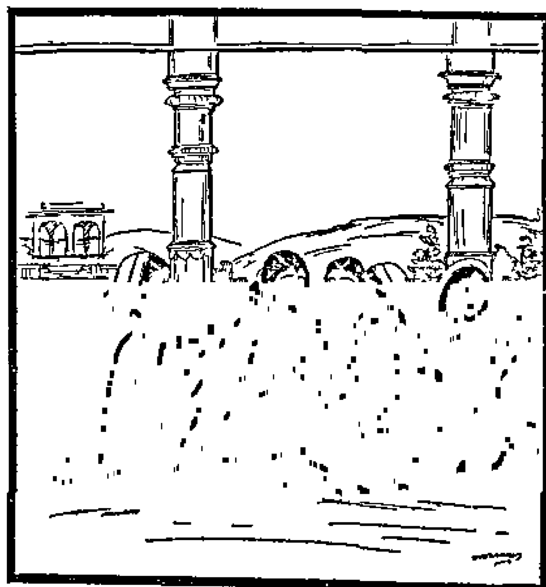
घर ले जाकर भगवान्ने उनका बड़ा स्वागत सत्कार किया। कुशल मङ्गल पूछकर श्रेष्ठ आसनपर बैठाया और विधिपूर्वक उनके पाँव पखारकर मधुपर्क (शहद मिला हुआ दही) आदि पूजाकी सामग्री भेंट की। इसके बाद भगवान्ने अतिथि अक्रूरजीको एक गाय दी और पैर दबाकर उनकी थकावट दूर की तथा बड़े आदर एवं श्रद्धासे उन्हें पवित्र और अनेक गुणोंसे युक्त अन्नका भोजन कराया। जब वे भोजन कर चुके, तब धर्मके परम मर्मज्ञ भगवान् बलरामजीने मुखवास (पान



अरिष्ट, केशी और व्योमासुरका उद्धार

व्यथा हुई। वे व्याकुल हो गयीं। क्यों न हों—ये वही गोपियाँ हैं न, जिन्हें भगवान्‌के बिना एक एक क्षण सौ सौ युगके समान हो जाता है। भगवान् श्रीकृष्णके मथुरा जानेकी बात सुनते ही बहुतोंके हृदयमें ऐसी जलन हुई कि गरम साँस चलने लगी, मुखकमल कुम्हला गया। और बहुतोंकी ऐसी दशा हुई—वे इस प्रकार अचेत हो गयीं कि उन्हें खिसकी हुई ओढनी, गिरते हुए कगन और ढीले हुए जूड़ोंतकका पता न रहा। भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान आते ही बहुत सी गोपियोंकी चित्तवृत्तियाँ सर्वथा निवृत्त हो गयीं मानो वे समाधिस्थ—आत्मामे स्थित हो गयी हों, और उन्हें अपने शरीर और ससारका कुछ ध्यान ही न रहा। बहुत-सी गोपियोंके सामने भगवान् श्रीकृष्णका प्रेम, उनकी मन्द मन्द मुसकान और हृदयको स्पर्श करने वाली विचित्र पदोंसे युक्त मधुर वाणी नाचने लगी। वे उसमें तल्लीन हो गयीं। मोहित हो गयीं। परीक्षित्! गोपियाँ मन ही मन भगवान्‌की लटकीली चाल, भाव भङ्गी, प्रेमभरी मुसकान, चितवन, सारे शोकोंको मिटा देनेवाली ठिठोलियाँ तथा उदारताभरी लीलाओंका चिन्तन करने लगीं और उनके विरहके भयसे कातर हो गयीं। उनका हृदय, उनका जीवन—सब कुछ भगवान्‌के प्रति समर्पित था। उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। वे झुड की-झुड इकट्ठी होकर इस प्रकार कहने लगीं ॥ १३–१८ ॥

गोपियोंने कहा—धन्य हो विधाता! तुम सब कुछ विधान तो करते हो, परन्तु तुम्हारे हृदयमें दयाका लेश भी नहीं है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। पहले तो तुम सौहार्द और प्रेमसे जगत्‌के प्राणियोंको एक-दूसरेके साथ जोड़ देते हो, उन्हें आपसमें एक कर देते हो, मिला देते हो, परन्तु अभी उनकी आशा अभिलाषाएँ पूरी भी नहीं हो पातीं, वे तृप्त भी नहीं हो पाते कि तुम उन्हें व्यर्थ ही अलग-अलग कर देते हो! सच है, तुम्हारा यह खिलवाड़ बच्चोंके खेलकी तरह व्यर्थ ही है। यह कितने दु खकी बात है! विधाता! तुमने पहले हमें प्रेमका वितरण करनेवाले श्यामसुन्दरका मुखकमल दिखलाया। कितना सुन्दर है वह! काले-काले घुँघराले बाल कपोलोंपर झलक रहे हैं। मरकत मणि-से चिकने सुस्निग्ध कपोल और तोतेकी चोंच सी सुन्दर नासिका तथा अधरोंपर मन्द मन्द मुसकानकी सुन्दर रेखा, जो सारे शोकोंको तत्क्षण भगा देती है। विधना! तुमने एक बार तो हमें वह परम सुन्दर मुखकमल



दिखाया और अब उसे ही हमारी आँखोंसे ओझल कर रहे हो! सचमुच तुम्हारी यह करतूत बहुत ही अनुचित है। हम जानती हैं, इसमें अक्रूरका दोष नहीं है, यह तो साफ तुम्हारी क्रूरता है। वास्तवमें तुम्हीं अक्रूरके नामसे यहाँ आये हो और अपनी ही दी हुई आँखें तुम हमसे मूर्खकी भाँति छीन रहे हो। इन नेत्रोंने हमारा बड़ा उपकार किया था। इनके द्वारा हम श्यामसुन्दरके एक एक अङ्गमें तुम्हारी सृष्टिका सम्पूर्ण सौन्दर्य निहारती रहती थीं। विधाता! तुम्हें ऐसा नहीं चाहिये ॥ १९–२१ ॥

अहो! नन्दनन्दन श्यामसु दरको भी नये नये लोगोंसे नेह लगानेकी चाट पड़ गयी है। देखो तो सही—इनका सौहार्द, इनका प्रेम एक क्षणमें ही कहाँ चला गया? हम तो अपने घर द्वार, स्वजन-सम्बन्धी, पति पुत्र आदिको छोड़कर इनकी दासी बनीं और ये हमारी ओर देखते भी नहीं कि उन्हींकी भाव भङ्गी, मुसकान, चितवन आदिसे मोहित होकर उनके लिये हम कितनी बेहाल हो रही हैं! आजकी रातका प्रात. काल मथुराकी स्त्रियोंके लिये निश्चय ही बड़ा मङ्गलमय होगा। आज उनकी बहुत दिनोंकी अभिलाषाएँ अवश्य ही पूरी हो जायँगी। जब हमारे व्रजराज श्यामसुन्दर अपनी तिरछी चितवन और मन्द मन्द मुसकानसे युक्त मुखारविन्दका मादक मधु वितरण करते हुए मथुरापुरीमें प्रवेश करेंगे, तब वे उसका पान करके धन्य धन्य हो जायँगी। यद्यपि हमारे श्यामसुन्दर धैर्यवान् होनेके साथ ही नन्दबाबा आदि गुरुजनोंकी आज्ञामें रहते हैं, तथापि मथुराकी युवतियाँ अपने

रहा है—तब वे बढ़कर उसके सामने आ गये और उन्होंने सिंहके समान गरजकर उसे ललकारा। भगवान्‌को सामने आया देख वह और भी चिढ़ गया तथा उनकी ओर इस प्रकार मुँह फैलाकर दौड़ा, मानो आकाशको पी जायगा। परीक्षित्! सचमुच केशीका वेग बड़ा प्रचण्ड था। उसपर विजय पाना तो कठिन था ही, उसे पकड़ लेना भी आसान नहीं था। उसने कमलसे भी कोमल और वज्रसे भी कठोर भगवान्‌के पास पहुँचकर दुलत्ती छोड़ी। परन्तु भगवान्‌ने उससे अपनेको बचा लिया। भला वह इन्द्रियातीतको कैसे मार पाता! उन्होंने उसके दोनों पिछले पैर पकड़ लिये और जैसे गरुड़ साँपको पकड़कर झटक देते हैं, उसी प्रकार क्रोधसे उसे घुमाकर बड़े अपमानके साथ चार सौ हाथकी दूरीपर फेंक दिया और स्वयं अकड़कर खड़े हो गये। थोड़ी ही देरके बाद केशी फिर सचेत हो गया और उठ खड़ा हुआ। इसके बाद वह क्रोधसे तिलमिलाकर और मुँह फाड़कर बड़े वेगसे भगवान्‌की ओर झपटा। उसको दौड़ते देख भगवान् मुसकराने लगे। उन्होंने अपना बाँया हाथ उसके मुँहमें इस प्रकार डाल दिया, जैसे सर्प बिना किसी आशङ्काके अपने बिलमें घुस जाता है। परीक्षित्! भगवान्‌का अत्यन्त कोमल कर-कमल भी उस समय ऐसा हो गया, मानो तपाया हुआ लोहा हो। उसका स्पर्श होते ही केशीके दाँत टूट-टूटकर गिर गये और जैसे जलोदर रोग उपेक्षा कर देनेपर बहुत बढ़ जाता है, वैसे ही श्रीकृष्णका भुजदण्ड उसके मुँहमें बढ़ने लगा। परीक्षित्! अचिन्त्यशक्ति भगवान् श्रीकृष्णका हाथ उसके मुँहमें इतना बढ़ गया कि उसकी साँसके भी आने-जानेका मार्ग न रहा। अब तो दम घुटनेके कारण वह पैर पीटने लगा। उसका शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया, आँखोंकी पुतली उलट गयी, वह मल-त्याग करने लगा। थोड़ी ही देरमें उसका शरीर निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा तथा उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। उसका निष्प्राण शरीर फूला हुआ होनेके कारण गिरते ही पकी ककड़ीकी तरह फट गया। महाबाहु भगवान् श्रीकृष्णने उसके शरीरसे अपनी भुजा खींच ली। उन्हें इससे कुछ भी आश्चर्य या गर्व नहीं हुआ। बिना प्रयत्नके ही शत्रुका नाश हो गया। देवताओंको अवश्य ही इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। वे प्रसन्न



हो-होकर भगवान्‌के ऊपर पुष्प बरसाने और उनकी स्तुति करने लगे ॥ १—८ ॥

परीक्षित्! देवर्षि नारदजी भगवान्‌के परम प्रेमी और समस्त जीवोंके सच्चे हितैषी हैं। कंसको भगवच्चिन्तनमें लगाकर वे अद्भुत कर्म करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके पास एकान्तमें आये और उनसे कहने लगे—'सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीकृष्ण! आपका स्वरूप मन और वाणीका विषय नहीं है। संसारमें आपको प्राप्त करनेके लिये जो लोग योगका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें आप ही अपनी सामर्थ्यसे फल देते हैं। आप योगेश्वर हैं। उन्हींका क्यों, सारे जगत्‌का नियन्त्रण आप ही तो करते हैं। आप सबके हृदयमें निवास करते हैं और सब-के-सब आपके हृदयमें निवास करते हैं। आप भक्तोंके एकमात्र वाञ्छनीय, यदुवंशशिरोमणि और हमारे स्वामी हैं। जैसे एक ही अग्नि सभी लकड़ियोंमें व्याप्त रहती है, वैसे एक ही आप समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं। आत्माके रूपमें होनेपर भी आप अपनेको छिपाये रखते हैं; क्योंकि आप पञ्चकोशरूप गुफाओंके भीतर जो रहते हैं। फिर भी पुरुषोत्तमके रूपमें, सबके नियन्ताके रूपमें और सबके साक्षीके रूपमें आपका अनुभव होता ही है। प्रभो! आप सबके अधिष्ठान और स्वयं अधिष्ठानरहित हैं। आपने सृष्टिके प्रारम्भमें अपनी मायासे ही गुणोंकी सृष्टि की और

उड़ती हुई धूल दीखती रही, तबतक उनके शरीर चित्र लिखित से वहीं ज्यों-के-त्यों खड़े रहे। परन्तु परीक्षित्! उन्होंने अपना चित्त तो मनमोहन प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके साथ ही भेज दिया था। अभी उनके मनमें आशा थी कि शायद श्रीकृष्ण कुछ दूर जाकर लौट आयें! परन्तु जब नहीं लौटे, तब वे निराश हो गयीं और अपने-अपने घर चली आयीं। परीक्षित्! वे रात दिन अपने प्यारे श्यामसुन्दरकी लीलाओंका गायन करती रहतीं और इस प्रकार अपने शोक सन्तापको हल्का करतीं ॥ ३१–३७ ॥

परीक्षित्! इधर भगवान् श्रीकृष्ण भी बलरामजी और अक्रूरजीके साथ वायुके समान वेगवाले रथपर सवार होकर पापनाशिनी यमुनाजीके किनारे जा पहुँचे। वहाँ उन लोगोंने हाथ मुँह धोकर यमुनाजीका मरकत मणिके समान नीला और अमृतके समान मीठा जल पिया। इसके बाद बलराम जीके साथ भगवान् वृक्षोंके झुरमुटमें खड़े रथपर सवार हो गये। अक्रूरजीने दोनों भाइयोंको रथपर बैठाकर उनसे आज्ञा ली और यमुनाजीके कुण्ड (अनन्त तीर्थ या ब्रह्महृद) पर आकर वे विधिपूर्वक स्नान करने लगे। उस कुण्डमें स्नान करनेके बाद वे जलमें डुबकी लगाकर गायत्रीका जप करने लगे। उसी समय जलके भीतर अक्रूरजीने देखा कि श्रीकृष्ण और बलराम दोनों भाई एक साथ ही बैठे हुए हैं। अब उनके मनमें यह शङ्का हुई कि 'वसुदेवजीके पुत्रोंको तो मैं रथपर बैठा आया हूँ, अब वे यहाँ जलमें कैसे आ गये? जब यहाँ हैं तो शायद रथपर नहीं होंगे।' ऐसा सोचकर उन्होंने सिर बाहर निकालकर देखा, तो वे उस रथपर भी पूर्ववत् बैठे हुए थे। उन्होंने यह सोचकर कि मैंने उन्हें जो जलमें देखा था, वह भ्रम ही रहा होगा, फिर डुबकी लगायी परन्तु फिर उन्होंने देखा कि वहाँ साक्षात् अनन्तदेव श्रीशेषजी विराजमान हैं और सिद्ध, चारण, गन्धर्व एवं असुर अपने अपने सिर झुकाकर उनकी स्तुति कर रहे हैं। शेषजीके हजार सिर हैं और प्रत्येक फणपर मुकुट सुशोभित है। कमलनालके समान उज्ज्वल शरीरपर नीलाम्बर धारण किये हुए हैं, और उनकी ऐसी शोभा हो रही है, मानो सहस्र शिखरोंसे युक्त श्वेतगिरि कैलास शोभायमान हो। अक्रूरजीने देखा कि शेषजीकी गोदमें श्याम मेघके समान घनश्याम विराजमान हो रहे हैं। वे रेशमी पीताम्बर पहने हुए हैं। बड़ी ही शान्त चतुर्भुज मूर्ति है और कमलके रक्तदलके समान रतनारे नेत्र हैं। उनका वदन बड़ा ही मनोहर और प्रसन्नताका सदन है। उनका मधुर हास्य और चारु चितवन चित्तको चुराये लेती है। भौंहें सुन्दर और नासिका तनिक ऊँची तथा बड़ी ही सुघड़ है। सुन्दर कान, कपोल और लाल लाल अधरोंकी छटा निराली ही है। बाँहें घुटनोंतक लंबी और तनिक मोटी हैं। कंधे ऊँचे और वक्ष स्थल लक्ष्मीजीका आश्रयस्थान है। शङ्खके समान उतार चढाववाला सुडौल गला, गहरी नाभि और त्रिवली युक्त उदर पीपलके पत्तेके समान शोभायमान है। स्थूल कटिप्रदेश और नितम्ब, हाथीकी सूँडके समान जाँघें, सुन्दर घुटने एवं पिंडलियाँ हैं। एड़ीके ऊपरकी गाँठें उभरी हुई हैं और लाल-लाल नखोंसे दिव्य ज्योतिर्मय किरणें फैल रही हैं। चरणकमलकी अंगुलियाँ और अंगूठे नयी और कोमल पँखुड़ियोंके समान सुशोभित हैं। अत्यन्त बहुमूल्य मणियोंसे जड़ा हुआ मुकुट, कड़े, बाजूबंद, करधनी, हार, नूपुर और कुण्डलोंसे तथा यज्ञोपवीतसे वह दिव्य मूर्ति अलङ्कृत हो रही है। एक हाथमें पद्म शोभा पा रहा है और शेष तीन हाथोंमें शङ्ख, चक्र और गदा, वक्ष स्थलपर श्रीवत्सका चिह्न, गलेमें कौस्तुभ मणि और वनमाला लटक रही हैं। नन्द सुनन्द आदि पार्षद अपने 'स्वामी', सनकादि परमर्षि 'परब्रह्म', ब्रह्मा महादेव आदि देवता 'सर्वेश्वर', मरीचि आदि नौ ब्राह्मण 'प्रजापति' और प्रह्लाद-नारद आदि भगवान्‌के परम प्रेमी भक्त तथा आठों वसु अपने परम प्रियतम 'भगवान्' समझकर भिन्न भिन्न भावोंके अनुसार निर्दोष वेदवाणीसे भगवान्‌की स्तुति कर रहे हैं। साथ ही लक्ष्मी, पुष्टि, सरस्वती, कान्ति, कीर्ति और तुष्टि (अर्थात् ऐश्वर्य, बल, ज्ञान, श्री, यश और वैराग्य—ये षडैश्वर्यरूप शक्तियाँ), इला (सन्धिनीरूप पृथ्वी शक्ति), ऊर्जा (लीलाशक्ति), विद्या अविद्या (जीवोंके मोक्ष और बन्धनमें कारणरूपा बहिरङ्ग शक्ति), ह्लादिनी, संवित् (अन्तरङ्गा शक्ति) और माया आदि शक्तियाँ मूर्तिमान् होकर उनकी सेवा कर रही हैं ॥ ३८–५५ ॥

भगवान्‌की यह झाँकी निरखकर अक्रूरजीका हृदय परमानन्दसे लबालब भर गया। उन्हें परम भक्ति प्राप्त हो गयी। सारा शरीर हर्षावेशसे पुलकित हो गया। प्रेमभावका उद्रेक होनेसे उनके नेत्र आँसूसे भर गये। अब अक्रूरजीने अपना साहस बटोरकर भगवान्‌के चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम किया और वे उसके बाद हाथ जोड़कर बड़ी सावधानीसे धीरे धीरे गद्गद स्वरसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे ॥ ५६ ५७ ॥

तथा कुछ चोर बन गये थे। इस प्रकार वे बेखटके खेलमें



रम गये थे। उसी समय ग्वालका वेष धारण करके व्योमासुर वहाँ आया। वह मायावियोंके आचार्य मयासुरका पुत्र था और स्वयं भी बड़ा मायावी था। वह खेलमें अधिकतर चोर ही बनता और भेड़ बने हुए बहुत-से बालकों-को चुराकर छिपा आता, वह महान् असुर बार-बार उन्हें ले जाकर एक पहाड़की गुफामें डाल देता और उसका दरवाजा एक बड़ी चट्टानसे ढक देता। इस प्रकार ग्वाल-बालोंमें केवल चार-पाँच बालक ही बच रहे। भक्तवत्सल भगवान् उसकी यह करतूत जान गये। जिस समय वह ग्वालबालोंको लिये जा रहा था, उसी समय उन्होंने, जैसे सिंह भेड़ियेको दबोच ले उसी प्रकार, उसे धर दबाया। व्योमासुर बड़ा बली था। उसने पहाड़के समान अपना



असली रूप प्रकट कर दिया और चाहा कि अपनेको छुड़ा लूँ। परन्तु भगवान्‌ने उसको इस प्रकार अपने शिकंजेमें फाँस लिया था कि वह अपनेको छुड़ा न सका। तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने दोनों हाथोंसे जकड़कर उसे जमीनपर गिरा दिया और पशुकी भाँति गला घोंटकर मार डाला। देवता-लोग विमानोंपर चढ़कर उनकी यह लीला देख रहे थे। अब भगवान् श्रीकृष्णने गुफाके दरवाजेपर लगे हुए चट्टानों-के पिहान तोड़ डाले और ग्वालबालोंको उस सङ्कटपूर्ण स्थानसे निकाल लिया। बड़े-बड़े देवता और ग्वालबाल उनकी स्तुति करने लगे और भगवान् श्रीकृष्ण व्रजमें चले आये ॥ २४—३३ ॥

अड़तीसवाँ अध्याय

अक्रूरजीकी व्रजयात्रा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! देवर्षि नारदकी प्रार्थना सुनकर इधर तो भगवान् श्रीकृष्णने मथुरा जानेका सङ्कल्प किया, और उधर महामति अक्रूरजी भी वह रात मथुरापुरीमें बिताकर प्रातःकाल होते ही रथपर सवार हुए और नन्दबाबाके गोकुलकी ओर चल दिये। परीक्षित्! इसमें सन्देह नहीं कि अक्रूरजी परम भाग्यवान् थे। तभी तो उन्हें व्रजकी यात्रा करनेका सुअवसर मिला और वे मार्गमें कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णकी परम प्रेममयी भक्तिसे परि-पूर्ण हो गये। वे इस प्रकार सोचने लगे—'मैंने ऐसा कौन-सा शुभ कर्म किया है, ऐसी कौन-सी श्रेष्ठ तपस्या की है अथवा किसी सत्पात्रको ऐसा कौन-सा महत्त्वपूर्ण दान दिया है, जिसके फलस्वरूप आज मुझे भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन होंगे? मैं बड़ा विषयी हूँ। मेरी एक-एक रग विषय-वासना-से अनुप्राणित है। ऐसी स्थितिमें, बड़े-बड़े सात्त्विक पुरुष भी जिनके गुणोंका ही गायन करते रहते हैं, दर्शन नहीं कर पाते—उन भगवान्‌के दर्शन मेरे लिये अत्यन्त दुर्लभ हैं,

लिये कल्पित हुई है। वृक्ष और ओषधियाँ रोम हैं। मेघ सिरके केश हैं। पर्वत आपके अस्थिसमूह और नख हैं। दिन और रात पलकोंका खोलना और मीचना है। ब्रह्मा जननेन्द्रिय हैं और वृष्टि ही आपका वीर्य है। अविनाशी भगवन्! जैसे जलमें बहुत-से जलचर जीव और गूलरके फलोंमें नन्हे-नन्हे मच्छर रहते हैं, उसी प्रकार उपासनाके लिये स्वीकृत आपके मनोमय पुरुषरूपमें अनेक प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरे हुए लोक और उनके लोकपाल कल्पित किये गये हैं। प्रभो! आप क्रीडा करनेके लिये पृथ्वीपर अनेकों रूप धारण करते हैं। वे सब अवतार लोगोंके शोक मोहको धो बहा देते हैं और फिर सब बड़े आनन्दसे आपके निर्मल यशका गायन करते हैं। प्रभो! आपने वेदों, ऋषियों, ओषधियों और सत्यव्रत आदिकी रक्षा दीक्षाके लिये मत्स्यरूप धारण किया था और प्रलयके समुद्रमें स्वच्छन्द विहार किया था। आपके मत्स्यरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही मधु और कैटभ नामके असुरोंका संहार करनेके लिये हयग्रीव अवतार ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको भी नमस्कार करता हूँ। आपने ही वह विशाल कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचलको धारण किया था, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही पृथ्वीके उद्धारकी लीला करनेके लिये वराहरूप स्वीकार किया था, आपको मेरे बार-बार नमस्कार। प्रह्लाद जैसे साधुजनोंका भेदभय मिटानेवाले प्रभो! आपके उस अलौकिक नृसिंहरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने वामनरूप ग्रहण करके अपने पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जब धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले घमंडी क्षत्रियोंकी भीड़ बहुत बढ़ गयी थी, उस समय उसको मटियामेट कर देनेके लिये आपने परशुरामरूप ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको नमस्कार करता हूँ। रावणका नाश करनेके लिये आपने रघुवंशमें भगवान् रामके रूपसे अवतार ग्रहण किया था। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। वैष्णव जनों तथा यदुवंशियोंका पालन-पोषण करनेके लिये आपने ही अपनेको वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट किया है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। दैत्य और दानवोंको मोहित करनेके लिये आप शुद्ध अहिंसामार्गके प्रवर्तक बुद्धका रूप ग्रहण करेंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। और पृथ्वीके क्षत्रिय जब म्लेच्छप्राय हो जायँगे, तब उनका नाश करनेके लिये आप ही कल्किके रूपमें अवतीर्ण होंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥११–२२॥

भगवन्! ये सब-के-सब जीव आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं और इस मोहके कारण ही 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' इस झूठे दुराग्रहमें फँसकर कर्मके पचड़ेमें परेशान हो रहे हैं—भटक रहे हैं। मेरे स्वामी! इसी प्रकार मैं भी देह गेह, पत्नी पुत्र और धन स्वजन आदिको सत्य समझकर उन्हींके मोहमें फँस रहा हूँ और भटक रहा हूँ। सच्ची बात तो यह है कि वे सब स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान ही असत् हैं, मिथ्या हैं। मेरी मूर्खता तो देखिये, प्रभो! मने अनित्य वस्तुओंको नित्य, अनात्माको आत्मा और दुःखको सुख समझ लिया। भला, इस उल्टी बुद्धिकी भी कोई सीमा है! इस प्रकार अज्ञानवश सांसारिक सुख दुःख आदि द्वन्द्वोंमें ही रम गया और यह बात बिल्कुल भूल गया कि आप ही हमारे सच्चे प्यारे हैं। जैसे कोई अनजान मनुष्य जलके लिये तालाबपर जाय और उसे उसीसे पैदा हुए सिवार आदि घासोंसे ढका देखकर ऐसा समझ ले कि यहाँ जल नहीं है, तथा सूर्यकी किरणोंमें झूठमूठ प्रतीत होनेवाले जलके लिये मृगतृष्णाकी ओर दौड़ पड़े, वैसे ही मैं अपनी ही मायासे छिपे रहनेके कारण आपको छोड़कर विषयोंमें सुखकी आशासे भटक रहा हूँ। मैं अविनाशी अक्षर वस्तुके ज्ञानसे रहित हूँ। इसीसे मेरे मनमें अनेक वस्तुओंकी कामना और उनके लिये कर्म करनेके सङ्कल्प उठते ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त ये इन्द्रियाँ भी, जो बड़ी प्रबल एवं दुर्दमनीय हैं, मनको मथ मथकर बलपूर्वक इधर उधर घसीट ले जाती हैं। इसीलिये इस मनको एकाग्र करना तो दूर रहा, मैं इसके लिये प्रयत्न भी नहीं कर पाता। अतः अब मैं आपके चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। यद्यपि आपके चरणोंकी शरण भी दुष्टोंके लिये दुष्प्राप्य ही है, फिर भी मैं ऐसा समझता हूँ कि प्रभो! आपने कृपा करके ही मुझे अपनी ओर खींच लिया है। पद्मनाभ प्रभो! जब जीवके जन्म-मृत्युरूप संसारके अन्तका समय आता है, तभी सत् पुरुषोंकी उपासनासे आपके चरण कमलोंमें बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है। सो ऐसी दुर्लभ वस्तु मुझे बिना किसी प्रयासके ही मिल गयी, यह आपका अनुग्रह नहीं तो और क्या है? प्रभो! आप केवल विज्ञानस्वरूप हैं, विज्ञानघन हैं। जितनी भी प्रतीतियाँ होती हैं, जितनी भी वृत्तियाँ हैं, उन सबके आप ही कारण और अधिष्ठान हैं। जीवके रूपमें एवं जीवोंके सुख दुःख आदिके निमित्त काल,

लिये कल्पित हुई है। वृक्ष और ओषधियाँ रोम हैं। मेघ सिरके केश हैं। पर्वत आपके अस्थिसमूह और नख हैं। दिन और रात पलकोंका खोलना और मीचना है। प्रजापति जननेन्द्रिय हैं और वृष्टि ही आपका वीर्य है। अविनाशी भगवन्! जैसे जलमें बहुत-से जलचर जीव और गूलरके फलोंमें नन्हे-नन्हे मच्छर रहते हैं, उसी प्रकार उपासनाके लिये स्वीकृत आपके मनोमय पुरुषरूपमें अनेक प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरे हुए लोक और उनके लोकपाल कल्पित किये गये हैं। प्रभो! आप क्रीडा करनेके लिये पृथ्वीपर अनेकों रूप धारण करते हैं। वे सब अवतार लोगोंके शोक-मोहको धो-बहा देते हैं और फिर सब बड़े आनन्दसे आपके निर्मल यशका गायन करते हैं। प्रभो! आपने वेदों, ऋषियों, ओषधियों और सत्यव्रत आदिकी रक्षा-दीक्षाके लिये मत्स्यरूप धारण किया था और प्रलयके समुद्रमें स्वच्छन्द विहार किया था। आपके मत्स्यरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही मधु और कैटभ नामके असुरोंका संहार करनेके लिये हयग्रीव अवतार ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको भी नमस्कार करता हूँ। आपने ही वह विशाल कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचलको धारण किया था, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही पृथ्वीके उद्धारकी लीला करनेके लिये वराहरूप स्वीकार किया था, आपको मेरे बार-बार नमस्कार। प्रह्लाद-जैसे साधुजनोंका भेदमय मिटानेवाले प्रभो! आपके उस अलौकिक नृसिंहरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने वामनरूप ग्रहण करके अपने पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जब धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले घमंडी क्षत्रियोंकी भीड़ बहुत बढ़ गयी थी, उस समय उसको मटियामेट कर देनेके लिये आपने परशुरामरूप ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको नमस्कार करता हूँ। रावणका नाश करनेके लिये आपने रघुवंशमें भगवान् रामके रूपसे अवतार ग्रहण किया था। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। वैष्णव-जनों तथा यदुवंशियोंका पालन-पोषण करनेके लिये आपने ही अपनेको वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट किया है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। दैत्य और दानवोंको मोहित करनेके लिये आप शुद्ध अहिंसामार्गके प्रवर्तक बुद्धका रूप ग्रहण करेंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। और पृथ्वीके क्षत्रिय जब म्लेच्छप्राय हो जायँगे, तब उनका नाश करनेके लिये आप ही कल्किके रूपमें अवतीर्ण होंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥११–२२॥

भगवन्! ये सब-के-सब जीव आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं और इस मोहके कारण ही 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' इस झूठे दुराग्रहमें फँसकर कर्मके पचड़ेमें परेशान हो रहे हैं—भटक रहे हैं। मेरे स्वामी! इसी प्रकार मैं भी देह-गेह, पत्नी-पुत्र और धन-स्वजन आदिको सत्य समझकर उन्हींके मोहमें फँस रहा हूँ और भटक रहा हूँ। सच्ची बात तो यह है कि ये सब स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान ही असत् हैं, मिथ्या हैं। मेरी मूर्खता तो देखिये, प्रभो! मैंने अनित्य वस्तुओंको नित्य, अनात्माको आत्मा और दुःखको सुख समझ लिया। भला, इस उलटी बुद्धिकी भी कोई सीमा है! इस प्रकार अज्ञानवश सांसारिक सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें ही रम गया और यह बात बिल्कुल भूल गया कि आप ही हमारे सच्चे प्यारे हैं। जैसे कोई अनजान मनुष्य जलके लिये तालाबपर जाय और उसे उसीसे पैदा हुए सिवार आदि घासोंसे ढका देखकर ऐसा समझ ले कि यहाँ जल नहीं है, तथा सूर्यकी किरणोंमें झूठमूठ प्रतीत होनेवाले जलके लिये मृगतृष्णाकी ओर दौड़ पड़े, वैसे ही मैं अपनी ही मायासे छिपे रहनेके कारण आपको छोड़कर विषयोंमें सुखकी आशासे भटक रहा हूँ। मैं अविनाशी अक्षर वस्तुके ज्ञानसे रहित हूँ। इसीसे मेरे मनमें अनेक वस्तुओंकी कामना और उनके लिये कर्म करनेके सङ्कल्प उठते ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त ये इन्द्रियाँ भी, जो बड़ी प्रबल एवं दुर्दमनीय हैं, मनको मथ-मथकर बलपूर्वक इधर-उधर घसीट ले जाती हैं। इसीलिये इस मनको एकाग्र करना तो दूर रहा, मैं इसके लिये प्रयत्न भी नहीं कर पाता। अतः अब मैं आपके चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। यद्यपि आपके चरणोंकी शरण भी दुष्टोंके लिये दुष्प्राप्य ही है, फिर भी मैं ऐसा समझता हूँ कि प्रभो! आपने कृपा करके ही मुझे अपनी ओर खींच लिया है। पद्मनाभ प्रभो! जब जीवके जन्म-मृत्युरूप संसारके अन्तका समय आता है, तभी संत पुरुषोंकी उपासनासे आपके चरण-कमलोंमें बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है। सो ऐसी दुर्लभ वस्तु मुझे बिना किसी प्रयासके ही मिल गयी, यह आपका अनुग्रह नहीं तो और क्या है! प्रभो! आप केवल विज्ञानस्वरूप हैं, विज्ञानघन हैं। जितनी भी प्रतीतियाँ होती हैं, जितनी भी वृत्तियाँ हैं, उन सबके आप ही कारण और अधिष्ठान हैं। जीवके रूपमें एवं जीवोंके सुख-दुःख आदिके निमित्त काल,

करूँगा। मेरे अहोभाग्य ! जब मैं उनके चरणकमलोंमें गिर जाऊँगा, तब वे अवश्य ही अपना करकमल मेरे सिरपर रख देंगे। अवश्य ही ऐसा करेंगे, क्योंकि वे मेरे हृदयकी बात जानते हैं न ! और उनके करकमल उन लोगोंको अभयदान देनेके लिये सर्वदा तैयार रहते हैं—अजी, पहलेसे ही दे रक्खा है—जो कालरूपी साँपके भयसे अत्यन्त घबड़ाकर उनकी शरण चाहते और शरणमें आ जाते हैं। तब क्या वे करकमल मुझे अभय नहीं करेंगे ? अवश्य करेंगे। इन्द्रने भगवान्‌के उन्हीं करकमलोंमें पूजाकी भेंट समर्पित की थी। वे तो देवता हैं, दैत्यराज बलिने भी वैसा ही किया था। इसीलिये भगवान्‌के करकमलोंने दोनोंको तीनों लोकोंका स्वामी बना दिया। भगवान्‌के उन्हीं करकमलोंने, जिनमेंसे दिव्य कमलकी-सी सुगन्ध आया करती है, अपने स्पर्शसे रासलीलाके समय व्रजयुवतियोंकी सारी थकान मिटा दी थी। धन्य है ! आज वे ही करकमल भगवान् मेरे सिरपर रक्खेंगे। परन्तु एक शङ्का है। मैं कंसका दूत हूँ। उसीके भेजनेसे उनके पास जा रहा हूँ। कहीं वे मुझे अपना शत्रु तो न समझ बैठेंगे ? राम राम ! वे ऐसा कदापि नहीं समझ सकते। यदि मैं शत्रु होऊँ, तो भी ऐसा नहीं समझेंगे; क्योंकि वे निर्विकार हैं, सम हैं, अच्युत हैं। परन्तु ऐसी शङ्का ही क्यों की जाय ? वे तो सारे विश्वके साक्षी हैं, सर्वज्ञ हैं; वे चित्तके बाहर भी हैं और भीतर भी। वे क्षेत्रज्ञरूपसे स्थित होकर अन्तःकरणकी एक-एक चेष्टाको अपनी निर्मल ज्ञानदृष्टि-के द्वारा देखते रहते हैं। तब मेरी शङ्का व्यर्थ है। हाँ, तो मैं उनके चरणोंमें हाथ जोड़कर विनीतभावसे खड़ा हो जाऊँगा। वे मुसकराते हुए दयाभरी स्निग्ध दृष्टिसे मेरी ओर देखेंगे। उस समय मेरे जन्म-जन्मके अशुभ संस्कार उसी क्षण नष्ट हो जायँगे। और मैं निःशङ्क होकर सदाके लिये परमानन्दमें मग्न हो जाऊँगा। मैं उनके कुटुम्बका हूँ। मेरे हृदयमें उनके प्रति कुछ-न-कुछ प्रेम भी अवश्य है। मैं उनका अनिष्ट नहीं चाहता, हित चाहता हूँ। और सच पूछो, तो उनके सिवा और कोई मेरा आराध्यदेव भी नहीं है। ऐसी स्थितिमें वे अपनी लंबी-लंबी बाँहोंसे पकड़कर मुझे अवश्य अपने हृदयसे लगा लेंगे। मेरा आलिङ्गन करेंगे। अहा ! उस समय मेरी तो देह पवित्र होगी ही, वह दूसरोंको पवित्र करनेवाली भी बन जायगी और उसी समय—उनका आलिङ्गन प्राप्त होते ही—मेरे कर्ममय बन्धन, जिनके कारण मैं अनादिकालसे भटक रहा हूँ, शिथिल हो जायँगे—टूट जायँगे। जब वे मेरा आलिङ्गन कर चुकेंगे और मैं हाथ जोड़, सिर झुकाकर उनके सामने खड़ा हो जाऊँगा तब वे मुझे 'चाचा अक्रूर !' इस प्रकार कहकर सम्बोधन करेंगे ! क्यों न हो, इसी पवित्र और मधुर यशका विस्तार करनेके लिये ही तो वे लीला कर रहे हैं। तब—बस, तब मेरा जीवन सफल हो जायगा। सच है; भगवान् श्रीकृष्णने जिसको अपनाया नहीं, जिसे आदर नहीं दिया—उसके उस जन्मको, जीवनको धिक्कार है। इसमें सन्देह नहीं कि वे सम हैं। न तो उन्हें कोई प्रिय है और न तो अप्रिय। न तो उनका कोई आत्मीय सुहृद् है और न तो शत्रु। उनकी उपेक्षाका पात्र भी कोई नहीं है। फिर भी जैसे कल्पवृक्ष अपने निकट आकर याचना करनेवालोंको उनकी मुँहमाँगी वस्तु देता है, वैसे ही भगवान् श्रीकृष्ण भी, जो उन्हें जिस प्रकार भजता है, उसे उसी रूपमें भजते हैं—वे अपने प्रेमी भक्तोंसे ही पूर्ण प्रेम करते हैं। क्यों न हो, वे तो स्वयं प्रेम हैं। इसके बाद क्या होगा ? मैं तो उनके सामने विनीत भावसे सिर झुकाकर खड़ा हो जाऊँगा और बलरामजी मुसकराते हुए मुझे अपने हृदयसे लगा लेंगे और फिर मेरे दोनों हाथ पकड़कर मुझे घरके भीतर ले जायँगे। वहाँ सब प्रकारसे मेरा सत्कार करेंगे। इसके बाद मुझसे पूछेंगे कि 'कंस हमारे घरवालोंके साथ कैसा व्यवहार करता है ?' ॥१५—२३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अक्रूरजी यही चिन्तन करते-करते इतने आत्मविस्मृत हो गये कि उन्हें जाने-आनेकी कुछ सुधि ही न रही। उनका रथ तब कहीं जाकर नन्दगाँव पहुँचा, जब सूर्य अस्ताचलपर पहुँच चुके थे। अक्रूरजीने देखा कि पृथ्वीमें भगवान्‌के चरणचिह्न स्पष्ट दीख रहे हैं। उनमें उभरे हुए कमल, यव, अङ्कुश आदिके चिह्नोंसे पहचाननेमें कोई कठिनाई नहीं होती। उन्होंने सोचा कि पृथ्वीकी शोभा बढ़ानेवाले ये वे ही चरण-चिह्न हैं, जिनकी पवित्र धूलिको ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े लोकपाल अपने मुकुटोंपर धारण करते हैं। उन चरणचिह्नों-के दर्शन करते ही अक्रूरजीके हृदयमें इतना आह्लाद हुआ कि वे अपनेको सँभाल न सके, विह्वल हो गये। प्रेमके आवेगसे उनका रोम-रोम खिल उठा, नेत्रोंमें आँसू भर आये और टपटप टपकने लगे। वे रथसे कूदकर उस धूलिमें लोटने लगे और कहने लगे—'अहो, यह हमारे प्रभुके चरणोंकी रज है। धन्य है यह रज और धन्य हूँ मैं !' परीक्षित् ! कंसके सन्देशसे लेकर यहाँतक अक्रूरजीके चित्तकी

लिये कल्पित हुई है। वृक्ष और ओषधियाँ रोम हैं। मेघ सिरके केश हैं। पर्वत आपके अस्थिसमूह और नख हैं। दिन और रात पलकोंका खोलना और मीचना है। प्रजापति जननेन्द्रिय हैं और वृष्टि ही आपका वीर्य है। अविनाशी भगवन्! जैसे जलमें बहुत-से जलचर जीव और गूलरके फलोंमें नन्हे-नन्हे मच्छर रहते हैं, उसी प्रकार उपासनाके लिये स्वीकृत आपके मनोमय पुरुषरूपमें अनेक प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरे हुए लोक और उनके लोकपाल कल्पित किये गये हैं। प्रभो! आप क्रीड़ा करनेके लिये पृथ्वीपर अनेकों रूप धारण करते हैं। वे सब अवतार लोगोंके शोक-मोहको धो बहा देते हैं और फिर सब बड़े आनन्दसे आपके निर्मल यशका गायन करते हैं। प्रभो! आपने वेदों, ऋषियों, ओषधियों और सत्यव्रत आदिकी रक्षा-दीक्षाके लिये मत्स्यरूप धारण किया था और प्रलयके समुद्रमें स्वच्छन्द विहार किया था। आपके मत्स्यरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही मधु और कैटभ नामके असुरोंका संहार करनेके लिये हयग्रीव अवतार ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको भी नमस्कार करता हूँ। आपने ही वह विशाल कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचलको धारण किया था, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही पृथ्वीके उद्धारकी लीला करनेके लिये वराहरूप स्वीकार किया था, आपको मेरे बार-बार नमस्कार। प्रह्लाद-जैसे साधुजनोंका भयभय मिटानेवाले प्रभो! आपके उस अलौकिक नृसिंहरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने वामनरूप ग्रहण करके अपने पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जब धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले घमंडी क्षत्रियोंकी भीड़ बहुत बढ़ गयी थी, उस समय उसको मटियामेट कर देनेके लिये आपने परशुरामरूप ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको नमस्कार करता हूँ। रावणका नाश करनेके लिये आपने रघुवंशमें भगवान् रामके रूपसे अवतार ग्रहण किया था। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। वैष्णवजनों तथा यदुवंशियोंका पालन-पोषण करनेके लिये आपने ही अपनेको वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट किया है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। दैत्य और दानवोंको मोहित करनेके लिये आप शुद्ध अहिंसामार्गके प्रवर्तक बुद्धका रूप ग्रहण करेंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। और पृथ्वीके क्षत्रिय जब म्लेच्छप्राय हो जायँगे, तब उनका नाश करनेके लिये आप ही कल्किके रूपमें अवतीर्ण होंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥११-२२॥

भगवन्! ये सब-के-सब जीव आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं और इस मोहके कारण ही 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' इस झूठे दुराग्रहमें फँसकर कर्मके पचड़ेमें परेशान हो रहे हैं—भटक रहे हैं। मेरे स्वामी! इसी प्रकार मैं भी देह, गेह, पत्नी-पुत्र और धन-स्वजन आदिको सत्य समझकर उन्हींके मोहमें फँस रहा हूँ और भटक रहा हूँ। सच्ची बात तो यह है कि ये सब स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान ही असत् हैं, मिथ्या हैं। मेरी मूर्खता तो देखिये, प्रभो! मैंने अनित्य वस्तुओंको नित्य, अनात्माको आत्मा और दुःखको सुख समझ लिया। भला, इस उलटी बुद्धिकी भी कोई सीमा है! इस प्रकार अज्ञानवश सांसारिक सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंमें ही रम गया और यह बात बिल्कुल भूल गया कि आप ही हमारे सच्चे प्यारे हैं। जैसे कोई अनजान मनुष्य जलके लिये तालाबपर जाय और उसे उसीसे पैदा हुए सिवार आदि घासोंसे ढका देखकर ऐसा समझ ले कि यहाँ जल नहीं है, तथा सूर्यकी किरणोंमें झूठमूठ प्रतीत होनेवाले जलके लिये मृगतृष्णाकी ओर दौड़ पड़े, वैसे ही मैं अपनी ही मायासे छिपे रहनेके कारण आपको छोड़कर विषयोंमें सुखकी आशासे भटक रहा हूँ। मैं अविनाशी अक्षर वस्तुके ज्ञानसे रहित हूँ। इसीसे मेरे मनमें अनेक वस्तुओंकी कामना और उनके लिये कर्म करनेके सङ्कल्प उठते ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त ये इन्द्रियाँ भी, जो बड़ी प्रबल एवं दुर्दमनीय हैं, मनको मथ-मथकर बलपूर्वक इधर-उधर घसीट ले जाती हैं। इसीलिये इस मनको एकाग्र करना तो दूर रहा, मैं इसके लिये प्रयत्न भी नहीं कर पाता। अतः अब मैं आपके चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। यद्यपि आपके चरणोंकी शरण भी दुष्टोंके लिये दुष्प्राप्य ही है, फिर भी मैं ऐसा समझता हूँ कि प्रभो! आपने कृपा करके ही मुझे अपनी ओर खींच लिया है। पद्मनाभ प्रभो! जब जीवके जन्म-मृत्युरूप संसारके अन्तका समय आता है, तभी सत्पुरुषोंकी उपासनासे आपके चरणकमलोंमें बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है। सो ऐसी दुर्लभ वस्तु मुझे बिना किसी प्रयासके ही मिल गयी, यह आपका अनुग्रह नहीं तो और क्या है? प्रभो! आप केवल विज्ञानस्वरूप हैं, विज्ञानघन हैं। जितनी भी प्रतीतियाँ होती हैं, जितनी भी वृत्तियाँ हैं, उन सबके आप ही कारण और अधिष्ठान हैं। जीवके रूपमें एवं जीवोंके सुख-दुःख आदिके निमित्त काल,

इलायची आदि) और सुगन्धित माला आदि देकर उन्हें अत्यन्त आनन्दित किया। इस प्रकार सत्कार हो चुकनेपर नन्दरायजीने उनके पास आकर पूछा—'अक्रूरजी! आपलोग निर्दयी कंसके जीते-जी किस प्रकार अपने दिन काटते हैं? अरे, वह तो मनुष्योंके लिये वैसा ही है, जैसा भेड़ोंके लिये कसाई! और तो क्या कहूँ, उस पापीने अपनी बिलखती हुई बहनके नन्हे-नन्हे बच्चोंको मार डाला। किसलिये? अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये! इससे बढ़कर दुष्टता क्या होगी? जिसने अपनी बहनकी ही यह दुर्दशा की उसकी प्रजा आपलोग भला, कैसे सुखी रह सकते हैं—हम तो इसका अनुमान भी नहीं कर सकते।' जब इस प्रकार नन्दबाबाने मधुर वाणीसे अक्रूरजीसे कुशल-मङ्गल पूछा और उनका सम्मान किया तब अक्रूरजीके शरीरमें रास्ता चलनेकी जो कुछ थकावट थी, वह सब दूर हो गयी। ३८–४३।

उन्तालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-बलरामका मथुरागमन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने अक्रूरजीका भलीभाँति सम्मान किया। वे आरामसे पलँगपर बैठ गये। उन्होंने मार्गमें जो-जो अभिलाषाएँ की थीं, वे सब पूरी हो गयीं। परीक्षित्! लक्ष्मीके आश्रय-स्थान भगवान् श्रीकृष्णके प्रसन्न होनेपर ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो प्राप्त नहीं हो सकती? फिर भी भगवान्के परमप्रेमी भक्तजन किसी भी वस्तुकी कामना नहीं करते। परीक्षित्! देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने सायङ्कालका भोजन करनेके बाद अक्रूरजीके पास जाकर अपने स्वजन-सम्बन्धियोंके साथ कंसके व्यवहार और उसके अगले कार्यक्रमके सम्बन्धमें पूछा ॥ १–३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—चाचाजी! आपका हृदय बड़ा शुद्ध है। आपको यात्रामें कोई कष्ट तो नहीं हुआ? स्वागत है। मैं आपकी मङ्गलकामना करता हूँ। मथुराके हमारे आत्मीय सुहृद्, कुटुम्बी तथा अन्य सम्बन्धी सब सकुशल और स्वस्थ हैं न? हमारा नाममात्रका मामा कंस तो हमारे कुलके लिये एक भयङ्कर व्याधि है। जबतक उसकी बढ़ती हो रही है, तबतक हम अपने वंशवालों और उनके बाल-बच्चोंका कुशल-मङ्गल क्या पूछें? चाचाजी! हमारे लिये यह बड़े खेदकी बात है कि मेरे ही कारण मेरे निरपराध और सदाचारी माता-पिताको अनेकों प्रकारकी यातनाएँ झेलनी पड़ीं—तरह-तरहके कष्ट उठाने पड़े। और तो क्या कहूँ, मेरे ही कारण उन्हें हथकड़ी-बेड़ीसे जकड़कर जेलमें डाल दिया गया तथा मेरे ही कारण उनके बच्चे भी मार डाले गये। मैं बहुत दिनोंसे चाहता था कि आपलोगोंमेंसे किसी-न-किसीका दर्शन हो। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज मेरी वह अभिलाषा पूरी हो गयी। चाचाजी! अब आप कृपा करके यह बतलाइये कि आपका शुभागमन किस निमित्तसे हुआ? ॥ ४–७ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान् श्रीकृष्णने अक्रूरजीसे इस प्रकार प्रश्न किया, तब उन्होंने बतलाया कि 'कंसने तो सभी यदुवंशियोंसे घोर वैर ठान रक्खा है। वह उनको मटियामेट कर डालना चाहता है। वसुदेवजीको तो वह पहले ही मार डालना चाहता था, परन्तु नारदजीके रोकनेसे रुक गया है। फिर भी उसकी नीयत अभी ठीक नहीं है। उसने सन्देश तो भेजा है धनुषयज्ञका, परन्तु मुझे दूत बनाकर भेजनेका अभिप्राय यही है कि वहाँ आपलोग चलें और वह पहलवानोंसे लड़वाकर आपको मरवा डाले। उसे अब नारदजीके द्वारा यह बात मालूम हो गयी है कि आप वास्तवमें वसुदेवजीके पुत्र हैं। अब आपकी जैसी इच्छा हो, कीजिये।' अक्रूरजीकी यह बात सुनकर विपक्षी शत्रुओंका दमन करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी हँसने लगे और इसके बाद उन्होंने अपने पिता नन्दजीको कंसकी आज्ञा सुना दी। तब नन्दबाबाने सब गोपोंको आज्ञा दी कि 'सारा गोरस एकत्रित करो। भेंटकी सामग्री ले लो और छकड़े जोड़ो। कल प्रातःकाल ही हम सब मथुराकी यात्रा करेंगे और वहाँ चलकर राजा कंसको गोरस देंगे। वहाँ एक बहुत बड़ा उत्सव हो रहा है। उसे देखनेके लिये देशकी सारी प्रजा इकट्ठी हो रही है। हमलोग भी उसे देखेंगे।' नन्दबाबाने गाँवके कोतवालके द्वारा यह घोषणा सारे व्रजमें करवा दी ॥ ८–१२ ॥

परीक्षित्! जब गोपियोंने सुना कि हमारे मनमोहन श्यामसुन्दर और गौरसुन्दर बलरामजीको मथुरा ले जानेके लिये अक्रूरजी व्रजमें आये हैं, तब उनके हृदयमें बड़ी

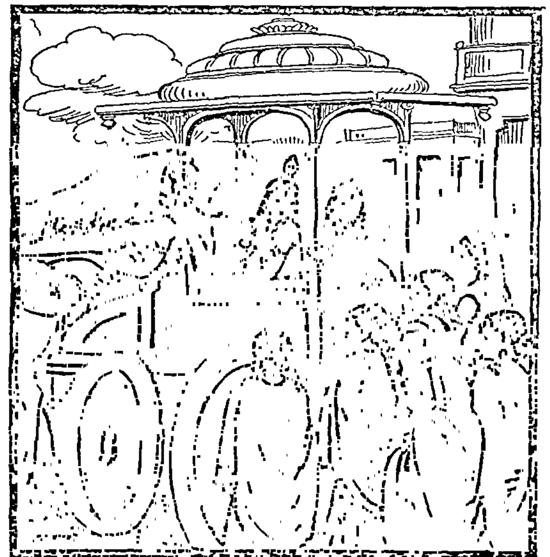
लिये कल्पित हुई है। वृक्ष और ओषधियाँ रोम हैं। मेघ सिरके केश हैं। पर्वत आपके अस्थिसमूह और नख हैं। दिन और रात पलकोंका खोलना और मीचना है। प्रजापति जननेन्द्रिय हैं और वृष्टि ही आपका वीर्य है। अविनाशी भगवन्! जैसे जलमें बहुत-से जलचर जीव और गूलरके फलोंमें नन्हे-नन्हे मच्छर रहते हैं, उसी प्रकार उपासनाके लिये स्वीकृत आपके मनोमय पुरुषरूपमें अनेक प्रकारके जीव-जन्तुओंसे भरे हुए लोक और उनके लोकपाल कल्पित किये गये हैं। प्रभो! आप क्रीड़ा करनेके लिये पृथ्वीपर अनेकों रूप धारण करते हैं। वे सब अवतार लोगोंके शोक मोहको धो बहा देते हैं और फिर सब बड़े आनन्दसे आपके निर्मल यशका गायन करते हैं। प्रभो! आपने वेदों, ऋषियों, ओषधियों और सत्यव्रत आदिकी रक्षा दीक्षाके लिये मत्स्यरूप धारण किया था और प्रलयके समुद्रमें स्वच्छन्द विहार किया था। आपके मत्स्यरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही मधु और कैटभ नामके असुरोंका संहार करनेके लिये हयग्रीव अवतार ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको भी नमस्कार करता हूँ। आपने ही वह विशाल कच्छपरूप ग्रहण करके मन्दराचलको धारण किया था, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने ही पृथ्वीके उद्धारकी लीला करनेके लिये वराहरूप स्वीकार किया था, आपको मेरे बार-बार नमस्कार। प्रह्लाद जैसे साधुजनोंका भेदभय मिटानेवाले प्रभो! आपके उस अलौकिक नृसिंहरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। आपने वामनरूप ग्रहण करके अपने पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। जब धर्मका उल्लङ्घन करनेवाले घमंडी क्षत्रियोंकी भीड़ बहुत बढ़ गयी थी, उस समय उसको मटियामेट कर देनेके लिये आपने परशुरामरूप ग्रहण किया था। मैं आपके उस रूपको नमस्कार करता हूँ। रावणका नाश करनेके लिये आपने रघुवंशमें भगवान् रामके रूपसे अवतार ग्रहण किया था। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। वैष्णव जनों तथा यदुवंशियोंका पालन-पोषण करनेके लिये आपने ही अपनेको वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इस चतुर्व्यूहके रूपमें प्रकट किया है। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। दैत्य और दानवोंको मोहित करनेके लिये आप शुद्ध अहिंसामार्गके प्रवर्तक बुद्धका रूप ग्रहण करेंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। और पृथ्वीके क्षत्रिय जब म्लेच्छप्राय हो जायँगे, तब उनका नाश करनेके लिये आप ही कल्किके रूपमें अवतीर्ण होंगे। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥११-२२॥

भगवन्! ये सब-के-सब जीव आपकी मायासे मोहित हो रहे हैं और इस मोहके कारण ही 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' इस झूठे दुराग्रहमें फँसकर कर्मके पचड़ेमें परेशान हो रहे हैं—भटक रहे हैं। मेरे स्वामी! इसी प्रकार मैं भी देह गेह, पत्नी पुत्र और धन स्वजन आदिको सत्य समझकर उन्हींके मोहमें फँस रहा हूँ और भटक रहा हूँ। सच्ची बात तो यह है कि ये सब स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान ही असत् हैं, मिथ्या हैं। मेरी मूर्खता तो देखिये, प्रभो! मैंने अनित्य वस्तुओंको नित्य, अनात्माको आत्मा और दुःखको सुख समझ लिया। भला, इस उल्टी बुद्धिकी भी कोई सीमा है! इस प्रकार अज्ञानवश सांसारिक सुख दुःख आदि द्वन्द्वोंमें ही रम गया और यह बात बिल्कुल भूल गया कि आप ही हमारे सच्चे प्यारे हैं। जैसे कोई अनजान मनुष्य जलके लिये तालाबपर जाय और उसे उसीसे पैदा हुए सिवार आदि घासोंसे ढका देखकर ऐसा समझ ले कि यहाँ जल नहीं है, तथा सूर्यकी किरणोंमें झूठमूठ प्रतीत होनेवाले जलके लिये मृगतृष्णाकी ओर दौड़ पड़े, वैसे ही मैं अपनी ही मायासे छिपे रहनेके कारण आपको छोड़कर विषयोंमें सुखकी आशासे भटक रहा हूँ। मैं अविनाशी अक्षर वस्तुके ज्ञानसे रहित हूँ। इसीसे मेरे मनमें अनेक वस्तुओंकी कामना और उनके लिये कर्म करनेके सङ्कल्प उठते ही रहते हैं। इसके अतिरिक्त ये इन्द्रियाँ भी, जो बड़ी प्रबल एवं दुर्दमनीय हैं, मनको मथ मथकर बलपूर्वक इधर उधर घसीट ले जाती हैं। इसीलिये इस मनको एकाग्र करना तो दूर रहा, मैं इसके लिये प्रयत्न भी नहीं कर पाता। अतः अब मैं आपके चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ। यद्यपि आपके चरणोंकी शरण भी दुष्टोंके लिये दुष्प्राप्य ही है, फिर भी मैं ऐसा समझता हूँ कि प्रभो! आपने कृपा करके ही मुझे अपनी ओर खींच लिया है। पद्मनाभ प्रभो! जब जीवके जन्म-मृत्युरूप संसारके अन्तका समय आता है, तभी संत पुरुषोंकी उपासनासे आपके चरणकमलोंमें बुद्धिकी प्रवृत्ति होती है। सो ऐसी दुर्लभ वस्तु मुझे बिना किसी प्रयासके ही मिल गयी, यह आपका अनुग्रह नहीं तो और क्या है? प्रभो! आप केवल विज्ञानस्वरूप हैं, विज्ञानघन हैं। जितनी भी प्रतीतियाँ होती हैं, जितनी भी वृत्तियाँ हैं, उन सबके आप ही कारण और अधिष्ठान हैं। जीवके रूपमें एवं जीवोंके सुख दुःख आदिके निमित्त काल,

मधुके समान मधुर वचनोंसे इनका चित्त बरबस अपनी ओर खींच लेंगी और ये उनकी सलज्ज मुसकान तथा विलासपूर्ण भाव-भंगीसे वहीं रम जायँगे। फिर हम गँवार ग्वालिनोंके पास ये लौटकर क्यों आने लगे? धन्य है। आज हमारे श्यामसुन्दरका दर्शन करके मथुराके दाशार्ह, भोज, अन्धक और वृष्णिवंशी यादवोंके नेत्र अवश्य ही परमानन्दका साक्षात्कार करेंगे। आज उनके यहाँ महान् उत्सव होगा। साथ ही जो लोग यहाँसे मथुरा जाते हुए रमारमण गुणसागर नटनागर देवकीनन्दन श्यामसुन्दरका मार्गमें दर्शन करेंगे, वे भी निहाल हो जायँगे॥ २२–२५॥

देखो सखी! यह अक्रूर कितना निठुर, कितना हृदयहीन है। इधर तो हम गोपियाँ इतनी दुःखित हो रही हैं और यह हमारे परम प्रियतम नन्ददुलारे श्यामसुन्दरको हमारी आँखोंसे ओझल करके बहुत दूर ले जाना चाहता है और दो बात कहकर हमें धीरज भी नहीं बँधाता, आश्वासन भी नहीं देता। सचमुच ऐसे अत्यन्त क्रूर पुरुषका 'अक्रूर' नाम नहीं होना चाहिये था। सखी! अक्रूरकी बात तो अलग रही। हमारे ये श्यामसुन्दर भी तो कम निठुर नहीं हैं। देखो-देखो, वे भी रथपर बैठ गये। और मतवाले गोपगण छकड़ोंद्वारा उनके साथ जानेके लिये कितनी जल्दी मचा रहे हैं। सचमुच ये मूर्ख हैं। और हमारे बड़े-बूढ़े! उन्होंने तो इन लोगोंकी जल्दबाजी देखकर उपेक्षा कर दी है कि 'जाओ जो मनमें आवे, करो।' उनसे भी श्यामसुन्दरके रोके जानेकी आशा नहीं रही। क्या करें? सब तो सब, स्वयं विधाता भी आज हमारे प्रतिकूल चेष्टा कर रहा है। चलो, हम स्वयं ही चलकर अपने प्राणप्यारे श्यामसुन्दरको रोकेंगी; कुलके बड़े-बूढ़े और बन्धुजन हमारा क्या कर लेंगे? अरी सखी! हम आधे क्षणके लिये भी प्राणवल्लभ नन्दनन्दनका संग छोड़नेमें असमर्थ थीं। आज हमारे दुर्भाग्यने हमारे सामने उनका वियोग उपस्थित कर दिया है, जिसके कारण हम अत्यन्त व्याकुल हो रही हैं। सखियो! जिनकी प्रेमभरी मनोहर मुसकान, रहस्यकी मीठी-मीठी बातें, विलासपूर्ण चितवन और प्रेमालिङ्गनसे हमने रासलीलाकी वे रात्रियाँ—जो बहुत विशाल थीं—एक क्षणके समान बिता दी थीं। अब भला, उनके बिना हम उन्हींकी दी हुई अपार विरहव्यथाका पार कैसे पावेंगी? एक दिनकी नहीं, प्रतिदिनकी बात है सायङ्कालमें प्रतिदिन वे ग्वालबालोंसे घिरे हुए बलरामजीके साथ वनसे गौएँ चराकर लौटते हैं। उनकी काली-काली घुँघराली अलकें और गलेके पुष्पहार गौओंके खुरकी रजसे ढके रहते हैं। वे बाँसुरी बजाते हुए अपनी मन्द-मन्द मुसकान और तिरछी चितवनसे देख-देखकर हमारे हृदयको वेध डालते हैं। उनके बिना भला, हम कैसे जी सकेंगी?॥ २६–३०॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! गोपियाँ वाणीसे तो इस प्रकार कह रही थीं; परन्तु उनका एक-एक मनोभाव भगवान् श्रीकृष्णका स्पर्श, उनका आलिङ्गन कर रहा था। वे विरहकी सम्भावनासे अत्यन्त व्याकुल हो गयीं और लाज छोड़कर 'हे गोविन्द! हे दामोदर! हे माधव!'—इस प्रकार ऊँची आवाजसे पुकार-पुकारकर सुललित स्वरसे रोने लगीं। गोपियाँ इस प्रकार रो रही थीं! रोते-रोते सारी रात बीत गयी, सूर्योदय हुआ। अक्रूरजी सन्ध्या-वन्दन आदि नित्य कर्मोंसे निवृत्त होकर रथपर सवार हुए और उसे हाँक ले चले। नन्दबाबा आदि गोपोंने भी दूध, दही, मक्खन, घी आदिसे भरे मटके और भेंटकी बहुत सी सामग्रियाँ ले लीं तथा वे छकड़ोंपर चढ़कर उनके पीछे-पीछे चले। इसी समय अनुरागके रंगमें रँगी हुई गोपियाँ अपने प्राणप्यारे श्रीकृष्णके पास गयीं और उनकी चितवन, मुसकान आदि निरखकर कुछ-कुछ सुखी हुईं। अब वे अपने प्रियतम



श्यामसुन्दरसे कुछ सन्देश पानेकी आकाङ्क्षासे वहीं खड़ी हो गयीं। यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि मेरे मथुरा जानेसे गोपियोंके हृदयमें बड़ी जलन हो रही है, वे सन्तप्त हो रही हैं, तब उन्होंने 'मैं आऊँगा' यह प्रेम-सन्देश देकर उन्हें धीरज बँधाया। गोपियोंको जबतक रथकी ध्वजा और पहियोंसे

उसी जलको स्वयं भगवान् शङ्करने अपने सिरपर धारण किया। यदुवंशशिरोमणे! आप देवताओंके भी आराध्यदेव हैं। जगत्के स्वामी हैं। आपके गुण और लीलाओंका श्रवण तथा कीर्तन बड़ा ही मङ्गलकारी है। उत्तम पुरुष आपके गुणोंका कीर्तन करते रहते हैं। नारायण! मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥ ११-१६॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—चाचाजी! मैं भाईजीके साथ आपके घर आऊँगा और अपने सभी सुहृद् स्वजनोंका प्रिय कार्य करूँगा। परन्तु पहले इस यदुवंशियोंके द्रोही कंसको मार तो लूँ॥ १७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर उनके परम प्रेमी भक्त अक्रूरजी कुछ अनमने-से हो गये। उन्होंने पुरीमें प्रवेश करके कंससे श्रीकृष्ण और बलरामके ले आनेका समाचार निवेदन किया और फिर अपने घर गये। दूसरे दिन तीसरे पहर बलरामजी और ग्वालबालोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णने मथुरापुरीको देखनेके लिये नगरमें प्रवेश किया। भगवान्‌ने देखा कि नगरके परकोटेमें स्फटिकमणि (बिल्लौर) के बहुत ऊँचे ऊँचे गोपुर (प्रधान दरवाजे) तथा घरोंमें भी बड़े-बड़े फाटक बने हुए हैं। उनमें सोनेके बड़े-बड़े किवाड़ लगे हैं और सोनेके ही तोरण (बाहरी दरवाजे) बने हुए हैं। नगरके चारों ओर ताँबे और पीतलकी चहारदीवारी बनी हुई है। खाईंके कारण और कहींसे उस नगरमें प्रवेश करना बहुत कठिन है। स्थान स्थानपर सुन्दर सुन्दर उद्यान और रमणीय उपवन (केवल स्त्रियोंके उपयोगमें आनेवाले बगीचे) शोभायमान हैं। बड़े अच्छे अच्छे चौराहे, धनियोंके महल, उन्हींके साथके बगीचे, सुनार आदि कारीगरोंकी दूकानें, मजदूरोंके आराम करनेके भवन, प्रजावर्गके सभा भवन (टाउनहाल) और दूसरे प्रकारकी इमारतें नगरकी शोभा बढ़ा रही हैं। वैदूर्य, हीरे, स्फटिक (बिल्लौर), नीलम, मूँगे, मोती और पन्ने आदिसे जड़े हुए छज्जे, चबूतरे, झरोखे एवं फर्श आदि जगमगा रहे हैं। उनपर बैठे हुए कबूतर, मोर आदि पक्षी भाँति भाँतिकी बोली बोल रहे हैं। सड़क, बाजार, गली एवं चौराहोंपर खूब छिड़काव किया गया है। स्थान स्थानपर फूलोंके गजरे, जवारे (जौके अङ्कुर), खील और चावल बिखरे हुए हैं। घरोंके दरवाजोंपर दही और चन्दन आदिसे चर्चित जलसे भरे हुए कलश रक्खे हैं और वे फूल, दीपक, नयी नयी कोंपलें, फलसहित केले और सुपारीके वृक्ष, छोटी छोटी झंडियों और रेशमी वस्त्रोंसे भलीभाँति सजाये हुए हैं॥ १८-२३॥

परीक्षित्! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने ग्वालबालोंके साथ राजपथसे मथुरा नगरीमें प्रवेश किया। उस समय नगरकी नारियाँ बड़ी उत्सुकतासे उन्हें देखनेके लिये झटपट अटारियोंपर चढ़ गयीं। किसी किसीने जल्दीके कारण अपने वस्त्र और गहने उलटे पहन लिये। किसीने भूलसे कुण्डल, कंगन आदि जोड़ेसे पहने जानेवाले आभूषणोंमेंसे एक ही पहना और चल पड़ी, कोई एक ही कानपर पत्ता बना पायी थी, तो किसीने एक ही पाँवमें पायजेब पहन रक्खा था। कोई एक ही आँखमें अञ्जन आँज पायी थी और दूसरीमें बिना आँजे ही चल पड़ी। कई रमणियाँ तो भोजन कर रही थीं, वे हाथका कौर फेंककर चल पड़ीं। सबका मन उत्साह और आनन्दसे भर रहा था। कोई कोई उबटन लगवा रही थीं, वे बिना स्नान किये ही दौड़ पड़ीं। जो सो रही थीं, वे कोलाहल सुनकर उठ खड़ी हुईं और उसी अवस्थामें दौड़ चलीं। जो माताएँ बच्चोंको दूध पिला रही थीं, वे उन्हें वहीं छोड़कर भगवान् श्रीकृष्णको देखनेके लिये चल पड़ीं। परीक्षित्! कमलनयन भगवान् श्रीकृष्ण मतवाले गजराजके समान बड़ी मस्तीसे चल रहे थे। उन्होंने लक्ष्मीको भी आनन्दित करनेवाले अपने श्यामसुन्दर विग्रहसे नगरनारियोंके नेत्रोंको बड़ा आनन्द दिया और अपनी विलासपूर्ण प्रगल्भ हँसी तथा प्रेमभरी चितवनसे उनके मन चुरा लिये। मथुराकी स्त्रियाँ बहुत दिनोंसे भगवान् श्रीकृष्णकी अद्भुत लीलाएँ सुनती आ



रही थीं। उनके चित्त चिरकालसे श्रीकृष्णके लिये चञ्चल,

चालीसवाँ अध्याय

अक्रूरजीके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति

अक्रूरजी बोले—प्रभो ! आप प्रकृति आदि समस्त कारणोंके परम कारण हैं। आप ही अविनाशी पुरुषोत्तम नारायण हैं तथा आपके ही नाभिकमलसे उन ब्रह्माजीका आविर्भाव हुआ है, जिन्होंने इस चराचर जगत्की सृष्टि की है। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्त्व, प्रकृति, पुरुष, मन, इन्द्रिय, सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषय और उनके अधिष्ठातृ देवता—यही सब चराचर जगत् तथा उसके व्यवहारके कारण हैं और ये सब-के-सब आपके ही अङ्गस्वरूप हैं। प्रकृति और प्रकृतिसे उत्पन्न होनेवाले समस्त पदार्थ 'इदंवृत्ति' के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं, इसलिये ये सब अनात्मा हैं। अनात्मा होनेके कारण जड हैं और इसलिये आपका स्वरूप नहीं जान सकते। क्योंकि आप तो स्वयं आत्मा ही ठहरे। ब्रह्माजी अवश्य ही आपके स्वरूप हैं। परन्तु वे प्रकृतिके गुण रजससे युक्त हैं, इसलिये वे भी आपकी प्रकृतिका और उसके गुणोंसे परेका स्वरूप नहीं



जान सकते। योगी-यति स्वयं सर्वशक्तिमान् पुरुषोत्तम आपकी उपासना तीन रूपोंमें करते हैं। एक तो अन्तःकरणमें स्थित 'अन्तर्यामी'के रूपमें; दूसरे समस्त भूत-भौतिक पदार्थोंमें व्याप्त 'परमात्मा'के रूपमें और तीसरे—सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि देवमण्डलमें स्थित 'इष्टदेवता'के रूपमें। वे सभी आपकी प्राप्तिके इच्छुक हैं। बहुत-से कर्मकाण्डी ब्राह्मण कर्ममार्गका उपदेश करनेवाली त्रयीविद्याके द्वारा, जो आपके इन्द्र, अग्नि आदि अनेक देववाचक नाम तथा वज्रहस्त, सप्तार्चि आदि अनेक रूप बतलाती है, बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं और उनसे आपकी ही उपासना करते हैं। बहुत-से ज्ञानी अपने समस्त कर्मोंका संन्यास कर देते हैं और शान्तभावमें स्थित हो जाते हैं। वे इस प्रकार ज्ञानयज्ञके द्वारा ज्ञानस्वरूप आपकी ही आराधना करते हैं। और भी बहुत-से संस्कारसम्पन्न अथवा शुद्धचित्त वैष्णवजन आपकी बतलायी हुई पाञ्चरात्र आदि विधियोंसे तन्मय होकर आपके चतुर्व्यूह आदि अनेक और नारायणरूप एक स्वरूपकी पूजा करते हैं। भगवन् ! दूसरे लोग शिवजीके द्वारा बतलाये हुए मार्गसे, जिसके आचार्य-भेदसे अनेक अवान्तर-भेद भी हैं, शिवस्वरूप आपकी ही पूजा करते हैं। स्वामिन् ! जो लोग दूसरे देवताओंकी भक्ति करते हैं और उन्हें आपसे भिन्न समझते हैं, वे सब भी वास्तवमें आपकी ही आराधना करते हैं। क्योंकि आप ही समस्त देवताओंके रूपमें हैं और सर्वेश्वर भी हैं। प्रभो ! जैसे पर्वतोंसे सब ओर बहुत-सी नदियाँ निकलती हैं और वर्षाके जलसे भरकर घूमती-घामती समुद्रमें प्रवेश कर जाती हैं, वैसे ही सभी प्रकारके उपासना-मार्ग घूम-घामकर देर-सबेर आपके ही पास पहुँच जाते हैं ॥१—१०॥

प्रभो ! आपकी प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व, रज और तम। ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण चराचर जीव प्राकृत हैं और जैसे वस्त्र सूत्रोंसे ओतप्रोत रहते हैं, वैसे ही ये सब प्रकृतिके उन गुणोंसे ही ओतप्रोत हैं। परन्तु आप सर्वस्वरूप होनेपर भी उनके साथ लिप्त नहीं हैं। आपकी दृष्टि निर्लिप्त है, क्योंकि आप समस्त वृत्तियोंके साक्षी हैं। यह गुणोंके प्रवाहसे होनेवाली सृष्टि अज्ञानमूलक है और वह देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि समस्त योनियोंमें व्याप्त है; परन्तु आप उससे सर्वथा अलग हैं। इसलिये मैं आपको नमस्कार करता हूँ। अग्नि आपका मुख है। पृथ्वी चरण है। सूर्य और चन्द्रमा नेत्र हैं। आकाश नाभि है। दिशाएँ कान हैं। स्वर्ग सिर है। देवेन्द्रगण भुजाएँ हैं। समुद्र कोख है। और यह वायु ही आपकी प्राणशक्तिके रूपमें उपासनाके

देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उन रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्रोंको उनके शरीरपर ऐसे ढंगसे सजा दिया कि वे सब ठीक-ठीक फब गये। अनेक प्रकारके वस्त्रोंसे विभूषित होकर दोनों भाई और भी अधिक शोभायमान हुए। ऐसे जान पड़ते, मानो उत्सवके समय श्वेत और श्याम गज-शावक भलीभाँति सजा दिये गये हों। भगवान् श्रीकृष्ण उस दर्जीपर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे इस लोकमें भरपूर धन सम्पत्ति, बल-ऐश्वर्य, अपनी स्मृति और दूरतक देखने-सुनने आदिकी इन्द्रियसम्बन्धी शक्तियाँ दीं और मृत्युके बादके लिये अपना सारूप्य मोक्ष भी दे दिया ॥४०-४२॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण सुदामा मालीके घर गये। दोनों भाइयोंको देखते ही सुदामा उठ खड़ा हुआ और पृथ्वीपर सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया। फिर उनको आसन-पर बैठाकर उनके पाँव पखारे, हाथ धुलाये और तदनन्तर



ग्वालबालोंके सहित सबकी फूलोंके हार, पान, चन्दन आदि सामग्रियोंसे विधिपूर्वक पूजा की। इसके पश्चात् उसने प्रार्थना की—'प्रभो! आप दोनोंके शुभागमनसे हमारा जन्म सफल हो गया। हमारा कुल पवित्र हो गया। आज हम पितर, ऋषि और देवताओंके ऋणसे मुक्त हो गये। वे हमपर परम सन्तुष्ट हैं। आप दोनों संसारके परम कारण हैं। आप संसारके अभ्युदय—उन्नति और निःश्रेयस—मोक्षके लिये ही इस पृथ्वीपर अपने ज्ञान, बल आदि अंशोंके साथ अवतीर्ण हुए हैं। यद्यपि आप प्रेम करनेवालोंसे ही प्रेम करते हैं, भजन करनेवालोंको ही भजते हैं—फिर भी आपकी दृष्टिमें विषमता नहीं है। क्योंकि आप सारे जगत्के परम सुहृद् और आत्मा हैं। आप समस्त प्राणियों और पदार्थोंमें समरूपसे स्थित हैं। मैं आपका दास हूँ। आप दोनों मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं आपलोगोंकी क्या सेवा करूँ। भगवन्! जीवपर आपका यह बहुत बड़ा अनुग्रह है, पूर्ण कृपा प्रसाद है कि आप उसे आज्ञा देकर किसी कार्यमें नियुक्त करते हैं।' परीक्षित्! सुदामा मालीने इस प्रकार प्रार्थना करनेके बाद भगवान्का अभिप्राय जानकर बड़े प्रेम और आनन्दसे भरकर अत्यन्त सुन्दर-सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्पोंसे गूँथे हुए हार उन्हें पहनाये। जब ग्वालबाल और बलरामजीके साथ भगवान् श्रीकृष्ण उन सुन्दर सुन्दर मालाओंसे अलङ्कृत हो चुके, तब उन्होंने प्रसन्न होकर विनीत और शरणागत सुदामाको श्रेष्ठ वर दिये। सच पूछो तो परीक्षित्! वे ही वर देनेवाले हैं। सुदामा मालीने उनसे यही वर माँगा कि 'प्रभो! आप ही समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं। सर्वस्वरूप आपके चरणोंमें मेरी अविचल भक्ति हो। आपके भक्तोंसे मेरा सौहार्द, मैत्रीका सम्बन्ध हो और समस्त प्राणियोंके प्रति अहैतुक दयाका भाव बना रहे।' भगवान् श्रीकृष्णने सुदामाको उसके माँगे हुए वर तो दिये ही—ऐसी लक्ष्मी भी दी, जो वंशपरम्पराके साथ-साथ बढ़ती जाय; और साथ ही बल, आयु, कीर्ति तथा कान्तिका भी वरदान दिया। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ वहाँसे विदा हुए॥ ४३-५२ ॥

बयालीसवाँ अध्याय

कुब्जापर कृपा, धनुषभङ्ग और कंसकी घबड़ाहट

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण जब अपनी मण्डलीके साथ राजमार्गसे आगे बढ़े, तब उन्होंने एक युवती स्त्रीको देखा। उसका मुँह तो सुन्दर था, परन्तु वह शरीरसे कुबड़ी थी। इसीसे उसका नाम पड़ गया था 'कुब्जा'। वह अपने हाथमें चन्दनका पात्र लिये हुए जा रही थी। भगवान् श्रीकृष्णने कृपापूर्वक उसे अपना स्वरूपभूतरस अथवा शृङ्गाररसका सुख देना चाहा। इसलिये उन्होंने हँसते हुए उससे पूछा

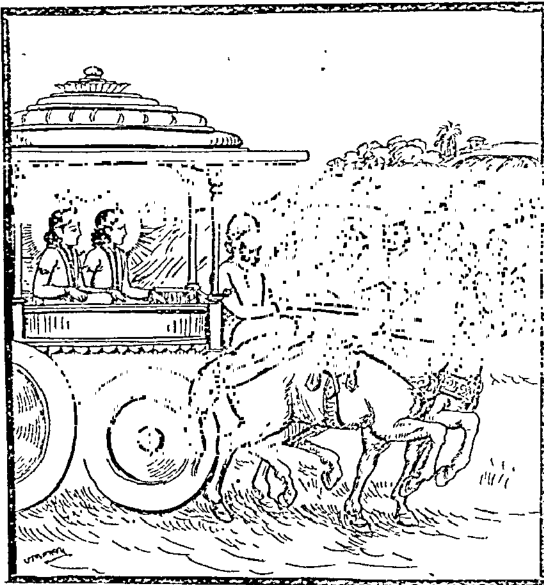
कर्म, स्वभाव तथा प्रकृतिके रूपमें भी आप ही हैं। तथा आप ही उन सबके नियन्ता भी हैं। आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवोंके आश्रय (सङ्कर्षण) हैं; तथा आप ही बुद्धि और मनके अधिष्ठातृ-देवता हृषीकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ॥२३—३०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका मथुराजीमें प्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अक्रूरजी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे। उन्हें भगवान् श्रीकृष्णने जलमें अपने दिव्यरूपके दर्शन कराये और फिर उसे छिपा लिया, ठीक वैसे ही जैसे कोई नट अभिनयमें कोई रूप दिखाकर फिर उसे परदेकी ओटमें छिपा दे। जब अक्रूरजीने देखा कि भगवान्‌का वह दिव्यरूप अन्तर्धान हो गया, तब वे जलसे बाहर निकल आये और फिर जल्दी-जल्दी सारे आवश्यक कर्म समाप्त करके रथपर चले आये। उस समय वे बहुत ही विस्मित हो रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने उनसे पूछा—'चाचाजी! आपने पृथ्वी, आकाश या जलमें कोई अद्भुत वस्तु देखी है क्या? क्योंकि आपकी आकृति देखनेसे ऐसा ही जान पड़ता है' ॥ १—३ ॥

अक्रूरजीने कहा—'प्रभो! पृथ्वी, आकाश या जलमें और सारे जगत्‌में जितने भी अद्भुत पदार्थ हैं, वे सब आपमें ही हैं। क्योंकि आप विश्वरूप हैं। जब मैं आपको



ही देख रहा हूँ तब ऐसी कौन-सी अद्भुत वस्तु रह जाती है, जो मैंने न देखी हो। भगवन्! जितनी भी अद्भुत वस्तुएँ हैं, वे पृथ्वीमें हों या जल अथवा आकाशमें—सब-की-सब जिनमें हैं, उन्हीं आपको मैं देख रहा हूँ! फिर भला, मैंने यहाँ अद्भुत वस्तु कौन-सी देखी?' गान्दिनीनन्दन अक्रूरजीने यह कहकर रथ हाँक दिया और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको लेकर दिन ढलते-ढलते वे मथुरापुरी जा पहुँचे। परीक्षित्! मार्गमें स्थान-स्थानपर गाँवोंके लोग मिलनेके लिये आते और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको देखकर आनन्दमग्न हो जाते। वे एकटक उनकी ओर देखने लगते, अपनी दृष्टि हटा न पाते। नन्दबाबा आदि व्रजवासी तो पहलेसे ही वहाँ पहुँच गये थे, और मथुरापुरीके बाहरी उपवन-में रुककर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके पास पहुँचकर जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने विनीतभावसे खड़े अक्रूरजीका हाथ अपने हाथमें लेकर मुसकराते हुए कहा—'चाचाजी! आप रथ लेकर पहले मथुरापुरीमें प्रवेश कीजिये और अपने घर जाइये। हमलोग पहले यहाँ उतरकर फिर नगर देखनेके लिये आयेंगे' ॥ ४—१० ॥

अक्रूरजीने कहा—'प्रभो! आप दोनोंके बिना मैं मथुरामें नहीं जा सकता। स्वामी! मैं आपका भक्त हूँ। भक्तवत्सल प्रभो! आप मुझे मत छोड़िये। भगवन्! आइये, चलें। मेरे परम हितैषी और सच्चे सुहृद् भगवन्! आप बलरामजी, ग्वालबालों तथा नन्दरायजी आदि आत्मीयोंके साथ चलकर हमारा घर सनाथ कीजिये। हम गृहस्थ हैं। आप अपने चरणोंकी धूलसे हमारा घर पवित्र कीजिये। आपके चरणोंकी धोवन (गङ्गाजल या चरणामृत) से अग्नि, देवता, पितर—सब-के-सब तृप्त हो जाते हैं। प्रभो! आपके युगल चरणोंको पखारकर महात्मा बलिने वह यश प्राप्त किया, जिसका गायन संत पुरुष करते हैं। केवल यश ही नहीं—उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य तथा वह गति प्राप्त हुई, जो अनन्य प्रेमी भक्तोंको प्राप्त होती है। आपके चरणोदक—गङ्गाजीने तीनों लोक पवित्र कर दिये। सचमुच वे मूर्तिमान् पवित्रता हैं। उन्हींके स्पर्शसे सगरके पुत्रोंको सद्गति प्राप्त हुई और

फूलोंके हार, चन्दन और तरह तरहकी भेंट-उपहारोंसे पूजन किया। उनके दर्शनमात्रसे स्त्रियोंके हृदयमें प्रेमका आवेग, मिलनकी आकाङ्क्षा जग उठती थी। यहाँतक कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध न रहती। उनके वस्त्र, जूड़े और कंगन ढीले पड़ जाते थे तथा वे चित्रलिखित मूर्तियोंके समान ज्यों-की त्यों खड़ी रह जाती थीं॥ ९–१४॥

इसके बाद भगवान् श्रीकृष्ण पुरवासियोंसे धनुषयज्ञका स्थान पूछते हुए रंगशालामें पहुँचे और वहाँ उन्होंने इन्द्रधनुषके समान एक अद्भुत धनुष देखा। उस धनुषमें बहुत सा धन लगाया गया था, अनेक बहुमूल्य अलङ्कारोंसे उसे सजाया गया था। उसकी खूब पूजा की गयी थी और बहुत-से सैनिक उसकी रक्षा कर रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने रक्षकोंके रोकनेपर भी उस धनुषको बलात्कारसे उठा लिया। भगवान्ने सबके देखते देखते उस धनुषको बायें हाथसे उठाया, उसपर



डोरी चढ़ायी और एक क्षणमें खींचकर बीचोबीचसे उसी प्रकार उसके दो टुकड़े कर डाले जैसे बहुत बलवान् मतवाला हाथी खेल ही खेलमें ईखको तोड़ डालता है। जब धनुष टूटा तब उसके शब्दसे आकाश, पृथ्वी और दिशाएँ भर गयीं, उसे सुनकर कंस भी भयभीत हो गया। अब धनुषके रक्षक आततायी असुर अपने सहायकोंके साथ बहुत ही बिगड़े। वे भगवान् श्रीकृष्णको घेरकर खड़े हो गये और उन्हें पकड़ लेनेकी इच्छासे चिल्लाने लगे—'पकड़ लो, बाँध लो, जाने न पावे।' उनका दुष्ट अभिप्राय जानकर बलरामजी और श्रीकृष्ण भी तनिक क्रोधित हो गये और उस धनुषके टुकड़ोंको उठाकर उन्हींसे उनका काम तमाम कर दिया। उन्हीं धनुषखण्डोंसे उन्होंने उन असुरोंकी सहायताके लिये कंसकी भेजी हुई सेनाका भी संहार कर डाला। इसके बाद वे यज्ञशालाके प्रधान द्वारसे होकर बाहर निकल आये और बड़े आनन्दसे मथुरापुरीकी शोभा देखते हुए विचरने लगे। जब नगरनिवासियोंने दोनों भाइयोंके इस अद्भुत पराक्रमकी बात सुनी और उनके तेज, साहस तथा अनुपम रूपको देखा तब उन्होंने यही निश्चय किया कि हो-न-हो ये दोनों कोई श्रेष्ठ देवता हैं। इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी पूरी स्वतन्त्रतासे मथुरापुरीमें विचरण करने लगे। जब सूर्यास्त हो गया तब दोनों भाई ग्वालबालोंसे घिरे हुए नगरसे बाहर अपने डेरेपर, जहाँ छकड़े थे, लौट आये। परीक्षित्! तीनों लोकोंके बड़े बड़े देवता चाहते थे कि लक्ष्मी हमें मिलें, परन्तु उन्होंने सबका परित्याग कर दिया और न चाहनेवाले भगवान्का वरण किया। उन्हींको सदाके लिये अपना निवासस्थान बना लिया। मथुरावासी उन्हीं पुरुष भूषण भगवान् श्रीकृष्णके अङ्ग अङ्गका सौन्दर्य देख रहे हैं। उनका कितना सौभाग्य है! व्रजमें भगवान्की यात्राके समय गोपियोंने विरहातुर होकर मथुरावासियोंके सम्बन्धमें जो-जो बातें कही थीं, वे सब यहाँ अक्षरशः सत्य हुईं। सचमुच वे परमानन्दमें मग्न हो गये। परीक्षित्! फिर हाथ पैर धोकर श्रीकृष्ण और बलरामजीने दूधसे बने हुए खीर आदि पदार्थोंका भोजन किया और कंस आगे क्या करना चाहता है, इस बातका पता लगाकर उस रातको वहीं आरामसे सो गये॥ १५–२५॥

जब कंसने सुना कि श्रीकृष्ण और बलरामने धनुष तोड़ डाला, रक्षकों तथा उनकी सहायताके लिये भेजी हुई सेनाका भी संहार कर डाला और यह सब उनके लिये केवल एक खिलवाड़ ही था—इसके लिये उन्हें कोई श्रम या कठिनाई नहीं उठानी पड़ी—तब वह बहुत ही डर गया, उस दुर्बुद्धिको बहुत देरतक नींद न आयी। परीक्षित्! उसे जाग्रत् अवस्थामें तथा स्वप्नमें भी बहुत से ऐसे अपशकुन हुए, जो उसकी मृत्युके सूचक थे। जाग्रत् अवस्थामें उसने देखा कि जल या दर्पणमें शरीरकी परछाईं तो पड़ती है, परन्तु सिर नहीं दिखायी देता, अँगुली आदिकी आड़ न होनेपर

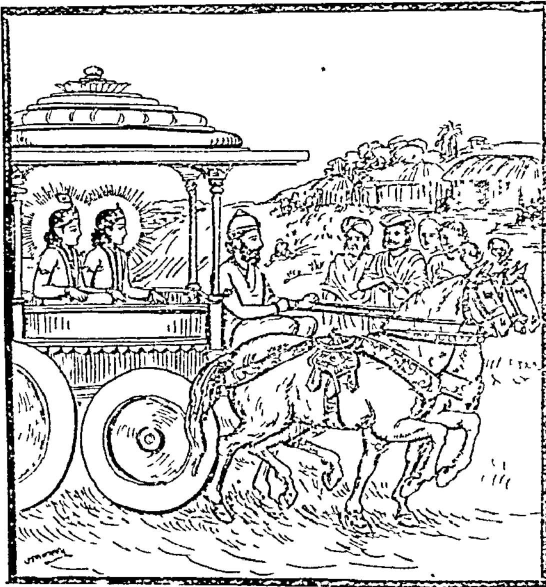
कर्म, स्वभाव तथा प्रकृतिके रूपमें भी आप ही हैं। तथा आप ही उन सबके नियन्ता भी हैं। आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवोंके आश्रय (सङ्कर्षण) हैं; तथा आप ही बुद्धि और मनके अधिष्ठातृ-देवता हृषीकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ॥२३–३०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका मथुराजीमें प्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अक्रूरजी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे। उन्हें भगवान् श्रीकृष्णने जलमें अपने दिव्यरूपके दर्शन कराये और फिर उसे छिपा लिया, ठीक वैसे ही जैसे कोई नट अभिनयमें कोई रूप दिखाकर फिर उसे परदेकी ओटमें छिपा दे। जब अक्रूरजीने देखा कि भगवान्‌का वह दिव्यरूप अन्तर्धान हो गया, तब वे जलसे बाहर निकल आये और फिर जल्दी-जल्दी सारे आवश्यक कर्म समाप्त करके रथपर चले आये। उस समय वे बहुत ही विस्मित हो रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने उनसे पूछा—'चाचाजी! आपने पृथ्वी, आकाश या जलमें कोई अद्भुत वस्तु देखी है क्या? क्योंकि आपकी आकृति देखनेसे ऐसा ही जान पड़ता है' ॥ १–३ ॥

अक्रूरजीने कहा—'प्रभो! पृथ्वी, आकाश या जलमें और सारे जगत्‌में जितने भी अद्भुत पदार्थ हैं, वे सब आपमें ही हैं। क्योंकि आप विश्वरूप हैं। जब मैं आपको



ही देख रहा हूँ तब ऐसी कौन-सी अद्भुत वस्तु रह जाती है, जो मैंने न देखी हो। भगवन्! जितनी भी अद्भुत वस्तुएँ हैं, वे पृथ्वीमें हों या जल अथवा आकाशमें—सब-की-सब जिनमें हैं, उन्हीं आपको मैं देख रहा हूँ! फिर भला, मैंने यहाँ अद्भुत वस्तु कौन-सी देखी?' गान्दिनीनन्दन अक्रूरजीने यह कहकर रथ हाँक दिया और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको लेकर दिन ढलते-ढलते वे मथुरापुरी जा पहुँचे। परीक्षित्! मार्गमें स्थान-स्थानपर गाँवोंके लोग मिलनेके लिये आते और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको देखकर आनन्दमग्न हो जाते। वे एकटक उनकी ओर देखने लगते, अपनी दृष्टि हटा न पाते। नन्दबाबा आदि व्रजवासी तो पहलेसे ही वहाँ पहुँच गये थे, और मथुरापुरीके बाहरी उपवन-में रुककर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके पास पहुँचकर जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने विनीतभावसे खड़े अक्रूरजीका हाथ अपने हाथमें लेकर मुसकराते हुए कहा—'चाचाजी! आप रथ लेकर पहले मथुरापुरीमें प्रवेश कीजिये और अपने घर जाइये। हमलोग पहले यहाँ उतरकर फिर नगर देखनेके लिये आयेंगे' ॥ ४–१० ॥

अक्रूरजीने कहा—'प्रभो! आप दोनोंके बिना मैं मथुरामें नहीं जा सकता। स्वामी! मैं आपका भक्त हूँ। भक्तवत्सल प्रभो! आप मुझे मत छोड़िये। भगवन्! आइये, चलें। मेरे परम हितैषी और सच्चे सुहृद् भगवन्! आप बलरामजी, ग्वालबालों तथा नन्दरायजी आदि आत्मीयोंके साथ चलकर हमारा घर सनाथ कीजिये। हम गृहस्थ हैं। आप अपने चरणोंकी धूलसे हमारा घर पवित्र कीजिये। आपके चरणोंकी धोवन (गङ्गाजल या चरणामृत) से अग्नि, देवता, पितर—सब-के-सब तृप्त हो जाते हैं। प्रभो! आपके युगल चरणोंको पखारकर महात्मा बलिने वह यश प्राप्त किया, जिसका गायन संत पुरुष करते हैं। केवल यश ही नहीं—उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य तथा वह गति प्राप्त हुई, जो अनन्य प्रेमी भक्तोंको प्राप्त होती है। आपके चरणोदक—गङ्गाजीने तीनों लोक पवित्र कर दिये। सचमुच वे मूर्तिमान् पवित्रता हैं। उन्हींके स्पर्शसे सगरके पुत्रोंको सद्गति प्राप्त हुई और

दाँत धरतीपर मारे। जब कुवलयापीड़का यह आक्रमण व्यर्थ हो गया, तब वह और भी चिढ़ गया। महावतोंकी प्रेरणासे वह क्रोधसे आगबबूला होकर भगवान् श्रीकृष्णपर टूट पड़ा। परीक्षित्! मधु दैत्यका संहार करनेवाले भगवान्के लिये वह हाथी क्या वस्तु है? उन्होंने जब उसे अपनी ओर झपटते देखा, तब उसके पास चले गये और अपने एक ही हाथसे उसकी सूँड़ पकड़कर उसे धरतीपर पटक दिया। उसके गिर जानेपर भगवान्ने सिंहके समान खेल ही-खेलमें उसे पैरोंसे दबाकर उसके



दाँत उखाड़ लिये और उन्हींसे हाथी और महावतोंका काम तमाम कर दिया॥ १-१४॥

परीक्षित्! मरे हुए हाथीको छोड़कर भगवान् श्रीकृष्णने हाथमें उसके दाँत लिये लिये ही रंगभूमिमें प्रवेश किया। उस समय उनकी शोभा देखने ही योग्य थी। उनके कंधेपर हाथीका दाँत रक्खा हुआ था, शरीर रक्त और मदकी बूँदोंसे सुशोभित था और मुखकमलपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम दोनोंके ही हाथोंमें कुवलयापीड़के बड़े-बड़े दाँत शस्त्रके रूपमें सुशोभित हो रहे थे और कुछ ग्वालबाल उनके साथ-साथ चल रहे थे। इस प्रकार उन्होंने रंगभूमिमें प्रवेश किया। जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजीके साथ रंगभूमिमें पधारे उस समय बड़े-बड़े पहलवान यह समझकर कि इनका शरीर वज्र सा कठोर है, रौद्र-रसका अनुभव करने लगे। साधारण मनुष्योंने ऐसा समझा कि ये कोई श्रेष्ठ मनुष्य हैं और इसी अवस्थामें उनकी विचित्रताओंका स्मरण करके अद्भुत रसकी अनुभूति की। स्त्रियोंको ऐसा जान पड़ा, मानो ये मूर्तिमान् कामदेव हैं। वे शृङ्गार-रसकी अनुभूतिमें तन्मय हो गयीं। ग्वालबाल उन्हें अपना स्वजन समझकर हँसने लगे और हास्य-रसका आस्वादन करने लगे। पृथ्वीके दुष्ट शासकोंने यह समझकर कि ये हमारा शासन करनेवाले—हमें दण्ड देनेवाले हैं, उनमें वीर-रसका अनुभव किया और माता पिताके समान बड़े-बूढ़ोंने उन्हें नन्हे नन्हे बच्चोंके रूपमें अखाड़ेमें आते देख करुणा रसकी अनुभूति प्राप्त की। कंसने समझा कि यह तो हमारा काल ही है और इस प्रकार वह भयानक रसकी अनुभूतिमें डूब गया। अज्ञानियोंने उनके शरीरपर हाथीका खून, मद आदि लगा देखकर विकृतरूपकी कल्पना की, इसलिये उन्हें वीभत्स रसका अनुभव हुआ। योगियोंने उन्हें परमतत्त्व समझकर शान्त रसका साक्षात्कार किया तथा भगवान्के भक्त और प्रेमी वृष्णिवंशी उन्हें अपना इष्टदेव समझकर प्रेम और भक्तिके रसमें डूब गये। परीक्षित्! वैसे तो कंस बड़ा धीर वीर था, फिर भी जब उसने देखा कि इन दोनोंने कुवलयापीड़को मार डाला, तब उसकी समझमें यह बात आयी कि इनको जीतना तो बहुत कठिन है। उस समय वह घबड़ा गया। श्रीकृष्ण और बलरामकी बाँहें बड़ी लंबी-लंबी थीं। पुष्पोंके हार, वस्त्र और आभूषण आदिसे उनका वेष विचित्र हो रहा था, ऐसा जान पड़ता था मानो उत्तम वेष धारण करके दो नट अभिनय करनेके लिये आये हों। जिनके नेत्र, एक बार उनपर पड़ जाते बस, लग ही जाते। यही नहीं, वे अपनी कान्तिसे उनका मन भी चुरा लेते। इस प्रकार दोनों रंगभूमिमें शोभायमान हुए। परीक्षित्! मञ्चोंपर जितने लोग बैठे थे—वे चाहे मथुराके नागरिक हों या उसके बाहरके—पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीको देखकर उन्हें इतना आनन्द हुआ कि उनके नेत्र और मुखकमल खिल उठे, उत्कण्ठासे भर गये। वे नेत्रोंके द्वारा उनकी मुख माधुरीका पान करते करते तृप्त ही न होते थे। उनकी सारी इन्द्रियाँ श्रीकृष्ण और बलरामकी ओर इस प्रकार लग रही थीं मानो वे उन्हें नेत्रोंसे पी रहे हों, जिह्वासे चाट

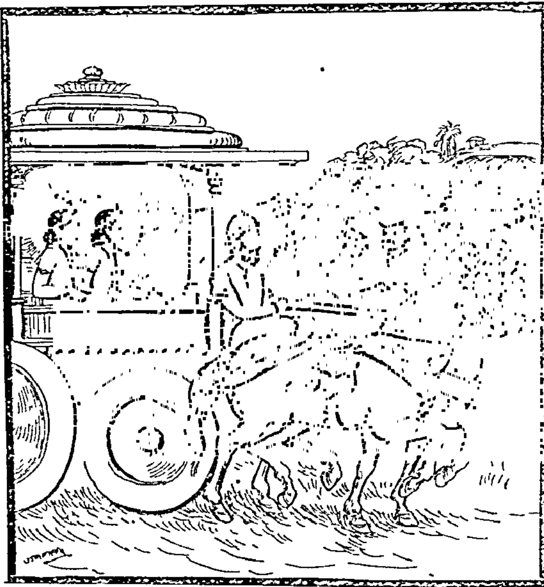
कर्म, स्वभाव तथा प्रकृतिके रूपमें भी आप ही हैं। तथा आप ही उन सबके नियन्ता भी हैं। आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवोंके आश्रय (सङ्कर्षण) हैं; तथा आप ही बुद्धि और मनके अधिष्ठातृ-देवता हृषीकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ॥२३—३०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका मथुराजीमें प्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अक्रूरजी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे। उन्हें भगवान् श्रीकृष्णने जलमें अपने दिव्यरूपके दर्शन कराये और फिर उसे छिपा लिया, ठीक वैसे ही जैसे कोई नट अभिनयमें कोई रूप दिखाकर फिर उसे परदेकी ओटमें छिपा दे। जब अक्रूरजीने देखा कि भगवान्का वह दिव्यरूप अन्तर्धान हो गया, तब वे जलसे बाहर निकल आये और फिर जल्दी-जल्दी सारे आवश्यक कर्म समाप्त करके रथपर चले आये। उस समय वे बहुत ही विस्मित हो रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने उनसे पूछा—'चाचाजी! आपने पृथ्वी, आकाश या जलमें कोई अद्भुत वस्तु देखी है क्या? क्योंकि आपकी आकृति देखनेसे ऐसा ही जान पड़ता है' ॥ १—३ ॥

अक्रूरजीने कहा—'प्रभो! पृथ्वी, आकाश या जलमें और सारे जगत्में जितने भी अद्भुत पदार्थ हैं, वे सब आपमें ही हैं। क्योंकि आप विश्वरूप हैं। जब मैं आपको



ही देख रहा हूँ तब ऐसी कौन-सी अद्भुत वस्तु रह जाती है, जो मैंने न देखी हो। भगवन्! जितनी भी अद्भुत वस्तुएँ हैं, वे पृथ्वीमें हों या जल अथवा आकाशमें—सब-की-सब जिनमें हैं, उन्हीं आपको मैं देख रहा हूँ! फिर भला, मैंने यहाँ अद्भुत वस्तु कौन-सी देखी?' गान्दिनीनन्दन अक्रूरजीने यह कहकर रथ हाँक दिया और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको लेकर दिन ढलते-ढलते वे मथुरापुरी जा पहुँचे। परीक्षित्! मार्गमें स्थान-स्थानपर गाँवोंके लोग मिलनेके लिये आते और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको देखकर आनन्दमग्न हो जाते। वे एकटक उनकी ओर देखने लगते, अपनी दृष्टि हटा न पाते। नन्दबाबा आदि व्रजवासी तो पहलेसे ही वहाँ पहुँच गये थे, और मथुरापुरीके बाहरी उपवन-में रुककर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके पास पहुँचकर जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने विनीतभावसे खड़े अक्रूरजीका हाथ अपने हाथमें लेकर मुसकराते हुए कहा—'चाचाजी! आप रथ लेकर पहले मथुरापुरीमें प्रवेश कीजिये और अपने घर जाइये। हमलोग पहले यहाँ उतरकर फिर नगर देखनेके लिये आयेंगे' ॥ ४—१० ॥

अक्रूरजीने कहा—'प्रभो! आप दोनोंके बिना मैं मथुरामें नहीं जा सकता। स्वामी! मैं आपका भक्त हूँ। भक्तवत्सल प्रभो! आप मुझे मत छोड़िये। भगवन्! आइये, चलें। मेरे परम हितैषी और सच्चे सुहृद् भगवन्! आप बलरामजी, ग्वालबालों तथा नन्दरायजी आदि आत्मीयोंके साथ चलकर हमारा घर सनाथ कीजिये। हम गृहस्थ हैं। आप अपने चरणोंकी धूलसे हमारा घर पवित्र कीजिये। आपके चरणोंकी धोवन (गङ्गाजल या चरणामृत) से अग्नि, देवता, पितर—सब-के-सब तृप्त हो जाते हैं। प्रभो! आपके युगल चरणोंको पखारकर महात्मा बलिने वह यश प्राप्त किया, जिसका गायन संत पुरुष करते हैं। केवल यश ही नहीं—उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य तथा वह गति प्राप्त हुई, जो अनन्य प्रेमी भक्तोंको प्राप्त होती है। आपके चरणोदक—गङ्गाजीने तीनों लोक पवित्र कर दिये। सचमुच वे मूर्तिमान् पवित्रता हैं। उन्हींके स्पर्शसे सगरके पुत्रोंको सद्गति प्राप्त हुई और

चौवालीसवाँ अध्याय

चाणूर, मुष्टिक आदि पहलवानोंका तथा कंसका उद्धार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! कुश्ती लड़नेके सम्बन्धमें चाणूरने जैसी बात कही थी, भगवान् श्रीकृष्णने भी उसे स्वीकार कर लिया। जोड़ बद दिये जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण चाणूरसे और बलरामजी मुष्टिकसे जा भिड़े। वे लोग एक दूसरेको जीत लेनेकी इच्छासे हाथ से हाथ बाँधकर और पैरों मे पैर अड़ाकर बलपूर्वक अपनी-अपनी ओर खींचने लगे। वे पंजोंसे पंजे, घुटनोंसे घुटने, माथेसे माथा और छाती-से छाती भिड़ाकर एक-दूसरेपर चोट करने लगे। इस प्रकार दाँव पेच करते करते अपने अपने जोड़ीदारको पकड़कर इधर उधर घुमाते, दूर ढकेल देते, जोरसे जकड़ लेते, लिपट जाते, उठाकर पटक देते, छूटकर निकल भागते और कभी छोड़कर पीछे हट जाते थे। इस प्रकार एक-दूसरेको रोकते, प्रहार करते और अपने जोड़ीदारको पछाड़ देनेकी चेष्टा करते। कभी कोई नीचे गिर जाता, तो दूसरा उसे घुटनों और पैरोंमें दबाकर उठा लेता। हाथोंसे पकड़कर ऊपर ले जाता। गलेमें लिपट जानेपर ढकेल देता और आवश्यकता होनेपर हाथ पाँव इकट्ठे करके गाँठ बाँध देता ॥ १–५ ॥

परीक्षित् ! इस दगलको देखनेके लिये नगरकी बहुत सी महिलाएँ भी आयी हुई थीं। उन्होंने जब देखा कि बड़े बड़े पहलवानोंके साथ ये छोटे-छोटे बलहीन बालक लड़ाये जा रहे हैं, तब वे अलग-अलग टोलियाँ बनाकर करुणावश आपसमें बातचीत करने लगीं। वे कहने लगीं—'यहाँ राजा कंसके सभासद् बड़ा अन्याय और अधर्म कर रहे हैं। कितने खेदकी बात है कि राजाके सामने ही ये बली पहलवानों और निर्बल बालकोंके युद्धका अनुमोदन करते हैं। बहिन ! देखो, इन पहलवानोंका एक एक अङ्ग वज्रके समान कठोर है। ये देखनेमें बड़े भारी पर्वत-से मालूम होते हैं। परन्तु श्रीकृष्ण और बलराम अभी जवान भी नहीं हुए हैं। किशोर अवस्था है। इनका एक एक अङ्ग अत्यन्त सुकुमार है। कहाँ ये और कहाँ वे ! दोनोंमें महान् अन्तर है ! जितने लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं, देख रहे हैं, उन्हें अवश्य अवश्य धर्मोल्लङ्घनका पाप लगेगा। सखी ! अब हमें भी यहाँसे चल देना चाहिये। जहाँ अधर्मकी प्रधानता हो, वहाँ कभी न रहे, यही शास्त्रका नियम है। देखो, शास्त्र कहता है कि सभासदोंके दोषोंको जानते हुए, सभामें जाना ही ठीक नहीं है। बुद्धिमान् पुरुषको यथासम्भव ऐसी सभाओंसे बचना ही चाहिये, क्योंकि वहाँ जाकर उन अवगुणोंको कहना, चुप रह जाना अथवा मैं नहीं जानता ऐसा कह देना—तीनों ही बातें मनुष्यको दोषभागी बनाती हैं। देखो, देखो, श्रीकृष्ण शत्रुके चारों ओर पैंतरा बदल रहे हैं ! उनके मुखपर पसीनेकी बूँदें ठीक वैसे ही शोभा दे रही हैं, जैसे कमलकोशपर जलकी बूँदें।' किसीने कहा—'सखियो ! देखो, देखो, बलरामजीका मुँह कैसा शोभायमान हो रहा है ! क्या तुम नहीं देख रही हो कि वे मुष्टिकपर क्रोधित हैं ? इसके कारण उनकी आँखें कुछ लाल लाल हो रही हैं, फिर भी मुखपर मनोहर हास्य रेखा स्पष्ट दीख रही है। सखी ! सच पूछो तो व्रजभूमि ही परम पवित्र और धन्य है। क्योंकि वहाँ ये पुरुषोत्तम मनुष्यके वेषमें छिपकर रहते हैं। स्वय भगवान् शङ्कर और लक्ष्मीजी जिनके चरणोंकी पूजा करती हैं, वे ही प्रभु वहाँ रग बिरगे जगली पुष्पोंकी माला धारण कर लेते हैं तथा बलरामजीके साथ बाँसुरी बजाते, गौएँ चराते और तरह-तरहके खेल खेलते हुए आनन्दसे विचरते हैं। सखी ! पता नहीं, गोपियोंने कौन सी तपस्या की थी, जो नेत्रोंके दोनोंसे नित्य निरन्तर इनकी रूप माधुरीका पान करती रहती हैं। इनका रूप क्या है, लावण्यका सार ! ससारमें या उससे परे किसीका भी रूप इनके रूपके समान नहीं है, फिर बढकर होनेकी तो बात ही क्या है ! सो भी किसीके सँवारने-सजानेसे नहीं, गहने कपड़ेसे भी नहीं, बल्कि स्वयसिद्ध है। इस रूपको देखते देखते तृप्ति भी नहीं होती। क्योंकि यह प्रतिक्षण नया होता जाता है, नित्य नूतन है। समग्र यश, सौन्दर्य और ऐश्वर्य इसीके आश्रित हैं। सखियो ! परन्तु इसका दर्शन तो बड़ा ही दुर्लभ है। वह तो गोपियोंके ही भाग्यमें बदा है। सखी ! व्रजकी गोपियाँ धन्य हैं। निरन्तर श्रीकृष्णमें ही चित्त लगा रहनेके कारण प्रेमभरे हृदयसे, आँसुओंके कारण गद्गद कण्ठसे वे इन्हींकी लीलाओंका गायन करती रहती हैं। वे दूध दुहते, दही मथते, धान कूटते, घर लीपते, बालकोंको झूला झुलाते, रोते हुए बालकोंको चुप कराते, उन्हें नहलाते धुलाते, घरोंको झाड़ते-बुहारते—कहाँतक कहें, सारे काम काज करते समय श्रीकृष्णके गुणोंके गायनमें ही मस्त रहती हैं। ये श्रीकृष्ण जब प्रातःकाल गौओंको

कर्म, स्वभाव तथा प्रकृतिके रूपमें भी आप ही हैं। तथा आप ही उन सबके नियन्ता भी हैं। आपकी शक्तियाँ अनन्त हैं। आप स्वयं ब्रह्म हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप ही वासुदेव, आप ही समस्त जीवोंके आश्रय (सङ्कर्षण) हैं; तथा आप ही बुद्धि और मनके अधिष्ठातृ-देवता हृषीकेश (प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) हैं। मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये ॥२३—३०॥

इकतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्णका मथुराजीमें प्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अक्रूरजी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे। उन्हें भगवान् श्रीकृष्णने जलमें अपने दिव्यरूपके दर्शन कराये और फिर उसे छिपा लिया, ठीक वैसे ही जैसे कोई नट अभिनयमें कोई रूप दिखाकर फिर उसे परदेकी ओटमें छिपा दे। जब अक्रूरजीने देखा कि भगवान्‌का वह दिव्यरूप अन्तर्धान हो गया, तब वे जलसे बाहर निकल आये और फिर जल्दी-जल्दी सारे आवश्यक कर्म समाप्त करके रथपर चले आये। उस समय वे बहुत ही विस्मित हो रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णने उनसे पूछा—'चाचाजी! आपने पृथ्वी, आकाश या जलमें कोई अद्भुत वस्तु देखी है क्या? क्योंकि आपकी आकृति देखनेसे ऐसा ही जान पड़ता है' ॥१—३॥

अक्रूरजीने कहा—'प्रभो! पृथ्वी, आकाश या जलमें और सारे जगत्‌में जितने भी अद्भुत पदार्थ हैं, वे सब आपमें ही हैं। क्योंकि आप विश्वरूप हैं। जब मैं आपको

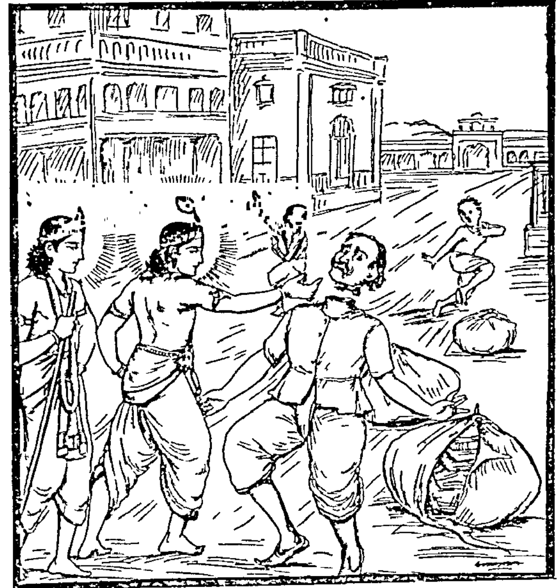


ही देख रहा हूँ तब ऐसी कौन-सी अद्भुत वस्तु रह जाती है, जो मैंने न देखी हो। भगवन्! जितनी भी अद्भुत वस्तुएँ हैं, वे पृथ्वीमें हों या जल अथवा आकाशमें—सब-की-सब जिनमें हैं, उन्हीं आपको मैं देख रहा हूँ! फिर भला, मैंने यहाँ अद्भुत वस्तु कौन-सी देखी?' गान्दिनीनन्दन अक्रूरजीने यह कहकर रथ हाँक दिया और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको लेकर दिन ढलते-ढलते वे मथुरापुरी जा पहुँचे। परीक्षित्! मार्गमें स्थान-स्थानपर गाँवोंके लोग मिलनेके लिये आते और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीको देखकर आनन्दमग्न हो जाते। वे एकटक उनकी ओर देखने लगते, अपनी दृष्टि हटा न पाते। नन्दबाबा आदि व्रजवासी तो पहलेसे ही वहाँ पहुँच गये थे, और मथुरापुरीके बाहरी उपवन-में रुककर उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके पास पहुँचकर जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णने विनीतभावसे खड़े अक्रूरजीका हाथ अपने हाथमें लेकर मुसकराते हुए कहा—'चाचाजी! आप रथ लेकर पहले मथुरापुरीमें प्रवेश कीजिये और अपने घर जाइये। हमलोग पहले यहाँ उतरकर फिर नगर देखनेके लिये आयेंगे' ॥४—१०॥

अक्रूरजीने कहा—'प्रभो! आप दोनोंके बिना मैं मथुरामें नहीं जा सकता। स्वामी! मैं आपका भक्त हूँ। भक्तवत्सल प्रभो! आप मुझे मत छोड़िये। भगवन्! आइये, चलें। मेरे परम हितैषी और सच्चे सुहृद् भगवन्! आप बलरामजी, ग्वालबालों तथा नन्दरायजी आदि आत्मीयोंके साथ चलकर हमारा घर सनाथ कीजिये। हम गृहस्थ हैं। आप अपने चरणोंकी धूलसे हमारा घर पवित्र कीजिये। आपके चरणोंकी धोवन (गङ्गाजल या चरणामृत) से अग्नि, देवता, पितर—सब-के-सब तृप्त हो जाते हैं। प्रभो! आपके युगल चरणोंको पखारकर महात्मा बलिने वह यश प्राप्त किया, जिसका गायन संत पुरुष करते हैं। केवल यश ही नहीं—उन्हें अतुलनीय ऐश्वर्य तथा वह गति प्राप्त हुई, जो अनन्य प्रेमी भक्तोंको प्राप्त होती है। आपके चरणोदक—गङ्गाजीने तीनों लोक पवित्र कर दिये। सचमुच वे मूर्तिमान् पवित्रता हैं। उन्हींके स्पर्शसे सगरके पुत्रोंको सद्गति प्राप्त हुई और

व्याकुल हो रहे थे। आज उन्होंने उन्हें देखा। भगवान् श्रीकृष्णने भी अपनी प्रेमभरी चितवन और मन्द मुसकानकी सुधासे सींचकर उनका सम्मान किया। परीक्षित्! उन स्त्रियोंने नेत्रोंके द्वारा भगवान्‌को अपने हृदयमें ले जाकर उनके आनन्दमय स्वरूपका आलिङ्गन किया। उनका शरीर पुलकित हो गया और बहुत दिनोंकी विरह-व्याधि शान्त हो गयी। मथुराकी नारियाँ अपने-अपने महलोंकी अटारियोंपर चढ़कर बलराम और श्रीकृष्णपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगीं। परीक्षित्! उस समय उन स्त्रियोंके मुखकमल प्रेमके आवेगसे खिल रहे थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंने स्थान-स्थानपर दही, अक्षत, जलसे भरे पात्र, फूलोंके हार, चन्दन और भेंटकी सामग्रियोंसे आनन्दमग्न होकर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीकी पूजा की। भगवान्‌को देखकर सभी पुरवासी आपसमें कहने लगे—'धन्य है! धन्य है!' गोपियोंने ऐसी कौन-सी महान् तपस्या की है, जिसके कारण वे मनुष्यमात्रको परमानन्द देनेवाली इन दोनों मनोहर मूर्तियोंको देखती रहती हैं॥ २४—३१॥

इसी समय भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि एक धोबी, जो कपड़े रँगनेका भी काम करता था, उनकी ओर आ रहा है। भगवान् श्रीकृष्णने उससे धुले हुए उत्तम-उत्तम कपड़े माँगे। भगवान्‌ने कहा—'भाई! तुम हमें ऐसे वस्त्र दो, जो हमारे शरीरमें पूरे-पूरे आ जायँ। वास्तवमें हमलोग उन वस्त्रोंके अधिकारी हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि तुम हमलोगोंको वस्त्र दोगे, तो तुम्हारा परम कल्याण होगा।' परीक्षित्! भगवान् सर्वत्र परिपूर्ण हैं। सब कुछ उन्हींका है। फिर भी उन्होंने इस प्रकार माँगनेकी लीला की। परन्तु वह मूर्ख राजा कंसका सेवक होनेके कारण मतवाला हो रहा था। भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌को देना तो दूर रहा, उसने क्रोधमें भरकर आक्षेप करते हुए कहा—'तुमलोग रहते हो सदा पहाड़ और जंगलोंमें। क्या वहाँ ऐसे ही वस्त्र पहनते हो? तुमलोगोंका हौसला बढ़ गया है। तभी तो ऐसी बढ़-बढ़कर बातें करते हो। अब तुम्हें राजाका धन लूटनेकी इच्छा हुई है। अच्छा! अरे, मूर्खो! जाओ, भाग जाओ। यदि कुछ दिन जीनेकी इच्छा हो तो फिर इस तरह मत माँगना। समझ लो कि राजकर्मचारी तुम्हारे-जैसे उच्छृङ्खलोंको कैद कर लेते हैं, मार डालते हैं और जो कुछ उनके पास होता है, छीन लेते हैं।' जब वह धोबी इस प्रकार बहुत कुछ बहक-बहककर बातें करने लगा, तब भगवान् श्रीकृष्णने तनिक कुपित होकर उसे एक तमाचा जमाया और उसका सिर धड़ामसे धड़से नीचे जा गिरा। यह देखकर उस धोबीके अधीन काम करनेवाले सब-के-सब कपड़ोंके गट्ठर वहीं छोड़कर इधर-उधर भग गये। भगवान्‌ने उन वस्त्रोंको ले



लिया। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने मनमाने वस्त्र पहन लिये तथा बचे हुए वस्त्रोंमेंसे बहुत-से अपने साथी ग्वालबालोंको भी दिये। बहुत-से कपड़े तो वहीं जमीनपर ही डाल दिये॥ ३२—३९॥

भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम जब कुछ आगे बढ़े,



तब उन्हें एक दर्जी मिला। भगवान्‌का अनुपम सौन्दर्य

परतन्त्र रहनेके कारण आपकी कोई सेवा शुश्रूषा न कर सके' ॥ १–९ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इसमें सन्देह नहीं कि विश्वात्मा भगवान् ही अपनी लीलासे मनुष्यका सा चेष्टा धारण किये हुए हैं। उनकी लीला तो पूर्ण होकर ही रहेगी। उन्होंने जब देवकी और वसुदेवजीसे इस प्रकार कहा, तब वे मोहित हो गये। उन्होंने झट श्रीकृष्ण और बलदेवको गोदमें उठा लिया और वात्सल्यभावसे उन्हें हृदयसे सटा लिया। परीक्षित्! उस समय उन्हें असीम आनन्दका अनुभव हुआ। वे स्नेह-पाशसे बँधकर पूर्णतः मोहित हो गये और आँसुओंकी धारासे उनका अभिषेक करने लगे। यहाँतक कि आँसुओंके कारण गला रुँध जानेसे वे कुछ बोल भी न सके ॥ १०-११ ॥

देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार अपने माता पिताको सान्त्वना देकर अपने नाना उग्रसेनको यदु-



वंशियोंका राजा बना दिया और उनसे कहा—'महाराज! हम आपकी प्रजा हैं। आप हम लोगोंपर शासन कीजिये। राजा ययातिका शाप होनेके कारण यदुवंशी राजसिंहासनपर नहीं बैठ सकते। परन्तु मेरी ऐसी ही इच्छा है, इसलिये आपको कोई दोष न होगा। जब मैं सेवक बनकर आपकी सेवा करता रहूँगा, तब दूसरे नरपतियोंके बारेमें तो कहना ही क्या—बड़े-बड़े देवता भी सिर झुकाकर आपको भेंट देंगे।' परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण ही सारे विश्वके विधाता हैं। उन्होंने जो कंसके भयसे व्याकुल होकर इधर-उधर भाग गये थे उन यदु, वृष्णि, अन्धक, मधु, दाशार्ह और कुकुर आदि वंशोंमें उत्पन्न समस्त सजातीय सम्बन्धियोंको ढूँढ-ढूँढकर बुलवाया। उन्हें घरसे बाहर रहनेमें बड़ा क्लेश उठाना पड़ा था। भगवान्ने उनका सत्कार किया, सान्त्वना दी और उन्हें खूब धन-सम्पत्ति देकर तृप्त किया तथा अपने-अपने घरोंमें बसा दिया। अब सारे-के-सारे यदुवंशी भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजीके बाहुबलसे सुरक्षित थे। उनकी कृपासे उन्हें किसी प्रकारकी व्यथा नहीं थी, दुःख नहीं था। उनके सारे मनोरथ सफल हो गये थे। वे कृतार्थ हो गये थे। अब वे अपने-अपने घरोंमें आनन्दसे विहार करने लगे। भगवान् श्रीकृष्णका वदन आनन्दका सदन है। वह नित्य प्रफुल्लित, कभी न कुम्हलानेवाला कमल है। उसका सौन्दर्य अपार है। सदय हास और चितवन उसपर सदा नाचती रहती है। यदुवंशी दिन प्रतिदिन उसका दर्शन करके आनन्दमग्न रहते। परीक्षित्! मथुराके वृद्ध पुरुष भी युवकोंके समान अत्यन्त बलवान् और उत्साही हो गये थे। इसका कारण था, वे अपने नेत्रोंके दोनोंसे भगवान्के मुखारविन्दका अमृतमय मकरन्द रस पान करते रहते थे ॥ १२–१९ ॥

प्रिय परीक्षित्! अब देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी दोनों ही नन्दबाबाके पास आये और गले लगनेके बाद उनसे कहने लगे—'पिताजी! आपने और माँ यशोदाने बड़े स्नेह और दुलारसे हमारा लालन पालन किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि माता पिता सन्तानपर अपने शरीरसे भी अधिक स्नेह करते हैं। जिन्हें पालन-पोषण न कर सकनेके कारण स्वजन-सम्बन्धियोंने त्याग दिया है, उन बालकोंको जो लोग अपने पुत्रके समान लाड़-प्यारसे पालते हैं, वे ही वास्तवमें उनके माँ-बाप हैं। पिताजी! अब आपलोग व्रजमें जाइये। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे बिना वात्सल्य स्नेहके कारण आप लोगोंको बहुत दुःख होगा। परन्तु इस समय क्या करा है? यहाँके सुहृद्-सम्बन्धियोंको सुखी करके हम आपलोगोंसे मिलनेके लिये आयेंगे।' परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने नन्दबाबा और दूसरे व्रजवासियोंको इस प्रकार समझा-बुझाकर बड़े आदरके साथ वस्त्र, आभूषण और अनेक धातुओंके बने बरतन आदि देकर उनका सत्कार

कि 'सुन्दरी ! तुम कौन हो ? यह चन्दन किसके लिये ले जा रही हो ? कल्याणी ! हमें सब बात सच-सच बतला दो। यह उत्तम चन्दन, यह अङ्गराग हमें भी दो। इस दानसे शीघ्र ही तुम्हारा परम कल्याण होगा' ॥ १-२ ॥

उबटन आदि लगानेवाली सैरन्ध्री कुब्जाने कहा—'परम सुन्दर ! मैं कंसकी प्रिय दासी हूँ। महाराज मुझे बहुत मानते हैं। मेरा नाम त्रिवक्रा (कुब्जा) है। मैं उनके यहाँ चन्दन, अङ्गराग लगानेका काम करती हूँ। मेरे द्वारा तैयार किये हुए चन्दन और अङ्गराग भोजराज कंसको बहुत भाते हैं। परन्तु आप दोनोंसे बढ़कर उसका और कोई उत्तम पात्र नहीं है।' परीक्षित् ! भगवान्‌के सौन्दर्य, सुकुमारता, रसिकता, मन्दहास्य, प्रेमालाप और चारु चितवनसे कुब्जाका मन हाथसे निकल गया। उसने भगवान्‌पर अपना हृदय न्योछावर कर दिया। उसने दोनों भाइयोंको वह सुन्दर और गाढ़ा अङ्गराग दे दिया। तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने साँवले शरीरपर पीले रंगका और बलरामजीने अपने गोरे शरीरपर लाल रंगका अङ्गराग लगाया तथा नाभिसे ऊपरके भागमें अनुरञ्जित होकर वे अत्यन्त सुशोभित हुए। भगवान् श्रीकृष्ण उस कुब्जापर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने दर्शनका प्रत्यक्ष फल दिखलानेके लिये तीन जगहसे टेढ़ी किन्तु सुन्दर मुखवाली कुब्जाको सीधी करनेका



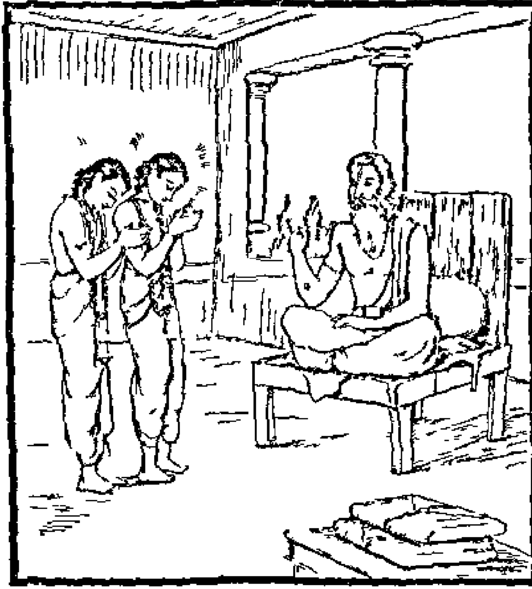
विचार किया। भगवान्‌ने अपने चरणोंसे कुब्जाके पैरके दोनों पंजे दबा लिये और हाथ ऊँचा करके दो अँगुलियाँ उसकी ठोड़ीमें लगायीं तथा उसके शरीरको तनिक उचका दिया। परीक्षित् ! पहले कुब्जाकी कमर, छाती और गला—ये तीनों ही टेढ़े थे। अब भगवान्‌के उचकाते ही उसके सारे अङ्ग सीधे और समान हो गये तथा उनके स्पर्शसे वह तत्काल विशाल नितम्ब तथा पीन पयोधरोंसे युक्त एक उत्तम युवती बन गयी। प्रेम और मुक्तिके दाता भगवान्‌के लिये यह कौन-सी बड़ी बात है॥ ३-८ ॥

परीक्षित् ! उसी क्षण कुब्जा रूप, गुण और उदारतासे सम्पन्न हो गयी। उसके मनमें भगवान्‌के मिलनकी कामना जाग उठी। उसने उनके दुपट्टेका छोर पकड़कर मुसकराते हुए कहा—'वीरशिरोमणे ! आइये, घर चलें। अब मैं आपको यहाँ नहीं छोड़ सकती। क्योंकि आपने मेरे चित्तको मथ डाला है। पुरुषोत्तम ! मुझ दासीपर प्रसन्न होइये।' जब बलरामजीके सामने ही कुब्जाने इस प्रकार प्रार्थना की, तब भगवान् श्रीकृष्णने अपने साथी ग्वालबालोंके मुँहकी ओर देखकर हँसते हुए उससे कहा-'सुन्दरी ! मैं तुम्हारे घर आऊँगा। क्योंकि संसारी लोग तुम्हारे-जैसोंके घर जाना अपनी मानसिक व्याधि मिटानेका साधन समझते हैं। किन्तु पहले मुझे अपना काम तो कर लेने दो। हमारा यहाँ घर-द्वार थोड़े ही रक्खा है ! हमारे-जैसे बटोहियोंको तुम्हारा ही तो आसरा है।' इस प्रकार मीठी-मीठी बातें करके भगवान्



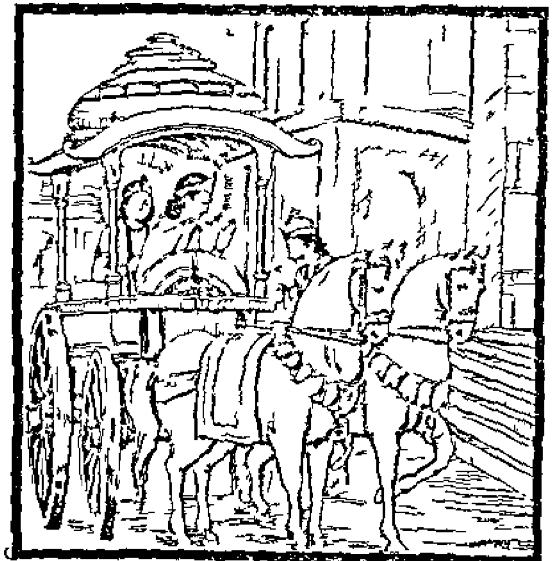
श्रीकृष्णने उसे विदा कर दिया। जब वे व्यापारियोंके बाजारमें पहुँचे तब उन व्यापारियोंने उनका तथा बलरामजीका पान,

समाप्त होनेपर उन्होंने सान्दीपनि मुनिसे प्रार्थना की कि 'आपकी जो इच्छा हो, गुरुदक्षिणा माँग लें।' परीक्षित्! सान्दीपनि मुनिने उनकी अद्भुत महिमा और अलौकिक बुद्धिका अनुभव कर लिया था। इसलिये उन्होंने अपनी पत्नीसे सलाह करके यह गुरुदक्षिणा माँगी कि 'प्रभासक्षेत्रमें



हमारा बालक समुद्रमें डूबकर मर गया था, उसे तुमलोग ला दो।' परीक्षित्! बलरामजी और श्रीकृष्णका पराक्रम अनन्त था। दोनों ही महारथी थे। उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर गुरुजीकी आज्ञा स्वीकार की और रथपर सवार होकर प्रभासक्षेत्रमें गये। वे समुद्रतटपर जाकर क्षणभर बैठे रहे। उस समय यह जानकर कि ये साक्षात् परमेश्वर हैं, अनेकों प्रकारकी पूजा-सामग्री लेकर समुद्र उनके सामने उपस्थित हुआ। भगवान्‌ने समुद्रसे कहा—'समुद्र! तुम यहाँ अपनी बड़ी बड़ी तरङ्गोंसे हमारे जिस गुरुपुत्रको बहा ले गये थे, उसे लाकर शीघ्र हमें दो' ॥ ३१-३९ ॥

मनुष्यवेषधारी समुद्रने कहा—'भगवन्! मैंने उस बालकको नहीं लिया है। मेरे जलमें पञ्चजन नामका एक बड़ा भारी दैत्य जातिका असुर शङ्खके रूपमें रहता है। अवश्य ही उसीने वह बालक चुरा लिया होगा।' समुद्रकी बात सुनकर भगवान् तुरत ही जलमें जा घुसे और शङ्खासुरको मार डाला। परन्तु वह बालक उसके पेटमें नहीं मिला। तब उसके शरीरका शङ्ख लेकर भगवान् रथपर चले आये और यमराजकी प्रिय पुरी संयमनीकी ओर चले। वहाँ जाकर बलरामजीके साथ भगवान् श्रीकृष्णने अपना शङ्ख बजाया। शङ्खका शब्द सुनकर सारी प्रजाका शासन करनेवाले यमराजने उनका स्वागत किया और भक्तिभावसे भरकर विधिपूर्वक उनकी बहुत बड़ी पूजा की। उन्होंने नम्रतासे



झुककर समस्त प्राणियोंके हृदयमें विराजमान सच्चिदानन्द-स्वरूप भगवान् श्रीकृष्णसे कहा—'लीलासे ही मनुष्य बने हुए सर्वव्यापक परमेश्वर! मैं आप दोनोंकी क्या सेवा करूँ?' ॥ ४०-४४ ॥

बढ़ईकी कारीगरी, ३६ इमारत आदि बनानेकी कारीगरी, ३७ सोने, चाँदी आदि धातु तथा हीरे पन्ने आदि रत्नोंकी परीक्षा, ३८ सोना, चाँदी आदि बना लेना, ३९ मणियोंके रंगको पहचानना, ४० खानोंकी पहचान, ४१ वृक्षोंकी चिकित्सा, ४२ भेड़ा, मुर्गा, बटेर आदिको लड़ानेकी रीति, ४३ तोता मैना आदिकी बोलियाँ बोलना, ४४ उच्चाटनकी विधि, ४५ केशोंकी सफाईका कौशल, ४६ मुट्ठीकी चीज या मनकी बात बता देना, ४७ म्लेच्छ काव्योंका समझ लेना, ४८ विभिन्न देशोंकी भाषाका ज्ञान, ४९ शकुन अपशकुन जानना, प्रश्नोंके उत्तरमें शुभाशुभ बतलाना, ५० नाना प्रकारके मातृकायन्त्र बनाना, ५१ रत्नोंको नाना प्रकारके आकारोंमें काटना, ५२ साङ्केतिक भाषा बनाना, ५३ मनमें कटकरचना करना, ५४ नयी-नयी बातें निकालना, ५५ छलसे काम निकालना, ५६ समस्त कोशोंका ज्ञान, ५७ समस्त छन्दोंका ज्ञान, ५८ वस्त्रोंको छिपाने या बदलनेकी विद्या, ५९ द्यूतक्रीडा, ६० दूरके मनुष्य या वस्तुओंका आकर्षण कर लेना, ६१ बालकोंके खेल, ६२ मन्त्रविद्या, ६३ विजय प्राप्त करानेवाली विद्या, ६४ वेताल आदिको वशमें रखनेकी विद्या।

भी चन्द्रमा, तारे और दीपक आदिकी ज्योतियाँ उसे दो-दो दिखायी पड़ती हैं; छायामें छेद दिखायी पड़ता है और कानोंमें अँगुली डालकर सुननेपर भी प्राणोंका घूँ-घूँ शब्द नहीं सुनायी पड़ता। वृक्ष सुनहले प्रतीत होते हैं और बालू या कीचड़में अपने पैरोंके चिह्न नहीं दीख पड़ते। कंसने स्वप्नावस्थामें देखा कि वह प्रेतोंके गले लग रहा है, गधेपर चढ़कर चलता है और विष खा रहा है। उसका सारा शरीर तेलसे तर है, गलेमें जपाकुसुम (अड़हुल) की माला है और नग्न होकर कहीं जा रहा है। स्वप्न और जाग्रत्-अवस्थामें उसने इसी प्रकारके और भी बहुत-से अपशकुन देखे। उनके कारण उसे बड़ी चिन्ता हो गयी, वह मृत्युसे डर गया और उसे नींद न आयी ॥ २६–३१ ॥

परीक्षित्! जब रात बीत गयी और सूर्यनारायण उदय हुए, तब राजा कंसने दंगलका महोत्सव प्रारम्भ कराया। राजकर्मचारियोंने रंगभूमिको भलीभाँति सजाया। तुरही, भेरी आदि बाजे बजने लगे। लोगोंके बैठनेके मञ्च फूलोंके गजरों, झंडियों, वस्त्र और बंदनवारोंसे सजा दिये गये। उनपर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नागरिक तथा ग्रामवासी—सब यथास्थान बैठ गये। राजालोग भी अपने-अपने निश्चित स्थानपर जा डटे। राजा कंस अपने मन्त्रियोंके साथ मण्डलेश्वरों (छोटे-छोटे राजाओं) के बीचमें सबसे श्रेष्ठ राजसिंहासनपर जा बैठा। इस समय भी अपशकुनोंके कारण उसका चित्त घबड़ाया हुआ था। तब पहलवानोंके ताल ठोंकनेके साथ ही बाजे बजने लगे और गरबीले पहलवान खूब सज-धजकर अपने-अपने उस्तादोंके साथ अखाड़ेमें आ उतरे। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल आदि प्रधान-प्रधान पहलवान बाजोंकी सुमधुर ध्वनिसे उत्साहित होकर अखाड़ेमें आ-आकर बैठ गये। इसी समय भोजराज कंसने नन्द आदि गोपोंको बुलवाया। उन लोगोंने आकर उसे तरह-तरहकी भेंटें दीं और फिर जाकर वे एक मञ्चपर बैठ गये ॥ ३२–३८ ॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

कुवलयापीड़का उद्धार और अखाड़ेमें प्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी शौच आदिके कामसे पीछे रह गये थे, नन्दबाबाके साथ रंगभूमिमें नहीं आये थे। जब दंगलके अनुरूप नगाड़े बजने लगे और पहलवानोंने ताल ठोंका, तब वे उत्सव देखनेके लिये पहुँचे। भगवान् श्रीकृष्णने रंगभूमिके दरवाजेपर पहुँचकर देखा कि वहाँ महावतकी प्रेरणासे कुवलयापीड़ नामका हाथी खड़ा है। तब भगवान् श्रीकृष्णने अपनी कमर कस ली और घुँघराली अलकें तनिक समेट लीं तथा मेघके समान गम्भीर वाणीसे महावतको ललकारकर कहा—'महावत, ओ महावत! हम दोनोंको रास्ता दे दे। हमारे मार्गसे हट जा। अरे, सुनता नहीं? देर मत कर। नहीं तो मैं हाथीके साथ अभी तुझे यमराजके घर पहुँचाता हूँ।' भगवान् श्रीकृष्णने महावतको जब इस प्रकार डाँटा-फटकारा, तब वह क्रोधसे तिलमिला उठा और उसने काल, मृत्यु तथा यमराजके समान अत्यन्त भयङ्कर कुवलयापीड़को अंकुशकी मारसे क्रुद्ध करके श्रीकृष्णकी ओर बढ़ाया। कुवलयापीड़ने भगवान्की ओर झपटकर उन्हें बड़ी तेजीसे सूँड़में लपेट लिया, परन्तु भगवान् कुछ पतले बनकर सूँड़से बाहर 'सरक आये और उसे एक घूँसा जमाकर उसके पैरोंके बीचमें जा छिपे। उन्हें अपने सामने न देखकर कुवलयापीड़को बड़ा क्रोध हुआ। उसने सूँघकर भगवान्को अपनी सूँड़से टटोल लिया और पकड़ा भी, परन्तु उन्होंने बलपूर्वक अपनेको उससे छुड़ा लिया। इसके बाद भगवान् उस बलवान् हाथीकी पूँछ पकड़कर खेल-खेलमें ही उसे सौ हाथतक पीछे घसीट लाये जैसे गरुड़ साँपको घसीट लाते हैं। जिस प्रकार घूमते हुए बछड़ेके साथ बालक घूमता है अथवा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण जिस प्रकार बछड़ोंसे खेलते थे, वैसे ही वे उसकी पूँछ पकड़कर उसे घुमाने और खेलने लगे। जब वह दायेंसे घूमकर उनको पकड़ना चाहता, तब वे बायें आ जाते और जब वह बायेंकी ओर घूमता, तब वे दायें घूम जाते। इस प्रकार बहुत देरतक वे कुवलयापीड़के साथ खेलते रहे। इसके बाद हाथीके सामने आकर उन्होंने उसे एक घूँसा जमाया और इस प्रकार उसके सामनेसे भागने लगे मानो वह अब छू लेता है, तब छू लेता है। वे उसे गिरानेकी फिक्रमें लगे। भगवान् श्रीकृष्णने दौड़ते-दौड़ते एक बार खेल-खेलमें ही पृथ्वीपर गिरनेका अभिनय किया और झट वहाँसे उठकर भाग खड़े हुए। उस समय वह हाथी क्रोधसे जल-भुन रहा था। उसने समझा कि वे गिर पड़े और बड़े जोरसे अपने दोनों

मैं उन गोपियोंका परम प्रियतम हूँ। मेरे यहाँ चले आनेसे मेरा स्मरण करके वे अत्यन्त मोहित हो रही हैं, बार-बार मूर्च्छित हो जाती हैं। वे मेरे विरहकी व्यथासे विह्वल हो रही हैं, प्रतिक्षण मेरे लिये उत्कण्ठित रहती हैं। मेरी गोपियाँ, मेरी प्रेयसियाँ इस समय बड़े ही कष्ट और यत्नसे अपने प्राणोंको किसी प्रकार रख रही हैं। मैंने उनसे कहा था कि मैं आऊँगा। वही उनके जीवनका आधार है। उद्धव! और तो क्या कहूँ, मैं ही उनकी आत्मा हूँ। वे नित्य निरन्तर मुझमें ही तन्मय रहती हैं' ॥ १–६ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! जब भगवान् श्रीकृष्णने यह बात कही, तब उद्धवजी बड़े आदरसे अपने स्वामीका सन्देश लेकर रथपर सवार हुए और नन्दगाँवके लिये चल पड़े। परम सुन्दर उद्धवजी सूर्यास्तके समय नन्द-बाबाके व्रजमें पहुँचे। उस समय जंगलसे गौएँ लौट रही थीं। उनके खुरोंके आघातसे इतनी धूल उड़ रही थी कि उनका रथ ढक गया था। इसीसे दूसरे लोग उसे न देख सके। व्रजभूमिमें ऋतुमती गौओंके लिये मतवाले साँड दहाड़-दहाड़कर आपसमें लड़ रहे थे। थोड़े दिनोंकी ब्याई हुई गौएँ अपने थनोंके भारी भारसे दबी होनेपर भी अपने अपने बछड़ोंकी ओर दौड़ रही थीं। सफेद रंगके बछड़े इधर उधर उछल-कूद मचाते हुए बहुत ही भले मालूम होते थे। गाय दुहनेकी 'घर घर' ध्वनिसे और बाँसुरियोंकी मधुर टेरसे अब भी व्रजकी अपूर्व शोभा हो रही थी। गोपी और गोप सुन्दर सुन्दर वस्त्र तथा गहनोंसे सज धजकर श्रीकृष्ण तथा बलरामजीके चरित्रोंका गायन कर रहे थे और इस प्रकार व्रजकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। गोपोंके घरोंमें अग्नि, सूर्य, अतिथि, गौ, ब्राह्मण और देवता पितरोंकी पूजा की हुई थी। धूपकी सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी और दीपक जगमगा रहे थे। इनसे तथा पुष्पोंकी सजावटसे सारा व्रज और भी मनोरम हो रहा था। चारों ओर वन-पंक्तियाँ फूलोंसे लद रही थीं। पक्षी चहक रहे थे और भौंरे गुंजार कर रहे थे। वहाँ जल और स्थल दोनों ही कमलोंके वनसे शोभायमान थे और हंस, बत्तख आदि पक्षी उनमें विहार कर रहे थे ॥ ७–१३ ॥

जब भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे अनुचर उद्धवजी व्रजमें आये, तब उनसे मिलकर नन्दबाबा बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने उद्धवजीको गले लगाकर उनका वैसे ही सम्मान किया, मानो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण आ गये हों। समयपर उत्तम अन्नका भोजन कराया और जब वे आरामसे पलँगपर बैठ गये, सेवकोंने पाँव दबाकर, पंखा झलकर उनकी थकावट दूर कर दी। तब नन्दबाबाने उनसे पूछा—'परम भाग्यवान् उद्धवजी! अब हमारे सखा वसुदेवजी जेलसे छूट गये। उनके आत्मीय स्वजन तथा पुत्र आदि उनके साथ हैं। इस समय वे सब कुशलसे तो हैं न? यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। उसे श्रीकृष्णने नहीं मारा, उसके पापोंने ही उसको मटियामेट कर दिया। उद्धवजी! यदुवंशी लोग स्वभावसे ही धार्मिक, परमसाधु हैं, कंस उनसे बड़ा द्वेष करता था। अच्छा उद्धवजी! आप यह तो बतलाइये कि श्रीकृष्ण कभी हमलोगोंकी भी याद करते हैं? यह उनकी माँ है, स्वजन सम्बन्धी हैं, सखा हैं, गोप हैं, उन्हींको अपना स्वामी और सर्वस्व माननेवाला यह व्रज है, उन्हींकी गौएँ, वृन्दावन और यह गिरिराज है, क्या वे कभी इनका स्मरण करते हैं? आप यह तो बतलाइये कि हमारे गोविन्द अपने सुहृद्-बान्धवोंको देखनेके लिये एक बार भी यहाँ आयेंगे क्या? यदि वे यहाँ आ जाते तो हम उनकी वह तोतेकी चोंच-सी नासिका, उनका मधुर हास्य और मनोहर चितवनसे युक्त मुखकमल देख तो लेते। उद्धवजी! हम श्रीकृष्णके गुणोंका क्या वर्णन करें? उनका हृदय उदार है, उनकी शक्ति अनन्त है, उन्होंने दावानलसे, आँधी-पानीसे, वृषासुर और अजगर आदि अनेकों मृत्युके निमित्तोंसे—जिन्हें टालनेका कोई उपाय न था—एक बार नहीं, अनेक बार हमारी रक्षा की है। उद्धवजी! हम श्रीकृष्णके विचित्र चरित्र, उनकी विलासपूर्ण तिरछी चितवन, उन्मुक्त हास्य, मधुर भाषण आदिका स्मरण करते रहते हैं और उसमें इतने तन्मय रहते हैं कि अब हमसे कोई काम-काज नहीं हो पाता। जब हम देखते हैं कि यह वही नदी है, जिसमें श्रीकृष्ण जलक्रीड़ा करते थे, यह वही गिरिराज है, जिसे उन्होंने अपने एक हाथपर उठा लिया था, ये वही वन हैं, जहाँ वे गौएँ चराते हुए बाँसुरी बजाते थे, और ये वही स्थान हैं, जहाँ वे अपने सखाओंके साथ अनेकों प्रकारके खेल खेलते थे, और साथ ही यह भी देखते हैं कि वहाँ उनके चरणचिह्न अभी ज्यों-के-त्यों मौजूद हैं, मिटे नहीं हैं, तब उन्हें देखकर हमारा मन श्रीकृष्णमय हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं कि मैं श्रीकृष्ण और बलरामको देवशिरोमणि मानता हूँ और यह भी मानता हूँ कि वे देवताओंका कोई बहुत बड़ा प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये यहाँ आये हुए हैं। स्वयं भगवान् गर्गाचार्यजीने मुझसे ऐसा कहा था। उद्धवजी! आप तो जानते

रहे हों, नासिकासे सूँघ रहे हों और भुजाओंसे पकड़कर



हृदयसे सटा रहे हों। उनके सौन्दर्य, गुण, माधुर्य और निर्भयताने मानो दर्शकोंको उनकी लीलाओंका स्मरण करा दिया और वे लोग आपसमें उनके सम्बन्धकी देखी-सुनी बातें कहने-सुनने लगे ॥ १५–२२ ॥

वे आपसमें कहने लगे—ये दोनों साक्षात् भगवान् नारायणके अंश हैं। इस पृथ्वीपर वसुदेवजीके घरमें अवतीर्ण हुए हैं। [अँगुलीसे दिखाकर] ये साँवले-सलोने कुमार देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। जनमते ही वसुदेवजीने इन्हें गोकुल पहुँचा दिया था। इतने दिनोंतक ये वहाँ छिपकर रहे और नन्दजीके घरमें ही पलकर इतने बड़े हुए। इन्होंने ही पूतना, तृणावर्त, यमलार्जुन, शङ्खचूड़, केशी और धेनुक आदिका तथा और भी दुष्ट दैत्योंका वध किया है। इन्होंने ही गौ और ग्वालोंको दावानलकी ज्वालासे बचाया था। कालिय नागका दमन और इन्द्रका मान-मर्दन भी इन्होंने ही किया था। अरे भाई! तुम जानते हो? इन्होंने सात दिनोंतक एक ही हाथपर गिरिराज गोवर्धनको उठाये रक्खा और उसके द्वारा आँधी-पानी तथा वज्रपातसे गोकुलको बचा लिया। गोपियाँ इनकी मन्द-मन्द मुसकान, मधुर चितवन और सर्वदा एकरस प्रसन्न रहनेवाले मुखारविन्दके दर्शनसे आनन्दित रहती थीं और अनायास ही सब प्रकारके तापोंसे मुक्त हो जाती थीं। कहते हैं कि ये यदुवंशकी रक्षा करेंगे। यह विख्यात वंश इनके द्वारा महान् समृद्धि, यश और गौरव प्राप्त करेगा। ये दूसरे इन्हीं श्यामसुन्दरके बड़े भाई कमलनयन श्रीबलरामजी हैं। हमने किसी-किसीके मुँहसे ऐसा सुना है कि इन्होंने ही प्रलम्बासुर, वत्सासुर और बकासुर आदिको मारा है ॥ २३—३० ॥

जिस समय दर्शकोंमें यह चर्चा हो रही थी और अखाड़ेमें तुरही आदि बाजे बज रहे थे, उस समय चाणूरने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको सम्बोधन करके यह बात कही—'नन्दनन्दन श्रीकृष्ण और बलरामजी! तुम दोनों वीरोंके आदरणीय हो। हमारे महाराजने यह सुनकर कि तुमलोग कुश्ती लड़नेमें बड़े निपुण हो, तुम्हारा कौशल देखनेके लिये तुम्हें यहाँ बुलवाया है। देखो भाई! जो प्रजा मन, वचन और कर्मसे राजाका प्रिय कार्य करती है, उसका भला होता है और जो राजाकी इच्छाके विपरीत काम करती है, उसे हानि उठानी पड़ती है। यह सभी जानते हैं कि गाय और बछड़े चरानेवाले ग्वालिये प्रतिदिन आनन्दसे जंगलोंमें कुश्ती लड़-लड़कर खेलते रहते हैं और गायें चराते रहते हैं। इसलिये आओ, हम और तुम मिलकर महाराजको प्रसन्न करनेके लिये कुश्ती लड़ें। ऐसा करनेसे हमपर सभी प्राणी प्रसन्न होंगे, क्योंकि राजा सारी प्रजाका प्रतीक है' ॥३१–३५॥

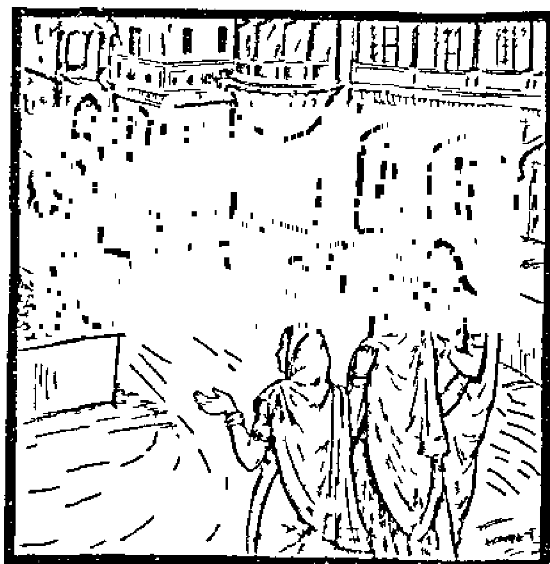
परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण तो चाहते ही थे कि इनसे दो हाथ करें। इसलिये उन्होंने चाणूरकी बात सुनकर उसका अनुमोदन किया और देश-कालके अनुसार यह बात कही—'चाणूर! हम भी भोजराज कंसकी वनवासी प्रजा हैं। हमें इनको प्रसन्न करनेका प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। इसीमें हमारा कल्याण है। किन्तु चाणूर! हमलोग अभी बालक हैं। इसलिये हम अपने समान बलवाले बालकोंके साथ ही कुश्ती लड़नेका खेल करेंगे। कुश्ती समान बलवालोंके साथ ही होनी चाहिये, जिससे देखनेवाले सभासदोंको अन्यायके समर्थक होनेका पाप न लगे' ॥३६–३८॥

चाणूरने कहा—अजी! तुम और बलवानोंमें श्रेष्ठ बलराम न बालक हो और न तो किशोर। तुमने अभी-अभी हजार हाथियोंका बल रखनेवाले कुवलयापीडको खेल-ही-खेलमें मार डाला। इसलिये तुम दोनोंको हम-जैसे बलवानोंके साथ ही लड़ना चाहिये। इसमें अन्यायकी कोई बात नहीं है। इसलिये श्रीकृष्ण! तुम मुझपर अपना जोर आजमाओ और बलरामके साथ मुष्टिक लड़ेगा ॥३९-४०॥

विषमताका भाव रखनेवाला भी उनके लिये विषम नहीं है। न तो उनकी कोई माता है और न पिता। न पत्नी है और न तो पुत्र आदि। न अपना है और न तो पराया। न देह है और न तो जन्म। वे संसारमें कभी देवता आदि सात्त्विक योनियोंमें अवतार लेते हैं तो कभी मत्स्य आदि तामस योनियोंमे, और कभी-कभी मनुष्य आदि राजस योनियोंमें भी शरीर धारण करते हैं। परन्तु यह वैसा जन्म नहीं है, जैसा जीवोंका कर्मवश होता है। उनके तो कर्म ही नहीं हैं। तब वे अवतार क्यों लेते हैं? केवल लीलाके लिये। परन्तु यह लीला भी सत्पुरुषोंकी रक्षा, उनके परित्राणका कारण बनती है। भगवान् अजन्मा हैं। उनमें प्राकृत सत्त्व, रज आदिमेंसे एक भी गुण नहीं है। इस प्रकार इन गुणोंसे अतीत होनेपर भी लीलाके लिये खेल-खेलमें वे सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंको स्वीकार कर लेते हैं और उनके द्वारा जगत्की रचना, पालन और संहार करते हैं। जब बच्चे घुमरीपरेता खेलने लगते हैं या मनुष्य वेगसे चक्कर लगाने लगते हैं, तब उन्हें सारी पृथ्वी घूमती हुई जान पड़ती है। वैसे ही वास्तवमें सब कुछ करनेवाला चित्त ही है। परन्तु उस चित्तमें अहंबुद्धि हो जानेके करण, भ्रमवश उसे आत्मा—अपना 'मैं' समझ लेनेके कारण, जीव अपनेको कर्ता समझने लगता है। भगवान् श्रीकृष्ण केवल आप दोनोंके ही पुत्र नहीं हैं, वे समस्त प्राणियोंके पुत्र हैं। केवल पुत्र ही नहीं, पिता माता और स्वामी भी हैं। कहाँतक कहूँ, वे ही सबके आत्मा हैं। बाबा! जो कुछ देखा या सुना जाता है—वह चाहे भूतसे सम्बन्ध रखता हो, वर्तमानसे अथवा भविष्यसे; स्थावर हो या जङ्गम हो, महान् हो अथवा अल्प हो—ऐसी कोई वस्तु ही नहीं है, जो भगवान् श्रीकृष्णसे पृथक् हो। बाबा! श्रीकृष्णके अतिरिक्त ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसे वस्तु कह सकें। वास्तवमें सब वही हैं, वही परमार्थ सत्य हैं॥ ३०–४३॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णके सखा उद्धव और नन्दबाबा इसी प्रकार आपसमें बात करते रहे और वह रात बीत गयी। कुछ रात बाकी रहनेपर गोपियाँ उठीं, दीपक जलाकर उन्होंने घरकी देहलियोंपर वास्तुदेवका पूजन किया, अपने घरोंको झाड़-बुहारकर साफ किया और फिर दही मथने लगीं। दही मथनेके समय उनकी झाँकी बड़ी अनूठी थी। उनकी कलाइयोंमें कंगन शोभायमान हो रहे थे, रस्सी खींचते समय वे बहुत भली मालूम हो रही थीं। उनके नितम्ब, स्तन और गलेके हार हिल रहे थे। कानोंके कुण्डल हिल हिलकर उनके कुङ्कुममण्डित कपोलोंकी लालिमा बढ़ा रहे थे। उनके आभूषणोंकी मणियाँ दीपककी ज्योतिसे और भी जगमगा रही थीं और इस प्रकार वे अत्यन्त शोभासे सम्पन्न होकर दही मथ रही थीं। परीक्षित्! उस समय गोपियाँ—जिनकी स्वर लहरी सब ओर फैलकर दिशाओंका अमङ्गल मिटा देती है, कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णके उन मङ्गलमय चरित्रोंका गायन कर रही थीं। उनका वह सङ्गीत दही मथनेकी ध्वनिसे मिलकर और भी अद्भुत हो गया तथा स्वर्गलोकतक जा पहुँचा॥ ४४–४६॥

जब भगवान् भुवनभास्करका उदय हुआ, तब व्रजाङ्गनाओंने देखा कि नन्दबाबाके दरवाजेपर एक सोनेका रथ



खड़ा है। वे एक-दूसरेसे पूछने लगीं 'यह किसका रथ है?' किसी गोपीने कहा—'कंसका प्रयोजन सिद्ध करनेवाला अक्रूर ही तो कहीं फिर नहीं आ गया है? सखी! वही कमलनयन प्यारे श्यामसुन्दरको यहाँसे *मथुरा ले गया था*!' किसी दूसरी गोपीने कहा—'क्या अब वह हमें ले जाकर अपने मरे हुए स्वामी कंसका पिण्डदान करेगा? अब यहाँ उसके आनेका और क्या प्रयोजन हो सकता है?' व्रजवासिनी स्त्रियाँ इसी प्रकार आपसमें बातचीत कर रही थीं कि उसी समय नित्यकर्मसे निवृत्त होकर उद्धवजी आ पहुँचे॥४७–४९॥

चरानेके लिये व्रजसे वनमें जाते हैं और सायङ्काल उन्हें लेकर व्रजमें लौटते हैं, तब बड़े मधुर स्वरसे बाँसुरी बजाते हैं। उसकी टेर सुनकर गोपियाँ घरका सारा कामकाज छोड़कर झटपट रास्तेमें दौड़ आती हैं और श्रीकृष्णका मन्द-मन्द मुसकान एवं दयाभरी चितवनसे युक्त मुखकमल निहार-निहारकर निहाल होती हैं। सचमुच गोपियाँ ही परम पुण्यवती हैं' ॥६–१६॥

परीक्षित्! जिस समय पुरवासिनी स्त्रियाँ इस प्रकार बातें कर रही थीं, उसी समय योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने मन-ही-मन शत्रुको मार डालनेका निश्चय किया। स्त्रियोंकी ये भयपूर्ण बातें माता-पिता देवकी-वसुदेव भी पासके ही जेलखानेसे सुन रहे थे। वे पुत्रस्नेहवश शोकसे विह्वल हो गये। उनके हृदयमें बड़ी जलन, बड़ी पीड़ा होने लगी। परीक्षित्! सचमुच उनके मनमें अबतक अपने पुत्रोंके बलकी कल्पना ही न थी। भगवान् श्रीकृष्ण और उनसे भिड़नेवाला चाणूर दोनों ही भिन्न-भिन्न प्रकारके दाँव-पेचका प्रयोग करते हुए आपसमें लड़ रहे थे। इसी प्रकार बलरामजी और मुष्टिक भी भिड़े हुए थे। भगवान्‌के अङ्ग-प्रत्यङ्ग वज्रसे भी कठोर हो रहे थे। उनकी रगड़से चाणूरकी रग-रग ढीली पड़ गयी। बार-बार उसे ऐसा मालूम हो रहा था मानो उसके शरीरके सारे बन्धन टूट रहे हैं। उसे बड़ी ग्लानि, बड़ी व्यथा हुई। अब वह अत्यन्त क्रोधित होकर बाजकी तरह झपटा और दोनों हाथोंके घूँसे बाँधकर उसने भगवान् श्रीकृष्णकी छातीपर प्रहार किया। परन्तु उसके प्रहारसे भगवान् तनिक भी विचलित न हुए। भला, कहीं फूलोंके गजरेकी मारसे गजराज भी विचलित होता है? उन्होंने चाणूरकी दोनों भुजाएँ जकड़कर पकड़ लीं और उसे अन्तरिक्षमें बड़े वेगसे कई बार घुमाकर धरतीपर दे मारा। परीक्षित्! चाणूरके प्राण तो घुमानेके समय ही निकल गये थे। उसकी वेष-भूषा अस्त-व्यस्त हो गयी, केश और मालाएँ बिखर गयीं, वह इन्द्रध्वज (इन्द्रकी पूजाके लिये खड़े किये गये बड़े झंडे) के समान गिर पड़ा। इसी प्रकार मुष्टिकने भी पहले बलरामजीको एक घूँसा मारा। इसपर बलरामजीने उसे बड़े जोरसे एक तमाचा जड़ दिया। तमाचा लगनेसे वह काँप उठा और आँधीसे उखड़े हुए वृक्षके समान अत्यन्त व्यथित और अन्तमें प्राणहीन होकर खून उगलता हुआ पृथ्वीपर गिर पड़ा। परीक्षित्! इसके बाद योद्धाओंमें श्रेष्ठ भगवान् बलरामजीने अपने सामने आते ही कूट नामक पहलवानको खेल-खेलमें ही बायें हाथके घूँसेसे उपेक्षापूर्वक मार डाला। उसी समय



भगवान् श्रीकृष्णने पैरकी ठोकरसे शलका सिर धड़से अलग कर दिया और तोशलको तिनकेकी तरह चीरकर दो टुकड़े कर दिया। इस प्रकार दोनों मर गये। जब चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल और तोशल—ये पाँचों पहलवान मर चुके तब जो बच रहे थे, वे अपने प्राण बचानेके लिये स्वयं वहाँसे भाग खड़े हुए। उनके भाग जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने समवयस्क ग्वालबालोंको खींच-खींचकर उनके साथ भिड़ने और नाच-नाचकर भेरीध्वनिके साथ अपने नूपुरोंकी झनकारको मिलाकर मल्लक्रीडा—कुश्तीके खेल करने लगे ॥१७–२९॥

भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामकी इस अद्भुत लीलाको देखकर सभी दर्शकोंको बड़ा आनन्द हुआ। श्रेष्ठ ब्राह्मण और साधु पुरुष 'धन्य है, धन्य है'—इस प्रकार कहकर प्रशंसा करने लगे। परन्तु कंसको इससे बड़ा दुःख हुआ। वह और भी चिढ़ गया। जब उसके प्रधान पहलवान मार डाले गये और बचे हुए सब-के-सब भाग गये, तब भोजराज कंसने अपने बाजे-गाजे बंद करा दिये और अपने सेवकोंको यह आज्ञा दी—'अरे, वसुदेवके इन दुश्चरित्र लड़कोंको नगरसे बाहर निकाल दो। गोपोंका सारा धन छीन लो और दुर्बुद्धि नन्दको कैद कर लो।

तू भी करती है। तू हमारे पैरोंको मत छू। झूठे प्रणाम करके हमसे अनुनय विनय मत कर। हम देख रही हैं कि श्रीकृष्ण-



की जो वनमाला हमारी सौतोंके वक्षःस्थलके स्पर्शसे मसली हुई है, उसका पीला पीला कुङ्कुम तेरी मूँछोंपर भी लगा हुआ है। तू स्वयं भी तो किसी कुसुमसे प्रेम नहीं करता, यहाँ-से-वहाँ उड़ा करता है। जैसे तेरे स्वामी, वैसा ही तू। मधुपति श्रीकृष्ण मथुराकी मानिनी नायिकाओंको मनाया करें; उनका वह कुङ्कुमरूप कृपा-प्रसाद, जो यदुवंशियोंकी सभामें उपहास करने योग्य है, अपने ही पास रक्खें। उसे तेरे द्वारा यहाँ भेजनेकी क्या आवश्यकता है? जैसा तू काला है, वैसे ही वे भी हैं। तू भी पुष्पोंका रस लेकर उड़ जाता है, वैसे ही वे भी निकले। देख तो, उन्होंने हमें केवल एक बार—हाँ, ऐसा ही लगता है—केवल एक बार अपनी तनिक-सी मोहिनी और परम मादक अधरसुधा पिलायी थी और फिर हम भोलीभाली गोपियोंको छोड़कर वे यहाँसे चले गये। पता नहीं, सुकुमारी लक्ष्मी उनके चरणकमलोंकी सेवा कैसे करती रहती हैं! अवश्य ही वे छैल-छबीले श्रीकृष्णकी चिकनी चुपड़ी बातोंमें आ गयी होंगी। चितचोरने उनका भी चित्त चुरा लिया होगा। अरे भ्रमर! हम वनवासिनी हैं। हमारे तो घर-द्वार भी नहीं है। तू हमलोगोंके सामने यदुवंशशिरोमणि श्रीकृष्णका बहुत-सा गुणगान क्यों कर रहा है? यह सब कला हमलोगोंको मनानेके लिये ही तो? परन्तु नहीं नहीं, वे हमारे लिये कोई नये नहीं हैं। हमारे लिये तो जाने पहचाने, बिल्कुल पुराने हैं। तेरी चापलूसी हमारे पास नहीं चलेगी। तू जा, यहाँसे चला जा और जिनके साथ सदा विजय रहती है, उन श्रीकृष्णकी मधुपुरवासिनी सखियोंके सामने जाकर उनका गुणगान कर। वे नयी हैं, उनकी लीलाएँ कम जानती हैं और इस समय वे उनकी प्यारी हैं, उनके हृदयकी पीड़ा उन्होंने मिटा दी है; वे तेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगी, तेरी चापलूसीसे प्रसन्न होकर तुझे मुँहमाँगी वस्तु देंगी। भौंरे! वे हमारे लिये छटपटा रहे हैं, ऐसा तू क्यों कहता है? उनकी कपटभरी मनोहर मुसकान और भौंहोंके इशारेसे जो वशमें न हो जायँ, उनके पास दौड़ी न आवें—ऐसी कौन-सी स्त्रियाँ हैं? अरे अनजान! स्वर्गमें, पातालमें और पृथ्वीमें ऐसी एक भी स्त्री नहीं है। औरोंकी तो बात ही क्या, स्वयं लक्ष्मीजी भी उनके चरणरजकी सेवा किया करती हैं। फिर हम श्रीकृष्णके लिये किस गिनतीमें हैं? परन्तु तू उनके पास जाकर कहना कि 'तुम्हारा नाम तो 'उत्तमश्लोक' है, अच्छे-अच्छे लोग तुम्हारी कीर्तिका गायन करते हैं; परन्तु इसकी सार्थकता तो इसीमें है कि तुम दीनोंपर दया करो। नहीं तो श्रीकृष्ण! तुम्हारा 'उत्तमश्लोक' नाम झूठा पड़ जाता है।' अरे मधुकर! देख, तू मेरे पैरपर सिर मत टेक। मैं जानती हूँ कि तू अनुनय विनय करनेमें, क्षमायाचना करनेमें बड़ा निपुण है। मालूम होता है तू श्रीकृष्णसे ही यह सीखकर आया है कि रूठे हुएको मनानेके लिये दूतको—सन्देशवाहकको कितनी चाटुकारिता करनी चाहिये। परन्तु तू समझ ले कि यहाँ तेरी दाल नहीं गलनेकी। देख, हमने श्रीकृष्णके लिये ही अपने पति, पुत्र और दूसरे लोगोंको छोड़ दिया। परन्तु उनमें तनिक भी कृतज्ञता नहीं। वे ऐसे निर्मोही निकले कि हमें छोड़कर चलते बने! अब तू ही बता, ऐसे अकृतज्ञपर हम क्या विश्वास करें? क्या तू अब भी कहता है कि उनपर विश्वास करना चाहिये? ऐ रे मधुप! शायद तुझे इस बातका पता न हो, हम तो उनके जन्म-जन्मकी बात जानती हैं कि वे कितने निष्ठुर हैं। जब वे राम बने थे, तब उन्होंने कपिराज बालिको व्याधके समान छिपकर बड़ी निर्दयतासे मारा था। बेचारी शूर्पणखा कामवश उनके पास आयी थी, परन्तु उन्होंने अपनी स्त्रीके वश होकर उस बेचारीके नाक-कान काट लिये और इस प्रकार उसे कुरूप कर दिया। जाने दो उस समयकी बात, ब्राह्मणके घर वामनके रूपमें जन्म लेकर उन्होंने क्या किया? बलिने तो उनकी पूजा की, उनकी मुँहमाँगी वस्तु दी और

करता है, उनका अहित चाहता है, उसे कभी शान्ति नहीं मिल सकती। ये भगवान् श्रीकृष्ण जगत्‌के समस्त प्राणियोंकी उत्पत्ति और प्रलयके आधार हैं। यही रक्षक भी हैं। जो इनका बुरा चाहता है, इनका तिरस्कार करता है; वह कभी सुखी नहीं हो सकता ॥४०–४८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण ही सारे संसारके जीवनदाता हैं। उन्होंने रानियोंको ढाढ़स बँधाया, सान्त्वना दी; फिर लोकरीतिके अनुसार मरनेवालोंका जैसा क्रिया-कर्म होता है, वह सब कराया। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीने जेलमें जाकर अपने माता-पिताको बन्धनसे छुड़ाया और सिरसे स्पर्श करके उनके चरणोंकी वन्दना की। किन्तु उनके प्रणाम करनेपर भी देवकी और वसुदेवने उन्हें जगदीश्वर समझकर अपने हृदयसे नहीं लगाया। उन्हें शङ्का हो गयी कि हम जगदीश्वर-



को पुत्र कैसे समझें। वे हाथ जोड़े खड़े रहे ॥ ४९–५१ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण, बलरामका यज्ञोपवीत और गुरुकुलप्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्णने देखा कि पिता-माताको मेरे ऐश्वर्यका, मेरे भगवद्-भावका ज्ञान हो गया है। परन्तु इन्हें ऐसा ज्ञान होना ठीक नहीं, इससे तो ये पुत्र-स्नेहका सुख नहीं पा सकेंगे—ऐसा सोचकर उन्होंने उनपर अपनी वह योगमाया फैला दी, जो उनके स्वजनोंको मुग्ध रखकर उनकी लीलामें सहायक होती है। यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण बड़े भाई बलरामजीके साथ अपने माँ-बापके पास जाकर आदरपूर्वक और अत्यन्त नम्रतासे 'मेरी अम्मा! मेरे पिताजी!' इन शब्दोंसे उन्हें प्रसन्न करते हुए कहने लगे—'पिताजी! माताजी! हम आपके पुत्र हैं और आप हमारे लिये सर्वदा उत्कण्ठित रहे हैं, फिर भी आप हमारे बचपनसे लेकर किशोर अवस्थातकका सुख हमसे नहीं पा सके। दुर्दैववश हमलोगोंको आपके पास रहनेका सौभाग्य ही नहीं मिला। इसीसे बालकोंको माता-पिताके घरमें रहकर जो लाड़-प्यारका सुख मिलता है, वह हमें भी नहीं मिल सका। पिता और माता ही इस शरीरको जन्म देते हैं और इसका लालन-पालन करते हैं। तब कहीं जाकर यह शरीर धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्षकी प्राप्तिका साधन बनता है। भला, कोई मनुष्य सौ वर्षतक जीकर माता और पिताकी सेवा करता रहे तब भी क्या वह उनके उपकारका बदला चुका सकता है? नहीं, बिल्कुल असम्भव है! जो पुत्र सामर्थ्य रहते भी अपने माँ-बापकी शरीर और धनसे सेवा नहीं करते, उनके मरनेपर यमदूत उन्हें उनके अपने शरीरका मांस खिलाते हैं। जो पुरुष समर्थ होकर भी बूढ़े माता-पिता, सती पत्नी, बालक सन्तान, गुरु, ब्राह्मण और शरणागतका भरण-पोषण नहीं करता—वह जीता हुआ भी मुर्देके समान ही है। पिताजी! हमारे इतने दिन व्यर्थ ही बीत गये। क्योंकि कंसके भयसे सदा उद्विग्नचित्त रहनेके कारण हम आपकी सेवा करनेमें असमर्थ रहे। मेरी माँ और मेरे पिताजी! आप दोनों हमें क्षमा करें। हाय! दुष्ट कंसने आपको इतने-इतने कष्ट दिये, परन्तु हम

लेकर मैं तुमलोगोंके पास आया हूँ अब उसे सुनो ॥२३–२८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—मैं सबका उपादान कारण होनेसे सबका आत्मा हूँ, सबमें अनुगत हूँ; इसलिये मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता। जैसे संसार-की सभी वस्तुओंमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, इन्हींसे सब वस्तुएँ बनी हैं और यही उन वस्तुओंके रूपमें हैं; वैसे ही मैं मन, प्राण, पञ्चभूत, इन्द्रिय और उनके विषयोंका आश्रय हूँ। वे मुझमें हैं, मैं उनमें हूँ और सच पूछो तो मैं ही उनके रूपमें प्रकट हो रहा हूँ। मैं ही अपनी मायाके द्वारा भूत, इन्द्रिय और उनके विषयोंके रूपमें होकर उनका आश्रय बन जाता हूँ तथा स्वयं निमित्त भी बनकर अपने-आपको ही रचता हूँ, पालता हूँ और समेट लेता हूँ। आत्मा माया और मायाके कार्योंसे पृथक् है। वह विशुद्ध ज्ञानस्वरूप जड प्रकृति, अनेक जीव तथा अपने ही अवान्तर भेदोंसे रहित सर्वथा शुद्ध है। कोई भी गुण उसका स्पर्श नहीं कर पाते। मायाकी तीन वृत्तियाँ हैं—सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्। इनके द्वारा वही अखण्ड, अनन्त बोधस्वरूप आत्मा कभी प्राज्ञ, तो कभी तैजस और कभी विश्वरूपसे प्रतीत होता है। मनुष्यको चाहिये कि वह समझे कि स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान ही जाग्रत् अवस्थामें इन्द्रियोंके विषय भी प्रतीत हो रहे हैं, वे मिथ्या हैं। इसीलिये उन विषयोंका चिन्तन करनेवाले मन और इन्द्रियोंको रोक ले और मानो सोकर उठा हो, इस प्रकार जगत्के स्वाप्निक विषयोंको त्याग कर मेरा साक्षात्कार करे। जिस प्रकार सभी नदियाँ घूम फिरकर समुद्रमें ही पहुँचती हैं उसी प्रकार मनस्वी पुरुषोंका वेदाभ्यास, योग साधन, आत्मानात्मविवेक, त्याग, तपस्या, इन्द्रियसंयम और सत्य आदि समस्त धर्म, मेरी प्राप्तिमें ही समाप्त होते हैं। सबका सच्चा फल है मेरा साक्षात्कार। क्योंकि वे सब मनको निरुद्ध करके मेरे पास पहुँचाते हैं ॥२९–३३॥

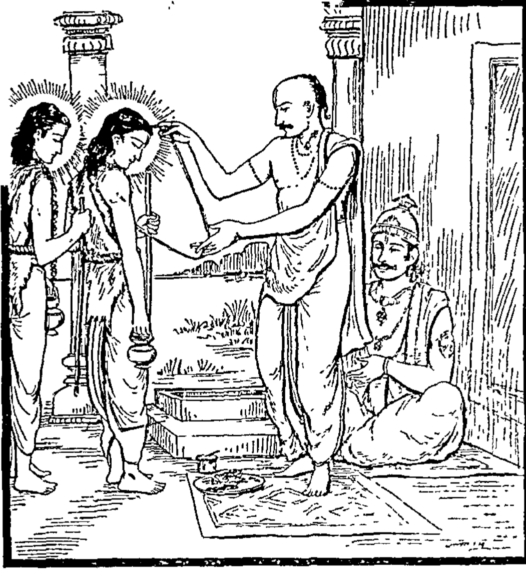
गोपियो! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम्हारे नयनोंका ध्रुवतारा हूँ। तुम्हारा जीवन सर्वस्व हूँ। किन्तु मैं जो तुमसे इतना दूर रहता हूँ, उसका कारण है। वह यही कि तुम निरन्तर मेरा ध्यान कर सको, शरीरसे दूर रहनेपर भी मनसे तुम मेरी सन्निधिका अनुभव करो, अपना मन मेरे पास रक्खो। क्योंकि स्त्रियों और अन्यान्य प्रेमियोंका चित्त अपने परदेशी प्रियतममें जितना निश्चल भावसे लगा रहता है उतना आँखोंके सामने, पास रहनेवाले प्रियतममें नहीं लगता। इस प्रकार जब तुमलोग मेरे ही स्मरण—चिन्तनमें मग्न हो जाओगी तब तुम्हारे चित्तकी वृत्तियाँ कहीं नहीं जायँगी, सारी शान्त हो जायँगी। तब तुम्हारा पूरा मन मुझमें प्रवेश कर जायगा और तुमलोग नित्य निरन्तर मेरे अनुसरणमें मग्न रहकर शीघ्र से शीघ्र मुझे सदाके लिये पा लोगी। तब फिर मेरा और तुम्हारा वियोग कभी न होगा। तुम तो जानती ही हो, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। कल्याणियो! जिस समय मैंने वृन्दावनमें शारदीय पूर्णिमाकी रात्रिमें रास-क्रीड़ा की थी उस समय जो गोपियाँ स्वजनोंके रोक लेनेसे व्रजमें ही रह गयीं—मेरे साथ रास-विहारमें सम्मिलित न हो सकीं, वे मेरी लीलाओंका स्मरण करनेसे ही मुझे प्राप्त हो गयी थीं। तुम्हें भी मैं मिलूँगा अवश्य, निराश होनेकी कोई बात नहीं है ॥३४–३७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अपने प्रियतम श्रीकृष्णका यह सँदेसा सुनकर गोपियोंको बड़ा आनन्द हुआ। उनके सन्देशसे उन्हें श्रीकृष्णके स्वरूप और एक एक लीलाकी याद आने लगी। प्रेमसे भरकर उन्होंने उद्धवजीसे कहा ॥ ३८ ॥

गोपियोंने कहा—उद्धवजी! यह बड़े सौभाग्यकी और आनन्दकी बात है कि यदुवंशियोंको सतानेवाला पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। यह भी कम आनन्द-की बात नहीं है कि श्रीकृष्णके बन्धु-बान्धव और गुरुजनोंके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये तथा अब हमारे प्यारे श्यामसुन्दर उनके साथ सकुशल निवास कर रहे हैं। किन्तु उद्धवजी! एक बात आप हमें बतलाइये। 'जिस प्रकार हम अपनी प्रेमभरी लजीली मुसकान और उन्मुक्त चितवनसे उनकी पूजा करती थीं और वे भी हमसे प्यार करते थे, उसी प्रकार मथुराकी स्त्रियोंसे भी वे प्रेम करते हैं या नहीं?' तबतक दूसरी गोपी बोल उठी—'अरी सखी! तू यह क्या पूछती है? हमारे प्यारे श्यामसुन्दर तो प्रेमकी मोहिनी कलाके विशेषज्ञ हैं न? सभी श्रेष्ठ स्त्रियाँ उनसे प्यार करती हैं, प्यार किये बिना रह नहीं सकतीं। फिर भला जब नगरकी स्त्रियाँ उनसे मीठी मीठी बातें करेंगी और हाव भावसे उनकी ओर देखेंगी तब वे उनपर क्यों न रीझेंगे?' दूसरी गोपियाँ बोलीं—'अजी, जाने दो इन बातोंको। उद्धवजी! आप तो बड़े परोपकारी हैं। आप यह तो बतलाइये कि जब कभी पुर-नारियोंकी मण्डलीमें कोई बात चलती है और हमारे प्यारे स्वच्छन्दरूपसे, बिना किसी सङ्कोचके जब प्रेमकी बातें करने

किया। भगवान्‌की बात सुनकर नन्दबाबाने प्रेमसे अधीर होकर दोनों भाइयोंको गले लगा लिया और फिर नेत्रोंमें आँसू भरकर गोपोंके साथ व्रजके लिये प्रस्थान किया ॥ २०–२५ ॥

परीक्षित्! इसके बाद वसुदेवजीने अपने पुरोहित गर्गाचार्य तथा दूसरे ब्राह्मणोंसे दोनों पुत्रोंका विधिपूर्वक द्विजाति-समुचित यज्ञोपवीत-संस्कार करवाया। उन्होंने विविध



प्रकारके वस्त्र और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंका सत्कार करके उन्हें बहुत-सी दक्षिणा तथा बछड़ोंवाली गौएँ दीं। सभी गौएँ गलेमें सोनेकी माला पहने हुए थीं तथा और भी बहुत-से आभूषणों एवं रेशमी वस्त्रकी मालाओंसे विभूषित थीं। महामति वसुदेवजीने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीके जन्म-नक्षत्रमें जितनी गौएँ मन-ही-मन सङ्कल्प करके दी थीं, उन्हें पहले कंसने बेईमानी करके छीन लिया था। अब उनका स्मरण करके उन्होंने ब्राह्मणोंको वे फिरसे दीं। इस प्रकार यदुवंशके आचार्य गर्गजीसे संस्कार कराकर बलरामजी और भगवान् श्रीकृष्ण द्विजत्वको प्राप्त हुए। उनका ब्रह्मचर्यव्रत अखण्ड तो था ही, अब उन्होंने गायत्रीपूर्वक अध्ययन करनेके लिये उसे नियमतः स्वीकार किया। परीक्षित्! श्रीकृष्ण और बलराम जगत्के एकमात्र स्वामी हैं। सर्वज्ञ हैं। सभी विद्याएँ उन्हींसे निकली हैं। उनका निर्मल ज्ञान स्वतःसिद्ध है। फिर भी उन्होंने मनुष्यकी-सी लीला करके उसे छिपा रक्खा था ॥ २६–३० ॥

परीक्षित्! इसके बाद गुरुकुलमें निवास करनेकी इच्छासे वे अवन्तीपुर (उज्जैन) में रहनेवाले काश्यपगोत्री सान्दीपनि नामक आचार्यके पास गये। वे विधिपूर्वक गुरुजीके पास रहने लगे। उस समय वे बड़े ही सुसंयत, अपनी चेष्टाओंको सर्वथा नियमित रक्खे हुए थे। गुरुजी तो उनका आदर करते ही थे, भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी भी गुरुकी उत्तम सेवा कैसे करनी चाहिये, इसका आदर्श लोगोंके सामने रखते हुए बड़ी भक्तिसे इष्टदेवके समान उनकी सेवा करने लगे। गुरुवर सान्दीपनिजी उनकी शुद्धभावसे युक्त सेवासे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने दोनों भाइयोंको छहों अङ्ग और उपनिषदोंके सहित सम्पूर्ण वेदोंकी शिक्षा दी। इनके सिवा मन्त्र और देवताओंके ज्ञानके साथ धनुर्वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र, मीमांसा आदि वेदोंका तात्पर्य बतलानेवाले शास्त्र, तर्कविद्या (न्यायशास्त्र) आदिकी भी शिक्षा दी। साथ ही सन्धि, विग्रह, मान, आसन, द्वैध और आश्रय—इन छः भेदोंसे युक्त राजनीतिका भी अध्ययन कराया। परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम सारी विद्याओंके प्रवर्तक हैं। इस समय केवल श्रेष्ठ मनुष्यका-सा व्यवहार करते हुए ही वे अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने गुरुजीके केवल एक बार कहनेमात्रसे सारी विद्याएँ सीख लीं। केवल चौसठ दिन-रातमें ही संयमीशिरोमणि दोनों भाइयोंने चौसठों कलाओं* का ज्ञान प्राप्त कर लिया। इस प्रकार अध्ययन

* चौसठ कलाएँ ये हैं—

१ गानविद्या, २ वाद्य—भाँति-भाँतिके बाजे बजाना, ३ नृत्य, ४ नाट्य, ५ चित्रकारी, ६ बेल-बूटे बनाना, ७ चावल और पुष्पादिसे पूजाके उपहारकी रचना करना, ८ फूलोंकी सेज बनाना, ९ दाँत, वस्त्र और अङ्गोंको रँगना, १० मणियोंकी फर्श बनाना, ११ शय्या-रचना, १२ जलको बाँध देना, १३ विचित्र सिद्धियाँ दिखलाना, १४ हार-माला आदि बनाना, १५ कान और चोटीके फूलोंके गहने बनाना, १६ कपड़े और गहने बनाना, १७ फूलोंके आभूषणोंसे शृङ्गार करना, १८ कानोंके पत्तोंकी रचना करना, १९ सुगन्ध वस्तुएँ—इत्र, तैल आदि बनाना, २० इन्द्रजाल—जादूगरी, २१ चाहे जैसा वेष धारण कर लेना, २२ हाथकी फुर्तीके काम, २३ तरह-तरहकी खानेकी वस्तुएँ बनाना, २४ तरह-तरहके पीनेके पदार्थ बनाना, २५ सूईका काम, २६ कठपुतली बनाना, नचाना, २७ पहेली, २८ प्रतिमा आदि बनाना, २९ कूटनीति, ३० ग्रन्थोंके पढ़नेकी चातुरी, ३१ नाटक, आख्यायिका आदिकी रचना करना, ३२ समस्यापूर्ति करना, ३३ पट्टी, बेंत, बाण आदि बनाना, ३४ गलीचे, दरी आदि बनाना, ३५

लेकर मैं तुमलोगोंके पास आया हूँ अब उसे सुनो ॥२३-२८॥

भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—मैं सबका उपादान कारण होनेसे सबका आत्मा हूँ, सबमें अनुगत हूँ, इसलिये मुझसे कभी भी तुम्हारा वियोग नहीं हो सकता। जैसे संसार की सभी वस्तुओंमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी—ये पाँचों भूत व्याप्त हैं, इन्हींसे सब वस्तुएँ बनी हैं और यही उन वस्तुओंके रूपमें हैं, वैसे ही मैं मन, प्राण, पञ्चभूत, इन्द्रिय और उनके विषयोंका आश्रय हूँ। वे मुझमें हैं, मैं उनमें हूँ और सच पूछो तो मैं ही उनके रूपमें प्रकट हो रहा हूँ। मैं ही अपनी मायाके द्वारा भूत, इन्द्रिय और उनके विषयोंके रूपमें होकर उनका आश्रय बन जाता हूँ तथा स्वयं निमित्त भी बनकर अपने आपको ही रचता हूँ, पालता हूँ और समेट लेता हूँ। आत्मा माया और मायाके कार्योंसे पृथक् है। वह विशुद्ध ज्ञानस्वरूप जड प्रकृति, अनेक जीव तथा अपने ही अवान्तर भेदोंसे रहित सर्वथा शुद्ध है। कोई भी गुण उसका स्पर्श नहीं कर पाते। मायाकी तीन वृत्तियाँ हैं—सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्। इनके द्वारा वही अखण्ड, अनन्त बोधस्वरूप आत्मा कभी प्राज्ञ, तो कभी तैजस और कभी विश्वरूपसे प्रतीत होता है। मनुष्यको चाहिये कि वह समझे कि स्वप्नमें दीखनेवाले पदार्थोंके समान ही जाग्रत् अवस्थामें इन्द्रियोंके विषय भी प्रतीत हो रहे हैं, वे मिथ्या हैं। इसीलिये उन विषयोंका चिन्तन करनेवाले मन और इन्द्रियोंको रोक ले और मानो सोकर उठा हो, इस प्रकार जगत्के स्वाप्निक विषयोंको त्याग कर मेरा साक्षात्कार करे। जिस प्रकार सभी नदियाँ घूम फिरकर समुद्रमें ही पहुँचती हैं उसी प्रकार मनस्वी पुरुषोंका वेदाभ्यास, योग साधन, आत्मानात्मविवेक, त्याग, तपस्या, इन्द्रियसंयम और सत्य आदि समस्त धर्म, मेरी प्राप्तिमें ही समाप्त होते हैं। सबका सच्चा फल है मेरा साक्षात्कार। क्योंकि वे सब मनको निरुद्ध करके मेरे पास पहुँचाते हैं ॥२९-३३॥

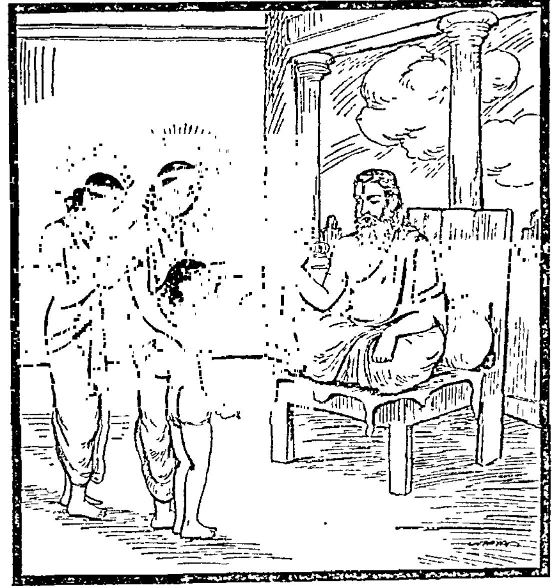
गोपियो! इसमें सन्देह नहीं कि मैं तुम्हारे नयनोंका ध्रुवतारा हूँ। तुम्हारा जीवन सर्वस्व हूँ। किन्तु मैं जो तुमसे इतना दूर रहता हूँ, उसका कारण है। वह यही कि तुम निरन्तर मेरा ध्यान कर सको, शरीरसे दूर रहनेपर भी मनसे तुम मेरी सन्निधिका अनुभव करो, अपना मन मेरे पास रक्खो। क्योंकि स्त्रियों और अन्यान्य प्रेमियोंका चित्त अपने परदेशी प्रियतममें जितना निश्चल भावसे लगा रहता है उतना आँखोंके सामने, पास रहनेवाले प्रियतममें नहीं लगता। इस प्रकार जब तुमलोग मेरे ही स्मरण—चिन्तनमें मग्न हो जाओगी तब तुम्हारे चित्तकी वृत्तियाँ कहीं नहीं जायँगी, सारी शान्त हो जायँगी। तब तुम्हारा पूरा मन मुझमें प्रवेश कर जायगा और तुमलोग नित्य निरन्तर मेरे अनुसरणमें मग्न रहकर शीघ्र से शीघ्र मुझे सदाके लिये पा लोगी। तब फिर मेरा और तुम्हारा वियोग कभी न होगा। तुम तो जानती ही हो, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। कल्याणियो! जिस समय मैंने वृन्दावनमें शारदीय पूर्णिमाकी रात्रिमें रास क्रीड़ा की थी उस समय जो गोपियाँ स्वजनोंके रोक लेनेसे व्रजमें ही रह गयीं—मेरे साथ रास विहारमें सम्मिलित न हो सकीं, वे मेरी लीलाओंका स्मरण करनेसे ही मुझे प्राप्त हो गयी थीं। तुम्हें भी मैं मिलूँगा अवश्य, निराश होनेकी कोई बात नहीं है ॥३४-३७॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! अपने प्रियतम श्रीकृष्णका यह सँदेसा सुनकर गोपियोंको बड़ा आनन्द हुआ। उनके सन्देशसे उन्हें श्रीकृष्णके स्वरूप और एक एक लीलाकी याद आने लगी। प्रेमसे भरकर उन्होंने उद्धवजीसे कहा ॥ ३८ ॥

गोपियोंने कहा—उद्धवजी! यह बड़े सौभाग्यकी और आनन्दकी बात है कि यदुवंशियोंको सतानेवाला पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। यह भी कम आनन्द की बात नहीं है कि श्रीकृष्णके बन्धु-बान्धव और गुरुजनोंके सारे मनोरथ पूर्ण हो गये तथा अब हमारे प्यारे श्यामसुन्दर उनके साथ सकुशल निवास कर रहे हैं। किन्तु उद्धवजी! एक बात आप हमें बतलाइये। 'जिस प्रकार हम अपनी प्रेमभरी लजीली मुसकान और उन्मुक्त चितवनसे उनकी पूजा करती थीं और वे भी हमसे प्यार करते थे, उसी प्रकार मथुराकी स्त्रियोंसे भी वे प्रेम करते हैं या नहीं?' तबतक दूसरी गोपी बोल उठी—'अरी सखी! तू यह क्या पूछती है? हमारे प्यारे श्यामसुन्दर तो प्रेमकी मोहिनी कलाके विशेषज्ञ हैं न? सभी श्रेष्ठ स्त्रियाँ उनसे प्यार करती हैं, प्यार किये बिना रह नहीं सकतीं। फिर भला जब नगरकी स्त्रियाँ उनसे मीठी मीठी बातें करेंगी और हाव भावसे उनकी ओर देखेंगी तब वे उनपर क्यों न रीझेंगे?' दूसरी गोपियाँ बोलीं—'अजी, जाने दो इन बातोंको। उद्धवजी! आप तो बड़े परोपकारी हैं। आप यह तो बतलाइये कि जब कभी पुर नारियोंकी मण्डलीमें कोई बात चलती है और हमारे प्यारे स्वच्छन्दरूपसे, बिना किसी सङ्कोचके जब प्रेमकी बातें करने

श्रीभगवान्‌ने कहा—'यमराज ! यहाँ अपने कर्म-बन्धनके अनुसार मेरा गुरुपुत्र लाया गया है। तुम मेरी आज्ञा स्वीकार करो और उसके कर्मपर ध्यान न देकर उसे मेरे पास ले आओ।' यमराजने 'जो आज्ञा' कहकर भगवान्‌का आदेश स्वीकार किया और उनका गुरुपुत्र ला दिया। तब यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी उस बालकको लेकर उज्जैन लौट आये और उसे अपने गुरुदेवको सौंपकर कहा कि 'आप और जो कुछ चाहें, माँग लें' ॥ ४५-४६ ॥

गुरुजीने कहा—'बेटा ! तुम दोनोंने भलीभाँति गुरुदक्षिणा दी। अब और क्या चाहिये ? जो तुम्हारे-जैसे दूसरे पुरुषोंका गुरु है, उसका भी कोई मनोरथ अपूर्ण नहीं रहता; फिर मैं तो तुम्हारा गुरु हूँ। अब तुम दोनों अपने घर जाओ। तुम्हें लोकोंको पवित्र करनेवाली कीर्ति प्राप्त हो। तुम्हारी पढ़ी हुई विद्या इस लोक और परलोकमें सदा नवीन बनी रहे, कभी विस्मृत न हो।' परीक्षित् ! फिर गुरुजीसे आज्ञा लेकर वायुके समान वेग और मेघके समान शब्दवाले रथपर सवार होकर दोनों भाई मथुरामें लौट आये। मथुराकी प्रजा बहुत दिनोंतक श्रीकृष्ण और बलरामको न देखनेसे अत्यन्त दुखी हो रही थी। अब उन्हें आया हुआ देख



सब-के-सब परमानन्दमें मग्न हो गये, मानो खोया हुआ धन मिल गया हो ॥ ४७–५० ॥

छियालीसवाँ अध्याय

उद्धवजीकी व्रजयात्रा

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! उद्धवजी वृष्णि-वंशियोंमें एक प्रधान पुरुष थे। वे साक्षात् बृहस्पतिजीके शिष्य और परम बुद्धिमान् थे। उनकी महिमाके सम्बन्धमें इससे बढ़कर और कौन-सी बात कही जा सकती है कि वे भगवान् श्रीकृष्णके प्यारे सखा तथा मन्त्री भी थे। एक दिन शरणागतोंके सारे दुःख हर लेनेवाले भगवान् श्रीकृष्णने अपने प्रिय भक्त और एकान्तप्रेमी उद्धवजीका हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—'भाई उद्धव ! तुम व्रजमें जाओ। वहाँ मेरे पिता-माता नन्दबाबा और यशोदामैया हैं। उन्हें आनन्दित करो; और गोपियाँ मेरे विरहकी व्याधिसे बहुत ही दुखी हो रही हैं, उन्हें मेरे सन्देश सुनाकर उस वेदनासे मुक्त करो। प्यारे उद्धव ! मैं तुमसे सच कहता हूँ, गोपियोंका मन नित्य-निरन्तर मुझमें ही लगा रहता है। उनके प्राण, उनका जीवन, उनका सर्वस्व मैं ही हूँ। मेरे लिये उन्होंने अपने पति-पुत्र आदि सभी सगे-सम्बन्धियोंको छोड़ दिया है। उन्होंने बुद्धिसे भी मुझीको अपना प्यारा, अपना प्रियतम—नहीं, नहीं, अपना आत्मा मान रक्खा है। मेरा यह व्रत है कि जो लोग मेरे लिये लौकिक और पारलौकिक धर्मोंको छोड़



देते हैं, उनकी देख-रेख मैं स्वयं करता हूँ। प्यारे उद्धव !

उद्धवजीने व्रजमें रहकर गोपियोंकी इस प्रकारकी प्रेम विकलता तथा और भी बहुत-सी प्रेम चेष्टाएँ देखीं। उनकी इस प्रकार श्रीकृष्णमें तन्मयता देखकर वे प्रेम और आनन्दसे भर गये। अब वे गोपियोंको नमस्कार करते हुए इस प्रकार गायन करने लगे—'इस पृथ्वीपर केवल इन गोपियोंका ही जीवन धारण करना सफल है। क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्णके परम प्रेममय दिव्य महाभावमें स्थित हो गयी हैं। प्रेमकी यह ऊँची से ऊँची स्थिति संसारके भयसे भीत मुमुक्षुजनोंके लिये ही नहीं, अपितु बड़े बड़े मुनियों—मुक्त पुरुषों तथा हमलोगोंके—भक्तोंके लिये भी अभी वाञ्छनीय ही है। हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है, जिन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकथाके रसका चसका लग गया है उन्हें कुलीनताकी, द्विजातिसमुचित संस्कारकी और बड़े बड़े यज्ञ-यागोंमें दीक्षित होनेकी क्या आवश्यकता है? अथवा यदि भगवान्‌की कथाका रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई, तो अनेक महाकल्पोंतक बार-बार ब्रह्मा होनेसे ही क्या लाभ? अहो, एक तो ये संस्कारशून्य स्त्री हैं, दूसरे इनका स्वभाव भी वनोंमें इधर-उधर घूमते—भटकते रहनेका है। यदि सदाचारकी दृष्टिसे देखें, तो भी ये श्रीकृष्णमें जार भाव ही रखती हैं। फिर भी इन्हें भगवान् श्रीकृष्णके प्रति परम प्रेममय महाभावकी प्राप्ति हुई। कहाँ ये गाँवकी गँवार ग्वालिनें और कहाँ भगवान्‌का वह परम प्रेम! अहो, धन्य है! धन्य है! इससे सिद्ध होता है कि यदि कोई भगवान्‌के स्वरूप और रहस्यको न जानकर भी उनसे प्रेम करे, उनका भजन करे, तो वे स्वयं अपनी शक्तिसे, अपनी कृपासे उसका परम कल्याण कर देते हैं, ठीक वैसे ही जैसे कोई अनजानमें भी अमृत पी ले तो वह अपनी वस्तु शक्तिसे ही पीनेवालेको अमर बना देता है। भगवान् श्रीकृष्णने रासोत्सवके समय इन गोपियोंके गलेमें बाँह डाल-डालकर इनके मनोरथ पूर्ण किये। इन्हें भगवान्‌ने जिस कृपा प्रसादका वितरण किया, इन्हें जैसा प्रेमदान किया, वैसा भगवान्‌की परमप्रेमवती नित्यसङ्गिनी वक्ष स्थलपर विराजमान लक्ष्मीजीको भी नहीं प्राप्त हुआ। ऐसी स्थितिमें वह प्रसाद कमलकी-सी सुगन्ध और कान्तिसे युक्त देवाङ्गनाओंको तो मिल ही कैसे सकता है? फिर दूसरी स्त्रियोंकी बात ही क्या करें? मेरे लिये तो सबसे अच्छी बात यही होगी कि मैं इस वृन्दावनधाममें कोई लता बन जाऊँ, छोटा पौधा बन जाऊँ अथवा कोई तिनका ही बन जाऊँ! अहा! यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा, तो मुझे इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूल निरन्तर सेवन करनेके लिये मिलती रहेगी। इनकी चरण रजमें स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। धन्य हैं ये गोपियाँ। देखो तो सही, जिनको छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन स्वजन सम्बन्धियों तथा लोक वेदकी आर्य मर्यादा—शिष्टजनान्वित सनातन मार्गका—सतीधर्मका परित्याग करके इन्होंने भगवान्‌की पदवी, उनके साथ तन्मयता, उनका परम प्रेम प्राप्त कर लिया है—औरोंकी तो बात ही क्या—भगवद्वाणी, उनकी निःश्वासरूप समस्त श्रुतियाँ, उपनिषदें भी अबतक भगवान्‌के परम प्रेममय स्वरूपको ढूँढ़ती ही रहती हैं, प्राप्त नहीं कर पातीं। स्वयं भगवती लक्ष्मीजी जिनकी पूजा करती रहती हैं, ब्रह्मा, शङ्कर आदि परम समर्थ देवता, पूर्णकाम आत्माराम और बड़े-बड़े योगेश्वर अपने हृदयमें जिनका चिन्तन करते रहते हैं, भगवान् श्रीकृष्णके उन्हीं चरणारविन्दोंको रास लीलाके समय गोपियोंने अपने वक्ष स्थलपर रखवा और उनका आलिङ्गन करके अपने हृदयकी जलन, विरह व्यथा शान्त की। उन्हीं परम भाग्यवती गोपियोंकी चरणधूल मुझे प्राप्त होती रहे और मैं बार बार नित्य निरन्तर उसीकी वन्दना करता रहूँ। धन्य है! नन्दबाबाके व्रजकी इन गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकथाके सम्बन्धमें जो कुछ गायन किया है, वह तीनों लोकोंको पवित्र कर रहा है और सदा सर्वदा पवित्र करता रहेगा'॥ ५७—६३॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! इस प्रकार कई महीनोंतक व्रजमें रहकर उद्धवजीने अब मथुरा जानेके लिये गोपियोंसे, नन्दबाबा और यशोदामैयासे आज्ञा प्राप्त की। ग्वाल बालोंसे पूछताछकर वे रथपर सवार हुए। जब उनका रथ व्रजसे बाहर निकला, तब नन्दबाबा आदि गोपगण बहुत-सी भेंटकी सामग्री लेकर उनके पास आये और आँखोंमें आँसू भरकर उन्होंने बड़े प्रेमसे कहा—'उद्धवजी! अब हम यही चाहते हैं कि हमारे मनकी एक एक वृत्ति, एक एक सङ्कल्प श्रीकृष्णके चरणकमलोंके ही आश्रित रहे। उन्हींकी सेवाके लिये उठे और उन्हींमें लगा भी रहे। हमारी वाणी नित्य निरन्तर उन्हींके नामोंका उच्चारण करती रहे और शरीर उन्हींको प्रणाम करने, उन्हींके आज्ञा-पालन और सेवामें लगा रहे। उद्धवजी! हम सच कहते हैं, हमें मोक्षकी इच्छा बिल्कुल नहीं है। हम भगवान्‌की इच्छासे अपने कर्मोंके अनुसार चाहे जिस योनिमें जन्म लें—वहाँ शुभ आचरण करें, दान करें और उसका फल यही पावें कि भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें हमारी प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती रहे।' प्रिय परीक्षित्! नन्दबाबा आदि गोपोंने इस प्रकार श्रीकृष्ण भक्तिके द्वारा उद्धवजीका सम्मान किया।

ही हैं कि जैसे सिंह बिना किसी परिश्रमके पशुओंको मार डालता है, वैसे ही उन्होंने खेल-खेलमें ही दस हजार हाथियों-का बल रखनेवाले कंस, उसके दोनों अजेय पहलवानों और महान् बलशाली गजराज कुवलयापीड़को मार डाला। उन्होंने तीन ताल लंबे और अत्यन्त दृढ़ धनुषको वैसे ही तोड़ डाला, जैसे कोई हाथी किसी छड़ीको तोड़ डाले। आपने सुना होगा कि हमारे प्यारे श्रीकृष्णने एक हाथसे सात दिनोंतक गिरि-राजको उठाये रक्खा था। वहाँकी बात जाने दीजिये। यहीं सबके देखते-देखते खेल-खेलमें उन्होंने प्रलम्ब, धेनुक, अरिष्ट, तृणावर्त और बक आदि उन बड़े-बड़े दैत्योंको मार डाला, जिन्होंने समस्त देवता और असुरोंपर विजय प्राप्त कर ली थी'॥ १४—२६॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! नन्दबाबाका हृदय यों ही भगवान् श्रीकृष्णके अनुराग-सागरमें डूबा रहता था। जब इस प्रकार वे उनकी लीलाओंका एक-एक करके स्मरण करने लगे तब तो उसमें प्रेमकी बाढ़ ही आ गयी, वे विह्वल हो गये और मिलनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा होनेके कारण उनका गला रुँध गया। वे चुप हो गये। यशोदारानी भी वहीं बैठकर नन्दबाबाकी बातें सुन रही थीं, श्रीकृष्णकी एक-एक लीला सुनकर उनके नेत्रोंसे आँसू बहते जाते थे और पुत्रस्नेहकी बाढ़से उनके स्तनोंसे दूधकी धारा बहती जा रही थी। उद्धवजीने यह सब देखा-सुना और इसका भी अनुमान किया, अनुभव किया कि नन्दबाबा और यशोदारानीके हृदय-में भगवान् श्रीकृष्णके प्रति कैसा अगाध अनुराग है! वे आनन्द-मग्न होकर नन्दबाबा और यशोदारानीसे कहने लगे॥ २७—२९॥

उद्धवजीने कहा—नन्दबाबा! इसमें सन्देह नहीं कि आप दोनों समस्त शरीरधारियोंमें अत्यन्त भाग्यवान् हैं, सराहना करनेयोग्य हैं। क्योंकि जो सारे चराचर जगत्के बनानेवाले और उसे ज्ञान देनेवाले नारायण हैं, उनके प्रति आपके हृदयमें ऐसा वात्सल्य-स्नेह—पुत्रभाव है। बलराम और श्रीकृष्ण पुराणपुरुष हैं; वे सारे संसारके उपादानकारण और निमित्तकारण भी हैं। भगवान् श्रीकृष्ण पुरुष हैं तो बलरामजी प्रधान (प्रकृति)। ये ही दोनों समस्त शरीरोंमें प्रविष्ट होकर उन्हें जीवन-दान देते हैं और उनमें उनसे अत्यन्त विलक्षण जो ज्ञानस्वरूप जीव है, उसका नियमन करते हैं। जो जीव मृत्युके समय अपने शुद्ध मनको



एक क्षणके लिये भी उनमें लगा देता है, वह समस्त कर्म-वासनाओंको धो बहाता है और शीघ्र ही सूर्यके समान तेजस्वी तथा ब्रह्ममय होकर परम गतिको प्राप्त होता है। वे भगवान् ही, जो सबके आत्मा और परम कारण हैं, भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करने और पृथ्वीका भार उतारनेके लिये मनुष्यका-सा शरीर ग्रहण करके प्रकट हुए हैं। उनके प्रति आप दोनोंका ऐसा सुदृढ़ वात्सल्यभाव है; फिर महात्माओ! आप दोनोंके लिये अब कौन-सा शुभ कर्म करना शेष रह जाता है? भक्तवत्सल यदुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण थोड़े ही दिनोंमें व्रजमें आयेंगे और आप दोनोंको—अपने माँ-बापको आनन्दित करेंगे। जिस समय उन्होंने समस्त यदुवंशियोंके द्रोही कंसको रंगभूमिमें मार डाला और आपके पास आकर कहा कि 'मैं व्रजमें आऊँगा,' उस कथनको वे सत्य करेंगे। नन्दबाबा और माता यशोदाजी! आप दोनों परम भाग्यशाली हैं। आप खेद न करें। आप देखेंगे कि श्रीकृष्ण तो आपके पास ही हैं। क्योंकि जैसे काष्ठमें अग्नि सदा ही व्यापक रूपसे रहती है, वैसे ही वे समस्त प्राणियोंके हृदयमें सर्वदा विराजमान रहते हैं। एक शरीरके प्रति अभिमान न होनेके कारण न तो कोई उनका प्रिय है और न तो अप्रिय। वे सबमें और सबके प्रति समान हैं; इसलिये उनकी दृष्टिमें न तो कोई उत्तम है और न तो अधम। यहाँतक कि

करने और उनसे कुछ काम लेनेके लिये उनके घर गये। अक्रूरजीने दूरसे ही देख लिया कि हमारे परम बन्धु मनुष्यलोक शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजी आदि पधार रहे हैं। वे तुरत उठकर आगे गये तथा आनन्दसे भरकर उनका अभिनन्दन और आलिङ्गन किया। अक्रूरजीने भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामको नमस्कार किया तथा उद्धवजीके साथ उन दोनों भाइयोंने भी उन्हें नमस्कार किया। जब सब लोग आरामसे आसनोंपर बैठ गये, तब अक्रूरजी उन लोगों



की विधिवत् पूजा करने लगे। परीक्षित्! उन्होंने पहले भगवान्‌के चरण धोकर चरणोदक सिरपर धारण किया और फिर अनेकों प्रकारकी पूजा-सामग्री, दिव्य वस्त्र, गन्ध, माला और श्रेष्ठ आभूषणोंसे उनका पूजन किया, सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और उनके चरणोंको अपनी गोदमें लेकर दबाने लगे। उसी समय उन्होंने अत्यन्त नम्रतासे भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामजीसे कहा ॥१२–१६॥

उन्होंने कहा—'भगवन्! यह बड़े ही आनन्द और सौभाग्यकी बात है कि पापी कंस अपने अनुयायियोंके साथ मारा गया। उसे मारकर आप दोनोंने यदुवंशको बहुत बड़े सङ्कटसे बचा लिया है तथा उन्नत और समृद्ध किया है। आप दोनों जगत्‌के कारण और जगत्‌रूप, प्रधान एवं पुरुष हैं। आपके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है, न कारण और न तो कार्य। परमात्मन्! आपने ही अपनी शक्तिसे इसकी रचना की है और आप ही अपनी काल, माया आदि शक्तियोंसे इसमें प्रविष्ट होकर जितनी भी वस्तुएँ देखी और सुनी जाती हैं, उनके रूपमें प्रतीत हो रहे हैं। जैसे पृथ्वी आदि कारणतत्त्वोंसे ही उनके कार्य स्थावर-जङ्गम शरीर बनते हैं, वे उनमें अनुप्रविष्ट से होकर अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तवमें वे कारणरूप ही हैं। इसी प्रकार हैं तो केवल आप ही, परन्तु अपने कार्यरूप जगत्‌में स्वेच्छासे अनेक रूपोंमें प्रतीत होते हैं। यह भी आपकी एक लीला ही है। प्रभो! आप रजोगुण, सत्त्वगुण और तमोगुणरूप अपनी शक्तियोंसे क्रमशः जगत्‌की रचना, पालन और संहार करते हैं। किन्तु आप उन गुणोंसे अथवा उनके द्वारा होनेवाले कर्मोंसे बन्धनमें नहीं पड़ते, क्योंकि आप शुद्ध ज्ञानस्वरूप हैं। ऐसी स्थितिमें आपके लिये बन्धनका कारण ही क्या हो सकता है? प्रभो! स्वयं आत्मवस्तुमें स्थूलदेह, सूक्ष्मदेह आदि उपाधियाँ न होनेके कारण न तो उसमें जन्म-मृत्यु है और न किसी प्रकारका भेदभाव। यही कारण है कि न आपमें बन्धन है और न मोक्ष। आपमें अपने-अपने अभिप्रायके अनुसार बन्धन या मोक्षकी जो कुछ कल्पना होती है, उसका कारण केवल हमारा अविवेक ही है। आपने जगत्‌के कल्याणके लिये यह सनातन वेदमार्ग प्रकट किया है। जब जब इसे पाखण्ड-पथसे चलनेवाले दुष्टोंके द्वारा क्षति पहुँचती है, तब तब आप शुद्ध सत्त्वमय शरीर ग्रहण करते हैं। प्रभो! वही आप इस समय अपने अंश श्रीबलरामजीके साथ पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये यहाँ वसुदेवजीके घर अवतीर्ण हुए हैं। आप असुरोंके अंशसे उत्पन्न नाममात्रके शासकोंकी सौ सौ अक्षौहिणी सेनाका संहार करेंगे और यदुवंशके यशका विस्तार करेंगे। इन्द्रियातीत परमात्मन्! सारे देवता, पितर, भूतगण और राजा आपकी मूर्ति हैं। आपके चरणोंकी धोवन गङ्गाजी तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं। आप सारे जगत्‌के एकमात्र पिता और शिक्षक हैं। वही आज आप हमारे घर पधारे! इसमें सन्देह नहीं कि आज हमारे घर धन्य धन्य हो गये। उनके सौभाग्यकी सीमा न रही। प्रभो! आप प्रेमी भक्तोंके परम प्रियतम, सत्यवक्ता, अकारण हितू और कृतज्ञ हैं—जरा सी सेवाको भी मान लेते हैं। भला, ऐसा कौन बुद्धिमान् पुरुष है जो आपको छोड़कर किसी दूसरेकी शरणमें जायगा? आप अपना भजन करनेवाले प्रेमी भक्तकी समस्त अभिलाषाएँ पूर्ण कर देते हैं। यहाँतक कि जिसकी कभी क्षति और वृद्धि नहीं होती—जो एकरस है, अपने उस आत्माका भी आप दान कर देते हैं। भक्तोंके

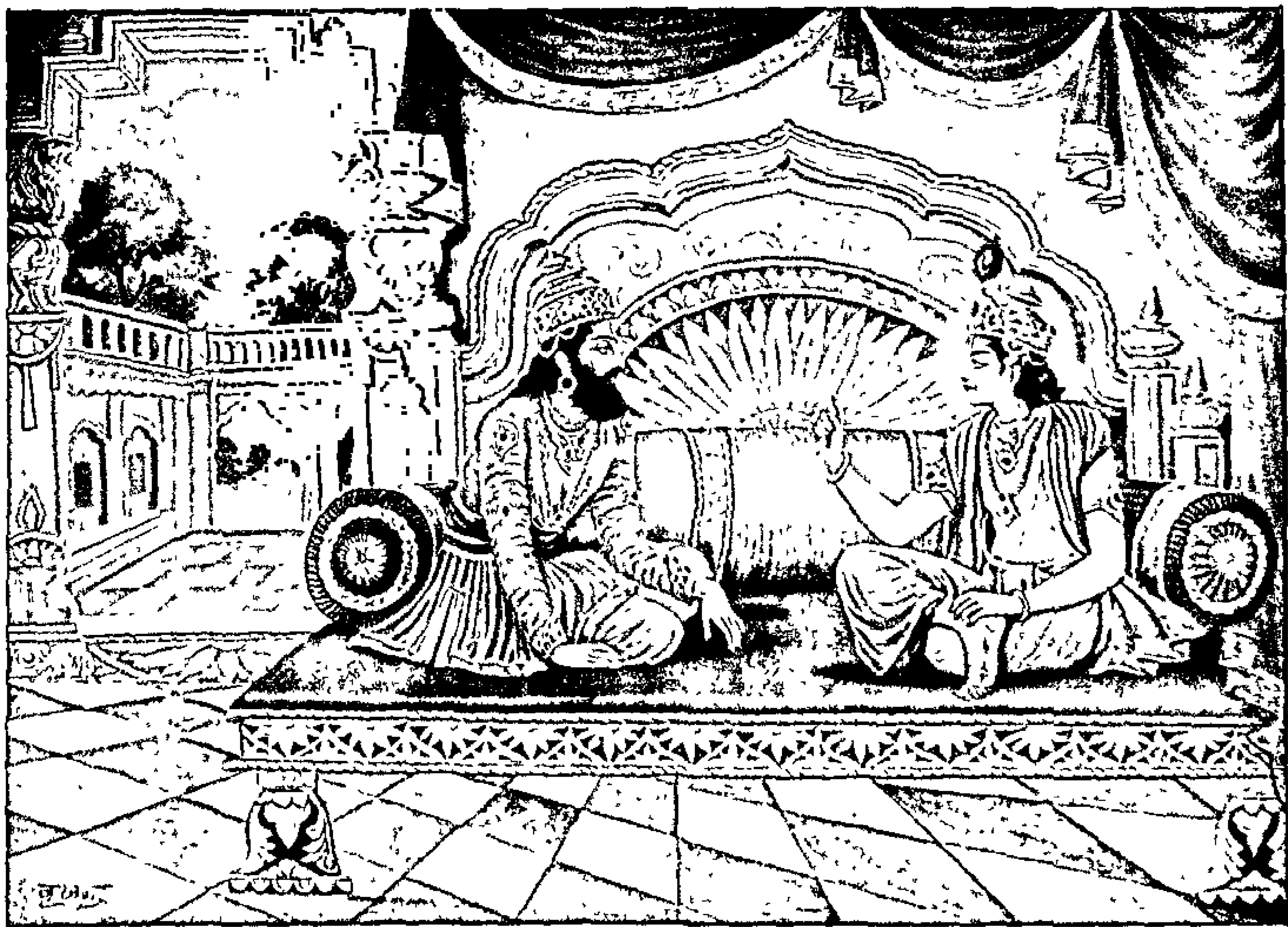
सैंतालीसवाँ अध्याय

उद्धव और गोपियोंकी बातचीत और भ्रमरगीत

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! गोपियोंने देखा कि सामने जो पुरुष आ रहा है, उसकी आकृति और वेषभूषा श्रीकृष्णसे मिलती-जुलती है। घुटनोंतक लंबी-लंबी भुजाएँ हैं, नूतन कमलदलके समान कोमल नेत्र हैं, शरीरपर पीताम्बर धारण किये हुए है, गलेमें कमलपुष्पोंकी माला है, कानोंमें मणिजटित कुण्डल झलक रहे हैं और मुखारविन्द अत्यन्त प्रफुल्लित है। पवित्र मुसकानवाली गोपियोंने आपसमें कहा—'यह पुरुष देखनेमें तो बहुत सुन्दर है! परन्तु यह है कौन? कहाँसे आया है? किसका दूत है? इसने श्रीकृष्ण-जैसी वेषभूषा क्यों धारण कर रक्खी है?' सब-की-सब गोपियाँ उनका परिचय प्राप्त करनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हो गयीं और उनमेंसे बहुत-सी पवित्र-कीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलोंके आश्रित तथा उनके सेवक-सखा उद्धवजीको चारों ओरसे घेरकर खड़ी हो गयीं। जब उन्हें मालूम हुआ कि ये तो रमारमण भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश लेकर आये हैं, तब उन्होंने विनयसे झुककर सलज्ज हास्य, चितवन और मधुर वाणी आदिसे उद्धवजीका अत्यन्त सत्कार किया तथा एकान्तमें आसनपर बैठाकर वे उनसे इस प्रकार कहने लगीं—'उद्धवजी! हम जानती हैं कि आप हमारे व्रजनाथ—नहीं-नहीं, अब यदुनाथके पार्षद हैं। उन्हींका सँदेसा लेकर यहाँ पधारे हैं। आपके स्वामीने अपने माता-पिताको सुख देनेके लिये आपको यहाँ भेजा है। नहीं तो, अब इस नन्दगाँवमें—गौओंके रहनेकी जगहमें ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसका वे वहाँ बैठे-बैठे स्मरण करें? पर इतनी बात तो सच है कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी अपने सगे-सम्बन्धियोंका स्नेह-बन्धन बड़ी कठिनाईसे छोड़ पाते हैं। इसलिये माता-पिताकी याद तो श्रीकृष्णको भी आती ही होगी। अपने माता-पिता-जैसे घनिष्ठ सम्बन्धियोंको छोड़कर जो दूसरोंके साथ प्रेम-सम्बन्ध किया जाता है, वह तो किसी-न-किसी स्वार्थके लिये ही होता है। जबतक अपना मतलब नहीं निकल जाता, तबतक प्रेमका स्वाँग किया जाता है; काम निकला और प्रेमका दिवाला हुआ। भौंरोंका पुष्पोंसे और पुरुषोंका स्त्रियोंसे ऐसा ही स्वार्थका प्रेम-सम्बन्ध होता है। जहाँ देखो, संसारमें स्वार्थजन्य प्रेमका ही बोलबाला है। देखो न, जब वेश्या समझती है कि अब मेरे यहाँ आनेवालेके पास धन नहीं है, तो उसे वह धता बता देती है। जब प्रजा देखती है कि यह राजा हमारी रक्षा नहीं कर सकता, तब वह उसका साथ छोड़ देती है। अध्ययन समाप्त हो जानेपर कितने शिष्य अपने आचार्योंकी सेवा करते हैं? यज्ञकी दक्षिणा मिली कि ऋत्विजलोग चलते बने। जब वृक्षपर फल नहीं रहते, तब पक्षीगण वहाँसे बिना कुछ सोचे-विचारे उड़ जाते हैं। भोजन कर लेनेके बाद अतिथिलोग ही गृहस्थकी ओर कब देखते हैं? वनमें आग लगी कि पशु भाग खड़े हुए। चाहे स्त्रीके हृदयमें कितनी भी आसक्ति हो, व्यभिचारी पुरुष अपना काम बना लेनेके बाद उलटकर भी तो नहीं देखता। हाँ तो उद्धवजी! संसारके प्रेम-सम्बन्ध ऐसे ही होते हैं।' परीक्षित्! गोपियोंके मन, वाणी और शरीर श्रीकृष्णमें ही तल्लीन थे। जब भगवान् श्रीकृष्णके दूत बनकर उद्धवजी व्रजमें आये, तब वे उनसे इस प्रकार कहते-कहते यह भूल ही गयीं कि कौन-सी बात किस तरह किसके सामने कहनी चाहिये। भगवान् श्रीकृष्णने बचपनसे लेकर किशोर अवस्थातक जितनी भी लीलाएँ की थीं, उन सबकी याद कर-करके गोपियाँ उनका गायन करने लगीं। उनके हृदयमें एक-एक करके जितनी भी स्मृतियाँ जगतीं, रुलाये बिना न छोड़तीं। वे आत्मविस्मृत होकर स्त्री-सुलभ लज्जाको भी भूल गयीं और फूट-फूटकर रोने लगीं। एक गोपीको उस समय स्मरण हो रहा था भगवान् श्रीकृष्णके मिलनकी लीलाका। उसी समय उसने देखा कि पास ही एक भौंरा गुनगुना रहा है। उसने ऐसा समझा मानो मुझे रूठी हुई समझकर श्रीकृष्णने मनानेके लिये दूत भेजा हो। वह गोपी भौंरेसे इस प्रकार कहने लगी ॥१—११॥

गोपीने कहा—मधुकर! तू कपटीका सखा है; इसलिये

अक्रूरजीको हस्तिनापुर भेजना



आप हस्तिनापुर जाइये और पता लगाइये—पाण्डवोंकी स्थिति अच्छी है या बुरी !

उन्होंने क्या किया ? उसकी पूजा ग्रहण करके भी उसे वरुणपाशसे बाँधकर पातालमें डाल दिया। ठीक वैसे ही, जैसे कौआ बलि खाकर भी बलि देनेवालेको अपने अन्य साथियोंके साथ मिलकर घेर लेता है और परेशान करता है। अच्छा, तो अब जाने दे; हमें कृष्णसे क्या, किसी भी काली वस्तुसे कोई प्रयोजन नहीं है। हम कालोंकी मित्रतासे बाज आयीं। परन्तु यदि तू यह कहे कि 'जब ऐसा है तब तुमलोग उनकी चर्चा क्यों करती हो ?' तो भ्रमर ! हम सच कहती हैं, एक बार जिसे उसका चसका लग जाता है, वह उसे छोड़ नहीं सकता। ऐसी दशामें हम चाहनेपर भी उनकी चर्चा छोड़ नहीं सकतीं। क्या करें ? देख न, श्रीकृष्णकी लीलारूप अमृतकी कुछ थोड़ी-सी बूँदें जिसके कानोंमें पड़ जाती हैं, जो उसके एक कणका भी रसास्वादन कर लेता है, उसके राग-द्वेष आदि सारे द्वन्द्व छूट जाते हैं। संसारके सुख-दुःख उसके सामनेसे भाग खड़े होते हैं। यहाँतक कि बहुत-से लोग तो अपनी दुःखमय—दुःखसे सनी हुई घर-गृहस्थी छोड़कर अकिञ्चन हो जाते हैं, अपने पास कुछ भी संग्रह-परिग्रह नहीं रखते, और पक्षियोंकी तरह चुन-चुनकर—भीख माँगकर अपना पेट भरते हैं, दीन-दुनियासे जाते रहते हैं। फिर भी श्रीकृष्णकी लीला-कथा छोड़ नहीं पाते। वास्तवमें उसका रस, उसका चसका ऐसा ही है। यही दशा हमारी हो रही है। जैसे कृष्णसार मृगकी पत्नी भोलीभाली हरिनियाँ व्याधके सुमधुर गानका विश्वास कर लेती हैं और उसके जालमें फँसकर मारी जाती हैं, वैसे ही हम भोलीभाली गोपियाँ भी उस छलिया कृष्णकी मीठी-मीठी बातोंमें आकर उन्हें सत्यके समान मान बैठीं और उनके नखस्पर्शसे होनेवाली कामव्याधिका बार-बार अनुभव करती रहीं। इसलिये अब इस विषयमें तू और कुछ मत कह। तुझे कहना ही हो तो कोई दूसरी बात कह! [इतनेमें ही भौंरा उड़कर दूसरी ओर चला जाता है और तुरंत ही फिर लौट आता है। उसे लौटा हुआ देख गोपी फिर कुछ आदरसे कहने लगती है—] हमारे प्रियतमके प्यारे सखा ! जान पड़ता है तुम एक बार उधर जाकर फिर लौट आये हो। अवश्य ही हमारे प्रियतमने मनानेके लिये तुम्हें भेजा होगा। प्रिय भ्रमर ! तुम सब प्रकारसे हमारे माननीय हो। कहो तुम्हारी क्या इच्छा है ? हमसे जो चाहो, सो माँग लो। अच्छा, तुम सच बताओ, क्या हमें वहाँ ले चलना चाहते हो ? अजी, उनके पास जाकर लौटना बड़ा कठिन है। हम तो उनके पास जा चुकी हैं। परन्तु तुम हमें वहाँ ले जाकर करोगे क्या ? प्यारे भ्रमर ! तनिक समझदारीसे काम लो। उनके साथ—उनके वक्षःस्थलपर तो उनकी प्यारी पत्नी लक्ष्मीजी सदा रहती हैं न ? तब वहाँ हमारा निर्वाह कैसे होगा ? अच्छा, हमारे प्रियतमके प्यारे दूत मधुकर ! हमें यह बतलाओ कि आर्यपुत्र भगवान् श्रीकृष्ण गुरुकुलसे लौटकर मधुपुरीमें अब सुखसे तो हैं न ? क्या वे कभी नन्दबाबा, यशोदारानी, यहाँके घर, सगे-सम्बन्धी और ग्वालबालोंकी भी याद करते हैं ? और क्या हम दासियोंकी भी कोई बात कभी चलाते हैं ? प्यारे भ्रमर ! हमें यह भी बतलाओ कि कभी वे अपनी अगरके समान दिव्य सुगन्धसे युक्त भुजा हमारे सिरोंपर रक्खेंगे ? क्या हमारे जीवनमें कभी ऐसा शुभ अवसर भी आयेगा ? ॥ १२–२१ ॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनके लिये अत्यन्त उत्सुक—लालायित हो रही थीं, उनके लिये तड़प रही थीं। उनकी बातें सुनकर उद्धवजीने उन्हें उनके प्रियतमका सन्देश सुनाकर सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा ॥२२॥

उद्धवजीने कहा—गोपियो ! तुम कृतकृत्य हो। तुम्हारा जीवन सफल है। देवियो ! तुम सारे संसारके लिये पूजनीय हो। क्योंकि तुमलोगोंने इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको अपना हृदय, अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया है। भगवान् श्रीकृष्णके प्रति प्रेमभक्तिका प्राप्त होना अत्यन्त कठिन है। दान, व्रत, तप, होम, जप, वेदाध्ययन, ध्यान, धारणा, समाधि और कल्याणके अन्य विविध साधनोंके द्वारा भगवान्‌की भक्ति प्राप्त हो, यही प्रयत्न किया जाता है। यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमलोगोंने पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीकृष्णके प्रति वही सर्वोत्तम प्रेमभक्ति प्राप्त की है और उसीका आदर्श स्थापित किया है, जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। सचमुच यह कितने सौभाग्यकी बात है कि तुमने अपने पुत्र, पति, देह, स्वजन और घरोंको छोड़कर पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णको, जो सबके परम पति हैं, पतिके रूपमें वरण किया है। महाभाग्यवती गोपियो ! भगवान् श्रीकृष्णके वियोगसे तुमने उन इन्द्रियातीत परमात्माके प्रति वह भाव प्राप्त कर लिया है, जो सभी वस्तुओंके रूपमें उनका दर्शन कराता है। तुमलोगोंका वह भाव मेरे सामने भी प्रकट हुआ, यह मेरे ऊपर तुम देवियोंकी बड़ी ही दया है। मैं अपने स्वामीका गुप्त काम करनेवाला दूत हूँ। तुम्हारे प्रियतम भगवान् श्रीकृष्णने तुमलोगोंको परम सुख देनेके लिये यह प्रिय सन्देश भेजा है। कल्याणियो ! वही

लगते हैं तब क्या कभी हम गँवार ग्वालिनोंकी भी याद करते हैं ?' कुछ गोपियोंने कहा—'उद्धवजी ! हमें तो उन बातोंकी बहुत याद आती है । क्या कभी श्रीकृष्ण भी उन रात्रियोंका स्मरण करते हैं, जब कुमुदिनी तथा मोगरेके पुष्प खिले हुए थे, चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी और वृन्दावन अत्यन्त रमणीय हो रहा था ! उन रात्रियोंमें ही उन्होंने रास-मण्डल बनाकर हमलोगोंके साथ नृत्य किया था । कितनी सुन्दर थी वह रास-लीला ! अजी, हमलोगोंके नूपुरकी ध्वनिने ही बड़े-बड़े बाजोंको मात कर दिया था । हमलोग उन्हींकी सुन्दर-सुन्दर-लीलाओंका गायन कर रही थीं और वे हमारे साथ नाना प्रकारके विहार कर रहे थे !' कुछ दूसरी गोपियाँ बोल उठीं—'उद्धवजी ! हम सब तो उन्हींके विरहकी आगसे जल रही हैं । देवराज इन्द्र जैसे जल बरसाकर वनको हरा-भरा कर देते हैं, उसी प्रकार क्या कभी श्रीकृष्ण भी अपने कर-स्पर्श आदिसे हमें जीवन-दान देनेके लिये यहाँ आवेंगे ?' तबतक एक गोपीने कहा—'अरी सखी ! तू तो बहुत भोली है । अब तो उन्होंने शत्रुओंको मारकर राज्य पा लिया है; जिसे देखो, वही उनका सुहृद् बना फिरता है । अब वे बड़े-बड़े नरपतियोंकी कुमारियोंसे विवाह करेंगे, उनके साथ आनन्दपूर्वक रहेंगे; यहाँ हम गँवारिनोंके पास क्यों आयेंगे ?' दूसरी गोपीने कहा—'नहीं सखी ! श्रीकृष्ण तो स्वयं लक्ष्मीपति हैं । उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण ही हैं, वे कृतकृत्य हैं । हम वनवासिनी ग्वालिनों अथवा दूसरी राजकुमारियोंसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है । हमलोगोंके बिना उनका कौन-सा काम अटक रहा है ? देखो वेश्या होनेपर भी पिङ्गलाने क्या ही ठीक कहा है—संसारमें किसीकी आशा न रखना ही सबसे बड़ा सुख है । यह बात हम जानती हैं, फिर भी हम भगवान् श्रीकृष्णके लौटनेकी आशा छोड़नेमें असमर्थ हैं । उनके शुभागमनकी आशा ही तो हमारा जीवन है । हमारे प्यारे श्यामसुन्दरने, जिनकी कीर्तिका गायन बड़े-बड़े महात्मा करते रहते हैं, हमसे एकान्तमें जो मीठी-मीठी प्रेमकी बातें की हैं उन्हें छोड़नेका, भुलानेका उत्साह भी हम कैसे कर सकती हैं ? देखो तो, उनकी इच्छा न होनेपर भी स्वयं लक्ष्मीजी उनके चरणोंसे लिपटी रहती हैं, एक क्षणके लिये भी उनका अङ्ग-सङ्ग छोड़कर कहीं नहीं जातीं । उद्धवजी ! यह वही नदी है, जिसमें वे विहार करते थे । यह वही पर्वत है, जिसके शिखरपर चढ़कर वे बाँसुरी बजाते थे । ये वे ही वन हैं, जिनमें वे रात्रिके समय रास-लीला करते थे, और ये वे ही गौएँ हैं, जिनको चरानेके लिये वे सुबह-शाम हमलोगोंको देखते हुए जाते-आते थे । और यह ठीक वैसी ही वंशीकी तान हमारे कानोंमें गूँजती रहती है, जैसी वे अपने अधरोंके संयोगसे छेड़ा करते थे । बलरामजीके साथ श्रीकृष्णने इन सभीका सेवन किया है । यहाँका एक-एक प्रदेश, एक-एक धूलकण उनके परम सुन्दर चरणकमलोंसे चिह्नित है । इन्हें जब-जब हम देखती हैं, सुनती हैं—दिनभर यही तो करती रहती हैं—तब-तब वे हमारे प्यारे श्यामसुन्दर नन्दनन्दनको हमारे नेत्रोंके सामने लाकर रख देते हैं । उद्धवजी ! हम किसी भी प्रकार—मरकर भी उन्हें भूल नहीं सकतीं । उनकी वह हंसकी-सी सुन्दर चाल, उन्मुक्त हास्य, विलासपूर्ण चितवन और मधुमयी वाणी ! ओह ! उन सबने हमारा चित्त चुरा लिया है, हमारा मन हमारे वशमें नहीं है; अब हम उन्हें भूलें तो किस तरह ? हमारे प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम्हीं हमारे जीवनके स्वामी हो । सर्वस्व हो । प्यारे ! तुम लक्ष्मीनाथ हो तो क्या हुआ ? हमारे लिये तो व्रजनाथ ही हो न ? हम व्रजगोपियोंके एकमात्र तुम्हीं सच्चे स्वामी हो । श्यामसुन्दर ! तुमने बार-बार हमारी व्यथा मिटायी है, हमारे सङ्कट काटे हैं । गोविन्द ! तुम गौओंसे बहुत प्रेम करते हो । क्या हम गौएँ नहीं हैं ? तुम्हारा यह सारा गोकुल—जिसमें ग्वालबाल, पिता-माता, गौएँ और हम गोपियाँ, सब कोई हैं—दुःखके अपार सागरमें डूब रहा है । तुम इसे बचाओ, आओ, हमारी रक्षा करो' ॥३९–५२॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय सन्देश सुनकर गोपियोंके विरहकी व्यथा शान्त हो गयी थी । वे इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्णको अपने आत्माके रूपमें सर्वत्र स्थित समझ चुकी थीं । अब वे बड़े प्रेम और आदरसे उद्धवजीका सत्कार करने लगीं । उद्धवजी गोपियोंकी विरह-व्यथा मिटानेके लिये कई महीनोंतक वहीं रहे । वे भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों लीलाएँ और बातें सुना-सुनाकर व्रजवासियोंको आनन्दित करते । नन्दबाबाके व्रजमें जितने दिनोंतक उद्धवजी रहे उतने दिनोंतक भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकी चर्चा होते रहनेके कारण उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो अभी उनको आये एक ही क्षण हुआ हो ! भगवान्‌के परमप्रेमी भक्त उद्धवजी कभी नदीतटपर जाते, कभी वनोंमें विहरते और कभी गिरिराजकी गुफाओं और तराइयोंमें विचरते । कभी रंग-बिरंगे फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंमें ही रम जाते और यहाँ भगवान् श्रीकृष्णने कौन-सी लीला की है, यह पूछ-पूछकर व्रजवासियोंको भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी लीलाके स्मरणमें तन्मय कर देते ॥५३–५६॥

लगते हैं तब क्या कभी हम गँवार ग्वालिनोंकी भी याद करते हैं ?' कुछ गोपियोंने कहा—'उद्धवजी ! हमें तो उन बातोंकी बहुत याद आती है । क्या कभी श्रीकृष्ण भी उन रात्रियोंका स्मरण करते हैं, जब कुमुदिनी तथा मोगरेके पुष्प खिले हुए थे, चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी और वृन्दावन अत्यन्त रमणीय हो रहा था ! उन रात्रियोंमें ही उन्होंने रास-मण्डल बनाकर हमलोगोंके साथ नृत्य किया था । कितनी सुन्दर थी वह रास-लीला ! अजी, हमलोगोंके नूपुरकी ध्वनिने ही बड़े-बड़े बाजोंको मात कर दिया था । हमलोग उन्हींकी सुन्दर-सुन्दर-लीलाओंका गायन कर रही थीं और वे हमारे साथ नाना प्रकारके विहार कर रहे थे !' कुछ दूसरी गोपियाँ बोल उठीं—'उद्धवजी ! हम सब तो उन्हींके विरहकी आगसे जल रही हैं । देवराज इन्द्र जैसे जल बरसाकर वनको हरा-भरा कर देते हैं, उसी प्रकार क्या कभी श्रीकृष्ण भी अपने कर-स्पर्श आदिसे हमें जीवन-दान देनेके लिये यहाँ आवेंगे ?' तबतक एक गोपीने कहा—'अरी सखी ! तू तो बहुत भोली है । अब तो उन्होंने शत्रुओंको मारकर राज्य पा लिया है; जिसे देखो, वही उनका सुहृद् बना फिरता है । अब वे बड़े-बड़े नरपतियोंकी कुमारियोंसे विवाह करेंगे, उनके साथ आनन्दपूर्वक रहेंगे; यहाँ हम गँवारिनोंके पास क्यों आयेंगे ?' दूसरी गोपीने कहा—'नहीं सखी ! श्रीकृष्ण तो स्वयं लक्ष्मीपति हैं । उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण ही हैं, वे कृतकृत्य हैं । हम वनवासिनी ग्वालिनों अथवा दूसरी राजकुमारियोंसे उनका कोई प्रयोजन नहीं है । हमलोगोंके बिना उनका कौन-सा काम अटक रहा है ! देखो वेश्या होनेपर भी पिङ्गलाने क्या ही ठीक कहा है—संसारमें किसीकी आशा न रखना ही सबसे बड़ा सुख है । यह बात हम जानती हैं, फिर भी हम भगवान् श्रीकृष्णके लौटनेकी आशा छोड़नेमें असमर्थ हैं । उनके शुभागमनकी आशा ही तो हमारा जीवन है । हमारे प्यारे श्यामसुन्दरने, जिनकी कीर्तिका गायन बड़े-बड़े महात्मा करते रहते हैं, हमसे एकान्तमें जो मीठी-मीठी प्रेमकी बातें की हैं उन्हें छोड़नेका, भुलानेका उत्साह भी हम कैसे कर सकती हैं ! देखो तो, उनकी इच्छा न होनेपर भी स्वयं लक्ष्मीजी उनके चरणोंसे लिपटी रहती हैं, एक क्षणके लिये भी उनका अङ्ग-सङ्ग छोड़कर कहीं नहीं जातीं । उद्धवजी ! यह वही नदी है, जिसमें वे विहार करते थे । यह वही पर्वत है, जिसके शिखरपर चढ़कर वे बाँसुरी बजाते थे । ये वे ही वन हैं, जिनमें वे रात्रिके समय रास-लीला करते थे, और ये वे ही गौएँ हैं, जिनको चरानेके लिये वे सुबह-शाम हमलोगोंको देखते हुए जाते-आते थे । और यह ठीक वैसी ही वंशीकी तान हमारे कानोंमें गूँजती रहती है, जैसी वे अपने अधरोंके संयोगसे छेड़ा करते थे । बलरामजीके साथ श्रीकृष्णने इन सभीका सेवन किया है । यहाँका एक-एक प्रदेश, एक-एक धूलकण उनके परम सुन्दर चरणकमलोंसे चिह्नित है । इन्हें जब-जब हम देखती हैं, सुनती हैं—दिनभर यही तो करती रहती हैं—तब-तब वे हमारे प्यारे श्यामसुन्दर नन्दनन्दनको हमारे नेत्रोंके सामने लाकर रख देते हैं । उद्धवजी ! हम किसी भी प्रकार—मरकर भी उन्हें भूल नहीं सकतीं । उनकी वह हंसकी-सी सुन्दर चाल, उन्मुक्त हास्य, विलासपूर्ण चितवन और मधुमयी वाणी ! ओह ! उन सबने हमारा चित्त चुरा लिया है, हमारा मन हमारे वशमें नहीं है; अब हम उन्हें भूलें तो किस तरह ? हमारे प्यारे श्रीकृष्ण ! तुम्हीं हमारे जीवनके स्वामी हो । सर्वस्व हो । प्यारे ! तुम लक्ष्मीनाथ हो तो क्या हुआ ? हमारे लिये तो व्रजनाथ ही हो न ? हम व्रजगोपियोंके एकमात्र तुम्हीं सच्चे स्वामी हो । श्यामसुन्दर ! तुमने बार-बार हमारी व्यथा मिटायी है, हमारे सङ्कट काटे हैं । गोविन्द ! तुम गौओंसे बहुत प्रेम करते हो । क्या हम गौएँ नहीं हैं ? तुम्हारा यह सारा गोकुल—जिसमें ग्वालबाल, पिता-माता, गौएँ और हम गोपियाँ, सब कोई हैं—दुःखके अपार सागरमें डूब रहा है । तुम इसे बचाओ, आओ, हमारी रक्षा करो' ॥३९–५२॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—प्रिय परीक्षित् ! भगवान् श्रीकृष्णका प्रिय सन्देश सुनकर गोपियोंके विरहकी व्यथा शान्त हो गयी थी । वे इन्द्रियातीत भगवान् श्रीकृष्णको अपने आत्माके रूपमें सर्वत्र स्थित समझ चुकी थीं । अब वे बड़े प्रेम और आदरसे उद्धवजीका सत्कार करने लगीं । उद्धवजी गोपियोंकी विरह-व्यथा मिटानेके लिये कई महीनोंतक वहीं रहे । वे भगवान् श्रीकृष्णकी अनेकों लीलाएँ और बातें सुना-सुनाकर व्रजवासियोंको आनन्दित करते । नन्दबाबाके व्रजमें जितने दिनोंतक उद्धवजी रहे उतने दिनोंतक भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाकी चर्चा होते रहनेके कारण उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो अभी उनको आये एक ही क्षण हुआ हो ! भगवान्‌के परमप्रेमी भक्त उद्धवजी कभी नदीतटपर जाते, कभी वनोंमें विहरते और कभी गिरिराजकी गुफाओं और तराइयोंमें विचरते । कभी रंग-बिरंगे फूलोंसे लदे हुए [illegible]
ही रम जाते और यहाँ भगवान् श्रीकृष्णने कौ[illegible]
है, यह पूछ-पूछकर व्रजवासियोंको [illegible]
उनकी लीलाके स्मरणमें तन्मय क[illegible]

अब वे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा सुरक्षित मथुरापुरीमें लौट आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और उन्हें व्रजवासियोंकी प्रेममयी भक्तिका उद्रेक, जैसा उन्होंने देखा था, कह सुनाया। इसके बाद नन्दबाबाने भेंटकी जो-जो सामग्री दी थी वह उनको, वसुदेवजी, बलरामजी और राजा उग्रसेनको दे दी ॥ ६४–६९ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

भगवान्‌का कुब्जा और अक्रूरजीके घर जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! संसारके मूलकारण गुण, उनके द्वारा प्रेरित भाव और भावके अनुसार होनेवाली समस्त क्रियाएँ, उन सबका अभाव और इस भाव-अभावकी सीमासे परे भी जो कुछ अनिर्वचनीय वस्तु है—वह सब भगवान् ही हैं; वे सर्वात्मा हैं। इसीसे समस्त प्राणियोंके चित्तमें जो भी दर्शन, अनुभव या ज्ञान होता है—उसका स्वरूप चाहे कुछ भी हो—वह है भगवान् ही; क्योंकि वे सर्वदर्शन हैं। यही कारण है कि प्रत्येक भाव और क्रियाका उनके साथ सामञ्जस्य है। उद्धवजीके आनेके बाद भगवान्‌को कुब्जाकी याद हो आयी। उन्होंने उसके घर आनेको कहा था। अतः उद्धवजीको यह दिखानेके लिये कि गोपियोंकी तो बात ही क्या, मैं कुब्जाकी भी उपेक्षा नहीं करता, भगवान् मिलनकी आकांक्षासे व्याकुल कुब्जाको आनन्दित करनेके लिये उसके घर गये। कुब्जाका घर बहुमूल्य सामग्रियोंसे सजा हुआ था। उसमें शृङ्गार-रसका उद्दीपन करनेवाली बहुत-सी साधन-सामग्री भी भरी हुई थी। मोतीकी झालरें और स्थान-स्थानपर झंडियाँ भी लगी हुई थीं। चँदोवे तने हुए थे। सेजें बिछायी हुई थीं और बैठनेके लिये बहुत सुन्दर-सुन्दर आसन लगाये हुए थे। धूपकी सुगन्ध फैल रही थी। दीपककी शिखाएँ जगमगा रही थीं। स्थान-स्थानपर फूलोंके हार और चन्दन रक्खे हुए थे। भगवान्‌को अपने घर आते देख कुब्जा तुरंत हड़बड़ाकर अपने आसनसे उठ खड़ी हुई और सखियोंके साथ आगे बढ़कर उसने विधिपूर्वक भगवान्‌का स्वागत-सत्कार किया। फिर श्रेष्ठ आसन देकर विविध उपचारोंसे उनकी विधिपूर्वक पूजा की। कुब्जाने भगवान्‌के परमभक्त उद्धवजीकी भी समुचित रीतिसे पूजा की; परन्तु वे उसके सम्मानके लिये उसका दिया हुआ आसन छूकर धरतीपर ही बैठ गये। अपने स्वामीके सामने उन्होंने आसनपर बैठना उचित न समझा। भगवान् श्रीकृष्ण सच्चिदानन्दस्वरूप होनेपर भी लोकाचारका अनुकरण करते हुए तुरंत उसकी बहुमूल्य सेजपर जा बैठे। तब कुब्जा स्नान, अङ्गराग, वस्त्र, आभूषण, हार, गन्ध (इत्र आदि), ताम्बूल और सुधासव आदिसे अपनेको खूब सजाकर लीलामयी लजीली मुसकान तथा हाव-भावके साथ भगवान्‌की ओर देखती हुई उनके पास आयी। कुब्जा नवीन मिलनके सङ्कोचसे कुछ झिझक रही थी। तब श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने उसे अपने पास बुला लिया और उसकी कंकणसे सुशोभित कलाई पकड़कर अपने पास बैठा लिया और उसके साथ क्रीडा करने लगे। परीक्षित्! कुब्जाने इस जन्ममें केवल भगवान्‌को अङ्गराग अर्पित किया था, उसी एक शुभकर्मके फलस्वरूप उसे ऐसा अनुपम अवसर मिला। कुब्जा भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंको अपने हृदय, वक्षःस्थल और नेत्रोंपर रखकर उनकी दिव्य सुगन्ध लेने लगी और इस प्रकार उसने अपने हृदयकी सारी आधि-व्याधि शान्त कर ली। भगवान् श्रीकृष्णको प्राप्त करनेके लिये उसके अन्तःकरणमें बहुत दिनोंसे जो जलन हो रही थी, उसे उसने अपने हृदयके बीचमें आनन्दमूर्ति प्रियतम भगवान्‌का आलिङ्गन प्राप्त करके शान्त किया। परीक्षित्! कुब्जाने केवल अङ्गराग समर्पित किया था। उतनेसे ही उसे उन सर्वशक्तिमान् भगवान्‌की प्राप्ति हुई, जो कैवल्य-मोक्षके अधीश्वर हैं और जिनकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। परन्तु उस दुर्भगाने उन्हें प्राप्त करके भी व्रजगोपियोंकी भाँति सेवा न माँगकर यही माँगा—'प्रियतम! आप कुछ दिन यहीं रहकर मेरे साथ क्रीड़ा कीजिये। क्योंकि हे कमलनयन! मुझसे आपका साथ नहीं छोड़ा जाता।' परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण सबका मान रखनेवाले और सर्वेश्वर हैं। उन्होंने अभीष्ट वर देकर उसकी पूजा स्वीकार की और फिर अपने प्यारे भक्त उद्धवजीके साथ अपने सर्वसम्मानित घरपर लौट आये। परीक्षित्! भगवान् ब्रह्मा आदि समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं। उनको प्रसन्न कर लेना भी जीवके लिये बहुत ही कठिन है। जो कोई उन्हें प्रसन्न करके उनसे विषय-सुख माँगता है, वह निश्चय ही दुर्बुद्धि है। क्योंकि वास्तवमें विषय-सुख अत्यन्त तुच्छ—नहींके बराबर है ॥ १–११ ॥

तदनन्तर एक दिन सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीकृष्ण बलरामजी और उद्धवजीके साथ अक्रूरजीकी अभिलाषा पूर्ण